मराठी

श्रीराम विजय

(हिन्दी अनुवाद सहित)

भुवनवाणी ट्रस्ट लखनऊ-३

मराठी

श्रीराम विजय

(मूलपाठ सहित हिन्दी अनुवाद)

रचयिता

पं० श्रीधर स्वामी

अनुवादक

डॉ० गजानन नरसिंह साठे

हिन्दी विभागाध्यक्ष, रा० आ० पोद्दार वाणिज्य महाविद्यालय, बम्बई

प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चोपटियाँ रोड, लखनऊ—२२६००३

प्रथम संस्करण—

१९७६ ई०

मूल्य— ६०.०० रुपया

मुद्रक:—

वाणी प्रेस

भुवन वाणी ट्रस्ट

[illegible]ाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-२२६००३

ग्रन्थ - विमोचन

कर्नाटक प्रदेश के महामहिम राज्यपाल
श्री पं० उमाशंकर दीक्षित के
कर-कमलों द्वारा।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
ग्रन्थ-विमोचन—महामहिम राज्यपाल श्रीउमाशंकर दीक्षित	3
विषयसूची	4
माल्यार्पण सुश्री कुमारी निर्मला देशपांडे	१
समर्पण-उपहार	२
भूमिका—माननीय विदेशमंत्री श्री यशवंतराव चव्हाण	३
निवेदन—डॉ० गजानन साठे	४-६
प्रकाशकीय	७-८
ग्रन्थारम्भ एवं ‘ श्रीरामपञ्चायतन ’ का चित्र	९-१०
‘ श्रीधर ’ डॉ० गजानन साठे	११-१४
बालकाण्ड	१५
अयोध्याकाण्ड	२११
अरण्यकाण्ड	४१२
किष्किन्धाकाण्ड	५३५
सुन्दरकाण्ड	५९४
युद्धकाण्ड	७४४
उत्तरकाण्ड	१०३३
‘ श्रीराम-विजय ’ की विषयानुक्रमणिका	१२१५-१२२५

सुश्री बहिन कुमारी निर्मला देशपांडे

को

माल्यार्पण

मराठी श्रीरामविजय

हिन्दी अनुवाद सहित

पं० श्रीधर विरचित

पवनार आश्रम (वर्धा) से उद्भूत मानव-कल्याणकारी, सर्वोदयी समस्त योजनाओं की सर-सञ्चालिका, एवं भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ के भाषाई सेतुकरण के अद्वितीय कार्यक्रम की अनन्य संरक्षिका सुश्री बहिन कुमारी निर्मला देशपांडे को 'मराठी' का यह अनुपम ग्रन्थ 'श्रीराम-विजय' सादर माल्यार्पित।

२९ जून, १९७६
रथयात्रा दिवस

नन्दकुमार अवस्थी

प्रतिष्ठाता—भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ—३

हे कविवर,

मध्ययुगीन मराठी पौराणिक शैली के प्रबन्ध-काव्यों के रचयिताओं में आपका स्थान सर्वोपरि है।

श्रीहरि-विजय, पाण्डव-प्रताप, श्रीशिवलीलामृत जैसी आपकी रचनाओं ने मराठी-भाषियों को मंत्र-मुग्ध कर रखा है।

आपकी वाग्धारा में साहित्य-प्रेमियों की पिपासा को तृप्त कर देनेवाला काव्य-रस विद्यमान है; उसी प्रकार उसमें भक्त जन त्रिविध ताप का शमन करनेवाला दिव्य रस विपुल मात्रा में प्राप्त करते हैं। आपकी ऐसी रचनाओं की माला में 'श्रीराम-विजय' रूपी यह पुष्प सर्वाधिक लोकप्रियता का अधिकारी है।

'भुवन-वाणी ट्रस्ट-लखनऊ' द्वारा राष्ट्रभाषा के माध्यम से मैंने इस ग्रन्थ को अन्यान्य भाषा-भाषियों के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

हे कविवर,

'श्रीराम-विजय' का यह हिन्दी गद्यानुवाद आपको ही समर्पित है। वस्तु आपकी है— मैं हूँ केवल भार-वाही !

श्रीराम-नवमी
विक्रम-संवत् २०३३

विनीत
गजानन नरसिंह साठे

....

....

....

भूमिका

भगवान राम को मर्यादा-पुरुष कहा जाता है। राम के आदर्श सिद्धान्त एवं विचार प्रेरणादायी रहे हैं। महर्षि वाल्मीकि ने राम की

लीलाओं को 'रामायण' नामक काव्य ग्रंथ में लिपिबद्ध किया है। इसके आधार पर अनेक ग्रंथ अनेक भाषाओं में प्रकाशित हुए हैं। मराठी भाषा में भी गद्य और पद्य में ऐसे ग्रंथ उपलब्ध हैं। किन्तु पं० श्रीधर स्वामी द्वारा रचित 'श्रीराम विजय' काव्य ग्रंथ अपना विशेष महत्व रखता है। सरल तथा रसमय भाषा से यह ग्रंथ लोकप्रिय हुआ है।

रामायण तथा तत्संबंधित ग्रंथों का पाठ तथा श्रवण आज भी करोड़ों लोग प्रतिदिन करते हैं। इसलिए भारतीय भाषाओं में भगवान राम से संबंधित ग्रंथ हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करने का प्रयत्न सराहनीय ही होगा। [विविध भाषाओं के सत्साहित्य को नागरी लिपि में हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करते हुए भाषाई सेतुकरण के पुनीत कार्य में रत] भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ पं० श्रीधर स्वामी का मराठी में लिखा हुआ श्रीराम-विजय काव्य ग्रंथ हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित कर रहा है, यह प्रसन्नता की बात है। वाचक इसका स्वागत करेंगे ऐसी मुझे आशा है।

नई दिल्ली
दिनांक १७ जून, १९७६

यशवंतराव चव्हाण
विदेश मंत्री (भारत सरकार)

निवेदन

श्री श्रीधर-कृत (मराठी) ' श्रीराम-विजय ' का यह हिन्दी गद्यानुवाद पुस्तकाकार प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है।

बचपन में मैंने एक चौमासे में इस ग्रन्थ का चन्द श्रद्धालु श्रोताओं के सम्मुख एक बार पाठ किया था। आगे चलकर मुझे अनेकानेक रामकथात्मक ग्रन्थों का अनुशीलन करने का मौका मिला। उससे राम-कथा-सम्बन्धी मेरी रुचि बढ़ती ही गयी। संयोग से ' भुवन वाणी ट्रस्ट (लखनऊ) ' के मुख्यन्यासी सभापति श्री नन्दकुमार अवस्थी से पत्राचार हुआ; ' ट्रस्ट ' द्वारा प्रकाशित और प्रसारित 'वाणी-सरोवर' नामक त्रैमासिक पत्रिका (जिसमें प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थों में संयोग से रामकथात्मक ग्रन्थों का संख्याधिक्य रहा है) भी देखने में आयी। श्री नन्दकुमारजी का ' ट्रस्ट ' के आयोजन में भाग लेने का आदेश मैंने सहर्ष स्वीकार किया और यह अनुवाद उसका परिणाम है।
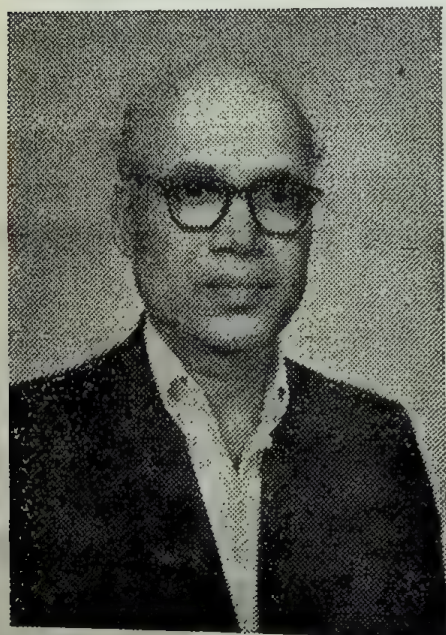
० ० ० ०

मैं ' भुवन वाणी ट्रस्ट ' के इस आयोजन की ओर एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखता हूँ। सर्वप्रथम बात यह है कि हिन्दीतर भाषाओं की मौलिक रचनाएं उनके हिन्दी अनुवाद-सहित इस योजना के अन्तर्गत प्रकाशित की जा रही हैं। हिन्दी के साथ ही जो पाठक उसकी अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य किसी एक भाषा वा अनेक भाषाओं से न्यूनाधिक रूप में परिचित हो, उसे इस योजना द्वारा उस भाषा वा उन भाषाओं तथा साहित्य का अधिक परिचय प्राप्त करने का साधन उपलब्ध हो जाता है। मूल ग्रन्थ और उसके हिन्दी अनुवाद को साथ-साथ पढ़ते हुए वह इस दिशा में अधिक प्रगति कर पाएगा। मूल ग्रन्थ-सहित हिन्दी अनुवाद उपलब्ध कराने से योजना की उपयोगिता निश्चय ही बढ़ गयी है।

दूसरे, हिन्दीतर भाषाओं के मूल ग्रन्थ नागरी लिपि में मुद्रित करने का साहस-पूर्ण, अतएव प्रशंसनीय कार्य 'भुवन-वाणी ट्रस्ट' कर रहा है। हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में व्यवहारतः प्रतिष्ठित हो चुकी है। एक ज़माना था, जब कि 'एक राष्ट्रभाषा - एकलिपि' के प्रचार के लिए आन्दोलन शुरू हुआ था। १९०५ में लोकमान्य तिलक ने वाराणसी में नागरी लिपि के विषय में एक सुझाव भी दिया था। भाषिक दुराव और उससे उत्पन्न कटुता को दूर करने के अनेकानेक साधनों में से नागरी जैसी एक लिपि की स्वीकृति एक महत्त्वपूर्ण साधन है। 'भुवन-वाणी ट्रस्ट' शायद भारत की एकमात्र संस्था है, जो सिर्फ घोषणा और वादविवाद से दूर रहकर इस दिशा में ठोस कदम उठा चुकी है।

'ट्रस्ट' का दृष्टिकोण संकीर्णता और दुरभिमान के दोष से सर्वथा मुक्त है। विभिन्न भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों को सूचित करने के लिए नागरी लिपि-चिह्नों में सुधार एवं संशोधन करने का कार्य उसने सफलता के साथ सम्पन्न किया है।

तीसरे, मैं मूलतः राष्ट्रभाषा-प्रचारक हूँ। विभिन्न भाषा-भाषी लोगों को एक सूत्र में पिरोने का कार्य राष्ट्रभाषा द्वारा हो सकता है। किसी एक भाषा के ग्रन्थ-विशेष का अनुवाद हिन्दी में हो जाने पर अन्यान्य भाषी, जो हिन्दी जानते हों, उस अनुवाद के माध्यम से उस ग्रन्थ का परिचय प्राप्त कर सकते हैं। इस दृष्टि से 'श्रीराम-विजय' का यह अनुवाद भारत के विभिन्न भाषा-भाषियों को (यदि वे हिन्दी जानते हों तो) मराठी न जानते हुए भी एक मराठी ग्रन्थ का रसास्वादन कर लेने में सहायक सिद्ध होगा।

चौथे, राष्ट्रभाषा-प्रचारक का यह भी कर्तव्य है कि वह अपनी भाषा की कुछ रचनाओं का हिन्दी भाषियों को तथा हिन्दी की कुछ रचनाओं का अपनी भाषा के लोगों से परिचय करा दे। वह, इस प्रकार, दो भाषाओं के बीच की कड़ी बन जाए। आशा है, यह अनुवाद इस कर्तव्य की आंशिक पूर्ति कर सकेगा।

मैं मानता हूँ, 'भुवन-वाणी ट्रस्ट' के उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण तथा प्रगतिशील कार्य में हाथ बँटाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।

'श्रीराम-विजय' जैसे मध्यकालीन मराठी काव्य ग्रन्थ का अनुवाद करने में जो कठिनाइयाँ आ गयीं, उनका लेखा-जोखा भाषाध्ययन और अनुवाद-कार्य करनेवालों की दृष्टि से उपयुक्त हो सकता है। फिर भी उसे यथास्थान और यथासमय अन्यत्र स्वतंत्र लेख के रूप में प्रस्तुत करना

ही समुचित होगा। इस अनुवाद के विषय में विनम्रता-पूर्वक इतना ही कहना पर्याप्त समझूँगा कि रचयिता की कथन-शैली वा भावाभिव्यक्ति की पद्धति का यथासम्भव अनुसरण करने का मैंने प्रयास किया है; अतः सम्भव है कि भाषा, शब्द-प्रयोग, वाक्य-रचना आदि में कहीं-कहीं कृत्रिमता का आभास हो। इसके अतिरिक्त, मैं न इस अनुवाद का गुण-गान करते हुए अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना चाहूँगा, न अनुभव की हुई कठिनाइयों का पहाड़ा पढ़कर इसकी त्रुटियों के उत्तरदायित्व से भागना चाहूँगा।

इस कार्य के निमित्त श्री अवस्थी महोदय के निकट सम्पर्क में आया हूँ। पितृतुल्य श्री नन्दकुमारजी और बन्धुवर श्री विनयकुमारजी ने मुझे इस कार्य में बराबर लगाये रखा। यदि समय-समय पर वे दोनों मुझे प्रोत्साहित न करते रहते, तो मुझ जैसे 'आलस्य-सहोदर' के हाथों इस अनुवाद का पूर्ण होना असम्भव था। वैसे अनुवाद करने की मेरी अभिलाषा उत्कट थी ही, परन्तु उसे करवाने की कामना– श्री नन्दकुमारजी की– उससे भी बलवती सिद्ध हुई है। इसलिए मेरे विषय में गोस्वामी तुलसीदास की यह उक्ति सार्थक हो गयी है–

जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि-प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥

जी/२ सहकार-निवास,
गोखले रोड (दक्षिण)
दादर, बम्बई ४०००२८
९ अप्रैल, १९७६

विनीत
गजानन नरसिंह साठे
अनुवादक

प्रकाशकीय

'भुवन वाणी ट्रस्ट' के भाषाई सेतुकरण में एक और ग्रंथशिला-प्रस्थापन हुआ। मराठी के स्वनाम धन्य पं० श्रीधर स्वामी विरचित अनुपम सदाचार ग्रन्थ 'श्रीराम-विजय' हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित होकर, महाराष्ट्र क्षेत्र की परिधि से बाहर, सारे राष्ट्र के सम्मुख उपलब्ध हुआ है। पाठकों को ज्ञातव्य है कि मराठी और नागरी लिपि एक ही हैं। ग्रन्थ और ग्रन्थकार की महत्ता पर विद्वान् अनुवादक श्री गजानन नरसिंह साठे महोदय ने, समर्पण. निवेदन (पृष्ठ ८-१०) और शीर्षक 'श्रीधर' (पृ० ११-१४) में विशद प्रकाश डाला है। मेरे लिखने के लिए कुछ शेष नहीं है। अलबत्ता ग्रन्थ के प्रस्तुतीकरण के सम्बन्ध में पाठकों के सम्मुख कुछ निवेदन करना कर्तव्य समझता हूँ।

अनुवाद

विद्वान् अनुवादक डॉ० साठे डबुल एम० ए०, पीएच्०डी०, साहित्य-रत्न, रा० आ० पोद्दार महाविद्यालय, माटुंगा (बंबई) के हिन्दी-विभागाध्यक्ष हैं। राष्ट्रभाषा के प्रति अनन्य निष्ठावान् साठे महोदय का मेरा परिचय पत्राचार मात्र से हुआ था। साक्षात् होने का शुभ अवसर तो बहुत कुछ काम हो चुकने के बाद आया। वे भुवन वाणी ट्रस्ट की विद्वत्-परिषद के न केवल अमूल्य सदस्य हैं, वरन् कहना चाहिए कि अनेक भाषाई कार्यों के आधार-स्तम्भ हैं। मराठी का श्रीराम-विजय उनके हाथों संपन्न हुआ। मराठी के अन्य श्रेष्ठ ग्रन्थ श्रीहरिविजय का अनुवाद वे कर रहे हैं। गुजराती के लोकप्रिय काव्य 'गिरधर रामायण' का हिन्दी अनुवाद भी उनकी ही लेखनी से चल रहा है। कन्नड, तेलुगु, राजस्थानी, असमिया, तमिळ आदि विविध भाषाओं के विद्वान् अनुवादक और नागरी लिप्यन्तरणकार, उनके सतत उद्योग और सहयोग से सुलभ होते रहे हैं। पुणे के एक विद्वान्, प्रतिष्ठित और भरे-पुरे परिवार के डॉ० साठे, मध्यम श्रेणी के हिन्दुस्तानी गृहस्थ के सहज सुख-दुःखों में ग्रस्त रहते हुए भी, न केवल भुवन वाणी ट्रस्ट के अद्वितीय कार्यक्रम में, वरन् सरस्वती की बहुमुखी सेवा में अहर्निश लगे रहते हैं। ट्रस्ट द्वारा की जा रहीं सेवाओं का बहुत कुछ श्रेय डॉ० साठे को है। उनकी सदाशय आत्मीयता को देखते धन्यवाद मात्र लिखने से हमारा छुटकारा नहीं है।

भूमिका

भारत सरकार के वरिष्ठ मंत्री (सम्प्रति विदेशमंत्री) माननीय श्री यशवंतराव चव्हाण सदैव के विद्याध्यवसायी हैं। उन्होंने इस श्रेष्ठ ग्रन्थ पर भूमिका लिख कर हमारे प्रयास को गौरवान्वित किया है। हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। विदेश विभाग के राष्ट्रभाषा अधिकारी, हम पर सदैव कृपालु, श्री बच्चूप्रसाद सिंह जी की सहायता के लिए भी हम चिरकृतज्ञ हैं।

विमोचन

श्री उमाशंकर जी दीक्षित, महामहिम राज्यपाल, कर्नाटक प्रदेश की, इन पंक्तियों के लेखक पर एक बड़े समय से कृपा रही है। ट्रस्ट के कार्यक्रम को भी उनसे सराहना प्राप्त है। एक साथ हमारे तीन प्रकाशनों— १. (मराठी) श्रीराम-विजय, २. (तमिळ) तिरुवल्लुवर कृत तिरुक्कुरळ् और ३. (नेपाली) श्रीभानुभक्त रामायण— का विमोचन अपने पुष्कल कर-कमलों से उन्होंने स्वीकृत किया। वे हमारे अनन्य सहायक हैं, अनन्य अनुग्रहकर्ता हैं।

प्रकाशन

ट्रस्ट को, कई उदार सदाशयों, विद्वानों, एवं उत्तरप्रदेश शासन से प्राप्त सहायता से बड़ा सहारा मिलता रहा है। अन्य ग्रन्थों के साथ, मराठी 'श्रीरामविजय' भी अपनी सहज गति से प्रकाशित हो रहा था। सौभाग्य से केन्द्रीय उपशिक्षामंत्री माननीय श्री डी० पी० यादव, भारत सरकार के राष्ट्रभाषा सलाहकार बहुभाषामर्मज्ञ श्री रमाप्रसन्न नायक और शिक्षा एवं समाजकल्याण मंत्रालय के शिक्षानिदेशक एवं उपसचिव श्री सनत्कुमार चतुर्वेदी जी की अनुकम्पा हुई। उसके परिणाम-स्वरूप ग्रन्थ परिपूर्णता को प्राप्त हुआ। हम उनके अतिशय अनुग्रहीत हैं। हम विश्वास के साथ निवेदन करते हैं कि भुवन वाणी ट्रस्ट की भाषाई सेतुकरण की विशाल और अद्वितीय योजना उत्तरोत्तर फलवती होकर शासन और जनता को संतुष्ट करती रहेगी।

नन्दकुमार अवस्थी

मुख्यन्यासी सभापति,
भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ–३

[ॐ]

श्रीराम-विजय

रचयिता

पं० श्रीधर

अनुवादक

प्रा० डॉ० गजानन साठे, साहित्यरत्न

(एम. ए.—मराठी-अंग्रेज़ी, हिन्दी, बी. टी., पीएच. डी. हिन्दी)

श्रीराम-पञ्चायतन

श्रीधर*

मराठी भाषा-भाषियों में श्री ज्ञानेश्वर-प्रणीत 'भावार्थ दीपिका' अर्थात् 'ज्ञानेश्वरी' और भक्तवर नामदेव, तुकाराम के अभंग अतीव लोकप्रिय हैं। ज्ञानेश्वरी दार्शनिक ग्रन्थ है और नामदेव, तुकाराम आदि की रचनाएँ स्फुट रूप में ही हैं। सत्रहवीं शताब्दी तक कथात्मक काव्यों की रचना भी मराठी में विपुल मात्रा में हो चुकी थी। परन्तु कवि श्रीधर की कथात्मक रचनाएँ जितनी लोकप्रिय हो गयी हैं, उतनी और किसी रचनाकार की नहीं हो सकीं। यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि जनसाधारण में श्रीधर के ग्रन्थ ही सर्वाधिक प्रिय रहे हैं। रामविजय, हरिविजय, शिवलीलामृत आदि ने उन्हें अमर बनाया है।

---

* सौभाग्य का विषय है कि विविध भाषाओं के परस्पर प्रतिबिम्बीकरण और सेतुकरण में अनुराग रखनेवाले पाठकों के निमित्त, 'भुवन-वाणी ट्रस्ट' को एक और कार्यक्रम प्रस्तुत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

भारतीय संस्कृति और अखण्ड राष्ट्रीयता में सर्वोच्च निष्ठा-सम्पन्न मराठी भाषा के, सत्रहवीं शताब्दी में ख्यातिवान् कवि, विद्वान् और परमभक्त श्री पं० श्रीधर स्वामी द्वारा प्रणीत, महाराष्ट्र प्रदेश में अति लोकप्रिय प्रबंध-काव्य "श्रीराम-विजय" का, मूल ग्रन्थ सहित हिन्दी अनुवाद, भगवत्कृपा से आरम्भ हो रहा है।

ग्रन्थ और ग्रन्थ-प्रणेता का परिचय अनुवादक द्वारा आगे दिया जा रहा है। यहाँ अनुवादक महोदय की उदात्त भावना का, जिसके फलस्वरूप इस पावन कार्य का, हिन्दी भाषा के माध्यम से समस्त राष्ट्र में व्यापकत्व हो रहा है, कुछ परिचय, पाठकों के लिए प्रस्तुत है।

अनुवादक महोदय प्रा० डॉ० गजानन नरसिंह साठे, मराठी-अंग्रेजी, हिन्दी—तीन भाषाओं के एम.ए., हिन्दी में 'स्वयम्भू-कृत पउमचरिउ और गो० तुलसीदास कृत रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर डॉक्टरेट-प्राप्त, अनेक मराठी-हिन्दी शोध-निबन्धों के रचयिता और सन् १६४० ई० से ही राष्ट्रभाषा प्रचार-कार्य में संलग्न, सम्प्रति पोद्दार कालेज, बंबई में हिन्दी के प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष हैं।

श्रीधर के पूर्वज समय-समय पर खड़की, नाझरे, निगड़ी आदि गाँवों में रहते थे। उनके पूर्वजों में से एक श्री राघोपन्त बिजापुर दरबार में अश्वदल के अधिकारी रह चुके थे। ये ही राघोपन्त 'नाझर' तहसील के अधिकारी होकर 'नाझरे' गाँव में आकर रहने लगे। इसी नाझरे गाँव में श्रीधर का जन्म हुआ। यद्यपि श्रीधर के जन्मकाल के विषय में मतभेद है, तथापि अब अधिकतर विद्वान् मानते हैं कि उनका जन्म वि० शक १५८० (अर्थात् ई० १६५८) में हुआ। ई० १६७८ के लगभग श्रीधर के पिता सपरिवार पंढरपुर में आकर रहने लगे। जान पड़ता है, श्रीधर इसी पुण्यक्षेत्र में अन्त तक रहते थे।

श्रीधर के पिता का नाम सम्भवतः 'ब्रह्माजी' था—यही 'ब्रह्माजी' संन्यास-दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् 'ब्रह्मानन्द' नाम से विख्यात हो गये। श्रीधर के गुरु उनके पिता ब्रह्मानन्द ही थे, जिनकी देखरेख में उन्होंने संस्कृत की शिक्षा पायी होगी। जान पड़ता है, उन्होंने अनेक संस्कृत तथा मराठी के ग्रन्थों का अनुशीलन किया था।

श्रीधर को कवित्व शक्ति धरोहर के रूप में मिली थी। उनके पूर्वजों में से दयानन्द (दादा), ब्रह्मानन्द (पिता), रंगनाथ स्वामी (चाचा), विठ्ठल (चचेरे भाई) आदि की रचनाएँ उपलब्ध हैं। श्रीधर के पुत्र दत्तात्रेय भी कवि थे।

श्रीधर में कवित्व शक्ति का विकास युवावस्था में ही हुआ जान पड़ता है। एक किंवदन्ती के अनुसार श्रीधर ने कुल सवा लाख छन्दों की रचना की, लेकिन इसमें

परिचय में वैचित्र्य इस प्रकार है कि 'भुवनवाणी ट्रस्ट' द्वारा विविधभाषाई सानुवाद लिप्यन्तरण के कार्यक्रम में कुछ उपलब्धियों की चर्चा कहीं से उन तक पहुँची। उन्होंने पत्र लिखकर समूल्य उन ग्रन्थों को मँगवाया, 'वाणी सरोवर' के ग्राहक बने और अपने क्षेत्र में ट्रस्ट के कार्यों को स्वतः सुपरिचित कराया। पत्र-व्यवहार होता रहा। मैंने मराठी के लोकप्रिय ग्रन्थों में से किसी एक का अनुवाद प्रकाशित करने की अपनी इच्छा व्यक्त की। श्री साठे महोदय ने ट्रस्ट को वाञ्छित पुस्तकें भेजवाने के साथ-साथ अपनी अमूल्य सम्मतियाँ समय-समय पर दीं और उन्हीं के सुपरिणाम में 'श्री रामविजय' का मधुरामृत आप लोगों के सम्मुख प्रस्तुत हो रहा है।

अतः इस पुनीत कार्य का श्रेय अनुवादक महोदय ही को है। उनका प्रस्ताव, उनके द्वारा ही अनुवाद-कार्य का वहन। ऐसे ही राष्ट्रसेवियों पर राष्ट्र की आँखें टिकी हैं। भगवान् संकल्प को पूर्ण करें।

नन्दकुमार अवस्थी—सम्पादक

अत्युक्ति दिखायी देती है। आज उनके विभिन्न ग्रन्थों में सिर्फ पचास हज़ार से कुछ अधिक छन्द उपलब्ध हैं। उनके द्वारा रचित ११ ग्रन्थों में से एक 'अम्बिका उदय' अप्राप्य है। प्रबन्ध-रचना के अतिरिक्त उन्होंने कुछ स्फुट मराठी रचना भी की है। उनकी कुछ संस्कृत कविताएँ भी उपलब्ध हैं। श्रीधर द्वारा विरचित प्रबन्ध काव्य निम्न-लिखित हैं—

१ हरिविजय, २ रामविजय, ३ पाण्डव-प्रताप, ४ वेदान्त-सूर्य ५ पाण्डुरंग-माहात्म्य, ६ मल्लारी-माहात्म्य, ७ व्यंकटेश-माहात्म्य, ८ ज्ञानेश्वर-चरित्र, ९ जैमिनी-अश्वमेध, १० शिव-लीलामृत।

'हरिविजय' में श्रीधर ने श्रीमद्भागवत, पद्मपुराण आदि से कथा-सूत्रों का चयन कर अत्यन्त रसात्मक शैली में श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन किया है। इसी प्रारम्भिक रचना से उनकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी। 'पाण्डव-प्रताप' में उन्होंने मुख्यत: पाण्डवों के प्रताप का ही वर्णन प्रस्तुत किया। इसका आधार है महाभारत तथा मराठी के कवि मुक्तेश्वर की महाभारत-सम्बन्धी रचनाएँ। 'वेदान्त-सूर्य' में वेदान्त के सिद्धान्तों की चर्चा है। 'पाण्डुरंग-माहात्म्य' में उन्होंने अपने निवास-स्थान पंढरपुर का महिमा-गान करते हुए भगवान् विठ्ठल का स्तवन किया है। कवि ने 'मल्लारी-माहात्म्य' में अपने कुलदेवता 'मल्लारी' की स्तुति की है। 'व्यंकटेश-माहात्म्य' और 'ज्ञानेश्वर चरित्र' ग्रन्थों के नाम से उनके विषय और स्वरूप की जानकारी मिलती है। कुछ विद्वानों के अनुसार 'जैमिनी अश्वमेध' श्रीधर-कृत रचना नहीं है। 'शिव-लीलामृत' श्रीधर की रचनाओं में सब से अधिक लोकप्रिय है। इसमें मूलत: १४ अध्याय रहे होंगे; इसका पन्द्रहवाँ अध्याय प्रक्षिप्त माना जाता है। इस ग्रन्थ में कथाओं के रूप में शिवमहिमा का वर्णन मिलता है। हज़ारों लोग इस ग्रन्थ का नित्य पठन करते हैं।

श्रीधर के बड़े ग्रन्थों में सर्वाधिक लोकप्रियता रामविजय को प्राप्त है। वाल्मीकि रामायण, हनुमन्नाटक, आदि रामचरित्रात्मक ग्रन्थ 'रामविजय' के लिए आधारभूत रहे हैं। कवि के सामने एकनाथ कृत (मराठी) भावार्थ रामायण भी रहा है। इसके अन्तर्गत कुल ४० अध्याय और लगभग ९१०० ओवी-छन्द हैं। अनेक लोग इसका भी नित्य पाठ करते हैं।

श्रीधर की लोकप्रियता का रहस्य उनकी सहजसुन्दर और आसान प्रासादिक भाषा और रसात्मक शैली में है। उन्होंने आम जनता में रूढ़ भाषा का प्रयोग किया है; हाँ, तुलसी की भाँति उसका संस्कार अवश्य किया है। उसमें कठिन शब्दों का प्राय: अभाव है। उनकी वर्णनशैली पाठकों और श्रोताओं के सामने घटनाओं को

मूर्त चित्रों में प्रस्तुत करने में समर्थ है। शृंगार, वीर और करुण रसों की प्रधानता होने पर भी प्रसंगानुसार उनकी रचनाओं में अन्य रसों को भी स्थान मिला है।

उन्होंने प्रधानतः मराठी के सुविख्यात छन्द 'ओवी' का प्रयोग किया है। 'ओवी' में चार चरण होते हैं, प्रथम तीन ही तुकान्त रहते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से ओवी के प्रथम तीन चरणों में से प्रत्येक में आठ-आठ और अन्तिम में सात अक्षर होने चाहिए, लेकिन व्यवहार में इस नियम का पालन शायद ही किसी ने किया हो। हाँ, प्रथम तीन की अपेक्षा चौथा चरण छोटा होता है। ओवी छन्द चौपाई से बहुत कुछ मिलता-जुलता है और कथात्मक काव्य के लिए बहुत ही अनुकूल माना जाता है।

उपमा, रूपक और दृष्टान्त, श्रीधर के प्रिय अलंकार हैं। उन्होंने प्रायः परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया है। अपनी बात को प्रभावशाली बनाने के हेतु जब वे दृष्टान्तों की बौछार-सी कर देते हैं तो देखते ही बनता है।

श्रीधर का प्रमुख व्यवसाय 'कीर्तन' करना था। कीर्तनकार के नाते उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। कीर्तनकार को लोकरुचि का और लोगों के सांस्कृतिक स्तर का ध्यान रखना पड़ता है। उन्होंने श्रोताओं की नब्ज़ पहचानी थी और उसके अनुसार अपनी रचनाओं को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लोकमानस पर धर्म, नीति, सदाचार एवं सदभिरुचि का संस्कार उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया।

कहा जा चुका है, हरिविजय, रामविजय, पाण्डव-प्रताप और शिव-लीलामृत ने श्रीधर को अमर बना दिया है।

श्रीधर का देहान्त पंढरपुर में शालिवाहन शक १६५१ (लगभग १७३० ई०) में हुआ। उनकी समाधि उनके पिता एवं गुरु श्री ब्रह्मानन्द की समाधि के समीप ही है।

—अनुवादक

श्रीराम-विजय

अध्याय—१

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

ॐ नमो जी पुराणपुरुषा । श्रीमद्भीमातटविलासा । दिगंबरा अविनाशा । ब्रह्मानंदा जगद्गुरो । १ जय जय जगद्वंद्या पूर्णब्रह्मा । अज अजित आत्मयारामा । नीलग्रीवहृदय-विश्रामा । पूर्णानंदा परात्परा । २ जय जय मायाचक्रचालका । मायातीता विरंचिजनका । सकळचित्तपरीक्षका । निजजनरक्षका करुणाब्धे । ३ कमलोद्भव वैकुंठ कर्पूरगौर । अंबिका गजवदन दिनकर । हीं स्वरूपें तुझीं साचार । तूं निर्विकार सर्वदा । ४

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

मैं उन जगद्गुरु ब्रह्मानन्द को नमस्कार करता हूँ, जो प्रत्यक्ष पुराण-पुरुष हैं, भीमा नदी के तट पर निवास करते हैं और दिगम्बर (संन्यासी) एवं अविनाशी हैं। १ जगद्वन्द्य, पूर्णब्रह्म, अजन्मा एवं अजेय परमात्मा (श्रीराम) की जय हो, जो भगवान नीलकण्ठ (शिवजी) के लिए विश्राम (शान्ति)-स्वरूप हैं और जो पूर्णानन्द-स्वरूप एवं परात्पर हैं। २ उन भगवान् की जय हो, जो मायाचक्र के संचालक होने पर भी स्वयं माया (के प्रभाव) से परे हैं, जो ब्रह्मा के पिता और सब के मन के परीक्षक (मन के जानकार-मर्मज्ञ) हैं तथा अपने भक्त-जनों के रक्षक एवं करुणा के सागर हैं। ३ वस्तुतः, (हे भगवान् !) ब्रह्मा, (वैकुण्ठ-निवासी) विष्णु और शिवजी, देवी अम्बा (भवानी), गणेशजी और सूर्य—ये सब तुम्हारे ही रूप हैं; फिर भी तुम नित्य निर्विकार ही बने रहे हो। ४

मंगळकारक तूं गजवदन। मंगळारंभीं तुझेंचि नमन। मंगळजननीवरी करितां लेखन। तुझे गुण न सरती। ५ रातोत्पलें सुकुमार बहुत। तैसे चरणतळवे आरक्त। प्रपद गौर नूपुरांसहित। ध्याती भक्त हृदयांतरीं। ६ क्षीरार्णवश्वेतांबर। कीं कांसेसी लागला क्षीरसागर। कीं निर्दोष यश पवित्र। वसनरूपें आकारलें। ७ अरुणसंध्यारागमिश्रित। तैसी उटी दिसे आरक्त। कीं मंदराचळ सिंदूरचर्चित। चारही हस्त विराजती। ८ भक्तांचा मनोवारण अनिवार। नावरेचि कदा साचार। तो आकर्षावया निर्धार। विवेकांकुश धरियेला। ९ भावें जे शरण येती अज्ञानी जन। त्यांचें छेदावया अविद्याविपिन। यालागीं ऊर्ध्व फरश धरून। सिद्ध गजानन सर्वदा। १० हातीं झळके लीलाकमळ। जें अम्लान न विटे सर्वकाळ। तेणें

हे भगवान् गजाननजी ! तुम सब के लिए मंगलकारी हो, मंगल (कार्य) के आरम्भ में तुम्हारा ही नमन किया जाता है। तुम्हारी गुण-गरिमा का वर्णन पृथ्वी पर भी लिखा जाए, तो भी तुम्हारे गुण समाप्त नहीं होंगे। ५ जैसे रक्त कमल बहुत ही कोमल होते हैं, वैसे ही तुम्हारे आरक्त तलुवे (कोमल) हैं। नूपुरों से शोभायमान तुम्हारे चरणों का अग्र भाग गौर (अर्थात् उज्ज्वल) है। भक्तजन अपने हृदय में तुम्हारे उन्हीं चरणों का ध्यान करते हैं। ६ तुम्हारे वस्त्र क्षीर-सागर के समान उज्ज्वल हैं; मानो तुम्हारे कछोटे (कछनी) में क्षीर-सागर ही संलग्न हुआ है। अथवा दोष-रहित पवित्र कीर्ति ही तुम्हारे (लिए) वस्त्र के रूप में उत्पन्न हुई है। ७ तुम्हारी देह में चर्चित उबटन अरुणोदय के (समय पर दिखायी देने वाले) रंगों से मिश्रित-सा प्रतीत होता है। तुम्हारे चारों हाथ, मानो, सिन्दुर से विलेपित मन्दर पर्वत की भाँति शोभायमान हैं। ८ भक्त-जनों को मन रूपी हाथी का निवारण करना (वश में करना) सचमुच कठिन है। उसे निश्चित रूप में वश करने के लिए, हे गणेशजी ! तुमने अपने हाथ में विवेक रूपी अंकुश को धारण किया है। ९ हे गणेशजी ! जो अज्ञानी लोग भक्ति-भावना से तुम्हारी शरण में आते हैं, उनकी अविद्या रूपी वन को काटने के लिए नित्य तुम अपने परशु-धारी हाथ को ऊपर उठाये सिद्ध हो। १० तुम्हारे हाथ में ऐसा लीला-कमल सुशोभित है जो कभी भी न मुरझा जाता है, न निस्तेज हो जाता है। तुम मानो

पूजूं इच्छी भक्त प्रेमळ। जें कां निर्मळ अंतर्बाह्य। ११ जैसे कल्पांतविजूचे उमाळे। तैसे अळंकार अंगीं मिरवले। नक्षत्रपुंज गुणीं ओंविले। तेवीं मुक्ताहार डोलती। १२ हृदयाकाशीं सुरेख। पदक झाला तो मृगांक। क्षयरहित निष्कलंक। निजसुखें सुखावला। १३ भक्तांसी जीं विघ्नें येती प्रचंडें। तीं जो आकली शुंडादंडें। कल्पांतविजूचेनि पाडें। एकदंत झळकतसे। १४ दिगंतचक्रीं तेज न समाय। तैसीं कुंडलें झळकती मणिमय। किंवा चंद्र आणि सूर्य। कुंडलरूपें तळपती। १५ मुगुटीं झळकती रत्नकळा। तेणें नभमंडप उजळला। आदिपुरुष हा साकारला। वरदान द्यावया कवीतें। १६ ऐसा महाराज गजवदन। वरदहस्तें दावी चिन्ह। करीं रामकथाबीजारोपण। त्यासी जीवन घालीन मी। १७ ऐसा उगवतां वरदचंद्र। तेणें उल्हासे कविहृदयसमुद्र

उससे उन प्रेमी भक्त-जनों का पूजन करना चाहते हो, जो अन्तर्बाह्य निर्मल (अर्थात् पाप-विकार आदि से मुक्त) हैं। ११ कल्पान्त के समय बिजली जैसी दमकती है, वैसे ही तुम्हारे शरीर पर अलंकार झलकते रहते हैं। तुम्हारे पहने हुए मोतियों के हार ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो आकाश के नक्षत्रों को धागे में पिरोकर ही उन्हें बनाया गया हो। १२ साक्षात् चन्द्रमा ही पदक का रूप धारण कर तुम्हारे हृदय रूपी आकाश में शोभा-यमान है। (अद्भुत बात यह है कि) यह पदक रूपी चन्द्रमा नित्य क्षय-रहित तथा निष्कलंक है—और तुम्हारे हृदय पर विराजमान होने के कारण आत्मसुख में मग्न हो गया है। १३ भक्तों के जीवनमार्ग में जो-जो विघ्न आते हैं, उन्हें सूँड-रूपी दण्ड से वश में कर तुम दूर रखते हो। तुम्हारा एकमेव दाँत कल्पान्त समय की विद्युत् की भाँति दमकता रहता है। १४ तुम्हारे रत्नजड़ित कुण्डल ऐसे झलक रहे हैं कि उनका तेज दसों दिशाओं में भी नहीं समाता। जान पड़ता है, साक्षात् चन्द्र और सूर्य ही इन कुण्डलों के रूप में चमक रहे हैं। १५ तुम्हारे मुकुट में रत्न चमक रहे हैं, जिससे आकाश रूपी मण्डप में उजाला हो गया है। जान पड़ता है, ये गणेशजी, वे आदि पुरुष ही हैं, जो कवि को वरदान देने के लिए सशरीर आविर्भूत हो गये हैं। १६ ये भगवान् गजानन वर देने के लिए उठाये हुए अपने हाथ से संकेत कर रहे हैं और राम-कथा का बीज बो रहे हैं; उसे मैं (पानी) सींचूँगा। १७ ऐसे गणेश रूपी वरदान देने

साहित्यभरतें अपार । असंभाव्य दाटलें । १८ जय जय गजवदना निरुपमा । अगाध न वर्णवे तव महिमा । तुझिया गुणांची पावावया सीमा । कैसा सरता होईन मी । १९ काखेसी मेरू घेऊनि देखा । कैसी नृत्य करील पिलीलिका । कैसें ब्रह्मांड उचलेल मशका । भूगोळ मक्षिका केवीं हालवी । २० चंद्रासी कर्पूराचें उटणें । वासरमणीस दर्पण दावणें । हिमनगासी वारा घालणें । मेघासी अर्पणें उदकांजुळी । २१ सुरतरूपुढें ठेविजे बदरीफळ । मलयाचळासी धूपपरिमळ । कामधेनूसी शुष्कतृणकवळ । आणोनियां समर्पिले । २२ क्षीरसिंधूसी समर्पिजे अजाक्षीर । कनकाद्रीपुढें ठेविजे गार । तैसें प्राकृतबोलें अपार । तुझें महत्त्व केवीं वर्णू । २३ परी जो जो छंद घेत बाळक । तो स्नेहेंकरोनि पुरवी जनक । तरी हा रामविजय सुरेख । सिद्धी पावो तव कृपें । २४

वाले चन्द्रमा के उदित हो जाने पर कवि का हृदय उल्लसित हो जाता है और उसके हृदय-सागर में काव्य का असीम ज्वार आता है । १८ जिसकी महिमा की कोई उपमा नहीं है, ऐसे हे गणेशजी! तुम्हारी महिमा (सचमुच) अथाह है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । तुम्हारे गुणों की सीमा तक पहुँचने की योग्यता मुझमें कैसे हो सकती है ! १९ बगल में मेरु पर्वत को दबाकर क्या चींटी नृत्य कर सकेगी ? मच्छड़ क्या ब्रह्माण्ड को उठाने में समर्थ हो सकता है ? मक्खी भू-गोल (पृथ्वी) को क्या हिला सकती है ? (यह जैसे असम्भव है, वैसे ही मेरे द्वारा तुम्हारी महिमा का वर्णन करना असम्भव है ।) २० चन्द्रमा को कपूर का उबटन लगाना, सूर्य को दर्पण दिखाना, हिमालय को (पंखे से) हवा करना, बादल को अंजलि भर जल समर्पित करना, कल्पवृक्ष के सामने बेर रखना, मलय पर्वत को धूप जलाकर सुगन्ध देना (जैसे हास्यास्पद है), कामधेनु को सूखी घास (खाने को) देना, क्षीरसागर में बकरी का दूध डालना, और सुवर्ण पर्वत के सम्मुख स्फटिक रखना जैसे अनुचित है, वैसे ही हे गणेशजी ! तुम्हारी (सम्पूर्ण) महिमा का बखान करने का यत्न करना अनुचित एवं हास्यास्पद है । और प्राकृत में—जन सामान्य की भाषा में तुम्हारी (सम्पूर्ण) महिमा का गान मैं कैसे कर सकूँगा ? २१-२३ लेकिन बालक जिस बात का शौक रखता हो और उसकी पूर्ति के लिए हठ करता हो, उसका

आतां नमूं सरसिजोद्भवकुमारी । जे विलसे सदा कविजिव्हाग्रीं । जिच्या वरप्रसादें मुकाही करी । वाचस्पतीशीं संवाद। २५ जे आनंदसरोवर-मराळिका । जे चातुर्यचंपककळिका । जे निजकृपेची करूनि नौका । कविबाळका परतीरा नेत । २६ कृपें तुझ्या विरंचिकुमारी । जन्मांध होती महाजोहरी । अतिमूढ तो वेदार्थ करी । शक्रपदीं निर्धारीं रंक बैसे । २७ अंबे, तू कविहृदयाब्जभ्रमरी । कीं निजानंदसागरींची लहरी । वाग्वल्ली तूं बैसोनि जिव्हाग्रीं । विरूढे सफळ सर्वदा । २८ विवेकहंस शुद्ध धवळ । त्यावरी तुझें आसन अचळ । तप्त कांचन जैसें सुढाळ । तैसें निर्मळ निजांग तुझें । २९ शुभ्र कंचुकी शुभ्र अंबर । दिव्य मुक्तनग अळंकार । निजबोधवीणा घेऊन सुस्वर ।

पिता स्नेह-वश उसे पूर्ण ही करता है। वैसे ही (मैं—तुम्हारा बालक, राम के चरित्र [कथा] का वर्णन करने की अभिलाषा कर रहा हूँ; हे गणेशजी ! (मेरी विनम्र प्रार्थना है कि) तुम्हारी कृपा से 'राम-विजय' नाम ग्रन्थ की रचना करने की मेरी कामना सफल हो जाए । २४

मैं अब देवी सरस्वती की वन्दना करता हूँ, जो कवियों की जिह्वा के अग्रभाग में नित्य विलास करती है और जिसके वरदान से गूँगा भी देवगुरु बृहस्पति के साथ बात-चीत करने में समर्थ हो जाता है। २५ (मैं उस सरस्वती का वन्दन करता हूँ, जो) आनन्द-सरोवर में विहार करनेवाली राजहंसिनी ही है, जो चातुर्य रूपी चम्पक-वृक्ष की कलिका ही है, और जो अपनी कृपा-रूप नौका में बिठाकर कवि-बालकों को (उनके कार्य-रूपी सागर के) दूसरे तट तक पहुँचा देती है। २६ हे ब्रह्माजी की कन्ये सरस्वती ! तुम्हारी ही कृपा से जन्म से अन्ध व्यक्ति भी हीरे-मोती आदि का उत्तम पारखी हो जाता है, अति मूर्ख मनुष्य भी वेदार्थ का मर्मज्ञ हो जाता है और दरिद्र व्यक्ति भी निश्चय ही इन्द्र-पद पर विराजमान हो सकता है । २७ ऐ माते ! तुम कवि-हृदय रूपी कमल में लुब्ध भ्रमरी ही हो, आत्मानन्द रूपी सागर की लहर ही हो और (कवि की) जिह्वा के अग्रभाग में उत्पन्न वाणी-रूपी लता ही हो, जो विकसित हो अच्छे फलों से युक्त हो जाती है । २८ हे सरस्वती ! विशुद्ध विवेक रूपी शुभ्र हंस पर तुम्हारा सदैव अचल आसन स्थित है । तुम्हारा शरीर तप्त सुवर्ण की भाँति तेजस्वी एवं निर्मल है । २९ तुमने शुभ्र कंचुकी

गायन करिसी स्वानंदें । ३० ऐकतां शारदेचें गायन । तन्मय विधि विष्णु ईशान । अंबे, तुझें सौंदर्य पाहोन । मीनकेतन तटस्थ । ३१ रंभा उर्वशी तिलोत्तमा । सावित्री अपर्णा मुख्य रमा । तुझ्या चातुर्यसमुद्राची सीमा । त्याही कदा न पावती । ३२ अंबे, तुझे गुण केवीं वर्णावे । केवीं अर्कास अर्कीसुमनें पूजावें । अंबर मुष्टींत केवीं सांठवे । पल्लवीं बांधवे वायु कैसा । ३३ न करवे उर्वीचें वजन । न गणवे सिंधूचें जीवन । सप्तावरणें भेदोन । मशक केवीं जाऊं शके । ३४ ऐकोनि बाळकाची वचनें । जननी हृदयीं धरी प्रीतीनें । तैसें सरस्वतीनें निजकृपेनें । घातलें ठाणें जिव्हाग्रीं । ३५ माझें मन मूढ चकोर । कुहूमाजी इच्छी रोहिणीवर । तरी सरस्वती कृपाळु थोर । शुद्ध बीज प्रकटली । ३६

और शुभ्र वस्त्र पहना है, मोतियों से युक्त दिव्य आभूषण परिधान किये हैं और तुम आत्मबोध रूपी वीणा लेकर आत्मानन्द में तन्मय होकर सुस्वर गायन करती हो । ३० ऐसी इस सरस्वती का गायन सुनकर ब्रह्मा, विष्णु और ईशान (शिवजी) तन्मय हो जाते हैं । हे देवी सरस्वती! तुम्हारा सौन्दर्य देख स्वयं कामदेव भी दंग रह जाते हैं । ३१ रम्भा, ऊर्वशी, तिलोत्तमा, सावित्री, अपर्णा (पार्वती) और लक्ष्मी भी तुम्हारी बुद्धि-सामर्थ्य की बराबरी कभी नहीं कर पाएँगी । ३२ हे माते ! तुम्हारी गुण-गरिमा का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? क्या सूर्य का पूजन आक (मदार) के पुष्प से किया जाना उचित है ? (वैसे ही मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति का तुम्हारी महिमा का गान करने की इच्छा करना अनुचित है ।) क्या आकाश मुट्ठी में समा सकता है ? क्या आँचल में (अथवा पत्ते में) वायु को बाँधा जा सकता है ? (वैसे ही मेरे द्वारा तुम्हारा महिमा-गान असम्भव है ।) ३३ पृथ्वी का वज़न नहीं किया जा सकता । समुद्र का पानी नहीं नापा जा सकता है । क्या मच्छड़ सप्त आवरण को भेदकर ऊपर जा सकता है ? (वैसे ही मेरे द्वारा तुम्हारी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता ।) ३४ परन्तु माता जिस प्रकार अपने बच्चों के बोल वात्सल्य-वश मान लेती है, उसी प्रकार देवी सरस्वती ने अपनी कृपालुता के कारण ही मुझ जैसे अपने शिशु के जिह्वाग्र में आसन स्वीकार किया है—डेरा डाला है । ३५ मेरा मन तो पागल चकोर (के समान ही) है, जो अमावस्या की रात में चन्द्रमा (को देखना) चाहता है ।

बीजेपासून चढत्या कळा । तों तों चकोरांसी अधिक सोहळा । तैसी येथें रघुनाथलीळा । चढेल आगळा रस पुढें । ३७

ज्ञानाचे अनंत डोळे । उघडिले एकेचि वेळे । आतां वंदूं श्रीगुरूचीं पाउलें । जयाचेनि प्रगटलें दिव्य ज्ञान । ३८ जो अज्ञानतिमिरच्छेदक । जो प्रकट वेदांतज्ञानार्क । तो ब्रह्मानंदमहाराज देख । परमाद्भुत महिमा जयाचा । ३९ जो कां पांडुरंगभक्त नर विख्यात । जो भक्त भीमातीरीं समाधिस्थ । तो यतिराज-महिमा अद्भुत । कवण वर्णूं शके पैं । ४० जागृती स्वप्न सुषुप्ति तुर्या पूर्ण । या चार अवस्थांवरी ज्याचें आसन । उन्मनीही निरसोन । स्वसुखें पूर्ण समाधिस्थ । ४१ चांदणें कैंचें नसतां मृगांक । किरणें कैंचीं नुगवतां अर्क । जीवनावांचोनि बीजीं देख । अंकुर सहसा फुटेना । ४२ जरी नेत्रेंवीण दिसे पदार्थ । मंथनेंवीण

(जैसे उसकी इच्छा का पूर्ण होना असम्भव है, वैसे ही मेरी अभिलाषा की स्थिति है ।) फिर भी महा कृपालु देवी सरस्वती (मुझ जैसे बाल चकोर के लिए) सुदी की बीज के (चंद्र के) रूप में प्रकट हो गयी है । ३६ जैसे शुद्ध द्वितीया से आगे चन्द्र कला-कला से बढ़ता ही जाता है और चकोर के लिए वह समय उत्सव का-सा (आनन्दप्रद) हो जाता है, वैसे ही (मुझे विश्वास है कि) रघुराज राम का लीला-गान यहाँ पर आरम्भ हो रहा है, उससे आगे आनन्द अधिकाधिक बढ़ता ही जाएगा । ३७

मैं अब उन गुरु के चरणों की वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से अनगिनत ज्ञानचक्षु एक दम खुल गये हैं और दिव्य ज्ञान प्रकट हो गया है । ३८ मेरे गुरु वे ब्रह्मानन्द महाराज हैं, जिनकी महिमा परम अद्भुत है, जो अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करते हैं और साक्षात् वेदान्त-ज्ञान के सूर्य ही हैं । ३९ वे भगवान् पाण्डुरंग (विठ्ठल) के विख्यात भक्त हैं; वे भीमा नदी के तट पर समाधिस्थ (हो गये) हैं । ऐसे मेरे गुरु संन्यासी (ब्रह्मानन्द महाराज) की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ? ४० जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुर्या नामक चार अवस्थाओं पर ही उनका आसन है और पंचम अवस्था उन्मनी का त्याग कर आत्मसुख में पूर्णतः लीन होकर वे समाधिस्थ हो गये हैं । ४१ चन्द्र के अभाव में चाँदनी का अस्तित्व कैसे हो सकता है ? सूर्य के उदित नहीं होने पर उसकी किरणें कैसे आ सकती हैं ? यदि बीज के लिए पानी नहीं

जरी निवडे नवनीत। तरी सद्गुरूवांचोनि परमार्थ। ठायीं न पडे जीवासी। ४३ वर नसतां व्यर्थ वऱ्हाड। शिर नसतां कायसें धड। तैसे गुरुकृपेवीण काबाड। तपें व्रतें साधनें। ४४ अंजनेंवीण न सांपडे निधान। गायत्रीवीण ब्राह्मणपण। सीमा कैंची ग्रामावीण। तैसें गुरूवीण ज्ञान नोहे। ४५ म्हणोनि तनुमनधनेंसीं अनन्य। ब्रह्मानंदस्वामीस शरण। आरंभिली श्रीरामकथा गहन। ग्रंथ संपूर्ण सिद्धी पावो। ४६

ऐसे ऐकतां सप्रेम बोल। बोलिला श्रीगुरु दयाळ। चकोराकारणें उतावेळ। मृगांक जैसा उगवे पैं। ४७ कीं चातकांलागीं धांवे जलधर। कीं क्षुधितापुढें क्षीरसागर। कीं कल्पतरु शोधीत आला घर। दरिद्रियाचें साक्षेपें। ४८ तैसा

सींचा जाए, तो उसमें अंकुर कदापि नहीं फूटता। (वैसे ही गुरु के अभाव में ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। ४२ आँख के अभाव में भी पदार्थ दिखायी दे सकता है, दही को न बिलोने पर भी मक्खन निकल सकता है–(ये असम्भव बातें भी सम्भव हो सकती हैं) तथापि सद्गुरु के अभाव में परमार्थ की उपलब्धि किसी जीव को नहीं हो पाएगी। ४३ यदि वर (दूल्हा) न हो तो बरातियों का जमघट निरर्थक है; यदि सिर न हो, तो धड़ का होना व्यर्थ है, वैसे ही यदि गुरु-कृपा न हो तो (परमार्थ की प्राप्ति के हेतु) तप, व्रत आदि की साधना बेकार में ही कष्ट करने के समान है। ४४ बिना (दिव्य) अंजन आँख में लगाये, (गुप्त) धरोहर की प्राप्ति नहीं होती; गायत्री मंत्र के जाप के बिना ब्राह्मणत्व अर्थहीन है; जहाँ ग्राम ही न हो वहाँ सीमा का कोई अर्थ नहीं है; उसी प्रकार गुरु के अभाव में ज्ञान, शून्य के बराबर ही है। ४५ इसीलिए मैंने एक-निष्ठ भाव से, तन-मन-धन से गुरु (ब्रह्मानन्द) की शरण में आश्रय लेकर श्रीराम की गहन कथा का शुभारम्भ किया है। (उनकी कृपा से) मेरा यह ग्रन्थ पूर्ण हो जाए। ४६

मेरी ऐसी उक्ति प्रेम से सुनकर दयालु गुरु बोलने लगे। जान पड़ा कि चकोर के लिए उतावली से चन्द्र ही उदित हुआ हो, अथवा चातक के लिए मेघ ही दौड़ा आया हो, अथवा भूखे के सामने स्वयं क्षीर (दूध)-सागर ही उपस्थित हुआ हो, अथवा दरिद्र के घर की खोज करते हुए बलात् कल्पवृक्ष ही आ गया हो। ४७-४८ उसी प्रकार दया

श्रीगुरु दयासागर। तेणें दिधला अभय वर। म्हणे सिद्धी पावेल साचार। रामविजय ग्रंथ हा। ४९

आतां वंदूं संतसज्जन। जे वैराग्यवनींचे पंचानन। कीं ज्ञानांबरींचे चंडकिरण। उदय अस्त नसे जयां। ५० जे भक्तसरोवरींचे राजहंस। जे कां अविद्यारण्यहुताश। कीं ते पद्महस्ती विशेष। भवरोगा वैद्य होती। ५१ कीं जीव पावे आपले पदासी। ऐसा मुहूर्त देणार ते ज्योतिषी। कीं ते पंचाक्षरी स्वप्रतापेंसीं। पंचभूतांसी पळविती। ५२ कीं ते दैवी संपत्तीनें भाग्यवंत। मुमुक्षूंसी करिती दरिद्ररहित। कीं ते दयेचीं अद्भुत। गोपुरें काय उंचावलीं। ५३ संत श्रोते चतुर पण्डित। माझें बोलणें आरुष अत्यंत। जैसा सरस्वतीपुढें मूढ बहुत। वाग्विलास दावीतसे। ५४ सूर्यापुढें जैसा दीप देख। कीं जान्हवीस न्हाणावया

के सागर श्रीगुरु ने अभयदान देते हुए कहा–'राम-विजय' ग्रन्थ की रचना सचमुच ही सफल हो जाएगी। ४९

अब मैं उन सन्तों, सज्जनों की वन्दना करता हूँ, जो वैराग्य-रूपी वन में निवास करनेवाले सिंह ही हैं अथवा जो ज्ञान-रूपी आकाश की ऐसी प्रखर किरणें ही हैं, जिनका कभी उदय या अस्त नहीं होता (अर्थात् जो हमेशा तेजस्वी ही बनी रहती हैं।) ५० मैं उन सन्तों—सज्जनों की वन्दना करता हूँ, जो भक्तों (भक्ति) के सरोवर में विहार करनेवाले राजहंस ही हैं, जो अविद्या रूपी अरण्य को जला डालनेवाली अग्नि ही हैं, अथवा जो सांसारिक रोगों को दूर करने वाले पद्महस्ती (=परम विख्यात) वैद्य ही हैं। ५१ वे मानो ऐसे ज्योतिषि हैं, जिनके बताये मुहूर्त पर जीव अपने लिए परमपद की प्राप्ति कर सकता है, वे मानो ऐसे ओझा ही हैं, जो पंचभूतों को–पंचमहाभूतों के बने शरीर के कारण उत्पन्न विकार रूपी पिशाचों को दूर भगा देते हैं। ५२ वे सन्त ऐसे पुरुष हैं, जो दैवी सम्पत्ति की प्राप्ति से भाग्यवान् सिद्ध हो चुके हैं और जो मोक्ष प्राप्ति की आकांक्षा रखनेवालों को दरिद्रता से मुक्त कर देते हैं अथवा उनके रूप में दया के साक्षात् गोपुर (मन्दिर के कलश विशेष) ही उभरे हुए हैं। ५३ सन्त रूपी मेरे श्रोता चतुर पण्डित हैं और मेरी उक्तियाँ अत्यन्त आर्ष (गँवारू) हैं। उनके सामने मेरा बोलना मानो देवी सरस्वती के सामने बहुत ही मूर्ख व्यक्ति के पाण्डित्य-प्रदर्शन के समान ही है। ५४ मेरा

थिल्लरोदक । कीं कनकाद्री जो अति सुरेख। त्यासी अलंकार पितळेचे । ५५ कामधेनूस अर्पिलें अजाक्षीर। चंद्रासी शीतळ करी रंभापुत्र। कल्पतरु कल्पिलें देणार। त्यासी निंबोळ्या समर्पिल्या । ५६ रत्नाकरापुढें काच समर्पिली । तैसी माझी हे आरुष बोली। परी तुह्मीं प्रीति बहु ठेविली। प्राकृत शब्दीं नवल हें । ५७ विष्णूसी भूषणें अपार। परी तुलसीवरी आवडी थोर। कीं पार्वतीपतीस बिल्वपत्र। भक्तीं वाहतां आवडे । ५८ रायें दासीस पाठीं घालितां। तिची सर्वांवरी चाले सत्ता । थोडया मोलाचे अळंकार लेतां । जनां समस्तां थोर दिसे । ५९ म्हणोनि तुम्ही संत प्रभु थोर। तुमचा महिमा न वर्णवे अपार। मोटेंत बांधवेल समीर। चरणीं अंबर क्रमवेल पैं। ६० गणवतील

तुम्हारे सामने बोलना, सूर्य को दिया दिखाने के समान है, अथवा गंगानदी को नहलाने के लिए तलैया का पानी लाना ही है, अथवा अत्यन्त सुन्दर सुवर्ण पर्वत के लिए पीतल के आभूषण प्रदान करना ही है; अथवा (मेरा यह बोलना) कामधेनु को बकरी का दूध समर्पित करने के समान है, चन्द्र को शीतल बनाने के लिए कपूर प्रस्तुत करने जैसा है, अथवा जिस-जिसकी कोई कल्पना करे, उस-उसको प्रदान करने वाले कल्पवृक्ष को निबोरियाँ समर्पित करने जैसा है । ५५-५६ तुम्हारे सामने मेरी यह ग्राम्य भाषा रत्नों के प्रत्यक्ष आकर (समुद्र) के सामने काँच को प्रस्तुत करने के समान है । फिर भी तुम लोग मेरी इस प्राकृत-जनभाषा में उसे श्रवण करने में रुचि रखते हो, यह सचमुच आश्चर्य है । ५७ भगवान् विष्णु के पास तो अनगिनत आभूषण हैं, फिर भी उन्हें तुलसी (दल) के प्रति बहुत रुचि होती है; अथवा पार्वती-पति श्री शिवजी को बिल्व-पत्र भक्तिपूर्वक समर्पित करें, तो वह उन्हें बहुत प्रिय लगता है । ५८ राजा यदि किसी दासी को पक्षपात पूर्वक आश्रय देता हो, तो उसका अधिकार सब पर चलता है । उसी प्रकार भगवान् तुच्छ आभूषण भी धारण करें, तो वह सब लोगों को महत्त्वपूर्ण, कीमती ही प्रतीत होता है । ५९ तुम महान् सन्त हो, प्रभु हो; तुम्हारी अथाह महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता । मोट में हवा बाँधी जा सकती है; पैदल चलते हुए आकाश को पार किया जा सकता है; पृथ्वी के धूलीकण गिनाये जा सकते हैं, समुद्र का पानी नापा जा सकता है; मेरु पर्वत को गेंद बनाकर उसे उछाला

पृथ्वीचे रजःकण । मोजवेल सिंधूचें जीवन । कनकाद्रीचा चेंडू करून । उडविजेल सर्वथा । ६१ भोगींद्रमस्तकींचा मणी । आणवेल एकादे क्षणीं । सूर्य जातां धरवेल गगनीं । नक्षत्रें गुणीं ओविजेतील । ६२ काढवेल शशिमंडळींचें अमृत । मोडवतील ऐरावतीचे दांत । कीं दिग्गज आणोन समस्त । एके ठायीं बांधिजेतील । ६३ तुरंग करूनि प्रभंजन । करवेल सर्वत्र गमन । परी न कळे संतांचें महिमान । जे ब्रह्मानंदें पूर्ण सदा । ६४ तों संत बोलती आनंदघन । मन निवालें तव बोल ऐकून । आम्ही करूं इच्छितों रामकथाश्रवण । वरी दृष्टांत गोड तुझे । ६५ मेरू सुंदर रत्नेंकरून । कीं नक्षत्रें मंडित गगन । कीं वृक्ष फळीं परिपूर्ण । तैसा दृष्टांतें ग्रंथ शोभे । ६६ कीं शांति क्षमा दया विशेष । तेणें मंडित सत्पुरुष । कीं परिवारासहित नरेश । दृष्टांत सुरस ग्रंथीं तैसे । ६७ आधींच भूक लागली बहुत । त्याहीवरी

जा सकता है; एकाध समय भगवान् शेष की शीर्षस्थ मणि को (छीनकर) लाया जा सकता है; आकाश में सूर्य को पकड़ा जा सकता है; आकाश के तारों को सूत्र में पिरोया जा सकता है; चन्द्र-मण्डल को निचोड़ कर अमृत चुवाया जा सकता है; ऐरावत हाथी के दाँतों को तोड़ा जा सकता है; अथवा सभी दिग्गजों को लाकर एक स्थान पर बाँधा जा सकता है; प्रभंजन (वायु) को घोड़ा बनाकर सर्वत्र संचार किया जा सकता है—वस्तुतः ये बातें असम्भव हैं, फिर भी उन्हें सम्भव बनाया जा सकता है—लेकिन जो सन्त नित्य ब्रह्मानन्द से ही भरे-पूरे रहते हैं, उनका माहात्म्य जाना नहीं जा सकता । ६०-६४

यह सुनकर आनन्द-घन स्वरूपी सन्तों ने कहा—"तुम्हारी उक्ति सुनकर हमारा मन शान्ति को प्राप्त हुआ है । हम रामकथा का श्रवण करना चाहते हैं—और तुम्हारे द्वारा प्रस्तुत दृष्टान्त बहुत ही मधुर हैं । ६५ सुन्दर रत्नों से मेरु पर्वत जैसा सुन्दर दिखायी देता है, नक्षत्रों से भरा आकाश और फलों से लदा वृक्ष जैसा सुन्दर लगता है वैसा ही दृष्टान्तों से भरा-पूरा ग्रन्थ शोभायमान होता है । ६६ जिस प्रकार सत्पुरुष शान्ति, क्षमा, दया जैसे विशेष गुणों से मण्डित होने पर सुन्दर माना जाता है, अथवा अपने परिवार से घिरा राजा सुशोभित प्रतीत होता है, वैसे ही सुरस ग्रन्थ दृष्टान्तों से युक्त होने पर सुन्दर माना जाता है । ६७ पहले

वाढिलें पंचामृत । कीं दुर्बळासी अकस्मात । कल्पतरू भेटला । ६८ कन्यार्थी हिंडतां भूमंडळ । त्यासी राजकन्या घाली माळ । कीं रोगियासी रसायन निर्मळ । अकस्मात जोडलें । ६९ आतां बहु टाकोनि शब्दजाळ । बोलें रामकथा रसाळ । जैसी सिकता सांडोनि मराळ । मुक्ताफळेंचि सेविती । ७० कीं कोशगृहीं प्रवेशोनी । भांडारी रत्नें काढी निवडोनी । कीं दोष टाकून सज्जनीं । उत्तम गुण स्वीकारिजे । ७१ ऐसे संतांचे बोल परिकर । ऐकोनि ब्रह्मानंदें श्रीधर । साष्टांग घालोनि नमस्कार । म्हणे सादर परिसिजे । ७२ असंभाव्य श्रीरामचरित्र । शतकोटि ग्रंथ सविस्तर । वाल्मीक बोलिला अपार । कथासमुद्र अगम्य । ७३ जो सत्यवतीहृदयरत्न । कथी जगद्‌गुरू पराशर-नंदन । तें व्यासोक्त रामायण । कोणा संपूर्ण न वर्णवे । ७४

से कोई बहुत भूखा हो और उसके सामने पंचामृत परोसा जाए अथवा किसी दुर्बल की अकस्मात् कल्पतरु से भेंट हो जाए, अथवा वधू की खोज में भ्रमण करने वाले को अप्रत्याशित रूप में कोई राजकन्या वरमाला पहनाए, अथवा किसी रोगी को सहसा निर्मल रसायन का लाभ हो जाए, तो उसे जैसा अद्‌भुत आनन्द होगा, वैसा ही आनन्द हमें इस समय हो रहा है । ६८-६९ इसलिए अब बड़े शब्द-जाल का त्याग करो और हमें रस से युक्त रामकथा का श्रवण कराओ । जैसे बालू के कणों का त्याग कर हंस मोतियों को ही चुग लेता है, जैसे कोषागार में प्रवेश कर भण्डारी रत्नों का ही चयन करता है, जैसे सज्जन दोषों का त्याग कर उत्तम गुणों को स्वीकार करते हैं, वैसे ही तुम भी व्यर्थ की इधर-उधर की बातों को छोड़कर राम की कथा का ही वर्णन करो ।" ७०-७१

सन्तों के ऐसे मधुर शब्दों को सुनकर श्रीधर कवि ने ब्रह्मानन्द पूर्वक संतों को साष्टांग नमस्कार किया और उन्होंने श्रोताओं से आदरपूर्वक कहा— "सुनो । ७२ श्रीराम का चरित्र अद्‌भुत है । उसका वर्णन वाल्मीकि ने शतकोटि ग्रन्थों (छन्दों) की रचना कर विस्तारपूर्वक किया है । सचमुच यह (राम) कथा रूपी समुद्र अगम्य है—अथाह है । ७३ (सत्यवती के हृदय के लिए रत्न स्वरूप जगद्‌गुरु, पराशर के पुत्र) व्यास ने जिस रामायण का वर्णन किया है, वह है 'व्यासोक्त रामायण' । कोई भी उसका पूर्णतः वर्णन नहीं कर सकता । ७४ वसिष्ठ ऋषि ने जो रामायण

वसिष्ठें कथिलें निश्चितीं। तें वासिष्ठ-रामायण म्हणती। शुकें कथिलें नाना रीतीं। शुक-रामायण बोलती तया। ७५ जो अंजनीहृदयारविंदभ्रमर। तेणें पाहोन श्रीरामचरित्र। कथिलें नाटक-रामायण साचार। अपार चरित्र निजमुखें। ७६ जो परमविश्वासें श्रीरामासी शरण। शक्रारिजनकबंधू बिभीषण। तेणें रामचरित्र कथिलें पूर्ण। बिभीषण-रामायण म्हणती तया। ७७ कमलोद्भव विष्णुसुत। तेणें नारदासी कथिलें हें चरित्र। तें ब्रह्म-रामायण अद्भुत। उमेसी सांगत शिव रामायण। ७८ जो कलशोद्भव महामुनी। जेणें जलधि आटिला आचमनेंकरूनी। तेणें रामकथा ठेविली विस्तारोनी। अगस्ति-रामायण म्हणती तया। ७९ भोगींद्र कथी सर्पांप्रति। तें शेष-रामायण बोलिजे पंडितीं। अध्यात्म-रामायण समस्तीं। ऋषींनीं निवडून काढिलें। ८० एक शेष-रामायण सत्य। आगम-रामायण

कहा है, उसे 'वासिष्ठ रामायण' कहते हैं। शुक मुनि ने भी अनेक प्रकार से रामायण का कथन किया है। उसे 'शुक रामायण' कहते हैं। ७५ हनुमान जी, जो (माता) अंजनी के हृदय रूपी कमल में (लुब्ध) भ्रमर ही थे, श्रीराम के चरित्र (प्रत्यक्ष) देख चुके हैं। उन्होंने अपने मुख से राम के चरित्र का जो वर्णन किया, उसे 'रामायण नाटक' कहा जाता है। ७६ (इन्द्र के शत्रु-इन्द्रजित-के पिता) रावण के बन्धु विभीषण बड़े विश्वास पूर्वक श्रीराम की शरण में आश्रित हो गये थे। उन्होंने सम्पूर्ण रामचरित्र का वर्णन किया है, उसे 'विभीषण रामायण' कहते हैं। ७७ एक वह अद्भुत रामायण है, जिसका कथन (श्रीविष्णु की नाभि में से उत्पन्न कमल में जिनका जन्म हुआ, ऐसे) ब्रह्मा ने नारद के लिए किया। उसे 'ब्रह्म रामायण' कहा जाता है। शिवजी ने जो रामायण उमा को सुनाया वह है 'शिव रामायण'। ७८ जिसका जन्म कलश में हुआ, उस अगस्त मुनि ने एक आचमन द्वारा समुद्र को सुखाया था। उसने भी विस्तार पूर्वक रामकथा का वर्णन करके रखा है। उस रामायण को 'अगस्त्य रामायण' कहते हैं। ७९ शेष भगवान् द्वारा सर्पों से कहे हुए रामायण को पण्डित जन 'शेष रामायण' कहते हैं। सभी ऋषियों ने 'अध्यात्म रामायण' का चयन करके रखा है। ८० एक रामायण 'शैव रामायण' कहाता है; दूसरा 'आगम रामायण' नाम से सम्बोधित है और

एक बोलत । कूर्म-रामायण यथार्थ । कूर्मपुराणीं बोलिलें । ८१ स्कंद-रामायण अपार । एक पौलस्ति-रामायण परिकर । कालिका-खंडीं सविस्तर । रामकथा कथियेली । ८२ रविअरुणसंवाद । तें अरुण-रामायण प्रसिद्ध । पद्मपुराणीं अगाध । पद्म-रामायण कथियेलें । ८३ भरत-रामायण चांगलें । एक धर्म-रामायण बोलिलें आश्चर्य-रामायण कथिलें । बकदाल्भ्यऋषीप्रती । ८४ मुळापासून इतुक्या कथा । कैशा वर्णवतील तत्त्वतां । त्यांमाजी वाल्मीक-नाटकाधारें कथा । रामविजयालागीं कथूं । ८५ समस्त कवींस नमस्कार । जो जगद्गुरू आचार्य श्रीशंकर । जेणें मतें उच्छेदोन समग्र । शुद्ध मार्ग वाढविला । ८६ पूर्वीं एक सत्यवतीकुमर । तैसाचि कलियुगीं श्रीशंकर । जो ज्ञानाचा सागर । जगदुद्धार केला जेणें । ८७ सकळ मतें उच्छेदून । सन्मार्ग वाढविला पूर्ण ।

कूर्म पुराण में वर्णित रामायण 'कूर्म रामायण' नाम से जाना जाता है । ८१ एक अद्भुत रामायण है 'स्कन्द रामायण'; दूसरा एक सुन्दर 'पौलस्ति रामायण' है । कालिका खण्ड में भी राम कथा विस्तार पूर्वक कही गयी है । ८२ रवि और अरुण के सम्वाद के रूप में जो प्रस्तुत हुआ, वही विख्यात 'अरुण रामायण' है । पद्म पुराण के अन्तर्गत एक अथाह रामायण मिलता है, उसे 'पद्म रामायण' कहा जाता है । ८३ एक सुन्दर 'भरत रामायण' है; दूसरा एक 'धर्म रामायण' है; एक 'आश्चर्य रामायण' भी है, जिसका वर्णन बकदाल्भ्य नामक ऋषि के लिए किया गया था । ८४ इतनी (बड़ी संख्या में) हैं ये रामकथाएँ । उन सबको आरम्भ से लेकर (अन्त तक) पूर्णतः कैसे कहा जा सकता है ? इसलिए अपने 'राम विजय' के लिए उनमें से 'वाल्मीकि नाटक' से कथा-सूत्र लेकर मैं कहना चाहता हूँ । ८५

मैं सभी (पूर्ववर्ती तथा विद्यमान) कवियों को नमस्कार करता हूँ । वे आचार्य श्री शंकर ही हैं, जिन्होंने पाखण्डी (वेद-बाह्य) मतों का खण्डन कर शुद्ध धर्म-मत का प्रचार किया । (मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ ।) ८६ पूर्वकाल में जैसे सत्यवती के पुत्र (वेदव्यास) हो गये, वैसे ही कलियुग में ज्ञान के साक्षात् सागर श्री शंकराचार्य हो गये, उन्होंने (अपने मत का प्रचार करके) जगत् का उद्धार किया । ८७ उन्होंने सब पाखण्डी (वेद-बाह्य) मतों का उच्छेदन करके सद्धर्म-मार्ग का पूर्ण रूप से विकास किया ।

सकळ मतवादी जंबूक जाण। शंकरसिंह गर्जतसे। ८८ सकळ मतवादी दरिद्री। शंकर श्रीमंत पृथ्वीवरी। संन्यासदीक्षा निर्धारीं। स्थापिली जेणें विधियुक्त। ८९ अवघे मतवादी रजनीचर। शंकर त्यांवरी रघुवीर। कीं कौरव वधावया यादवेंद्र। अति उदित साक्षेपें। ९० तैसा श्रीशंकराचार्य सकळ। कुमतें छेदी तात्काळ। त्या आचार्याचें पदकमळ। श्रीधरभ्रमरें वंदिलें। ९१ जो श्रीधराचार्य टीकाकार। त्यासी नमस्कारी श्रीधर। मधुसूदनादिक कवींद्र। ग्रंथ अपार जयांचे। ९२ जो शृंगारवनींचा विहंगम जाण। जो जयदेव पद्मावतीरमण। त्याची काव्यकला पाहून। पंडित जन तटस्थ। ९३ जो वेदांत-क्षीरार्णवींचा मीन। जेणें विवेकसिंधु रचिला पूर्ण। तो मुकुंदराज

अन्य मतों के मानने वाले (पाखण्डी मतवादी) लोगों को सियार ही समझो और इधर श्रीशंकराचार्य रूपी सिंह गर्जन करने लगे। (उससे डर कर वे सियार भाग गये—अन्य मतों का लोप हो गया।) ८८ अन्य मतवादी दरिद्र हैं—जबकि इस धरातल पर श्री शंकाराचार्य धनवान् ही माने जाते हैं। उन्होंने निश्चयपूर्वक संन्यास-दीक्षा के मार्ग को विधिपूर्वक प्रतिष्ठित किया। ८९ अन्य सभी मतवादी मानो राक्षस ही थे और श्री शंकराचार्य मानो उन पर टूट पड़ने वाले रघुवीर राम ही थे। अथवा अन्य मतवादी रूपी कौरवों का वध करने के लिए श्री शंकराचार्य के रूप में यादवेन्द्र श्रीकृष्ण का ही उदय हो गया था। ९० (जैसे राम ने राक्षसों का अथवा श्रीकृष्ण ने कौरवों का विनाश किया—करवाया वैसे ही) श्री शंकराचार्य ने सभी कु-मतों का—असद्-सिद्धान्तों का उच्छेद कर डाला। उन आचार्य शंकर के पद-कमलों की मैं—श्रीधर रूपी भ्रमर—वन्दना करता हूँ। ९१ श्रीमद्भागवत के महामहिम व्याख्याकार श्रीधराचार्य को यह श्रीधर नमस्कार करता है। यह श्रीधर उन मधुसूदन आदि कवीन्द्रों को भी नमस्कार करता है, जिन्होंने गहन ग्रन्थों की रचना की है। ९२ पद्मावती-पति (कवि) जयदेव मानो शृंगार रस रूपी वन के विहंगम ही थे। उनकी काव्यकला को देख पण्डित जन मुग्ध हो जाते हैं। (उन्हें यह श्रीधर नमस्कार करता है।) ९३ यह श्रीधर उन गुणनिधान कवि मुकुन्दराज के चरणों का वन्दन करता है, जो मानो वेदान्त-सागर में निवास करने वाले मत्स्य ही थे और जिन्होंने

गुणनिधान। तयाचे चरण वंदिले। ९४ तारावया जन समग्र। पुनः अवतरला रमावर। गीतार्थ केला साचार। तो ज्ञानेश्वर जगद्गुरू। ९५ जो भानुदासकुलभूषण। प्रतिष्ठानवासी परिपूर्ण। त्या एकनाथें ग्रंथ संपूर्ण। बहुसाल कथियेले। ९६ जे चातुर्य-राजधानीचे कळस। मुक्तेश्वर मुद्गलदास। ज्यांचे ग्रंथ पाहतां सुरस। ब्रह्मानंद उचंबळे। ९७ जैसा चंडांशु सतेज व्योमीं। तैसाचि केवल वामनस्वामी। ज्याची श्लोकरचना या भूमी-। मंडळावरी अपूर्व। ९८ कृष्णदास जयराम। जो शांतिदयेचें निजधाम। ज्याचे ग्रंथ ज्ञानभरित परम। जो निःसीम ब्रह्मचारी। ९९ श्रीरामउपासक निर्मळ। जो भजनसरोवरींचा मराळ। तो रामदास महाराज केवळ। भक्ति प्रबळ लावी जनां। १०० ब्रह्मानंदस्वामीचा बंधु सत्य। नाम तयाचें श्रीरंग-

---

(मराठी में वेदान्त सम्बन्धी) 'विवेक सिन्धु' नामक ग्रन्थ की रचना की। ९४ सकल जनों का उद्धार करने के लिए मानो भगवान् रमापति श्रीविष्णु जिनके रूप में अवतीर्ण हुए, वे हैं जगद्गुरु श्री ज्ञानेश्वर। उन्होंने भगवद्गीता का सही अर्थ बताया। उन्हें यह श्रीधर प्रणाम करता है। ९५ श्री एकनाथ भानुदास के कुल के विभूषण थे; वे प्रतिष्ठानपुर (पैठण) में निवास करते थे। उन्होंने सम्पूर्ण रामायण का ग्रन्थ रूप में वहुत वर्णन किया है। (यह श्रीधर उन्हें नमस्कार करता है।) ९६ मुक्तेश्वर और मुद्गलदास नामक (मराठी के कवि) मानो चातुर्य (बुद्धि-सामर्थ्य) रूपी राजधानी में (शोभायमान मन्दिरों के) कलश ही हैं। उनके ग्रन्थों को देखने पर (हृदयसागर में) ब्रह्मानन्द ही लहराने लगता है। (उन्हें इस श्रीधर का नमस्कार है।) ९७ आकाश में जैसे तेजस्वी सूर्य होता है, वैसे ही (इस धरातल पर) केवल (कवि) वामन (पण्डित) थे। उनकी श्लोक रचना इस धरातल पर अपूर्व-अद्भुत मानी जाती है। (उन्हें इस श्रीधर का नमस्कार है।) ९८ निस्सीम (अद्वितीय) ब्रह्मचारी (कवि) कृष्णदास जयराम मानो शान्ति और दया के अपने निवास-स्थान ही के रूप में रह चुके हैं—उनके ग्रन्थ ज्ञान से परिपूर्ण हैं। उन्हें श्रीधर नमस्कार करता है। ९९ श्री रामदास शुद्ध रामोपासक थे—वे भजन रूपी सरोवर में निवास करने वाले मानो राजहंस ही थे। उन्होंने जन-जन में उत्कट भक्ति-भावना की निर्मिति की। (उन्हें श्रीधर

नाथ । ज्याची कविता ऐकतां समस्त । अपार जन उद्धरले । १०१
आतां असोत समस्त कविवर । अवघे ब्रह्मानंदरूप साचार । त्यांसी अनन्य शरण श्रीधर । द्यावा वर ग्रंथासी । १०२
रविकुळीं अवतरोनि श्रीरघुवीर । कैसें केलें लीलाचरित्र । धन्य त्या वाल्मीकाचें वक्त्र । कथा अपार बोलिला । ३ हें वर्णितां श्रीरामचरित्र । तरला वाल्मीक साचार । पापें आचरला अपार । ऐका सादर गोष्टी ते । ४ वाल्मीक पूर्वीं द्विजसुत । त्यजोनि आचार यज्ञोपवीत । किरातसंगें वाट पाडित । अति उन्मत्त विषयांध । ५ महा दुर्धर कानन । देखतां भयभीत होय मन । पर्वतदरीमाजीं स्थळ करून । सहपरिवारें वसे तेथें । ६ भोंवतें द्वादश गांवेंपर्यंत । पाळती राखोनि वाट पाडित । केल्या ब्रह्महत्या असंख्यात । नाहीं गणित इतर जीवां । ७ मत्स्य

नमस्कार करता है ।) १०० (मेरे गुरु तथा पिता) श्री ब्रह्मानन्द स्वामी के श्री रंगनाथ नामक एक बन्धु हैं । उनकी समस्त कविता सुनकर अनगिनत लोगों का उद्धार हो गया है । मैं—श्रीधर उन्हें नमस्कार करता हूँ । १०१ अब सब कवि मेरे लिए सचमुच (मेरे गुरु) श्री ब्रह्मानन्द के समान रूप ही हो जाएँ । यह श्रीधर अनन्य भाव से उन सब की शरण में जा रहा है । वे सब मेरे ग्रन्थ को (सफलता का) वर प्रदान करें । १०२

सूर्यवंश में अवतरित होकर भगवान् रघुवीर राम ने अपनी लीलाओं को कैसे प्रस्तुत किया, इसका वर्णन वाल्मीकि ने किया है । धन्य है वाल्मीकि का मुख । १०३ जिस वाल्मीकि ने शुरू में बहुत ही घोर पापाचार किया था, वह श्रीरामचरित्र का वर्णन करके (भव-सागर को) सच्चे अर्थों में पार कर गया । अब उसकी कथा का आदर पूर्वक श्रवण कीजिए । १०४ वाल्मीकि वस्तुतः जन्म से ब्राह्मण-पुत्र था, लेकिन उसने यज्ञोपवीत का (ब्राह्मण धर्म का) त्याग किया; भीलों की संगति में रहते हुए बटमार (डाकू) का काम करके वह जीवन बिताने लगा । वह उन्मत्त एवं विषयान्ध हो गया । १०५ जिसे देखते ही मन भयभीत हो जाता था, ऐसे एक दुर्गम वन में, पहाड़ी घाटी के अन्दर उसने अपना डेरा डाला और परिवार-सहित रहने लगा । १०६ आस-पास के बारह गाँवों तक वह टोह लगाये रहता था । उसने अनगिनत ब्राह्मणों की हत्या की थी—अन्य जीवों

धरावयालागीं बक । बैसे होऊनियां सात्विक । कीं मूषकालागीं बिडालक । बैसे टपत जयापरी । ८ कीं अंगसंकोचें पारधी । जपोनि तत्काळ मृग साधी । तैसा वाल्हा जीव वधी । पापनिधि निर्दय । ९ अपार जीव मारिले । पापाचे पर्वत सांचले । जैसे अंत्यज-गृहाभोंवते पडिले । ढीग बहुत अस्थींचे । १० ऐसें करितां पापाचरण । तयासी आलें वृद्धपण । पुत्र झाले अति तरुण । तरी आंगवण न सोडी । ११ शस्त्र हातीं घेऊनि वाल्हा । मार्ग रक्षीत जों बैसला । तों अकस्मात नारद प्रगटला । पूर्व-पुण्येंकरूनियां । १२ चंद्रा वेष्टित नक्षत्रें जैसीं । भोंवतीं ऋषींची मांदी तैसी । तों पाळती सांगती वाल्हियासी । जाती तापसी बहुसाल । १३ वाटेसी धांवोन आडवा आला । शस्त्र उभारोनि ते वेळां । दटावोनि ऋषींचा मेळा । उभा केला क्षणभरी । १४ कीं स्वर्गपंथें जातां नेटें । जैसी यमपुरी लागे वाटे । कीं तपें

की तो कोई गिनती ही नहीं कर सकता । १०७ जैसे बगुला मछली पकड़ने के लिए सात्त्विक बनकर ध्यान लगाये बैठता है, जैसे बिलाव चूहे की टोह में बैठता है, अथवा शिकारी अपने शरीर को सिकोड़े हुए मृग के दिखते ही बड़े ध्यान पूर्वक निशाना साध लेता है, वैसे ही यह वाल्हा (वाल्मीकि) जीवों की हत्या किया करता था । वह निर्दय एवं पापों का भण्डार ही था । १०८-१०९ उसने असंख्य जीवों (मनुष्यों) की हत्या की थी । जैसे अन्त्यज (अतिशूद्र) के घर के पास हड्डियों के ढेर लगे रहते हैं, वैसे ही उसके किये पापों के मानो अम्बार ही लगे हुए थे । ११० इस प्रकार पापाचार करते-करते वह बूढ़ा हो गया; उसके पुत्र (तब तक) जवान हो गये थे; फिर भी उसने अपने नित्यक्रम का त्याग नहीं किया । १११ एक दिन वह वाल्हा रास्ते में टोह लगाये बैठा ही था कि उसके पूर्वपुण्य के कारण ही सहसा नारद मुनि का वहाँ पर आगमन हुआ । ११२ जैसे चन्द्र के चारों ओर (उसे घेरे हुए) तारे होते हैं, वैसे ही नारद को ऋषियों ने घेर रखा था । उन्हें देखते ही जासूसों ने वाल्हा से कहा कि यहाँ होकर अनेक तापसी जा रहे हैं । ११३ अपनी जगह को छोड़, वाल्हा उन्हें रोकने के लिए दौड़ा आया और हाथ में हथियार उठाये हुए उन ऋषियों को धमकाकर उसने क्षण मात्र में (उन्हें) ठहराया । ११४ जैसे किसी के निश्चय पूर्वक स्वर्ग की ओर

आचरतां उद्भटें। कामक्रोध अडविती। १५ असो वाल्हा म्हणे तयांसी। माल आणा रे मजपासीं। नाहीं तरी मुकाल प्राणांसी। माझिया हस्तें या काळीं। १६ मग पुढें होऊन ब्रह्मनंदन। म्हणे "ऐक एक आमुचें वचन। तुज आलें वृद्धपण। पापें अपार घडलीं कीं। १७ द्रव्य जोडिलें त्वां अपार। झाले दुष्कृताचे संभार। तुझे पापासी वांटेकर। कोण आहेत हें विचारीं। १८ तुझें आलें जवळी मरण। यम जेव्हां गांजील दारुण। तेव्हां तुजला सोडवील कोण। पाहें विचारून अंतरीं। १९ दारा पुत्र धन यौवन बंधु सेवक आप्त स्वजन। शस्त्रें अस्त्रें चतुरंग सैन्य। न ये कामा ते वेळे। २० जीं जीं प्राणी कर्में करिती। तितुकीं देव सर्व विलोकिती। सकळ तत्त्वें व्यापून वर्तती। मग साक्ष देती परत्रीं ते। २१ यमपुरीस चित्रगुप्त। पत्रें काढूनि वाचित। मग त्यासारिखा दंड करीत। कोण तेथें सोडवील। २२ जो पुण्यपंथें

जाते समय, मार्ग में यमपुरी पड़ जाए, अथवा किसी के धैर्यपूर्वक तपस्या करते समय, उसके मार्ग में काम-क्रोध आदि विकार बाधा डालें, वैसे ही उन ऋषियों के मार्ग में वाल्हा ने रोड़ा अटकाया। ११५ वाल्हा ने उनसे कहा—"अपना धन मुझे दो; नहीं तो इसी समय मेरे हाथों तुम्हें अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।" ११६ तब ब्रह्मा जी के पुत्र नारद ने आगे बढ़ते हुए कहा—"भाई, हमारी एक बात सुनो। तुम अब बूढ़े हो गये हो। तुम्हारे हाथों बहुत पाप भी हो गये हैं। ११७ तुमने बहुत धन तो जोड़ लिया है, लेकिन ऐसा करने में ढेर के ढेर पाप भी हो गये हैं। जरा सोचो तो सही—तुम्हारे इन पापों में कौन साझी हैं। ११८ तुम्हारी मौत अब निकट आयी है। जब यमराज तुम्हें बहुत ही भयावह रूप में सताने लगेगा, तो तुम्हें कौन छुड़ाएगा। ज़रा मन में इसका तो विचार करो। ११९ उस समय स्त्री, पुत्र, धन, यौवन, बन्धु, सेवक, सगे-स्वजन, अस्त्र-शस्त्र, चतुरंग सेना—कोई भी काम नहीं आएगा। १२० जीव जो जो काम करता है, उन सबको देवता देखते ही रहते हैं—क्योंकि वे पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, अग्नि—सब तत्त्वों को व्याप्त किये रहते हैं। इसलिए परलोक में वे साक्षी देते हैं। १२१ यमपुरी में चित्रगुप्त सबके हिसाब-किताब के पन्ने निकालकर पढ़ता है। उसके अनुसार देवता जीव को दण्ड देते हैं। वहाँ तुम्हें कौन छुड़ाएगा ? १२२ जो मनुष्य पुण्यमार्ग

न चाले नर । निंदी तीर्थयात्रा समग्र । त्यास ताम्रभूमी तप्त अपार । तीवरी चालविती हळुहळू । २३ जे परोपकार न करिती । त्यांसी असिपत्रावरी हिंडविती । इकडून तिकडे शस्त्रें टोंचिती । कोण सोडवील ते स्थानीं । २४ तप्त लोहाचा स्तंभ दारुण । त्यासी भेटविती नेऊन । देवद्विजां जो न करी नमन । त्यासी जाण हीच गती । २५ जो संतांसी देखों न शके अपवित्र । त्याचे रागें गीध फोडिती नेत्र । जो कीर्तन स्मरण न करी अणुमात्र । जिव्हा तोडिती सांडसें । २६ गुरु देव ब्राह्मण सांडूनी । जो षड्रस सेवी पापखाणी । महानरकींचें दुर्गंधपाणी । तयाचे वदनीं ओतिती । २७ जो तीर्थस्नान निंदी खळ । त्यासी तप्त कढयीमाजीं जें तैल । त्यांत तळिती तत्काळ । कोण सोडवील तेथें पैं । २८ जे साधुसंतांसी पीडिती । त्यांचे अंगाचीं सालें काढिती । जे गुरु द्विज तीर्थें अव्हेरिती । त्यांचे तोडीं घालिती

से नहीं चलता, सर्व तीर्थयात्रा की निन्दा करता है, उसे (यम के सेवक) वहाँ की बहुत ही गर्म ताम्रभूमि पर आहिस्ता-आहिस्ता चलाते हैं। १२३ जो कभी दूसरों का उपकार नहीं करता, उसे वे असिपत्र नामक नरक में (जहाँ तलवार की धार के समान धारवाले पत्ते होते हैं, उन पर से) चलाते हैं। वे इधर उधर से शरीर में हथियार चुभाते हैं। उस स्थान पर तुम्हें कौन मुक्त करेगा ? २४ (यमपुरी में) गर्म लोहे का प्रचण्ड स्तम्भ बनाया हुआ है। पापी जीव को ले जाकर उससे सटा देते हैं। यह मान लो, जो देवताओं और ब्राह्मणों का वन्दन नहीं करता, वह ऐसी ही गति को प्राप्त होता है। २५ जो सन्तों को (सद्भाव से) देख तक नहीं सकता, उसकी आँखों को गुस्से से (वहाँ के) गिध फोड़ डालते हैं। जो मनुष्य भगवान् का कीर्तन, नामस्मरण ज़रा भी नहीं करता, उसकी जीभ को चिमटे से (खींच कर) काटते हैं। २६ जो (पाप की साक्षात् खान ही हो, ऐसा) परम पापी, गुरु, देवता और ब्राह्मण की उपेक्षा कर छहों रसों का सेवन करता रहता है, उसके मुख में महानरक का दुर्गन्धियुक्त पानी डाला जाता है। २७ वहाँ पर गर्म तेल से भरी कड़ाहियाँ हैं। जो खल पुरुषस्नान की निन्दा करता है, उसे उन कड़ाहियों में ालकर तलते हैं। वहाँ पर उसे इससे कौन बचाएगा ? २८ जो साधु-सन्तों को पीड़ा पहुँचाते हैं, उनकी देह से चमड़ा छीलते हैं। जो

नरकमूत्र । २९ धर्मवाट रोधोनि हरिती जे धन। त्यांसी कुंभीपाकीं घालून। खालीं चेतविती कृशान। माजी आक्रंदोनी चडफडती। ३० लोहदंड करूनि तप्त। कानीं खोंविती यमदूत। जो नायके हरिकथामृत। गति निश्चत त्यास ही।" ३१ ऐसें बोलतां नारदऋषी। अनुताप जाहला त्याचे मानसीं। वेगें आला निजसदनासी। स्त्रीसुतादिकांसी पुसत। ३२ "पापें घडलीं मजलागीं। कोणी होतां काय विभागी।" तंव तीं म्हणती, "आमुचे अंगीं। न लागती पापें सर्वथा हीं। ३३ आम्ही भाग्याचे वांटेकरी यथार्थ। पापें तुझीं तूं भोगीं समस्त।" वाल्हा झाला सद्‌गदित। म्हणे-'कैसें आतां करावें। ३४ हा नरदेह उत्तम पूर्ण। केवळ भगवत्प्राप्तीचें कारण। म्यां आत्महित न करून। बुडालों कीं अंधतमीं। ३५ पुण्यक्षेत्र सरसाविलें। तेथें कनकबीज पेरिलें।

गुरु, ब्राह्मण और तीर्थ की उपेक्षा करते हैं, उनके मुँह में नरक (में) मूत्र डालते हैं। २९ धर्म के मार्ग पर चलने वालों को रोककर जो उनका धन छीन लेते हैं, उन्हें कुम्भीपाक नामक नरक में डालते हैं। और उसके नीचे आग जलायी जाती है, तब वे आक्रन्दन करते-करते तड़पने लगते हैं। ३० यम के दूतलोहे की सलाइयों को गर्म करके उनके कानों में खोंसते हैं। जो मनुष्य भगवान् की अमृत के समान मधुर कथा का श्रवण नहीं करता–वह इसी स्थिति को प्राप्त होता है।" ३१

मुनिवर नारद के ऐसा कहने पर वाल्हा (वाल्मीकि)के मन में पछताव उत्पन्न हो गया। (अतः) जल्द ही घर आकर उसने अपनी स्त्री, पुत्र आदि से पूछा। ३२ "मुझसे बहुत पाप हो गये हैं। क्या उनमें तुममें से कोई साझी होना चाहता है ?" तब (यह सुनकर) उन्होंने कहा–"हमें ये पाप बिलकुल नहीं लगे हैं। ३३ हम तो (सद्) भाग्य के ही भागी हैं। तुम अपने किये सभी पापों का भोग करो।" यह सुनकर वाल्हा व्याकुल हो गद्‌गद् हो उठा। उसने (मन-ही-मन) कहा–'अब क्या किया जाए ? ३४ यह नरदेह पूर्णतः उत्तम है–केवल यही भगवान् की प्राप्ति का साधन है। परन्तु आत्महित का लाभ नहीं कर लेते हुए, मैं (अब) घोर अंधेरे में डूब गया हूँ। ३५ किसी को सद्‌भाग्य से पवित्र क्षेत्र मिल गया, तो उसमें उसने धतूरे के बीज बो दिये। उसके लिए सोने

कनकाचें ताट घडिलें। त्यांत वाढिलें तृणबीज। ३६ सुधारस-कुंभ दैवें जोडला। तो नेऊन उकिरडां ओतिला। चिंतामणी फोडून घातला। पायरीस अभाग्यें। ३७ सुरभी शोधीत आली घर। तिसी मारूनि काष्ठप्रहार। अभाग्यें घातली बाहेर। तोच प्रकार मज जाहला। ३८ बळें कल्पवृक्ष तोडून। वाढविलें कंटकवन। राजहंस दवडून। दिवाभीत पाळिले। ३९ रंभा तोडूनि महामूर्खें। अर्की वाढविल्या सकौतुकें। ओसंडोनि सतेज मुक्तें। सिकताहरळ भरियेली।' ४० असो ऐसा अनुतापें वाल्हा। नारदापासीं परतोन आला। सद्गद कंठ अश्रु डोळां। साष्टांग घातला नमस्कार। ४१ "तनुमनधनेंसीं अनन्य। स्वामी तुज मी आलों शरण। तूं कृपेची नौका करून। तारीं मज अव-सागरीं। ४२ महाराज तूं धन्वंतरी। माझा भवरोग दूर करीं। जळतों या वणव्याभीतरीं। मेघ झडकरी वर्षें तूं। ४३ पडलों

की थाली बनायी गयी, तो उसने उसमें घास के बीज परोस दिये। ३६ सद्भाग्य से किसी को अमृत रस से भरा हुआ कुम्भ मिल गया, परन्तु उस अभागे ने उसे गन्दी नाली में उँड़ेल दिया और भाग्यवशात् प्राप्त चिन्तामणि को तोड़कर उसे उसने सीढ़ी में लगा लिया। ३७ (प्रत्यक्ष) कामधेनु किसी के घर को खोजते हुए (किसी के पास) पहुँची, तो उस अभागे ने उसे लाठी से पीट-पीटकर भगा दिया। —आज मैं भी ऐसी ही स्थिति को प्राप्त हो चुका हूँ। ३८ मैंने मानो बलात् कल्पवृक्षों को काटकर कँटीले पेड़ों का वन ही लगा रखा है, राजहंसों को भगाकर उल्लुओं को ही पाल रखा है। ३९ इस महामूर्ख ने (मैंने) केले के पौधों को काट कर आक के पौधों को प्रेमपूर्वक विकसित किया है और पानीदार मोतियों को त्याग कर बालू के कणों और कंकड़ों को भर रखा है।' ४०

इस प्रकार पछताता हुआ वाल्हा मुनिवर नारद के पास लौट आया। वह गद्गद् हो गया था, उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। उसने मुनिवर को साष्टांग नमस्कार किया। ४१ उसने कहा, "मेरे स्वामी, मैं अनन्य भाव से, तन-मन-धन से तुम्हारी शरण में आया हूँ। अपनी कृपा रूपी नौका से इस पाप सागर से मुझे बचाओ। ४२ महाराज, तुम धन्वन्तरी हो, मेरा यह भवरोग दूर करो। मैं इस दावानल में जल रहा हूँ; तुम मेघरूप में बरस कर झट से इसे बुझा दो। ४३ मैं माया की

मायेचे मेळीं । पंचभूतें मज झोंबलीं । वासनाविवशी गळां पडली । कदाकाळीं सोडीना । ४४ अहंदेहबुद्धि डांकीण । ममता सटवी दारुण । लोभ झोटिंग एक क्षण । मज उमज घेऊं नेदी । ४५ क्रोध महिषासुर दारुण । कामवेताळें झडपिलें पूर्ण । तृष्णा मायराणी अनुदिन । सर्वदाही न सोडी । ४६ जाहलों मी अत्यंत क्षीण । पंचाक्षरी तूं ब्रह्मनंदन । सकळ भूतें टाकीं झाडून । म्हणोनि चरण धरियेले ।" ४७ अष्टभावें जाहला सद्गदित । मग मनीं विचारी ब्रह्मसुत । रोग पाहूनि वैद्य निश्चित । दिव्य मात्रा काढी जेवीं । ४८ म्हणे हा अनधिकारी परम । 'मरा' ऐसें सांगे नाम । म्हणे हेंचि तूं जपें सप्रेम । मुख्य वर्म जाण पां । ४९ तें जीवन नाम जपत । तेथेंचि बैसला ध्यानस्थ । अंगावरी वारूळ वाढत । ध्वनि उमटत आंतोनि । ५० टोणपियाचा वृक्ष जाहला । तों नारद बहुकाळें पातला । त्या

संगति में फँस गया हूँ । पंचमहाभूत मुझे लिपटे हुए हैं । वासना रूपी डाइन मेरे गले लगी है—वह कभी भी (बिलकुल) मुझे नहीं छोड़ रही है । ४४ मेरी अहंता डाकिनी है; ममता भयानक बला है; लोभ भयंकर पिशाच है—ये सभी मुझे विवेक करने नहीं दे रहे हैं । ४५ मेरे लिए क्रोध डरावना महिषासुर है; काम रूपी वेताल ने मुझे पूर्णतः जकड़ लिया है । यह तृष्णा रूपी मायारानी मुझे बिलकुल नहीं छोड़ देती । ४६ मैं अत्यन्त दुर्बल हो गया हूँ । हे ब्रह्मकुमार नारद जी, तुम (मेरे लिए अब) मंत्रेला हो । तुम इन सब पिशाचों को झाड़-फूँककर दूर करो—मैंने इसी हेतु से तुम्हारे चरणों का आश्रय लिया है" ४७ (रोमांच, स्तम्भ स्वेद) आदि आठों भावों से युक्त हो, वह गद्‌गद् हो उठा । यह देखकर, जैसे वैद्य रोग को देखकर दिव्य मात्रा निकाल लेता है, वैसे ही नारद जी (उसके रोग को देखकर औषधि की योजना के विषय में) सोचने लगे । ४८ (मन-ही-मन) उन्होंने कहा—'यह तो परम अनधिकारी है' । उन्होंने उसे 'मरा' नाम बताकर कहा—"तुम इसी का जप प्रेम पूर्वक करो; इसके मुख्य वर्णों को ठीक से समझ लो ।" ४९ तदनन्तर वह वाल्हा अपने जीवन भर उसी नाम का जप करते हुए वहीं ध्यानस्थ हो बैठा रहा । उसके शरीर में दीमक लगकर वढ़ने लगी । फिर भी अन्दर से (नाम के जप की) ध्वनि बाहर सुनायी दे रही थी । ५० (वहाँ पर लगा हुआ)

तरुवराखालीं उभा राहिला। श्रवणीं ऐकिला नामघोष। ५१ वारुळाचे छिद्रांमधूनी। रामनामाचा मधुरध्वनी। चातुर्यसमुद्र नारदमुनी। जाणिलें मनीं वृत्त सर्व। ५२ मग उकरोनियां वारुळ। बाहेर काढिला तो पुण्यशीळ। वर्मकळा रगडून तत्काळ। सावध केला तेधवां। ५३ जैसा भूमीवरी अर्क उतरला। तैसा श्रीगुरु नारद देखिला। धांवोनि चरणकमळा लागला। पापाचा जाहला संहार। ५४ नाम जपतां श्रीरामाचें। दोष गेले अनंत जन्मांचे। जैसे पर्वत तृणाचे। अग्निसंगें भस्म होती। ५५ पापें छळावया समस्त। नामामाजी प्रताप बहुत। नामाचेनि न जळे निश्चित। ऐसें पाप नसेचि। ५६ वाल्मीकें केलीं जीं पापें। तीं भस्म जाहलीं नामप्रतापें। नामापुढें अनेक तपें। तुच्छ ऐसें जाणिजे। ५७ जैसा पर्वत होतां संदीप्त। मृगद्विजगण न

छोटा-सा पौधा बढ़ते-बढ़ते वृक्ष हो गया। तब बहुत वर्षों के बाद एक दिन, नारद जी वहाँ पधारे। जब वे उसी वृक्ष के नीचे खड़े रहे, तो उन्हें नाम का घोष सुनायी दिया। ५१ दीमक के छिद्रों में से (निकलने वाली) रामनाम वाली मधुर ध्वनि सुनकर चातुर्य के समुद्र नारद जी मन-ही-मन सब बातें समझ गये। ५२ फिर उन्होंने उस वल्मीक को कुरेद कर (खोदकर) उस पुण्यशील व्यक्ति को बाहर निकाल लिया। और तत्क्षण उसके मर्म-स्थान में मलते (रगड़ते) हुए उन्होंने उसे फिर से सचेत कर लिया। ५३ तदनन्तर पृथ्वी पर सूर्य की भाँति उतरे हुए श्रीगुरुदेव नारद जी को वाल्हा ने देखा, तो दौड़कर उनके पास जाकर उसने उनके पाँव पकड़े। तत्क्षण उसके पापों का विनाश हो गया। ५४ जिस प्रकार आग की संगति में घास के पहाड़ के पहाड़ जलकर भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार राम-नाम का जप करते-करते उसके असंख्य जन्मों के पाप दोष जलकर नष्ट हो गये। ५५ (राम के) नाम में सभी पापों को जलाने के लिए प्रताप रूपी बड़ी आग है। ऐसा कोई भी पाप नहीं है, जो नाम से नष्ट नहीं हो सकता। ५६

वाल्मीकि ने जो जो पाप किये थे, वे सब नाम के प्रभाव से (जलकर) भस्म हो गये। मान लीजिए, नाम के सामने अनेक प्रकार के तप तुच्छ ही हैं। ५७ जैसे पर्वत के जल उठने पर मृगों तथा पक्षियों

राहती तेथ। तैसीं नामाग्नीपुढें समस्त। पापारण्यें भस्म होती। ५८ जैसीं स्वप्नीं घडलीं दुष्कृतें बहुत। जागृतीं अवघीं मिथ्याभूत। तैसे रामनामें समस्त। पापसमूह भस्म होती। ५९ तोंवरी तमाची दाटणी। जों नुगवे वासरमणी। तोंवरीच मद कीजे वारणीं। जोंवरी सिंह नाहीं देखिला। ६० सिंधु गर्जे तोंवरीच पाहीं। जों कलशोद्भव देखिला नाहीं। तोंवरी भूतांची परम घाई। जों मंत्रवादी न देखिला। ६१ तोंवरीच पापांचा संभार। जों नामीं न धरी आदर। नामप्रताप अद्भुत थोर। तरला साचार वाल्मीक। ६२ असो वाल्मीक म्हणे गुरुनाथा। "जरी कृपा कराल सर्वथा। तरी रामचरित्रकथा। सविस्तर करीन मी।" ६३ ऐसें ऐकतां नारदमुनी। परम संतोषला अंतःकरणीं वरद हस्त ठेवोनियां मूर्ध्नीं। वदला तें श्रवणीं आकर्णिजे। ६४ "साठी सहस्र वरुषांवरी। विष्णु अवतरेल दशरथउदरीं। तयाचें

के समूह वहाँ पर नहीं रह सकते, वैसे ही नाम रूपी अग्नि के समक्ष पाप रूपी सभी अरण्य जल कर भस्म हो जाते हैं। ५८ जैसे स्वप्न में घटित पाप, जाग उठने पर झूठे ही सिद्ध हो जाते हैं, वैसे राम नाम से सभी पाप समूह नष्ट हो जाते हैं। ५९ जब तक सूर्य का उदय नहीं होता, तब तक घना अंधेरा रहता है। जब तक सिंह को नहीं देखता तभी तक हाथी मदोन्मत बना रहता है। समुद्र तब तक ही गर्जन करता है जब तक उसे अगस्त्य मुनि नहीं दिखायी देते। भूत-पिशाचों की भीड़ तभी तक मची रहती है, जब तक वे मंत्रेले को नहीं देखते। उसी प्रकार जब तक कोई (राम) नाम का आदर (-पूर्वक जप) नहीं करता, तब तक ही पापों का जमघट बना रहता है। नाम का प्रताप बहुत ही बड़ा है (इसलिए) वाल्मीकि सचमुच (भवसागर को) तैर गये। ६०-६२

अस्तु। वाल्मीकि ने नारदजी से कहा—"गुरुदेव, यदि आप सब प्रकार से मुझ पर कृपा करें, तो मैं रामचरित का विस्तार पूर्वक वर्णन करूँगा।" ६३ यह सुनकर नारदजी को मन में परम सन्तोष उत्पन्न हो गया। उन्होंने उसके मस्तक पर वरद-हस्त रखकर जो कहा, वह सुनिए। ६४

"साठ सहस्र वर्षों के पश्चात् भगवान् विष्णु राजा दशरथ के घर

तूं भविष्य करीं। शतकोटी सविस्तर। ६५ जन्म कर्म लीला सर्व। जे जे तूं वदसील भाव। तैसाच वर्तेल राघव। अवतार ठेव अभिनव पैं। ६६ शतकोटी ग्रंथ वाल्मीकें निर्मिला। सुरस रस दिव्य ओतिला। तिहीं लोकांसी कलह लागला। व्यवहार गेला शिवापाशीं। ६७ परम चतुर कैलासनाथ। तीन ठायीं समान वांटिला ग्रंथ। शेवटीं दोन अक्षरें उरलीं यथार्थ। कंठीं धरिलीं उमावरें। ६८ शीतळ उपचार पूर्वी केले। परी ते नाहीं सफळ जाहले। चंद्रबिंब शिरीं धरिलें। जटेंत आकळिलें गंगेसी। ६९ हिमनगकन्या शीतळ सुंदर। अर्धांगीं धरी कर्पूरगौर। ठायीं ठायीं वेष्टिले फणिवर। शीतळ थोर म्हणोनियां। ७० गजचर्म अत्यंत शीतळ। तेंही पांघरे जाश्वनीळ। परी न राहे हाळाहळ।

(पुत्र रूप में) अवतरित हो जायँगे। शत कोटि (ग्रन्थों की—श्लोकों की) रचना कर, तुम उनके भविष्य का विस्तार पूर्वक वर्णन करो। ६५ उनके जन्म, कर्म, लीला के विषय में तुम अब जो जो कहोगे, उसी के अनुसार भगवान् राम व्यवहार करेंगे—तुम्हारी उक्ति मानो कोई अभिनव धरोहर ही मानी जाएगी। ६६" वाल्मीकि ने, तदनन्तर, शतकोटि (श्लोकों से युक्त) ग्रन्थ की रचना की। उसमें उन्होंने सुरस एवं दिव्य रसों को उँडेल दिया। तब तीनों लोकों में (इस ग्रन्थ को लेकर) कलह उत्पन्न हो गया उसके निर्णय के लिए यह मामला भगवान् शिव के समक्ष उपस्थित किया गया। ६७ भगवान् कैलासनाथ तो परम चतुर हैं। उन्होंने तीनों लोकों में उस ग्रन्थ का समान बँटवारा किया—अन्त में उसके सही अर्थ को प्रकट करने वाले जो दो अक्षर (= राम) शेष रहे, उन्हें उमापति शिवजी ने अपने कण्ठ में धारण किया। ६८ (उन्होंने जो हलाहल पी लिया था, उसकी आग का शमन अभी तक नहीं हुआ था।) उस आग (की जलन) को शान्त करने के लिए शिवजी ने अनेकानेक शीतोपचार किये थे, लेकिन वे सफल नहीं हुए थे। उन्होंने अपने मस्तक पर चन्द्र-बिम्ब को धारण किया था, गंगा को आकृष्ट कर जटाओं में धर रक्खा था। शीतल हिमालय की कर्पूर के समान गौर कान्ति से युक्त और सुन्दर कन्या (उमा) को उन्होंने अपने अर्धांग में बैठाया। अंग-प्रत्यंग में बड़े बड़े सर्पों को लिपटा रक्खा—क्योंकि वे बड़े शीतल माने जाते हैं। अत्यधिक शीतल समझे जाने वाले गजचर्म को भी शिवजी ने ओढ़ लिया।

जाळी प्रबळ अधिकचि । १७१ मग हा ग्रंथ निवडितां थोर । दोन अक्षरें निवडिलीं साचार । तीं कंठीं धरितांचि उमावर । शीतळ शरीर जाहलें । १७२ हृदयीं आठविला रघूत्तम । मुखीं स्मरतां रामनाम । मध्यें हाळाहळ परम । भयभीत जाहलें । ७३ मुखीं नाम हृदयीं राम । दाहकत्व सांडूनि जाहलें शम । भूषणरूप होऊनि परम । शिवकंठीं मिरवलें । ७४ नामें तरला वाल्मीक । नामें तरले ब्रह्मादिक । शीतळ जाहला कैलास-नायक । महिमा अद्भुत न वर्णवे । ७५ किती गोड म्हणावा सुधारस । किती वाढ म्हणावें आकाश । तेजस्वी परम चंडांश । किती म्हणोनि वर्णावा । ७६ पृथ्वीस उपमा काय द्यावी । पालाळ-खोली किती सांगावी । कनकाद्रीची उंची किती वर्णावी । तैसी नामाची पदवी अपार । ७७ किती वर्णावा विष्णूचा प्रताप । काय सांगावें शंकराचें तप । तैसा रामनाम-महिमा अनूप । न वर्णवेचि

फिर भी वह हलाहल (उससे निर्मित जलन) नहीं बुझ पाया—बल्कि वह उन्हें अधिकाधिक जलाता ही रहा । १६९-१७१ लेकिन (वाल्मीकि के) इस महान ग्रन्थ को लेकर उसमें से सिर्फ दो अक्षरों का चयन कर, ज्यों ही शिवजी ने उन्हें अपने कण्ठ में धारण किया, त्यों ही उनका शरीर शीतलता अनुभव करने लगा । १७२ उन्होंने (उधर) हृदय में राम का स्मरण किया और (इधर) मुख से राम नाम का (स्मरण) जप किया—तो दोनों के बीच (कण्ठ में स्थित) हलाहल अतीव भयभीत हो गया ।७३ इधर (शिवजी के) मुख में (राम) नाम है और उधर हृदय में (साक्षात्) राम हैं । (यह देखकर) अपनी दाहकता का त्याग कर वह शान्त (शीतल) हो गया और शिवजी के कण्ठ में परम भूषण के रूप में शोभायमान हो गया । ७४ नाम (के आधार) से वाल्मीकि का उद्धार हो गया । नाम से ही ब्रह्मादिक (भवसागर को) पार कर गये हैं । नाम से कैलासनाथ शिवजी शीतलता को प्राप्त हो गये (अनुभव किया) । उस नाम की अद्भुत महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता । ७५ अमृत को कितना मधुर कहें ? आकाश को कितना विशाल बताएँ ? प्रखर किरणों वाले सूर्य को कितना तेजस्वी कहा जाए ? ७६ पृथ्वी की किससे उपमा दी जाए ? पाताल की गहराई कितनी कही जाए ? सुवर्ण मेरु की ऊँचाई का कैसे वर्णन किया जाए ? उसी प्रकार नाम की श्रेष्ठता भी अपार है (वह सचमुच अकथनीय है ।) ७७ भगवान् विष्णु के प्रताप का वर्णन कैसे करें ? शिवजी के तप की महिमा कैसे बताएँ ? – ये बातें जैसे

सर्वथा । ७८ प्राकृत-भाषा म्हणोनि । अव्हेर न करावा पंडित-जनीं । जैसीं कृष्णावेणीचीं तीरें दोन्ही । परी उदक एकचि जाणिजे । ७९ असो वाल्मीकें रचिला ग्रंथ । भारद्वाजाचे मुखें समस्त । असंख्य ऋषी श्रवण करीत । ब्रह्मानंदेंकरूनियां । ८० हेचि कथा कैलासीं । शिव सांगे हैमवतीसी । पाताळीं काद्रवेय-कुळासी । भोगींद्र सांगे हेचि कथा । ८१ घटोद्भवाचे मुखें दिवसरजनी । ऋषी श्रवण करिती कर्दळीवनीं । किंपुरुषखंडीं स्वमुखेंकरूनी । वानरांसी सांगे हनुमंत । ८२ नारदाप्रती सरसिजोद्भव । सांगे रामकथा अभिनव । बदरिकाश्रमीं ऋषी सर्व । व्यासमुखें ऐकती । ८३ तेचि प्राकृत भाषेंत निवाडे । श्रीधर वर्णी संतांपुढें । जैसे बाळचाळे शब्द वेडेवांकुडे । परी आवडती जननीसी । ८४ तैसें प्राकृत आणि संस्कृत । दोन्हीमाजी

अनुपमेय—अद्वितीय हैं, वैसे नाम-महिमा अनुपमेय है । —उसका वर्णन कभी भी नहीं किया जा सकता । ७८

(मैं जिस भाषा में रामचरित्र का वर्णन करने जा रहा हूँ,) यह मेरी भाषा प्राकृत (अर्थात् जनसाधारण की भाषा) है, केवल इसीलिए पण्डित जनों द्वारा उसका अनादर नहीं किया जाए । जैसे कृष्णा-वेण्णा नदी के तीर दो होने पर भी उनके बीच में से बहनेवाला पानी एक ही है, वैसे ही संस्कृत और प्राकृत—जनभाषा के दो तीरों के बीच में से बहनेवाली रामकथा रूपी सरिता का भाव रूपी जल एक ही है । ७९ अस्तु । वाल्मीकि ने (रामायण नामक एक) ग्रन्थ की रचना की । उसमें प्रस्तुत रामचरित्र का श्रवण, भरद्वाज ऋषि के मुख से समस्त ऋषि ब्रह्मानन्द को अनुभव करते हुए, करते हैं । ८० शिवजी यही कथा कैलास पर्वत पर पार्वती को सुनाते हैं । पाताल में शेषजी सर्पों को इसी कथा का श्रवण कराते हैं । ८१ कर्दली बन में दिन-रात ऋषिवर यही कथा अगस्त्य ऋषि के मुख से सुनते हैं । किम्पुरुष खण्ड में हनुमानजी अपने मुख से यही कथा वानरों को सुनाते हैं । ८२ ब्रह्माजी ने यही अभिनव रामकथा नारदजी को श्रवण करायी । बदरिकाश्रम में सभी ऋषि श्री व्यास के मुख से इसे सुनते हैं । ८३ (यह) श्रीधर निश्चय पूर्वक उसी कथा का वर्णन सन्तों की उपस्थिति में प्राकृत (जनभाषा) में करने जा रहा है । बालकों की क्रीड़ा बेढंगी होती है, फिर भी माता को वह प्यारी ही लगती है । (उसी प्रकार मुझे विश्वास है, मेरी यह बात माता का-सा वात्सल्य भाव रखनेवाले आप सन्तों को प्रिय लगेगी ।) ८४ जैसे दो स्त्रियों

एकचि अर्थ। जैसा दोहीं स्त्रियांचा एक नाथ। दोन्ही हस्त एकाचेचि। ८५ दोन्ही दाढा एकचि स्वर। पाहाणार एक दोन नेत्र। किंवा दोन पात्रांत पवित्र। एकचि दुग्ध घातलें। ८६ जैसें त्रिवेणीचें भरलें उदक। दोन पात्रीं गोडी एक। एक सुवर्ण-कूपिका अलौकिक। एक ताम्रधातूची घडियेली। ८७ दोन्ही कूपिका नेऊनि देख। रामेश्वरासी केला अभिषेक। दोन्ही धातु परी उदक एक। देवासी समचि आवडती। ८८ अबळां न कळे संस्कृतवाणी। जैसें आडांतील निर्मळ पाणी। परी दोरपात्रा-वांचोनी। अशक्त जनां केवीं निघे। ८९ तों तडागासी येतां त्वरें। तत्काळचि तृषा हरे। आबालजन तारावया ईश्वरें। प्राकृत ग्रंथ निर्मिले। ९० मुख्य संस्कृत पाहावें। परी तें अबळां नेणवे। महागज कैसा बांधवे। कमळतंतू घेऊनियां। ९१

के एक ही पति हो, जैसे दोनों हाथ एक ही व्यक्ति के होते हैं, उसी प्रकार संस्कृत और प्राकृत दो भाषाओं के भिन्न होने पर भी उनके अन्दर भाव एक ही है। ८५ दाढ़ों के दो होने पर भी (मुँह से निकलनेवाला) स्वर एक ही होता है। नेत्र दो होते हैं, फिर भी देखनेवाला एक ही होता है। अथवा एक ही पवित्र दूध दो पात्रों में रखा जाए, तो दूध दो नहीं होते।८६ गंगा का उदक दो भिन्न भिन्न पात्रों में रखा जाए, तो भी उनकी मधुरता एक ही होती है। सोने की अद्‌भुत शीशी और ताँबे की शीशी में पानी भरकर उन दोनों को ले जाकर उनसे रामेश्वर का अभिषेक किया जाए, तो भगवान् को वे दोनों शीशियाँ एक-सी ही पसन्द आएँगी; क्योंकि धातुओं के दो होने पर भी, उनसे बनी शीशियों में भरा जल एक ही है। वैसे ही भाषाओं के भिन्न होने पर भी उनमें वर्णित कथा-भाव एक ही है, इस लिए सन्तों को वह पसन्द आती है। ८७-८८ साधारण जनों की समझ में संस्कृत वाणी नहीं आती। कुएँ में निर्मल पानी है, परन्तु वहाँ तक दुर्बलों की पहुँच नहीं होती। रस्सी और पात्र के अभाव में दुर्बल लोग उसे कैसे निकाल सकेंगे? लेकिन वे दुर्बल लोग तेजी से ज्यों ही तालाब के पास आते हैं, त्यों ही उनकी प्यास बुझ सकती है। (वैसे ही संस्कृत भाषा सामान्य जनों की पहुँच के बाहर है, लेकिन जब वे प्राकृत भाषा में वर्णित वही कथा पाते हैं, तब राम कथा के श्रवण-पठन की प्यास बहुत आसानी से बुझती है।) इसलिए अज्ञानी जनों से लेकर सबका उद्धार करने के हेतु भगवान् ने प्राकृत ग्रन्थों का निर्माण किया है। ८९-९० संस्कृत के प्रमुख ग्रन्थ अवश्य देखें, परन्तु वे साधारण लोगों द्वारा समझे नहीं जा सकते। कमल तन्तु लेकर बड़े हाथी को कैसे बाँधा जा सकता है? ९१

सर्वांस मान्य गीर्वाण । जरी असेल पूर्वपुण्य । तरीच तेथींचें होय ज्ञान । आबालजन केवीं तरती । ९२ उत्तम वस्त्रें लेत नृपती । तीं दुर्बळांसी प्राप्त न होती । मग ते घोंगडीच पांघरती । शीत-उष्ण-निवारणा । ९३ जैसें दधि मथितां बहुत । त्यांतून निघे नवनीत । कीं स्वाती-जळापासोन अद्भुत । मुक्ताफळें निपजती । ९४ कीं इक्षुदंडाचे पोटीं शर्करा । रसनेस गोडी तेचि विचारा । कीं राजापासोनि राजपुत्रा । मान्यता होय बहुतचि । ९५ महाराष्ट्रवचनें निश्चित । परी अत्यंत रसभरित । मधुमक्षिकांचे मुखीं स्रवत । मधु सुरस जैसे कां । ९६ गीर्वाण हें शशिमंडळ अद्भुत । त्याची प्रभा ते हें प्राकृत । संस्कृत ग्रंथ वर्णिती पंडित । अर्थ प्राकृत करिती कीं । ९७ अर्कवृक्षीं मधुघट । जरी भरतील यथेष्ट । तरी गिरिकंदरीं करावया कष्ट । काय कारण धावावें । ९८ सिकतेमाजीं दिव्य रत्न । जरी सांपडे न करितां प्रयत्न । तरी चतुरीं करावें जतन । किंवा

गीर्वाण (संस्कृत) भाषा सबके द्वारा समादृत होती है। परन्तु यदि पूर्व पुण्य का बल साथ में हो, तो ही उसमें प्रस्तुत ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है। उसे प्राप्त कर बच्चों से लेकर अन्य सामान्य जन तक कैसे उद्धार कर सकेंगे ? ९२ राजा उत्तम वस्त्र लेता है, वैसे वस्त्र सामान्य लोगों को नहीं मिलते; फिर भी ठण्ड, गर्मी के निवारण के लिए वे कम्बल ओढ़ते हैं। ९३ जैसे दही को बहुत मथ लेने पर उसमें से नवनीत (मक्खन) निकलता है, जैसे स्वाति नक्षत्र के जल से अद्‌भुत मोतियों का निर्माण होता है, जैसे ईख के अन्दर शक्कर होती है और इसी विचार से जिह्वा को मधुरता का अनुभव होने लगता है, अथवा जैसे राजा के कारण ही राजपुत्र बड़ी मान्यता को प्राप्त होता है, वैसे ही मराठी भाषा में भी अद्‌भुत रस की निर्मिति हो सकती है और वह आदरणीय हो सकती है। ९४-९५ मधुमक्खियों के मुख से मधुर मधुरस का ही स्रवण होता है, वैसे ही (कवि के मुख से निकलनेवाले) ये महाराष्ट्र भाषा के वचन (मराठी शब्द) हैं, फिर भी वे निश्चय ही अत्यन्त रसात्मक हैं। ९६ गीर्वाण भाषा चन्द्र-मण्डल के समान अद्भुत है; उसकी प्रभा (चाँदनी) है ये प्राकृत ग्रन्थ। पण्डित लोग संस्कृत को पढ़ेंगे, परन्तु उसकी व्याख्या करेंगे प्राकृत में ही (ताकि जनसाधारण उसे समझ सकें।) ९७ यदि आक के पौधों में मधुघट भरे-पूरे हो जाएँगे, तो मधु पाने के लिए कोई पर्वत-कन्दराओं में दौड़-धूप किस लिए करेगा ? ९८ यदि बालू में दिव्य रत्न

अव्हेर करावा । १९९ कष्टेंविण राज्य आलें हातां । तरी काय ओसंडावें तत्त्वतां । प्राकृतभाषीं ऐकोनि कथा । लाभ श्रोतां घेइजे तेवीं । २०० मुक्ताफळांची उत्तम माळा । वरी सुगंध सुटला आगळा । तरी चतुरीं कां न घालावी गळां । अति आवडीकरोनियां । २०१ आधींच इक्षुदंड गोड । वरी आले साखरेचे घड । तैसी रघुनाथकथा सुरवाड । त्यावरी साहित्य पुरविलें । २०२ आतां श्रोतीं सावधान । वाल्मीकमहाराज गेले कथून । तेचि रामकथा संपूर्ण । मुळापासून ऐकिजे । २०३ दृष्टीं न पाहतां अवघा ग्रंथ । उगाच दोष ठेविती अकस्मात । ते शतमूर्ख जाणिजे निश्चित । नव्हती पंडित विवेकी । २०४ ग्रंथ नाम रामविजय । श्रवणें सदा पाविजे जय । चिंतित मनोरथ सिद्ध होय । एक आवर्तन करितांचि । २०५ आदिपुरुष श्रीअवधूत । तोचि हा ब्रह्मानंद यथार्थ । श्रीधरवरदे अद्भुत । महिमा कोणा न वर्णवे । २०६ इति श्रीरामविजयग्रंथ सुंदर ।

बिना किसी यत्न के प्राप्त हो जाएँ, तो चतुर लोक इसका विचार करें कि उसकी यत्नपूर्वक रक्षा की जाए अथवा उपेक्षा की जाए । १९९ यदि बिना कष्ट किये राज्य हाथ आए, तो क्या केवल सिद्धान्त के विचार से उसे अस्वीकार किया जाए ? वैसे ही (मुझे विश्वास है कि बिना किसी प्रयास के) यदि प्राकृत भाषा में रामकथा का श्रवण करने को मिल जाए तो श्रोता उससे अवश्य लाभ उठाएँगे । २०० मोतियों की उत्तम माला हो, और उसमें से अद्भुत सुगन्ध निकलती हो, तो चतुर जन उसे प्रेमपूर्वक गले में क्यों न पहनें ? २०१ ईख मूलतः मीठा होता है; फिर उसमें शक्कर के घौद लग जाएँ। यह कैसी अद्भुत बात होगी । उसी प्रकार रामकथा मूलतः सुखदायी है,तिस पर उसका साहित्य प्राकृत भाषा में प्रस्तुत किया जा रहा है—इससे श्रोताओं का आनन्द द्विगुणित ही हो जाएगा । २०२ अब श्रोतृजन सावधान होवें और वाल्मीकि महाराज द्वारा कथित सम्पूर्ण राम कथा का आरम्भ से श्रवण करें ।२०३ जो लोग सम्पूर्ण ग्रन्थ को नहीं देखते और उसे यकायक दोष देने लगते हैं, उन्हें निश्चय-पूर्वक शतमूर्ख ही समझें—वे विवेकवान् पण्डित नहीं हैं । २०४

(मेरे इस) ग्रन्थ का नाम 'रामविजय' है । इसका श्रवण करने से सदा सफलता ही प्राप्त होगी और इसका एक बार आवर्तन करने से अभीष्ट मनोरथ सिद्ध हो जाएँगे ।२०५ जो आदि पुरुष श्रीअवधूत हैं, वे ही यथार्थ में मेरे गुरु ब्रह्मानन्द स्वामी हैं । इस श्रीधर के लिए वे अद्भुत

संमत वाल्मीकिनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। प्रथमाध्याय गोड हा ॥ २०७ ॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

वरदाता हैं। उनकी महिमा का वर्णन कोई भी नहीं कर पाएगा। २०६

श्री वाल्मीकि-नाटक पर आधारित एवं उससे सम्मत यह 'रामविजय' नामक ग्रन्थ सुन्दर है। भक्त चतुर श्रोता उसके इस मधुर प्रथम अध्याय का सदा श्रवण करें। २०७ ॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२

श्रीगणेशाय नमः। जैसे मानस-सरोवर-वेष्टित। मराळ दिसती शोभिवंत। तैसे श्रवणासी बैसले संत। लोचन अनंत जयांसी। १ श्रवणीं ऐकतां संतसज्जन। वाचेसी पारणें होय पूर्ण। जैसा राकाइंदु विलोकून। सरितानाथ उचंबळे। २ कीं वर्षाकाळीं गंगेसी पूर। कीं घन गर्जतां नाचती मयूर। कीं वसंत देखोनि सुंदर। कोकिळा गर्जे आनंदें। ३ कीं रवि देखतां कमलें विकासती। कीं दाता देखोनि याचक हर्षती। तैशा

मानसरोवर को घेरकर बैठे हुए राजहंस जैसे शोभायमान दिखायी देते हैं, वैसे ही मेरे इस ग्रन्थ के श्रवण के लिए विराजमान सन्त पुरुष सुशोभित प्रतीत हो रहे हैं। इन सन्तों के अनन्त नेत्र हैं। १ सन्त सज्जन जब श्रवण करते हैं, तो (कथन-कर्ता की) वाणी को पूरा सन्तोष अनुभव होता है और जैसे पौर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर सागर मानो उमड़ने लगता है (उसमें ज्वार आता है), उसी प्रकार सन्त श्रोताओं के दर्शन से कवि के हृदय-सागर में आनन्द का ज्वार आ जाता है। २ अथवा वर्षा ऋतु में गंगा में बाढ़ आती है, (वैसे ही सन्त श्रोताओं की उपस्थिति में वाणी रूपी गंगा की स्थिति हो जाती है।) अथवा मेघों के गरजने लगते ही मोर नाचने लगते हैं, (वैसे ही सन्तों के सम्मुख कवि का मानस-मयूर नाच उठता है।) अथवा वसन्त के सुन्दर रूप को देखते ही कोकिल आनन्द से कूकने लगता है; (वैसे ही सन्तों को देखकर मेरा मन रूपी कोकिल आनन्दपूर्वक मधुर स्वर में गाने लगता है।) ३ अथवा सूर्य को देखकर कमल विकसित हो जाते हैं; (उसी प्रकार कवि का हृदय-कमल सन्त-श्रोताओं के दर्शन से प्रफुल्लित हो जाता है।) अथवा जैसे दानी पुरुष को देखते ही याचक आनन्दित हो जाते हैं, वैसे ही (कृपा के दाता) सन्तों के

देखोनि संतमूर्ती । वाग्देवीस आनंद । ४ जैसी इंद्रापुढें रंभा । दावी नृत्यकौतुकशोभा । तैसी देखतां संतसभा । वाग्वल्ली आनंदे । ५ कैसे द्यावे दृष्टांत । हें मी नेणें निश्चित । परी माझे अन्याय समस्त । संतीं पोटांत घालावे । ६ शिवकंठीं हाळाहळ । कीं सागरापोटीं वडवानळ । कीं सृष्टीचा भार सकळ । पाताळीं कूर्में धरियेला । ७ सकळां प्रकाशक जैसा शशी । परी द्वितीयेसी लोक वाहती दशी । कीं हिमनग-जामातासी । धत्तूरपुष्पें समर्पिती । ८ तैसेचि हे शब्द निश्चित । सज्जनीं हृदयीं धरिले सत्य । असो प्रथम अध्यायीं गतकथार्थ । उद्धरिला वाल्मीक नारदें । ९ रामकथेचा आरंभ येथूनी । जेवीं मूळसंकीर्ण कृष्णावेणी । परी पुढें विशाळ समुद्रगामिनी । जाणिजे सज्जनीं कथा तैसी । १० कमलोद्भवा-

दर्शन से वाणी की देवी सरस्वती हर्षविभोर हो जाती है । ४ जिस प्रकार इन्द्र के सामने रम्भा नृत्य के कौशल और शोभा का प्रदर्शन करती है, उसी प्रकार सन्तों की सभा को देखकर कवि की वाणी प्रसन्नता-पूर्वक अपने कौशल को प्रदर्शित करती है । ५ सचमुच मैं यह नहीं जानता कि दृष्टान्त किस प्रकार दिये जाते हैं; (फिर भी मैं इसमें साहस कर रहा हूँ ।) प्रार्थना है, आप सन्त जन मेरे समस्त अपराधों को क्षमा करें । ६ शिवजी ने अपने कण्ठ में हलाहल को आश्रय दिया है, (आप भी मेरे दोष रूपी हलाहल को आश्रय दें) । सागर के अन्दर वड़वाग्नि होती है; (आप भी अपने हृदय-सागर में मेरे दोष रूपी अग्नि को स्थान दें); अथवा पाताल में रहते हुए कूर्म (कछुए) ने (जैसे) सृष्टि के समस्त भार को (अपनी पीठ पर) उठा रक्खा है; (वैसे ही आप मेरे समस्त दोष-भार को उठाएँ ।) ७ चन्द्रमा सबके लिए प्रकाश (उत्पन्न) करता है, फिर भी बीज (दूज) के दिन लोग उसे पुराना धागा ही समर्पित करते हैं; हिमालय के जामाता शिवजी को धतूरे के फूल चढ़ाते हैं (और वे उन्हें भी स्वीकार करते हैं)। उसी प्रकार मेरे ये अटपटे बोल सज्जनों ने निश्चय ही अपने हृदय में स्वीकार किये हैं । अस्तु । कथा के प्रथम अध्याय में यह कहा जा चुका है कि नारदजी ने वाल्मीकि का (कैसे) उद्धार किया । ८-९ कृष्णा-वेण्णा नदी आरम्भ में (उद्गम के पास) बिलकुल छोटी होने पर भी आगे चलते-चलते विशाल बनकर समुद्र में मिल जाती है; उसी प्रकार रामकथा का प्रारम्भ यहीं से बिलकुल छोटे रूप में हो रहा है । सन्त जन यह जान लें कि कृष्णा-वेण्णा नदी की भाँति वह भी विकसित होती जाएगी । १०

पासून निश्चितीं। पुत्र जाहला त्या नाम पुलस्ती। महातपस्वी जैसा गभस्ती। चारी वेद ज्यासी मुखोद्‌गत। ११ तृणबिंदुकन्या देववर्णी। ते पुलस्तीची जाण गृहिणी। विश्रवा नामें तिजपासोनी। पुत्र जाहला विख्यात। १२ भारद्वाज-कन्या महासती। ती दिधली विश्रव्याप्रती। त्यांचे पोटीं निश्चितीं। कुबेर पुत्र जन्मला। १३ विश्रव्यापासोनि जन्म पूर्ण। म्हणोनि नाम वैश्रवण। तेणें तप करोनि दारुण। चतुरानन वश केला। १४ कमलासन संतुष्टोन। पौत्रपुत्र म्हणोन। लंका पुष्पक देऊन। सागरोदरीं स्थापिला। १५ पूर्वी विधीनें लंका निर्मिली। ती दानवें बळेंचि घेतली। मागुती निर्जरीं सोडविली। मग दिधली कुबेरातें। १६ तों पाताळींचा दैत्य सुमाळी। विप्रवेषें आला भूमंडळीं। लंका देखोन तये वेळीं। मनामाजी आवेशला। १७ म्हणे हे लंका आमुची निश्चित। हा कोण येथें राज्य करित। समाचार घेतां जाहलें श्रुत। सर्व वृत्त तयाचें। १८ कुबेर

यह सत्य है कि ब्रह्माजी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम पुलस्ति था। वह महातपस्वी एवं सूर्य के समान तेजस्वी था। चारों वेद उसे कण्ठस्थ हो गये थे। ११ यह जान लो कि तृणबिन्दु की देववर्णिनी नामक कन्या उसकी स्त्री थी; उससे पुलस्ति के विश्रवा नामक विख्यात पुत्र उत्पन्न हुआ। १२ ऋषि भारद्वाज की महासाध्वी कन्या विश्रवा को (विवाह में) प्रदान की हुई थी। उन दोनों के कुबेर नामक एक पुत्र का जन्म हुआ। १३ विश्रवा से उत्पन्न होने के कारण उसे (कुबेर को) वैश्रवण नाम (भी) प्राप्त हो गया। उसने महाकठिन तप करके चतुर्मुख ब्रह्माजी को प्रसन्न कर लिया। १४ उसके प्रति सन्तुष्ट हो और उसे अपने पौत्र का पुत्र (परपोता) जान कर ब्रह्माजी ने उसे लंका नगरी तथा पुष्पक विमान प्रदान किया और सागर के मध्य लंका में उसे प्रतिष्ठित कर दिया। १५ प्राचीन काल में विधाता (ब्रह्माजी) ने लंका का निर्माण किया था। बाद में उसे दानवों ने वलपूर्वक हथिया लिया था; परन्तु (कुछ समय बाद) देवताओं ने उसे (दानवों के हाथ से) मुक्त किया था और फिर वही लंका कुबेर को दी। १६ तदनन्तर पाताल में रहने वाला सुमालि नामक दैत्य ब्राह्मण के रूप में भू-मण्डल (पृथ्वी) पर आ गया। वह तब लंका को देखकर मन में प्रक्षुब्ध हो गया। १७ उसने सोचा, यह लंका निश्चय ही हमारी है; यहाँ कौन राज्य कर रहा है? पूछताछ करने पर (लंका के विषय में) सारा समाचार उसे विदित हो गया। १८ तब उस सुन्दर पुरुष कुबेर को

देखोन सुंदर । दैत्य करी मग विचार । याचे पित्यासी साचार । कन्या देऊं आपुली । १९ तिजपासोन जे होती सुत । तयां साह्य होऊं सर्व दैत्य । हें लंकाराज्य समस्त । हिरोन घेऊं क्षणार्धें । २० ऐसा सुमाळी दैत्य दुर्जन । विप्रवेष अवलंबून । आला लटिकीच शांति धरून । कपटी पूर्ण दुरात्मा । २१ जैसा नटाचा वेष जाण । कीं विषाचें शीतळपण । कीं सावचोराचें गोड वचन । परप्राणहरणार्थ । २२ कीं गोरियाचें गायन । कीं दांभिकाचें वरिवरी भजन । धनलुब्धाचें तत्त्वज्ञान । परधनहरणार्थ । २३ वरिवरी सुंदर इंद्रावण । किंवा बकाची शांति पूर्ण । कीं वेश्येचें मुखमंडण । कामिक-मन-हरणार्थ । २४ कीं साधूवेष धरोनि शुद्ध । यात्रेसी फिरती जैसे मैंद । कीं वाटपाडे निरंजनीं शुद्ध । सिद्ध होऊन बैसले । २५ असो ऐसा सुमाळी पापराशी । तेणें आपुली कन्या कैकसी । घेऊन आला विश्रव्यापासीं । प्रार्थोनि त्यासी दिधली । २६ म्हणे मी

देखकर उस (सुमालि) दैत्य ने यह तय किया कि मैं इस (कुबेर) के पिता (विश्रवा) को निश्चय ही अपनी कन्या प्रदान करूँगा । १९ उस कन्या से जो पुत्र उत्पन्न होंगे, हम सब दैत्य उनके सहायक हो जाएँगे और लंका का यह राज्य क्षणार्ध में छीन लेंगे । २० यही दुर्जन दैत्य सुमालि, जो पूर्णतः कपटी एवं दुरात्मा था, एक दिन ब्राह्मण वेष धारण करके बनावटी शान्ति को अपनाये हुए (विश्रवा के पास) आ गया । २१ अभिनेता का वेष दिखावटी ही होता है; अथवा विष की (प्रतीत होनेवाली) शीतलता सच्ची नहीं होती; अथवा रूप से भला आदमी प्रतीत होनेवाले चोर के मधुर शब्द दूसरे के प्राणों का अपहरण करने के लिए ही होते हैं; बहेलिये का गायन, दाम्भिकों का भजन जो वस्तुतः दिखावटी ही होता है, धन के लोभी मनुष्य द्वारा प्रस्तुत दार्शनिक सिद्धान्त–ये सब दूसरे के धन के हरण के लिए ही होते हैं; इन्द्रायन फल ऊपर से बहुत सुन्दर दिखता है (लेकिन अन्दर से बहुत कड़ुआ होता है), अथवा बगुले की समस्त शान्ति दिखावटी होती है; अथवा वारांगना का सुन्दर मुख कामी जनों के मन को लुभाने के लिए ही होता है; अथवा ठग लोग (परधन का हरण करने के हेतु ही) साधुओं का-सा पवित्र वेष धारण करके तीर्थक्षेत्र की यात्रा किया करते रहते हैं; अथवा बटमार शुद्ध निरंजन सिद्धों का वेष धारण करके बैठे हों (केवल दूसरों को ठगने के लिए ही); वैसे ही पापराशि सुमालि दैत्य (ब्राह्मण के रूप में) कैकसी नामक अपनी कन्या को साथ में लेकर विश्रवा के निकट

अकिंचन ब्राह्मण। एवढें घ्या जी कन्यारत्न। ऋषीनें कापट्य नेणोन। लाविलें लग्न तियेसीं। २७ दैत्य गेला स्वस्थानासी। एके दिवशीं ते कैकसी। सूर्य जातां अस्ताचळासी। भोग पतीस मागत। २८ जे संध्याकाळीं होय गर्भिणी। तरी महातामसी जन्मे प्राणी। तों होमकाळ साधोनी। कैकसी मागे भोगातें। २९ स्वस्त्रीस भोग न दे जरी। तरी बाळहत्या पडे त्याचे शिरीं। होम द्यावया दुराचारी। जाऊं नेदी ऋषीतें। ३० परम क्षोभोनियां ऋषी। अंगसंग केला तियेसीं। म्हणे तूं विप्रकन्या नव्हेसी। महातामसी पापरूपे। ३१ ब्रह्मराक्षस तुझे उदरीं। पुत्र होतील दुराचारी। येरी पतीचे चरण धरी। एक तरी सुपुत्र देइजे। ३२ रावण आणि कुंभकर्ण। तिसरा भक्तराज विभीषण। तो पितृवरदानेंकरून। साधु पूर्ण जन्मला। ३३ कुंभकर्ण जेव्हां जन्मला। मुख पसरोन

आ पहुँचा और उससे प्रार्थना कर उसने अपनी कन्या उसे प्रदान की।२२-२६ उसने (विश्रवा से) कहा—'मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ। आप इस कन्यारत्न को स्वीकार करें।' ऋषि विश्रवा ने इस छल-कपट को नहीं जाना और उस कन्या से विवाह कर लिया। २७ तत्पश्चात् सुमालि दैत्य अपने घर चला गया। एक दिन जब सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था (सूर्य का अस्त होने जा रहा था) तब कैकसी ने अपने पति से संभोग की याचना की। २८ (कहते हैं,) जो स्त्री संध्या समय गर्भवती हो जाती है, उससे महातामसी प्राणी का जन्म हो जाता है। (इसीलिए) यह हवन का समय है ऐसा जानकर (इसे ही उचित अवसर जानकर) कैकसी ने संभोग की माँग की थी। २९ यदि वह (विश्रवा) स्वपत्नी के साथ संभोग न करता तो बाल-हत्या का पाप उसके सिर आ जाता। वह दुराचारिणी स्त्री तो ऋषि को हवन करने के लिए जाने ही नहीं दे रही थी। ३० (अन्त में) अतिशय क्षुब्ध हो ऋषि ने उसके साथ समागम कर लिया और उसने उस स्त्री से कहा—'हे पापिणी, महातामसी स्त्री, तू तो ब्राह्मण-कन्या नहीं है। तेरे उदर से ब्रह्मराक्षस, दुराचारी पुत्र उत्पन्न हो जाएँगे।' तब उस स्त्री ने (अपने पति के) पाँव पकड़ लिये और कहा—'(महाराज मुझे) कम-से-कम एक तो सुपुत्र प्रदान करें।' ३१-३२ (फलस्वरूप) रावण और कुम्भकर्ण नामक दो (दुराचारी) पुत्र (कैकसी से) उत्पन्न हुए और तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ भक्तराज विभीषण, जो अपने पिता के वरदान के कारण पूर्णतः साधु पुरुष था। ३३ जब कुम्भकर्ण का जन्म हुआ, तब मुँह बाकर उसने

टाहो फोडिला। तेणें भूगोळ थरारिला। प्रळय गमला जीवांसी। ३४ ताटिका शूर्पणखा भगिनी जाण। परी त्यांत रत्न बिभीषण। जैसा काकविष्ठेंत अश्वत्थ पावन। केवळ स्थान विष्णूचें। ३५ कीं वायसांत कोकिळा श्रेष्ठ केवळ। कीं शिंपीमाजी मुक्ताफळ। कीं दैत्यकुळीं भजनशीळ। प्रल्हाद पूर्वी जन्मला। ३६ यावरी गोकर्णतीर्थी जाऊन। तिघे करिती अनुष्ठान। रावणें आराधिला अपर्णा-रमण। कुंभकर्णें कमलोद्भव। ३७ श्रीविष्णूचें आराधन। करिता जाह्ला बिभीषण। ब्रह्मा येऊनि वरदान। देता जाह्ला तिघांतें। ३८ रावण मागे वरदान। इंद्रादिदेव काद्रवेयगण। यांसी बंदिशाळे रक्षीन। सर्वांसी मान्य आज्ञा माझी। ३९ संपत्ति संतति विद्या धन। व्हावें सकळकळाप्रवीण। याउपरी कुंभकर्ण। वर मागे अपेक्षित। ४० तों देव जाह्ले उद्विग्न। काय मागेल कुंभकर्ण।

ऐसा क्रन्दन किया कि उससे पृथ्वी थर्रा उठी; समस्त प्राणियों को आभास हो गया कि मानो अब प्रलय ही होनेवाला है। ३४ त्राटिका (ताड़का) और शूर्पणखा–इन दोनों को उनकी बहनें समझो। जिस पवित्र पीपल वृक्ष में भगवान् विष्णु का निश्चित रूप में अधिष्ठान होता है उसका बीज कौए की विष्ठा में पाया जाता है; ठीक उसी प्रकार इन (पापराशि) भाई-बहनों में विभीषण (उत्तम पुरुष) रत्न था। ३५ अथवा कौओं में निश्चय ही कोकिल को श्रेष्ठ समझा जाता है, अथवा सीप में मोती होता है, वैसे ही इन (साधारण) प्राणियों में विभीषण श्रेष्ठ सत्पुरुष उत्पन्न हुआ था। अथवा जैसे पूर्वकाल में दैत्यकुल में भक्तिशील प्रह्लाद का जन्म हुआ, उसी प्रकार (इस युग में इन दैत्यों के कुल में) विभीषण उत्पन्न हो गया। ३६ तत्पश्चात् इन तीनों ही ने गोकर्ण नामक तीर्थक्षेत्र में जाकर तपस्या की। रावण ने पार्वती-पति शिवजी की आराधना की, तो कुम्भकर्ण ने ब्रह्माजी की। ३७ विभीषण ने श्रीविष्णु भगवान् की आराधना की। तब (यथा समय) ब्रह्माजी ने वहाँ आगमन कर तीनों को वरदान दिया (देना चाहा)। ३८ रावण ने यह वर माँग लिया–'(हे भगवन्, मुझे यह वर दो कि) मैं इन्द्र आदि देवताओं और काद्रवेय आदि सर्प-समूहों को बन्दीशाला में डाल दूँ और सब मेरी आज्ञा को शिरोधार्य करें; मैं सम्पत्ति, सन्तति, विद्या, रूप और धन से युक्त तथा सभी कलाओं में प्रवीण हो जाऊँ।' इसके बाद कुम्भकर्ण अपने लिए अभीष्ट वर माँगने को (तैयार हो गया) था कि देवता (इस विचार से) व्याकुल हो गये कि यह

कीं हें चराचर भक्षीन। ऐसें वरदान मागेल काय। ४१ कीं गिळीन म्हणे भूगोळ। कीं दाढे घालीन ऋषिमंडळ। मग सरस्वतीतें देव सकळ। प्रार्थिते जाहले तेधवां। ४२ तूं जिव्हाग्रीं वससी देवी। तरी त्या दुष्टासी भ्रांति घालावी। लोकीं सुखी राहिजे सर्वी। ऐसें वदवीं सरस्वती। ४३ कुंभकर्ण आधींच राक्षस। सरस्वती भ्रांति घाली विशेष। तों विधि म्हणे घटश्रोत्रास। अपेक्षित माग काहीं। ४४ मग बोले कुंभकर्ण। मज निद्रा दे कां संपूर्ण। अखंड करीन मी शयन। चतुरानन अवश्य म्हणे। ४५ तत्काळ निद्रा येऊन। पडला जैसा प्राणहीन। सुषुप्तीमाजी सर्व ज्ञान। बुडोन गेलें तयाचें। ४६ मंदराचळ आडवा पडला। कीं महावृक्ष उन्मळला। निद्राभरें घोंरू लागला। तेणें दश दिशा घुमघुमती। ४७ म्हैसे हस्ती श्वापदें काननीं। श्वासासरसीं प्रवेशती घ्राणीं। उच्छ्वास टाकितां धरणीं। बाहेर पडती आरडत। ४८ निद्रा

कुम्भकर्ण क्या वर माँग लेगा; क्या वह यह तो नहीं माँग लेगा कि वह इस चराचर (सृष्टि) को खा डाले; क्या वह भू-गोल (पृथ्वी) को निगल डालने की बात तो नहीं कहेगा ? क्या समस्त ऋषियों को अपनी डाढ़ों में (चबाने के लिए) डालूँगा–ऐसा तो नहीं कहेगा। (इससे भयभीत) सब देवताओं ने तब देवी सरस्वती से प्रार्थना की। ३९-४२ हे देवी, तुम (सबकी) जिह्वा के अग्रभाग में निवास करती हो; अतः इस दुष्ट पुरुष को भ्रम में डालो; तुम उससे कुछ ऐसा कहलवा दो जिससे सब लोकों में सब प्राणी सुखी रहें। ४३ कुम्भकर्ण एक तो राक्षस था, तिस पर देवी सरस्वती ने उसे विशेष रूप में भ्रम में डाल दिया। (इतने में) विधाता ने कुम्भकर्ण से कहा–'कुछ अभीष्ट माँग लो।' ४४ इसपर कुम्भकर्ण ने कहा—'भगवन्, मुझे ऐसी प्रगाढ़ निद्रा प्रदान करो जिससे मैं अविरत सोया ही रहूँगा।' विधाता ने कहा—'अवश्य, ऐसा ही हो'। ४५ तत्क्षण उसे (कुम्भकर्ण को) नींद आयी और वह प्राणहीन-सा हो गया। उसका सब ज्ञान निद्रा में डूब गया। ४६ (सोया हुआ कुम्भकर्ण) ऐसा जान पड़ा कि मानो मन्दर पर्वत लेट गया हो अथवा कोई प्रचण्ड वृक्ष ही उखड़ पड़ा हो। वह नींद में ऐसा ख़र्राटे भरने लगा कि (उसकी आवाज़ से) दसों दिशाएँ गूँज उठीं। ४७ भैंसे, हाथी तथा अन्य जंगल के जानवर उसकी साँस के साथ उसकी नाक में पैठते थे और उसके उसाँस छोड़ते ही बाहर ज़मीन पर गर्जन करते हुए गिर पड़ते थे। ४८ निद्रा को देह की समाधि ही समझो। वह जीवात्मा

देहाची समाधि जाण। निद्रा जीवात्म्याचें आवरण। कीं भ्रांतीचें विश्रांतिस्थान। कीं अज्ञान मूर्तिमंत। ४९ निद्रा तस्कराची सहकारी। ध्याना अनुष्ठाना विघ्न करी। चातुर्य विद्या कळाकुसरी। निद्रेमाजी बुडती पै। ५० निद्रा मरणाची सांगातिणी। निद्रा रात्रीची ज्येष्ठ भगिनी। निद्रा जीवाची विश्रांतिकारिणी। आयुष्य हरोनि नेतसे। ५१ स्थूल सूक्ष्म कारणें पाहीं। बुडोन जाती सुषुप्तिडोहीं। असो कुंभकर्णासि शुद्धि नाहीं। जागा कदा नोहेचि। ५२ कुंभकर्ण निद्रासागरीं। बुडोन गेला अहोरात्रीं। पिता देखोन चिंता करी। म्हणे व्यर्थ जन्म याचा। ५३ मग तेणें प्रार्थिला कमळासन। मागतसे हें वरदान। षण्मास जाहलिया एक दिन। सर्व सुखभोग यातें असो। ५४ मग बिभीषणासी चतुर्वक्त्र। म्हणे माग इच्छित वर। तंव तो सत्वशीळ पवित्र। काय बोलता जाहला। ५५ म्हणे सत्समागम सच्छास्त्र-श्रवण। दया क्षमा उपरति भजन। निंदा वाद द्वेष गाळून। विष्णुचिंतन करीन मी। ५६ आशा

के लिए आच्छादन होती है अथवा वह भ्रम का विश्राम-स्थान ही है, अथवा वह मूर्तिमान अज्ञान ही है। यह निद्रा चोरों की सहायक होती है। यह ध्यान और अनुष्ठान (तपस्या) में बाधा डालती है। (इसी) निद्रा में चातुर्य विद्या, कला-कौशल (सब कुछ) डूब जाता है। निद्रा मृत्यु की संगिनी है। वह रात्रि की ज्येष्ठ भगिनी एवं जीव का अन्त करनेवाली होती है। वह आयु को छीन ले जाती है। जान लो, स्थूल और सूक्ष्म सब कार्य सुषुप्ति (निद्रा) रूपी दह में डूब जाते हैं। अस्तु। ऐसी निद्रा में डूबे रहने के कारण कुम्भकर्ण के होश-हवास नहीं रहे थे—वह कभी जाग भी नहीं उठता था। ४९-५२ कुम्भकर्ण दिन रात निद्रा सागर में डूबा हुआ रहा। यह देखकर चिन्तातुर हो उसके पिता ने समझ लिया कि इसका जन्म व्यर्थ है। ५३ तब उसने विधाता से प्रार्थना की और यह वर माँग लिया कि छः महीने हो जाने पर यह (कुम्भकर्ण) एक दिन सब सुखों का भोग करे। ५४ अस्तु। तदनन्तर चतुर्मुख ब्रह्माजी ने विभीषण से इच्छानुसार वर माँगने को कहा, तो उस सात्त्विक पुण्यशील व्यक्ति ने क्या कहा? (सुनो)— 'भगवन्, मेरे लिए सत्संगति, उत्तम शास्त्रों का श्रवण, दया, क्षमा, भोग-विलास के प्रति विरक्ति, भजन की प्राप्ति हो जाए। मैं निन्दा, विवाद, द्वेष का त्याग कर भगवान् विष्णु का ध्यान करना चाहूँगा। आशा, तृष्णा, मनोरथ, कल्पना, भ्रान्ति-भुलावे, इच्छा, वासना, ममता, अविद्या को त्याग कर,

तृष्णा मनसा कल्पना। भ्रांति भुली इच्छा वासना। ममता अविद्या सांडूनि जाणा। विष्णुचिंतन करीन मी। ५७ काम क्रोध मद मत्सर। मोह लोभ अहंकार। हे दूर करोनि साचार। विष्णुचिंतन करीन मी। ५८ धन्य विभीषणाची स्थिती। केवळ ओतिली सुखाची मूर्ती। कीं भक्तिरूप श्रीरामकीर्ती। विस्तारिली आधीं पुढें। ५९ सूर्याआधीं उगवे अरुण। कीं ज्ञानाअगोदर भजन। कीं भजनाआधीं वैराग्य पूर्ण। तैसा विभीषण जन्मला। ६० तपाअगोदर शुचित्व पूर्ण। कीं बोधाआधीं सत्त्वगुण। कीं सत्त्वाआधीं अद्भुत पूर्ण। पुण्य जैसें प्रगटतें। ६१ कीं साक्षात्काराआधीं निजध्यास। मननाआधीं श्रवण विशेष। कीं श्रवणाआधीं सुरस। आवडी पुढें ठसावे। ६२ कीं शमदमाआधीं विरक्ती। कीं आनंदाआधीं उपरती। कीं आत्मसुखाआधीं शांती। पुढें येऊन ठसावे। ६३ तैसा आधीं जन्मला बिभीषण। जैसें फळाअगोदर सुमन। विधि संतोषला ऐकोन। म्हणे वंश धन्य याचेनि। ६४ रामउपासक

मान लो कि, मैं भगवान् विष्णु का ध्यान करना चाहूँगा। काम, क्रोध, मद, मत्सर, मोह, लोभ, अहंकार इन सब (विकारों) को निश्चय ही दूर करके मैं भगवान् विष्णु का चिन्तन करूँगा।' ५५-५८ धन्य है विभीषण का जीवन। यह विभीषिण सचमुच साँचे में ढली हुई सुख की मूर्ति ही है। अथवा वह भक्त (भक्ति) रूप में राम की (साक्षात्) कीर्ति ही है, जो उनके पूर्व ही विस्तार को प्राप्त हो गयी है। जैसे सूर्य के पहले अरुण का उदय होता है, अथवा ज्ञान के पहले भजन (भक्ति का अस्तित्व) होता है अथवा भजन भक्ति के पूर्व पूर्ण वैराग्य (का प्रादुर्भाव) होता है; उसी प्रकार राम के अभ्युदय के पहले विभीषण का जन्म हुआ। यह घटना ऐसी घटित है, जैसे मानो तपस्या के पहले पूर्ण शुचित्व ही उत्पन्न हो गया हो, अथवा (आत्मबोध) (आत्मज्ञान) के पूर्व सत्त्वगुणों की सृष्टि हो गयी हो, अथवा सत्त्व गुण के पूर्व पूर्ण रूप में अद्भुत पुण्य ही प्रकट हो गया हो; जैसे साक्षात्कार के पहले मनन होता है, मनन के पूर्व विशेष रूप में श्रवण होता है; और श्रवण के पहले रस से युक्त रुचि ही स्थिर हो जाती है; अथवा शम, दम के पूर्व विरक्ति होती है, अथवा आत्मानन्द के पहले विरक्ति होती है, अथवा आत्मसुख के पहले मनःशान्ति स्थिर होती है, जैसे फल के पहले फूल आता है, वैसे ही (भगवान् राम के पूर्व) विभीषण का जन्म हो गया। उसकी बात सुनकर ब्रह्मा जी सन्तुष्ट हो गये और उन्होंने कहा—इसी के कारण यह वंश

जे संत । तयांचीं लक्षणें हींच निश्चित । अमानित्व अदंभित्व । अहिंसादि सर्व गुण जेथें । ६५ अंतरीं निग्रह करून । शांतिरसें भरले पूर्ण । आत्मस्तुति मनांतून । स्वप्नीं जयांसी नावडे । ६६ दुजयाचे दोषगुणरीती । हें कधीं नावडे जयांचे चित्तीं । पराचे उत्तम गुण वानिती । न विसरती कदाही । ६७ गर्व नेणती अणुमात्र । कोणासी न बोलती निष्ठुर । आपुली निंदा ऐकतां साचार । तिरस्कार नुपजेचि । ६८ जैसे मेघ क्षारजळ प्राशिती । परी पृथ्वीवर गोड वर्षती । धेनु तृण भक्षोनि देती । क्षीर अमृतासारिखें । ६९ इक्षुदंडासी घालिती खत । तरी गोड होय रसभरित । गंगा पाप जाळूनि पुण्य देत । तैसे संत जाणावे । ७० परिस लोहकाळिमा झाकोन । तत्काळचि करी सुवर्ण । तैसेचि महाराज सज्जन । परदोष लपविती । ७१ जैसी कुळवंत कामिनी । अवयव झांकी क्षणोक्षणीं । तैसें आपुलें

(कुल) धन्यता को प्राप्त हो गया है । ५९-६४ जो सन्त पुरुष राम के उपासक होते हैं, निश्चय ही उनके ये ही लक्षण हैं । अमानित्व, अदम्भित्व, अहिंसा आदि सकल गुण यहाँ (उन्हीं में) होते हैं । निग्रह (संयम) करने के कारण उनका अन्तःकरण शान्ति (रूपी रस) से पूरा भरा रहता है । मन से उन्हें स्वप्न में भी आत्म-स्तुति नहीं पसन्द आती । दूसरों के गुण-दोष की चर्चा करना जिनके मन को कभी भी अच्छा नहीं लगता, जो दूसरों के गुणों की प्रशंसा करते हैं, जो दूसरों के गुणों को कभी भी नहीं भूलते हैं, वे ही पुरुष सन्त कहे जाते हैं । ६५-६७ जो अणु भर (ज़रा-सा) भी गर्व करना नहीं जानते, जो किसी से भी कठोर (बात) नहीं कहते, जिनके मन में अपनी निन्दा सुनकर भी सचमुच (निन्दक के प्रति) तिरस्कार उत्पन्न नहीं होता, वे ही सन्त पुरुष हैं । ६८ जिस प्रकार मेघ खारा पानी पीते हैं, लेकिन पृथ्वी पर मधुर जल ही बरसाते हैं, जिस प्रकार गाय (शुष्क तथा नीरस) घास खाने पर भी अमृत-सा मधुर दूध देती है; जिस प्रकार ईख को (बेज़ायका) खाद डालते हैं, फिर भी वह मीठे रस से भरा-पूरा होता है, जिस प्रकार गंगा नदी (लोगों के) पाप को नष्ट कर पुण्य प्रदान करती है, उसी प्रकार, समझो कि सन्त भी आचरण करनेवाले होते हैं । अर्थात् उनके प्रति दुर्व्यवहार भी करनेवाले के साथ वे सद्व्यवहार ही करते हैं । ६९-७० पारस लोहे की कालिमा को छिपाकर तत्क्षण उसे सुवर्ण बना देता है, वैसे ही सज्जन महापुरुष दूसरों के दोष को छिपा देते हैं । ७१ जैसे कुलीन स्त्री प्रतिक्षण अपने (सुन्दर) अंग-प्रत्यंग को आवृत करके ही

सुकृत झांकोनी । सज्जन जन ठेविती । ७२ असो सर्वलक्षण-युक्त बिभीषण परम भक्त । तयासी विष्णुनाभ सत्य । वर देता जाहला । ७३ विरिंचि म्हणे साचार । तुज भेटेल श्रीरघुवीर। तो चिरंजीव करील निर्धार । शशी मित्र असती जों । ७४ रावण कुंभकर्ण ते वेळे । मेळविती राक्षसदळें । प्रहस्त महोदर धांविन्नले । प्रधान जाहले रावणाचे । ७५ विद्युज्जिव्ह जंबुमाळी । वज्रदंष्ट्र विरूपाक्ष बळी । खर दूषण त्रिशिरा सकळी । विद्युन्माली माल्यवंत । ७६ मत्त महामत्त युद्धोन्मत्त । शुक सारण दुर्धर समस्त । बळ महाबळ धांवत । रावणा वेष्टित सर्वही । ७७ सकळ दळभार घेऊन । लंकेवरी गेला रावण । कदा नाटोपे वैश्रवण । बहु दिन युद्ध करितां । ७८ मग रावणें काय केलें । पितयाचें पत्र आणिलें । कुबेरासी पाठविलें । येरें वंदिलें मस्तकीं । ७९ उकलोनि वाची वैश्रवण । आंत लिहिलें वर्तमान । तुझा सापत्नबंधु रावण । लंकाभुवन

रखती है, वैसे ही सज्जन पुरुष अपने सत्कृत्यों को छिपाये रखते हैं—अर्थात् उनका प्रदर्शन करते हुए नहीं घूमते रहते । ७२ अस्तु । ऐसे ही सब (अच्छे) लक्षणों से युक्त यह विभीषण (भगवान् का) परम भक्त था । उसे ब्रह्माजी ने सचमुच यह वर दिया । ७३ ब्रह्माजी ने उससे कहा, '(हे विभीषण,) तुमको निश्चित रूप में श्रीराम मिलेंगे । वे तुम्हें निश्चय ही चिरंजीवी पुरुष अर्थात् जब तक चन्द्र और सूर्य का अस्तित्व रहेगा, तब तक जीवित रहनेवाले पुरुष बनाएँगे ।' ७४

उस समय रावण और कुम्भकर्ण ने राक्षस-दलों को एकत्रित कर लिया । प्रहस्त और महोदर (नामक राक्षस वीर) उनके पास दौड़ते हुए आ पहुँचे और वे रावण के मंत्री हो गये । ७५ विद्युत-जिह्व, जम्बुमाली, वज्रदंष्ट्र, शक्तिशाली विरूपाक्ष, खर-दूषण-त्रिशरा आदि सब राक्षस वीर विद्युन्माली, माल्यवान अतिशय मदोन्मत्त थे, वे सब युद्ध के लिए उन्मत्त हुए थे । शुक, सारण, बल, महाबल आदि सब दुर्धर राक्षस वीर दौड़-दौड़ रावण के पास आकर उसे चारों ओर से घेरकर रह गये । ७६-७७ समूची सेना को लेकर रावण लंका की ओर (आक्रमण करने के लिए) गया—लंका पर टूट पड़ा । लेकिन बहुत दिन युद्ध करने पर भी वैश्रवण उसके अधीन नहीं हुआ । ७८ फिर देखिए, रावण ने क्या किया । उसने अपने पिता से—(विश्रवा से)—पत्र लाकर कुबेर(वैश्रवण) के पास भेज दिया । कुबेर ने उसे मस्तक से लगाकर वन्दन किया ।

यासि दीजे । ८० पितृआज्ञा ते वेदवचन । मानोनि निघाला वैश्रवण । सकळ संपत्ति पुष्पकीं घालोन । विरिंचीपासीं गेला पैं । ८१ मग कनकाद्रीचे पाठारीं । निर्मूनि अलकावती पुरी । कुबेर तेथें ते अवसरीं । विष्णुसुतें स्थापिला । ८२ मयासुर मंदोदरी आणि शक्ती । देता जाहला रावणाप्रती । दीर्घज्वाळा बळीची पौत्री । ते दिधली कुंभकर्णा । ८३ सरमा नामें गंधर्व-कन्या । ते दिधली बिभीषणा । सकळ भूप शरण रावणा । लंकेसी येती भयेंचि । ८४ रावणें सर्व देश जिंकिले । गाई-ब्राह्मणांसी धरोनि बळें । मुखीं घालोनियां सगळे । दाढेखालीं रगडित । ८५ आकांतले पृथ्वीचे जन । कोठें लपावया नाहीं स्थान । मग कुबेरें स्वर्गींहून । सांगोनि पाठविलें रावणा । ८६ कुबेरसेवक बोले बचन । तुम्ही ऋषिपुत्र वेदसंपन्न । टाकिलीं वेदांचीं खंडें करून । शास्त्रज्ञान असे तुम्हां । ८७ आम्ही जाणते एक सृष्टीं । ऐसा अभिमान वाहतां पोटीं । गोब्राह्मण देखतां दृष्टीं । मारितां कैसे अधर्मी हो । ८८ समजोनियां

तत्पश्चात् उसे खोलकर उसने पढ़ा—उसमें यह बात लिखी थी—'रावण तुम्हारा सौतेला भाई है; उसे लंका का राज्य दो ।' ७९-८० पिता की आज्ञा को वेदवचन (के समान शिरोधार्य) समझकर वैश्रवण कुबेर ने समूची सम्पत्ति पुष्पक विमान में रक्खी और उसे लेकर वह विधाता के पास गया । ८१ तदनन्तर मेरु पर्वत के शिखर पर अलकावती नामक नगरी का निर्माण करके ब्रह्माजी ने उसे उसी समय प्रतिष्ठित कर दिया । ८२ (इसके बाद) मयासुर (नामक दानव) ने अपनी कन्या मन्दोदरी तथा अस्त्र-रूप एक शक्ति रावण को प्रदान की । (दैत्यराज) बली की दीर्घज्वाला नामक पोती कुम्भकर्ण को दी गयी । ८३ सरमा नामक गन्धर्व-कन्या विभीषण को दी गयी । सब राजा भयभीत हो लंका में रावण की शरण में आने लगे । ८४ रावण ने सब देशों को जीत लिया । उसने गायों और ब्राह्मणों को बलपूर्वक पकड़ लिया और उन्हें मुँह में डालकर दाढ़ों के बीच रगड़ डाला । ८५ पृथ्वी पर के सब लोग आक्रान्त हो गये; उन्हें छिपने के लिए कोई स्थान नहीं रहा । तब कुबेर ने स्वर्ग में से रावण को एक सन्देश भेजा । ८६ कुबेर के सेवक ने रावण से कहा—'महाराज, आप ऋषि-पुत्र हैं, वेद के ज्ञाता हैं । आपको शास्त्रों का ज्ञान (प्राप्त) है, फिर भी आपने वेदों को टुकड़े-टुकड़े कर फाड़ डाला । आप मन में यह अभिमान वहन कर रहे हैं कि हम ही सारी सृष्टि में ज्ञानी हैं ।

शास्त्रार्थ । मग कर्मं करणें अनुचित । त्यासी ऐहिक ना परमार्थ । भोगील अनर्थ अनेक तो । ८९ अवलक्षणी कुरूपी देख । दर्पणीं न पाहे आपुलें मुख । तोंवरीच अभिमान अधिक । स्वस्वरूपाचा वाहतसे । ९० तैसे दोष आचरती । मग धर्मशास्त्र विलोकती । परी वीट न मानिती चित्तीं । नवल रीति हे वाटे । ९१ ऐसें बोलतां कुबेर-दूत । रावण क्रोधावला अद्भुत । व्याघ्रमुखीं मुष्टिघात । ताडितां जेवीं खवळे पैं । ९२ पदीं ताडितां महा उरग । कीं शुंडा पिळितां मातंग । कीं घृतें शिंपितां सवेग । पावक जैसा खवळे पैं । ९३ ऐसा सक्रोध रावण । सकळ दळभार सिद्ध करून । रात्रीमाजी जाऊन । घाला कुबेरावरी घातला । ९४ संपदा आणि पुष्पक । वस्तू हरिल्या सकळिक । मग तो कुबेर यक्षनायक । गेला शरण शक्रातें । ९५ मग तो कुबेर ते वेळां । शक्रें कोशगृहीं ठेविला । असो रावणासी पुत्र जाहला । मेघनाद प्रथमचि । ९६

फिर भी आप कैसे धर्महीन हो गये हैं कि गायों और ब्राह्मणों को देखते ही उन्हें मार डालते हैं ? शास्त्रों के अर्थ को समझ लेने पर भी ऐसे कर्म करना अनुचित है; ऐसा करनेवाले के लिए इससे न इहलोक बनता है न परमार्थ सिद्ध होता है । ऐसा व्यक्ति अनेक अनर्थों (संकटों) के भोग को प्राप्त होगा । कुलक्षणों से युक्त कोई कुरूप व्यक्ति जब तक अपने मुख को दर्पण में नहीं देखता, तब तक ही वह अपने रूप का बड़ा अभिमान करता रहता है । उसी प्रकार कोई-कोई दोषयुक्त (बुरा) आचरण करें, तत्पश्चात् धर्मशास्त्र को देखें, लेकिन (सही ज्ञान होने पर) अपने दुराचरण के प्रति मन में घिन (अरुचि) अनुभव नहीं करें—यह पद्धति बहुत ही अद्‌भुत जान पड़ती है । ८७-९१ कुबेर के दूत के इस कथन पर रावण बहुत ही क्रुद्ध हो गया । बाघ के मुँह में घूँसा जमा देने पर जैसे वह बौखला उठता है, रावण वैसे ही क्षुब्ध हो गया । महासर्प पाँवों से आघात करने पर, अथवा हाथी सूँड को मरोड़ देने पर, अथवा अग्नि घी को खींचने पर जैसे ज़ोर से प्रक्षुब्ध हो जाता है, रावण भी वैसे ही प्रक्षोभ को प्राप्त हो गया । ९२-९३ तदनन्तर रावण ने क्रोधपूर्वक समस्त सेना को सुसज्ज करके रात्रि के समय कुबेर पर आक्रमण किया । ९४ उसने कुबेर की सम्पत्ति, पुष्पक विमान तथा सब वस्तुओं को छीन लिया, तो यक्षपति कुबेर इन्द्र की शरण में गया । ९५ इसी कुबेर को इन्द्र ने अपने कोशागार में रक्खा (अपना कोषाध्यक्ष बनाया ।) अस्तु । रावण के प्रथम पुत्र

एक लक्ष पुत्रसंतती। सवा लक्ष पौत्रोत्पत्ती। ऐशीं सहस्र युवती। भोगितां रावण न धाये। ९७ अठरा अक्षौहिणी वाजंत्री। गर्जताती अहोरात्रीं। पृथ्वीचे भूप महाद्वारीं। कर जोडूनि उभे सदा। ९८ अस्ता जातां दिनकर। कर्पूर-दीपिका अठरा सहस्र। पाजळोनि सभेसमोर। निशाचर तिष्ठती। ९९ इंद्राचिया भयें पर्वत। रावणासी शरण येत। शक्र आमुचे पक्ष छेदित। रक्षीं त्वरित आम्हांसी। १०० लंकेश तयांसी अभय देत। तुम्ही गज व्हा अवघे पर्वत। समस्त अचळां मानली मात। जाहले उन्मत्त वारण। १०१ रावण देवांवरी चालिला। मेघनादें इंद्र ते वेळां। ऐरावतीसगट पाडिला। निजबळें राणांगणीं। १०२ ऐसा सत्रा वेळां सहस्रनेत्र। जिंकी मंदोदरीचा पुत्र। मग इंद्रजित नाम थोर। ब्रीद तेथोन ऐसें बांधिलें। ३ पाश घालोनि पाकशासन। इंद्रजितें आणिला बांधोन। मग विरिंचि आला धांवोन। होय

उत्पन्न हुआ, जिसका नाम मेघनाद रक्खा गया। ९६ बाद में इसी रावण के एक लाख पुत्र तथा सवा लाख पौत्र (पोते) उत्पन्न हो गये। अस्सी सहस्र युवतियों का भोग करने पर भी वह नहीं अघाता था। ९७ (उसके नगर में) अठारह अक्षौहणी वाद्य दिन रात गरजते थे। पृथ्वी भर के समस्त राजा उसके (प्रासाद के) महाद्वार पर नित्य हाथ जोड़े खड़े रहते थे। ९८ सूर्य के अस्त होने पर अठारह सहस्र राक्षस कपूर के दीपक जलाकर (रावण की) राजसभा—दरबार के सामने खड़े रहते थे। ९९ इन्द्र के भय से पर्वत रावण के आश्रय में आ गये और उन्होंने कहा—'(महाराज,) इन्द्र हमारे पंखों को काट डालता है, अतः शीघ्र ही हमारी रक्षा कीजिए।' (कहते हैं, पहले पर्वतों के पंख थे, जिन्हें इन्द्र वज्र से काट डालता था।) १०० लंकाधिपति रावण ने उन्हें अभयदान देते हुए कहा—'तुम सब पर्वत हाथी बन जाओ।' तब सब पर्वतों ने रावण की बात मान ली। फिर वे (रावण का आश्रय और अभयदान पाकर) उन्मत्त हाथी हो गये। १०१ तदनन्तर, रावण देवों की ओर बढ़ गया। इस समय मेघनाद ने अपने बलबूते इन्द्र को ऐरावत सहित रणभूमि में गिरा दिया। १०२ इस प्रकार मन्दोदरी के पुत्र मेघनाद ने सहस्रनेत्र इन्द्र को सत्रह बार जीत लिया; फिर तब से 'इन्द्रजित' नामक बिरुद उसके नाम के साथ जुड़ गया। ३ स्वर्ग के शासक इन्द्र को पाश (डाल कर उस) में आबद्ध कर इन्द्रजित आ पहुँचा, तो ब्रह्माजी दौड़ते हुए वहाँ

प्रसन्न शक्रजिता । ४ अपेक्षित देवोनि वर । सोडविला पुरंदर । मग रावणें देव समग्र । सेवेलागीं ठेविले । ५ शक्रें आणावे नित्य हार । छत्र धरी रोहिणीवर । रसाधिपति निरंतर । वाहे नीर धांवतचि । ६ गभस्ति होय द्वारपाळ । कुबेर आणि अनिळ । यांहीं सडासंमार्जन सकळ । गृहामाजी करावें । ७ वस्त्रें धूत वैश्वानर । पुरोहित जाहला विष्णुपुत्र । पांडित्य करी अंगिराकुमर । नारद तुंबर गाती सदा । ८ दहा वेळां शिव पूजिला । रावण दश वक्त्रें पावला । वीस हस्त लाधला । शिवही केला वश तेणें । ९ कोणे एके समयीं रावण । पुष्पक विमानीं बैसोन । कैलासगिरि चढतां पूर्ण । तों नंदी रक्षक महाद्वारीं । १० म्हणे नको जाऊं लंकापती । शिव-उमा आहेत एकांतीं । ऐसें ऐकतां मयजा-पती । परम क्षोभ पावला । ११ नंदीस म्हणे ते वेळे । तुज मर्कटाचेनि बोलें । मी न राहें कदा काळें । जाईन बळेंकरोनियां । १२ ऐसें बोलतां दशकंधर ।

पर पहुँच गये और इन्द्रजित (के प्रताप) पर प्रसन्न हो गये । ४ उन्होंने उसे अभीष्ट वर देकर इन्द्र को मुक्त करा लिया । तत्पश्चात् रावण ने सब देवों को अपनी सेवा के लिए नियुक्त किया । ५ (तब से) इन्द्र नित्य पुष्पहार लाया करता था; रोहिणी-पति चन्द्र (रावण के मस्तक पर) छत्र पकड़े रहा करता था; वरुण निरन्तर दौड़ते हुए पानी वहन किया करता था । ६ सूर्य रावण का द्वारपाल हो गया । कुबेर और पवनदेव सब गृहों में सिंचन-सम्मार्जन किया करते थे । ७ अग्निदेव कपड़े धोया करता था । ब्रह्मा रावण का पुरोहित बन गया । बृहस्पति पाण्डित्य (पण्डित का काम) किया करता था, तो नारद और तुम्बरु गायन करते रहते थे । ८ रावण ने दस वार शिवजी का पूजन किया, जिससे उसे दस मुख तथा वीस हाथ प्राप्त हो गये । इस प्रकार उसने शिवजी को भी वश में कर लिया । ९

एक समय पुष्पक विमान में विराजमान हो रावण पूरे कैलास पर्वत पर चढ़ गया, तो (उसे) नन्दी रक्षक के रूप में महाद्वार में (प्रतिष्ठित) दिखायी दिया । १० उसने लंकापति रावण से कहा, 'आप अन्दर न जाएँ, शिवजी और पार्वती जी एकान्त में हैं ।' यह सुनकर मन्दोदरी का पति रावण बहुत क्षुब्ध हो गया । ११ उस समय उसने नन्दी से कहा—'तुम जैसे बन्दर के कहने से मैं यहाँ कभी भी नहीं रुक जाऊँगा; मैं बलपूर्वक अन्दर जाऊँगा ।' १२ रावण के ऐसा कहने पर नन्दिकेश्वर बहुत कुपित

कोपला तेव्हां नंदिकेश्वर। शापशस्त्र अनिवार। ताडिलें सत्वर तेणेंचि। १३ म्हणे उन्मत्त तूं मूढमती। तुज नर वानर रणीं वधिती। तुवां दश रुद्र पूजिले निगुती। अकरावा मारुति प्रगटेल। १४ तो वानररूपें अवतरोन। करील तुझें गर्वमोचन ऐकतां क्रोधावला रावण। म्हणे हा उपडीन कैलासगिरी। १५ उचलोनियां कैलासपर्वत। लंकेंत नेईन क्षणांत। म्हणोन तळीं घातला हात। समूळ उचलावयसी। १६ ते जाणोनि हिमनग-जामात। निजपदें दडपिला पर्वत। सहस्त्र वर्षेंपर्यंत। आक्रंदत रावण। १७ मग करी शिवाचें स्तवन। प्रसन्न जाहला त्रिनयन। दशवक्त्र दिधला सोडून। आला परतोन लंकेसी। १८ एकदा रेवातीरीं ध्यानस्थ। बैसला असतां मयजाकांत। पुढें सिकतालिंग विराजित। तों पाणी चढत माघारें। १९ सहस्रार्जुनें निजभुजेंकरून। कोंडिलें नर्मदेचें जीवन। ध्यान करितां रावण। आकंठपर्यंत बुडाला। २०

हुआ और उसने तत्क्षण शाप रूपी दुर्निवार शस्त्र से (उसपर) आघात किया। १३ उसने कहा–'तू मूर्ख और उन्मत्त (हो गया) है। युद्ध में नर और वानर तेरा वध करेंगे। तूने अभी-अभी दस रुद्रों का पूजन किया, अब ग्यारहवाँ रुद्र मारुति के रूप में प्रकट हो जाएगा। १४ वानर रूप में अवतरित होकर वह तेरा घमण्ड छुड़ाएगा—तेरा गर्वहरण करेगा।' यह सुनकर रावण क्रुद्ध हुआ और बोला–' मैं कैलास पर्वत को ही उखाड़ दूँगा। इसको उठाकर क्षण मात्र में मैं लंका (में) ले जाऊँगा।' ऐसा कहकर उसे समूल उठाने के हेतु रावण ने उसके तल में हाथ डाला। १५-१६ यह जानकर हिमालय पर्वत के जामाता शिवजी ने अपने पाँव से उस पर्वत को दबा दिया। (इससे पीड़ित हो) रावण एक सहस्र वर्षों तक आक्रन्दन करता रहा। १७ तत्पश्चात् उसने शिवजी का स्तवन किया, जिससे प्रसन्न हो उन्होंने दशमुख रावण को छोड़ दिया। फिर (वहाँ से) वह लंका में लौट आया। १८

एक समय रावण रेवा (नर्मदा) नदी के तट पर ध्यानस्थ बैठा हुआ था। उसके सामने (उसका बनाया हुआ शिवजी का) बालू का लिंग विराजमान था। तब नदी का पानी (बढ़कर) उलटे चढ़ने लगा। १९ इधर सहस्रार्जुन (कार्तवीर्य) ने अपने (सहस्र) हाथों से नर्मदा का पानी रोक लिया था। इधर (उसके बढ़ते जाने के कारण) रावण ध्यान करते करते उसमें आकण्ठ डूब गया। २० (यह देखकर) रावण परम क्रुद्ध

परम क्रोधावला दशमौळी । धांवोनि आला तयाजवळी । म्हणे कोण रे तूं ये स्थळीं । रेवाजळ कोंडितोसी । २१ सहस्त्रार्जुनें कवळ घालून । ग्रीवेसी धरिला दशवदन । कीं मृगेंद्रें धरिला वारण । जाहले प्राण कासाविस । २२ बहुकाळ बंदीं घातला । मग पौलस्तिऋषि धांविन्नला । भिक्षा मागोनि तये वेळां । सोडविला राक्षस । २३ बळीचिया नगरा देख । बळेंच आला लंकानायक । जैसा व्याळाचे बिळीं मूषक । चारा घेऊं प्रवेशला । २४ तों बळीचिया महाद्वारीं । एक पुरुष उभा दंडधारी । जयाचिया तेजामाझारी । शशी मित्र झांकोळती । २५ तो महाराज त्रिविक्रम । देखोनि बळीचें निजप्रेम । द्वारपाळ जाहला पुरुषोत्तम । अज अजित जगद्गुरू । २६ मग तयासी म्हणे रावण । बळीसी आणीं बोलावून । नाहीं तरी हे नगरी उचलोन । पालथी घालीन सागरीं । २७ मग म्हणे वैकुंठविलासी । तूं बळीचा प्रताप नेणसी । आतांच येईल प्रत्ययासी । जाईं

हुआ और दौड़ता हुआ उसके पास आया । उसने सहस्रार्जुन से पूछा–'रेवा नदी के पानी को यहाँ रोकनेवाला तू कौन है ?' २१ इस पर सहस्रार्जुन ने लपककर उसकी गरदन पकड़ ली, मानो सिंह ने हाथी को पकड़ लिया हो । इससे उसके प्राण व्याकुल हो गये । २२ उसने रावण को बहुत समय तक कारागार में डाल रक्खा । फिर पौलस्ति ऋषि दौड़े आये और प्राणों की भीख माँगकर इस राक्षस को उन्होंने मुक्त करा लिया । २३

(फिर एक समय, दैत्यराज) बली के नगर को देखकर लंका का राजा रावण हठपूर्वक उसकी ओर आ गया; मगर उसे ठीक वैसे ही जा पहुँचा समझो, जैसे कुछ चारा (खाद्य) पाने के लिए चूहा साँप के बिल में प्रवेश करता हो । २४ तब बली-राज के महाद्वार पर एक ऐसा दंडधारी महापुरुष खड़ा था, जिसके तेज में चन्द्र-सूर्य भी छिप (फीके पड़) जाएँगे । २५ (बात यह है कि) अजन्मा, अज़ेय, जगद्गुरु पुरुषोत्तम अर्थात् भगवान् त्रिविक्रम–विष्णु (अपने प्रति) बलीराज का प्रेम देखकर, स्वयं उसके द्वारपाल (प्रहरी) हो गये थे । २६ तो रावण ने उससे कहा–"बली को बुला लाओ; नहीं तो इस नगरी को उठाकर मैं उसे उल्टी (करके) सागर में डाल दूँगा (डुबा दूँगा) ।" २७ इसपर वैकुण्ठ में विलास करनेवाले (द्वारपाल रूपधारी) भगवान् विष्णु ने कहा–" तुम बलीराज के प्रताप को नहीं जानते हो । तुम्हें वह अभी

वेगेंसीं आंतौता । २८ मग आंत प्रवेशला त्वरित । तों सभेसी बैसला विरोचनसुत । तयासी म्हणे लंकानाथ । करावया समर पातलों मी । २९ जैसा शुष्क तृणाचा पुतळा । धरावया आला वडवानळा । कीं वृषभ बळें माजला । खोंचूं धांवला सिंहासी । ३० व्याघ्रासी धरीन म्हणे वस्त । कीं आळिका सुपर्णावरी धांवत । ऐरावतीचा मोडावया दांत । शलभ जैसा सरसावला । ३१ वृश्चिक धांवे सत्वर । ताडावया खदिरांगार । खद्योत म्हणे दिवाकर । आसडून पाडीन खालता । ३२ तैसा बळीप्रती रावण । सांगे आपुलें थोरपण । कीं सरस्वतीपुढें मतिमंदें येऊन । वाग्वाद आरंभिला । ३३ हांसोनि बळी म्हणे ते वेळे । या वैकुंठनाथें द्वारपाळें । पूर्वीं नारसिंहरूप धरिलें । प्रह्लाद भक्त रक्षावया । ३४ नरसिंहगदाघातेंकरून । हिरण्यकशिपूचें कर्णभूषण । कुंडलें पडलीं उसळोन । तीं उचलोन घेईं तूं । ३५ तीं उचलों गेला दशकंधर । बळें लाविले वीसही

अनुभव होगा—ज़रा जल्दी अन्दर तो जाओ । २८ (तत्पश्चात्) रावण शीघ्रता से अन्दर गया । (और उसने देखा कि) विरोचन दैत्य का पुत्र बली (राज) सभा में विराजमान है । उससे रावण ने कहा—"तुमसे युद्ध करने के लिए मैं आ गया हूँ ।" २९ (उसका यह आगमन ऐसा था, मानो) सूखी घास का पुतला बड़वाग्नि को पकड़ने के लिए आ गया हो । अथवा अपने ही बल के कारण उन्मत्त कोई बैल, सिंह को ही खदेड़ने दौड़ा आया हो । अथवा कोई बकरा बाघ को पकड़ने की बात कर रहा हो, अथवा कीड़ी (इल्ली) गरुड़ की ओर लपक ने लगी हो, अथवा शलभ (पतिंगा) गजराज ऐरावत के दाँत को तोड़ने के लिए आगे बढ़ गया हो । किंवा बिच्छू खैर के अंगार पर (अपनी पूँछ से) आघात करने के लिए वेग से दौड़ा हो; अथवा जुगनू ने सूर्य को खींचकर नीचे गिरा देने की बात कही हो । ठीक उसी प्रकार रावण ने बली को अपना बड़प्पन बता दिया । मानो किसी मंदमति (व्यक्ति) ने सरस्वती के सामने आकर वाद-विवाद आरम्भ किया हो । ३०-३३ उस समय हँसकर बली ने कहा—"मेरे इस द्वारपाल—वैकुण्ठनाथ भगवान् विष्णु ने पूर्वकाल में भक्त प्रह्लाद की रक्षा करने के लिए नरसिंह का रूप धारण किया था । ३४ उस सयम (भगवान्) नरसिंह की गदा के आघात से हिरण्यकच्छप के कर्ण-भूषण (अलंकार) ये कुण्डल उछलकर (टूट) पड़े । तुम उन्हें उठाकर लो ।" ३५ रावण उन्हें उठाने के लिए (आगे) बढ़ा ।

कर। जैसा मशकासी न ढळे कुंजर। तैसें जाहलें रावणा पैं। ३६ निस्तेज जाहला ते वेळीं। तों बळीची राणी विंध्यावळी। सारिपाट खेळतां प्रीतिमेळीं। फांसा हातींचा उसळला। ३७ तों बळीं म्हणे रावणासी। फांसा आणीं वेगेंसीं। परी तोही न उचले तयासी। राक्षसासी खेद वाटे। ३८ गदगदां हांसती दोघें जणें। बंदीं घातले म्हणती देव याणें। येथें आला युद्धाकारणें। तों फांसा यासी नुचलेचि। ३९ जाहला परम अपमान। माघारा चालिला दशवदन। तों मार्गीं बळीचे सेवकजन। त्यांणीं रावण नागविला। ४० घेतलीं वस्त्रें शस्त्रें हिरून। मुखासी तेल मसी लावून। वीसही हस्त बांधोन। नगरामाजीं हिंडविती। ४१ एक अंगावरी धुळी टाकिती। एक दाढी धरोनि ओढिती। एक बळेंचि बैसविती। एक उठविती सवेंचि। ४२ एक करिती शेणमार। काकुळती येत दशकंधर। पळों पाहे जंव

बलपूर्वक उसने बीसों हाथ लगाये, लेकिन जैसे मच्छड़ से हाथी को टाला (हटाया) नहीं जा सकता, वैसे ही रावण की स्थिति हो गयी। ३६ उस समय वह बहुत तेजोहीन हो गया। (इसी समय) बलीराज की रानी विन्ध्यावती प्रेम से चौसर खेल रही थी। (खेलते-खेलते) उसके हाथ का पाँसा उछल पड़ा। ३७ (यह देखकर) बलीराज ने रावण से कहा, "जल्दी जाकर पाँसा ला दो।" (रावण ने जाकर उसे उठाने का यत्न किया) परन्तु उससे वह पाँसा उठाते न बना। इसपर उसे बहुत खेद हुआ। ३८ यह देखकर वे दोनों (बलीराज और विन्ध्यावती) मारे आनन्द के बहुत ज़ोर से हँस पड़े। उन्होंने कहा—"इसने तो देवों को कारागार में डाल रखा है और यह यहाँ पर युद्ध करने के हेतु से आ गया है; परन्तु इससे तो यह पाँसा भी उठाते नहीं बनता।" ३९ इससे रावण का बहुत अपमान हो गया; इसलिए जब वह लौट चला, तो रास्ते में बलीराज के सेवकों ने उसे नंगा कर डाला। ४० उन्होंने उसके वस्त्र और शस्त्र छीन लिये; उसके मुखों में तेल और कालिख पोत दी और उसके बीसों हाथों को बाँधकर वे उसे नगर में घुमाने लगे। ४१ (उस समय) कोई-कोई उसके शरीर पर धूल उछालते; दूसरे कोई उसकी दाढ़ी पकड़कर खींचते; कोई-कोई उसे हठात् बैठाते, तो कोई-कोई उसे एकदम उठाते। ४२ कोई-कोई उसपर गोबर फेंककर मारते, इससे व्याकुल हो, रावण ने जब-जब बाहर भाग जाना चाहा, तब-तब उसे

बाहेर । तंव द्वारपाळ जाऊं नेदी । ४३ क्षुद्र द्वार मोरियेमधून । मस्तक घाली जंव रावण । तंव सर्वांठायीं वामन । दंडावरी मारित । ४४ वळीचे अश्वशाळेंत रावण । क्षुधाक्रांत हिंडे नग्न । चणे खातसे वेंचून । मागे कोरान्न घरोघरीं । ४५ पोटासाठीं वाघ्या होऊन । म्हणे मी मल्हारीचा श्वान । कोठंबें चोंडकें काखे घेऊन । नाचोनि धान्य मेळवी । ४६ तो दासींनीं धरिला कौतुकें । उदक आणितां घातला काखें । तयां काकुळती येत दीनमुखें । मग सोडिती सत्वर । ४७ मग विश्रवा धांवोन । बळीस भेटला येऊन । म्हणे बंदींत घातला रावण । तो भिक्षेस मज देइजे । ४८ बळी बोले आण वाहोन । येथें कोणास नाहीं बंधन । ग्रामांत असे रावण । तो शोधोनि नेइजे । ४९ तो बळीचे अश्वशाळेंत देखिला । पिता देखोनि रडूं लागला । मग ऋषीनें वामन स्तविला । सोडवून नेला

द्वारपालों ने नहीं जाने दिया । ४३ जब-जब स्नानगृह के छोटे से द्वार में से वह सिर बाहर निकालता, तो वामन (बौने सेवक अथवा भगवान् विष्णु जो द्वारपाल बने हुए थे) स्थान-स्थान पर उसके बाहुओं पर मारते । ४४ (अन्त में) बलीराज की घुड़साल में (ले जाकर रावण को रखा गया; वहाँ) वह भूख से पीड़ित हो नंगा घूमा करता और वहीं चने बीन कर खाया करता; (कभी) घर-घर (जाकर) सूखा अन्न (भिक्षा के रूप में) माँग लिया करता । ४५ पेट के लिए खंड़ोबा (मल्लारि) देव को अर्पित पुरुष सेवक का रूप लेकर कहता—"मैं मल्लारि भगवान् का कुत्ता हूँ—तुच्छ सेवक हूँ ।" बगल में विशिष्ट प्रकार के बर्तन लेकर, नाच-नाचकर अनाज इकट्ठा करता । ४६ तब (एक समय) बलीराज की दासियों ने कौतुक (मज़ाक) में पकड़ लिया और पानी लाते समय उसे बगल में दबा रक्खा, तो व्याकुल हो बड़ी दीनता से उसने उन्हें मनाया । (उसपर दया करके) उन्होंने उसे तुरन्त छोड़ दिया । ४७

तत्पश्चात् विश्रवा ऋषि दौड़ा आया और बलीराज से मिला । उसने कहा, " तुमने रावण को कारागृह में डाल रक्खा है । उसे मुझे भिक्षा के रूप में दे दो ।" ४८ बलीराज ने शपथ करके कहा—"यहाँ किसी को कोई मनाही नहीं है । रावण नगर में है; उसे खोजकर ले जाओ ।" ४९ तब विश्रवा ने (रावण को) बलीराज की अश्वशाला में देखा । पिताजी को देखकर रावण रोने लगा । इस पर ऋषि ने भगवान् वामन—विष्णु का स्तवन किया और रावण को मुक्त

रावण । ५० परम लज्जित रावण । लंकेसी आला परतोन । मागुती पराक्रम धरोन । म्हणे मी जिंकीन वाळीतें । ५१ तों समुद्रतीरीं शक्रसुत । बसला असे ध्यानस्थ । त्यासी धरावया लंकानाथ । पुष्पकांतून उतरला । ५२ जैसा पंचाननापुढें । मार्जार दावी आपले पवाडे । कीं पंडितापुढें महामूढें । वाग्वाद आरंभिला । ५३ कीं रासभें ब्रीद बांधोन । नारदापुढें मांडिलें गायन । कीं महाव्याघ्रावरी टवकारून । जंबूक जैसा पातला । ५४ तैसा वाळीपुढें उभा रावण । सावध होतां शक्रनंदन । ग्रीवेसी दशग्रीव धरोन । कक्षेमाजी दाटिला । ५५ चतुःसमुद्रीं करोनि स्नान । किष्किंधेसी आला परतोन । अंगदाच्या पाळण्यावरी नेऊन । उफराटा रावण बांधिला । ५६ क्षणक्षणां धरोनि दाढी । अंगद बाळभावें उपडी । मग विश्रवा धांवोनि तांतडी । भिक्षा मागे वाळीतें । ५७ मग मुखासी काळें लावूनी । वाळीनें दिधला भिरकावूनी । लंकेंत पडिला येऊनी । खेद मनीं बहुत करी । ५८ एकदा रावण पुसे विरिंचीतें । आमुचा

कराकर वह ले गया । ५० बहुत ही लज्जित हो रावण लंका (में) लौट आया । फिर अपने प्रताप को देखकर उसने कहा (सोचा)—मैं (वानर-राज) बाली को जीत लूँगा । ५१

उस समय (बाली को जीतने के लिए निकले हुए रावण ने देखा कि) इन्द्र का पुत्र बाली समुद्र-तट पर ध्यान में मग्न विराजमान है । उसे पकड़ने के लिए रावण पुष्पक विमान से उतर गया । ५२ जिस प्रकार सिंह के सामने बिड़ाल (बिलाव) अपना पराक्रम प्रदर्शित करता हो, जैसे महामूर्ख पण्डितों के सामने विवाद आरम्भ करे, जैसे गधा प्रतिज्ञा-पूर्वक नारद के समक्ष गाना शुरू करे, अथवा जैसे सियार (गीदड़) बड़े बाघ की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए चले, ठीक वैसे ही रावण बाली के सम्मुख खड़ा था । सावधान होने पर–ध्यान टूटने पर बाली ने उसे गरदन में पकड़कर काँख में ठूँस दिया । ५३-५५ (उसे इस प्रकार उठाये हुए) बाली ने चारों समुद्रों (के पास जाकर उन) में स्नान किया और वह किष्किन्धा नगरी में लौट आया । फिर उसने (अपने पुत्र) अंगद के पालने के ऊपर रावण को उलटा बाँध रखा । ५६ बालक अंगद प्रति क्षण (बालकों के) खेल ही खेल में उसकी दाढ़ी (के बाल) पकड़ कर उखाड़ता । तब तुरन्त विश्रवा ने दौड़ते हुए आकर बाली से रावण को भिक्षा रूप में माँग लिया । ५७ फिर बाली ने उसके मुँह में कालिमा

अंत कवणाचेनि हातें। सत्य सांगावें आम्हांतें। स्नेहचित्तें-करूनियां। ५९ विधि म्हणे अजपाळसुत। त्याचें नाम विख्यात दशरथ। त्यासी पुत्र होईल रघुनाथ। तुझा अंत त्या हातें। ६० रावणें केला मग पण। तरी मी दशरथासी वधीन। तों अजपाळपुत्राचें लग्न। मांडिलें इकडे गजरेंसीं। ६१ तों नारद सांगे अजपाळा। जतन करी दशरथ-कौसल्या। लग्नसोहळयामाजी घाला। घालील अकस्मात रावण। ६२ ऐसें सांगता कमलोद्भवसुत। मग जहाज घालोनि समुद्रांत। लग्न आरंभिलें तेथ। महागजरेंकरोनियां। ६३ सागरामाजी होतें लग्न। रावणें ही गोष्ट ऐकोन। तंव तो अष्टवर्गाचा दिन। घातला घाला रात्रींत। ६४ जैसे अंतरिक्ष-पक्षी येती। तैसे राक्षस उड्या घेती। जहाज फोडोनि चूर्ण करिती। गदापर्वत-घातेंचि। ६५ वऱ्हाड सर्व बुडविलें। रावणें कौसल्येसी घेतलें।

पोत कर उसे फेंक दिया, तो वह लंका में आ गिरा। (इससे) वह मन-ही-मन बहुत दुःख मानता रहा। ५८

(तदनन्तर) एक समय, रावण ने ब्रह्माजी से पूछा–" हमारी मृत्यु किसके हाथ है ? यह बात हमें प्रेमपूर्वक सत्य-सत्य कहो।" ५९ ब्रह्माजी ने कहा–"राजा अज के एक पुत्र है। उसका नाम दशरथ है, वह बहुत विख्यात है। उसके रघुनाथ (राम) नामक एक पुत्र (उत्पन्न) होगा। तुम्हारा अन्त उसके हाथों में है।" ६० (यह सुनकर) रावण ने प्रतिज्ञा की–मैं दशरथ का वध करूँगा। (इसी समय) इधर बाजों के घोष में अजराज-पुत्र दशरथ का विवाह सम्पन्न हो रहा था। ६१ तब वहाँ आकर नारद ऋषि ने अजराज से कहा–"दशरथ और कौशल्या का रक्षण करो; क्योंकि विवाह समारोह (के स्थान) पर रावण यकायक आक्रमण करेगा।" ६२ नारद के ऐसा कहने पर राजा ने समुद्र में बड़ा पोत (जहाज) छोड़कर (रखकर), उसी में बाद्यों के महाघोष के बीच (दशरथ और कौसल्या की विवाह-विधि का आरम्भ किया। ६३ सागर के मध्य विवाह हो रहा है, यह रावण ने सुना। वह अष्टवर्ग विधि का दिन था। उसी दिन, रात को रावण ने आक्रमण किया। ६४ जिस प्रकार आकाश से पक्षी आते हैं, उसी प्रकार (आकाश मार्ग से आकर) राक्षस (समुद्र में) कूद पड़े। उन्होंने पर्वत के समान बड़ी-बड़ी गदाओं के आघात कर-करके जहाज को तोड़कर चूर-चूर कर डाला। ६५ उन्होंने समुद्र में समूची बारात को डुबा दिया। फिर रावण ने कौसल्या

जिचें स्वरूप न जाय वर्णिलें। तीस घातलें पेटींत। ६६ पेटी लंकेसी नेतां उचलोन। राक्षसें बोलविला एक मीन। तो बाहेर आला सागरांतून। त्यासी रावण आज्ञापी। ही पेटी करावी जतन। कोणा न द्यावी मजवांचून। लंकेंत प्रवेशला रावण। ती वस्तु जतन मत्स्य करी। समुद्राचे गहन बेटीं। जेथें न पडे कोणाची दृष्टी। तेथें मत्स्यें ठेवूनि पेटी। गेला आपण स्वकार्या। ६७-६९ कैंचा सोहळा कैंचें लग्न। लोक समग्र गेले बुडोन। तरी दशरथ समुद्रांतून। उफाळला अवचिता। ७० ज्याचे पोटीं येणार श्रीराम। दुर्गम तेंचि होय सुगम। विष तें अमृत होय उत्तम। अपाय तोचि उपाय। ७१ तरी अंतरिक्ष चढे पांगुळ। देव जरी होय दयाळ। आंगणींच्या लता सकळ। कल्पलता होती त्या। ७२ दशरथ पाहे समुद्रांत। तों भंगलें जहाज अकस्मात। वाहत वाहत आलें तेथ। त्यावरी दशरथ बैसला। ७३ वायुवेगें जहाज गेलें। त्याच बेटासी येऊनि लागलें। दशरथें पेटी ते वेळे। सहज लीलें उघडिली। ७४

को लेकर एक पेटी में डाल दिया—उस (कौसल्या) का रूप अवर्णनीय था। ६६ उस प्रेटी को उठाकर लंका की ओर जाते हुए रावण ने एक मत्स्य को बुलाया—जो समुद्र में से बाहर निकल आया। उसे रावण ने आदेश दिया—"इस पेटी का रक्षण करो। मेरे सिवा और किसी को इसे न दो।" और उसने लंका में प्रवेश किया। इधर वह मत्स्य उस वस्तु की रक्षा करता था। उस मत्स्य ने वह पेटी समुद्र के एक ऐसे दुर्गम द्वीप (टापू) में रखी, जहाँ पर किसी की नज़र नहीं पड़ सकती थी और वह अपने काम के लिए चला गया। ६७-६९ अब कैसा समारोह ?—कैसा विवाह ? समस्त लोग तो डूब गये। फिर भी दशरथ अचानक समुद्र में से ऊपर आया। ७० जिससे भगवान् श्रीराम का जन्म होने वाला था, उस दशरथ के लिए दुर्गम (कठिन) बात भी सुगम (आसान) हो गयी, मानो विष ही उत्तम अमृत बन गया हो, अपाय (हानि) ही उपाय (अभीष्ट—प्राप्ति का साधन) बन गया हो। ७१ यदि भगवान् (किसी के लिए) दयालु हो जाएँ, तो लूला-लंगड़ा मनुष्य भी आकाश में चढ़ सकेगा, उसके आँगन में लगायी लताएँ उसके लिए कल्पलताएँ बन जाएँगी। ७२ दशरथ ने जब समुद्र में देखा, तो टूटा हुआ ज़हाज़ बहते-बहते अकस्मात् वहाँ जा पहुँचा। दशरथ उसमें बैठ गया। ७३ (और) वह (जहाज़) वायु-गति से चलने लगा और उसी

तों आंत कौसल्यानिधान। पाहतां वेधला अजनंदन। तों नारद अकस्मात येऊन। उभा ठाके ते वेळीं। ७५ ज्यासी भूत भविष्य सर्व ज्ञान। तेणें मुहूर्त वेळा पाहून। तत्काळ दोघांसी लाविलें लग्न। विधियुक्त विधिसुतें। ७६ वोहरांसी आशीर्वाद देत। जो वैकुंठवासी रमाकांत। तो तुमचे पोटीं अवतरेल सत्य। भयभीत होऊं नका। ७७ दोघें पेटींत बैसवून। वेगें गेला ब्रह्मनंदन। तों लंकेंत दशवदन। कमळासनाप्रति सांगें। ७८ तुवां जें भविष्य कथिलें। तें अवघेंचि असत्य झालें। जहाज फोडूनि लोक बुडविले। हिरोनि आणिलें कौसल्येसी। ७९ मग बोले चतुरानन। मघांच दोघांसी लाविलें लग्न। कदा न टळे ब्रह्मवचन। कल्पांतींही दशवक्त्रा। ८० येरू म्हणे जर जाहलें लग्न। तरी मी तुज इच्छित देईन। मग पेटी आणविली मत्स्यापासून। सभेमध्यें रावणें। ८१ त्यामाजी नवरी असे तत्त्वतां। ब्रह्मा म्हणे उघडी आतां। तों पेटी उघडूनि

टापू में आ गया जहाँ मत्स्य ने वह पेटी रक्खी थी। दशरथ ने उस पेटी को यों ही खोल लिया। ७४ तो अन्दर कौशल्या रूपी धरोहर को देखकर वह मोहित हो गया। तब अकस्मात् नारद वहाँ आकर खड़ा हो गया। ७५ भूत, भविष्य तथा वर्तमान—तीनों कालों का सब ज्ञान रखनेवाले, ब्रह्मा के पुत्र नारद ने मुहूर्त खोजकर यथाविधि तत्काल उन दोनों का विवाह सम्पन्न कराया। ७६ उन वर और वधू को उसने यह आशीर्वाद दिया—" लक्ष्मी के पति, वैकुण्ठ के निवासी भगवान् विष्णु तुम्हारे गर्भ से निश्चय ही अवतरित हो जाएँगे। तुम भयभीत न होना।" ७७ फिर उन दोनों को उस पेटी में बैठाकर नारद वहाँ से त्वरित निकल गया। इधर लंका में दशमुख रावण ने ब्रह्मा से कहा—" तुमने जो भविष्य कहा था, वह समूचा असत्य हो गया है। (हमने) जहाज़ को तोड़कर सब लोगों को (समुद्र में) डुबा दिया और कौसल्या को हम अपहरण करके लाये हैं। ७८-७९ इसपर ब्रह्मा ने कहा—"अभी-अभी उन दोनों का विवाह कराया गया है। हे दशमुख, ब्रह्मा का वचन कल्पान्त में भी कभी नहीं टलता (झूठा नहीं सिद्ध होता)।" ८० तब रावण ने कहा—"यदि (उन दोनों का) विवाह हुआ हो, तो तुम जो चाहोगे, वह मैं तुम्हें दूँगा।" फिर वह उस मत्स्य के पास से पेटी सभा में मँगवा लाया। ८१ उसमें सचमुच वह वधू थी ही। ब्रह्मा ने कहा—"अब खोलो।" तो पेटी को खोलकर देखते ही उसे वधू-वर दोनों दिखायी

पाहतां । वोहरें उभयतां देखिलीं । ८२ परम आश्चर्य करी रावण । म्हणे खरें जाहलें ब्रह्मवचन । तरी मी या दोघांसी वधीन । शस्त्र घेऊन सरसावला । ८३ कौसल्या जाहली भयभीत । पतीचें वदन विलोकित । परी निर्भय वीर दशरथ । ना भी म्हणत कौसल्येतें । ८४ मी सूर्यवंशीं महावीर । हें मशक काय दशकंदर । याचीं दाही शिरें समग्र । खंडीन आतां येथेंचि । ८५ मग रावणाचा हात । धरिता जाहला विष्णुसुत । म्हणे मज देईं इच्छित । माग म्हणत दशवदन । ८६ हीं दोघें वधूवरें आतां । मज देईं लंकानाथा । मंदोदरी म्हणे तत्त्वतां । वचन असत्य न करावें । ८७ गेला तरी जावो प्राण । परी असत्य न करावें वचन । यांसी वधितां येथेंचि विघ्न । उठेल दारुण आतांचि । ८८ बुद्धीचा प्रवर्तक भगवंत । ब्रह्मयासी म्हणे नेईं त्वरित । तेणें पेटी उचलोन अकस्मात । अयोध्येसी आणिली । ८९ अयोध्यें‌त जाहला जयजयकार । वेगें पातला शचीवर । दशरथावरी धरी छत्र । कर्तव्य विचित्र हरीचें । ९०

दिये । ८२ रावण को परम आश्चर्य हो गया । उसने कहा—"ब्रह्मा का कथन ही सिद्ध हो गया । फिर भी मैं इन दोनों को मार डालूँगा ।" ऐसा कहते हुए वह शस्त्र लेकर आगे बढ़ा । ८३ इससे कौसल्या भयभीत हो अपने पति का मुँह ताकने लगी, तो उस निर्भय वीर दशरथ ने कौसल्या से भयभीत न होने को कहा । ८४ वह बोला—" मैं सूर्य कुलोत्पन्न महावीर (पुरुष) हूँ । यह मच्छर (के समान) रावण क्या है ? इसके संपूर्ण दसों सिरों को मैं यहाँ पर अभी ही खण्ड-खण्ड कर डालूँगा ।" ८५ इसपर ब्रह्मा ने रावण का हाथ पकड़ लिया और कहा, " तुमने मुझे मेरा इच्छित माँगने को कहा है ।" रावण ने कहा– "तो माँग लो ।" ८६ ब्रह्मा ने कहा–"तो हे रावण, ये दोनों वधू और वर मुझे दे डालो ।" (यह सुनकर) मन्दोदरी बोली–"अब सचमुच अपना वचन असत्य न सिद्ध करो । प्राण जा रहे हों, जाने दें, लेकिन अपने वचन को झूठा न होने दें ।" इसका वध करने पर यहीं भयानक विघ्न अभी ही उत्पन्न होगा; (यह जानकर) बुद्धि के प्रवर्तक भगवान् ने ब्रह्मा से कहा–"इसे फ़ौरन ले जाओ ।" तब वह उस पेटी को उठकर यकायक अयोध्या में ले आया । ८७-८९ तब अयोध्या में जयघोष हो गया । वहाँ (शची का पति) इन्द्र झट से आ पहुँचा और उसने दशरथ पर छत्र धर रक्खा । इस प्रकार भगवान् की करनी विचित्र होती है । ९० दशरथ को राज्य (की गद्दी) पर प्रतिष्ठित

दशरथ राज्यीं स्थापून। विधि आणि सहस्रनयन। वेगें पावले स्वस्थान। आनंदें मनीं उचंबळले। ९१ पुष्पकीं बैसोनि जातां दशकंदर। एक देवस्त्री देखिली सुंदर। तिचा बळेंचि धरिला कर। तिसीं अविचार करूं इच्छी। ९२ तंव ते आक्रंदत नितंबिनी। रावणें सोडिली तेचि क्षणीं। ती ब्रह्मयापासी जाऊनी। गाऱ्हाणें सर्व सांगत। ९३ रावणासी शापी सत्य-लोकवासी। परस्त्रीवर बलात्कार करिसी। तरी शतखंडें निश्चयेंसी। तुझे तनूचीं होतील। ९४ जैसा सिंह आडांत पडिला। कीं महाव्याघ्र सांपळयांत सांपडला। तैसा रावण बांधला। शापपाशें-करोनियां। ९५ रावण पाप करी दारुण। गांजिले गाई-ब्राह्मण। पृथ्वी आक्रंदली पूर्ण। गेली शरण ब्रह्मया। ९६ गाईच्या रूपें धरित्री। आक्रंदे विरिंचीच्या द्वारीं। प्रजा ऋषिगण ते अवसरीं। शरण आले विधातया। ९७ विधि बाहेर आला ते क्षणीं। तों समस्त सांगती गाऱ्हाणीं। रावणें यज्ञ टाकिले मोडोनी। सत्कर्म अवनीं चालेना। ९८

करके विधाता और इन्द्र शीघ्रतापूर्वक अपने-अपने स्थान जा पहुँचे। (इस समय) वे आनन्द से गदगद हो उठे थे। ९१

(एक दिन) पुष्पक विमान में विराजमान हो, जाते हुए रावण ने एक सुन्दर देवांगना को देखा। उसका बलपूर्वक हाथ पकड़कर उसने उस स्त्री के साथ बलात्कार करना चाहा। ९२ वह नितम्बिनी आक्रन्दन करने लगी, तो रावण ने उसे उसी क्षण छोड़ दिया। (तत्पश्चात्) उस स्त्री ने जाकर ब्रह्मा से शिकायत की। ९३ तब ब्रह्मा ने रावण को यह अभिशाप दिया—"यदि तुम पर-स्त्री के साथ बलात्कार करोगे, तो निश्चय ही तुम्हारे शरीर के शत-शत टुकड़े हो जाएँगे।" ९४ जिस प्रकार सिंह कुएँ में गिर कर फँस जाए, अथवा बड़ा बाघ कटघरे में फँस जाए, तो वह जैसे बन्दी—असहाय बन जाता है वैसे ही (ब्रह्मा ने) रावण को अभिशाप रूपी पाश में बाँध लिया। ९५

(इस प्रकार) रावण भयानक पाप किया करता था। इससे गो-ब्राह्मण उत्पीड़ित हो गये। समूची पृथ्वी व्याकुल हो गयी और ब्रह्मा की शरण में गयी। ९६ पृथ्वी गाय के रूप में ब्रह्मा के द्वार पर आक्रन्दन करती रही। सारे प्रजाजन और ऋषि (भी) उस समय विधाता की शरण में आये। ९७ उस समय विधाता बाहर आया, तो सब जनों ने (अपनी-अपनी) शिकायतें सुनायीं। (और कहा)—रावण ने यज्ञ उध्वस्त

एक म्हणे माझिया मखा। विघ्न करी नित्य ताटिका। एक म्हणे सुबाहु मारीच देखा। क्रतु माझा विध्वंसिती। १९९ एक सांगती ऋषीश्वर। आमुचीं कुटुंबें समग्र। कुंभकर्णें ग्रासिलीं थोर। अनर्थ मांडिला विधातया। २०० त्रिदश आणि पुरंदर। म्हणती बंदी पडले समग्र। कोणासी नाटोपे दशकंधर। काय विचार करावा। २०१ मग देव प्रजा ऋषिगण। मुख्य परमेष्ठी विष्णुनंदन। क्षीरसागरासी येऊन। अपार स्तवन मांडिलें। २०२ शेषशयन नारायण। कोटिसूर्यांची प्रभा पूर्ण। साठी सहस्र योजन। शेष तल्पक शुभ्र तो। २०३ लक्षार्ध योजनें प्रमाण। वरी पहुडला श्रीभगवान। तो सच्चिदानंद रमारमण। अलंकारें मंडित। ४ जे अनंत शक्तींची स्वामिणी। कमला विलसत चरणीं। जिच्या इच्छामात्रें करूनी। ब्रह्मांड हें विस्तारलें। ५ एक लक्ष योजनें देदीप्य। विराजमान मध्य मंडप। तेथींचें तेज पाहतां अमूप। मार्तंड शशी लोपती। ६ गरुडपाचूंचे जोतें

कर डालें। अब पृथ्वी पर कहीं सत्कार्य नहीं चल सकता। १९८ एक (ऋषि) ने कहा—मेरे यज्ञ में हमेशा ताड़का (नामक राक्षसी) विघ्न उपस्थित करती है। किसी एक ने कहा—देखो, सुबाहु और मारीच मेरे यज्ञ का विध्वंस किया करते हैं। १९९ किसी एक महान् ऋषि ने कहा—हमारे सब बड़े-बड़े परिवार कुम्भकर्ण ने निगल डाले; हे विधाता, उसने बहुत ही अनर्थ ठान लिया है। २०० उन्होंने कहा—सभी देव तथा (उनका राजा) इन्द्र (रावण के) कारागृह में पड़े हुए हैं। वह किसी के भी वश में नहीं हो रहा है। (इस स्थिति में) क्या (करना) सोचा जाए? २०१ तब देव, प्रजाजन, ऋषि गण और इन सबों में प्रमुख ब्रह्मा क्षीरसागर के पास आकर (भगवान् नारायण का) आर्त-भाव से स्तवन करने लगे। २०२ (वहाँ) शेषशायी भगवान् नारायण (विराजमान थे) जिनमें करोड़ों सूर्यों का तेज पूर्णतः व्याप्त था। उनके लिए साठ सहस्र योजन बिछा हुआ शेष रूपी शुभ्र पलंग था। २०३ आभूषणों से विभूषित, सच्चिदानन्द रमापति श्री भगवान् नारायण पचास सहस्र योजनों तक उसपर लेटे हुए थे। ४ जो लक्ष्मी अनन्त शक्तियों की स्वामिनी है, जिसकी इच्छा मात्र से यह ब्रह्माण्ड विस्तार को प्राप्त हो गया है, वही उसके चरणों के पास शोभायमान थी। ५ वहाँ मध्य भाग में एक लाख योजन विशाल देदीप्यमान मण्डप स्थित था। वहाँ का अनुपम तेज देखते ही (ध्यान में आता है कि) उसके सामने सूर्य-चन्द्र लुप्त हो जाएँगे। ६

स्वयंभ । वरी हिऱ्यांचे विशाळ स्तंभ । माणिकांचीं उथाळीं सुप्रभ । खालीं तोळंबे हिरियांचे । २०७ सुवर्णाचीं तुळवटें प्रचंडें । आरक्त रत्नांचे पसरिले दांडे । वरी किलच्या झळकती निवाडें । गरुडपाचूंचिया साजिऱ्या । ८ असो पैलतीरीं देव सकळी । उभे ठाकले बद्धांजुळी । म्हणती-पूर्णब्रह्म वनमाळी । भक्तपाळका सर्वेशा । ९ जय जय अनंत ब्रह्मांडनायका । वेदवंद्या वेदपाळका विश्वंभरा विश्वव्यापका । विश्वरक्षका जगद्गुरो । २१० पुराणपुरुषा परात्परा । पंकजलोचना पयोब्धिविहारा । परमात्मया परम उदारा । भुवनसुंदरा भवहृदया । ११ कर्ममोचका करुणाकरा । कैवल्यदायका कमळावरा । कर्मातीता कैटभ-संहारा । कनकवसना करुणाब्धे । १२ जय जय सकळदेव-पाळका । जय जय सकळचित्तचाळका । निर्विकारा निरुपाधिका । निर्गुणा निश्चळा निःसंगा । १३ केशवा हरी

वहाँ राजनील नामक रत्न का स्वयंनिर्मित चबूतरा था । उस पर हीरों के बने विशाल खम्भे थे । उनका ऊपरवाला आधार तेजस्वी माणिक रत्न का था और उनका नीचेवाला पेंदा हीरे का था । २०७ वहाँ सोने के प्रचण्ड शहतीर थे । लाल-से रत्नों के डण्डे फैले हुए थे और ऊपर तख्तों को जोड़ने के लिए बैठाये हुए राजनील रत्न के बड़े-बड़े टुकड़े अतिशय चमकते थे । ८

अस्तु । उस पार सभी देवता हाथ जोड़े खड़े हो गये । उन्होंने कहा–' हे पूर्ण ब्रह्म, वनमाली, भक्तों के पालक, सर्वेश भगवान्, (तुम्हारी जय हो) । ९ हे अनन्त, ब्रह्माण्ड-नायक, हे वेदों द्वारा वन्दनीय तथा वेदों के रक्षक, हे विश्वम्भर, विश्वव्यापी भगवान्, विश्वरक्षक, जगद्गुरु भगवान्, तुम्हारी जय हो । २१० हे सर्वश्रेष्ठ पुराण-पुरुष, कमलनेत्र, क्षीरसागर में विहार करनेवाले भगवान्, हे परम उदार परमात्मा, हे भुवनसुन्दर तथा संसार के लोगों के लिए हृदयस्वरूप भगवान्, (तुम्हारी जय हो ।) ११ हे कर्म से मुक्ति दिलानेवाले करुणाकर भगवान्, हे मोक्षदाता कमलापति भगवान्, हे कर्म से परे रहनेवाले फिर भी कैटभ नामक दैत्य का विनाश करनेवाले भगवान्, स्वर्ण के समान पीत वस्त्र के धारी, करुणा के सागर भगवान् (तुम्हारी जय हो ।) १२ हे सभी देवताओं के पालक, तुम्हारी जय हो । सब के चित्त का संचलन करने-वाले भगवान्, तुम्हारी जय हो । सब विकारों तथा उपाधियों से रहित हे भगवान्, हे निर्गुण, निश्चल, निःसंग भगवान्, तुम्हारी जय हो । १३

मुरमर्दना। रमावल्लभा मधुसूदना। सकळदुरितकानन-दहना। तमनाशना प्रतापसूर्या। १४ प्रळयसमुद्रीं तूं जनार्दन। विशाळ मीनरूप धरून। महादैत्य विदारून। वेदोद्धार तुवां केला। १५ परम विशाळ मंदराचळ। भेदीत चालिला पाताळ। तूं कूर्मरूप धरूनि घननीळ। पृष्ठी खालती दिधली। १६ हिरण्याक्ष दैत्य सबळ। कांखेसी घेऊन जातां भूमंडळ। वराहवेष तूं तमाळनीळ दानव सकळ मर्दिले। १७ दानवबाळक प्रह्लाद। त्यास तुझा अखंड छंद। मग करूनि स्तंभभेद। प्रगटलासी नरहरी। १८ इंद्राचे कैवारें बळी। तो तुवां घातला पाताळीं। त्याचे द्वारीं तूं वनमाळी। द्वारपाळ अद्यापी। १९ नसतां सेना रथ सेवक। फरशधर तूं भृगुकुलतिलक। तीन सप्तकें उर्वी निःशंक। निक्षत्री केली हरी त्वां। २२० आतां रावण कुंभकर्ण असुर। इहीं त्रिभुवन पीडिलें समग्र। भक्तकैवारी तूं सर्वेश्वर।

हे केशव, हरि, मुरारि, रमा-वल्लभ, मधूसूदन, हे सब के पापरूपी वन को जलानेवाले तथा (पाप रूपी) अँधेरे का नाश करनेवाले प्रताप रूपी सूर्य, तुम्हारी जय हो। १४ हे जनार्दन, प्रलय-समुद्र में तुमने विशाल (प्रचण्ड) मत्स्य का रूप धारण कर बड़े-बड़े दैत्यों का विनाश करके वेदों का उद्धार किया। १५ समुद्र-मन्थन के अवसर पर, अति प्रचण्ड मन्दर पर्वत (जो मथानी के रूप में प्रयुक्त था) पृथ्वी को भेद कर पाताल की ओर जब जाने लगा, तो हे घननील भगवान्, तुमने कूर्म (कुछुए) का रूप धारण कर उसके नीचे अपनी पीठ को आधार-रूप बनाया। १६ हिरण्याक्ष नामक दैत्य अति प्रबल था। भूमण्डल को बगल में दबा कर जब वह चला, तो तमालपत्र के समान नील शरीरधारी हे भगवान् तुम हीं वराह-रूप धारण किये हुए थे और तुमने ही सब दानवों को मसल डाला। १७ प्रह्लाद (हिरण्यकच्छपु नामक) दैत्य (-राज) का पुत्र था, जिसे तुम्हारा ही अविरल ध्यान था। (उसकी रक्षा के लिए) हे भगवान्, तुम ही खम्भे को भेदकर प्रकट हो गये। १८ इन्द्र का पक्षपात करते हुए, हे वनमाली, वलीराज को तुमने ही पाताल में खदेड़ डाला और उसके अब तक द्वारपाल बने हुए हो। १९ पास में सेना, रथ वा सेवकों के नहीं होने पर भी, हे हरि, तुमने ही इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय करके निर्भय बना दिया, अर्थात् हे भगवान्, वे भृगुवंश के तिलक परशुधर (परशुराम) तुम ही हो। २२० अब रावण और कुम्भकर्ण नामक राक्षस (उपस्थित) हैं। उन्होंने सम्पूर्ण तीनों

रक्षीं सत्वर दासांतें । २१ तों क्षीरसागरींहूनि अद्भुत । ध्वनि उठली अकस्मात । रविकुळीं राजा दशरथ । अवतार तेथें घेतों मी । २२ शेष होईल लक्ष्मण । भरत होईल पांचजन्य । सुदर्शन तोचि शत्रुघ्न । अवतार पूर्ण हे माझे । २३ जनकराजा मिथिलापुरीं । कमळा जाईल त्याचे उदरीं । तुम्ही देव एकसरीं । वानररूपें अवतारा । २४ शिव तो होईल हनुमंत । ब्रह्मा तो ऋक्ष जांबुवंत । धन्वंतरी तो सुषेण सत्य । अंगिरापति तो अंगद जाणिजे । २५ अदिति आणि कश्यप । तेंचि कौसल्या आणि दशरथ भूप । तेथें अवतरेल चित्स्वरूप । आत्माराम रघुवीर । २६ सुग्रीव तो जाणिजे मित्र । नळ तो अनळ साचार । नीळ अनिळअवतार । यम तोचि ऋषभ पैं । २७ ऐसी आज्ञा होतां समस्त । देव जयजयकारें गर्जत । आनंद न माय अंबरांत । गेले त्वरित स्वस्थाना । २८ श्रीरामकथा

लोक पीड़ित किये हैं । हे भक्तों के पक्षपाती सर्वेश्वर भगवान्, तुम अपने सेवकों-भक्तों की शीघ्र ही रक्षा करो । २१

तब अचानक क्षीरसागर में से एक अद्‌भुत ध्वनि उत्पन्न हुई (जो यह सूचित कर गयी कि)–सूर्यकुल के राजा दशरथ हैं । वहाँ मैं अवतार ग्रहण करूँगा । २२ (यह) शेष (नाग) लक्ष्मण बनेगा । (मेरा यह) पांचजन्य (नामक शंख) भरत हो जाएगा, (मेरा यह) जो सुदर्शन (चक्र) है, वही शत्रुघ्न (के रूप में उत्पन्न) हो जाएगा । ये सब मेरे पूर्ण अवतार होंगे । २३ मिथिलापुरी में राजा जनक हैं । (यह) लक्ष्मी उनके उदर (गर्भ) से उत्पन्न होगी और तुम सब देवता एक साथ ही वानर रूप में अवतीर्ण हो जाओ । २४ (वे) शिवजी हनुमान हो जाएँगे, ब्रह्माजी ऋक्ष (रीछों के) राजा जाम्बवान, धन्वन्तरी निश्चय ही सुषेण (वैद्य) हो जाएँगे । तारा के पति बृहस्पति को अंगद ही समझो । २५ अदिति और कश्यप ही कौसल्या और राजा दशरथ के रूप में उत्पन्न हुए हैं । उन्हीं के यहाँ चित्स्वरूप भगवान् राम अवतीर्ण हो जाएँगे । २६ सुग्रीव को सूर्य (का अवतार) समझो । अग्निदेव ही वस्तुत: नल और नील पवनदेव का अवतार हो जाएगा । यम ही ऋषभ के रूप में उत्पन्न होगा । २७

इस प्रकार की आज्ञा (प्राप्त) होने पर सभी देवताओं ने जयघोष का गर्जन किया । उनका आनन्द आकाश में भी नहीं समा रहा था । तत्पश्चात् वे अपने-अपने घर गये । २८

अति रसाळ। हेंचि मानससरोवर निर्मळ। तुम्ही चतुर श्रोते मराळ। बैसा सकळ एकपंक्तीं। २९ श्रीरामकथा करितां श्रवण। होय पापांचें सर्व खंडण। चिंतिले मनोरथ होती पूर्ण। भक्तिकरून वाचितां। २३० श्रोतयांसी पडतां विघ्न। श्रीराम निवारित स्वयें आपण। सर्व काल रामचरणीं लीन। असतां भवबंधन चुकेल। २३१ ब्रह्मानंदा आत्मयारामा। भक्तकामकल्पद्रुमा। श्रीधरवरदा पूर्णब्रह्मा। अक्षय अनामा अभंगा। २३२ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकिनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। द्वितीयाध्याय गोड हा॥ २३३॥ श्रीरामचंद्रार्पणमस्तु॥

श्रीराम की कथा अतीव रस-भरी है। वह मानो निर्मल मानस सरोवर है और तुम चतुर श्रोता जन राजहंस हो। सब एक पंक्ति में विराजमान हो जाओ। २९ श्रीराम की कथा का श्रवण करने से सब पापों का विनाश होता है और भक्ति-पूर्वक उसका पठन करने से सब इच्छित मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। २३० श्रोताओं के जीवन में विघ्न उपस्थित हो, तो श्रीराम स्वयं उसे दूर करते हैं। सर्वकाल राम के चरणों में लवलीन रहने पर लोगों के भव-बन्धन (सांसारिक पाश) दूर हो जाएँगे—सदा के लिए टूट जाएँगे। २३१ गुरु ब्रह्मानन्द (जो वस्तुतः) आत्मस्थ भगवान् राम, भक्तों की इच्छा को पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष ही हैं, जो अक्षय, अनाम एवं अभंग पूर्ण ब्रह्म हैं, श्रीधर कवि के वरदाता हैं (उन्हें नमस्कार है)। २३२

स्वस्ति। वाल्मीकि नाटक पर आधारित एवं उससे सम्मत इस श्रीरामविजय नामक सुन्दर ग्रन्थ का श्रवण चतुर भक्त नित्य श्रवण करें। उसका यह द्वितीय अध्याय मधुर है। २३३ ॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३

श्रीगणेशाय नमः । तुम्ही संत श्रोते भाविक । कविमुद्रारत्न-परीक्षक । श्रोता देखोनि मृगांक । वक्ता सोमकांत पाझरे । १ तुम्ही बोधसमुद्रींचीं मुक्तें पवित्रें । कीं चैतन्यनभींचीं दिव्य नक्षत्रें । कीं वैराग्यवनींचीं सुमनें विचित्रें । संतरूपें विकासलीं । २ निवडलीं रामकथामृतपात्रें । कीं ज्ञानभरित पिकलीं क्षेत्रें । कीं भजनपंथींचीं सरोवरें । संतरूपें भरलीं हो । ३ कीं भवजलदजाल-प्रभंजन । अज्ञानतिमिर-च्छेदक चंडकिरण । जो कां मदगजविदारक पंचानन । मत्सरकाननदहन जो । ४ रामविजय ग्रंथ वैरागर । साहित्यरत्नें निघती अपार । हीं तुम्हीं अंगीकारावीं वारंवार । कासयासी प्रार्थावें । ५ कमळ-कोशींचा मकरंद बरा । हें नलगे सांगावें भ्रमरा । राजहंसासी घे मुक्तचारा । ऐसें किमर्थ प्रार्थावें । ६ शीतळ होई चंद्रमंडळा । कासया सांगावें वेळोवेळां । मित्रासी प्रकाश आगळा । पाडीं

तुम भक्तिशील सन्त श्रोता कवि के कृतित्व रूपी (अंगूठी में बैठाये हुए) रत्न के पारखी हो । श्रोता रूपी चन्द्रमा को देखकर वक्ता रूपी चन्द्रकान्त (नामक रत्न) द्रवित हो जाता है । १ तुम आत्मज्ञान रूपी समुद्र में उपलब्ध होनेवाले पवित्र (विशुद्ध) मोती हो, अथवा चैतन्य रूपी आकाश के दिव्य तारे हो, अथवा वैराग्य रूपी वन में विकसित होने वाले अद्‌भुत पुष्प, तुम सन्तों के रूप में (यहाँ) विकसित हो गये हैं । २ सन्त रामकथा रूपी अमृत से परिपूर्ण चुने हुए (चुनिन्दा) पात्र ही हैं, अथवा वे पनपी हुई एवं परिपक्व ज्ञान रूपी फसल के क्षेत्र ही हैं, अथवा भजन (अर्थात् भक्ति-उपासना) मार्ग पर स्थित वे सरोवर हैं जो सन्तों के रूप में भरेपूरे हो गये हैं । ३ यह रामविजय ग्रन्थ संसार के (अज्ञान रूपी) मेघजाल को तितर-बितर कर हटा देनेवाला प्रभंजन (तेज हवा) ही है; अथवा वह अज्ञान रूपी अँधेरे का नाश करने वाली (सूर्य की) प्रखर किरण ही है; अथवा मद रूपी हाथी का विदारण करने (फाड़ डालने) वाला सिंह ही है; अथवा मत्सर रूपी वन को जलाने वाली आग ही है । ४ यह रामविजय ग्रन्थ हीरों की खान है । इसमें से साहित्य रूपी अनगिनत रत्न निकलते हैं । तुमसे बारबार यह प्रार्थना किसलिए करें कि इन्हें तुम स्वीकार करो ? ५ कमलकोश का मधुरस अच्छा होता है, यह भ्रमर से कहना नहीं पड़ता । राजहंस से यह प्रार्थना किसलिए करें कि (तुम) यह मोतियों रूपी चारा लो ? ६ चन्द्र-मण्डल से समय-

कासया म्हणावें । ७ संतांसी धरा क्षमा शांती । ऐसें वदे तोचि मंदमती । प्रेमळासी करी भक्ती । सांगावें नलगेचि हें । ८ तैसें पंडित तुम्ही ज्ञानघन । करा सुरस रामकथाश्रवण । हें वारंवार म्हणतां दूषण । वक्तयासी झगटेल । ९ असो पूर्वाध्यायीं कथा निश्चितीं । सांगितली रावणाची उत्पत्ती । कौसल्या दशरथ अयोध्येप्रती । नेऊनि विधीनें स्थापिलीं । १० सूर्यवंशभूषण अद्भुत । अयोध्यापती राजा दशरथ । ज्याची पट्टराणी विख्यात । कुशल बहुत कौसल्या । ११ सुमित्रा कैकयी स्वरूपवंत । दोघींस वरी राव दशरथ । आणिक सातशें परिणीत । भोगांगना सुंदरा । १२ ज्ञानकळा कौसल्या सती । सुमित्रा केवळ सद्भक्ती । कैकयी ते कपटप्रकृती । रजतमयुक्त सर्वदा । १३ केवळ विवेक मूर्तिमंत । तोचि अजसुत दशरथ । जो परमयोद्धा रणपंडित । धनुर्विद्या सर्व जाणे । १४ अंधारामाजी शब्द उठतां । तेथेंचि बाण मारी अवचिता । धन्य त्याची हस्तकुशलता । वीर दशरथा ऐसा

समय पर यह किसलिए कहें कि तुम शीतल हो जाओ । सूर्य से क्यों कहें कि तुम अनोखा प्रकाश (उत्पन्न) करो ? ७ जो सन्तों से कहता है कि तुम क्षमा और शान्ति को धारण कर (अपना) लो, वही मन्दमति (मूर्ख) है। श्रद्धालु से यह कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती कि तुम भक्ति करो । ८ उसी प्रकार, 'तुम सुरस से भरी पूरी रामकथा का श्रवण करो'–यह तुम पण्डितों और ज्ञान रूपी घनों से बारबार कहने में वक्ता को ही दोष लगेगा (चिपक जाएगा)। ९

अस्तु । पिछले अध्याय में निश्चय ही रावण के जन्म की कथा कही और यह भी बताया गया कि ब्रह्मा ने कौसल्या और दशरथ को अयोध्या में ले जाकर प्रतिष्ठित कर दिया । १० सूर्य-वंश के अद्‌भुत भूषण राजा दशरथ अयोध्या के अधिपति थे; उनकी पटरानी कौसल्या बहुत विख्यात और चतुर थी । ११ राजा दशरथ ने सुमित्रा और कैकेयी (नामक) दो रूपवती स्त्रियों का (भी) वरण किया । इनके अतिरिक्त उनके सात सौ विवाहिता सुन्दर भोगांगनाएँ (भोग्य स्त्रियाँ) थीं । १२ सती कौसल्या (मानो) ज्ञान की कला (अथवा कांति) थी; सुमित्रा वस्तुत: सद्‌भक्ति ही (अवतरित) थी । कैकेयी वह छल-कपटवाली प्रकृति ही थी, जो नित्य राजस और तामस गुणों से युक्त रहती है । १३ मूर्तिमान विवेक ही अजराजा का पुत्र दशरथ था । वह श्रेष्ठ योद्धा, युद्ध विद्या का पण्डित था तथा समस्त धनुर्विज्ञान को जानता था । १४ अंधकार में (भी) शब्द

नसे। १५ परी पोटीं नसे पुत्रसंतान। तेणें राजेंद्र असे उद्विग्न। पुत्राविण शून्य सदन। बोलती शास्त्रज्ञ पंडित। १६ शरीर जैसें प्राणाविण। तारुण्याविण पंचबाण। दयेविण व्यर्थ ज्ञान। शांतिवांचून वैराग्य। १७ संपत्ति जैसी धर्मेंविण। पंडितावांचून सभासदन। कीं करणीविण व्यर्थ ज्ञान। दीपेंविण मंदिर जेवीं। १८ कीं वेदांतज्ञानावांचून। कोरडी व्युत्पत्ति व्यर्थ ज्ञान। कीं सत्पात्रावांचून दान। कीं स्नेहेंविण बंधु जैसा। १९ कीं जळेंविण वापिका। कीं नृपाविण नगर देखा। कीं नासिका-विण मुखा। शोभा जैसी न येचि। २० कीं फळेंविण तरुवर। कीं रामस्मरणविण मंदिर। तैसा पुत्राविण वंश पवित्र। सर्वथा पावन नव्हेचि। २१ असो राजा दशरथ। संततीलागीं चिंताक्रांत। सदा विपिनें गहन हिंडत। मृगयामिषेंकरो-नियां। २२ नावडे छत्रसिंहासन। नावडे चातुर्यकळा गायन।

(ध्वनि) के उठने—सुनायी देने पर, उसी लक्ष्य पर वह एकदम बाण चलाता। धन्य है उसका हस्त-कौशल ! दशरथ के समान कोई दूसरा वीर पुरुष नहीं था। १५ फिर भी उसके कोई पुत्र नहीं था। इससे वह श्रेष्ठ राजा उद्विग्न (दुखी) था। शास्त्रों के ज्ञाता पण्डित कहते हैं कि पुत्र के बिना घर शून्य होता है। १६ जिस प्रकार बिना प्राणों के शरीर शून्य (व्यर्थ) होता है, जैसे यौवन के अभाव में काम (भाव), दया के अभाव में ज्ञान और शान्तिहीन वैराग्य अर्थहीन हो जाता है; जैसे धर्म के विना सम्पत्ति, पण्डितों के अभाव में सभागृह, (सद्) आचार के अभाव में ज्ञान और विना दीपक के मन्दिर व्यर्थ हो जाता है अथवा जैसे वेदान्त-ज्ञान के अभाव में व्युत्पन्नता (पाण्डित्य) कोरा (अर्थात् व्यर्थ) और ज्ञान निरर्थक होता है अथवा जैसे सत्पात्र के अभाव में दिया दान और स्नेह-हीन बन्धु व्यर्थ है; अथवा देखो, जैसे जल-हीन कुआँ और राजा के अभाव में नगर व्यर्थ होता है, वैसे ही पुत्र के अभाव में घर व्यर्थ होता है। अथवा नाक न हो तो मुख में शोभा नहीं होती, वैसे ही पुत्र न हो तो घर की सुन्दरता नहीं रहती। अथवा फलहीन वृक्ष और राम नाम के स्मरण से हीन मन्दिर व्यर्थ होता है, वही बात पुत्र-हीन गृह के विषय में होती है। अर्थात् कुल (वंश) के शुद्ध होने पर भी, पुत्र के अभाव में वह बिलकुल पवित्र नहीं रहता। १७-२१ अस्तु। सन्तान के अभाव में चिन्तातुर राजा दशरथ शिकार के बहाने हमेशा गहन वन में विचरण करता रहता। २२

बहुत केले प्रयत्न। परी संतान नव्हेचि। २३ तों दशरथें स्वप्न देखिलें। दोघे पुरुष आपण वधिले। आणि एके स्त्रियेसी मारिलें। अपराधेंविण तत्त्वतां। २४ गजबजोनि उठिला त्वरित। कोणासीं न बोले मूकवत। वसिष्ठगृहास जाऊन त्वरित। नमोनि स्वप्न सांगतसे। २५ गुरु बोले हें दुष्ट स्वप्न। तीन श्वापदें येईं वधोन। मग याची शांति करून। दोषनिवारण करावें। २६ गुरुआज्ञेनें ते दिवसीं। राजेंद्र निघाला मृगयेसी। वासरमणि गेला अस्तासी। परी श्वापद न सांपडे। २७ पडला अत्यंत अंधकार। एकला हिंडे नृपवर। धनुष्यासी लावूनि शर। शोधी कांतार तेधवां। २८ तों एका सरोवराचे तीरीं। राजा गुप्त बैसे वृक्षावरी। कानाडी ओढूनि ते अवसरीं। कर्णीं ऐके सांचोल। २९ तों ते मार्गीं श्रावण। आला मायबाप घेऊन। दिवसा बहुत विघ्नें आणि उष्ण। म्हणोनि रात्रीं गमन करी। ३० दोघें वृद्धें

उसे छत्र और सिंहासन अच्छे नहीं लगते थे; उसे कला-कौशल एवं गायन भी नहीं भाता था। उसने बहुत यत्न किये, लेकिन उसके कोई सन्तान नहीं हुई। २३ तब (एक दिन) दशरथ ने एक स्वप्न देखा, जिसमें उसने (देखा कि उसने) स्वयं दो पुरुषों का वध किया और एक स्त्री को (भी) मार डाला—और यह भी वस्तुतः बिना उनके किसी अपराध के। २४ (इस स्वप्न के देखते ही) राजा चौंककर झट् से उठ पड़ा; किसी गूँगे की भाँति वह किसी से नहीं बोला और शीघ्रता से गुरु वसिष्ठ के घर जाकर उसने उनका नमन करते हुए उन्हें अपना स्वप्न बताया। २५ (इस पर) गुरु ने कहा—'यह स्वप्न दुष्ट (अशुभ) है। तुम तीन श्वापदों (हिंसक पशुओं) का वध कर आओ और तदनन्तर शान्ति (नामक विधि सम्पन्न) करके इसके दोष का निवारण किया जाए। २६ गुरु की आज्ञा से वह राजश्रेष्ठ उस दिन शिकार के लिए निकल गया। सूर्य का अस्त हो गया। फिर भी (उस दिन शिकार के लिए) कोई श्वापद नहीं मिला। २७ घना अँधेरा हो गया। (फिर भी) धनुष में बाण लगाये हुए, उस समय वह महान राजा अकेला घूमता हुआ, वन में मृगया के लिए (पशु) खोज रहा था। २८ तब (अन्त में) एक सरोवर के तट पर (स्थित) वृक्ष पर वह गुप्त रूप में (छिपकर), कान तक धनुष की डोरी को खींचे हुए बैठ गया। उस समय उसने (कान से) आहट सुनी। २९ इस समय अपने माता-पिता को लेकर श्रवण उस मार्ग से आ गया।

खांदीं घेउनी । श्रावण तीर्थें हिंडे मेदिनीं । त्या सरोवराचे तीरीं येउनी । उभा राहिला नावेक । ३१ तों तीं वृद्धें म्हणती श्रावणा । आम्हां करवीं उदकपाना । ऐकतां ऐसिया वचना । कावड खालीं ठेविली । ३२ हातीं कमंडलु घेऊन । जीवनांत प्रवेशला श्रावण । दशरथें सांचोल ऐकोन । निर्वाणबाण सोडिला । ३३ सपक्ष बाण हृदयीं भेदला । हातींचा कमंडलु खालीं पडला । देह भूमीवरी टाकिला । प्राण चालिला श्रावणाचा । ३४ म्हणे कोणे सभाग्याचा बाण । करीत आला रामस्मरण । हृदय निवालें संपूर्ण । केलें पावन मजलागीं । ३५ ऐकोनि मनुष्याचें वचन । नृपवर जवळी आला धांवोन । तंव तो पडिलासे श्रावण । रामस्तवन करीतचि । ३६ मग म्हणे कर्म पापकारी । पडली हत्या मजवरी । श्रावण म्हणे राया न करीं । खेद कांहीं सर्वथा । ३७ माझीं मायबापें वृद्धें दीन । तयांसी करवीं उदकपान । मग मी सोडीन प्राण । सत्य

दिन में बहुत बाधाएँ आती हैं, गर्मी बहुत होती है, इसलिए वह रात में यात्रा किया करता । ३० अपने दोनों बूढ़े माता-पिता को कंधे पर (काँवर में) बैठाकर श्रवण पृथ्वी (तल) पर तीर्थ-क्षेत्रों में घूमा करता । वह उस सरोवर के तट पर आकर क्षण भर खड़ा रहा । ३१ तो उन बूढ़ों ने श्रवण से कहा, 'हमें पानी पिलाओ ।' ऐसी बात को सुन कर उसने काँवर को नीचे (धरती पर उतार) रक्खा । ३२ और हाथ में कमण्डल लिये हुए श्रवण पानी में घुसा, तो दशरथ ने आहट सुनकर (एक) तीक्ष्ण बाण चलाया । ३३ पर-सहित (वह) बाण उस (श्रवण) के हृदय में घुस गया, तो कमण्डल हाथ में से नीचे गिर पड़ा । उसने देह को ज़मीन पर गिरा दिया (उसकी देह लुढ़क गयी) । श्रवण के प्राण निकला ही चाहते थे । ३४ वह बोला, 'यह किस भागवान् का बाण है जो (मेरे) राम (नाम) का स्मरण करते हुए आया (आ लगा) है; मेरा हृदय पूर्णतः शान्त हुआ । उसने मुझे पावन किया है ।' ३५ मनुष्य के वचन को सुनकर राजा (दशरथ) उसके पास दौड़ते हुए आ गया, तो (उसने देखा कि) राम का स्तवन करते हुए श्रवण पड़ा (हुआ) है । ३६ तब (राजा ने) कहा—'यह पापकारी कर्म है । मुझे (मनुष्य) हत्या का दोष लग गया ।' इसपर श्रवण बोला, 'राजन्, इसका ज़रा भी खेद न करो । ३७ मेरे माता-पिता वृद्ध और असहाय हैं, उन्हें तुम पानी पिलाओ, तो मैं (सुखपूर्वक) प्राणों का त्याग करूँगा; राजन्, इसे सत्य समझो । देखो,

जाण राजेंद्रा । ३८ दोघें वृद्धें अत्यंत पाहीं । त्यांचे सेवेसी कोणी नाहीं । दशरथ गहिंवरला हृदयीं । शोकाकुलित जाहला । ३९ श्रावण म्हणे दशरथा । उदक दोघां पाजून त्वरिता । मग हे सांगावी वार्ता । नाहीं तरी प्राण त्यागिती । ४० उदक नेतां अयोध्याराणा । वृद्धें म्हणती-बा रे श्रावणा । तंव तो न बोलेचि वचना । कांहीं केलिया सर्वथा । ४१ कां रे श्रावणा न बोलसी । उदक मागितलें येवढे निशीं । बा रे म्हणोन कोपलासी । शिणलासी पाडसा । ४२ उदयाचळीं मावळेल मित्र । शेष सांडील भूमिभार । तीव्र तपेल रोहिणी-वर । तरी क्रोध अणुमात्र न ये तूतें । ४३ जैसें गंगेचें निर्मळ जीवन । तैसें श्रावणा तुझें मन । तान्हया कां रे न बोलसी वचन । राजा ऐकोनि गहिंवरे । ४४ मग अजराजपुत्र बोलिला । म्यां अवचितां श्रावण वधिला । तंव तिहीं धरणी-वर देह टाकिला । प्राण जाहला कासाविस । ४५ आठवोनि श्रावणाचे गुण । दोघें आक्रंदती दीनवदन । ऐसा पुत्र हें

वे दोनों बहुत वृद्ध हैं। उनकी सेवा के लिए (अब) कोई नहीं है।' (यह सुनकर) दशरथ (हृदय में) गद्‌गद हो उठा और शोक से व्याकुल हो गया। ३८-३९ (फिर) श्रवण ने कहा, 'दशरथ महाराज, उन दोनों को जल्दी ही पानी पिलाकर बाद में यह समाचार कहो, नहीं तो वे प्राणों को त्याग देंगे।' ४० दशरथ के पानी ले जाने पर (उन) वृद्ध व्यक्तियों ने कहा–'बेटा श्रवण !' तो वह राजा बहुत कुछ करने पर भी बिलकुल नहीं बोला। ४१ (वे फिर बोले) 'श्रवण बेटा, तू क्यों नहीं बोल रहा है ? इतनी रात में पानी माँगा, इसलिए (जान पड़ता है) तू क्रुद्ध हुआ; वत्स, तू बहुत थक गया। सूर्य का उदयाचल पर भी अस्त होगा, शेष पृथ्वी के बोझ को उतार डालेगा, रोहिणी-पति चन्द्रमा प्रखरता से तप्त हो जाएगा; (अर्थात् ये बातें असम्भव हैं, फिर भी वे घटित हो जाएँगी) लेकिन तुझे अल्प-सा भी क्रोध नहीं आएगा। गंगा का पानी जैसा निर्मल है, वैसे ही श्रवण, तेरा मन स्वच्छ (विकार-हीन) है। बच्चा, तू कोई बात क्यों नहीं बोलता?' यह सुनकर राजा गद्‌गद हो गया। ४२-४४ तब अजराजा के पुत्र दशरथ ने कहा—'मैंने अचानक (अनपेक्षित रूप में–अनजाने में) श्रवण का वध किया।' (यह सुनते ही) उन्होंने धरती पर देह गिरा दी। उनके प्राण व्याकुल हो गये। ४५ श्रवण के गुणों का स्मरण कर वे दोनों मलिन मुख से क्रन्दन करने लगे।–'आह ! तीनों

त्रिभुवन। शोधितांही न सांपडे। ४६ अहा रे पुत्रा श्रावणा। गंभीरा गुणनिधाना। आमुचे प्राण करिती प्रयाणा। श्रावणा वदन दावीं कां। ४७ या ब्रह्मांडमंडपांत। श्रावणाऐसा नाहीं सुत। जैसीं लक्ष्मी आणि वैकुंठनाथ। तैसीं भावित माता-पिता। ४८ जो न करी मातृपितृ-भजन। जळो तयाचें ब्रह्म-ज्ञान। तो षट्शास्त्रें आला पढून। तरी त्याचें दर्शन न व्हावें। ४९ त्याचें जप तप अनुष्ठान। दान अध्ययन श्रवण मनन। कळा चातुर्य व्यर्थ ज्ञान। जैसें भाषण मद्यपियाचें। ५० तेणें अभ्यासिल्या चौसष्टी कळा। त्या अवघ्याचि जाहल्या विकळा। जयासी मातापित्यांचा कंटाळा। त्या चांडाळा न शिवावें। ५१ माता पिता गुरु देव जाण। चारही दैवतें समसमान। तोचि परम ज्ञाता जाण। न मोडी वचन श्रेष्ठांचें। ५२ म्हणोनि पुत्र एक श्रावण। आठवूनि तयाचे गुण। दोघें पडलीं मूर्च्छा येऊन। जावया प्राण एकवटले। ५३ मग तीं शाप देती प्राण जातां। म्हणती तुझाही पुत्र पुत्र करितां।

भुवनों में खोजने पर भी ऐसा पुत्र नहीं मिलेगा। हाय! बेटा श्रवण! हे गम्भीर! हे गुण-निधान! हमारे प्राण (अब) प्रस्थान कर रहे हैं, तो तू अपना मुँह तो दिखा न!' ४६-४७ इस ब्रह्माण्ड रूपी मण्डप में श्रवण जैसा पुत्र नहीं है। वह अपने माता-पिता की लक्ष्मी-नारायण की-सी भक्ति करता था। ४८ जो (पुत्र) माता-पिता की भक्ति नहीं करता, (ब्रह्मज्ञानी होने पर भी) उसका ब्रह्मज्ञान जलकर खाक हो जाए। यदि वह छहों शास्त्रों को पढ़कर भी आया हुआ हो, तो भी उसके दर्शन न हो जाएँ। ४९ उसका जप, तप, अनुष्ठान, दान, अध्ययन, (शास्त्रों-सद्ग्रन्थों का) श्रवण, मनन, कला (का प्रावीण्य), चातुर्य, ज्ञान—यह (सब) वैसे ही व्यर्थ है, जैसे शराबी का बोलना (व्यर्थ) माना जाता है। ५० उसने चौसठ कलाओं का अभ्यास भी किया हो, वे सब विकल (व्यर्थ) हो जाती हैं। जिसे माता-पिता के प्रति उकताहट (उदासीनता) है, उस चाण्डाल को छुएँ तक नहीं। ५१ मान लो कि माता, पिता, देव और गुरु—ये चारों देवता सम-समान हैं। जो इन श्रेष्ठों (गुरुजनों) के वचन को नहीं टालता, उसे ही परम ज्ञानी समझो। ५२ (श्रवण ऐसा ही श्रेष्ठ पुत्र था।) इसलिए अपने ऐसे (गुणवान्) इकलौते पुत्र के गुणों का स्मरण करते हुए वे दोनों अचेत हो पड़े। उनके प्राण निकल जाने को इकट्ठा हो गये। ५३ तदनन्तर प्राणों के निकलते-निकलते उन्होंने शाप देते हुए कहा—"हे दशरथ,

प्राण जाईल रे दशरथा। आम्हांऐसाचि तत्काळ। ५४ मग तिहीं सोडिला प्राण। रायें केलें तिघांचें दहन। उत्तर-कार्य संपादून। अयोध्येसी परतला। ५५ मनांत हर्ष मानी नृपवर। मज शाप जाहला तो केवळ वर। यांचे शापें तरी पुत्र। हो कां सत्वर मजलागी। ५६ अयोध्येसी आला दशरथ। वसिष्ठासी सांगितला वृत्तांत। पुढें द्वादश वर्षेंपर्यंत। दुष्काळ पडला पृथ्वीवरी। ५७ न वर्षे कदा बलाहक। अत्यंत तीव्र तपे अर्क। धान्य तृण जीवन सकळिक। नाहीं निष्टंक पृथ्वीवरी। ५८ गायी ब्राह्मण पीडिले बहुत। दैत्यगुरु परम कापट्यवंत। तेणें जलद आकर्षिले समस्त। वृष्टि एकाक्ष होऊं नेदी। ५९ वृष्टि जाहलिया परिपूर्ण। सुखी होतील गोब्राह्मण। ते करितील महायज्ञ। सुरांस पूर्ण बळ तेणें। ६० वृषपर्वा दैत्येंद्र थोर। त्यासी साह्य जाहला शुक्र। निर्जरभारां-सहित शक्र। युद्ध करीत तयासीं। ६१ बहुत दिवस जाहला संग्राम। परी शुक्र कपटी पूर्ण परम। मेघ वर्षों नेदी अधम।

हमारी भाँति 'पुत्र', 'पुत्र' कहते-कहते ही तुम्हारे प्राण तत्काल निकल जाएँगे-।" ५४ फिर उन्होंने प्राण त्याग दिये। राजा ने उन (तीनों) का दाह-संस्कार किया और उत्तर-क्रिया पूर्ण करके वह अयोध्या (में) लौट आया। ५५ राजा मन-ही-मन हर्ष मानता (अनुभव करता) था। यह शाप मेरे लिए वर मात्र हो गया है। --इनके शाप से ही क्यों न हों, शीघ्र ही मेरे पुत्र (उत्पन्न) हो जाएँ। ५६ दशरथ अयोध्या में (लौट) आया और उसने वसिष्ठ को समाचार सुनाया। तदनन्तर बारह वर्ष तक पृथ्वी पर अकाल (सूखा) पड़ गया। ५७

(इस अवधि में) बादल कभी भी नहीं बरसे। सूर्य अत्यन्त प्रखरता से तपता था। सब अनाज, घास, पानी--पृथ्वी पर बिलकुल नहीं रहा। ५८ गायें और ब्राह्मण बहुत पीड़ित हो गये। दैत्यों का गुरु (शुक्र) अति कपटी था। उसने सभी बादलों को आकृष्ट किया और वह एकाक्ष (एक आँख वाला) वर्षा नहीं होने देता था। ५९ (क्योंकि उसने सोचा,) यदि पर्याप्त वर्षा हो जाए, तो गो-ब्राह्मण सुखी हो जाएँगे, वे महायज्ञ (सम्पन्न) करेंगे--उससे देवों को पूर्ण शक्ति प्राप्त होगी। ६० वृषपर्वा (नामक) दैत्यों का बड़ा राजा था। शुक्र उसका सहायक हो गया। उससे देवों के दलों सहित इन्द्र युद्ध कर रहा था। ६१ बहुत दिन तक युद्ध हुआ; फिर भी (वह) पूर्णतः कपटी अधम शुक्र मेघों को बरसने नहीं

सुत्रामा चिंताक्रांत बहुत । ६२ वज्रधरासी म्हणे अंगिरासुत । अयोध्येचा राजा दशरथ । तो प्रतापार्क रणपंडित । जिंकील दैत्य क्षणमात्रें । ६३ मग मातली आणी विजयरथा । मूळ पाठविलें दशरथा । मातली सांगे समूळ वार्ता । अनावृष्टि-कारणें जे । ६४ ऐकोनि दैत्यप्रताप अद्भुत । तत्काळ रथीं बैसला दशरथा । तों कैकयी रायास प्रिय अत्यंत । काय बोलत तेधवां । ६५ म्हणे मी समागमें येईन । आणि संग्राम तुमचा पाहीन । राजा म्हणे-तूं सुकुमार पूर्ण । युद्धकंदन ते स्थानीं । ६६ येरी म्हणे तुम्ही जवळीं असतां । मज भय नाहीं सर्वथा । ऐसे तिचे बोल ऐकतां । घेतली रथावरी तेधवां । ६७ निराळमार्गें रथ ते वेळीं । घेऊनि जात चपळ मातली । देवदैत्यांच्या रणमंडळीं । रथ अकस्मात उतरला । ६८ वैकुंठींहूनि विनतासुत । क्षीराब्धितटीं उतरे अकस्मात । तैसा राजा दशरथ । सुरसमुदायांत उतरला । ६९ अजपुत्र दखोनि

देता था। (इससे) इन्द्र बहुत चिन्तातुर हो गया। ६२ तो गुरु बृहस्पति ने इन्द्र से कहा, 'अयोध्या का राजा दशरथ (मानो) प्रताप का सूर्य है। वह युद्ध (कला) का पण्डित है। वह क्षण मात्र में दैत्यों को जीतेगा।' ६३ इस पर इन्द्र ने मातली (नामक अपने सारथी) को और विजय नामक रथ को दशरथ के पास (उसे लिवा लाने के लिए) निमंत्रक दूत के रूप में भेजा। मातली ने दशरथ को शुरू से वार्ता सुनायी, जिससे अकाल (सूखा) पड़ा हुआ था। ६४ दैत्यों के इस अद्‌भुत प्रताप को सुनकर राजा दशरथ तत्क्षण रथ में विराजमान हो गया, तो उसकी अत्यन्त प्रिय रानी (कैकेयी) उससे क्या कहती है? ६५ वह बोली–'(महाराज,) मैं (आपके) साथ आऊँगी और आप का युद्ध (कौशल) देखूँगी।' तो राजा ने कहा–'तुम पूर्ण (अतीव) कोमल हो और उस स्थान पर तो युद्ध (तथा विनाश) है।' ६६ इस पर उस (स्त्री) ने कहा—'(महाराज,) आपके (मेरे) पास होने पर मुझे बिलकुल भय नहीं है।' तब उसका ऐसा कथन सुनकर राजा ने उसे रथ में (बैठा) लिया। ६७ उस समय मातली रथ को आकाश मार्ग से चपलता पूर्वक ले गया; देवों-दैत्यों की संग्राम-भूमि में वह रथ अकस्मात उतर पड़ा। ६८ विनता का पुत्र गरुड़ जैसे वैकुण्ठ-लोक से क्षीर-समुद्र के तट पर यकायक उतरता है, वैसे ही राजा दशरथ देवों के समूह के मध्य उतर पड़ा। ६९ दशरथ को देखकर इन्द्र ने प्रेमपूर्वक उसका आलिंगन

पाकशासन। देता जाहला क्षेमालिंगन। दशरथ धनुष्य चढवून। उभा ठाकला रणांगणीं। ७० बाणापाठीं बाण सोडित। जैसे शब्दामागें शब्द येत। कीं मेघ धारा वर्षत। शर सोडित त्याच रीतीं। ७१ जैशा मेघाबाहेर निवडोनी। निघती कल्पांतसौदामिनी। तैसा एकेक बाण तूणीरांतुनी। ओढोनि काढी दशरथ। ७२ दैत्यांचीं शिरें अकस्मात। गगनीं उडती असंख्यात। जैसे वृक्षावरोनि पक्षी उडत। प्रातःकाळीं एकदांचि। ७३ माघारले दैत्यभार तेव्हां। तों पुढें आला वृषपर्वा। कपटकळा युद्धमावा। नाना प्रकारें दावित। ७४ परी दशरथबाणसामर्थ्य। कापटयविद्या न चले तेथ। जैसें मूर्खाचें वाग्जाळ समस्त। उच्छेदी पंडित एकशब्दें। ७५ जैसा मंत्रवादी महामती। त्यापुढें भूतचेष्टा न चालती। तैशा दशरथापुढें युद्धगती। कदा न चालती तयाच्या। ७६ देखोनि दशरथाचा प्रताप तेव्हां। विरथ जाहला वृषपर्वा। पाठी देऊनि तेधवां। निघता जाहला सवेग। ७७ घृतें शिंपिला

किया (उसे गले लगाया।) (और फिर) दशरथ धनुष्य पर बाण चढ़ाकर खड़ा हो गया। ७० वह एक के पीछे एक बाण चलाता था। जिस प्रकार (वक्ता के मुख से) एक के बाद एक-एक शब्द निकल आते हैं अथवा मेघ से (अविरत) धारा बरसती है, उसी प्रकार दशरथ बाण चला रहा था। ७१ जिस तरह कल्पान्त समय की विजलियाँ मेघ के बाहर निकलती हैं, उसी तरह दशरथ तरकस में से एक-एक बाण (बाहर) खींच निकालता था। ७२ जैसे वृक्ष पर से सुवह एक बार पक्षी उड़ जाते हैं, वैसे ही दैत्यों के अनगिनत सिर (कटकर) आकाश में सहसा उड़ते थे। ७३ दैत्यों के दल (पराजित हो) जब पीछे हट गये, तो (राजा) वृषपर्वा आगे बढ़ आया। वह नाना प्रकार से कपट-नीति पूर्वक युद्ध की माया (भ्रम में डालने वाले चमत्कार) दिखाता था। लेकिन पण्डित एक शब्द से मूर्ख के समूचे वाग्जाल को काट डालता है, (मूर्ख की एक नहीं चलती) उसी प्रकार दशरथ के बाण की सामर्थ्य से वृषपर्वा की कपट-विद्या की एक न चली। ७४-७५ कोई महाबुद्धिमान ओझा हो, तो जैसे उसके सामने भूत-पिशाचों की कोई कृति नहीं चलती, उसी प्रकार उन दैत्यों की युद्ध-लीलाएँ दशरथ के सामने नहीं चलती थीं। ७६ दशरथ के प्रताप को देखकर और रथहीन होकर, वृषपर्वा विमुख हो बड़े वेग से निकल पड़ा। ७७ घी के सींचने से जैसे अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, वैसे ही शुक्र

वैश्वानर। तैसा क्रोधायमान जाहला शुक्र। रथीं बैसोनियां शर। सोडिता जाहला प्रतापें। ७८ जातवेदास्त्र ते अवसरीं। सोडिता जाहला देवांवरी। अयोध्याधीशें झडकरी। जलदास्त्र प्रेरिलें। ७९ शुक्रें वातास्त्र सोडिलें अद्भुत। येरें आड घातले पर्वत। वात कोंडिला समस्त। दैत्यगुरूनें देखिलें। ८० मग सोडिलें वज्रास्त्र। पर्वत फोडिले समग्र। दशरथें सोडिलें माहेश्वर। देखोनि वज्रास्त्र विरालें। ८१ शुक्र परम क्रोधायमान। काढिला एक निर्वाणबाण। रथाचा आंख छेदून। टाकिता जाहला तेधवां। ८२ आंख छेदितां अकस्मात। खालीं पडावा जों दशरथ। तों कैकयी देखोनि धांवत। घालोनि हात आंख धरी। ८३ पर्वताकार रथ थोर। दंडावरी घेतला भार समग्र। वीरश्री-रंगें नृपवर। समाचार नेणे तो। ८४ दशरथें सोडिला निर्वाणबाण। तोडिला कवीचा स्यंदन। अश्वांसहित कुटके करून। रणमंडळीं पाडिला। ८५ विरथ जेव्हां जाहला शुक्र। दशरथें काढिला सूर्यमुख शर। म्हणे

(इससे) क्रुद्ध हो गया (उसकी क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित हो गयी)। वह रथ में विराजमान होते हुए प्रतापपूर्वक बाण चलाने लगा। ७८ उस समय उसने देवों पर अग्नि-अस्त्र चलाया, तो झट से दशरथ ने मेघास्त्र प्रेरित किया (चला दिया)। ७९ शुक्र ने जब अद्‌भुत वायु-अस्त्र फेंका, तो दूसरे (दशरथ) ने (उसके मार्ग में) पर्वतों को बाधा रूप में डाल रक्खा और दैत्यगुरु शुक्र ने देखा कि समस्त वायु अवरुद्ध है। ८० तत्पश्चात् (शुक्र ने) वज्र-अस्त्र चलाया; उसने सब पर्वतों को तोड़ डाला। इसपर दशरथ ने माहेश्वर अस्त्र छोड़ा, जिसे देखकर (शुक्र का) वज्रास्त्र गलकर नष्ट हो गया। ८१ शुक्र अतिशय क्रुद्ध था। उसने एक तीक्ष्ण बाण निकाला। उस बाण से उसने तब रथ के धुरा को छेद डाला। ८२ अकस्मात धुरे को काटते ही, दशरथ ज्यों ही नीचे गिरने को था, त्यों ही कैकेयी ने दौड़ते हुए(आगे बढ़) हाथ लगाकर अक्ष(धुरे)को सम्हाला। ८३ वह रथ तो पर्वत के आकार वाला बड़ा था। उस (कैकेयी) ने उसके पूरे भार को अपने बाहु पर सम्हाल लिया। इधर वीरता के रंग में रंगा दशरथ इस घटना का समाचार नहीं जान पाया। ८४ (इसपर) दशरथ ने(भी) तीक्ष्ण बाण चलाया (और) कवि शुक्र के रथ को तोड़ डाला और उसे टुकड़े-टुकड़े कर अश्वों सहित युद्ध भूमि में गिरा दिया। ८५ जब शुक्र रथहीन हो गया, तो दशरथ ने सूर्य-मुख बाण निकाला और सोचा कि

याचें छेदीन शिर। कापटयमुकुटासहित पैं। ८६ मागुती विचारी अजनंदन। शुक्र तरी केवळ ब्राह्मण। याचा रक्षोनियां प्राण। मुकुट मात्र छेदावा। ८७ निमिष न लागतां गेला बाण। मुकुट पाडिला तळीं छेदून। भयभीत भृगुनंदन। पळता जाह्ला तेधवां। ८८ देव करिती जयजयकार। पळूं लागला दैत्यभार। जैसा महावात सुटतां समग्र। भूस उडे अंबरीं। ८९ रायें कोदंडासी घातली गवसणी। तूणीर ठेविला आवरण घालोनी। जैसा कुंडामाजी देदीप्य अग्नी। आच्छादित याज्ञिक। ९० दशरथ पाहे सावधान। तों कैकयीनें हात घालून। धरिला असे महास्यंदन। वर्तमान कळलें तें। ९१ आश्चर्य करी नृपवर। आजिचें युद्ध अनिवार। आम्हांसी जयलाभ समग्र। कैकयीनें दीधला। ९२ जैसें घर पडतां अकस्मात। निजबळें उचली बळवंत। तैसा कैकयीनें आजि रथ। सांवरिला रणांगणीं। ९३ खालीं उतरून दशरथ। प्रियेलागीं आलिंगित। म्हणे-दोन वर मागें त्वरित।

मैं इसके मस्तक को कपट मुकुट सहित छेद डालूँगा। ८६ (लेकिन) बाद में अजनन्दन दशरथ ने (फिर) सोचा कि शुक्र तो वस्तुतः ब्राह्मण ही है—(अतः) इसके प्राणों की रक्षा करते हुए इसके केवल मुकुट को काटा जाए; (क्योंकि ब्राह्मण अवध्य है।) ८७ बाण चला और उसने मुकुट को तल में छेदकर गिरा दिया—इसे क्षण भी नहीं लगा। तब भृगुनन्दन शुक्र भयभीत हो भाग गया। ८८ (यह देखकर) देवों ने जयघोष किया। दैत्यों की सेना ठीक वैसे ही भागने लगी, जैसे प्रचण्ड वायु के चलने लगते ही समूचा भूसा आकाश में उड़ जाता है। ८९ राजा ने धनुष को आच्छादित किया और जैसे कोई याज्ञिक (यज्ञकर्ता) प्रज्ज्वलित अग्नि को (यज्ञ) कुण्ड में आच्छादित कर रखता है, वैसे ही उसने तरकस को आवृत कर रक्खा। ९० दशरथ ने (जब) ध्यान से देखा तो उसे यह बात मालूम हो गयी कि कैकेयी ने हाथ डालकर उस महारथ को सम्हाल रक्खा है। ९१ राजा को आश्चर्य हुआ। (उसे प्रतीत हुआ कि) आज का युद्ध अनिवार (भीषण) था; उसमें कैकेयी ने ही हमें सम्पूर्ण जय का लाभ करा दिया। ९२ जैसे घर के अचानक ढह जाने पर कोई बलवान (पुरुष) उसे अपनी शक्ति से उठाए, वैसे ही आज कैकेयी ने रणांगण में (गिरते) रथ को सम्हाल लिया। ९३

जे कां अपेक्षित मानसीं । ९४ कैकयी आनंदली थोर । म्हणे-मी जेव्हां मागेन वर । तेव्हां मज द्यावे साचार । म्हणोनि भाष घेतली । ९५ महायुद्धीं जय पूर्ण । कैकयीस यावया काय कारण । काय होतें तीस वरदान । तेंचि कारण ऐक पां । ९६ पितृगृहीं कैकयी असतां । एक तापसी आला अवचितां । तयासी प्रार्थोनियां माता । राहविती जाहली कैकयीची । ९७ ऋषि बैसला अनुष्ठानातें । माता निरोपी कैकयीतें । उपकरण सामग्री लागेल यातें । ती सिद्ध करोनि देइंजे । ९८ पुष्पें धूप दीप आरती । सिद्ध करोनि देत ऋषी-प्रती । येरू प्राणायाम करूनि निश्चितीं । ध्यानीं जाहला निमग्न । ९९ तंव कैकयीनें घेऊनि मस । लाविली ऋषीच्या मुखास । ध्यान जाहलिया तो महापुरुष । स्वमुख करें पुसीतसे । १०० तों हस्तास लागलें काळें । कर्तृत्व कुमारीचें कळलें । ऋषीनें शापिलें ते वेळे । वदन काळें तुझें हो कां । १०१ तुजवरी अपेश येईल प्रचंड । जगांत होईल काळें तोंड । पुत्रद्वेष

तब दशरथ ने नीचे उतरकर अपनी प्रिया का आलिंगन किया और कहा—तुम्हारे मन में जो अपेक्षित हों, ऐसे दो वरों को शीघ्र माँग लो।' ९४ कैकेयी बहुत हर्षविभोर हुई। वह बोली—'जब मैं वर माँग लूँगी, तब सचमुच आप मुझे दें।' ऐसा कहकर उसने (राजा से) वचन लिया। ९५

(इस) महायुद्ध में कैकेयी की पूर्ण जय किस कारण से हुई, उसे क्या वरदान (प्राप्त) था ?—यह कारण सुनो। ९६ कैकेयी जब अपने पितृगृह में थी, तब अकस्मात (वहाँ) एक तापसी आ गया। उससे प्रार्थना करते हुए कैकेयी की माता ने उसे ठहराया (रहने को प्रेरित किया।) ९७ वह ऋषि (तापसी) अनुष्ठान के लिए बैठा तो माता ने कैकेयी को सन्देश भेजा कि इसे जो साधन-सामग्री लगेगी (आवश्यक हो), उसे तैयार करके दो। ९८ फूल, धूप, दीप, आरती—ये (सब) तैयार करके वह ऋषि को दे देती, तब वह ऋषि संकल्प पूर्वक प्राणायाम करके ध्यान-मग्न हो गया। ९९ तब कैकेयी ने काजल लेकर (उस) ऋषि के मुख में लगाया। जब (वह) महापुरुष सावधान हुआ तो उसने हाथ से अपना मुख पोंछ लिया। १०० तो हाथ में कालिमा लगी; इससे (उस) कुमारी की करतूत (उसे) मालूम हो गयी। तब ऋषि ने उस वक्त (कैकेयी को) अभिशाप दिया—'तेरा मुख काला हो जाएगा। १०१ तेरी प्रचण्ड अपकीर्ति होगी। संसार में तेरा मुँह काला हो जाएगा।

करिसील उदंड । नसतें बंड वाढविसी । १०२ मातेनें समाचार ऐकोन । वेगीं धरिले ऋषीचे चरण । स्वामी कैकयी बाळ अज्ञान । नेणोनि कर्म हें केलें । ३ कांहीं द्यावें जी वरदान । मग ऋषी कृपालु होऊन । म्हणे-संग्रामीं पतीलागून । जय देईल महारणीं । ४ पूजासामग्री दिधली समस्त । तरी हा हस्त होईल यशवंत । त्या वरें या समयीं अद्भुत । जय प्राप्त कैकयीतें । ५ असो इंद्र आणि बृहस्पती । दशरथाचें यश वानिती । वस्त्रें भूषणें अमरपती । देता जाहला रायातें । ६ वस्त्राभरणें अद्भुतें । दिव्यमणि दिधला कैकयीतें । येरीनें घातला वेणीतें । परम प्रकाशवंत जो । ७ तों देव-आचार्य बोले वचन । रायासी काय आहे पुत्रसंतान । दशरथ म्हणे पुत्रवदन । देखिलें नाहीं अद्यापि । ८ सुरगुरु म्हणे राया वरिष्ठा । त्रिभुवनपति येईल तुझिया पोटा । ज्याचें ध्यान लागलें नीलकंठा। सनकादिक भक्तांसी । ९ जो मायाचक्रचाळक ।

तू पुत्रों से बहुत द्वेष करेगी (और) निराधार (अकारण) विद्रोह (भाव) को बढ़ाएगी ।' १०२ (कैकेयी की) माता ने यह समाचार सुनकर शीघ्रता से (आकर) ऋषि के पाँव पकड़े (और कहा), 'महाराज, (यह) बालिका कैकेयी अज्ञान है । उसने अनजाने में यह काम किया । १०३ उसे कुछ वरदान दो ।' तब ऋषि ने (उसके प्रति) कृपालु होकर कहा— 'यह महायुद्ध में अपने पति को जय प्राप्त कराएगी । १०४ (कैकेयी के) इस (हाथ) ने पूजा की समस्त सामग्री दी, अतः यह हाथ कीर्तिशाली हो जाएगा ।' उस वरदान देनेवाले के कारण इस समय कैकेयी को अद्‌भुत जय प्राप्त हो गयी । १०५

अस्तु । इन्द्र और बृहस्पति ने दशरथ की सफलता की प्रशंसा की । इन्द्र ने राजा (दशरथ) को वस्त्र और आभूषण दिये । ६ वे वस्त्रालंकार अद्‌भुत थे । इन्द्र ने कैकेयी को (एक) दिव्य रत्न दिया जो अति प्रकाशवान था । उसने उसे वेणी (जूड़े) में सजाया । ७ तब देवगुरु (बृहस्पति) ने यह बात कही । उसने पूछा, 'राजा (दशरथ) के क्या पुत्र-सन्तान है ?' तो दशरथ ने कहा, 'अभी तक (मैंने) पुत्र-मुख नहीं देखा ।' ८ देवगुरु ने कहा, 'हे श्रेष्ठ राजा, जिसका ध्यान नीलकण्ठ शिवजी तथा सनकादिक भक्तों को लगा हुआ है, वही त्रिभुवनपति भगवान् तुम्हारे (उदर से) उत्पन्न होगा । ९ हे राजा, जो मायाचक्र का चालक है,

अनंत ब्रह्मांडांचा नायक। जो कमलोद्भवाचा जनक। तो पुत्र देख तुझा राया। ११० जो वेदशास्त्रांचा जिव्हार। जो आदिमायेचा निजवर। तो पुराणपुरुष अगोचर। तुझा पुत्र होईल कीं। ११ विभांडकाचा पुत्र शृंगऋषी। हरिणीगर्भ-संभूत तेजोराशी। त्यासी आणावें नाना सायासीं। पुत्रेष्टी करावया। १२ त्यास नाहीं मनुष्यदर्शन। देखिलें नाहीं स्त्रियांचें वदन। त्यास शब्दविषयें मोहून। करोनि गायन आणावा। १३ शक्र म्हणे देवललना। पाठवाव्या तया वना। रंभा उर्वशी शुभानना। ज्यांचे गायना मदन भुले। १४ दशरथ इंद्रगुरूची आज्ञा। घेऊन आला अयोध्याभुवना। आनन्द जाहला सकळ जना। पर्जन्यवृष्टि जाहली। १५ असंभाव्य पिकली मेदिनी। दुष्काळ गेला मुळींहुनी। जैसीं विष्णुसहस्र-नामें करूनी। महापापें संहारती। १६ इकडे वीणा टाळ मृदंग। झल्लरी किंकिणी उपांग। देवांगना घेऊन उपभोग।

जो अनन्त ब्रह्माण्ड का नायक और कमलोद्भव ब्रह्माजी का पिता है तुम उसे अपने पुत्र रूप में देखो। ११० जो वेद-शास्त्रों का आत्मा है, जो आदि माया का अपना पति है, वह अगोचर पुराण-पुरुष है, तुम्हारा पुत्र होगा। ११ विभाण्डक ऋषि का शृंगी (ऋषि) नामक पुत्र है, जो हिरनी के गर्भ से उत्पन्न और तेज की राशि है। पुत्रेष्टि (नामक) यज्ञ (करने) के लिए उसे अनेक प्रकार के प्रयत्न करके ले आओ। १२ उसने (किसी) मनुष्य के दर्शन तक नहीं किये हैं, स्त्रियों के मुख तक को नहीं देखा है। उसे शब्द (ध्वनि) द्वारा मोहित करने के विचार से गायन करके लाएँ'। १३

(इसपर) इन्द्र ने कहा, 'जिनके गायन से कामदेव भी मोहित हो जाता है, ऐसी सुन्दर रम्भा, उर्वशी (आदि) अप्सराओं को उस वन में भेज दें।' १४

(इधर) दशरथ, इन्द्र और बृहस्पति की आज्ञा (से बिदा) लेकर अयोध्या के प्रासाद में आ गया। उससे सब लोगों को आनन्द हो गया। (तब) वर्षा हो गयी। १५ पृथ्वी (भूमि) ने असम्भवनीय रूप में फसल उत्पन्न की और जैसे विष्णुसहस्रनाम से महापापों का संहार हो जाता है, वैसे ही (देवों की विजय होने पर) अकाल पूर्णतः नष्ट हो गया। १६

इधर वीणा, करताल, मृदंग, झाँझ, (घंटिकाओं से युक्त) करधनी और छोटे-छोटे वाद्य तथा उपभोग (की सामग्री) लेकर अप्सराएँ तेज

वना सवेग चालिल्या । १७ विभांडक ऋषि तपोधन । नित्य उष:काळीं उठोन । करावया अनुष्ठान । जान्हवीतीराप्रति जाय । १८ मागें आश्रमीं एकला पुत्र । उंच बांधोनियां गोपुर । त्यावरी शृंगी तो परम चतुर । वेदाध्ययन करीतसे । १९ गज व्याघ्र सावजें बहुत । देखतां होय भयभीत । म्हणोनि उंच स्थळ बांधोनि सत्य । त्यावरी सुत बैसविला । १२० विभांडक ऋषि अनुष्ठान करून । दोन प्रहरां येत परतोन । परमानंदें पुत्र देखोन । अध्ययन सांगे तयातें । २१ चारही वेद मुखोद्गत । सकल शास्त्रें पारंगत । यागविधि कर्मं समस्त । करतलामलक तयातें । २२ असो विभांडक गेला स्नाना । तो समय पाहोन देवांगना । वेगीं पातल्या तया वना । सर्व संपत्ति घेऊनियां । २३ वरी बैसला ऋषिनंदन । तंव त्यांनीं आरंभिलें गायन । जें ऐकतां भुले पंचबाण । स्वरूपलावण्य तयांचें । २४ जैशा केवळ सौदामिनी । मंडित दिसती वस्त्राभरणीं । ज्यांचीं स्वरूपें पाहोनी । सुधापानी वेधले । २५

गति से वन की ओर चलीं । १७ हमेशा ऊषाकाल (सबेरे) में जाग उठकर तपोधन विभाण्डक ऋषि गंगा के तट पर अनुष्ठान करने के लिए जाया करता । १८ (इधर उसके चले जाने पर) पीछे आश्रम में अकेला पुत्र रहता । ऊँचा गोपुर बनाकर उसपर बैठकर वह परम चतुर शृंगी वेदों का अध्ययन किया करता । १९ हाथी, बाघ (जैसे) बहुत श्वापदों को देखकर वह भयभीत हो जाता; इसलिए ऋषि ने सचमुच ऊँचा स्थान बनाकर उसपर पुत्र को बैठाया । १२० अनुष्ठान करके जब दोपहर को विभाण्डक ऋषि लौटता, तो पुत्र को परम आनन्दपूर्वक देखकर उसे अध्ययन (का पाठ) बताता । २१ उसे (शृंगी को) चारों वेद मुखोद्गत (हो गये) थे । वह शास्त्रों में पारंगत (हो गया) था । यज्ञ विधि आदि कार्य उसे हथेली पर रखे आँवले की तरह अत्यन्त स्पष्ट (सुलझे हुए) हो गये । २२

अस्तु । विभाण्डक स्नान के लिए गया—यह अवसर देखकर अप्सराएँ समूची सम्पत्ति को लेकर तेज गति से उस वन में आ पहुँची । २३ (इधर) ऊपर ऋषि-पुत्र विराजमान था—इधर उन्होंने ऐसा गायन आरम्भ किया, जिसे सुनकर मदन भी लुब्ध हो जाए । उनका रूप-लावण्य ऐसा था कि (देखने पर जान पड़ता कि) सौदामिनियाँ (बिजलियाँ) ही वस्त्रों

टाळ मृदंग सुस्वर। गायन ऐकून ऋषिपुत्र। वरोनि पाहे सादर। स्वरूप सुन्दर न्याहाळोनी। २६ तंव नेत्रकटाक्ष हावभाव। दाविती नाना परींचें लाघव। श्रृंगीनें देखतांचि अपूर्व। भय वाटे मानसीं। २७ गायन ऐकतां सुस्वर। संतोष वाटे अपार। म्हणे मज धरावया साचार। पातले कोण न कळे हें। २८ भयेंकरून ते वेळां। श्रृंगी वायुवेगें पळाला। सवेंचि विलोकी परतोनि डोळां। सुंदर स्वरूप तयांचें। २९ विभांडक अनुष्ठान करून। आश्रमासी येत परतोन। देवांगना जाती तेथोन। शापभयें ऋषीच्या। १३० म्हणती-विभांडकासी कळेल। तरी आम्हां तत्काळ शापील। यालागीं दोन प्रहर होतां सकळ। जाती वेगेंकरूनियां। ३१ असो पिता आला आश्रमासी। श्रृंगी सांगे तयापाशीं। म्हणे-येथें आले होते तापसी। उपमा ज्यांसी असेना। ३२ मी तयांसी देखोनी। पळालों देहलोभेंकरूनी। आतां न येती ते दुसरेनी। खंती मनीं वाटतसे। ३३ विभांडक म्हणे पुत्रासी। जरी आश्रमा

और अलंकारों से विभूषित हुई हों। उनका रूप (सौन्दर्य) देखकर अमृत पान करनेवाले देव भी विद्ध (हृदय में घायल) हो गये। २४-२५

झाँझ, मृदंग और सुरीला गायन सुनकर ऋषि-पुत्र उनके सुन्दर रूप को ऊपर से आदरपूर्वक निरखकर देखता था। २६ तब वे नेत्र कटाक्ष, हावभाव और अनेक प्रकार के कौतुक दिखाने लगीं। (आज तक कभी नहीं देखी हुई, उन अद्भुत बातों को देखते ही श्रृंगी को मन में भय अनुभव हुआ। २७ (फिर भी) सुरीला गायन सुनकर उसे अपार सन्तोष अनुभव हुआ। उसने सोचा—मुझे सचमुच पकड़ने के लिए, न जाने ये कौन आये हैं ? २८ भय के कारण श्रृंगी उस समय वायु-वेग से भाग गया। (फिर भी) साथ ही मुड़कर आँखों से उनके सुन्दर रूप को देखता था। २९ अनुष्ठान करके विभाण्डक के आश्रम में लौटने का समय होते ही ऋषि के शाप के भय से अप्सराएँ निकल गयीं। १३० वे कहती हैं (सोचती हैं)—यदि विभाण्डक को यह ज्ञात हो जाए, तो वह तत्काल हमें शाप देगा। इसलिए दोपहर होते ही वे सब शीघ्रता से निकल गयीं। ३१

अस्तु। पिता (विभाण्डक) आश्रम में आया, तो श्रृंगी ने उससे कहा, 'यहाँ ऐसे तापसी आये थे, जिनकी कोई उपमा नहीं है। ३२ उन्हें देखकर मैं देह के लोभ से (अपने को बचाने के विचार से) भाग गया; लेकिन मन में खेद अनुभव होता है कि वे दुबारा नहीं आएँगे।'३३ विभाण्डक

आले संत ऋषी। तरी आपण आतिथ्य करावें तयांसी। पूजाविधीकरूनियां। ३४ असो प्रातःकाळीं विभांडक मुनी। गेला अनुष्ठानालागुनी। शृंगी चिंता करी मनीं। म्हणे कधीं नयनीं देखेन तयां। ३५ विसरला लेखन पठन। ज्ञान ध्यान आणि मनन। लागलें मनीं स्त्रियांचें ध्यान। अनर्थ पूर्ण स्त्रीसंगें। ३६ ज्यानें स्त्री न देखिली स्वप्नीं। त्यानें ती विलोकितां नयनीं। गेला सर्व विसरोनी। अनर्थ कामिनी तपासी। ३७ मग ज्यांस अखंड स्त्रीचिंतन। ते कैसे तरतील जन। मूर्तिमंत भवाब्धि कामिन। भुलवी सज्जन जाणते। ३८ स्त्री केवळ अविद्येचा पसारा। महाअनृत्या अविचारा। सकळ असत्याचा थारा। भय न धरी पापाचें। ३९ स्त्री अनर्थाचें गृह सबळ। कीं कलहाचें महामूळ। कीं विषवल्लीच केवळ। स्त्रीरूपें विस्तारली। १४० स्त्री कामाची विशाळ दरी। कीं ते क्रोधव्याघ्राची जाळी खरी। कीं ते पापसमुद्रलहरी। कीं ते

ने पुत्र से कहा, 'यदि (कोई) सन्त, ऋषि आश्रम में आएँ तो हम पूजन आदि विधि से उनका आतिथ्य करें।' ३४

अस्तु। (दूसरे दिन) प्रभात काल में विभाण्डक ऋषि अनुष्ठान के लिए चला गया। (इधर) शृंगी मन में चिन्ता करता था कि मैं उन्हें आँखों से (फिर से) कब देखूँगा। ३५ वह लेखन, पठन, ज्ञान, ध्यान और मनन भूल गया। उसे मन में (उन) स्त्रियों का ही ध्यान लगा। स्त्रियों की संगति से पूर्ण रूप से अनर्थ होता है। ३६ जिस ने स्वप्न में (तक) स्त्री नहीं देखी थी, उसने उसे (प्रत्यक्ष) आँखों से देखा। इससे वह सब भूल गया। (इस प्रकार) कामिनी तप के लिए अनर्थ (आपत्ति) होती है। ३७ तो फिर जिनको अविरत स्त्रियों का चिन्तन होता है, वे लोग (संसार-सागर को) तैरकर कैसे (पार) जाएँगे? संसार सागर (ही) प्रत्यक्ष कामिनी है, जो ज्ञानी सज्जनों को मोहित करती है। ३८ स्त्री केवल अविद्या (अज्ञान) का ही विस्तार है। वह अति झूठी, अविवेकी होती है। वह असत्य का आश्रयस्थान है। वह पाप से भय नहीं मानती। ३९ स्त्री अनर्थ (संकट, नाश) का दृढ़ (मजबूत) गृह है; अथवा वह कलह की महान जड़ है, अथवा केवल विष-लता ही स्त्री में विस्तार को प्राप्त हुई है। १४० स्त्री काम (विषयों) की विशाल घाटी है; अथवा यह सचमुच क्रोध रूपी वाघ की (निवास करने की) झाड़ी है। अथवा वह पाप-समुद्र में उत्पन्न लहर है; अथवा असत्य का

भाजन असत्याचें । ४१ कीं ते दुःखवृक्षाचें श्रेष्ठ फळ । कीं ते मोहाचा पर्वत सबळ । कीं ते मत्सरवनचि केवळ । किंवा भ्रांति अवतरली । ४२ कीं दंभचि मूर्तिमंत विरूढला । कीं अहंकार स्त्रीगड बांधिला । कीं मूर्खत्व सकळ त्या स्थळा । मिरास करूनि राहिलें । ४३ कीं स्त्री मूर्तिमंत भवव्याधी । कीं षड्‌र्मींची भरली नदी । कीं सकळ विकारांची मांदी । यात्रेसी आली त्या ठाया । ४४ कवणें निर्मिली हे कुऱ्हाडी । सबळ पुण्यवृक्ष तोडी । कीं अविश्वासाची बेडी । जिवाच्या पायीं ठोकिली । ४५ कीं स्वर्गमोक्षअर्गळा सत्य । दर्शनें पुरुषाचें चित्त चोरित । स्पर्शबळें वीर्य हरीत । आसुरी प्रत्यक्ष कामिनी । ४६ कौटिल्यदंभसंयुक्त । क्षमाशौचविवर्जित । महामंत्राचें सामर्थ्य । क्षणें हरीत न कळेचि । ४७ गौडी माध्वी पैष्टी तीन्ही । मदिरा ऐशा प्रकट जनीं । चौथें मद्य ते कामिनी । दुर्गंधि नाहाणी पापाची । ४८ काय विद्या काय तप । कायसें

पात्र (भण्डा) है। ४१ अथवा वह दुःख रूपी वृक्ष का बड़ा फल है; अथवा वह मोह का प्रबल पर्वत है; अथवा वह मात्र मत्सर का वन है; अथवा भ्रान्ति (ही स्त्री रूप में) अवतरित है। ४२ अथवा उसके रूप में मूर्तिमान दम्भ ही विराजमान है, अथवा अहंकार ने स्त्री-रूप में गढ़ (किला) बनाया है; अथवा उस स्थान पर (स्त्री के रूप में) समस्त मूर्खत्व स्थावर पूँजी बनाकर रहा है। ४३ अथवा स्त्री मूर्तिमति (प्रत्यक्ष) सांसारिक व्याधि है; अथवा शोक, मोह, क्षुधा, तृषा, जन्म और मरण इन छः लहरों से परिपूर्ण नदी है; अथवा सब विकारों की मादा उस स्त्री के स्थान पर मानो मेले में आयी हुई है। ४४ यह (स्त्री रूपी) कुल्हाडी किसने बनायी, जो पुण्य रूपी दृढ़ वृक्ष को काटती है अथवा स्त्री जीव के पाँवों में बाँधी हुई अविश्वास की बेड़ी है। ४५ अथवा स्त्री निश्चय ही स्वर्ग और मुक्ति के मार्ग में आनेवाली बाधा है। वह अपने दर्शन (कराने) से पुरुष के चित्त को चुराती है, स्पर्श के बल से वीर्य का हरण करती है। (इस प्रकार) कामिनी प्रत्यक्ष राक्षसी होती है। ४६ स्त्री कुटिलता और दम्भ से युक्त (भरी-पूरी) तथा क्षमा और शुचिता से विहीन होती है— (ऐसी वह) स्त्री महामंत्र से पुरुष द्वारा प्राप्त सामर्थ्य का हरण क्षण मात्र में कैसे कर लेती है, यह ध्यान में नहीं आता। ४७ (गुड़ से बनायी हुई) गौड़ी, (मधु से बनायी हुई) माध्वी और पैष्टी नामक तीन प्रकार की मदिराएँ लोक में प्रकट (प्रसिद्ध) हैं। कामिनी चौथी मदिरा है। वह

ध्यान काय जप। कासया ज्ञान खटाटोप। हरिलें सर्व स्त्रियांनीं। ४९ जिव्हा दग्ध परान्नें पाहीं। हस्त दग्ध प्रतिग्रहीं। मन दग्ध स्त्रीचे ठायीं। करूनि काय जप तप। १५० व्यर्थ करिती पुरश्चरण। स्त्रियेनें हरोनि नेलें मन। करू बैसतां जों ध्यान। तों ध्यानीं चिंतन स्त्रियेचें। ५१ काय अध्ययन काय कीर्तन। व्यर्थ गेलें पुराणश्रवण। काय धरूनि धर्मदान। स्त्रियांनीं मन हरियेलें। ५२ स्त्री स्वरूपाची धरोनि दिवी। महानरकाची वाट दावी। सज्ञानियासही भुलवी। वनीं हिंडवी विषयांचिया। ५३ कीं काळें दूती पाठविलें देखा। चाळवूनि नेत महानरका। दुराविलें मोक्षसुखा। अधःपातीं पाडिलें। ५४ आतां असो हा अनुवाद। जरी कृपा करील ब्रह्मानंद। तरीच तुटेल भवबंध। हृदयीं बोध ठसावे। ५५ जरी कृपा करील जगज्जीवन। तरी हरिरूप दिसे जन वन। कैचा पुरुष नपुंसक

पाप की बदबू अथवा बदबूदार नाली है। ४८ क्या विद्या, क्या तप, क्या (किसी का) ध्यान और क्या तप, ज्ञान की प्राप्ति के लिए कैसा यह (आडम्बर पूर्ण) यत्न—सबको स्त्रियों ने हर लिया है। ४९ देखो, जिह्वा परान्न स्वीकार करने से दग्ध हो जाती है; हाथ प्रतिग्रह (दान स्वीकार) करने से जल जाते हैं और मन तो स्त्री के आश्रय से दग्ध हो जाता है। फिर जप, तप करने से क्या होता है? १५० जिनका मन स्त्री अपहृत कर ले गयी (हो), वे बेकार में ही अनुष्ठान करते हैं। ध्यान करने के लिए बैठने पर जो ध्यान (मन) में स्त्री का चिन्तन करता है, उसका ध्यान करना व्यर्थ है। ५१ ऐसे लोगों का क्या अध्ययन, क्या कीर्तन, क्या पुराणों का श्रवण—सब व्यर्थ हो गया है; (उनके) धर्म-कर्म और दान करने से भी क्या लाभ?—(क्योंकि) स्त्रियों ने उनके मन को हर लिया है। ५२ स्त्री अपने रूप (सौन्दर्य) की मशाल लेकर (पुरुष को) महा (भयंकर) नरक का मार्ग दिखाती है। वह ज्ञानी (मनुष्य) को भी लुब्ध कर लेती है और उसे विषयों (सांसारिक सुख भोगों की वासनाओं) के वन में घुमाती है। ५३ अथवा देखो, काल ने (स्त्री रूप में) दूती भेजी है, जो (पुरुष को) भुलावे में डालकर महा नरक की ओर ले जाती है। वह (मानो) उसे से मोक्ष सुख को दूर ले गयी है और उसने (उसे) अधःपात (की गर्त) में गिराया है। ५४ अब यह स्पष्टीकरण रहने दो। यदि (गुरु) ब्रह्मानन्द कृपा करे, तो ही संसार का बन्धन टूट जाएगा—यह ज्ञान हृदय में जम जाए (दृढ़ हो जाए)। ५५

कामिन । व्यापिलें पूर्ण श्रीरामें । ५६ नर नारी मिथ्या भास । अवघा वोतला पुराणपुरुष । जें कृपा करील सर्वेश । ब्रह्मानंदस्वामी पैं । ५७ असो आतां शृंगऋषी । म्हणे-कधीं येतील ते तापसी । तों अकस्मात त्या समयासी । रंभा उर्वशी पातल्या । ५८ उत्तम स्वरूपें मंजुळ गायन । सुंदर मुख आकर्ण नयन । शृंगीलागीं खुणावून । कामभाव दाविती । ५९ नाना पक्वान्नें अमृतफळें । शृंगीस देती बहु रसाळें । मग तो उतरोनि खालें । जवळी येवोनि बैसला । १६० तयांसी पुसे आवडीकरून । सांगा तुमची नामखूण । हीं गलंडें काय म्हणोन । वक्षःस्थळीं तुमच्या पैं । ६१ येरी गदगदां हांसती । तुझिया माथां शृंग निश्चितीं । म्हणोनि शृंगऋषी म्हणती । तुजलागीं ऋषिपुत्रा । ६२ आमुचें नांव गलंडऋषी । बहु सुख असे आम्हांपाशीं । येरु म्हणे-तें दाखवा आम्हांसी । चवी कैसी पाहों पां । ६३ त्या म्हणती जी तत्त्वतां । कामासन तुज शिकवूं

यदि जगज्जीवन भगवान कृपा करे, तो जन-वन हरि (भगवत्) रूप दिखायी देगा । (फिर) कैसा पुरुष, कैसा नपुंसक, कैसी स्त्री—(जान पड़ेगा कि सब को) श्रीराम ने व्याप्त कर लिया है । ५६ यदि सर्वेश्वर भगवान् (जो) गुरु ब्रह्मानन्द स्वामी (के रूप में उत्पन्न है) कृपा करेगा तो (विदित हो जाएगा कि) स्त्री-पुरुष केवल झूठा आभास हैं—भगवान पुराण पुरुष ही सबके साँचे में ढला हुआ है । ५७

अस्तु । अब शृंगी ऋषि सोच ही रहा था कि वे तापसी कब आएँगे, कि उस समय यकायक रम्भा, उर्वशी आ पहुँचीं । ५८ उनका रूप सुन्दर था, गायन मधुर थ, मुख सुन्दर था, नेत्र कानों तक फैले हुए अर्थात् विशाल थे । वे शृंगी को इशारे करके काम भाव दिखाने लगीं । ५९ उन्होंने शृंगी को अनेक पक्वान्न (और) अमृत के समान मधुर और बहुत रसीले फल दिये । तव वह नीचे उतरकर उनके पास आकर बैठ गया । ६० उसने रस लेते हुए उनसे पूछा (कहा), "तुम अपने नाम, लक्षण बताओ । तुम्हारी छाती पर ये उभार (गलगण्ड) कैसे हैं ?" ६१ (यह सुनकर) वे कहकहे लगाकर हँसती हैं और कहती हैं, "हे ऋषिपुत्र तुम्हारे मस्तक पर शृंग (सींग) है, (इसलिए) निश्चय ही तुम्हें 'शृंगऋषि' कहते हैं । ६२ हमारा नाम 'गलगंड' ऋषि है । हमारे पास बहुत सुख (अर्थात् सुख देने वाली सामग्री) है ।" इसपर दूसरे ने अर्थात् शृंगी ने

आतां। तों मदनें मोहिलें ऋषिसुता। आसक्त सुरतालागीं होय। ६४ मग तो म्हणे-मी तुम्हांआधीन। जिकडे न्याल तिकडे येईन। मग त्यांनीं विमानीं बैसवून। आणियेला अयोध्येसी। ६५ दशरथें करूनि नमस्कार। केला बहुत आदर। म्हणे-महाराज तुम्ही बहु थोर। दर्शन आम्हां दिधलें। ६६ मग पाळककन्या आपुली। शृंगऋषीस दिधली। लग्नसोहळा ते वेळीं। चार दिवस जाहला। ६७ मग ऋषी मेळविले बहुत। जे शापानुग्रहसमर्थ। वसिष्ठ मुख्य आचार्य जेथ। न पडे पदार्थ न्यून कांहीं। ६८ इकडे ज्ञानीं पाहे विभांडकमुनी। तों स्त्रियांनीं सुत नेला चाळवुनी। परम क्रोधाविष्ट होउनी। अयोध्येसी पातला। ६९ तों ऋषिवेष्टित देखिला कुमर। जैसा नक्षत्रीं वेष्टिला रोहिणीवर। कीं किरणीं वेष्टिला दिवाकर। तैसा स्वसुत देखिला। १७० स्नुषा देखोनि नयनीं। विभांडक

कहा, 'वह हमें तो दिखाओ। देखें उसका स्वाद कैसा है।' ६३ तब उन्होंने कहा, 'हे (ऋषि), सचमुच अब तुम्हें (हम) कामासन सिखाएँगी।' तो कामदेव ने ऋषिपुत्र को मोह लिया और वह स्त्री-संग के लिए आसक्त हुआ। ६४ तब फिर उसने कहा, 'मैं तुम्हारे अधीन हूँ। तुम जहाँ ले जाओगी वहाँ मैं आऊँगा।' फिर विमान में बैठाकर वे उसे अयोध्या में ले आयीं। ६५ दशरथ ने उसे नमस्कार करके उसका बहुत आदर किया और कहा, 'महाराज, तुम बहुत बड़े हो जो तुमने हमें दर्शन दिये।' ६६ तत्पश्चात् उसने (शान्ता नामक) अपनी पोष्या पुत्री शृंग ऋषि को (विवाह में) प्रदान की। उस समय विवाह समारोह चार दिन तक सम्पन्न हो गया। ६७ फिर उसने अनेक ऋषियों को इकट्ठा किया जो (श्रवण के माता-पिता द्वारा दिये हुए) शाप को अनुग्रह में बदल देने में समर्थ थे। जहाँ मुख्य आचार्य के रूप में वसिष्ठ ऋषि हैं, वहाँ किसी पदार्थ की कमी नहीं (अनुभव) हुई। ६८

इधर विभाण्डक ऋषि ने (अन्तर) ज्ञान से देखा (जान लिया) कि चंचल बनाकर स्त्रियाँ (उनके) पुत्र को ले गयी हैं। अतः अतिशय क्रुद्ध होकर वह अयोध्या में आ पहुँचा। ६९ तो अपने पुत्र को ऋषियों द्वारा घिरा हुआ देखा। जैसे तारकाओं द्वारा रोहिणी-पति चन्द्रमा घिरा होता है, अथवा किरणों द्वारा दिवाकर सूर्य घिरा रहता है, वैसे ही ऋषियों द्वारा घिरा हुआ अपना पुत्र उन्होंने देखा। १७० (अपनी) आँखों

निवाला मनीं। दशरथ लागला ऋषिचरणीं। आनंदेंकरूनि तेधवां। ७१ विभांडक आनंदें बहुत। नृपासी आशीर्वाद देत। तुज होतील चौघे सुत। जे कां समर्थ त्रिभुवनीं। ७२ असो यज्ञमंडपीं शृंगी आपण। सकळ ऋषिमंडळ घेऊन। स्वाहाकारासी अवदान। मंत्रयुक्त टाकीत। ७३ पूर्णाहुतीचिये काळीं। प्रत्यक्ष प्रगटला ज्वाळामाळी। जैसा सूर्य उगवे उदयाचळीं। प्रातःकाळीं अकस्मात। ७४ चत्वारिश्‍रृंग द्विमूर्धन। सप्तपाणी त्रिचरण। देखतां यज्ञनारायण। ऋषिजन सुखावले। ७५ हातीं पायस-ताट भरून। शृंगीपाशीं देत कृशान। म्हणे अविलंबें पिंड करून। तिघीं राणियांस देइजे। ७६ बहु त्वरा करावी ये क्षणीं। विलंबें होय कार्यहानी। पोटा येईल कैवल्यदानी। क्षीरसागरविहारी जो। ७७ ऐसें बोलोनि तये काळीं। गुप्त जाहला ज्वालामाळी। शृंगीनें वसिष्ठाजवळी। पायसपात्र दीधलें। ७८ वसिष्ठें करूनि तीन विभाग। राणियांस देत सवेग। कौसल्येसी श्रेष्ठ भाग। देता जाहला ऋषि तो। ७९

से वहू को देख विभाण्डक मन में शान्त (प्रसन्न) हो गया। तब दशरथ ने आनन्द पूर्वक उस ऋषि के चरण पकड़ लिये। ७१ विभाण्डक ने बहुत आनन्द से राजा को आशीर्वाद दिया, 'तेरे चार पुत्र (उत्पन्न) होंगे जो त्रिभुवन में (सर्व) समर्थ होंगे (माने जाएँगे)। ७२ अस्तु। इधर यज्ञ-मण्डप में शृंगी स्वयं सब ऋषियों को साथ लेकर मंत्र पाठ पूर्वक स्वाहाकार के लिए अवदान (आहुति द्रव्य) समर्पित कर रहा था। ७३ जैसे प्रातःकाल में उदयाचल पर यकायक सूर्य प्रकट होता है, वैसे ही आहुति समर्पित करने की विधि के समाप्त होने के अवसर पर प्रत्यक्ष (यज्ञकुण्ड में से) अग्निदेव प्रकट हो गया। ७४ चार शृंग, दो मस्तक सात हाथ और तीन चरण—इनसे युक्त भगवान् नारायण को (आविर्भूत) देखकर ऋषि जन सुखी हो गये। ७५ हाथ में (जो) पायस भरा थाल था, उसे शृंगी ऋषि को देते हुए अग्निदेव ने कहा, 'अविलम्ब (बिना देर किये इसके) पिण्ड बनाकर तीनों रानियों को दो। ७६ इस क्षण बहुत जल्दी करो। विलम्ब (देर) करने से कार्य-हानि होगी। जो क्षीरसागर में विहार करता है वही मोक्षदाता (भगवान्) उनके उदर से प्रकट होगा। ७७ ऐसा कहकर उस समय अग्निदेव गुप्त (अदृश्य) हो गया। तब शृंगी ने पायसपात्र वसिष्ठ को दिया। ७८ (उस पायस के) तीन भाग बनाकर वसिष्ठ ने त्वरित रानियों को दिया। उस ऋषि ने पहला

दुजा सुमित्रेप्रती देत। तिजा कैकयीकरीं घालित। देखोनि ऐसें अद्भुत। क्रोध आला कनिष्ठेतें। १८० म्हणे मी रायासी प्रियकर। म्यां रथचक्रीं घालोनि कर। रणीं विजयी केला नृपवर। इंद्रादिक देवांदेखतां। ८१ वयेंकरूनि वृद्ध फार। ते ज्येष्ठ नव्हे साचार। जियेमाजी गुण थोर। तीच श्रेष्ठ जाणिजे। ८२ केतकीचें लघु पत्र। त्यास मानिती सर्वत्र। इतर पत्रें दिसती थोर। परी चतुर न मानिती। ८३ अमोलिक लहान रत्न। काय करावे थोर पाषाण। मृगेंद्राची आकृति लहान। थोर वारण कासया। ८४ जवादिबिडालाचें वृषण सुवास। लहान परी आवडी श्रीमंतांस। रासभाचें थोर बहुवस। न शिवे कोणी तयातें। ८५ मज आधीं न देतां मान। काय करावा भाग मागून। म्हणोनि कैकयी रुसोन। अधोवदन बैसली। ८६ मग बोले वसिष्ठ मुनी। विघ्न होईल येच क्षणीं। तों करींचा पिंड झडपोनी। घारीनें नेला अकस्मात। ८७ हाहाकार जाहला ते अवसरीं। निमिष न

बड़ा भाग कौसल्या को दिया। ७९ दूसरा भाग सुमित्रा को दिया और तीसरा कैकेयी के हाथ पर रख ही रहा था कि—यह अजीब बात देखकर सबसे छोटी रानी को क्रोध आ गया। १८० वह सोचने लगी मैं राजा की प्रिय (रानी) हूँ। मैंने रथ के पहिये में हाथ डालकर इन्द्रादि देवों के समक्ष राजश्रेष्ठ को विजयी बना दिया। ८१ अवस्था में जो बहुत वृद्ध (बड़ा) हो, वह वस्तुतः ज्येष्ठ-सबसे बड़ा नहीं है; जिसमें बड़े गुण हों, उसी को श्रेष्ठ समझो। ८२ केवड़े का पत्ता छोटा होता है, फिर भी सर्वत्र उसे (बड़ा) मानते हैं; अन्य (पेड़-पौधों के) पत्ते बड़े दिखायी देते हैं, लेकिन चतुर लोग उनका मान नहीं करते। ८३ रत्न छोटा होने पर भी अनमोल होता है। (अन्य) बड़े पत्थरों को लेकर क्या करें? सिंह का आकार छोटा होता है। उसकी तुलना में हाथी बड़ा होता है, फिर भी उससे क्या होता है? ८४ जवादि नामक जाति के बिलाव के वृषण सुगन्धित होते हैं; वे छोटे होने पर भी अमीरों को पसन्द आते हैं। लेकिन गधे के वृषण बड़े विशाल होते हैं; (फिर भी) उन्हें कोई नहीं छूता। ८५ मुझे पहले मान नहीं दिया तो पीछे से भाग लेकर क्या करें? इसलिए कैकेयी रूठकर अधोमुख (सिर झुकाये) बैठ गयी। ८६ तब वसिष्ठ ऋषि ने कहा, 'इसी क्षण विघ्न (उपस्थित) होगा।' त्यों ही यकायक (एक) चील लपककर (उसके) हाथ का पिण्ड ले गयी। ८७ उस समय

लागतां गेली घारी । कैकयी पडे धरणीवरी । आक्रंदत तेधवां । ८८ म्हणे माझें पूर्वकर्म गहन । मज कैंचें पुत्रसंतान । अभाग्यासी निधान । जिरेल कोठून सांग पां । ८९ परम चिंताक्रांत दशरथ । कौसल्येकडे विलोकित । मग कैकयीचें समाधान करीत । पट्टमहिषी तेधवां । १९० कौसल्या सुमित्रा दोघी जणी । अर्ध अर्ध विभाग काढोनी । देत्या जाहल्या ते क्षणीं । पूर्ण पिंड कैकयीतें । ९१ जैसा भागीरथी आणि मंदाकिनी । तैशा कौसल्या सुमित्रा दोघी जणी । मत्सर अणुमात्र मनीं । न करिती स्वप्नीं सर्वथा । ९२ जे अत्यंत कुटिल देख । तयांसी स्वप्नींही नाहीं सुख । न कदा मानिती कोणी लोक । सदा अपेशपात्र ते । ९३ असो वसिष्ठें दिधलें तीर्थ । तिघीही पिंड प्राशन करीत । कैकयीच्या कंठीं पिंड अडकत । कासाविस जाहली ते । ९४ मग वसिष्ठें शिंपितां तीर्थ । अंतरीं पिंड उतरत । आनंदला राजा दशरथ । दानें देत अपार । ९५ वस्त्राभरणें उदंड दक्षिणा । देवोनि गौरविलें ब्राह्मणां । सकळ

हाहाकार हो गया । चील को निकल जाते एक क्षण भी नहीं लगा । तब कैकेयी आक्रन्दन (ज़ोर से रोती हुई) करती हुई भूमि पर पड़ गयी ।८८ उसने कहा—मेरा पूर्व कर्म (पूर्व जन्म में किया कर्म) गहन (गूढ़) है । मेरे पुत्र कैसे हो सकता है ? कहो तो, अभागे को धन कैसे हज़म हो जाएगा ? ८९ (इसपर) दशरथ अतिशय चिन्तातुर हो गया । उसने कौसल्या की ओर देखा । तब (वह) पटरानी कौसल्या कैकेयी को सान्त्वना देने लगी । १९० कौसल्या और सुमित्रा—इन दोनों ने अपने-अपने भाग से आधा-आधा अंश निकालकर उसी क्षण पूर्ण पिण्ड के रूप में कैकेयी को दिया । ९१ जिस प्रकार भागीरथी और मन्दाकिनी नदियाँ (पवित्र) हैं, उसी प्रकार कौसल्या और सुमित्रा शुद्ध हृदय की स्त्रियाँ हैं । स्वप्न (तक) में वे मन में अणु मात्र भी मत्सर बिलकुल नहीं करतीं । ९२ देखो, जो लोग अत्यन्त कुटिल होते हैं, उन्हें स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता । कोई भी लोग उनका कभी भी आदर नहीं करते । वे हमेशा अपकीर्ति (वदनामी) के योग्य होते हैं । ९३ अस्तु (तत्पश्चात्) वसिष्ठ ने उन्हें तीर्थ दिया । (उन) तीनों ने पिण्ड खा लिया । लेकिन कैकेयी के गले में पिण्ड अटक गया और वह बहुत व्याकुल हो गयी । ८४ फिर वसिष्ठ ने तीर्थ सींच दिया, तो पिण्ड (गले के) अन्दर उतर गया । तब राजा दशरथ आनन्दित हो गया । उसने बहुत दान दिया । ९५ वस्त्र, आभूषण,

ऋषी पावले स्वस्थाना । शृंगीआदिकरूनि । ९६ तिघी राण्या जाहल्या गर्भस्थ । आनंदला राजा दशरथ । म्हणे माझें भाग्य उदित । दिसतें पुढें येथोनि । ९७ घारीनें जो पिंड झडपिला त्याचा वृत्तांत काय जाहला । श्रोतयांनीं आक्षेप केला । कथा समूळ सांगा पां । १९८ तरी केसरी नामें वानर । त्याची स्त्री अंजनी सुंदर । ऋष्यमूकपर्वतीं घोर । तप करीत बैसली । १९९ सात सहस्र वर्षंपर्यंत । मौन धरोनि शुचिष्मंत । आराधिला उमाकांत । प्रसन्न जाहला तपांतीं । २०० म्हणे-अंजनी माग इच्छित । येरी म्हणे देईं अक्षय सुत । परम प्रतापी यशवंत । महाभक्त वज्रदेही । २०१ मग बोले उमावर । अकरावा जो मी महारुद्र । तुझे उदरीं अक्षय अवतार । धरितों अंजनी जाण पां । २०२ ऐकें शुभवदने अंजनी । तूं अंजुळीपात्र पसरुनी । बैसें सावध माझे ध्यानीं । अंतर्दृष्टी करूनियां । २०३ सुटेल अद्भुत प्रभंजन । साक्षात् लोकप्राणेश आपण । प्रसाद

विपुल दक्षिणा देकर ब्राह्मणों का गौरव किया । (तदनन्तर) शृंगी आदि सभी ऋषि अपने-अपने स्थान गये । ९६

तीनों रानियाँ गर्भवती हो गयीं । तो राजा दशरथ आनन्दित हो गया । उसने सोचा—अबसे आगे मेरा भाग्य उदित होता दिखता है । ९७

श्रोताओं ने शंका (उपस्थित करके) प्रश्न पूछा, 'चील ने जो पिण्ड छीन लिया, उसकी स्थिति क्या हो गयी ?—यह आरम्भ से कहो ।' ९८ (तो सुनो)—केसरी नामक एक वानर था । उसकी स्त्री अंजनी सुन्दर थी । वह ऋष्यमूक पर्वत पर कठोर तप करती हुई बैठी थी । ९९ शुद्ध आचरणवाली (अंजना) ने मौन धारण करके सात हज़ार वर्ष तक उमापति शिव की आराधना की–(इस) तप के अन्त में वह प्रसन्न हो गया । २०० उसने कहा, 'अंजनी, अपना इच्छित (मनचाहा वर) माँगो।' तो उसने कहा, 'मुझे अक्षय (अजर-अमर), परम प्रतापी, कीर्तिशाली, महान भक्त, वज्र के समान दृढ़ शरीरधारी पुत्र दो ।' २०१ तब उमापति शिव ने कहा—'हे अंजना, यह समझ लो कि मैं, जो ग्यारहवाँ महारुद्र हूँ, तुम्हारे उदर (गर्भ) से अक्षय अवतार धारण करूँगा । २०२ हे शुभवदना अंजनी, तुम अपनी अंजलि रूपी पात्र को फैलाकर मेरा ध्यान करती हुई, अन्तर्दृष्टि होकर सावधान बैठो । २०३ अद्भुत रूप में वायु चलेगा—लोगों के प्राणों का ईश्वर वह प्रत्यक्ष स्वयं प्रसाद लाकर देगा, उसे तुम त्वरित खा लो ।' २०४ (यह कहकर) शिव अपने स्थान की ओर गया ।

देईल आणोन। तो तूं भक्षीं अविलंबें। ४ स्वस्थळा गेला शूलपाणी। ध्यानस्थ बैसली अंजनी। नयन झांकोनि निज मनीं। ब्रह्मानंदें उचंबळें। ५ तंव कैकयीहातींचा पिंड झडपोनि। घारी नेत असतां गगनीं। तों चंड समीरें ते क्षणीं। पिंड मुखींचा आसुडिला। ६ तो अंजनीच्या करांत। आणोन घातला अकस्मात। तो तत्काळ ती भक्षित। शिवस्मरण करोनियां। ७ घारी ते देवांगना वहिली। नृत्य करितां चांचरी गेली। मग विधीनें शापिली। घारी होईं म्हणोनि। ८ मग ते सुवर्चसा नामें देवांगना। लागे कमलोद्भवाचे चरणा। विधि म्हणे-दशरथ राणा। अयोध्येचा नृपवर। ९ त्याच्या मखसमयीं पिंड झडपितां। उद्धरसील तूं तत्त्वतां। अंजनीकरीं पिंड पडतां। निज स्थाना येसी तूं। २१० असो घारी ब्रह्मवरें-करूनि। उद्धरोनि पावली स्वस्थानीं। इकडे नवमास भरतां अंजनी। प्रसूत जाहली तेधवां। ११ ऋषिपत्न्या पाहती ते वेळां। बळिया तो बाळ जन्मला। कीं वासरमणि प्रकटला। वानरवेषें दैदीप्य। १२ विद्युत्प्राय कुंडलें झळकती। गंडस्थळीं

इधर अंजनी आँखों को बन्द किये, लेकिन अपने मन में ब्रह्मानन्द से उमड़ती हुई ध्यानस्थ बैठी। ५ तब कैकेयी के हाथ से पिण्ड छीनकर चील आकाश मार्ग से ले जा रही थी, तो उसे प्रचण्ड वायु ने उसके मुख से (मानो खींचकर) नीचे गिरा दिया। ६ और यकायक उसे अंजनी के हाथों (की अंज़लि) में डाल दिया। उसने शिवजी का स्मरण करते हुए उसे तत्क्षण खा डाला। ७ (वस्तुतः) वह चील पहले (कोई) देवांगना (अप्सरा) थी, जो नृत्य करते समय लड़खड़ा गयी। तो विधाता ने उसे चील हो जाने का अभिशाप दिया था। ८ तदनन्तर वह सुवर्चसा नामक अप्सरा विधाता के चरणों में पड़ी तो उसने (विधाता ने) कहा, 'दशरथ अयोध्या का राजा है। उसके यज्ञ के समय पिण्ड को छीन लेनेपर सचमुच तुम्हारा उद्धार होगा और अंजनी के हाथ में पिण्ड के गिर पड़ते ही तुम अपने स्थान लौटोगी।' २०९-२१० अस्तु। ब्रह्माजी के वर के अनुसार चील का उद्धार होकर वह अपने स्थान (को) प्राप्त हो गयी। ११ उस समय ऋषिओं की स्त्रियों ने देखा कि एक बलवान् (हृष्ट-पुष्ट) बालक का जन्म हुआ—मानो सूर्य ही देदीप्यमान वानर के वेष में प्रकट हो गया हो। १२ उसके कुण्डल बिजली की भाँति चमकते थे उनका प्रकाश उसके गण्डस्थल पर पड़ता है। उसका कौपीन (लंगोट) निश्चय ही दृढ़ता से-

पडली दीप्ती। दृढ कौपीन निश्चितीं। कटिप्रदेशीं मौंजी झळके। १३ तळपतसे यज्ञोपवीत। ऐसें वानररूप अद्भुत। मुखीं पुच्छाग्रीं आरक्त। वर्ण दिसत प्रवालसम। १४ परम क्षुधाक्रांत बाळ। चहूंकडे पाहे चंचळ। तों अंजनी उतावेळ। फळें गेली आणावया। १५ रुदन करी क्षुधित बाळ। तों आरक्त दिसे सूर्यमंडळ। म्हणे-हें दिसे उत्तम फळ। उडे चपळ मारुती। १६ पिंजारल्या रोमावळी। सिंहनादें गर्जे निराळीं। दिग्गजांचीं बैसळीं टाळीं। आंदोळली वसुंधरा। १७ स्फुरण दाटलें थोर। गाजवी पुच्छाचा फडत्कार। मागें अंगवातें तरुवर। उन्मळोनि जाती आकाशीं। १८ चपळ पदद्वय तैसेच हस्त। प्रतापें झेंपावे गगनांत। उड्डाणावर उड्डाण घेत। जात आदित्य लक्षोनियां। २१९ कीं उर्वीवरोनि सुपर्ण। जाय वैकुंठपीठ लक्षून। तैसाचि अंजनीहृदयरत्न। भानुमंडळा आटोपी। २२० मनोवेगासी मागें टाकुनी। हनुमंत वेगें जात गगनीं। तों लोकप्राणेश धांवुनी। धरीन म्हणे स्वपुत्रा। २२१

बँधा है और कमर में मूंजी (मुंज नामक घास की करधनी) झलकती है। १३ उसका जनेऊ दमकता है, मुख और पूँछ में प्रवाल का-सा लाल वर्ण झलकता है—इस वानर का ऐसा अद्भुत रूप है। १४ यह बालक भूख से अति व्याकुल हो गया; वह चारों ओर चंचल नज़र से देखने लगा, तो अंजनी उतावली हो फल लाने के लिए गयी। १५ इधर यह भूखा शिशु रोने लगा। उसे लाल-लाल सूर्य-मण्डल दिखायी दिया। उसने सोचा—यह तो (कोई) बढ़िया फल दिखता है। (उसे लेने के हेतु) मारुती चपलतापूर्वक उड़ गया। १६ उसके बाल बिखर गये। वह आकाश में सिंहनाद करके ऐसे गरज उठा कि दिग्गजों के कान बहरे हो गये और पृथ्वी कम्पित हो उठी। १७ (उसमें) आवेग तीव्रतापूर्वक भर आया। वह (अपनी) पूँछ से फडफड आवाज करता था। पीछे उसके शरीर से (वेगपूर्वक आगे बढ़ने के कारण) निर्मित हवा (की लहर) से वृक्ष उखड़कर आकाश में (उड़) जाते थे। १८ उसके दोनों पाँव वैसे ही हाथ चपल थे। वह प्रताप (वीरतापूर्वक) आकाश में (आगे) झपटता था। वह उड़ान पर उड़ान भरता हुआ सूर्य को लक्ष्य (बना) कर जा रहा था। २१९ अथवा पृथ्वी पर से गरुड़ बैकुण्ठलोक को लक्ष्य करके (बहुत वेगपूर्वक) जाता है, वैसे ही अंजनी के हृदय का यह रत्न मारुती सूर्यमण्डल की ओर जाकर उसे अपने अधीन कर गया—सूर्यमण्डल तक पहुँच गया। २२०

परम तीव्र सूर्यमंडळ । तेजें आह्‍ाळेल माझें बाळ । म्हणून धरूं पाहे अनिळ । परी तो चपळ नाटोपे । २२२ मग हिमाचलाचे शीतलां-बुकण । मागून शिंपी प्रभंजन । हनुमंत मुख पसरोन । सूर्याजवळी पातला । २३ तों ते दिवसीं सूर्यग्रहण । राहु आला मुख पसरोन । मारुतीस क्रोध आला दारुण । सिंहिकासुत देखतां । २४ म्हणे-भी अत्यंत क्षुधित । फळ भक्षावया आलों येथ । हा आला कोण अकस्मात । ग्रासाआड माझिया । २५ सबळ पुच्छघातेंकरून । फोडिलें राहूचें वदन । भिरकाविला पायीं धरून । मूर्च्छा येऊन पडला तो । २६ जैसा शुंडादंडें-करून देख । महागज विदारी बिडालक । कीं भुजंगाचे कवेंत मूषक । अकस्मात सांपडला । २७ राहूचे कैवारें केत । कपीवरी धांवला उन्मत्त । जैसा केसरीपुढें जंबुक येत । आपलें मरण विसरूनियां । २८ केतु देखतांचि हनुमंतें । तेथेंचि

मन के वेग को पीछे छोड़कर (अर्थात् मन के वेग से भी अधिक वेग से) मारुती आकाश में जा रहा था। तो लोगों के प्राणों का ईश्वर-वायुदेव दौड़कर कहता (सोचता) है—मैं अपने पुत्र को पकड़ लूँगा। २२१ सूर्यमण्डल अतिशय प्रखर है; उसके तेज से मेरा बच्चा झुलस जाएगा—इसलिए वायुदेव उसे पकड़ना चाहता था। परन्तु वह चपल बालक उसके वश में—हाथ में नहीं आता था। २२२ तब वायुदेव हिमालय के (ठण्डे) जलकण उसके पीछे-पीछे सींचता जाता था। हनुमान मुख को फ़ैलाये सूर्य के पास जा पहुँचा। २३ तब उस दिन सूर्य-ग्रहण था; अतः (राहु) मुँह फैलाकर आया (हुआ) था। सिंहिका के उस पुत्र (राहु) को देखकर मारुती को अतिशय गुस्सा आया। २४ उसने कहा (सोचा)—मैं अति भूखा हूँ। यहाँ मैं फल खाने के लिए आया तो यकायक यह कौन खाद्य (पाने) के मार्ग में आड़े आया है? २५ पूँछ के जोर के आघात से उसने राहु के मुख को भग्न कर डाला और उसे पाँव के आघात से उछाल दिया तो वह (राहु) बेहोश होकर गिर पड़ा। २६ देखते हैं कि जैसे महान् हाथी सूँड (-रूपी दण्ड) से (आघात कर) बिलाव को कुचल डालता है अथवा जैसे साँप की पकड़ में अकस्मात् चूहा फँस जाए (तो जो स्थिति उस चूहे की हो जाती है) वैसे ही राहु हनुमान के हाथों में फँस गया (और उसकी बुरी स्थिति हो गयी)। २७ राहु का पक्षपात-पूर्वक पक्ष लेकर केतु उन्मत्त हो वानर (हनुमान) पर दौड़ा आया, जैसे गीदड़ मृत्यु को भुलाकर सिंह के आगे आ जाता हो। २८ केतु को

मर्दिला मुष्टिघातें। आंग चुकवोनि वेगें बहुतें। पळता जाहला केतू पैं। २९ राहु आणि केत। इंद्रापाशीं आले धांवत। अशुद्धें नाहाले जेवीं पर्वत। सिंदूरेंकरून माखले। २३० आक्रोशें बोलती दोघेजण। तूं सुरेश सहस्रनयन। आम्हांवरी कोप धरून। हें कां विघ्न धाडिलें। ३१ नवा पुच्छराहु करून। आम्हांवरी दिधला पाठवून। आश्चर्य करी शची-रमण। म्हणे हें कर्तृत्व कोणाचें। ३२ कोणीं केली विपरीत करणी। त्यास संहारावया वज्रपाणी। त्रिदशसमुदाय घेउनी। वायुवेगें धांविन्नला। ३३ राहु पुढें पुढें धांवत। मागें देवांसहित अमरनाथ। तों इकडे अंजनीसुत। सूर्य ग्रासूं धांवतसे। ३४ चळचळां कांपे मित्र। म्हणे-हा कैंचा आला अमित्र। दिनमान सांडोनि दिनकर। पळों न लाहे सर्वथा। ३५ प्रतापरुद्र मारुती। सूर्यमंडळ धरिलें हातीं। हे फळ नव्हे निश्चितीं। म्हणोनि पुढती टाकिलें। ३६ जैसा केवळ वडवानळ। तैसेंच देदीप्यमान सूर्यमंडळ। फळ नव्हे म्हणोनि अंजनीबाळ। टाकिता जाहला

देखते ही हनुमान ने घूँसे से उसे वहीं मसल डाला। तो अपनी देह को (उससे) छुड़ाकर-बचाकर केतु बहुत वेग से भाग गया। २९ राहु और केतु दौड़ते हुए इन्द्र के पास आये। वे रक्त से नहाये हुए थे—मानो सिंदूर से सने पर्वत ही हों। ३० दोनों जने आक्रोश-पूर्वक कहते हैं—हे देवेश सहस्रनयन (इन्द्र), क्रोध भाव रखकर हम पर यह विघ्न तुमने क्यों भेजा है? ३१ पूँछ से युक्त इस नये राहु का निर्माण कर उसे हमपर (आक्रमण करने के लिए) तुमने भेज दिया है। यह सुनकर शचिपति इन्द्र आश्चर्य अनुभव करके कहता है कि यह किसका कृतित्व है। ३२ किसने यह विपरीत करतूत की? (जिस-किसी ने की हो) उसका संहार करने के लिए वज्रपाणि देवों के समूह को लेकर वायु-वेग से दौड़ा। ३३ राहु आगे-आगे दौड़ता है देवों सहित इन्द्र (उसके) पीछे दौड़ता है तो इधर अंजनी-पुत्र हनुमान सूर्य को निगलने के लिए दौड़ रहा है। ३४ (उसे देखकर) सूर्य थरथर काँपता है। वह कहता (सोचता) है—यह कैसा शत्रु आ गया? नित्य का (कार्य) क्रम छोड़कर सूर्य बिलकुल नहीं भाग पाता था। ३५ रौद्र प्रतापवाले मारुती ने सूर्यमण्डल को हाथ में धर रक्खा; यह निश्चय ही फल नहीं है—ऐसा कहकर (समझकर) उसे आगे फेंक दिया। ३६ विशुद्ध अग्नि जैसी तेजस्वी होती है, वैसा ही देदीप्यमान—चमकदार यह सूर्यमण्डल है। यह फल नहीं है—ऐसा सोचकर अंजनी

पुढती पैं। ३७ माघारा पाहे परतोन। तों राहु आला शक्रास घेऊन। पुढती क्रोध आला दारुण। म्हणे आतां न सोडीं यासी। ३८ साह्य करून अमरपती। मजवरी आला पुढती। जैसे शलभ मिळूनि येती। कल्पांतविजू धरावया। ३९ ऐसें बोलत वायुनंदन। राहूवरी लोटला येऊन। इंद्रादेखतां ताडण। राहूसी केलें बहुसाल। २४० जैसा पर्वत पडे अकस्मात। तैसा राहूसी दे मुष्टिघात। ग्रहपूजा यथासांग तेथ। वायुसुतें मांडिली। ४१ राहु आक्रोशें फोडी हांका। म्हणे-काय पाहसी अमरनायका। मग शक्रें ऐरावती देखा। अकस्मात प्रेरिला। ४२ जिकडे धांवे ऐरावत। तिकडे भारें उर्वी लवत। कीं दुसरा मेरु मूर्तिमंत। शक्राचें वाहन जाहला। ४३ तों सबळ लोटला ऐरावती। चपळ धावला वीर मारुती। जैसा वज्रघात पर्वतीं। तैसा कुंभस्थळीं ताडिला। ४४ धाकें ऐरावत तो पळे। पाकशासन निजबळें। ऐरावत आकळितां नाकळे। रान

के बेटे ने उसे आगे फेंक दिया। ३७ (और) पीछे मुड़कर देखा, त्यों ही राहु इन्द्र को लेकर सामने आ गया। इससे उसे पुनः भयंकर क्रोध आया। उसने कहा (सोचा), अब इसे नहीं छोड़ूँगा। ३८ अमरपति इन्द्र को साह्य-कर्ता के रूप में लेकर यह मुझपर चढ़ आया (आक्रमण करने दौड़ा); मानो शलभ (टिड्डियाँ) मिलकर कल्पान्त (प्रलय)-काल की बिजली को पकड़ने के लिए आ गये हों। ३९ इस तरह बोलते (सोचते) हुए वायु-पुत्र हनुमान राहु की ओर झपटा और इन्द्र के देखते हुए, उसने राहु का बिलकुल कचूमर निकाल दिया। २४० जैसे पर्वत (किसी पर) अकस्मात् टूट पड़े, वैसे ही राहु के घूँसे जमाता था—अर्थात् प्रत्येक घूँसा पर्वत के गिर जाने जैसा था। हनुमान ने वहाँ मानो यथासांग (बिना कोई कोर-कसर रक्खे) ग्रह-पूजन ही ठान लिया। ४१ राहु ज़ोर-ज़ोर से रोते हुए (इन्द्र को) पुकारता था। वह कहता है–'हे इन्द्र, तुम क्या देख रहे हो ?' (इस पर) इन्द्र ने ऐरावत हाथी की ओर देखकर यकायक उसे प्रेरित किया—उसे उकसाया। ४२ (तब) ऐरावत जिस ओर दौड़ता, उस ओर उसके भार से पृथ्वी झुकती–धँस जाती। (वह ऐसा दिखायी देता था कि) मानो साक्षात् दूसरा मेरु पर्वत ही इन्द्र का वाहन (सवारी) बन गया हो। ४३ वह बलशाली ऐरावत जब लपका, तो वीर पुरुष मारुती (उसकी ओर) चपलतापूर्वक दौड़ा और जैसे पर्वत पर वज्र का आघात हो जाए, वैसे उसने उसके कुम्भस्थल पर आघात किया। ४४ मारे

घेतलें भयेंचि। ४५ जैसी दुर्बळाची स्त्री नष्ट बहुत। ती न मानी त्याचा वचनार्थ। तैसा इंद्रासी ऐरावत। नाटोपेचि सर्वथा। ४६ असो विवेक करूनि बहुत। काम क्रोध आवरिती महंत। तैसा सहस्राक्षें ऐरावत। पुढती समोर आणिला। ४७ मागुता धांवे पवनसुत। धरी ऐरावताचे चारही दंत। उलथोनि खालीं पाडित। शक्रासहित तेधवां। ४८ हस्तचपेटें हनुमंतें ते वेळीं। शक्राचा किरीट पाडिला भूतळीं। सकळ देवसेना ते काळीं। भयभीत जाहली। ४९ इंद्राची झोटी मोकळी। मागुती ऐरावत आकळी। हनुमंतावरी बळेंचि घाली। परी गज न टाकी पाउल पुढें। २५० गज पळे रानोरान। परम घाबरला सहस्रनयन। तो यम हस्तीं दंड घेऊन। हनुमंतावरी धांविन्नला। ५१ यमें दंड प्रेरावा जों ते वेळां। तों मारुति अंगावरी कोसळला। मुष्टिघात हृदयीं दिधला। यम पाडिला धरणीवरी। ५२ वक्षःस्थळीं वळंघोनि हनुमंत। पुढतीं मुष्टिघात

डर के ऐरावत भाग गया। इन्द्र के द्वारा ऐरावत को रोकने का यत्न होने पर भी वह नहीं रुका (इन्द्र के वश में नहीं आया)। भय के कारण वह वन में भाग गया (उसने वन का आश्रय लिया)। ४५ जैसे दुर्बल व्यक्ति की अति नटखट-कठोर-हृदय-स्त्री उसकी बात को नहीं मानती, वैसे ही इन्द्र द्वारा ऐरावत वश में नहीं आ रहा था। ४६ अस्तु। बहुत विवेक करके महान् लोग काम, क्रोध (आदि विकारों) को काबू में रखते हैं, वैसे ही (बहुत यत्न करके) सहस्रनयन इन्द्र ऐरावत को रोककर सामने लाया। ४७ पवनपुत्र पीछे दौड़ता है और ऐरावत के चारों दाँतों को पकड़ता है; फिर उसने तब इन्द्र-सहित उसे उलटाकर गिरा दिया। ४८ उस समय हनुमान ने हाथ के थप्पड़ से इन्द्र के मुकुट को जमीन पर गिरा दिया। (यह देखकर) उस समय समूची देवों की सेना भयभीत हो गयी। ४९ इन्द्र की चोटी छूट गयी। उसने (इन्द्र ने) फिर से ऐरावत को खींचकर बलपूर्वक हनुमान पर दौड़ाया (दौड़ाना चाहा), फिर भी वह हाथी कदम आगे नहीं रखता था। २५० वह हाथी वन-वन भागता था। (इससे) इन्द्र अतिशय घबड़ा गया, तो यम हाथ में दण्ड लेकर हनुमान पर दौड़ आया। ५१ उस समय ज्यों ही यम ने दण्ड को प्रेरित किया (आघात करने के हेतु चलाया), त्यों ही मारुती उसके शरीर पर आ गिरा और उसने उसके हृदय पर घूँसा जमाया और यम को नीचे धरती पर गिरा दिया। ५२ छाती से लिपटकर हनुमान पुनः घूँसे जमाता था। उसने

प्रेरित। हातींचा दंड हिरोनि घेत। तेणेंचि ताडित तयासी। ५३ यमें धरिले मारुतीचे चरण। म्हणे मी तुजला अनन्य शरण। हस्त जोडूनियां वरुण। स्तुति करीत मारुतीची। ५४ कुबेर धांवोन ते समयीं। लागे हनुमंताचे पायीं। तों ऐरावतारूढ लवलाहीं। शक्र वेगें पातला। ५५ ऐसें देखोनि ते अवसरीं। मारुति धांवे शचीवरावरी। ऐरावतास पुच्छीं धरी। पृथ्वीवरी आपटावया। ५६ पुच्छ धरूनि भोवंडी गज। पृथ्वीसहित कांपती दिग्गज। अवनीवरी देवराज। वज्रांसह पाडिला। ५७ बळें गज आपटिला धरणीं। देवांस मांडली महापळणी। कडेकपाटीं जाउनी। महायोद्धे दडाले। ५८ म्हणती पृथ्वी गेली रसातळा। एकचि हाहाकार जाहला। तों अमरेंद्रें ते वेळां। आव धरिला पुढती पै। ५९ वज्र बळें भोवंडित। मुखावरी ताडिला हनुमंत। तेणें मूर्च्छना दाटली बहुत। पडे वायुसुत पृथ्वीवरी। २६० कनकाद्रीवरून कोसळला। पर्वतदरीमाजी पडला। लोकप्राणेश धांविन्नला। सुत धरिला पोटासीं। ६१

उसके हाथ से दण्ड छीन लिया और वह उससे उसे (यम को) पीटता था। ५३ तब यम ने मारुती के पाँव पकड़ लिये और कहा—'मैं अनन्य भाव से तुम्हारी शरण में आया हूँ'। इधर वरुण ने हाथ जोड़कर मारुती का स्तवन किया। ५४ उस समय कुबेर दौड़ता हुए आकर हनुमान के चरणों में गिर पड़ा। तब शीघ्र ही ऐरावत पर विराजमान इन्द्र वेग से (वहाँ) आ पहुँचा। ५५ उसे इस प्रकार देखकर उस समय मारुती इन्द्र की ओर लपका और ज़मीन पर पटक देने के हेतु उसने ऐरावत को पूँछ से पकड़ लिया। ५६ हाथी की पूँछ पकड़कर उसने उसे चारों ओर घुमाया, तो पृथ्वी-सहित दिग्गज काँप उठे। मारुती ने इन्द्र को वज्रसहित पृथ्वी पर गिरा दिया। ५७ उसने जोर से हाथी (ऐरावत) को धरणी पर पटक दिया तो देवों में भगदड़ मची (और) बड़े-बड़े योद्धा (पर्वतों के) कगारों-गह्वरों (गुफाओं) में जाकर छिप गये। ५८ उन्होंने कहा (माना)—(अब) पृथ्वी रसातल में गयी। (सर्वत्र) हाहाकार मात्र मच गया, तो उस समय देवेन्द्र ने धैर्य धारण किया। ५९ बलपूर्वक वज्र को घुमाते हुए उसने हनुमान के मुँह में (उससे) आघात किया। इससे उसे बहुत भारी मूर्च्छा (बेहोशी) आयी और वह (वायुपुत्र) पृथ्वी पर गिर गया। २६० सुवर्ण पर्वत (पर) से वह गिर गया और पर्वत की घाटी में गिर पड़ा, तो वायुदेव दौड़ा और उसने (अपने) पुत्र को गोद में उठा

कासाविस वायुनन्दन। विकळ पडला अचेतन। वायु रडे स्फुंदस्फुंदोन। पुढें घेऊन हनुमंता। ६२ म्हणे दुर्जन हा अमरेंद्र। तान्हयावरी घातलें वज्र। परम निर्दय पुरंदर। करीन संहार तयाचा। ६३ माझिया तान्हयाचा जातां प्राण। आटीन सकळ त्रिभुवन। जैसे प्रल्हादाकारणें दैत्य संपूर्ण। श्रीनृसिंहें आटिले। ६४ वायुआधीन सकळांचे प्राण। आकर्षिले न लागतां क्षण। श्वासोच्छ्वास कोंडून। केलें त्रिभुवन कासाविस। ६५ मग इंद्र विरिंचि सकळ सुरवर। रमावर आणि उमावर। सकळ प्रजा ऋषीश्वर। शरण आले वायूतें। ६६ पोटासी धरूनि हनुमंत। वायु दीर्घ स्वरें रडत। तों ब्रह्मादि देव समस्त। प्राणनाथें देखिले। ६७ हनुमंत कडेवरी घेउनी। वायु उभा राहे ते क्षणीं। तीन्ही देव देखोनि नयनीं। नमस्कार करी तेधवां। ६८ मग बोले कमळासन। पुत्राचा कैवार घेऊन। अवघे जन निर्दाळून। टाकिशी काय प्राणेशा। ६९ येरू म्हणे-न उठतां माझा सुत। इंद्रासी आटीन देवांसहित। ऐकोनि हांसे इंदिरानाथ। वर

लिया। ६१ हनुमान व्याकुल हो गया; वह बेचैन तथा अचेतन हो गिर पड़ा। तब वायुदेव हनुमान को सामने रखकर फूट-फूटकर रोने लगा।६२ उसने कहा–इस दुर्जन इन्द्र ने (इस) दुध-मुँहे पर वज्र मारा। यह इन्द्र अति निर्दय है। मैं उसका संहार करूँगा। ६३ यदि मेरे शिशु के प्राण निकल जाएँ, तो जैसे प्रह्लाद के कारण (उसकी रक्षा के लिए) श्री नरसिंह ने सब दैत्यों को नष्ट किया, वैसे ही मैं समस्त त्रिभुवन का विनाश करूँगा। ६४ सब के प्राण वायु के अधीन होते हैं। उन्हें आकृष्ट करने (खींच लेने) में क्षण भी नहीं लगा। सब के श्वासोच्छ्वास को रोककर (वायुदेव ने) त्रिभुवन को व्याकुल कर डाला। ६५ तब इन्द्र, ब्रह्मा और सब बड़े-बड़े देव, रमापति विष्णु और उमापति शिवजी, समस्त प्रजा (जन) और ऋषिवर वायु की शरण में आ गये। ६६ हनुमान को प्रेमपूर्वक गोद में लिये हुए वायु उच्च स्वर से रो रहा था; तब प्राणनाथ (वायु) ने ब्रह्मादि सब देवों को देखा। ६७ तो हनुमान को गोद में लेकर वायु तत्क्षण खड़ा हो गया और तब तीनों देवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) को आँखों से देखकर उन्हें नमस्कार किया। ६८ तब ब्रह्मा जी बोले–'हे प्राणेश वायुदेव, पुत्र का पक्षपात कर सब लोगों को क्यों नष्ट कर डाल रहे हो?' ६९ (इसपर) दूसरे ने अर्थात् वायु ने कहा–'यदि मेरा पुत्र

देतसे संतोषोनि । २७० पूर्ण पिंडाचा हनुमंत । यासी स्वप्नींही नाहीं मृत्य । ब्रह्मकल्पपर्यंत । चिरंजीव पुत्र तुझा । ७१ मग बोले कर्पूरगौर । माझिये तृतीय नेत्रींचा वैश्वानर । क्षणें जाळील चराचर । परी यासी बाधे ना । ७२ माझीं त्रिशूळादि आयुधें तत्त्वतां । तीं न रुतती हनुमंता । मग विरिंचि होय बोलता । निजवरदान ऐका तें । ७३ माझें ब्रह्मास्त्र आणि पाश । कदा न बाधितील यास । म्यां जीं शस्त्रें निर्मिलीं बहुवस । तींही यास न बाधिती । ७४ मग इंद्रही वदे सवेग वर । माझें यासी न बाधे वज्र । हा वज्रदेही साचार । अक्षय अभंग सर्वदा । ७५ हनुवटीस झगडलें वज्र । यास हनुमंत नाम साचार । कुबेर म्हणे-बहुत असुर । क्षय पावती हस्तें याच्या । ७६ यम वदे वरदान । यास काळदंड न बाधी पूर्ण । याचे करिती जे नामस्मरण । त्यांसी बंधन न करीं मी । ७७ मग बोले रसाधिपती । अभंग असो यास शक्ती । कधीं श्रम

(जीवित) न उठे, तो देवों-सहित इन्द्र को मैं नष्ट करूँगा'। यह सुनकर इन्दिरापति विष्णु ने सन्तुष्ट हो उसे वर दिया। २७० 'हनुमान पूर्ण पिण्ड (से उत्पन्न) है। इसे स्वप्न में भी मृत्यु नहीं आएगी। ब्रह्म-कल्प के अन्त तक तुम्हारा पुत्र चिरंजीवी है (होगा)।' ७१ तदनन्तर शिवजी बोले–'मेरे तीसरे नेत्र का वैश्वानर (अग्नि) क्षण (मात्र) में जड़-चेतन को जला सकेगा–लेकिन इसे वह बाधा नहीं पहुँचाएगा। ७२ मेरे त्रिशूल आदि अस्त्र सचमुच हनुमान को बिलकुल नहीं चुभेंगे'। तत्पश्चात् ब्रह्माजी बोलने लगे–'सुनो, मेरा यह वरदान है। मेरा ब्रह्मास्त्र और पाश इसे कभी भी बाधा नहीं पहुँचाएँगे। मैंने जो बहुत अस्त्र निर्मित किये हैं, वे भी इसे बाधा नहीं करेंगे'। ७३-७४ तब इन्द्र भी झट से अपना वर कहता है–'मेरा वज्र इसे बाधा नहीं पहुँचाएगा। यह सचमुच वज्रदेही (वज्र के समान कठिन शरीरधारी) है। वह नित्य अक्षय तथा अभंग होगा। ७५ इसकी हनु (ठुड्डी) में वज्र भिड़ गया, इसलिए इसके लिए हनुमन्त (हनुमान) नाम सत्य—उचित है।' (तदनन्तर) कुबेर ने कहा–इसके हाथों बहुत असुर (राक्षस) क्षय (नाश) को प्राप्त हो जाएँगे। ७६ फिर यम ने (अपना) वरदान कहा–'इसे काल का दण्ड पूर्णरूप से बाधा नहीं पहुँचाएगा। इसका जो नामस्मरण करेंगे, उनके लिए मैं कोई बन्धन नहीं करूँगा'। ७७ तदनन्तर वरुण ने कहा–'इसकी शक्ति अभंग हो जाए। बहुत वर्ष युद्ध करने पर भी (यह) मारुती कभी थकावट को

न पावे मारुती । युद्ध करितां बहुसाल । ७८ दिव्य कमळांची सुमनमाळ । न सुके लोटतां बहुकाळ । ती विश्वकर्मे तत्काळ । गळां घातली मारुतीच्या । ७९ समस्तीं देऊन वरदाना । गेले आपापले स्वस्थाना । वायूनें हनुमंत ते क्षणां । अंजनीजवळ आणिला । २८० मारुतीस हृदयीं धरोनी । स्फुंदस्फुंदोनि रडे जननी । मुखामाजी स्तन घालुनी । वदन कुरवाळी वेळोवेळां । ८१ रामविजय ग्रंथ सुरस । त्यामाजी हनुमंतजन्म विशेष । श्रवण करिती जे सावकाश । ग्रहपीडा त्यांस न होय । ८२ हनुमंतजन्मकथन । निजभावें करितां श्रवण । दुष्टग्रहविघ्नें दारुण । न बाधती कदाही । ८३ पुढें रसाळ कथा बहुत । डोहळे पुसेल राजा दशरथ । अजन्मा जन्मेल रघुनाथ । तोच कथार्थ अवधारा । २८४ जैसें जों जों क्षेत्र पिकत । तों तों कणसें घनदाट दिसत । तैसे प्रसंगाहून प्रसंग बहुत । रसभरित असती पैं । २८५ जयासी नाहीं पुत्रसंतान ।

प्राप्त न हो जाए'। ७८ (फिर) विश्वकर्मा (ब्रह्माजी) ने दिव्य कमल-पुष्पों की (ऐसी) माला तत्काल मारुती के गले में पहना दी, जो बहुत काल बीतने पर भी सूख न जाए। ७९ (इस प्रकार) वरदान देकर सब (देव) अपने-अपने स्थान (लौट) गये। (तदनन्तर) वायुदेव हनुमान को अंजनी के पास तत्काल ले आया। २८० मारुती को हृदय (छाती) से लगाकर (अंजनी) माता बिलख-बिलखकर रोने लगी। उसके मुख में स्तन देकर वह बारबार उसके मुख को (प्रेमपूर्वक) सहलाने लगी। ८१

यह रामविजय ग्रन्थ सुरस है। उसमें से हनुमान के जन्म की कथा विशेष रूप में जो यथावकाश श्रवण करेंगे, उन्हें ग्रहों की पीड़ा कभी भी न होगी। ८२ हनुमान के जन्म की कथा का आत्मीयता से श्रवण करने पर (उस श्रवण करनेवाले को) दुष्ट ग्रहों द्वारा निर्मित भयानक विघ्न कदापि बाधा नहीं पहुँचाते। ८३

इसके आगे बहुत रस भरी कथा है। (उसमें) राजा दशरथ दोहद पूछेंगे; अनादि भगवान् रघुनाथ जन्म ग्रहण करेंगे। उसी कथा का अर्थ ध्यान से ग्रहण करो। २८४ जिस प्रकार खेत की फसल ज्यों-ज्यों पक्व होती जाती है, त्यों त्यों भुट्टे (अधिकाधिक) घने–ठोस (रस भरे) दिखायी देते हैं, उसी प्रकार इस रामविजय में एक से एक प्रसंग रस-भरित (रसात्मक) हैं। (अर्थात् जैसे-जैसे कथा का विकास होता जाएगा, वैसे-वैसे उसमें अधिकाधिक रस बढ़ता जाएगा।) २८५

त्यानें करावें विजयावर्तन। संतति संपत्ति परिपूर्ण। सदा नांदती त्याचे गृहीं। २८६ येथोनि श्रीरामचरित्रकथा गहन। श्रोतीं परिसावी सावधान। तेणें ब्रह्मानंद ठसावोन। कैवल्यपद पाविजे। २८७ ब्रह्मानंदा श्रीरघुवीरा। विषकंठ-हृदया परात्परा। वेदवंद्या श्रीधरवरा। दीनोद्धारा जगद्गुरो। २८८ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। श्रवण करोत पंडित चतुर। तृतीयाध्याय गोड हा। २८९
॥ श्री रामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

जिसके कोई पुत्र-सन्तान नहीं है, वह इस रामविजय ग्रन्थ का आवर्तन (पुनः पुनः पठन) करे, जिससे उसके घर में नित्य सन्तति और सम्पत्ति परिपूर्ण रूप में बनी रहेगी। २८६

यहाँ से (आगे) श्रीरामचरित्र की कथा गहन (हो जाती) है। श्रोता सावधान हो (उसे) सुनें। इससे वे ब्रह्मानन्द को प्राप्त करके कैवल्य पद प्राप्त करेंगे। २८७ हे ब्रह्मानन्द, हे श्रीरघुवर, श्रीशिवजी के हृदय में स्थित परमश्रेष्ठ और वेदों द्वारा वन्दनीय भगवान्, श्रीधर के लिए वरदान के दाता, दीनों के उद्धार-कर्ता, जगद्गुरु ! यह श्रीरामविजय नामक सुन्दर ग्रन्थ है, जो वाल्मीकि के नाटक पर आधारित है। उसका यह मधुर तीसरा अध्याय पण्डित चतुर जन श्रवण करें। २८८-२८९

अध्याय—४

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ चतुर श्रोते करिती प्रश्न। तृतीयाध्यायीं हनुमंत-जनन। सांगितलें तुवां संपूर्ण। कथा अद्भुत नवलचि। १ आणिके पुराणीं साचार। हनुमंतजन्म-कथाप्रकार। वेगळाचि असे विचार। पृथक्-पृथक् कथियेला। २ तरी पुराणांतरीं विपरीत। कथा पडावया काय निमित्त। याचें प्रत्युत्तर यथार्थ। सांग समस्तां कळावया। ३ ऐसें श्रोतयांचें वाग्जाळ। परिसोनियां कवि कुशळ। शब्द बोले अति रसाळ। परिसा सकळ श्रोते हो। ४ अनादिसिद्ध अवतारमाळा। जगदीशें गुंफिल्या अवलीळा। जैसें तरंगापूर्वी जळा। व्यापोनियां असणें कीं। ५ जैसी रहाटघटमाळिका। तेवीं हें अवतारचरित्र देखा। कीं भगणें मित्र-मृगांका। प्रदक्षिणा करणें मेरूची। ६ कीं जपमाळेचे मणी। तेचि येती परतोनी। तैसे अवतार ब्रह्मांडभुवनीं। फिरती माळेसारिखे। ७ तरी

श्री गणेशायनमः। (श्रोता कवि श्रीधर से कहते हैं–) 'तीसरे अध्याय में तुमने हनुमान के जन्म की सम्पूर्ण कथा कही, जो अद्भुत (और) नये प्रकार की अर्थात् श्रवणीय है। वस्तुतः अन्य पुराणों में हनुमान के जन्म की कथा भिन्न प्रकार की है—उनमें इस सम्बन्ध में बात भिन्न-भिन्न (प्रकार से) कही हुई है।' (यह कहकर) चतुर श्रोता (कवि रूपी वक्ता से) प्रश्न करते हैं—'विभिन्न पुराणों में (परस्पर) विपरीत कथाओं के चल पड़ने (निर्मित होकर प्रचलित होने) का क्या कारण है? इसे सबके जानने के लिए इस प्रश्न का यथार्थ (उचित) उत्तर कहो।' १-३

श्रोताओं का ऐसा शब्द-पाण्डित्य सुनकर कुशल कवि ने जो अतिशय रसात्मक शब्द कहे, सब श्रोताओ, उन्हें सुनो। ४

जगदीश्वर भगवान् ने आदिकाल से (सिद्ध) अवतारों की मालाएँ स्वाभाविक रूप में गूँथी हैं।—अर्थात्, जैसे उत्पन्न होने से पहले लहरें पानी में ही व्याप्त रहती हैं, वैसे ही प्रत्यक्ष प्रकट होने से पहले अवतार भगवान् में ही समाहित रहते हैं। ५ जैसे रहँट के घटों (घड़ों) की माला होती है (रहँट के चलते रहने पर वे घट उसी-उसी क्रम से बार-बार दिखायी देते हैं), देखो वैसे ही ये अवतार चरित्र हैं। (प्रत्येक कल्प में अवतार उसी क्रम से होते रहते हैं।) अथवा, नक्षत्र (तारे), सूर्य, चन्द्र मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं; अथवा, जप की माला (सुमिरनी) के जो मनके होते

कल्पपरत्वें अवतार। जे जे वेळे जें जें चरित्र। तैसेंचि बोलिला सत्यवतीकुमर। कथा साचार तितुक्याही। ८ एके अवतारीं वर्तलें एक। तों दुसरे अवतारीं विशेष कौतुक। तरी तितुकेंही सत्य देख। विपरीतार्थ न मानिजे। ९ रणामाजी एकांग वीर। तैसा जाणिजे कवीश्वर। बहुत श्रोतयांचे भार। परम चतुर सागर जे। १० सभानायक प्रवीण अत्यंत। करीं संदेहधनुष्य घेत। प्रश्नावर शर सोडित। आशंकासमय लक्षोनियां। ११ मग कवीनें धैर्यठाण मांडून। चढविलें स्फूर्तीचें शरासन। शास्त्रसंमताचे बाण। सोडी अभंग अनिवार। १२ सत्त्व ओढी काढूनि सत्वर। क्षमावेशें सोडी शर। परम कौशल्यें साचार। प्रश्नबाण छेदित। १३ श्रोत्या-वक्त्यांचें संधान। तटस्थ पाहती

हैं, वे ही क्रम से लौट आते हैं, वैसे ही (भगवान् के ये) अवतार ब्रह्माण्ड रूपी भवन में माला (के मनकों) की भाँति फिरते-चलते हैं। ६-७ इसलिए कल्प-कल्प के अनुसार अवतार हुए और उन्होंने जिस-जिस समय जो-जो चरित्र-(लीला)-कार्य किये, वैसे ही सत्यवती के पुत्र व्यास जी ने कहा (और) वस्तुतः उतनी ही कथाएँ (उपलब्ध) हैं। ८ (भगवान् ने) किसी अवतार (काल) में एक कार्य, तो दूसरे किसी अवतार (काल) में कोई दूसरी विशेष लीला की। फिर भी उसमें उतना ही सत्य देखो (मानो)—उसमें विपरीत अर्थ (उसे मिथ्या) न मानो। ९ रण में कोई एकाकी वीर होता है। कवीश्वर को वैसा ही (एकाकी) समझो। (युद्ध में एकाकी वीर पर विपक्ष के अनेक योद्धाओं का बोझ आ पड़ता है, वैसे ही) इस एकाकी कवि (रूपी वीर) पर उन अनेक श्रोताओं (रूपी योद्धाओं के प्रश्नों) का भार आता है, जो अतिशय बड़े चातुर्य के सागर ही हैं। १० सभा के नायक अत्यन्त प्रवीण हैं। वे आपत्ति उठाने के लिए योग्य अवसर को देखकर हाथ में सन्देह रूपी धनुष लेकर प्रश्नों के शब्दों रूपी बाण चलाते हैं। ११ फिर कवि (रूपी योद्धा) धैर्य रूपी आसन जमाकर बुद्धि की प्रेरणा रूपी धनुष को सज्ज करके शास्त्र-सम्मत वचनों के अभंग (अभेद्य) एवं अनिवार्य बाण चलाता है। १२ वह शीघ्र ही (विपक्षी के कथन के) सत्त्वांश को खींच निकालकर व्यवहार्य (उचित) आवेश के साथ (उत्तर रूपी) बाण चलाता है और सचमुच अति कौशल के साथ प्रश्न रूपी बाण को काट डालता है। १३ पण्डित लोग श्रोता-वक्ता का यह (प्रश्नोत्तर रूपी) शर-सन्धान तटस्थ (स्तब्ध) होकर देखते हैं और 'धन्य ! धन्य !' कहते हुए तर्जनी (अंगूठे के पासवाली अँगुली)

विचक्षण । धन्य धन्य रे म्हणोन । तर्जनी मस्तक डोलविती ।१४ आवेशा चढले दोघेजण । सप्रेम करिती नामस्मरण । तो घनघोष ऐकून । आशंका-श्वापदें दूर पळती । १५ वक्त्याचे वाग्बाण अत्यंत । अर्थगौरवमुख लखलखीत । पद्यरचना पक्ष-मंडित । सुरंग मिरवित साहित्य । १६ ऐसे शर सुटतां अपार । भेदलें श्रोतयांचें अंतर । डोलविलें तेणें शिर । सुखोर्मीचेनि भरें पैं । १७ वैरभाव नसतां किंचित । हें आनंदाचें युद्ध होत । क्षीरब्धीच्या लहरी मिळत । जैसा एकमेकांसी । १८ निष्कपट श्रोता पुसत । निरभिमान वक्ता बोलत । शब्दकौशल्य युद्ध सत्य । जाणती पंडित विवेकी । १९ देवभक्तांचा अनुवाद । तेथें काय आहे वैरसंबंध । कीं गुरुशिष्यांचा संवाद । आनंदयुक्त शब्दांचा । २० असोत ह्या बहुत युक्ती । चातुर्यसिंधुमंथन-पद्धती । वर्म जाणिजे पंडितीं । चातुर्यरीती कळा ज्या । २१

और मस्तक को हिलाते हैं । (उनकी महानता प्रशंसापूर्वक स्वीकार करते हैं ।) १४ (श्रोता और वक्ता) दोनों आवेश को प्राप्त हो गये हैं । वे प्रेमपूर्वक (भगवान् का) नाम स्मरण करते हैं । वह घनघोष सुनकर आक्षेप अथवा सन्देह रूपी श्वापद दूर भाग जाते हैं । १५ वक्ता के वचन रूपी बाण का अर्थ-गौरव रूपी मुख अत्यन्त चमकदार है । वह पद्य-रचना के परों से सुशोभित है । उसका साहित्य सुन्दर रंग से युक्त हो ठाठ से विचरण करता है । १६ ऐसे अनगिनत बाण छूटने से श्रोताओं का अन्तःकरण भेद लिया गया है । इससे सुख रूपी लहरों से भरकर उसने मस्तक हिलाया । १७ शत्रुता के किंचित् (भी) नहीं होने पर यह तो आनन्द भाव से युक्त युद्ध होता है । जैसे क्षीर समुद्र की लहरें मिल जाती हैं, वैसे ही वक्ता-श्रोता के आनन्द की लहरें (परस्पर) मिल जाती हैं । १८ कपट-भाव से रहित श्रोता प्रश्न करते हैं और अभिमान-रहित वक्ता (उत्तर में) बोलता है । उनका शब्द-कौशल सचमुच युद्ध है—ऐसा विवेकवान् पण्डित जन जानते हैं । १९ यह तो भगवान् के भक्तों द्वारा पुनः पुनः किया कथन-प्रतिकथन है । इसमें वैर भावना का क्या सम्बन्ध है ? अथवा यह तो गुरु-शिष्यों का आनन्द भाव से युक्त प्रस्तुत किये शब्दों में संवाद है । २० रहने दो यह बहुत कौशल पूर्ण बातें—दलीलें ! रहने दो चातुर्य रूपी समुद्र के मन्थन की पद्धतियाँ—अर्थात् बातें करने का चातुर्य पूर्ण ढंग । चातुर्य (से बातें करने) की जो पद्धतियाँ—कलाएँ हैं, पण्डित जन समझ लें । २१ कवि की रचना-गठन-

कवीची घडामोडी बहुत । युक्तिसागरींचीं रत्नें काढित । एक गव्हांचे प्रकार बहुत । करी जैसी सुगरिणी । २२ एके मृत्तिकेचे घट अपार । एका तंतूचे पट विचित्र । एक हेम बहुत अलंकार। हाटक-घडणार करी जैसा । २३ एके काष्ठीं शिल्पकार । युक्ति दाखवी अपार । तैसा जो कवि चतुर । शब्दसाहित्य विवरी पैं । २४ असो हें चातुर्य करणें । बोलावें लागलें श्रोतयांकारणें । पुढें रघुनाथकथा परिसणें । श्रीधर चतुरां विनवीतसे । २५ मागील कथानुसंधान । तृतीयाध्यायीं निरूपण । सांगितलें हनुमंतजन्म-कथन । मूळग्रंथ-आधारें । २६ सिंहावलोकनें तत्त्वतां। श्रोतीं परिसिजे मागील कथा । तिघी राण्या जाहल्या गर्भस्था । कौसल्या सुमित्रा कैकयी । २७ जैसा शुद्धबीजेचा मृगांक । दिवसेंदिवस कळा अधिक । कीं पळोपळीं चढे अर्क । उदयाद्रीहूनि पश्चिमे । २८ कीं करितां संतसमागम । दिवसेंदिवस

पद्धति बहुत (अद्‌भुत) होती है। गेहूँ तो एक ही प्रकार का होता है, परन्तु सुगृहिणी जैसे उसके अनेक प्रकार (के खाद्य पदार्थ) बनाती है, वैसे ही कवि कौशल पूर्ण बातों के समुद्र में से तरह-तरह के (विचार रूपी) रत्न निकाल लेता है। २२ एक (ही प्रकार की) मिट्टी के असंख्य (प्रकार के) घट बनाते हैं। एक (ही प्रकार के) तन्तु के विचित्र (विभिन्न) वस्त्र बनाये जाते हैं। सोना तो एक (प्रकार का) होता है, परन्तु सुनार उससे बहुत (प्रकार के) अलंकार बनाता है। एक (प्रकार के) काठ में शिल्पी असीम कौशल दिखाता है। वैसे ही जो कवि चतुर होता है, वह शब्दों में अनेक प्रकार से साहित्य की व्याख्या करता है। २४ चातुर्य की अर्थात् युक्ति-प्रयुक्ति-पूर्ण बातें करना बहुत हो गया। यह तो श्रोताओं के निमित्त कहना है। अब आगे, कवि श्रीधर चतुर श्रोताओं से रघुनाथ राम की कथा का श्रवण करने की विनती कर रहा है। २५ पिछली कथा (के विषय) में यह बात है—तीसरे अध्याय में मूल ग्रन्थ के आधार से हनुमान-जन्म की कथा कही। २६

श्रोता सिंहावलोकन के रूप में तत्त्वतः पिछली कथा सुनें। कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी तीनों रानियाँ गर्भवती हो गयीं। २७ जिस प्रकार शुद्ध द्वितीया का चन्द्रमा दिन-ब-दिन अधिकाधिक कला को प्राप्त करता जाता है, अथवा (पूर्व दिशा में स्थित) उदयाचल से सूर्य प्रति पल पश्चिम की ओर चढ़ता जाता है; अथवा सन्तों की संगति करने से दिन-ब-दिन प्रेम (भक्ति-) भाव बढ़ता जाता है, अथवा उदारता के कारण त्वरित

वाढे प्रेम। कीं औदार्येंकरूनि परम। कीर्ति वाढे सत्वर। २९
तैसे राणियांचे गर्भ वाढती। तों वसिष्ठ बोले दशरथाप्रती।
राया धर्मशास्त्रीं ऐसी रीती। डोहळे स्त्रियांसी पुसावे। ३०
ऐसें बोलतां ब्रह्मऋषी। हर्ष वाटला रायासी। नमोनि वसिष्ठ-
चरणसी। राजेंद्र तेंव्हां चालिला। ३१ जैसा शचीचिया
मंदिरांत। वृत्रासुरशत्रु प्रवेशत। तैसाचि अजपाळसुत।
कैकयींसदनीं प्रवेशे। ३२ पिंडप्राशनाचे काळीं। कैकयी होती
रुसली। म्हणोनि राजेंद्र ते वेळीं। तिचे सदनीं प्रवेशला। ३३
दूती जाणविती स्वामिनीतें। डोहळे पुसावया तुम्हांतें। नृपति
स्वयें येतसे येथें। सुमुहूर्त पाहोनियां। ३४ सुंदरपणाचा
अभिमान। त्याहीवरी कैकयी गर्भिण। जैसी अल्पविद्या गर्व
पूर्ण। तैसें येथें जाहलें। ३५ जैसी गारुडियांची विद्या किंचित।
परी ब्रीदें बांधिती बहुत। कीं निर्नासिक वाहत। रूपाभिमान
विशेष पैं। ३६ बिंदुमात्र विष वृश्चिका। परी पुच्छाग्र सदा
वरुतें देखा। किंचित ज्ञान होतां महामूर्खा। मग तो न गणी

सत्कीर्ति बहुत बढ़ती है, उसी प्रकार रानियों के गर्भ (दिन-ब-दिन) विकसित होते जाते। तब वसिष्ठ ऋषि दशरथ से बोले—'राजा, स्त्रियों से (उनके) दोहद पूछे जाएँ—धर्मशास्त्र में ऐसी रीति (बतायी) है। २८-३० ब्रह्मर्षि के ऐसा बोलने पर राजा को हर्ष अनुभव हुआ। तब वसिष्ठ के चरणों का नमन कर राजेन्द्र चल पड़े। ३१ जिस प्रकार (वृत्रासुर का शत्रु) इन्द्र शची के मन्दिर में प्रवेश करता है, वैसे ही (अजराजा के पुत्र) दशरथ ने कैकेयी के मन्दिर में प्रवेश किया। ३२ (प्रसाद का) पिण्ड खाने के अवसर पर कैकेयी रूठी थी इसलिए राजश्रेष्ठ दशरथ ने उस समय (सबसे पहले) उसके गृह में प्रवेश किया। ३३ (कैकेयी की) दूतियों ने (अपनी) स्वामिनी को यह विदित कराया कि सुमुहूर्त देखकर राजा स्वयं दोहद पूछने के लिए यहाँ पधार रहे हैं। ३४ (एक तो कैकेयी को) सुन्दरता का अभिमान था, तिस पर वह गर्भवती थी। जैसे किसी ने थोड़ी-सी विद्या पायी हो और उसे बहुत घमण्ड हुआ हो, वैसे ही यहाँ (कैकेयी की) स्थिति हो गयी। ३५ मदारियों को विद्या किंचित् ही (ज्ञात) होती है, परन्तु वे बड़े-बड़े बिरुद बाँध लेते हैं; अथवा नकचिपटा मनुष्य अपनी सुन्दरता का विशेष अभिमान करे, वैसी स्थिति कैकेयी की हो गयी। ३६ बिच्छू के पास केवल बूँद (भर) विष होता है, परन्तु देखो, उसकी पूँछ की नोक हमेशा ऊपर (उठी) रहती है। महामूर्ख

वाचस्पतीतें। ३७ खडाणे धेनूसी दुग्ध किंचित। परी लत्ता-प्रहार दे बहुत। अल्पोदकें घट उचंबळत। अंग भिजत वाहकाचें। ३८ तैसें कैकयीस जाहलें तये वेळीं। प्रीतीनें दशरथ आला जवळी। आपण सेजेवरी निजली। नाहीं धरिली मर्यादा। ३९ स्त्री सेवक अपत्य दासी। श्वान मर्कट कुरुपियासी। मर्यादा तुटतां मग सकळांसी। ते अनिवार जाणिजे। ४० म्हणोनि मर्यादा कांहीं तेथ। कैकयी न धरी देखतां दशरथ। तिसी डोहळे पुसे नृपनाथ। उभा समीप राहोनी। ४१ म्हणे कैकयी बोल वचन। तुज जें आवडे मनांतून। तें मी समस्त पुरवीन। सत्य जाण प्रियकरे। ४२ मग काय बोले ते वेळे। तुम्ही काय पुरवाल डोहळे। माझे मनींचे सोहळे। पूर्णकर्ता दिसेना। ४३ मग बोले अजनन्दन। तुजकारणें वेंचीन प्राण। परी तुझे डोहळे पुरवीन। सत्य जाण सुकुमारे। ४४ मग ती म्हणे जी नृपवरा। डोहळे हेचि माझे

व्यक्ति को अल्प सा ज्ञान होने पर वह फिर बृहस्पति को कुछ गिनता ही नहीं। (कैकेयी की वैसे ही स्थिति है।) ३७ नठेल गाय के दूध तो अल्प-सा होता है, लेकिन वह लातें बहुत जमाती है। अल्प-से पानी से घड़ा छलकता रहता है और उसे उठा ले जाने वाले का शरीर उससे भीगता रहता है। ३८ उस समय कैकेयी की वैसी स्थिति हो गयी। दशरथ प्रेम से (उसके) पास आ गये तो वह स्वयं शय्या पर सो गयी (लेटी हुई रही)। उसने मर्यादा का ध्यान नहीं रखा। ३९ स्त्री, सेवक, सन्तान, दासी, कुत्ता, बन्दर और कुरूप व्यक्ति—इनके प्रति मर्यादा विवेक टूट जाए (नहीं रखा जाए, इनका आवश्यकता से अधिक आदर किया जाए) तो उन्हें दुर्निवार (बने) समझो। ४० इसलिए दशरथ को वहाँ देखने पर भी कैकेयी ने कोई (पति के) मान-सम्मान का विवेक (पूर्वक व्यवहार) नहीं किया। उसके पास खड़े होकर राजा उससे दोहद पूछते हैं। ४१ उन्होंने कहा—'कैकेयी, (कुछ) बात कहो। हे प्रियकरा, यह सत्य समझो कि तुम्हें जो मन से भाए, वह सब मैं ला दूँगा।' ४२ फिर उस समय वह क्या बोलती है? (सुनो) 'तुम मेरे दोहद क्या पूरे करोगे? मेरे मन के उत्सव समारोह (सम्बन्धी आकांक्षाएँ) पूर्ण करनेवाला (कोई) दिखायी नहीं देता।' ४३ फिर अजपुत्र दशरथ ने कहा—'तुम्हारे निमित्त (लिए) मैं अपने प्राणों को भी न्योछावर करूँगा, तुम्हारे दोहद पूर्ण (तृप्त) करूँगा ही। हे सुकुमार

अवधारा । कौसल्या सुमित्रेचिया कुमरां । दिगंतरा दवडावें । ४५
पाठवावे दूर कानना । त्यांचा समाचार पुनः कळेना । आमचें
वर्तमान त्यांचिया कर्णां । सहसाही न जावें । ४६ राज्य द्यावें
माझिया पुत्रा । हेचि डोहळे होते राजेंद्रा । तुम्ही म्हणाल अधर्म
खरा । तरी तो दोष मजवरी घालिजे । ४७ मळा निंदितील
सकळ लोक । तों तों वाटेल परम सुख । समस्त जनां व्हावें
दु:ख । हेंचि मजला आवडे । ४८ ऐसें कैकयी वदे ते अवसरीं ।
ऐकतां नृप खोंचला अंतरीं । कीं काळिजीं घातली सुरी । कीं
अंगावरी चपळा पडे । ४९ वचन नव्हे तें केवळ । दु:खवल्लीचें
श्रेष्ठ फळ । कीं संचरलें हाळाहळ । हृदयीं वाटे दशरथा । ५०
वाटे पर्वत कोसळला । कीं काळसर्प जिव्हारीं झोंबला । कीं
तप्तशस्त्रघाय पडला । अंगावरी अकस्मात । ५१ कैकयीवचन
कलशोद्भव पूर्ण । प्राशिलें आयुष्यसागर-जीवन । राव घाबरा
होय जैसा चतुरानन । वेद हरण केले जेव्हां । ५२ परम खेद

स्त्री, इसे सत्य मानो ।' ४४ अनन्तर वह कहती है–'हे राजश्रेष्ठ, सुनो मेरे यही दोहद हैं—कौसल्या और सुमित्रा के पुत्रों को दिगन्तर (बहुत दूर) भेज दें । ४५ उन्हें (इतनी) दूर वन में भेजें (कि) उनका समाचार फिर से ज्ञात न हो जाए । हमारे विषय में भी कोई समाचार साधारणतः उनके कानों तक न जाए । ४६ मेरे पुत्र को राज्य प्रदान करें । हे राजेन्द्र, मुझे यही दोहद हो रहे हैं । तुम कहोगे कि यह सचमुच अधर्म है, फिर भी (इसका) वह दोष मुझपर रखो । ४७ सब लोग मेरी निन्दा करेंगे, वैसे वैसे मेरे लिए परम सुख (मय) प्रतीत होगा । सब लोगों को दु:ख (प्राप्त) हो जाए—यही मुझे अच्छा लगता है ।' ४८ उस अवसर पर (जब) कैकेयी ने ऐसा कहा, तो राजा अन्तःकरण में अतिशय दुखी हो गये । अथवा (उन्हें जान पड़ा कि किसी ने उनके) कलेजे में छुरी भोंक दी हो अथवा देह पर बिजली पड़ गयी हो । ४९ यह केवल उक्ति नहीं है, यह तो दु:ख रूपी लता में उत्पन्न बड़ा-से-बड़ा फल है । अथवा दशरथ को अनुभव हुआ कि हृदय में हलाहल विष संचरित (व्याप्त) हो गया । ५० उन्हें लगा कि उन पर पर्वत टूट (ढह) पड़ा; अथवा काल-सर्प कलेजे में भिड़ गया; अथवा शरीर पर सहसा गर्म शस्त्र का आघात हो गया । ५१ कैकेयी का यह वचन (मानो) अगस्त्य ऋषि है, जिसने उनकी आयु रूपी सागर के पानी को पूर्णतः पी लिया । राजा वैसे ही घबरा उठे जैसे (असुरों ने) वेदों का हरण किया, तो ब्रह्मा घबराये थे ।५२

पावला नृपवर । तीस नेदीच प्रत्युत्तर । मग सुमित्रेचें मंदिर । प्रवेशता जाहला । ५३ संसारतापें जे संतप्त । ते संतसमागमें जैसे निवत । तैसाचि राजा दशरथ । सुमित्रासदनीं सुखावला ।५४ तिचें नांव सुमित्रा सती । परी नामाऐसीच आहे रीती । वरकड नांवें जीं ठेविती । तीं तों व्यर्थचि जाणिजे । ५५ नांव ठेविलें उदार कर्ण । आडका वेंचितां जाय प्राण । बृहस्पति नाम ज्यालागून । धड वचन बोलतां न ये । ५६ कमलनयन नाम विशेष । परी दोहीं डोळ्यां वाढले वडस । क्षीरसिंधु नाम पुत्रास । परी तक्र तयासी मिळेना । ५७ नांव ठेविलें पंचानन । परी जंबुक देखतां पळे उठोन । जन्म गेला मागतां कोरान्न । सार्वभौम नाम तयातें । ५८ नाम ठेविलें जया मदन । तो निर्नासिक कुलक्षण । तैसी सुमित्रा नव्हे पूर्ण । करणी

वह नृपवर (दशरथ) परम खेद को प्राप्त हो गये । उन्होंने उस (कैकेयी को) को प्रत्युत्तर नहीं दिया । तदनन्तर वे सुमित्रा के गृह में प्रवेश कर गये । ५३

संसार के कष्ट (की आँच) से जो पीड़ित हैं, वे साधु-सन्तों की संगति से जैसे शान्ति को प्राप्त होते हैं, वैसे ही राजा दशरथ सुमित्रा के सदन में (आने पर) सुख को प्राप्त हो गये । ५४ उसका नाम सुमित्रा सती है । और फिर उसकी (आचरण-व्यवहार की) रीति उसके नाम के समान (अनुरूप) है । (अर्थात् उसमें नाम वाले शब्द के अर्थ के अनुरूप गुण हैं; 'नाम बड़े दर्शन खोटे'—जैसी स्थिति उसके विषय में नहीं है ।) लोग जो अन्य नाम नियत करते हैं, उन्हें तो निरर्थक ही समझो । ५५ नाम तो रखा 'उदार कर्ण', लेकिन (प्रत्यक्ष उस व्यक्ति के) एक पैसा खर्च करते प्राण निकल जाते हैं । अथवा जिसका नाम 'बृहस्पति' है, ऐसे किसी व्यक्ति को ठीक से बात बोलना (करना) नहीं आए । किसी का नाम विशेष तो 'कमल-नयन' है, लेकिन उसके दोनों नेत्रों में सफेद माँड़ा बढ़ा (हुआ) है । किसी के पुत्र को 'क्षीरसिंधु' (दुग्धसागर) नाम दिया, लेकिन उसको छाछ भी नहीं मिलती । किसी का नाम 'पंचानन' (= सिंह) रखा गया, लेकिन वह सियार को देखते ही उठकर भाग जाता है । और जिसका जन्म सूखी भिक्षा माँगते बीत गया है, उसका नाम 'सार्वभौम' (—सम्राट्) रखा हुआ है । जिसका नाम 'मदन' रखा हुआ (हो), वह हो नासिका-हीन नकचिपटा । वैसी सुमित्रा बिलकुल नहीं है । उसकी करनी उसके नाम के अनुरूप है । ५६-५९

नामासारिखी । ५९ नृप आला ऐकतां कर्णीं । समोर आली हंसगामिनी । दशरथाचिये चरणीं । मस्तक ठेवी सद्भावें । ६० स्त्रियांस देव तो आपला नाथ । पुत्रासी माता पिता सत्य । शिष्यासी गुरु दैवत । गृहस्थासी दैवत अतिथि पैं । ६१ म्हणोन सुमित्रेनें अजनन्दन । पूजिला षोडशोपचारेंकरून । उभी ठाकली कर जोडून । अधोवदन सलज्ज । ६२ कैकयीडोहळ्यांचें दुःख प्रबळ । राव विसरला हो सकळ । जैसा बोध ठसावतां निर्मळ । तमजाळ वितुळे पैं । ६३ राजा म्हणे सुमित्रेसी । काय डोहळे होताती मानसीं । ते मज सांग निश्चयेंसीं । कुरंगनेत्रे सुमित्रे । ६४ मग किंचित हास्य करून । बोले सलज्ज अधोवदन । जें ऐकतां सुखसंपन्न । अजनन्दन होय पैं । ६५ म्हणे हेच आवडी बहुवस । कौसल्यागर्भीं जगन्निवास । अवतरेल जो आदिपुरुष । जगद्वंद्य जगदात्मा । ६६ त्याची अहोरात्र सेवा बरवी । वाटे मम पुत्रेंचि करावी । जाणीव

राजा पधारे—यह कानों से सुनते ही वह हंसगामिनी (हंस की भाँति चलनेवाली) सामने आगे आ गयी और सद्भाव पूर्वक दशरथ के चरणों में उसने सिर रखा (नवाया) । ६० अपना-अपना पति स्त्रियों के लिए देवता है । पुत्र के लिए सचमुच माता-पिता देवता हैं । शिष्य के लिए गुरु देवता है और गृहस्थ के लिए अतिथि देवता है । ६१ इसलिए सुमित्रा ने अजराज के पुत्र दशरथ का (आवाहन, आसन आदि) सोलह उपचारों सहित पूजन किया और वह नीचे मुँह किये (सिर झुकाये) सलज्ज खड़ी रही । ६२ जैसे निर्मल ज्ञान के जम जाने पर अज्ञान रूपी अन्धकार का फैलाव विलीन हो जाता है, वैसे ही (सुमित्रा के यहाँ आने पर) कैकेयी के दोहद सुनकर अनुभव किये हुए समूचे बड़े दुःख को राजा पूरा भूल गये । ६३ (फिर) राजा ने सुमित्रा से पूछा—'हे मृगनयना सुमित्रा, तुम्हारे मन में कौन-से दोहद हो रहे हैं, मुझे निश्चय (सचमुच) ही बताओ ।' ६४ फिर वह ज़रा मुस्कराकर लज्जायुक्त हो नीचे मुँह किये बोली, जिसे सुनकर दशरथ सुख-सम्पन्न हो गये । ६५ उसने कहा— '(मुझे) यही बड़ी रुचि है कि जो जगत् के लिए वन्दनीय, जगदात्मा जगन्निवास आदिपुरुष कौसल्या के गर्भ से अवतरित हो जाएँगे, मुझे लगता है, मेरा पुत्र उनकी अच्छी सेवा रात दिन करे । वह (अपना) समूचा ज्ञान, बुद्धि (चातुर्य) उन पर निछावर करे । (उनकी) सेवा के अतिरिक्त और कोई दूसरी साधना मेरे पुत्र को मान्य न हो । अपने

शहाणीव आघवी । ओंवाळावी तयावरूनि । ६७ सेवेपरतें थोर साधन । मम पुत्रासी न माने आन । आपुले अंगाचें हांतरुण । ज्येष्ठसेवनालागीं करूं । ६८ त्रिभुवनराज्य तृणासमान । त्याहूनि अधिक ज्येष्ठ भजन । चारही मुक्ति वाटती गौण । ज्येष्ठसेवेपुढें पैं । ६९ सुधारस त्यजोनि निर्मळ । कोणास आवडेल हाळाहळ । उत्तम सांडूनि तांदूळ । सिकता कां हो शिजवावी ।७० त्यजोनि सुंदर रायकेळें । कोण भक्षील अर्कफळें । कल्पद्रुमीं जो विहंगम खेळे । तो नातळे बाभुळेसी । ७१ मानससरोवरींचा हंस पाहीं । तो कदा न राहे उलूकगृहीं । बुडी दिधली क्षीराब्धिडोहीं । दग्ध वन नावडे तया । ७२ नन्दनवनींचा भ्रमर कदाकाळीं । अर्कपुष्पीं रुंजी न घाली । जेणें इंद्रभवनीं निद्रा केली । खदिरांगारीं न निजे तो । ७३ रंभेतुल्य जाया चांगली । सांडोनि प्रेत कोण कवळी । तैसी भजनीं आवडी धरिली । कदा विषयीं न रमे तो । ७४ म्हणोनि राजचक्र-चूडामणी । माझी आवडी ज्येष्ठभजनीं । ऐसे सुमित्रेचे शब्द

ज्येष्ठ भ्राता की सेवा के लिए अपनी देह की शय्या करे । ६६-६८ ज्येष्ठ भ्राता की सेवा (भक्ति) की तुलना में त्रिभुवन का राज्य घास (के तिनके) के समान है । ऐसे राज्य से ज्येष्ठ बन्धु की सेवा बड़ी है । ज्येष्ठ भाई की सेवा के सामने (सलोकता, समीपता, सरूपता और सायुज्यता नामक) चारों प्रकार की मुक्तियाँ साधारण (तुच्छ) प्रतीत होती हैं । ६९ निर्मल अमृतरस को त्याग कर हलाहल (विष) किसे अच्छा लगेगा ? उत्तम चावल छोड़कर सिकता (बालू) क्यों पकाएँ ? ७० सुन्दर राजकेले (= केले का एक उत्तम प्रकार) को छोड़कर आक के फल कौन खाएगा ? जो पक्षी कल्पवृक्ष पर कलोल करता है, वह बबूल (के वृक्ष) को स्पर्श (तक) नहीं करेगा । ७१ देखो, मानसरोवर में रहनेवाला हंस उल्लू के घर (घोंसले) में कदापि न रहेगा । जिसने क्षीरसागर के दह में गोते लगाये, उसे जला हुआ वन कभी पसन्द नहीं आता । ७२ नन्दनवन में रहनेवाला भ्रमर किसी भी समय आक के फूलों पर नहीं मँडराएगा । जिसने इन्द्र के प्रासाद में निद्रा की, वह खदिर (खैर वृक्ष) के अंगारों में न सोएगा । ७३ रम्भा के समान अच्छी पत्नी का त्याग कर प्रेत को कौन लिपटेगा (गले लगाएगा) ? उसी प्रकार जिसने भजन सेवा में रुचि ग्रहण की वह कभी भी विषय (सुख) में रममाण नहीं होता । ७४ (सुमित्रा कहती है—) इसलिए हे राजा, राजचक्रचूड़ामणि महाराज, मेरी रुचि ज्येष्ठ बन्धु की

कर्णीं। आकर्णिले दशरथें। ७५ वाटे अमृत प्राशन केलें। कीं त्रिभुवनराज्य हातासि आलें। तैसें नृपाचें मन संतोषलें। आलिंगिलें सुमित्रेसी। ७६ म्हणे ऐक सुकुमार राजसे। चंपक-कळिके परम डोळसे। तुवां डोहळे इच्छिले जे मानसें। ते मी सर्वस्वें पुरवीन। ७७ नाना भूषणें अलंकार। ओंवाळी तिजवरूनि नृपवर। दानें देवविलीं अपार। सुमित्रेहातीं याचकां। ७८ याउपरी ज्येष्ठ राणी। कौसल्या नामें ज्ञानखाणी। जे पुराणपुरुषाची जननी। ख्याती त्रिभुवनीं जियेची। ७९ जे परब्रह्मरसाची मूस। कीं निजप्रकाशरत्न-मांदुस। क्षीराब्धिजा-हृदयविलास। जिनें अंतरीं सांठविला। ८० जो इंदिरावर त्रिभुवनेश्वर। ज्याचे आज्ञाधारक विधि शचीवर। हृदयीं ध्याय अपर्णावर। कौसल्याउदरनिवासी तो। ८१ असो कौसल्येचे मंदिरीं। प्रवेशता जाहला श्रावणारी। सेवक

सेवा में है।' सुमित्रा के ऐसे शब्द दशरथ ने कानों से सुन लिए। ७५ तो उन्हें जान पड़ा कि उन्होंने अमृत पी लिया, अथवा तीनों भुवनों का राज्य हाथ आ गया। वैसे ही राजा का मन सन्तुष्ट हो गया (और) उन्होंने सुमित्रा का आलिंगन किया। ७६ उन्होंने कहा—'हे सुकुमारी, राजसी, चम्पक-कलिका, परम चतुर स्त्री, सुनो। तुमने मन में जो दोहद अनुभव किये हैं, उन्हें मैं पूर्णतः पूर्ण करूँगा।' ७७ (तदनन्तर) राजा ने अनेक प्रकार के आभूषण अलंकार उस पर से (निछावर कर) उतार दिये। उन्होंने सुमित्रा के हाथों याचकों को अनगिनित दान दिलवाये। ७८

इसके बाद कौसल्या नामक (वह) ज्येष्ठ रानी (पटरानी) है, जो मानो ज्ञान की खान है, जो पुराण पुरुष भगवान् की माता है, जिसकी कीर्ति तीनों भुवनों में (फैली हुई) है, जो (मानो) परब्रह्म रस का साँचा है, अथवा जो स्वयंप्रकाशी रत्नों की मंजूषा है और जिसने (क्षीरसमुद्र में उत्पन्न) लक्ष्मी के हृदय में विलास करनेवाले भगवान् विष्णु को अन्तः-करण में संचय कर (अर्थात् सँजोये) रक्खा है—अर्थात् उन भगवान् को हृदय में रक्खा, जो इन्दिरा (लक्ष्मी) के पति हैं, जो तीनों भुवनों के ईश्वर (अधिपति) हैं, ब्रह्मा और शचिपति इन्द्र जिनके आज्ञाकारी हैं और (अपर्णा अर्थात् पार्वती के पति) शिवजी जिनका ध्यान करते हैं। (अब) वे कौसल्या के उदर (गर्भ) में निवास कर रहे हैं। ७९-८१

अस्तु। श्रवण के शत्रु दशरथ कौसल्या के मन्दिर (प्रासाद) में

राहविले बाहेरी । द्वारमर्यादा धरोनियां । ८२ कौसल्या ज्ञानकळा परम । तीस अंतर्बाह्य व्यापला राम । चराचर अवघें परब्रह्म । न दिसे विषम कदाही । ८३ सांडोनि जागृति सुषुप्ति स्वप्न । नयनीं ल्याली ज्ञानांजन । चराचर अवघें निरंजन- । रूप दिसे कौसल्ये । ८४ दशरथ प्रवेशोनि अंतरीं । पाहे स्थूळ-ओसरीवरी । मग सूक्ष्मदेह-माजघरीं । न दिसे कदा कौसल्या । ८५ कारण-कोठडींत पाहे सादर । तंव तेथें अवघा अंधार । मग महाकारण उपरी थोर । त्यावरी नृप चढिन्नला । ८६ तेथेंही न दिसे कौसल्या सती । मग चकित पाहे नृपती । जिचे उदरीं सांठवला जगत्पती । तिची स्थिति कळेना । ८७ मग परात्पर-परसांत । प्रवेशता होय अजपाळ-सुत । तों बैसली समाधिस्थ । निर्विकल्पवृक्षातळीं । ८८ अंतरीं दृष्टि मुरडली । वरदळ स्वनाम विसरली । ब्रह्मानंदरूप

प्रवेश कर गये । दरवाजे की (सीमा) मर्यादा का ध्यान रखकर राजा ने सेवकों को बाहर ठहराया । ८२ कौसल्या तो सबसे बढ़कर ज्ञान-कला थी । उसे राम अन्तर्बाह्य (पूर्णतः) व्याप्त किये हुए हैं । (अतः उसके लिए) सब चेतन-अचेतन परब्रह्म ही है—उसे कुछ उससे भिन्न नहीं दिखायी देता है । ८३ जागृति, सुषुप्ति और स्वप्न नामक अवस्थाओं का त्याग कर वह आँखों में ज्ञान रूपी अंजन लगाये हुए है । (इसलिए) कौसल्या को सब चेतन-अचेतन निरंजन ब्रह्म स्वरूपी दिखायी देता है । ८४ अन्दर प्रवेश कर, दशरथ ने स्थूल (जड़) शरीर रूपी ओसारे में देखा । फिर सूक्ष्म देह रूपी मध्यघर (बीच के दालान) में देखा; फिर भी उन्हें कौसल्या कहीं भी नहीं दिखायी दी । ८५ (तदनन्तर) उन्होंने आदरपूर्वक पंचज्ञानेन्द्रियों (कारण) रूपी कोठी में देखा, तो वहाँ पूरा अँधेरा ही था । फिर महाकारण (सृष्टि का आद्य तत्त्व) तो सबसे बड़ा होता है; राजा उस पर चढ़ गये । ८६ (उन्हें) वहाँ भी सती कौसल्या नहीं दिखायी दी । फिर राजा चकित होकर देखने लगे । लेकिन जिसके उदर में जगत्पति भगवान् संचित (सँजोये) हैं, उस कौसल्या की स्थिति का पता नहीं चलता था । ८७ तदनन्तर अजराजा के पुत्र दशरथ परात्पर रूपी आँगन में प्रवेश कर गये, तो उन्हें दिखायी दिया कि वह (कौसल्या) निर्विकल्प (अवस्था) रूपी वृक्ष के तले समाधिस्थ बैठी हुई थी । ८८ उसकी दृष्टि अन्दर की ओर मुड़ी हुई थी । बाह्यवृत्ति तथा अपने नाम (तक) को वह भूल गयी । वह ब्रह्मानन्द स्वरूपी हो गयी—उसके लिए

जाहली । न चाले बोली द्वैताची । ८९ जैसा परम सतेज मित्र । तेथें डाग न लागे अणुमात्र । स्वरूपीं पहुडतां योगेश्वर । ज्ञान राहे ऐलीकडे । ९० कल्पांतविजूस मशक गिळी । पिपीलिका मेरु कक्षेसी घाली । धेनुवत्स मृगेंद्रा आकळी । एकादे वेळे घडेल हें । ९१ परी चतुरा विश्वरूपावरी । दृष्टांत न चाले निर्धारीं । श्रोत्रियांचे यज्ञशाळेभीतरी । कोठें महारी प्रवेशेल । ९२ वडवानळापुढें कर्पूर जाण । कीं जलनिधिमाजी लवण । तैसी बुद्धि आणि मन । स्वसुखावरी विरलीं । ९३ असो स्वानंदसागरांत । कौसल्या पूर्ण समाधिस्थ । जवळी उभा ठाकला दशरथ । पाहे तठस्थ उगाचि । ९४ कौसल्या स्वस्वरूपीं लीन । हे दशरथासी नेणवे खूण । म्हणे हे रुसली संपूर्ण । तरीच वचन न बोले । ९५ म्हणून राजचक्रचूडामणी । कौसल्येजवळ स्वयें बैसोनी । स्नेहें

द्वैत (भेदभाव) की भाषा नहीं चलती । ८९ जैसे सूर्य परम तेजस्वी है, उसमें अणु भर भी दाग नहीं लगता, वैसे ही जब महान् योगी आत्मस्वरूप में लीन हो (सो) जाए, तो द्वैतभाव का भान उसके परे रह जाता है । ९० प्रलयकाल की बिजली को मच्छड़ निगलता है, चींटी मेरु पर्वत को बगल में (ठूँस) डाल लेती है । गाय का बछड़ा सिंह को बाँध लेता है—ये बातें असम्भव हैं—फिर भी एकाध बार यह घटित हो जाए । परन्तु विश्वस्वरूप को प्राप्त चतुर व्यक्ति पर कोई दृष्टान्त निश्चय ही नहीं चलता (काम आता-सार्थक, चरितार्थ होता) । श्रोत्रीय ब्राह्मण की यज्ञशाला के अन्दर अछूत स्त्री कहाँ (कैसे) प्रवेश कर पाएगी ? ९१-९२ समझो, जैसे वड़वानल के सामने (रखे हुए) कपूर की अथवा समुद्र में नमक की स्थिति हो जाती है, अर्थात् वह उसमें विलीन हो अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो बैठता है, वैसे ही (कौसल्या की) बुद्धि और मन आत्मसुख में विलीन हो गया । ९३

अस्तु । कौसल्या आत्मानन्द रूपी सागर में पूर्णतः समाधिस्थ हो गयी (थी), तो दशरथ उसके पास खड़े रहे और तटस्थ हो चुपचाप देखते रहे । ९४ कौसल्या आत्मस्वरूप में लीन हो गयी है—दशरथ के ध्यान में यह लक्षण नहीं आया । उन्होंने कहा (सोचा)—'यह तो पूर्णतः रूठ गयी, इसीलिए तो यह कोई बात नहीं बोल रही है ।' ९५ इसलिए राजाओं के समूह में शिरोमणि की भाँति शोभा देनेवाले दशरथ कौसल्या के पास स्वयं बैठकर स्नेह पूर्वक उसे हृदय से लगाये हुए उसे समझाते

तीस हृदयीं धरूनी। समाधान करीतसे। ९६ तरी ते न उघडी नयन। नाहीं शरीराचें भान। मी स्त्रीपुरुषस्मरण। गेली विसरोन कौसल्या। ९७ अलंकार कैंचे एक सुवर्ण। तरंग लटिके एक जीवन। तैसें विश्व नाहीं एक रघुनन्दन। आनन्दघन विस्तारला। ९८ ऐसी कौसल्येची स्थिति जाहली। राजा म्हणे हे झडपली। कीं महद्भूतें पूर्ण घेतली। ओळखी मोडली इयेची। ९९ राजा म्हणे देवऋषि सिद्ध। इहीं दिधला आशीर्वाद। कीं पोटा येईल ब्रह्मानन्द। आदिपुरुष श्रीराम।१०० ऐकतां रामनामस्मरण। कौसल्येनें उघडिले नयन। तों जगदाभास संपूर्ण। रघुनन्दनरूप दिसे। १०१ राजा म्हणे हो नितंबिनी। कुरंगनेत्रे गजगामिनी। काय जे आवडी असेल मनीं। डोहळे पुरवीन सर्व तें। १०२ भ्रम टाकीं बोले वचन। तों कौसल्या बोले गर्जोन। मी जगदात्मा रघुनन्दन। कैंचें अज्ञान मजपासीं। १०३ स्थूळ लिंग आणि कारण। याहून

रहे। ९६ फिर भी वह आँखों को नहीं खोलती। उसे शरीर का भान नहीं है। वह स्त्री-पुरुष (भेद) का भान भी भूल गयी। ९७ आभूषण (अलग-अलग होने पर भी) अलग-अलग कैसे? (वे जिनसे बनाये गये हैं वह) सोना तो एक ही होता है। (पानी पर अलग-अलग दिखायी देनेवाली) लहरें मिथ्या–आभास (मात्र) होती हैं–पानी तो एक ही होता है। वैसे ही (विश्व की विभिन्न वस्तुओं के अलग-अलग दिखायी देने पर भी) विश्व भिन्न नहीं है–एक आनन्द-घन रघुनन्दन राम ही (विश्व के रूप में) विस्तार को प्राप्त हो गये हैं। ९८ कौसल्या की ऐसी स्थिति हो गयी। राजा ने कहा (राजा को जान पड़ा) कि यह (किसी पिशाच द्वारा) झपेटी गयी (है) अथवा किसी महाभूत (पिशाच) ने इसे पूर्णतः वश में कर लिया (है)। इसलिए (ही तो) इसकी स्मरण शक्ति नष्ट हो गयी। ९९ राजा ने कहा–'देवों, ऋषियों (और) सिद्धों ने इसे आशीर्वाद दिया कि इसके पेट (गर्भ) में ब्रह्मानन्द आदिपुरुष श्रीराम आएँगे।' १०० रामनाम का स्मरण सुनते ही कौसल्या ने आँखें खोलीं, तो उसे समूची बाह्य सृष्टि रघुनन्दन राम-स्वरूप दिखायी दी। १०१ राजा बोले–'हे नितम्बिनी मृगनयनी, हे गजगामिनी, तुम्हारे मन में जो जो इच्छाएँ हों, वे सब दोहद मैं पूर्ण करूँगा। १०२ (यह) भ्रम छोड़ दो, (कोई) बात तो कहो।' तब कौसल्या गरजकर बोली—'मैं जगत् का आत्मा राम हूँ। मेरे पास अज्ञान कैसे? १०३ स्थूल (जड़) देह, लिंग (सूक्ष्म) देह और पंचेन्द्रियाँ–

माझें रूप भिन्न । महाकारण हें निरसून । आत्माराम वेगळा मी । १०४ द्वैत अद्वैत महाद्वैत । याहून वेगळा मी अतीत । सच्चिदानन्द शब्द जेथ । खुंटोनियां राहिला । ५ जीव शिव हे दोन्ही पक्ष । ध्याता ध्यान लय लक्ष । यांवेगळा मी सर्वसाक्ष । अचित्य अलक्ष श्रीराम । ६ राजा म्हणे कौसल्ये ऐकें । मी कोण आहें मज ओळखें । डोहळे पुसावया महासुखें । तुजजवळी बैसलों । ७ येरी म्हणे ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान । हें सर्व गेलें आटोन । नाहीं स्त्रीपुरुषनपुंसकपण । मी-तूंपण तेथें कैंचें । ८ नृप म्हणे हे महद्भूतें घेतली । ओळखी सर्व मोडली । मग पुसे गोष्ट मागली । धाकुटपणींची तियेतें । ९ राजा म्हणे शशांकवदने । गुणसरिते पद्मनयने । वऱ्हाड बुडवोनि तुज रावणें । नेलें होतें आठवतें कीं । ११० शत्रूचें नाम ऐकतां कर्णीं । हांक फोडिली भुजा पिटोनी । म्हणे धनुष्यबाण दे आणूनी । टाकीन छेदोनि दाही शिरें । १११ ताटिका मारूनियां आधीं । ऋषियाग

इनसे मेरा रूप भिन्न है । महाकारण (मूलतत्त्व) से दूर (अलग) हो मैं आत्माराम (नितान्त) भिन्न हूँ । १०४ द्वैत-अद्वैत, महाद्वैत—मैं (इन सबसे) भिन्न (और) परे हूँ, जहाँ सच्चिदानन्द शब्द भी ठप (अर्थहीन) हो चुका है । ५ जीव और शिव—ये दो पक्ष हैं । ध्याता (ध्यान करनेवाला), ध्यान, लय, लक्ष्य—इनसे भिन्न मैं सर्वसाक्षी, अचिन्त्य, अलक्ष्य श्रीराम हूँ ।' ६ राजा ने कहा—'हे कौसल्या, सुनो । मुझे पहचानो कि मैं कौन हूँ । तुमसे दोहद पूछने के लिए अति सुखपूर्वक तुम्हारे निकट बैठा (हूँ) ।' ७ (इस पर) दूसरी अर्थात् कौसल्या ने कहा—'(मेरे पास) ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान—यह सब समाप्त हो चुका है । (मेरे लिए) स्त्रीत्व, पुरुषत्व, नपुंसकत्व (का भान) नहीं है, तो वहाँ (मेरे पास) मैं—तू का भाव कैसे ?' ७ तो राजा ने कहा—'इसे तो किसी महापिशाच ने वश में कर लिया ! पहचानने की शक्ति सब नष्ट हो गयी ।' तब उन्होंने उससे उसके बचपन की—पिछली बात पूछी । ९ राजा ने कहा—'हे चन्द्रमुखी, गुणसरिता, कमलनयना ! क्या तुम्हें याद है कि बारात को डुबोकर रावण तुम्हें ले गया था ?' ११० कानों से शत्रु का नाम सुनते ही बाहुओं को ठोंककर उसने जोर से पुकारा—गर्जन किया और कहा—'धनुष-बाण ला दो । (उसके) दसों मस्तक तोड़ डालूँगा । ११ पहले ताड़का को मार डालकर ऋषियों के यज्ञ सफलता को प्राप्त कराऊँगा । युद्ध में महान् राक्षसों का वध करके मैं गाधि के पुत्र विश्वामित्र को सन्तुष्ट करूँगा । ११२

पाववीन सिद्धी। महाराक्षस वधोनि युद्धीं। गाधितनय तोषवीन। ११२ शिवचाप परम प्रचंड। मोडूनि करीन दुखंड। माझी ज्ञानशक्ति जे अखंड। पण जिंकोनि आणीन ते। १३ जेणें निःक्षत्री केली अवनि पूर्ण। त्याचा गर्व हरीन न लागतां क्षण। मी एकपत्नीव्रत रघुनन्दन। पितृवचन पाळीन मी। १४ मी सेवीन घोर विपिन। परिवारेंसीं त्रिशिरा खर दूषण। क्षणमात्रें टाकीन वधोन। अग्नि तृण जाळी जेवीं। १५ रिसां वानरांहातीं। लंका घालीन पालथी। माझा वज्रदेही मारुती। परम पुरुषार्थी महावीर। १६ क्षणें जाळील राक्षसनगर। शत्रूंचीं शिरें छेदीन अपार। पाषाणीं पालाणोनि समुद्र। लंकापुर घेईन मी। १७ कौसल्या हांक फोडी दारुण। लंकेपुढें माजवीन रण। महाढिसाळ कुंभकर्ण। टाकीन छेदून क्षणार्धें। १८ सहपरिवारें वधोनि दशशिर। बंदींचे सोडवीन सुरवर। माझा बिभीषण प्रियकर। छत्र धरवीन तयावरी। १९ स्वपदीं स्थापोनि निजभक्त। मी अयोध्येसी येईन रघुनाथ। आधि व्याधि

अति प्रचण्ड शिवधनुष को तोड़कर मैं उसके दो टुकड़े बना डालूँगा और प्रण (बाज़ी) को जीतकर अपनी जो अखण्ड ज्ञान शक्ति है, उसे ले आऊँगा। ११३ जिसने समूची पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन किया उसका गर्व क्षण की देर न लगते छुड़ा दूँगा। मैं एकपत्नी-व्रती रघुनन्दन राम, पिता के वचन का पालन करूँगा। १४ मैं भीषण वन में निवास करूँगा। (और) जैसे आग घास को जलाती है, वैसे मैं क्षण मात्र में त्रिशिरा, खर और दूषण का परिवार सहित वध कर डालूँगा। १५ रीछों और बन्दरों के हाथों मैं लंका को पराजित करूँगा। मेरा परम पुरुषार्थी महावीर वज्रदेही मारुति राक्षसों की नगरी लंका को क्षण में जला डालेगा। पत्थरों से समुद्र को बाँधकर मैं अनगिनत शत्रुओं के सिर तोड़ डालूँगा। और लंकानगरी को (जीत) लूँगा।' १६-१७ कौसल्या भीषण गर्जन करती है—'लंका के सामने (निकट) युद्ध ठान (मचा) दूँगा। अतिशय प्रचण्ड (शरीरधारी) कुम्भकर्ण को क्षणार्ध में काट डालूँगा। १८ मैं दशशिर रावण का परिवारसहित वध करूँगा; मैं बन्दीशाला (कैदखाने) में रखे हुए श्रेष्ठ देवों को मुक्त करूँगा; विभीषण मेरा प्रिय (भक्त) है, उस पर मैं छत्र धरवा दूँगा। १९ उसके अपने उचित स्थान पर अपने भक्त (विभीषण) की स्थापना करके मैं रघुनाथ अयोध्या (में) आ जाऊँगा; (और) अपनी प्रजा को आधि (दुःख-चिन्ता), व्याधि (बीमारी), बुढ़ापा

जरा मृत्य । यांविरहित करीन प्रजा । १२० स्त्रीपुरुषनपुंसकभेद । यांवेगळा मी ब्रह्मानंद । मायाचक्रचाळक शुद्ध । निष्कलंक अभेद पैं । २१ मी प्रळयकाळासी शासनकर्ता । आदिमायेचा निजभर्ता । कर्ता हर्ता पाळिता । मजपरता नसेचि । २२ मी अज अजित सर्वेश्वर । मीच नटलों चराचर । धरोनि नाना अवतार । मी मजमाजी सामावें । २३ ऐसें ऐकतां दशरथ । म्हणे हे भूतें घेतली यथार्थ । फांटा फुटलासे बहुत । बडबडत भलतेंचि । २४ पंचाक्षरी आणा पाचारून । महाराज सद्गुरु ज्ञानघन । तो सरसिजोद्भवनंदन । बोलावून आणा वेगीं । २५ जेणें दर्भावरी धरिली अवनी । कमंडलु ठेविला सूर्यासनीं । इंद्रसभेसी नेला वासरमणी । अद्भुत करणी जयाची । २६ वसिष्ठ आला धांवोन । राजा दृढ धरी चरण । म्हणे कोसल्येसारिखें निधान । भूतें संपूर्ण ग्रासिलें । २७ म्यां याग केला सायासीं । कीं पुत्र होईल कौसल्येसी । तों मध्येंच

और मृत्यु से रहित (मुक्त) बना दूँगा । १२० स्त्रीत्व, पुरुषत्व, नपुंसकत्व जैसे भेद के परे मैं ब्रह्मानन्द, माया के चक्र का चलानेवाला, शुद्ध, निष्कलंक, अभेद्य (राम) हूँ । २१ मैं प्रलय-काल के लिए शासन-कर्ता हूँ; आदि-माया का अपना पति हूँ; मुझसे भिन्न कोई कर्ता, हर्ता (हरण करनेवाला) पालनकर्ता नहीं है । २२ मैं अज (अजन्मा), अजित, सर्वेश्वर हूँ । मैंने ही चराचर का वेष (रूप) धारण किया है । नाना अवतार धारण करके मैं मुझ अपने में ही समा जाता हूँ ।' २३ ऐसा सुनकर दशरथ ने कहा—'इसे तो भूत ने सचमुच वश में कर लिया (है) । (पिशाच आदि के प्रभाव से) यह बहुत पागल हुई है, (इसलिए) मनमाने (निरर्थक) बड़बड़ा रही है । २४ (भूत-पिशाच के प्रभाव को झाड़-फूँककर दूर करनेवाले किसी) ओझा को बुला लाओ । ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ को—ज्ञानधन सद्गुरु महाराज को शीघ्र बुला लाओ । २५ जिन्होंने दर्भ (की नोक) पर पृथ्वी को धर रखा, सूर्य के आसन पर कमण्डलु रखा, इन्द्र की (राज) सभा में जो सूर्य को ले गये, जिनकी करनी ऐसी अद्भुत है, वे वसिष्ठ दौड़ते हुए आये, तो राजा ने उनके पाँव दृढ़ता से पकड़ लिये; (और) कहा—'कौसल्या जैसे (रत्न) भण्डार को (किसी) भूत-पिशाच ने पूर्णतः ग्रस (बुरी तरह पकड़) लिया (है) । २७ मैंने प्रयत्न पूर्वक इसलिए यज्ञ किया कि कौसल्या के पुत्र (उत्पन्न) हो; परन्तु बीच में यह बुरी स्थिति हो उठी । हे ऋषि ! मैं क्या करूँ ?' २८ इसपर

हे विवशी । उठली ऋषि काय करूं । २८ मग म्हणे ब्रह्मसुत । इच्या पोटा येईल रघुनाथ । तीस गोष्टी हे विपरीत । कालत्रयीं घडेना । २९ अंधकूपीं पडेल तरणी । कोरान्न मागेल चिंतामणी । सुधारस गेला कडवटोनी । हें कालत्रयीं घडेना । १३० क्षुधेनें पीडिला क्षीरसागर । सुरतरूसी येईल दरिद्र । तीव्र तपेल रोहिणीवर । हें कालत्रयीं घडेना । ३१ अंधत्व आलें अग्नि-नेत्रीं । ताम्रनाणें मागे कनकाद्री । अंत्यज नांदेल श्रोत्रिय-मंदिरीं । हें कालत्रयीं घडेना । ३२ असो वसिष्ठ कौसल्येजवळी । येऊनि विलोकी तये वेळीं । तंव ती श्रीरामरूप जाहली । अंतर्बाह्य समूळ । ३३ न दिसे स्त्रियेची आकृती । धनुष्यबाण घेऊनि हातीं । आकर्ण नयन विराजती । देखे मूर्ति जगद्वंद्य । ३४ मूर्ति पाहतां आनन्दघन । सद्गद जाहला ब्रह्मनन्दन । अष्टभाव दाटले पूर्ण । गेला विसरोनि देहभाव । ३५ वसिष्ठ कौसल्या

वसिष्ठ ने कहा—'इसके पेट से रघुनाथ (राम) उत्पन्न होंगे । (इसलिए) इसके लिए ऐसी विपरीत बात भूत-वर्तमान-भविष्य–त्रिकाल में न (घटित) होगी । २९ अंधकूप (अंधकार से भरे-पूरे कुएँ) में सूर्य गिर पड़ेगा ? (दूसरों की चिन्ता दूर करनेवाला) चिन्तामणि नामक रत्न सूखे अन्न की भिक्षा माँगेगा ? अमृत रस कड़ुआ हो जाएगा ?—ये बातें असम्भव हैं–ये त्रिकाल में नहीं होंगी । क्षीर समुद्र भूख से पीड़ित हो गया (जाएगा) ? कल्पवृक्ष को दरिद्रता आएगी ? रोहिणीपति चन्द्रमा तीव्रता से तप्त हो जाएगा ?–ये घटनाएँ त्रिकाल में घटित नहीं होंगी । अग्नि की आँखों में अन्धत्व आ गया (जाएगा) ? सुवर्ण (मेरु) पर्वत (भिक्षा में) ताँबे का सिक्का माँगता है ? अन्त्यज (अछूत) श्रोत्रीय ब्राह्मण के घर में निवास और निर्वाह करेगा ?—ये बातें त्रिकाल में नहीं होंगी । (ये बातें असम्भव हैं; वैसे ही कौसल्या का पिशाचों द्वारा ग्रस्त होना असम्भव है ।' १३०-३२

अस्तु । उस समय कौसल्या के पास आकर वसिष्ठ ने देखा तो (उसे दिखायी दिया कि) वह अन्तर्बाह्य मूल सहित (पूर्णतः) राम रूप हो गयी (है) । ३३ (उन्हें दिखायी दिया कि वहाँ) स्त्री की आकृति नहीं दिखायी दे रही है; (परन्तु) हाथ में धनुष-बाण लिए हुए जगन्वंद्य भगवान् (राम) की मूर्ति (उन्होंने) देखी । उसके आकर्ण (कानों तक फैले हुए अर्थात् विशाल) नयन शोभायमान थे । ३४ उस आनन्दघन (राम की) मूर्ति को देखते ही वसिष्ठ गद्‌गद हो उठे । स्तम्भ, स्वेद, रोमांच आदि आठों भाव पूर्णतः उमड़ आये और वे देह का भान

ते अवसरीं । मुरालीं ब्रह्मानन्दसागरीं । दशरथ परम अंतरीं । घाबरा जाहला नेणोनियां । ३६ वसिष्ठासारिखा महामुनी । भूतें झडपिला ये क्षणीं । या भूताची करिता झाडणी । कोणी त्रिभुवनीं दिसेना । ३७ मी हतभाग्य संपूर्ण । मज कैंचें पुत्र संतान । कौसल्याही गेली झडपोन । ब्रह्मानन्दें मूर्च्छित । ३८ निरपराध वधिला श्रावण तेणें हें दुःख दारुण । ऐसा तो महाराज अजनन्दन । जळाला पूर्ण अंतरीं । ३९ तों स्वानन्दलहरी जिरवून । वसिष्ठें उघडिले नयन । राजा धांवोन धरी चरण । आनन्द न माय अंतरीं । १४० रायासी कैसी परी जाहली । कीं पूरीं बुडतां नौका आली । अंधकूपीं पडतां तात्काळीं । हस्त सूर्यें दीधला । ४१ सर्प डंखितां गरुड धांवे । गजें कोंडितां केसरी पावे । कीं क्षुधितापुढें हेलावे । क्षीरसागर येऊनियां । ४२ कीं वणव्यांत जळतां वरुषे घन । कीं हुडहुडी भरतां धडके

भूल गये । ३५ उस अवसर पर वसिष्ठ और कौसल्या ब्रह्मानन्द रूपी सागर में पग गये–एकात्म हो गये । यह क्या हो गया—यह समझ में नहीं आने पर दशरथ मन में अतिशय घबरा उठे । ३६ (उन्होंने सोचा–) वसिष्ठ जैसे महामुनि को (भी) इस क्षण भूत ने झपेट लिया । इस भूत को झाड़नेवाला त्रिभुवन में कोई दिखायी नहीं दे रहा है । ३७ मैं पूर्णतः हतभागा हूँ । मेरे पुत्र सन्तान कैसे हो ? कौसल्या भी झपेटी गयी—वह मारे ब्रह्मानन्द के अचेत हो गयी है । ३८ मैंने निरपराध श्रवण का वध किया । इससे यह दारुण दुःख (उत्पन्न) हो गया । इस प्रकार अजराज के पुत्र दशरथ महाराज मन में (दुःख रूपी आग में) पूर्णतः दग्ध हो गये ।३९ तब (इतने में) आत्मानन्द की लहरों को दबाकर वसिष्ठ ने आँखों को खोल लिया, तो राजा ने दौड़ते हुए उसके पाँव पकड़ लिये । उसके अन्तःकरण में आनन्द नहीं समाया । १४० (इस समय) राजा की कैसी स्थिति हो गयी ? मानो (उसके) बाढ़ में डूबते समय (पास में बचाने के लिए) नौका आ गयी; अथवा अन्धकूप में–अँधेरे से भरेपूरे कुएँ में पड़ते ही सूर्य ने (आधार के लिए) हाथ बढ़ा दिया; अथवा साँप के डसने पर गरुड़ दौड़कर आ गया; अथवा हाथी (हाथियों) द्वारा (किसी के) घेरे जाने पर सिंह आ पहुँचा; अथवा भूखे लोगों के सामने आकर क्षीरसागर उमड़ने लगा अथवा दावानल में (किसी के) जलने लगते ही मेघ बरसने लगा; अथवा (मारे ठण्ड के) कँपकँपी शुरू होते ही अग्नि आ धमका अथवा दरिद्रता से पीड़ित होने पर स्वयं धन की देवी लक्ष्मी

कृशान। कीं दरिद्रें पीडितां लक्ष्मी आपण। घरीं येऊन बैसली। ४३ ऐसा आनन्दला राजा दशरथ। म्हणे सद्‌गुरु स्वामी तूं समर्थ। मज नवल हें वाटत। तुजही भूतें झडपिलें। ४४ आम्ही अत्यंत भाग्यहीन। कैचें देखों पुत्रसंतान। मग हांसिन्नला ब्रह्मनन्दन। काय गर्जोन बोलत। ४५ जो नीलग्रीव-हृदयरत्न। जो कमलोद्भवाचें देवतार्चन। सनकादिक करोनि यत्न। हृदयसंबळींत वाहती पैं। ४६ तो वैकुंठपुरविलासी। आला कौसल्येच्या गर्भासी। मारूनि सकळ दुष्टांसी। देव सोडवील बंदींचे। ४७ जें जें कौसल्या बोलिली सत्य। तितुकें होईल यथार्थ। तुज होतील चार सुत। सत्य वचनार्थ राजेंद्रा। ४८ शंख चक्र शेष नारायण। चतुर्धा रूपें प्रकटेल जगज्जीवन। ज्याची कथा ऐकतां पापी जन। उद्धरोनि तरतील। ४९ माध्यान्हा येईल चंडकिरण। पुष्य नक्षत्र साधून। अवतरेल रघुनन्दन। पूर्णब्रह्म जगद्‌गुरू। १५० ऐसीं वसिष्ठाचीं वचनें। कीं स्वानन्दनभींचीं उडुगणें। कीं सत्य-

---

घर में आकर विराजमान हो गयी। ४१-४३ (ऐसे समय जैसे वह आनन्दित हो जाए, राजा दशरथ वैसे आनन्दित हो गये।) उन्होंने (वसिष्ठ से) कहा—'हे सद्‌गुरु स्वामी, तुम समर्थ हो। (इसलिए) मुझे अचरज हो रहा है कि भूत ने तुम्हें भी झपेट लिया। ४४ हम तो अत्यन्त भाग्यहीन हैं। हम पुत्र सन्तान कैसे देखें? तब वसिष्ठ हँस पड़े और गरजकर वे क्या कहते हैं, (सुनो)। ४५ 'जो नीलकण्ठ भगवान् शिवजी के हृदय में सुरक्षित रत्न (के समान) हैं, जो ब्रह्माजी के लिए पूज्य देवता हैं, जिन्हें सनकादिक ऋषिवर यत्नपूर्वक हृदय रूपी सम्पुट में रखकर वहन करते हैं, जो वैकुण्ठ नगर में विलास करते हैं, वे ही भगवान् कौसल्या के गर्भ में आये हैं। वे सब दुष्टों (दुर्जनों) को मार डालकर (रावण द्वारा) वन्दीशाला में रखे हुए देवों को मुक्त करेंगे। ४६-४७ सचमुच कौसल्या ने जो जो कहा है, वह (उतना सब) यथार्थ हो जाएगा। हे गजेन्द्र, तुम्हारे चार पुत्र उत्पन्न होंगे। इस उक्ति का अर्थ सत्य समझो। ४८ वे जगज्जीवन भगवान् शंख, चक्र, शेष और नारायण—इन चार प्रकार के रूपों से प्रकट हो जाएँगे, जिनकी कथा का श्रवण करने पर पापी जनों का उद्धार होगा और वे भवसागर को तैर जाएँगे। ४९ जब सूर्य मध्याह्न (तक) आएगा, तो पुष्य नक्षत्र का मुहूर्त साधकर पूर्ण ब्रह्म जगद्‌गुरु रघुनन्दन (राम) अवतरित हो जाएँगे। १५० दशरथ ने बसिष्ठ के ऐसे वचन सुन लिये। ये वचन मानो आत्मानन्द रूपी गगन में स्थित नक्षत्र हैं अथवा

वैरागरींचीं रत्नें। निवडोनि दिधलीं दशरथा। ५१ तेणें कर्णद्वारें त्वरित। सांठविलीं हृदयसंदुकेंत। धांवोनि गुरूचे पाय धरीत। म्हणे कृतार्थ जाहलों मी। ५२ असो भरलिया नवमास। प्रसूतिसमय कौसल्येस। कवण ऋतु कवण दिवस। सावकाश ऐका तें। ५३ वसंतऋतु चैत्रमास। शुक्लपक्ष नवमी दिवस। सूर्यवंशीं जगन्निवास। सूर्यवासरीं जन्मला। ५४ मध्यान्हा आला चंडकिरण। पुष्य नक्षत्र साधून। अवतरला रघुनन्दन। पूर्णब्रह्म जगद्गुरु। ५५ श्रीराम केवळ परब्रह्म त्यासी जाहला म्हणतां जन्म। संत हांसतील परम। तत्त्वज्ञानवेत्ते जे। ५६ ज्याची लीला ऐकतां अपार। खंडे जन्म मृत्यु दुर्धर। त्या रामासी जन्मसंसार। काळत्रयीं घडेना। ५७ दाविली लौकिक करणी। कीं कौसल्या जाहली गर्भिणी। तो ब्रह्मानंद मोक्षदानी। जन्मकर्म त्या कैंचें। ५८ क्षीरसागरींहून नारायण। येऊन अयोध्येसी जाहला सगुण। शेषलक्ष्मीसहित

सत्य रूपी हीरे की खान में उपलब्ध रत्न हैं, जिन्हें चुनकर दशरथ को दिया। ५१ तो दशरथ ने उन्हें कानों के द्वारा शीघ्र (भेजकर) हृदय रूपी मंजूषा में संचित कर दिया। दौड़कर गुरु के पाँव पकड़ते हुए उन्होंने कहा—'मैं कृतार्थ हुआ।' ५२

अस्तु। अब यह धीरे से सुनो कि नौ महीने पूर्ण होने पर कौसल्या के प्रसूत होने के समय कौन-सी ऋतु थी, कौन-सा दिन था। ५३ वसन्त ऋतु (में) चैत्र मास (के) शुक्ल पक्ष (की) नवमी तिथि (और) रविवार के दिन जगन्निवास (राम) ने सूर्यवंश में जन्म लिया। ५४ सूर्य मध्याह्न पर आ गया (ठीक दोपहर हो गयी) तो पुष्य नक्षत्र (का शुभ मुहूर्त) प्राप्त कर पूर्णब्रह्म जगद्गुरु रघुनन्दन राम अवतरित हुए। ५५ श्रीराम (तो) शुद्ध परब्रह्म हैं, (अतः) उनका जन्म हुआ—ऐसा कहने पर, जो परम तत्त्वज्ञान के ज्ञाता हैं, वे सन्त हँसेंगे। ५६ जिनकी असीम लीला (का वर्णन) सुनने पर दुर्धर जन्म और मृत्यु (का फेरा-क्रम) खण्डित हो जाता है, ऐसे राम को जन्म तथा संसार-वास तीनों कालों में (कदापि) प्राप्त नहीं होता। ५७ उन्होंने (यह) लौकिक करनी (लीला) दिखायी कि कौसल्या गर्भवती हुई (वे कौसल्या के गर्भ में रहे)। वे ब्रह्मानन्द, मोक्षदाता हैं। उनके लिए जन्म जैसी सांसारिक क्रिया कैसे? ५८ नारायण क्षीरसागर (में) से अयोध्या में आगमन कर सगुण (रूपधारी) हो गये। परन्तु शेष और लक्ष्मी—दोनों सहित जगज्जीवन भगवान् वहाँ वैसे ही (संचार करते) रहे। ५९ जो अनन्त

जगज्जीवन । तैसाचि तेथें संचरला । ५९ जो अनंतकल्याण-दायक । अज अजित निष्कलंक । भक्त तारावयासी देख । जगन्नायक अवतरला । १६० देव करिती जयजयकार । करोनि राक्षससंहार । म्हणती आतां अवतरेल हा रघुवीर । बंधमुक्त करील आम्हां । ६१ असो अयोध्यापुरीं निराळीं । विमानांची दाटी जाहली । दुंदुभींची घाई लागली । पुष्पें वर्षती अपार । ६२ असो ते कौसल्या सती । बैसली असतां एकांतीं । तों अष्टादश वरुषांची मूर्ती । सन्मुख देखे अकस्मात । ६३ निमासुर वदन सुंदर । तेजें भरलें निजमंदिर । ज्या तेजासी शशि मित्र । लोपोनि जाती विलोकितां । ६४ पदकमल-मकरंद-सेवना । भ्रमरी जाहली क्षीराब्धिकन्या । कदाही न विसंबे चरणां । कृपण धनालागीं जैसा । ६५ संध्याराग अरुण बालार्क । दिव्य रत्नांचे काढिले रंग देख । तळवे तैसे सुरेख । श्रीरामाचे वाटती । ६६ चंद्र क्षयरोगें कष्टी होउनी । निजांगाचीं दश

कल्याणदाता, अजन्मा, अजित और निष्कलंक हैं, देखो वे जगन्नायक भक्तों का उद्धार करने के लिए अवतरित हुए । १६० तब देवों ने जयजयकार किया और कहा—अब ये रघुवीर राम अवतरित होंगे और राक्षसों का संहार कर हमें (रावण के) बन्धन से (बन्दीवास से) मुक्त करेंगे । ६१

अस्तु । अयोध्या नगरी में (अर्थात् ऊपर) आकाश में (देवों के) विमानों की भीड़ हो गयी । दुन्दुभी (नगाड़ों) का गर्जन हो गया । (लोग तथा देव) अपार फूल बरसाते हैं । ६२ अस्तु । वह सती कौसल्या जब एकान्त में (अकेली) बैठी हुई थी तो उसने अठारह वर्षीया (एक) मूर्ति यकायक (अपने) सामने देखी । ६३ उस मूर्ति का मुख लावण्ययुक्त एवं सुन्दर था । (कौसल्या को दिखायी दिया कि) उसके ऐसे तेज से अपना मन्दिर (प्रासाद) भरा है, जिसे देखते ही चन्द्र और सूर्य लुप्त हो जाएँगे । ६४ (उसके) चरण रूपी कमलों के मधु का सेवन करने के लिए (क्षीरसमुद्र की कन्या) लक्ष्मी भ्रमरी हो गयी (है) । जैसे कंजूस मनुष्य धन से अलग नहीं हट जाता, वैसे ही वह कभी भी उन चरणों को नहीं छोड़ती । ६५ संध्याकाल (के आकाश में दिखायी देने वाले रंग), ऊषाकाल (के समय आकाश में दिखायी देनेवाले रंग), बाल सूर्य (का लाल-सा रंग) और दिव्य रत्नों (अथवा आकाश में उदित होने वाले तारे रूपी रत्नों) के रंग निकालकर देखो—श्रीराम के तलुवे वैसे ही सुन्दर (रंगीन) जान पड़ते हैं । ६६ (जान पड़ता है,) क्षयरोग से

शकलें करोनी। सुरवाडला रामचरणीं। स्वानंदधणी घेतसे। ६७ रमा पदीं रंगली दिवसनिशीं। तों बंधु पाहुणा आला शशी। तोही राहिला अक्षय व्हावयासी। नव जायचि माघारा। ६८ ध्वज वज्रांकुश पद्म। ऊर्ध्वरेखा चक्रादि चिन्हें उत्तम। यांचा अर्थ ऐकतां परम। सुख होय भक्तांसी। ६९ सात्विक प्रेमळासी देखा। ऊर्ध्व संकेत दावी ऊर्ध्वरेखा। सत्यशील धार्मिकां भाविकां। ऊर्ध्वपंथ दाविती। १७० विद्यामदें मत्त गज। एक भाग्यमदें डुलती सहज। त्यांसी आकर्षावया सहज। अंकुश पायीं झळकतसे। ७१ पायीं झळके दिव्य पद्म। तें पद्मेचें राहातें धाम। ते जगमाउली सप्रेम। तये पदीं सुरवाडली। ७२ अहंकार जड पर्वत। शरणागतां बाधक यथार्थ। तो फोडा-वयासी तळपत। वज्र पायीं रामाच्या। १७३ भवसागर

पीड़ित होकर, अपने शरीर के दस अंश (भाग) करके चन्द्र राम के चरणों (की अंगुलियों के रूप) में लवलीन हो गया और आत्मानन्द की तृप्ति को अनुभव कर रहा है। ६७ रमा (लक्ष्मी) रात-दिन (भगवान् विष्णु के चरणों में आनन्द पूर्वक) तल्लीन हो गयी, तो उसका बन्धु चन्द्र अतिथि के रूप में आ गया। वह भी अक्षय हो जाने के हेतु (वहाँ चरणों के निकट) रहा और नहीं लौट जाता। ६८ (उस मूर्ति के) चरणों में ध्वज, वज्र, अंकुश, कमल, ऊर्ध्वरेखा, चक्र इत्यादि उत्तम चिह्न (अंकित) हैं। भक्तों को उनका अर्थ सुनते ही परम सुख होता है। ६९ (यह) ऊर्ध्व रेखा (नामक चिह्न) सात्त्विक प्रेमशील व्यक्ति को, देखो कैसे ऊर्ध्व (ऊपर) की ओर इशारा कर दिखाती है। वह सत्यशील, धार्मिक और श्रद्धालु जनों को ऊर्ध्वपंथ (ऊपर स्वर्ग की ओर जाने का मार्ग) दिखाती है। १७० (कोई-कोई) विद्या के मद से उन्मत्त हाथी-से हो जाते हैं, तो (कोई-कोई) सद्भाग्य के घमण्ड से स्वभावतः झूमते हैं। उनको सहजता से वश में कर लेने के लिए भगवान् के पाँव में (तलुवे में) अंकुश (नामक चिह्न) चमकता है। ७१ उनके पाँव में दिव्य कमल झलकता है। वह लक्ष्मी का निवास-स्थान है। वह जगन्माता लक्ष्मी प्रेमपूर्वक (भगवान् के) चरणों में लीन (हुई) है। ७२ अहंकार (मानो) जड़ पर्वत (के समान) है; सचमुच वह शरणागत लोगों के लिए बाधा (उत्पन्न) करनेवाला होता है। उसे तोड़ डालने के लिए राम के पाँव में वज्र (नामक चिह्न) दमकता है। १७३ राम के चरण संसार रूपी अथाह सागर को तैरकर पार करने के लिए (साधन रूप) अद्भुत जहाज़ हैं।

तरावया गहन। जहाज अद्भुत रामचरण। त्यावरी ध्वज विराजमान। रात्रंदिन तळपतसे। १७४ काम क्रोध दुर्धर असुर। त्यांचें छेदावया शिर। देदीप्यमान दिव्य चक्र। रामतळवां झळकतसे। ७५ मळरहित प्रपद सुंदर। घोंटीव त्रिकोणयंत्राकार। इंद्रनीळ उपमा साचार। न पुरती कठीण म्हणोनियां। ७६ पदतळें आरक्त साजिरीं। वसे तेथें सरसिजोद्भवकुमारी। विश्रांति ध्यावया अहोरात्रीं। रामचरणीं रंगली हो। ७७ किती पापें हरावीं दिवसरजनीं। म्हणोनि श्रमली जन्हुनंदिनी। शुभ्र वांकी होउनी। रामचरणीं विराजे। ७८ मांड्या सुकुमार सांवळिया। तेथें सुरवाडली मित्रतनया। कीं यमानुजा अपवाद चुकवावया। महदाश्रय करीतसे। ७९ ऐसी रामपदीं त्रिवेणी साचार। प्रयाग तीर्थराज पावन थोर। प्रेमें माघमासीं सभाग्य नर। प्रातःस्नानासी

ध्वज नामक चिह्न उस पर विराजमान हो रात दिन चमकता है—उज्ज्वल रूप से शोभायमान है। १७४ काम और क्रोध दुर्दम्य राक्षस हैं। उनके मस्तक को छेदने के लिए राम के तलुवे में दैदीप्यमान चक्र (नामक) दिव्य चिह्न झलकता है। ७५ (भगवान् के) तलुवे निर्मल तथा सुन्दर हैं। वे सुडौल तथा त्रिकोण-यंत्र के-से आकारवाले हैं। इन्द्रनील नामक रत्न कठिन होता है, इसलिए (उन तलुवों की) उपमा के लिए सचमुच वह पर्याप्त नहीं है—उचित नहीं है। ७६ (राम के) तलुवे आरक्त (लाल-से) और सुन्दर (शोभायुक्त) हैं। वहाँ ब्रह्माजी की कन्या सरस्वती विश्राम करने के लिए रातदिन निवास करती है। वह राम के चरणों में लीन हो गयी है। ७७ रात दिन कितने पापों का परिहार (नाश) करें?—ऐसा कह (सोचकर) जह्नु राजा की कन्या गंगा थक गयी। और शुभ्र (रंग की) बाँक (एक आभूषण) बनकर राम के चरणों में विराजमान रहती है। ७८ (उनकी) जंघाएँ सुकुमार (अति कोमल) और साँवले रंग की हैं। (मानो) वहाँ सूर्य-कन्या यमुना लीन हुई (हो) अथवा यमराज की छोटी बहन-यमुना अपकीर्ति (बदनामी) को टालने के हेतु महान् देवता के आश्रय को पकड़े हुए है। ७९ इस प्रकार राम के चरणों में (सरस्वती, गंगा और यमुना) त्रिवेणी तीर्थ-सचमुच (उपस्थित) है। (वहाँ) महान् पवित्र तीर्थराज प्रयाग (विद्यमान) है, जहाँ भाग्यवान मनुष्य प्रेम (भक्ति) पूर्वक माघ महीने में प्रातःस्नान के लिए दौड़े जाते हैं। १८० भक्त, मुमुक्ष (मुक्ति के अभिलाषी), साधक

धांवती । १८० भक्त मुमुक्षु साधक संत । हेचि राजहंस विराजत । वांकीवरी रत्नें तळपत । तेचि तपस्वीं तपताती । ८१ चरणध्वज झळके स्पष्ट । तोचि जाणिजे अक्षयवट । जेथें सनकादिक वरिष्ठ । क्षेत्रसंन्यासी जाहले । ८२ प्रयागीं मोक्ष देह त्यागितां । येथें मोक्ष श्रवण करितां । देहीं असतां विदेहता । येत हाता भक्तांच्या । ८३ त्या प्रयागीं कष्ट बहुत । येतां जातां भोगिती अमित । हा प्रयाग ध्यानीं अकस्मात । प्रकटे सत्य भक्तांच्या । ८४ तोडर वांकी नूपुरें । असुरांवरी गर्जती गजरें । वाटे नभ गाळोनि एकसरें । पोटऱ्या जानू वोतिल्या । ८५ कीं सरळ कर्दळीचे स्तंभ । कीं गरुडपाचूंचे उगवले कोंभ । कीं इंद्रनीळ गाळोनि सुप्रभ । जानू जंघा वोतिल्या । ८६ मिळाल्या सहस्र चपळा । तैसा कांसे झळके पीतांबर पिवळा । वरी तळपे कटिमेखळा । पाहतां डोळां आल्हाद । ८७ कटिमेखळेवरी

और सन्त—ये ही (मानो) राजहंस विराजमान हैं। बाँक पर जो रत्न चमकते हैं, वे ही (मानो) तपस्वी हैं, जो तपस्या कर रहे हैं। ८१ (राम के) चरणों में स्पष्ट रूप में ध्वज (नामक चिह्न) उज्ज्वलता के साथ दिखायी देता है; उसे ही (प्रयाग तीर्थ क्षेत्रस्थ) अक्षयवट समझो; जहाँ पर सनकादिक श्रेष्ठ ऋषि क्षेत्रस्थ संन्यासी हो गये। ८२ (उस) प्रयाग में देह का त्याग करने पर मोक्ष मिलता है, तो यहाँ (रामचरण रूपी प्रयाग में राम नाम) श्रवण करने से मोक्ष लाभ होता है और देह धारण किये हुए रहने पर भी यहाँ भक्तों के हाथ विदेहता लग जाती है। ८३ उस प्रयाग में आने-जाने में (लोग) असंख्य कष्टों का भोग करते हैं। (परन्तु) यह प्रयाग तो भक्तों के ध्यान में सचमुच अकस्मात् प्रकट हो जाता है। ८४ (राम के चरणों में पहने हुए) तोड़र, बाँक और नूपुर (नामक आभूषण) झनकते हुए (मानो) असुरों पर गरज रहे हैं। जान पड़ता है कि आकाश को एकदम (अथवा एक प्रवाह में) पिघलाकर उससे (राम की) पिंडलियाँ और घुटने ढाले (गढ़े) गये। ८५ अथवा (राम के) उरु (जंघाएँ) कदली (केले) के सरल स्तम्भ (खंभे) हैं, अथवा राजनील रत्न के अंकुर फूट (उग) गये, अथवा तेजस्वी इन्द्रनील रत्नों को पिघलाकर (राम के) घुटनों और जंघाओं को (ढालकर) गढ़ा है। ८६ हज़ारों बिजलियाँ एकत्रित हो जाएँ (तो वे जैसे चमकती हों) वैसे ही राम के कछौटे में पीत पीताम्बर झलकता है। उसके ऊपर कमर में (बँधी) मेखला (करधनी) दमकती है। (इन्हें) देखने पर

महामणी । कीं पंक्तीं बैसले वासरमणी । दाहकत्व सांडूनि जघनीं । श्रीरामाच्या लागले । ८८ वेदांतींच्या श्रुति गहन । अर्थ बोलती जेवीं शोधून । तैशा क्षुद्रघंटा रुणझुण । शब्द करिती रसाळ । ८९ देखून कटिप्रदेश सुकुमार । लाजोनि वना गेला मृगेंद्र । वाटे त्या दुःखें स्वशरीर । वाहन केलें दुर्गेचें । १९० गंभीरावर्त नाभिस्थान । जेथें जन्मला चतुरानन सत्व रज तम गाळून । त्रिवळी उदरीं विराजे । १ कौस्तुभतेज अपार । पाहतां भुलती शशिमित्र । गुणीं ओंविलीं नक्षत्रें समग्र । मुक्ताहार डोलती तेवीं । ९२ कीं त्या मुक्तांच्या माळा बहुत । रघुपतीच्या गळां डोलत । कीं मुक्तारूपें समस्त । अनन्त ब्रह्मांडें गुंफिलीं । ९३ मुक्तामाळांचें तेज गहन । परी त्यांचा पालटला वर्ण । दिसती इंद्रनीळासमान । श्यामलांगीं रघुपतीच्या । ९४ नीळ गगनावरी सुंदर ।

आँखों को आह्लाद होता है । ८७ कमर में बँधी मेखला (करधनी) में बड़े-बड़े रत्न हैं; मानो (अनेक) सूर्य ही पंक्ति में बैठे (हुए हों) और अपनी दाहकता छोड़कर वे श्रीराम की कटि में लगे (हुए हों) । ८८ जैसे (तत्त्वज्ञानी) वेदान्त की गहन श्रुतियों का परीक्षण कर अर्थ कहते हों वैसे (राम की) करधनी में बँधे छोटे-छोटे घुँघरू रसीले (मधुर) झनझन शब्द (उत्पन्न) कर रहे हैं । ८९ (राम का) सुकुमार (अति कोमल) कटि प्रदेश देखकर मृगेन्द्र (सिंह) लज्जित हो वन में (निवास करने) चला गया । जान पड़ता है, उसी दुःख से उसने अपने शरीर को देवी दुर्गा का वाहन बना दिया । (देवी दुर्गा सिंह पर विराजमान रहती है ।) १९० जहाँ चतुर्मुख ब्रह्माजी का जन्म हुआ, वह (श्रीराम अर्थात् भगवान् विष्णु का) नाभिस्थान मानो गम्भीर (गहन) गूढ़ भँवर है । सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणों को गलाकर बनायी हुई त्रिबाली उदर पर शोभायमान है । ९१ (भगवान् के पहने हुए) कौस्तुभ नामक रत्न का तेज असीम है; उसे देखकर चन्द्र और सूर्य मोहित हो जाते हैं । मोतियों के हार ऐसे झूलते हैं कि (जान पड़ता है,) समस्त तारे सूत्र में पिरोये हुए हैं । ९२ अथवा उन मोतियों की बहुत-सी मालाएँ रघुपति राम के गले में झूलती हैं । मानो समस्त अनगिनत ब्रह्माण्ड मोतियों के रूप में गूँथे हों । ९३ मोतियों की मालाओं का तेज तो गहन है । परन्तु उनका (मूल) वर्ण बदल गया । राम के श्याम शरीर पर वे (मोती) इन्द्रनील रत्नों के समान दिखायी दे रहे हैं । ९४ नीले आकाश में सुन्दर

मंदाकिनीओघ दिसे शुभ्र । तैसा अम्लान सुमनहार । श्याम-तनुवरी शोभत । ९५ श्यामलांगीं अति निर्मळ । वरी डोले वैजयंती माळ । पुष्करीं शक्रचाप सुढाळ । सुरंग जैसें मिरवतसे । ९६ कीं मेघीं स्थिरावली क्षणप्रभा । तैसी वैजयंतीची शोभा । सहस्रमुखाच्या जिभा । गुण वर्णितां शिणल्या हो । ९७ अनंत भक्त हृदयीं धरिले । तरीच वक्षःस्थळ रुंदावलें । ब्रह्मानन्द मुरोनि वोतिलें । हृदयस्थान सत्य पैं । ९८ श्रीवत्स झळके सव्यांगीं । श्रीनिकेतन वामभागीं । उटी शोभे श्यामलांगीं । कोण्या दृष्टांतें तें ऐका । ९९ मित्रकन्येवरी जान्हवीजळ । कीं राका-इंदुप्रभेनें शोभे निराळ । कीं देदीप्य मणि इंद्रनीळ । आवरण त्यावरी काश्मीराचें । २०० कीं हळाहळ जाहलें अपार । म्हणोनि धांवला कर्पूरगौर । चंदनरूपें तो प्राणमित्र । श्यामलांगीं जडला हो । २०१ तैसी उटी दिसे सुढाळ । कीं चंद्रबिंब उकले निर्मळ । कीं मुक्ताफळांचा गोळा

गंगा का प्रवाह जैसे शुभ्र दिखायी देता है, वैसे राम के श्याम (नीले) शरीर पर अम्लान (तरोताज़ा) पुष्पहार शोभा दे रहा है। ९५ भगवान् के अति निर्मल श्याम शरीर पर वैजयंती माला झूलती है। जान पड़ता है कि आकाश में सुडौल तथा रंगीन इन्द्रधनुष शोभायमान हो रहा है। ९६ अथवा बादल में बिजली स्थिर हो गयी हो, वैसे (भगवान् के श्याम शरीर पर) वैजयंती माला सुशोभित है। सहस्रमुखी शेष की सहस्र जिह्वाएँ उसके गुणों (अच्छाई-सुन्दरता) का वर्णन करते हुए थक गयीं। ९७ (जान पड़ता है,) भगवान् ने असंख्य भक्तों को सीने से लगाया (आलिंगन किया), इसलिए ही उनका वक्षःस्थल चौड़ाई को प्राप्त हो गया। सचमुच ब्रह्मानन्द के पक्व हो जाने पर उससे उनका हृदय-स्थान ढाला (गढ़ा) है। १९८ वक्षःस्थल के दाहिने भाग में श्रीवत्स चिह्न झलक रहा है, तो बायें अंग में श्रीनिकेतन—अर्थात् लक्ष्मी के निवास-स्थान को सूचित करनेवाला चिह्न है। उनके श्याम शरीर में उबटन शोभायमान है। वह कैसे—किस दृष्टान्त से—सुनो। १९९ (जान पड़ता है,) सूर्यकन्या यमुना के जल पर जह्नु-कन्या गंगा का जल (बहता) हो; अथवा पौर्णिमा की चाँदनी से आकाश सुशोभित हो; अथवा दैदीप्यमान इन्द्रनील रत्न पर केसर का आवरण (डाला) हो। २०० अथवा हलाहल विष अपार बढ़ गया, अतः कर्पूर के समान गौर शरीरधारी भगवान् शिवजी दौड़े और वे (विष्णु के) प्राणसखा चन्दन के रूप में (उनके) श्यामल

सुढाळ । इंद्रनीळा चर्चियेला । २०२ शंख चक्र धनुष्य बाण । चोहों हस्तीं शोभायमान । हस्तकटकांचे तेजेंकरून । उजळीत नभातें । २०३ क्षणप्रभेचीं चक्रें तळपती । तैशा मुद्रिका करीं झळकती । किंवा औपासक यंत्रें रेखिती । तेचि गती येथें दिसे । २०४ प्रळयाग्नीनें उघडिले नयन । तेवीं कीर्तिमुखें परिपूर्ण । कीं निष्कलंक रोहिणीरमण । पदक हृदयीं डोलतसे । ५ कंबुकंठ अति शोभत । नासिक सरळ सुकुमार बहुत । मंदस्मित-वदन विराजत । कोटि मन्मथ ओंवाळिजे । ६ विद्रुमवर्ण अधर सतेज । माजी ओळीनें झळकती द्विज । त्या तेजें शशि नक्षत्रें तेजःपुंज । झांकोळती पाहतां । ७ त्रैलोक्यींचा मेळवोनि आनन्द । वोतिलें रामाचें वदनारविंद । आकर्ण नेत्र भ्रुकुटी विशद । धनुष्याकृती शोभती । ८ स्वानंदसरोवरींचीं कमलदलें । तैसे आकर्ण नयन विकासले । त्या कृपादृष्टीनें निवाले । प्रेमळ

शरीर में लिपट गये । उसी प्रकार यह सुन्दर उटी दिखायी देती है। अथवा (जान पड़ता है,) निर्मल चन्द्र-बिम्ब उदित हो गया हो, अथवा इन्द्रनील रत्न में मोतियों का तेजस्वी गोला लगाया (घिसा) हो।२०१-२०२

भगवान् के चारों हाथों में शंख, चक्र, धनुष और बाण शोभायमान हैं। वे हाथों में पहने हुए आभूषणों की कान्ति से आकाश को उज्ज्वल बना रहे हैं। २०३ विजली के चक्र जैसे चमकते हैं, वैसे (भगवान् के) हाथों में अंगूठियाँ झलकती हैं। उपासक जन यंत्र (इष्ट देवता की पूजा के लिए आवश्यक गूढ़ रेखात्मक आकृति) अंकित करते हैं—वही गति यहाँ दिखायी देती है। २०४ प्रलयकाल के अग्नि देवता ने नेत्र खोले हों, वैसे (भुजदण्डों में पहने हुए) कीर्तिमुख (शृंगाकार) आभूषण पूर्णतः तेजस्वी हैं। हृदय पर पदक के रूप में मानो निष्कलंक चन्द्रमा ही झूलता है। ५ शंखाकृति कण्ठ अति शोभायमान है। नाक सरल और अति कोमल है। मुख मन्द स्थित से ऐसा शोभायमान है कि करोड़ों कामदेव (उस पर) निछावर करें। २०६ ओंठ तेजस्वी मूँगे के वर्णवाले हैं। (उनके) बीच में दाँत पंक्ति में झलक रहे हैं। देखने पर चन्द्र और तेजःपुंज तारे उनके (दाँतों के) तेज से फीके दिखायी देते हैं। ७ तीनों लोकों के आनन्द को एकत्रित करके (उससे) राम का मुख-कमल ढाला (गढ़ा) है। (उनके) नेत्र आकर्ण, अर्थात् कानों तक फैले हुए हैं और निर्मल भौंहें धनुषाकार शोभायमान हैं। ८ आत्मानन्द रूपी सरोवर में कमलदल विकसित हुए हों, वैसे (राम के) नयन (रूपी कमल) आकर्ण (कानों तक)

जन सर्वेही । ९ कुंडलें तळपती मकराकार । कीं जडले रविरोहिणीवर । कीं अंगिरापुत्र भृगुपुत्र । विचार पुसती रामातें । २१० कीं वेदसागरींच्या रत्नज्योती । पूर्वउत्तर मीमांसा निश्चितीं । कुंडलरूपें जाणविती । अर्थविशेष स्वामीतें । ११ श्रीरामतनु सुकुमार । तेणें शोभती अलंकार । पीतवर्ण टिळक सुंदर । अनुपम्य रेखिला । १२ सुवर्णोदक नदीचा पूर । नीळगिरिपाठारीं निरंतर । तैसा टिळक सुंदर । विशाळ भाळीं झळकतसे । १३ जैसा कल्पांतींचा दिनकर । तैसे मुकुट दिसे जाज्वल्य सुंदर । तेज तळपतसे अपार । चक्रामाजी न समाये । १४ दावाग्नीचा कल्लोळ भडकत । तैसें उत्तरीय वस्त्र रुळत । दशांप्रति मुक्तें झळकत । कृत्तिकापुंज जयापरी । १५ तें परम तेजाळ क्षीरोदक । कीं शुभ्र यशा चढलें बीक । शुभ्रश्वेत मृडानीनायक । कर्पूरेंकरूनि उटिला कीं । १६ कीं दिव्य रजत-

विकसित हुए हैं । (उनकी) उस कृपादृष्टि से सभी श्रद्धालु लोग शान्ति को प्राप्त हो गये । ९ मकराकृति (मछली के आकार वाले) कुण्डल (कानों में) ऐसे झलकते हैं कि (जान पड़ता है,) सूर्य और चन्द्र जड़े हुए हों; अथवा गुरु के और शुक्र के पुत्र राम से परामर्श कर रहे हों । २१० पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा की उक्तियों के समूह मानो वेद रूपी सागर की रत्नज्योतियाँ हैं, जो (राम द्वारा पहने हुए) कुण्डलों के रूपों में अपने स्वामी को (उक्तियों का) विशिष्ट अर्थ समझा रही हैं । ११ श्रीराम का शरीर विशेष रूप में कोमल है । उससे (उनके द्वारा पहने हुए) आभूषण शोभा को प्राप्त हैं । (मस्तक पर) पीले रंग का सुन्दर अनुपम तिलक अंकित है । जैसे सुवर्ण-जल वाली नदी का बाढ़ वाला प्रवाह नील पर्वत के पठार में बराबर बह रहा हो, वैसे (राम के) विशाल भाल-प्रदेश में सुन्दर तिलक झलकता है । १२-१३ जिस प्रकार कल्पान्त समय का सूर्य (तेजस्वी) होता है, उसी प्रकार (राम का) मुकुट सुन्दर और जाज्वल्यमान दिखायी देता है । (उसका) तेज असीम झलकता है, जो चक्र (मण्डल) में नहीं समा रहा है । १४ जिस प्रकार दावाग्नि का ज्वालाजाल भभकता रहता है, उसी प्रकार (राम का) उत्तरीय वस्त्र (जाज्वल्यमान रूप में) सुशोभित है । जिस उत्तरीय पर मानो कृत्तिका-पुंज (तारे) टँके हुए हैं, उसकी दशाओं (छोर के अनगूँथे धागों) में मोती चमकते हैं । १५ (उसे देखने पर जान पड़ता है कि) वह परम तेजोमय क्षीरसागर का जल हो, अथवा धवल (उज्ज्वल) कीर्ति पर तेज चढ़ा हो; अथवा

तगट घडलें। कीं पारदें कैलास डवरिलें। कीं जान्हवीतोयें ओपविलें। दिनकरनाथें स्वहस्तें। १७ सच्चिदानन्दतनु सगुण। अतसीकुसुमाभास पूर्ण। त्याचि रंगेंकरून। नीलोत्पलें राबविलीं। १८ नभासी चढला तोच रंग। त्याचि प्रभेनें रंगले मेघ। इंद्रनीळही सुरंग। त्याच प्रकाशें प्रकाशले। १९ तेथींचें सौंदर्य अद्भुत। गरुडपाचूंसी तेज दिसत। मर्गजासी बीक चढत। तनु सांवळी देखोनियां। २२० तो वैकुंठींचा वेल्हाळ सुंदर। भक्तमंदिरांगणमंदार। कुरवंडी करूनि सांडावे साचार। कोटि मकरध्वज वरोनियां। २१ ब्रह्मांड फोडोनि बाहेरी। अंगींचा सुवास धांवत वरी। लावण्यामृतसागर कैटभारी। लीलावतारी साधक जो। २२ पूर्णब्रह्मानंद रघुवीर। लीलाविग्रही श्रीधरवर। हृदयीं रेखिला निरंतर। निजभक्तीं प्रेमभरें। २३ असो कौसल्या बोले ते अवसरीं। भक्तवत्सला मधुकैटभारी। तूं आतां बाळवेष धरीं। माझे उदरीं

अत्यन्त गौरवर्णीय पार्वतीपति शिवजी को कपूर से लेप लगाया हो; अथवा दिव्य रूपे की जरी का वस्त्र बनाया हो; अथवा पारे से कैलास को सुशोभित किया हो; अथवा सूर्य ने अपने हाथों गंगाजल से मुलम्मा किया (हो)। १६-१७ सच्चिदानन्द का यह सगुण शरीर पूर्णतः अलसी के फूलों-सा दिखायी देता है। उसी रंग से नीलकमलों की उपज करायी (हो)। २१८

आकाश पर वही रंग चढ़ा; उसी कान्ति से बादल रँगे हैं। रंगीन इन्द्रनील रत्न भी उसी प्रकाश (कान्ति) से प्रकाशमान है। १९ वहाँ की सुन्दरता अद्भुत है। राम का साँवला शरीर देखकर राजनील रत्न में तेज दिखायी देता है और मरकत रत्न को भी तेज चढ़ता है। २२० वैकुण्ठ के वे सुन्दर स्वामी (भगवान् विष्णु) भक्तों के मन्दिर के आँगन में स्थित मन्दार नामक कल्पवृक्ष हैं। (वे इतने सुन्दर हैं कि) उनके ऊपर सचमुच करोड़ों कामदेव निछावर कर दें। २१ उनके अंग की सुगन्ध ब्रह्माण्ड को भेदकर ऊपर दौड़ती है—अर्थात् ब्रह्माण्ड में नहीं समा रही है। जो लीला-अवतारों को सिद्ध करनेवाले भगवान् विष्णु हैं वे लावण्य (सुन्दरता) रूपी अमृत के सागर हैं और कैटभ नामक दैत्य के शत्रु हैं। २२ पूर्ण ब्रह्मानन्द रघुवीर, लीलाओं के कर्ता और लक्ष्मी के श्रेष्ठ पति को उनके अपने भक्तों ने प्रेम (भक्ति) पूर्वक अपने हृदय में अंकित करके नित्य रखा है। २२३

अवतरें। २४ लोक म्हणतील कौसल्यानन्दन। ऐसा होईं तूं मनमोहन। अमलदल राजीवनयन। हास्यवदन विलोकीं। २५ सजलजलदवर्ण कोमळ। कौसल्येपुढें जाहला बाळ। तंव ते परम सुवेळ। पुष्यार्कयोग ते समयीं। २६ जो क्षीरसागर-वासी तमालनीळ। तो कौसल्येपुढें जाहला बाळ। चरणांगुष्ठ धरोनि कोमळ। मुखकमळीं घालीतसे। २७ भक्त चरणीं लागले बहुत। गोड गोड म्हणोन वाखाणित। यालागीं गोडी रघुनाथ। स्वयें पाहत चाखोनियां। २८ कीं स्वचरणगोडी सेवित। भक्तांसी लोभ लागावया बहुत। म्हणोनियां कौसल्यासुत। कौतुकार्थ दावीतसे। २९ पुत्र झाला कौसल्येस। लागला वाद्यांचा एकचि घोष। सुरांसहित सुराधीश। जयजयकार नभीं करिती। २३० सुमनसंभार ते अवसरीं। देव वर्षती अयोध्येवरी। दुंदुभिनाद अंबरीं। न मायेचि तेधवां। २३१

अस्तु। उस समय कौसल्या बोली—'हे भक्तवत्सल और मधु-कैटभारि भगवान्, तुम अब बाल-वेश (बालक का रूप) ग्रहण करो और मेरे उदर से अवतरित हो जाओ। २४ हे मनमोहन, निर्मलदलों से युक्त कमल के समान नेत्रों वाले भगवान्, तुम ऐसा (बालक) हो जाओ, जिससे (तुम्हें) लोग कौसल्या का पुत्र कहें। तुम हँसमुख हो देखो। २५ (तदनन्तर, भगवान्) कौसल्या के सामने पानी भरे मेघ के समान (नीले) वर्ण वाले कोमल (शरीर धारी) बालक हो गये। तब उस समय पुष्यार्क योग नामक अति शुभ समय (मुहूर्त) था। २६ जो क्षीरसागर में निवास करने वाले, तमाल पत्र के-से नील वर्ण वाले (भगवान् विष्णु) हैं, वे कौसल्या के सामने शिशु हो गये। वे पाँव का कोमल अँगूठा पकड़कर मुख-कमल में डालते हैं। २७ अनेक भक्त उनके चरणों में लगे हुए हैं और उसे 'मीठा, मीठा' कहकर उसकी प्रशंसा करते हैं। इसलिए रघुनाथ राम उसे चखकर उसकी मधुरता स्वयं देख रहे हैं। २८ अथवा वे अपने चरण की मधुरता का सेवन करते हैं ताकि भक्तों को उसके प्रति लोभ (रुचि) उत्पन्न हो जाए। इसलिए कौसल्या के पुत्र (राम) लीला के हेतु यह दिखा रहे हैं। २९

कौसल्या के पुत्र (उत्पन्न) हुआ, तो (मंगल) वाद्यों का अतुल (बेजोड़) घोष हो गया। देवों सहित इन्द्र ने (आकर) आकाश में जय जयकार किया। २३० देवों ने उस अवसर पर फूलों के ढेर के ढेर अयोध्या पर बरसा दिये। तब नगाड़ों का नाद (गर्जन) आकाश में नहीं समा रहा था। २३१

हळदीकुंकुमें ताटें भरोनी। विदोविदीं धांवती सुवासिनी। पावल्या कौसल्येच्या सदनीं। वेगेंकरोनि तेधवां। २३२ मंगळतुरांचा एकचि नाद। घरोघरीं ब्रह्मानंद। ते समयींचा आनंद। भोगींद्र वर्णू शकेना। ३३ आनंदला ब्रह्मनंदन। चहूंकडोन धांवले ब्राह्मण। जैसा क्षीरसागर देखोन। क्षुधार्थी वेगें पावती। ३४ कीं महापर्वकाळ प्रगटला। प्रयागासी धांवे भक्तमेळा। कीं गांवासमीप परीस निघाला। दुर्बळ धांवती लोह घेउनी। ३५ कीं तृषाक्रांत गो-भार सकळी। धांवती जैसे गंगाजळीं। कीं वृक्ष दाटले देखून फळीं। विहंगम जैसे झेंपावती। ३६ तैसी ब्राह्मणांची ते काळीं। दाटी जाहली राजाजवळी। पुत्रमुख पहावया ते वेळीं। दशरथराव चालिला। ३७ दशरथ म्हणे याचकांसी। जे जे इच्छा असेल मानसीं। ते ते मागा मजपाशीं। येंच समयीं देईन। ३८ भांडारें फोडिलीं बहुत। याचकांसी म्हणे दशरथ।

उस समय सुवासिनी (सुहागन) स्त्रियाँ हलदी-कुंकुम से थालियाँ भरकर रास्ते-रास्ते में दौड़ीं और वे शीघ्रता से कौसल्या के सदन में आ पहुँचीं। २३२ मंगल तुरहियों का अतुल घोष हो रहा था। घर-घर में ब्रह्मानन्द (अनुभव हो रहा) था। उस समय के आनन्द का वर्णन भोगीन्द्र शेष (तक) नहीं कर सकता। २३३ ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ आनन्दित हो गये। जैसे क्षीरसागर को (उपस्थित) देखकर भूखे लोग वेगपूर्वक (उसके पास) पहुँच जाते हैं, वैसे ही चारों ओर से ब्राह्मण दौड़े (हुए आ गये)। २३४ अथवा महान् पर्व का काल आए, तो भक्तजनों का समूह प्रयाग (की ओर) दौड़ता है; अथवा जिस प्रकार गाँव के पास पारस निकल आए, तो दुर्बल (अर्थात् धन रूपी बल से हीन–दरिद्र) लोग लोहा लेकर दौड़ते हैं; अथवा प्यास से व्याकुल सब गायों का समूह गंगाजल की ओर दौड़ता है; अथवा जिस प्रकार वृक्षों को फलों से लदे हुए देखकर पक्षी (उनकी ओर) लपकते हैं, उसी प्रकार उस समय ब्राह्मणों की भीड़ राजा के समीप इकट्ठा हो गयी। उस समय राजा दशरथ पुत्र का मुख देखने के लिए चले। २३५-२३७ दशरथ ने याचकों से कहा—'मन में जो-जो (अर्थात् जिस-जिस की) इच्छा हो, वह (उस-उसको) मुझसे माँग लो, मैं इसी समय दूँगा।' २३८ बहुत भण्डार मुक्त किये दशरथ ने, (फिर) याचकों से कहा—'जितना आ सकता हो—उतना असंख्य थैलियाँ बाँधकर अब ले जाओ।' २३९ तब साथ में ब्राह्मणों

मोटा बांधोनि अमित। आवडे तितुकें न्या आतां। ३९ समागमें घेऊन ब्राह्मण। महाराज तो अजनंदन। प्रवेशला आनंदेंकरून। कौसल्यासदनीं तेधवां। २४० दशरथें करोनियां स्नान। केलें आधीं पुण्याहवाचन। पहावयासी पुत्रवदन। राजा जवळी पातला। ४१ श्रीरामवदन ते अवसरीं। न्याहाळितां तोषला अंतरीं। मधुबिंदु घालोनि मुखाभीतरीं। मधुकैटभारी तृप्त केला। ४२ श्रीरामाचें जातक। करी तेव्हां नृपनायक। गो-भू-रत्नें असंख्य। मग देत याचकांसी। ४३ रत्नजडित सिंहासन। त्यावरी माय बैसली राम घेऊन। मृगांकवर्ण चामरें जाण। दोघी ढाळिती दोहींकडे। ४४ पीकपात्र घेऊनि हातीं। समीप विलसे एक दूती। कनकांबराची घेऊन बुंथी। बैसली सती कौसल्या। ४५ भोंवते वेष्टिले विद्वज्जन। त्यांसी भूतभविष्यवर्तमानज्ञान। सात शतें स्त्रिया धांवोन। येत्या जाहल्या दशरथाच्या। ४६ जैशा केवळ विद्युल्लता। तैशा अलंकारवस्त्र-मंडिता। पाळा कौसल्येभोंवता।

को लिये हुए महाराज अजनन्दन (दशरथ) ने कौसल्या के सदन में आनन्द-पूर्वक प्रवेश किया। २४० स्नान करके दशरथ ने पहले पुण्याहवाचन (नामक) विधि सम्पन्न की और पुत्रमुख देखने के लिए राजा (उसके) निकट पहुँचे। २४१ उस अवसर पर श्रीराम का मुख निरखते ही वे अन्तःकरण में सन्तुष्ट हुए। (उसके) मुख में मधु की बूँद डालकर उन्होंने (मधु और कैटभ नामक दैत्यों के शत्रु भगवान्) विष्णु (अर्थात् राम) को तृप्त किया। २४२ तब नृप-नायक दशरथ ने श्रीराम की जातक नामक विधि सम्पन्न की। तदनन्तर उन्होंने याचकों को अनगिनत गायें, भूमि और रत्न प्रदान किये। २४३ रत्नजटित सिंहासन (था, उस) पर कौसल्या राम को लिये हुए बैठी। देखो, दो स्त्रियाँ दोनों ओर (खड़ी होकर) चन्द्र के-से (उज्ज्वल) वर्ण के चँवर झुला रही हैं। २४४ हाथ में पीकदान लिये हुए पास ही एक दूती (दासी) शोभायमान थी। स्वर्ण (के समान पीले रंग के) वस्त्र का घूँघट ओढ़े हुए सती कौसल्या बैठी थी। २४५ (उसे) विद्वान् लोग घेरे हुए थे। उन्हें भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञान था। (तब) दशरथ की सात सौ स्त्रियाँ (वहाँ) दौड़ी हुई आयीं। २४६ विशुद्ध बिजलियाँ जैसी (देदीप्यमान) होती हैं, वैसी (देदीप्यमान) आभूषणों और वस्त्रों से विभूषित वे स्त्रियाँ थीं। उस समय कौसल्या के चारों

शोभला कैसा ते वेळीं। ४७ महामाया आदिभगवती। तीभोंवत्या मिळाल्या अनंत शक्ती। कीं सूर्यचक्रासी वेष्टिती। किरणें जैसीं तयापरी। ४८ वसिष्ठ गुरु होऊन पुढें। विलोकी श्रीरामाचें रूपडें। जे जे जन्मकर्मनिवाडे। ते रायापुढें सांगत। ४९ म्हणे हा क्षीरसागरविहारी। जन्मला कौसल्येचे उदरीं। निजजन तारावयासी निर्धारीं। अवतरला आदिपुरुष। २५० द्वादश वर्षें यासी भरतां। एक द्विज येईल अवचिता। प्रार्थोनिया दशरथा। घेऊन यासी जाईल। ५१ आरंभीं सोडोनि एक बाण। एक राक्षसी वधील दारुण। गोब्राह्मणमख-पाळण। करील जाण पुत्र तुझा। ५२ कृशान प्रवेशे शुष्कविपिनीं। तैसा जाळील राक्षस मखरक्षणीं। पुढें चरणस्पर्शेंकरूनी। एक ललना उद्धरील। ५३ परम प्रचंड कोदंड। तें स्वदंडबळें करील दुखंड। एकपत्नीव्रत ऋचंड। वीर होईल त्रिभुवनीं। ५४ महायोद्धा एक ब्राह्मण। त्यास

ओर (यह) नारी-वृन्द कैसे शोभायमान था? २४७ (देखने पर जान पड़ता था कि कौसल्या) आदिमाया आदिभगवती है और उसके चारों ओर अनन्त शक्तियाँ इकट्ठा हुई (हैं); अथवा जैसे सूर्यमण्डल को किरणें घेर लेती हैं, वैसे उन नारियों ने कौसल्या को घेर रखा था। २४८

गुरु वसिष्ठ ने आगे बढ़कर श्रीराम के मोहक रूप को देखा और वे (अब) उस शिशु के जन्म, कर्म सम्बन्धी निर्णय (विचार) राजा के सम्मुख कहते हैं। २४९ उन्होंने कहा—'क्षीरसागर में विहार करनेवाले इन भगवान् (विष्णु) ने कौसल्या के उदर से जन्म लिया (है)। अपने भक्त-जनों का उद्धार करने के लिए निश्चय ही आदि पुरुष (इस शिशु के रूप में) अवतरित है। २५० इसकी अवस्था के बारह वर्ष पूर्ण होने पर अकस्मात् एक ब्राह्मण आएगा (और) वह दशरथ से विनती करके इसे (अपने साथ) ले जाएगा। २५१ शुरू में एक बाण चलाकर वह (एक) भयानक राक्षसी का वध करेगा; (और हे राजा, यह) जान लो कि तुम्हारा पुत्र गायों, ब्राह्मणों और यज्ञों का पालन (रक्षण) करेगा। २५२ सूखे वन में प्रवेश कर जैसे अग्नि उसे जला डालती है, वैसे यज्ञ की रक्षा करते समय वह राक्षसों को जला डालेगा (मार डालेगा)। आगे (चलकर) वह चरण-स्पर्श से एक स्त्री का उद्धार करेगा। २५३ एक परम प्रचण्ड धनुष है, उसे वह अपने बाहु-बाल से दो टुकड़ों में तोड़ डालेगा। वह त्रिभुवन में एकपत्नी-व्रत का धारी प्रचण्ड वीर पुरुष

जिंकील न लगतां क्षण। बंधुसहित परतोन। अयोध्येसी येईल। ५५ राज्यीं बसतां हा वरिष्ठ। मग एक होईल अरिष्ट। नगरलोक पावती कष्ट। खेद उत्कट करितील। ५६ हा नरवीर-पंचानन। प्रेमें पाळील पितृवचन। मग स्त्रीसमवेत कानन। चतुर्दश वर्षे सेवील। ५७ हा नसतां आश्रमांत। एक राक्षस येईल अकस्मात। याचे स्त्रियेस नेईल सत्य। षण्मासपर्यंत निर्धारें। ५८ मग हा स्त्री शोधितां अरण्यांत। वानर मिळतील अकस्मात। एक वानर उन्मत्त। त्यास मारील हा न कळतां। ५९ ब्रह्मांड नाचवील नखाग्रीं। ऐसा एक वानरकेसरी। जाऊन समुद्रसंभवपुरीं। महाप्रलय करील तो। २६० शुद्धि आणितां राघवेंद्र। पाषाणीं पालाणील समुद्र। शरण येईल एक रजनीचर। चिरंजीव त्यासी करील हा। ६१ मारूनि राक्षसां सकळां। सोडवील सुरांच्या बंदिशाळा। मागुती येईल स्वस्थळा। अयोध्यापुरा गजरेंसीं। ६२

(सिद्ध) होगा। २५४ एक महायोद्धा ब्राह्मण को वह क्षण न लगते ही जीतेगा और बन्धु-सहित अयोध्या (को) लौटेगा। २५५ इस श्रेष्ठ (राजपुत्र) के राजगद्दी पर बैठते समय एक महान् विघ्न उपस्थित होगा। (उससे) नागरिक जन बहुत कष्ट को प्राप्त हो जाएँगे और तीव्रतम दुःख (अनुभव) करेंगे। २५६ यह वीर पुरुष (रूपी) सिंह प्रेम से पिता के वचन का पालन करेगा और तदनन्तर पत्नी सहित चौदह वर्ष वन में निवास करेगा। २५७ आश्रम में इसके नहीं होने पर (इसकी अनुपस्थिति में) अकस्मात् एक राक्षस (वहाँ) आएगा; (और) सचमुच इसकी स्त्री को छः महीने तक ले जाएगा। २५८ तत्पश्चात् जब यह वन में (अपनी) स्त्री को खोजता रहेगा, तो सहसा (इससे) वानर मिलेंगे। एक वानर उन्मत्त है, उसे (उसके) अनजाने यह मार डालेगा। २५९ जो ब्रह्माण्ड को नाखून की नोक पर नचाएगा (नचा सकेगा) ऐसा एक वानर-सिंह (श्रेष्ठ) है। वह (समुद्र में में उत्पन्न) लंका नगरी में जाकर महाप्रलय (उत्पात) मचाएगा। २६० (सीता की) खोज करके (समाचार) लाने पर राघवेन्द्र राम पाषाणों से समुद्र को आच्छादित करेगा (समुद्र पर पाषाणों को तैराएगा)। एक राक्षस उसकी शरण में आएगा; उसे यह 'चिरंजीव' बनाएगा। २६१ (तत्पश्चात् सब राक्षसों को मार डालकर देवों को बन्दी-शालाओं से छुड़ाएगा। (उसके बाद) वह अपने स्थान अयोध्यापुर (को) गाजे-बाजे

अकरा सहस्र संवत्सर। राज्य करील हा राजेंद्र। पुढें पुत्रासीं युद्ध थोर। करील कौतुकेंकरूनियां। ६३ शेवटीं अयोध्या विमानीं घालोनी। नेऊन ठेवील वैकुंठभुवनीं। ऐसें जातक ऐकोनि कर्णीं। राव दशरथ तोषला। ६४ स्तनपान करितां रघुनंदन। पाहे वसिष्ठाकडे परतोन। कीं वाल्मीक-भाष्य संपूर्ण। कथिलें येणें अवलीलें। ६५ तों सुमित्रेसी जाहला पुत्र। म्हणोनि धांवत आले विप्र। क्षीरसागरीं-हूनी श्रीधर। कौसल्यामंदिरीं पातला। ६६ तंव तो भोगींद्र पाळती घेत। पाठिराखा पातला त्वरित। सुमित्रेचे शेजे रिघत। बाळदशा धरोनिया। ६७ सुमित्रा स्वप्न देखत। कीं मज जाहला सुलक्षण सुत। सावध होवोनिया पाहत। पुढें खेळत बाळक तो। ६८ ऐसा जन्मला सुमित्रानंदन। विप्रांसहित दशरथ येऊन। तत्काळ केलें पुण्याहवाचन। जातकर्मादि सर्वही। ६९ कैकयीस जाहले दोन कुमर। ते

के साथ लौट आएगा। २६२ (फिर) यह राजेन्द्र ग्यारह हज़ार वर्ष राज करेगा। आगे चलकर वह पुत्रों से लीला पूर्वक बड़ा युद्ध करेगा। २६३ अन्त में अयोध्या को विमान में रखकर यह (उसे) वैकुण्ठ लोक में ले जाकर रखेगा।' (राम के विषय में) ऐसा जातक (भविष्य-कथन) कानों से सुनकर राजा दशरथ सन्तुष्ट हो गये। २६४ स्तन-पान करते हुए रघुनन्दन राम मुड़-मुड़ कर वसिष्ठ की ओर (इस विचार से) देखते रहे कि इन्होंने तो वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत सम्पूर्ण भाष्य (विस्तृत विवरण) सहजतया कह दिया। २६५

इतने में सुमित्रा के पुत्र (उत्पन्न) हुआ। इसलिए ब्राह्मण दौड़े आये। (इस प्रकार जब) क्षीरसागर से कौसल्या के मन्दिर में श्रीधर (भगवान् विष्णु) आ गये तो उनकी खोज करते-करते भोगीन्द्र शेष शीघ्र ही साथी के रूप में पहुँच गया और सुमित्रा की शय्या पर बाल रूप धारण करके उत्पन्न हो गया। २६६-२६७ सुमित्रा स्वप्न देख रही है कि मेरे एक शुभ लक्षणों से युक्त पुत्र (उत्पन्न) हुआ; वह सावधान (जागृत) हो देखती है (तो उसे दिखायी दिया कि उसके) सामने वह बालक खेल रहा है। २६८ इस प्रकार सुमित्रा के पुत्र का जन्म हुआ तो (वहाँ) विप्रों सहित दशरथ ने आकर तत्काल पुण्याहवाचन, जातक कर्म आदि सब विधियाँ सम्पन्न कीं। २६९

विष्णुचे शंखचक्र-अवतार। परी कैसे जन्मले तो विचार। कैकयीस नेणवे। २७० सुषुप्ती माजी कैकयी निमग्न। जैसा पंकगर्तेत पाषाण। पुत्र येऊनि दोघे जण। दोहींकडे खेळताती। ७१ दासी येऊन कैकयीप्रती। थापटोनि जागी करिती। दोघे पुत्र जन्मले निश्चितीं। सावध होऊनि पाही पां। ७२ कैकयी पाहे पुत्रमुख। तों मित्र आणि मृगांक। तेवीं दोघे खेळती बाळक। देखतां सुख वाटलें। ७३ रायें तेथेंही येऊन। अवलोकिले दोघे नंदन। सुखी केले याचकजन। वस्त्राभरणेंकरूनियां। ७४ बारा दिवसपर्यंत। महोत्साह राव करीत। मंगळतुरें गर्जत। रात्रंदिवस राजगृहीं। ७५ तेरावे दिवशीं वसिष्ठ ऋषी। नामकरण ठेवी चौघांसी। कौसल्येचा राम तेजोराशी। जो वैकुंठवासी जगदात्मा। ७६ सुमित्रेचा नंदन। त्याचें नाम ठेविलें लक्ष्मण। जो काद्रवेयकुलभूषण। विष्णु शयन ज्यावरी करी। ७७ कैकयीचे जे कां सुत। भरत शत्रुघ्न निश्चित। चौघे दाशरथी जगविख्यात। ऐका

कैकेयी के दो पुत्र (उत्पन्न) हुए। वे भगवान् विष्णु के शंख और चक्र के अवतार थे। परन्तु उनका जन्म कैसे हुआ, यह वात कैकेयी को विदित नहीं है। २७० कैकेयी सुषुप्ति में निमग्न थी, जैसे कीचड़ भरे गर्त में पत्थर पड़ा होता है। फिर दो पुत्र उत्पन्न होकर उसके दोनों ओर खेलते हैं। २७१ तो कैकेयी के पास आकर दासियों ने थपकियाँ देकर उसे जगा लिया; तव सावधान होकर उसने देखा कि निश्चय ही दो पुत्रों का जन्म हुआ। २७२ कैकेयी ने पुत्रमुख देखे (तो जान पड़ा कि) सूर्य और चन्द्र-से वे दोनों बालक खेल रहे हैं। उन्हें देखकर उसे सुख (अनुभव) हुआ। २७३ राजा ने वहाँ भी आकर दोनों पुत्रों को देखा और वस्त्रों तथा आभूषणों से याचक-जनों को सुखी कर दिया। २७४ राजा ने वारह दिनों तक महोत्सव मनाया। राजगृह में रातदिन मंगल तुरहियाँ वजती थीं। २७५ तेरहवें दिन वसिष्ठ ऋषि ने चारों (पुत्रों) का नाम-करण किया। कौसल्या का पुत्र, जो तेजोराशि, वैकुण्ठवासी जगदात्मा है, राम कहलाया। २७६ सुमित्रा के पुत्र का नाम लक्ष्मण रखा, जो (वस्तुतः) (उस)सर्प-कुल का भूषण है और जिसपर भगवान् विष्णु शयन करते हैं। २७७ कैकेयी के जो (दो) पुत्र हैं वे निश्चय ही भरत और शत्रुघ्न कहाये। जैसे महाप्रचण्ड वायु के चलने लगने पर मेघों का जाल (समूह) बिखर जाता है, वैसे ही जिनकी जन्म और कर्म सम्बन्धी

चरित्र तयांचें। ७८ ज्यांची जन्मकर्मलीला ऐकतां। पळ सुटे सर्व दुरितां। जैसा महाप्रभंजन सुटतां। जलद-जाळ वितळे पैं। ७९ श्रीरामकथा मानसरोवर। तुम्ही संत श्रोते राजहंस चतुर। साहित्यमुक्तें सुढाळ थोर। सेवा निरंतर आदरें। २८० श्रीरामकथा-सुधारस। तुम्ही पंडित श्रोते त्रिदश। प्राशन करा सावकाश। अति सुरस ग्रंथ हा। ८१ पुराणपुरुष परात्पर। तो ब्रह्मानंद श्रीधरवर। अयोध्येंत अवतरला साचार। त्याचें चरित्र परिसा पुढें। ८२ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। चतुर्थाध्याय गोड हा। २८३

लीलाएँ सुनते ही सब पाप पलायन को प्राप्त होते हैं (दूर हो जाते हैं), दशरथ के उन जगत् में सुप्रसिद्ध पुत्रों का चरित्र सुनो। २७८-२७९

श्रीराम की कथा मानसरोवर है। तुम सन्त श्रोता (उसमें विहार करनेवाले) चतुर राजहंस हो। साहित्य रूपी बहुत तेजस्वी मोतियों का आदरपूर्वक निरन्तर सेवन करो। २८० (श्रोताओ!) श्रीराम की कथा अमृतरस है; तुम विद्वान् श्रोता देव हो। धीरे-धीरे तुम उस अमृत का प्राशन करो। यह ग्रन्थ सुरस से भरा हुआ है। २८१

पुराणपुरुष परात्पर ब्रह्मानन्द श्रीधरवर (भगवान् विष्णु) सचमुच अयोध्या में अवतरित हुए। आगे उनका यह चरित्र सुनो। २८२

। स्वस्ति। चतुर भक्त वाल्मीकि नाटक पर आधारित और उससे सम्मत यह श्रीरामविजय नामक सुन्दर ग्रन्थ नित्य श्रवण करें। उसका यह मधुर चतुर्थ अध्याय है। २८३

अध्याय—५

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः। श्रीराम-कथा तेजःपुंज। हेंचि विशाळ दिव्य जहाज। जयासी नव खण सहज। नवविधा भक्तीचे। १ एकएका खणाआंत। बैसले

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥ श्रीराम की कथा तेजःपुंज (अर्थात् अतिशय तेजस्वी) है। यह विशाल दिव्य पोत (बड़ी नौका) है, जिसमें स्वाभाविक रूप में नवविधा भक्ति रूपी नौ

अनुतापी महाभक्त। प्रेमाचें शीड वरी फडकत। पालवीत मुमुक्षूंतें ।२ येथें कर्णधार निश्चित। स्वयें जाणिजे श्रीरघुनाथ। तोचि पैलपारासी नेत। निजदासां बैसवूनि।३ त्या श्रीरामाचें नाम गोड। कथा ज्याची गगनाहूनि वाड। जे लीला ऐकतां पुरे कोड। नलगे चाड आणिकांची।४ जों जों श्रोते कथेसी सादर। तों तों रस चढे अपार। जैसा पुष्करीं देखतां रोहिणीवर। चंद्रकांता पाझर सुटे।५ बृहस्पतीसारिखा वक्ता। मतिमंद मिळालिया श्रोता। तैं व्यर्थ गेली ते कथा। जों नाहीं सादरता श्रोतयांसी।६ जैसें काननामाजी रुदन। कोणी न पुसे तयालागून। तैसें मतिमंदाप्रति श्रवण। करविणें त्याच प्रकारें।७ जैसीं अन्नें केलीं स्वादिष्ट। परी जेवणार बैसले रोगिष्ट। तरी ते सुगरणीचे कष्ट। शून्यस्थानीं पडिले कीं।८ षड्रसअन्नें परिकर।

विभाग (बने हुए) हैं।१ प्रत्येक विभाग में अनुतप्त (अर्थात् पूर्व कर्म के लिए पश्चात्ताप से खिन्न हुए) महान् भक्त बैठे (हैं)। ऊपर (भगवत्) प्रेम रूपी पाल इशारे से मुमुक्षुओं को बुलाते हुए फहरता है।२ समझ लो कि यहाँ निश्चय ही नाविक हैं स्वयं रघुनाथ राम। वे ही अपने दासों (सेवकों, भक्तों) को (अन्दर) बैठाकर (भवसागर के) उस पार ले जाते हैं।३ उन श्रीराम का नाम मधुर है जिनकी कथा आकाश से वड़ी (विशाल) है और जिनकी लीला को सुनने पर (श्रोता की) कामना पूर्ण हो जाती है और (उसे) अन्य किसी के प्रति रुचि नहीं होती।४ जिस प्रकार आकाश में रोहिणीपति चन्द्रमा को देखने पर चन्द्रकान्त (नामक) रत्न द्रवित होने लगता है, उसी प्रकार, ज्यों-ज्यों श्रोता कथा (श्रवण) के लिए आदरपूर्वक तैयार होते (जाते) हैं, त्यों-त्यों उनका रस (आनन्द) अपार चढ़ता (बढ़ता) जाता है।५ वक्ता बृहस्पति के समान हो और (उसे) श्रोता मन्द बुद्धिवाला मिला, तो जब श्रोताओं को (कथा-श्रवण के लिए) उत्सुकता नहीं हो, तो वह कथा-कथन व्यर्थ हो गया।६ जिस प्रकार अरण्य में कोई रुदन करे (रोए), तो उसे कोई पूछता नहीं (अर्थात् उसकी ओर ध्यान नहीं देता), उसी प्रकार मन्दबुद्धि व्यक्ति को कथा श्रवण कराना व्यर्थ है।७ जिस प्रकार भोज्य पदार्थ तो स्वादिष्ट बनाये, परन्तु भोजन करनेवाले (भोजन करने के लिए) बैठे रोगी लोग; तो उत्तम पदार्थ बनानेवाली उस सुगृहिणी के (पदार्थ बनाने के लिए किये) वे परिश्रम शून्य स्थान में—अर्थात् व्यर्थ हुए।८

परी तों जेवूं जाणे काय खर। पंकगर्तेंत सुंदर। हिरा नेऊन टाकिला। ९ कवित्वसागरींचीं रत्नें दृष्टांत। त्यांचे परीक्षक ज्ञाते पंडित। मतिमंद कुटिल निश्चित। त्यांस परीक्षा न कळे हे। १० सुधारस उकिरडां ओतिला। गर्भांधासी दर्पण दाविला। कीं दिव्य मंचक घातला। चिताभूमीस नेऊनियां। ११ कीं कागासी समर्पिलीं अमृतफळें। उष्ट्रापुढें सोलींव केळें। कीं जे मृत्युप्राय निजेले। त्यांसी पूजिलें व्यर्थ जेवीं। १२ कीं अनर्घ्य रत्नमाळा। घातली दिवाभीताचे गळां। कीं कस्तूरीटिळक रेखिला। सूकराचे ललाटीं। १३ तैसी मतिमंदापुढें कथा। वाग्विलासिनी संतापें बोलतां। जैसी पद्मिणी राजदुहिता। षंढाप्रती दीधली। १४ भग्न पात्रामाजी नीर। कदाकाळीं न राहे स्थिर। तरी तुम्ही

छः रसों से युक्त सुन्दर (बढ़िया) अन्न (भोज्य पदार्थ) बनाये गये, परन्तु गधा उन्हें खाना क्या जाने? (उसके लिए वे पदार्थ व्यर्थ हैं।) हीरा ले जाकर कीचड़-भरे गड्ढे में डाल दिया (तो हीरे का अस्तित्व व्यर्थ है) उसी प्रकार मूर्ख के सामने कथा सुनाना व्यर्थ है। ९ दृष्टान्त कवित्व रूपी सागर के रत्न हैं। ज्ञाता (ज्ञानी) पण्डित उनके (सच्चे) पारखी होते हैं। (परन्तु) जो मन्दबुद्धि एवं कुटिल प्रवृत्तिवाले हैं, उन्हें (रत्नों की सही) परीक्षा करना नहीं आता। (मूर्ख एवं कुटिल प्रवृत्तिवाले लोग कवित्व का मूल्यांकन करना नहीं जानते)। १० (मन्द एवं कुटिल बुद्धि वाले को श्रीराम की कथा सुनायी, यह काम वैसा ही हुआ मानो कि किसी ने) अमृत रस को कूड़े-करकट (डालने के स्थान) में ऊँडेल दिया; अथवा गधे को आईना (शीशा) दिखाया; अथवा दिव्य पलंग चिता-भूमि अर्थात् स्मशान में रख दिया; अथवा कौए को अमृत (के समान मधुर) फल समर्पित किये; अथवा ऊँट के सामने छीला हुआ केला रखा; अथवा जो मृत—मुर्दों के समान सोये हुए हैं, उनकी पूजा की—यह सब जैसे व्यर्थ है, वैसे ही वह कथा-वर्णन व्यर्थ है। ११-१२ अथवा अनमोल रत्नमाला उल्लू के गले में पहनायी; अथवा कस्तूरी का तिलक सूअर के ललाट (मस्तक) पर अंकित किया—यह जैसे व्यर्थ है, वैसे मन्दबुद्धि व्यक्ति के सामने रामकथा कहना व्यर्थ है। मन्दबुद्धि को कथा कहने लगने पर सरस्वती सन्तप्त हो जाती है। ऐसा किया तो समझो कि पद्मिनी राजकुमारी षंढ (हिजड़े) को दी। १३-१४ टूटे हुए बर्तन में पानी कभी भी स्थिर नहीं रहता (वैसे ही मन्दबुद्धि श्रोता पर

भक्तवरिष्ठ चतुर। कथा सादर परिसा हो। १५ आधींच मुक्ताफळ वरी सुवास। आधीच हिरा त्यावरी परिस। तैसा आधीं चतुर वरी प्रेमरस। श्रीरामासी आवडे तो। १६ असो चतुर्थाध्यायाचे अंतीं। कथा सुरस परिसली संतीं। सांगितली श्रीरामाची जन्मस्थिती। बंधूंसहित सर्वही। १७ जो सरसिजोद्भवाचा पिता। त्यासी दशरथ बाप कौसल्या माता। भक्त तारावया तत्त्वतां। अयोध्येमाजी प्रकटला। १८ अहो दशरथाचें भाग्य थोर। रत्नजडित पालख सुंदर। चारही लांबविले परिकर। चौघे कुमर निजती तेथें। १९ तेरावे दिवशीं पाळणां। पहुडविला रामराणा। जो अगम्य वेदपुराणां। जो जो म्हणोनि हालविती। २० जो सनकादिकांचें ध्यान। मृडानीपतीचें चिंतन। जो चतुरास्याचें देवतार्चन। जो जो म्हणोनि हालविती। २१ जो आदिमायेचा निजवर। जो पुराणपुरुष परात्पर। जो मायाचक्र-

---

रामकथा-श्रवण का प्रभाव स्थिर नहीं रहता)। परन्तु तुम श्रेष्ठ और चतुर भक्त-श्रोता हो। इस कथा को आदर पूर्वक सुनो। १५ मूलतः है मोती (और) ऊपर से उसमें है सुगन्ध। मूलतः है हीरा (और) ऊपर से वह है पारस। (यह जैसे सर्वोत्तम बात है) वैसे ही मूलतः (तुम श्रोता जन) चतुर हो (और) ऊपर से तुम में (भगवत्) प्रेम का रस (भाव) है। श्रीराम को ऐसा ही व्यक्ति अच्छा लगता है। १६

अस्तु। चतुर्थ अध्याय के अन्त में सन्तों (—श्रोताओं) ने वह सुरस कथा सुनी, जिसमें सब बन्धुओं सहित श्रीराम के जन्म की स्थिति (रीति) कही (गयी)। १७ जो (नाभि-कमलोद्भव) ब्रह्माजी के पिता हैं, उनके दशरथ पिता हैं और कौसल्या माता है। वे भक्तों का उद्धार करने के लिए सचमुच अयोध्या में प्रकट हो गये। १८ वाह! दशरथ के भाग्य बड़े हैं। रत्न-जटित (चार) पलंग हैं। (वे) चारों सुन्दर विशाल बनाये हुए हैं। वहाँ चारों कुमार (पुत्र) सोते हैं। १९ तेरहवें दिन राम राजा को पालने में लिटाया गया। जो वेदों तथा पुराणों के लिए अगम्य हैं, उन्हें 'सो जा, सो जा' कहती हुई (स्त्रियाँ) झुलाती हैं। २० जो सनकादि मुनियों के ध्यान (के विषय) हैं, जो शिवजी के चिन्तन (के विषय) हैं, जो चतुर्मुख ब्रह्माजी के देव-पूजन (के विषय) हैं, उन्हें 'सो जा, सो जा' कहती हुई (स्त्रियाँ) झुलाती हैं। २१ जो आदिमाया के अपने पति हैं, जो परात्पर (सर्वोपरि) पुराण-पुरुष हैं, जो माया के चक्र के चतुर चालक हैं, उन्हें

चाळक चतुर । जो जो म्हणोनि हालविती । २२ जो अगम्य दशशतवदना । प्रेमपाळणीं तो रामराणा । जवळी ज्या उभ्या ललना । सुवासिनी कोण त्या ऐका । २३ निर्वाणदीक्षा स्वरूपस्थिती । मुमुक्षा निष्कामना प्रतीती । सुलीनता समाधि सद्गती । लीला गाती स्वानंदें । २४ परा पश्यंती मध्यमा वैखरी । गजरें गाती चौघी नारी । चाऱ्ही मुक्ति निर्धारीं । चहूं कोणीं तटस्थ । २५ घरांत मुख्य ह्या सुंदरी । इतर बैसल्या बाहेरी । जागृति स्वप्न सुषुप्ति नारी । त्यांसी रावणारि दिसेना । २६ असंभावना विपरीतभावना । विक्षेपता गतायाता जाणा । तुर्या दावी शहाणपणा । बहुत जाणती असें मी । २७ बारा सोळा चौदा नारी । गलबला करिती बाहेरी । चौसष्टी दाविती कळाकुसरी । परी अंतरीं प्रवेश नव्हेचि । २८ असो सकळ नितंबिनी । ओटी कौसल्येची भरूनी । वस्त्रें अलंकार समर्पूनी । सदनीं गेल्या आपु-

---

'सो जा, सो जा' कहती हुई (स्त्रियाँ) झुलाती हैं । २२ जो सहस्रमुख शेष के लिए अगम्य हैं, वे राम राजा प्रेम के पालने में (लिटाये हुए) हैं । पास में जो ललनाएँ खड़ी हैं, वे सुवासिनियाँ कौन-कौन हैं, (उनके नामों को) सुनो । २३ निर्वाण-दीक्षा, स्वरूप-स्थिति, मुमुक्षा, निष्कामना, प्रतीति, सुलीनता, समाधि, सद्गति—(ये सुवासिनी ललनाएँ, वहाँ) आत्मिक आनन्दपूर्वक (भगवान् की) लीला का गान कर रही हैं । २४ परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी (नामक चार वाणियाँ) चारों नारियाँ ज़ोर से गा रही हैं । (सलोकता, समीपता, सरूपता और सायुज्यता नामक) चारों मुक्तियाँ निश्चय-पूर्वक चारों कोनों में तटस्थ (खड़ी) हैं । २५ घर के अन्दर ये प्रमुख स्त्रियाँ थीं । अन्य बाहर बैठी (थीं) । जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति (नामक योग-साधना की अवस्थाएँ जो, नारियों के रूप में वहाँ उपस्थिति थीं) को रावण के शत्रु राम दिखायी नहीं दे रहे हैं । २६ असम्भावना, विपरीत भावना, विक्षेपता, गतायाता—इन्हें समझो—देखो । तुरीयावस्था (नामक चतुर्थ अवस्था नारी रूप में बहुत सयानापन दिखला रही है कि मैं बहुत ज्ञानी हूँ । २७ सूर्य की बारह कलाएँ, चन्द्र की सोलह कलाएँ तथा चौदह विद्याएँ नारियों के रूप में बाहर शोर मचा रही हैं । चौंसठ कलाएँ नारियों के रूप में (अपना-अपना) कौशल (कला-सम्बन्धी निपुणता) प्रदर्शित कर रही हैं; फिर भी उन्हें अन्दर प्रवेश नहीं मिल रहा है । २८ अस्तु । कौसल्या की कोंछ

लाल्या । २९ अयोध्येसी जन्मतां रघुपती । विघ्नें राक्षसां जाणवती । प्रळयविजा कडकडून पडती । लंकेवरी अकस्मात । ३० कांपों लागलें लंकानगर । भूकंप होत वारंवार । उगेंच मोडलें राजछत्र । सभा प्रेतवत दिसतसे । ३१ महाद्वारीं भूमि उलत । रावण जों भद्रीं चढत । तों दाही मस्तकींचे पडत । मुकुट खालीं उगेचि । ३२ शक्रारि पाहे आरसा निर्मळ । तों आंत न दिसे शिरकमळ । राजमंदिरावरी अमंगळ । दिवाभीतें बोभावती । ३३ स्वप्न देखे मंदोदरी । कीं मर्कटें तोडिली गळसरी । विगतधवा ज्या कां नारी । ओटी भरिती धुळीनें । ३४ ललाटशून्य सुलोचना । देखती जाहली मयकन्या । चिंता पडली रावणा । म्हणे ईश्वर क्षोभला कीं । ३५ ईश्वर जाहलिया पाठमोरा ।

भरकर और उसे वस्त्र और आभूषण समर्पित करके समस्त सुन्दर (नितम्बधारी) स्त्रियाँ अपने-अपने घर गयीं । २९

अयोध्या में रघुपति राम का जन्म होते ही (लंका में) राक्षसों को विघ्नों का भान होने लगता है (लगा) । प्रलयकाल की-सी बिजलियाँ गड़गड़ाहट के साथ लंका पर अकस्मात् गिर पड़ती हैं । ३० लंका नगर काँपने लगा । (वहाँ) वार-वार भूकम्प होता था । यों ही (बिना किसी कारण के) (रावण का) राजछत्र टूट गया और (राज) सभा प्रेतवत् दिखायी दे रही है । ३१ महाद्वार (प्रमुख दरवाज़े) के पास भूमि उखड़ गयी । रावण जिस समय सिंहासन पर (बैठने के लिए) चढ़ता, उस समय बिना किसी कारण के उसके दसों मस्तकों (पर) के मुकुट नीचे गिर पड़ते । ३२ इन्द्र का शत्रु मेघनाद (जब) स्वच्छ दर्पण में देखता है (तो) उसे अन्दर (उसका अपना) मस्तक रूपी कमल नहीं दिखायी देता । अमंगल (मनहूस) उल्लू राज-प्रासाद पर घुघुआते हैं । ३३ मन्दोदरी ने (एक) स्वप्न देखा कि गले में पहना हुआ सौभाग्य चिह्न रूप आभूपण (किसी एक) वन्दर ने तोड़ डाला और जो स्त्रियाँ विधवा हैं, वे धूल से उसकी कोंछ भरती हैं । ३४ (मय की कन्या) मन्दोदरी ने (पुत्रवधू) सुलोचना को ललाट-हीन (अर्थात् सौभाग्य-चिह्न कुंकुम, तिलक अथवा सिंदुर-रेखा से हीन अर्थात् विधवा) हुई देखा । रावण को चिन्ता हुई । उसने कहा (सोचा) —'भगवान् क्षुब्ध हुए' । ३५

नसतीं विघ्नें येती घरा। महारत्नें होती गारा। कोणी न पुसती तयांतें। ३६ आपुलें द्रव्य लोकांवरी। तें बुडोन जाय न लाभे करीं। ज्यांचें देणें ते द्वारीं। बैसती आण घालोनी। ३७ वैरियां करीं सांपडे वर्म। अपयश येऊन बुडे धर्म। विशेष वाढे क्रोध काम। तरी देव क्षोभला जाणिजे। ३८ आपुले जे कां शत्रु पूर्ण। ज्यांसी आपण पीडिलें दारुण। अडल्या धरणें त्यांचे चरण। तरी देव क्षोभला जाणिजे। ३९ लाभाकारणें निघे उदीमास। तों हानीच होय दिवसेंदिवस। पूज्यस्थानीं अपमान विशेष। तरी देव क्षोभला जाणिजे। ४० सुहृदय आप्त द्वेष करिती। नसते व्यवहार येऊन पडती। सदा तळमळ वाटे चित्तीं। तरी देव क्षोभला जाणिजे। ४१ आपुलें राज्य संपत्ति धन। शत्रु भोगूं पाहे आपण। देहीं पीडा व्याधिविण। तरी देव क्षोभला जाणिजे। ४२ विद्या बहुत जवळी असे। परी तयासी कोणी न पुसे। बोलों जातां मति भ्रंशे। तरी देव क्षोभला जाणिजे। ४३ ठेविला

ईश्वर के (किसी के) विमुख हो जाने पर घर में अकारण विघ्न आते हैं। बड़े-बड़े रत्न (स्फटिक जैसे) कंकड़ बन जाते हैं। उन्हें कोई नहीं पूछता। ३६ अपना धन जो दूसरे लोगों पर ऋण के रूप में होता हो, वह डूब जाता है, हाथ नहीं आता और जिनका देना (ऋण) हो, वे दरवाज़े पर शपथ कराकर बैठते हैं। ३७ बैरियों के हाथ गुप्त दोष (पोल) लगता है। असफलता प्राप्त होकर धर्म डूब जाता है। क्रोध, काम (जैसे विकार) विशेष रूप में बढ़ जाते हैं, तो समझो कि ईश्वर क्रुद्ध हो गया (है)। ३८ जो अपने पूर्णतः शत्रु हैं, उन्हें हमने दारुण पीड़ा पहुँचायी। अब आड़े वक्त उनके पाँव पकड़ने (पड़ रहे) हैं; तो समझो भगवान् क्रुद्ध हो गये (हैं)। ३९ (कोई) लाभ (पाने) के हेतु से उद्योग के लिए निकले तो (उसे) दिन प्रति दिन हानि ही हो जाए; पूज्य स्थान में विशेष रूप में अपमान हो जाए, तो भगवान् को क्रुद्ध हुए समझो। ४० मित्र और आप्त जन द्वेष करते हैं; अकारण (हानिकारी) व्यवहार आकर (गले) पड़ जाते हैं; मन में सदा बेचैनी अनुभव होती है, तो भगवान् को क्रुद्ध हुए समझो। ४१ हमारे राज्य, सम्पत्ति और धन का उपयोग स्वयं (हमारा) शत्रु करना चाहे, बिना किसी बीमारी के शरीर में पीड़ा हो, तो भगवान् को क्षुब्ध हुए समझो। ४२ (किसी के) पास विद्या (ज्ञान तो) बहुत है, परन्तु

ठेवा न सांपडे। नसतीच व्याधी अंगीं जडे। सदा भय वाटे चहूंकडे। तरी देव क्षोभला जाणिजे।४४ वृद्धपणीं येई दरिद्र। स्त्री मृत्यु पावे गेले नेत्र। उपेक्षूनि हेळसिती पुत्र। तरी देव क्षोभला जाणिजे।४५ असो लंकेमाजी रावण। सांगे प्रधानासी बोलावून। अहोरात्र सावधान। लंकानगर रक्षावें।४६ अयोध्येसी राम जन्मतां तत्काळ। वृक्ष विराजती सदाफळ। गाई दुभती त्रिकाळ। क्षीर तुंवळ न सांवरे।४७ आधिव्याधिरहित लोक। नाहीं चिंता दरिद्र दुःख। शुष्क धरणी अपार पीक। पीकों लागली तेधवां।४८ अवतरतांच जगज्जीवन। जन जरारहित जाहले तरुण। अविद्यापाप मुळींहून। देशधडी जाहलें।४९ दरिद्री जाहले भाग्यवंत। मूर्ख ते बोलके पंडित। कुरूप ते स्वरूपवंत। देदीप्यमान तेजस्वी।५० अवतरतांच श्रीराम। निःशेष गेले क्रोध

उसे कोई पूछता नहीं (उसकी परवाह नहीं करता); बोलने लगते ही बुद्धि भ्रष्ट हो जाए, तो देवता को क्रुद्ध हुए समझो।४३ (सुरक्षित) रखी हुई पूँजी (खोजने पर भी) नहीं मिलती, बिना किसी कारण के बीमारी देह में लग जाए, चारों ओर (से) सदा भय लगता हो, तो देवता को क्रुद्ध हुए समझो।४४ बुढ़ापे में दरिद्रता आए, स्त्री मृत्यु को प्राप्त हो जाए, नेत्र जाएँ (काम नहीं आएँ), उपेक्षा करके पुत्र अवहेलना करें, तो देवता को क्रुद्ध हुए समझो।४५

अस्तु। लंका में मंत्रियों को बुलाकर रावण कहता है—दिन-रात दक्ष (होशियार) रहकर लंका नगर की रक्षा करें।४६

अयोध्या में राम का जन्म होते ही तत्काल वृक्ष फलों से युक्त हो शोभायमान (हो गये) हैं। (सवेरे, मध्याह्न और शाम) तीनों समय गायों का दूध भर आता है और उनका विपुल दूध एकत्रित किये नहीं हो पाता है।४७ लोग आधि (पीड़ा) और व्याधि से रहित (मुक्त हो गये) हैं, (उन्हें) चिन्ता, दरिद्रता और दुःख नहीं है। तब सूखी धरती अपार फसल उगाने लगी।४८ जगजीवन (राम) के अवतरित होने पर लोग बुढ़ापे से मुक्त हो तरुण हो गये। अज्ञान तथा पाप मूल से (अर्थात् पूरे-पूरे) अपने स्थान से भ्रष्ट हो गये।४९ दरिद्र लोग भाग्यवान हो गये। जो मूर्ख थे, वे वक्ता (वाक्पटु) पण्डित हो गये। जो कुरूप थे, वे स्वरूपवान (सुन्दर), देदीप्यमान और तेजस्वी हो गये।५०

काम। अयोध्यावासियां सुकाळ परम। स्वानंदाचा जाहला। ५१ गृहीं प्रकाशतां प्रभाकर। मग कैंचा उरे अंधकार। गृहस्वामी येतां तस्कर। पळोनि जाती चहूंकडे। ५२ कीं बोलतां ज्ञानी वेदांत। सकळ मतें होती कुंठित। कीं सद्विवेक होतां प्राप्त। संसारदुःखें वितुळती। ५३ कीं प्रवेशतां वैराग्यशांती। दुष्ट काम क्रोध पळती। तैसा अवतरतां रघुपती। दोष दुष्काळ निमाले। ५४ असो दशरथाचे सुत। एकामागें एक रांगत। कौसल्या आणि दशरथ। संतोषती पाहतां। ५५ पाचुबंद अंगणांत। हळुहळू चौघे चालत। एकासी एक पाहून हांसत। बाळभावेंकरोनियां। ५६ कौसल्या उभी राहोनियां। चौघांसी बोलवी जेवावया। तंव ते दूर जाती पळोनियां। धांवोनि माता धरी मागें। ५७ चौघांची मुखें धुवोनी। भोजनसी बैसवी दटावुनी। संतोष वाटे दशरथाचे मनीं। चारही मूर्ती पाहतां। ५८ म्हणे कोण पुण्याचे पर्वत। मी पूर्वीं आचरलों

श्रीराम के अवतरित होते ही क्रोध और काम पूर्णतः (निकल) गये। अयोध्या के निवासियों के लिए परम आत्मानन्द का सुकाल (प्राप्त) हो गया। ५१ घर में सूर्य के प्रकाश देने लगने पर फिर अन्धकार कैसे शेष रहेगा? घर के स्वामी (मालिक) के आ जाने पर चोर चारों ओर भाग जाते हैं। ५२ अथवा ज्ञानी वक्ता के वेदान्त बोलने लगने पर (अन्य) समस्त मत कुंठित हो जाते हैं (अर्थात् अन्य मतों के पक्षपाती लोगों की मति कुंठित हो जाती है)। अथवा सद्विवेक प्राप्त हो जाने पर सांसारिक दुःख पिघल जाते हैं (नष्ट हो जाते हैं)। ५३ अथवा वैराग्य और शान्ति के (चित्त में) प्रवेश करने पर दुष्ट काम और क्रोध भाग जाते हैं, वैसे ही रघुपति राम के अवतरित हो जाने पर दोष रूपी अकाल नष्ट हो गये। ५४

अस्तु। दशरथ के वे पुत्र एक दूसरे के पीछे घुटनों के बल चलते। उन्हें देखकर कौसल्या और दशरथ सन्तोष को प्राप्त हो जाते। ५५ वैदूर्य (पन्ना) नामक रत्न से जटित आँगन में (वे) चारों (शिशु) हौले-हौले चलते; एक-दूसरे की ओर देखकर बाल्य भाव से हँसते। ५६ खड़ी रहकर कौसल्या (उन) चारों को भोजन के लिए बुलाती, तब वे दूर भाग जाते। उनके पीछे दौड़कर माता उन्हें पकड़ लेती। ५७ चारों के मुँह धोकर वह उन्हें डाँटकर भोजन के लिए बैठाती। उन चारों मूर्तियों को देखते हुए दशरथ मन में सन्तोष अनुभव

वहुत। तरीच हे चौघे आदित्य। अवतरले माझे पोटीं। ५९
चिमण्या मूर्ती चिमणें ठाण। चिमणीं धनुष्यें चिमणे बाण।
चिमणीं नूपुरें रुणझुण। पायीं गर्जती चौघांचे। ६० जाहले
अष्टवर्षांचे सुंदर। चौघांस समान वस्त्रालंकार। चिमणीं
धनुष्यें परिकर। चिमणे शर सोडिती। ६१ चिमणा पीतांबर
कटिमेखळा। चिमणीं पदकें मुक्तामाळा। चिमण्या सेवकांचा
पाळा। रामाभोंवता शोभतसे। ६२ उन्हांत खेळतां रघुपति।
सेवक मित्रपत्रें धरिती। एक चामरें वरी ढाळिती।
राजनीतीकरोनियां। ६३ श्रीराम आधीं सोडी बाण। सवेंचि
शर सोडी लक्ष्मण। त्यामागें भरत शत्रुघ्न। भेदीत संधान
तैसेंचि। ६४ दुरून पाहे दशरथ वीर। चौघे एकदांच
टाकिती शर। असुरप्रतिमा करोनि थोर। शिर त्यांचें
उडविती। ६५ वेदांतींच्या दिव्य श्रुती। सर्वांवरिष्ठ जेवीं गर्जती।

करते। ५८ वे कहते—मैंने किस पुण्य के पर्वत पूर्वकाल में बनाये (अर्थात् पर्वत के समान किस बड़े पुण्य का आचरण मैंने किया?) इसलिए ही ये चारों सूर्य (के समान तेजस्वी पुत्र) मेरे उदर से (अर्थात् मेरे यहाँ) अवतरित हुए। ५९ नन्ही-सी मूर्तियाँ, नन्हा सा डील-डौल। छोटे-से धनुष—छोटे-से बाण। छोटे-से नूपुर चारों के पाँवों में झुन-झुन गरजते-वजते हैं। ६० वे सुन्दर बालक आठ वर्षों के हो गये। चारों को समान (एक-से) वस्त्र और आभूषण (प्राप्त) हैं। नन्हे-से सुन्दर धनुष्य (उनके पास) हैं (जिनसे) वे छोटे-से बाण चलाते हैं। ६१ (राम का) छोटा-सा पीताम्वर है, कमर में मेखला (करधनी) है। नन्हे-से पदिक और मोतियों की मालाएँ हैं; राम के चारों ओर नन्हे-(नन्हे) सेवकों का समूह शोभायमान है। ६२ जब रघुपति राम धूप में खेलते, तो सेवक (उनपर) छाते धरते; कोई-एक (उनके) ऊपर राज (गृह की) रीति के अनुसार चँवर डुलाते। ६३ श्रीराम पहले बाण चलाते, साथ ही लक्ष्मण वाण चलाते और उनके वाद भरत तथा शत्रुघ्न वैसे ही लक्ष्य को भेद डालते। ६४ वीर (पुरुष) दशरथ (यह) दूर से देखते हैं; (वे) चारों (बालक) एक वार ही बाण चलाते। असुरों की (बड़ी-वड़ी) प्रतिमाएँ करके वे (बाणों से) उनके मस्तक काट उड़ाते। ६५ जिस प्रकार वेदान्त की दिव्य श्रुतियाँ सवसे श्रेष्ठ गरजती हैं (—अर्थात् सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होकर अन्य मतों को पराजित कर दूर हटाती हैं, अचूक होती हैं, उसी प्रकार श्रीराम अचूक और चपलता पूर्वक बाण चलाते। ६६

तैसे बाण सोडी रघुपती। अचूक आणि चपळत्वें। ६६ असो चौघांचें मौंजीबंधन। गुरु वसिष्ठातें पुसोन। मिळवूनि अपार ब्राह्मण। अजनंदन करिता जाहला। ६७ श्रीरामाचा व्रतबंध होत। अष्टमा सिद्धि तेथें रावत। चारही दिवस-पर्यंत। न्यून पदार्थ नसे कांहीं। ६८ यज्ञभोक्ता रघुनाथ। त्यास ब्राह्मण घालिती यज्ञोपवीत। गायत्री मंत्र श्रीराम जपत। वेदवंद्य महाराज जो। ६९ ऐसें जाहलिया व्रतबंधन। वसिष्ठापासीं अनुदिन। चहूं वेदांचें अध्ययन। केलें संपूर्ण चौघांहीं। ७० ज्यासी वर्णितां वेद वेडे। तो राम गुरूपाशीं वेद पढे। अध्ययन सांगतां सांकडें। गुरूसी न पडे सर्वथा। ७१ यापरी द्वादश वर्षें तत्वतां। संपूर्ण जाहलीं रघुनाथा। मग पुसोनि वसिष्ठ-दशरथा। श्रीराम तीर्था निघाला। ७२ ब्रह्मचर्य तीर्थाटण। करावें हें शास्त्रप्रमाण। हें जाणोनि रघुनंदन। तीर्थाटणासी निघाला। ७३ तीर्थाटणा चौघे जण। निघाले सवें अपार सैन्य। सवें दिधला सुमंत प्रधान।

अस्तु। गुरु वसिष्ठ से पूछकर अर्थात् उनसे अनुज्ञा प्राप्त कर अज-नन्दन दशरथ ने असंख्य ब्राह्मणों को एकत्रित कर (अपने) चारों (पुत्रों) का मौंजी-बन्धन (जनेऊ-समारोह) किया। ६७ जब श्रीराम का व्रतबन्ध (मौंजी-बन्धन) हो रहा था, तो वहाँ आठों सिद्धियाँ चार दिनों तक कष्ट उठा रही थीं; किसी पदार्थ की कमी नहीं थी। ६८ रघुनाथ राम (तो स्वयं) यज्ञभोक्ता हैं! (और) उन्हें ब्राह्मण यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहनाते हैं! जो स्वयं वेदों के लिए वन्दनीय हैं, वे श्रीराम गायत्री मंत्र का जाप करते हैं। ६९ ऐसा व्रत-बन्ध होने पर, चारों (राजपुत्रों) ने वसिष्ठ के पास (रहते हुए) चारों वेदों का अध्ययन सम्पूर्ण किया। ७० जिसका वर्णन करते-करते वेद मूढ़ हो गये, वे श्रीराम गुरु से वेद पढ़ते हैं। (फिर भी) अध्ययन (के लिये पाठ) बताते हुए गुरु को बिलकुल कठिनाई नहीं हुई। ७१ इस प्रकार रघुनाथ को तत्त्वतः बारह वर्ष हो गये। फिर वसिष्ठ और दशरथ से पूछकर (अर्थात् अनुज्ञा प्राप्त कर) श्रीराम तीर्थयात्रा के लिए निकले। ७२ ब्रह्मचर्याश्रम में तीर्थयात्रा करें—यह शास्त्रों का वचन है। यह जानकर रघुनाथ राम तीर्थाटन के लिए निकले। ७३ जब चारों जने तीर्थाटन के लिए चले, तो साथ में अपार सेना (भी) निकली। (राजा ने) साथ में मंत्री सुमन्त को अपार धन बाँट देने के लिए भेज दिया। ७४

असंख्य धन वांटावया । ७४ सवत्स गायींचे भार । नाना वस्त्रें अलंकार । तीर्थीं वांटी श्रीरघुवीर । याचकांसी सन्मानें । ७५ ज्या तीर्थाचा महिमा जैसा पूर्ण । श्रीराम करी तैसेंच विधान । ज्याचेनि सकळ तीर्थें पावन । तो रघुनंदन तीर्थें हिंडे । ७६ लोकसंग्रहाकारण । तीर्थें हिंडे रघुनंदन । तीं तीर्थें करा श्रवण । संत श्रोते सर्वही । ७७ काशीविश्वेश्वर निर्मळ । त्र्यंबक उज्जनी महाकाळ । ओंकार महाबळेश्वर जाश्वनीळ । बदरी-केदार घृष्णेश्वर पैं । ७८ नागनाथ वैजनाथ थोर । मल्लिकार्जुन भीमाशंकर । सोमनाथ रामेश्वर । ज्योतिर्लिंगें द्वादश हीं । ७९ अयोध्या मथुरा हरिहर । काशी कांची अवंतिका नगर । द्वारावती गोमती-तीर । सप्त पुऱ्या अनुक्रमें । ८० तीर्थराज मुख्य त्रिवेणी । पंचप्रयाग पुण्यखाणी । ब्रह्मप्रयाग कर्णप्रयाग अघहरणी । गुप्तप्रयाग समर्थ । ८१ देवप्रयाग शिवप्रयाग पापहरण । नैमिषारण्य धर्मारण्य पंचकारण्य । ब्रह्मारण्य वेदारण्य ।

श्रीरघुनाथ राम तीर्थक्षेत्रों में याचकों को सवत्स गायों के समुदाय, अनेक (प्रकार के) वस्त्र और आभूषण सम्मानपूर्वक बाँट देते । ७५ जिस तीर्थ क्षेत्र की जैसी उच्च महिमा रही, उसके अनुसार श्रीराम विधियाँ (सम्पन्न) करते । जिनसे समस्त तीर्थक्षेत्र पावन होते हैं, वे रघुनन्दन राम (स्वयं) तीर्थक्षेत्रों में भ्रमण कर रहे हैं । ७६ लोकसंग्रह करने के हेतु श्रीराम तीर्थक्षेत्रों की यात्रा करते हैं । समस्त सन्त श्रोताओ, उन तीर्थों (के नामों) को सुनो । ७७ काशी-क्षेत्रस्थ पवित्र विश्वेश्वर (विश्वनाथ), त्र्यम्बकेश्वर, उज्जयिनी के महाकालेश्वर, ओंकार मान्धाता के महाबलेश्वर शिव, बदरी केदार, घृष्णेश्वर, नागनाथ, वैजनाथ, मल्लिकार्जुन, भीमाशंकर, सोमनाथ, रामेश्वर—ये बारह ज्योतिर्लिंग हैं (जिनकी यात्रा श्रीराम ने की) । ७८-७९ अयोध्या, मथुरा, हरिहर (माया-हरिद्वार), काशी, कांची, अवंतिका (उज्जयिनी) और गोमती-तटस्थ द्वारावती—क्रमसे ये सात पुरियाँ (नगरियाँ) हैं (जिनकी यात्रा श्रीराम ने की) । ८० मुख्य है तीर्थराज त्रिवेणी (गंगा-यमुना-सरस्वती का संगम-स्थान-प्रयाग) । पुण्य की मानो जो खानें हैं ऐसे पाँच प्रयाग —ब्रह्मप्रयाग, पाप का हरण करनेवाला कर्णप्रयाग सामर्थ्यशील गुप्तप्रयाग, देवप्रयाग, पापहारी शिवप्रयाग । नैमिषारण्य, धर्मारण्य, चम्पकारण्य,

बदरिकाश्रम पावन तो। ८२ यमुना सरस्वती भागीरथी। गौतमी गोमती कृष्णा भीमरथी। तापी नर्मदा भोगावती। प्रवरा पुण्यवती मंदाकिनी। ८३ आनंदवर्धनी पयोष्णी। पिनाकी तुंगा कल्मषनाशिनी। कृतमाळा कावेरी पयस्विनी। सुवर्णमुखी सुमाळा। ८४ कपिला ताम्रपर्णी शरावती। तुंगभद्रा सोमवती। सावित्री रेवा कुंकुमवती। वेण्या वेदवती मलप्रहरा। ८५ घटप्रहरा नंदिनी नलिनी। गंडकी शरयू वैतरणी। सोमनद शिवनद तापहरणी। सोमभद्र नदेश्वर। ८६ अरुणा वरुणा प्राची पुरंदरी। वेत्रवती सप्तउरगा कर्णकुमरी। स्वामिकार्तिका पंचघृताची पृथ्वीवरी। विख्यात प्रवाह जयांचे। ८७ वज्रकाळिका श्रमहारिणी। महेंद्रकाळी त्रिशूळी मंत्रवर्धिनी। नीरावती सुरनदी शंखोद्धारिणी। जयंती आणि अहिर्णवी। ८८ नाटकी आणि अलकनंदा। फल्गु सर्वांतका त्रिपदा। शांता बाणनदी सुखदा। अनुक्रमें नद्या सर्वही। ८९ शेषाद्रि आणि ब्रह्माद्रि। मूळपीठ पर्वत सिंहाद्रि। विंध्याद्रि आणि हेमाद्रि। मानससरोवरीं स्नान दान। ९० अरुणाचळ आनंदवन।

ब्रह्मारण्य, वेदारण्य—ये पाँच अरण्य। वह पवित्र बदरिकाश्रम—इन तीर्थों की यात्रा राम ने बन्धुओं सहित की। ८१-८२

यमुना, सरस्वती, भागीरथी (गंगा), गौतमी, गोमती, कृष्णा, भीमरथी, तापी, नर्मदा, भोगावती, प्रवरा, पुण्यवती मन्दाकिनी, आनन्द-वर्धिनी पयोष्णी, पिनाकी, तुंगा, कल्मष-नाशिनी, कृतमाला, कावेरी, पयस्विनी, सुवर्णमुखी, सुमाला, कपिला, ताम्रपर्णी, शरावती, तुंगभद्रा, सोमवती, सावित्री, रेवा, कुंकुमवती, वेण्णा, वेदावती, मलप्रहरा, घट-प्रहरा, नंदिनी, नलिनी गंडकी, सरयू, वैतरिणी, सोमनद, शिवनद, ताप-हरणी, नदेश्वर सोनभद्र, अरुणा, वरुणा, प्राची, पुरन्दरी, वेत्रवती, सप्त-उरगा, कर्णकुमारी, स्वामिकार्तिकी, पंचघृताची, (—ये नदियाँ हैं)। पृथ्वी में इनके प्रवाह विख्यात हैं। ८३-८७ श्रमहारिणी वज्रकालिका, महेन्द्रकाली, त्रिशूल, मंत्रवर्धिनी, नीरावती, सुरनदी, शंखोद्धारिणी, जयन्ती और अहिर्णवी, नाटकी-और अलकनन्दा, फल्गु, सर्वान्तका, त्रिपदा, शान्ता, बाणनदी, सुखदा—क्रम से ये सभी नदियाँ हैं, (जिनकी) यात्रा श्रीराम ने बन्धुओं-सहित की। ८८-८९

शेषाद्रि और ब्रह्माद्रि, मूलपीठ पर्वत सिंहाद्रि, विंध्याद्रि और

कमलालया चिदंबरी पूर्ण । अगस्त्याश्रम पावन । श्रीरंगपट्टण शोभिवंत । ९१ जनार्दन कन्याकुमारी । शिवकांची विष्णु-कांची सुंदरी । मत्स्यतीर्थ पक्षितीर्थ पृथ्वीवरी । शंखोद्धार वेदोद्धार । ९२ हिरण्यनदी संध्यावट । ब्रह्मावर्त धर्मस्तंभ सुभट । ब्रह्मयोनि पृथूदक वरिष्ठ । कुरुक्षेत्र बिंदुतीर्थ पैं । ९३ धर्मालय कलापग्राम । गंगासागर सिंधुसंगम । कौंडिण्यपुर अंबिका परम । प्रेमपूर मार्तंड । ९४ बाळकल्होळा कमलेश्वरी । विराट्स्वरूपिणी रक्तांबरी । भ्रमरांबिका ज्वाळामुखी सुंदरी । पीतांबरी महाशक्ति । ९५ जोगलादेवी भैरवी । करवीरवासिनी शांभवी । सप्तशृंगी महारुद्रा देवी । हिंगुळजा आणि कमळजा । ९६ चांगदेव मोरेश्वर । गुप्तकेदार वटेश्वर । अक्षयवट कुशतीर्थ पवित्र । त्रिकूटाचळ सुंदर पैं । ९७ हरिहरेश्वर नृसिहपूर । मूळमाधव ज्ञानेश्वर । चक्रपाणि कदंब भुलेश्वर । जुनाट नागेंद्र गौतमेश्वर तो । ९८ सप्तयोजनें कोटेश्वर । सिद्धवट धूतपाप रामेश्वर । दक्षिणप्रयाग माधवे-श्वर । पूर्वसागर तीर्थराज । ९९ वैराट पुष्कर महाबळेश्वर । धूळखेटक शंकर नारायणपुर । मलयेश्वर पांचाळेश्वर । सत्यनाथ पूर्णालय । १०० सिंधुपुर महामुंडेश्वर । भीमाशंकर

हेमाद्रि पर्वत की यात्रा करके श्रीराम ने मानसरोवर में स्नान किया और दान दिये । ९०

(इसके पश्चात् कवि ने अनेकानेक पर्वत, नदियाँ, तीर्थक्षेत्र तथा देवियाँ आदि के नाम गिनाये हैं । उनमें से प्रमुख नीचे लिखे अनुसार हैं—)

अरुणाचल, आनन्दवन, कमलालय, चिदम्बरी, अगस्त्य ऋषि का आश्रम, श्रीरंगपट्टम, कन्याकुमारी, शिवकांची, विष्णुकांची, मत्स्यतीर्थ, पक्षितीर्थ, हिरण्यनदी, संध्यावट, ब्रह्मावर्त, पृथूदक, कुरुक्षेत्र, विन्दुतीर्थ, कलापग्राम, गंगासागर, कौंडिण्यपुर, मार्तण्ड, कमलेश्वरी, रक्ताम्बरी, महाशक्ति, जोगलादेवी, करवीरवासिनी, सप्तशृंगी, हिंगुलजा, कमलजा, गुप्तकेदार, अक्षयवट, कुशतीर्थ, त्रिकूटाचल, हरिहरेश्वर, भुलेश्वर, गौतमेश्वर, कोटेश्वर धूतपापेश्वर, रामेश्वर, दक्षिणप्रयाग, वैराट, पुष्कर, महाबलेश्वर, मलयेश्वर, पांचालेश्वर, सत्यनाथ, सिंधुपुर, महामुंडेश्वर, भीमाशंकर, धोपेश्वर, सोरठी सोमनाथ, गोरक्षमठ, वेदपुर, गया,

योगेश्वर। सोरटीसोमनाथ लिंग थोर। भीमचंडी पुण्यालयें। १ शिवकांची विष्णुकांची। गोरक्षमठ आश्रम काळ हरती। वेदपुर गया अरुणावतीं। उडूपी शेषशायी सर्वेश। २ त्रिपती अहोबळ स्वामीकार्तिक सत्य। सुब्रह्मण्य किष्किंधा मातंग पर्वत। हंपीविरूपाक्ष मूर्तिमंत। पंपासरोवर निर्मळ। ३ चित्रकूट रुक्मकूट लोणार। अंबु अयोध्या महंकापुर। काळचंद्रिका अर्धोदय पवित्र। गोकर्ण कृष्णासागर पैं। ४ हरिहरतीर्थ जंबुकेश्वर। अनंतशायी विमळेश्वर। मथुरा विकर्ण प्रभाकर। विश्रांतिवन तपोवन। ५ कुंभकोण मंजरथ। मातुलिंग धूळखेट त्रिविक्रम तीर्थ। मुद्गल मांधाता अंवढ्या-नागनाथ। पंढरी-क्षेत्र चंद्रभागा। ६ त्रिकोण आणि कर्णमूळ। नागरगौर रंगजुगुळ। आशापुरी नेपाळ त्रिमल्ल। मंथनकाळेश्वर कुशतर्पण। ७ मीनाक्षी कामाक्षी मातुलिंग थोर। सीता असीता चिदंबरेश्वर। ब्रह्मकटाह हरिद्वार। आदित्यवैश्वानर महातीर्थ। ८ ब्रह्मानंद म्हणे श्रीकटाधर। इतुकीं तीर्थें करूनि रघुवीर। अयोध्येसी दीनोद्धार। परतोनि आला गजरेंसीं। ९ वसिष्ठासी साष्टांग नमन। दशरथाचे चरण वंदून। तिघी मातांसी रघुनंदन। करी नमन अभेदत्वें। ११० तीर्थें करोनि आलिया श्रीराम। सदा विरक्त आणि निष्काम। नावडे लौकिक संभ्रम। वैराग्य पूर्ण बाणलें। ११ षड्रस अन्न

अरुणावती, उडुपी, किष्किन्धा पर्वत, मातंग पर्वत, हंपीविरूपाक्ष, पंपासरोवर, चित्रकूट, रुक्मकूट, गोकर्ण, हरिहरतीर्थ, मथुरा, कुम्भकोण, त्रिविक्रमतीर्थ, मांधाता, आंवढ्या-नागनाथ, चंद्रभागा-तटस्थ पंढरपुर, त्रिमल्ल, मथन-कालेश्वर, मीनाक्षी, कामाक्षी, हरिद्वार, इत्यादि। ९१-१०८

ब्रह्मानन्द कहते हैं—दीनों के उद्धारक रघुवीर राम इतने तीर्थक्षेत्रों की यात्रा करके गाजे-वाजे के साथ अयोध्या लौट आये। १०९ उन्होंने वसिष्ठ को साष्टांग नमस्कार किया। दशरथ के चरणों का वन्दन कर रघुनन्दन (श्रीराम) ने अभेद-भाव (सब के प्रति समान भाव) पूर्वक तीनों माताओं को नमस्कार किया। ११० तीर्थों की यात्रा करके आने पर श्रीराम नित्य विरक्त और निष्काम (कामना-रहित) रहते हैं। उन्हें लौकिक मान-सम्मान नहीं भाता। (उनके) चित्त में वैराग्य जम गया। १११ छह रसों से युक्त भोज्य पदार्थ, उत्तम आसन,

उत्तमासन। हास्य विनोद शृंगार गायन। नावडे मृगया गमनागमन। एकांत पूर्ण आवडे।१२ नावडे स्त्रियांशीं संभाषण। नेणे कामिनींचें विलोकन। नासाग्रीं दृष्टि ठेवून। आनंदघन डोलत।१३ याचि प्रकारें तिघे बंधू। महाविरक्त निष्काम साधू। श्रीराम-सेवा करितां आनंदू। तिघांसही सर्वदा।१४ तंव तो प्रतिसृष्टि करणार। सिद्धाश्रमी गाधिपुत्र। महातपस्वी विश्वामित्र। अयोध्येसी पातला।१५ आला ऐकोनि गाधिसुत। सामोरा धांवे दशरथ। साष्टांग करोनि प्रणिपात। क्षेमालिंगन दीधलें।१६ दृष्टीं देखोनि ब्राह्मण। जो न उठे करी अपमान। त्याच्या आयुष्या होय खंडण। आलें मरण जवळी त्या।१७ जो ब्राह्मणासी नेदी अभ्युत्थान। तो दुसरे जन्मीं होय श्वान। विघ्नें शोधीत येती त्याचें सदन। कोठें नांदतो म्हणोनियां।१८ तैसा नव्हे राजा दशरथ। महाराज केवळ ब्राह्मणभक्त। कौशिकाचा

हास्य-विनोद, शृंगार, गायन, शिकार के लिए आना-जाना उन्हें पसन्द नहीं आता ; (उन्हें) पूर्ण एकान्त अच्छा लगता।११२ (उन्हें) स्त्रियों के साथ सम्भाषण (करना) नहीं भाता, कामिनी के दर्शन वे नहीं जानते। वे आनन्दघन राम नाक के अग्र पर दृष्टि लगाये झूमते (रहते)।११३ इसी प्रकार (लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—ये) तीनों बन्धु महाविरक्त, निष्काम साधु हो गये। (उन) तीनों को हमेशा राम की सेवा करते हुए आनन्द आता।११४

तब प्रतिसृष्टि के निर्माता, सिद्धाश्रम के निवासी, गाधि से उत्पन्न पुत्र महातपस्वी विश्वामित्र अयोध्या (में) आ पहुँचे।११५ गाधि-पुत्र (विश्वामित्र) आये—यह सुनकर दशरथ (उनकी अगवानी के लिए) सामने दौड़े गये। उन्हें साष्टांग नमस्कार करके उनका क्षेमालिंगन किया।११६ ब्राह्मण को दृष्टि से देखकर जो नहीं उठता, उसका अपमान करता है, उसकी आयु खण्डित हो जाती है। मौत उसके निकट आयी (आती) है।११७ जो ब्राह्मण के स्वागत के लिए (आदर-पूर्वक) नहीं उठता, वह दूसरे (अर्थात् आगामी) जन्म में कुत्ता हो जाता है। यह कहते हुए कि वह कहाँ निवास करता है, संकट उसका घर खोजते हुए आते हैं।११८ राजा दशरथ ऐसे पुरुष नहीं। (वे) महाराज तो मात्र ब्राह्मण-भक्त हैं। कौशिक (विश्वामित्र) का हाथ पकड़कर

धरोनि हात। सिंहासनीं बैसविला। १९ वस्त्रालंकारादि उपचार। देऊनि पूजिला विश्वामित्र। मानसीं भावी अजपुत्र। धन्य दिवस आजिचा। १२० ऋषीस म्हणे दशरथ। आजि मज हर्ष वाटे बहुत। तुझे पुरवीन मनोरथ। कांहीं इच्छित माग आतां। २१ म्हणोनि केला नमस्कार। मग आशीर्वाद देत विश्वामित्र। सूर्यवंश-भूषण तूं उदार। अनंत कल्याण तुजला हो। १२२ तुष्टि पुष्टि तुजलागीं बहुत। धर्म ऐश्वर्यवृद्धि अद्भुत। सार्थकायुष्य सुख समस्त। तुजप्रति हो दशरथा। २३ विवेक-ज्ञानसमृद्धि बहुत। विप्र-विष्णु-भक्ति घडो सतत। प्रताप प्रज्ञा यशवंत। सुभद्र अत्यंत तुजलागीं हो। २४ तव शत्रुक्षय हो कां बहुत। अक्षय कल्याणपद हो कां प्राप्त। भूतदया घडो सतत। कुळवृद्धि बहुत हो कां तूतें। २५ चिंतित हो पूर्ण मनोरथ। सर्व अरिष्ट हो कां शांत। सर्वाभीष्ट हो तुज प्राप्त। रविकुलअवतंसा। २६ निर्दोष यश वाढो बहुत।

उन्होंने उन्हें सिंहासन पर बैठाया। ११९ उन्होंने वस्त्र, अलंकार आदि उपचार देकर (पूर्वक) उनका पूजन किया। अजपुत्र दशरथ ने (आज के) इस दिन को धन्य माना। १२० दशरथ ने ऋषि (विश्वामित्र) से कहा—'आज मुझे बहुत हर्ष (अनुभव) हो रहा है। मैं तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करूँगा (इसलिए) अब कुछ इच्छित माँग लो।' १२१ (ऐसा) कहकर (दशरथ ने) विश्वामित्र को नमस्कार किया; फिर विश्वामित्र ने आशीर्वाद दिया कि सूर्यवंश के भूषण तुम उदार हो; तुम्हारा अनन्त कल्याण हो जाए। तुम्हें तुष्टि (सन्तोष), पुष्टि बहुत प्राप्त हो जाए; धर्म और ऐश्वर्य की अद्भुत वृद्धि हो जाए। हे दशरथ, कृतकृत्य आयु और समस्त सुख तुम्हें प्राप्त हो जाएँ। १२२-१२३ तुम्हें विवेक ज्ञान और बहुत समृद्धि का लाभ हो जाए; सतत ब्राह्मणों और विष्णु की भक्ति प्राप्त हो जाए। प्रताप, बुद्धि और यश से तुम युक्त हो जाओ। तुम्हारा अत्यन्त कल्याण हो जाए। १२४ तुम्हारे शत्रुओं का बहुत (पूर्ण) क्षय हो जाए; तुम्हें अक्षय कल्याण (कारी) पद प्राप्त हो जाए। तुमसे सतत प्राणियों के प्रति दया (का व्यवहार) हो जाए; तुम्हें कुल की बहुत वृद्धि का लाभ हो जाए। १२५ हे सूर्यकुल के भूषण, (तुम्हारे) इच्छित मनोरथ पूर्ण हो जाएँ। सब अरिष्ट शान्त हो जाएँ और सब अभीष्ट (बातें) तुम्हें प्राप्त हो जाएँ। १२६ तुम्हारी

तव कीर्ति वर्णोत साधुसंत। याचकांचे मनोरथ। पुरोत सर्व तुझेनि। २७ अनाचारीं नसो आदर। संतभजनीं होईं तूं सादर। माझे आशीर्वाद समग्र। सुफळ होवोत तुज राया। २८ सुबुद्धि उपजो तुझे हृदयीं। ब्राह्मणांचे आशीर्वाद घेईं। माझें चिंतित कार्य सर्वही। हो तुझेनि समस्त। २९ मी मागत नाहीं संपत्ति धन। नलगे राज्य सिंहासन। माझा मख मोडिती राक्षस येऊन। देईं रघुनंदन रक्षावया। १३० सिद्धि न पावे कदा यज्ञ। मारीच सुबाहु ताटिका येऊन। जाती होमद्रव्यें भक्षून। देईं रघुनंदन रक्षावया। ३१ कुंड वेदिका मोडून। यज्ञपात्रें टाकिती फोडून। मखमंडपासी लाविती अग्न। देईं रघुनंदन रक्षावया। ३२ मनुष्यांचें अस्थिमांस आणून। अकस्मात टाकिती वरून। गिळिले तिहीं असंख्य ब्राह्मण। देईं रघुनंदन रक्षावया। ३३ ऐकोनि ऋषीचा वचनार्थ। भयभीत जाहला दशरथ। वाटे अंगावरी

दोष-रहित (शुद्ध) सफलता वृद्धि को प्राप्त हो जाए। साधु-सन्त तुम्हारी कीर्ति का वर्णन (बखान) करें। तुम्हारे द्वारा याचकों के सब मनोरथ पूर्ण हो जाएँ। १२७ तुम्हें अनाचार (अनीतिमय व्यवहार) के प्रति आदर न हो जाए। सन्तों के भजन (भक्ति) में तुम तत्पर हो जाओ। हे राजा, मेरे समस्त आशीर्वाद तुम्हारे प्रति सुफल हो जाएँ। १२८ तुम्हारे हृदय में सुबुद्धि उत्पन्न हो जाए। ब्राह्मणों के आशीर्वाद लो (तुम्हें प्राप्त हो जाएँ)। (मेरे) इच्छित सब कार्य तुम्हारे द्वारा सम्पूर्ण सम्पन्न हो जाएँ। १२९ मैं सम्पत्ति और धन नहीं माँगता। (मुझे) राज्य और सिंहासन की आवश्यकता नहीं है। राक्षस आकर मेरा यज्ञ ध्वस्त करते हैं। (इसलिए हे राजा, तुम उसकी) रक्षा करने के लिए श्रीराम को (भेज) दो। १३० (मेरा) यज्ञ कभी सिद्धि (पूर्णता) को प्राप्त नहीं हो रहा है। मारीच, सुबाहु और ताड़का आकर होम (के लिए एकत्रित) वस्तुओं को खाकर चले जाते हैं। (अतः उसकी) रक्षा करने के लिए राम को (मुझे) दो। १३१ (यज्ञ के) कुण्ड और वेदिका को ध्वस्त कर वे यज्ञ-पात्रों को तोड़ डालते हैं। वे यज्ञ-मण्डप में आग लगाते हैं। (अतः उसकी) रक्षा करने के लिए राम को (मुझे) दो। १३२ मनुष्यों की हड्डियाँ और मांस लाकर वे अकस्मात् ऊपर से गिरा देते हैं। उन्होंने असंख्य ब्राह्मणों को निगल डाला। (अतः उसकी) रक्षा करने के लिए श्रीराम को (मुझे) दो। १३३

कोसळला पर्वत। कीं विद्युत्पात जाहला। ३४ वाटे हृदयीं खोंचलें तप्त शस्त्र। कीं अकस्मात गेले नेत्र। कीं उभे ठाकले तस्कर। धन हरावया कृपणाचें। ३५ पाहे राजा अधोवदन। कांहीं न बोले प्रतिवचन। विवेकचातुर्य गेलें हरपोन। भयें-करोनि तेधवां। ३६ बोले हळूचि भिवोन। महाराक्षस मोडिती यज्ञ। केवळ बाल रघुनंदन। राजीवनयन सुकुमार। ३७ लीलाकार्मुक घेवोनि हातीं। मजपुढें खेळे रघुपती। नाहीं देखिली युद्धरीती। अद्यापवरी श्रीरामें। ३८ धनुर्विद्येचा अभ्यास। अद्यापि नाहीं श्रीरामास। कोमळ तनु डोळस। कैसा युद्धासी देऊं तूतें। ३९ राज्य संपत्ति गृह धन। सर्व देईन तुजलागून। परी नेदीं मी रघुनंदन। राजीवनयन सुकुमार जो। १४० राक्षस मारावया समस्त। मी सेनेसहित येतों तेथ। तुझिया कार्या वेंचीन जीवित। परी रघुनाथ न देववे। ४१ कृपणासी न देववे धन। मीनासी न सोडवे

ऋषि के ऐसे भावार्थ वाले वचनों को सुनकर दशरथ भयभीत हो उठे। (उन्हें) जान पड़ा कि शरीर पर पर्वत टूट पड़ा अथवा विद्युत्-पात हो गया। उन्हें लगा कि (किसी ने उनके) हृदय में तप्त शस्त्र भोंक दिया, अथवा अकस्मात् (उनकी) आँखें नष्ट हो गयीं, अथवा किसी कंजूस (व्यक्ति) के धन का अपहरण करने के लिए चोर आकर खड़े हो गये। १३४-१३५ राजा ने नीचे मुँह किये देखा। वे उत्तर में कोई वचन (बात) नहीं बोले। उनका विवेक और चातुर्य उस समय भय के कारण खो गया। १३६ वे मारे डरके धीमे से बोले—'महाराक्षस यज्ञ को ध्वस्त करते हैं (और) कमलनयन श्रीराम (तो अभी) सुकुमार बच्चा है। १३७ हाथ में खिलौने वाले धनुष्य लेकर श्रीराम मेरे सामने खेलता है। (इस) श्रीराम ने युद्ध का ढंग अभी तक नहीं देखा। १३८ श्रीराम को अभी तक धनुर्विद्या का अध्ययन नहीं हुआ है। वह कोमल शरीरधारी और सुन्दर आँखोंवाला है। तुमको मैं उसे युद्ध के लिए कैसे दूँ? १३९ मैं तुम्हें राज्य, सम्पत्ति, घर, धन सब दूँगा; परन्तु जो श्रीराम कमल-से नयनों वाला तथा सुकुमार है, उसे नहीं दूँगा। १४० समस्त राक्षसों को मार डालने के लिए मैं वहाँ सेना सहित आता हूँ (आऊँगा)। तुम्हारे कार्य के लिए मैं प्राण समर्पित करूँगा, परन्तु मुझसे रघुनाथ राम (को) नहीं दिया जाता। १४१ कृपण से धन नहीं दिया जाता; मत्स्य (मछली) से पानी नहीं छोड़ा जाता; वैसे ही मुझसे रघुनन्दन राम

जीवन। तैसा मज न देववे रघुनंदन। युद्धकंदन करावया।४२ श्रीराम माझें तान्हें अत्यंत। कधीं नेणे उष्ण वात। ऐसें बोलतां अश्रुपात। नेत्रीं रायाचे चालिले।४३ ऐसें बोलतां अजनंदन। ऋषि जाहला कोपायमान। म्हणे तूं बोलिलासी वचन। इच्छित पूर्ण देईन ऐसें।४४ म्यां न मागतां निश्चित। तूं बोलिलासी माग इच्छित। अरे सूर्यवंशीं नृपनाथ। डाग लाविला कुळासी।४५ येचि वंशीं हरिश्चंद्र जाण। लटिकें साच करोनि स्वप्न। राज्य मज दिधलें दान। घेतलें विकून डोंबाघरीं।४६ तेचि वंशीं तूं जन्मोन। कैसें असत्य केलें वचन। सूर्यवंशासी दूषण। तुझेनि पूर्ण लागलें।४७ येचि वंशीं शिबिराव आपण। कपोत पक्ष्याच्या समसमान। आपुलें मांस तुकिलें पूर्ण। मिथ्यावचन न करीच।४८ येचि वंशीं रुक्मांगद। एकादशीव्रत साधी शुद्ध। केला पुत्राचा शिरच्छेद। मिथ्या शब्द न करीच।४९ पैल शेजारीं श्रियाळ। त्यासीं दान मागे जाश्वनीळ। केला पुत्रवध तत्काळ। सत्त्वासी चळ

युद्ध करने के लिए नहीं दिया जाता।१४२ श्रीराम मेरा अत्यन्त दुधमुँहा बच्चा है। उसने कभी गर्म हवा (भी) नहीं जानी।' इस प्रकार बोलते हुए राजा के नयनों से आँसुओं की धाराएँ चलने लगीं।१४३ अजपुत्र दशरथ के ऐसा बोलते ही ऋषि (विश्वामित्र) कोपायमान हो गये (और) बोले—मैं इच्छित (वस्तु) पूर्ण रूप से दूँगा—ऐसी बात तुमने कही (थी)। निश्चित रूप में मेरे (कुछ) नहीं माँगते हुए, तुमने कहा—(अपनी) इच्छित बात माँगो। हे सूर्यवंशीय नृपनाथ, (तुमने अपने) कुल में दाग लगाया।१४५ (यह) जान लो, इसी वंश में (उत्पन्न) हरिश्चन्द्र ने स्वप्न की भ्रमपूर्ण बात को सत्य करके मुझे राज्य दान (में) दिया, (और अपने को) डोंम के घर बेच दिया। उसी वंश में तुमने उत्पन्न हो (अपने) वचन को असत्य कैसे किया? तुमसे सूर्यवंश में पूर्णतः दोष लगा।१४६-१४७ इसी वंश में (उत्पन्न) शिबिराजा ने स्वयं अपने मांस को कपोत (कबूतर) पक्षी के पूर्णतः समान तौल दिया। उसने अपने वचन को मिथ्या नहीं किया।१४८ इसी वंश में (उत्पन्न) रुक्मांगद ने एकादशी का शुद्ध व्रत सिद्ध करते हुए अपने पुत्र का शिरच्छेद किया। उसने अपने शब्द (वचन) को मिथ्या नहीं किया।१४९ उस तरफ पड़ोस में राजा श्रियाल था। शिवजी ने उससे दान माँग लिया। उसने तत्काल

होऊं नेदी। १५० तूं श्रीरामाचा महिमा नेणसी। हा अवतरला वैकुंठवासी। वृत्तांत पुसें वसिष्ठासी। साच कीं मिथ्या असे तो। ५१ जो काळासी शासनकर्ता। जो आदिमायेचा निजभर्ता। जो कमलोद्भवाचा पिता। त्यासी बाळक म्हणसी तूं। ५२ जें नीलग्रीवाचें ध्यान। जें सनकादिकांचें गुह्य ज्ञान। ज्यासी शरण सहस्रनयन। त्यासी बाळक म्हणसी तूं। ५३ वेदांतशास्त्रें सर्व निरसून। स्थापिती परब्रह्म निर्गुण। तो हा श्रीराम परिपूर्ण। त्यासी बाळक म्हणसी तूं। ५४ मीमांसक कर्ममार्ग। ज्याकारणें आचरती सांग। तो हा भक्त-हृदयारविंद-भृंग। त्यासी बाळक म्हणसी तूं। ५५ नैयायिक म्हणती जीव अनित्य। ईश्वर कर्ता एक सत्य। तो हा जगद्वंद्य रघुनाथ। त्यासी बाळक म्हणसी तूं। ५६ व्याकरणकार साधिती शब्दार्थ। ज्याच्या नामाचे करिती अनेक अर्थ। तो हा अवतरला वैकुंठनाथ। त्यासी बाळक म्हणसी

(अपने) पुत्र का वध किया। उसने अपने सत्त्व (सत्य) को विचलित होने नहीं दिया। १५० तुम श्रीराम की महिमा नहीं जानते। ये वैकुण्ठ में निवास करनेवाले भगवान विष्णु ही अवतरित हैं। वसिष्ठ से बात पूछो कि वह सत्य है अथवा मिथ्या है। १५१ जो काल के लिए शासनकर्ता हैं, जो आदि-माया के अपने पति हैं, जो कमलोद्भव ब्रह्माजी के पिता हैं, उन्हें तुम 'बालक' कहते हो। १५२ जो नीलकण्ठ शिवजी के ध्यान (के विषय) हैं, जो सनकादिक ऋषियों के लिए गुह्य ज्ञान (के विषय) हैं, जिनकी शरण में सहस्रनेत्र इन्द्र (जाते) हैं, उन्हें तुम 'बालक' कहते हो। १५३ वेदान्तशास्त्र (अन्य) सब (मतों) का खण्डन कर जिनकी निर्गुण परब्रह्म के रूप में स्थापना करता है, पूर्णतः वे ही ये श्रीराम हैं। उन्हें तुम 'बालक' कहते हो। १५४ जिसके कारण मीमांसक अंगों सहित कर्ममार्ग का आचरण करते हैं, वे ही भक्तों के हृदय-कमल के भ्रमर हैं। उन्हें तुम 'बालक' कहते हो। १५५ नैयायिक कहते हैं—जीव अनित्य (नाशवान्) है (और) ईश्वर कर्ता तथा एकमेव सत्य (नित्य, शाश्वत) है। (वही ईश्वर) ये जगत्-वंद्य रघुनाथ श्रीराम हैं। उन्हें तुम 'बालक' कहते हो। १५६ वैयाकरण (व्याकरणकार) शब्दों के अर्थ की सिद्धि करते हैं। (उनके अनुसार) जिनके नाम के अनेक अर्थ निकलते हैं, वे ही वैकुण्ठनाथ भगवान् ये (श्रीराम के रूप में) अवतरित हैं। उन्हें तुम 'बालक' कहते हो। १५७ सांख्यशास्त्र में

तूं। ५७ प्रकृति-पुरुष विभाग। सांख्यशास्त्रीं ज्ञानयोग। तो हा राम अक्षय अभंग। त्यासी बाळक म्हणसी तूं। ५८ पातंजलशास्त्रीं योगसाधन। तो अष्टांगयोग आचरून। ज्याचें पद पावती निर्वाण। त्यासी बाळक म्हणसी तूं। ५९ आतां कल्याण असो श्रीरामा। मी जातों आपुल्या आश्रमा। उल्लंघोन महाद्वारसीमा। बाहेर गेला गाधिसुत। १६० घाबरा जाहला नृपवर। गृहांत जावोनि सत्वर। वसिष्ठासी सांगे समाचार। नमस्कार करोनियां। ६१ म्हणे कोपला कीं गाधिसुत। नेईन म्हणतो रघुनाथ। महाराज तूं गुरु समर्थ। सांग यथार्थ काय करूं। ६२ तुझिया अनुग्रहाचें फळ। महाराज राम तमालनीळ। हा विश्वामित्र नव्हे काळ। नेऊं आला राघवातें। ६३ जें मागेल तें यास देईं। समाधान करीं ये समयीं। रामासी जीवदान लवलाहीं। देईं आतां गुरुराजा। ६४ मग वसिष्ठ बोले गोष्टी। हा विश्वामित्र महाहठी। येणें केली प्रतिसृष्टी। परमेष्ठीस जिकावया। ६५ येणें लोहपिष्ट भक्षून। साठ सहस्र

ज्ञानयोग हैं, जिसके अनुसार प्रकृति और पुरुष जैसे विभाग हैं। (उसके अनुसार) ये राम वे ही अक्षय, अभंग (पुरुष) हैं। उन्हें तुम 'बालक' कहते हो। १५८ पातंजल-योगशास्त्र में योग-साधना है—उसके अनुसार आठों अंगों सहित योग का आचरण करके, (योगी जन) जिनके चरणों में निर्वाण को प्राप्त करते हैं, उन्हें तुम 'बालक' कहते हो। १५९ अब श्रीराम का कल्याण हो। मैं अपने आश्रम (की ओर) जाता हूँ।" (ऐसा कहकर) महाद्वार की सीमा को पार करके गाधिसुत विश्वामित्र बाहर (चले) गये। १६० (तब) राजश्रेष्ठ (दशरथ) घबरा उठे। शीघ्रता से घर के अन्दर जाकर वसिष्ठ को नमस्कार करके उन्होंने (उनसे) समाचार कहा। १६१ (और) कहा—'ये गाधिसुत विश्वामित्र तो क्रुद्ध हो गये? कहते हैं कि राम को ले जाएँगे। महाराज, तुम गुरु समर्थ हो। ठीक से कहो कि मैं क्या करूँ। १६२ महाराज, तुम्हारे अनुग्रह का फल (यह) तमालनील (वर्णीय) राम है। यह विश्वामित्र नहीं—यह (तो) काल है, जो राघव राम को ले जाने आया (है)। १६३ वे जो माँगेंगे वह उन्हें दो। इस समय उन्हें सन्तुष्ट करो। महाराज, अब, झट से राम को जीवदान दो।' १६४ तब वसिष्ठ ने (ये) बातें कहीं—'ये विश्वामित्र महान् हठीले हैं। इन्होंने ब्रह्माजी को जीतने के हेतु प्रतिसृष्टि का निर्माण किया। १६५ इन्होंने लोह-पिष्ट (लोहे का आटा)

वर्षें पुरश्चरण । केलें गायत्रीचें आराधन । त्रिभुवन भीतसे तयातें । ६६ सदा जवळी धनुष्य बाण । महा योद्धा गाधिनंदन । तत्काळ उग्र शाप देऊन । भस्म करील कुळातें । ६७ तुज सांगतों यथार्थ वचन । त्यास देईं रामलक्ष्मण । भरत आणि शत्रुघ्न । तुजपाशीं असों दे । ६८ ऐसें बोलतां गुरुनाथ । दीर्घ स्वरें दशरथ रडत । मग हृदयीं धरी ब्रह्मसुत । दशरथासी उठवोनी । ६९ रायाचे मस्तकीं हस्त ठेवून । म्हणे रामाकडे पाहें विलोकून । तों शंखचक्रगदा-मण्डित पूर्ण । आदिनारायण देखिला । १७० सांगे कानीं मूळ काव्यार्थ । हा अवतरला वैकुंठनाथ । विश्वामित्र बोलिला जो जो अर्थ । तो तो यथार्थ दशरथा । ७१ सौमित्र तो भोगींद्रनाथ । ऐकोनि तोषला दशरथ । गुरु म्हणे हे मानव सत्य । सर्वथा नव्हेत राजेंद्रा । ७२ यालागीं रामलक्ष्मण । देईं त्या पाचारून । शिरीं वंदोनि गुरचरण । गेला धांवोनि तयापाशीं । ७३ करूनि साष्टांग

खाते हुए साठ हज़ार वर्ष तपश्चरण किया। इन्होंने गायत्री की आराधना की। उनसे तीनों भुवन डरते हैं। १६६ ये सदा (अपने) पास धनुष-वाण रखते हैं। ये गाधि-पुत्र (विश्वामित्र) महायोद्धा हैं। ये तत्काल उग्र अभिशाप देकर कुल को भस्म कर डालेंगे। १६७ (हे राजा,) तुम्हें मैं सत्य बात कह रहा हूँ। उन्हें राम और लक्ष्मण दो, अपने पास भरत और शत्रुघ्न रहने दो।' १६८ गुरुनाथ वसिष्ठ के ऐसा बोलने पर दशरथ ऊँचे स्वर में रो उठे। तब दशरथ को उठाकर ब्रह्माजी के पुत्र (वसिष्ठ) ने हृदय से लगा लिया। १६९ राजा के मस्तक पर हाथ रखकर वे बोले—'राम की ओर देख लो'। तो (दशरथ ने) शंख, चक्र, गदा से पूर्णतः विभूषित आदिनारायण को (राम के स्थान पर) देखा। १७० वसिष्ठ ने (दशरथ के) कान में आदि काव्य (रामायण) का अर्थ कहा—'ये वैकुण्ठनाथ भगवान् विष्णु अवतरित हैं। हे दशरथ, विश्वामित्र ने जो-जो अर्थ कहा, वह यथार्थ (पूर्णतः सत्य) है। १७१ (सौमित्र) लक्ष्मण वे भोगीन्द्रनाथ (शेष भगवान्) हैं।' यह सुनकर दशरथ सन्तुष्ट हो गये। गुरु वसिष्ठ ने (फिर) कहा—'हे राजेन्द्र, सचमुच ये मानव बिलकुल नहीं हैं। १७२ इसलिए उन्हें (विश्वामित्र को) बुलाकर राम और लक्ष्मण दो।' (तब) गुरु के चरणों का शिरसा-वन्दन करके उन (विश्वामित्र) के पास दशरथ गये। १७३ उनका साष्टांग नमन करके दशरथ ने कहा—'राम-लक्ष्मण को ले जाएँ।'

नमन। म्हणे त्या जी रामलक्ष्मण। ऐकोनि आनंदला गाधिनंदन। काय वचन बोलत। ७४ म्हणे मी मागत होतों रघुनंदन। त्वां सवें दिधला लक्ष्मण। माझें भाग्य परिपूर्ण। लाभ द्विगुणित जाहला। ७५ माझे पुण्याचे गिरिवर। मेरूहून वाढले अपार। ते आजि फळा आले साचार। रघुवीर प्राप्त जाहला। ७६ विश्वामित्र आला परतोनी। बैसला आपुले स्वस्थानीं। वाहेर आला वसिष्ठमुनि। सभास्थानीं बैसला। ७७ सभेसी बैसले थोर महंत। आनंदमय जाहला दशरथ। विश्वामित्र म्हणे रघुनाथ। मज आतांचि दाविजे। ७८ आजि धन्य माझे नयन। पाहीन श्रीरामाचें वदन। ज्यावरोनि मीनकेतन। कोट्यावधि ओंवाळिजे। ७९ नृप सांगोनि पाठवी रामासी। विश्वामित्र आला न्यावयासी। आपण यावें सभेसी। सुख सर्वांसी द्यावया। १८० ऐसें ऐकतां त्रिभुवनसुंदर। सभेसी चालिला रघुवीर। विद्युत्प्राय प्रावरण चीर। रुळती पदर मुक्तलग। ८१

(यह) सुनकर गाधि-नन्दन विश्वामित्र आनन्दित हो गये। वे क्या बात कहते हैं?—(सुनो)। १७४ वे बोले—'मैं रघुनन्दन श्रीराम को माँग रहा था; तुमने (उनके) साथ में लक्ष्मण भी दिये। मेरा भाग्य परिपूर्ण है (इसलिए मुझे) दुगुना लाभ हो गया। १७५ मेरे पुण्य के (रूपी) बड़े-बड़े पर्वत मेरु से बहुत बढ़ गये। सचमुच वे आज फल-युक्त हो गये (इसलिए मुझे) रघुवीर श्रीराम प्राप्त हो गये।' १७६ (यह कहकर) विश्वामित्र लौट आये (और) अपने स्थान पर बैठ गये। वसिष्ठ ऋषि (भी) बाहर आये (और) सभा-स्थान (राज सभा) में बैठ गये। १७७ (राज) सभा में बड़े महानुभाव बैठे (हैं); (इससे) दशरथ आनन्दमय (हर्षविभोर) हो गये। विश्वामित्र ने कहा, '(हे राजा,) मुझे अभी रघुनाथ श्रीराम दिखाओ। १७८ आज मेरे नयन धन्य (हो गये) हैं। मैं श्रीराम का (वह) मुख देखूँगा, जिसपर करोड़ों कामदेव निछावर कर दिये जाएँ'। १७९ राजा ने राम के लिए यह (सन्देश) कहकर (दूत को) भेजा—'विश्वामित्र ले जाने के लिए आये (हैं), तुम सब को (दर्शन से) सुख देने के लिए सभा में आओ।' १८० ऐस सुनकर वे त्रिभुवन(में)सुन्दर रघुवीर राम राजसभा की ओर चले। उनके प्रावरण के वस्त्र विद्युत् जैसे चमके रहे थे; और

निशा संपतां तत्काळ। उदयाचळावरी ये रविमंडळ। तैसा राम तमालनीळ। सभेमाजी पातला। ८२ कौसल्याहृदयारविंदभ्रमर। दृष्टीं देखोनि विश्वामित्र। करोनियां जय जयकार। भेटावाया पुढारला। ८३ विश्वामित्राचे चरण। प्रेमें वंदितां रघुनंदन। तों ऋषीनें हस्त धरून। आलिंगनासी मिसळला। ८४ नील-जीमूतवर्ण रघुवीर। प्रेमें हृदयीं धरी विश्वामित्र। म्हणे जन्माचें सार्थक समग्र। आजि जाहलें संपूर्ण। ८५ विश्वामित्रासी आलिंगुनी। वसिष्ठा नमी चापपाणी। मग श्रीराम बैसला निजासनीं। वेदपुराणीं वंद्य जो। ८६ मग श्रीरामासी म्हणे विश्वामित्र। माझा क्रतु विध्वंसिती असुर। तुजवीण कोण रक्षणार। दुजा न दिसे त्रिभुवनीं। ८७ ऐकोनि विश्वामित्राचें वचन। कमळ विकासे मित्र देखोन। तैसा रघुवीर सुहास्यवदन। बोहला जाहला ते वेळीं। ८८ ते कौतुककथा सुरस बहुत। ऐकोत आतां साधुसंत। जे कथा

उन वस्त्रों के मोती-जड़े छोर शोभायमान थे। १८१ रात के समाप्त होते ही तत्काल जैसे सूर्य-मण्डल उदयाचल के ऊपर आता है, वैसे तमाल के समान नील (शरीरधारी) श्रीराम (राज) सभा में आ पहुँचे। १८२ कौसल्या के हृदय रूपी कमल के श्रीराम रूपी भ्रमर को (अपनी) दृष्टि से देखकर विश्वामित्र (उनका) जय-जयकार करके (उनसे) मिलने के लिए आगे बढ़े। १८३ विश्वामित्र के चरणों का प्रेमपूर्वक राम ने वन्दन किया, त्यों ही उस ऋषि ने उनका हाथ थामकर उन्हें आलिंगन में बाँध लिया। १८४ विश्वामित्र ने कृष्ण मेघ सदृश साँवले वर्णवाले श्रीराम को प्रेमपूर्वक हृदय से लगाया और कहा—'आज समस्त जन्म पूरा-पूरा कृतकृत्य हो गया'। १८५ विश्वामित्र का आलिंगन कर चापपाणि (जिनके हाथ में धनुष हैं ऐसे) राम ने वसिष्ठ का नमन किया। अनन्तर जो वेदों और पुराणों के लिए वंद्य हैं, ऐसे श्रीराम अपने आसन पर बैठ गये। १८६ तदनन्तर विश्वामित्र ने श्रीराम से कहा—'राक्षस मेरे यज्ञ को ध्वस्त करते हैं। (उसकी) रक्षा कौन करेगा? (उसकी) रक्षा करनेवाला (सिवा तुम्हारे दूसरा कोई) त्रिभुवन में नहीं दिखायी देता।' १८७ विश्वामित्र का वचन सुनकर, जैसे सूर्य को देखकर कमल विकसित हो जाता है (वैसे रघुवीर राम का मुख-कमल विकसित हो गया और वे) श्रीराम सुहास्य से युक्त वदन से उस समय बोले। १८८ अब साधु-सन्त बहुत सुरस लीला (की) उस कथा को

ऐकतां समस्त। महापातकें नासती। ८९ जैसें महावेदांतशास्त्र। सर्वांसी मान्य करी पवित्र। तैसा सहावे अध्यायीं साचार। रस अपार वोतिला। १९० केवळ जें वेदांतज्ञान। रामासी उपदेशील ब्रह्मनंदन। तें ऐकोत संत सज्जन। आत्मज्ञान सुरस तें। ९१ पुसेल आतां रघुवीर। षष्ठाध्यायीं परम सुंदर। वसिष्ठ ज्ञानाचा सागर। वर्षेल उदार मेघ जैसा। ९२ त्या वसिष्ठगोत्रीं उद्भवला पूर्ण। ब्रह्मानंद स्वामी ज्ञानसंपन्न। कीं वसिष्ठचि आपण। कुळीं आपल्या अवतरला। ९३ ऐसा महाराज ब्रह्मानंद। तयाचें जें चरणारविंद। तेथें श्रीधर होऊनि मिलिंद। दिव्य आमोद सेवीतसे। ९४ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। पंचमोध्याय गोड हा। १९५

* * *

सुनें, जिस समस्त को सुनने पर महापाप नष्ट हो जाते हैं। १८९ जैसे महान् वेदान्तशास्त्र सबको मान्य है और (सबको) पवित्र करता है, वैसे ही छठे अध्याय में सचमुच असीम रस उँडेल दिया (है)। १९० ब्रह्मनन्दन वसिष्ठ ऋषि राम को जिस विशुद्ध वेदान्त-ज्ञान का उपदेश देंगे, उसे सन्त सज्जन सुनें। वह आत्मज्ञान सुरस है। १९१ अब छठे अध्याय में (यह कथा है कि) रघुवीर राम (वसिष्ठ से) पूछेंगे (प्रश्न करेंगे) और (वे) परम सुन्दर ज्ञान के सागर वसिष्ठ उदार मेघ जैसे बरसेंगे। १९२ उस वसिष्ठ (के) गोत्र में ज्ञान सम्पन्न ब्रह्मानन्द स्वामी का पूर्णतः उद्भव हुआ, अथवा स्वयं वसिष्ठ ही अपने कुल में (गुरु ब्रह्मानन्द के रूप में) अवतरित हुए। १९३ ऐसे हैं महाराज ब्रह्मानन्द (मेरे पिता और गुरु)। उनके जो चरण-कमल हैं, वहाँ यह श्रीधर (कवि) भ्रमर होकर दिव्य आनन्द (रस) का सेवन कर रहा है। १९४

। स्वस्ति। श्रीवाल्मीकि-नाटक पर आधारित एवं उससे सम्मत यह 'राम विजय' नामक ग्रन्थ सुन्दर है। चतुर भक्त (श्रोता) उसके इस मधुर पंचम अध्याय का सदा श्रवण करें। १९५

* * *

अध्याय—६

श्रीगणेशाय नमः। जय जय जगद्वंद्या वेदसारा। अनंगदहन-हृदय-विहारा। कमलोद्भव-जनका परात्परा। अगोचरा निरुपाधिका। १ इच्छामात्रें प्रचंड। मायेनें रचिलें ब्रह्मांड। चौऱ्यायशीं लक्ष योनि उदंड। जीव आंत भरियेले। २ ते जीव विसरूनि तूतें। भुलले देखोनि विषयांतें। म्हणोनि विसरले निजपदातें। अहंमतानें भुलोनियां। ३ शब्दविषय घेतां कानें। कुरंग वेंचिला समूळ प्राणें। स्पर्शविषय सेवितां वारणें। अंकुशें आकर्षोनि हिंडविती। ४ रूपविषय देखतां पतंग। करी आपला देहत्याग। रसविषयें मीन सवेग। गळ गिळोनि मुके प्राणा। ५ गंधविषयें मिलिंद भुलोन। कमळकोशीं वेंची प्राण। ते पांचही विषय संपूर्ण। भोगिती जाण मानव हे। ६ तुज विसरोनि श्रीरामा। जीव भुलले देह-गेह-धन-कामा। त्यांसी तारावया पूर्णब्रह्मा। दशरथात्मज जाहलासी। ७ पंचमाध्यायाचे अंतीं कथा। दशरथें राम दिधला गाधिसुता।

हे जगत् के लिए वन्दनीय, वेदों के सार-तत्त्व, मदन को जला डालनेवाले श्रीशिवजी के हृदय में विहार करनेवाले, ब्रह्माजी के पिता, अगोचर और उपाधि-रहित सर्वश्रेष्ठ भगवान् (राम), तुम्हारी जय हो। १ तुमने इच्छा मात्र से माया द्वारा प्रचण्ड ब्रह्माण्डों की रचना की (और) उनके अन्दर चौरासी लाख योनियों के अनगिनत जीव भर दिये (उत्पन्न किये)। २ वे जीव तुम्हें भूलकर (इन्द्रियों द्वारा भोग्य) विषयों को देखकर मोहित हुए। इसलिए अहंभाव-घमण्ड से सुध-बुध खोकर उन्होंने (अपने सच्चे स्थान को अर्थात्) तुम्हारे चरणों को भुला दिया। ३ शब्द—अर्थात् मधुर ध्वनि विषय को कानों द्वारा अपनाने पर हिरन मूल सहित अर्थात् पूर्णतः प्राणों से नष्ट हुआ (हो जाता है)। स्पर्श विषय का सेवन करने पर हाथी को अंकुश से वश करके (लोग) घुमाते हैं। ४ रूप विषय को देखते हुए पतंगा अपनी देह का उत्सर्ग कर देता है। रस-विषय के कारण मीन (मछली) वेग-पूर्वक काँटे को निगलकर प्राणों को खो देता है। ५ गन्ध विषय से भ्रमर मोहित हो, कमल-कोश में (फँस कर) प्राणों को खो देता है। समझो, उन सभी पाँचों ही विषयों का भोग ये मनुष्य करते हैं। ६ हे श्रीराम, तुम्हें भूलकर जीव देह, घर, धन, काम से मुग्ध हो गये। हे पूर्णब्रह्म श्रीराम! उनका उद्धार करने के

यावरी वर्तलें तें तत्त्वतां। ऐका आतां सावधान। ८ गुरूसी शरण निघाला रघुनाथ। हे कथा वाल्मीकें कथिली अद्भुत। तो बृहद्वासिष्ठ ग्रंथ। छत्तीस सहस्र श्लोक पैं। ९ समुद्राऐसा थोर ग्रंथ। त्यांतील सार सांगों मुख्यार्थ। जैसें भागीरथींतूनि तृषार्त। पाणी सेवी अंजुळीनें। १० सागरामाजी बुडी घेऊन। काढिती सतेज मुक्तें वेचून। कीं याचकासी सांपडे अपार धन। परी यथाशक्ति मोट बांधी। ११ देखिला अन्नाचा पर्वत। परी आपणापुरतेंच घे क्षुधार्त। तैसा बृहद्वासिष्ठ ग्रंथ। त्यांतील गुह्यार्थ ऐका हो। १२ वाल्मीकाचीं उच्छिष्ट उत्तरें। तींच परिसा तुम्ही आदरें। श्रोते म्हणती उच्छिष्ट खरें। तरी तेंच कां हो बोलतां। १३ पराचें उच्छिष्ट अंगीकार। कदा न करिती श्रोते चतुर। संदेह-धनुष्य घेऊनि थोर। प्रश्नाक्षर-शर सोडिती। १४ तों वक्त्यानें स्फूर्ति-धनुष्य घेऊन। शास्त्र-संमत

लिए तुम दशरथ के पुत्र (के रूप में उत्पन्न) हो गये हो। ७ पाँचवें अध्याय के अन्त में यह कथा (कही) है—दशरथ ने राम गाधि-सुत विश्वामित्र को (सौंप) दिये। इसके बाद जो यथार्थ में घटित हो गया, अब उसे सावधान होकर सुनो। ८

श्रीराम गुरु की शरण में जाने के लिए प्रस्तुत हुए। वाल्मीकि ने यह अद्भुत कथा (जिस ग्रन्थ में) कही, वह बृहद् वासिष्ठ (नामक) ग्रन्थ है। उसमें छत्तीस हज़ार छन्द हैं। ९ वह समुद्र-सा बड़ा ग्रन्थ है। जिस प्रकार प्यासा मनुष्य गंगा नदी में से अंजली से पानी लेकर पीता है, उसी प्रकार उस (परम विशाल ग्रन्थ) का सार-भूत मुख्य अर्थ मैं कहूँगा। १० (गोताखोर) समुद्र में डुबकी (गोता) लगाकर (केवल) तेजस्वी मोतियों को चुनकर निकाल लेते हैं। अथवा याचक को अपार धन मिल जाए, तो (भी) वह (उसमें से) यथाशक्ति लेकर थैली (में) बाँध लेता है। भूख से व्याकुल मनुष्य ने अन्न का पर्वत देखा, तो भी वह अपने लिए जितना आवश्यक हो, उतना ही लेता है। उसी प्रकार बृहद् वासिष्ठ ग्रन्थ विशाल है, (फिर भी हे श्रोताओ,) उसका गुह्यार्थ (ही) सुनो। ११-१२ वाल्मीकि ऋषि के जो उच्छिष्ट—जूठे वचन हैं, तुम उन्हीं को आदरपूर्वक श्रवण करो। (इसपर) श्रोताजन कहते हैं—(यदि) वह सचमुच जूठन है, तो तुम वही क्यों कहते हो ? १३ चतुर श्रोता दूसरे के जूठे वचन कदापि स्वीकार नहीं करते। (इसलिए) वे सन्देह रूपी बड़ा धनुष लेकर प्रश्न रूपी बाण चलाते हैं। १४ त्यों ही वक्ता ने स्फूर्ति रूपी धनुष्य लेकर

टाकूनि बाण । प्रश्नाक्षर-शर निवारून। संदेह-धनुष्य छेदिलें। १५ वक्ता म्हणें ऐका सावधान। कोणतें उच्छिष्ट घेती सज्जन। तरी तें मधुमक्षिकांचें उच्छिष्ट पूर्ण। मधु आवडे देवांतें। १६ वत्स आधीं करी दुग्धपान। तें अवश्य घ्यावें न करितां अनमान। भ्रमर आधीं जाय पुष्प सेवून। परी तें शास्त्रज्ञ अंगीकारिती। १७ मेघमुखींचें जीवन। तें उच्छिष्ट नव्हे कदा जाण। यागींचा पुरोडाश पूर्ण। उच्छिष्ट कोण म्हणे त्यासी। १८ गौतमें गोदा आणिली प्रार्थून। तेणें आधीं केलें स्नान-पान। व्यासाचें उच्छिष्ट पुराण प्राचीन। पूर्ण उच्छिष्ट नव्हे तें। १९ विष्णु-नैवेद्य पावन। त्यास उच्छिष्ट म्हणेल कोण। वाल्मीक-काव्य म्हणोन। उच्छिष्ट नव्हे सर्वथा। २० व्याघ्रमृगचर्म गहन। सूकरकेश पट्टकुलें जाण। हस्तिदंत गवाश्रृंग पूर्ण। इतुकीं ब्राह्मण पवित्र म्हणती। २१ असो ऐका पूर्वानुसंधान। यागरक्षणार्थ जातां रघुनंदन। कौशिकाप्रति

शास्त्र से सम्मत (वचन रूपी) बाण चलाकर प्रश्नों के अक्षर रूपी बाणों का निवारण करते हुए (विपक्षी के) सन्देह रूपी धनुष को काट डाला। १५ वक्ता कहता है—सावधान होकर सुनो। सज्जन किसके उच्छिष्ट को स्वीकार करते हैं? वह (मधु) तो मधुमक्खियों का ही पूर्ण उच्छिष्ट होता है। (फिर भी) ऐसा वह मधु देवों को भाता है। १६ बछड़ा (गाय का) दूध पहले पीता है। फिर भी संकोच या संशय न करते हुए वह अवश्य लें। भ्रमर तो फूल का (रस-) सेवन पहले कर जाता है, फिर भी शास्त्रों के जानकार स्वीकार करते हैं। १७ समझ लो, मेघ के मुख से बरसनेवाला पानी कदापि जूठा नहीं होता (माना जाता)। पुरोडाश यज्ञ में हवन किये जानेवाले द्रव्य का जो शेष भाग होता है, उसे जूठा कौन कहता है? १८ गौतम ऋषि प्रार्थना करके गोदावरी नदी को ले आये। उन्होंने उसमें पहले स्नान और (जल) पान किया। (फिर भी गोदावरी के जल को कोई जूठा नहीं समझता।) पुरातन पुराण (एक दृष्टि से) व्यास ऋषि का उच्छिष्ट है, फिर भी वह कदापि उच्छिष्ट नहीं है। १९ भगवान् विष्णु को समर्पित नैवेद्य (भोग) पवित्र होता है। कौन उसे जूठन कहेगा? अतः वाल्मीकि ऋषि का रचा हुआ काव्य कदापि जूठा नहीं है। २० श्रेष्ठ बघ-छाला (बाघ का चमड़ा) और मृगछाला, सूअर के बालों से बना कूँचा, रेशमी वस्त्र, हाथी-दाँत, बनबैल का सींग—इतनी (इन) वस्तुओं को ब्राह्मण पवित्र कहते हैं। २१

राजीवनयन। बोलता जाहला तेधवां। २२ श्रीराम म्हणे महाॠषी। मज तुम्ही नेतां युद्धासी। क्षणभंगुरता देहासी। आत्मप्राप्ति नाहीं मातें। २३ आत्मप्राप्तीविण साधन। जैसे अलंकार गळसरीविण। कीं दीपाविण शून्य सदन। जीवनाविण सरिता जैसी। २४ कीं प्राणाविण कलेवर। कीं आवडीविण आदर। कीं इंद्रियनिग्रहाविण आचार। अनाचार तोचि पैं। २५ कीं भ्रताराविण कामिनी। कीं अत्रिसुताविण रजनी। तैसे आत्मप्राप्तीवांचूनी। व्यर्थ प्राणी नाडले। २६ आत्मप्राप्तीसी कारण। धरावे श्रीगुरूचे चरण। गुरुकृपेविण ज्ञान। कल्पांतींही साधेना। २७ पदार्थ न दिसे नेत्रेंविण। गोड न वाटे जीवनाविण। परिसाविण सुवर्ण। लोहाचें नोहे कल्पांतीं। २८ जो गुरुसेवेसी सादर। आत्मज्ञान जोडोनि कर। उभा त्यापुढें निरंतर। अहोरात्र तिष्ठतसे। २९ गुरुसेवा ज्यासी नावडे।

अस्तु। (अब) पूर्वक्रम के अनुसार (कथा) सुनो। तब यज्ञ की रक्षा के लिए जाते समय कमलनयन रघुनन्दन श्रीराम विश्वामित्र से बोले। २२ श्रीराम ने कहा--हे महर्षि ! तुम मुझे युद्ध के हेतु लिये जा रहे हो। देह क्षण-भंगुर है। मुझे आत्म-ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो रही है। २३ जिस प्रकार (स्त्री के लिए) बिना (सौभाग्य सूचक चिह्न) मंगल-सूत्र के आभूषण व्यर्थ होते हैं, अथवा बिना दीपक के गृह शून्य होता है, अथवा जल-हीन नदियाँ निरर्थक होती हैं, अथवा प्राण-हीन शरीर अथवा प्रेम-हीन आदर व्यर्थ होता है, अथवा जैसे बिना इन्द्रियों के संयम के आचार-व्यवहार अनाचार (दुराचार) ही माना जाता है, वैसे ही बिना आत्म-ज्ञान के साधना को निरर्थक समझा जाता है। २४-२५ अथवा पति के अभाव में कामिनी (का अस्तित्व) अर्थहीन है, अथवा चन्द्र के अभाव में रात अर्थ-हीन है, वैसे ही विना आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के (मनुष्य) प्राणी व्यर्थ ही नष्ट हो जाते हैं। २६ (इसलिए) आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के हेतु श्रीगुरु के चरण पकड़ लें (चरणों का आश्रय ग्रहण किया जाए)। विना गुरु की कृपा के (आत्म-) ज्ञान कल्पान्त तक भी सिद्ध नहीं होगा। २७ विना नेत्र के पदार्थ दिखायी नहीं देता। पानी के अभाव में (पदार्थ) मधुर नहीं लगता। विना पारस के, लोहे का सोना कल्पान्त में (भी) नहीं हो जाता। २८ जो (मनुष्य) गुरु की सेवा के लिए तत्पर (आदरपूर्वक तैयार) रहता है, उसके सामने आत्म-ज्ञान हाथ जोड़कर अविरल दिन-रात खड़ा रहता है। २९ जिसे गुरु की सेवा (करना)

त्याचे ज्ञानासी पडले किडे। जन्ममरणांचें सांकडें। न सरे त्याचें कल्पांतीं। ३० ज्यासी नावडे गुरुसेवन। तो जाहला चतु:षष्टिकळाप्रवीण। साही शास्त्रें मुखोद्गत पूर्ण। परी तें भाषण मद्यपियाचें। ३१ तेणें केलें जरी कीर्तन। दावी वरपांगें डोलोन। परी गुरुदास्य नावडे पूर्ण। त्याचें बंधन चुकेना। ३२ जळो जळो त्याचा प्रताप। काय चाटावें कोरडें तप। जैसें विगतधवेचें स्वरूप। यौवन काय जाळावें। ३३ गर्भान्धाचे विशाल नेत्र। अदातयाचें उंच मंदिर। कीं धनलुब्धाचा तत्त्वविचार। कीं रम्य गृह अंत्यजाचें। ३४ भ्रष्टासी कायसें कुळगोत्र। श्वान नेणे पवित्रापवित्र। जैसें मद्यपियाचें पात्र। श्रोत्रिय न शिवे सर्वथा। ३५ तैसे गुरुकृपेविण जे नर। व्यर्थ नरदेहा आले खर। सदा विषयव्यापारीं सादर।

अच्छी नहीं लगती, उसके ज्ञान में (मानो) कीड़े लगे। उसके लिए जन्म-मरण का संकट कल्पान्त में (भी) नहीं टलता। ३० जिसे गुरु-सेवा अच्छी नहीं लगती, ऐसा मनुष्य यद्यपि चौंसठ कलाओं में प्रवीण हुआ (हो), छहों शास्त्र पूर्णतः उसके मुखोद्गत हो गये (हों) तथापि उसका (वह) भाषण मद्यपी का (-सा) होता है। ३१ यद्यपि उसने कीर्तन किया (हो)। और ऊपरी-तौर से डोल-झूमकर उसने (भक्ति-भाव) दिखाया (हो), तो भी, चूँकि उसे गुरु की दासता (दास्य भक्ति) पूर्णतः अच्छी नहीं लगती, उसके (जन्म-मृत्यु आदि सम्बन्धी सांसारिक) बन्धन नहीं टलते। ३२ जल जाए—जल जाए उसका प्रताप! (उसकी ऐसी) कोरी तपस्या को (लेकर) क्या चाटें? विधवा का सौन्दर्य और यौवन क्या जला दें?—अर्थात् वह जैसे अर्थहीन है, वैसे ही गुरु-सेवा के अभाव में ज्ञान, तप आदि व्यर्थ है। ३३ गर्भावस्था से ही जो अन्धा है, उसके नेत्र विशाल होने पर भी किस काम के? जो दानी नहीं है, ऐसे व्यक्ति का ऊँचा भवन किस काम का? अथवा धन के प्रति लुब्ध व्यक्ति का तत्त्व सम्बन्धी विचार, अथवा अन्त्यज (अछूत) का रमणीय घर व्यर्थ होता है। ३४ शील या आचार-भ्रष्ट व्यक्ति का कैसा (उच्च) कुल और गोत्र! कुत्ता पवित्र और अपवित्र नहीं जानता। जिस प्रकार शराबी के पात्र को श्रोत्रीय ब्राह्मण कदापि नहीं छूता, वैसे ही गुरु-सेवा न भानेवाले व्यक्ति को अस्पृश्य—सम्बन्ध रखने के लिए अयोग्य मानते हैं। उसी प्रकार गुरु-कृपा के बिना जो लोग (रहते) हैं, वे गधे ही हैं, जो व्यर्थ ही नर-देह को प्राप्त हुए हैं। वे हमेशा विषय-व्यवहार में तत्पर रहते हैं।

त्यांसी आपपर नाठवे । ३६ उत्तम मनुष्यदेह पावोन । तेथें साधावें आत्मज्ञान । ज्ञानहीन ते मूढ पूर्ण । गूढ नरक भोगिती । ३७ रघुपतीचे बोल ऐकुनी । सभासंत सुखावले मनीं । विश्वामित्र तेव्हां आनंदोनी । ब्रह्मनंदनाप्रति बोले । ३८ जगद्वंद्य रविकुलभूषण । त्यास उपदेशी दिव्यज्ञान । जो अनंतब्रह्मांडांची सांठवण । लीलावेषधारक जो । ३९ ते वेळे उठोनि रघुनाथ । जो होय कमलोद्भवाचा तात । तो वसिष्ठासी साष्टांग नमित । शरणागत जाहला असे । ४० म्हणे तनमनधनेंसीं अनन्य । श्रीवसिष्ठा तुज मी शरण । ऐसें ऐकतां ब्रह्मनंदन । हृदयीं धरी राघवातें । ४१ म्हणे जगद्वंद्या श्रीरामा । अवतारपुरुषा परब्रह्मा । तूं सच्चिदानंदघन परमात्मा । तुज मी काय उपदेशूं । ४२ तूं आदिनारायण निष्कलंक । भोगींद्र जाहला तुझा तल्पक । वेदशास्त्रांसी पडलें ठक । तुझें स्वरूप वर्णितां । ४३ तुझें नाम जपतां सार ।

उन्हें अपना-पराया याद नहीं रहता । ३५-३६ उत्तम मनुष्य शरीर प्राप्त कर उस (मनुष्य-जीवन) में आत्म-ज्ञान की सिद्धि करें । जो ऐसे आत्म-ज्ञान-हीन हैं, वे पूरे-पूरे मूढ़ हैं और वे गहन नरक (वास) का भोग करते हैं । ३७

(वक्ता द्वारा कहे हुए) रघुपति श्रीराम के ऐसे वचन सुनकर सभा में उपस्थित सज्जन मन में सुख को प्राप्त हो गये । तब विश्वामित्र ने आनन्दित होकर ब्रह्म-नन्दन वसिष्ठ से कहा । ३८ जो श्रीराम जगत् के लिए वन्दनीय हैं, रविकुल के भूषण हैं, जो अनन्त ब्रह्माण्डों के संग्रह और लीला-वेशों के धारक हैं, उन्हें (तुम) दिव्य ज्ञान का उपदेश दो । ३९ उस समय श्रीराम, जो ब्रह्मा के पिता हैं, उठकर वसिष्ठ ऋषि को साष्टांग नमस्कार करके, उनकी शरण में गये । ४० (वे) कहते हैं--'हे श्रीवसिष्ठ (गुरो), तन-मन-धन से, अनन्य भाव से तुम्हारी शरण में आया हूँ ।' यह सुनकर ब्रह्म-नन्दन वसिष्ठ ने श्रीराम को गले लगा लिया । ४१ उन्होंने कहा—हे जगद्-वन्द्य श्रीराम ! हे अवतार धारण करनेवाले (परम) पुरुष, हे परब्रह्म ! तुम सच्चिदानन्द-घन परमात्मा हो । मैं तुम्हें क्या उपदेश दूँ ? ४२ तुम आदि-नारायण हो, निष्कलंक हो । योगीन्द्र शेष भगवान् तुम्हारे लिये पलंग हो गये हैं । तुम्हारे रूप का वर्णन करते हुए वेद-शास्त्र थक गये । ४३ तुम्हारे श्रेष्ठ नाम का जाप करने पर अपर्णा-पति

शीतळ जाहला अपर्णावर। गुरुमहिमा प्रगटवावया साचार। शरण मज आलासी। ४४ देव भक्तांची पूजा करी यथार्थ। याचकांसी राजा दान मागत। सागर जैसा स्तवन करीत। सरोवराचें प्रीतीनें। ४५ वाचस्पति मुक्यासी पुसे विचार। दीपप्रकाश इच्छी दिनकर। चकोरांसी म्हणे अत्रिकुमर। मज तृप्त करा तुम्ही। ४६ कल्पतरु दुर्बळासी मागे दान। जलद चातकासी मागे जीवन। चक्रवाकाचें दर्शन। तरणि इच्छी नवल हें। ४७ प्रीतीनें माता बाळकासी म्हणत। मी तुझें स्तनपान करीन सत्य। कीं तृषाक्रांतासी मागत। उदक जैसें जान्हवी। ४८ वनस्पतींस म्हणे वसंत। मज तुम्ही निववा समस्त। तैसा तूं जगद्गुरु रघुनाथ। गुरूसी शरण आलासी। ४९ संतोषोनि ब्रह्मनंदन। श्रीरामास सन्मुख बैसवून। गुरुसंप्रदाय शास्त्रप्रमाण। महावाक्य दीक्षाविधि। ५० जो मायानियंता जगद्भूषण। तो वसिष्ठापुढें ओढवी कर्ण।

श्रीशिवजी शीतलता को प्राप्त हो गये। तुम वस्तुतः गुरु-महिमा को प्रकट करने के हेतु मेरी शरण में आये हो। ४४ तुम्हारा मेरी शरण में आना ठीक वैसे ही है जैसे यथार्थतः देवता भक्तों का पूजन कर देते हैं, जैसे राजा याचक से दान माँगता हो, समुद्र प्रीति-पूर्वक सरोवर का स्तवन करता हो, जैसे बृहस्पति गूँगे से विचार-परामर्श पूछ लेता हो, सूर्य दीये का प्रकाश चाहता हो, जैसे चन्द्रमा चकोरों से कहता हो कि तुम मुझे तृप्त करो, जैसे कल्पवृक्ष दुर्बल से दान माँगता हो, जैसे मेघ चातक से पानी माँगता हो; अथवा जैसे सूर्य चक्रवाक के दर्शन की इच्छा करता हो—यह सब आश्चर्य (कारी) है। ४५-४७ तुम्हारा मेरी शरण में आना ठीक वैसे ही है, जैसे माता प्रेम-पूर्वक बालक से कहे कि मैं सचमुच तेरा स्तन-पान करूँगी; अथवा गंगा प्यासे व्याकुल मनुष्य से पानी माँगे; अथवा वसन्त वनस्पतियों से कहे कि तुम सब मुझे शान्त करो। वैसे ही (यह बात अद्भुत है कि) हे जगद्गुरु रघुनाथ श्रीराम, तुम गुरु की शरण में आये हो। ४८-४९ ब्रह्म-नन्दन वसिष्ठ ने सन्तुष्ट हो श्रीराम को सामने बैठाकर, गुरु-सम्प्रदाय और शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार महावाक्य (अर्थात् वेदों के अनुसार जीव और ब्रह्म की अभिन्नता सूचित करनेवाले 'तत्त्वमसि' वाक्य का अथवा गायत्री मंत्र) का उपदेश देते हुए दीक्षा-विधि को सम्पन्न किया। ५० जो (श्रीराम) माया के नियन्ता और जगत् के लिए आभूषण हैं, वे वसिष्ठ के सामने (श्रवण करने के लिए) कान कर बैठे हैं (अर्थात्

चहूं वेदांचें जीवन। तें महावाक्य ऋषि सांगे। ५१ वसिष्ठ म्हणे सप्रेम। सर्वद्रष्टा तूं आत्माराम। सर्वव्यापक तूं पूर्णब्रह्म। अतींद्रिय वेगळा। ५२ जगडंबराभास सकळ। हा तुझे मायेचा खेळ। मिथ्याभूत जैसें मृगजळ। साच नव्हे सर्वथा। ५३ तूं अलिप्त सर्वांसी तत्वतां। जैसा सर्वां घटीं बिंबला सविता। कीं काष्ठामाजी अग्नि पाहतां। अलिप्त जैसा असोनि। ५४ कीं वाद्यांमाजी ध्वनि उमटती। कीं कंठीं राग उठती। परी तेथें असोनि नसती। जैसा सर्वां भूतीं राघवा तूं। ५५ कीं दर्पणींचीं स्वरूपें। दिसती परी मिथ्यारूपें। तैसा रामा तूं विश्वरूपें। व्यापोनियां अलिप्त। ५६ बीजामाजी तरुवर। कीं तंतूमाजी वस्त्र। कीं उदकीं तरंग अपार। विश्व समग्र तुजमाजी। ५७ अनंत ब्रह्मांडांच्या कोडी। तुझी माया घडी मोडी। जीवांस भुरळ घालोनि पाडी। विषयावर्तीं सर्वदा। ५८ मायेचे अवधे विकार। ते मृगजळाचे

ध्यानपूर्वक श्रवण करने के लिए बैठे हैं और वसिष्ठ) ऋषि उन्हें चारों वेदों का जीवन-भूत वह महावाक्य (= तत्त्वसि) सुनाते हैं। ५१ वसिष्ठ ने प्रेमपूर्वक कहा—(हे श्रीराम,) तुम सर्वद्रष्टा आत्माराम हो, तुम सर्व-व्यापक पूर्णब्रह्म हो, अतीन्द्रिय एवं अनोखे हो। ५२ जगत् का समस्त ठाठबाट और झलक तुम्हारी माया का खेल है। जिस प्रकार मृग-मरीचिका मिथ्या (भ्रम) होता है, वैसे ही यह सब मिथ्या है, यह कदापि सत्य नहीं है। ५३ जिस प्रकार समस्त घटों में प्रतिबिम्बित होने पर भी सूर्य उनमें नहीं होता, अथवा काठ में अग्नि होने पर भी वह उससे अलिप्त रहती है, उसी प्रकार तुम वस्तुतः सब में होते हो, फिर भी सबसे अलिप्त हो। अथवा वाद्यों में से ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं (यद्यपि वे उनमें नहीं होतीं), अथवा कण्ठ से राग (गीत) निकलते हैं, फिर भी वे वहाँ होने पर भी नहीं होते, वैसे ही हे श्रीराम, तुम सब भूतों में होने पर भी नहीं हो। ५४-५५ अथवा दर्पणों में (दिखायी देनेवाले) रूप, दीखते तो हैं, फिर भी वे मिथ्या-आभास रूप हैं, उसी प्रकार हे श्रीराम, तुम विश्व को अपने रूप से व्याप्त किये रहने पर भी उससे अलिप्त हो। ५६ जैसे बीज के अन्दर बड़ा वृक्ष होता है, अथवा तन्तु के अन्दर वस्त्र अथवा जल के अन्दर असंख्य तरंगें होती हैं, वैसे ही समग्र विश्व तुम में है। ५७ अनन्त ब्रह्माण्डों की पंक्तियों में तुम्हारी माया सुव्यवस्था को बिगाड़ देती है, जीवों को मोहित करके विषय (वासना) के भँवर में नित्य डाल देती है। ५८

दाटले पूर। कीं गंधर्वनगर सविस्तर। रचिलें दिसे परी मिथ्या। ५९ हें वोडंबरीचें लेणें पूर्ण। कीं स्वप्नींचें राज्य-सिंहासन। कीं चित्रींचा हुताशन। ज्वाळा अद्भुत दीसती। ६० कीं दर्पणींचा दिव्य हार। कीं मृगजळामाजी वंध्यापुत्र। शुक्तिका-रजताचें करोनि पात्र। रात्रीस मीन धरीतसे। ६१ नयनांतील पुतळी। गर्भांधें पदरीं धरिली। कीं कल्पांतविजू गिळिली। मशकें केवीं घडे हें। ६२ पांगुळ धांवे अंतराळीं। तेणें आकाशाची साल काढिली। प्रभंजनाची चिंधी फाडिली। साच बोली काय हे। ६३ कीं कुहूचे काळोखें भरिलें। तें दिवा दोहों प्रहरां वाळूं घातलें। कीं उरगाचे पाय बांधिले। सिकता-तंतूकरूनियां। ६४ काढोनि दीपाचा रंग। वस्त्रें रंगवलीं सुरंग। कीं वडवानळामाजी काग। खेळती काय घडे हें। ६५ हें सर्व जैसें असत्य। तैसी माया मिथ्याभूत। साच कीं लटकी इत्यर्थ। ब्रह्मादिका नव्हेची। ६६ मायेचें परम विंदाण।

माया के द्वारा (उत्पन्न) जो समस्त विकार हैं, वे मृगमरीचिका के जल में आयी बाढ़ हैं, (अर्थात् जहाँ वस्तुतः पानी नहीं है, वहाँ बाढ़ कैसी ?) अथवा वे विशाल गन्धर्व-नगर हैं, जो निर्मित तो दिखते हैं, पर होते हैं मिथ्या। ५९ यह सब जादूगर द्वारा निर्मित आभूषण (जैसा) है अथवा सपने में पाया हुआ राज्य-सिंहासन है, अथवा चित्र में अंकित (ऐसी) अग्नि है जिसकी ज्वालाएँ अद्भुत दिखायी देती हैं। ६० अथवा यह दर्पण में दिखायी देनेवाला दिव्य हार है; अथवा कोई वन्ध्या (बाँझ) का पुत्र मृग-मरीचिका (के पानी) में, सींप की चाँदी से बने पात्र में रात के समय मछली पकड़ता हो। ६१ गर्भान्ध ने आँख की पुतली को दामन में धर रखा हो, अथवा मक्खी ने कल्पान्त की बिजली को निगल डाला हो। —यह कैसे हो सकता है ? ६२ (यह ऐसा हुआ मानो) पंगु मनुष्य अन्तराल में दौड़ता है और उसने आकाश का छिलका निकाल लिया, तेज हवा की धज्जियाँ बना लीं। क्या यह उक्ति सत्य है ? ६३ अथवा रात के अंधेरे से भरा हुआ वस्त्र दिन में दुपहर के समय सूखने के लिए रखा; अथवा बालू के तन्तुओं से साँप के पाँवों को बाँध दिया; अथवा दीपक के रंग निकालकर (उनमें) वस्त्र अच्छी तरह रंग दिये; अथवा बड़वाग्नि में कौए खेलते हैं—क्या यह (सम्भव) हो सकता है ? ६४-६५ यह सब जैसे असत्य है, वैसे माया मिथ्या है। परन्तु ब्रह्मा आदि की (भी) समझ में नहीं आता कि सचमुच यह सत्य है अथवा मिथ्या है। ६६ माया की

थोरथोरांसीं न कळे पूर्ण। तरी मायेची कथा सांगेन। ऐक सावधान श्रीरामा। ६७ जेणें न्यायशास्त्र निर्मिलें पूर्ण। तो गौतम ऋषि परम प्रवीण। त्याचा शिष्य अति सुजाण। गाधि नाम तयाचें। ६८ त्यास चोहों वेदांचें अध्ययन। षट्शास्त्रीं परम निपुण। तेणें केलें दिव्य अनुष्ठान। जाह्ला प्रसन्न श्रीविष्णु। ६९ मग बोले इंदिरानाथ। प्रसन्न जाह्लों माग इच्छित। यावरी तो ब्राह्मण बोलत। काय तें ऐक श्रीरामा। ७० गाधि म्हणे हृषीकेशी। मज दावीं तुझी माया कैशी। तिनें ठकविलें बहुतांसी। मज वेगेंसीं पाहूं दे। ७१ ऐकोनि हांसला नारायण। मायापाश परम दारुण। तोडीं म्हणोनि येती शरण। तूं तीस पाहीन कां म्हणसी। ७२ दिसतें तें अवघें असत्य। हेंची मायेचें रूप यथार्थ। जैसा दोरीवरी सर्प भासत। कीं शुक्तिकेवरी रजत जैसें। ७३ कीं

(ऐसी) परम (अद्‌भुत) कारीगरी बड़े-बड़ों की पूर्णतः समझ में नहीं आती। फिर भी, हे श्रीराम! मैं माया की कथा कहूँगा। सावधान होकर सुनो। ६७

जिन्होंने सम्पूर्ण न्यायशास्त्र की रचना की वे गौतम ऋषि परम प्रवीण थे। उनके एक अति सुज्ञानी शिष्य थे। उनका नाम 'गाधि' था। ६८ उन्होंने चारों वेदों का अध्ययन किया था। वे छहों शास्त्रों में परम निपुण थे। (एक समय) उन्होंने दिव्य अनुष्ठान किया, (जिससे) भगवान् विष्णु (उनसे) प्रसन्न हो गये। ६९ तदनन्तर इन्दिरापति श्रीविष्णु (उनसे) बोले—'(मैं) प्रसन्न हुआ; (अतः) इच्छित (वस्तु) माँगो।' हे श्रीराम! वह सुनो कि इस पर उस ब्राह्मण ने क्या कहा। ७०

गाधि ने कहा—'हे हृषीकेशी (विष्णु)! मुझे दिखाओ—अपनी माया कैसी है। (सुनते हैं कि) उसने बहुतों को ठग लिया है। मुझे शीघ्रता से (उसे) देखने दो। ७१ (यह) सुनकर श्रीनारायण हँस पड़े और बोले—'माया का पाश बड़ा दारुण होता है। मैं उसे काटता हूँ—इसलिए (लोग) मेरी शरण में आते हैं। उसे देखने की बात क्यों करते हो? (देखना क्यों चाहते हो?) ७२ जो दिखायी देता है, वह समग्र असत्य (आभास) है—माया का यही यथार्थ रूप है। जैसे रस्सी में साँप (का अस्तित्व) जान पड़ता है अथवा सीप में चाँदी का आभास होता है, वैसे (ही वस्तुतः कुछ नहीं होने पर भी) दिखायी देता है कि कुछ है। ७३

खुंट तोचि चोर। भ्रांतासी भासे साचार। जैसें स्वप्नींचें सैन्य अपार। जागृतींत मिथ्या तें। ७४ गाधि म्हणे वैकुंठराया। तूं मिथ्यारूप सांगसी माया। तरी मार्कंडेयऋषिवर्या। ब्रह्मादिकां भुलविलें। ७५ तरी ते मज क्षणभरी। सर्वोत्तमा दावीं नेत्रीं। हांसतसे वैकुंठविहारी। बोल ऐकोन तयाचे। ७६ हरि म्हणे माया देखून। समूळ जासी तूं भुलोन। तुझे कासावीस होतील प्राण। मग कोण सोडवील। ७७ तुझी भ्रंशेल सकळ मती। पडसील महा आवर्तीं। मग गाधि म्हणे जगत्पती। वर निश्चित देईं मातें। ७८ मी कासावीस जेव्हां होईन। तेव्हां तूं मज आठव दे येऊन। तुझें करितांचि नामस्मरण। पुढती भेटें ऐसाचि। ७९ अवश्य म्हणोनि जगन्निवास। जाता जाहला स्वस्थानास। कांहीं एक लोटले दिवस। ऐकें सर्वेशा राघवा। ८० जान्हवीतीरीं अरण्यांत। गाधि राहिला स्त्रियेसहित। एकदां माध्यान्ही आला आदित्य।

अथवा भ्रम में पड़े हुए व्यक्ति को खूँटा ही वस्तुतः चोर मालूम होता है, (लेकिन वस्तुतः वह चोर नहीं है), अथवा सपने में दिखायी देनेवाली अपार सेना, जागृत अवस्था में मिथ्या (सिद्ध) होती है। (वैसे ही माया के प्रभाव से चारों ओर की वस्तुएँ सत्य प्रतीत होती हैं, परन्तु ज्ञान का उदय होने पर विदित हो जाता है कि वस्तुतः उनका अस्तित्व नहीं है।) ७४ (तब) गाधि ने कहा—'हे वैकुण्ठ-राज! तुम माया को मिथ्या रूप बताते हो। फिर उसने मार्कण्डेय जैसे श्रेष्ठ ऋषि तथा ब्रह्मा आदि को कैसे मोहित किया? ७५ इसलिए हे सर्वोत्तम भगवान्! मुझे क्षण-भर के लिए (वह दिखाओ) मेरे नेत्रों से दिखा दो (देखने दो)।' उनके वचन सुनकर वैकुण्ठविहारी श्रीविष्णु हँसते हैं। ७६ (फिर) श्रीहरि कहते हैं—'माया को देखकर तुम पूर्णतः मोहित हो जाओगे। तुम्हारे प्राण व्याकुल हो जाएँगे। फिर तुम्हें कौन मुक्त करेगा? ७७ तुम्हारी समस्त मति भ्रम में पड़ेगी, तुम बड़े भँवर में फँस जाओगे।' तब गाधि ने कहा—'हे जगत्पते! मुझे ऐसा निश्चित वर दो—मैं (गाधि) जब व्याकुल हो जाऊँगा, तो तुम आकर मुझे स्मरण दिलाओगे, नाम स्मरण करते ही तुम मिल जाओगे।' ७८ 'अवश्य, ऐसा ही होगा'—कहकर जगन्निवास श्रीविष्णु अपने स्थान (के प्रति) चले गये। हे सर्वेश श्रीराम! सुनो, कुछ-एक दिन बीत गये। ८०

गंगा के तट पर एक अरण्य में गाधि स्त्री-सहित रहते थे। एक

ऋषि जात स्नानातें। ८१ प्रवेशतां गंगाजीवनीं। मनांत म्हणे माया अझुनी। मज कां न दावी चक्रपाणी। कैसी करणी तयाची। ८२ अघमर्षण करी ब्राह्मण। तों मायेनें मांडिलें विंदाण। गाधीस वाटे आलें मरण। व्यथा दारुण जाहली। ८३ तों पातले यमदूत। तिहीं प्राण काढिले त्वरित। यमापाशीं मारीत। गाधि नेला तेधवां। ८४ तों तेथें यम जाचणी दारुण। कुंभीपाकीं घालिती नेऊन। असिपत्रवनीं हिंडवून। तप्त स्तंभासी बांधिती। ८५ इतुकीं दुःखें विप्र भोगित। परी आपण उभा जान्हवींत। मग तो जन्मला चांडाळयोनींत। कंटज नाम तयाचें। ८६ पंचवीस वर्षेंपर्यंत। स्त्रीपुत्र जाहले बहुत। वाटा पाडोन असंख्यात। द्रव्य अपार जोडिलें। ८७ नानापरींच्या हिंसा करी। गोब्राह्मण जीवें मारी। तों तेथें आली महामारी। सर्वही मेलीं

दिन सूर्य दिन के मध्य भाग में आया अर्थात् जब दुपहर हो गयी, तो (वे) ऋषि स्नान के लिए चले गये। ८१ गंगा के पानी में प्रवेश करने पर उन्होंने मन में कहा (सोचा)—चक्रपाणि भगवान् मुझे अब भी माया क्यों नहीं दिखाते? कैसी उनकी करनी है? ८२ जब वह ब्राह्मण अघमर्षण (विशिष्ट मंत्र के पाठ के साथ की जानेवाली, वैदिक संध्या के अन्तर्गत जल-प्रक्षेप रूप एक पाप-नाशिनी क्रिया) कर रहे थे, तो माया ने (अपनी लीला दिखाने की) ठान ली। तब गाधि को प्रतीत हुआ कि मौत आ गयी और उसे भीषण व्यथा (अनुभव) हुई। ८३ इतने में यमदूत आ धमके। उन्होंने शीघ्र ही (गाधि के) प्राणों को (खींच) निकाला और गाधि को (तब) पीटते-पीटते वे यम के पास ले गये। ८४ वहाँ तो यम का दारुण उत्पीड़न था। उन्हें ले जाकर (दूतों ने) कुम्भीपाक (नामक नरक) में डाल दिया। (तदनन्तर, जहाँ के पेड़ों के पत्ते तलवार की धार के समान तेज होते हैं, ऐसे) असि-पत्र (नामक) वन में घुमा-फिराकर तप्त खम्भे से बाँध दिया। ८५ वह ब्राह्मण (गाधि) इतने दुःख भोग रहा था, फिर भी (वस्तुतः) स्वयं गंगा में खड़ा था। फिर वह चण्डाल योनि में उत्पन्न हुआ। (तब) उसका नाम 'कण्टज' था। ८६ पचीस वर्षों तक (वहीं रहते हुए) उसके बहुत स्त्री-पुत्र हुए। अनगिनत डकैतियाँ डालकर उसने अपार धन जोड़ लिया। ८७ उसने नाना प्रकार की हत्याएँ कीं; गौओं और ब्राह्मणों को जान से मार डाला। तब वहाँ महामारी फैल गयी और उसमें (उसके) परिवार के सब लोग मर गये। ८८

कुटुंबींचीं । ८८ बाप माय स्त्री सुत । एकदांचि पावलीं मृत्य । कंटज विचारी मनांत । होऊं विरक्त येथोनियां । ८९ रडे कंटज नाम महार । आतां न मिळे म्हणे संसार । मग अतीत होऊन दुराचार । देशोदेशीं हिंडतसे । ९० आला केरळ देशाप्रती । तों तेथींचा मृत्यु पावला नृपती । त्यास नाहीं पुत्रसंतती । मग प्रधान करिती विचार । ९१ मग शुंडादंडीं माळ देऊन । शृंगारूनी हिंडविती हस्तीण । तंव कंटजाचे कंठीं आणोन । माळ घातली अकस्मात । ९२ सहा वर्षें राज्य करून देख । भ्रष्टविले सकळ लोक । घरीं जेऊं घातले सकळिक । सोइरे केले बहुतचि । ९३ एके दिवशीं तो निर्लज्ज । एकला जात बाहेर कंटज । प्रधानादि सेवक सहज । पाठीं धांवती रायाचे । ९४ अवघियांस दटाविलें रागें । म्हणे येऊं नका मज मागें । प्रधान गुप्त पाहती वेगें । कोठें जातो म्हणोनियां । ९५ तों ते गांवींचे अनामिक । परम उन्मत्त मद्यप्राशक । ते वाटेसी भेटले सकळिक । कंटजासी तेधवां । ९६ तिहीं कंटज ओळखिला सत्वरा । म्हणती आमुचा हा सोयरा ।

(उसके) पिता, माता, स्त्री, पुत्र—एकदम मृत्यु को प्राप्त हो गये, तो कण्टज ने मन में विचार किया कि अब से मैं विरक्त हो जाऊँगा । ८९ कण्टज नामक यह चण्डाल रो रहा है—कहता है कि अब घर-गिरस्थी नहीं मिलेगी। फिर उससे दुराचार दूर हो गया (छूट गया) और वह देश-देश घूमता रहा । ९० (घूमते-घूमते जब) वह केरल देश में आ गया, तब वहाँ का राजा चल बसा । उसके कोई पुत्र-सन्तान न थी, तब प्रधानों (मंत्रियों) ने विचार (विनिमय) किया । ९१ फिर सूँड़ में (पुष्प) माला देकर, एक हथनी को सजाकर, वे उसे घुमाते रहे । तब उस हथनी ने सहसा माला कण्टज के गले में डाल दी (पहना दी) । ९२ और देखो, छः साल राज्य करते हुए उसने सब लोगों को भ्रष्ट कर डाला । सबको अपने घर में भोजन कराया और बहुत से लोगों को रिश्तेदार बनाया । ९३ एक दिन वह निर्लज्ज कण्टज अकेला बाहर जा रहा था, तो मंत्री आदि सेवक स्वाभाविक रूप में अपने राजा के पीछे दौड़ते हैं (चलने लगे) । ९४ (तब) उसने क्रोध से सबको डाँटा और कहा—मेरे पीछे मत आओ । तो मंत्री गुप्त रूप में देखते रहे कि वह कहाँ जा रहा है । ९५ तब उस गाँव के वे सब अन्त्यज, जो परम उन्मत्त और मद्यपी थे, रास्ते में कण्टज से मिले । ९६ उन्होंने झट से कण्टज को पहचाना और कहा कि यह (तो)

येणें लोक भ्रष्टविले एकसरा। नाहीं कळलें कोणासी हें। ९७ त्यांसी कंटज दटावी देखा। म्हणे ही गोष्ट बोलूं नका। नाहीं तरी तुम्हां सकळिकां। शिक्षा करीन साक्षेपें। ९८ तें प्रधानवर्गीं ऐकिलें। म्हणती राज्य समस्त बुडविलें। कंटजासी मारून बाहेर घातलें। मग विचारीं बैसले समस्त। ९९ श्रेष्ठीं काढिला शास्त्रार्थ। घ्यावें देहांत प्रायश्चित्त। मग अग्नि प्रवेश समस्त। लोक करिती नगरींचे। १०० प्रधानादि अष्टाधिकारी। स्त्रीपुरुष ते अवसरीं। भस्म जाहले अग्नि-भीतरीं। बाळें नगरीं उरलीं तैं। १०१ ऐसें कंटजें देखिलें। म्हणे थोर पाप मज घडलें। तेणेंही तेव्हां सरण रचिलें। वरी आपण निजेला। १०२ तों अग्निशिखा ते वेळीं। वामांगीं येऊन झगटली। कंटजें हांक फोडिली। उडी घातली खालती। १०३ तों इकडे गाधि ब्राह्मण। बाहेर निघाला हांक फोडून। फोड आला तरतरोन। वामांगासी देखिला। १०४ म्हणे मी गाधि ब्राह्मण। जान्हवींत करितां स्नान। करीत

हमारा सगा है। (परन्तु) इसने सब लोगों को एकदम भ्रष्ट किया--यह किसी को मालूम नहीं हुआ। ९७ (तब) देखो, (कैसे) कण्टज उन्हें डाँटता है और कहता है--यह बात (किसी से) न कहो। नहीं तो मैं तुम सबको अवश्य दण्ड दूँगा। ९८ मंत्रीवर्ग ने यह सुना और कहा--इसने समूचे राज्य को डुबो दिया। फिर उन्होंने कण्टज को (राज्य के) बाहर निकाल दिया। (तदनन्तर) वे सब परामर्श करने बैठे। ९९ श्रेष्ठ पुरुषों ने शास्त्रार्थ निकाला कि (इस पाप के लिए) सब देहान्त प्रायश्चित्त करें। (उसके अनुसार) फिर नगर के सब लोग अग्नि में प्रवेश करते हैं (कर गये)। १०० उस समय मंत्री आदि आठों अधिकारी तथा स्त्री-पुरुष (नागरिक) अग्नि में (जलकर) भस्म हो गये, तो नगर में केवल बच्चे शेष रहे। १०१ कण्टज ने (जब) ऐसा देखा तो कहा (सोचा)--मुझसे बड़ा पाप (घटित) हो गया। उसी ने तब चिता बनायी और वह उसपर लेट गया। १०२ तो उस समय आग की लपट उसके बाएँ अंग में छू गयी, तब कण्टज चिल्ला उठा और नीचे की ओर कूद पड़ा। १०३

त्यों ही इधर (गंगाजल में खड़े) गाधि ब्राह्मण चीखकर (जल में से) बाहर निकल पड़े। उन्होंने बाएँ अंग में (जल जाने के कारण) फूला हुआ फोड़ा देखा। १०४ उसने कहा--मैं गाधि (नामक) ब्राह्मण हूँ। गंगा में

असतां अघमर्षण । दुःखें दारुण भोगिलीं । १०५ सूर्यसुतें मज गांजिले । चांडाळयोनींत जन्मविलें । सहा वरुषें राज्य केलें । लोक भ्रष्टविले सर्वही । १०६ मृत्यु पावले असंख्य जन । जरी हें असत्य म्हणावें स्वप्न । तरी फोड आला तरतरोन । करी रुदन विप्र तो । १०७ विसरला तप अनुष्ठान । नाठवे संध्या वेदाध्ययन । आश्रमासी आला परतोन । चिंतार्णवीं पडियेला । १०८ स्त्री विनवी भ्रतारालागून । तुमचे वामांगीं कां झोंबला अग्न । तंव तो विलापें ब्राह्मण । म्हणे माझेनि हें न सांगवे । १०९ तों गाधीचा गुरुबंधु अकस्मात । आला तीर्थें करीत करीत । गाधि तयासी क्षेम देत । म्हणे कृश कां बहुत जाहलासी । ११० तेणें सांगितलें वर्तमान । मज एक पाप घडलें दारुण । केरळ देशीं एक नगर संपूर्ण । बाळेंचि तेथें नांदती । १११ एकाचे घरीं म्यां घेतलें अन्न । मग त्यांसी पुशिलें वर्तमान । ते म्हणती कंटज महार येऊन । ग्राम आमुचा भ्रष्टविला । ११२ समस्तांचे घेऊन प्राण । मग तो गेला येथून । ऐसें पापी नगर तें पूर्ण । तेथें भोजन

स्नान करते समय अघमर्षण करते हुए दारुण दुःखों का भोग किया । १०५ सूर्य-पुत्र यम ने मुझे सताया, चण्डाल योनि में मुझे उत्पन्न कराया, छः साल मैंने राज्य किया और सभी लोगों को भ्रष्ट किया । १०६ (मेरे कारण) असंख्य लोग मृत्यु को प्राप्त हुए । यदि इसे असत्य (अर्थात्) स्वप्न कहें, तो (सत्य यह है कि) फोड़ा फूल (उठ) आया । इस पर वह ब्राह्मण रोता है (रहा) । १०७ वह तप और अनुष्ठान भूल गया । उसे संध्या और वेदों का अध्यय याद नहीं आ रहा । यह आश्रम में लौट आया । वह तो चिन्ता के सागर में पड़ गया । १०८ स्त्री ने पति से विनम्रता-पूर्वक पूछा—तुम्हारे बाएँ अंग में आग कैसे छू गयी ? तब वह ब्राह्मण विलाप करने लगा । उसने कहा—मुझसे यह कहा नहीं जा सकता । १०९ तब गाधि का गुरु-बन्धु तीर्थ-यात्रा करते-करते अकस्मात् वहाँ आया । उसे स्नेह-पूर्वक गले लगाते हुए गाधि ने पूछा—तुम बहुत कृश (दुबले-पतले) क्यों हुए हो ? ११० (तब) उसने यह समाचार कहा—मुझसे एक दारुण पाप (घटित) हुआ । केरल देश में एक सम्पूर्ण नगर ऐसा है जहाँ केवल बच्चे ही रहते हैं । १११ (किसी) एक के घर में मैंने अन्न ग्रहण किया । फिर उनसे समाचार पूछा, तो उन्होंने कहा—कण्टज (नामक एक) अन्त्यज ने आकर हमारे नगर को भ्रष्ट किया । ११२ सब के प्राण लेकर बाद

घडलें मज। ११३ तो दोष जावया संपूर्ण। द्वादश वर्षें करितों तीर्थाटन। ऐसें तो गुरुबंधु सांगोन। गेला पुढें वाराणसीं। ११४ प्रचीत पहावया समस्त। गेला आपण गाधि तेथ। तों अवघ्या खुणा यथार्थ। प्रत्यया आल्या सर्वही। ११५ आपण जेथें जन्मला होता महार। तेथेंही घेतला समाचार। तंव ते अनामिक सांगती समग्र। कंटज येथेंचि जन्मला। ११६ तेणें सहा वरुषें राज्य करोनी। केरळ नगर भ्रष्टवूनी। मग काळें तोंड घेवोनी। गेला नेणों कोणीकडे। ११७ गाधि आश्रमासी आला परतोन। घेतलें क्षितीवरी घालून। म्हणे आतां कैचें ब्राह्मणपण। गेलों बुडोन रौरवीं। ११८ शोकें कपाळ आदळी क्षितीं। म्हणे मी गौतम-शिष्य विख्यात जगतीं। मज हे कैसी घडली गती। कोणासी स्थिति पुसों हे। ११९ असत्य जरी म्हणावें वहिलें। तरी सर्वही प्रत्ययास आलें। जन्मकर्मदुष्कृत-फळें। पाहोनि आलों स्वनयनीं। १२० सत्य कीं असत्य पूर्ण। मज कोण सांगेल उकलोन। कोणासी मी जाऊं शरण। कैंचें ब्राह्मण्य

में वह यहाँ से चला गया। वह सम्पूर्ण नगर ऐसा पापी है। वहाँ मुझसे भोजन किया गया। ११३ उस दोष के सम्पूर्ण निकल जाने के लिए मैं बारह वर्ष तीर्थाटन कर रहा हूँ। वह गुरु-बन्धु ऐसा कहकर आगे वाराणसी (की ओर) चला गया। ११४ (उसके कथन की) जाँच-पड़ताल कर देखने के लिए गाधि स्वयं वहाँ गये, तो सभी चिह्न यथार्थ रूप में उसे अनुभव हुए। ११५ जहाँ वह अन्त्यज स्वयं उत्पन्न हुआ था, वहाँ भी उसने पूछताछ की, तो उन सभी अनामिकों (चण्डालों) ने कहा--कण्टज वहीं जन्मा था। ११६ उसने छः वर्ष राज्य करके केरल (के एक) नगर को भ्रष्ट किया और न जाने काला मुँह लेकर कहाँ चला गया? ११७ (तदनन्तर) गाधि आश्रम में लौट आये। ज़मीन पर लोटते हुए वे सोचते हैं-- अब कैसा ब्राह्मणत्व! मैं (तो) रौरव (नरक) में डूब गया। ११८ वह शोक से (करते हुए) ज़मीन पर सिर पटकते हैं और कहते हैं--गौतम के शिष्य के रूप में मैं जगत् में विख्यात हूँ। मेरी यह कैसी दशा हुई? मैं इस स्थिति के बारे में किससे पूछूँ। ११९ यदि इसे सचमुच असत्य कहूँ, तो यह सभी तो अनुभव हुआ। जन्म-कर्म तथा पाप के फल अपनी आँखों से देख आया। १२० मुझे यह सुलझाकर कौन कहेगा कि यह सत्य है अथवा पूर्णतः असत्य है? मैं किसकी शरण में जाऊँ?

मज आतां । १२१ म्हणे धांव धांव इंदिरावरा । वैकुंठवासिया करुणाकरा । पतितपावना सर्वेश्वरा । राजीवनेत्रा जगद्-गुरो । १२२ तत्काळ प्रगटला जगज्जीवन । म्हणे रे गाधि सावधान । माझी माया परम गहन । ब्रह्मादिकां अतर्क्य । १२३ तूं म्हणविसी सर्वज्ञ जाणता । सत्य कीं असत्य माया सांग आतां । बहुत ऋषी तर्क करितां । निर्वाह सर्वथा नव्हेचि । १२४. जे कथिती सदासर्वदा ज्ञान । सांगती माया लटकी म्हणोन । तेही मायेंत गेले गुंफोन । जाहले दीन सर्वही । १२५ तुज माया दाविली किंचित । पुढें आणिक पाहें अद्भुत । गाधि धांवोन चरण धरीत । सोडवीं मज येथोनी । १२६ मग गाधि भगवंतें हृदयीं धरिला । वरदहस्त मस्तकीं ठेविला । निजात्म-बोध प्रकट केला । सावध जाहला ब्राह्मण । १२७ जैसा स्वप्न देखतां जागा होय । कीं यामिनीअंतीं उगवे सूर्य । तैसा बोध प्रकटतां मोहभय । विरोन गेलें सर्वही । १२८ असो गाधीचा उद्धार जाहला । आपुले स्वरूपीं मेळविला ।

मेरे लिए अब कैसा ब्राह्मणत्व? १२१ (फिर) वे कहते हैं--हे इन्दिरापति! दौड़ो ! दौड़ो ! हे वैकुण्ठवासी ! हे करुणाकर, हे पतितपावन सर्वेश्वर ! हे राजीवनयन जगद्गुरो ! (दौड़ो) । १२२ (इस पर) जगज्जीवन भगवान् तत्क्षण प्रकट हुए और बोले--हे गाधि ! सावधान ! मेरी माया परम गहन है (और) ब्रह्मा आदि के लिए अतर्क्य है । १२३ तुम सर्वज्ञ तथा जानकार कहाते हो । अब कहो कि माया सत्य है वा असत्य । बहुत ऋषियों के तर्क करने पर भी उनकी बिलकुल नहीं निभती । १२४ जो सदा सर्वदा ज्ञान (की बातें) कहते हैं, माया को मिथ्या कहकर बताते हैं वे भी माया (के जाल) में फँस गये और सभी दीन हो गये । १२५ मैंने (तो) तुम्हें किंचित् (ही) माया दिखायी--आगे और अद्भुत (बात) देखो । (यह सुनकर) गाधि ने दौड़कर चरण पकड़ लिये और कहा--'मुझे इससे मुक्त करो ।' १२६ तदनन्तर भगवान ने गाधि को हृदय से लगाया और उसके मस्तक पर हाथ रखा । आत्म-ज्ञान का बोध कराया, तो ब्राह्मण होश में आया । १२७ जैसे (कोई) सपना देखते हुए जागृत हो जाए अथवा जैसे रात के अन्त में सूर्य का उदय हो जाए, वैसे बोध (ज्ञान) के प्रकट हो जाने पर सभी मोह तथा (अज्ञान के कारण उत्पन्न) भय नष्ट हो गया । १२८ अस्तु ! गाधि का उद्धार हुआ और उन्हें

हा इतिहास सांगितला। मायेनिमित्त श्रीरामा। १२९ मग बोले रघुनंदन। माया व्हावया काय कारण। स्वरूप निर्विकार निर्गुण। तेथें स्फुरण कां जाहलें। १३० पिंड ब्रह्मांड नाना योनी। नाना वर्ण नाना खाणी। हे मुळींहून मायेची करणी। मिथ्याभूत सर्वही। १३१ कीं निर्गुणा सगुण लागलें। अव्यक्त तें व्यक्तीस आलें। अनामास नाम ठेविलें। कां अंग लाविलें अनंगा। १३२ ऐकोन श्रीरामाचा प्रश्न। आनंदला ब्रह्मनंदन। म्हणे बा रे तूं परिपूर्ण चैतन्यघन। जाणोन प्रश्न करितोसी। १३३ रामा तुझेंचि दिव्य ज्ञान। तुजलाचि सांगतों परतोन। जैसें सुर-तरूचें फळ घेऊन। त्यासचि नैवेद्य दाविजे। १३४ कीं कनकाद्रीचें सुवर्ण घेऊन। त्यावरीच अलंकार घातले घडून। कीं क्षीरसिंधूचें दुग्ध घेऊन। पुन्हां त्यासीच समर्पिलें। १३५ कीं सागरींचें उदक मेघ नेती। मागुती सरिता आणूनि समर्पिती। तैसा श्रीरामा तुजप्रती।

स्वस्वरूप को प्राप्त कराया गया। हे श्रीराम ! माया के निमित्त मैंने यह इतिहास कहा। १२९

तदनन्तर श्रीराम ने कहा--'माया के निर्माण का क्या कारण है ? जो स्वरूप में निर्विकार और निर्गुण है, वहाँ (उसमें) गुण, विकार आदि का संचार क्यों हो गया ? १३० पिण्ड, ब्रह्माण्ड, नाना योनियाँ, नाना वर्ण और नाना खानें--यह मूलतः माया की करनी है--(अतः) सभी मिथ्या है। १३१ अथवा (क्या) निर्गुण (ब्रह्म) से सगुण की उपलब्धि हुई ? क्या जो अव्यक्त है, वही व्यक्त रूप को प्राप्त हुआ ? अथवा क्या जो अनामा (नाम-रहित) है, उसे ही नाम दिया गया ? अथवा जो शरीर-रहित (निराकार) है, उसके ही अंग (शरीर) लगाया (उत्पन्न किया) गया ?' १३२ श्रीराम का प्रश्न सुनकर ब्रह्मनन्दन वसिष्ठ आनन्दित हुए। उन्होंने कहा--'तुम तो पूर्णतः चैतन्य रूपी घन हो। तुम जानते हुए (भी) प्रश्न कर रहे हो। १३३ हे श्रीराम ! जिस प्रकार कल्प-वृक्ष का फल लेकर उसे ही (उसका) भोग लगाया जाता है, उसी प्रकार तुम्हारा ही दिव्य ज्ञान तुमसे ही फिर से कहता हूँ। १३४ अथवा सुवर्ण-पर्वत से सोना लेकर उसके गहने बनाकर उसी (पर्वत) को पहना दिये, अथवा क्षीर-सागर से दूध लेकर उसी को फिर से समर्पित किया, अथवा मेघ समुद्र से पानी ले जाते हैं और नदियाँ (वह पानी) फिर से लाकर उसे समर्पित करती हैं; उसी प्रकार हे श्रीराम ! तुम्हारा ही ज्ञान

तुझेंच ज्ञान सांगतों । १३६ तरी तुवां केला प्रश्न । स्वरूपीं कां जाहलें स्फुरण । तरी येविषयीं दृष्टांत सांगेन । ऐक रामा निर्धारें । १३७ जैसा कोणी पुरुष निद्रिस्थ । पहुडला असे चितारहित । तो स्वइच्छें होऊन जागृत । कार्य कांहीं आठवी । १३८ कीं समुद्रीं उठे लहरी । तैसी ध्वनि उठे चिदंबरीं । मी म्हणोन निर्धारीं । हांक थोर जाहली । १३९ एक असतां ब्रह्मानंद । निःशब्दीं उठिला शब्द । ते ध्वनि माया नाम प्रसिद्ध । वेदांतशास्त्र गर्जतसे । १४० जिचें नाम मूळ प्रकृती । जी आदिपुरुषाची चिच्छक्ती । तिनें शेजे निजवोनि पती । सृष्टिकार्य आरंभिलें । १४१ येवढें ब्रह्मांड केलें निर्माण । परी पतीस कळों नेदी वर्तमान । ते परम कवटाळीण । नसतींच दैवतें उभीं केलीं । १४२ विधि विष्णु उमाकांत । हीं तिन्ही बाळें जिचे आज्ञेंत । नेत्र उघडोन निश्चित । पाहों नेदी स्वरूपाकडे । १४३ ब्रह्मसुखाचे समुद्रांत । बुडाले हे जीव समस्त । परी तेथींची गोडी किंचित । चाखों

मैं फिर से तुम्हें बताता हूँ । १३५-१३६ अतः तुमने जो यह प्रश्न किया-- भगवान के अपने रूप में स्फुरण क्यों हुआ, इस सम्बन्ध में मैं दृष्टान्त कहूँगा । हे श्रीराम ! उसे निर्धार-पूर्वक सुनो । १३७ जैसे कोई एक पुरुष निद्राधीन हो, चिन्तारहित लेटा हुआ हो, और वह अपनी इच्छा से जागृत होकर कुछ कार्य को याद करने लग जाए, अथवा समुद्र में लहर उत्पन्न हो जाए, वैसे ही चैतन्य रूपी आकाश में ध्वनि उत्पन्न हो गयी और वह 'मैं ब्रह्म हूँ (सोऽहम्)'--ध्वनि निश्चय ही बड़ी उच्च टेर बन गयी । १३९ आनन्द रूप ब्रह्म अकेला था, तो निःशब्द (नितान्त शान्त--ध्वनि-हीन) अवस्था में से ध्वनि का निर्माण हुआ । वेदान्त शास्त्र ज़ोर से कहते हैं कि वह ध्वनि 'माया' नाम से प्रसिद्ध (विख्यात) है । १४० जिसका नाम 'मूल प्रकृति' है, जो आदि पुरुष की 'चिद्शक्ति' है, उसने अपने पति को शय्या पर सुलाकर सृष्टि के निर्माण कार्य का आरम्भ किया । १४१ उसने इतने (बड़े) ब्रह्माण्ड का निर्माण किया, फिर भी (अपने) पति को (इसका) समाचार जानने नहीं दिया । वह तो बड़ी जादूगरनी है--जिसने मिथ्या (मायावी) देवताओं को खड़ा (उपस्थित) कर डाला । १४२ विधाता, विष्णु तथा शिव-- ये तीनों बालक जिसकी आज्ञा में रहते हैं (आज्ञाकारी बने रहते हैं) वह (किसी को) आँखें खोलकर आत्मस्वरूप (ब्रह्मस्वरूप) की ओर नहीं देखने देती । १४३ ये सब जीव

नेदी कोणातें। १४४ चैतन्य इनेंच झांकिलें। इनें अरूप रूपासि आणिलें। अनंत ब्रह्मांडींचे पुतळे। एकेचि सूत्रें नाचवी। १४५ इनें निर्गुणास गुण लाविले जाण। अनामासी ठेविलें नामकरण। निराकारासी आकारून। जीवित्वासी आणिलें। १४६ हे परम पतिव्रता साचार। पतीस न कळतां जाह्ली गरोदर। ब्रह्मांड रचिलें समग्र। नाना विकारेंकरूनियां। १४७ नाना योनी विकार भाव। इनें फांसां पाडिले अवघे जीव। गाधीस कैसें दाविलें लाघव। मिथ्या कर्तृत्व नसतेंचि। १४८ कोणी मुरडे स्वरूपाकडे। त्यासी नसतेंचि घाली सांकडें। अथवा स्वर्गसुख रोकडें। पुढें दावून भुलवी कीं। १४९ निजात्मसुखगोडी निःसीम। ती जीवासी केली कडू परम। विषयविषरूप मोहभ्रम। तेथें गोडी आणिली। १५० असो ऐसी ते आदिशक्ती। तिनें इच्छा धरिली चित्तीं। तिसीच गुणक्षोभिणी म्हणती। त्रिगुण निश्चित केले इनें। १५१ सत्व रज तम जाण। तेचि विधि विष्णु ईशान। त्रिशक्तिरूपें

ब्रह्मसुख (ब्रह्मानन्द) के समुद्र में डूब गये, फिर भी वह (माया) किसी को वहाँ (उस) की मधुरता किंचित् भी चखने नहीं देती। १४४ इसी ने चैतन्य को ढँक लिया; इसने अरूप (रूप-हीन) को सरूपता को प्राप्त कराया। यह अनन्त ब्रह्माण्डों के पुतलों को एक ही सूत्र से नचाती है। १४५ समझो, इसने निर्गुण को गुण चिपका दिये, अनाम को नाम देकर उसका नामकरण किया; निराकार को आकार प्रदान कर जीवत्व को प्राप्त कराया। १४६ यह परम पतिव्रता (नारी) सचमुच पति के अनजाने में गर्भवती हो गयी। इसने नाना विकारों से समग्र ब्रह्माण्ड की रचना की। १४७ नाना योनियाँ, विकार और भाव उत्पन्न करके इसने समस्त जीवों को पाशों में उलझा दिया। (प्रत्यक्ष) कृतित्व नहीं होने पर भी इसने गाधि को कैसा मिथ्या कौशल दिखाया! १४८ कोई (भगवत्) स्वरूप की ओर मुड़ता है, तो यह (माया) मिथ्या संकट में डालती है अथवा सामने प्रत्यक्ष स्वर्गसुख दिखाकर उसे मोहित करती है। १४९ आत्मसुख की मधुरता असीम है--उसे जीव के लिए (उस माया ने) परमोच्च (अप्राप्य-सा) कर दिया और विषमय विषय-भोग, मोह, भ्रम में मधुरता ला दी। १५० अस्तु। ऐसी है वह आदि शक्ति। उसने मन में इच्छा (धारण) की। उसे ही 'गुण-क्षोभिणी' कहते हैं। इसने (सत्त्व, रज, तम—इन) तीन गुणों का निश्चय ही निर्माण किया। १५१

धरून। तिहीं ठायीं आपणा जाहली। १५२ ज्ञानशक्तीच्या आधारेंकरून। ज्ञानपंचक केलें निर्माण। तें अंतःकरण-चतुष्टय पूर्ण। तत्त्वविद म्हणती ते। १५३ क्रियाशक्तीच्या आधारें रजोगुण। प्रसवला तो पंचकें तीन। एक ज्ञानेंद्रिय-पंचक पूर्ण। कर्मेंद्रियपंचक दुसरें। १५४ तिसरें जाणावें वायु-पंचक। आतां तमद्रव्यशक्तिआधारें देख। विषयपंचक निर्मिलें सुरेख। पंचतन्मात्रा म्हणती ज्यातें। १५५ ऐसीं पंचवीस तत्त्वें निःशेष। मग केला परस्परानुप्रवेश। कर्दम करूनि विशेष। ब्रह्मांड हे रचियेलें। १५६ ब्रह्मांड ही पेठ पूर्ण॥ नाना रीतीं रची कमलासन। चहूं खाणींचीं केणीं आणून। चौऱ्यायशीं लक्ष

यह समझो कि (जो) सत्त्व, रज, तम (नामक तीन गुण हैं, वे) ही विधाता (ब्रह्मा), विष्णु और शिव हैं। तीन शक्तियों का रूप धारण करके यह तीनों स्थानों में स्वयं स्थित हो गयी (रह गयी)। १५२ इसने ज्ञान-शक्ति के आधार से ज्ञान-पंचक (पाँच प्रकार के ज्ञान) का निर्माण किया। तत्त्वों के ज्ञाता उसे पूर्ण अन्तःकरण-चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से निर्मित अन्तर्मन—इन चारों से कार्य करनेवाला आत्मा) कहते हैं। १५३ क्रिया-शक्ति के आधार से उस रजोगुण ने (ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तथा वायु-पंचक नामक) तीन पंचकों को जन्म दिया। उनमें से एक है सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रिय-पंचक (त्वचा, नाक, नेत्र, कान और जिह्वा), दूसरा है कर्मेन्द्रिय-पंचक (हाथ, पाँव, वाणी, शिस्न और गुदा) और समझो, तीसरा है वायु-पंचक (नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय नामक वायु—जो शरीर में रहते हुए उसे पुष्ट करते हैं)। अब देखो, तमोद्रव्य की शक्ति के आधार से इसने सुन्दर विषय-पंचक (स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और शब्द) का निर्माण किया, जिसे पंच-तन्मात्रा (पृथ्वी, आप, तेज, वायु और आकाश नामक पाँच महाभूतों के मूल-तत्त्व) कहते हैं। १५४-१५५ (इस प्रकार) उस माया ने (ज्ञान-पंचक, ज्ञानेन्द्रिय-पंचक, कर्मेन्द्रिय-पंचक, वायु-पंचक और विषय-पंचक के) पचीस तत्त्वों का पूर्णतः निर्माण किया। तत्पश्चात् इन तत्त्वों का परस्पर एक-दूसरे में प्रवेश कराया (क्रम से एक-दूसरे में मिला दिया) और उनका विशेष प्रकार का कर्दम (कीचड़) बनाकर इस ब्रह्माण्ड की रचना की। १५६ (यह) ब्रह्माण्ड एक परिपूर्ण हाट (बाज़ार) है, जिसकी ब्रह्मा (विधाता) ने नाना प्रकार से रचना की और (प्राणियों और वनस्पतियों के अण्डज, स्वेदज, जारज और उद्‌भिज्य नामक चारों वर्गों—) चारों खानों से वस्तुएँ

जीव केले। १५७ ऐसा ब्रह्मा पेठा भरीत। विष्णु तयांचा प्रतिपाळ करीत। दहा अवतारांच्या घिरट्या घेत। संकटीं तारीत भक्तांतें। १५८ सृष्टींत दोष होतां अपार। परम क्रोधी तो अपर्णावर। तत्काळ करी संहार। टाकी सर्व मोडोनियां। १५९ विराट जें रचिलें ढिसाळ। हें शिवाचें देह स्थूल। पायांचे तळवे तें पाताळ। प्रपद रसातळ जाणिजे। १६० याचा सांगतों निर्णय। ज्ञान जेणें प्राप्त होय। सकळ संतांचे समुदाय। ऐकोन बहुत आनंदती। १६१ गुल्फ-द्वय तें महातळ। पोटरिया जानु-युगुळ। तें तळातळ आणि वितळ। विराटाचें जाण पां। १६२ कटिप्रदेश तें महीतळ। जाण नैऋत्यलोक तें गुदस्थान। दक्षप्रजापति तो शिश्न। विराटाचें जाण पां। १६३ जठरामाजी पोकळ। तें हें अवघें नभमंडळ। जठराग्नि तो वडवानळ। महा

लाकर चौरासी लाख (प्रकार के) जीवों को उत्पन्न किया। १५७ इस तरह विधाता बाजारों को भर (सजा) देता है, विष्णु उनका प्रतिपालन करता है; दस-दस अवतारों के फेरे लगाते हुए भक्तों का संकट में से उद्धार करता है। १५८ सृष्टि में अपार दोषों के उत्पन्न होने पर वह परम क्रोधी अपर्णा-पति शिव तत्काल उसका संहार करता है और सबको तोड़ (नष्ट-भ्रष्ट कर) डालता है। १५९ जो विशाल विराट् (ब्रह्माण्ड) रचा गया है, यह है शिवजी का स्थूल शरीर। उसके पाँवों के तलुवे हैं (विराट ब्रह्माण्ड का) पाताल। रसातल को उसके प्रपद (पाँवों के अग्रभाग) समझो। १६० मैं इसका (अर्थ) निर्णय कहता हूँ, जिससे ज्ञान प्राप्त होता है। उसे सुनकर समस्त सन्तों-सज्जनों के समुदाय बहुत आनन्दित होते हैं। १६१ (शिवजी के स्थूल शरीर के) दोनों टखने (ब्रह्माण्ड के सात पातालों में से) महातल (नामक एक पाताल) हैं, (जहाँ नाग और असुर निवास करते हैं)। उस विराट ब्रह्माण्ड के (सात पातालों में से) तलातल (नामक चौथे पाताल) को और वितल (नामक दूसरे पाताल) को (शिवजी के स्थूल शरीर की) पिंडलियाँ और दोनों घुटने समझो। १६२ उसके कटि-प्रदेश को (सात पातालों में से) महीतल (नामक एक पाताल) समझो। उस विराट ब्रह्माण्ड के नैऋत्य लोक को (शिवजी के विराट स्थूल शरीर का) गुद-स्थान और प्रजापति को उसका शिस्न समझो। १६३ जठर के अन्दर जो पोला भाग होता है, वह ब्रह्माण्ड का नभ-मण्डल है और जो जठराग्नि है, वह वड़वानल है, जो

कल्लोळ धडकतसे। १६४ सप्त समुद्र उदरीं सकळ। ज्योतिर्लोक तें वक्षःस्थल। महर्लोक तें कंठनाळ। वदनकमळ जनलोक। १६५ वरुणलोक ते जिव्हा जाण। यमलोक त्या दंतदाढा तीक्ष्ण। अश्विनौदेव तें घ्राण। भ्रुकुटिस्थान भूर्लोक। १६६ तपोलोक तें कपाळ। मस्तक ब्रह्मभुवन निर्मळ। वासरमणि तो नेत्र तेजाळ। प्रकाशकल्लोळें ब्रह्मांड भरी। १६७ पातीं उघडी त्या नांव दिवस। झांकितां रात्र म्हणती त्यास। उभयहस्तरूपें अमरेश। कर्तव्य करी सर्वही। १६८ चंद्रमा तयाचें मन। वनस्पती रोमावळी पूर्ण। त्वचा ते जाण प्रभंजन। कर्दम पूर्ण मांस तें। १६९ नाडीचक्र गंगा निश्चिती। पृष्ठी तिकडे अधर्मरीती। कनकाचळ तो सुमती। शिरोभाग जाणिजे। १७० अस्थि त्या जाण पाषाण। फेण ती लाळ ओळखें खूण। दहिंवर तें मूत्र पूर्ण। जळ तें रक्त

ज़ोर-शोर से धधकता रहता है। १६४ (उस विराट ब्रह्माण्ड के क्षार, इक्षु-रस, सुरा, घृत, क्षीर, दधि, शुद्धोदक नामक) सात समुद्र सब (शिवजी के स्थूल शरीर के) उदर में हैं, ज्योतिर्लोक उसका वक्षःस्थल है; जो महर्लोक है वह है कण्ठनाल और जनलोक है मुखकमल। (पौराणिक मान्यता के अनुसार ज्योतिर्लोक, महर्लोक, जनलोक आदि ब्रह्माण्ड के सात लोक माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त इन्द्र, वरुण, विष्णु, यम आदि देवताओं में से प्रत्येक का एक-एक लोक माना जाता है)। १६५ वरुणलोक को जिह्वा ही समझो। यमलोक है तीक्ष्ण दाँत और दाढ़ें। दोनों अश्विनीकुमार देव हैं नाक। भृकुटि (भौंह) भूर्लोक है। तपोलोक है कपाल और निर्मल ब्रह्म-भुवन है उसका मस्तक। वासरमणि अर्थात् सूर्य उसका तेजस्वी नेत्र है, जो प्रकाश की प्रचण्ड लहरों से ब्रह्माण्ड को भर देता है। १६६-१६७ (शिवजी के स्थूल शरीर की) आँखों की पलकों के खोलने का नाम दिवस है और उनके बन्द होने पर (उत्पन्न स्थिति को) रात्र कहते हैं। अपने दोनों हाथों से वह देवेश सभी कार्य करता है। १६८ चन्द्रमा उसका मन है, समस्त वनस्पतियाँ उसकी रोमावली हैं, त्वचा को प्रभंजन (वायु) समझो और सम्पूर्ण मांस कर्दम (कीचड़) है। १६९ (ब्रह्माण्ड की) गंगा (शिवजी के स्थूल शरीर) का निश्चय ही नाड़ीचक्र है, उधर पृष्ठ-भाग (पीठ) को अधर्म रीति और सुवर्ण पर्वत (मेरु) को शिरोभाग समझो। १७० (शिवजी के स्थूल शरीर की) उन हड्डियों को पत्थर समझो और फेन को लार की निशानी के रूप में

जाणिजे । १७१ पाषाण गर्भ मज्जा सत्य । पर्जन्य तें शिवाचें रेत । दुर्भिक्ष ती क्षुधा अद्भुत । जलशोष अत्यंत तृषा पूर्ण । १७२ आळस तो शीतकाळ । पर्जन्यकाळ ती निद्रा सबळ । उष्णकाळ तें मैथुन केवळ । वृष्टि व्हावया तावीतसे । १७३ झंझाट वायु तें धांवणें । वाहाटुळी तयाचें वळणें । दश दिशा पसरल्या संपूर्णें । तें पसरण तयांचें । १७४ स्तब्ध वायु तें आकुंचन । उकाडा तो निरोधन । जळवृष्टीची इच्छा काम पूर्ण । सृष्टि-संहारण क्रोध तो । १७५ शोक तो महा अनर्थ । मोह सृष्टि-पालन यथार्थ । भय तो मृत्यु ओळख सत्य । विराट पुरुषाचें राघवा । १७६ पीत वसन तें अंतःकरण । रमाबंधु तयाचें मन । विरिंचि बुद्धि संपूर्ण । चित्त नारायण जाणिजे । १७७ देवदत्त तो मुख्य प्राण । धनंजय पाताळीं आपण । दिशा तयाचे कर्ण । पवन संपूर्ण त्वचा त्याची । १७८

पहचानो । सम्पूर्ण ओस को मूत्र और जल को रक्त समझो । १७१ पत्थरों का अन्दर का भाग सचमुच मज्जा है । पर्जन्य (बारिश) शिवजी (के स्थूल शरीर) का वीर्य है । दुर्भिक्ष्य (अकाल) अद्भुत भूख और अनावृष्टि (सूखा) अत्यधिक परिपूर्ण प्यास है । १७२ शीतकाल (जाड़ा) आलस्य है, वर्षाकाल प्रगाढ़ (गहरी) नींद है, ग्रीष्म-काल (गर्मियों का मौसम) केवल मैथुन (ही) है, जो वर्षा के हेतु (सृष्टि को) गर्म कर देता है । १७३ (विराट ब्रह्माण्ड के अन्दर) झंझा वात (शिवजी के स्थूल शरीर का) दौड़ना है; आवर्त, उसका मुड़ जाना है और पूर्णतः फैली हुई दस दिशाएँ उसका फैलाव है । १७४ स्तब्ध वायु आकुंचन (सिकुड़ जाना) है, असीम गर्मी निरोधन है, जल-वर्षा की इच्छा सम्पूर्ण काम है, तो सृष्टि का संहार (शिवजी का) क्रोध है । १७५ (विराट ब्रह्माण्ड में होनेवाला) महान अनर्थ (संकट) (शिवजी का) शोक है, तो सृष्टि का परिपालन सचमुच मोह है । हे श्रीराम ! मृत्यु को सममुच (उस) विराट पुरुष के भय के रूप में पहचानो । १७६ पीताम्बर-धारी भगवान् विष्णु उसका अन्तःकरण, (लक्ष्मी का बन्धु) चन्द्र उसका मन, और ब्रह्मा उसकी सम्पूर्ण बुद्धि है । भगवान नारायण को उसका चित्त समझो । १७७ (पंच प्राणों में से) देवदत्त (नामक एक प्राण) उसका मुख्य प्राण है । (पाँच उपप्राणों में से जमुहाई उत्पन्न करनेवाला शरीरस्थ पाँचवाँ) धनंजय (नामक वायु) स्वयं पाताल में है । (विराट ब्रह्माण्ड की) दिशाएँ (शिवजी के उस स्थूल शरीर के) कान हैं और पवन उसकी सम्पूर्ण त्वचा है । १७८

अग्नि तयाचें वदन । चरण पाताळीं वामन । ऐसा विराट पुरुष संपूर्ण । सप्तावरणमय असे । १७९ भूगोल दश गुणें प्रबळ । बाह्य ओळखें पृथ्वीमंडल । त्या दश गुणें समुद्रजळ । असंभाव्य पसरलें । १८० उदकाचे दशगुण । धडाडीत महाअग्न । त्या दश गुणें प्रभंजन । आवरण पैं जाणिजे । १८१ समीरा दश गुणें साचार । वाढ असे हें अंबर । नभा दश गुणें अहंकार । वेष्टिलासे सघन पैं । १८२ अहंकारा दश गुणें निश्चित । व्यापिलें असे महत्तत्त्व । त्या दश गुणें अद्‌भुत । माया-आवरण शेवटीं । १८३ मायेपलीकडे जें उरलें जाण । तें केवळ स्वरूप निर्वाण । तें इतुकें तितुकें थोर लहान । व्यक्तिवर्ण नाहीं तेथें । १८४ ऐसा मायेचा खेळ अचाट । आतां ऐकें इचा शेवट । पंच प्रळय स्पष्ट । वेदांतशास्त्रीं निवडिले । १८५ पिंडीं नित्यप्रळय संपूर्ण । निद्रा म्हणती तयालागून । तत्त्वां-समवेत स्थूळलिंगदेह जाण । बुडोन जाय निद्रार्णवीं । १८६

अग्नि उसका मुख है। पाताल में (बली के द्वार-पाल के रूप में रहने-वाले) वामन उसके चरण हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर रहनेवाला ऐसा वह सम्पूर्ण विराट पुरुष सात आवरणों से युक्त है। १७९

भू-गोल दस गुना बड़ा है। उसके ब्राह्य भाग को पृथ्वी-मण्डल नाम से पहचानो। उसके दस गुना बड़ा है समुद्र-जल, जो असम्भाव्य अर्थात् कल्पनातीत अनन्त रूप में फैल गया है। १८० पानी के दस गुना बड़ी महा अग्नि धधकती है। समझो कि उसके दस गुना बड़ा वायु का आवरण है। १८१ वायु के दस गुना बड़ा सचमुच यह आकाश बढ़ा हुआ है। उसके दस गुना बड़ा (है) अहंकार (जो) उसे घने रूप में घेरे हुए है। १८२ अहंकार के दस गुना बड़ा महत्-तत्त्व निश्चय ही व्याप्त हुआ है और अन्त में उसके दस गुना बड़ा 'माया' नामक अद्‌भुत आवरण है। १८३ माया के परे जो शेष है, उसे केवल परम भगवद्-स्वरूप समझो। वह इतना बड़ा और इतना छोटा है कि वहाँ कोई आकार तथा वर्ण (रंग) नहीं है। १८४ माया का ऐसा अद्‌भुत खेल है। अब सुनो, इसका अन्त कैसे होता है। वेदान्त शास्त्र में (निद्रा प्रलय, मरण प्रलय, विधाता का निद्रा प्रलय, विधाता का मरण प्रलय और विवेक प्रलय नामक) पाँच प्रलय निर्धारित किये हैं। १८५ इस शरीर के लिए तो हमेशा पूर्णतः प्रलय होता रहता है। उसे 'निद्रा (नामक प्रलय)' कहते हैं। समझो, उसके अनुसार निद्रा रूपी सागर में (पचीसों) तत्त्वों के साथ स्थूल और

हा नित्यप्रळय जाण। आतां महाप्रळय तें मरण। जाय स्थूळदेह संहारून। सर्व जन देखती। १८७ आतां ब्रह्मांडींचा प्रळय निश्चित। चारही युगें सहस्र वेळां जात। तोंवरी ब्रह्मा होय निद्रिस्त। मग राहतो सृष्टिक्रम। १८८ अवघी सृष्टि जाय संहारुनी। सर्व जळमय होय ते क्षणीं। बत्तीस लक्ष गांव चढे पाणी। जाय बुडोनी ब्रह्मांड। १८९ सप्त-चिरंजीव बुडोन जात। सत्यलोकीं पाणी आदळत। तेव्हां वटपत्रशायी भगवंत। ब्रह्मा निद्रिस्थ नाभिकमळीं। १९० मग कमलोद्भव होय जागृत। जळ आटोनि समस्त। यथापूर्व कल्प येत। वेद निश्चित बोलतसे। १९१ पूर्विल्यासारिखें होय सकळ। मागुती अवतार धरी घननीळ। अवतारचरित्र सकळ। पूर्विल्या ऐसें दावीत। १९२ हा नित्यप्रळय संपूर्ण। आतां महाप्रळय ऐक दारुण। आधीं शत संवत्सर घन। न वर्षेचि कदापि। १९३ तेणें जीव-सृष्टीचा संहार। सर्वेच

लिंग (सूक्ष्म) शरीर डूब जाता है। १८६ इसे 'नित्य प्रलय' समझो। अब मृत्यु नामक महाप्रलय है। उसमें स्थूल शरीर का संहार हो जाता है। सब लोग इसे देखते हैं। १८७ अब ब्रह्माण्ड का प्रलय निश्चित रूप में हो जाता है। चारों युग हज़ार बार व्यतीत हो जाते हैं, तब तक ब्रह्मा सोया रहता है। तदनन्तर सृष्टि-क्रम रह जाता है। १८८ समस्त सृष्टि का संहार हो जाता है; तब (सब) तत्क्षण जलमय हो जाता है। ब्रह्माण्ड डूबने पर बत्तीस लक्ष गाँवों तक पानी बढ़ जाता है। १८९ (अश्वत्थामा, बली, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृप और परशुराम नामक) सातों चिरंजीव डूब जाते हैं। सत्यलोक में पानी टकराता है, तब वटवृक्ष के पत्र पर विराजमान भगवान विष्णु की नाभि में उत्पन्न कमल में ब्रह्माजी निद्राधीन (सोये हुए) रहते हैं। १९० तत्पश्चात् ब्रह्माजी जागृत हो जाते हैं। फिर समस्त जल सूख जाता है और वेद निश्चय ही ऐसा कहते हैं कि यथापूर्व (पहले निर्धारित क्रम के अनुसार) कल्प (काल) आते हैं। १९१ सब पहले की तरह हो जाता है। फिर घननील विष्णु भगवान अवतार धारण करते हैं और पूर्वकल्प की भाँति अवतार चरित्र (लीला) कर दिखाते हैं। १९२ यह है ब्रह्मा का नित्य प्रलय। अब भीषण महाप्रलय (का वर्णन) सुनो। (उसके अनुसार) पहले सौ वर्षों तक मेघ बिलकुल नहीं बरसते—अर्थात् अनावृष्टि होती है। १९३ उससे जीव-सृष्टि का संहार हो जाता है। साथ ही बारह सूर्यों का उदय होता

उगवती द्वादश मित्र। वडवानळ तो महातीव्र। भूमंडळ जाळीत पैं। १९४ तापतांचि उर्वीमंडळ। भोगींद्रमुखींचे निघती ज्वाळ। तेणें सप्त पाताळ सकळ। भस्म होती एकदांचि। १९५ मग शत संवत्सरपर्यंत। शुंडाधारी मेघ वर्षत। जैसी जळगार जळीं विरत। जगती समस्त वितळे तेवीं। १९६ उपरी महातेज अग्न। जळ शोषी न लागतां क्षण। तया तेजासी प्रभंजन। टाकील ग्रासून क्षणमात्रें। १९७ मग तो अद्‌भुत अनिळ। क्षणें गिळील निराळ। त्या गगनासी समूळ। तमोगुण ग्रासील पैं। १९८ तमासी ग्रासील रजोगुण। रज सत्त्वीं होईल लीन। सत्त्वास महत्तत्त्व मिळोन। समरसेल मायेंत। १९९ माया होय स्वरूपीं लीन। स्वरूप स्वरूपीं समाधान। जें ब्रह्मानंद-परिपूर्ण। बोलतां मौन वेद-शास्त्रां। २०० निर्गुण निर्विकार निरूपण। पूर्ण शांति योगक्षेम। असतां पूर्ण जाहले निःसीम। केला क्रम

है। तब वह अति तीव्र वड़वानल भू-मण्डल को जला देगा। १९४ पृथ्वी-मण्डल के तप्त हो जाते ही भोगीन्द्र शेष भगवान के मुखों से ज्वालाएँ निकलती हैं। उससे सभी सातों पाताल एकदम भस्म हो जाते हैं। १९५ फिर सौ वर्षों तक मेघ हाथी की सूँड-सी जल-धाराएँ बरसाते हैं। तब जैसे (पानी का) ओला पानी में पिघलता है, वैसे समस्त जगत् पिघल जाता है। १९६ ऊपर महा तेजस्वी अग्नि है, उसे पानी सोख लेने के लिए क्षण (तक) नहीं लगता। उस तेज को क्षणमात्र में वायु खा डालेगा। १९७ तदनन्तर वह अद्‌भुत वायु क्षण (भर) में आकाश को निगल लेगा। उस आकाश को पूर्णतः तमोगुण (अँधेरा) निगल जाएगा—व्याप्त कर लेगा। १९८ उस तमोगुण को रजोगुण निगल डालेगा। फिर रजोगुण सत्त्वगुण में लीन हो जाएगा। (तदनन्तर) सत्त्वगुण को महत्तत्त्व निगल कर (वह स्वयं) माया में समा जाएगा। १९९ फिर माया ब्रह्म स्वरूप में विलीन हो जाएगी। उस ब्रह्मस्वरूप को अपने ही रूप में सन्तोष मिलता है। वह ऐसा ब्रह्मानन्द है, जिसका पूर्ण वर्णन करते हुए वेदशास्त्रों (तक) को मौन हो जाना पड़ता है—अर्थात् वे उसका वर्णन करने में असमर्थ हो जाते हैं। २०० (इस प्रकार मैंने) निर्गुण और निर्विकार ब्रह्म का निरूपण किया। (इसके जान लेने पर) मनुष्य पूर्ण शांति प्राप्त करके अपना योगक्षेम करता है। इसके होने से असीम ब्रह्माण्ड पूर्ण हो जाता है। हे राम! इस अद्‌भुत व्यवस्था का वर्णन तुमने ही करवाया है। २०१

विस्मयें। २०१ तें तूं स्वरूप निर्वाण। राघवा नटलासी परिपूर्ण। सच्चिदानंद सत्य जाण। हेंही बोलणें न साहे। २०२ आटोनि सर्व अलंकार। एकरस जाहला निर्विकार। आपलें पिंडब्रह्मांड समग्र। तोचि तूं साचार श्रीरामा। २०३ कैंचें वैकुंठ कैंचें कैलास। लोपला अवघा मायाविलास। शेषशायी जगन्निवास। हाही भास मावळला। २०४ वटपत्रशायी सर्वेश्वर। हे नित्यकल्पींची गोष्ट साचार। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर। स्वस्वरूपीं मिळाले। २०५ उरलें निर्विकार स्वरूप। तें तूं राघवा निर्विकल्प। अच्छेद्य अभेद्य अरूप। आत्माराम परिपूर्ण। २०६ स्वरूप निर्धार होतां पूर्ण। श्रीरामें झांकिले नयन। ब्रह्मानंद-सागरीं लीन। रघुनंदन जाहला। २०७ वसिष्ठही आनंदें डुल्लत। खुंटला बोल राहिली मात। गुरु-शिष्य देव-भक्त। एकरूप जाहले। २०८ विराल्या रघुनाथाच्या शक्ती। स्वस्वरूपीं पावला विश्रांती। वसिष्ठही

हे राघव ! समझो, तुम वह सर्वोच्च ब्रह्मरूप पूर्णतः धारण किये हुए हो। सत्य ही तुम सच्चिदानन्द हो। (परन्तु) यह कथन भी सहन नहीं होता (उचित नहीं जान पड़ता)। २०२ सब आभूषणों के विलीन हो जाने पर (जो) एकरस निर्विकार हो गया, (जिसमें) समग्र पिण्ड और ब्रह्माण्ड लुप्त हो गया, हे श्रीराम ! तुम सचमुच वही (ब्रह्म) हो। २०३ (इस स्थिति में) कैसा वैकुण्ठ (और) कैसा कैलाश ? माया का समस्त विलास लुप्त हो गया। शेषशायी जगन्निवास भगवान विष्णु के अस्तित्व के आभास का (भी) अस्त हो गया। २०४ वटपत्र पर लेटे रहनेवाले सर्वेश्वर तो नित्य कल्प की सत्य बात (स्थिति) है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर शिवजी अपने-अपने (मूल) ब्रह्म-स्वरूप में मिल गये। २०४ हे राघव ! (जो) निर्विकार ब्रह्मरूप शेष रह गया, वह तुम (ही) निर्विकल्प, अच्छेद्य, अभेद्य, अरूप, परिपूर्ण आत्माराम हो। २०६ (इस प्रकार) ब्रह्म रूप का निर्धारण पूर्ण हो जाने पर श्रीराम ने आँखें मूँद लीं। (तब) श्रीरघुनन्दन राम ब्रह्मानन्द रूपी सागर में मग्न हो गये। २०७ वसिष्ठ भी आनन्द से डोलते हैं (रहे)। बोध (ज्ञान की अवस्था, भान) समाप्त हो गया, कथन आदि का व्यवहार होने से रहा। गुरु और शिष्य तथा देवता और भक्त एक-रूप हो गये। २०८ श्रीराम की (समस्त लौकिक) शक्तियों का लोप हो गया और वे ब्रह्म रूप में विश्रान्ति को प्राप्त हो गये। वसिष्ठ भी आत्म-स्थिति में

आत्मस्थिती । श्रीरघुनाथीं बिंबला । २०९ अठरा दिवसपर्यंत । श्रीराम जाहला समाधिस्थ । विसरला अवतारधारणहेत । राम सम-रसला आत्मरूपीं । २१० शरीर जाहलें अचेतन । हृदयीं आकर्षिले प्राण । गजबजिलें दशरथाचें मन । म्हणे अनर्थ पूर्ण जाहला । २११ गजबजिला विश्वामित्र । म्हणे काय संपला अवतार । बंदीं पडले सुरवर । सोडवील कोण तयांतें । २१२ आतां कैंचें याग-रक्षण । तत्काळ दशरथ देईल प्राण । आजि जाहले अष्टादश दिन । रघुनंदन सावध नोहे । २१३ ऐकतां निर्वाणज्ञान थोर । राम जाहला निर्विकार । मग वसिष्ठासी विश्वामित्र । घाली नमस्कार तेधवाँ । २१४ म्हणे महाराजा ब्रह्मसुता । सावध करीं रघुनाथा । पुढें अवतारकार्य तत्त्वतां । बहु असे तें जाणसी तूं । २१५ मग वसिष्ठ म्हणे श्रीरामा । सावध होईं मेघ-श्यामा । चिदानंदा पूर्णब्रह्मा । यागरक्षणा आतां जाइंजे । २१६ जाणोनियां स्वरूपातें । सुखें धर्मरीतीं वर्ते । पाळोनियां

श्रीराम स्वरूप में उतरकर लीन हो गये । २०९ (तब से) अठारह दिन तक श्रीराम समाधिस्थ हो गये । वे अवतार ग्रहण करने के कारण तथा हेतु को भूल गये । वे आत्म—ब्रह्म रूप में एकात्म-एकरस हो गये । २१० श्रीराम का शरीर अचेतन-जड़ हो गया; उनके प्राण हृदय में आकृष्ट हो गये । (यह देखकर) दशरथ का मन घबड़ा उठा । उन्होंने सोचा—यह तो पूरा-पूरा अनर्थ हो गया । २११ विश्वामित्र (भी) भयभीत हो गये । उन्होंने सोचा—क्या अवतार (ही) समाप्त हो गया ? (इधर) देवता बन्दीशाला में पड़े हैं, उन्हें कौन मुक्त करेगा ? २१२ अब यज्ञ की कैसी रक्षा ! दशरथ तो तत्क्षण प्राण त्याग कर देंगे । आज अठारह दिन हो गये (जब से) श्रीराम सचेत नहीं हो रहे हैं । २१३ उस महान् निर्वाण ज्ञान को सुनकर श्रीराम निर्विकार हो गये । तब विश्वामित्र ने वसिष्ठ को साष्टांग नमस्कार किया । २१४ उन्होंने कहा—हे ब्रह्मा के पुत्र महाराज वसिष्ठ ! श्रीराम को सचेत करो । तुम जानते हो कि इसके आगे सचमुच (श्रीराम के लिए) बड़ा अवतार-कार्य (शेष) है । २१५ तदनन्तर वसिष्ठ ने श्रीराम से कहा—'हे मेघश्याम ! सावधान-सचेत हो जाओ । हे चिदानन्द ! हे पूर्णब्रह्म ! अब यज्ञ की रक्षा के लिए जाओ । २१६ आत्म-स्वरूप को जानकर तुम सुखपूर्वक धर्म सम्बन्धी रीतियों के अनुसार कार्य करो । सज्जनों का परिपालन करते हुए दुष्टों

सज्जनातें । दुष्ट क्षयातें पाववीं । २१७ जैसीं केशनखें आंगीं वाढती । आपुलीं आपणातें रुपती । तीं छेदितां सुख निश्चितीं । तैसे दुष्टमती वधावे । २१८ समाधि आणि व्युत्थान । दोन्ही अंतरी जिरवून । तुर्या उन्मनी ओलांडून । आनंदघन वर्तावें । २१९ तटस्थता टाकोनि वेगीं । रामा उघडी समाधि भोगीं । श्रीरामा तूं राजयोगी । सर्व संगीं निःसंग । २२० जो आपुले ठायीं भ्रमें वर्तत । तया जगही भ्रममय भासत । भ्रमरूप ब्रह्मांड दिसत । भ्रमेंचि मृत्यु जवळी ये । २२१ ईश्वराचें स्वरूप निर्वाण । भ्रमें नाकळे जाहला दीन । आपण आहें कोणाचा कोण । भ्रमें पूर्ण नोळखे । २२२ भ्रमेंकरूनि जन्ममरण । भ्रमेंकरून अधःपतन । तो भ्रम गेलिया संपूर्ण । आपणाविण दुजें नसे । २२३ आपण ब्रह्मस्वरूप होतां पूर्ण । ब्रह्मरूप दिसे त्रिभुवन । शत्रु

को क्षय को प्राप्त कराओ—दुष्टों का नाश करो । २१७ जिस प्रकार शरीर के नाखून बढ़ते हैं, अपने ही वे नाखून अपने को को चुभते हैं—और उन्हें काटने पर निश्चय ही सुख होता है, उसी प्रकार दुष्टमति लोग बढ़ते हैं (और हमें तंग करने लगते हैं तो उन दुष्ट बुद्धिवाले लोगों का वध करो, जिससे सबको सुख प्राप्त होगा) । २१८ समाधि और ध्यान-विसर्जन—इन दोनों को अन्तःकरण को लाँघकर आनन्दरूपी मेघ की भाँति व्यवहार करो । २१९ हे श्रीराम ! वेगपूर्वक (झट से) तटस्थता का त्याग कर, समाधि-भोग को छोड़ दो । हे श्रीराम ! तुम राजयोगी हो । सबकी संगति में रहने पर भी तुम निस्संग हो । २२० जो अपने आप में भ्रम वरतता है—भ्रम का अनुभव करता है, उसे जगत् भी भ्रम-मय प्रतीत होता है; ब्रह्माण्ड भ्रम-रूप दिखायी देता है । (ऐसे) भ्रम से ही मृत्यु निकट आती है । २२१ भ्रम के कारण उसे यह नहीं समझ में आता कि ईश्वर का निश्चित स्वरूप कैसा है । इसलिए वह दीन हुआ (हो जाता है) । (इस) भ्रम के कारण ही वह यह नहीं पहचान पाता कि वह (स्वयं) किसका है, कौन है । २२२ (इस) भ्रम के कारण ही जन्म और मरण (स्वीकार करना पड़ता) है । इस भ्रम के कारण ही अधःपात होता है । उस भ्रम के पूर्णतः निकल (नष्ट हो) जाने पर विदित हो जाता है कि (यह सब) अपने सिवा (कुछ) दूसरा नहीं है । (अर्थात् साधक यह अनुभव करने लगता है कि सब कुछ ब्रह्म-स्वरूप है, वह ब्रह्म से अलग नहीं है ।) २२३ उसके स्वयं पूर्णतः

मित्र थोर लहान। ब्रह्मरूप सर्व दिसे। २२४ घागरी मडकीं रांजण। आंत बिंबला चंडकिरण। परी सूर्यासी स्त्रीपुरुष-नपुंसकपण। कल्पांतींही घडेना। २२५ सोनें साच लटिके अलंकार। तरंग मिथ्या एक सागर। पट मिथ्या तंतू निर्धार। तैसें चराचर ब्रह्मरूप। २२६ नाना घट एक अंबर। नाना मणि एक सूत्र। नाना मातृका एक ओंकार। ब्रह्म सर्वत्र तैसेंचि। २२७ म्हणोन सुटतां हृदयग्रंथि। सर्व संशयां होय निवृत्ति। कर्मींच होय ब्रह्मप्राप्ति। त्रिजगतीं ब्रह्मरूप। २२८ उभय पक्षांचे बळेंकरूनी। विहंगम संचरती गगनीं। तैसें

ब्रह्म-स्वरूप हो जाने पर उसे (यह) त्रिभुवन ब्रह्म-स्वरूप दिखायी देता है; शत्रु-मित्र बड़े-छोटे सब ब्रह्म-रूप दिखते हैं। २२४ गागर, मटका और घड़े में (प्रखर किरणोंवाला) सूर्य (प्रति) बिम्बित होता है, फिर भी (उनके अनुसार) सूर्य में स्त्रीत्व, पुरुषत्व अथवा नपुंसकत्व कल्पान्त में (भी) नहीं (घटित) होता। २२५ सोना सत्य है (जब कि उसके बनाये हुए) गहने झूठे हैं; (जब कि) तरंगें मिथ्या हैं, समुद्र (ही एकमात्र) सत्य है। वस्त्र मिथ्या है (जब कि जिनसे वह बना हुआ है, वह) तन्तु (धागा) निश्चय ही सत्य है। उसी प्रकार ब्रह्म सत्य है और उससे बनी हुई चराचर सृष्टि मिथ्या है। अर्थात् गहने स्वर्णरूप हैं, तरंगें समुद्ररूप हैं, वस्त्र तन्तु-रूप है, उसी प्रकार चराचर विश्व ब्रह्मरूप है। २२६ घट अनेक होते हैं, (उनमें प्रतिबिम्बित आकाश अनेक-रूप तो दिखायी देता है, परन्तु वस्तुतः वह) आकाश एक (ही) होता है। (माला में पिरोये हुए) मनके अनेक होते हैं (परन्तु उन्हें बाँधकर रखनेवाला) सूत्र (धागा) एक होता है। (उसी प्रकार विश्व में पदार्थ तो अनेक होते हैं, लेकिन उनके अन्दर एक ही तत्त्व होता है।) मातृकाएँ अर्थात् ध्वनि-मात्राएँ अनेक होती हैं, फिर भी ओंकार (ॐ-कार) एक होता है। उसी प्रकार (पदार्थों के अनेक होने पर भी उन सब में व्याप्त) ब्रह्म सर्वत्र एक है। २२७ इसलिए हृदय में (उत्पन्न हुई अज्ञान की) ग्रन्थियों के सुलझ जाने पर सब संशयों की निवृत्ति हो जाती है—अर्थात् संशय, भ्रम दूर हो जाते हैं। इस ब्रह्ममय त्रिभुवन में कर्म द्वारा ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। २२८ दोनों पंखों के बल से पक्षी आकाश में संचार (विचरण) करते हैं। उसी प्रकार कर्म और ब्रह्म (ज्ञान) को एक करके आत्मानन्द रूपी वन में विचरण करें। (अर्थात् जैसे पक्षी केवल एक पंख के बल पर उड़ नहीं सकता, वैसे ही केवल कर्म या केवल ब्रह्म-ज्ञान से आत्मानन्द

कर्मब्रह्म ऐक्य करूनी। स्वानंदवनीं विचरावें। २२९ जेथें निमाल्या सकळ आधि। श्रीरामा पूर्ण तेचि समाधि। तटस्थता हे उपाधि। एकदेशी जाण पां। २३० अंतरीं जाणोनि निर्वाणज्ञान। बाहेर दाविजे भिन्नाभिन्न। अंतरीं बोध परिपूर्ण। बाहेर जडपण दाविजे। २३१ अंतरीं करून पूर्ण त्याग। बाहेर दाविजे लौकिक भाग। अंतरीं होऊनि निःसंग। विषयीं विराग धरावा। २३२ बाहेर लटिकेंच कृपणपण। परी अंतरीं समसमान। रामा तोचि साधक पूर्ण। लोकसंगविवर्जित। २३३ जैसा बीजामधूनि वट थोर। निघे अद्भुत पर्वताकर। तैसें आत्मरूपां चराचर। जाहलें जाणोनि वर्तावें। २३४ तंतू आणि पट पूर्ण। दोघांसी नव्हे वेगळेपण। घट मृत्तिकेसी टाकून। वेगळा नोहे सर्वथा। २३५ तैसें जग आणि जगदीश्वर। भिन्न नोहे साचार। हें ज्ञान जाणोनि निर्विकार। वर्तें सदा तूं राघवा। २३६ अविद्या ही विवशी वाड। निजात्मधनासी मध्यें आड। तिचें गुरुकृपें छेदोनि

की प्राप्ति नहीं हो सकती। २२९ हे श्रीराम, जिस (अवस्था) में समस्त दुःखों का शमन हो जाता है, वही (अवस्था) पूर्ण समाधि है। (यह) समझो कि उस अवस्था की 'तटस्थता' नामक उपाधी एकदेशीय है। २३० (इसलिए) अन्दर निर्वाण ज्ञान को जानते हुए बाहर भिन्नता दिखाओ। अन्दर परिपूर्ण बोध हो, फिर भी बाहर जड़ता दिखाओ। २३१ अन्दर (भोगासक्ति आदि का) सम्पूर्ण त्याग करके बाहर लौकिक (व्यवहार) का भाग दिखाओ। अन्दर निःसंग होकर विषय-भोग के प्रति वैराग्य धारण करो। २३२ बाह्य व्यवहार में दिखावटी कृपणता हो, लेकिन अन्दर सम-भाव हो। हे राम ! वही लोक (संसार) संग का त्याग किया हुआ व्यक्ति ही पूर्ण रूप से साधक कहाता है। २३३ जिस प्रकार बीज में से विशाल अद्भुत पर्वताकार वटवृक्ष निकलता है, (अर्थात् जैसे पर्वताकार वटवृक्ष बीज में समाविष्ट रहता है), वैसे चर और अचर (जगत्) आत्मरूप में स्थित हुआ जानकर व्यवहार किया जाए। २३४ तन्तु और (उनसे बना) समग्र वस्त्र (दो अलग-अलग पदार्थ होने पर भी) दोनों में अलगाव नहीं होता। घट मिट्टी को छोड़कर कदापि अलग नहीं हो सकता। वैसे ही जगत् और जगदीश्वर सचमुच (अलग नहीं किये जा सकते, अर्थात्) भिन्न नहीं हैं। हे श्रीराम ! यह जानकारी प्राप्त कर निर्विकार वृत्ति से तुम नित्य व्यवहार करो। २३५-२३६

बंड। वर्ते अखंड राघवा। २३७ प्रपंच-समुद्र नसतांचि दिसे। गुरुकृपेचे नावेंत बैसें। निवृत्ति-तटीं समरसें। आत्म-प्रकाशेंकरूनियां। २३८ अभ्यासेंविण विद्या सकळा। तत्काळ होती राघवा विकळा। तैसी नोहे ज्ञानकळा। तारी अबळा निजस्पर्शें। २३९ लोहीं झगटतां परिस पूर्ण। मग तें जन्मवरी जाहलें सुवर्ण। तैसें होतां आत्मज्ञान। जन्ममरण त्यासी कैंचें। २४० म्हणोन साधक जे सज्ञान। तिहीं प्रतिपाळावें गुरुवचन। सकळ अकार्या टाकून। सन्मार्गेंच वर्तावें। २४१ रामा तूं गुरु म्हणसील कोण। जो तत्त्ववेत्ता अनुभवी पूर्ण। शिष्य व्हावा ज्ञाननिपुण। ऐसी मति जयासी। २४२ साधकीं करावें हेंचि त्वरित। बोध-वज्र घेऊन निश्चित। जन्ममरण-दुःखपर्वत। चूर्ण करूनि टाकावे। २४३ मोक्षतरूचें बीज हें सत्य। अद्वैतज्ञान क्रियासहित। सदा चालिजे धर्मपंथ। सर्व कुमतें टाकोनियां। २४४ ज्याचें शुद्ध मन तोचि शुचिष्मंत।

अविद्या (मानो) भयंकर राक्षसी है, जो (साधक के) अपने आत्म-धन (की प्राप्ति के मार्ग) में रोड़ा (डालती) है। हे श्रीराम! गुरु की कृपा के बल से उसका विद्रोह नष्ट करके आचरण करो। २३७ जगत्‌रूपी सागर (वस्तुतः नहीं होने पर भी) दिखायी देता है। आत्म (ज्ञानरूपी) प्रकाश के बल पर निवृत्ति-रूपी तट पर तुम गुरु-कृपा-रूपी नौका में बैठो। २३८ हे श्रीराम! बिना अभ्यास के सब विद्याएँ तत्काल क्षीण हो जाती हैं। (परन्तु) ज्ञान-कला वैसी नहीं है। वह (तो) दुर्बलों को अपने स्पर्श से तार (बचा) लेती है। २३९ पारस को लोहे पर बहुत घिसने पर वह (लोहा) फिर जन्म भर सोना बना (रहता है)। वैसे ही आत्मज्ञान होने पर उन (साधकों) को जन्म-मरण कैसे? २४० इसलिए जो ज्ञानी होते हैं, ऐसे साधकों को गुरु के वचन (आदेश) का पालन करना चाहिए। अकार्य अर्थात् न करने योग्य बातों का त्यागकर वे सन्मार्ग से ही आचरण करें। २४१ हे श्रीराम! तुम किसे गुरु कहोगे? गुरु वह है, जो पूर्णतः तत्त्ववेत्ता तथा अनुभवी हो और जिसकी ऐसी इच्छा हो कि (अपना) शिष्य ज्ञान-निपुण हो। २४२ साधक शीघ्र यही करें—बोध (ज्ञान-) रूपी वज्र निश्चयपूर्वक (हाथ में) लेकर जन्म-मरण तथा दुखों का चूर्ण कर डालें। २४३ सचमुच यह मोक्ष-रूपी वृक्ष का बीज है। सब कुमतों (गलत सिद्धान्तों) का त्याग करके अद्वैत ज्ञान और क्रिया के साथ धर्म-पन्थ पर नित्य चलते रहें। २४४ जिसका मन शुद्ध है, वही शुचिष्मन्त

सद्विवेक वसे तोचि पंडित । जो गुरुभक्तीसी नव्हे रत । तरी विष यथार्थ तोचि प्याला । २४५ कासया ग्रंथ शतसहस्र । मुख्य धर्म तो परोपकार । अधर्म नाम त्या साचार । परपीडा करणें जे । २४६ याकारणें वत्सा रघुनाथा । तूं समाधि ग्रासोनियां आतां । धनुष्य घेऊनिया तत्त्वतां । मखरक्षणा जाइजे । २४७ ऐकतां सद्गुरूचें वचन । श्रीराम तो सुहास्यवदन । उघडी अमल राजीवनयन । जे कां आकर्ण विकासले । २४८ करूनि सद्गुरूसी नमस्कार । करी प्रदक्षिणा त्रिवार । सद्गद जाहलें अंतर । अष्टभावेंकरोनियां । २४९ मग म्हणे ब्रह्मपुत्र । बा रे दावीं आतां लीलाचरित । ते गुरु-आज्ञा राजीवनेत्र । मस्तकीं वंदोनि निघाला । २५० दिव्य रथीं बैसला रघुनाथ । सवें कौशिक आणि सुमित्रासुत । लक्षोनि सिद्धाश्रमाचा पंथ । सुमुहूर्तेंसीं चालिला । २५१ दशरथ आणि ब्रह्मसुत । भागीरथी-पर्यंत बोळवीत । जातां उत्तम शकुन बहुत । श्रीरामासी

(शुद्ध आचरणवाला) है । जिसमें सद्विवेक रहता है, वही पंडित है । परन्तु जो गुरु-भक्ति में निमग्न नहीं होता, वह सचमुच विष पी चुका । २४५

शत-शहस्र (लाखों) ग्रन्थ किसलिए (चाहिए) ? परोपकार (ही) मुख्य धर्म है और जो पर-पीड़न है, सचमुच उसका नाम 'अधर्म' है । २४६ इसलिए हे वत्स रघुनाथ ! तुम समाधि (सम्बन्धी बातों) का ग्रास करके—अर्थात् त्याग करके, सचमुच धनुष लेकर यज्ञ की रक्षा करने के लिए जाओ । २४७

सद्गुरु वसिष्ठ के वचन सुनकर सुहास्य-वदन श्रीराम ने अपने स्वच्छ कमल-से नेत्रों को खोल दिया, जिससे वे आकर्ण (कानों तक) विकसित हो गये । २४८ सद्गुरु को नमस्कार कर उन्होंने (उनकी) तीन बार प्रदक्षिणा की । आठों अनुभावों से युक्त होने से उनका अन्तःकरण गद्गद हो गया । २४९ फिर ब्रह्मनन्दन वसिष्ठ ने कहा—हे श्रीराम ! तुम अब लीला-चरित्र दिखाओ (प्रदर्शित करो) । तो कमल-नयन श्रीराम गुरु की आज्ञा को शिरसा-वन्द्य करके निकल पड़े । २५० श्रीराम दिव्य रथ में बैठे । साथ में विश्वामित्र और लक्ष्मण थे । वे सिद्धाश्रम के मार्ग को लक्ष्यकर सुमुहूर्त पर चले । २५१ दशरथ और वसिष्ठ ने उन्हें गंगा नदी तक पहुँचा दिया । जाते समय श्रीराम को बहुत उत्तम शकुन हो गये । २५२ उन शकुनों का अर्थ (स्पष्ट) करते हुए वसिष्ठ

जाह्ले । २५२ त्या शकुनांचा करूनि अर्थ । रायासी सांगे विरिंचि-सुत । विजयश्रियेसीं रघुनाथ । अयोध्येसी येईल सुखें । २५३ बोळवूनि तेव्हां रघुनाथ । माघारे आले वसिष्ठ दशरथ । पुढे कथा गोड बहुत । अमृताहूनि विशेषें । २५४ रामविजय वैरागर देख । षष्ठाध्याय हिरा अलौलिक । हृदय-पदकीं जडोत सुरेख । संत श्रोते अनुभवी । २५५ ब्रह्मानंदा रामचंद्रा । श्रीधरवरदा गुणसमुद्रा । हा षष्ठाध्याय रघुवीरा । सदा हृदयीं वसो माझ्या । २५६ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर । संमत वाल्मीकनाटकाधार । सदा परिसोत पंडित चतुर । षष्ठाध्याय गोड हा । २५७ । श्रीसीतारामचंद्रार्पणमस्तु ।

ने राजा दशरथ से कहा— ' श्रीराम विजयश्री को लेकर सुखपूर्वक अयोध्या (में लौट) आएँगे । ' २५३ तब वसिष्ठ और दशरथ राम को बिदा करके लौट आये । (इसके) आगे (की) कथा अमृत से भी विशेष रूप में बहुत मधुर है । २५४

देखो, (यह) रामविजय (नामक ग्रन्थ) रत्नों की खान है, (उसके अन्दर, यह) छठा अध्याय अद्‌भुत हीरा (ही) है । हृदयरूपी पदिक में (यह) हीरा जुड़ जाए । सन्त श्रोता इसका अनुभव करते हैं—इससे लाभ उठाते हैं । २५५

हे ब्रह्मानन्द (गुरु-स्वरूप) रामचन्द्र, हे श्रीधर कवि के वरदाता ! हे गुणों के सागर रघुवीर ! यह छठा अध्याय मेरे हृदय में नित्य बस जाए । २५६

श्रीराम-विजय (नामक यह) ग्रन्थ सुन्दर है । वह वाल्मीक नाटक पर आधारित तथा उसके द्वारा सम्मत है । चतुर पंडित (श्रोता उसके इस) मधुर छठे अध्याय का सदा श्रवण करें । २५७

अध्याय—७

श्रीगणेशाय नमः। चंडकिरणसुकुलमंडना। अमल-कमलाक्षा रघुनंदना। जलजोद्भवजनका जगज्जीवना। पतित-पावना श्रीरामा। १ विद्वज्जनमानसमराळा। कामांतकध्येया भक्तवत्सला। अनंतवेषा त्रिभुवनपाळा। दीनदयाळा रघुपते। २ जय जय अविद्याविपिनदहना। निजभक्तकौसल्यागर्भरत्ना। जगदुद्धारा मुनिजनरंजना। दुर्जनभंजना राघवेशा। ३ मागें षष्ठाध्यायीं कथन। वसिष्ठें रामास उपदेशून। मग विश्वामित्र चालिला घेऊन। यागरक्षणाचेनि काजें। ४ भागीरथींत करोनि स्नान। कौशिक राम लक्ष्मण। सारोनियां नित्य अनुष्ठान। सत्कर्माचरण वेदोक्त। ५ मग धनुर्वेदयुक्ती नाना मंत्र। कोणे समयीं कैसें प्रेरावें अस्त्र। तें रामासी अवघें मंत्रशास्त्र। विश्वामित्र उपदेशी। ६ युद्धाच्या नाना युक्ती कळा। विश्वामित्रें सांगतांचि सकळा। राघवें आकळिल्या त्या वेळा। जैसा आंवळा करतळींचा। ७ मूर्तिमंत अस्त्रदेवता। रामचरणीं

हे सूर्य के उत्तम वंश के आभूषण! निर्मल कमल के समान जिनके नयन हैं, ऐसे हे श्रीराम! हे ब्रह्मदेव के पिता! हे जगज्जीवन! पतितों को पावन करनेवाले हे श्रीराम! (तुम्हारी जय हो!) विद्वान् लोगों के मानस-रूपी मानसरोवर के हंस! कामदेव का अन्त कर डालनेवाले शिवजी के हे ध्येय (देवता)! हे भक्तवत्सल! अनन्त वेषों के धारणकर्ता! हे दीनदयालु रघुपति! (तुम्हारी जय हो!) अविद्या-रूपी अरण्य का दहन करनेवाले! अपनी भक्त कौसल्या के गर्भ से उत्पन्न (पुत्र) रत्न! जगत् के उद्धार-कर्ता! मुनिजनों का रंजन करनेवाले और दुर्जनों का नाश करनेवाले हे श्रीराम! तुम्हारी जय हो! जय हो! १-३

पिछले छठे अध्याय में कहा है—वसिष्ठ द्वारा श्रीराम को उपदेश देने के बाद विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के कार्य के लिए उन्हें लिये चले। ४ गंगा में स्नान करके विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण ने नित्य (किये जानेवाले) अनुष्ठान तथा वेदों में कहे हुए सत्कर्मों का आचरण सम्पन्न किया। ५ तदनन्तर, विश्वामित्र ने श्रीराम को धनुर्वेद की युक्तियों तथा अनेकानेक मंत्रों का और किस समय कोई अस्त्र कैसे प्रेरित किया जाए—आदि सम्बन्धी समग्र मंत्रशास्त्र का उपदेश दिया। ६

विश्वामित्र द्वारा युद्ध की नाना युक्तियाँ और कलाएँ बताने पर श्रीराम ने उन सबको उस समय हथेली पर रखे आँवले की तरह स्वीकार किया। ७ मूर्तिमती अस्त्र-देवियों ने राम के चरणों

ठेविती माथा। मग हृदयीं प्रवेशती तत्त्वतां। जळीं जळगार जयापरी। ८ पहावया श्रीरामाचें धैर्यमानस। विश्वामित्र म्हणे तया समयास। येणें मार्गें जे गेले सिद्धाश्रमास। ताटिकेनें तयांस भक्षिलें। ९ येणें मार्गें रघुपती। जाऊं नये भय वाटे चित्तीं। हा मार्ग चुकवून त्वरित गती। जावें सिद्धाश्रमातें। १० ऐकतां कौशिकाचें वचन। श्रीराम बोले सुहास्यवदन। जेणें विश्वमित्राचे कर्ण। तृप्त होऊन सुखावती। ११ स्वामी तुमचे कृपेंकरूनी। महाकाळ उभाच फोडीन बाणीं। तेथें ताटिकेसी कोण गणी। येच क्षणीं मारीन तीतें। १२ कौशिकाचे मनीं संशय होता। कीं हीं बाळकें केवीं झुंजतील आतां। त्या संशयाची समूळ वार्ता। रामवचनें निरसली। १३ मग त्या रथावरी बैसोन। ताटिकेचें हिंदोळित वन। त्याचि मार्गें तिघे जण। जाते जाहले तेधवां। १४ वातवेगें जात स्यंदन। कीं अपार भूमि टाकिली क्रमोन। जैसें ऐकतां हरिकीर्तन। पापें खंडोनि भस्म होती। १५ पुढें देखिलें घोर अरण्य। वृक्ष लागले

में मस्तक नवाया; फिर वे (उनके) हृदय में सचमुच वैसे प्रवेश कर गयीं, जैसे पानी में ओला (प्रवेशकर उससे एकात्म हो जाता है)। ८ श्रीराम के धैर्य-युक्त मन की परख कर देखने के लिए, उस समय विश्वामित्र ने कहा— ' इस मार्ग से जो (जो) सिद्धाश्रम (की ओर) गये, उन्हें ताड़का ने खा डाला। ९ (इसलिए) हे रघुपति! इस मार्ग से न जाएँ। चित्त को भय अनुभव होता है। (अतः) इस मार्ग को टालकर शीघ्र गति से सिद्धाश्रम (की ओर) जाएँ। ' १० विश्वामित्र की बात सुनकर सुहास्यवदन श्रीराम ने कहा—जिससे (जिसे सुनकर) उनके कान तृप्त होकर सुखी हो गये। ११ (श्रीराम ने कहा—) ' हे स्वामी! आपकी कृपा से महाकाल को बाण से खड़े-खड़े भेद डालूँगा, वहाँ (ऐसी स्थिति में) ताड़का की कौन परवाह करे? मैं उसे इसी क्षण मार डालूँगा। ' १२ विश्वामित्र के मन में जो सन्देह था कि ये बालक अब कैसे जूझेंगे, उस (संशय) की मूल-सहित बात श्रीराम की उक्ति से दूर हो गयी। १३ फिर उस रथ में विराजमान होकर, ताड़का के वन को (मानो) झकझोरते हुए वे तीनों उस समय उसी मार्ग से चले गये। १४ (उनका) रथ वायुवेग से जा रहा था। जिस प्रकार हरि-कीर्तन सुनने पर पाप खण्ड-खण्ड होकर भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार उसने अपार भूमि-भाग लाँघ डाला। १५ उन्होंने आगे घोर अरण्य

परम सघन । चालावयासी स्यंदन । मार्ग पुढें फुटेना । १६ रामासी म्हणे गाधिनंदन । राघवा हेंचि ताटिकारण्य । आतां येईल ती धांवोन । वास काढून मनुष्यांचा । १७ तों हांक फोडिली अकस्मात । जे ऐकतां दचकेल कृतांत । विश्वामित्र जाहला भयभीत । रक्षीं म्हणत राघवा । १८ उन्मत्त दशसहस्र गजांचें बळ । ऐसी ताटिका परम सबळ । पर्वत सांठवती विशाळ । ऐसें उदर तियेचें । १९ ते कुंभकर्णाची भगिनी । बहुत विशाळ राक्षसिणी । शतांचीं शतें गोद्विज धरोनी । दाढेखालीं रगडीतसे । २० ताटिका मार्गीं जातां सहज । मुखांत घालोनि रगडी द्विज । वनोपवनीं शोधोनि द्विज । नित्य भक्षी साक्षेपें । २१ प्रेतरक्तें वस्त्रें भरलीं । तींचि आपणाभोंवतीं वेष्टिलीं । मनुष्यशिरें कर्णीं बांधिलीं । बहु दाट वळीनें । २२ नरशिरांच्या अपार माळा । शोणितें चर्चित रुळती गळां । कपालीं सिंदूर चर्चिला । बाबरझोटी मोकळिया । २३ द्वादश गांव पसरलें वदन । पांच गांव लांब एकेक स्तन । अगणित

देखा । (वहाँ) वृक्ष बहुत घने लगे हुए थे । रथ को चलने के लिए मार्ग नहीं निकल रहा था । १६ तब गाधि-नन्दन विश्वामित्र ने राम से कहा— 'हे राघव ! यही ताड़का का वन है । मनुष्य की टोह लगाकर वह अब दौड़ती हुई आएगी ।' १७ त्यों ही वह (ताड़का) सहसा दहाड़ उठी, जिसे सुनकर कृतान्त—अर्थात् यमदेव (भी) दहल जाए । विश्वामित्र भयभीत हो गये । वे राम से बोले— '(अब हमारी) रक्षा करो ।' १८ उस (राक्षसी) में दस हज़ार उन्मत्त हाथियों का बल था । —ताड़का ऐसी परम बलवती थी । उसका उदर ऐसा विशाल था कि (उसमें) पर्वत भरकर रख दिये जा सकते । १९ कुम्भकर्ण की वह बहिन बहुत विशाल राक्षसी थी । वह सैकड़ों-सैकड़ों गायों और ब्राह्मणों को दाढ़ों के बीच (रखकर) रगड़ डालती । २० राह चलते-चलते सहज (ही) में ताड़का ब्राह्मणों को मुँह में डालकर मसल डालती । वन-उपवन में ब्राह्मणों को खोजकर वह हमेशा जान-बूझकर खा डालती । २१ प्रेतों के रक्त से (जो) वस्त्र सन गये, उन्हीं को उसने लपेट लिया (था) । उसने मनुष्यों के मस्तकों को एक पंक्ति में बहुत सघन (पिरोकर) कानों में बाँध लिया (था) । २२ नर-मुण्डों की अनगिनत मालाएँ (उसके) गले में थीं । कपाल में सिंदुर लगाया (था) और बालों के झोंटे खुले थे । २३ उसका मुँह बारह गाँव फैला हुआ था, एक-एक

राक्षसी संगें घेऊन। रामावरी लोटली। २४ सखियांसी ताटिका म्हणे तेचि क्षणीं। या पंथें येत मनुष्यांची घाणी। नरमांसाची आजि धणी। तुम्हांस देईन निर्धारें। २५ विश्वामित्र म्हणे चापपाणी। हे वृक्ष विशाळ गेले गगनीं। आंत गर्जतात राक्षसिणी। ताटिकेसहित पाहें पां। २६ राम काढी कोदंडाची गवसणी। जैसा याज्ञिकें कुंडाचा फुंकिला अग्नी। कीं अकस्मात उगवला वासरमणी। यामिनीअंतीं पूर्वेसी। २७ तंव सित ओढितां आकर्ण। कडकडाट घोष दारुण। जाहला सवेंच योजिला बाण। प्रळयचपळेसारिखा। २८ ज्या बाणाचें अर्धचंद्राकार वदन। करी धांवत्या वायूचें खंडण। रामे ओढूनि आकर्ण। तो बाण सोडिला ते समयीं। २९ वृक्षांसहित राक्षसिणी। मुख्य ताटिका हृदयापासोनी। छेदोन पाडिली ते क्षणीं। घोष गगनी न समाये। ३० प्राण जातां रक्षसिणी। ताटिका गर्जली ते क्षणीं। तो घोष विमानीं ऐकोनी। देव सर्व गजबजिले। ३१ म्हणती विजयी विजयी श्रीरघुवीर।

स्तन पाँच (-पाँच) गाँव लम्बा था। अनगिनत राक्षसियों को साथ में लेकर वह श्रीराम पर टूट पड़ी। २४ उसी क्षण ताड़का सखियों से बोली— ‘ इस मार्ग में मनुष्यों की दुर्गन्ध आ रही है। निश्चय ही आज मैं तुम्हें यथेच्छ नर-मांस दूँगी। ’ २५ (तब) विश्वामित्र ने कहा— ‘ हे चक्रपाणि राम ! ये विशाल वृक्ष आकाश में (ऊँचे बढ़) गये (हैं)। देखो, अन्दर ताड़का सहित राक्षसियाँ गरज रही हैं। २६ (यह सुनकर) श्रीराम ने धनुष का आवरण निकाल लिया, (तो वह धनुष ऐसा जान पड़ा) मानो (यज्ञ-) कुण्ड में (स्थित) अग्नि फूँककर सुलगायी हुई हो, अथवा सहसा रात के अन्त में पूरब में सूर्य उदित हुआ हो। २७ तब प्रत्यंचा (धनुष की डोरी) को कान तक खींचने पर दारुण कड़कड़-नाद हुआ; साथ ही (श्रीराम ने उसपर) प्रलयकाल की बिजली-सा (चमकता हुआ) ऐसा बाण चढ़ाया, जिसका अर्धचन्द्राकार मुख तेज चलते वायु का (भी) खण्डन करता है। ऐसे उस बाण को कान तक खींचकर श्रीराम ने उस समय चला दिया। २८-२९ उस क्षण (उस बाण ने) वृक्षों के साथ ही मुख्य राक्षसी ताड़का को हृदय में भेदकर गिरा दिया। (उस समय उत्पन्न) ध्वनि आकाश में नहीं समाती थी। ३० उस क्षण प्राणों के निकल जाते समय ताड़का राक्षसी ने गर्जन किया। उस चीत्कार को सुनकर विमानों में (बैठे हुए) सब देवों में धूम मची। ३१ वे कहते

वर्षती देव पुष्पांचे संभार। ब्रह्मानंदें विश्वामित्र। रामालागीं आलिंगी। ३२ म्हणे रविकुळभूषणा रघुवीरा। राजीवनेत्रा परम सुकुमारा। तुझी धनुर्विद्या रामचंद्रा। आजि म्यां दृष्टीं विलोकिली। ३३ जैसें एकाचि नामेंकरून। कोट्यवधि पापें जाती जळून। तैसें ताटिकासहित हें वन। एकाचि बाणें खंडिलें। ३४ ताटिकेच्या रक्तेंकरूनी। असंभाव्य तेव्हां रंगली मेदिनी। देव दुंदुभी वाजविती गगनीं। आला चापपाणी सिद्धाश्रमा। ३५ जैसे वर्षाकाळीं गंगेचे पूर। तैसे चहूंकडून धावती ऋषीश्वर। समस्तांसी वंदोनि रघुवीर। भेटता जाहला ते काळीं। ३६ यज्ञमंडप शास्त्रप्रमाण। कुंड वेदिका भूमि साधोन। चारही द्वारें अष्टकोन। करिती साधून विप्र तेव्हां। ३७ सकळ सामग्री सिद्ध करून। आरंभिला महायज्ञ। श्रीरामासी म्हणे गाधिनंदन। मखरक्षण करीं आतां। ३८ तुवां ताटिका वधिली हा समाचार। ऐकोन धांवतील रजनीचर। मारीच सुबाहु भयंकर। प्रळय थोर करितील। ३९ यालागीं नरवीरपंचानना। सांभाळीं चहूंकडे रघुनंदना। परम कपटी

हैं— 'श्रीरघुवीर विजयी हुए, विजयी हुए।' वे राशि-राशि फूल बरसाते हैं। (यह देखकर) विश्वामित्र ने ब्रह्मानन्द-पूर्वक राम को गले लगाया और कहा— 'हे रविकुल-भूषण रघुवीर! हे कमलनयन! हे परम सुकुमार! हे रामचन्द्र! मैंने आज अपनी दृष्टि से तुम्हारी धनुर्विद्या देखी। ३२-३२ जैसे एक ही नाम से करोड़ों पाप जल जाते हैं, वैसे तुमने एक ही बाण से ताड़का-सहित (राक्षसियों का नाशकर) यह वन खण्डित कर डाला। ३४ तब ताड़का के रक्त से पृथ्वी अतिशय रँग गयी। देव आकाश में दुन्दुभी बजाते हैं (थे)। (तदनन्तर) चक्रपाणि श्रीराम सिद्धाश्रम आ गये। ३५ जैसे वर्षाकाल में गंगा में पानी के रेले चलते हैं, वैसे चारों ओर से बड़े-बड़े ऋषि दौड़ते (आते) हैं। उस समय सबका वन्दनकर श्रीराम मिले। ३६ तब शास्त्रों में बताये अनुसार यज्ञ-मण्डप, वेदिका तथा (यज्ञ-) भूमि तैयार करके और चारों द्वार तथा आठ कोण बनाकर ब्राह्मणों ने समग्र सामग्री सिद्ध करते हुए महायज्ञ का आरम्भ किया। (फिर) विश्वामित्र ने श्रीराम से कहा— 'अब तुम यज्ञ की रक्षा करो।' ३७-३८ तुमने ताड़का का वध किया—यह समाचार सुनकर राक्षस दौड़ते हुए आएँगे (धावा बोल देंगे)। भयंकर मारीच और सुबाहु महा प्रलय (उत्पात) मचाएँगे। ३९ इसलिए हे नरवीर-पंचानन (वीर पुरुषों में सिंह)!

राक्षस जाणा। पर्वत शिळा ठाकितील। ४० श्रीराम म्हणे महाऋषी। तुम्हीं चिंता न करावी मानसीं। शिक्षा लावीन कृतांतासी। विघ्नें करूं आलिया। ४१ ऐकोनि श्रीरामाचें वचन। उल्हासलें ऋषीचें मन। मग दीक्षाग्रहणें गाधिनंदन। आरंभ करी यज्ञासी। ४२ जैसा चंद्र वेष्टित तारागणें। कीं मित्राभोंवतीं जैसीं किरणें। तैसा ऋषिवेष्टित गाधिनंदन। कुंडासमीप विराजे। ४३ ओंकारासहित स्वाहाकार। अवदानें टाकिती सत्वर। उठला मंत्रांचा गजर। वषट्कारघोष पै। ४४ तों अस्ता गेला वासरमणी। दोन प्रहर जाहली रजनी। पिशिताशन आले धांवोनी। ताटिकेच्या कैवारें। ४५ वीस कोटी रजनीचर। मुख्य मारीच सुबाहु असुर। सिद्धाश्रमासमीप सत्वर। हांक फोडीत पातले। ४६ हांक ऐकोनि दारुण। भयभीत जाहले ब्राह्मण। गळती हातींचीं अवदानें। वदनीं बोवडी वळतसे। ४७ म्हणती रक्षीं रक्षीं रघुनंदना। नरवीर-श्रेष्ठा

रघुनन्दन! चारों ओर ध्यान रक्खो। राक्षसों को परम कपटी समझो। वे (ऊपर से) पर्वतों और शिलाओं को फेंक देंगे (गिराएँगे)। ४० (यह सुनकर) श्रीराम ने कहा—' हे महर्षि! तुम मन में चिन्ता न करो। मैं कृतांत काल को (भी), बाधा उत्पन्न करने के लिए आने पर दण्ड दूँगा। ४१ श्रीराम की बात सुनकर (विश्वामित्र) ऋषि का मन उल्लसित हो गया। (फिर) दीक्षा ग्रहण करते हुए विश्वामित्र ने यज्ञ का आरम्भ किया। ४२ जैसे तारों के समूह में चन्द्र घिरा हुआ होता है, अथवा सूर्य के चारों ओर किरणें (उसे घेरे हुए) होती हैं, वैसे ही (अन्य) ऋषियों से घिरे हुए विश्वामित्र यज्ञकुण्ड के समीप विराजमान थे। ४३ ॐकार सहित स्वाहाकार (विशिष्ट मंत्र का पाठ करते हुए) उन्होंने होम-द्रव्य की आहुतियाँ शीघ्रता-पूर्वक समर्पित कीं, तो वषट्-कार मंत्र का घोष गूँज उठा। ४४ तब सूर्य का अस्त हो गया। (फिर) दोपहर रात हो गयी (बीत गयी), तो ताड़का का पक्षपात करते हुए राक्षस दौड़ते हुए आ गये। ४५ वे बीस करोड़ राक्षस थे, जिनमें प्रमुख थे मारीच और सुबाहु (नामक) राक्षस। वे शीघ्र ही सिद्धाश्रम के पास गर्जन करते हुए आ पहुँचे। ४६ (उनका) दारुण गर्जन सुनकर ब्राह्मण भयभीत हो गये। (उनके) हाथों की आहुतियाँ गिरती हैं (गिर गयीं) और उनकी बोलती बन्द हो गयी। ४७ वे कहते हैं (बोले)—' हे रघुनन्दन! हे नरवीर श्रेष्ठ! गायों और ब्राह्मणों के पालन-कर्ता!

गो-विप्र-पाळणा । श्रीराम म्हणे वो ब्राह्मणा । चिंता कांहीं न करावी । ४८ तंव एक म्हणे ब्राह्मण । रक्षणार राम आणि लक्ष्मण । पर्वताकार राक्षस संपूर्ण । वीस कोटी पातले । ४९ एक द्वार हे दोघे रक्षिती । दुज्या द्वारें राक्षस संचरती । आतां कैसी होईल गती । पळावया निश्चितीं ठाव नाहीं । ५० विश्वामित्र म्हणे स्वस्थ करा मन । मानव नव्हे रघुनंदन । पुराणपुरुष आदिनारायण । राक्षस वधावया अवतरला । ५१ तों पर्वत आणि पाषाण । यज्ञमंडपावरी पडती येऊन । हांक फोडिती दारुण । मग रघुनंदन काय करी । ५२ कोदंड ओढून आकर्ण । सोडी बाणांपाठीं बाण । राक्षसांचीं शिरें कर चरण । तटतटां तुटताती । ५३ राक्षस परम अतुर्वळी । ज्यांहीं सुरांचे मुकुट पाडिले तळीं । हांक देती अंतराळीं । यज्ञमंडप वेढिला । ५४ एक उडती अंबरीं । प्रेतें टाकिती यज्ञकुंडावरी । मग रघूत्तम अयोध्याविहारी । सर्वद्वारीं व्यापला । ५५ जिकडे तिकडे रघुनंदन । चारही द्वारें

(हमारी) रक्षा करो ! रक्षा करो !' (इस पर) श्रीराम ने कहा—'हे ब्राह्मणो ! कोई चिन्ता न करो ।' ४८ तब एक ब्राह्मण ने कहा—'राम और लक्ष्मण रक्षा करनेवाले (केवल दो ही) हैं । (और उधर) पूरे बीस करोड़ पर्वताकार राक्षस आ पहुँचे (हैं) । ये दोनों एक द्वार की रखवाली करेंगे, तो दूसरे दरवाज़े में से राक्षस अन्दर आएँगे । अब कैसी स्थिति हो जाएगी ? भाग जाने का भी (कोई) निश्चित ठिकाना नहीं है ।' ४९-५० (यह सुनकर) विश्वामित्र ने कहा—'मन को शान्त करो । रघुनन्दन श्रीराम मानव नहीं हैं । (उनके रूप में) पुराणपुरुष आदिनारायण राक्षसों का वध करने के लिए अवतरित हैं ।' ५१ त्यों ही यज्ञ-मण्डप पर पर्वत और पत्थर आ पड़े (गिरे) । राक्षस भयंकर गरजते हैं (थे) ।(देखो) फिर श्रीराम क्या करते हैं ? ५२ वे धनुष्य (की प्रत्यंचा) को कान तक खींचकर बाण पर बाण चलाते हैं (थे) (और) राक्षसों के सिर, हाथ और पाँव तड़तड़ाकर टूट (कट) जाते हैं (थे) । ५३ जिन्होंने देवों के मुकुट नीचे गिरा दिये (थे), ऐसे वे राक्षस परम भयंकर थे । वे अन्तराल में गर्जन करते (थे) । उन्होंने यज्ञ-मण्डप को घेर लिया । ५४ कोई-एक आकाश में उड़ जाते (और वहाँ से) यज्ञ-कुण्ड पेर प्रेतों को गिरा देते । फिर अयोध्या-विहारी रघुनन्दन श्रीराम सब द्वारों में व्याप्त हो गये । ५५ (अब) जिधर (देखें) उधर (सर्वत्र) श्रीराम

अष्ट कोन। अष्टदिशा व्यापोन। सोडी वाण श्रीराम। ५६ मंडपाचिया कळसावरी। उभा राम कोदंडधारी। बाणांचा पर्जन्य तये अवसरीं। चहूंकडोनि पाडीतसे। ५७ रामरूपें असंख्यात। यागमंडापाभोवतीं वेष्टित। बाणांचे पूर वर्षत। संहार होत असुरांचा। ५८ मंडपावर आणि खालतें। सर्व व्यापिलें रघुनाथें। तीळ ठेवावयापुरतें। रामाविण रितें स्थळ नसे। ५९ तूणीरांतूनि किती निघती शर। शेषासी त्याचा न कळे पार। कीं लेखकापासूनि अक्षरें। किती निघती कळेना। ६० कीं मुखांतूनि शब्द निघती। त्यांची जैसी न होय गणती। कीं मेघधारा वर्षती। नाहीं गणती तयांची। ६१ कीं महाकवींची पद्यरचना। किती जाहली हें कळेना। कीं कुबेरभांडारींची गणना। कदा न कळे कोणातें। ६२ मेरुपाठारीं रत्नखाणीं निश्चितीं। त्यांतून रत्नें जैसी निघती। कीं पृथ्वीवरी तृणांकुर किती। नाहीं गणती तयांची। ६३ कीं

(ही दिखायी देते) थे। चारों द्वारों तथा आठों कोणों और आठों दिशाओं को व्याप्त करके श्रीराम वाण सन्धान करते (रहे)। ५६ यज्ञ-मण्डप के कलश पर धनुर्धारी श्रीराम खड़े थे। उस अवसर पर वे चारों ओर से बाणों की (मानो) बौछार करते रहे। ५७ श्रीराम के अनगिनत रूप यज्ञ-मण्डप को चारों ओर घेरे हुए थे, वे बाणों के रेले (के रेले) वरसाते और (उससे) असुरों का संहार हो जाता। ५८ मण्डप के ऊपर और नीचे सब स्थान श्रीराम द्वारा व्याप्त थे। राम के विना--जहाँ राम न हो ऐसा स्थान तिल धरने को भी नहीं (मिलता) था। ५९ तरकस में से कितने बाण निकलते, उसका पार (पूरा हिसाब) शेष भगवान् को भी ज्ञात नहीं था। अथवा यह विदित नहीं होता कि लेखक से कितने अक्षर निकलते (लिखे वा कहे जाते हैं); अथवा मुख में से जो शब्द उत्पन्न होते हैं, उनकी जैसे गिनती नहीं हो सकती, अथवा जो मेघ-धाराएँ बरसती हैं, उनकी गिनती नहीं हो पाती, अथवा यह ज्ञात नहीं हो सकता कि महाकवि द्वारा कितनी पद्य-रचना हुई, अथवा कुबेर के भण्डार (के धन) का हिसाब कभी किसी को अवगत नहीं हो जाता, वैसे ही कोई नहीं कह सकता कि श्रीराम के तरकस में से कितने बाण निकलते थे। ६०-६२ मेरु पर्वत के पृष्ठ पर रत्नों की निश्चय ही जो खानें हैं, उनमें से जैसे रत्न निकलते रहते हैं, वैसे श्रीराम के तरकस में से बाण निकलते रहते। अथवा पृथ्वी पर घास के कितने अंकुर हैं?--उनकी गिनती नहीं

शास्त्रसंमतें अनेकार्थ। असंख्य करिती निपुण पंडित। तैसा रामबाणांसी नाहीं अंत। तूणीर निश्चित रिता नोहे। ६४ मेघ समुद्रजळ प्राशितां। परी तो रिता नोहे तत्त्वतां। कीं विष्णुमहिमा वर्णितां। न सरे सर्वथा कल्पांतीं। ६५ तैसा उणा नोहेचि तूणीर। कोट्यनुकोटी निघती शर। करील राक्षसांचा संहार। समरधीर श्रीराम। ६६ जैसी जाहलिया प्रभात। वृक्षींहूनि पक्षी उडती बहुत। तैसीं राक्षसशिरें अकस्मात। आकशपंथें उसळती। ६७ वीस कोटी राक्षस देख। एकला राम अयोध्यानायक। परी ते मृगेंद्रावरी जंबुक। अपार जैसे उठावले। ६८ दंदशूक मिळोनि अपार। धरूं आले खगेश्वर। कीं प्रळयाग्नीवरी पतंगभार। विझवावया झेंपावती। ६९ कीं बहुत मिळून खद्योत। धरून आणूं म्हणती आदित्य। कीं शलभ मिळोनि समस्त। महामेरु उचलूं म्हणती। ७० एकलाचि फरशधर। परी अवनी केली निर्वीर।

हो सकती। वैसे ही श्रीराम के तरकस में स्थित वाणों की स्थिति है। ६३ कुशल पंडित जैसे किसी सिद्धान्त के शास्त्रों की सम्मति से (आधार पर) अनेक अर्थ करते हैं (फिर भी और अर्थों की गुंजाइश बनी रहती है) वैसे ही श्रीराम के वाणों (के कोश) का कोई अन्त नहीं होता। निश्चय ही उनका तरकस रीता नहीं हो रहा है (था)। ६४ मेघों द्वारा समुद्र के जल के पीते रहने पर भी वह सचमुच रिक्त नहीं होता, अथवा भगवान् विष्णु की महिमा का वर्णन करते रहने पर भी वह कल्पान्त में भी समाप्त नहीं होती, वैसे ही श्रीराम का तूणीर कम नहीं होता। उसमें से कोटि-कोटि वाण निकलते (रहते) हैं (थे)। (उनसे) समर-धीर श्रीराम राक्षसों का संहार कर डालते हैं (थे)। ६५-६६ जिस प्रकार सबेरा हो जाने पर वृक्ष पर से बहुत पक्षी उड़ जाते हैं, वैसे राक्षसों के मस्तक सहसा आकाश-मार्ग में उछलते (दिखायी देते) हैं। ६७ देखो, (इधर) बीस करोड़ राक्षस हैं (और उधर) अकेले अयोध्या-नायक श्रीराम हैं। फिर भी वे (राक्षस), सिंह पर सियारों जैसे अपार संख्या में धावा बोल गये। ६८ अथवा असंख्य सर्प मिलकर खगराज गरुड़ को पकड़ने आये हों, अथवा प्रलयाग्नि को बुझा डालने के लिए पतंगों का समूह लपकता है, अथवा अनेक जुगनू मिलकर सूर्य को पकड़ लाने की इच्छा करते हों, अथवा सब शलभ (टिड्डियाँ) मिलकर महान् मेरु पर्वत को उठाने की बात (इच्छा) करते हैं--यह जैसे व्यर्थ है वैसे ही राक्षसों का राम को पराजित

एकले नृसिहें संभार। आटिले पूर्वी दैत्यांचे। ७१ असो राक्षसशिरांच्या लाखोल्या। रामें भूलिगासी समर्पिल्या। मारीच सुबाहु ते वेळां। गदा घेऊन धांविन्नले। ७२ रामें काढिला निर्वाणबाण। ज्या शरमुखीं दैवत सूर्यनारायण। सुबाहूचा कंठ लक्षून। केलें संधान राघवें। ७३ जैसा विहंगम वेगेंकरून। धांवे वृक्षाग्रींचें फळ लक्षून। तैसा सवेग गेला बाण। शिर उडविलें सुबाहूचें। ७४ त्या बाणाचा पिसारा किंचित। मारीचास लागला अकस्मात। त्या शरवातें अद्भुत। मारीच उडोनि गेला पैं। ७५ की खगेश्वराच्या पक्षफडत्कारीं। अचळ उडोनि जाय दिगंतरीं। तैसा मारीच समुद्राभीतरी। जाऊनियां पडियेला। ७६ परम होऊनियां भ्रमित। लंकेसी गेला धाकें पळत। वाटे पाठीसी लागला रघुनाथ। परतोनि पहात घडीघडी। ७७ लंकेंत राक्षस प्रवेशोन। राक्षसेंद्रातें सांगे वर्तमान। म्हणे मानव

करने का यत्न व्यर्थ है। ६९-७० परशुधर राम (परशुराम) अकेले थे, फिर भी उन्होंने पृथ्वी को वीर-हीन कर डाला। अकेले नरसिंह ने पूर्व-काल में दैत्यों के समूहों को नष्ट किया। ७१

अस्तु। श्रीराम ने राक्षसों के मस्तकों की लक्षावली भू-रूपी शिव-लिंग को समर्पित की। उस समय मारीच और सुबाहु गदाएँ लेकर दौड़े आये। ७२ तो श्रीराम ने (वह) निर्वाण बाण निकाल लिया, जिसके मुख में सूर्यनारायण देवता विराजमान थे। उन्होंने सुबाहु के कण्ठ को लक्ष्य करके संधान किया। ७३ जिस प्रकार पक्षी पेड़ के अग्र भाग में लगे फल को लक्ष्य करके (उसकी ओर) वेग-पूर्वक दौड़ता (उड़ान भरता) है, वैसे ही वह बाण वेग-पूर्वक गया और उसने सुबाहु का सिर (काट कर) उड़ा डाला। ७४ सहसा उस बाण के परों का फैलाव मारीच को ज़रा-सा लग (छू) गया। उस बाण से उत्पन्न अद्भुत (हवा के) झोंके से मारीच उड़ गया। ७५ अथवा, जैसे पक्षिराज गरुड़ के पंखों के झटके से पर्वत दिशा के अन्त तक, अर्थात् बहुत दूर उड़ जाता है, वैसे (श्रीराम के बाण के झटके से उत्पन्न हवा के तेज़ झोंके से) मारीच उड़कर समुद्र में जाकर गिर पड़ा। ७६ वह अति भ्रमित होता हुआ, अर्थात् चक्राकार घूमता हुआ मारे आतंक के दौड़ता हुआ लंका में गया। (उसे) लगता था कि श्रीराम पीछा कर रहे हैं, इसलिए बार-बार वह पीछे मुड़कर देखा करता। ७७ उस राक्षस ने लंका में प्रवेश करके राक्षसराज रावण से

नव्हे रघुनंदन। आदिपुरुष अवतरला। ७८ अवघा ऐकोन वृत्तांत। रावण दचकला मनांत। जैसा सुपर्णाचा ऐकतां पुरुषार्थ। सर्प बहुत संतापती। ७९ कीं ऐकोन संतांचें स्तवन। मनांत कष्टी होय दुर्जन। कीं पतिव्रतेचा धर्म परिसोन। व्यभिचारिणी विटती पैं। ८० असो समस्त आटोनि रजनीचर। सिद्धाश्रमीं रणरंगधीर। रणमंडळीं रघुवीर। एकला कैसा शोभला। ८१ जैसें महाकल्पीं सर्व संहारे। मग एकलें परब्रह्म उरे। कीं समस्त लोपोनि नक्षत्रें। एकला दिनकर उगवे जैसा। ८२ कीं शुक्तिकेवेगळें मुक्ताफळ। दिसे जैसें परम तेजाळ। कीं प्रपंच त्यागोनि निर्मळ। योगेश्वर विलसे जेवीं। ८३ जैसे रात्र निरसतां उठती जन। तैसे यज्ञमंडपांतूनि उठती ब्राह्मण। भेटती रामास जाऊन। ब्रह्मानंदेंकरोनियां। ८४ जठरीं अन्नपाक होय वेगें। परी गर्भास ढका न लागे। कीं ज्ञानी वेष्टित तापत्रयभोगें। परी अंतर न भंगे सर्वथा। ८५

समाचार कहा। वह बोला—'श्रीराम मनुष्य नहीं हैं। (उनके रूप में) आदिपुरुष भगवान अवतरित हैं।' ७८

समस्त समाचार को सुनकर रावण मन में उस प्रकार चौंक उठा, जिस प्रकार गरुड़ के प्रताप को सुनकर सर्प बहुत सन्तप्त हो जाते हैं, अथवा सन्तों का स्तवन सुनकर दुर्जन मन में उदास हो जाते हैं, अथवा, पतिव्रता स्त्री का धर्म सुनकर व्यभिचारी स्त्रियाँ निस्तेज हो जाती हैं। ७९-८०

अस्तु! सब राक्षसों के नष्ट हो जाने पर सिद्धाश्रम में अकेले रण-रंग-धीर पुरुष श्रीराम रणभूमि-मण्डल में कैसे शोभायमान थे? ८१ (वे वैसे सुशोभित दिखायी दे रहे थे) जैसे महाकाल के अन्त में सब का संहार हो जाता है और अकेला परब्रह्म शेष (शोभायमान) रहता है; अथवा समस्त तारों के लुप्त हो जाने पर अकेला सूर्य उदित हो जाता है (शोभायमान बना रहता है), अथवा सीपी से अलग हुआ मोती जैसे परम तेजस्वी दिखायी देता है, अथवा महान् योगी पुरुष घर-गिरस्ती का त्याग कर (सांसारिक भावों के मैल से रहित हो) जैसे सुशोभित होता है। ८२-८३ जसे रात के समाप्त हो जाते ही लोग जाग उठते हैं, वैसे ही (राक्षसों के नष्ट हो जाने पर) ब्राह्मण यज्ञ-मण्डप में से उठ गये और ब्रह्मानन्द-पूर्वक श्रीराम से मिल गये। ८४ जठर (पेट के भीतरी भाग) में वेगपूर्वक अन्न तैयार होता रहता है, परन्तु गर्भ को धक्का नहीं पहुँचता, अथवा ज्ञानी पुरुष आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक नामक तीनों

तैसे यज्ञमंडपासहित विप्र । रघूत्तमें रक्षिले साचार । पूर्ण जाहला मख समग्र । श्रीरघुवीर-प्रतापें । ८६ विश्वामित्रासी नावरे प्रेमा । म्हणे वत्सा माझिया श्रीरामा । सहस्रवदनास तुझा महिमा । न वर्णवेचि सर्वथा । ८७ कौशिकासी म्हणती ऋषिजन । श्रीराममूर्ति धाकुटी सगुण । पर्वताकार राक्षस संहारून । कैसे क्षणमात्रें टाकिले । ८८ विश्वामित्र हास्य-वदन । ऋषींप्रति बोले वचन । म्हणे आदित्यमंडळ दिसे लहान । परी पृथ्वीभरी प्रकाश । ८९ धाकुटा दिसे कलशो-द्भव । उदरीं सांठविला जलार्णव । कीं वामनरूप धरी केशव । परी दोन पाउलें ब्रह्मांड केलें । ९० दिसे इंद्राचें वज्र लहान । परी पर्वताचें केलें चूर्ण । पंडितहृदयीं बुद्धि सर्षपप्रमाण । परी आब्रह्मभुवन व्यापिलें । ९१ तैसा राम धाकुटा दिसे तुम्हां । परी ब्रह्मादिकां नेणवे महिमा । पुराणपुरुष हा परमात्मा ।

(प्रकार के) तापों के भोग से घिरे रहते हैं, परन्तु उनका अन्तःकरण बिलकुल भंग अर्थात् विचलित नहीं हो जाता, वैसे (चारों ओर राक्षसों के रहने पर भी) श्रीराम ने सचमुच यज्ञ-मण्डप सहित ब्राह्मणों की रक्षा की। श्रीरघुवीर राम के प्रताप से सम्पूर्ण यज्ञ सम्पन्न हो गया। ८५-८६

(श्रीराम के प्रति उमड़नेवाले) प्रेम को विश्वामित्र से रोका नहीं जा रहा है (था)। वे बोले—'हे मेरे वत्स श्रीराम! सहस्रवदन शेष भगवान से (भी) तुम्हारी महिमा का पूर्णतः वर्णन नहीं किया जा सकता।' ८७ (तदनन्तर) ऋषिजन विश्वामित्र से कहते हैं (बोले)—'श्रीराम की मूर्ति प्रत्यक्ष तो छोटी है! (परन्तु) उन्होंने पर्वताकार राक्षसों का क्षणमात्र में संहार कैसे कर डाला!' ८८ तो विश्वामित्र ने मुसकुराते हुए ऋषियों से कहा (वे कहते हैं)—'सूर्य-मण्डल तो छोटा दिखायी देता है, परन्तु उसका प्रकाश पृथ्वी-भर पर (व्याप्त) होता है। ८९ कलशोत्पन्न अगस्त्य मुनि छोटे दिखते थे, परन्तु उन्होंने समुद्र को (अपने) पेट में (भर) रखा। अथवा श्रीविष्णु ने वामन (बौना) रूप धारण किया, परन्तु उन्होंने ब्रह्माण्ड को दो पाँव (भर छोटा) कर डाला। ९० इन्द्र का वज्र छोटा दिखायी देता है, पर उसने पर्वतों का चूर्ण कर डाला, अथवा पण्डित के हृदय में राई-सी (छोटी) बुद्धि होती है, लेकिन उसने आब्रह्म-भुवन (समस्त ब्रह्माण्ड) को व्याप्त कर दिया। ९१ वैसे ही तुम्हें श्रीराम नन्हा दिखायी देता है, परन्तु (उसकी) महिमा ब्रह्मा आदि देवों की (भी) समझ में नहीं आती। वह पुराणपुरुष है, परमात्मा है,

भक्तरक्षणा अवतरला । ९२ असो भूतावळी पातल्या तेथें । त्यांहीं भक्षिलीं राक्षसप्रेतें । यज्ञमंडपाभोंवतें । शुद्ध केलें भूमंडळ । ९३ तों आलें मिथिलेश्वराचें पत्र । तें स्वयें वाची विश्वामित्र । सवें घेऊन समस्त विप्र । स्वयंवरालागीं येइंजे । ९४ ते दिवशीं बहुत सोहळा । सिद्धाश्रमीं कौशिकें केला । ब्राह्मण-भोजन जाह्लिया सकळां । वस्त्रें अलंकार दीधले । ९५ जेथें साह्य श्रीराम आपण । तेथें कांहीं न दिसे अपूर्ण । बहुत दक्षिणा देऊनि ब्राह्मण । विश्वामित्रें तोषविले । ९६ असो तेव्हां जाह्लिया रजनी । कौशिक निजला स्वशयनीं । पुढें राम-लक्ष्मण घेऊनी । सुखेंकरून पहुडला । ९७ साक्षात् शेष-नारायण । कौशिक निजला पुढें घेऊन । निद्रा नव्हे ते समाधि पूर्ण । उन्मनी ओंवाळून टाकावी । ९८ हृदयीं न धरितां रघुनाथा । शेजे निजती जे तत्त्वतां । मज गमे ऐसें पाहतां । कीं पशूच केवळ पडियेले । ९९ रामस्मरणेंविण भोजन । जैसें भस्मीं घातलें अवदान । तें यज्ञपुरुषासी न अर्पण । वृथा

जो भक्तों की रक्षा के लिए अवतरित है । ९२

अस्तु ! भूतों के समूह वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने राक्षसों के प्रेतों को खा लिया (और) यज्ञ-मण्डप के चारों ओर की भूमि शुद्ध कर दी । ९३ इतने में मिथिला के राजा (जनक) का पत्र आ गया । स्वयं विश्वामित्र ने उसे पढ़ लिया, (जिसमें लिखा था कि) ‘सब ब्राह्मणों को साथ में लेकर स्वयंवर के लिए आओ ।’ ९४ उस दिन सिद्धाश्रम में बड़ा समारोह सम्पन्न किया । ब्राह्मणों का भोजन हो जाने पर सबको वस्त्र और आभूषण दिये । ९५ जहाँ स्वयं श्रीराम सहायता के लिए (प्रस्तुत) हैं, वहाँ कोई (बात) अपर्याप्त नहीं दिखायी दे रही है (थी) । विश्वामित्र ने बहुत दक्षिणा देकर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर दिया । ९६

अस्तु ! तब रात हो जाने पर विश्वामित्र अपनी शय्या पर लेट गये । अपने पास श्रीराम और लक्ष्मण को लिए हुए वे सुखपूर्वक पौढ़ गये । ९७ विश्वामित्र प्रत्यक्ष शेष-नारायण को पास में लेकर सो गये । (उनकी) वह निद्रा नहीं थी; वह (तो) पूर्ण समाधि (अवस्था) थी, जिसपर उन्मनी अवस्था को निछावर कर दें । ९८ हृदय में श्रीराम को न रखते हुए, जो सचमुच सो जाते हैं, उन्हें देखकर, मुझे लगता है कि (ये मनुष्य नहीं हैं,) वे केवल पशु ही लेटे हुए हैं । ९९ जैसे भस्म में अवदान (होम-द्रव्य की आहुति) डाल दिया, तो वह यज्ञ-पुरुष को समर्पित नहीं हुआ,

भोजन तैसें तें। १०० रामप्राप्तीविण कर्म देख। नाशिती कुश मृत्तिका उदक। तरी ते पिशाच नर ओळख। भुलले मूर्ख जाणिजे। १०१ श्रीरामप्राप्तीविण ज्ञान। त्याचें नांव म्हणिजे अज्ञान। विद्या तेचि अविद्या पूर्ण। धर्म तो अधर्म जाणिजे। १०२ असो धन्य भाग्य कौशिकाचें। पुढें निधान श्रीवैकुंठींचें। घेऊन पहुडला साचें। नाहीं चिंतेचें वास्तव्य। १०३ निद्रा लागली जों ऋषीस निश्चितीं। तों जागे जाहले दोघे दाशरथी। श्रीराम म्हणे सौमित्राप्रती। परियेसीं एक जिवलगा। १०४ आम्ही कधीं जाऊं अयोध्येसी। पाहूं दशरथाचा वदनशशी। बोलतां श्रीरामाचे नेत्रांसी। अश्रु आले तेधवां। १०५ तो शयनीं जागा जाहला गाधिसुत। दोघांच्या ऐशा गोष्टी ऐकत। स्फुंदस्फुंदोनि बोले रघुनाथ। श्रीदशरथ देखों कधीं। १०६ सकळ रायांचे मुगुट एकसरीं।

वैसे ही बिना श्रीराम (के) स्मरण किया भोजन (सच्चे अर्थों में भोजन नहीं; निरर्थक भोजन होता है। १०० देखो श्रीराम की प्राप्ति (के उद्देश्य) को छोड़कर जो (यज्ञ-यागादि) कर्म करते हैं, वें (उसके अनुष्ठान के लिए आवश्यक) कुश (दर्भ), (विविध प्रकार की) मिट्टी और जल का नाश करते हैं। (अर्थात् ऐसा यज्ञ-यागादि कर्म व्यर्थ होता है।) इसलिए उन्हें नर (रूपी) पिशाच समझो, माया द्वारा मोहित मूर्खजन समझो। १०१ बिना श्रीराम की प्राप्ति के, जो ज्ञान (पाया हुआ) हो, उसका नाम 'अज्ञान' कहते हैं; उसकी जो विद्या हो, वही पूर्ण अविद्या और (उसके द्वारा आचरित जो) धर्म (हो, उसे) अधर्म समझो। १०२

अस्तु ! धन्य है विश्वामित्र के भाग्य ! वे सचमुच (अपने) सामने वैकुण्ठलोक की धरोहर को लिये हुए लेट गये। वहाँ (उनके लिए) चिन्ता का (कोई) निवास नहीं था। १०३ जब ऋषि विश्वामित्र को निश्चय ही नींद लग गयी, तो दशरथ के दोनों पुत्र जग गये। (तब) श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—'हे प्राणप्रिय ! एक बात सुनो। १०४ हम कब अयोध्या जाएँगे ? (पिता) दशरथ के मुख-चन्द्र को कब देखेंगे ?' तब बोलते-बोलते श्रीराम के नेत्रों में आँसू आ गये। १०५ त्यों ही गाधि-सुत विश्वामित्र शय्या में जग गये। वे दोनों की ऐसी बातें सुन रहे थे। श्रीराम फफक-फफक कर (रोते हुए) बोले—'पिता श्रीदशरथ को कब देखेंगे? १०६ जब सब राजा (उन्हें) नमस्कार करते हैं, उस अवसर पर सबके

नमस्कारिती ते अवसरीं । पडती दशरथाचे प्रपदावरी । किणीं पडलीं चरणीं तेणें । १०७ ते चरण मी कधीं देखेन । दशरथाच्या पादुका घेऊन । दिव्यरत्नीं मंडित पूर्ण । मी उभा टाकेन कधीं पुढें । १०८ जे अयोध्याप्रभूची पट्टराणी । कौसल्या आमुची जननी । ते अत्यंत कृश होउनी । वाट पाहत असेल कीं । १०९ ऐसें विश्वामित्रें ऐकिलें । उठोनि रामासी हृदयीं धरिलें । म्हणे बा रे जनकाचें पत्र आलें । उदयीं जाऊं मिथिलेसी । ११० तेथें केवळ विजयश्री सीता । ते तुज माळ घालील रघुनाथा । कौसल्येसहित दशरथा । तेथेंचि तुज भेटवीन । १११ तूं जगद्‌गुरु श्रीरामचंद्र । दाविसी लौकिक लीलाचरित्र । असो उदयाचळीं प्रकटलें रविचक्र । विप्र सारिती नित्यनेम । ११२ घेऊन ऋषीश्वरांचे संभार । श्रीराम आणि सौमित्र । निघता जाहला विश्वामित्र । मिथिलापंथें ते काळीं । ११३ चरणचालीं ऋषी चालती । म्हणोनि रथ टाकोनि रघुपती । चरणीं चालतां हो जगती । धन्य जाहलें म्हणतसे । ११४ दोन्ही बाहीं विश्वामित्र आणि सौमित्र ।

मुकुट दशरथ के पदाग्रों में एक साथ गल जाते हैं; उससे उनके चरणों में घट्टे पड़ गये (हैं); मैं उन चरणों को कब देखूँगा ? दशरथ की दिव्यरत्नों से पूर्णतः अलंकृत पादुकाओं को लेकर मैं उनके सम्मुख कब खड़ा रह जाऊँगा ? जो अयोध्याधीश की पटरानी और हमारी माता है, वह श्रीकौशल्या अत्यन्त दुर्बल होकर हमारी बाट जोहती होगी ।' १०७-१०९ विश्वामित्र ने ऐसा सुना, तो उठकर उन्होंने श्रीराम को हृदय से लगा लिया और कहा--' अरे ! राजा जनक का पत्र आ गया (है); हम कल मिथिला जाएँगे । ११० वहाँ हे रघुनाथ, केवल विजयश्री (- सी) सीता तुम्हें वरमाला पहनाएगी । वहीं तुमसे कौसल्या सहित दशरथ की भेंट कराऊँगा । १११ तुम जगद्‌गुरु श्रीरामचन्द्र हो; तुम लौकिक लीलाचरित्र दिखा रहे हो । अस्तु । रवि-मण्डल उदयाचल पर प्रकट हो गया, तो विप्रों ने नित्य-व्रत-कर्म सम्पन्न किये । ११२ ऋषियों के दल तथा श्रीराम और लक्ष्मण को साथ में लेकर, उस समय, विश्वामित्र मिथिला के मार्ग पर, चल दिये । ११३ ऋषि पैदल चलते थे, इसलिए श्रीराम के रथ को छोड़कर पैदल चलने लगते ही जगत् (पृथ्वी) ने कहा--' मैं धन्य हो गयी ।' ११४ दोनों ओर विश्वामित्र और लक्ष्मण थे । उनके बीच

मध्यें जगद्वंद्य राजीवनेत्र । तो घनश्याम चारुगात्र । कैसा शोभला ते काळीं। ११५ पूर्वीं मंथावया क्षीरसागर । निघाला जेव्हां क्षीराब्धिजावर । ते वेळीं कमलोद्भव आणि उमावर । दोन्ही भागीं शोभले जेवीं। ११६ कीं शशिमंडळा दोहींकडे लखलखित । शोभती भृगुतनय अंगिरासुत । कीं शंख चक्र विराजत । श्रीविष्णूच्या दोन्ही भागीं। ११७ असो ऐसा चालतां रघुनाथ । ऋषी आपुलाले आश्रम दावित । ठायीं ठायीं बैसवूनि रघुनाथ । पूजा करिती आदरें ।११८ समस्तांचा करीत उद्धार । पुढें चालत जगदुद्धार । तों पुढें प्रचंड शिळा दुर्धर । दृष्टीं देखिली राघवें । ११९ तों श्रीरामचरणरज ते वेळे । वायुसंगें पुढें धांविन्नले । शिळेवरी जाऊन पडले । नवल वर्तलें अद्भुत । १२० अहल्येसी लाविला चरण । ऐसी कथा वर्णिती कविजन । तरी अहल्या ब्रह्मकन्या पूर्ण । गौतमाची निजपत्नी। १२१ ब्राह्मणपत्नी ते महासती । तियेतें पाय लावील रघुपती । हें न घडे कल्पांतीं । बरवें संतीं विचारिजे । १२२

(चलनेवाले) जो जगद-वंद्य कमलनयन, घनश्याम सुन्दरशरीरधारी श्रीराम चल रहे) थे, वे उस समय कैसे शोभायमान थे ? ११५ पूर्वकाल में (जब) क्षीरसागर को मथने के लिए लक्ष्मी-पति श्रीविष्णु निकले, उस समय ब्रह्मा और शिवजी उनके दोनों ओर जैसे शोभायमान थे, अथवा चन्द्र-मण्डल के दोनों ओर तेजस्वी शुक्र और गुरु जैसे शोभायमान होते हैं, अथवा श्रीविष्णु के दोनों ओर शंख और चक्र विराजमान होते हैं, वैसे ही विश्वामित्र और लक्ष्मण श्रीराम के दोनों ओर शोभायमान थे । ११६-११७ अस्तु । इस प्रकार श्रीराम के चलते हुए, उन्हें ऋषि अपने-अपने आश्रम दिखाते और स्थान-स्थान पर श्रीराम को बैठाकर वे आदरपूर्वक पूजन करते ।११८ सबका उद्धार करते हुए जगत् का उद्धार करनेवाले श्रीराम आगे चलते । तब श्रीराम ने (अपनी दृष्टि से) आगे एक प्रचण्ड दुर्धर शिला देखी । ११९ तब उस समय श्रीराम के चरणों के धूलीकण वायु के साथ आगे दौड़े (उड़ गये), और शिला पर जा गिरे, तो एक अद्भुत चमत्कार घटित हो गया । १२० श्रीराम ने अहल्या को पाँव लगाया—ऐसी कथा का वर्णन कविजन करते हैं । फिर भी अहल्या (तो) ब्राह्मण-कन्या और गौतम ऋषि की अपनी धर्मपत्नी थी । १२१ वह ब्राह्मण-पत्नी तो महासती थी । उसे श्रीराम पाँव लगाएँगे—यह तो कल्पान्त में भी नहीं हो सकता। अच्छा हो कि सन्त (इस बारे में) विचार करें । १२२

असो चरणरजेंचि ते वेळां। कांपों लागली प्रचंड शिळा।
विश्वामित्राप्रति घनसांवळा। पुसता जाहला वृत्तांत। १२३
म्हणे ऋषि हें नवल वर्तत। थरथरां शिळा कांपत। जैसा
चंद्रोद यहळुहळू होत। तैसें दिव्य रूप दिसत स्त्रियेचें। १२४
परम शोभती विद्रुमाधर। जे चंपकवर्ण सुकुमार। उर्वशी
रंभा म्हणती सुंदर। परी इजवरोनि ओंवाळिजे। १२५
मस्तकींचे रुळती कबरीभार। वल्कलें वेष्टित सुंदर। मज
वाटतें इंद्रादि सुरवर। इचे पोटीं जन्मले। १२६ कीं हे
आदिभवानी साचार। आम्हांस आली हो समोर। कीं हे
कोणी ऋषिपत्नी सुंदर। निद्रा घेऊन उठली पैं। १२७ कीं
पडली होती मूर्च्छा येउनी। कीं निघाली पाताळाहुनी। कोणीं
टाकिली वधोनी। प्राण येऊन उठली आतां। १२८ कीं कोणीं
केलें शासन। बैसली होती रुसोन। कीं तुमची तपश्चर्या
संपूर्ण। येणें रूपें आकारली। १२९ मग विश्वामित्र म्हणे

अस्तु। (श्रीराम के) चरण-रजों के लगते ही उस समय वह प्रचण्ड शिला काँपने लगी। (यह देखकर) घनश्याम श्रीराम ने विश्वामित्र से (इसका) इतिहास (परिचय) पूछ लिया। १२३ तो ऋषि ने कहा—' यह तो आश्चर्य घट रहा है '—(यह) शिला थरथर काँप रही है। परन्तु जैसे आहिस्ता-आहिस्ता चन्द्र उदित होता है, वैसे (उस चट्टान के स्थान पर) स्त्री का दिव्य रूप (उदित होकर) दिखायी दिया। १२४ (उस स्त्री के) मूँगे-से लाल होंठ परम शोभायमान थे। वह चम्पक के-से वर्ण की स्त्री अति कोमल थी। उर्वशी, रम्भा (जैसी अप्सराओं) को सुन्दर कहते हैं, परन्तु (यह ऐसी सुन्दर थी कि) इसपर उन्हें निछावर कर दें। १२५ उसके मस्तक से केश-संभार झूलते थे। वह सुन्दर वल्कलों से लिपटी हुई थी। मुझे लगता है कि इन्द्र आदि श्रेष्ठ देव इसके उदर से उत्पन्न हुए (हैं)। १२६ अथवा यह सचमुच आदिभवानी है, जो हमारे सामने आयी हो, अथवा यह कोई सुन्दर ऋषि-पत्नी है, जो नींद (पूर्ण करके) से उठ गयी (है)। अथवा यह मूर्छित लुढ़क पड़ी थी, अथवा यह पाताल में से निकल पड़ी, अथवा किसी ने इसका वध करके फेंक दिया, जो अभी प्राणों के पुनरागमन से उठ गयी (है)। अथवा इसे किसी ने दण्ड दिया वा यह रूठकर बैठ गयी थी; अथवा तुम्हारी समस्त तपस्या इसके रूप में साकार हो गयी। १२७-१२९ तदनन्तर विश्वामित्र ने कहा—

राजीवनेत्रा । हे ब्रह्मकन्या परम पवित्रा । पतीनें शापितां मदनारिमित्रा । शिळारूप जाहली हे । १३० श्रीराम म्हणे महाऋषी । अहल्या शिळा जाहली कैसी । तो वृत्तांत मजपाशीं । कृपा करोनि सांगिजे । १३१ ऋषि म्हणे विरिंचीनें ब्रह्मांड रचिलें । चित्र विचित्ररूप विस्तारिलें । सकळांमाजी विशेष केलें । अहल्येचें स्वरूप पैं । १३२ देखोन परम सुंदर । तीस मागों येती बहुत वर । कमलोद्भवासी पडला विचार । स्वयंवर थोर मांडिलें । १३३ ब्रह्मा बोले मानसींचा पण । दो प्रहरांत पृथ्वीची प्रदक्षिण । करून येईल पुढें पूर्ण । त्यासी देईन हे अहल्या । १३४ ऐकोनि ऐसिया पणासी । धांवों लागले देव ऋषी । यक्ष गंधर्व तापसी । पृथ्वीप्रदक्षिणेसी चालिले । १३५ यांत अवध्यांपुढें अमरपती । ऐरावतारूढ धांवे शीघ्रगती । इतर लोकपाळही धांवती । वाहनीं बैसोनि आपुलाल्या । १३६ एक उर्ध्वपंथें वेगें जाती । एक समीरगती धावती । एक मार्गीं अडखळून पडती । सवेंचि पळती उठोनियां । १३७ तंव

'हे कमलनयन श्रीराम ! यह ब्रह्मा की परम पवित्र कन्या है। हे मदनारि शिवजी के सखा श्रीराम ! पति द्वारा अभिशप्त होने पर यह शिला-रूप हो गयी।' १३० (यह सुनकर) श्रीराम ने कहा—'हे महर्षि ! कृपा करके मुझसे यह वृत्तान्त कहो कि अहल्या किस प्रकार शिला (रूप) बन गयी।' १३१ तब ऋषि ने कहा—'ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड की रचना की। चित्र-विचित्र रूप में (उस ब्रह्माण्ड) का विस्तार कर दिया। अहल्या के रूप को सब में विशेष (रूप) बना लिया। १३२ उसे परम सुन्दर (स्वरूपा नारी) देखकर उसे (पत्नी-रूप में) माँगने के लिए अनेक वर आते; तो ब्रह्मा को चिन्ता हुई। (फिर) उन्होंने विराट् स्वयंवर का आयोजन किया। १३३ फिर ब्रह्मा ने अपने मन का प्रण बताया—जो दो प्रहरों में पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण करके सामने आएगा, उसे मैं अहल्या (वधू-रूप में) प्रदान करूँगा। १३४ ऐसे प्रण को सुनकर देव, ऋषि, यक्ष, गन्धर्व, तपस्वी दौड़ने लगे और पृथ्वी की परिक्रमा के लिए चल पड़े। १३५ उन सब के आगे अमर-पति इन्द्र ऐरावत पर आरूढ़ होकर शीघ्र गति से दौड़ते (अर्थात् हाथी को दौड़ाते) रहे। अपने-अपने वाहनों में बैठकर अन्य लोकपाल भी दौड़ते थे। १३६ कोई ऊर्ध्व मार्ग से वेग-पूर्वक जाते, कोई वायु-गति से दौड़ते। कोई एक मार्ग में अटक कर गिर पड़ते (और) साथ में ही उठकर दौड़ते। १३७ तब इधर, गंगा-जल में स्नान

इकडे गौतम मुनी । जान्हवीजीवनीं स्नान करूनी । बाहेर येतां नयनीं । द्विमुखी कपिला देखिली । १३८ तंव गायत्रीमंत्र जपोन । विधियुक्त केल्या प्रदक्षिणा तीन । नित्यकर्म अनुष्ठान । गौतमें केलें सावकाश । १३९ सत्यलोकास आला परतोन । ज्ञानीं पाहे कमलासन । तों पृथ्वीप्रदक्षिणा तीन । करोनी आला गौतम मुनी । १४० विधि म्हणे धन्य जाहलें । अहल्येचें भाग्य फळासी आलें । तत्काळ दोघांसी लग्न लाविलें । यथाविधि पाणिग्रहण । १४१ तों अवघियांपुढें अमरपती । धांवत आला शीघ्रगती । वधूवरें देखोनि चित्तीं । परम क्रोध संचरला । १४२ विरिंचीस म्हणे सहस्रनयन । वृद्धास केलें कन्यादान । तूं असत्यनाथ पूर्ण । कळों आलें येथोनि आम्हां । १४३ स्रष्टा म्हणे वज्रधरासी । मज असत्य तूं किमर्थ म्हणसी । येणें तीन प्रदक्षिणा केल्या पृथ्वीसी । पाहें मानसीं विचारूनी । १४४ विचार न करितां बोले वचन । सज्जनासी ठेवी नसतें दूषण । वेदवाणी मानी अप्रमाण । शतमूर्खाहूनि

करके बाहर आते-आते गौतम ऋषि ने द्विमुखी कपिला (वत्स को जन्म देते समय जिसकी योनि से वत्स का मुख दिखायी दे रहा है, ऐसी सफ़ेद रंग की) गाय को देखा। १३८ तो गायत्री मंत्र का जाप करके उन्होंने (उस गाय की) यथाविधि तीन परिक्रमाएँ कीं। फिर (तदनन्तर) गौतम ने नित्यकर्म का अनुष्ठान फ़ुरसत से सम्पन्न किया। १३९ वे सत्यलोक लौट आये, तो ब्रह्मा ने अन्तर्ज्ञान (चक्षुओं) से देखा (जान लिया) कि गौतम ऋषि पृथ्वी की तीन प्रदक्षिणाएँ कर आ गये (हैं)। १४० विधाता ने कहा—'धन्य है। अहल्या का भाग्य फल को प्राप्त हो गया।' तत्काल उसने उन दोनों का विवाह कराया। यथाविधि पाणि-ग्रहण विधि सम्पन्न हो गयी। १४१ इतने में सब के आगे अमरपति इन्द्र शीघ्र गति से दौड़ता हुआ आ गया। वधू और वर को देखने पर (उसके) मन में परम क्रोध संचरित (उत्पन्न) हो गया। १४२ (तदनन्तर) सहस्रनयन इन्द्र ने विधाता से कहा—'तुम ने वृद्ध को कन्या दी, (अत:) तुम तो पूर्णत: असत्य-नाथ हो—यह हमें यहाँ से (इससे) विदित हो गया।' १४३ विधाता ने वज्रधर इन्द्र से कहा—'तुम मुझे असत्य (-नाथ) क्यों कहते हो? इन्होंने पृथ्वी की तीन परिक्रमाएँ कर लीं—अपने मन में सोचकर तो देखो।' १४४ जो व्यक्ति सोच-विचार कर (कोई) बात नहीं कहता, सज्जनों को दोष लगाता है और देव-वाणी को अप्रमाण मानता है, वह शतमूर्ख से भी

मूर्ख तो। १४५ असो इंद्रें द्वेष धरूनि मानसीं। म्हणे एक वेळ भोगीन अहल्येसी। परतोन गेला स्वस्थानासी। खेद अत्यंत पावोनियां। १४६ घेऊनियां अहल्येसी। गौतम आला निजाश्रमासी। वहुत क्रमिलें कालासी। परी इंद्र अहर्निशीं जपतसे। १४७ तंव आलें सूर्यग्रहण। गौतम अहल्या स्नान करून। ऋषि ध्यानीं बसला तल्लीन। अहल्या परतोन घरा आली। १४८ ब्रह्मकन्या एकली गृहांत। जाणोनि शक्र आला धांवत। गौतमाचा वेष धरीत। सतीलागीं भोगावया। १४९ कपाट देवोन गृहांतरीं। आंत बैसली ब्रह्मकुमारी। तों हा कपटवेषधारी। येऊन द्वारीं उभा ठाके। १५० म्हणे अहल्ये धांव धांव झडकरी। म्हणोन आंग टाकिलें धरणीवरी। येरी धांवोन आली द्वारीं। हृदयीं धरी तयातें। १५१ कापट्य नेणे महासती। हृदयीं निर्मळ जैसी भागीरथी। परम खेद करी चित्तीं। नयनीं वाहत अश्रुपात। १५२ अहल्येनें वेगें उचलिला। नेऊन मंचकावरी पहुडविला। म्हणे प्रिये प्राण चालला। अंग-संग

(महा) मूर्ख है। १४५ अस्तु! मन में द्वेष धारण करके इन्द्र ने कहा--'एक बार (मैं)अहल्या का उपभोग करूँगा।' फिर अत्यत्न खेद को प्राप्त हो, वह अपने स्थान लौट गया। १४६

अहल्या को लेकर गौतम अपने आश्रम में आ गये। उन्होंने बहुत बड़ा काल व्यतीत किया। फिर भी (उधर) इन्द्र रात-दिन (अपनी अभिलाषा का) जप किया करता। तब सूर्यग्रहण (का दिन) आ गया। गौतम और अहल्या के स्नान करने पर ऋषि ध्यान में लीन हो बैठे और अहल्या घर लौट आयी। १४७-१४८ विधाता की (वह) कन्या घर में अकेली है--यह जानकर गौतम का वेश धारण करके सती अहल्या का भोग करने के हेतु इन्द्र दौड़ता हुआ आ गया। १४९ किवाड़ बन्द करके ब्रह्म-कुमारी अहल्या घर के अन्दर बैठी (थी), तो यह कपट-वेश-धारी (इन्द्र वहाँ) आकर द्वार पर खड़ा हो गया। १५० उसने कहा--'अहल्या! झट से दौड़ो, दौड़ो!' (यह) कहकर धरती पर लोट गया। (यह पुकार) सुनकर वह दरवाज़े पर आ गयी और उसने उसे हृदय से लगाया। १५१ वह महासती कपट नहीं जानती थी। वह हृदय में गंगा-सी निर्मल थी। उसने हृदय में बहुत दुःख अनुभव किया। उसकी आँखों से आँसू बहते थे। १५२ शीघ्रता से अहल्या ने (उसे) उठा लिया और (अन्दर) ले जाकर मंचक पर लिटा दिया। तब उसने कहा--'हे प्रिये!

देईं वेगें । १५३ येरी म्हणे स्वामी आजि ग्रहण । माध्यान्हास आला चंडकिरण । महाराज तुम्ही शास्त्रज्ञ पूर्ण । विचारून पाहावें । १५४ येरू म्हणे तुज शास्त्रासीं काय कारण । माझें वचन तुज प्रमाण । तंव ते सतीशिरोरत्न । अवश्य म्हणे ते काळीं । १५५ अहल्या इंद्र दोघांजणीं । शयन केलें एके शयनीं । तंव गौतम नित्यनेम सारुनी । आश्रमासी पातला । १५६ म्हणे अहल्ये उघडीं वो द्वार । येरी घाबरी सांवरी वस्त्र । म्हणे तूं कोण रे दुराचार । तो म्हणे अमरेंद्र जाण मी । १५७ म्हणे रे अपवित्रा काय केलें । श्रोत्रियाचें पात्र कां स्पर्शिलें । तुझें थोरपण दग्ध झालें । कर्म केलें विपरीत । १५८ रति जाहली कीं परिपूर्ण । वेगीं जाय तूं येथून । मग अहल्या कपाट उघडी धांवोन । तंव गौतम दृष्टीं देखिला । १५९ अहल्येस ऋषि कैसा भासला । कीं कल्पांतींचा सूर्य प्रगटला । कीं अपर्णावर कोपला । तृतीय नेत्र उघडोनियां । १६० तों इंद्र पळतां शापिलें वेगें । तुझें

प्राण निकल रहे हैं, शीघ्र ही अंग-संग (करा) दो।' १५३ तो उसने कहा--' हे स्वामी ! आज ग्रहण है। सूर्य मध्याह्न को प्राप्त है। महाराज ! तुम शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता हो, विचार करके देखो।' १५४ (यह सुनकर) उस (इंद्र)ने कहा--' तुम्हें शास्त्रों से क्या मतलब ? मेरा वचन ही तुम्हारे लिए प्रमाण है।' इसपर उस समय सती-शिरोरत्न स्त्री ने कहा--' अवश्य !' १५५ (तत्पश्चात्) अहल्या और (कपट-वेशधारी) इन्द्र ने एक आसन पर शयन किया। तब नित्यव्रत-कर्म पूर्ण करके गौतम आश्रम (वापस)पहुँचे। १५६ वे बोले--' हे अहल्या, दरवाज़ा खोल दो।' तो भयभीत हुई उस (स्त्री) ने वस्त्र को सम्हाल लिया (ठीक किया) और कहा--' हे दुराचारी ! तू कौन है ?' इस पर उसने कहा--' मुझे अमरेन्द्र समझो।' १५७ अहल्या ने कहा--' हे अपवित्र (पुरुष) ! तूने यह क्या किया ? श्रोत्रीय ब्राह्मण के पात्र को तूने क्यों स्पर्श किया ? तूने विपरीत कर्म किया, (इसलिए) तेरा बड़प्पन दग्ध हो गया। १५८ रति (क्रिया) पूर्ण हुई, (अब) तू यहाँ से वेगपूर्वक चला जा।' फिर दौड़ते हुए उसने किवाड़ को खोल दिया, त्यों ही उसने गौतम देख लिया। १५९ (तब) अहल्या को ऋषि कैसे जान पड़े ? (मानो उनके रूप में) कल्पान्त का सूर्य प्रकट हो गया (हो), अथवा तीसरे नेत्र को खोलकर शिवजी क्रुद्ध हो गये (हों)। १६० तब इन्द्र के भाग जाते-जाते (ऋषि ने) झट से अभिशाप दिया--'तेरे शरीर में सहस्र भग (उत्पन्न) हो जाएँगे।

भोजन तैसें तें। १०० रामप्राप्तीविण कर्म देख। नाशिती कुश मृत्तिका उदक। तरी ते पिशाच नर ओळख। भुलले मूर्ख जाणिजे। १०१ श्रीरामप्राप्तीविण ज्ञान। त्याचें नांव म्हणिजे अज्ञान। विद्या तेचि अविद्या पूर्ण। धर्म तो अधर्म जाणिजे। १०२ असो धन्य भाग्य कौशिकाचें। पुढें निधान श्रीवैकुंठींचें। घेऊन पहुडला साचें। नाहीं चिंतेचें वास्तव्य। १०३ निद्रा लागली जों ऋषीस निश्चितीं। तों जागे जाहले दोघे दाशरथी। श्रीराम म्हणे सौमित्राप्रती। परियेसीं एक जिवलगा। १०४ आम्ही कधीं जाऊं अयोध्येसी। पाहूं दशरथाचा वदनशशी। बोलतां श्रीरामाचे नेत्रांसी। अश्रु आले तेधवां। १०५ तों शयनीं जागा जाहला गाधिसुत। दोघांच्या ऐशा गोष्टी ऐकत। स्फुंदस्फुंदोनि बोले रघुनाथ। श्रीदशरथ देखों कधीं। १०६ सकळ रायांचे मुगुट एकसरीं।

वैसे ही बिना श्रीराम (के) स्मरण किया भोजन (सच्चे अर्थों में भोजन नहीं; निरर्थक भोजन होता है। १०० देखो श्रीराम की प्राप्ति (के उद्देश्य) को छोड़कर जो (यज्ञ-यागादि) कर्म करते हैं, वे (उसके अनुष्ठान के लिए आवश्यक) कुश (दर्भ), (विविध प्रकार की) मिट्टी और जल का नाश करते हैं। (अर्थात् ऐसा यज्ञ-यागादि कर्म व्यर्थ होता है।) इसलिए उन्हें नर (रूपी) पिशाच समझो, माया द्वारा मोहित मूर्खजन समझो। १०१ बिना श्रीराम की प्राप्ति के, जो ज्ञान (पाया हुआ) हो, उसका नाम 'अज्ञान' कहते हैं; उसकी जो विद्या हो, वही पूर्ण अविद्या और (उसके द्वारा आचरित जो) धर्म (हो, उसे) अधर्म समझो। १०२

अस्तु ! धन्य है विश्वामित्र के भाग्य ! वे सचमुच (अपने) सामने वैकुण्ठलोक की धरोहर को लिये हुए लेट गये। वहाँ (उनके लिए) चिन्ता का (कोई) निवास नहीं था। १०३ जब ऋषि विश्वामित्र को निश्चय ही नींद लग गयी, तो दशरथ के दोनों पुत्र जग गये। (तब) श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—'हे प्राणप्रिय ! एक बात सुनो। १०४ हम कब अयोध्या जाएँगे ? (पिता) दशरथ के मुख-चन्द्र को कब देखेंगे ?' तब बोलते-बोलते श्रीराम के नेत्रों में आँसू आ गये। १०५ त्यों ही गाधि-सुत विश्वामित्र शय्या में जग गये। वे दोनों की ऐसी बातें सुन रहे थे। श्रीराम फफक-फफक कर (रोते हुए) बोले—'पिता श्रीदशरथ को कब देखेंगे? १०६ जब सब राजा (उन्हें) नमस्कार करते हैं, उस अवसर पर सबके

नमस्कारिती ते अवसरीं । पडती दशरथाचे प्रपदावरी । किणीं पडलीं चरणीं तेणें । १०७ ते चरण मी कधीं देखेन । दशरथाच्या पादुका घेऊन । दिव्यरत्नीं मंडित पूर्ण । मी उभा टाकेन कधीं पुढें । १०८ जे अयोध्याप्रभूची पट्टराणी । कौसल्या आमुची जननी । ते अत्यंत कृश होउनी । वाट पाहत असेल कीं । १०९ ऐसें विश्वामित्रें ऐकिलें । उठोनि रामासी हृदयीं धरिलें । म्हणे बा रे जनकाचें पत्र आलें । उदयीं जाऊं मिथिलेसी । ११० तेथें केवळ विजयश्री सीता । ते तुज माळ घालील रघुनाथा । कौसल्येसहित दशरथा । तेथेंचि तुज भेटवीन । १११ तूं जगद्गुरु श्रीरामचंद्र । दाविसी लौकिक लीलाचरित्र । असो उदयाचळीं प्रकटलें रविचक्र । विप्र सारिती नित्यनेम । ११२ घेऊन ऋषीश्वरांचे संभार । श्रीराम आणि सौमित्र । निघता जाहला विश्वामित्र । मिथिलापंथें ते काळीं । ११३ चरणचालीं ऋषी चालती । म्हणोनि रथ टाकोनि रघुपती । चरणीं चालतां हो जगती । धन्य जाहलें म्हणतसे । ११४ दोन्ही बाहीं विश्वामित्र आणि सौमित्र ।

मुकुट दशरथ के पदाग्रों में एक साथ गल जाते हैं; उससे उनके चरणों में घट्टे पड़ गये (हैं); मैं उन चरणों को कब देखूँगा ? दशरथ की दिव्यरत्नों से पूर्णतः अलंकृत पादुकाओं को लेकर मैं उनके सम्मुख कब खड़ा रह जाऊँगा ? जो अयोध्याधीश की पटरानी और हमारी माता है, वह श्रीकौशल्या अत्यन्त दुर्बल होकर हमारी बाट जोहती होगी ।' १०७-१०९ विश्वामित्र ने ऐसा सुना, तो उठकर उन्होंने श्रीराम को हृदय से लगा लिया और कहा--' अरे ! राजा जनक का पत्र आ गया (है); हम कल मिथिला जाएँगे । ११० वहाँ हे रघुनाथ, केवल विजयश्री (-सी) सीता तुम्हें वरमाला पहनाएगी । वहीं तुमसे कौसल्या सहित दशरथ की भेंट कराऊँगा । १११ तुम जगद्गुरु श्रीरामचन्द्र हो; तुम लौकिक लीलाचरित्र दिखा रहे हो । अस्तु । रवि-मण्डल उदयाचल पर प्रकट हो गया, तो विप्रों ने नित्य-व्रत-कर्म सम्पन्न किये । ११२ ऋषियों के दल तथा श्रीराम और लक्ष्मण को साथ में लेकर, उस समय, विश्वामित्र मिथिला के मार्ग पर, चल दिये । ११३ ऋषि पैदल चलते थे, इसलिए श्रीराम के रथ को छोड़कर पैदल चलने लगते ही जगत् (पृथ्वी) ने कहा--' मैं धन्य हो गयी ।' ११४ दोनों ओर विश्वामित्र और लक्ष्मण थे । उनके बीच

मध्यें जगद्वंद्य राजीवनेत्र । तो घनश्याम चारुगात्र । कैसा शोभला ते काळीं। ११५ पूर्वी मंथावया क्षीरसागर । निघाला जेव्हां क्षीराब्धिजावर । ते वेळीं कमलोद्भव आणि उमावर । दोन्ही भागीं शोभले जेवीं। ११६ कीं शशिमंडळा दोहींकडे लखलखित । शोभती भृगुतनय अंगिरासुत । कीं शंख चक्र विराजत । श्रीविष्णूच्या दोन्ही भागीं। ११७ असो ऐसा चालतां रघुनाथ । ऋषी आपुलाले आश्रम दावित । ठायीं ठायीं बैसवूनि रघुनाथ । पूजा करिती आदरें।११८ समस्तांचा करीत उद्धार । पुढें चालत जगदुद्धार । तों पुढें प्रचंड शिळा दुर्धर । दृष्टीं देखिली राघवें । ११९ तों श्रीरामचरणरज ते वेळे । वायुसंगें पुढें धांविन्नले । शिळेवरी जाऊन पडले । नवल वर्तलें अद्भुत । १२० अहल्येसी लाविला चरण । ऐसी कथा वर्णिती कविजन । तरी अहल्या ब्रह्मकन्या पूर्ण । गौतमाची निजपत्नी। १२१ ब्राह्मणपत्नी ते महासती । तियेतें पाय लावील रघुपती । हें न घडे कल्पांतीं । बरवें संतीं विचारिजे । १२२

(चलनेवाले) जो जगद-वंद्य कमलनयन, घनश्याम सुन्दरशरीरधारी श्रीराम चल रहे) थे, वे उस समय कैसे शोभायमान थे ? ११५ पूर्वकाल में (जब) क्षीरसागर को मथने के लिए लक्ष्मी-पति श्रीविष्णु निकले, उस समय ब्रह्मा और शिवजी उनके दोनों ओर जैसे शोभायमान थे, अथवा चन्द्र-मण्डल के दोनों ओर तेजस्वी शुक्र और गुरु जैसे शोभायमान होते हैं, अथवा श्रीविष्णु के दोनों ओर शंख और चक्र विराजमान होते हैं, वैसे ही विश्वामित्र और लक्ष्मण श्रीराम के दोनों ओर शोभायमान थे.। ११६-११७. अस्तु । इस प्रकार श्रीराम के चलते हुए, उन्हें ऋषि अपने-अपने आश्रम दिखाते और स्थान-स्थान पर श्रीराम को बैठाकर वे आदरपूर्वक पूजन करते । ११८ सबका उद्धार करते हुए जगत् का उद्धार करनेवाले श्रीराम आगे चलते । तब श्रीराम ने (अपनी दृष्टि से) आगे एक प्रचण्ड दुर्धर शिला देखी । ११९ तब उस समय श्रीराम के चरणों के धूलीकण वायु के साथ आगे दौड़े (उड़ गये), और शिला पर जा गिरे, तो एक अद्भुत चमत्कार घटित हो गया। १२० श्रीराम ने अहल्या को पाँव लगाया—ऐसी कथा का वर्णन कविजन करते हैं। फिर भी अहल्या (तो) ब्राह्मण-कन्या और गौतम ऋषि की अपनी धर्मपत्नी थी। १२१ वह ब्राह्मण-पत्नी तो महासती थी । उसे श्रीराम पाँव लगाएँगे—यह तो कल्पान्त में भी नहीं हो सकता। अच्छा हो कि सन्त (इस बारे में) विचार करें। १२२

असो चरणरजेंचि ते वेळां । कांपों लागली प्रचंड शिळा ।
विश्वामित्राप्रति घनसांवळा । पुसता जाहला वृत्तांत । १२३
म्हणे ऋषि हें नवल वर्तत । थरथरां शिळा कांपत । जैसा
चंद्रोद यहळुहळू होत । तैसें दिव्य रूप दिसत स्त्रियेचें । १२४
परम शोभती विद्रुमाधर । जे चंपकवर्ण सुकुमार । उर्वशी
रंभा म्हणती सुंदर । परी इजवरोनि ओंवाळिजे । १२५
मस्तकींचे रुळती कबरीभार । वल्कलें वेष्टित सुंदर । मज
वाटतें इंद्रादि सुरवर । इचे पोटीं जन्मले । १२६ कीं हे
आदिभवानी साचार । आम्हांस आली हो समोर । कीं हे
कोणी ऋषिपत्नी सुंदर । निद्रा घेऊन उठली पैं । १२७ कीं
पडली होती मूर्च्छा येउनी । कीं निघाली पाताळाहुनी । कोणीं
टाकिली वधोनी । प्राण येऊन उठली आतां । १२८ कीं कोणीं
केलें शासन । बैसली होती रुसोन । कीं तुमची तपश्चर्या
संपूर्ण । येणें रूपें आकारली । १२९ मग विश्वामित्र म्हणे

अस्तु । (श्रीराम के) चरण-रजों के लगते ही उस समय वह प्रचण्ड शिला काँपने लगी । (यह देखकर) घनश्याम श्रीराम ने विश्वामित्र से (इसका) इतिहास (परिचय) पूछ लिया । १२३ तो ऋषि ने कहा–' यह तो आश्चर्य घट रहा है '--(यह) शिला थरथर काँप रही है । परन्तु जैसे आहिस्ता-आहिस्ता चन्द्र उदित होता है, वैसे (उस चट्टान के स्थान पर) स्त्री का दिव्य रूप (उदित होकर) दिखायी दिया । १२४ (उस स्त्री के) मूँगे-से लाल होंठ परम शोभायमान थे । वह चम्पक के-से वर्ण की स्त्री अति कोमल थी । उर्वशी, रम्भा (जैसी अप्सराओं) को सुन्दर कहते हैं, परन्तु (यह ऐसी सुन्दर थी कि) इसपर उन्हें निछावर कर दें । १२५ उसके मस्तक से केश-संभार झूलते थे । वह सुन्दर वल्कलों से लिपटी हुई थी । मुझे लगता है कि इन्द्र आदि श्रेष्ठ देव इसके उदर से उत्पन्न हुए (हैं) । १२६ अथवा यह सचमुच आदिभवानी है, जो हमारे सामने आयी हो, अथवा यह कोई सुन्दर ऋषि-पत्नी है, जो नींद (पूर्ण करके) से उठ गयी (है) । अथवा यह मूर्छित लुढ़क पड़ी थी, अथवा यह पाताल में से निकल पड़ी, अथवा किसी ने इसका वध करके फेंक दिया, जो अभी प्राणों के पुनरागमन से उठ गयी (है) । अथवा इसे किसी ने दण्ड दिया वा यह रूठकर बैठ गयी थी; अथवा तुम्हारी समस्त तपस्या इसके रूप में साकार हो गयी । १२७-१२९ तदनन्तर विश्वामित्र ने कहा–

राजीवनेत्रा । हे ब्रह्मकन्या परम पवित्रा । पतीनें शापितां मदनारिमित्रा । शिळारूप जाहली हे । १३० श्रीराम म्हणे महाऋषी । अहल्या शिळा जाहली कैसी । तो वृत्तांत मज-पाशीं । कृपा करोनि सांगिजे । १३१ ऋषि म्हणे विरिंचीनें ब्रह्मांड रचिलें । चित्र विचित्ररूप विस्तारिलें । सकळांमाजी विशेष केलें । अहल्येचें स्वरूप पैं । १३२ देखोन परम सुंदर । तीस मागों येती बहुत वर । कमलोद्भवासी पडला विचार । स्वयंवर थोर मांडिलें । १३३ ब्रह्मा बोले मानसींचा पण । दो प्रहरांत पृथ्वीची प्रदक्षिण । करून येईल पुढें पूर्ण । त्यासी देईन हे अहल्या । १३४ ऐकोनि ऐसिया पणासी । धांवों लागले देव ऋषी । यक्ष गंधर्व तापसी । पृथ्वीप्रदक्षिणेसी चालिले । १३५ यांत अवध्यांपुढें अमरपती । ऐरावतारूढ धांवे शीघ्रगती । इतर लोकपाळही धांवती । वाहनीं बैसोनि आपुलाल्या । १३६ एक उर्ध्वपंथें वेगें जाती । एक समीरगती धावती । एक मार्गीं अडखळून पडती । सवेंचि पळती उठोनियां । १३७ तंव

'हे कमलनयन श्रीराम ! यह ब्रह्मा की परम पवित्र कन्या है। हे मदनारि शिवजी के सखा श्रीराम ! पति द्वारा अभिशप्त होने पर यह शिला-रूप हो गयी।' १३० (यह सुनकर) श्रीराम ने कहा—'हे महर्षि ! कृपा करके मुझसे यह वृत्तान्त कहो कि अहल्या किस प्रकार शिला (रूप) बन गयी।' १३१ तब ऋषि ने कहा—'ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड की रचना की। चित्र-विचित्र रूप में (उस ब्रह्माण्ड) का विस्तार कर दिया। अहल्या के रूप को सब में विशेष (रूप) बना लिया। १३२ उसे परम सुन्दर (स्वरूपा नारी) देखकर उसे (पत्नी-रूप में) माँगने के लिए अनेक वर आते; तो ब्रह्मा को चिन्ता हुई। (फिर) उन्होंने विराट् स्वयंवर का आयोजन किया। १३३ फिर ब्रह्मा ने अपने मन का प्रण बताया—जो दो प्रहरों में पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण करके सामने आएगा, उसे मैं अहल्या (वधू-रूप में) प्रदान करूँगा। १३४ ऐसे प्रण को सुनकर देव, ऋषि, यक्ष, गन्धर्व, तपस्वी दौड़ने लगे और पृथ्वी की परिक्रमा के लिए चल पड़े। १३५ उन सब के आगे अमर-पति इन्द्र ऐरावत पर आरूढ़ होकर शीघ्र गति से दौड़ते (अर्थात् हाथी को दौड़ाते) रहे। अपने-अपने वाहनों में बैठकर अन्य लोकपाल भी दौड़ते थे। १३६ कोई ऊर्ध्व मार्ग से वेग-पूर्वक जाते, कोई वायु-गति से दौड़ते। कोई एक मार्ग में अटक कर गिर पड़ते (और) साथ में ही उठकर दौड़ते। १३७ तब इधर, गंगा-जल में स्नान

इकडे गौतम मुनी । जान्हवीजीवनीं स्नान करूनी । बाहेर येतां नयनीं । द्विमुखी कपिला देखिली । १३८ तंव गायत्रीमंत्र जपोन । विधियुक्त केल्या प्रदक्षिणा तीन । नित्यकर्म अनुष्ठान । गौतमें केलें सावकाश । १३९ सत्यलोकास आला परतोन । ज्ञानीं पाहे कमलासन । तों पृथ्वीप्रदक्षिणा तीन । करोनी आला गौतम मुनी । १४० विधि म्हणे धन्य जाहलें । अहल्येचें भाग्य फळासी आलें । तत्काळ दोघांसी लग्न लाविलें । यथाविधि पाणिग्रहण । १४१ तों अवघियांपुढें अमरपती । धांवत आला शीघ्रगती । वधूवरें देखोनि चित्तीं । परम क्रोध संचरला । १४२ विरिंचीस म्हणे सहस्रनयन । वृद्धास केलें कन्यादान । तूं असत्यनाथ पूर्ण । कळों आलें येथोनि आम्हां । १४३ स्रष्टा म्हणे वज्रधरासी । मज असत्य तूं किमर्थ म्हणसी । येणें तीन प्रदक्षिणा केल्या पृथ्वीसी । पाहें मानसीं विचारूनी । १४४ विचार न करितां बोले वचन । सज्जनासी ठेवी नसतें दूषण । वेदवाणी मानी अप्रमाण । शतमूर्खाहूनि

करके बाहर आते-आते गौतम ऋषि ने द्विमुखी कपिला (वत्स को जन्म देते समय जिसकी योनि से वत्स का मुख दिखायी दे रहा है, ऐसी सफ़ेद रंग की) गाय को देखा । १३८ तो गायत्री मंत्र का जाप करके उन्होंने (उस गाय की) यथाविधि तीन परिक्रमाएँ कीं । फिर (तदनन्तर) गौतम ने नित्यकर्म का अनुष्ठान फ़ुरसत से सम्पन्न किया । १३९ वे सत्यलोक लौट आये, तो ब्रह्मा ने अन्तर्ज्ञान (चक्षुओं) से देखा (जान लिया) कि गौतम ऋषि पृथ्वी की तीन प्रदक्षिणाएँ कर आ गये (हैं) । १४० विधाता ने कहा—' धन्य है । अहल्या का भाग्य फल को प्राप्त हो गया ।' तत्काल उसने उन दोनों का विवाह कराया । यथाविधि पाणि-ग्रहण विधि सम्पन्न हो गयी । १४१ इतने में सब के आगे अमरपति इन्द्र शीघ्र गति से दौड़ता हुआ आ गया । वधू और वर को देखने पर (उसके) मन में परम क्रोध संचरित (उत्पन्न) हो गया । १४२ (तदनन्तर) सहस्रनयन इन्द्र ने विधाता से कहा—' तुम ने वृद्ध को कन्या दी, (अतः) तुम तो पूर्णतः असत्य-नाथ हो—यह हमें यहाँ से (इससे) विदित हो गया ।' १४३ विधाता ने वज्रधर इन्द्र से कहा—'तुम मुझे असत्य (-नाथ) क्यों कहते हो ? इन्होंने पृथ्वी की तीन परिक्रमाएँ कर लीं—अपने मन में सोचकर तो देखो ।' १४४ जो व्यक्ति सोच-विचार कर (कोई) बात नहीं कहता, सज्जनों को दोष लगाता है और देव-वाणी को अप्रमाण मानता है, वह शतमूर्ख से भी

मूर्ख तो । १४५ असो इंद्रें द्वेष धरूनि मानसीं । म्हणे एक वेळ भोगीन अहल्येसी । परतोन गेला स्वस्थानासी । खेद अत्यंत पावोनियां । १४६ घेऊनियां अहल्येसी । गौतम आला निजाश्रमासी । बहुत क्रमिलें कालासी । परी इंद्र अहर्निशीं जपतसे । १४७ तंव आलें सूर्यग्रहण । गौतम अहल्या स्नान करून । ऋषि ध्यानीं बसला तल्लीन । अहल्या परतोन घरा आली । १४८ ब्रह्मकन्या एकली गृहांत । जाणोनि शक्र आला धांवत । गौतमाचा वेष धरीत । सतीलागीं भोगावया । १४९ कपाट देवोन गृहांतरीं । आंत बैसली ब्रह्मकुमारी । तों हा कपटवेषधारी । येऊन द्वारीं उभा ठाके । १५० म्हणे अहल्ये धांव धांव झडकरी । म्हणोन आंग टाकिलें धरणीवरी । येरी धांवोन आली द्वारीं । हृदयीं धरी तयातें । १५१ कापट्य नेणे महासती । हृदयीं निर्मळ जैसी भागीरथी । परम खेद करी चित्तीं । नयनीं वाहत अश्रुपात । १५२ अहल्येनें वेगें उचलिला । नेऊन मंचकावरी पहुडविला । म्हणे प्रिये प्राण चालला । अंग-संग

(महा) मूर्ख है । १४५ अस्तु ! मन में द्वेष धारण करके इन्द्र ने कहा--'एक बार (मैं) अहल्या का उपभोग करूँगा ।' फिर अत्यन्त खेद को प्राप्त हो, वह अपने स्थान लौट गया । १४६

अहल्या को लेकर गौतम अपने आश्रम में आ गये । उन्होंने बहुत बड़ा काल व्यतीत किया ।' फिर भी (उधर) इन्द्र रात-दिन (अपनी अभिलाषा का) जप किया करता । तब सूर्यग्रहण (का दिन) आ गया । गौतम और अहल्या के स्नान करने पर ऋषि ध्यान में लीन हो बैठे और अहल्या घर लौट आयी । १४७-१४८ विधाता की (वह) कन्या घर में अकेली है--यह जानकर गौतम का वेश धारण करके सती अहल्या का भोग करने के हेतु इन्द्र दौड़ता हुआ आ गया । १४९ किवाड़ बन्द करके ब्रह्म-कुमारी अहल्या घर के अन्दर बैठी (थी), तो यह कपट-वेश-धारी (इन्द्र वहाँ) आकर द्वार पर खड़ा हो गया । १५० उसने कहा--'अहल्या ! झट से दौड़ो, दौड़ो !' (यह) कहकर धरती पर लोट गया । (यह पुकार) सुनकर वह दरवाज़े पर आ गयी और उसने उसे हृदय से लगाया । १५१ वह महासती कपट नहीं जानती थी । वह हृदय में गंगा-सी निर्मल थी । उसने हृदय में बहुत दुःख अनुभव किया । उसकी आँखों से आँसू बहते थे । १५२ शीघ्रता से अहल्या ने (उसे) उठा लिया और (अन्दर) ले जाकर मंचक पर लिटा दिया । तब उसने कहा--'हे प्रिये !

देईं वेगें । १५३ येरी म्हणे स्वामी आजि ग्रहण । माध्यान्हास आला चंडकिरण । महाराज तुम्ही शास्त्रज्ञ पूर्ण । विचारून पाहावें । १५४ येरू म्हणे तुज शास्त्रासीं काय कारण । माझें वचन तुज प्रमाण । तंव ते सतीशिरोरत्न । अवश्य म्हणे ते काळीं । १५५ अहल्या इंद्र दोघांजणीं । शयन केलें एके शयनीं । तंव गौतम नित्यनेम सारुनी । आश्रमासी पातला । १५६ म्हणे अहल्ये उघडीं वो द्वार । येरी घाबरी सांवरी वस्त्र । म्हणे तूं कोण रे दुराचार । तो म्हणे अमरेंद्र जाण मी । १५७ म्हणे रे अपवित्रा काय केलें । श्रोत्रियाचें पात्र कां स्पर्शिलें । तुझें थोरपण दग्ध झालें । कर्म केलें विपरीत । १५८ रति जाहली कीं परिपूर्ण । वेगीं जाय तूं येथून । मग अहल्या कपाट उघडी धांवोन । तंव गौतम दृष्टीं देखिला । १५९ अहल्येस ऋषि कैसा भासला । कीं कल्पांतींचा सूर्य प्रगटला । कीं अपर्णावर कोपला । तृतीय नेत्र उघडोनियां । १६० तों इंद्र पळतां शापिलें वेगें । तुझें

प्राण निकल रहे हैं, शीघ्र ही अंग-संग (करा) दो।' १५३ तो उसने कहा--' हे स्वामी ! आज ग्रहण है। सूर्य मध्याह्न को प्राप्त है। महाराज ! तुम शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता हो, विचार करके देखो।' १५४ (यह सुनकर) उस (इंद्र)ने कहा--' तुम्हें शास्त्रों से क्या मतलब ? मेरा वचन ही तुम्हारे लिए प्रमाण है।' इसपर उस समय सती-शिरोरत्न स्त्री ने कहा--' अवश्य !' १५५ (तत्पश्चात्) अहल्या और (कपट-वेशधारी) इन्द्र ने एक आसन पर शयन किया। तब नित्यव्रत-कर्म पूर्ण करके गौतम आश्रम (वापस)पहुँचे। १५६ वे बोले--' हे अहल्या, दरवाज़ा खोल दो।' तो भयभीत हुई उस (स्त्री) ने वस्त्र को सम्हाल लिया (ठीक किया) और कहा—' हे दुराचारी ! तू कौन है ?' इस पर उसने कहा--' मुझे अमरेन्द्र समझो।' १५७ अहल्या ने कहा--' हे अपवित्र (पुरुष) ! तूने यह क्या किया ? श्रोत्रीय ब्राह्मण के पात्र को तूने क्यों स्पर्श किया ? तूने विपरीत कर्म किया, (इसलिए) तेरा बड़प्पन दग्ध हो गया। १५८ रति (क्रिया) पूर्ण हुई, (अब) तू यहाँ से वेगपूर्वक चला जा।' फिर दौड़ते हुए उसने किवाड़ को खोल दिया, त्यों ही उसने गौतम देख लिया। १५९ (तब) अहल्या को ऋषि कैसे जान पड़े ? (मानो उनके रूप में) कल्पान्त का सूर्य प्रकट हो गया (हो), अथवा तीसरे नेत्र को खोलकर शिवजी क्रुद्ध हो गये (हों)। १६० तब इन्द्र के भाग जाते-जाते (ऋषि ने) झट से अभिशाप दिया—'तेरे शरीर में सहस्र भग (उत्पन्न) हो जाएँगे।

उडी पडे । येरी यज्ञकुंडामाजी दडे । रावणें कुंड विझविलें । २२३ तेथें खणितां बहुत यत्नें । त्यासी सांपडलीं पांच रत्नें । घरा आणिलीं दशाननें । संदुकेमाजी ठेविलीं । २२४ मग एकांतींचें अवसरीं । रावण सांगे मंदोदरी । अमोल रत्नें पृथ्वीवरी । तुजलागीं सुंदरी आणिलीं । २२५ धांवोनि मंदोदरी उचली पेटी । तंव न ढळेचि तिये गोरटी । हांसोन दशवक्त्र शेवटीं । आपण उठे उचलावया । २२६ तंव ती न ढळेचि विसां करीं । आश्चर्य झालें ते अवसरीं । प्रधान आणि मंदोदरी । पेटी उघडिती तेधवां । २२७ तंव षण्मासांचें कन्यारत्न । देखता होय दशानन । मंदोदरी म्हणे हें विघ्न । राया घरासी आणिलें । २२८ जो मायावरणावेगळा । चैतन्यदेही घनसांवळा । त्यासीच हे घालील माळा । इतरां ज्वाळा अग्नीची हे । २२९ हिनें निर्दाळिला पद्माक्ष नृपवर । बहुत रायांचा केला संहार । ही येथें असतां साचार । लंकापुर नुरेचि । २३० दशानना हें परम विघ्न । इजसी आधीं बाहेर घालीं नेऊन । मग बोलाविले सेवकजन । संदुक मस्तकीं दीधली । २३१ पेटी

(तब) रावण ने कुण्ड को बुझा डाला । २२३ वहाँ बहुत यत्नपूर्वक खोदने पर उसे पाँच रत्न मिल गये । रावण (वे रत्न) घर लाया और उसने उन्हें (एक) संदूक में रख दिया । २२४ फिर एकान्त में विचार-विमर्श के अवसर पर रावण ने मन्दोदरी से कहा—' पृथ्वी पर के अमूल्य रत्न, हे सुन्दरी, तुम्हारे लिए लाया (हूँ) ।' २२५ (यह सुनकर जब) मन्दोदरी ने दौड़कर (संदूक के पास जाकर) संदूक को उठाना चाहा, तो उस सुन्दरी से वह हिला नहीं । (तब) अन्त में हँसते हुए दशमुख रावण स्वयं उठाने के लिए चला । २२६ तब वह उसके बीसों हाथों से भी न हिला । उस समय एक आश्चर्य (घटित) हुआ । (जब रावण के परामर्शदाता) मंत्री और मन्दोदरी ने संदूक को खोल दिया, तो छः महीने अवस्था वाली एक कन्या-रूपी रत्न रावण ने (अन्दर) देखा । (फिर) मन्दोदरी ने कहा—' हे राजन्, तुम यह विघ्न घर लाये हो । २२७-२२८ जो माया-रूपी सागर से दूर है, जो चैतन्यदेही घनश्याम है, उसी को यह वरमाला पहनाएगी—दूसरों के लिए यह अग्नि की ज्वाला है । २२९ इसने राजा पद्माक्ष का निर्दालन कर डाला, अनेक राजाओं का संहार कर डाला (और) इसके यहाँ रहने पर लंकापुरी शेष (बची) न रहेगी । २३० हे दशानन ! यह परम विघ्न है । इसे पहले ले जाकर बाहर डाल दो ।'

उचलिली ते अवसरीं । हळूच आंतून शब्द करी । मी आणिक येईन लंकापुरीं । रावण सहपरिवारीं वधावया । २३२ ऐकोनियां ऐसें वचन । रावणाचें दचकलें मन । म्हणे इचा आतां वध करीन । मयजा चरण धरी मग । २३३ चरणीं दृढ ठेवोनि माथा । म्हणे पुढील विघ्नें आतांचि कां आणितां । मग शांत केलें पौलस्तिसुता । सकळीं मिळूनि तेधवां । २३४ रावण सांगे सेवकांसी । जनकराजा आहे मिथिलेसी । त्याचिया गांवावरी हे विवसी । धाडी नेऊन घाला रे । २३५ मग रातोरातीं तत्काळीं । पेटी पुरिली मिथिलेजवळी । तें शेत कोणे एके काळीं । जनकें ब्राह्मणासी दीधलें । २३६ पद्माक्ष नृप पूर्वीचा पूर्ण । पुन्हां अवतरला तो ब्राह्मण । रायें वेदवक्ता म्हणोन । क्षेत्रदान दीधलें । २३७ सुमुहूर्त पाहोनि सुंदर । ब्राह्मणें जुंपिला नांगर । नांगरदांतीं परिकर । पेटी अकस्मात लागली । २३८ ब्राह्मण सत्य सन्मार्गी । पेटी उचलिली लागवेगीं ।

फिर सेवक जनों को बुलाया (और) उनके सिर पर वह संदूक चढ़ा दिया । २३१ (जिस सयय) सन्दूक को उठाया, उस समय अन्दर से उस कन्या ने हौले से शब्द किया (कहा)—'रावण का परिवार-सहित वध करने के लिए मैं लंकापुरी में और (एक बार) आऊँगी ।' २३२ ऐसा वचन सुनते ही रावण का मन चौंक उठा । उसने कहा—'मैं अभी इसका वध करूँगा ।' तब मय-सुता मन्दोदरी ने उसके पाँव पकड़ लिये । २३३ उसके चरणों में दृढ़तापूर्वक मस्तक लगाकर वह कहती है (बोली)—'आगामी विघ्नों को अभी क्यों (बुला) लाते हो ?' फिर उस समय सबने मिलकर पौलस्ति के पुत्र रावण को शान्ति किया । २३४ (तदनन्तर) रावण सेवकों से कहता है (बोला)—'मिथिला में जनक राजा है । यह पिशाची, विघ्न ले जाकर उसी के नगर में डाल दो ।' २३५ तत्पश्चात् तत्क्षण रात-की-रात में (ले जाकर उन्होंने) मिथिला के पास (उस) सन्दूक को गाड़ दिया । किसी समय जनक ने वह खेत एक ब्राह्मण को प्रदान किया (था) । २३६ पूर्वकाल के वे पद्माक्ष राजा पुनः ब्राह्मण के रूप में पूर्णतः अवतरित थे । वह वेदवक्ता—वेदों का पाठ करनेवाला—है, इसलिए राजा (जनक) ने उसे खेत दान में दिया । २३७ अच्छा शुभ मुहूर्त देखकर ब्राह्मण ने हल जोत लिया, तो हल के सुन्दर फाल में सहसा वह सन्दूक लग गया । २३८ (वह) ब्राह्मण सत्य और भले मार्ग से चलनेवाला था । उसने झट् से सन्दूक को उठाया और फिर उसे जनक को दिखा दिया । उसने कहा—'हे

मग दाखविली जनकालागीं। म्हणे राया ठेवणें घेईं आपुलें। २३९ राव म्हणे काय आहे भीतरी। विप्र म्हणे मी नेणें निर्धारीं। जनकराजा आश्चर्य करी। पेटी उघडिली तेधवां। २४० भोंवते प्रधान पाहती सकळी। तों पांच वर्षांची कन्या देखिली। असंभाव्य प्रभा पडली। आश्चर्य वाटलें सकळिकां। २४१ जनकास उपजला स्नेहो। म्हणे स्वामी हें कन्यारत्न मज द्या हो। ब्राह्मण म्हणे महाबाहो। तुझीच कन्या हे निर्धारें। २४२ ऐसी ते जनकात्मजा सुंदर। सकळ सौंदर्याचें माहेर। जनकरायासी सुख अपार। म्हणे इंदिरा साचार आली हे। २४३ एकवीस वेळां निःक्षत्री। परशुरामें केली धरित्री। सहस्रार्जुन वधोनि क्षणमात्रीं। सूड घेतला रेणुकेचा। २४४ त्र्यंबकधनुष्य घेऊन हातीं। आला जनकाचे गृहाप्रती। षोडशोपचारें जनक नृपती। भार्गवरामासी पूजीतसे। २४५ भोजनासी बैसले गृहांतरीं। शिवधनुष्य ठेवूनि

राजा ! (अपनी) धरोहर स्वीकार कर लो।' २३९ राजा ने पूछा—'(इसके) भीतर क्या है ?' (इस पर) ब्राह्मण बोला—' मैं तो निश्चय ही नहीं जानता।' (यह सुनकर)जनकराजा ने अचरज अनुभव किया। फिर तब उसने सन्दूक खोल लिया। २४० चारों ओर (खड़े हुए) सब मंत्री देख रहे हैं (थे), तो उन्होंने एक पंचवर्षीया कन्या देखी। उसकी अद्भुत कांति फैल गयी (थी, जिसे देखकर) सबको आश्चर्य (अनुभव) हुआ। २४१ जनक राजा के (मन में उस कन्या के प्रति) स्नेह उत्पन्न हो गया। उन्होंने कहा—' हे स्वामी! यह कन्या-रत्न मुझे दो।' (इसपर) ब्राह्मण ने कहा—' हे महाबाहो ! यह कन्या निश्चय ही आपकी है।' २४२

ऐसी वह जनक-पुत्री सुन्दर थी, सकल सौंदर्य का मातृगृह (मायका) थी। इससे जनक राजा को अपार सुख (अनुभव) हुआ। उन्होंने कहा (समझा)—' सचमुच यह लक्ष्मी ही आ गयी।' २४३

(भगवान) परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन कर डाला ; उन्होंने क्षण-मात्र में सहस्रार्जुन कार्तवीर्य का वध करके (अपनी माता) रेणुका का बदला लिया। २४४ वे (परशुराम) शिव-धनुष हाथ में लेकर (एक दिन) जनक के घर आ गये। तो जनक राजा ने षोड़शोपचारपूर्वक भार्गवराम (भृगुवंशोत्पन्न परशुराम) का पूजन किया। २४५ शिव-धनुष को बाहर रखकर जब वे घर में भोजन के लिए

बाहेरी । तों जानकीनें ते अवसरीं । घोडें केलें धनुष्याचें । २४६ परशुराम भोजन करूनी । सभेंत बैसला येवोनी । तों कोदंड न दिसे नयनीं । भार्गव मनीं क्षोभला । २४७ म्हणे गजभारीं न लोटे धनुष्य । त्याचा कोणीं केला अभिलाष । परशुराम आणि मिथिलेश । द्वाराबाहेर जों आले । २४८ तों कोदंडाचें घोडें करूनी । झ्यां-झ्यां म्हणोनि ओढी मेदिनीं । परशुरामें तें देखोनी । अंगुळी वदनीं घातली । २४९ पिता देखोनि जनक-बाळी । कोदंड सांडोनियां पळाली । धनुष्य पडलें ते स्थळीं । तें न ढळेचि कवणातें । २५० वीर लाविले प्रचंड । परी नुचलेचि कोदंड । भार्गव म्हणे हें वितंड । सीतेवेगळें उचलेना । २५१ मग जनक म्हणे कुमारी । मागुती चापाचें घोडें करीं । सीतेनें बैसोनि झडकरी । पूर्वस्थळासी आणिलें । २५२ मग बोले फरशधर । आमुचें अवतारकृत्य जाहलें समग्र । मग तेथें धनुष्य ठेवून साचार । जनकाप्रति बोलतसे । २५३ आतां राया हाचि पण । जो या धनुष्या वाहील गुण । त्यासी सीतेचें

बैठे, तो उस समय जानकी ने उस धनुष को घोड़ा बनाया । २४६ भोजन करके परशुराम जब (बाहर) आकर सभा में विराजमान हो गये, तो उन्हें धनुष नहीं दिखायी दिया । (अतः) वे (भार्गवराम) मन में क्षुब्ध हो गये । २४७ वे बोले—'हाथियों के झुंड से (अनेक हाथियों द्वारा हटाये जाने की कोशिश करने पर भी) जो धनुष धकेला नहीं जाता, उसकी अभिलाषा किसने की ?' (तदनन्तर) जब परशुराम और मिथिला-धिपति जनक बाहर आ गये, तो धनुष को घोड़ा बनाकर (समझकर) भूमि पर 'ह्यः' 'ह्यः' कहते हुए सीता चला रही है, यह देखकर परशुराम ने दाँतों तले उँगली दबायी । २४८-२४९ पिता को देखकर सीता धनुष को छोड़कर भाग गयी । उस स्थान पर धनुष पड़ा हुआ था, वह किसी से भी नहीं टलता था । २५० (राजा ने) बहुत बड़े वीरों को नियुक्त किया, फिर भी धनुष नहीं उठता था । तब परशुराम ने कहा—'यह प्रचण्ड धनुष सीता को छोड़कर अन्य किसी से नहीं उठाया जाएगा ।' २५१ तब जनक ने कहा—'कन्ये ! फिर से इस धनुष को घोड़ा बनाओ', तो झट से (उस पर) बैठकर (सवार होकर) सीता उसे पूर्व स्थान पर लायी । २५२ तदनन्तर परशुधर राम ने कहा—'हमारा अवतार—कृतित्व समाप्त हो गया !' फिर वहाँ धनुष्य को सचमुच रखते हुए वे जनक से बोले—'हे राजा ! अब यही प्रण हो ! जो इस धनुष पर डोरी चढ़ाएगा, सीता

पाणिग्रहण। हा तूं पण करीं मिथिलेशा। २५४ ऐसें सांगोन जनकासी। भार्गव गेला वदरिकाश्रमासी। विश्वामित्र सांगे श्रीरामासी। पूर्वकथा ऐसी हे। २५५ कौशिक म्हणे श्रीरामा ऐकें। तुझें चरित्र तुज ठाउकें। परी बोलविसी आमुच्या मुखें। जाणोनियां सर्वही। २५६ रामविजय ग्रंथ सुंदर। पुढें अष्टमाध्यायीं सीतास्वयंवर। जेथें श्रीराम विजयी साचार। त्याविण आणिका न वरीच। २५७ ब्रह्मानंदा रघुवीरा। कमलोद्भव-जनका श्रीधरवरा। पुराणपुरुषा परात्परा। अक्षय कीर्तन दे तुझें। २५८ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीक-नाटकाधार। सदा परिसोत श्रोते चतुर। सप्तमाध्याय गोड हा २५९। श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु।

का विवाह उसी से होगा—हे मिथिलेश! तुम यही प्रण करो।' २५३-२५४ जनक से ऐसा कहकर भार्गवराम बदरिकाश्रम (की ओर) चले गये। विश्वामित्र ने श्रीराम से ऐसी यह पूर्व-कथा कही। २५५

(तत्पश्चात्) विश्वामित्र ने कहा—'श्रीराम! सुनो! तुम्हारी चरित्र-लीला तुम्हें विदित है। परन्तु सब कुछ जानते हुए भी हमारे मुख से कहलवा रहे हो।' २५६

यह श्रीराम-विजय नामक (यह) ग्रन्थ सुन्दर है। और (आगे) आठवें अध्याय में सीता-स्वयंवर की कथा (वर्णित) है, जिसमें श्रीराम सचमुच विजयी (घोषित) हैं और जिनके अलावा किसी दूसरे का वरण सीता नहीं करती। २५७

हे ब्रह्मानन्द-स्वरूप श्रीरघुवीर! हे ब्रह्मा के पिता! हे श्रीधर कवि के वरदाता! हे परात्पर पुराणपुरुष! मुझे अपना अक्षय (निरन्तर) कीर्तन (का वरदान) दो। २५८

स्वस्ति! यह श्रीराम-विजय सुन्दर ग्रन्थ वाल्मीकि के नाटक पर आधारित एवं उससे सम्मत है। चतुर श्रोता उसका यह मधुर सातवाँ अध्याय नित्य श्रवण करें।

अध्याय—८

श्रीगणेशाय नमः । धन्य धन्य तुम्ही संतसज्जन । राममहिमार्णवींचे मीन । त्यांतील अनुभवमुक्तें पूर्ण । दृश्यमान सर्व तुम्ही । १ राजभांडारींचीं रत्नें बहुत । तीं भांडारियासी ठाउकीं समस्त । कीं मित्रप्रभेचा अंत अद्भुत । अरुण एक जाणे पैं । २ कीं पृथ्वीचें किती वजन । हें भोगींद्र जाणे संपूर्ण । कीं आकाशाचें थोरपण । एक प्रभंजन जाणतसे । ३ कवीची पद्यरचना किती । हें एक जाणे सरस्वती । चंद्रामृत वानिजे बहुतीं । परी महिमा जाणती चकोर । ४ कीं प्रेमळ कळा गोड बहुत । हें एक जाणती भोळे भक्त । कीं श्रीराम-कथेचा प्रांत । वाल्मीक मुनि जाणतसे । ५ रामनामाचा महिमा अद्भुत । एक जाणे कैलासनाथ । कीं चरणरजाचा प्रताप बहुत । विरिंचितनया जाणे पैं । ६ म्हणोन कथा हे गोड बहुत । येथींचा सुरस सेविती संत । असो सप्तमाध्यायीं

तुम सन्त-सज्जन धन्य हो ! धन्य हो । तुम श्रीराम की महिमा-रूपी सागर में रहनेवाले मत्स्य हो । (अथवा) तुम सब श्रीराम-माहात्म्य-सम्बन्धी अनुभव-रूपी दृश्यमान (प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले) मोती हो । १ राज-भण्डार में बहुत रत्न होते हैं; वे सब खजांची के जाने-पहचाने होते हैं । अथवा सूर्य की अद्‌भुत कान्ति की पूर्णता एकमात्र अरुण जानता है । २ यह शेषनाग (ही) पूर्णतः जानता है कि पृथ्वी का कितना वज़न है । अथवा एकमात्र पवन (ही) आकाश की विशालता जानता है । ३ एकमात्र सरस्वती यह जानती है कि कवि कितनी पद्य-रचना करता है । चन्द्रमा से निःसृत होनेवाले अमृत की प्रशंसा तो बहुत करते हैं, परन्तु (उनमें से केवल) चकोर (ही उसकी) महिमा को जानते हैं । ४ अथवा केवल भोले-भाले भक्त (ही) यह जानते हैं कि भगवान् (की मूर्ति) की प्रेममय कान्ति बहुत मधुर होती है । अथवा श्रीराम की कथा के क्षेत्र को (केवल) वाल्मीकि ऋषि (ही) जानते हैं । ५ एकमात्र कैलासनाथ शिवजी जानते हैं कि राम-नाम की महिमा (कैसी) अद्‌भुत है । अथवा ब्रह्मा की कन्या अहल्या (ही श्रीराम के) चरण-रज के बहुत बड़े प्रताप को जानती है । ६ इसलिए, यह कथा बहुत मीठी है, उसके सु-रस का सेवन सन्तजन करते हैं । अस्तु ! पिछले सातवें अंध्याय की कथा का यह मतलब है कि राम आकर मिथिला के समीप ठहर गये । ७

गतकथार्थ । राम मिथिलेसमीप राहिला । ७ देशोदेशींचे जे कां नृप । त्यांसी मूळ धाडी मिथिलाधिप । पृतनेसहित अमूप । राजे लवलाहीं पातले । ८ मूळ धाडिलें दशरथा । परी तो न येचि सर्वथा । कौशिक घेऊनि गेला रघुनाथा । वियोगव्यथा थोर त्यासी । ९ माझे कुमर दोघे जण । कौशिक गेला असे घेऊन । माझिया श्रीरामाचें वदन । कैं मी देखेन पुढती । १० या वियोगानळेंकरून । श्रावणारि आहाळे रात्रंदिन । मिथिलेसी न यावया पूर्ण । हेंचि कारण जाणिजे । ११ इकडे ऋषींसहित कौशिक । आला ऐकोन राव जनक । नगराबाहेर तात्काळिक । सामोरा आला समारंभें । १२ मूर्तिमंत सूर्यनारायण । ऐसा एक एक दिव्य ब्राह्मण । देखतां जनकें लोटांगण । समस्तांसी घातलें । १३ जनक म्हणे भाग्य अद्भुत । जैं घरा आले साधुसंत । आजि मी जहालों पुनीत । पूर्वपुण्य फळासी आलें । १४ नृप सादर पाहे विलोकून । म्हणे श्यामसुंदर दोघे जण ।

देश-देश के जो-जो कोई राजा थे, उन्हें मिथिला के राजा (जनक) ने निमंत्रण भेज दिया । (फलस्वरूप) अनगिनंत राजा झट् से (मिथिला में) पहुँच गये । ८ (जनक ने) दशरथ राजा को भी निमंत्रण भेज दिया (था), परन्तु वे बिलकुल नहीं आते (आना चाहते; क्योंकि) विश्वामित्र राम को ले गये (थे) । (इससे उनके) वियोग से उन्हें बहुत बड़ी व्यथा (हो रही) थी । ९ (वे सोचते थे—) मेरे दोनों पुत्रों को विश्वामित्र ले गये हैं । अब मैं अपने (प्रिय पुत्र) श्रीराम का मुख पुनः कब देख सकूँगा ? १० इस विरह-रूपी आग में श्रवणारि दशरथ रात-दिन झुलसता रहता है । समझ लो कि (उनके) मिथिला न आने का यही पूरा (एकमात्र) कारण है । ११

इधर, ऋषियों-सहित विश्वामित्र आये (हैं), यह सुनकर राजा जनक ने धूमधाम के साथ तत्काल नगर के बाहर (आकर) अगुवानी की । १२ मूर्तिमान सूर्यनारायण-से एक-एक दिव्य ब्राह्मण को देखकर जनक ने सबको दण्डवत् नमस्कार किया । १३ जनक कहते हैं—'(मेरा यह) अद्भुत भाग्य है, जबकि साधु-सन्त घर आये (हैं) । आज मैं पुनीत (पवित्र) हो गया । (मेरे) पूर्वजन्म में किया हुआ पुण्य, फल को प्राप्त हो गया ।' १४ राजा आदर-पूर्वक ध्यान से देखते हैं और कहते हैं—'हे विश्वामित्र, ये श्यामसुन्दर दोनों जने किसके (हैं), कौन हैं ? आप (इन) सुकुमार, गुणवान् लड़कों को लाये (हैं) । १५ अथवा चन्द्र

कौशिका हे कोणाचे कोण। सुकुमार सगुण आणिले। १५ कीं शशी आणि चंडकिरण। कीं वाचस्पति आणि सहस्रनयन। कीं रमापति उमापति दोघे जण। सुवेष धरोनि पातले। १६ वाटे यांचिया स्वरूपावरून। कोट्यनुकोटी मीनकेतन। टाकावे कुरवंडी करून। पाहतां मन उन्मन होय। १७ जनकासी म्हणे विश्वामित्र। हे राया दशरथाचे पुत्र। यांचें वर्णाविया चरित्र। सहस्रवक्त्रा शक्ति नोहे। १८ येणें मार्गीं ताटिका वधून। सिद्धीस पावविला माझा यज्ञ। वीस कोटी पिशिताशन। सुबाहुसहित मारिले। १९ मार्गीं चरणरजेंकरूनी। उद्धरिली सरसिजोद्भव-नंदिनी। हर-कोदंड पहावें नयनीं। म्हणोनि येथें पातले। २० साक्षात् शेष-नारायण। राया तुवां न करितां प्रयत्न। घरा आले मूळेंविण। सभाग्य पूर्ण तूं एक। २१ अवचितां जैसा निधि भेटला। चिंतामणि येऊन पुढें पडला। कीं कल्पद्रुम स्वयें आला। गृह शोधीत दुर्बळाचें। २२ कीं निद्रिस्थाचे मुखांत। अकस्मात पडलें अमृत।

और सूर्य, (अथवा) गुरु और इन्द्र, रमापति विष्णु और उमापति शिवजी दोनों जने सुवेश को धारण करके (इनके रूप में) आ पहुँचे। १६ लगता है, इनके सौन्दर्य पर कोटि-कोटि मदन निछावर कर डालें। (इन्हें) देखने पर मन उन्मन हो जाता है'। १७ (इसपर) विश्वामित्र ने जनक से कहा—'हे राजा, ये (राजा) दशरथ के पुत्र हैं। इनके शील-स्वभाव का वर्णन करने के लिए सहस्रवदन शेष में (भी) शक्ति नहीं है। १८ इन्होंने मार्ग में ताड़का का वध करके मेरा यज्ञ, सिद्धि को प्राप्त कराया। सुबाहु-सहित बीस करोड़ राक्षसों को मार डाला। १९ (इन्होंने) मार्ग में (अपनी) पद-धूलि से ब्रह्मा की कन्या (अहल्या) का उद्धार किया। वे यहाँ इसलिए आ पहुँचे हैं कि शिवजी के धनुष को (अपनी) आँखों से देख लें। २० हे राजा, बिना तुम्हारे द्वारा यत्न किये, प्रत्यक्ष शेष और नारायण बिना निमंत्रण के (ही तुम्हारे) घर आये। (अतः) तुम एकमात्र पूर्णतः भाग्यवान् हो। २१ यह बात ऐसे हुई है, जैसे किसी दरिद्र को अचानक धनकोश (खज़ाना) मिल गया (हो), अथवा उसके यहाँ चिन्तामणि रत्न पड़ गया (हो), अथवा किसी दुर्बल के घर (को) खोजते-खोजते कल्पवृक्ष स्वयं आ गया (हो), अथवा सोये हुए मनुष्य के मुख में अचानक अमृत डाल दिया (हो), अथवा भूखे मनुष्य के सम्मुख (स्वयं) क्षीर-समुद्र आ पहुँचा (हो),

कीं क्षुधितापुढें धांवत । क्षीरसिंधु पातला । २३ कीं शास्त्राभ्यासावांचून । भाग्यें जाहलें अपरोक्षज्ञान । कीं मृत्तिका खणितां निधान । अकस्मात लागलें । २४ जैं भाग्योदयें होय नृपती । तरी घरींच्या दासी सिद्धि होती । कल्पिलें फळ तत्काळ देती । आंगणींचे वृक्ष जे कां । २५ हातीं कांचमणि धरितां । तो चिंतामणि होय तत्त्वतां । तृणगृहें क्षण न लागतां । सुवर्णमंदिरें पैं होती । २६ खडाणा गाई दुभती । वैरी तेचि मित्र होती । विशेष प्रकाशे निजमती । राजे पूजिती येऊनि घरा । २७ समयोचित होय स्फूर्ती । दिगंतरा जाय कीर्ति । पदोपदीं निश्चितीं । यश जोडे तयातें । २८ असो जनकासी म्हणे विश्वामित्र । तुझा आजि उदय पावला भाग्यमित्र । घरासी आला स्मरारिमित्र । सकळ अमित्रां त्रासक जो । २९ जनकें करूनि बहुत आदर । विश्वामित्र श्रीराम सौमित्र । निजसभेसी आणोनि सत्वर । मान देऊन बैसविले । ३०

अथवा (किसी को) बिना शास्त्रों के अध्ययन के, सद्भाग्य से ब्रह्मज्ञान (प्राप्त) हो गया (हो), अथवा (किसी को) मिट्टी खोदते-खोदते सहसा धरोहर (हाथ) लग गयी (हो) । २२-२४ यदि (कोई) भाग्य के उदय से राजा हो जाए, तो घर की दासियाँ सिद्धियाँ बन जाती हैं और आँगन में जो वृक्ष हैं, वे तत्काल इच्छित फल देते हैं । २५ हाथ में काँच का मनका रखने पर (भी) वह सचमुच चिन्तामणि हो जाता है (और) घास-फूस के बने घर सुवर्ण-प्रासाद बन जाते हैं । २६ ठाठ गायें दूध देने लगती हैं. (जो) वैरी हैं, वे ही मित्र बन जाते हैं; (किसी) मनुष्य की अपनी बुद्धि विशेष रूप में प्रकाशमान (तेजस्वी) हो जाती है (और) राजा (उसके) घर आकर (उसका) पूजन करते हैं । २७ उसे समयोचित प्रेरणा हो जाती है, उसकी कीर्ति दिगन्त तक पहुँच जाती है और निश्चय ही पद-पद पर उसे सफलता जुड़ (मिल) जाती है । २८

अस्तु ! विश्वामित्र जनक से कहते हैं— आज तुम्हारा भाग्य-रूपी सूर्य उदित हो गया । (क्योंकि) मदन के शत्रु शिवजी के मित्र श्रीराम (तुम्हारे) घर आ गये (हैं), जो समस्त शत्रुओं को पीड़ा देनेवाले (अथवा भयभीत कर देनेवाले) हैं । २९ (तब) बहुत आदर करके (आदरपूर्वक) जनक राजा ने विश्वामित्र, श्रीराम और लक्ष्मण को शीघ्रता से अपनी (राज-) सभा में लाकर (उनका) सम्मान करते हुए बैठा दिया । ३० देश-देश के राजा, राम को देखकर आश्चर्य (अनुभव) करते हैं और

देशोदेशींचे नृपती । राम पाहोनि आश्चर्य करिती । सीता द्यावी हो याप्रती । नोवरा रघुपति साजिरा । ३१ एक म्हणती स्वयंवरीं केला पण । भार्गवचापासी चढवावा गुण । हें कार्य परम कठिण । रामास केवीं आकळे । ३२ मनांत म्हणे जनक नृपवर । जरी जांवयी होईल रघुवीर । तरी माझ्या भाग्यास नाहीं पार । परी पण दुर्धर पुढें असे । ३३ तंव तया मंडपांगणीं । परम चतुर चपळ करिणी- । वरी दिव्य चंवरडोल जडितरत्नीं । झळकतसे अत्यंत । ३४ त्यामाजी बैसली जनकबाळा । हातीं घेऊनियां दिव्य माळा । विलोकित सकळ भूपाळां । ऋषिवृंदासहित पैं । ३५ जवळी सखिया सकळ असती । श्वेत चामरें वरी ढाळिती । एक क्षणक्षणां श्रृंगार सांवरिती । विडचा देती एक तेथें । ३६ जे त्रिभुवन-पतीची मुख्य राणी । आदिमाया प्रणवरूपिणी । जे इच्छामात्रें-करूनी । ब्रह्मांड हें घडीमोडी । ३७ ब्रह्मादिक बाळें आज्ञेंत । आपुले निजगर्भीं पाळित । तिचें स्वरूपलावण्य अद्भुत । कवणालागीं न वर्णवे । ३८ अनंत शक्ति कर जोडून । जीपुढें

सोचते हैं कि सीता इन्हें दी जाए—(इसके लिए) श्रीराम (ही) सुन्दर वर हैं । ३१ कोई एक कहते हैं—(राजा जनक ने) स्वयम्वर-सम्बन्धी (यह) प्रण किया है कि परशुराम के (द्वारा दिये हुए शिव-) धनु पर प्रत्यंचा (डोरी) चढ़ाएँ । यह काम तो परम कठिन है । राम के द्वारा (यह) कैसे हो सकता है ? ३२ जनक राजा मन में कहते (सोचते) हैं, ' यदि रघुवीर राम (मेरे) जामाता हो जाएँ, तो मेरे (सद्-) भाग्य की कोई सीमा नहीं है । परन्तु (मेरे द्वारा किया हुआ) दुर्धर प्रण सामने है ' । ३३ तब उस मंडप से आच्छादित आँगन में (एक) परम चतुर चपल हथिनी पर रत्न-जटित दिव्य अम्बारी अत्यधिक चमक रही है । ३४ उसमें जनक की कन्या हाथ में दिव्य-माला लिये हुए विराजमान है और वह ऋषि-वृन्द-सहित समस्त राजाओं को ध्यान से देख रही है । ३५ उसके निकट सब सखियाँ हैं; वे उसपर सफेद चामर झुलाती हैं; (उनमें से) कोई-एक प्रतिक्षण (वस्त्र-आभूषण आदि) श्रृंगार (के उपकरणों को) सँवारती है, तो कोई-एक वहाँ बीड़े देती है । ३६ जो (स्वर्ग, मृत्यु और पाताल) तीनों भुवनों के स्वामी की मुख्य (पट-) रानी है, जो आदि माया एवं प्रणवरूपिणी है, जो इच्छा-मात्र से (इस) ब्रह्माण्ड का निर्माण और संहार करती है, ब्रह्मा आदि बालक (-से) जिसकी आज्ञा में रहते हैं, जिसके

ठाकती येऊन । जिनें आदिपुरुषा जागें करून । सगुणत्वासी आणिलें । ३९ या ब्रह्मांडमंडपाधाझारी । जनकात्मजेऐसी सुंदरी । उपमा द्यावया दुसरी । कोणे अवतारीं नसेचि । ४० जैसें जांबूनदसुवर्ण तप्त । तैसें सर्वांग दिव्य विराजित । आकर्ण नेत्र विकासित । मुखमृगांक न वर्णवेचि । ४१ मुखीं झळकती दंतपंक्ती । बोलतां जिकडे पडे दीप्ती । पाषाण ते पद्मराग होती । वाटे रत्नें विखुरती बोलतां । ४२ जानकीचे अंगींचा सुवास । भेदोन जाय महदाकाश । जिनें भुलविला आदिपुरुष । आपुल्या स्वरूपविलासें । ४३ पाय ठेवितां धरणीं । पदमुद्रा उमटती जे स्थानीं । तेथें वसंत येऊनी । लोळत भुलोनि सुवासा । ४४ चंद्रसूर्यांच्या गाळिल्या ज्योती । तैसीं कर्णपुष्पें अत्यंत झळकती । कर्णीं मुक्तघोंस ढाळ देती । कृत्तिकापुंज जैसे कां । ४५ आकर्णपर्यंत विशाळ नयन । माजी विलसे सोगियाचें

अपने गर्भ में (वे) लालित-पालित होते हैं, उसके अद्भुत सौन्दर्य और लावण्य का वर्णन किसी से भी नहीं हो पाता । ३७-३९ अनन्त शक्तियाँ हाथ जोड़कर जिसके सामने आकर खड़ी रहती हैं, जिसने आदि पुरुष को जागृत करके सगुणत्व (सगुण रूप) को प्राप्त कराया, उस जनकात्मजा सीता के समान दूसरी कोई सुन्दर स्त्री उसकी उपमा देने (उससे तुलना करने) के लिए इस ब्रह्माण्ड-रूपी मण्डप के अन्दर अवतरित नहीं (हुई) है । ४० उसका समस्त शरीर तप्त जाम्बूनद (सोने) की भाँति शोभायमान है । नेत्र आकर्ण (कानों तक) फैले हुए अर्थात् विशाल हैं । (उसके) मुख-चन्द्र (की सुन्दरता) का वर्णन तो नहीं किया जा पाता । ४१ (उसके) मुख में दन्त-पंक्ति (इस प्रकार) झलकती है (कि उसके) बोलते हुए जिस ओर उसकी कान्ति पड़ती (फैल जाती) है, वहाँ के पाषाण पद्मराग अर्थात् माणिक रत्न हो जाते हैं । जान पड़ता है, (उसके) बोलते समय रत्न बिखरते हैं । ४२ जिसने अपने सौन्दर्य-विलास से आदि पुरुष को मोहित कर दिया, उस जानकी के शरीर की सुगन्ध महदाकाश को भेदकर (पार) निकल जाती है । ४३ पाँव धरती पर रखने से जिस स्थान पर (उसके) पद-चिह्न अंकित हो जाते हैं, वहाँ (लगी) सुगन्ध के प्रति मुग्ध होकर वसन्त ऋतु लोट जाती है । ४४ सूर्य और चन्द्र को गलाकर बनायी हुई ज्योतियों से उसके कर्ण-फूल अत्यधिक चमकते हैं । कानों में (पहने हुए) मोतियों के गुच्छ (झुमके) कृत्तिका-पुंज के समान चमकते हैं । ४५ आकर्ण विशाल नेत्रों में सूरमे का अंजन सुशोभित है ।

अंजन । कपाळीं मृगमद रेखिला पूर्ण । वरी बिजवरा झळकतसे । ४६ शीत दाहकत्व सांडोनी । शशांक आणि वासरमणी । सदा विलसती दोन्ही । मुक्तजाळीं गगनी भगणें जैसीं । ४७ विद्युत्प्राय दिव्यांबर । मुक्तलग चोळी शोभे विचित्र । वरी एकावळी मुक्ताहार । पदकीं अपार तेज फांके । ४८ दशांगुळीं मुद्रिका यंत्राकार । वज्रचुडेमंडित कर । कटिकांचीवरी हिरे थोर । जैसे दिनकर जडियेले । ४९ वांकी नेपुरें दिव्य चरणीं । रुणझुणती चालतां धरणीं । जिचिया स्वरूपावरूनी । कोटी अनंग ओंवाळिजे । ५० असो ऐसी ते चित्कळा । सकळ सभा विलोकी डोळां । तों ऋषिपंक्तिमाजी घनसांवळा । परब्रह्मपुतळा देखिला । ५१ विजयानामें सखीप्रती । सीता म्हणे पाहें ऋषिपंक्ती । त्यांमाजी विलसे जी मूर्ती । माझी प्रीति जडली तेथें । ५२ घनश्याम सुंदर रूपडें । देखतां कामाची मुरकुंडी पडे । सखे मज वर जरी ऐसा जोडे । तरीच

भालप्रदेश पर कस्तूरी की पूर्ण रेखा अंकित है और (उसके) ऊपर चन्द्राकार बिंदी झलकती है। ४६ (अपनी-अपनी) शीतलता और दाहकता का त्याग कर चन्द्र और सूर्य दोनों (उसके मस्तक पर पहनाये हुए) मोतियों के जाल में सदा वैसे फबते हैं, जैसे आकाश में नक्षत्र शोभा देते हैं। ४७ उसका (पहना हुआ) दिव्य वस्त्र विद्युत्-सा (तेजस्वी, चमकदार) है। मोतियों से जटित रंग-बिरंगी (या अद्भुत) चोली शोभा देती है, ऊपर मोतियों का इकलरा हार है। (उसमें बँधे) पदक में (से) असीम तेज़ फैलता है। ४८ दसों अँगुलियों में यंत्राकार अँगूठियाँ हैं; हीरे की (हीरे से जटित) चूड़ियों से हाथ विभूषित हैं; (कमर में बँधी) करधनी में (ऐसे) बड़े हीरे हैं—जैसे (जान पड़ता है) सूर्य जुड़े (हुए) हों। ४९ (हाथों में पहने) भुजबंद और पाँवों में पहने नूपुर दिव्य हैं, जो जमीन पर (उसके) चलते समय झनकते हैं। वह सीता (ऐसी) है कि जिसकी सुन्दरता पर करोड़ (ड़ों) कामदेव निछावर कर दें। ५०

अस्तु। ऐसी वह (सीता रूप-धारिणी) चित्-शक्ति समस्त सभा को आँखों से ध्यान से देखती है (थी), तो उसने ऋषियों की पंक्तियों में परब्रह्म मूर्ति घनश्याम श्रीराम को देखा। ५१ (अपनी) विजया नामक सखी से सीता कहती है— ऋषियों की पंक्ति को देखो। उसमें जो मूर्ति शोभायमान है, मुझे उसके प्रति प्रीति (उत्पन्न) हो गयी (है)। ५२ (उस) घनश्याम सुन्दर रूप को देखकर कामदेव (का शरीर भी) सकुचा

धन्य मी संसारीं । ५३ बहुत जन्मपर्यंत । तप केलें असेल जरी अत्यंत । तरीच हा मज होईल कांत । विजये निश्चित जाण पां । ५४ नवस करूं कवणाप्रती । कोणती पावेल मज शक्ती । रघुवीर जरी जोडेल पती । तरी त्रिजगतीं धन्य मी । ५५ राजीवनेत्र घनसांवळा । स्वरूप-ठसा सर्वांत आगळा । आपुले हातीं यासी घालीन माळा । मग तो सोहळा न वर्णवे । ५६ तों विश्वामित्र म्हणे जनकाप्रती । आतां कोदंड आणावें शीघ्रगती । मिळाले येथें सर्व नृपती । जे कां पुरुषार्थी थोर थोर । ५७ अष्टचक्रशकट प्रचंड । त्यावरी ठेविलें चंडकोदंड । सहस्रवीरांचे दोर्दंड । ओढितां भागले न ढळेचि । ५८ मग गजभार लाविले । रंगमंडपीं ओढून आणिलें । देखतां सर्व राजे दचकले । म्हणती हें नुचले कोणासी । ५९ एक म्हणती हें शिवचाप । उचलील ऐसा न दिसे भूप । एकास सुटला चळकंप । गेला बळदर्प गळोनियां । ६० एक महावीर बोलत ।

जाता है । हे सखी ! यदि मुझे ऐसा वर प्राप्त हो जाए, तो ही (इस) संसार में धन्य होऊँगी । ५३ यदि मैंने बहुत जन्मों तक अत्यन्त कठिन तपस्या की हो, तो ही अरी विजया, यह निश्चय (ही) मेरा पति हो जाएगा । ५४ मैं किससे मनौती मानूँ ? मुझे कौन-सी शक्ति प्राप्त हो जाएगी ? यदि रघुवीर राम मुझे पति (रूप में) प्राप्त हो जाए, तो ही मैं त्रिभुवन में धन्य हो जाऊँगी । ५५ वह कमल-नयन है, घनश्याम है । उसकी सुन्दरता का साँचा ही सबसे अनोखा है । मैं अपने हाथों से इसे माला पहनाऊँगी । तब उस उत्सव का वर्णन कोई न कर पाएगा' । ५६

तब विश्वामित्र, जनक से कहते हैं—'अब शीघ्रता-पूर्वक धनुष लाइए, जबकि पुरुषार्थ में जो बड़े-बड़े हैं, वे सब राजा यहाँ इकट्ठा हुए (हैं)' । ५७ (एक) आठ पहियोंवाली प्रचण्ड गाड़ी है । उसपर (वह) प्रचण्ड धनुष रख दिया । एक सहस्र वीरों के बाहु उसे खींचते-खींचते थक गये; फिर भी वह (गाड़ी) टस-से-मस नहीं हुई । ५८ फिर हाथियों का दल (सेना) लगाया (गया); वह रंग-मण्डप में (उस गाड़ी को) खींच लाया । देखते ही सब राजा चौंक गये । वे कहते हैं—'यह (धनुष) किसी के द्वारा भी नहीं उठाया जाएगा' । ५९ कोई-एक कहता है—' जो इस शिव-धनु को उठा पाएगा, ऐसा कोई राजा (यहाँ) नहीं दिखायी दे रहा है' । किसी-एक को तो कँपकँपी छूट गयी । शक्ति-सम्बन्धी उसका सारा घमण्ड गायब हो गया । ६० कोई-एक महावीर

आम्ही कौतुक पाहावया आलों येथ। एक म्हणती जनकाचा स्नेह बहुत। म्हणोनि भेटीस पातलों। ६१ जनक सांगे सकळांतें। हें विरूपाक्ष-चाप घेऊन स्वहस्तें। शिक्षा लाविली दक्षातें। सहस्राक्षातें नुचले हें। ६२ ऐसिया चापासी उचलोन। जो राजेंद्र वाहील गुण। त्यासी हे जानकी गुण-निधान। माळ घालील स्वहस्तें। ६३ तटस्थ पाहती सकळ वीर। कोणी न देती प्रत्युत्तर। कोणी सांवरोनियां धीर। चाप उचलूं भाविती। ६४ तों मूळ न पाठवितां रावण। प्रधानासहित आला धांवोन। सभा गजबजली संपूर्ण। म्हणती विघ्न आलें हें। ६५ आतां गति येथें नव्हे बरी। बळेंचि उचलोन नेईल नोवरी। कोणीं म्हणती क्षणाभीतरीं। चंडीश-चाप चढवील हा। ६६ जनकासी म्हणे रावण। तुवां धनुष्याचा केला पण। तरी क्षणमात्रें तें मोडून। कुटके करीन येथेंचि। ६७ म्यां हालविला कैलास। बंदीं घातले त्रिदश। ऐरावतासमवेत देवेश। समरभूमीस उलथिला। ६८ तो मी

कहता है—'हम तो यहाँ कौतुक देखने आये'। कोई-एक कहता है—'जनक का (हमारे प्रति) बहुत स्नेह है, इसलिए (उनसे) मिलने के लिए आ गये'। ६१ (अन्त में) जनक सबसे कहते हैं—'स्वयं शिवजी ने इसे (इस धनुष को) अपने हाथ में लेकर दक्ष को दण्ड दिया (था)। यह इन्द्र से (भी) नहीं उठाया जाता। ६२ जो महान् राजा ऐसे धनुष को उठाकर (उसपर) डोरी चढ़ाएगा, उसे यह गुणनिधान जानकी अपने हाथों से (वर) माला पहनाएगी'। ६३ समस्त वीर (उसे) तटस्थ होकर देखते हैं, (परन्तु) कोई प्रति-उत्तर नहीं देते। (फिर भी) कोई धीरज इकट्ठा करके (सम्हलकर), धनुष को उठाने की इच्छा करते थे। ६४ तब निमंत्रण नहीं भेजने पर भी रावण (अपने) मंत्री-सहित दौड़ता हुआ (वहाँ) आ गया, तो समस्त सभा घबरा उठी। और कोई (सभा-जन) कहते हैं—'यह तो विघ्न आ गया। ६५ अब यहाँ स्थिति अच्छी नहीं होगी। (वह) बलपूर्वक वधू को उठाकर ले जाएगा'। (तो) कोई-कोई कहते हैं—'क्षण-भर के भीतर यह शिवजी का धनुष (पर डोरी) चढ़ाएगा'। ६६ रावण जनक से कहता है—'तुमने धनुष-सम्बन्धी प्रण किया, तो मैं उसे क्षण-मात्र में तोड़कर यहीं टुकड़े कर डालूँगा। ६७ मैंने कैलास (पर्वत) को हिला दिया; देवों को बन्दीशाला में डाल दिया; देवेश इन्द्र को ऐरावत (हाथी)-सहित युद्ध-भूमि में चित कर डाला। ६८

रावण प्रतापशूर। चाप लावाया काय उशीर। उपटोनियां मेरुमांदार। कंदुकाऐसे उडवीन। ६९ पृथ्वी उचलोनि अकस्मात। घालूं शकें मी समुद्रांत। कीं घटोद्भवासारिखा सरितानाथ। क्षणमात्रें शोषीन मी। ७० तरी आतां हेचि प्रतिज्ञा पाहीं। हें चाप मोडूनि लवलाहीं। होईन जनकाचा जांवई। सकळ रायांदेखतां। ७१ वसनें भूषणें सावरून। चापाकडे चालिला रावण। गजबजलें जानकीचें मन। अति उद्विग्न जाहली। ७२ म्हणे अपर्णापते त्रिनयना। त्रिपुरांत मदनदहना। तुझें चाप नुचले रावणा। गजास्य-जनका ऐसें करीं। ७३ या दुर्जनाचें तोंड काळें। सदाशिवा करीं शीघ्र वहिलें। महादैवतें प्रचंड सबळें। या धनुष्यावरी बैसवीं। ७४ अहो अंबे मूळपीठ-निवासिनी। मंगळकारके आदिजननी। या रावणाच्या शक्ती हिरोनी। नेई मृडानी सत्वर। ७५ ऐसें जानकीनें प्रार्थिलें। तों दैवतें धांविन्नलीं सकळें। गुप्तरूपें शीघ्रकाळें। येऊन बैसलीं चापावरी। ७६ नवकोटी कात्यायनी। चौसष्ट कोटी

मैं वही प्रतापवान वीर रावण हूँ। (मुझे) धनुष चढ़ाने में क्या देर ? मैं (तो) मेरु मन्दर (पर्वत) को उखाड़कर गेंद-सा उड़ा दूँगा। ६९ पृथ्वी को अचानक उठाकर मैं समुद्र में डाल सकता हूँ, अथवा अगस्त्य ऋषि की भाँति मैं समुद्र को क्षण-मात्र में सोख लूँगा। ७० इसलिए अब यही (मेरी) प्रतिज्ञा देखो—झट् से इस धनुष को तोड़कर, मैं सब राजाओं के देखते हुए जनक का जामाता हो जाऊँगा'। ७१ (तदनन्तर) वस्त्रों और आभूषणों को सँभालकर रावण धनुष की ओर चल दिया, तो जानकी का मन भय से व्याकुल हो गया; वह अति उद्विग्न हो गयी। ७२ वह (मन-ही-मन) कहती है—' हे अपर्णापति, त्रिनयन, त्रिपुर का अन्त कर देनेवाले, मदनदहन शिवजी ! हे गणेशजी के पिता ! तुम कुछ ऐसा करो, जिससे रावण द्वारा तुम्हारा धनुष न उठाया जाए। ७३ हे सदाशिव! इस दुर्जन का मुँह निश्चय ही सत्वर काला कर दो। इस धनुष पर महान् प्रचण्ड बलवान देवताओं को बैठा दो। ७४ हे मूल-पीठ-निवासिनी अम्बा ! मंगल-कारिणी आदि-जननी पार्वती ! इस रावण की शक्तियों का सत्वर हरण कर ले जाओ'। ७५ इस प्रकार जानकी ने प्रार्थना की, तो समस्त देवता दौड़ गये (और) गुप्त रूप से शीघ्रतापूर्वक (अल्प काल) में धनुष पर बैठ गये। ७६ नौ करोड़ कात्यायनियों (=दुर्गा देवी का एक रूप) और चौंसठ करोड़ योगिनियों (=एक प्रकार की देवियों)-

योगिनी । यांसहित कालिका येउनी । धनुष्यावरी बैसत । ७७
धनुष्य उचलूं गेला दश-वक्त्र । तंव तें न ढळेचि अणुमात्र ।
बळें लाविले वीसही कर । जाहलें शरीर निस्तेज पैं । ७८
द्विजपंक्तीनें अधरप्रांत । शक्रारिजनक बळें रगडित । चाप उभें
करितां त्वरित । जाहलें विपरीत तेधवां । ७९ जैसा महाद्रुम
उन्मळे । तैसें शिवचाप उलथलें । रावण उताणा पडे ते वेळे ।
हलकल्लोळ मांडला । ८० जैसा पूर्वीं गयासुर दैत्य । त्यावरी
ठेविला पर्वत । तैसाचि पडला लंकानाथ । धनुष्य अद्भुत
उरावरी । ८१ रावण पडतां भूतळीं । सभेवरी उसळली धुळी ।
दाहीं मुखीं मृत्तिका पडली । आनंदली जानकी । ८२ दाहीं
मुखीं रुधिर वाहात । कासावीस जाहला बहुत । म्हणे धांवा
धांवा समस्त । धनुष्य त्वरित काढा हें । ८३ रावण म्हणे
जनकाप्रती । माझे प्राण चालिले निश्चितीं । परी इंद्रजित

सहित कालिका (=दुर्गा देवी का एक रूप, जिसे रण-भूमि की अधिष्ठात्री माना जाता है) देवियाँ धनुष पर बैठ गयीं । ७७ जब दशमुख रावण धनुष को उठाने गया (लगा), तब वह अणु-भर भी नहीं हिला । (फिर) जब उसने बलपूर्वक बीसों हाथ लगा लिये, तो उसका शरीर निस्तेज (अर्थात् फीका–बलहीन) हो गया । ७८ (फिर) दाँतों की पंक्तियों से उसने अधर-प्रदेश (ओंठों) को दबा लिया (और पूरी ताकत लगाकर धनुष उठाने का यत्न किया, फलस्वरूप) तभी धनुष को खड़ा करते ही तत्क्षण विपरीत बात हो गयी । ७९ जैसे (कोई) प्रचण्ड वृक्ष उखड़ (कर गिर) जाए, वैसे (वह) शिव-धनुष उलट (कर गिर) गया । उस समय रावण पीठ के बल गिर गया; उससे (उसने) कुहराम मचा दिया । ८० पूर्वकाल में गयासुर नामक दैत्य था (और) जैसे उस पर पर्वत रख दिया, वैसे ही लंकापति रावण पड़ (लुढ़क) गया और (वह) अद्भुत धनुष (उसकी) छाती पर (दिखायी दे रहा) था । ८१ रावण के भूमि पर पड़ते सभा (-स्थान) पर धूलि उछल गयी । (रावण के) दसों मुखों में धूलि पड़ गयी । (इससे) सीता आनन्दित हो गयी । ८२ (रावण के) दसों मुखों से रक्त बह रहा था, वह बहुत छटपटा उठा और बोला—'सब दौड़ो, दौड़ो; इस धनुष को झट् से हटा दो'। ८३ रावण, जनक से कहता है(बोला)—'निश्चय ही मेरे प्राण निकल रहे हैं; फिर भी इन्द्रजित और कुम्भकर्ण (जीवित) हैं, (जो) तुम्हारा जड़-सहित निर्दालन कर डालेंगे'। ८४ समस्त सभा ठिठक उठी ।

कुंभकर्ण असती। तुज निर्दाळिती सहमुळीं। ८४ गजबजली सभा समस्त। म्हणती कोण आहे बळिवंत। हें चाप उचलील अद्भुत। महा अनर्थ ओढवला। ८५ घावरा झाला मिथिलेश्वर। म्हणे पृथ्वी झाली निर्वीर। क्षत्री भार्गवें आटिले समग्र। त्रिसप्त वेळां हिंडोनियां। ८६ या सभेमाजी बळिवंत। कोणी क्षत्री नाहीं रणपंडित। कौशिकें ऐसी ऐकतां मात। खुणाविलें श्रीरामचंद्रा। ८७ जैसा निद्रिस्थ सिंह जागा केला। कीं याज्ञिकें जातवेद फुंकिला। तैसा विश्वामित्रें ते वेळां। खुणाविला रघुवीर। ८८ म्हणे नरवीरपंचानना। त्रिभुवनवंद्या राजीवनयना। पुराणपुरुषा रघुनंदना। अरिमर्दना ऊठ वेगीं। ८९ कमलोद्भव-जनका उदारा। ताटिकांतका अहल्योद्धारा। मखपाळका समरधीरा। असुरसंहारका ऊठ वेगीं। ९० जैसी निशा संपतां तत्काळ। उदयाद्रीवरी ये रविमंडळ। तैसा राम तमाळनीळ। उठोनि उभा ठाकला। ९१ कीं महायाग

सभाजन कहते हैं (बोले)—'ऐसा बलवान कौन है (जो) इस अद्भुत धनुष को उठा पाएगा ? (अब तो) महान् अनर्थ (संकट) आ पड़ा !' ८५ मिथिलेश्वर जनक घबरा उठे। वे कहते हैं (बोले)—'पृथ्वी वीर-हीन हो गयी। भार्गव राम (परशुराम) ने इक्कीस बार घूमकर सब क्षत्रियों को नष्ट कर डाला। ८६ इस सभा में कोई भी बलवान (और) रण-पंडित (महान् योद्धा, युद्धकला में पारंगत वीर पुरुष) नहीं (रहा) है'। ऐसी बात सुनते ही विश्वामित्र ने श्रीराम को इशारा किया। ८७ जैसे (किसी ने) सोये हुए सिंह को जगा दिया (हो) अथवा यज्ञकर्ता (ब्राह्मण) ने अग्नि को (प्रज्वलित करने-हेतु) फूंक दिया (हो), वैसे विश्वामित्र ने उस समय श्रीराम को संकेत किया (इशारा करके मानो सावधान एवं प्रेरित किया)। ८८ उन्होंने कहा—'हे नरवीर-सिंह, त्रिभुवन के लिए वंद्य (श्रीराम)! हे कमल-नयन, पुराण-पुरुष श्रीराम ! हे अरिमर्दन ! वेग-पूर्वक (झट् से) उठ जाओ। ८९ हे ब्रह्मा के पिता ! हे उदार राम ! हे ताड़का का नाश करनेवाले ! हे अहल्या के उद्धारकर्ता ! हे यज्ञ-रक्षक ! समर-धीर ! असुरों के संहारक श्रीराम ! वेग-पूर्वक (झट् से) उठ जाओ।' ९० जैसे रात्रि के समाप्त होते ही तत्काल उदय-गिरि पर सूर्य-मण्डल (उदित हो) आता है, वैसे ही तमाल (-पत्र के समान) नील शरीरधारी श्रीराम उठकर खड़े हो गये। ९१ अथवा महायज्ञ में (समाप्ति की सूचक) पूर्णाहुति डालने पर तत्काल आराध्य

होतां पूर्णाहुती। तत्काळ प्रकटे आराध्यमूर्ती। तैसा उभा ठाकला रघुपती। राजे पाहती टकमकां। ९२ कीं प्रल्हाद-कारणें झडकरी। स्तंभांतूनि प्रगटे नरहरी। कीं वेदांतज्ञान होतां अंतरीं। निजबोध जेवीं प्रगटे पैं। ९३ वंदोनियां गुरुचरणां। सवेंचि नमिलें सकळ ब्राह्मणां। पूर्णब्रह्मानंद रामराणा। वेदपुराणां वंद्य जो। ९४ श्रीराम विरक्त ब्रह्मचारी। हे रमा आपणाविण कोण न वरी। यालागीं शरयूतीरविहारी। उठता जाहला तेधवां। ९५ सभेस बैसले नृपवर। केले नाना परींचे शृंगार। परी सर्वांत श्रेष्ठ श्रीरामचंद्र। रोहिणीवर भगणांत जैसा। ९६ कीं शास्त्रांमाजी वेदांत। कीं निर्जरांमाजी शचीनाथ। तैसा श्रीराम समर्थ। सभेंत मुख्य विराजे। ९७ उठिला देखोनि श्रीरामचंद्र। उचंबळला सीतेचा सुखसमुद्र। नवमेघरंग रघुवीर। रंगमंडपाप्रति आला। ९८ कोटि अनंग ओंवाळून। टाकावे ज्याच्या

(देवता की) मूर्ति प्रकट हो जाती है, वैसे ही (विश्वामित्र से संकेत मिलते ही) श्रीराम खड़े हो गये। (तब) (उपस्थित) राजा टक लगाकर देखते हैं (देखते रहे)। ९२ प्रह्लाद (की रक्षा) के निमित्त श्रीनरसिंह झट् से खम्भे में से प्रकट हो गये, अथवा अन्तःकरण में वेदान्त-ज्ञान (का उदय) होने पर जिस प्रकार आत्मज्ञान प्रकट हो जाता है, वैसे ही श्रीराम सबके सामने खड़े हो गये। ९३ जो पूर्ण ब्रह्मानन्द ही हैं, जो वेदों और पुराणों के लिए वंद्य हैं, उन श्रीराम ने गुरु-चरणों का वन्दन करके साथ ही सब ब्राह्मणों का नमन किया। ९४ श्रीराम (सांसारिक सुख-भोग से) विरक्त तथा ब्रह्मचारी हैं। (सीता के रूप में अवतरित यह) लक्ष्मी मेरे अतिरिक्त किसी (दूसरे) का वरण नहीं करेगी—इसलिए (सरयू नदी के तट पर विहार करनेवाले) श्रीराम तब उठ गये। ९५ सभा में बड़े-बड़े राजा बैठे (हुए) थे। उन्होंने नाना प्रकार से शृंगार किया था, परन्तु जैसे नक्षत्रों में चन्द्र (सर्वश्रेष्ठ) होता है, वैसे ही (उन) सब (राजाओं) में श्रीरामचन्द्र श्रेष्ठ थे। ९६ अथवा जैसे शास्त्रों में वेदान्त, अथवा देवों में शचीपति इन्द्र (शोभायमान) होता है, वैसे ही समर्थ श्रीराम सभा में मुख्य रूप में विराजमान थे। ९७ श्रीरामचन्द्र उठ गये—यह देखकर सीता का सुख-रूपी समुद्र उमड़ उठा। (त्यों ही) नवमेघ की भाँति श्याम वर्ण के शरीर-धारी श्रीराम सभा के रंग-मण्डप में आ गये। ९८ करोड़ों कामदेव जिनके नाखूनों पर निछावर कर दिये जाएँ

नखावरून । जो अरिचक्रवारण-पंचानन । जात लक्षून धनुष्यातें । ९९ देखतां राम सुकुमार । घाबरलें सीतेचें अंतर । म्हणे कोमळगात्र रघुवीर । प्रचंड थोर धनुष्य हें । १०० कूर्मपृष्ठी जैसी कठोर । तैसें हें कोदंड प्रचंड थोर । दशरथ-कुमर सुकुमार । कैसें उचलेल तयातें । १०१ मदनदहनाचें धनुष्य थोर । रघुनाथमूर्ति मदनमनोहर । अहा तात परम दुस्तर । अनिवार पण हा तुझा । १०२ घनश्याम कोमळगात्र । राजकुमार राजीवनेत्र । अहा तात परम दुस्तर । अनिवार पण हा तुझा । १०३ बळहत केला दशकंधर । परम कोमळ रघुपतीचे कर । अहा तात परम दुस्तर । अनिवार पण हा तुझा । १०४ वाटे खुपती कोमळ कर । ऐसी रामतनु सुकुमार । अहा तात परम दुस्तर । अनिवार पण हा तुझा । १०५ मज गमेचि दुसरा वर । तुज सत्य करणें पण साचार । अहा

(अर्थात् करोड़ों कामदेव भी जिनके नाखूनों तक की बराबरी नहीं कर सकते), जो शत्रु-समुदाय-रूपी हाथियों के (समूह के) लिए सिंह (ही) हैं, ऐसे वे श्रीराम धनुष को लक्ष्य करके चल दिये । ९९ श्रीराम सुकुमार (शरीरधारी) हैं--यह देखकर सीता का मन घबरा उठा । वह (मन में) कहती है--(इधर) ये रघुवीर कोमलांग हैं और उधर यह प्रचण्ड बड़ा धनुष है । १०० कछुआ पीठ (पृष्ठभाग) में जैसा कठोर होता है, वैसा ही कठिन यह बड़ा प्रचण्ड धनुष है । (इधर ये) दशरथ-पुत्र (श्रीराम) सुकुमार हैं । उनसे यह कैसे उठेगा (उठाया जाएगा)? १०१ मदन को जला डालनेवाले शिवजी का धनुष बड़ा है, जबकि रघुनाथ राम मदन के समान मनोहारी (अर्थात् कोमल, अतएव, चित्त को आकर्षित करनेवाले) हैं । हाय, हे तात (पिता) ! तुम्हारा यह प्रण परम दुस्तर (कठिन) तथा अनिवार्य (अटल अर्थात् जिसे टाला या छोड़ा नहीं जा सकता) है । १०२ राजपुत्र घनश्याम (श्रीराम) कोमल-अंगवाले (शरीरधारी) तथा कमल-नेत्र हैं । हाय, हे तात! तुम्हारा यह प्रण परम दुस्तर तथा अनिवार्य है । १०३ (उस धनुष ने) रावण को बल-हीन कर डाला (और इधर उस धनुष को उठानेवाले) श्रीराम के हाथ कोमल हैं । हाय, हे तात ! तुम्हारा यह प्रण परम दुस्तर तथा अनिवार्य है । १०४ जान पड़ता है, (ये) कोमल हाथ (अन्दर) धँस जाएँगे--रघुपति राम की ऐसी कोमल देह है । (अतः) हाय, हे तात ! तुम्हारा यह प्रण परम दुस्तर तथा अनिवार्य है । १०५ मुझे कोई दूसरा वर नहीं भाता (और) तुम्हें

तात परम दुस्तर। अनिवार पण हा तुझा। ६ चंडीशकोदंड प्रचंड थोर। लघुआकृति राम निर्विकार। अहा तात परम दुस्तर। अनिवार पण हा तुझा। ७ श्रीरामावांचून इतर। पुरुष तुजसमान साचार। अहा तात परम दुस्तर। अनिवार पण हा तुझा। ८ दुजा वरावया येतां वर। देहा त्यागीन हा निर्धार। अहा तात परम दुस्तर। अनिवार पण हा तुझा। ९ सीता विजयेसी म्हणे अवधारीं। बाप नव्हे हा वाटतो वैरी। हा पण त्यजोनि निर्धारीं। रामासी मज अर्पीना। ११० ऐसें सीतेचें अंतर। जाणोनियां जगदुद्धार। दंड पिटोनि प्रचंड थोर। कोदंडासमीप पातला। ११ दशरथमहाराज दिग्गज। त्याचा छावा रघुराज। धनुष्यइक्षु देखोनि सहज। परम चपळ धांवन्निला। १२ श्रीराम-सव्यबाहु प्रचंड। हाचि वरी केला शुंडादंड। भवधनुष्यइक्षु द्विखंड। करील आतां निर्धारें। १३ दशकंधर हें पद्मकानन। वीस हस्त द्विपंचवदन।

सचमुच (अपने) प्रण को सत्य करना है। (परन्तु) हाय, हे तात! तुम्हारा यह प्रण परम दुस्तर तथा अनिवार्य है। ६ चण्डीश शिवजी का धनुष बहुत प्रचण्ड है, (जबकि) राम छोटे आकार (कद)के तथा निर्विकार हैं। (अतः) हाय, हे तात! तुम्हारा यह प्रण परम दुस्तर तथा अनिवार्य है। ७ हे तात! श्रीराम को छोड़कर अन्य पुरुष (मेरे लिए) सचमुच तुम्हारे समान (अर्थात् पितृ-सदृश) हैं। (अतः) हाय, हे तात! तुम्हारा यह प्रण परम दुस्तर तथा अनिवार्य है। ८ दूसरा वर मेरा वरण करने के लिए आते ही मैं निश्चय ही इस देह का त्याग करूँगी। हाय, हे तात! तुम्हारा यह प्रण परम दुस्तर तथा अनिवार्य है। ९ सीता ने (अपनी सखी) विजया से कहा—'सुनो, ये मेरे पिता नहीं हैं, मुझे लगता है कि वे मेरे शत्रु हैं; क्योंकि निश्चय ही इस प्रण का त्याग करके वे मुझे राम को समर्पित नहीं कर रहे हैं'। ११० सीता के ऐसे अन्तःकरण को जानकर जगदोद्धारक श्रीराम ताल ठोंककर (उस) बहुत प्रचण्ड धनुष के पास आ पहुँचे। ११ दशरथ महाराज (मानो कोई) दिग्गज (दिशा के रक्षण के लिए विधाता द्वारा निर्धारित हाथी) हैं; उनके पुत्र (दिग्गज-पुत्र) रघुनाथ श्रीराम हैं। धनुष-रूपी ईख को देखकर स्वभावतः परम चपल वे श्रीराम दौड़ गये। १२ श्रीराम का प्रचण्ड दाहिना हाथ ही ऊपर उठाया हुआ (उस दिग्गज-शावक का) सूँड़-रूपी दण्ड है। वह अब निश्चय ही शिव-धनुष-रूपी ईख को (तोड़कर) दो टुकड़े कर डालेगा। १३

तीस कमळें हींच पूर्ण । कोदंड जाण इक्षु तेथें । १४ पद्मवनीं गज निघे लवलाहीं । मग त्यासी कमळांची गणना काई । तैसीं दशमुखाचीं हस्तकमळें पाहीं । तुडवीत आला रघुवीर । १५ तटस्थ पाहती सकळ जन । म्हणती विजयी हो कां रघुनंदन । सीता नवरी हे सगुण। यासीच घालो निजमाळा। १६ आनंदमय सकळ ब्राह्मण । चिंतिती रामासी जयकल्याण । म्हणती हें भवचाप मोडून । टाको रघुवीर सत्वर । १७ एक म्हणती राम सुकुमार । नीलपंकज-तनु वय किशोर । भवकोदंड प्रचंड थोर । उचलेल कैसें रामातें । १८ एक म्हणती चिमणें रामाचें ठाण । एक म्हणती सिंह दिसतो लहान । परी पर्वताकार गज विदारून । न लागतां क्षण टाकितो । १९ घटोद्भव लहान दिसत । परी क्षणें प्राशिला सरितानाथ । गगनीं सविता लघु भासत । परी प्रभा अद्भुत न वर्णवे । १२० असो ते वेळे रघुवीर । विद्युत्प्राय उत्तरीय चीर । तें सरसावोनि सत्वर । कटिप्रदेशीं वेष्टिलें । २१

रावण मानो कमल-वन है । (उसके) बीस हाथ और दस मुख—ये ही (कुल) पूर्ण तीस कमल हैं । समझो कि शिवधनु वहाँ इक्षुदण्ड है । १४ कमल-वन में झट् से जब हाथी चल जाता है, तो उसे कमलों की कोई गिनती (परवाह) नहीं होती । देखो, वैसे ही रघुवीर, दशानन रावण के हाथ-रूपी कमलों को कुचलते हुए आ गये । १५ (सभा में उपस्थित) सब लोग तटस्थ होकर देख रहे हैं और कह रहे हैं—'(ये) रघुनन्दन राम विजयी हो जाएँ (और यह) गुणवती सीता-वधू इसी को अपनी (वर-) माला पहना दे' । १६ सब ब्राह्मण हर्ष-विभोर (हो गये) हैं । वे राम की जय तथा कल्याण की कामना करते हैं और (मन-ही-मन) कहते (सोचते) हैं कि रघुवीर राम इस शिव-धनु को झट् से तोड़ डालें । ११७ कोई-एक कहते हैं—' राम सुकुमार हैं; उनकी नीलकमल-वर्णीय देह है; (उनकी) किशोरावस्था है (तो उधर) शिव-धनु बहुत प्रचण्ड है । वह राम द्वारा कैसे उठाया जाएगा' ? ११८ कोई-एक कहते हैं—'राम का नन्हा-सा कद है' । (इसपर) दूसरे कोई-एक कहते हैं—' सिंह दिखायी तो छोटा देता है, परन्तु वह, क्षण(-भर)भी नहीं लगते, पर्वताकार हाथी को विदीर्ण कर डालता है । १९ (घट में जन्मे) अगस्त्य ऋषि दिखायी तो नन्हें देते थे, परन्तु उन्होंने समुद्र का क्षण(-भर) में प्राशन कर डाला । आकाश में सूर्य तो छोटा भासित होता है, परन्तु उसकी अद्भुत प्रभा (तेज) का वर्णन नहीं किया जा सकता । १२० अस्तु । उस समय रघुवीर ने अपने

माथा जडित मुकुट झळकत। आकर्णनेत्र आरक्त रेखांकित। मस्तकींचे केश नाभीपर्यंत। दोहींकडोनि उतरले। २२ किशोर सुकुमार भूषण। अलकसुवासें भरलें गगन। त्या सुवासासी वेधून। मिलिंदचक्र भ्रमतसे। २३ श्रीरामतनूचा सुवास पूर्ण। जात सप्तावरण भेदून। असो तें शिवधनुष्य रघुनंदन। करें करोनि स्पर्शीत। २४ नीलवर्ण कुंतल ते अवसरीं। पडले दशकंठाचे हृदयावरी। विषकंठवंद्य ते अवसरीं। सांवरोनि मागें टाकित। २५ शिवधनुष्यासी घंटा सतेज। वरी विद्युत्प्राय झळके ध्वज। त्यासमवेत रघुराज। उचलिता जाहला ते काळीं। २६ गज शुंडेनें आक्रमी इक्षुदंड। तैसें रामें आकर्षिलें कोदंड। पराक्रम परम प्रचंड। दशमुंड विलोकीतसे। २७ परम म्लान द्विपंचवदन। दृष्टीं देखोनि गाधिनंदन। म्हणे नरवीरश्रेष्ठा वेगेंकरून। संशय हरणें सर्वांचा। २८ जनक म्हणे

(उस) विद्युत्प्राय (तेजस्वी) उत्तरीय वस्त्र (दुपट्टे) को तुरन्त सँवारकर अपने कटि-भाग में लपेट लिया। २१ मस्तक पर (रत्न-) जटित मुकुट चमकता था। कानों तक फैले हुए (विशाल) आरक्त (लाल-से) नेत्र (अंजन की) रेखा से अंकित थे। मस्तक के बाल दोनों ओर से नाभि तक उतरे थे (लटकते थे)। २२ किशोरावस्था को पार किये हुए (अर्थात् युवावस्था को प्राप्त) राम को शोभा देनेवाले बालों की सुगन्ध से आकाश भर गया। उस सुगन्ध से मोहित होकर भ्रमर-समूह मँडराता था। २३ श्रीराम के शरीर की सुगन्ध सातों आवरणों को पूर्णतः भेदकर ऊपर जा रही थी। अस्तु। श्रीराम ने उस धनुष को हाथ से स्पर्श किया। २४ उस अवसर पर (नीचे झुकने के कारण) श्रीराम के नीलवर्ण बाल, रावण की छाती पर फैल गये। उस समय (शिवजी के लिए वन्दनीय) श्रीराम ने उन्हें सँवार कर पीछे हटा दिया। २५ (उस) शिवधनुष में तेजस्वी घंटिकाएँ (बँधी हुई) थीं। उस पर विद्युत्-सा तेजोयुक्त ध्वज झलकता-था। उसके साथ (ही उस धनुष को) श्रीराम ने उस समय उठा लिया। २६ हाथी जैसे (अपनी) सूँड़ से ईख को (अपने) वश में कर लेता है, वैसे श्रीराम ने धनुष को अपने काबू में कर लिया। उनके इस परम प्रचण्ड पराक्रम को रावण देख रहा था। २७ अति म्लान (निस्तेज) हुए रावण को (अपनी) दृष्टि से देखकर विश्वामित्र कहते हैं—'हे नरवीर श्रेष्ठ राम! सबके सन्देह को झट् से दूर करो'। २८ (तब) जनक कहते हैं, 'हे विश्वामित्र मुनि, जिस धनुष ने रावण को धरती

कौशिकमुनी । ज्या चापें दशकंठ घोळिला धरणीं । तें धनुष्य रामाचेनी । कैसें उचलेल नेणवे । २९ जनकासी म्हणे ऋषि कौशिक । श्रीराम हा वैकुंठनायक । अद्भुत करील कौतुक । पाहें नावेक उगाचि । १३० इकडे रामें धनुष्य उचलून । क्षण न लागतां वाहिला गुण । ओढी ओढिली आकर्ण । सुहास्यवदनें तेधवां । ३१ श्रीरामाचें बळ प्रचंड । ओढीस न पुरेचि भवकोदंड । तडाडिलें तेणें ब्रह्मांड । चाप करकरलें तेधवां । ३२ मुष्टीमाजी तडाडत । जैशा सहस्र चपळा कडकडत । विधि आणि वृत्रारि हडबडत । वाटे कल्पांत जाहला । ३३ उर्वी-मंडळ डळमळत । भोगींद्र मान सरसावित । दंतबळें उचलोनि देत । आदिवराह पाताळीं । ३४ सभा सकळ मूर्च्छित जाहली । महावीरांचीं शस्त्रें गळालीं । राजे भाविती उर्वी चालिली । रसातळा आजि कीं । ३५ रामें चाप केलें द्विखंड । प्रतापें भरलें ब्रह्मांड । पुष्पसंभार उदंड । वृंदारक वर्षती । ३६ सभा अवघी जाहली मूर्च्छित । परी एक चौघें सावध पाहत ।

पर पटका दिया, समझ में नहीं आता कि वह धनुष राम से कैसे उठाया जाएगा'। २९ (इसपर) विश्वामित्र ऋषि जनक से कहते हैं—'ये श्रीराम वैकुण्ठपति (श्रीविष्णु) हैं। वे अद्भुत कौतुक (चमत्कारपूर्ण लीला) दिखाएँगे। क्षण-भर चुपचाप देखिए'। १३० इधर धनुष को उठाकर राम ने, क्षण न लगते ही, उस पर डोरी चढ़ायी। उस समय सुहास्य वदन राम ने (उस) डोरी को कानों तक खींच लिया। ३१ श्रीराम का बल प्रचण्ड था। (उनके) खींचने के लिए शिव-धनु पूरा नहीं पड़ रहा था। (फिर) जब (वह) धनुष चरमराने लगा, तो उससे ब्रह्माण्ड तड़क उठा। ३२ (राम की) मुट्ठी में वह (धनुष) तड़क रहा था—मानो हज़ारों बिजलियाँ कड़क रही हों। (यह देखकर) विधाता और इन्द्र चकरा गये। जान पड़ता था कि (अब) कल्पान्त (प्रलय) हो गया। ३३ पृथ्वी-मण्डल डाँवाडोल हो गया; भोगीन्द्र शेष ने गर्दन खींचकर उठायी (सँभाली)। पाताल में आदि वराह (उसे) दाँत के बल उठा रहा था। ३४ समस्त सभा (-जन) मूर्च्छित हो गयी (गये)। महान् वीरों के हाथों से शस्त्र छूट गये। राजा समझ गये कि पृथ्वी आज ही रसातल में जा रही है। ३५ राम ने धनुष को दो टूक कर डाला (और अपने) प्रताप से ब्रह्माण्ड को भर डाला। देवता (राम पर) अपार पुष्प-राशियाँ बरसाते हैं (थे)। ३६ समस्त सभा (-जन) बेहोश

जनक आणि गाधिसुत। सीता सौमित्र चौघें हीं। ३७ असो भवकोदंड मोडोनी। द्विखंडें रामें टाकिलीं धरणीं। रावण उठोन ते क्षणीं। अधोवदनें चालिला। ३८ सभेस मारावया आणिती तस्कर। तैसा म्लान दिसे दश-वक्त्र। कीं रणीं अपेश आलिया महावीर। त्याचा मुखचंद्र उतरे जेवीं। ३९ कीं दिव्य देतां खोटा होत। मग तो मुख न दाखवी लोकांत। तैसा प्रधानेंसीं लंकानाथ। गेला त्वरित स्वस्थाना। १४० पुण्य सरतां स्वर्गींहूनि खचला। कीं याज्ञिकें अंत्यज बाहेर घातला। कीं द्विजजाती भ्रष्ट जाहला। तो जेवीं दवडिला पंडितीं। ४१ याचि प्रकारें सभेंतूनी। रावण गेला उठोनी। जैसा केसरीच्या कवेंतूनी। जंबूक सुटला पूर्वभाग्यें। ४२ असो इकडे विजयी रघुनंदन। जैसा निरभ्र नभीं चंडकिरण। सुकुमार नवघनतनु सगुण। भक्तजन पाहती। ४३ सर्वांचे नयनीं अश्रु-

---

हो गयी (गयें); फिर भी उनमें से (केवल) चार-एक होश में रहकर देखते थे। वे चारों हैं--जनक और विश्वामित्र, सीता और लक्ष्मण। ३७ अस्तु। शिव-धनुष को तोड़कर राम ने (उसके) दोनों टुकड़े ज़मीन पर फेंक दिये। उस क्षण रावण उठकर मुँह (सिर) झुकाये चल दिया। ३८ सभा में (किसी) चोर को पीटने के लिए लाते हैं (और उसे पीटने पर) वह जैसा निस्तेज दिखायी देता है, रावण वैसा ही निस्तेज दिखायी दे रहा था। अथवा युद्ध में असफलता प्राप्त होने पर महान् वीर पुरुष का मुखचन्द्र जैसे फीका हो जाता है, वैसे ही रावण निस्तेज-मुख हो चल दिया। ३९ अथवा कोई व्यक्ति दिव्य में खोटा सिद्ध हो जाता है और फिर वह समाज में मुँह नहीं दिखाता, वैसे ही (झूठा सिद्ध हो जाने पर) लंकापति रावण मंत्री-सहित तत्काल अपने स्थान (लंका) चला गया। १४० अथवा पुण्य (बल) समाप्त हो जाने पर कोई स्वर्ग से भ्रष्ट हो गया (हो), अथवा यज्ञकर्ता ब्राह्मणों ने अंत्यज को (यज्ञ-स्थान से) बाहर निकाल दिया (हो); अथवा जो ब्राह्मण जाति-भ्रष्ट हो गया हो, उसे जिस प्रकार पंडितों ने निकाल (बहिष्कृत कर) दिया (हो), उसी प्रकार रावण सभा में से उठकर चला गया। वह सभा से उस प्रकार छूट गया, जैसे सिंह की पकड़ से पूर्व भाग्य (के बल) से सियार छूट गया हो। ४१-४२

अस्तु। इधर भक्तजन उन सुकुमार, नवघनश्याम और गुणवान, निरभ्र आकाश में स्थित सूर्य-से तेजस्वी रघुनन्दन राम को देख रहे हैं। ४३

पात । ऋषिचक्र सद्‌गदित । हा कोमलगात्र रघुनाथ । कठिन चाप केवीं भंगिलें । ४४ श्रीराम सौकुमार्याची राशी । विश्वामित्रें धांवोनि वेगेंसीं । रघुवीर आलिंगिला मानसीं । प्रेमपूर न आवरे । ४५ म्हणे आदिपुरुषा पूर्णब्रह्मा । स्मरारि-मित्रा आत्मयारामा । भक्तकाम-कल्पद्रुमा । अद्भुत लीला दाविली । ४६ तुझ्या करणीवरूनि लावण्यखाणी । ओंवाळावी वाटे समग्र धरणी । आणि या जिवाची कुरवंडी करोनी । तुजवरोनि सांडावी । ४७ इतुक्यांत करिणीवरोन लावण्यखाणी । खालीं उतरोनि तेच क्षणीं । माळ घेऊन जनकनंदिनी । हंसगमनी चमकत । ४८ मेदिनी म्हणे मी धन्य । माझी कन्या वरील रघुनंदन । श्रीराम जामात सगुण । मनमोहन जगद्वंद्य । ४९ श्रीराम जगाचा जनिता । जानकी सहजचि जगन्माता । तारा-वयासी निजभक्तां । आलीं उभयतां रूपासी । १५० श्रीराम सच्चिदानंदघनतनु । जो पुराणापुरुष पुरातनु । जो पूर्णावतारी

सबकी आँखों से (आनन्द के कारण उत्पन्न) आँसू बह रहे हैं। ऋषि-मण्डल सद्‌गदित हो उठे हैं। (उन्हें इसका आश्चर्य हो रहा है कि ये कोमलांग राम हैं, फिर उनके हाथों कठिन धनुष्य कैसे टूट गया ?) ४४ श्रीराम तो कोमलता की राशि ही हैं। विश्वामित्र ने वेगपूर्वक दौड़कर रघुवीर राम को गले लगा लिया। (उनके) मन में प्रेम की बाढ़ नहीं रोकी जाती थी। ४५ वे कहते हैं—'हे आदिपुरुष ! पूर्णब्रह्म राम ! हे शिवजी के मित्र, आत्माराम ! हे भक्तजनों के लिए कल्पवृक्ष ! तुमने अद्भुत लीला प्रदर्शित की। ४६ लगता है, तुम्हारी (इस) करनी पर समग्र सुन्दर पृथ्वी को निछावर कर दें; और इस (अपने) जी को उतारा बनाकर तुम पर से घुमाकर निछावर कर दिया जाए। ४७ इतने में वह लावण्य-खनि जनक-नंदिनी सीता हथिनी पर से नीचे उतर गयी और (हाथ में वर-) माला लिये हुए वह हंस-गमनी (हंस की-सी गति से चलने-वाली) नखरे के साथ चल रही थी। १४८ तब पृथ्वी बोली—'मैं धन्य हूँ। (अब) मेरी कन्या रघुनन्दन राम का वरण करेगी और मन-मोहन जगत्-वंद्य गुणवान् श्रीराम (मेरे) जामाता हो जाएँगे'। १४९ श्रीराम जगत् के पिता हैं तो जानकी स्वाभाविक रूप में जगत् की जननी है। (वे) दोनों अपने भक्तों का उद्धार करने के लिए (सगुण) रूप को प्राप्त हो गये (हैं)। १५० जो पुरातन पुराण-पुरुष हैं, जो पूर्णावतारी पूर्णब्रह्म-धन हैं और जो समस्त शरीर-धारियों के लिए साक्षी (देखनेवाले)

पूर्णब्रह्मधनु । सकळ तनूंचा साक्षी पैं । ५१ आदि मध्य जो अंतीं । परी हाचि एक सीतेचा पती । तुच्छ करून सकळ नृपती । वरी रघुपती प्रियकर । ५२ हंसगती जानकी चालत । पदभूषणें मधुर गर्जत । रामगळां माळ घालूनि त्वरित । मस्तक चरणीं ठेविलें । ५३ गळां घालितांचि माळ । जाहला स्वानंदाचा सुकाळ । वाद्यें वाजों लागलीं तुंबळ । नादें निराळ दुमदुमलें । ५४ संतोषला मिथिलेश्वर । म्हणे माझे भाग्यास नाहीं पार । जांवई जाहला रघुवीर । भुवनसुंदर मेघश्याम । ५५ जनकें आणि विश्वामित्रें । लिहिलीं अयोध्येसी दिव्य पत्रें । तीं घेऊनि दूत त्वरें । अयोध्येसी पातले । ५६ कुंकुममंडित पत्रें । लिहिलीं होतीं विश्वामित्रें । तीं उचलोनि अजराज पुत्रें । वसिष्ठकरीं दीधलीं । ५७ दोहींतील एकचि अभिप्राय । गूढ परम लिहिलें चातुर्य । त्याचा अर्थ करोनि ऋषिवर्य । ब्रह्मकुमर सांगतसे । ५८ हिमनग-जामात-सायकासन। भंगूनि विजयी

हैं, वे श्रीराम सत्, चित् और आनन्द-रूपी घनश्याम-शरीरी हैं । ५१ आदि, मध्य और अन्त में (नित्य) वे ही (श्रीराम) एकमात्र सीता के पति हैं। (इसलिए) उसने (अन्य) सब राजाओं को तुच्छ मानकर (अपने) प्रियंकर रघुपति राम का वरण किया । ५२ हंस की-सी गति से जानकी चल रही थी, तो पाँवों में पहने हुए (नूपुर आदि) आभूषण मधुर (स्वर में) झनक रहे हैं (थे) । (फिर श्रीराम के) गले में माला पहना कर शीघ्रतापूर्वक उसने (उनके) चरणों में मस्तक नवाया । ५३ गले में माला पहनाते ही ब्रह्मानन्द का (मानो समृद्धिकारी) सुकाल (अनुकूल समय) आ गया । (तब) वाद्य तुमुल (स्वर में) बजने लगे । (और उनके) नाद से आकाश गूँज उठा । ५४ मिथिलापति जनक सन्तुष्ट हो गये । वे कहते (सोचते) हैं—' भुवन-सुन्दर मेघश्याम राम (मेरे) जामाता हो गये; (इसलिए) मेरे भाग्य की (कोई) सीमा नहीं है ' । ५५ जनक और विश्वामित्र ने अयोध्या (में रहनेवाले राजा दशरथ) को दिव्य पत्र लिखे । उन्हें लेकर दूत शीघ्रतापूर्वक अयोध्या जा पहुँचे । ५६ विश्वामित्र ने कुंकुम-मंडित पत्र लिखे थे । उन्हें उठाकर अजराज-पुत्र दशरथ ने वसिष्ठ के हाथों में दे दिया । ५७ दोनों (के पत्रों) का मतलब एक ही था । (उनमें उन्होंने) चतुरतापूर्वक परम गूढ़ बात लिखी (थी) । ब्रह्मकुमार ऋषिवर वसिष्ठ उनका अर्थ स्पष्ट करके बताते हैं । ५८ (उन्होंने कहा—)' हिमालय पर्वत के जामाता के धनुष

झाला बाण । तेव्हां थरथरिला पूर्ण । आनंदघन रथस्वामी । ५९ गुणें केली बहुत स्तुती । आनंदें यश वर्णी सारथी । जोंवरी रथचक्रें असती । वोहोरें नांदोत तोंवरी । १६० रथगर्भी होतें जें निधान । तेणें बाणप्रताप देखोन । ऐक्य झालें चरणीं येऊन । तुम्हीं त्वरेंकरून येइंजे । ६१ अर्थ सांगे वसिष्ठमुनी । साक्ष श्लोक असे महिम्नीं । त्रिपुरवधीं जेव्हां शूलपाणी । बाण चक्रपाणी जाहला । ६२ पृथ्वीचा केला तेव्हां रथ । चंद्र-मित्र चाकें अद्भुत । कनकाद्रि धनुष्य होत । गुण तेथें फणींद्र पैं । ६३ सारथि झाला कमलासन । जानकी रथगर्भीचें रत्न । बाण तोचि हा रघुनंदन । शिवधनुष्य जेणें भंगिलें । ६४ ऐसा अर्थ सांगे ब्रह्मसुत । आनंदला राजा दशरथ । दळभारें सिद्ध होत । घाव देत निशाणीं । ६५ सोळा पद्में दळभार । चतुरंगदळ निघे सत्वर । सुमंतादि प्रधान राजकुमर । भरत शत्रुघ्न

को तोड़कर बाण विजयी हो गये । तब आनन्द-घन रथस्वामी (भावावेग से) थर्रा उठे । (फिर) गुण ने बाण की बहुत स्तुति की; सारथी ने उनकी कीर्ति का वर्णन आनन्दपूर्वक किया । जब तक रथ-चक्र (विद्यमान) रहेंगे, तब तक वधू-वर सुख-सुविधा-पूर्वक रहें । रथ के गर्भ में जो धरोहर थी, वह बाण के प्रताप को देखकर उसके चरणों में आ गयी, जिससे उनमें एकता (अभिन्नता) स्थापित हो गयी । (इसलिए) आप शीघ्रता से आइए '। ५९-६१ वसिष्ठ ऋषि (इस गूढ़ बात का) अर्थ (यों) बताते हैं । उस (अर्थ) के लिए (आधार-भूत) साक्षी महिम्न-स्तोत्र में है । (उन्होंने कहा—) ' त्रिपुर-वध के अवसर पर शूलपाणि शिवजी चक्रपाणि बाण हो गये । तब उन्होंने पृथ्वी को रथ बना लिया, जिसके चन्द्र और सूर्य अद्‌भुत चक्र (पहिये) थे । स्वर्ण-पर्वत मेरु धनुष्य (रूप) हो गया, (जबकि) उसके लिए फणींद्र शेष गुण (डोरी) रूप हो गया । ब्रह्माजी सारथी हो गये । जानकी रथ-रूपी पृथ्वी के गर्भ में (स्थित) रत्न है और जो चक्रपाणि बाण थे, वे ही हैं ये रघुनन्दन श्रीराम, जिन्होंने शिवजी के धनुष को तोड़ डाला (है) '। ६२-६४

ब्रह्मसुत वसिष्ठ ने (पत्रों का) ऐसा अर्थ बताया तो राजा दशरथ आनन्दित हो गये । वे सेना-दल से सिद्ध (सज्ज) हो गये और उन्होंने नगाड़ों पर आघात करवाये (अर्थात् प्रस्थान सूचित करने के लिए नगाड़े बजवा दिये) । ६५ दशरथ की सेना सोलह पद्म (दस हज़ार करोड़) थी । (अश्व, हाथी, रथ तथा पदाती-वाली) चतुरंग सेना त्वरित चल

निघाले । ६६ कौसल्या सुमित्रा कैकयी राणी । निघाल्या आरूढोनि सुखासनीं । दूत वेत्रकनकपाणी । सहस्त्रावधि धांवती पुढें । ६७ सप्त शतें दशरथाच्या युवती । त्याही रामलग्ना पाहों येती । सुखासनीं बैसोनि जाती । अनुक्रमेंकरूनियां । ६८ प्रजालोक निघाले समस्त । निजरथीं बैसे दशरथ । लक्षोनियां मिथिलापंथ । परम वेगें चालिले । ६९ पृथ्वीपति राजा दशरथ । मस्तकीं आतप-पत्रें विराजत । मित्रपत्रें परम शोभत । दोन्ही भागीं समसमान । १७० मृगांकवर्ण चामरें । एकावरी विराजती तुंगारपत्रें । एक उडविती लघु चिरें । दोहींकडे श्वेतवर्ण । ७१ मकरबिरुदें पुढें चालती । नभचुंबित ध्वज विराजती । वाद्यगजरेंकरूनि क्षिती । दुमदुमली तेधवां । ७२ पुढें शमदमांचें पायभार । मागें सद्विवेकाचे तुरंग अपार । त्यापाठीं निजबोधाचे कुंजर । किंकाटती रामनामें । ७३

पड़ी । (साथ ही) सुमंत आदि मंत्री तथा राजपुत्र भरत और शत्रुघ्न (भी) निकले । ६६ कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी—ये (मुख्य) रानियाँ पालकियों जैसी सुखद सवारियों में विराजमान होकर चल दीं । स्वर्ण-दण्ड हाथ में लिये हुए हज़ारों दूत आगे-आगे दौड़ते हैं (थे) । ६७ राजा दशरथ के सात सौ स्त्रियाँ थीं; वे भी राम के विवाह को देखने के लिए आती हैं (जाना चाहती थीं) । वे भी सुखद पालकियों में विराजमान होकर (अपने-अपने) क्रम के अनुसार जाती हैं (जा रही थीं) । ६८ समस्त प्रजा-जन (भी) निकल पड़े । राजा दशरथ अपने रथ में विराजमान हो गये । वे (सब) मिथिला की ओर जानेवाले मार्ग को लक्ष्य कर अत्यन्त वेग-पूर्वक चल दिये (चलने लगे) । ६९ पृथ्वीपति राजा दशरथ के मस्तक के ऊपर छत्र शोभायमान हैं (थे); सूर्य-पत्र दोनों ओर समान रूप में अतिशय शोभा दे रहे हैं (थे) । १७० चन्द्रमा के-से (उज्ज्वल) रंगवाले चँवर (झूलते) थे । कुछ एक (रथ) पर शमी-पत्र शोभायमान (हो रहे) थे । कोई-एक दोनों ओर छोटे-छोटे श्वेत वर्ण वस्त्र उड़ा (फहरा रहे) थे । ७१ आगे मकर-चिह्नांकित विरुद चल रहे थे; आकाश को छूनेवाले (बहुत ऊँचे) ध्वज विराजमान थे । तब वाद्यों के गर्जन से पृथ्वी गूँज उठी । ७२ (सबके) आगे शम-दम-रूप पदाती (सैनिक) थे; उनके पीछे सद्विवेक-रूप अश्व (दल-सैनिक) थे, उनके पीछे आत्मज्ञान-रूप हाथी (हस्ती-दल के सैनिक) थे, जो राम-नाम सूचित करते हुए चिंघाड़ते थे । ७३ उनके पीछे आत्मानुभव-रूप रथ थे । उन

निजानुभावाचे दिव्य रथ। त्यांवरी आरूढले वऱ्हाडी समस्त। वारू तेचि चाऱ्ही पुरुषार्थ। समानगती धांवती। ७४ जागृति प्रथम पेणें सत्य। स्थूळ परग्राम अद्‌भुत। तेथें न राहे दशरथ। चित्तीं रघुनाथ भरला असे। ७५ पुढें स्वप्नावस्था सूक्ष्मनगर। तेथें न राहे अजराज कुमर। म्हणे जवळी करावा श्रीरघुवीर। आड वस्ति करूं नका। ७६ पुढें सुषुप्ति अवस्था कारणपुर। सदा ओस आणि अंधकार। राम-उपासक वऱ्हाडी थोर। जाती सत्वर पुढेंचि। ७७ मिथिलेबाहेर उपवन। तुर्या अवस्था दिव्य ज्ञान। पुढें रघुनाथप्राप्तीचें चिन्ह। राहिले लक्षोन तेथेंचि। ७८ पुढें विराजे विदेहनगर। ऐकों येत अनुहत वाद्य-गजर। निजभारेंसीं विदेह-नृपवर। आला सामोरा दशरथा। ७९ असो दृष्टीं देखतां विदेह-नृप। आनंदें उठिला अयोध्याधिप। क्षेम दीधलें सुखरूप। अनुक्रमें सकळिकांसी। १८० भरत

पर समस्त बाराती आरूढ़ (सवार हो गये) थे। (रथ में जुते) चारों घोड़े ही (मानो) चार पुरुषार्थ थे। वे समान गति से दौड़ते थे। ७४ * जागृति सचमुच (उस यात्रा की) पहली मंज़िल है। स्थूल (देह-रूप) तो अद्‌भुत परग्राम (दूसरे का स्थान) है। (इसलिए) दशरथ वहाँ (निवास के लिए) नहीं रहे; क्योंकि राम उनके मन में भरे (व्याप्त) हुए थे। ७५ आगे (की मंज़िल) स्वप्न-दशा तो सूक्ष्म नगरी है, वहाँ (भी) अजराजपुत्र दशरथ नहीं रहे। वे कहते थे (सोचते थे)—रघुवीर राम को ही निकट करें (अर्थात् राम के पास ही जाएँ; कहीं दूर निवास नहीं करें)। ७६ (आगे की मंज़िल) सुसुप्ति अवस्था तो कारणपुर है। वह नित्य निर्जन तथा अंधकारमय होती है। (इसलिए वहाँ न ठहरते हुए सब) राम के उपासक (वे) बड़े बाराती सत्वर आगे ही चले गये। ७७ मिथिला नगरी के बाह्यभाग में स्थित उपवन मानो दिव्य ज्ञान से युक्त तुरीया-अवस्था है। आगे रघुनाथ-प्राप्ति का चिह्न जानकर वे उसे लक्ष्य कर वहीं ठहर गये। ७८ सामने विदेह नगरी शोभायमान थी। वहाँ (से) वाद्यों का अनहद गर्जन सुनायी देता था। विदेह राजश्रेष्ठ (जनक) सेना-सहित दशरथ की अगुवानी के लिए आ गये। ७९ अस्तु। जनक को अपनी दृष्टि से (आँखों) देखकर अयोध्यापति दशरथ आनन्दपूर्वक उठ गये और उन्होंने अनुक्रम से सबका सुख-रूप आलिंगन कर लिया। १८०

* [टिप्पणी : योगविद्या के अनुसार जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और

शत्रुघ्न देखोन। म्हणे आमुचे सदनींहून। राम सौमित्र आले रुसोन। जनक संदेहीं पडिलासे। ८१ दशरथ म्हणे हे शत्रुघ्न भरत। आश्चर्य करी मिथिलानाथ। असो समस्त गजरेंसीं मिरवत। निजमंडपांत आणिले। ८२ चापखंडें देखतां ते वेळे। वीरांसी रोमांच उभे ठाकले। एकाचे नेत्रीं अश्रु आले। कोंदंडखंडें देखतां। ८३ तंव तो भक्तकाम-कल्पद्रुम। कौसल्येनें जंवळी देखिला राम। धांवोनि आलिंगिला परम। हृदयीं प्रेम न समाये। ८४ मांडीवरी घेऊनि रघुवीर। म्हणे रामा तूं कोमलांग सुकुमार। चंडीशकोदंड परम कठोर। कैसें चढवोनि मोडिलें। ८५ दशरथें आलिंगिला राम। जो सच्चिदानंद मेघश्याम। भरत शत्रुघ्न परम सप्रेम। श्रीरामचरण वंदिती। ८६ असो जनकें दिव्य मंदिरें। जानवशासी दीधलीं

तुरीया नामक चार शरीर-गत अवस्थाएँ हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण नामक तीन शरीर हैं। दशरथ उन तीन पड़ावों में नहीं रहे, क्योंकि इनमें से पहला भौतिक तत्त्वात्मक, दूसरा वासनात्मक और तीसरा अविद्यामय है।]

भरत और शत्रुघ्न को देखकर जनक को सन्देह हो गया कि ये राम-लक्ष्मण हैं अथवा दूसरे कोई। उन्होंने कहा—' हमारे घर से राम और लक्ष्मण रूठकर (तो यहाँ नहीं) आये ? ' १८१ (यह सुनकर) दशरथ ने कहा—' (ये राम-लक्ष्मण नहीं हैं,) ये भरत और शत्रुघ्न हैं। ' (यह सुनकर) मिथिलाधिपति जनक आश्चर्य करते हैं (उन्हें आश्चर्य हुआ)। अस्तु ! वाद्य-गर्जन के साथ सबको वे समारोह-पूर्वक घुमाते हुए अपने मण्डप में ले आये। १८२ उस समय, धनुष के (राम द्वारा किये हुए दो) टुकड़े देखकर वीरों के शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। धनुष के टुकड़ों को देखकर कुछ-एक की आँखों में (आनन्द भाव के आवेग से) आँसू (उमड़) आये। १८३ तब कौसल्या ने भक्तजनों की कामनाओं को पूर्ण करनेवाले उस रामरूपी कल्पवृक्ष को निकट से देखा, तो दौड़कर उसने उसे परम प्रेमपूर्वक गले लगा लिया। (उसके) हृदय में प्रेम नहीं समाता था। १८४ राम को गोद में लेकर (बैठाकर) उसने कहा— ' राम ! तू तो कोमलांग सुकुमार है; (फिर) शिवजी के अत्यन्त कठोर धनुष को चढ़ाकर कैसे तोड़ डाला ? ' १८५ दशरथ ने (भी उन) राम को गले लगाया, जो (साक्षात्) मेघ-श्याम शरीरधारी सच्चिदानन्द (ही) हैं। भरत और शत्रुघ्न ने (भी) अत्यन्त प्रेमपूर्वक श्रीराम के चरणों का वन्दन किया। १८६

अपारें। दोहींकडे मंडप उभविले त्वरें। मंगळतुरें वाजती। ८७ लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न। परम प्रतापी राजनंदन। जनकरायें देखोन। दशरथासी विनविलें। ८८ म्हणे जानकी दिधली रघुनंदना। ऊर्मिला देईन लक्ष्मणा। मांडवी श्रुतकीर्ति बंधुकन्या। भरतशत्रुघ्नां देईन मी। ८९ दशरथासी मानला विचार। देवकप्रतिष्ठा केली सत्वर। चौघीं कन्यांसी परिकर। हरिद्रा लाविला तेधवां। १९० सीतेची शेषहरिद्रा। जे पाठविली रामचंद्रा। भरत शत्रुघ्न सौमित्रा। शेष आलें तैसेंचि। ९१ असो यथाविधि जाहलें नाहाण। नोवरे बैसले चौघे जण। तों जनक वऱ्हाडी वऱ्हाडिणी घेऊन। मूळ आला वरांसी। ९२ शांति क्षमा दया उन्मनी। सद्बुद्धि सद्विद्या कामिनी। तितिक्षा मुमुक्षा विलासिनी। तुर्या आणि उपरती। ९३ सुलीनता समाधि सद्गती। परमसदनीं ह्या मिरवती। तों वऱ्हाडी पातले

अस्तु। जनक राजा ने असंख्य दिव्य प्रासाद जनवासे के लिए दिये। दोनों ओर त्वरित मण्डप बनवा दिये। (उस समय) मंगल-तूर्य (नगाड़े) बज रहे थे। ८७ लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन परम प्रतापी राजपुत्रों को देखकर जनकराज ने दशरथ से विनती की। ८८ उन्होंने (यों) कहा—'मैंने जानकी श्रीराम को (विवाह में) प्रदान की। (अब) लक्ष्मण को उर्मिला दूँगा (तथा) अपने बन्धु कुशध्वज की कन्याएँ—माण्डवी और श्रुतकीर्ति (क्रमशः) भरत और शत्रुघ्न को दूँगा।' ८९ दशरथ को यह विचार (योजना) जँच गया। (तत्पश्चात्) उन्होंने शीघ्रतापूर्वक मातृका देवियों को प्रतिष्ठित कर उनका पूजन किया। तब कन्याओं को अच्छी हलदी लगायी। १९० सीता को हलदी लगाने पर बची हुई (हलदी) रामचन्द्र (को लगाने) के लिए भेज दी। भरत, शत्रुघ्न, और लक्ष्मण के लिए वैसी ही (उनकी वधुओं को लगाने पर बची हुई) शेष हलदी आ गयी। ९१ अस्तु। यथाविधि वरों की स्नान-विधि सम्पन्न हो गयी। (तदनन्तर) चारों जने - वर (यथास्थान) विराजमान हो गये। इतने में बाराती स्त्री-पुरुषों को लिये हुए जनक वरों के लिए निमंत्रण ले आये। ९२ शान्ति, क्षमा, दया, उन्मनी, सद्बुद्धि, सद्विद्या, तितिक्षा (सहन शक्ति), मुमुक्षा (मोक्ष की कामना), तुरीया और उपरति तथा सुलीनता, समाधि, सद्गति—ये सुन्दर नारियों के रूप में राम के सदन (निवास-स्थान) में ठाठ-बाट से विचरण कर रही थीं। इतने में राम को ले जाने के लिए जो बाराती आये

निश्चितीं। श्रीरामासी न्यावया आले ते। ९४ बोध आनंद सद्विवेक। ज्ञान वैराग्य परमार्थ देख। निष्काम अक्रोध अनुताप चोख। रघुनायक विलोकिती। ९५ जनकें पूजोनि चौघे वर। तुरंगीं बैसविले सत्वर। पुढें होत वाद्यांचा गजर। गगनीं सुरवर पाहती। ९६ मिरवत आणिले चौघे जण। मणिमय चौरंग समसमान। मधुपर्कविधि वरपूजन। यथासांग करी नृपनाथ। ९७ रघुपतीचें पद सुंदर। स्वयें क्षाळी मिथिलेश्वर। सुमेधा घाली वरी नीर। कनकझारी घेऊनियां। ९८ वेदांचा निर्मिता रघुनाथ। त्यासी घालिती यज्ञोपवीत। रायें षोडशोपचारयुक्त। पूजा केली तेधवां। ९९ घटिका प्रतिष्ठिली अंतरीं। देशिक सर्वांसी सावध करी। म्हणे वादविवादशब्दकुसरी। टाकोन झडकरीं साधव व्हावें। २०० चौघी कन्या आणिल्या बाहेरी। डौरिल्या दिव्यवस्त्रालंकारीं। स्नुषा देखोनि

(थे), वे निश्चय ही (वहाँ) पहुँच गये। ९३-९४ देखो, (आत्म-) बोध, आनन्द, सद्विवेक, ज्ञान, वैराग्य, परमार्थ, निष्कामता, अक्रोध (क्रोध-हीनता), अनुताप—इन विशुद्ध प्रवृत्तियों से युक्त श्रीराम को उन्होंने देखा। ९५ चारों वरों का पूजन करके जनक ने (उन्हें) घोड़ों पर बैठा दिया। आगे वाद्यों का गर्जन हो रहा था। (इस सबको) आकाश में (से) देवता देख रहे थे। ९६ चारों जनों—वरों को समारोहपूर्वक (सज-धज) तथा गाजे-बाजे के साथ लाया (गया)। (सबके लिए) समान (एक-से) रत्नमय चौकियाँ थीं। (फिर) राजा जनक ने मधुपर्क विधि तथा वर-पूजन (सभी) को अंगों-सहित यथाविधि सम्पन्न किया। ९७ मिथिलाधिपति जनक ने राम के सुन्दर चरणों का स्वयं प्रक्षालन किया। (उस समय) सोने की झारियों में पानी लेकर रानी सुमेधा ने ऊपर से डाला। ९८ रघुनाथ राम वेदों के निर्माता हैं; (फिर भी वेद-मंत्रों का पाठ करते हुए ब्राह्मणों ने) उन्हें यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहना दिया। तब राजा ने उनका (आवाहन, मधुपर्क, नैवेद्य, परिक्रमा, वन्दना आदि) सोलह उपचारों-सहित पूजन किया। ९९ अन्दर घटिका प्रतिष्ठित हो गयी (जिसके आधार पर समय जान लिया जाता है), तो विश्वामित्र ने सबको सचेत किया और कहा—'वाद-विवाद और शब्द-कौशल छोड़कर झट् से सावधान हो जाओ।' २०० (तदनन्तर) चारों वधुओं को बाहर (विवाह-मण्डप में वेदी के पास) लाया (गया)। वे दिव्य वस्त्रों और अलंकारों से

ते अवसरीं । आश्चर्य करी दशरथ । १ अंतरपट मध्यें धरून । तो फेडावयासी विद्वज्जन । सुरस मंगळाष्टकें म्हणोन । सावधान म्हणताती । २ जनकाची जे पट्टराणी । सुमेधा नामें पुण्यखाणी । चौघे जामात देखोनी । आनंद मनीं न समाये । ३ म्हणे श्रीरामाच्या मुखावरून । कोटी काम सांडावे ओंवाळून । जानकीचें भाग्य धन्य । ऐसें निधान जोडलें । ४ असो मंगळाष्टकें म्हणती पंडित । लग्नघटिका संपूर्ण भरत । ॐपुण्य आचार्य म्हणत । तों अंतरपट फिटलासे । ५ मंगळाकार चापपाणी । त्याचे मस्तकीं मंगळभगिनी । मंगळाक्षता घालोनी । मस्तक चरणीं ठेविलें । ६ सीतेचे मस्तकीं रघुनाथ । लग्नाक्षता घाली त्वरित । तोंचि मस्तकीं ठेविला हस्त । अक्षय कल्याणदायक

(विभूषित होने के कारण) शोभायमान थीं। उस अवसर पर बहुओं को देखकर दशरथ आश्चर्य (अनुभव) कर रहे हैं (थे) । २०१ विवाह-विधि के अवसर पर (वर और वधू के बीच तानकर पकड़ा जानेवाला पर्दे-सा वस्त्र अर्थात्) अन्तर्पट (वधू-वर के) बीच में पकड़ लिये जाने पर उसे हटा देने (की सूचना देने) के लिए, विद्वान् ब्राह्मण सुरस 'मंगलाष्टक' गाते हुए 'सावधान' कह रहे थे। [टिप्पणी: मंगलाष्टक वे मंत्र हैं, जिन्हें गाते हुए वधू-वर के कल्याण की कामना के साथ आशीर्वचन कहे जाते हैं। मूलतः ये मंत्र संख्या में आठ रहे होंगे, इसलिए 'अष्टक' शब्द प्रयुक्त होने लगा होगा। प्रत्येक मंगल-मंत्र के अन्त में 'शुभ मंगल सावधान' कहते हैं। उपनयन संस्कार के अवसर पर भी मंगलाष्टक पढ़े जाते हैं।] २०२ राजा जनक के सुमेधा नामक पुण्यों की खनि-सी पटरानी थी। चारों जामाताओं को देखने पर उसके मन में आनन्द नहीं समा रहा था। २०३ वह कहती (सोचती) है— श्रीराम के मुख पर उतारा करते हुए करोड़ों कामदेवों को निछावर कर दें। जानकी के भाग्य धन्य हैं, जिससे उसे (पति के रूप में राम-सा गुण-रत्न-) भण्डार प्राप्त हो गया। २०४ अस्तु। पंडितजन मंगलाष्टक गा (पढ़) रहे हैं; लग्न-घटिका पूरी हो चुकी, तो आचार्यों ने 'ॐ पुण्यम्' कहा—त्यों ही अन्तर्पट हट गया। २०५ चापपाणि श्रीराम साक्षात् मंगल के ठोस रूप हैं। (प्रत्यक्ष) मंगल की भगिनी सीता ने उनके मस्तक पर लग्नाक्षत डालकर उनके चरणों में मस्तक नवाया। २०६ (फिर) सीता के मस्तक पर राम ने शीघ्रतापूर्वक लग्नाक्षत डाल दिये और उसके मस्तक पर वही

जो। ७ सीतेनें वरितां रघुनंदन। ऊर्मिलेनें परिणिला लक्ष्मण। मांडवीनें भरत सगुण। श्रुतकीर्ति शत्रुघ्न वरीतसे। ८ तों मंगळतूर्यांचा घोष आगळा। परम जाहला ते वेळां। तेथींचा वर्णावया सोहळा। सहस्रवदना अशक्य। ९ अक्षय भांडारें बहुत। जनक वर-दक्षिणा देत। याचकजन समस्त। तृप्त केले निजधनें। २१० विवाह-होमालागीं निर्धारीं। वेगीं चला बहुल्यावरी। नोवऱ्या कडिये झडकरीं। घेवोनियां चलावें। ११ ऐकोनि हांसे रघुपती। म्हणे प्रपंचाची विपरीत गती। तों वसिष्ठ म्हणे रघुपती। कडे घेईं सीतेतें। १२ सीता उचलितां श्रीरामें। तैसेंच तिघे करिती अनुक्रमें। बहुल्यावरी आनंद-प्रेमें। चौघे जण बैसले। १३ लाजाहोमादि सर्व विधि सिद्ध। करी अहल्यासुत शतानंद। जनकासी जाहला परम आनंद। तो आल्हाद न वर्णवे। १४ तों अंतर्गृहीं रघुवीर। पूजावया

हाथ रखा, जो अक्षय (अखण्ड)—कल्याणदायी हैं। २०७ सीता के राम का वरण करते ही, उर्मिला ने लक्ष्मण का परिणयन (वरण) किया। (उसी समय) माण्डवी ने गुणवान् भरत का और श्रुतकीर्ति ने शत्रुघ्न का वरण किया। २०८ त्यों ही, उस समय मंगल तुर्यों (नगाड़ों) का परम अद्भुत घोष (गर्जन) हो गया। वहाँ के आनन्दोत्सव का वर्णन करना सहस्रमुख शेष के लिए भी असम्भव है। २०९ जनक ने वर-दक्षिणा के रूप में बहुत अक्षय भण्डार दिये और अपने धन (के दान) से समस्त याचक लोगों को सन्तुष्ट कर दिया। २१० (तब गुरु ने कहा—) 'विवाह-होम के लिए (विवाह-) वेदी की ओर निश्चय ही शीघ्रता से चलो। अपनी-अपनी वधू को गोद में (कमर पर) उठाकर झट् से (ले) चलो।' ११ (यह) सुनकर राम हँस दिये। उन्होंने मन-ही-मन कहा—'संसार की विपरीत गति होती है।' त्यों ही वसिष्ठ ने कहा—'राम, सीता को गोद में (कमर पर) उठा लो।' १२ श्रीराम द्वारा सीता को उठा लेने पर (लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—) तीनों ने क्रमशः वैसा ही किया। (फिर) चारों जने आनन्द और प्रेमपूर्वक विवाह-वेदी के पास बैठ गये। १३ (जनक के पुरोहित) अहल्या-सुत शतानन्द ने लज्जा-होम आदि सब विधियाँ सम्पन्न करायीं। (इससे) जनक को अत्यन्त आनन्द हो गया। उस आह्लाद (आनन्द) का वर्णन (किसी से) नहीं किया जा सकता। १४ तब श्रीराम गौरी-हर का पूजन करने के लिए अन्तर्गृह में चल दिये। सीता को

चालिला गौरीहर । सीतेसी कडिये घेऊनि सत्वर । रामचंद्र चालिला । १५ गौरीहर पूजोनि त्वरें । आंबा शिंपितीं चौघें वोहरें । निंबलोण निजकरें । सुमेधा उतरी तेधवां । १६ सुमेधेनें जाऊनि ते क्षणीं । प्रार्थोनि आणिल्या तिघी विहिणी । दिव्य वस्त्रालंकारें गौरवूनी । मंडपांत बैसविल्या । १७ देखोनियां चौघी सुना । आनंद जाहला तिघींचिया मना । इकडे जनक विनवी रघुनंदना । विज्ञापना परिसावी । १८ चार दिवसपर्यंत । येथेंच क्रमावे माझा हेत । साडे जाहलिया त्वरित । मग अयोध्येसी जाइंजे । १९ पुढील जाणोनि वर्तमान । तें न मानीच रघुनंदन । म्हणे आम्ही आतां येथून । करूं गमन

कमर पर उठाये हुए वे शीघ्रता से जा रहे थे । १५ शीघ्रता से गौरी-हर का पूजन कर, चारों दम्पतियों ने आम्र-पत्र-सिंचन किया, तो सुमेधा रानी ने अपने हाथों से (उनपर) राई-नोन उतार लिया । [टिप्पणी: 'आम्र-पत्र सिंचन' विवाह-सम्बन्धी एक विधि है । उसके अनुसार, बारात के वापस जाने से पूर्व, वर गौरी-हर का पूजन कर उनमें से गौरी देवी की प्रतिमा लेने के लिए जाता है । उस स्थान पर गौरी-हर की प्रतिमाओं के पास दीवार पर आम्र-वृक्ष का चित्र अंकित रहता है । वधू दायें हाथ में आम के अथवा नागबेल के पत्ते लेकर उनसे उपरोक्त आम्र-वृक्ष का सिंचन-सा करती है । इस अवसर पर नारियाँ इस विधि-सम्बन्धी गीत भी गाती हैं । आम्र-सिंचन के समय वधू अपना बायाँ पाँव वर की दाहिनी गोद (जंघा) पर तथा बायाँ हाथ उसकी पगड़ी पर रखते हुए, उसके निकट खड़ी रहती है ।] १६ उस क्षण (समय कौसल्या आदि के पास) जाकर सुमेधा रानी प्रार्थना कर समधिनों को ले आयी । दिव्य वस्त्रों और आभूषणों से उनको गौर-वान्वित करते हुए मण्डप में बैठा दिया । १७ चारों बहुओं को देखकर (कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी) तीनों के मन में आनन्द (अनुभव) हो गया । इधर जनक राजा ने श्रीराम से (यों) विनती की—हे राम, (मेरी) विनती सुनिए (मानिए) । चार दिन तक (का काल) यहीं बिताइए—यही मेरी अभिलाषा है; (फिर) साड़ी-सम्बन्धी विधि के पश्चात् त्वरित अयोध्या जाइए । [टिप्पणी: 'साडे' साड़ी-सम्बन्धी विधि है, जिसके अनुसार विवाह के बाद चौथे दिन अहरन-पूजन के अवसर पर वधू-वर को वस्त्र प्रदान किये जाते हैं ।] २१८-२१९ (परन्तु) आगे अर्थात् भविष्य काल में घटित होनेवाली घटना को पहले

अयोध्येसी । २२० कां त्वरा करितो रघुवीर । आतां युद्धासी येईल फरशधर । तरी तो प्रचंड वीर अनिवार । मिथिलानगर जाळील पैं । २१ यालागीं स्वभारेंसीं बाहेर । जावें इच्छी रघुवीर । पुढें संहारावया दशकंधर । जाणें सत्वर लंकेसी । २२ झेंडा नाचवूं लंकेपुढें । राक्षसांचीं अपार मुंडें । ओंवाळणी पडतील कोंडें । करील साडे बिभीषण । २३ ऐसें श्रीरामाचें मनोगत । वसिष्ठें जाणोनि त्वरित । जनकासी सांगे गुह्यार्थ । वोहरें आतांचि बोळवीं । २४ मग जे अयोध्यावासी जन । समस्तांसीं दिधलें भोजन । चौघें वोहरें आणि अजनंदन । राण्या समस्त जेविल्या । २५ तत्काळ साडे करून । वस्त्रालंकार सर्वांस अर्पून । चौघां जणांसी आंदण । अपार दिधलें तेधवां । २६ अश्व गज दास दासी । तन मन धन अर्पिलें श्रीरामासी । जनक निघाला स्वभारेंसीं । दशरथासी बोळवित । २७

से जानकर श्रीराम ने उसे स्वीकार नहीं किया । उन्होंने कहा—‘ अब हम यहाँ से अयोध्या के लिए गमन (प्रस्थान) करेंगे । २२० श्रीराम ऐसी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं ? (उसका कारण यह है कि) अब परशुधारी (भार्गव) राम युद्ध के लिए आएँगे । (क्योंकि राम ने उनके धनुष को तोड़ डाला है ।) वे तो प्रचण्ड अनिवार्य (अजेय) वीर हैं; वे मिथिला नगरी को जला देंगे । २१ इसलिए राम चाहते हैं कि (उनके आने के पूर्व) सेना-सहित मिथिला के बाहर हो जाएँ, (जिससे मिथिला पर कोई आपत्ति न आए)। बाद में शीघ्र ही रावण का संहार करने के लिए लंका जाना है । २२ लंका के सामने हम (विजय-सूचक) ध्वज नचाएँगे (फहराएँगे) । राक्षसों के असंख्य सिर आरती-पात्र में पड़ेंगे (डाले जाएँगे), तो विभीषण साड़ी-सम्बन्धी विधि सम्पन्न करेंगे । २३ श्रीराम के ऐसे मनोगत (उद्देश्य) को जानकर वसिष्ठ ने तत्काल जनक को वह गूढ़ अर्थ (जनक की विनती अस्वीकार करने का हेतु) बताया और कहा—‘ वधू-वरों को अभी विदा कर दो । ’ २४ फिर जो अयोध्या-निवासी लोग (वहाँ उपस्थित) थे, (उन) सबको भोजन कराया । चारों दम्पति, और दशरथ तथा सब रानियों ने (भी) भोजन किया । २५ (तदनन्तर) तत्काल साड़ी-विधि सम्पन्न करके, जनक ने सबको वस्त्र और आभूषण समर्पित करते हुए, चारों जनों (जामाताओं) को तब अपार (दहेज आदि के अतिरिक्त दिया जाने वाला) अन्य दान दिया । २६ (जनक ने) घोड़े, हाथी, दास, दासियाँ,

ऐसें देखोनि नारद ऋषी। वेगें धांविन्नला बद्रिकाश्रमासी। देखोनियां भृगुकुळटिळकासी। म्हणे बैसलासी काय आतां। २८ तूं द्विजकुळीं महाराज वीरेश। आणि त्या रामें तुझें भंगिलें धनुष्य। तुज थोर आलें अपयश। रामें यश वाढविलें। २९ मग बोले भृगुकुल-दिवाकर। आमुचें अवतारकृत्य जाहलें समग्र। मग म्हणे कमलोद्भव-पुत्र। तुज अणुमात्र क्रोध न ये। २३० जमदग्नीनें क्रोध टाकिला। तो तत्काळचि मृत्यु पावला। तुजही तैसीच आली वेळा। दाशरथी तुजला न सोडी। ३१ शिवें तुज दिधलें पिनाक जाण। तेणें घेतले क्षत्रियांचे प्राण। ऐसें बोलतां ब्रह्मनंदन। जमदग्नि सुत क्षोभला। ३२ किंवा मृगेंद्र निजेला। तो पदघातें हाणोन जागा केला। कीं नरसिंहचि प्रकटला। स्तंभाबाहेर दुसऱ्यानें। ३३ घृतें शिंपिला वैश्वानर। कीं नासिकेवरी ताडिला व्याघ्र। कीं बळेंचि खवळिला फणिवर।

तन-मन-धन श्रीराम को समर्पित कर दिया (और) वे अपनी सेना-सहित निकल पड़े। उन्होंने दशरथ को विदा कर दिया। २७

ऐसा देखकर नारद ऋषि वेगपूर्वक बदरिकाश्रम (के प्रति) दौड़ पड़े। (वहाँ) भृगु-कुल-तिलक परशुराम को देखकर उन्होंने कहा—'अब कैसे बैठे हुए हो? २८ तुम तो ब्राह्मण-कुल में (उत्पन्न) वीर श्रेष्ठ महान् राजा हो और (उधर) उस राम ने तुम्हारे धनुष को तोड़ डाला। (इसमें) तुम्हें बहुत बड़ी अपकीर्ति आ गयी (प्राप्त हो गयी) और राम ने (अपनी) कीर्ति की वृद्धि कर ली!' २९ फिर भृगु-कुल (में उत्पन्न) सूर्य परशुधर राम ने कहा—'हमारा अवतार-कार्य समाप्त हो गया।' तो (इसपर) ब्रह्मा के पुत्र नारद बोले—'तुम्हें अणु-भर (भी) क्रोध नहीं आ रहा है। (तुम्हारे पिता) जमदग्नि ऋषि ने क्रोध का त्याग किया; (फलस्वरूप) वे तत्काल ही मृत्यु को प्राप्त हो गये। तुम पर भी वैसा ही (संकट) काल आ गया, (अब) दाशरथी राम तुम्हें नहीं छोड़ेंगे। समझो, शिवजी ने तुम्हें पिनाक (शिव-धनु) दिया; तुमने उससे क्षत्रियों के प्राण हरण कर लिये।' ब्रह्मनन्दन नारद के इस प्रकार बोलने पर जमदग्नि-सुत परशुराम क्षुब्ध हो उठे। २३०-३२ अथवा (यह ठीक वैसे ही हो गया जैसे) सोये हुए सिंह को (किसी ने) पाँवों से आघात करके जगा दिया; अथवा नरसिंह ही दूसरी बार स्तम्भ में से प्रकट हो गये; अथवा वैश्वानर (अग्नि) को घी से सींच दिया (और वह प्रज्वलित हो उठा); अथवा (किसी ने) बाघ की नाक

कीं महारुद्र कोपविला । ३४ मग विष्णुचाप चढविलें । नारद भार्गव दोघे निघाले । श्रीरामासी आडवे आले । मनोवेगें-करूनियां । ३५ सांवळा पुरुष देदीप्यमान । विशाळनेत्र सुहास्यवदन । जटामुकुट मस्तकीं पूर्ण । यज्ञोपवीत झळक-तसे । ३६ कांसेसी विराजे पीतांबर । तडित्प्राय उत्तरीय वस्त्र । परम आरक्त दिसती नेत्र । कीं सहस्रकर उतरला । ३७ धनुष्यास बाण लावून । मार्गीं उभा ठाकला येऊन । सोळा पद्में दळ संपूर्ण । कंपायमान जाहलें । ३८ तीन सप्तकें जेणें फिरोनी । निर्वीर केली अवनी । अवघे राजे टाकिले आटोनी । कीं प्रळयाग्नि दूसरा । ३९ ऐसा तो महाराज जामदग्न्य । क्षत्रिय-जलद-जाल-प्रभंजन । कीं हा कुठारपाणि भृगुनंदन । वीर-कानन निर्मूळ केलें । २४० मार्गीं देखतां महा व्याघ्र । भयभीत

पर आघात कर दिया (जिससे वह क्षुब्ध हो उठा); अथवा (किसी ने) नाग को हठात् क्षुब्ध करा दिया, अथवा महारुद्र को क्रुद्ध करा दिया । २३३-२३४

फिर (परशुराम ने) श्रीविष्णु का धनुष चढ़ा दिया (और) नारद तथा परशुराम दोनों चल पड़े । मनोवेग से (मन की-सी गति से) वे श्रीराम को रोकने के लिए आ गये । ३५ वे (परशुराम) साँवले वर्ण के देदीप्यमान (अत्यन्त तेजस्वी) पुरुष थे । वे विशाल-नेत्र (विशाल आँखों वाले) तथा सुहास्य-वदन (हँसमुख) थे । उनके पूरे मस्तक पर जटाओं का मुकुट था । उनके शरीर पर जनेऊ दमक रहा था । ३६ काछे पर पीताम्बर शोभायमान था; उत्तरीय वस्त्र (दुपट्टा) विद्युत्प्राय (बिजली-सा) अत्यन्त तेजस्वी था । उनके नेत्र अति लाल दिखायी दे रहे थे अथवा (उन्हें देखकर जान पड़ता था कि) सहस्रकर सूर्य (ही धरती पर) उतर गया हो । ३७ धनुष पर बाण लगाये हुए वे (परशु-राम) रास्ते में आ धमके, तो (दशरथ की) सम्पूर्ण सोलह पद्म सेना कम्पायमान हो गयी । ३८ जिन्होंने पृथ्वी में भ्रमण कर इक्कीस बार उसे वीर-हीन कर डाला, जिन्होंने समस्त राजाओं का संहार कर डाला, और जो मानो दूसरे प्रलयाग्नि-देव ही हैं, वे जमदग्नि-पुत्र महाराज परशुराम (मानो) क्षत्रिय-रूपी मेघों को तितर-बितर करनेवाले प्रभंजन हैं । अथवा ये वे हाथ में परशु धारण करनेवाले भृगु-नन्दन परशुराम हैं, जिन्होंने वीर-रूपी वन को निर्मूल कर डाला—जड़-सहित संहार कर डाला । २३९-२४० मार्ग में बड़े बाघ को देखते ही बकरों का दल

होती अजांचे भार । तैसा देखतां रेणुकापुत्र । शस्त्रें गळालीं बहुतांचीं । ४१ गजबजला दळभार समस्त । मिथिलेश्वर होय भयभीत । स्त्रियांमाजी दडाला दशरथ । म्हणे अनर्थ थोर मांडला । ४२ तों वैराग्यगजारूढ रघुनाथ । वरी निर्धार चवरडोल शोभत । पुढें अनुभव बैसला महावत । विवेकांकुश घेऊनियां । ४३ ज्ञानाचे ध्वज फडकती । चपळेऐसे सतेज तळपती । विज्ञान-मकर-बिरुदें निश्चिती । पुढें चालती स्वानंदें । ४४ निवृत्तीच्या पताका । पालविती मुमुक्षुसाधका । रामनाम चिन्हांकित देखा । दयावातें फडकती । ४५ मनपवनाचे अश्वधार चालिले । अनुसंधानवाग्दोरे लाविले । विरक्ति-पाखरेनें झांकिले । अनुभवाचे सोडिले मुक्तघोंस । ४६ चिद्रत्न-जडित दिव्य रथ । चाऱ्ही वाचा-चक्रें घडघडित । घोडे जुंपिले

भयभीत हो जाता है, वैसे ही रेणुका के पुत्र परशुराम को देखने पर (घबराये हुए) बहुत वीर सैनिकों के हाथों से अस्त्र नीचे गिर पड़े । ४१ (दशरथ की) समस्त सेना (मारे भय के) पसोपेश में पड़ गयी । मिथिलाधिपति जनक (भी) भयभीत हो गये । (इधर) दशरथ (अपनी) स्त्रियों (के समुदाय) में छिप गये । वे बोले—' (यहाँ तो) बड़ा अनर्थ मच गया (महा संकट आ गया)। २४२

(इधर) वे राम वैराग्य-रूपी हाथी पर विराजमान थे । उसके ऊपर निर्धार-रूपी हौदा सुशोभित था । उनके आगे अनुभव-रूपी महावत हाथ में विवेक-रूपी अंकुश लेकर बैठा (था) । २४३ ज्ञान-रूपी ध्वज फहरते थे, जो विद्युत के समान तेजस्वी जगमगा रहे थे । (उनके) आगे आत्मानन्द के साथ विज्ञान-रूपी मकर-बिरुदैत निश्चय-पूर्वक चल रहे थे । ४४ निवृत्ति-वृत्ति-रूपी राम-चिह्नांकित पताकाएँ मुमुक्षु साधक को अपनी शरण में लेकर, देखो, दया-रूपी हवा में (कैसे) फहरा रही थीं । ४५ मन का पवन-गति से दौड़नेवाला अश्वदल चल दिया (है) । (उनमें) अवधान-रूपी लगाम लगायी (है) । (उन्हें) विरक्ति के (तारों से तैयार किये) आच्छादन से ढँक दिया (है) । प्रत्यक्ष अनुभव-ज्ञान-रूपी मोतियों के गुच्छे (झूलते हुए) छोड़ दिये (हैं) । ४६ चेतना-रूपी रत्न से जटित दिव्य रथ (प्रस्तुत) है । (परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नामक) चार प्रकार की वाणियाँ उस (रथ के) धड़-धड़ शब्द करते हुए चलनेवाले पहिये हैं । (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक) चारों पुरुषार्थ-रूपी घोड़े जोते गये (हैं) ।

चाऱ्ही पुरुषार्थ। सारथि तेथें आनंद पैं। ४७ नामशस्त्रें घेऊन हातीं। सोहं शब्दें वीर गर्जती। क्षणें प्रपंचदळ विध्वंसिती। नाटोपती कळिकाळा। ४८ रामावरी अद्वयछत्र। स्वानंदाचें मित्रपत्र। तन्मय चामरें परिकर। प्रेमकुंचे वरी ढाळिती। ४९ हडपेकरी शुद्धसत्व। निजभक्तीचे विडे देत। अष्टभाव सेवक तेथ। राघवापुढें धांवती। २५० अनुताप-लघुचीर घेउनी। मायिक धुरोळा वारी ते क्षणीं। तर्क पिकपात्र धरूनी। मुख विलोकिती रामाचें। ५१ सौमित्र भरत शत्रुघ्न बंधू। हेचि सच्चिदानंद आनंदू। स्वरूपप्राप्तीचे कुंजर अभेदू। तयांवरी आरूढले। ५२ हिरे जडले दांतोदांतीं। वरी मुक्तजाळिया मिरवती। कामक्रोधांचे तरू मोडिती। सहज जातां निजपंथें। ५३ आशा तृष्णा कल्पना भ्रांती। वाटे जातां गुल्में छेदिती। शुंडा

वहाँ आत्मानन्द-रूपी सारथी है। ४७ (राम-) नाम-रूपी शस्त्रों को हाथों में लेकर 'सोऽहम्' ('मैं ब्रह्म हूँ') शब्द करते हुए वीर पुरुष गर्जन करते हैं (थे)। क्षण में वे सांसारिक विकारों के दल का संहार करते हैं (थे)। वे कलि-काल द्वारा भी नहीं रोके जा सकते। ४८ श्रीराम के ऊपर (जीव और ब्रह्म के) एकत्व भाव का छत्र है (था), आत्मानन्द का (-रूपी) सूर्य-पत्र (आफ्ताबगीर) हैं (था)। तन्मयता-रूपी चँवरों का समूह (झुलाया जाता) है (था)। ऊपर से प्रेम-रूपी मोरछत्र हिलाते हैं (थे)। ४९ शुद्ध सात्त्विक भाव बीड़ा बनाकर देनेवाले (सेवक) हैं (थे)। वे भगवद्-भक्ति के बीड़े देते हैं (थे)। (स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रुपात, प्रलय नामक) आठ भाव वहाँ सेवक थे, जो राम के सामने दौड़ते रहते (सेवा के लिए तत्पर) थे। २५० वे अनुताप-रूपी छोटा-सा वस्त्र लेकर उसी क्षण माया द्वारा उत्पन्न धूल का निवारण कर देते थे। तर्क पिकपात्र थमाये श्रीराम का मुख ताकते रहते थे। ५१ लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ये तीनों वन्धु साक्षात् सत्, चित् और आनन्द हैं। (भगवद्-) स्वरूप की प्राप्ति के अभेद्य हाथी हैं; उनपर वे आरूढ़ (हो गये) हैं। ५२ (उन हाथियों के) दाँत-दाँत (प्रत्येक दाँत) में हीरे जड़े हैं। उनपर मोतियों की जालियाँ शान से झूलती हैं। वे (हाथी) अपने मार्ग से जाते-जाते काम क्रोध (आदि विकारों)-रूपी वृक्षों को तोड़ डालते हैं। ५३ मार्ग में जाते हुए वे आशा, तृष्णा (भोग-विलास की कामना-रूपी प्यास), कल्पना, भ्रान्ति (भ्रम, सन्देह) की झाड़ियों को काट देते हैं।

ह्मणोनियां दांतीं । कडे फोडिती विषयांचे । ५४ मदमत्सरदंभ-पर्वत । रथचक्रातळीं पिष्ट होत । कुमतें पाषाण पिष्ट करीत । रगडोन जाती घडघडां । ५५ धैर्य-तुरंग अलोट चपळ । माया-रणांगणीं तळपती सबळ । वरी रामउपासक निर्मळ । कळि-काळासी न गणिती । ५६ शमदमांचे पायभार । निष्कामखंडें झेलिती समग्र । भवदळभंजन प्रतापशूर । आत्मस्थितीं चालती । ५७ अनुहतवाद्यें वाजती । ऐकतां कुतर्कपक्षी पळती । कर्मजाळ-वनचरें निश्चितीं । टाकोन जाती स्वस्थाना । ५८ चाऱ्ही साही अठरा जण । रामासी वानिती बंदीजन । चाऱ्ही मुक्ति आनंदेंकरून । नृत्य करिती राघवापुढें । ५९ वाटेसी

दाँतों पर सूँड़ों का आघात कर वे सांसारिक भोगविलास के विषयों की चट्टानों को तोड़ डालते हैं । ५४ (उस) रथ के पहियों के नीचे मद, मत्सर और दम्भ-रूपी पर्वत पिस जाते हैं । वे कु-मतों (प्रतिकूल एवं असद्-सिद्धान्तों) के पाषाणों को पीस डालते हुए, कुचल देते हैं और धड़-धड़ (करते हुए आगे) जाते हैं । ५५ धैर्य-रूपी घोड़े दुर्निवार और चपल हैं । वे बलवान् घोड़े माया के साथ चलनेवाले युद्ध के क्षेत्र में जगमगाते हैं । ऊपर (बैठे सवार पाप-रूपी) मैल से मुक्त रामभक्त हैं । वे कलि-काल की (भी) परवाह नहीं करते । ५६ शम-दम-रूपी पदाती सैनिकों का दल है । वे (सैनिक) निष्काम भाव से सब बाधाओं को झेलते हैं । सांसारिक विकारों की सेना को नष्ट करने-वाले वे प्रतापी वीर ब्रह्म-स्थिति-स्वरूप आत्मा की स्वतंत्र अवस्था अनुभव करते हुए चलते रहते हैं । ५७ वाद्य अनाहत बजते हैं । उन (की ध्वनि) को सुनकर कुतर्क-रूपी पक्षी भाग जाते हैं । सांसारिक कर्म-समूह-रूपी वनचर (वन्य प्राणी) निश्चय ही अपने-अपने (निवास-) स्थान को छोड़कर भाग जाते हैं । ५८ (ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद नामक) चारों वेद, (छन्द, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष, शिक्षा और कल्पसूत्र; अथवा न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, सांख्य और योग नामक) छहों शास्त्र, (ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, अथवा शिव, लिंग अथवा नृसिंह, गरुड़, नारद, अग्नि, श्रीमद्भागवत अथवा देवी भागवत, मार्कण्डेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, वामन, मत्स्य, वराह, कूर्म और ब्रह्माण्ड नामक) अठारहों पुराण-रूपी बन्दीजन श्रीराम की स्तुति करते हैं । (सलोकता, समीपता, सरूपता और सायुज्य नामक) चारों मुक्तियाँ राम के सामने आनन्द-पूर्वक नृत्य करती

अविद्या वहाती सरिता। ते कोरडी जाहली दळ चालतां। भाव निश्चय तत्त्वतां। वेत्रधारी पुढें धांवती। २६० सोहं भाव गर्जत। वाटेसी द्वैतजनांतें निवारित। पुढ भक्त स्वानंदें नाचत। गुण वर्णित राघवाचे। ६१ एक जाहले निःशब्द मुके। ऐकती रामचरित्र कौतुकें। एक अत्यंत बोलके। एक समाधिसुखें डोलती। ६२ ऐसा निजभारेंसीं रघुनंदन। जो कौसल्याहृदय-मांदुसरत्न। निजभार थोकला देखोन। गजारूढ पुढें झाला। ६३ तंव तो क्षत्रियांतक महावीर। वडील अवतार ऋषिपुत्र। कर जोडोनि नमस्कार। करी तयातें राघव। ६४ किंचित निवाला फरशधर। मग बोले पंकजोद्भवपुत्र। तुज देखोनि राघवेंद्र। गजाखालीं उतरेना। ६५ तूं वीर आणि विशेषें ब्राह्मण। हा

हैं। ५९ रास्ते में अविद्यारूपी नदियाँ बहती हैं (थीं), वे सेना के चलते रहने पर सूख गयीं (जिससे सेना बिना किसी बाधा के आगे बढ़ सके) अथवा वासना-रूपी नदियाँ सूख गयीं)। सचमुच निश्चय भाव-रूपी वेत्र-धारी सेवक (चोबदार) आगे-आगे दौड़ते हैं (थे)। २६० श्रीराम के भक्त 'सोऽहम्' (मैं ब्रह्म हूँ)—ध्वनि का गर्जन करते हुए द्वैतजनों (जीव और ब्रह्म को भिन्न-भिन्न माननेवाले लोगों के गलत सिद्धान्तों) का निवारण करते हैं (थे)। वे भक्त आत्मानन्द-पूर्वक श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हुए आगे नाचते हैं (थे)। ६१

कोई-एक (उत्कट भावावेग के कारण) निःशब्द मूक होकर श्रीराम-चरित्र का आश्चर्य-पूर्वक श्रवण करते थे। कोई-एक अतिशय वाचाल हो गये हैं (थे); वे ज़ोर-शोर से राम का गुणगान करते हैं (थे), तो कोई-एक समाधि-सुख में झूमते हैं (थे)। २६२ (इतने में) जो कौसल्या के हृदय-रूपी मंजूषा में स्थित रत्न ही हैं, वे राम, यह देखकर कि अपनी सेना रुक गयी, हाथी पर विराजमान हुए आगे बढ़ गये। ६३ वे (परशुराम) क्षत्रियों के नाशकर्ता, महावीर तथा (भगवान के) ज्येष्ठ अवतार और (जमदग्नि) ऋषि के पुत्र हैं —इसलिए तब (उनका सम्मान करने के हेतु) हाथ जोड़कर श्रीराम ने उनको नमस्कार किया। ६४ (इस विनम्र आचरण को देखकर) परशुराम ज़रा-से शान्त हो गये। फिर ब्रह्मा के पुत्र नारद (उनसे) बोले—'तुम्हें देखकर राम हाथी से नीचे नहीं उतर रहे हैं। ६५ तुम वीर हो, विशेषतः ब्राह्मण हो। (फिर) ये तुम्हारा (कुछ भी) —बिलकुल सम्मान नहीं कर रहे हैं।' (यह सुनकर) भृगुनन्दन

तुज कांहींच नेदी मान। यथार्थ म्हणे भृगुनंदन। लाविला बाण चापासी। ६६ रघुपतीस म्हणे भृगुनंदन। तूं क्षत्रिय म्हणवितोसी दारुण। अधमा ताटिका स्त्री वधून। अधर्म केला साच पैं। ६७ स्त्री रोगी मूर्ख बाळ। योगी याचक अशक्त केवळ। पंकगर्तेंत अंध पांगुळ। वृद्ध ब्राह्मण गाय गुरु। ६८ ज्येष्ठबंधु माता पिता। जो कां शस्त्र टाकोनि होय पळता। इतुक्यांवरी शस्त्र उचलितां। महादोष बोलिला असे। ६९ म्हणोनि तूं अधम वीर। स्त्रीहत्या केली साचार। त्यावरी जानकीहृत्पद्म-भ्रमर। काय बोलता जाहला। २७० म्हणे ताटिका नव्हे माझी माता। तुवां मातृवध केला जाणतां। यापरीस काय अधमता। उरली असे सांग पां। ७१ उंचवर्ण तूं ब्राह्मण। सांडून अनुष्ठान तपाचरण। तुज शस्त्र धरावया काय कारण। राजहिंसा केलिया। ७२ तूं ब्राह्मण परम पवित्र। तुजवरी आम्हीं धरावें शस्त्र। हें कर्म आम्हां अपवित्र। ऋषिपुत्रा जाण पां। ७३ ऐसें ऐकतां फरशधर। सोडी तत्काळ

परशुराम ने कहा—'यथार्थ (ठीक) है।' फिर उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाया। ६६ परशुराम ने राम से कहा—'तुम दारुण (उग्र) क्षत्रिय कहाते हो। (फिर भी) हे अधम पुरुष! ताड़का-स्त्री का वध करके तुमने सचमुच अधर्म किया। ६७ स्त्री, रोगी, मूर्ख, बालक, योगी, याचक, वस्तुतः दुर्बल, पंकगर्त में फँसा हुआ, अंधा, पंगु, वृद्ध, ब्राह्मण, गाय और गुरु, ज्येष्ठ बन्धु, माता और पिता, शस्त्र का त्यागकर भागता हुआ व्यक्ति—इतने लोगों पर शस्त्र उठाने पर वह कार्य महादोष (पाप) कहा जाता है। ६८-६९ इसलिए तुम अधम वीर हो—तुमने सचमुच स्त्री-हत्या की (है)।' इसपर जानकी के हृदय-रूपी कमल के (लिए) भ्रमर (-से) श्रीराम क्या कहते हैं? २७० उन्होंने कहा—ताड़का मेरी माता नहीं है (थी)। (परन्तु) आपने जानते हुए भी (अपनी) माता (रेणुका) का वध किया— कहिए, इससे (बड़ी) क्या अधमता शेष है? ७१ आप उच्च वर्ण ब्राह्मण हैं। (फिर) अनुष्ठान और तपाचरण का त्याग करके शस्त्र धारण करने का क्या कारण है? आपने तो राज-हिंसा (राजाओं का वध) की (है)। ७२ हे ऋषि पुत्र! आप परम पवित्र ब्राह्मण हैं। समझ लीजिए, आप पर हम शस्त्र उठा लें— यह हमारे लिए अपवित्र है।' ७३ ऐसा सुनकर परशुधर (परशुराम) ने अति तीक्ष्ण बाण चला दिया। इधर रघुवीर

निर्वाण शर। इकडे कोदंडासी बाण रघुवीर। लाविला परी सोडीना। ७४ कल्पांतचपळेसारिखे जाण। येती भार्गवाचे तीक्ष्ण बाण। ते दृष्टीनें पाहतां सीताजीवन। जाती वितळोनि क्षणार्धें। ७५ जैसा झगडतां चंड पवन। दीप सर्व जाती विझोन। कीं शिवदृष्टीपुढें मदन। न लागतां क्षण भस्म होय। ७६ कीं प्रकटतां निर्वाणज्ञान। मद मत्सर जाती पळोन। कीं अद्भुत वर्षतां घन। वणवा विझोन जाय जैसा। ७७ जें जें येतसे अस्त्रजाळ। तें तें दृष्टीनेंचि विरे सकळ। भार्गव म्हणे हा तमाळनीळ। क्षीराब्धिवासी अवतरला। ७८ आमुची सीमा जाहली येथून। खालीं ठेवी धनुष्यबाण। तो गजाखालीं उतरोन सीताजीवन। भेटावया धांविन्नला। ७९ जैशा क्षीराब्धीच्या लहरी धांवती। एकासी एक प्रीतीनें भेटती। कीं अद्वैतशास्त्रींच्या श्रुती। दोन्ही येती ऐक्यासी। २८० राम

राम ने धनुष पर बाण तो चढ़ाया, परन्तु उन्होंने (उसे) नहीं चलाया। ७४ समझ लो, परशुराम के द्वारा चलाये बाण कल्पान्त के समय (चमकनेवाली) बिजलियों-से (चमकते हुए) आते थे। परन्तु जानकी-जीवन श्रीराम के (उनकी ओर) दृष्टि पड़ते ही वे क्षणार्ध में पिघल (कर नष्ट हो) जाते थे। ७५ जिस प्रकार, प्रचण्ड पवन (के झोंके) द्वारा ज़रा-सा स्पर्श कर जाते ही, समस्त दीपक बुझ जाते हैं; अथवा शिवजी की दृष्टि के सामने मदन, क्षण-भर भी न लगते, (जलकर) भस्म हो गया, अथवा अद्वैत-ज्ञान के प्रकट होते ही मद-मत्सर (-जैसे विकार) भाग जाते हैं, अथवा बादलों के अद्भुत रूप में बरसते ही दावाग्नि बुझ जाती है, वैसे यह हो जाता था। ७६-७७ परशुराम जो-जो अस्त्र-जाल चलाते, वह (श्रीराम की) दृष्टि से ही विलय हो जाता। (यह देखकर) परशुराम ने कहा—'ओह! ये (तमाल-पत्र की भाँति नील शरीरधारी), क्षीर-समुद्र-निवासी श्रीविष्णु (ही) अवतरित हो गये।' यहाँ ही हमारी (अवतार-कार्य की चरम) सीमा हो गयी—(ऐसा मानकर) उन्होंने धनुष-बाण नीचे रख दिया। इधर जानकी-जीवन श्रीराम भी हाथी पर से नीचे उतरकर (परशुराम से) मिलने के लिए दौड़ पड़े। ७८-७९ जिस प्रकार क्षीर-समुद्र की लहरें दौड़ती हैं, और एक-दूसरी से प्रेमपूर्वक मिलती हैं, अथवा अद्वैत-शास्त्र की श्रुतियाँ (उक्तियाँ), दोनों एकात्मता को प्राप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार श्रीराम और परशुराम (अन्त में एक-दूसरे से मिलकर)

फरशधर जेव्हां भेटले। एकरूप दोघांचें वोतिलें। कीं दोन्ही दीप एकचि जाहले। तैसेंचि भासलें जनांसी। ८१ एकस्वरूप दोघे जण। कालत्रयीं न होती भिन्न। भृगुपति रघुपति अभिधान। परी दुजेपण असेना। ८२ जेणें निर्दाळिले सकळ क्षत्री। ते क्रोधज्योति होती अंतरीं। ती रघुपतीच्या मुखाभीतरी। प्रवेशली अकस्मात। ८३ मग भार्गवासी म्हणे रघुनंदन। म्यां जो चापासी लाविला बाण। यास सांगें कांहीं कारण। कोणीकडे टाकूं आतां। ८४ परशुराम म्हणे स्वर्गमार्ग। निरोधोनि टाकीं सवेग। मी चिरंजीव होऊनि सांगे। तपाचरण करीन। ८५ तों निमिष न लागतां गेला बाण। टाकिला स्वर्गमार्ग रोधून। चिरंजीव केला भृगुनंदन। हे कथा पूर्ण नाटकीं असे। ८६ असो आज्ञा घेऊनि ते वेळां। भार्गव बद्रिकाश्रमीं गेला। जनकासी निरोप दिधला। तोही गेला मिथिलेसी। ८७

एकात्म हो गये। २८० श्रीराम और परशुराम जब मिल गये, तो देखनेवाले लोगों को जान पड़ा कि दोनों साँचे में एक-रूप-से ढले (हैं), अथवा दो दीपक (मिलकर) एक ही हो गये (हैं)। ८१ दोनों एकरूप (हो गये) हैं; (अब) त्रिकाल में वे भिन्न नहीं हो सकते। यद्यपि (उनमें से) एक का नाम भृगुपति है, फिर भी (अब श्रीराम से उनकी) भिन्नता नहीं है। ८२ जिससे सब क्षत्रियों का निर्दालन किया, उनके क्रोध की वह ज्योति (जो) पहले अन्दर (मन में) थी, (अब) श्रीराम के मुख में सहसा प्रविष्ट हो गयी। २८३

फिर राम, परशुराम से बोले—'मैंने जो बाण, धनुष पर लगाया (है), उसके लिए कोई कार्य बताइए। बताइए कि अब मैं उसे किसके प्रति चलाऊँ?' ८४ (इस पर) परशुराम ने कहा—'तुम (इससे) स्वर्ग-मार्ग त्वरित रोक दो (जिससे मैं स्वर्ग में न जा सकूँ)। बताओ कि मैं चिरंजीव होकर तपश्चर्या करूँगा।' ८५ त्यों ही निमेष (पल) भी न लगा कि वह बाण चला और उसने स्वर्ग-मार्ग को रोक डाला। (इस प्रकार) भृगुनन्दन-परशुराम को चिरंजीवी कर दिया। यह अर्थात् इस सम्बन्ध में सम्पूर्ण कथा (वाल्मीकि-) नाटक में (उपलब्ध) है। २८६

अस्तु। उस समय श्रीराम से (बिदा) लेकर भार्गव परशुराम बदरिकाश्रम में गये। श्रीराम ने जनक को भी बिदा किया (और) वे भी मिथिला चले गये। ८७ इधर नरवीर-सिंह देवाधिदेव (अर्थात्

इकडे नरवीरपंचानन । देवाधिदेव रघुनंदन । दळभारेंसीं संपूर्ण । अयोध्येसी पातला । ८८ नगरांतून धांवती जन । दृष्टीभरी पाहिला रघुनंदन । साक्षात शेष नारायण । अयोध्येंत प्रवेशती । ८९ जें आत्मप्राप्तीचें स्थान । तें अयोध्यानगर देदीप्यमान । प्रथम दुर्ग स्थूळदेह जाण । सूक्ष्म आंतूनि दूसरें । २९० कारणदुर्ग जाणिजे तिजें । पुढें महाकारण दुर्ग विराजे । षट्चक्रांचीं गोपुरें सतेजें । ठायीं ठायीं झळकती । ९१ असो नगराबाहेरूनी । चाऱ्ही अवस्था चाऱ्ही अभिमानी । हुडे झळकती पाहतां दुरोनी । दिव्य तेज तळपतसे । ९२ स्थूल

देवों के देव) राम सम्पूर्ण सेना-सहित अयोध्या जा पहुँचे । ८८ (अयोध्या) नगर में से लोग (बाहर) दौड़ते हुए गये । उन्होंने पूरी दृष्टि से राम को देखा । साक्षात् शेष-नारायण (शेष और विष्णु) अयोध्या में प्रविष्ट हो गये । ८९ जो आत्म-प्राप्ति (ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति) का स्थान है, वह अयोध्यानगर देदीप्यमान है (था), उसका प्रथम (दिखायी देनेवाला) दुर्ग स्थूल देह समझिए । (उसकी) सूक्ष्म देह अन्दर दूसरा (दुर्ग) है । २९० तीसरा (दुर्ग) कारण दुर्ग समझिए । उसके आगे महाकारण दुर्ग विराजमान है । छह चक्र तेजस्वी गोपुरों के रूप में स्थान-स्थान पर चमक रहे हैं । ९१ [टिप्पणी : योग-विद्या के अनुसार देह के तीन मुख्य भेद माने गये हैं—१ स्थूल देह—अर्थात् प्राणि-मात्र की पृथ्वी, जल, आकाश, वायु और तेज—इन पाँच महाभूतों से बनी देह; २ सूक्ष्म देह—वासनात्मक देह, जो मन, बुद्धि, दस इंद्रियों और पाँच प्राणों—इन सत्रह तत्त्वों की बनी है । सूक्ष्म देह को 'लिंग देह' भी कहते हैं । ३ कारण देह—इसका अधिष्ठान अविद्या अथवा अज्ञान है । एक महाकारण नामक चौथी देह भी है ।

षट्चक्र : हठयोग शास्त्र के अनुसार शरीर के अन्तर्गत ये छह पद्माकार चक्र विद्यमान हैं—मूलाधार या आधार, लिंग, नाभि, हृत्, कण्ठ, मूर्धन् । ये छह चक्र शरीर के अन्तर्गत सुषुम्ना (सरस्वती) नाड़ी में स्थित हैं । इन चक्रों के अन्य अनेक नाम प्रचलित हैं ।

कवि ने 'अयोध्या नगरी' को लेकर योग-शास्त्र की शब्दावली के आधार से रूपक प्रस्तुत किया है । अयोध्या नगरी में ही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है—अर्थात् इस शरीर के रहते हुए ही साधक ब्रह्मज्ञान प्राप्त करता है ।]

अस्तु । (देह-रूपी अयोध्या) नगर के बाहर स्थित (जागृति,

सूक्ष्म तत्त्वें बहुत। या चर्या दाट झळकत। पंच प्राण दशेंद्रियें तेथ। वीर गर्जती ठायीं ठायीं। ९३ भू नीर अनळ अनिळ निराळ। हेचि भांडीं वरी विशाळ। शमदमांचे वृक्ष वरी निर्मळ। सदा सफळ विराजती। ९४ रज तम अविद्या केर। नगरांत नाहीं अणुमात्र। श्रवणचंदनसडे निरंतर। चहूंकडे घातले। ९५ मननाचिया रंगमाळा। घरोघरीं घातल्या निर्मळा। शांतिकस्तूरीचा सुवास आगळा। चहूंकडे येतसे। ९६ निजध्यास तोरणें बहुत। साक्षात्कार कळस झळकत। कर्दळी-स्तंभ विराजत। मनोजयाचे चहूंकडे। ९७ पूर्णानंदाचे कुंभ। जिनबोधें भरले स्वयंभ। आत्मप्रकाश दीप सुप्रभ। चहूंकडे लखलखित। ९८ अयोध्यावासियांच्या गळां। सदा डोलती

स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया नामक) चार अवस्थाओं और (विश्व, तेजस्, प्राज्ञ और प्रत्यगात्मा नामक उनके) चार अभिमानियों के रूप परकोटे, दूर से देखने पर चमकते (दिखायी देते) हैं। उनका दिव्य तेज जगमगाता है। ९२ (उसमें) स्थूल और सूक्ष्म तत्त्व (संख्या में) बहुत हैं। उनकी मुद्राएं बहुत दमकती हैं। (प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान नामक) पाँच प्राणों और (नेत्र, कर्ण, नाक, जीभ, त्वचा नामक पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और हाथ, पाँव, वाणी, गुदा तथा शिश्न नामक पाँच कर्मेंद्रियाँ कुल) दस इंद्रियों के रूप में वीर वहाँ स्थान-स्थान पर गर्जन करते हैं। ९३ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु (और) आकाश (नामक पाँच महातत्त्व)—ये ही (परकोटों के) ऊपर बड़ी तोपें हैं। उसपर शम और दम-रूपी निर्मल वृक्ष नित्य फल-युक्त हो विराजमान हैं। ९४ रजोगुण, तमोगुण (और) अविद्या का अणुमात्र भी कूड़ा-करकट (अयोध्या) नगर में नहीं है। चारों ओर श्रवण भक्ति-रूपी चन्दन के छिड़काव किये (रहते हैं)। ९५ मनन की निर्मल रंगावलियाँ घर-घर बनायी (हैं)। चारों ओर शान्ति-रूपी कस्तूरी की अनोखी सुगन्ध आ रही है। ९६ (अयोध्या में लोगों द्वारा किये जानेवाले भगवान के) निदिध्यास (निरन्तर चिन्तन) के बन्दनवार बहुत लगे (हैं)। (वहाँ) साक्षात्कार का कलश झलकता है (और) मनोनिग्रह-रूपी कदली-स्तम्भ चारों ओर सुशोभित हैं। ९७ पूर्ण (ब्रह्म-) आनन्द-रूपी कुम्भ आत्मबोध से अपने-आप भरे हुए हैं। आत्म-प्रकाश-रूपी, अच्छी कान्ति से युक्त दीपक चारों ओर जगमगा रहा है। ९८ अयोध्या के निवासियों के गले में सुमन (अच्छे पवित्र मन-रूपी फूलों की) मालाएँ नित्य झूलती रहती हैं। (उनके मुख में) दया-रूपी ताम्बूल रच

सुमनमाळा । दयेचा तांबूल रंगला । चतुर्थ मोक्षविशेष । ९९ समाधि आणि सुलीनता । सर्वांसी लाविल्या गंधाक्षता । शुद्धसत्ववस्त्रें समस्तां । मळ तत्त्वतां नसेचि । ३०० चाऱ्ही चौबारें बारा बिदी । सोळा बाजार बाहत्तर सांदी । चौदा दासी तिशुद्धी । पाणी वाहती अयोध्येंत । १ निरभिमानी चौसष्ट जणी । सदा विलसती श्रीरामसदनीं । आणिक एक चाऱ्ही आठ जणी । प्रीतिकरोनि राबती । २ अष्टभाव-मखरें कडोविकडी । नव महाद्वारें तेथें उघडीं । ऊर्ध्वमुख निजप्रौढीं । दशम द्वार झांकिलें । ३ अष्टांगयोगी रामभक्त । तेचि त्या द्वारें

गया है । (उन सबके लिए) सायुज्यता नामक चौथी विशेष मुक्ति (जिसमें जीव और ब्रह्म एकात्म हो जाते हैं) प्राप्य है । २९९ सबको समाधि और सुलीनता (ध्यान आदि में तन्मयता-) रूपी (चन्दन आदि के) लेप का तिलक तथा अक्षत लगाये (हैं) । सबके शुद्ध सत्त्व गुण-रूपी वस्त्र हैं (जिनमें) सचमुच (कोई) मैल नहीं है । ३०० चारों चौराहे, बारहों गलियाँ, सोलह बाज़ार, बहत्तर आँगन, चौदह दासियाँ और तीन शुद्धियाँ—(ये सब) अयोध्या में (मानो) पानी भरते हैं । श्रीराम के भवन में चौंसठ नारियाँ अभिमान-रहित होकर नित्य सुख-सुविधापूर्वक निवास करती हैं; और एक, चारों तथा आठों नारियाँ प्रीतिपूर्वक (वहाँ) कष्ट करती हैं । ३०१-३०२ [टिप्पणी : कवि ने परम्परागत संकेतों के अनुसार चार चौराहे आदि संख्या विशेषण-युक्त संज्ञाओं से विभिन्न बातें सूचित की हैं । इन संज्ञाओं के अर्थ संकेतों को लेकर मत-भेद हो सकता है । फिर भी संकेत यहाँ दिये जा रहे हैं—चार चौराहे = चार पुरुषार्थ अथवा वेद; बारह गलियाँ = बारह दर्शन; सोलह बाज़ार = सोलह कामधेनुएँ; बहत्तर आँगन = बहत्तर तीर्थ क्षेत्र; चौदह दासियाँ = चौदह विद्याएँ; तीन शुद्धियाँ = दैहिक, कायिक, वाचिक शुद्धियाँ । चौंसठ नारियाँ = चौंसठ कलाएँ; एक ब्रह्मविद्या; चारों और आठों नारियाँ = चारों अवस्थाएँ और आठों सात्त्विक भाव भेद] (स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वर-भंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रुपात और प्रलय नामक सत्त्वगुणाधिष्ठित) आठ भाव (मानो) सुव्यवस्थित देवधरे हैं । उनमें (योगविद्या के अनुसार स्वीकृत दो नेत्र, दो कर्ण, दो नासिका-पुट, मुख, गुद-द्वार तथा मूत्र-द्वार नामक) नौ महा द्वार खुल गये (हैं) । परन्तु आत्म-सामर्थ्य-रूपी ऊर्ध्वमुख (ऊपर की ओर खुला) ब्रह्मरंध्र नामक दसवाँ द्वार ढँका हुआ अर्थात् बन्द है । ३ जो रामभक्त (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,

येत जात । आणिकांस तो न सांपडे पंथ । असे गुप्त सर्वदा । ४ चतुर्दश रत्नें साधोनि वृत्रारी । जैसा प्रवेशे अमरपुरीं । कौसल्यात्मज ते अवसरीं । तैसा अयोध्येंत प्रवेशला । ५ सफळ देखोनि दिव्य द्रुम । बहुत धांवती विहंगम । तैसा पहावया आत्माराम । नगरजन धांवती । ६ देव वर्षती सुमनसंभार । धडकत वाद्यांचा गजर । मंडपघसणी झाली थोर । श्रीराम पाहावया कारणें । ७ देखोनियां रामचंद्र । वेधले जन-नयन-चकोर । उचंबळला सुखसमुद्र । प्रेमभरतें दाटलें । ८ कीं श्रीराम देखतां दिनमणी । टवटवल्या निजभक्त-कमळिणी । सकळ लोकां अलंकार लेणीं । राघवेंद्रें दीधलीं । ९ भांडारें फोडोनि दशरथें । निज धन वांटिलें याचकांतें । गजारूढ बंदीजन तेथें । सूर्यवंश वाखाणिती । ३१० निजात्मसदनीं रघुनाथ ।

ध्यान और समाधि नामक) आठ योगों की साधना करते हैं, वे ही उस (दसवें) द्वार में से आते-जाते रहते हैं। परन्तु (उनके अतिरिक्त) दूसरों को वह मार्ग नहीं मिलता; (क्योंकि) वह सदा गुप्त (जो) है। ४ (क्षीर-सागर का मन्थन करके लक्ष्मी, कौस्तुभ, पारिजातक, सुरा, धन्वन्तरि, चन्द्रमा, कामधेनु, ऐरावत गज, रम्भा आदि अप्सराएँ, सप्तमुखी अश्व, हलाहल विष, शाङ्‌र्ग धनुष, शंख और अमृत नामक) चौदह रत्नों को सिद्ध (प्राप्त) करके इन्द्र जैसे देवनगरी में प्रविष्ट हो गया, वैसे उस समय कौसल्यात्मज श्रीराम ने अयोध्या में प्रवेश किया। ५ जिस प्रकार (किसी) दिव्य वृक्ष को फलयुक्त (हुए) देखकर बहुत पक्षी (उसकी ओर) दौड़ते (तेज़ गति से जाते) हैं; उसी प्रकार (अयोध्या के) नागरिक (मूर्तिमान परब्रह्म) श्रीराम को देखने (श्रीराम के दर्शन करने) के लिए दौड़ते हैं (थे)। ६ (उस समय श्रीराम पर) पुष्प-राशियाँ बरस रही थीं। वाद्य धड़धड़ शब्द करते हुए गरजते हैं (थे)। श्रीराम के दर्शन करने के लिए (आये हुए लोगों की) मण्डप में बहुत भीड़ हो गयी। ७ श्रीराम-रूपी चन्द्र को देखकर लोगों के नयन-रूपी चकोर (उनकी ओर) आकर्षित हो गये। सुख-समुद्र उमड़ उठा। उनके प्रेम में बहुत बड़ा ज्वार आ गया। ८ अथवा राम-रूपी सूर्य को देखते ही उनके अपने भक्त-रूपी कमल लहलहा गये। (तत्पश्चात्) राम ने सब लोगों को अलंकार-आभूषण प्रदान किये। ९ दशरथ ने भण्डार खोल (मुक्त) कर दिये (और) अपना धन याचकों को बाँट डाला। हाथियों पर आरूढ़ बन्दीजन सूर्यवंश की प्रशंसा कर रहे हैं (थे)। ३१० सामर्थ्यशील श्रीराम ने सीता-सहित अपने भवन में प्रवेश

सीतेसहित प्रवेशे समर्थ। तनमनधनेंसीं यथार्थ। मूद वरोन ओंवाळिजे। ११ रामविजय ग्रंथ प्रचंड। येथें संपलें बालकांड। पुढें अयोध्याकांड परम गोड। श्रवणें कोड पुरवी पैं। १२ अग्राकडोनि इक्षुदंड। मूळाकडे विशेष गोड। सप्तकांड तैसा हा इक्षुदंड। बहुत रसाळ पुढें पुढें। १३ पापपर्वत जडभार। रामविजय त्यावरी वज्र। संतश्रोते पुरंदर। चूर्ण करिती निजबळें। १४ श्रीमद्भीमातटविलासा। ब्रह्मानंदा पंढरीशा। श्रीधरवरदा पुराणपुरुषा। अभंगा अविनाशा अक्षया। १५ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत श्रोते चतुर। अष्टमाध्याय गोडा हा। ३१६

॥ श्रीरामचंद्रार्पणमस्तु ॥

॥ बाल-काण्ड समाप्त ॥

किया। सचमुच तन-मन-धन सहित सबका उतारा कर श्रीराम पर निछावर करें। ३११

श्रीराम-विजय प्रचण्ड ग्रन्थ है। यहाँ (उसका) बाल काण्ड समाप्त हुआ। (इसके) आगे परम मधुर अयोध्या काण्ड है। (उसका) श्रवण करते हुए मेरी अभिलाषा को पूर्ण कीजिए। ३१२ अग्रभाग से जड़ की ओर इक्षु (ईख)-दण्ड विशेष मधुर होता है। सात काण्डों वाला यह राम-विजय ग्रन्थ वैसा ही इक्षु-दण्ड है—आगे-आगे जाते हुए वह (अधिकाधिक) रसयुक्त है। ३१३ पाप-रूपी पर्वत बहुत भारी है। उसके लिए राम-विजय ग्रन्थ (मानो) वज्र है। सन्त-श्रोता इन्द्र हैं, जो अपने बल से (उस पर्वत को) चूर्ण कर देते हैं। ३१४

हे श्रीमद्भीमा नदी के तट पर विलास करनेवाले (गुरु) ब्रह्मानन्द-रूपी 'पंढरपुर-नगरेश (श्रीविट्ठल)'! हे श्रीधर के लिए वर-दाता पुराण-पुरुष! हे अभंग अविनाशी और अक्षय ब्रह्म-भगवान्! (यह) श्रीराम-विजय नामक सुन्दर ग्रन्थ वाल्मीकि-नाटक पर आधारित है। चतुर श्रोता उसके इस मधुर अष्टम अध्याय का सदा श्रवण करें। ३१५-३१६

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

॥ बाल-काण्ड समाप्त ॥

अयोध्या काण्ड

अध्याय—९

श्रीगणेशाय नमः ।। श्रीरामचंद्राय नमः ।। श्रीगुरवे नमः ।। श्रीदत्तात्रेयाय नमः ।।

नमूं श्रीगुरु ब्रह्मानंद । जो जगदंकुरमूळकंद । जो निज-जनतारक प्रसिद्ध । कैवल्यदाता सुखाब्धि । १ जो योगद्वीपींचें निधान । जो वैराग्यवल्लीचें सुमन । कीं वेदांतसमुद्रींचा मीन । आत्मजीवनीं तळपतसे । २ कीं तो धर्ममेरूचें शिखर । कीं चिदाकाशींचा जलधर । कीं कृपासागरींचें सुंदर । दिव्य रत्न प्रकटलें । ३ कीं शांतीचें चंद्रमंडळ । कीं सत्यतेजें सूर्य केवळ । कीं सत्वसरोवरींचें कमळ । किंवा सुफळ आनंदवृक्ष । ४ कीं क्षमा-मलयपर्वत पूर्ण । कीं निर्विकार दिव्य चंदन । मुमुक्षु-

---

श्रीगणेशाय नमः ।। श्रीरामचन्द्राय नमः ।। श्रीगुरवे नमः ।। श्रीदत्तात्रेयाय नमः ।।

मैं उस श्रीगुरु ब्रह्मानन्द (रूपी परब्रह्म) को नमस्कार करता हूँ, जो वह मूलकन्द है जिससे जगत् (रूपी विशाल वृक्ष) का अंकुर उत्पन्न हुआ है, जो अपने (भक्त) जनों का सुविख्यात उद्धार-कर्ता है और जो कैवल्य पद का दाता तथा सुख का सागर है । १ मैं उस गुरु ब्रह्मानन्द का नमन करता हूँ, जो योग रूपी द्वीप में स्थित धनकोश है, अथवा जो वैराग्य रूपी लता में विकसित पुष्प है, अथवा वेदान्त रूपी समुद्र में रहने वाला मीन (मत्स्य, मछली) है जो आत्मज्ञान रूपी जल में चमकता है । २ अथवा वह तो धर्मरूपी मेरु पर्वत का शिखर है, अथवा चिदाकाश (अविनाशी) आकाश में दिखायी देनेवाला मेघ है, अथवा (उसके रूप में) कृपा रूपी समुद्र में से दिव्य रत्न (ही) प्रकट हो गया है । ३ अथवा वह शान्ति रूपी चन्द्र-मण्डल है, अथवा सत्य के तेज में (जगमगाता) केवल सूर्य है, अथवा सत्त्व भाव के सरोवर में (विकसित) कमल है, अथवा अच्छे फलों से युक्त आनन्द रूपी वृक्ष है । ४ अथवा वह क्षमा रूपी पूर्णरूप मलय पर्वत है । अथवा निर्विकार स्थिति रूपी दिव्य चन्दन है जिसे मुक्ति के अभिलाषी सज्जन रूपी सर्प नित्य ही घेरकर

फणिवर वेष्टून। सर्वदाही बैसले। ५ कीं शुद्धब्रह्मभागीरथी-जळ। तेथींचा लोट अति निर्मळ। भक्ति विरक्ति ज्ञान केवळ। तीर्थराज अवतरला। ६ ऐसा महाराज श्रीगुरुनाथ। त्यासी परिसाचा देऊं दृष्टांत। तो लोहाचें सुवर्ण करीत। परी आपणाऐसें न करवे। ७ सुरभि चिंतामणि साचार। कल्पवृक्ष म्हणावा उदार। तरी तो कल्पिलेंचि देणार। परी आपणाऐसें न करवे। ८ जनकजननींची उपमा कैसी। द्यावी आतां सद्‌गुरूसी। तीं जन्मदायक निश्चयेंसीं। परी हा जन्ममरणासी दूर करी। ९ चौऱ्यांयशीं लक्ष योनि अमूप। सर्वांठायीं असती मायबाप। परी सद्‌गुरु दुर्लभ चित्स्वरूप। जन्मोजन्मीं कैंचा तो। १० जो भवइंधनदाहक वैश्वानर। अज्ञान-तिमिर-च्छेदक दिवाकर। कीं दुःखपर्वतभंजन पुरंदर। बोधवज्र झळके वरी। ११ ऐसा महाराज गुरुनाथ। त्यासी शिष्य विरक्त

बैठे हुए हैं। ५ अथवा उसके रूप में तीर्थराज अवतरित हुआ (है) जहाँ विशुद्ध ब्रह्म रूपी गंगा-जल का रेला अति निर्मल है और जहाँ विशुद्ध भक्ति, विरक्ति और ज्ञान है। ६ ऐसे मेरे श्रीगुरुनाथ महाराज हैं। उनके लिए पारस की दृष्टान्त दूँ (परन्तु वह उचित नहीं है; क्योंकि) वह (पारस) लोहे को सोना बना तो देता है, किन्तु (उससे लोहे को) अपने समान (पारस) नहीं किया जा सकता। (अर्थात् सद्‌गुरु पारस से भी बड़ा है।) ७ वस्तुतः कामधेनु, चिन्तामणि (या) कल्पवृक्ष को उदार कहा जाए। (परन्तु वे गुरु की बराबरी नहीं कर सकते; क्योंकि) वह कल्पित अर्थात् इच्छित वस्तु मात्र देता है; तथापि वह (किसी को) अपने समान नहीं बना पाता। ८ सद्‌गुरु से जनक और जननी की उपमा भी अब कैसे दें? अहो, उनसे तो निश्चय ही ऋण-मुक्त हो सकते हैं; परन्तु सद्‌गुरु के विषय में ऐसी बात नहीं है; क्योंकि वह (सद्‌गुरु शिष्य से) जन्म-मरण (के फेरे) को ही दूर करता है—शिष्य को मुक्ति दिलाता है। ९ (कहते हैं कि) चौरासी लाख अपार योनियाँ हैं; सबमें (प्राणी के) माता-पिता होते हैं। परन्तु सद्‌गुरु तो दुर्लभ चित् स्वरूप अर्थात् (साक्षात्) ईश्वर (ही) होता है। वह प्रत्येक जन्म में कैसे (प्राप्य) हो सकता है? १० महाराज सद्‌गुरुनाथ तो ऐसे व्यक्ति होते हैं कि जो संसार अर्थात् सांसारिक विकाररूपी ईंधन को जलानेवाली (मानो) अग्नि है, जो अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले सूर्य हैं अथवा दुःखरूपी पर्वत को भग्न करने वाले इंद्र हैं जिनका

शरणागत। भ्रमर पद्मकोशीं बैसत। तैसे लुटित चरण-रज। १२ कीं स्फुलिंग मिळे अग्नींत। कीं जळबिंदु पडे सरोवरांत। कीं सरिता सागरीं ऐक्य होत। ऐसे भक्त गुरु-चरणीं। १३ कीं मुशींत आटिले अलंकार। कीं जळीं विरे जळगार। कीं तरंग मोडून साचार। एक नीर उरे पैं। १४ ऐसे गुरुचरणीं मिळोन। गुरुदास्य करिती अनुदिन। क्षीरा-ब्धीमाजी उपमन्य। विलसे जैसा सर्वदा। १५ कीं जान्हवींत मणिकर्णिका तीर्थ। कीं भीमेंत चंद्रभागा विख्यात। तैसे भजनगंगेंत यथार्थ। गुरुभक्ति वंद्य पैं। १६ ऐसें ऐकतां गुरु-

बोधरूपी वज्र ऊपर जगमगाता रहता है। ऐसे उस गुरु की शरण में (सांसारिक विषय-वासनाओं से) विरक्त शिष्य आये हुए होते हैं। जिस प्रकार कमल के कोश में भौंरे बैठते हैं (और वहाँ पुष्परज का सेवन करते हैं) उसी प्रकार वे (गुरु के चरण-कमलों में बैठकर) उनके चरण-रज को लूटते हैं। ११-१२ अथवा चिनगारी आग में मिल (कर तद्रूप हो) जाती है, अथवा जल-बिन्दु सरोवर में पड़ (कर उसके पानी के साथ एक रूप हो) जाता है, अथवा (समुद्र में मिल जाने पर) नदी और समुद्र में जैसे एकत्व (अभिन्नत्व) हो जाता है, वैसे भक्त गुरु के चरणों में (एक रूप) हो जाते हैं। १३ घड़िया में आभूषण पिघल गये हों (जिससे उनका अलग-अलग अस्तित्व मिट जाता है और वे एकरस सोना ही बन जाते हैं), पानी में ओला (गलकर) विलीन हो जाता है, अथवा अथवा (पानी पर उभरी हुई) तरंगों के टूटने पर सचमुच एकमात्र पानी शेष रह जाता है; उसी प्रकार शिष्य गुरु-चरणों में मिल कर प्रतिदिन गुरु की सेवा करते हुए ठीक वैसे रहते हैं, जैसे क्षीरसागर में उपमन्य नित्य रहता है §। १४-१५ अथवा गंगा (तटस्थ तीर्थों) में मनकर्णिका तीर्थ (वंद्य) है, अथवा भीमा नदी (के अंशों) में (पंढरपुर से बहनेवाली उसकी) चन्द्रभागा (नामक धारा) विख्यात है, उसी प्रकार भजन (भक्ति) रूपी गंगा में सचमुच गुरु-भक्ति वंद्य है। १६

§ [टिप्पणीः—उपमन्य नामक एक दरिद्र बालक को उसकी माता आटे में पानी मिलाकर दूध के रूप में पिलाया करती थी। उसे एक दिन कहीं सच्चा गोरस पीने को मिला। तदनन्तर घर पर दिया जानेवाला 'तथाकथित दूध' उसे जँचा नहीं। माता से पूछने पर उसने कहा—'भगवान शिवजी की कृपा जिनपर होती है, उन्हें दूध मिलता है। हम लोग अभागे हैं।' इसपर उस बालक ने तपस्या से शिवजी को प्रसन्न कर लिया। उनसे वरदान के रूप में उपमन्य को क्षीरसागर मिल गया। तबसे उपमन्य का निवास क्षीरसागर में माना जाता है।]

स्तवन। परम आनंदले संतजन। धन्य रे धन्य म्हणोन। तर्जनी मस्तक डोलविती। १७ ऐसें देखोनि श्रीधरें। नमस्कार घातला प्रेमादरें। म्हणे तुम्ही रामकथामृत-पात्रें। सादर श्रवणीं बैसलां। १८ तुम्ही ज्ञानगंगेचे ओघ निर्मळ। कीं विवेकभूमीचीं निधानें केवळ। कीं कृपार्णवींचीं जहाजें सबळ। क्षमाशीड वरी तळपे। १९ कीं नवविध भक्तीचीं दिव्य द्वीपें सुंदरें। कीं अनुभवशास्त्रींचीं मंदिरें। कीं पिकलीं आनंदक्षेत्रें। समसमान चहूंकडे। २० परोपकारनभींचीं नक्षत्रें निर्मळ। परम गुणप्रिय मुक्तमराळ। कीं शब्दरत्नग्राहक सकळ। या ग्रंथ-श्रवणीं मिळाले। २१ कीं रामकथा-कमळिणीचे भ्रमर। कीं अवधानदाते जलधर। माझे शब्द आरुष निर्धार। परी तुम्हीं प्रीति ठेविली। २२ रानपक्षी शुक यथार्थ। त्याचे शब्द ऐकतां तटस्थ। होती शास्त्रज्ञ पंडित। तैसेंचि येथें जाहलें। २३

इस प्रकार (श्रीधर कवि कृत) गुरु का स्तवन सुनकर सन्तजन परम आनन्दित हो गये। 'धन्य! अहो धन्य!' कहते हुए वे तर्जनी और मस्तक हिलाते हैं (थे)। १७ ऐसा देखकर श्रीधर (कवि) ने उन्हें प्रेम और आदर के साथ (साष्टांग) नमस्कार किया और कहा— 'आप लोग जो कि आदर-पूर्वक (श्रीराम की कथा का) श्रवण करने के लिए बैठे हैं, (मानो साक्षात्) रामकथा रूपी अमृत (से भरे) पात्र हैं। १८ आप ज्ञान-गंगा के निर्मल प्रवाह हैं, अथवा विवेक-भूमि में स्थित (रत्न) भण्डार मात्र हैं, अथवा कृपा रूपी सागर में चलनेवाले मज़बूत जहाज़ हैं जिनमें क्षमा रूपी पाल जगमगाते रहे हैं। १९ अथवा आप नवविधा भक्ति के सुन्दर द्वीप हैं, अथवा आत्मानुभव शास्त्र के मंदिर हैं, अथवा (आपके रूप में) आनन्द-क्षेत्र चारों ओर समान रूप से फल गये हैं। २० अथवा आप परोपकार के आकाश में (चमकनेवाले) निर्मल नक्षत्र (तारे) हैं, अथवा आप गुणों को प्रिय माननेवाले, मोतियों का सेवन करनेवाले हंस हैं, अथवा आप सब रत्नों के ग्राहक हैं जो (मेरे द्वारा प्रस्तुत किये जानेवाले) ग्रन्थ का श्रवण करने के लिए इकट्ठा हो गये हैं। २१ अथवा आप राम-कथा रूपी कमलिनी के (प्रति आसक्त) भ्रमर हैं, अथवा अवधान के दाता मेघ हैं। मेरे शब्द निश्चय ही अशिष्ट हैं फिर भी आप (मेरे प्रति) प्रेमभाव रखते हैं। २२ वस्तुतः तोता तो वन्य पक्षी है; फिर भी उसके शब्द को सुनकर शास्त्र के वेत्ता पंडित चकित हो जाते हैं। यहाँ (मेरे सम्बन्ध में) ऐसा ही हुआ (है)।

कीं बोवडें बोलतां बालक। अत्यंत संतोषे जनक। तैसें शब्दांचें कौतुक। संतजन करिती पैं। २४ तरी आतां इतुकेंच करा सत्वर। सादरता हे दिव्य अलंकार। मजलागीं देऊन साचार। संतजनीं गौरवावें। २५ वक्ता-क्षेत्र पिकलें पूर्ण। परी सादरता पाहिजे वरी घन। चित्तव्याकुळता हें अवर्षण। तेणें मोड करपती। २६ बोलती संत श्रोते चतुर। तुझीं वचनें हा सुधाकर। येणें आमुचे कर्णचकोर। तृप्त जाहले निर्धारें। २७ असो आतां वाग्वल्ली सुंदरी। चढे अयोध्या-कांड-मंडपावरी। तेथींचीं फळें निर्धारीं। भक्तचतुरीं सेविजे। २८ मागें अष्टमाध्यायीं कथन। जानकी परिणिली कोदंड भंगोन। त्यावरी भृगुपतीचा दर्प हरोन। रघुपति आला अयोध्ये। २९ कैकयीचा बंधु विख्यात। परम प्रतापी संग्रामजित। मान देऊनि बहुत। लग्नासी आणिला दशरथें। ३० मिथिलेचा

(अर्थात् मेरी अटपटी वाणी को सुनकर आप मुग्ध हो गये हैं।) २३ अथवा बालक के तुतले बोलने पर उसका पिता अत्यन्त सन्तुष्ट हो जाता है। वैसे सन्तजन (मेरे द्वारा प्रस्तुत) शब्दों की (प्यार से) सराहना करते हैं। २४ इसलिए (आप) अब (मेरे लिए) त्वरित इतना ही कीजिए—सन्तजन ध्यान अथवा तत्परता रूपी दिव्य आभूषण प्रदान करके मुझे सचमुच गौरवान्वित करें। २५ वक्ता रूपी क्षेत्र पूर्णतः फल-युक्त हो गया (है), परन्तु आदर-युक्त तत्परता रूपी ऊपर (से बरसनेवाला) मेघ आवश्यक है। (ऐसे क्षेत्र के लिए) मन की व्याकुलता ही अवर्षण (सूखा) है; उससे (क्षेत्र में उत्पन्न) अंकुर (झुलसकर) सूख जाते हैं। २६ (इसपर) चतुर श्रोता-सन्त कहते हैं—'तुम्हारे वचन ही चन्द्रमा हैं। उससे हमारे कर्ण रूपी चकोर निश्चय ही तृप्त हो गये (हैं)।' २७ (कवि श्रीधर कहते हैं—) 'अस्तु। अब यह वाणी रूपी सुन्दर लता अयोध्या रूपी मण्डप पर चढ़ रही है। चतुर भक्त वहाँ के (अर्थात् उसमें आये हुए) फलों का निश्चय-पूर्वक सेवन करें।' २८

पिछले आठवें अध्याय में यह कथन किया गया कि श्रीराम ने धनुष को तोड़कर सीता से परिणय (विवाह) किया; उसके पश्चात् भृगुकुलपति परशुराम के घमण्ड को छुड़ाकर वे अयोध्या आ गये। २९ कैकेयी के संग्रामजित (=युधाजित) नामक (एक) परम प्रतापी एवं विख्यात बन्धु था। दशरथ उसे बहुत सम्मान करके (श्रीराम के) विवाह के लिए ले आये (थे)। ३० मिथिला नगर में सम्पन्न विवाह-समारोह को देखकर

लग्नसोहळा पाहून। अयोध्येसी आला परतोन। कैकयीस म्हणे भरत शत्रुघ्न। नेऊं आपुले ग्रामातें। ३१ ऐकोनि बंधूचें वचन। येरी म्हणे अवश्य जा घेऊन। परी रायातें पुसोन। मग दोघांतें नेइंजे। ३२ दशरथास पुसे संग्रामजित। मास एक शत्रुघ्न आणि भरत। स्वराज्यासी नेऊन त्वरित। आणून मागुती पोंचवूं। ३३ अवश्य म्हणोनि अजसुत। कैकयी भरतासी सांगत। तुवां मातुळगृहासी जावें त्वरित। शत्रुघ्नासी घेऊनियां। ३४ भरत म्हणे श्रीरामावांचून। मज न गमे एकही क्षण। रघुपतीचे सेवेविण। न रुचे मज आन कांहीं। ३५ श्रीराम चंद्र मी चकोर। मी चातक रघुवीर अंबुधर। राम सुरभि मी वत्स साचार। वियोग सहसा सोसेना। ३६ श्रीरामसेवा सांडोन। इतर सुखें इच्छी कोण। पीयूषतुल्य अन्न टाकून। कोण वमन विलोकी। ३७ मुक्ताफळें हंस टाकोन। प्राणांतींही न भक्षी शेण। कल्पद्रुमींचा विहंगम जाण। बाभुळेवरी न बैसे। ३८ घृतमधुदुग्ध-सरोवर।

वह अयोध्या लौट आया, तो उसने कैकेयी से कहा—'मैं भरत और शत्रुघ्न को अपने नगर ले जाता हूँ।' ३१ (अपने) भाई की यह बात सुनकर वह (कैकेयी) बोली—'अवश्य ले जाओ। परन्तु राजा से पूछकर (ही) बाद में दोनों को ले जाना।' ३२ युधाजित ने दशरथ से पूछा (कहा)—'भरत और शत्रुघ्न को एक महीना अपने राज्य में ले जाकर मैं त्वरित वापस लाकर पहुँचा दूँगा।' ३३ (इसपर) दशरथ ने कहा—'अवश्य (ले जाओ)।' फिर कैकेयी ने भरत से कहा—'तुम शत्रुघ्न को लेकर (अपने) मामा के घर शीघ्र जाओ।' ३४ (यह सुनकर) भरत ने कहा—'श्रीराम को छोड़कर मुझे एक क्षण भर भी चैन नहीं आता। रघुपति श्रीराम की सेवा के सिवा मुझे दूसरी कोई बात नहीं जँचती। ३५ श्रीराम चन्द्र हैं, तो मैं चकोर हूँ; मैं चातक हूँ, तो श्रीराम हैं बादल, श्रीराम कामधेनु हैं, तो मैं सचमुच (उसका) बछड़ा हूँ—इसलिए मुझसे उनका विरह प्राय: सहा नहीं जाता। ३६ श्रीराम की सेवा का त्याग कर अन्य सुखों की इच्छा कौन करेगा? अमृत-तुल्य अन्न को छोड़कर कौन वमन (किये अन्न) को (खाने की इच्छा से) देखेगा? ३७ मोतियों का त्याग करके हंस प्राणों के निकलते भी गोबर नहीं खाता। समझ लीजिए, कल्पवृक्ष पर रहनेवाला पक्षी बबूल के पेड़ पर (कभी भी) नहीं बैठता। ३८ यद्यपि घी, मधुरस या दूध का सरोवर अच्छे रस से अपार

जरी सुरसें भरलें अपार । परी जीवन सांडूनि जळचर । कदा तेथें न जाती । ३९ ऐसें बोलतां भरत । नेत्रीं आले अश्रुपात । माता म्हणे एक मासपर्यंत । क्रमोनि येईं सवेंचि । ४० नुल्लंघवे मातृवचन । भरत श्रीरामास पुसे येऊन । मग बोले जानकीमनमोहन । वा रे लौकरी येइंजे । ४१ भरतशत्रुघ्नांनीं ते वेळे । रघुवीरचरण वंदिले । चतुरंग दळ सिद्ध जाहलें । रथीं बैसले दोघेही । ४२ राया दशरथाचे कुमर । श्रीरामचरणाब्जभ्रमर । मातुळग्रामासी सत्वर । दळभारेंसीं पातले । ४३ इकडे अयोध्येसी रामलक्ष्मण । सर्वदा करिती गुरुसेवन । तैसेचि दशरथाचें भजन । रघुनंदन करीतसे । ४४ वसिष्ठमुखें नित्य विद्याश्रवण । श्रीराम करीतसे आपण । चतुःषष्टिकलाप्रवीण । रघुनंदन जाहला । ४५ मग धनुर्विद्येचा अभ्यास । करिता जाहला परमपुरुष । रंगभूमि साधूनि विशेष । युद्धकळा शिके तेथें । ४६ वेणुमस्तकीं घालितां कुठार । चिरत जाय जैसा दूर । तैशी श्रीरामबुद्धि तीव्र । तर्क अपार पावतसे । ४७

भरा हुआ हो, तथापि जलचर (मत्स्य आदि प्राणी) पानी को छोड़कर वहाँ कभी भी नहीं जाते ।' ३९ ऐसा कहते हुए भरत की आँखों से अश्रुपात हो आने लगा, तो माता (कैकेयी) ने (उससे) कहा—'एक महीने तक समय (वहाँ) बिताकर साथ ही में आ जाओ ।' ४० माता की बात (आज्ञा) का उल्लंघन नहीं किया जा पाता । इसलिए भरत ने (पास) आकर श्रीराम से पूछा, तो जानकी-मन-मोहन (श्रीराम) ने कहा—'शीघ्र ही लौट आओ ।' ४१ भरत और शत्रुघ्न ने उस समय श्रीराम के चरणों का वन्दन किया । चतुरंग सेना सज्ज हो गयी, तो वे दोनों ही रथ में बैठ गये । ४२ (फिर) राजा दशरथ के दोनों पुत्र तथा श्रीराम-चरण रूपी कमल (में आसक्त)-भ्रमर-भरत और शत्रुघ्न सेना के साथ (अपने) मामा के स्थान शीघ्र ही जा पहुँचे । ४३

इधर अयोध्या में राम और लक्ष्मण नित्य गुरु की सेवा करते । वैसे ही श्रीराम दशरथ की सेवा करते । ४४ स्वयं श्रीराम (गुरु) वसिष्ठ के मुख से (विद्या-सम्बन्धी बातों का) श्रवण नित्य किया करते । (इससे) वे चौंसठ कलाओं में प्रवीण हो गये । ४५ फिर परम-पुरुष (श्रीराम) ने धनुर्विद्या का अध्ययन किया । रंग-भूमि (रण-भूमि) को विशेष रूप से सिद्ध (तैयार) करके वहाँ उन्होंने युद्ध-सम्बन्धी कला की शिक्षा पायी । ४६ बाँस के सिरे (अग्रभाग) पर कुल्हाड़ी से आघात करने पर

वसिष्ठ धनुष्यबाण घेऊन । जें जें मांडून दावी ठाण । त्याहून विशेष रघुनंदन । दावी करून गुरूसी । ४८ अस्त्रशस्त्रविद्या-प्रवीण । जाहले राम आणि लक्ष्मण । ते परीक्षा पाहावया अजनंदन । रंगमंडपीं वैसला । ४९ रंगमंडपाची रचना । न वर्णवेचि सहस्त्रवदना । तें तेज विलोकितां सहस्त्रकिरणा । परमाश्चर्य वाटतसे । ५० शशांकप्रभेसम पूर्ण । कोरिले काश्मीर पाषाण । त्यांची पोंवळी प्रभा घन । सभोंवतीं रचियेली । ५१ त्यामाजी सप्तरंगी पाषाण । चक्रजाळ्या चौकटी पूर्ण । माजी घातल्या दारुण । पाहतां आश्चर्य वाटतसे । ५२ साधिलें पाचुबंद अंगण । गरुडपाचूचीं जोतीं पूर्ण । निळयाचे गज घडोन । तेचि तोळंबे लाविले । ५३ त्यावरी हिरेयाचे स्तंभ । वरी वैडूर्यउथाळीं स्वयंभ । सुवर्णाचीं तुळवटें सुप्रभ । लंबायमान पसरलीं । ५४ गरुडपाचूचे दांडे

वह जैसे दूर (जड़) तक चिर जाता है, राम की बुद्धि वैसी (कुल्हाड़ी की धार-सी) तेज है (थी), जो अपार तर्क कर पाती है (थी) —अर्थात् किसी विषय में गहराई तक पहुँचकर उसके मर्म को ग्रहण कर सकती थी । ४७ धनुष-बाण लेकर वसिष्ठ जो-जो पैंतरा लेकर दिखाते श्रीराम उससे भी विशेष सुन्दर (पैंतरा) दिखा देते । ४८ राम और लक्ष्मण अस्त्र-शस्त्र विद्या में प्रवीण हो गये, तो उनकी परीक्षा कर देखने के लिए दशरथ राजा रंग-मण्डप (रण-भूमि) में बैठे । ४९ सहस्र-मुख शेष द्वारा भी (उस) रंग-मण्डप की रचना (की सुन्दरता) का वर्णन नहीं किया जा सकता । उसके तेज को देखकर सहस्र-किरण सूर्य को (भी) परम आश्चर्य अनुभव हो रहा था । ५० चन्द्र की कान्ति-सी कान्ति वाले कश्मीरी पाषाणों को (नक्काशी आदि बनाने के लिए) कुरेदा हुआ था । उनकी घनी प्रभा से युक्त चौड़ी चहारदीवारी चारों ओर बनायी हुई थी । ५१ उसमें सतरंगे पत्थर लगाये हुए थे । उस (चहारदीवारी) में पूर्ण अर्थात् बड़े आकारवाले सख्त चक्र, जालियाँ और चौखटें बनायी हुई थीं । उन्हें देखकर आश्चर्य होता था । ५२ पन्ना नामक रत्न से (जटित) आँगन तैयार किया हुआ था । राजनील रत्न के पूरे चबूतरे बने थे । नीलम रत्न के हाथी गढ़कर उन्हीं को खम्भों के लिए आधार-शिलाओं के (थाले के) रूप में लगा दिया (था) । ५३ उनपर हीरों के स्तम्भ (खम्भे) थे (और) उनके ऊपर वैदूर्य नामक रत्न से बने (थाले-से) आधार थे । ऊपर सोने के अच्छी कान्तिवाले शहतीर फैले हुए थे । ५४ राजनील

विराजती । आरक्त माणिककिलचा झळकती । चर्या शेष-फणाकृती । जैसे गभस्ती वळीनें । ५५ एकावरी एक नवखण । तेथें रात्रीस नाहीं कारण । जेथें गरुडपाचूचे रावे पूर्ण । शब्द करिती नवल हें । ५६ निळयाचे मयूर धांवती । रत्नांचीं गोलांगुलें नाचती । छप्पन्न देशींच्या नृपाकृती । चित्रें भिंतीं-वरी पैं । ५७ खांबसूत्रींच्या पुतळिया । नाचती गिरक्या घेऊनियां । नृसिंहमूर्ति स्तंभांतूनियां । हुंकारती क्षणक्षणां । ५८ ऐशिया रंगमंडपांत । बैसता जाहला द्विपंचरथ । वसिष्ठादि ऋषी समस्त । अष्टाधिकारी आणि प्रजा । ५९ मंडपजाळी-वाटे तत्त्वतां । पाहती कौसल्यादि माता । श्रीरामें विद्या साधिल्या समस्ता । देखावया आस्था सकळांची । ६० जैसा नक्षत्रांमाजी अत्रिसुत । तैसा सभेसी राजा दशरथ । इंद्राजवळी

रत्न के (बनाये हुए) डण्डे सुशोभित थे । लाल मानिक रत्न की खपचियाँ (जो छत के तख्तों के बीच बैठायी हुई थीं) जगमगाती थीं । शेष के फन के आकार वाली (ऐसी) मुखाकृतियाँ (बनाकर रखी हुई) थीं, जैसे (मानो) वे पंक्ति में (विराजमान) सूर्य हों । ५५ (उस प्रासाद के) एक के ऊपर एक (कुल) नौ खण्ड थे । जहाँ यह आश्चर्य था कि राज-नील रत्न के (बनाये हुए) पूर्णाकृति तोते ध्वनि किया करते थे, वहाँ (स्वयं प्रकाशित रत्नों के कारण मानो) रात के होने का कोई कारण नहीं था । ५६ (वहाँ) नीलम रत्न के (बनाये हुए) मोर दौड़ते थे । (विभिन्न) रत्नों के (बनाये हुए) गोलांगूल (जाति के बन्दर) नाचते थे । छप्पन (अनेकानेक) देशों के राजाओं की प्रतिमाएँ और तसवीरें दीवारों पर (टँगी हुई) थीं । ५७ खम्भों से बँधे सूत्रों में बँधी (कठ-) पुतलियाँ चक्कर लगाते हुए नाचती थीं । स्तम्भों में से नरसिंह की मूर्तियाँ प्रतिक्षण हुँकार भरती थीं । ५८ ऐसे (उस) रंग-मण्डप (रणांगण) में दशरथ राजा विराजमान हो गये । (वहाँ) वसिष्ठ आदि समस्त ऋषि, आठों अधिकारी (मंत्री) तथा प्रजाजन (उपस्थित) थे । ५९ वस्तुतः मण्डप में लगी जाली में से (उसके पीछे बैठकर) कौसल्या आदि माताएँ देख रही थीं । श्रीराम ने समस्त विद्याओं को सिद्ध (आत्मसात्) किया है—यह देखने के लिए सबमें आत्मीयता (-पूर्वक उत्कण्ठा) थी । ६० तारों में जैसे चन्द्र (शोभायमान) होता है, वैसे सभा में राजा दशरथ थे । जैसे इन्द्र के पास बुद्धिमान बृहस्पति (विराजमान) रहते हैं, वैसे (दशरथ राजा के पास) वसिष्ठ बैठ गये । ६१

बृहस्पति बुद्धिमंत। तैसा वसिष्ठ बैसला। ६१ असो रंग-मंडपापुढें दोघे जण। श्रीराम आणि लक्ष्मण। पाचुबंद अंगणीं येऊन। उभे ठाकले तेधवां। ६२ जैसे शशी आणि चंडकिरण। कीं अपर्णावर आणि रमारमण। कीं मेरुमांदार स्वरूपें धरून। उभे ठाकले रणांगणीं। ६३ साक्षात शेषनारायण। अवतार-पुरुष दोघे जण। अनंत जन्मींचें तपाचरण। दशरथाचें फळा आलें। ६४ कोटिकंदर्पलावण्य-खाणी। तेजासी उणा वासर-मणी। कीं अनंत विजा पिळूनी। रामरूप वोतलें। ६५ तो लावण्यामृत-सागर। आजानुबाहु श्रीरघुवीर। गुरु आणि पितयासी नमस्कार। करोनि शस्त्रें वंदिलीं। ६६ नाना वाहनीं आरूढोनि रघुपती। दावी युद्धाच्या अगाध रीती। रथ फिरवी नाना गतीं। विस्मित पाहती जन सर्व। ६७ मग दावी कुंजरयान-फेरी। सवेंचि तुरंगारूढ होय झडकरी। रथचमक दावी नाना परी। अलात-चक्र जैसें कां। ६८ चरणयुद्ध

अस्तु। तब रंग-मण्डप (रणांगण) के सामने पन्ना नामक रत्न से खचित आँगन में श्रीराम और लक्ष्मण दोनों जने आकर खड़े हो गये। ६२ मानो चन्द्र और सूर्य, अथवा अपर्णावर शिवजी और रमारमण विष्णु अथवा मेरु और मन्दार उनके रूप धारण करके रणभूमि में खड़े हो गये (हों)। ६३ (वस्तुतः श्रीराम और लक्ष्मण) दोनों जने साक्षात् शेष और नारायण के अवतार पुरुष थे। (उनके रूप में मानो) दशरथ द्वारा अनन्त जन्मों में किया हुआ तपाचरण फल को प्राप्त हो गया। ६४ श्रीराम करोड़ों कामदेवों के लावण्य की खान हैं। (उनके सामने) तेजस्विता में सूर्य न्यून (घटिया) है। अथवा अनन्त बिजलियाँ इकट्ठा होने पर (उनसे) श्रीराम का रूप (साँचे में) ढाल दिया (गया हो)। ६५ ऐसे सुन्दरता रूपी अमृत के सागर आजानुबाहु श्रीराम ने गुरु और पिता को नमस्कार करके शस्त्रों का वन्दन किया। ६६ श्रीराम ने नाना (प्रकार की) सवारियों में आरूढ़ होकर युद्ध-कला की अगाध रीतियों को प्रदर्शित किया। नाना प्रकार की गतियों (चालों) से रथ को चला दिया। सब लोग विस्मित होकर (उन्हें) देख रहे थे। ६७ फिर उन्होंने हाथीयान में सवार होकर उसे चलाकर दिखाया। साथ ही झट से वे घोड़े पर सवार हो गये। (तदनन्तर) उन्होंने रथ चलाने की कला की नाना प्रकार से झलक दिखा दी। रथ का चलना मानो अग्नि-चक्र (का चलना) था। ६८ चरण युद्ध, अस्त्र-युद्ध, शस्त्र चलाने की

अस्त्रयुद्ध । शस्त्ररीति नानाविध । मल्लमेषकुंजर - युद्ध । व्याघ्रसिंहयुद्धगती । ६९ कूर्मवृषभनक्रयुद्ध । जलमंडलयुद्ध विशद । अंतरिक्ष भूमि गदा प्रसिद्ध । सकळ कलायुद्ध दाविलें । ७० शक्ति पाशुपत तोमर । शूल परिघ लहुडी चक्र । कंदुक भिंडिमाळा वज्र । दावी रघुवीर गति त्यांची । ७१ पाश असि-लता मुद्गल । शतघ्नी फरशांकुश कुंत सरळ । यमदंष्ट्रा शब्दयुद्ध सबळ । यंत्रमंत्रयुद्धगती । ७२ नेत्र झांकोनि सोडी बाण । पुढें पाहे मागें भेदी जाण । दळसिंधुपरतटाक-गमन । राजीवनयन दावीतसे । ७३ एक सोडितांचि बाण । कोटचवधि व्हावे त्यापासून । सकळ चमूचें शिरच्छेदन । एकाचि बाणें करावें । ७४ अग्न्यस्त्र पर्जन्यास्त्र । वात पर्वत आणि वज्र । माया ब्रह्म माहेश्वर । भूतास्त्र भैरवास्त्र पै । ७५ सिंह सर्प आणि गरुडास्त्र । काम वैराग्य तारकासुर । पाप नाम गंधर्वास्त्र । दावी रघुवीर अस्त्रें हीं । ७६ ब्रह्मशिरो विश्वजित । या अस्त्रगती दावी रघुनाथ । तैसेंच करी

नानाविध पद्धतियाँ, मल्ल-युद्ध, मेष-युद्ध, हस्ती-युद्ध, व्याघ्र-युद्ध, सिंह-युद्ध, कूर्म (कछुआ)-युद्ध, वृषभ (बैल)-युद्ध, नक्र (मगर)-युद्ध, स्पष्ट रूप में जल-मण्डल-युद्ध, आकाश में जाकर युद्ध करना, भूमि पर लड़ना, गदा चलाना—इत्यादि समस्त प्रसिद्ध युद्ध-कलाएँ प्रदर्शित कर दीं । ६९-७० श्रीराम ने शक्ति, पाशुपत, तोमर, शूल, परिघ, लोहांगी, चक्र, कंदूक, गोफन, वज्र जैसे अस्त्रों की गतियाँ दिखायीं । ७१ पाश, असि (तलवार)-लता, मुद्गल, तोप, परशु, अंकुश, सीधा भाला, यमदंष्ट्रा, शब्द-युद्ध, मज़बूत यंत्रों और मंत्रों की गतियाँ दिखायीं । ७२ उन्होंने आँखें बन्द करके बाण चलाये । समझिए, उन्होंने आगे देखते हुए पीछे बाण चलाकर लक्ष्य को भेद लिया । कमलनेत्र श्रीराम ने सेना रूपी सागर के दूसरे तट तक गमन करके दिखा दिया । ७३ एक बाण के चलाते ही उससे करोड़ों (बाण) हो जाते और समस्त सेना का शिरच्छेद एक ही बाण से वे कर देते । ७४ श्रीराम ने अग्नि, पर्जन्य, वायु, पर्वत और वज्र, माया, ब्रह्म, माहेश्वर, भूत, भैरव, सिंह, सर्प और गरुड़, काम, वैराग्य, तारकासुर, पाप, नाम, गन्धर्व (नामक) अस्त्र प्रदर्शित किये । ७५-७६ उन्होंने ब्रह्मशिरस् और विश्वजित (नामक) अस्त्र-गतियों को प्रदर्शित किया । लक्ष्मण ने (भी) वैसा ही किया । यह देखकर दशरथ (दाद देते हुए प्रशंसा सूचित करने के हेतु) मस्तक हिलाते थे । ७७

सुमित्रासुत । मान दशरथ डोलवी । ७७ वसिष्ठ उठोनि ते अवसरीं । श्रीरामसौमित्रांसी हृदयीं धरी । दशरथाचा आनंद अंबरीं । न समाये तेव्हां सर्वथा । ७८ सभा विसर्जून दशरथ । वसिष्ठ सौमित्र रघुनाथ । प्रवेशते जाहले सदनांत । आनंदयुक्त सर्वंही । ७९ यावरी एके दिवशीं अजनंदन । दर्पणीं विलोकी निजवदन । तों दाढींत शुभ्र केश देखोन । काय बोलता जाहला । ८० म्हणे शीघ्र बोलवा ब्रह्मनंदन । अष्टाधिकारी ऋषी प्रजाजन । सकळ व्यवहारी वैश्यजन । विवेकसंपन्न थोर थोर । ८१ सकळांसी बैसवोनि एकांतीं । निजगुह्य पुसे कौसल्यापती । म्हणे राज्य द्यावें रामाप्रती । ऐसें चित्तीं वाटतसे । ८२ राज्यासी योग्य रघुनायक । जो गुणसमुद्र प्रतापार्क । जो धीर वीर उदार देख । लावण्य-सागर श्रीराम । ८३ अनंतजन्मींच्या तपाचें फळ । तो हा श्रीराम तमालनीळ । राज्य द्यावें हो तत्काळ । सुमुहूर्त वेळ पाहोनियां । ८४ ऐकोनि दशरथाचें वचन । संतोषला ब्रह्मनंदन ।

उस समय वसिष्ठ ने उठकर श्रीराम और लक्ष्मण को गले लगा लिया। तब सब तरह से दशरथ का आनन्द आकाश में (भी) नहीं समा रहा था। ७८ सभा को विसर्जित करके दशरथ, वसिष्ठ, लक्ष्मण और राम ने प्रासाद में प्रवेश किया। वे सभी आनन्दयुक्त (आनन्दित) थे। ७९

इसके वाद एक दिन दशरथ आईने में अपने मुख को देख रहे थे, तो दाढ़ी में एक सफ़ेद बाल देखकर वे क्या वोले ? ८० उन्होंने कहा— 'ब्रह्मनन्दन वसिष्ठ को शीघ्र बुला लाओ। आठों अधिकारियों (मंत्रियों) ऋषियों, प्रजाजनों, समस्त व्यापारियों, वैश्यजनों तथा बड़े-बड़े विवेक-सम्पन्न लोगों को बुला लाओ'। ८१ (उनके आने पर) सबको एकान्त में बैठाकर कौसल्यापति दशरथ ने अपनी रहस्य-भरी बात कही। उन्होंने कहा— मन में लगता है कि (यह) राज्य राम को दें। ८२ देखो, राज्य के लिए (वह) राम ही योग्य है, जो गुणसागर, प्रतापसूर्य है, जो धीर, वीर और उदार तथा लावण्य-सागर है। ८३ (मेरे) अनन्त जन्मों के तप का जो फल है, वह यह तमाल (पत्र के समान) नील (शरीरधारी) श्रीराम है। (इसलिए) सुमूहूर्त खोजकर तत्काल उसे राज दीजिए।' ८४ दशरथ की वात सुनकर वसिष्ठ सन्तुष्ट हो गये। समस्त प्रजाजनों ने भी (इसे) स्वीकार किया। वे बोले—' दशरथ राजा, (आप) धन्य हैं,

मानवले समस्त प्रजाजन। म्हणती धन्य धन्य दशरथा। ८५ वसिष्ठादि ऋषि समस्त। पाहोनि उत्तम सुमुहूर्त। चैत्रमास अतिविख्यात। गुरुपुष्ययोग साधिला। ८६ श्रीरामासी द्यावया राज्यपट। सुमुहूर्त नेमिला अतिवरिष्ठ। सर्व सामग्री वसिष्ठ। सिद्ध करिता जाहला पैं। ८७ श्वेतवर्ण चौदंती गज। क्षीरवर्ण आणिला हयराज। छत्रचामरें तेजःपुंज। मृगांकवर्ण साजिरीं। ८८ पंचपल्लव सप्तमृत्तिका परिकर। चतुःसमुद्रींचें आणिलें नीर। दिव्य सिंहासन पवित्र। नूतन छत्र निर्मिलें। ८९ दिव्य मंडप निर्मून। तेथें मांडिलें सिंहासन जपासी बैसविले दिव्य ब्राह्मण। वेदोनारायण साक्षात। ९० छप्पन्न देशींचे राजेश्वर। शाण्णव कुळींचे राजकुमर। ते येते ज़ाहले समग्र। अपार करभार घेऊनियां। ९१ आनंदमय अयोध्यानगर। सदनें श्रृंगारिलीं सुंदर। अयोध्यावासी नारी नर। मंडित समग्र अलंकारें। ९२ राजमंदिरें श्रृंगांरिलीं विशेष। वरी झळकती रत्नजडित कळस। उणें आणिती

धन्य हैं।' ८५ वसिष्ठ इत्यादि सब ऋषियों ने देखकर चैत्रमास में अतिविख्यात गुरु-पुष्य-योग (के अवसर) पर (घटित) सुमुहूर्त प्राप्त किया। ८६ श्रीराम को राजगद्दी प्रदान करने के लिए (इस प्रकार का) अति वरिष्ठ सुमुहूर्त निर्धारित किया, तो वसिष्ठ ने सब सामग्री सिद्ध की। ८७ चार दाँतों-वाला श्वेतवर्णी हाथी, दूधिया रंग का श्रेष्ठ घोड़ा, तेजःपुंज चन्द्रवर्ण के सुन्दर छत्र और चामर, सुन्दर (आम, पीपल, बरगद, गूलर और पिप्परजटी अर्थात् पाकर नामक) पाँच (वृक्षों के) पल्लव और (अश्व, गज, रथ, चतुष्पथ, गोष्ठ, वल्मीक, ह्रद—अथवा-गोष्ठ, वेदिका, कितवस्थान, ह्रद, कर्षित क्षेत्र, चतुष्पथ, स्मशान नामक) सात प्रकार की मिट्टी, और (पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर) चारों समुद्रों का पानी ले आये। दिव्य पवित्र सिंहासन और नया छत्र बनवा लिया। ८८-८९ दिव्य मण्डप तैयार करवाकर वहाँ सिंहासन स्थापित किया। साक्षात् वेदोनारायण ब्राह्मण जप के लिए नियुक्त किये। ९० (उस अवसर पर) छप्पन (अर्थात् अनेक) देशों के राजाधिराज, छियानब्बे कुल के राजपुत्र—सब अपार करभार लेकर आ गये। ९१ अयोध्यानगर आनन्दमय हो गया। घर सुन्दर सजाये गये। अयोध्या-निवासी सब स्त्री-पुरुष आभूषणों से सुशोभित हो गये। ९२ राजप्रासाद विशेष रूप से सजाये गये। उनके ऊपर रत्न-जटित कलश जगमगाते थे। वे रात में

उडुगणांस। रजनीमाजी स्वतेजें। ९३ एकांतीं बोलावूनि रघुनाथ। गुह्य गोष्टी सांगे दशरथ। म्हणे बा रे मज ग्रह-पीडा आली बहुत। काळ विपरीत पुढें दिसे। ९४ अष्टम स्थानीं शनैश्चर निश्चितीं। द्वादश स्थानीं जाण बृहस्पती। बा रे मज मृत्युचिन्हें जाणवती। बैसें रघुपति सिंहासनीं। ९५ रामा तुझी मज वाटे खंती। मज टाकोनियां रघुपती। दूरी जाशील निश्चितीं। हेंचि चित्तीं वाटतसे। ९६ तरी लावण्या-मृतसागरा। तमालनीला राजीवनेत्रा। श्रीरामा घनश्याम-गात्रा। राज्यभारा चालवीं। ९७ श्रीरामें वंदिले पितृचरण। म्हणे मज आज्ञाचि प्रमाण। रामसीतेसी उपोषण। करवी वसिष्ठ ते दिवशीं। ९८ रघुनाथाहातीं दानें। अपार करविलीं ब्रह्मनंदनें। राम जानकी दोघें जणें। कुशासनीं पहुडविलीं। ९९ जो पुराणपुरुष परब्रह्म। तयांहातीं ऋषि करवी होम। आहुती घाली पुरुषोत्तम। दृष्टांत उत्तम ऐका ते। १०० चकोराचे

अपने तेज से तारों को घटिया सिद्ध कर देते थे। ९३ (इधर) श्रीराम को एकान्त में बुलाकर दशरथ ने गुह्य बातें बतायीं। उन्होंने कहा—'अरे (राम!), मेरे लिए बहुत ग्रह-पीड़ा आ गयी; आगे (भविष्य में) मुझे काल विपरीत दिखायी दे रहा है। ९४ अष्टम स्थान में निश्चय ही शनिदेव है। समझो कि बारहवें स्थान में बृहस्पति है। अरे (राम!) मुझे मृत्यु के लक्षण जान पड़ते हैं। (इसलिए) हे राम! तुम सिंहासन पर बैठो। ९५ राम! मुझे तुम्हारे बारे में खेद हो रहा है, मन में मुझे यही लग रहा है कि तुम निश्चय ही मुझे त्यागकर दूर जाओगे। ९६ इसलिए हे लावण्यामृत के सागर, तमालनील, कमलनयन, घनश्यामशरीरधारी श्रीराम! तुम राज्य-भार चलाओ अर्थात् उठाओ (स्वीकार करो)।' ९७ (यह सुनकर) श्रीराम ने पिता के चरणों का वन्दन किया और कहा—'मेरे लिए (आपकी) आज्ञा ही प्रमाण है।' (फिर) वसिष्ठ ने उस दिन श्रीराम और सीता को अनशन-(उपवास) कराया। ९८ ब्रह्मनन्दन वसिष्ठ ने श्रीराम के हाथों अपार दान करवा लिये (और तत्पश्चात्) श्रीराम और सीता दोनों जनों को कुशासन पर लेटने को कहा (-सो जाने को कहा)। ९९ जो स्वयं पुराण-पुरुष परब्रह्म है, उसी के हाथों (वसिष्ठ) ऋषि ने होम कराया। (उसमें) पुरुषोत्तम राम ने आहुतियाँ समर्पित कर लीं। (यह कैसे हुआ? इस सम्बन्ध में) उत्तम दृष्टांत सुनिए। १००

मुखीं अमृतधार। वर्षे जैसा रोहिणीवर। कीं धेनु पान्हा घाली सत्वर। वत्सासी तृप्त व्हावया। १०१ कीं बाळकाचिया मुखांत। माता स्तन्यानें करी तृप्त। कीं जलद बिंदु टाकी अकस्मात। चातकमुखीं कृपेनें। १०२ ऐसीं अवदानें राम टाकित। धूम्रें नेत्र जाहले आरक्त। यज्ञनारायण जाहला तृप्त। राघवहस्तेंकरोनियां। ३ जैसी गौतमी आणि भागीरथी। तैसी कौसल्या आणि सुमित्रा सती। विप्रांसी दानें अपार देती। आनंद चित्तीं न समाये। ४ दशरथासी विनवी लक्ष्मण। मी श्रीरामसेवा करीन। ऐकोनि संतोषे अजनंदन। कुरवाळी वदन सौमित्राचें। ५ अयोध्यानगर वेष्टोनि जाणा। उतरल्या राजयांच्या पृतना। कोण करी तयांची गणना। पाहतां नयनां भुलवणी। ६ श्रीराम बैसे राज्यपदीं। तो सोहळा पाहावया दृष्टीं। सकळ सुरवरांच्या कोटी। विमानारूढ पाहती। ७ तंत वितंत घन सुस्वर। चतुर्विध वाद्यांचे गजर।

जिस प्रकार चन्द्र चकोर के मुख में अमृत की धारा बरसाता है, अथवा जिस प्रकार शीघ्रतापूर्वक गाय बछड़े को तृप्त करने के लिए (उसके मुख में) दूध की धारा छोड़ती है, अथवा जैसे बालक के मुख में स्तन से दूध पान कराकर (पिलाकर) माता उसे तृप्त कर देती है, अथवा जिस प्रकार मेघ कृपापूर्वक चातक के मुख में सहसा पानी की बूँदें डालता है, उसी प्रकार श्रीराम (होम की) अग्नि में (उसे तृप्त कर देने के लिए) आहुतियाँ डालते थे। धुएँ से उनके नेत्र लाल हो गये। यज्ञ-नारायण देवता राम के हाथों (से आहुतियाँ प्राप्त कर) तृप्त हो गये। १०१-१०३ गोदावरी और भागीरथी (गंगा) (दोनों नदियाँ) जैसी (पवित्र) हैं, उसी प्रकार कौसल्या और सुमित्रा सती पतिव्रता थीं। उन्होंने ब्राह्मणों को अपार दान दिये। उनके मन में आनन्द नहीं समा रहा था। १०४ लक्ष्मण ने दशरथ से विनती की (करते हुए कहा) कि मैं श्रीराम की सेवा करूँगा। (यह) सुनकर दशरथ सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने लक्ष्मण के मुँह को प्रेमपूर्वक सहेल लिया। ५ यह समझिए कि अयोध्यानगर को घेरकर (विभिन्न) राजाओं की सेनाएँ ठहर गयी (थीं)। उनकी गिनती कौन कर सकता है? (उन्हें) देखते ही वे आँखों को लुभा (मोहित कर) लेती थीं। ६ श्रीराम राजगद्दी पर विराजमान हो गये—उस समारोह को अपनी आँखों से देखने के लिए उत्सुक समस्त प्रकार के देवता विमानों में आरूढ़ होकर देख रहे थे। ७ चारों प्रकार के वाद्यों का गर्जन स्वरैक्य से युक्त अर्थात् घना तालबद्ध था।

नादें कोंदलें अंबर। चिंतातुर सुर जाहले। ८ निर्जर विनविती कमलोद्भवा। दशरथ राज्य समर्पी राघवा। आमुचे बंदि-सुटकेचा बरवा। विचार कांहीं दिसेना। ९ इंद्रपदातुल्य राज्य अपूर्व। तें सोडोनियां सीताधव। कासया येईल दशग्रीव। वधावयाकारणें। ११० जरी तो मंगलभगिनीचा वर। भक्ता-लागीं जाहला साकार। तरी तपोवना येईल रघुवीर। ऐसा विचार योजावा। ११ मग विरिंचि सांगे विकल्पासी। तुवां सत्वर जावें अयोध्येसी। प्रवेशावें कैकयीच्या मानसीं। विघ्न राज्यासी करावें। १२ विकल्प म्हणे ते वेळां। अयोध्येमाजी परम सोहळा। दु:ख द्यावयासी सकळां। माझेनि तेथें न जाववे। १३ माझा प्रवेश होतां तेथ। बहुतांसी होईल प्राणांत। मांडेल एकचि अनर्थ। माझेनि तेथें न जाववे। १४ शीतळ होईल वडवानळ। मधुरता धरील हाळा-हळ। परी मज विकल्पाचें बळ। क्षीण नव्हे कल्पांतीं। १५

उस (गर्जन) से आकाश (पूर्णतः) भर गया। (उस समय) देव चिन्तातुर हो गये। ८ (अतः) देवों ने ब्रह्मा से विनती की (करते हुए कहा) कि दशरथ श्रीराम को राज्य समर्पित कर रहे हैं। हमारे बन्धन से मुक्त होने का कोई भला विचार नहीं दिखायी दे रहा है। ९ वह इन्द्र के (राज्य) पद के तुल्य (समान) अपूर्व राज्य है। (प्राप्त हो जाने पर) उसका त्याग करके सीतापति श्रीराम रावण का बध करने के लिए क्यों आएँगे? ११० (पृथ्वी से उत्पन्न होने के कारण सीता मंगल की भगिनी कहाती है।) यदि मंगल-भगिनी सीता के वे पति श्रीराम भक्तों के (हित के) लिए साकार (सगुण-साकार-रूप) हो गये (हैं), तो ऐसा आयोजन कीजिए जिससे वे (श्रीराम) तपोवन आ जाएँ।' ११ तब ब्रह्मा ने (विघ्न-बाधा उत्पन्न करने की प्रवृत्ति के अधिष्ठाता देवता) विकल्प से कहा—'तुम सत्वर अयोध्या में जाओ (और) कैकेयी के मन में प्रवेश करो (तथा) राज्य (सम्बन्धी समारोह) में विघ्न उत्पन्न करो।' १२ उस समय विकल्प ने कहा—'अयोध्या में परम उत्तम समारोह (होनेवाला) है, तो सब को दु:ख देने के लिए मुझसे वहाँ नहीं जाया जाता। १३ वहाँ मेरा प्रवेश हो जाने पर बहुत लोगों की मौत हो जाएगी। (उससे) अतिशय अनर्थ आरम्भ हो जाएगा। (इसलिए) मुझसे वहाँ नहीं जाया जाता। १४ वड़वाग्नि शीतल हो जाएगी, हलाहल विष मधुरता धारण कर लेगा—(ये बातें असम्भव हैं; फिर भी वे सम्भव हो जाएँगी) परन्तु

देव म्हणती तुजविण। हें कार्य साधील कवण। आम्हां सोडवी बंदींतून। घेईं पुण्य तूं एवढें। १६ ऐसें ऐकतांचि वचन। विकल्प निघाला तेथून। जवळ केलें अयोध्यापट्टण। परी भीतरी न जाववेचि। १७ अयोध्यावासी पुण्यशीळ। सत्यवादी सात्त्विक प्रेमळ। ज्यांकडे पाहों न शके काळ। तेथें विकल्प प्रवेशेना। १८ ज्यांसी वेदाज्ञा वाटे प्रमाण। नेणती परांचे दोषगण। सदा सारासारविचार-श्रवण। तेथें विकल्प बाधेना। १९ जे निःसीम गुरुभक्त। जे मातापित्यांसी भजत। जे अनन्य ब्राह्मणांसी वंदित। तेथें विकल्प बाधेना। १२० सदा आवडे हरिभजन। श्रवण मनन हरि-कीर्तन। परद्रव्य ज्या तृणासमान। तेथें विकल्प बाधेना। २१ दया उपजे देखतां दीन। अंध पंगु वृद्ध क्षीण। त्यांसीं पाववी वस्त्र अन्न। तेथें विकल्प बाधेना। २२ पर-ललना मातृवत। जे वादप्रतिवादीं मुके होत। जे ईश्वररूप पाहती संत। तेथें

मुझ विकल्प का बल कल्पान्त में भी क्षीण (कम) नहीं हो जाएगा।' १५ (इसपर) देवों ने कहा—'तुम्हारे विना कौन यह कार्य सिद्ध करेगा? तुम हमें बन्धन से मुक्त करो—तुम इतना पुण्य (प्राप्त) कर लो।' १६ ऐसी बात सुनकर विकल्प वहाँ से चल दिया (और) उसने अयोध्या नगर को निकट कर लिया—अर्थात् वह अयोध्या के निकट आ गया। परन्तु उससे भीतर नहीं जाया जाता (था)। १७ जिनकी ओर काल भी (बुरी नज़र से) देख नहीं सकता, वे अयोध्यावासी (लोग) पुण्यशील, सत्यवादी, सात्त्विक और स्नेहल हैं। वहाँ विकल्प से प्रवेश नहीं किया जा सकता (था)। १८ जिन्हें वेदों की आज्ञा प्रमाण (सत्य) लगती है, जो दूसरों के दोष-गुण (देखना) नहीं जानते, जो नित्य सद्-असद्-विवेक करते और श्रवण करते हैं, उन्हें (वहाँ) विकल्प बाधा नहीं पहुँचाता। १९ जो (लोग) निःस्सीम गुरु-भक्त होते हैं, जो माता-पिता की भक्ति करते हैं, जो अनन्य भाव से ब्राह्मणों का वन्दन करते हैं, उन्हें (वहाँ) विकल्प बाधा नहीं पहुँचाता। १२० जिनको भगवान् का भजन, श्रवण, मनन, हरिकीर्तन अच्छा लगता है, जिन्हें पर-धन घास के समान (तुच्छ) जान पड़ता है, वहाँ (उन्हें) विकल्प बाधा नहीं पहुँचाता। २१ दीनों, अंधों, पंगुओं, वृद्धों और दुर्बलों को देखकर जिनके (मन में) दया उत्पन्न होती है और जो उन्हें वस्त्र और अन्न प्राप्त कराते (देते) हैं, वहाँ (उन्हें) विकल्प बाधा नहीं पहुँचता। २२ जिन्हें पर-स्त्री माता के समान

विकल्प बाधेना । २३ सर्वांभूतीं एक रघुनाथ । ऐसी जयांसी पूर्ण प्रचीत । प्रपंचीं वर्ततां विरक्त । तेथें विकल्प बाधेना । २४ जे ब्रह्मानंदीं पूर्ण धाले । जे आपणां आपण विसरले । तेथें विकल्पाचें बळ न चले । कल्पांतींही सर्वथा । २५ असो पुण्यवंत अयोध्येचे जन । त्यांसी विकल्प पळे देखतां दुरून । प्रवेशावया अयोध्यापट्टण । सामर्थ्य नव्हे सहसाही । २६ तों कैकयीची दासी मंथरा । ते पूर्वींच द्वेषी रघुवीरा । परम पापिणी सीतावरा । सर्वदाही निंदीतसे । २७ प्रातःकाळीं अहल्योद्धार । सेजेसी असतां रामचंद्र । झाडितां बळेंचि केर । रामावरी घालित । २८ तो अंगावरी येतां केर । दैवहत होईल वज्रधर । म्हणोनि ते दासी अपवित्र । रामावरी रज उडवी । २९ प्रत्यहीं ऐसेंचि करीत । देखतां क्रोधावला जनकजामात । म्हणे तूं कुब्जा होईं यथार्थ । कुरूप वक्र सर्वांगीं । १३० मग ते लागे श्रीरामपायीं । म्हणे राघवा मज

प्रतीत होती है, जो वाद-प्रतिवाद में गूँगे (-से) हो जाते हैं (अर्थात् व्यर्थ विवाद नहीं करते), जो सन्तों को ईश्वर-रूपी देखते (समझते) हैं, वहाँ (उन्हें) विकल्प बाधा नहीं पहुँचाता । २३ जिन्हें ऐसी पूर्ण प्रतीति होती है कि सब प्राणियों में एक मात्र राम (का अस्तित्व) है, जो संसार में विरक्त होकर आचरण करते हैं, उनके यहाँ विकल्प बाधा नहीं पहुँचाता ।२४ जो ब्रह्मानन्द में पूर्णतः तृप्त हो गये (हैं), जो स्वयं अपने आपको भूल गये (हैं), उनके यहाँ कल्पान्त में (भी) विकल्प की शक्ति (की कोई) नहीं चलती । २५

अस्तु । अयोध्या में रहनेवाले लोग पुण्यवान् थे । उन्हें दूर से देखकर (ही) विकल्प भाग जाता था । अयोध्या में प्रवेश करने के लिए साधारणतः उस (विकल्प) में शक्ति नहीं थी । २६ तब कैकेयी की मन्थरा नामक एक दासी पहले से ही राम से द्वेष करती थी । वह परम पापिणी नित्य ही राम की निन्दा किया करती थी । २७ सबेरे अहल्या के उद्धारक श्रीराम के शय्या में रहते, वह झाड़ू लगाते हुए कूड़ा-करकट बलात् उनपर डाला करती । २८ उस कचरे के बदन पर आ जाने से वज्रधर इन्द्र हतभाग्य हो जाएगा—इसलिए वह पापी दासी राम पर धूल (-कचरा) उछाल दिया करती । २९ वह हर दिन ऐसा ही किया करती । इसे देखकर श्रीराम क्रुद्ध हो गये और बोले—' री तू सचमुच कुब्जा, कुरूप और सारे अंग में टेढ़ी हो जाएगी । ' १३० फिर वह

उश्शाप देईं। मग जगदानंदकंद ते समयीं। काय बोलता जाहला। ३१ म्हणे पुढील अवतारीं पूर्ण। कंसवधार्थ मथुरे येईन। तेव्हां तुज उद्धरीन। दिव्य करीन रूप तुझें। ३२ असो अयोध्येबाहेर दूर। पुष्पवाटिका परम सुंदर। सदा सुफळ तरुवर। विकल्प सत्वर आला तेथें। ३३ जो भुवनच्छेदक कुठार। कीं स्नेहकर्पूरदाहक वैश्वानर। कीं प्रीतिमेघविदारक समीर। परम तीव्र स्वरूप जयाचें। ३४ हा भजनमार्गींचा मारक मांग। परम दोषी विष्ठाभक्षक काग। कीं द्वेषवारुळां-तील भुजंग। धुसधुसीत विकल्प हा। ३५ तो मत्सरवनींचा वृक थोर। कीं निर्दयसमुद्रींचा नक्र। कीं परनिंदाजल्पक खर। विकल्प साचार जाणिजे। ३६ विकल्प नोहे तो श्वान। धांवे भक्तांवरी वसवसोन। आनंदरस-पात्र उलंडोन। न लगतां क्षण टाकी तो। ३७ असो हिंवरवृक्षीं तो विकल्प। बैसला असे सुखरूप। तंव तेथें मंथरा पापरूप। पुष्पें न्यावया

श्रीराम के पाँव लगी और बोली—'हे श्रीराम, मुझे शाप-मुक्ति का उपाय बता दीजिए।' (सुनिए) अनन्तर जगदानन्द के कंदरूप श्रीराम उस समय क्या बोले। १३१ उन्होंने कहा—'आगामी पूर्णावतार में मैं कंस के वध के लिए मथुरा में आऊँगा; तब तेरा उद्धार करूँगा और तेरे रूप को दिव्य बना दूँगा।' ३२ अस्तु। अयोध्या के बाहर (कुछ) दूर एक परम सुन्दर पुष्पवाटिका थी, जिसमें नित्य अच्छे फलों से युक्त बड़े-बड़े पेड़ थे। वहाँ झट से (वह) विकल्प आ गया, जो भुवन (रूपी वृक्ष) को काट डालनेवाला कुठार (कुल्हाड़ी) था, अथवा जो स्नेह-रूपी कपूर को जलानेवाला वैश्वानर (अग्नि) था, अथवा जिसका स्वरूप परम दारुण है, ऐसा वह (मानो) प्रीति-रूपी मेघ का विदारण करनेवाला समीर (वायु) था। ३३-३४ यह (विकल्प) भजन के मार्ग में (उपस्थित हो जानेवाला) बटमार चाण्डाल (जल्लाद) था, अथवा विष्ठा खानेवाला परम द्वेष्टा कौआ था, अथवा यह द्वेषरूपी बमीठे (वल्मीक, दीमकों के भीटे) में झल्लाते हुए रहनेवाला साँप था। ३५ वह मत्सर-रूपी वन में रहनेवाला बड़ा भेड़िया था अथवा निर्दयता के समुद्र में पाया जानेवाला मगर था अथवा समझो कि (वह) विकल्प सचमुच परनिन्दा करनेवाला गधा था। ३६ यह विकल्प नहीं, यह तो वह कुत्ता है जो भक्तों पर झल्लाते हुए लपकता है और जो क्षण न लगते आनन्द-रूपी रस से भरे पात्र को उलटा डालता है। ३७ अस्तु। वह विकल्प एक कँटीले पेड़

पातली । ३८ हिंवरछायेसी ते अवसरीं । मंथरा बैसली क्षणभरी । विकल्प प्रवेशला तिच्या अंतरीं । अत्यंत कुपात्र देखोनियां । ३९ जे कां निर्दय आचारहीन । नावडे हरिकथा पुराणश्रवण । सदा जल्पत परदोषगण । विकल्प येऊन राहे तेथें । १४० साधु संत ब्राह्मण । त्यांसी द्वेषी रात्रंदिन । भूतदया नावडे मनांतून । विकल्प येऊन राहे तेथें । ४१ वेदविरुद्ध जे वर्तत । नसतेंचि वाढविती कुमत । कोठें विश्वास न धरी चित्त । विकल्प येऊन राहे तेथें । ४२ असो मंथरेचे मनीं । विकल्प संचरला ते क्षणीं । तों पक्व काळिंगण देखोनि नयनीं । प्रीतीकरोनि भक्षित । ४३ पुष्पें वेंचितां कुश्चळ । मनीं उठती द्वेषकल्लोळ । गृहास परतली तत्काळ । कलह प्रबळ लावावया । ४४ तों कैकयीचे गृहीं सोहळा होत । मंडप उभविले नभचुंबित । जन अवघे आनंदभरित । चिंताविरहित सर्वही । ४५ ऐसें मंथरेनें देखतां । परम द्वेष वाटे चित्ता ।

पर सुखपूर्वक बैठा हुआ था; त्यों वहाँ पापरूपा मन्थरा फूल (इकट्ठा कर) ले जाने के लिए आ पहुँची । ३८ काँटेदार पेड़ (-विशेष) की छाया में उस समय मन्थरा क्षण-भर बैठ गयी, तो (उसे) अत्यन्त कुपात्र देखकर (जानकर) विकल्प उसके मन में पैठ गया । ३९ जो मनुष्य निर्दय और आचारहीन हों, जिन्हें हरि-कथा और पुराण का श्रवण अच्छा नहीं लगता, जो हमेशा दूसरे के दोष-समूह (निकालकर) बकते रहते हों, वहाँ आकर विकल्प रह जाता है । १४० जो साधुओं, सन्तों और ब्राह्मणों से रात-दिन द्वेष करते हों, जिन्हें मन में भूत-दया अच्छी नहीं लगती, वहाँ आकर विकल्प बस जाता है । ४१ जो वेदों के विरुद्ध आचरण करते हों, कुमतों (पाखण्डी सिद्धान्तों) को व्यर्थ ही बढ़ाते हों, जिनका मन कहीं भी विश्वास (श्रद्धा) को नहीं पकड़ पाता हो, वहाँ आकर विकल्प रहता है । ४२ अस्तु । मन्थरा के मन में उस क्षण विकल्प का संचरण हो गया, तो एक पके कलींदे (कलिंग नामक तरबूज़) को (अपनी) आँखों से देखकर उसने उसे चाव से खा डाला । ४३ फूल बीनते हुए उस कुलटा के मन में द्वेष की हिलोरें उभरती रहीं । (फिर) कलह लगाने के हेतु वह तत्काल घर लौट गयी । ४४ तब कैकेयी के भवन में आनन्दोत्सव हो रहा था । आकाशचुम्बी मण्डप उभारे (खड़े करा दिये) थे । सब लोग आनन्द से (मानो) भरे-पूरे थे, सभी चिन्ता-रहित थे । ४५ जिस प्रकार वसन्त ऋतु में कोयल के कुहुकते ही कौओं के (मन में) दुःख उत्पन्न होता है,

जैशा वसंतीं कोकिळा गर्जतां। दु:ख वायसां उपजे पैं। ४६ आम्र येतां पाडास। मुखरोग प्राप्त होय कागांस। दृष्टीं देखतां राजहंस। दु:ख विशेष वाटे तयां। ४७ कीं देखोन संतांच्या मूर्ती। निंदक संतापती चित्तीं। कीं देखोनि पंडितांची व्युत्पत्ती। अयोग्या चित्तीं द्वेष वाटे। ४८ कीं देखोन मृगेंद्राचा प्रताप। शृगालासी चढे संताप। कीं देखोनि श्रीमंताचें स्वरूप। जेवीं दुर्जन चरफडती। ४९ कीं देखोन धार्मिकाची लीला। अपवित्रासी खेद आगळा। कीं पतिव्रता देखोनि डोळां। व्यभिचारिणी वीटती। १५० शशांक देखतां विटती तस्कर। दिवाभीतां नावडे दिनकर। कीं हिंसकांस तत्त्वविचार। मनींहूनि नावडे। ५१ तैसा सोहळा देखोनि मानसीं। परप संतापली ते दासी। रामनिधानासी विवसी। आड आली साक्षेपें। ५२ ते कलहपीठींची देवता। कीं ते दु:खकल्लोळ-प्रवाह-सरिता। गृहांत अग्नि लागे अवचिता। तैसी आंत प्रवेशली। ५३ अंगणीं शरीर टाकी तत्काळ। धवधबां पिटी वक्ष:स्थळ।

उसी प्रकार मन्थरा द्वारा ऐसा (आनन्दोत्सव) देखने पर (उसके) मन ने द्वेष अनुभव किया। ४६ जब आम गदराता है (पकने पर होता है) तो कौओं को मुखरोग हो जाता है। राजहंस को आँखों से देखने पर उन्हें विशेष दु:ख होता है। ४७ अथवा सन्तों की मूर्तियाँ देखकर निन्दक मन में सन्तप्त हो जाते हैं; अथवा पंडितों का शास्त्र-ज्ञान देखकर अयागों (होम आदि न करनेवालों) को मन में द्वेष (अनुभव होने) लगता है। ४८ अथवा सिंह का प्रताप देखकर सियार को संताप हो उठता है; अथवा अमीर का स्वरूप (स्थिति) देखकर दुर्जन झल्लाते हैं। ४९ अथवा धार्मिक मनुष्य की लीला (कृति) देखकर अपवित्र (पापी) को अनोखा (अतीव) खेद होता है; अथवा पतिव्रता को आँखों से देखकर व्यभिचारिणी (बदचलन) स्त्रियाँ ऊब जाती हैं। १५० चंद्र को देखकर चकोर ऊब जाते हैं। उल्लुओं को सूर्य नहीं भाता। अथवा हिंसकों को (दार्शनिक) तत्त्व-विचार मन से अच्छा नहीं लगता। ५१ उसी प्रकार (वह) आनन्दोत्सव देखकर वह दासी मन में अति सन्तप्त हो गयी। वह पिशाचिनी जान-बूझकर राम के निधन के हेतु बीच में आ गयी। ५२ वह कलह-पीठ की देवी अथवा दु:ख-रूपी लहरों से युक्त प्रवाहवाली नदी थी। (किसी) घर में सहसा आग लग जाए—वैसे वह अन्दर प्रवेश कर गयी। ५३ आँगन में उसने अपने शरीर को लुढ़का दिया अर्थात् वह

कैकयीस म्हणे तूं केवळ। अभागीण सर्वस्वें। ५४ अगे तूं बुद्धिहीन सर्वांत। तुझें तुज न कळे हित। मातुळगृहीं पाठविले तुझे सुत। राज्यीं रघुनाथ स्थापिती। ५५ तुज अवदशा आली यथार्थ। सौभाग्य गेलें वाहात। देशधडी केला भरत। तुज अनर्थ समजेना। ५६ राज्यीं बैसतां रघुनंदन। तुझे पुत्र टाकील वधोन। कैकयी तुज शिकवील कोण। मजवांचूनि बुद्धि आतां। ५७ मग तिजप्रति कैकयी बोलत। मज भरत तैसाच रघुनाथ। तू हा खेद न करीं यथार्थ। कदा अनर्थ करूं नये। ५८ ऐसें बोलोनि सत्वर। कंठींचें पदक आणि हार। तिच्या गळ्यांत घाली परिकर। दासी आपुली म्हणोनि। ५९ पदक आणि मुक्तमाळा। मंथरेनें तोडून टाकिल्या। तोंड घेतलें ते वेळां। राज्य बुडालें म्हणोन। १६० स्नेहें धांवोनि कैकयी। तीस धरिती जाहली हृदयीं। विकल्प प्रवेशला ते समयीं। चित्तगृहीं कैकयीच्या। ६१ कैकयी तीस

आँगन में लुढ़क गयी। वह छाती धब-धब पीटती रही। उसने कैकेयी से कहा—'तुम पूर्णत: केवल अभागिन हो। ५४ अरी, तुम सबसे (अधिक) बुद्धिहीन हो। तुम्हें अपना हित समझ में नहीं आता। तुम्हारे पुत्रों को मातुल (मामा के) घर भेज दिया (और इधर) राम को राजगद्दी पर बैठा रहे हैं। ५५ सचमुच तुम्हारे लिए बुरी दशा आ गयी। तुम्हारा सौभाग्य बह गया; भरत को दर-दर भीख माँगने के लिए छोड़ दिया। तुम्हारी समझ में यह संकट नहीं आ रहा है। ५६ राजगद्दी पर बैठने पर राम तुम्हारे पुत्रों का वध कर डालेगा। अरी कैकेयी, मेरे सिवा तुम्हें अब सद्बुद्धि (-पूर्ण व्यवहार) कौन सिखाएगा—तुम्हें नेक सीख कौन देगा?' ५७ फिर कैकेयी उससे बोली—'मेरे लिए जैसा भरत वैसा राम। तू सचमुच यह दु:ख न कर। कभी अनर्थ नहीं किया जाए'। ५८ वह अपनी दासी है, इसलिए ऐसा कहते हुए उसने झट से अपने गले का सुन्दर पदक और हार उसके गले में पहना दिया। ५९ (परन्तु) मन्थरा ने (उस) पदक और मोतियों के हार को तोड़ डाला और उस समय यह समझकर कि राज्य डूब गया (नष्ट हो गया), वह चीखने-चिल्लाने लगी। १६० तो कैकेयी ने स्नेह-पूर्वक दौड़ते हुए जाकर उसे गले लगा लिया। उस समय कैकेयी के चित्तरूपी घर में विकल्प ने प्रवेश किया। ६१ उस समय कैकेयी ने उससे कहा—'तू ने अच्छी युक्ति झट से आयोजित की। तू मेरी प्राण सखी है। देख और बता,

म्हणे ते समयीं। बरी युक्ति योजिलीस लवलाहीं। तूं माझी प्राणसखी होसी पाहीं। करूं कायी सांग आतां। ६२ भरत तों नाहीं जवळी। रामासी राज्य देती प्रातःकाळीं। अयोध्यावासी लोक सकळी। श्रीरामाकडे मुरडले। ६३ वसिष्ठ आणि दशरथ। यांसी प्राणाहून आवडे रघुनाथ। ते तों माझा वचनार्थ। न मानिती कदाही। ६४ मंथरा म्हणे ऐक साचार। पूर्वीचे मागें दोन वर। तुवां रथ सांवरिला घालोनि कर। शक्राचे युद्धसमयीं पैं। ६५ ऐसें गांठीस असतां शस्त्र। तुज भय नाहीं अणुमात्र। राज्यीं स्थापूनि तुझा पुत्र। रामचंद्र वना धाडीं। ६६ मनुसंख्या संवत्सर। वनासी धाडीं रघुवीर। चतुर्दश वर्षांत तुझा पुत्र। चवदा भुवनें जिंकील। ६७ वना निघतां रामचंद्र। समागमें जाईल सौमित्र। काननीं राक्षस परम दुर्धर। रामलक्ष्मणां भक्षितील। ६८ राक्षसें भक्षिल्या रघुनंदन। मग भरतासी सहजींच कल्याण। यालागीं वर दोन्ही घे मागून। रायापाशीं आतांचि। ६९ वनासी निघतां रघुनाथ। प्राण त्यागील दशरथ। तेही गोष्टीचें

मैं अब क्या करूँ। ६२ भरत तो पास में नहीं है (और) राम को सबेरे राज्य देंगे। अयोध्या-निवासी सब लोग राम की ओर मुड़ गये (हैं)। ६३ वसिष्ठ और दशरथ को राम प्राणों से भी परे (अधिक) प्यारा लगता है। वे मेरे कहने (के मतलब) को कदापि नहीं मानेंगे (स्वीकार करेंगे)।' ६४ (इसपर) मन्थरा बोली—'सच्ची (बात) सुनो। तुम पहलेवाले दो वर माँग लो—तुम ने इन्द्र के युद्ध के अवसर पर (धुरी में) हाथ डालकर रथ को सम्हाला (था)। ६५ ऐसा शस्त्र हाथ में होने पर तुम्हें अणु-मात्र भी डर नहीं है। अपने पुत्र को राज-गद्दी पर बैठाकर राम को वन (में) भेज दो। ६६ चौदह संवत्सर (वर्ष) तक वन में (रहने के लिए) भेज दो। (इधर) चौदह वर्षों में तुम्हारा पुत्र चौदह भुवनों को जीत लेगा। ६७ राम के वन (की ओर) जाने के लिए निकलते ही लक्ष्मण (भी) साथ में जाएगा। वन में परम दुर्धर (अदम्य) राक्षस हैं। वे राम-लक्ष्मण को खा डालेंगे। ६८ राक्षसों द्वारा राम-लक्ष्मण को खाने पर भरत का स्वाभाविक ही कल्याण है। इसलिए राजा से अभी दोनों वर माँग लो। ६९ राम के वन (की ओर) जाने के लिए निकलते ही दशरथ राजा प्राणों को त्याग देंगे। भरत को राजगद्दी

तुजला हित। राज्यीं भरत स्थापावया। १७० रामाचे आवडते भक्त। तेही बाहेर घालूं समस्त। आतां येईल दशरथ। करी अनर्थ येथेंचि। ७१ ऐसीं ते दासीचीं वचनें। हृदयीं धरिलीं कैकयीनें। जैसें वमन होतांचि श्वानें। उचलोनियां घेइजे। ७२ कीं शिंदीवृक्षापासून। किंचित निघतां मद्यजीवन। मद्यपी जैसा ओढवी वदन। तैसेंचि वचन मानलें। ७३ मर्कटासी मदिरारस पाजिला। त्यांत वृश्चिकें दंश केला। त्यामाजी भूतसंचार जाहला। कैकयीस जाहलें तैसेंचि। ७४ अलंकार काढिले झडकरी। तोडून टाकिली गळसरी। केशमुक्त उर्वीवरी। निद्रा करी सक्रोध। ७५ तंव ते भोगसमयाची वेळ। कैकयीगृहा आला भूपाळ। राजा मंथरेसी पुसे उतावीळ। राणी आमुची कोठें पैं। ७६ तंव ते बोले पापखाणी। पैल ते पडली तुमची राणी। काय आहे तिचे मनीं। तें तों न कळेचि आम्हांतें। ७७ मग कैकयीजवळी येऊन। करें कुरवाळी राजा

पर बैठाने के लिए (विचार से) उस बात से भी तुम्हें लाभ है। १७० (जो लोग) राम के प्रिय भक्त (अर्थात् चाहनेवाले और राम के प्रिय) हैं, उन सबको भी (हम) बाहर निकाल देंगे। अब दशरथ आएँगे, तो यहीं अनर्थ (उत्पन्न) कर दो। ७१ जिस प्रकार (किसी के) वमन होते ही कुत्ते उसे उठा लेते हैं, उस प्रकार दासी की ऐसी उन बातों को कैकेयी ने हृदय में धारण कर लिया (प्रेमपूर्वक स्वीकार किया)। ७२ अथवा जंगली खजूर के पेड़ से मद्य-युक्त ज़रा-सा रस निकलते ही, मद्यपी (शराबी आतुरता से) मुँह निकट कर लेता है, उसी प्रकार (कैकेयी ने) उन बातों को मान लिया—अपना लिया। ७३ बन्दर को शराब पिलायी (हो), तिस पर उसे बिच्छू ने काट दिया (हो और) उस स्थिति में उसमें भूत का संचार हो गया (हो, उस की जो दशा हो जाएगी)—वैसे ही (वैसी ही स्थिति) कैकेयी को हो गया। ७४ उसने झट से आभूषण उतार डाले, मंगल-सूत्र को तोड़ डाला, (और) बालों को खुले छोड़कर वह भूमि पर क्रोधपूर्वक लेट गयी। ७५ तब वह तो (स्त्री-सुख) भोग का समय था (अतः) राजा कैकेयी के घर आ गये। अधीर होते हुए राजा ने मन्थरा से पूछा—'हमारी रानी कहाँ है?' ७६ तब वह पाप-खानि बोली—'उस तरफ़ आपकी रानी (सोयी) पड़ी है। हमारी समझ में वह नहीं आ रहा है कि उसके मन में क्या है?' ७७ फिर कैकेयी के पास आकर राजा ने उसका मुख हाथ से सहेल लिया, तो उसने

वदन। दिधलें दशरथासी लोटून। झिडकारूनि एकीकडे। ७८ म्हणे परता होईं नृपनष्टा। असत्यवादिया क्रियाभ्रष्टा। तुझे अंतरींचा भाव खोटा। सर्वही म्यां ओळखिला। ७९ ऐसे शब्द ऐकतां तीव्र। धकधकिलें रायाचें अंतर। चरण धरी तिचे सत्वर। येरी लोटी परताचि। १८० राजा म्हणे संभ्रम होत। राज्यीं स्थापितों रघुनाथ। तूं विघ्न न करीं येथ। शरणागत तुझा मी। ८१ वस्त्रें भूषणें अलंकार। अपेक्षित देईन समग्र। तुझ्या वचनालागीं निर्धार। प्राण वेंचीन जाण पां। ८२ मी असतां त्वां गळसरी। तोडून टाकिली महीवरी। मागुता जावोनि चरण धरी। लोटी निजकरीं कैकयी। ८३ स्त्रीलोभाचिये आवडी। प्राणी नाडले लक्षकोडी। जन्म-मरणांचिया ओढी-। माजी पडले बहुतचि। ८४ स्त्रीलोभ परम दारुण। पूर्वीं नाडले बहुत जण। मूर्तिमंत भवव्याधि कामिन। भुलवी सज्ञान जाणते। ८५ संसार-अनर्थास मूळ। तो स्त्रीसंबंध जाण केवळ। स्त्रीलोभें पापें सकळ। अंगीं

उन्हें ठुकराते हुए एक ओर धकेल दिया। ७८ वह बोली—'हे राजा, तुम भले ही नष्ट क्यों न हो जाओ। हे असत्यवादी, क्रिया-भ्रष्ट (राजा!) तुम्हारे मन का भाव (विचार) खोटा है। मैंने सभी जान लिया (है)।' ७९ ऐसे तीखे शब्दों को सुनते ही राजा का अन्तःकरण आतंकित हुआ तो उन्होंने उसके पाँव पकड़ लिये। (फिर भी) उसने फिर से (उन्हें) धकेल दिया। १८० राजा ने उत्कंठित होते हुए कहा—'मैं राम को राजगद्दी पर बैठा रहा हूँ, तो तुम यहाँ विघ्न (उत्पन्न) न करो। मैं तुम्हारी शरण में आया हुआ हूँ। ८१ तुम्हारे द्वारा अपेक्षित सब वस्त्र, आभूषण-अंलकार मैं (तुम्हें) दूँगा। जान लो, तुम्हारे वचन पर (के लिए) निश्चय ही मैं प्राण समर्पित करूँगा। ८२ मेरे (जीवित) रहने पर (भी) तुमने मंगल-सूत्र तोड़कर भूमि पर फेंक दिया।' फिर से जाकर उन्होंने चरण पकड़ लिये, तो कैकेयी ने उन्हें अपने हाथों धकेल दिया। ८३ स्त्री-लोभ के चाव में (पड़कर) लाखों-करोड़ों जीव पीड़ित हो गये और जन्म-मरण के पाश में बहुत से पड़ गये। ८४ स्त्री-लोभ परम दारुण होता है। पूर्वकाल में उससे बहुत-से लोग पीड़ित हो गये। कामिनी तो मूर्तिमती संसार की व्याधि होती है—वह ज्ञानियों-जानकारों को (भी) मोहित कर लेती है। ८५ जान लीजिए कि सांसारिक अनर्थ की जड़ केवल वह स्त्री-सम्बन्ध है। स्त्री-लोभ के कारण सब पाप (पास)

येऊन झगटती । ८६ असो तो राजा दशरथ । स्त्रीलोभें जाहला भ्रांत । कैकयीस म्हणे माग इच्छित । तें मी यथार्थ पुरवीन । ८७ कैकयीस संकेत दावी मंथरा । सांडूं नको पूर्वील निर्धारा । मागून घेईं दोन्ही वरां । वना रघुवीरा पाठवीं । ८८ कैकयी म्हणे नृपनायका । माझ्या स्वर्गींच्या दोन्ही भाका । न द्याल तरी उणें देखा । येईल वंशा तूमच्या । ८९ राजा म्हणे माग सत्वर । तुज दिधले अपेक्षित वर । मग म्हणे वना धाडीं रघुवीर । राज्य भरतासी समर्पीं । १९० जवळी असतां रघुनायक । त्याकडे होतील सकळ लोक । यालागीं दूर वनासी देख । आतांचि शीघ्र पाठवावें । ९१ मनुसंख्यासंवत्सर । राज्य करील माझा पुत्र । मग तुम्हीं आणावा रघुवीर । अथवा तिकडेच ठेविजे । ९२ ऐसें ऐकतांचि वचन । गजबजलें रायाचें मन । वाटे विद्युल्लता येऊन । अंगावरी पडियेली । ९३ कीं शरीर अग्नींत पडलें । कीं काळिजीं कर्वत घातले । कीं पर्वताजे कडे कोसळले । अंगावरी अकस्मात । ९४ कैकयीवचन प्रळयाग्न ।

आकर शरीर में चिपक जाते हैं । ८६ अस्तु । वे दशरथ राजा स्त्री-लोभ से (ही) भ्रम में पड़ गये । वे कैकेयी से बोले—'(जो) इच्छित (हो वह) माँग लो । मैं सचमुच उसे पूर्ण करूँगा ।' ८७ तो मन्थरा ने कैकेयी को इशारे से दिखा दिया (वताया)—अपना पहला निश्चय न छोड़ो; दोनों वर माँग लो (और) राम को वन (में) भेज दो । ८८ (तब) कैकयी ने कहा—'हे नृपनायक ! देखो, स्वर्ग में मुझे दिये हुए दोनों वर यदि तुम नहीं दोगे, तो तुम्हारे कुल में दोष आएगा (लग जाएगा) ।' ८९ (इसपर) राजा ने कहा—'झट से माँग लो । (समझो) तुम्हें अपेक्षित वर दिये ।' तव वह बोली—'राम को वन (में) भेजो और भरत को राज्य समर्पित करो । १९० राम के पास में रहने पर समस्त लोग उसकी ओर (उसके पक्ष में) हो जाएँगे । इसलिए देखो, उसे अभी शीघ्र ही दूर वन में भेज दो । ९१ मेरा पुत्र चौदह संवत्सर राज्य करेगा, फिर तुम राम को (वापस) लाओ अथवा वहीं रख दो ।' ९२ ऐसी वात सुनकर राजा का मन व्याकुल हो गया । उन्हें जान पड़ा—बिजली आकर वदन पर गिर पड़ी (हो), अथवा शरीर आग में पड़ गया (हो), अथवा कलेजे में आरा घुसेड़ दिया (हो), अथवा सहसा शरीर पर पहाड़ की खड़ी चट्टानें ढह गयी (हों) । ९३-९४ कैकेयी की बात

जाळीत चालिला आयुष्यकानन । मग तिचे धांवोन धरी चरण । पदर पसरून मागतसे । ९५ जो जो मागसील पदार्थ । तो तो पुरवीन समस्त । परी सुकुमार माझा रघुनाथ । वनाप्रति धाडूं नको । ९६ मी पृथ्वीपति राजा दशरथ । परी तुझा असें शरणागत । सुकुमार माझा रघुनाथ । वनाप्रति धाडूं नको । ९७ पट्टराणिया समस्त । तुझ्या सेवेसी लावीन यथार्थ । परी सुकुमार माझा रघुनाथ । वनाप्रति धाडूं नको । ९८ जो लावण्यामृत-सागर । उदार धीर गुणगंभीर । कोमळगात्र रघुवीर । वनाप्रति धाडूं नको । ९९ काय रघूत्तमें अन्याय केला । एवढा त्यावरी कोप धरिला । डोळस तमालनीळ सांवळा । वनाप्रति धाडूं नको । २०० भरतापरीस रघुनंदन । तुज प्रिय होता मनांतून । आतां कां कठीण केलें मन । मजलागून सांग तें । २०१ कैकयीपुढें पसरी पदर । वना धाडूं नको शतपत्र-नेत्र । येरी म्हणे तूं अधम साचार । माझीं वरदानें न देसी तूं । २०२ तुझे पूर्वज संपूर्ण । भाकेकारणें वेंचिती प्राण ।

रूपी प्रलयाग्नि (दशरथ की) आयु-रूपी वन को जलाती चली। (इसलिए) फिर राजा ने दौड़ते हुए उसके पाँव पकड़ लिए और पल्ला पसारते हुए (गिड़गिड़ाकर दया की) याचना करते हुए कहा ९५ —'जो-जो पदार्थ माँगोगी, वह समस्त मैं दूँगा। पर मेरे सुकुमार (शरीरधारी) राम को वन (में) न भेजो। ९६ मैं पृथ्वीपति राजा दशरथ हूँ; फिर भी तुम्हारा शरणागत (आश्रित, शरण में आया हुआ, दीन याचक) हूँ—मेरे सुकुमार राम को वन में न भेजो। ९७ अपनी सब पटरानियाँ तुम्हारी सेवा में सचमुच लगा दूँगा। परन्तु मेरे सुकुमार राम को वन में न भेजो। ९८ जो लावण्य-रूपी अमृत का सागर है, जो उदार, धीर, गुण-गम्भीर, कोमलशरीरी राम है, उसे वन में न भेजो। ९९ रघुवंश में जन्मे उत्तम पुरुष राम ने क्या अपराध किया (जिससे तुमने) उसपर क्रोध (धारण) किया (है)? सुन्दर नेत्रोंवाले, तमालनील श्याम-शरीरी (उस राम) को वन में न भेजो। २०० तुम्हें राम, भरत के समान ही मन में प्रिय था। मुझे बताओ, अब तुमने मन को कठोर क्यों बना दिया।' २०१ — वे कैकेयी के सामने गिड़गिड़ाकर बोले—'कमलनेत्र राम को वन में न भेजो।' तब वह बोली—'तुम सचमुच अधम हो (इसलिए) मेरे (माँगे) वरदान नहीं दे रहे हो (पूर्ण नहीं कर रहे हो)। २०२ तुम्हारे समस्त पूर्वजों ने वचन (पूर्ति के) लिए प्राण

त्यांचिये वंशीं जन्मोन । डाग लाविला कुळासी । ३ कैकयी-शब्दवज्र कठिण । रायाचें हृदय जाहलें चूर्ण । भूमीवरी मूर्च्छा येऊन । निचेष्टित पडियेला । ४ इतुका रात्रीं वर्तला वृत्तांत । तों प्रातःकाळीं आला सुमंत । रायासी करून प्रणिपात । वचन बोलता जाहला । ५ सर्व सामग्री जाहली पूर्ण । वाट पाहत ब्रह्मनंदन । अरुणोदय जाहला चंडकिरण । उदय करूं पाहतो । ६ तरी तुम्हीं येऊनियां तेथ । राज्यीं स्थापावा रघुनाथ । वचन न बोलतां दशरथ । चकित सुमंत विलोकी । ७ मनीं विचारी अजसुत । ही मात ऐकतां रघुनाथ । वनास जाईल यथार्थ । थोर अनर्थ ओढवला । ८ कैकयी म्हणे सुमंता । येथवरी आणीं रघुनाथा । मी त्यासी सांगेन अवघी वार्ता । जे जाहली कथा पूर्वींची । ९ रायासी निद्रा लागली जाण । यालागीं न बोलेचि वचन । तों इकडे ब्रह्मपुत्रें संपूर्ण । सामग्री सिद्ध केली असे । २१० सुमंत

अर्पित किये । उन्हीं के वंश में जन्म लेकर तुमने कुल में दाग़ लगा लिया । ' २०३ कैकेयी का शब्द-रूपी वज्र कठोर है । (उससे) राजा का हृदय चूर-चूर हो गया, तो मूर्च्छा आकर (अचेत होकर) भूमि पर निश्चेष्ट लुढ़क पड़े । २०४

रात में इतनी घटना घटित हुई, तो सबेरे सुमन्त (वहाँ) आ गया । राजा को प्रणाम करके वह बोला । २०५ —' सब सामग्री पूर्ण (सज्ज) हो गयी । ब्रह्म-नन्दन वसिष्ठ (आपकी) राह देख रहे हैं । अरुणोदय हो गया, चण्ड-किरण सूर्य उदित हुआ चाहता है । ६ इसलिए वहाँ आकर आप श्रीराम को राजगद्दी पर बैठाएँ । ' परन्तु दशरथ द्वारा कोई बात नहीं कहने से सुमन्त चकित होकर देखता रहा । ७ (इधर) दशरथ ने मन में विचार किया कि इस बात को सुनकर राम सचमुच वन में जाएगा । बड़ा ही विघ्न आ पड़ा । ८ (तब) कैकेयी ने सुमन्त से कहा—' राम को यहाँ (तक) ले आओ, (तो) जो बात पहले हो गयी, उसका समस्त समाचार मैं उससे कहूँगी । ९ समझो कि राजा को नींद लगी (है), इसलिए वे (कोई) बात नहीं बोलते । फिर इधर वसिष्ठ ने समस्त सामग्री सिद्ध की है । ' २१० (इसपर) सुमन्त ने कैकेयी से कहा—' (फिर) राजा ने भूमि पर शयन क्यों किया ? ' तब दशरथ सिसक-सिसककर रोने लगे । २११ उन्होंने कहा—' सुमन्त, मेरी बात सुनो । मेरी मौत निकट आ गयी । यहाँ तक श्रीराम को ले आओ ।

म्हणे कैकयीलागून । रायें भूमीवरी कां केलें शयन । तों दशरथ स्फुंदस्फुंदोन । रुदन करूं लागला । ११ म्हणे सुमंता ऐक वचन । माझें जवळी आलें मरण । येथवरी आणीं रघुनंदन । कोणासी वर्तमान न सांगावें । १२ सुमंत आज्ञा वंदून । निघाला तेव्हां म्लानवदन । जैसा सूर्य ग्रहणीं कळाहीन । तैसें आनन दिसतसे । १३ विचार करीत सुमंत । रामधामाकडे जात । जैसा मुमुक्ष संसारतापें संतप्त । वेगें येत संतसदना । १४ केवळ आत्मप्राप्तीचें स्थान । तैसें दिसे रामसदन । चाऱ्ही महाद्वारें ओलांडून । जाता जाहला तेधवां । १५ दृष्टीं पहावया रघुवीर । क्रमोनि गेला स्थूळदेह-द्वार । दुसरें सूक्ष्म सुंदर । तत्त्वांसहित ओलांडिलें । १६ पुढें क्रमोनियां कारण । वेगें निघाला प्रधान । तों महाकारण देदीप्यमान । चौथें द्वार देखिलें । १७ चतुर्थ द्वारींची पाहतां रचना । ब्रह्मानंद जाहला मना । तुर्येचा उंबरा ओलांडूनि जाणा । पुढें सत्वर जातसे । १८

(परन्तु) किसी से कोई समाचार (बात) न कहो।' १२ (राजा की) आज्ञा को शिरसावंद्य करके सुमन्त चल दिया। वह म्लान-मुख था। जैसे सूर्य, ग्रहण के समय कलाहीन (फीका) होता है, वैसे ही उसका मुख (फीका हुआ) दिखायी दे रहा था। १३ वह सोच रहा था। जिस प्रकार मुमुक्ष संसार के ताप से सन्तप्त होकर वेगपूर्वक सन्तों के घर की ओर जाता है, उसी प्रकार वह राम के भवन की ओर जा रहा था। १४ उसे राम का भवन केवल आत्म (-ज्ञान) की प्राप्ति के स्थान-जैसा दिखायी दे रहा था। (उस) भवन के चारों महाद्वारों को पार करके वह तब अन्दर जा पहुँचा।† १५ राम को (अपनी) दृष्टि से देखने के लिए वह पहले स्थूल देह द्वार पार करके (आगे) गया; दूसरे सुन्दर द्वार को उसने (पंचमहाभूत, पंचविषय, दशइंद्रियाँ, मन, अहंकार, महत्तत्व माया, ईश्वर--इन पचीस, तत्त्वों सहित पार कर लिया। १६ फिर आगे कारण देहावस्था के (तीसरे) द्वार को पार करके वह मंत्री (सुमन्त) वेगपूर्वक चल पड़ा, तो उसने महाकारण नामक चौथी देहावस्था-स्वरूपी तेजस्वी चौथा द्वार देखा। १७ (उस) चौथे दरवाज़े की रचना (गठन) को देखकर उसके मन को (में) ब्रह्मानन्द अनुभव हुआ। जान लीजिए,

†[टिप्पणी:—आत्मज्ञान की प्राप्ति की ओर जाते समय साधक को चार देहावस्थाएँ पार कर जानी पड़ती हैं, जो यों हैं—स्थूल देहावस्था, सूक्ष्म देहावस्था, कारण देहावस्था और महाकारण देहावस्था। इन अवस्थाओं की उपमा द्वारों से दी गयी है।]

तों मणिमयमंडपप्रभा घन। त्यासी आठ पायऱ्या देदीप्यमान। श्रवण कीर्तन स्मरण। पादसेवन तें चौथें। १९ अर्चन वंदन दास्य सख्य। चढे सत्वर प्रधान देख। तों स्वानंदचौकीवरी सीतानायक। प्रधानोत्तमें विलोकिला। २२० मग नवविधा भक्ति आत्मनिवेदन। सुमंतें केलें साष्टांग नमन। तंव तो कमलपत्राक्ष सुहास्यवदन। काय तेव्हां बोलिला। २१ सुमंता तूं मुख्य प्रधान। आम्हांस ज्येष्ठबंधूसमान। तुझे निर्मळ गुण पाहोन। ब्रह्मानंद मज वाटे। २२ मग तो जोडूनि दोन्ही कर। उभा राहे राघवासमोर। सांगे दशरथें सत्वर। कैकयीसदनीं बोलाविलें। २३ आतां कैकयीसदना श्रीराम। कैसा जाईल पूर्णब्रह्म। तें कथाकौतुक सप्रेम। संत सज्जन ऐकोत पां। २४ रामविजय ग्रंथ सुंदर। भक्तिज्ञानवैराग्य-भांडार। दृष्टांतरत्नें अपार। माजी सतेज झगमगती। २५

(तदनन्तर) तुरीयावस्था-रूपी देहली को लाँघ कर, वह शीघ्रता से आगे बढ़ा।× २१८ तब (वहाँ) रत्नमय मण्डप की घनी प्रभा थी। उस (मण्डप) के लिए (नवविधा भक्ति में से आठ प्रकार की भक्ति-रूपी) तेजस्वी आठ सीढ़ियाँ थीं। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चौथी भक्ति पादसेवन, अर्चन (पूजन), वन्दन, दास्य और सख्य नामक आठ प्रकार की भक्तियों-रूपी आठ सीढ़ियों पर शीघ्रता से मंत्री सुमन्त चढ़ गया। तो देखिए उसी श्रेष्ठ मंत्री ने आत्मानन्द की चौकी पर सीतापति राम को (विराजमान) देखा। २१९-२२० तत्पश्चात् आत्मनिवेदन नामक नवें प्रकार की भक्ति (प्रस्तुत) करके सुमन्त ने राम को साष्टांग नमस्कार किया। तब (सुनिए) वे कमलपत्रनयन सुहास्यवदन श्रीराम क्या बोले। २२१ (उन्होंने कहा)—'सुमन्त, आप मुख्यमंत्री हमारे लिए ज्येष्ठ बन्धु के समान हैं। आपके निर्मल गुणों को देखकर मुझे ब्रह्मानन्द हो रहा है।' २२ तब दोनों हाथों को जोड़कर वह राम के सामने खड़ा रहा और बोला—'दशरथ राजा ने कैकेयी (रानी) के भवन में (आपको) सत्वर बुलाया (है)'। २३

अब पूर्णब्रह्म श्रीराम कैकेयी के भवन (की ओर) कैसे जाएँगे!—उस आश्चर्यकारी कथा को सन्त-सज्जन प्रेमपूर्वक सुनें। २४ राम-विजय नामक यह सुन्दर ग्रन्थ भक्ति-ज्ञान-वैराग्य का भाण्डार है। (इसके) अन्दर दृष्टान्त-रूपी अपार तेजस्वी रत्न जगमगा रहे हैं। २२५

× [टिप्पणी:—योग विद्या के अनुसार साधक के मन की चार अवस्थाएँ हैं—जागृति, सुषुप्ति, स्वप्न और तुरीया। यह चौथी तुरीयावस्था समाधि-रूपा है।]

ब्रह्मानंदा श्रीधरवरा। श्रीमद्भीमातट-विहारा। पुराणपुरुषा निर्विकारा। जगद्वंद्या अभंगा। २२६ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत पंडित चतुर। नवमाध्याय गोड हा। २२७ ॥ श्रीरामचंद्रार्पणमस्तु ॥

श्रीधर कवि को वर देनेवाले हे ब्रह्मानन्द गुरुरूपी परब्रह्म! श्रीमद्भीमानदी के तट पर विहार करनेवाले, निर्विकार, जगद्वंद्य अभंग पुराण-पुरुष! स्वस्ति! श्रीराम-विजय नामक यह सुन्दर ग्रन्थ वाल्मीकि-नाटक पर आधारित एवं उससे सम्मत है। चतुर पंडित जन उसके इस मधुर नवम अध्याय का नित्य श्रवण करें। २२६-२२७। श्रीरामचंद्रार्पणमस्तु।

अध्याय—१०

श्रीगणेशाय नमः॥ श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः॥

संतसज्जनांची मांदी मिळाली। देखोनि वाग्देवी धांविन्नली। शब्दरत्नांचीं भरणीं भरलीं। वेगें आणिलीं भक्ति-पेठे। १ पाहोनि ग्राहकांची आवडी। परीक्षक तैसेंचि रत्न काढी। कीं सुगरणी जैसी वाढी। अपेक्षा पाहूनियां क्षुधितांची। २ गात्रें पाहून भूषणें। लेववितीं पैं शाहाणे। कीं दिनमान पाहून उष्णकिरणें। उदया जैसें पाविजे। ३ कीं पाहूनियां समयघटिका। उदय होय जेवीं शशांका। कीं

श्रीगणेशाय नमः। श्री रामचन्द्राय नमः। सन्त-सज्जनों की मण्डली इकट्ठा हुई (है; यह) देखकर वाग्देवी सरस्वती (उस ओर) दौड़ती हुई गयी। (उसकी कृपा से मैंने) शब्द-रूपी रत्नों से भरतीयों को भर दिया और (उन्हें) भक्ति की पैंठ (हाट) में शीघ्रता-पूर्वक ले आया। १ ग्राहकों की रुचि को देखकर रत्न-परीक्षक (जौहरी) वैसा ही रत्न निकालता है; अथवा क्षुधितों (भूखे लोगों) की अपेक्षा को देखकर सुगृहिणी जैसे (खाद्य वस्तुओं को) परोसती है; अथवा हाथ आदि अंग (अवयव) देखकर चतुर लोग गहने पहनवा लेते हैं; अथवा उदय-वेला देखकर ही जैसे (गर्म किरणोंवाला) सूर्य उदित होता है; अथवा समय-घड़ी देखकर चन्द्र का उदय हो जाता है; अथवा वर्षाकाल को देखकर मेघ जैसे बरसता है (अर्थात् उचित समय पर कोई बात घटित हो, तो ही वह शोभा देती है, उसी तरह रामकथा का श्रवण करने के लिए उत्सुक श्रद्धालु श्रोताओं को

वर्षाकाळींचे देखा। मेघ जैसे वर्षती। ४ कीं ऋतुकाळीं येती फळें। कीं उत्तम काळ पाहूनि भले। सत्कर्में करिती सकळें। निष्कामबुद्धीकरूनियां। ५ कीं वेदांचें अंतर पाहूनि देख। चालताती शास्त्रांचे तर्क। कीं लवण पाहूनि उदक। धांवे जैसें त्वरेनें। ६ तैसें श्रोतयांचें जाणोनि अंतर। रामकथा आरंभिली साचार। बोलिला वाल्मीक ऋषीश्वर। तेंचि चरित्र परिसा यां। ७ शब्दभवाब्धि भरला अपार। कवितालक्ष तारूं थोर। स्फूर्तिवायूच्या बळें सत्वर। जहाज चाले त्वरेनें। ८ सद्‌गुरुकृपा हेंचि बंदर। तेथें शब्दरत्नें भरलीं अपार। संतपेठेसी आणिलीं साचार। ग्राहक थोर म्हणोनिया। ९ तरी सादरता देऊनी धन। घ्या जी शब्दरत्नें परीक्षा करून। असो पूर्वाध्यायीं सुमंत प्रधान। श्रीरामगृहासी पातला। १० शोकाकुलित होउनी। दशरथ पडिला कैकयीसदनीं। कीं अग्निसंगेंकरूनी। मुक्त जैसें आहाळलें। ११ ग्रहणकाळीं

देखकर ही कवि उस कथा का वर्णन करने लगता है।) २-४ अथवा (नियत) मौसम में (पेड़ों में) फल आते हैं; अथवा उत्तम समय को देख कर भले लोग निष्काम बुद्धि (भाव) से सब सत्कर्म करते हैं; अथवा देखिए, वेदों के अन्तरंग (आन्तरिक अर्थ) को देखकर (उसके अनुकूल) शास्त्रों के तर्क चलते हैं; अथवा ढलान देखकर पानी जिस प्रकार वेगपूर्वक दौड़ता है, वैसे श्रोताओं के मन को जानकर, मैंने सचमुच रामकथा के कथन का श्रीगणेश किया। ऋषिवर वाल्मीकि ने राम-चरित्र कहा (है), वही (चरित्र) आप सुनिए। ५-७ शब्द रूपी सागर अपार भरा (हुआ है), लक्ष-संख्यक कविता (उसमें चलनेवाली) बड़ी नौका है। स्फूर्ति (प्रेरणा)-रूपी वायु के बल पर वह नौका तेज़ी से चल रही है। ८ सद्‌गुरु की कृपा ही (मानो) बन्दरगाह है। वहाँ बहुत शब्दरूपी रत्न रख दिये (हैं)। (आप) बड़े (चतुर तथा गुणज्ञ) ग्राहक हैं, इसलिए सचमुच उन्हें सन्तों की (भक्ति-रूपी) पेंठी (हाट) में ला दिया (है)। ९ इसलिए आदर-युक्त ध्यान-रूपी धन देकर और (उन) शब्द-रत्नों की परख कर (उन्हें ग्रहण कर) लीजिए। अस्तु। पूर्ववर्ती (नवम) अध्याय में कहा (है) कि मंत्री सुमन्त श्रीराम के भवन में पहुँच गये। १०

(इधर) कैकेयी के भवन में शोकाकुल होकर दशरथ गिर पड़े (हैं)। अथवा (उन्हें देखकर जान पड़ता है कि) आग की संगति में मोती झुलस गया। ११ ग्रहण के समय सूर्य और चन्द्र सचमुच निस्तेज दिखायी देते

सूर्यचंद्र। दिसती कळाहीन साचार। कीं पंकगर्तेत सुकुमार। हंस जैसा रूतला। १२ तैसा जाण द्विपंचरथ। पडिला असे शोकग्रस्त। सुमंत पाठविला त्वरित। श्रीरामासी आणावया। १३ असो सुमंत म्हणे जी श्रीरामा। रायें बोलाविलें कैकयीधामा। पुराणपुरुष सर्वात्मा। तत्काळ उठोनि चालिला। १४ रथीं बैसला ते क्षणीं। नवमेघरंग चापपाणी। भक्तकैवारी कैवल्यदानी। वेदपुराणीं वंद्य जो। १५ वस्त्रालंकारमंडित पूर्ण। पाहाती सर्व अयोध्याजन। म्हणती कोटचनुकोटी मीनकेतन। श्रीरामावरूनि ओंवाळिजे। १६ श्रीराममुकुटींची दिव्य कळा। तेणें रविमंडप उजळला। त्या तेजांत सूर्य बुचकळला। प्रकाश पडला पृथ्वीवरी। १७ मकराकार शोभती कुंडलें। कीं प्रळयाग्नीनें नेत्र उघडिले। कीं कल्पांतविजूचे उमाळे। शीतळ जाहले सर्वहि। १८ अनंत

हैं। अथवा (जान पड़ता है कि) कीचड़-भरे गर्त में सुकोमल हंस धँस गया। १२ समझ लीजिए कि उसी प्रकार दशरथ शोक-ग्रस्त होकर गिर पड़े हैं। (अर्थात्, ग्रहण-ग्रस्त सूर्य या चन्द्र अथवा आग में झुलसे मोती, अथवा कीचड़ में धँसे हंस के समान वे निस्तेज दिखायी दे रहे थे।) (उस समय) श्रीराम को लाने के लिए सुमन्त शीघ्रतापूर्वक पहुँच गये। १३

अस्तु। सुमन्त बोले—'हे श्रीराम! राजा ने (आपको) कैकेयी (रानी) के भवन में बुलाया (है)।' (यह सुनकर) पुराणपुरुष सर्वात्मा श्रीराम तत्काल उठकर चल दिये। १४ जो भक्तों के पक्षपाती (समर्थक, सहायक) और कैवल्य पद के दाता हैं, जो वेदों और पुराणों द्वारा वंद्य हैं, वे नवमेघ-से साँवले तथा हाथ में धनुष (बाण) लिये हुए श्रीराम उस क्षण रथ में विराजमान हो गये। १५ अयोध्या के लोगों ने श्रीराम को वस्त्रों और आभूषणों से विभूषित देखा, तो कहा—'करोड़ों-करोड़ों कामदेवों को श्रीराम पर निछावर कर दें।' १६ श्रीराम की कुटी (भवन) की ऐसी दिव्य कांति थी कि उससे रवि-मण्डप (आकाश) उज्ज्वल हो गया। उस तेज में सूर्य (मानो) डूबते हुए भीग गया। उससे पृथ्वी पर प्रकाश फैल गया। १७ (श्रीराम द्वारा पहने हुए) मकराकार कुण्डल ऐसे शोभायमान थे कि (जान पड़ता था) प्रलयंकर अग्नि ने (उनके रूप में) आँखों को खोल दिया (हो), अथवा कल्पान्त समय की बिजलियों की सभी लपटें शीतल हो (उन कुण्डलों के रूप में

बाळसूर्यांच्या कळा । श्रीरामरूपीं लोपल्या सकळा । कीं ब्रह्मानंद रस वोतला । सगुणलीला धरूनियां । १९ सुवर्णोदक-नदी निर्मळ । मेरुपाठारीं वाहे सदाकाळ । तैसें केशरदिव्य-तिलक भाल । श्रीरामाचें शोभतसे । २० अंगीं दिव्य चंदन चर्चित । अयोध्येमाजी सुवास बहकत । तेणें घ्राणदेवता नाचत । निजानंदेंकरूनियां । २१ गुणीं ओविलीं भगणें सकळें । तैसे मुक्तहार शोभती चांगले । अनंत ब्रह्मांडें एकेचि वेळे । एकसरें डोलती । २२ अपार राहिले भक्त प्रेमळ । म्हणोनि रुंदावलें वक्षःस्थळ । दिव्य तेज पदक निर्मळ । प्रभेनें निराळ कोंदलें । २३ आजानुबाहु रघुनंदन । करीं विराजत चापबाण । कटीं मेखळा पीतवसन । चपळेहून झळकतसे । २४ असो ऐसा रघुनाथ । रथारूढ विरिंचि-तात । छप्पन्न देशींचे राजे समस्त ।

प्रकट) गयी (हों) । १८ (जान पड़ता था कि) अनगिनत बाल-सूर्यों की समस्त कान्तियाँ श्रीराम के रूप में लुप्त (अर्थात् विलीन) हो गयीं अथवा सगुण लीला को धारण करते हुए (उसमें) ब्रह्मानन्द का रस डाल दिया (गया) १९ जिस प्रकार स्वर्णजल की निर्मल नदी मेरु पर्वत के पठार पर सब काल बहती रहती है (और वह बहती नदी जिस प्रकार दिखायी देती है) उसी प्रकार श्रीराम का केसर के दिव्य तिलक से (मंडित) भाल (-प्रदेश) शोभायमान था । २० उनके अंग में दिव्य चन्दन लगाया हुआ है (था) । उसकी सुगन्ध अयोध्या में फैल रही है (थी) । उससे घ्राण-देवियाँ (नाक की अधिष्ठात्री देवियाँ) आत्मानन्द अनुभव करते हुए नाचती (झूमती) हैं (थीं) । २१ उनके (द्वारा गले में पहने हुए) मोतियों के हार इस प्रकार सुन्दर सुशोभित हैं (थे), जैसे समस्त तारे धागे में पिरो दिये (हों), अथवा (जान पड़ता था कि) अनगिनत ब्रह्माण्ड एक ही समय पर समान रूप से झूम रहे हों । २२ श्रीराम के प्रेमयुक्त असंख्य भक्त (उसपर) रहते हैं, इसलिए उनका वक्षःस्थल चौड़ा हो गया (है) । (उसपर) दिव्य तेज से युक्त पदक है; उसकी निर्मल कान्ति से आकाश भर गया । २३ श्रीराम आजानुबाहु (अर्थात् घुटनों तक लम्बे हाथोंवाले) हैं । उनके हाथ में धनुष-बाण शोभायमान हैं । कमर में (बँधी) मेखला (करधनी) और (पहना हुआ) पीताम्बर बिजली से भी (अधिक) जगमगा रहे हैं । २४ अस्तु । ब्रह्मा के पिता (भगवान् विष्णु के अवतार) ऐसे रघुनाथ राम को रथ में विराजमान देखकर छप्पन (अर्थात् अनेकानेक) देशों के समस्त राजा

देखोनियां आनंदले । २५ पुढें चालत चतुरंग दळ । धडकत वाद्यांचा कल्लोळ । श्रीराम पाहावया सकळ । उतावीळ जन जाहले । २६ पाहतां श्रीरामाचें मुखकमळ । राजे आनंदले सकळ । म्हणती जन्म जाहला सुफळ । तमालनील देखिला ।२७ धन्य धन्य तो दशरथ । जयाच्या उदरीं अवतरला रघुनाथ । यासी राज्यपद यथार्थ । देईल आतां संभ्रमें । २८ तो सोहळा पाहूनि नयनां । जाऊं आपुल्या स्वस्थाना । असो ऐसा मिरवत रामराणा । कैकयीसदनासमीप आला । २९ जवळी आला ऐकोनि रघुनाथ । स्फुंदस्फुंदोनि रडे दशरथ । लोकां बाहेर टाकोनि जात । श्रीराम दशरथाजवळी पैं । ३० लक्ष्मण आणि सुमंत । यांसहित प्रवेशे रघुनाथ । तों मूर्च्छित पडला दशरथ । नयनीं वाहात अश्रुधारा । ३१ रामें दशरथासी केलें नमन । वंदिले कैकयीचे चरण । येरी म्हणे विजयी पूर्ण । सर्वदाही होसी तूं । ३२ श्रीराम पुसे कैकयीसी । काय व्यथा रायाचे मानसीं । कां शयन केलें भूमीसी । तें मजप्रती

आनन्दित हो गये । २५ (उनके रथ के) आगे चतुरंग सेना चल रही थी । वाद्यों का तुमुल गर्जन चल रहा था । (अयोध्यावासी) समस्त लोग श्रीराम को देखने के लिए अधीर हो गये । २६ श्रीराम के मुख-कमल को देखकर समस्त राजा आनन्दित हो गये । उन्होंने कहा (माना) —'(हमारा) जन्म सुफलित (चरितार्थ) हो गया—हमने तमालनील श्रीराम को (अपनी आँखों से) देख लिया । २७ वे दशरथ राजा धन्य हैं, धन्य हैं, जिनके उदर से श्रीराम अवतरित हो गये । वे सचमुच अब इन्हें सम्मानपूर्वक राज्यपद प्रदान करेंगे । २८ उस आनन्दोत्सव को (अपनी) आँखों से देखकर हम अपने-अपने स्थान जाएँगे ।' अस्तु । इस प्रकार ठाठबाट से भ्रमण करते हुए श्रीरामराज कैकेयी के भवन के समीप आ गये । २९ श्रीराम निकट आये—यह सुनकर दशरथ सिसक-सिसक कर रोते रहे, तो लोगों को बाहर ही छोड़कर श्रीराम दशरथ के पास गये । ३० लक्ष्मण और सुमन्त के साथ श्रीराम ने (अन्दर) प्रवेश किया तो (देखा कि) दशरथ अचेतन पड़े (हुए हैं) और (उनकी) आँखों से अश्रुधारा बह रही है । ३१ (फिर) श्रीराम ने दशरथ का नमन किया; कैकेयी के चरणों का वन्दन किया, तो वह बोली, 'तू नित्य ही पूर्ण विजयी हो जाए ।' ३२ (तदनन्तर) श्रीराम ने कैकेयी से पूछा, 'महाराज के मन में क्या व्यथा है ? मुझसे कहो कि उन्होंने भूमि पर (इस प्रकार) शयन

सांगिजे । ३३ कैकयी सांगे समाचार । रायें मज दिधले दोन वर । ते मीं मागतां साचार । दुःख थोर वाटलें । ३४ मग बोले रघुनंदन । ते भाक मी पुरवीन । येरी म्हणे तूं वनासी करीं गमन । चतुर्दश वर्षेपर्यंत । ३५ सांगातें नेईं सुमित्रासुत । राज्य करील माझा भरत । तूं वनीं होशील यशवंत । सीताकांत अवश्य म्हणे । ३६ मातेची आज्ञा सर्वथा । न मोडावी प्रमाण शास्त्रार्था । संन्यास जरी घेतला तरी माता । वंदावी हें साचार । ३७ प्राणाहून पलीकडे । माझा भरत मज आवडे। त्यास राज्य देतां मज सांकडें । सर्वथाही वाटेना । ३८ भूधर अवतरला लक्ष्मण । परम क्रोधावला जाण । भ्रुकुटीसी आंठी घालोन । नेत्रयुगुळ वटारिलें । ३९ जैसा विवेकबळेंकरून । क्रोध आवरिती साधकजन । तैसाचि उगा राहिला लक्ष्मण । भीड धरून रामाची । ४० असो कैकयीस नमून रामराणा । आला कौसल्येच्या सदना । परमानंद पावला मना । तपोवना

क्यों किया (है) ?' ३३ इस पर कैकेयी ने (यह) समाचार कहा— 'राजा ने (पूर्वकाल में) मुझे दो वर दिये (थे) । मेरे द्वारा उन्हें आधार-पूर्वक (अर्थात् विशिष्ट कारण के आधार से) माँगते ही उन्हें बहुत दुःख (अनुभव) हो गया ।' ३४ तब श्रीराम ने कहा—'मैं उस वचन को पूर्ण करूँगा ।' (इसपर) उसने कहा—'चौदह वर्ष तक (रहने के लिए) तुम वन की ओर जाओ । ३५ साथ में लक्ष्मण को ले जाओ । मेरा (पुत्र) भरत राज्य करेगा । तुम वन में कीर्तिमान् हो जाओगे ।' (यह सुनते ही) श्रीराम ने कहा—'अवश्य (ऐसा ही होगा) । ३६ शास्त्रों के अर्थ के अनुसार (यह) प्रमाणभूत (प्रमाणित नीति) है कि माता की आज्ञा को बिलकुल न तोड़ें । सत्य यह है कि यदि संन्यास ग्रहण कर लिया, तो भी माता का वन्दन (अवश्य) करें । ३७ मेरा भरत मुझे (अपने) प्राणों से परे (अधिक) प्रिय लगता है । उसे राज्य देते (हुए) मुझे (कोई) संकट बिलकुल नहीं (अनुभव) होता ।' ३८ (प्रत्यक्ष) लक्ष्मण के रूप में शेष (ही) अवतरित (हो गया) था। समझिए, (यह सुनकर) वह अत्यधिक क्रुद्ध हो गया । भौंहें चढ़ाकर वह (उनकी ओर) घूरने लगा । ३९ जैसे विवेक के बल से साधक जन क्रोध को रोक लेते हैं, वैसे ही (क्रोध को रोककर) राम के प्रति संकोच करके (राम के लिहाज़ से) लक्ष्मण चुप रहा । ४०

अस्तु । राम राय कैकेयी का नमन करके कौसल्या के भवन में

जावया । ४१ कीं दैत्य वधावया जातां स्वानंद । गजवदन आणि वीर स्कंद । नमिलें अन्नपूर्णेचें चरणारविंद । ब्रह्मानंदें-करूनियां । ४२ कीं करूं जातां अमृतहरण । सुपर्णें वंदिले जननीचरण । त्याचपरी रघुनंदन । कौसल्येसी नमीतसे । ४३ सांगीतलें सकळ वर्तमान । धगधगलें कौसल्येचें मन । भूमीस पडली मूर्च्छा येऊन । वाटे प्राण चालिला । ४४ किंवा हृदयीं शस्त्र खोंचलें । कीं लोभियाचें धन हरवलें । तैसें कौसल्येसी वाटलें । आज्ञा मागतां श्रीरामें । ४५ मग म्हणे घनःशामगात्रा । रामा माझ्या राजीवनेत्रा । मज सांडोनि पवित्रा । कैसा वना जाशील । ४६ माझे पुष्पवाटिकेआंत । राहें चतुर्दश वर्षेंपर्यंत । कोणासी तूं न भेटें यथार्थ । राहें गुप्त राघवा । ४७ श्रीराम म्हणे माते । तैसें नव्हे जाणें वनातें । सत्य करावया पितृ-वचनातें । दंडकारण्या जाईन मी । ४८ पश्चिमेस उगवेल चंडकिरण । परी मी न मोडीं पितृवचन । होईन भाकेसी

आ गये । तपोवन में जाने के हेतु उनके मन को परमानन्द प्राप्त हो गया । ४१ अथवा जिस प्रकार आत्मानन्द-भरे गणपति और वीर कार्तिकेय ने दैत्यों के वध के लिए प्रस्थान करते हुए ब्रह्मानन्द-पूर्वक माता अन्नपूर्णा पार्वती के चरण-कमलों का वन्दन किया, अथवा अमृत का हरण के लिए जाते हुए गरुड़ ने (अपनी) माता के चरणों का वन्दन किया, उसी प्रकार श्रीराम ने कौसल्या (के चरणों) का नमन किया । ४२-४३ उन्होंने (जब) समस्त समाचार कहा, तो कौसल्या का मन क्षुब्ध हो धड़कने लगा । अचेत होकर वह भूमि पर लुढ़क गयी । ऐसा लगता था कि प्राण निकल जाना चाहते हों, अथवा हृदय में (किसी ने) शस्त्र गड़ा दिया (हो), अथवा (किसी) लोभी का धन खो गया (हो), कौसल्या को ऐसा (ही) जान पड़ा । ४४-४५ फिर उसने कहा—'हे घनश्याम शरीरधारी (राम) ! मेरे कमलनयन राम ! मुझे छोड़कर तू वन में कैसे जाएगा ? ४६ मेरी पुष्पवाटिका (पुष्पोद्यान) में तू चौदह वर्ष तक रह जा । तू सचमुच किसी से न मिल ! हे राम ! तू गुप्त रह जा ।' ४७ (इसपर) श्रीराम ने कहा—'हे माँ ! वन में (मुझे) वैसे नहीं जाना है । पिताजी के वचन को सत्य (सिद्ध) करने के लिए मैं दण्डकारण्य में जाऊँगा । ४८ सूर्य पश्चिम दिशा में उदित होगा (अर्थात् यह असम्भव है, वह सम्भव भी हो जाएगा) फिर भी मैं पिता जी के वचन को नहीं तोड़ूँगा । मैं इस वचन (के पालन)

उत्तीर्ण । नसे अनमान सर्वथा । ४९ जन्मोनियां जनकपोटीं । साच न करवे त्याची गोष्टी । तरी अपकीर्तीनें सृष्टी । भरोनियां उचंबळे । ५० साच न करवे पितृवचन । व्यर्थ काय जन्मास येऊन । विगतधवेचें सुंदरपण । किंवा ज्ञान दांभिकाचें । ५१ कीं वोडंबरीचें शूरत्व जाण । कीं अजाकंठींचे जैसे स्तन । कीं नटांमधील कामिन । कीं कंटकवन सघन पैं । ५२ कीं जन्मांधाचे विशाळ नेत्र । कीं मद्यपियाचें अपवित्र पात्र । कीं अदात्याचें उंच मंदिर । व्यर्थ काय जाळावें । ५३ यालागीं पुत्र तोचि धन्य । जो साच करी पितृवचन । तरी मज वना जावया- लागून । आज्ञा देई अंबे तूं । ५४ म्हणोनि श्रीरामें धरिले चरण । उभा राहिला कर जोडून । धबधबां वक्षःस्थळ बडवून । कौसल्येनें घेतलें । ५५ नगरीं तेव्हां फुटली मात । कीं वना जातो श्रीरघुनाथ । वर्तला एकचि आकांत । पडिले मूर्च्छित लोक तेव्हां । ५६ कौसल्या म्हणे रघुनंदना । सुकुमारा

में सफल हो जाऊँगा; (मुझे इसमें) बिलकुल (कोई) सन्देह नहीं है। ४९ पिता के उदर से जन्म लेकर यदि (पुत्र से) उसका वचन सत्य न किया जा सके, तो सृष्टि अपकीर्ति से उमड़ उठेगी। ५० यदि (किसी से अपने) पिता का वचन सत्य (सिद्ध) नहीं किया जा सकता, तो उसके व्यर्थ जन्म लेने से क्या होगा ? वह तो वैसे ही व्यर्थ है, जैसे विधवा की सुन्दरता अथवा दाम्भिक का (ब्रह्म-) ज्ञान व्यर्थ होता है; अथवा समझिए जैसे बहुरूपिये की शूरता, अथवा अजा-गल-स्तन (बकरी के गले में उत्पन्न स्तन सदृश पिण्ड) अथवा (पुरुष) अभिनेता में कामिनीपन (स्त्रीत्व), अथवा धन-दौलत से भरा काँटों का वन व्यर्थ होता है; अथवा जैसे जन्मान्ध के विशाल नेत्र, अथवा मद्यपी का अपवित्र पात्र व्यर्थ होता है। अदाता (कृपण) पुरुष का ऊँचा भवन क्या व्यर्थ नहीं है ? उसे लेकर क्या जला दें ? ५१-५३ इसलिए पुत्र वही धन्य है, जो पिता के वचन को सत्य (सिद्ध) कर ले। अतः हे माँ ! मुझे वन (में) जाने की आज्ञा दो।' ५४ (ऐसा) कहकर श्रीराम ने (माता के) चरण पकड़ लिये। (फिर) वे हाथ जोड़कर खड़े रह गये, तो कौसल्या छाती को धवधव पीटती रही। ५५ तब यह बात नगर में फैल गयी कि श्रीराम वन (में) जा रहे हैं, तो असीम कुहराम मच गया। तब लोग अचेत हो पड़ गये। ५६ (इधर) कौसल्या ने कहा— 'हे रघुनन्दन, हे सुकुमार जग- मोहन, मेरी आज्ञा को न मानते हुए तू वन (में) कैसे जा रहा है ?' ५७

जगन्मोहना । माझी मोडोनियां आज्ञा । कैसा वना जातोसी । ५७ श्रीरामासी म्हणे लक्ष्मण । मज आज्ञा देईं अणुप्रमाण । कैकयीचें शिर छेदून । संतोषवीन सकळांसी । ५८ रघुपती तूं वना जातां यथार्थ । प्राण त्यजील दशरथ । राज्य बुडेल समस्त । अयोध्या ओस होईल । ५९ परम प्रेमळ बंधु भरत । तो राज्य न करील यथार्थ । इचा वध करितां सत्य । तोही सुख पावेल । ६० सकळ अनर्थाचें कारण । कैकयी असत्याचें भाजन । इजला टाकितां वधून । सकळ जन आनंदती । ६१ जैसी समूळ टाकितां दुर्वासना । साधक पावती आत्मसदना । कीं रजनी सरतां सकळ जनां । सूर्योदयीं आनंद । ६२ मग बोले श्रीराम । प्राणांत जाहलिया विपरीत कर्म । सहसा न करावें हें वर्म । हृदयीं धरीं लक्ष्मणा । ६३ कौसल्या सुमित्रा जैशा माता । तैसीच कैकयी जाण तत्त्वतां । तियेचा वध करितां । मग यश कैंचें आम्हांतें । ६४ लक्ष्मण म्हणे श्रीरामातें । तरी मज न्यावें सांगातें । नाहीं तरी प्राण त्यागीन येथें ।

(इसपर) लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा—'मुझे अणु-भर (ज़रा-सी) आज्ञा दो, तो मैं कैकेयी का सिर काटकर सबको सन्तुष्ट कर दूँगा। ५८ हे राम! तुम्हारे वन में जाते ही सचमुच दशरथ राजा प्राणों को त्याग देंगे, समस्त राज्य डूब (मिट्टी में मिल) जाएगा। अयोध्या सूनी हो जाएगी। ५९ भाई भरत परम स्नेहल है, वह सचमुच राज नहीं करेगा। इस (कैकेयी) का वध करने पर सचमुच वही सुख को प्राप्त हो जाएगा। ६० (जो) समस्त अनर्थ का कारण (है, वह) कैकेयी असत्य का पात्र है। इसका वध कर डालने पर सारे लोग वैसे ही आनन्दित हो जाएँगे, जैसे दुर्वासना (बुरी वासना) का जड़-मूल-सहित त्याग करने पर साधक आत्म (-ज्ञान-रूपी) सदन को प्राप्त हो जाते हैं, अथवा रात के समाप्त हो जाने पर सूर्योदय के समय सब लोगों को आनन्द होता है।' ६१-६२ फिर श्रीराम बोले—'प्राणों का अन्त होने पर भी (धर्म-) विपरीत कर्म कदापि नहीं करें। हे लक्ष्मण यह मर्म (रहस्यभरी बात) हृदय में धारण कर रखो। ६३ जैसी कौसल्या और सुमित्रा माताएँ हैं, समझो कि कैकेयी वस्तुतः वैसी ही माता है। उसका वध करने पर हमारी कीर्ति कैसे होगी?' ६४ (तब) लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा—'तो फिर मुझे साथ में ले चलो, नहीं तो, मैं यहाँ प्राण त्याग दूँगा; फिर तुम सुखपूर्वक वन में जाओ।' ६५ (तब) सुमित्रा ने श्रीराम से कहा—'मेरे लक्ष्मण को

मग तूं वना सुखें जाईं। ६५ तों सुमित्रा म्हणे रघुनंदना। माझा लक्ष्मण नेईं वना। सेवील तुझिया निजचरणा। प्रेमभावें-करूनियां। ६६ रामा तुजवेगळा एक क्षण। सर्वथा न राहे लक्ष्मण। वनीं फळें जीवन आणून। शय्येसी तृण निजावया। ६७ तुझी सेवा करील परिकर। तेणें आनंद मज थोर। ऐसें बोलतां सुमित्रेचे नेत्र। प्रेमोदकें भरून आले। ६८ मग ऊर्मिलेचें समाधान। करूनियां लक्ष्मण। सिद्ध जाहला प्रयाण। वनाप्रती करावया। ६९ कौसल्या म्हणे रघुनंदना। बा रे मज टाकूनी जासी वना। कांटे पाषाण तुझिया चरणां। चालतां रज खुपतील। ७० जडितांबरें सर्व सांडोनी। कैसा राहशील वल्कलें वेष्टूनी। भ्रमरपर्यंक त्यजोनी। भूमिशयन केवीं करिसी। ७१ त्यजूनि रत्नजडित कोटीर। कैसा राखिसी जटाभार। रामा तुझी तनु सुकुमार। वातउष्णें श्रमेल कीं। ७२ सुगंध परिमळ त्यजूनि परम। कैसें आंगीं चर्चिसी भस्म। वनीं राक्षस दुर्धर परम। छळावया तुज येतील। ७३ वनीं सांपडासी तूं जगजेठी। मग तुझी कोण राखील पाठी। शोकें

(साथ में) वन में ले जाओ। वह तुम्हारे चरणों की प्रेमभाव-पूर्वक सेवा करेगा। ६६ हे राम, लक्ष्मण एक क्षण (भर के लिए भी) तुमसे बिलकुल अलग नहीं हो जाएगा। वन में फल और पानी लाकर (तथा) सो जाने के लिए शय्या (बनाने) के लिए घास लाकर लक्ष्मण अपने हाथों से तुम्हारी सेवा करेगा। उससे मुझे बहुत आनन्द होगा।' ऐसा कहते हुए सुमित्रा की आँखें प्रेमाश्रु से भर गईं। ६७-६८ तब उर्मिला को समझा-बुझाकर लक्ष्मण वन की ओर प्रयाण (गमन) करने के लिए तैयार हो गया। ६९ (तत्पश्चात्) कौसल्या ने श्रीराम से कहा—' अरे, तू मुझे छोड़कर वन जा रहा है। चलते समय काँटे, पत्थर (कंकड़), धूलिकण तेरे चरणों में चुभेंगे। ७० सब रत्न-जटित आभूषणों और (उच्च) वस्त्रों को त्याग कर (तू) वल्कलों को लपेटे हुए कैसे रहेगा? कमल-से मृदुल पलंग को छोड़कर तू भूमि पर कैसे सो जाएगा? ७१ रत्न-जटित शिरोभूषण को त्यजकर तू जटाभार कैसे रखेगा? हे राम, तेरी सुकुमार देह वायु और गर्मी से कष्ट को प्राप्त हो जाएगी। ७२ परम सुगन्ध एवं परिमल से युक्त लेपन का त्याग करके तू वदन में भस्म कैसे लगाएगा? वन में अति दुर्धर राक्षस तुझे सताने के लिए आएँगे। ७३ हे जगश्रेष्ठ श्रीराम, तू वन में फँस जाएगा, फिर कौन तेरी सहायता करते हुए रक्षा

कौसल्या हृदय पिटी । म्हणे काय करूं आतां । ७४ मग औषधी मोहरे अनेक आणुनी । रामाचे दंडीं बांधी जननी । रामासी पाणी लागेल वनीं । औषधमणी कवरीं बांधी । ७५ वनीं दृष्टावेल रघुनाथ । म्हणोनि मोहरे करीं बांधित । कांहीं एक पीडा न होय यथार्थ । ऐशा वस्तु देत माता । ७६ ते आदिपुरुषाची जननी । वनासी निघतां चापपाणी । पंचभूतांसी कर जोडोनी । प्रार्थना करी भावार्थें । ७७ धरणीस कौसल्या विनवीत । माते तुझा श्रीराम जामात । यासी रक्षीं यथार्थ । निजस्नेहेंकरूनियां । ७८ ज्या पंथें जाईल कमलपत्राक्ष । त्याच पंथें असोत सुफल वृक्ष । नाना संकटीं विरूपाक्ष । रक्षो यासी सर्वदा । ७९ रातोत्पल कमलें पूर्ण । त्यांहून सुकुमार राम-चरण । त्याचिया चरणीं खडे पाषाण । रुतों नेदीं अवनीये । ८० उदकासी कौसल्या म्हणत । रघुवीर होईल तृषाक्रांत । नदी सरोवरें समस्त । पूर्णोदकें ठेवीं कां । ८१ म्हणे विश्वप्रकाश

करेगा ? ' (इस तरह) शोक करते हुए कौसल्या छाती पीटती रही और बोली—'अब मैं क्या करूँ ? ' ७४

अनन्तर माता (कौसल्या) ने औषधियों से युक्त मनके लाकर राम के बाहुओं में बाँध दिये । वन में (ख़राब) पानी राम को बाधा पहुँचाएगा—इस भय से (उसने) उसके बालों में औषधियों से युक्त मनके बाँध दिये । ७५ वन में राम को बुरी नज़र लगेगी—(इस भय से) उसने (बुरी नज़र से बचाने के हेतु) हाथ में मनके बाँध दिये । माता ने (उसे) ऐसी वस्तुएँ दीं ताकि उसे सचमुच कोई पीड़ा न पहुँच जाए ।७६ आदि पुरुष (परब्रह्म स्वरूप श्रीराम) की उस माता ने चापपाणि श्रीराम के वन की ओर जाने के लिए निकलते ही, हाथ जोड़कर (श्रद्धा-) भाव-पूर्वक पंचमहाभूतों से प्रार्थना की । ७७ कौसल्या ने पृथ्वी से (यों) विनती की—'हे माता ! श्रीराम तुम्हारा जामाता है । स्नेहभाव-पूर्वक इसकी ठीक से रक्षा करो । ७८ जिस मार्ग से कमल-पत्र के समान नयनों वाला श्रीराम जाएगा, उसी मार्ग पर अच्छे फलों से युक्त वृक्ष रहें । शिवजी अनेकानेक संकटों से नित्य इसकी रक्षा करें । ७९ हे पृथ्वी, राम के पाँव पूर्ण-विकसित रक्त-कमलों (लाल कमलों) से अधिक कोमल हैं । उसके चरणों में कंकड़-पत्थरों को चुभने न दे । ' ८० (फिर) कौसल्या ने जल (नामक महाभूत) से कहा—'राम प्यास से व्याकुल हो जाएगा । (इसलिए) समस्त नदियों और सरोवरों को पूर्णोदक-अर्थात् (पानी से

चंडकिरणा। तूं रक्षीं आपले कुलभूषणा। तुझीं किरणें मनमोहना। स्पर्शों नेदीं सर्वथा। ८२ लोकप्राणेशा प्रभंजना। लघु माझिया रघुनंदना। तुझिया गुणें धुळी नयनां-। माजी न जावी सर्वथा। ८३ उष्णें शिणतां रघुनाथ। तूं मंद मंद येईं मारुत। जेणें सुखावे अवनिजा-कांत। करीं ऐसें प्राणेशा। ८४ अंबरा तूं निर्विकार पाहीं। शब्दविषय तुझे ठायीं। मंजुळ शब्द तुझे हृदयीं। अंडज करोत सर्वदा। ८५ ब्रह्मा शिव इंदिरावर। अष्ट दिक्पाल एकादश रुद्र। नव ग्रह अष्ट वसु द्वादश मित्र। माझा रघुवीर रक्षोत। ८६ देव उपदेव कर्मज देव। पाताळ-भोगी सर्प मानव। जलचर जलार्णव। माझा रघुवीर रक्षोत। ८७

भरे-पूरे) रख दो।' ८१ (तदनन्तर) उसने विश्व को प्रकाश देनेवाले चण्ड-किरण सूर्य से कहा—'तू अपने कुल-भूषण की रक्षा करो। (श्रीराम का कुल सूर्य-कुल कहलाता है; वह सूर्य-कुल के लिए भूषणास्पद है) अपनी (प्रखर) किरनों को मनमोहन राम को बिलकुल छूने न दो।' ८२ (तदनन्तर उसने वायु तत्त्व से कहा) 'हे लोगों के प्राणों के ईश्वर प्रभंजन (वायुदेव), मेरा राम नन्हा है। उसकी आँखों में, तुम्हारे गुणों के बल पर (ही) धूल बिलकुल न (उड़) जाए। ८३ हे मरुत (वायु), राम के गर्मी से थक जाने पर तुम मन्द-मन्द (बहते) आओ। हे प्राणेश, तुम ऐसा ही करो, जिससे सीतापति श्रीराम सुख को प्राप्त हो जाए।' ८४ (तत्पश्चात् कौसल्या ने आकाश से यों विनती की—) 'हे आकाश, तुम निर्विकार (बनकर) देख रहे हो। तुम्हारे यहाँ शब्द (ध्वनि) विषय (वस्तु) है। पक्षी तुम्हारे हृदय में नित्य मधुर ध्वनियाँ (उत्पन्न) करें। ८५ 'ब्रह्मा, शिवजी, इन्दिरा-पति विष्णु, (इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, मरुत, कुबेर, ईश नामक) आठों (दिशाओं का पालन करनेवाले) दिक्पाल, (वीरभद्र, शम्भु, गिरीश, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, भुवनाधीश्वर, कपाली, स्थाणु और भव नामक) ग्यारहों रुद्र, (सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु नामक) नवों ग्रह, (धर, ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास अथवा द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु, विभावसु नामक) आठों वसुदेव, (मित्र, रवि, सूर्य, भानु, खग, पूषा, हिरण्यगर्भ, मरीचि, आदित्य, सविता, अर्क और भास्कर नामक) बारहों सूर्य मेरे राम की रक्षा करें। ८६ देव, उपदेव, कर्मज देव, पाताल भोगी देव, सब मनुष्य, जलचर (पानी में रहनेवाले जीव), समुद्र मेरे राम की रक्षा करें। ८७

चराचर प्राणी जे वहिले। चहूं खाणींमाजी जन्मले। वेदशास्त्रें पुराणें सकळें। ब्रह्म सांवळें रक्षोत। ८८ कर जोडोनि कौसल्या सती चराचर जीवांसी झाली प्रार्थिती। परी हा आदिपुरुष रघुपती। नेणवेचि तियेतें। ८९ जो दानवकुळ-वैश्वानर। साधुहृत्पद्म-भ्रमर। अज्ञानतमच्छेदक दिवाकर। नेणे साचार कौसल्या। ९० जो अरिचक्रवारण-पंचानन। कीं दुःखपर्वतभंजन सहस्रकिरण। कीं विघ्नफणिपाळ विदारून। त्यावरी सुपर्ण रघुवीर। ९१ तो सज्जनचकोरामृतकर। भक्तचातक-सजलजलधर। कीं साधुनयनाब्ज-मित्र। तो हा साचार अवतरला। ९२ असो याउपरी कौसल्या म्हणत। चतुर्दश वर्षेपर्यंत। व्यर्थ देह हा प्रेतवत। कैसा पाळूं मी आतां। ९३ कैसें पूर्वकर्म गहन। फळा आलें मुळींहून। अमलदलराजीवनयन। वनास जातो ये वेळे। ९४ तूं वना जातोसी रघुनंदना। स्तनीं दाटला प्रेमपान्हा। माझ्या विसाविया मनमोहना। गुणनिधाना जाऊं

जो पहले खानों में जन्मे हैं, वे चराचर प्राणी, सब वेद शास्त्र, पुराण इस श्याम शरीरधारी ब्रह्म की रक्षा करें।' "सती कौसल्या ने हाथ जोड़कर चराचर जीवों से प्रार्थना की, परन्तु उससे यह नहीं जाना जाता कि यह राम (ही) आदि पुरुष (ब्रह्म) है। ८९ कौसल्या सचमुच उसे नहीं जानती थी जो (वस्तुतः) दानवों के कुल को जला डालनेवाला अग्निदेव है, जो (स्वयं) साधु पुरुषों के हृदय-कमल में निवास करनेवाला भ्रमर है, जो (साक्षात्) अज्ञान-रूपी अन्धकार को नष्ट करनेवाला सूर्य है, जो शत्रु-मंडलरूपी हाथियों के दल का नाश करनेवाला सिंह है, अथवा दुःख-रूपी पर्वत को भग्न करनेवाला सूर्य है, अथवा राम मानो विघ्नरूपी सर्प-राज को विदीर्ण करके ऊपर अधिष्ठित गरुड़ है। ९०-९१ जो सज्जन रूपी चकोरों के लिए चन्द्रमा हैं, अथवा भक्त रूपी चातकों के लिए जल-युक्त मेघ हैं, अथवा साधु पुरुषों के नयन रूपी कमलों को विकसित करने-वाले सूर्य हैं, वे ब्रह्मराम ही ये (दाशरथी) राम अवतरित हैं। ९२ अस्तु। (ऐसा) होने पर भी कौसल्या ने कहा—'चौदह वर्षों तक अब इस देह को व्यर्थ ही प्रेतवत् मैं कैसे पालूं (धारण किये रहूँ)? ९३ पूर्वकाल में किया मेरा कैसा घोर कर्म मूल-सहित फलयुक्त हो गया, (जिससे) अमल दल वाले कमल-से नेत्रवाला राम इस समय वन की ओर जा रहा है। ९४ हे राम, तू वन में जा रहा है, तो मेरे स्तनों में दूध भर आ रहा है (स्तन पेन्हा रहे हैं)। मेरे विश्राम, मनमोहन, गुणनिधान राम, तू न जा। ९५

नको । ९५ श्रीरामा भुवनसुंदरा । डोळसा सुकुमारा राजीव-नेत्रा । मुनिजनरंजना गुणसमुद्रा । जाऊं नको वनातें । ९६ हृदयीं नसतां रघुनंदन । संपत्ती त्या विपत्ती जाण । कळा त्या विकळा संपूर्ण । विद्या होत अविद्या । ९७ श्रीरामाविण करिती कर्म । तोच तयास पडला भ्रम । सच्चिदानंद मेघ-श्याम । मज टाकूनी जातो कीं । ९८ तंव देववाणी गर्जिन्नली पाहीं । सर्वां ठायीं राम विजयी । कल्पांतीं तयासी भय नाहीं । हा शेषशायी अवतरला । ९९ जैसा जीव जातां वैद्य येऊन । म्हणे मी तुज वांचवीन । तैसें मायेस वाटलें पूर्ण । आकाशवाणी ऐकतां । १०० आदिपुरुष निर्विकार । कौसल्येस घाली नमस्कार । प्रदक्षिणा करूनि वारंवार । मुख विलोकी जननीचें । १०१ जो मायातीत अगोचर । तेणें आसुवें भरलें नेत्र । विमलांबु-धारा पवित्र । मुखावरून उतरल्या । १०२

हे श्रीराम, हे भुवन-सुन्दर, हे सुन्दर नेत्रोंवाले सुकुमार राम, हे कमलनयन राम, मुनिजनों का रंजन करनेवाले राम, हे गुण-सागर ! तू वन में मत जा।' ९६ समझिए कि हृदय में श्रीराम के न होने पर (पास होनेवाली) सम्पत्तियाँ विपत्तियाँ हैं, कलाएँ पूर्णतः विकलाएँ हैं और विद्याएँ अविद्याएँ हैं । ९७ श्रीराम के (ध्यान आदि के) विना जो कार्य करते हैं, वह उन्हें भ्रम ही हो गया (है कि वे कुछ कर रहे हैं) । (हाय !) सच्चिदानन्द मेघश्याम राम मुझे छोड़कर जा रहा है । ९८ इतने में देखिए, देववाणी का यों गर्जन हो गया कि सब स्थलों पर श्रीराम विजयी हैं । उनके लिए कल्पान्त में (भी) भय नहीं है । ये तो शेषशायी भगवान् विष्णु (ही) अवतरित हैं । ९९ जैसे (किसी रोगी के) जीव (प्राणों) के निकलते समय, वैद्य आकर कहे—' मैं तुझे बचाऊँगा ', तब उसे जैसा लगेगा, वैसे ही आकाशवाणी को सुनते हुए माता कौसल्या को पूर्णतः अनुभव हो गया । १००

(तदनन्तर उन) निर्विकार आदिपुरुष ने कौसल्या को (साष्टांग) नमस्कार किया और (उसकी) परिक्रमा करके वारवार वे माता का मुख देखते रहे । १०१ जो (वस्तुतः) माया के परे और अगोचर (इन्द्रियों के लिए अज्ञेय) हैं, उन्होंने आँसुओं से (अपने) नेत्रों को भर लिया । स्वच्छ एवं पवित्र (अश्रु) जल-धाराएँ उनके मुख पर से उतरती रहीं (देखिए— माया की कैसी लीला है) । १०२ उस समय माता ने दौड़ते हुए आकर राम को गले लगा लिया । उसके शोक को सुनकर कवियों

मायेनें धांवून । तये वेळीं । रामाचे गळां मिठी घातली । तो शोक ऐकतां उर्वीमंडळीं । कवींसी वोलीं न वर्णवे । ३ म्हणे कमलपत्राक्षा रघुनंदना । तुवां कैकयीची पाळिली आज्ञा । मान दिधला पितृवचना । माझी अवज्ञा कां करिसी । ४ मग तो जगद्वंद्य रघुनायक । मातेसी म्हणे न करीं शोक । मी सत्वर परतोनि देख । जननी येतों तुजपाशीं । ५ असो सीतेचिया मंदिरांत । प्रवेशला जनकजामात । सीता जाहली आनंद-भरित । मूद ओंवाळी वरूनियां । ६ मनीं जगन्माता विचारीत । कां एकलेचि आले श्रीरघुनाथ । संगें राजचिन्हें नाहींत । चिंताक्रांत जानकी । ७ वृत्तांत सांगे रघुनंदन । आम्ही वनाप्रति करितों गमन । तुवां कौसल्येची सेवा करून । सुखें राहावें येथेंचि । ८ सुमित्रा आणि कैकयी । समान भजें सर्वां ठायीं । जनकगृहा न जाईं कदाही । कुरंगनेत्रे जानकी । ९ वनासी येसी तरी बहुत । दंडकारण्य कठिण पंथ । वात उष्ण शीत यथार्थ । न सोसवे तुझेनि । ११० तंव ते सुंदर शृंगार-

द्वारा पृथ्वी पर उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता । १०३ उसने कहा—'हे कमलपत्र-नयन रघुनन्दन ! तूने कैकेयी की आज्ञा का पालन किया, पिता के वचन को सम्मान-पूर्वक स्वीकार किया (वचन का सम्मान किया), तो फिर मेरी अवज्ञा (आज्ञा न मानकर उपेक्षा) क्यों कर रहा है ?' १०४ फिर वे जगद्-वंद्य श्रीराम माता से बोले—'तुम शोक न करो। हे माँ, देखो, मैं सत्वर लौटकर तुम्हारे पास (कैसे) आता हूँ।' १०५

अस्तु । जनक के जामाता श्रीराम ने (तदनन्तर) सीता के भवन में प्रवेश किया, तो वह हर्ष-विभोर हो गयी । उसने (भात के पिण्डे से अनिष्ट की नज़र का) उतारा किया । १०६ जगन्माता सीता मन में (यह) सोचती थी कि श्रीराम अकेले ही क्यों आये; साथ में राज-चिह्न (भी) नहीं हैं । (इसलिए) वह चिन्ताक्रान्त हो गयी । १०७ (फिर) श्रीराम ने समाचार कह दिया; (और सुझाया—) 'हमारे वन के प्रति जाने पर तुम कौसल्या की सेवा करते हुए सुख-पूर्वक यहीं रहना । हे मृगाक्षी जानकी, सुमित्रा और कैकेयी— सबके प्रति समान आदर-भाव रखना (और) पिता जनक के घर कभी भी न जाना । ८-९ यदि तुम वन (में) आओगी (आना चाहोगी) तो (जान लो कि) दण्डकारण्य का मार्ग बहुत कठिन है । तुमसे हवा, गर्मी, ठण्ड को सचमुच सहा नहीं जा सकता ।' ११०

मराळी । गुणसरिता जनकबाळी । सुकुमार राजस चंपककळी । काय बोले तेधवां । ११ अहा जगद्वंद्या श्रीरामा । निजभक्त-कामकल्पद्रुमा । गजास्यजनकविश्रामा । टाकूनि मजला नव जावें । १२ जगज्जनका रघुवीरा । जनकजामाता जगदुद्धारा । जगरक्षका जलज-नेत्रा । जलदगात्रा रघुराजा । १३ जलचरें जल सांडून । वेगळीं होतां त्यजिती प्राण । द्विजकुळांसी आकाशावांचून । नव्हे भ्रमण कोठेंही । १४ दीप सांडूनि निश्चितीं । प्रभा न राहे कल्पांतीं । कनकासी टाकूनि कांती । कदा परती नव्हेचि । १५ शिवावेगळी नोहे अंबिका । किरणें न सोडिती कदा अर्का । साधुहृदय सांडोनी सद्विवेका । कोठें जाणें घडेना । १६ रत्नावेगळी कळा । गोडी न सोडी गुळा । कस्तुरी न सोडी परिमळा । तेवीं मी वेगळी नव्हेंचि । १७ म्हणोनि रघुपती कोमळांगा । दयाळा ममहृदयाब्जभृंगा । ताटिकांतका नवमेघरंगा । मज टाकुनी नच जावें । १८ सिंह सखा असतां पाहीं । मग कांतारीं हिंडतां भय नाहीं । सीतेचे

तब वह रूपवती, गुण-सरिता, सुकुमार, सुन्दर चम्पक-कली (-सी) जनक-कन्या सीता क्या बोली ? (सुनिए) । ११ 'अहो जगद्-वंद्य श्रीराम, अपने भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष, हे शिवजी के विश्राम (-स्थान), (आप) मुझे छोड़कर न जाएँ । १२ हे जगत्पिता रघुवीर, हे जनक राजा के जामाता, हे जगत् का उद्धार करनेवाले श्रीराम, हे जगद्-रक्षक, कमलनेत्र, मेघश्याम-शरीरी रघुराज, जलचर (पानी में रहनेवाले) प्राणी पानी को छोड़कर जुदा होते ही प्राण-त्याग करते हैं; पक्षियों द्वारा आकाश को छोड़कर कहीं (अन्यत्र) भ्रमण नहीं हो सकता; दीपक को छोड़कर (उसकी) प्रभा (कान्ति) कल्पान्त में (भी) निश्चय ही नहीं रह सकती; सोने को छोड़कर (उसकी) कांति कभी भी अलग नहीं हो सकती । अम्बा पार्वती शिव से जुदा नहीं हो सकती; किरणें सूर्य को कदापि नहीं छोड़तीं । सद्विवेक से साधुओं (सज्जनों) के हृदय को छोड़कर कहीं (भी) नहीं जाया जाता । रत्न से (उसकी) कला (कान्ति) अलग नहीं हो जाती । मधुरता गुड़ का त्याग नहीं करती । कस्तूरी सुगन्ध को नहीं छोड़ती । उस प्रकार मैं (भी आपसे) अलग नहीं हो सकती । १३-१७ इसलिए हे कोमल-शरीरी (और) दयालु राम, मेरे हृदय-कमल के भ्रमर, ताड़का के वध-कर्ता, नवमेघ की भाँति श्याम-शरीरी श्रीराम, (आप) मुझे छोड़कर नहीं जाएँ । १८ देखिए,

शब्द ऐकोनि हृदयीं । जगदात्मा संतोषला । १९ जानकीवचन सुधाकर । तेणें तोषले रामकर्णचकोर । कीं वचनमेघ गर्जतां गंभीर । मनमयूर नृत्य करी । १२० रघुपती म्हणे इंदुवदने । श्रीवसिष्ठाचे चरण धरणें । मज वनाप्रति पाठवणें । हेंचि विनवीं तयाप्रती । २१ तुज नेतां वनाप्रती । नाना शब्दें लोक निंदिती । यालागीं पुसोनि वनाप्रती । समागमें निघावें । २२ मग वसिष्ठाचिये चरणीं । नमन करी जगज्जननी । म्हणे मी राघवाची सांगातिणी । वनवासी होईन । २३ मग वसिष्ठ म्हणे रघुनाथा । संगें नेईं जनकदुहिता । सवें असों द्यावें सुमित्रासुता । रक्षणार्थ तुम्हांतें । २४ असो सौमित्रास म्हणे राघवेश । वसिष्ठगृहीं आहे मम धनुष्य । अक्षय भाते निःशेष । वरद शस्त्रें आणावीं । २५ आपलें संग्रह-धन रघुवीर । याचकां वांटी उदार । गुरुगृहास द्रव्य अपार । वस्त्रें भूषणें धाडिलीं । २६ आणि नाना वस्तु संपत्ति । पाठविल्या गुरुगृहाप्रती । सद्गुरूसी

सखा (के रूप में) सिंह होने पर फिर (मुझे) वन में भ्रमण करने में (कोई) भय नहीं है।' सीता के (ऐसे) शब्द सुनते हुए जगदात्मा श्रीराम हृदय में सन्तुष्ट हो गये। १९ जानकी का (यह) कथन (मानो) चन्द्रमा है; उससे श्रीराम के कर्ण-रूपी चकोर तृप्त हो गये। अथवा उसके कथन-रूपी मेघ के गरजते ही (श्रीराम का) मनरूपी मयूर नाचता रहा। १२० (तब) श्रीराम बोले—'हे चन्द्रानना, वसिष्ठ (गुरु) के चरण पकड़ो (पाँव लगो) और उनसे यही विनती करो— आप मुझे बन (में) भेज दें। २१ तुम्हें वन में ले जाने पर लोग नाना शब्दों में (नाना प्रकार की बातें कहते हुए) हमारी निन्दा करेंगे। इसलिए (गुरुजनों से) पूछकर (आज्ञा माँगकर) वन के प्रति जाने के लिए (हमारे) साथ में निकलो।' १२२

तब जगज्जननी सीता ने (गुरु) वसिष्ठ के चरणों का नमन किया; (और) कहा—'श्रीराम की सहचारिणी (संगिनी) मैं वनवासी हो जाऊँगी।' २३ फिर वसिष्ठ ने श्रीराम से कहा—'जनक-सुता सीता को साथ में ले जाओ। तुम्हारी रक्षा के लिए साथ में लक्ष्मण को रहने दो' २४ अस्तु। (तदनन्तर) श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—'मेरा धनुष (गुरु) वसिष्ठ के घर में है। (वहाँ से तुम उसे और) अक्षय भाथों तथा सभी वरद शस्त्रों को ले आओ'। १२५ (तत्पश्चात्) अपना संग्रहीत धन श्रीराम ने याचकों को उदारता-पूर्वक बाँट दिया और गुरु के घर अपार धन, वस्त्र और आभूषण भेज दिये। २६ और अनेक

जे न भजती । अभागी निश्चितीं तेचि पैं । २७ ततुमनधनेंसीं शरण । श्रीगुरूसीं जो न जाय आपण । तो जाहला जरी शास्त्रप्रवीण । न करितां गुरुभजन तरेना । २८ व्यर्थ गेलें तयाचें तप । जळो जळो तयाचा जप । व्यर्थ काय कोरडा प्रताप । गुरुवचन नावडे जया । २९ सद्‌गुरूचे घरीं आपदा । आपण भोगी सर्व संपदा । त्या अपवित्राचें मुख कदा । दृष्टीं न पहावें कल्पांतीं । १३० तरी तैसा नव्हे रघुवीर । गुरुगृहाप्रति अपार । द्रव्य वस्त्रें अलंकार । पाठविलीं तेधवां । ३१ गुरुपुत्र परम सुज्ञ । आदरें आणिला बोलावून । आपुलीं वस्त्रें भूषणें काढून । तया संपूर्ण लेवविलीं । ३२ सीतेनें वस्त्रें भूषणें अपार । सुयज्ञासी दिधलीं सत्वर । रथ देऊनियां गुरुपुत्र । निजगृहास पाठविला । ३३ सकळ ऋषींच्या गृहाप्रती । द्रव्य पाठवी रघुपती । चौदा वर्षें निश्चितीं । पुरोन उरे अपार । ३४ विश्वामित्र असित कण्व । दुर्वास भृगु

वस्तुएँ तथा सम्पत्ति गुरु के घर भेज दी । जो गुरु की सेवा नहीं करते वे निश्चय ही अभागे हैं । २७ तन, मन तथा धन के साथ जो श्रीगुरु की शरण में नहीं जाता, वह यद्यपि शास्त्रों में प्रवीण हो गया, तथापि गुरु की सेवा न करने पर, (भव-सागर को तैर कर) पार नहीं जाएगा । २८ उसका तप व्यर्थ हो गया, उसके द्वारा किया हुआ (भगवान् के नाम का) जाप जल जाए, जल जाए । जिसे गुरु का कथन अच्छा नहीं लगता, उसका कोरा प्रताप क्या ही व्यर्थ है ! २९ (जिसके) सद्‌गुरु के घर विपत्ति है और (इधर) जो स्वयं सम्पत्ति का भोग कर लेता है, उस अपवित्र (पापी) मनुष्य का मुख कल्पान्त में (भी) कभी दृष्टि (आँखों) से न देखें । १३० परन्तु रघुवीर राम वैसे (इस प्रकार के मनुष्य) नहीं हैं । (इसलिए तो) उन्होंने गुरु के घर तब अपार द्रव्य, वस्त्र और आभूषण भेज दिये । ३१ गुरु का पुत्र परम सुजान था । (श्रीराम) उसे आदर-पूर्वक बुला लाये और अपने वस्त्र और आभूषण निकाल कर (उतारकर) उसे पूर्णरूप से पहना दिये । ३२ सीता ने भी सुयज्ञ (नामक उस गुरु-पुत्र) को अनगिनत वस्त्र तथा आभूषण शीघ्रता से दे दिये । (फिर) रथ देकर (अर्थात् रथ में बैठाकर) गुरु-पुत्र को उसके घर भेज दिया । ३३ श्रीराम ने सब ऋषियों के घर (इतना) धन भेज दिया, (जो) उन्हें चौदह साल (तक) निश्चय ही पर्याप्त होकर (भी) बहुत शेष रहेगा । ३४ विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वास, भृगु, वामदेव,

वामदेव। अंगिराआदि द्विज सर्व। द्रव्य राघव पाठवी त्यांतें। ३५ कौसल्या सुमित्रा माता जाणा। द्रव्य पाठवी तयांच्या सदनां। रामें आपुले सेवकजनां। द्रव्य अपार दीधलें। ३६ दरिद्री दीन कुटुंबवत्सल। अशक्त पंगु केवळ। तयांसी द्रव्य तमालनील। आणूनि देता जाहला। ३७ इष्ट अत्यंत गौरवून। सर्वांस म्हणे रघुनंदन। स्नेह न सांडावा मजवरून। सुखेंकरून नांदा हो। ३८ मग कैकयीच्या गृहास। येता जाहला जगन्निवास। ते वेळे अयोध्येच्या लोकांस। कल्पांतचि वाटला। ३९ अयोध्येच्या नरनारी। अश्रु वाहती तयांच्या नेत्रीं। गोब्राह्मणांचा कैवारी। वना जातो म्हणोनियां। १४० इकडे कैकयीच्या सदनांत। रामें नमिला दशरथ। प्रदक्षिणा करोनी विलोकित। वदनारविंद पितयाचें। ४१ दशरथ म्हणे रघुनंदना। राजीवनयना जातोसि वना। मी न ठेवीं आपुल्या प्राणा। कुलभूषणा रघुवीरा। ४२ राजा म्हणे श्रीरामातें। दळभार नेईंते सांगातें। वनामाजी सुखें वर्ते। चौदा वर्षेंपर्यंत। ४३ तों रामचंद्र बोले वचन। मी तपालागीं

अंगिरा आदि (जो-जो) ब्राह्मण (राज्य में) थे, उन सबके लिए श्रीराम ने धन भेज दिया। ३५ (यह भी जान लीजिए कि) कौसल्या और सुमित्रा— इन माताओं के भवन में (भी) राम ने धन भेज दिया और अपने सेवक-जनों को (भी) बहुत सम्पत्ति दी। ३६ जो केवल दरिद्र दीन. कुटुम्ब-वत्सल, दुर्बल, पंगु थे, तमालनील श्रीराम ने धन लाकर उन्हें भी दे दिया। ३७ इष्ट (अर्थात् प्रिय एवं निकटस्थ) जनों का अत्यन्त गौरव करके श्रीराम ने सबसे कहा—'मेरे प्रति स्नेहभाव का त्याग न करो और सुख-पूर्वक रहो'। ३८ फिर वे जगन्निवास राम कैकेयी के घर आ गये तो उस समय अयोध्या के सब लोगों को कल्पान्त ही जान पड़ा। ३९ गो-ब्राह्मणों के पक्षपाती (सहायक) वन में जा रहे थे, इसलिए अयोध्या के नर-नारियों की आँखों से आँसू बह रहे थे। १४०

इधर कैकेयी के भवन में श्रीराम ने दशरथ का नमन किया और उनकी परिक्रमा करके वे अपने पिताजी का मुख-कमल देखते रहे। ४१ (तब) दशरथ ने श्रीराम से कहा—' हे कमलनयन, हे कुलभूषण रघुवीर, तुम वन में जा रहे हो, तो मैं अपने प्राणों को (अपने शरीर में) न रखूँगा।' ४२ फिर राजा दशरथ ने श्रीराम से कहा—' साथ में सेना ले

सेवितों कानन । तेथें दळभाराचें कारण । सर्वथाही नसेचि । ४४
वल्कलें वेष्टूनि वनांत । तप करीन मी यथार्थ । ऐसी कैकयीनें
ऐकोनि मात । वल्कलें पुढें ठेविलीं । ४५ तीं वेष्टूनि श्रीरामीं ।
श्यामलांगीं लाविलें भस्म । केशभार सुवास परम । आकर्षोनि
बांधिले । ४६ सौमित्रें वल्कलें वेष्टून । वंदिले दशरथाचे चरण ।
तों कैकयी म्हणे सीते झडकरून । वस्त्रें भूषणें फेडीं कां । ४७
ऐसे ऐकतां जनकबाळी । तडिदंबरभूषणें त्यागीलीं । तीं सर्व
कैकयीनें आवरिलीं । वल्कलें दिधलीं नेसावया । ४८ तंव
वल्कलें कडकडीत कठिण । नेसतां न येती सीतेलागून । मग
आपुलें करें रघुनंदन । नेसवीत जानकीतें । ४९ जानकी
सुकुमार अत्यंत । वल्कलें नेसतां अंगास रुपत । तें देखोनि
ब्रह्मसुत । निर्भर्त्सीत कैकयीतें । ५० परम निर्दय तूं पापिणी ।
घेसी सीतेचीं वस्त्रें हिरोनी । तूं जाहालीस राज्य बुडवणी ।
रामासी वनीं धाडिसी । ५१ दशरथ म्हणे ते अवसरीं ।

जाओ । चौदह वर्ष तक वन में सुख-पूर्वक रहो । ' ४३ तो राम ने (यह) बात कही—' मैं तपस्या के लिए वन (में रहना) स्वीकार कर रहा हूँ। वहाँ सेना-दल का बिलकुल ही (कोई) कारण (आवश्यकता) नहीं है । ४४ वल्कलों को लपेट (पहन) कर मैं वन में सचमुच तपस्या करूँगा । ' ऐसी बात सुनकर कैकेयी ने (उनके) सामने वल्कल रख दिये । ४५ उन्हें लपेट (पहनकर) श्रीराम ने अपने साँवले शरीर में भस्म लगा लिया और परम सुगन्ध-युक्त केशपाश को खींचकर (कसकर) बाँध लिया । ४६ (फिर) वल्कल लपेट (पहन) कर लक्ष्मण ने (भी) दशरथ के चरणों का वन्दन किया, तो कैकेयी ने कहा—' अरी सीता ! तुम झट से (अपने पहने हुए) वस्त्रों और आभूषणों को क्यों (न) उतार दो ? ' ४७ ऐसा सुनकर जनक-कन्या सीता ने विद्युत (-से जगमगाते हुए) वस्त्र और आभूषण (उतारकर) त्याग दिये । कैकेयी ने उन सबको इकट्ठा किया और पहनने के लिए उसे वल्कल दिये । ४८ तब सीता से वे सूखे कठिन वल्कल पहने नहीं जा रहे थे, तो राम ने अपने हाथों सीता को (वे) पहना दिये । ४९ जानकी अत्यन्त सुकोमल थी । (अतः) वल्कलों को पहनते समय वे (उसके) अंग में चुभ रहे थे । वह देखकर वसिष्ठ ने कैकेयी की (यों) निर्भर्त्सना की (निन्दा करते हुए उसे यों बुरा-भला कहा)। १५० 'तुम अति निर्दय (और) पापिनी हो, (जो) सीता के वस्त्र छीनकर ले रही हो ! तुम राज्य को डुबो देनेवाली (ठहरी)

गृहांतूनि नीघ जा बाहेरी । तीं विकावया मांडोनि बाजारीं । धगडी बैस आतांचि । ५२ माझीं बाळें सुकुमार । निर्दये घालिसी बाहेर । मी भाकें बांधिलों साचार । नाहीं तरी शिर छेदितों । ५३ आडांत पडला मृगेंद्र । कीं सांपळ्यांत गोंविला व्याघ्र । कीं वणव्यांत सांपडला फणिवर । तैसा साचार गुंतलों मी । ५४ कीं गळीं सांपडला मीन । कीं पारधियें कोंडिलें हरिण । कीं तस्करें वाटेसी सज्जन । गोंवोनि हरिले सर्वस्वें । ५५ ऐसें बोलतां नृपवर । हृदयीं दाटला गहिंवर । पोटासी धरून सीता सुंदर । म्हणे बाळे शिणलीस । ५६ सुकुमार तूं चंपककळी । वातउष्णें शिणशील वेल्हाळी । गुणसरिते जनकबाळी । सांगसी शीण कवणातें । ५७ सुमंता सांगे राजेंद्र । आणा दिव्य अलंकार । सीतेसी देऊनि सत्वर । जगन्माता गौरवीं । ५८ त्यावरी ते मंगलभगिनी । मस्तक ठेवी श्वशुरचरणीं । वसिष्ठ नमिला स्नेहेंकरूनी । म्हणे कृपा

हो (जो) राम को वन में भेज रही हो।' ५१ उस समय दशरथ ने कहा—' अभी घर (में) से बाहर निकल जा। री पापिनी, उन्हें बेचने के लिए बाज़ार में सजाये रखकर अभी बैठ जा। ५२ मेरे बच्चे अति कोमल (-शरीरी) हैं। री निर्दय (स्त्री), तू (उन्हें) बाहर निकाल रही है। मैं सचमुच वचन में बँधा रहा, नहीं तो (तेरा) शिरच्छेद कर डालता। ५३ मैं सचमुच वैसे ही फँस गया (हूँ), जैसे सिंह कुएँ में गिर गया (हो), अथवा पिंजड़े में व्याघ्र को बन्द करके रखा (हो), अथवा बड़ा नाग दावाग्नि में फँस गया (हो), अथवा मछली बन्सी में अटक गयी (हो), अथवा बहेलियों ने हिरन को घेर लिया (हो), अथवा चोरों (वटमारों) ने (किसी) भले आदमी को रास्ते में अटकाकर (उसे) पूर्णतः लूट लिया (हो, उसका सब कुछ छीन लिया हो)। ५४-५५ ऐसा बोलते हुए राजा दशरथ हृदय से गद्गद हो गये और सुन्दरी सीता को छाती से लगाकर बोले—' अरी माँ ! तू थक गयी। तू सुकोमल चम्पाकली है। री लाड़ली, तू हवा की गर्मी से शिथिल हो जाएगी। अरी गुण-सरिता सीता, तू (अपनी) थकावट (कष्ट) किससे कहेगी ?' ५६-५७ (तदनन्तर उस) श्रेष्ठ राजा ने सुमन्त से कहा— ' दिव्य आभूषण लाओ और त्वरित सीता को देकर (उस जगन्माता) का गौरव करो।' ५८ इस पर सीता ने (अपने) श्वसुर के चरणों में मस्तक नवाया, (फिर) स्नेहपूर्वक वसिष्ठ का नमन किया और कहा—

बहोत असों द्या । ५९ जैसा द्वितीयेचा चंद्र । दिवसेंदिवस होय थोर । तैसा स्वामी स्नेहादर । अपार वर्धमान होऊं दे । ६० वसिष्ठ देत आशीर्वचन । जोंवरी मृगांक चंडकिरण । तोंवरी चिरंजीव दोघें जण । अक्षयी राज्य करावें । ६१ असो वसिष्ठ आणि दशरथ । रामलक्ष्मण निघतां त्वरित । सव्य घालूनि हात जोडित । काननामाजी जावया । ६२ सीतेसी मुनि म्हणे तूं पूर्ण सती । त्रिभुवनीं वाढेल तुझी कीर्ती । विजयी होईल रघुपती । वनांतरीं जाऊनियां । ६३ सप्त शत राज-युवती । तयां साष्टांग नमी रघुपती । मातें वाढवावी प्रीती । श्रीकौसल्येसमान सर्वदा । ६४ तों एकचि हांक जाह्ली ते वेळे। सर्व माता पिटिती वक्षःस्थळें । एक मृत्तिका घेऊनि बळें । मुखामाजी घालिती । ६५ एक भूमीसी आपटिती शिरें । एक केश तोडिती निजकरें । एक हांक फोडिती एकसरें । रामा राहें रे म्हणोनियां । ६६ दशरथ म्हणे चापपाणी । ग्रामांतून

'हम पर (आपकी) कृपा (बनी) रहने दें। जिस प्रकार द्वितीया का चन्द्र दिन-ब-दिन बड़ा होता जाता है, उस प्रकार पति के प्रति मेरा स्नेह और आदर-भाव अपार वर्धमान होने दें (होता जाए)।' १५९-१६० (तब) वसिष्ठ ने (यह) आशीर्वाद दिया—'जब तक चन्द्र और सूर्य (का अस्तित्व) हैं, तब तक दोनों जने चिरंजीवी हो जाओ और (राम) अक्षय राज करें। १६१

अस्तु। वन की ओर जाने के लिए निकलते हुए राम और लक्ष्मण ने झट से वसिष्ठ और दशरथ की परिक्रमा करके हाथ जोड़ लिये। ६२ तो मुनि वसिष्ठ ने (सीता से)कहा—तुम परिपूर्ण (सर्वश्रेष्ठ) सती हो। तुम्हारी कीर्ति त्रिभुवन में वृद्धिगत हो जाएगी। वन के भीतर जाकर रघुपति राम विजयी हो जाएगा। ६३ (जो) सात सौ राजमहिषियाँ थीं, राम ने उनको साष्टांग नमस्कार किया और कहा—हे माताओ, (मेरे प्रति) कौसल्या माता के समान नित्य प्रेम वर्धित करती रहिए। ६४ (यह सुनकर) सब माताएँ छाती पीटती हैं (पीटने लगीं), कोई-एक मिट्टी लेकर हठात् मुँह में डालती है (थी)। ६५ कोई एक भूमि पर सिर पटकती है (थी), कोई-एक अपने हाथों बाल तोड़ती है (थी), कोई-एक अचानक 'हे राम, रह जाओ'—कहते हुए चीखती है (थी) १६६

(तब) दशरथ ने कहा—'हे चापपाणि राम! नगर में से पैदल

न जावें चरणीं । जान्हवीपर्यंत षड्गुणी । माझा रथ नेईं कां ।६७
अवश्य म्हणे रघुनाथ । तत्काळ आणविला रथ । कर जोडून
सुमंत । पुढें उभा ठाकला । ६८ दशरथाचे चरणीं भाळ ।
ठेवूनियां तमाळनील । निघाला तेव्हां तत्काळ । जाहला
कोल्हाळ एकचि । ६९ सीता रथावरी घेऊन । निघती वेगें
रामलक्ष्मण । तेव्हां वक्षःस्थळ बडवून । दशरथरायें घेतलें ।७०
उठोनि राव दशरथ । द्वाराबाहेरी धांवत । लोकांसी म्हणे
रघुनाथ । राहवा आतां लवकरी । ७१ कोठें गेलें माझें
पाडस । कोणीकडे गेला माझा राजहंस । भेटावया आणा
डोळस । मी वनास जाऊं नेदीं । ७२ मी आपुली घालीन
आण । रथापुढें आडवा येऊन । राघवापुढें पदर पसरून ।
वनासी गमन करूं नेदीं । ७३ गोपुरावरी चढे दशरथ । चाचरी
जाय खालें पडत । मागुतीं बिदोबिदीं धांवत । दीनवदनें-
करूनियां । ७४ लोकांसी पुसे दशरथ । राम कोठें दावा
त्वरित । वाटेसी अडखळून पडत । मस्तक पिटित अवनीये । ७५
लोकांसी म्हणे म्लानवदन । अयोध्येसी लावा रे अग्न । माझा

न जाओ । गंगा तक मेरे षड्गुणी रथ को (क्यों न) ले जाओ । ' ६७
तो श्रीराम ने कहा—' अवश्य । तत्काल रथ मँगवा लिया, तो सुमन्त
हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। ६८ दशरथ के चरणों में मस्तक
नवाकर तमालनील राम चल दिये, तो तत्काल असीम कोलाहल मच
गया। ६९ सीता को रथ में बैठाकर राम और लक्ष्मण (जब) तेजगति
से निकल गये तो दशरथ राजा ने छाती पीट ली । १७० (फिर) दशरथ
राजा उठकर दरवाज़े के बाहर दौड़ गये और लोगों से बोले—' झट से
राम को ठहरा दो । ७१ कहाँ गया मेरा वत्स ? मेरा राजहंस किस
ओर गया ? (उस) सुनेत्र (सुन्दर आँखों वाले) राम को मुझसे मिलने
के लिए लाओ । मैं (उसे) वन नहीं जाने दूँगा । ७२ मैं (उसे) अपनी
शपथ दिलाऊँगा । रथ के आगे आड़े आते हुए राम से गिड़गिड़ाकर
विनती कर, उसे वनवास के लिए जाने नहीं दूँगा ' । ७३ दशरथ गोपुर
पर चढ़ गये, तो लड़खड़ा गये (और) नीचे गिर पड़े । फिर वे मुँह को
दीन बनाये हुए गली-गली में दौड़ते थे । ७४ दशरथ लोगों से पूछते
(कहते) —' राम कहाँ है, झट से दिखाओ । ' वे मार्ग में उलझकर गिर
पड़ते और भूमि पर सिर पटक देते । ७५ मुरझाये हुए मुख ले लोगों से
बोले—' अहो ! अयोध्या में आग लगा दो । मेरे प्राण अब निकल जाएँगे,

जाईल आतां प्राण। दावा वदन रामाचें। ७६ प्राणाविणें जैसें प्रेत। तैसें अयोध्यापुर दिसत। तरी अग्नि लावूनि त्वरित। मजसहित भस्म करा। ७७ दाही दिशा दिसती उदास। अयोध्या नगर जाहलें ओस। राघव गेला वनवासास। मुख लोकांस काय दावूं। ७८ जाहलें माझें काळें वदन। आतां माझा जड देह त्यागीन। वायुवेगें जाईन। काननीं राम शोधावया। ७९ लोकांसी म्हणे ते वेळां। मज राघव दाखवा सांवळा। स्त्रिया म्हणती वना गेला। आज्ञा घेऊनि तुमची पैं। १८० एक वदे वेशींत आहे रथ। ऐकतां धावे दशरथ। तों दूर गेला जनकजामात। ध्वजही परतून दिसेना। ८१ तों आरडत कौसल्या धांवे। वरती करूनियां बाहे। म्हणे कोमलांगा उभा राहें। वदन तुझें पाहूं दे। ८२ कैकयीभाक आमावास्या थोर। माजी न दिसे रामचंद्र। त्यावियोगें आम्हीं चकोर। चिताग्नींत पडलों कीं। ८३ कीं कैकयीवर केतु जाण। राम झांकिला चंडकिरण। चतुर्दश वर्षीं मुक्तस्नान।

(अतः) मुझे राम का मुख दिखलाओ। ७६ प्राणों के अभाव से जैसे प्रेत दिखायी देता है, वैसे अयोध्यानगर दिखायी देता है। इसलिए (उसमें) आग लगाकर झट से मेरे साथ (उसे) भस्म कर डालो। ७७ दसों दिशाएँ उदास दिखायी दे रही हैं। अयोध्या नगर सूना-सूना हो गया (उजड़ गया)। राम वनवास के लिए गया, (अब) मैं लोगों को कौन मुँह दिखाऊँ? ७८ मेरा मुँह काला हो गया। अब मैं अपनी जड़ देह का त्याग करूँगा— राम को खोजने के लिए वायु-वेग से वन में जाऊँगा।' ७९ उस समय वे लोगों से बोले— 'मुझे साँवला राम दिखाओ।' तो स्त्रियों ने कहा 'आपकी आज्ञा लेकर वह वन में गया (है)।' १८० (तब)कोई-एक बोली— 'रथ नगर-द्वार में है।' वे (यह) सुनकर दौड़ते गये, तब (तक) राम दूर जा चुके (थे)। फिर (रथ का) ध्वज तक नहीं दिखायी दे रहा था। ८१ तब बाहुओं को ऊपर उठाये कौसल्या चीखती हुई दौड़ी— वह बोली—'अरे कोमलांगी राम! खड़े रहो (रुक जाओ)। अपना मुँह देखने दो। ८२ कैकेयी की वाणी महा अमावस है। उसमें राम-रूपी चंद्र नहीं दिखायी दे रहा है, उसके अभाव में हम चकोर चिन्ता-रूपी अग्नि में पड़ गयीं। ८३ समझो, कैकेयी द्वारा माँगा हुआ वर केतु (ह्रग्र) है। उसने रामरूपी चंडकिरण सूर्य छिपा लिया (राम-रूपी सूर्य को ग्रहण लग गया)।

तोंवरी उपोषण पडियेलें । ८४ राम माझा मेघ पूर्ण । कैकयीवर दुष्ट प्रभंजन । दूर गेला झडपोन । जीवनाविण सुकलों आम्ही । ८५ मज अंधाची काठी हिरून । कोणें वनीं टाकिली नेऊन । मज दरिद्रियाची गांठ पूर्ण । कोणें निर्दयें सोडिली । ८६ माझें दवडिलें निधान । चिंतामणी दिधला भिरकावून । माझा परिस नेऊन । कोण्या निर्दयें भिरकाविला । ८७ मज पान्हा दाटला स्तनीं । माझें तान्हें दावा हो नयनीं । माझा सुकुमार घोर वनीं । भोजन मागेल कोणासीं । ८८ गेला वल्कलें वेष्टून । कैंचें तया मंगलस्नान । रातोत्पलाहून कोमल चरण । कंटक पाषाण खुपतील । ८९ आंधळें जातां वनांतरीं । सांगाती टाकूनि गेला दूरी । तें तळमळून शोक करी । माझी परी तेवीं जाहली । १९० कीं तान्हें टाकूनि परदेशीं । माता जाय सहगमनासी । ते तळमळी जेवीं परदेशी । जाहलें तैसें रामाविण । ९१ वनीं निघतां

(अब) चौदहवें वर्ष (में) ग्रहण-मुक्ति के अवसर पर स्नान होगा, तब तक हमें उपवास पड़ गया । ८४ मेरा राम (वह) पूर्ण मेघ है (जिसके लिए) कैकेयी का वर (मानो) दुष्ट प्रभंजन (वायु) है । उससे (वह रामरूपी मेघ) लपककर दूर गया (और इधर) हम (राम-रूपी मेघ से पाये जानेवाले स्नेह-रूपी) पानी के अभाव में सूख गये । ८५ मुझ अंधी की लकड़ी को छीन ले जाकर किसने वन में फेंक दिया ? मुझ दरिद्र स्त्री की भरी गाँठ को किस निर्दय ने सुलझा दिया (और अन्दर रखे धन को छीन लिया) ? ८६ मेरे धन-भण्डार को किसने नष्ट कर दिया ? (मेरे राम-रूपी) चिन्तामणि रत्न को (किसने) फेंक दिया ? मेरे पारस को ले जाकर किसने फेंक दिया ? ८७ मेरे स्तन भर आये हैं । मेरे दुध-मुँहे को मेरी (इन) आँखों को दिखाओ । मेरा सुकुमार (बच्चा) घोर वन में किससे भोजन माँगेगा ? ८८ वह वल्कल लपेट (पहन) कर गया । (अब) उसके लिए मंगल स्नान कैसे ? उसके पाँव रक्त-कमल से (भी) कोमल हैं— उनमें कंकड़-पत्थर चुभेंगे । ८९ अंधे के वन में जाने पर (उसका) साथी (उसे) छोड़कर दूर चला गया हो, तो वह (अंधा) बिलख-बिलख कर शोक करता रहता है— उसकी-सी मेरी दशा हो गयी । १९० अथवा दुध-मुँहे बच्चे को (किसी) दूसरे स्थान पर छोड़कर, माता सती होने के लिए चली जाए, तो वह (बालक) जैसे छटपटाता रहता है, वैसे राम के अभाव में (अयोध्यावासियों की) स्थिति

रविकुळमंडण। दुःखें उलथती कठिण पाषाण। गज तुरंग पशु पक्षी संपूर्ण। तृण जीवन न घेती। ९२ वना जातां जनकजामाता। वनीं पक्षी रुदन करीत। अयोध्येच्या प्रजा समस्त। पाठीं धांवती रामाचे। ९३ श्रीरामाचे आवडते ब्राह्मण। भक्त मित्र सेवकजन। चर्मक अनामिक आदिकरून। कुटुबें घेऊनि चालले। ९४ ओस पडलें अयोध्यापुर। आबाल-वृद्ध धांवती समग्र। म्हणती सेवूं कांतार। श्रीरामचंद्रा-सांगातें। ९५ कैकयी चांडाळीण खरी। सीतेचीं वस्त्रें भूषणें हरी। तिजखालीं दुराचारी। कोण येथें नांदेल। ९६ दशरथ आतां देईल प्राण। ओस पडेल अयोध्यापट्टण। कैकयीचें शिर वपन करून। छत्र धरोत कोणीही। ९७ एक म्हणती हा दशरथ। दग्ध जाहला याचा पुरुषार्थ। कैकयीस वधून रघुनाथ। कां हो राज्यीं स्थापिना। ९८ स्त्रीलोभें जाहला दीन। वनासी पाठविलें श्रीरामनिधान। एक म्हणती वनासी

हो गयी। ९१ रवि-कुल-भूषण राम वन के प्रति जाने के लिए निकलने पर कठोर पाषाण (तक) दुःख से फट जाते थे। सब हाथी, घोड़े, पशु, पक्षी पानी (भी) नहीं ग्रहण करते रहे। ९२ राम के वन में जाने पर, वन में पक्षी रुदन करते थे। अयोध्या की समस्त प्रजा राम के पीछे दौड़ती जा रही थी। ९३ श्रीराम के प्रिय ब्राह्मण, भक्त, मित्र, सेवकजन, चमार, ढेंढ आदि (अपने-अपने) परिवार को लेकर (वन की ओर) चल दिये। ९४ अयोध्यानगर सूना-सूना हो गया। बालकों से लेकर बूढ़ों तक सब (वन की ओर) दौड़ रहे थे और कह रहे थे कि श्रीरामचन्द्र के साथ (हम) वन में (ही) रहेंगे। ९५ कैकेयी सच्ची चण्डालिनी है, (जिसने) सीता के वस्त्र-आभूषण छीन लिये। कौन दुराचारी है, जो यहाँ सुखपूर्वक उसके अधीन रहेगा? ९६ दशरथ अब प्राण-त्याग करेंगे; अयोध्या नगरी उजाड़ हो जाएगी, तो कैकेयी के मस्तक का वपन करके कोई भी उस पर (राज्य) छत्र पकड़े रह जाए (उससे हमें कुछ नहीं करना है।) ९७ किसी-एक ने कहा— (देखो) ये दशरथ (राजा)! इनका पुरुषार्थ जल (कर खाक हो) गया (समझो, नहीं तो) ये कैकेयी का वध करके राम को राजगद्दी पर क्यों नहीं बैठाते? ९८ ये (तो) स्त्री-लोभ के कारण दीन हो गये, (अतः उन्होंने) राम जैसे रत्न-भण्डार को वन में भेज दिया। (दूसरा) कोई कहता है— 'यह निश्चय है कि हम वन के प्रति गमन करें।' १९९

गमन। करावें हा निर्धार। ९९ दूर टाकिलें अयोध्यापुर। धांवती नगरजनांचे संभार। माघारा पाहे रघुवीर। तों लोक सत्वर धांवती। २०० तत्काळ उभा केला रथ। सकळ जनांसी हात जोडित। म्हणे शिरीं आहे राजा दशरथ। निज-गृहीं स्वस्थ राहावें। २०१ आम्हीं सेवितों घोर कानन। तुम्हांसी तेथें न घडे आगमन। आम्हीं सत्वर येतों परतोन। चतुर्दश वर्षे होतांचि। २०२ ऐसें श्रीरामें विनविलें। लोक भिडेनें अवघे परतले। रुदन करीत अयोध्येस आले। शोकें जाहले निस्तेज। ३ तरी श्रीरामभक्त ब्राह्मण। अग्निहोत्री पंडित सज्ञान। त्यांवरी प्रळयचि वर्तला पूर्ण। प्रियप्राण राघवाचे जे। ४ ते सर्वथा न सोडिती रामातें। म्हणती आम्ही येऊं काननातें। बहुत प्रार्थिलें रघुनाथें। परी कदा न राहती। ५ रथाखालीं उतरून। धरी ब्राह्मणांचे चरण। ते म्हणती गेलिया प्राण। तुज न सोडूं राघवा। ६ रघुनाथासी म्हणे सुमित्रासुत। ब्राह्मण श्रम पावले समस्त। आज यांसाठीं राहावे येथ। अहल्योद्धारा राघवा। ७ असो वासरमणि गेला

अयोध्या नगरी को दूर छोड़कर (अर्थात् अयोध्या से दूर जाकर नगर-वासियों के समूह दौड़ रहे थे। (जब) श्रीराम पीछे (मुड़कर) देखते, तो लोग (अधिक) तेज़ी से दौड़ते। २०० (फिर) राम ने तत्काल रथ को रोक (कर खड़ा कर) लिया। उन्होंने समस्त लोगों के हाथ जोड़ते हुए कहा—'दशरथ राजा मस्तक पर छात्र-से हैं। (इसलिए) अपने-अपने घर में शान्ति से रहो। २०१ हम भीषण वन में रहेंगे। वहाँ तुम्हारा आगमन नहीं हो पाएगा। चौदह वर्ष (पूर्ण) होते ही हम शीघ्र लौट आएँगे।' २०२ इस प्रकार श्रीराम ने उनसे विनती की, तो मारे संकोच के सब लोग लौट गये। रोते हुए वे अयोध्या (में) आ गये। वे शोक से निस्तेज हो गये (थे)। २०३ फिर भी, श्रीराम के भक्त अग्निहोत्री, विद्वान्, ज्ञानी ब्राह्मणों के लिए पूर्णतः प्रलय ही प्रलय हो गया। वे, जो राम के प्राणप्रिय थे, राम को बिलकुल नहीं छोड़ रहे थे। वे कह रहे थे—'हम वन में आएँगे।' तो राम ने उनसे बहुत प्रार्थना की (विनय-पूर्वक बहुत कहा) फिर भी वे नहीं रुकते थे। ४-५ तो रथ से नीचे उतरकर (राम ने उन) ब्राह्मणों के पाँव पकड़ लिये। (फिर भी) उन्होंने कहा—'प्राण निकल जाएँ, (तो भी) हे राम, तुमको नहीं छोड़ेंगे।' ६ इसपर लक्ष्मण ने राम से कहा—'सब ब्राह्मण कष्ट

अस्ता । अयोध्येंत काय जाहली अवस्था । स्त्रियांनीं धरून दशरथा । कैकयीसदनाप्रति गेल्या । ८ कौसल्या सुमित्रा आदिकरून । बैसती दशरथासी वेष्टून । सदनें समस्त दीपेंविण । भणभणित दिसती पैं । ९ बाहेर जातां रघुनाथ । अवदशा प्रवेशली नगरांत । जैसा विवेक जातां यथार्थ । अज्ञान हृदयीं प्रवेशे । २१० राण्या आणि दशरथ । प्राण द्यावया होऊनि उदित । महाविष आणिलें त्वरित । जें स्पर्शतां घात करी प्राणाचा । ११ तंव तो वसिष्ठ श्रीगुरुनाथ । म्हणे सहसा न कीजे आत्मघात । मग वाल्मीकाचा मूळकाव्यार्थ । समस्तांसी सांगीतला । १२ सहपरिवारें दशग्रीव । वधून बंदींचे सोडवील देव । चतुर्दश वर्षांनीं राघव । गजरें येईल स्वधामा । १३ जरी मी असत्य बोलेन । तरी रघुनाथाची आण । गुरुवचन मानूनि प्रमाण । विषपान वर्जियेलें । १४ इकडे वनीं राहिला

को प्राप्त हो गये (थक गये), हे अहल्या के उद्धारक राम ! आज इसलिए यहाँ रहें । २०७

अस्तु । सूर्य का अस्त हो गया तो इधर अयोध्या में क्या स्थिति हो गयी— दशरथ को थमाये हुए स्त्रियाँ कैकेयी के भवन में गयीं । ८ कौसल्या, सुमित्रा आदि (रानियाँ) दशरथ को घेरे हुए बैठ गयीं । सब घर दीपों के अभाव से सूने-सूने दिखायी दे रहे थे । २०९ जैसे वस्तुतः (सद्-) विवेक के (नष्ट हो) जाने पर (व्यक्ति के) हृदय में अज्ञान प्रविष्ट हो जाता है, वैसे राम के (नगर के) बाहर निकल जाते ही, अवदशा ने नगर में प्रवेश किया । २१० रानियाँ और दशरथ प्राण-त्याग करने के लिए तैयार होकर झट से ऐसा महा (तीव्र-दाहक) विष ले आये, जो स्पर्श करते ही प्राणों का नाश कर डालता है । ११ तब वे श्रीगुरुनाथ वसिष्ठ बोले—'इस प्रकार अचानक आत्मघात न करो ।' फिर (उन्होंने) वाल्मीकि द्वारा विरचित मूल (आदि) काव्य का अर्थ सबको (यों) बताया (समझा दिया)—'दशमुख रावण का परिवार-सहित वध करके राम बंदीगृह से देवों को मुक्त करेंगे । (और) चौदह वर्षों के पश्चात् (श्रीराम) गाजे-बाजे के साथ अपने घर आएँगे । यदि मैं असत्य कहता होऊँ, तो मुझे श्रीराम की सौगन्ध है ।' (इसपर) गुरु के कथन को प्रमाण मानकर उन्होंने विषपान (का विचार) छोड़ दिया ।† २१२-२१४

† [टिप्पणीः—श्रद्धालु जनों की मान्यता है कि वाल्मीकि ने राम-अवतार के साठ सहस्र वर्ष पूर्व, रामायण नामक काव्य की रचना की और तत्पश्चात् श्रीराम का अवतार

जगदुद्धार। तो पद्मोद्भवजनक उदार। स्मरारिमित्र रघुवीर। सकळ विप्रवेष्टित। १५ रात्र जाहली तीन प्रहर। रथवेष्टित निजले द्विजवर। जैसा उडुगण-वेष्टित रोहिणीवर। कीं किरणचक्रीं चंडांशु। १६ निद्रार्णवीं निमग्न ब्राह्मण। ऐसें जाणोनि सीतारमण। सौमित्रासी म्हणे रथ वेगेंकरून। येथोनिया काढीं कां। १७ काया जैसी असोन। केव्हां जाय न कळे प्राण। तैसा रथारूढ रघुनंदन। न लागतां क्षण पैं गेला। १८ अयोध्येकडे दावूनि माग। मग रथ मुरडिला सवेग। जैसा अमृतहरणीं स्वर्ग। खगनायक आक्रमी। १९ असो आकाश-मार्गीं रथ। शृंगवेरापाशीं उतरत। मानससरोवरीं अकस्मात। राजहंस बैसले जैसे। २२० तेथें गुहकाचा आश्रम निर्मळ। पुढें

इधर वन में जगत् के उद्धारक, उदार (-चेता) ब्रह्म-पिता, शिवजी के मित्र रघुवीर राम सब ब्राह्मणों द्वारा घिरे हुए रह (ठहर) गये। १५ तीन पहर रात(व्यतीत) हो गयी। (फिर भी वे) श्रेष्ठ ब्राह्मण (श्रीराम के) रथ को घेरकर सो गये (सोये हुए रह गये)। (और) श्रीराम वैसे ही रह गये जैसे नक्षत्रों (तारों) द्वारा घेरा हुआ चन्द्र अथवा किरणों के ही चक्र में स्थित सूर्य होता है। १६ ब्राह्मण निद्रारूपी सागर में निमग्न (डूबे हुए) हैं—ऐसा जानकर राम ने लक्ष्मण से कहा— 'रथ को वेगपूर्वक यहाँ से निकाल लें'। १७ (फिर) जिस प्रकार समझ में नहीं आता कि शरीर के (शेष) रहते हुए भी प्राण कब निकल जाते हैं, उसी प्रकार श्रीराम रथ में आरूढ़ होकर क्षण न लगते ही (वहाँ से)निकल गये (और) लोगों की समझ में यह बात नहीं आयी कि वे कब और कैसे चले गये।१८ रथ की खोज (पहिये की लीक) को अयोध्या की ओर (जाती हुई) दिखाकर फिर रथ को वेगपूर्वक (इस प्रकार) मोड़ (घुमा) लिया (और चलाया) जिस प्रकार अमृत के हरण अर्थात् प्राप्ति होने पर खगपति गरुड़ स्वर्ग की ओर बढ़ गया। १९ अस्तु। आकाश-मार्ग से रथ शृंगवेरपुर के पास उतर गया, मानो राजहंस मानसरोवर में अकस्मात् आ बैठ गये (हों) २२० वहाँ गुह का पवित्र आश्रम था। सामने गंगा का जल (-प्रवाह) बह रहा है। प्रातःकाल (हो गया—यह) देखकर

हो गया, तो उनके हाथों उस प्रकार कार्य होता गया, जिस प्रकार वाल्मीकि ने अपने काव्य में कहा था। उस काव्य के गूढ़ार्थ को वसिष्ठ जैसे महर्षि ही जानते थे। वाल्मीकि के कथन की सत्यता का निर्वाह करने के लिए ही वसिष्ठ ने उन अज्ञानी जनों को यह रहस्यमयी बात स्पष्ट करके वता दी।]

वाहे जान्हवीजळ। देखोनियां प्रातःकाळ। घननीळ स्नान करी। २१ पाहूनियां भागीरथी। म्हणे सूर्यवंशी भगीरथ नृपती। तेणें प्रार्थूनि नाना रीतीं। जगदुद्धारा आणिली। २२ कीं शिवमुकुटींची शुभ्र माळा। प्रसाद दिधला शीघ्रकाळा। फोडून ब्रह्मकटाह सकळा। परब्रह्मजळ लोटलें। २३ ब्रह्मा पुरंदर उमावर। ऋषिगण गंधर्व फणिवर। देखतां जान्हवीचें नीर। स्तुति अपार करिती पैं। २४ दृष्टीं पाहतां जान्हवी-नीर। सहस्र जन्मींचें पातक समग्र। शुष्क दग्ध वन वैश्वानर। अघ सर्व जळे तेवीं। २५ ऐसी ते सगरकुळतारिणी। राम लक्ष्मण स्तवोनी। स्नान करिती ते क्षणीं। सीता सुमंत सर्वही। २६ नित्यकर्म सारूनि सकळीं। न्यग्रोधवृक्षाचिये तळीं। श्रीराम बैसे ते वेळीं। तृणशेज घालूनियां। २७ वटदुग्ध घालोनि तये वेळीं। रघुवीर मस्तकीं जटा वळी। भस्मचर्चित चंद्रमौळी। तैसा ते काळीं राम दिसे। २८ असो इकडे ब्राह्मण समस्त। जागे होऊनि जंव पाहत। तों रथा-

---

घननील राम ने (गंगा में) स्नान किया। २१ भागीरथी (गंगा) को देखकर (उन्होंने) कहा—'सूर्यवंश में भगीरथ नामक राजा (हो गये) थे। वे अनेक प्रकार से प्रार्थना करते हुए (गंगा को) जगत् के उद्धार के लिए (धरती पर) ले आये। २२ अथवा (यह गंगा की धारा) शिवजी के मुकुट में स्थित शुभ्र (पुष्प) माला ही है। उसने तत्काल (भगीरथ पर) कृपा की। (उससे) ब्रह्म-कटाह (विश्व) को फोड़कर समस्त परब्रह्म जल (गंगाजल) तेजी से आगे बढ़ा। २३ गंगा के पानी को देखते ही ब्रह्मा, इन्द्र, शिवजी, ऋषि-गण, गन्धर्व, शेष ने (उसकी) अपार स्तुति की। २४ दृष्टि से गंगा-जल को देखते ही सहस्र जन्मों के समस्त पातक वैसे ही जल जाते हैं, जैसे सूखा हुआ वन आग में दग्ध हो जाता है। २५ ऐसी वह (गंगा) सगर राजा के कुल का उद्धार करने वाली है, जिसका स्तवन कर राम और लक्ष्मण ने, तथा सीता, सुमन्त — सबने तत्काल स्नान किया। २६ सब नित्य कर्मों को पूर्ण (सम्पन्न) करके, उस समय श्रीराम बरगद के पेड़ के तले तृण-शय्या (घास का आसन) बिछाकर बैठ गये। २७ (बालों में) बरगद का दूध डालकर राम ने मस्तक पर जटाएँ गूँथ लीं। उस समय वे (राम) भस्म-चर्चित शिवजी के समान दिखायी दे रहे थे। २२८

अस्तु। इधर (जब) सब ब्राह्मण जागृत होकर देखते हैं, तो

सहित रघुनाथ । गेला निश्चित समजलें । २९ परम खेद करिती ब्राह्मण । निद्रा नव्हे हा अनर्थ पूर्ण । हातींचा गेला रघुनंदन । आनंदघन जगद्गुरु । २३० अज्ञान पांघरूण पडलिया । मग आत्माराम न ये प्रत्यया । न दिसे जवळ असोनियां । दुर्घट माया पडली हे । ३१ एक म्हणती राम करुणाघन । दशरथ राव सोडील प्राण । म्हणोनि गेला परतोन । सीता-जीवन जगदात्मा । ३२ तों रथचक्रांचा मार्ग । अयोध्येकडे दिसे सवेग । ब्राह्मण धांवती काढिती माग । परम आनंदले मनीं पैं । ३३ हर्षयुक्त ब्राह्मण । प्रवेशले अयोध्यापट्टण । तों तेथें नाहीं रघुनंदन । भवबंधनच्छेदक जो । ३४ सकळ मंगळ-भोग वर्जूनी । ब्राह्मण बैसले निरंजनीं । म्हणती श्रीरामदर्शना-वांचोनी । प्रवेश सदनीं न करूंचि । ३५ आतां जान्हवीजळ लंघून । कैसा जाईल रघुनंदन । ती कथा कौतुकें श्रवण । सज्जन करोत आदरें । ३६ अहो श्रीरामविजय ग्रंथ । हें केवळ

निश्चित रूप में उनकी समझ में आया कि राम रथ-सहित (दूर) गये (हैं) । २९ (वे) ब्राह्मण अति दुःख (अनुभव) करते हैं (थे)— (वे सोचते हैं (थे)— यह निद्रा नहीं, यह पूर्ण अनर्थ है (जबकि) आनन्द-घन जगद्गुरु रघुनन्दन हाथ से (यों) निकल गये (हैं) । २३० फिर अज्ञान का आवरण ओढ़कर पड़े रहने पर आत्माराम (हृदयस्थ परमात्मा) का कैसे साक्षात्कार हो सकता है ? वह पास में होकर भी नहीं दिखायी देता। (इस प्रकार) यह अद्भुत माया हो गयी । ३१ (तो किसी) एक ने कहा— ' दशरथ राजा प्राण त्याग देंगे, इसलिए (जान पड़ता है) सीता-जीवन जगदात्मा श्रीराम (अयोध्या) लौट गये (हों) । ३२ तो रथ के पहियों की खोज अयोध्या की ओर (जाती हुयी) दिखायी दी । (इसलिए) ब्राह्मण खोज (देख) लेते हुए वेगपूर्वक दौड़ते हैं (दौड़ने लगे) । वे मन में अति आनन्दित (हो गये) थे । ३३ जब ब्राह्मण अयोध्यानगर में सहर्ष प्रविष्ट हो गये, तो वहाँ (वे) रघुनन्दन नहीं थे, जो सांसारिक बन्धनों के संहारक हैं । ३४ समस्त मंगल भोगों का त्याग कर ब्राह्मण एकान्त स्थान में बैठ गये । वे कहते (सोचते) हैं— बिना श्रीराम-दर्शन के, घर में प्रवेश नहीं करेंगे । २३५

अब श्रीराम गंगा-जल को पार कर कैसे जाएँगे ? —सज्जन (श्रोता) उस अद्भुत कथा का आदरपूर्वक श्रवण करें । ३६ हे श्रोताओ!

स्वानंदामृत। संत हे निर्जर समस्त। ब्रह्मानंदें सेविती। ३७ रविकुलमंडणा राघवेंद्रा। ब्रह्मानंदा ज्ञान-समुद्रा। श्रीधरवरदा अतिउदारा। निर्विकारा अभंगा। ३८ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। दशमाध्याय गोड हा। २३९ ॥ श्रीरामचंद्रार्पणमस्तु॥

श्रीरामविजय नामक यह ग्रन्थ तो केवल ब्रह्मानन्द-रूपी अमृत है। समस्त सन्त देवता हैं जो उसका ब्रह्मानन्द-पूर्वक सेवन करते हैं। २३७

हे रवि-कुल के आभूषण राघवेन्द्र राम, हे ब्रह्मानन्द, हे ज्ञान-सागर! हे परम उदार, निर्विकार, अभंग भगवान्! हे श्रीधर के वरदाता! श्रीरामविजय नामक यह सुन्दर ग्रंथ वाल्मीकीय नाटक पर आधारित एवं उससे सम्मत है। चतुर भक्त उसके इस मधुर दसवें अध्याय का नित्य श्रवण करे। २३८-२३९ । श्रीरामचंद्रार्पणमस्तु।

अध्याय—११

श्रीगणेशाय नमः॥ श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः॥
अध्यायापरीस अध्याय परिकर। जैसा पळोपळें चढे दिनकर। कीं शुक्लपक्षींहूनि चंद्र-। कळा विशेष वाढती। १ कीं अभ्यास करितां वाढे ज्ञान। कीं योगसाधने समाधान। कीं वटबीज विस्तारे पूर्ण। दिवसेंदिवस अधिक पैं। २ कीं बाळपणापासूनि पंडित। अधिकाधिक व्युत्पत्ति वाढत। कीं

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामाभ्याय नमः। श्रीराम-विजय ग्रन्थ के अध्याय एक से एक वैसे ही अधिक सुन्दर अर्थात् मधुर होते जा रहे हैं, जैसे सूर्य प्रतिपल अधिकाधिक ऊपर चढ़ता जाता है (अधिकाधिक तेजस्वी होता जाता है; अथवा जैसे शुक्लपक्ष के चन्द्र की कलाएँ प्रतिदिन विशेष रूप से वृद्धिगत होती जाती हैं। १ अथवा जैसे अभ्यास करते-करते (ज्ञानार्थी का) ज्ञान बढ़ता जाता है; अथवा योग-साधना से (साधक को) जैसे अधिकाधिक सन्तोष प्राप्त होता जाता है; अथवा जैसे बरगद का बीज दिन-ब-दिन अधिकाधिक पूर्णतः विस्तार को प्राप्त होता जाता है। २ अथवा जैसे पंडित का शास्त्र-ज्ञान बचपन से अधिकाधिक बढ़ता जाता है; अथवा कृष्णा और वेण्णा नदियाँ (उद्गम के पास) सँकरी-छोटी दिखायी देती हैं,

कृष्णावेणी संकीर्ण दिसत। पुढें विशाळ होती जैशा। ३ कीं अग्रापासूनि मुळाकडे। इक्षुदंडाची गोडी वाढे। कीं गुरुभजन करितां आतुडे। ज्ञानकळा विशेष। ४ जों जों नेम शुचिष्मंत। तों तों तपश्चर्या वाढत। कीं साधुसमागम करितां त्वरित। क्षमा दया वाढती। ५ कीं करितां निष्काम दान। कीर्तीनें भरे त्रिभुवन। कीं वीरश्रीची धरितां आंगवण। प्रताप विशेष वाढे पैं। ६ किंवा धरितां स्नेहादर। मैत्री वाढे अपार। किंवा करितां परोपकार। यश विशेष वाढत। ७ तैसी राम-कथा गोड बहुत। विशेष पुढें रस चढत। कीं वर्षाकाळीं पूर येत। गंगेस जैसा उल्हासें। ८ गंगेचा पूर मागुता ओहटे। हा दिवसेंदिवस अधिक वाटे। चतुर प्रेमळ जरी श्रोता भेटे। तरी वक्तयासी आनंद। ९ श्रोता भेटलिया मतिमंद। तरी

परन्तु आगे चलकर जैसे वे विशाल होती जाती हैं। ३ अथवा जैसे अग्रभाग से मूल (जड़) की ओर (जाते-जाते) ईख की मधुरता बढ़ती जाती है; अथवा गुरु की सेवा करते रहने पर (शिष्य-भक्त की) ज्ञान-कला विशेष रूप से वढ़ती जाती है; ४ अथवा जैसे-जैसे (साधना सम्बन्धी नियम) नेम (अधिकाधिक) विशुद्ध होता है, वैसे-वैसे तपस्या (अधिका-धिक) वढ़ती जाती है; अथवा जैसे साधु पुरुषों की संगति करने से झट से क्षमा और दया बढ़ती है। ५ अथवा निष्काम (बुद्धि से) दान देने से (दाता की) कीर्ति से स्वर्ग-मृत्यु और पाताल अर्थात् त्रिभुवन भर जाता है; अथवा वीरश्री की उपासना करने पर प्रताप विशेष रूप वृद्धिगत होता है। ६ अथवा (दूसरे के प्रति) स्नेह और आदर भाव अपनाने पर मित्रता अपार बढ़ती है, अथवा परोपकार करने पर कीर्ति विशेष रूप में बढ़ती है। ७ वैसे ही रामकथा (तो मूलतः) बहुत मधुर है, (फिर भी एक-एक अध्याय आगे बढ़ने पर उसमें) विशेष रूप में रस (अर्थात् रसात्मकता एवं मधुरता) विकसित होते जाते हैं। जैसे वर्षा ऋतु में गंगा में उल्लास-पूर्वक (अर्थात् ज़ोरों की) बाढ़ आती रहती है, वैसे ही रामकथा-रूपी गंगा नदी में उत्तरोत्तर रसों की अधिकाधिक बाढ़ आती रहती है—अर्थात् वह अधिकाधिक रसात्मक होती जा रही है। ८ परन्तु इन दोनों में एक अन्तर है— गंगा की बाढ़ तो पीछे से घटती है, मगर यह (बाढ़) तो दिन-ब-दिन अधिक बढ़ती-सी लगती है। (फिर इसपर) यदि चतुर प्रेममय हृदयवाला श्रोता मिल जाए, तो वक्ता को (विशेष) आनन्द आता है। ९ यदि श्रोता मन्दबुद्धि

मावळे व्युत्पत्तीचा आनंद। जैसें सूर्य मावळतां अरविंद। संकोचोनि जाय पैं। १० असो दशमाध्यायीं कथन। जान्हवीतीरीं रघुनंदन। न्यग्रोधवृक्षातळीं जाण। तृणशेजे पहुढला। ११ त्यजोनियां मायाजाळ। निरंजनीं योगी जैसा निश्चळ। तैसा राम तमालनीळ। जान्हवीतीरीं शोभला। १२ तों तेथें गुहक भक्त थोर। तयासी म्हणे राघवेंद्र। परतीरासी सत्वर। आम्हां आतां नेईं तूं। १३ भवाब्धि तरावया दुस्तर। नामनौका जयाची पवित्र। तो रघुवीर राजीवनेत्र। प्रार्थना करी गुहकाची। १४ भणगापुढें क्षीरसागर। म्हणे मज भूक लागली थोर। कीं वाचस्पति मूढास विचार। पुसतसे साक्षेपें। १५ कीं थिल्लरासी जन्हुकुमरी। म्हणे माझी तृषा हरी। किंवा दरिद्रियाचे द्वारीं। कल्पवृक्ष याचक। १६ तैसा राम गुहकातें। म्हणे परपारा नेईं मातें। तंव तो जाणोनियां राघवातें। पुसे कौतुकेंकरूनियां। १७ म्हणे तुमचें नांव करूं श्रवण। कोठें

मिल जाए, तो (वक्ता के) शास्त्र-ज्ञान का आनन्द उस प्रकार लुप्त हो जाता है, जिस प्रकार सूर्य के अस्त होने पर कमल (निस्तेज होते हुए) सकुचा जाता है। १०

अस्तु। दशम अध्याय में यह कहा है—समझिए कि गंगा के तट पर श्रीराम बरगद के तले तृण (-घास) की शय्या पर लेट गए। ११ जिस प्रकार माया-जाल का त्याग कर योगी एकान्त स्थान में अविचल बैठा रहता है, उस प्रकार तमालपत्र के समान नील शरीरधारी श्रीराम गंगा के तट पर (माया-जाल से मुक्त होकर अविचल मन से रहते हुए) सुशोभित थे। १२ तब वहाँ गुह नामक एक महान् भक्त था। श्रीराम ने उससे कहा—'अब शीघ्र ही हमें उस पार (दूसरे तट पर) ले चलो।' १३ जिनकी नाम-रूपी पवित्र नौका संसार-रूपी दुस्तर सागर को तैरकर पार जाने का साधन है, वे ही कमल-नयन श्रीराम (एक साधारण मनुष्य) गुह से प्रार्थना कर रहे थे। १४ क्षीरसागर (किसी) भिखमँगे के सामने कहे कि मुझे बहुत भूख लगी है; अथवा देवगुरु बृहस्पति (किसी) मूर्ख से जान-बूझकर विचार-विमर्श कर रहे हों। १५ अथवा जाह्नवी (गंगा) गड्ढ़े से कहे कि मेरी प्यास बुझाओ; अथवा कल्पवृक्ष (किसी) दरिद्र के द्वार पर याचक होकर आ जाए। १६ उसी प्रकार श्रीराम गुह से कह रहे थे—'मुझे दूसरे तट (उस पार) ले चलो।' तब श्रीराम को पहचानकर उसने मजे में पूछा। १७

जातां काय कारण । मग मेदिनीगर्भरत्नभूषण । काय बोलता जाहला । १८ रवि कुळमंडण दशरथ । तो पिता आमुचा यथार्थ । या देहास नाम रघुनाथ । जन समस्त बोलती । १९ ऐसें बोलतां रघुनंदन । गुहकमाता करी रुदन । म्हणे याचा नौकेसी लागतां चरण । नारी संपूर्ण होईल । २० याचे चरणरज झगटतां । शिळा उद्धरली मिथिलेसी जातां । आम्हीं पूर्वींच ऐकिली कथा । भक्तसंतांचेनि मुखें । २१ कठिण पाषाण लागतां चरणीं । इंदिरेतुल्य जाहली कामिनी । नौका काष्ठाची तत्क्षणीं । चरण लागतां होईल । २२ वृद्धा म्हणे पुत्रा अवधारीं । यासी न घालावें नावेवरी । नौकेची जाहलिया नारी । कैसी जीविका तुझी होय । २३ एक वनिता पोसितां । तुज संकट होय तत्त्वतां । नावेवरी रघुनाथा । पुत्रा सर्वथा वैसवूं नको । २४ मग गुहक म्हणे सर्वोत्तमा । अगाध तुझे चरणांचा महिमा । तरी ते चरण श्रीरामा । मी प्रक्षाळीन स्वहस्तें । २५

वह बोला—'आपका नाम तो सुन लूँ। (आप) कहाँ जा रहे हैं? क्या कारण है (किसलिए जा रहे हैं)?' तब श्रीराम ने क्या कहा—(सुनिए)। १८ 'सूर्यकुल के भूषण (राजा) दशरथ वस्तुतः हमारे पिता हैं। समस्त लोग इस देह (-धारी) का नाम रघुनाथ (राम) कहते हैं।' १९ श्रीराम के इस प्रकार कहने पर गुह की माता रो उठी। वह बोली—'नाव को इनके चरण लगते ही वह पूर्णतः नारी हो जाएगी। २० भक्तों और सन्तों के मुख से हमने पहले ही (यह) कथा सुनी (है) कि मिथिला जाते हुए इनके चरण-रज के टकराते ही एक शिला का उद्धार हो गया। २१ कठोर पत्थर के (इनके) चरण से लगते ही (उस पत्थर से) लक्ष्मी के समान स्त्री (उत्पन्न) हो गयी। (अतः) काठ की बनी नौका, पाँव लगते ही तत्क्षण नारी हो जाएगी।' २२ (उस) बुढ़िया ने (आगे) कहा—'सुन लो बेटे। इन्हें नाव में न चढ़ाना। नाव से नारी बन जाने पर तुम्हारी जीविका कैसे चलेगी। २३ एक स्त्री का भरण-पोषण करते-करते तुम्हें सचमुच संकट अनुभव हो रहा है। इसलिए बेटे, श्रीराम को नौका में बिलकुल न बैठाओ।' २४ तब गुह ने कहा—'हे सर्वोत्तम! आपके चरणों की महिमा अपार है। इसलिए हे श्रीराम! मैं अपने हाथों से उन चरणों को धो लूँगा। २५ पाषाण से नारी हो गयी—वह तो (आपके) चरणों की धूली की महानता है। इसलिए मैं निश्चय ही उन चरणों

पाषाणाची जाहली नारी। हे तों चरणरजांची थोरी। तरी ते पद प्रक्षाळीन निर्धारीं। मग नावेवरी बैसवीन। २६ मग गुहकें आश्रमास नेऊन। बैसविला जगन्मोहन। जो मायातीत शुद्ध-चैतन्य। पद्माक्षीरमण जगद्गुरु। २७ विधि हर सहस्रनयन। ज्याचे वांच्छिती रज:कण। सनकादिकां दुर्लभ पूर्ण। करितां साधन नातळे जो। २८ जेथूनि जन्मली जन्हुकुमरी। ते चरण प्रक्षाळीन स्वकरीं। फळें मूळें आणूनि झडकरी। जनकजामात पूजिला। २९ ते वेळीं गुहकाचा हर्ष पाहें। ब्रह्मांडामाजी न समाये। दृढ धरून श्रीरामाचे पाय। प्रेमेंकरून स्फुंदत। ३० म्हणे स्वामी रविकुलतिलका। दयाब्धे मायाचक्रचालका। अयोध्यापते ताटिकांतका। झडकरीं येईं मागुती। ३१ स्वामी तूं परतोन आलियाविण। मी कदापि न भक्षीं अन्न। नाना भोग मंगलस्नान। न करीं येथून श्रीरामा। ३२ जाणोनियां प्रेमळ भक्त। श्रीराम त्यासी हृदयीं धरित। मग नौका आणूनि त्वरित। जनकजामात बैसविला। ३३ सौमित्र आणि सीता

का प्रक्षालन करूँगा और तब नौका में बैठाऊँगा।' २६ तब गुह ने उन जगन्मोहन श्रीराम को (अपने) आश्रम (कुटिया) में ले जाकर बैठा लिया, जो माया से परे, शुद्ध चैतन्यमय ब्रह्म तथा पद्माक्षी (रमा)-रमण श्रीभगवान् राम तथा जगद्-गुरु हैं, जिनके चरणों के रज:कणों (को प्राप्त करने) की कामना ब्रह्मा, शिवजी तथा सहस्रनयन इन्द्र (तक) करते हैं, जो (रज:कण) सनकादि आदि मुनियों को भी पूर्णत: दुर्लभ हैं। जिसे समझाने पर भी जो स्पर्श (तक) नहीं कर रहा था, उस गुह ने (श्रीराम के) उन चरणों को अपने हाथों से धोया, जिनसे गंगा का जन्म हुआ और झट से फल-फूल लाकर श्रीराम का पूजन किया। २७-२९ देखिए, उस समय गुह का आनन्द ब्रह्माण्ड (तक) में नहीं समा रहा था। (तदनन्तर) श्रीराम के चरणों को दृढ़तापूर्वक पकड़कर वह प्रेम (के आवेग) से बिलख-बिलखकर रोता रहा। ३० उसने कहा—'हे स्वामी, हे रघुकुल-तिलक, हे दया के सागर, हे माया-चक्र के संचालक, हे अयोध्यापति, हे ताड़का का अन्त करनेवाले (श्रीराम)! शीघ्र ही लौट आइए। ३१ हे स्वामी, बिना आपके वापस आए, मैं कदापि अन्न भक्षण नहीं करूँगा। हे श्रीराम, अब से मैं नाना (प्रकार के) भोग तथा मंगल स्नान नहीं करूँगा।' ३२ उसे प्रेममय भक्त समझकर श्रीराम ने उसे हृदय से लगा लिया, तो (तदनन्तर) शीघ्र ही नाव लाकर (उसने)

सती। तिघें नौकेवरी आरूढती। मग सुमंताप्रती रघुपती। आज्ञा देता जाहला। ३४ सुमंता तूं जाईं वेगें। सकळ वृत्तांत रायासी सांगें। माझा नमस्कार साष्टांगें। वसिष्ठदशरथांसी सांगें कां। ३५ चतुर्दश वर्षें होतां पूर्ण। मी सत्वर येतों परतोन। सकळ लोकांचें समाधान। करीं सुमंता जाऊनियां। ३६ तुवां जाऊनियां त्वरित। ग्रामासी आलिया बंधु भरत। क्रोधेंकरून दशरथ। वधील एकादा तयासी। ३७ याकारणें तुवां सुमंता। वेगें परतोनि जावें आतां। सुमंत उतरून रथा-खालता। चरणीं माथा ठेवीतसे। ३८ नयनोदकेंकरून। प्रक्षाळिले श्रीरामचरण। सुमंत म्हणे माझेन। आयोध्येस न जाववे। ३९ मी समागमें येईन। अथवा येथें प्राण देईन। परी मी न जाईं परतोन। दुःख द्यावया समस्तां। ४० देखती जेव्हां रथ रिता। दशरथ आणि कौसल्या माता। त्यांची करावया हत्या। माझेनि तेथें न जाववे। ४१ वनीं सांडून

श्रीराम को (उसमें) बैठा दिया। ३३ (श्रीराम,) लक्ष्मण और सती सीता तीनों नौका में आरूढ़ हो गये; तब श्रीराम ने सुमन्त को आदेश दिया। ३४ 'हे सुमन्त, आप वेग-पूर्वक घर जाएँ और राजा को समस्त समाचार सुनाएँ। मेरी ओर से वसिष्ठ और दशरथ को साष्टांग नमस्कार कीजिए। ३५ चौदह वर्ष पूर्ण होने पर मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा। हे सुमन्त, आप (अयोध्या) लौटकर सब लोगों का शोक-निवारण कीजिए। ३६ आप शीघ्र (घर) जाइए। भाई भरत के नगर में आने पर दशरथ, मारे क्रोध के, कदाचित् उसका वध करेंगे। ३७ हे सुमन्त, इस कारण से आप अब वेग-पूर्वक लौट जाएँ।' (इसपर) रथ से नीचे उतरकर सुमन्त ने (श्रीराम के) चरणों में मस्तक रखा (नवाया)। ३८ नयनोदक (अश्रुजल) से उन्होंने श्रीराम के चरण धो लिये। (फिर) सुमन्त ने कहा—'मुझसे अयोध्या नहीं जाया जाता। ३९ मैं (आपके) साथ आऊँगा। अथवा यहाँ प्राण त्याग दूँगा। परन्तु सबको दुःख देने के लिए नहीं लौट जाऊँगा। ४० दशरथ और माता कौसल्या जब दशरथ को रिक्त (खाली लौटा हुआ) देखेंगे, तो उनका वध करने के लिए (अर्थात् राम के लौट न आने के कारण वे प्राण-त्याग करेंगे, इससे मैं उनकी मौत का कारण बनूँगा, मेरा वहाँ जाना उनको मार डालने के बराबर होगा।) मुझसे वहाँ नहीं जाया जाता। ४१ हे रघुनायक, देखिए आपको वन में छोड़कर

तुज रघुनायका । प्रवेशतां अयोध्येंत देखा । मज म्हणती काळ-मुखा । कां तूं येथें आलासी । ४२ मग रघुनाथें धरिलें हृदयीं । म्हणे बा रे चिंता न करीं कांहीं । तूं अयोध्येसी शीघ्र जाईं । आज्ञा माझी पाळीं कां । ४३ माथां ठेविला वरदहस्त । तेणें शोक समस्त जाहला शांत । जैसा मेघ वर्षतां अद्भुत । वणवा त्वरित विझोनि जाय । ४४ मग आज्ञा घेऊनि सुमंत । पैल-तीरीं उभा अवलोकित । नावेंत बैसला रघुनाथ । गुहक पैलतीरा नेत पैं । ४५ जैसा निवृत्तितटाकीं योगी पावत । तैसा पैलतीरा उभा रघुनाथ । सुमंतासी हातें पालवीत । जाईं त्वरित माघारा । ४६ यावरी पुढें पुष्करिणी । तेथें क्रमिली एक रजनी । मग प्रयागाप्रती चापपाणी । येता जाहला ते वेळे । ४७ दृष्टीं देखोनि रघुनंदन । प्रयागही जाहला पावन । पुढें भरद्वाज-आश्रमा रघुनंदन । येता जाहला साक्षेपें । ४८ आला ऐकोनि रघुराज । सामोरा धांवला भरद्वाज । रामें नमस्कारिला द्विज ।

अयोध्या में प्रवेश करते ही (वे) कहेंगे—' कलमुँहे, तू यहाँ क्यों आया है ।' ४२ (यह सुनकर) तब श्रीराम ने (सुमन्त को) हृदय से लगा लिया और कहा—' अहो, (आप) बिलकुल चिन्ता न कीजिए । आप शीघ्र ही अयोध्या जाइए । मेरी आज्ञा का पालन कीजिए ।' ४३ (तदनन्तर श्रीराम ने अपना) वरद-हस्त (उनके) मस्तक पर रखा तो उससे (उनका) समस्त शोक वैसे ही शान्त हो गया, जैसे मेघ के अद्भुत रूप में बरसने पर शीघ्र ही दावानल बुझ जाता है । ४४ फिर बिदा लेकर सुमन्त उस पार खड़े होकर देख रहे थे कि श्रीराम नाव में बैठ गये और गुह (उन्हें) उस पार ले जा रहा है । ४५ जिस प्रकार योगी (प्रवृत्ति रूपी सरिता को पार कर) निवृत्ति रूपी तट को प्राप्त हो जाता है, उस प्रकार श्रीराम (गंगा नदी को पार कर) उस तट पर खड़े (हो गये) थे (और वहाँ से वे) हाथ से सुमन्त को संकेत कर रहे थे कि वे शीघ्र ही वापस जाएँ । ४६

इसके पश्चात् आगे कमलों से युक्त एक तालाब (पुष्करिणी) था । श्रीराम ने वहाँ एक रात बितायी । फिर उस समय चापपाणि श्रीराम प्रयाग (के निकट) आ गये । ४७ आँखों से श्रीराम को देखकर (मानो) प्रयाग भी पवित्र हो गया । आगे श्रीराम जान-बूझकर भरद्वाज ऋषि के आश्रम आ गये । ४८ ' रघुराज आये ' —यह सुनकर भरद्वाज आगे दौड़ आये । श्रीराम ने उन ब्राह्मण को नमस्कार किया तो

क्षेमालिंगन दीधलें । ४९ भरद्वाज बोले सप्रेम । आजि माझा सुफळ जन्म । त्रिभुवनपति श्रीराम । गृहा आला म्हणोनियां । ५० माझिया पुण्याचे गिरिवर । भेदोनि गेले चिदंबर । तरीच सीतावल्लभ रघुवीर । मूळेंविण पातला । ५१ सकळमंगल-दायक रघुवीर । जो मंगळभगिनीचा निजवर । मंगळमातेचा उद्धार । करावया जात प्रदक्षिणे । ५२ जो पंचद्वयरथनंदन । करावया सुरांचें बंधमोचन । कमळिणीमित्रकुळभूषण । येणें पंथें चालिला । ५३ तों ऋषी धांवती अपार । त्यांहीं कैसा वेष्ठिला रघुवीर । जैसा देवीं वेष्टिला सहस्रनेत्र । कीं किरणांत मित्र विराजे । ५४ कीं चंदनें वेष्टित मलयानिळ । कीं विरक्तीं वेष्टिला जाश्वनीळ । कीं वराभोंवते सकळ । वऱ्हाडी जैसे मिरवती । ५५ कीं साधक जैसे निधानाजवळी । कीं रत्ना-भोंवतीं परीक्षकमंडळी । कीं कनकाद्रिभोंवतीं पाळी । कुलाच-लांची विराजे । ५६ कीं नक्षत्रें वेष्टिला शशी । कीं मानस वेष्टिलें राजहंसीं । तैसा ऋषींनीं अयोध्यानिवासी । भरद्वाज-

उन्होंने श्रीराम का क्षेमालिंगन किया (प्रेमपूर्वक गले लगा लिया) । ४९ (फिर) भरद्वाज प्रेम से बोले—' त्रिभुवन के स्वामी श्रीराम (मेरे) घर आ गये—(इससे) मेरा जन्म (जीवन) आज सुफलित हो गया । ५० मेरे (किये) पुण्य (-कर्म) के श्रेष्ठ पर्वत हृदय-रूपी आकाश को भेद गये, इसीलिए सीता-वल्लभ श्रीराम बिना निमंत्रण के (मेरे यहाँ) आ पहुँचे । ५१ जो मंगल की भगिनी (अर्थात् पृथ्वी की कन्या—सीता) के अपने पति हैं, वे (श्रीराम) मंगल की माता—पृथ्वी का उद्धार करने के हेतु परिक्रमा करने जा रहे हैं । ५२ दशरथ के वे पुत्र, सूर्य-कुल के भूषण श्रीराम (रावण द्वारा बन्दी बनाये हुए) देवों के बन्धन छुड़ाने के हेतु इस मार्ग से जा रहे हैं । ५३ इतने में अनगिनत ऋषि दौड़ते हुए आ गये । उन्होंने रघुवीर राम को किस प्रकार घेर लिया ? जिस प्रकार देवों ने इन्द्र को घेर लिया (हो); अथवा किरणों के बीच सूर्य विराजमान होता है; अथवा चन्दन ने मलयपर्वत से निकलनेवाले पवन को घेर लिया (हो); अथवा विरक्त भक्तों ने शिवजी को घेर लिया (हो); अथवा जैसे वर के इर्द-गिर्द समस्त बराती ठाठ-बाट के साथ चलते हों; अथवा जैसे साधक आराध्य-रूपी निधान (निधि) के पास अथवा रत्न के चारों ओर परीक्षक-मण्डली होती है, अथवा स्वर्ण (मेरु) पर्वत के चारों ओर (महेंद्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, गंधमादन, विंध्य

आश्रमीं वेष्टिला । ५७ भरद्वाजें पूजिला रघुनंदन । तेथें क्रमिला एक दिन । ऋषी बोलती सुवचन । अजनंदन-पुत्राप्रती । ५८ चतुर्दश वर्षेंपर्यंत । श्रीरामा राहा येथें स्वस्थ । दंडकारण्याप्रती व्यर्थ । कासयासी जावें हो । ५९ राघव म्हणे येथें राहतां । अयोध्येच्या प्रजा येतील समस्ता । ब्राह्मण आणि माझा पिता । येतील भेटीस निश्चयें । ६० आम्ही गुप्तरूपें येथुनी । प्रवेशूं महाकाननीं । पुढील भविष्यार्थ मनीं । मुनी तुम्ही जाणतसां । ६१ असो ऋषिआश्रमीं क्रमोनि एक दिवस । ऋषींस पुसे अयोध्याधीश । पुढें चालिला जगन्निवास । मार्ग आम्हांस दाविजे जी । ६२ भरद्वाज म्हणे चित्रकूट पर्वतीं । विद्वज्जन बहुत राहती । तुम्हीं तेथें करावी वस्ती । कांहीं दिवस राघवा । ६३ सिद्धवटपर्यंत । भारद्वाजें बोळविला रघुनाथ । आज्ञा घेऊनि त्वरित । प्रयागासी परतला । ६४

और पारियात्र नामक सात) कुल पर्वत शोभायमान होते हैं, नक्षत्रों (तारों) ने चंद्र को घेर लिया (हो), अथवा राजहंसों ने मानसरोवर को घेर लिया (हो), उसी प्रकार ऋषियों ने भरद्वाज ऋषि के आश्रम में अयोध्या-निवासी श्रीराम को घेर लिया। (५४-५७)

(तदनन्तर) भरद्वाज ने रघुनन्दन श्रीराम का पूजन किया। श्रीराम ने वहाँ एक दिन व्यतीत किया। (फिर) ऋषि श्रीराम के प्रति (यह) सुन्दर वचन बोलते हैं (बोले)—। ५८ 'हे श्रीराम, चौदह वर्ष तक यहाँ सुख-पूर्वक रहिए। आप दण्डकारण्य में व्यर्थ क्यों जाएँ ?' ५९ (इसपर) श्रीराम ने कहा—'यहाँ (मेरे) रहने पर अयोध्या के समस्त प्रजाजन आएँगे। ब्राह्मण और (मेरे) माता-पिता निश्चय ही मिलने के लिए आएँगे। ६० (इसलिए) हम गुप्त रूप में यहाँ से बड़े वन में प्रवेश करेंगे। हे मुनियो, आगे की भविष्य की बात तो आप मन में समझते हैं।' ६१

अस्तु। (भरद्वाज) ऋषि के आश्रम में एक दिन बिताकर अयोध्याधीश श्रीराम ने ऋषियों से पूछताछ की और (वे) जगन्निवास (श्रीराम) आगे चल दिये। (उन्होंने ऋषियों से कहा—) 'हमें मार्ग दिखाइए।' ६२ तो भरद्वाज ने कहा—'चित्रकूट पर्वत पर बहुत विद्वान् लोग रहते हैं। हे श्रीराम, आप वहाँ कुछ दिन निवास कीजिए। ६३ भरद्वाज ने सिद्धवट तक जाकर श्रीराम को बिदा किया और (वापस) जाने की आज्ञा लेकर वे शीघ्र ही प्रयाग लौट गये। ६४ सिद्धवट को

सिद्धवट देखोनि नमन। करी पद्माक्षीरमण। त्या सिद्धवटीं सावित्री पूर्ण। सीता देखोन नमस्कारी। ६५ विजयी होऊनि रघुनंदन। वनींहून आलिया परतोन। दोन लक्ष गोदानें येथें देईन। ब्राह्मणसंतर्पण यथाविधि। ६६ पुढें चित्रकूट पर्वतावरी। चढला शरयूतीरविहारी। तेथें वाल्मीक ऋषी तप करी। बहुत ऋषींसमवेत। ६७ जेणें नारदकृपेचेनि बळें। अवतारभविष्य कथियेलें। जैसें कमळाअगोदर भरिलें। सरोवरीं जळ जेवीं। ६८ अवताराआधीं जन्मपत्र। केलें शतकोटी विस्तार। तेणें दृष्टीं देखतां रघुवीर। आश्रमाबाहेर धांवला। ६९ वाल्मीकाचे निजचरणीं। माथा ठेवी मोक्ष-दानी। वाल्मीकें वरचेवर उचलोनी। आलिंगन दीधलें। ७० इतरां समस्त द्विजवरां। भेटला परात्पर सोयरा। सौमित्रें चित्रकूटीं ते अवसरा। पर्णकुटिका बांधिली। ७१ ऋषि-मंडळींत रघुवीर। चित्रकूटीं राहिला जगदुद्धार। गुहक पाठवून

देखकर श्रीराम ने (उसका) नमन किया। उस सिद्धवट में सावित्री के पूर्णतः दर्शन कर सीता ने नमस्कार किया। ६५ (उसने कहा—) विजयी होकर रघुवीर के वन में से लौट आने पर मैं यहाँ दो लाख गायों का दान दूँगी और यथाविधि ब्राह्मण-सन्तर्पण करूँगी (ब्राह्मणों को अन्न आदि प्रदान कर सन्तुष्ट करूँगी)। ६६

आगे (जाकर) सरयू-तीर-विहारी श्रीराम चित्रकूटपर्वत पर चढ़ गये। वहाँ वाल्मीकि ऋषि बहुत ऋषियों-सहित तपस्या कर रहे थे। ६७ जिस प्रकार कमलों (के विकसित होने) से पहले सरोवर जल से भरा (हुआ होता है), उसी प्रकार जिन्होंने नारद मुनि की कृपा के बल से श्रीराम के अवतार-सम्बन्धी भविष्य का कथन किया, उनके अवतार ग्रहण करने से पहले जन्म-पत्रिका बनायी और (उनकी लीलाओं का) शतकोटी (रामायणों में) विस्तार (-पूर्वक वर्णन) किया, वे वाल्मीकि मुनि श्रीराम को दृष्टि (अर्थात् अपनी आँखों से) से देखते ही दौड़ते दौड़ते हुए आश्रम के बाहर आ गये। (६८-६९) तब मुक्ति-दाता श्रीराम ने वाल्मीकि के चरणों में मस्तक नवाया, तो उन्होंने (वाल्मीकि ने) ऊपर-ही-ऊपर उठाकर (श्रीराम का) आलिंगन किया। ७० अन्य सब श्रेष्ठ ब्राह्मणों से (भी) स्नेही मित्र (या नातेदार की भाँति) परात्पर ब्रह्म श्रीराम मिले। उस समय लक्ष्मण ने चित्रकूट पर पर्णकुटि बनायी। ७१ (तदनन्तर) जगत् के उद्धारक श्रीराम ऋषियों की

बाहेर। समाचार नेला हो। ७२ चित्रकूटीं राहिला रघुनायक। सुमंतासी सांगे गुहक। राघववियोगें दोघांसी दुःख। अत्यंत जाहलें तेधवां। ७३ गुहकें सुमंत घरासी नेला। म्हणे मी आतां राम कैं देखेन डोळां। असो रथासहित सुमंत परतला। वेगें अयोध्येसी येतसे। ७४ अयोध्या दिसे प्रेतवत। रिता घेऊन प्रवेशला रथ। सुमंत मुखावरी पल्लव घेत। झांकोनि मुख चालिला। ७५ सुमंत म्हणे आपुले मनीं। श्रीराम टाकोनि आलों वनीं। ऐशिया मज अभाग्यासी जननी। काय व्यर्थ प्रसवली। ७६ कैकयीसदनासमोर। सुमंतें सोडोनि रहंवर। मंदिरांत प्रवेशे सत्वर। अति मुखचंद्र उतरला ७७ रिता आणिला माघारा रथ। अयोध्येंत समस्तांसी जाहलें श्रुत। घरोघरीं एकचि आकांत। सीताकांतवियोगें। ७८ इकडे कंठीं प्राण धरून। कैकयीसदनीं अजनंदन। सुमंतें तयासी देखोन। नमन करूं लाजतसे। ७९ राजा म्हणे सुमंतप्रधाना। कोठें

मण्डली में चित्रकूट पर रह गये, तो (उन्होंने) गुह को (वापस) भेजकर (यह) समाचार बाहर पहुँचा दिया। ७२ (इधर) श्रीराम चित्रकूट पर रह गये, तो (उधर) गुह ने (यह समाचार) सुमन्त से कहा। तब श्रीराम के वियोग से दोनों को अत्यधिक दुःख हो गया। ७३ (फिर) गुह सुमन्त को (अपने) घर ले गया और बोला—'मैं अब राम को अपनी आँखों से (फिर) कब देखूँगा?' अस्तु। (तदनन्तर) सुमन्त रथ-सहित लौट चले (और) वेग-पूर्वक अयोध्या आ गये। ७४ तो (उन्हें) अयोध्या प्रेतवत् (निर्जीव-सी) दिखायी दी। वे रिक्त (खाली) रथ को लिये हुए (नगर में) प्रविष्ट हो गये। सुमन्त ने मुँह पर वस्त्र का छोर ओढ़ लिया और वे मुँह को ढँककर चल दिये। ७५ सुमन्त ने मन में कहा (सोचा)—'मैं श्रीराम को छोड़कर आ गया—मुझ ऐसे अभागे को (मेरी) माता ने क्या ही व्यर्थ जन्म दिया! ७६ कैकेयी के सदन के सामने रथ को छोड़कर (रखकर) सुमन्त घर में प्रविष्ट हो गये, तो (उनका) मुखचन्द्र बहुत उतर गया (निस्तेज हो गया था)। ७७ अयोध्या में सब को विदित हो गया कि (सुमन्त) खाली रथ वापस लाये, तो घर-घर में सीता-पति श्रीराम के वियोग के कारण बहुत कोलाहल मच गया। ७८ इधर कैकेयी के सदन में दशरथ प्राणों को कण्ठ में धरे हुए थे—अर्थात् उनका कलेजा मुँह को आ गया था। उन्हें देखकर नमस्कार (तक) करने में सुमन्त को लज्जा अनुभव हो रही

टाकिलें राजीवनयना। मज वाटतें माझिया प्राणा। मूळ आलासी सत्वर। ८० जगद्वंद्य माझी वस्तु जाण। टाकिली कोण्या वनीं नेऊन। श्रीराम माझें निधान। कोणें चोरें चोरिलें। ८१ राजहंस माझा रघुनंदन। पंकगर्तेंत ठेविला रोवून। माझें सुढाळ मुक्त पूर्ण। भिरकावून दिधलें कोठें। ८२ अन्नपूर्णावरहृदयींचें रत्न। म्यां तुझे हातीं दिधलें पूर्ण। घोर वनीं तें टाकून। कैसा आलासी माघारा। ८३ मज अंधाची काठी बळें। हिरूनि कोणीं नेली न कळे। अरण्यामाजी माझीं बाळें। उपवासी निराहारें। ८४ सुंदर सुकुमार सुमनकळी। माझी माउली जनकबाळी। सुमंता रथाखालीं कैसी उतरली। कैसी चालिली पंथीं सांग। ८५ तिहीं भोजनें कोठें केलीं वनीं। शयन केलें कोणे मेदिनीं। सुमंता सांग मजलागुनी। देह टाकूनि जाईन मी। ८६ मग तो सुमंत म्लानवदन। सांगे सकळ वर्तमान। तीन दिवस निराहार पूर्ण। तिघें जणें पैं

थी। ७९ तब राजा दशरथ ने कहा—'हे सचिव सुमन्त, राजीवनयन श्रीराम को तुमने कहाँ छोड़ दिया? मुझे लगता है, तुम मेरे प्राणों के लिए शीघ्र ही निमंत्रण के रूप में आ गये हो। ८० समझो कि वह (श्रीराम) मेरे लिए जगद्वंद्य (बहुत आदणीय तथा मूल्यवान्) वस्तु है, तुमने उसे किस वन में ले जाकर छोड़ दिया? श्रीराम मेरा भण्डार (खजाना) है, किस चोर ने उसे चुरा लिया? ८१ मेरे राजहंस श्रीराम को (तुमने) कीचड़ के गर्त में धँसा कर रख दिया। (श्रीराम-रूपी) मेरे पूर्णतः सुघड़ मोती को तुमने कहाँ फेंक दिया? ८२ मैंने शिवजी के हृदय में स्थित (श्रीराम-रूपी) रत्न को तुम्हारे हाथ पूरा-पूरा सौंप दिया (था)। उसे विकट वन में छोड़कर तुम कैसे वापस आ गये? ८३ समझ में नहीं आता कि मुझ अंधे की लकड़ी को कौन बलात् छीनकर ले गया? मेरे बच्चे वन में भूखे पेट, निराहार हैं। ८४ हे सुमन्त, सुन्दर सुकोमल फूल की कली (-सी) मेरी मैया (-सी भद्र महिला) सीता रथ से नीचे कैसे उतर गयी? बताओ, वह रास्ते में कैसे चलती रही? ८५ हे सुमन्त, मुझे बताओ, (उन) तीनों ने वन में कहाँ (-कहाँ) भोजन किया? वे किस भूमि पर, अर्थात् कहाँ-कहाँ सो गये? (अन्यथा मैं देह त्याग कर जाऊँगा।' ८६ तब म्लानवदन (मुरझाये मुखवाले) सुमन्त ने समस्त समाचार (यों) कह दिया—'वे तीनों तीन दिन पूर्णतः निराहार (बिना कुछ आहार किये, भूखे) रह

होतीं । ८७ तृणासनीं राजीवनेत्र । पहुडला घनश्यामगात्र । पांघरावया अंबर । आपाद समस्त देखिला म्यां । ८८ शृंगवेरपर्यंत । म्यां बोळविला रघुनाथ । ज्याचेनि नामें जग तरत । तो गुहकें नेला परपारा । ८९ मायानदी उल्लंघून । संत स्वरूपीं होती लीन । तैसा पैलतीरा रघुनंदन । दैदीप्यमान पाहिला म्यां । ९० याउपरी करुणाकरें । अयोध्येसी जातां त्वरें । तेथोनियां जगदुद्धारें । निजकरें मज पालविलें । ९१ राघवें साष्टांग नमन । घातलें मग तेथून । पुढें चरणचालीं रघुनंदन । करीत गमन वनवासा । ९२ जैसा अस्ता गेला दिनकर । तैसा वनीं प्रवेशला रघुवीर । याज्ञिककुंडामाजी वैश्वानर । आच्छादित जैसा कां । ९३ ऐसीं सुमंताचीं वचनें भूपाळ । कर्णीं ऐकतांची तत्काळ । धबधबा झाला वक्षःस्थल । पिटोन घेतां ते समयीं । ९४ सुमंता वनीं रघुनंदन । कैसा परतलासी सोडून । अरे तुझें हृदय निर्दय पूर्ण । कैसा प्राण गेला नाहीं । ९५ सुमंता तुझा थोर धीर । वज्रापरी तुझें

गये । ८७ कमलनयन तथा घनश्याम (शरीरशारी) श्रीराम घास की शय्या पर लेट गये । मैंने देखा कि पाँवों से सिर तक ओढ़ लेने के के लिए आकाश (मात्र) था । ८८ मैंने शृंगवेरपुर तक श्रीराम को पहुँचाकर बिदा किया । फिर जिनके नाम से संसार (-रूपी सागर को लोग) तैर जाते हैं, उन्हें गुह (गंगा नदी के) दूसरे तट तक ले गया । ८९ मायारूपी नदी को पार कर सन्त भगवान्-स्वरूप में लीन हो हो जाते हैं; उसी प्रकार (माया निर्मित समस्त बन्धनों को तोड़कर) गंगा नदी पार किये हुए श्रीराम को (मैंने) देदीप्यमान (तेजस्वी) रूप में देखा । ९० इसके पश्चात् वहाँ से जगत् के उद्धारक करुणाकर श्रीराम ने अपने हाथ से मुझे संकेत किया कि मैं शीघ्र ही अयोध्या चला जाऊँ । ९१ फिर श्रीराम ने वहाँ से साष्टांग नमस्कार किया (और) आगे वनवास के लिए पैदल गमन किया । ९२ जैसे सूर्य का अस्त हो गया, वैसे श्रीराम वन में प्रविष्ट हो गये—मानो यज्ञकर्ता के (यज्ञ-) कुण्ड में अग्नि आच्छादित (ढँकी) हुई हो । ९३ तब सुमन्त के ऐसे वचन कानों से सुनकर तत्काल उस समय राजा (दशरथ अपने) वक्षःस्थल (छाती) को धब-धब पीटते रहे । ९४ उन्होंने कहा—'हे सुमन्त, राम को वन में छोड़कर तुम कैसे वापस आ गये ? अरे, तुम्हारा हृदय पूरा-पूरा निर्दय है । तुम्हारे प्राण कैसे नहीं निकल गये ? ९५ हे सुमन्त,

शरीर। वनीं सांडोनि रघुवीर। कैसा येथवरी आलासी। ९६ गळामाजी गुंतला मीन। तैसा तळमळी अजनंदन। श्रीराम-वियोगाचा अग्न। जाळीत पूर्ण सर्वांगीं। ९७ म्हणे धांव धांव बा रे रघुनंदना। सरोजनेत्रा सुहास्यवदना। कोमलांगा माझिया प्राणा। गेलासी वना टाकूनि। ९८ हांक फोडिली दशरथें। धांव माउलिये रघुनाथे। मज सांडोनि तान्हयातें। गेलीस वना दूरदेशा। ९९ राम चालिला माझा प्राण। अंत-काळीं दावीं तुझें वदन। ऐसें बोलतां वटारिले नयन। सोडिला प्राण रामस्मरणें। १०० राम राम करितां दशरथ। जाहला रामरूप यथार्थ। खुंटला शोक समस्त हेत। मात सर्व राहिली। १०१ पहा शरीराचें कर्म गहन। चौघे पुत्र दशरथास असोन। एकही जवळी नसतां सोडिला प्राण। मग सुमंत प्रधान धांवला। १०२ तेणें उशासी मांडी दिधली। सुमित्रा कौसल्या जवळी आली। तेव्हां एकचि हांक जाहली। महा-

तुम्हारा धैर्य बड़ा है। तुम्हारा शरीर वज्र-सा (कठोर) है। रघुवीर को वन में छोड़कर तुम यहाँ तक कैसे आ गये?' ९६ मछली बंसी (काँटे) में फँस गयी हो, (तो वह जैसे छटपटाती होगी) वैसे दशरथ छटपटा रहे थे। श्रीराम के विरह-रूपी अग्नि उन्हें समस्त वदन में जला रही थी। ९७ वे कह रहे थे—'हे रघुनन्दन, दौड़ो, दौड़ो। हे कमलनयन, सुहास्य-वदन, कोमल-गात्र, मेरे प्राण (श्रीराम), मुझे छोड़कर तुम वन में गये हो।' ९८ (फिर) दशरथ दहाड़ मारकर रोते रहे। वे कह रहे थे—'हे रघुनाथ (-रूपी) मेरी मैया, मुझ दुधमुँहे को छोड़कर तुम दूर देश—वन में गये हो। ९९ हे राम, मेरे प्राण (निकले) जा रहे हैं। अन्तकाल में (मृत्यु के समय) तो अपना मुँह दिखाओ।' इस तरह बोलते (-बोलते) उनकी आँखें उलट गयीं और राम का स्मरण करते हुए उन्होंने प्राण त्याग दिये। १०० 'राम', 'राम', कहते-कहते दशरथ सचमुच राम-रूप (में विलीन) हो गये। उनका शोक, समस्त उद्देश्य समाप्त हो गया—समस्त बात (योजना पीछे) रह गयी। १०१ देखिए, शरीर का कर्म (स्थिति—कैसा) गहन है। दशरथ के चार पुत्र होते हुए (भी, उनमें से एक भी) पास नहीं होने पर, उन्होंने प्राण त्याग किये। तब सचिव सुमन्त दौड़े (हुए उनके पास आ गये)। १०२ उन्होंने (दशरथ के) उसीस के लिए अपनी गोद (आगे बढ़ा) दी। सुमित्रा और कौसल्या (भी) तब तक उनके

शब्देंकरूनियां । ३ सप्तशत राण्या सकळ । दुःखें पिटिती वक्षःस्थळ । हडबडलें अयोध्यापुर सकळ । शोक तुंबळ लोकांतें । ४ आक्रोशें कौसल्या सुमित्रा रडत । रामवियोगें दुःख बहुत । त्यांत मृत्यु पावला दशरथ । नाहीं अंत शोकातें । ५ जैसें पायांस डंखिजे महाव्याळें । तों मस्तकीं वृश्चिकें ताडिलें । कीं वणव्यांत प्राणी सांपडले । त्यावरी तोडिलें तस्करांनीं । ६ आधींच बहुत धाकेंकरून । त्यावरी पडती पाषाण । आधींच नवज्वरें गेला व्यापून । त्यांत विषपान पैं झालें । ७ आधींच गृहास लागला अग्न । त्यावरी साह्य जाहला प्रभंजन । कीं पुरीं जातां बुडोन । तों गळां पाषाण बांधिला । ८ व्याघ्रभयें पळतां उठाउठी । तों रिसें कंठीं घातली मिठी । तैसी कौसल्येस जाहली । गोष्टी लल्लाट पिटी अवनीये । ९ तों तेथें पातला ब्रह्मसुत । म्हणे शोक कां करितां

निकट आ गयीं । तब उच्च स्वर में बहुत कुहराम मच गया । १०३ दशरथ की समस्त सात सौ रानियाँ दुःख से छाती पीटती रहीं । अयोध्यानगरी के होश उड़ गये । लोगों को अत्यधिक शोक हो गया । १०४ कौसल्या और सुमित्रा चीख-चीख कर रो रही थीं । (एक तो) श्रीराम के वियोग से (उन्हें) बहुत दुःख हो गया था; तिसपर (पतिराज) दशरथ मृत्यु को प्राप्त हो गये । (इसलिए उनके) शोक का (कोई) अन्त नहीं था । १०५ जिस प्रकार (किसी के) पाँव में महा (भयानक) विषैले) साँप ने काट लिया (हो) और त्यों ही (उसके) मस्तक पर बिच्छू ने (पूँछ से) आघात किया (हो)—अर्थात् डंक मारा (हो); अथवा जिस प्रकार दावानल में पशु फँस गये (हों) और फिर चोरों ने (उनको) तंग किया (हो); अथवा कोई पहले ही आतंकित हो और फिर उसपर पत्थर गिर गये (हों); अथवा कोई पहले ही मीआदी ज्वर से व्याप्त अर्थात् ग्रस्त हुआ (हो), फिर उस (अवस्था) में विषपान हो गया (हो); अथवा पहले ही घर में आग लग गयी (हो), तिस पर हवा उस (अग्नि) की सहायक हो गयी (हो); अथवा किसी के बाढ़ में डूबते रहते हुए उसके गले में पत्थर बाँध दिया (गया हो); अथवा बाघ के भय से (किसी के) तेज़ भागने लगते ही रीछ ने उसके गले में बाँह डाली (हो); (ऐसे समय पर उसकी जैसी अवस्था हो जाती है) उसी प्रकार कौसल्या की स्थिति हो गयी । वह भूमि पर सिर पटकती थी । (१०६-१०९)

व्यर्थ। आतां वेगीं आणोनि भरत। राज्यीं तया स्थापावें। ११० एक राजा उभा राहिल्याविण। करूं नये राजाचें दहन। आणि समीप नसतां नंदन। कदा अग्न देऊं नये। ११ मग तैलद्रोणींत साचार। घातलें दशरथाचें शरीर। वसिष्ठ म्हणे सुमंता सत्वर। रथ घेऊनि धांवें कां। १२ सूर्योदय होतां येथें। वेगीं घेऊनि यावें भरतातें। त्याचे कर्णीं वोखटें तेथें। सर्वथाही सांगू नको। १३ वनास गेला रघुनंदन। अथवा दशरथें सोडिला प्राण। हें गुह्य त्यासी न सांगोन। वेगें घेऊन येइंजे। १४ भरत केवळ श्रीरामभक्त। ही गोष्ट ऐकतां विपरीत। तत्काळ देह टाकील तेथें। यालागीं श्रुत न करावें। १५ भक्त विरक्त चतुर वरिष्ठ। जो ज्ञानगंगेचा निर्मळ लोट। जो विवेकरत्नांचा मुकुट। एकनिष्ठ सुभट जो। १६ वैराग्यवैरागर पूर्ण। जो आनंदभूमीचें निधान। जो विरक्तवल्लीचें सुमन। जो समुद्र सत्याचा। १७ जो शांति-

---

तब वसिष्ठ ऋषि वहाँ आ पहुँचे। वे बोले—'आप शोक व्यर्थ (ही) क्यों कर रही हैं? अब झट से भरत को लाकर उन्हें राजगद्दी पर प्रतिष्ठित कर दिया जाए। ११० (क्योंकि लोक-रीति यह है—) बिना एक राजा के अधिष्ठित हुए, (मृत) राजा की दाह-क्रिया नहीं की जाए और पास पुत्र के न होने पर (पिता के शव को) अग्नि कदापि नहीं दी जाए—अर्थात् दाह-संस्कार नहीं करना चाहिए।' १११ अनन्तर तेल के असली द्रोण या नाव (अर्थात् द्रोण या नाव में तेल भरकर उस) में दशरथ का शरीर-शव डाल दिया। (फिर) वसिष्ठ ने सुमन्त से कहा—'रथ लेकर जल्दी जाइए (और) सूर्य का उदय होते ही यहाँ भरत को वेगपूर्वक ले आइए। (यहाँ की) अशुभ बात उन्हें बिलकुल न बताइए। ११२-११३ राम वन में गये अथवा दशरथ ने प्राण त्याग दिये—यह रहस्य उन्हें नहीं बताते हुए वेगपूर्वक (उन्हें) ले आइए। ११४ (क्योंकि) भरत तो निश्चय ही श्रीराम के भक्त हैं। यह विपरीत बात सुनते ही, वे वहाँ तत्काल देह-त्याग कर देंगे। इसलिए उन्हें (यह सुनाकर) विदित न कराइए। ११५ वे (ऐसे) विरक्त, चतुर श्रेष्ठ भक्त हैं; जो (मानो) ज्ञान-गंगा के प्रबल एवं वेगवान प्रवाह अर्थात् रेले ही हैं, (अथवा) जो विवेक-रूपी रत्नों के (बनाये) मुकुट हैं, जो एकनिष्ठ दिग्गज विद्वान् हैं, जो वैराग्य-रूपी हीरों की पूर्ण (भरी हुई) खान हैं, जो आनन्दभूमि के (धन-) भण्डार हैं, जो विरक्ति-रूपी लता में (विकसित) फूल हैं, जो

वृक्षाचें पक्वफल। जो दयेचा आगर केवळ। कीं उपरतीचा निर्मळ। पूर्ण कुंभ उचंबळला। १८ ऐसा सर्वगुणीं अलंकृत। वेगीं घेऊन ये भरत। तैसाचि निघाला सुमंत। आचार्यचरण वंदूनी। १९ वायुवेगें चालिला सुमंत। स्वप्न देखे मातुळीं भरत। कृष्णवर्णवस्त्रवेष्टित। नारी एक देखिली। १२० तिनें घेऊनियां करीं। तैल जिरवलें आपुले शिरीं। भरत जागा होऊनि झडकरी। रुदन करी आक्रोशें। २१ म्हणे स्वप्न नव्हे हा अनर्थ। आम्ही चौघे बंधु आणि दशरथ। पांचांमाजी जीवघात। होईल एकाचा निर्धारें। २२ आणि प्राणसखा अत्यंत। तो अंतरेल दूर बहुत। धरणीवरी मस्तक भरत। आपटी शोकें तेधवां। २३ आक्रंदोनि हांक देत। केवीं दृष्टीं देखेन रघुनाथ। राजाधिराज दशरथ। अंतरला ऐसें वाटतें। २४ तों मातुळ संग्रामजित। भरतासी स्नेहें हृदयीं धरित। शत्रुघ्नासी समजावित। शोक व्यर्थ कां करितां। २५

सत्य के सागर हैं, जो शान्ति-रूपी वृक्ष में (उत्पन्न) परिपक्व फल हैं, जो दया के निश्चय ही क्षेत्र (खेत) हैं, अथवा (जिनके रूप में) विशुद्ध उपरति का पूर्ण कुम्भ छलका (हुआ है), ऐसे समस्त गुणों से विभूषित भरत को वेग-पूर्वक ले आइए।' (तब आचार्य के चरणों की वन्दना करके सुमन्त वैसे ही (जाने के लिए) निकले। ११६-११९ सुमन्त वायु-वेग से चलते रहे। (इधर अपने) मामा के यहाँ भरत ने एक स्वप्न देखा। उन्होंने (स्वप्न में) काले वस्त्रों में लिपटी एक नारी देखी। उस (नारी) ने हाथ में तेल लेकर उनके मस्तक में मल लिया। (त्योंही) झट से जाग उठकर भरत ढाढ़ मारकर रोने लगे। १२०-१२१ उन्होंने कहा (सोचा)—(यह) स्वप्न नहीं; यह तो भारी संकट जान पड़ता है। (आशंका है कि) हम चार बन्धु और (पिता) दशरथ—(इन) पाँचों में से किसी का निश्चय ही देहान्त होगा। १२२ और अत्यधिक प्रिय प्राणसखा (श्रीराम) बहुत दूरी पर जाकर रहेगा। तब भरत ने शोक से अपना सिर धरती पर पटक लिया। १२३ ढाढ़ मारकर रोते हुए वे बोले—' (अपनी) दृष्टि से मैं श्रीराम को कैसे देख सकूँगा? जान पड़ता है, राजाधिराज दशरथ बिछुड़ गये।' १२४

तब मामा संग्रामजित् (- युधाजित्) ने भरत को स्नेह से गले लगा लिया और (उन्हें तथा) शत्रुघ्न को समझा दिया—' तुम व्यर्थ ही शोक क्यों कर रहे हो? १२५ रात के समाप्त होने पर तत्काल चतुरंग सेना

रजनी सरतां तत्काळ। सिद्ध करोनि चतुरंगदळ। अयोध्येप्रति उतावेळ। देऊन पाठवितों तुम्हांतें। २६ ऐसें बोलतां सरली रजनी। भरत शत्रुघ्न उठोनी। नगराबाहेर येऊनी। मार्ग लक्षीत अयोध्येचा। २७ उर्ध्ववदनेंकरूनि चकोर। विलोकीत जैसा चंद्र। कीं चक्रवाक चिंती दिवाकर। किंवा मयूर मेघातें। २८ ऐसा अयोध्येचा मार्ग लक्षीत। तों एकाएकीं देखिला रथ। वरी प्रधान सुमंत। आरूढोनि येतसे। २९ मंद मंद येत रहंवर। अश्वांचे नेत्रीं वाहे नीर। ध्वजाचें विद्युत्प्राय चीर। अति मलिन दिसतसे। १३० वरी सुमंत म्लानवदन। नेत्रीं वाहत अश्रुजीवन। राघवलीला आठवून। क्षणक्षणां स्फुंदतसे। ३१ मागुती वस्त्रें नेत्र पुसीत। तों शत्रुघ्न आणि भरत। जवळी आले धांवोनि त्वरित। चिन्हें विपरीत देखोनियां। ३२ सुमंतें देखतांचि भरत। वेगें रथाखालीं उतरत। क्षेमालिंगन दोघां देत। सांगे त्वरित बोलाविलें। ३३ भरत सुमंताचें वदन। क्षणक्षणां पाहे विलोकून। म्हणे सख्या

को सज्ज करके मैं तुम्हें अविलम्ब (बिना देर किये) अयोध्या (में) पहुँचा दूँगा।' १२६ इस तरह बोलते-बोलते रात बीत गयी। तब भरत और शत्रुघ्न उठकर और नगर के बाहर आकर अयोध्या के मार्ग की ओर देखते रहे। १२७ जिस प्रकार चकोर मुँह ऊपर को किये हुए चन्द्र (की ओर) देखता है, अथवा चक्रवाक (चकवा) सूर्य का ध्यान करता है (उत्कट प्रतीक्षा करता है) अथवा मोर मेघ को देखता रहता है, उसी प्रकार वे (दोनों) अयोध्या के मार्ग की ओर देख रहे थे। त्यों ही उन्होंने यकायक एक रथ देखा—सचिव सुमन्त (उसमें) आरूढ़ होकर आ रहे हैं। १२८-१२९ रथ मन्द-मन्द (गति से) आ रहा है; घोड़ों की आँखों से (अश्रु-)जल बह रहा है। ध्वज का बिजली-सा (चमकनेवाला) वस्त्र बहुत मलीन दिखायी दे रहा है। १३० रथ में सुमन्त म्लान-वदन (बैठे) थे; (उनकी) आँखों में अश्रुजल बह रहा था। वे श्रीराम की लीलाओं का स्मरण करते हुए क्षण-क्षण सिसक-सिसक कर रो रहे थे; फिर वस्त्र से आँखें पोंछ रहे थे।—तब (ऐसे) विपरीत लक्षणों को देखकर शत्रुघ्न और भरत तेज़ दौड़ते हुए (उनके) पास आ गये। १३१-१३२ भरत को देखते ही सुमन्त झट से रथ से नीचे उतर गये; उन्होंने (उन) दोनों को गले लगा लिया (और) कहा—'(आप को) जल्दी बुलाया (है)।' १३३ भरत सुमन्त के मुँह को

तुझे आरक्त नयन । शोकें झाले दिसती पैं । ३४ काय अयोध्येचें वर्तमान । सुखी आहे कीं रघुनंदन । श्रीदशरथ क्षेम कल्याण । सुखरूप आहे कीं । ३५ सुमंत म्हणे सुखी रघुनंदन । तुम्हांसी बोलाविलें त्वरेंकरून । मग रथीं बैसत भरतशत्रुघ्न । त्वरेनें शीघ्र चालिले । ३६ पुढें धुरे बैसला सुमंत । घडीघडी नेत्रांसी वस्त्र लावीत । तेणें भरत होय सद्गदित । तों पुढें देखत अयोध्या । ३७ प्राणरहित जैसें शरीर । तैसें दिसे अयोध्या नगर । कीं जीवनेंविण सरोवर । किंवा कांतार दग्ध जैसें । ३८ कीं नारी जैसी भ्रताराविण । कीं जननीविण तान्हें दीन । कीं नासिकावांचोनि वदन । अयोध्याभुवन तेवीं दिसे ३९ राजमंदिराचे ढळले कळस । मंगलवाद्यांचा नाहीं घोष । घरोघरीं नारी पुरुष । शोक आक्रोशें करिताती । १४० होतें दशरथाचें प्रेत । सुमंतें तेथेंचि नेला रथ । छत्र भंगलें देखतां भरत । रथाखालीं पडियेला । ४१ दशरथाचें प्रेत देखोनि । भरत तेव्हां लोळे धरणीं । अश्रुधारा वाहती नयनीं ।

क्षण-क्षण ध्यान से देखते थे । वे बोले—‘ हे मित्र, आपकी आँखें शोक से लाल हुई दिखायी देती हैं । १३४ अयोध्या का क्या समाचार है ? क्या श्रीराम सुखी हैं ? क्या श्री दशरथ स-क्षेम-कुशल तथा सुख-रूप तो हैं ?’ १३५ तब सुमन्त ने कहा—‘ श्रीराम सुखी हैं । तुम्हें शीघ्रता से बुलाया (है) ’। तो भरत और शत्रुघ्न रथ में बैठ गये । वे झट से शीघ्रतापूर्वक चल दिये । १३६ आगे (रथ की) धुरा पर सुमन्त बैठे । वे बार-बार आँखों को (पोंछने के लिए) वस्त्र लगा रहे थे । उससे भरत गद्गद हो गये । त्यों ही अयोध्या सामने दिखायी दी । १३७ प्राणों से रहित शरीर जैसे दिखायी देता है, वैसे (उन्हें) अयोध्यानगर दिखायी दिया । अथवा विना माता के दुधमुँहा शिशु दीन दीखता है, अथवा विना नाक के मुख (भद्दा एवं बेढंगा) नजर आता है, वैसे उन्हें अयोध्या का प्रासाद दिखायी दिया । १३८-१३९ (उन्हें दिखायी दिया कि) राज-मंदिर के कलश ढह गये (हैं), वहाँ मंगल-वाद्यों का घोष नहीं (हो रहा) है । घर-घर स्त्री-पुरुष चीखकर शोक (व्यक्त) कर रहे हैं । १४० जहाँ दशरथ का शव (रखा हुआ) था, सुमन्त वहीं रथ को ले गये । छत्र को भग्न देखते ही भरत रथ से नीचे गिर गये । १४१ तब दशरथ के शव को देखकर भरत भूमि पर लोटते रहे । (उनकी) आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहती रहीं । उनका शोक आकाश में नहीं समा

शोक गगनीं न समाये । ४२ शोकसमुद्रीं निमग्न । जाहला कैकयीनंदन । भोंवते सद्‌गद प्रजाजन । दुःखेंकरून बोलती । ४३ मग सुमंतप्रधानें सांवरूनी । भरत बैसविला उठवोनी । भरत विचार करी मनीं । राम नयनीं पाहीन आतां । ४४ संसारमाया सांडोन । दशरथ पावला स्वर्गभुवन । मी आतां राघवचरण । दृढ धरीन निजभावें । ४५ विलोकितां श्रीरामवदन । मी शोकावेगळा होईन । प्रधानासी म्हणे मज नेऊन । श्रीरामचरणांवरी घालावें । ४६ वडील बंधु रघुनाथ । दशरथासम यथार्थ । रामसदनाकडे भरत । मुरडोनियां चालिला । ४७ परी वनास गेला रघुनंदन । हें कोणासी न बोलवे वचन । एक म्हणती देईल प्राण । सीतारमण न देखतां । ४८ तों आरडत कौसल्यामाय । भरत धांवोनि धरी दृढ पाय । माये श्रीराम कोठें होय । तो लवताहें दावीं कां । ४९ तों कौसल्येसी आली मूर्च्छना । बोलतां न बोलवे वचना । बा रे राम गेला तपोवना । मग रायें प्राण त्यजि-

---

रहा था । १४२ कैकेयी-पुत्र भरत शोक-रूपी सागर में डूब गये । (उनके) चारों ओर गद्‌गद हो प्रजाजन दुःख-पूर्वक बोल रहे थे । १४३ फिर सचिव सुमन्त ने सम्हालकर भरत को उठाकर बैठा दिया । भरत मन में (यह) विचार कर रहे थे—' अब मैं (अपनी) आँखों से श्रीराम को देखूँगा । १४४ संसार की माया का त्याग कर दशरथ स्वर्ग-लोक को प्राप्त हो गये, तो मैं अब आत्मीयता-पूर्वक श्रीराम के चरणों को दृढ़ता से पकड़ लूँगा । १४५ श्रीराम के मुख को देखते ही मैं शोक से मुक्त हो जाऊँगा ।' (अतः) उन्होंने सचिव (सुमन्त) से कहा—' मुझे लिये जाकर श्रीराम के चरणों में डाल दीजिए । १४६ ज्येष्ठ बन्धु श्रीराम सचमुच (पिता) दशरथ के समान हैं ।' (फिर) भरत मुड़कर श्रीराम के सदन की ओर चल दिये । १४७ परन्तु यह बात किसी से नहीं कही जा रही थी कि रघुनाथ वन (में) गये (हैं) । कोई-कोई कहते थे कि श्रीराम को न देखने पर ये प्राण त्याग देंगे । १४८ तब कौसल्या माता चीख उठी, तो दौड़कर भरत ने उसके पाँव दृढ़ता से पकड़ लिये, और पूछा—' हे माँ, झट से दिखाओ, श्रीराम कहाँ हैं ?' १४९ तब कौसल्या अचेतन (बेहोश) हो गयी; उससे बोलने का यत्न करने पर भी बात नहीं बोली जाती । (फिर भी यत्नपूर्वक उसने कहा—' अरे, राम तपोवन गया; फिर राजा ने प्राणों को तज दिया ।' १५० भरत ने

येला । १५० भरतें ऐसें ऐकिलें । लल्लाट भूमीवरी आपटिलें । तें दुःख नजाय वर्णिलें । कल्पांत मांडला ते वेळीं । ५१ आहा रघुवीरा राजीवनेत्रा । नवमेघरंगा स्मरारिमित्रा । जगद्वंद्या कोमलगात्रा । कां उपेक्षिलें आम्हातें । ५२ ऐसें बोलोनियां भरत । मेदिनीवरी अंग घालित । माझी माउली रघुनाथ । गेली निश्चित टाकोनियां । ५३ मेदिनीगर्भरत्नभूषण । वनासी निघतां रघुनंदन । दशरथें जेवीं सोडिला प्राण । तैसें मरण मज कां न ये । ५४ अद्यापि न ये मजला मृत्यु । कां मृत्यूच निमाला यथार्थ । रामवियोगाचें दुःख अत्यंत । मृत्यूसही न न सोसवे । ५५ धन्य धन्य राजा दशरथ । कोमळहृदय प्रेमळ यथार्थ । देह ठेवूनि विदेहजामात । जवळ केला त्वरेनें । ५६ तंव तो कमलोद्भवसुत । आचार्य पातला त्वरित । भरत जाऊनि चरण धरीत । मज रघुनाथ दाखवीं । ५७ पहावया भरताचें मन । वसिष्ठ काय बोले वचन । तुज राज्य दिधल्या-

---

(ज्यों ही) ऐसा सुना, (त्यों ही) उन्होंने भूमि पर सिर पटक लिया। (उनके) उस दुःख का वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्होंने उस समय बहुत शोक किया। १५१ (वे शोक करते हुए बोले—) 'हे रघुवीर, हे कमलनयन, हे नवघनश्याम, हे शिवजी के मित्र, हे जगत् द्वारा वन्दनीय और कोमल-शरीरी (श्रीराम)! (आपने) हमारी क्यों उपेक्षा की?' १५२ ऐसा बोलकर भरत ने पृथ्वी (-भूमि) पर देह को लुढ़का दिया। (वे बोले—) रघुनाथ-रूपी मेरी मैया निश्चय ही हमें छोड़कर चली गयी। १५३ पृथ्वी की पुत्री सीता के आभूषण श्रीराम के वन जाने के लिए निकलने पर दशरथ ने जैसे प्राण छोड़ दिये, वैसे मुझे मौत क्यों नहीं आती? १५४ मुझे अभी तक मौत नहीं आ रही है। (अतः) क्या सचमुच मृत्यु ही शान्त तो गयी? (जान पड़ता है) राम के विरह का यह अत्यधिक दुःख मृत्यु द्वारा भी सहन नहीं किया जाता। १५५ राजा दशरथ धन्य हैं, धन्य हैं! वे सचमुच कोमल-हृदय तथा स्नेहल थे (जिससे कि) उन्होंने शरीर छोड़कर (प्राणों से) श्रीराम को अपने निकट कर लिया—अर्थात् श्रीराम के साथ में अपने प्राणों को भेज दिया।' १५६ तब आचार्य वसिष्ठ शीघ्रता-पूर्वक (वहाँ) आ पहुँचे। (त्यों ही उनके पास) जाकर भरत ने उनके चरण पकड़े। (और कहा—) 'मुझे श्रीराम दिखाइए।' १५७ तो भरत के मन की परीक्षा कर देखने के लिए वसिष्ठ ने क्या बात कही?

विण। रायास अग्न देऊं नये। ५८ आणि तुझिया मातेच्या मनांत। तुज राज्य व्हावें प्राप्त। वनास गेला जनकजामात। तेंच निमित्त जाण पां। ५९ ऐसें ऐकतां ते अवसरीं। परम दुःख पावला अंतरीं। भरत आक्रंदत दीर्घ स्वरीं। राज्य करीं म्हणतांचि। १६० सुकुमार चंपककळिकेवरी। चपळा पडतां न उरे उरी। कीं कर्पूरजननीचे शिरीं। शुंडाप्रहारीं ताडी गज। ६१ कीं शस्त्रघातें तोडिलीं बाळें। कीं वज्रघातीं चूर्ण कपाळें। कीं अग्नींत पडलीं मुक्ताफळें। तैसें वाटलें भर-तातें। ६२ श्रीराम गेला वनांतरीं। जरी मी येथें राज्य करीं। तरी जितुके ब्राह्मण पृथ्वीवरी। म्यां वधिले स्वहस्तें। ६३ जगद्वंद्यास वनीं सांडोन। जरी मी अंगीकारीं राज्यासन। विगतधवा जे जारीण। तिचें गर्भस्थळ मी पावें। ६४ रजस्वलेच्या शोणितासमान। राज्याभिषेकाचें उदक पूर्ण। मी आपुल्या उदरीं शस्त्र घालीन। राज्यासन

(उन्होंने कहा—) 'बिना तुम्हें राज्य दिये, राजा (दशरथ के शव) को अग्नि नहीं देनी चाहिए। १५८ और (इसके अतिरिक्त) तुम्हारी माता के मन में (यह विचार) था कि तुम्हें राज्य प्राप्त हो जाए। श्रीराम वन (में) चले गये। समझो, इसका वही कारण है।' १५९ ऐसा सुनते ही उस समय वे मन में परम दुःख को प्राप्त हो गये। (वसिष्ठ द्वारा) 'तुम राज करो'—कहते ही भरत ने दीर्घ स्वर में क्रन्दन किया। १६० सुकोमल चम्पक-कलिका पर बिजली के गिर जाने पर वह (कलिका) शेष नहीं रहती; अथवा केले (के पौधे) के सिर (-अग्रभाग) पर हाथी ने सूँड से आघात किया (तो वह पौधा नहीं बचता); अथवा (किसी ने) हथियार के आघात से शिशुओं को काट डाला हो; अथवा वज्र के आघात से मस्तक चूर-चूर हो जाते हैं; अथवा आग में मोती गिर गये हों। (तब चम्पक-कलिका, केले के पौधे, शिशुओं, मस्तकों या मोतियों की जो स्थिति हो जाती है, वैसे ही) भरत को जान पड़ा। ६१-६२ (उन्होंने सोचा—) श्रीराम वन में गये; यदि मैंने यहाँ राज किया, तो (समझिए) पृथ्वी में जितने ब्राह्मण हैं, उनका मैंने अपने हाथों वध किया। ६३ जगद्वंद्य (श्रीराम) को वन में छोड़कर यदि मैं राज्यासन (राजगद्दी) को स्वीकार करूँ, तो जो विधवा जारिणी (व्यभिचारिणी) हो, उसके गर्भाशय में मुझे स्थान प्राप्त हो। ६४ ऐसे राज्याभिषेक का उदक पूर्णतः रजस्वला स्त्री के रक्त के समान है।

घ्या म्हणतां । ६५ ज्यासी मृडानीवर ध्याई मनीं । ज्याची अयोध्या हे राजधानी । ते मी भोगितांचि ये क्षणीं । महा-चांडाळ मी जाहलों । ६६ रघुवीर सांडोन काननीं । जरी मी भोगीन राजधानी । तरी जिव्हा जावो झडोनी । कीटक पडोत तत्काळ । ६७ वनीं सांडोनि जगन्मोहन । जरी मी घेईन राज्यासन । तरी गुरुवध मद्यपान । मातागमन घडे मज । ६८ कलंक लागेल वासरमणीं । पाप प्रवेशेल गंगाजीवनीं । मृग-जळीं घटोद्भवमुनी । जरी बुडोन जाईल । ६९ चित्रकिरणा-चियावरी । चढती मुंगियांच्या हारी । कीं वडवानळाचे शिरीं । नृत्य करी पतंग । १७० कीं ऊर्णनाभीच्या तंतुसूत्रीं । जरी उचलेल धरित्री । कीं तृणपाशें महाकेसरी । जरी गुंतोन पडेल । ७१ कीं मही उचलेल मशका । जरी सुपर्णासी बाधेल अळिका । कीं दृष्टीं देखतां दीपका । मृगांक खालीं पडेल । ७२ जरी हें घडेल ब्रह्मनंदना । तरी मज होईल राज्यवासना ।

(आप) यदि राज्य लेने को कहें, तो मैं अपने पेट में (अपने हाथ से) शस्त्र घुसेड़ लूँगा । ६५ मृड़ानीपति शिवजी मन में जिनका ध्यान करते हैं, अयोध्या (वस्तुतः) जिनकी राजधानी है, ऐसे श्रीराम की अयोध्या का मैं (राजा के रूप में) उपभोग करते ही तत्क्षण मैं महा-चाण्डाल बन जाऊँगा । ६६ श्रीराम को वन में छोड़कर यदि मैं राजधानी का उपभोग करूँ, तो मेरी जीभ झड़ जाए (और) उसमें तत्काल कीड़े पड़ जाएँ । ६७ जगन्मोहन श्रीराम को वन में छोड़कर यदि मैं राजगद्दी (स्वीकार कर लूँ), तो मुझे गुरु-वध, मद्य-पान तथा मातागमन (का जघन्य पाप) घटित हो जाए । ६८ सूर्य में कलंक लग जाएगा; गंगा-जल में पाप प्रविष्ट हो जाएगा; मृग-मरीचिका में (सागर को पी डालनेवाले) अगस्त्य मुनि डूब जाएँगे, सूर्य की किरणों पर चींटियों की पंक्तियाँ चढ़ जाएँगी; अथवा वड़वाग्नि (की ज्वालाओं के) सिर पर पतंगे नृत्य करेंगे; अथवा मकड़ी की नाभि में से निकलनेवाले धागे से धरती उठेगी (उठायी जा सकेगी); अथवा यद्यपि घास के पाश में महान हाथी उलझ पड़ेगा; अथवा मच्छड़ से पृथ्वी उठायी जाएगी; अथवा इल्ली सुपर्ण गुरुड़ को बाँध पाएगी; अथवा दीपक को आँख से देखने पर चन्द्र (नीचे) गिर जाएगा—ये सब बातें तो असम्भव हैं। तथापि, हे ब्रह्म-नन्दन वसिष्ठजी, यदि यह घटित हो जाए, तो ही मुझे राज्य-(प्राप्ति) की कामना हो जाएगी । भरत की (ऐसी) बातें

ऐकोनि भरताच्या वचना । वसिष्ठ जाहला सद्गद । ७३ अहो तें भरताचें वचन । वैराग्यवल्लीचें सुमन । कीं विवेकनभींचे उडुगण । प्रेमतेजें झळकत । ७४ कीं तें भक्तिपंथींचें सरोवर । कीं निश्चयभावाचें दिव्य नगर । कीं तें विश्रांतीचें मंदिर । वचनरूप प्रत्यक्ष । ७५ असो तो कैकयीनंदन । म्हणे स्वामी शिवतों तुझे चरण । श्रीरघुवीराची मज आण । राज्याभिषेक करूं नेदीं । ७६ कैकयीचें काळें वदन । माता नव्हे ती लांव पूर्ण । तीस आवडे रांडपण । पतीचा प्राण घेतला । ७७ मग वसिष्ठें जें जें चिंतिलें । तें तें भरतासी निवेदिलें । मंथरा दासीचे बोलें । कार्य नासलें सर्वही । ७८ कलहकल्लोळ-सरिता । ते ही मंथरा दासी तत्त्वतां । कुबुद्धि शिकवूनि तुझी माता । इनेंचि पाहें पां बोधिली । ७९ ऐसी ऐकतांचि मात । वेगें धांवे वीर भरत । मंथरेची वेणी अकस्मात । धरूनि शस्त्र काढिलें । १८० मग धांवोनि ब्रह्मसुत । भरताचा धरिला हात । म्हणे स्त्री वधितां पाप अद्भुत । कदा विपरीत करूं

सुनकर वसिष्ठ अति गद्गद हो गये । १६९-१७३ अहो ! भरत की यह उक्ति मानो वैराग्य-रूपी लता में (विकसित) सुमन है, अथवा विवेक-रूपी आकाश का तारा है, जो प्रेम के तेज से चमक रहा है । ७४ अथवा वह भक्ति-मार्ग पर (बना) सरोवर है, अथवा निश्चल (भक्ति-) भाव का दिव्य नगर है; अथवा वह वचन-रूप में प्रत्यक्ष विश्राम का मंदिर है । ७५ अस्तु । वे भरत बोले—' हे स्वामी, मैं (आपके) चरण छूता हूँ । मुझे श्रीराम की सौगन्ध है । (आप) राज्याभिषेक न करने दीजिए । ७६ कैकेयी का मुँह काला ! माता नहीं, वह तो पूर्णतः पिशाचिनी है । उसे तो रँडापा (वैधव्य) भाता है (जिससे इस प्रकार) उसने पति के प्राणों को (छीन) लिया । १७७

अनन्तर वसिष्ठ ने जो-जो सोचा था, वह भरत को बता दिया । (उन्होंने कहा—)' दासी मन्थरा की बात से सभी कार्य बिगड़ गया । ७८ कलह-रूपी लहरों से (भरी कोई) नदी ही वस्तुतः यह दासी मन्थरा है । देखो, इसने तुम्हारी माता को कुमति (की बातें) सिखाकर बाँध (अर्थात् अपने बस में कर) लिया । ' ७९ ऐसी बात सुनते ही वीर भरत वेग-पूर्वक दौड़े और यकायक मन्थरा की बेनी (झोंटा) पकड़ते हुए उन्होंने शस्त्र निकाल लिया । ८० तब वसिष्ठ ने दौड़ते (झट से आगे बढ़ते) हुए भरत का हाथ थाम लिया और कहा—' स्त्री का वध

नको । ८१ मग लत्ताप्रहारेंकरूनी । भरतें ताडिलें तिये-
लागूनी । त्रिवक्रकुब्जा तेथूनी । नाम तियेसी जाह्लें । ८२
असो ब्रह्मपुत्रें तये क्षणीं । रामपादुका सिंहासनीं । मणिमय
जडित दिव्यरत्नीं । सिंहासनीं स्थापिल्या । ८३ त्यांवरी छत्र
धरून । मग राजदेह उचलोन । अग्निमुखीं समर्पून । उत्तर-
कर्म भरत करी । ८४ सप्तशत रायाच्या युवती । अग्निप्रवेश
तत्काळ करिती । जैसीं सूर्यकिरणें सामावती । सूर्यासरसीं
अस्तमानीं । ८५ सुमित्रा आणि कौसल्या । प्राण द्यावया सिद्ध
जाह्ल्या । मग त्या वसिष्ठें वर्जिल्या । शास्त्रप्रमाण
रीतीनें । ८६ पुत्रवंत्या स्त्रिया विशेष । त्यांहीं न करावा
अग्निप्रवेश । तों कौसल्या म्हणे आम्हांस । कशास व्यर्थ
ठेवितां । ८७ वनास गेला रघुनाथ । परत्र पावला दशरथ ।
आतां काय वांचूनि व्यर्थ । काया अग्नींत निक्षेपूं । ८८ मग

करने में अत्यधिक (अपूर्व) पाप होता है (अतः ऐसा) विपरीत (कर्म)
कदापि न करो । ८१ फिर भरत ने उसे लातों के आघात करके पीट
लिया । तब से उसका नाम 'त्रिवक्रकुब्जा (अर्थात् जिसका शरीर तीन
स्थानों में टेढ़ा हुआ है, ऐसी कूबड़-वाली स्त्री)' हो गया । १८२

अस्तु । वसिष्ठ ने तत्क्षण मणिमय-दिव्य रत्नों से जड़े हुए
सिंहासन पर राम की पादुकाओं की स्थापना की । १८३ उनपर छत्र
उभारने के बाद फिर राजा के (मृत) शरीर को उठाकर अग्नि के मुख
में समर्पित करते हुए भरत ने (उनकी) उत्तर-क्रिया सम्पन्न की । ८४
राजा की सात सौ स्त्रियों ने तत्काल अग्नि-प्रवेश कर लिया, अर्थात्
वे सती हो गयीं । वे अग्नि में उस प्रकार समा गयीं, जिस प्रकार
अस्त के समय (सूर्य की) किरणें सूर्य के साथ ही समाविष्ट हो जाती
हैं—एकरूप हो विलीन हो जाती हैं । ८५ सुमित्रा और कौसल्या
प्राण-त्याग करने के लिए तैयार हो गयीं, तो वसिष्ठ ने शास्त्रों से
प्रमाणित (इस) रीति के अनुसार उन्हें रोक लिया कि विशेषतः पुत्रवती
स्त्रियों को (पति की चिता की) अग्नि में प्रवेश नहीं करना चाहिए
(सती नहीं होना चाहिए) । तब कौसल्या ने (वसिष्ठ से) कहा—'हमें
व्यर्थ ही क्यों (जीवित) रखते हैं ? १८६-१८७ श्रीराम वन (में) गया;
(इधर) दशरथ परलोक को प्राप्त हो गये । अब व्यर्थ जीवित रहने
में क्या (धरा) है ? (इसलिए) हम शरीर को अग्नि में डाल देंगी ।' ८८
फिर शपथ करके वसिष्ठ ने कहा—'मैं तुमसे श्रीराम मिला दूँगा—अर्थात्

वसिष्ठ सांगे वाहूनि आण। तुम्हांस श्रीराम भेटवीन। मग वनासी करील गमन। पुढतीं आगमन करील पैं। ८९ निवटोन असुर समस्त। अयोध्येसी येईल रघुनाथ। हा वाल्मीकाचा मूळ काव्यार्थ। माना यथार्थ सर्वही। १९० गुरुवचन मानूनि प्रमाण। चित्रकूटीं भेटेल रघुनंदन। अग्निप्रवेश म्हणून। वर्ज केशा ते काळीं। १९१ असो रात्र जाहली दोन प्रहर। कैकयी येऊन सत्वर। भरतासी एकांत विचार। सांगे कैसा ऐका तें। ९२ म्हणे पुत्रा ऐक वहिलें। संकटीं म्यां राज्य साधिलें। रामासी वनवासा पाठविलें। नानायत्नेंकरूनियां। ९३ वना गेले रामलक्ष्मण। हें तूं मानीं परम कल्याण। सत्वर घेईं छत्रसिंहासन। कांहीं अनमान करूं नको। ९४ पितृवचन करावया प्रमाण। वनास गेला रघुनन्दन। त्या शोकास्तव राव पावला मरण। हेंही जाण बरें जाहलें। ९५ सापत्नबंधु राम निर्धारें। त्यासी वंचन करितां बरें। देव दैत्य दायाद वैरें। अद्यापिही वर्तती। ९६ गरूड

श्रीराम से भेंट कराऊँगा। (उसके) पश्चात् वे वन की ओर गमन करेंगे। (फिर) बाद में वे (यहाँ) आएँगे। ८९ सब असुरों को नष्ट करके श्रीराम अयोध्या (लौट) आएँगे।—वाल्मीकि के काव्य के इस (मुख्य) अर्थ को (आप) सब यथार्थ (पूर्णतः सत्य) समझिए। १९० श्रीराम चित्रकूट पर मिलेंगे'—गुरु वसिष्ठ के इस वचन को प्रमाण समझकर उन्होंने उस समय अग्नि-प्रवेश (का विचार) छोड़ दिया। १९१

अस्तु। रात दो पहर हो गयी, तो कैकेयी ने झट से आकर भरत को एकान्त में क्या विचार बताया?—वह सुनिए। १९२ उसने कहा, 'हे पुत्र, पहले सुनो। संकट के समय मैंने राज्य प्राप्त किया; राम को अनेक प्रकार से प्रयत्न करके वनवास के लिए भेज दिया। ९३ राम और लक्ष्मण वन (में) गये। इसे तुम परम कल्याण (की बात) समझो। (इसलिए) छत्र और सिंहासन शीघ्र ग्रहण करो— कोई आगापीछा मत करो। ९४ पिता के वचन को सत्य करने के लिए राम वन (में) गया। उस शोक के कारण राजा मृत्यु को प्राप्त हुए। समझो कि यह भी अच्छा हुआ। ९५ राम तुम्हारा सौतेला भाई है। उसकी निर्धार-पूर्वक वंचना करने में औचित्य है। देव और दैत्य सपिण्ड कुटुम्बी हैं, जो अब भी (एक-दूसरे से) शत्रुता से व्यवहार करते हैं। ९६ गरुड़ और सर्प सौतेले भाई हैं। वे दोनों

सर्प सापत्न। वैरें वर्तती दोघेजण। जरी तूं होसी माझा नंदन। तरी वचन पाळीं हें। ९७ भरतें ऐकतांचि तिची वाणी। म्हणे उठें येथोनि चांडाळिणी। तुझा वध केला असता ये क्षणीं। परी माता म्हणोनि रक्षिली। ९८ परम निर्दय तूं पापीण। अमंगळ तूं लांव पूर्ण। घेतला दशरथाचा प्राण। जानकीजीवन धाडिला वना। ९९ तूं सर्पीण होसी यथार्थ। डंखोनि मारिला दशरथ। माझा सखा रघुनाथ। दूर वनासी धाडिला। २०० पिता बंधु दोघेजण। गेले ज्या पंथेकरून। त्या मार्गें मीही जाईन। ऊठ येथूनि पापरूपे। २०१ असो कैकयी गेली उठोन। तो उदय पावला चंडकिरण। भरतें वल्कलें वेष्टून। भस्म लाविलें सर्वांगीं। २ सर्व अलंकार त्यागून। वटदुग्धीं जठा वळून। वनाप्रति कैकयीनंदन। चरणचालीं चालिला। ३ षोडशपद्में दळभार। नगरलोक निघाले सत्वर। ओस पडिलें अयोध्यापुर। जीवमात्र चालिले। ४ कौसल्या सुमित्रा दोघीजणी। शिबिकेंत बैसल्या ते क्षणीं। वरी वस्त्रावरण घालुनी। वाहनासहित झांकिल्या। ५

जने (एक-दूसरे से) वैर (-भाव) से बर्ताव करते हैं। यदि तुम मेरे पुत्र हो, तो मेरी इस आज्ञा का पालन करो।' ९७ उसकी ऐसी भाषा सुनकर भरत ने कहा—' री चाण्डालिनी, यहाँ ले उठ जा। मैं इस क्षण तेरा वध कर डालता। परन्तु (तू) माँ है—इसलिए तेरी रक्षा की (—जीवित छोड़ा)। ९८ तू परम निर्दय पापिनी है। तू पूरी-पूरी अमंगल पिशाची है। तूने दशरथ के प्राणों को (छीन) लिया और राम को वन भेज दिया। ९९ तू सचमुच साँपिन है; (इसलिए तूने) डसकर दशरथ को मार डाला और मेरे सखा राम को वन भेज दिया। २०० पिता और बन्धु जिस मार्ग से गये, उसी मार्ग से मैं भी जाऊँगा। (अतः) री पापरूपा, यहाँ से उठ।' २०१ अस्तु। (तदनन्तर) कैकेयी उठकर चली गयी। तब सूर्य उदित हुआ। भरत ने वल्कल लपेटकर सब अंगों में (सारी देह में) भस्म लगा लिया। २०२ सब अलंकारों का त्याग कर और बरगद के दूध से जटाएँ गूँथकर, भरत वन की ओर पैदल चल दिये। ३ सोलह पद्म सेना और नागरिक-जन झट से (उनके साथ जाने के लिए) निकल पड़े। (इधर) अयोध्यानगर सूना रह गया—(समस्त) प्राणी-मात्र चल दिये। ४ कौसल्या और सुमित्रा दोनों तत्क्षण पालकी में बैठ गयीं। ऊपर वस्त्र तथा आभूषण

वसिष्ठादि सकळ ब्राह्मण । सवें निघाले चाऱ्ही वर्ण । अयोध्येंत कैकयीवांचून । नाहीं कोणी राहिलें । ६ जन म्हणती ओस नगर । कैकयीचें वपन करूनि सत्वर । तिजवरी धरावें छत्र । परम अपवित्र पापिणी । ७ तिचे पोटीं भरत जन्मला । जैसा कागविष्ठेंत अश्वत्थ प्रकटला । कीं कागिणीपोटीं कोकिळा । निपजे अवचिता जैसी कां । २०८ असो भरत म्हणे सुमंतातें । रघुवीर गेला कोण्या पंथें । तोच मार्ग दावीं आम्हांतें । तुझें अनुमतें चालूं आम्ही । २०९ मग भरतसमवेत दळभार । गुहकाश्रमा पावले सत्वर । वाजत वाद्यांचे गजर । नादें अंबर कोंदलें । २१० गुहक विलोकी दुरून । म्हणे मातेनें धाडिले दोघेजण । दळभार सिद्ध करून । रामलक्ष्मण वधावया । ११ मग सहस्रांचे सहस्र किरात । गुहकें मेळविले समस्त । धनुष्य ओढोनियां त्वरित । जान्हवीतीर बळकाविलें । १२ भरतासी

डाल (-फैलाकर) उन्हें सवारी-सहित आच्छादित कर दिया । ५ वसिष्ठ आदि समस्त ब्राह्मण तथा चारों वर्णों के लोग साथ में निकल पड़े । सिवा कैकेयी के अयोध्या में कोई नहीं रहा । ६ लोगों ने कहा—'नगर तो सूना (हो गया) है । (अब) कैकेयी का शीघ्र मुण्डन करें (और) उसपर (राज-) छत्र धर दें । वह तो परम अपवित्र पापिणी है । ७ जिस प्रकार कौए की विष्टा में (कभी-कभी) अश्वत्थ (पीपल) उत्पन्न हो जाता है, अथवा जिस प्रकार अनपेक्षित रूप में कौए की मादा से कोयल जन्म लेती है, (अर्थात् कभी-कभी बुरी बातों से अच्छी-बातें निकलती हैं) उसी प्रकार उसके पेट (गर्भ) से भरत उत्पन्न हुए ।' २०८

अस्तु । भरत ने सुमन्त से कहा—'श्रीराम किस मार्ग से गये ? वही मार्ग हमें दिखाइए । हम आपकी आज्ञा के अनुसार चलेंगे । २०९ अनन्तर भरत के साथ सब सैन्य (अर्थात् सब अयोध्यावासी-जन) शीघ्र गुह के आश्रम पहुँच गये । (तब) वाद्यों का गर्जन हो रहा था । उसके नाद से आकाश भर गया । २१० दूर से देखकर गुह ने कहा, (माना) कि सेना को सज्ज करके माता (कैकेयी) ने राम और लक्ष्मण का वध करने के लिए (भरत और शत्रुघ्न) दोनों को भेज दिया । २११ फिर गुह ने सब हज़ारों किरातों को एकत्रित किया और झट से धनुष चढ़ाकर गंगा-तीर पर कब्जा कर लिया । १२ (तब) सेवकों ने भरत से कहा—'गुह युद्ध के लिए सज्ज हो गया; वे (लोग) गंगा के जल को

सांगती सेवक । संग्रामासी सिद्ध जाहला गुहक । जन्हुकुमरीचें उदक । स्पर्शों न देती कोणातें । १३ मग शत्रुघ्न आणि दळ-पती । भरतासंगें विचार करिती । म्हणती आज्ञा द्यावी निश्चितीं । शिक्षा लावूं तयांते । १४ भरत म्हणे गुहक राम-भक्त । म्यां ऐकिला होता वृत्तांत । तरी समाचार न घेतां यथार्थ । युद्ध त्यासीं न करावें । १५ मग भरत पुढें होऊन । गुहकाप्रती बोले वचन । त्वां युद्ध आरंभिलें निर्वाण । काय कारण सांग तें । १६ गुहक म्हणे घेऊन दळभार । वधावया जातोसी रघुवीर । तरी मी श्रीरामउपासक निर्धार । वेंचीन प्राण स्वामिकाजीं । १७ माझा स्वामी रघुनंदन । निराहार वनीं निर्वाण । तुम्ही मारावया दोघेजण । दळभारेंसीं चालिलां । १८ परम निंदक दुर्जन खळ । जे रघुनाथद्वेषी चांडाल । त्यांचीं शिरें छेदोनि तत्काळ । पाठवीन यम-लोका । १९ मातेच्या बोलेंकरूनी । श्रीराम वधूं पाहसी वनीं । तरी तुम्हांस जान्हवीचें पाणी । स्पर्शों नेदीं अणु-मात्र । २२० ऐकतां गुहकाचें वचन । भरतासी आलें दीर्घ

स्पर्श (तक) करने नहीं दे रहे हैं'। १३ फिर शत्रुघ्न और सेनापति ने भरत से विचार-विमर्श किया। उन्होंने कहा—'हमें आज्ञा कीजिए, तो हम निश्चय ही उन्हें दण्ड देंगे।' १४ (इसपर) भरत ने कहा—'मैंने यह समाचार सुना था कि गुह रामभक्त है। इसलिए सही समाचार न पाते हुए उससे युद्ध न करें।' १५ अनन्तर आगे चलकर भरत ने गुह से (यह) बात कही—'तुमने (जो) विकट युद्ध छेड़ दिया—बताओ, (इसका) क्या कारण है?' १६ तो गुह ने कहा—'सेना (साथ में) लेकर आप राम का वध करने के लिए जा रहे हैं। इसलिए श्रीराम का उपासक—मैं (अपने) स्वामी के लिए निश्चय ही अपने प्राण त्याग दूँगा। २१७ मेरे स्वामी श्रीराम विकट वन में निराहार (भूखे पेट रहते) हैं। आप दोनों जने उन्हें मार डालने के लिए सेना-सहित चल रहे हैं। १८ जो परम निन्दक, दुर्जन एवं खल (दुष्ट) पुरुष हैं, जो रघुनाथ से द्वेष करनेवाले चाण्डाल (अर्थात् अधम) हैं, मैं उनके सिर तत्काल छेदकर उन्हें यमलोक भेज दूँगा। १९ (अपनी) माता के कहने से आप वन में श्रीराम का वध करना चाहते हैं। इसलिए आपको गंगा का अणु भर अर्थात् बूंद भर पानी (तक) छूने नहीं दूँगा।' २२०

रुदन। गुहकास म्हणे सोडूनि बाण। माझें शिर छेदोनि टाकीं। २१ मज पापियाचा देह त्वरित। गुहका छेदीं यथार्थ। कैकयीनें केला अनर्थ। सीताकांत धाडिला वना। २२ जन्मलों कैकयीचे उदरीं। जन म्हणती हा रामचंद्राचा वैरी। तरी गुहका आतां वेग करीं। छेदीं झडकरी देह माझा। २३ श्रीराम-वियोगाचें दुःख। मज न सोसवेचि अणुमात्र देख। निर्वाणबाण सोडोनि एक। मज रघुनायकपद दावीं तूं। २४ भरताचें अंतर ओळखून। गुहक धांवोनि धरी चरण। दोघांसी पडिलें आलिंगन। गेले विसरून देहभाव। २५ कंठ दाटला दोघांचा। उभारणी जाहली रोमांचा। दोघांचे नेत्रीं अश्रुधारांचा। पूर पडत ते काळीं। २६ दोघेही श्रीरामाचे भक्त। दोघेही योगी विरक्त। दोघेही श्रीरामास आवडत। वल्कलें वेष्टित दोघेही। २७ दोघांहीं केलें भस्मोद्धूलन। दोघांहीं केलें जटा-वळण। दोघेही न घेती अन्न। रामदर्शनावांचोनि। २८ गुहक

गुह की (यह) बात सुनकर भरत को बड़ी रुलाई आ गयी (वे रो पड़े)। (फिर) उन्होंने गुह से कहा—'बाण चलाकर मेरे सिर को काट डालो। २२१ हे गुह, मुझ पापी की देह को सचमुच झट से छेद डालो। राम को वन (में) भेज दिया—कैकेयी ने (यह) अनर्थ कर डाला। २२ मैंने कैकेयी के उदर से जन्म लिया, (इसलिए) लोग कहते हैं कि यह श्रीरामचन्द्र का शत्रु है। इसलिए हे गुह, अब शीघ्रता करो—मेरी देह को झट से छेद डालो। २३ देखो, श्रीराम के वियोग का दुःख मुझसे अणु-भर भी नहीं सहा जाता। (इसलिए) एक निर्वाण (तीक्ष्ण) बाण चलाकर मुझे श्रीराम के चरण दिखा दो (चरणों तक पहुँचा दो)। २२४

(इससे) भरत के अंतःकरण (के भाव) को जानकर गुह ने दौड़ते हुए जाकर (उनके) चरण पकड़ लिये। दोनों का आलिंगन हो गया। वे देह-भान को भूल गये। २५ दोनों का कंठ रुँध गया; रोंगटे खड़े हो गये। दोनों की आँखों से अश्रु-धाराओं के रेले उस समय बह रहे थे। २६ दोनों ही श्रीराम के भक्त थे। दोनों ही विरक्त योगी थे। दोनों ही श्रीराम को प्रिय लगते थे। दोनों ही वल्कलों से लिपटे थे। २७ दोनों ने ही भस्म लगाया था, दोनों ने ही जटाएँ गूँथी थीं। बिना राम के दर्शन के दोनों ही भोजन नहीं करते थे। २८ (तब) गुह

म्हणे भरता वसिष्ठा। श्रीराम गेला चित्रकूटा। आतां चला जी उठा उठा। वेगीं भेटा राघवातें। २९ ऐकतां गुहकाचें वचन। भरत धरूं धांवे चरण। गुहक घाली लोटांगण। प्रेमेंकरून सद्गद। २३० भरतें स्नानसंध्या सारून। गुहकासी म्हणे प्रीतीकरून। श्रीराम राहिला एक दिन। तें स्थळ मज दाविजे। ३१ गुहक म्हणे न्यग्रोधवृक्ष। त्याखालीं राहिला कमलपत्राक्ष। जयासी हृदयीं ध्यात विरूपाक्ष। सहस्राक्ष शरण जयातें। ३२ या तृणशेजेवरी जाण। पद्मनयनें केलें शयन। याच पंथें येऊन। केलें स्नान जान्हवीचें। ३३ सीतेच्या तगटवस्त्रांचे रज। ते न झगटती तृणशेज। देखतां भरत भक्तराज। साष्टांग नमन करीतसे। ३४ रघुनाथपदमुद्रा तेथ। उमटल्या देखोनि भरत। ते धुळी कपाळा लावीत। सद्गदित होवोनि। ३५ असो नौका आणोनि सहस्र। उतरला सकळ दळभार। प्रयागासी येऊन सत्वर। भरद्वाजदर्शन घेतलें। ३६ लक्षोनि चित्रकूटाचा पंथ। चालती गुहक आणि

ने भरत तथा वसिष्ठ से कहा—'श्रीराम चित्रकूट गये। अब (वहाँ) चलिए। उठिए, उठिए, श्रीराम से मिलने के लिए (वहाँ तक) चलिए।' २९ गुह की बात सुनकर भरत उसके चरण पकड़ने के लिए दौड़े, तो गुह ने प्रेमपूर्वक गद्गद होकर (भरत के चरणों में) साष्टांग नमस्कार किया। २३० स्नान तथा संध्या-विधि समाप्त करके भरत ने प्रेमपूर्वक गुह से कहा—'जहाँ श्रीराम एक दिन (के लिए) ठहरे वह स्थान मुझे दिखाओ।' २३१ (तब) गुह ने कहा—'यह (वह) वटवृक्ष है। जिनका ध्यान शिवजी हृदय से करते हैं, इन्द्र जिनकी शरण में जाते हैं, वे कमलनयन राम उसके नीचे (तले) ठहरे थे। ३२ समझिए घास की इस शय्या पर कमलनयन (श्रीराम) सो गये। इसी मार्ग से आकर (उन्होंने) गंगा में स्नान किया। ३३ सीताजी के जरी के वस्त्रों के धूलि-कण इस तृण-शय्या में नहीं चिपके।' (उस शय्या को) देखते ही भक्तराज भरत ने उसका साष्टांग नमस्कार किया। ३४ वहाँ श्रीराम के पद-चिह्नों को अंकित देखकर भरत ने सद्गदित हो, वह धूली मस्तक में लगा ली। २३५

अस्तु। हज़ार नौकाओं को लाकर (उनके द्वारा) समस्त सेना अर्थात् सब लोग (गंगा के दूसरे तट पर) उतर गये। (फिर) झट से प्रयाग आकर उन्होंने भरद्वाज ऋषि के दर्शन किये। २३६ चित्रकूट के

भरत। तों फळें वेंचावया सुमित्रासुत। पर्वतातळीं उतरला ३७ तों पर्णकुटीमाजी रघुनंदन। करावया बैसला हवन। तेथें उपसामग्री आणोन। जनकात्मजा देतसे। २३८ चकोरमुखीं एकसरा। अत्रिसुत सोडी अमृतधारा। तैशा आहुती घाली वैश्वानरा। तृप्त होय रामहस्तें। २३९ तेव्हां आश्रमाबाहेर जनकबाळी। जे सुकुमार चंपककळी। तों सुदर्शनगंधर्वें जातां निराळीं। ते वेल्हाळी देखिली। २४० जानकी देखोनि सुंदर। चित्तीं जाहला कामातुर। भय लज्जा समग्र। सोडोनियां दिधली। २४१ मंगळरूप ते मंगळभगिनी। गंधर्व धांवला ते क्षणीं। अमंगळ कागरूप धरूनी। सीतेलागीं झडपीतसे। ४२ जैसा पतंग दीप देखोन। उडी घाली विसरून मरण। कीं खदिरांगारासी वृश्चिक येऊन। पुच्छेंकरून ताडी जेवीं। ४३ कीं अंतर्गृहींचें दिव्यान्न। स्पर्शों धांवे जैसें श्वान। यज्ञशाळे-

मार्ग को लक्ष्य करके गुह और भरत चलते रहे। तब लक्ष्मण फल बीनने के लिए पर्वत की तलहटी में उतर गये। ३७ तब श्रीराम पर्णकुटी में हवन करने के लिए बैठे हुए थे। सीता सामग्री वहाँ लाकर देती थी। ३८ जिस प्रकार चंद्र चकोर के मुख में अमृतधाराओं को एकदम छोड़ (डाल) देता है, उसी प्रकार श्रीराम अग्नि (के मुख) में आहुतियाँ चढ़ाते थे। (इससे) श्रीराम के हाथों से (आहुतियाँ प्राप्त करके) अग्नि-देव तृप्त हो जाते थे। २३९

तब सीता, जो (मानो) सुकुमार चम्पक कली (ही) थी, आश्रम अर्थात् पर्ण-कुटी के बाहर (आयी हुई) थी। तो आकाश में से जाते हुए सुदर्शन नामक एक गन्धर्व ने उस सुन्दरी को देखा। २४० उस सुन्दर सीता को देखकर वह मन में कामातुर हो गया। (फलस्वरूप) उसने समस्त भय तथा लज्जा त्याग दी। २४१ वह (मंगल ग्रह की भगिनी) सीता तो मंगल-स्वरूपा थी। (परन्तु) उस समय वह गन्धर्व अमंगल कौए का रूप धारण करके दौड़ आया और सीता पर उस प्रकार झपट पड़ा, जिस प्रकार दीये को देखते हुए पतिंगा मौत को भूलकर कूद पड़ता है; अथवा जिस प्रकार बिच्छू खदिरांगार (खैर की लकड़ी के अंगार या जलती लकड़ी) के पास आकर पूँछ से आघात करता है; अथवा घर के अन्तर्भाग में (रखे हुए) दिव्य अन्न को स्पर्श करने के लिए कुत्ता दौड़ता है; अथवा जिस प्रकार कोई गंदा (अपवित्र) अंत्यज यज्ञशाला में पहुँच गया (हो)। २४२-२४४ अस्तु। वह पापी कौआ सीता के

माजी मळिण। अंत्यज जैसा पातला। ४४ असो जानकीचें स्तनयुग। धरूं पाहे पतित काग। जगन्माता धांवली सवेग। अंग घाली धरणीतें। ४५ मग म्हणे धांव धांव रघुराया। कागें विटंबिली माझी काया। आक्रंदे परम जनकतनया। रघुवर्या जाणवलें। ४६ आहुती टाकी रघुनाथ। जवळी नाहीं सुमित्रा-सुत। मग दर्भ मंत्रोनि त्वरित। रामचंद्रें प्रेरिला। ४७ कल्पांतविजूसमाने। कागें दर्भ देखिला दुरून। पळों लागला घेतलें रान। पाठिसी बाण लागला असे। ४८ गंधर्व भ्रमे सकळ सृष्टीं। परी कोणी न घाली तया पाठीं। हिंडतां जाहला हिपुटी। होय कष्टी दुरात्मा। ४९ इंद्रादिक देवगण। समस्तांसी गेला शरण। ते म्हणती न दाखवीं वदन। दुष्टा होईं माघारा। २५० मग भेटला नारद मुनी। काग लागला तयाचे चरणीं। म्हणे पहा हो या त्रिभुवनीं। ठाव नेदी कोणी मज। ५१ माझी पाठ न सोडी बाण। मग नारद बोले वचन। मूढा रामासी जाईं शरण। तोचि मरण चुकवील। ५२ मग

स्तन-युगुल को पकड़ना चाहता था, तो ही वह जगन्माता वेगपूर्वक भाग गयी और उसने धरती पर शरीर को लुढ़का दिया। ४५ फिर वह बोली—'हे रघुराज, दौड़िए। कौए ने मेरी काया को अपवित्र कर डाला। श्रीराम को भान हुआ कि सीता बहुत चिल्ला रही है। ४६ (उस समय) श्रीराम आहुति चढ़ा रहे थे। पास में लक्ष्मण तो थे नहीं। फिर उन्होंने (एक) दर्भ (कुश) को झट से अभिमंत्रित करके (चलने को) प्रेरित किया—अर्थात् चला दिया। ४७ (उस) कौए ने कल्पान्त की बिजली-सा आता हुआ दर्भ दूर से देखा, तो वह भागने लगा। उसने वन का आश्रय लिया; क्योंकि (दर्भ-रूपी) बाण पीछा कर रहा था। ४८ (उस) गन्धर्व ने समस्त सृष्टि में भ्रमण किया, परन्तु किसी ने भी उसे (बचाने के हेतु) आश्रय नहीं दिया। घूमते-घूमते वह दुःखी हो गया। ४९ वह इन्द्र इत्यादि देव-समूह—सब की शरण में गया, (परन्तु) उन्होंने कहा—'(हमें) मुँह न दिखाओ। रे दुष्ट, वापस जाओ।' २५० अनन्तर (उससे) नारद मुनि मिल गये, तो (वह) कौआ उनके चरणों में लग गया (और) बोला—'देखिए, इस त्रिभुवन में मुझे कोई स्थान नहीं दे रहा है। २५१ (यह) बाण मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा है।' तब नारद ने (यह) बात कही—'अरे मूर्ख, (तू) राम की शरण में जा, वे ही (तेरी) मौत को टाल देंगे।' ५२ (तदन्तर वह) कौआ (श्रीराम

म्हणे जगद्वंद्या रामचंद्रा। मी तुज शरण कृपासागरा। दीन-रक्षका अतिउदारा। मज पामरा न मारावें। ५३ मजवरी टाकिला बाण। हें लोकांत न दिसे थोरपण। कमळावरी वज्र घेऊन। घातल्या काय पुरुषार्थ। ५४ सूक्ष्म आळिका धरी सुपर्ण। वडवानळ जाळी तृण। भोगींद्र उचली सुमन। हें काय अपूर्व बोलावें। ५५ पर्जन्यें उठलें तृण। अगस्ति प्याला किंचित जीवन। मेघें निजप्रतापेंकरून। घटीं जीवन भरियेलें। ५६ सूर्यें दीपतेज झांकिलें। गोवत्स विदारिला शार्दूलें। रघुपति त्वां मज तैसें मारिलें। तरी थोरपण प्रकटेना। ५७ मातेचिया स्तनावरी। बाळक हस्त ठेवूनि क्रीडा करी। तरी काय माता जीवें मारी। बाळकातें सांग पां। ५८ महाराज रविकुळभूषणा। ताटिकांतका अहल्योद्धरणा। द्विपंचमुख-दर्पहरणा। शरणागता न मारावें। ५९ मग बोले रघुपती। माझा बाण असत्य कल्पांतीं। नव्हेच जाण निश्चितीं। महा-

---

के पास आकर) बोला—‘हे जगद्-वंद्य श्रीराम, हे कृपा-सागर! मैं आपकी शरण में आ गया। हे अति उदार दीन-रक्षक! मुझ पामर को न मारिए। ५३ (यदि आपने) मुझपर बाण चलाया—तो जगत् में इसमें (आपके लिए) बड़प्पन नहीं दिखायी देगा। वज्र लेकर (उसे) कमल पर डालने में क्या पुरुषार्थ है? ५४ (यदि) सुपर्ण गरुड़ छोटी इल्ली पकड़ ले, अथवा वड़वाग्नि घास को जला दे, अथवा भोगीन्द्र शेष-नाग फूल को उठा ले--तो क्या इसे अद्भुत (वीरता की बात) कहें? २५५ वर्षा से घास उठ गयी, अगस्त्य ने ज़रा-सा पानी पिया, मेघ ने अपनी वीरता से घट में पानी भर दिया, सूर्य ने दीये के तेज को छिपा लिया, गाय के बछड़े को सिंह ने विदीर्ण अर्थात् छिन्न-भिन्न कर डाला—(अर्थात् महान् प्रतापी ने छोटे पर वीरता बघारी,) यह जैसे भूषणावह नहीं है, हे रघुपति, वैसे ही यदि आपने मुझे मार डाला, तो उसमें आपका बड़प्पन नहीं प्रकट होगा। २५६-२५७ बालक माता के स्तन पर हाथ रखकर खेलता है, तो बताइए क्या माता उसे जान से मार डालती है? ५८ हे महाराज रवि-कुल-भूषण श्रीराम! ताटकान्तक! हे अहल्या के उद्धारक! हे दशमुख रावण के घमण्ड को छुड़ानेवाले श्रीराम! (मुझ) शरणागत को न मारिए।’ ५९ तब (इसपर) श्रीराम बोले—‘अरे महापापी अपवित्र (कौए)! (यह) निश्चय समझ कि मेरा बाण कल्पान्त में भी असत्य नहीं होता।’ २६० फिर श्रीराम ने

मलिना अपवित्रा । २६० मग बाणासी आज्ञापी रघुनंदन । याचा रक्षोनियां प्राण । वेगें छेदावा सव्य नयन । शिक्षा यास ज़ाण पैं । ६१ न लागतां पातया पातें । दर्भें छेदिलें नयनातें । काग म्हणे रघूत्तमातें । देईं वरातें मज कांहीं । ६२ मग दोहींकडे एक बुबुळ । खेळे ऐसें केलें चंचळ । काकदृष्टी अवघ्यांत चपळ । जन सकळ देखती । ६३ सीतेसी घ्यावया चुंबन । तूं धांवलासी दुरात्मा पूर्ण । तरी तूं करिसी विष्ठाभक्षण । कनिष्ठ जाण पक्ष्यांत तूं । ६४ तुज वर एक देतों जाण । प्रेतपिंड तूं भक्षिल्याविण । सर्वथा नोहे उद्धारण । हें वरदान तुज दिधलें । ६५ मग सुदर्शन गंधर्व तेव्हां । साष्टांग नमोनि श्रीराघवा । आपले स्वस्थळाप्रति तेधवां । जाता जाह्ला आनंदें । ६६ भरत प्राणसखा आतां । येऊनि भेटेल रघुनाथा । श्रोतीं परिसावी तेचि कथा । भवव्यथा नासे जेणें । ६७ रामविजय ग्रंथ प्रचंड । रसभरित अयोध्याकांड । तें श्रवण करितां वितंड । विघ्नें उदंड वितळती । ६८ अयोध्याधीशा रामचंद्रा ।

बाण को आज्ञा दी—' इसके प्राणों को बचाते हुए (इसकी) दाहिनी आँख वेगपूर्वक छेद डालो ! समझो यही इसके लिए दण्ड है । ' २६१ (तब उस) दर्भ (-रूपी बाण) ने पलक को पत्ती नहीं लगते (उस कौए की) आँख को छेद डाला । (तदनन्तर) कौए ने श्रीराम से कहा—' मुझे कोई वर दीजिए । ' २६२ तब (एक आँख की) पुतली को (श्रीराम ने) यों चंचल बना दिया कि वह दोनों ओर खेलती अर्थात् आती-जाती रहे । (फलतः) सब लोग देखते (ही) हैं कि कौए की दृष्टि सब (प्राणियों की दृष्टियों) में चपल होती है । ६३ (फिर राम ने कहा—) ' सीता का चुम्बन करने के लिए पूरा-पूरा दुरात्मा (पापी) तू दौड़ आया । इसलिए तू विष्ठा खाएगा । समझ कि पक्षियों में तू कनिष्ठ (सबसे छोटे दर्जे वाला) हो जाएगा । ६४ समझ कि मैं तुझे एक वर प्रदान करता हूँ—विना तेरे द्वारा प्रेत सम्बन्धी पिण्डा खाये, (उस मृतक के) जीव का कदापि उद्धार नहीं होगा । मैंने तुझे यह वरदान दिया । ' ६५ तब अनन्तर सुदर्शन गन्धर्व श्रीराम का साष्टांग नमन करके अपने स्थान की ओर आनन्द-पूर्वक गया । २६६

अब प्राणसखा भरत (चित्रकूट पर) आकर श्रीराम से मिलेंगे । श्रोता वही कथा सुन लें, जिससे संसार की व्यथा नष्ट हो जाती है । २६७

ब्रह्मानंदा ज्ञानसमुद्रा। श्रीधरवरदा प्रतापरुद्रा। मज नाममुद्रा अखंड देईं। २६९ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। एकादशाध्याय गोड हा। २७० ॥ श्रीरामचंद्रार्पणमस्तु ॥

श्रीराम-विजय प्रचण्ड ग्रन्थ है। (उसका यह) अयोध्या-काण्ड रस-पूर्ण है। उसका श्रवण करने पर नास्तिकता एवं बड़े-बड़े संकट नष्ट हो जाते हैं। ६८ हे अयोध्याधीश श्रीरामचन्द्र! हे ब्रह्मानन्द! हे ज्ञान-सागर! हे श्रीधर-वरद! हे प्रताप-रुद्र! मुझे अपनी अखण्ड नाम-मुद्रा प्रदान कीजिए। २६९

। स्वस्ति। श्रीराम-विजय ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। चतुर भक्त उसके इस मधुर ग्यारहवें अध्याय का नित्य श्रवण करें। २७० ॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—१२

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ संतमंडळी बैसली थोर। बृहस्पतीऐसे चतुर। आतां साहित्यसुमनांचे हार। गुंफोन गळां घालूं त्यांचे। १ अनर्घ्य शब्दरत्नें प्रकाशवंत। त्यांचे ग्राहक चतुर पंडित। विशेषें रघुनाथभक्त विरक्त। ते प्रेमभरें डुल्लती। २ मतिमंद बैसतां श्रोता श्रवणीं। तरी ग्रंथरस जाय वितळोनी। जैसें भस्मामाजी नेउनी। व्यर्थ अवदान घालिजे। ३ रत्नपरीक्षा करिती चतुर। तेथें गर्भांध विटे

श्रीगणेशायनमः। महान् सन्त-मण्डली विराजमान हो गयी (है)। वे सन्त, बृहस्पति जैसे चतुर अर्थात् बुद्धिमान हैं। अब साहित्य-सुमनों के हार गूँथकर उनके गले में पहना दें। १ शब्दरूपी अमूल्य रत्न तेजस्वी हैं। उनके ग्राहक हैं चतुर-बुद्धिमान् पंडित—जो विशेषतः राम-भक्त तथा विरक्त हैं। वे प्रेम-भावातिरेक के कारण डोल (झूम) रहे हैं। २ मन्दमति श्रोता के श्रवण के लिए बैठने पर ग्रन्थ-रस (ग्रन्थ के श्रवण का आनन्द) नष्ट हो जाता है। अतः उसे यह ग्रन्थ सुनाना उस प्रकार व्यर्थ होगा, जिस प्रकार अवदान (होम द्रव्य या आहुति) ले जाकर व्यर्थ ही भस्म में डाल देना। ३ चतुर जन (ही) रत्नों की

साचार। गायन ऐकती सज्ञान नर। परी बधिर तेथें विटती पैं। ४ कमळसुवास सेविती भ्रमर। परी तो स्वाद न जाणे दर्दुर। हंस घेती मुक्तांचा चार। परी तो बकासी प्राप्त नाहीं। ५ दुग्ध दोहोनि नेती इतर। गोचिड तेथें अहोरात्र। वसे परी प्राप्त त्यास रुधिर। नेणे क्षीर मतिमंद तो। ६ कीं वसंतकाळीं कोकिळा। पंचमस्वरें आळविती रसाळा। काकजाती तैशा सकळा। परी तयां तो स्वर नव्हेचि। ७ बलाहक गर्जना करिती गगनीं। मयूर नाचती पिच्छें पसरूनी। परी ते कळा वृषभांनीं। नेणिजे जैसी सर्वथा। ८ चकोर चंद्रामृत सेविती। परी ते कळा कुक्कुट नेणती। म्हणोनि श्रोता मंदमती। सहसाही न भेटावा। ९ श्रोता भेटलिया चतुर। ग्रंथरस वाढे अपार। जेवीं वीर संघटतां थोर। रणचक्रीं रंग भरे। १० असो

परख कर सकते हैं--वहाँ (परख करने में) जन्मान्ध व्यक्ति सचमुच फीका पड़ जाता है। सज्ञान (अर्थात् गान-विद्या के जानकार ही) पुरुष गायन (रसास्वाद करते हुए) सुनते हैं; परन्तु वहाँ (गायन-श्रवण में) बहरे लोग ऊब जाते हैं। ४ भ्रमर कमल की सुगन्ध का सेवन करते हैं; परन्तु मेंढक उस (सुगन्ध के) स्वाद को नहीं जानते। हंस मोतियों का चारा स्वीकार करते हैं; परन्तु वह बगुले को प्राप्त नहीं होता। ५ (गाय के) दूध को दुहकर अन्य लोग तो ले जाते हैं; चमजुई तो वहाँ दिन-रात रहती है--परन्तु उसे तो रक्त ही प्राप्त होता है। वह मन्दमति (मूर्ख) दूध को नहीं जानती ६ अथवा वसन्त-ऋतु में कोकील पंचम स्वर में सुरस (मधुर) गाते हैं। समस्त कौए तो वैसी ही जाति के हैं; परंतु उन्हें वह मधुर स्वर प्राप्त नहीं है।७ मेघ आकाश में गर्जन करता है, तो मोर पूँछ फैलाकर नाचते हैं; परन्तु जिस प्रकार बैल वह नृत्यकला बिलकुल नहीं जानते, उस प्रकार मन्दमति श्रोता रस-भरी रामकथा के श्रवण से आनन्द नहीं अनुभव कर सकता--आनन्दातिरेक से नहीं झूम सकता। ८ चकोर चन्द्र से (निःसृत) अमृत का सेवन करते हैं; परन्तु मुर्गे वह कला नहीं जानते। (मन्दमति श्रोता की रामकथा-श्रवण के सन्दर्भ में ऐसी ही स्थिति है।) अतः मन्दमति श्रोता कदापि प्राप्त न हो जाए। ९ चतुर (मर्मज्ञ) श्रोता के मिलने पर ग्रन्थ-रस की (उस प्रकार) अपार वृद्धि हो जाती है, जिस प्रकार महान् वीर पुरुष (युद्ध में एक-दूसरे के प्रतिद्वंद्वी के रूप में) मिलने पर रण-चक्र में अधिक रंग आता है। १०

एकादशाध्यायाचे अंतीं। चित्रकूटीं राहिला रघुपती। सुदर्शन गंधर्व निश्चितीं। काकरूपी उद्धरिला। ११ उपरी सिंहावलोकनेंकरूनि तत्त्वतां। श्रोतीं परिसावी मागील कथा। दळभारेंसीं भरत तत्त्वतां। चित्रकूटासमीप आला। १२ तंव तो भूधरअवतार। चित्रकूटाखालीं सौमित्र। फळें वेंचितां तो दळभार। गजरें येतां देखिला। १३ ओळखिला आपला ध्वजसंकेत। आले कळलें शत्रुघ्न भरत। म्हणे कैकयीनें पाठविले यथार्थ। वनीं रघुनाथ वधावया। १४ हे युद्धासी आले येथ। जरी रघुनाथास करूं श्रुत। तरी हेही गोष्ट अनुचित। युद्ध अद्भुत करीन मी। १५ माझा श्रीराम एकला वनीं। हे आले दळभार सिद्ध करूनी। तरी जैसा वणवा लागे वनीं। तैसें जाळीन सैन्य हें। १६ रवीच्या किरणांवरी देखा। कैशा चढतील पिपीलिका। कल्पांतविजूस मशक मुखा-। माजी केवीं सांठवील। १७ चढून प्रळयाग्नीचे शिरीं। पन्नग कैसा नृत्य करी। ऊर्णनाभीचे तंतुवाभीतरी।

अस्तु। ग्यारहवें अध्याय के अन्त में (यह कहा गया)—श्रीराम चित्रकूट में ठहर गये; (और उन्होंने) कौए के रूप में (आये हुए) सुदर्शन (नामक) गन्धर्व का निश्चय ही उद्धार किया। ११ (इसके) सिवा सचमुच सिंहावलोकन करके श्रोता पूर्वकथा सुन लें। सेना-सहित वस्तुतः भरत चित्रकूट के पास आ गये। १२ तब (शेष के अवतार सौमित्र) लक्ष्मण चित्रकूट से नीचे (तलहटी में) आये हुए थे। फलों को चुनते हुए उन्होंने सेना को कोलाहल के साथ आते देखा। १३ उन्होंने अपने ध्वज-चिह्न को पहचान लिया, तो उन्हें भरत और शत्रुघ्न आये हुए विदित हुए। उन्होंने कहा (माना) कि कैकेयी ने सचमुच श्रीराम का वध करने के लिए (इन्हें) भेज दिया (है)। १४ ये यहाँ युद्ध के लिए आ गये—यदि श्रीराम को (यह बात) सुनाकर विदित करा दूँ, तो यह बात भी अनुचित है। (अतः) मैं अद्भुत युद्ध करूँगा। १५ मेरे श्रीराम वन में अकेले हैं (और इधर) ये सेना को सज्ज किये आ गये। इसलिए जैसे वन में दावाग्नि लगती है (और उसे जलाकर भस्म कर डालती है), वैसे ही मैं इस सेना को (अपनी क्रोधाग्नि में) जला डालूँगा। १६ देखिए, सूर्य की किरणों पर चीटियाँ कैसे चढ़ेंगी ? कल्पान्त की बिजली को मच्छड़ (अपने) मुख में कैसे समा पाएगा ? १७ प्रलयाग्नि के सिर (अर्थात् ज्वालाओं) पर चढ़कर साँप कैसे नृत्य कर सकेगा ? मकड़ी की नाभि

वारण कैसा बांधवेल। १८ तृणपाशेंकरून। कैसा बांधवे पंचानन। द्विजेंद्रासी अळिका धरून। कैसी नेईल आकाशा।१९ दीपाचें तेज देखोन। कैसा आहाळेल चंडकिरण। तैसा मी वीर लक्ष्मण। मज जिंकूं न शकती हे। २० भार देखोनि समीप। क्षण न लागतां चढविलें चाप। बाण सोडिले अमूप। संख्येरहित ते काळीं। २१ वाटे गडगडितां महाव्याघ्र। थोकती जेवीं अजांचे भार। तैसें सोळा पद्में दळभार। भयभीत जाहलें। २२ त्या बाणांचें करावया निवारण। वीर सरसावला शत्रुघ्न। दोघांचें समसमान संधान। बाणें बाण तोडित। २३ एक चंद्र एक मित्र। कीं रमावर आणि उमावर। किंवा ते मेरुमंदार। युद्धालागीं मिसळले। २४ एक समुद्र एक निराळ। एक दावाग्नि एक वडवानळ। एक गदा एक चक्र निर्मळ। विष्णुआयुधें भिडत कीं। २५ एक वासुकी एक भोगींद्र। एक वसिष्ठ एक विश्वामित्र। तैसे शत्रुघ्न आणि सौमित्र। बाण

में से निकलनेवाले धागे (के जाल) में हाथी को कैसे बाँधा जा पाएगा ? १८ घास के पाश में सिंह कैसे बाँधा जा सकेगा ? बड़े हाथी को पकड़कर इल्ली आकाश में कैसे ले जाएगी ? १९ दीये के तेज को देखकर सूर्य कैसे जल जाएगा ? वैसे ही मैं वीर लक्ष्मण हूँ— ये मुझे नहीं जीत पाएँगे। २० सेना को निकट देखकर क्षण भी न लगाते, उन्होंने धनुष चढ़ाया और उस समय अपार असंख्य बाण चला दिये। २१ रास्ते में बड़े बाघ के दहाड़ते ही जिस प्रकार बकरों के समूह (भयभीत होकर) रुक जाते हैं, वैसे ही (भरत की) सोलह पद्म सेना के समूह भयभीत हो गये। २२ (लक्ष्मण के) उन बाणों का निवारण करने के लिए वीर शत्रुघ्न आगे बढ़े। (लक्ष्मण और शत्रुघ्न) दोनों का (शर-) संधान सम-समान था। वे बाण से (एक-दूसरे के) बाण काटते थे। २३ मानो (उनमें से) एक चन्द्र है, तो एक (दूसरा) सूर्य है; अथवा (वे दोनों) विष्णु और शिवजी हैं; अथवा वे मेरु और मन्दार हैं, जो युद्ध के लिए भिड़ गये (हों)। २४ (उन दोनों में से मानो) एक समुद्र है, तो एक (दूसरा) आकाश है; एक दावाग्नि है तो एक (दूसरा) वड़वाग्नि है। एक गदा है तो एक (दूसरा) निर्मल चक्र है— अर्थात् उनके रूप में भगवान् विष्णु के (दो) आयुध भिड़ गये हों। २५ एक वासुकि नाग है तो एक (दूसरा) भोगीन्द्र अर्थात् शेषनाग है; एक वसिष्ठ हैं तो एक (दूसरा)

सोडित परस्परें। २६ एकावरी एक सोडिती बाण। ते वरचेवरी उडविती संपूर्ण। बाणमंडप जाहला सघन। चंडकिरण न दिसेचि। २७ रामनामबीजांकित। बाण सुटती सतेज मंडित। रघुनाथनाम गर्जत। सुसाटे निघत येतांचि। २८ वाटे ओढवला प्रळयकाळ। वनचरां सर्वां सुटला पळ। ऋषीश्वर पळती सकळ। कडे वेंधिती पर्वताचे। २९ सांडोनि गुंफा तपाचरण। पळती आपुला जीव घेऊन। एक धांवतां धापा दाटून। मूर्च्छा येऊनि पडियेले। ३० एक म्हणती राक्षसदळ। आलें रामावरी तुंबळ। येणें मखरक्षणीं राक्षस सबळ। वीस कोटी निवटिले। ३१ तें वैर स्मरोनि अंतरीं। सत्य हे आले राघवावरी। आतां सौमित्राची कैंची उरी। अनर्थ निर्धारीं ओढवला। ३२ असो ऋषीश्वर समस्त। आले जेथें रघुनाथ। गोष्टी सांगतां बोबडी वळत। संकेत दाविती एक करें। ३३ एक रुदन करूनि फोडित हांका।

विश्वामित्र है। उसी प्रकार (शोभा देनेवाले) शत्रुघ्न और लक्ष्मण परस्पर (एक-दूसरे पर) बाण चलाते थे। २६ वे एक के बाद एक बाण छोड़ रहे थे, वे उन्हें ऊपर ही ऊपर पूर्णतः उड़ा रहे थे। इनसे एक (ऐसा) सघन बाण-मण्डप तैयार हो गया कि (उसमें से) सूर्य नहीं दिखायी दे रहा था। २७ 'श्रीराम-नाम'—मंत्र के अक्षर से अंकित सतेज तथा शोभायुक्त बाण छूटते थे। (मानो) वे रघुनाथ के नाम का गर्जन करते थे और आते ही साँय-साँय शब्द निकलता था। २८ जान पड़ता था कि प्रलय-काल आ गया। वन में रहनेवाले सब जीवों की भागदौड़ मची। सब बड़े-बड़े ऋषि भाग रहे थे। उन्होंने पर्वतों के कगारों का आश्रय लिया। २९ वे गुफा तथा तपाचरण छोड़कर जान लेकर भागते थे। कोई-एक दौड़ते-दौड़ते दम घुटने से मूर्च्छित हो गिर पड़े। ३० कोई-एक कहते थे कि राक्षसों का भीषण दल श्रीराम पर (आक्रमण करने के लिए) आ गया। इन्होंने तो यज्ञ के रक्षण में बीस करोड़ बलवान राक्षसों को मार डाला (था)। ३१ मन में उसी शत्रुत्व का स्मरण करके सचमुच ये श्रीराम पर (आक्रमण के लिए) आ गये। अब लक्ष्मण का कैसा बचाव! निश्चय ही अनर्थ (भारी संकट) आ टपका।' ३२ अस्तु। समस्त बड़े-बड़े ऋषि (वहाँ) आ गये, जहाँ श्रीराम थे। समाचार कहते-कहते उनकी घिग्घी बँध जाती थी। (इसलिए) कोई-एक हाथ से इशारे कर देते थे। ३३ कोई-एक रोते

वेगें पळवीं जनककन्यका। आतां गूढविवरीं लपवीं कां। रघुनायका ऊठ वेगीं। ३४ न भरे जों अर्ध निमेष। तों चढविलें श्रीरामें धनुष्य। जैसा उगवतां चंडांश। गुंफेबाहेर तैसा आला। ३५ ऋषींस म्हणे अयोध्यानाथ। तुम्हीं मनीं न व्हावें दुश्चित। काळही विघ्न करूं आलिया येथ। खंडविखंड करीन बाणीं। ३६ पडत्या आकाशा देईन धीर। रसातळा उर्वी जातां करीन स्थिर। तुम्ही समस्त बैसा धरूनि धीर। तपश्चर्या करीत पैं। ३७ अथवा करावें अध्ययन। न्याय मीमांसा सांख्यज्ञान। पातंजल अथवा व्याकरण। यांची चर्चा करा जी। ३८ असो पाठीसीं घालून ब्राह्मण। पुढें चालिला रघुनंदन। तों ध्वजचिन्हें ओळखिलीं पूर्ण। शत्रुघ्न बाण टाकीतसे। ३९ आपले भेटीकारणें उत्कंठित। सद्गद जाहला भरत। लक्ष्मणापाशीं सीतानाथ। क्षण न लागतां पातला। ४० मग म्हणे सौमित्रासी। बा रे भरत आला भेटीसी। तूं किमर्थ यासीं युद्ध करिसी। पाहें मानसीं

हुए पुकार-पुकार कर कहते-- 'सीता को झट से उठाकर ले जाइए। अब (उसे) गुप्त विवर में क्यों न छिपा दें? हे रघुनायक! झट से उठ जाइए। ३४ ज्यों आधा पल भी नहीं हो गया, त्यों ही श्रीराम ने धनुष चढ़ा लिया और वे वैसे ही गुफा के बाहर आ गये, जैसे उगते ही सूर्य (आकाश में) प्रकट हो जाता है। ३५ श्रीराम ने ऋषियों से कहा-- 'आप मन में चिन्तातुर न हो जाएँ। यदि काल भी यहाँ बाधा उत्पन्न करने के लिए आए, तो भी मैं बाण से (उसे) खण्ड-खन्ड कर डालूँगा ३६ मैं ढहते आकाश को ढाढ़स बँधाऊँगा; पृथ्वी के रसातल जाते रहने पर उसे स्थिर कर दूँगा। धैर्य धारण कर आप समस्त तपश्चर्या करते हुए बैठिए। ३७ अथवा आप अध्ययन कीजिए। न्याय, मीमांसा, सांख्य-ज्ञान, पातंजल योग--अथवा व्याकरण--इन (विषयों) पर चर्चा कीजिए। ३८ अस्तु। (रक्षा करने के हेतु) ब्राह्मणों को शरण में लेकर श्रीराम आगे चल दिये, तो उन्होंने ध्वज-चिह्नों को पूर्णतः पहचान लिया (और समझ लिया कि) शत्रुघ्न बाण चला रहे हैं। ३९ (तथा) उनकी भेंट के लिए उत्कंठित होकर भरत गद्गद हो गये (हैं)। (इसलिए) श्रीराम लक्ष्मण के पास क्षण (तक) न लगते आ पहुँचे। ४० फिर (उन्होंने) लक्ष्मण से कहा--' अरे! भरत (हमसे) मिलने के लिए आ गया (है), तो तुम उससे क्यों युद्ध कर रहे हो? मन में सोचकर तो

विचारूनि । ४१ ऐसें बोलतां राजीवनेत्र । परी वीरश्रियेनें वेष्टिला सौमित्र । सोडितां न राहे शर । मग रघुवीर काय करी । ४२ हातींचें धनुष्य हिरूनी । श्रीरामें घेतलें तये क्षणीं । सौमित्र लागला श्रीरामचरणीं । हास्यवदन करूनियां । ४३ श्रीरामें वारितां फणिपाळ । अवघें वितळलें बाणजाळ । जैसें निजज्ञान ठसतां केवळ । मायापडळ जेवीं विरे । ४४ भरतासहित अयोध्येचे जन । सर्वीं विलोकिला रघुनंदन । जैसा निशा संपतां चंडकिरण । उदयाचळीं विराजे । ४५ तों भरतासी न धरवे धीर । सप्रेम धांव घेतली सत्वर । वाटेसी साष्टांग नमस्कार । वारंवार घालीतसे । ४६ कीं बहुत दिवस माता गेली । ते बाळकें समीप देखिली । कीं गाय वनींहूनि परतली । वत्सें आटोपिली धांवूनियां । ४७ कीं क्षीराब्धि देखोनि त्वरित । धांव घेत क्षुधाक्रांत । कीं मृगजळ देखोनि त्वरित । मृग

देखो ।' ४१ कमलनयन (श्रीराम) के ऐसा बोलने पर भी लक्ष्मण तो वीरश्री से घिरे रहे, (इसलिए) वे बाण चलाते नहीं रुकते थे । फिर श्रीराम ने क्या किया ? ४२ श्रीराम ने उस क्षण (लक्ष्मण के) हाथ का धनुष छीन लिया । तो लक्ष्मण हास्यवदन (अर्थात् मुस्कुराते) हुए श्रीराम के चरणों में लग गये । ४३ श्रीराम द्वारा (शेष के अवतार) लक्ष्मण को रोकते ही बाणों का समस्त जाल उस प्रकार विनष्ट हो गया, जिस प्रकार (साधक के हृदय में) विशुद्ध आत्म-ज्ञान के दृढ़ होते ही माया का पर्दा नष्ट हो जाता है । ४४ (तत्पश्चात्) भरत के साथ अयोध्या के सब लोगों ने (उस सूर्य के समान) श्रीराम को देखा, जैसे रात के समाप्त हो जाने पर वह (सूर्य) उदयाचल पर विराजमान होता है । ४५ तब भरत से धीरज धारण नहीं किया जा रहा था । (इसलिए) उन्होंने प्रेमपूर्वक झट से दौड़ लगायी । रास्ते में वे बार बार साष्टांग नमस्कार करते (जाते) थे । ४६ माता बहुत दिन से दूर गयी हुई हो और उसे (अब) शिशु ने समीप देख लिया हो, अथवा गाय वन से लौट आ गयी (हो) और बछड़े ने दौड़ते हुए पकड़ लिया (हो); अथवा क्षीर-सागर को देखकर भूख से पीड़ित मनुष्य ने शीघ्र (उसकी ओर) दौड़ लगायी (हो); अथवा मृगजल को देखकर गर्मियों के दिनों में हिरन (उसकी ओर) झट से दौड़ते जाते (हों); अथवा किसी दिव्य वृक्ष को फल-युक्त देखकर पक्षी (उसकी ओर) लपकते हों; उसी प्रकार भरत ने (तेज़ी से

धांवती उष्णकाळीं । ४८ कीं सफळ देखोनि दिव्य द्रुम । झेंपावे जैसा विहंगम । भरतें धरूनि तैसा राम । चरणसरोजीं स्पर्शिला । ४९ जैसें लोभियाचें जीवित्व धन । तैसे भरतें धरिले दृढ चरण । नयनोदकेंकरून । केलें क्षालन रामपायां । ५० मग उचलोनियां दोहीं करीं । बंधूसी आदरें हृदयीं धरी । जैसा जयंतपुत्र सहस्रनेत्रीं । प्रीतीकरूनि आलिंगिला । ५१ कीं क्षीरसागरीं लहरिया उठती । त्या एकांत एक मिसळती । कीं वेदांतशास्त्रीं श्रुती । ऐक्या येती परस्परें । ५२ तैसा आलिंगिला भरत । तों शत्रुघ्न लोटांगण घालित । परम प्रीतीं रघुनाथ । आलिंगन देत तयातें । ५३ सकळ अयोध्येचे ब्राह्मण । रामासी भेटती प्रीतीकरून । सर्व दळभार प्रजाजन । करिती नमन रामासी । ५४ लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न । परस्परें देती क्षेमालिंगन । मग सुमंत प्रधानें येऊन । श्रीरामचरण वंदिले । ५५ मग सुमंत म्हणे रघुराया । पैल वसिष्ठ आणि

दौड़ते हुए) श्रीराम को पकड़कर उनके चरण-कमलों को स्पर्श किया (चरणों को छू लिया) । ४७-४९ जिस प्रकार धन (ही) लोभी मनुष्य का जीवन (-सर्वस्व) होता है, उसी प्रकार भरत ने (श्रीराम के) चरणों को (सर्वस्व समझकर) दृढ़ता-पूर्वक पकड़ लिया । उन्होंने श्रीराम के चरणों को अश्रु-जल से धो डाला । ५० अनन्तर श्रीराम ने दोनों हाथों से बन्धु (भरत)) को उठाकर वैसे ही आदर-पूर्वक हृदय से लगा लिया, जैसे इन्द्र ने अपने पुत्र जयन्त को प्रेमपूर्वक गले लगाया हो । ५१ अथवा क्षीर-सागर में लहरें उभरती हैं और एक-दूसरी में मिल जाती हैं, अथवा वेदान्त शास्त्र की श्रुतियाँ परस्पर (एक-दूसरी में) एकात्म को प्राप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार श्रीराम ने भरत का आलिंगन किया । त्यों शत्रुघ्न ने दण्डवत् प्रणाम किया (अर्थात् वे भी दण्डवत् नमस्कार करते हुए वहाँ आ पहुँचे) तो श्रीराम ने परम प्रेमपूर्वक उन्हें गले लगा लिया । ५२-५३ अयोध्या के समस्त ब्राह्मण श्रीराम से प्रेमपूर्वक मिले । समस्त सेना और प्रजाजनों ने श्रीराम का नमन किया । ५४ लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ने एक-दूसरे को (परस्पर) गले लगाया । फिर सचिव सुमन्त ने आकर श्रीराम के चरणों का वन्दन किया । ५५ अनन्तर सुमन्त ने श्रीराम से कहा--' उस ओर वसिष्ठ और दोनों माताएँ हैं, तो दशरथ-कुल-श्रेष्ठ उन श्रीराम से उस समय धीरज धारण नहीं किया जा रहा था । ५६

दोघी माया। तंव त्या दशरथकुळवर्या। धीर न धरवे ते काळीं। ५६ सामोरा चालिला रघुनंदन। भोंवते अपार अयोध्याजन। जैसा कां वेदोनारायण। अनेक श्रुतीं वेष्टिला। ५७ येऊनियां वसिष्ठाजवळी। रामें गुरुचरण वंदिले भाळीं। जैसा मदनदहनाचे चरणकमळीं। स्कंद ठेवी मस्तक। ५८ तों कौसल्या सुमित्रा माता। त्यांचीं वहनें जवळी दखतां। धांवूनि येतां रामसुमित्रासुतां। उतरती खालत्या दोघीजणी। ५९ कौसल्येचे चरणीं मस्तक। ठेवूनि बोले रघुनायक। म्हणे सुखी कीं मम जनक। श्रीदशरथ दयाब्धि। ६० तों जाहला एकचि कल्लोळ। रुदन करिती लोक समग्र। सुमित्राकौसल्येसी बहुसाल। नाहीं पार तयातें। ६१ वसिष्ठ म्हणे रघुनाथा। तुझा वियोग न साहे दशरथा। राम राम म्हणतां मोक्षपंथा। गेला तत्काळ जाण पां। ६२ वचन ऐसें ऐकतां कानीं। करुणासागर मोक्षदानी। विमलांबुधारा नयनीं। तेच क्षणीं चालिल्या। ६३ स्फुंदस्फुंदोनि विलाप थोर। पितयालागी करी रघुवीर।

(इसलिए) श्रीराम (उनकी अगुवानी के दिये) आगे चल दिये। उनके चारों ओर अनगिनत अयोध्यावासी लोग (इस प्रकार घिरे हुए) थे, जिस प्रकार वेदोनारायण को अनेक श्रुतियों ने घेर लिया (हो)। ५७ जैसे शिवजी के चरण-कमलों में स्कन्द ने मस्तक (नवा) रखा, वैसे ही वसिष्ठ के निकट आकर श्रीराम ने गुरु के चरणों की (मस्तक नवाकर) वन्दना की। ५८ सवारियों को निकट देखकर, श्रीराम और लक्ष्मण दौड़ते हुए आने पर कौसल्या और सुमित्रा दोनों माताएँ नीचे उतर गयीं। ५९ कौसल्या के चरणों में मस्तक रखकर श्रीराम बोले--'दया के सागर मेरे पिता श्रीदशरथ क्या सुखी हैं ?' ६० तो बहुत कोलाहल मच गया। सब लोग रुदन करते थे (--करने लगे)। सुमित्रा और कौसल्या को भी बहुत रुलाई आयी। उसका कोई पारावार नहीं था। ६१ (तब) वसिष्ठ ने कहा--" हे श्रीराम, तुम्हारा वियोग दशरथ से सहा नहीं गया। समझो कि 'राम', 'राम' कहते-कहते वे तत्काल मोक्ष-मार्ग पर चले गये।" ६२ कानों से ऐसी बात सुनते ही करुणा-सागर और मोक्ष-दाता श्रीराम के नयनों से विशुद्ध (अश्रु-) जल की धाराएँ तत्क्षण चल पड़ीं। ६३ (उस समय) श्रीराम पिता के लिए सिसक-

म्हणे पूर्ण सत्याचा सागर। श्रीदशरथ वीर जो। ६४ ज्याचे युद्धाची ठेव। पाहती मानव इंद्रादि देव। वृषपर्वा शुक्रादि सर्व। दैत्य युद्धीं जिंकिले। ६५ श्रोते म्हणती नवल एथ। जो पुराणपुरुष रघुनाथ। तो शोकार्णवीं पडिला ही मात। असंगत दिसतसे। ६६ जो जगद्वंद्य आत्माराम। जो विश्वबीजफलांकित द्रुम। तो शोकाकुलित परब्रह्म। पितयालागीं कां जाहला। ६७ विषकंठ आला कीं क्षीरसागरा। उष्णता व्यापिली रोहिणीवरा। पक्षिवर्या त्या खगेंद्रा। सर्पबाधा केवीं जाहली। ६८ चिंतामणि दरिद्रें व्यापिला। कल्पवृक्ष केवीं निष्फळ जाहला। प्रळयाग्नीचे डोळां। अंधत्व केवीं पातलें। ६९ तंव वक्ता देत प्रत्युत्तर। श्रोतीं ऐकिजे सादर। पूर्ण ब्रह्मानंद रघुवीर। मानवलोकीं अवतरला। ७० जगद्गुरु देवाधिदेव। दावी मायेचें लाघव।

सिसककर विलाप करते थे। उन्होंने कहा--' पूर्ण सत्य के सागर मेरे पिता श्रीदशरथ ऐसे वीर (पुरुष) थे, जिनके युद्ध करने के ढंग को (युद्ध-कर्म को) मनुष्य तथा इंद्र इत्यादि देव (आश्चर्य से) देखा करते थे और जिन्होंने वृषपर्वा, (उनके गुरु) शुक्र इत्यादि सब दैत्यों को युद्ध में जीत लिया (था)'। ६४-६५

(कवि की यह बात सुनकर) श्रोताओं ने कहा-- 'यहाँ तो आश्चर्य (लगता) है? जो रघुनाथ पुराणपुरुष हैं, वे शोक-सागर में पड़ गये-- यह बात असम्मत (शास्त्रों से असंगत) दिखायी देती है। ६६ जो श्रीराम जगद्-वंद्य आत्माराम (परमात्मा) हैं, जो विश्व के बीजवाले फल से अंकित वृक्ष हैं, वे परब्रह्म (राम) पिता के लिए शोकाकुल क्यों हो गये? ६७ क्या (कंठ में विष धारण करनेवाले) शिवजी क्षीर-सागर (के पास) आ गये? क्या रोहिणी-पति चंद्र को गर्मी ने व्याप लिया? पक्षी-श्रेष्ठ उस गरुड़ को साँप के विष की पीड़ा कब हो गयी? ६८ क्या चिंतामणि को दरिद्र (ता) ने व्याप्त कर लिया? कल्पवृक्ष फल-रहित कैसे हो गया! प्रलयाग्नि की आँखों को अन्धत्व कैसे प्राप्त हो गया।' ६९ तब (श्रोताओं की ऐसी बात सुनकर) वक्ता ने (उन्हें) प्रत्युत्तर दिया (अर्थात् कवि ने कहा)-- श्रोता आदर-पूर्वक श्रवण करें। पूर्ण ब्रह्मानन्द श्रीराम मानव-लोक में (मानव-रूप में) अवतीर्ण हो गये। ७० वे जगद्-गुरु देवाधिदेव माया का चमत्कार दिखा रहे हैं। अवतार ग्रहण करने को गुप्त रखते हुए उन्होंने तो लौकिक भाव दिखा दिया। ७१

अवतारकारणाची ठेव। लौकिक भाव दाविला। ७१ नट जो जो धरी वेष। त्याची संपादणी करी विशेष। यालागीं जगदात्मआदिपुरुष। दाखवी आवेश मायेचा। ७२ ऐसी उघडतां शब्दरत्नांदुस। गुणग्राहक श्रोते पावले संतोष। संदेहरहित निःशेष। जेवीं तम नासे सूर्योदयीं। ७३ कीं वैराग्यें निरसे काम। ज्ञानें वितळे जेवीं भ्रम। जैसा निधानांतूनि परम। दारुण सर्प निघाला। ७४ करितां संशयाचें निरसन। मागें राहिलें अनुसंधान। तरी हे गोष्टीस दूषण। सर्वथाही न ठेवावें। ७५ ग्रासामाजी लागला हरळ। तो काढावया लागेल वेळ। की अनध्यायामाजी रसाळ। वेदाध्ययन राहिलें। ७६ चोरवाटा चुकवावया पूर्ण। अधिक लागला एक दिन। तरी ते गोष्टीतें दूषण। कदा सज्ञान न ठेविती। ७७ रात्रीमाजी सत्कर्मे राहती। परी सूर्योदयीं सर्वेचि चालती। छायेस पांथिक बैसती। सर्वेच जाती निजमार्गे। ७८ समुद्राचें भरतें ओहटे। सर्वेच मागुतीं

अभिनेता जो-जो वेश धारण करता है, उसका निर्वाह वह विशेष रूप में करता है। इसलिए जगदात्मा आदिपुरुष (ब्रह्म राम) माया का (विशेष रूप में) आवेश दिखा रहे हैं। ७२ इस प्रकार शब्द-रूपी रत्नों की मंजूषा के खुल जाते ही (अर्थात् गूढ़ार्थ के स्पष्ट हो जाते ही) गुण-ग्राहक श्रोता पूर्णतः सन्देहरहित सन्तोष को (उस प्रकार) प्राप्त हो गये, जिस प्रकार सूर्योदय के होते ही अँधेरा नष्ट हो जाता है, अथवा वैराग्य से काम (-विकार) नष्ट हो जाता है; अथवा जैसे ज्ञान से भ्रम का निराकरण हो जाता है। श्रोताओं को यह सन्देह हुआ, मानो धन में से परम दारुण सर्प निकल आया (हो)। ७३-७४ (आपके) ऐसे संदेह का निराकरण करने में कथा-भाग पीछे रह गया। इसलिए इस बात को बिलकुल दोष न लगाएँ। ७५ (भोजन के) कौर में कंकड़ लग जाए, तो उसे निकाल देने के लिए (कुछ) समय तो लगेगा (ही); अथवा अनध्याय (-काल) में रसात्मक वेदों का अध्ययन रह गया (हो); अथवा यदि (किसी यात्री को) चोरों का मार्ग पूर्णतः टालने के लिए (यात्रा में) एक (-एकाध) दिन अधिक लग जाए, तो ज्ञानी लोग उस बात को दोष नहीं लगाते। ७६-७७ रात में सत्कार्य बिना सम्पन्न किये रह जाते हैं, परन्तु सूर्य का उदय होने पर वे अपने आप चलने लगते हैं। पथिक छाया में (विश्राम के लिए) बैठ जाते हैं, परन्तु (अनन्तर) स्वयं अपने-

विशेष दाटे। कीं चपळ तुरंग चपेटे। विसांवा घेऊनि मागुती। ७९ तेवीं परिसा पुढील कथार्थ। आठवोनि पिता दशरथ। शोकाकुलित जनकजामात। क्षण एक जाहला। ८० मग वसिष्ठ म्हणे श्रीरामा। प्रयागाप्रति जाऊनि गुणग्रामा। उत्तरक्रिया करूनि निजधामा। दशरथासी बोळविजे। ८१ कित्येक प्राकृत कवि बोलत। कीं जे पतनीं पडिला दशरथ। परी हे गोष्टी असंमत। बोलतां अनर्थ वाचेसी। ८२ जयाचें नाम घेतां आवडीं। जीव उद्धरले लक्षकोडी। तो आपला पिता पतनीं पाडी। काळत्रयी न घडे हें। ८३ असो गयेप्रति येऊन। उत्तरक्रिया सर्व सारून। पिता निजपदीं स्थापून। आले परतोनि चित्रकूटा। ८४ सकळ ऋषी आणि अयोध्याजन। बैसले श्रीरामासी वेष्टून। मग भरत घालोनि लोटांगण। कर जोडूनि उभा ठाकला। ८५ म्हणे जयजयाजी पुरुषोत्तमा।

अपने मार्ग पर चल देते हैं। ७८ समुद्र का ज्वार घट जाता है, परन्तु बाद में विशेष रूप में बढ़ जाता है। अथवा चपल घोड़ा विश्राम कर लेने के पश्चात् (अधिक) जोरों से दौड़ता है। ७९ वैसे ही (अब) आगे की कथा (द्रुतगति से विकसित होगी। उस) का भाव सुनिए। पिता दशरथ का स्मरण करके श्रीराम एक क्षण भर शोक से व्याकुल हो गये। ८०

फिर वसिष्ठ ने कहा, 'हे श्रीराम, हे गुणग्राम, प्रयाग जाकर उत्तर-क्रिया सम्पन्न करते हुए दशरथ को अपने स्थान (अर्थात् वैकुण्ठ-लोक अथवा स्वर्ग में) पहुँचा दीजिए।' ८१ (श्रीधर कवि कहते हैं--) अनेक प्राकृत (भाषाओं के) कवि जो कहते हैं कि दशरथ नरक में पड़ गये, वह बात (शास्त्रों अथवा वाल्मीकि के रामायण से) असम्मत है। ऐसी बात बोलने से वाणी के लिए अनर्थ घटित होता है। ८२ जिनका नाम प्रेम-पूर्वक लेने पर लाखों करोड़ों जीवों का उद्धार हो गया, वे अपने पिता को नरक में डाल देंगे--यह बात त्रिकाल में भी घटित नहीं हो सकती। ८३

अस्तु। गया नगरी में आकर श्रीराम सब (प्रकार से) उत्तर-क्रिया सम्पन्न करते हुए अपने पिता को उनके अपने (उचित) स्थान पर स्थापित करके चित्रकूट लौट आये। ८४ (तदनन्तर) समस्त ऋषि और अयोध्या के नागरिक-जन श्रीराम को घेरकर बैठ गये। फिर दण्डवत् प्रणाम कर भरत हाथ जोड़कर (श्रीराम के सम्मुख) खड़े हो गये। ८५ उन्होंने कहा--' पुरुषोत्तम (श्रीराम) की जय हो! जय हो!

मायाचक्रचालका पूर्णब्रह्मा । विरिंचिजनका सुखविश्रामा । मंगलधामा रघुराया । ८६ हे राम करुणासमुद्रा । हे रविकुल-भूषणा राघवेंद्रा । सर्वानंदसदना रामचंद्रा । प्रतापरुद्रा जगद्गुरो । ८७ हे राम रावणदर्पहरणा । हे राम भवहृदय-मोचना । हे राम अहल्योद्धारणा । मखरक्षणा सीताधवा । ८८ हे राम कौसल्यागर्भरत्ना । हे राम मायाअपारश्रममोचना । सनकसनंदनमानसरंजना । निरंजना निजरूपा । ८९ दानव-काननवैश्वानरा । मम हृदयारविंदभ्रमरा । अज्ञानतिमिरच्छेदक दिवाकरा । समरधीरा सर्वेशा । ९० हे राम भक्तचातक-जलधरा । प्रेमचकोरवेधकचंद्रा । संसारगजच्छेदकमृगेंद्रा । अनंगमोहना अनंगा । ९१ उपवासी मरतां चकोर । त्याचें धांवण्या धांवे चंद्र । कीं अवर्षण पडतां जलधर । चातकालागी धांवे कां । ९२ कीं चिंताक्रांतासी चिंतामणी । सांपडे पूर्वभाग्येंकरूनी । कीं दरिद्रियाचे अंगणीं । कल्पवृक्ष

माया के चक्र के संचालक पूर्णब्रह्म की जय हो ! ब्रह्मा के पिता तथा (सब के लिए) सुख तथा विश्राम (-भूत श्रीराम) की जय हो । मंगल के धाम श्रीराम की जय हो । ८६ हे करुणा-सागर राम ! हे रविकुल-भूषण राघवेन्द्र ! हे सब के लिए आनन्द-सदन रामचन्द्र ! हे रुद्र-प्रतापी जगद्गुरु ! हे रावण के घमण्ड को छुड़ानेवाले राम ! संसार के हृदय को मुक्ति दिलानेवाले हे राम ! अहल्या का उद्धार करनेवाले हे राम ! हे यज्ञ के रक्षक सीतापति श्रीराम ! कौसल्या के गर्भ से उत्पन्न रत्न हे श्रीराम ! माया के कारण होनेवाले अपार श्रमों से मुक्ति देनेवाले हे राम ! सनक-सनन्दन (जैसे ऋषियों) के मन को प्रसन्न करनेवाले हे श्रीराम ! हे निरंजन तथा ब्रह्मस्वरूप राम ! हे दानव-रूपी वन को जला डालनेवाले वैश्वानर (अग्नि) -रूप श्रीराम ! हे मेरे हृदय-कमल के भ्रमर ! अज्ञान-रूपी अन्धकार का नाश करनेवाले हे सूर्य ! हे समरों (की भूमि) के अधीश्वर सर्वेश श्रीराम ! भक्त-रूपी चातकों को तुष्ट करनेवाले हे मेघ श्रीराम ! (भक्तों के) प्रेम-रूपी चकोर को आकृष्ट करनेवाले चन्द्र-रूप श्रीराम ! संसार (के विकार) रूपी हाथी को मार डालनेवाले मृगेन्द्र श्रीराम ! मदनमोहन अनंग (कामदेव को भी मोहित कर सकनेवाले कामदेव) ! चकोर के भूखों मरते उसकी रक्षा के लिए चन्द्र वेगपूर्वक आ जाता है; अथवा सूखा पड़ने पर चातक के लिए मेघ झट से आ जाता है । ८७-९२ अथवा चिन्ताओं से आक्रान्त (व्याकुल) व्यक्ति को

उगवला । ९३ कीं पतिव्रतेसी प्राणनाथ भेटला । कीं क्षुधितापुढें क्षीराब्धि आला । कीं साधकासी निधि जोडला । आनंद जाहला तैसा आम्हां । ९४ हंसें देखिलें मानसरोवर । कीं प्रेमळा भेटला उमावर । कीं संकल्पी द्रव्य अपार । दुर्बळ ब्राह्मणासी दीधलें । ९५ तैसा आनंद जाहला जनांसी । आतां सत्वर चलावें अयोध्येसी । सांभाळावें बंधुवा आम्हांसी । श्रीदशरथाचेनि न्यायें । ९६ आपुलें राज्य सांभाळावें । गोब्राह्मणां प्रतिपाळावें । आमुचे मनोरथ पूर्ण करावे । आतां परतावें सत्वर । ९७ जननी आमुची परम चतुर । मज देत होती राज्यभार । जैसें छेदोनियां शिर । गुडघ्यास पूजा बांधिली । ९८ पूज्य मूर्ति वोसंडून । जैसे गुरवाचे धरी चरण । राजकुमार सांडोन । कन्या दिधली अजारक्षका । ९९ पाडोनि देवळाचें शिखर । घातलें भोंवतें आवार । नागवूनि यात्रा समग्र । अन्नसत्र घातलें । १०० फणस टाकोनि रसाळ ।

(समस्त चिन्ताओं से मुक्त करनेवाला) चिन्तामणि नामक रत्न पूर्वभाग्य के बल पर मिल गया (हो); अथवा दरिद्र के आँगन में कल्पवृक्ष उग आया (हो); अथवा पतिव्रता (नारी) से उसका प्राणनाथ (पति) मिल गया; अथवा भूखे मनुष्य के सामने क्षीर-समुद्र आ गया (हो); अथवा साधक को (उसकी अपेक्षित) निधि की प्राप्ति हो गयी (हो)। तो उसे जैसा आनन्द आता (हो), वैसा आनन्द हमें (अनुभव) हुआ। ९३-९४ हंस ने मानसरोवर देख लिया (हो); अथवा भक्त से शिवजी मिल गये (हों); अथवा (किसी दाता ने व्रत सम्बन्धी) संकल्प में दुर्बल ब्राह्मण को अपार धन प्रदान किया (हो) उस समय उसे जैसा आनन्द हुआ हो, वैसा ही आनन्द (राम से मिलकर समस्त अयोध्यावासी) लोगों को हुआ (है)। अब आप शीघ्र अयोध्या चलें (और) दशरथ (राजा) के-से ही न्याय (-संगत ढंग) से हम बन्धुओं का पालन करें। ९५-९६ अपने राज्य को (स्वीकार कर) सम्हालें, गो-ब्राह्मणों (गायों और ब्राह्मणों) का प्रतिपालन करें; हमारे मनोरथों को पूर्ण करें। अब शीघ्र लौट चलें। ९७ हमारी माता परम चतुर है, (जो) मुझे राज्य-भार दे रही थी! उसका यह कार्य वैसे ही हुआ जैसे (किसी ने) सिर काटकर घुटने की पूजा की; अथवा पूजनीय प्रतिमा का त्याग कर 'गुरव' (अर्थात् मन्दिर में देव-प्रतिमा का पूजन करने का परम्परागत अधिकार रखनेवाली महाराष्ट्र की एक विशिष्ट जाति के मनुष्य) के चरण पकड़ लिये; अथवा राजपुत्र को

प्रीतीनें घेतलें कनकफळ। मुक्त सांडोनि तेजाळ। गुंज जैसी घेतली। १०१ गार घेऊनि टाकिला हिरा। अंधकार घेऊनि त्यजिलें दिनकरा। पांच भिरकावूनि सत्वरा। कांच बळें रक्षिली। २ परिस त्यागून घेतला खडा। पंडित दवडूनि आणिला वेडा। चिंतामणि टाकोनि रोकडा। पलांडु घेतला बळेंचि। ३ अमृत टाकूनि घेतली कांजी। कल्पवृक्ष तोडोनि लाविली भाजी। कामधेनु दवडोनि सहजीं। अजा पूजी आदरें। ४ निजसुख टाकोनि घेतलें दुःख। कस्तूरी टाकूनि घेतली राख। सोनें टाकूनि सुरेख। शेण जैसें घेतलें। ५ सांडोनियां रायकेळें। आदरें भक्षी अर्कीफळें। ज्ञान सांडोनि घेतलें। अज्ञान जाण बळेंचि। ६ तैसें कैकयीनें केलें साचार। वना दवडोनि जगदुद्धार। मज द्यावया राज्यभार। सिद्ध जाहली साक्षेपें। ७ सर्व अपराध करूनि

छोड़कर (किसी ने) अपनी कन्या गड़रिये को (ब्याह में) दी; अथवा (किसी ने) देवालय के कलश को ढहाकर (उसके) चारों ओर चारदीवारी बना दी; अथवा समस्त मेले को लूटकर अन्न-सत्र गठित कर दिया; अथवा रसमय कटहल को फेंक देकर (किसी ने) प्रेमपूर्वक धतूरे के फल लिये; अथवा तेजस्वी मोती छोड़कर (किसी ने) जिस प्रकार घुंघची ली; अथवा स्फटिक पत्थर को लेकर हीरे को छोड़ दिया; अथवा अन्धकार स्वीकार कर सूर्य को त्याग दिया; अथवा पन्ना (रत्न) फेंककर झट से काँच की बलपूर्वक रक्षा की; अथवा पारस छोड़कर कंकड़ लिया; अथवा पंडित को (दूर भेजकर अथवा भगाकर) पागल को ले आया; अथवा प्रत्यक्ष प्रस्तुत चिन्तामणि फेंक देकर बलात् प्याज लिया; अथवा अमृत का त्याग करके माँड स्वीकार की; अथवा कल्पवृक्ष को काटकर तरकारी लगायी (बोयी); अथवा कामधेनु को यों ही भगाकर बकरी की आदर-पूर्वक पूजा की; अथवा आत्मसुख का त्याग कर दुःख (अपना) लिया; अथवा कस्तूरी छोड़कर राख (स्वीकार कर) ली; अथवा सुहाने सोने को छोड़कर (किसी ने) गोबर लिया; अथवा 'राज केला' (नामक बढ़िया केला) छोड़कर (किसी ने) आक के फल खा लिये; अथवा समझिए, ज्ञान को त्यागकर, बलात् अज्ञान स्वीकार किया; उसी प्रकार सचमुच कैकेयी ने यह (मूर्खतापूर्ण व्यवहार) किया जबकि जगत् के उद्धारक श्रीराम को वन (में) भेजकर वह मुझे राज्य-भार देने के लिए हठात् तैयार हो गयी। ९८-१०७ (इसलिए) हे श्रीराम, सब अपराधों को क्षमा करके

क्षमा। अयोध्येसी चलावें श्रीरामा। याउपरी जगदात्मा। काय बोलिला तें ऐका। ८ सूर्य मार्ग चुके करितां भ्रमण। नेत्रीं अंधत्व पावे अग्न। मशकाची धडक लागून। जरी मेरु पडेल। ९ पाषाणप्रहार लागून। वायु पडेल मोडोनि चरण। कीं पिपीलिका शोषी सिंधुजीवन। विजूसी धांवूनि मशक धरी। ११० धडधडीत अग्निज्वाळ। कर्पूरतुषारें होय शीतळ। हेंही घडेल एक वेळ। परी वचनास चळ नोहे माझ्या। ११ एकबाण एकवचन। एकपत्नीव्रत पूर्ण। चौदा वर्षें भरल्याविण। कदापि आगमन घडेना। १२ ऐसें निश्चयाचें वचन। बोलता जाहला रघुनंदन। अग्नीनें आहाळे जैसें सुमन। तैसें भरता जाहलें। १३ मग भरतें चेतविला जातवेद। प्राण द्यावया जाहला सिद्ध। म्हणे हा देह करीन दग्ध। रामवियोग मज न सोसवे। १४ महाराज वाल्मीक मुनी। भरतास एकांतीं नेउनी। मूळकाव्यार्थ अवघा कानीं। भविष्यार्थ सांगितला। १५ तो ऐकतां कैकयीसुत। उगाच राहिला निवांत। मग येऊनि जनकजामात। हृदयीं धरी

(आप) अयोध्या चलिए।' सुनिए जगदात्मा ने इसपर क्या कहा। १०८ 'भ्रमण करते हुए सूर्य मार्ग भूल जाएगा; अग्नि आँखों में अन्धत्व को प्राप्त होगी, मच्छड़ का धक्का लगने से मेरुपर्वत ढह जाएगा; पाषाण का प्रहार लगने से वायु पाँव टूटकर गिर पड़ेगा; अथवा चींटी समुद्र के जल को सोख लेगी; अथवा दौड़ते हुए मच्छड़ बिजली को पकड़ लेगा; अग्नि की धधकती ज्वाला कपूर के तुषार से ठण्डी हो जाएगी। (यद्यपि यह असम्भव है, तथापि) यह भी एक बार घटित हो जाएगा; परन्तु मेरे वचन में कदापि अन्तर नहीं आएगा। १०९-१११ मैं पूर्णतः एक-त्राण, एक-वचन (और) एक पत्नी-व्रती हूँ। (इसलिए) बिना चौदह वर्ष (वनवास के) पूर्ण हुए मेरा (अयोध्या में) आगमन कदापि नहीं होगा।' ११२ श्रीराम ऐसे निश्चय-पूर्ण वचन बोले, तो भरत को वैसे ही हुआ जैसे आग से फूल झुलस जाता है। ११३ अनन्तर भरत ने आग सुलगा दी और वे (उसमें) प्राण त्याग देने के लिए सज्ज हो गये। वे बोले--'यह देह मैं जला डालूँगा (क्योंकि) मुझसे राम का वियोग सहन नहीं किया जा रहा है'। ११४ (इसपर) वाल्मीकि मुनि ने भरत को एकान्त में ले जाकर उनके कानों में मूल काव्य (रामायण) का समग्र अर्थ बता दिया। ११५ उसे सुनकर भरत बिना चीं-चपड़ किये शान्त रह गये।

भरतातें । १६ आपुल्या हस्तेंकरून । पुसिले भरताचे नयन । करें कुरवाळिलें वदन । समाधान करीतसे । १७ देव बंदींचे सोडवून । चौदा वर्षांत येतों परतोन । मग वरदहस्त उचलोन । भाष दिधली भरतातें । १८ चौदा वर्षें चौदा दिन । पंधरात्रे दिवशीं पूर्ण । माध्यान्हा येतां चंडकिरण । भेटेन येऊन तुजलागीं । १९ भरत म्हणे हा नेम टळतां । मग देह त्यागीन तत्त्वतां । श्रीरामचरणीं ठेविला माथा । प्रेमावस्था अधिक पैं । १२० भरत मागुता उठोन । विलोकी श्रीरामाचें वदन । अमलदलराजीवनयन । तैसाचि हृदयीं रेखिला । २१ भरत सद्गद बोले वचन । मी अयोध्येसी न जाईं परतोन । सकळ मंगलभोग स्नान । त्यजूनि राहीन नंदिग्रामीं । २२ अवश्य म्हणे रघुनायक । मणिमय पादुका सुरेख । भरतासी दिधल्या शोकहारक । येरें मस्तकीं वंदिल्या । २३ शिवमस्तकीं विराजे चंद्र । तैशा शिरीं पादुका

फिर (वहाँ) आकर श्रीराम ने भरत को गले लगाया । ११६ उन्होंने अपने हाथों से भरत की आँखें पोंछ लीं; (अपने) हाथ से (उनके) मुख को सहेल लिया और उनको सन्तुष्ट किया । ११७ फिर उन्होंने हाथ ऊपर उठाकर भरत को अभिवचन दिया--' देवों को (रावण के) बन्दी (-गृह) से मुक्त करके, मैं चौदह वर्षों में वापस आऊँगा । ११८ चौदह वर्ष और चौदह दिन होने पर पंधरवें दिन सूर्य पूरे मध्याह्न पर आने पर मैं आकर तुमसे मिलूँगा । ' ११९ (इसपर) भरत ने कहा--' फिर इस प्रतिज्ञा के टल जाते ही मैं सचमुच देह-त्याग कर दूँगा । ' (तदनन्तर) उन्होंने श्रीराम के चरणों में मस्तक (नवा) रखा । उनके प्रेम की तीव्र (चरम) अवस्था हुई । १२० फिर भरत ने उठकर श्रीराम के मुख को (ध्यान से) देखा (और) स्वच्छ दलवाले कमलों-से नेत्रवाले श्रीराम को उन्होंने अपने हृदय में वैसे ही (हूबहू) अंकित कर लिया । १२१ (तब) गद्गद होकर भरत ने (यह) बात कही—' मैं अयोध्या (में) वापस नहीं जाऊँगा (परन्तु) समस्त मंगल-भोगों और (मंगल-) स्नान का त्याग कर मैं नंदिग्राम में रहूँगा ' । १२२ (यह सुनकर) श्रीराम ने कहा--' अवश्य ' । (फिर) उन्होंने (अपनी) शोक-हारी रत्नमय सुन्दर पादुकाएँ भरत को प्रदान कीं, तो उन्होंने मस्तक से (लगाकर) उनका वन्दन किया । १२३ शिवजी के मस्तक पर जैसे चंद्र विराजमान है, वैसे (भरत के) मस्तक पर

सुंदर। शोक हरपला समग्र। शरीर शीतळ जाहलें। २४ जैसें कंठीं धरितां नामस्मरण। शीतळ जाहला पार्वतीरमण। तैसेंचि प्रेमळ भरत जाण। अंतरीं पूर्ण निवाला। २५ शत्रुघ्नासी म्हणे रघुनाथ। तूं आणि प्रधान सुमंत। राज्यभार चालवा समस्त। यथान्यायेंकरूनियां। २६ सदा स्तवावे संतसज्जन। श्रीगुरुभजनीं सावधान। दूर त्यागावे दुर्जन। त्यांचें अवलोकन न करावें। २७ परदारा आणि परधन। तेथें कदा न ठेविजे मन। वेदमर्यादा नुल्लंघावी पूर्ण। प्राणांतही जाहलिया। २८ जरी क्लेशकाळ पातला बहुत। परी धैर्य न सोडावें यथार्थ। गुरुभजन पुण्यपंथ। न सोडावे सर्वथा। २९ साधु संत गोब्राह्मण। त्यांचें सदा करावें पाळण। सकळ दुष्टांस दवडोन। स्वधर्म पूर्ण रक्षावा। १३० कथा कीर्तन पुराणश्रवण। काळ क्रमावा येणेंकरून। आपुला वर्णाश्रमधर्म

(श्रीराम की) पादुकाएँ शोभायमान दिखायी दीं। (उससे उनका) समस्त शोक दूर हो गया और शरीर शीतल हो गया। १२४ समझिए कि जिस प्रकार श्रीराम के नाम-स्मरण को कण्ठ में धारण कर लिया (अर्थात् नामस्मरण आरम्भ किया), तो शिवजी शीतल हो गये। (टिप्पणी :—मंथन के अवसर पर समुद्र में से निकले हुए हलाहल विष को शिवजी ने पी लिया था; उससे उनके शरीर में जलन होने लगी; परन्तु कहते हैं कि ज्यों ही उन्होंने श्रीराम-नाम का स्मरण आरम्भ किया त्यों ही उन्होंने शीतलता अनुभव की।) वैसे ही (श्रीराम की पादुकाओं को शिरसावंद्य कर लेने पर) भरत अन्तःकरण में पूर्णतः शान्त हो गये। १२५ (तत्पश्चात्) श्रीराम ने शत्रुघ्न से कहा—"तुम और सचिव सुमन्त दोनों यथा-न्याय (न्यायोचित रीति से) समस्त राज्य-भार का वहन करो। १२६ (इस दृष्टि से) सन्त-सज्जनों का नित्य स्तवन करें। श्रीगुरु की सेवा में अवधान-पूर्वक (लगे) रहें। दुर्जनों को दूर त्याग दें; उनका अवलोकन (तक) न करें। १२७ परदारा (पर-स्त्री) और परधन में मन कदापि न लगाएँ। प्राणों का अन्त होने पर भी वेदों की मर्यादा का उल्लंघन न करें। १२८ यदि संकट (या दुःख) का समय आ जाए, तो भी सचमुच धीरज का त्याग न करें। गुरु-भजन (अर्थात् गुरु की सेवा) तथा पुण्यकर्म का सन्मार्ग बिलकुल न छोड़ें। १२९ साधुओं, सन्तों और गो-ब्राह्मणों का सदा परिपालन करें। समस्त दुष्टों का दमन करके अपने धर्म का रक्षण करें (अर्थात् कर्तव्य का निर्वाह करें)। १३०

पूर्ण। सर्वथाही न त्यजावा। ३१ संतांचा न करावा मानभंग। हरिभजनीं झिजवावें अंग। सांडोनि सर्व कुमार्ग। सन्मार्गेंचि वर्तावें। ३२ ऋषींचे आशीर्वाद घ्यावे। वर्म कोणाचें न बोलावें। विश्व अवघें जाणावें। आत्मरूपी निर्धारें। ३३ सत्संग धरावा आधीं। नायकावी दुर्जनाची बुद्धी। काम-क्रोधादिक वादी। दमवावे निजपराक्रमें। ३४ मी जाहलों सज्ञान। हा न धरावा अभिमान। विनोदेंही पराचें छळण। न करावें सहसाही। ३५ शमदमादिक साधनें। स्वीकारावीं साधकानें। जन जाती आडवाटेनें। त्यांसी सुमार्ग दाविजे। ३६ शोकमोहांचे चपेटे पूर्ण। अंगीं आदळती येऊन। विवेकवोडण पुढें करून। ज्ञानशस्त्र योजावें। ३७ काम क्रोध मद मत्सर। हे गृहांसी येऊं न द्यावे तस्कर। आयुष्य क्षणिक जाणोनि साचार। सारासार विचारावें। ३८ क्षणिक जाणोनि संसार। सोडावा विषयांवरील आदर। सद्गुरुवचनीं सादर। सदा

(हरि-) कथा, कीर्तन और पुराणों के श्रवण में काल व्यतीत करें। अपने (-अपने) वर्णाश्रम धर्म का त्याग बिलकुल न करें। १३१ सन्तों के सम्मान का भंग (अर्थात् सन्तों का अनादर) न करें। भगवद्भजन में देह घिस दें। सब कुमार्गों का त्याग करके सन्मार्ग से ही वर्तन (आचरण) करें। १३२ ऋषियों के आशीर्वाद प्राप्त करें। किसी के दोष को न कहें। समस्त विश्व को आत्मरूप में निश्चय ही (स्थित) समझ लें। १३३ पहले सत्संग स्वीकार करें। दुर्जनों का परामर्श न सुनें--न मानें। काम, क्रोध इत्यादि विकाररूपी शत्रुओं का अपने प्रताप से दमन करें अथवा उन्हें अपने वश में कर लें। १३४ 'मैं स-ज्ञान (अर्थात् ज्ञानी) हूँ'--यह अभिमान (कभी भी) धारण न करें। विनोद (-मज़े) में भी दूसरे को कदापि कष्ट न दें। १३५ साधक शम, दम आदि साधनों को स्वीकार करे। जो लोग गलत मार्ग से जा रहे हों, उन्हें सन्मार्ग दिखाएँ। १३६ शोक और मोह के भारी आघात शरीर में टकराते हुए-से पहुँचते हैं, तो विवेकरूपी ढाल आगे धरकर ज्ञानरूपी शस्त्र का आयोजन करें। १३७ काम, क्रोध, मद और मत्सर (विकार-रूपी) इन चोरों को (अपने) घर न आने दें। आयु को सचमुच क्षणिक समझकर सद्-असद् बुद्धि से विचार करें। १३८ (घर-) गिरस्ती को क्षणिक समझकर (भोग्य-) विषय सम्बन्धी आदरभाव का त्याग करें। सद्गुरु के कथन में मन को आदर-पूर्वक लगाएँ। १३९ यदि दैववशात् (संयोग से) बड़ा

चित्त ठेविजे। ३९ दैवें आलें भाग्य थोर। त्याचा गर्व न धरावा अणुमात्र। एकदांचि गेलें जरी समग्र। कदा धीर न सांडावा। १४० कमलपत्राक्ष कृपानिधान। वर्षत स्वातीजल पूर्ण। तें सुमंत आणि शत्रुघ्न। कर्णशुक्तिकेंत सांठविती। ४१ शब्दामृत वर्षे रामचंद्र। निवाले भरतकर्णचकोर। कीं रामवचन क्षीरसागर। उपमन्यु भरत साचार तेथें। ४२ सूर्य उगवतां निरसे तमजाळ। तैसें श्रीरामवचनें जाहलें हृदय निर्मळ। मग भरत परतोनि तत्काळ। नंदिग्रामीं राहिला। ४३ करूनि मातेचें समाधान। सकळ ब्राह्मण प्रजाजन। सुमंत आणि शत्रुघ्न। पाठवी परतोनि अयोध्ये। ४४ श्रीरामपादुका सिंहासनीं। शत्रुघ्न वरी छत्र धरूनी। मग राज्य चालवी अनुदिनीं। नामस्मरणीं सावध। ४५ क्षणक्षणां येत नंदिग्रामासी। मागुता जाय अयोध्येसी। सकळ पृथ्वीच्या राजांसी। धाक भरतशत्रुघ्नांचा। ४६ प्रतिसंवसरीं करभार। भूपाला देती समग्र। असो नंदिग्रामीं भरत वीर। निर्विकार

भाग्य प्राप्त हो जाए (भाग्यशाली हो जाएँ) तो भी उसका अणुमात्र भी गर्व न धारण करें। (उसी प्रकार) यदि एकदम सब नष्ट हो जाए, तो धीरज कदापि न छोड़ें।" १४० कमलपत्रनयन कृपानिधान श्रीराम-रूपी मेघ स्वाति नक्षत्र में पूर्णतः पानी बरसा रहा था। उसे सुमन्त और शत्रुघ्न अपने कर्ण-रूपी सीपियों में भर रखते थे। १४१ श्रीराम-रूपी चन्द्र शब्दों द्वारा अमृत बरसा रहे थे। उससे भरत के कर्ण-रूपी चकोर तृप्त हो गये। अथवा राम-वचन रूपी क्षीर-सागर में सचमुच भरत के रूप में उपमन्यु रहता था। १४२ सूर्य के उगते ही अन्धकार-रूपी जाल नष्ट हो जाता है (और वातावरण शुद्ध हो जाता है) उसी प्रकार श्रीराम की उक्ति से भरत का हृदय (शोक आदि से मुक्त होकर) निर्मल हो गया। अनन्तर भरत तत्काल लौट जाकर नंदिग्राम में रह गये। १४३ माता का शोक-निवारण करके भरत ने सब ब्राह्मणों को, प्रजाजनों को, सुमन्त और शत्रुघ्न को अयोध्या वापस भेज दिया। १४४ श्रीराम की पादुकाओं को सिंहासन पर स्थापित किया और शत्रुघ्न द्वारा (उनपर) छत्र धरवाकर फिर नाम-स्मरण से सावधान रहते हुए भरत प्रतिदिन राज करते रहे। १४५ वे क्षण-क्षण नंदिग्राम आया करते और फिर अयोध्या जाया करते। समस्त पृथ्वी के राजाओं पर भरत और शत्रुघ्न का दबदबा या आतंक (छा गया) था। १४६ (सब) राजा प्रतिवर्ष उनको करभार

बैसला । ४७ नंदिग्रामाजवळ अरण्यांत । पर्णकुटी करून राहे भरत । श्रीरामपादुका विराजित । रात्रंदिवस मस्तकीं । ४८ जे आवडते श्रीरामभक्त । तेही भरताऐसे विरक्त । कनक कामिनी गृह सुत । त्याग करूनि बैसले । ४९ वटदुग्धीं जटा वळूनी । सकळ मंगलभोग त्यजोनी । वल्कलें वेष्टोनि तृणासनीं । बैसले ध्यानीं श्रीरामाचे । १५० नक्षत्रांत जैसा चंद्र । तैसा मध्यें भरत साचार । रात्रंदिवस रामचरित्र । भरत सांगे समस्तांतें । ५१ किंवा मानससरोवरीं । बैसती राजहंसांच्या हारी । भरतासभोंवते तेचि परी । वेष्टूनियां बैसले । ५२ श्रीधर म्हणे श्रोतयां समस्तां । चित्त द्यावें पुढिल्या श्लोकार्था । रघुनाथ चित्रकूटीं असतां । काय कथा वर्तली । ५३ कवीची शब्दरत्नमांदुस । उघडितां पंडित पावती संतोष । इतर कुबुद्धि मतिमंदांस । रत्नपरीक्षा न कळे हो । ५४ असो चित्रकूटीं असतां रघुनंदन । मिळोनि

दिया करते । अस्तु । (इधर) वीर भरत नंदिग्राम में निर्विकार बैठे रहे । १४७ नंदिग्राम के पास अरण्य में वे पर्णकुटी बनाकर रहते थे । उनके मस्तक पर श्रीराम की पादुकाएँ रात-दिन विराजमान रहती थीं । १४८ श्रीराम के जो प्रिय भक्त थे, वे भी भरत की भाँति विरक्त होकर कनक (सोना अर्थात् धन-दौलत), कामिनी (स्त्री), घर, पुत्र (आदि) का त्याग कर बैठ गये । १४९ बरगद के दूध से जटाएँ गूँथकर और सब मंगल-भोगों का त्याग कर वल्कल लपेटे हुए वे तृणासन पर श्रीराम के ध्यान में (लीन हुए) बैठे रहे । १५० नक्षत्रों के बीच जैसे चन्द्र होता है, वैसे ही उन लोगों के बीच सचमुच भरत (शोभायमान) थे । भरत (उन) सब को श्रीराम-चरित्र रात-दिन सुनाते थे । १५१ अथवा (जिस प्रकार) मानसरोवर में हंसों की पंक्तियाँ होती हैं, उसी प्रकार वे लोग भरत के चारों ओर (उन्हें) घेरकर विराजमान थे । १५२

श्रीधर कवि समस्त श्रोताओं से कहते हैं-- आगे श्लोकों के अर्थ की ओर ध्यान दीजिए (जिसमें बताया गया है कि) रघुनाथ के चित्रकूट पर रहते हुए क्या कथा (अर्थात् घटना) घटित हुई । १५३

कवि के शब्द-रूपी रत्नों की मंजूषा खुल जाने पर पंडित लोग सन्तोष को प्राप्त हो जाते हैं; (क्योंकि वे रत्नों की सही परख कर सकते हैं, परन्तु) अन्य दुर्बुद्धि मन्दमति लोगों को तो रत्नों की परख करना नहीं आता । १५४

बहिर्मुख ब्राह्मण। म्हणती रामा तूं जाईं येथून। आम्हांसी विघ्नें तुझेनि। ५५ तुझी स्त्री परम सुंदर। न्यावया जपती बहुत असुर। वाल्मीकभविष्य साचार। ऐसेंच असे जाण पां। ५६ वनींहूनि वार्ता उठली साचार। त्रिशिरा दूषण आणि खर। दळभारेंसीं येथें येणार। तुजकरितां रघुवीरा। ५७ म्हणोनि सांगतों तुजशीं। येथोनि जाईं निश्चियेंसी। नाहीं तरी आम्ही स्वाश्रमासी। त्यजोनि जाऊं निर्धारें। ५८ श्रीराम म्हणे ब्राह्मणांलागुनी। तुम्हीं निश्चित असावें अंत:करणीं। मी काळही फोडीन समरांगणीं। राक्षसांतें गणी कोण। ५९ परम अविश्वासी ब्राह्मण। म्हणती विघ्नें येती दारुण। हा आपले स्त्रीस रक्षील जाण। कीं आम्हासी रक्षील। १६० हा त्यांसी न पुरे समरांगणीं। चाऱ्ही बाण जाती सरूनी। याच्या बोलाचा विश्वास धरूनी। कदा येथें न राहावें। ६१ मग सकळीं करूनि एक विचार। रात्रींच उठोनियां समग्र। कुटुंबें घेऊनि सत्वर। गेले विप्र

अस्तु। रघुनाथ के चित्रकूट पर रहने लगने पर कुछ बहिर्मुख (अर्थात् श्रीराम की महिमा का ज्ञान न रखनेवाले) ब्राह्मण बोले—' हे राम, आप यहाँ से (निकल) जाइए; (क्योंकि) आपके यहाँ रहने से हमें बाधाएँ (उत्पन्न) होंगी। १५५ आपकी स्त्री परम सुन्दर है। उसे ले जाने के लिए अनेक असुर यत्नशील हैं। समझिए, वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत भविष्य (-कथन) सचमुच ऐसा ही है। १५६ हे राम, वन में से ऐसा समाचार सचमुच आया (है) कि त्रिशिरा, दूषण और खर सेना-सहित आपके लिए (आपपर आक्रमण करने के लिए) आएँगे। १५७ इसलिए हम आप से कहते हैं कि आप यहाँ से निश्चय ही चले जाएँ; नहीं तो हम अपने आश्रमों को छोड़कर निर्धारपूर्वक चले जाएँगे।' १५८ (इसपर) श्रीराम ने (उन) ब्राह्मणों से कहा—' आप मन में निश्चिन्त रहें। मैं युद्ध-भूमि में काल को भी काट डालूँगा, तो राक्षसों को कौन गिने !' १५९ (यह सुनकर भी) परम अविश्वास करनेवाले ब्राह्मणों ने कहा (सोचा)— (यहाँ रहते हुए) दारुण विघ्न आएँगे। समझिए, ये अपनी स्त्री की रक्षा करेंगे अथवा हमारी। १६० ये उनके लिए पर्याप्त अर्थात् तुल्यबल नहीं होंगे। (इनके) चारों बाण समाप्त हो जाएँगे। (इसलिए) इनकी बात का विश्वास करके यहाँ कदापि न रहेंगे। १६१ फिर सबने एकमत (निश्चित) करके (वे) ब्राह्मण रात में

पळोनियां । ६२ उपरी प्रातःकाळीं उठोन । श्रीराम पाहे ऋषिजन । तंव ते रात्रींच गेले पळोन । राजीवनयन काय करी । ६३ एक वाल्मीक उरला पूर्ण । तो महाराज तपोधन। भूत भविष्य वर्तमान । त्रिकालज्ञान जयासी । ६४ वायुसंगें उडे तृण । परी अचळ न सोडी स्थान । किंवा रणमंडळ सोडून । रणशूर कदा पळे ना । ६५ तैसा वाल्मीक उरला जाण । तेणें आधींच कथिलें रामायण । इतर बहिर्मुख ब्राह्मण । श्रीराम निधान नोळखती । ६६ प्रत्यया न येतां रघुवीर । आचार तितका अनाचार । कर्म तोच भ्रम थोर । पिशाच नर तेचि पैं । ६७ तेणें केलें वेदपठण । करतलामलक शास्त्रें प्रमाण । परी तें मद्यपियाचें भाषण । राघवा शरण न जातां । ६८ जैसी मुग्धा बत्तीसलक्षणी । परम सौंदर्य-लावण्यखाणी । परी मन नाहीं पतिभजनीं । तरी तें सर्वही

उठकर सब परिवारों को लिये हुए शीघ्र भाग गये । १६२ अनन्तर राम ने सबेरे उठकर ऋषिजनों को (ढूँढ़कर) देखा, तो (विदित हुआ कि) वे रात को ही भाग गये । तब कमलनयन (श्रीराम ने) क्या किया—(देखिए) । १६३ (वहाँ) केवल पूरे अकेले वाल्मीकि शेष रह गये (थे) । वे तो तपोधन महान् ऋषि (-राज) थे, जिन्हें भूत भविष्य तथा वर्तमान—तीनों कालों का ज्ञान था । १६४ वायु के साथ घास उड़ जाती है, परन्तु पर्वत (अपने) स्थान को नहीं छोड़ता । अथवा रण-मण्डल को छोड़कर युद्ध-वीर कदापि नहीं भाग जाता । १६५ वैसे ही समझिए कि (समस्त कायर तथा अज्ञानी ब्राह्मणों के भाग जाने पर भी) वाल्मीकि (वहीं) शेष रह गये । उन्होंने तो पहले ही रामायण (की कथा) का कथन किया था । राम से विमुख अन्य ब्राह्मण श्रीराम-रूप धन को नहीं पहचानते थे । १६६ (हृदय में) राम के अनुभूत न हो आने पर (किसी द्वारा किया जानेवाला धार्मिक) आचार तो अनाचार होता है, (उसके द्वारा किया जानेवाला) कर्म तो महान् भ्रम होता है । ऐसा ही नर तो (नर नहीं), पिशाच है । १६७ राम की शरण में नहीं जाते हुए यद्यपि उसने वेदों का पठन किया तथा उसे प्रमाणित शास्त्र हाथ पर रखे आँवले के समान सुस्पष्ट हो गये, तो भी उसका वह पठण (-भाषण) शराबी का भाषण (ही) है— वह अर्थहीन प्रलाप मात्र है । १६८ जिस प्रकार कोई बत्तीस लक्षणों से युक्त मुग्धा, परम सौन्दर्य तथा लावण्य की खान हो, परन्तु यदि उसका मन पति-सेवा में न हो, तो

वृथा गेलें। ६९ खरपृष्ठीसी चंदन देख। परी तो नेणे सुवाससुख। षड्रसीं फिरवी जे दर्वी पाक-। रसास्वाद नेणें ती। १७० कृपा न करितां सीतावर। कासया व्यर्थ तत्त्व-विचार। त्याचें ज्ञान नव्हे साचार। जैसे कीर अनुवादती। ७१ तेणें केलें तीर्थाटण। होय चौसष्टकळाप्रवीण। तेणें केलें जरी कीर्तन। तें जाण गायन गोरियाचें। ७२ असो रघुपतीस सांडोन विप्र। पळोन गेले समग्र। जगद्वंद्य रघुवीर। त्याचें स्वरूप नेणोनियां। ७३ असो आतां बहु भाषण। श्रीराम चित्रकूट त्यागोन। वाल्मीकऋषीस नमून। दंडकारण्या चालिला। ७४ श्रीरामविजय ग्रंथ प्रचंड। येथें संपलें

(उसका) वह सभी (सौन्दर्य तथा लावण्य) व्यर्थ हो गया। १६९ गधे की पीठ में चन्दन की रेखा (लगा दी गयी) हो, तो भी वह सुगन्ध का (-आनन्द) नहीं जानता। जो करछुली रसोई में हिलायी जाती है, वह रसास्वाद करना नहीं जानती। १७० श्रीराम के कृपा नहीं करने पर (ऐसे विद्वान् व्यक्ति द्वारा) तत्त्व-विचार किसलिए व्यर्थ में ही किया जाता है। उसका ज्ञान सच्चा नहीं है; वह तो वैसे ही है, जैसे तोते (किसी के शब्दों को) अनुकरण में दोहराते हैं—(अर्थात् तोता शब्दों के मर्म को न जानने पर भी उन्हें दोहराता है, उसी प्रकार ऐसे व्यक्ति को वेदों, शास्त्रों का सच्चा ज्ञान नहीं है फिर भी वह उनके शब्दों का उच्चारण करता रहता है।) १७१ यद्यपि उसने तीर्थ-क्षेत्रों का भ्रमण किया, यद्यपि वह चौंसठ कलाओं में प्रवीण हो गया, यद्यपि उसने (भगवत्कथा का) कीर्तन किया, तथापि उसका भ्रमण तथा कला-प्रावीण्य व्यर्थ है और उसके द्वारा किया कीर्तन तो व्याध का गायन जैसा होता है। (व्याध या बहेलिया चिड़ियों को धोखा देने के लिए ही मधुर स्वर में गाता है; उसी प्रकार ऐसे व्यक्ति की गायन आदि कलाओं की प्रवीणता दूसरों के कल्याण के लिए अथवा आत्मोन्नति के लिए नहीं होती; इसलिए वह निरर्थक है।) १७२ अस्तु। श्रीराम तो जगद्-वंद्य हैं। उनके (सच्चे) स्वरूप को नहीं जानते हुए (वे) समस्त ब्राह्मण श्रीराम को छोड़कर भाग गये। १७३ अब बहुत बोलना पर्याप्त हो गया। (मुख्य बात यह है कि) वाल्मीकि ऋषि की वन्दना करके श्रीराम चित्रकूट छोड़कर दण्डक-वन (की ओर) चल दिये। १७४

श्रीराम-विजय (नामक यह) ग्रन्थ तो प्रचण्ड है। यहाँ उसका अयोध्या-काण्ड समाप्त हो गया। अब आगे अति अद्भुत एवं सुरस

अयोध्याकांड। आतां अरण्यकांड इक्षुदंड। अति अपूर्व सुरस पुढें। ७५ रामविजय ग्रंथ क्षीरसागर। दृष्टांतरत्नें निघती अपार। संत श्रोते निर्जर। अंगीकारोत सर्वदा। ७६ ब्रह्मानंदा रविकुलभूषणा। श्रीधरवरदा सीताजीवना। पुढें अरण्यकांडरचना। बोलवीं आतां येथोनि। ७७ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। द्वादशाध्याय गोड हा। १७८ ॥ श्रीरामचंद्रार्पणमस्तु ॥

॥ इति अयोध्या काण्ड ॥

अरण्य-काण्ड-रूपी ईक्षु-दण्ड (ईख का रसदार डंठल) है। १७५ श्रीराम-विजय ग्रन्थ तो क्षीर-सागर है। उसमें से अनगिनत दृष्टान्त-रूपी रत्न निकले हैं। सन्त, श्रोता और देवता सदा उनका स्वीकार करें। १७६ हे (गुरु) ब्रह्मानन्द ! हे रविकुलभूषण ! श्रीधर कवि के वरदाता ! हे जानकी-जीवन श्रीराम ! अब यहाँ से आगे अरण्य-काण्ड की रचना (कथा मेरे द्वारा कराइए) कहलवाइए—कथा कहने के लिए मुझे प्रेरित कीजिए। १७७ स्वस्ति। श्रीराम-विजय ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि-नाटक पर आधारित एवं उससे सम्मत है। चतुर श्रोता उसके इस मधुर बारहवें अध्याय का सदा श्रवण करें। १७८ । श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ।

॥ इति अयोध्या काण्ड ॥

अध्याय—१३

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

संस्कृतापासोनि केवळ। झाली प्राकृत भाषा रसाळ। कीं स्वातीजळापासोनि मुक्ताफळ। अति तेजाळ निपजे पैं। १ चंद्राचे अंगीं निपजे चांदणें। कीं दिनकरापासाव जेवीं किरणें। कीं जंबुनदापासाव सोनें। बावनकसी निपजे पैं। २ कीं दुग्धापासोनि नवनीत। कीं अभ्यासापासोनि मति अद्भुत। कीं इक्षुदंडापासोनि निपजत। रसभरित शर्करा। ३ कीं पुष्पा-पासोनि परिमळ। कीं रंभेपासोनि कर्पूर शीतळ। मृगापासोनि परिमळ। मृगमद जेवीं निपजे पैं। ४ कथालक्षण सरितानाथ। साहित्यतरंग अपरिमित। प्रेमळ लहरिया अद्भुत। ऐक्यां येत परस्परें। ५ अमृताहून गोड अन्न। परी रुचि न ये शाकेविण। दृष्टांताविण ग्रंथ संपूर्ण। रसीं न चढे सर्वथा। ६ रत्नखाणी

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। संस्कृत भाषा से विशुद्ध, रस-भरी अर्थात् मधुर प्राकृत भाषा उत्पन्न हो गयी। अथवा (यह इस प्रकार हो गया) जिस प्रकार स्वाति (नक्षत्र के वर्षा-) जल से बहुत तेजस्वी मोती उत्पन्न होता है, अथवा चन्द्र के अंग में से चाँदनी उत्पन्न होती है, अथवा सूर्य से किरणें निकलती हैं, अथवा जाम्बुनद (नामक विशिष्ट प्रकार के) सुवर्ण से शुद्ध सोना तैयार होता है, अथवा दूध से मक्खन तैयार होता है, अथवा (शास्त्रों के) अध्ययन से अद्भुत बुद्धि (विकसित) होती है, अथवा ईख से रसदार अर्थात् मधुर शक्कर तैयार होती है, अथवा फूल से सुगन्ध निकलती है, अथवा केले से शीतल कपूर तैयार होता है, अथवा (कस्तूरी-) मृग से सुगन्ध-युक्त कस्तूरी पैदा होती है। १-४ कथा का सौन्दर्य तो समुद्र है; (उसमें) साहित्य (कला कृति रूपी) अनगिनत तरगें होती हैं। (उसमें) प्रेममय अद्भुत लहरें एक-दूसरी के साथ एकात्मता को प्राप्त हो जाती हैं। ५ (कोई) अन्न अमृत से (भी) मधुर है; परन्तु बिना साग-तरकारी के (उसमें) ज़ायका (स्वाद) नहीं आ जाता; उसी प्रकार बिना दृष्टान्त अलंकारों के, सम्पूर्ण ग्रन्थ रसात्मकता (की अवस्था) तक बिलकुल नहीं चढ़ पाता—अर्थात् वह रसात्मक नहीं बन पाता। ६ जिस प्रकार मेरु पर्वत के पठार में रत्नों की खानें हैं, उसी प्रकार कथाओं में दृष्टान्त होते हैं। (दृष्टान्तों

मेरुपाठारीं। तैसे दृष्टांत कथामाझारीं। कमलावांचोनि सरोवरीं। शोभा न ये सर्वथा। ७ अलंकारें शोभे नितंबिनी। कीं गगन मंडित उडुगणीं। कीं मानससरोवरा हंसांवांचोनी। शोभा न येचि सर्वथा। ८ कीं मननाविण श्रवण। कीं सद्भावाविण कीर्तन। कीं क्षेत्र जैसें बीजाविण। दृष्टांताविण ग्रंथ तैसा। ९ कीं सभा जैसी पंडितांविण। कीं सुस्वराविण गायन। कीं शुचीविण तपाचरण। दृष्टांताविण ग्रंथ तैसा। १० कीं विरक्तीविण ज्ञान। कीं प्रेमाविण व्यर्थ भजन। कीं दानाविण भाग्य पूर्ण। दृष्टांताविण ग्रंथ तैसा। ११ अरण्यकांड अरण्यांत। दृष्टांतवृक्ष विराजत। तेथें आनंदफळें पंडित। सदा सेवोत स्वानंदें। १२ आतां अरण्यकांड वसंतवन। तेथें वाग्देवी चिच्छक्ति पूर्ण। क्रीडा करीत उल्हासेंकरून। संतसज्जन परिसा तें। १३ असो चित्रकूटाहूनि अयोध्यानाथ। सीतासौमित्रांसमवेत। निजभक्तांसी उद्धारित। जगन्नाथ

से कथा की शोभा वृद्धिगत हो जाती है।) बिना कमल (पुष्पों) के सरोवर में बिलकुल शोभा नहीं आती। ७ अथवा (सुन्दर नितम्बों वाली अर्थात्) रूपवती (भी) आभूषणों से शोभायमान होती है; अथवा तारों के समूह से आकाश सुशोभित होता है। अथवा बिना हंसों के मानसरोवर में बिलकुल शोभा नहीं आती। ८ अथवा बिना मनन के जिस प्रकार श्रवण व्यर्थ होता है; अथवा बिना सद्भाव अर्थात् उत्कट श्रद्धा के, कीर्तन निरर्थक होता है; अथवा बिना बीज के, खेत शोभाहीन होता है; उसी प्रकार बिना दृष्टान्तों के ग्रन्थ (असुन्दर) होता है। ९ अथवा बिना पंडितों के सभा, अथवा बिना मधुर स्वरों के गायन, अथवा बिना शुद्धि के तपश्चर्या अर्थहीन होती है, उसी प्रकार बिना दृष्टान्तों के ग्रन्थ (निरर्थक) होता है। १० अथवा बिना विरक्ति के ज्ञान, अथवा बिना प्रेम (भक्ति) के (भगवद्-) भजन व्यर्थ होता है; अथवा बिना दान के भाग्य (से प्राप्त धन-सम्पदा) पूर्णतः व्यर्थ होता है, उसी प्रकार बिना दृष्टान्तों के ग्रन्थ (व्यर्थ) होता है। ११ (इस रामकथात्मक ग्रन्थ के) अरण्य-काण्ड रूपी अरण्य में दृष्टान्त रूपी वृक्ष विराजमान हैं। वहाँ पंडित जन आनन्द रूपी फलों का सदा आत्मानन्द-पूर्वक सेवन करें। १२ अब अरण्य-काण्ड रूपी वसन्त (ऋतु के आगमन से सुशोभित) -वन में वाणी की देवी चिद्शक्ति सरस्वती उल्लास-पूर्वक सफल क्रीड़ा कर रही है। हे सन्त-सज्जनो, उस (क्रीड़ा) का श्रवण कीजिए। १३ अस्तु।

जातसे । १४ दक्षिणपंथें जनकजामात । सकळ ऋषींचे आश्रम पहात । त्रयोदश वर्षेंपर्यंत । रघुनाथ क्रमीत ऐसेंचि । १५ कोठें वर्ष कोठें अयन । कोठें मास कोठें पक्ष पूर्ण । कोठें एक रात्र पक्ष त्रिदिन । कोठें पंच रात्री क्रमियेल्या । १६ मग अत्रीचिया आश्रमाप्रती । येता झाला जनकजापती । तों देखिली दत्तात्रेयमूर्ती । अविनाशस्थिती जयाची । १७ सह्याद्रीवरी श्रीराम । अज अजित मेघश्याम । श्रीदत्तात्रेय पूर्ण ब्रह्म । देत क्षेम

अपने भक्तों का उद्धार करते हुए, जगन्नाथ श्रीराम सीता और लक्ष्मण-सहित चित्रकूट से आगे चले गये । १४ दक्षिण (की ओर जानेवाले) मार्ग में जनक जामाता श्रीराम समस्त ऋषियों के आश्रमों को देखते हुए तेरह वर्षों तक आगे ऐसे ही मार्ग-क्रमण करते जा रहे थे । १५ उन्होंने कहीं एक वर्ष, तो कहीं अर्ध वर्ष, (कहीं) एक महीना, (तो कहीं) पूरा पक्ष (पखवारा),(कहीं) एक (दिन का एक पक्ष अर्थात्) रात, (कहीं) तीन दिन, तो कहीं पाँच रातें बितायीं । १६ फिर श्रीराम अत्रि ऋषि के आश्रम आ गये, तो उन्होंने (वहाँ)मूर्तिमान श्रीदत्तात्रेय को देखा, जिनकी स्थिति अविनाशी है, जो अमर हैं । १७ सह्य पर्वत पर अनादि, अजित घनश्याम श्रीराम ने पूर्णब्रह्म-रूप दत्तात्रेय की मूर्ति को क्षेमालिंगन किया । १८ §

---

§ टिप्पणी:—उत्तर भारत में प्रचलित मान्यता के अनुसार अत्रि-अनसूया का आश्रम चित्रकूट (जिला बाँदा, उत्तरप्रदेश) के समीप है । परन्तु महाराष्ट्र के कवियों के अनुसार अत्रि ऋषि का आश्रम सह्याद्रि की एक शाखा (जो विदर्भ में पश्चिम-पूर्व दिशा में फैली हुई है) में बसे हुए माहूर (मूल रूप मातापुर, जिला यवतमाल) नामक ग्राम में है । यह स्थान यवतमाल के दक्षिण में लगभग चौंसठ किलोमीटर दूर है ।

दत्तात्रेय अत्रि-अनसूया के सुपुत्र हैं । पौराणिक कथा के अनुसार, एक बार नारद से अनसूया के सतीत्व का गौरव-गान सुनने पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव की पत्नियों को उसके प्रति असूया (डाह) उत्पन्न हुई । उन्होंने इन देवों को अनसूया का सत्त्व हरण करने की प्रेरणा दी । वे अतिथियों के रूप में उसके आश्रम में गये । अनसूया अतिथि देवों की सेवा में तत्पर थी । अतिथियों ने कहा कि वह अनावृत होकर उन्हें भोजन कराये । तब अनसूया ने पति के चरण-तीर्थ से तीनों पर प्रोक्षण किया । तत्क्षण वे तीनों देव शिशु रूप में परिवर्तित हो गये । तत्पश्चात् अनसूया ने अनावृत होकर इन बालकों को

तयातें । १८ क्षीरसागरींच्या लहरिया । परस्परें समरसोनियां । कीं जान्हवी आणि मित्रतनया । एके ठायीं मिळताती । १९ कीं नानावर्ण गाई । परी दुग्धास दुजा वर्ण नाहीं । तैसा जनकाचा जांवई । आणि अत्रितनय मिसळले । २० अवतारही उदंड होती । सवेंचि मागुती विलया जाती । तैसी नव्हे श्रीदत्तात्रेयमूर्ती । नाश कल्पांतीं असेना । २१ पूर्णब्रह्म मुसावलें । तें हें दत्तात्रेयरूप वोतिलें । ज्याचे विलोकनमात्रें तरले । जीव अपार त्रिभुवनीं । २२ सकळ सिद्ध ऋषी निर्जर । विधि वाचस्पति शचीवर । दत्तात्रेयदर्शना साचार । त्रिकाळ येती निजभावें । २३ अद्यापि सह्याद्रीपर्वतीं । देवांचे भार उतरती । सर्व ब्रह्मांडींचीं दैवतें धांवती । अवधूतमूर्ती

जिस प्रकार क्षीर-सागर की लहरें एक-दूसरी से एकरस होकर मिल जाती हैं; अथवा गंगा और सूर्यकन्या यमुना एक स्थान पर (एकात्म हो) मिलती हैं; अथवा गायें अनेकानेक रंगों की होती हैं, फिर भी उनके दूध का (एक ही वर्ण-रंग होता है,) कोई दूसरा वर्ण नहीं होता; उसी प्रकार जनक-जामाता श्रीराम और अत्रि ऋषि के पुत्र श्रीदत्तात्रेय एक-दूसरे में (एकरस होकर) मिल गये। १९-२० अवतार (-पुरुष) तो अनेक (आविर्भूत) होते हैं, वे बाद में स्वयं विलय को भी प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु श्रीदत्तात्रेय ऐसे नहीं हैं; उनका नाश कल्पान्त में (तक) नहीं होगा। २१ (जान पड़ता है,) पूर्णब्रह्म साँचे में ढल गया—वही यह दत्तात्रेय-रूप बन गया, जिसके देखने मात्र से त्रिभुवन में अनगिनत जीव (भवसागर को) तैर कर पार हो गये—अर्थात् उनका उद्धार हो गया। २२ समस्त सिद्ध, ऋषि, देव, ब्रह्मा, इन्द्र सचमुच (प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और संध्याकाल इन) तीनों समय श्रीदत्तात्रेय के दर्शन के लिए भक्तिभाव-पूर्वक आया करते हैं। २३ अब भी सह्य पर्वत पर देवों के समूह (देवलोक से) उतरते हैं;

स्तनपान कराया। ये बालक उसी के पास रहे। तत्पश्चात् सावित्री, रमा और उमा पर दया करके अनसूया ने उन्हें पूर्व रूप प्रदान किया। इन तीनों देवों के अंशों से अनसूया के चंद्र, दत्तात्रेय और दुर्वासा नामक पुत्र उत्पन्न हो गये। परवर्ती मान्यता के अनुसार इन तीनों देवों के प्रतीक स्वरूप दत्तात्रेय त्रिमुख बन गये। महाराष्ट्र में त्रिमुख दत्तायेय की उपासना ही प्रचलित है। दत्तात्रेय योगिराज हैं। वे सब बन्धनों से मुक्त हैं—इसलिए वे 'दिगम्बर' माने गये हैं।

पहावया । २४ घेतां दत्तात्रेयदर्शन । देवांसी सामर्थ्य चढे पूर्ण । मग ते इतरांसी होत प्रसन्न । वरदान द्यावयातें । २५ ज्यासी प्रयागीं प्रातःस्नान । पांचाळेश्वरीं अनुष्ठान । करवीर-पुरांत येऊन । भिक्षाटण माध्यान्हीं । २६ अस्ता जातां वासरमणी । सह्याद्रीस जाती परतोनी । तों देवांचे भार कर जोडोनी । वाट पाहती अगोदर । २७ दृष्टीं देखतां दिगंबर । एकचि होय जयजयकार । असंख्य वाद्यांचे गजर । अद्यापि भक्त ऐकती । २८ दत्तात्रेयभक्त देखतां दृष्टीं । सकळ दैवतें जीं जीं सृष्टीं । त्याचे पायीं घालिती मिठी । पुढें ठाकती कर जोडूनि । २९ करितां दत्तात्रेयस्मरण । भूतप्रेतें पळती उठोन । मग उपासकांसी विघ्न । कवण करूं शकेल । ३० असो ऐसा स्वामी अवधूत । जो अत्रीचा महापुण्यपर्वत । तयासी वंदोनि रघुनाथ । अत्रिदर्शन घेतलें । ३१ तंव ते अनसूया

समस्त ब्रह्माण्ड के देवता अवधूत-मूर्ति दत्तात्रेय के दर्शन के लिए दौड़ते आते हैं । २४ दत्तात्रेय के दर्शन करने पर देवों में पूरी सामर्थ्य चढ़ आती है—अर्थात् विकसित हो जाती है; अनन्तर वे वर देने के लिए दूसरों पर प्रसन्न हो जाते हैं । २५ जिनका प्रातःस्नान प्रयाग में होता है और पांचालेश्वर में अनुष्ठान होता है, वे दत्तात्रेय करवीरपुर (अर्थात् महाराष्ट्र के कोल्हापुर नामक नगर) में आकर दुपहर के समय भिक्षा के लिए भ्रमण करते हैं; (और) सूर्य के अस्त-गत होते समय सह्याद्रि पर (स्थित अपने स्थान) लौट जाते हैं; तो इससे पहले से ही देवों के समूह हाथ जोड़े हुए उनकी प्रतीक्षा करते रहते हैं । २६-२७ (उनके द्वारा) दिगम्बर दत्तात्रेय को आँखों से देखते ही, बहुत जय-जयकार हो जाता है । अब भी भक्तजन (वहाँ) असंख्य वाद्यों के गर्जन को सुना करते हैं । २८ दत्तात्रेय-भक्त को आँखों से देखते ही सृष्टि में जो-जो देवता हैं, वे समस्त उसके पाँवों को पकड़ लेते हैं और (फिर) हाथ जोड़कर (उसके) सामने खड़े हो जाते हैं । २९ (किसी के द्वारा) दत्तात्रेय का स्मरण करते ही, (उसे बाधा पहुँचाने-वाले) भूत-प्रेत उठकर भाग जाते हैं, तो कौन (उनके) उपासक को विघ्न (-बाधा) पहुँचा पाएगा ? ३० अस्तु । ऐसे (महिमामय) हैं स्वामी अवधूत (=दत्तात्रेय), जो (मानो) अत्रि ऋषि द्वारा किये महापुण्य के पर्वत ही हैं । उनकी वन्दना करके श्रीराम ने अत्रि ऋषि के दर्शन किये । ३१ तब सीता और राम ने (उनकी) अनसूया (नामक)

सती । सीता राम तियेसी वंदिती । सीतेसी आलिंगूनि प्रीतीं । वर देती जाहली । ३२ आपुले निढळींचें कुंकुम काढिलें । तें सीतेचे कपाळीं लाविलें । अमल वस्त्र नेसविलें । जें न मळे न विटे कल्पांतीं । ३३ गळां घातला सुमनहार । जो कधीं न सुके साचार । जैसा नित्य नूतन दिनकर । तेज अणुमात्र ढळेना । ३४ सीतेचें सुवास शरीर । अनसूया करी निरंतर । ज्या सुवासें अंबर । परिपूर्ण होय पैं । ३५ भेटतां राक्षस दुर्धर । सीतेसी भय न वाटे अणुमात्र । ऐसा दिधला निर्भय वर । अनसूयेनें तेधवां । ३६ सवेंचि रेणुकेचें दर्शन । घेत रविकुळभूषण । जिच्या वरें भार्गवें पूर्ण । निःक्षत्री केली

साध्वी (पत्नी) का वन्दन किया, तो उसने सीता को गले लगाकर वर दिया । ३२ उसने अपने भाल से कुंकुम निकाल लिया और सीता के भाल पर लगा दिया । (तदनन्तर) उसे ऐसा स्वच्छ वस्त्र पहनवा दिया, जो कल्पान्त (तक) में न मैला हो जाएगा और न बदरंग । ३३ उसके (सीता के) गले में (ऐसी) पुष्पमाला पहनायी, जो सचमुच कभी नहीं सूख जाएगी । वह ऐसी नित्य नयी प्रतीत होती थी, और उसका तेज ऐसा अक्षय था, जैसे सूर्य नित्य नूतन होता है और उसका तेज (कभी) अणु-भर भी नहीं घटता । ३४ अनसूया ने (एक अद्भुत अंगराग लगाकर) सीता के शरीर को निरन्तर सुगन्धि-युक्त कर दिया; उसकी सुगन्ध से आकाश परिपूर्ण भरा-पूरा हो जाता है । ३५ तब अनसूया ने उसे ऐसा निर्भयता का वर दिया कि दुर्धर राक्षसों के मिलने पर भी सीता को अणु मात्र तक भय नहीं अनुभव हो जाए । ३६

(इसके) साथ ही रवि-कुल-भूषण श्रीराम ने (उस) रेणुका (देवी) के दर्शन किये, जिसके वर से (उसके पुत्र भार्गव-) परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रियों से पूर्णतः रहित कर डाला । ३७ †

† टिप्पणी : वस्तुतः रेणुका कान्यकुब्ज के राजा रेणु की कन्या, जमदग्नि ऋषि की भार्या एवं परशुराम की माता थी । क्षत्रियराजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन ने क्रूरता से जमदग्नि का वध किया । उस समय प्रतिकार में संलग्न ऋषि-पत्नी रेणुका पर भी सहस्रार्जुन ने इक्कीस बार आघात किया, जिससे उसकी देह में इक्कीस घाव हो गये। उस समय उसने कहा—मेरा लाड़ला (परशुराम) पृथ्वी को इक्कीस बार निःक्षत्रिय कर देगा।

रेणुका को महाराष्ट्र में मूलपीठवासिनी देवी माना जाता है । वह पार्वती का ही रूप है । रेणुका और कौसल्या की अभिन्नता समझी जाती

धरित्री । ३७ ते मूळपीठनिवासिनी शक्ती । तीस वंदी अयोध्यापती । ते श्रीरामाची मूळप्रकृती । आदिमाया निर्धारें । ३८ ते प्रथमअवताराची जननी । तीच कौसल्या झाली दुसरेनी । श्रीराम स्तवी म्हणोनी । ऐका श्रवणीं सादर । ३९ जय जय आदिकुमारिके । जय जय मूळपीठ-नायिके । सकळ कल्याणसौभाग्यदायिके । जगदंबिके मूळ-प्रकृति । ४० जय जय भार्गवप्रियभवानी । भवनाशके भक्त-वरदायिनी । सुभद्रकारके हिमनगनंदिनी । त्रिपुरसुंदरी महा-माये । ४१ जय जय आनंदकासारमराळिके । जय जय चातुर्यचंपककळिके । जय जय शुंभनिशुंभदैत्यांतके । सर्वव्यापके मृडानि । ४२ जय जय शिवमानसकनकलतिके । पद्मनयने दुरितवनपावके । जय जय त्रिविधतापमोचके । निजजनपाळके

वह मूलपीठ-निवासिनी शक्तिदेवी है। श्रीराम ने उसकी वन्दना की। वह तो (आदिपुरुष) श्रीराम की मूल प्रकृति (-स्वरूपा) एवं निश्चय ही आदिमाया है। ३८ वह (भगवान् के) पहले (पूर्ववर्ती) अवतार की जननी थी; वही (आगे चलकर) दूसरे समय कौसल्या (के रूप में अवतीर्ण) हो गयी। श्रीराम ने उसका स्तवन किया। इसलिए उस (स्तुति) का आदरपूर्वक श्रवण करें। ३९ हे आदि-कुमारिका, तुम्हारी जय हो, जय हो ! हे मूल-पीठ की अधिनायिका, तुम्हारी जय हो, जय हो! सबको कल्याण और सौभाग्य प्रदान करने वाली हे जगदम्बा, हे मूलप्रकृति, तुम्हारी जय हो, जय हो ! ४० हे भार्गवों की प्रिय भवानी, हे संसार (के दुखों) का नाश करनेवाली और भक्तों को वरदान देनेवाली, हे सुभद्रकारिणी पार्वती, हे त्रिपुरसुन्दरी महामाया ! तुम्हारी जय हो। ४१ आनन्द के सरोवर में विहार करने-वाली हंसी ! तुम्हारी जय हो, जय हो ! हे चातुर्य-चम्पा की कलिका ! तुम्हारी जय हो, जय हो। शुंभ और निशुंभ नामक दैत्यों को मार डालनेवाली हे सर्वव्यापिनी पार्वती तुम्हारी जय हो, जय हो। ४२ शिवजी के मन में स्थित हे सुवर्ण-लतिका, हे कमल-नयना, हे दुरित (पाप) रूपी वन को जला डालनेवाली अग्नि ! तुम्हारी जय हो, जय हो। (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—इन) तीनों प्रकार के

है। माहूर के निकट सह्याद्रि की उपर्युक्त शाखा दो उपशाखाओं में विभक्त हो जाती है। एक उपशाखा पर अनसूया आश्रम है, तो दूसरी पर रेणुका का मन्दिर है। तलहटी में दत्तात्रेय का शयन-स्थान है।

अन्नपूर्णे । ४३ तव मुखकमलशोभा देखोनी । इंदुबिंब गेलें विरोनी । ब्रह्मादिकें बाळें तीन्ही । स्वानंदसदनीं निजविसी । ४४ जीव शिव दोन्ही बाळकें । अंबे तुवां निर्मिलीं कौतुकें । जीव तुझें स्वरूप नोळखे । म्हणोनि पडिला आवर्तीं । ४५ शिव तुझे स्मरणीं सावचित्त । म्हणोनि तो नित्यमुक्त । ब्रह्मानंदपद हातां येत । तुझे कृपेनें जननीये । ४६ मेळवूनि पंचभूतांचा मेळ । तुवां रचिला ब्रह्मांडगोळ । इच्छा परततां तत्काळ । क्षणांत निर्मूळ करिसी तूं । ४७ ऐसें स्तवोनि चापपाणी । सह्याद्रीवरी दिन त्रय क्रमोनी । अत्रि ऋषीची आज्ञा घेऊनी । दक्षिणपंथें चालिले । ४८ अत्रि म्हणे गा रघुपती । या वनीं राक्षस बहु वसती । जतन करीं सीता सती । क्षणही परती न कीजे । ४९ अवश्य म्हणोनि जलजनेत्र । पुढें चालिला स्मरारिमित्र । पाठीसीं भोगींद्रअवतार । वीर सौमित्र

तापों से मुक्त कर देनेवाली और अपने भक्त-जनों का पालन करनेवाली हे अन्नपूर्णा ! तुम्हारी जय हो, जय हो । ४३ तुम्हारे मुख (-चन्द्र) की सुन्दरता को देखकर (आकाशस्थ) चन्द्र-बिम्ब (-मुख) निस्तेज हो गया। ब्रह्मा इत्यादि तीनों (अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनों) बालकों को तुम आत्मानन्द रूपी सदन में सुला देती हो । ४४ हे अम्बा ! जीव और शिव—इन दोनों बालकों को तुमने विनोद में उत्पन्न किया । परन्तु जीव तुम्हारे स्वरूप को नहीं पहचानता, इसलिए वह (जन्म-मृत्यु के) भँवर में पड़ (फँस) गया । ४५ (परन्तु तुम्हारा दूसरा बालक) शिव तुम्हारे स्मरण में अवधानपूर्वक मन लगाये रहता है; अतः वह तो (सांसारिक बन्धनों से) सदा मुक्त है । हे जननी ! तुम्हारी कृपा (के बल) से ब्रह्मानन्द पद हाथ आता है । ४६ (पृथ्वी, जल, तेज, आकाश और वायु—इन) पाँच महातत्त्वों को समूह में एकत्रित करके तुमने (इस) ब्रह्माण्ड-गोल का निर्माण किया । (परन्तु) इच्छा के लौटते ही—अर्थात् इच्छा होते ही तुम (उसे) तत्काल क्षण में निर्मूल कर डालती हो—उसका विनाश कर देती हो । ४७

इस प्रकार (देवी का) स्तवन करके चापपाणि श्रीराम सह्याद्रि पर तीन दिन व्यतीत करके, अत्रि ऋषि की आज्ञा लेते हुए दक्षिण दिशा के मार्ग पर चल दिये । ४८ (उनके जाने से पहले) अत्रि ऋषि ने कहा—'हे रघुपति ! इस वन में बहुत राक्षस रहते हैं, (अतः) सती सीता की रक्षा कीजिए; उसे क्षण भर (भी) अपने से दूर न कीजिए ।' ४९

जातसे । ५० त्यामागें मंगळभगिनी । मंगळकारक विश्वजननी स्थिर स्थिर हंसगमनी । मंगळजननीवरी चाले । ५१ दुरावतां भूमिकन्या । सौमित्र म्हणे राजीवनयना । जानकी मागें राहिली मनमोहना । उभा राहें क्षणभरी । ५२ वचन ऐकतां जगन्नायक । उभा राहिला क्षण एक । परम उदार सुहास्य-मुख । परतोनि पाहे सीतेकडे । ५३ तंव ते सुकुमार जनक-बाळी । हळू हळू आली जवळी । जेवीं सारासारविचार नेहाळी । आत्मसुखाची पाविजे । ५४ असो ते पतिव्रतामंडन । विलोकी श्रीरामाचें वदन। जयावरून कोटी मदन । ओंवाळून टाकावे । ५५ परम सलज्ज होऊन । केलें किंचित हास्यवदन । जेणें निवती राघवकर्ण । ऐसें वचन बोलली । ५६ म्हणे जगद्वंद्या रविकुळ-भूषणा । विषकंठहृदय-चिन्मयलोचना । चरणीं चालतां रघुनंदना । बहुत श्रम पावलेती । ५७ परम सुकुमार लक्ष्मण ।

'अवश्य' —कहकर (कामदेव के शत्रु) शिवजी के मित्र कमलनयन श्रीराम आगे चल दिये । उनके पीछे-पीछे भोगीन्द्र शेष के अवतार वीर लक्ष्मण चल रहे थे । ५० उनके पीछे मंगल (-ग्रह) की भगिनी, मंगल (=कल्याण) करनेवाली, विश्व-जननी, स्थिर (मनोवृत्ति वाली) हंस-गामिनी सीता भूमि पर चल रही थी । ५१ (एक समय) भूमिकन्या सीता के (कुछ) दूर रहने पर लक्ष्मण ने कहा—'हे कमल-नयन (श्रीराम)! हे मनमोहन ! जानकी पीछे रह गयीं; (अतः) क्षण भर (रुककर) खड़े रह जाइए'। ५२ (यह) बात सुनकर जगन्नायक श्रीराम एक क्षण भर (रुककर) खड़े रह गये । उन परम उदार सुहास्य-वदन श्रीराम ने मुड़कर सीता की ओर देखा । ५३ तब वह सुकुमार जनक-कन्या सीता (श्रीराम के) निकट हौले-हौले उसी प्रकार आ गयी, जिस प्रकार सार-असार की परख करनेवाला विवेक आत्म-सुख की कृपा (आहिस्ता-आहिस्ता) प्राप्त करता है । ५४ अस्तु । पतिव्रता नारियों के लिए ललाम-भूत उस सीता ने श्रीराम के उस मुख को देखा, जिसपर करोड़ों कामदेव न्योछावर कर दिये जाएँ । ५५ अतिशय लज्जित होकर वह किंचित् हास्य-वदन हो गयी—अर्थात् मुस्कुरा दी और वह ऐसी बात बोली, जिससे श्रीराम के कान तृप्त हो गये । ५६ उसने कहा—'हे जगद्-वंद्य रघु-कुल-भूषण ! हे शिवजी के हृदय के विशुद्ध ज्ञानमय नेत्र ! हे रघु-नन्दन ! पैदल चलते हुए आप बहुत कष्ट या थकान को प्राप्त हो गये (हैं) । ५७ अति सुकुमार लक्ष्मण (भी) पैदल चलते हुए थकावट को

चरणीं चालतां पावला शीण । वृक्षच्छायेसी जाऊन । गुणसागरा बैसावें । ५८ रातोत्पल सुकुमार । त्याहूनि पदें तुमचीं अरुवार । अरुणसंध्यारागमित्र । चरणतळवे सुरवाडले । ५९ जें जान्हवीचें जन्मस्थान । तें मी निजकेशीं झाडीन । शीतोदकें धुवोन । मग चुरीन क्षणभरी । ६० आजिचें पेणें किती दूर । आहे हें न कळे साचार । ऐकतां पद्माक्षीचें उत्तर । द्रवला रघुवीर अंतरीं । ६१ म्हणे सुकुमार चंपककळी । चरणीं चालतां बहु श्रमली । ऐसें बोलतां नेत्रकमळीं । अश्रु आले राघवाचे । ६२ मग आपुले हस्तेंकरून । कुरवाळिलें सीतेचें वदन । मस्तकीं हस्त ठेवून । श्रम संपूर्ण हरियेला । ६३ परम सुखावली जनकनंदिनी । श्रीरामाचीं पदें झाडूनी । मग आपुल्या मुक्त-केशेंकरूनी । प्रक्षाळूनि चरण चुरीतसे । ६४ मग उठोनि चालिला रघुवीर । पाठीसीं उभा भूधरावतार । त्याचे मागें जनकजा सुंदर । हंसगती चमकतसे । ६५ वनचरें वैरभाव

प्राप्त हो गये (हैं) । इसलिए हे गुणसागर ! वृक्ष की छाया में जाकर बैठ जाएँ । ५८ रक्त (= लाल) कमल सुकोमल होते हैं । आपके पाँव उनसे (भी अधिक) कोमल हैं । लाल रंग के विचार से आपके चरणों के तलुवे अरुणकाल और संध्याकाल के मित्र बनकर सुखपूर्वक रहे हैं । ५९ जाह्नवी अर्थात् गंगा का जो जन्म-स्थान है, आपके उस घुटने को मैं अपने बालों से झाड़कर साफ़ करूँगी; ठण्डे जल से धो लूँगी और क्षण-भर उन्हें दबा दूँगी । ६० आज की मंज़िल कितनी दूर है ? —सचमुच यह समझ में नहीं आता ।' कमल-नयना सीता का (यह) उत्तर (अर्थात् बात) सुनकर श्रीराम मन में द्रवित हो गये । ६१ उन्होंने कहा— ' हे सुकोमल चम्पा-कलिका ! पैदल चलते हुए तुम बहुत थक गयी (हो) ।' ऐसा कहते हुए श्रीराम के कमल-से नेत्रों में आँसू आ गये । ६२ फिर उन्होंने अपने हाथ से सीता का मुख सहेल लिया और उसके सिर पर हाथ रखकर (उसके प्रभाव से उसकी) थकावट को पूर्णतः दूर कर लिया । ६३ इससे सीता अत्यधिक सुख को प्राप्त हो गयी । श्रीराम के पाँवों को अपने खुले बालों से झाड़कर अर्थात् पोंछकर तथा (पानी से साफ़) धोकर सीता उनके पाँव दबाती रही । ६४ अनन्तर श्रीराम उठकर चल दिये; उनके पीछे लक्ष्मण थे; उनके पीछे हंसी की-सी गति से चलनेवाली सीता शोभायमान हो रही थी । ६५

(अब तक श्रीराम के प्रभाव से) वन्य प्राणी (पशु परस्पर) वैर-भाव का त्याग करके रहते थे; (परन्तु) वे (सहसा) मारे भय के

सांडोनी। होतीं तीं पळती भयेंकरूनी। विराध राक्षस ते क्षणीं। आला धांवून अकस्मात। ६६ महाभयानक विशाळ शरीर। खदिरांगार तैसे नेत्र। कपाळीं चर्चिला शेंदूर। बाबर-झोटी मोकळीया। ६७ जैसा अग्नीचा ओघ थोर। तैसी जिव्हा लवलवित बाहेर। काजळाचा पर्वत थोर। तैसें शरीर दिसतसे। ६८ गळां नरमुंडांच्या माळा। हातीं शूल ऊर्ध्व धरिला। सिंहगजवनचरांचा मेळा। टोंचिल्या माळा शूला-वरी। ६९ शतांचे शत ब्राह्मण। रगडी दाढेखालीं घालून। वाटेसीं लत्ताप्रहारेंकरून। वृक्ष पाडी समूळीं। ७० पुढें जातसे रघुनाथ। मागोनि विराध आला धांवत। जानकी धरूनि अकस्मात। जाता झाला ते वेळीं। ७१ जैसा गृहीं तस्कर रिघोनी। धनकुंभ जाय घेऊनी। कीं अकस्मात व्याघ्र येवोनी। नेत उचलोनि हरिणीतें। ७२ कीं होमशाळेंत रिघे श्वान। जाय चरुपात्र घेऊन। तैसा विराध दुर्जन। जात वेगें-करूनियां। ७३ करुणास्वरेंकरूनि देखा। जानकी म्हणे

भागने लगे। (क्योंकि) उस समय विराध राक्षस अचानक दौड़ता हुआ आ गया। ६६ उसका शरीर महाभयंकर और विशाल था। उसके नेत्र खैर के अंगारों-से थे। उसने भाल पर सिंदुर मला था। उसके मस्तक पर बालों के झोंटे खुले थे। ६७ जिस प्रकार आग का बड़ा प्रवाह (ज्वालाओं के रूप में) होता है, उसी प्रकार उस (राक्षस) की जीभ बाहर (की ओर) लपलपाती थी। (कहीं) काजल का (कोई) बड़ा पर्वत (बना) हो, वैसा उसका शरीर दिखायी दे रहा था। ६८ (उसके) गले में नर-मुण्डों की मालाएँ थीं। (उसने) हाथ में ऊपर की ओर नोक करके अर्थात् खड़ा शूल पकड़ रखा था। सिंह, हाथी (इत्यादि) जानवरों के समूह की मालाएँ (बनाकर) शूल में खोंसी हुई थीं। ६९ सैकड़ों के सैकड़ों ब्राह्मणों को डाढ़ों में डालकर वह रगड़ डालता था। रास्ते में वह लातों के आघात से पेड़ों को जड़ों सहित (उखाड़कर) ढहा देता था। ७० श्रीराम आगे चल रहे थे, तो पीछे से विराध दौड़ता हुआ आ गया। सहसा जानकी को पकड़कर वह उस समय चला गया। ७१ जिस प्रकार घर में चोर घुसकर धन से भरा कुम्भ ले गया हो, अथवा सहसा आकर बाघ हरिनी को उठाकर चला गया हो; अथवा होमशाला में कुत्ते ने प्रवेश किया हो, और वह चरु (प्रसाद) का पात्र ले गया हो, उसी प्रकार विराध वेगपूर्वक (वहाँ आकर सीता को उठाये हुए) चला

मित्रकुळटिळका । धांव धांव अयोध्यानायका । जगव्यापका दीनबंधो । ७४ परतोनि पाहे राजीवाक्ष । तों सघन लागले वनीं वृक्ष । नयनीं न दिसे प्रत्यक्ष । कोणीकडे गेला तो । ७५ क्षण न लागतां लक्ष्मण । धनुष्यासी योजिला अर्धचंद्र बाण । तत्काळ वृक्ष छेदून । केलें वन निर्मूळ । ७६ धनुष्य चढवोनि जनकजामातें । पाचारिलें तेव्हां विराधातें । जैसा मृगेंद्र महागजातें । तैसी लक्ष्मणें हांक फोडिली । ७७ अरे राक्षसा धरीं धीर । माझा बाण घटोद्भव थोर । तुझे आयुष्यसागराचें नीर । प्राशील आतां निर्धारें । ७८ महाव्याघ्राचा विभाग देख । कैसा नेऊन वांचेल जंबुक । आदित्याच्या कळा मशक । तोडील कैसा निजांगें । ७९ काळाचे हातींचा दंड अभंग । केवीं नेऊं शके झोटिंग । वासुकीचा विषदंत सवेग । दर्दुर केवीं पाडी पां । ८० विराध म्हणे तूं मानव धीट । गोष्टी सांगतोसी अचाट । तरी तुझें करीन पिष्ट । मुष्टिघातें आतांचि । ८१

गया । ७२-७३ देखिए, सीता करुण स्वर में बोली (चिल्लायी) —'हे सूर्य-कुल-तिलक (श्रीराम) ! हे अयोध्या-नायक ! हे जगत्-व्यापी ! हे दीन-बन्धु (श्रीराम) ! दौड़ो ! दौड़ो !' ७४ कमल-नयन श्रीराम ने मुड़कर देखा, तो (दिखाई दिया कि वहाँ) वन में घने वृक्ष लगे हैं, उन्हें आँखों से प्रत्यक्ष यह नहीं दिखाई दे रहा था कि वह (राक्षस) किस ओर गया है । ७५ (तब) क्षण न लगते ही लक्ष्मण ने धनुष पर अर्धचंद्र बाण नियोजित किया । उन्होंने उससे तत्काल वृक्षों को छेदकर बन को निर्मूल (अर्थात् जड़ों-सहित पूर्णतः नष्ट) कर डाला । ७६ तब श्रीराम ने धनुष को चढ़ाकर विराध को ललकार लिया, तो (इधर) लक्ष्मण ने उस प्रकार चिल्लाकर कहा जिस प्रकार मृगराज सिंह महान् हाथी को गरजकर ललकारता है । ७७ —'अरे राक्षस ! धीरज रख । मेरा बाण महान् अगस्त्य ऋषि है, जो तेरी आयु रूपी सागर के पानी का अब निश्चय ही प्राशन कर डालेगा । ७८ देख बड़े बाघ के भाग को ले जाकर सियार कैसे बच पायेगा ? मच्छड़ अपने अंग से सूर्य की कलाओं को कैसे तोड़ पाएगा ? ७९ पिशाच काल के हाथ से अभंग दण्ड कैसे ले जा पाएगा ? मेंढक वासुकी (नामक) नाग के बिष-भरे दाँत को झट से कैसे तोड़ पाएगा ?' ८० (यह सुनकर) विराध ने कहा— 'तू मनुष्य ढीठ होकर विलक्षण बातें कह रहा है । इसलिए मुष्टिघात से (घूँसा जमाकर) मैं अभी तुझे-चूर कर डालूँगा (पीस डालूँगा) ।' ८१ इस प्रकार कहकर

ऐसें राक्षस बोलून। जानकीस खालीं ठेवून। धांविन्नला पसरूनि वदन। रामसौमित्रांवरी तेधवां। ८२ करी धांवत्या वायूचें खंडण। ऐसें रामें सोडिले दोन बाण। त्यांहीं दोन्ही भुजा उडवून। गेले घेवोन निराळपंथें। ८३ सवेंचि सूर्य-मुखशरें। शिर छेदिलें कौसल्याकुमरें। विमानीं देव जय-जयकारें। पुष्पसंभार वर्षती। ८४ विराध पावला दिव्य शरीर। रामासीं विनवी जोडूनि कर। म्हणे मी गंधर्व तुंबर। नाम माझें रघुवीरा। ८५ गायन करावया वहिलें। यक्षपतीनें बोलाविलें। तंव म्यां मद्यपान केलें। भ्रांत झालें शरीर माझें। ८६ कंठीं न उमटतां स्वर। मग कुबेरें सोडिलें शापशस्त्र। म्हणे तूं होय निशाचर। महाघोर वनांतरीं। ८७ मग म्यां करुणा भाकितां थोर। उच्छाप बोलिला कुबेर। तुज वनीं वधील रघुवीर। तैं उद्धार होय तुझा। ८८ राघवा वर्षें दहा सहस्र। मी विचरें येथें रजनीचर। माझ्या भेणें दशशिर। चळचळां थोर कांपतसे। ८९ असो माझा उद्धार

राक्षस सीता को नीचे रखकर मुँह को बाए हुए तब राम-लक्ष्मण की ओर दौड़ा (लपका)। ८२ तो श्रीराम ने (उसकी ओर) दो ऐसे बाण चला दिये, जो दौड़ती वायु (तक) को भेद देते थे। (राक्षस की) दोनों भुजाओं को फाड़ डालकर उन्हें अपने साथ लिए हुए वे (बाण) आकाश-मार्ग में चले गये। ८३ साथ ही श्रीराम ने सूर्य-मुख शर से (उस राक्षस का) मस्तक काट डाला, तो विमानों में (बैठे हुए) देवों ने जय-जयकार-पूर्वक पुष्प-राशियाँ बरसा दीं। ८४ (श्रीराम के हाथों वध होने पर विराध) राक्षस दिव्य शरीर को प्राप्त हो गया। (अनन्तर) हाथ जोड़े उसने श्रीराम से विनती की। उसने कहा— 'हे रघुवीर, मैं गन्धर्व हूँ। मेरा नाम तुम्बर है। ८५ (एक समय) यक्षपति (कुबेर) ने मुझे गायन करने के लिए शीघ्रता-पूर्वक बुलाया, तब मैंने मद्यपान किया था। उससे मेरा शरीर भ्रान्त, अर्थात् विचलित हो गया था। ८६ (इस लिए जब मेरे) कण्ठ से स्वर नहीं निकल रहा था, तब कुबेर ने शाप रूपी शस्त्र चला दिया। उन्होंने कहा—महा भीषण वन में तू राक्षस हो जाएगा। ८७ फिर मेरे द्वारा दया की याचना करने पर कुबेर ने शाप-मोचन (का यह मार्ग) बता दिया—श्रीराम वन में तेरा वध करेंगे, तब तेरा उद्धार होगा। ८८ हे श्रीराम ! मैं राक्षस (के रूप में) यहाँ दस हजार वर्षों से विचरण कर रहा हूँ। मेरे भय से रावण (भी) थरथर बहुत

झाला येथें । म्हणोनि वंदिलें रघुनाथातें । विमानीं बैसोनि त्वरितें । स्वस्थानासी पावला । ९० विराध रामें मारितां वनीं । चहूंकडे पसरला कीर्तिध्वनि । जैसें तैल पडतां जीवनीं । जाय पसरोनि क्षणार्धें । ९१ कीं सुपात्रीं दान देतां निर्मळ । कीर्तीनें भरे भूमंडळ । कीं दुर्जनासी गुह्य केवळ । सांगतां पसरे चहूंकडे । ९२ कीं कुलवंतासी उपकार । करितां कीर्ति वाढे सविस्तर । कीं संतसमागमें अपार । दिव्य ज्ञान प्रकटे पैं ।९३ असो जानकी येऊन । वंदीं श्रीरामाचे चरण । म्हणे तुमचा पराक्रम आणि संधान । आजि म्यां दृष्टीं पाहिलें । ९४ विराध उद्धरूनि जातां । तेणें प्रार्थिलें रघुनाथा । स्वामी तव दर्शनीं आस्था । शरभंगऋषीनें धरिली असे । ९५ हंसविमान घेऊनि इंद्र । त्यासी मूळ आला साचार । परी तुज पाहिल्याविण मुनीश्वर । नव जायचि ब्रह्मपदा । ९६ केव्हां उगवेल

काँपता है । ८९ अस्तु ! मेरा यहाँ उद्धार हो गया । ' (यह) कहकर (विराध ने) श्रीराम का वन्दन किया और विमान में बैठकर वह अपने स्थान जा पहुँचा । ९० श्रीराम द्वारा वन में विराध को मार डालते ही उनकी कीर्ति-ध्वनि चारों ओर (उस प्रकार) फैल गयी, जिस प्रकार पानी में तेल पड़ जाते ही क्षणार्ध में (चारों ओर) फैल जाता है; अथवा (किसी द्वारा) सुयोग्य व्यक्ति को दान देने पर (दाता की) निर्मल कीर्ति से पृथ्वी भर जाती है; अथवा (किसी द्वारा) दुर्जन को गुह्य (रहस्य-भरी) बात कहने पर वह चारों ओर फैल जाती है; अथवा (किसी द्वारा) कुलीन व्यक्ति का उपकार करने पर (उपकार-कर्ता की) निर्मल कीर्ति विस्तार-पूर्वक बढ़ जाती है; अथवा सन्तों के समागम (संगति) से अपार दिव्य ज्ञान उत्पन्न हो जाता है । ९१-९३

अस्तु । सीता ने प्रेमपूर्वक आते हुए श्रीराम के चरणों का वन्दन किया और कहा—' आज मैंने आपका प्रताप और शर-सन्धान अपनी आँखों से देख लिया । ' ९४ उद्धार होने पर जाते हुए विराध ने श्रीराम से विनम्रता पूर्वक निवेदन किया— ' हे स्वामी ! शरभंग ऋषि ने आपके दर्शन की उत्कट इच्छा की है । ९५ हंस-विमान लिये हुए इन्द्र उसके लिए निमंत्रक के रूप में आ गये थे । परन्तु बिना आपके दर्शन किये (वे) मुनीश्वर ब्रह्मपद (प्राप्ति के लिए भी) जाने को तैयार नहीं हैं । ९६ चकोर इच्छा अर्थात् उत्कट अभिलाषा से प्रतीक्षा करते रहते

रोहिणीवर। म्हणोनि इच्छिती चकोर। तैसा दृष्टीं पहावया रामचंद्र। शरभंग ऋषि इच्छीतसे। ९७ ऐसें विराधें सांगून। मग तो गेला उद्धरून। त्याचे आश्रमासी रघुनंदन। जाता झाला ते काळीं। ९८ मग पुढें जात रघुनंदन। मागें येत जानकीचिद्रत्न। तिचे पाठीसीं लक्ष्मण। चहूंकडे पहातसे। ९९ आणीक येतील रजनीचर। म्हणोनि चापासी लाविला शर। बळिया सुमित्राकुमर। पाठिराखा येतसे। १०० तों वृक्षच्छायेसी क्षणक्षणां। ठायीं ठायीं बैसे पद्मनयना। श्वास टाकोनि म्हणे लक्ष्मणा। कां हो राहाना आजि कोठें। १०१ तों वृक्षातळीं सर्वसाक्षी। जो चराचरचित्त परीक्षी। पद्माक्षीचा मार्ग लक्षी। उभा राहूनि क्षणैक। २ पुढें शरभंगाच्या आश्रमा रघुवीर। येता झाला दयासागर। चहूंकडोन धांवले ऋषीश्वर। जैसे पूर गंगेचे। ३ सांडोनि समाधि तपाचरण। लगबगां धांवती ब्राह्मण। शरभंग निघे वेगेंकरून। रामदर्शना ते काळीं। ४ शरभंग महाऋषी। परी गलितकुष्ठ भरला

हैं कि चन्द्र का उदय कब होगा। उसी प्रकार शरभंग ऋषि अपनी दृष्टि (अर्थात् आँखों) से श्रीराम को देखने की अभिलाषा कर रहे हैं।' ९७ ऐसा कहते हुए उद्धार को प्राप्त होकर विराध चला गया (था; अतः उसके कथन के अनुसार आगे चलते हुए) श्रीराम उस समय उन (शरभंग) के आश्रम (की ओर) चल दिये। ९८ फिर श्रीराम आगे चल रहे थे, उनके पीछे (-पीछे) चिद्रत्न जानकी आ रही थी; उसके पीछे (-पीछे) लक्ष्मण (चलते हुए) चारों ओर देख रहे थे। ९९ और राक्षस आएँगे— इसलिए उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ा रक्खा था। इस प्रकार (श्रीराम और सीता के) रक्षक के रूप में बलवान लक्ष्मण (उनके पीछे-पीछे) आ रहे थे। १०० तब स्थान-स्थान पर पेड़ों की छाया में कमल-नयना सीता क्षण-क्षण (अर्थात् बार बार) बैठ जाती। वह उसाँस भरकर लक्ष्मण से कहती— आज कहीं क्यों न रह जाएँ ! १०१ तब सर्वसाक्षी श्रीराम, जो चराचर के चित्त की परख कर सकते हैं, पेड़ के तले एक क्षण के लिए खड़े रहकर कमल-नयना सीता की राह देखते रहे। १०२ अनन्तर दयासागर श्रीराम शरभंग ऋषि के आश्रम में आ गये, तो गंगा की बाढ़ की भाँति चारों ओर से बड़े-बड़े ऋषि दौड़े (हुए) वहाँ आ गये। १०३ समाधि तथा तपाचरण को छोड़कर ब्राह्मण उतावली से दौड़े, तो उस समय शरभंग शीघ्रता से राम के दर्शन के लिए निकल गये। १०४ (यद्यपि)

त्यासी। दिव्य शरीर धरूनि भेटीसी। येता झाला श्रीरामाचे। ५ पहिलें शरीर झांकून। घरीं ठेवी तो ब्राह्मण। क्षणभरी दिव्य रूप धरून। रामदर्शना पातला। ६ असो देखोन ऋषीश्वरांचे भार। साष्टांग नमीत रामसौमित्र। शरभंगासहित विप्र। राघवेंद्रें आलिंगिले। ७ शरभंगाच्या आश्रमांत। राहते झाले रघुनाथ। सीतासौमित्रसमवेत। राम पूजिला शरभंगें। ८ लक्ष्मण ऋषींतें पुसत। कंथेखालीं काय कांपत। शरभंग उघडोनि दावीत। सौमित्रातें तेधवां। ९ म्हणे हें कर्मशरीर भोगिल्याविण। न तुटे कदा देहबंधन। राजा रंक हो साधु सज्ञान। कर्म गहन सोडीना। ११० चिळस उपजली लक्ष्मणा। म्हणे वर मागा जी रघुनंदना। ऋषि म्हणे उष्णोदक स्नाना। मज तें न मिळे सर्वथा। ११ शीतोदकें स्नान नित्य। तेणें शरीर हें उलत। ऐसें ऐकोनी अवनिजाकांत। काय बोले ऋषीतें। १२ असो तुम्हांसी

शरभंग महाऋषि थे, तो भी उन्हें गलित कुष्ठ (कोढ़) रोग हो गया था। (परन्तु) दिव्य शरीर धारण करके वे श्रीराम के दर्शन के लिए आ गये। १०५ उन ब्राह्मण ने अपना (कुष्ठ रोग से ग्रस्त) पहला शरीर घर में छिपाकर रख दिया और क्षण-भर दिव्य रूप धारण करके वे श्रीराम के दर्शन के लिए आ गये। १०६ अस्तु। बड़े-बड़े ऋषियों के समूह देखकर श्रीराम और लक्ष्मण ने उनको साष्टांग नमस्कार किया। श्रीराम ने शरभंग-सहित ब्राह्मणों को गले लगा लिया। १०७ श्रीराम शरभंग के आश्रम में ठहर गये। उन्होंने सीता और लक्ष्मण-सहित श्रीराम का पूजन किया। १०८ (फिर) लक्ष्मण ने ऋषि (शरभंग) से पूछा— 'गुदड़ी के नीचे क्या काँप (-हिल) रहा है? तब शरभंग ने (गुदड़ी) खोलकर—अर्थात् हटाकर लक्ष्मण को (अपना रोग-ग्रस्त शरीर) दिखा दिया। १०९ उन्होंने कहा—'इस कर्म-शरीर का बिना भोग किये, देह का बन्धन कदापि नहीं छूटता। राजा हो या रंक, साधु हो, सज्ञान हो—किसी को भी गहन कर्म नहीं छोड़ता।' ११० (यह देखकर) लक्ष्मण को जुगुप्सा (घिन) उत्पन्न हो गयी। (फिर भी) उन्होंने कहा— 'श्रीराम से वर माँग लीजिए।' (इस पर) ऋषि ने कहा—'स्नान के लिए गर्म पानी (मुझे जो आवश्यक है वह) तो मुझे बिलकुल नहीं मिलता। १११ मैं ठण्डे जल से नित्य स्नान किया करता हूँ। उससे यह शरीर फटता है। यह सुनकर श्रीराम ऋषि से क्या बोले,

उदक देऊन । प्रातःकाळीं करूं गमन । तों रात्री संपतां चंड-किरण । उदयाचळीं उगवला । १३ ऋषिआज्ञा घेऊनि त्वरित । पुढें चालिले रघुनाथ । ऋषिवचनाचा विसर पडत । श्रीराम येत गौतमीतीरा । १४ गौतमींत करितां स्नान । तों आठवलें ऋषीचें वचन । मग धनुष्यासी लावून अग्निबाण । सोडिला क्षण न लागतां । १५ चपळेऐसा बाण आणा ऋषि-आश्रमापुढें कूप केला । बाण प्रवेशला पाताळा । कूप उचंबळला उष्णोदकें । १६ तेथें एकेचि स्नानें साचार । ऋषीचें झालें दिव्य शरीर । मग विमानीं बैसवूनी विप्र । शक्रें नेला अमरलोका । १७ मग सुतीक्षणाच्या आश्रमाप्रती । जाता झाला जनकजापती । मार्गीं तापसी बहुत मिळती । श्रीरामाच्या समागमें । १८ नाना प्रकारचे तापसी । कित्येक ते वृक्षाग्रवासी एक वृद्ध अत्यंत वाचेसी । शब्द न फुटे बोलतां । १९ एक दंतहीन बहुसाल । फळें ठेंचावया काखेसी उखळ । नग्न मौनी जटाधारी सकळ । दुग्धाहारी फळाहारी । १२० असो सुतीक्षण-

---

(सुनिए) । ११२ उन्होंने कहा—' आपको पानी देकर हम सेबेरे (यहाँ से) गमन करेंगे । ' तब रात के बीत जाने पर सूर्य उदयाचल पर उदित हो गया । ११३ तो ऋषि से आज्ञा लेकर श्रीराम शीघ्र आगे चल दिये । उन्हें ऋषि की बात का विस्मरण हो गया । वे गौतमी नदी के तट (तक) आ गये । ११४ गौतमी नदी में स्नान करते हुए उन्हें ऋषि की बात याद आ गयी । तब धनुष पर अग्नि-बाण चढ़ाकर क्षण न लगते छोड़ दिया । ११५ वह बाण बिजली-सा आ गया; उसने ऋषि के आश्रम के आगे कुआँ बना लिया और वह (बाण) पाताल में प्रविष्ट हो गया, तो कुआँ गर्म पानी से छलक उठा । ११६ वहाँ (उस पानी में) एक ही स्नान करने से ऋषि का शरीर सचमुच दिव्य हो गया । अनन्तर इन्द्र उस (शरभंग) ब्राह्मण को विमान में बैठाकर देवलोक में ले गया । ११७ (इसके) अनन्तर श्रीराम सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम की ओर चल दिये । उनकी संगति के लिए अनेक तपस्वी मार्ग में (आ) मिले । ११८ वे तपस्वी नाना प्रकार के थे । (उनमें से) कई तो पेड़ों की शाखाओं पर रहनेवाले थे । (उनमें से) एक अत्यन्त वृद्ध था । बोलने में उनकी जिह्वा से शब्द नहीं निकलता था । ११९ (उनमें से) एक पूरा-पूरा दन्त-हीन था । (अतः खाने में सुविधा हो इसलिए) फल कूटने के लिए बगल में ऊखल (रक्खा हुआ) था । सब नग्न, मौन

आश्रमासी। आला शरयूतीरनिवासी। मग परमानंद होत ऋषींसी रघुपतीसी भेटती। २१ तेथें क्रमोनि तीन दिन। त्रिनयनहृदयजीवन। त्रिभुवनपति रघुनंदन। पुढें तेथोनि चालिला। २२ तों गौतमीतीर पावन। पाहतां पांचाळेश्वर रम्य स्थान। तेथें भूमींतून गायन। रामचंद्रें ऐकिलें। २३ रघूत्तमातें सांगती तापसी। येथें मंदकर्ण महाऋषी। परम तपिया तेजोराशी। जैसा आकाशीं भास्कर। २४ क्षय करावया तपातें। पांच अप्सरा अमरनाथें। पाठवितां ऋषि त्यांतें। देखोनियां भाळला। २५ भूगर्भविवर कोरून। त्यांचें सर्वदा ऐके गायन। त्याकरितां उर्वीमधून। ध्वनि उमटती राघवा। २६ असो ऋषी पाहे ज्ञानी। श्रीराम आला कळलें मनीं। मग विवरद्वार उघडोनी। बाहेर आला भेटावया। २७ रामें वंदिले ऋषीचे चरण। आदरें भेटले दोघेजण। मग आश्रमातें नेऊन। मित्रकुळभूषणा पूजिलें। २८ तेथें क्रमोनि

(-व्रती), जटाधारी तथा दुग्धाहारी एवं फलाहारी थे। १२० अस्तु। श्रीराम सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम आ गये। तब ऋषियों को परम आनन्द (अनुभव) हो गया। वे (सब) श्रीराम से मिले। १२१ वहाँ तीन दिन व्यतीत करके शिवजी के हृदय के लिए जीवन-से त्रिभुवन-पति श्रीराम वहाँ से आगे चले गये। १२२ तब उन्होंने गौतमी नदी के पवित्र तट पर पांचालेश्वर नामक रम्य स्थान देखा। वहाँ श्रीराम ने भूमि में से (निकलता हुआ) गायन (-स्वर) सुना। १२३ तो तापसियों ने श्रीराम से कहा—यहाँ मन्दकर्ण नामक महर्षि (रहते) हैं; वे परम तपस्वी तथा आकाश में जैसा सूर्य है, वैसे तेजोराशि (अति तेजस्वी) हैं। १२४ उनकी तपस्या को भंग करने के हेतु इन्द्र द्वारा पाँच अप्सराओं को भेजने पर वे ऋषि उन्हें देखकर मोहित हो गये। १२५ हे राम! भूमि के (गर्भ में) अन्दर विवर अर्थात् गुफा खोदकर (वहाँ अप्सराओं-सहित रहते हुए) वे नित्य उनका गायन सुना करते हैं। इसलिए पृथ्वी में से ध्वनियाँ निर्मित हो रही हैं। १२६ अस्तु। ऋषि ने ज्ञान (-चक्षुओं) से देखा तो मन में उन्हें विदित अर्थात् अनुभव हुआ कि श्रीराम पधारे (हैं)। तब विवर के द्वार को खोलकर वह (उनसे) मिलने के लिए बाहर आ गये। १२७ तो श्रीराम ने ऋषि के चरणों का वंदन किया; (तदनन्तर) वे दोनों जने आदर-पूर्वक मिल गये। फिर ऋषि ने (अपने) आश्रम में उन्हें ले जाकर (उनका) पूजन किया। १२८ वहाँ एक रात बिताकर

एक रात्र । पुढें चालिला मदनारिमित्र । नवमेघरंग रघुवीर । सुतीक्ष्णआश्रमा पावला । २९ मग अगस्तीचें दर्शन । ध्यावया उद्यत रघुनंदन । तों महाऋषी सुतीक्ष्ण । पुरुषार्थ सांगे अगस्तीचा । १३० आतापी वातापी इल्वल । तिघे दैत्य परम सबळ । शिववरें महाखळ । कापट्य सकळ जाणती । ३१ अन्नरूप होय एक । दुजा निजांगें होय उदक । एक अन्नदाता देख । होऊनि बैसले वनांतरीं । ३२ आतापी अन्नदाता पूर्ण । प्रार्थूनि आणी ब्राह्मण । पूजा करूनि उदकपान । आदरेंसी समर्पिती । ३३ मग आतापी बाहे नाम घेऊन । वातापी इल्वल दोघेजण । मग ते विप्राचें पोट फोडून । येती धांवून बाहेरी । ३४ ऐसे असंख्यात द्विजगण । भक्षिले तिहीं मारून । मग कलशोद्भवासी शरण । सकळ ब्राह्मण गेले पैं । ३५ मग तो महाराज घटोद्भव । जयासी शरण स्वर्गीचे देव । ऋषि-कैवारी करुणार्णव । दैत्यस्थाना पातला । ३६ तंव तो धरी अगस्तीचे चरण । म्हणे आश्रम करा जी पावन । अन्न अथवा

शिवजी के मित्र श्रीराम आगे चले गये । (अनन्तर) नवमेघश्याम शरीरधारी श्रीराम सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम पहुँचे । १२९ फिर अगस्त्य ऋषि के दर्शन करने के लिए श्रीराम तैयार हुए, तो महर्षि सुतीक्ष्ण ने (उन्हें) अगस्त्य ऋषि का प्रताप बता दिया । १३०

आतापी, वातापी और इल्वल नामक तीन परम बलवान् दैत्य थे । वे महाखल दैत्य शिवजी के वर से सब कपट (विद्या) को जानते थे । १३१ (उनमें से) एक अन्न-रूप, दूसरा अपने अंग से जल (-रूप) और एक (अर्थात् तीसरा) अन्नदाता होकर वे तीनों वन में बैठ गये, अर्थात् रहे । १३२ आतापी अन्नदाता (के रूप में) प्रार्थना करके (किसी) ब्राह्मण को लिवा लाता और उसका पूजन करके उसे आदरपूर्वक (खाने तथा) पीने के लिए समर्पित करता । १३३ फिर वह (आतापी) नाम लेकर पुकारता, तो वातापी और इल्वल दोनों जने उस ब्राह्मण का पेट फाड़ते हुए दौड़कर बाहर आ जाते । १३४ इस प्रकार (उन) तीनों ने असंख्य ब्राह्मणों के समूहों को मारकर खा डाला । तब समस्त ब्राह्मण अगस्त्य ऋषि की शरण में गये । १३५ अनन्तर जिनकी शरण में स्वर्ग के देव (भी रहते) थे, वे ऋषियों के पक्षपाती तथा दया के सागर अगस्त्य ऋषि दैत्यों के (निवास-) स्थान आ पहुँचे । १३६ वे मुख से सदा वेदों

फळ सेवून । शीतळ जीवन प्राशिजे । ३७ मुखीं सदा वेदाध्ययन । पाठीसी सदा धनुष्यबाण । तंव आतापी ब्राह्मण । कापटचवेषें पातला । ३८ शुभ्र धोतें यज्ञोपवीत । टिळे कुशमुद्रा मिरवत । धोत्रें ओलीं सरसावित । क्षमा बहुत धरिलीसे । ३९ लटिकाचि दावी आचार । परी अंतरीं दुराचार । वृंदावनफळ सुंदर । अंतरीं काळकूट भरलेंसे । ४० कीं वरीच जेवीं जारीण । दावी भ्रतारसेवा करून । कीं शठमित्राचें लक्षण । आरंभीं वचन गोड पैं । ४१ कीं वचनाग मुखीं घालितां । प्रथम गोड वाटे तत्त्वतां । कीं चोर साव गांवीं असतां । बहुत स्नेह वाढवी । ४२ कीं विषकुंभ भरला समस्त । वरी अमृत घातलें किंचित । कीं दांभिक शिष्य दावीत । गुरुसेवा वरी वरी । ४३ कुसुंब्याचा आरक्त रंग । आरंभीं दावी सुरंग । किंवा नटें धरिलें सोंग । विरक्ताचें व्यर्थ पैं । ४४ तैसा आतापी मावकर । ऋषीस दावी बहुत आदर ।

का अध्ययन किया करते । उनकी पीठ पर सदा धनुष-बाण (बँधे) रहते । तब आतापी ब्राह्मण के कपट-वेश में आ पहुँचा । १३७ वह शुभ्र धोती, जनेऊ, तिलक, कुश (दर्भ-) मुद्रा सहित बड़े ठाठ से भ्रमण कर रहा था । (स्नान करने के पश्चात्) गीली धोती को सँवार रहा था । उसने बड़ी क्षमा (-वृत्ति) धारण की (थी) । १३८ वह बनावटी (झूठा) आचार प्रदर्शित करता, परन्तु उसके अन्तःकरण में दुराचार (बना) रहता; जैसे वृन्दावन फल सुन्दर होने पर भी उसमें कालकूट विष भरा रहता है । १३९ अथवा जिस प्रकार जारिणी स्त्री ऊपर-ऊपर से पति की सेवा करके दिखाती है; अथवा कपटी मित्र का लक्षण प्रारम्भ में किसी के साथ उसका मधुर बात करना होता है; अथवा जिस प्रकार वचनाग मुँह में डालने पर पहले सचमुच मीठा लगता है, अथवा चोर भले लोगों के स्थान पर वह बहुत प्रेमभाव अर्थात् स्नेह-सम्बन्ध बढ़ाता है; विष-कुम्भ पूरा भरा हो और उसमें ऊपर थोड़ा-सा अमृत डाल दिया हो; अथवा जिस प्रकार दाम्भिक शिष्य ऊपर-ऊपर से गुरु-सेवा कर दिखाते हैं; अथवा कुसुम्ब (घमोई) का लाल रंग शुरू में बढ़िया रंग दिखाता है (दीखता है); अथवा अभिनेता के द्वारा धारण किया हुआ विरक्त (तापसी) का रूप व्यर्थ होता है; उसी प्रकार आतापी (ऊपर से) ममता करनेवाला था । उसने ऋषि के प्रति बहुत आदर दिखाया । ऊपर से बहुत मधुर शब्द बोलता परन्तु अन्दर से वह काम चोर और दुरात्मा

वरी शब्द रसाळ फार। अंतरीं कातर दुरात्मा। ४५ असो आतापी कापटचवेषी। आश्रमा नेत अगस्तीसी। वातापी फळें वेगेंसीं। होऊनियां बैसला। ४६ अगस्तीनें भक्षिलीं फळें। उदक नाहीं जों प्राशिलें। तों कापटच अवघें समजलें। काय केलें कलशोद्भवें। ४७ उदरावरी फिरवूनि हस्त। दैत्य भस्म केला पोटांत। दोघे नाम घेऊनि बाहत। बाहेर त्वरित ये आतां। ४८ तंव तो नेदी प्रत्युतर। तंव दोघे रूप धरिती थोर। महा विक्राळ भयंकर। धांवले सत्वर ऋषीवरी। ४९ धनुष्या चढवोनि गुण। अगस्तीनें सोडिला बाण। वातापीचें शिर छेदून। दिलें उडवोनि आकाशीं। १५० दोघे निमाले देखोन। इल्वल पळाला तेथून। तंव तो घटोद्भव क्रोधायमान। पाठी लागला तयाचे। ५१ पळतां सरली अवघी जगती। परी पाठ न सोडी अगस्ती। तंव तो उदक होऊनि कापटचगती। समुद्रजळीं मिसळला। ५२ क्रोधायमान ऋषीश्वर। तत्काळ

था। १४०-१४४ तब उसने अगस्त्य के चरण पकड़ लिये और कहा—अहो! (अपने आगमन से मेरे) आश्रम को पावन कीजिए। अन्न अथवा फलों का सेवन (भक्षण) करके शीतल जल पीजिए। १४५ अस्तु! कपट-वेशधारी आतापी (इस प्रकार आमंत्रित कर) अगस्त्य को (अपने) आश्रम में ले गया। तो वातापी झट से फलों का रूप धारण करके बैठ गया। १४६ (फिर) अगस्त्य ने फल तो भक्षण किये, परन्तु उन्होंने पानी नहीं पिया, तब तक समस्त कपट (उनकी) समझ में आ गया। तो अगस्त्य ने क्या किया? (-देखिए)। १४७ पेट पर हाथ फेरते हुए उन्होंने पेट के अन्दर (वातापी) दैत्य को भस्म कर डाला। (इधर आतापी और इल्वल) दोनों ने (वातापी का) नाम लेकर पुकार कर कहा—'अब शीघ्र बाहर आ जाओ'। १४८ तब उसने प्रत्युत्तर नहीं दिया, तो (उन) दोनों ने बहुत बड़ा विकराल भयानक रूप धारण किया और झट से ऋषि की ओर लपक आये। १४९ तब धनुष पर डोरी चढ़ाकर अगस्त्य ने बाण चला दिया और (उससे) आतापी के मस्तक को छेदकर उसे आकाश में उड़ा डाला। १५० (आतापी और वातापी) दोनों मर गये—यह देखकर इल्वल वहाँ से भाग गया। तब क्रुद्ध अगस्त्य ऋषि उसका पीछा करने लगे।। १५१ (इल्वल के) भागते-भागते (मानो) समस्त जगत् समाप्त हो गया (अर्थात् उसे भाग जाने के लिए जगत् में कोई स्थान शेष नहीं रहा); तब भी अगस्त्य

पसरूनि दोन्ही कर। आचमन करूनि सागर। उदरामाजी सांठविला। ५३ म्हणे उदारा रघुपती। ऐसा पुरुषार्थी अगस्ती। त्याची भेट घेऊनि निश्चितीं। सीतापति पुढें जाय तूं। ५४ मग सुतीक्ष्णाची आज्ञा। घेऊनियां रामराणा। चालिला कर्दळीवना। अगस्तीच्या आश्रमाप्रति। ५५ तों मार्गीं अगस्तीचा बंधु। महामति नाम तपसिंधु। त्याचे आश्रमीं आनंदकंदु। सीतावल्लभ राहिला। ५६ तेथें क्रमोनि एक दिन। पुढें जात रविकुलभूषण। तों देखिलें अगस्तीचें वन। शोभायमान सदाफळ। ५७ छाया शीतळ सघन। माजी न दिसे सूर्यकिरण। नारळी पोफळी रातांजन। गेले भेदोनि गगनातें। ५८ अशोक वृक्ष उतोतिया। रायआंवळे खिरणिया। निंब वट पिंपळ वाढोनियां। सुंदर डाहाळिया शोभती। ५९ डाळिंबें सांवरी पारिजातक मांदार। चंदन मोहवृक्ष अंजीर। चंपक जाई जुई परिकर। बकुळ मोगरे शोभती। १६० तुळसी

उसका पीछा नहीं छोड़ रहे थे। तब वह पानी का रूप धारण करके कपट गति से समुद्र-जल में मिल गया। १५२ क्रुद्ध ऋषि ने तत्काल दोनों हाथों को बढ़ाकर आचमन करते हुए सागर (-जल) को अपने उदर में भर रखा। १५३

सुतीक्ष्ण ऋषि ने कहा—'हे उदार (-चरित) श्रीराम! अगस्त्य ऐसे पुरुषार्थी (प्रतापी) हैं। हे सीतापति! उनसे निश्चय ही भेंट करके आप आगे जाइए'। १५४ अनन्तर सुतीक्ष्ण से आज्ञा लेकर श्रीराम-राज कर्दली वन में स्थित अगस्त्य ऋषि के आश्रम की ओर चल दिये। १५५ तो मार्ग में तपस्या के मानो सागर ही महामति नामक अगस्त्य के एक बन्धु थे। आनन्द-कन्द श्रीराम उनके आश्रम में (भी) ठहर गये। १५६ वहाँ एक दिन बिताकर रविकुलभूषण श्रीराम आगे चले गये, तो अगस्त्य का शोभायमान तथा सदा फलों से युक्त वन देखा। १५७ (वहाँ) शीतल तथा बहुत घनी (वृक्ष-) छाया में सूर्य-किरण (तक) दिखायी नहीं देती थी। नारियल, सुपारी और रातांजन के पेड़ (मानो) आकाश को भेदकर गये थे। १५८ अशोक वृक्ष, छुहारा, हरफा-रेवड़ी (लवली), खिरनी, नीम, बरगद, पीपल (आदि) वृक्ष पनपकर सुन्दर डालों सहित शोभायमान थे। १५९ अनार, सेमल, पारिजातक, मन्दार, चन्दन, महुआ वृक्ष, अंजीर, चम्पा, चमेली, सुन्दर जूही, मौलसिरी, मोगरा (आदि पेड़-पौधे) शोभायमान थे। १६० तुलसी, वृन्दारक, कोविदार, सेमलिका,

मंदार कोविदार। शेवंती चंपावृक्ष परिकर। कनकवेली नागवेली सुंदर। पोंवळवेली आरक्त। ६१ कल्पवृक्ष आणि चंदन। गरुडवृक्ष आणि अर्जुन। वाळियाचीं बेटें सुवासिक पूर्ण। कर्पूरकर्दळी डोलती। ६२ शाल तमाल पारिजातक। शिरीष रायचंपक अशोक। फणस निंबोळी मातुलिंग सुरेख। अगर कृष्णागर सुवास। ६३ मयूर बदकें चातकें। कस्तूरीमृग जवादी बिडालकें। राजहंस नकुल चक्रवाकें। कोकिळा कौतुकें बाहती। ६४ धन्य धन्य ऋषि अगस्ती। श्वापदें निर्वैर विचरती। पक्षी शास्त्रचर्चा करिती। पंडित बोलती जे रीतीनें। ६५ ठायीं ठायीं वनांत। शिष्य वेदाध्ययन करीत। न्याय मीमांसा सांख्य पढत। तर्क घेत नाना परी। ६६ पातंजल आणि व्याकरण। एक वेदांतशास्त्रप्रवीण। एक समाधिसुखीं तल्लीन। एक मौनेच डुल्लती। ६७ नाना ग्रंथींचें श्रवण। ठायीं ठायीं होत पुराण। अष्टांगयोगादि नाना साधन। मनोजय

सुन्दर चम्पा वृक्ष, कनकवेल, सुन्दर नागबेल, लाल मूँगा-बेल (आदि) शोभा देते थे। १६१ कल्पवृक्ष (कोई बहुत मूल्यवान् तथा सुन्दर फल वाला वृक्ष, नारियल) और चन्दन, गरुड-वृक्ष और अर्जुन वृक्ष (कौह), बहुत सुगन्धियुक्त खसखस के गुच्छे, कपूर-कदली के पौधे डोल रहे थे। १६२ साल, तमाल, पारिजातक, शिरीष, रायचम्पा, अशोक, पनस (कटहल), नीम, सुडौल मातुलिंग, ख़ुशबूदार अगरु, कृष्णागरु आदि (पेड़-पौधे सुशोभित) थे। १६३ मोर, बत्तख, चातक (पपीहा), कस्तूरी-मृग, जवादी-बिड़ाल, राजहंस, खरगोश, चकवा, कोयल (आदि) मज़े में बोल रहे थे। १६४ अगस्त्य ऋषि धन्य हैं! धन्य हैं। (उनके उस वन में) जानवर (पशु) वैर-रहित होकर विचरण करते थे। जिस ढंग से पंडित बोलते थे, उसी पद्धति से (बोलते हुए) शास्त्रों की चर्चा किया करते थे। १६५ (उस) वन में स्थान-स्थान पर (ऋषि के) शिष्य वेदों का अध्ययन करते थे। न्याय, मीमांसा, सांख्य शास्त्र का पठन करते थे और अनेक प्रकार से तर्क (दलीलें) करते थे। १६६ कोई एक पातंजल-योग शास्त्र में, कोई एक व्याकरण शास्त्र में, कोई एक वेदान्त शास्त्र में प्रवीण थे। कोई- समाधि-सुख में तल्लीन थे, तो कोई-कोई मौन साधे हुए डोलते थे। १६७ (उस वन में) अनेक ग्रन्थों का श्रवण होता था, स्थान-स्थान पर पुराणों का पठन होता था। कोई-कोई अष्टांग-योग की साधना करते हुए मन को जीत लिया करते थे। १६८ अस्तु! श्रीराम

करिताती । ६८ असो शिष्य गेले धांवून । अगस्तीसी सांगती हर्षेंकरून । श्रीराम सीता लक्ष्मण । जवळी आले गुरुवर्या ।६९ ऐसें ऐकतां ते अवसरीं । ऋषीचा आनंद न मावे अंबरीं । सकळिकांसी म्हणे उठा झडकरी । जाऊं राघवा सामोरे । १७० समाधि जप तप अनुष्ठान । करूनि पावावे जयाचे चरण । तो राजीवनेत्र रघुनंदन । आश्रमा आपण पातला । ७१ जो जगद्वंद्य आदिसोयरा । जो अगम्य विधिशक्रकर्पूरगौरा । मूळ न धाडितां आमुचे मंदिरा । पूर्व भाग्यें पातला । ७२ जैशा नद्या भरूनियां । जाती नदीश्वरासी भेटावया । तैसा अगस्ति लवलाह्या । श्रीरामाजवळी पातला । ७३ देखोनियां ऋषींचे भार । राम सौमित्र घालिती नमस्कार । घटोद्भवें पुढें धांवोनि सत्वर । रघुवीर आलिंगिला । ७४ रमापति आणि उमापति । प्रीतीनें जैसे भेटती । कीं इंद्र आणि बृहस्पती । आलिंगिती परस्परें । ७५ परम गद्‌गद ऋषींचें मन । म्हणे धन्य धन्य आजिचा दिन । कौसल्यागर्भ रघुनंदन । नेत्रीं देखिला

के उस वन में प्रवेश करते ही, शिष्य दौड़ते हुए गये और उन्होंने (गुरु) अगस्त्य से हर्षपूर्वक कहा—'हे गुरुवर, राम, सीता और लक्ष्मण निकट आ गये।' १६९ उस समय ऐसा सुनते ही ऋषि का आनन्द गगन में नहीं समा रहा था। उन्होंने सबसे कहा—'झट से उठो। हम (अगुवानी करने के लिए) श्रीराम के सम्मुख जाएँ। १७० समाधि, जप, तप, अनुष्ठान करते हुए (हम) जिनके चरणों (की शरण) को प्राप्त करें, वे कमल-नयन श्रीराम (हमारे) आश्रम स्वयं आ पहुँचे (हैं)। १७१ जो जगद्-वन्द्य हैं, सबके लिए आदि आप्तेष्ट जन हैं, जो विधाता और शिवजी के लिए (भी) अगम्य हैं, वे (श्रीराम) हमारे पूर्वभाग्य से बिना निमंत्रण को भेजे हमारे (आश्रम रूपी मन्दिर स्वयं) आ पहुँचे (हैं)'। १७२ जिस प्रकार नदियाँ (पानी से) भर (-भर) कर समुद्र से मिलने जाती हैं, उस प्रकार अगस्त्य (अन्यान्य ऋषियों सहित बहुत तेज गति से) श्रीराम के निकट जा पहुँचे। १७३ ऋषियों के समूहों को देखकर श्रीराम और लक्ष्मण ने उनको दण्डवत् नमस्कार किया। तो अगस्त्य ने तेजी से आगे दौड़कर श्रीराम को गले लगाया। १७४ अगस्त्य और श्रीराम एक-दूसरे के गले वैसे ही लग गये, जैसे रमापति विष्णु और उमापति शिवजी अथवा इन्द्र और बृहस्पति प्रेमपूर्वक मिलते हों। १७५ (इस अवसर पर) ऋषि का मन परम गद्‌गद हो उठा। वे बोले—'आज

धरणीवरी । ७६ असो इतरही मुनीश्वरां । भेटला अनादि-सोयरा । ब्राह्मणीं वेष्टिलें जनकजावरा । याचकीं वेष्टिला दाता जेवीं । ७७ कीं चंदन वेष्टित फणिवर । कीं भूपती भोंवता दळभार । कीं ते बहुत मिळोनि चकोर । ऋक्षपतीसी विलोकिती । ७८ कीं विलोकितां सौदामिनीपती । नीळकंठ आनंदें नाचती । कीं महावैद्य देखोनि धांवती । व्यथाभिभूत जैसे कां । ७९ कीं उगवतां सहस्रकर । चक्रवाकें तोषती अपार । तैसा देखतां जगदुद्धार । मुनीश्वर संतोषले । १८० देखोनियां ऋषिमंडळी । परम लज्जित जनकबाळी । मग जाऊनि निराळी । उभी ठाकली क्षण एक । ८१ तंव ऋषि-पत्न्या असंख्यात । पहावया धांवल्या रघुनाथ । तो ऋषींमाजी सीताकांत । कोण तो न ये प्रत्यया । ८२ जगीं असोनि जगदीश्वर । नेणती जैसे भ्रांत नर । तैसा ऋषींत असोनि रामचंद्र । ऋषिपत्न्यांसी दिसेना । ८३ साधक शरण सद्-

---

का दिन धन्य है, धन्य है। कौसल्या के गर्भ से उत्पन्न श्रीराम को मैं (अपनी) आँखों से पृथ्वी पर देख पाया।' १७६ अस्तु अनादि (काल से सबके जो सगे) आप्तजन हैं, वे सब मुनिवरों से मिले। (उस समय) जिस प्रकार याचकों द्वारा दानी पुरुष घेर लिया जाता हो, उस प्रकार (सब) ब्राह्मणों ने (अभीष्ट-सिद्धि के हेतु) श्रीराम को घेर लिया (था)। १७७ अथवा जिस प्रकार सर्प चन्दन को घेर लेते हैं, अथवा राजा के चारों ओर सेना-दल (घिरे) होते हैं; अथवा बहुत चकोर मिल कर चन्द्रमा को देखते हों; अथवा मेघ को देखकर मोर आनन्द से नाचते हैं; अथवा जैसे महान् वैद्य को देखकर (रोग की) व्यथा से पीड़ित लोग (उसकी ओर) दौड़ते हैं; अथवा सूर्य के उदय होने पर चकवे असीम सन्तुष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार मुनिवर (श्रीराम के दर्शन के लिए दौड़े हुए आ गये, उन्हें घेरकर खड़े हो गये और) तृप्त हो गये। १७८-१८० (तब) ऋषि-मण्डल को देखकर सीता परम लज्जित हो गयी; फिर वह ज़रा (उनसे) अलग होकर (अर्थात् कुछ दूर जाकर) एक क्षण-भर खड़ी हो गयी। १८१ तब अनगिनत ऋषियों की स्त्रियाँ श्रीराम-दर्शन के लिए दौड़ती हुई गयीं, तो उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि ऋषियों के बीच श्रीराम कौन हैं। १८२ जगदीश्वर भगवान् जगत् में होने पर भी भ्रम में पड़े हुए मनुष्य उन्हें नहीं जान (-पहचान) पाते, उसी प्रकार ऋषियों के बीच होने पर भी श्रीराम ऋषि-पत्नियों को नहीं दिखायी दे

गुरूशी । तैशा त्या येती सीतेपाशीं । म्हणती रघुवीर प्रत्ययासी । आणूनि देईं आम्हांतें । ८४ जैसी आदिमाया भगवती । तीस वेष्टीत अनंत शक्ती । तैशा ऋषिपत्न्या सीता-सती । वेष्टोनियां पुसती तियेतें । ८५ पुराणपुरुष रघुनंदन ऋषिवृंदांत आहे पूर्ण । परी अमुकचि राम म्हणोन । दावीं आम्हांसी माउलिये । ८६ अवघे जटाजूट तापसी । एकाहूनि एक तेजोराशी । परी तव नेत्रचकोरशशी । दावीं आम्हांसी माउलिये । ८७ जवळी असोनि राघवेंद्र । नव्हे आम्हांसी कां गोचर । परी मंगळभगिनी तुझा वर । मंगळकारक दावीं आम्हां । ८८ चौऱ्यायशीं लक्ष गर्भवास । हिंडतां शिणलों बहुवस । तरी तो मखपाळक सर्वेश । आदिपुरुष दावीं कां ।८९ मृगनाभीं असोनि मृगपद । परी तो नेणेचि मतिमंद । कीं जवळी रत्न असोनि गर्भांध । नेणे जैसा अभाग्य । १९० जो वेदवल्लीचें दिव्य फळ जाण । जो सरसिजोद्भवाचें अनादि

रहे थे । १८३ (अतः जिस प्रकार ज्ञान-प्राप्ति के लिए) साधक सद्गुरु की शरण में आते हैं, उसी प्रकार वे सीता के पास आ गयीं और बोलीं— 'हमें श्रीराम दिखा दो । ' १८४ जिस प्रकार अनन्त शक्ति देवियाँ आदिमाया भगवती को घेरे हुए रहती हैं, उसी प्रकार ऋषि-पत्नियों ने सीता को घेरकर उससे (यह) पूछा (अर्थात् कहा)— 'हे माता, पुराण-पुरुष श्रीराम ऋषियों के समूह में तो पूर्णतः हैं; परन्तु हमें दिखा दो कि (उनमें से) अमुक व्यक्ति श्रीराम हैं । १८५-१८६ सब तो जटा-जूट-धारी तापसी (दिखायी दे रहे) हैं; एक दूसरे से तेज की बड़ी राशि ही हैं । परन्तु हे माता ! हमें (तुम्हारे) अपने नेत्रों-रूपी चकोरों के चन्द्रमा (श्रीराम) दिखा दो । १८७ श्रीराम निकट होने पर भी हमें क्यों नहीं दृष्टिगोचर हो रहे हैं ? अतः हे सीता (तुम्हारे) अपने मंगल-कर्ता पति हमें दिखा दो । १८८ चौरासी लाख योनियों में गर्भ-वास करते हुए भ्रमण करते रहने से हम बहुत थक गयीं; इसलिए वे यज्ञ-रक्षक (तथा) सर्वेश आदिपुरुष (श्रीराम) हमें दिखा दो । १८९ जैसे मृग की नाभि में कस्तूरी होने पर भी वह मन्द-मति नहीं जानता; अथवा जैसे पास होने पर भी अभागा गर्भान्ध (जन्मान्ध) मनुष्य उसे नहीं जानता; वैसे ही जिन्हें वेद-रूपी लता में उत्पन्न दिव्य फल समझिए, जो ब्रह्मा का अनादि धन हैं, जो नारद आदि (मुनिवरों) के लिए पूर्णतः गुह्य (गूढ़) हैं, जो शिवजी के ध्येय तथा ध्यान (के विषय) हैं, वे श्रीराम

धन । जो नारदादिकांचें गुह्य पूर्ण । ध्येय ध्यान विषकंठाचें । ९१ ऐशा नाना परी पूसती । परी न बोले सीतासती । मग ऋषिस्त्रिया ध्यानें वर्णिती । नाना ऋषींचीं ते वेळीं । ९२ ज्या ज्या ऋषीचें वर्णिती ध्यान । तों तों जानकी हालवी मान । जैसा दृश्य पदार्थ संपूर्ण । वेदश्रुती निरसिती । ९३ जें जें दिसतें तें तें नाशिवंत । तें चिन्मय नव्हे अशाश्वत । ऋषिस्त्रिया स्वरूप वर्णीत । मान हालवित सीता तेथें । ९४ वेदशास्त्रां पडलें मौन । तो केवीं बोलिजे शब्देंकरून । यालागीं न बोले वचन । हालवी मान जानकी । ९५ हस्तसंकेतेंकरून । जरी दावावा रघुनंदन । तरी तो एकदेशी नव्हे पूर्ण । जो निर्गुण निर्विकारी । ९६ योग याग साधनें अपार । करितां शिणती साधक नर । तेवीं ऋषिस्त्रिया शिणल्या थोर । रूपें वर्णितां स्वचित्तीं । ९७ जैसी वेदाचिये शेवटीं । स्वरूपीं पडे

हमारे निकट होने पर भी हमें नहीं दिखायी दे रहे हैं । १९०-१९१ इस प्रकार वे नाना प्रकार से पूछ रही थीं, फिर भी साध्वी सीता नहीं बोली, तो उस समय ऋषियों की स्त्रियों ने अनेकानेक ऋषियों (में से प्रत्येक) के विशिष्ट रूप का वर्णन किया । १९२ वे जिस-जिस (किसी) ऋषि के विशिष्ट रूप का वर्णन करतीं, तो-तो सीता सिर हिला देती (और सूचित करती कि वे वर्णित व्यक्ति श्रीराम नहीं हैं), जैसे वेदों की श्रुतियाँ समस्त दृश्य पदार्थों को अस्वीकार कर देती हैं । १९३ (वेदों के अनुसार) जो-जो दिखायी देता है, वह नाशवान् है, वह चिन्मय नहीं है, अशाश्वत अर्थात् क्षणिक है । (उधर) ऋषियों की स्त्रियाँ (एक-एक ऋषि के) स्वरूप का वर्णन करती जातीं, तो इधर सीता सिर हिला देती । १९४ (भगवान् कौन हैं, कैसे हैं, इस सम्बन्ध में वेद तक कुछ नहीं जानते; अतः) वेदशास्त्र को (भी) मौन धारण करना पड़ा, तो वह (किससे) शब्दों में कैसे कहा जाएगा ? इसलिए सीता कोई बात नहीं कह देती; (केवल) सिर हिला देती । १९५ हाथ से इशारा करके यदि श्रीराम दिखा दें, तो वे (श्रीराम), जो निर्गुण, निर्विकार पूर्णब्रह्म ही हैं, केवल एक विशिष्ट स्थानव्यापी तो नहीं हैं । १९६ (ब्रह्म श्रीराम को जान लेने के लिए) साधक पुरुष अपार योग-(साधना), याग (यज्ञ) की साधना करते हुए थक जाते हैं; उसी प्रकार (विभिन्न) रूपों का वर्णन करते-करते ऋषियों की स्त्रियाँ अपने मन में अपार थक गयीं । १९७ जिस प्रकार (ब्रह्म का ज्ञान पाने का यत्न करते-करते)

ऐक्यमिठी। तैसा श्रीराम देखिला दृष्टीं। ऋषिस्त्रियांनीं अकस्मात। १९८ म्हणती सजलजलदवर्ण। आकर्णनेत्र सुहास्य-वदन। वाटे ब्रह्मानंदचि मुरोन। मूर्ति वोतिली चिन्मय। १९९ जटाजूटमुकुट पूर्ण। आजानुबाहु वल्कलवसन। हातीं विराजती चापबाण। पति होय कीं हा तुझा। २०० ऐसें ऐकतां वचन। सीतेनें केलें हास्यवदन। हालवितां राहिली मान। उन्मीलित नयन जाहले। २०१ ऋषिपत्न्यांतें कळली खूण। प्रत्यया आला रघुनंदन। विलोकितां राघवध्यान। धाल्या पूर्ण ब्रह्मा-नंदें। २०२ मग सीतेचिया चरणीं मिठी। घालिती सकळ त्या गोरटी। म्हणती माते धन्य सृष्टी। राम जगजेठी दाविला।३ जैसा मौन धरूनि वेद। संतांसी दावी ब्रह्मपद। तैसा सीतेनें परमानंद। ऋषिपत्न्यांसी दाविला। ४ आतां असो हा पसार। अगस्तीनें श्रीरामचंद्र॥ आश्रमा नेऊनि साचार। परमानंदें पूजिला। ५ अक्षय चाप अक्षय भाते। अक्षय कवच

अन्त में वेदों का ब्रह्म-स्वरूप के साथ एकात्मता-पूर्वक आलिंगन हो जाता है, उसी प्रकार ऋषियों की स्त्रियों ने अपनी आँखों से श्रीराम को सहसा देख लिया। १९८ उन्होंने कहा—' सजल मेघ के-से श्याम (शरीरधारी), कानों तक फैले हुए अर्थात् विशाल नेत्र-धारी, सुहास्य-वदन (ये) श्रीराम हैं। जान पड़ता है (उनके रूप में) ब्रह्मानन्द में पगी हुई (कोई) चिन्मय मूर्ति साँचे में ढाली हुई हो। १९९ जिनके जटा-जूट का पूर्ण मुकुट है, जो आजानु-बाहु हैं, जो वल्कल के वस्त्र धारण किए हुए हैं, जिनके हाथ में धनुष-बाण शोभायमान हैं, क्या ये ही तुम्हारे पति हैं?' २०० ऐसी बात सुनकर सीता मुस्कुरा दी और वह गरदन हिलाती रही तथा उसकी आँखें अध-मूँदी-सी हो गयीं। २०१ तो ऋषि-पत्नियों की समझ में (यह) संकेत आ गया, तब श्रीराम का अस्तित्व उन्हें अनुभव हो गया। श्रीराम के स्वरूप को देखते ही वे ब्रह्मानन्द से पूर्णतः तृप्त हो गयीं। २०२ अनन्तर उन सब (सुन्दर) स्त्रियों ने सीता के चरण पकड़ लिये और कहा—' माता! (हमारे लिए) सृष्टि धन्य है! जब कि तुमने जगदीश्वर श्रीराम (हमें) दिखा दिये'। २०३ जिस प्रकार मौन धारण करके वेद सन्तों को ब्रह्म-पद दिखाते हैं, उसी प्रकार सीता ने ऋषि-पत्नियों को परमानन्द-स्वरूप श्रीराम के दर्शन कराये। २०४

(अस्तु।) यह विस्तार (-पूर्वक कथन) पर्याप्त हो (गया)। अगस्त्य ने श्रीराम को (अपने) आश्रम में ले जाकर सचमुच परमानन्द-

रघूत्तमातें । शस्त्रें अस्त्रें मंत्रसामर्थ्यें । दाशरथीतें दीधलीं । ६ जैसा नवग्रहांत चंडकिरण । तैसा दिधला एक बाण । म्हणे याचि शरें रावण । शेवटीं धाडीं निज धामा । ७ एक मासपर्यंत । तेथें काळ क्रमी रघुनाथ । मग घटोद्भवासी पुसत । आम्हीं आतां राहावें कोठें । ८ अगस्ति म्हणे गोदा-तटीं । वस्तीसी स्थान पंचवटी । तेथें तूं राहें जगजेठी । सीता गोरटी जतन करीं । ९ आज्ञा घेऊनि ते वेळां । पंच-वटीसी श्रीराम चालिला । वाटेसी जटायु देखिला । राघवेंद्रें अकस्मात । २१० पथीं बैसला जैसा पर्वत । श्रीराम सौमित्रासी पुसत । हा राक्षस होय यथार्थ । आणीं त्वरित धनुष्य बाण । ११ दोन्ही तूणीर घननीळें । पाठीसी दोहींकडे आकर्षिले । तंव तो जटायु ते वेळे । काय बोले दुरूनियां । १२ म्हणे तूं ये वनांतरीं कोण । मजवरी टाकिसी बाण । सांग तुझें नामाभिधान । मग रघुनंदन बोलत । १३ रविकुळमंडण दशरथ । त्याचा पुत्र मी रघुनाथ । ऐसी ऐकतांचि मात ।

पूर्वक (उनका) पूजन किया। २०५ (तत्पश्चात् उन्होंने) रघूत्तम दाशरथी श्रीराम को अक्षय धनुष, अक्षय तूणीर, अक्षय कवच, शस्त्र, अस्त्र, मंत्र (-शक्तियाँ) प्रदान कीं। २०६ नव-ग्रहों में सूर्य जैसा (सबसे अधिक तेजस्वी) होता है, वैसा (उन सब में तेजस्वी) एक बाण दिया और कहा—' इसी बाण से रावण को अन्त में निजधाम भेज दीजिए। ' २०७ (तदनन्तर) श्रीराम ने वहाँ एक महीने तक समय व्यतीत किया; फिर अगस्त्य से पूछा—' अब हम कहाँ (जाकर) निवास करें '। २०८ (इस पर) अगस्त्य ने कहा—' गोदावरी नदी के तट पर निवास के लिए (योग्य) एक स्थान है। हे जगदीश्वर ! आप वहाँ रहें। सुन्दरी सीता की रक्षा करें। ' २०९ उस समय (ऋषि की) आज्ञा लेकर श्रीराम पंचवटी की ओर चल दिये। सहसा श्रीराम ने रास्ते में जटायु को देखा। २१० वह मार्ग में पर्वत जैसा बैठा था। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—' यह सचमुच (कोई) राक्षस (जान पड़ता) है; (अतः) झट से धनुष-बाण लाओ। ' २११

तब वह जटायु उस समय दूर से क्या बोला ? (सुनिए)। २१२ उसने कहा—' आप कौन हैं, जो इस वन में मेरे ऊपर बाण छोड़ रहे हैं। अपना नाम (तो) बताइए। ' तब श्रीराम ने कहा—' रवि-कुल-भूषण जो दशरथ राजा हैं, उनका पुत्र मैं श्रीराम हूँ। ' ऐसी बात सुनते ही जटायु

जटायु जवळी पातला। १४ म्हणे कश्यपसुत अरुण। तो माझा जनिता पूर्ण। पितृव्य माझा सुपर्ण। जटायु जाण नाम माझें। १५ माझा ज्येष्ठ बंधु संपाती। तो दक्षिणसागरीं करी वस्ती। तुझा पिता दशरथ नृपती। मज बंधुत्वें मानीतसे।१६ शुक्रासीं युद्ध करितां। मी साह्य झालों दशरथा। मज बंधुत्व मानी तत्त्वतां। अजराजपुत्र ते काळीं। १७ ऐसी ऐकतांचि मात। सद्गदित झाला रघुनाथ। जटायूचे कंठीं मिठी घालित। म्हणे तूं निश्चित पितृव्य माझा। १८ मग जटायूचे अनुमतें। श्रीराम राहे पंचवटीतें। पर्णशाळा सुमित्रासुतें। विशाळ रचिल्या ते वेळे। १९ फळें मुळें आणून। नित्य देत सुमित्रानंदन। आपण निराहार निर्वाण। चतुर्दश वर्षेंपर्यंत। २२० जानकी भावी ऐसें मनीं। लक्ष्मण फळें भक्षितो वनीं। मग आणितो आम्हांलागूनी। फळें घ्या म्हणोनि म्हणतसे। २१ रामाचे आज्ञेविण। सौमित्र न करी फळें भक्षण। नित्य उपवासी निर्वाण। तो लक्ष्मण महराज।२२ पुढील जाणोनि भविष्यार्थ। फळें नेदी रघुनाथ। याचि

निकट आ गया। २१३-२१४ उसने कहा—'कश्यप के अरुण नामक पुत्र हैं; वे मेरे पिता हैं। सुपर्ण (गरुड़) मेरे पितृव्य अर्थात् चाचा हैं। मेरा नाम जटायु समझिए। २१५ मेरा ज्येष्ठ बन्धु सम्पाती नामक है। वह दक्षिण समुद्र के पास निवास करता है। आपके पिता दशरथ मेरे साथ बन्धुत्व का नाता मानते हैं। २१६ शुक्र के साथ युद्ध करते समय मैं दशरथ का सहायक हो गया था; उस समय अजराजा के पुत्र अर्थात् दशरथ ने सचमुच मेरे साथ बन्धुत्व मान लिया।' २१७ ऐसी बात सुनते ही श्रीराम गद्गद हो गये। जटायु को गले लगाते हुए उन्होंने कहा—'(तो) आप मेरे निश्चय ही पितृव्य (चाचाजी) हैं।' २१८ फिर जटायु की सूचना के अनुसार श्रीराम पंचवटी में रह गये। उस समय लक्ष्मण ने विशाल पर्णकुटियाँ बना लीं। २१९

लक्ष्मण नित्य फल-मूल लाकर (श्रीराम को) दिया करते और स्वयं चौदह वर्ष तक निराहार रहते। २२० सीता मन-ही-मन ऐसा सोचती कि लक्ष्मण वन में फल खाते हों और फिर हमारे लिए फल लाकर कहते हों कि फल लें। २२१ (इधर) बिना राम की आज्ञा के लक्ष्मण फल नहीं खाया करते थे। (इस प्रकार) लक्ष्मण महाराज तो नित्य निश्चय ही निराहार रहा करते थे। २२२ भविष्य में घटित होनेवाली

प्रकारें दिवस बहुत । उपवास झाले तयासी । २३ पर्णकुटीचा द्वारपाळ । सर्वकाळ सुमित्राबाळ । तो विष्णुशयन फणिपाळ । सेवा प्रबळ करीतसे । २४ रात्रीमाजी लक्ष्मण । हातीं घेऊनि धनुष्य बाण । राक्षस येतील म्हणून । सावधान सर्वदा । २५ निद्रा आणि आहार । कधीं न स्पर्शे सौमित्र । भक्तराज परम पवित्र । जैसा निर्मळ मित्र सदा । २६ पंचवटीसी राहिला रघुनाथ । चहूंकडे प्रकटली मात । तों वनभिल्ल-स्त्रिया मिळोनि बहुत । म्हणती राघव पाहूं चला । २७ अयोध्या-धीश रघुपती । बहुत ऐकतों त्याची कीर्ती । एकवचन एकपत्नीव्रती । चला निश्चिती पाहूं तो । २८ निरंजनीं राहिला रघुनाथ । तो डोळेभरी पाहूं यथार्थ । अरिदर्पहरण सीताकांत । पाहूं चला एकदां । २९ जो निर्विकार परब्रह्म । तो सगुण सुवेष श्रीराम । ज्याचें श्रुती नेणती वर्म । तो पूर्णकाम पाहूं चला । २३० म्हणती परब्रह्म सांवळें । भेटीसी

बातों का रहस्य जानते हुए श्रीराम लक्ष्मण को फल नहीं दिया करते थे । इस प्रकार बहुत दिन उन्हें उपवास हो गया । २२३ लक्ष्मण समस्त समय पर्णकुटी के द्वारपाल (पहरेदार) बने रहे । वे सर्पराज शेष (के अवतार थे, जो श्रीराम रूप श्रीविष्णु की) बहुत सेवा किया करते थे । २२४ रात में लक्ष्मण हाथ में धनुष-बाण लिये हुए इसलिए नित्य सावधान रहते कि (कदाचित्) राक्षस आएँगे । २२५ लक्ष्मण नींद और आहार को कभी छूते (तक) नहीं थे—अर्थात् वे कभी भी न सोते थे, न आहार ग्रहण करते थे । सूर्य जैसा सदा निर्मल होता है, भक्तराज लक्ष्मण वैसे ही (विकारों के मैल से मुक्त अर्थात्) परम पवित्र थे । २२६

चारों ओर यह बात प्रकट हो गयी कि श्रीराम पंचवटी में ठहर गये (हैं), तो वन में रहने वाली अनेक भीलनियों ने मिलकर कहा (सोचा)—श्रीराम को देखने चलें । २२७ (जो) श्रीराम अयोध्या के राजा हैं, उनकी बहुत कीर्ति हमने सुनी । वे एक पत्नी-व्रती हैं । चलिए, निश्चय ही (हम) उन्हें देख लें । २२८ श्रीराम एकान्त स्थान में रहे (हैं); सचमुच उन्हें आँखों भर देख लें । शत्रु के घमण्ड को छुड़ानेवाले सीतापति श्रीराम को एक बार देखने चलिए । २२९ जो (वस्तुत:) निर्विकार परब्रह्म है, वही सगुण एवं सुवेश-धारी श्रीराम हैं । वेद भी जिनके मर्म को नहीं समझ पाते, उन्हीं पूर्णकाम श्रीराम को देखने चलें । २३० उन्होंने कहा (सोचा)—परब्रह्म श्रीराम साँवले हैं । भेंट

न्यावीं अमृतफळें। पूर्वपुण्य असेल आगळें। ते गुण गाती रामाचे। ३१ अपार मिळोनि भिल्लिणी। उत्तम फळें वेंचिती वनीं। नाचत नाचत कामिनी। गुण गाती श्रीरामाचे। ३२ ज्याचें नाम घेतां निर्मळ। शीतळ जाहला जाश्वनीळ। चरण-रजें तत्काळ। गौतमललना तारिली। ३३ एक जानकी वेगळी करून। सकळ स्त्रिया कौसल्येसमान। जो दशकंठ-दर्पहरण। मखरक्षण मखभोक्ता। ३४ अहो पूर्वकर्म निर्मळ। पहावया परब्रह्म उतावेळ। हेंचि उत्तम साचें फळ। पंचवटीसी आलिया। ३५ पंचभूतात्मक पंचवटी। नरदेहासी आल्या गोरटी। श्रीराम देखतां दृष्टीं। घालिती सृष्टीं लोटांगण। ३६ पूर्वफळें आणिलीं होतीं। समस्त अर्पिलीं रघुपतीप्रती। देखोनि तयांची भक्ती। फळें भक्षीत सीताराम। ३७ नित्यकाळ

के लिए अमृत (-से मधुर) फल ले जाएँ। (हमारा) पूर्व (काल में किया) पुण्य अनोखा है। वे (भीलनियाँ) श्रीराम का गुण-गान करती थीं। २३१ अनगिनत भीलनियों ने मिलकर वन में बढ़िया फल चुन लिये। नाचते-गाते हुए वे स्त्रियाँ श्रीराम का गुण-गान करती थीं। २३२ जिनका निर्मल (कलंक-रहित अतएव शुद्ध-पवित्र) नाम लेते ही शिवजी शीतल हो गये (-अर्थात् हलाहल के प्राशन से शरीर में जो गर्मी और जलन अनुभव हो रही थी, उससे मुक्त हो शीतलता को प्राप्त हो गये), उन्हीं श्रीराम ने अपनी चरण-धूली से गौतम की (शिला बनी हुई अहल्या नामक) स्त्री का तत्काल (झट से) उद्धार कर लिया। २३३ जो रावण के घमण्ड को छुड़ानेवाले, (विश्वामित्र के) यज्ञ के रक्षक तथा यज्ञ (-फल) के उपभोक्ता हैं, उन (परब्रह्म रूप) श्रीराम के लिए एक सीता को छोड़कर (अन्य) समस्त स्त्रियाँ कौसल्या अर्थात् माता के समान हैं। २३४ अहो! हमारा पूर्व (-जन्म में किया) कर्म शुद्ध, पवित्र रहा (होगा); (इसलिए तो) हम परब्रह्म (श्रीराम) के दर्शन के लिए उतावली हो गयी हैं—हमारे पूर्वकर्म का यही उत्तम एवं सच्चा फल है कि परब्रह्म श्रीराम पंचवटी में आ गये। २३५ (उसी) पंचमहाभूतात्मक पंचवटी में ये स्त्रियाँ नर-देह को प्राप्त हो गयीं, अर्थात् वे मनुष्ययोनि में उत्पन्न हो गयीं हैं। श्रीराम को देखते ही उन्होंने धरती पर दण्डवत् नमस्कार किया। २३६ पूर्व-पुण्य कर्म रूपी फलों को अथवा पहले ही चुने हुए फलों को वे साथ लायी थीं। उन्होंने वे सब (फल) श्रीराम को समर्पित किये। उनकी भक्ति को देखकर सीता और राम ने उन्हें

भिल्लिणी। रामासी फळें देती आणोनी। येथें कितीएक जनीं। विपरीत वाणी बोलिजे। ३८ म्हणती उच्छिष्ट फळें भक्षिलीं। हे सर्वथा असत्य बोली। तीं उत्तम फळें पाहोनि रक्षिलीं। श्रीरामभेटी कारणें। ३९ मूळ न पाहतां यथार्थ। भलतेंचि करी जो स्थापित। त्यासी बंधन यथार्थ। चंद्रार्कावरी चुकेना। २४० असो श्रीरामविजय ग्रंथ। हाचि अमृतवृक्ष यथार्थ। येथींचीं फळें रघुनाथभक्त। सदा भक्षिती प्रीतीनें। ४१ ब्रह्मानंदा जगदुद्धारा। पंचवटीवासिया श्रीधरवरा। आदिपुरुषा निर्विकारा। अचळ अभंगा अक्षया। ४२ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। त्रयोदशाध्याय गोड हा। २४३
। श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु।

खा लिया।। २३७ (तब से आगे) नित्य भीलनियाँ फल लाकर श्रीराम को दिया करती थीं। (यह देखकर) वहाँ (के) अनेक लोग (इस सम्वन्ध में) विपरीत अर्थात् बेढंगी बातें किया करते थे। २३८ वे कहते—'श्रीराम ने भीलनियों के जूठे फल खा लिये।' परन्तु यह सब असत्य बात है। (वस्तुतः) उन्होंने उत्तम फलों को देखकर (चुनकर) श्रीराम को भेंट के रूप में देने के लिए सुरक्षित रखा था। २३९ मूल (ग्रन्थ के अर्थ) को यथार्थ रूप में न देखते हुए जो असंगत बात की स्थापना करता है, उसे (ऐसे कर्म का) बन्धन (बुरा फल) चन्द्र और सूर्य (-लोक में जाने) पर भी नहीं टलता। २४०

अस्तु। श्रीराम-विजय नामक यही ग्रन्थ वस्तुतः अमृत (-से मधुर फल (देने वाला) वृक्ष है। यहाँ के अर्थात् उसमें उत्पन्न फल श्रीराम के भक्त नित्य प्रेम-पूर्वक खाया करते हैं। २४१ हे गुरु ब्रह्मानन्द! हे जगत् के उद्धारक! हे पंचवटी में निवास करनेवाले श्रीधर-वर! हे निर्विकार, अचल, अभंग, अक्षय आदिपुरुष! स्वस्ति। श्रीराम-विजय नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि-नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। चतुर भक्त उसके इस मधुर तेरहवें अध्याय का नित्य श्रवण करें। २४२-२४३

। श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु।

॥ त्रयोदशाध्याय समाप्त ॥

अध्याय—१४

श्रीगणेशाय नमः । श्रीरामकथा ऐकतां सादर । सुख उपजे अपार । शशांक देखोनि सागर । पूर्ण जैसा उचंबळे । १ सद्गुरु वर्षतां कृपाघन । शिष्यसरितेसी ये स्वानंदजीवन । कीं उगवतां सूर्यनारायण । अरविंदें विकासतीं । २ कीं दुर्बळासी सांपडे घन । कीं वणव्यांत जळतां वर्षे घन । कीं वसंतकाळ देखोन । द्रुम जैसे फुलती पैं । ३ ऐसी कथा ऐकतां उपजे सुख । जे कथेसी भुलला कैलासनायक । पार्वतीसह प्रेमें देख । रामकथा हृदयीं धरिली । ४ जे मोक्षतरूचें बीज देखा । जे भवनदीमाजी तारक नौका । जे अज्ञानतिमिरदीपिका । वाल्मीकें जे पाजळली । ५ कीं अविद्या-

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीराम की कथा का आदर-पूर्वक श्रवण करने पर (श्रोता के लिए) असीम सुख उत्पन्न होता है। जैसे चन्द्र को देखकर समुद्र पूर्णतः छलकता या उमड़ता है, वैसे ही रामकथा के श्रवण से श्रोता के हृदय में आनन्द का ज्वार आता है। १ सद्गुरु रूपी कृपा-घन के बरसने पर शिष्य रूपी सरिता में आत्मानन्द रूपी जल (उमड़) आता है; अथवा सूर्यनारायण का उदय होने पर कमल विकसित हो जाते हैं; (उसी प्रकार श्रीराम की कथा का श्रवण करने पर श्रोता को बहुत आत्मानन्द प्राप्त होता है; उसका हृदयरूपी कमल विकसित हो जाता है।) २ अथवा दुर्बल (कंगाल) को धन मिल जाए, (तो वह जैसे आनन्दित होता है, वैसे ही श्रोता रामकथा के श्रवण से आनन्दित होता है।), अथवा (किसी के) दावानल में जलते रहने पर बादल बरस जाए, (तो उसे जैसे अद्भुत शान्ति मिलती है, वैसे ही सांसारिक दुःखों की आग में जलनेवाले को रामकथा के श्रवण से शीतलता अनुभव होती है।), अथवा वसन्त ऋतु (के आगमन) को देखकर वृक्ष जैसे खिलते हैं, (वैसे ही रामकथा के श्रवण से श्रोता का हृदय-पुष्प खिल जाता है)। ३ जिस रामकथा के प्रति कैलास-नायक शिवजी पार्वती-सहित मोहित हो गये और देखिए, जिसे उन्होंने हृदय में धारण किया (सँजोकर रखा), ऐसी उस रामकथा का श्रवण करने पर सुख उत्पन्न होता है। ४ देखिए, जो (राम-कथा) मोक्षरूपी वृक्ष का बीज है, जो संसार रूपी नदी में (डूबते को) तारनेवाली नौका है, अथवा जो अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करनेवाली दीपिका, अर्थात् छोटा-सा दीया है—जिसे वाल्मीकि ने प्रज्वलित किया; अथवा जो अविद्या-रूपी वन के लिए (जला डालनेवाली) अग्नि है;

काननवैश्वानर। कीं ऐश्वर्यपीठींची देवी सुंदर। कीं मनोरथ-
कल्पलता साचार। कीं आनंदजळसरिता हे। ६ की पुण्यवैराग-
राची खाणी। कीं धर्मार्थकाममोक्षांची जननी। कीं पापताप-
भंजनी। मंदाकिनी प्रत्यक्ष हे। ७ ऐसी कथा अत्यंत पावन।
श्रवण करोत पंडितजन। तेरावे अध्यायीं कथन। आला
रघुनंदन पंचवटीये। ८ जो द्विपंचमुखदर्पहरण। जो कमळिणी-
मित्रकुलभूषण। मेदिनीगर्भरत्नजीवन। पंचवटीये राहिला। ९
जो भूधरावतार लक्ष्मण। जो नरवीरांमाजी पंचानन।
सुरस फळें नित्य नूतन। काननींहून आणीत। १० ऐसें असतां
कोणे एके काळीं। लक्ष्मण विलोकितां वनस्थळी। तों देखिली
वंशजाळी। सरळ गगनचुंबित। ११ ते वंशजाळीभीतरीं।
दशकंठाचा भाचा शंबरी। विषकंठाचें आराधन करी।
काळखड्गप्राप्तीतें। १२ साठीसहस्रवर्षेंपर्यंत। तप दारुण

अथवा जो ऐश्वर्यपीठ पर प्रतिष्ठित सुन्दर देवी है, अथवा जो मनोरथों को पूर्णकर देनेवाला सचमुच कल्पवृक्ष है, अथवा जो आनन्द रूपी जल की नदी है, अथवा जो पुण्यरूपी स्पर्शमणि (स्पर्श मात्र से हीरा बनानेवाली वस्तु) की खान है, अथवा जो धर्म अर्थ काम (और) मोक्ष (नामक चारों पुरुषार्थों) की जननी है, अथवा जो पापों से उत्पन्न ताप को नष्ट करनेवाली प्रत्यक्ष गंगा है, ऐसी इस अत्यन्त पवित्र (राम-) कथा का पंडित जन श्रवण करें। तेरहवें अध्याय में यह कहा कि रघुनन्दन राम पंचवटी में आ गये। जो श्रीराम दशमुख रावण के घमण्ड को छुड़ानेवाले हैं, जो कमलों को विकसित कर देनेवाले सूर्य के कुल के आभूषण हैं, वे पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न रत्नस्वरूपा सीता के (साक्षात्) जीवन— अर्थात् जानकी-जीवन श्रीराम पंचवटी में ठहर गये। ५-९ जो शेष भगवान के अवतार हैं, जो नरवीरों में सिंह हैं, वे लक्ष्मण (राम और सीता के लिए) वन में से नित्य नये-नये अर्थात् ताज़े फल लाया करते। १०

ऐसे होते हुए, अर्थात् इस प्रकार रहते हुए, किसी समय, वन प्रदेश में देखते रहने पर लक्ष्मण ने एक सीधी गगन-चुम्बी (बहुत ऊँची, आसमान को छूती हुई-सी) बाँसों की कोठी देखी। ११ बाँसों की उस कोठी के भीतर (बैठे हुए) रावण का शम्बरी नामक भानजा काल-खड्ग की प्राप्ति के हेतु शिवजी की आराधना कर रहा था। १२ साठ हज़ार वर्षों तक

करितां तेथ । वंशजाळींत असे गुप्त । बाहेर न दिसे कोणातें । १३
मध्यान्हीं आला आदित्य । तों काळखड्ग अकस्मात । गगनपंथें उतरत । सुमित्रासुतें देखिलें । १४ तंव ते मनीं भावी शस्त्रदेवता । मी नव जाय शंबरीच्या हाता । शरण जाईन सुमित्रासुता । हरीन जीविता शंबरीच्या । १५ सभाग्यापुढें चिंतामणी । पडे अकस्मात येऊनी । तैसें काळशस्त्र ते क्षणीं । सौमित्राजवळी पातलें । १६ सौमित्रें हातीं घेतलें शस्त्र । म्हणे कृपालु तो त्रिनेत्र । ऐसें बोलोनि अजराजपौत्र । परमानंदें तोषला । १७ मग तो उर्मिलाप्राणाधार । वस्त्रें पुशीत काळशस्त्र । म्हणे याचा प्रताप दिसे अपार । पाहूं धार कैसी ते । १८ जेणें पुष्पप्राय धरिली धरणी । तेणें निजबळें शस्त्र उचलोनी । शंबरीसहित जाळी ते क्षणीं । दुखंड केली तत्काळ । १९ शोणिताचा चालिला पूर । साशंकित पाहे उर्मिलावर ।

दारुण तपस्या करते हुए वह वहाँ बाँसों की कोठी में गुप्त रूप में रहा। वह बाहर (से) किसी को नहीं दिखायी देता था। १३ जब सूर्य मध्याह्न समय पर आ गया, अर्थात् जब ठीक दुपहर हो गयी, तो लक्ष्मण ने सहसा काल-खड्ग को आकाश मार्ग से (नीचे) उतरते हुए देखा। १४ तब उस शस्त्र-देवता ने मन में विचार किया—मैं शम्बरी के हाथ में नहीं जाऊँगा; मैं सुमित्रा-सुत लक्ष्मण की शरण में जाऊँगा (और) शम्बरी के जीवन का अपहरण करूँगा। १५ जैसे भाग्यवान के सामने सहसा चिन्तामणि रत्न आकर गिरा हो, वैसे ही वह काल-खड्ग उस क्षण लक्ष्मण के पास आ पहुँचा। १६ लक्ष्मण ने (उस) शस्त्र को हाथ में लिया और कहा (-सोचा)—'शिवजी तो कृपालु हैं'। ऐसा कहते (-सोचते) हुए अजराज के पौत्र लक्ष्मण परम आनन्द के साथ तृप्त हो गये। १७ फिर उर्मिला के (उन) प्राणाधार लक्ष्मण ने वस्त्र से उस काल-खड्ग को पोंछ लिया और कहा (-सोचा)—'इसका प्रताप तो असीम (जान पड़ता) है। देख तो लूँ, (इसकी) धार कैसी है'। १८ जिन शेष भगवान् ने धरती को फूल के समान (सिर पर) उठा लिया (है), उनके अवतार—लक्ष्मण ने अपने बल से (उस) शस्त्र को उठाकर उस क्षण (आघात से) शम्बरी-सहित उस कोठी को छेदकर दो टूक कर डाला। १९ (उससे) रक्त का रेला बह रहा है—यह लक्ष्मण ने आशंका सहित देखा (अर्थात् यह देखकर लक्ष्मण को आशंका हो गयी)। उन्होंने कहा—' यहाँ कौन ब्राह्मण (बैठा हुआ) था ? — इसे सचमुच नहीं जानते हुए मैंने उसका

म्हणे कवण होता येथें विप्र । नेणोनि साचार वधिला म्यां । २० चिंतातुर राघवानुज । तपस्वी वधिला नेणोनि सहज । आतां कोपेल रघुराज । मुखांबुज कोमाइलें । २१ असो याउपरी परतला । जानकी मार्ग लक्षी वेळोवेळां । म्हणे मध्यान्हकाळ टळला । सौमित्रें लाविला उशीर कां । २२ ऐसें विलोकी क्षणक्षणां । तों येतां देखिलें लक्ष्मणा । शस्त्र देखोनि मृगनयना। अहल्योद्धारणाप्रति बोले । २३ म्हणे स्वामी आजि लक्ष्मण । येत मंद मंद म्लानवदन । तंव तो सर्वसाक्षी पूर्ण चैतन्यघन । अंतरखुण जाणतसे । २४ तंव तो पावला महावीर । रघुपती-पुढें ठेविलें शस्त्र । जोडोनियां दोन्ही कर । समाचार सांगीतला । २५ म्हणे अयोध्याधीशा समर्था । अकस्मात खड्ग आलें हाता । वंशजाळी हाणोनि पाहतां । तपस्वी घात पावला । २६ मग सुहास्यवदन जनकजामात । म्हणे द्विज नव्हे तो राक्षस यथार्थ । शूर्पणखेचा तो सुत । भाचा जाण रावणाचा । २७ तो बहुत दिवस तप करीत होता । काळखड्ग

वध कर डाला'। २० (इसलिए) लक्ष्मण चिन्तातुर हो गये—मैंने अनजाने यों ही किसी तपस्वी का वध कर डाला, अब श्रीराम क्रुद्ध हो जाएँगे। (इस आशंका से) उनका मुख-कमल कुम्हला गया। २१

अस्तु। इसके पश्चात् वे (कुटी की ओर) लौट चले। (इधर) सीता बार-बार मार्ग की ओर देख रही थी। उसने कहा(-सोचा)—'दुपहर टल गयी; लक्ष्मण ने देर क्यों की?' २२ इस प्रकार सोचते हुए वह क्षण-क्षण (मार्ग की ओर) देख रही थी कि उसने लक्ष्मण को आते हुए देखा। (उनके) हाथ में शस्त्र देखकर वह श्रीराम से बोली। २३ उसने कहा—'स्वामी, आज लक्ष्मण म्लान-वदन होकर मन्द-मन्द गति से आ रहे हैं।' तब सर्वसाक्षी पूर्ण चैतन्य-घन स्वरूप श्रीराम ने अन्दर की बात जान ली। २४ तब (तक) वे महावीर लक्ष्मण आ पहुँचे। उन्होंने रघुपति के सम्मुख खड्ग रख दिया और दोनों हाथ जोड़कर समाचार कह दिया। २५ उन्होंने कहा—'हे सामर्थ्यवान् अयोध्याधीश! (यह) खड्ग (मेरे) हाथ में अकस्मात् आ गया। (उससे) बाँसों की कोठी पर आघात करके देखते ही (किसी) तपस्वी का वध हो गया'। २६ तब श्रीराम ने सुहास्य-युक्त मुख से, अर्थात् मुस्कराते हुए कहा—'वह ब्राह्मण नहीं—वह तो सचमुच राक्षस था। वह शूर्पणखा का पुत्र अर्थात् जान लो कि रावण का भानजा था। २७

यावें हाता। मग इंद्रादिदेवां समस्तां। अजिंक्य व्हावें समरांत। २८ दुजयाचा चिंतिती घात। त्यांसी निर्दाळी उमाकांत। ज्याची क्रिया त्यास बाधित। अति अनर्थसूचक जे। २९ जैसें खणूं जातां वारुळ। महासर्पें डंखिलें तत्काळ। कीं हातीं धरितां तप्तलोहगोळ। भस्म होय तेधवां। ३० जैसा शुष्ककाष्ठछिद्रीं चरण। बळेंचि घालिजे नेऊन। वरी खीळ बैसविली ठोकून। मग करितां रुदन न निघेचि। ३१ जे जे आपण क्रिया करावी। ते ते सवेंचि लागे भोगावी। परी सौमित्रा आतां सीता रक्षावी। न विसंबावी क्षण एक। ३२ आतां येथून महाद्वंद्व। मांडेल असावें सावध। राक्षसी माया नानाविध। ब्रह्मादिकां न कळती। ३३ हें एक बरवें जाहलें। जें काळखड्ग हातासी आलें। ऐसें ऐकतां ते वेळे। मन तोषलें सौमित्राचें। ३४ तंव ते रावणाची भगिनी। शूर्पणखा शंबरीची जननी। रात्रीं दुष्ट स्वप्न

वह बहुत दिन तपस्या कर रहा था ताकि काल-खड्ग प्राप्त हो जाए और फिर (उससे) इन्द्र आदि सब देवताओं के लिए वह युद्ध में अजेय हो जाए। २८ जो दूसरों के विनाश का विचार करते हैं, उनका विनाश उमापति शिवजी कर डालते हैं। जिसकी जो करतूत दूसरे के लिए हानिकारी प्रतीत होती है, शिवजी उसे ही वह हानिकारी कर देते हैं। २९ यह वैसे ही घटित होता है, जैसे किसी के (साँप के) बमीठे (वल्मीक, बिल) को खोदने जाते ही तत्क्षण महासर्प उसे डस गया हो, अथवा लोहे के गर्म गोले को हाथ में पकड़ लेने पर तभी वह जलकर भस्म हो जाता है; अथवा जैसे सूखे काठ के छेद में (कोई) बलात् पाँव डाल दे और ऊपर कील ठोंक कर बैठा दे, तो रोने पर भी वह नहीं निकलता। ३०-३१ हम जो जो करतूत करें, वह खुद को साथ ही में भोगनी पड़ती है। परन्तु हे लक्ष्मण, अब सीता की रक्षा की जाए। एक क्षण के लिए (दूसरे पर) अवलंबित रहकर इसे न भूलें। ३२ अब यहाँ से आगे बड़ी लड़ाई छिड़ जाएगी, इसलिए सावधान रहें। राक्षसों की माया नाना प्रकार की होती है, जो ब्रह्मा आदि के भी ध्यान में नहीं आती। ३३ यह एक अच्छी (बात) हो गयी, जो काल-खड्ग प्राप्त हो गया'। उस समय ऐसी बात सुनकर लक्ष्मण का मन सन्तुष्ट हो गया। ३४

तब (उधर) रावण की बहन और शम्बरी की माता शूर्पणखा रात को दुष्ट (अशुभ) सपना देखते ही तत्काल जागृत हो गयी। ३५

देखोनी। सावध जाहली तत्काळ। ३५ मग विचार करून मानसीं। सवें घेतल्या चौघी राक्षसी। सवेग चालिली वनासी। निजपुत्रासी पहावया। ३६ लंकेबाहेर जों आली। तों दिनकरें प्रभा केली। मार्ग चालतां वेळोंवेळीं। वंशजाळी विलोकित। ३७ तंव ते न दिसेचि पाहतां। देखे गृध्र मंडळ घालितां। धापा दाटली धांवतां। स्थळबीभत्सता देखोनि। ३८ जवळीं येऊनियां पाहे। तों पुत्रासहित जाळी घायें। द्विखंड होवोनि पडिली आहे। रुधिर वाहे भडभडां। ३९ मग धाय मोकलोनि कैशी। गडबडां लोळे भूमीसी। जळावेगळी मासोळी जैशी। चडफडी तैशी अतिशोकें। ४० मग उठवोनि सखियांनीं। बैसविली सावध करुनी। म्हणती पुढील कार्य मनासी आणीं। कोणें वनीं सुत वधियेला। ४१ मन ते राक्षसी उठोन। भोंवतें पाहे विलोकून। तों मानवी पदमुद्रा देखोन। विस्मय करी मानसीं। ४२ शंबरीसहित जाळी। एके घायें खंड केली। तरी काय राक्षसांची सीमा जाहली। आयुष्याची

फिर मन में विचार करके वह साथ में चार राक्षसियों को लेकर अपने पुत्र को देखने के लिए वेगपूर्वक वन की ओर जाने लगी। ३६ जब वह लंका के बाहर आ गयी, तब (तक) सूर्य ने प्रकाश फैला दिया—अर्थात् सूर्य का उदय हो गया। राह चलते-चलते, वह समय-समय पर बाँस की कोठी को खोज रही थी। ३७ (परन्तु) तब वह खोजने पर (भी) नहीं दिखायी दे रही थी। (फिर भी) उसने गिधों को मँडराते हुए देखा। दौड़ते हुए उसका दम फूल गया। उसने उस स्थान की बुरी दशा (हुई) देखी। ३८ फिर निकट जाकर उसने देखा कि वह कोठी (शस्त्र के) आघात से पुत्र (शम्बरी) सहित दो टुकड़े होकर पड़ी हुई है और (वहाँ से) ख़ून ज़ोर से बह रहा है। ३९ तब वह बिलख-बिलखकर कैसे रोती है, (अनुमान करके समझिए)। अति शोक से तड़प-तड़पकर ज़मीन पर वैसे ही लोटती-पोटती रही, जैसे मछली जल से अलग होने पर तड़पती है। ४० अनन्तर सखियों ने उसे उठाकर और सचेत करके बैठा लिया और कहा—'आगे की बात मन में लाओ (सोचो)—किसने वन में (तुम्हारे) पुत्र का वध कर डाला ? ४१ तब वह राक्षसी उठकर चारों ओर ध्यान से देखती रही, तो मानव के पद-चिह्नों को देखकर मन में आश्चर्य-चकित हो गयी। ४२ (उसने सोचा-) किसी ने एक आघात से कोठी को शम्बरी-सहित खण्ड-खण्ड कर डाला,

येथोनियां । ४३ असो दहन करून शंबरीसी । वन शोधिती तेव्हां राक्षसी । तों दुरोनि देखिलें सौमित्रासी । जैसा तेजस्वी चंडांशु । ४४ शूर्पणखा म्हणे हाचि काळ । येणेंचि ग्रासिला माझा बाळ । मग कापट्यवेष तत्काळ । धरित्या जाहल्या राक्षसी । ४५ रंभेहून सुंदर देखा । स्वरूपें नटली शूर्पणखा । सवें चौघीजणी सख्या । भुले देखतां अनंग । ४६ चौघीजणी दोहींकडे । मध्यें शूर्पणखा दिव्य रूपडें । जिच्या स्वरूपाचा प्रकाश पडे । काननामाजी हिंडतां । ४७ चौघींच्या स्कंधांवरी हात । पादुका पायीं रत्नखचित । हावभाव कटाक्ष दावित । गायन करीत मधुर स्वरें । ४८ आल्हादकारक चंद्रवदन । वदनीं बोलतां झळकती दशन । चाले गजगती मोडोनि नयन । उर्मिला-जीवन देखोनियां । ४९ हळूच सख्यांसी बोलत । येणेंचि वधिला गे माझा सुत । तरी यासी सगळेचि मुखांत । घालोनि गिळीन निर्धारें । ५० तों सौमित्र करीत रामस्मरण । काननमाजी करी भ्रमण । जैसे कमळावरी भ्रमर जाण ।

तो क्या यहाँ—अब से राक्षसों की आयु की सीमा हो गयी ? ४३ अस्तु । शम्बरी (के शव) की दाहक्रिया करके, जब राक्षसियाँ वन में (वधिक को) खोजती रहीं, तो उन्होंने दूर से लक्ष्मण को देखा, जो सूर्य-से तेजस्वी थे । ४४ (तब) शूर्पणखा ने कहा—'यही (वह) काल (-पुरुष) है। इसीने मेरे बच्चे को ग्रस लिया। अनन्तर उन राक्षसियों ने कपट-वेश (रूप) धारण किया । ४५ देखिए, शूर्पणखा रम्भा से भी सुन्दर रूप से सज गयी । साथ में चारों सखियाँ (वैसे ही रूप में) थीं, जिन्हें देखकर कामदेव (तक) मोहित हो जाता । ४६ वे चारों सखियाँ दोनों तरफ रहीं—बीच में उस शूर्पणखा का अद्भुत रूप था । वन में घूमते हुए उसके सौंदर्य का प्रकाश फैलता जा रहा था । ४७ उसने चारों के कंधों पर हाथ टिकाये थे । उसके पाँवों में रत्न-जटित पादुकाएँ थीं । वे हाव-भाव के साथ कनखियों से देखते हुए मधुर स्वर में गा रही थीं । ४८ उस (शूर्पणखा) का मुख-चंद्र आह्लादकारी था । बोलते समय उसके दाँत चमकते थे । लक्ष्मण को देखकर वह आँखों को मिचकाते हुए गज-गति से चलती रही । ४९ उसने सखियों से धीरे-धीरे कहा—'अरी, इसी ने मेरे बेटे का वध किया । इसलिए मैं निश्चय ही इसे पूरा-पूरा मुँह में डालकर निगल जाऊँगी'। ५०

ठायीं ठायीं रुणझुणती । ५१ तों शूर्पणखा ते वेळीं । सवेग पातली सौमित्राजवळी । कामचेष्टा करी वेळोवेळीं । वचन मधुर बोलोनियां । ५२ म्हणे वो अवधारा सुंदरा । बहुत हिंडल्यें वसुंधरा । परी न मजयोग्य मिळे नोवरा । कुशल चतुर प्रतापी । ५३ तरी आजि माझें धन्य भाग्य । पावल्यें स्वामीचें अर्धांग । आजि तप फळलें सांग । आली सवेग पुढेंचि । ५४ घेऊनियां नवरत्नमाळा । घालावया आली गळां । तंव तो महाराज सत्वागळा । जो अवतरला भोगींद्र । ५५ गुणसिंधु जानकीजीवन । त्याची कृपा जयावरी पूर्ण । विषयसंगें त्याचें मन । काळत्रयीं मळेना । ५६ जेणें प्राशिला सुधारस । त्यासी काय बाधेल महाविष । जो सूर्यासन्निध करील वास । तम केवीं त्यासी बाधील । ५७ कामधेनु ज्याचे मंदिरीं । तो कधींच नव्हे दरिद्री । जो

तब लक्ष्मण श्रीराम का स्मरण करते थे और वन में भ्रमण कर रहे थे, समझिए, जैसे भौंरे स्थान-स्थान पर कमलों पर गुनगुनाते रहते हैं । ५१ तो उस समय शूर्पणखा वेगपूर्वक लक्ष्मण के पास आ पहुँची (और) मीठी-मीठी बातें करते हुए समय-समय पर (बार-बार) कामचेष्टा करती रही । ५२ उसने कहा—' हे सुन्दर (पुरुष) ! सुनिए । मैं पृथ्वी में बहुत घूम चुकी हूँ, परन्तु मेरे योग्य कोई कुशल, चतुर, प्रतापवान् वर नहीं मिल रहा है । ५३ अतः (आपके दर्शन होने से) मेरा भाग्य धन्य है; मैं स्वामी के अर्धांग को प्राप्त हो गयी । कहिए कि आज मेरी तपस्या फल-युक्त हो गयी । ' (ऐसा कहते हुए) वह वेगपूर्वक (उनके) सम्मुख आ गयी । ५४ नवरत्नों की माला लिये हुए वह (उनके) गले में पहनाने के लिए आ गयी । तब (फिर भी) वे महोदय तो सत्त्व में दृढ़ थे, जो (वस्तुतः) भोगींद्र शेष भगवान् (ही) के अवतार थे । ५५ गुणों के सागर श्रीराम की पूर्ण कृपा जिसपर होती है, उसका मन विषयों की संगति में तीनों कालों में (कभी भी) मलिन नहीं होता । ५६ जिसने अमृतरस का प्राशन किया, उसे महाविष कैसे हानि पहुँचाएगा ? जो सूर्य के निकट निवास करता है, उसपर अँधेरा बुरा असर कैसे डाल पाएगा ? ५७ जिसके घर कामधेनु हो, वह कभी भी दरिद्र नहीं (माना जाता) है । जो आत्मानन्द के सागर में सो गया (मग्न हो गया) हो, वह (कभी भी) कर्म-बन्धन में नहीं उलझ जाएगा । ५८ देखिए, जिसके आँगन में कल्पवृक्ष हो,

पहुडला आनंदसमुद्रीं । कर्मबंधीं न पडे तो । ५८ कल्पवृक्ष अंगणीं देख । तो कासया मागेल भीक । ज्यासी भेटला वैकुंठनायक । तो न पूजी भूतें प्रेतें । ५९ उर्वशीसमान ज्याची ललना । तो कदाही प्रेत कवळीना । नंदनवनींचा भ्रमर जाणा । अर्कीवरी न बैसे । ६० जो भ्रमर-मंचकावरी । पहुडणार अहोरात्रीं । तो निजेल खदिरांगारीं । हें काळत्रयीं घडेना । ६१ ज्याचे अंगीं मृगमदाची उटी । तो काकविष्ठा न पाहे दृष्टीं । जो बैसला क्षीराब्धीच्या तटीं । तो कां कांजी इच्छील । ६२ असो ऐसा लक्ष्मण । जो आहाररहित निर्वाण । तो शूर्पणखेसी प्रतिवचन । बोलता जाहला तेधवां । ६३ म्हणे वो सुंदरी राहें । आम्हां सीताराम वडील आहे । पैल वसती पंचवटीये । उमामहेश्वर ज्यापरी । ६४ माय बाप गुरु बंधु । रघुवीर माझा कृपासिंधु । त्याचे आज्ञेविण हा संबंधु । काळत्रयीं घडेना । ६५ शेष सांडील भूभार । पूर्वेस मावळेल दिनकर । तरी रामआज्ञेविण साचार ।

वह क्योंकर भीख माँगेगा ? जिससे वैकुण्ठनायक श्रीविष्णु मिल गये हों, वह भूतों-प्रेतों का पूजन (कदापि) नहीं करता । ५९ जिसके उर्वशी के समान (रूपवती) स्त्री हो, वह प्रेत का आलिंगन कदापि नहीं करता । समझिए, नन्दनवन का भ्रमर आक पर नहीं बैठता । ६० जो दिनरात भ्रमर-मंच अर्थात् फूल से मृदु पलंग पर लेटता है, (उसके सम्बन्ध में) यह तीनों कालों में नही घटित होगा कि वह खदिरांगारों (खैर नामक पेड़ से बनाये हुए कोयलों के अंगारों) पर सो जाए । ६१ जिसके अंग में मृगमद अर्थात् कस्तूरी का लेप लगा है, वह कौए की विष्ठा आँखों नहीं देखता । जो क्षीर-समुद्र के तट पर बैठा हो, वह माँड की क्यों अभिलाषा करेगा ? ६२ अस्तु । ऐसे (गुणों से युक्त वे) लक्ष्मण, जो निश्चय ही निराहार (रहते) थे, शूर्पणखा से क्या बात बोले ? (सुनिए) । ६३ वे बोले—'हे सुन्दरी ! रहने दो । सीता और राम हमारे लिए ज्येष्ठ हैं, जो उस ओर पंचवटी में रहते हैं और जो हमारे लिए उमा और शिवजी जैसे हैं । ६४ माता, पिता, गुरु, बन्धु—मेरे लिए कृपासिन्धु रघुवीर (ही) हैं । (इस प्रकार का) यह सम्बन्ध बिना उनकी आज्ञा के तीनों कालों में (कभी भी) नहीं घटित हो सकता । ६५ शेष भगवान् भूमि के बोझ को छोड़ (उतार) देंगे; सूर्य पूर्व में अस्त हो जाएगा (ये बातें असम्भव हैं, वे

तुज न वरीं निर्धारें। ६६ तों शूर्पणखा बोले वचन। तरी मी आणित्यें रामाची खूण। अवश्य म्हणे लक्ष्मण। येरी तेथोन चालिली। ६७ सांगातें सखिया चौघीजणी। विचार सांगे त्यांलागुनि। राम लक्ष्मण सीता तीन्ही। रात्रीं गिळोनि जाऊं लंके। ६८ आमुची कार्यसिद्धि येथून। सख्या हो जाह्ली परिपूर्ण। मग ये वनींचे ब्राह्मण। भक्षूं शोधोनि साक्षेपें। ६९ ऐसें विचारोनि मानसीं। वेगें आली पंचवटीसी। देखोनियां सीतारामांसी। साष्टांग नमन पैं केलें। ७० आजि माझें भाग्य पूर्ण। देखिले भावें स्वामिचरण। बाई मी तुम्हांसी शरण। जाऊ जाह्ल्यें तुमची मी। ७१ मजवरी स्नेह करावा बहुत। भावोजींस प्रार्थोनि त्वरित। मजजवळी द्यावें लिखित। प्राणनाथ वरावया। ७२ चरण त्यांचे कोमळ चांगले। वनीं हिंडताती एकले। तळहातीन करकमळें। सुमनशेजे घालोनि। ७३ भावोजींचे आज्ञेविण पाहें। मज ते वरीत नाहीं करूं काये।

सम्भव भी हो जाएँ) तो भी बिना राम की आज्ञा के मैं सचमुच तुम्हारा वरण निश्चय ही नहीं करूँगा'। ६६ तब शूर्पणखा ने यह बात कही— 'तो मैं राम की निशानी लाती हूँ'। (इसपर) लक्ष्मण ने कहा— 'अवश्य'। (तो) वह वहाँ से चल दी। ६७ साथ में चारों सखियाँ थीं। (शूर्पणखा ने) उनसे अपना इरादा बताया—राम, लक्ष्मण, (और) सीता—तीनों को रात में निगलकर लंका (की ओर) चली जाएँ। ६८ हे सखियो, (समझो कि) हमारी कार्य-सिद्धि यहाँ से (आगे) परिपूर्ण हो गयी। अनन्तर जाकर वन के (निवासी) ब्राह्मणों को निश्चय ही खा डालेंगी। ६९ मन में ऐसा सोचकर वह वेगपूर्वक पंचवटी में आ गयी (और) सीता-राम को देखकर उसने साष्टांग नमन किया। ७० (तदनन्तर उसने कहा—) 'आज मेरे भाग्य परिपूर्ण अर्थात् सफल (हो गये) हैं। —मैं (अपने) स्वामी के चरणों को श्रद्धा से देख पायी। हे देवी, मैं (आपकी) शरण में (आ गयी) हूँ—मैं आपकी देवरानी हो गयी (हूँ)। ७१ आप मुझसे बहुत स्नेह करें। देवर से प्रार्थना करते हुए, प्राणनाथ के रूप में उनका वरण करने के लिए लिखित प्रमाण मुझे झट से दीजिए। ७२ उनके चरण बहुत कोमल हैं। वे वन में अकेले भ्रमण किया करते हैं। उन्हें पुष्प-शय्या पर लिटाकर मैं उनके चरण-कमलों-अर्थात् कमलों-से कोमल चरणों को चाँपूँगी। ७३ मैं क्या करूँ? देखिए, बिना जेठजी की आज्ञा के,

अहा त्यांचा वियोग न साहे। विरहें जाय प्राण हा। ७४ डोळां आसुवें आणिलीं लवलाहीं। पतीस माझा विश्वास नाहीं। पुढें जन्म कंठणें एके ठायीं। भावोजीस बाई सांगा जी। ७५ मी केवळ पतिव्रता साचार। कर्णकुमारी परम पवित्र। मज कुणाही पुरुषाचा पदर। बाई लागला नाहींच। ७६ त्याविण मज पुरुष इतर। बंधूसमान साचार। मागुती उदकें भरोनि नेत्र। म्हणे सत्वर पत्र द्या आतां। ७७ सीतेसी सुख वाटलें फार। म्हणे बरवा जाहला विचार। मज जाऊ मिळाली सुंदर। ईस सौमित्र वर साजे। ७८ मग म्हणे जी रघुराया। ईस खूण द्यावी लवलाह्या। स्वामी सौमित्रा योग्य जाया। मिळाली जी निर्धारें। ७९ मग तो सर्वात्मा रघुनायक। चराचरचित्त-परीक्षक। जो मायाचक्रचाळक। कर्ता हर्ता पाळिता जो। ८० तिच्या उफराट्या बाहुल्या नेत्रांत। न्याहाळून पाहे जनक-जामात म्हणे हे निशाचरी यथार्थ। छळावया आली असे। ८१ नेत्रवक्त्रांचे तिचे विकार। त्यांवरोनि समजलें

वे मेरा वरण नहीं कर रहे हैं। हाय! उनका वियोग नहीं सहा जाता। (मेरे) ये प्राण विरह से निकलते जा रहे हैं'। ७४ झट से उसने आँखें आँसुओं से भर दीं (और कहा)—'पति को मेरे प्रति विश्वास नहीं है। आगे (भविष्य में) एक स्थान पर जीवन बिताना है। हे देवीजी, आप (कृपया अपने) देवरजी से कह दें। ७५ मैं तो सचमुच केवल पतिव्रता हूँ; मैं कर्ण की पुत्री परम पवित्र हूँ। देवीजी, मुझे किसी भी पुरुष के वस्त्र के छोर तक का स्पर्श भी नहीं हुआ। ७६ सिवा उनके अन्य पुरुष मेरे लिए सचमुच बन्धुओं समान हैं'। फिर (अश्रु-) जल से आँखों को भरकर वह बोली—'अब झट से पत्र दीजिए।' ७७ (यह सुनकर) सीता को बहुत सुख अनुभव हुआ। उसने कहा (-सोचा)—'यह अच्छी बात हो गयी। मुझे सुन्दर देवरानी मिल गयी—इसे लक्ष्मण पति रूप में शोभा देंगे'। ७८ फिर उसने कहा—'हे रघुराज। इसे झट से निशानी दीजिए। हे स्वामी! लक्ष्मण को निश्चय ही योग्य पत्नी मिल गयी'। ७९ (इसपर) जो चराचर के चित्त के परीक्षक हैं, जो माया के चक्र के संचालक, कर्ता, अपहर्ता एवं पालनकर्ता हैं, ऐसे रघु (-कुल के) नायक तथा जनक के जामाता उन सर्वात्मा श्रीराम ने उसकी आँखों की उलटी पुतलियों को निहारकर देखा और कहा (-सोचा)-

अंतर । सुमनावरून सत्वर । वृक्ष चतुर जाणती । ८२ बोलावरोनि कळे चित्त । आचरणावरून पूर्वार्जित । क्रियेवरोनि वर्णाश्रम सत्य । परीक्षक जाणती । ८३ राहणी-वरून कळे परमार्थ । शब्दावरूनि कळे पांडित्य । प्रेमा-वरूनि भक्त । परीक्षक जाणती । ८४ दानावरूनि कळे उदार । रणीं समजे प्रजा शूर । लक्षणांवरूनि नृपवर । जाणती चतुर परीक्षक । ८५ वास येतां कळे काष्ठ । स्वरावरोनि समजे कंठ । कोंभावरून स्पष्ट । भूमीचें मार्दव जाणिजे । ८६ अंगणावरून समजे सदन । भूतदये-वरून ब्रह्मज्ञान । प्रभेवरूनि रत्न । परीक्षक जाणती । ८७ असो सर्वात्मा रघुवीर । शूर्पणखेचें ओळखी अंतर । आंत शठत्व मृदु शब्द बाहेर । जाणे चतुर श्रीराम । ८८ मुख शोभे जैसें कमळ । शब्द चंदनाहून शीतळ । परी अंतरीं धूर्त कुटिळ । तमालनीळें ओळखिलें । ८९ श्रीराम म्हणे

'सचमुच यह राक्षसी है, (जो यहाँ हमें) सताने के लिए आयी है'। ८०-८१ उसके नयनों और मुख (-मुद्रा) में प्रकट होनेवाले (काम आदि) भावों से उसका भेद समझ में आ गया। चतुर लोग फूल से झट से पेड़ (के बारे में) जानते हैं। ८२ बात (करने के ढंग) से (बोलनेवाले का) मन समझ में आता है। (किसी के) आचरण से उसके पहले किये हुए कर्म तथा (किसी के) कर्म से (उसके) वर्ण और आश्रम को सचमुच परीक्षक जानते हैं। ८३ रहन-सहन से परमार्थ ज्ञात होता है, शब्द से पंडित (का पांडित्य) विदित होता है, तो परीक्षक प्रेमभाव से भक्त को जानते हैं। ८४ दान से (दाता की) उदारता मालूम होती है, तो रण में शूर प्रजाजन समझ में आते हैं। चतुर पारखी लोग लक्षणों से राजा को जानते हैं। ८५ गन्ध आते ही काठ (की जाति) विदित होता है, स्वर से कण्ठ (का माधुर्य) समझ में आता है। अंकुर से भूमि का मार्दव स्पष्टता से जान जाइए। ८६ आँगन से घर समझ में आता है, भूत (प्राणी)-दया से ब्रह्मज्ञान विदित होता है। पारखी कांति से रत्न को समझते हैं। ८७ अस्तु। सर्वात्मा रघुवीर ने शूर्पणखा के मन या रहस्य को पहचान लिया। चतुर श्रीराम ने जान लिया कि (इसके) अन्दर शठता है और बाहर (मुख में) कोमल शब्द हैं। ८८ तमाल-से नील शरीरधारी श्रीराम ने यह पहचान लिया कि (इसका) मुख (तो) कमल जैसा सुशोभित है और (इसके) शब्द चन्दन से शीतल हैं; फिर भी यह

ते अवसरीं । लग्नपत्रिका लिहों दे पाठीवरी । ऐकतां भयभीत निशाचरी । विश्वास अंतरीं उपजेना । ९० सीतेस म्हणे बाई ऐकतां । भावोजींसमोर बोलतां । मज लाज वाटे तत्त्वतां । तुम्हीच प्रार्था तयांसी । ९१ भावोजी चतुर आणि तरुण । मी लज्जावेष्टित कामिन । त्यांपुढें बैसतां जाण । जाईल प्राण वाटतसे । ९२ मग बोले रघुनंदन । पृष्ठीवरी लिहिल्याविण । आणिक आम्हांपाशीं खूण । दुजी नाहीं सर्वथा । ९३ मग शूर्पणखा बोले वचन । तरी पृष्ठीवरी लिहावी खूण । अवश्य म्हणे रघुनंदन । केलें लेखन पृष्ठीवरी । ९४ श्रीराम म्हणे जाईं सत्वर । उशीर न लावीच सौमित्र । ऐसें बोलतां शतपत्रनेत्र । पवनवेगें चालिली । ९५ मग लक्ष्मणाजवळी येऊन । सांगे परम हर्षेंकरून । भावोजींनीं मज देवोनि मान । मुखवचनें सांगितलें । ९६ अवश्य वरावें तुम्हांसी । ऐसें सांगितलें मजपाशीं । गांधर्व लग्न निश्चयेंसी । तत्काळचि लावावें । ९७

अन्दर से धूर्त एवं कुटिल है । ८९ उस समय श्रीराम ने कहा—‘ (मुझे) विवाह-सम्बन्धी पत्र पीठ पर लिखने दो ’ । यह सुनते ही (वह) निशाचरी भयभीत हो गयी । उसके मन में (श्रीराम के प्रति) विश्वास नहीं उत्पन्न हो रहा था । ९० तो उसने सीता से कहा—देवीजी, सुन रही हैं न ? जेठजी के सामने बोलते हुए मुझे सचमुच लज्जा आ रही है । (इसलिए) आप ही इनसे प्रार्थना कीजिए । ९१ जेठजी चतुर तथा तरुण हैं (और इधर) मैं तो लज्जा से घिरी हुई (लज्जा में चूर) कामिनी हूँ । समझिए, लगता है कि इनके सामने बैठते ही प्राण निकल जाएँगे ’ । ९२ फिर रघुनन्दन ने कहा—‘ पीठ पर लिखने के सिवा हमारे पास कोई दूसरी निशानी बिलकुल नहीं है ’ । ९३ तो शूर्पणखा ने (यह) बात कही—‘ तब तो पीठ पर चिह्न लिखिए—अंकित कीजिए ’ । रघुनाथ ने कहा, ‘ अवश्य ’ । और (उसकी) पीठ पर लिख लिया । ९४ (अनन्तर) श्रीराम ने कहा—‘ झट से जाओ । लक्ष्मण देर नहीं लगाएँगे ’ । कमलनयन श्रीराम के इस प्रकार बोलते ही वह वायुगति से चल पड़ी । ९५ फिर लक्ष्मण के पास आकर उसने परम आनन्द से कहा—“ जेठजी ने मेरा सम्मान करके मौखिक (शब्दों के) रूप में कहा । ‘ अवश्य वरण करें ’ ऐसा तुम्हारे लिए मुझसे कहा । इसलिए झट से गान्धर्व विवाह कीजिए ’ । ९६-९७ फिर लक्ष्मण ने कहा—‘ बिना श्रीराम का चिह्न देखे,

मग बोले लक्ष्मण । न देखतां श्रीरामाची खूण । तुज न वरींच मी पूर्ण । सत्य वचन हें माझें । ९८ येरी म्हणे ते समयीं । माझा विश्वास तुम्हांसी नाहीं । पुढें जन्म कंठणें एके ठायीं । दुजें कांहीं नसेचि । ९९ मी येथें लटिकें बोलोन । भावोजींस काय दावूं वदन । मी तयांलागीं भेटोन । आल्यें आतां तत्त्वतां । १०० भावोजी जलदवर्ण सुंदर । बाई चंपककळिका सुकुमार । जवळ लिहावया नव्हतें पत्र । सांगितलें तुम्हां वरावें । १ तुम्हांसी श्रम जाहले थोर । चरण तळहातीन सुकुमार । कीं सौख्यशयनीं दोघें साचार । निद्रा करूं क्षणभरी । २ परी न मानीच लक्ष्मण । शूर्पणखा बोले हांसोन । म्यां तों आणिली आहे खूण । तुमचें मन पाहिलें म्यां । ३ येरी खूण दाखवी पाठीची । तों आज्ञा ऐसी श्रीरामाची । शूर्पणखा भगिनी दशमुखाची । इच्या नासिक-कर्णांची शांति करीं । ४ कर्ण आणि नासिक सकळ । सपाट करीं न लावीं वेळ । नवरी श्रृंगारूनि असंगळ । लंकेकडे पाठवावी । ५ स्त्रीवध न करावा जाण । यालागीं राखावा

मैं तुम्हारा वरण नहीं करूँगा । मेरी यह बात पूर्ण सत्य है । ' ९८ उस समय उसने—अर्थात् शूर्पणखा ने कहा—आपको मेरे प्रति विश्वास नहीं हो रहा है । आगे तो एक स्थान पर जीवन यापन करना है । दूसरी कोई बात नहीं है । ९९ यहाँ झूठ बोलकर मैं जेठजी को कौन मुँह दिखाऊँ ? वस्तुतः उनसे मिलकर अभी (यहाँ) आ गयी (हूँ) १०० जेठजी मेघ-वर्ण अर्थात् साँवले वर्ण के (और) सुन्दर हैं; देवीजी (जिठानी) सुकुमार चम्पक-कलिका हैं । लिखने के लिए उनके पास पत्र नहीं था । (इसलिए मौखिक रूप से) आपको मेरा वरण करने को कहा । १०१ आपको बहुत कष्ट हो गये हैं; मैं (आपके) सुकुमार चरण चाँप दूँगी अथवा (हम) दोनों सुख-शय्या पर सचमुच क्षणभर शयन करें ' । १०२ परन्तु लक्ष्मण (इसे सत्य) मानते ही नहीं थे । तब वह हँसकर बोली—' मैं तो चिह्न लायी हूँ—मैंने (तो) आपका मन देखा ' । १०३ (तदनन्तर) उसने पीठ पर अंकित चिह्न दिखा दिया, तो (लक्ष्मण ने जान लिया कि) श्रीराम की ऐसी आज्ञा है कि यह रावण की बहिन शूर्पणखा है—' इसकी नाक और कानों का शमन करो । १०४ कान और नाक सब बराबर करो, देर न लगाओ । (और) इस वधू को अमंगल रूप में सजाकर लंका की ओर भेज दो । १०५ समझो कि स्त्री का वध न करें, अतः

इचा प्राण । ऐसें लक्ष्मणें वाचून । म्हणे जाऊं चला एकांतीं । ६ दूरी केल्या चौघीजणी । धरिली शूर्पणखेची वेणी । सौमित्रें पाडिली धरणीं । पापखाणी ते निशाचरी । ७ मग म्हणे प्राणनाथा । मी सिद्ध आहें या कार्यार्था । झोंबोनि कासया पाडितां । नवल मज वाटतसे । ८ लक्ष्मणें न लागतां क्षणमात्र । छेदिलें नासिक आणि श्रोत्र । तों ते आक्रंदली अपवित्र । विशाळ शरीर धरियेलें । ९ अत्यंत विशाळ भयंकर । कपाळीं चर्चिला शेंदूर । नासिकापासोनि पूर । अशुद्धाचा भडकतसे । ११० चौघीजणी समवेत । पळती वाटेसी शंख करीत । म्हणे धांवा धांवा रे समस्त । राक्षस हो शीघ्रकाळें । ११ पळतां पाहे मागें पुढें । तों सौमित्रचि दृष्टीं पडे । भोंवता दिसे चहूंकडे । कोणीकडे जाऊं म्हणे । १२ अडखळोनि भूमीवरी पडती । मुखीं नासिकीं भरे माती । पद्मपुराजवळी येती । शंख करिती पांचीजणी । १३ आक्रोश ऐकतां थोर । त्रिशिरा आणि दूषण खर । सिद्ध

इसके प्राणों को शेष रखो (बचाओ) '। ऐसा पढ़कर लक्ष्मण ने कहा--' एकान्त में चले जाएँ '। १०६ (इस प्रकार उन) चारों (सखियों) को दूर रख करके लक्ष्मण ने शूर्पणखा की बेनी पकड़ ली और पापों की खान (जैसी) उस निशाचरी को नीचे भूमि पर गिरा दिया। १०७ तब उसने कहा--' हे प्राणनाथ ! मैं इस कार्य के लिए तत्पर हूँ, तो (मुझे) खींचा-तानी करके किसलिए गिरा रहे हैं ? --मुझे (इससे) अचरज हो रहा है '। १०८ (तदनन्तर) लक्ष्मण ने क्षण मात्र (का विलम्ब) न लगाते हुए उसकी नाक और कानों को छेद डाला, तो वह अपावन (स्त्री) धाड़ मारकर रो उठी। फिर उसने विशाल शरीर धारण किया। १०९ उसका वह शरीर अत्यन्त विशाल और भयावह था। कपाल में सिन्दूर लगाया था। उसकी नाक से रक्त का रेला उमड़ रहा था। ११० वे चारों स्त्रियाँ राह में चिल्लाती हुई साथ में भाग रही थीं। वह चिल्ला रही थीं--' हे समस्त राक्षसो ! शीघ्र दौड़ो, दौड़ो। ' १११ भागते हुए वे पीछे और सामने देखतीं तो उन्हें लक्ष्मण ही नजर आते। चारों ओर उन्हें (लक्ष्मणों का) घेरा दिखायी दे रहा था। (अतः) वह बोली (सोच में पड़ी) कि किस ओर जाएँ ? ११२ वे अटक-अटक कर भूमि पर गिर जातीं, तो मुख तथा नाक में मिट्टी भर जाती। (इस प्रकार) हाय तोवा मचाते हुए वे पाँचों जनी पद्मपुर के समीप आ गयीं। ११३ बड़ा

करोनि चतुरंग दळभार। आले सत्वर बाहेरी। १४ असुर पायींच नेटके। पुढें चमकताती कौतुकें। हातीं असिलता करी खेटकें। कटीं झळके यमदंष्ट्रा। १५ तों चालिले चतुरंग भारें। जैसीं चित्रें लिहिलीं चित्रकारें। तयांहून अति साजिरे। सर्वालंकारें डवरिले। १६ वीर भयंकर रणरगडे। जैसे काळाचे संवगडे। एक धांवती एकापुढें। सिंहनादें गर्जती। १७ निघाले गजभार उन्मत्त। कीं ते ऐरावतीचे सुत। श्वेतवर्ण आणि चौदंत। किंकाटत धांवती। १८ जिहीं युद्ध करोनि समरंगणीं। सुरांचे मुकुट पाडिले धरणीं। ते गजस्कंधावरी बैसोनी। शस्त्रें तुळिती आनंदें। १९ त्यांमागें रथांचे भार। वरी शस्त्रसामग्री अपार। चौदा सहस्त्र महावीर। एकवटले ते काळीं। १२० त्रिशिरा आणि खर दूषण। दळभारीं मुख्य तिघेजण। तों शूर्पणखा पुढें येऊन। शंख करीत उभी ठाके। २१ जैसा शेंदुरें माखिला पर्वत। तैसी रक्तें चर्चिली

वावैला सुनकर त्रिशिरा, दूषण और खर (नामक राक्षस) चतुरंग सेना सज्ज करके शीघ्रता से बाहर आ गये। ११४ पैदल चलते हुए वे गठीले (बदनवाले) राक्षस आगे सहज ही इठलाते जाते थे। (प्रत्येक के) एक हाथ में तलवार थी, तो दूसरे में ढाल थी। कमर में यमदंष्ट्रा, अर्थात् साक्षात् यमराज की दाढ़-सा अस्त्र झलकता था। ११५ तब वह चतुरंग सेना-दल ऐसे चल रहे थे, जैसे किसी चितेरे द्वारा अंकित चित्र ही हों (अर्थात् वे सैनिक बहुत सुन्दर थे।)--उन (चित्रों में अंकित सैनिकों) से भी वे अति सुन्दर तथा सब प्रकार के आभूषणों से सुशोभित थे। ११६ (वे) योद्धा भयंकर तथा युद्धभूमि में उद्दण्ड थे—मानो वे काल-देवता के मित्र हों। वे एक-दूसरे के आगे दौड़ते थे और सिंह का-सा गर्जन करते थे। ११७ हाथियों का समूह उन्मत्त होकर चल पड़ा। वे हाथी मानो ऐरावत के पुत्र थे। सफ़ेद रंग के तथा चार-चार दाँतों वाले वे हाथी चिंघाड़ते हुए दौड़ रहे थे। ११८ जिन्होंने युद्ध करते हुए युद्ध-भूमि में देवों के मुकुटों को धरती पर गिरा दिया था, वे राक्षस हाथियों के कंधों अर्थात् पीठ पर सवार होकर शस्त्रों को आनन्दपूर्वक तौल रहे थे। ११९ उनके पीछे रथों का दल था। उनपर अपार शस्त्र सामग्री थी। उस समय चौदह सहस्त्र महावीर इकट्ठा हो गये थे। १२० त्रिशिरा, खर और दूषण तीनों जने सेना के दलों के प्रमुख (नायक) थे। तब सामने आकर शूर्पणखा क्रन्दन करती हुई खड़ी हो गयी। १२१ जिस प्रकार कोई

आरक्त । म्हणे राक्षस आटिले समस्त । आला रघुनाथ पंचवटिये । २२ नवमेघरंग रघुवीर । सौमित्र गौरवर्ण सुकुमार । सीतेचें स्वरूप पहातां पंचशर । ओंवाळूनि टाकिजे । २३ तरी बहुत अरुवार लक्ष्मण । त्याचे नरडीचा घोट घेईन । तुम्ही सांगातें या अवघेजण । रक्तपान करवा मज । २४ जेणें माझें नासिक छेदिलें । त्यासी मी गिळीन सगळें । त्रिशिरा खर दूषण हांसले । बीभत्स रूप देखोनि । २५ म्हणती मानव तो रघुनंदन । आम्हीं त्यावरी जावें हें नीचपण । मग राक्षस चौदाजण । निवडोनियां काढिले । २६ ते शूर्पणखेसंगें देऊन । म्हणती मारून रामलक्ष्मण । ईस करवा रक्तपान । समाधान होय तों । २७ मग शूर्पणखा आणि राक्षस । वेगें जाती पंचवटीस । म्हणती धरूनि राम-सौमित्रांस । जितेचि न्यावे खरापाशीं । २८ एक म्हणती येथेंचि मारून । आम्ही करूं मांसभक्षण । आधीं करवावें रक्तपान । शूर्पणखेसी साक्षेपें । २९ जैसी मृगेंद्राची निंदा

पर्वत सिन्दूर से सना हुआ हो, उसी प्रकार वह रक्त से लाल-लाल सनी हुई थी। उसने कहा—‘(अब) रघुनाथ पंचवटी में आ धमका, तो (समझिए कि) सब राक्षस नष्ट हो गये। १२२ रघुवीर राम नवमेघ-से (श्याम) वर्ण का है, तो लक्ष्मण गोरा और सुकुमार है। सीता के रूप को देखकर तो कामदेव को (उसपर) निछावर कर डालें। १२३ परन्तु लक्ष्मण बहुत उद्धत (अक्खड़) है, (इसलिए उसके) गले को काटते हुए मैं उसके खून का घूँट पी जाऊँगी। तुम सब जने (मेरे) साथ चलो और मुझे उसका रक्त-पान कराओ। १२४ जिसने मेरी नाक को छेद डाला उसे मैं समूचा निगल डालूँगी’। (इसपर) उसके घिनौने रूप को देख कर त्रिशिरा, खर और दूषण हँस पड़े। १२५ उन्होंने कहा (सोचा)—‘वह रघुनन्दन राम तो मानव है। उसपर हम आक्रमण करें—यह तो नीचपन है’। फिर (उन्होंने) चौदह राक्षसों को चुना। १२६ उन्हें शूर्पणखा के साथ भेजते हुए उन्होंने कहा—‘राम-लक्ष्मण को मार डालकर तृप्त होने तक इसे (उनका) रक्त पिलाओ’। १२७ अनन्तर शूर्पणखा और वे राक्षस वेगपूर्वक पंचवटी गये। उन्होंने कहा (सोचा)—‘राम और लक्ष्मण को पकड़कर उन्हें जीवित ही खर के पास ले जाएँ’। १२८ किसी एक ने कहा—‘उन्हें यहीं मार डालकर हम उनके मांस को खा लें। (फिर भी) शूर्पणखा को पहले निश्चय ही रक्तपान कराएँ।’ १२९ देखिए,

देख । मागें करिती जंबुक । अळिका म्हणे खगनायक । धरून आणूं क्षणार्धें । १३० तृणपुतळे मिळोनि बहुत । वडवानळासी धरूं म्हणत । कीं हृदयीं भाविती खद्योत । आसडून आदित्य पाडूं खालीं । ३१ शलभ म्हणती मिळोनी । कल्पांतविजू घालूं वदनीं । तैसे राक्षस आले धांवोनी । पंचवटीस तेधवां । ३२ रघुपतीस जाणवी लक्ष्मण । राक्षस आले चौदाजण । ऐसें ऐकतां रविकुलभूषण । वाहात गुण धनुष्यातें । ३३ पर्वतदरीमधून । अकस्मात निघे पंचानन । तैसा कौशिकमखरक्षण गुंफेबाहेर पातला । ३४ राम नरवीरपंचानन । चतुर्दश गज लक्षिले दुरून । कीं शार्दूळें लक्षिले हरिण । रघुनंदन पाहे तैसा । ३५ तों हांक देती निशाचर । भोंवते तळपती भयंकर । दारुण शस्त्रें अनिवार । सोडिते जाहले तेधवां । ३६ जैसें मूर्खाचें वाग्जाळ बहुत । एकेचि शब्दें वारी पंडित । तैशीं अरिशस्त्रें वारोनि समस्त । केलें अद्भुत श्रीरामें । ३७ ओढी ओढोनि आकर्ण । सोडिला

सियार मृगराज (सिंह) की निन्दा (पीठ-) पीछे करते हैं। जैसे इल्ली आधे क्षण में खग-नायक गरुड़ को पकड़ लाने की बात कहती (सोचती) हो, जैसे बहुत-से घास के पुतले मिलकर वड़वाग्नि को पकड़ना चाहते हों, अथवा जैसे जुगनू हृदय में (मन में) समझते हों कि सूर्य को खींचकर नीचे गिरा देंगे, जैसे पतंगे कहते हों कि कल्पान्त की बिजली को मुख में डाल देंगे, वैसे ही यह समझकर कि हम राम-लक्ष्मण को मार डालेंगे, राक्षस तब दौड़ते हुए पंचवटी आ गये। १३०-१३२ (तब) लक्ष्मण ने राम को भान कराया कि चौदह जने राक्षस आ गये। ऐसा सुनकर रघुकुलभूषण श्रीराम ने धनुष पर डोरी चढ़ायी। १३३ पहाड़ की घाटी में से सहसा सिंह निकले (प्रकट हो जाए), वैसे ही विश्वामित्र के यज्ञ के रक्षक श्रीराम गुफा में से बाहर निकल पड़े। १३४ नरवीर-सिंह राम ने दूर से चौदह हाथियों को देखा। अथवा रघुनन्दन राम ने उन्हें वैसे ही देखा, जैसे सिंह ने हिरनों को देखा (हो)। १३५ तब राक्षस चिल्लाये। वे चारों ओर भयंकर रूप में चमक रहे थे। तब उन्होंने दारुण अनिवार्य शस्त्र चला दिये। १३६ जिस प्रकार मूर्ख मनुष्य के बहुत-से वाक्जालों का निवारण कोई पंडित एक ही शब्द से कर डालता है, उसी प्रकार राम ने (एक ही बाण से) शत्रुओं के सब शस्त्रों को काटकर चमत्कार कर दिया। १३७ उन्होंने धनुष की डोरी को कान तक खींचते हुए एक

सूर्यमुख बाण । चौदाजणांचीं शिरें छेदून । उर्वीवरी पाडिलीं । ३८ मृगेंद्रें विदारिजे वारण । तैसे पाडिले चौदाजण । कीं अरुणानुजें दारुण । भुजंग जैसे तोडिले । ३९ राम राक्षसांतक प्रळयाग्न । यासी चतुर्दश असुरांचें अवदान । शूर्पणखेनें समर्पिलें आणून । माघारी परतोनि पळतसे । १४० सौमित्रें काढिला एक शर । शूर्पणखेचें छेदावया शिर । तंव ती म्हणे हा दावेदार । अद्यापिही सोडीना । ४१ श्रीराम म्हणे सुमित्रासुता । इसी न वधावें तुवां आतां । हे सांगोनि राक्षसां समस्तां । आणील येथें वधावया । ४२ असो निर्नासिका शंख करीत । खरदूषणां येवोनि सांगत । राक्षस मारिले समस्त । तुम्हीं त्वरित चलावें । ४३ ऐसें शूर्पणखा सांगोनि सरे । तों रणतुरें वाजती गजरें । भार निघाला बहु त्वरें । पवनवेगें-करोनियां । ४४ खर तो केवळ खरमुख । दूषणाचें पांढरें नाक । शुभ्रकुष्ठ निःशंक । दूषण नाम त्याकरितां । ४५

सूर्यमुख बाण चलाया और चौदह जनों के मस्तक काटकर पृथ्वी पर गिरा डाले । १३८ जैसे किसी मृगराज (सिंह) ने हाथियों को विदीर्ण कर डाला हो, वैसे ही श्रीराम ने उन चौदह जनों को (छिन्न-भिन्न करके) गिरा दिया, अथवा उन्होंने उन्हें वैसे ही काट डाला जैसे अरुणानुज गरुड़ ने भीषण सर्पों को काट डाला हो । १३९ राम (मानो) राक्षसों का अन्त करनेवाली प्रलयाग्नि थे । शूर्पणखा ने उस (अग्नि) में चौदह राक्षसों को आहुति द्रव्य (के रूप में) लाकर समर्पित किया और वह लौटकर भाग गयी । १४० (उस समय) लक्ष्मण ने शूर्पणखा का सिर काटने के हेतु एक बाण (भाथे से) निकाला, तो (उसे देखकर) उसने कहा (समझा) कि यह शत्रु (विपक्षी) अब भी पीछा नहीं छोड़ रहा है । १४१ तब श्रीराम ने कहा—' हे लक्ष्मण, अब तुम इसका वध न करो । (हमने) सब राक्षसों को मार डाला (है), यह कहकर वह (अन्य राक्षसों को भी) यहाँ मार डलवाने के लिए लाएगी ' । १४२

अस्तु । विलाप करते हुए उस नाक-हीन (नक-कटी राक्षसी) ने आकर खर और दूषण से कहा—' (शत्रु ने) समस्त राक्षसों को मार डाला, (इसलिए) तुम झट से चलो ' । १४३ शूर्पणखा ऐसा कह चुकी, त्यों ही युद्ध-सूचक बाजे गर्जन के साथ बजने लगे और सेना अति शीघ्रता से वायुगति से चल दी । १४४ खर तो केवल खर-मुखी, अर्थात् गधे के-से

त्रिशिराचीं शिरें तीन। तीं व्हावया काय कारण। त्याचे मातेनें वाणें विस्तारून। तिन्ही एकास दिधलीं। ४६ त्याजकरितां तीन शिरें। शिशिरास जाह्लीं निर्धारें। असो भार धावती गजरें। पंचवटीयेसमीप। ४७ दूषणाचे पुत्र तिघेजण। कपाली प्रमाथी स्थूललोचन। वाटेसी जाह्ले अपशकुन। विघ्नसूचक तेधवां। ४८ सुटला अद्भुत प्रभंजन। सर्वांचे धुळीनें भरले नयन। रथध्वज पडला उन्मळून। अपशकुन तोचि पैं। ४९ रामें भार देखिला दूरी। गगन गर्जे रणतुरीं। नाद भरला दिशांतरीं। कांपे धरित्री थरथरां। १५० सौमित्रासी म्हणे रघुनंदन। तूं आतां सीतेसी करीं जतन। आज युद्ध करोनि निर्वाण। वधीन दारुण राक्षसां। ५१ तरी या पर्वतमस्तकीं जाण। उभा राहें सीतेसहित एक क्षण। आज्ञा वंदोनि लक्ष्मण। चढे घेवोन जानकीतें। ५२ पर्वतशिखरीं जनकनंदिनी। जैसी मूळपीठीं आदिभवानी। जवळी परशुराम कर जोडुनी। सौमित्र ते

मुखवाला था। दूषण की नाक सफ़ेद थी। (और तीसरा) दूषण श्वेत कुष्ठ रोगी था—इसलिए तो उसका नाम दूषण था। १४५ त्रिशिरा के तीन मुँह होने का क्या कारण था? (वह यह था कि) उसकी माँ ने (तीन) बायन बढ़ाकर तीनों एक ही को प्रदान किये थे। १४६ इस लिए निश्चय ही त्रिशिरा के तीन सिर (उत्पन्न) हो गये थे। सेना दल गर्जन करते हुए पंचवटी की ओर दौड़ते रहे। १४७ दूषण के कपाली, प्रमाथी और स्थूल-लोचन नामक तीन पुत्र थे। तब मार्ग में (चलते हुए) विघ्न-सूचक अपशकुन हो गये। १४८ (मार्ग में) अद्भुत (रूप में) तेज हवा बह उठी। उससे सबकी आँखें धूल से भर गयीं। रथ का ध्वज उखड़कर गिर गया—यही वह अपशकुन था। १४९ राम ने दूरी पर सेना को देखा। रण-वाद्यों से आकाश (मानो) गरज रहा था। (उसकी) ध्वनि दिशाओं में भर गयी। धरती थरथर काँप रही थी। १५० (तब) श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—'तुम अब सीता की रक्षा करो। आज दारुण युद्ध करके (इन) भयावह राक्षसों का वध करूँगा। १५१ इसलिए समझो, इस पर्वत-शिखर पर सीता-सहित एक क्षण खड़े रहो'। तो (राम की) आज्ञा को (शिरसा-) वंद्य करके लक्ष्मण सीता को लिये हुए (पर्वत-शिखर पर) चढ़ गये। १५२ पर्वत शिखर पर जनक-नंदिनी सीता आदिपीठ में स्थित आदि-भवानी-सी (दिखायी

क्षणीं तेवीं दिसे। ५३ असो येरीकडे रघुनंदन। धनुष्यासी चढवोनि गुण। कानाडी ओढितां आकर्ण। झणत्कारिती किंकिणी। ५४ तों येरीकडे राक्षस। सिंहनाद करिती कर्कश। भोंवता वेढिला अयोध्याधीश। पुराणपुरुष जगदात्मा। ५५ राक्षसभारांत कडकडाट। वाद्यांचा होत दणदणाट। तेणें मंगळजननीचें पोट। उलों पाहे ते काळीं। ५६ अपार उठावले भार। रणकर्कश भयंकर। जैसा वृषभांनीं कोंडिला मृगेंद्र। कीं द्विजेंद्र उरगांनीं। ५७ कीं देखोनि दीपिकेचा रंग। झेंपावती बहुत पतंग। कीं वासुकी महाभुजंग। मूषकीं जैसा वेष्टिला। ५८ श्रीराम रणरंगधीर। कैसा लक्षीत शत्रुभार। कलशोद्भवें लक्षिला सागर। सूर्यें अंधकार जैसा कीं। ५९ कीं व्याघ्रें लक्षिले अजांचे कळप। कीं कुठारपाणि विलोकी पादप। कीं सुपर्णें लक्षिले सर्प। अयोध्याधिप तेवीं पाहे। १६० तों असुरीं ओढोनि ओढी। सोडिल्या बाणांच्या कोडी। कीं बैसलीसे सातवाकडी।

दे रही) थी (और) तब उस क्षण लक्ष्मण उसके पास हाथ जोड़े हुए परशुराम-से दिखायी दे रहे थे। १५३

अस्तु। दूसरी ओर धनुष पर डोरी चढ़ाते हुए राम द्वारा कान तक खींचने पर (धनुष में बँधी) किंकिनियाँ झनझना उठीं। १५४ तब दूसरी ओर राक्षस कर्कश सिंहनाद करते रहे। उन्होंने अयोध्याधीश श्रीराम, अर्थात् पुराण पुरुष जगदात्मा श्रीराम को चारों ओर से घेर लिया। १५५ राक्षस-सेना में कड़कड़ाहट तथा बाजों की दनदनाहट हो रही थी। वहाँ तो मंगल-जननी पृथ्वी का पेट उस समय फटना चाहता था। १५६ अनगिनत दल उमड़ गये, (वहाँ) युद्ध भूमि में भयंकर कर्कश कोलाहल हो रहा था। उन राक्षसों के बीच श्रीराम उस प्रकार घिरे हुए थे, जिस प्रकार बैलों ने सिंह को घेर लिया हो, अथवा साँपों ने बड़े पक्षियों के राजा गरुड़ को घेर लिया हो; अथवा दीये की रंगीनी देखकर उसपर बहुत-से पतंगे (चारों ओर से) लपके हों; अथवा जैसे महासर्प वासुकी को चूहों ने घेर लिया हो। १५७-१५८ रण-रंगधीर श्रीराम ने शत्रु की सेना को कैसे देखा? जैसे अगस्त्य मुनि ने सागर को देखा हो, अथवा जैसे सूर्य ने अंधकार को देखा हो, अथवा जैसे बाघ ने बकरों के झुंडों को, या जैसे परशुधारी ने पेड़ों को देखा हो, अथवा सुपर्ण गरुड़ ने सर्पों को लक्ष्य किया हो, वैसे ही श्रीराम ने उन्हें देखा। १५९-१६० तो राक्षसों ने प्रत्यंचाओं

सायकांची ते वेळीं। ६१ सिंहनाद करिती वेळोवेळां। लोटला वाहिनीचा मेळा। जैसा सागर खळबळिला। प्रलयीं लोटला भूमीवरी। ६२ जैशा जलदकल्लोळीं। चपळा झळकती नभमंडळीं। तैशा तळपती ते वेळीं। असिलता सतेज। ६३ शस्त्रास्त्रांचे संभार। रघुपतीवरी येती अपार। राक्षस म्हणती कैंचा रघुवीर। खंडविखंड जाहला पैं। ६४ एक म्हणती रक्तपान। शूर्पणखा करील कोठून। तिच्या तोंडीं मृत्तिका पूर्ण। पडली ऐसें वाटतसे। ६५ इतुका होत शस्त्रमार। परी रणरंगधीर रघुवीर। ठाण न चळेचि निर्धार। ऐका चतुर हो दृष्टांत। ६६ हाणतां कुठारप्रहार। बैसका न सांडी तरुवर। कीं पर्जन्य वर्षतां अपार। अचळ न चळे सर्वथा। ६७ कीं निंदक निंदिती अपार। न चळे साधूचें अंतर। कीं प्रल्हादासी लावितां विखार। परी साचार डळमळिना। ६८ जयासी लाधलें अंतरसुख। मग तो न मानी प्रपंचदुःख। अयोध्याप्रभु तैसा देख। ठाण सुरेख चळेना। ६९

(डोरियों) को खींचकर कोड़ी-कोड़ी (बीसियों) बाण चला दिये। मानो उस समय बाणों की (लगातार सात दिन, भारी) बौछार लगी रही। १६१ राक्षस समय-समय पर सिंहनाद (सिंह का-सा गर्जन) किया करते। सेना का दल तेजी से वैसे ही चढ़ आया, जैसे समुद्र क्षुब्ध हो उठा हो और प्रलय करता हुआ भूमि पर चढ़ बैठा हो। १६२ जैसे मेघों के गर्जन में आकाश में विजलियाँ चमकती हैं, वैसे ही तेजस्वी तलवारें उस समय चमक रही थीं। १६३ शस्त्रों और अस्त्रों के अनगिनत समूह श्रीराम पर आ रहे थे। राक्षसों ने कहा (माना) —'राम अब कैसा खण्ड-खण्ड हो गया'। १६४ कोई एक कहते-शूर्पणखा (अब) रक्तपान कहाँ से (कैसे) करेगी ? लगता है कि उसके मुँह में पूरी मिट्टी पड़ गयी। १६५ हथियारों की इतनी मार पड़ रही थी, फिर भी रघुवीर तो रणभूमि में धीर (धैर्य के साथ अड़िग) पुरुष थे। निश्चय ही उनका पैंतरा विचलित नहीं हो रहा था। हे चतुर (श्रोताओ), इस सम्बन्ध में दृष्टान्त सुनिए। १६६ कुल्हाड़ी से आघात करने पर भी बड़ा पेड़ अपना स्थान नहीं छोड़ता; अथवा अपार वर्षा होने पर भी पर्वत बिलकुल विचलित नहीं होता; अथवा निन्दक असीम निन्दा करते हैं, फिर भी (उससे) साधु पुरुष का मन विचलित नहीं होता; अथवा प्रह्लाद को विषबाधा करायी जाने पर भी वह सचमुच (भगवान की भक्ति में) विचलित नहीं हुआ। १६७-१६८ जिसे आन्तरिक अर्थात् आत्मिक सुख प्राप्त हो गया, वह फिर सांसारिक दुःख नहीं मानता।

असो यापरी जानकीरंग। ठाण मांडीत अभंग। बाण सोडीत सवेग। जैसे उरग पक्षांचे। १७० आवेशें धांवती बाण। जैसे सफळ तरुवर देखोन। विहंगमांचे पाळे उडोन। अकस्मात जेवीं येती। ७१ जैसे कृषीवल एकसरें। कणसें छेदिती अपारें। तैशीं राक्षसाचीं शिरें। अपार तेथें पाडिलीं। ७२ वरी कोणी करितां हस्त। ते भुजा तोडी शस्त्रासहित। लक्षानुलक्ष शर सुटत। चापापासून ते वेळीं। ७३ श्रीरामाचा तूणीर। अक्षय भरलासे साचार। कुंडामाजी वैश्वानर। प्रदीप्त जैसा झांकिला। ७४ कीं वासुकीचे मुखीं हाळाहळ। कीं सरितापतीमाजी वडवानळ। कीं मेघीं विद्युल्लता तेजाळ। तूणीरांत शर त्यापरी। ७५ कपटी राक्षस चवदाजण। रामावरी आले सरसावून। अग्नीस विझवावया रंभानंदन। आवेशेंकरून लोटला। ७६ कीं वारणविदारणापुढें। मार्जार दावूं आलें पवाडे। कीं बृहस्पतीपुढें मूढें। वाद करूं धांविन्नलीं। ७७ कीं रासभांनीं

अयोध्या के प्रभु राम को वैसे ही देखिए। उनका सुन्दर पैंतरा विचलित नहीं हुआ। १६९ अस्तु। इसपर श्रीराम ने दृढ़तापूर्वक अड़िग पैर जमा दिये। वे वेगपूर्वक बाण चलाते, जो मानो पंखों से युक्त साँप ही हों। १७० बाण आवेगपूर्वक उसी प्रकार दौड़ते, जिस प्रकार वृक्ष को फलयुक्त देखकर पक्षियों के झुंड उड़कर सहसा (उसकी ओर) आ जाते हों। १७१ जिस प्रकार किसान एक-दम असंख्य बालियाँ काट डालते हैं, उसी प्रकार (श्रीराम ने) असंख्य राक्षसों के सिर (काटकर) वहाँ गिरा डाले। १७२ कोई ऊपर हाथ उठाता, तो वे उसके उस बाहु को शस्त्र-सहित तोड़ डालते। उस समय लाख-लाख बाण धनुष से छूटते रहे। १७३ श्रीराम का तरकस सचमुच अक्षय भरा हुआ था। जिस प्रकार (यज्ञ-) कुंड में प्रज्जलित आग ढँकी हुई हो (जो कभी नहीं बुझती), अथवा वासुकी नाग के मुख में (अखूट) विष भरा हुआ है, अथवा समुद्र में (कभी न बुझनेवाली) बड़वाग्नि होती है, अथवा मेघ में तेजस्वी बिजली रहती है, उसी प्रकार (श्रीराम के) तूणीर में बाण भरे हुए थे। १७४-१७५

(इतने में) चौदह कपटी राक्षस आगे बढ़ते हुए राम पर चढ़ आये—मानो कपूर आग को बुझाने के हेतु आवेशपूर्वक चढ़ आया, अथवा (हाथी का विदारण करनेवाले) सिंह के सामने अपना बड़प्पन दिखाने के लिए बिल्ली आ गयी, अथवा बृहस्पति के सामने विवाद करने के लिए मूढ़ लोग

ब्रीदें बांधोन। गंधर्वसभेसी मांडिलें गायन। तैसे राक्षस चौदाजण। रामावरी लोटले। ७८ क्षण न लागतां रणरंगधीरें। छेदिलीं चवदाजणांचीं शिरें। जैशीं कां तीक्ष्ण शस्त्रें। अरविंदें वीर छेदिती। ७९ ऐसें देखतां वीर दूषण। पुढें धांविन्नला वर्षत बाण। जैसा कां वर्षत घन। युद्धीं निपुण राक्षस। १८० दूषणाचें बाणजाळ थोर। रामें निवारिलें साचार। जैसा उगवतां दिनकर। उडुगणें सर्व लोपती। ८१ कीं अनुताप होतां अपार। होय पापाचा संहार। कीं वेदांतज्ञानें संसार। दुःख जैसें वितुळे पैं। ८२ तैसे दूषणाचे शर तोडून। अश्वांसहित तोडिला स्यंदन। मग राक्षस गदा घेऊन। चरणचालीं धांविन्नला। ८३ मग तो रावणदर्पहरण। वेगें सोडी अर्धचंद्रबाण। गदा हातींची छेदून। एकीकडे पाडिली। ८४ मग परिघ वीरभद्रदत्त। घेऊन दूषण धांवत।

दौड़कर आ गये, अथवा प्रावीण्य-सूचक चिह्न बाँधकर गधों ने गन्धर्वों की सभा में गाना शुरू किया, उसी प्रकार (वे) चौदह राक्षस श्रीराम पर (व्यर्थ ही) आक्रमण कर गये। १७६-१७८ जिस प्रकार वीर पुरुष पैने हथियार से कमलों को आसानी से काट डालते हैं, उसी प्रकार रणरंगधीर श्रीराम ने क्षण न लगते उन चौदह जनों के सिर छेद डाले। १७९ ऐसा देखकर वीर दूषण बाणों की बौछार करते हुए आगे दौड़ आया। (तो लगता था कि) मानो बादल ही बरस रहा हो। वह राक्षस तो युद्ध (-कला) में निपुण था। १८० दूषण के बाणों का जाल बड़ा था। श्रीराम ने उसका सचमुच वैसे ही निवारण किया, जैसे सूर्य के उदित होने पर तारों के समूह लुप्त हो जाते हैं; अथवा जैसे (पापी को) असीम पछतावा होने पर पाप का संहार हो जाता है; अथवा जैसे वेदान्त के ज्ञान से (साधक के) सांसारिक दुःखों का विनाश हो जाता है, वैसे ही श्रीराम ने दूषण के बाणों को काटते हुए उसके रथ को अश्वों सहित तोड़ डाला। तब (वह) राक्षस गदा लेकर पैदल दौड़ आया। १८१-१८३ फिर श्रीराम ने अर्धचंद्र बाण वेगपूर्वक चला दिये, (और) हाथ की गदा को छेदकर उसे (दूषण को) एक ओर गिरा दिया। १८४ अनन्तर वीरभद्र + द्वारा दिये हुए परिध (नामक अस्त्र को) लेकर दूषण दौड़ा, तो (यह युद्ध देखनेवाले) देव चिन्ता

+ टिप्पणी—शिवजी की जटा से उत्पन्न एक वीर पुरुष; यज्ञ के अवसर पर दक्ष प्रजापति ने शिवजी का अपमान किया, तो इसकी उत्पत्ति हुई और तब उसने यज्ञ को नष्ट किया था। इसकी कृपा से दूषण को परिघ नामक अमोघ अस्त्र प्राप्त हुआ था।

देव जाहले चिंताक्रांत। म्हणती अनर्थ मांडला। ८५ या परिघाचें निवारण। केवीं करील रघुनंदन। श्रीरामें काढिला दिव्य बाण। वायूचें खंडण करणार जो। ८६ परिघासहित हात तेथें। छेदून पाडिला रघुनाथें। सवेंच एक बाण सीताकांतें। चंडांशमुख काढिला। ८७ दूषणाचा कंठ लक्षून। विषकंठवंद्यें सोडिला बाण। शिर उडविलें न लगतां क्षण। पडिला दूषण ते काळीं। ८८ मग दूषणाचे तिघे सुत। तिहीं रण माजविलें बहुत। पितयाचा सूड घेऊं यथार्थ। ऐसा पुरुषार्थ धरियेला। ८९ तिघेही करिती संधान। राम नरवीरपंचानन। बाणीं खिळिले तिघेजण। परी ते आंगवण न सांडिती। १९० बिळीं प्रवेशतां विखार। अर्धे दिसती बाहेर। तैसे राक्षसांअंगीं शर। श्रीरामाचे खडतरले। ९१ कीं पिच्छें पसरिती नीळकंठ। कीं फणसफळावरी कांटे दाट। तैसे बाण रुतले सघट। प्रताप उद्भट रामाचा। ९२ असो तिघांची शिरें रघुनाथें। उडवोनि धाडिलीं निराळपंथें।

से व्याकुल हो गये। उन्होंने कहा—'इसने तो अनर्थ ठान लिया। १८५ रघुनन्दन इस परिध का निवारण कैसे करेंगे ?' (इधर) श्रीराम ने एक ऐसा बाण (तरकस से) निकाला जो वायु को भी काट सकता हो। १८६ उससे श्रीराम ने परिध-सहित (दूषण के) हाथ को छेदकर वहाँ गिरा डाला। (इसके) साथ ही श्रीराम ने चंडाशुमुख (सूर्यमुख जाति का एक) बाण निकाल लिया। १८७ दूषण के कंठ को लक्ष्य करके उन्होंने उसे चला दिया। एक क्षण (तक) न लगते, उसने दूषण के सिर को (काटकर) उड़ा दिया। उस समय दूषण (रणभूमि में) गिर गया। १८८ (फिर) दूषण के (जो) तीन पुत्र थे, उन्होंने बहुत बड़ी लड़ाई ठान ली। उन्होंने ऐसी अभिलाषा धारण की कि पिताजी (के वध) का यथार्थ बदला लें। १८९ वे तीनों भी शर-संधान करने लगे, तो नरवीर-सिंह श्रीराम ने तीनों जनों को बाणों से जकड़ लिया। फिर भी वे स्थिरता का त्याग नहीं कर रहे थे। १९० जिस प्रकार बिल में घुसते हुए साँप आधे बाहर दिखायी देते हैं, उस प्रकार श्रीराम के बाण (उन) राक्षसों (के शरीरों) में घुसे हुए (दिखायी देते) रहे। १९१ अथवा मोर अपने पर फैलाते हैं, अथवा कटहल पर घने काँटे रहते हैं, उस प्रकार (उन राक्षसों के शरीरों में) बाण धँसे (दिखायी देते) रहे। श्रीराम का ऐसा बड़ा प्रताप था। १९२

मग त्रिशिरा आवेशें बहुतें। रामावरी लोटला। ९३ रथारूढ निशाचर। सोडी बहुत बाणांचा पूर। ते रघुवीर तोडी जैसा समीर। जलदजाळ विभांडी। ९४ रघुपतीचे बाण तीक्ष्ण। त्रिशिराचा छेदिला स्यंदन। मग कुमारदत्त शक्ति घेऊन। पिशिताशन धांविन्नला। ९५ निजबळें शक्ति झोंकिली। परी ते रामासी वश्य जाह्ली। चरणांजवळ जावोनि पडली। दासी तुमची म्हणोनियां। ९६ रंभापर्णवत ज्या बाणाचें मुख। लक्षोनि सोडी तो अयोध्यानायक। त्या बाणतेजें सकळिक। ब्रह्मकटाह उजळिलें। ९७ त्रिशिराचीं तिन्ही शिरें। तत्काळ छेदिलीं रघुवीरें। ऐसें देखोनियां खरें। धांवला त्वरें रथारूढ। ९८ असंख्य बाण ते अवसरीं। खरें सोडिले रामावरी। श्रीराम एकला रणचक्रीं। रजनीचरीं वेढिला। ९९ चहूंकडोनि बाण। रामावरी येती दारुण।

अस्तु। रघुनाथ ने उन तीनों के सिर (काट) उड़ाते हुए आकाश-मार्ग पर भेज दिये। अनन्तर त्रिशिरा ने बहुत आवेश के साथ श्रीराम पर आक्रमण किया। १९३ रथ में आरूढ़ वह राक्षस बहुत बाणों का रेला चला रहा था। तब श्रीराम ने उसे वैसे ही काट डाला, जैसे हवा बादलों के जाल को भंग कर देती है। १९४ रघुपति के बाण पैने थे। उन्होंने त्रिशिरा के रथ को छिन्न कर डाला। तब (कार्तिकेय) कुमार@ द्वारा दी हुई शक्ति (एक विशिष्ट अस्त्र) को लिये हुए वह राक्षस दौड़ता हुआ आ गया। १९५ उसने अपने बल से शक्ति तो उछाल दी, परन्तु वह श्रीराम के वश में हो गयी (और)यह कहते हुए कि मैं तुम्हारी दासी हूँ, श्रीराम के चरणों के समीप गिर गयी। १९६ जिस बाण का मुख केले के पत्ते जैसा था, उस बाण को सन्धान करके अयोध्या-नायक श्रीराम ने चला दिया। उस बाण के तेज से समस्त ब्रह्मकटाह (विश्व, जगत्) प्रकाशमान हो गया। १९७ रघुवीर ने त्रिशिरा के तीनों मस्तकों को तत्क्षण काट डाला। ऐसा देखकर खर शीघ्रता से रथ में सवार होकर दौड़ा (रथ को दौड़ाता हुआ आगे बढ़ा)। १९८ उस समय खर ने असंख्य बाण श्रीराम पर चलाये। (तब) रणभूमि-मण्डल में अकेले राम को राक्षसों

@ टिप्पणी—शिव और पार्वती के स्कंद नामक पुत्र, जो कृत्तिका नक्षत्र के अवसर पर जन्मे थे। पुराणकथा के अनुसार कृत्तिकाओं ने इनका लालन-पालन किया। ये देवसेना के प्रमुख थे और इन्होंने तारकासुर का वध किया। इनसे त्रिशिरा को विशिष्ट शक्ति-अस्त्र प्राप्त हुआ था।

परी तितुक्यांचें संधान। रघुनंदन छेदीतसे । २०० जैसें योगेश्वरें मायाजाळ । कीं सहस्रकिरणें तममंडळ । कीं अरुणानुजें सर्पकुळ । विदारून सांडिजे जैसें । १ कीं शुष्कवना हुताशन । भस्म करी न लागतां क्षण। कीं जलदजाल प्रभंजन। विदारून सांडी जैसा । २ खर बाण सोडित रणरंगीं। अगस्तिदत्त कवच रामाचे आंगीं। त्याचें बिरडें छेदोनि वेगीं। खालीं पाडिलें राक्षसें । ३ ऐसें विपरीत देखिलें । विमानीं देव गजबजिले । समस्तही चिंतूं लागले । रघुवीरासी कल्याण । ४ मग खरें मांडिलें निर्वाण। शक्ति-वरद चाऱ्ही बाण। सहस्राक्षही निवारण। करूं न शके जयांचे । ५ प्रळयींच्या चार सौदामिनी । तैसे बाण सुटले ते क्षणीं । परी नवल जाहलें नयनीं । भूचर खेचर पाहती । ६ चाऱ्ही बाण तये वेळे । रघुपतीच्या भातां रिघाले । ब्रह्मयाचे मुखीं प्रवेशले । चाऱ्ही वेद जैसे कां । ७ कीं चाऱ्ही नद्या

ने घेर लिया । १९९ चारों ओर से दारुण बाण श्रीराम की ओर आते रहे । परन्तु उतने (बाणों) के सन्धान को रघुनन्दन छेद डालते रहे, जिस प्रकार कोई श्रेष्ठ योगी मायाजाल को काट देता है, अथवा सूर्य अँधेरे के घेरे को नष्ट करता है, अथवा अरुणानुज गरुड़ जैसे साँपों के कुल को विदीर्ण कर डालता है, अथवा क्षण (तक) न लगते अग्नि सूखे वन को (जलाकर) खाक कर डालती है, अथवा जैसे तेज हवा बादलों के जाल को विदीर्ण कर डालती है । २००-२०२ युद्ध-भूमि में खर बाण चलाता था। (इधर) श्रीराम के शरीर पर अगस्त्य मुनि द्वारा दिया हुआ कवच था। उस राक्षस ने उसको वेगपूर्वक काटकर नीचे गिरा डाला । २०३ ऐसी विपरीत बात को देखा तो विमानों में देव घबरा उठे । वे समस्त रघुवीर से कल्याण की कामना करने लगे । २०४ फिर खर ने दारुण युद्ध ठान लिया । उसके पास शिवजी द्वारा दिये हुए चारों बाण थे, जिनका निवारण इन्द्र तक नहीं कर सकता था । २०५ मानो वे चारों बाण प्रलय काल की चार बिजलियाँ हों । वैसे ही उस क्षण वे बाण छूटे । परन्तु आश्चर्य घटित हुआ, जिसे अपनी आँखों से प्राणी और आकाशस्थ देव देख रहे थे । २०६ उस समय (वे) चारों बाण श्रीराम के तूणीर में वैसे पैठ गये; जैसे चारों वेद ब्रह्मा के मुख में प्रवेश कर गये हों, अथवा चारों नदियाँ सहसा समुद्र में आ मिली हों, अथवा चारों भ्रमर आनन्द-वन के कमल में बैठ गये हों । २०७-२०८

समुद्रांत । येऊन मिळती अकस्मात । कीं आनंदवनींच्या कमळांत । भ्रमर चाऱ्ही बैसले । ८ असो देव करिती जयजयकार । पुढें असिलता घेऊन खर । सुरकैवारियावरी असुर । चपळेऐसा धांविन्नला । ९ मग चंडीशकोदंडभंजन । प्रचंड दोर्दंडकरून । सोडिला वसिष्ठदत्त बाण । अनिवार अखंड जो । २१० तेणें खराचें शिर छेदोन । तत्काळ परतला दिव्य बाण । श्रीरामतूणीरामाजी येऊन । आपुले आपण प्रवेशला । ११ विजयी जाह्ला रघुनंदन । पुष्पें वर्षती देवगण । विषकंठहृदय मखपालन । निजभावेंसीं पूजिला । १२ चौदासहस्र राक्षस अद्भुत । त्यांत उरला नाहीं एक जीवंत । रणीं एकला रघुनाथ । सीता सौमित्र पाहती । १३ महाप्रलयीं सर्व निरसून । एक परब्रह्म उरे निर्वाण । तैसा दशकंठदर्पहरण । एकला रणीं विराजे । १४ कीं सर्व निरसोन कर्मजाळ । निवृत्तितटीं संत निश्चळ । तैसा राम तमालनीळ । एकला रणीं विराजे । १५ कीं गिळोन सर्व नक्षत्रांसी । एकला

अस्तु । देवों ने जय-जयकार किया, तो अनन्तर खर राक्षस तलवार लेकर देवों के पक्षपाती श्रीराम पर बिजली-सा लपक आया । २०९ फिर शिवजी के धनुष के भंजक श्रीराम ने वसिष्ठ ऋषि द्वारा दिया हुआ वह बाण अपने बड़े बाहुदण्ड से चलाया, जो (बाण) अनिवार्य एवं अखण्ड था । २१० वह दिव्य बाण खर का सिर काटकर तत्काल लौट आया । वह अपने आप श्रीराम के तरकस में प्रविष्ट हो गया । २११ (इस प्रकार) रघुनन्दन विजयी हो गये, तो देवगणों ने फूल बरसा दिये और उन्होंने शिवजी के हृदय में बिहार करनेवाले तथा यज्ञ की रक्षा करनेवाले श्रीराम का अपनी भक्ति भावना के साथ पूजन किया । २१२ (उधर) चौदह सहस्र अद्भुत राक्षस थे । उनमें (से) एक भी जीवित नहीं रहा । (पर्वत-शिखर से) सीता और लक्ष्मण ने देखा कि युद्ध-भूमि में अकेले श्रीराम (शेष) हैं । २१३ जिस प्रकार महाप्रलय में सब नष्ट होने पर (भी) एक परब्रह्म अन्त में शेष रहता है, उस प्रकार श्रीराम युद्ध-भूमि में (सब राक्षसों के नष्ट होने पर) अकेले विराजमान थे । २१४ अथवा समस्त कर्मों के जाल को नष्ट करके जैसे कोई सन्त निवृत्ति के तट पर निश्चल स्थित होता है, वैसे ही तमालनील श्रीराम (समस्त राक्षस-सेना को नष्ट करके) रण-भूमि में अकेले विराजमान थे । २१५ अथवा सब तारों को निगलकर (अर्थात् लुप्त करके) जैसे मेघ-रहित आकाश में अकेला

मित्र निरभ्राकाशीं। त्यापरी सीतामनचकोर-शशी। एकला रणीं विराजे। १६ बहुत काष्ठें जाळोनि अग्न। एकला उरे दैदीप्यमान। त्याचपरी कौसल्यानंदन। एकला रणीं विराजे। १७ शब्दध्वनि निरसुनी। एकलाचि अर्थ बैसे मनीं। कीं जडत्व सांडोनी धरणी। क्षमारूप उरे जेवीं। १८ कीं शीतळत्व सांडोनि जळ। जीवनत्व उरे निर्मळ। दाहकत्व सांडोनि तेज समूळ। प्रकाशरूपें उरे जैसें। १९ कीं समीरें सांडोनि चंचळपण। एक पवनत्व उरे पूर्ण। कीं शून्यत्व सांडोनि गगन। व्यापकत्व उरे जैसें। २२० कीं शब्दजाल निरसोनि समस्त। वेद स्वरूपीं होय समाधिस्थ। तैसा असुर संहारोनि रघुनाथ। उभा निःशब्द उगाचि। २१ काम क्रोध आणि मत्सर। हेचि त्रिशिरा दूषण खर। रणीं संहारोनि समग्र। निज भक्त सुखी राखिले। २२ दुर्वासना हेचि शूर्पणखा। विरक्तिशस्त्रें घेवोनि देखा। बोध लक्ष्मण रामसखा।

सूर्य रहता है, वैस ही सीता के मन-रूपी चकोर के लिए जो चन्द्रमा हैं, वे राम रणभूमि में अकेले विराजमान थे। २१६ जिस प्रकार अग्नि बहुत लकड़ी को जलाकर अकेली देदीप्यमान शेष रहती है, उस प्रकार (शत्रु-रूपी इंधन को जलाकर अकेले राम रणभूमि में (अग्नि-से तेजस्वी) विराजमान थे। २१७ शब्दों की ध्वनि लुप्त होकर अकेला (उनसे सूचित) अर्थ (श्रोता के) मन में बैठ जाता है, अथवा जिस प्रकार धरती जडत्व का त्याग करके क्षमा-रूप में शेष रह जाती है, अथवा जैसे शीतलत्व का त्याग करके पानी निर्मल जीवन-रूप में बच जाता है, अथवा जैसे तेज मूल-सहित दाहकत्व का त्याग करके प्रकाश-रूप में शेष रह जाता है, अथवा समीर द्वारा चंचलता का त्याग करने पर उसमें पूर्ण पवनत्व शेष रह जाता है, अथवा जैसे आकाश शून्यत्व को छोड़कर व्यापक-रूप में शेष रह जाता है, अथवा जैसे ज्ञानी पुरुष समस्त शब्द-जाल को दूर करके वेद-स्वरूप में समाधि लगाये स्थिर हो जाता है, वैसे ही असुरों का संहार करके रघुनाथ राम निःशब्द होकर शान्त खड़े थे। २१८-२२१ काम, क्रोध, और मत्सर—ये ही मानो त्रिशिरा, दूषण और खर (राक्षस) थे। युद्ध में उनका पूरा विनाश करके उन्होंने अपने भक्तों को सुखी (बना) रखा। २२२ दुर्वासना ही (मानो) शूर्पणखा थी। देखिए, श्रीराम के सखा लक्ष्मण आत्मज्ञान स्वरूप हैं। उन्होंने विरक्ति रूपी शस्त्र को हाथ में लेकर (शूर्पणखा के रूप में उपस्थित दुर्वासना को) नासिका-हीन

निर्नासिका केली तेणें। २३ आशा मनशा कल्पना। भ्रांति भुली इच्छा तृष्णा। त्या देखोनि बोध-लक्ष्मणा। पळत्या जाहल्या राक्षसी। २४ झाडलिया जैसा केर। शुद्ध दिसे जेवीं मंदिर। तैसें दंडकारण्य गोदातीर। असुररहित जाहलें। २५ स्थूळ लिंग आणि कारण। निरसोनि उरे शुद्ध ज्ञान। तैसे जनस्थानीं ब्राह्मण। सुखें नांदों लागले। २६ ब्राह्मण मारितील म्हणोनी। शूर्पणखा घेऊन राक्षसिणी। भेणें पळाली तेथूनी। लंकेस जाऊन शंख करी। २७ सेवक सांगती दशमुखा। निर्नासिकी जाहली शूर्पणखा। शंख करी तेणें लंका। दुमदुमली समग्र। २८ मग तीस पाचारोन रावण। एकांतीं पुसे वर्तमान। ती म्हणे राम लक्ष्मण। जनस्थानीं आले रे। २९ लक्ष्मणें गौरविलें मजलागुनी। तुझी भगिनी म्हणोनि। त्रिशिरा खर दूषण समरांगणीं। सहपरिवारें वधियेले। २३० शंबरीस वधोन सवेग। सौमित्रें नेलें काळखड्ग। चालों लागले सन्मार्ग। याग जप तप आणि

कर डाला, अर्थात् उसकी नाक काट दी (उसे पराजित करके लज्जित कर दिया)। २२३ आशा, वासना, कल्पना, भ्रांति, मोहावस्था, इच्छा, तृष्णा— ये राक्षसियाँ लक्ष्मण-रूप आत्मज्ञान को देखकर भाग गयीं। २२४ कूड़े-करकट को झाड़ने-बुहारने पर जिस प्रकार घर शुद्ध (स्वच्छ) दिखायी देता है, उस प्रकार दण्डक-वन में गोदावरी नदी का तट (जहाँ पंचवटी है) असुर (-रूपी मैल से) रहित (होकर शुद्ध-पवित्र) हो गया। २२५ स्थूल, लिंग और कारण देह (के भान) का निराकरण होने पर, जैसे (योगी में) विशुद्ध (आत्म-) ज्ञान शेष रहता है, वैसे जन-स्थान (पंचवटी के निकट-वर्ती स्थान) में ब्राह्मण सुख-पूर्वक रहने लगे। २२६ ब्राह्मण (हमें) मार डालेंगे—इस आशंका से शूर्पणखा राक्षसियों को लिये हुए वहाँ से भाग गयी। लंका में जाकर वह चीखने-चिल्लाने लगी। २२७ तो सेवकों ने रावण से कहा—शूर्पणखा निर्नासिका, अर्थात् नाक-हीन हो गयी, वह चीख रही है। उससे समस्त लंका गूँज उठी है। २२८ तब उसे बुलाकर रावण ने एकान्त में समाचार पूछा, तो उसने कहा—‘ अहो, राम और लक्ष्मण जन-स्थान में आ गये। २२९ मैं तुम्हारी भगिनी हूँ—इस नाते लक्ष्मण ने मेरा (ऐसा) गौरव किया। उन्होंने त्रिशिरा, खर और दूषण को परिवार-सहित युद्ध-भूमि में मार डाला। २३० शम्बरी का वध करके लक्ष्मण कालखड्ग को वेगपूर्वक ले गया। (अब वहाँ) सन्मार्ग

व्रतें । ३१ गोदातीर जनस्थान । तेथें सुखें नांदती ब्राह्मण । अखंड करिती वेदाध्ययन । निःशंक पूर्ण सर्वदा । ३२ आतां तुझी लंका घेऊन । हेही ब्राह्मणासी देईल दान । जळो तुझी आंगवण । कासया वदन दाविसी । ३३ तुझ्या उरावरी धनुष्य पडिलें । तें क्षणमात्रें रामें भंगिलें । तेव्हांच तुझें काळें वदन जाहलें । सकळ रायांदेखतां । ३४ सीतेसारिखी नोवरी । नाहीं ब्रह्मांडमंडपामाझारी । ते हातींची दवडोनि निर्धारीं । पळोन येथें आलासी । ३५ तरीच तुझा पुरुषार्थ जनीं । जरी सीता आणिसी हिरोनी । तिचें सौंदर्य रूप पाहोनी । वनचरेंही भूलती । ३६ ऐसी शूर्पणखा अनुवादली । मग ते रावणें संबोखिली । तेव्हां मनामाजी ते वेळीं । युक्ति सुचविता पैं जाहला । ३७ म्हणे मृगवेष धरूनि निर्मळ । पाठवूं मारीच मातुळ । मृग वधावया तत्काळ । काकुत्स्थ जाईल वनातें । ३८ मग आणूं जानकीदिव्यरत्न । ऐसें विचारी द्विपंचवदन । असो इकडे जानकी लक्ष्मण । पर्वताखालीं उतरलीं । ३९

(अच्छी प्रवृत्तियाँ), यज्ञ, जप, तप और व्रत (ठीक से) चलने लगे (हैं) । २३१ वहाँ गोदावरी नदी के तटवर्ती जन-स्थान में ब्राह्मण सुखपूर्वक निवास कर रहे हैं । वे पूर्णतः आशंका-रहित होकर नित्य वेदों का अखण्ड (बिना रुके) अध्ययन करते हैं । २३२ अब तुम्हारी लंका लेकर, इसे भी ब्राह्मणों को दान में देगा । तुम्हारी प्रतिष्ठा जल जाए ! (अब) क्यों मुँह दिखा रहे हो ? २३३ तुम्हारी छाती पर धनुष गिर गया, तो उसी धनुष को राम ने क्षण मात्र में तोड़ डाला । सब राजाओं के देखते हुए तुम्हारा मुँह तभी काला हो गया । २३४ सीता-सी वधू ब्रह्माण्ड-मण्डप में (कहीं अन्यत्र) नहीं है । उसे हाथ से खोकर निश्चय ही तुम यहाँ भाग आये । २३५ यदि सीता को छीनकर लाओगे, तो ही लोगों में तुम्हारा पुरुषार्थ रहेगा । उसकी सुन्दरता को देखकर वन्य प्राणी (जानवर) भी मोहित हो जाते हैं । ' २३६ इस प्रकार शूर्पणखा ने स्पष्ट रूप में कहा । अनन्तर रावण ने उसे सान्त्वना दी । तब उस समय उसे मन में एक युक्ति सुझायी दी । २३७ उसने कहा (सोचा)—मामा मारीच को नीरा मृग-रूप धारण करवाकर भेज दूँगा । उस हिरन का वध करने के लिए राम तत्काल वन में जाएगा । २३८ फिर (मैं)जानकी-रूपी दिव्य रत्न को (उठा) लाऊँगा । —इस प्रकार रावण ने विचार किया । अस्तु । इधर जानकी और लक्ष्मण पर्वत से नीचे उतर गये । २३९ बहुत गदगद होकर

सद्गद होवोनि जनकनंदिनी। मिठी घाली राघवचरणीं। म्हणे धन्य लीला दाविली नयनीं। अतर्क्य करणी वेदशास्त्रां। २४० जाहले उदंड अवतार। परी कोणाचे नाहीं परतले शर। तों ऋषि धांवले समग्र। श्रीरामचंद्र वेष्टिला। ४१ म्हणती कौसल्यागर्भरत्ना। जलदगात्रा शतपत्रनयना। ताटिकांतका मखपाळणा। भवमोचना भवहृदया। २४२ जयजयकार करिती ऋषीश्वर। पूर्णब्रह्मानंद रघुवीर। अभंग विजयी श्रीधर। शरयूतीरविहारी जो। ४३ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत पंडित चतुर। चतुर्दशाध्याय गोड हा। २४४ श्रीसीतारामचंद्रार्पणमस्तु।

सीता ने श्रीराम के चरण पकड़ लिये। उसने कहा—'हम धन्य हैं, जो आपने (हमारी) आँखों को (अपनी) लीला दिखायी। आपकी करनी वेदों और शास्त्रों (तक) के लिए अतर्क्य है। २४० (आज तक) बड़े-बड़े अवतार हो गये। परन्तु किसी के बाण (इस प्रकार) नहीं लौट आये'। तब समस्त ऋषि दौड़े (आये)। उन्होंने श्रीराम को घेर लिया। २४१ उन्होंने कहा—'हे कौसल्या के गर्भ से उत्पन्न (पुत्ररूप) रत्न! घनश्यामगात्र! हे कमलनयन! हे ताड़का का वध करनेवाले! हे यज्ञ-पालक! हे भवमोचन (संसार से मुक्ति देनेवाले) तथा शिव-हृदय! (आपकी जय हो)। २४२ बड़े-बड़े ऋषियों ने उन श्रीराम का जय-जयकार किया, जो पूर्ण ब्रह्मानन्द-स्वरूप हैं, जो शरयू नदी के तट पर विहार करनेवाले अखण्ड विजेता श्रीधर अर्थात् विष्णु (-स्वरूप) हैं। २४३

स्वस्ति। श्रीराम-विजय नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित एवं उससे सम्मत है। चतुर पंडित-श्रोता उसके इस मधुर चौदहवें अध्याय का सदा श्रवण करें। २४४

॥ श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—१५

श्रीगणेशाय नमः । भवाब्धि भरला परम तुंबळ । द्वैतभावाचें तटाक सबळ । कुबुद्धीचे कल्लोळ । मोहजाळ असंभाव्य । १ मद मत्सर थोर आवर्त । कामक्रोधादि मासे अद्भुत । आशा तृष्णा भ्रांति तेथ । मगरी थोर तळपती । २ लोभ द्वेष नक्र थोर । ममतेच्या लाटा अति दुस्तर । दंभ आणि अहंकार । विरोळे हे तळपती । ३ अविवेक किरवे तत्त्वतां । अविद्या भ्रांति जळदेवता । पीडिती त्रिभुवनींच्या जीवां समस्ता । इच्छा ममता कल्पना । ४ ऐसा अगाध भवनिधि थोर । तेथें रामकथा जहाज सुंदर । शिल्पकार वाल्मीक ऋषीश्वर । तारूं तेणें निर्मिलें । ५ नाना चरित्रें सुंदर । याचि फळ्या दृढ थोर । विवेकें जोडूनि समग्र । अभेदत्व साधिलें । ६ साहित्य लोह तगटबंद । आनंदपद खिळे विविध । दृष्टांतदोरे प्रसिद्ध । ठायीं ठायीं आंवळिले । ७ अर्थरस तेल निखिळ । तेणें सांधे

संसार रूपी सागर बहुत लबालब भरा हुआ है । द्वैत भाव के (उसके) मज़बूत तट हैं । (उसमें) कुबुद्धि रूपी लहरें हैं; असम्भाव्य मोह-जाल (फैले हुए) हैं । १ (उस समुद्र में) मद, मत्सर (जैसे विकार रूपी) बड़े भँवर हैं, तो काम, क्रोध आदि (विकार रूपी) अद्भुत मत्स्य हैं । वहाँ आशा, तृष्णा, भ्रांति रूपी बड़ी मगरियाँ (इधर-उधर विचरण करते समय) झलक रही हैं । २ लोभ, द्वेष रूपी बड़े मगर हैं; ममता से उत्पन्न, पार करने को अति कठिन लहरें हैं; दम्भ और अहंकार रूपी पन-साँप झलक रहे हैं । ३ (उसके अन्दर) वास्तव में अविवेक रूपी केंकड़े हैं; अविद्या, भ्रांति, इच्छा, ममता और कल्पना रूपी जलदेवियाँ त्रिभुवन के समस्त जीवों को पीड़ा पहुँचा रही हैं । ४ इस प्रकार भवसागर बहुत अथाह है; वहाँ रामकथा रूपी सुन्दर नौका है । ऋषिश्रेष्ठ वाल्मीकि शिल्पी अर्थात् निर्माता हैं, उन्होंने इस नौका का निर्माण किया । ५ अनेकानेक सुन्दर चरित्र (मानो इस नौका के) मजबूत बड़े-बड़े तख्त हैं । (उन्होंने) सबको विवेक से जोड़कर उनमें अभेदत्व, अर्थात् एकत्व सिद्ध वा स्थापित किया । ६ उसमें लोहे के साहित्य का आवरण है; तल में आनन्द रूपी विविध कीलें (बैठायी हुई) हैं । स्थान-स्थान पर दृष्टान्त रूपी विख्यात रस्सियाँ कसकर बँधी हुई हैं । ७ सम्पूर्ण अर्थ से उत्पन्न (काव्य-) रस (मानो) तेल है; उससे सब जोड़

बुजिले सकळ। रामप्रतापस्तंभ विशाळ। कीर्तिशीड फडकतसे। ८ सप्त कांडें सप्त खण। लोटीत भावप्रभंजन। निजबोध कर्णधार पूर्ण। सकळ सुजाण देखणा। ९ ज्ञान वैराग्य भक्ती। हेचि आवले आवलितो। या जहाजावरी तेचि बैसती। अद्भुत ग्रंथीं पुण्य ज्यांचे। १० रामनामघोष थोर। हेचि यंत्रांचें भडिमार। नादें जलचरें समग्र। भयभीत पळताती। ११ ऐसें भवसागरीं तारूं थोर। गुरुकृपेचें केणें अपार। भरूनि मोक्षा द्वीपांतर। लागवेगें पाविजे। १२ तरी तुम्हीं श्रोते सज्जन। या जहाजावरी बैसोन। भवाब्धि हा उल्लंघून। निवृत्तितटा जाइंजे। १३ असो चौदावे अध्यायीं कथन। वधिलें त्रिशिरा खर दूषण। शूर्पणखेनें वर्तमान। दशकंठासी श्रुत केलें। १४ श्रीरामप्रताप अद्भुत। ऐकतां सचिंत लंकानाथ। सद्भक्तांची स्तुति ऐकोनि समस्त। दुर्जन

भरे (अर्थात् पाटे हुए) हैं। (उस रामकथा रूपी नौका में) श्रीराम का प्रताप (मानो) बड़ा स्तम्भ (मस्तूल) है; उसपर कीर्तिरूपी पाल फहर रहा है। ८ रामकथा वा रामायण के (बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किधा, सुन्दर, लंका और उत्तर नामक) सात काण्ड उस नौका के सात खण्ड हैं। भाव रूपी तेज हवा (पाल में भरकर उसे) धकेल अर्थात् चला रही है। आत्मज्ञान कर्णधार है— वह पूर्णतः सुज्ञानी तथा सुन्दर है। ९ ज्ञान, वैराग्य और भक्ति (वे) नाविक हैं, जो डाँड़ चलाते हुए इस नौका को खे रहे हैं। अद्भुत पुण्य (रूपी धन) जिनकी गाँठ में हो, वे ही इस नौका में बैठते हैं। १० उसमें राम नाम का बड़ा घोष हो रहा है। वही (उस नौका में बैठायी हुई) तोपों से की जानेवाली गोलों की भारी बौछार है। उसकी ध्वनि से (मत्स्य, मगर आदि) समस्त जलचर भयभीत होकर भाग जाते हैं। ११ भवसागर में चलनेवाली ऐसी बड़ी नौका गुरुकृपा रूपी सौदा भरकर मोक्ष रूपी दूसरे द्वीप (तक) झट से पहुँच जाती है। १२ अतः हे श्रोता सज्जनो, इस नौका में विराजमान होकर आप इस भवसागर को लाँघकर निवृत्ति रूपी तट (तक) पहुँच जाइए। १३

अस्तु। चौदहवें अध्याय में यह कहा— शूर्पणखा ने रावण को यह समाचार सुनाया कि (श्रीराम ने) त्रिशिरा, खर और दूषण का वध किया। १४ श्रीराम के अद्भुत प्रताप को सुनते ही लंकापति रावण उस प्रकार चिंतित हो गया, जिस प्रकार सद्भक्त की स्तुति

जैसे क्षोभती । १५ पतिव्रतेची ऐकोनि राहाटी । जारिणी होती जेवीं कष्टी । कीं मृगेंद्रगर्जना ऐकतां पोटीं । वारण जैसे दचकती । १६ कीं विष्णुमहिमा ऐकतां अद्भुत । क्रोधावती जैसे दैत्य । असो ते वेळे मयजाकांत । मारीचगृहीं प्रवेशला । १७ मारीचानें सन्मान देउनी । रावणातें बैसविलें आसनीं । याउपरी मधुरवचनीं । दशकंठ बोलता जाहला । १८ म्हणे पंचवटीस आला रघुनंदन । मारिले त्रिशिरा खर दूषण । शूर्पणखा विटंबून । शंबरीही मारिला । १९ शत्रु नाग कृशान । हे म्हणो नयेत लहान । क्षणें हरितील प्राण । सावधान असावें । २० यालागीं मातुळा परियेस । तुवां धरावा मृगवेष । पंचवटीस जाऊन राघवास । भुलवोनियां नेइंजे । २१ राघव नेइंजे दूर वनीं । मग पद्माक्षी आणीन काढूनी । हें कार्य साधिल्या तुजलागोनी । गौरवीन बहुसाल । २२ जैसें मूढाचें वाग्जाळ । पंडित छेदी तत्काळ । तैसीं वचनें रसाळ । बोले मातुळ रावणाचा । २३

सुनकर समस्त दुर्जन क्षुब्ध हो जाते हैं; अथवा जिस प्रकार पति-व्रता के आचार-व्यवहार (के किसी प्रसंग) को सुनकर जारिणी स्त्रियाँ खिन्न हो जाती हैं, अथवा जिस प्रकार सिंह का गर्जन सुनते ही हाथी मन में चौंक उठते हैं; अथवा भगवान् विष्णु की अद्‌भुत महिमा को सुनते ही जिस प्रकार दैत्य क्रुद्ध हो जाते हैं। अस्तु। उस समय रावण मारीच के घर में प्रविष्ट हो गया। १५-१७ मारीच ने सम्मान करके रावण को आसन पर बैठा लिया। इसके बाद रावण ने मधुर भाषा में कहा—। १८ 'राम पंचवटी में आ गया। उसने त्रिशिरा, खर और दूषण को मार डाला। शूर्पणखा की दुर्दशा करके (उसके पुत्र) शम्बरी को भी मार डाला। १९ शत्रु, नाग और अग्नि को छोटा नहीं कहें। वे क्षण में प्राणों का हरण कर सकते हैं; अतः सावधान रहें। २० इसलिए, हे मामा, सुनो ! तुम मृग रूप ग्रहण करो और पंचवटी (में) जाकर राम को मोहित करके ले जाओ। २१ राम को वन में दूर ले जाओ, तो अनन्तर मैं सीता को उठाकर लाऊँगा। इस कार्य के सफल हो जाने पर मैं तुम्हारा बहुत गौरव करूँगा'। २२ जिस प्रकार मूर्ख के वाक्-जाल को पंडित तत्काल काट देता है, उस प्रकार (रावण की बात का खण्डन करते हुए) रावण के मामा (मारीच) ने (यों) मीठी बातें कहीं—। २३ 'पूर्वकाल में यज्ञ की रक्षा करते हुए

पूर्वीं करितां यागरक्षण। सुबाहु टाकिला मारून। त्या बाणवातेंकरून। मी पडलों सागरीं। २४ वीस कोटी मारिले पिशिताशन। तो रामप्रताप आठवून। मारीच पडला मूर्च्छा येऊन। करी रावण सावध तया। २५ मारीच म्हणे रावणा। अभिलाषितां जो परांगना। तो मुकला आपुलिया प्राणा। सत्य जाण निर्धारें। २६ सद्विवेक हृदयीं धरोन। अनुचित कर्मीं न घालीं मन। सद्गुरु सांगे तें वचन। अवश्य हृदयीं धरावें। २७ न करावें कोणाचें हेळण। कदा न बोलिजे दुष्ट वचन। पराची वेदना जाणून। परोपकार करावा। २८ सर्वां भूतीं एक भगवंत। हा वेदशास्त्रीं श्रेष्ठार्थ। म्हणोनि द्वेष न करावा सत्य। साधिजे परमार्थ अवश्य। २९ क्षणिक जाणोनि शरीर। साधावा सारासारविचार। मी भाग्यें ज्ञानें बहु थोर। हा अभिमान न धरावा। ३० काम क्रोध मद मत्सर। हे शत्रु जिकावे अनिवार। दशमुखा तूं सज्ञान थोर। सखा रघुवीर करीं वेगें। ३१ सखा करितां चापपाणी। मग

(श्रीराम ने) सुबाहु को मार डाला। उस (के) बाण से उत्पन्न हवा (के झपट्टे) से मैं (उड़कर) सागर में गिर पड़ा। २४ (उसने) बीस करोड़ राक्षसों को मार डाला।' श्रीराम के इस प्रताप का स्मरण करते ही मारीच अचेत होकर गिर पड़ा, तो रावण ने उसे सचेत कर दिया। २५ (फिर) मारीच ने रावण से कहा— 'यह निश्चय ही सत्य समझो कि पर-नारी की जो अभिलाषा करता है, उसे अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े (हैं)। २६ इसलिए हृदय में सद्विवेक धारण करके (किसी) अनुचित कर्म में मन न लगाएँ। जो बात सद्गुरु कहते हैं, उसे हृदय में अवश्य धारण करें (हृदय से अपनाएँ)। २७ किसी का अनादर न करें; किसी के प्रति दुष्ट (द्वेष-पूर्ण) वचन कदापि न कहें। दूसरे की वेदना को समझकर परोपकार करें। २८ वेद-शास्त्र में सर्व-श्रेष्ठ अर्थवाली यह बात है कि सब भूतों (जीवों) में एक ही भगवान् (विराजमान) हैं। इसलिए (किसी से) सचमुच द्वेष न करें। (इस प्रकार) परमार्थ को अवश्य सिद्ध करें। २९ शरीर को क्षणिक समझकर सार-असार-विवेक सिद्ध करें। यह अभिमान न धारण करें कि मैं भाग्य में, ज्ञान में बहुत बड़ा हूँ। ३० काम, क्रोध, मद, मत्सर— इन दुर्निवार शत्रुओं को जीत लें। हे देशमुख, तुम बहुत ज्ञानवान् हो। (अतः) श्रीराम को झट से मित्र बना लो। ३१ चापपाणि श्रीराम

सुखासी नाहीं वाणी। जोंवरी शशी आणि तरणी। तोंवरी सुखें नांदसी। ३२ राम केवळ परम पुरुष। आदि नारायण सर्वेश। तुझे उरावरी पडलें धनुष्य। सीतास्वयंवरीं आठवीं कां। ३३ तुझे चालिले जेव्हां प्राण। मग उठिला रामपंचानन। चंडीशकोदंड भंगोन। जीवदान तुज दिधलें। ३४ तैं तुज रामें वांचविलें। त्याचें काय हेंचि फळ जाहलें। जेणें उपकार बहुत केले। त्यासी मारिसी शस्त्र घेउनी। ३५ जेणें पाजिला सुधारस। त्यासीच पाजिलें महाविष। जेणें रणींहून सोडविलें निःशेष। त्याचिया गृहास अग्नि लाविला। ३६ जन्मूनि जेणें केलें पाळण। आपत्काळीं रक्षिलें पूर्ण। तो निद्रिस्थ असतां पाषाण। कैसा वैरी घालावा। ३७ नौका बुडतां कांसे लाविलें। कीं जळत्या गृहींहूनि काढिलें। कीं शिर छेदितां सोडविलें। तो पितयातुल्य वेद म्हणे। ३८ यालागीं दशकंठा तूं सुबुद्ध। रामाशीं न करावा विरोध। राम केवळ ब्रह्मानंद। आनंदकंद जगद्गुरु। ३९ तुझा स्वामी जो

को मित्र बना लेने पर फिर सुख की (कोई) कमी नहीं रहेगी। जब तक चन्द्र और सूर्य (अस्तित्व में) रहेंगे, तब तक तुम सुख-पूर्वक (जीवित) रहोगे। ३२ श्रीराम तो केवल परमपुरुष हैं, आदि-नारायण, सर्वेश हैं। स्मरण करो कि सीता के स्वयम्बर में तुम्हारी छाती पर धनुष पड़ गया था। ३३ जब तुम्हारे प्राण निकले जा रहे थे, तो राम रूपी सिंह उठ गये और शिव-धनु को भग्न कर उन्होंने तुम्हें प्राणदान दिया। ३४ तब तुम्हें श्रीराम ने बचाया; क्या उसका यही फल हो जाए कि तुमने शस्त्र लेकर उसी को मार डाला, जिसने (तुम्हारा) बहुत उपकार किया। ३५ राम को मारना वैसे ही होगा, जैसे जिसने अमृत रस पिलाया, उसी को महा विष पिला दिया; जिसने युद्ध में से पूरा-पूरा छुड़ा (बचा) लिया, उसी के घर में लाग लगा दी। ३६ जन्म होने पर जिसने परिपालन किया, संकट के समय पूर्ण रक्षा की, उसके सोये हुए रहने पर उस पर पत्थर कैसे डाल दें ? । ३७ वेद कहते हैं, नौका के डूबते हुए जिसने (डूबने-वाले को) आधार दिया, अथवा जिसने जलते हुए घर में से निकाल लिया, अथवा किसी के सिर काटते हुए बचा लिया, वह पिता के समान होता है। ३८ इसलिए, हे दशकण्ठ, तुम तो सुबुद्ध हो। श्रीराम का विरोध न करो। श्रीराम तो केवल ब्रह्मानन्द हैं, आनन्द-कन्द तथा

शंकर। तोही रामभजनीं सादर। ते रामभार्या तूं पामर। हिरोनि आणूं इच्छितोसी। ४० ऐसी मातुळाचीं वचनें। सुधारसाहूनि गोड गहनें। कीं विवेकवैरागरींचीं रत्नें। रावणाहातीं दीधलीं। ४१ परम मतिमंद कुल्लाळ देख। परीक्षा नेणेचि महामूर्ख। रोगिष्ठापुढें अन्नें सुरेख। व्यर्थ जैसीं वाढिवलीं। ४२ अवदान समर्पिलें भस्मांत। कीं उकीरडां ओतिलें अमृत। कीं जो मद्यपानी उन्मत्त। त्यास परमार्थ कायसा। ४३ असो परम क्रोधायमान। रावण बोले तेव्हां तीक्ष्ण। जैसें साधूचें छळण। निंदक करी साक्षेपें। ४४ माझिया प्रतापापुढें। राम मनुष्य काक बापुडें। मीं केलीं चूर्ण देवांचीं हाडें। तुजदेखतां समरांगणीं। ४५ त्याचा प्रताप तूं वानिसी। तरी तुज वधीन निश्चयेंसीं। म्हणोनि हस्त घातला शस्त्रासी। मारीच मानसीं वीटला। ४६ म्हणे अधम तूं परम दुर्जन।

जगद्गुरु हैं। ३९ शिवजी तो तुम्हारे स्वामी हैं। वे भी राम के भजन में तत्पर (रहते) हैं। उन श्रीराम की पत्नी को तुम पामर छीन लाना चाह रहे हो'। ४० मामा (मारीच) के ऐसे वचन अमृत रस से (भी) मधुर एवं उत्तम थे। अथवा (उन वचनों के रूप में उसने) ज्ञान की खान में प्राप्त रत्न रावण के हाथ में (रख) दिये। ४१ परन्तु देखिए, परम मन्दमति तथा कुत्सित विचारवाला, महामूर्ख (उन रत्नों की) परख करना जानता ही नहीं। (वे वचन रावण के सामने वैसे प्रस्तुत हुए) जैसे रोगग्रस्त के सामने बढ़िया अन्न व्यर्थ ही परसवाये (गये होते हैं); अथवा जैसे अवदान भस्म में समर्पित किया, अथवा अमृत कूड़ेखाने में उँड़ेल दिया, अथवा जो मद्यपी एवं उन्मत्त है, उससे परमार्थ (ज्ञान की बातें) किसलिए (कही जाएँ) ? । ४२-४३

अस्तु। तब परम क्रोधायमान रावण ने तीक्ष्ण अर्थात् चुभती बात उस प्रकार कही, जिस प्रकार निन्दक हठात् साधु को पीड़ा पहुँचाता हो। ४४ (उसने कहा—) 'मेरे प्रताप के सामने मनुष्य राम बेचारा कौआ है। मैंने तुम्हारे देखते हुए समरभूमि में देवों की हड्डियाँ चूर-चूर कर डाली थीं। ४५ तुम उसके प्रताप की सराहना कर रहे हो, इसलिए मैं निश्चय ही तुम्हारा वध करूँगा।' —(यह) कहते हुए उसने शस्त्र में (उठाने के लिए) हाथ लगा (बढ़ा) लिया। (यह देखकर) मारीच के मन में घृणा उत्पन्न हो गयी। ४६ उसने कहा— 'तुम अधम तथा परम दुर्जन हो। पीछे हट जाओ। अब मैं मृग रूप

होईं माघारा न बोलें वचन। मी आतां मृगवेष धरून। जातों शरण राघवेंद्रा। ४७ रामबाणें होतां मरण। मी अक्षयसुख भोगीन। तुझे हातेंकरून। अधःपतन पतिता। ४८ आतां पंचवटीस चला लौकरी। मग दोघे बैसोनि रथावरी। वायुवेगें ते अवसरीं। जनस्थानासी पातले। ४९ वनीं गुप्त उभा रावण। मारीच निघे मृगवेष धरून। अंतरीं करीत रामस्मरण। म्हणे धन्य धन्य आजि मी। ५० आला चमकत पंचवटी। श्रीरामरूप न्याहाळी दृष्टीं। हृदयीं जाहला परम संतुष्टी। अंतरी कष्टी नव्हेचि। ५१ जैसें सुवर्णतगट सुरंग। तैसें मृगाचें दिसे अंग। ऐसें देखतां सीतारंग। हात घाली धनुष्या। ५२ मृग क्षणक्षणां परतोन। पाहे राघवाकडे विलोकून। तों ते पद्माक्षी बोले वचन। पद्मजातजनकाप्रति। ५३ म्हणे ऐसा मृग आजिपर्यंत। आम्हीं देखिला नाहीं यथार्थ। याचे त्वचेची कंचुकी सत्य। उत्तम होईल केलिया। ५४ अयोध्येसी प्रवेश करितां। ते कंचुकी लेईन प्राणनाथा। षण्मास उरले आतां। मनुसंवत्सरांमाजी पैं। ५५

ग्रहण करके राघवेंद्र राम की शरण में जाता हूँ। ४७ श्रीराम के बाण से मौत होने पर मैं अक्षय सुख का भोग करूँगा; (जबकि) तुम्हारे हाथ से (मौत होने पर) पापी का (भी) अधःपात (ही) होगा। ४८ अब शीघ्र पंचवटी चलो।' अनन्तर दोनों रथ में बैठकर उस समय वायुवेग से जनस्थान पहुँच गये। ४९ (इधर) रावण वन में गुप्त वेष में गुप्त रूप (छिपकर) खड़ा रहा, (जब कि उधर) मारीच मृग रूप ग्रहण करके चल दिया। मन में श्रीराम का स्मरण करते हुए उसने कहा—'मैं आज धन्य हूँ, धन्य हूँ'। ५० वह झलकता हुआ पंचवटी में आ गया। उसने (अपनी) दृष्टि से श्रीराम के रूप को निहारा और वह हृदय में परम तृप्त हुआ। वह मन में खिन्न न था। ५१ जैसे सुन्दर रंगोंवाला जरीदार वस्त्र दिखायी देता हो, वैसे उस मृग का शरीर दिखायी दे रहा था, ऐसा (शरीरधारी मृग को) देखते ही श्रीराम ने धनुष उठाया। ५२ (दौड़ते-दौड़ते) वह मृग क्षण-क्षण पीछे मुड़कर श्रीराम की ओर देखता, तो सीता ने श्रीराम से यह बात कही। ५३ 'ऐसा मृग सचमुच हमने आज तक नहीं देखा। सचमुच इसके चमड़े से, तैयार करने पर बढ़िया कंचुकी बनेगी। ५४ हे प्राणनाथ, अयोध्या में प्रवेश करते समय मैं वह कंचुकी पहनूँगी। चौदह वर्षों में से अब छः

सीतेची इच्छासरिता साचार। कर्मजळाचा तुंबळ पूर। दुःखसमुद्राप्रती साचार। भेटावया जाऊं पाहे। ५६ जाणूनि जानकीचें मानस। आणि पुढील होणार भविष्य। सत्वर चालिला अयोध्याधीश। धनुष्यासी बाण लावूनियां। ५७ म्हणे सौमित्रा सावधान। रक्षीं जानकी चिद्रत्न। परम कपटी पिशिताशन। नसतींच विघ्नें करितील। ५८ असो गुंफेंत सीता चिद्रत्न। द्वारीं रक्षपाळ लक्ष्मण। जैसा महाभुजंग अनुदिन। निधानकुंभ रक्षीतसे। ५९ पार्वतीजवळ जैसा कुमार। कीं इंदिरेपाशीं खगेश्वर। तैसा तो भूधरावतार। रक्षी द्वार गुंफेचें। ६० इकडे मृगाचे पाठीं लागे। राघव जात वातवेगें। गौतमीतीराच्या पूर्वमार्गे। केलें मृगें पलायन। ६१ मनाहून वेग अत्यंत। मनमोहन त्वरें जात। ध्वजवज्ररेखांकित। पदें उमटत धरेवरी। ६२ पद्मोद्भव आणि भोगींद्र। नीलग्रीव आणि वज्रधर। चरणरज इच्छिती निरंतर। दुर्लभ

मास तो शेष हैं'। ५५ सीता की (यह) इच्छा सचमुच नदी थी। उसमें कर्म रूपी जल की भयावह बाढ़ (आयी हुई) थी। वह दुःखरूपी सागर में मिलने के लिए जाया चाहती थी। ५६ सीता के मन (की इच्छा) को और आगे घटित होनेवाली भावी को जानकर श्रीराम धनुष पर बाण चढ़ाये हुए तेजी से चल दिये। ५७ उन्होंने कहा— 'हे लक्ष्मण, सावधान रहकर जानकी रूपी चिद्‌रत्न की रक्षा करो। परम कपटी राक्षस बिना किसी कारण के (व्यर्थ ही) विघ्न (उत्पन्न) कर सकते हैं'। ५८

अस्तु। (इधर) सीता रूपी चिद्‌रत्न गुफा में था, तो द्वार पर रक्षण-कर्ता लक्ष्मण थे। जैसे महान् सर्प रात-दिन (भूमि में गड़े हुए) धन-कुम्भ की रक्षा करता है, जैसे कुमार कार्तिक (स्कन्द) पार्वती के पास रहकर, अथवा गरुड़ लक्ष्मी के पास रहकर रक्षा करता था, वैसे शेष भगवान् के अवतार वे लक्ष्मण (उस) गुफा के द्वार की रक्षा कर रहे थे। ५९-६० इधर श्रीराम मृग का पीछा कर रहे थे; वे वायुवेग से जा रहे थे, तो मृग ने गौतमी नदी के तट के पूर्व मार्ग में पलायन किया। ६१ उसका वेग मन (के वेग) से भी बहुत अधिक था। मनमोहन श्रीराम तेजी से जा रहे थे, तो ध्वज और वज्र चिह्न से अंकित उनके चरण भूमि पर मुद्रांकित होते जा रहे थे। ६२ ब्रह्मा और शेष भगवान्, शिवजी और इन्द्र उनके चरणों की धूली (को प्राप्त करने) की निरन्तर कामना करते रहते हैं; फिर

साचार तयांसी । ६३ असो मृगाचें वर्म लक्षून । रामें सोडिला दिव्य बाण । भूमीवरी पडिला हरिण । अचूक संधान रघुपतीचें । ६४ सादर पाहे रघुवीर । तों पडलें राक्षसाचें शरीर । श्रीरामबाणें निशाचर । पावला परत्न निर्धारें । ६५ आश्चर्य करी अयोध्याधीश । म्हणे परम कपटी राक्षस । असो अश्वत्थाखालीं पुराणपुरुष । श्रमोनियां बैसला । ६६ इकडे काय जहालें वर्तमान । वनीं गुप्त उभा रावण । गुंफेद्वारीं लक्ष्मण । बैसला रक्षणा अव्यग्र । ६७ शांतीजवळी परमार्थ । कीं तपासी रक्षी शुचित्व । तैसा द्वारीं सुमित्रासुत । मग लंकानाथ काय करी । ६८ श्रीरामासारखा शब्दध्वनी । राक्षसें उठविला काननीं । सौमित्रा धांव धांव म्हणोनी । सीता कर्णीं आइकत । ६९ सौमित्रा धांव धांव लौकरी । वनीं वेष्टिलें रजनीचरीं । संकट पडलें मजवरी । तूं कैवारी पाठीराखा । ७० रणभूमीस बंधूविण । उडी घालील सांग कवण । राक्षसीं

भी सचमुच वह उनके लिए दुर्लभ रही है । ६३ अस्तु । उस मृग के मर्मस्थान को लक्ष्य करते हुए श्रीराम ने दिव्य बाण चला दिया, त्यों ही वह हिरन भूमि पर गिर पड़ा । श्रीराम का शर-सन्धान अचूक होता था । ६४ श्रीराम ने तत्परता से देखा, तो (उन्हें दिखायी दिया कि एक) राक्षस की देह पड़ी हुई है । श्रीराम के बाण से (मरकर) निश्चय ही वह राक्षस परलोक को प्राप्त हो गया । ६५ (यह देखकर) श्रीराम आश्चर्य अनुभव कर रहे थे । उन्होंने कहा (माना)— राक्षस परम कपटी हैं । अस्तु । (अनन्तर) थककर पुराणपुरुष श्रीराम पीपल के तले बैठ गये । ६६

इधर क्या बात घटित हुई ? (कहा गया है कि) रावण वन में गुप्त रूप में अर्थात् छिपकर खड़ा रहा था और गुफा के द्वार पर लक्ष्मण निश्चल (मन से) रक्षा करने बैठे थे । ६७ जिस प्रकार शान्ति के समीप परमार्थ होता है, अथवा शुचित्व तपस्या की रक्षा करता है, उसी प्रकार लक्ष्मण (सीता की रक्षा करते हुए गुफा के) द्वार पर विराज-मान थे । फिर रावण ने क्या किया ? । ६८ 'लक्ष्मण, दौड़ो, दौड़ो,' —यह कहते हुए उस राक्षस ने वन में श्रीराम की-सी शब्द-ध्वनि उत्पन्न की । उसे सीता ने कानों से सुन लिया । ६९ 'लक्ष्मण, झट से दौड़ो, दौड़ो । राक्षसों ने वन में मुझे घेर लिया और मुझपर संकट आ गया । तुम तो मेरे पक्षपाती और रक्षक हो । ७० बताओ, सिवा भाई के

घेतला माझा प्राण। मग येऊन काय पाहसी। ७१ ऐसें ऐकतां जनकनंदिनी। परम घाबरली अंतःकरणीं। म्हणे श्रीराम माझा पडिला वनीं। करुणवाणी बाहती तुम्हां। ७२ रणीं बंधु संकटीं मित्र। वृद्धापकाळीं ओळखिजे कलत्र। विषमकाळीं सत्पुत्र। सांभाळिती पितयातें। ७३ कीं शस्त्रमार होतां अत्यंत। करींचें वोडण पुढें होत। कीं संसारतापें संतप्त। साधु निववीत निजबोधें। ७४ मग बोले लक्ष्मण। जानकी हें कापटचवचन। संकटीं पडेल रघुनंदन। हें कल्पांतीं घडेना। ७५ तो देवाधिदेव रघूत्तम। चराचरबीज सुफलांकित द्रुम। त्यासी संकट पडेल दुर्गम। हें कल्पांतींही घडेना। ७६ जरी तमें झांकेल चंडांश। किंवा शीतज्वर बाधेल अग्नीस। जगद्भक्षक काळास। भूतबाधा जरी होय। ७७ ऊर्णनाभीचे तंतूनें सहज। जरी बांधिजेल महागज। तरी संकटीं पडेल रघुराज। जनकतनये जाण पां। ७८ ऐसें बोलतां लक्ष्मण। सीता जाहली क्रोधायमान। तीक्ष्ण शब्दशस्त्रेंकरून। लक्ष्मणासी

रण-भूमि में कौन कूद पड़ेगा ? राक्षसों ने मेरे प्राण (छीन) लिये तो तब आकर क्या देखोगे ? '। ७१ ऐसा सुनते ही सीता मन में बहुत घबरा उठी। वह बोली— ' मेरे श्रीराम वन में पड़े (फँस गये) हैं। वे तुम्हें करुण स्वर में बुला रहे हैं। ७२ युद्ध में बन्धु की, संकट में मित्र की, बुढ़ापे में स्त्री की परीक्षा करें। विकट काल (-स्थिति) में सत्पुत्र पिता की रक्षा करता है। ७३ अर्थात् शस्त्रों की बहुत मार पड़ते ही हाथ में रखी ढाल आगे होती है, अथवा संसार के ताप से पीड़ित साधु आत्मबोध से अपने आपको शान्त कर लेते हैं '। ७४ तब लक्ष्मण ने कहा— ' हे जानकी, यह कपटवचन है। यह कल्पान्त में भी घटित नहीं होगा कि श्रीराम संकट में फँस गये हों। ७५ रघुकुल के वे श्रेष्ठ पुरुष श्रीराम देवाधिदेव हैं, वे चराचर के बीज हैं, सुफलोंसे युक्त वृक्ष हैं। उन पर दुर्गम संकट आएगा ? —यह कल्पान्त में भी घटित नहीं होगा। ७६ यदि सूर्य अन्धकार से छिप जाए, यदि शीतज्वर अग्नि को बाधा पहुँचाए, यदि जगत् के भक्षक कालदेवता को भूतों की बाधा हो जाए, यदि मकड़ी की नाभि में से उत्पन्न धागे से महान हाथी को सहज ही में बाँधा जाए, तो ही हे सीता, समझिए कि रघुराज संकट में फँस जाएँगे '। ७७-७८ लक्ष्मण के ऐसा बोलने पर सीता क्रोधायमान हो गयी। उसने शब्दों रूपी पैने शस्त्रों से लक्ष्मण पर आघात

ताडिलें । ७९ म्हणे तुझें कळलें बंधुपण । ओळखिली म्यां मनींची खूण । माझा अभिलाष धरून पूर्ण । काननाप्रती आलासी । ८० राम राक्षसीं वधिलिया वनीं । मग करूं इच्छिसी मातें पत्नी । जैसा मैंद क्षमा धरूनी । सेवा करी साक्षेपें । ८१ सन्मुख देखोनि रघुनाथा म्हणसी जानकी जगन्माता । कीं वनीं राम वधावया तत्त्वतां । तुज कैकयीनें धाडिलें । ८२ तूं दायाद परम दुर्जन । सापत्नबंधु कपटी पूर्ण । जळो तुझें काळें वदन । कळलें ज्ञान वैराग्य तुझें । ८३ रघुपतीस विपरीत होतां । प्राण हा त्यजीन तत्त्वतां । निर्दय पाहतां तुजपरता । भुवनत्रयीं दिसेना । ८४ माझा अभिलाष धरून । रामासी इच्छितोसी मरण । ऐसे जानकीनें वाग्बाण । सौमित्रावरी सोडिले । ८५ कीं तप्तशस्त्रांचे घाय पूर्ण । त्याहूनि बोल ते तीक्ष्ण । कीं पर्वताचे कडे जाण । अंगावरी कोसळले । ८६ वचनें नव्हत तीं निश्चित । कीं दुःखवल्ली फळें यथार्थ । परम दुःखी सुमित्रासुत । प्रत्युत्तर देतसे । ८७

किया । ७९ उसने कहा— ‘ज्ञात हो गयी तुम्हारी बन्धुता ! जान लिया मैंने तुम्हारे मन का संकेत ! मेरे सम्बन्ध में पूरी अभिलाषा रखकर तुम वन में आये हुए हो । ८० राक्षसों द्वारा श्रीराम का वन में वध होने पर फिर मुझे अपनी पत्नी बना लेना चाहते हो । जैसे बटमार क्षमा धारण करके जान-बूझकर (पथिक आदि की) सेवा करता है, वैसे ही तुम रघुनाथ को सामने देखकर कहते हो कि जानकी जगन्माता है । अथवा सचमुच कैकेयी ने वन में राम का वध करने के लिए तुम्हें भेजा है । ८१-८२ तू भाई परम दुर्जन है । (तुझ जैसा) सौतेला भाई पूरा-पूरा कपटी होता है । जल जाए तेरा (यह) काला मुँह ! समझ पड़ा तेरा ज्ञान और वैराग्य !। ८३ रघुनाथ को (कुछ) विपरीत हो जाते ही मैं सचमुच इन प्राणों का त्याग कर दूँगी । देखने (खोजने) पर, तुझ-सा कोई निर्दय त्रिभुवन में (भी) नहीं दिखायी दे रहा है । ८४ मेरे प्रति अभिलाषा रखते हुए तू राम की मौत चाहता है ।’ —इस प्रकार जानकी ने लक्ष्मण पर शब्द रूपी बाण चला दिये । ८५ अथवा (लक्ष्मण को जान पड़ा) तप्त शस्त्रों के पूरे (ज़ोर से किये) आघातों से भी वे शब्द तीक्ष्ण थे । अथवा समझिए कि पर्वत के कगार अंग पर टूटकर गिर गये । ८६ निश्चय ही वे शब्द नहीं हैं । अथवा दुःख रूपी लता के सचमुच वे फल हैं । इससे परम दुखी (होकर) लक्ष्मण ने उत्तर

म्हणे माते जनकनंदिनी। मी निष्पाप बोलिलों वाणी। कीं विजयी सदा चापपाणी। दुःख वनीं त्यासी कैंचें। ८८ पृथ्वी आप तेज वायु आकाश। तुज मज साक्ष चंडांश। मी बोलिलों निर्दोष। जैसें कां यश सोज्वळ। ८९ मी बाळक तूं जननी। हाचि भावार्थ माझे मनीं। तुझी तुज फळेल करणी। पडसी बंधनीं षण्मास। ९० पुन्हां भेटे जों रघुनाथ। तों भोगिसी महा अनर्थ। ऐसें बोलोनि सुमित्रासुत। चालिला त्वरित वनासी। ९१ मग तो ऊर्मिलाप्राणनाथ। जनकाचा कनिष्ठ जामात। गुंफेद्वारीं रेखा ओढीत। धनुष्यकोटीनें तेधवां। ९२ म्हणे तूं या रेखेबाहेर जासी। तरी परम अनर्थ पावसी। जो रघुवीर अयोध्यावासी। त्याचीच शपथ तुज असे। ९३ शोधीत घोर अरण्य। सौमित्र जातां करी रुदन। म्हणे होतांचि रामदर्शन। प्राण त्यागीन निर्धारें। ९४ श्रीराम-पदांकित मुद्रा दिसत। ध्वजवज्रादि चिन्हें मंडित। मार्ग काढीत सुमित्रासुत। ऐका दृष्टांत येथें कैसा। ९५ जैसे

दिया। ८७ उन्होंने कहा— 'हे माता जनक-नन्दिनी, मैंने निष्पाप (मन से यह) बात कही कि चापपाणि श्रीराम सदा विजयी हैं; वन में उन्हें दुख कैसे होगा? ८८ पृथ्वी, आप (जल), तेज, वायु, आकाश और सूर्य तुम्हारे और मेरे लिए साक्षी हैं। जैसे कीर्ति उज्ज्वल होती है, वैसे मैंने (कपट-सम्बन्धी) दोष-रहित अर्थात् उज्ज्वल बात कह दी। ८९ मैं बालक हूँ और तुम जननी हो— मेरे मन का यही भावार्थ है। तुम्हारी (यह) करनी तुम्हें फलेगी और तुम छः महीने बन्धन में पड़ी रहोगी। ९० जब रघुनाथ राम फिर से मिलेंगे, तो महान अनर्थ भुगतोगी।' —ऐसा बोलकर लक्ष्मण झट से वन की ओर चल दिये। ९१ तब उर्मिला के प्राणनाथ तथा जनक के कनिष्ट जामाता उन लक्ष्मण ने गुफा के द्वार पर धनुष की डोरी से एक रेखा खींच दी। ९२ (और) कहा— 'यदि तुम इस रेखा के बाहर जाओगी, तो परम संकट को प्राप्त हो जाओगी। अयोध्यानिवासी रघुवीर की तुम्हें सौगन्ध है'। ९३ (तदनन्तर) घोर अरण्य में श्रीराम को खोजते हुए लक्ष्मण रो रहे थे। (उन्होंने निश्चय किया कि) श्रीराम के दर्शन होते ही निर्धार-पूर्वक प्राण त्याग दूँगा। ९४ (रास्ते में) श्रीराम के चरणों के अंकित निशान दिखायी दे रहे थे, जो ध्वज, वज्र आदि चिह्नों से सुशोभित थे। (उनके आधार पर) लक्ष्मण मार्ग ढूँढ़ निकाल रहे थे। कैसे? —इस सम्बन्ध में यहाँ दृष्टान्त

श्रुतीच्या आधारें निश्चित। स्वस्वरूपीं प्रवेशती संत। त्याचपरी सुमित्रासुत। श्रीरघुनाथा पाहों जाय। ९६ कीं संसारतापें संतप्त पूर्ण। तो सद्गुरूसी जाई शरण। कीं तृषित जान्हवी लक्षून। जात धांवोन त्वरेनें। ९७ तैसा सत्वर जात लक्ष्मण। तों अश्वत्थाखालीं मनमोहन। श्यामसुंदर दैदीप्यमान। मखपाळण बैसला असे। ९८ कोमाइलें श्रीरामवदन। तों येतां देखिला लक्ष्मण। शोकें दिसे दीनवदन। येऊन लोटांगण घातलें। ९९ कंठ जाहला सद्गदित। नयनीं आले अश्रुपात। श्रीरामचरण क्षाळीत। पाहे तटस्थ रघुवीर। १०० श्रीराम म्हणे लक्ष्मणा। कां सीता टाकोनि आलासी वना। येरू म्हणे रघुनंदना। माझा वध करीं वेगें। १ ऐसें वाटे माझे मनीं। देह समर्पावा रामचरणीं। रामें हृदयीं आलिंगूनी। कायसा मनीं खेद सांगें। २ सौमित्र सद्गदित होऊनि बोले। सीतेनें वाग्बाण सोडिले। तेणें सर्वांग माझें खोंचलें। तें बोलिलें नव जाय। १०३ मग बहुत

सुनिए। ९५ जिस प्रकार श्रुतियों के निश्चित आधार से सन्त आत्म-स्वरूप में प्रवेश कर पाते हैं, उसी प्रकार (पदचिह्नों को देखते हुए) लक्ष्मण श्रीरघुनाथ को खोजते चले जा रहे थे। ९६ अथवा जो संसार के ताप से पूर्णतः सन्तप्त हो, वह सद्गुरु की शरण में जाता है, अथवा प्यासा गंगा को देखकर तेज दौड़ता जाता है, उस प्रकार लक्ष्मण शीघ्रता से जा रहे थे, तो ही (उन्हें दिखायी दिया कि) पीपल के तले मनमोहन, श्यामसुन्दर, तेजस्वी यज्ञ-रक्षक श्रीराम विराजमान हो गये हैं। ९७-९८ श्रीराम का मुख कुम्हला गया था। तब उन्होंने लक्ष्मण को आते देखा। वे शोक से दीनवदन हो गये थे। (निकट) आकर उन्होंने दण्डवत् नमस्कार किया। ९९ उनका गला अति गद्गद हो गया था। आँखों से अश्रुपात हो रहा था। वे (आँसुओं से) श्रीराम के चरणों का प्रक्षालन कर रहे थे, तो श्रीराम तटस्थ भाव से उन्हें देख रहे थे। १०० (अनन्तर) श्रीराम ने कहा— 'हे लक्ष्मण, सीता को छोड़कर तुम वन में क्यों आ गये ?' तो उन्होंने कहा— 'हे रघुनन्दन, झट से मेरा वध कर डालो। १०१ मुझे मन में लग रहा है कि (यह) देह श्रीराम के चरणों में समर्पित कर दूँ।' (यह सुनकर) श्रीराम ने उन्हें हृदय से लगाकर कहा— 'कहो, मन में क्यों खेद कर रहे हो ?' १०२ (इसपर) बहुत गद्गद होकर लक्ष्मण बोले— 'सीता ने वाग्बाण चलाये; उनसे मेरा

प्रकारेंकरून। समाधान करी रघुनंदन। तैसेच परतले दोघेजण। आश्रमपंथ लक्षोनियां। १०४ इकडे कथानक काय जाहलें। मागें दशग्रीवें काय केलें। रूप अतिथीचें धरिलें। कापटच करूनि ते वेळे। ५ जानकी चंद्रमंडळ सुंदर। तेथें राहु आला दशकंधर। उभा राहिला रेखेबाहेर। दुराचार पापात्मा। ६ कीं हरिणी देखोनि सुकुमार। न्यावया झेंपावे जेवीं व्याघ्र। तैसा राक्षस रेखेबाहेर। अतीतवेषें उभा असे। ७ रावण परम भयभीत। रेखा नुल्लंघवे यथार्थ। जैसा वडवानळ अद्भुत। शलभ ओलांडूं शकेना। ८ पुढें उभा दशमुख। परी जानकी निर्मळ निःशंक। जैसा महेशापुढें मशक। तैसा दशमुख उभा असे। ९ इंद्रापुढें जैसा रंक। कीं ज्ञानियापुढें महामूर्ख। कीं केसरीपुढें जंबुक। कीं सूर्यापुढें खद्योत पैं। ११० कीं अग्नीपुढें पतंग। कीं खगेंद्रापुढें उरग। कीं राजहंससमोर काग। तैसा खळ उभा तेथें। १११ कीं

समस्त अंग छिल गया। वह कहा नहीं जा सकता'। १०३ अनन्तर श्रीराम ने बहुत प्रकार से उन्हें सान्त्वना दी। (फिर) वे दोनों आश्रम की ओर जानेवाले मार्ग को देखते हुए झट से लौट गये। १०४

इधर (पंचवटी में) क्या बात हुई ? पीछे (लक्ष्मण के चले जाने पर) रावण ने क्या किया ? उसने उस समय कपट पूर्वक अतिथि का रूप धारण किया। १०५ सीता (मानो) सुन्दर चन्द्र-मण्डल है। वहाँ रावण रूपी राहु आ गया। वह दुराचारी पापात्मा (लक्ष्मण द्वारा अंकित) रेखा के बाहर खड़ा रहा। १०६ अथवा सुकुमार हरिणी को देखकर जिस प्रकार उसे (खींच) ले जाने के हेतु बाघ लपकता हो, उस प्रकार (लपककर) रावण अतिथि के रूप में रेखा के बाहर खड़ा था। १०७ अद्भुत (बहुत प्रचण्ड) वड़वाग्नि को शलभ कैसे लाँघ सकता है ? (जिस प्रकार वह शलभ भयभीत हो खड़ा रहता हो,) उसी प्रकार रावण परम भयभीत हो (कर खड़ा हो) गया। उससे उस रेखा का उल्लंघन सचमुच नहीं किया जा रहा था। १०८ सामने रावण खड़ा था; फिर भी सीता निर्भय और आशंका-रहित थी। जैसे शिवजी के सम्मुख मच्छड़ हो, वैसे (सीता के सामने) रावण खड़ा था। १०९ जैसे इन्द्र के सामने दरिद्र अथवा ज्ञानवान् के सामने महामूर्ख, अथवा सिंह के सम्मुख सियार, अथवा सूर्य के सम्मुख जुगनू, अथवा अग्नि के सामने पतंगा, अथवा खगेन्द्र गरुड़ के सामने सर्प, अथवा राजहंस के सामने

नामापुढें पाप देख। कीं वेदापुढें चार्वाक। कीं शंकरापुढें मशक। मीनकेतन जेवीं दिसे।११२ कीं पंडितापुढें अजापाळक। कीं श्रोत्रियापुढें हिंसक। कीं वासुकीपुढें मंडूक। लक्षण पाहूं पातला।१३ कीं अग्नीपुढें जैसें तृण। कीं ज्ञानापुढें अज्ञान। कीं महावातापुढें जाण। जळदजाळ जैसें कां।१४ तैसा सीतेपुढें रावण। न्याहाळोनि पाहे तिचें वदन। मनीं म्हणे ऐसें निधान। त्रिभुवनामाजी दिसेना।१५ जगन्माता आदिशक्ती। तिचा अभिलाष धरितां चित्तीं। अवदसा आली रावणाप्रती। झोळी हातीं घेतली।११६ कामधेनु अभिलाषितां जाण। क्षय पावला सहस्रार्जुन।

कौआ खड़ा हो, वैसे वहाँ (सीता के सामने वह) खल पुरुष खड़ा था। ११०-१११ अथवा (भगवान् के) नाम के सामने पाप, अथवा वेदों के सम्मुख चार्वाक (जैसा वेदों का अनादर करनेवाला, नास्तिक) अथवा शिवजी के सामने मच्छड़ वा कामदेव जिस प्रकार दिखायी देता है, उस प्रकार सीता के सामने रावण दिखायी दे रहा था। ११२ अथवा (किसी) पंडित के सामने (कोई) गड़रिया, अथवा श्रोत्रीय (वेदवेत्ता-या यज्ञकर्ता) के सामने हिंसक, अथवा वासुकी नाग के सामने मेंढक उसके विशिष्ट चिह्न को देखने के हेतु आ पहुँचा हो। ११३ अथवा अग्नि के सामने घास, अथवा ज्ञान के सम्मुख अज्ञान, अथवा समझिए, महान पवन के सामने मेघजाल जिस प्रकार व्यर्थ है, उसी प्रकार सीता के सामने रावण (व्यर्थ) खड़ा था। उसने उसके मुख को सूक्ष्मता से देखा और मन में कहा (सोचा), ऐसा (धन-) भण्डार त्रिभुवन में नहीं दिखायी देता। ११४-११५ सीता तो जगन्माता तथा आदि शक्ति है। मन में उसकी अभिलाषा करने पर रावण को अवदशा प्राप्त हो गयी और उसने (भिखमंगे की भाँति) हाथ में झोली ली। ११६ समझिए, कामधेनु की अभिलाषा करने पर सहस्रार्जुन † क्षय अर्थात् विनाश को

† टिप्पणी : हैहयाधिपति सहस्रार्जुन अथवा कार्तवीर्य जन्मतः कर-विहीन था। उसने आराधना द्वारा श्रीगणेश को प्रसन्न कर लिया, तो उन्होंने उसे सहस्र हाथों से युक्त सुन्दर शरीर प्रदान किया। इससे वह 'सहस्रकर' भी कहाता है। उसने बाहुबल से समस्त पृथ्वी को जीत लिया था। एक समय शिकार के लिए घूमते-घूमते वह जमदग्नि ऋषि के आश्रम में आ गया। उस ऋषि ने कामधेनु (जो उसे इन्द्र से प्राप्त हुई थी) की सहायता से सहस्रार्जुन का स्वागत सत्कार किया। तत्पश्चात् वह राजा कामधेनु को बलात् अपने साथ ले जाने लगा। कुछ दिनों पश्चात् जमदग्नि के पुत्र परशुराम विद्याध्ययन करके लौट आये, तो कामधेनु को चुरानेवाले सहस्रार्जुन को दण्ड देने के लिए उद्यत हुए। बाद में परशुराम ने सहस्रार्जुन का वध किया।

जालंधर पार्वतीलागून। अभिलाषितां भस्म जाहला। ११७
तृणाचे वळईमाजी देखा। कैसी उगी राहे दीपकलिका। तैसें
वाटे दशमुखा। स्पर्श कदा न करवे। १८ कापुराचा पुतळा।
केवीं गिळील अग्निज्वाळा। तैसी न स्पर्शवे जनकबाळा।
रावणाचेनि सर्वथा। १९ सीतेप्रति पुसे रावण। ये वनीं तूं
कोणाची कोण। कां सेविलें घोर विपिन। काय कारण पुढें
असे। १२० मग जगन्माता बोले वचन। अयोध्याप्रभु
रघुनंदन। मी त्याची ललना पूर्ण। कन्यका जाण
जनकाची। २१ चंडीशकोदंड दारुण। रामें भंगिलें न लागतां
क्षण। जो रावणबळदर्पहरण। मखरक्षण ताटिकांतक। १२२
पाळावया पितृवचन। वनासी आले रघुनंदन। शूर्पणखेसी

प्राप्त हो गया। (वैसे ही) पार्वती की अभिलाषा करते ही जलन्दर दैत्य ‡ (जलकर) भस्म हो गया। ११७ देखिए, घास के गंज (ढेर) में दीप-कलिका अर्थात् दीपज्योति चुप कैसे रहेगी? (वह तो उस घास को जलाकर खाक कर डालेगी) उसी प्रकार रावण को जान पड़ा (कि सीता की अभिलाषा करने से वह उसे नष्ट कर देगी। इसलिए) उससे कदापि स्पर्श नहीं किया जा रहा था। ११८ कपूर का (बनाया हुआ) पुतला अग्नि की ज्वाला को कैसे निगल सकेगा? वैसे ही रावण द्वारा सीता को बिलकुल स्पर्श नहीं किया जा रहा था। ११९ (तदनन्तर) रावण ने सीता से पूछा— 'इस वन में तू किसकी कौन है? (इस) भीषण वन को क्यों (निवास के लिए) अपनाया? आगे क्या प्रयोजन है?'। १२० फिर जगन्माता (सीता) ने (यह) बात कही— 'अयोध्या के प्रभु रघुनन्दन (श्रीराम) हैं; मैं उनकी स्त्री हूँ। जान लीजिए, मैं जनक (राजा) की कन्या हूँ। १२१ जो श्रीराम रावण के बल-सम्बन्धी घमण्ड को छुड़ानेवाले, (विश्वामित्र के) यज्ञ-रक्षक तथा ताड़का (राक्षसी) को मार डालनेवाले (वीर पुरुष) हैं, उन्होंने शिवजी के विकट धनुष को क्षण (तक) न लगते तोड़ डाला। १२२ (वे) श्रीराम

‡ टिप्पणी: समुद्र और गंगा के पुत्र जलंदर दैत्य ने त्रिभुवन को जीत लिया था। एक समय नारद से उसने पार्वती की सुन्दरता की प्रशंसा सुनी, तो वह उसके प्रति आसक्त हो गया। फिर उसने पार्वती को लाने के लिए राहु को भेज दिया, तो शिवजी ने राहु को भगा दिया। तदनन्तर शिवजी और जलंदर का युद्ध आरम्भ हो गया। एक दिन जलंदर शिवजी का रूप धारण कर पार्वती के पास गया। जलंदर अपनी पत्नी वृन्दा के शील के बल से अजेय था। अतः शिवजी के सहायक भगवान् विष्णु ने जलंदर का वेश धारण करके वृन्दा का शील भंग कर दिया। उससे शिवजी के हाथों उस दैत्य का वध हो गया।

विटंबून । त्रिशिरा खर दूषण मारिले । १२३ आतां रावण आणि कुंभकर्ण । या दोघां दुष्टांतें वधून । बंदींचे वृंदारक सोडवून । अयोध्येसी मग जाऊं । २४ वना गेले रामलक्ष्मण । ते आतां येतील न लागतां क्षण । तोंवरी वैसावें आपण । स्वस्थ मन करोनियां । २५ स्वहस्तेंकरूनि जाण । तुम्हांसी पूजिती रघुनंदन । नावेक बैसावें म्हणोन । तृणासन घातलें । २६ भयभीत लंकानाथ । प्रवेश न करवे गुंफेआंत । सीता बाहेर न ये सत्य । चापरेखा उल्लंघोनि । २७ अतीत म्हणे हें राक्षसवन । तूं एकली येथें कामिन । बहुतेक आहेस राक्षसीण । आंत नेऊन गिळिसी मज । २८ त्वां आसन घातलें गुंफेंत । तरी मी आंत न ये यथार्थ । मज तूं खासी हें निश्चित । कळलें मत सर्व तुझें । २९ सीता म्हणे शिव हर हर । आम्ही राक्षस नव्हे जी साचार । असों अतीतांचे किंकर । सत्य निर्धार जाण पां । १३० रावण विचारी अंतरीं । ही न येचि गुंफेबाहेरी । मग मूर्च्छा घेऊनि उर्वीवरी ।

पिताजी के वचन के पालन के लिए वन में आ गये हैं । उन्होंने शूर्पणखा की दुर्दशा करके त्रिशिरा, खर और दूषण को मार डाला । १२३ अब रावण और कुम्भकर्ण— इन दोनों दुष्टों का वध करके और देवों को बन्दीगृह से छुड़ाकर बाद में हम अयोध्या जाएँगे । १२४ राम और लक्ष्मण वन में गये हैं, वे अब क्षण न लगते आएँगे, तब तक आप शान्त मन से बैठिए । १२५ श्रीराम अपने हाथों से आपका पूजन करेंगे, क्षण भर बैठ जाइए '—यह कहते हुए उसने तृणासन (चटाई) बिछा दिया । १२६ (इधर) रावण भयभीत था, अतः उससे गुफा के अन्दर प्रवेश नहीं किया जा रहा था और (उधर) सचमुच सीता धनुष द्वारा अंकित रेखा को लाँघकर बाहर नहीं आ रही थी । १२७ तो अतिथि (रावण) ने कहा— ' यह तो राक्षसों का वन है और तुम यहाँ अकेली स्त्री हो । कदाचित् तुम राक्षसी हो; अन्दर ले जाकर मुझे निगल डालोगी । १२८ तुमने गुफा में आसन बिछा दिया, फिर भी मैं सचमुच अन्दर नहीं आऊँगा । यह निश्चित है कि तुम मुझे खा जाओगी । तुम्हारा सब हेतु मुझे विदित हो गया ' । १२९ (इसपर) सीता ने कहा— ' शिव, शिव ! हर-हर ! अहो, हम सचमुच राक्षस नहीं हैं । हम तो अतिथि के सेवक हैं— इसे निश्चय ही सत्य समझिए ' । १३० तो रावण ने मन में सोचा— यह तो गुफा के बाहर नहीं आ रही है । फिर बेहोशी

लटिकाचि तो पडियेला । ३१ म्हणे आतां फलाहाराविण । माझा जातो येथें प्राण । तूं गुंफेबाहेर येऊन । वदनीं माझ्या फळ घालीं । ३२ तों गुप्तरूपें देव समस्त । जगन्मातेचें स्तवन करीत । तूं लंकेस जाऊन त्वरित । बंधमुक्त करीं आम्हां । ३३ तुज स्पर्शतांचि रावण । भस्म होईल न लागतां क्षण । मग आम्हांस बंदींहून । सर्वथा कोणी न सोडवी । ३४ तुझें करोनि निमित्त । लंकेस येईल रघुनाथ । तरी मुख्यरूप अग्नींत । करीं गुप्त जननीये । ३५ तुझें प्रतिबिंबस्वरूप जाण । स्वयें नटेल हुताशन । रावणवंश भस्म करून । कार्यसिद्धि करील तो । ३६ तरी मुख्यरूप गुप्त व्हावें । छायारूप तेथें जावें । ऐसें देव विनवीत आघवे । अवश्य म्हणे जानकी । ३७ असो इकडे रावण । म्हणे धांव धांव जातो प्राण । मग जगन्माता फळें घेऊन । रेखेजवळी पातली । ३८ भिक्षा घालावयासी कर । सीतेनें केला रेखेबाहेर । तैंसीच ओढोनियां सत्वर । निशाचरें उचलिली । १३९ आपलें स्वरूप

(का स्वाँग) लेकर वह भूमि पर झूठमूठ में लुढ़क गया । १३१ उसने कहा-- ' अब बिना फलों के आहार के यहाँ मेरे प्राण निकला चाहते हैं । (इसलिए) गुफा के बाहर आकर तुम मेरे मुख में फल डाल दो ' । १३२ तब समस्त देवों ने गुप्त रूप से जगन्माता (सीता) का स्तवन किया (और कहा)-- ' तुम झट से लंका में जाकर हमें बन्धन से मुक्त कर दो । १३३ रावण तुम्हें स्पर्श करते ही क्षण न लगते (जलकर) भस्म हो जाएगा । फिर बन्दीगृह से हमें कोई भी बिलकुल नहीं छुड़ा पाएगा । १३४ तुम्हें निमित्त करके (समझकर) श्रीराम लंका में आएंगे । अतः हे माता, अपने मुख्य (सच्चे) रूप को अग्नि में गुप्त करके (छिपाकर) रखो । १३५ समझो, स्वयं अग्निदेव तुम्हारे प्रतिबिम्ब का अभिनय करेगा और रावण वंश को भस्म करके (हमारे) कार्य को सिद्ध करेगा । १३६ इसलिए तुम्हारा मुख्य (सच्चा) रूप गुप्त हो जाए और छाया रूप वहाँ जाए ' --इस प्रकार समस्त देवों ने विनती की, तो सीता ने कहा-- ' अवश्य ' । १३७

अस्तु । इधर रावण ने कहा-- ' दौड़ो, दौड़ो, प्राण (निकले) जा रहे हैं । ' तो जगन्माता सीता फल लेकर रेखा के निकट पहुँच गयी । १३८ (ज्यों ही) सीता ने भिक्षा डालने के लिए हाथ रेखा के बाहर बढ़ाया, त्यों ही उस राक्षस ने खींचकर झट से उसे उठा

लंकेश । दाविता जाहला जानकीस । म्हणे म्यां बंदीं घातले त्रिदश । वरीं निःशंक मज आतां । १४० सीतेलागीं आलिंगीन । ऐसें मनीं भावी रावण । सीता म्हणे जाशील भस्म होऊन । न लागतां क्षण आतांचि । ४१ अग्नीस ओळंबा केवीं लागे । पतंग नुरे दीपासंगें । तुझा मृत्यु जवळी वेगें । आला जाण राक्षसा । ४२ रामपंचाननाची वस्तु पूर्ण । जंबुका तूं नेतोसी चोरून । जैसें अन्नसदनीं रिघे श्वान । तैसा जाण तूं दशमुखा । ४३ खदिरांगारासी वृश्चिक । पुच्छ हाणूं जातां देख । तैसा तूं भस्म होसी निःशंक । सोडीं मज राक्षसा । ४४ परी न सोडीच रावण । घातली रथावरी नेऊन । गुंफेभोंवतींचे ब्राह्मण । भयेंकरून पळाले । ४५ गृहस्थासी पडतां विषमकाळ । आश्रित पळती जैसे सकळ । तैसे ब्राह्मण रानोमाळ । भयेंकरून पळताती । १४६ सीता जाहली दीनवदन । म्हणे कोठें रामलक्ष्मण । करुणास्वरें

लिया । १३९ (फिर) लंकाधिपति रावण ने अपना (सच्चा) स्वरूप सीता को दिखा दिया और कहा-- ' मैंने देवों को बन्दीगृह में डाल दिया । अब निःशंक (मन से) मेरा वरण करो ' । १४० रावण मन में ऐसा सोच रहा था-- मैं सीता का आलिंगन करूँगा । तो सीता ने कहा-- ' क्षण न लगते अभी तुम भस्म हो जाओगे ' । १४१ अग्नि को (दूसरे को जला डालने में) कष्ट कैसे होगा ? पतंगा दीपक की संगति में शेष नहीं रह जाता । (उसी प्रकार मेरे पास आने पर तुम नहीं बच सकोगे ।) हे राक्षस, समझो कि तुम्हारी मौत वेगपूर्वक पास आ गयी । १४२ हे सियार, श्रीराम रूपी सिंह की वस्तु को तुम चुराकर ले जा रहे हो । हे रावण, जिस प्रकार रसोईघर में कुत्ता प्रवेश कर जाता है, उस प्रकार तुम (अपने आपको) समझो— अर्थात् समझो कि तुम अपवित्र ने पावन स्थान में प्रवेश किया है । १४३ देखो, जिस प्रकार बिच्छू खदिरांगार पर पूँछ मारने जाने पर जलकर भस्म हो जाता है, उस प्रकार तुम (मुझे बलात् ले जाने के यत्न में) निःसन्देह (जलकर) भस्म हो जाओगे । (अतः) अरे राक्षस, मुझे छोड़ दो ' । १४४ फिर भी रावण ने उसे नहीं छोड़ा, (वरन्) ले जाकर रथ में डाल दिया । (यह देखकर) गुफा के चारों ओर के ब्राह्मण भय से भाग गये । १४५ गृहस्थ पर विषम काल आने पर जिस प्रकार (उसके) समस्त आश्रित भाग जाते हैं, उस प्रकार वे ब्राह्मण भय से वन-वन भाग रहे थे । १४६ (इससे) सीता

हांक फोडून। धांवा करी राघवाचा। १४७ तों निराळमार्गें रथ। पळवीत जाय लंकानाथ। दीर्घस्वरें आक्रंदत। जनक-दुहिता ते काळीं। ४८ नानावृक्षवनचरांप्रती। हांक फोडून सीता सती। म्हणे सत्वर सांगा रघुपती। राक्षस नेतो म्हणोनियां। ४९ सीतेची करुणा देखोन। पशु पक्षी करिती रुदन। वृक्ष आणि पाषाण। दु:खेंकरून उलताती। १५० सीता म्हणे श्रीरामा। अपर्णावर-मनविश्रामा पद्मजात-जनका पूर्णब्रह्मा। धांवें आतां लौकरी। ५१ हे ताटिकांतका रघुवीरा। हे मखपाळका समरधीरा। अहल्योद्धारा परम उदारा। धांवें सत्वर ये वेळे। ५२ रावण हा सर्प दारुण। जिव्हारीं झोंबला जातो प्राण। तूं सुपर्णवहना गारुडी पूर्ण। झडप घालोनि पाव वेगीं। ५३ रावण नव्हे हा सबळ मातंग। पंचानना धांव तूं सवेग। वियोगानळें जाळिलें सर्वांग। करुणाघन वर्षें तूं। १५४ जो परम साधु सुमित्रासुत। पवित्र जैसा केवळ आदित्य। त्यासी छळितां रघुनाथ। मज अंतरला

दीन-वदन हो गयी। उसने कहा— 'राम-लक्ष्मण कहाँ हैं?' वह करुण स्वर में श्रीराम को पुकारती हुई, दुहाई दे रही थी। १४७ तब रावण रथ को आकाश-मार्ग से दौड़ाये जा रहा था। उस समय सीता दीर्घ स्वर में चीख रही थी। १४८ सती सीता नाना वृक्षों, वन्य जीवों को पुकार कर कह रही थी— 'झट से रघुपति से कहो कि राक्षस (मुझे) लिये जा रहा है'। १४९ सीता की करुण स्थिति देखकर पशु-पक्षी रुदन करते थे, वृक्ष और पत्थर दु.ख से पिघलते थे। १५० सीता ने कहा— 'पार्वती-पति शिवजी के मन के हे विश्राम, हे ब्रह्मा के पिता, हे पूर्णब्रह्म, अब झट से दौड़ो। १५१ हे ताड़का को मार डालनेवाले रघुवीर, हे यज्ञ-रक्षक, हे समर-धीर, हे अहल्या के परम उदार उद्धारक, इस समय, सत्वर दौड़ो। १५२ यह रावण (मानो) दारुण सर्प है, जो (मेरे) मर्म स्थान में डस गया है, (मेरे) प्राण निकल रहे हैं। हे गरुड़-वाहन (भगवान् विष्णु) रूपी सँपेरे, तुम लपककर वेग-पूर्वक आ जाओ। १५३ यह रावण नहीं, बलवान् हाथी है। हे (श्रीराम-) सिंह, तुम वेग-पूर्वक दौड़ो। वियोग रूपी आग ने समस्त शरीर को जला दिया, तो हे करुणा के बादल, तुम बरस पड़ो। १५४ जो लक्ष्मण परम साधु हैं, केवल सूर्य जैसे पवित्र हैं, उन्हें पीड़ा पहुँचाते ही, रघुनाथ मुझसे अभी-अभी बिछुड़ गये। १५५ जो साधुपुरुष को पीड़ा पहुँचाएगा,

आतांचि । १५५ जो करील साधूचें छळण । नसतेंच ठेवी त्यासी दूषण । तरी जन्मोजन्मीं वंशखंडण । नरक दारुण भोगील तो । ५६ साधुछळक दुराचारी । त्याचे भारें कांपे धरित्री । ईश्वर सर्व दोष क्षमा करी । तारी भवसागरीं पतिता । ५७ परी पतित जो संतछळक । त्यासी दुःखें भोगवी अनेक । त्या दुष्टाचें न पाहावें मुख । पापी निष्टंक साधुद्रोही । ५८ दरिद्र दुःख विघ्नें बहुत । त्यावरीच कोसळती समस्त । सध्यां मजचि आली प्रचीत । राक्षस नेत धरोनियां । ५९ जानकीचे विलाप ऐकोन । चराचर जीव करिती रुदन । जटायु धांविन्नला देखोन । क्षोभला पूर्ण काळ जैसा । १६० काया थोर गिरिसमान । वज्रचंचू परम तीक्ष्ण । तिखट नखें विद्रुमवर्ण । रावणावरी कोसळला । ६१ जटायु म्हणे रे दुर्जना । महानिष्ठुरा खळा मलिना । सांडीं वेगीं श्रीरामललना । नाहीं तरी प्राणा मुकशील । ६२ दीपाचे पोटीं होय काजळ । तैसा ब्रह्मवंशी तूं चांडाळ । तुझें छेदीन शिरकमळ । सांडीं वेल्हाळ जानकी । १६३ कासया केलें

झूठमूठ उसे दोष लगाएगा, प्रत्येक जन्म में उसका वंश टूट (खंडित हो) जाएगा और वह दारुण नरक का भोग करेगा । १५६ जो साधु-पीड़क तथा दुराचारी है, उसके भार से पृथ्वी काँपती रहती है । भगवान् सब दोषों को क्षमा करते हैं और भव-सागर में से पतित को तारते हैं हैं । १५७ परन्तु जो पतित (पापी) सन्तों को पीड़ा पहुँचानेवाला होता है, उसे (भगवान्) अनेक दुखों का भोग कराते हैं । उस दुष्ट का मुँह न देखें— वह तो पापी, पक्का साधु-द्रोही होता है । १५८ दरिद्रता, दुःख तथा बहुत विघ्न— सब उसी पर गुज़रते हैं । अभी मुझी को इसका अनुभव हुआ-- (जब कि) मुझे (यह) राक्षस पकड़कर ले जा रहा है ' । १५९ सीता के (ऐसे) विलाप को सुनकर चराचर जीव रुदन कर रहे थे । यह देखकर जटायु दौड़ा आ गया । वह काल-सा पूर्णतः क्षुब्ध हो गया । १६० (उसकी) देह प्रचण्ड पर्वत-सी थी । वज्र-सी कठिन चोंच परम पैनी थी, (उसके) पैने नाखून मूँगे के रंग के थे । वह रावण पर टूट पड़ा । १६१ जटायु ने कहा-- ' अरे दुर्जन, महानिष्ठुर, अरे खल, मलिन (गन्दे पापी), श्रीराम की स्त्री को झट से छोड़ दो, नहीं तो प्राणों से हाथ धो बैठोगे । १६२ दीपक के पेट में (अन्दर) काजल होता है; वैसे तू ब्रह्मा के वंश में चण्डाल (उत्पन्न हुआ) है । तुम्हारे मस्तक-

वेदाध्ययन । काय कोरडें ब्रह्मज्ञान । जळो तुझें तपाचरण । शिवभजन व्यर्थ गेलें । १६४ जो जगद्वंद्य जगदुद्धार । त्याची वस्तु नेसी तूं तस्कर । तुझे कर्ण नासिक समग्र । छेदोनि आजि टाकीन । ६५ असो धनुष्य घेऊनि रावण । जटायूवरी सोडी बाण । येरू चंचुघातेंकरून । शर मोडोन टाकीत । ६६ तों रिता जाहला तूणीर । जटायूस न लागे एक शर । परम प्रतापी तो अरुणपुत्र । केलें विचित्र ते काळीं ६७ चंचुघातें परम दारुण । मारिले अश्व मोडिला स्यंदन । सारथियाचें शिर छेदोन । न लागतां क्षण पैं नेलें । ६८ मुकुट धनुष्य तूणीर । झडप घालोनि नेलें समग्र । चूर्ण केले वस्त्रालंकार । दशकंधर नग्न उभा । ६९ रावणमस्तकींचे केश । उपडोनि टाकिले निःशेष । क्षपणक जैसा लंकेश । निःशस्त्री नग्न उभा असे तो । १७० गगनींहून अकस्मात । रावणावर पडे जैसा पर्वत । चंचुघातें समस्त । मस्तकें दाही फोडिलीं । १७१ रुधिरें जाहला बंबाळ । जैसा कुंकुमें माखिला शैल । सांडिली जानकी

कमल को काट डालूँगा; सुन्दरी सीता को छोड़ दो । १६३ तुमने वेदों का अध्ययन किसलिए किया ? तुम्हारा ब्रह्मज्ञान कोरा है । जल जाए तुम्हारा तपाचरण ! तुम्हारा किया शिवजी का भजन व्यर्थ (सिद्ध) हो गया । १६४ जो (श्रीराम) जगद्-वंद्य तथा जगत् के उद्धारक हैं, उनकी वस्तु को तुम चोर लिये जा रहे हो । तुम्हारे कान और समग्र नाक मैं आज छेद डालूँगा' । १६५ अस्तु । धनुष लेकर रावण ने जटायु पर बाण चला दिये, तो उसने चोंच के आघात से उन बाणों को तोड़ डाला । १६६ तब (अन्त में) तरकस रिक्त हो गया । जटायु को एक (भी) बाण नहीं लगा । वह तो (सूर्य के सारथी) अरुण का परम प्रतापी पुत्र था । उसने उस समय चमत्कार किया । १६७ चोंच के अतीव कठोर आघात से उसने (रावण के रथ के) घोड़ों को मार डाला, रथ को तोड़ डाला और सारथी का सिर काटकर क्षण न लगते वह ले गया । १६८ वह लपककर (रावण के) मुकुट, धनुष और तरकस को ले गया; समस्त वस्त्रों और अलंकारों को चूर-चूर कर डाला, तो रावण नंगा खड़ा रहा । १६९ उसने रावण के सिर के वालों को निःशेष उखाड़ डाला । (किसी) क्षपणक (नंगे निर्लज्ज साधु) की भाँति रावण निःशस्त्र तथा नंगा खड़ा था । १७० वह आकाश से पर्वत-सा रावण पर गिर गया, चोंच के आघात से सभी दसों मस्तक फोड़ डाले । १७१ वह रक्त में (वैसे)

वेल्हाळ । घेतला पळ रावणें । १७२ हृदयीं बोध ठसावतां समग्र । निःशेष पळे अहंकार । सीता टाकोनि दशकंधर । पळे तैसा भयेंचि । ७३ मनीं विचारी लंकानाथ । पांखरें मज गांजिलें बहुत । मग उभा राहोनि तेथ । पाचारीत जटायूतें । ७४ म्हणे तुज रघुनाथाची आण । सांगें तुझें मृत्यंग कोण । मीही सांगतों आपुलें मरण । युद्धकंदन मग करूं । ७५ जटायु म्हणे पक्ष उपडितां । मज मृत्यु तेव्हांच तत्त्वतां । तुझें मरण लंकनाथा । तैसेंच सांगें त्वरेनें । ७६ येरू म्हणे चरणांगुष्ठ फोडितां । मी मृत्यु पावेन क्षण न लागतां । जटायु यावयासी हाता । राक्षसेंच केला उपाय । ७७ जटायूनें धांवूनि आंवळिला । दशमुखाचा अंगुष्ठ फोडिला । येरें झेंप घालोनि ते वेळां । दोन्ही पक्ष उपडिले । ७८ भडभडां चालिलें रुधिर । कासावीस जाहला तो द्विजवर । म्हणे केव्हां येईल रघुवीर । हा समाचार सांगेन तया । १७९ स्कंदतातमित्रांगना । स्कंधीं घेऊनि राक्षसराणा । गति थोडी

सन गया जैसे कुंकुम से पर्वत चिपड़ा हुआ हो । रावण ने सीता को छोड़ दिया वह और भागने लगा । १७२ जिस प्रकार हृदय में सम्पूर्ण आत्मज्ञान के जम जाने पर अहंकार पूर्णतः भाग जाता है, उस प्रकार (अपनी स्थिति का ज्ञान होने पर) रावण सीता को छोड़कर भाग गया । १७३ रावण ने मन में विचार किया— (इस) पँखेरू ने मुझे बहुत तंग किया । फिर वहाँ खड़ा रहकर उसने जटायु को बुला लिया । १७४ उसने कहा— 'तुम्हें श्रीराम की शपथ है । बताओ, तुम्हारा मृत्यु-स्थान कौन-सा है । मैं भी अपनी मौत बताता हूँ । फिर हम लड़ाई-झगड़ा करें' । १७५ (इसपर) जटायु ने कहा— 'पंखों के उखड़ जाने पर ही मुझे सचमुच मौत आएगी । हे लंकानाथ, अब झट से अपनी मौत वैसे ही बताओ' । १७६ (तब) उसने कहा—'मेरे पाँव के अँगूठे को फोड़ डालने पर क्षण न लगते, मैं मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँगा ।' (फिर) राक्षस ने जटायु को हाथ में लाने का उपाय किया । १७७ दौड़ते हुए जाकर जटायु ने रावण को जकड़ लिया और रावण के अँगूठे को फोड़ डाला । (परन्तु) उसने लपककर उस समय (जटायु के) दोनों पंखों को उखाड़ डाला । १७८ रक्त वेग-पूर्वक बह चला, तो वह श्रेष्ठ पक्षी अकुला उठा । उसने कहा (सोचा)— श्रीराम कब आएँगे (जिससे) मैं उनसे यह समाचार कह सकूँ । १७९ राक्षसों के राजा रावण

वाटे पवना। निराळमार्गें तेवीं जाय। १८० जटायुकारणें अत्यंत। जनकतनया शोक करीत। निजकरें ललाट पिटीत। आक्रंदत दीर्घस्वरें। ८१ म्हणे जटायु भक्त पूर्ण। मजकारणें वेंचिला प्राण। मी रामपितृव्य म्हणोन। दशरथासमान मानिला। ८२ ऐसी सीता शोक करीत। रावण निराळमार्गें जात। तों मातंगपर्वतावरी अद्भुत। पांच वानर उभे असती। ८३ सुग्रीव नळ नीळ जांबुवंत। पांचवा महारुद्र हनुमंत। ज्याचा बळप्रताप अद्भुत। व्यासवाल्मीकीं वर्णिला। ८४ उपजतांचि बाळपणीं। क्षणें आकळिला जेणें तरणी। इंद्रादिक निर्जर समरांगणीं। जर्जर केले प्रतापें। ८५ अंतरिक्षें जातां दशकंधर। जानकी फाडी चीरपदर। अलंकार बांधोनि समग्र। मारुतीकडे टाकिले। ८६ ते ग्रंथि घेऊन हनुमंतें। निराळमार्गें पाहे वरुतें। तों राक्षस जाय गगनपंथें। जानकीतें घेवोनि। १८७ हांक फोडीत सुंदरा। धांव रामा राजीवनेत्रा। घनश्यामा

(कार्तिक स्वामी के पिता शिवजी के मित्र श्रीराम की पत्नी) सीता को कंधे पर लेकर (ऐसी गति से) आकाश-मार्ग से जा रहा था, जो (जिसकी तुलना में) पवन को भी अपनी गति कम लगती हो। १८० जटायु के लिए सीता बहुत शोक कर रही थी। वह अपने हाथ से सिर पीट रही थी और उच्च स्वर में चीख रही थी। १८१ उसने कहा—' जटायु तो पूरा-पूरा भक्त है। उसने मेरे कारण अपने प्राणों को खर्च किया (त्याग दिया)। मैंने भी राम के पितृव्य (चाचा) के नाते उन्हें दशरथ के समान समझा'। १८२ इस प्रकार सीता शोक कर रही थी। रावण आकाश-मार्ग से जा रहा था, तो (दिखायी दिया कि) मतंग पर्वत पर पाँच अद्भुत वानर खड़े थे। १८३ वे थे— सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवान् और (उनमें) पाँचवाँ था महारुद्र (का अवतार) हनुमान, जिसके अद्भुत बल तथा प्रताप का वर्णन व्यास और वाल्मीकि ने किया है और जिसने जन्म होते ही शिशु अवस्था में क्षण भर में सूर्य को वश में कर लिया था, युद्ध-भूमि में इन्द्र आदि देवों को अपने प्रताप से जर्जर कर डाला था। १८४-१८५ रावण के आकाश में जाने पर जानकी ने अपने वस्त्र का पल्लव फाड़ दिया और उसमें समस्त अलंकारों को बाँधकर हनुमान की ओर फेंक दिया। १८६ उस पोटली को लेकर हनुमान ने ऊपर आकाशमार्ग की ओर देखा, तो (दिखायी दिया कि) वह राक्षस सीता को लिए हुए आकाशमार्ग से जा रहा था। १८७ वह सुन्दरी

कोमळगात्रा। वंद्य त्रिनेत्रा विधीतें। १८८ हे राम जगदंकुर-कंदा। हे ताटिकांतका ब्रह्मानंदा। हे राक्षसांतका जगद्वंद्या। पाव एकदां मजलागीं। ८९ ऐसें ऐकतां हनुमंत। मनीं आवेशला अत्यंत। म्हणे कोणा सभाग्याची वस्त। राक्षस नेतो चोरूनि। १९० मारोनियां रजनीचर। सोडवूं आतां हे सुंदर। तिचा शोधीत येईल भ्रतार। देऊं तयासी साक्षेपें। ९१ जैसा देखतां वारण। अकस्मात पडे पंचानन। भयभीत जहाला रावण। म्हणे हें विघ्न दूसरें। ९२ मारुतीचें उड्डाण अद्भुत। गेला ध्रुवमंडळापर्यंत। तों रावण प्रवेशला लंकेंत। अदृश्य होत क्षणमात्रें। ९३ काळाचे दाढेंत पडतां उरला। सर्पमुखींचा मूषक पळाला। मृगेंद्रकवेंतून वांचला। पूर्वभाग्यें जंबुक। ९४ व्यर्थ गेलें कपीचें उड्डाण। मनीं म्हणे अंजनीनंदन। पुढें याचा सूड घेईन। बहुत गांजीन राक्षसां। १९५ मग अवनिजेचे अलंकार। अवनिगर्भी ठेवीत

चिल्ला (कर पुकार) रही थी— 'हे राम, हे कमलनयन, हे घनश्याम, कोमलगात्र, हे शिवजी और ब्रह्मा के लिए वंद्य राम, हे जगत् के लिए अंकुर-कन्द श्रीराम, हे ताड़का का अन्त करनेवाले जगद्वंद्य श्रीराम! मुझसे एक बार मिल जाओ'। १८८-१८९ ऐसा (क्रन्दन) सुनकर हनुमान मन में बहुत आवेश को प्राप्त हो गया। उसने कहा— 'किस भाग्यवान की वस्तु यह राक्षस चुराकर लिए जा रहा है? १९० उस राक्षस को मार डालकर इस सुन्दरी को अब छुड़ा दूँगा। उसका पति उसे खोजता हुआ आएगा, तो उसे निश्चय ही लौटा दूँगा'। १९१ जिस प्रकार हाथी के देखते हुए सहसा (कहीं से) सिंह आ धमके, तो वह जिस प्रकार भयभीत हो जाता है, उस प्रकार सहसा हनुमान को देखकर रावण भयभीत हो गया। उसने कहा— 'यह दूसरा विघ्न आ गया'। १९२ हनुमान की उड़ान अद्भुत थी। वह ध्रुव-मण्डल तक पहुँच गया। तब (तक) रावण लंका में प्रविष्ट हो गया और क्षण मात्र में अदृश्य हो गया। १९३ वह (मानो) काल की दाढ़ों में गिरते-गिरते बच गया। (मानो) साँप के मुँह में से चूहा भाग गया हो सिंह की लपेट से पूर्व भाग्य से सियार बच गया हो। १९४ कपि (हनुमान) की उड़ान बेकार (सिद्ध) हो गयी, तो अंजनी के उस पुत्र ने मन में कहा— 'आगे इससे बदला लूँगा, राक्षसों को बहुत तंग करूँगा'। १९५ अनन्तर उस वानर ने सीता के आभूषण भूमि के गर्भ में (अन्दर) रख दिये। इधर रावण

वानर। इकडे लंकेंत दशकंधर। काय करिता जाहला। १९६ परम सबळ अठरा राक्षस। त्यांसी आज्ञापी लंकेश। म्हणे जाऊनि पंचवटीस। शोधा रामासी साक्षेपें। ९७ राघवा आणि लक्ष्मणा। वधोनि यावें दोघां जणां। त्यांहीं मस्तकीं वंदोनि आज्ञा। उत्तरपंथें चालिले। ९८ कीं काळें बोलावूं पाठविलें। आयुष्यसिंधूचें जळ आटलें। कीं मृत्युपुरीस चालिले। स्थळ पाहावया रावणा। ९९ रावण सीतेस एकांतीं। नेऊनी मग बहुत प्रार्थी। पायीं लागे लंकापती। काकुळती येतसे। २०० वैभवसंपत्ति दावी समस्त। वर्णी आपुला पुरुषार्थ। म्यां बंदीं घातले देव समस्त। मज त्वरित वरीं का। १ लाज न धरी कामातुर। मरण नेणे प्रतापशूर। मद्यपियास सारासार। कांहीं विचार समजेना। २ कामुकासी नव्हेचि विरक्ती। मैंदासी काय हरिभक्ती। व्याघ्रासी उपजेल शांती। काळत्रयीं घडेना। २०३ असो लाज सोडोनि दशवदन। म्हणे जानकी ऐक

ने लंका में क्या किया ? १९६ (वहाँ) परम बलवान् अठारह राक्षसों को लंकापति रावण ने आज्ञा दी। उसने कहा— ' पंचवटी जाकर राम को निर्धारपूर्वक खोज लो। १९७ राम और लक्ष्मण— दोनों जनों का वध करके आओ '। इस आज्ञा को सिरसावंद्य करके वे उत्तर दिशा के मार्ग पर चल पड़े। १९८ अथवा (मानो) उन्हें काल ने बुलावा भेजा हो, (उनकी) आयु रूपी समुद्र का जल सूख गया हो, अथवा रावण के लिए स्थान खोजने के लिए वे मृत्यु-पुरी (की ओर) चल दिये हों। १९९ रावण ने सीता को एकान्त में ले जाकर कहा (समझाया), फिर बहुत प्रार्थना की। वह उसके पाँव लग गया। वह बहुत असहायता को प्राप्त हो गया। २०० उसने अपनी समस्त सम्पत्ति दिखा दी; अपने पुरुषार्थ का (यों) बखान किया— ' मैंने समस्त देवों को बन्दीगृह में डाल दिया, (अब) तुम मेरा झट से वरण करो '। २०१ कामातुर व्यक्ति लज्जा नहीं रखता। प्रतापी शूर व्यक्ति मृत्यु (से डरना) नहीं जानता। मद्यपी को सार-असार का कुछ विवेक सुझायी नहीं देता। २०२ कामुक को (भोग-विलास से) विरक्ति नहीं होती। बटमार को क्या हरिभक्ति (में रुचि) होगी ? बाघ को शान्ति उत्पन्न होगी— यह तो त्रिकाल में नहीं घटित हो सकता। २०३ अस्तु। रावण लज्जा को छोड़कर बोला— ' हे जानकी, (मेरी) बात सुनो (मानो)। राम और रावण एक

वचन । एकराशी रामरावण । लावीं लग्न ऐक्यत्वें । २०४
चित्रा नक्षत्र तूळराशी । समान रामरावणांसी । तरी तूं अवज्ञा
कां करिसी । बोल वेगें शुभानने । ५ जानकी म्हणे दशमुखा ।
तस्करा महामलिना मूर्खा । पतंग आलिंगितां दीपिका । कैसा
मग वांचेल । ६ प्रळयाग्नींत स्नान करूनी । मशक केवीं
येईल परतोन । वासुकीचा विषदंत पाडूनी । मूषक कैसा
आणील । ७ मृगेंद्रजिव्हेचें मांस देख । तोडूनि केवीं वांचेल
जंबुक । आदित्यमंडळ मंडूक । पाडील कैसें भूमीतें । ८
सौंदणी आणि समुद्र । दोन्ही एकराशी साचार । वायस आणि
वैनतेय पक्षींद्र । एकराशी होतसे । ९ सिंह आणि शृगाल
जाण । मशक महेश राशी समान । तम आणि तरणि पूर्ण ।
केवीं समान सांग पां । २१० रजक आणि रमावर । कुक्कुट
आणि कुंजर । रजनीचर आणि रघुवीर । केवीं समान सांग
पां । ११ कंटक आणि कंजलोचना । कपटी आणि कमळासन ।
तैसा राम आणि रावण । राशिगुण कासया । २१२ मदनें

राशि (अर्थात् ऐसे व्यक्ति हैं जिनके जन्म-नक्षत्र तथा राशि एक) हैं।
अतः एकत्व भाव से तुम विवाह करो । २०४ राम और रावण का
नक्षत्र चित्रा तथा राशि तुला, अर्थात् समान है । इसलिए हे शुभानना,
बोलो, तुम (इस प्रकार) अवज्ञा क्यों कर रही हो ’। २०५ (यह सुनकर)
जानकी ने कहा— ‘ अरे रावण, रे चोर, रे महापापी, रे मूर्ख ! दीपिका
का आलिंगन करने पर फिर पतंग कैसे बचेगा ? । २०६ प्रलयाग्नि में
स्नान करके मच्छड़ कैसे वापस आ सकेगा ? चूहा वासुकी नाग का
विष-दाँत तोड़कर कैसे ला सकेगा ? । २०७ देख, सिंह की जीभ का मांस
काटकर सियार कैसे बच पाएगा ? मेंढक सूर्य-मण्डल को भूमि पर कैसे
गिरा पाएगा ? । २०८ (धोबी का) पानी का हौज़ और समुद्र दोनों
वस्तुतः एकराशि हैं । (फिर क्या उन्हें समान माना जाए ?) कौआ
और पक्षिराज गरुड़ एकराशि होते हैं । (फिर भी क्या वे समान
माने जाते हैं ?) । २०९ समझ ले, सिंह और सियार, मच्छड़ और
महेशजी समान-राशि हैं । (फिर भी उन्हें कोई समान नहीं मानता ।)
बता दे, अँधेरा और सूर्य (एकराशि होने पर भी) समान कैसे
होंगे ? । २१० धोबी और श्रीविष्णु, मुर्गा और हाथी, राक्षस और
श्रीराम कैसे समान हैं ? । २११ काँटा और कमलनेत्र समान कैसे? कपटी
और कमलासन-ब्रह्मा समान कैसे होंगे ? वैसे ही राम और रावण में एक

सर्वांसीं जिंकिलें । परी शिवापुढें तें न चाले । अग्नीनें सर्वांसी जाळिलें । परी मेघापुढें काय तो । २१३ सर्वांसी गांजिसी तूं परम । परी मज स्पर्शतां होसी भस्म । आतां तुज वधावया रघूत्तम । पूर्णकाम येईल । १४ मनीं भावी रावण । हिचें जों स्थिरावे मन । तोंवरी अशोकवनीं नेऊन । ठेवूं ईतें रक्षोनियां । १५ मग त्रिजटेचेनि अनुमतें । अशोकवनीं ठेवी जानकीतें । भोंवतीं दृढ रक्षणें बहुतें । ठायीं ठायीं ठेविलीं । १६ अशोकवनाबाहेर । पांच कोटी रजनीचर । सावध बैसले अहोरात्र । नव्हे संचार वायूचा । १७ निधाना-भोंवत्या भूतावळी । रक्षिती जैशा सर्वकाळीं । तैशा राक्षसी सीतेजवळी । वेष्टोनियां बैसल्या । १८ सत्वशीळ बिभीषण । साधु पुण्यपरायण । म्हणे सीता आणून संपूर्ण । कुळक्षय मांडिला । २१९ रावण परम कामातुर । जाहला उन्मत्त अविचार । तप्त जाहलें शरीर । नावडे उपचार

राशि होने पर गुणों की समानता कैसी ? । २१२ कामदेव ने सबको जीत लिया, परन्तु शिवजी के आगे उसकी एक न चली । आग ने सबको जला दिया, फिर भी वह मेघ के सामने क्या है ? । ११३ तू सबको वहुत तंग कर रहा है; परन्तु मुझे स्पर्श करने पर तू भस्म हो जाएगा । अब पूर्णकाम रघूत्तम श्रीराम तेरा वध करने आएँगे ' । २१४ (तब) रावण ने मन में विचार किया कि जब तक इसका मन स्थिर अर्थात् शान्त हो जाए, तब तक इसे अशोक वन में ले जाकर इसकी रक्षा करते हुए रखेंगे । २१५ फिर त्रिजटा (नामक राक्षसी) के परामर्श से उसने सीता को अशोकवन में रख दिया । (उसके) चारों ओर स्थान स्थान पर बहुत दृढ़ रखवा ली का प्रबन्ध किया । २१६ अशोक वन के बाहर पाँच करोड़ राक्षस रात-दिन सावधान बैठे रहे । (वहाँ) वायु का संचरण भी नहीं होता था । २१७ धनकोश के चारों ओर पंक्तियाँ बनाकर भूत जैसे सब काल रक्षा करते रहते हैं, वैसे राक्षसियाँ सीता के समीप उसे घेरे हुए बैठी रहीं । २१८ (इधर रावण का बन्धु) विभीषण सत्त्वशील, साधु और पुण्य- (कर्म में) -परायण था । उसने कहा (सोचा)— ' (रावण ने) सीता को लाकर संपूर्ण कुल का क्षय (नाश) आरम्भ किया ' । २१९ रावण परम कामातुर था । वह उन्मत्त एवं अविवेकी हो गया । उसका शरीर (काम-ताप्र से) तप्त हो गया । उसे कोई उपचार एवं विलास अच्छा नहीं लग रहा था । २२० (तब)

विलास । २२० ब्रह्मयासी म्हणे रावण । पुरे तुझें वेदाध्ययन। अंगिरापति तुझें ज्ञान । ठेवीं झांकोन क्षणभरी । २२१ किन्नर हो पुरे गायन । नका चेतवूं पंचबाण । सीतेच्या भोगालागीं प्राण । कासावीस होताती । २२ सकळ गंगा घरीं राबत । तयांसी म्हणे लंकानाथ । शीतळ उपचार बहुत । करा आतां मजलागीं । २३ बोलावूनि राक्षसिणी । रावण सांगे त्यांचे कर्णीं । सीतेसी तुम्ही भेडसावुनी । मम शयनीं वश करा । २४ अवश्य म्हणती निशाचरी । अमंगळा धांविन्नल्या एकसरी । म्हणती सीते तूं रावणासी वरीं । नाहीं तरी तुज भक्षूं । २५ विकट रूप विशाळ कर्ण । एक वक्रमुख लंबस्तन । बाबरझोटी आरक्तनयन । भेडसाविती सीतेतें । २६ खरमुख व्याघ्रवदन । सूकरगजमुख लंबचरण । त्यांच्या नासिकांमाजी जाण । खर तुरंग गुंतले । २२७ एकी स्तनचपेटेकरूनी । झाडें

रावण ने ब्रह्मा से कहा— 'तुम्हारा वेदों का अध्ययन बस (समाप्त) हो गया'। उसने अंगिरापति (बृहस्पति से) कहा— 'हे अंगिरापति— तुम्हारा ज्ञान क्षण भर छिपाकर रख दो'। २२१ उसने कहा— 'किन्नरो, तुम्हारा गायन पूरा हो जाए— अर्थात् उसे समाप्त करो। काम को उत्तेजित मत करो। मेरे प्राण सीता के उपभोग के लिए बहुत आतुर हो रहे हैं'। २२२ समस्त गंगाएँ भवन में कष्ट कर रही थीं। रावण ने उनसे कहा— 'मेरे लिए अब बहुत शीतलोपचार करो'। २२३ (फिर) रावण ने राक्षसियों को बुलाकर उनके कानों में कहा— 'तुम सीता को डराकर मेरी शय्या में मेरे वश करा दो'। २२४ तो उन राक्षसियों ने कहा 'अवश्य'। वे अमंगल राक्षसियाँ एकदम दौड़कर गयीं और बोलीं— 'हे सीता, तुम रावण का वरण करो, नहीं तो हम तुम्हें खा जाएँगी'। २२५ (उन राक्षसियों में से) कोई एक विकट रूप वाली थी, तो कोई एक विशाल कानों वालीं थी; कोई एक टेढ़े मुख वाली थी, तो कोई एक लम्बे स्तनों वाली थी; कोई एक लम्बे बालों के झोंटों वाली थी, तो कोई एक लाल आँखों वाली। वे सीता को डराती थीं। २२६ कोई एक गधे के से मुखवाली थी, तो कोई एक बाघ के-से मुखवाली; कोई एक सूअर के-से मुखवाली, कोई एक हाथी के-से मुखवाली थी, तो कोई एक लम्बे पाँवों वाली थी। उनकी नाकों में समझिए कि गधे, घोड़े फँसे हुए थे। २२७ कोई एक स्तन के चपेटें से पेड़ों को तोड़ डालती थी। कोई एक

टाकिती मोडूनी । एकपदा द्विपदा त्रिचरणी । खाऊं म्हणती सीतेतें । २२८ परम कुरूप कुत्सित वर्ण । अमंगळ दुर्गंधि विटे मन । एक म्हणे इचे नरडीं बैसोन । घोट घेऊं आतांचि । २९ एक म्हणती काढा शिरा । दांत खाती करकरां । डोळे वटारिती पुढारां । हांका देती आक्रोशें । २३० ऐसें करिती राक्षसिणी । परी ते त्रिभुवनपतीची राणी । निर्भय परम अंतःकरणीं । कदा न गणी तयांसी । ३१ संसारदुःखें नाना गती । ज्ञानियांचे अंगीं आदळती । परी ते सहसा न गणिती । सीता सती तैशीच । ३२ बहुत भुंकती श्वान । परी कदा न भी वारण । कीं जंबुकहाकें पंचानन । कदा दचकोनि उठेना । ३३ कीं सुटतां झंझामारुत । धुळीनें तृण बहुत उडत । परी बैसक न सोडी पर्वत । निर्भय सत्य सीता तैसी । ३४ जैसी कागांमाजी जाण कोकिळा । तैसी त्रिजटा पुण्यशीळा । राक्षसी दटावून सकळा । दूर केल्या साक्षेपें । २३५

एक पाँव वाली, कोई एक दो पाँवों वाली, तो कोई एक तीन पाँवों वाली थी । वे सीता को खा जाने की बात कहती थीं । २२८ वे परम भद्दे रूपवाली, कुत्सित अर्थात् घिनौने वर्णवाली थीं । वे अमंगल (अशुभ) तथा दुर्गंधि युक्त थीं, जिनसे मन घृणा अनुभव करता था । (उनमें से) कोई-एक कहती— 'इसके गले पर बैठकर अभी इसके खून का घूँट पी लें' । २२९ कोई कोई कहतीं— 'इसकी नसों को निकाल लो' । वे दाँतों को कटकट चबातीं । उसके आगे आँखें फाड़कर देखतीं और चीखती हुई पुकारती रहतीं । २३० वे राक्षसियाँ इस प्रकार कर रही थीं, फिर भी त्रिभुवन के स्वामी की वह रानी अन्तःकरण में परम निर्भय (बनी रही) थी । वह उनकी कुछ भी परवाह नहीं कर रही थी । २३१ जगत् के दुःख तथा अनेकानेक गतियाँ ज्ञानी लोगों के शरीर पर टकराते हैं, फिर भी वे प्रायः उनकी परवाह नहीं करते । सती सीता वैसी ही थी । २३२ कुत्ते बहुत भौंकते हैं, पर हाथी (उनसे) कभी भी नहीं डरता । अथवा सियार की चिल्लाहट से सिंह चौंककर कदापि नहीं उठता । २३३ अथवा झंझावात के शुरू हो जाने पर धूल से घास के बहुत तिनके उड़ जाते हैं; परन्तु पर्वत अपनी बैठन कदापि नहीं छोड़ता । सीता वैसी ही सचमुच निर्भय थी । २३४ कौओं के बीच जैसे कोयल होती है, वैसे राक्षसियों में पुण्यशीला त्रिजटा (नामक राक्षसी) थी । उसने समस्त राक्षसियों को डाँटकर निर्धार-पूर्वक दूर हटा दिया । २३५

त्रिजटा म्हणे जनकनन्दिनी। तूं चिंता न करीं मनीं। तुज भेटेल कोदंडपाणी। अल्पकाळेंकरूनियां। ३६ वर्तमान अयोध्येपासोनी। जें जें वर्तलें जनस्थानीं। त्रिजटेप्रति जनकनन्दिनी। सांगे सकळ प्रीतीनें। ३७ सिंहावलोकनेंकरून। परिसा मागील चरित्र पूर्ण। मृग वधोनि रामलक्ष्मण। आश्रमासी पातले। ३८ ते कथा गोड अत्यंत। श्रवण करोत ज्ञाते पंडित। रसिक रामविजय ग्रंथ। श्रवणें समस्त कोड पुरे। ३९ अयोध्याधीशा ब्रह्मानन्दा। श्रीधरवरदा आनन्दाकंदा। अभंग अक्षय अभेदा। वेदवंद्या सुखाब्धे। ४० स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। पंचदशाध्याय गोड हा। २४१

॥ श्रीरामचंद्रार्पणमस्तु ॥

फिर त्रिजटा ने कहा— हे जनकनन्दिनी, तुम मन में चिन्ता न करो। थोड़े ही समय में चापपाणि श्रीराम तुम से मिलेंगे। २३६

(तदनन्तर) अयोध्या से लेकर जनस्थान तक में जो जो घटनाएँ घटित हो गयीं, वे सब सीता ने त्रिजटा से प्रेम-पूर्वक कह दीं। २३७ सिंहावलोकन के रूप में पिछला सम्पूर्ण चरित्र सुनिए— मृग का वध करके राम और लक्ष्मण आश्रम लौट आये। २३८ ज्ञानी पंडित रसिक जन (श्रोताओं के रूप में) वह अत्यन्त मधुर कथा श्रवण करें। श्रीराम विजय (नामक इस) ग्रन्थ के श्रवण से समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। २३९ हे अयोध्याधीश; हे ब्रह्मानन्द, हे श्रीधर के वरदाता, हे आनन्द-कन्द, हे अभंग, अक्षय, अभेद, हे वेदों द्वारा वंद्य, हे सुखसागर (भगवान्), स्वस्ति। यह श्रीराम-विजय नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है, वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। उसके इस मधुर पन्द्रहवें अध्याय को चतुर भक्त सदा श्रवण करें। २४०-२४१

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—१६

श्रीगणेशाय नमः। श्रीरामकथा अति सुरस। सकळ तीर्थांहूनि विशेष। गंगेपरीस निर्दोष। निजभक्तांसी प्रिय होय। १ इहपरत्रतीर साचार। रघुवीरचरित्र निर्मळ नीर। दाटला पूर्ण प्रेमपूर। गर्जे थोर रामघोषें। २ गंगेमाजी वाहे जीवन। कथासरिता ते जगज्जीवन। चित्तवृत्तिजळचरें पूर्ण। माजी निमग्न तळपती। ३ तेथें घडिघडी डहुळे पाणी। रामकथा निर्मळ अनुदिनीं। ब्रह्मानंदें उचंबळोनी। पुनीत करी त्रिभुवना। ४ गंगेमाजी बुडतां मरावें। येथें बुडी देतां तरावें। हें विशेष कर्तृत्व स्वभावें। गंगेहूनि अधिक। ५ रामकथा करितां श्रवण। सकळही तीर्थीं केलें स्नान। तें फळ आलें हातां पूर्ण। विशेष जाण रामकथा। ६ ऐसी रघुवीरकथा पावन। परी संतश्रोते सावधान। तरी वक्तयाचा हर्ष पूर्ण।

श्रीराम-कथा अति सुरस (से युक्त अर्थात् मधुर) है। वह समस्त तीर्थ-स्थलों से विशेष (पवित्र) है। वह गंगा के समान निर्दोष अर्थात् शुद्ध, पवित्र है। वह भगवान् के अपने भक्तों को प्रिय है। १ इहलोक और परलोक वस्तुतः (दो) तीर हैं, (जिनके बीच में) रघुवीर राम का चरित्र रूपी निर्मल जल (बह रहा) है। (भक्त श्रोताओं के मन में) प्रेम की बाढ़ उमड़ आयी है। वह राम नाम के घोष के रूप में बहुत गरज रही है। २ गंगा में (केवल) पानी बहता है, (परन्तु) राम-कथा रूपी सरिता तो (साक्षात्) जगत् का जीवन है, अर्थात् संसार को जीवन प्रदान करनेवाला जीवन (=जल) है। उसके अन्दर मनोवृत्तियों रूपी (मत्स्य आदि) जलचर जीव पूर्णतः निमग्न होकर झलकते रहते हैं। ३ वहाँ (गंगा नदी) का पानी हर घड़ी गँदला हो जाता है, परन्तु रामकथा रूपी गंगा प्रति दिन निर्मल (बनी) रहती है। वह ब्रह्मानन्द से उमड़कर त्रिभुवन को पुनीत करती रहती है। ४ गंगा में डूबने से मर जाएँ, (जब कि) यहाँ (राम कथा रूपी सरिता में) डुबकी लगाने पर तैर जाएँ— राम कथा रूपी सरिता का उस गंगा से स्वभावतः यह अधिक विशेष कृतित्व है। ५ सभी तीर्थों में स्नान करें, तो जो फल प्राप्त होता है, वह फल रामकथा का श्रवण करने पर पूर्णतः हाथ आता है। —रामकथा को (इस प्रकार) विशिष्ट समझिए। ६ श्रीराम की कथा ऐसी

गगनामाजी न समाये। ७ पंधरावे अध्यायीं कथा सुन्दर। सीतेस घेऊन गेला दशवक्त्र। मृग वधोनि रामसौमित्र। पंचवटीये परतले। ८ मार्गीं होती अपशकुन। चालतां जड जाह्ले चरण। आश्रमांत पाह्ती येऊन। दिसे शून्य भण-भणित। ९ जैसें प्राणाविण कलेवर। कीं उदकेंविण सरोवर। कीं नासिकाविण वक्त्र। शोभिवंत दिसेना। १० फळेंविण तरुवर। कीं सैन्येंविण नृपवर। कीं वंशीं नसतां कन्याकुमर। व्यर्थ मंदिर ज्यापरी। ११ कीं दयेवांचूनि ज्ञान। कीं प्रेमेंविण कीर्तन। कीं बुबुळेंविण नयन। गुंफा शून्य तेवीं दिसे। १२ ऋषींप्रति पुसावें वर्तमान। तंव ते पळाले कुटुंबें घेऊन। दश-दिशा दिसती शून्य। रघुनन्दन गहिंवरला। १३ नेत्रीं चालिल्या अश्रुधारा। सीता सांग कोठें सौमित्रा। ऐसें बोलतां नवपंकज-नेत्रा। मूर्च्छना आली ते वेळीं। १४ निचेष्टित पडे रघु-नन्दन। वारा घाली लक्ष्मण। नेत्रांस लावोनि जीवन। जग-

---

पवित्र है। परन्तु यदि सन्त श्रोता सावधान हों, तो (उसके) वक्ता, अर्थात् वर्णन-कर्ता का आनन्द सम्पूर्ण गगन में (भी) नहीं समाता। ७ पंदरहवें अध्याय में यह सुंदर कथा (-भाग) कहा—रावण सीता को ले गया और राम-लक्ष्मण मृग का वध करके पंचवटी में लौट आये। ८ उन्हें मार्ग में अपशकुन हो गये। चलते हुए उनके पाँव भारी हो गये। आकर उन्होंने आश्रम में देखा, तो वह सन्नाटे के साथ सूना-सूना दिखायी दिया। ९ वह शोभा-युक्त (उस प्रकार) नहीं दिखायी दिया, जिस प्रकार बिना प्राणों के शरीर, अथवा बिना जल के सरोवर, अथवा बिना नाक के मुख शोभा-युक्त नहीं दिखायी देता। १० अथवा जिस प्रकार बिना फलों के वृक्ष, अथवा बिना सेना के राजा, अथवा वंश में कन्या या पुत्र के नहीं होने पर जिस प्रकार घर व्यर्थ होता है, उस प्रकार सीता के अभाव में वह आश्रम अर्थहीन जान पड़ता था। ११ अथवा जैसे बिना प्रेम के (हरि-) कीर्तन, अथवा बिना पुतली के आँख शून्य दिखायी देती है, वैसे सीता के अभाव में वह आश्रम शून्य जान पड़ता था। १२ (इधर) ऋषियों से समाचार पूछें, तो वे तो परिवार लेकर भाग गये थे। (इसलिए) दसों दिशाएँ सूनी थीं। (यह देख-कर) श्रीराम गद्गद हो गये। १३ आँखों से अश्रु-धाराएँ चल रही थीं। 'हे लक्ष्मण, बताओ, सीता कहाँ है?' उस समय ऐसा पूछते हुए उन्हें मूर्च्छा आ गयी। १४ (जब) राम निश्चेष्ट पड़ गये, तो

ज्जीवन सावध केला । १५ देवाधिदेव आत्माराम । नीलग्रीव जपे ज्याचें नाम । त्यासी कां जाह्ला मोहभ्रम । नवल परम हें वाटे । १६ अंधकूपीं बुडाला दिनकर । प्रळयाग्नीस बाधी शीतकर । कल्पवृक्ष दारोदार । मागेल भिक्षा कासया । १७ काळासी भूतें झडपिती । मृगजळीं बुडाला गभस्ती । म्हणोनि सीतेसाठीं रघुपती । करी खंती नवल हें । १८ तो पुराणपुरुष रघुनन्दन । मायातीत शुद्धचैतन्य । परी मायेचा अभिमान पूर्ण । मायामय लटिकाचि । १९ दावी वर्तोनि जगद्गुरु । करोनि मायामय पसारु । हें जगीं वोडंबर दावी रघुवीरु । मायामय लटिकेंचि । २० असो वसिष्ठें उपदेशिलें ज्ञान । कीं सर्वद्रष्टा एक आपण । जगडंबर भास पूर्ण । मायामय लटिकाचि । २१ जैशा स्वप्नींच्या जन्मपंक्ती । यातना भोगी नाना गती । जागा होतां निश्चितीं । मिथ्यामय सर्वही । २२ स्वप्नामाजी पति-

---

लक्ष्मण ने उन्हें हवा की । (फिर उनकी) आँखों को पानी लगाकर जगज्जीवन श्रीराम को सचेत कर दिया । १५ इसमें बहुत अचरज अनुभव होता है कि जो देवाधिदेव आत्माराम हैं, जिनके नाम का शिवजी जाप करते हैं, उन्हें ऐसा मोह-भ्रम क्यों हो गया ? । १६ (यह ऐसा हो गया कि मानो) अन्धकार के कुएँ में सूर्य डूब गया हो, प्रलयाग्नि को चन्द्रमा ने बुरी तरह प्रभावित किया हो । कल्पवृक्ष दर-दर भिक्षा क्यों माँगेगा ? । १७ (मानो) काल-देवता को भूतों ने झपेट लिया हो, सूर्य मृगजल में डूब गया हो । (यह अचरज की बात है ।) इसलिए यह आश्चर्य है कि श्रीराम सीता के लिए (इस प्रकार) खेद कर रहे थे । १८ वे राम तो पुराणपुरुष हैं । वे माया के (प्रभाव से) परे एवं विशुद्ध चैतन्य-स्वरूप हैं । परन्तु माया का अभिमान पूरा-पूरा मायामय (मिथ्या) तथा दिखावटी होता है । १९ (इसलिए वे) जगद्गुरु श्रीराम उसे बरतते दिखा रहे थे । माया का विस्तार विश्व के रूप में करते हुए श्रीराम ने इस जगत् में जादूगर की दिखावटी मायामयी विद्या प्रदर्शित की । २० अस्तु । वसिष्ठ ने (उन्हें इस) ज्ञान संबंधी उपदेश दिया था— वे राम स्वयं एकमात्र सर्वद्रष्टा हैं । इस जगत् का यह दिखावटी रूप उस प्रकार झूठा एवं पूर्ण मायामय आभास है, जिस प्रकार स्वप्न में (प्राप्त) पंक्ति-बद्ध जन्मों में कोई व्यक्ति नाना प्रकार की यातनाओं का भोग करता हो, परन्तु जाग उठने पर उस सभी को निश्चित रूप से मिथ्या-स्वरूप पाता हो, अथवा

व्रता । जैसें मरण देखे प्राणनाथा । परी सवेंचि जागी होतां । सौभाग्य पाहतां तैसेंचि । २३ घट फुटतां चंद्रबिंब । तैसेंचि असे स्वयंभ । तरी अवतारलीला सीतावल्लभ । संपादोनि दावीतसे । २४ असो सौमित्रास म्हणे रघुनाथ । भोंवतें वृक्ष आणि पर्वत । यांसी पुसों यथार्थ । सीताशुद्धी ते सांगती । २५ गिरिकंदरीं गिरिमाळ । शोधीत जात तमाळनीळ । गोदातीरीं निर्मळ । शोधी सकळ सौमित्र । २६ वनोवनीं राम धांवत । सीते सीते आळवीत । कुरंगनयने भेट त्वरित । शोकें बहुत व्यापलों । २७ बदक चातक राजहंस । मयूर रावे साळ्या सा । तयांसी पुसे अयोध्याधीश । कोठें डोळस जानकी । २८ मृग शार्दूळ सिंह उरग । नकुळ सूकर कस्तूरीमृग । कोकिळा चक्रवाकें भृंग । सीतारंग पुसे तयां । २९ कोणी न देती उत्तर । त्यांवरी कोपला रघुवीर । सौमित्रा आणीं धनुष्य

कोई पतिव्रता नारी जिस प्रकार स्वप्न में अपने प्राणनाथ (पति) की मौत देखे, परन्तु साथ ही जाग उठते ही अपने सौभाग्य को वैसे ही स्थित देख ले, अर्थात् स्वप्न में देखा हुआ वैधव्य (जिस प्रकार) आभासमय है, (उसी प्रकार) संसार में दिखायी देने वाला दुःख आभास मात्र है । २१-२३ (मिट्टी के) घट के टूट जाने पर भी पहले अन्दर दिखायी देनेवाला चन्द्रबिम्ब वैसा ही स्वतः सिद्ध रहता है, (उसी प्रकार दृश्यमान जगत् के नष्ट होने पर भी ब्रह्म राम वैसे के वैसे रहते हैं) । फिर भी सीतापति श्रीराम इस प्रकार अवतार-लीला का सम्पादन करके प्रदर्शित कर रहे थे । २४ अस्तु ! श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा— ' चारों ओर वृक्ष और पर्वत हैं । इनसे सचमुच पूछ लें— (कदाचित्) वे सीता का समाचार बता देंगे । ' २५ तमाल-नील शरीरधारी श्रीराम पर्वत की घाटियों में और पर्वत के पठारों पर खोजते जा रहे थे, तो लक्ष्मण गोदावरी नदी के निर्मल तट पर सब ओर खोजते रहे । २६ श्रीराम वन-वन दौड़ते जा रहे थे— ' हे मृगनयना ! झट से मिल जाओ । मैं बहुत शोक से व्याप्त हो गया हूँ ' । २७ (मार्ग में) बत्तख, चातक राजहंस, मोर, तोते, मैना, चकवा (जैसे पक्षी मिलते) थे । अयोध्याधीश श्रीराम उनसे पूछते— ' सुन्दर आँखोंवाली जानकी कहाँ है ? ' । २८ हिरन, बाघ, सिंह, सर्प, नेवले, सूअर, कस्तूरी मृग, कोयल, चकवे, भौंरे (रास्ते में दिखायी देते) थे । सीतापति श्रीराम उनसे (भी सीता के बारे में) पूछा करते । २९ (परन्तु) कोई भी उत्तर नहीं देता ।

शर। छेदीन कांतार सर्वही। ३० सौमित्र म्हणे रघुनन्दना। हे केवीं जाणती तुझी अंगना। यांवरी कोप राजीवनयना। सहसाही न करावा। ३१ सीताविरहें रघुनन्दन। भुलोनि बोले काय वचन। लक्ष्मणासी पुसे तूं कोण। काय कारण येथें उभा। ३२ तेव्हां सौमित्र बोले वचन। श्रीरामाचा बंधु मी पूर्ण। मग बोले वेदवंद्य रघुनन्दन। श्रीराम तो कोण कोठील। ३३ भवकोदंड भंगिलें थोर। तोचि राम समरधीर। मग बोले सीतावर। धनुष्य कोठें भंगिलें। ३४ जनकाचिया मंडपांत। धनुष्य भंगिलें यथार्थ। जनक कोणाचा निश्चित। सांग मज आतांचि। ३५ जानकीचा जो पिता। तो जनक जाण रघुनाथा। अहा जानकी गुणसरिता। मज आतांचि दावीं रे। ३६ सौमित्रासी म्हणे रघुवीर। आमुचें कोठें ग्राम मंदिर। येरू म्हणे अयोध्यापुर। सेविलें कांतार पितृ-आज्ञें। ३७ वना आलों कोण कोण। उत्तर देत सुमित्रानन्दन।

इसलिए श्रीराम उनपर क्रुद्ध हो गये (और बोले)—'लक्ष्मण, धनुष-बाण लाओ, समस्त वन को ही छेद देता हूँ।' ३० (यह देखकर) लक्ष्मण ने कहा—'हे रघुनन्दन, तुम्हारी स्त्री को ये कैसे जान सकते हैं? हे कमल-नयन, इनपर यकायक क्रोध न करो।' ३१ (तब) श्रीराम सीता के विरह के कारण भान खोकर क्या बात बोले? उन्होंने लक्ष्मण से पूछा—'तुम कौन हो? किस कारण से यहाँ खड़े हो?'। ३२ तब लक्ष्मण ने यह बात कही 'मैं श्रीराम का बन्धु हूँ।' तब वेद-वंद्य श्रीराम ने पूछा—'कौन है वह श्रीराम? कहाँ का है?'। ३३ (इस पर लक्ष्मण ने कहा—) 'जिन्होंने शिवजी का प्रचण्ड धनुष तोड़ डाला, वे ही समर-धीर श्रीराम हैं।' तब श्रीराम ने कहा—'धनुष कहाँ तोड़ डाला?'। ३४ (लक्ष्मण ने कहा—) '(श्रीराम ने) जनक ही के मण्डप में सचमुच धनुष तोड़ डाला।' (यह सुनकर-राम ने पूछा—) 'मुझे अभी निश्चित बता दो कि (वह) किसका पिता (है)।' ३५ (लक्ष्मण ने उत्तर दिया—) 'हे श्रीराम! सीता के जो पिता हैं, उन्हें जनक समझो।' (यह सुनकर श्रीराम ने कहा—) 'ओह! गुणसरिता सीता मुझे अभी दिखा दो'। ३६ (फिर) श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—'हमारा ग्राम तथा घर कहाँ है?' तो उन्होंने कहा—'अयोध्या-पुर। पिता की आज्ञा से तुमने वन (-वास) स्वीकार किया है।' ३७ (फिर राम ने पूछा—) 'वन में कौन-कौन आये?' तो लक्ष्मण ने उत्तर दिया—'तुम, मैं और सीता रूपी

तुम्ही आम्ही सीताचिद्रत्न । तिघें जण आलों वना । ३८ तरी जानकी दावीं त्वरित । ऐसें बोले रघुनाथ । भूमीवरी मूर्च्छागत । सौमित्र मग सांवरी । ३९ तों अस्ता गेला दिनकर । रात्रीमाजी प्रगटे रोहिणीवर । राम म्हणे रे जाळितो मित्र । अति तीव्र बहुत कां । ४० मग बोले सुमित्रासुत । स्वामी हा चंद्र नव्हे आदित्य । शीतळ किरण उष्ण वाटत । सीताविरहें-करूनियां । ४१ श्रीरघुनाथ देवाधिदेव । दावी इत्यादि बहुत भाव । जो अज अजित स्वयमेव । उमा-धव ध्याय जया । ४२ सीते सीते म्हणोन । आलिंगीत वृक्ष पाषाण । तों तत्काळ ते उद्धरोन । जाती बैसोन विमानीं । ४३ सौमित्रासी म्हणे रघुनन्दन । चला घेऊं अगस्तीचें दर्शन । त्यासी सांगों वर्तमान । बुद्धि तो पूर्ण सांगेल । ४४ अगस्तीचे आश्रमाप्रती । तत्काळ राम सौमित्र येती । तों द्वारपाळ जाऊं न देती । उभे करिती तयांतें । ४५ कलशोद्भवासी वर्तमान । सेवक सांगती जाऊन । तों सीता गेला घेऊनि रावण । ऋषीस ज्ञानीं

चिद्रत्न तीनों जने वन में आ गये हैं । ' ३८ 'तो फिर झट से सीता दिखाओ '— ऐसा कहते हुए रघुनाथ मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े; तब लक्ष्मण ने उन्हें सम्हाल लिया । ३९ इतने में सूर्य का अस्त हो गया और रात में चन्द्र प्रकट हो गया । (उसे देखकर) श्रीराम ने कहा— 'अरे (यह) सूर्य (हमें) जला रहा है । वह अति प्रखर क्यों है ? ' । ४० तब लक्ष्मण बोले— 'हे स्वामी, यह चन्द्र है, सूर्य नहीं । तुमको शीतल किरणें सीता के विरह के कारण ऊष्ण लग रही हैं । ' ४१ जो स्वयं ही अज, अजित हैं, तथा शिवजी जिनका ध्यान करते हैं, वे देवाधिदेव श्रीराम (इस प्रकार) ये और ऐसे बहुत भाव प्रदर्शित कर रहे थे । ४२ 'सीता', 'हे सीता '— कहते हुए वे वृक्षों और पत्थरों का आलिंगन करते जाते, तो उनका उद्धार होकर वे विमान में बैठकर (देव-लोक चले) जाते । ४३ (अनन्तर) श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा— 'चलो, अगस्त्य (मुनि) के दर्शन करें । उनसे सब समाचार कहें, तो वे पूरा उपाय बताएँगे ' । ४४ (फिर) श्रीराम और लक्ष्मण तत्काल अगस्त्य के आश्रम आ गये, तो द्वारपालों ने उन्हें (अन्दर) जाने नहीं दिया, उन्हें (बाहर ही) खड़ा कर दिया । ४५ (इधर) सेवकों ने (अन्दर जाकर) अगस्त्य से समाचार कह दिया, तो उस ऋषि को अन्तर्ज्ञान से विदित हो गया कि रावण सीता को ले गया है । ४६ ऋषि

समजलें । ४६ अंतरीं विचारी मुनी । राम राज्य सांडोनि हिंडे वनीं । हारविली जनकनंदिनी । शोकेंकरून व्यापिला । ४७ स्त्रीविरहित रघुनन्दन । आतां न घ्यावें त्याचें दर्शन । मग सेवकांहातीं सांगोन । पाठविलें ते काळीं । ४८ आजि दर्शन नाहीं तुम्हांतें । मागुती जावें आलिया पंथें । हांसें आलें रघूत्तमातें । हृदय ऋषीचें जाणोनि । ४९ परतोनि चालिला रघुवीर । परम क्रोधावला सौमित्र । म्हणे निर्दय कठिण विप्र । जगदुद्धार परतविला । ५० ज्योतिर्लिंग जाणोन । लत्ताप्रहारें केलें ताडण । कामधेनु आली आपण । डांगेवरी मारिली । ५१ कल्पतरु द्वारीं उगवला । तो देखतांचि अभाग्यें उपडिला । परीस जाणोनि गोफणिला । चिंतामणी घातला पायरीस । ५२ अमृतकुंभ दैवें लाधला । तो जाणोनि बळेंच उलंडिला । जगद्वंद्य घरासी आला । माघारा दवडिला समजोनि । ५३ मग बोले रघुनन्दन । अगस्ति परम सज्ञान । तो सीतेविण माझें दर्शन । सहसाही न घेचि । ५४

ने मन में विचार किया— 'श्रीराम राज्य का त्याग करके वन में घूम रहे हैं, वे जानकी को खो बैठे हैं—(अब) वे शोक से व्याप्त हो गये हैं । ४७ श्रीराम (अब) स्त्री-रहित हैं, अब उनके दर्शन न करें ।' (फिर) उन्होंने उस समय सेवकों से यह कहकर भेजा । ४८ 'आज आपको (हमारे) दर्शन नहीं हो सकेंगे । आये हुए मार्ग से लौट जाइए ।' (यह सुनकर तथा) ऋषि के हृदय (के भाव) को जानकर श्रीराम को हँसी आ गयी । ४९ जब श्रीराम लौट जाने लगे, तो लक्ष्मण बहुत क्रुद्ध हो गये । उन्होंने कहा— 'यह ब्राह्मण निर्दय और कठोर(-हृदय) है, जो उसने जगदुद्धारक श्रीराम को लौटा दिया । ५० (यह वैसे ही हुआ, जैसे उसने) ज्योतिर्लिंग को जानकर भी लातों के आघात से प्रताड़ित कर दिया, (अथवा) कामधेनु स्वयं आ गयी, तो उसे टीले पर (ले जाकर) मार डाला । ५१ (अथवा) कल्पवृक्ष द्वार में उग निकला तो उसे देखते ही अभागे ने उखाड़ डाला; (अथवा) पारस को जानते हुए भी गोफन में लगाकर फेंक दिया, (अथवा) चिन्तामणि को सीढ़ी के रूप में बैठा दिया । ५२ (अथवा) अमृत-कुम्भ सद्भाग्य से प्राप्त हो गया, उसे जानते हुए भी बलात् उँडेल दिया । (उसी प्रकार) जगद्-वंद्य श्रीराम द्वार पर पधारे थे, उन्हें जानते हुए भी अगस्त्य ने लौटा दिया' । ५३ (इस पर) फिर श्रीराम

मी निर्विकार निर्गुण। सीता सर्वांसी कारण। तिनें मज जागें करून। सगुणत्वासी आणिलें। ५५ तिनें निर्मून पंच भूतें। त्रिगुण आणि तत्त्वें समस्तें। अवतारखेळ कौतुकें बहुतें। दावी जनां तेचि पैं। ५६ मी अरूप अनाम निश्चितीं। हें सर्व जाणे अगस्ती। तो ऋषींमाजी केवळ गभस्ती। तपें ज्ञानें तेजस्वी जो। ५७ असो श्रीराम जगजेठी। परतोनि आला पंचवटीं। वृक्ष गुल्म लता कवळी पोटीं। सीता सीता म्हणोनियां। ५८ पंचवटीचा त्याग करून। तत्कळ चालिला रघुनन्दन। जैसी अहंदेहबुद्धि सांडोन। योगी विचरे निरंजनीं। ५९ कीं प्राण त्यागिलिया काया जैसी। कीं कोपत्यागें जमदग्नि ऋषी। कीं संसारमाया निश्चयेंसीं। विरक्त त्यागी मनींहूनि। ६० जीर्ण देह त्यागोनि उरग। कीं तपोधन करी कामत्याग। कीं पवित्र त्यागी कुमार्ग। श्रेष्ठ कर्म जाणोनियां। ६१ कीं परनिंदा सज्जन टाकिती। आत्म-

---

बोले— 'अगस्त्यजी परम ज्ञानी हैं। वे बिना सीता के मेरे दर्शन सहसा नहीं करते। ५४ मैं निर्विकार, निर्गुण हूँ, (जब कि) सीता सबका कारण है। उसने मुझे जगाते हुए सगुणत्व को प्राप्त करा दिया। ५५ पंच महाभूतों का निर्माण करके वही (सत्त्व, रजस् और तमस् नामक) तीन गुण और समस्त तत्त्व, अवतार-क्रीड़ा, बहुत-सी अद्भुत लीलाएँ लोगों को प्राप्त कराती है। ५६ मैं निश्चय ही अरूप और अनाम हूँ।— अगस्त्यजी यह सब जानते हैं। वे तो ऋषियों में सूर्य हैं— जो तप, ज्ञान से तेजस्वी हैं'। ५७ अस्तु! जगत् के ईश्वर श्रीराम लौटकर पंचवटी आ गये। 'सीता', 'सीता' कहते हुए वे वृक्षों, झाड़ियों तथा लताओं को छाती से कसकर लगाते थे। ५८ पंचवटी को छोड़कर श्रीराम तत्काल (उस प्रकार) चल दिये, जिस प्रकार अहं-देह-बुद्धि (अहंकार) का त्याग करके योगी निरंजन (एकांत स्थान) में विचरण करता है। ५९ अथवा प्राणों के त्याग दिये जाने पर शरीर जैसा निष्प्राण, अर्थात् निरर्थक हो जाता है, सीता के निकल जाने पर पंचवटी भी वैसी ही निष्प्राण हो गयी। ऐसी पंचवटी का त्याग कर रघुनन्दन चल दिये। अथवा कोप का त्याग करने पर जमदग्नि ऋषि जैसे (निःसत्त्व) हो गये, सीता द्वारा परित्यक्त पंचवटी वैसी ही (स्वत्वहीन) हो गयी। उसे छोड़कर रघुनन्दन तत्काल चल दिये। अथवा (संसार के भोग-विलास से) विरक्त व्यक्ति निश्चय-पूर्वक मन

स्तुति सांडिजे संतीं। कीं अमंगळाची संगती। न धरिती श्रोत्री कदाही। ६२ कीं संसारदुःखें दारुण। विवेकी त्यागी जैसें वमन। तैसी पंचवटी त्यागोन। राम लक्ष्मण चालिले। ६३ तों मग देखे रघुनन्दन। द्वादश हात लांब चरण। चार हात रुंद पूर्ण। राक्षसपाउलें उमटलीं। ६४ त्यांजवळी कुंकुमांकित जाण। सीतेचे उमटले चरण। मुक्तें विद्रुमें पडलीं गळोन। लक्ष्मण पाहे विस्मित। ६५ कमळिणी-मित्रकुळभूषण। शोधीत जात घोर विपिन। तों जटायु देखिला दुरोन। रक्तेंकरून बंबाळ। ६६ किंशुक फुलला बहुत। कीं दुरोन आरक्त दिसत। तैसा जटायु पडला तेथ। रामस्मरण करीतचि। ६७ रघुनाथें भाते घेतले। धनुष्य वेगीं चढविलें। श्रीरामासी ऐसें भासलें। कीं हा राक्षस बैसलासे। ६८ भक्षोनियां जनकनंदिनी। बैसलासे तृप्त

से सांसारिक माया-ममत्व का त्याग कर देता है; अथवा सर्प जीर्ण देह (केंचुली) का त्याग करता है; अथवा तप ही जिसके लिए धन-स्वरूप है, ऐसा तपस्वी काम विकार का त्याग करता है; अथवा श्रेष्ठ धर्म को जानकर पवित्र (आचार-विचार-वाला) व्यक्ति कुमार्ग का त्याग करता है; अथवा सज्जन पर-निन्दा को छोड़ देते हैं, अथवा सन्त आत्म-स्तुति को छोड़ देते हैं; अथवा वेद-वेत्ता अमंगल की संगति कदापि नहीं करता; अथवा विवेकवान् व्यक्ति संसार के दारुण दुःखों को वमन-सा त्याग देता है, उसी प्रकार (सीता के अभाव में अर्थहीन, निष्प्राण हुई) पंचवटी को छोड़कर श्रीराम और लक्ष्मण चल दिये। ६०-६३ तब अनन्तर श्रीराम ने देखा कि किसी राक्षस के बारह हाथ लम्बे और पूरे चार हाथ चौड़े पाँव (रास्ते की धूलि में) अंकित हैं। ६४ समझिए, उन पद-चिह्नों के पास सीता के कुंकुमांकित पाँव (चरण-चिह्न) अंकित हैं। साथ ही लक्ष्मण ने विस्मित होते हुए देखा कि मोती और विद्रुम गिरे हुए हैं। ६५ सूर्यकुल-भूषण श्रीराम उस भीषण वन में (सीता को) खोजते हुए जा रहे थे, तो उन्होंने दूर से ही जटायु को रक्त से लथपथ हुए देखा। ६६ अथवा पलाश वृक्ष बहुत फूल गया हो, तो दूर से वह जैसा लाल दिखायी देता हो, वैसा (लाल दिखायी देता हुआ) जटायु राम का स्मरण करता हुआ वहाँ पड़ा था। ६७ (उसे देखते ही) श्रीराम ने तरकस लिये और झट से धनुष चढ़ा लिया; क्योंकि उन्हें ऐसा जान पड़ा कि यह (कोई) राक्षस (ही) बैठा हुआ

होउनी । रक्त वाहत चहूंकडोनी । पर्वतीं जैसा पाझर । ६९ जवळी आला चापपाणी । तों रामनामाची मधुर ध्वनी । ती रघूत्तमें ऐकोनि श्रवणीं । येत धांवोनि समीप । ७० तों डोळां उरलासे प्राण । जटायु पडिला करीत स्मरण । रघुनाथ तो भक्त देखोन । हृदयीं पूर्ण गहिंवरला । ७१ जटायूस पुढें घेऊन देख । शोक करी अयोध्यानायक । कीं एकुलतें मरतां बाळक । माता तळमळे ज्यापरी । ७२ कीं परम मित्र बंधु रणीं । पडलिया वाटे जेवीं हानी । त्याचपरी चापपाणी । हृदयीं धरोनि विलपत । ७३ परम खेद करी सौमित्र । म्हणे जटायु भक्त आणि मित्र । जो मित्रसारथियाचा पुत्र । ऐसा पवित्र नाढळे । ७४ जटायूस म्हणे रघुवीर । बा रे काय जाहला समाचार । तो मज सांग अणुमात्र । जरी शक्ति असेल बोलावया । ७५ श्रीरामाचे कर्णयुगलीं । हळूच जटायु सांगे ते वेळीं । रावणें सीता लंकेसी नेली । म्यां सोडविली होती येथें । ७६ भोंवतें पाहे रघुनन्दन । तों अश्व सारथी आणि

हो । ६८ (कदाचित्) सीता को खाकर वह तृप्त होकर बैठा हो । पर्वत से जैसे झरने झरते हैं, वैसे चारों ओर रक्त बह रहा है । ६९ जब चापपाणि श्रीराम निकट आ गये, तो राम-नाम की मधुर-ध्वनि कानों से सुनकर वे दौड़ते हुए (उस जटायु के) निकट आ गये । ७० तब उसके प्राण (केवल) आँखों में शेष थे । जटायु (श्रीराम का) स्मरण करता हुआ पड़ा रहा था । उस भक्त को देखकर श्रीराम पूरे गद्गद हो उठे । ७१ देखिए, (फिर) जटायु को सम्मुख लिये हुए श्रीराम ने उस प्रकार शोक (शुरू) किया, जिस प्रकार माता इकलौते बच्चे के मर जाने पर तड़पती हो । ७२ अथवा परम (-प्रिय) मित्र या बन्धु के युद्ध में काम आने पर किसी को जैसी हानि अनुभव होती हो, (जटायु की ऐसी स्थिति देखने पर) श्रीराम (वैसी ही हानि) अनुभव करते रहे । ७३ लक्ष्मण ने (भी) बहुत दुःख (अनुभव) किया । उन्होंने कहा— ' जटायु, जो सूर्य के सारथी (अरुण) का पुत्र है, (हमारा) भक्त और मित्र है । ऐसा पवित्र प्राणी (कहीं) नहीं मिलेगा ' । ७४ (तब) श्रीराम ने जटायु से कहा— ' अहो, क्या बात हुई ? यदि बोलने की शक्ति हो, तो अणु मात्र (थोड़ी-सी) मुझे तो बता दो ' । ७५ तो जटायु ने उस समय श्रीराम के कान में धीरे से कहा— ' रावण सीता को लंका ले गया है; मैंने उसे यहाँ छुड़ाया था ' । ७६

स्यंदन। रावणाचीं वस्त्रें अलंकार पूर्ण। चूर्ण होऊन पडि-
येलीं। ७७ पाहतां जटायूचा पराक्रम। पुढतीं गहिंवरे रघूत्तम।
सीताशोकाहून परम। शोक वाटे जटायूचा। ७८ जटायु बोले
वचन। रघुपति तुझी घालोनि आण। राक्षसें घेतला माझा
प्राण। पक्ष उपटोनि टाकिले। ७९ माझ्यानें आतां न बोलवे
देख। म्हणोनि पदीं ठेविलें मस्तक। श्रीरामाचें नेत्रोदक।
अभिषेक करी जटायूतें। ८० मग बोले रघुनन्दन। जटायु
तुज मी उठवीन। मज तूं साह्य होईं पूर्ण। दशरथाऐसा
सत्वर। ८१ मग बोले अरुणनन्दन। ऐसें मज पुढें न ये
मरण। तुझे अंकावरी जाण। सोडीन प्राण आतांचि। ८२
जटायु विलोकी रामवदन। हृदयीं रेखिलें तैसेंचि ध्यान। मुखें
करीत नामस्मरण। चालिला प्राण ते काळीं। ८३ श्रीरामें
तेव्हां हृदयीं धरिला। तेथेंच जटायूनें प्राण सोडिला। ब्रह्मा
हंसविमान घेऊन आला। वरी बैसविला जटायु। ८४ जटा-

(यह सुनकर जब) श्रीराम ने चारों ओर देखा, (तो दिखायी दिया कि) घोड़े, सारथी और रथ, रावण के वस्त्र और आभूषण पूर्णतः चूर-चूर होकर पड़े हुए हैं। ७७ जटायु के ऐसे प्रताप को देखकर फिर श्रीराम गद्‌गद हो गये। उन्हें जटायु सम्बन्धी शोक सीता-शोक से भी बहुत अधिक अनुभव हुआ। ७८ जटायु ने (फिर यह) बात कही— 'हे श्रीराम, तुम्हारी शपथ दिलाकर रावण ने मेरे प्राण (छीन) लिये, मेरे पंखों को उखाड़ डाला। ७९ देखो, अब मुझसे नहीं बोला जाता।' ऐसा कहते हुए उसने श्रीराम के चरणों में मस्तक टिका दिया, तो श्रीराम के अश्रुजल से जटायु का अभिषेक हो गया। ८० तब श्रीराम ने कहा—'हे जटायु, मैं तुम्हें (स्वस्थ और जीवित रूप में) उठाऊँगा, जिससे तुम दशरथ जैसे झट से पूर्णतः सहायक हो सकोगे।' ८१ तो जटायु बोला— 'मुझे ऐसी मौत फिर नहीं आएगी। अतः समझो कि तुम्हारी गोद में मैं अभी प्राण त्याग दूँगा'। ८२ तब जटायु ने श्रीराम के मुख को ध्यान से देखा और उनके वैसे ही रूप को हृदय में अंकित कर लिया। वह मुख से (राम-) नाम का स्मरण (-जाप) कर रहा था। उस समय उसके प्राण निकल जा रहे थे। ८३ तो श्रीराम ने उसे हृदय से लगा लिया, (तब) जटायु ने वहीं (उसी स्थिति में) प्राण त्याग दिये, तो ब्रह्मा हंस-विमान को लेकर आये और उन्होंने जटायु को अन्दर बैठा लिया। ८४ फिर श्रीराम ने जटायु से कहा—

यूस म्हणे रघुनन्दन। तुज स्वर्गीं भेटेल दशरथ जाण। त्यासी सीता नेली हें वर्तमान। सहसाही न सांगावें। ८५ परम प्रतापी दशरथ पिता। कर्मभूमीस येईल मागुता। यालागीं न सांगावी हे वार्ता। जाण तत्त्वतां जटायो। ८६ मी रावणासी वधोनी। पाठवीन स्वर्गभुवनीं। मग तो स्वमुखेंकरूनी। वृत्तांत सर्व सांगेल। ८७ असो जटायु स्वर्गा पावला। रघुनाथें तो पितृव्य मानिला। दशरथें बंधु म्हणविला। शक्राचिया युद्धकाळीं। ८८ यालागीं जनकजामातें। पितृव्य मानिलें जटायूतें। त्याचेनि संगें सीताकांतें। पंचवटिये काळ क्रमिलेला। ८९ घडिघडी येवोनि बैसे। श्रीराम त्यासी गोष्टी पुसे। जटायु भक्त विशेषें। रघुपतीचा आवडता। ९० त्याची उत्तरक्रिया समस्त। करिता जाहला कौसल्यासुत। सौमित्रें काष्ठें मेळवून बहुत। अग्नि दिधला तयासी। ९१ ऐसा भक्तकरुणाकर। शरणागतां वज्रपंजर। पुढें चालिला राघवेंद्र। सीता सुन्दर शोधावया। ९२ दक्षिणपंथें दंडकारण्यांत। जेथें

'(यह) समझो कि स्वर्ग में तुम से दशरथ मिलेंगे। उनसे यह समाचार यकायक न कहना कि (रावण) सीता को ले गया है। ८५ (मेरे) पिताजी दशरथ परम प्रतापी हैं। (यह बुरा समाचार सुनकर) वे कर्मभूमि में लौट आएँगे। इसलिए उनसे यह समाचार न कहना। हे जटायु, इसे सिद्धान्त के रूप में समझो। ८६ मैं रावण का वध करके स्वर्ग-भुवन में भेज दूँगा, फिर वह अपने मुँह से यह सब समाचार (उनसे) कहेगा'। ८७ अस्तु! जटायु स्वर्ग को प्राप्त हो गया। श्रीराम ने उसे पितृव्य अर्थात् चाचा माना था, दशरथ ने भी इन्द्र (-वृत्रासुर) युद्ध के समय उसे बन्धु कहलवाया था। ८८ इसीलिए तो श्रीराम ने उसे पितृव्य अर्थात् चाचा माना था और पंचवटी में उसकी संगति में समय व्यतीत किया था। ८९ वह घड़ी-घड़ी (बार-बार) आकर बैठ जाता; श्रीराम उससे बातें पूछते। जटायु विशेष रूप में श्रीराम का भक्त था। ९० उन्होंने उसकी समस्त उत्तर-क्रिया सम्पन्न की। लक्ष्मण ने बहुत लकड़ियाँ इकट्ठा करके उस (के शव) को अग्नि-दान दिया (दाह-संस्कार किया)। ९१ ऐसे भक्तों पर दया करनेवाले, शरण में आये हुओं की वज्र के पिंजरे के समान (खड़े होकर) रक्षा करनेवाले श्रीराम सुन्दरी सीता की खोज करने के लिए आगे चल दिये। ९२ दण्डकारण्य में दक्षिण की ओर जाने

जेथें राहिला रघुनाथ। शिवलिंग स्थापिलें तेथें। बाणचिन्हांकित अद्यापि। ९३ मयूरगिरि परम गहन। तेथें आला अहल्योद्धारण। हे सीते हे सीते म्हणोन। वृक्षपाषाण आलिंगी। ९४ तों कैलासीं वर्तलें नवल। बैसला असतां जाश्वनीळ। हातीं घेऊनि जपमाळ। जपे कोमळ रामनाम। ९५ जेणें शमलें हाळाहळ। तें सहस्रनामांहूनि निर्मळ। चन्द्रापरीस अति शीतळ। अमृताहून गोड पैं। ९६ जें दिनकरापरीस तेजाळ। जें आकाशापरी विशाळ। जें सकळ आनन्दाचें मूळ। नाम केवळ परब्रह्म। ९७ रूप सगुण नाम निर्गुण। रूप मायामय आनन्दघन। रूप झांके नाम पूर्ण। अनन्तयुगीं ठसावें। ९८ रूप सवेंच नाम निवेंच। रूप क्षणिक नाम साच। नामअर्थ करितां उगेच। वेद तटस्थ राहिले। ९९ असो तें नाम सर्वांत सार। अखंड जपतां कर्पूरगौर। तेथें

वाले मार्ग में श्रीराम जहाँ-जहाँ ठहर गये, वहाँ उन्होंने शिव-लिंग की स्थापना की। अब भी बाण-चिह्नों (पाषाण के बने शिव-लिंगों) से अंकित मयूर-गिरि नामक परम गहन स्थान (अस्तित्व में) है। वहाँ अहल्या के उद्धारक श्रीराम आ गये। वे 'हा सीते!', 'हा सीते!' कहते हुए वृक्षों तथा पाषाणों का आलिंगन किया करते थे। ९३-९४ तब कैलास (पर्वत) पर एक आश्चर्य घटित हुआ। शिवजी बैठे हुए हाथ में सुमिरनी लेकर कोमल राम-नाम का जप कर रहे थे। ९५ जिस (का जप करने) से (शिवजी के गले में) हलाहल (-प्राशन से उत्पन्न दाह) का शमन हुआ, वह (राम नाम विष्णु के) सहस्र नामों से अधिक निर्मल है, चन्द्र के समान अति शीतल है और अमृत से मधुर है। ९६ जो सूर्य के समान तेजस्वी है, जो आकाश के समान विशाल है, जो समस्त आनन्द का मूल है, वह (राम-) नाम केवल परब्रह्म है। ९७ (दाशरथी राम का) रूप सगुण है, तो (उनका) नाम निर्गुण है। रूप मायामय आनन्द-घन है। (उस सगुण) रूप को (निर्गुण) नाम पूर्णतः छिपा देता है। ऐसा वह नाम अनन्त युगों तक (अन्तःकरण में) जम जाए। ९८ रूप व्यय होनेवाला (अर्थात् नाशवान्) है, तो नाम अव्यय (अविनाशी) है। रूप क्षणिक है, तो नाम सत्य (शाश्वत) है। नाम का अर्थ स्पष्ट करते हुए वेद चुप होकर तटस्थ रह गये हैं। ९९ अस्तु। उस सर्वोत्कृष्ट नाम का शिवजी द्वारा अनवरत स्मरण करते रहने पर वहाँ हिमनग-कन्या पार्वती ने हाथ

हिमाद्रितनया जोडूनि कर। विनवी सादर शिवातें। १०० म्हणे स्वामी जप आणि ध्यान। कवणाचें करितां रात्रंदिन। कोण थोर असे तुम्हांहून। मजलागोनि सांगा तें। १०१ शिव म्हणे ऐकें शुभकल्याणी। सकळगुणसरिते लावण्यखाणी। जो रविकुळ-मुकुटदिव्यमणी। मी ध्यातों मनीं तयातें। १०२ जो राक्षसकानन-वैश्वानर। जो भक्तहृदयारविंद-भ्रमर। जो अज्ञानतमनाशक दिनकर। जो उदार श्रीराम। १०३ जो त्रैलोक्यनगरस्तंभ विशाळ। जो निगमवल्लीचें पक्व फळ। जो जगदंकुरकंद निर्मळ। तो तमाळनीळ श्रीराम। १०४ जो द्विपंचमुखदर्पहरण। जो भवगजदारक पंचानन। जो जनकजामात मखपाळण। त्याचें ध्यान करितों मी। ५ ऐकता हांसिन्नली भवानी। तो राम हिंडतो वनीं। सीता सीता म्हणोनी। वृक्ष पाषाण आलिंगितो। ६ रावणें नेली त्याची युवती। स्त्रीवियोगें भ्रंशली मती। त्याचें ध्यान अहोरात्रीं। तुम्ही करितां नवल हें। १०७

जोड़कर उनसे आदरपूर्वक विनती की। १०० उसने कहा— 'हे स्वामी, आप रात-दिन किसका जप और ध्यान करते हैं? आपसे कौन बड़ा है? मुझसे तो वह कहिए।' १०१ इसपर शिवजी ने कहा— 'हे शुभ-कल्याणी, सकल गुण-सरिता, लावण्य-खनि, सुनो। जो सूर्यकुल के मुकुट में (स्थित) दिव्य रत्न (ही) है, उस (श्रीराम) का ध्यान मैं मन में करता रहता हूँ। १०२ जो राक्षस रूपी वन के लिए अग्नि हैं, जो भक्तों के हृदय रूपी कमलों के लिए भ्रमर हैं, जो अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करनेवाले सूर्य हैं, वे उदार (-चरित) श्रीराम (ही) हैं। १०३ जो त्रिभुवन रूपी नगर के विशाल (कीर्ति-) स्तम्भ हैं, जो जगत् के वेद शास्त्र रूपी लता में (उत्पन्न) पक्व फल हैं, जो अंकुर के कन्द हैं, वे वही तमालनील श्रीराम हैं। १०४ जो रावण के घमण्ड को छुड़ानेवाले हैं, जो संसार रूपी हाथी को मार डालनेवाले सिंह हैं, जो जनक के जामाता तथा (विश्वामित्र के) यज्ञ के रक्षक हैं, उनका ध्यान मैं करता रहता हूँ।' १०५ (यह) सुनते ही भवानी पार्वती हँस दी। (उसने कहा)— "वे राम तो वन में भ्रमण कर रहे हैं और 'सीता', 'सीता' कहते (पुकारते) हुए वृक्षों और पाषाणों का आलिंगन करते जा रहे हैं। १०६ उनकी स्त्री को रावण ले गया; स्त्री के वियोग से उनकी मति भ्रमित हो गयी। (अतः) आश्चर्य है कि आप उनका ध्यान दिन-रात करते रहते हैं।" १०७ (यह सुनकर)

शिव म्हणे तो रघुवीर। लीलावतारी निर्विकार। वेद आणि भोगींद्र। नेणती पार जयाचा। ८ तो पूर्णब्रह्मानन्द निर्गुण। देवांची करावया सोडवण। सगुणलीलावेष पूर्ण। भक्तांलागीं दावीतसे। ९ विश्वरूप एक रघुवीर। जेवीं सुवर्ण एक बहु अलंकार। कीं बहुत सदनें एक अंबर। सीतावर व्यापक तैसा। ११० कीं बहुत लहरिया एक सागर। लोह एक शस्त्रें अपार। पट दिसती चित्र-विचित्र। परी तंतु सर्वत्र एकचि। १११ बहु बिंदु एक जलधर। घृत एक कणिका अपार। कीं अनेक वाद्यांत साचार। एकचि नाद दुमदुमे। १२ एक उर्वी बहुत वनस्पती। एक वेद बहुत श्रुती। कीं एकाच नभीं झळकती। उडुगणें जैशीं अपार। १३ तैसा राम व्यापक तत्त्वतां। मग बोले हिमनगसुता। तुम्ही एवढा महिमा वर्णितां। त्या रघुनाथा भुलवीन मी। १४ मग

शिवजी ने कहा— 'वे रघुवीर श्रीराम तो लीलावतारी तथा निर्विकार (ब्रह्म) हैं, जिनके (माहात्म्य की) सीमा को वेद तथा भोगीन्द्र शेष (तक) नहीं जानते। १०८ देवों की (रावण के बन्दी-गृह से) मुक्ति करने के लिए वे पूर्ण-ब्रह्मानन्द, निर्गुण (ब्रह्म राम) भक्तों के लिए सगुण लीला-वेश का पूर्ण प्रदर्शन कर रहे हैं। १०९ विश्व की अनेकविध वस्तुओं के रूप में (फैले हुए) एक मात्र श्रीराम हैं। जैसे सुवर्ण एक होता है, परन्तु (उससे निर्मित) आभूषण अनेक होते हैं, अथवा घर अनेक होने पर भी आकाश एक होता है, वैसे सीतापति श्रीराम व्यापक हैं। ११० अथवा लहरें अनेक होती हैं, फिर भी समुद्र एक होता है, अथवा लोहे के एक होने पर भी शस्त्र अनगिनत होते हैं, वस्त्र चित्र-विचित्र दिखायी देते हैं, परन्तु (उनका मूलाधार) तन्तु सब (में) एक ही होता है। १११ अथवा बूँदों के अनेक होने पर भी मेघ एक होता है, अथवा घी के एक होने पर भी छोटे-छोटे कण अनेक होते हैं, अथवा अनेक वाद्यों में सचमुच एक ही नाद (ध्वनि) बजता (या गूँजता) रहता है। ११२ पृथ्वी के एक होने पर भी वनस्पतियाँ बहुत होती हैं, वेद के एक होने पर भी श्रुतियाँ अनेक होती हैं, अथवा जिस प्रकार एक ही आकाश में असंख्य तारे चमकते रहते हैं, उसी प्रकार श्रीराम वस्तुत: व्यापक (अर्थात् एक होने पर भी सब में व्याप्त) हैं।' तब पार्वती बोली— 'आप (उनकी) इतनी महिमा बखान करते हैं—उन रघुनाथ को मैं मोहित कर लूँगी।' ११३-११४ अनन्तर भवानी पार्वती जानकी का रूप धारण

जानकीचें रूप धरूनी। रामासन्मुख आली भवानी। कांचन-वर्णी सुहास्यवदनी। पद्मनयनी सुरेख। ११५ बोलतां झळकती दंतपंक्ती। तें तेज न लोपे गगनक्षितीं। पदरजें हिरे होती। अतर्क्य गति तियेची। १६ अंगींचा मकरंद अपार। त्या सुवासें तृप्त कांतार। सुगंधासी वेधोनि समग्र। षट्पदचक्रें धांवती। १७ विद्युत्प्राय पीतवसन। सर्वालंकारीं मंडित पूर्ण। राघव तियेतें देखोन। मुख मुरडोन चालिला। १८ तिकडे न पाहेचि सर्वथा। तंव ते पुढें ये गजास्यमाता। म्हणे स्वामी रघुनाथा। आल्यें मी सीता पहा मज। १९ मागुतीं तियेसी टाकून। राम आलिंगी वृक्ष पाषाण। आश्चर्य करी लक्ष्मण। जानकी सुटोन आली कीं। १२० मग म्हणे आत्म-यारामा। विषकंठहृदया पूर्णब्रह्मा। जानकीलागीं पूर्णकामा। आलिंगन द्यावें जी। १२१ व्याघ्राचिये कवेंतुनी। पूर्वभाग्यें वांचे कुरंगिणी। अयोध्यानाथा तुझी राणी। आली सुटोनि

करके राम के सम्मुख आ गयी। वह (सीता के रूप में) स्वर्ण के-से वर्णवाली, सुहास्य-वदना, कमल-नयना सुन्दरी थी। ११५ उसके बोलते हुए उसकी दन्त-पंक्ति झलक रही थी। वह तेज आकाश और पृथ्वी में लुप्त नहीं हो रही थी। उसके पद-रज हीरे हो जाते थे। उसकी गति अतर्क्य थी। ११६ उसके अंग में अपार सुगन्ध थी। उस सुगन्ध से वन तृप्त हो गया था। उस सुगन्ध के प्रति आकृष्ट होकर समस्त भ्रमर उस ओर दौड़ रहे थे। ११७ उसका पीला वस्त्र बिजली-जैसा था। वह शरीर में (पहने हुए) सब (प्रकार के) आभूषणों से पूर्णतः सुशोभित थी। उसे देखकर श्रीराम मुँह फेर कर चल दिये। ११८ उसकी ओर वे पूर्णतः नहीं देख रहे थे, तो पार्वती उनके सम्मुख आ गयी और बोलीं— 'हे स्वामी, रघुनाथ, मुझे देखिए, मैं सीता आ गयी हूँ।' ११९ उसे पीछे छोड़कर श्रीराम वृक्षों और पाषाणों का आलिंगन कर रहे थे। (यह देखकर) लक्ष्मण आश्चर्य अनुभव कर रहे थे, (क्योंकि इधर) जानकी (रावण से) मुक्त होकर आयी है, (और ये उसकी ओर देखते तक नहीं हैं।) १२० फिर उन्होंने कहा, 'हे आत्माराम, हे शिवजी के हृदय (-स्थान), हे पूर्णब्रह्म, हे पूर्णकाम, जानकी को गले लगाइएगा। १२१ हे अयोध्या-नाथ, बाघ के हाथों की पकड़ से पूर्वभाग्य के बल पर (कोई) हरिणी जिस प्रकार बच जाए, उसी प्रकार, आपकी रानी (रावण की पकड़ से) छूटकर आ

तैशीचि । १२२ सुरवर पाहती गगनीं । म्हणती जानकी जवळी असोनी । तिकडे न पाहे मोक्षदानी । कोप मनीं धरिला कां । २३ सौमित्र म्हणे पद्मदलाक्षा । मनमोहना निर्विकल्पवृक्षा । सीतेसी आलिंगीं सर्वसाक्षा । पुरवीं अपेक्षा तियेची । २४ मग बोले रघुवीर । तुम्हांसी नेणवे कापटच-विचार । हे अपर्णादेवी साचार । ठकवावया आली आम्हां । २५ शिवासी करूनियां पण । ठकवावया आली आपण । तुम्हांस नेणवे हे खूण । अंतर्ज्ञानकळेची । १२६ कैलासींच्या खुणा समस्त । सौमित्रासी सांगे रघुनाथ । स्कंद-माता जाहली तटस्थ । म्हणे हा अजित पूर्णब्रह्म । २७ मग ते मूळपीठनायिका । प्रकट रूप दावी अंबिका । विश्वजनका-चिया जनका । वर द्यावया पुढें आली । २८ श्रीराम म्हणे हो माते । ज्ञानगंगे हिमनगसुते । शिवआज्ञा मोडोनि येथें । किमर्थ केलें आगमन । २९ ऐसें बोलून कौसल्यासुत । सीते सीते म्हणोनि बाहत । तों वृक्ष पाषाण ओ देत । पाहे तटस्थ

गयी है ' । १२२ (उधर) आकाश में (से) देव देख रहे थे । उन्होंने कहा (सोचा)— ' जानकी के पास में होने पर मोक्षदाता (भगवान् राम) उस ओर देखते (तक) नहीं हैं । उन्होंने मन में क्यों क्रोध धारण किया ? ' । १२३ लक्ष्मण ने कहा— ' हे कमलदल-नयन, मन-मोहन, निर्विकल्प (-अवस्था के) वृक्ष, हे सर्वसाक्षी (भगवान्), सीता को गले लगाइए और उसकी आकांक्षा पूर्ण कीजिए ' । १२४ तो श्रीराम बोले— ' तुम्हें कपट-विचार ज्ञात नहीं है । ये तो अपर्णादेवी (पार्वती) हैं, जो हमें ठगने आयी हैं । १२५ शिवजी से प्रण करके वे स्वयं हमें ठगने के लिए आ गयी हैं । यह संकेत तुम्हारी समझ में नहीं आ रहा है । यह अन्तर्ज्ञान से ज्ञात होता है ' । १२६ (तदनन्तर) श्रीराम ने कैलास के सभी संकेत लक्ष्मण को बताये । (यह सुनकर) स्कन्दमाता पार्वती तटस्थ हो गयी । उसने कहा (माना) कि यह (श्रीराम सचमुच) अजित परब्रह्म हैं । १२७ तब उस मूलपीठ-नायिका (आदिमाया) अंबिका ने अपना सच्चा रूप प्रकट कर दिखाया और ब्रह्मा के पिता (श्रीविष्णु के अवतार) श्रीराम को वर देने के लिए वह सम्मुख आ गयी । १२८ तो श्रीराम ने कहा— ' हे माता, हे ज्ञान-गंगा, हे हिमनग-कन्या (पार्वती), शिवजी की आज्ञा का उल्लंघन करके यहाँ आपने किस हेतु आगमन किया ? ' । १२९ ऐसा बोलकर श्रीराम 'सीते',

अंबिका । १३० दुर्गा म्हणे रघुनन्दना । भार्गवजिता शिवमन-रंजना । नरवीरश्रेष्ठा आनन्दसदना । जगद्वंद्या जगद्-गुरु । ३१ तूं निर्विकार ज्ञानघन । तरी कां आलिंगिसी वृक्ष पाषाण । श्रीराम म्हणे हें वर्तमान । पूस जावोनि शिवातें । ३२ तुझे अंतरीं नाहीं विश्वास । नेणसी अध्यात्म-ज्ञानलेश । मी कां आलिंगितों वृक्षांस । परमपुरुष शिव जाणे । ३३ मग अंबिका बोले वचन । तुम्ही एकरूप दोघे जण । एक एकाची अंतरखूण । परस्परें जाणतसां । ३४ आकाशाचें थोरपण । एकची जाणे प्रभंजन । कीं समीराचें सर्वत्र गमन । अंबर पूर्ण जाणतसे । ३५ सर्व सोडून अभिमान । विरिंचिजनका तुज मी शरण । कां आलि-गितां वृक्ष पाषाण । सांगा खूण एवढी । ३६ मग अपर्णेचे हृदयीं पूर्ण । रामें प्रकटविलें दिव्य ज्ञान । म्हणे आतां वृक्ष पाषाण । पाहें निरखोनि कोण हे । १३७ सावध पाहे भवानी ।

'सीते' कहकर पुकारते रहे, तब वृक्ष और पाषाण 'जी' कहकर उत्तर देते रहे। अम्बिका (पार्वती) तटस्थ होकर देखती रही। १३० तब दुर्गा (पार्वती) ने कहा—'हे रघुनन्दन, हे भार्गव (परशुराम) के विजेता, हे शिव-मन-रंजन, हे नरवीर-श्रेष्ठ, हे आनन्द-सदन, हे जगद्-वंद्य, हे जगद्गुरु आप निर्विकार तथा ज्ञान-घन हैं। फिर भी वृक्षों और पाषाणों को क्यों गले लगा रहे हैं?' (यह सुनकर) श्रीराम ने कहा— 'जाकर यह बात शिवजी से पूछिए। १३१-३२ आपके मन में विश्वास नहीं है, अध्यात्म ज्ञान का अंश (तक) आप नहीं जानतीं। यह परमपुरुष शिवजी जानते हैं कि मैं वृक्षों और पाषाणों को क्यों गले लगा रहा हूँ'। १३३ फिर पार्वती ने यह बात कही— 'आप दोनों जने एक-रूप हैं, एक-दूसरे के अन्तर-संकेत को परस्पर जानते हैं। १३४ आकाश का बड़प्पन एक मात्र पवन जानता है, अथवा आकाश यह पूर्णतः जानता है कि वायु का गमन सर्वत्र होता है। १३५ हे ब्रह्माजी के पिता श्रीराम, समस्त अहंकार का त्याग करके मैं आपकी शरण में आ गयी हूँ। मुझे इतना संकेत तो बताइए कि आप वृक्षों और पाषाणों का क्यों आलिंगन कर रहे हैं'। १३६ तब श्रीराम ने पार्वती के हृदय में दिव्य-ज्ञान को पूर्ण रूप से प्रकट कराया और कहा— 'अब ध्यान से देखिए, ये वृक्ष और पाषाण कौन हैं?'। १३७ जब भवानी ने ध्यान से देखा तो (दिखायी दिया कि) वे महान् ऋषि

तों ते महाऋषि बैसले ध्यानीं । श्रीराम त्यांसी आलिंगोनी । कैवल्यपदा पाववी । १३८ सीतेचें करूनि मिस । उद्धरिले रामें तापस । मग म्हणे हा पुराणपुरुष । लीलावेष दावीतसे । ३९ असो अंबिकेचें पूजन । स्वयें करी रविकुळभूषण । मग देवीनें वरदान । रघुवीरास दीधलें । १४० म्हणे राजीवाक्षा रघु-नन्दना । तूं सत्वर वधिशील दशानना । जानकी घेऊनि निज सदना । अयोध्येसी येशील । ४१ अहो तेचि हे रामवर-दायिनी । अंबा तुळजापुरवासिनी । रघुनाथ पुढें चालिला तेथुनी । दक्षिणपंथें शोधीत । ४२ तों पुढें देखिली कृष्णावेणी। दोष नुरे जिच्या स्मरणीं । तिचे तटीं कोदंडपाणी । क्षण एक बैसला । ४३ स्नान करावया रघुनन्दन । कृष्णेंत प्रवेशला जगन्मोहन । देखोन सखोल जीवन । जगज्जीवन बुडी देत । ४४ विष्णुतनु कृष्णा साचार । देखोनियां राजीवनेत्र । क्षणें उद-कमय जाहलें शरीर । कडे सौमित्र पाहतसे । १४५ तनु जाहली

ध्यानस्थ बैठे हुए हैं (वस्तुतः वे वृक्ष-पाषाण नहीं हैं) और श्रीराम उन्हें गले लगाते हुए कैवल्य पद को प्राप्त करा रहे हैं । १३८ (इस प्रकार) सीता को निमित्त करके श्रीराम ने तापसों का उद्धार किया । तब उसने कहा— ‘ ये पुराणपुरुष (इस प्रकार) लीला-रूप दिखा रहे हैं ’ । १३९ अस्तु । रविकुल-भूपण श्रीराम ने अम्बिका का स्वयं पूजन किया, तो उस देवी ने उन्हें वरदान दिया । १४० उसने कहा— ‘ हे राजीवाक्ष रघुनन्दन, आप शीघ्र ही दशानन का वध करेंगे और जानकी को लेकर अयोध्या में अपने घर (लौट) आएँगे ’ । १४१ अहो (श्रोताओ !), श्रीराम को वरदान देनेवाली यह (पार्वती) वही तुलजापुर-निवासिनी अम्बा (देवी) है । * श्रीराम वहाँ से दक्षिण पथ पर सीता को खोजते हुए आगे चले गये । १४२ तो उन्होंने उस कृष्णा-वेण्णा (नामक नदी) को देखा जिसके स्मरण से (मनुष्य का) कोई दोष अर्थात् पाप शेष नहीं रहता । चापपाणि श्रीराम उसके तट पर एक क्षण भर बैठ गये । १४३ (अनन्तर) जगन्मोहन रघुनन्दन स्नान करने के लिए कृष्णा (नदी के जल) में प्रविष्ट हो गये । गहरा पानी देखकर जगज्जीवन (श्रीराम) ने उसमें गोता लगाया । १४४ कृष्णा नदी

* टिप्पणी : तुळजापुर नामक यह स्थान महाराष्ट्र के उस्मानाबाद ज़िले में है । यहाँ भवानी अर्थात् पार्वती का मंदिर है । यहाँ वह शिला भी दिखायी जाती है, जहाँ पार्वती ने सीता का रूप धारण कर श्रीराम से बात की ।

उदकमय । तंव सौमित्र तेथें घाबरा होय । घटका एक वाट पाह्य । म्हणे काय करूं आतां । १४६ काय जाहली मूर्ति सांवळी । कोठें गेली अनाथाची माउली । श्रीरामा तूं जगाची साउली । माझी केली कां उपेक्षा । ४७ सौमित्रें अंग घातलें धरणीं । म्हणे रामा धांव-धांव ये क्षणीं । तूं माझी जनक-जननी । वनीं मज सांडिलें कीं । ४८ राघवा मज उबगलासी। सांडिलें मज घोर वनासी । मी अतां त्यागी प्राणासी । निश्चयेंसीं राघवेंद्रा । ४९ जानकीमाता उबगली । तीही मज टाकोन गेली । रघुपति तुझी आशा धरिली । तुवांही केली उपेक्षा । १५० मग उठोनि सुमित्रासुत । चहूंकडे पाहे तटस्थ । धनुष्य बाण करीं घेत । क्रोध अद्भुत नावरे । १५१ म्हणे कृष्णे तुज उगमापासूनी । निर्जळ करीन ये क्षणीं । बाण

सचमुच विष्णु-शरीरा है । † (भगवान विष्णु के अवतार) कमल-नयन श्रीराम ने उसे देखा, तो एक क्षण में उनका शरीर जलमय (पानी के साथ एकात्म) हो गया । तट पर लक्ष्मण देख रहे थे । १४५ (श्रीराम का) शरीर जलमय हो गया, तो वहाँ लक्ष्मण भयभीत हो गये । उन्होंने एक घड़ी भर प्रतीक्षा की । (फिर) वे बोले— ‘ अब मैं क्या करूँ ? । १४६ यह श्याम मूर्ति क्या हो गयी ? अनाथों की माता कहाँ गयी ? हे श्रीराम, तुम जगत् के लिए छाया हो । तुमने मेरी उपेक्षा क्यों की ? ’ । १४७ (तदनन्तर) लक्ष्मण ने देह को धरती पर लुढ़का दिया और कहा— ‘ हे श्रीराम, इस क्षण (समय), दौड़ो, दौड़ो । तुम मेरे पिता-माता हो, (फिर भी) तुमने मुझे वन में छोड़ दिया । १४८ हे राघव, (जान पड़ता है,) तुम मुझसे ऊब गये हो, (इसलिए) तुमने मुझे विकट वन में छोड़ दिया । हे राघवेंद्र, मैं अब निश्चय ही प्राण त्याग दूँगा । १४९ (पहले) जानकी माता मुझसे ऊब गयीं, वह भी मुझे छोड़कर चली गयीं । हे रघुपति, मैंने तुम से आशा रक्खी थी— (अब) तुमने मेरी उपेक्षा की ’ । १५० अनन्तर तटपर स्थित लक्ष्मण ने उठकर चारों ओर देखा और (फिर) धनुष-बाण हाथ में लिया । उनसे (अपना) विलक्षण क्रोध नहीं रोका जा रहा था । १५१ उन्होंने

† टिप्पणी : पौराणिक मान्यता के अनुसार कृष्णा नदी (जो कृष्णा-वेण्णा, कृष्णा-वेणी आदि नामों से भी जानी जाती है) विष्णु-स्वरूपा है । श्रीराम स्वयं विष्णु (के अवतार) हैं, अतः कृष्णा (-जल) के साथ वे एकात्म हो गये । लक्ष्मण इस गूढ़ बात को नहीं जानते थे । कृष्णा नदी महाबलेश्वर (सह्याद्रि पर स्थित पवित्र क्षेत्र, एक विख्यात पहाड़ी स्थान, जिला सतारा, महाराष्ट्र) से निकलती है ।

काढिला विचारूनी । मुखीं प्रळयाग्नि जयाचे । ५२ आणोनि दे माझा रघुवीर। नवमेघरंग राजीवनेत्र। हें जाणोनि अहल्योद्धार। निघे बाहेर ते काळीं । ५३ सौमित्र चरणीं लागला । ते स्थळीं शंकर स्थापिला । बाहोक्षेत्र म्हणती तयाला । पुढें चालिला रामचन्द्र । ५४ आठ राक्षस रावणें पाठविले। रामासी वधूनि या सत्वर वहिले। कबंधाचे कवे सांपडले। तेही गिळिले क्षणार्धें। ५५ त्या कबंधाचे कवेआंत। सांपडले सौमित्र रघुनाथ । सांचळ ऐकतां कबंध । पसरोनि आवरिले । ५६ द्वादश योजनें दोन्ही हस्त । जैसे आड पडिले पर्वत । शिर उतरलें हृदयांत । वज्राघातें-करूनियां। ५७ नाहीं तयासी चरण। बैसला दोन्ही हस्त पसरून। त्याचे कवेंत रामलक्ष्मण । अकस्मात सांपडले । ५८ बळ जाणोनि अद्भुत । धनुष्य सज्जोनि अयोध्यानाथ । तीक्ष्ण शरें दोन्ही हात । छेदोनियां पाडिले । ५९ श्रीरामबाणें उद्धरला ।

कहा— ' री कृष्णा, तुझे इसी क्षण उद्गम से लेकर निर्जल कर डालूँगा । ' (फिर) उन्होंने (कुछ) सोचकर ऐसा बाण (तरकस में से खींच) निकाल लिया कि जिसके मुख में प्रलयाग्नि थी । १५२ (फिर उन्होंने कहा— ' नहीं तो) मेरे नवमेघरंग, कमल-नयन रघुवीर को लाकर (मुझे लौटा) दे । ' यह जानकर अहल्योद्धारक श्रीराम उस समय (पानी में से बाहर) निकले । १५३ (उन्हें देखते ही) लक्ष्मण उनके पाँव लग गये । उस स्थान पर श्रीराम ने श्रीशिवजी (की लिंग-प्रतिमा) की स्थापना की । उस (स्थान) को ' बाहु क्षेत्र ' कहते हैं । (फिर वहाँ से) श्रीराम आगे चल दिये । १५४ (इधर) रावण ने राम का शीघ्र ही वध करने के लिए आठ राक्षस भेजे थे । (राम तक पहुँचने के) पहले ही वे कवन्ध (नामक दैत्य) के बाहुपाश में फँस गये थे । तो उसने उन्हें भी क्षणार्ध में निगल डाला था । १५५ उस कबन्ध के बाहुपाश में लक्ष्मण और श्रीराम (दोनों भी) फँस गये । आहट सुनते ही उसने बाहुओं को फैलाकर खींच लिया । १५६ उस दैत्य के दोनों हाथ बारह योजन (लम्बे) थे— मानो (दो) पर्वत आड़े पड़े हुए हों । उसका सिर (इन्द्र द्वारा किये हुए) वज्र के आघात से हृदय-स्थान अर्थात् छाती में धँस गया था । १५७ उसके चरण नहीं थे । वह दोनों हाथों को फैलाकर बैठा हुआ था । उसके बाहुओं के पाश में श्रीराम और लक्ष्मण सहसा फँस गये । १५८ उस दैत्य के बल को अद्भुत जानकर श्रीराम ने धनुष सज्ज करके तीक्ष्ण बाण से उसके दोनों हाथों को छेदकर गिरा दिया । १५९ (फिर) श्रीराम ने कहा—

कबंध दिव्य देह पावला । रघुपतीच्या चरणीं लागला । उभा राहिला कर जोडूनि । १६० मी दनूचे उदरीं कश्यपसुत । मद्यपानी महा उन्मत्त । स्थूलशिरा ऋषि तप करीत । सेविलें एकांत कानन । ६१ त्यासी म्यां हांक फोडूनि । भेडसाविला तपोधन । तेणें शापशस्त्रेंकरून । मज ताडिलें ते काळीं । ६२ म्हणे तूं चांडाळ पापखाणी । कबंध होऊन पडें वनीं । मग मी लागलों त्याचे चरणीं । उच्छापवाणी बोलिला । ६३ दशरथसुत दंडकारण्यांत । दशमुख वधावया जातां सत्य । दशा तुझी उजळेल यथार्थ । दनुपुत्रा जाण पां । ६४ इंद्रपद घ्यावयासी जाण । मी जपत होतों बहुत दिन । वज्रधरें वज्र उचलोन । मस्तकीं माझे ताडिलें । ६५ मस्तक उदरांत उतरलें । दोन्ही चरण छेदिले । पूर्वकर्म फळासी आलें । कष्ट भोगिले बहुवस । ६६ जाहला माझा उद्धार । रामा पडिलें माझें शरीर । यासी देवोनि वैश्वानर । भस्म करीं आतांचि । १६७

'कबन्ध का उद्धार हो गया ।' तो वह दिव्य देह को प्राप्त हो गया और श्रीराम के चरणों में लग गया । फिर वह हाथ जोड़कर खड़ा रह गया । १६० (उसने कहा—) "मैं दनु नामक स्त्री के गर्भ से उत्पन्न कश्यप मुनि का पुत्र हूँ । (पहले) मैं मद्यपी तथा महा उन्मत्त था । स्थूलशिरा नामक एक ऋषि एकान्त वन में निवास करते हुए तपस्या कर रहा था । १६१ चिल्लाते हुए मैंने उस तपोधन ऋषि को डराया, तो उस समय उसने मुझे शाप रूपी शस्त्र से ताड़ित किया । १६२ उसने कहा— 'तू पाप की खान चण्डाल कबन्ध (ऐसे) केवल धड़ (जिसके ऊपर का सिर कट गया हो) के रूप में वन में पड़ जाएगा ।' (यह सुनकर) मैं उसके पाँव लगा, तो उसने शाप-मोचन के लिए यह बात कही । १६३ 'हे दनु-पुत्र, समझ ले कि रावण का वध करने के लिए श्रीराम के वन में जाने पर, सचमुच तेरी स्थिति यथार्थ रूप में उज्ज्वल हो जाएगी' । १६४ जान लीजिए, इन्द्र-पद (प्राप्त कर) लेने की ताक में मैं बहुत दिन से था, तो इन्द्र ने वज्र उठाकर मेरे मस्तक पर ताड़न किया । १६५ उससे मेरा मस्तक पेट में उतर गया (अर्थात् धँस गया) । उसने मेरे दोनों पाँवों को काट डाला । (इस प्रकार) मेरे पूर्व (पाप-) कर्म फल को प्राप्त हो गये । (तदनन्तर) मैंने बहुत प्रकार के कष्टों का भोग किया । १६६ हे राम, (अब) मेरा उद्धार हो गया, मेरा शरीर-पात हो गया । इसे अग्नि-दान करके अभी भस्म

काष्ठें मेळवून सौमित्र। अग्नींत घातलें कलेवर। मग तो पावोनि पुण्यशरीर। विमानांत बैसला। ६८ परीस झगटतां जाण। होय लोहाचें सुवर्ण। तैसा कबंध उद्धरोन। वैकुंठधामा चालिला। ६९ शंखचक्रादिचिन्हांकित। चतुर्भुज विष्णुभक्त। कबंध उद्धरोनि यथार्थ। तोही जाहला तैसाचि। १७० मग विमानीं बैसोनि जातां। म्हणे अयोध्याप्रभु रघुनाथा। सुग्रीवासीं मैत्री तत्त्वतां। करीं तूं आतां येथोनि। १७१ जगद्वंद्या जनक-जामाता। जलदगात्रा जन्मरहिता। जलजनेत्रा जलजासनताता। जनार्दना जगद्गुरो। १७२ असो नमस्कारोनि रघूत्तमा। कबंध पावला निजधामा। पुढें शबरीचिया आश्रमा। जगदात्मा येता जाहला। ७३ परम तपस्वी शबरी। तप करितां झाली म्हातारी। तिच्या आश्रमीं रावणारी। राहता जाहला दिन त्रय। ७४ तिनें फळें मुळें आणून। भावें अर्चिला रघुनन्दन। म्हणे तप जाहलें पूर्ण। राजीवनयन

कर दीजिए"। १६७ (तत्पश्चात्) लक्ष्मण ने लकड़ी इकट्ठा करके (उसे जलाते हुए) आग में (उसकी) देह को डाल दिया। तब पुण्य (पवित्र) शरीर को प्राप्त करके वह विमान में बैठ गया। १६८ पारस के घिसते ही लोहे से सुवर्ण बन जाता है, उसी प्रकार (श्रीराम का साक्षात् हो जाने पर) उद्धार होकर कबन्ध बैकुण्ठधाम चल दिया। १६९ भगवान् विष्णु के भक्त (अन्त में उबरकर भगवान् के साथ एकात्म हो जाते हैं और उनके समान) शंख-चक्र आदि चिह्नों से अंकित (युक्त) तथा चतुर्भुज-धारी हो जाते हैं। (अब) वह कबन्ध भी उबरकर सचमुच वैसा ही हो गया। १७० अनन्तर विमान में बैठकर जाते हुए कबन्ध बोला— 'हे अयोध्या के प्रभु रघुनाथ, हे जगद्-वंद्य, हे जनक-जमाता, हे जलज-गात्र, हे जन्म-रहित, हे कमल-नयन, हे ब्रह्माजी के पिता (भगवान् विष्णु स्वरूप श्रीराम), हे जनार्दन, हे जगद्गुरु, आप अबसे सचमुच सुग्रीव से मित्रता कर लीजिए'। १७१-१७२ अस्तु। श्रीराम को नमस्कार करके कबन्ध (भगवान् के) निजधाम (अर्थात् वैकुण्ठलोक को, मुक्ति को) प्राप्त हो गया। (फिर) आगे जगदात्मा श्रीराम शबरी के आश्रम आ गये। १७३ शबरी श्रेष्ठ तपस्विनी थी। तप करते-करते वह बूढ़ी हो गयी थी। रावण के शत्रु श्रीराम उसके आश्रम में तीन दिन रह गये। १७४ उसने फल-मूल लाकर रघुनन्दन का श्रद्धा-भाव पूर्वक पूजन किया। (फिर) उसने कहा— 'राजीवनयन

देखिला। १७५ शबरीसी उपदेशिलें ज्ञान। ती तत्काळ गेली उद्धरोन। शरीर सांडोनि कैवल्यसदन। पावली पूर्ण तत्काळीं। ७६ सौमित्र म्हणे पुराणपुरुषा। जगदुद्धारा अयोध्याधीशा। मज निजज्ञान सर्वेशा। कृपा करूनि उपदेशीं। १७७ मग रामगीता जें आत्मज्ञान। सारासार-विचारनिरूपण। लक्ष्मणाप्रति सांगोन। निःसंशय तो केला। ७८ मायिक जगदाभास पूर्ण। सत्य शाश्वतरूप निर्वाण। ते चिन्मयवस्तु आपण। निजज्ञान या नामें। १७९ असो यावरी रघुपती। आला हंपीविरूपाक्षाप्रती। पुढें पंपा-सरोवर निश्चितीं। विश्रांतिस्थान शिवाचें। १८० दिव्य वल्ली दिव्य द्रुम। सदा सफळ भेदीत व्योम। तेथें स्फटिक-गुहा उत्तम। परम आरामस्थळ जें कां। ८१ स्फटिकशिळेवरी श्रीराम। बैसला तेव्हां घनश्याम। जेवीं कैलासीं द्यावया क्षेम। बलाहक उतरला। १८२ सौमित्राचे मांडीवरी। शिर

भगवान् के दर्शन किये, तो मेरा तप पूर्ण हो गया'। १७५ (तदनन्तर) श्रीराम ने शबरी को (आत्म-) ज्ञान का उपदेश दिया, तो वह तत्काल कैवल्य (मुक्ति) -सदन को पूर्णतः प्राप्त हो गयी। १७६ (तदनन्तर) लक्ष्मण बोले— 'हे पुराणपुरुष, हे जगदुद्धारक, हे अयोध्याधीश श्रीराम, हे सर्वेश, कृपा करके मुझे आत्म-ज्ञान का उपदेश दीजिए'। १७७ तब श्रीराम ने 'राम-गीता' अर्थात् जो आत्मज्ञान का सारासार विचार-निरूपण है, लक्ष्मण को बताते हुए उन्हें सन्देह-रहित किया (अर्थात् उनके सन्देह का निराकरण कर दिया)। १७८ जगत् पूर्णतः मायिक आभास है; जो अन्तिम शाश्वत रूप सत्य है, वह चिन्मय वस्तु स्वयं श्रीराम ही हैं। उस सम्बन्ध में ज्ञान 'निज ज्ञान' अर्थात् 'आत्मज्ञान' नाम से जाना जाता है। १७९ अस्तु। इसके पश्चात् श्रीराम हम्पी-विरूपाक्ष नामक स्थान आ गये। आगे पम्पा नामक सरोवर था, जो निश्चय ही शिवजी का विश्राम-स्थान था। * १८० वहाँ दिव्य लताएँ थीं, दिव्य वृक्ष थे, जो सदा फलों से युक्त रहते थे। वे मानो आकाश को भेदते थे। वहाँ एक उत्तम स्फटिक गुफा थी, वह उत्तम आराम-स्थली ही थी। १८१ उस स्फटिक-शिला पर जब घनश्याम श्रीराम बैठ गये, तो ऐसा जान पड़ता था कि कैलास का क्षेमालिंगन करने के

* टिप्पणी : यह स्थान वर्तमान कर्णाटक राज्य के अन्तर्गत होस्पेट (जिला बिलारी) के निकट माना जाता है।

ठेवून रावणारी। श्रमोनियां निद्रा करी। निर्विकारी अजित जो। ८३ शेषशायी नारायण। तोचि राम इंदिरारमण। सौमित्राचे अंकीं शिर ठेवून। त्याचपरी शोभला। ८४ असो ते समयीं रघुनाथा। चित्तीं आठवे जनकदुहिता। श्वासोच्छ्वास जगत्पिता। घालोन बोले ते समयीं। ८५ अहा जानकी मृगांकवदने। गुणसरिते पद्मनयने। सकळ लावण्यगुणनिधाने। कधीं भेटसी मज आतां। ८६ रामासी जाहला विरहज्वर। तंव कोकिळा बाहती सुस्वर। तयांसी म्हणे त्रिभुवनेश्वर। खुंटो स्वर तुमचा सदा। ८७ ते वेळीं तमालनीळा। शरण आल्या सर्व कोकिळा। राम म्हणे वसंतकाळा। माजी शब्द फुटेल। ८८ मृगमृगींस म्हणे रघुनाथ। तुम्हां संघटतां पारधी वधील सत्य। तंव तीं जाहलीं शरणागत। उच्छाप देत तयांसी। ८९ तो तुम्हांस रात्रीस वधील सत्य। वरकड दिवस तुम्हांस मुक्त। तंव देखिलीं गजगजी रमत। काय बोलत तयांसी। १९० दोघांसी योग होतां यथार्थ। गज

लिए (श्याम) मेघ ही उतर आया हो। १८२ रावण के शत्रु श्रीराम जो निर्विकार और अजित हैं, थककर लक्ष्मण की गोद में सिर रखे हुए सो गये। १८३ जो शेषशायी नारायण तथा इन्दिरा-रमण भगवान् विष्णु हैं, वे ही श्रीराम हैं। वे लक्ष्मण की गोद में सिर रखे हुए उन्हीं के समान शोभायमान थे। १८४ अस्तु। उस समय श्रीराम ने मन में सीता का स्मरण किया। वे जगत्पिता साँस और उसाँस भरकर उस समय बोले। १८५ 'हाय, हे जानकी, चन्द्रानना, हे गुण-सरिता, कमल-नयना, हे सकल गुणनिधाना, अब मुझसे कब मिलोगी ?'। १८६ (इधर) श्रीराम को विरह-ज्वर आ गया, तो (उधर) कोयलें मधुर स्वर में कूक रही थीं। (वह सुनकर) त्रिभुवनेश्वर श्रीराम ने उनसे कहा, 'तुम्हारा स्वर सदा के लिए बन्द हो जाए'। १८७ उस समय (यह सुनकर) सब कोयलें तमालनील श्रीराम की शरण में आ गयीं, तो उन्होंने कहा— 'बसन्तकाल में (तुम्हारा) स्वर उत्पन्न हो जाएगा'। १८८ (फिर) मृग और मृगी से श्रीराम ने कहा— 'तुम्हारा मिलन होते ही आखेटक सत्य ही तुम्हारा वध करेगा।' तब वे श्रीराम की शरण में आ गये, तो उन्होंने शाप-मोचन का उपाय बताया। १८९ 'वह (आखेटक) सत्य ही रात में तुम्हारा वध करेगा; दिन का शेष समय तुम्हारे लिए मुक्त है।' इतने में उन्होंने हाथी और हथिनी को रममाण होते देखा, तो वे उनसे क्या बोले ?। १९० 'दोनों का यथार्थतः संयोग

पडेल मूर्च्छागत । सात दिवसपर्यंत । अचेतन प्रेतापरी । १९१ तंव तीं आलीं शरण । उच्छाप बोले राजीवनयन । जळांत करितां मैथुन । मूर्च्छा न ये सहसाही । १९२ मयूरासी म्हणे रघुनायक । तुम्ही व्हा रे नपुंसक । तंव तीं शरण येती देख । काय बोले जगद्गुरु । ९३ नयनीं जे अश्रु स्रवती । तेणेंचि वाढेल तुमची संतती । चक्रवाकांस म्हणे रघुपती । सूर्योदयीं भेट तुम्हां । ९४ रात्रीं होय तुम्हांस वियोग । तों दृष्टीं देखे कागिणी-काग । त्यांसी म्हणे जन्मांत संग । एकदांच संसारीं । ९५ मी सीतेविण भ्रमतों देख । तुम्ही भोगितां रतिसुख । यालागीं दंड हाचि निःशंक । तुम्हांसी केला निर्धारें । ९६ सीतावियोगें रघुनाथ । म्हणे राक्षस येऊन बहुत । यांच्या स्त्रिया हरोनि समस्त । नेईनात सीतेऐशा । ९७ रतिचेष्टा मजसमोर । कां हे करिती वारंवार । माझी जानकी सुकुमार । मज भेटली नाहीं जों । १९८ इत्यादि भाव ते समयीं । दावी जनकाचा जांवई । इचे गुणांस गणना

(मिलन) होने पर हाथी मूर्च्छित होकर गिर पड़ेगा और वह सात दिन तक शव की भाँति अचेतन (पड़ा) रहेगा'। १९१ तब वे शरण में आ गये, तो कमलनयन श्रीमान ने शाप-मोचन (का उपाय) बताया— 'पानी में मैथुन करने पर प्रायः मूर्च्छा नहीं आएगी'। १९२ (फिर) श्रीराम ने मोरों से कहा— 'तुम नपुंसक हो जाओगे।' देखिए, तब वे शरण में आ गये, तो जगद्गुरु क्या बोले ? । १९३ 'आँखों में से जो आँसू झरेंगे, उनसे तुम्हारी सन्तति का संवर्धन होगा।' (फिर) चक्रवाकों से रघुपति बोले ?— 'तुम्हारी भेंट (मिलन) सूर्योदय के समय होगी। १९४ रात के समय तुम्हें (एक-दूसरे से) वियोग होगा।' त्यों ही उन्होंने अपनी दृष्टि से कौओ-कौए को देखा, तो उनसे कहा— 'संसार में तुम्हारा जन्म भर में एक बार ही मिलन होगा। १९५ देखो (इधर) मैं बिना सीता के भ्रमण कर रहा हूँ, (उधर) तुम रति-सुख का भोग कर रहे हो। इसलिए तुम्हें मैंने निर्धार-पूर्वक निःसन्देह यही दण्ड दिया है'। १९६ सीता के वियोग के कारण श्रीराम ने कहा— 'बहुत-से राक्षस आकर सीता की भाँति इनकी समस्त स्त्रियों को अपहरण करके क्यों न ले जाएँ। १९७ मेरे सामने ये बारबार रतिचेष्टा क्यों करते हैं ? मेरी सुकुमार जानकी मुझसे जो नहीं मिल रही है'। १९८ ये और इस प्रकार अन्य भावों को जनक-जामाता श्रीराम

नाहीं। कोटि वर्षें शोधितां। १९९ असो ऋष्यमूकपर्वता-वरूनि। वानर विलोकिती चापपाणी। नळ नीळ जांबुवंत तरणि-। कुमर पाहे सुग्रीव। २०० आणि पांचवा तो हनु-मंत। जो अवतरला उमाकांत। त्याचें जन्मकर्म अद्‌भुत। तृतीयाध्यायीं वर्णिलें। २०१ रामविजय ग्रंथराशी। हेचि केवळ वाराणसी। रामकथा विश्वेश्वरासी। प्रिय म्हणून राहिला। २०२ कष्ट न होतां अपार। यात्रेसी धांवती मुमुक्षु नर। श्रवणीं बैसती सादर। संसार कार्य टाकूनि। २०३ येथोनि अरण्यकांड संपलें। पुढे किष्किधाकांड आरंभिलें। जैसें रत्नाहून रत्न आगळें। वैरागरीं निपजे पैं। २०४ याचे परी-क्षक संतजन। जे ब्रह्मानन्दें परिपूर्ण। श्रीधर तयांसी अनन्य-शरण। अभंग अक्षय सर्वदा। २०५ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुन्दर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। षोडशाध्याय गोड हा। २०६ ॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

प्रदर्शित कर रहे थे। (फिर) वे बोले— ' करोड़ों वर्ष खोजने पर भी इसके गुणों की गिनती नहीं हो सकती '। १९९ अस्तु। ऋष्यमूक पर्वत पर से वानरों ने चापपाणि श्रीराम को देखा— नल, नील, जाम्बवान् सूर्यपुत्र सुग्रीव नामक वानरों को देखा। उनमें पाँचवाँ था हनुमान, जिसके रूप में शिवजी अवतरित थे। उसका अद्‌भुत जन्म-कार्य तीसरे अध्याय में वर्णित है। २००-२०१ श्रीरामविजय ग्रन्थों अर्थात् छन्दों की राशि है। यही केवल वाराणसी है। रामकथा (काशी-) विश्वेश्वर को प्रिय है—अत: यह ग्रंथ उनका प्रिय बना रहा। २०२ मुमुक्षु नर बहुत कष्ट न अनुभव होते हुए (श्रीराम विजय रूपी वाराणसी की) यात्रा के लिए दौड़ते आ जाते हैं और सांसारिक कार्यों का त्याग करके श्रवण के लिए आदर-पूर्वक बैठते हैं। २०३ यहाँ (श्रीराम-विजय का) अरण्यकाण्ड समाप्त हुआ। खान में एक रत्न से अनोखा दूसरा रत्न निकलता है, वैसे ही (अरण्यकाण्ड के पश्चात्) आगे (उससे अनोखा) किष्किन्धाकाण्ड आरम्भ किया (जा रहा) है। २०४ इसके परीक्षक वे सन्त जन हैं, जो ब्रह्मानन्द से परिपूर्ण हैं। श्रीधर कवि सदा उनकी अनन्य, अभंग तथा अक्षय शरण में रहता है। २०५ स्वस्ति। श्रीराम-विजय नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि-नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। चतुर भक्त उसके इस मधुर सोलहवें अध्याय का सदा श्रवण करें। २०६ ॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

॥ अरण्यकाण्ड समाप्त ॥

किष्किन्धा काण्ड

अध्याय—१७

श्रीगणेशाय नमः। संत आणि इतर जन। दिसती समसमान। परी संत सदा आनंदघन। ब्रह्मानंदें डुल्लती। १ बकासंगें असतां मराळ। दिसती सारिखे शुद्ध धवळ। परी क्षीर आणि जळ। करिती वेगळें हंसचि। २ वायसांत वसे कोकिळ। त्यांच्या सारखा दिसे केवळ। परी प्रवर्ततां वसंत-काळ। पंचमस्वरें आळवी तो। ३ जंबुकवनांत वाढला केसरी। परी त्याची कैसी पावेल सरी। क्षणमात्रें गज विदारी। हांकें भरी निराळ। ४ स्फटिकांत मुक्ताफळ जाण। दिसे सारिखें समसमान। मुक्त जोहरी काढिती निवडोन। करिती जतन जीवेंसीं। ५ पाषाणांत परीस असे पूर्ण। दिसे तैसाचि जड कठिण। परी तो लोहाचें करी सुवर्ण। कृष्णवर्ण लपवोनि। ६ कस्तूरी आणि मृत्तिका। दिसे रंग एकसारिखा। परी मृगमद सुवासें सकळिकां। श्रीमंतांसी निववी पैं। ७ तक्र

सन्त और अन्य जन सम-समान दिखायी तो देते हैं। परन्तु सन्त सदा आनन्द-घन होते हैं, वे ब्रह्मानन्द में झूमते रहते हैं। १ बगुले के साथ हंस के रहने पर (वे) दोनों समान शुद्ध सफ़ेद दिखायी देते हैं, परन्तु हंस ही दूध और पानी को (एक दूसरे से) अलग कर सकते हैं। २ कौओं में कोयल रहती है; (फिर भी) वह उनके समान केवल दीखती है। परन्तु वसन्तकाल का प्रवर्तन होने पर वह पंचम स्वर अलापती है। ३ सियारों के वन में (यद्यपि) सिंह (रहते हुए) बड़ा हो गया हो, तथापि सियार उसकी बराबरी कैसे प्राप्त कर पाएगा? वह (सिंह) क्षण मात्र में हाथी को (मारकर) विदीर्ण कर डालता है और गर्जन से आकाश को भर देता है। ४ समझिए स्फटिकों में (रहने पर) मोती स्फटिकों सरीखा सम-समान दीखता है। परन्तु जौहरी मोती को बीनकर (अलग) निकालता है और प्राण-पूर्वक उसकी रक्षा करता है। ५ पाषाणों में पारस हो, तो वह (उनके समान) पूर्णतः वैसा ही भारी और कठिन दिखायी देता है। परन्तु वह कृष्ण वर्ण को छिपाकर लोहे को सोना बना देता है। ६ कस्तूरी और मिट्टी दोनों का रंग एक-दूसरे का-सा दीख पड़ता है। परन्तु कस्तूरी सुगन्ध से समस्त ऐश्चर्यवानों को तृप्त कर देती

दुग्ध एकवर्ण । परी दुग्ध गोड सकळांसी मान्य । तैसीं संतांचीं रूपें जाण । इतरांसमान न म्हणावीं । ८ ऐसे संत आनंदघन। रामविजय परम पावन । करावया बैसले श्रवण । अति आदरेंकरोनियां । ९ आतां किष्किधाकांड-कमळावरी । क्रीडेल वाग्देवी-भ्रमरी । तरी तो सुरस अंतरीं । सदा चतुरीं सांठविजे । १० षोडशाध्यायीं कथा परिकर । पंपासरोवरासी रघुवीर । आला सजल-जलद-गात्र । ध्याय त्रिनेत्र जयातें । ११ तों ऋष्यमूक पर्वतावरी । उभे पांच वानर ते अवसरीं । किंवा ते पंच केसरी । स्वलीला उभे ठाकले । १२ कीं कनकाद्रीचीं रत्नें मंडित । पंचशृंगें विराजित । कीं उगवले पंच आदित्य । उदयाचळीं एकदां । १३ कीं साह्य व्हावया रघूत्तमातें । अवतरलीं पंचमहाभूतें । कीं तें पंचायतन शोभतें । ऋष्यमूक पर्वतावरी । १४ ते पंपासरोवराचे तीरीं । श्रीराम स्फटिकशिळेवरी । सौमित्राचे मांडीवरी । शिर ठेवून पहुडला । १५

है । ७ छाछ और दूध दोनों एक रंग के होते हैं । परन्तु दूध मीठा तथा सबके द्वारा मान्य होता है । उस प्रकार, जान लीजिए कि सन्तों के रूप अन्य लोगों के रूपों के समान न कहे जाएँ । ८ ऐसे आनन्द-घन स्वरूप सन्त, परमपावन श्रीराम-विजय नामक ग्रन्थ का श्रवण करने के लिए अति आदर-पूर्वक विराजमान हैं । ९ अब किष्किन्धा-काण्ड रूपी कमल में वाग्देवी रूपी भ्रमरी ने क्रीड़ा की है । अतः (उसमें उपलब्ध) मधुर रस को चतुर (श्रोता) अन्तःकरण में नित्य संचित कर रखें । १० सोलहवें अध्याय में यह सुन्दर कथा कही— जिसका ध्यान शिवजी किया करते हैं, ऐसे जल-भरे मेघ के-से वर्ण वाले शरीरधारी श्रीराम पम्पा सरोवर के पास आ गये । ११ तब उस समय ऋष्यमूक पर्वत पर पाँच वानर खड़े थे । अथवा वे पाँच सिंह ही अपनी क्रीड़ा करते हुए खड़े हो गये । १२ अथवा (उनके रूप में) स्वर्ण (मेरु) पर्वत के रत्न-मंडित पाँच शिखर विराजमान हों; अथवा उदय-गिरि पर एक वारगी पाँच सूर्य उदित हो गये । १३ अथवा श्रीराम के सहायक होने के लिए (उनके रूप में पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश नामक) पाँच महातत्त्व अवतरित हो गये; अथवा (उनके सामूहिक में) ऋष्यमूक पर्वत पर (किसी देवता तथा उनके साथ अन्य चार देवों का समूह) पंचायतन सुशोभित था । १४ उस पम्पा सरोवर के तट पर एक स्फटिक शिला पर श्रीराम लक्ष्मण की गोद में सिर रखे लेटे हुए थे । १५ लक्ष्मण और श्रीराम

देखतां सौमित्र राघव। भयभीत जाहला सुग्रीव। म्हणे वाळीनें हे दोघे मानव। वीर येथें पाठविले। १६ माझा घात करावया। शत्रूनें दिधले पाठवूनियां। म्हणोनि सुग्रीव तेथोनियां। जाता झाला सत्वर। १७ चौघांस न पुसतां तेथून। पळे वेगें मित्रनन्दन। वनोपवनें लंघोन। समीरवेगें चालिला। १८ मग सवेग धांवोनि हनुमंत। उभा केला सूर्यसुत। म्हणे तूं कां भीतोसी येथ। काय विपरीत देखिलें। १९ सुग्रीव म्हणे दोघे धनुर्धर। दिसती परम प्रचंड वीर। त्यांसी विलोकितां भय अपार। माझे हृदयीं संचरलें। २० आजि म्यां स्वप्न देखिलें। दोघे धनुर्धर साह्य जाहले। वाळीस वधोनि राज्य दिधलें। किष्किंधेचें मजलागीं। २१ अरुणोदयीं देखिलें स्वप्न। सवेंचि पातले दोघे जण। परी मज धीर न धरवे जाण। भयेंकरून व्यापिलों। २२ यावरी बोले वायुनंदन। आम्ही असतां चौघे प्रधान। कृतांतासी शिक्षा लावून। तुजला रक्षूं सर्वदा। २३ तरी हे पंपातीरीं दोघे जण। बैसले वीर देदीप्यमान। कीं बृहस्पति आणि

को देखते ही सुग्रीव भयभीत हो गया। उसने कहा (माना) कि बाली ने इन दो मानव वीरों को यहाँ भेज दिया है। १६ शत्रु ने मेरा नाश करने के हेतु (इन्हें) भेज दिया है--इसलिए सुग्रीव वहाँ से झट से चल दिया। १७ उन चारों को न बताते हुए सूर्य का पुत्र सुग्रीव वहाँ से वेग पूर्वक भाग जा रहा था। वन-उपवनों को लाँघता हुआ वह वायु-वेग से जा रहा था। १८ तब तेज गति से दौड़ते हुए हनुमान ने सुग्रीव को ठहरा दिया और कहा—'तुम यहाँ क्यों डर रहे हो ? तुमने क्या विपरीत अर्थात् अपने लिए प्रतिकूल बात देखी ?' १९ (यह सुनकर) सुग्रीव ने कहा—'(उधर) दो परम प्रचण्ड धनुर्धारी वीर दिखायी दे रहे हैं। उनको देखते ही मेरे हृदय में अपार भय का संचार हो उठा। २० आज मैंने एक स्वप्न देखा कि दो वीर (मेरे) सहायक हो गये; उन्होंने बाली का वध करके मुझे किष्किन्धा का राज्य प्रदान किया। २१ मैंने अरुणोदय के समय यह स्वप्न देखा और (उधर देखा तो) साथ ही वे दोनों जने आ पहुँचे। परन्तु जान लो, मुझसे धीरज नहीं धारण किया जा रहा है; मैं भय से व्याप्त हो गया हूँ।' २२ इस पर वायुपुत्र हनुमान ने कहा—'हम चारों मंत्रियों के रहने पर हम (मृत्यु तथा नाश के देवता) कृतान्त (तक) को दण्ड देकर तुम्हारी नित्य रक्षा करेंगे। २३ फिर भी पम्पा सरोवर के

सहस्रनयन । तैसे दोघे दीसती । २४ कीं एक तपस्वी एक उदास । एक औदार्य एक धैर्यविशेष । कीं एक पुण्य एक यश । तैसे दोघे दीसती । २५ कीं एक ज्ञान एक विज्ञान । एक आनंद एक समाधान । कीं एक सगुण एक निर्गुण । दोन्ही स्वरूपें हरीचीं । २६ एक साधक एक सिद्ध । एक वैराग्य एक बोध । एक मोक्ष एक ब्रह्मानंद । तैसे दोघे दीसती । २७ यांचिया आगमनें पाहीं । आनंद दाटला माझे हृदयीं । यांचा समाचार लवलाहीं । जाऊन आतां आणितों । २८ त्यांचिया बोलावरून । कळेल त्यांचें अंतः-करण । स्वाद घेतां रस पूर्ण । चतुर जैसा ओळखे । २९ अरुणोदयावरून । रजनी सरली कळे ज्ञान । कीं दाहकत्व निरसतां अग्न । शांत जाहला जाणिजे । ३० कीं संकट-समयावरून । जाणिजे बंधु मित्रजन । कीं इंद्रियनियमनें पूर्ण । योगाचरण जाणिजे । ३१ कीं दयेवरून कळे शांती । कीं तर्कावरून कळे धृती । कीं वेदांतश्रवणें निवृत्ती- । दशा

तट पर दो जने तेजस्वी वीर बैठे हुए हैं, अथवा वे दोनों बृहस्पति और इन्द्र जैसे दिखायी दे रहे हैं । २४ अथवा एक तपस्वी और एक (दूसरा) उदास, एक औदार्य और एक (दूसरा) विशेष रूप धैर्य, अथवा एक पुण्य और एक (दूसरा) यश अर्थात् कीर्ति रूप—जैसे दोनों दिखायी दे रहे हैं । २५ अथवा (उनमें से) एक ज्ञान है, तो दूसरा विज्ञान; एक आनन्द है, तो दूसरा सन्तोष; एक सगुण (रूपधारी) है, तो दूसरा निर्गुण —भगवान के दोनों रूप जैसे वे दिखायी दे रहे हैं । २६ (मानो उनमें से) एक साधक है, तो दूसरा सिद्ध, एक वैराग्य है, तो दूसरा आत्म-बोध, एक मोक्ष है, तो दूसरा ब्रह्मानन्द है,—वैसे वे दोनों ऐसे दिखायी दे रहे हैं । २७ देखो, इनके आगमन पर मेरे हृदय में आनन्द उमड़ उठा है । मैं जाकर उनके बारे में समाचार अभी झट से लाता हूँ । २८ उनके बोलने से उनका अन्तःकरण (वैसे ही) विदित हो जाएगा, जैसे (ज़रा-सा) स्वाद लेने पर चतुर (व्यक्ति) रस को पूर्णतः जान पाता है । २९ अरुणोदय से यह जानकारी समझ में आती है कि रात समाप्त हो गयी; अथवा, दाहकता के समाप्त होने पर, समझो कि अग्नि शान्त हो गयी (बुझ गयी) । ३० अथवा विपत्काल में बन्धुओं और मित्र जनों को समझ जाओ (पहचान लो) । अथवा पूर्ण इन्द्रिय-नियमन से योगाचरण को समझ लो (पहचान लो) । ३१ अथवा दया (—युक्त व्यवहार से) शांति ज्ञात होती है, अथवा तर्क से

बाणली जाणिजे । ३२ कीं प्रेमरसावरून भक्ती । कीं निरपेक्षेवरून विरक्ती । कीं पावला अद्वय मुक्ती । इहपरत्रीं जाणिजे । ३३ तैसें त्यांचें अंतर समस्त । मी आणितों तूं राहें स्वस्थ । जरी तेथें असेल विपरीत । हस्तसंकेत दावीन तूतें । ३४ ऐसें बोलोनि हनुमंत । पंपातीरासी आला त्वरित । वटवृक्षातळीं रघुनाथ । पहुडलासे श्रमोनियां । ३५ स्फटिकशिळा देदीप्यमान । जेवीं शेषतल्पक शुभ्रवर्ण । त्यावरी श्रावणारिनंदन । विराजमान दिसतसे । ३६ तंव त्यावटावरी हनुमंत । कौतुकेंकरोनि उड्डाण करीत । लक्षोनियां रघुनाथ । हर्षें दावी वांकुल्या । ३७ ऐसा देखोनि वानर । सौमित्रासी दावी रघुवीर । पैल पाहें तो कपिवर । पंचशर तोडरीं असे । ३८ झळकताहे हेमकौपीन । वज्रबंधन न चळे मदन । माझें चित्त स्नेहेंकरून । यासी देखोन भरलें असे । ३९ मातेचें वचन हनुमंत । आठवी तेव्हां हृदयांत । जो ओळखे कौपीन गुप्त । तोचि स्वामी तुझा असे । ४० तो प्रत्यया आला

धैर्य विदित होता है, अथवा वेदान्त के श्रवण से निवृत्ति अवस्था जम गयी समझो । ३२ अथवा प्रेमरस से भक्ति, अथवा निरीहता से विरक्ति विदित होती है । अथवा (व्यक्ति) अद्वैत ज्ञान से इहलोक और परलोक में मुक्ति को प्राप्त हुआ समझो । ३३ उसी प्रकार उनके मन (की समस्त बातों) को जान कर मैं लाता हूँ । तुम शान्त रहो । यदि वहाँ कोई विपरीत (प्रतिकूल) बात हो, तो मैं तुम्हें हाथ के संकेत से दिखा दूँगा (सूचित करूँगा)।' ३४ ऐसा कहकर हनुमान झट से पम्पा सरोवर के तट आ गया, जहाँ श्रीराम थककर वट वृक्ष के तले लेटे हुए थे । ३५ वह स्फटिक शिला देदीप्यमान थी, जैसे वह शेषनाग रूपी शुभ्र वर्ण का पलंग ही हो । उस पर श्रीराम विराजमान हुए दिखायी देते थे । ३६ तब हनुमान उस वट वृक्ष पर विनोद में उड़ान भरता (इधर-उधर कूदता) रहा । (साथ ही) श्रीराम को लक्ष्य करके आनन्द पूर्वक मुँह बना रहा था । ३७ ऐसे वानर को देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण को दिखाया (और कहा)—'उस ओर वह बड़ा वानर देखो; कामदेव मानो उसके अधीन है । ३८ उसका सोने का वज्र की-सी अभेद्य गाँठ वाला कौपीन चमक रहा है; उस (के मन) में विषय-विकार चल नहीं सकता । इसे देखकर मेरा मन स्नेह से भर गया है । ३९ तब हनुमान को हृदय में माता की (कही हुई) इस बात का स्मरण हुआ, जो (तुम्हारे) गुप्त कौपीन को जान जाएगा, वही तुम्हारा स्वामी है । ४०

सकळ। परी माझें अद्भुत बळ। हा दिसतसे कोमळ। तमालनीळ साजिरा। ४१ शिष्यापरीस आगळें बळ। गुरूस असावें बहुसाल। मग वटशाखा मोडोनि सबळ। रामावरी टाकिली। ४२ तें देखतां ऊर्मिलाजीवन। चापासी वेगें चढविला गुण। मग बोले कौसल्यानंदन। स्थिर राहें नावेक। ४३ बाळकौतुक पाहें साचार। त्यावरी काय टाकिसी शर। तों उताणा पहुडला रघुवीर। तंव शाखा सत्वर आली वरी। ४४ वरी कोदंडदंडें ते अवसरीं। शाखा ताडिली वरच्यावरी। ते उडोनि गेली अंबरीं। तृणतुल्य तेधवां। ४५ आणीकही वृक्ष पाषाण। वरी टाकी वायुनंदन। तेही कौसल्यागर्भरत्न। कोदंडेंकरून उडवीत। ४६ मग गर्जोनियां हनुमंत। सोडी तेव्हां पंच पर्वत। परी न उठेचि रघुनाथ। कौतुकें हांसे ते काळीं। ४७ मग रघुनाथें एक बाण। चापासी लाविला न लागतां क्षण। पांच पर्वत पिष्ट करून। बाणें गगन भेदीत। ४८ शरपिसारा लागला किंचित। तेणें उडोनि गेला हनुमंत। गगनीं गरगरां भोंवत। प्राण होय कासा-

---

वह तो पूरा अनुभव हुआ। परन्तु मेरा बल तो अद्भुत है, जब कि यह तमालनील (व्यक्ति) सुन्दर तथा कोमल है। ४१ गुरु के पास शिष्य से बहुत अद्भुत बल होना चाहिए। तब (यह सोचकर) हनुमान ने बरगद की मज़बूत शाखा तोड़कर श्रीराम पर डाल दी। ४२ यह देखकर लक्ष्मण ने धनुष पर झट से डोरी चढ़ा दी, तो श्रीराम ने कहा—' क्षण भर स्थिर रहो। ४३ बच्चे का खेल तो देखो। उस पर बाण क्या फेंक (चला) रहे हो ? ' तब श्रीराम पीठ के बल लेटे हुए थे, तो (पेड़ की वह) शाखा झट से उनके ऊपर आ गयी। ४४ उस समय (श्रीराम ने) धनुष के दंड से शाखा पर ऊपर ही ऊपर आघात किया, तब वह घास (के तिनके) की भाँति उड़कर आकाश में गयी। ४५ (अनन्तर) हनुमान ने और भी पेड़ और पत्थर ऊपर से श्रीराम पर फेंक दिये। उन्हें भी श्रीराम ने धनुष से उड़ा दिया। ४६ तब गर्जन करते हुए हनुमान ने पाँच पर्वत चला दिये अर्थात् फेंक या गिरा दिये। परन्तु श्रीराम नहीं उठ रहे थे। (बल्कि) उस समय वे विनोद में हँस दिये। ४७ फिर श्रीराम ने एक बाण धनुष पर चढ़ाया और उस बाण से क्षण न लगते, पाँचों पर्वतों को चूर-चूर कर आकाश को भेद दिया। ४८ (ऐसा करते समय) बाण का पर ज़रा-सा लग गया, तो उससे हनुमान उड़ गया और आकाश में चक्राकार भ्रमण

विस । ४९ वातचक्रीं पडतां तृण । तें भूमीस न पडे मागुतेन । त्यापरी वायुनंदन । कासावीस होतसे । ५० जनक पवन धांवे ते समयीं । आत्मज धरिला दृढ हृदयीं । म्हणे बा रे शरण लवलाहीं । रामचन्द्रासी जाईं कां । ५१ हा अवतरला शेषशायी । जाण क्षीराब्धीचा जांवई । दृढ लागें त्याचे पायीं । कायावाचामानसें । ५२ मग श्रीरामासी हनुमंत । येवोनि लोटांगण घालित । मागुती उठोनि धरित । श्रीरामचरण सप्रेमें । ५३ उठोनियां रघुवीर । हृदयीं धरिला वायुकुमर । एक जाहले हरिहर । जयजयकार करिताती । ५४ श्रीराम म्हणे हनुमंता । जोंवरी शशी आणि सविता । तोंवरी अक्षयी होईं तत्त्वतां । बलार्णव अद्भुत तूं । ५५ कैकयीहस्तींचा पूर्ण पिंड । अंजनीहातीं पडला अखंड । तो हा वीर जन्मला प्रचंड । राघवाहून पूर्वींच । ५६ असो जोडोनि दोन्ही कर । हनुमंत उभा राहे समोर । म्हणे हे राम करुणासमुद्र । जगदुद्धार दीनबंधो । ५७ हे राम भुवनसुंदरा । हे राम जनकजा-

---

करता रहा; उसके प्राण व्याकुल हो गये । ४९ वातचक्र में घास के तिनके के फँस जाने पर, वह वापस भूमि पर नहीं गिर जाता; उसी प्रकार स्थिति होकर हनुमान व्याकुल हो गया । ५० उस समय उसका पिता, वायु (-देव) दौड़ता हुआ आया और उसने अपने पुत्र को दृढ़ता के साथ हृदय से लगा लिया । (फिर) वह बोला, 'अरे, श्रीराम की शरण में झट से क्यों नहीं जाते ? ५१ ये शेषशायी भगवान ही अवतरित हुए हैं, उन्हें क्षीर समुद्र के जामाता समझो । काया-वाचा तथा मन से दृढ़ता के साथ उनके पाँव लग जाओ ।' ५२ तब आकर हनुमान ने श्रीराम को दण्डवत नमस्कार किया और अनन्तर उठकर श्रीराम के पाँव प्रेमपूर्वक पकड़ लिये । ५३ तो रघुनाथ ने उठकर वायुकुमार हनुमान को हृदय से लगा लिया । (इस प्रकार) हरि (श्रीराम के रूप में विष्णु) और हर (हनुमान के रूप में शिवजी) एकाकार हो गये तो (देवों ने) जयजयकार किया । ५४ (तदनन्तर) श्रीराम ने कहा—'हे हनुमान, जब तक चन्द्र और सूर्य (अस्तित्व में) रहेंगे, तब तक तुम सचमुच अक्षय हो जाओ । तुम (मानो) अद्‌भुत बल के समुद्र हो ।' ५५ (पूर्वकाल में) कैकेयी के हाथ से एक पूरा पिण्ड अंजनी के हाथ में अखण्ड (रूप में) गिर गया था । उसके कारण यह प्रचण्ड वीर श्रीराम के पहले ही उत्पन्न हुआ । ५६ अस्तु । दोनों हाथ जोड़कर हनुमान (श्रीराम के) सामने खड़ा रहा

वरा । हे राम नवपंकजनेत्रा । पुराणपुरुषा जगदात्मया । ५८ परम भक्त जाणोन । हनुमंतासी भेटला लक्ष्मण । करीं धरून वायुनंदन । सीतावल्लभें बैसविला । ५९ रामचरण चुरी मारुती । म्हणे रघुवीरा ऐक एक विनंती । पैल ऋष्यमूक पर्वतीं । वसे कपिपती सुग्रीव । ६० अभयवर देशील त्यातें । तरी आतां भेटवीन तयातें । बहुत कार्य तयाचेनि हातें । पुढें साधेल श्रीरामा । ६१ मग बोले रघुनंदन । सुग्रीव हा कोणाचा कोण । हनुमंत सांगे पूर्वकथन । सावधान परिसावें । ६२ कमलोद्भव करितां ध्यान । प्रेमोदकबिंदु नेत्रींहून । अंजुळीत पडतांचि पूर्ण । ऋक्षरजा जन्मला । ६३ तो ब्रह्मयाचा प्रियनंदन । वानरवेष बळ गहन । हिंडतां वनोपवन । शिवलोकाप्रती गेला । ६४ तंव देखिलें रम्य सरोवर । भोंवते सदाफळ तरुवर । परी तेथें शाप दुर्धर । अपर्णेचा होता पूर्वीं । ६५ जो नर सेवील येथींचें पाणी । तो नारी होईल

और बोला, 'हे करुणा-सागर, जगदुद्धारक, दीन-बन्धु श्रीराम, हे भुवन-सुन्दर श्रीराम, हे सीतापति श्रीराम, हे नव-कमल-नेत्र श्रीराम, हे पुराण-पुरुष, हे जगदात्मा । ' ५७-५८ उसे परम भक्त समझकर लक्ष्मण हनुमान से मिले । (फिर) श्रीराम ने हाथ पकड़कर हनुमान को (अपने समीप) बैठा लिया । ५९ (फिर) हनुमान श्रीराम के पाँवों को दबाने लगा । वह बोला—' हे रघुवीर, एक विनती सुनिए (स्वीकार कीजिए) । उस पार ऋष्यमूक पर्वत पर वानर-पति सुग्रीव बैठा हुआ है । ६० यदि आप उसे अभयवर दें, तो उसे (आपसे) अब मिला दूँगा । हे श्रीराम, उसके हाथों आगे चलकर बहुत कार्य सम्पन्न होगा ।' ६१ तब श्रीराम ने कहा (पूछा)—'यह सुग्रीव किसका कौन है ? ' तो हनुमान ने उसका पूर्व-वृत्त कहा । (हे श्रोताओ,) अवधान पूर्वक सुनिए । ६२

जब ब्रह्माजी ध्यान कर रहे थे, तब उनकी आँखों से प्रेमाश्रु-बिन्दु अंजली में पूर्णत: गिर गयी, तो (उससे) ऋक्षरजा का जन्म हुआ । ६३ ब्रह्माजी का वह प्रिय पुत्र था । उसका वेश वानर का था, बल गहन था । वन-उपवन में घूमते-घामते वह शिवलोक गया । ६४ तो उसने (वहाँ) एक रम्य सरोवर देखा । उसके चारों ओर सदाफल (अर्थात् फलों से सदा युक्त रहने वाले) बड़े-बड़े वृक्ष थे । परन्तु वहाँ पहले से पार्वती द्वारा दिया हुआ एक दुर्धर अभिशाप था। ६५ 'जो पुरुष यहाँ के पानी का सेवन करेगा, वह तत्क्षण नारी (के रूप में परिवर्तित) हो जाएगा ।' ऋक्षरजा ने

तत्क्षणीं । हें ऋक्षरजें नेणोनी । उडी जीवनीं घातली । ६६ स्नान करून निघतां बाहेर । जाहलें स्त्रियेचें शरीर । रंभेहून परम सुंदर । होय विचित्र ते काळीं । ६७ तों मित्र इंद्र दोघे जण । आले सुंदर स्त्री वरूं म्हणोन । तंव तो ब्रह्मपुत्र लाजोन । स्त्री होऊन बैसला । ६८ न घडे तयेसीं सुरत । मग दोघीं त्यागिलें रेत । आधीं शक्रवीर्य मस्तकीं पडत । वाळी तेथें जन्मला । ६९ मागून सूर्यवीर्य पडलें ग्रीवेवरी । तेथें सुग्रीव जन्मला ते अवसरीं । विरिंचि पातला झडकरी । तों पुत्र नारी जाहला असे । ७० मग तेणें प्रार्थोनि पार्वती । उच्छाप मागे पुत्राप्रती । कामिनीभाव हरोनि मागुती । पुत्र केला पूर्ववत । ७१ दोघे पौत्र आणि सुत । घेवोनि चालिला पद्मजात । मग मृत्युलोकीं अद्भुत । किष्किधा नगर रचियेलें । ७२ धाकुटा सुग्रीव वडील वाळी । ऋक्षरजा घेऊनि ते काळीं । किष्किधाराज्य भूमंडळीं । केलें तेणें बहुकाळ । ७३ वाळीसुग्रीवांसी तत्त्वतां । ऋक्षरजा मातापिता । पुढें वाळीस

इसे नहीं जानते हुए पानी में कूद पड़ा । ६६ स्नान करके बाहर निकलते हुए उसका (शरीर) स्त्री-शरीर हो गया । उस समय वह रम्भा (के शरीर) से भी परम सुन्दर तथा रमणीय हो गया । ६७ तब सूर्य तथा इन्द्र दोनों जने इस सुन्दर स्त्री का वरण करने की इच्छा से आ गये, तो ब्रह्माजी का वह पुत्र लज्जित हुए स्त्री होकर बैठ गया । ६८ उसके साथ संभोग नहीं घटित हो सकता था; फिर उन दोनों ने वीर्य त्याग दिया । (उनमें से) पहले इन्द्र का वीर्य (उस नारी के) मस्तक पर गिर गया,तो वहाँ से 'बाली' का जन्म हुआ । ६९ अनन्तर सूर्य का वीर्य ग्रीवा (गरदन) पर गिर गया, वहाँ से 'सुग्रीव' का जन्म हुआ । उस समय ब्रह्माजी झट से (वहाँ) आ पहुँचे तो (उन्हें दिखायी दिया कि उनका) पुत्र नारी (रूप में परिवर्तित) हो गया है । ७० तब उसने पार्वती से प्रार्थना करते हुए अपने पुत्र के लिए शाप-मोचन की याचना की । अनन्तर स्त्री रूप का निराकरण करते हुए उसने उस पुत्र को पूर्ववत् (परिवर्तित) कर दिया । ७१ (तदनन्तर) ब्रह्माजी दोनों पौत्रों और पुत्र को लिये हुए चल दिये । तब उन्होंने मृत्युलोक में किष्किन्धा नामक एक अद्भुत नगर की रचना की । ७२ (तत्पश्चात्) उस समय (से) ऋक्षरजा ने छोटे सुग्रीव और बड़े बाली को लेकर भूमण्डल में बहुत समय तक राज्य किया । ७३ ऋक्षरजा बाली और सुग्रीव के लिए वस्तुतः माता-पिता (दोनों) था । अनन्तर उसने बाली

देऊन राज्यार्था । धरिलें छत्र सुमुहूर्तें । ७४ करोनियां योग-साधन । ऋक्षरजा पावला ब्रह्मसदन । पुढें वाळी सुग्रीव दोघेजण । बंधु समान सारिखे । ७५ इंद्रें वाळीस विजयमाळ । दिधली म्हणोनि तो सबळ । समरीं शत्रु होय निर्बळ । वाळी प्रताप देखतां । ७६ सूर्यें सुग्रीव करीं धरिला । आणोन माझे हातीं दीधला । तूं सांभाळीं यासी दयाळा । म्हणोनियां प्रार्थिलें । ७७ सुग्रीव आणि वाळीमध्यें । वैर लागलें राज्य-संबंधें । पुढें वाळी सुग्रीवासी क्रोधें । वधावयासी धांविन्नला ।७८ सुग्रीवाची स्त्री रुमा रूपवंत । वाळीनें घातली घरांत । सुग्रीवें धरिला ऋष्यमूक पर्वत । युद्ध होत षण्मासां । ७९ माझी सूर्यें घेतली भाक । तूं सुग्रीवाची पाठी राख । ऐसें ऐकतां अयोध्यानायक । काय बोलता जाहला । ८० हनुमंता भाक घे पूर्ण । मज अत्यंत प्रिय सूर्यनंदन । सत्वर आणीं बोलावून। भेटीस मन उतावीळ । ८१ तयाचा शत्रु वधोन । त्यासी देईन छत्र सिंहासन । याउपरी जानकीचिद्रत्न । शोधोनि

को राज्य तथा धन देते हुए सुमुहूर्त पर (राज्य-) छत्र धरवा दिया । ७४ (तदनन्तर) योग-साधना करते हुए ऋक्षरजा ब्रह्म-सदन को प्राप्त हो गया । तब बाली और सुग्रीव दोनों जने बन्धु (एक-दूसरे के) सम-समान थे । ७५ इन्द्र ने बाली को विजय-माला (पहना) दी, इसलिए वह (अधिक) बलवान् हो गया था । उसके प्रताप को देखकर शत्रु युद्ध में निर्बल (सिद्ध) हो जाता था । ७६ सूर्य ने सुग्रीव को हाथ में पकड़ लिया और (उसे) लाकर मेरे हाथ में (सौंप) दिया । उसने यह कहते हुए (मुझसे) प्रार्थना की—'हे दयालु, इसकी रक्षा करो ।' ७७ (तत्पश्चात्) राज्य के विषय में सुग्रीव और बाली में शत्रुता उत्पन्न हो गयी । तब बाली क्रोध से सुग्रीव का वध करने के लिए दौडा । ७८ सुग्रीव की स्त्री रूमा रूपवती थी । बाली ने (अपहरण करके) उसे अपने घर में रख दिया । (इधर) सुग्रीव ने ऋष्यमूक पर्वत का आश्रय लिया । (उन दोनों में) छः महीने युद्ध होता रहा । ७९ सूर्य ने मुझसे यह कहकर वचन लिया था—'तुम सुग्रीव की रक्षा करो ।' ऐसा सुनकर श्रीराम ने क्या कहा । ८० 'हे हनुमान, मुझसे पूरा (पक्का) वचन लो । मुझे सूर्यपुत्र सुग्रीव अत्यन्त प्यारा (हो गया) है । उसे बुलाकर सत्वर लाओ, मेरा मन (उससे मिलने के लिए) अधीर (हो उठा) है । ८१ मैं उसके शत्रु का वध करके उसे (राज्य-) छत्र और सिंहासन दूँगा । इसके पश्चात् सीता रूपी-चिद्रत्न को

काढूं साक्षेपें । ८२ ऐसें बोलतां जनकजामात । तेथून उडाला हनुमंत । येऊनि सुग्रीवास सांगत । भाग्य अद्भुत उदेलें । ८३ सीतावियोगें दुःखी रघुराज । रुमावियोगें दुःखी तूं सहज । तरी एकमेकांचें पूर्ण काज । करा आतां परस्परें । ८४ ऐकोनि मारुतीचें वचन । आनंदें नाचे सूर्यनंदन । हनुमंतातें आलिंगून । पाठी हातें थापटी । ८५ रघुनाथ प्राप्तीसी तत्त्वतां । तूं सद्गुरु झालासी हनुमंता । उतराई काय होऊं आतां । उपकार तत्त्वतां न विसरें । ८६ दशरथात्मज रघुपती । त्याची कीर्ति पूर्वीं ऐकिली होती । पंचवटीस करोनि वस्ती । पिशिताशन मारिले । ८७ असो घेऊन वानरांचे भार । नळ नीळ जांबुवंत वीर । सुग्रीव आला जेथें रघुवीर । त्रिभुवनसुंदर देखिला । ८८ कोट्यनुकोटी मीनकेतन । ज्यावरून सांडावे ओंवाळून । तमालनीळ स्वरूप सगुण । सुग्रीवें नेत्रीं विलोकिलें । ८९ लोटांगण घाली सुग्रीव । नळनीळादि वानर सर्व । ऐसें देखोन सीताधव । पुढें धांवत भेटावया । ९०

निर्धार-पूर्वक खोज लेंगे ।' ८२ श्रीराम के ऐसा बोलते ही हनुमान ने वहाँ से उड़ान भरी और आकर सुग्रीव से कहा— 'अपूर्व भाग्य उदित हुआ है ।८३ (उधर) रघुराज श्रीराम सीता के विरह से दुखी हैं, तो (इधर) स्वाभाविक रूप में रूमा के वियोग से तुम दुखी हो । इसलिए अब (तुम दोनों) परस्पर एक-दूसरे का कार्य पूर्ण करो ।' ८४ हनुमान की ऐसी बात सुनकर सुग्रीव आनन्द से नाच उठा और हनुमान को गले लगाते हुए उसने हाथ से उसकी पीठ थपथपायी । ८५ 'हे हनुमान, रघुनाथ की (सहायक के रूप में) प्राप्ति में निःसन्देह तुम मेरे गुरु हो । मैं तुमसे कैसे ऋण-मुक्त हो सकूँगा ? मैं सचमुच तुम्हारे उपकार को न भूल जाऊँगा । ८६ श्रीराम दशरथ के पुत्र हैं । मैंने उनकी कीर्ति पहले सुनी थी । पंचवटी में निवास करके उन्होंने राक्षसों को मार डाला ।' ८७

अस्तु । वानरों की सेना लेकर वीर नल, नील, जाम्बवान के साथ सुग्रीव वहीं आ गया, जहाँ उसने त्रिभुवन-सुन्दर श्रीराम को (पहले) देखा था । ८८ सुग्रीव ने तमालनील सुस्वरूप और गुणवान् श्रीराम को अपनी आँखों से देखा, जिनपर करोड़ों कामदेवों को निछावर कर दिया जाए । ८९ सुग्रीव, नल, नील, आदि सब वानरों ने दण्डवत् प्रणाम किया । ऐसा देखकर सीतापति श्रीराम उनसे मिलने के लिए दौड़ते हुए आगे आ गये । ९०

धरोनियां दोन्ही कर। उठविला स्वयें भानुकुमर। हृदयीं धरितां रघुवीर। सुख अपार सुग्रीवा। ९१ अत्यंत जाहला क्षुधातुर। तया भेटला क्षीरसागर। कीं दरिद्रियासी अपार। द्रव्य घरीं सांपडलें। ९२ कीं आळशाचें गृह शोधीत। कल्पवृक्ष आला अकस्मात। कीं चुकलें बाळक भेटत। जननियेसी प्रीतीनें। ९३ कीं तृषाक्रांत पडिला वनीं। त्यापुढें लोटे मंदाकिनी। तैसा सुग्रीवाचे मनीं। ब्रह्मानंद उचंबळला। ९४ जीव शिव एक भाव। तैसें भेटीचें वैभव। तेव्हां विमानारूढ देव। सुमनसंभार वर्षती। ९५ नळ नीळ जांबुवंत। आणिक वानर समस्त। तयांसी रघूत्तम आलिंगीत। आनंद गगनीं न समाये। ९६ हनुमंतें तये वेळे। पसरिले वृक्षडाहाळे। मध्यें अग्नीसी साक्ष ठेविलें। दोहींकडे बैसविले दोघे जण। ९७ सुग्रीव आणि रघुनाथ। उभयतांस म्हणे हनुमंत। एकमेकांचा कार्यार्थ। साह्य होवोनि साधावा। ९८ रघुवीर म्हणे राज्य आणि दारा। सोडवूनि

उन्होंने दोनों हाथों को थामकर सुग्रीव को उठाया। (उनके द्वारा) गले लगाते ही उसे असीम सुख (अनुभव) हुआ। ९१ जिस प्रकार कोई भूख से अत्यन्त व्याकुल हो गया हो और उसे क्षीरसागर प्राप्त हो गया हो; अथवा दरिद्र को घर में अपार धन मिल गया हो; अथवा आलसी के घर को खोजता हुआ, कल्पवृक्ष सहसा आ गया हो; अथवा बिछुड़ा हुआ बालक माता से प्रेमपूर्वक मिल गया हो; अथवा प्यास से व्याकुल कोई (व्यक्ति) वन में फँस गया हो, और उसके सम्मुख गंगा दौड़ती हुई आ गयी हो, उसी प्रकार सुग्रीव (से अकस्मात श्रीराम की भेंट हो गयी, उससे उस) के मन में ब्रह्मानन्द (का सागर) उमड़ उठा। ९२-९४ जीव और शिव एक भाव से मिल गये हों, सुग्रीव और श्रीराम की भेंट का वैसा ही वैभव (माहात्म्य) है। उस समय देवों ने विमानों में आरूढ़ होकर उन दोनों पर ढेर के ढेर फूल बरसा दिये। ९५ जब श्रीराम ने नल, नील, जाम्बवान तथा अन्य समस्त वानरों को गले लगाया, तो उनका आनन्द आकाश में नहीं समा रहा था। ९६ उस समय हनुमान ने पेड़ों की डालों को बिछा दिया, बीच में अग्नि को साक्षी (के रूप में) रखा और दोनों ओर (उन) दोनों को बैठा दिया। ९७ (तदनन्तर) हनुमान ने सुग्रीव और श्रीराम दोनों से कहा– '(आप परस्पर) सहायक होकर एक-दूसरे का कार्यभार सम्पन्न करें।' ९८ तो श्रीराम ने कहा–' राज्य और स्त्री को मुक्त करके सुग्रीव को दूँगा। कल

देतों रविकुमरा। हा माझा निर्धार खरा। उदयीकचि पाहाल। ९९ अर्कज म्हणे जेणें नेली सीता। त्यासी संहारून तत्त्वतां। अयोध्येसी नेईन रघुनाथा। मंगळभगिनीसहित पैं। १०० ऐसें ऐकतां उत्तर। भुभुःकारें गर्जती वानर। तेणें नादें अंबर। दणाणलें ते समयीं। १०१ सुग्रीव म्हणे रघुनंदना। कालचि एक सुंदर ललना। राक्षस घेऊन गेला जाणा। निराळमार्गें त्वरेनें। २ आम्हीं समस्तीं देखिली नयनीं। आक्रंदत करुणावचनीं। म्हणे रामा धांव निर्वाणीं। चापपाणी करुणाकरा। ३ क्षणभरी म्हणे सौमित्रा। धांव धांव परम पवित्रा। मागुती म्हणे स्मरारिमित्रा। राजीवनेत्रा धांव वेगीं। ४ तिनें उत्तरीय वस्त्र फाडोनी। आभरणें टाकिलीं बांधोनी। आम्हीं तीं ठेविलीं जतन करूनी। राम ऐकोनि विस्मित। ५ म्हणे नवल सांगती वानर। सत्वर आणिले अलंकार। घेऊनि आला वायुकुमर। देत रघुवीरा-करीं तेव्हां। ६ तंव लवलाहें ग्रंथि सोडीत। आभरणें ओळखिलीं समस्त। अहा प्रिये म्हणोनि रघुनाथ। शरीर

देखोगे ही कि मेरा यह निश्चय सत्य है।' ९९ (यह सुनकर) सुग्रीव ने कहा– 'जो सीता को ले गया है, उसका निश्चय ही संहार करके मैं सीता-सहित श्रीराम को अयोध्या में ले जाऊँगा।' १०० ऐसे उत्तर को सुनकर वानरों ने भुभुःकार-पूर्वक गर्जन किया। उस ध्वनि से उस समय आकाश गूँज उठा। १०१ (अनन्तर) सुग्रीव ने कहा–"हे रघुनन्दन, जान लीजिए कि कल ही एक राक्षस एक सुन्दर स्त्री को आकाश मार्ग से शीघ्रता से ले गया। १०२ हम सबने उसे अपनी आँखों से देखा। वह करुण स्वर में विलाप कर रही थी। उसने कहा— 'हे राम! हे चापपाणि करुणाकर! इस विकट समय पर दौड़ो।' १०३ क्षण भर में वह बोली, 'हे सौमित्र, हे परम पवित्र, दौड़ो, दौड़ो।' (फिर) अनन्तर बोली– 'हे स्मरारि-मित्र, हे राजीव-नेत्र! वेग से दौड़ो।' १०४ (तदनन्तर) उसने अपने दुपट्टे को फाड़ कर उसमें अपने आभूषण बाँधकर फेंक दिये। हमने उन्हें सुरक्षित रखा है।" यह सुनकर श्रीराम विस्मित हो गये। १०५ उन्होंने कहा–'ये वानर आश्चर्य (की बात) बता रहे हैं।' (फिर) वानर झट से आभूषण लाये और हनुमान उन्हें श्रीराम के पास ले आया। तब उसने श्रीराम के हाथों दिये। १०६ तब उन्होंने झट से गाँठ खोल दी; समस्त आभूषणों को पहचान लिया, तो 'हाय, प्रिये' कहते हुए श्रीराम ने धरती पर अपने शरीर को लुढ़का दिया। १०७ उन

टाकी धरणीवरी । ७ हृदयीं धरोनि अलंकार । शोकार्णवीं पडिला रघुवीर । सद्गद होती समस्त वानर । नयनीं नीर लोटलें । ८ आठवोनि सीतेचे गुण । विलाप करी रघुनंदन । धांवोनियां लक्ष्मण । धरी चरण रघुपतीचे । ९ लक्ष्मणासी म्हणे रघुवीर । सखया ओळखें अलंकार । राम म्हणे निरंतर । जनकजाअंगीं होते ते । ११० सौमित्र अलंकार घेउनी । सादर होऊनी पाहे नयनीं । म्हणे हीं नेपुरें सीतेचे चरणीं । ओळखिलीं म्यां साच पैं । ११ नेपुरें ओळखिलीं साचार । वरकड नेणें मी अलंकार । राम म्हणे निरंतर । जनकात्मजा लेत होती । १२ सौमित्र म्हणे सीता माउली । म्यां कधीं नाहीं विलोकिली । त्रिकाळ नमनाचे वेळीं । नेपुरें चरणीं देखिलीं म्यां । १३ ऐसें बोलतां लक्ष्मण । आनंदला रघुनंदन । म्हणे बा रे तूं दिव्य रत्न । वैराग्यवैरागरींचें । १४ तूं भक्त-सरोवरींचा राजहंस । कीं ज्ञानमुक्ताफळमांदुस । कीं शत्रु-विपिनहुताश । सदा निर्दोष सूर्य जैसा । १५ सुग्रीव म्हणे रविकुळमंडणा । जरी जानकी तुज भेटवींना । तरी मी

आभूषणों को हृदय से लगाए हुए रघुवीर (मानो) शोक रूपी सागर में गिर गये। (यह देखकर) समस्त वानर बहुत गद्गद हो गये। उनकी आँखों में (अश्रु—) जल उमड़ आया। १०८ सीता के गुणों को स्मरण करके रघुपति श्रीराम विलाप करने लगे, तो लक्ष्मण ने दौड़ते हुए (आकर) उनके पाँव पकड़ लिये। १०९ (तब) श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—' इन आभूषणों को पहचानो।' फिर वे बोले– ' वे निरन्तर सीता के शरीर पर थे।' ११० आभूषणों को लेते हुए लक्ष्मण ने तत्पर होकर अपनी आँखों से देखा और कहा—' ये नूपुर, जो सीता के चरणों में रहते थे, मैंने सचमुच पहचान लिये। ११ मैंने निश्चय ही नूपुरों को पहचान लिया, परन्तु मैं अन्य आभूषण नहीं पहचान सकता।' तब श्रीराम ने कहा— ' सीता तो उन्हें निरन्तर पहनती थी। १२ (इसपर) लक्ष्मण बोले—' माता सीता को मैंने कभी नहीं देखा। मैंने (प्रातःकाल, मध्याह्न काल और संध्या इन) तीनों काल नमन के अवसर पर (केवल) पाँवों में (ये) नूपुर देखे हैं।' १३ लक्ष्मण के इस प्रकार कहने पर श्रीराम आनन्दित हो गये और उन्होंने कहा— ' रे (बन्धु), तुम तो वैराग्य-खनि में उत्पन्न दिव्य रत्न हो। १४ तुम भक्ति-सरोवर के (निवासी) राजहंस हो, अथवा ज्ञान रूपी मोतियों से भरी मंजूषा हो, अथवा शत्रु रूपी वन के लिए अग्नि हो। तुम सदा

भोगीन यमयातना । कल्पपर्यंत निर्धारें । १६ नळ नीळ जांबुवंत । माझे प्रधान जगविख्यात । भूगोळ हा क्षण न लागत । उचलोनि घालिती पालथा । १७ आतां रघुपति तुझी आण । स्वर्ग मृत्यु पाताळ शोधून । जानकी आणीन हें प्रमाण । सत्य सत्य त्रिवाचा । १८ मग बोले मखपाळण । तुज तारा राज्य दिधल्यावांचून । सीताशुद्धि न करीं आण । श्रावणारीची जाण पां । १९ तुझें कार्य न होतां आधीं । कदा न करीं मी सीताशुद्धी । ही माझी प्रतिज्ञा त्रिशुद्धी । ती काळत्रयीं टळेना । १२० गुरुकृपेविण ज्ञान । कीं आवडीविण भजन । कीं प्रेमाविण कीर्तन । स्नानेंविण अनुष्ठान जैसें । २१ कीं अतिथीविण भोजन । कीं वीरश्रीविण रणांगण । कीं विप्र जैसा विद्येविण । सर्व जन निंदिती । २२ तैसें तुझें कार्य न होतां । सीताशुद्धि न घें सर्वथा । ऐसें बोलतां रघुनाथा । वीरश्री अंगीं दाटली । २३ चढविला चापासी

सूर्य जैसे निर्दोष हो । ' १५ (तत्पश्चात्) सुग्रीव ने कहा– ' हे रविकुल-भूषण, यदि मैं आपसे जानकी की भेंट न कराऊँ, तो मैं निश्चय ही कल्प तक यम-यातनाओं का भोग करूँगा । १६ मेरे मंत्री-नल, नील और जाम्बवान जगत में विख्यात हैं । इस पृथ्वी-गोल को उठाकर वे क्षण न लगते उलटा दे सकेंगे । १७ अब हे रघुपति, आपकी सौगन्ध है, स्वर्ग, मृत्यु और पाताल में ढूँढ़कर मैं सीता को लाऊँगा, यह निश्चय सत्य है, सत्य है, सत्य है, मैं तीन बार कहता हूँ । ' १८ तब यज्ञ-रक्षक श्रीराम बोले– ' समझो कि मुझे श्रावणारि दशरथ की सौगन्ध है, बिना तुम्हें तारा और राज्य (वापस) दिये, मैं सीता की खोज नहीं करूँगा । १९ तुम्हारे कार्य के सम्पन्न न होने पर पहले मैं सीता की खोज कदापि नहीं करूँगा । मेरी यह प्रतिज्ञा निश्चय ही सत्य है, तब वह तीनों कालों में नहीं टलेगी । २० बिना गुरु-कृपा के (प्राप्त) ज्ञान, अथवा बिना रुचि या प्रेम के (किया जाने वाला) भजन, अथवा बिना (भगवत्) प्रेम के (किया हुआ) कीर्तन, बिना स्नान किये अनुष्ठान, जिस प्रकार लोगों द्वारा निन्दित होता है, अथवा बिना अतिथि (-देव के सत्कार) के भोजन, अथवा बिना वीरश्री के युद्ध, अथवा बिना विद्या के ब्राह्मण की जिस प्रकार सब लोग निन्दा करते हैं, उसी प्रकार बिना तुम्हारे कार्य के सम्पन्न हुए (यदि मैं सीता की खोज करूँ, तो सब लोग मेरी निन्दा करेंगे; अतः) मैं सीता की खोज (करने का कार्य हाथ में) सर्वथा नहीं लूँगा । ' इस प्रकार बोलते हुए उनके शरीर में वीरश्री

गुण। म्हणे बोलावीं शक्रनंदन। सुग्रीव धांवोनि धरी चरण। कर जोडून विनवीत। २४ म्हणे वाळीचा मार अनिवार। आपण युद्ध न करावें समोर। अकस्मात टाकील शर। तरी संहार होय पैं। २५ मंगळजननीजामात। सुग्रीवासी पुसे वृत्तांत। वाळीसी तुज वैर अद्भुत। काय कारण पडावया। २६ सुग्रीव सांगे पूर्ववृत्तांत। म्हैसासुर नाम दैत्य अद्भुत। त्याचा दुंदुभि वीर्यजात। परम बलिष्ठ जन्मला। २७ महा उन्मत्त मद्यपानी। कलह माजवावया हिंडे वनीं। परी त्यासी समरांगणीं। युद्धा कोणी भेटेना। २८ मग दैत्य गेला यमाजवळी। म्हणे मजसीं मांडीं युद्धफळी। येरू म्हणे किष्किंधेसी वाळी। त्याजवळी जाईं वेगीं। २९ ऐकोनि आला किष्किंधेजवळी। जैसा मूषक निघे व्यालबिळीं। कीं व्याघ्राची पहावया जाळी। जंबुक जैसा पातला। १३० दैत्य हांक फोडी तये वेळीं। ऐकतां धांविन्नला वीर वाळी।

उमड़ उठी। २१-२३ उन्होंने धनुष पर डोरी चढ़ायी, और कहा— 'इन्द्र पुत्र बाली को बुलाओ।' तो दौड़ते हुए (—झट से आगे बढ़कर) सुग्रीव ने उनके चरण पकड़ लिये और हाथ जोड़कर उनसे विनती की। २४ उसने कहा—' बाली (द्वारा) की (जानेवाली) मार अनिवार होती है। (अतः) आप सामने (जाकर) युद्ध न करें। उस पर अनपेक्षित रूप में बाण चलाएँ, तो ही उसका संहार होगा।' २५ (यह सुनकर पृथ्वी के जामाता अर्थात्) श्रीराम ने सुग्रीव से यह वृत्तान्त पूछा—' बाली से (इस प्रकार की) विलक्षण शत्रुता तुम्हें किस कारण हो गयी ?' २६ तब सुग्रीव ने पूर्व-कथा कही— 'महिषासुर नामक एक आश्चर्यकारी दैत्य था। उसके दुन्दुभी नामक एक अति बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ। २७ वह महा उन्मत्त तथा मद्यपी दैत्य कलह मचाने के हेतु वन में भ्रमण किया करता था। परन्तु युद्ध-भूमि में युद्ध करने के लिए उसे कोई नहीं मिल रहा था। २८ तब वह दैत्य यम के पास जाकर बोला—' मुझसे मोरचा लो।' तो उसने कहा— 'किष्किन्धा में बाली है, झट से उसके पास जाओ।' २९ (यह सुनकर) वह (उस प्रकार) किष्किन्धा के पास आ गया, जिस प्रकार चूहा साँप के बिल में जाने को निकला हो (पहुँच गया हो), अथवा जिस प्रकार बाघ का झुरमुट देखने के लिए सियार आ पहुँचा हो। ३० उस समय उस दैत्य ने जोर से पुकारा, तो (उसे सुनकर) वीर बाली (उसकी ओर उस प्रकार) दौड़ गया, जिस प्रकार हाथी को दूर से देखकर सिंह झपट्टा मारता

जैसा मृगेंद्र कव घाली। मातंग दूरी देखतां। ३१ शतयोजनें शरीर विशाळ। वाळीनें पदीं धरिला तत्काळ। भूमीवरी आपटिला सबळ। भूमंडळ दणाणलें। ३२ कायेंतूनि गेला प्राण। मग प्रेत त्याचें भवंडोन। रागें दिधलें भिरकावून। ऋष्यमूक पर्वतावरी। ३३ शतयोजनें कलेवर। ऋषींचे आश्रम मोडले समग्र। तेथें मुख्य मातंग ऋषीश्वर। तेणें शाप दीधला। ३४ या पर्वता स्पर्शतां शक्रनंदन। तत्काळ जाईल त्याचा प्राण। दुंदुभीचें प्रेत जाण। पडलें आहे अद्यापि। ३५ मग मयासुर दुदुंभीचा सुत। पितृसूड घ्यावया त्वरित। कीं पतंग अग्नीस मागत। सूड खांडववनाचा। ३६ सर्पाचा सूड समूळीं। सुपर्णासीं मागे अळी। तैसा मयासुर ते काळीं। बाहे वाळीस युद्धातें। ३७ शक्रसुत धांविन्नला त्वरित। जैसें पर्वतावरी वज्र पडत। तैसा मयासुर मुष्टिघात। देतां वमत रक्तासी। ३८ पाताळविवरद्वारें। मयासुर पळाला त्वरें। त्याचे पाठीमागें शक्रकुमरें। धांव

हो। १३१ उसका शरीर सौ योजन विशाल था। बाली ने उसे तत्काल पाँवों में पकड़ लिया। और उस बलवान (दैत्य) को भूमि पर पटक दिया। उससे भूमण्डल दनदना उठा। ३२ (उस दैत्य के) शरीर से प्राण निकल गये, तो बाली ने उसके शव को मण्डलाकार घुमाते हुए क्रोध से ऋष्यमूक पर्वत पर फेंक दिया। ३३ वह शरीर तो सौ योजन (विशाल) था, इसलिए (उसके गिरने से वहाँ रहने वाले) ऋषियों के समस्त आश्रम टूट गये। ऋषि श्रेष्ठ मातंग उनमें प्रमुख थे; उन्होंने (तब) शाप दिया। ३४ 'इन्द्रपुत्र बाली द्वारा इस पर्वत को स्पर्श करते ही उसके प्राण निकल जाएँगे।' (उस पर्वत पर) दुन्दुभी का शव अब भी पड़ा हुआ है। ३५ (अनन्तर) दुन्दुभी का मयासुर नामक पुत्र पिता (के वध) का बदला लेने के लिए शीघ्रता पूर्वक आ गया। जिस प्रकार पतंग अग्नि से खाण्डववन वन को जला देने का बदला चुकाना चाहता हो, अथवा इल्ली सुपर्ण गरुड़ से सर्प (के वध) का जड़-मूल-सहित (पूरा-पूरा) बदला लेना चाहती हो, उस प्रकार आते हुए मयासुर ने बाली को युद्ध के लिए ललकारा। ३६-३७ (वह सुनकर) बाली झट से दौड़ गया (लपका)। जैसे पर्वत पर वज्र गिर जाए, वैसे बाली द्वारा घूँसा जमाते ही गिरकर मयासुर ने रक्त का वमन किया। ३८ (फिर) मयासुर पाताल-विवर के दरवाज़े से झट से भाग गया। (यह देखकर) बाली उसके पीछे पाताल की ओर दौड़ता गया। ३९ हे राघव,

घेतली पाताळा । ३९ विवरद्वारीं मी रक्षण । राघवा बैसलों बहुत दिन । तों यक्ष गंधर्व मिळून । किष्किंधा घेऊं धांविन्नले । ४० रायाविण कोण राखे पुरी । धाकें दुर्ग ओलांडिलें वानरीं । प्रधान प्रजा ते अवसरीं । मज सांगती गाऱ्हाणें । ४१ मग विवरमुखीं ठेविला पर्वत । किष्किंधेस पातलों त्वरित । शत्रु आटोनि समस्त । प्रजा सुखी राहिल्या । ४२ विंशति मासपर्यंत । वाळी विवरीं जाहला गुप्त । मग प्रधान प्रजा समस्त । म्हणती शक्रसुत निमाला। ४३ सकळीं आग्रह करून बळें । राज्यछत्र मज दिधलें । तों मयाचें शिर घेऊनि ते वेळे । वाळी वीर पातला । ४४ वीस मास तो निराहार । दृष्टीं न दिसे विवरद्वार । परम उतरला मुखचन्द्र । घाबरा वीर जाहला । ४५ उगवला असतां उष्णकर । किंचित दिसों लागलें द्वार । मग नखाग्रेंच नग समग्र । उलथोनियां पाडिला । ४६ हर्षें गर्जना केली थोर । तेणें नादावलें अंबर । परी मजलागीं चिंता अपार । बहु जाहली ते काळीं । १४७ म्हणे बंधु दैत्यांनीं मारिला । घाबरा

मैं उस विवर के दरवाज़े पर रखवाली के लिए बहुत दिन बैठा रहा । तो (इधर) यक्ष और गन्धर्व मिलकर किष्किन्धा (जीत) लेने के लिए चढ़ दौड़े । ४० बिना राजा के (राज–) नगरी की रक्षा कौन करेगा ? वानर मारे डरके दुर्ग की उपेक्षा कर चले गये, तो मंत्रियों और प्रजा (–जनों) ने मुझसे परिवाद किया (शिकायत की) । ४१ तब मैंने विवर के द्वार में एक पर्वत रख दिया और झट से किष्किन्धा आ पहुँचा । (फिर) समस्त शत्रु का संहार करके प्रजाजनों को सुखी रखा । ४२ (इधर) बीस महीनों तक बाली विवर में गुप्त (अदृश्य) रहा, तो समस्त मंत्रियों और प्रजा (—जनों) ने कहा— ‘(अब) बाली मर गया । ’ ४३ (फिर) सबने हठ करके मुझे बलात् राज्य-छत्र प्रदान किया । इतने में मय के सिर को लिए हुए वीर बाली लौट आया । ४४ वह बीस महीनों तक निराहार रहा था, इसलिए उसे विवर-द्वार दृष्टिगोचर नहीं हुआ । उसका मुखचंद्र बहुत उतर गया (निस्तेज) हो गया । वह वीर घबरा गया था । ४५ सूर्य के उदित हो जाने पर (उसके प्रकाश में) द्वार किंचित् दिखायी देने लगा । तो उसने नाखून की नोक से समग्र पर्वत को उलटा दिया । ४६ तब उसने आनन्द से बड़ा गर्जन किया, तो आकाश गूँज उठा । परन्तु उस समय मुझे बहुत बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गयी । १४७ उसने कहा(सोचा)—‘ मेरे

किष्किंधेसी पातला। तों मज राज्यपदीं देखिलें डोळां। परम क्षोभला ते काळीं। ४८ गुरु त्यजिजे ज्ञानहीन। प्रीतीविणें मित्रजन। ऐसें बोलोनि शक्रनंदन। शस्त्र घेवोनि धांविन्नला। ४९ मग हे नळ नीळ जांबुवंत। प्राणसखा माझा हनुमंत। मज घेऊन पळाले त्वरित। ठाव निश्चित नेदी कोणी। १५० हिरोन घेतली बळेंचि दारा। नित्य येऊनि करी मारा। मग ऋष्यमूकपर्वतीं सीतावरा। केला थारा आम्हीं येथें। ५१ वाळीस असे येथें शाप। यालागीं राहों सुखरूप। सामासां युद्ध अमूप। दोघांसीं होत रघूत्तमा। ५२ आम्हां दोघां समान बळ। परी त्याचे गळां विजयमाळ। तेणें त्याचा प्रताप सबळ। शत्रूसी पळ सुटतसे। ५३ विकट विषम ताल सात। एकेव बाणें जो छेदी निमिषांत। त्याचे हातें वाळीस मृत्य। भविष्य पूर्वीं केलें हें। ५४ ऐसें बोलतां सूर्यसुत। धनुष्य योजी अवनिजाकांत। अर्धचन्द्र बाण त्वरित। आकर्णवरी ओढिला। ५५ मांडी दृढ देहुडे ठाण। पाठीसीं

भाई को दैत्यों ने मार डाला।' (फिर) घबराहट के साथ वह किष्किन्धा आ पहुँचा, तो मुझे राज्य-पद पर (आसीन) देखते ही वह उस समय बहुत क्षुब्ध हो उठा। ४८ 'ज्ञान-हीन गुरु का त्याग करें; बिना प्रीति के (आचरण करने वाले) मित्र–जनों का त्याग करें'—ऐसा कहते हुए बाली शस्त्र लेकर (मेरी ओर) दौड़ पड़ा। ४९ अनन्तर ये नल, नील, जाम्बवान और प्राणसखा हनुमान मुझे लेकर झट से भाग गये। (उनमें से कोई भी) मेरा निश्चित ठिकाना नहीं बता रहा था। १५० (तत्पश्चात्) बाली ने मेरी पत्नी को बलात् छीन लिया, वह नित्य प्रति आकर आक्रमण किया करता (या शस्त्रों की बौछार किया करता)। तब हे श्रीराम, हमने ऋष्यमूक पर्वत पर यहाँ आश्रय लिया (निवास किया)। ५१ यहाँ बाली के लिए शाप है, इसलिए हम यहाँ (संकट-रहित अतएव) सुखी हैं। हे रघूत्तम, हम दोनों में छः महीने तक अद्भुत युद्ध हो रहा है। ५२ (वस्तुतः) हम दोनों का समान बल है, फिर भी विजय-माला उसके गले में है। उससे उसका प्रताप बड़ा प्रबल है; अतः शत्रुओं को भाग जाना पड़ता है। ५३ यहाँ विकट विषम सात ताल(–वृक्ष) हैं। पूर्वकाल में यह भविष्य-कथन हो गया है कि जो उन्हें एक ही बाण से आधे पल में छेद डालेगा, उसके हाथों बाली की मौत होगी। ५४ सुग्रीव के ऐसा कहते ही श्रीराम ने धनुष सज्ज किया और अर्धचंद्र बाण को (उस पर चढ़ाकर डोरी को) कान तक खींच

उभा लक्ष्मण। त्याचा चरणांगुष्ठ रघुनंदन। पायांखालीं रगडीत। ५६ दडपितां शेषचरणांगुष्ठ। सप्तही ताड जाहले नीट। एकाचि वाणें सपाट। सातही केले राघवें। ५७ सात ताड शेषपृष्ठीवरी। यालागीं नीटावले झडकरी। तों दुंदुभीचें प्रेत ते अवसरीं मित्रसुतें दाखविलें। ५८ हें जो उचलील पुरुषार्थी। वाळीचा मृत्य त्याचे हातीं। चरणांगुष्ठें रघुपती। प्रेत ढकली तेधवां। ५९ तेंही तृणप्राय उडोन। पडिलें दिगंतरीं जाण। अद्भुत प्रताप देखोन। सुग्रीव चरणी लागला। १६० मग म्हणे चापपाणी। सुग्रीवा तूं किष्किंधेसी जाऊनी। वाळीतें पाचारूनि आणीं। समरागणीं युद्धातें। ६१ ऐसें ऐकोनि यथार्थ। सुग्रीवासी आवेश बहुत। म्हणे त्यासी वधील हा निश्चित। यदर्थीं संशय असेना। ६२ कमलदलाक्ष कृपाघन। वर्षे स्वानंदामृतजीवन। तें कर्णद्वारें सेवून। सूर्यसुत तृप्त जाहला। ६३ रामचन्द्रें अमृतबिंदु टाकिले।

लिया। ५५ उन्होंने टेढ़े (खड़े) होकर दृढ़ आसन जमा लिया। उनके पीछे लक्ष्मण खड़े रहे थे। श्रीराम ने उनके पाँव के अँगूठे को अपने पाँव के नीचे दबा रखा। ५६ इस प्रकार उनके द्वारा (लक्ष्मण के रूप में) शेष भगवान के चरण के अँगूठे को दबाते ही सातों ताल (—वृक्ष) सीधे हो गये (तन गये)। अनन्तर श्रीराम ने उन सातों को एक ही बाण से (भूमि के) समतल कर दिया अर्थात् (भूमि पर गिरा दिया)। ५७ इसलिए सातों ताल शेष की पीठ पर झट से (गिराकर) ठीक-ठीक लगा लिये। त्यों ही उस समय सुग्रीव ने दुन्दुभी का शरीर (श्रीराम को) दिखा दिया। ५८ (और कहा—) 'जो इसे अपने पुरुषार्थ (बल) से उठाएगा, बाली की मौत उसके हाथों होगी।' तब श्रीराम ने उस प्रेत को अपने पाँव के अँगूठे से धकेल दिया। ५९ तो समझिए, वह भी घास (के तिनके) की भाँति उड़कर दिगन्तर में गिर पड़ा। (इस प्रकार श्रीराम का) अद्भुत प्रताप देखकर सुग्रीव उनके पाँव लग गया। १६० तब चापपाणि श्रीराम ने कहा— 'हे सुग्रीव, किष्किन्धा में जाकर बाली को युद्ध-भूमि में युद्ध के लिए बुलाकर ले आओ।' ६१ ऐसा सुनकर सुग्रीव को सचमुच बहुत आवेश आ गया। उसने कहा (माना)— 'ये उसे निश्चय ही मार डालेंगे, जिसमें कोई शंका नहीं है। ६२ कमल-पत्र-नयन श्रीराम रूपी कृपा-घन ने स्वानन्द रूपी अमृत-से (मधुर) जल की वर्षा की। कानों द्वारा उसका सेवन करते हुए सुग्रीव तृप्त हो गया। ६३ श्रीराम रूपी चंद्र ने

तेणें सुग्रीवकर्णचकोर धाले। कीं ते कर्णयाचक तृप्त जाहले। श्रीरामवचननिधानें। ६४ मग तो वासरमणीचा सुत। दशकंठरिपूस विनवीत। म्हणे विषकंठवंद्या एक हेत। पूर्ण माझा करीं कां। ६५ तरी अकस्मात टाकोनि बाण। घ्यावा जी वाळीचा प्राण। अवश्य म्हणे जगन्मोहन। भक्तवचनपाळक जो। ६६ मग किष्किंधेसमीप सूर्यकुमर। करीत थोर भुभुःकार। दणाणलें अवघें नगर। इंद्रपुत्र दचकला। ६७ गळां घालोनि विजयमाळ। वेगीं धांविन्नला वाळी सबळ। म्हणे अरीचा आजि थोर कल्लोळ। कोण साह्य जाहला असे। ६८ तारा म्हणे स्वामी परियेसीं। अंगद गेला होता पारधीसी। तेथें बोलत होते ऋषी। राम सुग्रीवा साह्य जाहला। ६९ तरी राजेंद्रा अवधारा। आपण न जावें समरा। म्हणोन चरणां लागली तारा। परी शक्रकुमरा न माने तें। १७० ऐकोनि कुंजराचें गर्जन। कैसा उगा राहे पंचानन। मृग बळेंचि आला चालोन। मग शार्दूळ कैसा

अमृत-बिन्दुओं को बरसा दिया। उससे सुग्रीव के कान रूपी चकोर (प्राप्त कर) तृप्त हो गये। अथवा श्रीराम के शब्द रूप धन-कोश से सुग्रीव के कान रूपी याचक सन्तुष्ट हो गये। ६४ अनन्तर सूर्य-पुत्र सुग्रीव ने रावणारि श्रीराम से विनती करते हुए कहा— 'हे शिवजी के प्रिय श्रीराम, मेरी एक इच्छा पूर्ण कीजिए। ६५ अतः आप अकस्मात बाण चलाकर वाली के प्राण (छीन) लीजिए।' (यह सुनकर) जो भक्तों के वचन का निर्वाह करते हैं, ऐसे जगन्मोहन श्रीराम ने कहा—'अवश्य'। ६६ अनन्तर सुग्रीव ने किष्किन्धा के पास (जाकर) बहुत बड़ा भुभुःकार किया। उससे समस्त नगर दनदना उठा, तो बाली चौंक गया। ६७ (फिर) गले में विजय-माला पहनकर बलवान बाली वेगपूर्वक दौड़ पड़ा। उसने कहा (सोचा)—'आज शत्रु का गर्जन बहुत बड़ा (हुआ) है। कौन उसका सहायक हुआ है?' ६८ (यह देख कर बाली की पत्नी) तारा बोली— 'हे स्वामी, सुनिए। अंगद आखेट के लिए गया था, वहाँ ऋषि कह रहे थे कि श्रीराम सुग्रीव के सहायक हो गये हैं। ६९ इसलिए हे राजेन्द्र, सुनिए। आप युद्ध के लिए न जाइए।' (यह) कहकर वह उसके पाँव लगी; फिर भी बाली ने उसे नहीं माना (स्वीकार किया)। १७० हाथी का गर्जन (चिंघाड़) सुनकर सिंह चुप कैसे रहेगा? हिरन हठपूर्वक चढ़ आ गया हो, तो बाघ कैसे स्थिर रहेगा? ७१ प्रलयाग्नि सूखे वन में शान्ति ग्रहण करके कैसे रहेगी?

स्थिरावे । ७१ शुष्क काननीं प्रळयाग्न । कैसा राहील शांति धरून । असो सहस्राक्षनंदन । तारेप्रति बोलिला । ७२ म्हणे प्राणप्रिये परियेसीं । षण्मासां येतो युद्धासी । आजि आला तिसरे दिवसीं । उल्लासेंसीं गर्जत । ७३ घायीं शरीर त्याचें जर्जर । तैसें माझेंही जाहलें चूर । त्यासी साह्य वायुकुमर । तेणें वीर आणिला कोणी । ७४ तरी तारे तूं आणि अंगद । सुखें भोगा राज्यपद । आजि सुग्रीवाचा करीन वध । तरीच येईन माघारा । ७५ नाहीं तरी भेट हेची । बोलोन वाळी उठे तैसाची । जैसी उडी पंचाननाची । मातंगासी लक्षोनियां । ७६ जैसा पर्वतावरी पर्वत पडला । तैसा सुग्रीवावरी आदळला । आवेशें झगडती ते वेळां । कांपों लागली धरित्री । ७७ मल्लयुद्ध होत अनिवार । गुप्त पाहे अवनिजावर । तों दोघे सारिखे दिसती वीर । कोणावरी शर टाकावा । ७८ मारुती म्हणे अयोध्यापती । हे दोघे सारखे दिसती । मग सुमनहार त्वरित गतीं । समीरसुतें गुंफिला । ७९ सुग्रीवाचे गळां घाली ते क्षणीं । विलोकित

(उस प्रकार सुग्रीव की ललकार सुनकर बाली चुप कैसे रह सकता था ?) अस्तु । (यह देखकर)बाली तारा से बोला । ७२ उसने कहा—' हे प्राण-प्रिया, सुनो । छः महीने में वह युद्ध के लिए आता है; आज वह तीसरे दिन उल्लास के साथ गरजते हुए आ गया । ७३ उसका शरीर घावों से जर्जर हुआ है, वैसे मेरा भी चूर-चूर हो गया है । वायुकुमार हनुमान उसका सहायक है । (जान पड़ता है) वह किसी वीर को लाया है । ७४ इसलिए, री तारा, तुम और अंगद सुख-पूर्वक राज्य-पद का भोग करो । आज (यदि) सुग्रीव का वध करूँ, तो ही लौटूँगा । ७५ नहीं तो यही अंतिम भेंट है । ' यह कहकर बाली वैसे ही उठ गया, जैसे हाथी को लक्ष्य करके सिंह की छलाँग होती है । ७६ जैसे पर्वत पर पर्वत गिर गया हो, वैसे वह, (जाकर) सुग्रीव से टकराया । (फिर) वे दोनों आवेश के साथ लड़ने लगे । उस समय पृथ्वी काँपने लगी । ७७ (दोनों में) अनिवार मल्लयुद्ध हो रहा था श्रीराम गुप्त रहकर उसे देख रहे थे; तब वे दोनों वीर सम-समान दिखायी दे रहे थे । (फिर वे दुविधा में पड़े रहे कि) किसपर बाण चलाएँ । ७८ हनुमान ने कहा— ' ये दोनों एक-से (समान) दीखते हैं । ' तब उस वायु-पुत्र ने शीघ्रता से एक पुष्पहार गूँथ लिया । ७९ उसने उस समय वह सुग्रीव के गले में पहना

कैवल्यदानी। दोघे हांक देत गगनीं। प्रतिध्वनी उठताती। १८० वज्राऐसे कठोर। हाणिती तेव्हां मुष्टिप्रहार। भूगोळ कांपत समग्र। दणाणत पाताळें। ८१ शत योजनें झाडें उपडोनी। निजबळें घालिती उचलोनी। उसळें तरू धांवती गगनीं। विमानें पळविती देव पैं। ८२ चक्राकार फिरविती पर्वत। न कळतां टाकिती अकस्मात। क्षणक्षणां भूकंप होत। ग्रीवा सरसावी भोगींद्र। ८३ हृदयीं समर्पित वज्रमुष्टी। तेणें उडुगणांची होत वृष्टी। गगनीं देवांचिया थाटी। युद्ध दृष्टीं विलोकिती। ८४ असो सहस्राक्षाचा सुत। सुग्रीवासी हाणी मुष्टिघात। कासावीस सूर्यसुत। मागें पाहात रामा-कडे। ८५ वीर सांपडत रणमंडळीं। बंधूची वाट पाहे ते वेळीं। तैसा सुग्रीव हृदयकमळीं। दीनबंधूतें आठवी। ८६ म्हणे कां न सरे माझा भोग। कृपा न करी अवनिजारंग।

दिया। (इधर छिपे रहकर) कैवल्य-दाता (यह) देख रहे थे कि दोनों (एक-दूसरे को) ललकार रहे हैं और गगन में उसकी प्रतिध्वनियाँ उठ रही हैं। १८० जब वे एक-दूसरे पर वज्र-से कठोर घूँसे जमाते, तब समस्त पृथ्वी-गोल विकम्पित हो जाता था और पाताल दनदना उठता था। ८१ सौ-सौ योजन (विशाल) वृक्ष उखाड़कर वे अपने-अपने बल से उठाकर (एक-दूसरे पर) डाल देते, तो (इस प्रकार डाले हुए) वृक्ष उछल जाते थे और आकाश में दौड़ते (-से प्रतीत होते थे)। (मारे घबराहट के) देव विमानों को दौड़ाते थे (द्रुत गति से चलाकर भाग गये)। ८२ वे पर्वतों का चक्राकार घुमाकर अकस्मात एक-दूसरे के अनजाने डाल देते थे। क्षण-क्षण भूकम्प होते थे; (पृथ्वी के नीचे) भोगीन्द्र शेष अपनी गरदन उठाकर (बार-बार) सीधी कर देता। ८३ जब वे (एक-दूसरे के) हृदय पर वज्र-सा मुष्टि-घात (घूँसा) जमाते, तो (उछले हुए) तारों की बौछार हो जाती। आकाश में (उपस्थित होकर) देवों के समुदाय अपनी आँखों से इस युद्ध को देख रहे थे। ८४ अस्तु। जब बाली ने सुग्रीव के एक घूँसा जमाया, तो उस (सुग्रीव) ने व्याकुल होकर पीछे श्रीराम की ओर देखा। ८५ जिस प्रकार रणमण्डल में फँस जाने पर कोई वीर पुरुष (सहायता के लिए) अपने बन्धु की प्रतीक्षा करता हो, उस प्रकार (प्रतीक्षा करते हुए) सुग्रीव ने अपने हृदय-कमल में दीन-बन्धु श्रीराम का स्मरण किया। ८६ उसने (अपने आपसे) कहा— 'मेरे दुर्भाग्य का भोग क्यों नहीं समाप्त हो रहा है? जो शिवजी के हृदय-कमल के भ्रमर हैं और जो रावण के

जो विषकंठहृदयपद्मभृंग । दशकंठदर्पदमन जो । ८७ असो इकडे कौसल्यानंदन । तूणीरांतून ओढी दिव्य बाण । जैसी कल्पांतमेघांतून । चपळा बाहेर निघे पैं । ८८ धनुष्यावरी लावून बाण । लक्ष साधिलें दुरोन । वाळीचे हृदयीं येऊन । अकस्मात खडतरला । ८९ बाण लागला सतेज । जैसी गिरीवरी पडे वीज । कीं काद्रवेय देखतां अरुणानुज । येऊन झडपी जैसा कां । १९० कीं अभाग्यावरी धाड पडे । कीं राहुमुखीं शशी सांपडे । कीं तपस्वियावरी सांकडें । व्यसन नसतेंचि आदळे । ९१ कीं तृतीयनेत्रींचा अग्न । मन्मथावरी पडे येऊन । तैसा वाळीचे हृदयीं बाण । एकाएकीं संचरला । ९२ महावृक्ष उन्मळिला । कीं पर्वत भूमीवरी आदळला । तैसा वाळीनें देह टाकिला । भूमंडळीं ते काळीं । ९३ वाळीचा देहांत जाणोनी । जवळी आला चापपाणी । इंद्रतनुज ते क्षणीं । काय बोलता जाहला । ९४ तूं क्षत्रिय एकपत्नीव्रती । दुसरी वरिली कां अपकीर्ती । अन्याय नसतां रघुपती । बाण

घमण्ड का दमन करने वाले हैं, वे सीतापति श्रीराम मुझ पर (अब भी) कृपा (क्यों) नहीं कर रहे हैं ? ८७ अस्तु । इधर श्रीराम ने तूणीर में से एक दिव्य बाण निकाल लिया । (वह बाण यों निकलता जान पड़ा) जैसे (वृष्टि से) कल्पान्त (कर डालनेवाले) मेघ में से बिजली बाहर निकली हो । ८८ उन्होंने उस बाण को धनुष पर संधान करके दूर से लक्ष्य साध लिया । (फिर) वह बाण अकस्मात आकर बाली के हृदय में धँस गया । ८९ वह तेजस्वी बाण इस प्रकार लग गया, जिस प्रकार पर्वत पर बिजली गिर गयी हो । अथवा सर्प को देखते ही गरुड़ ने झपट्टा दिया हो । १९० अथवा किसी अभागे पर आपत्ति आ पड़ी हो, अथवा राहु के मुख में चन्द्र फँस गया हो, अथवा (किसी) तपस्वी पर व्यर्थ में ही कोई संकट आ पड़ा हो । ९१ अथवा शिवजी की तीसरी आँख से (निकली हुई) अग्नि आकर कामदेव पर आ पड़ी हो, उसी प्रकार वह बाण यकायक (आकर) बाली के हृदय में घुस गया । ९२ जैसे महावृक्ष उखड़ गया हो, अथवा पर्वत भूमि से टकरा गया हो, वैसे बाली ने उस समय भू-मण्डल पर देह को लुढ़का दिया । ९३ बाली की मृत्यु (निकट) जानकर चापपाणि श्रीराम (उसके) निकट आ गये, तो उस क्षण बाली क्या बोला ? ९४ 'हे श्रीराम, आप क्षत्रिय हैं, एकपत्नीव्रती हैं, फिर आपने अपकीर्ति नामक दूसरी (स्त्री) का वरण क्यों किया ? हे रघुपति, अन्याय न होते हुए आपने व्यर्थ बाण

व्यर्थ कां टाकिला । ९५ तूं सत्यवचनी यशवंत । महाप्रतापी रणपंडित । तुझी अपकीर्ति त्रिभुवनांत । जाहली सत्य राघवेशा । ९६ न हटकितां टाकिला शर । मग बोले जानकीवर । मर्कटा तूं केवळ वनचर । तुज कासया हटकावें । ९७ वीर असेल त्यासी हटकावें । वनचरांसी गुप्तचि वधावें । पारधियें मृग साधावे । पाचारावें कासया । ९८ तूं परम अन्यायी वानर । बंधुस्त्रीअभिलाषी अनाचार । म्यां दुष्ट दण्डावया अवतार । घेतला असे मर्कटा । ९९ ऐसें ऐकतां ते काळीं । हृदयीं सद्गद जाहला वाळी । म्हणे मी पावन जाहलों ये वेळीं । तुझेनि हस्तें राघवा । २०० थोर सुकृताचे पर्वत । दृष्टीभरी देखिला रघुनाथ । माझें सार्थक जाहलें यथार्थ । नाहीं अंत निजभाग्या । २०१ येच मार्गीं जनकनंदिनी । दशग्रीव गेला घेउनी । मी त्यासी आणितों बांधोनी । एक क्षण न लागतां । २ कक्षेमाजी दाटून । चतुःसमुद्रीं केलें स्नान । पालखावरी आणून । अंगदाच्या बांधिला । ३ मग पौलस्तीनें भिक्षा मागोन । नेला दशकंठ सोडवून । त्या मशकाचा पाड

क्यों चलाया ? ९५ आप सत्य-वचनी तथा यशवन्त (कीर्तिमान) हैं, महाप्रतापी और रण-पंडित हैं । हे राघवेश, सचमुच आपकी अपकीर्ति त्रिभुवन में हो गयी । ९६ आपने मुझे चुनौती न देते हुए बाण चला दिया ।' तब श्रीराम बोले–' रे मर्कट, तुम तो केवल वनचर (वन्य जीव) हो । तुम्हें किसलिए टोक दें ? ९७ जो वीर हो, उसे ललकारें, परन्तु वनचरों का गुप्त रूप में (छिपे रहकर) ही वध करें । आखेटक मृग को साथ ले—उसे (मृग को) वह क्यों बुलाए ? ९८ तुम परम अन्यायी वानर हो, बन्धु की स्त्री के अभिलाषी, (अतः) अनाचारी हो । रे मर्कट, दुष्टों को दण्ड देने के लिए मैंने अवतार ग्रहण किया है ।' ९९ ऐसा सुनते ही उस समय बाली हृदय में बहुत गद्गद हो गया । वह बोला—' हे राघव, आप ही के हाथों मैं इस समय पावन हो गया । २०० मेरे (किये) पुण्य के पर्वत बड़े हैं । इसलिए मैं अपनी आँखों-भर रघुनाथ के दर्शन कर सका । मेरा (जन्म) सचमुच सार्थक हो गया । मेरे भाग्य का कोई अन्त नहीं है । २०१ रावण इसी मार्ग से जनक-नन्दिनी को ले गया है । मैं एक क्षण (तक) न लगते उसे बाँधकर लाऊँगा । २०२ (पूर्वकाल में) मैंने उसे बगल में दबाकर चारों समुद्रों में स्नान किया था और अंगद के पालने पर उसे बाँध दिया था । २०३ अनन्तर (उसके पिता) पौलस्त्य (विश्रवा)

कोण । काय उशीर आणावया । ४ माझें कर्म परम बळी । तुझी सेवा नाहीं घडली । राजीवाक्ष ते वेळीं । स्नेहाळपणें बोलिला । ५ तुझे हृदयींचा उपटोनि बाण । आतां तुज सावध करीन । मग म्हणे इंद्रनंदन । ऐसें मरण पुढें न ये । ६ तुझेनि हातें देहांत । तूं दृष्टीपुढें रघुनाथ । ऐसें बोलतां शक्रसुत । सुग्रीव जवळी पातला । ७ नेत्रीं स्रवती जळबिंदु । उचंबळला शोकसिंधु । मग वाळीनें तो कनिष्ठ बंधु । प्रीतीनें जवळी बैसविला । ८ काढोनियां विजयमाळा । घातली सुग्रीवाचे गळां । म्हणे धन्य धन्य अनुजा वेल्हाळा । दृष्टीं दाविला श्रीराम । ९ धन्य धन्य तुझें वैर । अंतीं दाविला रघुवीर । वैर नव्हे हा स्नेह थोर । मजलागीं तुवां केला । २१० आतां रघुनाथसेवा प्रीतीं । तुम्हीं करावी अहोरातीं । साह्य होवोनि सर्वार्थी । सीतासती सोडविजे । ११ ऐसें शक्रतनुजें बोलोन । विलोकिलें राघवध्यान । तत्काळ

भिक्षा के रूप में याचना करके रावण को छुड़ा ले गये । उस मच्छड़ की क्या योग्यता ! उसे (पकड़कर) लाने में क्या देर ? २०४ मेरा कर्म परम बली है (क्योंकि आपके दर्शन हुए हैं) । परन्तु मुझसे आपकी कोई सेवा नहीं हो सकी ।' (इस पर) उस समय कमल-नयन श्रीराम स्नेह-मयता पूर्वक बोले । २०५ 'तुम्हारे हृदय में से बाण को उखाड़कर अब मैं तुम्हें सचेत करूंगा ।' तब बाली बोला— ऐसी मौत आगे (फिर से) नहीं आएगी । २०६ आपके हाथों मेरा देहान्त हो रहा है और हे रघुनाथ, आप मेरी दृष्टि के सामने हैं ।' बाली के ऐसा बोलते ही सुग्रीव निकट आ पहुँचा । २०७ उसकी आँखों से (अश्रु—) जल की बूँदें झर रही थीं । उसका शोक रूपी सागर उमड़ उठा । तब बाली ने अपने छोटे भाई को प्रेमपूर्वक अपने पास बैठा लिया । २०८ उसने (अपने गले से) विजय-माला उतार कर सुग्रीव के गले में डाल दी और कहा– 'हे लाड़ले छोटे भाई, तुम धन्य हो, धन्य हो, जो कि तुमने श्रीराम को इन आँखों दिखाया । २०९ तुम्हारा वैर धन्य है जबकि तुमने अन्त में रघुवीर को दिखाया (रघुवीर के मुझे दर्शन कराये) । यह वैर नहीं है, यह तो बड़ा स्नेह है, जो तुमने मुझसे किया । २१० अब तुम दिन-रात प्रेमपूर्वक श्रीराम की सेवा करो । सब प्रकार से उनके सहायक होकर सती सीता को मुक्त करो ।' ११ बाली ने इस प्रकार कहकर श्रीराम के ध्यान (रूप) को देखा और तत्काल देह-त्याग करके विदेह (देह आदि साँसारिक बन्धनों से

देह सोडून। वाळी जाहला विदेही। १२ विष्णुदूत येऊन। नेला विमानीं बैसवून। याउपरी तारेचें समाधान। रघुनंदन करील पैं। १३ ते सुरस कथा अपार। संतीं परिसावी सादर। ब्रह्मानंद श्रीधरवर। अभंग चरित्र वर्णील हें। १४ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। सप्तदशाध्याय गोड हा। २१५
॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

मुक्त) हो गया। १२ अनन्तर भगवान विष्णु के दूत आकर उसे विमान में बैठाकर ले गये। इसके पश्चात् श्रीराम (बाली की स्त्री) तारा का समाधान (शोक तथा सन्देह दूर) करेंगे। १३ वह कथा बहुत सुरस, अर्थात् मधुर है। सन्त उसे आदर-पूर्वक सुनें। श्रीधर के वर-दाता ब्रह्मानन्द, उस अभंग चरित्र का वर्णन करेंगे। १४

। स्वस्ति। श्रीराम-विजय नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। चतुर भक्त उसके इस मधुर सत्रहवें अध्याय का सदा श्रवण करें। २१५ ॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—१८

श्रीगणेशाय नमः। अखिलरघुनाथगुणसमुद्र। राम-उपासक तेथें जळचर। ब्रह्मानंदें क्रीडती साचार। प्रेमबळें मातोनियां। १ स्वानंदाचे उमाळे देती। सारासारविचारें तळपती। जीवनावांचोनि गती। दुजी नसे तयांतें। २ अविद्याविपिन शुष्क बहुत। कांहींच वासना न करी तेथ।

श्रीगणेशाय नमः। श्रीराम समस्त गुणों के सागर हैं (और) उनके उपासक वहाँ (के रहनेवाले) जलचर जीव हैं। वे (भगवत्-) प्रेम से मत्त होकर सचमुच ब्रह्मानन्द के साथ विहार करते हैं। १ वे आत्मानन्द के आवेग (की लहरों) को प्रकट करते हैं, सार-असार-विवेक से चमकते रहते हैं। उस जल के अतिरिक्त, उनके लिए कोई दूसरा आश्रय-स्थान नहीं है। २ (उन्हें) अविद्या रूपी वन बहुत शुष्क (नीरस जान पड़ता) है। वे वहाँ (उसके प्रति) कोई कामना नहीं करते। वस्तुतः नन्दन-वन में विचरण

नंदनवतींचा मिलिंद सत्य । अर्कीपुष्पीं बैसेना । ३ जो करी सुधारसपान । तो कंटाळे देखोनि वमन । जेणें आत्मशयनीं केलें शयन । तो भवकानन कां सेवी । ४ कल्पद्रुम ज्याचे अंगणीं । नित्य सुरभी दुभे सदनीं । तो तृणबीज काढोनी । कदाकाळीं भक्षीना । ५ प्रारब्धभोगें वावरे शरीर । तेविषयीं न धरिती आदर । तैसे रघुवीरभजनीं सादर । हेंही नेणती कदा ते । ६ सतरावे अध्यायीं गतकथार्थ । श्रीरामें मारिला शक्रसुत । सुग्रीव उसां मांडी देत । देहांतसमयीं वाळीच्या । ७ तों अंगदसमवेत तारा सती । सत्वर पावली जेथें पती । मग म्हणे अयोध्यापती । काय ऐसें केलें तुवां । ८ आतां टाकोनि एक बाण । राघवा घेईं माझा प्राण । मी पतिसमागमें जाईन । काय वांचोनी व्यर्थ आतां । ९ कवळोनि वाळीचें प्रेत । तारा अत्यंत शोक करीत । ऐसें जाणोनि जनकजामात । काय बोले तें ऐका । १० कोण्या अर्थालागीं देख । तारे तूं

करनेवाला भ्रमर आक के फूल पर नहीं बैठता । ३ जो अमृत-रस का पान (सेवन) करता हो, वह वमन को देखकर घृणा अनुभव करता है । जिसने आत्म-(सुख की) शय्या पर शयन किया हो, वह संसार रूपी कानन को (निवास के लिए) क्यों स्वीकार करेगा । ४ जिसके आँगन में कल्पवृक्ष हो, जिसके घर में कामधेनु नित्य दूध देती हो, वह घास के बीज निकालकर किसी भी समय नहीं खाएगा । ५ (उनका) शरीर (केवल) प्रारब्ध-भोग के कारण चलता-फिरता (या व्यवहार करता) रहता है; परन्तु वे भोग-विलास के विषयों के प्रति कोई रुचि नहीं रखते । वैसे ही वे यह भी कभी नहीं जानते कि वे (स्वयं) रघुवीर राम के भजन (भक्ति) में लगे हुए हैं । (इसका उन्हें भान नहीं है ।) ६

सत्रहवें अध्याय में कही हुई कथा का भावार्थ यह है– श्रीराम ने इन्द्र-पुत्र बाली को मार डाला; बाली के देहान्त के समय सुग्रीव ने उसे उसीसे (तकिये) के रूप में गोद दी । ७ तब सती तारा (अपने पुत्र) अंगद के साथ (वहाँ) तुरन्त आ पहुँची, जहाँ उसका पति था । फिर उसने कहा— 'हे अयोध्यापति, आपने (यह) ऐसा क्या किया ? ८ हे राघव, अब एक बाण चलाकर मेरे प्राण (छीन) लीजिए, तो मैं पति का अनुगमन करते हुए सती हो जाऊँगी । अब व्यर्थ ही बचकर (जीवित रहने से) क्या होगा ? ९ बाली के शव में लिपटकर तारा बहुत शोक कर रही थी । (अब) वह सुनिए कि ऐसा जानने पर श्रीराम ने क्या

करिसी शोक। येरी म्हणे पतिवियोगपावक। तेणें दग्ध जाहल्यें मी। ११ ताटिकांतक म्हणे ते काळीं। कलेवराचें नाम वाळी। तरी तें पडलें तुजजवळी। जैसें तैसें संचलें। १२ ज्यालागी शोक करिसी बहुत। तरी तें पडलें वाळीचें प्रेत। येरी म्हणे हृदयस्थ। आत्मा गेला निघोनियां। १३ मग बोले अयोध्याविहारी। तूं काय आत्म्याची अंतुरी। कीं शरीराची निर्धारीं। सांगें मज विचारूनि। १४ शरीर तंव नाशवंत। आत्मा अविनाश शाश्वत। तरी शोक करावा किमर्थ। पाहें बरवें विचारोनि। १५ जैसा घटीं आणि रांजणीं। एक बिंबला वासरमणी। तैसा स्त्रीपुरुष अभियानीं। आत्मा एक अव्यंग। १६ घट मठ मोडतां निःशेष। जेवीं न मोडेचि आकाश। कीं तरंग मोडतां सागरास। नाश नसे सह्साही। १७ मायामय लटिका खेळ। जैसें नसतांचि दिसे मृगजळ। कीं गंधर्वनगर केवळ। मिथ्याभास आभासे। १८ सुधापानी स्वर्गीं असती। तेही नाश पावती कल्पांतीं। जें

कहा? १० 'हे तारा, देखो तुम किसके लिए शोक कर रही हो।' (इस पर) उसने कहा— 'पति-विरह की उस आग में मैं दग्ध हो गयी हूँ।' ११ तो श्रीराम ने उस समय कहा— 'उस शरीर का नाम वाली है; वह तो तुम्हारे पास जैसे-तैसे संचित होकर पड़ा है। १२ जिसके लिए तुम बहुत शोक कर रही हो, बाली का वह प्रेत तो (यहाँ) पड़ा हुआ है।' (इस पर) उसने कहा– '(उनकी) हृदय-स्थ आत्मा तो निकल गयी।' १३ तब श्रीराम ने कहा— 'तुम क्या (उस) आत्मा की स्त्री हो या शरीर की? विचार करके निश्चित रूप से मुझे बताओ।' १४ शरीर तो नाशवान होता है, जब कि आत्मा अविनाशी तथा शाश्वत होती है। इसलिए यह ठीक से विचार करके देखो कि शोक किसके लिए करें। १५ जिस प्रकार घड़े और मटके में एक मात्र सूर्य प्रतिबिम्बित होता है, उस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों अभिधानों (से सूचित शरीरों) में एक ही सम्पूर्ण आत्मा होती है। १६ घड़े तथा मटके के पूर्णतः टूट जाने पर भी जिस प्रकार आकाश नहीं टूट जाता, अथवा लहरों के फूट जाने पर भी सागर का नाश कभी नहीं हो जाता, उस प्रकार शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता। १७ यह (सब) मायामय दिखावटी, अर्थात् झूठा खेल है। जिस प्रकार वस्तुतः जल नहीं होते हुए भी मृगजल (में वह) दिखायी देता है, अथवा कुछ नहीं होते हुए भी झूठा आभास दीख पड़ता है। १८ अमृत का

जें दिसे आकाररीतीं। नाश निश्चितीं असे तेथें। १९ भग्न-पात्रींचें गेलें नीर। माजी बिंबला रोहिणीवर। तो न दिसे म्हणोनि अपार। शोक करी अज्ञानी। २० मळे पिकवीन अपार। यालागीं इच्छी रोहिणीनीर। तें अदृश्य होतां साचार। शोक करिती मूर्खत्वें। २१ सकळ पिंडांसमवेत। ब्रह्मांड अवघें मिथ्याभूत। आत्मा अक्षय शाश्वत। शोक किमर्थ करिसी तूं। २२ ऐशीं रावणारीचीं वचनें। अमृताहून गोड गहनें। कीं बोधसमुद्रींचीं चिद्रत्नें। तारेलागीं दीधलीं। २३ कीं तीं विश्रांतीचीं मंदिरें। कीं अनुभव-नभींचीं नक्षत्रें। कीं स्वानंदाचीं पात्रें। मुखावरी उचंबळती। २४ कीं रामवचन अगस्ति थोर। शोषिला तिचा शोकसागर। कीं वचनरूपें दिनकर। अज्ञानतिमिरनाशक। २५ मदनारि-

---

पान करनेवाले अर्थात् देव स्वर्ग में होते हैं, (परन्तु) वे भी कल्पान्त में नाश को प्राप्त होते हैं। जो जो आकार प्रकार (आदि) से दिखायी देता है, वहाँ-वहाँ उसका नाश निश्चित रूप में होता है। १९ पहले जिस जल से भरे पात्र में चंद्र प्रतिबिम्बित है, उसके टूट जाने पर उसमें से पानी निकल जाता है। उसमें पहले प्रतिबिम्बित चंद्र अब नहीं दिखायी दे रहा है; इसलिए अज्ञान के कारण मूढ़ लोग उसे नष्ट समझकर शोक करते हैं। २०

इसलिए रोहिणी नक्षत्र के दिनों में लोग वर्षा के जल की कामना करते हैं; परन्तु उस (पानी) के अदृश्य हो जाने पर वे मूढ़ता के कारण शोक करते हैं। २१ समस्त पिण्डों के साथ (यह) समग्र ब्रह्माण्ड मिथ्याभूत (दिखावटी) है। (केवल) आत्मा अक्षय और शाश्वत है। (इसलिए) तुम किसके लिए शोक कर रही हो ? २२ श्रीराम की कही हुई ऐसी बातें अमृत से (भी) अधिक मधुर तथा गूढ़ थीं, अथवा वे (मानो) आत्म-बोध (ज्ञान) रूपी समुद्र में उत्पन्न चिद्-रत्न थीं। श्रीराम ने वे (रत्न) तारा को प्रदान किये। २३ अथवा वे विश्राम के मंदिर थे, अथवा अनुभव रूपी आकाश के तारे थे, अथवा आत्मानन्द (से भरे) पात्र थे, जो आकण्ठ छलक रहे थे। २४ अथवा श्रीराम का (वह) वचन (कथन) मानो महा ऋषि अगस्त्य था, जिसने उसके शोक रूपी सागर को सोख (कर सुखा) लिया, अथवा उनके वचन के रूप में अज्ञान रूपी अंधेरे का नाश करनेवाला सूर्य ही प्रस्तुत हो गया। २५ तब तारा ने श्रीराम के चरण प्रेम-पूर्वक पकड़ लिये; और वह

मित्राचे चरण । तारेनें धरिलें प्रीतीकरून । श्वासोच्छ्वास टाकून । तटस्थरूपें राहिली । २६ श्रीराम म्हणे तारेलागून । माझें वचन मानीं प्रमाण । सुग्रीवासी माळ घालून । सुखें-करोनि वर्तावें । २७ तारा म्हणे चापपाणी । हे वेदविरुद्ध दिसे करणी । मग म्हणे कैवल्यदानी । वचन मानीं माझें हें । २८ तूं पतिव्रतांमाजी विख्यात । तारे होसी यथार्थ । अघटित घडवी रघुनाथ । महिमा अद्भुत जयाचा । २९ देवाचें अघटित आचरण । तें मानव करूं म्हणती आपण । तरी तें नरकासी कारण । होईल निश्चयें जाण पां । ३० अघटित घडवी रघुनंदन । स्तंभाविण राहिलें गगन । उदकावरी पृथ्वी संपूर्ण । न बुडे जाण सहसाही । ३१ त्याचें कर्तृत्व करिती इतर । तरी अनर्थासी नाहीं पार । स्वेच्छा वर्ते सर्वेश्वर । नव्हे म्हणे कोण त्यातें । ३२ यावरी उत्तरक्रिया समस्त । वाळीची करी सूर्यसुत । अंगदावरी रघुनाथ । प्रीति अत्यंत करीत पैं । ३३ असो ते तारा सुंदरी । रामें

साँस तथा उसाँस भरकर तटस्थ रूप रह गयी । २६ तो श्रीराम ने तारा से कहा— 'मेरी बात प्रमाण समझो । सुग्रीव को वर-माला पहनाकर (सुग्रीव से विवाह करके) सुख-पूर्वक रहो ।' २७ (यह सुनकर) तारा बोली— 'हे चापपाणि श्रीराम, यह करनी वेद-विरुद्ध जान पड़ती है ।' तो कैवल्य (मुक्ति)—दाता श्रीराम ने कहा—'मेरी यह बात मान लो । २८ हे तारा, पतिव्रताओं में तुम सचमुच विख्यात हो जाएगी ।' (इस प्रकार) रघुनाथ श्रीराम अघटित (अभूतपूर्व एवं विलक्षण) बात घटित कर देते हैं । उनकी महिमा अद्भुत है । २९ देवों का आचरण अघटित होता है । यदि मानव स्वयं उसे करना चाहे, तो समझिए कि (उनके लिए) वह नरक (में जाने) का निश्चय ही कारण होगा । ३० श्रीराम अघटित को घटित कर देते हैं । (जैसे उनके करने से) आकाश बिना स्तम्भ के (आधार के) रहा है; पानी पर सम्पूर्ण पृथ्वी (रही) है, जो कदापि नहीं डूबती । ३१ उनकी करनी को यदि अन्य (कोई) करें, तो अनर्थ की कोई सीमा नहीं रहेगी । सर्वेश्वर (भगवान श्रीराम) अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करते हैं । उन्हें कौन बताए कि ऐसा न हो । ३२

इसके पश्चात् सूर्य-पुत्र सुग्रीव ने बाली की समस्त उत्तर-क्रिया सम्पन्न की । (इधर) श्रीराम (बाली-पुत्र) अंगद से बहुत प्रेम करने लगे थे । ३३

बोधिली ऐंशियापरी । सुग्रीवासी दिधली निर्धारीं । शेंसपाट भरोनियां । ३४ यावरी तारेनें माळ । सुग्रीवासी घातली तत्काळ । जेणें प्रसन्न होय तमालनीळ । आचरण तेंचि उत्तम । ३५ सकळ कपी जयजयकारें । गर्जना करिती लहानथोरें । नभ नादावलें भुभु:कारें । महागजरें दुमदुमत । ३६ राघव म्हणे सुग्रीवास । आम्ही येथें राहितों चार मास । तुम्हीं भोगोनि राज्यविलास । सत्वर परतोनि येइंजे । ३७ अर्कज म्हणे रघुनाथा । आपण किष्किंधेसी चलावें आतां । श्रीराम म्हणे माझिया भरता- । कारणें मी व्रतस्थ । ३८ माझिया जिवलगाविण । न करीं मी मंगलस्नान । आठवोनि भरताचे गुण । रघुनंदन गहिंवरला । ३९ मी चित्रकूटींहूनि निघतां । भरतासी जाहली जे अवस्था । ते सुग्रीवा न ये सांगतां । धीर चित्ता न धरवे । ४० जैसें बाळक परदेशीं । माता टाकोनि जाय तयासी । मजविणें माझ्या भरतासी । तैसें जाहलें असेल । ४१ सांगतां भरताचे

अस्तु । श्रीराम ने उस सुन्दरी तारा को इस प्रकार उपदेश दिया और उसके माथे पर दही, अक्षत, कुंकुम तिलक लगाते हुए उसे निश्चय-पूर्वक सुग्रीव को (विवाह में) प्रदान किया । ३४ इसके अनन्तर तारा ने सुग्रीव को तत्काल वरमाला पहनायी । जिससे तमालनील श्रीराम प्रसन्न हों, वही आचरण उत्तम होता है । ३५ (तब) समस्त कपियों ने बहुत जयजयकार पूर्वक गर्जना की । उनके भुभु:कार से तथा महा गर्जन से दनदनाते हुए आकाश निनादित हुआ । ३६

(तदनन्तर)श्रीराम ने सुग्रीव से कहा— 'हम यहाँ चार मास रहेंगे । राज्य (से प्राप्त) विलास का भोग करके तुम शीघ्र ही लौट आओ ।' ३७ (इस पर) सुग्रीव बोला— 'हे रघुनाथ, आप अब किष्किन्धा चलें ।' तो श्रीराम ने कहा— 'अपने भरत के कारण मैं व्रतस्थ हूँ । ३८ मैं बिना अपने प्राण-प्रिय के (साथ में हुए) मंगल स्नान (तक) नहीं करता ।' (फिर) वे भरत के गुणों का स्मरण करते हुए गद्गद हो गये । ३९ हे सुग्रीव, मेरे चित्रकूट से (प्रस्थान कर) निकलते समय भरत की जो अवस्था हुई, वह मुझसे नहीं बतायी जा सकती, मेरे चित्त द्वारा धीरज नहीं धारण किया जाता । ४० बालक को छोड़कर माता विदेश चली जाए (तो उस बालक की जो अवस्था होती हो,) वैसे मेरे बिना, भरत की हुई होगी । ४१ भरत

गुण। सद्गद जाहला रघुनंदन। सुग्रीव धांवोनि धरी चरण। लक्ष्मणही गहिंवरला। ४२ असो यावरी राजीवनेत्र। बोलता जाहला नीरदगात्र। म्हणे सुग्रीवावरी धरीं छत्र। सौमित्रा सत्वर जाऊनियां। ४३ रघुपतीचें चरणांबुज। वंदी तेव्हां सुमित्रातनुज। आशीर्वाद देत भरताग्रज। विजयी होईं सर्वदा। ४४ मग सौमित्रें जावोनि सत्वर। सुग्रीवावरी धरिलें छत्र। अमात्यपद पवित्र। वाळिपुत्रासी दीधलें। ४५ सवेंच परतोन लक्ष्मण। आला जेथें जानकीजीवन। जवळी उभा वायुनंदन। कर जोडोनी सर्वदा। ४६ किष्किंधेसी नित्य जाऊन। राघवापाशीं येई परतोन। तों चतुर्मास लोटले पूर्ण। सुग्रीवासी स्मरण नव्हेचि। ४७ देखोनियां शरत्काळ। बोलता जाहला तमालनीळ। म्हणे सुग्रीव जाहला सबळ। राज्यमदेंकरूनियां। ४८ विषयसंगें रमलें मन। धनविद्यामदें गेला भुलोन। परी सज्जनीं त्यास दंडोन। सन्मार्गातें लावावें। ४९ तरी किष्किंधेसी जाईं लक्ष्मणा। आठव देईं सूर्यनंदना। तो जरी न मानी माझिया वचना। तरी वधोनि

के गुण बताते हुए श्रीराम बहुत गद्गद हो गये, तो सुग्रीव ने दौड़ते हुए आकर उनके पाँव पकड़ लिये। (यह देखकर) लक्ष्मण भी गद्गद हो उठा। ४२ अस्तु। इसके पश्चात् मेघ-वर्ण तथा कमल-नेत्र श्रीराम बोले, 'हे लक्ष्मण, शीघ्र जाकर सुग्रीव पर राज-छत्र धर दो।' ४३ तब लक्ष्मण ने श्रीराम के चरण-कमलों को नमस्कार किया, तो भरत के ज्येष्ठ बन्धु (श्रीराम ने) आशीर्वाद दिया— 'सदा विजयी हो जाओ।' ४४ अनन्तर लक्ष्मण ने तुरन्त जाकर सुग्रीव पर (राज्य—) छात्र धर दिया और शुद्ध आचरणवाले बाली-पुत्र, अंगद को मंत्री-पद प्रदान किया। ४५ इसके साथ ही तत्काल लक्ष्मण (वहाँ) लौट आये, जहाँ श्रीराम थे। हनुमान हाथ जोड़े हुए उनके पास सदा खड़ा था। ४६ वह नित्य प्रति किष्किन्धा जाकर श्रीराम के पास लौट आता। तो (इस प्रकार) चातुर्मास (चौमासा) पूरा (व्यतीत) हो गया। (परन्तु) सुग्रीव को इसका स्मरण (भान) नहीं रहा। ४७ शरद् ऋतु को (आये) देखकर श्रीराम ने कहा— 'राज्य (प्राप्ति के) मद से सुग्रीव प्रबल हो गया है। ४८ उसका मन विषय-सुख संगति में रम गया है, धन तथा विद्या के मद में वह भूल गया है। परन्तु सज्जन उसे दण्ड देकर सन्मार्ग पर (ले) आएँ। ४९ इसलिए हे लक्ष्मण, किष्किन्धा जाओ और सुग्रीव को स्मरण दिलाओ। यदि वह मेरी बात

त्यासी येइंजे। ५० तारा रुमा दोघी घेऊन। नित्य करी मद्यपान। जो न करी माझें स्मरण। त्यास अवश्य दंडावें।५१ जो ब्राह्मण देखोनि उपहास करी। संतभक्तांचा द्वेष धरी। सद्‌गुरुवचन अव्हेरी। त्यासी अवश्य दंडावें। ५२ निंदी हरिहरांचीं चरित्रें। अपमानी जो सत्पात्रें। अपूज्य पूजी आदरें। त्यासी अवश्य दंडावें। ५३ कायावाचामनें। ज्यासी परपीडा अगत्य करणें। आणि वेदविरुद्ध ज्यासी वर्तणें। त्यासी अवश्य दण्डावें। ५४ ऐश्वर्यमदें जे मातले। हिंसा करितां न कंटाळले। धर्मपथ ज्यांनीं मोडिले। त्यांसी अवश्य दण्डावें। ५५ कमळा आणि चक्रपाणी। भेटों इच्छिती धर्मसदनीं। कार्पण्यलोभें विघडी दोन्ही। त्यासी अवश्य दण्डावें। ५६ यावरी वीरचूडामणी। किष्किंधेसी जाईं ये क्षणीं। तो जरी माझें वचन अवगणी। तरी तेंचि क्षणीं वधावा। ५७ वाळी निर्दाळिला ज्या बाणें। त्याच शरें

नहीं मान रहा हो, तो उसका वध करके आओ। ५० तारा और रूमा 'दोनों' (स्त्रियों)को लेकर वह नित्य मद्य-पान करता है। जो मेरा स्मरण नहीं करता, उसे अवश्य दण्ड दें। ५१ जो ब्राह्मणों को देखकर उनका उपहास करता हो, जो सन्तों और भक्तों से द्वेष करता हो और सद्‌गुरु के वचन (आज्ञा आदि) की उपेक्षा करता हो, उसे अवश्य दण्ड दें। ५२ जो हरि (विष्णु) और हर (शिव) के चरित्रों (लीलाओं) की निन्दा करता हो, जो सुयोग्य (अर्थात् मान्यवर) व्यक्तियों का अपमान करता हो, उसे अवश्य दण्ड दें। ५३ जिसे शरीर, वाणी और मन से परपीड़ा अवश्य करनी हो, जिसे वेद-विरुद्ध आचरण करना हो, उसे अवश्य दण्ड दें। ५४ जो ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त हो गये हों, जो हिंसा करते हुए नहीं ऊब गये हों, जिन्होंने धर्म-पंथ तोड़ दिये (अर्थात् धर्म-पंथ का त्याग किया) हो, उन्हें अवश्य दण्ड दें। ५५ (वस्तुतः) लक्ष्मी और चक्रपाणि विष्णु धर्म-सदन में मिलना चाहते हैं (अर्थात् जहाँ धर्म संगत, आचरण होता हो, वहीं भगवान् और लक्ष्मी का निवास होता है।) परन्तु कंजूसी और लोभ से जो उन दोनों का वियोग करता हो, उसे अवश्य दण्ड दें। ५६ इसलिए हे वीर चूड़ामणि, इस क्षण तुम किष्किन्धा जाओ। यदि वह मेरी बात की उपेक्षा कर रहा हो, तो उसका उसी क्षण वध करो। ५७ जिस बाण से (मैंने) बाली का निर्दलन किया, उसी बाण से उसके प्राण (छीन) लेना।' ऐसा सुनकर लक्ष्मण ने

त्याचा प्राण घेणें। ऐसें ऐकतां लक्ष्मणें। राघवचरण वंदिले। ५८ धनुष्यासी चढवूनि गुण। वेगें चालिला उर्मिला-जीवन। किष्किंधेसमीप येऊन। लाविला बाण चापासी। ५९ तों इकडे सूचना मारुती। जाणवीत सुग्रीवाप्रती। म्हणे एकला वनीं रघुपती। चला वेगीं दर्शना। ६० सीताशुद्धीसी त्वरित। वानर धाडावे निश्चित। तूं जाहलासी उन्मत्त बहुत। रामकार्यार्थ नाठवे। ६१ तारुण्यमदें आधींच उन्मत्त। त्यावरी मद्यपानीं रत। उपरी धनमद दाटला बहुत। मान विशेष त्यावरी। ६२ जाणे अत्यंत वाचाळपण। कोणासी बोलों नेदी वचन। जैसें मद्यपियाचें भाषण। सव्यापसव्य नेणेचि। ६३ तैसा तूं जाहलासी निश्चित। स्त्रियांच्या संगें उन्मत्त। विसरलासी स्वामिकार्यार्थ। सूर्यसुत मग बोले। ६४ जाहले घूर्णित लोचन। बोले उदासीन वचन। म्हणे वानर सेना मेळवून। सिद्ध करा हळूहळू। ६५ ऐसें बोलोनि सूर्यसुत। राणिवसामाजी प्रवेशत। तों नगरद्वारीं ऊर्मिला-

---

श्रीराम के चरणों को नमस्कार किया। ५८ और धनुष पर डोरी चढ़ाकर वे वेगपूर्वक चल दिये। (और) किष्किन्धा के समीप आकर उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ा दिया। ५९ तब इधर पहले ही हनुमान ने सुग्रीव को सूचना दिलवायी थी। वह बोला—'वन में श्रीराम अकेले हैं; उनके दर्शन के लिए तुरन्त चलो। ६० सीता की खोज के लिए तत्काल वानरों को अवश्य भेज दो। तुम बहुत उन्मत्त हो गये हो। (इसलिए) श्रीराम के कार्य की सिद्धि का स्मरण (ध्यान) नहीं रख रहे हो। ६१ कोई युवावस्था के कारण पहले से ही उन्मत्त रहा हो, तिसपर वह (अब) मद्य-पान में व्यस्त रहता हो, फिर इसके ऊपर उसमें धन-सम्पत्ति का मद बहुत बढ़ गया हो, और तिसपर वह विशेष रूप में मान (अनुभव) कर रहा हो, वह बहुत वाचालता जानता हो, किसी (दूसरे) को बात (तक) बोलने नहीं दे रहा हो, उसका बोलना जैसे मद्यपी का भाषण हो और (बोलते समय) सव्य-अपसव्य अर्थात् उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं रखता हो—तुम निश्चय ही वैसे हो गये हो। स्त्रियों की संगति से उन्मत्त होकर स्वामी के कार्य की सिद्धि को भूल गये हो। तो (यह सुनकर) सुग्रीव बोला। (६२-६४) उसकी आँखें नशे में चूर थीं। वह उदासीनता-भरे वचन बोला। उसने कहा— 'वानर-सेना को इकट्ठा करके धीरे-धीरे सज्ज करो।' ६५ ऐसा कहकर सुग्रीव अन्तःपुर में प्रविष्ट हो गया। त्यों ही

नाथ। येवोनि उभा ठाकला। ६६ धनुष्यासी लावूनि बाण। क्षोभे जैसा प्रळयाग्न। पळों लागले वानरगण। येती शरण सुग्रीवा। ६७ सुग्रीव तेव्हां गजबजिला। म्हणे हनुमंता रक्षीं मला। येरू म्हणे सौमित्र कोपला। तो नाटोपे कवणातें। ६८ उभयदारांसमवेत। शरण येत सूर्यसुत। आणिक वानरभार समस्त। सांगे हनुमंत समस्तां। ६९ म्हणे हो नम्रता धरून। अवघे घाला लोटांगण। तैसेंच करिती वानरगण। सुग्रीवासहित तेधवां। ७० तारा रुमा पुढें होऊन। सौमित्रासीं मागती चुडेदान। सुग्रीव धरी दृढ चरण। ऊर्मिलापतीचे तेधवां। ७१ सौमित्र म्हणे क्रोधायमान। ऐसे तुम्ही निर्दय पूर्ण। श्रीराम सच्चिदानंदघन। वनीं सोडोन राज्य करितां। ७२ तो अनंतब्रह्मांडनायक। अयोध्यानाथ पुण्यश्लोक। त्यास वनीं सोडोनि राज्यसुख। गोड कैसें वाटलें। ७३ हनुमंत बोले वचन। सर्व अपराध क्षमा करून। उठवावा सूर्यनंदन। प्रीतीकरोन ये समयीं। ७४

(इधर) लक्ष्मण आकर नगर के द्वार में खड़े हो गये। ६६ धनुष पर बाण लगाये हुए वे (ऐसे) क्षुब्ध हो गये थे मानो प्रलयाग्नि हों। (उन्हें देखकर) वानर-गण भागने लगे। (फिर) वे सुग्रीव की शरण में आ गये। ६७ तब सुग्रीव भयभीत होकर दुविधा में पड़ गया। उसने हनुमान से कहा— 'मेरी (अब) रक्षा करो।' तो उसने कहा—'लक्ष्मण क्रुद्ध हो गये हैं, (अब) वे किसी के भी द्वारा रोके नहीं जा सकते।' ६८ (तदनन्तर) सुग्रीव दोनों पत्नियों तथा समस्त वानर-दल सहित शरण में आ गया, तो हनुमान ने सबसे कहा— 'अहो, तुम सब नम्रता धारण करके (लक्ष्मण को) दण्डवत् नमस्कार करो।' तब सुग्रीव-सहित सब वानरों ने वैसा ही किया। ६९-७० तारा और रुमा ने आगे बढ़कर लक्ष्मण से 'चूड़े-दान' की अर्थात् सौभाग्य-दान (या सौभाग्य को बनाये रखने) की याचना की। तब सुग्रीव ने लक्ष्मण के पाँव दृढ़ता से पकड़ लिये। ७१ तो क्रोधायमान लक्ष्मण ने कहा— 'तुम ऐसे पूर्णतः निर्दय हो। सच्चिदानन्द श्रीराम को वन में (अकेले) छोड़कर राज कर रहे हो। ७२ वे अयोध्यानाथ श्रीराम पुण्यश्लोक अनन्त ब्रह्माण्ड-नायक हैं। उन्हें वन में छोड़कर तुम्हें राज्य-सुख मीठा कैसे लग गया?' ७३ (यह सुनकर) हनुमान ने (उनसे) यह बात कही— 'इस समय सब अपराधों को क्षमा करके इस सूर्य-नन्दन सुग्रीव को प्रेमपूर्वक उठाइए,

मग उठवोनि सूर्यसुत । राघवानुज आलिंगीत । तंव वानरभार अद्भुत । चहूंकडोन धांविन्नले । ७५ वानरचमूसमवेत । चालिला तेव्हां तमारिसुत । जैसी नदीं उचंबळोन बहुत । मिळूं जाय जलार्णवा । ७६ आवेशें वानरगण धांवत । जैसें गोकुळ तृषाक्रांत । सरितापंथें जळपानार्थ । चपळत्वेंकरून लोटत । ७७ कीं दात्याचें गृह लक्षून । धांवती वेगें याचकजन । कीं पहावया सद्‌गुरुचरण । सच्छिष्य येती त्वरेनें । ७८ कीं लग्नघडी उरली थोडी । देखोनि धांवती वऱ्हाडी । कीं मिलिंदचक्रें धांवती तांतडी । पद्ममकरंद सेवावया । ७९ तैसे आले रघुपतीजवळी । लोटांगणें घालिती सकळी । रामें आलिंगिला हृदयकमळीं । मित्रतनुज आदरें । ८० आणिकही सकळ वानरां । भेटला परत्रींचा सोयरा । कर जोडोनि पुढारां । किष्किंधेश स्तवीतसे । ८१ जय निगमागमवंद्या रघुवीरा । भक्तकैवारिया आनंदसमुद्रा । पंचकद्वयरथपुत्रा । विश्वनेत्रा विश्वपाळा । ८२ शरणागतासी तूं वज्रपंजर ।

इसकी रक्षा कीजिए।' ७४ तब सुग्रीव को उठाकर लक्ष्मण ने उसे गले लगाया; तो वानरों के बहुत बड़े दल चारों ओर से दौड़े आ गये। ७५ तब सुग्रीव वानर-सेना सहित वैसे ही चल दिया, जैसे नदी बहुत उमड़ती हुई सागर में मिलने जा रही हो। ७६ वानरगण आवेश-पूर्वक वैसे ही दौड़ रहे थे जिस प्रकार प्यास से व्याकुल गायों के झुण्ड पानी के लिए नदी की ओर जानेवाले मार्ग में चपलता से दौड़े जाते हैं; अथवा दाता के घर को लक्ष्य करके याचकजन द्रुतगति से दौड़ते जाते हैं, अथवा सद्‌गुरु के चरणों के दर्शन के लिए सच्छिष्य शीघ्रता-पूर्वक आ जाते हैं; अथवा विवाह की मुहूर्त-घड़ी में थोड़ी अवधि शेष रही देखकर बाराती दौड़ते जाते हैं, अथवा भ्रमरों के झुण्ड कमल के मधु का सेवन करने के लिए झट से दौड़ते जाते हैं, उस प्रकार वानर श्रीराम के पास आ गये। सबने दण्डवत् नमस्कार किया, तो श्रीराम ने सुग्रीव को आदर-पूर्वक हृदय-कमल से लगा लिया। ७७-८० (सबके) परलोक के आत्मीय जन श्रीराम समस्त वानरों से भी मिल गये, तो किष्किन्धा-राज सुग्रीव ने आगे (बढ़कर) हाथ जोड़कर (यों) प्रार्थना की। ८१ (उसने कहा-) 'निगमागम के लिए वंद्य हे रघुवीर, हे भक्तों के समर्थक (-रक्षक), हे आनन्द-समुद्र, हे दशरथ-सुत श्रीराम, हे विश्व-नेत्र, विश्व-पालक, आपकी जय हो। ८२ हे शार्ङ्गधर भगवान विष्णु (के अवतार),

कदा नुपेक्षी शार्ङ्गधर। जैसें सबळ काष्ठ तारी नीर। आपण वाढविलें म्हणोनी। ८३ तिळभर पाषाण न तरे जळीं। वृक्षां तारी सर्वकाळीं। शरणागतांची माउली। तैसाचि तूं श्रीरामा। ८४ पद्मासी ढका न लावी भ्रमर। काष्ठें तत्काळ करी चूर। तेवीं भक्तपाळन अभक्तसंहार। सीतावल्लभा करिसी तूं। ८५ असो भूरत्नशुद्धीसी वानर। जावया इच्छिती सर्वत्र। मग बोले विषकंठमित्र। जाऊं द्या सत्वर चहूंकडे। ८६ अर्कसुतें पाठवून दूत। वानर आणविले समस्त। अष्टादश पद्में बल अद्भुत। समरीं कृतांता जिंकिती। ८७ सुग्रीवें घालोन आण। आणिले वेगें सप्तद्वीपींचे हरिगण। समस्तांसी म्हणे सूर्यनंदन। माना वचन सत्य माझें। ८८ सीताशुद्धि करून तत्त्वतां। जानकी भेटवूं रघुनाथा। हें कार्य सिद्धीस न पावतां। निजनगरासी न जावें। ८९ सीता न भेटवितां रघुवीरा। जो कोणी जाईल माघारा। तो

आप शरण में आये हुए के लिए वज्र-पंजर हैं। वह अपने द्वारा लालित-पालित अर्थात् वर्धित है, इसलिए जिस प्रकार पानी भारी काष्ठ को (तक) तैराता है, उस प्रकार आप शरणागत की कभी उपेक्षा नहीं करते (उसकी रक्षा करते हैं)। ८३ (जिस) पानी में तिल-भर (तिल जितना बड़ा) पत्थर (तक) नहीं तैर सकता, वही पानी वृक्षों को सब समय तैराता है (डूब जाने नहीं देता)। हे श्रीराम, वैसे ही आप भी शरणागतों की माता हैं (उन्हें सदा तारते हैं)। ८४ भौंरा कमल को धक्का (आघात) नहीं पहुँचाता, परन्तु वह तो काष्ठों को (कुरेद-कुरेद कर) तत्काल चूर कर डालता है। उस प्रकार हे सीता-वल्लभ, आप भक्तों का पालन तथा अभक्तों का संहार करते हैं। ८५ अस्तु। भूमि में उत्पन्न रत्न–सीता की खोज के लिए वानर सर्वत्र जाना चाहते हैं।' तो श्रीराम ने कहा— 'उन्हें शीघ्र चारों ओर जाने दो।' ८६ दूतों को भेजकर सुग्रीव समस्त वानरों को (बुला) लाया। वे अठारह पद्म अद्भुत बलशाली वानर युद्ध में कृतान्त (यम) को (भी) जीतने में समर्थ थे। ८७ सूर्यनन्दन सुग्रीव शपथ दिलाकर (जंबु, कुश, प्लक्ष, शाल्मली, क्रौंच, शाक और पुष्कर नामक) सातों द्वीपों के वानरगणों को लिवा लाया और सबसे बोला— 'मेरी बात सत्य मानो। ८८ सीता की खोज करके हम उसे रघुनाथ को अवश्य मिला देंगे। यदि यह कार्य सफल नहीं हो जाए, तो अपने-अपने नगर न जाएँ। ८९ सुनो

मातागमनी अवधारा। ब्रह्महत्यारी पापिष्ठ। ९० त्यासी रासभावरी बैसवून। तत्काळ छेदीन नासिका कर्ण। पृथ्वीवरी फिरवीन। स्वामिद्रोही म्हणोनियां। ९१ सीताशुद्धि नोहे म्हणोन। जो कोणी येईल परतोन। त्यासी मी स्वहस्तें दंडीन। छेदीन कर-चरण तयाचे। ९२ तंव द्वीपद्वीपींचे वानर। गिरिकंदरीं जे राहणार। मेरुपाठारवासी समग्र। देत भुभुःकार पातले। ९३ नाद न मायेचि गगनीं। चालतां दणाणे मंगळजननी। शेष कूर्म दचकले मनीं। भुभुःकारध्वनि ऐकोनियां। ९४ एक हरी पर्वत उचलोनी। कंदुकवत धाडी गगनीं। एक वरचेवर झेलोनी। भिरकाविती दुसरीकडे। ९५ एक महावृक्ष उपडोनि बळें। झोडोनियां भक्षिती फळें। पृथ्वी अंबर समग्र भरलें। रीसवानरीं तेधवां। ९६ एक गगनपंथें उडिया घेती। खालीं पाडूं पाहती गभस्ती। खुंटली समीराची गती। वाट न फुटे चालावया। ९७ एक पश्चिमसमुद्रा

सीता को श्रीराम से न मिलाते हुए, जो कोई लौट जाएगा, वह मातागमनी, ब्रह्म-हत्यारा, पापिष्ठ (सिद्ध) होगा। ९० उसे गधे पर बैठाकर मैं तत्काल उसकी नाक और कानों को छेद डालूँगा, और उसे स्वामी-द्रोही के रूप में पृथ्वी में घुमाऊँगा। ९१ सीता की खोज नहीं हो सकती— ऐसा कहते हुए जो कोई लौट आएगा, उसे मैं अपने हाथ से दण्ड दूँगा, और उसके पाँव काट दूँगा।' ९२ तब द्वीप-द्वीप में रहनेवाले, पर्वतों की घाटियों में रहनेवाले तथा मेरु पर्वत के पृष्ठभाग पर रहनेवाले समस्त वानर भुभुःकार करते हुए आ पहुँचे। ९३ (उनके भुभुःकार का) वह नाद आकाश में नहीं समा रहा था। उनके चलने से पृथ्वी दनदना रही थी। उनकी भुभुःकार-ध्वनि सुनकर (पृथ्वी को मस्तक पर उठाये हुए रहनेवाला) शेष तथा (पृथ्वी का आधार-भूत) कछुआ मन में चौंक उठे। ९४ कोई एक वानर पर्वत को उठाकर उसे गेंद की भाँति (उछालकर) आकाश में उड़ाता था, तो दूसरा कोई उसे ऊपर ही ऊपर रोककर दूसरी ओर फेंक देता था। ९५ कोई एक बड़े वृक्ष को उठाकर उसे हठपूर्वक पटकते हुए उसके फलों को खाता था। तब समग्र पृथ्वी तथा आकाश रीछों और वानरों से भर गया। ९६ कोई एक आकाश मार्ग में छलाँग लगाते थे और (मानो) सूर्य को नीचे गिराना चाहते थे। (उनकी भीड़ के कारण) पवन की गति भी रुद्ध हो गयी, उसे चलने के लिए मार्ग नहीं मिल पाता था। ९७ जब

धांवती। तों अस्तासी गेला दिनपती। एक समुद्रीं पुच्छें बुडविती। ओढून काढिती जलचरें। ९८ दश लक्ष योनी उदकांत। नानाजातींचे जीव बहुत। आणोनि राघवासी दावित। चतुःसमुद्र धुंडोनियां। ९९ नानाजातींचे वानर। बहुत रंग बहुत विकार। एक उभे राघवासमोर। वांकुल्या दाविती विनोदें। १०० अति विशाळ धरोनि द्रुम। आनंदें नाचती प्लवंगम। एक गायन करिती सप्रेम। डुल्लत राम ऐकोनियां। १ राग उपराग भार्येसहित। मूर्च्छना शरीर कंपित। सप्त ताल अति संगीत। गीत प्रबंध खंडरचना। २ गद्यपद्यछंदगती। ऐकतां तटस्थ होय गभस्ती। ठायींच्या ठायीं शिळा विरती। गायन ऐकतां तयांचें। ३ असो यावरी

कोई एक पश्चिम समुद्र की ओर दौड़ते गये, तब सूर्य अस्तंगत हुआ। कोई एक अपनी-अपनी पूँछें समुद्र में डुबो देते थे और जलचर जीवों को निकाल लेते थे। ९८ पानी में दस (-दस) लाख योनियों के जीव थे। चारों समुद्रों को ढूँढ़कर उनमें से नाना जातियों के बहुत-से जीवों को (निकालकर) लाते हुए वे श्रीराम को दिखा देते। ९९ वे वानर नाना जातियों के, बहुत-से वर्णवाले तथा बहुत भावों से युक्त थे। उनमें से कोई एक श्रीराम के सामने खड़े होकर मौज में मुँह बनाते थे। १०० कोई-कोई वानर अति विशाल वृक्ष को पकड़कर, अर्थात् उठाकर आनन्द के साथ नाचते थे, तो कोई एक प्रेमपूर्वक गायन करते थे। उसे सुनकर श्रीराम डोलते या झूमते रहते थे। १०१ (भैरव, बिहाग, सारंग आदि) मुख्य राग, उपराग, रागिनियाँ, मूर्च्छनाएँ[1] जो शरीर के कम्पित हो जाने से सूचित हो रही थीं, सात ताल[2]—इनके अनुसार गीत, प्रबन्ध और खंड के रूप में विरचित अति मधुर संगीत चल रहा था। १०२

गद्य, पद्य, छन्द की (ऐसी) गतियाँ सुनकर सूर्य भी तटस्थ हो गया। उनका गायन सुनने पर स्थान-स्थान की शिलाएँ भी पिघल गयीं। १०३

टिप्पणी— (१) मूर्च्छना : संगीत शास्त्र के अनुसार प्रति दो स्वरों के बीच उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म स्वरांश; ये इक्कीस हैं।

(२) ताल : संगीत में समय का परिमाण ठीक रखने के लिए थोड़े-थोड़े, परन्तु नियत अन्तर पर हथेली या और किसी वस्तु से किया जानेवाला आघात; संगीत में उक्त प्रकार के आघातों (जिनमें से प्रत्येक आघात 'मात्रा' कहलाता है) अलग-अलग विशिष्ट वर्ग या समूह। वस्तुतः दादरा, एकताल, त्रिताल, चौताल, झपताल आदि तीस ताल प्रचलित हैं।

मित्रपुत्र । मित्रकुलमंडनातें समग्र । दावीतसे सकळ भार । पृथ्वी अंबर भरलें तें । ४ जैसे कां जळतरंग । सागरीं तळपती सवेग । परी तो पाहतांचि सांग । सागरचि एकला । ५ तैसा ब्रह्मानंदसागर रघुवीर । तेथींच्या लहरी ते वानर । असो पृथ्वी दिशा अंबर । वानरमय दिसतसे । ६ ते रघुनाथाची मनोवृत्ती । सकळ सुर अवतरले क्षितीं । वानरवेषें अपार शक्ती । उचलूं भाविती भूगोळ । ७ नळ केला दळाधीश । अठरा पद्मं वानर विशेष । बाहात्तर कोटी रीस । छप्पन्न कोटी गोलांगुल । ८ सीतावल्लभ म्हणे किष्किंधानाथा । मज वाटते बहुत चिंता । अन्न वस्त्रें या समस्तां । कोठून आतां पुरवावीं । ९ अर्कज म्हणे जनकजावरा । यांसीं फळ मूळ कंद आहारा । न मिळे तरी भक्षिती समीरा । तेणेंचि तृप्त होती हे । ११० अंबर वस्त्र हे दिगंबर । शस्त्रें पर्वत किंवा तरुवर । ऐकतां मंगळभगिनीचा वर । परम आश्चर्य मानीत । ११

अस्तु । इस प्रकार सुग्रीव ने सूर्यकुल-भूषण श्रीराम को समग्र सेना दिखा दी । उससे पृथ्वी और आकाश भर गया था । १०४ जिस प्रकार समुद्र में (अनेकानेक) जल तरंगें वेग से इधर-उधर हिलती हुई चमकती रहती हैं, परन्तु उन्हें देखने पर वह सागर लहरों-सहित एक ही दिखायी देता है, उसी प्रकार श्रीराम ब्रह्मानन्द-सागर हैं, और इस सागर की जो लहरें हैं—वे हैं (वहाँ प्रस्तुत) वानर । अस्तु ! पृथ्वी, दिशाएँ, आकाश (सब) वानरमय दिखायी दे रहा था । १०५-१०६- वह तो श्रीराम की मनोवृत्ति है, जिसके अनुसार समस्त देव भूमि पर वानरों के रूप में अवतरित हो गये थे । (मानो) वे अपनी अपार शक्ति से पृथ्वीगोल को उठाना चाहते थे । १०७

(तदनन्तर राम ने) नल को सेनाधीश (सेनापति) बनाया । उस दल में अठारह पद्म विशिष्ट वानर थे, बहत्तर करोड़ रीछ थे और छप्पन करोड़ गोलांगुल (अर्थात् एक प्रकार के बंदर जिसकी पूँछ गाय की पूँछ-सी होती है) थे । १०८ (उन्हें देखकर) सीतावल्लभ श्रीराम ने सुग्रीव से कहा— 'हे किष्किन्धा-नाथ, मुझे बहुत चिन्ता अनुभव हो रही है कि इन सबको अब अन्न, वस्त्र कहाँ से ला दें ।' १०९ (यह सुनकर) सुग्रीव ने कहा— 'हे सीतापति ! इनके लिए फल, मूल और कन्द ही आहार है, यदि वह न मिले, तो ये वायु ही भक्षण करते हैं, उससे ही ये तृप्त हो जाते हैं । ११० आकाश इनके लिए वस्त्र है, ये दिगम्बर हैं ।

सुग्रीव म्हणे राजीवनेत्रा । हा खेळ तुझा कोमलगात्रा । जाणोनि पुससी विचारा । पदवी वानरां देऊनियां । १२ असो यावरी ताराकांत । सकळ वानरां आज्ञापीत । त्रिभुवन धुंडोनि समस्त । सीताशुद्धि करावी । १३ महीतळ अतळ वितळ । सुतळ तळातळ महातळ । सातवें तें रसातळ । शोधावया धाडिले । १४ विलोकावे चतुर्दश लोक । वैकुंठ कैलासादि सकळिक । धुंडोनियां आवश्यक । सीताशोध करावा । १५ कैलासादि ब्रह्मलोक । इंद्रचंद्रसूर्यलोक । जनलोक तपोलोक । सकळ शोधूं धाडिले । १६ वरुणलोक भूलोक । यमलोक पितृलोक । मृत्युलोकासी विशेष देख । लोक चतुर्दश धुंडावे । १७ भरतखंड रमणकखंड । हरित विधिविशेष प्रचंड । केतु सुवर्ण द्राक्ष वितंड । हरिखंड नववें पें । १८ जंबुद्वीप शाकद्वीप । शालमली क्रौंच द्राक्षाद्वीप । अंगवंगादि लक्षद्वीप । छप्पन्न देश शोधिले । १९ वनें उपवनें पर्वत ।

--अर्थात् ये वस्त्र-रहित रहते हैं। पर्वत तथा वृक्ष इनके शस्त्र हैं।' यह सुनकर श्रीराम को बहुत अचरज अनुभव हो गया। १११ (तदनन्तर फिर) सुग्रीव ने कहा--'हे कमलनेत्र श्रीराम, हे कोमलगात्र श्रीराम, यह तो आपकी लीला है। यह जानते हुए भी आप वानरों को बड़प्पन देकर यह बात पूछ रहे हैं।' ११२ अस्तु। इसके पश्चात् उसने सब वानरों को आज्ञा दी कि वे समस्त त्रिभुवन ढूँढ़कर सीता की खोज करें। ११३ उसने वानरों को महीतल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल और सातवाँ रसातल (अर्थात् सातों भूतल ढूँढने के लिए भेज दिया। ११४ (उसने कहा-) 'वैकुण्ठ, कैलास आदि समस्त चौदहों लोक देखो। आवश्यकता के अनुसार ढूँढकर सीता की खोज करो।' ११५ कैलास आदि ब्रह्मलोक, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य नामक लोक, जनलोक, तपोलोक जैसे-- समस्त लोकों में (सीता की) खोज करने के लिए (वानरों को) भेज दिया। ११६ (कहा--)'वरुणलोक, भूलोक, यमलोक, पितृलोक तथा विशेष रूप से मृत्युलोक (में खोजकर) देखो। (इस प्रकार) चौदह लोक ढूँढ लो।' ११७ (उन वानरों ने) भरत, रमणक (रम्यक), हरित (हरिवर्ष), प्रचंड विधिविशेष (विधिवस), केतु, सुवर्ण, द्राक्ष, वितण्ड और नवें हरि नामक नवों खण्ड तथा जम्बु, शाक, शाल्मली, क्रौंच, द्राक्षा, अंग, वंगादि लक्ष द्वीप तथा छप्पन देश ढूँढ़ लिये। ११८-११९ बहुत-से वनों, उपवनों, पर्वतों, ऋषियों के आश्रमों, विवरों, मठों, भक्तों के बहुत

ऋषिआश्रम विवरें बहुत। भक्तांचीं स्थानें मठ बहुत। शोधावया धाडिले। १२० तीर्थें क्षेत्रें शोधिलीं नाना। परी रामांगना कोठें दिसेना। सीतेचें स्वरूप समजेना। कष्टती हे बहुसाल। २१ सीता रामाची ज्ञानशक्ती। तिची कैसी आहे स्थिती। न पुसतां व्यर्थचि भ्रमती। अहंमतीं भुलोनियां। २२ सद्गुरूसी न रिघतां शरण। कदापि नोहे आत्मज्ञान। नवनीत मंथनावांचून। हाता न चढे सर्वथा। २३ व्यर्थ हिंडतां भागले वानर। दृष्टी न पडे सीता सुंदर। परतोनि येती समग्र। अधोवदन लज्जित। २४ मग तयांचें समाधान। स्वयें करीत रघुनंदन। दक्षिणदिशेसी कोण-कोण। गेले तेंचि ऐका हो। २५ मुख्य अंगद वाळीसुत। नळ नीळ ऋषभ जांबुवंत। पांचवा तो हनुमंत। जो उमाकांत अवतरला। २६ आणिक एक शत वानरगण। रघुपतीची आज्ञा घेऊन। आक्रमिलें सकळीं गगन। वायुवेगेंकरोनियां। २७ तंव तो कृतांतासी शिक्षा करणार। महाराज जो रुद्रावतार।

से स्थानों में खोज करने के लिए भेज दिया। १२० उन वानरों ने अनेक तीर्थों तथा क्षेत्रों में खोज की, परन्तु उन्हें श्रीराम की पत्नी कहीं नहीं दिखायी दी। सीता का स्वरूप भी उनकी समझ में नहीं आ रहा था। इसलिए उन्हें बहुत प्रकार से कष्ट हो गया। १२१ (वस्तुतः) सीता श्रीराम की ज्ञान-शक्ति है। उसकी कैसी स्थिति है— अर्थात् वह कैसी है, यह न पूछते हुए वे अहंबुद्धि से मोहित होकर व्यर्थ ही (इधर-उधर) भ्रमण करते रहे। १२२ (बात यह है कि) सद्गुरु की शरण में न जाने पर (साधक को) आत्मज्ञान कदापि नहीं हो सकता। बिना मन्थन के मक्खन बिलकुल हाथ नहीं आता। १२३ व्यर्थ भ्रमण करते हुए वानर थक गये। सुन्दरी सीता कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं हो पायी, तो वे सब लज्जित, अतएव अधोमुख होकर लौट आये। १२४ तब श्रीराम ने स्वयं उनका समाधान कर दिया। अब वह सुनिए कि दक्षिण दिशा में कौन-कौन गये। १२५ (उनमें) मुख्य (रूप से) वाली-पुत्र अंगद था। तथा नल, नील, रीछ जाम्बवान थे और पाँचवाँ था वह हनुमान जिसके रूप में शिवजी अवतरित थे। १२६ (इनके अतिरिक्त) और एक सौ वानरों ने श्रीराम की आज्ञा लेकर वायुवेग से समस्त गगन पर (मानो) अधिकार कर लिया। १२७ तब कृतान्त को (भी) दण्ड देने में समर्थ तथा रुद्र का अवतार महाराज हनुमान अंगद से बोला— 'तुम सब एक क्षण (यहाँ)

अंगदासी म्हणे क्षण एक स्थिर। तुम्हीं रहावें समस्तीं। २८ कांहीं आठवलें मानसीं। पुसोनि येतों रघुपतीसी। ऐसें बोलोनि तयांसी। वायुसुत परतला। २९ एकाएकीं येऊन। दृढ धरिले रामचरण। उभा ठाकला कर जोडून। जैसा सुपर्ण विष्णूजवळी। १३० तो बोले मंजुळ उत्तरीं। म्हणे भार्गवजिता अवधारीं। सीताशुद्धि वानरीं। कैसी करावी तें सांगा। ३१ सीतेचें स्वरूप कैसें स्वामी। केवीं ओळखिजे प्लवंगमीं। रूपरेखा कसी आम्हीं। जाणावी जी राघवा। ३२ ऐसें हनुमंत बोलतां। संतोषला कमलोद्भवपिता। म्हणे तुझिया बुद्धीस तुळितां। वाचस्पति हळुवट। ३३ तुवां पुसिलें सीतास्वरूप। तरी तें जाण माझेंचि रूप। जैसी प्रभा आणि दीप। एकरूप दोहींचें। ३४ जैसी कनक आणि कांती। कीं रत्न आणि त्याची दीप्ती। तैसी जाण सीता सती। स्वरूप माझें अभेद। ३५ सीतेच्या अंगींचा सुवास। मृगमदाहूनि विशेष। अर्धयोजन आसपास। घ्राणदेवीसी संघटे। ३६ खूण ऐकावी

स्थिर रह जाओ। १२८ कुछ मन में स्मरण हो आया, (अतः) उस सम्बन्ध में रघुपति से पूछकर आता हूँ।' उनसे ऐसा कहकर हनुमान लौट आया। १२९ यकायक आते हुए उसने श्रीराम के पाँव दृढ़तापूर्वक पकड़ लिए और जैसे गरुड़ विष्णु भगवान के पास खड़ा रहता हो, वैसे वह हाथ जोड़कर (उनके पास) खड़ा रह गया। १३० फिर वह मधुर स्वर में बोला— 'हे परशुराम को जीतनेवाले श्रीराम, सुनिए। यह कहिए कि वानर सीता की खोज कैसे करें। १३१ हे स्वामी, सीता का स्वरूप कैसा है? वानर (उन्हें) कैसे पहचानें? हे राघव, हम उनकी रूपरेखा को कैसे जानें?' १३२ हनुमान द्वारा ऐसा बोलने (पूछने) पर श्रीराम सन्तुष्ट हो गये और बोले— 'तुम्हारी बुद्धि से तुलना करने पर बृहस्पति मन्द (ठहरते) हैं। १३३ तुमने सीता का स्वरूप पूछा (जानना चाहा), तो उसे मेरा ही रूप समझो। जिस प्रकार प्रभा (तेज) और दीप दोनों एकरूप होते हैं, जैसे सोना और (उसकी) कान्ति, अथवा चाँदी और (उसकी) दीप्ति (तेज) एकात्म होती हैं, उसी प्रकार, समझो, सती सीता और मेरा रूप दोनों भेद-रहित अर्थात् अभिन्न हैं। १३४-१३५ सीता के शरीर की सुगन्ध कस्तूरी (की गन्ध) से भी विशेष रूप है। वह उसके आसपास आधे योजन तक घ्राण देवी अर्थात् नाक की अधिष्ठात्री देवी को प्राप्त हो जाती है। १३६ हे हनुमान,

मारुती । मुखीं कर्पूराची वसे दीप्ती । माझें स्मरण अहोरातीं । सीता सती करीतसे । ३७ द्वादशहस्तप्रमाण साचार । सीतेसमीप पाषाण तरुवर । त्यांसी माझें स्मरण निरंतर । खूण साचार ओळखें । ३८ अंतरखूण सांग सीतेतें । कैकयीगृहीं म्यां स्वहस्तें । वल्कलें नेसविलीं तियेतें । वनवासासी निघतां पैं । ३९ मग विनवी समीरात्मज । ऐसी खूण द्यावी मज । जेणें अवनिजा मानी सहज । दास मी तुमचा सत्य कीं । १४० ऐकोनि मारुतीचें वचन । तोषलें रघुनाथाचें मन । धन्य धन्य म्हणवून । शब्दरत्नें गौरविला । ४१ धन्य ते अंजनी सज्ञान । ऐसें प्रसवली निधान । ज्याच्या प्रतापाखालीं संपूर्ण । ब्रह्मांड ठेंगणें होय कीं । ४२ प्रेम नावरे रघुनाथा । हृदयीं आलिंगिलें हनुमंता । वरदहस्त ठेवोन माथां । करीं मुद्रिका घातली । ४३ खूण दिधली अवतारमुद्रिका । जेणें मानी जनककन्यका । मग साष्टांगें रघुनायका । हनुमंत वंदी ते काळीं । ४४ पुढती

(सीता का विशेष) लक्षण सुनो— उसके मुख में कपूर की (-सी) कान्ति है। वह सती सीता मेरा दिनरात स्मरण करती रहती है। १३७ सीता से सचमुच बारह हाथ दूर तक जो पाषाण और वृक्ष हैं, उन्हें मेरा निरन्तर स्मरण होता रहता है (वे मेरा स्मरण करते हैं)। इसे सच्चे लक्षण के रूप में पहचानो। १३८ सीता से (मिलने पर) यह अन्तर-चिह्न (के रूप से) बताओ कि वनवास के लिए निकलते हुए मैंने कैकेयी के गृह में अपने हाथों उसे वल्कल पहना दिये थे।' १३९ अनन्तर हनुमान ने विनती की— 'मुझे ऐसा (कोई) चिह्न दीजिए, जिससे वे भूमिकन्या सहज ही मान लें कि मैं आपका सचमुच दास हूँ।' १४० हनुमान की बात सुनकर श्रीराम का मन तृप्त हो गया और उन्होंने उसे 'धन्य! धन्य!' कहकर गौरवान्वित कर दिया। १४१ उन्होंने कहा— 'वह ज्ञानवती अंजनी धन्य है जिसने ऐसे (पुत्र रूपी) धन को जन्म दिया, जिसके प्रताप के नीचे (सामने) ब्रह्माण्ड ठिंगना (प्रतीत) हो जाता है।' १४२ (यह कहते हुए) श्रीराम द्वारा प्रेम (का आवेग) रोका नहीं जा रहा था। उन्होंने हनुमान को हृदय से लगा लिया और उसके मस्तक पर वरद-हस्त रखते हुए उसकी अंगुली में अँगूठी पहना दी। १४३ (और कहा—) 'मैंने यह अवतार-मुद्रिका चिह्न के रूप में दी है, जिससे जनक-कन्या मान जाए।' तो उस समय हनुमान ने श्रीराम को साष्टांग नमस्कार किया। १४४ फिर उसने श्रीराम के मुख

विलोकी रामवदन। हृदयीं रेखिलें तैसेंचि ध्यान। श्रीराम सद्गद होऊन। बोलता जाहला ते काळीं। ४५ कधीं येशील परतोन। मग म्हणे वायुनंदन। एक मास सरतां पूर्ण। सीतादर्शन घेऊनि येतों। ४६ ऐसें बोलून हनुमंत। यशस्वी पूर्ण अयोध्यानाथ। आनंदें गर्जोनि अकस्मात। गगनपंथे उडाला। ४७ जैसा योगभ्रष्ट जन्म पावत। मागुती स्वरूपीं ऐक्य होत। तैसे कपी वाट पाहात। वायुसुत आला तेथें। ४८ रामस्मरणें अवघे गर्जती। सपक्ष नग जैसे उडती। तैसे निराळमार्गें सर्व जाती। अगस्तिदिशा लक्षोनि। ४९ चपळ पाणिद्वय चरण। गगनीं झेंपावती हरिगण। यशस्वी अयोध्याप्रभु म्हणोन। वारंवार गर्जती। १५० अंतरिक्षीं जाती कपिगण। तों देखिलें शापदग्ध वन। वानरांचीं किरणें अडखळून। मुरकुंडी वळोन पडियेले। ५१ मागुती उड्डाण घेऊं जाती। समस्तांच्या आकर्षिल्या शक्ती। एकाकडे एक पाहाती। तटस्थ मारुती जाहला। ५२ ऐसें काय कारण

को (ध्यानपूर्वक) देखा और उनके वैसे ही रूप को अपने हृदय में अंकित कर लिया। उस समय बहुत गद्गद होकर श्रीराम ने कहा (पूछा)—। १४५ 'तुम कब लौटोगे?' तो हनुमान ने कहा—'एक पूरे महीने के समाप्त होते ही मैं सीता के दर्शन कर आऊँगा। १४६ अयोध्यानाथ श्रीराम पूर्णतः सफल हों'—ऐसा कहकर हनुमान ने आनन्द-पूर्वक गर्जन करते हुए यकायक आकाशमार्ग पर उड़ान भरी। १४७ जिस प्रकार योग-भ्रष्ट व्यक्ति (संसार में) जन्म को प्राप्त होता है और अनन्तर भगवत्-स्वरूप में एकरूप हो जाता है, उसी प्रकार दूर-गत हनुमान (पुनः) वहाँ आ गया, जहाँ वानर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। १४८ तब उन सबने श्रीराम का स्मरण कर उनके नाम का (जय-)घोष किया। (तदनन्तर) वे पक्षधारी पर्वतों-से उड़ गये और दक्षिण दिशा को लक्ष्य करके, वे सब आकाश मार्ग से चल दिये। १४९ दोनों हाथों और दोनों चरणों से वे आकाश में चपलतापूर्वक लपकते जा रहे थे और 'अयोध्या-प्रभु श्रीराम सफल हों' कहते हुए बार-बार गरज रहे थे। १५० जब वे कपिगण आकाश में जा रहे थे, तो उन्होंने एक शाप-दग्ध वन को देखा और उनकी छलाँग अर्थात् उड़ान कुण्ठित होने से वे लोटपोट होकर गिर पड़े। १५१ जब वे फिर से उड़ान भरने लगे, तो सबकी शक्ति आकृष्ट (अतएव कुंठित) हो गयी। वे एक-दूसरे की ओर देखने लगे। (इधर)

व्हावयासी । तरी तेथें पूर्वी दंडक ऋषी । महातापसी तेजोराशी । पुत्र त्यासी एक होता । ५३ अष्टादश वरुषांचा सुत । वनीं क्रीडतां अकस्मात । वनदेवता अद्भुत । भयानक धांविन्नली । ५४ तिनें भक्षिला ऋषिनंदन । दंडक ऋषीनें तें जाणोन । शापिलें तेव्हां तें कानन । महाक्रोधेंकरूनियां । ५५ जो या वनीं संचरेल प्राणी । तो मरण पावेल तेचि क्षणीं । कपी सावध रामस्मरणीं । म्हणोनि प्राण वांचले । ५६ असो तो दंडकाचा नंदन । विशाळ ब्रह्मराक्षस होऊन । नित्य भक्षी जीव मारून । द्वादश योजनें भोंवते । ५७ तेणें देखोन वानर । मुख पसरोन भयंकर । भक्षावया आला सत्वर । कपिवीर गजबजिले । ५८ ऐसें देखोन वालिकुमर । परम-प्रतापी प्रचंडवीर । निःशंक धांवोनि सत्वर । राक्षस चरणीं धरियेला । ५९ गगनीं गरगरां भोवंडिला । उर्वीवरी आपटिला । शरीर चूर जाहलें ते वेळां । मृण्मयघटशकलासारिखें । १६० ऐसा तो दंडकाचा पुत्र । पावला तत्काळ पूर्वशरीर । मग

हनुमान तटस्थ (स्थिर) हो गया । १५२ ऐसा किस कारण हुआ ? (बात यह है कि) वहाँ पूर्वकाल में दण्डक नामक एक महातापसी और तेजोराशि ऋषि (रहता) था । उसके एक पुत्र था । १५३ अठारह वर्ष अवस्थावाला वह पुत्र जब वन में खेल रहा था, तो एक बहुत भयानक वनदेवी (उसकी ओर) दौड़ी आयी । १५४ उसने ऋषि के पुत्र को खा डाला । तब इसे जानकर दण्डक ऋषि ने बहुत क्रोधपूर्वक उस वन को अभिशाप दिया कि जो प्राणी इस वन में संचरण करेगा, वह उसी क्षण मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा । (परन्तु) वे कपि श्रीराम के स्मरण (करते रहने) के कारण सावधान थे, इसलिए उनके प्राण बच गये । १५५-१५६ अस्तु । दण्डक ऋषि का वह पुत्र विशाल ब्रह्मराक्षस होकर चारों ओर बारह योजन तक के प्राणियों को नित्य मारकर खा डाला करता । १५७ वानरों को देखकर वह अपने भयंकर मुख को फैलाये हुए झट से उन्हें खाने के लिए आ गया, तो वे कपिवीर घबड़ा उठे । १५८ ऐसा देखकर, परम प्रतापी प्रचण्ड वीर अंगद ने निःशंक होकर झट से दौड़ते हुए उस राक्षस का पाँव पकड़ लिया । १५९ और आकाश में चक्राकार घुमाते हुए उसे पृथ्वी पर पटक डाला, तो उसका शरीर उस समय मिट्टी के घड़े के टुकड़ों की भाँति चूर-चूर हो गया । १६० ऐसा वह दण्डक ऋषि का पुत्र तत्काल अपने पूर्व शरीर को प्राप्त हो गया,

तेणें आपुला समाचार। वानरांसी सांगितला। ६१ वंदोनियां वानरगणा। तत्काळ गेला पितृदर्शना। पुढें रामदूतां पंथ सुचेना। दिशा समजेना कोणती। ६२ वृक्ष फळ ना जळ। दग्ध वन दिसे सकळ। क्षुधेतृषेनें विकळ। वानर तेव्हां चरफडती। ६३ ओढवलें परम कठिण। शोधिती शुष्क विपिन। तंव एका विवरांतून। पक्षी फळें आणिती। ६४ त्या विवरद्वारीं येऊन। थोकले तेव्हां वानरगण। एक योजन लंबायमान। तमें करून पूर्ण तें। ६५ पुढें जाहला वायुकुमर। मागें येती समस्त वानर। जैसी संतांची कांस मुमुक्षु नर। धरिती आत्मसाधनासी। ६६ कीं वेदाध्ययनेंकरून। वर्तती जैसे विद्वज्जन। कीं खड्ग-धारें तीर्थस्नान। करूनि स्वर्गस्थ होती तैसे। ६७ हनुमंताच्या आधारें समस्त। तैसे वानर विराजत। परी कासावीस जाहले तेथ। मूर्च्छा येऊनि पडती पैं। ६८ श्वासोच्छवास कोंडोन। आकर्षले सर्वांचे प्राण। मग हनुमंतें पुच्छेंकरून। सकळ बांधोन उचलिले। ६९ योजन

तो उसने वानरों को अपना वृत्तान्त बता दिया। १६१ (तदनन्तर) वह वानरों को प्रणाम करके पिता के दर्शन के लिए तत्काल चला गया। आगे (चलकर) इन रामदूतों को मार्ग सुझायी नहीं दे रहा था, तथा यह समझ में नहीं आ रहा था कि वह कौन-सी दिशा है। १६२ वहाँ न वृक्ष एवं फल थे, न पानी। समस्त वन दग्ध दिखायी देता था। तब सब वानर भूख और प्यास से तरसने लगे। १६३ (अब) तो परम कठिन (अवस्था) बीत आयी। वे सूखे वन में (अन्न-जल) खोजते रहे, तो (दिखायी दिया कि) एक विवर से पक्षी फल ला रहे हैं। १६४ तब वानरगण उस विवर के द्वार पर आकर रुक गये। वह विवर एक योजन लम्बा तथा अँधेरे से पूर्ण रूप से भरा हुआ था। १६५ (इस स्थिति में) हनुमान आगे हो गया (चल दिया), और उसके पीछे समस्त वानर वैसे चलने लगे, जैसे आत्मज्ञान की साधना के लिए मुमुक्षु जन सन्तों का आश्रय लेते हुए अनुगमन करते हैं, अथवा जैसे विद्वान् लोग वेदों का अध्ययन करके व्यवहार करते हैं, अथवा खड्ग की धार से युद्ध-भूमि रूपी तीर्थक्षेत्र में मरकर वीर पुरुष स्वर्ग जाते हैं। ऐसे पुरुष जिस प्रकार शोभायमान होते हैं, उसी प्रकार हनुमान के आधार (के बल से) समस्त वानर शोभायमान थे। फिर वे (अब) बहुत व्याकुल हो गये और वहाँ मूर्छित होकर गिर पड़े। १६६-१६८ (सबकी) साँस-उसाँस के घुट जाने के कारण सब के प्राण खिंच-से

एक क्रमोनि विवर। मारुती गेला सत्वर। पुढें प्रकाश देखिला अपार। वन सुंदर सफळ तें। १७० पुष्पफळभारें द्रुम। वाढिन्नले भेदीत व्योम। त्या वृक्षांवरी प्लवंगम। चढावया शकती ना। ७१ शरीर जाहलें परम क्षीण। यालागीं ऊर्ध्व न होती किरण। तों सुप्रभा खेचरी येऊन। उभी ठाकली तेधवां। ७२ तियेप्रती पुसे वायुनंदन। हेममय नगर पूर्ण। फळें उदक अमृतासमान। कवणें हें स्थान निर्मिलें। ७३ सुप्रभा सांगे पूर्ववृत्तांत। ये स्थळीं होता मय दैत्य। तेणें तप करून अद्भुत। विष्णुसुत प्रसन्न केला। ७४ त्याकारणें हें स्थान। विरिंचीनें निर्मिलें येऊन। त्यासी दिधलें वरदान। विवरामाजी चिरंजीव तूं। ७५ विवराबाहेर येतां जाण। तत्काळचि पावसी मरण। तो नानाकौटिल्यविदाण। मंत्रहवन जाणतसे। ७६ बहुत तप आचरोन। दैत्यांचें इच्छी कल्याण।

(अवरुद्ध) गये, तो हनुमान ने पूँछ से बाँधकर सबको उठा लिया। १६९ (इस प्रकार उन्हें उठाये हुए) हनुमान झट से एक योजन विवर (के भीतर का मार्ग) तय करके (आगे) गया, तो सामने उन्होंने बहुत प्रखर प्रकाश देखा। (वहाँ पर) वह फलों से युक्त सुन्दर वन था। १७० (वहाँ के) फूलों और फलों के भार से युक्त वृक्ष आकाश को भेदते हुए बढ़ गये थे। उन वानरों में उन वृक्षों पर चढ़ने की शक्ति नहीं थी। १७१ उनका शरीर बहुत क्षीण हो गया था, इसलिए उनकी छलाँग (बहुत) ऊपर नहीं पहुँच पा रही थी। तब सुप्रभा नामक एक योगिनी (वहाँ आकर) खड़ी हो गयी। १७२ हनुमान ने उससे पूछा— 'यह समस्त नगर सुवर्णमय है, (यहाँ के) फल और पानी अमृत के समान (मधुर) हैं। किसने इस स्थान का निर्माण किया?' १७३ (इसपर) सुप्रभा ने पूर्वकथा कही— 'इस स्थान पर मय नामक दैत्य (रहता) था। उसने अद्भुत तपस्या करके ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया। १७४ उसके लिए विधाता ने (यहाँ) आकर इस स्थान (नगर) का निर्माण किया और उसे वरदान दिया कि तुम इस विवर में चिरंजीवी बने रहोगे; और जान लो, विवर के बाहर आने पर तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे।' वह नाना प्रकार के जारण-मारण आदि सम्बन्धी युक्तियाँ तथा मंत्र हवन जानता था। १७५-१७६ बहुत तप का आचरण करते हुए वह दैत्यों के कल्याण की अभिलाषा किया करता था। अनन्तर इंद्र ने विधाता से प्रार्थना करते हुए उसके द्वारा हेमा नामक एक नारी

मग इंद्रें विधीस प्रार्थून। हेमा नारी निर्मिली। ७७ स्वरूपें लावण्यें आगळी। त्या विवरांत प्रवेशली। मयदैत्यें देखिली ते वेळीं। देखोनि तियेसी भूलला। ७८ म्हणे मज तूं वरीं वो सुंदरी। ते म्हणे चला विवराबाहेरी। मरण विसरोन दुराचारी। उर्वीवरी पातला। ७९ तों इंद्रें घालोनि वज्रप्रहार। तेथेंचि मारिला मयासुर। मग हेमेलागीं नगर। ब्रह्मदेवें दीधलें। १८० मग कित्येक काळ क्रमोनि देखा। हेमा गेली सत्यलोका। मी तिची परिचारिका। वननगर रक्षीतसें। ८१ देवां दुर्गम हें स्थान। मज हेमा बोलिली वचन। येथें येतील वानरगण। तुज उद्धरोनि जाती ते। ८२ हनुमंत सांगे पूर्ववृत्तांत। सीताशुद्धीसी जातों समस्त। क्षुधाक्रान्त तृषाक्रान्त। या विवरांत प्रवेशलों। ८३ मग तिनें घातला नमस्कार। फळें पुष्पें आणोनि सत्वर। वानरांसहित वायुकुमर। षोडशोपचारीं पूजिला। ८४ फळें उदक सेवून। तृप्त जाहले वानरगण। मग परतले तेथून। परी

को उत्पन्न कराया। १७७ सौन्दर्य तथा लावण्य में अनोखी वह नारी उस विवर में प्रविष्ट हो गयी। उस समय मय दैत्य ने उसे देखा; तो देखते ही वह (उस पर) मोहित हो गया। १७८ उसने कहा— 'हे सुन्दरी, तुम मेरा वरण करो।' इस पर वह बोली— 'तो चलो इस विवर के बाहर।' (इस स्थिति में) मृत्यु (सम्बन्धी बात) को भूलकर वह दुराचारी (विवर के बाहर निकलकर) पृथ्वी पर आ पहुँचा। १७९ त्यों ही इन्द्र ने वज्र का आघात करके मयासुर को वहीं मार डाला। अनन्तर विधाता ने वह नगर हेमा को प्रदान किया। १८० देखो, फिर बहुत काल व्यतीत कर हेमा सत्यलोक गयी। उसकी परिचारिका (सेविका के रूप में) मैं इस वन तथा नगर की रक्षा कर रही हूँ। १८१ यह स्थान देवों (तक) के लिए दुर्गम है। हेमा ने मुझसे यह बात कही कि यहाँ वानरगण आएँगे और वे तुम्हारा उद्धार करेंगे। १८२

(तदनन्तर) हनुमान ने उससे पूर्ववृत्तान्त कहा— 'हम सीता की खोज के लिए जा रहे हैं। (परन्तु इस समय) हम सब भूख और प्यास से व्याकुल होकर इस विवर में प्रवेश कर गये हैं। १८३ तब उसने उन्हें (दण्डवत्) प्रणाम किया और झट से फल और फूल लाकर सब वानरों सहित हनुमान का सोलह उपचारों से पूजन किया। १८४ (तब) फलों और पानी का सेवन करके वानरगण तृप्त हो गये, फिर वहाँ से

विवरद्वार न सांपडे । ८५ मग सुप्रभेसी म्हणे हनुमंत । माते आम्हां दावीं शुद्ध पंथ । तेव्हां ते खेचरी बोलत । नेत्र समस्त झांका तुम्ही । ८६ ऐसें एकतां वचन । समस्तीं विवरीं झांकिले नयन । सुमुहूर्तीं एक मंत्र जपोन । काय तेव्हां बोलिली । ८७ मग म्हणे उघडा नेत्र । तों समुद्रतीरीं उभे वानर । सुप्रभा न दिसे साचार । नवल थोर वर्तलें । ८८ कपी आश्चर्य करिती ते क्षणीं । जैसे संसारदुःखें वेष्टिले प्राणी । त्यांसी निजज्ञान उपदेशूनी । सद्गुरु काढी बाहेर । ८९ कीं जळते घरींहून काढिलें । कीं पूरीं बुडतां वांचविलें । कीं शिर छेदितां सोडविलें । तैसें केलें सुप्रभेनें । १९० कृपाळु तो रविकुळभूषण । तेणेंच ते दिधली धाडोन । समुद्रतीरीं वानरगण । ब्रह्मानंदें नाचती । ९१ इकडे तें विवर त्यजूनि सुप्रभा । किष्किंधेसी जाऊन सीतावल्लभा । भेटली कौसल्यागर्भा । दृष्टीभरोनि न्याहाळित । ९२ म्हणे ब्रह्मानंदा आत्मयारामा । मन पावन

वे लौट चले । परन्तु उन्हें (अब) विवर का द्वार नहीं मिल रहा था । १८५ तो हनुमान ने सुप्रभा से कहा, 'हे माता, हमें शुद्ध (सरल, सुगम) मार्ग दिखा दो ।' तब वह योगिनी बोली, 'तुम सब (अपनी-अपनी) आँखों को बंद कर लो ।' १८६ ऐसी बात सुनते ही सबने उस विवर में (अपनी-अपनी) आँखें बंद कर लीं । तब मुहूर्त भर एक मंत्र का जप करके वह क्या बोली ? १८७ वह बोली— 'आँखें खोलो ।' तो वानर समुद्र-तट पर खड़े थे और (इधर) सुप्रभा सचमुच (कहीं) नहीं दिखायी दे रही थी । (इस प्रकार) बड़ा आश्चर्य घटित हो गया । १८८ उस क्षण वानर आश्चर्य अनुभव कर रहे थे । जिस प्रकार जब संसार के दुःखों से प्राणी घिरे हों, तो सद्गुरु ने उन्हें आत्मज्ञान का उपदेश देते हुए बाहर निकाला हो; अथवा (किसी ने उन्हें) जलते घर में से निकाल लिया हो; अथवा (उन्हें) बाढ़ में डूबते हुए बचा लिया हो, अथवा मस्तक के काट डालते हुए छुड़ा लिया हो, उसी प्रकार सुप्रभा ने (उन्हें संकट-मुक्त) कर लिया । १८९-१९० वे रविकुलभूषण श्रीराम कृपालु हैं; (वस्तुतः) उन्होंने ही उसे भेज दिया था । (तदनन्तर) वानरगण समुद्र-तट पर ब्रह्मानन्द-पूर्वक नाचते रहे । १९१ (इधर) उस विवर का त्याग करके वह सुप्रभा (नामक नारी) किष्किन्धा जाकर श्रीराम से मिली और उन्हें उसने ध्यान से देखा । १९२ (फिर) उसने

करीं मेघश्यामा। तीस ज्ञान सांगोन बदरिकाश्रमा। राघवेंद्रें पाठविली। ९३ काळांतरें बदरिकाश्रमीं। देह ठेवोनि कैवल्यधामीं। जैसा आर्द्र घट मिळे भूमीं। तैसीच स्वरूपीं समरसली। ९४ इकडे समुद्रतीरीं वानर। चिंताक्रान्त करिती विचार। म्हणती शुद्धि न लागे अणुमात्र। कैसा प्रकार करावा। ९५ एक म्हणती परतोनि जावें। काय रघुवीरासी सांगावें। आमुचेनि हे कदा नोहे। सीताशुद्धि म्हणोनियां। ९६ तरी आतां द्यावे जी प्राण। परी नव जावें परतोन। व्यर्थ काय वांचोन। प्रेतवत संसारीं। ९७ मग आणोन काष्ठभार। ढीग रचिले पर्वताकार। तत्काळचि वैश्वानर। वानरवीरीं चेतविला। ९८ तों जांबुवंत बोले वचन। मीच आधीं सेवीन कृशान। यावरी अंजनीगर्भरत्न। ऋक्षपतीप्रति बोले। ९९ म्हणे जांबुवंता सर्वज्ञा। मजप्रति द्यावी आधीं आज्ञा। यावरी तो ऋक्षराणा। प्रत्युत्तर देतसे। २०० मी बहु वडील तुम्हांहून। मज आधीं देइजे हा मान। मग बोले

कहा— 'हे ब्रह्मानन्द, हे आत्माराम, हे मेघश्याम, मुझे पावन कीजिए।' (तब) श्रीराम ने उसे (आत्म-) ज्ञान बताकर बदरिकाश्रम भेज दिया। १९३ कालान्तर में उसने कैवल्यधाम बदरिकाश्रम में देह छोड़ दी और जिस प्रकार गीला घट भूमि में मिल जाता है, उस प्रकार वह भगवत्-स्वरूप में विलीन हो गयी। १९४

(इधर) समुद्र तट पर वानर चिन्ता से व्याकुल होकर विचार कर रहे थे। वे कह रहे थे— (अब तक सीता की) खोज अणु भर भी नहीं लगी। अब क्या करें? १९५ कोई एक कहते— '(अब) लौट जाएँ। (परन्तु) श्रीराम से क्या कह दें कि हमसे सीता की खोज कदापि नहीं हो सकेगी। १९६ इसलिए अहो, अब प्राण त्याग दें, परन्तु लौट न जाएँ। संसार में प्रेतवत् बचे रहने से क्या होगा?' १९७ फिर उन्होंने लकड़ी के गट्ठर लाकर पर्वताकार ढेर के ढेर लगा दिये। और उन वानर वीरों ने तत्काल अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी। १९८ तब जाम्बवान ने यह बात कही— 'मैं ही पहले अग्नि सेवन करूँगा।' इसपर हनुमान ने उस ऋक्षपति (रीछों के प्रमुख) जाम्बवान से कहा— 'हे सर्वज्ञ जाम्बवान्, मुझे आज्ञा दो।' इसपर ऋक्षराज ने प्रति उत्तर दिया। १९९-२०० 'मैं तुमसे बहुत बड़ा हूँ, इसलिए पहले मुझे यह

वायुनंदन। वडील आयुष्यें मी असें। १ जयाचे गांठीं आयुष्य फार। तोचि वृद्ध म्हणावा साचार। ज्याचें मरण जवळी निर्धार। तोच धाकुटा बोलिजे। २ तुझें आयुष्य मागें सरलें। माझें बहुत पुढें उरलें। ज्याचे गांठीचें धन वेंचलें। तरी भाग्यवंत नव्हे तो। ३ असो मग जांबुवंताप्रती। समस्त वानर विनविती। श्रीराममुद्रांकित मारुती। त्यासी आज्ञा देइंजे। ४ मग हनुमंतें झांकून नेत्र। हृदयीं आठविला कामान्तकमित्र। जो जीमूतवर्ण कोमलगात्र। अति पवित्र नाम ज्याचें। ५ स्मरण करून हनुमंत। लोटला तेव्हां अग्निआंत। उडीसरसा अग्नि शांत। परम अद्भुत वर्तलें। ६ वानर म्हणती कच्चें जाहले। काष्ठढीग पुढती रचिले। आकाश कवळिलें ज्वाळें। दिशा धूमें दाटल्या। ७ सपक्ष नग येत अकस्मात। तैसा लोटला हनुमंत। तत्काळ जाहला अग्नि शांत। न दिसे किंचित कोठें पैं। ८ ऐसेंच केलें तीन वेळ। परी न मरे

सम्मान दो।' तब हनुमान बोला— 'अवस्था से तो मैं बड़ा हूँ। २०१ (क्योंकि) जिसके पास बड़ी आयु हो सचमुच वही बूढ़ा कहा जाए और जिसकी मौत निश्चय ही निकट हो उसी को छोटा कहें। २०२ तुम्हारी आयु पहले (बहुत-सी) समाप्त हो गयी, मेरी आगे बहुत शेष है। यदि किसी की गाँठ का धन खर्च हुआ हो, तो वह भाग्यवान् नहीं है।' २०३ अस्तु। अनन्तर समस्त वानरों ने जाम्बवान से विनती की—'हनुमान श्रीराम की मुद्रा से अंकित है, अतः उसे आज्ञा दो।' २०४ तब आँखों को बन्द करके हनुमान ने उन श्रीराम का हृदय में स्मरण किया, जो शिवजी के मित्र हैं, जो मेघश्याम तथा कोमलगात्र हैं तथा जिनका नाम अति पवित्र है। २०५ श्रीराम का स्मरण करते हुए तब हनुमान आग में कूद पड़ा, तो उनके कूदने के साथ ही अग्नि शान्त हो गयी। (इस प्रकार) परम चमत्कार हो गया। २०६ (यह देखकर) वानरों ने कहा (सोचा)— 'यह अग्नि (-कुण्ड) तो कच्ची हो गयी', इसलिए उन्होंने लकड़ी के ढेर के ढेर आगे रच दिये। उससे ज्वालाओं ने आकाश को (मानो) लपेट लिया और दिशाएँ धुएँ से भर गयीं। २०७ जैसे पंखों से युक्त पर्वत (आकाश से) यकायक आते हों, वैसे हनुमान (अग्नि में) कूद पड़ा। परन्तु वह अग्नि तत्काल (फिर से) शान्त हो गयी, वह किंचित् भी कहीं नहीं दिखायी दे रही थी। २०८ उसने ऐसा ही

अंजनीबाळ। आश्चर्य करिती कपी सकळ। वर्णिती बळ मारुतीचें। ९ कपी म्हणती हनुमंता। आम्हांसी मरों दे तरी आतां। येरू म्हणे सागरीं तत्त्वतां। प्राण देऊं चला हो। २१० तेथोन निघाले वानर। तों समीप देखिला सरितेश्वर। चिंताक्रान्त वायुकुमर। ध्यानस्थ बैसला एकीकडे। ११ वरकड ते वानरगण। चिंतातुर करिती शयन। तों संपाती मुख पसरून। भक्षावया पातला। १२ अरुणपुत्र तो पक्षी थोर। जटायूचा ज्येष्ठ सहोदर। मुख पसरोनि भयंकर। वानरांसी भेडसावी। १३ जवळ देखोनि संपाती। कपी एकमेका बोलती। जटायूसारिखा निश्चितीं। दिसतसे द्विजराज हा। १४ म्हणती अनायासेंकरून। आम्हांसी आलें जवळीं मरण। मग आठवून रघुनंदन। नामस्मरणें गर्जती। १५ ज्याचें नाम घेतां संकटीं। निर्विघ्न होय सकळ सृष्टी। अपाय ते उपाय शेवटीं। दुःख तें सुख होय। १६ असो नामघोषें कपी गर्जती। तों पक्ष फुटले

तीन बार किया, परन्तु वह अंजनी-पुत्र नहीं मर सका था। तो सब वानर आश्चर्य अनुभव करने लगे और वे हनुमान के बल का बखान करते रहे। २०९ वानरों ने हनुमान से कहा— 'अब हमें तो मरने दो।' तो उसने कहा— 'अहो चलो, सचमुच समुद्र में (डूबकर) प्राण दें।' २१० (यह उचित समझकर) वहाँ से वानर चल दिये, तो पास ही में उन्होंने समुद्र देखा। फिर हनुमान चिन्ताक्रान्त होकर एक ओर ध्यान में मग्न हो बैठ गया। २११ (और) वे दूसरे वानरगण चिन्तातुर होकर सोने के हेतु लेट गये, त्यों ही मुँह बाये सम्पाती उन्हें खाने के लिए आ पहुँचा। २१२ वह प्रचण्ड पक्षी (सूर्य के सारथी) अरुण का पुत्र, तथा जटायु का सगा भाई था। भयंकर रूप से मुख को फैलाये हुए वह वानरों को डराने लगा। २१३ सम्पाती को निकट देखकर वानर एक-दूसरे से बोले— 'निश्चय ही यह पक्षिराज जटायु के समान दिखायी दे रहा है।' २१४ फिर उन्होंने कहा (सोचा)— 'बिना यत्न किये मौत हमारे निकट आ गयी।' तो श्रीराम का स्मरण करके उन्होंने श्रीराम के नामस्मरण के साथ गर्जन किया। २१५ संकट (-काल) में उनका नाम लेने पर सब दृष्टियों से निर्विघ्न हो जाते हैं और जो अपाय हो, वह अन्त में उपाय तथा जो दुःख हो वह सुख हो जाता है। २१६ अस्तु। नाम का घोष करते हुए कपियों ने गर्जन

संपातीप्रती । तेणें लोटांगण घातलें क्षितीं । जयजयकार करूनियां । १७ म्हणे धन्य-धन्य तुम्ही वानर । केला माझा आज उद्धार । कोठें आहे रघुवीर । माझा सहोदर तेथें असे । १८ बहुत दिवस जाहले । परी त्याचा समाचार न कळे । तों कपिवीर बोलिले । जटायु मारिला रावणें । १९ पितृव्य म्हणोनि रघुनाथ । जटायूसी होता मानित । त्याची उत्तर क्रिया समस्त । राघवें केली निजांगें । २२० जटायूचें सार्थक केलें । संपातीनें अंग धरणीवरी टाकिलें । म्हणे अहा ओखटें जाहलें । दिशा शून्य बंधूविणें । २१ सूर्यमंडळ पहावयालागोनी । दोघे गेलों होतों उडोनी । तैं म्यां पक्षाखालीं घालूनी । जिवलग आपुला वांचविला । २२ माझे पक्ष दग्ध जाहले ते वेळीं । मग म्यां भयें हांक फोडिली । सूर्यरथीं अरुणें ऐकिली । स्नेहेंकरूनि कळवळला । २३ मग सूर्यासी प्रार्थून । वर दिधला मजलागून । रामदूतांचें होतां दर्शन । पक्ष संपूर्ण फुटतील । २४ जैसा पक्षहीन पर्वत । तैसा दडलों होतों येथ । आजि पक्ष

किया, तो सम्पाती के पंख निकल आ गये। तब उसने जयजयकार करते हुए भूमि पर दण्डवत् प्रणाम किया। २१७ (फिर) वह बोला— 'तुम वानर धन्य हो, धन्य हो। आज तुमने मेरा उद्धार किया। (बताओ,) श्रीराम कहाँ हैं? मेरा सगा भाई (भी) वहाँ है। २१८ बहुत दिन हुए, परन्तु उसका कोई समाचार ज्ञात नहीं हुआ।' तो वानरों ने कहा— 'जटायु को रावण ने मार डाला। २१९ श्रीराम जटायु को पितृव्य (चाचा के रूप में) मानते थे। (अतः) उन्होंने अपने हाथों उसकी समस्त उत्तर-क्रिया सम्पन्न की। २२० जटायु को चरितार्थ किया।' (यह सुनते ही) सम्पाती ने धरती पर देह को लुढ़का डाला और कहा— 'हाय, बुरा हुआ। (मेरे लिए) बिना बन्धु के दिशाएँ सूनी हो गयीं। २२१ (जन्म होते ही) हम दोनों सूर्य-मण्डल को देखने के लिए उड़ते हुए गये थे। (उस समय) मैंने अपने उस प्राण-प्रिय को पंखों के नीचे रखकर बचा लिया था। २२२ उस समय (सूर्य के ताप से) मेरे पंख जल गये। फिर मैं भय से चीख उठा। यह अरुण ने सूर्य के रथ में सुना, तो वह स्नेहपूर्वक व्याकुल हो गया। २२३ अनन्तर सूर्य से प्रार्थना करके उसने मुझे वर दिला दिया— श्रीराम के दूतों के दर्शन होते ही सम्पूर्ण पंख उत्पन्न हो जाएँगे। २२४

आले अकस्मात। तुमच्या प्रतापेंकरूनियां। २५ हा चंद्रगिरि पर्वत। एथें चंद्र नामा आहे महंत। तो सद्‌गुरु माझा यथार्थ। मज वेदान्तज्ञान सांगे। २६ असो संपाती पुसे वानरांतें। कोठें जातां येणें पंथें। कपी म्हणती सीताशुद्धीतें। करूं जातों पक्षींद्रा। २७ संपाती मग बोलत। पैल ते लंका दिसत। सीता सती अशोकवनांत। बैसली असे ध्यानस्थ। २८ तरी तुम्हीं समस्त वानरीं। बैसावें माझिये पृष्ठीवरी। नेऊन घालीन पैलपारीं। लंकेमाजी येधवां। २९ अथवा एकोत्तरशत माझे सुत। पृथक् बैसा समस्त। मग म्हणे जांबुवंत। मार्गचि सांग आम्हांतें। २३० संपाती बोले वचन। ऐलतीरीं मलया-गिरिचंदन। त्याची शाखा शतयोजन। लंकेमाजी प्रवेशली। ३१ परी तेथें कृष्णसर्प असती। म्हणोनि तुमची न चले गती। शतयोजन सरितापती। लंकेसी परिध आडवा। ३२ नमस्कारोनि वानरांसी। संपाती गेला निजाश्रमासी। मग कपी बैसले विचारासी। जांबुवंतासहित

मैं यहाँ वैसे पड़ा हुआ रहा, जैसे कोई पंख-हीन पर्वत हो। तुम्हारे प्रताप के कारण (प्रभाव से) आज मेरे पंख अकस्मात (फिर से) निकल आये। २२५ यह चंद्रगिरि पर्वत है। यहाँ चंद्र नामक एक महन्त हैं। वे वस्तुतः मेरे गुरु हैं, जो मुझे वेदान्त-ज्ञान बताते हैं।' २२६

अस्तु। (तदनन्तर) सम्पाती ने वानरों से पूछा— 'तुम इस मार्ग से कहाँ जा रहे हो?' तो वानर बोले— 'हे पक्षीन्द्र, हम सीता की खोज करने जा रहे हैं।' २२७ तब सम्पाती ने कहा— 'उस पार वह लंका दीख रही है। (वहाँ) सती सीता अशोक वन में ध्यानस्थ बैठी हुई है। २२८ इसलिए तुम समस्त वानर मेरी पीठ पर बैठ जाओ। मैं (तुम्हें) उस पार लंका में अभी छोड़ देता हूँ। २२९ अथवा मेरे एक सौ एक पुत्र हैं। उनपर तुम सब अलग-अलग बैठ जाओ।' तब जाम्बवान ने कहा— 'हमें मार्ग ही बताओ।' २३० तो सम्पाती ने यह बात कही— 'इस ओर चन्दन वृक्षों से युक्त मलय पर्वत है। उसकी एक शत योजना लम्बी शाखा लंका में प्रविष्ट हो गयी है। २३१ परन्तु वहाँ कृष्ण सर्प हैं। (अतः) तुम्हारी कोई चाल वहाँ नहीं चलेगी। फिर सौ योजन (चौड़ा) समुद्र लंका के लिए परिधि के रूप में आड़ा पड़ा हुआ है।' २३२ (यह कहकर) सम्पाती वानरों को नमस्कार करके अपने

पें। ३३ सागराचें जीवन। रुंद असे शतयोजन। उडावया सामर्थ्य पूर्ण। कोणा किती सांगा तें। ३४ परस्परें ते वानर। करिती उडावयाचा विचार। शतयोजनें समुद्र। उडवे कोणासी एकदां। ३५ जांबुवंत म्हणे मी जाईन। परी भागले माझे चरण। मी आणि वैद्य सुषेण। दोघेजण श्रमलों बहु। ३६ बळीचिया घरीं अद्भुत। त्रिविक्रम जाहला वैकुंठनाथ। सात प्रदक्षिणा एके दिवसांत। केल्या आम्हीं साक्षेपें। ३७ तेणें भागले बहुत चरण। त्याहीवरी वृद्धपण। आणिक एकदां मेरूवरून। उडी घातली म्यां तळवटीं। ३८ तेव्हां सूर्यरथींचें चक्र। मांडीस झगटलें जेवीं वज्र। तेणें व्यथा अहोरात्र। वृद्धपणीं जाचीतसे। ३९ याकरितां नव जाय उड्डाण। मग बोले वालिनंदन। मी तेथें जाईन उडोन। परी बाळ नेणतें। २४० वानर म्हणती करावें काय। या पैलतीरा कोण जाय। जांबुवंत म्हणे वायुतनय। याचे पाय धरा आतां। ४१ तंव तो

आश्रम (की ओर) चला गया। अनन्तर जाम्बवान सहित वानर विचार-विनिमय के लिए बैठ गये। २३३ 'समुद्र का पानी सौ योजन चौड़ा है। बताओ, (उस पर से) उड़ जाने के लिए किसमें कितनी पूर्ण सामर्थ्य है?' २३४ तब वे वानर उड़ जाने के सम्बन्ध में परस्पर विचार-विनिमय करने लगे। (परन्तु बात यह थी कि) सौ योजन (चौड़े) समुद्र पर से किसी भी के द्वारा एकदम नहीं उड़ा जा सकता था। २३५ (फिर) जाम्बवान ने कहा— "मैं (अवश्य) जाऊँगा; परन्तु मेरे पाँव थक गये हैं। मैं और सुषेण वैद्य बहुत थक गये हैं। २३६ बली (राजा) के यहाँ जब भगवान वैकुण्ठनाथ विष्णु 'त्रिविक्रम' हो गये थे, तो हमने एक दिन हठात् में उनकी सात परिक्रमाएँ की थीं। २३७ उससे मेरे पाँव बहुत थक गये हैं। तिस पर यह बुढ़ापा (आ गया है)! और एक बार मैंने मेरु पर्वत से तलहटी में छलाँग लगायी थी। २३८ तब सूर्य के रथ का पहिया मेरी गोद से रगड़ गया, वह मानो वज्र ही हो। उससे इस बुढ़ापे में दिन रात व्यथा पीड़ा पहुँचा रही है। २३९ इसलिए मैं उड़ान के लिए नहीं जाऊँगा।" तो अंगद बोला— 'मैं उड़कर तो वहाँ जाऊँगा; परन्तु मैं अज्ञान बच्चा जो हूँ।' २४० (तदनन्तर) वानरों ने कहा—'क्या करें? उस तीर पर कौन जा सकता है?' तो जाम्बवान ने कहा— 'अब हनुमान के पाँव

अंजनीचा नंदन। करीत बैसला रामध्यान। वानर घालिती लोटांगण। करिती स्तवन मारुतीचें। ४२ वानर म्हणती हनुमंतासी। तूं सांग सखया किती उडसी। हंसें आलें मारुतीसी। काय तयांसी बोलिला। ४३ अंजनी जैं मज प्रसवली। बाळभूक बहु लागली। तैं लक्षयोजनें उडी घातली। गभस्तीवरी अकस्मात। ४४ ऐसें वचन ऐकिलें। वानर चरणांसी लागले। राघवें बळ सम्पूर्ण ओळखिलें। तरीच मुद्रा दीघली। ४५ तरी अपुलें कार्य आतां। सत्वर साधी हनुमंता। ऐसें म्हणतां कपिनाथा। स्फुरण आलें ते काळीं। ४६ हनुमंत म्हणे वानरांसी। तुम्ही पर्वत धरा पोटेंसीं। माझिया अंगवातें घंघाटेंसीं। समुद्रांत पडाल कीं। ४७ झाडें खोडें वानर कवळीत। महेंद्रपर्वतीं चढे हनुमंत। जांबुवंतादि वानर समस्त। कौतुक पाहती मारुतीचें। ४८ अवघे जे कां वानर। त्यांसी पुसोन वायुकुमर। आधीं पुच्छाचा फडत्कार। गाजविला हनुमंतें। ४९

लग जाइए।' २४१ तब वह अंजनी-पुत्र हनुमान श्रीराम का ध्यान करते हुए बैठा था, तो वानरों ने उसे दण्डवत् प्रणाम किया और उसका स्तवन किया। २४२ वानरों ने हनुमान से कहा-- 'हे सखा, बताओ, तुम कितना उड़ सकोगे ?' (यह सुनकर) उसे हँसी आ गयी। (फिर) वह उनसे क्या बोला ? २४३ 'जब अंजनी ने मुझे जन्म दिया, तो मुझ शिशु को बहुत भूख लगी थी। तब मैंने यकायक लक्ष योजन (की दूरी पर) सूर्य पर छलाँग लगायी थी।' २४४ यह बात सुनी तो वानर उसके चरणों में लग गये। (वस्तुतः) श्रीराम ने उसके समस्त बल को जाना था; इसीलिए तो उसके पास मुद्रिका दी थी। २४५ (फिर वानरों ने कहा--) 'हे हनुमान, तो अब हमारा कार्य झट से सिद्ध करो।' ऐसा कहने पर उस समय हनुमान में आवेग उत्पन्न हो गया। २४६ (अनन्तर) हनुमान ने वानरों से कहा— 'तुम पर्वत को पेट से सटकर पकड़ रखो, नहीं तो मेरे शरीर (के झपट्टे) से उत्पन्न वायु से समुद्र में गिर जाओगे।' २४७ (तत्पश्चात् उसके कथन के अनुसार) वानरों ने पेड़ों, तनों को लपेट रखा, तो हनुमान महेन्द्र पर्वत पर चढ़ गया। (उस समय) जाम्बवान आदि समस्त वानर हनुमान की इस लीला को देखते रहे। २४८ (वहाँ) जो वानर (उपस्थित) थे, उन सबसे पूछकर, अर्थात् अनुज्ञा लेकर हनुमान ने पूँछ से फड़-फड़ ध्वनि उत्पन्न की। २४९

हृदयीं केलें श्रीरामस्मरण। शक्तिदाता तूं म्हणोन। अहंकर्ताभाव गाळून। मन निमग्न रघुनाथीं। २५० तो परात्पर राजहंस। जो रविकुळदिनेश। ब्रह्मानंद पुराणपुरुष। हृदयीं आठविला मारुतीनें। ५१ रामविजय ग्रंथ वरिष्ठ। षड्रसान्नांचें भरलें ताट। ज्यांसी श्रवणाची क्षुधा उत्कट। ते जेवोत आदरें। ५२ किष्किंधाकाण्ड येथें संपलें। पुढें सुंदरकाण्ड आरंभिलें। ग्रंथाचें पूर्वार्ध जाहलें। उत्तरार्ध परिसा आतां। ५३ ब्रह्मानंदा जानकीजीवना। श्रीधरवरदा जगद्भूषणा। अज अजिता अव्यय निर्गुणा। अक्षय अभंग अव्यया। ५४ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रन्थ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। अष्टादशाध्याय गोड हा। २५५

॥ इति किष्किधाकांड ॥

'आप शक्तिदाता हैं' कहते हुए उसने हृदय से राम का स्मरण किया और अहंकर्ता (अर्थात् 'मैं कर्ता हूँ' इस) भाव को छोड़कर वह श्रीराम (के स्मरण) में निमग्न हो गया। २५० हनुमान ने मन में उस परात्पर राजहंस ब्रह्मानन्द पुराणपुरुष का स्मरण किया, जो रविकुल में उत्पन्न सूर्य ही हैं। २५१

श्रीराम-विजय नामक यह ग्रन्थ मानो छहों रसों से युक्त उत्तम अन्नों से सजी हुई थाली है। जिन्हें श्रवण की उत्तम भूख (लगी) हो, वे आदर-पूर्वक भोजन करें। २५२ यहाँ इस ग्रन्थ का किष्किन्धा काण्ड समाप्त हुआ। आगे सुन्दर काण्ड का आरम्भ किया जा रहा है। इस ग्रन्थ का पूर्वार्ध (पूर्ण) हो गया, अब उत्तरार्ध सुनिए। २५३ हे ब्रह्मानन्द, हे जानकी-जीवन (श्रीराम), हे श्रीधर-वरद, हे जगद्भूषण, हे अजन्मा, अजित, अव्यय, हे निर्गुण, हे अक्षय, अभंग, अव्यय भगवान्, स्वस्ति। श्रीराम-विजय नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। चतुर भक्त उसके इस अठारहवें मधुर अध्याय का सदा श्रवण करें। २५४-२५५ ॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

॥ इति किष्किन्धा काण्ड ॥

सुन्दर काण्ड

अध्याय—१९

श्रीगणेशाय नमः। अद्भुत रामकथेचा महिमा। देऊं गोदावरीची उपमा। स्नान करितां कर्मा अकर्मा। पासोनि मुक्त होइजे। १ उभयलोकीं इच्छा अधिक। हींचि तटाकें सुरेख। मनोरम प्रवाह देख। उचंबळेल ब्रह्मानंदें। २ रामकथामृतजीवन। प्रेमळ तेथें जळचरें पूर्ण। देव गंधर्व मुनिजन। तटीं सघन तरू हेचि। ३ अनेक चरित्रें तत्त्वतां। त्याचि येथें मिळाल्या सरिता। भक्ति ज्ञान वैराग्य पाहतां। ऊर्मी येथें विलसती। ४ ओघ चालिला अद्भुत। फोडोनियां पापपर्वत। सप्तकांड सप्तमुखें मिळत। भक्तहृदयसागरीं। ५ जे त्रिविधतापें तापले। जे तीर्थव्रतें करितां भागले। ते

श्री गणेशायनमः। श्रीराम की कथा की महिमा अद्‌भुत है। हम उससे गोदावरी की उपमा देते हैं। उसमें स्नान करने से कर्म और अकर्म, अर्थात् स्नान- संध्या आदि धर्म-विहित कृत्यों और पापों से मुक्त हो जाते हैं। १ इहलोक और परलोक दोनों लोकों के (जीवन के) विषय में अधिक इच्छाएँ होती हैं; वे ही (उस नदी के) सुन्दर तट हैं। देखिए, (उन दोनों के बीच नदी का) सुरम्य प्रवाह ब्रह्मानन्द से उमड़ उठता है। २ रामकथा का माहात्म्य रूपी (वह) पानी अमृत-सा मधुर है। वहाँ (उसमें) (भगवत्-) प्रेम से पूर्णतः युक्त जलचर जीव रहते हैं। देव, गन्धर्व, मुनिजन—ये ही (उस नदी के) तट पर स्थित घने (पत्तोंवाले) वृक्ष हैं। ३ भगवान् के अनेक चरित्र, अर्थात् लीलाएं वस्तुतः वे नदियाँ हैं, जो (इस रामकथा-महिमा रूपी गोदावरी नदी में) मिल जाती हैं। (आप) देखते हैं कि भक्ति, (आत्म-) ज्ञान, वैराग्य रूपी लहरें वहाँ शोभायमान हैं। ४ उस नदी का अद्‌भुत प्रवाह चल रहा है। पाप के पर्वतों को तोड़कर वे (सब छोटी-मोटी नदियाँ, जो उस नदी में मिली हुई हैं) बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लंका और उत्तर नाम के सात काण्डों रूपी सात मुखों से भक्तों के हृदय रूपी सागर में मिल जाती हैं। ५ जो (साधक) आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तापों से तप्त हो गये हों, जो तीर्थ (-यात्रा),

येथें स्नान करितां निवाले। नाहीं परतले संसारा। ६ या गंगेंत करितां स्नान। अंगीं संचरे भक्तिज्ञान। सकळ चातुर्यें एकवटोन। पायां लागती अपार। ७ सुंदरकांड इंद्रभुवन। प्रेमरस तो सहस्रनयन। वाग्देवी हे रंभा पूर्ण। नृत्य करी कुशलत्वें। ८ अंतरीं उघडोनि श्रवण। श्रवण करोत पंडित जन। सप्तकाण्डोत्तर संपूर्ण। सुंदरकांड रसभरित। ९ अठरावे अध्यायीं कथा अद्भुत। समुद्रतीरीं उभा हनुमंत। लंकेसी जावया उद्युक्त। वानर समस्त पाहती। १० लोकप्राणेशसुत ते वेळां। महेंद्राचळीं उभा ठाकला। परम भुभुःकारें गर्जिन्नला। तेणें डळमळला भूगोल। ११ सुटला जातां अंगवात। म्हणोनि वानर भयभीत। पोटाशीं धरोनि पर्वत। अगोदर बैसले। १२ यशस्वी रघुवीर म्हणोन। समीरात्मजें केलें उड्डाण। त्याचे अंगवातेंकरून। प्रळय

व्रत (आदि) साधनाओं का आचरण करते-करते थक गये हों, वे यहाँ स्नान करने से शान्ति को प्राप्त हो गये और (फिर) संसार (अर्थात् साँसारिक सुख-भोगमय जीवन) में नहीं लौट आये। ६ इस गंगा में स्नान करने पर शरीर अर्थात् हृदय में ब्रह्मज्ञान का संचार हो जाता है और समस्त असीम चातुर्य (बुद्धि-सामर्थ्य, कृतित्व आदि) इकट्ठा होकर पाँव लग जाते हैं। ७ (श्रीराम की कथा का श्रीराम-विजय नामक ग्रन्थ में वर्णित) सुन्दरकाण्ड (मानो) इंद्र-भुवन है; (भगवत्-) प्रेम का रस (मानो) इंद्र है। (उसके भवन में) वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती (मानो) पूर्णतः रम्भा (जैसी अप्सरा) है, जो (वहाँ) कौशल से नृत्य करती है। ८ अन्तःकरण में अर्थात् मनःपूर्वक कानों को खोलकर पंडित जन रस-भरित सुन्दरकाण्ड-सहित सप्तकाडों से युक्त सम्पूर्ण रामकथा का श्रवण करें। ९

अठारहवें अध्याय में यह अद्भुत कथा (कही जा चुकी) है— लंका में जाने के लिए उद्यत होकर हनुमान समुद्र-तट पर खड़ा हो गया था और समस्त वानर उसे देख रहे थे। १० उस समय पवन-सुत हनुमान महेन्द्र पर्वत पर खड़ा रहा और उसने बहुत (उच्च स्वर में) भुभुःकार करते हुए गर्जन कर दिया, तो उससे पृथ्वी (काँपती हुई) डाँवाँडोल हो गयी। ११ उसके चल जाते ही (शरीर के झपट्टे से) वायु चल पड़ी; इसलिए वानर भयभीत होकर पर्वत को पेट से चिपकाये हुए पहले से (ही) बैठ गये। १२ 'रघुवीर राम सफल हों' कहते हुए पवन-सुत ने उड़ान

वर्तला सर्वांसी । १३ महातरुवर उन्मळोनी । द्विजांऐसे फिरती गगनीं । अचळ चळती ठायींहूनी । भुभु:कारध्वनीसरिसेचि । १४ नक्षत्रें रिचवती भूमंडळीं । बैसली मेघांची दांतखिळी । कृतांतासही ते वेळीं । भय अत्यंत वाटलें । १५ उचंबळलें समुद्रजळ । डळमळलें उर्वीमंडळ । हेलावती सप्तपाताळ । अंगवातेंकरूनियां । १६ भोगींद्र दचकला अंतरीं । कूर्म निजपृष्ठी सांवरी । यज्ञवराह धरित्री । उचलोनि देत दाढेसी । १७ दिग्गज चळचळां कांपती । मेरुमांदार डळमळती । सुधापानी परम चित्तीं । भय पावले तेधवां । १८ शचीवर मनीं दचकला । अपर्णा पडे शिवाचे गळां । भयभीत जाहली कमळा । विष्णु तीतें सांवरी । १९ विरिंचि सांगे सकळांप्रती । सीताशुद्धीस जातो मारुती । सुर विमानीं बैसोनि येती । अद्भुत कौतुक

भर दी, तो उसके शरीर के झपट्टे से निर्मित हवा से सबके लिए प्रलय (उत्पन्न) हो गया । १३ (उस वायु के आघात से) बड़े-बड़े पेड़ उखड़कर आकाश में पक्षियों-से घूमने लगे । भुभ:कार ध्वनि के (उत्पन्न होने के) साथ ही पर्वत अपनी बैठक से विचलित हो गये । १४ (आकाश में से) नक्षत्र (गिरकर) भूमण्डल से टकरा गये । मेघों के दाँत बैठ गये (अर्थात् घिग्घी बँध गयी) । उस समय कृतान्त (यम) को भी अत्यधिक भय अनुभव हो गया । १५ समुद्र का पानी उमड़ उठा, पृथ्वी-मण्डल (काँपते हुए) डाँवाँडोल हो गया; (अतल, वितल, सुतल, महातल, तलातल, रसातल और पाताल नामक) सातों पाताल ज़ोर से डोलने लगे । १६ (भोगावती का राजा) शेष मन में चौंक उठा, (पृथ्वी-गोल के आधार-भूत) कछुए ने अपनी पीठ को सँवारकर ठीक किया और (डूबती धरती को अपनी डाढ़ों पर उठानेवाले) यज्ञीय वराह (सूअर) ने धरती को उठाकर अपनी डाढ़ों पर रख दिया । १७ दिग्गज (दिशाओं में स्थापित हाथी) थरथर काँपने लगे; मेरु-मन्दर पर्वत डाँवाँडोल हो उठे । उस समय (अमृत-पान करनेवाले अर्थात्) देव मन में परम भय को प्राप्त हो गये । १८ शचीपति इन्द्र मन में चौंक उठा; अपर्णा (पार्वती) शिवजी के गले लग गयी; लक्ष्मी भयभीत हो गयी, तो उसे भगवान् विष्णु ने सँम्हाल लिया । १९ (तब) ब्रह्मा ने सबसे कहा— ' हनुमान सीता की खोज के लिए जा रहा है । ' तो देव विमानों में बैठकर उस

पाहावया । २० कौतुक विलोकिती सुर सकळ । प्रतापरुद्र अंजनीबाळ । कीं तो वासरमणि निर्मळ । वानरवेषें जातसे २१ । कल्पांतविजूचे उमाळे भडकती । तैशीं कुंडलें कर्णीं तळपती । वज्रकौपीन निश्चितीं । कटिप्रदेशीं मुंजी झळके । २२ त्रिगुणरूप कल्पांतचपळा । तेवीं यज्ञोपवीत रुळे गळां । उणें आणिलें दिव्य प्रवाळा । मुखीं पुच्छाग्रीं रंग तैसा । २३ अंगींच्या रोमावळी पिंजारत । भुभुःकारें नभ गर्जत । दिग्गजांचीं टाळीं बैसत । आंदोळत ब्रह्मांड । २४ गाजवी पुच्छाचा फडत्कार । प्रतिशब्द देत अंबर । दणाणत लंकानगर । दशवदन हडबडला । २५ चपळ पदद्वय आणि पाणि । झेंपावत धांवे गगनीं । उड्डाणावरी उड्डाण घेऊनी । रुद्रावतार जातसे । २६ अंतरिक्षीं जाय सपक्ष पर्वतें । कीं क्षीराब्धिशायीप्रती द्विजेंद्र धांवत । कीं मानस लक्षोनियां

अद्भुत लीला को देखने के लिए आ गये । २० समस्त देव (हनुमान की इस) लीला को देख रहे थे कि प्रताप में रुद्र-सा (अथवा रुद्र का वह प्रतापी अवतार) अंजनी-सुत (हनुमान) अथवा (मानो) निर्मल सूर्य ही वानर-वेश में (कैसे) जा रहा था । २१ कल्पान्त (प्रलय) समय पर बिजली की लपटें जैसे धधकती हैं, वैसे उसके कानों में (पहने हुए) कुंडल झलकते थे । वज्र-कौपीन (लंगोटी) तथा मूँज-घास की बँधी डोरी निश्चय ही कटि-प्रदेश (कमर) में झलक रही थी । २२ प्रलय-काल की (सत्त्व, रज और तम नामक) त्रिगुण रूप बिजलियाँ जैसे होती हैं, वैसे (तीन धागों से युक्त) जनेऊ गले में झूलता हुआ सुशोभित था । जिसने रंग में दिव्य प्रवाल (मूँगा नामक रत्न) को न्यूनता को प्राप्त कराया, ऐसा मूँगिया रंग उसके मुँह और पूँछ की नोक में (शोभायमान) था । २३ उसके शरीर में उत्पन्न रोमावलियाँ बिखर रही थीं; भुभुःकार से आकाश गरज रहा था; दिग्गजों के कानों के परदे फट गये और ब्रह्माण्ड डोल रहा था । २४ वह पूँछ की फटकार (से उत्पन्न ध्वनि) बजा रहा था; आकाश उसके प्रतिशब्द को उत्पन्न कर रहा था और लंकानगर को दनदना रहा था । (तब) रावण हड़बड़ा उठा । २५ उसके दोनों पाँव तथा हाथ चपल थे । वह लपकता हुआ आकाश में दौड़ रहा था । रुद्र (शिवजी) का वह अवतार उड़ान पर उड़ान भरते हुए जा रहा था । २६ (ऐसा जान पड़ता था कि) जिस प्रकार पंखों से युक्त कोई पर्वत आकाश में जा रहा हो; अथवा (क्षीरसागर में सोये हुए) भगवान्

जात। राजहंस ज्यापरी। २७ कीं चिंतामणिवारु सवेग। चपळत्वें क्रमी नभमार्ग। अंजनीहृदयारविंदभृंग। जात चपळ तैसाचि। २८ पितयाचें बहुत गमन। तयाहूनि सवेग कपीचें उड्डाण। किंवा रघुनाथाचा बाण। चापापासून सूटला। २९ कीं मनाचें चंचळपण। पावे जैसें चिंतिलें स्थान। तैसा लोक प्राणेशनंदन। यमदिशा लक्षोनि जातसे। ३० ऐसा अंतरिक्ष जातां हनुमंत। आश्चर्य करिती देव समस्त। म्हणती पाहों याचें सामर्थ्य। रंभा त्वरित पाठविली। ३१ साधितां परमार्थज्ञान। आडवें येत मायाविघ्न। कीं साधूं जातां निधान। विवशी येत आडवी। ३२ तैसी रंभा देवीं धाडिली। मुख पसरोनि उभी ठाकली। तिच्या वदनांत उडी पडली। हनुमंताची

विष्णु की ओर पक्षिराज गरुड़ दौड़ता हुआ जा रहा हो, अथवा मान-सरोवर को लक्ष्य करके राजहंस जा रहा हो, उस प्रकार हनुमान लंका की ओर जा रहा था। अथवा जिस प्रकार (जिसके गरदन के बाल खुरों तक लम्बे हैं, ऐसा) चिन्तामणि (नामक जाति का) घोड़ा वेग-पूर्वक आकाश मार्ग तय करता जाता हो, उस प्रकार अंजनी के हृदय-कमल में रहनेवाला भ्रमर, अर्थात् हनुमान चपलता-पूर्वक जा रहा था। २७-२८ उसके पिता (वायुदेव) का गमन बहुत वेगपूर्वक होता है, (परन्तु) उससे भी अधिक वेगपूर्वक इस कपि (हनुमान) की उड़ान थी; अथवा (जान पड़ता है कि उसके रूप में) श्रीराम का बाण ही धनुष से छूटा हो। २९ अथवा जिस प्रकार मन की चंचलता इच्छित स्थान को प्राप्त हो जाती है—अर्थात् अति चपलता के कारण मन इच्छित स्थान तक झट से पहुँच जाता है, उस प्रकार (मानो मनोवेग से) लोक-प्राणेश-नन्दन (वायु-पुत्र) हनुमान दक्षिण दिशा को लक्ष्य करके जा रहा था। ३० हनुमान के इस प्रकार अंतरिक्ष में से जाते रहने पर समस्त देव आश्चर्य करते थे। उन्होंने कहा (सोचा)— देखें इसकी सामर्थ्य (कैसी है)। (फिर) उन्होंने झट से रम्भा को भेज दिया। ३१ (साधक द्वारा) परमार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए साधन करने में माया (द्वारा निर्मित) विघ्न आड़े आते हों, अथवा निधान (दिव्य धन) की सिद्धि अर्थात् प्राप्ति करने के लिए यत्नशील रहने पर विघ्न-देवी वा भूतनी आड़ी आती हो (बाधा डालती हो) उस प्रकार (हनुमान द्वारा उत्तम कार्य करते रहने पर उसके मार्ग में बाधा उत्पन्न करने के लिए) देवों ने

अकस्मात । ३३ तिच्या कर्णद्वारें मारुती । सवेंचि निघाला त्वरितगती । तिनें हनुमंत स्तविला प्रीतीं । स्वर्गाप्रती गेली मग । ३४ समुद्रें पाठविला पर्वत । मैनाकनामें अद्भुत । तो ऊर्ध्वपंथें आडवा येत । हनुमंतासी ते काळीं । ३५ जों-जों वाढे पर्वत । तों तों उंच जाय हनुमंत । मग तो अचळ प्रार्थीत । हनुमंतासी ते काळीं । ३६ म्हणे महापुरुषा मजवरी । विश्रांति घेई क्षणभरी । मग एकाच हस्तें भारी । नग पाताळीं घातला । ३७ जो शांतिसुखें डोलत । त्यास देखोन क्रोध पळत । तैसा हस्तभारें पर्वत । सागरांत दडपिला । ३८ तेथोन उड्डाण पुढें चालिलें । तों सिंहिकेनें वदन पसरिलें । छायासूत्र साधिलें । कापटच केलें अद्भुत । ३९ राहुकेतूंची जे माता । तेचि सिंहिका जाण तत्त्वतां । ती ग्रासावया हनुमंता । पूर्वींच तेथें जपत

रम्भा को भेज दिया। वह मुँह बाये खड़ी रह गयी, तो हनुमान की छलाँग उसके मुँह में अकस्मात पड़ गयी। ३२-३३ फिर साथ ही उसके कर्ण-द्वार से हनुमान शीघ्र गति से (एकदम) निकलकर (बाहर) आ गया, तो उसने प्रेमपूर्वक हनुमान की स्तुति की और वह स्वर्ग की ओर चली गयी। ३४

(तदनन्तर) समुद्र ने मैनाक नामक एक अद्‌भुत पर्वत (हनुमान की परीक्षा करने के हेतु) भेज दिया। उस समय वह हनुमान को आड़ा आ गया, अर्थात् हनुमान के मार्ग में रुकावट डालने के लिए आ गया। ३५ जैसे-जैसे वह पर्वत (ऊँचा) बढ़ता जाता, वैसे-वैसे हनुमान ऊँचा (उड़) जाता। फिर उस समय उस पर्वत ने (हार मानकर) हनुमान से प्रार्थना की। ३६ उसने कहा— 'हे महापुरुष, मुझपर क्षण भर विश्राम कीजिए।' तब हनुमान ने एक ही हाथ से (अर्थात् हाथ टेककर या हाथ से ढकेलकर) उस भारी (प्रचण्ड) पर्वत को पाताल में डाल दिया। ३७ जो (आत्मिक) शान्ति के सुख में डोल रहा हो, उसे देखकर क्रोध भाग जाता है, उस प्रकार (हनुमान के) हाथ के भार से वह पर्वत पाताल में गड़ा दिया गया (धँस गया)। ३८ वहाँ से (हनुमान की) उड़ान आगे चली, तो सिंहिका (नामक राक्षसी) ने मुँह फैला दिया। उसने (हनुमान की) परछाई के सूत्र (आधार) को पकड़ लिया और अद्‌भुत कपट कर लिया। ३९ राहु और केतु की जो माता है, सचमुच वही यह सिंहिका समझिए। हनुमान को

होती। ४० उताणी समुद्रांत निजोन। बारा योजनें पसरिलें वदन। छाया पडतांचि वायुनंदन। तिच्या वदनांत। कोसळला। ४१ स्वर्गींचा हुडा अकस्मात। उर्वीवरी जेवीं पडत। सिंहिकेच्या वदनीं हनुमंत। पडिला सत्य त्यापरी। ४२ ते दांतांसी दांत मेळवीत। तों उदरांत गेला हनुमंत। पोट फाडून त्वरित। आला बाहेर ते काळीं। ४३ विषयपाश तोडोनि समस्त। परमार्था निघे जेवीं विरक्त। तैसा बाहेर आला हनुमंत। सिंहिका तेथेंच निमाली। ४४ पुढें चालिलें उड्डाण। तों लंकादेवी आली धांवोन। तिनें आडवा पाय घालून। हनुमंतासी पाडिलें। ४५ करितां श्रीरामभजन। नसतीं विघ्नें येती धांवोन। परी साधक तितुकीं लोटून। सावधान स्मरण करी। ४६ असो लंकादेवीस मुष्टिप्रहार। वज्रप्राय देत वायुकुमर। तिनें स्तवन केलें अपार। म्हणे मज न मारावें। ४७ तूं विजयी होशील साचार। तंव पुढें उडी

ग्रस (निगल) डालने के हेतु, वह पहले ही से यहाँ यत्नशील बनी रही थी। ४० पीठ के बल समुद्र में लेटकर उसने अपने मुँह को बारह योजन (दूर तक) फैला दिया। ऊपर से परछाईं के पड़ते ही, हनुमान उसके मुँह में गिर गया। ४१ जिस प्रकार स्वर्ग का बुर्ज (ढहकर) सहसा पृथ्वी पर गिर सकता हो, सचमुच उस प्रकार हनुमान सिंहिका के मुँह में गिर पड़ा। ४२ उसने (ज्यों ही) दाँतों से दाँत मिला दिये, त्यों ही हनुमान उसके पेट में गया और उसके पेट को फाड़कर उस समय झट से बाहर आ गया। ४३ जैसे कोई विरागी व्यक्ति समस्त विषय-पाशों को काटकर परमार्थ (की प्राप्ति) के लिए निकल पड़ता हो, वैसे हनुमान (समस्त बाधाओं को दूर करके) बाहर आ गया और सिंहिका वहीं ठंडी हो गयी। ४४ (तत्पश्चात् हनुमान की) उड़ान आगे चली, तो लंका (की अधिष्ठात्री) देवी दौड़कर आ गयी। उसने टाँग आड़े बढ़ाकर हनुमान को गिरा दिया। ४५ श्रीराम का भजन करते रहने पर अनेक विघ्न व्यर्थ ही दौड़े आ जाते हैं, परन्तु साधक उतने (सब विघ्नों को) दूर धकेलकर (श्रीराम का) स्मरण करता रहता है। ४६ अस्तु! वायुकुमार हनुमान ने लंका देवी के एक वज्र-सा घूँसा जमा दिया, तो (हार मानकर) उसने (हनुमान की) अपार स्तुति की और कहा— 'मुझे न मार डालिए। ४७ आप निश्चय ही विजयी हो जाएँगे।' तब उसकी छलाँग बहुत आगे (बढ़ती) जा

जावोन पडियेली । ४८ उडीसरसी ते वेळीं । पडलंका ते दणाणली । क्रौंचा असे तये स्थळीं । कनिष्ठ भगिनी रावणाची । ४९ तिचा घर्घरनामें भ्रतार । इन्द्रे मारिला तो असुर । यालागीं क्रौंचेसी दशकंधर । पडलंकेसी स्थापीत । ५० असो तें दणाणलें लंकानगर । म्हणोनि क्रौंचा घेत समाचार । असुरी पाठविल्या अपार । धरिला वानर ते काळीं । ५१ तों हनुमंतें ते वेळे । संकीर्ण रूप घरिलें कोंवळें । क्रौंचेनें डोळां देखिलें । हातीं धरिलें दृढ तेव्हां । ५२ म्हणे हा चिरा गे वानर । पाक करोनि आणा सत्वर । हनुमंत म्हणे माझें शरीर । उदकमय सर्वही । ५३ पाक करितां नुरेचि कांहीं । यालागीं तूं सगळाचि खाई । असुरीनें उचलोन लवलाहीं । मुखांत घातला हनुमंत । ५४ दांतांसी दांत मिळवी येरी । तंव तो प्रवेशला अंतरीं । काळिज घरोनि उभय करीं । झोळकंबा घेत मारुती । ५५ तंव ते चडफडे ते वेळे । भोवंडी तेव्हां नेत्रबुबुळें ।

रही थी । (अन्त में) वह छलाँग शीघ्र ही पड़लंका में जा पहुँची । ४८ उस समय छलाँग के साथ ही पड़लंका दनदना उठी । उस स्थान पर रावण की कनिष्ठ भगिनी क्रौंचा (रहती) थी । ४९ (उसका) घर्घर नामक पति था । उस असुर को इंद्र ने मार डाला था । इसलिए रावण ने क्रौंचा को पड़लंका में स्थापित (प्रतिष्ठित) कर दिया था । ५० अस्तु ! वह पड़लंका नगरी दनदना उठी । इसलिए क्रौंचा ने समाचार प्राप्त कर लिया और बहुत राक्षसियों को भेज दिया । उन्होंने उस समय वानर (हनुमान) को पकड़ लिया । ५१ तब उस समय हनुमान ने बहुत छोटा और कोमल रूप धारण किया । क्रौंचा ने अपनी आँखों से उसे देखा, तो उसे अपने हाथ में दृढ़ता से पकड़ लिया । ५२ उसने कहा— ‘ अरी, इस वानर को चीर डालो और राँधकर, अर्थात् रसोई बनाकर सत्वर ला दो । ’ (यह सुनकर) हनुमान ने कहा— ‘ मेरा सभी शरीर उदकमय है । ५३ उसे पकाने पर कुछ नहीं बच पाएगा । इसलिए तुम मुझे पूरा ही खा डालो । ’ (इसपर) उस राक्षसी ने उठाकर झट से हनुमान को मुँह में डाल दिया । ५४ जब उसने दाँतों से दाँत मिला दिये, तब वह हनुमान उसके (पेट के) अन्दर पैठ गया और दोनों हाथों से उसके कलेजे को पकड़ते हुए पेंग मारता रहा । ५५ तब उस समय वह छटपटा उठी, आँखों की

गडबडां भूमीवरी लोळे। वांचवा म्हणे मज आतां। ५६ सूकरविष्ठा आणोन बहुत। असुरी क्रौंचेसी पाजीत। हनुमंत आंत कंटाळत। निघों पाहत बाहेरी। ५७ तिच्या नासिकद्वारें हनुमंत। पुच्छाग्र बाहेर दावीत। असुरी धरोनि वोढीत। रोगबीज म्हणोनियां। ५८ ओढी ओढितां अपार। पुच्छरोगाचे पडले ढिगार। मग हनुमंतें असुरी समग्र। बांधोनियां आसुडिल्या। ५९ हनुमंताचें अद्भुत बळ। क्रौंचेचीं आंतडीं तोडिलीं सकळ। उदर फाडोन तत्काळ। बाहेर आला गर्जोनियां। ६० असंख्यात राक्षसिणी। भारा बांधोनि आपटिल्या धरणीं। भिरकावीत समुद्रजीवनीं। जाहलीं पारणीं जळचरांचीं। ६१ जैसा मनाच्या अनंत वृत्ति। मनोजयें योगी आकर्षिती। तैशा असुरी संहारूनि मारुती। विजयी जाहला पडलंके। ६२ अत्यंत वृद्धा असुरी। उरल्या होत्या नगरांतरीं। तयांसी म्हणे रुद्रावतारी। लंका कोणती

पुतलियाँ चक्राकार फिराती रही और भूमि पर लुढ़क कर लोटती-पोटती रही। वह कहती— 'मुझे बचा लो।' ५६ (तदनन्तर) सूअर की बहुत-सी विष्ठा लाकर उन राक्षसियों ने क्रौंचा को पिला दी। (इधर) हनुमान (उसके पेट के) अन्दर उकता उठा और बाहर आना चाह रहा था। ५७ (फिर) हनुमान ने उसकी नाक के द्वार में से अपनी पूँछ की नोक बाहर दिखा दी। तो उसे रोग-बीज समझकर राक्षसियाँ पकड़कर खींचती रहीं। ५८ डोरी (-सी दीखनेवाली उस नोक को) बहुत खींचने पर उस पुच्छ रूपी रोग के ढेर के ढेर पड़ गये। तब हनुमान ने समस्त असुरियों को (पूँछ से) बाँधकर पटक डाला। ५९ हनुमान का बल अद्‌भुत था। उसने क्रौंचा की समस्त अंतड़ियों को तोड़ डाला और पेट फाड़कर वह गर्जन करते हुए तत्काल बाहर आ गया। ६० (फिर) गट्ठर (-सा बाँधकर) उसने अनगिनत राक्षसियों को भूमि पर पटक दिया और समुद्र के पानी में फेंक दिया। उससे जलचरों का (उपवास व्रत की समाप्ति पर) पारन हो गया। ६१ जिस प्रकार योगी मनोजय, अर्थात् मनोनिग्रह से मन की अनन्त प्रवृत्तियों को आकर्षित करते (वश में रखते) हैं, उस प्रकार राक्षसियों को मारकर हनुमान पड़लंका में विजयी हो गया। ६२ (तत्पश्चात् केवल) अत्यन्त बूढ़ी राक्षसियाँ नगर के अन्दर शेष (बच गयी) थीं। रुद्र के अवतार हनुमान ने उनसे कहा— 'अरी, दिखा दो, लंका कौन-सी (-कहाँ)

दावा गे । ६३ नाहीं तरी तुम्हांसी भक्षीन। म्हणोन पसरिलें तेव्हां वदन । वृद्धा बोलती भिऊन। पैल ते लंका दिसतसे । ६४ तों अस्ता गेला दिनकर । निकुंभिलेंत प्रवेशला वायुकुमर। शोधीत चालिला सीता सुंदर। धांडोळीत सर्वही । ६५ केरामाजी पडलें मुक्त। तें झारा युक्तीनें निवडीत। कीं सारासारविचार शोधीत। साधक आत्मप्राप्तीतें । ६६ कीं यात्रेंत चुकली जननी। सत्पुत्र काढी शोधूनी। कीं महावैद्य काननीं। संजीविनी शोधूं निघे । ६७ समुद्रांत नेले वेद। ते मत्स्यरूपी शोधी मुकुंद। तैसा राघवचरणाब्जमिलिंद। निकुंभिलेंत सीता शोधी । ६८ तों देखिलें शक्रजिताचें मंदिर। हेमरत्नमय अति सुंदर। त्यांत प्रवेशला वानर। राघवप्रिया पाहावया । ६९ शक्रजित सुलोचना उभयतां। शेजे पहुडलीं होय देखता। मग म्हणे हेच होईल सीता। रत

है। ६३ नहीं तो, तुम्हें खा डालूँगा।' (ऐसा) कहकर उसने अपने मुँह को तब फैला लिया, तो वे बुढ़ियाँ डरकर बोलीं— 'उस पार वह लंका दिखायी दे रही है।' ६४ तब सूर्य अस्तंगत हुआ। (तत्पश्चात्) वायुकुमार हनुमान निकुंभिला में प्रविष्ट हो गया और सुन्दरी सीता को खोजता हुआ चलता रहा। वह सभी (स्थान) ढूँढ़ रहा था। ६५ कूड़े करकट में मोती पड़ गया (हो), तो उसे झारा* युक्ति से बीन लेता है, अथवा साधक (सार-असार-) विवेक से आत्म (-ज्ञान) प्राप्ति के लिए खोजता है; अथवा मेले में खोयी हुई माता को सुपुत्र ढूँढ़ निकालता है, अथवा महावैद्य बन में संजीवनी (बूटी) को खोजने निकलता है; अथवा (असुरों ने) वेदों को (ले जाकर) समुद्र में (रख) लिया, तो भगवान मुकुंद अर्थात् विष्णु उन्हें मत्स्य रूप से खोज रहे थे, उस प्रकार श्रीराम के चरण-कमल का भ्रमर हनुमान निकुंभिला में सीता को खोज रहा था। ६६-६८ तब उसने इंद्रजित का सुवर्ण-रत्न-मय अति सुन्दर मंदिर (भवन) देखा, तो राघव-प्रिया सीता को खोजने के लिए वह उसमें प्रविष्ट हो गया। ६९ तब इंद्रजित और (उसकी स्त्री) सुलोचना दोनों को शय्या में लेटे हुए देखते ही उसने कहा (माना)—

* टिप्पणी : 'झारा' एक विशिष्ट व्यवसायी जाति है। इस जाति के लोग घूम-घूम कर सुनार के यहाँ की राख खरीदते हैं और उसमें से सोने के कण निकाल लेते हैं। ये लोग कूड़ा-करकट छानकर उसमें से भी मूल्यवान् वस्तुएँ निकाल लेते हैं।

जाहली परपुरुषाशीं । ७० आतां घालोनि पाषाण । घेईन दोघांचाही प्राण । मग म्हणे ऐकावें भाषण । बोलती काय परस्परें । ७१ तंव ते शेषकन्या स्वभावें तेथ । इंद्रजितासी बोलत । तुमचा पिता लंकानाथ । अनुचित वर्तत असे । ७२ अणुमात्रहि वैर नसतां । व्यर्थ आणिली जनकदुहिता । कुळक्षयास तत्त्वतां । कारण केलें गमताहे । ७३ परसतीचा अभिलाष करी । साधुसंतांचा द्वेष धरी । गुरुद्रोह ज्यामाझारी । अल्पायुषी तो साच । ७४ मातापित्यांचा करी तिरस्कार । ब्राह्मणांसी निंदी निरंतर । जो हिंसक दुष्ट दुराचार । अल्पायुषी तोचि पैं । ७५ हरिचरित्रें उच्छेदित । निंदी महापुरुषांचे ग्रंथ । नसतेंच काढी पाखंड मत । अल्पायुषी तो साच । ७६ म्हणोनि श्रावणारि-तनय-वनिता । आणोनि अनर्थ केला वृथा । आतां लंकेची गति तत्त्वतां । न दिसे पाहतां बरी कांहीं । ७७

यही सीता होगी, वह पर-पुरुष के साथ रत हो गयी है । ७० (अतः) अब मैं (दोनों पर) पत्थर डालकर (पटककर) दोनों ही के प्राण (छीन) लूंगा । ’ फिर उसने कहा (सोचा), ये एक-दूसरे से क्या बोलते हैं ?—(उनकी) बातचीत तो सुनें । ७१ तब वहाँ वह शेष की कन्या सुलोचना सहज ही में इंद्रजित से बोली— ‘ आपके पिता लंकापति (रावण) अनुचित आचरण कर रहे हैं । ७२ अणु भर तक वैर न होने पर भी वे व्यर्थ ही जनक-सुता सीता को लाये हैं । जान पड़ता है कि सचमुच उन्होंने कुल के क्षय का कारण उत्पन्न किया है । ७३ जो दूसरे की पतिव्रता स्त्री की अभिलाषा करता है, साधु-सन्तों के प्रति द्वेष (धारण) करता है, जिस (के मन) में गुरु के प्रति द्रोह होता है, वह सचमुच अल्पायुषी हो जाता है । ७४ जो माता-पिता से घृणा करता है, जो ब्राह्मणों की निरन्तर निन्दा करता है, जो हिंसक, दुष्ट एवं दुराचारी है, वही अल्पायुषी हो जाता है । ७५ जो हरि अर्थात् भगवान के चरित्रों (लीलाओं) का उच्छेद करता है (तिरस्कार-पूर्वक उनका खंडन करता है), महापुरुषों के ग्रन्थों की निन्दा करता है, व्यर्थ ही पाखंडी मत (खोज निकालकर) प्रस्तुत करता है, वह सचमुच अल्पायुषी हो जाता है । ७६ इसलिए (आपके पिताजी ने दशरथ-सुत राम की स्त्री) सीता को लाकर व्यर्थ ही अनर्थ कर दिया है । अब देखने पर लंका की गति (स्थिति) सचमुच कुछ अच्छी नहीं दिखायी दे रही है । ’ ७७

ऐकतां ऐसी मात। लंकेंत प्रवेशे हनुमंत। बिभीषणाचे मंदिरांत। वायुसुत संचरला। ७८ सत्वशील बिभीषण। करीत श्रीविष्णूचें उपासन। सदा होत हरिकीर्तन। तेणें सदन दुमदुमलें। ७९ नाहीं रजतमांची वार्ता। न दिसे द्वेष हिंसा तत्त्वतां। पुराणश्रवण हरिकथा। याविण चर्चा नसेचि। ८० दया क्षमा आणि शान्ती। बिभीषणाचे हृदयीं नांदती। असो तेथें कीर्तनीं मारुती। निजानंदें नाचतसे। ८१ कीर्तनकल्लोळरंगांत। गडबडां लोळे हनुमंत। कंठ होऊन सद्गदित। ब्रह्मानंदें डुल्लतसे। ८२ घेऊन भक्तांचे चरणरज। कपाळीं लावी वायुतनुज। म्हणे होय राक्षसवंशज। परी भक्तराज सात्विक हा। ८३ वायसांत कोकिळा वसत। कीं दैत्यकुळीं प्रल्हाद भक्त। कीं कागविष्ठेंत अश्वत्थ। तें वास्तव्यस्थळ विष्णूचें। ८४ कीं परिस जैसा पाषाणांत। कीं शुक्तीमाजी दिव्य मुक्त।

ऐसी वात को सुनने पर पवन-पुत्र हनुमान ने लंका में प्रवेश किया और विभीषण के भवन में संचार किया। ७८ विभीषण सत्त्वशील था। वह विष्णु की उपासना किया करता था। (उसके यहाँ) सदा हरि-कीर्तन होता रहता। उससे उसका सदन गूँजता रहता। ७९ उसे रज और तम (गुणों से युक्त व्यवहारों) का समाचार (अर्थात् भान) तक न रहता। उसमें द्वेष और हिंसा सचमुच नहीं दिखायी देती। पुराणों का श्रवण, हरिकथा—इनके अतिरिक्त (किसी बात की) कोई चर्चा (उसके यहाँ कभी भी) नहीं होती थी। ८० दया, क्षमा और शान्ति विभीषण के हृदय में सुखपूर्वक निवास करती थीं। अस्तु ! वहाँ कीर्तन (-श्रवण) में हनुमान ब्रह्मानन्द-पूर्वक नृत्य करता रहा (झूमता रहा)। ८१ कीर्तन के (समय होनेवाले) गर्जन में तल्लीन होकर (भूमि पर) लुढ़कते हुए हनुमान लोटता-पोटता रहा। उसका कंठ सद्गदित हो गया (गला भावना वेग से रुँध-सा गया) और वह ब्रह्मानन्द में डोलता था। ८२ वह (हनुमान) भक्तों की चरण-धूली लेकर मस्तक पर लगाता था। वह बोला— 'यह तो राक्षस-वंश में उत्पन्न हुआ, फिर भी सात्त्विक एवं श्रेष्ठ भक्त है। ८३ जिस प्रकार कौओं में कोयल रहती है, अथवा दैत्यों के कुल में (उत्पन्न) प्रह्लाद भक्त हो गया, अथवा कौए की विष्ठा में पीपल का पेड़ (उत्पन्न) होता है (और) वह (पेड़) भगवान् विष्णु का निवास-स्थान होता है, अथवा पत्थरों में पारस

तैसा राक्षसकुळीं हा भक्त। अलंकृत उत्तम गुणीं। ८५
लंकेस आलिया रघुनन्दन। सहपरिवारें मारूनि रावण। मग
रघुपतीस प्रार्थोन। राज्य सम्पूर्ण देईन यासी। ८६ जैसे दवडोन
मत्सर काम क्रोध। साधु करिती निजबोध। तैसा बिभीषण
भक्त प्रसिद्ध। अक्षय स्थापीन लंकेसी। ८७ बिभीषणाचे
मन्दिरांत। परम संतोषला हनुमन्त। जैसें तृषेनें पीडितां
बहुत। गंगा अकस्मात देखिली। ८८ चकोरा पावे
रोहिणीवर। कीं चातकां वोळला अंबुधर। तैसें देखोनि
बिभीषणाचें मन्दिर। वायुपुत्र आनन्दला। ८९ मग चालिला
पुढारा। देखे कुंभकर्णाचे मंदिरा। तों दुर्गंधि आली
एकसरां। कंटाळे मन मारुतीचें। ९० जैसा मेघ
गडगडत। तैसा कुंभकर्ण घोरत। कुंजर म्हैसे खर बहुत।
नासिकाबिळांत गुंतले। ९१ श्वासासरसे बाहेरी। आरडत
पडती एकसरीं। कीं तो मंदराचळ पृथ्वीवरी। निद्रिस्त

(प्राप्त) होता है, अथवा सीप में दिव्य मोती (मिल जाता) है, उस प्रकार राक्षसों के कुल में यह उत्तम गुणवान भक्त सुशोभित है।' ८४-८५ श्रीराम के लंका में आने पर रावण को परिवार-सहित मारकर मैं उनसे प्रार्थना करते हुए इसे सम्पूर्ण राज्य प्रदान करूँगा। ८६ जिस प्रकार मत्सर, काम, क्रोध (जैसे विकारों) को दूर करके साधु (साधक को) आत्मबोध कर देते हैं, उस प्रकार (रावण आदि को नष्ट करके) मैं विख्यात भक्त विभीषण को लंका (के राजा के रूप) में अक्षय (सदा के लिए) स्थापित कर दूँगा। ८७ हनुमान विभीषण के मंदिर में बहुत संतुष्ट हो गया। जैसे किसी ने प्यास से बहुत पीड़ित हो जाने पर सहसा गंगा को देखा हो, अथवा चकोर को चंद्र प्राप्त हुआ हो, अथवा मेघ चातकों के अनुकूल हो गया हो, (उस समय वह प्यासा व्यक्ति, चकोर अथवा चातक जैसे संतुष्ट तथा आनंदित हो गये हों) वैसे विभीषण के मंदिर को देखकर पवन-पुत्र हनुमान आनंदित हो गया। ८८-८९

अनंतर वह आगे चल दिया, तो उसने कुंभकर्ण के निवासस्थान को देखा। तब एकदम दुर्गंधि आ गयी, तो हनुमान का मन ऊब गया (अथवा उसे घिन अनुभव हुई)। ९० जिस प्रकार बादल गड़गड़ाते हैं, उस प्रकार कुंभकर्ण खर्राटे भर रहा था। बहुत-से हाथी, भैंसे और गधे उसकी नाक के छेद में उलझे हुए थे। ९१ साँस के साथ वे चिल्लाते (चिंघाड़ते-रेंकते) हुए एकदम बाह'.। भाग आते। अथवा

होवोन पडियेला । ९२ मातेचिया उदरांतून । जेव्हां पडला कुंभकर्ण । तेव्हां पसरोनि विशाळ वदन । तीस सहस्र स्त्रिया गिळियेल्या । ९३ असो देखोन कुंभकर्ण । आश्चर्य करी वायुनंदन । म्हणे हा वृथा पुष्ट जन्मोन । व्यर्थ येथें पडियेला । ९४ देखोन अंत्यजाचें घर । पळे जैसा श्रोत्रिय पवित्र । तैसा अंजनीचा पुत्र । सांडोन चालिला पुढारा । ९५ जो कल्पद्रुमीं द्विज राहणार । तो बाभुळेवरी न बैसे साचार । तैसें अव्हेरूनि घटश्रोत्राचें घर । रामकिंकर पुढें जाय । ९६ कोठें नुमगे मंगळभगिनी । मारुती विचार करी मनीं । कोणतें स्वरूप धरूनी । लंकेमाजी हिंडावें । ९७ वानररूपेंकरूनी । जरी विचरावें लंकाभुवनीं । तरी राक्षस विनोदें धरूनी । नाना चेष्टा करितील । ९८ राक्षसरूप धरावें क्रूर । तरी करवितील मांसाहार । द्विजमांस भक्षितां साचार । पुण्य समग्र भस्म होय । ९९ कीं करूं जाऊं शिष्टाई । तरी रावण न मानी काळत्रयीं । राक्षसांसीं भेद करितां पाहीं ।

(मानो) वह मंदर पर्वत ही पृथ्वी पर निद्रिस्थ (हो) पड़ गया हो । ९२ माता के उदर से जब कुंभकर्ण बाहर निकल पड़ा, तब अपने विशाल मुँह को फैलाकर उसने तीस सहस्र स्त्रियों को निगल डाला था । ९३ अस्तु ! कुंभकर्ण को देखकर हनुमान ने आश्चर्य अनुभव किया और कहा (उसने सोचा)— यह हृष्ट-पुष्ट (रूप से) उत्पन्न होकर व्यर्थ ही यहाँ पड़ा हुआ है । ९४ अन्त्यज का घर देखकर जैसे पवित्र (आचार-वाला) श्रोत्रीय ब्राह्मण भाग जाता हो, वैसे (कुंभकर्ण के) उस घर को छोड़कर वह आगे चल दिया । ९५ जो पक्षी कल्पवृक्ष पर रहता हो, वह सचमुच बबूल पर नहीं बैठ जाता, उस प्रकार कुंभकर्ण के घर का अनादर करके राम का वह सेवक हनुमान आगे बढ़ गया । ९६ मंगल-भगिनी सीता उसे कहीं भी नहीं मिल (दिखायी दे) रही थी, तो हनुमान ने मन में सोचा कि कौन-सा रूप धारण करके लंका में भ्रमण करूँ । ९७ यदि वानर रूप में लंका के घरों में विचरण करूँ, तो राक्षस (मुझे) विनोद में पकड़कर अनेक प्रकार से मेरा परिहास करेंगे (मज़ाक उड़ाएँगे) । ९८ (अथवा) यदि राक्षस रूप धारण करूँ, तो वे (मुझे) मांसाहार कराएँगे । ब्राह्मणों का मांस भक्षण करने पर मेरा समस्त पुण्य सचमुच भस्म हो जाएगा । ९९ अथवा यदि मैं मध्यस्थता करने जाऊँ, तो

विनोद माझा करितील। १०० असो वानररूप पालटोनी। अणुप्रमाण वेष धरूनी। न खुपे मुंगीचे नयनीं। घरोघरीं हिंडतसे। १ जैसा जनीं असोनि जनार्दन। जीवांसी नव्हे दृश्यमान। तैसा निरालोद्भ-वनंदन। व्यक्त न दिसे कोणासी। २ घरोघरीं चर्या पाहत। तों अवघे देखिले अधर्मरत। वरिवरी आचार दावीत। जैसा मैंद शान्ति धरी। ३ घरोघरीं अग्निहोत्रें पूर्ण। मुखीं सदा वेदाध्ययन। परि दृष्टीं देखतां गोब्राह्मण। मुखीं घालोन रगडिती। ४ जारकर्मरत नारी नर। रुद्राक्षमाला घेऊन थोर। जपती सदा कौटिल्यमंत्र। जारण मारण मोहनादि। ५ लटिकेचि डोळे झांकून। दाविती शान्ति अवलंबून। मांस रक्त मद्यपान। घूर्णितनयन डुल्लती। ६ हृदयीं मद मत्सर दुमदुमती। वाचाबळें जनांसी गोंविती। आम्ही कर्मातीत

रावण तीनों कालों में (भी) नहीं मान जाएगा। यदि राक्षसों में फूट उत्पन्न करना चाहूँ, तो वे मेरी हँसी उड़ाएँगे। १००

अस्तु! वानर रूप बदलकर और (ऐसा) अणु-प्रमाण (अणु के समान) वेश धारण करके कि जो चींटी की (भी) आँख में न चुभ सकता था, वह घर-घर घूमता रहा। १०१ जिस प्रकार जनार्दन (भगवान) जन (के हृदय) में होने पर भी जीव को दृश्यमान नहीं होता, उस प्रकार वायु-पुत्र हनुमान (वहाँ होने पर भी) प्रकट रूप में किसी को नहीं दिखायी दे रहा था। १०२ वह घर-घर (जाकर लोगों की) मुख-मुद्राएँ देखता जाता, तो उसने सबको अधर्म में मग्न देखा; वे ऊपरी रूप से (धर्म-संगत) आचार (करते) दिखाते, जैसे कोई दाम्भिक (ऊपर-ऊपर से) शान्ति धारण करता हो। १०३ (उसे दिखायी दिया कि) घर-घर सम्पूर्ण रूप से अग्नि-होत्र (चल रहा) है, मुख से सदा वेदों का अध्ययन (पठन) चल रहा है, परन्तु गाय और ब्राह्मण को दृष्टि से देखने पर वे मुख में डालकर चबाते हैं। १०४ स्त्री-पुरुष जार-कर्म में रत हैं; बड़ी-बड़ी रुद्राक्ष-मालाएँ लेकर जारण-मारण-मोहन आदि कौटिल्य मंत्रों का सदा जाप करते हैं। १०५ वे झूठमूठ ही आँखें बंद करके शांति धारण कर दिखाते हैं। वे मांस (का आहार), रक्त और मद्यपान करके आँखों को घुमाते हुए डोलते (झूमते) हैं। १०६ उनके हृदय में मद और मत्सर छा गये हैं, वाणी के बल से लोगों को (उलझन में) फँसा देते हैं और कहते हैं— हम कर्मातीत, अर्थात् कर्म-अकर्म के परे (उनके बन्धन

जाहलों म्हणती। सदाचारभ्रष्ट क्रिया। ७ आम्ही ज्ञानी सदा मुक्त। झालों लोककर्मविरहित। मना आवडे तो भोग भोगीत। महा उन्मत्त विषयांध। ८ व्यर्थ राक्षसांचा आचार। जैसे स्नान करून आले कुंजर। कीं भस्मांत लोळती खर। त्यांसी योगीश्वर कोण म्हणे। ९ एक राक्षस संन्यास घेऊन। करिती गोमांसभक्षण। सवेंच संपादोनि आचमन। कर्ता कोण म्हणती पैं। ११० विरजाहोम करून। तीळ तूप गेलें जळोन। कामक्रोधादि साही जण। अधिकाधिक माजले। ११ नाना जीवजाती भक्षोनी। म्हणती आम्हांतें शिवूं नका कोणी। एक गोचर्म पांघरोनी। जटाधारी बैसला। १२ वनात हिंडती वानप्रस्थ। गोहननालागीं बैसती गुप्त। ब्राह्मणांसी मारून भक्षीत। कर्ता येथें कोण म्हणती। १३ आम्ही ब्रह्मचारी विरक्त। म्हणोन

से मुक्त) हो गये हैं, परन्तु (वस्तुतः) उनकी करनी सदाचार-भ्रष्ट है। १०७ (फिर भी वे कहते हैं—) हम ज्ञानी हैं, सदा मुक्त (जीव) तथा लोक-कर्म-विरहित (लोगों द्वारा करने योग्य धर्म-नीति-संगत कर्मों से मुक्त) हो गये हैं; परन्तु (वस्तुतः) वे मन को जो भाए, उस भोग का उपभोग करते हैं और महान उन्मत्त तथा विषयान्ध हैं। १०८ राक्षसों का (तथाकथित धर्म-संगत) आचार (वैसे ही) व्यर्थ है, जैसे हाथी स्नान करके आ गये हों (फिर भी उनका स्नान व्यर्थ है) अथवा गधे भस्म में (व्यर्थ ही) लोटते-पोटते हों (उनके शरीर में भस्म लगना व्यर्थ है), तो भी उन्हें योगीश्वर कौन कहेगा। १०९ कोई-एक राक्षस संन्यास ग्रहण करने पर भी गो-मांस भक्षण करते हैं और (ऊपर से) साथ ही आचमन करते हुए कहते हैं कि कौन कर्ता है। ११० (संन्यासाश्रम स्वीकार करते समय किया जानेवाला) विरजा (नामक) होम (उनके द्वारा) करने पर तिल और घी तो जल गया (परन्तु संन्यासी के गुण नहीं अपनाये गये)। और काम, क्रोध आदि विकार रूपी छहों जने (शत्रु) अधिकाधिक उन्मत्त हो गये हैं। १११ वे नाना प्रकार की जातियों के जीवों को भक्षण करते हैं और (ऊपर से) कहते हैं— हमें कोई न छू ले। कोई-एक जटाधारी गाय का चमड़ा ओढ़कर बैठे हैं। ११२ वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार किये हुए कोई-कोई वन में भ्रमण कर रहे हैं। कोई-कोई गुप्त अर्थात् छिपकर गायों को मार डालने के हेतु बैठे हुए हैं, तो कोई-कोई ब्राह्मणों को मार डालकर खा जाते

इंद्रियें ठेविलीं मुक्त । गृहस्थ पडले गृहगतींत । पापें अमित जोडिती । १४ क्षत्रिय अधर्म तेथें सर्व वसती । समरीं पाठी देऊन पळती । वाढिवेच्या गोष्टी बोलती । घाय घालिती अधर्में । १५ वैश्यांचें अधर्मीं चित्त । जोखोन दुसऱ्यासी नाडीत । शुद्ध धर्मवाट पाडीत । विप्रसेवा सांडोनियां । १६ वाण्यांनीं उदीम तळासी आणिला । सर्वत्रांचा गुंडाळा केला । सोनारीं वरकोल घातला । सर्व जिरविले अलंकार । १७ सोनार ठकठक करिती । तेथे नाहीं सीता सती । नाळी झांकणी कांसार विकती । चिच्छक्ती तेथें कैंची । १८ व्यवहारें कालांतरीं प्राप्ती । लक्षूनि परहस्तीं समर्पिती । खत हातीं लिहून घेती । पाहोन रडती जन्मवरी । १९

हैं और (ऊपर से) कहते हैं कि यहाँ कौन कर्ता है । ११३ हम ब्रह्मचारी तथा (सांसारिक भोग-विलास आदि प्रवृत्तियों से) विरक्त हैं, इसलिए इंद्रियों को मुक्त कर रखा है (अर्थात् इंद्रियों को चाहे जो करने देते हैं) । गृहस्थ (-आश्रमी) गृह-गति, अर्थात् घर-गिरस्ती के चक्कर में फँसे हैं और अपार पापों को जोड़ रहे हैं । ११४ समस्त क्षत्रिय, जहाँ अधर्म, अर्थात् उनके लिए वर्ण-विचार से धर्म-बाह्य प्रवृत्तियाँ हैं, वहाँ निवास किये हुए हैं । वे युद्ध (भूमि) में (से) पीठ फेरकर पलायन करते हैं । (इधर) कोई-कोई (क्षत्रिय) बड़प्पन की बातें करते हैं और अधर्म प्रवृत्ति से आघात करते हैं (शत्रु पर घात करने के सम्बन्ध में जो नियम हैं, उनका पालन नहीं करते ।) ११५ वैश्यों का मन (मनोवृत्ति) अधर्म में (लगा हुआ) है; वे (वस्तु को) तौलते हुए (भी) दूसरे (अर्थात् ग्राहक) को ठग लेते हैं और ब्राह्मणों की सेवा त्याग कर विशुद्ध धर्म-मार्ग (के क्षेत्र) में लूट मचाते हैं । ११६ बनियों ने व्यवसाय धंधे को (नीति-धर्म की दृष्टि से) निचले स्तर तक पहुँचा दिया है, सबको लपेट लिया है । सुनारों ने (कसौटी पर) कस लिये और (ग्राहकों के) समस्त अलंकार हड़पकर पचा लिए हैं । ११७ सुनार (अपनी दूकानों में) ठक-ठक कर रहे हैं । वहाँ पतिव्रता सीता नहीं है । मनिहार (पीतल आदि की) फुंकनियाँ और ढकनियाँ बेच रहे हैं; वहाँ चित्-शक्ति (स्वरूपा सीता) कैसे हो सकती है ? ११८ व्यवहार में प्राप्ति कालान्तर में ही हो सकती है, यह देखकर उसे (व्यापारी, सेठ-साहूकार आदि व्यवसायी) दूसरे के हाथ सौंप देते हैं, उस सम्बन्ध में प्रलेख (दस्तावेज़) हाथ से लिखा लेते हैं, परन्तु जन्म भर उसे देखते हुए रोते रहते हैं । ११९

तेली भोंवे घाण्याभोंवता। तेथें कैंची सती सीता। साळी कोष्टी पांजणी करितां। जन्म वृथा पैं गेला। १२० गारींत निघाले जीवें जीत। तांबोळी शायशीं पंचायशीं करीत शिंपी अखंड तें खंडीत। सीता निश्चित तेथें कैंची। २१ रंगारी जें वस्त्र श्वेत। तें काळें करिती निश्चित। नसतेचि ठसे लावीत। शुद्धावरी मूर्ख पैं। २२ भुसाऱ्यांनीं धान्यसंग्रह केला। मोजितां व्यर्थ जन्म गेला। तेथें नाहीं जनकबाळा। ते चित्कळा अवतरली। २३ वेद पढती वेदपाठक। तेथें निष्ठा न धरिती अभाविक। प्रतिग्रहाखालीं जन्म देख। गेला निश्चित तयांचा। २४ इदं भवति इदं न भवति। पंडित हेंचि खटपटती। सदा परनिंदा जल्पती। सीता सती तेथें कैंची। २५ ताठले सदा गायक। अभिमानें हुंबती अधिक। प्रेम सांडोनि गाती शृंगारिक। सीता सती तेथें कैंची। २६ ज्योतिषी गोंविले ग्रहगतीं। गृहांत पडले ते न निघती। आपण

तेली कोल्हू के चारों ओर चक्कर लगाता रहता है। वहाँ सती सीता कैसे हो सकती है? (सूत, कपड़ों की बुनाई में) माँड़ी चढ़ाते-चढ़ाते बुनकर-जुलाहों का जन्म व्यर्थ ही बीत गया। १२० ये लोग (संसार के पापरूपी) गोबर के गढ़े में उत्पन्न होकर बड़े चाव से जीवित रहते हैं। तमोली इधर-उधर न्यूनाधिक करता है। दर्जी जो (वस्त्र) अखण्ड है, उसे काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देता है। निश्चय ही वहाँ सीता कैसे हो सकती है। १२१ जो सफेद वस्त्र है, उसे रँगरेज निश्चय ही काला बना देते हैं—मूर्ख शुद्ध वस्तु पर व्यर्थ ही छाप लगाते रहते हैं। १२२ परचूनियों ने अनाज का संग्रह किया है और उसे मापते-मापते व्यर्थ में ही उनका जन्म व्यतीत हुआ है। वहाँ जनक-कन्या नहीं है; (क्यों कि) वह तो चित्कला ही अवतरित है। १२३ वेद-पाठक वेद पढ़ा करते हैं, परन्तु वे श्रद्धा-हीन होकर उसमें कोई निष्ठा नहीं रखते। निश्चय ही उनका जन्म प्रतिग्रह (दान) लेते-लेते व्यतीत हो गया है। १२४ पंडित यही विवाद करते हुए झगड़ रहे हैं—'इदं भवति, इदं न भवति' —अर्थात् यह होता है, यह नहीं होता है। पर-निन्दा (करते हुए) नित्य बकते रहते हैं। वहाँ सती सीता कैसे हो सकती है। १२५ गायक सदा (अभिमान-पूर्वक) तने हुए हैं। वे अभिमान से गुर्राते ही अधिक हैं। (भगवद्-) प्रेम को छोड़कर शृंगार (रस) के गीत गाया करते हैं, तो वहाँ सती सीता कैसे हो सकती है। १२६

कोण हें नेणती। सीता सती तेथें कैंची। १२७ प्रहस्तादि प्रधानघरें। शोधिलीं सर्व अंत:पुरें। पद्मिणीसम स्वरूपें सुंदरें। पदनखा भृंग रुणझुणती। १२८ हनुमंत नाना तर्क करी। कोठें नुमगे जनककुमरी। म्हणे योगगतीनें निर्धारीं। प्राण दिधला जानकीनें। १२९ कीं सरितापतीमाजी बुडाली। कीं रावणें सक्रोध भक्षिली। अंतरिक्षाहूनि खालीं पडली। गेली चूर होऊनियां। १३० कीं रावणें दृढ धरिली। कळ लागोन सुकुमार मेली। कीं रावणपत्न्यांनीं मारिली। सवतीमत्सर करोनियां। ३१ हनुमंत दु:खें गडबडां लोळे। आंसुवें पूर्ण भरले डोळे। म्हणे वृथा समुद्रलंघन केलें। शून्य पडलें सर्व कार्य। ३२ अहा सीते सीते करून। वृथा आलिंगी राजीवनयन। सीतेचें रूप म्हणोन। हृदयीं पाषाण धरीतसे। ३३ मी गेलिया रघुनाथ। प्राण त्यागील यथार्थ।

ज्योतिषी ग्रहों की गति में उलझाये गये हुए हैं, वे अपने घर-गिरस्ती में फँसे हुए हैं; वे निकल ही नहीं पा रहे हैं। वे यह नहीं जानते कि वे स्वयं कौन हैं। वहाँ सती सीता कैसे हो सकती है? १२७

(हनुमान ने रावण के) प्रहस्त आदि मंत्रियों के सब घर तथा अन्त:पुर ढूँढ लिये। उनमें पद्मिनी (जाति की नारी) के समान सुन्दर (नारी—) रूप देखे, जिनके पद-नखों पर भ्रमर गुनगुनाते रहते थे। १२८ हनुमान ने अनेक प्रकार से तर्क किया (और खोजने का यत्न किया), परन्तु जनक-कन्या कहीं भी नहीं मिली। तब उसने कहा (माना)— जानकी ने योग-गति (पद्धति) से निश्चय ही प्राण त्याग दिये होंगे। १२९ अथवा वह समुद्र में डूब गयी हो, अथवा रावण ने उसे क्रोध-पूर्वक खा डाला हो, अथवा वह आकाश से गिर पड़ी हो और चूर-चूर हो गयी हो। १३० अथवा रावण ने उसे दृढ़ता-पूर्वक (कसकर) पकड़ लिया हो, जिससे वेदना उत्पन्न होकर वह सुकुमार सीता मर गयी हो, अथवा रावण की स्त्रियों ने सौतिया डाह से उसे मार डाला हो। १३१ (इस प्रकार तर्क करते हुए) हनुमान दु:ख से लोटता-पोटता रहा। उसकी आँखें आँसुओं से पूर्ण भर गयीं। उसने कहा (सोचा)— मैंने व्यर्थ ही समुद्र को (उड़ान भरकर) लाँघ लिया; यह सब काम शून्य (मूल्य-हीन) हो गया। १३२ 'हाय सीता', 'हाय सीता' कहते हुए राजीव-नयन श्रीराम व्यर्थ ही वृक्षों का आलिंगन करते थे और सीता का रूप समझकर पाषाणों को हृदय से लगाते थे। १३३ (सीता का बिना पता

सुग्रीव नळ नीळ जांबुवंत। सुमित्रासुत न वांचती। ३४ जाईल अयोध्येसी समाचार। भक्तशिरोमणि भरत वीर। शत्रुघ्न आणि माता समग्र। प्राण देतील निर्धारें। ३५ वृथा कष्ट गेले मुळींहूनी। ठायीं न पडे जनकनंदिनी। नव जाय मी परतोनी। चापपाणी वाट पाहेल। ३६ करितां रघुपतीचें स्मरण। विघ्नें पळती मुळींहून। जैसा सुटतां अद्भुत प्रभंजन। जळदजाळ क्षणीं वितळे। ३७ पडतां किंचित अग्न। तृण पर्वतींचें जाय जळोन। कीं गृहस्वामी जागा देखोन। तस्कर जेवीं पळती पैं। ३८ कीं उगवतां दिनपती। भगणें सर्व लोपती। कीं मृगेंद्र देखतां निश्चितीं। अचेतन होती वारण। ३९ तैसें रघुपतीचें करितां स्मरण। विघ्नें सर्व पळती उठोन। करोनि लंकेचें कंदन। पालथी घालीन सागरीं। १४० ऐसें बोलोन हनुमंत। कलह माजविला लंकेंत। घरोघरीं लोकांत आकान्त। ओढविला वायुसुतें। ४१ रत्नजडित गोपुरें देखा। विद्युत्प्राय झळकत पताका।

लगाये) यदि मैं (वहाँ किष्किन्धा) जाऊँ, तो रघुनाथ सचमुच प्राण त्याग देंगे; सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवान और लक्ष्मण (भी) नहीं बचेंगे। १३४ (तदनन्तर) यह समाचार अयोध्या में (पहुँच) जाएगा, तो भक्त-शिरोमणि वीर भरत, शत्रुघ्न और समस्त माताएँ निर्धार-पूर्वक प्राण त्याग देंगे। १३५ मूल से ही सब कष्ट व्यर्थ हो गये (क्यों कि) जनक-नंदिनी का पता नहीं लग रहा है। मैं नहीं लौट जाऊँ, तो चापपाणि श्रीराम राह देखते रहेंगे। १३६ रघुपति का स्मरण करते ही विघ्न जड़-मूल से भाग जाते हैं। जिस प्रकार अद्भुत पवन के छूटते (बहने लगते) ही मेघ-जाल बिखरकर नष्ट हो जाता है, अथवा किंचित् अग्नि के (भी) पड़ जाने पर पर्वत पर की घास जल जाती है, अथवा घर के स्वामी को जागृत देखकर चोर जैसे भाग जाते हैं, अथवा सूर्य के उदित होने पर समस्त तारे लुप्त हो जाते हैं, अथवा सिंह को देखते ही हाथी निश्चय ही (मारे घबराहट के) अचेतन हो जाते हैं, उस प्रकार रघुपति का स्मरण करते ही समस्त विघ्न (मानो) उठकर भाग जाते हैं। (तब) हनुमान ने विचार किया— लंका का नाश करके मैं उसे सागर में औंधी डाल दूँगा। १३७-१४० ऐसा बोलकर (सोचकर) वायुपुत्र हनुमान ने लंका में कलह मचा दिया और घर-घर लोगों के लिए आकान्त (भारी संकट, अनर्थ अकस्मात) मचा दिया। १४१ वह लंका-नगरी दिव्य थी—देखिए,

कनककळसां नाहीं संख्या। दिव्य लंकानगर तें। ४२ अंजनीसुत मत्तवारण। पुच्छ हें वज्रशुंडा जाण। सकळ गोपुरें ओढून। अकस्मात पाडीत। ४३ मध्यरात्र जाहली पूर्ण। निद्रार्णवीं लोक निमग्न। तों अकस्मात घरें कोसळून। पडोनि जन दडपती। ४४ जैसे पर्वताचे कडे खचती। तैशीं गोपुरें खालीं पडती। महाद्वारें ओढूनि मारुती। झुगारीत गगनपंथें। ४५ गवाक्षद्वारें पुच्छ घालून। गृहस्तंभ पाडी आकर्षून। लत्ताप्रहारेंकरून। कपाटें फोडोन टाकीत। ४६ नगरतळ दणाणत। भयंकर घोषें किंकाटत। वृक्षउन्मळी अकस्मात। भयभीत लोक जाहले। ४७ एकचि नगरीं कोल्हाळ झाला। एक म्हणती पळा रे पळा। ऐसें बोलतां अकस्मात शिळा। येऊन पडती मस्तकीं। ४८ राक्षसिणींचीं बाळें धरूनी। भिरकावून देत गगनीं। राक्षसी वक्षस्थळें बडवूनी। हांका फोडिती आक्रोशें। ४९ स्त्रीपुरुष

उसमें रत्नों से जटित गोपुर (विशिष्ट प्रकार के कलशों से युक्त मनोरे) थे, वहाँ पताकाएँ विद्युत्प्राय (बिजली-सी) झलक रही थीं, सुवर्ण-कलशों की कोई (सीमित) संख्या ही नहीं थी (अर्थात् कलश अनगिनत थे)। १४२ अंजनी-सुत हनुमान मानो उन्मत्त हाथी ही हो; समझिए, उसकी पूँछ बज्र (-सी कठिन) शुण्डा (सूँड) है। उसने उससे समस्त गोपुरों को खींचकर अकस्मात गिरा दिया। १४३ आधी रात पूरी हो चुकी थी। लोग निद्रारूपी सागर में मग्न थे। तब अकस्मात घरों के ढह जाने से (गिर पड़ने से) लोग दब गये। १४४ जिस प्रकार पर्वत के कगार ढह जाते हैं, उस प्रकार गोपुर नीचे गिर रहे थे। हनुमान महाद्वारों (बड़े-बड़े फाटकों) को खींचकर आकाश-मार्ग पर फेंक रहा था। १४५ खिड़की के द्वार में से पूँछ डालकर वह घर के खम्भों को खींचकर गिरा रहा था। वह लातों के आघातों से किवाड़ों को फोड़ रहा था। १४६ वह नगर के अड्डों को दनदना देता, भयावह गर्जन-पूर्वक चीख उठता; सहसा वृक्षों को उखाड़ डालता, उससे लोग भयभीत हो गये। १४७ नगर में अद्‌भुत कोलाहल मच गया। कोई-एक कहते— 'भागो, भागो।' उनके ऐसे बोलते ही अकस्मात शिलाएँ आकर उनके मस्तक पर गिर पड़ीं। १४८ राक्षसियों के बच्चो को पकड़कर वह आकाश में उछाल देता, तो राक्षसियाँ छाती पीटते हुए आक्रोश-पूर्वक चीखतीं-चिल्लातीं। १४९ (कहीं) स्त्री-पुरुष दोनों नग्न रूप से एकान्त में

दोघे नग्न। एकांतीं केलें शयन। तीं जागीं न होतां उचलून। बिदीस शेज ठेवीत। १५० भांडारगृह फोडून। नाना वस्तूंच्या मांदुसा आणोन। राजबिदीस टाकी पूर्ण। एकेच ठायीं सर्वांच्या। ५१ पुच्छाचे चपेटे थोर। रात्रीं वाजवी वारंवार। भयभीत जाहले अवघे असुर। बोलों उत्तर न शकती। ५२ ऐसें नगर गांजोनि पूर्ण। मग राजद्वारावरी जाऊन। बैसला अंजनीनंदन। कलह पूर्ण माजवावया। ५३ हृदयीं पुच्छ धरोनि हनुमंत। वारंवार तया चुंबीत। डोळे मोडोन वांकुल्या दावीत। घुलकावीत मान पैं। ५४ तों नरनारी असंख्यात। कलश घेऊन उदक आणीत। पुच्छ गोंवून अकस्मात। कपी फोडीत एकदांचि। ५५ नारी दचकल्या समस्त। कोण गे येथें घागरी फोडीत। त्यांचे कर्णनासिकीं हनुमंत। पुच्छ घालीत हळूचि। ५६ तेणें दुश्चित नारी दचकती। एक फडफडां शिंकती। भरला घट मारुती। जाऊं नेदी नगरांत। ५७

शयन किया था, तो उनके जागृत न होते हुए, उनकी शय्या को उठाकर गली में रख दिया। १५० (कहीं) भण्डार-गृहों को फोड़कर उसने नाना (प्रकार की) वस्तुओं से भरे हुए सबके सन्दूकों को उठा लाकर एक ही स्थान पर राजपथ में पूर्णतः डाल दिया। १५१ रात में वह अपनी पूँछ से बारबार भारी चपत जमाते हुए आवाज उत्पन्न कर देता। उससे समस्त असुर भयभीत हो गये, तो वे (एक-दूसरे के प्रश्न के) उत्तर में बोल (तक) नहीं सकते थे। १५२

इस प्रकार नगर को पूर्णतः सताकर, हनुमान अनन्तर राज-द्वार पर जाकर पूरा कलह मचाने के लिए बैठ गया। १५३ (तदनन्तर) हृदय अर्थात् छाती पर पूँछ पकड़कर रखते हुए हनुमान बार-बार उसे चूमता, आँखें मचकाता, मुंह बनाता और नखरे के साथ गरदन हिलाता। १५४ तब अनगिनत स्त्री-पुरुष कलश लिए हुए पानी ला रहे थे, तो कपि ने सहसा (उन कलशों में) पूँछ घुसाकर उन्हें एकदम फोड़ डाला। १५५ तो समस्त नारियाँ चौंक उठीं (और बोलीं)— 'अरी, यहाँ गगरियों को कौन फोड़ रहा है ?' (तब) हनुमान ने हौसले से उनके कानों और नाक में पूँछ घुसा दी। १५६ उससे क्षुब्ध होकर नारियाँ चौंक जातीं; कोई-एक फट-फट छींकतीं। हनुमान भरा हुआ घट (लेकर किसी को भी) नगर में जाने नहीं दे रहा था। १५७ (इस

घटस्फोट जाह्ले राजद्वारीं। शिव्या देती नगरींच्या असुरी। दशमुखा तुझी न उरे उरी। जनककुमारी क्षोभली। ५८ सीतेनें चेतविलें भूत। तें नगरांत हिंडे गुप्त। हें लंकेचा करील निःपात। दशकंठ यथार्थ निमेल। ५९ तों राजदर्शनासी महावीर। तुरंगारूढ जाती सत्वर। ऐसें देखोनि कपिवर। काय करिता जाह्ला। १६० मागिले पायीं तुरंग धरूनी। गरगरां भोवंडोनि आपटी मेदिनीं। एकावरी एक उचलोनी। अश्वासहित स्वार टाकी। ६१ तों गजभार आले उन्मत्त। त्यांचे पुच्छें उपडोनियां दांत। वरी बैसले असुर समस्त। दंतघायें झोडिले। ६२ गुढारांसहित गज उचलोनी। भिरकावीत समुद्रजीवनीं। तों रथारूढ होऊनी। राजकुमार पातले। ६३ तंत वितंत घन सुस्वर। वाजवीत वाद्यांचे गजर। देखतां क्षोभला वानर। पुच्छ सत्वर सोडिलें। ६४ शतांचे शत रथ ओढोनी। कुमार

प्रकार) राज-द्वार में घट टूट गये, तो नगर की राक्षसियाँ गालियाँ देतीं (और कहतीं)— 'हे दशमुख, आपकी नगरी शेष नहीं रहेगी। जनक-कन्या क्षुब्ध हो गयी है। १५८ सीता ने किसी भूत को उकसा दिया है। वह नगर में गुप्त रूप से घूम रहा है। यह लंका का निःपात कर डालेगा और दशमुख सचमुच ठण्डा हो जाएगा।' १५९ तब बड़े-बड़े वीर पुरुष घोड़ों पर सवार होकर राज-दर्शन के लिए शीघ्रता से जा रहे थे। ऐसा देखकर वानर ने क्या किया? १६० पिछली टाँगों को पकड़कर वह घोड़ों को चक्राकार घुमाते हुए पृथ्वी पर पटक देता; फिर एक के ऊपर एक को उठाकर सवारों को घोड़ों सहित फेंक देता। १६१ तब उन्मत्त हाथियों के दल आ गये, तो अपनी पूँछ से उसने उनके दाँत उखाड़ लिये और उन (हाथियों) पर बैठे हुए समस्त असुरों को उन दाँतों के आघात से पीट लिया। १६२ उसने अम्मारियों सहित हाथियों को उठाकर उनको जोर से घुमाकर समुद्र-जल में फेंक दिया। तब रथों में बैठकर राजपुत्र आ पहुँचे। १६३ (सितार जैसे तन्तु-सहित) तन्त (जाति के वाद्य), (शहनाई जैसे तन्तु-रहित) वितन्त (जाति के वाद्य), (करताल, झाँझ जैसे एक भाग से दूसरे भाग पर आघात करके बजाये जानेवाले) घन (जाति के) वाद्य सुसंगति पूर्ण मधुर स्वर में (वादक) बजा रहे थे। उन्हें वाद्यों का गर्जन करते देखकर वह वानर क्षुब्ध हो उठा और उसने झट से अपनी पूँछ खुली

पालथे पाडिले मेदिनीं। सारथी भिरकाविले गगनीं। घोडे मारून टाकिले। ६५ पुच्छघायेंकरूनी। वाजंत्री झोडिले ते क्षणीं। वाद्यें गेलीं सकळ गळोनी। शंख करीत पळती ते। ६६ तों पालखींत बैसोन प्रधान। आले देखोनि वायुनंदन। सूक्ष्म पुच्छ करून। भोयांचे कानीं सूदिलें। ६७ भोई दचकले एकाएकीं। खालती आपटिली पालखी। त्यांतें प्रधान धरोनि जवळिकीं। ताडण करिती बहुसाल। ६८ ते म्हणती कां मारितां व्यर्थ। श्रावणारिस्नुषेनें चेतविलें भूत। तें तुमचा अपमान करीत। शिबिका बहुत मोडिल्या। ६९ पालख्या रथ गज घोडे। झोडून पाडिले एकीकडे। कोणी न ये राजद्वाराकडे। जो तो दडे सांधीं-कोनीं। १७० सवेंच उठोनि मारुती। घरोघरीं घेत पाळती। सीतेची गोष्ट कोणे रीती। कैसें बोलती म्हणोनियां। ७१ असो अस्ता गेला चंडकिरण। सभामंडपीं

छोड़ दी—अर्थात् उस ओर बढ़ा दी। १६४ उसने (उस पूँछ से) सैकड़ों-सैकड़ों रथों को खींचकर राजपुत्रों को भूमि पर औंधा गिरा दिया, सारथियों को (हाथ से) ज़ोर से घुमाकर आकाश में फेंक दिया और घोड़ों को मार डाला। १६५ (तदनन्तर) उसने अपनी पूँछ के आघात से वादकों को उस क्षण पोट लिया, तो (उनके हाथों से) समस्त वाद्य गिर गये और वे चीखते-चिल्लाते हुए भाग गये। १६६ इतने में (रावण के) मंत्रियों को पालकियों में बैठकर आये हुए देखकर वायु-नन्दन हनुमान ने अपनी पूँछ को सूक्ष्म (पतली तथा नुकीली) बनाते हुए कहारों के कानों में डाल दिया। १६७ तो वे कहार यकायक चौंक उठे और उन्होंने पालकियों को नीचे पटक दिया। (तब) कहारों को पकड़कर वे उन्हें पीटने लगे। १६८ तो उन्होंने कहा (पूछा)— 'हमें व्यर्थ ही में क्यों पीट रहे हैं? दशरथ की बहू सीता ने एक भूत को उकसा दिया है। वह आपका अपमान कर रहा है। उसने बहुत-सी पालकियों को (भी) तोड़ डाला।' १६९ उसने पालकियों, रथों, हाथियों और घोड़ों को पीटकर एक ओर गिरा दिया। (अतः) कोई भी राज-द्वार की ओर नहीं आ रहा था। हर कोई कोने-अँतरे में छिप जाता था। १७०

साथ ही हनुमान उठकर घर-घर टोह लेता रहा कि सीता-सम्बन्धी कोई बात कौन किस प्रकार करता है। १७१

बैसला रावण। तये सभेंत अंजनीनंदन। प्रवेशता पैं जाहला। ७२ सिंहासनीं बैसला लंकानाथ। पाठीसी उभा रामदूत। तों सभेस घरटीकार सांगत। रावणासंन्मुख वर्तलें तें। ७३ म्हणती शक्रारिजनका अवधारीं। दुष्टें विघ्नें उदेलीं नगरीं। लक्षांचे लक्ष फुटल्या घागरी। नगरद्वारीं लंकेशा। ७४ उगीच पडती गोपुरें। बहुसाल रिचवती मंदिरें। गगनमार्गी टाकिलीं लेंकुरें। कपाटें समग्र मोडिलीं। ७५ वीर पडले म्हणताती। निद्रिस्त जन वोसणती। दुश्चिन्हें बहुत लंकापती। शंका वाटे सांगतां। ७६ ताटिकान्तकाची कान्ता झडकरी। नेऊन सोडावी कान्तारीं। इतुकेन स्वस्थ लंकापुरी। चिरकाळ नांदेल। ७७ ऐसें बोलतां घरटीकार। क्रोधावला द्विपंचवक्त्र। म्हणे याची जिव्हा आणि श्रोत्र। छेदूनियां टाका रे। ७८ नसतें कल्पित दुश्चिन्ह। सांगतो मूर्ख आम्हांलागून।

अस्तु! सूर्य का अस्त हो गया, तो रावण सभामण्डप में बैठ गया। (तब) अंजनी-नन्दन हनुमान उस सभा में प्रविष्ट हो गया। १७२ (वहाँ) लंकापति रावण सिंहासन पर बैठा था। उसके पीछे राम-दूत हनुमान खड़ा (रहा) था। तब गश्तकारों ने रावण के सामने सभा को, जो कुछ हुआ, सो बता दिया। १७३ उन्होंने कहा— 'हे शक्रारि-जनक (इन्द्रजित के पिता), ध्यान से सुनिए। नगर में दुष्ट विघ्न उत्पन्न हो गये हैं। हे लंकेश, लाखों-लाखों गगरियाँ नगर-द्वार में टूट गयीं। १७४ बिना किसी कारण के, गोपुर गिर गये, बहुत-से मंदिर ढह गये, बच्चे-बाले आकाश में फेंक दिये (गये) और समस्त किवाड़ टूट गये। १७५ कहते हैं, वीर पुरुष गिर पड़े, निद्रिस्थ (सोये हुए) लोग चौंककर बोल उठते हैं। हे लंकापति, बहुत से दुश्चिह्न (बुरे लक्षण, अपशकुन) हो रहे हैं, (जिन्हें) कहने में भी भय अनुभव हो रहा है। १७६ (इसलिए) (ताड़का का अन्त कर देनेवाले) श्रीराम की पत्नी को शीघ्र ही ले जाकर वन में छोड़ दें। इतना करने पर लंकापुरी चिरकाल शान्त तथा सुखपूर्वक रहेगी।' १७७

गश्तकारों के ऐसा कहने पर दशानन क्रुद्ध हो गया और बोला— 'अरे, इनकी जिह्वा और कानों को छेद डालो। १७८ यह मूर्ख, जो नहीं है, वह कल्पित दुश्चिह्न हमें बता रहा है।' ऐसी बात सुनते ही

ऐसें ऐकतां वचन। राघवप्रियकर क्षोभला। ७९ म्हणे लटिकें दुश्चिन्ह। यासीच दावूं खरें करून। माझे पुच्छासी होवो बहु कल्याण। करीन कंदन सभेचें। १८० तों रावणापुढें नापिक येत। शस्त्रें श्मश्रु नीट करीत। तों नापिकाचे कर्णीं हनुमंत। पुच्छ घाली हळूचि। ८१ तों नापिक भयें दचकला। तेणें हात चांचरी गेला। मिशी भादरली ते वेळां। एकीकडील अवघीच। ८२ तेणें क्षोभला लंकानाथ। हस्तें ताडिला नापिक। रावणाचे पृष्ठीवरी देख। हनुमंतें मुष्टी ओपिली। ८३ वामहस्तचपेटेकरूनी। दाही छत्रें पाडिलीं धरणीं। सवेंच दाही मुकुट हाणोनी। सव्यहस्तें पाडिले। ८४ छात्रदंड घेवोनि करीं। घाली रावणाचे अपानद्वारीं। येरू मागें पाहे ते अवसरीं। तों दंड माझारी खंडिला। ८५ चौदा गांवें मंडप विस्तीर्ण। सुगंधस्नेहें दीप शोभायमान। चौदा सहस्र लाविले पूर्ण। ठायीं-ठायीं

राम-प्यारा हनुमान क्षुब्ध हो उठा। १७९ उसने कहा (सोचा)— इस मिथ्या अवलक्षण को इसे ही सत्य कर दिखा दें— मेरे इस पूँछ का बहुत कल्याण हो। मैं इस सभा का नाश कर डालूँगा। १८०

तब रावण के सम्मुख नाई आ गया। वह हथियार (छूरे) से दाढ़ी ठीक से सँवार रहा था, तो हनुमान ने उस नाई के कान में हौले से पूँछ (की नोक) डाल दी (घुसा दी)। १८१ त्यों ही वह नाई भय से चौंक उठा। उससे उसका हाथ काँप उठा और (इधर) उस समय रावण की एक ओर की समस्त मूँछ कट गयी (सफाचट) हो गयी। १८२ उससे लंकापति रावण क्षुब्ध हो गया और उसने हाथ से नापित को पीटा, तो (इधर) देखिए, हनुमान ने रावण की पीठ में घूँसा जमा दिया। १८३ उसने बायें हाथ के थपेड़े से उसके दसों छत्र भूमि पर गिरा दिये और साथ ही दसों मुकुट दायें हाथ से आघात करके गिरा दिये। १८४ छत्र-दण्ड हाथ में लेकर उसने रावण के अपान- (गुदा-) द्वार में डाल दिया। (फिर) जब वह पीछे देखने लगा, तो उस समय (हनुमान ने) उस दण्ड को बीच में ही तोड़ डाला। १८५

(वह सभा-) मण्डप चौदह योजन विशाल था। उसमें सुगंधित तेल (इत्र) से युक्त दीप शोभायमान थे। ऐसे पूरे चौदह सहस्र सुन्दर दीप स्थान-स्थान पर लगाये थे। १८६ जिनके शरीर विशाल थे, ऐसे

सुरेख । ८६ कर्पूरदीप सतेज थोर । आठ लक्ष सभेसमोर । पाजळोन उभे असती असुर । विशाळ शरीरें जयांचीं । ८७ पुच्छवातें वायुकुमरें । दीपिका विझविल्या एकसरें । दीप तेथें एकही न उरे । जाहले घाबरे सभालोक । ८८ अंधार पडतांचि तेथ । नागवूं लागला हनुमंत । शस्त्रवस्त्रादि समस्त । अलंकार घेत हिरोनि । ८९ मुकुट घेऊन सत्वर । मस्तकीं हाणी मुष्टिप्रहार । जैसा सपक्षनगावरी पुरंदर । वज्र बळें प्रेरी पैं । १९० बोटें तोडोनि मुद्रिका सकळ । काढून घेत अंजनीबाळ । कंठ पिळोन काढी माळ । करिती कल्होळ असुर तेव्हां । ९१ मुष्टिघातें हृदय फोडूनी । मग घेत पदक काढूनी । पादप्रहारें माज मोडूनी । मग ओढीत कडदोरा । ९२ नेसलीं वस्त्रें घेत हिरोनी । सवेंच लिंग टाकी तोडोनी । एक वस्त्रें फेडोनी । अगोदर टाकिती । ९३ एक म्हणती आयुष्य जाहलें जरी । वस्त्रालंकार देखों संसारीं । परी लिंगाविण जन्मवरी । काय म्हणोनि

असुर आठ लाख बहुत तेजस्वी कर्पूर-दीप प्रज्ज्वलित करके खड़े थे । १८७ (वहाँ आकर) हनुमान ने पूँछ के आघात से उन समस्त दीपिकाओं को एकदम बुझा दिया । एक भी दीया वहाँ शेष नहीं रहा, तो सभा-जन घबरा उठे । १८८ अँधकार के फैलते ही वहाँ हनुमान (सबको) नंगा (करके) लूटने लगा । शस्त्र, वस्त्र आदि समस्त आभूषण उसने छीन लिये । १८९ झट से (किसी का) मुकुट लेकर वह (उसके) मस्तक में घूँसा (ऐसे) जमा देता, जैसे इंद्र पंख-सहित पर्वत पर बलपूर्वक वज्र छोड़ देता हो । १९० अंजनी-पुत्र हनुमान ने (असुरों की) अंगुलियों को तोड़कर समस्त अँगूठियाँ निकाल लीं । जब वह किसी का गला मरोड़कर माला निकाल लेता था, तब वे असुर कोलाहल करते थे । १९१ वह किसी के हृदय (सीने) को घूँसे के आघात से फोड़कर, फिर पदक निकाल लेता, तो लातों के प्रहार से किसी की मस्ती छुड़ाकर फिर उसका कटि-सूत्र (करधनी) खींच लेता । १९२ वह पहने हुए वस्त्रों को छीन लेता, साथ ही लिंगों को काट डालता । (उसे आते देखकर) कोई-एक (मारे घबराहट के) वस्त्र को पहले ही उतार डालते । १९३ कोई-एक कहते, 'आयु रह जाए, तो वस्त्र तथा आभूषण संसार में देख सकेंगे, परन्तु बिना लिंग के, (जीवन के) अन्त तक जीवन कैसे बिता

कंठावें। ९४ राक्षसांचे चरण मोडूनी। मग ब्रीदें घेतली काढूनी। एक हांक फोडती ते क्षणीं। घ्राण छेदोनी टाकीत। ९५ एकासी एक दाविती खूण। बोलूं नका रे वांचवा प्राण। एक म्हणती निर्मूळ करावया पूर्ण। महद्भूत उदेलें। ९६ आणिली श्रीरामाची कान्ता। सतियां शिरोमणी पतिव्रता। तिनेंच हें भूत चेतवितां। प्रळय जाहला लंकेसी। ९७ अंधार पडला दारुण। सुटला अद्भुत प्रभंजन। दीपिका आणितां जाती विझोन। अनर्थ पूर्ण ओढवला। ९८ एक म्हणती कोठें लंकानाथ। एक म्हणती मेला कीं जित। जवळ असतां न कळे मात। थोर प्राणान्त ओढवला। ९९ देवांतक नरांतक राजसुत। अतिकाय इंद्रजित। मत्त महामत्त युद्धोन्मत्त। प्रहस्तादि नागविले। २०० उघडोनियां सभाद्वार। कोणी जाऊं न शके बाहेर। होत पुच्छाचा घोर मार। दडती असुर ठायीं-ठायीं। १ भयभीत दशकंधर।

दें ? ' १९४ उसने राक्षसों के पाँव तोड़कर फिर उनके विरुद निकाल लिये। उस क्षण कोई-एक चिल्ला उठता, तो वह उसकी नाक काट डालता। १९५ वे (राक्षस) एक-दूसरे को संकेत दिखाते (और उसके द्वारा सूचित करते कि)— ' अरे मत बोलो, प्राणों को बचा लो। ' कोई एक कहते कि (सबको) पूर्णतः निर्मूल कर डालने के लिए कोई महद्भूत (बड़ा पिशाच) उदित हो गया है। १९६ रावण सतियों में शिरोमणि (सर्वश्रेष्ठ) जैसी महापतिव्रता श्रीराम की स्त्री ले आया है। उसी ने यह पिशाच उकसा दिया है। अब लंका में प्रलय हो गया। १९७ (तब) घना अँधेरा छा गया, अद्भुत पवन बहने लगी। (उससे) दीपिकाएँ बुझ गयीं और पूरा अनर्थ आ धमका। १९८ कोई-एक कहते (पूछते)— ' लंकानाथ कहाँ है ? ' तो कोई-एक (उत्तर में) कहते— ' वह मर गया या जीवित है ! निकट होने पर भी बात ज्ञात नहीं हो जाती है। प्राणों का बड़ा अन्त (अर्थात् महाविनाश) आ धमका है। ' १९९ हनुमान ने देवांतक, नरांतक, अतिकाय, इंद्रजित, मत्त, महामत्त, प्रहस्त आदि युद्धोन्मत्त राजपुत्रों को नंगा कर लिया। २००

सभा (-गृह का) द्वार खोलकर कोई भी बाहर नहीं जा सकता था। (क्योंकि बाहर आने पर हनुमान की) पूँछ की भारी मार पड़ जाती। (अतः) राक्षस स्थान-स्थान में छिप गये। २०१ (इधर)

म्हणे सत्य बोलिला घरटीकार। प्रचंड विघ्न हें दुस्तर। आलें साचार प्रत्यया। २ रावणाचे पृष्ठीवरी मार। वज्रप्राय होत थोर। बोलूं न शके अणुमात्र। घ्राण छेदील म्हणोन। ३ रावणाचे कानीं हनुमंत। हळूच जावोनि सांगे मात। जनकजापतीचा मी दूत। त्रासीन नगर समस्त हें। ४ तुझीं छेदोनि दाही शिरें। किष्किंधेसी नेईन क्षणमात्रें। परी त्या अयोध्याधीशें उदारें। आज्ञा नाहीं दीधली। ५ ऐसें सांगतां वायुनंदन। मनीं भ्रमित जाहला द्विपंचवदन। कर्णी सांगीतलें वर्तमान। कळलें नाहीं रावणा। ६ ऐसा प्रळय करूनि थोर। निघोन गेला वायुपुत्र। नागविले प्रतापें वीर। दशवक्त्रादि-करोनियां। ७ दीपिका आणिल्या तात्काळ। तों नागवेचि असुर सकळ। कित्येक मूर्च्छा येऊनि विकळ। बहुत पडिले धरणीये। ८ कित्येकांचे मोडिले करचरण। बहुतांचे तोडिले कर्ण घ्राण।

भयभीत हुआ रावण बोला-गश्ती ने सच कह दिया था। यह सचमुच अनुभव हो गया कि यह विघ्न प्रचंड एवं दुस्तर है। २०२ (इतने में) रावण की पीठ पर वज्र की-सी भारी मार पड़ी, तो वह अणु-भर भी इसलिए नहीं बोल पा रहा था कि वह (तथाकथित पिशाच) नाक को छेद डालेगा। २०३ (तब) हनुमान ने हौले-हौले जाकर रावण के कान में यह बात कही— 'मैं सीता-पति राम का दूत हूँ और इस समस्त नगर को तंग कर दूँगा। २०४ तुम्हारे दसों मस्तकों को काटकर, मैं क्षण मात्र में किष्किन्धा में ले जा सकूँगा। परन्तु अयोध्याधीश उन उदार श्रीराम ने (मुझे वैसी) आज्ञा नहीं दी है।' २०५ वायु-पुत्र हनुमान द्वारा ऐसा कहने पर रावण मन में भ्रम में पड़ गया। रावण की यह समझ में नहीं आया कि (किसी ने ऐसा) समाचार कान में कहा है। २०६

इस प्रकार बड़ा प्रलय मचाकर हनुमान चला गया। उसने दशानन रावण आदि सहित प्रतापवान् वीरों को नँगिया दिया (नंगा कर दिया)। २०७ (तदनन्तर) दीपिकाएँ तत्काल ला दीं, तो (दिखायी दिया कि) समस्त असुर नंगे ही थे। कितने ही असुर मूर्छित होकर विकल रूप से भूमि पर गिर गये। २०८ कितने ही असुरों के हाथ-पाँव टूट गये थे, तो बहुतों के कान तोड़ डाले थे। कोई-एक 'लिंग काट दिया' कहकर रावण को दिखाते थे। २०९

एक लिंग तोडिलें म्हणोन। रावणासी दाखविती। ९ दुःखें व्याप्त पिशिताशन। स्वसदना गेले उठोन। चिंताक्रान्त दशवदन। राणिवसांत प्रवेशला। २१० रामविजय ग्रंथ सुंदर। हें विश्रांतीचें दिव्य मंदिर। येथें पहुडले सज्ञान नर। जे रघुवीर उपासक। ११ जे मतिमंद अज्ञानी जन। सेविताती अविद्यारण्य। त्यांसी हें रामविजयसदन। प्राप्त नोहे सहसाही। १२ विषकंठहृदया रघुनंदना। श्रीरामा दशकंठदर्पहरणा। श्रीधरवरदा जगद्भूषणा। ब्रह्मानंदा सुखाब्धे। १३ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। एकोनविंशतितमाध्याय गोड हा। २१४

(तब) दुख से व्याप्त होकर वे राक्षस उठकर अपने-अपने घर चले गये। (इधर) चिन्ताक्रान्त दशानन अन्तःपुर में प्रविष्ट हो गया। २१०

(यह) राम-विजय ग्रन्थ सुन्दर है। वह विश्राम का दिव्य मंदिर है। जो श्रीराम के उपासक हैं, वे सज्ञान नर वहाँ लेट गये हैं। २११ (परन्तु) जो मन्द-मति और अज्ञान लोग अविद्या रूपी अरण्य का (निवास के लिए) स्वीकार किये हुए हैं, उन्हें राम-विजय रूपी सदन साधारणतः प्राप्त नहीं हो जाता। २१२

शिवजी के हृदय (-निवासी) हे रघुनन्दन, रावण के घमण्ड को छुड़ानेवाले हे श्रीराम, हे श्रीधर कवि के लिए वर-दाता, हे जगद्-भूषण, हे सुख-सागर ब्रह्मानन्द (गुरुदेव), स्वस्ति। श्रीराम-विजय नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि के नाटक से सम्मत तथा उसपर आधारित है। चतुर भक्त (-श्रोता) उसके इस मधुर उन्नीसवें अध्याय का नित्य श्रवण करें। (२१३-२१४)

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२०

श्रीगणेशाय नमः। जैसे दुर्बळाचिया गृहाप्रती। समर्थ सोयरे आदरें येती। त्यांसी पाहुणेर करावया निश्चितीं। नाहीं शक्ति तयातें। १ मग तो कंदमुळें आणून। पुढें ठेवी प्रीतीकरून। तैसे हे प्राकृत बोल पूर्ण। संतांपुढें समर्पिले। २ पयोब्धीपुढें ठेविलें तक्र। कीं सुरभीपुढें साखर। नेऊनियां समर्पिली। ३ कुबेरापुढें कवडी जाण। रंकें ठेविली नेऊन। शीतळ व्हावया रोहिणीरमण। नवनीत पुढें ठेविलें। ४ कल्पद्रुमापुढें बदरीफळ। वैरागराचे कंठीं स्फटिकमाळ। मलयगिरीसी गन्ध शीतळ। निंबकाष्ठाचें चर्चिलें। ५ जो ब्रह्मांडप्रकाशक गभस्ती। त्यासी ओंवाळिजे एकारती। परी तो घेत देखोन भक्ती। ऐसेंचि येथें संतीं केलें। ६ तैसे बोल हे हीन जाण। परी संतांसी आवडती पूर्ण। एकुणिसावे अध्यायीं कथन। काय जाहलें तें परिसा हो। ७ असुरांतें देखोनि हनुमंत।

श्रीगणेशाय नमः। जिस प्रकार दीन-दरिद्र के घर कोई ऐश्वर्यशाली मित्र अथवा नातेदार आदरपूर्वक आ जाते हों, और उनका आतिथ्य करने की शक्ति निश्चय ही उसमें नहीं होती, तो वह कन्द-मूल लाकर प्रीति-पूर्वक उनके सम्मुख रखता हो, उस प्रकार (आप जैसे महान् सन्तों का आगमन मेरे यहाँ हुआ है, मैं उनके योग्य वाणी में रामकथा कहने में असमर्थ हूँ, इस-लिए) मैंने (आप जैसे) सन्तों के सामने ये पूरेपूरे प्राकृत वचन समर्पित किये हैं। १-२ मानो (मैंने) क्षीर-सागर के सम्मुख छाछ रखा हो, अथवा कामधेनु के सम्मुख बकरी का दूध, अथवा अमृत के समक्ष शक्कर ले जाकर समर्पित की हो, अथवा समझिए कि किसी दरिद्र ने कुबेर के सामने (कौड़ी) ले जाकर रखी हो, अथवा (रोहिणी-पति) चंद्रमा के शीतल हो जाने के लिए उसके सामने मक्खन रखा हो, अथवा कल्पवृक्ष के सामने बेर का फल रखा हो, अथवा स्पर्श मणि (पारस) के गले में स्फटिक-माला पहना दी हो, अथवा मलयपर्वत में नीम की लकड़ी को (चन्दन-सा घिसकर) उसका शीतल लेप लगाया हो। ३-५ जो सूर्य ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है, उसकी आरती (कोई भक्त) एक बाती-वाले दीप से उतार दे, तो भी वह (सूर्य) उसकी भक्ति को देखकर स्वीकार करता है; उसी प्रकार यहाँ सन्तों ने किया है। ६ इस प्रकार समझिए कि (मेरे) ये वचन हीन हैं, फिर भी (मेरी भक्ति भावना के

सभा नागवूनि समस्त। पुरुषार्थ करोनि अद्भुत। गेला गुप्तरूपेंचि। ८ लंकेचीं मंदिरें समस्त। सीतेलागीं शोधी हनुमंत। जैसा रत्नपरीक्षक निरीक्षित। रत्न आपुलें हारपलें। ९ धांडोळिली लंकानगरी। कोठें नुमगे जनककुमरी। जेथें होतीं रावण-मंदोदरी। तेथें हनुमंत पातला। १० तंव तो शक्रारिजनक। हवन करी विघ्ननाशक। शेजेवरी निजली निःशंक। पट्टराणी मंदोदरी। ११ उपरमाडिया गोपुरें। राणिवसाचीं दामोदरें। ऐशीं सहस्र अंतःपुरें। सीतेलागीं शोधिलीं। १२ सकळ स्त्रियांचे मंदिरांत। रिघोन पाहे हनुमंत। जो महाराज इंद्रियजित। काम रुळत तोडरीं। १३ रावणें आणिल्या नारी। नागिणी पद्मिणी किन्नरी। ज्यांचिया पद-नखांवरी। भ्रमर रुंजी घालिती। १४ ऐशा सुंदरी देखत। परी काममोहित नव्हे हनुमंत। तो राघवप्रिय अतिविरक्त। ऊर्ध्वरेता वज्रदेही। १५

कारण) सन्तों को उसके प्रति पूरी रुचि हो गयी है। अहो (श्रोताओ), उन्नीसवें अध्याय में जिसका कथन हुआ, उसे (संक्षेप में) सुनिए। ७

असुरों को देखकर हनुमान समस्त सभा (-जनों) को नंगा करके लूटकर अद्भुत पराक्रम करके गुप्त रूप से ही चला गया। ८ लंका के समस्त घरों को हनुमान सीता के लिए उस प्रकार ढूँढ़ रहा था, जिस प्रकार अपने खोये हुए रत्न को रत्न-परीक्षक सूक्ष्मता से देखता हो। ९ उसने लंका नगरी ढूँढ़ ली, फिर भी जनक-कन्या कहीं भी नहीं मिली। (तब) हनुमान वहाँ जा पहुँचा, जहाँ रावण और मन्दोदरी थे। १० तब (इंद्रजित का) वह (पिता) रावण विघ्ननाशक हवन कर रहा था, तो उसकी पटरानी मंदोदरी निर्भयता-पूर्वक शय्या पर सोयी हुई थी। ११ ऊपर के खण्ड (मंज़िलें) गोपुर, अन्तःपुर के कक्ष—ऐसे सहस्रों अन्तःपुर उसने सीता के लिए ढूँढ़ लिये। १२ जो हनुमान महाराज इंद्रियों का विजेता है और जिसके वश में कामदेव रहता है, उसने समस्त स्त्रियों के मंदिरों में प्रवेश कर देखा। १३ रावण नागिनी, पद्मिनी, किन्नरी नारियों को लाया था, जिनके पद-नखों पर भ्रमर गुनगुनाते हुए मँडरा रहे थे। १४ हनुमान ने ऐसी सुन्दर नारियों को देखा, फिर भी वह काम-मोहित न हुआ; (क्योंकि) वह राम का प्रिय (भक्त) था, अति विरक्त, उर्ध्व-रेता (अर्थात् योग की क्रियाओं द्वारा अपने वीर्य की रक्षा करनेवाला और अपना वीर्य ब्रह्म-रंध्र की ओर ले जानेवाला) पूर्ण ब्रह्मचारी

घटमठांमाजी व्यापून। वेगळें असे जैसें गगन। तैसाच अंजनीनंदन। लोकांत वर्तूनि वेगळा। १६ स्त्रिया शोधिल्या समस्त। तंव मंदोदरी जेथें निद्रिस्त। तेथें येऊनि हनुमंत। उभा राहिला क्षणभरी। १७ सुरूप देखोनि मंदोदरी। म्हणे हेचि होय विदेहकुमरी। निजेली पवित्रपणें शेजेवरी। पतिव्रता म्हणोनियां। १८ सतियां शिरोरत्न सीता सती। परमपुरुषाची चिच्छक्ती। मज आजि भेटली निश्चितीं। म्हणोन मारुती नाचत। १९ तों होमविधि संपादून। तेथ आला द्विपंचवदन। तों मंदोदरी उठोन। पाय धूत पतीचे। २० ऐसें देखोन हनुमंत। क्षोभला जैसा प्रळलकृतान्त। म्हणे जानकी होय यथार्थ। वश्य जाहली रावणातें। २१ रामवचन आठवी मारुति। सीतेचे वदनीं कर्पूरदीप्ती। मग मुखाजवळी त्वरितगती। मंदोदरीच्या पातला। २२ मुख तिचें अवघ्राणिले। तों दुर्गंधीनें मन विटलें। म्हणे मद्यपान आहे केलें। उभयवर्गीं मिळोनियां। २३ भिंतीस लावितां कान। होत

तथा वज्रदेही था। १५ जिस प्रकार घटों और मठों को व्याप्त करके भी आकाश उनसे भिन्न रहता है, उस प्रकार अंजनी-नंदन हनुमान लोगों में रहते हुए भी उनसे भिन्न था। १६ उसने समस्त स्त्रियों में ढूँढ लिया, (परन्तु सीता कहीं भी नहीं दिखायी दी) तब हनुमान वहाँ आकर क्षण-भर खड़ा रह गया, जहाँ मंददोरी सोयी हुई थी। १७ सुस्वरूपा मंदोदरी को देखकर उसने कहा (माना), यही विदेह-कुमारी सीता होगी, जो पतिव्रता होने के कारण शय्या पर पवित्रता से सोयी हुई है। १८ पतिव्रताओं में शिरोमणि तथा परम-पुरुष की चिद्-शक्ति सती सीता आज मुझे निश्चय ही मिल गयी। अत: वह (आनन्द-पूर्वक) नाचने लगा। १९ त्यों ही दशानन होम-विधि को सम्पन्न करके वहाँ आ गया, तो मंदोदरी ने उठकर पति के चरणों को धोया। २० ऐसा देखकर हनुमान प्रलय-कृतान्त की भाँति क्षुब्ध हो उठा। उसने कहा (सोचा), जानकी सचमुच रावण के वश में हो गयी है। २१ तब हनुमान ने श्रीराम की (कही) बात का स्मरण किया—सीता के मुख में कपूर की-सी दीप्ति (कान्ति) है। तब वह शीघ्र-गति से मंदोदरी के मुख के निकट आ पहुँचा। २२ उसने उसके मुँह को सूँघ लिया—(त्यों ही) उसकी दुर्गंध से उसके मन ने घृणा (घिन) अनुभव की। उसने कहा (सोचा)—इन दोनों ने मिलकर मद्य-पान किया

नाहीं रामस्मरण। हे रावणासी मानली पूर्ण। तेथें स्मरण कायसें। २४ तों रावण आणि मंदोदरी। दोघें निजेलीं शेजेवरी। सुषुप्तिअवस्थेमाझारी। निमग्न जाहलीं ते वेळे। २५ मनीं विचारी हनुमंत। या दोघांसी उचलोनि त्वरित। किष्किंधेसी न्यावीं यथार्थ। पाहील रघुनाथ दोघांतें। २६ किंवा घालून चंड पाषाण। दोघांचे येथेंच घेऊं प्राण। ऐसें विचारी वायुनंदन। तंव अपूर्व वर्तलें। २७ अकस्मात गजबजोनी। मंदोदरी बैसली उठोनी। आक्रोशें हांक फोडोनी। वक्षःस्थळ बडवीत। २८ सवेंचि महाशंख करीत। दशकंठ धरी तिचे हात। मयजा म्हणे अतित्वरित। सीता द्या हो रामाची। २९ आजि विलोकिलें दुष्ट स्वप्न। माझी गळसरी गेली जळोन। एक बळिया वानर येऊन। अशोकवन विध्वंसिलें। ३० तेणें वधिला अखया सुत। समरीं गांजिला इंद्रजित। घेऊन आला जनकजामात। हरिदळ अद्भुत न वर्णवे। ३१ शिळीं बुजोनियां सरितानाथ। सुवेळेसी

है। २३ उसने दीवार में कान लगाये; (विदित हुआ कि) वहाँ राम का स्मरण नहीं हो रहा है। (जान पड़ता है कि) यह तो रावण के पूर्णतः वश में हो गयी है, तो यहाँ (राम-नाम का) स्मरण कैसा ? २४ तब रावण और मंदोदरी दोनों शय्या पर सो गये। उस समय वे (दोनों) सुषुप्ति-अवस्था में निमग्न हो गये। २५ (यह देखकर) हनुमान ने मन में विचार किया—इन दोनों को उठाकर शीघ्रता से सचमुच किष्किंधा में ले लिया जाए, तो श्रीराम इन दोनों को देख सकेंगे। २६ अथवा प्रचंड पाषाण डालकर (पटककर) दोनों के यहीं प्राण ले लूँ। हनुमान ऐसा विचार कर रहा था, तब एक अपूर्व बात घटित हुई (चमत्कार हो गया)। २७ यकायक मंदोदरी घबड़ाकर उठ बैठी, विलाप करते हुए पुकारकर छाती पीटने लगी। २८ साथ ही वह बहुत ज़ोर से चीखती चिल्लाती रही, तो रावण ने उसके हाथ पकड़ लिये। (तब) मंदोदरी ने कहा—'अहो, बहुत शीघ्रता से राम की (स्त्री) सीता (लौटा) दीजिए। २९ आज मैंने एक दुष्ट स्वप्न (में ऐसा) देखा—मेरा मंगल-सूत्र जल गया; (और) एक बलवान वानर ने आकर अशोक-वन का विध्वंस कर डाला। ३० उसने मेरे पुत्र अक्षय का वध किया, युद्ध में इंद्रजित को सता लिया और जनक के जामाता श्रीराम वानरों के अद्भुत दल को ले आये, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ३१ समुद्र को

आला अवनिजाकान्त। रावण कुंभकर्ण शक्रजित। वधोनि विजयी जाहला असे। ३२ स्वप्न नव्हे हें ब्रह्मवचन। तरी मंगळभगिनी द्या नेऊन। मंगळदायक रघुनंदन। त्यासी शरण जावें जी। ३३ करितां परदाराअभिलाष। कोण पावला मागें यश। मानव नव्हे राघवेश। पुराणपुरुष अवतरला। ३४ उदरीं बांधोन दृढ पाषाण। केवीं तरेल अगाध जीवन। बळेंचि केलें विषप्राशन। त्यासी कल्याण मग कैंचें। ३५ खदिरांगाराचे शेजेवरी। कैसा प्राणी निद्रा करी। महासर्पाचे मुखाभीतरी। हस्त घालितां उरे कैसा। ३६ शार्दूळ करूं गेला पलाटण। त्याचे जाळीमाजी जाऊन। नांदेन म्हणे क्षेमकल्याण। तो प्राणी कैसा वांचेल। ३७ तुम्हीं जरी सर्वांसी जिंकिलें। परी राघवेंद्रा तैसें न चले। पूर्णब्रह्म अवतरलें। भक्तजन रक्षावया। ३८ यालागीं द्विपंचवदना। मी शरण जात्यें रघुनंदना। देवोनि तयाची अंगना। चुडेदान मागेन।३९ मनीं विचारी लंकापती। इचें वचन सर्व मानिती। नेऊन देईल सीता अवचितीं।

पत्थरों से पाटकर सीता-पति श्रीराम सुवेल पर्वत पर आ गये और रावण, कुंभकर्ण तथा इंद्रजित का वध करके विजयी हो गये। ३२ यह स्वप्न नहीं, ब्रह्मा का वचन है। इसलिए सीता को ले जाकर (लौटा) दीजिए। रघुनंदन मंगल-दाता हैं, उनकी शरण में जाइएगा। ३३ पर-स्त्री की अभिलाषा करने पर कौन इससे पूर्व यश को प्राप्त हो गया है? राघवेश (राम) मानव नहीं हैं, (उनके रूप में) पुराण पुरुष अवतरित हैं। ३४ पेट पर पत्थर दृढ़ता से बाँधकर कोई (समुद्र के) अथाह जल में कैसे तर पाएगा? (किसी ने) बलात् विष पी लिया हो, तो फिर उसका कल्याण कैसे होगा? ३५ खदिरांगारों की शय्या में कोई प्राणी निद्रा कैसे कर पाएगा? (किसी के द्वारा) महासर्प के मुँह में हाथ डालने पर, वह कैसे बच पाएगा? ३६ सिंह (अपने स्थान को छोड़कर) भ्रमण करने गया हुआ हो, तो यदि कोई प्राणी यह कहे कि उसकी जाली (माँद) में जाकर मैं कुशल और कल्याण के साथ रहूँगा, तो वह कैसे बच सकेगा? ३७ आपने यद्यपि सबको जीत लिया है, फिर भी राघवेन्द्र राम के बारे में वैसी बात नहीं चल पाएगी। पूर्ण ब्रह्म ही (उनके रूप में) भक्त-जनों की रक्षा करने के लिए अवतरित है। ३८ इसलिए हे दशानन, मैं रघुनन्दन की शरण में जाऊँगी और उनकी स्त्री लौटा देकर मैं उनसे 'चूडेदान' अर्थात् सौभाग्य-दान की याचना करूँगी।' ३९

भलत्यासी आज्ञा करूनियां । ४० रावण म्हणे मंदोदरी । तूं सर्वथा चिंता न करीं । उदयीक नेऊनि जनककुमरी । जनकजामाता देईन । ४१ पांच कोटी राक्षसगण । अशोकवनाभोंवते रक्षण । तयांसी सांगोन पाठवी रावण । रात्रंदिवस सावध असावें । ४२ बिभीषण कुंभकर्ण इंद्रजित । हे मयजेसी मानिती बहुत । यांचा विश्वास न धरावा यथार्थ । नेऊनि देतील जानकीतें । ४३ ऐसें समस्त वर्तमान । वायुसुतें केलें श्रवण । म्हणे मंदोदरी सती धन्य । इच्या स्मरणें दोष नुरे । ४४ तों दूतीस म्हणे दशकंधर । अशोकवना जाऊनि सत्वर । जनकात्मजेचा समाचार । घेऊन येईं त्वरेनें । ४५ तत्काळ चालिली दूती । तयेमागें जाय मारुती । आला अशोकवनाप्रती । आनंद चित्तीं न समाये । ४६ तों अशोकवृक्षाचे तळीं । ध्यानस्थ बैसली मैथिली । दूती परतली तत्काळीं । हनुमंत तेथें राहिला । ४७ जय जय रघुवीर अयोध्यानाथ । म्हणोनि नाचों लागला हनुमंत । म्हणे धन्य मी आजि येथ । जगन्माता

(यह सुनकर) लंकापति रावण ने मन में विचार किया—सब इसकी बात मानते हैं । किसी ऐरे-गैरे को आज्ञा देकर यह अचानक सीता को ले जाकर (लौटा) देगी । ४० (तब) रावण बोला—'हे मंदोदरी, तुम सर्वथा चिन्ता न करना । मैं कल ही सीता लेकर राम को दूँगा ।' ४१ (परन्तु इधर) पाँच करोड़ राक्षस-गण अशोक वन के चारों ओर रक्षक (के रूप में) थे । रावण ने उनसे कहला भेजा कि वे रात-दिन सावधान रहें । ४२ विभीषण, कुंभकर्ण और इंद्रजित—ये मंदोदरी का बहुत आदर करते हैं । (अतः) सचमुच उनका विश्वास न करें—क्योंकि वे जानकी ले जाकर (राम को) देंगे । ४३ इस प्रकार समस्त समाचार वायु-सुत हनुमान ने सुन लिया और कहा (सोचा)—सती मंदोदरी धन्य है, इसके स्मरण से दोष शेष न रहेंगे । ४४ इतने में रावण ने दूती से कहा—'अशोक वन में जाकर सीता का समाचार लेकर झट से आ जाओ ।' ४५ (यह सुनकर) वह दूती तत्काल चल दी, तो हनुमान उसके पीछे-पीछे चला गया और अशोक वन में आ गया । उसके मन में आनन्द नहीं समा रहा था । ४६ तब सीता अशोक वृक्ष के तले ध्यानस्थ बैठी हुई थी । (यह देखकर) वह दूती तो तत्काल लौट गयी, (पर) हनुमान वहाँ ठहर गया । ४७ 'जय जय रघुनाथ अयोध्यानाथ' कहते हुए हनुमान नाचने लगा । वह बोला—'आज यहाँ मैं धन्य

देखिली । ४८ पुंच्छ नाचवी कडोविकडी । तोंड विटावी डोळे मोडी । चक्राकार मारी उडी । रामनाम गर्जोनियां । ४९ चहूंकडे पाहे मारुती । तों रामनामें वृक्ष गर्जती । पंचभूतें पक्षी घुमती । रामस्मरणेंकरूनियां । ५० म्हणे हे होय सीता सती । पुराणपुरुषाची चिच्छक्ती । सुटली कर्पूराची दीप्ती । पाषाण स्मरती रामनाम । ५१ मृगमदाहोनि विशेष । सीतेच्या अंगींचा सुवास । अशोकवन आसपास । दुमदुमलें तेणेंचि । ५२ तेथें रक्षण असे त्रिजटा । तिनें राघवीं धरिली निष्ठा । सत्संगाचा महिमा मोठा । दुष्ट पापिष्ठा सद्भाव उपजे । ५३ यावरी अंजनीहृदयरत्न । गुप्तरूपें जवळ येऊन । जानकीचे वंदोनि चरण । मुद्रिका पुढें ठेविली । ५४ ध्यानस्थ बैसली सीता सती । मानसीं चिंती रघुपती । पुढें उभा असे मारुती बद्धांजली करूनियां । ५५ इंदिरेपाशीं खगेंद्र । कीं अपर्णे-समीप नंदिकेश्वर । कीं शचीपुढें जयंत पुत्र । उभा ठाके

हूं—मैं जगन्माता को देख पाया । ' ४८ वह झपट्टे के साथ नाना प्रकार से पूँछ को नचा रहा था, मुँह बना रहा था और आँखें मटका रहा था । राम-नाम का गर्जन (घोष) करते हुए वह चक्राकार कूदता था । ४९ हनुमान ने चारों ओर देखा, (तो उसकी समझ में आया कि) वृक्ष राम नाम (की ध्वनि) से गरज रहे हैं, (पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाश—ये) पंच महातत्त्व और पक्षी राम नाम का स्मरण करते हुए ध्वनि उत्पन्न कर रहे हैं । ५० उसने कहा (माना), यह सती सीता है, पुराण-पुरुष की चिद्-शक्ति है; (यहाँ) कपूर की दीप्ति (कान्ति) छूट गयी, अर्थात् फैली हुई है; (यहाँ के) पाषाण राम नाम का स्मरण कर रहे हैं । ५१ सीता की देह की सुगन्ध कस्तूरी की सुगन्ध से भी विशेष, अर्थात् अनोखी है; आस-पास का अशोक वन उसी से महक रहा है । ५२ वहाँ त्रिजटा (नामक राक्षसी) रक्षिका थी । उसने राम के प्रति निष्ठा धारण की थी । (सच-मुच) सत्संगति की महिमा बड़ी होती है; (उससे) दुष्टों तथा पापियों में (भी) सद्भाव उत्पन्न हो जाता है । ५३ तदनन्तर अंजनी-हृदय-रत्न हनुमान ने गुप्त रूप से पास आकर जानकी के चरणों को प्रणाम करते हुए (उसके सामने) मुद्रिका (अँगूठी) रख दी । ५४ (उस समय सती सीता ध्यानस्थ बैठी हुई थी । वह मन में रघुपति का ध्यान कर रही थी और सामने हाथ जोड़े हनुमान (उस प्रकार) खड़ा था, जिस प्रकार लक्ष्मी के पास गरुड़, अथवा पार्वती के पास नंदीकेश्वर, अथवा

प्रीतीनें । ५६ असो कनकदंड पडे पृथ्वीवरी । तैसा जानकीसी नमस्कारी । मग त्या अशोकवृक्षावरी । राघवप्रिय ओळंघला । ५७ इकडे तमालनील सांवळा । ध्यानीं विलोकीत जनकबाळा । तों अवतारमुद्रिका ते वेळां । सव्यकरांगुळीं दिसेना । ५८ मुद्रिका न दिसे म्हणोन । श्रावणारिस्नुषा उघडी नयन । तों मुद्रिका पुढेंचि जाण । देदीप्यमान पडली असे । ५९ मुद्रिका देखतां ते वेळीं । हृदयीं आलिंगी जनकबाळी । विमलांबुधारा नेत्रकमळीं । जानकीच्या सूटल्या । ६० म्हणे सांडोनि रघूत्तमातें । माये कैसी आलीस येथें । राम आणि सौमित्रातें । त्यजोनि कोठें आलीस । ६१ जगद्वंद्य तो श्रीराम । जो चराचरफलांकितद्रुम । त्याची वार्ता स्वस्तिक्षेम । सांग मुद्रिके मजपासीं । ६२ तों त्या वनीं निशाचरी । तेथें होत्या दुराचारी । विक्राळरूपें ते अवसरीं । सीतेजवळी धांविन्नल्या । ६३ कां गे रडतेस म्हणोन । पसरोनि आल्या विक्राळ वदन ।

(इंद्र की पत्नी) शची के सामने (उसका) पुत्र जयन्त प्रेम-पूर्वक खड़ा रह जाता हो । ५५-५६ अस्तु जैसे सुवर्ण-दण्ड पृथ्वी पर पड़ जाए, वैसे (पड़ते हुए) उसने जानकी को (दण्डवत्) नमस्कार किया । तदनन्तर राघव-प्रिय हनुमान अशोक वृक्ष पर चढ़ गया । ५७

(इधर) सीता ने ध्यान (करते हुए अन्तःचक्षुओं से हृदय) में तमाल-नील श्यामवर्ण श्रीराम को देखा, तो उसे उस समय उनके दायें हाथ की अँगुली में अवतार-मुद्रिका नहीं दिखायी दी । ५८ मुद्रिका नहीं दिखायी दी, इसलिए (श्रवण के शत्रु दशरथ की बहू) सीता ने आँखें खोलीं, त्यों ही समझिए, (उसे दिखायी दिया कि) वह देदीप्यमान मुद्रिका सामने ही पड़ी हुई है । ५९ उस समय मुद्रिका को देखते ही उसने (उसे उठाकर) हृदय से लगा लिया । (तब) जानकी के नेत्र-कमलों से शुद्ध (अश्रु) जल की धाराएं छूटीं (बह चलीं) । ६० उसने कहा—अरी माँ, रघूत्तम को छोड़कर तुम यहाँ कैसे आ गयी हो ? राम और लक्ष्मण को त्यागकर (यहाँ) कहाँ आ गयी हो ? ६१ हे मुद्रिका, वे श्रीराम तो जगद्-वंद्य हैं । स्थावर और जंगम वस्तुएँ मानो जिसके फल हैं, ऐसे उस राम रूपी वृक्ष का स्वस्ति-कुशल सम्बन्धी समाचार मुझसे कहो । ६२ तब वहाँ उस वन में दुराचारी निशाचरियाँ थीं । उस समय वे विकराल-रूप से सीता के समीप दौड़ गयीं । ६३ 'अरी क्यों रो रही है ?' कहती (पूछती) हुई वे अपने विकराल मुँह को फैलाकर

तुज आम्ही भक्षूं तोडून। कुटके करोन तिळप्राय। ६४ कैंचा राम तमाळनीळ। तूं रावणासी घालीं माळ। राक्षसिणी करिती कोल्हाळ। सीतेभोंवत्या मिळोनियां। ६५ बाबरझोटी भयंकर। कपाळीं चर्चिला शेंदूर। लंब स्तनें विशाळ उदर। पर्वत माजी सांठवती। ६६ असो ऐसें देखोन हनुमंत। पुच्छ सोडी अकस्मात। राक्षसिणी झोडिल्या समस्त। प्राणांसी बहुत मूकल्या। ६७ राक्षसिणी फिरविती डोळे। पुच्छें आंवळिले दृढ गळे। एक म्हणती जनकबाळे। रक्षीं माते आम्हांसी। ६८ निमाल्या बहुत राक्षसिणी। उरल्या लागती सीतेचे चरणीं। कित्येक गेल्या पळोनी। दशकंठातें सांगावया। ६९ हृदयीं बोध प्रकटतां जाणा। भ्रांति भुली इच्छा वासना। आशा मनशा तृष्णा कल्पना। पळती जैशा क्षणार्धें। ७० तैशा पळाल्या निशाचरी। जानकी मुद्रिकेतें विचारी। शरयूतीरविहारी। कोठें सांग मुद्रिके। ७१ मज

आ गयीं। (वे बोलीं–) 'हम तुम्हें काटकर, तिल-से टुकड़े-टुकड़े करके खा जाएँगी। ६४ वह तमाल-नील राम कैसा ? तुम रावण को वर-माला पहना दो।' (ऐसा कहते हुए) राक्षसियाँ सीता के चारों ओर इकट्ठा होकर कोलाहल करती रहीं। ६५ वे बालों के झोंटे अस्तव्यस्त फैलाये हुए तथा भयंकर थीं। उनके माथे पर सिंदूर लगाया हुआ था। उनके स्तन लम्बे थे, पेट विशाल था, जिसमें वे पर्वतों को समा सकती थीं। ६६

अस्तु। ऐसा देखकर हनुमान ने यकायक पूँछ को (खुला) छोड़ दिया और राक्षसियों को पीट लिया, तो बहुतों ने प्राणों को खो दिया। ६७ (कुछ) राक्षसियों ने आँखें फेर दीं, (क्योंकि) उसने पूँछ से उनके गले कसकर बाँध लिये थे। कुछ एक ने कहा—'हे जनक-कन्या, हे माता, हमारी रक्षा करो।' ६८ (उनमें से) बहुत-सी राक्षसियाँ तो ठंडी हो गयीं; जो शेष रहीं, वे सीता के चरणों में लग गयीं और कितनी ही दशानन से कहने के लिए भाग गयीं। ६९ समझिए, हृदय में आत्म-ज्ञान के प्रकट हो जाने पर भ्रान्ति, मोह, इच्छा, वासना, आशा, हेतु, तृष्णा, कल्पना जिस प्रकार क्षणार्ध में भाग जाती हैं, उस प्रकार निशाचरियाँ (वहाँ से) भाग गयीं। तब जानकी ने मुद्रिका से पूछा—'री मुद्रिका, कह दो, शरयू-तीर-विहारी राम कहाँ हैं। ७०-७१ रामचंद्र द्वारा मेरा

आलिंगितां श्रीरामचंद्र। तेव्हां कंठीं न सोसेचि हार। आतां गिरी कानन समुद्र। दोघांमध्यें पडियेले। ७२ वाल्मीकानें भविष्य कथिलें। तें काय सर्व व्यर्थ गेलें। एक कपि बळिया येऊन बळें। लंकानगर जाळील। ७३ मज देऊनि समाधान। सर्वेचि आणील रघुनंदन। पाषाणीं समुद्र बुजवोन। दशवदनासी मारील पैं। ७४ तों मुद्रिका नेदी प्रतिवचन। म्हणे मज कळली खूण। माझ्या विरहेंकरून। देह राघवें त्यागिला। ७५ कीं योगियांचे ध्यानीं गुंतला। कीं भक्तधांवण्या धांवला। कीं सौमित्रें माघारा नेला। म्यां छळिलें म्हणोनियां। ७६ कृपा न करवे मजवरी। तरी येऊन माझा वध करीं। मी बुडाल्यें चिंतासमुद्रीं। काढीं बाहेरी त्वरेनें। ७७ अहा रामा राजीवनेत्रा। दशकंठरिपु विषकंठमित्रा। पुढें पाठविली कां हे मुद्रा। कोण्या विचारेंकरूनियां। ७८ मृगत्वचेची कंचुकी इच्छिली। हाच अन्याय घडला मुळीं। म्यां पापिणीनें ते वेळीं। सौमित्र वीर छळियेला। ७९ म्यां साधुछळण

आलिंगन करने पर तब कंठ में पहना हुआ हार तक (बीच में) नहीं सहा जाता था। अब तो हम दोनों के बीच पर्वत, वन और समुद्र पड़े हुए हैं। ७२ वाल्मीकि ने भविष्य कथन किया था, कि एक बलवान कपि आकर बलपूर्वक लंका-नगरी को जला डालेगा। क्या वह सब व्यर्थ हो गया। ७३ (वाल्मीकि ने यह भी कहा था)—मुझे मनः शान्ति दिलाकर, वह साथ ही श्रीराम को लाएगा और वे (श्रीराम) समुद्र को पाषाणों से पाटकर रावण को मार डालेंगे। (क्या यह सब कथन व्यर्थ हो गया ?) ७४ तब भी मुद्रिका ने उत्तर नहीं दिया, तो उसने कहा—'मुझे अब (यह मौन—) संकेत विदित हो गया—मेरे विरह से राघव (राम) ने देह त्याग दी हो, अथवा वे योगियों के ध्यान में उलझे हुए हों, अथवा भक्तों की पुकार सुनकर उनकी रक्षा के लिए दौड़ गये हों, अथवा मैंने सताया, इसलिए लक्ष्मण उन्हें लौटा ले गये हों। ७५-७६ हे राम, यदि मुझपर कृपा नहीं की जा रही हो, तो आकर मेरा वध कीजिए। मैं (अब) चिन्ता रूपी सागर में डूब गयी हूँ, मुझे शीघ्रता से बाहर निकाल लीजिए। ७७ हे राम, हे राजीव-नेत्र, हे रावण के शत्रु, हे शिवजी के मित्र, किस विचार से आपने इस मुद्रिका को आगे भेज दिया है ? ७८ मैंने मृग-चर्म की कंचुकी की कामना की—यही तो वस्तुतः अन्याय (घटित) हो गया। पापिणी मैंने उस समय वीर लक्ष्मण

केलें। म्हणोनि राक्षसाहातीं सांपडलें। मजला वियोगदुःख घडलें। त्याच दोषेंकरूनियां। ८० जे साधुछळण करिती। ते मजऐसें दुःख पावती। अंतीं जाती अधोगती। महाअनर्थीं पडती ते। ८१ इत्यादि भाव तये क्षणीं। दावी त्रिभुवनपतीची राणी। म्हणे हा देह ठेवूनी। काय कारण पैं असे। ८२ सीता देखोन विव्हळ। वृक्षगर्भी अंजनीबाळ। गायन आरंभी रसाळ। राघवलीला निर्मळ जे। ८३ तो साक्षात् रुद्रावतार। रुद्रवीणा जैसा सुस्वर। तैसा कंठ अतिमधुर। कंपस्वर गातसे। ८४ कपीचें गायन रसाळ। तटस्थ जाहलें रविमंडळ। पाताळ सांडोन फणिपाळ। येऊं भावी तेथें पैं। ८५ तटस्थ जाहला प्रभंजन। वेधला चंद्राचा हरीण। अशोकवनींचे द्विजगण। चारा घेऊं विसरले। ८६ अयोध्यापतीची राणी। तल्लीन होऊनि ऐके श्रवणीं। अशोकवृक्षामधूनी। मंजुळ ध्वनि उमटत। ८७ जो अज अजित

को सता दिया। ७९ मैंने (लक्ष्मण जैसे) साधु (पुरुष) को सता दिया; इसलिए तो राक्षसों के हाथों में फँस गयी हूँ। उसी दोष के कारण मुझे (श्रीराम के) वियोग का दुख हो गया है। ८० जो साधुओं को सताते हों, वे मेरी भाँति दुःख को प्राप्त हो जाते हैं। वे अन्त में अधोगति को प्राप्त करेंगे और महा संकट में पड़ेंगे।' ८१ उस क्षण त्रिभुवन के स्वामी श्रीराम की रानी सीता ये और ऐसे अन्य भाव दिखा रही थी। (तब) उसने कहा (सोचा)—'अब यह देह रखकर क्या प्रयोजन (सिद्ध करना) है? ८२ सीता को (इस प्रकार) व्याकुल देखकर अंजनी-सुत हनुमान ने (अशोक-) वृक्ष के अन्दर से, जो श्रीराम की निर्मल लीलाएँ हैं, उनका गान आरम्भ किया। ८३ वह तो साक्षात (शिव के एक रूप) रुद्र का अवतार था। रुद्र-वीणा का स्वर जैसा मधुर होता है, वैसा अति मधुर उसका कंठ-(स्वर) था। वह काँपते हुए स्वर में गा रहा था। ८४ उस वानर का गायन मधुर था। उसे सुनते ही रवि-मंडल तटस्थ हो गया, (सर्पों का राजा) शेष पाताल को छोड़कर वहाँ आना चाह रहा था। ८५ पवन तटस्थ हो गया, चंद्र का हिरन तटस्थ (स्थिर-सा) हो गया और अशोक वन में विचरण करनेवाले पक्षी चारा लेना भूल गये। ८६ अयोध्यापति की रानी सीता (गायन-) श्रवण में तल्लीन होकर सुन रही थी। अशोक वृक्ष में से मंजुल ध्वनियाँ प्रकट हो रही थीं। ८७ (वह गीत इस प्रकार था—)

निर्गुण । कमलमित्रकुलभूषण । भक्तहृदयमिलिंद पूर्ण । जलदवर्ण जलजाक्ष । ८८ जो मंगलधाम मंगलकारक । जो मंगळभगिनीप्राणनायक । मंळजननीउद्धारक । प्रतापार्क श्रीराम । ८९ जो द्विपंचमुखदर्पहरण । जो चंडीशकोदंडप्रभंजन । भवगजविदारण पंचानन । नरवीरान्तक जो । ९० जानकी जयाची चित्कळा । रची अनंत ब्रह्मांडमाळा । तो रघुवीर परब्रह्मपुतळा । अतर्क्य लीला जयाची । ९१ सच्चिदानंदतनु निष्कलंक । पितृआज्ञाप्रतिपालक । जो मायाचक्रचालक । जगद्वंद्य जगद्गुरु । ९२ जो पंचमहाभूतांवेगळा साचार । तो पंचवटीवासी रघुवीर । तेथें द्विपंचवदन सत्वर । कपटमृग घेवोनि गेला । ९३ तों द्विपंचवदन दुराचार । पर्णकुटींत प्रवेशला तस्कर । भूगर्भींचें रत्न सुंदर । हरोनि नेलें क्षण न लागता । ९४ त्या तस्कराचा माग काढीत । किष्किंधेसी आला जनकजामात । शक्रसुत वधोनि अकस्मात । अर्कज

जो अज (अजन्मा, जन्म-रहित), अजित एवं निर्गुण (ब्रह्म) है, वही (कमल के मित्र, अर्थात्) सूर्य के वंश के आभूषण (श्रीराम) हैं। वे पूर्णतः भक्तों के हृदय-रूपी कमल के निवासी भ्रमर हैं। वे मेघ-वर्ण (श्याम वर्ण के) और कमल-नयन हैं। ८८ जो मंगल के धाम तथा मंगल के कर्ता हैं, वे (मंगल-भगिनी अर्थात्) सीता के प्राण-नायक (श्रीराम) हैं। जो (मंगल ग्रह की जननी) पृथ्वी के उद्धार-कर्ता हैं, वे ही प्रताप सूर्य श्रीराम हैं। ८९ जो दशमुख रावण के घमंड को दूर करनेवाले (वीर) हैं, जो (चंडीश) शिव के धनुष को तोड़ डालनेवाले (शक्तिशाली पुरुष) हैं, जो संसार रूप हाथी को विदीर्ण करनेवाले सिंह हैं, तथा (शत्रु पक्ष के) वीरों का अन्त करनेवाले हैं, सीता जिनकी चित्कला-स्वरूपा हैं, जिन्होंने अनन्त ब्रह्माण्डों की माला का निर्माण किया, जिनकी लीला अतर्क्य है, वे रघुवीर परब्रह्म के (प्रत्यक्ष) पुतले हैं। ९०-९१ जो सच्चिदानन्द-शरीरी हैं, जो निष्कलंक हैं, वे पिता की आज्ञा के प्रति-पालक (श्रीराम) हैं। जो माया के चक्र के चलानेवाले हैं, वे राम जगद्-वंद्य जगद्गुरु हैं। ९२ जो पंच महातत्त्वों से सचमुच अलग (परे) हैं, वे रघुवीर पंचवटी के निवासी थे। वहाँ रावण कपट-मृग को लेकर झट से गया था। ९३ वह रावण दुराचारी है। उस चोर ने पर्णकुटी में प्रवेश किया और भू-गर्भ में उत्पन्न (सीता रूपी) सुन्दर रत्न को छीन-कर वह क्षण तक न लगते ले गया। ९४ उस चोर के मार्ग को खोजते-

राज्यीं स्थापिला । ९५ त्या सीतावल्लभाचा किंकर। दासानुदास एक वानर । तेणें गांजोनि लंकानगर । अशोकवना आला असे । ९६ ऐसें ऐकतां गायन । आनंदमय भू-तनयेचें मन । मग वृक्षाजवळी उभी राहून । करी नमन तयातें । ९७ म्हणे धन्य धन्य तूं तरुवरा पूर्ण । कोण तुजमाजी कीर्तन । त्याचें पाहीन मी वदन । धरीन चरण आदरें । ९८ जो करितो तुजमाजी कीर्तन । त्याची जननी धन्य धन्य । त्यासी सदा असो कल्याण । न लगे विघ्न कल्पांतीं । ९९ ज्यासी रामकीर्तन आवडे ।। त्यासी सांकडें कदा न पडे । चारही मुक्ती तयापुढें । दासी होऊनि राबती । १०० ऐसें जगन्माता बोलत । तों उगाचि राहिला हनुमंत । न बोले कांहींच मात । पाहे तटस्थ जानकी । १०१ म्हणे येथें कापट्य पूर्ण । कोण करितो न कळे कीर्तन । बाहेर न भेटे येऊन । तरी आतां प्राण सांडीन मी । १०२ अत्यंत कृश जाहली गोरटी । मुद्रिका

खोजते (जनक राजा के जामाता) श्रीराम किष्किन्धा आ गये । उन्होंने सहसा इंद्र-पुत्र बालि का वध करके सूर्य-पुत्र सुग्रीव को राज्य (के आसन) पर स्थापित किया । ९५ सीता के उन वल्लभ (पति) का सेवक, दासानुदास एक वानर है । लंका-नगरी को सताकर वह अशोक वन में आ गया है । ९६

ऐसा गायन सुनते हुए भूमि-कन्या सीता का मन आनन्द-मय हो गया । तदनन्तर उस वृक्ष के पास खड़ी होकर उसने उसका नमन किया । ९७ वह बोली—' हे तरुवर, तुम पूर्णतः धन्य हो, धन्य हो । तुम्हारे अन्दर कौन कीर्तन कर रहा है ? मैं उसका मुख देखूंगी, उसके चरण आदर-पूर्वक पकडूंगी । ९८ तुम्हारे अन्दर जो कीर्तन कर रहा है, उसकी जननी धन्य है, धन्य है । उसका सदा कल्याण हो—उसे कल्पान्त तक में विघ्न बाधा न करे । ९९ जिसको राम का कीर्तन आता हो, उसपर संकट कदापि नहीं आता । उसके सामने (सलोकता, समीपता, सरूपता और सायुज्य नामक) चारों मुक्तियाँ दासियाँ बन-कर परिश्रम करती हैं । ' १०० जब जगन्माता इस प्रकार बोली, तो हनुमान चुप ही रहा । वह कोई भी बात नहीं बोला, तो जानकी तटस्थ होकर देख रही थी । १०१ उसने कहा—' यह समझ में नहीं आ रहा है कि कपट से पूर्ण यह कौन कीर्तन कर रहा है । यदि वह बाहर आकर न मिले, तो अब मैं प्राण त्याग दूंगी । १०२ वह गौरी

घातली मनगटीं। म्हणे अयोध्यापते जगजेठी। नव्हे भेटी तुझी आतां। १०३ मग जनकात्मजेनें ते वेळां। वेणीदंड वेगें काढिला। त्याचा गळां पाश घातला। प्राण-त्यागाकारणें। ४ म्हणे अयोध्यापते तुजविण। मी क्षण एक न ठेवीं प्राण। ऐसें बोलोनियां वचन। जनकात्मजा सरसावली। ५ वेणीदंड काढोनी। वृक्षडाहाळिये बांधी तये क्षणीं। राघवप्रिय तें देखोनी। बहुत मनीं गजबजला। ६ जानकी त्यागील प्राणा। मग काय सांगों रघुनंदना। भरताग्रजा जगन्मोहना। धांवें लौकरी ये वेळे। ७ अंतरीं आठविले रामचरण। बुद्धिप्रवर्तक म्हणोन। मग तैसेंचि केलें उड्डाण। गगनपंथें ते वेळां। ८ अंजनीआत्मज ते वेळां। गर्जोनि म्हणे पैल श्रीराम आला। ऐसें बोलतां जनकबाळा। ऊर्ध्वपंथें विलोकी। ९ मारुती खालीं उतरून। करिता जाहला साष्टांग नमन। जगन्माता बोले वचन। हो कल्याण चंद्रार्कवरी। ११० जोडोनियां दोन्ही कर। उभा राहिला

(सुन्दरी) अत्यन्त कृश हो गयी थी। उसने अंगूठी कलाई (वस्तुत: अँगुली) में चढ़ा दी और कहा--' हे अयोध्यापति, जगजेठी, अब आपकी भेंट नहीं हो पाएगी।' १०३ तदनन्तर उस समय जनकात्मजा ने झट से बेनी (चोटी) खोल दी और प्राण-त्याग कर देने के हेतु उसके धागे का फंदा गले में डाल लिया। १०४ उसने कहा--' हे अयोध्यापति, तुम्हारे बिना, मैं एक क्षण भी प्राण न रखूँगी।' ऐसी बात बोलकर सीता आगे बढ़ गयी। १०५ उसने बेनी-दंड निकालकर (खोलकर) उस क्षण पेड़ की डाल में बाँध लिया। (तब) यह देखकर राम-प्रिय हनुमान मन में बहुत घबड़ा उठा। १०६ (उसने सोचा, अब) जानकी प्राण त्याग देगी, तो मैं रघुनन्दन से क्या कहूँ। ' हे भरताग्रज, हे जगन्मोहन, इस समय शीघ्रता से दौड़ आओ।' १०७ (तदनन्तर) उसने राम के चरणों को बुद्धि-प्रवर्तक समझते हुए मन में उनका स्मरण किया और उस समय आकाश मार्ग पर वैसे ही उड़ान भरी। १०८ उस समय अंजनी-सुत हनुमान गरजकर बोला--' उस पार श्रीराम आ गये हैं।' उसके ऐसे बोलने पर जनक-कन्या ने ऊर्ध्व-मार्ग की ओर देखा। १०९ (तब) हनुमान ने नीचे उतरकर उसे साष्टांग नमस्कार किया, तो जगन्माता सीता बोली-- ' जब तक चंद्र और सूर्य हों, तब तक तुम्हारा कल्याण हो।' ११० (फिर हनुमान) दोनों हाथ जोड़कर सामने खड़ा रहा और बोला-- ' कल्याण-

समोर। म्हणे कल्याणरूप रघुवीर। किष्किंधेसी सुखी असे। ११ मी श्रीरामाचा अनुचर। हनुमंतनामा वायुकुमर। माते तुजकारणें लंकानगर। धांडोळिलें सर्वही। १२ सीतेसी आनंद जाहला थोर। जैसा बहुत दिवस गेला कुमर। तो भेटतां हर्ष अपार। तैसी निर्भय जाहली। १३ अवृष्टीं वर्षे घन। कीं मृत्युसमयीं सुधारसपान। कीं दुष्काळिया दर्शन। क्षीरसिंधूचें जाहलें। १४ असो पंचवटीपासोन वर्तमान। रामें लीला केली जी पूर्ण। ती सीतासतीस वायुनंदन। कथिता जाहला ते वेळीं। १५ जटायु उद्धरोनि कबंध वधिला। वाळी मारोनि सुग्रीव स्थापिला। तो अपार मेळवून हरिमेळा। साह्य जाहला श्रीरामा। १६ आठवोन तव गुण स्वरूप। राम सर्वदा करी विलाप। श्वापदें पाषाण पादप। सीता म्हणोनि आलिंगी। १७ तुवां जे अलंकार टाकिले। ते म्यां श्रीरामापुढें ठेविले। रामें शोक केला ते वेळे। तो मज सर्वथा न वर्णवे। १८ तुजकारणें

रूप श्रीराम किष्किंधा में सुखी हैं। १११ मैं वायु-पुत्र हनुमान नामक श्रीराम का अनुचर हूँ। हे माता, मैंने तुम्हारे निमित्त समस्त ही लंका-नगरी ढूँढ ली।' ११२ (यह सुनकर) सीता को बहुत आनन्द हो गया। जिस प्रकार बहुत दिन से गये (खोये) हुए पुत्र के मिल जाने पर माता को अपार हर्ष होता है, उस प्रकार सीता को हनुमान के मिलने पर हर्ष हुआ और वह निर्भय हो गयी। ११३ मानो, अना-वृष्टि (सूखे) के समय मेघ बरस गया हो, अथवा मृत्यु के समय (किसी को) अमृत रस का पान हुआ हो, अथवा अकाल से पीड़ित व्यक्ति को क्षीर-सागर के दर्शन हो गये हों। ११४

अस्तु! पंचवटी से लेकर राम ने जो-जो लीला पूर्ण अर्थात् सम्पन्न की, उसे हनुमान ने उस समय सीता से कह दिया। ११५ '(श्रीराम ने) जटायु का उद्धार करके कबंध का वध किया; बाली को मार डालकर सुग्रीव की (राजगद्दी पर) स्थापना की। तदनन्तर उस (सुग्रीव) ने वानरों का बहुत बड़ा समुदाय इकट्ठा किया और वे (सब) श्रीराम के सहायक हो गये। ११६ तुम्हारे गुणों और स्वरूप का स्मरण करते हुए श्रीराम नित्य विलाप करते हैं। उन्होंने श्वापदों, पाषाणों और वृक्षों को सीता समझकर गले लगा लिया था। ११७ तुमने जो आभूषण गिरा दिये थे, उन्हें मैंने राम के सामने रख दिया, तो उस समय उन्होंने (जो)

सौमित्र । दुःखभरित अहोरात्र । जैशी मातेची वाट निरंतर । बाळक पाहे प्रीतीनें । १९ ऐसा ऐकतां समाचार । जानकीस दाटला गहिंवर । म्हणे परम कृपाळु रघुवीर । मजकारणें शिणतसे । १२० अयोध्येहून येतां हनुमंता । मी मागें राहें चालतां । श्रीराम तरूखालीं तत्त्वतां । उभे राहती मजकारणें । २१ बहु श्रमलीस म्हणोन । राम कुरवाळी माझें वदन । बोलतां सीतेसी आलें रुदन । सद्गद होऊन स्फुंदतसे । २२ जानकीस म्हणे हनुमंत । आतां शोक करिसी किमर्थ । सत्वर येईल रघुनाथ । दशमुखासी वधावया । २३ तूं आदिपुरुषाची चिच्छक्ती । प्रणवरूपिणी मूळप्रकृती । तुझे आज्ञेनें वर्तती । विरंची रुद्र इंद्रादि । २४ भक्त तारावया निर्धारीं । दोघें अवतरलां पृथ्वीवरी । आधीं वियोग दोघांभीतरी । जाहलाचि नाहीं तत्त्वतां । २५ यावरी भूमिजा बोले वचन । तूं श्रीरामाचा विश्वासी पूर्ण । तरी

शोक किया, उसका वर्णन मुझसे कदापि नहीं हो सकता । ११८ तुम्हारे कारण लक्ष्मण दिन-रात दुख-भरे (दुखी) रहते हैं । जिस प्रकार बालक माता की प्रेम से प्रतीक्षा करता है, उस प्रकार वे तुम्हारी कर रहे हैं । ' ११९

ऐसा समाचार सुनकर सीता को बहुत भावावेग हो आया—अर्थात् भावावेग से उसका गला रुँध गया— "परम कृपालु रघुवीर मेरे कारण कष्ट अनुभव कर रहे हैं । १२० हे हनुमान, अयोध्या से आते हुए, मैं चलते-चलते पीछे रह जाती, तो श्रीराम सचमुच मेरे लिए पेड़ के तले खड़े रह जाते (ठहर जाते) । १२१ 'तुम बहुत थक गयी हो' कहकर राम मेरे वदन को सहलाते ।" ऐसा बोलते-बोलते सीता को रुलाई आ गयी, तो वह बहुत गद्गद होकर सिसकती रही । १२२ (तब) हनुमान ने जानकी से कहा—'अब किसलिए शोक कर रही हो ? रघुवीर रावण का वध करने के लिए शीघ्र आ जाएँगे । १२३ तुम आदि पुरुष की चिद्-शक्ति हो, प्रणव-रूपिणी (ॐ-कार रूपिणी), मूल प्रकृति हो । तुम्हारी आज्ञा से ब्रह्मा, शिवजी, इंद्र आदि आचरण करते हैं । १२४ तुम दोनों निश्चय-पूर्वक भक्तों का उद्धार करने के लिए पृथ्वी में अवतरित हो । तुम दोनों में वस्तुतः पहले तो वियोग हुआ ही नहीं है । ' १२५ इस पर भूमिजा सीता ने यह बात कही—'तुम श्रीराम के लिए पूर्णतः विश्वास-पात्र हो । तो उन्होंने तुम्हें कौन-सा अन्तर-संकेत बनाया

तुजप्रति अंतरखूण । राघवें काय सांगितली । २६ येरू म्हणे कैकयीगृहांतरीं । ताटिकान्तकें आपुले करीं । तुज वल्कलें नेसविलीं निर्धारीं । खूण साचार ओळखें ही । २७ ऐसें ऐकतां जनकदुहिता । म्हणे सखया हनुमंता । तूं श्रीरामाचा पूर्ण आवडता । कोटिगुणें अससी कीं । २८ परी तूं दिससी सूक्ष्म । ऐसेच असतील प्लवंगम । तरी हें लंकानगर दुर्गम । तुम्हांस कैसें आटोपे । २९ ऐसें सीतेचें वचन ऐकिलें । हनुमंतें भीमरूप प्रकट केलें । मंदराचळातुल्य देखिलें । विशाळ रूप मारुतीचें । १३० कीं महामेरूचि अद्भुत । कीं राक्षस वधावया समस्त । अवतरला प्रळयकृतान्त । वानरवेष धरोनियां । ३१ ऐसा देखोनि रुद्रावतार । सीता म्हणे हा केवळ ईश्वर । रामकार्यालागीं निर्धार । अवतरला येणें रूपें । ३२ हनुमंत म्हणे महासती । हे लंका घालीन पालथी । परी कोपेल त्रिभुवनपती । आज्ञा दिधली नाहीं मज । ३३ जगन्माते मंगळभगिनी । मजहूनियां प्रतापतरणी । ऐसे वानर किष्किंधाभुवनीं । रामाजवळी आहेत । ३४

है ? ' १२६ (तब) उसने कहा— ' कैकेयी के गृह में निश्चय ही श्रीराम ने अपने हाथों से तुम्हें वल्कल पहनाये थे । इसे सच्चा संकेत जान लो । ' १२७ ऐसा सुनते जनक-दुहिता सीता बोली—' हे सखा हनुमान, तुम अपने करोड़ों गुणों के कारण श्रीराम के प्रिय हो । १२८ परन्तु तुम सूक्ष्म दिखायी देते हो — वानर ऐसे ही होंगे । अतः यह दुर्गम लंका नगरी तुम वश में कैसे कर पाओगे ? ' १२९ हनुमान ने सीता की ऐसी बात सुनी, तो उसने प्रचण्ड रूप प्रकट किया । (तब सीता ने) मन्दार पर्वत के समान उसके विशाल रूप को देखा । १३० अथवा यह अद्भुत महामेरु ही हो, अथवा प्रलय-कृतान्त समस्त राक्षसों का वध करने के लिए वानर-वेश धारण करके अवतरित हुआ हो । १३१ ऐसे उस रुद्रावतार (हनुमान) को देखकर सीता ने कहा (माना) कि यह केवल ईश्वर ही है, जो राम के कार्य (की सिद्धि) के लिए इसके रूप से अवतरित है । १३२ (इसपर) हनुमान बोला—' हे महासती, मैं इस लंका को उलटा दूंगा (दे सकता हूँ) — परन्तु त्रिभुवन-पति श्रीराम क्रुद्ध होंगे; उन्होंने मुझे आज्ञा नहीं दी है । १३३ हे जगन्माता, हे मंगल-भगिनी, राम के पास किष्किंधा में मुझसे भी अधिक प्रताप के सूर्य-से वानर हैं । १३४ श्रीराम के साथ जाम्बवान, नल, नील, सुग्रीव ऐसे

जांबुवंत नळ नीळ रविकुमर। रणपंडित प्रतापशूर। काळासी शिक्षा करणार। राघवासवें असती पैं। ३५ सीता म्हणे हनुमंतासी। एवढा सागर कैसा तरलासी। येरू म्हणे मुद्रेनें अनायासीं। आणिलें मज ऐलतीरा। ३६ मार्गीं जाहले श्रम बहुत। तुझे दर्शनें हरले समस्त। परी जाहलों असे क्षुधाक्रान्त। फळें येथें दिसती बहु। ३७ परहस्त ज्यास स्पर्शित। तें सर्वथा नेघें मी निश्चित। आतां आज्ञा दीजे त्वरित। निजहस्तें घेईन मी। ३८ उपरी बोले श्रीरामललना। समीर स्पर्शों न शके या वना। साठी सहस्र राक्षस रक्षणा। ठेविले येथें लंकेशें। ३९ हनुमंत ऐकतां ते अवसरीं। गडबडां लोळे धरणीवरी। फळआहाराविण बाहेरी। निघों पाहती प्राण माझे। १४० अहा मध्येंच आलें मरण। अंतरले रघुपतीचे चरण। आतां सीताशुद्धि सांगेल कोण। कौसल्यात्मजासी जाऊनियां। ४१ सफळ वृक्ष देखोन दृष्टीं। माझें चित्त होतसे कष्टी। ऐसें वाटतसे पोटीं। वनचि अवघें सांठवावें। ४२

रण-पंडित तथा प्रतापवान् और शूर (लोग) हैं, जो काल (तक) को दण्ड दे सकेंगे।' १३५ (यह सुनकर) सीता ने हनुमान से कहा (पूछा)— 'तुम इतना (बड़ा, विशाल) सागर कैसे तैर सके?' तो उसने कहा— 'यह मुद्रिका मुझे बिना किसी आयास के इस पार लायी। १३६ मार्ग में बहुत कष्ट हो गये, परन्तु तुम्हारे दर्शन से वे समस्त दूर हो गये। फिर भी मैं भूख से व्याकुल हो गया हूँ। यहाँ फल तो बहुत दिखायी दे रहे हैं। १३७ जिसे दूसरे का हाथ स्पर्श करता हो, उसे मैं निश्चय ही कदापि नहीं लेता। (इसलिए) मुझे शीघ्र आज्ञा दो, जिससे मैं अपने हाथ से (फल) ले सकूँ।' १३८ इसपर सीता बोली—'इस वन को पवन (तक) स्पर्श नहीं कर सकता। रावण ने यहाँ साठ सहस्र राक्षस रक्षा के लिए रखे हैं।' १३९ उस समय यह सुनकर हनुमान भूमि पर लोटने-पोटने लगा। उसने कहा, 'बिना फलाहार के मेरे प्राण बाहर निकलना चाहते हैं। १४० हाय, बीच में ही मौत आ गयी, रघुपति के (मेरे लिए) चरण छूट गये। अब श्रीराम को सीता का पता कौन जाकर कहेगा? १४१ आँखों से फल-युक्त वृक्षों को देखते ही मेरा मन दुखी हो रहा है। ऐसा लगता है कि समस्त वन को ही पेट में भरा रख दूँ।' १४२ ऐसा बोलने पर हनुमान एक क्षण अचेत पड़ गया। आँखों (की पुतलियों) को चक्राकार घुमाते हुए उसने

ऐसें बोलतां हनुमंत। क्षण एक पडला निचेष्टित। नेत्र गरगरां भोवंडित। मुख पसरीत फळांलागीं। ४३ ऐसें देखोनि ते वेळीं। जगन्माता सद्गदित जाहली। अहा म्हणोन धांविन्नली। कुरवाळीत कृपाकरें। ४४ म्हणे कपींद्रा उठीं उठीं। पडलीं फळें तरुतळवटीं। तीं पाहोनि एक मुष्टी। घेईं उदरतृप्तीपुरतींच। ४५ बा रे वरी चढसी जाण। तरी तुज माझी असे आण। पडलीं फळें तीं वेंचून। उदरनिर्वाह करीं कां। ४६ ऐसें सीता बोलतां वचन। मारुती उठला झडकरून। चरण धरी धांवोन। म्हणे प्रमाण आज्ञा तुझी। ४७ मग जे वृक्ष करिती रामस्मरण। सीतेवरी छाया केली सघन। ते रामउपासक पूर्ण। करी वंदन कपि त्यांतें। ४८ जो रामउपासक निर्मळ। त्यासी विघ्न करूं न शके काळ। म्हणोनि अंजनीचा बाळ। तरू ते सकळ रक्षीत। ४९ जे तरू न करिती रामस्मरण। तेच उपटिले मूळींहून। भुजाबळें त्राहाटून। उर्वीवरी झोडिले। १५० मग पडलीं फळें एकवटोनी। हस्तद्वयें टाकी वदनीं। हनुवटी

फलों के लिए मुँह बा दिया। १४३ उस समय ऐसा देखकर जगन्माता सीता बहुत गद्गद हो गयी। वह 'हाय!' कहकर दौड़ गयी और उसने उसे कृपा-भरे हाथों से सहला दिया। १४४ उसने कहा—'हे कपिराज, उठो, उठो। पेड़ों के तले फल गिरे हैं। उन्हें देखकर पेट की तृप्ति (शान्ति) के लिए पर्याप्त मात्र एक मुट्ठी भर फल ले लो। १४५ अरे, समझो, ऊपर चढ़ोगे, तो मेरी सौगन्ध है। (अतः) गिरे हुए फलों को चुनकर उदर-निर्वाह करना।' १४६ इस प्रकार सीता द्वारा बात कहने पर हनुमान झट से उठ गया। उसने दौड़कर (सीता के) चरण पकड़ लिये और कहा—'तुम्हारी आज्ञा प्रमाण है।' १४७ तदनन्तर जो वृक्ष राम का स्मरण कर रहे थे, उन्होंने सीता पर घनी छाया फैला दी थी। वे राम के पूर्ण उपासक थे, (इसलिए) उस कपि ने उनको वन्दन किया। १४८ जो राम का निर्मल उपासक हो, उसे (प्रत्यक्ष) काल (तक) विघ्न नहीं कर (पहुँचा) सकता। इसलिए अंजनी-सुत ने उन समस्त (राम-भक्त) वृक्षों की रक्षा की। १४९ जो वृक्ष राम का स्मरण नहीं कर रहे थे, उन्हीं को जड़-मूल से उखाड़ डाला और बाहु-बल से पकड़ते हुए भूमि पर झाड़ डाला। १५० फिर गिरे हुए फलों को इकट्ठा करके उसने दोनों हाथों से मुँह में डाल दिया। फलों को

ह्याले ते क्षणीं । फळें तांतडीं चावितां । ५१ चंचळ दृष्टी करून । मागें पुढें पाहे अवलोकून । तंव ते वनरक्षक संपूर्ण । निद्रार्णवीं बुडाले । ५२ राक्षसांनीं मद्य प्राशिलें । हनुमंतें वन विध्वंसिलें । पुढें पुच्छें उपडोनि आणिले । वृक्ष भोंवते सर्वही । ५३ हनुमंत बैसे फलाहारासी । पुच्छ पाहुणेर करी तयासी । न सोडी बैसल्या ठायासी । आपोशन मोडे म्हणोनि । ५४ पुच्छासी हनुमंत बोले । गोड गोड आणीं कां फळें । आजि त्वां तृप्त आम्हां केलें । चिरंजीव राहें तूं । ५५ नंदनवनाहून सुंदर । अशोकवनींचे तरुवर । फणस इक्षुदंड लवंग परिकर । उपडी समग्र एकदांचि । ५६ केळी नारळी देवदार । जंबू कपित्थ अंजीर । ज्यांचे रस लागती मधुर । हनुमंतवीर सेवीतसे । ५७ असो तरुवर लक्षकोडी । भुजाबळें उर्वीवरी झोडी । राघवस्मरणें तांतडी । फळें वदनीं टाकीतसे । ५८ हनुमंत करीत यजन । रामनाम-मंत्रेंकरून । वदनकुंडीं आहुती पूर्ण । घालोनि जठराग्नि

उतावली से चबाते हुए उस क्षण उसकी ठोड़ी हिल रही थी । १५१ वह दृष्टि को चंचल बनाते हुए आगे-पीछे निरखकर देख रहा था, तब (उसे दिखायी दिया कि) वे वन-रक्षक पूर्णतः निद्रा-सागर में डूबे हुए थे । १५२ (इधर उन) राक्षसों ने मद्य पिया था । (तब) हनुमान ने वन का विध्वंस कर डाला । तदनन्तर पूँछ से उखाड़कर वह सभी वृक्षों को अपने चारों ओर ले आया । १५३ (फिर) हनुमान फलाहार करने के लिए बैठ गया, तो पूँछ उसका आतिथ्य कर रही थी । वह आचमन भंग हो जाएगा (अधूरा रह जाएगा), इसलिए वह बैठने का अपना स्थान नहीं छोड़ता था । १५४ हनुमान पूँछ से बोला—' मीठे-मीठे फल क्यों नहीं लाती ? तुमने आज हमें तृप्त किया । ' तुम चिरंजीवी हो (—कर रह) जाओ । १५५ (स्वर्ग के) नंदन वन (के वृक्षों) से भी अशोक वन के वृक्ष सुन्दर थे । (हनुमान की पूँछ ने) कटहल, ईख-दंड, लौंग वृक्षों के समूह को पूरा उखाड़ लिया । १५६ जिनका रस मधुर लगता था, ऐसे केले, नारियल, देव-दारु, जामुन, कैथा, अंजीर वृक्षों के फलों को वीर हनुमान खा रहा था । १५७ अस्तु । (हनुमान ने) बीस लाख वृक्षों को बाहुबल से पृथ्वी पर (पटककर) झाड़ दिया और श्रीराम का स्मरण करते हुए वह फल अधीरता-पूर्वक मुँह में डाल रहा था । १५८ हनुमान यजन (यज्ञ-कर्म) कर रहा था ।

तृप्त करी । ५९ सीतेनें घातली आपुली आण । वृक्षावरी न चढावें पूर्ण । यालागीं वृक्ष झोडोन । फळें पाडी धरणीये । १६० जैसी कां चपळा कडाडी । तैसें पुच्छ वृक्ष मोडी । तों राक्षस उठले तांतडी । भीम कोल्हाळ करीतचि । ६१ चक्रें डांगा भिंडिमाळा । घेऊन धांवले एकवेळां । सीताशोकहरण कोंडिला । सकळीं मिळोन एकदांचि । ६२ वृषभीं कोंडिला महाव्याघ्र । कीं बहुत विखारीं खगेंद्र । कीं शृगालीं वेढिला मृगेंद्र । खद्योत दिनकरा धरूं म्हणती । ६३ कीं मंथूनि सागर द्विज । धरूं म्हणती प्रळयवीज । कीं आर्द्रमृत्तिकेचे गज । प्राशूं म्हणती जळसिंधु । ६४ कर्पूरपुतळे म्हणती एक वेळां । धरोनि आणूं वडवानळा । मक्षिका मिळोनि सकळा । भूगोल उचलूं भाविती । ६५ उष्ट्रांनीं ब्रीद बांधोन । तुंबरापुढें मांडिलें गायन । कीं वृश्चिक पुच्छेंकरून । ताडीन म्हणे वज्रातें । ६६ तैसे हनुमंतावरी वनरक्षक । एकदांच धांवले सकळिक । यावरी लोकप्राणेश-

---

तब राम-नाम मंत्र के साथ वह वदन रूपी कुंड में पूरी आहुतियाँ समर्पित करते हुए जठराग्नि (पेट में उत्पन्न अग्नि) को तृप्त कर रहा था । १५९ सीता ने अपनी सौगंध दिलायी थी कि वह वृक्ष पर सर्वथा न चढ़े । इसलिए वह वृक्षों को पटककर धरती पर फल गिरा रहा था । १६० जिस प्रकार बिजली कड़कती है, उस प्रकार पूँछ वृक्षों को कड़कड़ तोड़ रही थी । तब प्रचंड कोलाहल करते हुए राक्षस उतावली से (जाग) उठे । १६१ वे चक्र, लाठियाँ और गोफन लेकर एकदम दौड़ गये और उन सबने मिलकर सीता के शोक को दूर करनेवाले हनुमान को घेर लिया । १६२ मानो, बैलों ने महान बाघ को घेर लिया हो; अथवा बहुत से सर्पों ने पक्षिराज गरुड़ को, अथवा सियारों ने सिंह को घेर लिया हो, अथवा जुगनू सूर्य को पकड़ने की बात कहते हों (पकड़ना चाहते हों) । १६३ अथवा पक्षी समुद्र को मथकर प्रलय-काल की बिजली को पकड़ना चाहते हों, अथवा गीली मिट्टी के हाथी समुद्र के जल का पान करना चाहते हों । १६४ अथवा कपूर के पुतले कहते हों कि हम वड़वाग्नि को पकड़कर लाएँ, अथवा समस्त मक्खियाँ मिलकर पृथ्वी-गोल को उठाना चाहती हों । १६५ अथवा ऊँटों ने (प्रावीण्य-सूचक) बिरुदावलियाँ लेकर तुंबरू के सामने गायन आरम्भ किया हो, अथवा बिच्छू वज्र को पूँछ से ठोंकना-पीटना चाहता हो । १६६ उस प्रकार वे समस्त वन-

बाळक । काय करिता जाहला । ६७ विशाळ वृक्ष उपडोनी । सव्य करीं घेत तेच क्षणीं । जैसा पावक शुष्कवनीं । संहारी तैसा राक्षसां । ६८ साठी सहस्र वनपाळ । पुच्छें भारे बांधिले सकळ । फिरवूनियां तत्काळ । भूमीवरी आपटिले । ६९ जैसी तुंबिनीचीं ओलीं फळें । बळें आपटितां होती शकलें । तैसे वनरक्षक ते वेळे । चूर्ण जाहले सकळही । १७० सवेंच समुद्रजीवनीं । प्रेतें देत भिरकावूनी । भुःभुकारें गर्जे तो ध्वनी । गगनगर्भीं न समाये । ७१ घायाळें उरलीं किंचित । तीं रावणासमीप आलीं धांवत । म्हणती एक वानर अद्भुत । अशोकवनीं प्रकटला । ७२ सकळ वन विध्वंसून । वनरक्षक मारिले संपूर्ण । ऐसें राक्षसेंद्र परिसोन । परम विषाद पावला । ७३ तेव्हां ऐशीं सहस्र महावीर । प्रेरिता जाहला दशकंधर । म्हणे धरोनि आणा रे वानर । नाना यत्नें-करूनियां । ७४ जरी नाटोपे तुम्हांलागून । तरी मज दावूं नका वदन । ऐशीं सहस्र पिशिताशन । गर्जत वना पातले । ७५

रक्षक हनुमान पर एकदम चढ़ दौड़े । इसके पश्चात् वायु-पुत्र हनुमान ने क्या किया ? १६७ वह विशाल वृक्षों को उखाड़कर दायें हाथ में उन्हीं को पकड़ लेता और राक्षसों का वैसे ही संहार कर डालता जैसे अग्नि सूखे वन में (वृक्षों का) संहार करती है । १६८ उसने समस्त साठ सहस्र वन-रक्षकों के गट्ठर बाँध लिये और उन्हें घुमाकर तत्काल पृथ्वी पर पटक डाला । १६९ जिस प्रकार कड़ुवी लौकी के गीले अर्थात् कच्चे फलों को बल-पूर्वक पटकने पर उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, उस प्रकार (पटक देनेपर) उस समय सभी राक्षस चूर-चूर हो गये । १७० साथ ही वह प्रेतों को समुद्र के पानी में झटके के साथ फेंक देता था । वह भुभुःकार करता हुआ गरज रहा था । वह ध्वनि आकाश के गर्भ में नहीं समा रही थी । १७१ जो थोड़े-से घायल हुए (राक्षस) बचे थे, वे दौड़ते हुए रावण के समीप आ गये और बोले—'अशोक वन में एक अद्भुत वानर प्रकट हो गया है । १७२ उसने समस्त वन का विध्वंस करके सभी वन-रक्षकों को मार डाला ।' राक्षस-राज ऐसा सुनकर परम विषाद को प्राप्त हो गया । १७३ तब दशानन ने अस्सी सहस्र महान वीरों को भेज दिया । उनसे कहा— 'अरे, नाना (प्रकार से) प्रयत्न करके उस वानर को पकड़कर लाओ । १७४ यदि तुमसे वह वश में नहीं लाया जा सके, तो मुझे अपना मुँह मत दिखाओ ।' (यह सुनकर)

नाना शस्त्रें घेतलीं हातीं। हाकें निराळ गाजविती। ऐसें देखोन मारुती। विशाळरूप जाहला। ७६ जैसा मंदराचळ विशाळ। तैसा दिसे अंजनीबाळ। वासुकीऐसें पुच्छ सबळ। लंबायमान सोडिलें। ७७ लंकेचे महाद्वारींची अर्गळा। लोह-बंदी वेष्टिली ते वेळां। मारुति मारीत उठिला। सिंहनादें गर्जत। ७८ वृक्षावरील पक्षी उडोनी। प्रातःकाळीं भरती गगनीं। तैशीं अरिमस्तकें तुटोनी। उसळोन धरणीं पडताती। ७९ बांधोन शत्रुसमुदायभार। गगनीं फिरवी वायुकुमर। आपटितां होती चूर। करचरणादि अवयव। १८० तों त्यांत मुख्य जंबुमाळी। हांका देत पातला ते वेळीं। म्हणे वानरा रणमंडळीं। तुज आजि मारीन। ८१ शूल घेवोनि ते वेळां। बळें मारुतीवरी धाविन्नला। तों हनुमंतें लत्ताप्रहार दिधला। कोथळा फुटला तयाचा। ८२ जैसें शस्त्र बैसतां प्रबळ। चूर्ण होय फणसफळ। कीं वज्रघातें महाशैल।

अस्सी सहस्र राक्षस गर्जन करते हुए वन में पहुँच गये। १७५ उन्होंने अनेकानेक शस्त्र हाथों में ले लिये थे। वे गर्जन (ललकार) से आकाश गरजा रहे थे। ऐसा देखकर हनुमान विशाल-रूप हो गया। १७६ जिस प्रकार मंदार पर्वत विशाल दिखायी देता है, उस प्रकार अंजनी का पुत्र (विशाल) दीख रहा था। उसने वासुकी नाग-सा अपना बलवान पुच्छ लम्बा फैला दिया। १७७ उस समय लंका के महाद्वार की सिटकिनी लोहे की रस्सियों से लपेटी गयी थी। हनुमान (सबको) पूँछ से पीटता हुआ उठ गया। वह सिंह की-सी ध्वनि (उत्पन्न) करता हुआ गरज रहा था। १७८ जिस प्रकार सवेरे वृक्ष पर से पक्षी उड़कर आकाश में फैल जाते हैं, उस प्रकार शत्रु (-दल के सैनिकों) के मस्तक कटकर उछलते हुए धरती पर गिर जाते थे। १७९ शत्रु (-दल के सैनिकों) के समुदाय गट्ठर बाँधकर वायुकुमार उन्हें आकाश में (चक्राकार) घुमा देता और उन्हें पटक डालते ही उनके हाथ, पाँव आदि अंग चूर-चूर हो जाते। १८० तब उनमें मुख्य था जंबुमाली। वह उस समय ललकारता हुआ आ पहुँचा और बोला—'रे वानर, आज रण-भूमि में मैं तुझे मार डालूंगा।' १८१ (फिर) शूल लेकर वह हठात् हनुमान पर चढ़ दौड़ा, तो हनुमान ने उसपर लातों से आघात जमा दिये। उस क्षण उसका पेट फट गया। १८२ जैसे अति कठिन शस्त्र का प्रहार होते ही कटहल (का फल) चूर-चूर हो जाता है, अथवा जैसे वज्र के

चूर्ण जैसा होय पैं। ८३ ऐसा जंबुमाळी पडला। चिरोन हनुमंतें भिरकाविला। दशमुखास समाचार कळला। अत्यंत कोपला ते काळीं। ८४ मग पाठविले लक्ष वीर। पांच सेनाधीश मुख्य थोर। मल्ल प्रतिमल्ल नामें असुर। प्रचंड चंड जघन पैं। ८५ रावणाची आज्ञा घेऊन। वेगें पावले अशोकवन। हें देखोनि वायुनंदन। अर्गळा हातीं तुळीतसे। ८६ करोनि पुच्छाचें उखळ। हातीं घेऊनि लोहमुसळ। कांडीतसे लंकेशाचें दळ। साळीऐसें तेधवां। ८७ असुरदेह पडती अचेतन। हाचि साळींचा कोंडा झाडून। सूक्ष्मदेह तांदूळ पूर्ण। जात उद्धरोन कपिहस्तें। ८८ करकरां कपि दाढा खात। नेत्र गरगरां भोंवंडीत। शस्त्रास्त्रें अवघे वर्षत। पिशिताशन ऊठती। ८९ मेरूऐसा सबळ। जातां अंजनीचा बाळ। तों तेथें देखिलें देऊळ। सहस्रस्तंभमंडित। १९० तेथें रावणें देवी स्थापिली। ब्राह्मणाचा देत नित्य बळी।

आघात से बड़ा पर्वत चूर्ण हो जाता हो, वैसे (हनुमान द्वारा किये हुए आघात से) जंबुमाली गिर पड़ा। उसे चीरकर हनुमान ने उसे चक्राकार घुमाते हुए फेंक दिया। जब रावण को यह समाचार विदित हुआ, तो उस समय वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। १८३-१८४ तत्पश्चात् उसने एक लक्ष (राक्षस) वीर भेज दिये। उनमें मल्ल, प्रतिमल्ल, प्रचंड, चंड, जघन नामक पाँच बड़े राक्षस सेना-प्रमुख थे। १८५ रावण से आज्ञा लेकर वे वेग-पूर्वक अशोक वन में पहुँच गये। यह देखकर हनुमान (महाद्वार की वह) कुंडी हाथ में (लेकर) तौलता रहा। १८६ फिर अपनी पूँछ से ओखली (-सी आकृति) बनाकर और हाथ में लोह-मूसल लेकर वह उस समय रावण का (सेना-)दल को धान जैसा कूटने लगा। १८७ राक्षसों के शरीर अचेत होकर गिर रहे थे—वही (मानो राक्षस-दल रूपी) धान का भूसा है, जिसे झाड़ देने पर उनके सूक्ष्म शरीर रूपी चावल कपि के हाथों पूर्णतः उबरते जा रहे थे। १८८ वह कपि कर्कर (ध्वनि के साथ) दाढ़ें (दाँत) पीस रहा था, आँखों (की पुतलियों) को चक्राकार घुमाता था, तो समस्त राक्षस उठ गये और शस्त्रास्त्रों की बौछार करने लगे। १८९ अंजनी का मेरु जैसा (प्रचंड) वह बलवान पुत्र हनुमान जब (आगे) जा रहा था, तो उसने वहाँ सहस्र स्तम्भों से विभूषित एक देव-मंदिर देखा। १९० वहाँ रावण ने एक देवी की स्थापना की थी। वह उसमें (एक-एक) ब्राह्मण की नित्य बलि चढ़ाया

वायुसुतें ते वेळीं। तें विदारिलें देवालय। ९१ पायासकट उपडोन। आकाशपंथें देत भिरकावून। दशदिशांसी गेले पाषाण। पक्ष्यांऐसे उडोनियां। ९२ असो यावरी हनुमंतें लोहार्गळा घेवोनि हातें। मांडिलें वीरकंदनातें। गीत रामाचें गातसे। ९३ अशोकवन तेंचि खळें। माजी वीरधान्य रगडिलें। हनुमंत तिवडा मध्यें बळें। पुच्छ पांथी फिरवीतसे। ९४ तया खळियाजवळी। खेचरदेवी जनकबाळी। महावीरांचे दिधले बळी। राशी केल्या शिरांच्या। ९५ रेणुकेच्या कैवारें फरशधरें। सर्व क्षत्रियांचीं छेदिलीं शिरें। तैसे सीतेकारणें राघवकिंकरें। संहारिले यामिनीचर। ९६ असो हनुमंत ते वेळां। असुर पुच्छें करूनि गोळा। आपटोनि समुद्रजळा-। माजीं निक्षेपी साक्षेपें। ९७ लक्ष वीर संहारिले। मग सात पुत्र पाठविले। तेही हनुमंतें चूर्ण केले। अर्गळाघातेंकरूनियां। ९८ हांक गेली रावणापाशीं।

करता था। उस समय वायु-पुत्र हनुमान ने उस मंदिर को छिन्न-भिन्न कर डाला। १९१ उसने उसे नींव से उखाड़कर बल-पूर्वक चक्राकार घुमाते हुए आकाश मार्ग पर फेंक दिया, तो उसके पाषाण पक्षियों की भाँति दसों दिशाओं में उछल गये। १९२ अस्तु! इसके पश्चात् हाथ में लोहे की अर्गला लेकर उसने वीरों का सँहार करना आरम्भ किया। वह (उस समय) राम-सम्बन्धी गीत गा रहा था। १९३ वह अशोक वन ही मानो खलिहान था, उसमें वीर रूपी अनाज पीस डाला। बीच में हनुमान मानो खंभा था। वह अपनी पूँछ को उस मार्ग (लीक) पर घुमाता था। १९४ उस खलिहान के पास जनक-कन्या सीता मानो आकाशगामिनी देवी है। हनुमान ने बड़े-बड़े वीरों के मस्तक उसपर बलि के रूप में समर्पित किये और उनके मस्तकों की राशियाँ बना लीं। १९५ रेणुका का पक्षपात करते हुए परशु-धारी भार्गव राम ने समस्त क्षत्रियों के मस्तक काट डाले थे। उसी प्रकार राघव राम के सेवक हनुमान ने सीता के निमित्त राक्षसों का संहार किया। १९६

अस्तु! उस समय पूँछ से राक्षसों को इकट्ठा करके हनुमान ने उन्हें पटकते हुए समुद्र-जल में जान-बूझकर फेंक दिया। १९७ जब एक लाख वीरों का संहार हो गया, तो (रावण ने अपने) सात पुत्र भेज दिये। हनुमान ने उनको भी अर्गला के आघात से चूर-चूर कर डाला। १९८ वह कोलाहल (युक्त समाचार) रावण के पास (पहुँच)

वानरें संहारिलें समस्तांसी। मग पाठविलें अखयासी। दळभारेंसीं तेधवां। १९९ अखया देखोनि हनुमंत। लोहार्गळा घेऊन नाचत। गदगदां हंसूनि बोलत। लंकेशात्मजासी तेधवां। २०० अरे अखया तुझें नाम व्यर्थ। जैसे अजागळींचे स्तन यथार्थ। कीं मूर्खासी अलंकार घातले सत्य। बधिराचे श्रोत्र जैसे कां। १ कीं गर्भांधाचे नयन। व्यर्थ काय विशाळ दिसोन। कीं नासिकाविण वदन। नामकरण तैसें तुझें। २ रासभासी भद्रासन। श्वानासी अग्रपूजामान। कीं दिव्याम्बर परिधान। व्यर्थ प्रेतास करविलें। ३ तैसें अखया नाम दशमुखें। तुज ठेविलें व्यर्थ शतमूर्खें। आतां अखया तुझा क्षणें एकें। क्षय करीन जाण पां। ४ मग अखया धनुष्य घेऊन। सोडी बाणांपाठीं बाण। क्षण एक वायुनंदन। उगाच उभा राहिला। ५ काडिया पडतां बहुत। बैसका न सांडी पर्वत। कीं सुमनवृष्टीनें गज मदोन्मत्त। खेद सहसा न मानी। ६

गया, कि वानर ने सबका संहार कर डाला है, तब उसने सेना-दल सहित (अपने पुत्र) अक्षय को भेज दिया। १९९ अक्षय को देखकर हनुमान लोहे की वह अर्गला लेकर नाचने लगा और तब ठहाका मारते हुए रावण के उस पुत्र से बोला। २०० 'अरे अक्षय, तुम्हारा नाम व्यर्थ (अर्थ-हीन) है। जिस प्रकार, बकरी के गले में उत्पन्न स्तन यथार्थ हैं (अर्थात् स्तन नामधारी होने पर भी उसके गुणधर्मों से रहित, अतएव निरर्थक हैं), अथवा सचमुच मूर्ख को आभूषण पहना दिये हों (तो वे जैसे व्यर्थ हैं), अथवा बहिरे के कान जैसे (केवल नाम मात्र के लिए होते हैं), अथवा जन्म से अंधे व्यक्ति के नयन व्यर्थ होते हैं—उनके विशाल दीखने से क्या होता है? अथवा बिना नाक के मुख जैसा व्यर्थ होता है, उसी प्रकार तुम्हारा नामकरण अर्थहीन है। २०१-२०२ गधे को शुभ आसन प्रदान करना, अथवा कुत्ते को अग्र-पूजन का सम्मान प्रदान करना व्यर्थ है, अथवा प्रेत को दिव्य वस्त्र व्यर्थ ही पहना दिया हो, उसी प्रकार हे अक्षय, उस शतमूर्ख रावण ने तुम्हारा नाम 'अक्षय' व्यर्थ ही रख दिया है। अरे अक्षय, समझो, मैं एक क्षण में तुम्हारा क्षय कर डालूँगा। (तुम्हारा मेरे हाथों क्षय अर्थात् नाश होगा, इसलिए तुम्हारा 'अक्षय' = अविनाशी नाम व्यर्थ हैं।)' २०३-२०४ तदनन्तर अक्षय धनुष लेकर बाण के पीछे बाण छोड़ता था। (इधर) वायुनन्दन क्षण भर चुप ही खड़ा रहा। २०५ जिस प्रकार, बहुत-से तिनकों को गिरा

तैसे अखयाचे बाण । येतां न भंगे वायुनंदन । मग लोहार्गळा घेऊन । कृतान्तवत धांविन्नला । ७ बैसतां लोहार्गळेचे घाय । अखयाचा जाहला क्षय । समीरात्मज पावला जय । सुर-समुदाय आनंदला । ८ ऐकोनि अखयाचा समाचार । शोका-र्णवीं पडला लंकेश्वर । आसाळी राक्षसी भयंकर । अशोकवना धाडिली । ९ दहा सहस्र गजांचें बळ । उदरांत सांठवी अचळ । एक योजन मुख विशाळ । पसरोनियां धाविन्नली । २१० कपाळीं चर्चिला शेंदूर । बाबरझोटी भयंकर । तिनें धांवोनि सत्वर । वायुसुत धरियेला । ११ उचलोनि घातला मुखांत । दांतांसी दांत जों मेळवीत । तंव तो उतरला उदरांत । क्षणमात्र न लागतां । १२ लंकेशासी सांगती हेर । आसाळीनें गिळिला वानर । ऐकतां आनंदला दशशिर । असुरसभेसहित पैं । १३

देने पर भी, पर्वत अपनी बैठन नहीं छोड़ता (विचलित नहीं होता), अथवा पुष्पों की बौछार होने पर भी मदोन्मत्त यकायक खेद नहीं मानता, उस प्रकार अक्षय के (चलाये हुए) बाणों के आते रहने पर भी वायु-नन्दन भग्न नहीं हुआ (अल्प-सा भी विचलित नहीं हुआ)। फिर लोहे की अर्गला लेकर वह हनुमान कृतान्त (यम) की भाँति चढ़ दौड़ा। २०६-२०७ उस लोहार्गला के प्रहारों के लगते ही अक्षय का क्षय अर्थात् नाश हो गया और वायुनन्दन हनुमान जय को प्राप्त हो गया, तो सुर-समुदाय आनंदित हो गया। २०८ (इधर) अक्षय-सम्बन्धी समाचार सुनकर लंकेश्वर रावण शोकरूपी सागर में गिर गया। (तदनन्तर) उसने आशाली नामक एक भयंकर राक्षसी को अशोक वन में भेज दिया। २०९ उसमें दस सहस्र हाथियों का बल था। वह पेट में पर्वत समा सकती थी। (ऐसी) वह (राक्षसी) अपने एक योजन विशाल मुँह को फैलाकर (हनुमान की ओर) दौड़ी। २१० उसने माथे पर सिंदूर लगाया था। वह बालों के झोंटों को अस्तव्यस्त बिखेरे हुए तथा भयंकर थी। उसने शीघ्रता से दौड़कर हनुमान को पकड़ लिया। २११ (तत्-पश्चात्) उसे उठाकर उसने मुँह में डालकर ज्यों ही दाँतों से दाँत मिला दिये, त्यों ही वह (हनुमान), क्षण मात्र तक (समय) न लगते, उसके पेट में उतर गया। २१२ (उधर) गुप्तचरों ने लंकेश रावण से कहा कि आशाली ने वानर को निगल डाला, तो दशानन असुरों की सभा सहित (अर्थात् राज-सभा में विराजमान असुरों सहित) आनंदित हो गया। २१३ रावण (आनन्द-पूर्वक) शक्कर बाँट ही रहा था, त्यों ही

रावण शर्करा वांटीत। तों दूत आले शंख करीत। आसाळीचा जाहला अंत। हनुमंतें पोट फोडिलें। १४ तिनें चाविला नसतां वानर। सगळाचि गिळिला सत्वर। यालागीं जिनाचि वीर। उदर फोडोनि निघाला। १५ शोकाकुलित द्विपंचवदन। म्हणे हें अद्भुत प्रकटलें विघ्न। यावरी शक्रजित जाऊन। युद्ध करील परिसा तें। १६ रामविजय ग्रंथ सुरस। सुंदर-कांडकौतुक विशेष। श्रवण करोत सावकाश। रघुवीरभक्त आदरें। १७ रविकुळमंडणा पुराणपुरुषा। श्रीमद्भीमा-तटनिवासा। ब्रह्मानंदा अविनाशा। श्रीधरवरदा जगद्गुरो। १८ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। विंशतितमाध्याय गोड हा। २१९

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

दूत चीखते-चिल्लाते आ गये (और बोले)— 'आशाली का अन्त हो गया— हनुमान ने उसका पेट फाड़ डाला। २१४ उसने वानर को न चबाते हुए पूरा-का-पूरा झट से निगल डाला; इसलिए वह वीर उसके पेट को फाड़कर जीवित ही (बाहर) निकल गया।' २१५ (यह सुनकर) दशानन शोक से विह्वल हो गया और बोला— 'यह तो अद्भुत विघ्न प्रकट हुआ।' इसके पश्चात् इंद्रजित (हनुमान की ओर) जाकर युद्ध करेगा। उसे सुनिए। २१६

श्रीराम-विजय नामक यह ग्रंथ सुरस (अर्थात् रसों से युक्त, मधुर) है। उसके सुन्दर काण्ड में विशेष लीलाएँ हैं। श्रीरघुवीर राम के भक्त आदर-पूर्वक उसका शान्ति और मन की स्थिरता के साथ श्रवण करें। २१७

हे रवि-कुल-मंडन, हे पुराण-पुरुष, हे श्रीमद्भीमा-तट-निवासी, हे ब्रह्मानन्द, हे अविनाशी, हे श्रीधर कवि के वरदाता, हे जगद्गुरु। स्वस्ति। श्रीराम-विजय नामक यह ग्रंथ सुन्दर है। वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। चतुर भक्त उसके इस मधुर बीसवें अध्याय का सदा श्रवण करें। २१८-२१९

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२१

श्रीगणेशाय नमः। क्षीराब्धितटीं बैसला सर्वकाळ। त्यासी क्षुधा कासया बाधील। दीपाची चिंता कां लागेल। दिनमणि समीप असतां पैं। १ राहतां कल्पतरूतळीं। कां डंखील कामना-व्याळी। गंगाजळीं शेज केली। त्यासी वणवा करील काय। २ वारणविदारकाचे संगतीं। जो बैसला अहोरात्रीं। त्यासी जंबूक बाधा करिती। हें कल्पांतींही घडेना। ३ जो नित्य करी सुधारसपान। त्यासी विष बाधील काय दारुण। स्वरूपीं जो सदा सावधान। दुष्कृतें कैंची त्यापाशीं। ४ कामधेनु घरीं असतां। कल्पना न बाधी तत्त्वतां। हुताशनतेज धडकतां। शीत कैंचें उरेल। ५ तैसी रघुवीरकृपा ज्यासी पूर्ण। त्यासी न बाधी विषयहुताशन। रामचरित्रीं गुंतलें मन। इतर श्रवण नावडे तया। ६ असो विसावा अध्याय संपतां तेथें। आसाळी विदारिली हनुमंतें। यावरी इंद्रजितासी लंकानाथें। आज्ञा

श्रीगणेशाय नमः। जो सब काल क्षीर-सागर के तट पर बैठा हुआ हो, उसे भूख क्यों बाधा पहुँचाएगी? (किसी के) निकट सूर्य के रहने पर उसे दीये की चिन्ता क्यों (करनी) होगी? १ कल्पवृक्ष के तले रहने पर कामना रूपी साँपिन क्यों डसेगी? (जिस किसी ने) गंगा-जल में बिछौना लगा लिया हो, दावाग्नि उसकी क्या हानि कर सकेगी? २ जो दिन-रात सिंह की संगति में बैठा (रहता) हो, उसे सियार बाधा पहुँचाएँगे— यह कल्पान्त (प्रलयकाल) तक में (घटित) नहीं हो सकता। ३ जो नित्य अमृत रस का पान करता हो, उसे दारुण (अत्य-धिक उग्र) विष क्या बाधा पहुँचा सकेगा? जो सदा ब्रह्म-स्वरूप में ध्यान लगाये रहता हो, उसके पास कैसे पाप आ सकेंगे? ४ (किसी के) घर में कामधेनु के रहने पर उसे वस्तुतः (इच्छा के अपूर्ण रहने की) कल्पना बाधा उत्पन्न नहीं कर सकती। (किसी के यहाँ) अग्नि के तेज के आ धमकने पर ठण्ड कैसे शेष रहेगी? ५ उसी प्रकार जिसे श्रीराम की पूर्ण कृपा प्राप्त हो गयी हो, उसपर विषय (-वासना) रूपी आग बुरा प्रभाव नहीं डाल सकती। (जिसका) मन राम-चरित्र (के श्रवण) में मग्न हुआ हो, उसे किसी अन्य (के जीवन-चरित्र) का श्रवण नहीं भाता। ६ अस्तु। (जहाँ) बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ, वहाँ (यह कहा गया है कि) हनुमान ने आशाली राक्षसी को विदीर्ण कर

केली सत्वर । ७ तों नग्न कुमारी शिंके पाठीसी । रावण शकुन पुसे ब्रह्मयासी । विधि म्हणे दोघांतून एकासी । अपयश येईल दिसतसे । ८ रावण पाहे क्रोधयुक्त । विधि म्हणे वानर होईल हस्तगत । तैसाचि चालला इंद्रजित । अशोकवना ते वेळे । ९ सवें घेऊन चतुरंगसेना । शक्रारि निघाला अशोकवना । शायशीं अयुतें गज जाणा । रथतुरंगमां गणना नाहीं । १० देव बैसोनि विमानीं । कौतुक पाहती तेच क्षणीं । अशोकवनांत रावणी । निजभारेंसी पातला । ११ तों पाठमोरा हनुमंत । बैसलासे फळें झेलीत । असुर गर्जती बहुत । परी तो तिकडे न पाहे । १२ क्षणक्षणां पाठी कुरवाळीत । मागें परतोन वांकुल्या दावीत । राक्षस शस्त्रें असंख्यात । वर्षते जाहले कपीवरी । १३ इंद्रजितें शर टाकिले । हनुमंतें वरिचेवरी झेलिले । मुष्टीमाजी जमा केले । बहुसाल तेधवां । १४ अकस्मात पुच्छ सोडिलें ।

डाला; इसपर लंकापति रावण ने इंद्रजित को शीघ्र ही आज्ञा दी । ७ त्यों ही (कोई एक) नग्न कुमारी (रावण के) पीछे छींक पड़ी । तो रावण ने ब्रह्मा से (इस घटना सम्बन्धी) शकुन-फल पूछा । (तब) ब्रह्मा ने कहा— ' दिखायी देता है (जान पड़ता है कि इन) दोनों में से एक को असफलता प्राप्त होगी । ' ८ (यह सुनते ही) रावण ने क्रोध से देखा, तो ब्रह्मा ने कहा— ' (वह) वानर हाथ में आ जाएगा (पकड़ा जाएगा) । ' वैसे ही इंद्रजित उस समय अशोक वन की ओर चल पड़ा । ९ चतुरंग सेना साथ में लेकर इंद्र का शत्रु इंद्रजित अशोक वन की ओर निकल गया । समझिए कि (उसके साथ) छियासी अयुत (एक अयुत = दस हजार) हाथी थे और रथों और घोड़ों की तो कोई गिनती ही नहीं थी । १० देव विमानों में बैठकर (आकाश में से यह) अद्भुत बात देख रहे थे । उसी क्षण रावण-पुत्र इंद्रजित अपनी सेना के साथ अशोक वन में आ पहुँचा । ११ तब (उस ओर) पीठ फेरकर हनुमान फलों को झेलते हुए बैठा हुआ था । (इधर) राक्षस बहुत गर्जन कर रहे थे, फिर भी वह उस ओर नहीं देखता था । १२ (फिर) राक्षस क्षण-क्षण उसकी पीठ को धीरे-धीरे सहलाते (और फिर) पीछे मुड़कर (लौटकर) मुँह बिचकाते । (तदनन्तर उन) राक्षसों ने उस वानर पर अनगिनत शस्त्र बरसा दिये । १३ इंद्रजित ने (जो) बाण चला दिये, (उन्हें) हनुमान ने ऊपर ही ऊपर लोक लिया और तब बहुत-से (बाण)

रावणीचें धनुष्य हरिलें। हनुमंतें आकर्ण ओढिलें। बाण लावून ते समयीं। १५ अचूक मारुतीचें संधान। सोडिता जाहला असंख्य बाण। जैसे शब्दामागें शब्द पूर्ण। मुखांतून निघती पैं। १६ तों विमानारूढ सुधापानी। पुष्पें वर्षती क्षणक्षणीं। म्हणती मारुति धन्य अंजनी। तुजचि एक प्रसवली। १७ राक्षसांची शिरें ते काळीं। हनुमंतें असंभाव्य उडविलीं। रावणीचा मुकुट तळीं। छेदोनियां पाडिला। १८ बाण सरले तये वेळां। सवेंच घेतली लोहार्गळा। वायुवेगें धांविन्नला। शक्रारीचे रथापाशीं। १९ अर्गळा घालोनि ते वेळां। अश्वासहित रथ भंगिला। इंद्रजित विरथ जाहला। घाबरला पाहतसे। २० लोहार्गळेचे घाय सबळ। झोडिलें इंद्रजिताचें दळ। वाहती रक्ताचे खळाळ। समुद्रा जाती भेटण्या। २१ जैसें अलातचक्र फिरे। तैसा हनुमंत असुरांत

मुट्ठी में इकट्ठा किये। १४ (तदनन्तर) हनुमान ने सहसा पूँछ फैला दी और इंद्रजित के धनुष को छीन लिया; (तथा) उस पर बाण चढ़ाकर उस समय उसकी डोरी को कान तक खींच लिया। १५ हनुमान का शर-संधान अचूक था। उसने अनगिनत बाण चला दिये, जो उस प्रकार चलते रहे, जिस प्रकार (वक्ता के) मुख से पूर्ण शब्द के पीछे (पूर्ण) शब्द निकलते हैं। १६ तब विमानों में आरूढ़ देव क्षण-क्षण में फूल बरसा करते थे और कहते थे— 'हे हनुमान, वह अंजनी धन्य है, जिसने एक (मात्र) तुझको जन्म दिया।' १७ उस समय हनुमान ने राक्षसों के असंख्यात सिर (काटकर) उड़ा दिये और इंद्रजित के मुकुट को तल में छेदते हुए गिरा दिया। १८ उस समय बाण समाप्त हो गये, तो उसने साथ में लोहे की अगरी ली और वह वायु-वेग से इंद्रजित के रथ के पास दौड़ता हुआ (पहुँच) गया। १९ (फिर) अगरी से आघात करते हुए उसने घोड़ों सहित रथ को तोड़ डाला। (इससे) इंद्रजित रथ-हीन हो गया और घबराये हुए देखता रहा। २० लोहे की उस अर्गला के आघात भारी थे। (इस प्रकार) उसने इंद्रजित की सेना को (भी) कुचल दिया। रक्त के गरजते हुए प्रवाह बह रहे थे और समुद्र में मिलने जा रहे थे। २१ जिस प्रकार अलात-चक्र (अर्थात् जलती लकड़ी को मण्डलाकार घुमाने से दिखायी देनेवाला प्रकाश या ज्वाला-चक्र) घूमता है, उस प्रकार (घूमते हुए) हनुमान राक्षसों में विचरण कर रहा था। उस समय उसने अर्गला के प्रहार

वावरे। रावणीस अर्गळाप्रहारें। झोडिता जाहला तेधवां। २२ रावणात्मजें ते अवसरीं। पाश टाकिला हनुमंतावरी। तों मारुति होय मोहरी। उडोनि जाय एकीकडे। २३ मागुती लाहान पाश करून। कपीवरी टाकी आणून। पर्वताकार सीताशोकहरण। होऊन पाश तोडीतसे। २४ शस्त्रास्त्रें बहुसाल। टाकितां नाटोपे कपि सबळ। यावरी अंजनीचा बाळ। इंद्राजितावरी लोटला। २५ मल्लयुद्धासी प्रवर्तला। इंद्रजित बळें आपटिला। नग्न करून भिरकाविला। चरणीं धरून हनुमंतें। २६ इंद्रजित तेव्हां रडत। म्हणे मज आला काय मृत्य। दळही संहारिलें समस्त। न दिसे येथें कोणीही। २७ म्हणे मज निराहारियाचे हातें मरण। हा तो करी फळभक्षण। परी रामापाशीं नेईल धरून। विटंबील नाना परी। २८ सुटे जों जनकनंदिनी। तों मज घालील बंदिखानीं। जैसें रावणासी धरूनी। पांच पाट

से इंद्रजित को पीट लिया। २२ उस अवसर पर इंद्रजित ने हनुमान पर पाश डाल दिया, तब वह सरसों के दाने जैसा छोटा बन गया और एक ओर उड़ गया। २३ अनन्तर छोटा पाश बनाकर लाते हुए इंद्रजित ने उस वानर पर डाल दिया, तो सीता के शोक को दूर करनेवाले उस हनुमान ने पर्वताकार (प्रचण्ड) होकर पाश को तोड़ डाला। २४ बहुत शस्त्र-अस्त्र डालने पर भी वह बलवान कपि वश में नहीं आ रहा था। इसके पश्चात् वह अंजनी-पुत्र (हनुमान) इंद्रजित पर झपट पड़ा। २५ वह मल्ल-युद्ध के लिए प्रवृत्त हो गया (और) उसने इंद्रजित को बल-पूर्वक पटक डाला। (फिर) हनुमान ने उसे नंगा करके पाँवों में पकड़कर चक्राकार घुमाते हुए फेंक दिया। २६ तब रोते हुए इंद्रजित बोला— 'क्या मेरी मौत आ गयी? (इस कपि ने तो) सारी सेना का संहार कर डाला— यहाँ तो कोई नहीं दिखायी दे रहा है।' २७ वह बोला— 'मेरी मौत तो निराहारी अर्थात् बिना कुछ आहार किये— खाये रहनेवाले के हाथों होनेवाली है— (और इधर) यह तो फल भक्षण कर रहा है (अर्थात् इसके हाथों तो मेरी मौत नहीं हो सकती)। फिर भी यह मुझे पकड़कर राम के पास ले जाएगा— नाना प्रकार से मेरी छीछालेदर (या अप्रतिष्ठा, दुर्गत) कर डालेगा। २८ जब जनक-नंदिनी मुक्त हो जाएगी, तो (वे) मुझे बंदी-गृह में डालेंगे। जिस प्रकार रावण को पकड़कर (उस्तरे से) उसके सिर में पाँच

काढिले । २९ मग इंद्रजित पळाला । विवरामाजी तो दडाला । कपीनें द्वारीं पाषाण लाविला । विवरीं कोंडिला राक्षस । ३० इंद्रजित कासावीस होये । म्हणे कां मरण मज न ये । शस्त्र जवळी नाहीं करूं काये । प्राणत्याग करावा । ३१ विवरीं कोंडिला इंद्रजित । हें दशकंठासी जाहलें श्रुत । परम जाहला भयभीत । विनवीतसे विरंचीतें । ३२ म्हणे तुझें वचन साचार । हस्तगत नव्हे कां वानर । तरी तुवां जाऊनि सत्वर । धरूनि कपि देईं आम्हां । ३३ तरी तूं तेथवरी जाऊन । मज द्यावें पुत्रदान । काळरूप तो वानर जाण । तुजविण कोणा नाटोपे । ३४ मग कमलोद्भव पातला तेथ । तंव तो नग्नचि इंद्रजित । दडाला असे विवरांत । भयभीत मुसमुसी । ३५ मग रावणी बोले करुणावचन । आतां मज सोडवीं येथून । त्या वानरासी धरिल्याविण । मी विवराबाहेर न येचि । ३६ कमळासन म्हणे ते अवसरीं ।

पटिया बनाते हुए, सिर मूँड़कर अपमानित कर दिया, उसी प्रकार (वे लोग) मेरी दुर्गत बनाएँगे।' २९ (इस विचार से भयभीत होकर) फिर इंद्रजित नंगा भाग गया और एक विवर के अन्दर (जाकर) छिप गया। तो उस वानर ने (विवर के) द्वार में पत्थर बैठा दिया (और इस प्रकार) राक्षस को विवर में बंद कर डाला। ३० इंद्रजित (इधर उस विवर में) व्याकुल हो गया। वह बोला— 'मुझे मौत क्यों नहीं आती? पास में शस्त्र (तक) नहीं है, (फिर) मैं क्या करूँ? (अब तो) प्राण-त्याग करें।' ३१ (इधर) रावण को यह विदित हो गया कि इंद्रजित विवर में बंद हो गया है, तो वह बहुत भयभीत हो गया। (तब) उसने ब्रह्मा से विनती की। ३२ उसने कहा— 'तुम्हारा कथन यदि सत्य है, तो (वह) वानर पकड़ में क्यों नहीं आ रहा है। इसलिए झट से जाकर तुम उस कपि को पकड़कर हमें (सौंप) दे दो। ३३ अतः तुम वहाँ तक जाकर मुझे पुत्र का (प्राण-) दान दो। उस वानर को काल-रूप समझो। सिवा तुम्हारे, वह किसी से वश में नहीं किया जा सकता।' ३४ अनन्तर ब्रह्मा वहाँ पहुँच गया, तब (उसे विदित हुआ कि) इंद्रजित नंगा ही विवर में छिपा है और भयभीत हो सिसकियाँ भर रहा है। ३५ फिर इंद्रजित करुणा-युक्त वचन बोला— 'अब मुझे यहाँ से छुड़वा लो। उस वानर को बिना पकड़े मैं विवर के बाहर आ ही नहीं सकता।' ३६ उस समय ब्रह्मा

आतां निघें विवराबाहेरी । ब्रह्मपाश घालोनि झडकरी । कपि बळिया धरावा । ३७ रावणी देत प्रत्युत्तर । ब्रह्मपाशास नावरे वानर । विरंचि म्हणे तूं अपवित्र । तुज अस्त्र हें न चाले । ३८ मग विष्णुसुतें ते वेळीं । राघवप्रियाची स्तुति केली । तूं वज्रशरीरी महाबळी । निशाचर कांपती तूंतें । ३९ आमुचें वचन साच करावें । ब्रह्मपाशीं त्वां सांपडावें । सभेपर्यंत उगेंच यावें । मग दावावें पराक्रमा । ४० ऐसें कमलोद्भवें विनविलें । समीरात्मजें मान्य केलें । मग विरंचीनें पाश प्रेरिले । माजी बांधिलें हनुमंता । ४१ हनुमंत बांधिला पाशीं । शक्रारि धांवला वेगेंसीं । दृढ बांधिता जाहला कपीसी । निजहस्तेंकरूनियां । ४२ एक तृणवेंटीनें पाय बांधिती । एक वृक्षसालीनें आंवळिती । एक दोर आणावया धांवती । नगरामाजी सत्वर । ४३ हनुमंत दिसे बांधिला । परी तो सर्वदाही मोकळा । जैसा ज्ञानी संसारीं

ने कहा— ' अब विवर के बाहर निकलो और झट से ब्रह्म-पाश डालकर उस बलवान वानर को पकड़ लो । ' ३७ इसपर इंद्रजित ने प्रत्युत्तर दिया— ' यह वानर ब्रह्म-पाश के वश में नहीं हो सकेगा । ' (यह सुनकर) ब्रह्मा ने कहा— ' तुम अपवित्र हो, तुमसे यह अस्त्र नहीं चलेगा । ' ३८ फिर उस समय ब्रह्मा ने श्रीराम के (उस) प्रिय (दूत) की (इस प्रकार) स्तुति की— ' (हे हनुमान !) तुम वज्र-शरीरी (तथा) महा बलवान हो । तुमसे (भयभीत हो) राक्षस काँप उठते हैं । ३९ तुम हमारा कहना सत्य करना, तुम (अपने आप) ब्रह्म-पाश में फँस जाना (और राज–) सभा तक चुपचाप आ जाना । (फिर) प्रताप दिखा देना । ' ४० इस प्रकार ब्रह्मा ने विनती की, (जिसे) पवनकुमार (हनुमान) ने स्वीकार किया । फिर ब्रह्मा ने पाश बिछा दिये और उनके अन्दर हनुमान को बाँध डाला । ४१ जब हनुमान को (ब्रह्मा ने) पाश में बाँध दिया, तो इंद्रजित (विवर के अन्दर से बाहर) वेग-पूर्वक दौड़ आया और उसने अपने हाथों से उस वानर को दृढ़ बाँध डाला । ४२ (तदनन्तर) कुछ एक ने घास की डोरी से (उसके) पाँव बाँध डाले, कुछ एक ने पेड़ की छाल से उन्हें कस दिया, तो कोई एक रस्सी लाने के लिए तेजी से नगर में दौड़ते हुए गये । ४३ जिस प्रकार ज्ञानी (व्यक्ति) घर-गिरस्ती (या सांसारिक जीवन) में उलझा हुआ रहता है, परन्तु (वस्तुतः) वह सदा मुक्त (ही) रहता है, उसी प्रकार

गुंतला । परी तो सर्वदा मुक्त असे । ४४ नलिनीपत्र जळीं खेळे । परी त्यावरी बिंदु नातळे । कीं शीतोष्ण धुळीनें न मळे । निराळ जैसें सर्वदा । ४५ कीं समीर सर्वांवरून जात । परी कोठेंचि नव्हे लिप्त । तैसाचि वीर हनुमंत । बंध-मोक्षातीत जो । ४६ असो परमेष्ठी आणि इंद्रजित । सभेसी आणिती हनुमंत । वाटेसी राक्षस टोंचीत । नाना शस्त्रें घेऊनियां । ४७ शस्त्रें भंगलीं समग्र । वज्रशरीरी तो वानर । असुरीं उचलोनि तो सत्वर । सभेसमोर आणिला । ४८ दृष्टीं देखतां हनुमंत । रावण करकरां दांत खात । याउपरी रघुनाथदूत । काय करिता जाहला । ४९ बंधनें तोडूनि समस्त । पुच्छासनीं बैसला हनुमंत । रावणाहून एक हस्त । उंच आसन मारुतीचें । ५० मग पुसे प्रधान प्रहस्त । तूं कोणाचा आहेस दूत । परी तो न बोले हनुमंत ।

हनुमान (पाश में) बँधा हुआ (तो) दिखायी दे रहा था, फिर भी (वस्तुतः) वह सदा ही मुक्त है । ४४ (जिस प्रकार) कमल-पत्र पानी में खेलता अर्थात् हिलता-डुलता रहता है, परन्तु उसमें (जल की) बूंदें स्पर्श नहीं करतीं— अर्थात् उसपर टिकी नहीं रहतीं, अथवा जिस प्रकार आकाश शीत और उष्ण धूलि से नित्य मलिन नहीं हो जाता, अथवा वायु तो सब पर से (बहती) जाती है, फिर भी कहीं भी (उनसे) लिप्त नहीं हो जाती, उसी प्रकार (वह) वीर हनुमान है, जो (सांसारिक) बंधन तथा मोक्ष से परे रहता है । ४५-४६

अस्तु । ब्रह्मा और इंद्रजित हनुमान को (रावण की राज-) सभा में ले आये । मार्ग में अनेकानेक हथियार लेकर राक्षस (उसे) चुभाते थे । ४७ (परन्तु उनके वे) समस्त शस्त्र भग्न हो गये; (क्योंकि) वह वानर तो वज्र-(के समान कठिन) शरीरी था । (तदनन्तर) राक्षस उसे उठाकर शीघ्रता-पूर्वक सभा के सम्मुख ले आये । ४८ हनुमान को दृष्टि से देखते ही रावण मारे क्रोध के दाँत किटकिटाता रहा । (देखिए) इसके उपरान्त हनुमान ने क्या किया । ४९ (अपने) समस्त बन्धनों को तोड़कर हनुमान अपनी पूँछ के आसन पर (पूँछ को आसनाकार बनाकर उसपर) बैठ गया । हनुमान का वह आसन रावण के आसन से एक हाथ (अधिक) ऊँचा था । ५०

अनन्तर (रावण के) मंत्री प्रहस्त ने पूछा— 'तू किसका दूत है ?' फिर भी हनुमान कुछ नहीं बोला । वह चकित होकर चुपचाप देखता

पाहे चकित उगाचि । ५१ मग पुसे द्विपंचवदन । मर्कटा तूं कोणाचा कोण । यावरी जनकजा-शोक-हरण । काय वचन बोलत । ५२ म्हणे रे मशका रजनीचरा । महामलिना दुर्जना पामरा । मी कोण आहें तुज तस्करा । कळलें नाहीं अद्यापि । ५३ जेणें स्वयंवरीं तुज वांचविलें । उरावरोनि चाप काढिलें । त्याचा दास जाण वहिलें । शिरकमळें छेदीन तुझीं । ५४ जेणें ताटिका सुबाहु मारून । केलें कौशिकमखपाळण । मूढा त्याचा दास मी आहें पूर्ण । करीन दहन लंकेचें । ५५ तुझे भगिनीचें नासिक छेदिलें । खर दूषण त्रिशिरा मारिले । त्याचा दूत मी आलों बळें । शिक्षा तुज लावावया । ५६ जैसें अन्नसदनीं रिघे श्वान । तसा पंचवटीस येऊन । चोरिलें जानकीचिद्रत्न । महामलिना अपवित्रा । ५७ रामपंचाननाची वस्तु । कैसा ठेवशील तूं बस्तु । पाडून वासुकीचा दांतु । मंडूक वांचेल कैसा पां । ५८ व्याघ्र असतां निद्रिस्त । बाहेर जिव्हा लळलळित । ती

रहा। ५१ फिर रावण ने पूछा— ' रे मर्कट ! तू किसका कौन है ? (सुनिए) इसपर सीता के शोक को दूर करनेवाले हनुमान ने क्या बात कही । ५२ उसने कहा, ' रे मच्छड़ ! राक्षस ! महामलिन (महा-पापी) दुर्जन ! रे पामर (तुच्छ जीव) ! रे चोर ! मैं कौन हूँ ?— (यह) तुझे अभी तक विदित नहीं हुआ । ५३ जिसने (सीता-) स्वयम्वर के अवसर पर तुझे बचा लिया, (तेरी) छाती पर से धनुष को हटा लिया, निश्चय ही मुझे उसका सेवक समझ (और) वह तेरे मस्तक-कमलों को छेद डालेगा । ५४ रे मूढ़ ! जिसने ताड़का (और) सुबाहु को मार डालकर कौशिक (विश्वामित्र ऋषि) के यज्ञ का रक्षण किया, उसका मैं पूर्णतः दास हूँ (और) मैं लंका का दहन करूँगा । ५५ जिसने तेरी भगिनी (शूर्पणखा) की नाक काट डाली तथा खर, दूषण (और) त्रिशिरा को मार डाला, उसका दूत मैं तुझे दण्ड देने के लिए बलात् आ गया हूँ । ५६ रे महामलिन अपवित्र (निशाचर) ! जिस प्रकार (पवित्र) अन्न रखे हुए सदन में (कोई अपवित्र) कुत्ता पैठ जाए, उसी प्रकार तूने पंचवटी में आकर जानकी रूपी चिद्-रत्न को चुरा लिया । ५७ तू बकरा राम रूपी सिंह की वस्तु (अपने पास) कैसे रख पाएगा ? अरे ! वासुकी नाग के दाँत को तोड़कर मेंढक कैसे बच सकेगा ? ५८ बाघ के सोये हुए रहने पर जब उसकी जिह्वा बाहर

तोडोनि जंबुक यथार्थ। कैसा वांचेल सांग पां। ५९ तुझा अखया मारून। विध्वंसिलें म्यां अशोकवन। तुझें दळ अवघें मर्दून। इंद्रजित गांजिला। ६० राक्षसकुळ-वैश्वानर। अयोध्याप्रभु कौसल्याकुमर। तुझें छेदावया शिर। समरधीर येत आतां। ६१ तो विषकंठवंद्य रघुनंदन। तुझे दशकंठ छेदून। दशदिशांसी बळी देऊन। सीता घेऊन जाईल। ६२ ऐसें ऐकतां द्विपंचवदन। जाहला परम क्रोधायमान। म्हणे याचें पुच्छ नासिक कर्ण। जिव्हा छेदून टाका रे। ६३ ऐसें बोलतां लंकेश। चौताळले महाराक्षस। पुच्छावरी आसमास। शस्त्रघाय मारिती। ६४ धापा दाटती हाणतां वैभवें। परी त्याचे रोमही वक्र नोव्हे। भय घेतलें दशग्रीवें। म्हणे बरवें दिसेना। ६५ मग विचारी निजमनीं। हा रामउपासक सत्यवचनी। तरी याचा मृत्यु कैसेनी। आण घालूनि विचारूं। ६६ मग म्हणे तुज

लपलपाती हो, तब यदि सियार उसे काट ले, तो कह दे कि वह (सियार बाघ से) कैसे बच पाएगा। ५९ तेरे (पुत्र) अक्षय को मार डालकर मैंने अशोक वन का विध्वंस किया। तेरे समस्त (सेना–) दल को कुचलकर मैंने इंद्रजित को तंगकर दिया। ६० राक्षस-कुल के लिए वैश्वानर (अग्नि) स्वरूप अयोध्या के प्रभु समर-धीर कौसल्या-कुमार (श्रीराम) तेरे मस्तक को काट देने के लिए अब आ रहे हैं। ६१ विष-कण्ठ (शिवजी) के लिए वन्दनीय वे रघुनन्दन श्रीराम तेरे दसों कण्ठों को छेदते हुए उन्हें दसों दिशाओं पर बलि चढ़ाकर सीता को ले जाएँगे। ६२ ऐसा सुनते ही रावण परम क्रोधायमान हो उठा और बोला— 'अहो, इसकी पूँछ, नाक, कान, जिह्वा छेद डालो।' ६३ रावण के इस प्रकार बोलते ही महान राक्षस झल्ला उठे और उसकी पूँछ पर लगातार शस्त्रों के आघात करते रहे। ६४ बड़े ठाठ से आघात करते-करते उनका दम फूल गया, फिर भी उस (वानर की पूँछ) का बाल तक बाँका नहीं हुआ। (यह देखकर) दशानन भय खा गया (बहुत भय-भीत हो गया)। उसने कहा— 'यह ठीक नहीं दिखायी दे रहा है।' ६५ अनन्तर उसने अपने मन में विचार किया— यह तो सत्य-वचनी रामभक्त है। इसलिए इसे शपथ दिलाकर पूछें कि इसकी मौत किससे होगी। ६६ फिर उसने कहा— '(रे वानर!) तुझे राम की शपथ है; सच (-सच) कह, तेरा मृत्यु-अंग कौन-सा है (अर्थात् किस अंग पर

रघुपतीची आण। सत्य सांग तुझें मृत्यांग कोण। येरू म्हणे मज नाहीं मरण। ऐकोन रावण हांसत। ६७ ब्रह्मयासही आहे मरण। तेथें तुझा कीटका पाड कोण। येरू म्हणे पुच्छ होईल दहन। तेंच मरण आम्हांसी। ६८ तैलें वस्त्रें भिजवून। पुच्छ गुंडाळूनि लावा अग्न। क्षणामाजी भस्म होऊन। सर्व जाईल निर्धारें। ६९ वस्त्रें गुंडाळा बहुत। तेणें अग्नि चेतेल अद्भुत। क्षणामध्यें होईल अंत। उशीर येथें न लगेचि। ७० रावण म्हणे हें साचार। मग स्नेहेंसहित वस्त्रभार। पुच्छा गुंडाळिती समग्र। वायुकुमर काय बोले। ७१ म्हणे पुच्छ उघडें राहतां। मग मज नाटोपे हें तत्त्वतां। राक्षस भागले वस्त्रें गुंडाळितां। पुच्छ सर्वथा न सरेचि। ७२ वस्त्रराशी आटल्या समग्र। अधिकाधिक वाढे पुच्छाग्र। जैसा पंडितबुद्धीचा प्रसर। बोलतां बहुत न सरेचि। ७३ कीं महाकवीची पद्यरचना।

आघात करने से तेरी मौत होगी)।' (इस पर) उसने कहा—'मेरी मृत्यु नहीं होगी।' (यह) सुनकर रावण हँस दिया। ६७ (वह बोला—) 'ब्रह्मा की भी मृत्यु होनेवाली है, रे कीटक! वहाँ तेरी क्या बिसात!' (इसपर) वह (वानर) बोला—'(यदि) पूँछ जल जाए तो वही हमारे लिए मौत है। ६८ तेल में कपड़े भिगोकर और उन्हें पूँछ में लपेटकर उसमें आग लगा दो। (इससे) क्षण (-भर) में सब निश्चय ही जल जाएगा। ६९ बहुत वस्त्र लपेट दो, उससे अद्भुत रूप में आग भभक उठेगी (और) क्षण में उसका अन्त हो जाएगा—यहाँ (इसमें) देर नहीं लगेगी।' ७० (इस पर) रावण ने कहा—'यह सत्य है।' अनन्तर (राक्षसों ने) बहुत-से वस्त्र तेल-सहित (तेल में भिगोये हुए) उसकी सारी पूँछ में लपेट दिये। (यह देखकर सुनिए वह) वायुकुमार (हनुमान) क्या बोला। ७१ वह बोला—'पुच्छ खुला रहने पर यह सचमुच मेरे वश में नहीं आ पाएगा।' (फिर) राक्षस वस्त्र लपेटते-लपेटते थक गये, (फिर भी) उसकी पूँछ पूर्णतः समाप्त ही नहीं हो पा रही थी। ७२ समस्त वस्त्रों के ढेर समाप्त हो गये (और इधर तो उस प्रकार) पूँछ अधिकाधिक बढ़ती जा रही थी, जिस प्रकार बहुत बोलने पर भी पंडित की बुद्धि का विस्तार समाप्ति को प्राप्त नहीं हो जाता, अथवा जिस प्रकार अपार लिखते रहने पर भी महाकवि की पद्य-रचना अर्थात् कवित्व शक्ति, प्रतिभा

अपार लिहितां ते सरेना। रामगुणांची वर्णना। वर्णितां शेषा नाटोपे। ७४ तैसें मारुतीचें पुच्छ अद्भुत। राक्षसांसी नव्हे गणित। जैसा अजारक्षकांसी निश्चित। वेदार्थपार समजेना। ७५ असो सरल्या वस्त्रांच्या राशी। शेवटीं नग्न केले नगरवासी। कोठें न मिळे एक दशी। बहुत प्रयासें शोधितां। ७६ राणिवसा नग्न केला। तरी पुच्छभाग उघडा राहिला। निःशेष तंतुमात्र उरला। नाहीं कोठें नगरांत। ७७ हनुमंत म्हणे अणुमात्र रितें। राहतां बोल नाहीं मातें। एक काढूनि यज्ञोपवीतें। भयें पुच्छासी गुंडाळिती। ७८ तैल घृत नवनीत। शोधितां न मिळे निश्चित। विंशतिचक्षूसी सांगती दूत। स्नेह वस्त्रें न मिळती कोठें। ७९ राजसेवक फिरती नग्न। उभय द्वारें मुक्त सोडून। नगरींचे लज्जेनें जन। कपाटें झांकून बैसले। ८० एक बैसले अंधारीं। एक निघाले विवरीं।

समाप्त नहीं हो जाती, (अथवा जिस प्रकार) राम के गुणों की गरिमा शेष भगवान द्वारा वर्णन करते रहने पर भी समाप्त नहीं हो जाती। ७३-७४ उसी प्रकार हनुमान की पूँछ अद्भुत थी। जिस प्रकार गड़रियों की समझ में वेदों के अर्थ की सीमा निश्चय ही नहीं आ जाती, उसी प्रकार राक्षसों द्वारा हनुमान की पूँछ की लम्बाई का हिसाब नहीं हो रहा था। ७५ अस्तु। वस्त्रों की राशियाँ समाप्त हो गयीं। (अतः) अन्त में (वस्त्रों को इकट्ठा करने के लिए) नगर-निवासियों को (वस्त्र उतार कर) नंगा कर दिया (और वे वस्त्र भी पूँछ में लपेटे गये)। बहुत यत्न करके खोजने पर भी दसी का एक धागा तक न मिल रहा था। ७६ अन्तःपुर की स्त्रियों (तक) को नंगा किया, फिर भी हनुमान की पूँछ का अग्र भाग खुला रह गया। (अब) पूरे नगर में कहीं भी तन्तु तक शेष न रहा। ७७ (इसपर) हनुमान ने कहा— 'पूँछ के अणु भर तक रिक्त रहने पर (कुछ बुरा हो जाए तो उसमें मेरा दोष नहीं है।' (तब) कोई-एक जनेऊ उतारकर भय-पूर्वक पुच्छ में लपेटते थे। ७८ (नगर में कहीं भी) तेल, घी, मक्खन खोजने पर भी निश्चय ही नहीं मिल रहा था। (तब) दूतों ने रावण से कहा— 'तेल, वस्त्र कहीं भी नहीं मिल रहे हैं।' ७९ राजसेवक अपनी गुदा तथा शिस्न-इन दोनों द्वारों को मुक्त अर्थात् अनावृत रखकर (मार्गों में) घूम रहे थे, (उसी प्रकार) नगर के लोग लज्जा से किवाड़ बन्द करके बैठ गये। ८० कोई एक अँधेरे में बैठ

एकीं नेत्र लावून निशा थोरी। दिवस असतां केली हो। ८१ वृद्ध वृद्ध एक बोलती। पुढें न दिसे बरवी गती। हें लंकानगर अंतीं। भस्म होईल दिसतसे। ८२ असो वस्त्रें न मिळती निश्चित। पुच्छ उघडें एक हस्त। रावण म्हणे अशोकवनांत। वस्त्रें असती सीतेपाशीं। ८३ ऐकतां तयाच्या उत्तरा। हनुमंत आवरी पुच्छाग्रा। दूत सांगती दशकंधरा। अणुमात्र पुच्छ उरलें नसे। ८४ तेथें कासया पाहिजे वस्त्र। लंकेश म्हणे लावा रे वैश्वानर। चुडी लाविती रजनीचर। अनळ साचार स्पर्शेना। ८५ नाना उपाय योजिती। परी न लागेचि अग्निज्योती। रावण पुसे मारुती। अनळ कां रे स्पर्शेना। ८६ मग बोले अशोकवनारी। पुच्छयज्ञ होतो तुझे घरीं। तरी सेवकाहातीं निर्धारीं। मूर्खा किमर्थ फुंकविसी। ८७ तरी तूं स्वमुखेंकरून। चेतवीं सत्वर कृशान। न लगतां एक क्षण।

गये, कोई एक विवर में पैठ गये, तो कुछ एक ने दिवस के रहते हुए भी आँखों को मूँदकर (मानो) बड़ी रात ही (अनुभव) की। ८१ कोई एक बूढ़े-बूढ़े (आपस में) बोल रहे थे— 'आगे अच्छी गति नहीं दिखायी दे रही है। दिखायी देता है— यह लंका नगर अन्त में (जल कर) भस्म हो जाएगा।' ८२ अस्तु। (उधर) निश्चय ही वस्त्र नहीं मिल रहे थे (और इधर) पूँछ एक हाथ (लम्बी) खुली थी। (यह देखकर) रावण ने कहा— 'अशोक वन में सीता के पास वस्त्र हैं।' ८३ उसकी इस बात को सुनने पर हनुमान ने पूँछ के छोर को समेट लिया, तो दूतों ने रावण से कहा— पूँछ अणु भर भी (अनावृत) शेष नहीं है। ८४ तो वहाँ किसलिए वस्त्र चाहिए? (अतः) लंकापति रावण ने कहा— 'अरे! आग लगा दो।' (तब) राक्षस मशालें (लेकर आग) लगाने लगे, फिर भी (हनुमान की पूँछ को) आग सचमुच स्पर्श नहीं कर रही थी। ८५ उन्होंने नाना उपायों का आयोजन किया, फिर भी आग की ज्वाला (जलने) नहीं लग रही थी। तो रावण ने हनुमान से पूछा— 'रे! आग (तेरी पूँछ में) क्यों नहीं स्पर्श कर रही है?' ८६ तब अशोक-वन के शत्रु हनुमान ने कहा— 'तेरे घर में पुच्छ-यज्ञ हो रहा है। फिर भी रे मूर्ख! सेवकों के हाथों तू (आग) क्यों फुंकवा अर्थात् सुलगा रहा है? ८७ इसलिए (यदि) तू शीघ्रता से अपने मुख से (फूँककर) आग सुलगा ले, तो एक क्षण तक न लगते

ज्वाला येथें ऊठती । ८८ ऐसें बोलतां अंजनीसुतें । तें मानलें दशमुखातें । परी अंतरीं पावला भयातें । मग धैर्य धरूनि उठियेला । ८९ ते वेळे निजमुखें दाहक । बळें फुंकी लंकानायक । हनुमंतें बंधु आणि जनक । अनळ अनिळ स्मरियेला । ९० तों एकाएकीं अग्नि धडकला । दाही मुखीं झोंबती ज्वाळा । दाढ्या मिशा तेव्हां सकळा । भस्म केल्या जाळूनि । ९१ रावणें पाप केलें बहुत । पुढें रामबाणें यासी देहांत । यालागीं अगोदर प्रायश्चित्त । राघवप्रियें दिधलें कीं । ९२ दशमुखीं पोळला दशकंधर । दिसे जैसा दग्धकांतार । असो मुखासी लावूनियां वस्त्र । निजासनीं बैसला । ९३ तंव धडकला पुच्छवन्ही । हनुमंत गडबडा लोळे धरणीं । काकुळती ये म्हणे सोडा कोणी । असुर मनीं आनंदले । ९४ म्हणती हें बरवें जाहलें । अखयादिकांसी येणें मारिलें । मर्कटें बहुतांसी संहारिलें । विटंबिलें इंद्रजिता । ९५ मग विरंचीनें धरिला युक्तीं ।

यहाँ ज्वालाएँ (भभक) उठेंगी । ' ८८ अंजनी-सुत हनुमान द्वारा ऐसा कहने पर दशानन ने उसे स्वीकार किया । फिर भी वह मन में भय को प्राप्त हो गया । अनन्तर धीरज (धारण) करते हुए वह उठ गया । ८९ उस समय लंकानायक रावण ने अपने मुख से बलपूर्वक आग फूँक दी, तो हनुमान ने (अपने) बंधु अनल (आग) और पिता अनिल (वायु) का स्मरण किया । ९० त्यों ही यकायक आग धधक उठी (फिर) रावण के दसों मुखों में ज्वालाएँ जोर से छू गयीं और तब समस्त दाढ़ियों और मूँछों को जलाकर भस्म कर डाला । ९१ रावण ने बहुत पाप किया (था), आगे राम के वाण से उसका देहान्त होगा । इसलिए राम के प्रिय (दूत) ने (उसके) पहले (प्रायश्चित स्वरूप) दण्ड दिया । ९२ रावण दसों मुखों में झुलस गया; वह जले हुए वन-जैसा दिखायी दे रहा था । अस्तु । (तदनन्तर) मुखों में वस्त्र लगाकर वह अपने आसन पर बैठ गया । ९३ तब पूँछ में लगी आग भभक उठी, तो हनुमान धरती पर तेजी से लुढ़क-लुढ़ककर लोटता-पोटता रहा, वह गिड़गिड़ा उठा और बोला— ' कोई मुझे छुड़ा दे । ' (यह सुनकर) राक्षस मन में आनन्दित हो गये । ९४ उन्होंने कहा— ' यह तो अच्छा हो गया । इसने (रावण-पुत्र) अक्षय आदि को मार डाला; इस मर्कट ने बहुतों का संहार किया और इंद्रजित की दुर्गत कर डाली । ' ९५

दशमुखें योजिली बरवी गती। अग्न लाविला पुच्छाप्रती। मरेल निश्चितीं आतांचि। ९६ येरू चडफडी तडफडी। उडे पडे भूमीसी गडबडी। आपली मांडी थापटोनि दाढी। रावणाची गेला धरावया। ९७ तों दाढीच नाहीं निःशेष। तेणें रावणासी बसला दचक। देखोन करी हास्यमुख। म्हणे अनर्थ दिसतो पुढें। ९८ हनुमंत म्हणे असुरांप्रती। मज सोडवावें समस्तीं। ऐका माझी एक विनंती। धांवे मारुति पुढेंचि। ९९ तंव ते पळती दूरदूर। पुच्छ आकर्षूनि असुर। दाढ्या जाळियेल्या समग्र। प्रळय थोर मांडला। १०० गरगरां पुच्छ तये वेळां। भवंडितां झळकती प्रळयज्वाळा। राक्षस करूनियां गोळा। पुच्छाग्नींत भस्म करी। १०१ सभा सांडोनि पळती असुर। हनुमंत म्हणे उभे स्थिर। मज सोडवा तुम्ही समग्र। म्हणोनि भेटे तयांतें। १०२ शतांचीं शतें ते क्षणीं। यामिनीचर

अनन्तर ब्रह्मा ने युक्ति से उसे पकड़ लिया; रावण ने अच्छी चाल का आयोजन किया और पूँछ में आग लगा दी। (उन्हें विश्वास हो गया कि) यह अभी निश्चय ही मर जाएगा। ९६ वह तो छटपटाता (और) तड़फड़ाता था— उछलता था (फिर) गिर पड़ता था और भूमि पर लोटता-पोटता था। (तदनन्तर) ताल ठोंककर वह रावण की दाढ़ी पकड़ने के लिए चला गया। ९७ तब तो (रावण के) पूरी-पूरी दाढ़ी ही न (शेष) रही थी। उससे रावण चौंक उठा, (फिर भी उसे) देखकर हँस पड़ा और (मन-ही-मन) बोला-- आगे आपत्ति (आती हुई) दिखायी देती है। ९८ (तब) हनुमान ने असुरों से कहा-- 'सब मुझे छुड़ा दें। मेरी एक विनती सुनो।' (ऐसा कहते हुए) हनुमान आगे दौड़ता रहा। ९९ तब वे दूर-दूर भागने लगे, तो हनुमान ने असुरों को पूँछ से खींचकर उनकी समग्र दाढ़ियों को जला डाला। (इस प्रकार) उसने बड़ा प्रलय मचा लिया। १०० उस समय (हनुमान द्वारा) पूँछ को चक्राकार घुमाते-घुमाते, प्रलय (मचानेवाली) ज्वालाएँ झलकने लगीं। (तब) उसने राक्षसों को इकट्ठा करके पूँछ की आग में उन्हें भस्म कर डाला। १०१ (तब राज-) सभा को छोड़कर असुर भागने लगे, तो हनुमान ने कहा— 'स्थिर खड़े रहो। तुम सब मुझे छुड़ाओ।' (ऐसा) कहते हुए वह उनसे मिल गया (उनसे लिपट गया)। १०२ सौ-सौ राक्षसों को अपनी पूँछ से बाँधकर वह

पुच्छें बांधोनी। रावणापाशीं आणी ओढोनी। म्हणे कां हे पळताती। ३ असो सीतेसी राक्षसी सांगत। तुझा वानर मेला गे यथार्थ। ऐकतां जानकी शोक करीत। म्हणे विपरीत केवीं घडे। ४ मशकें सागर केवीं शोषिला। जंबुकांनीं सिंह केवीं धरिला। खद्योतांनीं सूर्य पाडिला। खालीं कैसा आसडोनी। ५ वज्र भंगलें लागतां कमळ। पतंगें ग्रासिला वडवानळ। भोगींद्राचें फणिमंडळ। वटबीज-भारें दडपलें। ६ मक्षिकेच्या पक्षवातेंकरूनी। प्रळयमेघ गेला विदारूनी। पिपीलिकाभारें कोसळोनी। कनकाद्रि कैसा पडियेला। ७ पुष्पप्रहार पडतां सृष्टीं। केवीं दणाणे कूर्मपृष्ठी। चित्रींच्या लेपें उठाउठी। प्रळयचपळा ग्रासिली। ८ असो रुद्रावतार हनुमंत। तो राक्षसीं जाळिला अग्नींत। कैसी घडली ही मात। विचारीत राघवप्रिया। ९ जठराग्नीस सीता पुसत। तो म्हणे क्षेम आहे हनुमंत।

उस क्षण रावण के पास खींच लाया और पूछा— ‘ये क्यों भाग रहे हैं?’ ३ अस्तु। राक्षसियों ने सीता से कहा— ‘अरी, तेरा वानर सचमुच मर गया।’ (यह) सुनते ही सीता शोक करने लगी। वह बोली— ‘ऐसी विपरीत बात कैसे (घटित) हो सकती है?’ ४ मच्छड़ों ने सागर को कैसे सोख डाला? सियारों ने सिंह को कैसे पकड़ लिया? जुगनुओं ने सूर्य को झँझोड़कर खींचते हुए नीचे कैसे गिरा डाला? ५ (राक्षसों द्वारा हनुमान को मारा जाना वैसी ही घटना है, जैसे) कमल के लगते (छूते) ही वज्र भग्न हो गया हो, पतिंगे ने वड़वानल को ग्रस्त कर दिया हो, भोगीन्द्र (शेष नाग) का फणि-मण्डल (फनों का समूह) बरगद के बीज के बोझ से दब गया हो। १०६ मक्खी के पर के आघात से उत्पन्न हवा के झोंके से प्रलयंकर मेघ विदीर्ण हो गया हो। चींटियों के बोझ से स्वर्ण (मेरु) पर्वत टूटकर कैसे पड़ गया। ७ पृथ्वी पर फूलों का आघात होने पर (उसके आधार-भूत) कछुए की पीठ कैसे दनदना उठेगी? (यह तो ऐसे हुआ, मानो) चित्र में अंकित लेपन से तत्काल प्रलय (उत्पन्न करनेवाली) विद्युत् ग्रस्त हो गयी हो। ८ अस्तु। राघव-प्रिया (सीता) सोचने लगी- (जो) हनुमान रुद्र (शिव) का अवतार है, उसे राक्षसों ने आग में जला डाला, यह बात कैसे (घटित) हो सकती है? ९ (तदनन्तर) सीता ने जठराग्नि से पूछा, तो उसने कहा — ‘हनुमान सकुशल है;

नगर मी जाळीन समस्त। बंधुसाह्याकारणें। ११० असो इकडे समस्त असुर। हनुमंतावरी करिती शस्त्रमार। तों पुच्छाग्नी धडकला थोर। पळती असुर चहूंकडे। १११ नानाशस्त्रें बाण शक्ती। दुरोनि कपींद्रावरी टाकिती। मग मिष घेऊन मारुती। गतप्राण पडियेला। १२ मूर्च्छित पडतांची वानर। जवळी धांविन्नले असुर। जो तो म्हणे म्यां घाय थोर। वर्मी पाहून दिधला। १३ म्हणोनि मेला हा वानर। जो तो म्हणे हा प्रचंड वीर। सांगती रावणासी बडिवार। सुखें निद्रा करीं आतां। १४ मेलियासारखें मिष घेउनी। दोन घटिका पडिला मेदिनीं। राक्षस बहुत मिळोनी। सभोंवते विलोकिती। १५ फेंस वाहतसे वदनीं। वैद्य नाडी पाहती विलोकुनी। म्हणती केवढा पुरुषार्थ करूनी। वानर शेवटीं मेला हो। १६ ऐसें समस्त जों पाहत। तों हनुमंत उडाला अकस्मात।

(अपने) भाई की सहायता (करने) के लिए मैं समग्र नगर को जला डालूँगा।' ११०

अस्तु। इधर समस्त असुर हनुमान पर शस्त्रों की मार कर रहे थे; तब पुच्छ की आग बहुत भड़क उठी। इससे (वे) राक्षस चारों ओर भागने लगे। १११ (फिर भी) वे नाना शस्त्र, बाण (और) शक्तियाँ उस कपीन्द्र पर दूर से फेंकते थे। तब हनुमान स्वाँग (बहाना) करके गत-प्राण (हुआ-सा) पड़ गया। १२ (इस प्रकार) वानर के अचेत पड़ जाते ही असुर उसके पास दौड़कर आये। (उनमें से) प्रत्येक कहने लगा— 'मैंने (मौका देखकर) इसके मर्म-स्थान पर बड़ा आघात किया। १३ इसलिए यह वानर मर गया।' हर कोई कहता था— 'यह वानर तो प्रचण्ड वीर था।' तथा रावण को अपना बड़प्पन बताता और कहता— 'अब सुख के साथ सो जाइए।' १४ हनुमान मृतक होने का बहाना करके धरती पर दो घड़ियों तक पड़ा रहा। तो बहुत राक्षस चारों ओर इकट्ठा होकर उसे देखते रहे। ११५ उसके मुँह से झाग बह रहा था। (उन राक्षसों में से कोई-कोई) वैद्य ध्यान से (उसकी) नाड़ी देखते थे। वे बोले— 'अहो! कितना प्रताप (—पूर्ण काम) करके अन्त में यह वानर मर गया।' १६ इस प्रकार जब सब देख रहे थे, तो हनुमान यकायक उड़ गया। उसने सबको पूँछ से बाँध लिया। (तब) वे धकधक

पुच्छें बांधिलें समस्त। राक्षस जळत धडधडां। १७ कित्येक पळाले असुर। एकला उरला दशकंधर। त्यासी म्हणे रक्षणार। तुज कोण असे आतां। ११८ शक्रारीस म्हणे रावण। यावरी लोहपाश घालून। ग्रीवा हस्त बांधोन। लंकेमाजी फिरविजे। ११९ मग इंद्रजितें पाश घालून। बांधिला तेव्हां वायुनंदन। नगरामाजी नेऊन। हिंडविती हनुमंता। १२० जैसें पुटीं पडतां सुवर्ण। तेजस्वी दिसे देदीप्यमान। त्यापरी सीताशोकहरण। अग्निसंगें शुद्ध दिसे। १२१ आळोआळीं फिरवीत। हनुमंत सहज पाळती घेत। निंदकांचीं तोंडें लासीत। लोक पळती बिदोबिदीं। २२ जाहला एकचि हाहाकार। भलती स्त्री म्हणे तूं माझा भ्रतार। मज येथून काढीं बाहेर। लावील वानर अग्नि आतां। २३ हनुमंत म्हणे समस्त असुरां। मज तुम्ही आतां दृढ धरा। सर्षपप्राय होऊनि सत्वरा। निघोनि गेला क्षण-मात्रें। २४ हनुमंत गदगदां हांसत। राक्षसांसी वांकुल्या

जलने लगे। १७ (उस समय) कितने ही राक्षस (वहाँ से) भाग गये, तो (वहाँ) अकेला रावण शेष रह गया। हनुमान् ने उससे कहा—'अब तेरी रक्षा कौन करेगा?' १८ (तदनन्तर) रावण ने इंद्रजित से कहा—'इसपर लोह-पाश डालकर और इसके कण्ठ तथा हाथ बाँधकर इसे लंका में घुमा दो।' १९ तब अनन्तर इंद्रजित ने पाश डालकर हनुमान को बाँध डाला। (फिर) वे (सब) उसे नगर में ले जाकर घुमाने लगे। १२० जिस प्रकार सोने के घड़िया में पड़ जाने पर वह देदीप्यमान तथा तेजस्वी दिखायी देता है, उसी प्रकार सीता-शोक-हरण हनुमान अग्नि के साथ शुद्ध (सोने की भाँति तेजस्वी) दिखायी दे रहा था। १२१ राक्षस उसे मोहल्ले-मोहल्ले में घुमा रहे थे, तो हनुमान सहज ही ताक में रहता था। निन्दकों के मुँह झुलसा डालता था। (यह देखकर) लोग गली-गली में भाग रहे थे। २२ (इससे) अद्भुत हाहाकार मच गया। कोई परायी स्त्री किसी से कहती—'तुम मेरे पति हो, मुझे यहाँ से बाहर निकाल लो; यह वानर अब आग लगाएगा।' २३ (तत्पश्चात्) हनुमान ने सब असुरों से कहा—'तुम अब मुझे डटकर पकड़ लो।' (ज्यों ही वे वैसा करने लगे) तो वह राई-सा (बहुत छोटा) होकर क्षण मात्र में (वहाँ से) तेजी से निकल गया। १२४ (तदनन्तर) हनुमान ठहाका मारकर हँसता रहा। वह

दावीत। लंकेसी अग्नि लावीत। सुटला अद्भुत प्रभंजन। २५ माड्या गोपुरें धवळारें। राणिवसाचीं सुंदर मंदिरें। सकळ नगर महाद्वारें। एकसरें धडकलीं। २६ कपीनें मांडिलें लंकादहन। त्यासी साह्य जाहला पवन। नग्न होऊनि नगर-जन। सदनें सोडून पळाले। २७ थोर विषयी संसारीं धन। त्याहूनि आगळें अपत्य पूर्ण। त्याहून दारा विशेष जाण। त्याहून आस्था प्राणांची। १२८ त्याहून विशेष निजप्राणत्याग। इंद्रियांवरी उदास मग। देहममता धरी निःसंग। विषयभोग सांडिलिया। १२९ ज्यासी न झगटे मोह ममता। मग इतर जनांची काय कथा। न करी कोणी कोणाची आस्था। पळती जीव घेऊनियां। १३० पुरुषावीण मोहें अत्यंत नारी। उडी घालिती जळते घरीं। बळें ओढून काढितां बाहेरी। जीवित्वावरी उदास त्या। ११३

राक्षसों को मुँह बनाकर दिखाता रहा। (फिर) वह अद्भुत पवन (–कुमार) लंका में आग लगाता चला। २५ अटारियाँ, गोपुर, प्रासाद, अन्तःपुर के सुन्दर मन्दिर, समस्त नगर (नगर के) महाद्वार (फाटक) एकदम धधक उठे। २६ (इस) कपि ने लंका का दहन आरम्भ किया, तो पवन उसका सहायक हो गया। (उस समय) नगर-जन नंगे होकर घर छोड़कर भागने लगे। १२७ इस जगत में बड़ा महत्वपूर्ण विषय (पदार्थ) है धन। उससे पूर्णतः अनोखी (वस्तु) है सन्तान। उससे (भी) विशिष्ट (वस्तु) स्त्री को समझिए। उससे (भी) अधिक अपनापा होता है प्राणों के प्रति। २८ (इसलिए व्यक्ति के जीवन में) उससे (भी) विशेष (महत्वपूर्ण) होता है अपने प्राणों का त्याग (जिससे जन साधारण बचना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में) तब वह इंद्रियों के प्रति उदासीन हो जाता है और विषय-भोगों का त्याग करके निःसंग होकर देह के प्रति ममता धारण करता है (अर्थात् अपनी देह की रक्षा को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समझने लगता है)। २९ (इस स्थिति में) उसे अपने धन, आत्मीय जन आदि का मोह एवं ममत्व छूता (तक) नहीं। फिर इधर (साधारण) जनों की क्या बात ? (उस समय) लंका में कोई किसी की चिन्ता नहीं कर रहा था। वे (सब) प्राण लेकर भाग रहे थे। १३० (इधर) बिना पुरुष के (रहने पर) अत्यधिक मोह से स्त्रियाँ जलते घरों में कूद रही थीं। उन्हें (बचाने का यत्न करने के हेतु) बलपूर्वक खींचकर बाहर निकालने

असंभाव्य दाटल्या ज्वाळा। ग्रासूं इच्छिती नभमंडळा। कीं कल्पांतरुद्र क्षोभला। रावणावरी ते काळीं। १३२ धूम्र दशदिशांतें दाटी। कोणी कोणास न दिसे दृष्टी। वंशनळे नभाच्या पोटीं। असंख्यात उडती पैं। ३३ आतां असो बहुत बोली। तृतीयभाग लंका जाळिली। परी ते सुवर्णमय जाहली। श्रीरामभक्तप्रतापें। ३४ लोहघणें परीस फोडिला। परी तो अवघाचि सुवर्ण जाहला। तेवीं लंकानगर ते वेळां। हेममय ओतिलें। ३५ हनुमंतें लंकादहन केलियावरी। निजमानसीं विचार करी। श्रीरामदर्शनासी झडकरी। जावें आतां त्वरेनें। ३६ मग उडाला वायुकुमर। समुद्र-तीरा आला सत्वर। पुच्छ विझवितां नदीश्वर। काकुळती बहु आला। ३७ जलचरें उकडोनि मरती। तूं कडेस बैसें गा

पर (भी) वे जीवन के प्रति उदासीन होती थीं। १३१ असीम ज्वालाएँ भर गयीं (जो) आकाश-मण्डल को (मानो) निगल डालना चाहती थीं, अथवा (जान पड़ता था कि) उस समय कल्पान्त (प्रलय) कर देनेवाला रुद्र (अपने अवतार हनुमान के रूप में) रावण पर क्षुब्ध हो उठा था। ३२ दसों दिशाओं में धुआँ भर गया। कोई किसी को आँख से नहीं दिखायी देता था। अनगिनत बाँस की नलिकाएँ (जो घरों के छप्पर आदि में लगी हुई थीं) आकाश के (मानो) पेट में उड़ रही थीं। ३३

अस्तु। बोलना बहुत हो गया। (हनुमान ने) लंका का एक तिहाई भाग जला डाला। फिर भी श्रीराम के भक्त (हनुमान) के प्रताप से वह स्वर्णमय हो गयी। ३४ जिस प्रकार किसी ने लोहे के घन से पारस को तोड़ डाला हो, फिर भी वह (लोह-घन पारस के प्रभाव से) पूरा-पूरा सुवर्ण (का) बन गया हो, उसी प्रकार (राम-भक्त हनुमान द्वारा जलाये जाने पर भी) लंका नगर उस समय स्वर्णमय रूप में ढल गया (बन गया)। ३५ लंका-दहन करने के पश्चात् हनुमान ने मन में विचार किया— अब झट से राम के दर्शन के लिए शीघ्रतापूर्वक चल दें। ३६ अनन्तर (वह) वायु-कुमार उड़ गया और शीघ्रतापूर्वक समुद्र-तट पर आ गया। पूँछ बुझाने लगते ही सरिता-पति (समुद्र) बहुत व्याकुलता को प्राप्त हो गया। ३७ (और उसने हनुमान से निवेदन किया—) 'हे हनु-मान, (इससे) जलचर उबलकर मर जाएंगे, इसलिए तुम तट पर बैठ जाओ।' इसके पश्चात् (सीता-पति श्रीराम का वह दास) हनुमान

मारुती। याउपरी अवनिजापती-। दास तीरीं बैसला। ३८ सरितापतीनें निजबळें। निजलाटेनें पुच्छ विझविलें। कीं याजकें अग्नीस आच्छादिलें। कुंडमंडपामाझारी। १३९ कपाळींचा स्वेद पुसोनि टाकिला। तो पुढें मकरध्वज जन्मला। असो कपि मागें पाहूं लागला। तों लंका भडभडां जळतसे। १४० असंभाव्य चेतला अग्न। जनकजा जाईल भस्म होऊन। कार्य नासेल म्हणून। वायुनंदन शोक करी। १४१ मग म्हणे करितां रामस्मरण। मज न बाधी प्रळयाग्न। माझे जगन्मातेसी विघ्न। केवीं कृशान करूं शके। १४२ स्मरतां रघुवीरनाम निर्मळ। शिवकंठींचें हाळाहळ। शीतळ जाहलें तत्काळ। नामामृतेंकरूनियां। ४३ तों वायुदेव सांगे ते वेळां। सुखी आहे जनकबाळा। ते त्रिभुवनपतीची

तट पर बैठ गया। ३८ (तदनन्तर) समुद्र ने अपने बल से अपनी लहर से उसकी पूँछ को बुझा दिया, अथवा (यों समझिए कि मानो) याजक (यज्ञकर्ता) ने अग्नि को यज्ञ-कुण्ड के मण्डप में आच्छादित कर दिया हो। ३९ हनुमान ने मस्तक पर उत्पन्न पसीना पोंछ डाला। उससे आगे (चलकर) मकरध्वज का जन्म हो गया। * अस्तु। वह वानर पीछे मुड़कर देखने लगा, तो उसे दिखायी दिया कि लंका धकधक जल रही है। १४० अग्नि असीम (रूप में) धधक उठी थी। उसने (मन-ही-मन) कहा— सीता (भी) इसमें जलकर भस्म हो जाएगी, तो— (स्वीकृत) कार्य का नाश होगा; इसलिए हनुमान शोक करने लगा। १४१ फिर उसने कहा (सोचा)— राम का स्मरण करने पर मुझे प्रलयाग्नि बाधा नहीं पहुँचा सकी। —फिर मेरी जगन्माता (सीता) को अग्नि विघ्न कैसे उत्पन्न कर सकेगी ? ४२ राम के निर्मल नाम का स्मरण करते ही शिवजी के कण्ठ में (पहुँचा हुआ) हलाहल नाम रूपी अमृत के कारण (प्रभाव से) तत्काल शीतल हो गया। ४३ त्यों ही वायुदेव ने उस समय कहा— 'जनक-कन्या सुखी है। त्रिभुवन

---

* टिप्पणी : एक कथा के अनुसार, हनुमान के पसीने की बूँदें समुद्र में रहनेवाली एक मगरी पर गिर गयीं जिन्हें उसने निगल डाला। उससे वह गर्भवती हो गयी और उसने यथाकाल एक पुत्र को जन्म दिया, जो 'मकरध्वज' नाम से विख्यात हो गया। जब अही-महीरावण श्रीराम-लक्ष्मण को पाताल-लंका में ले गये, तो उन्हें छुड़ाने के लिए गये हुए हनुमान से मकरध्वज की मुठभेड़ हो गयी। बाद में इसने और इसकी माता मगरी ने हनुमान की सहायता की। (यह कथा विस्तार-पूर्वक इसी रामायण के ३७ वें अध्याय में दी है।)

चित्कळा । ब्रह्मांडमाळा घडी मोडी । ४४ यावरी लोकप्राणेशनंदन । म्हणे क्षुधित जाहले नयन । मित्रकुळभूषणाचे चरण । पाहावयालागीं उदित । ४५ तो मंगळजननीजाजीवन । मज पुसेल वर्तमान । तरी कीर्ति स्वमुखेंकरून । वर्णितां दूषण लागेल । ४६ यश धर्म विद्या पुरुषार्थ । बळ पराक्रम आणि तीर्थ । हें स्वमुखें जो वर्णीत । तया हानि सत्य शास्त्र म्हणे । ४७ मग गुप्तरूपें वायुनंदन । घेत परमेष्ठीचें दर्शन । म्हणे मी अयोध्यापतीचे चरण । पाहावया जातसें । १४८ तरी येथें वर्तला जो वृत्तान्त । तो पत्रीं लिहावा साद्यन्त । ऐकतां विष्णुनाभसुत । ब्रह्मानंदें उचंबळला । ४९ म्हणे धन्य हनुमंता तुझें ज्ञान । मजही तुवां केलें पावन । मग तत्काळ पत्र लिहून । हनुमंतापाशीं दीधलें । १५० ब्रह्मयाची आज्ञा घेउनी । प्रवेशला अशोकवनीं । साष्टांगेंसीं जनकनंदिनी । सद्गद होऊनि नमियेलीं । १५१ मग बोले जनकबाळा । आतां कधीं

के स्वामी की वह चित्कला, ब्रह्माण्डों की मालाओं का निर्माण तथा विघटन करती है । ' ४४ इसपर वायु-नन्दन हनुमान ने कहा (सोचा)— मेरे नेत्र भूखे हो गये हैं, रवि-कुल-भूषण श्रीराम के चरणों के दर्शन के लिए तत्पर हो गये हैं । ४५ (मंगल की भगिनी पृथ्वी की कन्या) सीता के जीवन-स्वरूप वे श्रीराम मुझसे समाचार पूँछेंगे; फिर भी अपने मुख से अपनी कीर्ति का वर्णन करने में (मुझे) दोष ही लगेगा । ४६ (नीति धर्म-) शास्त्र का कथन है— (अपने) सफलता, धर्म (-पालन), विद्या, पुरुषार्थ, बल, पराक्रम और तीर्थ (क्षेत्र आदि की यात्रा) का वर्णन जो अपने मुख से करता है, उसके (पुण्य कर्म में) सचमुच हानि हो जाती है । ४७ अनन्तर वायु-नन्दन ने गुप्त रूप से ब्रह्मा के दर्शन किये और कहा— ' मैं अयोध्या-पति के चरणों के दर्शन करने जा रहा हूँ । ४८ इसलिए यहाँ जो घटित हुआ है उसका अथ से इति तक अर्थात् पूरा-पूरा समाचार पत्र में लिखिए । ' यह सुनते ही ब्रह्मा ब्रह्मानन्द से उमड़ उठा (गद्गद हो उठा) । ४९ उसने कहा— ' हे हनुमान ! धन्य है तुम्हारा ज्ञान । तुमने मुझे भी पावन कर दिया । ' फिर उसने तत्काल पत्र लिखकर हनुमान को (तब) दिया । १५० ब्रह्मा से आज्ञा लेकर हनुमान अशोक वन में प्रविष्ट हो गया और अत्यधिक गद्गद होते हुए उसने जनक-नंदिनी सीता को साष्टांग नमस्कार

येशील वेल्हाळा। विमळांबु-धारा ते वेळां। नेत्रीं आल्या जानकीच्या। १५२ जो दशरथाचा महापुण्यमेरू। जो ब्रह्मांडनायक जगद्गुरू। जो भक्तमंदिरांगण-मांदारू। तयाचे दर्शना जातों मी। ५३ हनुमंत म्हणे जगन्माते। राघव-वल्लभे गुणसरिते। कमळप्रिये कमलोद्भूते। चिंता न करीं सर्वथा। ५४ माते उदयीक जाण दोनप्रहरां। राघव आणितों समुद्रतीरा। तो राक्षसांसहित दैत्येंद्रा। वधून तुज सोडवील। ५५ मज कांहीं खूण द्यावी यथार्थ। जेणें मज धन्य म्हणेल रघुनाथ। मग वेणीचा मणि देदीप्यवंत। मारुतीचे हातीं ओपिला। ५६ मागुती अंजनीहृदयरत्न। म्हणे कांहीं सांग अंतरखूण। तो ताटिकान्तक मखपाळण। जेणेंकरूनि संतोषे। ५७ जानकी म्हणे चित्रकूटपर्वतीं। आम्हीं काळ क्रमिला जैं मारुती। सुमित्रात्मज वनाप्रती। गेला होता एकदां। ५८ एकांतींचे अवसरीं। रघुपतीच्या

~~~~~~

किया। १५१ अनन्तर सीता ने कहा (पूछा)— 'हे प्रिय! अब कब आओगे?' उस समय सीता की आँखों में पवित्र (अश्रु-) जल-धाराएँ उत्पन्न हो गयीं। ५२ फिर हनुमान ने कहा— 'जो (श्रीराम) दशरथ के महान पुण्य के साक्षात् मेरु (-पर्वत ही) हैं, जो ब्रह्माण्ड के नायक तथा जगद्गुरु हैं, जो भक्ति-मंदिर के आँगन में (उत्पन्न) मन्दार (एक देववृक्ष) हैं, उनके दर्शन के लिए मैं जा रहा हूँ।' ५३ हनुमान ने कहा— 'हे जगन्माता, हे राघव-वल्लभा, हे गुण-सरिता, हे कमल-प्रिया, हे कमलोद्भूता (लक्ष्मी)! आप किंचित भी चिन्ता न कीजिए। ५४ हे माता! समझिए, कल दुपहर मैं श्रीराम को समुद्र-तट पर लाता हूँ (लाऊँगा)। वे राक्षसों-सहित दैत्यों के राजा रावण का वध करके आपको मुक्त करेंगे। ५५ मुझे कोई यथार्थ (सुयोग्य रीति से परि-चयात्मक) चिह्न दीजिए, जिससे (मेरे कार्य का यथार्थ परिचय प्राप्त करके) रघुनाथ मुझे 'धन्य' कहेंगे।' तब सीता ने अपनी बेनी में स्थित अत्यधिक तेजस्वी मणि हनुमान के हाथ में दी। ५६ अनन्तर अंजनी-हृदय-रत्न हनुमान ने कहा— 'मुझे कुछ गुह्य-संकेत बताइए, जिससे ताड़का के वध-कर्ता तथा (विश्वामित्र ऋषि के) यज्ञ-रक्षक (वे श्रीराम) संतुष्ट हो जाएँ।' ५७ (इस पर) जानकी ने कहा— 'हे हनुमान! जब हमने चित्रकूट पर्वत पर समय व्यतीत किया, तो एक बार लक्ष्मणजी वन की ओर गये थे। ५८ हे हनुमान! उस एकान्त अवसर पर मैं
~~~~~~

अंकावरी। शिर ठेवूनि निर्धारीं। हनुमंता मी निजल्यें पैं। १५९ प्रीतीकरून तमालनील। परम सुवास जो मनसीळ। तो उगाळून स्वकरें तत्काळ। टिळक रेखिला भाळीं माझे। १६० हे गोष्टी जाणे रघुनंदन। मारुति सांगें हे अंतरखूण। ऐसें ऐकतां वायुनंदन। परम हर्ष पावला। १६१ जानकी म्हणे समुद्रजळ। शतयोजनें भरलें तुंबळ। असंख्यात वानरदळ। कैसें येईल ऐलतीरा। १६२ येरू म्हणे राघव शरीं। सेतु बांधील समुद्रनीरावरी। अथवा माझिया पुच्छेंकरीं। सेतु बांधील अभंग। ६३ नातरी राघवबाण वडवानळ। शोषून टाकील समुद्रजळ। अथवा उड्डाण करून सकळ। सुवेळेसी पैं येऊं। ६४ जेणें स्तंभाविणें धरिलें नभ। जीवनावरी पृथ्वी ठेवी स्वयंभ। तो जानकी तुझा वल्लभ। काय एक करूं न शके। ६५ जननीचे जठरकुहरीं। प्राणी वसे नवमासवरी। तेथें रक्षी नाना परी। तो काय एक करूं न शके। ६६ बाहेर उपजतांच अवधारा। मातेचे

निश्चय ही रघुपति की गोद में सिर रखे हुए सो गयी, अर्थात् लेट गयी। ५९ (उस समय) तमाल-नील (रघुपति) ने मैनसिल (एक खनिज पदार्थ), जो परम सुगन्ध-युक्त है, अपने हाथ से घिसकर, मेरे मस्तक पर प्रेम-पूर्वक तत्काल तिलक अंकित किया। १६० रघुनन्दन (ही) इस बात को जानते हैं। हे हनुमान, तुम यह अन्तर-संकेत बताना।' ऐसा सुनते ही वायु-नन्दन परम हर्ष को प्राप्त हो गया। ६१ (फिर) सीता ने कहा— 'समुद्र का पानी सौ योजन इकट्ठा भरा हुआ है। (उसे पार कर) असंख्य वानरों का दल इस तीर (तक) कैसे आएगा?' ६२ इसपर वह बोला— 'राघव बाणों से समुद्र का सेतु बना लेंगे अथवा मेरी पूँछ से वे अभंग (अटूट) पुल बना लेंगे।' ६३ नहीं तो श्रीराम के बाण से उत्पन्न वड़वाग्नि समुद्र-जल को सोख डालेगी, अथवा हम सब उड़ान भरकर सुवेल आ जाएँगे। ६४ हे जानकी, वे श्रीराम आपके पति हैं, जिन्होंने बिना खम्भे के आकाश को (ऊपर के ऊपर) धरा रखा है, जिस स्वयम्भू (अपने आप उत्पन्न) ने पानी पर पृथ्वी टिका दी है। वे क्या नहीं कर सकते? ६५ माता के जठर (उदर) रूपी गुफा में जीव नौ मासों तक रहता है। जो (भगवान राम) वहाँ भी नाना प्रकार से उसकी रक्षा करते हैं, वे कौन-सी कोई बात नहीं कर

स्तनीं दुग्धधारा। लावितो परात्पर सोयरा। तो काय एक करूं न शके। ६७ क्षणें एवढें ब्रह्मांड दावी। सवेंच मागुतें लपवी। तो राम त्रिभुवनगोसावी। काय एक करूं न शके। १६८ जैसा गगनीं एकचि मित्र। परी प्रकाश करी सर्वत्र। तैसा जगद्व्यापक रघुवीर। काय एक करूं न शके। १६९ वपु नवच्छिद्रमय भग्न। परी मर्यादेवेगळा न जाय प्राण। तैसा अयोध्यानाथ जगन्मोहन। काय एक करूं न शके। १७० गोष्टी असोत बहुत आतां। वेद शिणले कीर्ति गातां। उदयीक दोनप्रहरां रघुनाथा। समुद्रतीरा आणितों। १७१ तुज मी आतांच नेतों माते। परी शुद्धी सांगितली रघुनाथें। पुढील भविष्याचीं मतें। ठाऊक नसती जननीये। १७२ असो सीतेची आज्ञा घेऊन। साष्टांगें नमी वायुनंदन। यशस्वी

सकते ? ६६ ध्यान से सुनिए, प्राणी के (मातृ-कुक्षि के) बाहर जन्म लेते ही, जो उसका परात्पर (सर्वोपरि) भगवान स्नेही माता के स्तनों में दूध की धाराओं का निर्माण करता है, वह क्या नहीं कर सकता ? ६७ जो क्षण में इतना (प्रचण्ड) ब्रह्माण्ड (निर्मित कर) दिखा देता है और साथ ही पीछे से छिपा अर्थात् नष्ट कर डालता है, वह त्रिभुवन का स्वामी राम क्या नहीं कर सकेगा ? ६८ जिस प्रकार आकाश में एक ही सूर्य होता है, फिर भी वह सर्वत्र प्रकाश उत्पन्न करता है, उसी प्रकार जगत् को व्याप्त किये रहनेवाला रघुवीर क्या नहीं कर सकता ? १६९ (यह) शरीर (दो कान, दो नेत्र, दो नासा-पुट—नाक के छेद, एक मुख, एक शिस्न तथा एक गुदा—कुल) नौ छिद्रों से युक्त तथा भंगुर होता है, फिर भी मर्यादा से भिन्न अर्थात् निर्धारित मार्ग से भिन्न अन्य मार्ग से प्राण नहीं निकल जाते। (यह सब भगवान राम द्वारा ही किया जाता है।) उसी प्रकार अयोध्यानाथ जगन्मोहन श्रीराम क्या नहीं कर सकते ? १७० अब ये वहुत बातें रहने दीजिए। उन राम की कीर्ति गाते (-गाते) वेद तक थक गये (तो मेरी क्या बात ?)। कल दुपहर को मैं रघुनाथ को समुद्र-तट पर लाता हूँ (लाऊँगा)। ७१ हे माता, मैं आपको अभी ले जाता, परन्तु श्रीराम ने (केवल आपकी) खोज (करने की बात) कही है। हे जननी, आगे के भविष्य सम्बन्धी विचार (मुझे) विदित नहीं हैं।' ७२

अस्तु। सीता से आज्ञा लेकर वायुनन्दन हनुमान ने उसे साष्टांग

रघुनाथ म्हणोन। गगनपंथें उडाला। ७३ सकळ देव म्हणती हनुमंता। त्वरितगतीं आणावें रघुनाथा। तूं आमुचा प्राणदाता। सोडवीं येथून आम्हांसी। ७४ हनुमंत म्हणे देवांसी। नका चिंता करूं मानसीं। उदयीक राम समुद्रतीरासी। निर्धारेंसीं आणितों। ७५ यावरी लंका-गिरिशिखरीं। उभा राहिला वानरकेसरी। भुभुःकार केला ऐलतीरीं। सकळ वानरीं ऐकिला। ७६ लंकागिरीहूनि उडाला। योजन द्वय पाठार दडपिला। उड्डाणासरसा समुद्र भ्याला। मारुति आला ऐलतीरा। ७७ निशांतीं उगवे चंडकिरण। कीं वैकुंठींहून उतरे सुपर्ण। कीं मानसतीर लक्षून। राजहंस उतरला। ७८ महेंद्रपर्वतावरी हनुमंत। उभा ठाकला अकस्मात। जांबुवंतादि वानर समस्त। भेटावया धांविन्नले। १७९ थोर थोर वानर भेटती। एक जघनासी आलिंगिती। एक जानु जंघा कवळिती। एक लागती पायांतें। १८० एक पुच्छासी

नमस्कार किया (और 'रघुनाथ सफल हों' अर्थात्) 'रघुनाथ की जय' कहते हुए आकाश-मार्ग में उड़ान भर दी। ७३ समस्त देवों ने हनुमान से कहा— 'रघुनाथ को शीघ्र गति से ले आओ। तुम हमारे प्राण-दाता हो— यहाँ से हमें छुड़ा दो।' ७४ (इसपर) हनुमान ने देवों से कहा— 'मन में कोई चिन्ता न कीजिए। श्रीराम को कल समुद्र-तट पर निश्चय ही लाऊँगा।' ७५ इसके पश्चात् वह वानर-सिंह (वानरों में श्रेष्ठ) हनुमान लंका के पर्वत पर खड़ा रह गया। (फिर) उसने इस पार भुभुःकार किया, तो (उस पार स्थित) समस्त वानरों ने उसे सुन लिया। ७६ लंका-गिरि पर से हनुमान ने उड़ान भर दी, तो उसने (पैरों तले) दो योजन पठार दबा दिया। उसकी उड़ान के साथ ही समुद्र डर गया। (इतने में) हनुमान इस तट तक आ गया। ७७ जिस प्रकार रात के अन्त में सूर्य उग जाता है, अथवा वैकुण्ठ से (सहसा) सुपर्ण गरुड़ उतर गया हो, अथवा मानसरोवर के तीर को लक्ष्य करके (कोई) राजहंस उतर आया हो, उसी प्रकार हनुमान महेन्द्र पर्वत पर (आते हुए) अचानक खड़ा रह गया। (तब) जाम्बवान आदि समस्त वानर (उससे) मिलने के लिए दौड़ पड़े। ७८-७९ (फिर) बड़े-बड़े वानर मिल गये। कोई एक (उसके) जघन का आलिंगन करते थे, कोई एक घुटने और जाँघ से लिपटते, तो कोई-एक पाँव लग जाते

देती आलिंगन। एक पुच्छाग्रीं देती चुंबन। एक मान घुलकावून। वांकुल्या दाविती ऊर्ध्वपंथें। १८१ एक टाळिया वाजवून कोडें। नृत्य करिती मारुतीपुढें। एक चक्राकार उडे। वर्णिती पवाडे श्रीरामाचे। १८२ एक करिती थोर भुभु:कार। एक साष्टांग घालिती नमस्कार। एक म्हणती श्रीरामचंद्र। तेथें सत्वर जाऊं चला। ८३ पुष्पें आणूनी ते अवसरीं। हनुमंत पूजिला वानरीं। जैसा सकळ सुरवरीं। अपर्णावर पूजियेला। ८४ मारुतीचे अंगावरील मळ। देखोन कपी पुसती सकळ। लंकेंत प्रताप केला समूळ। सांग आम्हां हनुमंता। ८५ परी कदा न सांगे मारुती। ब्रह्मलिखित देत हातीं। परी ते वानर न उकलिती। विरंचिमुद्रांकित जें। ८६ मग म्हणती वानर। कळेल किष्किंधेसी समाचार। येथें उकलूनि पाहतां पत्र। तरी चतुर हांसती। ८७ असो मारुतीसह वानरगण। किष्किंधेसी आले न लागतां क्षण। सुग्रीवाचें मधुवन। मोडिलें

थे। १८० कोई एक पुच्छ का आलिंगन करते थे, कोई एक पुच्छ के अग्र का चुम्बन कर लेते थे, तो कोई एक लाड़-प्यार से गरदन हिलाकर ऊपर की ओर (देखते हुए) मुँह बिचकाते थे। ८१ कोई एक मौज में तालियाँ बजाते हुए हनुमान के सामने नृत्य करते थे। कोई एक चक्राकार उड़ान भर देते थे, (तो कोई एक) श्रीराम की महिमा का बखान करते थे। ८२ कोई एक बड़ा भुभु:कार करते थे, तो कोई एक साष्टांग नमस्कार करते थे। कोई एक कहते थे—'(जहाँ) श्रीरामचन्द्रजी हैं, वहाँ शीघ्रता से चले जाएँ।' ८३ उस अवसर पर उन वानरों ने फूल लाकर हनुमान का पूजन किया, जैसे समस्त देवों ने शिवजी का पूजन किया था। ८४ हनुमान के बदन पर मैल देखकर समस्त वानरों ने उसे पोंछ डाला (और कहा—) 'हे हनुमान, तुमने लंका में जो प्रताप किया, उसे आरम्भ से हमें बता दो।' ८५ परन्तु हनुमान ने उसे कदापि नहीं कहा। उसने ब्रह्मा द्वारा लिखित पत्र उनके हाथों में (थमा) दिया। फिर भी वे वानर उस पत्र को नहीं खोल रहे थे, जो ब्रह्मा की मुद्रा से अंकित था। ८६ तब वानरों ने कहा (सोचा)— किष्किन्धा में समाचार ज्ञात होगा। यहाँ पत्र को खोल-कर देखने पर चतुर लोग (हमें) हँसेंगे। ८७ अस्तु। हनुमान-सहित वानर-गण क्षण न लगते किष्किन्धा आ गये। तब उन्होंने क्षण मात्र

तेव्हां क्षणमात्रें। ८८ सुग्रीवासी सांगती वानरगण। वानरांसह आला वायुनंदन। तुझें आवडतें क्रीडास्थान। तें मधुवन मोडिलें। १८९ ऐकतां सीतापति तारापती। म्हणती विजयी झाला मारुती। तरीच मधुवन मोडिती। वानर आनंदेंकरूनियां। १९० असो मधुवनींहून अंजनीसुत। वानरांसह उडाला अकस्मात। पंपासरोवरीं असे रघुनाथ। आला तेथें स्वानंदें। १९१ सपक्ष उतरला पर्वत। कीं भूमीवरी आला आदित्य। कीं मायाचक्र निरसोनि पावत। योगी जैसा स्वरूपातें। १९२ लंकेमाजी विजयी जाहला। म्हणून दक्षिणबाहू उभारिला। रघुनाथें हनुमंत देखिला।

में सुग्रीव का मधुवन उध्वस्त कर डाला। ८८ तो वानर-गणों ने सुग्रीव से कहा— ' वायु-नन्दन हनुमान वानरों सहित आ गया है (और) उन्होंने आपका वह प्रिय क्रीड़ा स्थान मधुवन ध्वस्त कर डाला '। ८९ यह सुनकर सीतापति श्रीराम और तारापति सुग्रीव ने कहा— ' हनुमान विजयी हो गया है, तभी तो वानर आनन्दपूर्वक मधुवन को उध्वस्त कर रहे हैं। ' * १९०

अस्तु। अंजनी-सुत हनुमान वानरों सहित मधुवन में से सहसा उड़ गया। श्रीराम पम्पा सरोवर के पास थे, वहाँ वह अपनी मौज (की उमंग) में आ गया। ९१ वह वहाँ यों उतर गया, जैसे स-पंख कोई पर्वत उतर गया हो, अथवा सूर्य पृथ्वी पर (उतरकर) आ गया हो, अथवा माया-चक्र का निराकरण करके कोई योगी आत्म-स्वरूप को प्राप्त हो गया हो। ९२ वह लंका में विजयी हो गया था, इसलिए उसने दायाँ बाहु ऊपर उठाया। उस समय रघुनाथ ने हनुमान को प्रसन्न-

---

* टिप्पणी : मधुवन : यह सुग्रीव का विहार-उपवन था। यह इन्द्र के नन्दनवन-सा सुन्दर था। इसमें देवता तक प्रवेश नहीं कर सकते थे। इस स्थिति में वानरों ने उसमें प्रवेश किया, फल खाये, मधुपान किया और वहाँ के पहरेदारों को पीटकर वे उस वन का भी विध्वंस करने लगे। सुग्रीव ने सोचा— यह विपरीत बात कैसे सम्भव है ? वानरों ने यह साहस क्यों और कैसे किया ? अवश्य ही उन्होंने अपना कार्य सफलता-पूर्वक सम्पन्न किया होगा। ' मानस ' के अनुसार वानरों ने युवराज अंगद की अनुमति से मधुवन में प्रवेश किया और जब रक्षकों ने विरोध किया, तब उन्हें पीट लिया, तो वे भागकर सुग्रीव के पास आ गये।

तब मधुवन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए।।
रखवारे जब बरजइ लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे।।

मानस० किष्किन्धा० २८

प्रसन्नवदन ते काळीं। ९३ साधक साधूनी महानिधान। दिसे तैसा सुप्रसन्न। कीं सुधारस हरिलिया सुपर्ण। विराजमान परते जैसा। ९४ कीं अमृतसंजीवनी अद्भुत। साधूनि आला गुरुसुत। सहस्राक्ष जैसा आनंदत। सीतानाथ तोषला तैसा। ९५ अयोध्यापति किष्किंधापती। आसन सोडून पुढें धांवती। तों लोटांगण घाली मारुती। ब्रह्मानंदेंकरूनियां। ९६ परम स्नेहाळू रघुनंदन। मारुतीतें हस्तें उचलोन। देता जाहला क्षेमालिंगन। भरलें गगन आनंदें। ९७ प्राणसखा हनुमंत। हृदयीं धरी रघुनाथ। पुढतीं सोडावा हा हेत। मनामाजी उपजेना। ९८ असो

वदन देखा। ९३ जिस प्रकार साधक महानिधान सिद्ध करने पर प्रसन्न दिखायी देता हो, उस प्रकार वह सुप्रसन्न दीख रहा था; अथवा अमृत का हरण करने पर सुपर्ण गरुड़ जैसे शोभायमान (रूप में) लौट आया था, वैसे ही हनुमान (सीता का पता लगाने में सफल होकर शोभायमान रूप में) लौट आया। अथवा (देव-) गुरु (बृहस्पति) का पुत्र (कच) अमृत-संजीवनी विद्या सिद्ध करके (देवलोक में) आ गया, तब जैसे इन्द्र आनन्दित हो गया था, वैसे (सीता की खोज करके हनुमान के लौट आने पर) सीता-नाथ श्रीराम सन्तुष्ट हो गये। * ९४-९५ (तदनन्तर) अयोध्यापति श्रीराम और किष्किन्धापति सुग्रीव आसन छोड़कर आगे दौड़ चले, तो हनुमान ने ब्रह्मानन्द अनुभव करते हुए उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। ९६ (तब) परम स्नेहमय रघुनन्दन ने हनुमान को अपने हाथों से उठाकर उसका क्षेमालिंगन कर लिया, तो (मानो) आकाश आनन्द से भर गया। ९७ रघुनाथ ने अपने प्राण-सखा हनुमान को हृदय से लगा रखा— अब उसे छुड़ा दें— यह इच्छा उनके मन में नहीं उत्पन्न हो रही थी। ९८

* टिप्पणी : एक बार देवों और दैत्यों के युद्ध में शुक्राचार्य संजीवनी विद्या से मृत दैत्यों को जीवित किया करता था। इसलिए देवों की विजय असम्भव-सी हो गयी। तब इंद्र ने बृहस्पति के पुत्र कच को दैत्यों के लोक में भेज दिया। दैत्यगुरु शुक्राचार्य की कन्या देवयानी उसे प्यार करने लगी। दैत्यराज ने कच को अनेक बार मरवा डालने का यत्न किया, लेकिन वह असफल हुआ। अन्त में उसने कच को जलाकर उसकी राख मदिरा में मिलाकर वह शुक्राचार्य को पिला दी। देवयानी ने अपने पिता से कच को जीवित करवाया, इससे पेट में से बाहर आने पर शुक्राचार्य की मृत्यु होगी। परन्तु कच ने उसे जीवित कर दिया— इसमें कच को संजीवनी विद्या प्राप्त हो गयी और वह देवलोक लौट गया।

हनुमंतासी क्षेम देउनी। सकळ कपींसी भेटे चापपाणी। जांबुवंत अंगद प्रीतीकरूनी। हृदयीं धरिले रघूत्तमें। १९९ सुग्रीवें धांवोनियां प्रीतीं। हृदयीं धरिला मारुती। कीं इन्द्रासी भेटला बृहस्पती। आलिंगन शोभलें तैसें। २०० मग राजाधिराज समर्थ। सभा करूनि बैसला रघुनाथ। तेव्हां मणि आणि ब्रह्मलिखित। पुढें ठेविलें हनुमंतें। १ मग आनंदें सकळ वर्तमान। दंडीऋषिपुत्रापासून। पुढें सुप्रभेचें उद्धरण। तेंही कथिलें तेधवां। २ पुढें समुद्रतीरपर्यंत। अंगदें कथिलें समस्त। शुद्धी नव्हे म्हणोनी अद्भुत। अग्नि चेतविला वानरीं। ३ प्राण देतां अग्नीमाझारी। हनुमंतें रक्षिलें ते अवसरीं। मग संपाती भेटला समुद्रतीरीं। तेणें शुद्धी सांगितली। ४ याउपरी वायुकुमर। शतयोजनें उडाला सागर। पुढें लंकेंत झाला जो समाचार। तो हनुमंत न सांगेचि। ५ मग रामें हनुमंताकडे

अस्तु। हनुमान को क्षेमालिंगन करके (अनन्तर) चापपाणि श्रीराम सब वानरों से मिले। उन्होंने जाम्बवान और अंगद को प्रीति-पूर्वक हृदय से लगा लिया। ९९ (तत्पश्चात्) सुग्रीव ने दौड़ते हुए आगे बढ़कर हनुमान को प्रेम के साथ हृदय से लगा लिया। अथवा मानो (देवगुरु) बृहस्पति इंद्र से मिले हों— उन (सुग्रीव-हनुमान का) आलिंगन वैसे ही शोभायमान (जान पड़ता) था। २००

अनन्तर राजाधिराज समर्थ रघुनाथ सभा लगाकर बैठ गये, तो हनुमान ने (उनके) सामने (सीता द्वारा परिचयात्मक चिह्न रूप में प्रदत्त) मणि तथा ब्रह्मा द्वारा लिखित चिट्ठी रख दी। २०१ फिर तब दण्डक ऋषि के पुत्र सम्बन्धी घटना से लेकर आगे सुप्रभा के उद्धार सम्बन्धी घटना तक का समस्त समाचार उसने आनन्दपूर्वक कह दिया। २ आगे अंगद ने समुद्र-तट तक पहुँचने का समस्त समाचार कथन किया और यह भी बताया कि (सीता की) खोज नहीं हो रही थी, इसलिए (जलकर मर जाने के हेतु) वानरों ने आग सुलगा दी थी। ३ उस समय अग्नि में प्राण-त्याग करते हुए हमें हनुमान ने बचा लिया। फिर समुद्र-तट पर सम्पाति मिला; उसने (सीता का) पता बता दिया। २०४ इसके पश्चात् वायु-कुमार सौ योजन (चौड़े) सागर पर से उड़ (-कर उस पार) गया। आगे चलकर लंका में जो (घटित हुआ उसका) समाचार हनुमान कह ही नहीं रहा था। ५ तब श्रीराम ने हनुमान की ओर देखा, तो वह बोला— 'जो घटित

पाहिलें । तंव येरू म्हणे जें वर्तमान जाहलें । तें विरंचीनें असे पत्रीं लिहिलें । निजहस्तेंकरूनियाँ । ६ जगद्वंद्या अयोध्यापती । सुखरूप आहे सीता सती । मणि खूण दिधला माझे हातीं । परम सद्गद होऊनियां । ७ अंतरखूण सांगितली । मनसीळ लाविला माझिये भाळीं । रघूत्तमें ऐकतां हृदयकमळीं । तये काळीं गहिंवरला । ८ मणि हृदयीं धरून रघुनाथ । अत्यंत जाहला शोकाकुलित । अहा सीता म्हणोनि बोलत । देखतां अर्कज गहिंवरला । ९ हनुमंत म्हणे रघुराजा । सुखी आहे जनकात्मजा । परी तुझ्या वियोगें भरताग्रजा । अत्यंत कृश जाहली असे । २१० म्यां मुद्रिका दिधली नेऊन । ते मनगटीं खेळे जैसें कंकण । मग म्हणे रघुनंदन । केवीं प्राण उरला असे । ११ रघुपती तुझें नामामृत । तेणें जानकी वांचली सत्य । जैसा शशांक राहुग्रस्त । चिंतेनें तैसी झांकिली । १२ मग बोले तमालनील । कैसा तरलासी समुद्रजळ । यावरी अंजनीचा

हुआ, उस (के विवरण) को ब्रह्माजी ने अपने हाथ से चिट्ठी में लिखा है । ६ हे जगद्-वंद्य अयोध्यापति, सती सीता सुखी अर्थात् सकुशल हैं । उन्होंने (अपनी चूड़ा-) मणि (परिचयात्मक) चिह्न के रूप में परम गद्गद होकर मेरे हाथ में दी । ' ७ (फिर यह) अन्तर-संकेत बताया : आपने मेरे मस्तक पर मैनसिल (का तिलक) लगा दिया था । यह सुनते ही उस समय श्रीराम कमल-से (कोमल) हृदय में गद्गद हो उठे । ८ उस मणि को हृदय से लगाते हुए श्रीराम शोक से अत्यन्त व्याकुल हो गये और बोल उठे— ' हाय सीता ! ' उन्हें यह बोलते हुए देखकर सूर्य-पुत्र (सुग्रीव) गद्गद हो गया । ९ (तब) हनुमान ने कहा— ' हे रघुराज, जनकात्मजा (सीता) सकुशल हैं । परन्तु हे भरताग्रज, आपके वियोग से वे अत्यधिक कृश हो गयी हैं । २१० मैंने (जो) अंगूठी ले जाकर उन्हें दी, वह उनकी कलाई में कंगन जैसे हिलती है । ' तब रघुनन्दन ने कहा, ' (तो) उसके प्राण कैसे बचे हुए हैं ? ' ११ इसपर हनुमान ने कहा— ' हे रघुपति, आपका नामामृत जो है—सचमुच जानकी उससे बच गयी हैं । (फिर) भी जैसे चन्द्र राहु द्वारा ग्रस्त हो जाता है (जिससे उसकी कान्ति छिप जाती है), वैसे ही चिन्ता ने (उन्हें ग्रस्त करके उनके तेज को) छिपा दिया है । ' १२ तब तमालनील श्रीराम ने कहा (पूछा)— ' तुमने समुद्र-जल को कैसे तैर (-कर पार कर) लिया ? ' (सुनिए) इसपर अंजनी-सुत (हनुमान)

बाळ । काय बोलता जाहला । १३ तुझिये मुद्रिकेचें अद्भुत बळ । क्षणें जिंकवेल कळिकाळ । नखाग्रीं समुद्रजळ । सांठविजेल सर्वही । १४ मग विरंचीचें लिखित पत्र । सौमित्राजवळी देत राजीवनेत्र । वाचिता जाहला भोगींद्र । सावधान वानर ऐकती । १५ स्थिर राहिला समीर । ऐकावया विरंचिपत्र । सौमित्रें उकलिलें साचार । जेवीं चंद्र पौर्णिमेचा । १६ जो सरस्वतीचा जनिता । त्याचिया अक्षराची कौशल्यता । कोणासी न वर्णवे तत्त्वतां । तें श्रोतीं आतां परिसावें । १७ परब्रह्म केवळ रघुवीर । त्यासी ब्रह्मदेवें लिहिलें पत्र । तें ब्रह्मानंदकृपें श्रीधर । अति पवित्र वर्णील पैं । १८ स्वस्ति श्रीरामविजयग्रंथ सुंदर । संमत वाल्मीकनाटकाधार । सदा परिसोत भक्त चतुर । एकविंशतितमाध्याय गोड हा । २१९

। श्रीरामचंद्रार्पणमस्तु ।

ने क्या कहा । १३ आपकी मुद्रिका में अद्भुत बल है । (उसके बल के आधार पर कोई भी) क्षण में कलि-काल को जीत लेगा, नख के अग्र में सभी समुद्र-जल को भरकर (इकट्ठा) रखेगा ।' १४

अनन्तर राजीव-नेत्र श्रीराम ने ब्रह्मा द्वारा लिखित (वह) पत्र लक्ष्मण को दिया । तो भोगीन्द्र (शेषनाग के उस अवतार) ने उसे पढ़ा, तब वानरों ने सावधान होकर सुना । १५ ब्रह्मा के उस पत्र को सुनने के लिए पवन (तक) स्थिर हो गया । लक्ष्मण ने उसे खोल दिया, तो वह पत्र ऐसा जान पड़ता था जैसा पौर्णिमा का चन्द्र ही हो । १६ जो ब्रह्मा सरस्वती के पिता हैं, उनके अक्षर (-लेखन) अर्थात् लिखावट के कौशल का वर्णन सचमुच किसी से भी नहीं किया जा सकता । श्रोता अब इस पत्र को सुनें । १७

रघुवीर श्रीराम तो केवल परब्रह्म हैं । ब्रह्मा ने उनके नाम (जो) पत्र लिखा, श्रीधर कवि गुरु ब्रह्मानन्द की कृपा से उस अति पवित्र पत्र का वर्णन करेगा । १८

स्वस्ति । श्रीराम-विजय (नामक यह) ग्रन्थ सुन्दर है । वह वाल्मीकि-नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है । उसके इस मधुर इक्कीसवें अध्याय का चतुर भक्त सदा श्रवण करें । २१९

। श्रीरामचंद्रार्पणमस्तु ।

अध्याय—२२

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः । उकलोनी कमलोद्भवाचें पत्र । वाचिता जाहला सौमित्र । सावध ऐके राजीवनेत्र । सूर्यपुत्रादि कपी सर्वही । १ अनंतकोटिब्रह्मांडनायका । हे दयार्णवा विश्वपाळका । वैकुंठपते विश्वव्यापका । मम जनका श्रीवल्लभा । २ हे राम सकळबंधच्छेदका । हे राम साधुप्रतिपाळका । दुष्टरजनीचरसंहारका । जानकीनायका जगद्गुरो । ३ हे राम जगदंकुरमूळकंदा । साधुहृदयारविंद-मिलिंदा । निजजनचातकजलदा । ब्रह्मानंदा परात्परा । ४ संसारगजविदारक मृगेंद्रा । दुःखपर्वतभंजन वज्रधरा । निजभक्तचकोरसुधाकरा । अतिउदारा सीताधवा । ५ त्रिभुवनजनका दुःखहरणा । जनकजामाता जनपाळणा । जनकजापते जलजनयना । जलदवर्णा जगत्पते । ६ जय जय राम वेदोद्धारका । कमठरूपा सृष्टिपाळका । नमो

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीता-रामचन्द्राभ्यां नमः । ब्रह्मा का पत्र खोलकर लक्ष्मण ने पढ़ा । राजीव-नेत्र श्रीराम तथा सूर्यपुत्र सुग्रीव आदि सभी वानर उसे अवधान-पूर्वक सुन रहे थे । १ (उसमें लिखा था—)

'हे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के नायक, हे दयासागर विश्वपालक, हे वैकुण्ठपति, हे विश्व-व्यापी (भगवान्), हे मेरे पिताजी, हे लक्ष्मी-वल्लभ ! समस्त बन्धनों को काट देनेवाले हे राम, हे साधुओं के प्रति-पालक राम, हे दुष्ट राक्षसों के संहारक, हे जानकी-पति, हे जगद्गुरु ! हे जगत् के अंकुर के मूल-स्वरूप कन्द (-रूपी) राम, हे साधुओं के हृदय रूपी कमल में विहार करनेवाले भ्रमर, अपने भक्त रूपी चातकों के लिए मेघ स्वरूप हे राम, हे ब्रह्मानन्द, हे परात्पर भगवान् ! हे संसार रूपी हाथी को विदीर्ण कर डालनेवाले मृगेन्द्र (श्रेष्ठ सिंह), हे दुःखों के पर्वतों को भग्न कर डालनेवाले वज्रधारी (इंद्र), हे अपने भक्तों रूपी चकोरों के लिए चन्द्रमा-स्वरूप राम, हे अति उदार सीता-पति ! हे तीनों भुवनों के जनक, हे दुःखहर्ता, हे जनक के जामाता, हे जनों के पालन-कर्ता, हे जनकजा (सीता) के पति, हे कमल-नेत्र, हे जलद (=मेघ)-वर्ण, हे जगत्पति ! (२-६) (दैत्यों द्वारा चुराये हुए) वेदों का (मत्स्य रूप में अवतरित होकर) उद्धार करनेवाले हे श्रीराम ! आपकी जय हो, जय हो ! कूर्म रूप में (अवतरित होकर) सृष्टि का पालन

सकळदैत्यांतका । वराहवेषा दीनबंधो । ७ नमो हिरण्यकश्यप-मर्दना । नमो त्रिविक्रम बलिबंधना । नमो ब्राह्मणकुळपाळणा । भार्गवकुळदिवाकरा । ८ नमो पौलस्तिकुळविपिनदहना । मीनकेतनारिहृदयजीवना । नमो चतुर्दशलोकपाळणा । मखरक्षणा रघुवीरा । ९ जय जय विश्वपाळणा । विश्वव्यापका विश्वकारणा । विश्वमतिचाळका विश्वजीवना । विश्वरक्षणा विश्वेशा । १० नमो मायाचक्रचाळका । नमो अज्ञान-तिमिरान्तका । नमो वेदरूपा वेदपाळका । वेदस्थापका वेदवंद्या । ११ नमो कमलनाभा कमलजीवना । नमो पापारण्यकुठारतीक्ष्णा । नमो त्रिविधदाहतापशमना । अनंतशयना

अर्थात् रक्षण करनेवाले (राम), समस्त दैत्यों का संहार करनेवाले हे राम ! आपको नमस्कार है ! हे वराह रूप में अवतरित राम, हे दीन-बन्धु ! (आपको नमस्कार है !) ७ (नरसिंह के रूप में अवतरित होकर प्रह्लाद के पिता) हिरण्यकश्यपु को कुचल डालनेवाले हे श्रीराम, आपको नमस्कार है । तीन चरणों में ब्रह्माण्ड को व्याप्त करके दैत्यराज बलि के लिए बन्धन रूप त्रिविक्रम वामन के रूप में अवतरित हे श्रीराम, आपको नमस्कार है । ब्राह्मण-कुल के पालक एवं भृगु-कुल के लिए सूर्य जैसे अवतरित हे श्रीराम, (आपको नमस्कार है ।) ८ पुलस्त्य-कुल रूपी (राक्षस रूपी) वन को जलानेवाले अग्नि स्वरूपी हे श्रीराम, आपको नमस्कार है । कामदेव के शत्रु शिव-जी के हृदय के लिए जीवन स्वरूप हे श्रीराम, (आपको नमस्कार है ।) हे चौदह लोकों के पालन-कर्ता, हे यज्ञ-रक्षक श्रीराम, (आपको नमस्कार है) । हे विश्व-पालक, आपको जय हो, जय हो । हे विश्व-व्यापक, हे विश्व (के निर्माण) के कारण (-स्वरूप), हे विश्व की मति को चलाने वाले, हे विश्व के जीवन (-स्वरूप श्रीराम), हे विश्व के रक्षक-कर्ता, हे विश्वेश श्रीराम, आपकी जय हो, जय हो । ९-१० हे माया के (उत्पत्ति-स्थिति-लय आदि के) चक्र को चलानेवाले, आपको नमस्कार है । हे अज्ञान रूपी अंधकार के विनाशक श्रीराम आपको नमस्कार है । हे वेद-स्वरूप, हे वेदों के रक्षण-कर्ता, हे वेदों के प्रतिष्ठाता और वेदों के लिए वन्दनीय श्रीराम, आपको नमस्कार है । ११ हे कमल-नाभ (अर्थात् जिसकी नाभि में से कमल की उत्पत्ति हुई, ऐसे भग-वान् विष्णु-स्वरूप हे श्रीराम), हे कमल-जीवन, आपको नमस्कार है । पाप रूपी (पेड़ों के) अरण्य को काटकर नष्ट करनेवाले तीक्ष्ण कुठार (कुल्हाड़ी) स्वरूप हे श्रीराम, आपको नमस्कार है । (आधिभौतिक,

अनंता । १२ नमो दशावतारचरित्रचाळका । नमो अनंतब्रह्मांडनायका । नमो अनंतवेषकारका । ताटिकान्तका पापहरणा । १३ नमो जननमरणरोगवैद्या । सच्चिदानंदा स्वसंवेद्या । मायातीता जगद्वंद्या । भेदाभेदातीत तूं । १४ नमो सर्गस्थित्यंतकारका । कैवल्यपददायका । अज अजित सर्वात्मका । करुणालया सुखाब्धे । १५ जय जय षड्विकाररहिता । नमो षड्गुणअलंकृता । अरिषड्वर्गच्छेद-प्रतापवंता । शब्दातीता निरंजना । १६ तूं निर्विकार निरंजन । आम्हांलागीं जाहलासि सगुण । बंदींचे सोडवावे सुरगण । पिशिताशन वधोनियां । १७ पितृवचनाचें करूनि व्याज ।

आधिदैविक और आध्यात्मिक जैसे) तीन प्रकार के दाहक तापों का शमन करनेवाले (श्रीराम), हे अनन्त-शयन (= शेष-शायी भगवान्), हे अनन्त (भगवान् श्रीराम), आपको नमस्कार है। १२ (मत्स्य, कूर्म, वराह आदि) दस अवतार धारण करके उनके रूप में लीलाओं को (प्रदर्शित) करनेवाले हे भगवान्, आपको नमस्कार है। अनन्त ब्रह्माण्डों के हे नायक, आपको नमस्कार है। अनगिनत वेशों अर्थात् रूपों के धारण-कर्ता, हे ताड़का राक्षसी का नाश करनेवाले तथा पाप-हारी (भगवान श्रीराम), आपको नमस्कार है। १३ जनन तथा मरण रूपी रोगों को दूर करनेवाले (अर्थात् जन्म-मृत्यु से छुटकारा देनेवाले—मुक्ति-दाता) वैद्य-स्वरूप (भगवान्), हे सच्चिदानन्द, हे स्व-संवेद्य, हे मायातीत (माया के प्रभाव से परे) हे जगद्-वंद्य (भगवान्), आपको नमस्कार है। आप भेद और अभेद के परे हैं। १४ हे उत्पत्ति (सर्ग), स्थिति तथा अन्त (लय) के कर्ता, आपको नमस्कार है। हे कैवल्य पद के दाता, हे अजन्मा, हे अजित, हे सर्वात्मक, हे करुणालय, हे सुख-सागर (-स्वरूप भगवान्), आपको नमस्कार है। १५ हे (काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर तथा लोभ जैसे) छहों विकारों से रहित (भगवान्), आपकी जय हो। हे (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य नामक) छहों (ईश्वरीय) गुणों से विभूषित (भगवान्), हे (काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर तथा लोभ नामक) छहों विकार रूपी शत्रुओं का विच्छेद करने का पराक्रम करनेवाले हे शब्दातीत (अर्थात् जिसका शब्दों में वर्णन करना असम्भव है), हे निरंजन (भगवान् श्रीराम), आपको नमस्कार है। १६ आप निर्विकार तथा निरंजन हैं, (फिर भी) हमारे लिए आप सगुण (रूप-धारी) हो गये हैं। (अतः) राक्षसों का वध करके (रावण के) बंदी-गृह से देव-गणों को (आप) मुक्त करें। १७

काननां आलासी रघुराज। पंचवटीस राहून सहज। बहुत राक्षस वधियेले। १८ दशमुखें केलें सीताहरण। त्याचें करावया गवेषण। म्हणोनि किष्किंधेसी आगमन। जाहलें तुझें श्रीरामचन्द्रा। १९ शुद्धीलागीं रुद्रावतार। अंजनीहृदयारविंद-भ्रमर। जो ब्रह्मांडासी देणार धीर। तरला सागर निमिषार्धें। २० अगाध मारुतीचें उड्डाण। बहुतीं वाटेस केलें विघ्न। परी तो अनिवारकिराण। कोणासही नाटोपे। २१ पडलंकेसी येऊन हनुमंत। राक्षसी संहारिल्या बहुत। प्रवेशला क्रौंचेच्या मुखांत। दांतांसी दांत मेळवी जों। २२ उदर फोडोनि आला बाहेर। मग शोधिलें निकुंभिलानगर। सुलोचना देखोनि सुंदर। म्हणे हेचि होय जानकी। २३ तिजवरी घालावया पाषाण। सिद्ध झाला वायुनंदन। मग तिचे शब्द परिसतां पूर्ण। सीता नव्हे कळलें हें। २४ मग अणुप्रमाण

हे रघुराज! पिताजी के वचन (-पालन) का निमित्त (कारण) करके आप वन में आ गये और पंचवटी में रहकर सहज ही आपने बहुत राक्षसों का वध कर डाला। १८ हे रामचन्द्र, रावण ने सीता का अपहरण किया, तो उसकी खोज करने के लिए किष्किन्धा में आपका आगमन हुआ। १९ जो ब्रह्माण्ड (तक) को ढाढ़स बँधा सकता है, वह रुद्र (शिवजी) का अवतार तथा (माता) अंजनी के हृदय रूपी कमल के लिए भ्रमर-स्वरूप हनुमान (सीता की) खोज के लिए आधे निमिष में—क्षणार्ध में सागर को तैरकर अर्थात् लाँघकर (पार कर) गया। २० हनुमान की उड़ान अगम्य थी। मार्ग में बहुतों ने विघ्न उत्पन्न किये, परन्तु अंकुठित छलाँगवाला वह हनुमान किसी के वश का नहीं हुआ—किसी से भी रोका नहीं जा सका। २१ पड़लंका में आकर हनुमान ने बहुत राक्षसियों का संहार किया। (तदनन्तर) उसने क्रौंचा के मुँह में प्रवेश किया और जब तक वह दाँतों से दाँत मिला रही थी—अर्थात् मुँह बन्द कर रही थी, तब तक वह (हनुमान) उसके पेट को फाड़कर बाहर आ गया। अनन्तर उसने निकुंभिला नगर छान डाला। (उसमें इंद्रजित की पत्नी) सुन्दरी सुलोचना को देखकर उसने कहा (समझा) कि यही जानकी है। २२-२३ (परन्तु उसे पर-पुरुष की शय्या में देखकर) हनुमान उस पर पत्थर डालने को सिद्ध हुआ। (तथापि) फिर उसके शब्दों (बातों) को पूर्णतः सुनते ही उसे यह विदित हुआ कि यह सीता नहीं है। २४ अनन्तर अणु-प्रमाण, अर्थात् अणु के समान लघु होकर उसने लंका-भुवन

होऊन। प्रवेशला लंकाभुवन। विटंबिले सकळ जन। करूनि नग्न बिदीसी। २५ पत्र ऐकतां जनकजापति। म्हणे धन्य धन्य वीर मारुती। अद्भुत कर्तव्य अगाध शक्ती। त्रिजगतीं ऐसा नाहीं। २६ ऐकोनियां विनोदरीती। वानर गदगदां हांसती। एकावरी एक पडती। मुरकुंड्या वळती ऐकतां। २७ नाना वस्तू उत्तम आणून। वानर टाकिती ओंवाळून। एम सप्रेम हृदयीं धरून। म्हणती धन्य बलाढ्य तूं। २८ पत्र वाचितां लक्ष्मण। क्षणक्षणां करी हास्यवदन। मागुती तटस्थ झाले हरिगण। पत्र पुढें परिसती। २९ शोधिलें बिभीषणाचें घर। कीर्तन ऐकोनि झाला निर्भर। मग कुंभकर्णाचें मंदिर। देखोनियां कंटाळला। ३० रावणस्त्रिया ऐशीं सहस्र। तितुक्या शोधूनि वायुकुमर। राक्षससभा विटंबिली समग्र। तें अगाध चरित्र न वर्णवे। ३१ रावणशेजे मंदोदरी। म्हणे हीच होईल सीता

में प्रवेश किया और गली-गली में समस्त लोगों को नंगा करके उसने उनकी दुर्दशा कर डाली। २५

पत्र (में लिखित यह समाचार) सुनकर सीतापति श्रीराम ने कहा— 'धन्य है, धन्य है वीर हनुमान! (उसमें) कार्य करने का अद्भुत कौशल तथा अथाह शक्ति है। ऐसा कोई अन्य (वीर) त्रिभुवन में नहीं है।' २६ उसके मज़ेदार ढंग (के बारे में) सुनकर वानर ठहाका मारकर हँसने लगे। उन्हें सुनकर वे हँसते-हँसते एक-दूसरे पर गिर जाते और लोट-पोट हो जाते। २७ उन्होंने अनेकानेक बढ़िया वस्तुओं को लाकर (हनुमान पर) निछावर कर दिया। कोई-एक उसे प्रेम-पूर्वक हृदय से लगाते हुए कहते— 'तुम बलवान धन्य हो।' २८ पत्र पढ़ते-पढ़ते लक्ष्मण प्रति क्षण मुस्कराता था। फिर वानर-गण तटस्थ (शान्त एवं स्थिर-मति) हो गये और पत्र (में) आगे (लिखा हुआ समाचार) सुनने लगे। २९

हनुमान ने विभीषण का घर ढूँढ़ लिया। (उसमें चला हुआ हरि-) कीर्तन सुनकर वह पूर्णकाम हो गया। अनन्तर कुम्भकर्ण के घर को देखकर वह ऊब गया। ३० रावण के अस्सी- सहस्र स्त्रियाँ थीं। उतनी स्त्रियों में (सीता की) खोज करके हनुमान ने राक्षसों की समग्र सभा की दुर्गत बना डाली। (हनुमान की) उस अगम्य चरित्र-लीला का वर्णन नहीं किया जा सकता। ३१ रावण की शय्या में मन्दोदरी थी— उसे देखते ही हनुमान ने कहा (हनुमान को जान

सुंदरी । तंव ते झाली घाबरी । दुष्ट स्वप्न देखोनियां । ३२ दशकंठास सांगे वर्तमान । विषकंठप्रिय रघुनंदन । त्याची सीता द्या हो सोडून । परी रावण न मानी तें । ३३ सीता पहावया पाठविली दूती । तिच्या मागून गेला मारुती । तों अशोक-वृक्षातळीं सीता सती । देखोनि कपि नमीतसे । ३४ पुढें मुद्रिका ठेवून । वृक्षावरी बैसला एक क्षण । अपार राक्षसी झोडून । पाडिल्या तेथें पराक्रमें । ३५ मुद्रिका देखोन सीता सती । शोकसमुद्रीं करी वस्ती । मग पुढें येऊन मारुती । प्रत्यक्ष भेटला तेधवां । ३६ सांगितले सकळ वर्तमान । मग क्षुधेचें मिष करून । विध्वंसिलें अशोकवन । जें विस्तीर्ण तीस योजनें । ३७ रावणें पाठविला दळभार । त्याचा तत्क्षणीं केला संहार । मारूनि रावणाचे पुत्र । शक्रजित विटंबिला । ३८ मग म्यां हनुमंतासी प्रार्थून । ब्रह्मपाशें नेला बांधोन । रावणासी शब्दशस्त्रेंकरून । सभेसी निर्भर्त्सिलें हनुमंतें । ३९ मारुतीस

पड़ा) कि यही सुन्दरी सीता होगी । त्यों ही (निद्रावस्था में) दुष्ट (अशुभ) स्वप्न देखकर वह घबरा उठी । ३२ उसने रावण से यह बात कही-- '(जो) रघुनन्दन राम शिवजी के प्रिय हैं, उनकी (स्त्री) सीता को छोड़ दीजिएगा ।' परन्तु रावण ने (उसकी) वह (बात) न मानी । ३३ (तदनन्तर रावण ने) सीता को देखने के लिए दूती को भेज दिया । (उसके) पीछे (-पीछे) हनुमान चला गया । तब अशोक वृक्ष के तले सती सीता को देखकर उस कपि ने (उसे) नमस्कार किया । ३४ (श्रीराम द्वारा दी हुई) अँगूठी उसके सामने रखकर वह एक क्षण (-भर) पेड़ पर (चढ़कर) बैठ गया । (फिर) वहाँ अनगिनत राक्षसियों को पराक्रम-पूर्वक पीट-पीटकर उसने गिरा दिया । ३५ सती सीता उस मुद्रिका को देखकर (मानो) शोक के सागर में निवास कर बैठी (शोक-मग्न हो गयी) । फिर सामने आकर हनुमान उस समय (उससे) प्रत्यक्ष मिला । ३६ उसने सीता से समस्त समाचार कह दिया । फिर भूख का बहाना करके उसने उस अशोक वन को ध्वस्त कर डाला, जो तीस योजन विस्तीर्ण था । ३७ (तदनन्तर) रावण ने सेना-दल को भेज दिया, उसने उसका उस क्षण संहार कर डाला । (फिर) रावण के पुत्रों को मार डालकर उसने इन्द्रजित की दुर्गत बना डाली । ३८ तब हनुमान से विनती करके उसे ब्रह्म पाश में बाँधकर मैं (रावण की सभा में) ले गया । वहाँ (राज-)सभा में हनुमान ने

मारावया सत्वर। पुच्छासी लाविला वैश्वानर। स्नेहेंसहित वस्त्रें अपार। गुंडाळोनि साक्षेपें। ४० पुच्छ पेटतां सत्वर। उडोनि गेला वायुपुत्र। तृतीय भाग लंकानगर। जाळिलें क्षण न लागतां। ४१ परी नवल वर्तलें अद्भुत। लंका सुवर्णमय जाहली समस्त। धन्य तो लोकप्राणेशसुत। थोर सामर्थ्य दाविलें। ४२ मग सागरीं पुच्छ विझवून। पुन्हां घेतलें जानकीचें दर्शन। जैसें बाळ खेळतां श्रमून। जननीपाशीं येत पैं। ४३ ऐसें पत्र वाचितांचि सौमित्र। ऐकतां घनश्यामगात्र। रामें धांवूनि वायुपुत्र। हृदयीं धरिला सप्रेम। ४४ धन्य-धन्य ते अंजनी। ऐसें रत्न प्रसवली सद्‌गुणी। मारुतीचें मुख कुरवाळोनी। निजासनीं राम बैसे। ४५ किष्किंधेहूनि रत्नें आणूनी। ओंवाळिती मारुतीवरूनी। म्हणे धन्य मारुतात्मज अवतरोनी। ब्रह्मांड भरिलें कीर्तीनें। ४६ धन्य-धन्य तो दिवस। स्वामी

शब्द रूपी शस्त्रों से रावण की भर्त्सना की। ३९ (तदनन्तर) हनुमान को झट से मार डालने के हेतु उसकी पूँछ में तेल-सहित अनगिनत वस्त्रों को यत्न-पूर्वक लपेटकर उसमें आग लगा दी। ४० पूँछ के जलने लगते ही हनुमान शीघ्रता से उड़ गया और उसने क्षण न लगते एक तिहाई लंकानगर को जला डाला। ४१ परन्तु एक अपूर्व आश्चर्य घटित हुआ— समस्त लंका सुवर्णमय हो गयी। वह पवन-पुत्र (हनुमान) धन्य है (जिसने) ऐसी बड़ी सामर्थ्य प्रदर्शित की। ४२ फिर समुद्र में पूँछ को बुझाकर उसने पुन: जानकी के (पास उस प्रकार आकर) दर्शन किये, जिस प्रकार खेलते-खेलते थककर बालक अपनी माता के पास लौट आता है। ४३

लक्ष्मण द्वारा इस प्रकार पत्र पढ़ते रहने पर ही घनश्याम शरीरी श्रीराम ने उसे सुनकर (आगे) दौड़ते हुए हनुमान को प्रेमपूर्वक हृदय से लगा लिया। ४४ (उन्होंने कहा—) ' वह अंजनी धन्य है, धन्य है, (जिस) सद्‌गुणवती ने ऐसे (पुत्र-) रत्न को जन्म दिया। ' फिर हनुमान के मुख को सहेलकर श्रीराम अपने आसन पर बैठ गये। ४५ (तदनन्तर सुग्रीव ने) किष्किन्धा से रत्न लाकर और उन्हें हनुमान पर निछावर करके कहा— ' यह वायु-पुत्र हनुमान धन्य है, जिसने (धरातल पर) अवतरित होकर अपनी कीर्ति से ब्रह्माण्ड को भर दिया। ४६ (उसके जीवन में) वह दिन भी धन्य है, धन्य है, जब (स्वयं) स्वामी ने अपने मुख से विशेष रूप में उसका गौरव (-गान) किया। उसके सामने (उसकी तुलना में) अमृत तथा स्वर्ग के सभी (सुख-) भोग तुच्छ हैं। ' ४७ अस्तु। इसके पश्चात् चापपाणि

स्वमुखें गौरवी विशेष। तुच्छ त्यापुढें सुधारस। स्वर्गभोग सर्वही। ४७ असो यावरी चापपाणी। हृदयीं धरी दिव्यमणी। श्रीरामासी वाटलें ते क्षणीं। कीं जनकजा आणिली हनुमंतें। ४८ म्हणे धन्य मारुति स्नेहाळा। मज भेटविली जनकबाळा। तुझा प्रताप उजळला। निराळमंडपीं अवघाचि। ४९ एवढा सागर उल्लंघूनी। जानकी आलासी शोधूनी। तुवां उपकारऋणेंकरूनी। मज बांधिलें हनुमंता। ५० हनुमंत विचारी मनीं। म्यां खूण आणिला सीतेचा मणी। यालागीं कोदंडपाणी। आनंदला अत्यंत। ५१ मज थोर चुकी घडली तेथें। जरी सीताचि आणितों येथें। तरी आनंदें श्रावणारिसुतें। भरलें असतें ब्रह्मांड। ५२ मग मनीं विचारी सीताशोकहरण। आतां काय माझें बळ क्षीण। न लोटतां यामार्ध पूर्ण। घेऊन येईन पद्माक्षी। ५३ मग म्हणे जी रघुनाथा। क्षण एक धीर धरीं आतां। घेऊन येतों जनकदुहिता। सकळ राक्षसां निवटोनी। ५४ हनुमंत करी उड्डाण। सावध जाहला सीतारमण। म्हणे हनुमंता

(श्रीराम) ने वह दिव्य मणि हृदय से लगा ली। उस क्षण श्रीराम को जान पड़ा कि हनुमान सीता को (ही) लाया है। ४८ उन्होंने कहा— 'हे स्नेहमय हनुमान, धन्य हो। तुमने मुझसे सीता की भेंट करा दी। (अतः) समस्त आकाश-मण्डप में ही तुम्हारा प्रताप (-रूपी प्रकाश अधिक) उज्ज्वल हो गया है। ४९ इतने (विशाल) सागर को लाँघकर तुम जानकी (का समाचार) ले आये हो। हे हनुमान, तुमने उपकार रूपी ऋण से मुझे आबद्ध कर दिया।' ५०

(यह सुनकर) हनुमान ने मन में सोचा— मैं सीता की (चूड़ा-) मणि संकेत रूप में लाया। इसलिए चापपाणि श्रीराम अत्यन्त आनन्दित हो गये हैं। ५१ यहाँ (इसमें) मेरी बड़ी भूल हो गयी है। यदि मैं सीता को ही यहाँ ले आता, तो दशरथ-सुत श्रीराम आनन्द से ब्रह्माण्ड को भर देते। ५२ फिर सीता के शोक को दूर करनेवाले हनुमान ने मन में (यह) विचार किया—'क्या अब मेरा बल क्षीण हो गया है? आधे प्रहर के पूर्णतः बीतने से पहले उस कमल-नयना को मैं ले आऊँगा। ५३ फिर उसने कहा— 'हे रघुनाथजी, अब एक क्षण-भर धीरज रखिए। समस्त राक्षसों का निर्दलन करके मैं जनक-कन्या को लाता हूँ।' ५४ (ऐसा कहते हुए ज्यों ही) हनुमान ने उड़ान भर दी, (त्यों ही) सीतापति श्रीराम सावधान हो गये और बोले— 'हे हनुमान, (अभी) मत

न करीं गमन। आहे कारण बहु पुढें। ५५ आवेशें निघाला मारुती। नाटोपेच तो कवणाप्रती। मग स्वयें धांवूनि रघुपती। आवरीत हनुमंता। ५६ उचलोनियां रघुनाथ। निजस्कंधीं वाहे हनुमंत। म्हणे लंकेसी नेतों त्वरित। रावणासी वधावया। ५७ तों उर्मिलापति आणि अर्कसुत। धांविन्नले अंगद जांबुवंत। चौघे हनुमंतासी आवरीत। परी सर्वथा नाटोपे। ५८ चौघांसही उचलून। उडों पाहे सीताशोकहरण। म्हणे इतुकेच लंकेसी जाऊन। असुर मर्दून येऊं आतां। ५९ वरकड न्यावे जरी वानर। तरी ते कैसे तरतील सागर। यालागीं निवडक थोर-थोर। पांच जण नेऊं हे। ६० पांच जणांसी उचलून। स्कंधीं वाहे वायुनंदन। कीं तो पंचशृंगांचा पूर्ण। नगोत्तमचि शोभला। ६१ कीं पंच फळें लागलीं वृक्षासी। तीं जड कदा न होती तयासी। कीं उदयाद्रीवरी तेजोराशी।

जाओ—आगे बहुत कार्य (धरे पड़े) हैं। ५५ (फिर भी) हनुमान आवेश-पूर्वक निकल पड़ा— वह किसी से भी नहीं रोका जा सकता था। तब स्वयं दौड़ते हुए (आगे बढ़कर) श्रीराम ने हनुमान को रोक लिया। ५६ (तदनन्तर) श्रीराम को उठाकर हनुमान अपने कंधे पर रखते हुए चलने लगा। वह बोला— ' रावण का वध करने के लिए मैं (इन्हें) झट से लंका में ले जाता हूँ। ' ५७ तब लक्ष्मण तथा सुग्रीव, अंगद और जाम्बवान दौड़ने लगे। (वे) चारों हनुमान को रोक रहे थे, फिर भी वह बिलकुल नहीं रोका जा रहा था। ५८ (सीता के शोक को दूर करनेवाला वह) हनुमान उन चारों ही को उठाकर उड़ना चाहता था। उसने कहा (सोचा)— इतने ही (हम) लंका में जाकर असुरों को मार डालकर अब लौटेंगे। ५९ यदि शेष (अन्य) वानरों को ले जाएँ, तो वे समुद्र कैसे (तैरकर) पार करेंगे ? इसलिए चुने हुए इन बड़े-बड़े पाँच जनों को ले जाएँ। ६० उन पाँच जनों को उठाकर पवन-पुत्र हनुमान कंधे पर रखकर ले जा रहा था। अथवा (जान पड़ता था कि उस रूप में) पाँच शिखरों से युक्त कोई परिपूर्ण श्रेष्ठ पर्वत ही शोभायमान था। ६१ अथवा किसी पेड़ में जो पाँच फल आये हों, वे उसे कदापि भारी नहीं प्रतीत होते, (उसी प्रकार हनुमान को श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद तथा जाम्बवान भारी नहीं जान पड़ते थे), अथवा (जान पड़ता था कि) उदय-गिरि पर पाँच तेजोराशि सूर्य ही उदित हो गये हों (अर्थात् राम-लक्ष्मण आदि सूर्य के समान जान पड़ते थे)। ६२ अस्तु। उन पाँच जनों

पंच सूर्य उगवले । ६२ असो घेऊनि पांच जण । हनुमंत करूं पाहे गमन । यावरी मंगलभगिनीचा रमण । हनुमंतासी विनवीतसे । ६३ मारुती ऐकें प्राणसखया । विचाराविणें भलती क्रिया । न करावी कदा हे चर्या । श्रेष्ठांची असे पूर्वींहून । ६४ ऐसें विनवितां रघुनंदन । मग उतरविले पांचही जण । जनकजापतीचे चरण । सप्रेम धरिले हनुमंतें । ६५ सुग्रीव जांबुवंत नळ नीळ । वर्णिती अनिलात्मजाचें बळ । यावरी तो तमालनीळ । सभा करूनी बैसला । ६६ श्रीराम पुसे मारुतीप्रती । कैसी असे लंकेची गती । राक्षस वर्तती कोणे रीतीं । काय आचरती पुण्यक्रिया । ६७ यावरी चातुर्यरत्नाकर । बोले लोकप्राणेश-कुमर । जैसा शक्र आणि अंगिराकुमर । करिती विचार एकांतीं । ६८ तीनशें गांव लांब लंका । रेखोनि दाविली रघुनायका । सकळ सदनांची करून संख्या । ठायीं ठायीं दाखविली । ६९ जे कां मर्गज पाषाण । त्यांचीं पांच लक्ष गृहें

को लेकर हनुमान जाना चाहता था । तब सीता-पति श्रीराम ने उससे (यह) विनती की । ६३ हे हनुमान, मेरे प्राणसखा, सुनो, पूर्वकाल से श्रेष्ठ लोगों की यह पद्धति है कि बिना विचार किये कोई भी कार्य नहीं किया जाए । ६४ तब श्रीराम द्वारा इस प्रकार विनती करने पर हनुमान ने उन पाँचों ही जनों को उतार दिया और श्रीराम के चरण प्रेमपूर्वक पकड़ लिये । ६५

सुग्रीव, जाम्बवान, नल और नील ने पवन-कुमार के बल का बखान किया । इसके पश्चात् तमाल-नील श्रीराम (उन सबकी) सभा आयोजित करके बैठ गये । ६६ श्रीराम ने हनुमान से पूछा— 'लंका की कैसी स्थिति है ? राक्षस किस ढंग से व्यवहार करते हैं ? वे किस पुण्य-कर्म का आचरण करते हैं ?' ६७ इसपर चातुर्य-सागर पवन-कुमार ने कहा— मानो (जिस प्रकार) इंद्र और बृहस्पति एकान्त में विचार-विमर्श करते हों (उस प्रकार उस समय श्रीराम और हनुमान विचार-विनिमय करते हुए जान पड़ते थे) । ६८ हनुमान ने तीन सौ योजन लम्बी अर्थात् विशाल लंका (का चित्र) अंकित करके श्रीराम को दिखा दी । उसने समस्त घरों का हिसाब करके उसमें स्थान-स्थान पर उन्हें दिखा दिया । ६९ (उसने कहा—) 'समझिए, जो पन्ना या मरकत नामक (रत्न-सा मूल्यवान) पाषाण (—विशेष) है, उसके (बनाये हुए) पाँच लाख घर हैं, (उसी प्रकार) सात लाख देदीप्यमान घर ईंटों के (बने हुए) हैं । ७० शुद्ध ताँबे और काँसे के पाँच करोड़ स्वच्छ (उज्ज्वल दीखने

जाण। सात लक्ष देदीप्यमान। विटबंदी मंदिरें। ७० ताम्र आणि कांसें निखिळ। तयांचीं पांच कोटी सदनें निर्मळ। सुवर्णाचीं अत्यंत सबळ। सात कोटी राघवेंद्रा। ७१ हेमरत्नीं अलंकृत। नवकोटी शिवालयें तेथ। रुद्राभिषेक नैवेद्य बहुत। त्रिकाळ चालविती राक्षस। ७२ असुरांच्या गृहीं पूर्ण। अग्नि-होत्र वेदाध्ययन। रुद्राक्षमाळा भूषण। विभूतिचर्चन करिती पैं। ७३ मुख्य रावणें सुबुद्धी-पूर्ण। टाकिलीं वेदांचीं खंडें करून। तप आचरती दारुण। ठायीं ठायीं राक्षस। ७४ ऐसें बोलतां वायुनंदन। रघुनाथ जाहला उद्विग्न। ऐसी लंका पुण्यपरायण। ते मज सर्वथा नाटोपे। ७५ ऐसें जेथें सत्कर्माचरण। तेथें नांदे यश:कीर्ति कल्याण। तरी तें हातां न ये लंकाभुवन। बहु यत्न करितांही। ७६ तेव्हां क्षण एक रघुनाथ। निवान्त न बोले चिंताक्रान्त। भोंवते वानर तटस्थ। पाहूं लागले ते

वाले) घर हैं। हे राघवेन्द्र, सुवर्ण के बने हुए अत्यन्त मजबूत सात करोड़ मकान हैं। ७१ वहाँ शिवजी के सोने तथा रत्नों से सजाये हुए नौ करोड़ मंदिर हैं। राक्षस उनमें तीनों काल (अर्थात् प्रात:काल, अपराह्न तथा सायंकाल) रुद्र (-मंत्र) पठन सहित अभिषेक करते हुए बहुत नैवेद्य (भोग) चढ़ाते हैं। ७२ (उसमें) असुरों के समस्त घरों में अग्नि-होत्र सम्पन्न होता है और वेदों का अध्ययन चलता है। वे रुद्राक्षों की मालाओं रूपी अलंकार धारण करते हैं और विभूति अर्थात् भस्म लगाते हैं। ७३ विशेष (बात) यह (है) कि पूर्ण सद्बुद्धि से रावण ने वेदों को खण्डों में विभक्त कर डाला है और स्थान-स्थान पर राक्षस तप का घोर आचरण कर रहे हैं।' ७४ ‡

हनुमान के ऐसा कहने पर श्रीराम उद्विग्न हो गये और उन्होंने सोचा— लंका ऐसी पुण्य-परायण है, तो वह मेरे द्वारा कदापि वश में नहीं की जा पाएगी। ७५ जहाँ ऐसे सत्कर्म का आचरण होता है, वहाँ सफलता, कीर्ति और कल्याण का निवास होता है। अत: बहुत यत्न करने पर भी वह लंका-भुवन हाथ में नहीं आ सकेगा। ७६ तब रघुनाथ क्षण भर शान्त (बैठे) रहे। चिन्ताक्रान्त होकर उन्होंने (कुछ भी) नहीं कहा। उस समय चारों ओर (उपस्थित) वानर तटस्थ होकर देखते

---

‡ टिप्पणी : छन्द ७४ और १८४ (१) वाल्मीकि-रामायण (उत्तर काण्ड) के अनुसार रावण 'वेद-विद्या-निष्णात' एवं 'आचार-सम्पन्न' था। (२) कहते हैं कि रावण ने शाखाओं के क्रम के अनुसार वेदों का विभाजन किया। इसके अतिरिक्त, उसने ऋग्वेद के एक भाष्य की भी रचना की थी और वेदों का एक (शेष पेज ७०९ पर देखें)

काळीं । ७७ मग श्रीराम म्हणे मारुती । तुवां सांगितली राक्षसांची स्थिती । परी दया क्षमा उपरती । शांति विरक्ति मुख्य जया । ७८ शौच आणि धर्म दान । असुर करिती कीं अनुदिन । यावरी सीतासंतापहरण । काय वचन बोलिला । ७९ क्षमा दया शुद्ध अंतर । शौच दान धर्म पवित्र । हें लंकेमाजी अणुमात्र । सर्वथाही नसेचि । ८० परम अधर्मी निर्दय असुर । कापटचचर्या तपें क्रूर । अत्यंत खळ दुराचार । मद्यप्राशक उन्मत्त ते । ८१ मारुतीचें वचन ऐकूनी । हास्यमुख होय चापपाणी । तरी लंका घेईन ये क्षणीं । पापखाणी वसती तेथें । ८२ अंतरीं दया क्षमा नाहीं । मग व्रतें तपें जाळिसी काई । तो जरी पढला शास्त्रें साही । व्यर्थ काय ते वटवट । ८३ नटांमाजील कामिण । कीं कोलाटियाचें शूरत्व पूर्ण । कीं भ्रष्टाचें तत्त्वज्ञान । कीं शांति पूर्ण सर्पाची । ८४ कीं विधवेचें नवयौवन । कीं

रहे । ७७ अनन्तर श्रीराम ने कहा— 'हे हनुमान, तुमने राक्षसों की स्थिति बता दी । परन्तु (कह दो कि) क्या वे प्रतिदिन जिसमें दया, क्षमा, उपरति (वैराग्य), शान्ति और विरक्ति मुख्य है, ऐसी (आचार-विचार-) शुद्धि तथा धर्म (-बुद्धि) से युक्त दान करते हैं ?' (सुनिए) इस पर (सीता के सन्ताप को दूर करनेवाले) हनुमान ने क्या कहा । ७८-७९ (उसने कहा—) 'क्षमा, दया, शुद्ध अन्तःकरण, (आचार-विचार सम्बन्धी) शुद्धि, दान तथा पवित्र धर्म (-भावना)— लंका में ये (गुण) अणु-भर तक—बिल्कुल हैं ही नहीं । ८० वे राक्षस परम अधर्मी तथा निर्दय हैं । कपट-पूर्ण आचरण तथा उग्र तप करते हैं । वे अत्यन्त खल एवं दुराचारी हैं, मद्यपी और उन्मत्त हैं । ८१ हनुमान की (ये) बातें सुनकर चापपाणि श्रीराम मुस्करा दिये । (वे बोले—) 'तब तो मैं इस क्षण लंका (वश में कर) लूँगा । वहाँ तो पापों की खानों का निवास (अस्तित्व) है । ८२ अन्तःकरण में क्षमा, दया न हो, तो फिर व्रत तथा तप क्या जला दोगे (व्यर्थ करते रहोगे) ? ऐसा व्यक्ति यद्यपि (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छंद और निरुक्त-ये) छहों शास्त्र पढ़ चुका हो, तो भी उसकी बड़बड़ाहट व्यर्थ ही है । ८३ (उन राक्षसों का तपाचरण उस प्रकार अर्थहीन है, जिस प्रकार) नटों में कामिनी (आचरण-शून्य) होती है, अथवा नट या बाजीगर का सम्पूर्ण शौर्य (व्यर्थ) होता है, अथवा (आचार-) भ्रष्ट व्यक्ति का तत्त्व-ज्ञान अथवा सर्प की (अपनायी हुई) सम्पूर्ण शान्ति व्यर्थ होती है, अथवा

ग्रामथिल्लरींचें जीवन। कीं अनामिकाचें रम्य सदन। कीं मुखमंडण वेश्येचें। ८५ कीं गर्भांधाचे विशाळ नयन। कीं बधिराचे शोभायमान कर्ण। कीं अजाकंठींचे स्तन। कीं आचरण जाराचें। ८६ कीं सावचोराचे गोड बोल। कीं मैंदांची शांति खोल। वाटपाडे निर्मळ। निरंजनीं बैसले। ८७ कीं दाट लागलें कंटकवन। कीं दांभिकांचें व्यर्थ भजन। तैसें भूतदयेवांचून। ज्ञान ध्यान व्यर्थचि। ८८ त्याचा एकान्त व्यर्थ देख। जैसे बिळीं बैसले मूषक। शांति त्याचीं जैसा बक। मत्स्यहरणार्थ बैसला। ८९ भस्म अंगीं चर्चित साचार। जैसा उकरडां लोळे खर। कीं अरण्यांत वसती निरंतर। वृक व्याघ्र जैसे कां। ९० तेणें तीर्थीं केला वास। तरी काय थोडे आहेत वायस। कीं तीर्थजळीं मंडूक विशेष।

विधवा का नव-यौवन, अथवा गाँव के गड्ढे का पानी, अथवा अन्त्यज का सुन्दर घर और वेश्या के मुख का सौन्दर्य व्यर्थ होता है, अथवा गर्भान्ध (जन्मान्ध) के विशाल नयन या बहरे के शोभायमान कान, अथवा बकरी के गले में उत्पन्न स्तन व्यर्थ होते हैं या जार व्यक्ति का (तप आदि कृत्यों का) आचरण व्यर्थ होता है, अथवा प्रतिष्ठित दिखायी देनेवाले चोर के मीठे-मीठे वचन व्यर्थ होते हैं, या डाकू की गहरी शान्ति व्यर्थ ही होती है, बटमार निर्मल एकान्त स्थान में बैठ गये हों, (तो भी वह व्यर्थ है, उसी प्रकार उन राक्षसों का तपाचरण अर्थहीन है।) अथवा काँटों (से युक्त पेड़-पौधों) का घना वन बन गया हो, तो वह व्यर्थ ही होता है; अथवा दाम्भिक (पाखण्डी) व्यक्ति द्वारा किया जानेवाला भजन व्यर्थ होता है, उसी प्रकार बिना भूत-दया के ज्ञान, ध्यान व्यर्थ ही होता है। ८४-८८ देखिए, उस पाखंडी व्यक्ति का एकान्त (-वास करते हुए ध्यानस्थ बैठना) उस प्रकार व्यर्थ है, जिस प्रकार चूहा बिल में बैठ गया हो (अर्थात् बिल में बैठे रहने पर भी उसके अवगुणों का लोप नहीं होता, वैसे ही एकान्त में रहने पर भी पाखण्डी व्यक्ति का पाखण्ड दूर नहीं हो जाता)। उस (पाखण्डी) व्यक्ति की शान्ति उस प्रकार की (शान्ति) है, जैसे बगुला मछली को पकड़ने के लिए शान्ति धारण करके बैठा हुआ हो। ८९ वह अंग में भस्म लगाता है परन्तु यह वैसा ही जान पड़ता है जैसे गधा कूड़े-खाने (घूरे) में लोटता हो। अथवा उसका अरण्य में निरन्तर रहना वैसे ही है, जैसे भेड़िये और बाघ रहते हैं। ९० उसने तीर्थ क्षेत्र में निवास किया, परन्तु (उस तीर्थ क्षेत्र में) क्या कौए कम

वटवती विशेषें। ९१ तेणें पाहिल्या चौसष्ट कळा। परी तितुक्या जाणाव्या विकळा। दया क्षमेचा नसतां जिव्हाळा। कळा त्या विकळा जाणिजे। ९२ तेणें केलें वेदाध्ययन। जैसा खरावरी वाहिला चंदन। षड्रसपाकीं दर्वी पूर्ण। व्यर्थ जैसी फिरूनियां। ९३ त्याचें वरिवरी कीर्तन। कीं गोरियाचें गायन। कीं मद्यपियाचें भाषण। शब्दज्ञान तैसें त्याचें। ९४ जैसें वृंदावनफळ। वरिवरी दिसे निर्मळ। कीं धोत्राफळ रसाळ। फणसासम दिसे पैं। ९५ अवघा वेळ चुना मथितां। परी नवनीत नलगे हाता। सिकताहरळ शिजवितां। मवाळ नव्हे कल्पांतीं। ९६ तुंबिणीचें अत्यंत कडू फल। शर्करेंत ठेविल्या सर्वकाळ। परी तें अंतरीं गोड होईल। हें कल्पांतींही घडेना। ९७

हैं ? तीर्थ-जल में विशेषतः मेंढक तो होते हैं, जो विशेषरूप से टर्राते हैं। ९१ उसने चौंसठ कलाओं को (अभ्यास करके) देख लिया— अर्थात् जान लिया हो, तो भी समझिए कि उसमें उतनी ही विकलाएँ हैं। (यदि) उसमें दया, क्षमा के प्रति आत्मीयता न हो, तो उन कलाओं को विकला समझिए। ९२ उसने वेदों का अध्ययन किया हो, तो वह उस प्रकार व्यर्थ है जैसे कि गधे पर चन्दन (व्यर्थ ही) डाल दिया हो। (मधुर, कटु, कषाय, आम्ल, क्षार और तीखा इन) छहों रसों से युक्त अन्न में फिरते रहने पर भी जिस प्रकार कलछी व्यर्थ ही रहती है, अर्थात् रसों का स्वाद कर लेने में असमर्थ रहती है, उसी प्रकार पाखण्डी व्यक्ति वेदों का अध्ययन करे, तो भी उसका उसपर कोई अच्छा प्रभाव नहीं होता। ९३ उसके द्वारा किया हुआ (हरि-) कीर्तन व्यर्थ है—अथवा वह मानो बहेलिया का गायन है (जो अर्थहीन होता है), अथवा वह मद्यपी का भाषण है अर्थात् वह व्यर्थ प्रलाप मात्र है, वैसे ही उसका (ज्ञान) शब्द-ज्ञान (मात्र) है। ९४ जिस प्रकार वृन्दावन (= इनारू) का फल ऊपर ही ऊपर निर्मल दीखता है, अथवा धतूरे का फल कटहल के समान दिखायी देता है, लेकिन उसका ऐसा दीखना व्यर्थ है, उसी प्रकार पाखण्डी का सुन्दर बाह्य रूप व्यर्थ होता है। ९५ पूरे (बहुत) समय तक चूने को मथने पर भी मक्खन हाथ नहीं आता, अथवा बालू को पकाने पर भी वह कल्पान्त (तक) में (भी) मृदु नहीं हो सकती। (उसी प्रकार पाखण्डी व्यक्ति पर संस्कार करते रहना व्यर्थ है।) ९६ तूँबे के अत्यधिक कड़वे फल को सब काल शक्कर में रखने पर भी वह अन्दर मीठा हो जाएगा— यह कल्पान्त (तक) में घटित नहीं हो सकेगा। ९७

चुना माखोनि वायस । बळेंचि जाहला राजहंस । परी जाय विष्ठा शोधावयास । व्यर्थ वेष कासया । ९८ यालागीं ऐक हनुमंता । दया क्षमा हृदयीं नसतां । जप तप ध्यान तत्त्वतां । व्यर्थ गेलें निर्धारें । ९९ तरी जे लंकावासी असुर । करीन अवध्यांचा संहार । ऐकतां आनंदले वानर । देती भुभुःकार एकदांचि । १०० असो ब्रह्मपत्र मागें वाचिलें । तें विरंचीनें होतें लिहिलें । हनुमंतें लंकादहन केलें । परी नगर झालें सुवर्णाचें । १ ते ऐकोनियां मात । आश्चर्य करी कौसल्यासुत । मग जांबुवंतासी पुसत । हा वृत्तांत कैसा असे । २ तूं बहुकाळाचा पुरुष । देखिलें ऐकिलें बहुवस । तो ब्रह्मयाचा अंश । अयोध्याधीश म्हणोनि पुसे । ३ वयें गुणें तपें बहुत । वडील असे जांबुवंत । सांगे पूर्वील वृत्तान्त । जैं लंका नगर वसत पैं । ४ जैं केलें गजेंद्रोद्धारण । वेगें परतला रमारमण । तों

कौआ चूने को शरीर में हठ-पूर्वक मलकर राजहंस (-सा श्वेत वर्ण भले ही) हो जाए, फिर भी (अन्त में) वह विष्ठा (ही) खोजने जाएगा। (अतः) व्यर्थ ही (बाह्य सुन्दर) वेश क्यों धारण करें ? ९८ इसीलिए सुनो, हे हनुमान ! हृदय में दया, क्षमा के न रहने पर (उन राक्षसों का) जप, तप, ध्यान (करना) वस्तुतः निश्चय ही व्यर्थ हो गया है। ९९ अतः मैं लंका-निवासी उन समस्त असुरों का सँहार कर डालूँगा।' यह सुनकर वानर आनंदित हो गये और उन्होंने एक साथ ही भुभुःकार कर दिया। १००

अस्तु। ब्रह्मा द्वारा लिखित पत्र इससे पहले पढ़ा (जा चुका है)। वह ब्रह्मा ने (अपने हाथों) लिखा था। (आप जानते हैं कि) हनुमान ने लंका को जला डाला, परन्तु (तदनन्तर) वह नगरी सोने की हो गयी। १०१ वह बात सुनकर श्रीराम को आश्चर्य हुआ। फिर उन्होंने जाम्बवान से पूछा— 'यह कैसा (अद्भुत) समाचार है ? २ तुम तो बहुत पुराने काल के, अर्थात् बहुत वृद्ध पुरुष हो, तुमने बहुत देखा (और) सुना है।' वह (जाम्बवान) तो ब्रह्मा का अंश था; * इसलिए अयोध्याधीश श्रीराम ने उससे यह पूछा। ३ अवस्था, गुण, तप में जाम्बवान (उन सबसे) बड़ा था। उसने (वह) पूर्व-वृत्तान्त (पूर्वेतिहास) सुनाया, जिस प्रकार लंका नगर बस गया। ४ (उसने

* टिप्पणी : जाम्बवान प्रजापति ब्रह्मा और रक्षा का पुत्र था।

कर जोडूनि सुपर्ण। क्षुधेनें बहु व्यापिला। ५ मग बोले श्रीकरधर। गजेंद्रनक्रांचीं कलेवरें थोर। तीं भक्षून येईं सत्वर। ऐकोनि पक्षींद्र उडाला। ६ नक्रगजेंद्रांचीं कलेवरें दोनी। उरगारि घेऊन उडे गगनीं। तों भृभंग पक्षी येऊनी। विभाग मागे खगेंद्रा। ७ गरुडें न लागतां क्षण। भृभंगाचा घेतला प्राण। जंबूवृक्षाची शाखा पाहून। वैनतेय बैसला। ८ तों साठ सहस्र बालखिल्यें। तिहीं त्या शाखेसी टांगून घेतलें। अरुणानुजें बळ तुळिलें। तों शाखा विशाळ मोडिली। ९ शतयोजनें शाखा

कहा—) जैसे ही रमारमण भगवान विष्णु ने गजेन्द्र का उद्धार किया ※ और वे वेगपूर्वक लौट आये, तो गरुड़ हाथ जोड़कर (उनके सामने) खड़ा हो गया। उसे भूख ने बहुत व्याप्त किया था-- अर्थात् वह बहुत भूखा था। ५ तब श्रीविष्णु बोले—'गजेन्द्र और नक्र (मगर) के शरीर बड़े हैं, उन्हें खाकर तुम झट से आ जाओ।' यह सुनकर पक्षिराज गरुड़ उड़ गया। ६ नक्र और गजेन्द्र के उन कलेवरों को लेकर गरुड़ आकाश में उड़ गया, तो एक काकातूआ पक्षी ने आकर (उन कलेवरों में से) अपना हिस्सा उससे माँग लिया। ७ तब एक क्षण तक न लगते, गरुड़ ने उसके प्राण छीन लिये। (तत्पश्चात्) एक (स्वर्ण-) जम्बू वृक्ष की शाखा को देखकर गरुड़ उसपर बैठ गया। ८ वहाँ तब साठ सहस्र वालिखिल्य † थे। वे भी शाखा से लटक रहे थे; तब अरुण के छोटे बन्धु गरुड़ ने § अपनी शक्ति को आज़माया, तो वह विशाल शाखा टूट गयी। ९ वह शाखा सौ योजन बड़ी (लम्बी) थी। उसके नीचे

※ टिप्पणी : गजेन्द्र का उद्धार : कर्दभ प्रजापति के देवहूती से उत्पन्न दो पुत्र थे—जय और विजय। वे भगवान विष्णु के परम-भक्त और यज्ञ-कर्म में कुशल थे। एक बार मरुत राजा के निमंत्रण पर वे उसके यज्ञ में ब्रह्मा और याजक के रूप में उपस्थित थे। राजा से प्राप्त दक्षिणा के बँटवारे के बारे में उन दोनों में झगड़ा आरम्भ हो गया, तो मारे क्रोध के जय ने विजय को 'नक्र' (मगर) होने का और विजय ने जय को 'गज' (हाथी) होने का अभिशाप दिया। परन्तु शीघ्र ही उन्हें पछतावा हुआ, तो वे दोनों विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने उन्हें अभिवचन दिया, 'अभिशाप की अवधि समाप्त होने पर मैं तुम्हारा उद्धार करूँगा।' उक्त अभिशाप के फलस्वरूप वे गज और नक्र के रूप में गंडकी नदी के तट पर रहने लगे। एक दिन गज कार्तिक स्नान के हेतु जब नदी के पानी में उतर गया, तो नक्र ने उसका पाँव पकड़कर अन्दर खींचना शुरू किया। तब गज ने विष्णु को रक्षणार्थ आर्त रव में पुकारा; उसे सुनकर वे वहाँ तत्काल पहुँच गये, और गज की रक्षा करते हुए तथा नक्र को मारकर उन्होंने दोनों का उद्धार किया। (तत्पश्चात् वे दोनों विष्णु-लोक गये, जहाँ भगवान के द्वारपालों के रूप में रहने लगे।)

† § इन निशानों की टिप्पणियाँ ६९९ पृष्ठ पर पढ़िए।

थोर। पडतां मृत्यु पावतील विप्र। शाखा हातीं मुखीं गजनक्र। कश्यपसुत उडाला। ११० मग बोले विष्णुवहन। म्हणे मी कोणास जाऊं शरण। शाखा सोडितां ब्राह्मण। साठ सहस्र मरतील। १११ कश्यप बैसला अनुष्ठानीं। त्यावरी पक्षीं छाया धरिली गगनीं। ' तो वरुतें पाहे विलोकूनी। तंव सुत संकटीं पडियेला। १२ तेव्हां कश्यप ऋषीनें प्रार्थून। खालीं उतरविले ब्राह्मण। मग कश्यप म्हणे पुत्रालागून। शाखा येथें न ठेवीं। १३ या शाखेकारणें पूर्ण। मानव घेतील एकमेकांचा प्राण। मग विहंगोत्तमें शाखा उचलून। लंकागिरीवरी

गिरने से वे ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त हो जाएंगे, (इस डर से) कश्यप-पुत्र गरुड़ हाथों में उस शाखा को और मुख में हाथी और मगर के कलेवरों को लिये हुए उड़ गया। ११० अनन्तर विष्णु के वाहन उस गरुड़ ने कहा (सोचा)--(अब इस स्थिति में) मैं किसकी शरण में जाऊँ? शाखा को हाथों से छोड़ते ही साठ सहस्र ब्राह्मण मर जाएंगे। १११ उस समय कश्यप ऋषि अनुष्ठान में बैठा (हुआ) था। उस पर गरुड़ ने अपने पंखों से आकाश में से छाया की। तब कश्यप ने ऊपर (की ओर) ध्यान से देखा, (तो दिखायी दिया कि) उनका पुत्र संकट में पड़ा हुआ है। १२ तब कश्यप ने प्रार्थना करते हुए उन ब्राह्मणों को (शाखा से) नीचे उतार लिया। फिर कश्यप ने अपने पुत्र गरुड़ से कहा— ' (यह) शाखा यहाँ न रखो। १३ इस शाखा के कारण मानव

---

† टिप्पणी : वालिखिल्य : ऋषियों का एक समुदाय, जो अंगूठे भर कद-वाले साठ हज़ार ऋषियों का बना हुआ था। ये ऋषि प्रजापति ब्रह्मा के बालों से उत्पन्न हुए थे। वे अखण्ड तपस्या करते थे और सूर्य की भक्ति करते हुए सूर्यलोक में निवास करते थे। वे पक्षियों की भाँति एक-एक दाना बीनकर उदर-भरण करते थे और वट-वृक्ष या अन्य वृक्ष की शाखा से उलटे लटके हुए तपस्या करते थे। कहते हैं, उनके छोटे-छोटे शरीरों को देखकर एक बार जब इन्द्र ने उनका उपहास किया, तो वे तपस्या द्वारा दूसरे इन्द्र के निर्माण के लिए कटिबद्ध हो गये। परन्तु कश्यप ऋषि द्वारा समझाने-बुझाने पर वे अपने संकल्प को छोड़कर पक्षियों के इन्द्र का निर्माण करने के लिए यत्नशील हो गये। फिर उन्होंने अपनी तपस्या और यज्ञ का फल कश्यप को प्रदान किया। वही फल कश्यप से विनता को प्राप्त हुआ, जिससे गरुड़ का जन्म हुआ। तदनन्तर वालिखिल्यों ने गरुड़ का पक्षियों के राजा के रूप में अभिषेक किया। (इससे स्पष्ट होता है कि गरुड़ को वालिखिल्यों के प्रति क्यों आत्मीयता थी।)

§ कश्यप और विनता के दो पुत्र थे : अरुण और गरुड़। (अरुण सूर्य का सारथी नियुक्त हुआ, तो गरुड़ विष्णु का वाहन।) अतः गरुड़ को ' अरुणानुज ' और ' कश्यप-पुत्र ' कहा है।

आला। १४ तिवडा पाय त्याचा रुतला। तोच हा त्रिकूटाचल जाहला। गरुडें आहार तेथें घेतला। टाकूनि गेला शाखा तेथें। १५ त्यावरी मग लंका वसिन्नली। ते सुवर्णशाखा असे तळीं। हनुमंतें लंका जाळिली। मूस ओतली शाखेची। १६ यालागीं सुवर्णाची लंका। जाहली जाण अयोध्यानायका। तों अर्कज म्हणे मुहूर्त निका। ये समयीं असे पैं। १७ विजया-दशमी नक्षत्र श्रवण। ते दिवशीं निघाला रघुनंदन। पूर्वीं रघू हाचि मुहूर्त पाहून। दिग्विजयासी गेला होता। १८ सर्व शुभ योग ते क्षणीं। जयतिथी माळा घेऊनी। दशकंठरिपूचे चरणीं। मिठी घाली तेधवां। १९ साह्य सुग्रीव किष्किंधेश्वर। उठले अठरा पद्में वानर। बहात्तर कोटी रीस वीर। त्यांचा नृपवर जांबुवंत। १२० छप्पन्न कोटी गोलांगूळ। भुभु:कार देती

एक-दूसरे के प्राण लेंगे।' फिर वह पक्षि-श्रेष्ठ शाखा को उठाये हुए लंका-पर्वत पर आ गया। १४ उसका पाँव (वहाँ) टेढ़ा धँस गया-- वही यह त्रिकूटाचल * हो गया। गरुड़ ने वहाँ आहार ग्रहण किया और उस शाखा को वहाँ (पर) छोड़कर वह चला गया। १५ उस (पर्वत) पर लंका बस गयी। वह सुवर्ण शाखा तो उसके तल में रही है। हनुमान ने लंका को जला डाला वह इससे उस शाखा रूपी घड़िया में ढल गयी। १६ इस कारण, हे अयोध्यानाथ, वह लंका सोने की हो गयी। तब सुग्रीव ने कहा-- 'इस समय सुन्दर (शुभ) मुहूर्त है।' १७ उस दिन विजयादशमी (दशहरा) थी, नक्षत्र श्रवण था। उस दिन श्रीराम ने प्रस्थान किया। पूर्वकाल में रघु ‡ इसी मुहूर्त को देखकर (निर्धारित करके) दिग्विजय के लिए निकला था। १८ उस क्षण समस्त शुभयोग (एकत्रित) थे, अत: जय तिथि अर्थात् विजय प्राप्त करा देनेवाली उस तिथि ने (हाथ में) जय-माला लिए हुए तब रावणारि श्रीराम के चरणों का आलिंगन किया। १९ किष्किन्धा-पति सुग्रीव उनका सहायक हो गया। (उसके साथ) अठारह पद्म वानर उठ गये-- तत्पर हो गये। (वहाँ) बहत्तर करोड़ वीर रीछ भी थे। उनका राजा था जाम्बवान। १२० छप्पन करोड़ गोलांगुल थे। उन्होंने

---

* टिप्पणी : त्रिकूटाचल— 'कूट' का अर्थ है शिखर। त्रिकूटाचल के तीन शिखर हैं, जिनमें से एक पर लंका बसी हुई है।

‡ रघु : राम के पूर्वजों में से एक महाप्रतापी राजा, जिसके नाम पर उसके कुल को रघुकुल कहते हैं।

एकचि वेळ । दणाणलें उर्वीमंडळ । धाकें निराळ कांपतसे । २१ काद्रवेयकुळभूषण तेव्हां । सरसावीत खालती ग्रीवा । यज्ञवराहें दंत बरवा । दृढ धरिला उचलोनी । २२ कूर्म पृष्ठी सरसावीत। दिग्गज जाहले भयभीत । मंगळजननी कांपत । भुभुःकार कानीं ऐकतां । २३ वनचर आणि खेचर । भयभीत जाहले थोर । धडके वाद्यांचा गजर । नादें अंबर कोंदलें । २४ रथारूढ जैसा सहस्रकर । कीं सौपर्ण श्रीकरधर । हनुमंतस्कंधीं रघुवीर । तैसा शोभला ते काळीं । २५ नंदीवरी बैसे कर्पूरगौर । कीं ऐरावतारूढ सहस्रनेत्र । अंगदस्कंधावरी सौमित्र । त्याचपरी शोभला । २६ किरणचक्रीं विराजे तमारी । कीं कुळाचळांमाजी कनकाद्री । कीं निजगणांमाजी स्मरारी । तैसा वानरीं राम वेष्टिला । २७ कीं मंथावया क्षीरसागर । मिळोनि निघाले

एक ही समय (अर्थात् एक साथ) भुभुःकार किया, तो भू-मण्डल दनदना उठा और मारे डर के आकाश काँप उठा । २१ काद्रवेय कुल-भूषण शेषनाग ने (पृथ्वी के नीचे) अपनी गरदन को सँवारा (सीधा किया) और यज्ञ-वराह ने अपने सुन्दर दाँत को उभार कर दृढ़ता से पकड़ लिया । २२ कूर्म (कछुए) ने अपनी पीठ ठीक (सीधी) की, दिग्गज भयभीत हो गये । भुभुःकार को कानों से सुनते ही भूमि काँप उठी । २३ वनचर और (आकाश या अन्तरिक्ष में रहते हुए विचरण करनेवाले सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रह तथा विद्याधर आदि) खेचर बहुत भयभीत हो गये । वाद्यों का गर्जन धड़धड़ा उठा, जिसके नाद से आकाश भर गया । २४ उस समय हनुमान के कंधे पर विराज-मान श्रीराम उसी प्रकार शोभायमान (दिखायी दे रहे) थे, जिस प्रकार सहस्र-किरण सूर्य रथ में, अथवा लक्ष्मीपति विष्णु सुपर्ण गरुड़ पर (आरूढ़ होने पर) शोभायमान होते हैं । २५ जिस प्रकार कर्पूर-धवल शिवजी नन्दी पर बैठे (हुए शोभायमान दिखायी देते) हों, अथवा सहस्रनयन इंद्र ऐरावत पर आरूढ़ (होने पर शोभायमान होते) हों, उसी प्रकार अंगद के कंधे पर (बैठा हुआ) लक्ष्मण शोभायमान (दीख रहा) था । २६ जिस प्रकार सूर्य किरणों के चक्र में विराजमान होता है, अथवा कुल-पर्वतों के बीच स्वर्ण मेरु स्थित है, अथवा शिवजी अपने गणों के बीच बैठे हुए हों, उसी प्रकार श्रीराम वानरों से घिरे हुए थे । २७ अथवा जिस प्रकार सुर और असुर इकट्ठा होकर (अमृत-प्राप्ति के हेतु) क्षीर-सागर का मन्थन करने के लिए (गर्जन करते हुए) चले जा रहे थे, उसी प्रकार

सुरासुर। तैसेच गर्जत वानर। दक्षिणपंथें चालिले। २८
विशाल वृक्ष उपडिती। छत्र रामावरी धरिती। वृक्षपल्लव
घेऊन हातीं। चवरें वीजिती रामावरी। २९
दशयोजन रुंद सेना जातां। मार्गीं वानर म्हणती रघुनाथा।
आजी रावण घालूं पालथा। जनकदुहिता भेटवूं तुम्हां। १३०
एक बोले वानर वीर। मी जाऊन मारीन दशवक्त्र। एक वदे
न लागतां क्षणमात्र। मोट बांधून आणीन। ३१ एक म्हणे स्वामी
रघुनंदना। ऐसें वाटतें माझिया मना। रावणाच्या नासिककर्णां।
छेदून येईन झडकरी। ३२ एक म्हणे एकलाचि जाईन। लंका
पालथी घालीन। ऐकोनि सुखावे रघुनंदन। म्हणे हे सुरगण
अवतरले। ३३ दक्षिणपंथें भार जात। मार्गीं कपी उचलिती
पर्वत। कंदुकाऐसे झेलीत। धांवतचि आवेशें। ३४ समुद्र-
तीरास आले भार। भुभुःकार देती वानर। तेणें भयभीत
नदीश्वर। जाहला परम ते काळीं। ३५ जैसा वेद बोलत गेला

वानर दक्षिण (दिशा की ओर जानेवाले) पथ पर गरजते हुए जा रहे थे। २८ (चलते-चलते) वे विशाल वृक्षों को उखाड़ते और (उन्हें) श्रीराम पर छत्र (के रूप में) धरते। वे पेड़ों के पल्लव हाथ में लेकर ऐसे धर देते कि वे (पल्लव) श्रीराम पर चँवरों के समान शोभायमान दिखायी देते। २९ सेना के दस योजन चौड़ी फैल जाने पर मार्ग में वानरों ने कहा— 'हे रघुनाथ, आज हम रावण को हराएँगे और आपसे सीता को मिला देंगे।' १३० (इस पर) कोई एक वानर वीर बोला— 'मैं (लंका में) जाकर दशानन को मार डालूँगा।' तो किसी एक ने कहा— 'क्षण तक न लगते मैं (रावण को) गट्ठर (की तरह) बनाकर ले आऊँगा।' ३१ किसी एक ने कहा— 'हे स्वामी रघुनन्दन, मेरे मन को ऐसा लगता है। मुझे लगता है, रावण के नाक और कानों को छेदकर मैं झट से आ जाऊँ।' ३२ किसी एक ने कहा, 'मैं अकेला ही जाऊँगा (और) लंका को उलटकर औंधी कर डालूँगा।' यह सुनकर रघुनन्दन सुख को प्राप्त हो गये (और) बोले— '(जान पड़ता है,) ये तो देव-गण ही अवतरित हो गये हैं।' ३३ दक्षिण की ओर जानेवाले मार्ग पर (वानरों का) दल जा रहा था। मार्ग में वे वानर पर्वतों को उठा लेते थे, गेंदों-से उन्हें (उछाल देते और) लोक लेते थे और आवेश के साथ दौड़ते थे। ३४ (इस प्रकार लीला प्रदर्शित करते हुए वे) दल समुद्र तट तक आ गये। (तब) वानरों ने भुभुःकार किया, तो उससे उस

अद्भुत । स्वरूप देखोनि जाहला तटस्थ । तैसे वानरवीर समस्त । समुद्रतीरीं स्थिरावले । ३६ कीं राजहंसांच्या येऊन हारी । स्थिरावती मानससरोवरीं । तैसे ते समुद्रतीरीं । कपिकेसरी तटस्थ । ३७ दशयोजनें अद्भुत । सेना उतरली ओतप्रोत । असो लंकेमाजी वृत्तान्त । वर्तला तोचि परिसावा । ३८ कपिसहित अयोध्याविहारी । पातला सागराचे पैलतीरीं । ऐसी ध्वनि लंकेमाझारी । राक्षसेंद्रें आर्कणिली । ३९ शक्रजितादि सकळ कुमर । प्रहस्तादि प्रधान थोर थोर । त्यांसहित विंशतिनेत्र । बैसे विचार करावया । १४० परम सचिंत द्विपंचवदन । म्हणे शत्रु दंदशूक कृशान । हे सर्वथा न म्हणावे लहान । न लागतां क्षण विघ्न करिती । ४१ तरी सहपरिवारें येऊन । परतीरीं उतरला रघुनंदन । हा आकळे ऐसा मंत्र कोण । विचारूनि सांगा आतां । ४२ एकला येऊनि वानर । जाळून गेला लंकानगर ।

समय नदीपति समुद्र बहुत भयभीत हो गया । ३५ जिस प्रकार ब्रह्मा वेदों को बोलता (वाणी द्वारा प्रकट करता) गया और (उनमें प्रकट) अपने स्वरूप को देखकर स्तब्ध हो गया, उसी प्रकार समस्त वानर वीर समुद्र-तट पर स्थिरता को प्राप्त हो गये (रुक गये) । ३६ अथवा जैसे राजहंसों की पंक्तियाँ मानसरोवर के पास आकर स्थिर हो जाती हैं, उसी प्रकार वे कपि-सिंह समुद्र-तट पर तटस्थ हो गये (स्थिर होकर बैठ गये) । ३७ (इस प्रकार) दस-योजन (लम्बी-चौड़ी, विशाल) तथा अद्भुत सेना (समुद्र-तट पर) पूरी-पूरी उतर गयी (ठहर गयी) । अस्तु । (अब) लंका में जो घटना हुई, उसका समाचार सुनिए । ३८

लंका में राक्षस-राज रावण ने ऐसी ध्वनि (खबर) सुनी कि अयोध्या-विहारी श्रीराम कपियों सहित समुद्र के उस पार आ पहुँचे हैं । ३९ तब इंद्रजित आदि जो समस्त राजकुमार तथा प्रहस्त आदि जो बड़े-बड़े मंत्री थे, उनके साथ रावण विचार-विनिमय करने बैठ गया । १४० (उस समय) दशानन बहुत चिन्तित था । वह बोला— ' शत्रु, साँप और अग्नि—इनको छोटा बिलकुल नहीं कहें; (क्योंकि) वे क्षण तक न लगते विघ्न उपस्थित कर सकते हैं । ४१ इसलिए (जब कि) श्रीराम साथियों सहित (समुद्र के) उस पार ठहर गया है, अब विचार करके कोई ऐसी मंत्रणा दे कि (उसके बल पर) यह वश में आ जाए । ४२ अकेला वानर आकर लंकानगर को जलाकर लौट गया और (सीता का) पता बताकर

शुद्धी सांगोनि रामचंद्र । घेऊन आला वेगेंसीं । ४३ ऐसें बोलतां द्विपंचवदन । सकळ कुमर आणि प्रधान । जाहले परम क्रोधायमान । शस्त्रें तुळोनि बोलती । ४४ ते नर वानर आणि ऋक्ष । सहज आले आमुचे भक्ष । कृपाळू आम्हांवरी विरूपाक्ष । तेणेंच धाडोनि दीधले । ४५ तुम्हीं चिंता न करावी साचार । तुमचे शत्रूचा करूं संहार । आम्ही येऊं न लागतां क्षणमात्र । म्हणोनि शस्त्रें झाडिती । ४६ शक्रजित अतिकायादि कुमर । देवान्तक नरान्तक महोदर । धूम्राक्ष वज्रदंष्ट्री असुर । म्हणती नर वानर क्षणें जिंकूं । ४७ दूर असतां मृगनायक । मागें निंदा जल्पती जंबुक । कीं मिळोनि बहुत मंडूक । वासुकीसी जिंकूं म्हणती । ४८ तंव ते सभेमाजी बिभीषण । येता झाला सभा देखोन । जैसा वायससभेंत येऊन । राजहंस बैसला । ४९ जो विवेकरत्नांचा किरीट । कीं सद्गुणगंगेचा लोट । कीं भाववैरागरींचा सुभट । दिव्य हिरा प्रकाशला । १५० विवेकभूमीचें निधान । कीं

रामचन्द्र को लिये हुए वेगपूर्वक आ गया है । ' ४३ रावण के ऐसा कहते ही समस्त राजकुमार और मंत्री क्रुद्ध हो उठे । वे शस्त्रों को तोलते हुए बोले । ४४ ' वे वानर और रीछ, (जो) हमारे भक्ष्य हैं, सहज ही (बिना बुलाये या लाये) आ गये हैं । शिवजी परम कृपालु हैं— (जान पड़ता है), उन्हींने (इन्हें हमारे पास) भेज दिया है । ४५ आप सचमुच चिन्ता न करें । (विश्वास करें कि) क्षण मात्र (की देर) न लगते ही हम आपके शत्रु का संहार करेंगे । ' ऐसा कहते हुए वे शस्त्रों को झटकारने लगे । ४६ (इधर) इंद्रजित, अतिकाय आदि राजकुमार (और) देवान्तक, नरान्तक, महोदर, धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्री (आदि) राक्षस कहने लगे— ' (हम) नरों और वानरों को क्षण (-भर) में जीत लेंगे । ' ४७ (यह तो ऐसा ही हो रहा था, जैसे) मृगपति सिंह के दूर रहने पर (इधर उसके) पीछे सियार बकवास कर रहे हों, अथवा बहुत-से मेंढक इकट्ठा होकर कह रहे हों कि सर्पराज वासुकी को जीत लेंगे । ४८ तब सभा को देखकर विभीषण उसमें आ गया, जैसे कौओं की सभा में राजहंस ही आकर बैठ गया हो । ४९ वह (विभीषण मानो) विवेकरूपी रत्नों से जटित मुकुट ही हो, अथवा सद्गुणों की गंगा का प्रवाह हो, अथवा भावों की खान में उत्पन्न सुडौल दिव्य हीरा ही प्रकाशित हो गया हो (चमकने लगा हो) । १५० अथवा विवेकरूपी भूमि में स्थित धन-

भक्तिसमुद्राचें भरतें पूर्ण । कीं तें परमार्थवनींचें सुमन । अम्लान सुंदर विकासलें । ५१ असो ऐसा विभीषण थोर । न्यायसिंधु सत्यसमुद्र । सकळ खळांसी प्रत्युत्तर । देता जाहला ते वेळे । ५२ म्हणे वाचाळ तुम्ही परम दुर्जन । महाकपटी अंतरमलिन । दशमुखाभोंवते मिळोन । नाना कुतर्क करीतसां । ५३ यश धैर्य सकळ सद्गुण । सभाग्याची करणी ऐकोन । परम खेद मानिती दुर्जन । नसतें दूषण लाविती । ५४ परम कुमति जो बळहीन। मागें निंदा जल्पे रात्रंदिन । समरभूमीसी पळे उठोन । हें तों लक्षण श्वानाचें । ५५ सकळ दळासमवेत । जिंकूं म्हणतां अयोध्यानाथ । तरी येथें एकलाचि हनुमंत । आला होता निजबळें । ५६ जैसें करतळींचें आचमन । कीं गोवत्सपदींचें जीवन । तैसा ज्याचे दृष्टीं समुद्र पूर्ण । लंघोनि क्षणें आला तो । ५७ तेणें विध्वंसिलें सकळ नगर । रावणसभा नागविली

कोश हो, अथवा भक्तिरूपी समुद्र में आया हुआ पूर्ण ज्वार हो, अथवा उसके रूप में परमार्थ रूपी वन में उत्पन्न सुन्दर तथा अम्लान फूल ही विकसित हो गया हो । ५१

अस्तु । ऐसा बड़ा था वह विभीषण, जो (मानो) न्याय का तथा सत्य का समुद्र ही था । उस समय उसने उन समस्त खल-जनों को प्रति-उत्तर दिया । ५२ उसने कहा— ‘ तुम वाचाल, परम दुर्जन हो, महाकपटी तथा मलिन अन्तःकरणवाले, अर्थात् मन से पापी या आचारहीन हो। तुम दशानन के चारों ओर इकट्ठा होकर अनेकानेक अनुमान या विचार कर रहे हो । ५३ सफलता, धैर्य, समस्त सद्गुण तथा किसी सौभाग्यशाली की करनी सुनकर दुर्जन परम खेद अनुभव करते हैं और उसे अनावश्यक दोष देते हैं । ५४ जो बलहीन होता है, वह परम कुबुद्धि (से युक्त) होता है; वह (गुणवान तथा शक्तिमान के) पीछे रात-दिन निन्दा करता है और युद्ध-भूमि से उठकर भाग जाता है । यह तो कुत्ते का लक्षण है । ५५ समस्त सेना के साथ तुम अयोध्यानाथ श्रीराम को जीतने की कहते हो (जीतना चाहते हो) । परन्तु यहाँ तो अकेला हनुमान अपने बलबूते आया था । ५६ उसकी दृष्टि में पूरा समुद्र वैसा ही था, जैसे हथेली पर (रखा हुआ) आचमन (का जल) हो, अथवा गोपद में (भरा हुआ) पानी हो । उसे लाँघकर क्षण (मात्र) में वह (यहाँ) आ गया था । ५७ उसने समस्त नगर को उध्वस्त कर डाला; रावण की सभा (में उपस्थित लोगों) को नगिया (नंगा कर) लिया । उसी प्रकार उसने करोड़ों राक्षसों का अशोकवन में संहार कर डाला । ५८ उसने समस्त राजपुत्रों को मार डाला, इन्द्रजित को विवर में बन्दकर रख

समग्र। कोटचनुकोटी निशाचर। अशोकवनीं संहारिले। ५८ राजसुत मारिले समस्त। विवरीं कोंडिला शक्रजित। लंका जाळून अद्भुत। पुरुषार्थ तेणें दाविला। ५९ ते वेळे तुमचें बळ। काय जाहलें होतें विकळ। आतां रावणाभोंवते सकळ। पुरुषार्थ आपुला सांगतां। १६० नाना पाखंडी दुर्जन यवन। इहीं वेदांसी ठेविलें दूषण। परी वंदिती कीं विद्वज्जन। ज्ञानसंपन्न धर्मात्मे। ६१ कमळासी निंदिती दर्दुर। परी सहसा न विटेचि भ्रमर। चंद्रासी निंदिती तस्कर। परी ते चकोर आनंदती। ६२ खळ ते निंदिती पंडित। परी कुशल वंदिती समस्त। वायस मुक्तें वोसंडित। परी मराळ न वीटती। ६३ मूढासी न कळे कस्तूरी। पंक म्हणोनि टाकिती दूरी। परी श्रीमंत अहोरात्रीं। हृदयीं शिरीं धरितात़ी। ६४ दिवाभीता नावडे अर्क। परी आनंदती चक्रवाक। अंधें टाकिलें रत्न सुरेख। परी परीक्षक संरक्षिती। ६५ तैसा जगद्वंद्य रघुवीर। जयासी हृदयीं ध्याय

और लंका को जलाकर अद्‌भुत पुरुषार्थ का प्रदर्शन किया। ५९ उस समय क्या तुम्हारा बल खंडित हो गया था, (जो) अब रावण के चारों ओर इकट्ठा होकर तुम सब अपना पुरुषार्थ कह रहे हो (अपने पुरुषार्थ का बखान कर रहे हो)। १६० (जो) अनेकानेक पाखंडी, दुर्जन, यवन हैं, इन्होंने वेदों को दोष दिया, फिर भी विद्वान लोग, ज्ञान-सम्पन्न तथा धर्मात्मा (पुरुष) उनका वन्दन ही तो करते हैं। ६१ मेंढक कमल की निन्दा करते हैं, परन्तु भौंरा साधारणत: उससे नहीं ऊब जाता। चोर चन्द्र की निन्दा करते हैं, फिर भी वे चकोर (उसे देखकर) आनन्दित होते हैं। ६२ खल (दुर्जन) तो पण्डितों की निन्दा करते हैं, परन्तु समस्त बुद्धिमान लोग उनका वन्दन करते हैं। कौए मोतियों को त्याग देते हैं, परन्तु हंस उनसे नहीं ऊबते। ६३ मूढ़ (नासमझ) मनुष्यों को कस्तूरी की पहचान नहीं होती, अत: वे उसे कीचड़ समझकर दूर फेंक देते हैं, परन्तु धनवान लोग उसे रात-दिन हृदय और मस्तक पर धारण करते हैं। ६४ उल्लू को सूर्य नहीं भाता, परन्तु चक्रवाक (चकवे) तो (उसके दर्शन से) आनन्दित हो जाते हैं। अंधे ने रत्न को फेंक दिया हो, तो भी पारखी उसकी रक्षा करते हैं। ६५ वैसे ही रघुवीर श्रीराम जगद्‌वंद्य हैं, जिनका उमापति शिवजी हृदय में ध्यान करते हैं और जिनका स्तवन ब्रह्मा, इंद्र तथा शेष करते रहते हैं। ६६ सनकादि (ऋषि) हृदय में उनका ध्यान करते हैं। जो वेदरूपी उदय-गिरि पर (उदित) सूर्य ही है, वही यह पुराण-पुरुष आदि प्रकृति-सहित (मनुष्य रूप में) प्रकट हो

उमावर। कमलोद्भव सहस्रनेत्र। सहस्रवक्त्र स्तवी जया। ६६ सनकादिक हृदयीं ध्याती। जो वेदउदयाचळींचा गभस्ती। तो हा पुराणपुरुष आला व्यक्तीं। मूळप्रकृतीसमवेत। ६७ ब्रह्मांड-नगरस्तंभ अद्भुत। मायाचक्रचाळक शाश्वत। दशरथाचा पुण्यपर्वत। श्रीरामरूपें प्रगटला। ६८ तैसा वेदवंद्य रघुवीर। त्यासी तुम्ही निंदितां पामर। रावणासी झोंबला कामविखार। भुलला साचार म्हणोनि। ६९ कार्तवीर्याचे बंदीं जाऊन। पडिला होता द्विपंचवदन। परम पुरुषार्थी सहस्रार्जुन। भृगु-नंदनें वधिलें त्यासी। १७० जो क्षत्रियान्तक प्रळयरुद्र। त्यास जिंकी हा रामचंद्र। मतिहीन झाला विंशतिनेत्र। नोळखे स्वरूप तयाचें। ७१ वनचर न होती द्रुमपाणी। अवघे अव-तरले सुधापानी। अजून तरी हें मनीं जाणोनी। जानकी द्यावी

गया है। ६७ वह ब्रह्माण्डरूपी नगर के लिए मानो अद्‌भुत (आधार-) स्तम्भ है। वह माया के चक्र का शाश्वत चालक है। मानो, दशरथ का पुण्यरूपी पर्वत इस श्रीराम के रूप में प्रकट हो गया है। ६८ रघुवीर राम वैसे ही वेद-वंद्य हैं, (फिर भी) तुम तुच्छ लोग उनकी निन्दा करते हो। रावण को काम-विकार लिपट गया है, (इसलिए) वह सचमुच (आसक्ति के कारण) पागल हो गया है (उसकी बुद्धि मारी गयी है)। ६९ रावण कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) की बंदीशाला में जाकर (बंदी के रूप में) पड़ गया था। वह (हैययराज) सहस्रार्जुन परम पुरुषार्थी था; (फिर भी) भृगु-नन्दन परशुराम ने उसका वध किया *। १७० (तदनन्तर) श्रीराम ने उस (परशुराम) को जीत लिया §, जो क्षत्रियों का नाश-कर्ता तथा प्रलय उत्पन्न कर देनेवाला (प्रत्यक्ष) रुद्र (ही) था। (जान पड़ता है, बीस आँखोंवाला यह) रावण मतिहीन हो गया है, (जिससे) उस (श्रीराम) के स्वरूप को नहीं पहचान रहा है। ७१ हाथों में (शस्त्रों के रूप में) वृक्षों को लिए हुए वे (वानर) वनचर (वन्य पशु) नहीं हैं, (उनके रूप में) समस्त देव ही अवतरित हैं। (हे रावण,) अब भी मन में यह समझकर रामचन्द्र को सीता (लौटा) दो। ७२ रावण द्वारा वह अद्‌भुत प्रचण्ड तथा बहुत भारी धनुष नहीं उठाया गया, परन्तु उसे समस्त राजाओं के देखते हुए (सामने) रघुनाथ ने दो टूक कर डाला था। ७३ इसलिए (हे रावण),

टिप्पणियाँ : * अध्याय दूसरा देखिए।

: § अध्याय आठवाँ देखिए।

रामचंद्रा । ७२ चंड कोदंड अद्भुत । रावणासी नुचले जड बहुत । तें दुखंड करी रघुनाथ । सकळ रायांदेखतां । ७३ यालागीं सागरपैलपारीं । रामचंद्र जों आहे दूरी । तों मंगळ-जननीची कुमरी । राघवेंद्रा समर्पावी । ७४ ऊर्मिलाजीवनाची चापरेखा । नुल्लंघवेचि तुज दशमुखा । यालागीं त्रिभुवन-नायका । जानकी नेऊन भेटवीं । ७५ जानकीस भेटवा रघु-नंदन । बंदींचे सोडावे सुरगण । मग चंद्रार्कवरी कल्याण । पुत्रपौत्रीं नांदसी । ७६ माझीं वचनें वाटती कठीण । परी पुढें गोड अमृताहून । औषध आधीं कटुवट पूर्ण । परी रोगहरण पुढें करी । ७७ गोड अत्यंत नाबदी साखर । मुखीं घालितां कडकड फार । परी गोडी ते अपार । तैसीं साचार वचनें माझीं । ७८ तुरट वाटे आमलक । परी पुढें गोडी दे अधिक । तैसीं माझीं वचनें दुःखमोचक । हृदयीं धरीं दशकंधरा । ७९ पिता पढवी पुत्रालागून । त्यास वाटे विषासमान । परी पुढें

रामचन्द्र जब तक सागर के उस पार दूर हैं, तब तक (मंगल ग्रह की माता) भूमि की कन्या सीता राघवेन्द्र को समर्पित करना । ७४ हे दशमुख, (उर्मिला-जीवन) लक्ष्मण द्वारा धनुष से अंकित रेखा तुमसे नहीं लाँघी जा पायी । इसलिए जानकी को ले जाकर त्रिभुवन-नायक श्रीराम से मिला देना । ७५ रघुनन्दन को सीता से मिला दो, देवगण बंदीशाला से मुक्त कर दो, फिर चन्द्र और सूर्य के रहने तक तुम पुत्र और पौत्रों सहित रह पाओगे । ७६ मेरे ये वचन (तुम्हें) कठोर प्रतीत होते होंगे, फिर भी वे अमृत से (अधिक) मीठे हैं । औषधि पहले पूर्णतः कड़ुवी लगती है, परन्तु आगे वही रोग का निराकरण कर देती है । ७७ मिसरी अत्यन्त मीठी होती है, परन्तु उसे मुँह में डालने पर वह बहुत कड़ी लगती है, फिर भी वह बहुत मीठी होती है । मेरे वचन वैसे ही हैं । ७८ आँवला पहले तो कसैला (तीता) लगता है (जान पड़ता है), परन्तु वह आगे अधिक मधुरता (उत्पन्न कर) देता है । उस प्रकार मेरे वचन (पहले तो दुःख-दायी प्रतीत होते होंगे, फिर भी अन्ततः वे) दुःख से मुक्त करनेवाले हैं । हे रावण, उन्हें हृदय में धारण करो । ७९ पिता पुत्र को पढ़ाता है, (पहले) वह उसे विष के समान प्रतीत होता है, परन्तु जब उसकी महिमा पूर्णतः बढ़ जाती है, तब आगे वह (शिक्षा) अमृत से मीठी अनुभव होती है । १८० लंका में बहुत-से अत्यन्त अशुभ चिह्न (अपशकुन) हो रहे हैं; क्षण-क्षण (ऐसे) उल्कापात हो रहे हैं (कि उससे) आकाश

गोड सुधेहून । महिमा पूर्ण वाढे जेव्हां । १८० अशुभ चिन्हें अत्यंत । लंकेमाजी होती बहुत । क्षणक्षणां उल्कापात । नभ थरथरतें वाटतसे । ८१ जलदजाल नसे किंचित । रुधिर-धारा मेघ वर्षत । दुष्ट स्वप्नें अत्यंत । मंदोदरीस जाण-वती । ८२ विगतधवा स्त्रिया येऊन । ओंटी भरिती मृत्तिका घेऊन । मंगळसूत्र तोडून । कृष्णवस्त्र पुरुष नेतसे । ८३ यालागीं दशवदना तूं सज्ञान । टाकिलीं वेदांचीं खंडें करून । तरी जाणत जाणतां कृशान । पदरीं कैसा बांधिसी । ८४ समजोनियां विष दारुण । कां करावें बळें प्राशन । दंदशूक ओळखून । मग कां उशीं करावा । ८५ खदिरांगार जाणोन । मग कां वरी करावें शयन । उदरीं पाषाण बांधोन । महाडोहीं कां निघावें । ८६ ऐसें बोलतां बिभीषण । तटस्थ जाहले सभाजन । क्रोधें व्याप्त रावण । मौन धरून उगाचि । ८७ बिभीषणासी म्हणे प्रहस्त । उगेच बैसा हो निश्चित । सभेंत बोलतां अनुचित । मृत्यु पावाल

थर्राता हुआ जान पड़ता है। ८१ (आकाश में) मेघ-जाल किंचित् भी नहीं है, (फिर भी) मेघ रक्त की धाराएँ बरसाते रहते हैं। मंदोदरी को अत्यन्त दुष्ट सपने दिखायी दे रहे हैं। ८२ विधवा स्त्रियाँ आकर मिट्टी को लिये हुए उस (मन्दोदरी) की कोंछ भर देती हैं। (स्वप्न में) काले वस्त्र पहने हुए कोई एक पुरुष उसके (सौभाग्य-चिह्न) मंगलसूत्र को तोड़कर ले जाता (दिखायी देता) है। ८३ हे दशवदन, तुम स-ज्ञान हो। तुमने वेदों को खण्डों में विभक्त कर डाला है। इसलिए जानते हुए भी अग्नि को तुमने पल्ले में कैसे बाँध रखा है? ८४ ‡ समझते-बूझते हुए भी दारुण विष बलात् क्यों पी लें? साँप को पहचानकर भी फिर सिरहाने (तकिये के रूप में) क्यों रखें। ८५ खदिरांगार (खैर वृक्ष की लकड़ी के अंगारों) को जानकर फिर उसपर शयन क्यों करें? पेट में पत्थर बाँधकर बड़े (गहरे) दह में क्यों प्रवेश करें?' ८६ विभीषण द्वारा ऐसा कहते ही सभा में बैठे हुए लोग तटस्थ (भौंचक) हो गये, (फिर भी इधर) रावण क्रोध से भरा-पूरा हो गया, (तो भी) मौन धारण करके वह चुप रहा। ८७ (तदनन्तर) प्रहस्त ने विभीषण से कहा— 'अहो, (आप) अवश्य चुप

(पेज ६९३ का शेष) ‡ पद-पाठ भी तैयार किया था। (३) बलराम रामायण के अनुसार, उसने वैदिक मंत्रों का सम्पादन करते हुए, वेदों की एक नयी शाखा का भी निर्माण किया था। (कहना न होगा, कुछ विद्वान् वेद-विद्या-सम्पन्न रावण को दशानन रावण से भिन्न व्यक्ति समझते हैं।)

निर्धारें। ८८ तुम्हीं राजबंधु म्हणवितां जाण। परी शतमूर्खाहूनि बुद्धिहीन। तुम्हांस नाहीं चातुर्यज्ञान। तरी उठोन गृहा जावें। ८९ सक्रोध बोले इंद्रजित। तूं अनुचित बोललासी सभेंत। तुज आतांचि वधितों यथार्थ। परी पितृव्य म्हणोनि शंकलों। १९० शक्रजित म्हणे दशमुखा। हा तुमचा बंधु सखा। परी हा शत्रूचा पक्षपाती देखा। अनर्थकारक दिसतसे। ९१ बिभीषण म्हणे तूं चांडाळ। महाकपटी कृतघ्न खळ। तुमचे संगतीनें भूपाळ। मतिमंद जाहला। ९२ अंकुशें आकर्षिजे वारण। भुजंग आकळिजे मंत्रेंकरून। राजमती आकळिती प्रधान। परम सज्ञान चतुर जे। ९३ माजला अत्यंत कृशान। तो विझविजे जळेंकरून। कीं क्रोधोर्मी अति दारुण। सद्विवेकें आकर्षिजे। ९४ नृपें करितां अनुचित करणी। तत्काळ आवरिजे प्रधानीं। परी तुम्ही अवघे पापखाणी। निर्दय आणि कृतघ्न। ९५ राजा आधींच अत्यंत खळ। प्रधान मिळाला अमंगळ। मग

ही रहिए। सभा में अनुचित बोलने पर आप निश्चय ही मृत्यु को प्राप्त हो जाएँगे। ८८ समझिए, आप तो राजबन्धु कहाते हैं, परन्तु शतमूर्ख से भी अधिक बुद्धिहीन (जान पड़ते) हैं। आपमें चातुर्य, ज्ञान नहीं है, अतः (यहाँ से) उठकर घर चले जाएँ।' ८९ (तत्पश्चात्) इन्द्रजित क्रोध से बोला— 'तुमने सभा में अनुचित कहा है, (इसलिए मैं) अभी सचमुच तुम्हारा वध करता हूँ। फिर भी तुम्हें पितृव्य (= चाचा) जानकर आतंकित हो गया हूँ।' १९० (फिर) इन्द्रजित ने कहा, 'हे दशमुख, यह आपका सगा बन्धु है; फिर भी, देखिए, यह शत्रु का पक्षपाती है। यह तो अनर्थकारी दिखायी देता है।' ९१ (यह सुनकर) विभीषण ने कहा— (रे इंद्रजित,) तू चण्डाल है, महाकपटी, कृतघ्न, खल है। तुम्हारी संगति में राजा (रावण) मन्दमति हो गया है। ९२ हाथी को अंकुश से वश में कर लेते हैं; साँप को मन्त्र से अधीन कर लेते हैं और जो मन्त्री परम सज्ञान (ज्ञानी) तथा चतुर हों, वे राजा की बुद्धि को वश में रखते हैं। ९३ अग्नि अत्यन्त फैल गयी हो, तो उसे पानी से बुझा देते हैं, अथवा क्रोध की अति दारुण लहर को सद्विवेक से वश में कर लेते हैं। ९४ राजा द्वारा अनुचित करनी करते ही मंत्री उसे तत्काल रोक दें। परन्तु तुम सब पापों की खान तथा निर्दय और कृतघ्न हो गये हो। ९५ कोई राजा पहले ही (मूलतः) अत्यन्त खल (दुष्ट) हो, तिसपर उसे अमंगल (बुद्धिवाला) मंत्री मिला

अविवेक वाढे प्रबळ। कुबुद्धिकल्लोळ उठती पैं। ९६ शंख करावयाची हौस गहन। त्यांत पातला मास फाल्गुन। कीं स्त्रीराज्यांतील पारिपत्य पूर्ण। जारासी प्राप्त जाहलें। ९७ आधींच चाहाड तस्कर। त्यावरी पाठिराखा नृपवर। कीं उन्मत्तासी सरोवर। प्राप्त जाहलें मद्याचें। ९८ तैसा कुबुद्धीनें वेष्टिला दशवदन। तैसेच तुम्ही मिळालां प्रधान। जैसें वृकाच्या सदनीं श्वान। कारभारी जाहलें। ९९ अरे तुझें मरण आलें जवळी। म्हणोनि आणिली जनकबाळी। अयोध्याप्रभु प्रतापबळी। आला निकट काळ तुझा। २०० रावणें अनुचित कर्म मांडिलें। म्हणोनि मातेनें मज प्रेरिलें। यालागीं तुम्हांतें बोलिलें। मनीं धराल म्हणोनी। १ परी होणार बळिवंत। तुम्ही नायकाचि उन्मत्त। सीता न द्याल तरी निश्चित। कुलक्षय होईल तुमचा। २ ऐसें ऐकतां रावण। क्रोधें व्यापिला परिपूर्ण। बिभीषणावरी शस्त्र घेऊन। परम

हो, तो उसमें अविवेक प्रबल (होकर बहुत) बढ़ जाता है। (फिर उसमें) कुबुद्धि की लहरें उभरती हैं। ९६ किसी को चिल्लाने की बड़ी भारी हवस हो, फिर तिसपर फाल्गुन मास आ गया हो, (तो उसे चीखने-चिल्लाने से रोकना कठिन हो जाता है,) अथवा किसी जार पुरुष को स्त्री-राज्य का शासन (का अधिकार) प्राप्त हुआ हो (तो उसे जार कर्म से कौन रोक पाएगा ?)। ९७ पहले ही (मूलतः) कोई चुगलखोर और चोर हो, तिसपर राजा उसका समर्थक हो गया हो, (तो उसे कौन रोक सकता है ?), अथवा (मदिरा पीकर) उन्मत्त रहनेवाले को मद्य का सरोवर प्राप्त हो गया हो, (तो उसे कैसे रोका जाए ?)। ९८ वैसे ही रावण कुबुद्धि द्वारा घिरा हुआ है और वैसे ही तुम लोग उसे मन्त्री मिल गये हो। यह वैसे ही हो गया है जैसे भेड़िये के घर कुत्ता प्रबंधक हो गया हो। ९९ हे (रावण), तुम्हारी मौत निकट आ गयी है, इसलिए तुम जनक-कन्या लाये हो। प्रतापी और बलवान अयोध्यापति के रूप में तुम्हारा काल ही निकट आ गया है। २०० रावण ने अनुचित कर्म (करना) आरम्भ किया है, इसलिए माता ने मुझे प्रेरित किया है। तुम इसे मन में (उचित समझकर) अपना लोगे, इसलिए मैंने यह तुमसे कहा है। २०१ परन्तु तुम बलवान होगे, उन्मत्त होकर तुम उसे नहीं सुनोगे— नहीं मानोगे। यदि सीता को नहीं लौटा दोगे, तो निश्चय ही तुम्हारे कुल का क्षय होगा।' २ ऐसा सुनते ही रावण को क्रोध ने पूरा-पूरा व्याप्त कर

आवेशें धांविन्नला । ३ बिभीषण केवळ परम भक्त । तयासी रक्षिता रघुनाथ । तों रावणाचा उपटला हात । शस्त्र पडलें धरेवरी । ४ मागुता धांवे रावण । इंद्रजितें धरिला आवरून । मग झाडिला वाम चरण । तो लागला बिभीषणासी । ५ बिभीषण केवळ शान्त । निर्मत्सर भेदरहित । रावणासी मागुती म्हणत । सखा रघुनाथ करीं कां रे । ६ बिभीषण क्षमाशील पूर्ण । वानिती सकळ राक्षसगण । तों माता कैकसी येऊन । सांगे हित बिभीषणा । ७ म्हणे पुत्रासी तूं ऊठ आतां । शरण जाईं रघुनाथा । जो वज्रपंजर शरणागता । भवव्यथा वारील तो । ८ माझे उदरा आलासी साचार । तरी करीं माझा उद्धार । तनुमनधनेंसीं सत्वर । शरण जाईं रघुवीरा । ९ सांडोनि सकळ मायाचिंता । शरण जावें जानकीनाथा । रावणें क्षय केला तत्त्वतां । तूं जाईं परता येथूनि । २१० जे बळेंचि विष भक्षिती । शाहाणे न बैसती त्यांचे पंक्ती । तरी तूं सखा

लिया। फिर वह शस्त्र लेकर परम आवेश के साथ विभीषण की ओर लपका। ३ विभीषण तो केवल परम भक्त था; रघुनाथ उसके रक्षक थे; फिर रावण का हाथ उखड़ पड़ा और (उससे) शस्त्र धरती पर गिर पड़ा। ४ (इसपर) रावण (विभीषण के) पीछे दौड़ने लगा, तो इंद्रजित ने उसे रोककर पकड़ रखा। फिर उसने बायाँ पाँव झटक लिया, तो वह विभीषण के लग गया। ५ (परन्तु) विभीषण तो पूर्णतः शान्त था, मत्सर-हीन, भेद (-भावना से) रहित था। तत्पश्चात् वह रावण से बोला— 'अहो, रघुनाथ को सखा क्यों नहीं बना लो ?' ६ विभीषण पूर्णतः क्षमाशील था। समस्त राक्षसगण उसकी प्रशंसा किया करते थे। तब माता कैकसी ने आकर विभीषण से हित की बात कह दी। ७ उसने (अपने) पुत्र से कहा— 'अब तुम उठो (और) रघुनाथ की शरण में जाओ। जो (श्रीराम) शरण में आये हुए के लिए वज्र-पंजर ही हैं, वे (तुम्हारी) सांसारिक व्यथा का निवारण करेंगे। ८ मेरे उदर से तुम (पुत्र-रूप में जन्म को प्राप्त हो) आये हो, सचमुच मेरा उद्धार करो। तन-मन-धन से झट से रघुवीर की शरण में जाओ। ९ माया के कारण उत्पन्न समस्त चिन्ताओं का त्याग करके जानकीनाथ श्रीराम की शरण में जाना। रावण ने सचमुच क्षय किया है, अतः भले ही तुम यहाँ से चले जाओ। २१० जो हठपूर्वक विष खाते हैं, उसकी पंक्ति में समझदार लोग नहीं बैठते। अतः तुम रघुपति को अपना सखा बना लो।

करीं रघुपती। नाश कल्पांतीं नव्हे तूतें। ११ ऐकोनि मातेचें वचन। बिभीषणें केलें साष्टांग नमन। घेऊनि चौघे प्रधान। उभा ठाकला ते काळीं। १२ रावणासी म्हणे बिभीषण। मी श्रीरामासी जातों शरण। तूं ज्येष्ठ बंधु म्हणोन। पुसतों तुज मागुती। १३ ऐसें बोलोनि त्वरित। बिभीषण उडाला अकस्मात। चौघां प्रधानांसमवेत। सर्वांदेखतां ते काळीं। १४ जैसें कलेवर सांडून। एकदांच निघती पंचप्राण। कीं पांचही दिवाकर मिळोन। अस्ताचळावरी चालिले। १५ कीं कल्पांतीं पंच-महाभूतें। जाती स्वरूपास मिळावयातें। तैसे शरण जनकजा-पतीतें। पांचही जाती त्वरेनें। १६ श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। हाचि केवळ रामेश्वर। आवडीच्या कावडी भरोनि सत्वर। सद्भक्त नर धांवती। १७ भावप्रयागींचें प्रेमोदक। जे या रामेश्वरावरी करिती अभिषेक। त्यांचे मनोरथ अयोध्यानायक। सत्य परिपूर्ण करील। १८ अयोध्याधीशा ब्रह्मानंदा। श्रीधर-

---

(उससे) कल्पान्त तक में तुम्हारा नाश नहीं होगा।' ११ माता की यह बात सुनकर विभीषण ने उसे साष्टांग नमस्कार किया और चार जने मन्त्री (साथ में) लेकर वह उस समय खड़ा हो गया (ठहर गया)। १२ (तदनन्तर) विभीषण ने रावण से कहा— 'मैं श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ। तुम मेरे ज्येष्ठ बन्धु हो, इसलिए तुमसे फिर से पूछ (= कह) रहा हूँ। १३

इस प्रकार बोलकर विभीषण ने झट से चारों मन्त्रियों सहित उस समय, सबके देखते रहते, सहसा उड़ान भर दी। १४ जिस प्रकार देह का त्यागकर पंचप्राण एकदम निकल जाते हैं, अथवा पाँचों ही सूर्य (साथ में) मिलकर अस्ताचल की ओर चल रहे हों, अथवा कल्पान्त के समय (पृथ्वी, आप, तेज, वायु और आकाश नामक) पाँचों महातत्त्व (ब्रह्म-) स्वरूप में मिलने जाते हों, उसी प्रकार वे पाँचों ही झट से सीता-पति श्रीराम की शरण में (जाने के हेतु) चले गये। १५-१६

श्रीराम-विजय (नामक यह) ग्रन्थ सुन्दर है। (मानो) यही मात्र रामेश्वर है। (भगवत्-) प्रेम से काँवर भरकर मनुष्य भक्ति के साथ (उसकी ओर) झट से दौड़े जाते हैं। १७ जो भावरूपी प्रयाग तीर्थ का प्रेमरूपी जल इस रामेश्वर पर अभिषिक्त करते हों, उनके मनोरथों को अयोध्या-नायक श्रीराम सत्य ही परिपूर्ण करेंगे। १८

वरदा देववंद्या । छेदोनियां अविद्याभेदा । अभंग पदा देशी कीं । १९ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर । संमत वाल्मीक-नाटकाधार । सदा परिसोत पंडित चतुर । द्वाविंशतितमाध्याय गोड हा । २२० श्रीरामचंद्रार्पणमस्तु ।

हे अयोध्याधीश (श्रीराम), हे (गुरु) ब्रह्मानन्द, हे श्रीधर के वर-दाता, हे वेद-वंद्य (भगवान) ! अविद्याभेद को भेदकर तुम (मुझे) अभंग पद प्रदान करना । १९ स्वस्ति । श्रीराम-विजय ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि नाटक से सम्मत तथा उसपर आधारित है। उसके इस मधुर बाईसवें अध्याय का चतुर भक्त सदा श्रवण करें । २२०

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२३

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । दुर्धर अहंकारदशानन । अहंदेहबुद्धि लंका गहन । तेथें वास्तव्य अनुदिन । क्रोध कुंभकर्ण बंधू सखा । १ अनर्थकारक काम इंद्रजित । मद हा मुख्य प्रधान प्रहस्त । मत्सर दंभ ते निश्चित। देवान्तक नरान्तक पैं । २ शोक मोह आणि अनर्थ । भेदवादी असुर बहुत । खळ कुटिल कुतर्क समस्त । देहलंकेंत दुमदुमती । ३ यांचे बळें माजोनि रावण । बंदीं घातले सुरगण । आदिदैवत

श्रीगणेशाय नमः । श्री सीता-रामचन्द्राभ्यां नमः । दुर्धर (अदम्य, प्रचण्ड) अहंकार (मानो) रावण है, तो अहंदेह-बुद्धि (अपने प्रति व्यर्थ अभिमान) गहन लंका है । वहाँ क्रोध उसके सगे बन्धु कुम्भकर्ण के रूप में प्रतिदिन, अर्थात् नित्य निवास करता है । १ अनर्थकारी काम (-विकार) इन्द्रजित है, (तो) मद मुख्य मन्त्री प्रहस्त है । मत्सर और दम्भ (क्रमशः) निश्चय ही देवान्तक और नरान्तक (नामक रावण के मंत्री) हैं । २ शोक, मोह और अनर्थ (शत्रुत्व भाव)— ये भेदवादी (परमात्मा और जगत् को भिन्न-भिन्न समझनेवाले द्वैतवादी) बहुत-से असुर हैं, (तो) समस्त दुष्ट कुटिल दुर्विचार इस देहरूपी लंका में फैले हुए हैं । ३ इनके बल पर उन्मत्त होकर रावण ने देवगणों को बन्दीशाला में डाल

अध्यात्म होऊन। देहलंकेत बंदीं पडलें। ४ रमेश तो अंतः-करण। रमाबंधू तोचि मन। बुद्धि विरिंचि चित्त नारायण। रावणें बंदीं घातलीं। ५ चक्षूच्या ठायीं सूर्यनारायण। रसना ते रसनायक वरुण। अश्विनौ देव दोघे घ्राण। रावणें बंदीं घातले। ६ वाचा केवळ वैश्वानर। पाणी ते जाण पुरंदर। असो देव आकळोनि समग्र। सेवक करूनि रक्षिले। ७ मायामृग छेदावयालागून। निरंजनीं प्रवेशे रघुनंदन। कापट्यशब्द उठवून। विवेकलक्ष्मण दवडिला। ८ सद्बुद्धिजानकीचें हरण। अहंकारें केलें न लागतां क्षण। अहंदेह लंकेंत आणून। दुराचारें कोंडिलें। ९ मग धांविन्नला वैराग्यहनुमंत। तेणें देहलंका जाळून समस्त। कामक्रोधादि राक्षसांसहित। अहंलंकानाथ गांजिला। १० सद्बुद्धीचें करून समाधान। घेऊन आला रघुनंदन। तो केवळ सद्भावबिभीषण। रावणें त्रासिला

दिया। (उसी प्रकार) आदिदेवता (अर्थात् ब्रह्म या परमात्मा) अध्यात्म तत्त्व (अर्थात् आत्मा या जीव) होकर देहरूपी लंका की बन्दीशाला में रह गया है। ४ अन्तःकरण भगवान विष्णु है, तो मन ही चन्द्रमा है; बुद्धि ब्रह्मा है, तो चित्त नारायण है। इन सबको (अहंकार-रूपी) रावण ने बन्दीगृह में डाल दिया है। ५ नयनों के स्थान पर सूर्य नारायण है, तो जिह्वा वही रसों का नायक अर्थात् अधिष्ठाता देवता वरुण है। नाक दोनों अश्विनी देव हैं। इन्हें भी रावण ने बन्दीशाला में डाल दिया है। ६ वाणी मात्र अग्नि है, और हाथों को इन्द्र समझिए। अस्तु। (इस प्रकार) अहंकाररूपी रावण ने इंद्रियोंरूपी समस्त देवों को वश में करते हुए उन्हें सेवक बनाकर उनकी रक्षा की है। ७ (जब) रघु-नन्दन ने माया-मृग का वध करने के लिए वन में प्रवेश किया, तो (अहंकार-रूपी) रावण ने छल-पूर्ण शब्द कहलवाते हुए विवेकरूपी लक्ष्मण को (सद्बुद्धिरूपी सीता से दूर) भिजवा दिया। ८ फिर सद्-बुद्धिरूपी सीता का अपहरण अहंकार (रूपी रावण) ने, क्षण तक न लगते, कर लिया और अहंदेह-बुद्धिरूपी लंका में लाकर दुराचार-पूर्वक बन्द कर रख लिया है। ९ तब वैराग्यरूपी हनुमान दौड़ते हुए पहुँचा, (और) उसने समस्त देहरूपी लंका को जलाकर काम, क्रोध आदि (विकार) रूपी समस्त राक्षसों सहित अहंकाररूपी लंकापति रावण को तंग किया। १० (तदनन्तर) सद्बुद्धि (रूपी सीता) को तृप्त करते हुए (लौट जाकर) वह रघुनन्दन को ले आया है। तब केवल सद्भाव-

सभास्थानीं । ११ आत्माराम सद्‌गुरु पूर्ण । त्यास शरण चालिला बिभीषण । बाविसावे अध्यायीं जाण । हेंचि कथन सांगीतलें । १२ देखोनि वायसांचा मेळ । त्रासोनि निघे मराळ । कीं देखोनि दुष्ट निंदक खळ । साधू उठे तेथोनियां । १३ तैसा प्रधानांसह बिभीषण । ऊर्ध्वपंथें क्रमीत गगन । भवसिंधू उल्लंघोनि चरण । गुणसिंधूचे पाहूं इच्छी । १४ हिरण्यकशिपूनें गांजिला प्रल्हाद । तेणें हृदयीं धरिला मुकुंद । तैसाचि जानकीहृदयमिलिंद । बिभीषणें जवळ केला पैं । १५ वानर अंतरिक्षें विलोकिती । तों पांचही असुर उतरले क्षितीं । सेना-प्रदेशीं उभे राहती । हस्त जोडूनि तेधवां । १६ कित्येक धांवले वानरगण । घेऊनियां वृक्ष पाषाण । तों बिभीषण म्हणे मी तुम्हांसी शरण । दावा चरण रघुपतीचे । १७ रावण-बंधू मी बिभीषण । तेणें अपमानिलें मजलागून । आलों

रूपी विभीषण को रावण ने अपने सभा-गृह में सता दिया । ११ (भगवान रामरूपी) आत्माराम तो परिपूर्ण (सर्वश्रेष्ठ) गुरु हैं । विभीषण उनकी शरण में जाने के लिए चल दिया । — समझिए कि बाईसवें अध्याय में यही कथन किया है । १२ (जिस प्रकार) कौओं का समूह देखकर राजहंस तंग आते हुए (वहाँ से) निकल जाता हो, अथवा (जिस प्रकार) दुष्ट निन्दक खलों को देखकर साधु पुरुष वहाँ से उठ जाता हो, उसी प्रकार (रावण की सभा में दुष्ट राक्षसों को देखकर) विभीषण (अपने) मंत्रियों सहित (वहाँ से निकलकर) ऊर्ध्व मार्ग से आकाश (के अन्तर) को तय करके संसार-सागर को लाँघते हुए गुण-समुद्र (श्रीराम) के चरणों के दर्शन करने की अभिलाषा कर रहा था । १३-१४ हिरण्य-कशिपु ने प्रह्लाद को पीड़ित किया था; उसने भगवान मुकुन्द को हृदय में धारण कर रखा था, उसी प्रकार विभीषण ने जानकी के हृदयरूपी कमल में स्थित भ्रमर अर्थात् श्रीराम को अपना लिया था । १५

(इधर) वानर आकाश में देख रहे थे, तो पाँचों राक्षस भूमि पर उतर गये और (वानर-) सेना के निकटवर्ती स्थान में हाथ जोड़कर वे तब खड़े हो गये । १६ (यह देखकर) अनेकानेक वानरगण वृक्ष और पत्थर लेकर (उस ओर) दौड़ते हुए पहुँचे । तब विभीषण ने कहा— 'मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, मुझे रघुपति के चरणों के दर्शन कराओ । १७ मैं रावण का बन्धु विभीषण हूँ; उसने मेरा अपमान किया; (इसलिए) मैं सीता-वल्लभ की शरण में आया हूँ । (अतः)

सीतावल्लभासी शरण। त्याचे चरण मज दावा। १८ जे सनकादिकांची ध्येय मूर्ती। नारदादि गाती ज्याची कीर्ती। तो ब्रह्मानंद अयोध्यापती। त्याचे चरण मज दावा। १९ जें निगमवल्लीचें पक्व फळ पूर्ण। जो विषकंठमनमांदुसरत्न। जें पद्मोद्भवाचें देवतार्चन। त्याचे चरण मज दावा। २० प्रतापमित्र रघुनंदन। जो अरिचक्रवारणपंचानन। जो खरदूषण-प्राणहरण। त्याचे चरण मज दावा। २१ वेदान्ती म्हणती परब्रह्म। अज अजित पूर्णकाम। तोचि हा दशरथात्मज राम। त्याचे चरण मज दावा। २२ व्याकरणकार शब्द साधिती। त्याच्या नामाचे अनेक अर्थ करिती। तोचि हा मंगळभगिनीचा पती। त्याचे चरण मज दावा। २३ पातंजल योग साधून। योगी पावती निरंजन। तोचि हा चंडकिरणकुळभूषण। त्याचे चरण मज दावा। २४ प्रकृति पुरुष सांगत। सांख्यशास्त्र असे गर्जत। तोचि हा जानकीनाथ। त्याचे चरण मज दावा। २५ नैयायिक म्हणती कर्ता ईश्वर। जीवासी न कळे त्याचा पार।

मुझे उनके चरणों के दर्शन कराओ। १८ जो सनक आदि (ऋषियों) के लिए ध्यान (ध्येय) मूर्ति हैं, नारद आदि जिनकी कीर्ति गाते हैं, वे ब्रह्मानन्द अयोध्यापति श्रीराम हैं। मुझे उनके चरणों के दर्शन कराओ। १९ जो वेदरूपी लता का पूर्ण पक्व फल हैं, जो शिवजी के मनरूपी मंजूषा में स्थित रत्न हैं, जो ब्रह्मा के लिए पूजनीय देवता हैं, मुझे उनके चरणों के दर्शन कराओ। २० जो रघुनन्दन प्रताप के सूर्य हैं, जो शत्रुरूपी हाथी का निवारण करनेवाले सिंह हैं, जो खर-दूषण के प्राणों के अपहर्ता हैं, मुझे उनके चरणों के दर्शन कराओ। २१ जिसे वेदान्ती अजन्मा, अजित, पूर्णकाम परब्रह्म कहते हैं, वही यह दशरथ-सुत श्रीराम हैं। मुझे उनके चरणों के दर्शन कराओ। २२ वैयाकरण शब्दों को सिद्ध करते हैं और उसके ('राम') नाम के अनेक अर्थ प्रस्तुत करते हैं। वही ये सीता के पति हैं। मुझे उनके चरणों के दर्शन कराओ। २३ पातंजल योग की साधना करते हुए योगी (जिस) निरंजन को प्राप्त हो जाते हैं, वही ये सूर्यकुल-भूषण श्रीराम हैं। मुझे उनके चरणों के दर्शन कराओ। २४ सांख्य-शास्त्र गर्जना करते हुए यह कहता है कि सृष्टि के आदितत्त्व प्रकृति और पुरुष हैं। वे ही ये जानकीनाथ श्रीराम हैं। मुझे उनके चरणों के दर्शन कराओ। २५ नैयायिक कहते हैं कि इस सृष्टि का कर्ता ईश्वर है और जीव को उसका अन्त विदित नहीं हो जाता। वही

तो हा अजराजपुत्रकुमर। त्याचे चरण मज दावा। २६ मीमांसक स्थापिती कर्म। कर्माचरणें पाविजे परब्रह्म। तो परात्पर विश्रांतिधाम। त्याचे चरण मज दावा। २७ ऐसीं बिभीषणाचीं शब्दरत्नें। कीं तीं भक्तिनभींचीं उडुगणें। कीं तीं वैराग्य-वल्लीचीं सुमनें। प्रेमसुवासें विकासती। २८ श्रीरामसुग्रीवांसी जाऊन। कित्येक सांगती वर्तमान। चौघां प्रधानांसह शरण। राक्षस एक आला असे। २९ आपुला ज्येष्ठ बंधू रावण। आपुलें नाम सांगे बिभीषण। ऐसें ऐकतां जानकीजीवन। सुग्रीवा-कडे पाहात। ३० तों अर्कज बोले उत्तर। वरी भाविक दिसतो निशाचर। परी नोळखतां तयाचें अंतर। जवळी सहसा ठेवूं नये। ३१ दिवाभीतांची सेवा करून। कागें लाविला जैसा अग्न। तैसा जरी गेला करून। तरी मग काय विचार। ३२ जांबुवंत म्हणे मारूनि वाळी। किष्किंधा तुम्हीं सुग्रीवा दिधली। हे कीर्ति ऐकोनि तत्काळीं। शरण आला

(ईश्वर) ये (अज राजा के पुत्र दशरथ के पुत्र) राम हैं। मुझे उनके चरणों के दर्शन कराओ। २६ मीमांसक कर्म (सम्बन्धी सिद्धान्त) की स्थापना करते हैं, जिसके अनुसार मनुष्य कर्म के आचरण परब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। वही परात्पर परब्रह्म (जीव के लिए) विश्रान्ति-धाम है। (ये राम वही परब्रह्म हैं)। मुझे उनके चरणों के दर्शन कराओ।' २७

विभीषण के ये ऐसे शब्दरूपी रत्न (प्रस्तुत) थे, अथवा वे (मानो) भक्तिरूपी आकाश के तारक-गण थे, अथवा वे वैराग्यरूपी लता के फूल थे, जो प्रेमरूपी सुगन्ध के साथ विकसित हुए थे। २८ (यह सुनकर) अनेकों (वानरों) ने जाकर श्रीराम और सुग्रीव से यह समाचार कहा—'एक राक्षस चार मंत्रियों सहित (आपकी) शरण में आया है। २९ वह रावण को अपना ज्येष्ठ बन्धु तथा अपना नाम विभीषण बताता है।' ऐसा सुनकर जानकी-जीवन (राम) ने सुग्रीव की ओर देखा। ३० तब सुग्रीव उत्तर में बोला—'यह राक्षस ऊपर से श्रद्धावान दिखायी तो देता है, परन्तु बगैर उसके अन्तःकरण को (ठीक से) जाने, कदापि उसे पास में न रखें। ३१ जिस प्रकार उल्लू की सेवा करते हुए, कौए ने (उसके घोंसले में) आग लगा दी, उस प्रकार (हमारे साथ निवास) करते हुए यदि वह चला जाए, तो फिर क्या विचार किया जाए।' ३२ (इसपर) जाम्बवान ने कहा—'बाली को मार डालकर आपने सुग्रीव

तुम्हांतें । ३३ मारूनियां रावणा । लंकाराज्य द्यावें आपणा । हेचि मनीं धरूनि वासना । शरण आला तुम्हांतें । ३४ सुषेण म्हणे समय कठिण । देखोनि साह्य करिती बंधुजन । हा रावणासी सोडून आला शरण । हेंच नवल वाटतें । ३५ बहु तर्क बहु विचार । करिते झाले तेव्हां वानर । मग तो शेवटीं रुद्रावतार । निश्चयवचन बोलिला । ३६ लंकेंत शोधितां जनककुमारी । मी प्रवेशलों याचे मंदिरीं । महासाधू निष्कपट अंतरीं । तेच समयीं ओळखिला । ३७ वरी तुम्हांस दिसतो राक्षस । परी अंतरीं प्रेमळ निर्दोष । कंटकमय दिसतो फणस । परी अंतरीं सुरस जैसा । ३८ शरणागतांसी वज्रपंजर । रामा तुझें ब्रीद साचार । जवळी बोलावून असुर । अभय तयातें देइंजे । ३९ इतर शास्त्रींचे बोल बहुत । एका वचनें दावी वेदांत । तैसें बोलिला हनुमंत । तेंच समस्तां मानलें । ४०

को किष्किन्धा प्रदान की है; यह कीर्ति सुनकर वह तत्काल आपकी शरण में आया होगा । ' ३३ वह यही अभिलाषा मन में लेकर आपकी शरण में आया होगा कि आप रावण को मार डालकर लंका का राज्य उसे प्रदान करें । ३४ (तदनन्तर) सुषेण ने कहा— ' समय कठिन देखकर (जानकर) बन्धुजन (ही) सहायता करते हैं । (परन्तु) यह तो (अपने बन्धु) रावण को छोड़कर आपकी शरण में आया है— यही अचरज लगता है । ' ३५ तब वानरों ने तर्क-वितर्क के साथ बहुत विचार (-विनिमय) किया । फिर अन्त में रुद्रावतार वह हनुमान निश्चयपूर्वक यह वचन बोला । ३६ ' लंका में जनक-कन्या की खोज करते-करते मैं इसके घर में प्रविष्ट हो गया था । उसी समय मैंने जान लिया कि यह अन्त:करण से महासाधु तथा कपट-रहित है । ३७ तुम्हें यह वैसे ही ऊपर से राक्षस दिखायी देता है, परन्तु अन्त:करण से यह प्रेम-मय तथा दोष-रहित (शुद्ध, पवित्र) है, जैसे कटहल ऊपर से कंटकमय दिखायी देता है, परन्तु अन्दर से मधुर (रस से युक्त) होता है । ३८ हे श्रीराम ! आप शरणागत के लिए (सुरक्षित रखने के लिए) वज्र-पंजर हैं— यह सचमुच आपका व्रत है । (अत:) उस राक्षस को निकट बुलाकर उसे अभय प्रदान कीजिएगा । ३९ जिस प्रकार अन्य शास्त्रों की बहुत-सी उक्तियों (के मर्म) को वेदान्त (केवल) एक वचन (वाक्य = ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या, आत्मा ब्रह्मा इव न अपर:) से दिखाता है, उस प्रकार हनुमान

अंगदासी भ्रूसंकेत। दावीत तेव्हां ताराकांत। बिभीषणास आणावया त्वरित। येरू निघाला वायुवेगें। ४१ बिभीषणासी म्हणे वाळिपुत्र। उदेला तुझा भाग्यमित्र। तुज पाचारितो स्मरारिमित्र। राजीवनेत्र अजित जो। ४२ बिभीषणाचा धरूनि हस्त। रामाजवळी आला तारासुत। जेवीं साधकासी सद्विवेक दावीत। स्वरूपनिर्धार निश्चयें। ४३ असो बिभीषणें पाहिला श्रीराम। जो चराचरफलांकितद्रुम। जयजयकार करून परम। लोटांगण घातलें। ४४ दृष्टीं पाहूनि श्रीरामचंद्र। उचंबळे बिभीषणभाव-समुद्र। प्रेमाचें भरतें अपार। दाटतें झालें तेधवां। ४५ श्रीरामचरणारविंदसुगंध। तेथें बिभीषण जाहला मिलिंद। अष्टभावें होऊन सद्गद। आनंदमय जाहला। ४६ रामचरणीं ठेवितां मस्तक। संतोषोनि ब्रह्माण्डनायक। शिरीं ठेविला वरद हस्त। अक्षय कल्याणदायक जो। ४७ म्हणे जोंवरी शशी आणि तरणी। जोंवरी

ने (मार्मिक वचन) कहा। उसे सबने स्वीकार किया। ४० (तब) तारा-कान्त (सुग्रीव) ने अंगद को भौंह से संकेत किया। उसके अनुसार वह बिभीषण को लाने के लिए झट से वायु-वेग से चल पड़ा। ४१ (पास आकर) अंगद ने विभीषण से कहा— '(अहो!) तुम्हारा भाग्यरूपी सूर्य उदित हो गया है। (कामदेव के शत्रु) शिवजी के मित्र श्रीराम, जो राजीव-नेत्र और अजित हैं, तुमको बुला रहे हैं।' ४२ (फिर) जिस प्रकार सद्विवेक साधक को (भगवत्-) स्वरूप को निर्धारित करने का निश्चित मार्ग दिखाता है, उसी प्रकार अंगद विभीषण के हाथ को थामे हुए श्रीराम के पास आ गया। ४३ अस्तु। विभीषण ने श्रीराम को देखा, जो चराचररूपी फलों से युक्त (मानो) वृक्ष ही थे। (फिर) उनका बहुत जय-जयकार करते हुए दण्डवत् नमस्कार किया। ४४ दृष्टि (आँखों) से श्रीरामरूपी चन्द्र को देखते ही विभीषण का भावरूपी समुद्र उमड़ उठा। तब प्रेम का ज्वार अपार उमड़ गया। ४५ श्रीराम के चरण-कमलों की सुगन्ध ऐसी थी कि वहाँ विभीषण, मानो भ्रमर (के समान मोहित) हो गया। (स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, विवर्णता, अश्रुपात और प्रलय—इन) आठों भावों से वह बहुत गद्गद तथा आनन्दमय हो गया। ४६ उसके द्वारा (श्रीराम के) चरणों में मस्तक रखते ही ब्रह्माण्ड-नायक श्रीराम ने सन्तुष्ट होते हुए (उसके) मस्तक पर (अपना) वरद-हस्त रखा, जो अक्षय कल्याणदायक

रामकथा आणि धरणी। तोंवरी राज्य करीं लंकाभुवनीं। बळीध्रुवांसारिखें। ४८ जेवीं चिरंजीव वायुनंदन। त्याचपरी राहें तूं बिभीषण। कळिकाळा तोडरीं बांधोन। लंकेंत सुखें नांदें कां। ४९ ऐसा आशीर्वाद देऊन। रामें उठविला बिभीषण। सप्रेम दिधलें आलिंगन। वानरगण आनंदले। ५० मग सौमित्र आणि अष्ट दिक्पती। तेही बिभीषणासी भेटती। पुष्पवर्षाव करिती। वृंदारक तेधवां। ५१ मग बिभीषण जोडूनि कर। उभा राहिला श्रीरामासमोर। म्हणे जय जय राम करुणासमुद्र। जगदुद्धारा दीनबंधो। ५२ जय जय राम कमळपत्राक्षा। हे ताटिकांतका सर्वसाक्षा। मखपाळका निर्विकल्पवृक्षा। कर्माध्यक्षा कर्ममोचका। ५३ जय राम चंडीशकोदंडभंजना। हे राम दशकंठदर्पहरणा। हे राम विषकंठदाहशमना। भक्तरंजना जगद्वंद्या। ५४ हे राम पद्मजातजनका। हे राम विबुधबंधच्छेदका। हे राम दुष्टअसुरान्तका। सहस्रमुखा न

है। ४७ (फिर) उन्होंने कहा— 'जब तक चन्द्र और सूर्य रहेंगे, जब तक रामकथा और धरती रहेगी, तब तक तुम बली राजा और ध्रुव की भाँति लंका-भुवन में राज्य करोगे। ४८ हे विभीषण, जिस प्रकार वायुनन्दन हनुमान चिरजीवी है, उस प्रकार तुम (भी चिरजीवी बने) रहोगे (और) कलिकाल को पाँवों के तोड़े नामक आभूषणों में बाँधकर अर्थात् वश में रखते हुए लंका में सुखपूर्वक निवास (क्यों न) करोगे।' ४९ ऐसा आशीर्वाद देते हुए राम ने विभीषण को उठा लिया और प्रेम के साथ उसका आलिंगन किया, तो वानरगण आनन्दित हो गये। ५० फिर लक्ष्मण और आठों दिक्पाल भी विभीषण से मिले, तब देवों ने उस पर पुष्प-वर्षा की। ५१ अनन्तर विभीषण हाथ जोड़े श्रीराम के सम्मुख खड़ा हो गया और बोला— 'हे करुणा-समुद्र श्रीराम, हे जगत् के उद्धारक, हे दीनबन्धु ! आपकी जय हो, जय हो। हे कमल-पत्र-नयन राम, हे ताड़का का अन्त करनेवाले, हे सर्वसाक्षी राम, हे यज्ञ-रक्षक, हे निर्विकल्प वृक्ष, हे कर्मों के अध्यक्ष (संचालक) तथा कर्म (-बन्धन) से मुक्ति देनेवाले श्रीराम, आपकी जय हो, जय हो। शिवजी के धनुष को तोड़नेवाले श्रीराम, आपकी जय हो। रावण के घमण्ड को छुड़ानेवाले हे राम, शिवजी के कण्ठ में हलाहल से होनेवाले दाह का शमन करनेवाले हे श्रीराम, हे भक्त-रंजन और जगद्वंद्य श्रीराम, आपकी जय हो। पद्मजात (अर्थात् ब्रह्मा) के पिता हे श्रीराम, देवों के बन्धन को काटने-

वर्णवेचि। ५५ ऐसी बिभीषणें करितां स्तुती। मग तयासी हातीं धरूनि सीतापती। आपणाजवळी बैसवी प्रीतीं। बहुत मान देऊनियां। ५६ संतोषोनि बोले रघुनंदन। आमुचा पांचवा बंधू बिभीषण। वानर म्हणती धन्य धन्य। भाग्य रावणानुजाचें। ५७ मग चतुःसमुद्रींचीं उदकें आणुनी। बिभीषणासी रामें बैसवूनी। लंकापति हा म्हणूनी। अभिषेक केला यथाविधि। ५८ लंकानगरींचा नृप पूर्ण। येथून अक्षयी बिभीषण। यावरी लोकप्राणेशनंदन। काय करिता जाहला। ५९ वाळूची लंका विशाळ केली। कपींचीं किराणें बाहेर पडलीं। ते बिभीषणाजवळी गहाण ठेविली। राघवेंद्रें तेधवां। ६० माझ्या हनुमंताच्या लंकेवरून। ते लंका सांडीन ओंवाळून। परम प्रीतीं सीताजीवन। लंका विलोकी मारुतीची। ६१ असो यावरी बिभीषणाप्रती। विचारीत जनकजापती। म्हणे सागर तरावया निश्चितीं। काय उपाय

वाले हे श्रीराम, दुष्ट राक्षसों का अन्त करनेवाले हे श्रीराम, (आपकी जय हो)। आपकी महिमा का वर्णन सहस्र-मुख शेष भी नहीं कर पाता। ५२-५५

विभीषण द्वारा ऐसी स्तुति करने पर, फिर सीतापति राम ने उसका हाथ थामे हुए तथा उसका बहुत सम्मान करते हुए प्रेमपूर्वक उसे अपने पास बैठा लिया। ५६ (फिर) सन्तुष्ट होकर श्रीराम ने कहा— 'हमारा पाँचवाँ बन्धु (यह) विभीषण है।' तो वानरों ने कहा— 'रावणानुज विभीषण के भाग्य धन्य हैं, धन्य हैं।' ५७ अनन्तर (पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर, इन) चारों समुद्रों से जल (लिवा) लाकर राम ने विभीषण को बैठाते हुए उसे लंकापति कहकर (समझकर) उसका यथाविधि राज्याभिषेक किया। ५८ (और कहा–) 'अब से लंकानगरी का राजा पूर्णतः अक्षयी (चिरजीवी) विभीषण है।' इसपर लोक-प्राणेश (=वायु-)-नन्दन ने क्या किया? ५९ उसने बालू से विशाल लंका (की आकृति चित्रित) की। तो वानर (त्वेषपूर्वक) कूदकर बाहर निकल पड़े। (फिर) उस (लंका) को उस समय श्रीराम ने विभीषण के पास गिरवीं रखा। ६० (और कहा--) 'मेरे हनुमान द्वारा बनायी हुई इस लंका पर (रावण की) वह लंका मैं निछावर कर दूँगा।' श्रीराम हनुमान की उस लंका को परम प्रेम से निहार रहे थे। ६१ अस्तु। इसके पश्चात् श्रीराम ने विभीषण से पूछा–उन्होंने कहा—'समुद्र को पार करने के

करावा । ६२ यावरी बोले बिभीषण । सागराची पूजा करून । मागावा मार्ग प्रार्थून । वानरदळ उतरावया । ६३ मग समुद्रतीरीं रघुनंदन । बैसला दर्भासन घालून । पूजा सागरीं समर्पून । मित्रकुळभूषण मार्ग मागे । ६४ फळ तोय वर्जूनि समस्त । निराहार बैसला सीताकान्त । हिमाचळीं हिमनग-जामात । तप करी जयापरी । ६५ तों तेथें रावणाचा हेर । शार्दूळ नामा होता असुर । लंकापतीपुढें जाऊन सत्वर । वार्ता सांगे ते काळीं । ६६ म्हणे कमळिणीप्रियकुळभूषण । अगाध वानरसमुदाय घेऊन । प्रतापसिंधू रघुनंदन । जळसिंधुतीरीं राहिला । ६७ ऐसा समाचार ऐकतां साचार । चिंतेनें व्यापिला दशकंधर । मग शुक नामें असुर । दशकंधर त्यासी सांगे । ६८ तूं आमुचा बंधू होसी । जाऊन सांग सुग्रीवासी । तुज काय कारण सीतेसीं । परतोन जाईं माघारा । ६९ मग तो शुक शुकरूप जाहला । क्षणें सिंधु उल्लंघूनि आला । अंतरिक्षीं उभा राहिला । बोलों लागला धीटपणें । ७० म्हणे मज

लिए निश्चित रूप से क्या उपाय करें ?' ६२ इसपर विभीषण बोला— 'सागर की पूजा करके वानर-दल के (उस पार) उतार देने के हेतु (उससे) प्रार्थना करते हुए मार्ग माँग लें।' ६३ फिर श्रीराम समुद्र-तट पर दर्भासन (कुशासन) बिछाकर बैठ गये और सागर के प्रति पूजा (की सामग्री) समर्पित करते हुए उन रविकुल-भूषण ने मार्ग माँग लिया। ६४ जिस प्रकार शिवजी ने हिमालय पर बैठकर तपस्या की (शिवजी तपस्या के लिए बैठ गये), उसी प्रकार फल (फलाहार) तथा जल (-पान) का त्याग करते हुए श्रीराम निराहार बैठ गये। ६५ तब वहाँ शार्दूल नामक एक असुर, रावण का गुप्तचर (उपस्थित) था। उसने उस समय झट से रावण के सामने जाकर (उपस्थित होकर) वह समाचार कह दिया। ६६ वह बोला— 'कमलिनी-प्रिय (= सूर्य)-कुल-भूषण, प्रतापसमुद्र रघुनन्दन अथाह वानर-सेना को लिये हुए समुद्र के तट पर ठहर गया है।' ६७ ऐसा समाचार सुनकर रावण सचमुच चिन्ता से व्याप्त (चिन्ता-ग्रस्त) हो गया। फिर (वहाँ) शुक नामक एक असुर था। रावण ने उससे कहा। ६८ "जाकर सुग्रीव से कह दो— 'तुम हमारे बन्धु हो, तुम्हें सीता से क्या प्रयोजन ?—तुम लौटकर चले जाओ'।" ६९ फिर वह शुक असुर शुक (= तोता)-रूप हो गया और क्षण में समुद्र को लाँघकर उस ओर (पहुँच) गया, आकाश में खड़ा हो गया (ठहर

पाठविलें रावणें। वानरेश्वरा तूं ऐक वचनें। तुवां शीघ्र परतोन जाणें। मर्कटसेना घेऊनियां। ७१ आम्हीं जानकी आणिली हिरून। तरी तुम्हांसी यावया काय कारण। व्यर्थ वेंचूं नका प्राण। जावें परतोन किष्किंधे। ७२ जरी तुम्ही न जाल परतोन। तरी मी शुक स्वकरेंकरून। तुमचीं शिरकमळें छेदून। नेईन आतां लंकेसी। ७३ ऐसें बोलतां शुक निशाचर। परम क्रोधावले वानर। बहुत धांविन्नले वीर। आसडून खालीं पाडिला। ७४ बहुत मिळोनी कुंजर। ताडिती जैसें एक मार्जार। पाणिप्रहारें तैसा असुर। वानरवीरीं ताडिला। ७५ परम कासावीस होऊन। म्हणे मज राघवा सोडवीं येथून। कृपासागर रघुनंदन। पाहे विलोकून त्याकडे। ७६ सुमित्रासुत म्हणे सोडा सत्वर। तत्काळ मुक्त करिती वानर। सवेंचि गगनीं उडोनि असुर। मागुती बोले निंद्योत्तरें। ७७ म्हणे येथून जाईं तूं किष्किंधापती। न धरीं रामाची संगती। जैसा

गया) और ढिठाई के साथ बोलने लगा। ७० वह बोला— 'हे वानरेश्वर (सुग्रीव), मुझे रावण ने भेजा है। मेरी बात सुनो (मानो) और वानर-सेना लेकर तुम शीघ्र ही लौट जाना। ७१ हम जानकी का अपहरण कर लाये हैं, फिर तुम्हें यहाँ आने का क्या कारण है? अपने प्राणों का व्यर्थ ही व्यय न करो— लौटकर किष्किन्धा (चले) जाओ। ७२ यदि तुम लौट-कर नहीं जाओगे तो मैं शुक अपने हाथ से तुम्हारे मस्तक-कमलों को छेदकर अभी लंका में ले जाऊँगा।' ७३ शुक राक्षस द्वारा ऐसा बोलते ही वानर बहुत क्रुद्ध हो गये। (फिर) बहुत-से वीर (उसकी ओर) दौड़ चले और उन्होंने उसे खींचकर नीचे गिरा लिया। ७४ जिस प्रकार बहुत-से हाथी मिलकर एक बिल्ली को पीट लें, उसी प्रकार वानर वीरों ने हाथों के आघातों (घूसों) से उस राक्षस का ताड़न किया। ७५ (तो) बहुत छटपटाते हुए उसने कहा— 'हे राघव, यहाँ से मुझे छुड़वा दीजिए।' तो कृपासागर रघुनन्दन ने उसकी ओर (ध्यान से) देखा। ७६ (तब) लक्ष्मण ने कहा— '(उसे) झट से छोड़ दो।' तो वानरों ने उसे मुक्त कर दिया। त्यों ही वह असुर आकाश में उड़ान भरते हुए, फिर से निन्दनीय शब्द बोलने लगा। ७७ उसने कहा— 'हे किष्किन्धा-पति (सुग्रीव), तुम यहाँ से चले जाओ; राम की संगति (में) न (रहा) करो। (नहीं तो तुम उस प्रकार नष्ट हो जाओगे,) जिस प्रकार

देवांचे बुद्धीं छळितां उमापती। पुष्पचाप भस्म झाला। ७८
तुम्हांसी मारावया देख। घेऊन आला रघुनायक। तुम्ही वानर शतमूर्ख। नेणा हित आपुलें। ७९ ऋषभ म्हणे रे शुका। दुर्बुद्धि मलिना मशका। जाऊनि सांगें दशमुखा। जनकात्मजा सोडीं वेगीं। ८० तूं आमुचा शत्रु साचार। तुज वधावया आला रघुवीर। तुझीं दाही शिरें छेदून सत्वर। बळी देईल दश दिशां। ८१ शुक म्हणे सीता गोरटी। पुन्हां न पडे तुमचे दृष्टी। मर्कट हो व्यर्थ कष्टी। कासया होतां उगेचि। ८२ ऐसें ऐकतां वाळि-नंदन। म्हणे धरा धरा मागुतेन। तों तत्काल वानरीं आसडून। केलें ताडण ते वेळां। ८३ मग कर चरण बांधोन। शुक ठेविला रक्षून। असो इकडे रघुनंदन। समुद्रासीं मार्ग मागे। ८४ तीन दिवसपर्यंत। गुणसमुद्र रघुनाथ। समुद्राची वाट पाहात। परी तो उन्मत्त सर्वदा। ८५ परम क्षोभला रघुनाथ। म्हणे हा समय न

देवों के कहने से शिवजी को तंग करने पर उनके द्वारा कामदेव (जलकर) भस्म हो गया। ७८ देखो, रघुनाथ तुम्हें मरवा डालने के लिए यहाँ ले आया है। तुम वानर शतमूर्ख हो, (अतः) अपना हित नहीं समझते।' ७९ (यह सुनकर) ऋषभ (नामक एक वानर) बोला— 'रे शुक, रे दुर्बुद्धि मलिन (पापी) मच्छड़ ! जाकर रावण से कहो— झट से सीता को छोड़ देना। ८० तुम सचमुच हमारे शत्रु हो। रघुवीर तुम्हारा वध करने के हेतु आये हैं। तुम्हारे दसों सिरों को शीघ्र ही छेदकर वे दसों दिशाओं पर बलि चढ़ाएँगे।' ८१ (इसपर) शुक बोला— 'सीता सुन्दरी फिर से तुम्हें दिखायी नहीं देगी। हे मर्कटो, यों ही (बिना किसी कारण के) व्यर्थ ही तुम दुःखी क्यों हो रहे हो ?' ८२ ऐसा सुनते ही बालि-नन्दन अंगद ने कहा— '(इसे) फिर से पकड़ लो, पकड़ लो।' तो वानरों ने तत्काल खींचकर उसे उस समय पीट लिया। ८३ फिर उन्होंने हाथ-पाँवों को बाँधकर शुक को रख लिया। अस्तु। (कहा जा चुका है–) इधर रघुनन्दन ने (प्रार्थना-पूर्वक) समुद्र से मार्ग माँग लिया था। ८४ (सद्-) गुण-सागर रघुनाथ तीन दिन तक समुद्र से (मार्ग पाने के सम्बन्ध में) प्रतीक्षा कर रहे थे; फिर भी वह तो सदा उन्मत्त बना रहा था (इसलिए श्रीराम की विनती की ओर उसने कोई ध्यान नहीं दिया)। ८५ (इससे) श्रीराम बहुत क्षुब्ध हो उठे

ओळखे यथार्थ। यास मीं मान दिधला बहुत। सगर-निर्मित म्हणोनियां। ८६ लवणजळविषेंकरून। सर्प हा पसरला लंबायमान। आतां यावरी बाणसुपर्ण। सोडितां भक्षील क्षणार्धें। ८७ माझा बाण वडवानळ। क्षणें शोषिल समुद्रजळ। जैसें ज्ञान प्रवेशतां सकळ। अज्ञान जाय निरसोनियां। ८८ कीं माझा बाण कलशोद्भव। क्षणें शोषील जलार्णव। सूर्य उगवतां तम सर्व। जाय जैसें निरसूनी। ८९ मागुती क्षण एक वाट पाहून। उभा ठाकला रघुनंदन। धनुष्यावरी योजिला बाण। अर्ध क्षण न लागतां। ९० बाणाचे मुखीं ब्रह्मास्त्र। स्थापिता जाहला राजीवनेत्र। कीं क्षोभला प्रळयरुद्र। अक्षय सागर देखतां। ९१ आकर्ण चाप ओढितां प्रचंड। भयें तडाडी विरिंचिअंड। जळचरें खेचरें उदंड। मूर्च्छना येऊन पडि-

और बोले—'यह सचमुच समय (के महत्त्व) को नहीं जानता। इसे सगर* द्वारा निर्मित जानकर मैंने इसका बहुत मान रखा। ८६ खारे जलरूपी विष से (उन्मत्त होकर) यह (समुद्ररूपी) सर्प लम्बा फैला हुआ है। अब इसपर बाणरूपी गरुड़ को छोड़ते ही वह इसे क्षणार्ध में खा डालेगा। ८७ मेरा बाण (मानो) वड़वाग्नि है, जो क्षण में समुद्र के जल को (उस प्रकार) सोख लेगा, जिस प्रकार (साधक के मन में) ज्ञान के प्रविष्ट हो जाते ही (उसका) समस्त अज्ञान नष्ट हो जाता है (सोख लिया जाता है)। ८८ अथवा मेरा बाण (मानो) अगस्त्य ऋषि है, जो इस जल-सागर को क्षण में उस प्रकार सोख लेगा, जिस प्रकार सूर्य के उदित हो जाने पर समस्त अँधेरा दूर हो जाता है। ८९ अनन्तर एक क्षण प्रतीक्षा करके रघुनन्दन खड़े हो गये और आधा क्षण तक न लगते, उन्होंने धनुष पर वाण सन्धान किया। ९० कमल-नयन श्रीराम ने बाण के मुख में ब्रह्मास्त्र स्थापित किया। अथवा (यह ऐसे ही हुआ कि) सागर को अक्षय (न घटते हुए) देखकर प्रलय उत्पन्न करनेवाला रुद्र ही प्रक्षुब्ध हो गया हो। ९१ उनके द्वारा धनुष (की डोरी) को कानों तक खींचते ही ब्रह्माण्ड भय से तड़तड़ ध्वनि के साथ (मानो) भग्न हो गया। उससे असंख्यात जलचर तथा खेचर (आकाशस्थ

*टिप्पणी : सागर = सगर राजा के अश्वमेध के अवसर पर इन्द्र द्वारा चुराये हुए घोड़े की खोज करते हुए उसके पुत्रों ने पृथ्वी के चारों ओर पाताल तक भूमि को खोद डाला। बाद में उन गड्ढों में पानी भर गया। सगर से सम्बन्ध रखनेवाली उस घटना की स्मृति में जल भरे इन गड्ढों को 'सागर' कहा जाने लगा।

येलीं। ९२ निशा संपतां समग्र। उदयाद्रीवरी ये मित्रचक्र। तैसा दिव्यरूप समुद्र। सरितांसहित प्रगटला। ९३ यागीं होतां पूर्णाहुती। तत्काळ प्रगटे आराध्यमूर्ती। तैसा प्रगटला सरितापती। परिवारेंसी तेधवां। ९४ वंदूनियां रघुवीर-चरणां। म्हणे राजीवाक्षा रघुनंदना। स्मरारिमित्रा आनंद-सदना। जानकीजीवना रघुपते। ९५ तूं कृपासमुद्र रघुवीर। कां हे लहरी आली क्रूर। माझा अन्याय नसतां शर। धनुष्यावरी घातला। ९६ माझा स्वभाव रघुनंदना। सर्वदा-ही करावी गर्जना। तुजसीं गर्व गर्वहरणा। सर्वथाही केला नाहीं। ९७ मग म्हणे रघुनंदन। म्यां शरासनीं योजिला बाण। पुन्हां काढितां न ये पूर्ण। यासी कारण सांग कांहीं। ९८ यावरी बोले सरितानाथ। पश्चिमेस असे मरु दैत्य। तो माझीं जळचरें भक्षीत। सदा पीडितो गोब्राह्मणां। ९९ त्यावरी टाकूनियां बाण। मरूचा तत्काळ घ्यावा जी प्राण। तों शर गेला न लागतां क्षण। कल्पांत-

---

जीव) मूर्छित होकर गिर पड़े। ९२ (तदनन्तर जिस प्रकार) रात के पूर्णतः समाप्त होते ही सूर्य उदयाचल पर आ जाता है, उस प्रकार (मान रूपी निशा के समाप्त होते ही) दिव्य रूप में समुद्र नदियों सहित प्रकट हो गया। ९३ जिस प्रकार यज्ञ में आहुति के पूर्ण होते ही आराध्य देवता की मूर्ति तत्काल प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार तब सरिता-पति (समुद्र) परिवार-सहित प्रकट हो गया। ९४ श्रीराम के चरणों का वन्दन करके उसने कहा— 'हे राजीव (कमल)-नेत्र, हे रघुनन्दन, कामदेव के शत्रु (शिवजी) के हे मित्र, हे आनन्द-सदन, हे जानकी-जीवन रघुपति! हे रघुवीर, आप कृपा के सागर हैं। आप (समुद्र) में यह कठोर (इच्छा-रूपी) लहर क्यों (उत्पन्न हो) आयी है, (जिससे) आपने मेरे अन्याय के न होने पर भी धनुष पर बाण को चढ़ा लिया है? ९५-९६ हे रघुनन्दन, नित्य-प्रति गर्जना करते रहना ही मेरा स्वभाव है। हे गर्व-हरण, मैंने आपके सम्मुख गर्व बिलकुल नहीं किया है।' ९७ फिर रघुनन्दन ने कहा— 'मैंने धनुष्य पर बाण प्रयुक्त किया है, उसे तो फिर सर्वथा नहीं निकाला जा सकता। (इसलिए) इसके लिए कोई कार्य (लक्ष्य) बताओ।' ९८ इसपर सरिता-नाथ समुद्र ने कहा— 'पश्चिम में मरु नामक एक दैत्य है। वह मेरे जल में रहनेवाले जीवों को खा डालता है और गायों तथा ब्राह्मणों को सदा पीड़ा पहुँचाता है। ९९ अहो, उसपर बाण चलाकर

चपलेसारिखा । १०० जळीं जीव वधितां मरु दैत्य । शिर छेदलें अकस्मात । जीवन शोषिलें तेथें बहुत । मारवाडदेश वसिन्नला । १ अद्यापि तिकडे अल्प जळ । परी वृक्षवल्ली सदा सुफळ । असो सागरें तमालनीळ । जामात म्हणोनि पूजिला । २ मग सर्व पूजा आणून । घनश्यामगात्र रघुनंदन । अपर्णावराचें मनरंजन । हर्षें पूजी श्रीरामचंद्रा । ३ दिव्यालंकार दिव्य वस्त्रें । अमोलिक रत्नें प्रभाकरें । राघावापुढें नदीश्वरें । समर्पिलीं ते काळीं । ४ सागर म्हणे अयोध्यानाथा । वस्त्रें भूषणें लेईं समर्था । नृपास वल्कलें तत्त्वतां । रिपुसन्मुख योग्य नव्हे । ५ अयोध्यानाथा नृपवरा । करूनि यांच्या अंगीकारा । मग समरंगणीं दशकंधरा । खंड विखंड करावें । ६ बैसावया दिव्य रथ । समरीं पाठवील शचीनाथ । वानर सुग्रीवादि समस्त ।

मरु के तत्काल प्राण (छीन) लीजिए । ' त्यों ही क्षण न लगते, बाण कल्पान्त समय की बिजली-सा चला गया । १०० जल में जीवों का वध करते हुए उस मरु दैत्य का सिर अकस्मात (उस बाण ने) छेद डाला । उसने वहाँ बहुत-सा पानी सोख लिया और ' मारवाड़ ' नामक देश बसा लिया । १०१ आज भी उधर (मारवाड़ नामक देश में) पानी थोड़ा ही है, परन्तु वृक्ष और लताएँ सदा अच्छे फलों से युक्त रहते हैं । अस्तु । समुद्र ने तमालनील श्रीराम को जामाता समझकर ※ उसका पूजन किया । २ फिर सब (प्रकार की) पूजा (की सामग्री) लाते हुए उसने शिवजी के मन को रिझानेवाले घनश्यामगात्र रघुनन्दन श्रीरामचन्द्र का सहर्ष पूजन किया । ३ उस समय नदीश्वर समुद्र ने श्रीराम के सामने दिव्य आभूषण, दिव्य वस्त्र और तेजस्वी अमूल्य रत्न समर्पित कर रखे । ४ फिर सागर ने कहा— ' हे अयोध्यानाथ, हे समर्थ, (इन) वस्त्रों और आभूषणों को स्वीकार कीजिए । वस्तुतः राजा के लिए शत्रु के सामने वल्कल (-धारी होना) उचित नहीं है । ५ हे अयोध्यानाथ, हे नृपवर, इन्हें स्वीकार करके फिर समरांगण में रावण के टुकड़े-टुकड़े कर डालें । ६ शचिपति इन्द्र आपको बैठने के लिए समर-भूमि में दिव्य रथ भेज देगा । ' तब सुग्रीव आदि समस्त वानरों ने रघूत्तम श्रीराम से निवेदन

※ टिप्पणी : जब अमृत की प्राप्ति के हेतु देवों मौर दानवों ने क्षीर-समुद्र को मथ लिया था, तो उसमें से लक्ष्मी प्रकट हो गयी । उसे भगवान विष्णु ने पत्नी के रूप में अपनाया । इस दृष्टि से विष्णु समुद्र के जामाता हो गये । श्रीराम विष्णु के अवतार हैं, इस नाते वे भी समुद्र के जामाता थे ।

विनविती तेव्हां रघूत्तमा। ७ स्वामी आम्हां समस्तांचे मनीं। वस्त्रें भूषणें ध्यावीं ये क्षणीं। भक्तवचनें चापपाणी। मानिता जाहला ते वेळे। ८ कल्पांतचपळेसमान। राघव नेसला पीतवसन। उत्तरीय प्रावरण देदीप्यमान। कीं चंडकिरण प्रकाशला। ९ सांवरूनि जटाभार। वरी मुकुट घातला सुंदर। तेज तळपतसे अपार। दिक्चक्रामाजी न समाये। ११० प्रळयचपळेचे उमाळे उठती। तेवीं दिव्य कुंडलें तळपती। कीं कवि आणि अंगिरापती। कर्णीं शोभती साचार। ११ मुक्ताफळमाला बहुत। रघुपतीच्या गळां डोलत। कीं मुक्तारूपें समस्त। अनंत ब्रह्मांडें गुंफिलीं। १२ मुक्ताफळांचें तेज गहन। परी त्यांचा पालटला वर्ण। दिसती इंद्रनीलासमान। श्यामलांगीं रघुपतीच्या। १३ जेवीं निष्कलंक मृगांक। तेवीं हृदयीं झळके पदक। कटीमेखळेचें तेज अधिक। देखतां अर्क भुले पैं। १४ वेदांच्या श्रुती गहन।

किया। ७ 'हे स्वामी, हम सबके मन में (यह बात) है कि आप इस क्षण इन वस्त्रों और आभूषणों को (स्वीकार कर) लें।' (यह सुनकर) उस समय चापपाणि श्रीराम ने भक्तों की बात मान ली। ८ श्रीराम ने पीताम्बर पहना, जो कल्पान्त समय की बिजली के समान (जगमगाता हुआ, तेजस्वी) था। उनका (पहना) हुआ उत्तरीय वस्त्र ऐसा देदीप्यमान था, (जान पड़ता था) कि (मानो) सूर्य प्रकाशित हो गया हो। ९ उन्होंने अपने जटा-भार को ठीकठाक करके उसके ऊपर सुन्दर मुकुट रखा, जिसका तेज अपार जगमगाता था— वह (तेज) दिश-चक्र (दसों दिशाओं) के घेरे में नहीं समा रहा था। ११० जिस प्रकार प्रलय-काल की बिजली की (उछलती हुई) लहरें उठती हों, उस प्रकार उनके दिव्य कुण्डल दमक रहे थे। अथवा (जान पड़ता था कि) शुक्र और गुरु (के प्रतीक तारे) ही सचमुच कानों में शोभायमान हो रहे थे। ११ मोतियों की बहुत-सी मालाएँ रघुपति के गले में झूल रही थीं, मानो समस्त अनन्त ब्रह्माण्डों को मोतियों के रूप में पिरोया हो। १२ उन मोतियों का तेज अपार था, फिर भी उनका रंग यों बदल गया था कि वे रघुपति के श्याम शरीर पर इन्द्रनील रत्नों के समान दिखायी दे रहे थे। १३ हृदय (-स्थल) पर पदीक वैसे झलक रहा था, जैसे कलंक-हीन चन्द्रमा झलकता हो। कमर में बँधी मेखला का तेज (इतना) अधिक था कि उसे देखते ही सूर्य (तक) मोहित हो गया हो। १४ जिस प्रकार वेदों की गहन

अर्थ बोलती जेवीं शोधून। तैशा क्षुद्रघंटा घणझुण। शब्द करिती रसाळ। ११५ तीक्ष्ण प्रभेचीं चक्रें तळपती। तैशा मुद्रिका करीं झळकती। पदीं नेपुरें गर्जती। असुरांवरी प्रतापें। १६ नीळ गगनावरी सुंदर। मंदाकिनीओघ दिसे शुभ्र। तैसा अम्लान सुमनहार। श्यामलांगीं शोभतसे। १७ असो दिव्यगंधीं दिव्यसुमनीं। सागरें पूजिला चापपाणी। तैसाचि लक्ष्मण तये क्षणीं। वस्त्रालंकारें गौरविला। १८ देव करिती जयजयकार। वर्षती दिव्य पुष्पसंभार। भुभुःकारें गर्जती वानर। तेणें अंबर कोंदलें। १९ असो जगदात्मा रघुवीर। जो कां सर्वानंदमंदिर। सागराप्रती राजीवनेत्र। काय बोलता जाहला। १२० म्हणे सुवेळेसी जावया दळभार। उपाय सांगें कांहीं सत्वर। सागर म्हणे नळ वानर। ऋषीचा वर त्यास असे। २१ नळ कपि बाळपणीं। शालिग्राम टाकी जळीं नेउनी। मग ऋषी म्हणती जीवनीं। पाषाण तरोत तव हस्तें। २२ यालागीं सुवेळेपर्यंत। ' नळाचे

श्रुतियाँ जिस प्रकार खोज-खोजकर अपने (गूढ़) अर्थ को ध्वनिरूप में प्रकट करती हों, उसी प्रकार (करधनी में बँधी) छोटी-छोटी घंटिकाएँ झनझन मधुर ध्वनियाँ (उत्पन्न) कर रही थीं। ११५ प्रखर कान्तिवाले चक्र दमकते हों, वैसे श्रीराम की (अँगुलियों में) अँगूठियाँ झलक रहीं थीं। राक्षसों को मात कर देनेवाले प्रताप से पाँवों में नूपुर गरज रहे थे। १६ जिस प्रकार नीले आकाश में (आकाश-) गंगा का सुन्दर शुभ्र प्रवाह दिखायी देता है, उस प्रकार (श्रीराम के) श्याम शरीर पर अम्लान (ताजे) फूलों का हार शोभायमान था। १७ अस्तु। समुद्र ने दिव्य गन्ध से युक्त दिव्य फूलों से चापपाणि श्रीराम का पूजन किया। उसी प्रकार उसने लक्ष्मण का (भी) उस क्षण वस्त्र-आभूषणों से गौरव किया। १८ (यह देखकर उधर) देवों ने जय-जयकार किया और दिव्य फूलों की राशियाँ बरसा दीं, तो (इधर) वानरों ने भुभुःकार-पूर्वक गर्जन किया। उस (गर्जन) से आकाश भर गया। १९ अस्तु। जो सबके आनन्द का मन्दिर ही है, उस जगदात्मा कमल-नयन रघुवीर ने सागर से क्या कहा? १२० वे बोले— ' सेना-दल के सुवेल जाने के लिए कोई उपाय (युक्ति, योजना) झट से बताओ। ' तो सागर ने कहा-- “ नल नामक वानर को एक ऋषि से वर प्राप्त है। २१ वह नल वानर बचपन में शालिग्राम ले जाकर (नदी के) जल में डाला करता था। तब उस ऋषि ने (वर

हातें बांधीं सेत। असो आज्ञा मागोनि सरितानाथ। जाहला गुप्त स्वस्थानीं। २३ याउपरी कौसल्यानंदन। नळ कपी जवळी बोलावून। म्हणे धन्य तुझें वरदान। जळीं पाषाण तारीं आतां। २४ धन्य धन्य तुझी माउली। तुजऐसें रत्न प्रसवली। तरी सखया ये काळीं। प्रगट करीं सामर्थ्य तुझें। २५ ऐसें बोलतां रघुवीर। भुभुःकारें गर्जती वानर। पाषाण पर्वत अपार। समुद्रजळीं टाकिती। २६ लागतां नळाचा वरद हस्त। समुद्रीं तरती काष्ठवत। कीं तुंबिनीफळें तरत। पाषाण पोहत त्यापरी। २७ कीं सद्‌गुरूचे कृपें-करूनी। भवजळीं तरती बहुत प्राणी। तैसीच नळाची करणी। पाषाण जळीं तरले हो। २८ इकडे अठरा पद्में वानर। बहात्तर कोटी रीस वीर। पर्वत पाषाण तरुवर। संख्यारहित आणिती। २९ असंभाव्य उचलिती पर्वत। वरी ग्राम तटाकासहित। ऐशा नगांच्या उतरंडी बहुत। धांवताती घेऊनि। १३० भार वानरांचे धांवती। चालतां

देते हुए) कहा-- 'तुम्हारे हाथ से डाले हुए पाषाण पानी में तैरेंगे।' २२ इसलिए नल के हाथों सुवेल तक सेतु बनवाइए।" अस्तु। (फिर) आज्ञा लेकर सागर अपने स्थान में गुप्त हो गया। २३ इसके पश्चात् राम ने नल कपि को (अपने) पास बुलाकर कहा-- 'तुम्हें जो वरदान (प्राप्त है, वह) धन्य है, धन्य है। अब पाषाणों को पानी पर तैरा दो। तुम्हारी वह माता धन्य है, धन्य है, जिसने तुम-जैसे (पुत्र-) रत्न को जन्म दिया। इसलिए हे मित्र, अब इस समय अपनी सामर्थ्य प्रकट करो।' २४-२५ रघुवीर के ऐसा बोलने पर वानरों ने भुभुःकार से गर्जन किया और वे असंख्य पाषाण और पर्वत (ला-लाकर) समुद्र के जल में डालने लगे। २६ तो नल के वरद-हस्त के छूते ही वे (पाषाण-पर्वत) काठ की भाँति समुद्र में तैरते रहे। अथवा जैसे तूँबे तैरते हैं, उस प्रकार पाषाण तैरते थे। २७ अथवा सद्‌गुरु की कृपा से भव-(सागर-) जल में बहुत प्राणी तैर जाते हैं, उसी प्रकार नल की करनी थी। अहो, (उससे) पाषाण पानी पर तैरते रहे। २८ इधर अठारह पद्म वानर और बहत्तर करोड़ रीछ वीर असंख्यात पर्वत, पाषाण और वृक्ष ला रहे थे। २९ वे (उठाने के लिए) असम्भव पर्वतों को उनकी ढलान पर बसे हुए ग्रामों सहित उठाते थे। ऐसे बहुत-से पर्वतों की भँड़ोलियों को लिए हुए वे दौड़ रहे थे। १३० वानरों के दल दौड़ रहे थे, तो उनके चलते रहते,

न दिसे खालीं क्षिती। लक्षांचे लक्ष पर्वत टाकिती। नव्हे गणती शेषातें। ३१ त्याहीमाजी हनुमंत। विशाळ रूप धरी अद्भुत। कीं मंदराचळचि धांवत। रामकार्याकारणें। ३२ तरी तो महाराज हनुमंत। तेणें किती वाहिले पर्वत। मूळ काव्यामाजी गणित। केलें असे ऐका तें। ३३ वेदसंख्यालक्ष पर्वत। पुच्छें वेष्टित आधीं हनुमंत। शास्त्रसंख्यालक्ष शिरीं ठेवीत। हातीं घेत लक्षद्वय। ३४ बहुत नगांच्या पंक्ती। स्कंधीं बैसवी हो मारुती। मागें सांडोनि समीरगती। आकाशपंथें धांवतसे। ३५ वानर श्रमले असंख्यात। ठायीं ठायीं पडती निद्रिस्त। परी श्रमरहित हनुमंत। असंख्यात खेपा करी। ३६ आश्चर्य करी अयोध्यापाळ। म्हणे धन्य मारुतीचें बळ। संख्यारहित अचळ। रिचवी नेऊन सागरीं। ३७ प्रथम दिवशीं नळें अद्भुत। चौदा गांवें बांधिला सेत। परी अभिमान धरिला बहुत। माझेनि तरती पाषाण

नीचे धरती नहीं दिखायी दे रही थी। वे (इस प्रकार लाकर) लाखों लाखों पर्वत डाल रहे थे, जिनकी गिनती शेष द्वारा भी नहीं हो पाती। ३१ उन्हीं (वानरों) में हनुमान ने विशाल अद्भुत रूप धारण किया था। अथवा जान पड़ता था कि मंदार पर्वत ही राम के कार्य के लिए दौड़ रहा हो। ३२ फिर भी उस महाराज हनुमान ने कितने पर्वतों को वहन किया, उसका हिसाब मूलकाव्य (आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण) में किया है; उसे सुनिए। ३३ हनुमान ने (वेदों की संख्या में अर्थात्) चार लक्ष पर्वतों को पहले पूँछ में लपेट लिया, (फिर शास्त्रों की संख्या में अर्थात्) छः लाख पर्वतों को सिर पर रखा और दो लाख हाथों में लिये। ३४ अहो, हनुमान ने बहुत पर्वतों की पंक्तियाँ कंधों पर रख दीं और वायु-गति को पीछे डालकर अर्थात् वायु-गति से भी अधिक गति से वह आकाश-मार्ग से दौड़ रहा था। ३५ अनगिनत (अन्य) वानर तो थक गये, (अतः) वे स्थान-स्थान पर सोये हुए पड़े रहे। परन्तु (इधर) हनुमान थकान से रहित रहकर असंख्यात फेरे लगा रहा था। ३६ यह देखकर अयोध्या-पाल श्रीराम आश्चर्य अनुभव कर रहे थे। उन्होंने कहा (माना)— (इस) हनुमान का बल धन्य है, धन्य है, (जो) असंख्य पर्वतों को ले जाकर समुद्र में (उँडेल) डाल रहा है। ३७ पहले दिन नल ने अद्भुत रूप में चौदह योजन सेतु बना लिया। परन्तु उसने इसपर बहुत अभिमान धारण किया कि मेरे हाथों ये पाषाण तैर रहे हैं। ३८

हे। ३८ तंव निमेषामाजी एक मीन आला। तेणें सर्व सेतु गिळिला। सवेंच दिनमणि उगवला। तों सेतु नाहीं त्या स्थळीं। ३९ सुग्रीवादि वानर तर्क करिती। रावणें नेला सेतु म्हणती। मग रघुपतीस जाणविती। सेतु नाहीं म्हणूनियां। १४० मग श्रीरामें शरभासी सांगुनी। तिमिंगिल मत्स्य आणविला ते क्षणीं। शरभ म्हणे सेतु शोधूनी। वेगें आणूनि देइंजे। ४१ नाहीं तरी अयोध्यानाथ। तुम्हांस शिक्षा करील बहुत। यावरी तिमिंगिल बोलत। राघवापुढें ते वेळां। ४२ मी दर्शनास येते वेळे। मागें येत होतीं लघु बाळें। त्यांहीं गिळिला शीघ्र काळें। बाळभावेंकरूनियां। ४३ तयां हातीं बांधवीन क्षणांत। अथवा स्वपृष्ठीचा करीन सेत। हास्यवदन करी रघुनाथ। म्हणे करणी अद्भुत बाळांची। ४४ गर्वहत नळ होऊन। खालीं पाहे अधोवदन। असो मत्स्यशिशूनें सेतू उगळून। आणून ठेविला पूर्वस्थळीं। ४५ मग त्यापुढें कपी नळ। सेतू बांधिता जाहला विशाळ।

तब एक मछली क्षण में (वहाँ) आ गयी। उसने समस्त सेतु को निगल डाला। साथ ही (=त्यों ही) सूर्य उदित हुआ, तो उस स्थान पर सेतु नहीं (दिखाई दे रहा) था। ३९ तो सुग्रीव आदि वानरों ने अनुमान किया और कहा (माना) कि रावण सेतु ले गया होगा। तब उन्होंने रघुपति को जतला दिया कि (वहाँ) सेतु नहीं है। १४० फिर श्रीराम शरभ से कहकर उस क्षण 'तिमिंगल' * जाति का एक मत्स्य लिवा लाये; (तत्पश्चात्) शरभ ने उससे कहा—'सेतु को झट से खोजकर ला दो। ४१ नहीं तो अयोध्यानाथ श्रीराम तुम्हें बहुत दण्ड देंगे।' इसपर उस समय वह श्रीराम के सम्मुख बोला। ४२ 'आपके दर्शन के लिए मेरे आते समय पीछे-पीछे मेरे बच्चे आ रहे थे। उन्होंने अल्प समय में (झट से) उस सेतु को बाल-स्वभाव के अनुसार निगल डाला। ४३ मैं उनके हाथों क्षण में (सेतु) बनवाऊँगा अथवा अपनी पीठ का सेतु (-रूप में प्रयोग) कर दूँगा।' (यह सुनते ही) रघुनाथ मुस्करा उठे और बोले—'इन बालकों की करनी अद्‌भुत है।' ४४ (यह सुनकर) नल गर्व-हत होकर अधोमुख हुए (सिर झुकाये) देखता रहा। अस्तु। (इधर) उस मत्स्य के एक शिशु ने वह सेतु उगलकर पूर्व स्थान पर लाकर रख दिया। ४५

---

* टिप्पणी : तिमिंगल— सौ योजन लम्बा एक कल्पित मत्स्य, जो अन्य मत्स्यों को निगल डालता है; देवमत्स्य।

परी जळीं पडतां ते अचल। मत्स्य गिळती सवेग। ४६ मत्स्य गिळिती अचळ। उगाचि तटस्थ पाहे नळ। तों मत्स्यरूपी केशव विशाळ। जळचरांप्रती सांगतसे। ४७ म्हणे मी आणि रघुवीर। दोघे एकरूप साचार। सेतुबंधनासी निर्धार। विघ्न कांहीं न करावें। ४८ नळासी साह्य होऊन। तळीं पृष्ठी द्या अवघे जण। असो पर्वत गिळितां राहिले मीन। नवल जाहलें ते वेळीं। ४९ परी पर्वतशिळा उसळोन। दूर जाती वाहून। नळाची विकळ मति होऊन। तटस्थरूप जाहला। १५० मग नळासी म्हणे हनुमंत। सखया गर्व न धरीं किंचित्। अवघा कर्ता रघुनाथ। अभिमान तेथें कायसा। ५१ स्तंभावीण आकाश धरी। उदकावरी तारी धरित्री। मित्र शशी उडुगणें निर्धारीं। वायुचक्रीं चालवी जो। ५२ अनंत ब्रह्मांडें मोडून। सर्वेचि निर्मी न लगतां क्षण। त्या रामापुढें अभिमान। कोठें चालेल जीवांचा। ५३ जैसा उगवतां वासरमणी। मृगांकतेज

फिर नल कपि ने उसके आगे विशाल सेतु बना लिया, परन्तु समुद्र-जल में पर्वतों के पड़ते ही मत्स्य उन्हें झट से निगल जाते। ४६ मत्स्य पर्वतों को निगल डाल रहे हैं— नल तटस्थ (चकित) होकर यह चुपचाप देख रहा था। तो विशाल मत्स्य रूपी भगवान केशव (विष्णु) ने उन जलचरों से कहा। ४७ वह बोला— मैं और रघुवीर राम सचमुच एकरूप हैं! सेतु बनाने के हमारे निश्चय में कोई बाधा (उपस्थित) न करना। ४८ नल के सहायक होकर तुम सब लोग (पर्वतों के) तल में पीठ (का आधार) दो। अस्तु। पर्वतों को निगलते-निगलते मत्स्य रुके तो रहे। उस समय एक आश्चर्य हो गया। ४९ परन्तु पर्वत और शिलाएँ उछलकर दूर बह जाने लगे। (यह देखकर) नल की बुद्धि विकल होकर वह तटस्थ (चकित) रह गया। १५० तब हनुमान नल से बोला— 'हे मित्र, तुम किंचित् भी गर्व धारण न करना। रघुनाथजी (सबके) पूर्णतः कर्ता हैं। वहाँ अभिमान किसलिए। ५१ जो बिना स्तम्भ के आकाश को धारण किए हुए हैं, धरती को पानी पर तैराते हैं, जो सूर्य, चन्द्र और तारा-गणों को निर्धारित रूप से वायु-चक्र में चला रहे हैं, जो अनन्त ब्रह्माण्डों को तोड़कर साथ ही क्षण न लगते (उनका फिर से) निर्माण करते हैं, उन श्रीराम के सामने जीवों का अभिमान कहाँ चलेगा। ५२-५३ जिस प्रकार सूर्य के उदित होते ही चन्द्र का तेज उस

लोपे ते क्षणीं। तेथें खद्योत स्वतेजेंकरूनी। उजळील काय नभातें। ५४ यालागीं गर्व सांडोनी। सांगतों तें वर्म धरी मनीं। रकारें एक शिला रेखोनी। काना देऊनि करीं गुरु। ५५ दुजे शिळेवरी रेखीं मकार। दोहींस करीं एकाकार। तूं म्हणसी रामनाम पवित्र। सेतूवरी केवीं लिहूं। ५६ कपी देतील वरी चरण। हा संशय धरी तुझें मन। बा रे मुख्य भेदासी कारण। तो अभिमान सोडीं कां। ५७ मुख्य रामनाम पाहीं। हृदयीं अभेद रुळे सदाही। मग ते पाषाण सहसाही। भेदभाव न धरिती। ५८ हनुमंतवचन तीक्ष्ण कुठार। समूळ छेदिला अभिमानतरुवर। मग निरभिमानें नळ वीर। तैसेंच करिता जाहला। ५९ करितांच श्रीरामस्मरण। नळ कपी जोडी पाषाण। तों तेथें सम विषम थोर लहान। भेदाभेद न दिसेचि। १६० हनुमंतकाव्यांतील हृद्गत। चतुरीं जाणिजे हा भावार्थ।

क्षण लुप्त हो जाता है, तो वहाँ जुगनू क्या अपने तेज से आकाश को प्रकाशित कर सकेगा ? ५४ इसलिए गर्व को छोड़कर तुम वह रहस्य मन में धारण करो, जो मैं बताता हूँ। 'र'कार अर्थात् 'र' अक्षर से एक शिला को अंकित करो; उसके साथ 'आ' की मात्रा लगाकर (दो मात्राओं वाला) गुरु (अक्षर) बनाओ। ५५ दूसरी शिला पर 'म'कार- 'म' अक्षर अंकित करो। फिर दोनों ही को एकाकार कर दो। तुम कहते हो, राम नाम पवित्र है, उसे मैं सेतु पर कैसे लिखूँ। ५६ उस पर कपि पाँव धरेंगे— यह संशय तुम मन में धारण कर रहे हो। अरे ! इस मुख्य भेद का जो कारण है, उस अभिमान को छोड़ दो न। ५७ राम-नाम को मुख्य रूप में देखोगे (–समझोगे), तो हृदय में अभेद भावना (अर्थात् आत्मा और परमात्मा अभिन्न हैं, चराचर में परमात्मा व्याप्त है और इस दृष्टि से चर और अचर भी एकात्म हैं, यह भावना) नित्यप्रति शोभायमान बनी रहेगी। फिर वे पाषाण भी साधारणतः भेद-भावना धारण नहीं करेंगे।" ५८ हनुमान की यह बात मानो पैनी कुल्हाड़ी थी; उसने अभिमान रूपी वृक्ष को मूल-सहित काट डाला। फिर अभिमान रहित होकर (वानर-) वीर नल ने वैसा ही किया। ५९ श्रीराम का स्मरण करते-करते ही नल कपि पाषाणों को जोड़ता रहा, तो वहाँ सम और विषम तथा छोटे-बड़े का भेद-अभेद दिखायी ही न दे रहा था। १६० हनुमान के काव्य (कथन) के मार्मिक भाव का चतुर लोग यह भावार्थ

सेतुपंथें नाम यथार्थ। नळें नाहीं रेखिलें तें। ६१ दुजयासी पाषाण जे बुडवीत। ते सागरीं तरती तारूंवत। हा नळाचा गुण निश्चित। महिमा अद्भुत रामाचा। ६२ सेतू बांधावया कारण। नळ रामेंचि केला निर्माण। भक्तवत्सल रघुनंदन। महिमा वाढवी दासांचा। ६३ असो बाणसंख्या दिवसांत। सुवेळेपर्यंत बांधिला सेत। शतयोजनें लांब गणित। दशयोजनें रुंद पैं। ६४ गगनीं पाहती सुरवर। सेतू दिसे जैसा भोगींद्र। रघुपतीतें सांगती वानर। सेतू संपूर्ण केला नळें। ६५ नळास बोलावून रघुनंदनें। हृदयीं धरिला परम प्रीतीनें। म्हणे धन्य धन्य तुझें जिणें। भरिलें त्रिभुवन कीर्तीनें। ६६ सखया त्वां अद्भुत कार्य केलें। अघटित तेंचि घडविलें। असो रघुवीर म्हणे ते वेळे। चला सुवेळे जाऊं आतां। ६७ कुंचा फिरविला वीरें नळें। तत्काळ उठलीं कपिदळें। भुभुःकारनादें ते वेळे। डळमळला भूगोळ। ६८ सुमुहूर्तवेळा पाहून। उठोनि चालिले रामलक्ष्मण। दशयोजनें रुंद

समझें कि सेतुमार्ग में वस्तुतः नल ने वह राम-नाम नहीं अंकित किया था। ६१ दूसरों को जो पाषाण डुबा रहे थे, वे समुद्र में नौका की भाँति तैर रहे थे। यह निश्चय ही नल का गुण (माहात्म्य) नहीं था— वह तो रामनाम का ही अद्भुत माहात्म्य था। ६२ राम ने ही नल का निर्माण सेतु बनाने के हेतु किया था। (इस प्रकार) भक्त वत्सल रघुनन्दन अपने सेवकों की महिमा की वृद्धि करते हैं। ६३ अस्तु। बाणों की संख्या अर्थात् पाँच दिनों में सुवेल तक सेतु बनाया (गया), जो हिसाब से सौ योजन लम्बा तथा दस योजन चौड़ा था। ६४ देव आकाश में से देख रहे थे। वह सेतु भोगीन्द्र शेष के समान दिखायी दे रहा था। फिर वानरों ने रघुपति से कहा— 'नल ने सेतु को पूर्ण किया है।' ६५ (तदनन्तर) रघुनन्दन ने नल को बुलाकर उसे प्रेमपूर्वक हृदय से लगा लिया और कहा— 'तुम्हारा जीना (जीवन) धन्य है, धन्य है। तुम्हारी कीर्ति से त्रिभुवन भर गया है। ६६ हे सखा, तुमने अद्भुत कार्य किया है। जो असम्भव लगता था, वही कर डाला है।' अस्तु। (फिर) उस समय रघुवीर ने कहा-- 'चलो अब सुवेल जाएँ।' ६७ यह (सुनकर) वीर नल ने कूची फेर दी, तो कपियों के दल तत्काल उठ गये। उनकी भुभुःकार ध्वनि से भू-गोल (पृथ्वी) डगमगा उठा। ६८ सुमुहूर्त (वेला) देखकर राम और लक्ष्मण उठकर चल दिये। (उनके साथ)

प्रमाण। सेना दाटली चालतां। ६९ कडेचे कोसळती वानर। सवेंच उडी घेती चक्राकार। वरी येऊन सत्वर। सेतुपंथें चालती। ७० रघुवीर चरणचालीं जात। धांवती सुग्रीव हनुमंत। म्हणती रघूत्तमा विपरीत। होईल ऐसें वाटतें। ७१ तुमचें पद लागतां ये वेळा। उद्धरतील सेतूच्या शिळा। होतील अहल्येऐशा अबळा। पडतील गळां कपींच्या। ७२ कुटिल भाव सोडून। विनोदें हांसे सूर्यनंदन। मग हनुमंतस्कंधीं रघुनंदन। आरूढला ते वेळां। ७३ अंगदाच्या स्कंधावरी। सौमित्र बैसे ते अवसरीं। बाळ सूर्य उदयाद्रीवरी। त्याचपरी शोभतसे। ७४ न भरतां अर्धप्रहर। सुवेळेसी आला रघुवीर। सेना उतरली अपार। लंकानगर गजबजलें। ७५ शुकास केलें होतें बंधन। तो राघवें दिधला सोडून। तेणें रघुपतीचे वंदोनि चरण। लंकेमाजी प्रवेशला। ७६ मग रावणापुढें अद्भुत। राघवप्रताप शुक सांगत। म्हणे जयासी समुद्र सरितांसहित। मूर्तिमंत भेटला। ७७ धन्य प्रतापी रघुनंदन। जळीं तारिले पाषाण।

सेना चलते-चलते दस योजन प्रमाण चौड़ी बन गयी। ६९ सेतु के छोरों पर चलनेवाले वानर नीचे गिर जाते, तो साथ ही वे चक्राकार छलाँग लगाते। फिर झट से ऊपर आकर सेतुमार्ग से चलने लगते। १७० रघुवीर तो पैदल जा रहे थे, तो सुग्रीव और हनुमान दौड़ते हुए आ गये और बोले— 'हे रघूत्तम, लगता है, कुछ विपरीत हो जाएगा। ७१ इस समय आपके चरणों के लगते ही सेतु की शिलाएँ अहल्या की भाँति स्त्रियाँ बन जाएँगी और वे वानरों के गले पड़ जाएँगी।' ७२ कुटिल भाव को छोड़कर सुग्रीव मज़े में हँस दिया। फिर रघुनन्दन हनुमान के कंधे पर उस समय आरूढ़ हो गये। ७३ उस समय लक्ष्मण अंगद के कंधे पर बैठ गया। जैसे बालसूर्य उदयाचल पर शोभायमान होते हैं, वैसे ही वे शोभायमान दिखायी दे रहे थे। ७४ आधा पहर पूरा होने से पहले ही रघुवीर सुवेल आ गये। (साथ ही वहाँ) सेना ठहर गयी, तो (उधर) लंकानगर भयभीत हो गया। ७५ (कहा जा चुका है कि वानरों ने) शुक को बाँध लिया था (बन्दी बनाया था), उसे (अब) राम ने छोड़ दिया; तो उसने उनके चरणों का वन्दन करते हुए लंका में प्रवेश किया। ७६ अनन्तर शुक ने रावण के सम्मुख श्रीराम का अद्‌भुत प्रताप बता दिया। उसने कहा— 'जिनसे मूर्तिमान (प्रत्यक्ष) समुद्र सरिताओं सहित मिला, वह प्रतापी रघुनन्दन धन्य हैं। उन्होंने पाषाणों को पानी

परमशक्ति वानरगण। कळिकाळासी न गणिती। ७८ तुम्हीं निरोप जे सांगितले। तितुके मित्रपुत्रासी कथिले। तंव तिहीं धांवोनि मजला धरिलें। बांधोनि ठेविलें आजिवरी। ७९ करुणासागर रघुनंदन। तेणें आज दिधलें सोडून। आतां राजा जानकी नेऊन। सत्वर रामासी समर्पावी। १८० सखा करितां रघुनंदन। तेणे चंद्रार्कवरी कल्याण। ऐकतां क्षोभला रावण। म्हणे केलें ताडण तिहीं तुज। ८१ भय घेतलें मानसीं। म्हणोनि भलतें वाचाळसी। शत्रुप्रताप मजपुढें वानिसी। तरी मृत्यु पावसी निर्धारें। ८२ मग शुक आणि सारण। दोघां सांगे दशवदन। म्हणे सुवेळेसी जाऊन। सैन्य गणोनि या वेगीं। ८३ मुख्य मुख्य कोण वानर। कोणासवें किती भार। ऐसें पाहूनि सत्वर। परता रक्षूनि आपणा। ८४ आज्ञा वंदूनि दोघांजणीं। कपिसेनेंत आले ते क्षणीं। वानरवेष धरूनी। सैरावैरा हिंडती। ८५ सेना धुंडोनि सकळ। मग जेथें असे अयोध्यापाळ। लक्षीत तें सभामंडळ। उभे दूर

पर तैरा दिया। परम शक्तिधारी वानर-गण तो कलिकाल तक को नहीं गिनते (महत्त्व देने योग्य नहीं मानते)। ७७-७८ आपने जो सन्देश कहे थे, उतने सब मैंने सूर्य-पुत्र सुग्रीव से कह दिये, तो उन्होंने दौड़ते हुए मुझे पकड़ लिया और आज तक बाँधकर रख दिया था। ७९ रघुनन्दन तो करुणा-सागर हैं, उन्होंने आज मुझे छोड़ दिया। हे राजा, अब सीता ले जाकर झट से राम को सौंप दें। १८० रघुनन्दन को मित्र बनाने पर चन्द्र और सूर्य के रहने तक कल्याण होगा।' (ऐसी बात) सुनते ही रावण क्षुब्ध हो उठा और बोला— 'उन्होंने तुम्हें पीटा, इसलिए तुम मन में भयभीत हो गये हो; अतः निरर्थक बड़बड़ा रहे हो, मेरे सामने शत्रु के प्रताप का बखान कर रहे हो; इसलिए तुम निश्चय ही मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे।' ८१-८२ फिर रावण ने शुक और सारण—दोनों से कहा— 'सुवेल जाकर सेना की गिनती करके झट से आ जाओ। ८३ कौन वानर मुख्य मुख्य हैं? किसके साथ कितनी सेना है? ऐसा (यह) झट से देखकर अपनी रक्षा करते हुए लौट आना।' ८४ इस आदेश को (शिरसा-) वंद्य करके वे दोनों जने उस क्षण वानर वेश धारण करके कपि-सेना में आ गये और मनमाने भ्रमण करने लगे। ८५ समस्त सेना में यथेच्छ खोजते (पता लगाते) हुए फिर वे दूर खड़े रहकर उस सभा-मण्डल की ओर ध्यान से देखने लगे, जहाँ अयोध्या-पाल श्रीराम

राहूनियां । ८६ तों बिभीषणाची दृष्टि ते काळीं । अकस्मात दोघांवरी पडली । धांवोनि धरिले ते वेळीं । राघवाजवळी आणिले । ८७ म्हणे हे रावणाचे हेर । इंहीं सेना गणिली समग्र । वेष पालटोनी वानर । होऊन हिंडती स्वइच्छा । ८८ चुना माखोनि वायस । जाहले जैसे राजहंस । कीं धरूनि ब्राह्मणांचा वेष । मैंद जैसे हिंडती । ८९ कीं खोटें-नाटें करून । खऱ्यांत मेळविती कुजन । मग परीक्षक काढिती निवडोन । दोघे जण तैसे धरिले । १९० मग राजाधिराज रघुनंदन । सुहास्यवदन बोले वचन । म्हणे या दोघांस करीं धरून । दाखवा सैन्य समस्तही । ९१ सकळ वृत्तांत आणूनि मना । जाऊनि श्रुत करा दशवदना । तंव ते म्हणती रघुनंदना । मखपाळका विश्वेशा । ९२ आम्हीं महिमा ऐकिला कर्णीं । तो राम आजि देखिला नयनीं । असो श्रीरामाची आज्ञा घेउनी । दोघे परतले लंकेसी । ९३ आले देखोन दोघे हेर । षोडश खणांचें गोपुर । त्यावरी चढला

थे । ८६ तब उस समय विभीषण की आँख सहसा उन दोनों पर पड़ गयी, तो उसने उसी समय दौड़कर उन्हें पकड़ लिया और राम के पास ले आया । ८७ उसने कहा— ‘ ये रावण के गुप्तचर हैं, इन्होंने समस्त सेना की गिनती की है । वेश बदलकर ये वानर बनकर अपनी इच्छा के अनुसार घूम रहे हैं । ८८ कौए चूना चुपड़कर जिस प्रकार राजहंस बन जाते हैं, अथवा ब्राह्मणों का वेश धारण करके लुटेरे जैसे घूमते रहते हैं (उस प्रकार वे दोनों वानरवेश में घूम रहे थे । फिर भी विभीषण ने उनके कपट वेश को पहचान लिया ।) अथवा पूर्णतया झूठमूठ (आकार-प्रकार, रूप) बनाकर दुर्जन (किसी वस्तु को) असल में मिला तो देते हैं, परन्तु पारखी उस (झूठे) को चुनकर निकालते हैं, उस प्रकार विभीषण ने उन दोनों को पकड़ लिया । ८९-९० फिर राजाधिराज रघुनन्दन मुस्कराते हुए यह बात बोले । उन्होंने कहा— ‘ इन दोनों को हाथों से पकड़कर सभी सेना दिखाओ । ९१ फिर (हे राक्षसो), समस्त समाचार मन में (ठीक से) रखते हुए (लंका में) जाकर रावण को बता दो । ’ तब वे बोले— ‘ हे रघुनन्दन, हे यज्ञरक्षक, हे विश्वेश ! हमने (जिसकी) महिमा कानों से सुनी थी, उस राम को आज आँखों से देखा । ’ अस्तु । (फिर) राम की आज्ञा लेकर वे दोनों लंका लौट गये । ९२-९३ दोनों गुप्तचर (राम की) सेना को देखकर (लौट) आ गये, तो सोलह खण्डों

दशकंधर। सेवक अपार भोंवते। ९४ हेरांप्रति पुसे रावण। सांगा येथून कोणाचे कोण। मग ते दाविती दोघे जण। संकेतवर्ण लक्षूनियां। ९५ वानरसेना दश योजन। सभोंवतीं उतरली विस्तीर्ण। एक एक वीर देदीप्यमान। बळवंत आणि प्रतापी। ९६ वानरसिंधूचें मध्यमंडळ। जुत्पति उभे भोंवते सकळ। त्या मध्यभागीं तमालनीळ। वस्त्राभरणीं मंडित दिसे। ९७ कनकहरिणचर्मी पूर्ण। पहुडलासे रघुनंदन। सुग्रीवाचे मांडीवरी शिर ठेवून। गोष्टी सांगे कौतुकें। ९८ जाळूनि गेला लंकानगर। सवेंच घेऊन आला रघुवीर। तो हनुमंत वायुकुमर। चरण चुरी रामाचे। ९९ तुमचा बंधु बिभीषण। रघुनाथानिकट बैसोन। जें जें झालें वर्तमान। गोष्टी सांगे रामकर्णीं। २०० देदीप्यमान दिनकर। तैसा रामाचे पाठीसीं सौमित्र। पैल अंगद महावीर। क्रोधें पाहे आम्हांकडे। २०१ पैल सुषेण वैद्य महावीर। हा सूर्यसुतासी होय श्वसुर। वीस कोटी वानरभार। त्यासांगातें पुरुषार्थी। २

वाला जो एक गोपुर था, उसपर रावण चढ़ गया। उसके चारों ओर अनगिनत सेवक थे। ९४ (फिर) रावण ने गुप्तचरों से पूछा— 'यहाँ से बता दो कि किस (प्रमुख) के कौन (सैनिक) हैं। तब उन दोनों जनों ने संकेत वर्ण को लक्ष्य करके दिखा दिया। ९५ दस योजन विशाल वानर-सेना चारों ओर ठहर गयी है; उनमें से प्रत्येक वीर देदीप्यमान, बलवान और प्रतापी है। ९६ वानर (-सेना-) समुद्र के मध्यभाग के मण्डल (घेरे) के चारों ओर समस्त मल्ल वानर खड़े हैं। उसके मध्यभाग में तमालनील श्रीराम वस्त्रों और आभूषणों से सुशोभित दिखायी दे रहे हैं। ९७ पूरे सुवर्ण-मृगाजिन पर रघुनन्दन लेटे हुए हैं। वे सुग्रीव की गोद में मस्तक टिकाये हुए यों ही मज़े में बातें कर रहे हैं। ९८ जो लंकानगर को जलाकर लौट गया था, और जो साथ में रघुवीर को ले आया है, वह वायु-पुत्र हनुमान श्रीराम के पाँव दबा रहा है। ९९ आपका बन्धु विभीषण रघुनाथ के निकट बैठे हुए जो-जो घटनाएँ हो गयी हैं, उनकी बातें (समाचार) राम के कानों में कह रहा है। २०० सूर्य जैसा देदीप्यमान होता है, वैसा ही (देदीप्यमान) लक्ष्मण राम की पीठ पीछे (खड़ा) है। उस ओर (से) महावीर अंगद हमारी ओर क्रोध से देख रहा है। २०१ उस ओर जो महावीर सुषेण वैद्य है, यह सुग्रीव का ससुर है। उसके साथ बीस करोड़ प्रतापी वानरों की सेना है। २ उस

पैल जांबुवंत ऋक्षवीर। तयाचा बहात्तर कोटी दळभार। पैल सेनाधिपति नीळ वीर। सामर्थ्य अपार पैं त्याचें। ३ जेणें शिळीं बांधिला सागर। नळ नाम बळसमुद्र। शरभ ऋषभ पर्वताकार। युद्धसमय वांच्छिती। ४ असो आतां वानरगण। त्यांचीं नामें सांगतां पूर्ण। उर्वी न पुरे करितां लेखन। बलार्णव सर्वही। ५ यालागीं दशकंधरा अवधारीं। त्यांसीं युद्ध करितां समरीं। काळाचीही न उरे उरी। मग इतर तेथें कायसे ६ ऐसें बोलतां शुक सारण। अत्यंत क्रोधावला रावण। म्हणे तुमचा शिरच्छेद करून। टाकावा ऐसें वाटतसे। ७ येरू म्हणती आम्ही तुमचे हेर। सत्य सांगावा समाचार। असत्य बोलूं तरी साचार। दंड करावा आम्हांतें। ८ असो इकडे बिभीषण। समस्तांसी दावी तर्जनी उचलून। म्हणे पैल पाहा रावण। गोपुरावरी चढलासे। ९ दाहा शिरांवरी दाहा छत्रें। दाहा विलसती मित्रपत्रें। सेवक करीं ढाळिती चामरें। एकीं पीकपात्रें धरियेलीं। २१० जैसा मेघ उतरे पर्वतशिखरीं। तैसा रावण

ओर ऋक्ष-वीर जाम्बवान है। उसका सेना-भार बहत्तर करोड़ है, तो उस ओर सेनाधिपति वीर नील है। उसकी सामर्थ्य अपार है। ३ जिसने सागर को शिलाओं से बाँध लिया, वह नल नामक (साक्षात्) बल का समुद्र है। फिर शरभ तथा ऋषभ (नामक वानर) युद्ध का समय आरम्भ होने की अभिलाषा कर रहे हैं। ४ अस्तु। अब (अन्य भी) जो-जो वानरगण हैं, उनके नाम पूरे-पूरे बताते हुए और लिखते हुए पृथ्वी पर्याप्त नहीं होगी। वे सभी बल-सागर (ही) हैं। ५ इसलिए, हे रावण ! सुनिए। उनसे युद्ध करने पर काल भी शेष नहीं रहेगा, तो फिर वहाँ अन्य कैसे रहेंगे।' ६

शुक और सारण के इस प्रकार बोलने पर रावण अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। उसने कहा—'ऐसा लगता है कि तुम लोगों के मस्तक काट डालें।' ७ तो उन्होंने कहा—'हम आपके गुप्तचर हैं; हम सत्य समाचार ही कहें। यदि असत्य बोलें, तो सचमुच हमें दण्ड दीजिए।' ८ अस्तु। इधर विभीषण तर्जनी उठाकर सबको दिखा दे रहा है। उसने कहा—'उस ओर देखिए, रावण गोपुर पर चढ़ गया है। ९ उसके दस सिरों पर दस छत्र (धरे हुए) हैं, दस सूर्य-पत्र शोभायमान हैं; सेवक हाथों से चँवर झुला रहे हैं, तो एक ने पिक-पात्र (पिकदान) धरे हुए

भासे गोपुरीं । अलंकारदीप्ति महीवरी । विद्युत्प्राय झळकतसे । २११ ऐसी आपुली संपदा पूर्ण । शत्रूलागीं दाखवी रावण । छत्रछायेखालीं रामसैन्य । झांकून गेलें ते समयीं । १२ जैसें उठतां मेघडंबर । खालीं आच्छादे जग समग्र । सेनेसहित रामचंद्र । छत्रछायेतळीं तैसा । १३ ऐसा देखोनि लंकापती । कपिवीर क्षोभले चित्तीं । सौमित्रें चाप घेतलें हातीं । निमेषार्ध न लागतां । १४ लाविला अर्धचंद्र बाण । ओढी ओढिली आकर्ण । कल्पांतचपळेसमान । चापापासूनि सूटला । १५ मुकुट छत्रें ते अवसरीं । तोडून पाडिलीं धरणीवरी । रावण घाबरला अंतरीं । खालीं झडकरी उतरला । १६ म्हणे कोण्या वीराचें संधान । पाडिलीं दहाही छत्रें खंडून । अन्न पान शयन । गोड न लागे रावणातें । १७ कपाळशूळें आरंबळे व्याघ्र । कीं वणव्यांत आहाळे अजगर । तैसा दुःखें व्याप्त दशकंधर । चिंताक्रांत सर्वदा । १८ राम-

---

हैं । ' २१० जैसे मेघ पर्वत-शिखर पर ठहर गया हो, वैसे रावण गोपुर में आभासित हो रहा था । उसके (पहने हुए) आभूषणों की कान्ति भूमि-पर विद्युत् जैसी झलक रही थी । ११ रावण अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति इस प्रकार शत्रु को दिखला रहा था । उसके छत्रों की छाया में राम की सेना उस समय (मानो) छिप गयी । १२ जिस प्रकार घन-घटा के उमड़ आने पर उसके नीचे समस्त जगत् आच्छादित हो जाता है, उस प्रकार रामचन्द्र अपनी सेना-सहित (रावण के) छत्रों की छाया में आच्छादित हो गये थे । १३ इस प्रकार उस लंकापति रावण को देखकर कपिवीर मन में क्षुब्ध हो उठे, तो आधा क्षण (तक) न लगते लक्ष्मण ने हाथ में धनुष (उठा) लिया । १४ (फिर) उसने अर्ध चन्द्राकृति बाण उसपर चढ़ा दिया और डोरी को आकर्ण खींच लिया । (त्यों ही) कल्पान्त की बिजली-सा बाण धनुष से छूट गया । १५ उस समय (रावण के) मुकुट और छत्र टूटकर धरती पर गिर गये, तो रावण मन में घबरा उठा और झट से नीचे उतर गया । १६ उसने कहा— ' किस वीर का यह (शर-) सन्धान है, (जिसने) दसों छत्रों को काटकर नीचे गिरा दिया । ' (फलस्वरूप) रावण को खान, पान और शयन मीठा (अच्छा) नहीं लग रहा था । १७ जिस प्रकार मस्तक-शूल (दर्द) से बाघ चीखता हो, अथवा जिस प्रकार दावानल में अजगर झुलसता हो, उसी प्रकार रावण मारे दुःख के नित्य चिन्ताक्रान्त रहने लगा । १८

विजय ग्रंथ सुंदर। हाचि केवळ क्षीरसागर। साहित्य शेष-
शयन अरुवार। वरी सर्वेश्वर पहुडला। १९ तेथें सप्रेम
कळा लक्ष्मी। सदा विलसे पादपद्मीं। तरी सद्भाविक श्रोते
तुम्ही। पार्षदगण हरीचे। २२० सुंदरकांड संपलें येथोन।
युद्धकांड सुरस पूर्ण। तें रसभरित भक्तजन। करोत श्रवण
सर्वदा। २१ जो अयोध्यापती रघुनंदन। तेणेंच टाकून
धनुष्यबाण। दोन्ही कर जघनीं ठेवून। भीमातटीं उभा
असे। २२ श्रीधरवरदा ब्रह्मानंदा। पांडुरंगा पुंडलीकवरदा।
भक्तहृदयारविंदमिलिंदा। अभंगा अभेदा जगद्गुरो। २३
स्वस्ति श्रीरामविजयग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार।
सदा परिसोत भक्त चतुर। त्रयोविंशाध्याय गोड हा। २२४

। इति सुंदरकांड।

यह श्रीराम-विजय नामक ग्रन्थ सुन्दर है। यही मात्र क्षीरसागर है; साहित्यरूपी (वह) शेषरूपी शय्या है, (जिसपर) सर्वेश्वर (भगवान विष्णु) लेटे हुए हैं। १९ वहाँ कलारूपी लक्ष्मी प्रेम-सहित नित्य (भगवान के) चरणरूपी कमल के पास शोभायमान है। अतः हे सद्भाव से युक्त श्रोताओ, तुम हरि के पार्षदगण हो। २२० (श्रीराम-विजय का) सुन्दर-काण्ड समाप्त हुआ। यहाँ से आगे मधुर रस से भरा-पूरा युद्धकाण्ड है। उस रस से भरे-पूरे (युद्ध-काण्ड) का भक्तजन नित्य श्रवण करें। २१ जो अयोध्यापति रघुनन्दन हैं, (वस्तुतः) वे ही धनुष और बाण को त्यागकर (श्रीविट्ठल के रूप में) भीमा (नदी) के तट पर (पंढरपुर नामक क्षेत्र में) दोनों हाथ जघन स्थली (कटि प्रदेश) में टिकाये हुए खड़े हैं। २२

हे श्रीधर कवि के वर-दाता, हे ब्रह्मानन्द, हे पाण्डुरंग, हे पुंडलिक-वरद, हे भक्तों के हृदयरूपी कमल में स्थित भ्रमर, हे अभंग, हे अभेद, हे जगद्गुरु ! स्वस्ति। यह श्रीराम-विजय नामक ग्रन्थ सुन्दर है; वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। उसके इस मधुर तेईसवें अध्याय का चतुर भक्त सदा श्रवण करें। २२३-२२४।

॥ श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

॥ सुन्दरकाण्ड समाप्त ॥

युद्ध काण्ड

अध्याय—२४

श्रीगणेशाय नमः। कळेल समुद्राचा अंत। सांपडेल अंबराचें गणित। त्याहून रामकथा अद्‌भुत। न लगे अंत कवणातें। १ अद्‌भुत धांवे प्रभंजन। त्याची मोट बांधवेल आकर्षून। परी या रघुपतीचे चरण। वर्णितां अंत न कळेचि। २ सहस्रवदनेंकरून। वर्णी काद्रवेयकुळभूषण। नेति नेति म्हणोन। वेदही तेथें तटस्थ। ३ रघुवीरगुणांची सरोवरपाळ। तेथें व्यास वाल्मीक हे मराळ। ज्यांच्या मतीमाजी सकळ। ब्रह्मांड हें ठेंगणें। ४ त्यांहीं गुण वर्णितां अपार। अंत न कळेचि साचार। तेथें मानवशलभ पामर। गुणांबर केवीं क्रमी। ५ तरी सांडोनि अभिमान। वर्णावे रघुपतीचे गुण। गंगाप्रदेश-

---

श्रीगणेशाय नमः। (जिस) समुद्र (को अथाह कहा जाता है, उस) के अन्त (गहराई, लम्बाई-चौड़ाई) का पता चल सकेगा; (जिस) आकाश (को अनादि-अनन्त कहा जाता है, उसकी लम्बाई-चौड़ाई) का हिसाब पाया जा सकेगा। (परन्तु) राम-कथा उससे अद्‌भुत है, (अतः) किसी से भी उसके अन्त का पता नहीं लग पाएगा। १ पवन तो अद्‌भुत रूप में दौड़ता है; उसे वश में करते हुए, उसे गट्ठर के रूप में बाँधा जा सकेगा, परन्तु इस रघुपति राम के चरणों (के माहात्म्य) का वर्णन करते रहने पर भी उसका अन्त विदित नहीं हो पाएगा। २ काद्रवेय-(सर्प-) कुल-भूषण शेष अपने सहस्र मुखों से उनका वर्णन करता है; (परन्तु उसे पूर्णतः प्रस्तुत नहीं कर पाता) उसी प्रकार (समस्त ज्ञान के भण्डार तथा आदि स्रोत) वेद भी वहाँ (उसके सम्बन्ध में) 'नेति' 'नेति' (ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है) कहते हुए तटस्थ (स्तब्ध अतएव चुप) हो गये हैं। ३ (जहाँ) रघुवीर राम के गुणरूपी सरोवर का तट है, वहाँ जिनकी बुद्धि (की तुलना) में यह समस्त ब्रह्माण्ड ठिगना (जान पड़ता) है, वे व्यास और वाल्मीकि (मानो) राजहंस हैं। ४ उनके द्वारा (श्रीराम के) गुणों का अपार वर्णन करने पर भी उनका अन्त सचमुच नहीं समझ में आता। वहाँ मानवरूपी तुच्छ शलभ (पतंगा) उनके गुणरूपी आकाश को चलकर कैसे लाँघ सकेगा। ५ इसलिए अभिमान का त्याग करके रघुपति के गुणों

म्हणोन । तृषाक्रांता केवीं सोसवे । ६ तैसे सीतावल्लभाचे गुण । वर्णावे यथामतीकरोन । असो पूर्वाध्यायीं अनुसंधान । आला रघुवीर सुवेळे । ७ आतां वाग्देवी परम डोळस । उघडी युद्धकांडमांदुस । त्यांतील साहित्यरत्नें विशेष । ग्राहक पंडित तयांचे । ८ रावणाचीं दाही छत्रें । छेदोन पाडिलीं सौमित्रें । परम म्लान दाही वक्त्रें । मयजापतीचीं जाहलीं । ९ सकळ प्रधानांसहित । विचारा बैसला लंकानाथ । माझे तरी दोन हेत । कैसे पुरती नेणें मी । १० रामलक्ष्मणां संहारूनी । वश्य व्हावी जनकनंदिनी । यांवेगळी माझे मनीं । चिंता तिसरी नसेचि । ११ तंव वज्रदंष्ट्र म्हणे लंकानाथा । सीतेची भीड कासया धरितां । बळेंचि आणोनि तत्त्वतां । कामना आपुली पुरविजे । १२ मग बोले दशकंधर । मज विरंचीचा शाप थोर । परस्त्रीवर करितां बलात्कार । शतचूर्ण तनु होय पैं । १३ मृगपतीचे फुटले नयन । कीं व्याघ्राचे हस्त टाकिले तोडोन ।

का (अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार) वर्णन करें। यह कहते हुए कि यह गंगा नदी का (तटवर्ती) प्रदेश है, प्यास से व्याकुल व्यक्ति को प्यास कैसे सहन होगी। ६ उसी प्रकार सीता-वल्लभ श्रीराम के गुणों का (प्रत्येक मनुष्य) यथामति वर्णन करे। अस्तु। इससे पूर्ववर्ती अर्थात् तेईसवें अध्याय में यह आख्यान प्रस्तुत किया है—रघुवीर सुवेल आ गये हैं। ७ अब वाग्देवी (सरस्वती) परम डिठार (आँखोंवाली) है। वह (श्रीराम-विजय नामक इस ग्रन्थ के) युद्ध काण्डरूपी मंजूषा खोलेगी। उसमें (जो) साहित्य (-गुणरूपी) रत्न हैं, उनके ग्राहक (आप जैसे) पण्डित (श्रोता जन) हैं। ८ (कहा जा चुका है कि) लक्ष्मण ने बाण से रावण के दसों छत्रों को छेदकर गिरा डाला। इसलिए (मयासुर की कन्या मन्दोदरी के पति) रावण के दसों मुख परम म्लान हो गये। ९ (तब) लंकापति रावण समस्त मन्त्रियों के साथ विचार-विनिमय के लिए बैठ गया। (उसने कहा—) 'तो मैं यह नहीं जान पाता कि मेरे (ये) दो हेतु कैसे पूर्ण हो सकेंगे। १० राम-लक्ष्मण का (मेरे द्वारा) संहार होकर सीता मेरे वश में (कैसे) हो जागी, इसके अतिरिक्त मेरे मन में और कोई चिन्ता नहीं है।' ११ तब वज्रदंष्ट्र ने कहा— 'हे लंकानाथ, सीता से आप भय क्यों मानते हैं? उसे सचमुच बल-पूर्वक लाकर अपनी कामना पूर्ण कीजिएगा।' १२ फिर रावण बोला— 'ब्रह्मा का मुझे यह बड़ा अभिशाप है। मेरे द्वारा पर-नारी के साथ बलात्कार करने पर मेरा शरीर

की भुजंगाचे दांत पाडून । केला दीन गारुडियें । १४ वनीं सर्वांत श्रेष्ठ वारण । परी सिंह देखतां तत्काळ मरण । तैसा मी शापबंधनें पूर्ण । बळक्षीण जाहलों । १५ तरी ते जनकजा मनींहूनी । आपणचि वश्य होईल शयनीं । ऐसी करणी करा कोणी । राघवीं मन विटे तिचें । १६ मग विद्युज्जिव्ह प्रधान । जो कापट्यविद्येमाजी प्रवीण । तो म्हणे मी निर्मीन । रघूत्तमाचें शिरकमळ । १७ आणि राघवहस्तींचें कोदंड । मायामय निर्मीन प्रचंड । तेणें सीतेचें हृदयखंड । असत्य न वाटे सहसाही । १८ ऐसें ऐकतांचि लंकापती । परम संतोष पावला चित्तीं । जैसा मद्यपी पाहतां पंथीं । तंव शिंदीवन देखिलें । १९

शत-खण्डों में चूरचूर हो जाएगा । * १३ (मेरा शाप-बन्धन में जकड़ा जाना क्या है ?) मानो मृगराज सिंह के नयन फूट गये हों, अथवा बाघ के (किसी ने) हाथों को काट डाला हो, अथवा सँपेरे ने भुजंग (सर्प) के दाँत गिराकर उसे दीन (असहाय) कर डाला हो । १४ वन में हाथी सबसे बड़ा तो होता है, परन्तु सिंह को देखते ही मानो (उसका बड़प्पन) तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है; उसी प्रकार (यद्यपि मैं अन्यत्र बड़ा बलवान हूँ, फिर भी) मैं शाप के बन्धन से पूर्णतः बलहीन हो गया हूँ । १५ इसलिए कोई ऐसी करनी करे, जिससे जनक-कन्या सीता का मन राम से ऊब जाए और वह अपने मन से ही स्वयं शय्या में मेरे वश हो जाए ।' १६ तब (वहाँ) विद्युज्जिह्व नामक एक मंत्री था, जो कपट-विद्या में प्रवीण था । उसने कहा-- 'मैं राम के मस्तकरूपी कमल का निर्माण कर दूँगा । १७ और मैं राम के हाथ के-से प्रचण्ड मायामय धनुष का निर्माण कर लूँगा । उससे सीता का हृदय खण्ड-खण्ड हो जाने पर उसे यह (घटना) असत्य नहीं जान पड़ेगी ।' १८ ऐसा सुनते ही रावण मन में (उस प्रकार) परम सन्तोष को प्राप्त हो गया, जिस प्रकार मद्यपी ने मार्ग में (इधर-उधर) देखते रहने पर एक प्रकार के वन्य ताल वृक्षों (जिससे एक प्रकार की ताड़ी प्राप्त होती है) के वन देखा हो

* टिप्पणी : वाल्मीकि रामायण (उत्तर काण्ड, सर्ग २६) के अनुसार एक बार रावण ने अप्सरा रम्भा को अपने प्रियतम नलकूबर (जो कुबेर का पुत्र अतएव रावण का भतीजा था) के पास जाते देखा, तो वह काम-विह्वल हो गया । रम्भा द्वारा मना करते रहने पर भी रावण ने उसके साथ बलात्कार किया । तत्पश्चात् नलकूबर ने रावण को अभिशाप दिया कि यदि वह रावण कामपीड़ित होकर (उसे न चाहनेवाली) स्त्री के साथ बलात्कार करेगा, तो तत्काल उसके मस्तक के सात टुकड़े हो जाएँगे । कहना न होगा, कुवेर और रावण ब्रह्मा के कुल में उत्पन्न (ब्रह्मा के प्रपौत्र) थे । कवि ने इस शाप को नलकूबर का न समझकर ब्रह्मा का माना है ।

आधींच जारकर्मीं रत। त्यांत स्त्रीराज्य जाहलें प्राप्त। कीं श्वानें वमन अकस्मात। दृष्टीं देखिलें तेधवां। २० कीं निंबोळ्या देखतां बहुवस। परम संतोषे वायस। तैसा हर्षला लंकेश। वचन ऐकतां तयाचें। २१ विद्युज्जिव्हासी म्हणे लंकापती। आम्हांमध्यें तूं केवळ बृहस्पती। तरी शीघ्र शिरधनुष्यांप्रती। घेवोनि येईं अशोकवना। २२ कापट्यवेषी विद्युज्जिव्हा। वस्त्राभरणीं गौरविलें तेव्हां। कृत्रिम निर्मिलें तेधवां। तर्क करितां नेणवेचि। २३ इकडे आधीं लंकानाथ। प्रवेशला अशोकवनांत। तों अधोवदनें तटस्थ। जगन्माता बैसली। २४ सीतेजवळी उभा रावण। जैसा कमळिणीसमीप वारण। कीं हरिणीजवळी येऊन। व्याघ्र उभा ठाकला। २५ याउपरी राक्षसपाळ। सीतेजवळी बोले अमंगळ। म्हणे तुवां धैर्य धरिलेंसे सबळ। परी तें निष्फळ जाहलें। २६ मजलागीं तूं आतां वरीं। तुझे सेवेसी मंदोदरी।

(और सन्तोष को प्राप्त हो गया हो)। १९ कोई पहले ही जार-कर्म में रत हो, तिसपर उसे स्त्री-राज्य (का शासन) प्राप्त हो गया हो, (तो वह जिस प्रकार सन्तुष्ट हो जाता है), अथवा कुत्ते ने तब यकायक आँखों से वमन (किया हुआ अन्न) देखा हो (तो वह जैसे सन्तुष्ट हो जाता है), अथवा बहुत सी निबौरियों को देखते ही कौआ परम सन्तोष को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार उसकी बात सुनकर लंकेश रावण आनन्दित हो गया। २०-२१ फिर उसने विद्युज्जिह्व से कहा— 'हममें तुम मात्र बृहस्पति (बुद्धि के अधिष्ठाता देवता) हो। अतः (राम के) सिर और धनुष को लेकर शीघ्र अशोक वन आ जाना।' २२ तब रावण ने कपट-वेषी विद्युज्जिह्व को वस्त्रों तथा आभूषणों से गौरवान्वित किया। (तदनन्तर) उसने उस समय कृत्रिम मस्तक तथा धनुष का निर्माण किया, जिस (की सचाई) के विषय में तर्क करने पर भी (कुछ) समझ में न आता। २३ इधर पहले (ही) रावण अशोक वन में प्रविष्ट हो गया था, तब जगन्माता सीता सिर झुकाए हुए स्तब्ध बैठी थी। २४ सीता के पास रावण (उस प्रकार) खड़ा रह गया, जिस प्रकार कमलिनी के पास हाथी खड़ा हो गया हो, अथवा हिरनी के पास बाघ आकर खड़ा रह गया हो। २५ तत्पश्चात् राक्षसराज रावण सीता से अमंगल वचन बोलने लगा। उसने कहा— 'तुमने बल-पूर्वक (जो) धीरज धारण किया है, वह सब व्यर्थ हो गया है। २६ (अतः) तुम अब मेरा वरण

तुझे आज्ञेंत लंकानगरी। वर्तवीन जानकीये। २७ तुझिया पतीस जाहलें मरण। आधीं तें ऐकें वर्तमान। सागरीं सेतू बांधोन। सुवेळेसी सर्व आले। २८ तंव आमचा प्रधान प्रहस्त। निमेषामाजी गेला सेनेसमवेत। राम सौमित्र होते निद्रिस्त। तंव घाला त्यांहीं घातला। २९ तुझिया पतीचें शिरकमळ। प्रहस्तें छेदिलें तत्काळ। सांवळें कबंध विशाळ। सुवेळेसी पडियेलें। ३० वधावा जों लक्ष्मण। तंव तो अयोध्येसी गेला पळोन। आमचा बंधु बिभीषण। तोही तेथेंचि पडियेला। ३१ सुग्रीव आणि अंगद। त्यांचाही केला शिरच्छेद। जांबुवंत आणि मैंद। यांचे जानुचरण खंडिले। ३२ नळ नीळ अंजनीसुत। निजलेठायीं केले चूर्णवत। वरकड मर्कटें सैन्य बहुत। राक्षसीं सर्व गिळियेलीं। ३३ सेतू पाडिला समग्र। मग कोठें पळतील वानर। शोणिताचे वाहती पूर। जाती भेटों सागरातें। ३४ हें जरी तूं असत्य मानिसी। तरी आतांचि येईल प्रत्ययासी। विद्युज्जिव्ह वेगेंसीं। शिर घेवोनि

करो। हे जानकी, मन्दोदरी तुम्हारी सेवा में (प्रस्तुत) रहेगी, लंकानगरी से तुम्हारी आज्ञा में व्यवहार कराऊँगा— अर्थात् लंकानगरी के लोगों को तुम्हारे आज्ञाकारी बनाऊँगा। २७ तुम्हारा पति मृत्यु को प्राप्त हुआ है। पहले वह समाचार सुनो – सागर का सेतु बनवाकर वे सब सुवेल आ गये थे। २८ तब हमारा मन्त्री प्रहस्त सेना-सहित क्षण में (वहाँ) गया। राम और लक्ष्मण सोये हुए थे, तब उसने उनपर धावा बोल दिया। २९ प्रहस्त ने तुम्हारे पति के मस्तक-कमल को तत्काल काट डाला। (अब) उसका साँवला कबन्ध (धड़) सुवेल में पड़ा हुआ है। ३० जब लक्ष्मण का वध करें (करने गये) तो वह तो भागकर अयोध्या चला गया। हमारा बन्धु विभीषण— वह भी वहीं पड़ गया है। ३१ उन सुग्रीव और अंगद का भी शिरच्छेद किया है, जाम्बवान और मैंद के पाँव घुटनों से तोड़ डाले हैं। ३२ नल, नील और हनुमान उसी स्थान पर चूर-चूर कर डाले गये हैं, जहाँ पर वे सोये हुए थे। (और) अन्य सामान्य वानरों की सेना तो बड़ी थी; राक्षसों ने (उन) सबको निगल डाला है। ३३ समग्र सेतु गिरा दिया है, फिर वानर कहाँ भाग जाएँगे ? रक्त के रेले बह रहे हैं और सागर में मिलने जा रहे हैं। ३४ तुम यदि इसे असत्य समझ रही हो, तो अभी तुम इसका अनुभव करोगी। (इतने में) विद्युज्जिह्व सिर लेकर वेग-पूर्वक वहाँ आ

पातला । ३५ तेणें धनुष्य आणि शिर ते वेळे । रामवल्लभेपुढें आणोनि ठेविलें । मुख राजस सांवळें । शोणितें माखलें ते काळीं । ३६ किरीटकुंडलमंडित वदन । सरळ नासिका झळकती दशन । कपाळीं केशर आकर्ण नयन । आरक्त रेखांकित जें । ३७ ऐसें देखतां जनकनंदिनी । मूर्च्छना येवोन पडे धरणीं । कीं अग्नींत पडली कमळिणी । जाय करपोनी जयापरी । ३८ तंव ते दशकंठरिपूची प्रिया । उठे मूर्च्छना सांवरूनियां । हृदयीं शिरकमळ धरोनियां । शोक करी अद्भुत । ३९ अहो ते त्रिभुवनपतीची राणी । शोकार्णवीं बुडाली ते क्षणीं । तो शोक सांगतां उलथे धरणी । कवीची वाणी कुंठित । ४० म्हणे राजीवाक्षा रघुनंदना । स्मरारिमित्रा जगन्मोहना । अनंतगुणसंपन्ना । काय ऐसें हें केलें । ४१ चतुर्दश वर्षेंपर्यंत । रघुवीरा श्रमलेति वनांत । कोमल चरणीं बहुत । कंटक हरळ रूतले । ४२ मजकारणें श्रमलां काननीं ।

पहुँचा । ३५ उस समय उसने (तथाकथित श्रीराम का) धनुष और सिर लाकर सीता के सामने रख दिया। वह मुख (यद्यपि) राजस (राजोचित कांति से युक्त, उमदा) तथा श्याम था, (फिर भी) वह उस समय रक्त से सना हुआ था। ३६ वह मुख किरीट (मुकुट) तथा कुंडलों से विभूषित था; नाक (सीधी) थी और दाँत (उज्ज्वल) चमक रहे थे; भाल में केसर (का तिलक) लगा हुआ था; नेत्र कानों तक फैले हुए, अर्थात् विशाल थे और आरक्त (लाल-से) एवं अँजन से रेखांकित थे। ३७ ऐसे (उस मुख को) देखकर जनक-नंदिनी सीता मूर्च्छा आने से भूमि पर (लुढ़क) पड़ी, मानो कमलिनी आग में गिर पड़ी हो; जिस प्रकार वह झुलस जाती हो, उस प्रकार उस मुख को देखकर सीता दुख:रूपी आग में झुलस गयी। ३८ तब रावण के शत्रु राम की वह प्रिया (सीता) मूर्च्छा से सम्हलकर उस शिर-कमल को हृदय से लगाये हुए अद्भुत शोक करने लगी। ३९ अहो! त्रिभुवन-पति (भगवान राम) की वह रानी उस क्षण शोक-सागर में डूब गयी। उस शोक (को वर्णन करके) कहने से धरती उलट जाएगी। (उसे कहते हुए) कवि की वाणी कुंठित हो गयी है। ४० सीता (शोक करते हुए) बोली—'हे राजीवाक्ष, हे रघुनन्दन, हे शिवजी के मित्र, हे जगन्मोहन, हे अनन्त गुणों से सम्पन्न! आपने इस प्रकार क्या किया? ४१ हे रघुवीर, आप चौदह वर्ष तक वन में थक गये। आपके कोमल चरणों में बहुत काँटे और कंकड़ धँस (= चुभ)

अहा सीता म्हणवोनी। तृण पाषाण हृदयीं धरोनी। उद्धरिले कीं रघुपते। ४३ मजकारणें वाली मारिला। सूर्यसुत मित्र केला। हनुमंत शुद्धीसी धाडिला। शिळीं बांधिला सागर। ४४ सुवेळे येवोनि सत्वर। वैरियांसी यश दिधलें अपार। कां संपविला अवतार। मज भवपूरीं लोटिलें। ४५ रविकुलावतंस श्रावणारी। त्याची स्नुषा मी जनककुमारी। अयोध्याधीशा तुझी अंतुरी। सोडवील आतां मज कवण। ४६ मी परदेशीं झालें दीन। रघुवीरा कोणासी जाऊं शरण। सूर्यवंशीं संपूर्ण। डाग लागला यावरी। ४७ वाल्मीकानें भविष्य केलें। तें अवघेंचि आजि बुडालें। जंबुकें जाऊनि मारिलें। पंचाननासी नवल हें। ४८ अजाखुरींच्या जीवनीं। सिंह अडखळोनि पडला कैसेनी। कीं मूषकाचिये वदनीं। पंचानन सांठवे। ४९ कर्पूराचे पुतळे केवळ। त्यांहीं उभा ग्रासिला वडवानळ। जगद्भक्षक जो जगीं काळ। त्यासी भूतानें ग्रासिलें। ५० मशकाची झेंप

गये। ४२ मेरे कारण आप वन में श्रमित हो गये। हे रघुपति! घास और पत्थरों को 'हाय, सीता' कहते हुए उन्हें हृदय से लगाते हुए आपने उनका उद्धार किया। ४३ आपने मेरे कारण बाली को मार डाला, सूर्य-पुत्र सुग्रीव को मित्र बनाया, हनुमान को मेरी खोज के लिए भेजा और सागर को पत्थरों से (मानो) बाँध लिया। ४४ (फिर) झट से सुवेल में आकर आपने वैरियों को अपार विजय प्रदान की। क्या आपने अपना अवतार (-कार्य) समाप्त कर डाला, जो मुझे (इस प्रकार) संसाररूपी (दुःख भरी) नगरी में धकेल दिया। ४५ जो श्रवण के शत्रु तथा सूर्य-कुल-भूषण (राजा दशरथ) थे, उनकी बहू मैं जनक-कन्या हूँ और हे अयोध्याधीश! मैं तुम्हारी स्त्री हूँ। अब मुझे कौन छुड़ाएगा। ४६ मैं विदेश में इस प्रकार दीन हो गयी हूँ। हे रघुवीर, (अब) मैं किसकी शरण में जाऊँ? इससे सूर्य-वंश में (कलंक का) पूर्णतः धब्बा लग गया है। ४७ वाल्मीकि ने भविष्य (-कथन) किया था— वह समस्त आज डूब गया (झूठा सिद्ध हो गया)। आश्चर्य यह है कि सियार ने जाकर सिंह को मार डाला है। ४८ अथवा बकरी के पाँव से बने गड्ढे में भरे हुए पानी में सिंह कैसे लड़खड़ाकर पड़ गया? अथवा चूहे के मुँह में सिंह ही समा गया हो। ४९ कपूर के (कहीं) मात्र पुतले ही हैं और उन्होंने पूरी दावाग्नि को खा डाला; अथवा जो जगत् में जगत् को खा डालनेवाला काल है, उसे ही भूत ने ग्रस लिया। ५० मच्छड़ का झपट्टा

लागतां। कनकाद्रि पडला खालता। श्रृगालांनीं तत्त्वतां। बांधिला कैसा ऐरावत। ५१ खद्योततेजेंकरोनी। कैसें ब्रह्मांड गेलें आहळोनी। पिपीलिकाउदरीं जाऊनी। सिंह कैसा सांठवला। ५२ लागतां मक्षिकेचा पक्षवात। भयभीत जाहला भोगिनाथ। चित्रींच्या सर्पें अकस्मात। अरुणानुज गिळियेला। ५३ तैसें अघटित घडलें येथ। राक्षसें जिंकिला रघुनाथ। कर्माची गति गहन बहुत। कैसा अनर्थ करूं आतां। ५४ भूधरावतार लक्ष्मण। कैसा रामासि गेला टाकोन। तो अयोध्येसी जाऊन। काय सांगेल भरतातें। ५५ तत्काळ कौसल्या त्यजील प्राण। होईल कैकयीचें समाधान। लागेल सूर्यवंशासी दूषण। जाहलें खंडन वंशाचें। ५६ ऐसा शोक करी मंगलभगिनी। मुखावरी करा ठेवूनी। अश्रुधारा स्रवती नयनीं। भिजे अवनी ते काळीं। ५७ असो जानकी म्हणे दशमुखा। हें होणार न चुके कर्मरेखा। तरी मिथिलानाथ जनका। समान मज अससी

लगते ही कनक-पर्वत (मेरु) नीचे ढह गया, अथवा सियारों ने सचमुच ऐरावत हाथी को बाँध लिया। ५१ जुगनू के तेज से ब्रह्माण्ड कैसे झुलस गया? अथवा चींटी के पेट में जाकर सिंह कैसे समा गया? ५२ मक्खी के पर से उत्पन्न वायु का झोंका लगते ही भोगीनाथ शेष भयभीत हो गया, अथवा चित्र में अंकित साँप ने एकाएक गरुड़ को निगल डाला। ५३ (ये बातें जिस प्रकार अघटित, अर्थात् असम्भव हैं, फिर भी समझिए कि घटित हो गयीं) उसी प्रकार यहाँ असम्भव बात घटित हो गयी है कि राक्षस ने रघुनाथ को जीत लिया है। कर्म की गति बहुत गहन होती है। अब मैं कैसी अनिष्ट बात करूँ। ५४ शेष के अवतार लक्ष्मण (जो शेष की भाँति नित्य अचल होते हैं, भय से विचलित होकर) राम को छोड़कर कैसे चले गये? अयोध्या में जाकर वे भरत से क्या कहेंगे। ५५ (यह समाचार सुनते ही) तत्काल कौसल्या प्राणों को त्याग देंगी। कैकेयी को इससे सन्तोष होगा। इससे सूर्य-वंश में दोष (का कलंक) लग जाएगा। अब (वह) वंश ही खंडित हो गया।' ५६ उस (मायावी) मुख पर (अपना) मुख टिकाये हुए सीता इस प्रकार शोक कर रही थी। उसकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ झर रही थीं, (जिससे) उस समय भूमि भीग रही थी। ५७

अस्तु। (इसके पश्चात्) सीता बोली—'हे दशमुख, यह (तो) होगा ही। कर्म-रेखा टल नहीं सकती। फिर भी आप मेरे लिए

तूं। ५८ आतां माहेर इतकेंच करीं। वन्हिशेज रचोनि झडकरी। या शिरासमवेत निर्धारीं। अग्नीमाजी प्रवेशेन। ५९ सत्त्व न सांडी जनकनंदिनी। हें रावणासी कळलें मनीं। परम म्लानमुख होउनी। गेला निघोन सभेंत। ६० रावण गेलिया जनकनंदिनी। बुडाली शोकार्णवजीवनीं। तंव ते बिभीषणाची राणी। सरमा आली गुप्त रूपें। ६१ ते क्षणक्षणां येऊन। घेत जानकीचें दर्शन। सांगे सकळ वर्तमान। जें जें लंकेंत वर्तलें। ६२ रघुपतीचें जें कां हित। तें बिभीषणासी करणें अगत्य। तैसीच सरमा येऊन तेथ। सांभाळीत जानकीतें। ६३ नाना सूक्ष्म रूप धरीत। राक्षसकापट्यही जाणत। तितकें जानकीस श्रुत करीत। क्षणक्षणां येऊनियां। ६४ असो सरमा म्हणे जानकीसी। माये शोक किमर्थ करिसी। राम सुखी आहे सुवेळेसी। सकळ सेनेसहित पैं। ६५ तुज वश करावया ये क्षणीं। रावणें कृत्रिम केली करणी। बरवें पाहें विचारूनी।

मिथिला-पति जनक के समान (पितृ-तुल्य ही) हैं। ५८ अब (मेरे लिए) मैके के नाते इतना ही कीजिए, (जिससे) झट से अग्नि-शय्या बनाकर मैं इस मस्तक-सहित निश्चय ही अग्नि में प्रवेश करूँगी।' ५९ रावण को मन में यह ज्ञात हो चुका कि जनक-नंदिनी सीता अपने सत्त्व का त्याग नहीं करेगी। इससे म्लान-मुख होकर वह (वहाँ से) निकलकर सभा (-गृह) में चला गया। ६० रावण के निकल जाने पर सीता शोक-सागर के जल में डूब गयी। तब विभीषण की सरमा नामक रानी गुप्त रूप में (वहाँ) आ गयी। ६१ वह प्रतिक्षण (वहाँ) आकर सीता के दर्शन किया करती और लंका में जो जो घटित होता, उस समस्त का समाचार कहा करती। ६२ श्रीराम का जिस (किसी) में भी हित हो, उसे विभीषण को करना आवश्यक था। उसी प्रकार (जानकी की रक्षा करना श्रीराम के हित की बात है, यह मानकर) सरमा (भी) वहाँ आकर सीता की देखभाल किया करती थी। ६३ राक्षस नाना (प्रकार के) सूक्ष्म रूप धारण करते थे, वे कपट (-विद्या) भी जानते थे-- उतना सब वह क्षण-क्षण (बारबार) आकर सीता को सुनाया करती। ६४ अस्तु। सरमा ने सीता से कहा-- 'हे माँ, शोक किसलिए कर रही हो? राम समस्त सेना-सहित सुवेल में सुखी हैं। ६५ तुम्हें वश में कर लेने के लिए रावण ने यह कृत्रिम (बनावटी) करनी (रचना) की है। मूल (बात) में दृष्टि डालकर (अर्थात् आरम्भ से देखकर) भला

मूळ दृष्टी घालोनियां । ६६ जनकात्मजे तव स्वयंवरीं । चाप बैसलें उरीं । तें तुझ्या पतीनें झडकरी । द्विखंड करूनी टाकिलें । ६७ त्याहूनि चाप जड ये वेळे । प्रहस्तें जाऊन कैसें आणिलें । कृत्रिमधनु मुंड आणिलें । निर्मून त्याचसारिखें । ६८ ऐसें सरमा जों बोलत । तों धनुष्य शिर जाहलें गुप्त । जैसा वात लागतां अकस्मात । दीप जाय विझोनी । ६९ कीं जलद-जालाभीतरी । इंद्रधनुष्य उमटे क्षणभरी । तैसें कोदंडही झडकरी । गुप्त जाहलें तेधवां । ७० असो जानकी म्हणे सरमेप्रती । धन्य हो माये तुझी मती । राक्षसांच्या कापट्य-गती । तुज समजती सर्वही । ७१ मग अयोध्यापतीची राणी । सरमेसी जवळी बोलावूनी । हृदयीं धरीत प्रीतीकरूनी । म्हणे स्वामिनी होसी लंकेची । ७२ तों देववाणी जाहली अकस्मात । सुखरूप आहे अयोध्यानाथ । सीतेचा आनंद अद्‌भुत । अंबरा-माजी न समाये । ७३ असो इकडे लंकापती । परम चिंता-क्रान्त एकान्तीं । बोलतसे मंदोदरीप्रती । तेंच श्रोतीं

विचार करके तो देखो । ६६ हे जनकात्मजा, तुम्हारे स्वयंवर में धनुष रावण की छाती पर (पड़कर स्थिर) बैठ गया था, उसी धनुष को तुम्हारे पति ने झट से दो खण्डों में तोड़ डाला था । ६७ इस समय उससे भारी धनुष को प्रहस्त जाकर कैसे ला सका ? (वस्तुतः) उसी के समान कृत्रिम धनुष और मस्तक बनाकर वह ले आया है । ' ६८ जब सरमा इस प्रकार बोल रही थी, तब धनुष और मस्तक (उस प्रकार) गुप्त हो गये, जिस प्रकार वायु (के झोंके) के सहसा लगते ही दीया बुझ जाता है, अथवा मेघों के जाल के भीतर (जिस प्रकार) इन्द्र-धनुष क्षण भर झलकता है (और फिर आँखों से ओझल हो जाता है), उसी प्रकार वह (मायावी) धनुष तब झट से गुप्त हो गया । ६९-७० अस्तु । (तत्-पश्चात्) सीता सरमा से बोली— ' हे माता, तुम्हारी बुद्धि धन्य है । राक्षसों की सभी कपट-भरी चालें (योजनाएँ) तुम्हारी समझ में आती हैं । ' ७१ फिर अयोध्यापति की रानी सीता ने सरमा को (अपने) पास बुलाकर उसे प्रेमपूर्वक हृदय से लगाया और कहा— ' तुम लंका की स्वामिनी हो जाओगी । ' ७२ त्यों ही अकस्मात देव-वाणी हो गयी— ' अयोध्यानाथ सुख-रूप अर्थात् सकुशल हैं । ' तो सीता का अद्‌भुत आनन्द गगन में नहीं समा पाया । ७३

अस्तु । इधर लंकापति रावण ने परम चिन्ताक्रान्त होकर मन्दोदरी

परिसिजे। ७४ मंदोदरी परम सज्ञान। पतिव्रतागुणसंपन्न। जिचें सौंदर्य पाहून। मीनकेतन तटस्थ। ७५ मयजेचें इच्छीत मन। घ्यावें जानकीचें दर्शन। तों मंदोदरीस दशवदन। बोलता जाहला ते वेळे। ७६ रावण म्हणे शुभकल्याणी। तुवां जाऊनि अशोकवनीं। बोधोनियां जनकनंदिनी। मज शयनीं वश करीं। ७७ तूं पतिव्रतांमाजी मंडण। एवढें कार्य दे साधून। तंव ते मंदोदरी हास्यवदन। अवश्य म्हणोनि ऊठली। ७८ चंद्राचे ठायीं कलंक। त्याहूनि विशेष मयजेचें मुख। अशोकवना तात्काळिक। येती जाहली पतिव्रता। ७९ त्रिजटा म्हणे भूमिकुमरी। तव दर्शना आली मंदोदरी। ऐसें ऐकतां अंतरीं। परम संतोषली जगन्माता। ८० ते चातुर्यसरोवरमराळिका। मयजा सुगंधचंपककळिका। जैसी सिंहस्थीं जान्हवी देखा। भेटों जाय गौतमीतें। ८१ सीतेचिया चरणांवरी। मयजा जों नमस्कार करी। तों सीतेनें धरूनि झडकरी। हृदयीं धरिली

से एकान्त में (जो) कहा, श्रोता वही श्रवण करें। ७४ जिसकी सुन्दरता को देखकर कामदेव (तक) चकित हो जाता था, वह मन्दोदरी परम ज्ञानी और गुण-सम्पन्न पतिव्रता थी। ७५ उसका मन चाहता था कि सीता के दर्शन करें। तब उस समय रावण उससे बोला। ७६ रावण ने कहा—'हे शुभ-कल्याणी, अशोक वन में जाकर सीता को उपदेश देते हुए शय्या में मेरे वश करा देना। ७७ तुम तो पतिव्रताओं में आभूषण हो। इतना कार्य सिद्ध कर देना।' तब मुसकराते हुए 'अवश्य' कहकर मन्दोदरी उठ गयी। ७८ (वस्तुतः सुन्दर होने पर भी) चन्द्र में कलंक है, (अतः मन्दोदरी के मुख-चन्द्र की उसके साथ तुलना कैसे की जा सकती है?) मन्दोदरी का मुख (-चन्द्र) तो उससे विशेष (बहुत) सुन्दर है। वह पतिव्रता नारी तत्काल अशोक वन आ गयी। ७९ (उसे देखकर) त्रिजटा ने कहा—'हे भूमि-कन्या (सीता), मन्दोदरी तुम्हारे दर्शन के लिए आयी है।' ऐसा (-यह) सुनते ही वह जगन्माता (सीता) अन्तःकरण में परम सन्तुष्ट हो गयी। ८० वह मन्दोदरी (मानो) चातुर्य-सरोवर में निवास करनेवाली राजहंसी हो। वह (मानो) सुगन्ध-युक्त चम्पा की कली हो। देखिए, मानो सिंहस्थ में गंगा गोदावरी से मिलने जा रही हो। ८१ ज्यों ही मन्दोदरी ने सीता के चरणों में (सिर नवाँकर) नमस्कार किया, त्यों ही सीता ने उसे झट से पकड़कर (उठाकर) प्रेम-पूर्वक हृदय से लगा लिया। ८२ अथवा (सम-

प्रीतीनें। ८२ कीं त्या सिता असिता। एके ठायीं मीनल्या तत्त्वतां। कीं इंदिरा आणि शिवकान्ता। एकीस एक भेटती। ८३ एक शची एक सरस्वती। एक कृष्णा एक गोमती। एक मंदाकिनी एक भोगावती। मूर्तिमंत पातल्या। ८४ असो वरद भाक विसरून। स्वानंदसमुद्रीं जाहल्या लीन। चतुःषष्टी अंतःकरण। विरून गेलें रघुनाथीं। ८५ कीं वेदशास्त्रींच्या श्रुती। ऐक्यत्वीं ऐक्यास येती। तैशा आलिंगोनि बैसती। ब्रह्मानंदेंकरूनियां। ८६ जे कां विषकंठ-वंद्यप्रिया। तिजप्रति बोले दशकंठजाया। आजि सुदिन म्हणोनियां। दर्शन जाहलें माये तुझें। ८७ क्षण एक निवान्त राहून। मयजा बोले सुवचन। म्हणे सर्वांभूतीं समसमान। रघुनंदन एक असे। ८८ अनेक तरंग एक सागर। बहुत घरें एक अंबर। अनेक मणी एक सूत्र। तैसा रघुवीर व्यापक

झिए कि उनके रूप में) गंगा और यमुना एक स्थान पर सचमुच इकट्ठा हो गयी हों, अथवा लक्ष्मी और उमा एक दूसरी से मिल गयी हों। ८३ अथवा उनमें से एक शची और एक (दूसरी) सरस्वती हो, अथवा एक कृष्णा और एक (दूसरी) गोदावरी हो, अथवा एक गंगा और एक (दूसरी) भोगावती हो, जो वहाँ मूर्तिमती (प्रत्यक्ष) होकर आ पहुँची हों। ८४ अस्तु। एक वरदान देनेवाली है और दूसरी याचना करनेवाली है— यह (अन्तर) भूलकर वे दोनों आत्मानन्द-रूपी समुद्र में मग्न हो गयीं। चौंसठ कलाओं का ज्ञाता उनका अन्तःकरण श्रीराम (के ध्यान) में लीन हो गया। ८५ अथवा जिस प्रकार वेद-शास्त्र की श्रुतियाँ (एक-दूसरी के साथ) एकत्व में एकात्मता को प्राप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार वे दोनों (सीता और मन्दोदरी) ब्रह्मानन्द-पूर्वक गले लगकर (आलिंगन करते हुए मानो एकात्म होकर) बैठ गयीं। ८६ (तदनन्तर) जो विष-कण्ठ (-शिवजी) के वंद्य श्रीराम की प्रिया (सीता) थी, उससे रावण की पत्नी मन्दोदरी बोली— 'हे माता, आज सुदिन (शुभ दिन) है, अतः तुम्हारे दर्शन हो गये।' ८७ (फिर) एक क्षण भर शान्त रहकर मन्दोदरी ने ये अच्छे (मधुर) वचन कहे। वह बोली— 'समस्त भूतों में एकमात्र श्रीराम सम-समान रूप में (व्याप्त) हैं। ८८ लहरें अनेक होती हैं, (फिर भी) समुद्र एक (ही) होता है। घर बहुत होते हैं, (फिर भी उनके ऊपर छाया हुआ) आकाश एक (ही) होता है। मनके अनेक होते हैं, (फिर भी माला रूप में उनको बद्धकर

असे । ८९ एक सुवर्ण बहु अलंकार । बहुत तरंग एक नीर । बहुत मातृका एक ओंकार । तैसा रघुवीर व्यापकत्वें । ९० एक शरीर अवयव अपार । बहुत पत्रें एक तरुवर । बहु जळचर एक नीर । तैसा रघुवीर व्यापक असे । ९१ एक चराचर सर्वांभूतीं । तोच नांदे अयोध्यापती । तरी दशमुखासी केलिया प्रीती । काय स्थिति उणी होय । ९२ सकळ देहीं अयोध्याधीश । तरी वेगळा कां भाविसी लंकेश । सीता दुराग्रह विशेष । व्यर्थ कां करिसी सांग पां । ९३ मय-जेचा शब्द ऐकूनी । हंसून बोले जनकनंदिनी । अभेद एक चापपाणी । सर्वांभूतीं भरलासे । ९४ सर्वही घट मठ जाण । काय फोडून घातलें गगन । अभेद एक रघुनंदन । दुजेपण तेथें कैचें । ९५ मायिक भासे जगडंबर । जैसा मृगजळाचा

देनेवाला) सूत्र एक (ही) होता है। उस प्रकार वस्तुओं के अनेक होने पर भी श्रीराम (सबमें) व्यापक तत्त्व के रूप में एक ही हैं। ८९ सुवर्ण एक होता है, (परन्तु उससे निर्मित) आभूषण अनेक होते हैं; तरंगों के अनेक होने पर भी उनमें पानी एक ही होता है। मातृकाएँ (स्वर ध्वनियाँ) अनेक होती हैं, परन्तु (उनमें आधार-भूत) ओंकार (तत्त्व) एक होता है। उस प्रकार (वस्तुओं के अनेक होने पर भी व्यापकत्त्व (के विचार) से (सबमें एकमात्र) श्रीराम हैं। ९० शरीर तो एक होता है, परन्तु (उसके) अवयव अनेक होते हैं। पत्ते बहुत होते हैं, फिर भी (सबके लिए आधारभूत) तरुवर एक ही होता है। मछलियाँ बहुत होती हैं, परन्तु (उन्हें जीवन देनेवाला) पानी एक ही होता है। उसी प्रकार (प्राणियों के अनेक होने पर भी उन सबमें) श्रीराम व्यापक तत्त्व के रूप में होते हैं। ९१ चर और अचर (सजीव और निर्जीव), समस्त भूतों में एक अयोध्यापति श्रीराम ही निवास करते हैं। तो फिर (तुम्हारे द्वारा) रावण से प्रेम करने पर कौन-सी स्थिति (बात) कम होनेवाली है? ९२ सकल देहों में अयोध्याधीश हैं, तो (फिर) लंकेश (रावण) को भिन्न क्यों समझती हो। हे सीता, कहो, व्यर्थ ही विशेष दुराग्रह (हठ) क्यों कर रही हो।' ९३ मन्दोदरी का यह शब्द (=कथन) सुनते ही सीता हँसकर बोली— '(यह सत्य है कि) अभेद (समान) रूप से सब भूतों में चाप-पाणि राम भरे हुए अर्थात् व्याप्त हैं। ९४ देखिए, क्या सभी घटों-मठों में आकाश को तोड़कर डाला गया है? (अर्थात् क्या ब्रह्म के टुकड़े-टुकड़े करके चराचर वस्तुओं में उन्हें डाला गया है और इस प्रकार ब्रह्म भेद्य है?) राम तो अभेद (अभेद्य) हैं, वहाँ (उनके विषय

मिथ्या पूर। वंध्यावल्लीचें पक्व फळ विचित्र। मिथ्यामय लटिकेंचि। ९६ स्वप्नींची संपदा पूर्ण। किंवा आरशांतील धन। कीं दरिद्रियाचे मनोरथ पूर्ण। मिथ्यामय सर्वचि। ९७ मिथ्या अलंकार एक सुवर्ण। मिथ्या तरंग एक जीवन। अभेद एक रघुनंदन। तेथें रावण कोण कैंचा। ९८ ब्रह्मानंदस्वरूपा-वरी। न दिसे दुजेपणाची कुसरी। तेथें सीता आणि मंदोदरी। मिथ्या भास लटिकाचि। ९९ कैंची पृथ्वी कैंचें गगन। कैंचें आप तेज पवन। मिथ्या माया कैंचे त्रिगुण। तेथें रावण कोठें आहे। १०० जितकें थोर ब्रह्माण्ड। तैसेंच आकाश प्रचंड। तेथें घट मठ हें बंड। वेगळें व्यर्थ भावावें। १ तैसा निर्विकार जगजेठी। न चलती द्वैतभावाच्या गोष्टी। तेथें कैंची रावणाची भेटी। बाह्यदृष्टी त्यजीं कां। २ मयजा

में) द्वैत भाव कैसा ? ९५ जगत् का (यह) फैलाव उस प्रकार माया-जन्य दिखायी देता है, जिस प्रकार मृग-मरीचिका में आयी हुई बाढ़ मिथ्या होती है, अथवा बाँझ लता में उत्पन्न दिखायी देनेवाला पक्व विचित्र फल (वस्तुतः) पूर्णतः मिथ्या तथा बनावटी होता है। ९६ स्वप्न में दिखायी देनेवाली पूरी-पूरी सम्पत्ति, अथवा दर्पण में प्रतिबिम्बित धन, अथवा दरिद्र के सम्पूर्ण मनोरथ— ये सभी मिथ्या हैं। ९७ आभूषण मिथ्या होते हैं, परन्तु एक सुवर्ण ही मूलतः सत्य होता है; लहरें मिथ्या होती हैं, फिर भी एक पानी मात्र सत्य होता है। उसी प्रकार व्यक्तियों के अनेक होने पर भी मात्र एक राम अभेद्य हैं। वहाँ रावण कौन और कैसा ? ९८ ब्रह्मानन्द स्वरूप पर द्वैतभाव की कोई कारीगरी नहीं दिखायी देती है। वहाँ सीता और मन्दोदरी— ये दोनों (अपने-अपने अस्तित्व में वस्तुतः) मिथ्या आभास अतएव बनावटी (मात्र) हैं। ९९ कहाँ की पृथ्वी और कहाँ का गगन ? कहाँ का जल, तेज और पवन ? यह माया मिथ्या है। कहाँ के (सत्त्व, रजस् और तमस् नामक) तीन गुण ? (पंच महाभूत तथा त्रिगुण मायाजन्य, मिथ्या अतएव आभास मात्र हैं।) १०० ब्रह्माण्ड जितना विशाल है, उतना ही आकाश प्रचण्ड है। वहाँ घट और मठ की भिन्नता सम्बन्धी यह मान्यता पाखण्ड है। उन्हें व्यर्थ ही अलग-अलग समझें। १०१ उसी प्रकार ईश्वर निर्विकार (अच्छेद्य, अभेद्य, अव्यय आदि) है; (उसके सम्बन्ध में) द्वैत भाव की बातें नहीं चलतीं। वहाँ रावण से कहाँ की भेंट (हो सकती है) ? इस (भेदभाव की) दृष्टि का त्याग कर दें।' १०२

म्हणे जानकीसी । सर्वव्यापक अयोध्यावासी । किंवा आहे एकदेशी । सांग मजपासीं निश्चयें । ३ यावरी त्रिभुवनपतीची राणी । बोले विदेहराजनंदिनी । म्हणे त्रिपुटी गेल्या जेथें विरूनी । तटस्थ वाणी निगमांची । ४ ध्येय ध्याता ध्यान । ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान । नुरे भजक भज्य भजन । सांग रावण तेथें कैंचा । ५ जें जें दिसे तें तें नाशिवंत । वस्तु एक अभेद शाश्वत । मंदोदरी आणि सीता तेथ । कोणीकडे पाहाव्या । ६ दोरावरी दिसे विखार । शुक्तिकेचे ठायीं रजत साचार । तैसाच मायेचा प्रकार । मिथ्याविकार जाण पां । ७ मयकन्या सावध होय । दृष्टीनें सर्व पाहे अद्वय । निर्विकार वस्तु निरामय । हाही न साहे शब्द जेथें । ८ वस्तु अव्यक्त अनाम । तेथें राम हेंही न साहे नाम । ऐसें जयासी कळे वर्म । आत्माराम तोचि पैं । ९ ऐसा जो जाहला परिपूर्ण । त्यास समाधि आणि

(यह सुनकर) मन्दोदरी सीता से बोली— 'अयोध्या-निवासी राम सर्वव्यापी हैं अथवा एकदेश-वासी हैं ?— यह मुझसे निश्चयपूर्वक (निश्चित रूप से) कह दो।' ३ इसपर विदेह-राज-नंदिनी और त्रिभुवन-पति (राम) की रानी (सीता) ने क्या कहा ? वह बोली— 'जहाँ त्रिपुटी (अर्थात् ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय और पूजक-पूजन-पूज्य आदि भेद-भावना) नष्ट हो गयी है, जिसके बारे में कहते हुए निगमों (वेदों) की वाणी कुंठित हो गयी है, जहाँ ध्येय-ध्याता-ध्यान, ज्ञेय-ज्ञाता-ज्ञान, भजक-भज्य-भजन सम्बन्धी भेद-भावना शेष नहीं रहती,— कह दो, वहाँ कहाँ का रावण ? ४-५ जो-जो दिखायी देता है, वह (-वह) नाशवान है; (ईश्वर या ब्रह्म) एक (ऐसी) वस्तु (है, जो) अभेद्य और शाश्वत है। वहाँ (=इस स्थिति में) मन्दोदरी और सीता को किस ओर देखें। ६ जिस प्रकार रस्सी में साँप का आभास होता है, सींप में सचमुच चाँदी दिखायी देती है, उसी प्रकार माया के प्रसंग को मिथ्या विकार समझो।' ७ (यह सुनकर) मन्दोदरी सावधान हो गयी और उसने अपनी आँखों से सबको अद्वय, निर्विकार तथा निरामय (उपाधि-रहित अतएव शान्त) उस ब्रह्म (-स्वरूप में) देखा, जहाँ (जिस अवस्था में) यह 'ब्रह्म' शब्द (प्रयुक्त करना) सहन नहीं होता (अर्थात् नहीं जँचता)। ८ (जहाँ वस्तुतः) ब्रह्म अव्यक्त और अनाम है, वहाँ यह (राम) नाम तक सहन नहीं होता। इस प्रकार का रहस्य जिसकी समझ में आता है, वही (स्वयं) आत्माराम (ब्रह्म) ही है। ९ इस प्रकार जो परिपूर्ण (अवस्था को प्राप्त) हो गया हो, उसके

विधान। बोलणें आणि मौन। दोन्ही त्याचीं विरालीं। ११० ऐसें जगन्माता बोलत। मयजा ब्रह्मानंदें डुल्लत। समाधि ग्रासोनि तटस्थ। विराला हेत सर्वही। ११ बोलणें आणि संवाद। खुंटोनि जाहला अभेद। ओतला एक ब्रह्मानंद। आनंदकंद जगद्गुरू। १२ आनंद जिरवून अंतरीं। सावध जाहली मंदोदरी। जगन्मातेचे चरण धरी। सद्गद अंतरीं होऊनियां। १३ म्हणे संशय निरसला पूर्ण। धन्य धन्य आजिचा दिन। विदेहकन्येचे चरण। वारंवार धरी मग। १४ ब्रह्मानंदें म्हणे श्रीधर। धन्य तो दिवस साचार। सत्संगें आत्मविचार। सारासार होय पैं। १५ भागीरथी सर्वत्र पवित्र। परी प्रयागमहिमा अपार। तैसा रामविजय परिकर। सीता-मंदोदरीसंवाद हा। १६ सर्वत्र सुलभ ते भीमा। परी पंढरीस अगाध महिमा। स्नान

लिए समाधि और (विशिष्ट) क्रिया-विधान, भाषण और मौन दोनों (प्रवृत्तियाँ) समाप्त हैं।' ११०

जब जगन्माता सीता इस प्रकार कह चुकी, तो मन्दोदरी ब्रह्मानन्द-पूर्वक डोल रही थी। समाधि अवस्था आच्छादित होकर वह तटस्थ (स्तब्ध) हो गयी और उस (के आगमन) का समस्त हेतु ही नष्ट (शून्य) हो गया। ११ बोलना और सम्भाषण (दोनों) समाप्त होकर उनमें अभेद अवस्था (एकत्व) उत्पन्न हो गयी। (मानो) एक (मात्र) ब्रह्मानन्द-स्वरूप आनन्द-कन्द जगद्गुरु (ही) साँचे में ढल गया हो। १२ (परन्तु कुछ समय के अन्दर) आनन्द को मन में दबाकर रखते हुए मन्दोदरी सावधान हो गयी और उसने अन्तःकरण में बहुत गद्गद होकर जगन्माता सीता के पाँव पकड़ लिये। १३ (और) वह बोली— 'मेरा संशय सदा के लिए पूर्णतः नष्ट हो गया। आज का यह दिन धन्य है, धन्य है।' फिर बारबार वह सीता के पाँव पकड़ती (लगती) रही। १४

श्रीधर कवि ब्रह्मानन्द-पूर्वक कहते हैं— 'वह दिन सचमुच धन्य होता है, जब सत्संग से ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी विचार तथा सार-असार विवेक (उत्पन्न) हो जाता है। १५ गंगा तो सब स्थानों में पवित्र है, परन्तु प्रयाग का माहात्म्य अपार है। उसी प्रकार 'रामविजय' (तो सब प्रकरणों में सुन्दर है, फिर भी उस) में (विशेषतः) यह (सीता-) मन्दोदरी-संवाद मधुर है। १६ भीमा नदी (अन्यान्य स्थलों में) सबके लिए आसानी से प्राप्य होती है, फिर भी पंढरपुर (में उस) की महिमा असीम है। (यहाँ) उसमें स्नान करने से कर्म-अकर्म से (मनुष्य) मुक्त

करितां कर्माकर्मा- । पासूनि मुक्त होइजे । १७ असो सीतेची आज्ञा घेउनी । स्वधामा गेली मयनंदिनी । रावणाप्रती जाउनी । वर्तमान सांगतसे । १८ तप्तलोहावरी उदक पडलें । तें माघारें निघे एक वेळे । परी जानकी कदाकाळें । वश नव्हे तुम्हांसी । १९ मृगजळीं बुडेल अगस्ती । तमकूपीं पडेल गभस्ती । हेंही घडे परी सीता सती । वश नोहे तुम्हांतें । १२० जे गोष्टीनें होय अनर्थ । आपुले कुळाचा होय घात । ऐशिया बुद्धीनें पंडित । कालत्रयीं न वर्तती । २१ हातींचें टाकूनि सुवर्ण । कां बळेंच घ्यावें शेण । गोड शर्करा ओसंडून । राख कां मुखीं घालावी । २२ मुक्तें सांडोनि परिकरें । कां पदरीं बांधावीं खापरें । ओसंडोनि रायकेळें आदरें । अर्कीफळें कां भक्षावीं । २३ याकरितां द्विपंचवदना । सोडावी रामाची अंगना । कायावाचामनें जाणा । रघुनंदना शरण रिघावें । २४ परसतीचा अभिलाष । महापुरुषास ठेवणें दोष । बळवंतावरी बांधणे कास । मग अनर्थास काय उणें । २५ विवसी हे परम

हो जाता है । १७ अस्तु । सीता से आज्ञा लेकर मन्दोदरी अपने घर गयी और जाकर उसने रावण से समाचार कहा । १८ (उसने कहा–) ' तप्त लोहे पर पानी पड़ जाए तो (वह झट से भाफ बन जाता है, फिर भी) वह एकाध बार पुनः (बाहर) आ जाए, (यह असम्भव बात भी सम्भव हो जाए) परन्तु जानकी किसी भी काल तुम्हारे वश नहीं हो जाएगी । १९ मृगजल में अगस्त्य ऋषि डूब जाएँगे; अँधेरे से परिपूर्ण कुएँ में सूर्य गिर (कर डूब) जाएगा । (वस्तुतः यह असम्भव है, फिर भी) यह भी घटित हो जाएगा, परन्तु सती सीता तुम्हारे वश नहीं हो जाएगी । १२० जिस बात से हानि हो, अपने कुल का नाश हो, इस प्रकार (की बात) के विचार से पंडित जन तीनों कालों में— कभी भी व्यवहार नहीं करते । २१ हाथ का सोना फेंककर (हम) हठपूर्वक गोबर क्यों लें ? मधुर शक्कर छोड़कर (हम) मुंह में राख क्यों डालें ? २२ सुन्दर मोतियों को त्यजकर पल्ले में ठीकरे क्यों वाँध लें ? राज-केले (एक प्रकार के बढ़िया केले) को छोड़कर आक के फल आदर-पूर्वक क्यों खाएँ ? २३ इसलिए, हे दशानन, राम की स्त्री को छोड़ दीजिए और समझिए कि तन, वाणी और मन से रघुनन्दन की शरण में जाइए । २४ पर-नारी की अभिलाषा करना, महान पुरुष को दोष लगाना, बलवान को बन्धन में डालना, (—ये बातें बहुत हानिकारक हैं) इन्हें कर लिया,

सीता । अनर्थकारक घोर वनिता । हे नेऊनि द्यावी रघुनाथा । तरीच तुम्हां कल्याण । २६ महासर्प उशीं घेऊनी । कैसा निजेल सुखशयनीं । बळेंच गृहास लाविल्या अग्नी । मग अनर्थासी काय उणें । २७ परद्रव्याचा अभिलाष । जाणोनि प्राशन करणें विष । करितां परनिंदा द्वेष । मग अनर्थासी काय उणें । २८ परम साधु बिभीषण । तुमचा अविवेक देखोन । अयोध्यापतीस गेला शरण । जन्ममरण चुकविलें । २९ परम प्रतापी रघुनंदन । उदधीवरी तारिले पाषाण । हा प्रताप तुम्ही जाणून । द्वेषबुद्धि कां धरितां । १३० ऐशिया शब्द-सुमनींकरून । मयजेनें पूजिला रावण । मग प्रत्युत्तर हांसोन । देता जाहला ते काळीं । ३१ प्रिये तूं बोलसी वचनें । तीं मज मानलीं बहुत गुणें । परी आपुला पुरुषार्थ टाकणें । तरी जिणें व्यर्थ लोकीं । ३२ चिरंजीव जाहला बिभीषण । प्रळयीं तरी पावेल मरण । तोंवरी देहलोभ धरून । बैसतां काय

तो फिर हानि में क्या कमी रहेगी ? २५ यह सीता बहुत विघ्नों की (अधिष्ठात्री) देवी है, (—वैसे ही पर-) स्त्री घोर हानिकारी होती है। इसे ले जाकर रघुनाथ को (लौटा) देना, तभी आपका कल्याण है। २६ महासर्प को सिरहाने (तकिये के रूप में) लेकर कोई सुख-शय्या पर कैसे सो पाएगा ? हठ-पूर्वक घर में आग लगाने पर फिर हानि में क्या कमी रहती है ? २७ पर-धन की अभिलाषा करने, जान-बूझकर विष प्राशन करने, (अथवा) परनिन्दा करने या द्वेष करने पर फिर हानि में क्या कमी रहती है ? २८ बिभीषण परम साधु (-प्रवृत्ति के व्यक्ति) हैं। आपका अविवेक देखकर वे अयोध्या-पति राम की शरण में गये और अपने जन्म-मृत्यु (के फेरे) को छुड़वा लिया (—जन्म-मृत्यु के बन्धन से अपने आपको मुक्त करवा लिया)। २९ रघुनन्दन परम प्रतापी हैं। उन्होंने समुद्र में पाषाणों को तैरा दिया। उनके इस प्रताप को जानते हुए भी (उनके प्रति) आप द्वेष-बुद्धि क्यों धारण कर रहे हैं ? ' १३०

इस प्रकार के शब्दों रूपी सुमनों से मय-कन्या मन्दोदरी ने रावण का पूजन किया। फिर उस समय रावण ने हँसते हुए (यों) प्रत्युत्तर दिया। ३१ ' हे प्रिया, तुम जो बातें कह रही हो, वे अपनी बहुत विशेषता के कारण मुझे जँच गयी हैं। फिर भी (यदि) अपने पुरुषार्थ को त्याग देना हो, तो संसार में जीवित रहना व्यर्थ है। ३२ बिभीषण चिरजीवी तो हो गया है, फिर भी वह प्रलयकाल में तो मृत्यु को प्राप्त होगा

सार्थक। ३३ कल्पपर्यंत जीवूनी। पडिलें शरीर बंदिखानीं। या पुरुषार्थासी शुभ कल्याणी। मानी कोण सांग पां। ३४ आदि पुरुष रघुनंदन। हें मी जाणें सर्व वर्तमान। तो मजसीं युद्धकामना धरून। सागर उतरूनि आला आहे। ३५ त्याची वासना न पुरवितां। कदा माघारी नेदीं सीता। तरी मी आपुल्या पुरुषार्था। दावोनि राघवा जिंकीन। ३६ ऐसें ऐकोनि ते अवसरीं। चिंताक्रान्त होऊनि मंदोदरी। प्रवेशली निजमंदिरीं। क्लेशचक्रीं पडियेली। ३७ असो आतां यावरी। रावण चढला गोपुरीं। जैसा बलाहक पर्वतशिखरीं। कृष्णवर्ण उतरला। ३८ चपळेहून तेज आगळें। अंगीं अलंकार मिरवले। दाही छत्रें ते वेळे। मस्तकावरी विराजती। ३९ भोंवते सेवकजन बहुत। उपभोग देती समस्त। इकडे बिभीषण रामासी दावीत। रावण गोपुरीं चढला तो। १४० श्रीराम म्हणे ते अवसरीं। हा परम उंच सुवेळागिरी। अवघे वळंघोनियां वरी। लंकापुरी पाहूं चला। ४१ ऐसें बोलतां अयोध्याधीश।

(ही)। तब तक देह के प्रति लोभ धारण किये (उसके) बैठे रहने में क्या सार्थकता है? ३३ कल्प (के अन्त) तक जीवित रहते हुए शरीर यदि बन्दी-गृह में पड़ा रहे, तो हे शुभ कल्याणी, इस पुरुषार्थ को (महत्त्वपूर्ण) कौन मानेगा? ३४ रघुनन्दन राम (वस्तुतः) आदि पुरुष है।— इस समस्त (यथार्थ) स्थिति को मैं जानता हूँ। (फिर भी) मुझसे युद्ध करने की कामना लिये हुए वह सागर को लाँघकर आया है। ३५ उसकी इच्छा पूर्ण न करते हुए मैं सीता को कदापि नहीं लौटा दूँगा। इसलिए मैं अपना पुरुषार्थ प्रदर्शित करके श्रीराम को जीत लूँगा।' ३६ उस समय इस प्रकार (की बात) सुनकर मन्दोदरी चिन्ताक्रान्त होते हुए अपने प्रासाद में प्रविष्ट हो गयी। वह क्लेश के चक्र में फँस गयी। ३७ अस्तु। अब इसके पश्चात् रावण गोपुर पर चढ़ गया— मानो काला बादल ही पर्वत-शिखर पर उतर गया हो। ३८ जिनका तेज बिजली (के तेज) से न्यारा था, ऐसे आभूषण उसके शरीर पर शोभायमान थे। उस समय दसों छत्र उसके मस्तकों पर विराजमान थे। ३९ (उसके) चारों ओर बहुत सेवक जन थे। वे समस्त उसे (भोग्य वस्तुओं का) उपभोग करा रहे थे। इधर (सुवेल में) बिभीषण राम को दिखा रहा था— वह रावण गोपुर पर चढ़ गया है। १४० उस समय श्रीराम ने कहा— '(हम) सब इस परम ऊँचे सुवेल गिरि पर चढ़कर लंकापुरी को देखने

उठले तत्काळ कपिपुरुष । सुवेळाचळीं आसपास । चढले तेव्हां वायुवेगें । ४२ जैशा कनकाचळावरी । चढल्या निर्जरांच्या हारी । तैसा वानरांसह ते अवसरीं । अयोध्याविहारी चढतसे । ४३ रघुपतीचे दोन्ही कर । धरिती बिभीषण सूर्यकुमर । सुवेळाचळीं रघुवीर । कैसा शोभला ते काळीं । ४४ उदयाचळावरी बाळमित्र । ऐरावतावरी सहस्रनेत्र । कैलासावरी कर्पूरगौर । त्रिभुवनेश्वर दिसे तेवीं । ४५ जो लावण्यामृतसागर। स्मरारिमित्र मनोहर । झळकती समुद्रदत्त अलंकार । चपळेहूनि तेजागळे । ४६ तेणें शोभला अयोध्यानाथ । दिव्य पीतवसन विराजत । असो गोपुरावरी लंकानाथ । विलोकीत रामाकडे । ४७ वानरांसहित रावणारी । शोभतसे सुवेळाद्रीवरी । जैसा इंद्रादि सकळ सुरवरीं । वैकुंठपती वेष्टिला । ४८ कीं अनंत श्रुत्यर्थसमवेत । तो वेदोनारायण विराजत । किंबहुना वृक्षांसहित । कल्पद्रुम विराजे । ४९ तैसा महावीरीं वेष्टित ।

चलें । ' ४१ इस प्रकार अयोध्याधीश द्वारा बोलते ही तब तत्काल वानर पुरुष वायु-वेग से सुवेल पर्वत पर (एक दूसरे के) आसपास चढ़ने लगे । ४२ जिस प्रकार स्वर्ण पर्वत पर देवों की पंक्तियाँ चढ़ गयीं— अर्थात् पंक्तिबद्ध होकर देव चढ़ गये, उस प्रकार अयोध्याविहारी श्रीराम वानरों सहित उस समय (सुवेल पर) चढ़ रहे थे । ४३ विभीषण और सुग्रीव ने रघुपति के दोनों हाथ पकड़ लिये थे । (अब सुनिए—) उस समय श्रीराम सुवेल पर्वत पर किस प्रकार शोभायमान थे । ४४ त्रिभुवनेश्वर श्रीराम उस प्रकार (शोभायमान) दिखायी दे रहे थे, जिस प्रकार उदयाचल पर बालसूर्य, ऐरावत पर सहस्रनेत्र इंद्र अथवा कैलास पर कर्पूरगौर शिवजी (शोभायमान दिखायी देते) हों । ४५ जो लावण्यरूपी अमृत के समुद्र हैं, जो (कामदेव के शत्रु) शिवजी के मनोहारी मित्र हैं, उन (श्रीराम) के शरीर पर समुद्र द्वारा दिये हुए विद्युत् से भी अद्‌भुत तेजस्वी आभूषण जगमगा रहे थे । ४६ उनसे अयोध्यानाथ शोभायमान थे। (उनका पहना हुआ) दिव्य पीताम्बर सुशोभित था । अस्तु । लंकानाथ रावण गोपुर पर से श्रीराम की ओर देख रहा था । ४७ (इधर) रावणारि श्रीराम वानरों सहित सुवेल पर सुशोभित थे । जैसे वैकुण्ठपति भगवान विष्णु इंद्र आदि समस्त देवों द्वारा घिरे (हुए होने पर सुशोभित होते) हों, अथवा अर्थ-सहित अनन्त श्रुतियों के साथ वे वेदोनारायण ही विराजमान हों, अथवा वृक्षों के साथ कल्पवृक्ष विराजमान हो, वैसे (वानर) महावीरों

शोभतसे सीताकान्त। परी ते समयीं सूर्यसुत। कर्म अद्भुत करिता जाहला। १५० कुंजर दृष्टीं देखोन। उगा न राहे पंचानन। कोणास न पुसतां मित्रनंदन। अकस्मात उडाला। ५१ वज्र पडे पर्वतशिखरीं। तैसा सुग्रीव ते अवसरीं। येऊन आदळला रावणावरी। परमावेशेंकरूनियां। ५२ सव्यहस्तचपेटेतळीं। दाही छत्रें खालीं पाडिलीं। वामहस्तघायें तळीं। मुगुट सर्व पाडिले। ५३ जैसी विंध्याद्रीवरी अकस्मात। विद्युल्लता येऊन पडत। तैसें अर्कजें केलें विपरीत। लंकानाथ घाबरला। ५४ मग लत्ताप्रहार ते वेळां। सुग्रीवानें समर्पिला। सवेंच हृदयीं दिधला। मुष्टिघात ते वेळीं। ५५ मल्लयुद्ध परम अद्भुत। जाहलें एक घटिकापर्यंत। रावण म्हणे वालीऐसें त्वरित। धरून नेईल सुग्रीव हा। ५६ रामापासीं नेऊन त्वरित। विटंबील सूर्यसुत। पळावयासी निश्चित। मार्ग कोठें दिसेना। ५७ षोडशखणांचें गोपुर। तयावरूनि महावीर।

द्वारा घिरे हुए सीताकान्त श्रीराम शोभायमान थे। परन्तु उस समय सुग्रीव ने एक अद्भुत करनी की। १४८-५० आँखों से हाथी को देखने पर सिंह चुप नहीं बैठ सकता। (उस प्रकार रावण को देखने पर सुग्रीव चुप नहीं रह सका।) उस सूर्य-नन्दन ने बिना किसी से पूछे (कहे) अकस्मात उड़ान भर दी। ५१ जैसे वज्र पर्वत पर गिर गया हो, वैसे सुग्रीव उस समय परम आवेश के साथ आते हुए रावण पर गिर पड़ा (रावण से टकराया)। ५२ दायें हाथ के चपेटे से उसने (रावण के) दसों छत्रों को (तोड़कर) नीचे गिरा डाला, तो बायें हाथ के आघात से समस्त मुकुटों को नीचे गिरा दिया। ५३ जिस प्रकार विंध्य पर्वत पर अकस्मात (कोई) विद्युल्लता गिर पड़ी हो, उसी प्रकार (गिरते-टकराते हुए) सुग्रीव ने बहुत विपरीत (हानिकारी) बात कर डाली। इससे रावण घबरा गया। ५४ फिर उस समय सुग्रीव ने उसके लातों से प्रहार (आघात) जमा दिये; साथ ही उस समय उसके हृदय-स्थल (छाती) पर घूँसे से आघात (भी) कर दिया। ५५ (तदनन्तर उन दोनों में) एक घड़ी तक परम अद्भुत मल्ल-युद्ध हो गया, तो रावण ने कहा (माना)—बाली की भाँति यह सुग्रीव भी मुझे पकड़कर झट से ले जाएगा; फिर झट से राम के पास ले जाकर यह सूर्य-पुत्र मेरी विडम्बना (दुर्गत) कर देगा। उसे भाग जाने के लिए कोई निश्चित मार्ग नहीं दिखायी दे रहा था। ५६-५७ वह सोलह खण्डों वाला गोपुर था। उस पर से (मल्ल-

कोसळले तेव्हां लंकानगर। गजबजलें एकदांचि। ५८ एक म्हणती आला हनुमंत। नगर जाळावया समस्त। एक म्हणती समुद्रांत। लंका घालील पालथी। ५९ असो तेव्हां दशकंधर। चुकवोनियां पैं सत्वर। पळाला वेगें जैसा तस्कर। जागा होतां गृहस्वामी। १६० मृगेंद्राचे कवेंतून देख। पूर्वभाग्यें सुटला जंबुक। कीं भुजंगकवेंतूनि मूषक। पळोनि जाय स्वस्थळा। ६१ असो सुग्रीव तेथोनि उडाला। सुवेळागिरीं पावला। एकच जयजयकार जाहला। हृदयीं धरिला रघुनाथें। ६२ वृंदारक गगनींहूनी। पुष्पें वर्षती ते क्षणीं। धन्य सुग्रीव म्हणोनी। तर्जनी मस्तक डोलविती। ६३ श्रीराम म्हणे सूर्यकुमरा। आजी बृहस्पती चेवला विचारा। तैसें तूं महावीरा। केलें होतेंच विपरीत। ६४ समीप असतां सर्व दळें। पुढें उडी न घालावी भूपाळें। असो जय पावला शीघ्र काळें। हाच लाभ थोर आम्हां। ६५ तेव्हां

युद्ध करते-करते जब) वे (दोनों) महावीर गिर पड़े, तब लंकानगर एकदम भयभीत हो उठा। ५८ कोई-एक बोले— '(फिर) हनुमान समस्त नगर को जलाने के लिए आ गया।' तो कोई-एक बोले— 'वह (अब) लंका को उलट देकर समुद्र में डाल देगा।' ५९ अस्तु। तब रावण (सुग्रीव को) भुलावा देकर झट से वेग के साथ वैसे ही भाग गया, जैसे गृह-स्वामी (घर-मालिक) के जागृत हो जाने पर चोर भाग जाता है। १६० देखिए (समझिए), पूर्व भाग्य (-पुण्य) के बल से सिंह की लपेट में से सियार भाग गया, अथवा साँप की लपेट में से चूहा अपने स्थान (तक) भाग गया। ६१ अस्तु। (तदनन्तर) सुग्रीव वहाँ से उड़कर सुवेल पर्वत पर आ पहुँचा, तो अद्भुत (बेजोड़) जय जयकार हो गया और श्रीराम ने उसे हृदय से लगा लिया। ६२ उस क्षण देवों ने आकाश में से फूल बरसा दिये और 'धन्य है सुग्रीव' कहते हुए तर्जनियाँ और सिर हिलाते रहे। ६३ (फिर) श्रीराम ने कहा— 'हे सूर्य-कुमार, आज (मानो बुद्धि का अधिष्ठाता देव) बृहस्पति विचार में बहक गया (अर्थात् उसकी बुद्धि सुविचार से बहक गयी)। हे महावीर तुमने वैसे ही (सद्बुद्धि से बहककर) विपरीत (हानिकारी) बात की थी। ६४ (युद्ध-नीति के अनुसार) समस्त (सेना-) दलों के समीप रहने पर राजा आगे न कूद पड़े— आगे न बढ़े। अस्तु। तुम अल्प काल में जय को प्राप्त हो गये हो,— यही हम लोगों का बड़ा लाभ हुआ है।' ६५ तब अनेक प्रकार के फूल लाकर

आणोनी पुष्पजाती । वानरीं पूजिला किष्किंधापती । दळभारेंसीं सीतापती । पूर्वस्थळास उतरला । ६६ सकळ जुत्पतींसह रघुनंदन । बैसला तेव्हां सभा करून । सुग्रीव आणि बिभीषण । अवघे जवळी बैसले । ६७ राजाधिराज रामचंद्र । जो चातुर्यगुणसमुद्र । राजनीति बहुविचार । करिता जाहला ते समयीं । ६८ म्हणे आतां द्विपंचवदन । सीता नेदी युद्धावीण । यावरी मग बिभीषण । बोलता जाहला तेधवां । ६९ म्हणे साम दान भेद दंड करून । शत्रु कीजे आपणाआधीन । ओळखूनि समयाचें चिन्ह । तैसें चतुरीं वर्तावें । १७० मंत्रें आकर्षिजे विखार । उदकें शांतविजे वैश्वानर । वेदान्तज्ञानें भवसमुद्र । उतरूनि जावें पैलतीरा । ७१ कामक्रोधादि शत्रु थोर । विवेकें जिंकावे साचार । भक्तिबळें सर्वेश्वर । आपणाधीन करावा । ७२ शमदमबळेंकरून । मनोजय करिती सज्ञान । व्युत्पत्तीच्या बळेंकरून । अर्थ काढिती पंडित । ७३ पाषाणाखालीं सांपडे हात । तो युक्तीनें काढावा अकस्मात । बळेंकरून ओढितां

वानरों ने किष्किंधा-पति सुग्रीव का पूजन किया; और (तदनन्तर) सेनादलों सहित श्रीराम (पर्वत पर से) अपने पहले स्थान पर उतर गये । ६६ (फिर) श्रीराम समस्त मल्लों (शक्तिशाली वीरों) सहित सभा आयोजित करके बैठ गये । (उसमें) सुग्रीव और विभीषण दोनों (श्रीराम के) पास बैठ गये । ६७ जो चातुर्य एवं गुणों के समुद्र (ही) हैं, उन राजाधिराज रामचन्द्र ने उस समय राज-नीति के सन्दर्भ में बहुत विचार (-विनिमय) किया । ६८ वे बोले-- ' बिना युद्ध के दशानन सीता नहीं लौटाएगा । ' तब इसपर बिभीषण ने कहा । ६९ वह बोला— ' साम, दाम, दण्ड, भेद से शत्रु को अपने अधीन करें । समय के लक्षण पहचानकर चतुर (जन) वैसे (उनके अनुकूल) ही व्यवहार करें । १७० मन्त्र से साँप को आकृष्ट (कर वश में) करें, पानी से आग का शमन करें, और वेदान्त ज्ञान से भव-सागर को लाँघकर उस पार जाएँ । १७१ काम, क्रोध आदि (विकार) बड़े शत्रुओं को सचमुच विवेक से जीत लें और भक्ति के बल से सर्वेश्वर भगवान् को अपने अधीन करें । ७२ ज्ञानी जन शम, दम के बल से मन पर विजय प्राप्त करते हैं, तो पंडित-जन व्युत्पत्ति के बल से (शब्दों का) अर्थ निकालते हैं । ७३ पत्थर के नीचे हाथ फँस जाए, तो युक्ति से सहसा निकाल लें; (क्योंकि) बलपूर्वक खींचने से मात्र व्यथा प्राप्त हो जाती है । ७४ उसी प्रकार पहले साम करके दशानन को वश

प्राप्त । व्यथा मात्र होय पैं । ७४ तैसें आधीं साम करून । वश करावा द्विपंचवदन । समयोचित जाणे ज्ञान । ऐसा शिष्टाईस पाठवावा । ७५ सभेसी बैसतां जाऊन । दिसे जैसा बृहस्पति प्रवीण । सरस्वती जयासी प्रसन्न । समयोचित शब्द देत । ७६ वेद शास्त्र पुराण । हें जयासी करतलामलक पूर्ण । तेजस्वी जैसा चंडकिरण । सभास्थानीं तेवीं दिसे । ७७ जरी वरी लोटले शत्रु समस्त । ते समयीं जैसा वैवस्वत । जैसा कलशोद्भव निश्चित । शत्रुसागर प्राशावया । ७८ हृदय निर्मळ कपटरहित । भोळा जैसा उमाकांत । श्रेष्ठत्वें सभेंत विराजत । शचीनाथ ज्यापरी । ७९ ईश्वरीं जयाचें प्रेम । संतांसीं मित्र-भाव परम । आचरे सदा सत्कर्म । क्रोध काम दवडोनियां । १८० यालागीं जगद्वंद्या राघवा । या चिन्हीं मंडित बरवा । ऐसा शिष्टाईस पाठवावा । मयजाधवाजवळिकें । ८१ तरी नर वानर रीस । कोणास पाठवूं शिष्टाईस । तुम्हीं आम्हीं किष्किंधाधीश ।

में कर लें । (इसलिए) जो समय की दृष्टि से उचित ज्ञान जानता हो, ऐसे (व्यक्ति) को मध्यस्थता कराने के हेतु भेज दीजिए । ७५ जो जाकर सभा में बैठने पर बृहस्पति जैसा प्रवीण दिखायी दे, जिसपर सरस्वती प्रसन्न होकर समयोचित शब्द (सुझा) देती हो, जिसे वेद-शास्त्र-पुराण हथेली पर रखे हुए आँवले की भाँति पूर्णतः स्पष्ट हो गये हों, जो सभा-स्थान में वैसा ही तेजस्वी दिखायी दे, जैसा सूर्य (तेजस्वी) है, ऐसे (व्यक्ति) को मध्यस्थता कराने के हेतु भेज दें । ७६-७७ यद्यपि उसपर समस्त शत्रु टूट पड़ें, तो भी उस समय वह वैवस्वत मनु जैसा स्थिर रह जाए; शत्रु रूपी सागर को प्राशन कर सोख डालने के लिए वह निश्चय ही कलशोद्भव अगस्त्य ऋषि जैसा हो । उसका हृदय निर्मल और कपट-रहित हो, उमापति शिवजी जैसा भोला हो और जिस प्रकार शचीनाथ इंद्र देवों की सभा में विराजमान होता है, उस प्रकार अपनी श्रेष्ठता से (विपक्षी की) सभा में विराजमान (होने की योग्यता रखता) हो । जिसे ईश्वर के प्रति प्रेम हो, सन्तों के प्रति परम मित्रत्व भाव हो, जो क्रोध, काम (आदि विकारों) को दूर हटाकर सदा सत्कर्म का आचरण करता हो, उसे मध्यस्थता कराने के हेतु भेज दीजिए । १७८-१८० हे जगद्वंद्य राघव, इसलिए इन लक्षणों से भली-भाँति जो विभूषित हो, ऐसा कोई व्यक्ति रावण के पास मध्यस्थता के लिए भेज दीजिए । ८१ इसलिए आप, हम और किष्किंधापति सुग्रीव एक विचार निकालें (निर्धारित कर लें) कि किस

विचार एक काढावा। ८२ वारणचक्रांत रिघोन। स्वकार्य साधी पंचानन। कीं एकलाचि जाऊन सुपर्ण। अमृतकुंभ घेऊन आला। ८३ एकलाच जाऊन गुरुपुत्र। साधून आला संजीवनीमंत्र। कीं सागर उडोनि रुद्रावतार। शुद्धि करूनि पातला। ८४ तैसेंचि कार्य साधून। सत्वर येई परतोन। ऐसा पाठवावा निवडोन। शीघ्रकाळीं तत्त्वतां। ८५ ऐसें बोलतां बिभीषण। परम संतोषला रघुनंदन। म्हणे धन्य तुझें ज्ञान। सकळकळाप्रवीण होसी। ८६ रत्नराशी पडल्या अपार। त्यांत अनर्घ्य रत्न प्रभाकर। परीक्षक निवडिती तैसा वीर। वालिपुत्र काढिला। ८७ बिभीषण म्हणे राजीवनेत्रा। जलदवर्णा चारुगात्रा। पद्मोद्भवजनका स्मरारिमित्रा। अंगदासी पाठवावें। ८८ हा सर्व लक्षणीं आहे चतुर। जैसा नवग्रहांत दिनकर। कीं विखारांत धरणीधर। तैसा वानरांत अंगद हा। ८९ कीं शास्त्रांमाजी वेदान्त। शस्त्रांत सुदर्शन लखलखित।

मनुष्य, वानर या रीछ को मध्यस्थता के लिए भेज दें। ८२ हाथियों के चक्र (घेरे) में प्रविष्ट होकर सिंह अपना कार्य सिद्ध करता है; अथवा सुपर्ण गरुड़ अकेले ही जाकर अमृत-कुम्भ ले आया। ८३ (देव-) गुरु (बृहस्पति का) पुत्र (कच दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य के पास) जाकर संजीवनी मन्त्र सिद्ध कर लौट आया; अथवा रुद्र का अवतार हनुमान सागर पर से उड़ते हुए (सीता की) खोज करके लौट आया। ८४ वैसे ही जो कार्य को सिद्ध (सफल) करके सत्वर लौट आ सके, ऐसे व्यक्ति को चुनकर सचमुच शीघ्र (अल्प) समय में भेज दें।' ८५ विभीषण के इस प्रकार कहने पर रघुनन्दन परम सन्तुष्ट हो गये और बोले—'धन्य है तुम्हारा ज्ञान। तुम सकल कलाओं में प्रवीण हो।' ८६ जिस प्रकार रत्नों की अनगिनत राशियाँ पड़ी हुई हों, तो उनमें से तेज से युक्त अनमोल रत्न को पारखी चुन लेते हैं, उसी प्रकार अनगिनत वानर और रीछ वीरों में से उन्होंने वीर बाली-पुत्र अंगद को चुनकर निकाला। ८७ (तब) विभीषण ने कहा—'हे राजीव-नेत्र, जलद-वर्ण (मेघ श्याम), चारुगात्र, ब्रह्मा के हे पिता, स्मरारि (शिवजी) के हे मित्र, अंगद को ही भेजना। ८८ यह सब लक्षणों से चतुर (माना जा सकता) है। जैसे नौ ग्रहों में सूर्य (सर्वश्रेष्ठ) है, अथवा सर्पों में शेषनाग (सर्वोपरि) है, वैसे ही वानरों में यह अंगद (सर्वश्रेष्ठ) है। ८९ अथवा (जैसे) शास्त्रों में वेदान्त (सर्वश्रेष्ठ) है, (अथवा) शस्त्रों में जगमगाता हुआ सुदर्शन चक्र

कीं पक्ष्यांमाजी विनतासुत। बळें अद्भुत तैसा हा। १९० ऐकतां तोषला रघुनंदन। म्हणे हें तुम्हीं उत्तम निवडिलें रत्न। तंव तो अंगद कर जोडून। रघुपतीप्रती बोलत। ९१ म्हणे पुराणपुरुषा परमानंदा। भक्तहृत्पद्मकोशमिलिंदा। जगदंकुर-मूळकंदा। आज्ञा काय ते मज द्यावी। ९२ राजीवाक्षा रणरंगधीरा। असुरकाननवैश्वानरा। जनकजामाता अति उदारा। आज्ञा काय ती मज सांग। ९३ चराचरफलांकितद्रुमा। विशाळभाळा पूर्णकामा। अज अजित आत्मारामा। आज्ञा काय ती मज सांगा। ९४ रावण आणि कुंभकर्ण। ये क्षणीं येथें आणूं बांधोन। कीं हे लंका उचलून। घालूं पालथी सागरीं। ९५ ऐकोन अंगदाचे बोल। संतोषला तमालनीळ। म्हणे धन्य तो वालि पुण्यशील। अद्भुत बळ तयाचें। ९६ कक्षेसीं दाटोनि रावण। चतुःसमुद्रां केलें स्नान। त्याचे पोटीं पुत्र निधान। बळ गहन तैसेंच। ९७ तरी लंकेसी

(सर्वोपरि) है, अथवा पक्षियों में विनता-सुत गरुड़ (सर्वश्रेष्ठ) है, वैसे ही (समस्त वानरों-रीछों में) बल से यह अद्भुत (अतएव अद्वितीय) है।' १९० यह सुनकर रघुनन्दन सन्तुष्ट हो गये और बोले— 'तुमने यह उत्तम (वीर-) रत्न चुना है।' तब वह अंगद हाथ जोड़कर रघुपति से बोला। ९१ उसने कहा— 'हे पुराण-पुरुष, हे परमानन्द, भक्तों के हृदय-कमल के कोश में स्थित हे भ्रमर, जगत्रूपी अंकुर के हे मूलकन्द, (आपकी) क्या आज्ञा है? —वह मुझे दीजिए। ९२ हे राजीवाक्ष, हे रणरंग-धीर, असुररूपी वन के लिए हे वैश्वानर, हे जनक-जामाता, हे अति उदार (श्रीराम), आपकी क्या आज्ञा है? मुझे वह बताइए। ९३ चर और अचर वस्तुओं रूपी फलों से अंकित हे वृक्ष, हे विशाल-भाल, हे पूर्णकाम, हे अज और अजित आत्माराम, (आपकी) क्या आज्ञा है? मुझे वह बताइए। ९४ रावण और कुम्भकर्ण को इस क्षण बाँधकर यहाँ ले आऊँ, अथवा इस लंका को उठाते हुए (उलटकर) सागर में डाल दूँ।' ९५ अंगद के (इन) वचनों को सुनकर तमाल-नील श्रीराम संतुष्ट हो गये और बोले— 'वह पुण्यशील बाली धन्य है (जिसने तुम जैसे पुत्र को जन्म दिया)। उसका बल अद्भुत था। ९६ उसने रावण को बगल में दबाकर (पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर—इन) चारों समुद्रों में स्नान किया था। उसके पेट से तुम जैसा पुत्र-निधान उत्पन्न हुआ। तुम्हारा बल वैसा ही गहन (असीम) है। ९७ इसलिए इस समय लंका में जाकर

जाऊन ये समयीं । रावणासी करीं शिष्टाई । म्हणावें जानकीस देईं । सामोपचारेंकरूनियां । ९८ तुवां मज न कळतां येऊन । चोरिलें जानकीचिद्रत्न । तरी एकदा क्षमा केली पूर्ण । देईं आणोनि झडकरी । ९९ सीता देतांचि तत्काळ । तूं लंकेसी नांदसी अचळ । नाहीं तरी निर्मूळ कुळ । तुझें करीन निर्धारें । २०० ऐसें ऐकतां वालिसुत । नमस्कारीत जनक-जामात । आज्ञा घेऊन त्वरित । गगनपंथें उडाला हो । १ दशमुखाचे सभेआंत । उतरता जाहला अकस्मात । कीं वानररूपें जैसा आदित्य । एकाएकीं प्रगटला । २ कां वैकुंठाहूनि सर्पारी । अवचितां येत उर्वीवरी । कीं कर्मभूमीस निर्धारीं । योगभ्रष्ट उतरला । ३ दृष्टीं देखतां अंगदवीर । चमकले सभेचे असुर । शस्त्रें उभारूनि समग्र । सरसावले ठायीं ठायीं । ४ म्हणती एकचि आला वानर । तेणें पूर्वीं जाळिलें लंकानगर । सुग्रीवें गोपुरीं येऊनि समग्र । छत्रें पाडिलीं रावणाचीं । ५ हा निर्भय निःशंक बहुत । एकलाचि आला सभेआंत । असो चहूंकडे

तुम रावण के साथ मध्यस्थता करो और कहो— सामोपचार से सीता को लौटा देना । ९८ मेरे अनजाने तुमने जानकी रूपी चिद्रत्न को चुरा लिया । फिर भी एक बार पूर्णतः क्षमा की है, (अतः) झट से उसे ला दो । ९९ सीता को लौटा देते ही तत्काल तुम लंका में अचल रूप में सुख-पूर्वक रहोगे; नहीं तो मैं निश्चय-पूर्वक तुम्हारे कुल को निर्मूल कर डालूँगा । ' २०० इस प्रकार (की बात) सुनने पर बाली-पुत्र अंगद ने जनक-जामाता श्रीराम को नमस्कार किया और आज्ञा लेकर झट से उसने गगन मार्ग में उड़ान भर दी । २०१ (फिर) वह दशानन की सभा में अकस्मात उतर गया; अथवा (मानो) सूर्य ही वानर-रूप में यकायक प्रकट हो गया हो; अथवा वैकुण्ठलोक से सर्पारि गरुड़ अचानक पृथ्वी पर आ गया हो; अथवा निश्चय ही कोई योग (-मार्ग) से भ्रष्ट पुरुष कर्म-भूमि पर उतर आया हो । २-३ वीर अंगद को आँखों से देखते ही सभा में (बैठे हुए) असुर चकित हो गये और शस्त्रों को उभारकर (तौलकर) वे सब स्थान-स्थान पर आगे बढ़े । ४ वे बोले— ' एक ही (अकेला) वानर आया था; उसने पहले लंकानगर को जला डाला । (तदनन्तर) सुग्रीव ने गोपुर में आकर रावण के समस्त छत्रों को गिरा डाला था । ५ (और) यह तो बहुत निर्भय और निःशंक है, जो अकेला ही सभा में आ गया है । ' अस्तु । तारा-सुत अंगद चारों ओर सभा को निरखकर देखने

तारासुत । पाहे न्याहाळोनि सभेतें । ६ मग बोले वालिनंदन । सभेस आला जो परस्थळींहून । त्यासी न पुसती सभाजन । तरी ते शतमूर्ख जाणावे । ७ शृगालसभेंत पंचानन । येतां दचकती अवघे जन । कीं देखतां विनतानंदन । विखार जैसे दचकती । ८ कीं उदया येतां दिनकर । दिवाभीतें विटती समग्र । कीं इंदु विलोकितां तस्कर । कंटाळती जैसे कां । ९ कीं पंडित येतां सभेप्रती । मनीं विटती अल्पमती । कीं ते कोकिळ गर्जती वसंतीं । वायस मानिती संताप । २१० दृष्टीं देखतां संतभक्त । निंदक विटती समस्त । तैसे तुम्ही राक्षस उन्मत्त । मज देखतां त्रासलेती । ११ मग सभास्तंभ पृष्ठीं घालून । पुच्छासनीं बैसे वालिनंदन । उंच दिसे रावणाहून । तेजेंकरूनी विशेष । १२ म्हणे गर्विष्ठा दशवदना । मीं आलों असें कवण्या कारणा । तें कां न पुससी मलिना । कोणें विचारें सांग पां । १३ मी आहें शक्रात्मजसुत । अयोध्यापतीचा असें

लगा । ६ फिर वह बाली-नन्दन बोला— ' जो पर अर्थात् अन्य स्थान से सभा में आ गया हो, यदि सभा-जन उसकी पूछताछ (अर्थात् उसका आतिथ्य) न करें, तो उन्हें शतमूर्ख समझें । ७ सियारों की सभा में सिंह के आने पर जैसे वे सब जने भय से ठिठक जाते हैं, अथवा जिस प्रकार गरुड़ को देखते ही सर्प चौंक उठते हैं, अथवा सूर्य के उदित होने पर समस्त उल्लू ऊब जाते हैं अथवा जिस प्रकार चंद्र को देखते ही चोर उकता जाते हैं, अथवा पंडितों के सभा में आने पर अल्पमति जन मन में ऊब जाते हैं, अथवा जिस प्रकार वसन्त ऋतु में जब कोकिल कुहुकते हैं तो कौए क्रोध अनुभव करते हैं, जिस प्रकार आँखों से सन्तों तथा भक्तों को देखने पर समस्त निन्दक ऊब जाते हैं, उसी प्रकार तुम उन्मत्त राक्षस मुझे देखते ही तंग आ गये हो । ' २०८-११

तब सभा-स्थान के स्तम्भ की ओर पीठ करके (पीठ टिकाकर) वाली-नन्दन अंगद (अपनी पूँछ को आसनाकार करके उस) पुच्छासन पर बैठ गया । वह रावण से ऊँचा तथा तेज में अधिक बड़ा दिखायी दे रहा था । १२ उसने कहा-- ' रे गर्विष्ठ दशानन, रे मलिन (पापी), तू यह क्यों नहीं पूछता कि मैं किस कारण से आया हूँ; कह दे किस विचार से नहीं पूछता । १३ मैं इन्द्र-पुत्र बाली का पुत्र हूँ, अयोध्यापति का दूत हूं । फिर भी मैं यहाँ मध्यस्थता कराने तथा तेरा मन (परख) देखने आया हूँ । ' १४

दूत। तरी मी शिष्टाईस आलों येथ। अंतर तुझें पाहावया। १४ याउपरी वीर अंगद। रावणासी करील बोध। तें संतीं परिसावें विशद। ब्रह्मानंदेंकरूनियां। १५ रविकुळभूषण रघुवीर। जो साधुहृदयपंकजभ्रमर। तो ब्रह्मानंद श्रीधरवर। अभंग साचार न विटे कदा। १६ स्वस्ति श्रीरामविजयग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। चतुर्विंशतितमोध्याय गोड हा। २१७

इसके पश्चात् वीर अंगद रावण को उपदेश देगा। उसे सन्त (-श्रोता जन) ब्रह्मानन्द के साथ स्पष्ट रूप से श्रवण करें। १५ जो साधुओं के हृदय-कमल के प्रति लुब्ध भ्रमर हैं, वे रविकुल-भूषण रघुवीर श्रीराम ही श्रीधर कवि के लिए वर-दाता (गुरुदेव) ब्रह्मानन्द (के रूप में अवतरित) हैं। वे अभंग हैं, वे सचमुच कभी भी तेज आदि में फीके नहीं पड़ जाते। १६

स्वस्ति। श्रीराम-विजय (नामक यह) ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि-के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। चतुर भक्त उसके इस मधुर चौबीसवें अध्याय का नित्य श्रवण करें। २१७

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२५

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। पूर्वीं क्षीरसिंधु मंथूनी। चतुर्दश रत्नें काढिलीं निवडूनी। तैसा रामकथार्णव शोधूनी। रामविजय काढिला। १ दह्याचे

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। (जिस प्रकार) पूर्व-काल में क्षीर-समुद्र का मन्थन करके (देवों और दानवों ने चौदह रत्नों * को छाँटकर निकाल लिया, उसी प्रकार मैंने राम-कथा रूपी सागर में खोजकर इस 'राम-विजय' ग्रन्थ (की कथा) को निकाल (कर प्रस्तुत कर) दिया है। १ दही के अन्दर से मक्खन

* टिप्पणी : चौदह रत्न— लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि, पारिजातक पुष्पवृक्ष, सुरा (मदिरा), धन्वन्तरि, चन्द्रमा, कामधेनु, ऐरावत, रम्भा अप्सरा, उच्चैःश्रवा अश्व, कालकूट (हलाहल), शार्ङ्ग धनुष, शंख और अमृत।

पोटीं निघे नवनीत। कीं स्वातीतोयापसाव मुक्त । तैसा दशरथापासाव रघुनाथ। महिमा अद्‌भुत तयाचा। २ कीं ज्ञानापासोनि शांती । कीं शांतीपासोनि विरक्ती। कीं विरक्तीपासोनि निवृत्ती-। पद विशेष पाविजे। ३ तैसा वाल्मीक-मतीचा विस्तार। तो हा रामकथाब्धि साचार। याचा पावावया पैल पार । वक्त्यासी शक्ती नव्हेचि। ४ जो पीडिला दरिद्रेंकरून । त्यास मार्गीं सांपडे बहुत धन। परी तो यथाशक्तिकरून। मोट बांधी जैसी कां। ५ तैसा यथामतीकरून। रामविजय निवडिला पूर्ण। असो पूर्वाध्यायीं वालिनंदन। रावणासन्मुख बैसला। ६ मुकुटावरी शोभे दिव्य मणी। तैसा अंगद विराजे पुच्छासनीं। म्हणे दशमुखा ऐकें श्रवणीं। शब्दरत्नें अति सुरस। ७ नरदेहासी येऊन पाहीं । कीर्ति

निकलता है; अथवा स्वाति नक्षत्र पर बरसनेवाले जल (की बूंद) से (समुद्र के अन्दर सीप में) मोती उत्पन्न होता है, उसी प्रकार (अयोध्या-पति) दशरथ से श्रीराम का आविर्भाव हुआ। उसकी महिमा अद्‌भुत है। २ अथवा (आत्म-) ज्ञान से (आत्म-) शान्ति प्राप्त हो जाती है, अथवा (आत्म-) शान्ति से (सांसारिक भोग-विलास के विषयों से) विरक्ति उत्पन्न होती है, अथवा विरक्ति से (साधक को सांसारिक भोग्य विषयों से) निवृत्ति प्राप्त होती है, उस प्रकार (आदिकवि) वाल्मीकि की बुद्धि का जो विस्तार हो गया (अर्थात् वाल्मीकि की दिव्य प्रतिभा-कवित्व शक्ति की जो काव्य रूप में अभिव्यक्ति हुई) वही सचमुच यह राम-कथा रूपी समुद्र है। उसके दूसरे पार (तट) को प्राप्त करने की (उसके वर्णन करनेवाले) वक्ता में शक्ति नहीं है। ३-४ जो दरिद्रता से पीड़ित है, उसे मार्ग में (अचानक) बहुत धन प्राप्त हो, फिर भी जिस प्रकार (उस समस्त धन को अपने लिए उठाकर ले जाने में असमर्थ होने पर भी) वह यथाशक्ति थैली (में उसमें से अधिक से अधिक) बाँध लेता है। ५ उसी प्रकार (सागर-से विशाल और अथाह राम-कथात्मक रचना में से) मैंने राम-विजय नामक सम्पूर्ण ग्रन्थ (के लिए सामग्री) का चयन किया है। अस्तु पूर्ववर्ती, अर्थात् चौबीसवें अध्याय में कहा है कि बालीनंदन अंगद (राज-सभा में) रावण के सम्मुख बैठ गया। ६ (जिस प्रकार) मुकुट में दिव्य हीरा शोभायमान होता है, उसी प्रकार अंगद पुच्छासन पर विराजमान था। वह बोला— 'हे दशमुख, रत्न-से (अनमोल) शब्दों को अपने कानों से सुन लो। ७ देखो (जान लो), नर-देह को प्राप्त होकर (मनुष्य अपने) पीछे तीनों भुवनों में कीर्ति शेष रखें, जिससे पीछे

उरवावी भुवनत्रयीं । जेणें धन्य धन्य सर्वही । बहुकाळ मागें म्हणतील । ८ विवेकसद्बुद्धीच्या बळें । दुर्बुद्धि त्यजावी कुशळें । संतसंगतीं रसाळें । वचनें हृदयीं धरावीं । ९ कोणाचें हेळण न करावें । दुष्ट वचन न बोलावें । पराचे गुण जाणोनि बरवे । परोपकार करावा । १० ज्याची वर्तणूक देखोन । संतुष्ट होती ब्राह्मण । ते सदा चिंतिती कल्याण । तरीच धन्य संसारीं । ११ सर्वांभूतीं जगन्निवास । यास्तव न कीजे कवणाचा द्वेष । वर्मस्पर्शाचे शब्द सदोष । सहसा कोणा न बोलावे । १२ काम क्रोध मद मत्सर । हे शत्रु घालावे बाहेर । नाशिवंत जाणोनि शरीर । सारासार विचारिजे । १३ सकळ सत्कर्माचरण । करावें वेदाधारेंकरून । मी कर्ता हा अभिमान । सहसाही न धरावा । १४ जैसें जळावरी जलजपत्र । परी न भिजे अणुमात्र । तैसीं सत्कर्में करूनि सर्वत्र । न लिंपावें कोठेंही । १५ मनोजयकरणी करूनी । मति योजावी भगवद्भजनीं । जगदाभास मिथ्या मानोनी । आत्मस्वरूपीं

(परवर्ती) दीर्घ काल तक सभी धन्य-धन्य कहते रहें । ८ विवेक और सद्बुद्धि के बल पर चतुर मनुष्य दुर्बुद्धि का त्याग करें, (और) सन्त-संगति से प्राप्त मधुर (नीति-) वचन हृदय में धारण करें । ९ किसी का अपमान न करें; दुष्टता-पूर्ण बात न बोलें; दूसरे के (भले) गुणों को जानकर परोपकार करें । १० जिसका बर्ताव देखकर ब्राह्मण सन्तुष्ट हो जाते हों और (वे) सदा उसके कल्याण का चिन्तन करते हों, वही (व्यक्ति) जगत् में धन्य है । ११ समस्त भूतों में जगन्निवास, अर्थात् भगवान का निवास विद्यमान है, इसलिए किसी से द्वेष न करें । (उसी प्रकार) किसी से मर्म-स्पर्शी तथा दोष-युक्त शब्द कदापि न कहें । १२ काम, क्रोध, मद, मत्सर— इन (विकाररूपी) शत्रुओं को (मन के) बाहर भगा दें; (और) शरीर को नाशवान समझकर सार-असार (का) विचार करें । १३ वेदों के आधार से समस्त सत्कर्मों का आचरण करें । यह अभिमान कभी भी धारण न करें कि मैं कर्ता हूँ । १४ जिस प्रकार पानी पर कमल-पत्र होता है, परन्तु वह अणु भर तक उसमें नहीं भीगता, उसी प्रकार (संसार में रहते हुए भी) सर्वत्र सत्कर्म करते हुए कहीं भी (सांसारिक बातों से) लिप्त न हो जाएँ । १५ चित्त को एकाग्र करके (मन पर विजय प्राप्त करके) अपनी बुद्धि को भगवद्-भजन में लगाये रखें और जगत् को आभास, अतएव मिथ्या समझ

रमावें। १६ परधन आणि परदारा। तेथें चित्त न घालीं राक्षसेंद्रा। सद्भाव धरिंजे बरा। सद्गुरुवचनीं सर्वदा। १७ सत्समागमीं चित्त ठेवून। दूर त्यागावे दुर्जन। क्लेशकाळ आलिया पूर्ण। स्वधर्माचरण न सांडावें। १८ यथान्याय राज्य करीं। दुष्ट तितुके आधीं संहारी। मग सद्भजनीं अहोरात्रीं। तनू आपुली झिजवावी। १९ शम दम उपरती। दया क्षमा तितिक्षा शांती। ह्या जवळी रक्षाव्या नृपती। अहोरात्र प्रीतीनें। २० भक्ति वैराग्य ज्ञान। आनंद सद्विद्या समाधान। हीं जवळ रक्षावीं अनुदिन। आत्मप्राप्तीकारणें। २१ दैवें भाग्य विद्या होय अपार। त्याचा गर्व न धरावा अणुमात्र। अथवा कालांतरीं आलिया दरिद्र। परी धीर न सांडावा। २२ यालागीं दशमुखा अवधारीं। माझीं शब्दरत्नें हृदयीं धरीं। तरी अयोध्याप्रभूसीं मैत्री। सर्वभावें करावी। २३ श्रीराम केवळ गुणनिधान। दुजयाचे अपार दोषगुण। तत्काळ जाय विसरून। अंतःकरण शुद्ध सदा। २४ पराचे ऐकोनि सद्गुण। स्वयें वाखाणी रघुनंदन। एकबाण एकवचन। एकपत्नी-

---

कर ब्रह्म-स्वरूप में रम जाएँ। १६ हे राक्षसेन्द्र, परधन और पर-स्त्री में चित्त न लगाएँ। सद्गुरु के (उपदेश-) वचनों में नित्य सद्भाव धारण करें। १७ सत्संगति में मन को (लगाये) रखकर दुर्जनों को दूर ही छोड़ रखें। पूर्ण दुःख का समय आने पर (भी) अपने-अपने धर्म (कर्तव्य) के आचरण को न छोड़ें। १८ न्याय के अनुसार राज करें, (जितने) दुष्ट हों उतने सबका पहले संहार करें; फिर दिन-रात अपनी देह को सद्भजन में घिस दें— लगाये रहें। १९ हे नृपति, शम, दम, उपरति, दया, क्षमा, तितिक्षा (सहनशीलता), शान्ति— (इन प्रवृत्तियों) को दिन रात अपने पास प्रेम-पूर्वक सम्हाले रखें। २० आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के हेतु भक्ति, वैराग्य, ज्ञान, (आत्मिक) आनन्द, सद्विद्या और सन्तोष— (इन प्रवृत्तियों) को अपने पास प्रतिदिन सम्हालकर रखें। २१ सद्भाव से (यदि) अपार ऐश्वर्य और विद्या प्राप्त हो जाए, तो (भी) उसका अणु मात्र (तक) गर्व न धारण करें, अथवा कालान्तर में दरिद्रता आ जाए, तो भी धीरज न छोड़ दें। २२ इसलिए हे दशमुख, सुनो (मानो)। मेरे शब्दरूपी (ये) रत्न हृदय में धारण करो। अतः अयोध्या-प्रभु श्रीराम से सब विचार से मित्रता करो। २३ श्रीराम तो केवल गुण-निधान हैं। दूसरों के अपार दुर्गुणों को वे तत्काल भूल जाते हैं। उनका अन्तःकरण सदा शुद्ध है। २४

व्रती जो। २५ त्या रघुपतीसीं सख्य करूनी। अर्पीं आतां जनकनंदिनी। मग तूं अक्षयीं लंकाभुवनीं। चंद्रार्कवरी नांदें कां। २६ तूं जयाचा म्हणविसी भक्त। तो शिव रघुपतीसी ध्यात। त्यासीं वैर करितां यथार्थ। स्वामिद्रोही होसी तूं। २७ सनक सनंदन सनत्कुमार। मुख्य विरंचि आणि पुरंदर। हे रघुपतीचे आज्ञाधार। तरी तो मित्र करीं तूं। २८ जो वेदउदयाचळींचा दिनकर। जो महामायेचा निजवर। तो हा अयोध्यानाथ उदार। तरी तो मित्र करीं तूं। २९ जो सुनीळ चिद्धनगर्भ। जो अनंत ब्रह्मांडांचा आरंभ। गुणसागर सीतावल्लभ। तरी तो मित्र करीं तूं। ३० कमलोद्भव कमलाकार। कपालधर ज्याचे आज्ञाधार। तो हा जगद्वंद्य रघुवीर। तरी तो मित्र करीं तूं। ३१ वेद शास्त्र पुराण जाण। नारदादि गाती जयाचे गुण। तो हा दशशतमुखांगशयन। तरी तो मित्र करीं तूं। ३२ शतकोटी अपराध करून। तो जरी

रघुनन्दन श्रीराम, जो एक-बाण तथा एक-पत्नी-व्रती हैं, दूसरे के सद्गुणों को सुनकर स्वयं उनकी प्रशंसा करते हैं। २५ (इसलिए) अब उस रघुपति से मित्रता करके जनक-नन्दिनी सीता उन्हें समर्पित करोगे, तो फिर चन्द्र-सूर्य के रहने तक तुम लंका-भुवन में सुख-सुविधा के साथ अक्षय निवास कर पावोगे। २६ तुम (स्वयं) जिसके भक्त कहाते हो, वे शिवजी रघुपति श्रीराम का ध्यान किया करते हैं। उनसे वैर करने पर तुम स्वामी-द्रोही हो जाओगे। २७ सनक, सनन्दन, सनत्कुमार (जैसे ऋषिवर तथा देवों में) मुख्य ब्रह्मा और इन्द्र— ये (भी) रघुपति के आज्ञाकारी हैं। अतः तुम उन्हें मित्र बना लो। २८ जो वेदरूपी उदयाचल पर (उदित) सूर्य है, जो महामाया का अपना पति है, वह ये हैं उदार अयोध्यानाथ श्रीराम। अतः तुम उन्हें मित्र बना लो। २९ जो सुन्दर नील वर्ण (शरीरी) हैं तथा चिद्धन को गर्भ में धारण किये हुए हैं, जो अनन्त ब्रह्माण्डों का आरम्भ अर्थात् उत्पत्ति-स्थान है, वह हैं ये गुण-सागर सीता-वल्लभ श्रीराम। अतः तुम उन्हें मित्र बना लो। ३० कमलोद्भव ब्रह्मा, कमलापति विष्णु और कपालधारी शिवजी जिसके आज्ञाकारी हैं, वह है यह जगद्वंद्य रघुवीर श्रीराम। तुम उन्हें मित्र बना लो। ३१ जान लो, वेद, शास्त्र, पुराण (जैसे दिव्य ग्रन्थ) और नारद आदि (श्रेष्ठ भक्त) जिसके गुणों का (महिमा-)गान करते हैं, वह यह शेषशायी भगवान विष्णु (श्रीराम के रूप में अवतरित) है। इसलिए, तुम उन्हें मित्र बना लो। ३२ कोई सौ करोड़ अपराध करने पर भी यदि लौट कर शरण में

परतोन आला शरण । तरी तयावरी रघुनंदन । सर्वांहून प्रीति करी । ३३ भक्तिभावें अर्पितां तीळ । राम मानी जैसा कनकाचळ । जो भक्तांचा होऊन द्वारपाळ । अंतर्बाह्य रक्षीत पैं । ३४ तरी त्या द्विपंचरथनंदना । शरण जाईं द्विपंचवदना । जनकजा हे मम कन्या । भावूनि अर्पीं रघूत्तमा । ३५ दशकंठा तूं परम सज्ञान । टाकिलीं वेदांचीं खंडें करून । तरी पद्मिणी-पतिकुळभूषण । सखा करीं सर्वस्वें । ३६ ऐसीं अंगदाचीं वचनें । जीं विवेकभूमीचीं निधानें । कीं भक्तिसागरींचीं रत्नें । दश-कंठासी समर्पिलीं । ३७ यावरी तो दशकंठधर । परम दुर्बुद्धि अविचार । घृतें शिंपिजे वैश्वानर । तैसा क्षोभला ते काळीं । ३८ साधूचें वर्म लक्षून । छळिती जेवीं दुर्जन । तैसा अंगदाप्रती रावण । बोलता झाला ते काळीं । ३९ म्हणे रे मर्कटा अविचारा । कोणाचा तूं पालेखाइरा । मज रावणासीं पामरा । शिष्टाई करूं आलासी । ४० मशका अग्नीपुढें

आ जाए, तो भी रघुनन्दन उससे सबसे अधिक प्रेम करते हैं। ३३ भक्तिभाव से (किसी के द्वारा) तिल (तक) समर्पित करने पर भी श्रीराम उसे स्वर्ण पर्वत जैसा मानते हैं । वे भक्तों के द्वारपाल होकर उनकी अन्तर्बाह्य रक्षा करते हैं । ३४ इसलिए, हे द्विपंचवदन (दशमुख रावण), तुम द्विपंच-रथ (दशरथ)नन्दन श्रीराम की शरण में जाओ और इस सीता को अपनी कन्या समझकर उसे रघूत्तम को समर्पित कर दो । ३५ हे दशकण्ठ, तुम परमज्ञानी हो। तुमने वेदों को विशिष्ट खण्डों में विभक्त कर डाला है। (अतः)पद्मिनी-पति (= सूर्य)-कुल-भूषण श्रीराम को सब कुछ देकर मित्र बना लो । ' ३६

जो (मानो) विवेक-भूमि के (अन्दर से निकले हुए) धन-भण्डार ही हों, अथवा जो भक्ति-सागर से उत्पन्न रत्न ही हों, इस प्रकार के वे अंगद द्वारा कहे हुए (बोध-) वचन रावण को समर्पित हो गये । ३७ इसपर परम दुर्बुद्धि और अविवेक से युक्त वह रावण उस समय वैसे ही क्षुब्ध हो उठा, जैसे अग्नि में घी सींच डाला हो (तो वह जैसे प्रज्वलित हो जाती है) । ३८ साधु के मर्म-स्थान को लक्ष्य कर दुर्जन उसे जिस प्रकार कष्ट पहुँचाते हैं, उस प्रकार (दुर्जन) रावण अंगद के प्रति उस समय यों मर्म-भेदी (वचन) बोला । ३९ उसने कहा— ' रे अविवेकी मर्कट, रे पत्ते-खवैया (पेड़ के पत्तों को खानेवाले), रे पामर ! तू किसका (कौन या दूत) है जो मुझ रावण से मध्यस्थता करने आया है । ४० हे मच्छड़ ! (मानो) अग्नि के सामने घास (की पत्ती) हो अथवा

तृण। कीं शिवापुढें पंचबाण। कीं मृगेंद्रासी गुण। जंबुक शिकवूं पातला। ४१ मर्कटा तुझा पिता कोण। तो सांगें मजलागून! यावरी ताराहृदयरत्न। प्रतिवचन देतसे। ४२ माझा पिता आहे कोण। तो तूं नेणसी दुर्जना अजून। जेणें कक्षेंत तुज दाटून। केलें स्नान चतु:समुद्रीं। ४३ मग माझे पालखावरी देख। तुज बांधिला जैसा मशक। तुझ्या दाढचा मिशा सकळिक। म्यांच उपडिल्या बाळपणीं। ४४ माझ्या मूत्रोदकेंकरून। मशका तुझें कंटाळलें मन। मग तुझा पिता येऊन। भिक्षा मागे वाळीसी। ४५ तुझे मुखांसी मसी लावून। शिरीं पांच पाट काढून। लंकेंत दिधला तुज भिरकावून। पायीं धरून ते काळीं। ४६ ऐसा शक्रसुत महाबळी। तूं गुंतलासी ज्याचे कक्षेतळीं। तयाचा मी सुत ये काळीं। शिक्षा तुज करूं आलों। ४७ आतां पुससी कवणाचा दूत। अयोध्यापती जो रघुनाथ। तुझ्या उरावरील चाप अद्भुत। जेणें उचलोनि मोडिलें। ४८ जेणें ताटिका मर्दून। वीस कोटी

शिवजी के सामने कामदेव हो, अथवा सिंह को गुणों की शिक्षा देने के हेतु सियार आ पहुँचा हो। ४१ रे मर्कट, मुझसे कह दे, तेरा बाप कौन है।' इसपर तारा के हृदय में स्थित रत्न अर्थात् तारा के पुत्र अंगद ने प्रत्युत्तर दिया। ४२ 'रे दुर्जन, मेरा कौन पिता है? उसे (क्या) तू अब भी नहीं जानता है, जिसने तुझे बगल में दबाये हुए (रखकर) चारों समुद्रों में स्नान किया। ४३ देख, फिर उसने तुझे मच्छड़ जैसा (मेरे) पालने पर बाँध दिया था और मैंने ही बचपन में तेरी समस्त दाढ़ियों और मूँछों को उखाड़ डाला था। ४४ रे मच्छड़, मेरे मूत्र-जल से तेरा मन ऊब गया था; तब तेरे पिता ने (मेरे पिता) बाली से (तुझे) भिक्षा के रूप में माँग लिया था। ४५ (तदनन्तर) तेरे मुखों में कालिख पोतकर और सिरों में पाँच-पाँच (स्थलों में हजामत करते हुए) पटिया बनाकर उसने तुझे पाँवों से पकड़ते हुए उस समय लंका में फेंक डाला था। ४६ (मेरा पिता) इन्द्र-सुत बाली इस प्रकार महाबली है। तू जिसकी बगल में फँस गया था, उसका पुत्र मैं इस समय तुझे दण्ड देने के लिए आया हूँ। ४७ अब तू पूछता है— मैं किसका दूत हूँ। जो रघुनाथ श्रीराम अयोध्या के स्वामी हैं, जिन्होंने मेरी छाती पर से अद्भुत (प्रचंड) चाप को उठाकर तोड़ डाला था। ४८ जिन्होंने ताड़का का मर्दन कर डाला और उन बीस करोड़ राक्षसों के साथ ही सुबाहु को

पिशिताशन । त्यांसहित सुबाहू मारून । मारीच उडविला बाणवातें । ४९ तुझी भगिनी शूर्पणखा । जेणें केली निर्नासिका । तो सौमित्राग्रज स्मरारिसखा । त्याचा दूत मी असें । ५० वधोनियां खर दूषण । निष्कंटक केलें जनस्थान । त्या राम-पंचाननाची वस्तु चोरून । घेऊन आलासी जंबुका । ५१ होम-शाळेंत रिघोन श्वान । पळे पुरोडाश घेऊन । कीं देवगृहांत मलिन । हिंसक जैसा संचरे । ५२ कीं गृहीं नसतां मुख्य धनी । तस्कर रिघे कोशसदनीं । तैसी जानकी उचलोनी । आलासि घेऊन पतिता । ५३ त्या तुज चोराचा काढीत माग । सुवेळेसी आला सीतारंग । तुझे आयुष्याची भरली सीग । हें तूं नेणसी शतमूर्खा । ५४ पुच्छीं पाय पडतां देख । खवळे जैसा दंदशूक । तैसा प्रतिउत्तर दशमुख । अंगदासी देतसे । ५५ म्हणे रे मर्कटा मी दशवदन । वानरासहित रामलक्ष्मण । क्षणें टाक-

---

मार डाला और (जिन्होंने) बाण (के झपट्टे से उत्पन्न)-वायु (के झोंके) से मारीच को उड़ा दिया, (उन श्रीराम का मैं दूत हूँ) । ४९ जिसने तेरी बहन शूर्पणखा को नाक-हीन कर डाला, उस सुमित्रा-सुत के वे अग्रज तथा स्मरारि शिवजी के मित्र हैं । उनका मैं दूत हूँ । ५० जिन्होंने खरदूषण का वध करके (पंचवटी के निकटवर्ती) जन-स्थान को खल जन रूपी कण्टकों से हीन अर्थात् मुक्त कर दिया, उन श्रीरामरूपी सिंह की वस्तु, रे सियार, तू चुराकर (यहाँ) ले आया है । ५१ जिस प्रकार यज्ञ-शाला में पैठकर कुत्ता पुरोडाश (हवनीय द्रव्य) लेकर भाग जाता हो (उस प्रकार पवित्र पंचवटी-आश्रम में तूने प्रवेश कर सीता का अपहरण किया है) अथवा जिस प्रकार देव-(प्रतिमाओं के) गृह में हिंसक घूमता हो, (उसी प्रकार तू जनस्थान में घूमता था) अथवा मुख्य स्वामी के घर में न होने पर जिस प्रकार कोई चोर धन-भण्डार गृह में प्रवेश करे (और धन चुरा-कर भाग जाए) उसी प्रकार, हे पतित (श्रीराम और लक्ष्मण की अनुपस्थिति में पंचवटी में प्रवेश कर) जानकी को उठाकर, तू (यहाँ) ले आया है । ५२-५३ तुझ जैसे उस चोर की खोज करते हुए सीता-पति श्रीराम सुवेल आये हैं । रे शत-मूर्ख, तू इसे नहीं जानता कि तेरी आयु की अवधि समाप्त हो गयी है । ' ५४ देखिए, पूँछ पर पाँव पड़ते ही जिस प्रकार साँप प्रक्षुब्ध हो जाता है, उस प्रकार (अंगद के वचनों से आहत होते ही झल्लाकर) रावण ने अंगद को प्रति-उत्तर दिया । ५५ वह बोला— ' रे मर्कट, मैं दशवदन कुम्भकर्ण से कहकर (उसके द्वारा) वानरों सहित राम-लक्ष्मण को क्षण में निगलवा डालूँगा । ५६ मैंने देवों सहित

वीन गिळोन । कुंभकर्णातें सांगोनियां । ५६ सुरांसहित सहस्र-नयन । बंदीं घातला आकळून । तेथें काय मानव रामलक्ष्मण । जीतेचि आणीन धरूनी । ५७ गरुडें सर्पमस्तकींचा मणि । नेला तो जरी देईल आणोनी । तरी तुम्हांस जनकनंदिनी । प्राप्त होईल माघारी । ५८ गजमस्तक विदारून । मुक्तें घेऊन गेला पंचानन । तो भिऊन देईल जरी परतोन । तरी जानकी देईन मी । ५९ अरे इंद्र माळा गुंफोन । नित्य देई मजलागून । छत्र धरी रोहिणीरमण । सहस्रकिरण दीपिका धरी । ६० रसनायक वाहे पाणी । वस्त्रें धूत सदा अग्नी । गृहींचा केर काढूनी । लोकप्राणेश टाकीतसे । ६१ ऐसा मी समर्थ दशवक्र । तेथें कायसे नरवानर । मागें एक पालेखाइर । चोरून लंकेंत आला होता । ६२ तेणें उपडितां अशोकवन । आम्हीं सभेसी आणिलें धरून । पुच्छास लावतां अग्न । नगर जाळूनी पळाला । ६३ तो पुन्हां भेटेल जरी वानर । तरी तत्काळचि करीन चूर । मग म्हणे वाळिपुत्र । ऐक मशका राक्षसा । ६४ तुझें असंख्य दळ

इंद्र को बाँधकर बन्दी-गृह में डाल दिया, तो वहाँ मानव राम-लक्ष्मण की क्या बात ? उनको तो जीवित ही पकड़कर लाऊँगा । ५७ (मान ले,) गरुड़ सर्प के मस्तक की मणि ले गया हो और यदि वह लाकर (फिर से उसे) दे, तो ही तुम्हें सीता फिर से प्राप्त होगी । ५८ (मान ले,) हाथी के मस्तक को विदीर्ण करके सिंह मोती ले गया हो और यदि डरकर वह उन्हें लौटा दे, तो ही मैं जानकी को (लौटा) दूँगा । (जिस प्रकार ये दोनों बातें असम्भव हैं, उस प्रकार मेरे द्वारा जानकी को लौटाना असम्भव है) । ५९ अरे (जानता है ?) इंद्र मालाएँ गूँथकर नित्य मुझे प्रदान करता है; रोहिणी-पति चन्द्र (मेरे ऊपर) छत्र धरे हुए रहता है; और सूर्य दीपिकाएँ लिये हुए रहता है । ६० रस-नायक वरुण पानी भरता है, अग्निदेव सदा वस्त्र धोता है, (तो) लोक-प्राणेश वायु (-देव) घर का कूड़ा-करकट साफ कर देता है । ६१ (जब कि) मैं दशमुख इस प्रकार समर्थ हूँ, तो वहाँ (मेरी तुलना में) नर-वानर कैसे (कौन) हैं । पहले (एक समय) एक पत्ते-खवैया चोरी-छिपे लंका में आया था । ६२ (उसके द्वारा) अशोक वन को उखाड़ते ही उसे पकड़ कर हम सभा में ले आये, तो पूँछ में आग लगाने पर वह (लंका-) नगर को जलाकर भाग गया । ६३ यदि वह वानर फिर से मिल जाए, तो उसे तत्काल चूर-चूर कर डालूँगा ।' तब अंगद बोला— ' रे मच्छड़,

संहारून। टाकिले सात पुत्र मारून। इंद्रजित विवरीं कोंडून। अशोकवन विध्वंसिलें। ६५ तैं तुझें बळ रावणा। कोठें गेलें होतें खळा मलिना। तुज शिक्षा करावया दुर्जना। पुनः मारुती आला आहे। ६६ त्रिभुवनपति सीतावल्लभ। जो त्रैलोक्य-नगरारंभ-स्तंभ। त्यास मनुष्य म्हणसी तूं रासभ। दशमुखा यथार्थ तूं। ६७ इतर ओहळ आणि भागीरथी। वरकड गज आणि ऐरावती। उच्चैःश्रवा जो सूर्यरथीं। इतर अश्वांसमान नोहे। ६८ खद्योत आणि चंडकिरण किंवा काग आणि सुपर्ण। तैसा वानर आणि वायुनंदन। नव्हती समान राक्षसा। ६९ परिस आणि इतर पाषाण। वरकड पशू आणि शिववहन। भगणें आणि रोहिणीरमण। नव्हे समान राक्षसा। ७० इतर पर्वत आणि कनकाचळ। इतर किरडें आणि फणिपाळ। तैसा मनुष्या समान तमालनीळ। अपवित्रा तूं केवीं म्हणसी। ७१ तूं दशमुखांचा बस्त होसी। शिववरें मातलासी। सीतादेवी

रे राक्षस, सुन ले। ६४ (उसी वानर ने) तेरे अनगिनत सैनिकों के दल का संहार करके तेरे सात पुत्रों को मार डाला (फिर) इंद्रजित को विवर में बंद करके अशोक वन का विध्वंस कर डाला। ६५ रे रावण, खल, मलिन (पापी), तब तेरा बल कहाँ गया था? रे दुर्जन, तुझे दण्ड देने के लिए (वह) हनुमान फिर से आया है। ६६ जो तीनों भुवनों के स्वामी हैं, जो तीनों लोक-रूपी नगर के आधार-भूत मूल-स्तम्भ हैं; उन सीता-पति श्रीराम को तू मनुष्य कहता है। सचमुच तू दशमुखोंवाला गधा ही है। ६७ अन्य प्रवाह और गंगा (का प्रवाह) समान नहीं हैं; अन्य हाथी और (इंद्र का) ऐरावत समान नहीं हैं। जो उच्चैःश्रवा (नामक घोड़ा) सूर्य के रथ में (जुता हुआ) है, वह अन्य घोड़ों के समान नहीं है। ६८ जिस प्रकार जुगनू और सूर्य, अथवा कौआ और गरुड़ समान नहीं हैं, उस प्रकार, रे राक्षस, (साधारण) वानर और वायुनन्दन (हनुमान नामक) वानर समान नहीं हैं। ६९ रे राक्षस, पारस और अन्य पाषाण, अन्य (साधारण) पशु और (शिवजी का वाहन) नन्दी, (अथवा) तारे और रोहिणी-पति चन्द्र समान नहीं हैं। ७० इतर पर्वत और कनकाद्रि (मेरु), अन्य छोटे साँप और फणीन्द्र शेष जिस प्रकार समान नहीं हैं, उसी प्रकार, सामान्य मनुष्य और श्रीराम-लक्ष्मण समान नहीं हैं। रे अपवित्र (पापी), तू तमाल-नील श्रीराम को मनुष्य के समान कैसे कहते हो। ७१ तू (तो) दशमुखों वाला बकरा है। शिवजी से प्राप्त वर

निश्चयेंसीं। आदिमाया भवानी। ७२ रणमंडळ हें होमकुंड। राक्षस आहुती पडतील उदंड। शेवटीं पूर्णाहुती प्रचंड। तुझी पडेल दशमुखा। ७३ तुवां केलें वेदाध्ययन। जैसा रासभावरी वाहिला चंदन। कीं षड्रसांमाजी नेऊन। दर्वी जेवीं फिरविजे। ७४ तूं दशमुखांचें वनचर। तुज वधावया पारधी रघुवीर। सुवेळाचळीं समरधीर। येऊन उभा ठाकला। ७५ अंगदशब्द परम कठीण। हृदयीं खोंचती जैसे बाण। परम क्रोधें रावण। वाळिनंदनाप्रती बोले। ७६ म्हणे रे मर्कटा वनचरा। तूं भूभार झालासि पामरा। तुझा पिता मारूनि तारा। सुग्रीवासी दीधली। ७७ पितृसूड न घेववे तुझेनी। तरी प्राण देईं समुद्रजीवनीं। अथवा माझे पाठीसी येऊनी। रिघें वेगीं मशका रे। ७८ वधोनि सुग्रीव रघुनंदन। तुज किष्किंधेचें राज्य देईन। तुझी माता व्यभिचारीण। सुग्रीवासी तिनें वरिलें। ७९

के बल पर तू उन्मत्त हुआ है। (तू भूल गया है कि) सीतादेवी निश्चय ही आदिमाया भवानी है। ७२ यह युद्धभूमि-मण्डल (मानो) होम-कुण्ड है, (जिसमें) अनगिनत राक्षस आहुति के रूप में पड़ जाएँगे और रे दशमुख, अन्त में तेरी प्रचण्ड आहुति पड़ जाएगी। ७३ तूने वेद का अध्ययन किया है; (फिर भी) यह तो वैसे ही हुआ, जैसे गधे पर चन्दन समर्पित किया हो, अथवा कलछी लेकर छहों रसों (से युक्त खाद्य पदार्थों) में घुमा दी हो, (अर्थात् चन्दन का गधे पर अथवा रसों का कलछी पर कोई प्रभाव नहीं हो जाता, उसी प्रकार वेदाध्ययन का तुझ पर कोई प्रभाव या संस्कार नहीं हुआ)। ७४ तू (तो) दस मुखों वाला कोई वन्य पशु है; तेरा वध करने के लिए रण-धीर रघुवीर के रूप में कोई बहेलिया सुवेल पर्वत पर आकर खड़ा हो चुका है।' ७५

अंगद के ये शब्द परम कठोर (तीक्ष्ण) थे, जो (रावण के) हृदय में बाण जैसे चुभ गये। तो रावण अत्यधिक क्रोध से उस वालीनन्दन से बोला। ७६ उसने कहा— 'रे वनचर मर्कट, रे पामर, तू तो भूमि के लिए भार हो गया है। (राम ने) तेरे पिता को मार डालकर (तेरी माता) तारा सुग्रीव को दे दी। ७७ यदि तुझसे पिता (के वध) का बदला नहीं लिया जा रहा हो, तो समुद्र के जल में (डूबकर) प्राण (-त्याग कर) दो। अथवा रे मशक, मेरी पीठ पीछे, अर्थात् मेरे पीछे (आश्रित के रूप में) आकर झट से निकल जा। ७८ मैं सुग्रीव और श्रीराम का वध करके, तुझे किष्किन्धा का राज दूँगा। तेरी माँ व्यभिचारिणी है, उसने

सुग्रीव आणि रघुवीर। तुझे मुख्य शत्रु साचार। अंगद म्हणे शक्रकुमर। रामबाणें मुक्त जाहला। ८० राघवप्रसादेंकरूनी। वाळी अक्षय सायुज्यसदनीं। दशमुखा तुज ये क्षणीं। शिक्षा करीन पाहें पां। ८१ माझिया पाणिप्रहारेंकरूनी। दशमुखें तुझीं टाकीन फोडूनी। तुझा पुरुषार्थ त्रिभुवनीं। सर्व जाणतों अपवित्रा। ८२ सहस्रार्जुनाचे बंदीं जाऊन। पडला होतासी तूं कित्येक दिन। तो तूं आजि येथें वदन। दाखवितां न लाजसी। ८३ मग बळीचे गृहा जाऊन देखा। बंदीं पडिलासी तूं मशका। तेथें तुज दासी झेलिती कीटका। कक्षेसी दाटिती घडी घडी। ८४ ऐसा पुरुषार्थी तूं देख। न लाजसी दाखवितां मुख। तुझे छेदावया दहाही मस्तक। रघुवीर सिद्ध जाहलासे। ८५ ऐसें ऐकोनि दशकंधर। द्विजपंक्तीनें चावी अधर। सवेग ओढिलें शस्त्र। विद्युत्प्राय ते काळीं। ८६ सेवकांसी म्हणे दशकंठ। धरा रे वेगीं मर्कट। तों चौघे राक्षस बळकट। धांवोनियां धरिते जाहले। ८७ अंगद दंडीं दृढ

सुग्रीव का वरण (जो) किया है। ७९ सुग्रीव और श्रीराम सचमुच तेरे मुख्य शत्रु हैं।' (यह सुनकर) अंगद ने कहा— 'इंद्र-सुत बाली राम के बाण से (मृत्यु को प्राप्त होते हुए) मुक्त हो गया। ८० श्रीराम की कृपा से बाली अक्षय सायुज्य मुक्ति (के सदन) में विराजमान है। रे दशमुख, देख तो, मैं तुझे इस क्षण दण्ड दूँगा। ८१ अपने हाथ के प्रहार से तेरे दसों मुखों को मैं तोड़ डालूँगा। रे अपवित्र, मैं त्रिभुवन में तेरे समस्त पुरुषार्थ को जानता हूँ। ८२ तू सहस्रार्जुन की बन्दीशाला में जाकर अनेकानेक दिन पड़ा था; वही तू आज यहाँ अपना मुँह दिखाते हुए नहीं लजाता। ८३ फिर रे मच्छड़, देख, बली के घर जाने पर तू बन्दी-गृह में पड़ गया। रे कीटक, वहाँ तुझे दासियाँ (उछालते हुए) पकड़तीं थीं और घड़ी-घड़ी बगल में दबा लेती थीं। ८४ देख ले, ऐसा पुरुषार्थी तू मुँह दिखाते नहीं लजाता। तेरे दसों मस्तकों को छेद डालने के लिए सिद्ध हो गया है।' ८५

इस प्रकार (की बातें) सुनकर रावण दाँतों (की पंक्तियों में होंठों) को चबाने लगा और उसने उस समय झट से बिजली-सा (चमकता हुआ) शस्त्र खींच लिया। ८६ फिर रावण ने सेवकों से कहा— 'अरे, इस बन्दर को झट से पकड़ लो; तो चार हट्टे-कट्टे राक्षसों ने दौड़ते हुए (आकर) उसे पकड़ लिया। ८७ उन्होंने अंगद को बाहु में दृढ़ता-पूर्वक

धरिला। वाळिपुत्रें देखोनि ते वेळां। अद्‌भुत पराक्रम प्रकट केला। क्षणमात्र न लागतां। ८८ कृतांतकिंकाळीसमान। हांकेसरसें गाजवी गगन। रावणाचे हृदयीं पूर्ण। पुच्छघाय दीधला। ८९ रावणमस्तकींचा मुकुट तेजाळ। पदांगुष्ठें उडविला तत्काळ। ऊर्ध्व उडाला सबळ। मंडप मस्तकीं बैसला। ९० चौदा गांवें जो विस्तीर्ण। प्रभेस उणा चंडकिरण। तो घेऊन वाळिनंदन। गेला क्षण न लागतां। ९१ भुजीं जडले चौघे जण। त्यांचे अंतराळीं गेले प्राण। लोंबती प्रेतें होऊन। वाळिनंदन जातसे। ९२ आला देखोनि वाळिसुत। आश्चर्य करी जनकजामात। अंगद उतरला अकस्मात। कपिनाथ हर्षले। ९३ दंडींचीं प्रेतें सोडवूनी। मंडप तेव्हां ठेविला धरणीं। त्रिभुवनपतीचे चरणीं। मस्तक अंगदें ठेविलें। ९४ प्रीतीनें येऊनि मिलिंद। सेवी पद्मकोशींचा सुगंध। तैसाच वीर अंगद। रघुवीरपदाब्जीं मीनला। ९५ मग तो जगदानंदकंद। आलिंगी हृदयीं प्रेमें अंगद। सकळ कपींसी आनंद।

पकड़ लिया, तो उस बाली-पुत्र ने यह देखकर उस समय क्षण तक न लगते अद्‌भुत पराक्रम प्रदर्शित किया। ८८ कृतान्त के चीत्कार-सी अपनी ध्वनि से साथ ही उसने आकाश को निनादित कर दिया। उसने रावण के हृदय (-स्थल) पर पूँछ से आघात कर दिया। ८९ (फिर) उसने तत्काल अपने पाँव के अँगूठे से रावण के सिर पर से तेजस्वी मुकुट को उड़ा दिया। (तब) वह बलवान वानर ऊपर उछलकर मण्डप पर बैठ गया। ९० जो चौदह योजन विशाल था और जिसके सामने तेज में सूर्य कम (अर्थात् फीका) पड़ता था, उस (मण्डप) को लेकर बाली-नन्दन क्षण न लगते (वहाँ से) निकल गया। ९१ उसके बाहु में चार जने चिपटे थे; अन्तरिक्ष में उनके प्राण चले गये और वे शव होकर लटक रहे थे। इस प्रकार बाली-नन्दन आकाशमार्ग से जा रहा था। ९२ यह देखकर कि अंगद आ गया है, श्रीराम ने आश्चर्य अनुभव किया। (त्यों ही) अंगद सहस उतर गया, तो कपिनाथ सुग्रीव आनन्दित हो गया। ९३ बाहु से शवों को छुड़ाकर अंगद ने तब मण्डप को धरती पर रख दिया और त्रिभुवन-पति श्रीराम के चरणों में मस्तक रख दिया। ९४ भ्रमर जिस प्रकार प्रेम-पूर्वक आते हुए कमल-कोश में सुगन्ध का सेवन करता है, उसी प्रकार वीर अंगद श्रीराम के चरण-कमलों में दृढ़ता से मिल गया (तद्रूप-सा हो गया)। ९५ तब उस जगत् के आनन्द-कन्द श्रीराम ने अंगद को

वाळिपुत्रासी भेटतां । ९६ रावणाचा मुकुट ते वेळां । अंगदें रामापुढें ठेविला । तो बिभीषणाचे मस्तकीं घातला । दशरथात्मजें ते वेळीं । ९७ अंगदास म्हणे रघुनंदन । मंडप येथें आणिला उचलोन । पुढें कोठें बैसेल बिभीषण । सिंहासन घालूनियां । ९८ ऐसें वाळिसुतें ऐकोनी । मंडप उचलिला ते क्षणीं । शेष मस्तकीं धरी अवनी । तैसा घेऊन जातसे । ९९ जेथींचा तेथें मंडप ठेविला । सुवेळेसी परतोन आला । राक्षससमुदाय ते वेळां । आश्चर्य परम मानीत । १०० केवढा पुरुषार्थ करूनी । राक्षसेंद्रासी गांजोनी । मंडप गेला घेऊनी । सवेंच आणून ठेविला । १ असो राघवापुढें वाळिनंदन । सांगे लंकेचें वर्तमान । नानापरी बोधिला रावण । परी तो नायके दुष्टात्मा । २ गिरिमस्तकीं वर्षे जलधर । परी तेथें न राहे अणुमात्र नीर । तैसा बोधिला दशकंधर । स्थिर नोहे बोध तेथें । ३ नित्य दुग्धें न्हाणिला वायस । परी तो कदा न होय राजहंस ।

प्रेम से हृदय से लगा लिया। समस्त कपियों को (भी) अंगद से मिलने पर आनन्द हो गया । ९६ उस समय अंगद ने रावण का मुकुट दशरथात्मज राम के सामने रखा, तो उन्होंने वह विभीषण के मस्तक पर रख दिया । ९७ (तदनन्तर) रघुनन्दन ने अंगद से कहा— 'तुम मण्डप को उठाकर यहाँ लाये तो हो, फिर आगे विभीषण सिंहासन लगाकर कहाँ बैठेगा ?' ९८ बाली-पुत्र ने ऐसी बात को सुनकर तत्क्षण मण्डप को उठा लिया और जिस प्रकार शेष धरती को मस्तक पर धरता है, उस प्रकार (मण्डप को रखकर) वह चल पड़ा । ९९ (फिर) उसने मण्डप को जहाँ का तहाँ रख दिया और वह सुवेल लौट आया । उस समय राक्षस समुदाय ने (इसपर) बहुत आश्चर्य अनुभव किया कि कैसा (बड़ा) पुरुषार्थ (प्रदर्शित) करके राक्षसेन्द्र रावण को सताकर वह मण्डप को ले गया था और साथ ही लाकर रख (भी) दिया । १००-१०१

अस्तु । बाली-नन्दन ने श्रीराम के सामने (सबसे) लंका का समाचार कहा— '(मैंने) अनेक प्रकार से रावण को उपदेश दिया, फिर भी वह दुष्टात्मा (कुछ भी) नहीं समझ पाया । १०२ पर्वत-शिखर पर बादल बरसता है, परन्तु वहाँ अणु-भर (तक) पानी नहीं (शेष) रहता, उस प्रकार मैंने दशानन को उपदेश तो दिया, परन्तु (मेरा) उपदेश वहाँ (उसके मन में) स्थिर नहीं हो सका । ३ कौए को नित्य दूध में नहला दिया, तो भी वह कभी राजहंस (के समान शुभ्र-वर्ण) नहीं हो सकता ।

दह्यांमाजी कोळसा बहुवस। घालितां उजळ नव्हेचि। ४ सिकता शिजविली बहु काळ। परी ते कदा नव्हे मवाळ। कीं परीस नेऊन तत्काळ। खापरासी व्यर्थ लाविला। ५ जन्मांधापुढें दीप जाणा। कीं बधिरापुढें वाजविला रुद्रवीणा। सारासार समजेना। शतमूर्खा जैसा कां। ६ कीं शर्करेमाजी नेऊन। कडू दुधिया ठेविला बहु दिन। परी त्याचें अंतर पूर्ण। गोड नव्हे अणुमात्र। ७ षोडशोपचारें पूजिलें प्रेत। परी तें गेलें जैसें व्यर्थ। तैसा बोधिला लंकानाथ। परी तो नायके सर्वथा। ८ जोंवरी शशी चंडकिरण। तोंवरी केला राजा बिभीषण। एकवचनी तूं सीतारमण। तुझें वचन व्यर्थ नव्हे। ९ युद्ध केलियावांचोनी। कदा नेदी जनकनंदिनी। राघवेंद्रें ऐसें ऐकोनी। चंड दोर्दंड पीटिले। ११० जैसा रजनीअंतीं वासरमणी। अकस्मात पूर्वेस देखिजे जनीं। तैसी कोदंडाची

दही में कोयला बहुत (समय डाल) रखने पर भी वह उजला नहीं हो पाता। ४ बालू को बहुत समय तक पकाने के लिए उबाल लिया, फिर भी वह कभी भी मृदु नहीं होती। अथवा पारस ले जाकर तत्काल खप्पर को व्यर्थ ही लगा दिया; (इससे खप्पर सोना नहीं बनता)। ५ जान लो कि जन्मान्ध के सामने दीप जलाया हो, अथवा बहरे के सम्मुख रुद्र-वीणा को बजाया हो, अथवा जिस प्रकार (सार-असार बात) शतमूर्ख की समझ में नहीं आती, उसी प्रकार मेरा उपदेश रावण की समझ में नहीं आया। ६ अथवा कड़वी लौकी ले जाकर शक्कर में बहुत दिन रख दी हो, फिर भी उसके अन्दर का पूरा भाग अणु-मात्र तक मीठा नहीं हो जाता। ७ (अथवा) प्रेत का सोलह उपचारों * से पूजन किया हो, तो भी वह व्यर्थ हो जाता है, उस प्रकार मैंने लंकानाथ को उपदेश दिया, परन्तु उसने उसे पूर्णतः नहीं सुना— अर्थात् नहीं स्वीकार किया। ८ आपने विभीषण को तब तक राजा बना दिया है, जब तक चन्द्र और सूर्य रहेंगे। हे सीतारमण, आप एक-वचनी हैं, आपका वचन व्यर्थ नहीं हो सकता। ९ बिना युद्ध किये रावण जनक-नन्दिनी को कभी नहीं लौटाएगा।' इस प्रकार (की बात) सुनकर श्रीराम ने अपने फड़कते हुए बड़े-बड़े भुज-दण्डों को ठोंक दिया— अर्थात् ताल ठोंक दिया। ११० जिस प्रकार रात के अन्त में लोग पूर्व दिशा में अकस्मात सूर्य को देखते हैं,

* टिप्पणी : सोलह उपचार— आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा, प्रदक्षिणा और मंत्र-पुष्प।

गवसणी । नरवीरोत्तमें काढिली । ११ कीं ते मेघांतूनि वेगळी । प्रळयचपळा निवडिली । तैसी गवसणी काढितां प्रभा पडली । कोदंडाची अकस्मात । १२ क्षण न लागतां चढविला गुण । उभा ठाकला सीतारमण । ओढी ओढितां आकर्ण । थरारलीं सप्त द्वीपें । १३ काळाचे मनीं बैसे दचक । तैसी सुग्रीवें दिधली हांक । अठरा पद्में वानर देख । गर्जना करीत उठले पैं । १४ बाहात्तर कोटी रीस । हांकेसरिसे भरिती आकाश । पृथ्वी डळमळितां नागेश । ग्रीवा खालीं सरसावी । १५ दिग्गजांचीं बैसलीं टाळीं । कूर्मपृष्ठी तेव्हां थरारिली । यज्ञवराह पृथ्वीतळीं । सांवरीत दंतानें । १६ एकदांचि कपींचे भुभु:कार । ऐकतां दचकले निर्जर । धुळीनें दिशा दाटल्या समग्र । मेरु-मान्दार कांपती । १७ वीस कोटी वानर घेऊन । लंकेवरी धांवला सुषेण । जेवीं वारणचक्रावरी पंचानन । गर्जत धांवे नि:शंक । १८

उस प्रकार (उस स्थान पर उपस्थित वानर आदि ने अप्रत्याशित रूप में देखा कि) नरवीरोत्तम श्रीराम ने अपने धनुष का आवरण (खोल) निकाल लिया । ११ अथवा (मानो) मेघ में से प्रलय-विद्युत् अलग चुन ली हो, उसी प्रकार आवरण को निकालते ही सहसा धनुष की कान्ति फैल गयी । १२ राम ने क्षण न लगते ही डोरी चढ़ा दी; वे खड़े हो गये और डोरी को कान तक खींचते ही (मानो) सातों द्वीप * थर्रा उठे । १३ (तब) सुग्रीव ने ऐसा गर्जन किया, (जिसे सुनकर) मानो काल देवता (तक) के मन में भय छा जाए । देखिए (इसके साथ ही) अठारह पद्म वानर (भी) गर्जन करते हुए उठ (कर खड़े हो) गये । १४ बहत्तर करोड़ रीछों ने चीत्कार से आकाश को भर डाला, तो पृथ्वी के डोलने लगते ही (उसके) नीचे नागेश शेष ने ग्रीवा को ठीक से सीधा किया । १५ दिग्गजों के कानों के परदे फट गये । तब (पृथ्वी के आधार-भूत) कछुए की पीठ थर्रा उठी । पृथ्वी के (नीचे) तल में यज्ञ-वराह ने उसे दाँत पर ठीक से सम्हाल लिया । १६ (सब) कपियों का (किया हुआ) अपूर्व भुभु:कार सुनते ही देव चौंक उठे । समस्त दिशाएँ धूली से पूरी-पूरी भर गयीं । मेरु-मन्दर (तक) काँप उठे । १७ बीस करोड़ वानरों को लिये हुए सुषेण लंका पर आक्रमण करने के हेतु उस प्रकार दौड़ा, जिस प्रकार हाथियों के समूह पर सिंह नि:शंक होकर गर्जन करते हुए आक्रमण करता है । १८ जिस प्रकार रामनाम

* टिप्पणी : सात द्वीप— जम्बु, कुश, प्लक्ष, शाल्मली, क्रौंच, शाक और पुष्कर ।

सकळ पापासी रामनाम । जैसें जाळूनि करी भस्म । तैसा तो वानरोत्तम । अंजनीतनय धांविन्नला । १९ सकळ वानरांसीं सेनापती । नीळ धांविन्नला समीरगती । धुळीनें लोपला गभस्ती । वाटे कल्पांत मांडला । १२० झाला एकचि हाहाकार । गजबजिलें लंकानगर । वेळा सांडोनि नदीश्वर । बुडवूं पाहे उर्वीतें । २१ उदकावरी तुंबिनीफळ । तैसें डळमळे भूमंडळ । वरी आसुडती निराळ । भगणें भडभडां रिचवती । २२ मेरूऐसे लंकेचे हुडे । वरी रचिले शस्त्रांचे जुंबाडे । प्रळयविजूचेनि पाडें । नग्न शस्त्रें झळकती । २३ लंकादुर्गावरी सत्वर । बळें चढती प्रतापशूर । केशीं धरूनि रजनीचर । आसुडोनि खालीं पाडिती । २४ उल्हाटयंत्रांचे भडिमार । कोटचनुकोटी करिती असुर । भिंडिमाळा शस्त्रें अपार । राक्षस वरून भिरकाविती । २५ कोटचनुकोटी पर्वत थोर । एकदांच झोंकिती वानर । वरिलीं यंत्रें होती चूर । रजनीचरांसहित पैं । २६ दुर्गावरूनि राक्षस पाहीं । वानर झोडिती शस्त्रघाईं । दुर्गपरिघ ते

समस्त पाप को जलाकर भस्मकर डालता है, उस प्रकार वह वानर-श्रेष्ठ अंजनी-तनय हनुमान (सबको मानो अकेले नष्ट करने के हेतु) आगे दौड़ा । १९ समस्त वानरों का सेनापति नील वायु-गति से दौड़ने लगा । (इधर) सूर्य (तक) धूल में लुप्त हो गया । जान पड़ता था कि नील ने कल्पान्त मचा दिया है । १२० अद्भुत हाहाकार मच गया; लंकानगर भयभीत हो उठा । (जान पड़ता था कि) समुद्र तट को छोड़कर (लाँघकर) पृथ्वी को डुबाना चाह रहा हो । १२१ जैसे पानी पर तूँबा डोलता है, वैसे भू-मण्डल डगमगा रहा था । ऊपर आकाश में तारा-गण पछोड़े जा रहे थे और एक दूसरे से तड़तड़ टकरा रहे थे । २२ लंका (-दुर्ग के) बुर्ज मेरु जैसे थे । उनपर शस्त्रों के ढेर रचे (गये) थे । नंगे शस्त्र प्रलय-काल की बिजली के समान चमक रहे थे । २३ प्रतापी शूर (वानर) लंका दुर्ग पर बलात् झट से चढ़ जाते थे और राक्षसों को बालों में पकड़कर खींचते हुए नीचे गिरा डालते थे । २४ (उधर) करोड़ों असुर तोपों से (गोलों की) जोर से बौछार करते थे । राक्षस ऊपर से गोफनों से असंख्य शस्त्र फेंक रहे थे । २५ (इधर) वानर करोड़-करोड़ बड़े (-बड़े) पर्वत एक साथ ही फेंक देते थे, तो ऊपर के यंत्र राक्षसों सहित चूर-चूर हो जाते थे । २६ (जब) दुर्ग पर से राक्षस (नीचे की ओर) देखते, तो वानर उन्हें शस्त्रों

समयीं । राक्षसप्रेतांनीं बुजियेले । २७ पुच्छ दोराकार टाकोनी । असुरांचे ग्रीवेस गोंवुनी । एकदांच पाडिती आसुडोनी । खंदकामाजी प्रेतवत । २८ एक अकस्मात वानर उडोनी । राक्षसांस पायीं धरूनी । गरगरां भिरकाविती गगनीं । आपटोनि धरणीं मारिती । २९ एक राक्षसांचीं पोटें फोडिती । एक चरणकरनासिकें तोडिती । एक प्रेत उचलोनि मागुती । भिरकाविती लंकेंत । १३० आटले बहुत रजनीचर । गोपुरावरूनी दशकंधर । विलोकीत दिशा अंबर । तों वानरमय दिसतसे । ३१ स्वसैन्यासी दशकंधर । म्हणे काय पाहतां निघा बाहेर । आटोनि समस्त वानर । माजवा समरभूमि वेगें । ३२ चतुरंग दळसागर । निघे लंकेंतून बाहेर । कोटचनुकोटी असुर । पायींचे पुढें तळपती । ३३ पर्वतासमान रजनीचर । विक्राळ तोंडें भाळीं शेंदूर । बाबरझोटी दाढा शुभ्र । जिव्हा आरक्त लळलळित । ३४ खदिरांगार लखलखित । तैसे नेत्र त्यांचे आरक्त । मद्यपानें झाले मस्त । शस्त्रें घेऊन तूळतो । ३५

के आघात से पीटते । उस समय दुर्ग के परिघ राक्षसों के प्रेतों से पाटे गये । २७ वानर पूँछ को डोरी की भाँति डालकर असुरों के कण्ठों में उलझाते हुए उन्हें एक साथ खींचकर खाईं में प्रेतों-से गिरा डालते । २८ कोई एक वानर अकस्मात ऊपर की ओर उड़कर राक्षसों को पाँवों में पकड़ते हुए उन्हें आकाश में चक्राकार घुमाकर उछाल देते और भूमि पर पटककर मार डालते । २९ कोई एक राक्षसों के पेट फाड़ डालते, तो कोई-एक पाँव, हाथ और नाक काट डालते । कोई-एक फिर प्रेतों को उठाकर लंका में फेंक देते । १३० (इस प्रकार जब) बहुत राक्षस नष्ट हो गये, (तो) रावण ने गोपुर पर से (चारों) दिशाओं और आकाश में देखा, तब उसे (सब) वानरमय दिखायी दे रहा था । ३१ फिर रावण ने अपनी सेना से कहा— 'देखते क्या हो ? बाहर निकलो । समस्त वानरों को नष्ट करके वेग-पूर्वक युद्ध-भूमि में प्रलय मचा दो ।' ३२ (तब) चतुरंग सेनारूपी सागर लंका से बाहर निकल पड़ा । करोड़-करोड़ पदाती असुर (सबके) आगे दमक रहे थे । ३३ वे राक्षस पहाड़ों के समान (बड़े) थे । उनके मुख विकराल थे; मस्तक पर सिन्दूर लगा हुआ था, उनके बालों के झोंटे (फैले हुए) थे । उनकी दाढ़ें शुभ्र थीं । उनकी लाल-लाल जिह्वाएँ लपलपाती थीं । ३४ खैर के अंगार जैसे जगमगाते हैं, वैसे उनके लाल-लाल (जगमगाते हुए) नेत्र थे । वे मद्य-

सुरांचीं शिरें रेखूनी । ब्रीदें बांधिलीं चरणीं । यमदंष्ट्रा झळकती जघनीं । आवेशेंकरून गर्जती । ३६ वोडण असिलता शक्ती । शूळ तोमर घेती हातीं । गदा परिघ चक्रें झळकती । दंडीं पिंजारिती चामरें । ३७ वानरांचे करून पुतळे । रुळत चरणीं घातले । हांका देती परम बळें । एकदांची सर्वही । ३८ दणाणत उर्वीमंडळ । म्हणती देवांनो धांवा सकळ । तुमच्या रामासहित दळ । रणांगणीं ग्रासिलें । ३९ तयांपाठीं अश्वभार । नाना जातींचे मनोहर । वरी बैसले राऊत असुर । असिलता घेऊनियां । १४० तयांपाठीं गजभार । ऐरावतीसमान थोर । वरी शूळ घेऊनि बैसले असुर । ध्वजीं अंबर भेदिती । ४१ तयां पाठीसी चालिले रथ । रत्नजडित चाकें झळकत । तुरंग जुंपिले चपळ बहुत । गगनचुंबित ध्वज बहु । ४२ संग्रामसंकेत भेरी । असुरीं ठोकिल्या ते अवसरीं । रणतुरें आणि मोहरीं । तेथें धडकती विशाळ । ४३ वैरियांचीं आणि स्वदळें । एकवटलीं

पान से उन्मत्त थे और शस्त्र लेकर उन्हें तौलते थे । ३५ देवों के मस्तकों (की-सी आकृतियों) को अंकित करके उन्होंने (बड़प्पन सूचित करने-वाले) पदकों की मालाएँ पाँवों में बाँधी थीं । यम की (-सी) दाढ़ें उनके जघनों पर झलक रही थीं । वे आवेश के साथ गरज रहे थे । ३६ उन्होंने हाथों में ढाल, तलवार, शक्ति, शूल, तोमर (नामक) शस्त्र लिये थे; उनके हाथों में गदा, परिघ, चक्र (जैसे) शस्त्र दमक रहे थे । दण्डों में चँवर (के बाल) छितराते थे । ३७ वानरों के पुतले बनाकर उन्होंने उन्हें झूलते हुए पाँवों में बाँधा था । वे सभी एक साथ ही बहुत जोर से चीखते-चिल्लाते थे । ३८ पृथ्वी-मण्डल को दनदनाते हुए वे कह रहे थे— ' देवो, सब दौड़ो, हमने तुम्हारे राम-सहित सेना-दल को ग्रस्त कर डाला है । ३९ उनके पीछे नाना जातियों के सुन्दर घोड़ों का दल था । उन (घोड़ों) पर असुर सवार (हाथों में) तलवारें लेकर बैठे हुए थे । १४० उनके पीछे ऐरावत के समान बड़े (-बड़े) हाथियों का दल था । उन (हाथियों) पर असुर (हाथों में) शूल लेकर बैठे थे । वे अपने ध्वजों से (मानो) आकाश को भेद रहे थे । ४१ उनके पीछे रथ चल रहे थे । उनके रत्न-जटित पहिये जगमगा रहे थे । उन (रथों) में बहुत चपल घोड़े जुते हुए थे । उनके अनेकानेक ध्वज गगन-चुम्बी थे । ४२ असुरों ने उस समय युद्ध (के आरम्भ को) सूचित करनेवाली भेरियाँ ज़ोर से बजा दीं । (फिर) बड़े-बड़े रण-वाद्य और तूमड़ियाँ धड़-

दोन्हीं दळें। एकचि घनचक्र मांडिलें। नादें कोंदलें अंबर। ४४
जय यशस्वी अयोध्यानृपवर। म्हणोनि धांवती वानरवीर। वृक्ष-
घायें रजनीचर। झोडोनि समरीं पाडिती। ४५ कृतान्तवत धांवती
वानर। टाकिती पर्वत पाषाण अपार। असुरांचे अस्थिपंजर। चूर
होती लागतां। ४६ उठावले राक्षस बळें। तोडिती कपींचीं
शिरकमळें। कीं उसळती नारिळें। कोटचनुकोटी आकाशीं। ४७
जैसीं इक्षुदंडांचीं खंडें। तैसीं करचरणांचीं दुखंडें। एकदांच पडती
प्रचंडें। असुरहस्तेंकरूनियां। ४८ खेटकाआड असुर दडती।
कुंतशक्तीनें बळें खोंचिती। वानरां विदारून पाडिती। ठायीं
ठायीं असंख्य। ४९ अकस्मात कपी धांवती। काळिजें राक्ष-
सांचीं काढिती। प्रेतें तेथें पडलीं किती। नव्हे गणती
कोणातें। ५० आवेशें कपी शिळा टाकिती। असुरांचे मुखां-
वरी आदळती। रक्तें भडभडां उसळती। मस्तकें उडती
तडतडां। ५१ ऊर्ध्वपंथें शिरें उडती। स्वर्गपंथा भेदीत

धड़ाते हुए बजने लगे। ४३ शत्रु के और (राम के) अपने— दोनों दल इकट्ठा होकर घुल-मिल गये। उन्होंने बेजोड़ घमासान लड़ाई आरम्भ की। उनकी (चिल्लाहट आदि की) ध्वनि से आकाश भर गया। ४४ 'कीर्तिमान अयोध्या-नृपवर की जय' कहते हुए वीर वानर दौड़ने लगे। उन्होंने पेड़ों के आघात से कूट-पीटकर राक्षसों को समर (-भूमि) में गिरा डाला। ४५ (वे) वानर कृतान्त (-यमदेव) की भाँति दौड़ रहे थे। वे अनगिनत पर्वत और पाषाण फेंक रहे थे, उनके लगते ही असुरों के अस्थि-पंजर चूर-चूर हो जाते थे। ४६ (फिर भी) राक्षस हठात् उठ गये और उन्होंने कपियों के शिर-कमल तोड़ना शुरू किया; (तो जान पड़ता था कि) करोड़ों-करोड़ों नारियल आकाश में उछल रहे हैं। ४७ जिस प्रकार ईख के टुकड़े हो जाते हैं, उस प्रकार प्रचण्ड राक्षसों के हाथों (वानरों के) हाथों पाँवों के दो-दो टुकड़े एक साथ ही गिर जाते। ४८ राक्षस ढालों की ओर छिप जाते और भालों को जोर से चुभाते और वानरों को विदीर्ण करके स्थान-स्थान पर गिरा देते। ४९ (तब) अकस्मात वानर (चढ़ाई के हेतु) दौड़े। उन्होंने राक्षसों के कलेजों को (खींचकर बाहर) निकाला। वहाँ कितने प्रेत पड़ गये थे— इसकी गिनती किसी से भी नहीं हो पाती। ५० कपि आवेश के साथ शिलाएँ फेंकते, जो असुरों के मुँह से टकराते। तब रक्त (के प्रवाह) धड़ाधड़ उछलते बहते और मस्तक तड़तड़ उड़ते। ५१

जाती। नाशिवंत म्हणोनि उतरती। सीतापती पाहावया। ५२
समरभूमीसी धडें नाचती। दोन्ही हस्तें टाळी वाजविती।
आम्हांसी येथेंचि आहे गती। नृत्य करिती म्हणूनियां। ५३
रणीं भ्याड जे तयांप्रती। तुटलीं शिरें गदगदां हांसती। आम्ही
पावलों मोक्षगती। तुम्हांस नाहीं हो सर्वथा। ५४ असो
वानरवीर प्रचंड। तों गजभार लोटले उदंड। कपी ओढूनि
शुंडादंड। आकाशपंथें भोवंडिती। ५५ गजदंत मोडोनि
लवलाहें। वरिल्या ताडिती त्याचि घायें। शुंडा पिळोनियां
पाहें। कुंभस्थळें फोडिती। ५६ पुच्छीं धरूनियां वारण।
गगनीं देती भिरकावून। त्याचें लक्ष धरून। दुसरा
गज भिरकाविती। ५७ ऐसे लक्षांचे लक्ष वारण। गगनीं
करिताती भ्रमण। एक तुरंग पायीं धरून। स्वारांसहित
आपटिती। ५८ वृक्षमंडित पर्वत। रथांवरी टाकिती अकस्मात।
रथ सारथियांसमवेत। पिष्ट होती तया घायें। ५९ असो

(वे) सिर ऊर्ध्वमार्ग से उड़ जाते और स्वर्ग-पंथ को काटते जाते। (फिर भी) नाशवान होने के कारण वे राम को देखने के लिए उतर आते। ५२ समर-भूमि पर धड़ नाचते रहते, दोनों हाथों से ताली बजाते रहते। वे (वहाँ) इसलिए नृत्य करते थे कि (उन्हें विश्वास था—) हमें यहीं (अन्तिम) गति (मिलनेवाली) है। ५३ जो युद्ध में कायर (सिद्ध हो चुके) थे, उनपर कटे सिर ठहाका मारते हुए हँसते थे। (मानो वे यह कहते थे कि) हम मोक्ष-गति को प्राप्त हो गये हैं, तुम्हें वह कदापि (प्राप्त) नहीं हो सकती। ५४ अस्तु। वानर वीर प्रचण्ड (संख्या में) थे (ही); तब (राक्षसों की) बड़ी गज-सेना आगे लपकी। (तब) कपि सूँड़रूपी दण्ड को खींचकर आकाशमार्ग पर उन्हें चक्राकार घुमाते। ५५ हाथियों के दाँतों को झट से तोड़कर उनके आघात से वे सूँड़ों को पीटते थे। (फिर) सूँड़ों को लेकर वे (हाथियों के) कुम्भ-स्थल फोड़ डालते थे। ५६ किसी हाथी को पूँछ में पकड़कर वे चक्राकार घुमाते हुए आकाश में फेंक देते और उसी का निशाना ताककर दूसरे हाथी को फेंक देते। ५७ इस प्रकार (फेंके हुए) लाख-लाख हाथी आकाश में भ्रमण करने लगे। (फिर) वानर घोड़ों को पाँवों में पकड़कर उन्हें सवारों सहित पटकते थे। ५८ वे वृक्षों से विभूषित पहाड़ों को (लाकर) अकस्मात रथों पर डालते थे। उनके आघात से सारथियों सहित रथ चूर-चूर हो जाते थे। ५९ अस्तु। तीन

तीन रात्री तीन दिवस। युद्ध झालें आसमास। सुरांचे अवतार किंपुरुष। लोटिले राक्षस माघारे। १६० ऐसें देखोनि वीर धूम्राक्ष। रथारूढ धांवे रणदक्ष। तेणें निजबाणीं लक्षानुलक्ष। वानरवीर पाडिले। ६१ शिळा पर्वत एकसरीं। कपी टाकिती धूम्राक्षावरी। परी तो चपळ बाणधारी। पिष्ट करूनी टाकीत। ६२ असंख्यात वानरगण। धूम्राक्ष मारिला न लागतां क्षण। कपींचे भार पळोन। पराजय पावले। ६३ उणें देखतांचि सत्वर। वेगें धांवला रुद्रावतार। उचलोनियां गिरिवर। धूम्राक्षावरी टाकिला। ६४ अश्व सारथी रथ चूर्ण। पर्वताखालीं जाहले जाण। धूम्राक्ष चपळ उड्डाण। करूनि गेला एकीकडे। ६५ मग शूळ घेऊनि ते अवसरीं। धूम्राक्ष धांविन्नला मारुतीवरी। मारावया सर्पारी। अळिका जैसी चपेटे। ६६ वारणावरी धांवे मृगेंद्र। तैसा आवेशें वायुपुत्र। मुष्टिघातें त्याचें शिर। मृत्तिकाघटवत चूर्ण केलें। ६७ गजासी पर्वतपात जाहला। कीं महावृक्ष उन्मळला। तैसा

रात और तीन दिवस तक अति घमासान लड़ाई हो गयी। (तब तक) देवों के अवतार वानरों ने राक्षसों को पीछे धकेल दिया। १६०

इस प्रकार (की स्थिति) देखकर युद्ध (-कला) में प्रवीण वीर धूम्राक्ष रथ पर आरूढ़ होकर चढ़ दौड़ा। उसने अपने बाणों से लाख-लाख वानर वीरों को (मार) गिराया। ६१ तो वानर शिलाएँ और पर्वत एक साथ धूम्राक्ष पर फेंकने लगे, परन्तु वह चपल (धनुष-) बाण-धारी (योद्धा) उन्हें पीसकर चूर-चूर कर डालता था। ६२ धूम्राक्ष ने क्षण न लगते असंख्य वानर-गणों को मार डाला, तो कपियों के दल भागते हुए पराजय को प्राप्त हो गये। ६३ (तब अपने पक्ष की) न्यूनता देखते ही रुद्रावतार हनुमान झट से वेग-पूर्वक दौड़ा और उसने एक बड़ा पहाड़ उठाकर धूम्राक्ष पर फेंक दिया। ६४ समझिए कि उस पर्वत के नीचे घोड़े, सारथी और रथ चूर-चूर हो गये, तो धूम्राक्ष चपलता-पूर्वक उड़ान भरकर एक ओर चला गया। ६५ फिर उस समय धूम्राक्ष शूल लेकर हनुमान की ओर दौड़ा— मानो इल्ली सर्पारि गरुड़ के थप्पड़ मारने के लिए दौड़ी हो। ६६ (परन्तु) जैसे सिंह हाथी पर चढ़ दौड़ता है, वैसे हनुमान ने आवेशपूर्वक दौड़ते हुए धूम्राक्ष का सिर एक ही घूँसे के आघात से मिट्टी के घड़े की भाँति चूर-चूर कर डाला। ६७ हाथी पर पहाड़ (ढह) पड़ा हो, अथवा महावृक्ष उखड़ पड़ा हो, वैसे ही धूम्राक्ष गत-प्राण

धूम्राक्ष पडला । गतप्राण होऊनियां । ६८ धूम्राक्ष पडतांचि तत्काळ । पळों लागले घायाळ । जैसें मन आकळितां बळ । इंद्रियांचें न चले कांहीं । ६९ जेथोनि मन उडे निश्चितीं । तेथें कैंची राहिली प्रीती । कीं देखणियाची गती । नेत्र गेलिया मावळे । १७० तैसा धूम्राक्ष पडतां ते काळीं । घायाळें लंकेंत प्रवेशलीं । रावणें वार्ता ऐकिली । हृदयीं वाढली परम चिंता । ७१ मग दळभारेंसी वज्रदंष्ट्री । दशमुख तयासी आज्ञा करी । तो समरभूमीसी झडकरी । येता झाला वातवेगें । ७२ वानर राक्षस ते समयीं । मिसळले एके ठायीं । वानरवीरीं राक्षस महीं । प्रेतें करूनि पाडिले । ७३ रथारूढ वज्रदंष्ट्री । हरिदळीं मिसळला झडकरी । दोन लक्ष कपी भूमीवरी । प्रेतें होऊन पडियेले । ७४ ऐसें देखोनि वाळिसुत । वेगें धांवला कृतान्तवत । शतांचीं शतें पर्वत । उचलोनि टाकी अरी-वरी । ७५ पर्वतासरी ते क्षणीं । राक्षस मारिले एक अक्षौ-

---

होकर गिर पड़ा । ६८ धूम्राक्ष के गिर पड़ते ही (पराजय के आघात से व्याकुल) राक्षस (सैनिक) उस प्रकार भाग जाने लगे, जिस प्रकार मन को वश में कर लेने पर इंद्रियों के बल की कुछ नहीं चलती । ६९ जहाँ से निश्चित रूप से मन उड़ जाता है, अर्थात् विरक्त हो जाता है, वहाँ कहाँ की प्रीति शेष रहती है ? अथवा आँखों के जाने पर (अन्धा हो जाने पर) देखनेवाले की गति अस्त (नष्ट) हो जाती है; (उस प्रकार) धूम्राक्ष के मर जाने पर राक्षस सैनिकों की कोई न चल पायी । १७० उस प्रकार धूम्राक्ष (मृत होकर) पड़ जाने पर उस समय व्याकुल या घायल (सैनिक युद्ध-भूमि से भागकर) लंका में प्रविष्ट हो गये । रावण ने (जब यह) समाचार सुना, तो उसकी चिन्ता बढ़ गयी । ७१ फिर दशानन ने सेना-सहित वज्रदंष्ट्री को आदेश दिया, तो वह झट से समर-भूमि में वायु-गति से आ गया । ७२ उस समय (लड़ते-लड़ते) वानर और राक्षस एक स्थान पर मिल गये । (फिर) वानर वीरों ने राक्षसों को प्रेतों के रूप में— अर्थात् मार डालकर भूमि पर गिरा दिया । ७३ (तदनन्तर) वज्रदंष्ट्री रथ पर आरूढ़ होकर वानर-दल में झट से घुस गया, तो (उसके द्वारा किये आघातों के फलस्वरूप) दो लाख वानर प्रेत होकर (अर्थात् मारे जाकर) भूमि पर गिर गये । ७४ इस प्रकार (की स्थिति) देखकर अंगद तेजी से कृतान्त की भाँति दौड़ गया और उसने सैकड़ों-सैकड़ों पर्वत उठाकर शत्रु पर फेंक दिये । ७५ (फलस्वरूप)

हिणी । अशुद्धेंकरूनि धरणी । पूर वाहाती भडभडां । ७६
मग तारातनयें ते अवसरीं । उचलिला बहुशृंगांचा गिरी ।
भिरकाविला वज्रदंष्ट्रीवरी । परमावेशें तेधवां । ७७ तों
राक्षसें सोडोनियां बाण । क्षण न लागतां केला चूर्ण । ऐसें
अंगदें देखोन । महावृक्ष उन्मळिला । ७८ परम प्रतापी वाळि-
नंदन । भुभु:कारें गर्जवीत गगन । वृक्षघायासरसा प्राण ।
वज्रदंष्ट्रीचा घेतला । ७९ शरीर जाह्लें शतचूर्ण । मही
भिजली अशुद्धेंकरून । जैसा रगडितां मत्कुण । न उरेच
कांहीं उरी । १८० तो अकंपन दळभारेंकरून । रणासी आला
न लागतां क्षण । तेणें सोडिले असंख्य बाण । कपिचक्रावरी
पैं । ८१ सिंहचपेटे देखोनि वारण । तेवीं पातला सीताशोक-
हरण । वृक्षघातेंकरून । रणीं अकंपन विदारिला । ८२
राक्षसदळीं हाहाकार । शोकार्णवीं मग्न दशकंधर । मग तयास
शांतवी ज्येष्ठ कुमर । शक्रजित नाम जया । ८३ म्हणे राया

उसने उस क्षण पर्वत के समान (आकारवाले) एक अक्षौहिणी राक्षसों को मार डाला (और) धरती पर रक्त के रेले धड़धड़ बहने लगे। ७६ फिर अंगद ने उस समय अनेक शिखरों से युक्त एक पर्वत उठा लिया और तब वज्रदंष्ट्री पर बहुत आवेश से फेंक दिया। ७७ तो उस राक्षस ने एक बाण चलाकर क्षण न लगते उसे चूर-चूर कर दिया। इस प्रकार (की स्थिति) देखकर अंगद ने एक बड़ा पेड़ उखाड़ लिया। ७८ वह परम प्रतापवान बाली-पुत्र अंगद भुभु:कार से आकाश को निनादित कर रहा था। उसने उस वृक्ष का आघात करते ही वज्रदंष्ट्री के प्राण (छीन) लिये। ७९ उसका शरीर शतशः चूर-चूर हो गया; उसके रक्त से पृथ्वी भीग गयी। जिस प्रकार खटमल को रगड़ डालने पर कुछ शेष नहीं रहता, उस प्रकार वज्रदंष्ट्री की दशा हो गयी। १८० तब अकम्पन सेना-दल को लेकर क्षण न लगते ही युद्ध के लिए आ गया। उसने कपि-समूह पर अनगिनत बाण चलाये। ८१ जैसे हाथी को (देखकर) सिंह (अपने पंजों से) उसपर आघात करने लगता है, उस प्रकार सीता-शोक-हरण हनुमान आ पहुँचा (और) उसने पेड़ों के आघातों से अकम्पन को युद्ध (-भूमि) में विदीर्ण कर डाला। ८२ तो राक्षस-दल में हाहाकार मच गया। (उधर) रावण शोक-सागर में डूब गया, तो उसका ज्येष्ठ पुत्र— जिसे 'शक्र (-इन्द्र)-जित' नाम प्राप्त हो गया था— (सान्त्वना देते हुए) शान्त करने लगा। ८३ उसने कहा—

तूं चिंता न करीं । तुझे शत्रु समरभूमीवरी । आजि पहुडवीन निर्धारीं । शक्रजित तरी नाम । ८४ नाहीं तरी मी जैसा जंत । पोटासी आलों यथार्थ । मग असंख्य दळासहित इंद्रजित । जनका नमोनि निघाला । ८५ असंभाव्य सेनासागर । रणमंडळासी आला सत्वर । तंव ते अपार वानर वीर । रणपंडित प्रतापी । ८६ घेऊन शिळा तरुवर । असुरांत मिसळले वानर । जैसे वायसांमाजी सुंदर । राजहंस मिसळले । ८७ किंवा गारांमाजी हिरे । मिसळती जैसे एकसरें । तैसे वानर प्रतापें थोरें । असुरदळीं चौताळती । ८८ कपींचा प्रताप आगळा । देखोनि इंद्रजितें रथ लोटिला । तों वाळिपुत्र धांविन्नला । महापर्वत घेऊनियां । ८९ जंबुमाळी प्रतापी वीर । त्यावरी धांवला वायुकुमर । विद्युन्माळी यावरी श्वशुर । सुग्रीवाचा उठावला । १९० जंघनामें असुर प्रबळ । त्यावरी धांवे वीर नळ । परम मांडलें रणमंडळ । हांकें निराळ गर्जतसे । ९१ वानरराक्षसांचीं प्रेतें । एके ठायीं पडलीं

'हे राजा, आप चिन्ता न करें। आपके शत्रुओं को आज मैं निश्चय ही समर-भूमि में सुला दूँगा— तो ही मेरा 'शक्रजित' नाम चरितार्थ है। ८४ नहीं तो, मैं आपके (पुत्र के रूप में) सचमुच केंचुआ-सा उत्पन्न हुआ।' फिर पिता को नमस्कार करके इंद्रजित असंख्य (अपार) दल-सहित (युद्ध-भूमि की ओर जाने के लिए) निकल पड़ा। ८५ अपार-सेना रूपी सागर को लिये हुए वह झट से रण-मण्डल में आ गया। तब (वहाँ) वे अनगिनत रण-पंडित तथा प्रतापवान वानर वीर (उपस्थित थे)। ८६ वे वानर शिलाओं और बड़े-बड़े पेड़ों को लेकर राक्षसों में मिल गये, मानो कौओं में सुन्दर राजहंस मिल गये हों। ८७ अथवा जिस प्रकार चकमकों में हीरे यकायक मिल गये हों, उसी प्रकार प्रताप से बड़े वानर राक्षसों के दल में गुस्से से उबलते हुए (मिल) गये। ८८ कपियों के अनोखे प्रताप को देखकर इन्द्रजित ने (तेजी से) रथ (आगे) बढ़ा दिया, तो अंगद बड़ा पर्वत लेकर चढ़ दौड़ा। ८९ (उधर) जम्बुमाली (नामक एक) प्रतापवान वीर (राक्षस) था, उसपर हनुमान चढ़ दौड़ा, तो विद्युन्माली (नामक राक्षस वीर) पर सुग्रीव के ससुर (सुषेण) ने आक्रमण किया। १९० (उधर) जंघ नामक एक प्रबल असुर था। उसपर वीर नल चढ़ दौड़ा। उसने घमासान युद्ध आरम्भ किया। उसके चीत्कार से आकाश गूंज उठा। ९१ वानरों और राक्षसों के अनगिनत

अगणितें। जैसे खडे आणि मुक्तें। एके ठायीं विखुरलीं। ९२ हनुमंतें पायांतळीं। घालोनि चिरिला जंबुमाळी। विद्युन्माळी ते काळीं। सुषेणें आपटोनि मारिला। ९३ नीळें जंघ मारिला ते क्षणीं। तों अस्ता गेला वासरमणी। अंधारें कोंदली रजनी। कोणासी कोणी न देखे। ९४ कोण रे कोण असुर पुसत। कपी म्हणती आम्ही रामदूत। असुरवीर अकस्मात। घाय हाणिती सरिसाचि। ९५ कोण रे कोण पुसती वानर। जे म्हणती आम्ही असुर। घायें हाणोनि कपिवर। करिती चूर राक्षसांचा। ९६ सवेंच उदय पावे अत्रिपुत्र। आनंदले सकळांचे नेत्र। परी वानरवीर अनिवार। आटिले असुर पराक्रमें। ९७ मग तो शक्रजित ते वेळां। रथासहित सेनेंतून उडाला। जलदजाळांत लपाला। वर्षों लागला सर्पबाण। ९८ राक्षसांचें कापटच अद्भुत। बाण तेच सर्प होत। कपींचे अंगीं संचरत। विकळ पडती वीर तेणें। ९९ मग रामलक्ष्मणांवरी। सर्पबाण सोडी शक्रारी। अयोध्यानाथ ते अवसरीं। चहूंकडे पाहे

प्रेत एक ही स्थान पर पड़ गये— मानो कंकड़ और मोती (मिलकर) एक ही स्थान पर बिखर गये हों। ९२ हनुमान ने जम्बुमाली को पाँवों तले डालकर चीर डाला, तो सुषेण ने उस समय विद्युन्माली को पटककर मार डाला। ९३ उस क्षण नल ने जंघ को मार डाला, तो सूर्य अस्त को प्राप्त हो गया। रात अंधकार से भर गयी; (फलस्वरूप) कोई किसी को नहीं दिखायी दे रहा था। ९४ असुर पूछते— 'कौन है रे? कौन है?' तो कपि उत्तर देते— 'हम रामदूत हैं।' (यह सुनने के) साथ ही, असुर वीर अकस्मात (कपियों पर) आघात कर देते। ९५ (इधर) वानर पूछते— 'कौन है रे? कौन है?' (इसके उत्तर में) जो (यह) कहते 'हम राक्षस' हैं, उन राक्षसों को कपिवर आघात करके चूर-चूर कर डालते। ९६ (इसके) साथ ही (त्यों ही) चन्द्र उदय को प्राप्त हो गया, तो सबके नेत्र आनन्दित हो गये। परन्तु वानर वीरों ने दुर्दम्य होकर अपने पराक्रम से (असंख्य) असुरों को नष्ट किया। ९७ फिर उस समय वह इंद्रजित अपनी सेना में से रथ-सहित आकाश में उड़ गया और मेघ-जाल में छिप गया, (जहाँ से) वह सर्प-बाणों को बरसाने लगा। ९८ राक्षसों का कपट अद्भुत था। (जो वस्तुतः) बाण थे, वे ही सर्प हो जाते और कपियों के शरीरों पर संचरण करने लगते। उससे वे वीर (कपि) विकल हो उठते। ९९ फिर इंद्रजित ने राम और

तटस्थ । २०० म्हणे बाण येतात कोठोनी । संधानकर्ता न दिसे नयनीं । जरी प्रकट दिसे समरांगणीं । तरी बाणीं वरी फोडीन । १ ओढवलें परम दुस्तर । कित्येक उडाले ऊर्ध्व वानर । शोधिलें बहुत अंबर । परी तो वीर दिसेना । २ वानर आले परतोन । अवघे पाहती म्लानवदन । रामलक्ष्मणांसी बाण । बहुसाल खडतरले । ३ ते समयीं मूर्च्छा येऊन । भूमीवरी पडले दोघे जण । तों इंद्रजित बोले वरून । कां निवान्त राहिलां । ४ मारूनियां दूषण खर । शिळीं बांधिला सागर । म्हणवितां क्षत्रिय राजकुमर । कां रे शर सोडाना । ५ वरकड कपींवर बाण । शक्रजितें टाकिले वरून । तरू उन्मळती मुळींहून । हरिगण तैसे पडियेले । ६ किंशुक फुलतां बहुत । सिंदूरवर्ण दिसे पर्वत । तैसीं कपींचीं शरीरें आरक्त । असंख्यात पडियेलीं । ७ शक्रजित खालीं उतरून । मुख्य जे पडले राक्षसगण । त्यांचीं कुणपें उचलून । लंकेसी नेता जाहला । ८

लक्ष्मण पर सर्प-बाण चलाये, तो उस समय अयोध्यानाथ स्तब्ध होकर चारों ओर देखते रहे । २०० उन्होंने कहा (सोचा)— 'बाण कहाँ से आ रहे हैं ? उनका सन्धान-कर्ता (चलानेवाला) तो आँखों को नहीं दिखायी दे रहा है । यदि वह समरांगण में प्रकट (रूप में) दिखायी दे, तो बाण से उसे ऊपर (ही ऊपर) फोड़ (विदीर्ण कर) डालूँगा । २०१ परम संकट आ गया । अनेकानेक वानर ऊपर (की ओर) उड़ गये, उन्होंने आकाश में बहुत ढूँढ़ा, फिर भी वह वीर नहीं दिखायी दिया । २ (तदनन्तर) वानर लौटकर आ गये । वे सब म्लान-वदन होकर देख रहे थे (कि) राम-लक्ष्मण के (शरीर में) बहुत बाण चुभ गये हैं । ३ मूर्च्छा आने से वे दोनों जने उस समय भूमि पर पड़ गये, तो ऊपर से इन्द्रजित बोला-– 'चुप क्यों रह गये हो ? ४ खर-दूषण को मार डालकर तुमने पाषाणों से समुद्र (का सेतु) बना लिया है । क्षत्रिय राज-पुत्र कहाते हो, तो (फिर) बाण क्यों नहीं चलाते ?' ५ (फिर) इन्द्रजित ने अन्य कपियों पर ऊपर से बाण चला दिये, तो (फलस्वरूप) वानर-गण उस प्रकार गिर पड़े, जिस प्रकार वृक्ष (जड़-) मूल से उखड़कर गिर जाते हैं । ६ पर्वत (पर) पलाश वृक्षों के फूल बहुत खिलने पर (वह) जिस प्रकार सिंदुरिया रंग का दिखायी देता है, उस प्रकार अनगिनत कपियों के शरीर (रक्त से सने होने से) आरक्त होकर गिरे हुए थे । ७

(तदनन्तर) नीचे उतरकर इन्द्रजित, जो मुख्य-मुख्य राक्षसगण

जयवाद्यांचा होतां घोष। परम आनंदला लंकेश। हृदयीं आलिंगोनि पुत्रास। म्हणे धन्य मी तुझेनि। ९ त्रिजटेस म्हणे रावण। पुष्पकीं सीतेसी बैसवून। दृष्टीस दावीं सकळ रण। रामसौमित्रांसमवेत। २१० त्यांचीं विलोकितां प्रेतें। मग ती वश होईल आम्हांतें। अवश्य म्हणोनि जानकीतें। विमानीं बैसवी त्रिजटा। ११ सकळ मंडळ विलोकीत। तों अनुजासहित रघुनाथ। दृष्टीं देखतां मूर्च्छित। जनकात्मजा पडियेली। १२ मग त्रिजटेनें सीता धरूनी। उठवोनि बैसविली सांवरूनी। म्हणे माये धैर्य धरीं मनीं। चापपाणी उठेल आतां। १३ तंव ते बिभीषणाची राणी। सरमा जवळी गुप्त येऊनी। विदेहतनयेचे कर्णीं। निजगुज सांगतसे। १४ म्हणे जगन्माते धरीं धीर। आतां उठतील रामसौमित्र। संहारतील सकळ असुर। आन विचार येथें नाहीं। १५ मी अनृत बोलेन साचार। तरी माझें खालीं पडेल

(मरकर) पड़े थे, उनके प्रेतों को उठाकर लंका में ले गया। ८ जय-(सूचक) वाद्यों का गर्जन होते ही लंकेश रावण परम आनन्दित हुआ। उसने पुत्र को हृदय से लगाते हुए आलिंगन करके कहा— 'तुम्हारे कारण मैं धन्य (हो गया) हूँ।' ९ (तत्पश्चात्) रावण ने त्रिजटा से कहा— 'सीता को पुष्पक विमान में बैठाकर, उस (की आँखों) को राम-लक्ष्मण सहित समस्त रण (-भूमि) को दिखला दो। २१० फिर उनके प्रेतों को देखते ही, वह हमारे वश में हो जाएगी। (उत्तर में) 'अवश्य' कहते हुए त्रिजटा ने सीता को विमान में बैठा दिया। ११ सीता ने समस्त (युद्ध-भूमि)-मण्डल को (जब) देखा, तब छोटे बन्धु (लक्ष्मण) सहित रघुनाथ को आँखों से (शवों-से पड़े हुए) देखते ही वह मूर्च्छित होकर पड़ गयी। १२ तब सीता को थामते हुए उठाकर त्रिजटा ने सम्हालते हुए बैठा दिया और कहा— 'ओ माँ, मन में धीरज धारण करो; चापपाणि श्रीराम अब (सचेत होकर) उठ जाएँगे।' १३ तब विभीषण की वह रानी (पत्नी) सरमा ने गुप्त रूप में निकट आते हुए सीता के कानों में अपनी रहस्य-भरी बात कह दी। १४ उसने कहा— 'हे जगन्माता, धीरज धारण करो। अब राम और लक्ष्मण (सचेत होकर) उठेंगे (और) समस्त असुरों का संहार करेंगे— यहाँ (सम्भावना सम्बन्धी) कोई दूसरा विचार नहीं हो सकता। १५ यदि मैं सचमुच झूठ बोलती होऊँ, तो मेरा सिर (कटकर) नीचे गिर जाएगा; (और) मेरे पूर्वज कल्पान्त तक अपार

शिर। माझे पूर्वज अपार। नरक भोगितील आकल्पवरी। १६ त्रिजटा म्हणे जानकीसी। माते चिंता न करीं मानसीं। पुष्पक अशोकवनासी। वेगेंकरून पातलें। १७ सीतेस बैसवून स्वस्थानीं। त्रिजटा सांगे रावणालागुनी। म्हणे सीतेचिया सत्त्वा हानी। कल्पांतींही नव्हेचि। १८ मग त्रिजटा परतोनी। सीतेपासीं बैसे येउनी। जैसी चित्तवृत्ति मुरडोनी। स्वरूपीं पावे विश्राम। १९ सरमा म्हणे जनकनंदिनी। तूं चिंता कांहीं न करीं मनीं। पुराणपुरुष चापपाणी। त्याची करणी जाणसी तूं। २२० आपुला प्रताप विशेष। वाढवावया अयोध्याधीश। आधीं शत्रूस दिधलें यश। कांहीं एक आरंभीं। २१ हें ब्रह्माण्ड सकळिक। बाणीं जाळील रघुनायक। तेथें इंद्रजित मशक। उशीर काय वधावया। २२ रावण कुंभकर्ण इद्रजित। तोचि हीं बाहुलीं निर्मित। खेळ मांडिला जो अद्भुत। जाणसी समस्त तुझें तूं। २३ निशा संपतां चंड-किरण। उगवे कीं नुगवे म्हणोन। या चिंतेचें कारण।

नरक (-वास का दुख) भोगेंगे।' १६ (तदनन्तर) त्रिजटा सीता से बोली— 'हे माता, मन में चिन्ता न करना।' (फिर) पुष्पक विमान वेग-पूर्वक अशोक-वन पहुँच गया। १७ सीता को उसके अपने स्थान पर बैठाकर त्रिजटा ने रावण (के पास आकर उस) से (इस सम्बन्ध में) कह दिया। (फिर) वह बोली— 'सीता के सत्त्व, अर्थात् शील की कल्पान्त तक में हानि नहीं हो सकती।' १८ फिर त्रिजटा लौटते हुए वैसे ही सीता के पास आकर बैठ गयी, जैसे चित्त की प्रवृत्ति मुड़ते हुए भगवत्-स्वरूप में विश्राम को प्राप्त हो जाती है। २१९

सरमा ने जनक-नन्दिनी सीता से कहा— 'तुम मन में कोई चिन्ता न करना। चापपाणि श्रीराम तो पुराण-पुरुष हैं— उनकी करनी को तुम तो जानती (ही) हो। २२० अपने प्रताप को विशेष रूप से बढ़ा देने के हेतु अयोध्याधीश ने पहले आरम्भ में कुछ एक सफलता दिला दी है। २१ (वस्तुतः) रघुनायक इस समस्त ब्रह्माण्ड को (अपने) बाण से जला सकते हैं, वहाँ (तब) मशक (-से) इंद्रजित का वध करने में (उन्हें) क्या देर (लगेगी)? २२ उन्हीं (श्रीराम) ने रावण, कुम्भकर्ण, इन्द्रजित (-सी)— इन गुड्डियों का निर्माण किया है। उन्होंने जो अद्भुत खेल आरम्भ किया है, उस सबको तो तुम स्वयं जानती हो। २३ समझ लो, इस चिन्ता का कोई कारण नहीं है कि रात की समाप्ति होने पर

कांहीं नाहीं जाण पां। २४ करितां रामनामस्मरण। पापें जाती न जाती जळोन। या संदेहाचें कारण। कांहींच नसे जाण पां। २५ हृदयीं प्रगटतां शुद्ध ज्ञान। चुके कीं न चुके जन्ममरण। या चिंतेचें कारण। कांहींच नाहीं जाण पां। २६ क्षमा शांति धरितां जाण। कलह होय न होय म्हणोन। या चिंतेचें कारण। कांहींच नसे जाण पां। २७ अयोध्यानाथ रघुनंदन। यासी जय कीं अपजय म्हणोन। या चिंतेचें कारण। कांहींच नसे जाण पां। २८ ज्या रामाचें करितां स्मरण। भक्त पावती जय कल्याण। तो जगदानंद पूर्ण। विजयी असे जानकी। २९ असो इकडे बिभीषण। सूर्यसुतासी बोले वचन। म्हणे राक्षस पर्वत आणून। रामावरी टाकितील। २३० उदय पावे जंव गभस्ती। तंव जतन कराव्या दोन्ही मूर्ती। बोल बोलतां अश्रु स्रवती। रावणानुजाचे तेधवां। ३१ मग जीवंत होते जे वानर। त्यांहीं पुच्छमंडप करूनि सत्वर। दोन्हीं स्वरूपें सुकुमार। रक्षिलीं तेव्हां अंतरीं। ३२ कीं पुच्छपेटी करून।

सूर्य उदित होगा या नहीं। २४ राम-नाम का स्मरण करने पर पाप जल जाएँगे अथवा नहीं ?— समझ लो, इस (सम्बन्ध में) सन्देह (करने) का कोई भी कारण नहीं है। २५ समझ लो, इस चिन्ता का कोई भी कारण नहीं है कि हृदय में विशुद्ध (आत्म-) ज्ञान के प्रकट हो जाने पर जन्म-मरण छूट जाएगा अथवा नहीं— अर्थात् जीव मुक्ति को प्राप्त होगा अथवा नहीं। २६ समझ लो, इस चिन्ता का कोई भी कारण नहीं है कि क्षमा और शान्ति को धारण करने पर कलह होगी या नहीं। २७ उसी प्रकार जो अयोध्यानाथ रघुनन्दन राम हैं, इनकी विजय होगी या पराजय— समझ लो, इस चिन्ता का कोई भी कारण नहीं है। २८ हे जानकी, जिन श्रीराम का स्मरण करने पर, भक्त विजय और कल्याण को प्राप्त होते हैं, वे जगदानन्द (श्रीराम) पूर्ण विजेता होंगे।' २२९

अस्तु। इधर विभीषण ने सुग्रीव से यह बात कही। वह बोला— '(अब) राक्षस पर्वत लाकर श्रीराम पर डाल देंगे। २३० जब तक सूर्य उदय को प्राप्त नहीं हो जाए, तब तक इन दोनों मूर्तियों की रक्षा करना।' तब ऐसी बातें कहते-कहते विभीषण के (नयनों से) आँसू झर रहे थे। ३१ फिर तब जो वानर जीवित थे, उन्होंने (अपनी-अपनी) पूँछों से झट से मण्डप (का-सा आकार) बनाकर अन्दर उन दोनों सुकुमार भगवत्-स्वरूपों (मूर्तियों) की रक्षा की। ३२ अथवा वानर

ब्रह्मादि देवांचें देवतार्चन। वानर बैसले सांठवून। सभोंवते सद्गद। ३३ सूर्यवंशमंडण दशरथ। त्याचे महत्पुण्याचा पर्वत। तो वानरीं वेष्टूनि बहुत। चिंताक्रान्त बैसले। ३४ मारुति बिभीषण रण शोधीत। तों महावीर पडले बहुत। एक नेत्र उघडोनि पुसत। बिभीषणाप्रती ते काळीं। ३५ म्हणती या चराचराचें जीवन। तो सुखी आहे कीं रघुनंदन। सद्गद होऊन बिभीषण। म्हणे चिंता न करावी। ३६ तों घायें जांबुवंत विव्हळत। बिभीषणासी जवळी बोलावीत। पुसे क्षेम आहे कीं रघुनाथ। पुराणपुरुष जगदात्मा। ३७ स्फुंदस्फुंदोनि सांगे बिभीषण। नागपाशीं बांधिले दोघे जण। तों मूर्च्छना सांवरून सुषेण। नेत्र उघडोनि बोलत। ३८ म्हणे द्रोणाचळीं औषधी बहुत। जरी कोणी आणील बळवंत। तरी रामसौमित्रां-सहित। दळ अवघें उठवीन। ३९ मग बोले बिभीषण। ऐसा बळिया आहे कोण। रात्रींमाजी जाऊन। औषधी येथें आणील। २४० जांबुवंत बोले वचन। एक सीताशोकहरण।

पूँछों से पिटारा बनाकर ब्रह्मा आदि देवों के पूजनीय देवता (श्रीराम और लक्ष्मण) को अन्दर सुरक्षित रखते हुए बहुत गद्गद होकर चारों ओर बैठे रहे। ३३ दशरथ सूर्य-वंश की शोभा थे। उनके महान पुण्यरूपी जो (श्रीराम-रूपी) पर्वत हैं, उन्हें घेरे हुए वानर बहुत चिन्ताक्रान्त होकर बैठ गये। ३४ (जब) हनुमान और विभीषण रण (-भूमि) में ढूँढ़ रहे थे, तो (उन्होंने देखा कि वहाँ) बहुत महान् वीर (मरे हुए या आहत होकर) पड़े हुए थे। (आहतों में से) कुछ एक ने उस समय विभीषण से पूछा। ३५ वे बोले— 'इस चराचर के जो (प्रत्यक्ष) जीवन हैं, वे रघुनन्दन क्या सकुशल हैं?' (इसपर) गद्गद होकर विभीषण ने कहा— 'चिन्ता न करो।' ३६ तब घाव के कारण जाम्बवान कराह रहा था। उसने विभीषण को पास बुलाया और पूछा— 'पुराण-पुरुष जगदात्मा रघुनन्दन सकुशल तो हैं?' ३७ सुबक-सुबककर विभीषण ने कहा— 'वे दोनों जने नागपाश में आबद्ध किये गये हैं।' तो अचेतनता से सम्हलकर सुषेण आँखों को खोलते हुए बोला। ३८ उसने कहा— 'द्रोणाचल पर बहुत औषधियाँ हैं। यदि कोई बलवान (व्यक्ति विशिष्ट औषधि) ले आएगा, तो मैं राम-लक्ष्मण-सहित समस्त (सेना-) को (सचेत करके) उठाऊँगा।' ३९ तब विभीषण बोला— '(हमारे पक्ष में) ऐसा कौन बलवान है, जो रात (की रात) में जाकर औषधि यहाँ ले

त्यावांचूनि गिरिद्रोण। आणूं कोणी शकेना। ४१ मग सुषेण आणि जांबुवंत। बिभीषण तयांस हातीं धरीत। श्रीरामापासीं बोलत बोलत। येते जाहले तेधवां। ४२ तंव रण शोधूनि हनुमंत। तोही तिकडोनि आला त्वरित। याउपरी किष्किंधा-नाथ। बोलता जाहला ते काळीं। ४३ म्हणे रामसौमित्रांसीं उचलून। जा तुम्ही किष्किंधेसीं घेऊन। मी रावणा सहकुळीं मारून। घेऊन येईन जानकी। ४४ राज्यीं स्थापीन बिभीषण। बंदींचे सोडवीन सुरगण। राहूं मी आणि वायुनंदन। सर्वां परतोन जावें आतां। ४५ तेव्हां आकाशीं वदे देववाणी। आतांचि उठेल चापपाणी। नेत्र उघडिले तये क्षणीं। अयोध्या-धीशें सत्वर। ४६ भोंवते पाहे राघवेश। तों निकट बैसले निज-दास। मानस वेष्टोनि राजहंस। बैसती जैसे प्रीतीनें। ४७ कीं कमळ वेष्टीत भ्रमर। कीं अही वेष्टीत मलयागर। कीं दिव्य मुक्तांभोंवतें चतुर। परीक्षक जेवीं मिळती। ४८ असो सुग्री-

---

आएगा ?' २४० (इसपर) जाम्बवान ने यह बात कही— 'सिवा उस अकेले सीता-शोक-हरण (हनुमान) के, कोई भी द्रोण पर्वत को नहीं ला सकेगा।' ४१ तब सुषेण और जाम्बवान को विभीषण ने हाथों से पकड़ लिया और बोलते-बोलते वे (तीनों) उस समय श्रीराम के पास आ गये। ४२ तो युद्ध (-भूमि) में खोजकर वह हनुमान भी उधर से झट से आ गया। इसके पश्चात् उस समय किष्किन्धानाथ सुग्रीव बोला। उसने कहा— 'श्रीराम और लक्ष्मण को उठाकर तुम किष्किन्धा ले जाओ (और) मैं रावण को कुल-सहित मार डालकर सीता को लेकर आऊँगा। ४३-४४ मैं विभीषण को (लंका के) राज्य (राजा के रूप) में स्थापित करूँगा, बन्दीगृह में से देवगणों को छुड़ाऊँगा। (यहाँ) मैं और हनुमान रहेंगे— तुम सब अब लौट जाओ।' ४५ तब आकाश में देव-वाणी हो गयी— 'चापपाणि श्रीराम अभी (सचेत होकर) उठेंगे।' उसी क्षण अयोध्याधीश ने झट से आँखें खोल दीं। ४६ जब श्रीराम ने चारों ओर देखा, तो (दिखायी दिया कि) उनके सेवक (उस प्रकार) पास में बैठे हुए थे, जिस प्रकार राजहंस प्रेम-पूर्वक मानसरोवर को घेरकर बैठते हों, अथवा कमल को घेरे हुए भ्रमर (बैठे) हों, अथवा मलय (पर्वत) स्थल सर्पों द्वारा वेष्टित हों, अथवा दिव्य मोतियों के चारों ओर चतुर पारखी जिस प्रकार बैठते हों। २४७-२४८

अस्तु। रघुनन्दन ने सुग्रीव से कहा— 'अहो, अपने सेना-दल को

वास म्हणे रघुनंदन। बा रे तूं आपुला दळभार घेऊन। किष्किंधेसी जाईं परतोन। येथें दोघे राहूं आम्ही। ४९ ऐसें उदास बोले रघुनाथ। सर्वांसीं आले अश्रुपात। सुग्रीव सद्‌गद बोलत। म्हणे विपरीत केवीं घडे। २५० सांडोनियां दिनपती। किरणें कोणीकडे जाती। कनकावेगळी कांती। कल्पांतींही नव्हेचि। ५१ घटास मृत्तिका सांडूनी। कोणीकडे राहील भिन्न। पटास तंतु त्यागोन। वेगळा नोहेच सर्वथा। ५२ लहरी सागरासी सांडूनी। काय बैसतील काननीं। तुज सांडून चापपाणी। आम्हीं केवीं राहावें। ५३ बिभीषण म्हणे अयोध्यापती। जरी तमकूपीं पडेल गभस्ती। शेषही सांडील जगती। परी सामर्थ्य तुझें उणें नोहे। ५४ रसहीन बोलसी मात। जे न मानिती रणपंडित। तों नवल वर्तलें अद्भुत। वायु गुप्तरूपें पैं आला। ५५ सीतावल्लभाचे कर्णीं। गरुडमंत्र गेला सांगोनी। रघुवीरें जपतांचि ते क्षणीं। सुपर्ण वेगें धांविन्नला। ५६ जैसे अंगीं केश अमूप। तैसे राभासी जडले सर्प। तो विष्णुवहनप्रताप। देखतां सर्प पळाले। ५७ तत्काळ

लेकर तुम किष्किन्धा लौट जाओ। हम दोनों यहाँ रहेंगे।' ४९ उदास होकर रघुनाथ ने इस प्रकार कहा, तो सबकी आँखों से आँसू बहने लगे। (तब) सुग्रीव ने बहुत गद्‌गद होकर कहा। वह बोला— '(यह) विपरीत बात कैसे हो सकेगी। २५० सूर्य को छोड़कर किरणें किस ओर जा सकती हैं? सोने से उसकी कान्ति कल्पान्त (तक) में भी अलग नहीं हो सकती। ५१ घट को छोड़कर मिट्टी किस ओर (कहाँ) अलग रह सकेगी? पट का त्याग करके तन्तु अलग सर्वथा नहीं हो पाएगा। ५२ सागर को छोड़कर क्या लहरें वन में बैठेंगी? (उस प्रकार) हे चापपाणि, आपको छोड़कर हम कैसे रहें।' ५३ (तदनन्तर) विभीषण ने कहा— 'हे अयोध्यापति, सूर्य अन्धकार के कुएँ में गिर जाएगा, शेष (अपने मस्तक से) पृथ्वी को हटा देगा, (ये बातें असम्भव हैं, फिर भी वे घटित हो जाएँगी) फिर भी आपकी सामर्थ्य कम नहीं पड़ेगी। ५४ आप रसहीन बात कह रहे हैं, जिसे युद्ध-कला में कुशल लोग नहीं मानेंगे।' त्यों ही एक अद्भुत आश्चर्य घट गया। (वहाँ) वायुदेव गुप्त रूप से आ गया। ५५ वह सीता-वल्लभ श्रीराम के कानों में गरुड़-मंत्र कहकर चला गया। (तदनन्तर) रघुवीर द्वारा उसका जप करते ही गरुड़ वेग से दौड़ता हुआ आ गया। ५६ जिस प्रकार शरीर में अनगिनत बाल

उठले रामसौमित्र । अष्टादशपद्में वानर । उठोनि करिती भुभु:कार । तेणें लंकानगर दणाणिलें । ५८ निरभ्र नभीं दिसे दिनकर । तैसे देदीप्यमान रामसौमित्र । देव करिती जयजयकार । सुमनसंभार वर्षती । ५९ सुग्रीवादि कपी बोलती । आजि लंका घालूं पालथी । कोदंड चढवूनि सीतापती । अरिपंथ लक्षीतसे । २६० युद्धकांड रसभरित । जेथें वीररसचि अद्भुत । ते कथा ऐकतां समस्त । शत्रुक्षय होय पैं । ६१ ब्रह्मानंदा श्रीरघुवीरा । दशमुखान्तका समरधीरा । भक्तपाळका श्रीधरवरा । निर्विकारा अभंगा । ६२ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर । संमत वाल्मीकनाटकाधार । सदा परिसोत भक्त चतुर । पंचविंशतितमोध्याय गोड हा । २६३

॥ श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु ॥ श्रीमज्जगदीश्वरार्पणमस्तु ॥

होते हैं, उस प्रकार राम (के शरीर) में सर्प जुड़ गये थे । फिर विष्णु-वाहन गरुड़ के प्रताप को देखते ही वे सर्प भाग गये । ५७ तत्काल राम और लक्ष्मण उठ गये, तो अठारह पद्म वानरों ने उठकर भुभु:कार किया । उससे लंका-नगर दनदना उठा । ५८ मेघ-रहित आकाश में जैसे सूर्य दिखायी देता है, राम और लक्ष्मण वैसे देदीप्यमान दिखायी दे रहे थे । देवों ने जय-जयकार किया और पुष्प-संभार बरसा दिये । ५९ (तदनन्तर) सुग्रीव आदि कपियों ने कहा— 'आज हम लंका को उलट देंगे ।' तो श्रीराम धनुष को चढ़ाकर शत्रु के मार्ग की ओर देखने लगे । २६० (श्रीराम-विजय का) युद्ध-काण्ड रस से भरा-पूरा है जिसमें वीर रस ही अद्भुत रूप में (विद्यमान) है, उस कथा का श्रवण करने पर समस्त शत्रुओं का नाश हो जाता है । ६१ हे ब्रह्मानन्द, हे श्रीरघुवीर, हे दशमुख-अन्तक, हे समर-धीर, हे भक्त-पालक, हे श्रीधर कवि के वरदाता, हे निर्वि-कार, हे अभंग (भगवान्) ! स्वस्ति । श्रीराम-विजय नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है । वह वाल्मीकि-नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है । चतुर भक्त उसके इस मधुर पचीसवें अध्याय का सदा श्रवण करें । २६२-२६३

॥ श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु ॥ श्रीमज्जगदीश्वरार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२६

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । जय जय सुभद्रकारक भवानी । मूळपीठ अयोध्यावासिनी । आदिमायेची कुळस्वामिनी । प्रणवरूपिणी रघुनाथे । १ नारद व्यास वाल्मीक । विरंचि अमरेंद्र सनकादिक । वेदशास्त्रें सहस्रमुख । कीर्ति गाती अंबे तुझी । २ सुग्रीव नळ नीळ जांबुवंत । बिभीषण अंगद हनुमंत । तेही दिवटे नाचती समस्त । प्रतापदीपिका घेऊनियां । ३ अठरा पद्में वानरगण । त्या भूतावळिया संगें

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । हे सुमंगलकारिणी भवानी, तुम्हारी जय हो, जय हो । मूलपीठ * अयोध्या में निवास करनेवाली और आदि-माया (सीता) की कुल-स्वामिनी तथा प्रणव (ॐ-कार)-रूपिणी रघुनाथ-स्वरूपा हे देवी, तुम्हारी जय हो, जय हो । १ हे अम्बा (भवानी) ! नारद, व्यास, वाल्मीकि, ब्रह्मा, इन्द्र, सनक आदि ऋषि, वेद-शास्त्र तथा सहस्रमुख शेष तुम्हारी कीर्ति का गान किया करते हैं । २ प्रतापरूपी छोटी-छोटी मशालें लेकर सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवान, विभीषण, अंगद और हनुमान— (जैसे) समस्त मशालची नाच रहे हैं । ३ उन अठारह पद्म वानर-गणों के रूप में भूतों के समुदायों को साथ में लिये हुए वे सुवेल पर्वत पर आकर आत्मानन्द-पूर्वक गोंधक * सम्पन्न कर रहे हैं । ४ रण (-भूमि)-मण्डल (ही मानो) होम-

---

* टिप्पणियाँ : मूलपीठ— वह मूल स्थान जिसमें किसी विशिष्ट देवी या देवता का सर्वप्रथम आविर्भाव हुआ हो । वस्तुत. मूलपीठ देवी के माने जाते हैं । यहाँ ग्रन्थकर्ता ने रघुनाथ राम के स्वरूप में देवी की कल्पना की है ।

* गोंधक— महाराष्ट्र में प्रचलित एक कुलाचार या कुलधर्म । इसमें अम्बा, भवानी या रेणुका जैसी देवी का पूजन और स्तवन होता है । कुछ कुलों में ' गोंधळ ' प्रतिवर्ष सम्पन्न कराया जाता है, तो कुछ में विवाह या अन्य किसी मंगल कार्य के उपरान्त । प्रायः गोंधक प्रस्तुत करनेवाले चार मुख्य व्यक्ति होते हैं, जिनमें से मुख्य ' नाईक ' अर्थात् नायक कहाता है और जो गीत-गायन और कथा-निरूपण करता है। एक सहायक व्यक्ति बीच-बीच में हास्य-व्यंग्य का निर्माण करते हुए प्रश्न पूछता है और निरूपण में गति-वृद्धि कर देता है । निरूपण के लिए किसी लोककथा को चुना जाता है । दो अन्य व्यक्तियों में से एक ' संबळ ' और दूसरा इकतारा-नुमा ' तुनतुणे ' नामक बाजा बजाता है । गोंधळ में पूजा-विधि परम्परा से निर्धारित है । इसके लिए मशालें और तेलपात्र आवश्यक हैं । भूतों का-सा वेश परिधान करनेवाले कुछ अन्य पात्र भी गोंधळ में कभी-कभी समाविष्ट किये जाते हैं । उन्हें ' भूतावली ' कहा जाता है ।

महाराष्ट्र में ' गोंधळी ' नामक एक विशिष्ट जाति है, जिसके सदस्य ही प्रायः ' गोंधळ ' प्रस्तुत करते हैं ।

घेऊन । सुवेळाचळीं येऊन । गोंधळ मांडिला स्वानंदें । ४ रणमंडळ हें होमकुंड । द्वेषाग्नि प्रज्वळतां प्रचंड । राक्षस बस्त उदंड । आहुतीमाजी पडताती । ५ देवान्तक नरान्तक महोदर । प्रहस्त अतिकाय घटश्रोत्र । इंद्रजित आणि दशवक्त्र । आहुती समग्र देती ह्या । ६ निजदास दिवटा बिभीषण । अक्षयी लंकेसी स्थापून । निजभक्ति जानकी घेऊन । मूळपीठ अयोध्येसी जासील । ७ हनुमंत दिवटा तुझा बळी । बळें पुच्छपोत पाजळी । क्षणांत लंका जाळिली । केली होळी बहुसाल । ८ ऐसे तुझे दिवटे अपार । त्यांमाजी दासानुदास श्रीधर । तेणें रामविजयदीपिका परिकर । पाजळिली यथामती । ९ बाळ भोळे भक्त अज्ञान । प्रपंचरजनींत पडिले जाण । त्यांस हे ग्रंथदीपिका पाजळून । मार्ग सुगम दाविला । १० असो पूर्वाध्यायीं रामलक्ष्मण । इंद्रजितें नागपाश घालून । आकळिले मग वायुदेवें येऊन । सावध केले सवेंच । ११ यावरी तो

कुण्ड है । उसमें द्वेषरूपी प्रचण्ड अग्नि के प्रज्वलित हो जाने पर राक्षसरूपी असंख्य बकरे आहुतियों के रूप में पड़ते जा रहे हैं । ५ देवान्तक, नरान्तक, महोदर, प्रहस्त, अतिकाय, कुम्भकर्ण, इंद्रजित और दशानन को सम्पूर्ण आहुतियों के रूप में समर्पित कर रहे हैं । ६ (हे रघुनाथ-स्वरूपा देवी,) अपने मशालची विभीषण को लंका (के राजा के रूप) में अक्षय रूप में स्थापित करके तुम अपनी भक्ति-स्वरूपा जानकी को लेकर मूलपीठ अयोध्या (लौट) जाओगी । ७ तुम्हारा दीपिकाधारी (मशालची) हनुमान बलवान है । उसने अपनी पूँछरूपी (अनेक तंतुओं की बनी) बाती को बलात् प्रज्वलित किया था और क्षण में लंका को जला डाला था । (इस प्रकार मानो लंकारूपी) होली को बहुत जला दिया । ८ तुम्हारे उस प्रकार के असंख्य मशालची हैं । उनमें (तुम्हारा यह) दासानुदास श्रीधर (भी) एक है । उसने 'राम-विजय' (नामक) ग्रन्थ रूपी सुन्दर दीपिका (मशाल) यथामति प्रज्वलित की है । ९ भक्त (मानो) भोले-भाले अज्ञान बालक हैं । समझिए कि वे मायारूपी रात (के अँधेरे) में फँस गये हैं । इस ग्रन्थरूपी मशाल को जलाकर उसने उन्हें (अँधेरे में से बाहर निकलने का) सुगम मार्ग दिखाया है । १०

अस्तु । पूर्ववर्ती, अर्थात् पचीसवें अध्याय में कहा जा चुका है कि इन्द्रजित ने नागपाश डालकर राम और लक्ष्मण को आबद्ध किया (और) फिर साथ ही वायुदेव ने आकर उन्हें सचेत किया । ११ इसके पश्चात्

रणरंगधीर। प्रतापार्क श्रीरघुवीर। धनुष्य सजोनि सत्वर। वाट पाहे शत्रूची। १२ तों कोटयनुकोटी वानरगण। सिंहनादें गर्जती पूर्ण। तेणें लंकेचे पिशिताशन। गजबजिले भयेंचि। १३ निर्मळ देखोनि श्रीरामचंद्र। उचंबळला वानरसमुद्र। भरतें लोटलें अपार। लंकादुर्गपर्यंत पैं। १४ उचलोनि पाषाण पर्वत। कपी भिरकाविती लंकेंत। राक्षसांचीं मंदिरें मोडित। प्रळय बहुत वर्तला। १५ रावणास सांगती समाचार। दुर्गासी झगटले वानर। रणीं उभे रामसौमित्र। शशिमित्र जयापरी। १६ प्रहस्तासी म्हणे लंकानाथ। पुत्रें शत्रुवन जाळिलें समस्त। पुनरपि अंकुर तेथ। पूर्ववत फुटले पैं। १७ बीज भाजून दग्ध केलें। तें पुनरपि अंकुरलें। मृत्यूनें गिळून उगळिलें। अघटित घडलें प्रहस्ता। १८ मग तो प्रधान प्रहस्त। तोचि सेनापति प्रतापवंत। रावणासीं आज्ञा मागत। शत्रु समस्त आटीन बाणीं। १९ कायसे ते नर वानर। माझे

वे रण-रंग-धीर और प्रताप के सूर्य श्रीरघुवीर झट से धनुष को सज्ज करके शत्रु की प्रतीक्षा करने लगे। १२ तब करोड़ों-करोड़ों वानर-गण पूरे (ज़ोर से) सिंहनाद करते हुए गर्जन करने लगे। उससे लंका के राक्षस भय से बहुत व्याकुल हो गये। १३ श्रीराम रूपी निर्मल चन्द्र को देखकर वानर (-सेना) रूपी समुद्र उमड़ उठा और उसका अपार ज्वार लंका-दुर्ग तक फैल गया। १४ पाषाणों और पर्वतों को उठाकर कपि लंका में फेंकने लगे। उससे राक्षसों के घरों को भग्न करते हुए बहुत बड़ा प्रलय मच गया। १५ (तदनन्तर दूतों ने) रावण से (यह) समाचार कहा— 'वानरों ने दुर्ग पर आक्रमण किया है; चंद्र-सूर्य जैसे (तेजस्वी) राम-लक्ष्मण युद्ध (-भूमि) में खड़े हो गये हैं।' १६ (यह सुनकर) लंकापति ने प्रहस्त से कहा— '(मेरे) पुत्र (इन्द्रजित) ने समस्त शत्रु-रूपी वन को जला डाला था, (फिर भी) वहाँ पहले की भाँति अंकुर फूट आये हैं। १७ (उसने) बीज को भूनकर दग्ध कर डाला था, (परन्तु) वह फिर से अंकुरित हुआ है। (मानो) मृत्यु ने (किसी को) निगलकर (फिर से) उगल दिया हो। हे प्रहस्त, (यह तो) अनहोनी घटित हो गयी है।' १८ प्रहस्त मन्त्री था; वही प्रतापवान सेनापति (भी) था— तब उसने (यह कहते हुए युद्ध के लिए प्रस्थान करने की) रावण से आज्ञा माँगी, 'मैं बाणों से समस्त शत्रु (-पक्ष) को नष्ट कर दूँगा। १९ वे नर और वानर क्या हैं? मेरे बाणों को कैसे सहन

केवीं साहाती शर। ऐसें ऐकतां विंशतिनेत्र। परम संतोष पावला। २० उत्तम वस्त्रें भूषणें। प्रहस्तासी दिधलीं रावणें। तयासी गौरवून म्हणे। विजयी होईं रणांगणीं। २१ स्वामी गौरवी स्वमुखेंकरून। धन्य धन्य तोचि दिन। असो वीस अक्षौहिणी दळ घेऊन। प्रहस्त प्रधान निघाला। २२ चतुरंग सेनासमुद्र। उत्तरद्वारें लोटला समग्र। तंव अद्‌भुत सुटला समीर। धुळीनें नेत्र दाटले। २३ प्रहस्तरथींचा ध्वज उन्मळला। शोणितचर्चित भुज खंडला। प्रहस्तापुढें आणूनि टाकिला। निराळपंथें पक्ष्यांनीं। २४ मनांत दचकला प्रहस्त। परी वीर-श्रीनें वेष्टित। अपशकुनांची खंत। टाकूनियां चालिला। २५ दृष्टीं देखोनि राक्षसभार। सिंहनादें गर्जती वानर। तेणें स्वर्गींचे हुडे समग्र। येऊं पाहाती धरणीये। २६ दोन्ही दळें एकवटलीं। संग्रामाची झड लागली। शस्त्रास्त्रें तये काळीं। यामिनीचर वर्षती। २७ क्षणप्रभा नभोमंडळीं। तेवीं असिलता झळकती ते काळीं। गदापाशशक्तिशूळीं।

करेंगे ?' इस प्रकार (की बात) सुनकर रावण परम सन्तोष को प्राप्त हो गया। २० (फलस्वरूप) रावण ने प्रहस्त को उत्तम वस्त्र और आभूषण प्रदान किये और उसका गौरव करते हुए कहा— 'रणांगण में विजयी हो जाओ।' २१ (जिस दिन) स्वामी अपने मुख से,(किसी का) गौरव-गान करता हो, वही दिन (उसके जीवन में) धन्य है, धन्य है। अस्तु। (तदनन्तर) बीस अक्षौहिणी सेना लेकर मंत्री प्रहस्त (वहाँ से) निकला। २२ (लंका-दुर्ग के) उत्तर द्वार पर समस्त (पदाति, अश्वदल, रथ-दल और हस्ति-दल-अर्थात्) चतुरंग सेनारूपी समुद्र उमड़ता हुआ आ गया, तब अद्‌भुत पवन बहने लगा। उससे (सबकी) आँखें धूल से भर गयीं। २३ प्रहस्त के रथ का ध्वज उड़ गया; रक्त-चर्चित (ध्वज-) दण्ड टूट गया। पक्षियों ने उसे आकाश-मार्ग से लाकर प्रहस्त के सामने डाल दिया। २४ (यह देखकर) प्रहस्त मन में चौंक उठा, परन्तु वह तो वीर-श्री से घिरा हुआ था; इसलिए ऐसे अपशकुनों की चिन्ता छोड़कर वह चल पड़ा। २५ (उधर) आँखों से राक्षस-सेना को देखकर वानर सिंहनाद के साथ गरजने लगे। उससे (मानो) स्वर्ग (-दुर्ग) के समस्त बुर्ज (ढहकर) नीचे धरती पर आना चाह रहे हों (आ रहे हों)। २६ (फिर) दोनों दल (आपस में) मिल गये। घमासान युद्ध छिड़ गया। उस समय राक्षसों ने शस्त्रों की बौछार की। २७ जैसे बिजली आकाश-

खोंचिती बळें कपींतें । २८ साहून वानरांचा मार । कपिसेनेवरी अपार । पिशिताशन अनिवार । येऊनियां कोसळती । २९ तंव ते प्रतापमित्र हरिगण । पर्वत आणि वृक्ष पाषाण । बळें देती भिरकावून । होती चूर्ण रजनीचर । ३० जैसा अग्नि लागे पर्वतीं । त्यावरी पतंग असंख्य झेंपावती । तैसे राक्षस मिसळती । वानरचमूंत येऊनियां । ३१ वानर चतुर रणपंडित । निशाचर आटिले बहुत । मग तो सेनापति प्रहस्त । रथ लोटी वायुवेगें । ३२ जैसी पर्वतीं वीज पडत । तैसा कपींत आला अकस्मात । बाण सोडिले अद्‌भुत । नाहीं गणित तयांसी । ३३ तंव तो बिभीषण लंकापती । बोलता जाहला रामाप्रती । म्हणे प्रहस्त सेनापती । मुख्य पट्टप्रधान रावणाचा । ३४ तरी यासी सेनापति नीळ । प्रतियोद्धा धाडावा सबळ । तों इकडे प्रहस्तें वानरदळ । बहुत आटिलें ते काळीं । ३५ अनिवार प्रहस्ताचा मार । साहों न शकती वानर । महा योद्धे समरधीर । माघारले ते काळीं । ३६ दृष्टीं देखोनि रघुनाथ । प्रहस्तें बळें

मण्डल में चमकती है, वैसे तलवारें उस समय चमक रही थीं । (राक्षस) गदाएँ, पाश, शक्तियाँ और शूल वानरों को बल-पूर्वक भोंक रहे थे । २८ वानरों की मार को सहन करते हुए अनगिनत राक्षस अनिवार्य रूप से वानरों की सेना पर टूट पड़ते थे । २९ तब उन प्रताप-सूर्य वानरगणों ने बलपूर्वक पर्वत, वृक्ष और पाषाण फेंक डाले, तो राक्षस चूर-चूर हो गये । ३० जिस प्रकार पर्वत पर आग (दावाग्नि) जलने लगती हो, तो उसकी ओर अनगिनत पतंगे झपटते हैं, उसी प्रकार राक्षस (लपकते हुए) आकर वानर-सेना में मिल जाते थे । ३१ वानर युद्ध (-कला) में पंडित अर्थात् निपुण थे । उन्होंने बहुत राक्षसों को नष्ट किया । तब उस सेनापति प्रहस्त ने (अपने) रथ को वायु-वेग से दौड़ा लिया । ३२ जिस प्रकार पर्वत पर बिजली गिर जाती हो, उस प्रकार वह सहसा कपियों में आ गया और उसने अद्‌भुत रूप से बाण चला लिये,— उनकी कोई गिनती नहीं हो सकती । ३३ तब लंकापति बिभीषण राम से बोला— ' यह सेनापति प्रहस्त, रावण का मुख्य मन्त्री है । ३४ इसलिए इसके प्रति-योद्धा के रूप में सेनापति बलवान नील को भेजिए । ' त्यों ही इधर प्रहस्त ने उस समय बहुत-सी वानर-सेना को नष्टकर डाला । ३५ प्रहस्त की दुर्दम्य मार को वानर नहीं सह पा रहे थे । (यहाँ तक कि) समर-धीर महान योद्धा (तक) उस समय पीछे मुड़ गये । ३६

लोटिला रथ। ऐसें देखोनि जनकजामात। घालीत हस्त चापासी। ३७ क्षण न लागतां चढविला गुण। तों रामापुढें नीळ येऊन। विनवीतसे कर जोडून। वानरगण ऐकती। ३८ म्हणे जगद्वंद्या जगद्दुःखहरणा। जनकजापते जगन्मोहना। माया-चक्रचाळका निरंजना। मज आज्ञा देइंजे। ३९ न लागतां एक क्षण। प्रहस्ताचा घेईन प्राण। अवश्य म्हणे सीतारमण। विजयी होऊन येईं पां। ४० घेऊनियां महापर्वत। नीळ धांवे अकस्मात। जैसा पाखंडियांसीं पंडित। सरसावला बोलावया। ४१ प्रहस्तासी म्हणे नीळ वीर। तुम्ही म्हणवितां झुंझार। शस्त्रें जवळी रक्षितां अपार। मिथ्यावेष कासया। ४२ बाह्यवृत्ति व्याघ्राची असे। अंतरीं जंबुका भीतसे। जेवीं नट विरक्ताचें सोंग घेतसे। परी अंतरीं त्याग नोहे। ४३ वरी वैराग्य मिथ्या दावीत। परी मनीं तृष्णा वाढवीत। जैसें वृंदावन भासत।

आँखों से रघुनाथ को देखकर प्रहस्त ने बल-पूर्वक रथ को दौड़ा दिया। इस प्रकार (की स्थिति) देखकर श्रीराम ने धनुष में हाथ डाला। ३७ उन्होंने क्षण न लगते ही (धनुष पर) डोरी चढ़ा दी, तो नील ने श्रीराम के सामने आकर हाथ जोड़ते हुए विनती की, (जिसे) वानर-गणों ने सुना। ३८ उसने कहा-- 'हे जगद्वंद्य, हे जगत् के दुःखहरण, हे सीतापति, हे जगन्मोहन, हे माया-चक्र-चालक, हे निरंजन, मुझे आज्ञा दीजिए। ३९ मैं एक क्षण (तक) न लगते प्रहस्त के प्राण (छीन) लूँगा।' तो सीतारमण श्रीराम ने कहा-- 'अवश्य। तुम विजयी होकर (लौट) आना।' ४० तो एक महान पर्वत को लेकर नील सहसा उस प्रकार दौड़ पड़ा, जिस प्रकार कोई पंडित पाखंडी से बोलने अर्थात् वाग् युद्ध करने के लिए आगे बढ़ता हो। ४१ फिर वीर नील ने प्रहस्त से कहा-- 'तुम योद्धा कहाते हो, अपने पास बहुत शस्त्र रखते हो, तो यह बनावटी वेश किसलिए ? ४२ (यह वैसे ही है, जैसे किसी की) बाह्य-वृत्ति तो बाघ की (-सी) है, (परन्तु) अन्दर से वह सियार (तक) से डरता हो, (अथवा) जैसे कोई अभिनेता विरक्त व्यक्ति का स्वाँग कर लेता हो, परन्तु अन्तःकरण में त्याग (-वृत्ति) नहीं हो। ४३ ऊपर से झूठ-मूठ वैराग्य प्रदर्शित करता हो, परन्तु मन में (भोग-विलास की) प्यास को (पाल-पोसकर) बढ़ाता हो। जिस प्रकार वृन्दावन-फल ऊपर उत्तम रेखाओं से अंकित दिखायी देता है, परन्तु अन्दर कड़ुवा होता है, उसी प्रकार तुम ऊपर से वीर योद्धा दिखायी दे रहे हो, परन्तु अन्दर वैसे

रेखांकित उत्तम वरी । ४४ तैसा तूं सेनापति प्रहस्त । मृत्यूनें तुज आणिलें येथ । तुझे पितृगण समस्त । काय करिती यमपुरीं । ४५ त्यांचा समाचार घ्यावयासी । तुज पाठवितों यमपुरीसी । आतां परतोन लंकेसी । कैसा जासील पाहें पां । ४६ शतमूर्ख दशमुख तत्त्वतां । पद्मजातजनकाची कान्ता । ती आणूनियां वृथा । कुळक्षय केला रे । ४७ प्रहस्त म्हणे मर्कटा नीळा । तुज मृत्युकाळीं फांटा फुटला । ऐसें बोलून लाविला । बाण चापासी प्रहस्तें । ४८ नीळें हस्तींचा पर्वत । प्रहस्तावरी टाकिला अकस्मात । तेणें बाण सोडिले अद्भुत । अचळ फोडिला क्षणार्धें । ४९ सवेंच शैल सबळ । प्रहस्तावरी टाकी नीळ । तेणें फोडूनि तत्काळ । पिष्टवत पैं केला । ५० एकामागें एक अद्भुत । नीळें टाकिले शत पर्वत । तितुकेही छेदी प्रहस्त । सीतानाथ पाहातसे । ५१ प्रहस्ताचें बळ सबळ । सर्वांगीं खिळिला वीर नीळ । परी तो वैश्वानराचा बाळ । भिडतां मागें सरेना । ५२ याउपरी नीळ दक्ष । शतयोजनें

नहीं हो । ४४ हे प्रहस्त, तुम वैसे हो । मृत्यु तुम्हें यहाँ लायी है । तुम्हारे समस्त पितृ-गण यम-पुरी में क्या कर रहे हैं ? ४५ मैं तुम्हें उनका समाचार (जान) लेने के लिए यम-पुरी भेज रहा हूँ । मैं देखता हूँ, तुम अब लौटकर लंका कैसे जाओगे । ४६ अरे, दशानन सचमुच शतमूर्ख है-- (ब्रह्मा के पिता भगवान् विष्णु के अवतार) श्रीराम की उस पत्नी को व्यर्थ ही लाकर उसने अपने कुल का नाश किया है । ' ४७ (यह सुनकर) प्रहस्त बोला-- ' रे मर्कट नील, तुम मृत्यु के समय पागल हो गये हो । ' इस प्रकार कहते हुए प्रहस्त ने धनुष पर बाण चढ़ा लिया । ४८ तो नील ने अपने हाथ में रखा पर्वत सहसा प्रहस्त पर फेंक दिया । (फिर) उसने अद्भुत बाण चला दिये और आधे क्षण में उस पर्वत को तोड़ डाला । ४९ तो साथ ही नील ने प्रहस्त पर दूसरा बड़ा भारी पर्वत फेंक दिया, (परन्तु फिर) उसने तत्काल उसे भी तोड़कर पिष्टवत् (चूर-चूर) कर डाला । ५० (तदनन्तर) नील ने एक के पीछे एक करके सौ (सैकड़ों) अद्भुत पर्वत फेंक दिये; परंतु प्रहस्त ने उतने (सब) ही को छिन्न-भिन्न कर डाला । श्रीराम (यह सब) देख रहे थे । ५१ प्रहस्त का बल असीम था । (उसने बाणों से) वीर नील को समस्त अंग में कील डाला । परन्तु अग्निदेव का वह पुत्र (नील) लड़ते-भिड़ते हुए पीछे नहीं हट रहा था । ५२ इसके

ताडवृक्ष । मोडूनि धांवे जेवीं विरूपाक्ष । कल्पांतकाळीं क्षोभला । ५३ भुजाबळें भोंवंडून । वृक्ष घातला उचलोन । रथासहित प्रहस्त चूर्ण । रणमंडळीं जाहला । ५४ जाहला एकचि जयजयकार । सुमनवृष्टि करिती सुरवर । रावणापासीं सत्वर । घायाळ जाऊन सांगती । ५५ पडिला ऐकतां प्रहस्त । शोक करी लंकानाथ । म्हणे व्याघ्र प्रतापवंत । गोवत्सांनीं मारियेला । ५६ कमळगर्भींचा घेऊन तंत । मशकें बांधिला ऐरावत । खद्योततेजें आदित्य । आहाळला कैसा आजि तो । ५७ सैन्यकासी म्हणे लंकानाथ । सेना सिद्ध करावी त्वरित । आजि मी युद्ध करीन अद्भुत । जिंकीन रघुनाथा कपींसीं । ५८ घाव निशाणीं दिधले सत्वर । दणाणलें लंका-नगर । कोटचनुकोटी महावीर । सिद्ध जाहाले शस्त्रास्त्रीं । ५९ तों लंकापतीची पट्टराणी । मंदोदरी विवेकखाणी । तियेचे दूत सभास्थानीं । परम धूर्त बैसले होते । ६० समय देखोनि विपरीत । स्वामिणीपासीं गेले त्वरित । वर्षाकाळीं धांवत ।

पश्चात् नील सावधान हो गया और वह सौ योजन तक के ताल-वृक्षों को तोड़कर दौड़ता चला, मानो कल्पान्त काल में रुद्र ही क्षुब्ध हो गया हो । ५३ वृक्षों को उठाकर उसने बाहुबल से घुमाते हुए (उन्हें) फेंक दिया, तो रथ-सहित प्रहस्त रण (-भूमि) मण्डल में चूर-चूर हो गया । ५४ तब एक साथ अपूर्व (अद्भुत) जयजयकार हो गया। देवों ने पुष्प-वर्षा की । (फिर) घायल हुए राक्षसों ने रावण के पास जाकर (यह समाचार) कहा । ५५ प्रहस्त के काम आये सुनकर रावण शोक करने लगा । उसने कहा— ' (अरे) बछड़ों ने प्रतापी बाघ को मार डाला । ५६ कमल के (डंठल के) अन्दर के तन्तु को लेकर मच्छड़ों ने ऐरावत को बाँध डाला । आज जुगनुओं के तेज से सूर्य कैसे झुलस गया ? ' ५७ फिर रावण ने सैनिक से कहा— ' झट से सेना सज्ज करें । मैं आज अद्भुत युद्ध करूँगा और राम तथा कपियों को जीत लूँगा । ' ५८ (तदनन्तर) नगाड़ों पर झट से आघात कराए गये— अर्थात् नगाड़े बजाये गये, लंकानगर दनदना उठा, तो करोड़ों-करोड़ों महावीर शस्त्र-अस्त्रों सहित सज्ज हो गये । ५९ रावण की पटरानी मन्दोदरी तो विवेक की मानो खान ही थी; उसके परम चतुर दूत तो उस सभा-स्थान में बैठे हुए थे । ६० जिस प्रकार वर्षा-काल में नदियों की धाराएँ दौड़ती हैं, उस प्रकार वे प्रतिकूल समय को देखकर अपनी

सरितापूर जैसे कां । ६१ कीं शरासनापासोन । सायक धांवती त्वरेंकरून । कीं अस्ता जातां उष्णकिरण । पक्षी आश्रमा धांवती । ६२ तैसे स्वामिणीपासीं येऊन । पाणी जोडून करिती नमन । मग अधोदृष्टीनें वर्तमान । सांगती सकळ सभेचें । ६३ रणीं पडला प्रहस्त प्रधान । म्हणोनियां दशानन । सकळ सेना सिद्ध करून । आतांचि जातो संग्रामा । ६४ ऐसा समाचार ऐकोनी । मंदोदरी लावण्यखाणी । जिच्या स्वरूपावरूनी । रतिवर ओंवाळिजे । ६५ जिची मुखशोभा देखोनी । विधुबिंब गेलें विरूनी । चंपककळिका गौरवर्णी । सुकुमार त्याहूनि बहुत । ६६ अंगींची प्रभा अत्यंत । तेणें अलंकार शोभत । कीं त्रिभुवन हिंडोनि रतिकान्त । श्रमोन तेथें विसांवला । ६७ हास्य करितां कौतुकें । दंततेज मंदिरीं झळके । बोलतां रत्नें अनेकें । भूमीवरी विखुरती । ६८ अंगींचे सुवासेंकरून । कोंदलें असे अवघें सदन । तडिदंबर वेष्टिलें पूर्ण । सुवास मृदु निर्मळ । ६९ चपळेचा प्रकाश पडे । तैसे

स्वामिनी के समीप झट से गये । ६१ अथवा जिस प्रकार बाण धनुष से तेजी से दौड़ते हैं, अथवा सूर्य के अस्त हो जाने पर पक्षी अपने आश्रम अर्थात् घोंसले की ओर तेजी से जाते हैं, उस प्रकार स्वामिनी के पास आकर उन्होंने हाथ जोड़ते हुए उसको नमस्कार किया । फिर अधोदृष्टि अर्थात् सिर नीचा झुकाकर उन्होंने सभा का समस्त समाचार कहा । ६२-६३ 'मन्त्री प्रहस्त युद्ध में काम आया, इसलिए दशानन समस्त सेना को सज्ज करके अभी युद्ध के लिए जा रहे हैं ।' ६४ जिसकी सुन्दरता पर रति-पति मदन को निछावर कर दें, जिसके मुख की शोभा (सुन्दरता, कान्ति) को देखकर चन्द्र-बिम्ब (कान्ति में) नष्ट अर्थात् फीका पड़ जाता है, जो श्वेत चम्पक की कलिका से भी बहुत अधिक सुकुमार है, जिसके अंग की कान्ति इतनी अधिक है कि उससे आभूषण शोभायमान हो जाते हैं, अथवा (सुन्दरता की खोज करते हुए) रति-पति कामदेव त्रिभुवन में भ्रमण करके (अन्त में) इस लावण्य-खनि मन्दोदरी के यहाँ— अर्थात् शरीर में विश्राम को प्राप्त हो गया था । ६५-६७ (उसके) लीलया हास्य करने पर, उसके दाँतों का तेज घर (-भर) में झलकता था । (उसके) बोलने लगते ही अनेक रत्न भूमि पर बिखर जाते थे । ६८ उसके बदन की सुगन्ध से उसका पूरा भवन भर गया था । उसने विद्युत्-सा (तेजस्वी) वस्त्र लपेट, अर्थात् पहन लिया था;

झळकती हातींचे चुडे। वीस नेत्र होऊनि वेडे। रावणाचे पाहती। ७० ते लावण्यसागरींची लहरी। दूतवार्ता ऐकोनि मंदोदरी। सुखासनीं बैसोन झडकरी। सभेसी तेव्हां चालिली। ७१ भोंवतें दासींचें चक्र। जाणविती नाना उपचार। सवें माल्यवंत प्रधान चतुर। बहुत वृद्ध जाणता। ७२ आणि अतिकाय कुमर। जैसा पार्वतीसी स्कंद सुंदर। कीं शचीजवळी जयंत पुत्र। अतिकाय शोभे तैसा। ७३ सहस्रांचे सहस्र दूत। कनकवेत्रपाणी पुढें धांवत। जन वारूनि समस्त। वाट करिती चालावया। ७४ अंगींच्या प्रभा फांकती। तेणें गोपुरचर्या उजळती। असो ते मंदोदरी सती। सभाद्वारा प्रवेशे। ७५ अधोवदनें तेव्हां जन। सकळ परते गेले उठोन। तेव्हां मंदोदरीनें येऊन। पतीचीं पदें नमियेलीं। ७६ दशमुख बोले हांसोन। आपुलें कां झालें आगमन। मग क्षण एक निवान्त बैसोन। मयजा वचन बोलत। ७७ टाकोनियां शुद्ध

उस वस्त्र की सुगन्ध मृदु (हल्की) तथा निर्मल थी। ६९ जिस प्रकार बिजली (के चमकने) से प्रकाश फैलता है, उस प्रकार उसके हाथों की चूड़ियाँ (कान्तिमान) थीं। उसके ऐसे अद्‌भुत सौन्दर्य को रावण के बीसों नेत्र (मानो) पागल होकर देखते रहते थे। ७० लावण्य-सागर की लहर-सी वह मन्दोदरी दूतों द्वारा कहा हुआ समाचार सुनकर तब झट-से पालकी में बैठकर सभा की ओर चल पड़ी। ७१ उसके चारों ओर दासियों का चक्र अर्थात् समुदाय था। वे नाना (प्रकार के) उपचार करा रही थीं। उसके साथ चतुर मंत्री माल्यवान (भी) था, जो बहुत वृद्ध तथा ज्ञाता (मर्मज्ञ) था। ७२ और (उसके पास) अतिकाय नामक पुत्र उस प्रकार शोभायमान था, जिस प्रकार पार्वती के पास (उसका) सुन्दर (पुत्र) स्कन्द अथवा (इंद्र-पत्नी) शची के पास उसका पुत्र जयन्त होता हो। ७३ हज़ारों-हजारों दूत और सुवर्ण-दण्ड हाथों में लिये हुए चोबदार आगे (-आगे) दौड़ रहे थे, और समस्त लोगों को हटाकर चलने के लिए मार्ग (खुला) कर रहे थे। ७४ उस (मन्दोदरी) के शरीर की (जो) कान्ति फैल रही थी, उससे नगरद्वार उज्ज्वल बन रहे थे। अस्तु। वह सती मन्दोदरी सभा (-गृह) के द्वार में प्रविष्ट हो गयी। ७५ तो समस्त लोग उठकर सिर झुकाये हुए लौट गये। तब मन्दोदरी ने (आगे) आते हुए पति के चरणों को नमस्कार किया। ७६ (तदनन्तर) रावण हँसते हुए बोला— ‘तुम्हारा आगमन क्यों हुआ?’ फिर एक

पंथ। आडमार्गें जो गमन करीत। तया अपाय येती बहुत। यास संदेह नाहींचि। ७८ सर्वांसी विरोध करून। आपुलें व्हावें म्हणे कल्याण। तो अनर्थी पडेल पूर्ण। यासी संदेह नाहींचि। ७९ वेदशास्त्रीं जें अनुचित। तेथें बळें घाली चित्त। तेणें आपुला केला घात। यासी संदेह नाहींचि। ८० विवेक-सद्बुद्धीचे बळें। अनर्थ तितुके टाळावे कुशळें। वचनें संतांचीं निर्मळें। हृदयीं सदा धरावीं। ८१ राया पुरुषार्थ हाचि पूर्ण। परदारा आणि परधन। येथें जो न घाली मन। तोचि धन्य शास्त्र म्हणे। ८२ नंदनवनींचा मिलिंद। दिव्यसुमनांचा घेत सुगंध। त्यासी पलांडुपुष्पीं लागला वेध। नवल थोर वाटे हें। ८३ सुरतरूच्या सुमनांवरी। जो निद्रा करी अमरमंदिरीं। तो निजों इच्छी खदिरांगारीं। नवल परम वाटे हें। ८४ ज्याची ललना सुंदर बहुत। जीतें अष्टनायिका लाजत। तो पुरुष अन्य आलिंगूं इच्छीत। नवल परम वाटे हें। ८५ सुरभि

क्षण चुप बैठकर मन्दोदरी ने यह बात कही। ७७ 'जो शुद्ध (पवित्र, नीति-युक्त) मार्ग को छोड़कर, अन्य दूर के अर्थात् बुरे मार्ग से गमन करता हो, उसकी बहुत हानि हो जाती है। इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। ७८ जो सबका विरोध करते हुए कहता (सोचता) हो कि उसका अपना (ही) कल्याण हो, वह पूर्णतः संकट में पड़ जाएगा— इसमें कोई सन्देह नहीं है। ७९ वेद-शास्त्र के अनुसार जो अनुचित है, उसमें जो हठात् मन लगाता हो, उसने अपना ही नाश कर लिया है— इसमें कोई सन्देह नहीं है। ८० चतुर या बुद्धिमान मनुष्य जितने अनर्थ हों, उन सबको विवेक और सद्बुद्धि के बल से टाल दे। सन्तों के निर्मल वचनों को सदा हृदय में धारण करें (अर्थात् उनका मन-पूर्वक ध्यान रखें)। ८१ हे राजा, यही पूर्ण पुरुषार्थ है। (नीति-) शास्त्र कहता है कि वही धन्य है, जो पर-नारी और पर-धन में मन नहीं लगाता हो। ८२ यह बहुत बड़ा आश्चर्य जान पड़ता है कि जो (स्वर्ग के) दिव्य फूलों की गन्ध ग्रहण करता हो, उस नन्दन-वन के भ्रमर को प्याज के फूल (की गन्ध का) चाव लग गया है। ८३ यह बड़ा अचरज लग रहा है कि जो देवों के भवन में कल्पवृक्ष के फूल में सो जाता हो, वह खदिरांगार पर सो जाना चाह रहा है। ८४ यह परम आश्चर्य जान पड़ता है कि जिसकी स्त्री बहुत सुन्दर है और जिस (की स्त्री) से (कम सुन्दर होने के कारण)

सुरतरु चिंतामणी। इच्छिलें तें पुरवी सदनीं। तो कोरान्न इच्छीत मनीं। नवल परम वाटे हें। ८६ अंतरीं जाणूनि यथार्थ। अन्यथा बळें प्रतिपादीत। न करावें तें बळेंचि करीत। तरी अनर्थ जवळी आला। ८७ मी जाणता सर्वज्ञ। ऐसा पोटीं वाहे अभिमान। शतमूर्खाहूनि न्यून। कर्म आचरे बळेंचि। ८८ याचिलागीं लंकेश्वरा। कामासी कदा नेदीं थारा। कामासंगें थोरथोरां। अनर्थीं पूर्वीं पाडिलें। ८९ तुमचा स्वामी त्रिनेत्र। त्याचा शत्रु काम अपवित्र। तो तुम्हीं केला मित्र। तरी उमावर क्षोभला। ९० स्मरारिमित्र रामचंद्र। त्यासीं सख्य करा साचार। मग तो संतोषूनि कर्पूरगौर। अक्षयी पद देईल। ९१ सीता परम पतिव्रता। हे रामापासींच बरी गुणभरिता। कलहकल्लोळसरिता। आणिकांचे गृहीं

आठों नायिकाएँ * लज्जित होती हैं, वह पुरुष किसी दूसरी स्त्री का आलिंगन करना चाह रहा है। ८५ यह परम आश्चर्य जान पड़ता है कि कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि (नामक रत्न) जिसके लिए घर में चाहे उसकी सम्पूर्ति कराते हैं, वह मन में रूखा-सूखा अन्न चाह रहा है। ८६ मन से यथार्थ जानने पर भी जो बलात् अन्यथा (विपरीत) प्रतिपादित कर रहा हो और जो नहीं करें उसे हठपूर्वक ही कर रहा हो, उसका विनाश निकट आ गया है। ८७ वह मन में अभिमान (वहन) कर रहा हो कि मैं चतुर तथा सर्वज्ञ हूँ और शतमूर्ख से भी हीन कर्म का हठपूर्वक ही आचरण कर रहा हो; (समझिए) कि उसका विनाश निकट आ गया है। ८८ हे लंकेश्वर, इसीलिए काम (-विकार) को कभी भी आश्रय न दें। पूर्वकाल में काम की संगति ने बड़े-बड़ों को संकट में डाल दिया है। ८९ शिवजी तुम्हारे स्वामी हैं (और) अपवित्र काम (का अधिष्ठाता मदन) उनका शत्रु है। (परन्तु) तुमने उसे मित्र बनाया, इसलिए शिवजी (तुमपर) क्षुब्ध हुए हैं। ९० (अब) स्मरारि (शिवजी) के मित्र हैं श्रीरामचन्द्र। तुम सचमुच उनसे मित्रता करना। फिर कर्पूर-गौर शिवजी सन्तुष्ट होकर तुम्हें अक्षय पद प्रदान करेंगे। ९१ सीता परम पवित्र है। वह गुण-सम्पन्न (स्त्री) श्रीराम के पास ही भली है-- वह तो दूसरों के घर में कलह रूपी तरंगों से भरी-पूरी नदी है। ९२ यह

---

* टिप्पणी : आठ नायिकाएँ— ऊर्वशी, मेनका, रम्भा, पूर्वचिती, स्वयम्प्रभा, मिश्रकेशी, जनवल्लभा और घृताची (नामक इन्द्र की आठ नायिकाएँ मानी जाती हैं। इस सन्दर्भ में इन्हीं को यहाँ गिनाना उचित है। इनके अतिरिक्त कृष्ण की भी आठ नायिकाएँ कही जाती हैं।)

हे । ९२ हे काळानळाची तीव्र ज्वाळा । क्षणें जाळील ब्रह्माण्ड-माळा । लंकेसी आणितां क्षय कुळा । करील आमुच्या निर्धारें । ९३ सहस्रार्जुनें नेऊन बळें । राया तुम्हां बंदीं रक्षिलें । त्यास भृगुपतीनें मारिलें । त्यासही जिंकिलें राघवें । ९४ ऐसा बळिया रघुनंदन । जेणें जळीं तारिले पाषाण । तरी त्यासीं सख्य करून । आपणाधीन करावा । ९५ हिरण्यकश्यपा नाटोपे हरी । प्रल्हाद जन्मला त्याचे उदरीं । तेणें सख्य करून मुरारी । आपणाधीन पैं केला । ९६ चिरंजीव करूनि कुळ-वल्ली । जगीं कीर्ति वाढविली । तैसा राम सखा ये काळीं । करून वाढवा सत्कीर्ति । ९७ तुम्हांस धरिलें ज्या वाळीनें । तो जेणें निवटिला एक बाणें । त्यासीं आतां सख्य करणें । मनीं धरूनि हे गोष्टी । ९८ भक्तिवेगळा रघुनाथ । तुम्हांस वश नव्हे यथार्थ । सीता देऊन सीताकान्त । आपणाधीन करावा । ९९ ज्यांहीं पुरुषार्थ करूनी । सुरांचे मुकुट पाडिले धरणीं । ते राक्षस पाडिले रणीं । कोटचनुकोटी पाहें पां । १०० महाबळी भक्त-

---

(मानो) कालरूपी अग्नि की ज्वाला है, (जो) क्षण में ब्रह्माण्ड-माला को जला डालेगी । उसे लंका में लाने पर हमारे कुल का निश्चय ही क्षय करेगी । ९३ हे राजा, तुम्हें बलपूर्वक ले जाकर सहस्रार्जुन कार्त-वीर्य ने बन्दी-गृह में डाल दिया था, उसे (जिस) भृगु-कुल-पति परशुराम ने मार डाला, उसी को भी राघव राम ने जीत लिया था । ९४ जिन्होंने जल पर पाषाणों को तैरा दिया, वे रघुनन्दन इस प्रकार बलवान हैं । अतः उनके साथ मित्रता करके उन्हें अपने वश कर लेना । ९५ हिरण्य-कशपु (तक) श्रीहरि को (रोककर अपने) वश नहीं कर सका, (जबकि) प्रह्लाद उससे उत्पन्न हुआ था, उसने भगवान मुरारि से सख्य करके उसे अपने वश कर लिया । ९६ उसने अपने कुलरूपी बेल को चिरजीवी करके जगत् में अपनी कीर्ति की वृद्धि की । उसी प्रकार इस समय राम को सखा बनाकर अपनी सत्कीर्ति को बढ़ा लेना । ९७ जिस बाली ने तुम्हें पकड़ लिया था, उसे जिसने एक बाण से (मारकर) नष्ट कर डाला, उससे इस बात को ध्यान में रखते हुए अब सख्य करना । ९८ बिना भक्ति के रघुनाथ तुम्हें वस्तुतः वश नहीं हो जाएँगे । इसलिए सीता को (लौटा) देकर सीता-कान्त को अपने वश में कर लेना । ९९ देखो, जिन्होंने साहस करके देवों के मुकुटों को धरती पर गिरा डाला, उन करोड़ों-करोड़ों राक्षसों को रण में (श्रीराम ने) गिरा डाला है । १००

राज परम । तेणें वश केला पुरुषोत्तम । तैसाच तुम्हीं श्रीराम । आपणाधीन करावा । १ यावरी म्हणे दशकंधर । प्रिये बोलसी सारांशोत्तर । परी मी पुरुषार्थी असुरेश्वर । राम मित्र कदा न करीं । २ आतां जाऊन समरांगणीं । नर वानर आटीन रणीं । तेव्हां तूं ऐकशील कर्णीं । पुरुषार्थ माझा कैसा तो । ३ कैलास हालविला बळें । बंदीस सकळ देव घातले । आतां पाहें शिरकमळें । शत्रूंचीं आजि आणीन । ४ मयजा म्हणे जी उदारा । बळेंच अनर्थ आणितां घरा । हिरा सांडोनियां गारा । संग्रहीतां कासया । ५ कल्पवृक्ष उपडून । कां वाढवितां कंटकवन । राजहंस दवडून । दिवाभीतें कां पाळावीं । ६ सुधारस सांडोनि देख । कांजी पितां काय सार्थक । सुरभि दवडूनि सुरेख । अजा कासया पाळावी । ७ वृंदावन दिसे सुंदर वहिलें । परी काळकूट आंत भरलें । तरी तें न सेविजे कदा काळें । विवेकियानें सहसाही । ८ फणसफळा-

---

महाबलवान बलिराजा परम श्रेष्ठ भक्त था । उसने पुरुषोत्तम भगवान को अपने वश में कर लिया । वैसे ही तुम श्रीराम को अपने वश में कर लेना ।' १०१

इसपर रावण ने कहा-- 'हे प्रिये, तुम सत्यांश से युक्त बात तो कह रही हो; (फिर भी) मैं पुरुषार्थी असुरेश्वर राम को कभी भी मित्र नहीं बना लूँगा । २ अब समरांगण में जाकर मैं युद्ध में नरों और वानरों को नष्ट कर डालूँगा । तब तुम अपने कानों से सुनोगी कि मेरा पराक्रम कैसा है । ३ (मैंने) कैलास पर्वत को अपने बल से हिला डाला, समस्त देवों को बन्दी-गृह में डाल दिया । अब देखो, मैं शत्रुओं के मस्तक-कमलों को (काटकर) आज (यहाँ) ले आऊँगा ।' ४ (यह सुनकर) मय-कन्या (मन्दोदरी) बोली, 'अहो उदार (पुरुष), तुम हठात् संकट को घर में ला रहे हो । हीरे को छोड़कर चकमकों का संग्रह क्यों कर रहे हो हो । ५ कल्पवृक्ष को उखाड़कर कण्टक-वन (कँटीले पेड़-पौधों के वन) को क्यों बढ़ा रहे हो ? राजहंसों को भगाकर उल्लुओं को क्यों पाल रहे हो । ६ देखो, अमृतरस को छोड़कर माँड पीने में क्या सार्थकता है ? सुन्दर कामधेनु को भगाकर बकरी को किसलिए पालें ? ७ इंद्रायन (का फल) सचमुच सुन्दर दिखायी देता है, परन्तु अन्दर कालकूट (विष) भरा होता है । इसलिए विवेकवान (पुरुष) किसी भी समय उसका हठात् सेवन न करे । ८ धतूरे का फल पूर्णतः कटहल के समान दिखायी

समान । कनकफळ दिसे पूर्ण । परी तें भुलीस कारण । विवेकियानें ओळखावें । ९ सर्पमस्तकींचा मणी । घेऊं जातां प्राणहानी । तैसी श्रीरामाची राणी । समूळ कुळ निर्दाळील । ११० मग बोले लंकापती । तमकूपीं पडेल गभस्ती । मृगजळीं बुडेल अगस्ती । कल्पांतींही घडेना । ११ क्रोधें खवळला मृगनायक । त्यासी केवीं मारील जंबुक । वडवानळासी मशक । विझवी घृत घेऊनियां । १२ तरी आतां वल्लभे आपण । गृहाप्रती जावें उठोन । स्वस्थ असों द्यावें मन । चिंता कांहीं न करावी । १३ मंदोदरीचीं सारवचनें । जीं विवेकनभींचीं भगणें । सुबुद्धिसागरींचीं रत्नें । परी तीं रावणें उपेक्षिलीं । १४ कमळसुवास परम सुंदर । परी तो काय जाणे दर्दुर । मुक्ताफळांचा आहार । बक काय घेऊं जाणे । १५ कस्तूरीचा अत्यंत सुवास । परी काय सेवूं जाणे वायस । तत्त्वविचार मद्यपियास । काय व्यर्थ सांगून । १६

देता है, परन्तु विवेकवान मनुष्य यह जान ले कि वह अचेतपन का कारण है । ९ सर्प के मस्तक पर की मनि को ले जाने में निश्चय ही प्राण-हानि हो जाती है । उसी प्रकार श्रीराम की यह रानी (सीता तुम्हारे द्वारा अपहृत हो जाने से) कुल का मूल-सहित निर्दालन करेगी । ' ११० तब लंकापति रावण बोला-- ' यह तो कल्पान्त (तक) में नहीं घटित होगा कि अंधकार भरे कुएँ में सूर्य गिर (कर नष्ट हो) जाएगा, अगस्त्य ऋषि मृग-जल में डूब जाएगा । (अर्थात् मैं सीता को लौटाते हुए राम से कदापि मित्रता नहीं करूँगा ।) ११ मृगेंद्र (सिंह) क्रोध से क्षुब्ध हो जाता हो, तो उसे सियार कैसे मार पाएगा ? घी लेकर मच्छड़ वाड़वाग्नि को (कैसे) बुझा पाएगा । १२ इसलिए, हे वल्लभा, तुम उठकर घर जाना, मन को शान्त रखना (और) कोई चिन्ता न करना । ' १३ मन्दोदरी के वे सार-गर्भित वचन (मानो) विवेकरूपी आकाश के तारे (ही) थे, सुबुद्धिरूपी सागर में उत्पन्न रत्न (ही) थे । परन्तु रावण ने उनकी उपेक्षा की । १४ कमल की सुगन्ध परम सुन्दर होती है, फिर भी मेंढक उसे क्या (कैसे) जाने ? क्या बगुला (राजहंस की भाँति) मोतियों का आहार ग्रहण करना जानता है ? १५ कस्तूरी की सुगन्ध बहुत (सुन्दर) होती है, परन्तु क्या कौआ उसका सेवन करना जानता है ? मद्यपी को (आत्म-) तत्त्व सम्बन्धी विचार व्यर्थ ही कहने से क्या होता है ? १६ रत्नों को ले जाकर जन्मान्ध व्यक्ति के सामने

जन्मान्धापुढें नेऊन । व्यर्थ काय रत्नें ठेवून । कीं उत्तम सुस्वर गायन । बधिरापुढें व्यर्थ जैसें । १७ पतिव्रतेचे धर्म सकळ । जारिणीस काय सांगोनि फळ । धर्मशास्त्रश्रवण रसाळ । वाटपाड्यासी कायसें । १८ तैसीं मयजेचीं उत्तरें । उपेक्षिलीं पौलस्तिपुत्रें । मग ते पतिव्रता त्वरें । निजगृहासी चालिली । १९ चित्तीं झोंबला चिताग्न । गोड न वाटे भोजन शयन । भूषणें भोग विलास संपूर्ण । वोसंडून टाकीत । १२० असो संग्राम-संकेतभेरी । परम धडकल्या ते अवसरीं । दशकंठ सहपरि-वारीं । युद्धालागीं निघाला । २१ सर्वे प्रधान आणि कुमर । अवघा लंकेतील दळभार । निघतां जाहला अपार । सेनासमुद्र ते काळीं । २२ लंकेचीं महाद्वारें । तीं उघडिलीं एकसरें । दळ चालिलें थोर गजरें । जेवीं प्रळयीं समुद्र फुटे । २३ पायदळ निघालें अपार । पर्वतासमान प्रचंड वीर । कांसा घातल्या विचित्र । अभेद्यकवचें अंगीं ब्रीदें । २४ आपादमस्तकपर्यंत । खेटकें विशाळ झळकत ।

रखने से क्या होगा ? अथवा बहरे के सामने सुरीला गायन जैसे व्यर्थ होता है, वैसे ही मन्दोदरी द्वारा रावण को सदुपदेश देना व्यर्थ हो गया । १७ जारिणी से पतिव्रता के समस्त धर्म कहने पर क्या फल (प्राप्त) होगा । बटमार को धर्मशास्त्र का मधुर श्रवण करने से क्या (लाभ) होगा । १८ उसी प्रकार मयकन्या मन्दोदरी के (सार-गर्भित) वचनों की रावण ने उपेक्षा की । तब वह पतिव्रता नारी झट से अपने घर की ओर चल दी । १९ उसके मन में चिन्ता रूपी अग्नि ज़ोर से चिपक गयी । उसे भोजन और शयन अच्छा नहीं लग रहा था । उसने समस्त आभूषणों तथा भोग-विलास का त्याग कर दिया । १२०

अस्तु । युद्ध (के आरम्भ) सम्बन्धी संकेत करनेवाले नगाड़े उस समय बहुत धड़धड़ा उठे, तो दशानन ने सदलबल युद्ध के लिए प्रस्थान किया । १२१ उस समय सब मंत्री और राजपुत्र, लंका का समस्त सेना-दल (मिलकर) अपार सेना-सागर (उमड़ता हुआ) चल पड़ा । २२ लंका के महाद्वार एक साथ ही खुल गये । बड़े गर्जन के साथ सेना-दल चल रहा था— जैसे प्रलय (-काल) में समुद्र उमड़ उठा हो । २३ पदाति सेना-दल निकलकर चला । उसमें एक-एक वीर पर्वत के समान प्रचण्ड था । उन्होंने विचित्र रूप से लाँग को पीछे ले जाकर खोंस लिया था— अर्थात् वे कमर कसकर सज्ज हो गये थे । उनके शरीर पर अभेद्य कवच तथा (नैपुण्य-सूचक) पदक थे । २४ पाँव से लेकर सिर तक

असिलता शक्ति कुंत बहुत । शूल तोमर आयुधें । २५ लोहार्गळा खड्‌गें मुद्‌गल । कोयते कांबिटें गदा विशाळ । फरश यमदंष्ट्रा भिंडिमाळ । घेऊनि चपळ धांवती । २६ तयांपाठीं विचित्र । लोटले तुरंगांचे भार । कीं तें अश्वरत्नांचें भांडार । एकसरें उघडिलें । २७ असंख्य अश्व श्यामसुंदर । पुच्छ पिंवळे आरक्त खुर । डोळे ताम्रवर्ण सुंदर । तीन्ही लोकीं गति जयां । २८ सूर्यरथीं चिंतामणी । त्याचि वेगें क्रमिती अवनी । एक नीळ पिंवळे हिंसती गगनीं । प्रतिशब्द उठताती । २९ एक पारवे परम चपळ । एक माणिकाऐसे तेजाळ । सांवळे निळे चपळ । चांदणें पडे अंगतेजें । १३० एक सिंहमुख सुंदर । चकोर चंद्रवर्ण सुकुमार । क्षीर केशर कुंकुम शेंदूर । वर्णांचे एक धांवती । ३१ जांबुळवर्ण परम चपळ । हे जंबुद्वीपींच निपजती सकळ । क्रौंचद्वीपींचे श्वेत वेगाळ । शशिवर्णा हंसत ते । ३२ शाल्मलिद्वीपींचे सुकुमार । शाकलद्वीपींचे

बड़े-बड़े शस्त्र चमक रहे थे । बहुत-सी तलवारें, शक्तियाँ, भाले, शूल, तोमर नामक आयुध, लोहे की अगरियाँ, खड्‌ग, मुद्‌गल, हँसिये, धनुष, बड़ी-बड़ी गदाएँ, परशु, यमदंष्ट्राएँ, गोफन लेकर वे तेजी से दौड़ रहे थे । २५-२६ उनके पीछे अद्‌भुत घोड़ों के दल तेजी से आगे बढ़ रहे थे । अथवा (मानो) अश्वरूपी रत्नों का वह भंडार एक साथ खुल गया हो । २७ (उस दल में) अनगिनत श्यामवर्णीय सुन्दर घोड़े थे । उनके पुच्छे पीले और खुर लाल थे । आँखें सुन्दर लालवर्ण की थीं । उन (घोड़ों) को (मानो) तीनों लोकों में गति थी । २८ जिस गति से सूर्य रथ में जुता हुआ चिन्तामणि (नामक विशिष्ट जाति का घोड़ा) चलता है, उसी वेग से पृथ्वी पर (अन्तर को काटते हुए) वे चलते थे । कोई-कोई नीले और पीले रंग के थे, जो ऐसे हिनहिनाते थे कि उसकी प्रतिध्वनि आकाश में फैलती थी । २९ कोई-कोई भूरे खाकी रंग के थे, जो परम चपल थे । कोई-कोई मानिक जैसे तेजस्वी थे । कुछ साँवले और नीले रंग के थे, जो चपल थे । उनके अंग की कान्ति से (मानो) चाँदनी फैलती थी । १३० कोई-कोई सुन्दर सिंहमुखी थे, वे चकोर तथा चन्द्र के-से वर्ण के तथा अति कोमल थे । कोई-कोई दुधिया, केसरिया, कुंकुमी तथा सिन्दूरी वर्ण के (घोड़े) दौड़ रहे थे । ३१ कुछ जामुनी रंग के घोड़े परम चपल थे— ये सब जम्बू द्वीप में ही उत्पन्न होते हैं । क्रौंच द्वीप के घोड़े धवल तथा वेगवान थे । ३२ शाल्मली द्वीप के घोड़े सुकोमल

चित्रविचित्र । नागद्वीपींचे परिकर । कुशद्वीपींचे सबळ पैं । ३३ पुष्करींचे श्यामकर्ण । ते उदकावरी जाती जैसे पवन । जबडा रुंद आंखूड मान । ते बदकश्याम निघाले । ३४ रणांगणीं परमधीर । ते आरबी वारू सुंदर । कपिचंचळ सुकुमार । समरीं धीर धरिती जे । ३५ खगेश्वरासमान गती । पक्ष्यांऐसे अंतरिक्षीं उडती । खुणावितां प्रवेशती । परदळीं पवनासारिखे । ३६ जैसीं कां अलातचक्रें । तैसे राऊत फिरती त्वरें । असिलता झळकती एकसरें । चपळेऐशा तळपती । ३७ अश्व खड्ग क्षेत्री पूर्ण । तिहींचें होय एक मन । रावणाचें तैसेंचि सैन्य पूर्ण । असंख्य वारू चालिले । ३८ अश्वपंजरीं पाखरिले बहुत । अलंकार घातले रत्नखचित । विशाळमुक्तघोंस झळकत । जाती नाचत रणभूमीं । ३९ नेपुरें गर्जती चरणीं । पुढील खूर न लागती अवनीं । रत्नखचित मोहाळी वदनीं । झळकती चपळे-

---

थे, तो शाकलद्वीप के चित्र-विचित्र (वर्ण के) थे । नागद्वीप के (घोड़े) सुन्दर थे, तो कुशद्वीप के बलवान थे । ३३ (उधर जो) पुष्करद्वीप के श्यामकर्ण अश्व थे, वे पानी पर से पवन जैसे चले जाते थे । उनके जबड़े चौड़े थे, तो गरदन कम लंबी थी । ऐसे वे शुभ फलदायी घोड़े निकल पड़े । (तात्पर्य यह कि रावण के अश्व-दल में सातों द्वीपों के घोड़े समाविष्ट थे ।) ३४ वे सुन्दर अरबी घोड़े, जो रणांगण में परम धीर होते हैं, बन्दरों के समान चपल और सुकोमल थे । वे युद्ध में धीरज धारण करते थे । ३५ उन (घोड़ों) की गति पक्षिराज गरुड़ की गति के समान थी । वे पक्षियों की भाँति (मानो) आकाश में उड़ सकते थे और संकेत करने पर पवन की भाँति पर-(अर्थात् शत्रु की) सेना में प्रवेश कर सकते थे । ३६ जैसे अलात-चक्र चलते हैं, वैसे ही वेगपूर्वक वे घुड़सवार घूम रहे थे । तलवारें एक साथ ही चमकती थीं—वे बिजली-सी दमक रही थीं । ३७ अश्व, खड्ग और (घुड़सवार) योद्धा तीनों एक-मन (एकात्म) हो गये थे । रावण की समस्त सेना वैसी ही थी । (इस प्रकार) असंख्य घोड़े चल रहे थे । ३८ उनके वक्षस्थल बहुत फैले हुए अर्थात् बहुत चौड़े थे । उसपर रत्नों से जड़े अलंकार पहनाये हुए थे । मोतियों के बड़े-बड़े गुच्छे चमक रहे थे । (इस प्रकार से सजे हुए) वे घोड़े नाचते हुए रण-भूमि की ओर जा रहे थे । ३९ उनके पाँवों में (पहनाये हुए) नूपुर गरज रहे थे । (चलते समय) उनके आगे के खुर पृथ्वी (भूमि) को नहीं छू रहे थे । मुँह में रत्न-

समान। १४० वज्रकवचेंसीं बळिवंत। वरी आरूढले चपळ राऊत। त्यांचे पाठीसीं उन्मत्त। गजभार खिकाटती। ४१ जैसे ऐरावतीचे सुत। चपळ श्वेत आणि चौदंत। झुली घातल्या रत्नजडित। पृष्ठ उदरीं आंवळिले। ४२ रत्नजडित चंवरडोल। ध्वज भेदिती निराळ। घंटा वाजती सबळ। चामरें थोर रुळती पैं। ४३ वरी गज-आकर्षक बैसले। सुपर्ण-चंचुवत अंकुश करीं घेतले। संकेत दावितां चपळबळें। परचमूंत मिसळती। ४४ त्यांचे पाठीं दिव्य रथ। चपळेऐसीं चक्रें झळकत। वरी ध्वज गगनचुंबित। नानावर्णी तळपती। ४५ धनुष्यें शक्ती नाना शस्त्रें। रथावरी रचिलीं अपारें। कुशल सूत बैसले धुरे। वाग्दोरे हातीं धरूनियां। ४६ असो सुवेळपंथें अपार। चालिले चतुरंग दळभार। तेथें रणवाद्यें परम घोर। एकदांचि खोंकाती। ४७ शशिवदना भेरी धडकती। वाटे नादें उलेल जगती। शंख वाजतां दुमदुमती। दिशांचीं

जटित लगाम बिजली-सी चमक रही थी। १४० वज्र-से (कठिन) कवच पहने हुए बलवान तथा फुर्तीले सवार ऊपर आरूढ़ हो गये थे। उनके पीछे उन्मत्त हाथियों का दल चिंघाड़ रहा था। ४१ (वे हाथी) मानो ऐरावत के पुत्र थे, जो (उसी की भाँति) चपल, धवल तथा चार दाँतों से युक्त थे। उनपर रत्न-जटित झूलें बिछायी थीं और पीठ पेट के साथ (रस्सियों से) कसकर बँधी हुई थी। ४२ उनके चँवर रत्नों से जड़े हुए थे। उनके ध्वज (मानो) आकाश को भेद रहे थे। घंटे ज़ोर से बज रहे थे और बड़े-बड़े चामर झूल रहे थे। ४३ ऊपर महावत बैठे थे। वे हाथ में (पक्षी की) चोंच के आकारवाले स्वर्ण अंकुश लिये थे। संकेत करते ही वे फुर्ती और ज़ोर से पर-(शत्रु) सेना में मिल सकते थे। ४४ उनके पीछे दिव्य रथ थे। उन (रथों) के पहिये बिजली की भाँति चमक रहे थे। ऊपर गगन-चुम्बी ध्वज नाना रंगों में जगमगा रहे थे। ४५ उन रथों में अनगिनत धनुष्य, शक्तियाँ और नाना (प्रकार के) शस्त्र (सुचारु) ढंग से रखे हुए थे। धुराओं पर निपुण सारथी हाथों में लगाम पकड़े हुए बैठे थे। ४६

अस्तु। (इस प्रकार) रावण की चतुरंग (दलों से युक्त) अपार सेना सुवेल के मार्ग पर चल रही थी। वहाँ (उसमें) रण-वाद्य अति घोर ध्वनि से एक साथ बज रहे थे। ४७ चंद्राकार नगाड़े धड़धड़ा रहे थे, जान पड़ता था कि उस ध्वनि से पृथ्वी फट जाएगी। उस समय

उदरें तेधवां । ४८ ढोल गिडबिडी कैताळ । त्यांत सनया गर्जती रसाळ । शृंगें बुरंगें काहाळ । दौंडकीं दुटाळ वाजती । ४९ रामास दावी बिभीषण । आजि सकळ सेना घेऊन । युद्धासी आला जी रावण । पुत्रपौत्रांसहित पैं । १५० एक लक्ष पुत्र-संतती । सवा लक्ष पौत्रगणती । धन्य रावणाची संपत्ती । कपी पाहती आदरें । ५१ सकळ पुत्रप्रधानांचीं नामें । बिभीषण सांगे अनुक्रमें । दृष्टीं देखोन रघूत्तमें । आश्चर्य केलें ते समयीं । ५२ मध्यें रावणाचा रथ । प्रभेस न्यून सहस्र आदित्य । विरंचिहस्तें निर्मित । तो दिव्य अनुपम । ५३ त्या रथाचा जोडा दुजा रथ । नसे त्रिभुवनीं यथार्थ । त्यावरी मंदोदरीकांत । दिसे मंडित वस्त्राभरणीं । ५४ वरी त्राहाटिलीं दाही छत्रें । झळ-कती चामरें मित्रपत्रें । ऐसें देखोनि मित्रपुत्रें । द्विजें अधर रगडिले । ५५ शत्रूचें वैभव अगाध । देखोनि सुग्रीवा नावरे

शंखों के बजते ही दिशाओं के उदर दनदना उठ रहे थे । ४८ (वहाँ) ढोल, ‘ गिड़बिड़ी ’ नामक वाद्य, करताल बज रहे थे । उसमें शहनाइयाँ मधुर स्वर में गरज रही थीं । (साथ ही) सींग, बुरंगें (नामक वाद्य), छोटे ढोल, दौंडका तथा दुताल (नामक वाद्य) बज रहे थे । ४९ विभीषण ने (रावण की सेना) राम को दिखायी (और कहा)— ‘ अहो, आज समस्त सेना लेकर रावण अपने पुत्रों तथा पौत्रों (पोतों) सहित युद्ध के लिए आ गया है । १५० उसके एक लाख पुत्र (-सन्तान) हैं, पौत्र गिनती में सवा लाख । ’ रावण की वह (सन्तानरूपी) सम्पत्ति धन्य है, (जिसे) वानर आदर के साथ देखने लगे । ५१ (फिर) विभीषण ने समस्त पुत्रों और मंत्रियों के नाम क्रम से बताये । उन्हें अपनी आँखों से देखते हुए राम ने उस समय आश्चर्य अनुभव किया । ५२ बीच में रावण का रथ था, (जिसके सामने) कान्ति में सहस्र सूर्य (भी) कम (प्रतीत हो रहे) थे । वह दिव्य, अनुपम रथ ब्रह्मा के हाथों बनाया हुआ था । ५३ सचमुच उस रथ के जोड़ का कोई दूसरा रथ त्रिभुवन में नहीं था । उसपर (आरूढ़) रावण वस्त्रों और आभूषणों से शोभायमान था । ५४ ऊपर दसों छत्र फैले हुए थे; चामर और सूर्य-पत्र (आफ़ताबी) चमक रहे थे । ऐसा (यह) देखकर सूर्य-पुत्र सुग्रीव (मारे क्रोध के) दाँतों से ओंठ चबाये (दाँत पीस लिये) । ५५ शत्रु के अथाह वैभव को देखते हुए सुग्रीव से क्रोध को रोका नहीं जा रहा था । हाथी की ध्वनि सुनकर जिस प्रकार सिंह हुँकार भरता है, उस प्रकार सुग्रीव

क्रोध। ऐकोनि वारणाचा शब्द। जैसा मृगेंद्र हुंकारे। ५६ तृणपर्वत संघटतां जवळी। कैसा उगा राहे ज्वाळामाळी। मृगेंद्र दृष्टीं न्याहाळी। मग गज केवीं स्थिरावे। ५७ असो तैसा किष्किंधानाथ। धांवे घेऊन पर्वत। रावणावरी अकस्मात। परम आवेशें टाकिला। ५८ तों दशमुखें सोडोनि बाण। पिष्ट केला पर्वत जाण। सवेंच सोडिले दश बाण। सुग्रीव हृदयीं खिळियेला। ५९ क्रोधावला सूर्यसुत। सवेंचि उपडोनि विशाळ पर्वत। रावणावरी अकस्मात। गगनपंथें टाकिला। १६० तोही रावणें फोडिला। मग शतबाणीं सुग्रीव खिळिला। रक्त-धारा तये वेळां। भडभडां सूटल्या। ६१ मूर्च्छा येऊन तये क्षणीं। सुग्रीव स्वीकारूं पाहे धरणी। मग वानर अठरा अक्षौहिणी। एकदांचि उठावले। ६२ शिळा वृक्ष पाषाण। कपींनीं यांचा पाडिला पर्जन्य। परी तितुक्यांसी रावण। एकलाच पुरवला। ६३ जैसा पाखांडी कुतर्क घेतां। नावरेच बहु पंडितां। तेवीं सकळ कपी भिडतां। लंकानाथ न

ने हुँकार भर दी। ५६ घास की पर्वत-सी (बड़ी) राशि निकट होने पर अग्नि चुप कैसे रहेगी? (जहाँ) सिंह अपनी आँखों से निहार रहा हो, तो (वहाँ) हाथी ठहरकर कैसे आराम कर पाएगा। ५७

अस्तु। उस प्रकार (क्रुद्ध होते हुए) किष्किन्धापति सुग्रीव पर्वत लेकर दौड़ा और उसने सहसा बड़े आवेश के साथ रावण पर फेंक दिया। ५८ तो समझिए कि दशानन ने बाण छोड़कर उस पर्वत को चूर-चूर कर दिया और साथ ही दस बाण चलाते हुए सुग्रीव को हृदय (-स्थल) में कील डाला। ५९ तब सुग्रीव क्रुद्ध हो गया और साथ ही एक विशाल पर्वत को उखाड़कर आकाश मार्ग से रावण पर अकस्मात गिरा दिया। १६० रावण ने उसे भी फोड़ डाला। फिर सौ बाणों से सुग्रीव को जकड़ दिया। उस समय (सुग्रीव की देह से) रक्त की धाराएँ उमड़कर बहने लगीं। ६१ मूर्च्छा आने से उस क्षण सुग्रीव धरती पर गिरने जा रहा था; तब अठारह अक्षौहिणी वानर एक साथ ही उठ गये। ६२ उन कपियों ने शिलाओं, वृक्षों और पाषाणों की बौछार की, परन्तु उन सबके लिए रावण अकेला ही पर्याप्त सिद्ध हो गया। ६३ जैसे पाखंडी व्यक्ति कुतर्क का आश्रय लेने पर बहुत पंडितों द्वारा (तक) रोका ही नहीं जाता, वैसे ही समस्त (वानरों द्वारा रावण को वश में नहीं किया जा रहा था) कपियों के भिड़ जाने पर भी रावण उन्हें गिन

गणीच । ६४ असंख्यात सोडूनि शर । घायीं जर्जर केले वानर । तों थोर थोर कपीश्वर । उभे होते रामापाशीं । ६५ त्यांमाजी सात जण । धांवती जैसे पंचानन । शरभ गवय गंधमादन । मैंद कुमुद द्विविद । ६६ गवाक्ष सातवा वीर । पर्वत घेऊनि सत्वर । हांकें गर्जवीत अंबर । रावणावरी टाकिले । ६७ रावणें पर्वत फोडोनि समस्त । शरीं खिळिले वानर सप्त । भूमींसी पडले आक्रंदत । परम अनर्थ ओढवला । ६८ अनिवार दशमुखाचा मार । देखोनि पळती कपिभार । तें पाहून राम रणरंगधीर । चाप सत्वर चढवीतसे । ६९ तंव विनवी ऊर्मिलापती । माझे बाहु बहु स्फुरती । आज्ञा द्यावी मजप्रती । शिक्षा लावीन दशमुखा । १७० अवश्य म्हणे रघुनंदन । सौमित्रें सजोनियां बाण । जैसा उठे पंचानन । रावणासन्मुख लोटला । ७१ म्हणे रे तस्करा दशमुखा । बुद्धिहीना शतमूर्खा । आणूनियां जनककन्यका । कुळक्षय केला रे । ७२ कृतान्ताचे दाढेसी । सांपडलासी निश्चयेंसी । आतां कोणीकडे पळसी । जीव घेऊन

ही नहीं रहा था । ६४ उसने असंख्यात बाण चलाकर (उनके आघातों से) वानरों को जर्जर कर डाला । तब बड़े-बड़े वानर राम के पास खड़े थे । ६५ उनमें से ये सात जने सिंहों जैसे दौड़े— शरभ, गवय, गन्धमादन, मैंद, कुमुद, द्विविद और सातवाँ वीर था गवाक्ष । ६६ उन्होंने झट से पर्वत उठाकर चीत्कार से आकाश को गूँज डाला और (पर्वत) रावण पर फेंक दिये । ६७ (तब) रावण ने उन समस्त पर्वतों को फोड़कर सातों वानरों को बाणों से कील डाला । (फलस्वरूप) वे चीखते-चिल्लाते हुए भूमि पर गिर गये । (इस प्रकार) बहुत बड़ी आपत्ति आ गयी । ६८ रावण की अनिवार्य मार को देखकर कपि-समूह भाग गये । इसे देखते ही रणरंगधीर राम ने झट से धनुष को चढ़ाया । ६९ तब लक्ष्मण ने (उनसे) विनती की— 'मेरे बाहु बहुत फड़क रहे हैं— मुझे आज्ञा दीजिए, तो मैं रावण को दण्ड दूँगा ।' १७० राम ने कहा— 'अवश्य', तो लक्ष्मण बाणों को सज्ज करके, जिस प्रकार (हाथी को देखते ही) सिंह उठ जाता है, उस प्रकार रावण के सामने लपक गया । ७१ वह बोला— 'रे चोर, रे रावण, रे बुद्धिहीन, रे शतमूर्ख! तूने जनक-कन्या को (लंका में) लाकर (मानो) अपने कुल का क्षय किया है । ७२ तू निश्चय ही कृतान्त (यम) की दाढ़ों में फँस गया है। अब प्राणों को लेकर तू किस ओर लौटकर फिर से भाग रहा है । ७३

माघारा। ७३ ऐसें बोले लक्ष्मण। तों विशाळ पर्वत घेऊन। धांवे निराळोद्भवनंदन। द्विदशनेत्रावरी तेधवां। ७४ जैसी कडकडोनि पडे चपळा। तैसा पर्वत रावणावरी टाकिला। रावणें फोडोनि ते वेळां। पिष्ट केला अंतरिक्षीं। ७५ रथावरी चढला हनुमंत। रावणें झाडिली सबळ लाथ। मूर्च्छना सांवरून वायुसुत। उसनें घेता जाहला। ७६ रावणहृदयीं ते काळीं। कपीनें वज्रमुष्टी दिधली। रावणासी गिरकी आली। मूर्च्छा सांवरी सवेंचि। ७७ मग सबळ मुष्टिघात। मारुतीसी मारी लंकानाथ। तों विशाळ घेऊन पर्वत। नळ वानर धांविन्नला। ७८ पर्वत टाकिला रावणावरी। तेणें पिष्ट केला अंबरीं। नळ खिळिला पंचशरीं। हृदयावरी तेधवां। ७९ तों नळें केलें अद्‌भुत। मंत्र जपे ब्रह्मदत्त। कोटचनुकोटी नळ तेथ। प्रकट झाले तेधवां। १८० घेऊन पाषाण पर्वत। रावणावरी टाकिती समस्त। दोन्ही दळें झालीं विस्मित। सीतानाथ नवल करी। ८१ ऐसें जाहलें एक मुहूर्त। मग ब्रह्मास्त्र प्रेरी लंकानाथ। नळ मावळले समस्त। जेवीं नक्षत्रें

लक्ष्मण ने इस प्रकार कहा, त्यों उस समय हनुमान विशाल पर्वत लिये हुए रावण पर आक्रमण करने के हेतु दौड़ा। ७४ जिस प्रकार कड़कड़ाते हुए बिजली गिरती है, उसी प्रकार हनुमान ने रावण पर पर्वत गिरा दिया। तो रावण ने उस समय आकाश में उसे तोड़ते हुए पीस डाला। ७५ (तदनन्तर) हनुमान रथ पर चढ़ गया, तो रावण ने ज़ोर से लात मार दी, तो मूर्च्छा से सम्हालकर हनुमान ने (रावण से) बदला लिया। ७६ उस समय रावण के हृदय (-स्थल, सीने) पर उस वानर ने वज्र-सा घूंसा जमाया, तो रावण का सिर घूमने लगा, परन्तु उसने साथ ही मूर्च्छा को रोका। ७७ फिर रावण ने हनुमान के ज़ोर से घूँसा जमाया, तो विशाल पर्वत लिये हुए नल वानर (रावण की ओर) दौड़ा। ७८ उसने रावण पर पर्वत को गिरा डाला तो रावण ने उसे आकाश में चूर-चूर कर डाला और पांच बाणों से नल को हृदय (-स्थल) में कील डाला। ७९ त्यों नल ने एक चमत्कार कर लिया। उसने ब्रह्मा द्वारा दिये हुए मंत्र का जाप किया, तो उस समय करोड़ों-करोड़ों नल (-से वानर) वहाँ प्रकट हो गये। १८० वे समस्त नल पाषाण और पर्वत लेकर गिरा देते। (यह देखकर) दोनों (सेना) दल विस्मित हो गये और श्रीराम ने (भी) आश्चर्य अनुभव किया। ८१ इस प्रकार एक मुहूर्त भर होता

सूर्योदयीं । ८२ कीं पारदाची रवा फुटली । एकत्र येऊनि कोठी जाहली । मुख्य नळ ते वेळीं । रणांगणीं उरलासे । ८३ असो सिंहनादें गर्जोन । पुढें धांवे लक्ष्मण । तयाप्रती रावण । बोलता जाहला अति गर्वें । ८४ म्हणे तूं मनुष्याचा कुमर । अजून माथांचा ओला जार । तुवां संग्राम तरी निर्धार । कोठें केला सांग पां । ८५ सौमित्र म्हणे रे मशका । माझा संग्राम पाहें कीटका । तुझें आयुष्य सरलें मूर्खा । लंका दिधली बिभीषणासी । ८६ सिंहदरीतें आला कुंजर । तो केवीं जिवंत जाईल बाहेर । सुपर्णें धरिला फणिवर । तो केवीं प्रवेशे वारुळीं । ८७ भुजंगें धरिला मूषक दांतीं । तो कैसा सुटेल पुढती । समुद्रतीरीं अगस्ती । उगाचि कैसा बैसेल । ८८ तृतीयनेत्रींचा प्रळयाग्न । चालिला रतिपतीस लक्षून । मग राहील विझोन । हें काळत्रयीं घडेना । ८९ तैसा श्रीराम

रहा । फिर रावण ने ब्रह्मास्त्र प्रेरित किया, तो समस्त नलों का उस प्रकार लोप हो गया, जिस प्रकार सूर्योदय के समय नक्षत्र लुप्त हो जाते हैं । ८२ अथवा पारे के सूक्ष्म कण (अलग-अलग होकर) बिखर गये हों, फिर एकत्रित हो जाने पर उनसे फिर चकत्ता बन गया हो, उसी प्रकार (मंत्र से उत्पन्न नल सिमटकर केवल) एक मुख्य नल उस समय रणांगण में शेष रह गया । १८३

अस्तु । सिंहनाद करके गरजते हुए लक्ष्मण आगे दौड़ा, तो रावण बड़े गर्व से बोला । ८४ उसने कहा— ' तू तो मनुष्य का पुत्र है । अब तक तू बालबुद्धि है, अर्थात् तू प्रौढ़ता को प्राप्त नहीं हुआ है। कह दे, तूने सचमुच युद्ध भी कहाँ किया है ? ' ८५ (इसपर) लक्ष्मण ने कहा— ' रे मच्छड़, रे कीड़े, मेरे युद्ध (-कौशल) को देख ले । रे मूर्ख, तेरी आयु समाप्त हो गयी है । (अतः) हमने विभीषण को लंका दे दी है । ८६ सिंह की घाटी में (यदि) हाथी आ गया हो, तो वह कैसे जीवित बाहर जाएगा ? गरुड़ ने सर्प को (यदि) पकड़ लिया हो, तो वह (छूटकर) बाँबी में कैसे प्रवेश कर पाएगा ? ८७ (यदि) साँप ने अपने दाँतों में चूहे को पकड़ लिया हो, तो वह फिर कैसे छूट पाएगा ? अगस्त्य ऋषि समुद्र तट पर (समुद्र का जल प्राशन न करके) कैसे चुप बैठेगा ? ८८ शिवजी के तीसरे नेत्र से उत्पन्न प्रलय मचानेवाली अग्नि (यदि) रति-पति कामदेव को लक्ष्य करके जा रही हो, वह फिर बुझकर रह जाए— यह तो त्रिकाल में नहीं हो सकता । ८९ उस प्रकार यह त्रिकाल में

लावण्यराशी । चालोन आला लंकेसी । तूं पुत्रपौत्रें नांदसी । हें काळत्रयीं घडेना । १९० ऐसें बोलोन लक्ष्मण । सोडी बाणां-पाठीं बाण । शब्दामागें शब्द पूर्ण । वदनींहून जेवीं निघती पैं । ९१ चपळ लेखकापासाव एकसरें । निघती अक्षरां-पासाव अक्षरें । तैणे बाण सुमित्राकुमरें । रावणावरी सोडिले । ९२ रावणाचे अंगीं ते वेळे । बळें सपक्ष बाण रुतले । पांच बाण रावणें सोडिले । सौमित्रावरी तेधवां । ९३ जैशा पंच विद्युल्लता । तैसे सौमित्रें देखिले शर येतां । मग ते वरचेवरीच तत्त्वतां । निजशरें पिष्ट केले । ९४ परम क्रोधें दशमौळी । ब्रह्मशक्ति बाहेर काढिली । अभिमंत्रोन सोडिली । राघवानुजा लक्षूनियां । ९५ ते अनिवार शक्ति पूर्ण । सुमित्रा-सुतें सोडिला बाण । अर्ध टाकिली खंडोन । अर्ध हृदयीं बैसली । ९६ तेणें निचेष्टित सौमित्र पडिला । श्वासोछ्वास बंद जाहला । ऐसें देखोनि रावण धांविन्नला । रथाखालीं उतरूनियां । ९७ निचेष्टित असतां सौमित्र । वरी हाणी

नहीं हो सकता कि लावण्य-राशि श्रीराम चलते हुए लंका आ गये हैं, और तू पुत्र-पौत्रों सहित सकुशल (वहाँ) रह पाओगे । १९० इस प्रकार बोलकर लक्ष्मण बाण के पीछे बाण उस प्रकार छोड़ने लगा, जिस प्रकार (वक्ता के) मुख से एक के पीछे एक पूर्ण शब्द निःसृत हो जाते हैं । ९१ जिस प्रकार लेखक से चपलता-पूर्वक अर्थात् द्रुतगति से अक्षर के साथ जुड़े हुए अक्षर निकल पड़ते हैं, उस प्रकार सुमित्रा-कुमार लक्ष्मण ने रावण पर बाण छोड़ दिये । ९२ उस समय वे बाण रावण के शरीर में पक्ष-सहित जोर से धँस गये, फिर भी रावण ने तब लक्ष्मण की ओर पाँच बाण चला दिये । ९३ लक्ष्मण ने उन बाणों को आते हुए वैसा ही देखा जैसे (मानो) पाँच विद्युल्लताएँ आ रही हों । फिर उसने अपने बाण से उन्हें ऊपर ही ऊपर सचमुच पीस डाला । ९४ (तदनन्तर) दशानन ने अत्य-धिक क्रोध से ब्रह्मशक्ति बाहर निकाली और उसे अभिमंत्रित कर उसने लक्ष्मण को लक्ष्य कर छोड़ दिया । ९५ वह शक्ति पूर्णतः अनिवार्य थी । लक्ष्मण ने (उसे रोकने के लिए) बाण चलाया । उस बाण ने उसके अर्ध भाग को तो काट डाला, परन्तु उसका शेष अर्ध भाग (लक्ष्मण के) हृदय-स्थल में गड़ बैठा । ९६ (फलस्वरूप) लक्ष्मण निश्चेष्ट हो गिर पड़ा । उसका श्वासोच्छ्वास (रुककर) बन्द हो गया । ऐसा देखकर रावण रथ में से नीचे उतरकर दौड़ा । ९७ लक्ष्मण के अचेत रहने पर

मुष्टिप्रहार। जैसे निजल्यावरी तस्कर। बहुत घाय घालिती। ९८ तें मारुतीनें देखोन डोळां। कृतान्तापरी धांविन्नला। लत्ताप्रहार ते वेळां। सबळ दिधला रावणा। ९९ पादरक्षेचे घायीं देख। लोक ताडिती वृश्चिक। कीं दंदशूकाचें मुख। पाषाणें चूर्ण करिती पैं। २०० तैसें लत्ताप्रहारेंकरून। असुर-हृदय केलें चूर्ण। रक्त ओकीत रावण। रथावर गेला आपुल्या। १ तों सावध जाहला लक्ष्मण। वेगें सोडी निर्वाण बाण। राव-णाचें हृदय फोडून। पलीकडे शर गेला। २ व्यथा सौमित्राची देखोन। क्षोभे जैसा प्रळयाग्न। अनुज पाठीसीं घालून। पुढें जाहला रघुवीर। ३ रावण आरूढला रथावरी। जैसा जलद नगशिखरीं। ऐसा देखतां रावणारी। काय करिता जाहला। ४ हनुमंतस्कंधावरी रघुवीर। उभा ठाके रावणासमोर। जैसा उदयाचळीं दिनकर। किंवा श्रीधर गरुडावरी। ५ ऐरावतारूढ शचीनायक। कीं नंदीवरी मदनान्तक। तयापरी अयोध्यानायक। हनुमंतस्कंधीं शोभला। ६ क्रोधायमान रघुनंदन। प्रथम सोडी

भी उसने उसपर उस प्रकार मुष्टि-प्रहार किया, अर्थात् घूँसे जमा दिये, जिस प्रकार (घर के लोगों के) सो जाने पर चोर बहुत प्रहार करते हैं। ९८ उसे अपनी आँखों से देखकर हनुमान कृतान्त-यम सा दौड़ा और उसने उस समय रावण पर बल-पूर्वक लत्ता-प्रहार किये। ९९ देखिए, पदत्राण अर्थात् जूतों के आघात से लोग बिच्छू को ठोंकते हैं, अथवा पाषाणों से सर्प के मुख को चूर-चूर कर डालते हैं। २०० उस प्रकार हनुमान ने लातों के आघातों से उस राक्षस के हृदय (-स्थल) को चूर्ण कर डाला, तो रक्त की कै करते हुए वह अपने रथ पर चला गया (जा बैठा)। २०१ तब लक्ष्मण सचेत हो गया, तो उसने वेग-पूर्वक निर्वाण (अमोघ) बाण छोड़ दिया। वह बाण रावण के हृदय को भेदकर उस पार चला गया। २ लक्ष्मण की व्यथा को देखकर राम प्रलयाग्नि जैसे क्षुब्ध हो गये और अपने छोटे भाई को पीछे रखकर वे आगे हो गये। ३ रावण रथ पर वैसे ही आरूढ़ हो गया, जैसे मेघ पर्वत-शिखर पर गया हो। ऐसा देखने पर रावण के शत्रु—राम ने क्या किया ? ४ रावण के सामने रघुवीर राम हनुमान के कंधे पर खड़े हो गये। जिस प्रकार उदयाचल पर सूर्य, अथवा गरुड़ पर विष्णु, अथवा ऐरावत पर इन्द्र, अथवा नन्दी पर शिवजी शोभायमान होते हैं, उस प्रकार अयोध्यापति श्रीराम हनुमान के कंधे पर शोभायमान थे। २०५-६ क्रोधायमान रघुनन्दन ने पहले एक बाण छोड़ा और रावण के दसों छत्रों

एक बाण। रावणाचीं दाही छत्रें छेदून। अकस्मात पाडिलीं। ७ मित्रपत्रें आणि चामरें। सर्वेचि छेदिलीं दुज्या शरें। मुकुट भूमीसी एकसरें। चूर करून पाडिले। ८ सर्वेच भाते दहाही धनुष्यें। छेदोनि पाडिलीं अयोध्याधीशें। विचित्र केलें परमपुरुषें। प्रथमारंभीं ते काळीं। ९ राघव बोले गर्जोनी। दशमुखा तुज सोडिलें रणीं। आज श्रमलासी रणांगणीं। जाईं सत्वर माघारा। २१० आपली संपदा भोगून। सकळ स्त्रियांस येईं पुसोन। पुत्र पौत्र आप्तजन। निरोप घेऊनि येईं त्यांचा। ११ मग झुंजतां समरांगणीं। तुझा देह खंडविखंड करूनी। तत्काळ पाडीन धरणीं। निश्चय मनीं जाण पां। १२ इतुकी जवळी असतां सेना। तूं कां आलासी समरांगणा। दुर्जना बुद्धिहीना मलिना। मुख येथें न दाखवीं। १३ ऐसें बोलतां जानकीजीवन। दशमुख जाहला दर्पभग्न। अजासर्पन्यायें करून। उगाचि तटस्थ पाहतसे। १४ जो पीडे दरिद्रेंकरून।

को छेदकर अकस्मात गिरा डाला। ७ साथ ही दूसरे बाण से सूर्यपत्रों और चामरों को छेद डाला। (फिर) मुकुटों को चूर-चूर करके एक साथ भूमि पर गिरा डाला। ८ अयोध्याधीश श्रीराम ने (इसके) साथ ही भाथों और दसों धनुषों को काटकर गिरा डाला। उस समय परमपुरुष श्रीराम ने सबके आरम्भ में अद्‌भुत बात कर दी। ९ तदनन्तर श्रीराम गरजते हुए बोले— 'हे रावण, मैंने तुम्हें युद्ध में छोड़ दिया है। रणभूमि में आज तुम थक गये हो, (इसलिए) झट से लौट जाओ। २१० अपनी सम्पदा का भोग करके, समस्त स्त्रियों से पूछकर अर्थात् बिदा लेकर और जो पुत्र, पौत्र तथा आत्मीयजन (नातेदार) हैं, उनसे विदा लेकर आओ। ११ (फिर) मन में यह निश्चय समझ लेना कि तब समरांगण में लड़ते हुए तुम्हारी देह को, टुकड़े-टुकड़े करके तत्काल भूमि पर गिरा डालूँगा। १२ इतनी सेना पास में होने पर तुम समरांगण में क्यों आये? हे दुर्जन, हे बुद्धिहीन, हे मलिन (अपवित्र, पापी), यहाँ मुँह मत दिखाना।' २१३

जानकी-जीवन श्रीराम द्वारा ऐसा बोलते ही रावण⊛ भग्न-दर्प हो गया— अर्थात् रावण का घमण्ड छूट गया। वह अजा-सर्प न्याय से यों ही तटस्थ (चुप) होकर देखता रहा। १४ जो दरिद्रता से पीड़ित हो

⊛ टिप्पणी : अजा-सर्प-न्याय = बकरी के सामने सर्प के आ जाने पर वह चौंक जाती है और भयभीत होकर भाग जाना चाहती है। किसी की ऐसी स्थिति होने पर यह शब्द-संकेत प्रयुक्त होता है।

तो देश त्यागी जाय उठोन। तैसा रावण रण सांडून। लंकेमाजी प्रवेशला। १५ कीं जो यातींतून भ्रष्ट जाहला। तो जेवीं ब्राह्मणीं दवडिला। कीं दिव्य देतां खोटा जाहला। तो लाजोनि जाय पैं। १६ असो आतां नाना प्रयत्न करून। कुंभकर्णास उठवील रावण। ती कौतुककथा गहन। श्रवण करोत पंडित। १७ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ अंबर। नाना दृष्टांत भगणें सुंदर। तेथें उदय पावला रामचंद्र। निष्कलंक अक्षयी। १८ ब्रह्मानंद श्रीरामचंद्र। जो निर्मळ शीतळ उदार। तेथें अनन्य श्रीधर चकोर। स्वानंदामृत सेवीतसे। १९ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। षड्विंशतितमाध्याय गोड हा। २२०

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

जाता है, वह (स्वाभिमान पूर्वक) देश का त्याग कर जाता है। उस प्रकार उठकर और युद्ध (-भूमि) को छोड़कर रावण लंका में प्रवेश कर गया। १५ अथवा जो जाति (-धर्म) से भ्रष्ट हुआ हो, उसे ब्राह्मण जिस प्रकार (जाति के) बाहर (अर्थात् जाति-बहिष्कृत) कर डालते हैं, वह जैसे चला जाता है, अथवा दिव्य करते हुए जो खोटा सिद्ध हुआ हो, वह जैसे लजाता हुआ चला जाता हो, उस प्रकार रावण वहाँ से लज्जित होकर चला गया। २१६

अस्तु। (इसके आगे के अध्याय में कहा जाएगा—) नाना प्रकार के यत्न करके रावण कुम्भकर्ण को जगाएगा। पंडितजन उस गहन विस्मयकारी कथा का श्रवण करें। २१७

स्वस्ति। 'श्रीराम-विजय' नामक यह ग्रन्थ मानो आकाश है; (उसमें) अनेकानेक दृष्टान्त रूपी तारे हैं; वहाँ (उसमें) श्रीराम रूपी कलंक-रहित तथा क्षय-रहित (अर्थात् नित्य पूर्ण) चन्द्र का उदय हुआ है। १८ आनन्द स्वरूप ब्रह्म (ब्रह्मानन्द) ही श्रीराम रूपी चन्द्र हैं; वह निर्मल, शीतल और उदार हैं। (मेरे गुरु ब्रह्मानन्द भी वही हैं); वहाँ (उनका) अनन्य भक्त श्रीधर रूपी चकोर आत्मानन्द रूपी अमृत का सेवन कर रहा है। २१९

स्वस्ति। 'श्रीराम-विजय' नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। चतुर भक्त उसके इस मधुर छब्बीसवें अध्याय का नित्य श्रवण करें। २२०

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२७

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । आळसी कदा उदीम न करी । नव जाय मंदिराबाहेरी । तों जगन्निवास साहाकारी । घरींच निर्धारीं भाग्यें आला । १ मृत्तिका खणावया जात । तों मांदुस सांपडे अकस्मात । तैसें आम्हांसी जाहलें यथार्थ । सद्गुरुनाथप्रसादें । २ अभ्यास न करितां बहुवस । सांपडली रामविजयमांदुस । मग गगनीं न माय हर्ष । उपरती जाहली । ३ मांदुस उघडोनि जों न्याहाळीं । तों आंत होतीं सात कोहळीं । तीं हीं सप्त कांडें रसाळीं । एकाहूनि एक विशेष । ४ कोहळीं न्याहाळून जंव पाहात । तंव दिव्य नाणीं दीप्तियुक्त । भक्ति ज्ञान वैराग्ययुक्त । घवघवीत विराजती । ५ चतुर श्रोते ज्ञानसंपन्न । ते बंधु आले जवळी धांवोन । म्हणती आम्हांस वांटा दे समान । मांडलें भांडण प्रेमभरें । ६ म्हणती हीं वालमीकाचीं कोहळीं । तुज पूर्वभाग्यें लाधलीं । तरी वांटा

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। कोई आलसी मनुष्य (हो, जो) कभी भी कोई उद्योग नहीं करता हो, घर के बाहर (भी) नहीं जाता हो (फिर भी) वे जगन्निवास भगवान सहायक होकर सद्भाग्य से उसके घर निश्चय ही आ गये हों। १ कोई मिट्टी खोदने के लिए गया हो, और तब उसे सहसा रत्नों से भरी मंजूषा मिल गयी हो। वैसे ही सद्गुरुनाथ की कृपा से हमारे साथ सचमुच घटित हुआ है। २ बहुत अध्ययन न करने पर भी हमें 'श्रीराम-विजय' रूपी रत्न मंजूषा मिली है। तब हमारा आनन्द गगन में नहीं समा रहा है। फिर हमें (विषय-भोग के प्रति) वैराग्य उत्पन्न हो गया। ३ मंजूषा को खोलकर जब देखा, तो (दिखायी दिया कि) अन्दर सात कुम्हड़े थे। वें कुम्हड़े ही (मानो 'श्रीराम-विजय' के) ये रसात्मक एवं एक-से-एक असाधारण सात काण्ड हैं। ४ उन कुम्हड़ों (के रूप में सप्त काण्डों) को जब निरखकर देखा, तो दिखायी दिया कि उनमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्य से युक्त और आँखों को चौंधियाकर देनेवाली कान्ति से भरी-पूरी दिव्य मुद्राएँ शोभायमान थीं। ५ (इसे जानकर) चतुर और ज्ञान-सम्पन्न श्रोतारूपी वे बंधु हमारे पास दौड़ते हुए आये और उन्होंने कहा— 'हमें सम-समान भाग दो'। वे हमसे प्रेम-पूर्वक झगड़ने लगे। ६ उन्होंने कहा— 'ये तो वालमीकि के कुम्हड़े हैं, (जो) तुम्हें पूर्व-भाग्य से प्राप्त हो गये हैं।

आम्हांस ये वेळीं । देईं सर्वांसी सारिखा । ७ मग चतुर संत-जन । श्रवणपंक्तीं बैसले समान । कोहळीं त्यांपुढें नेऊन । एकसरें रिचविलीं । ८ मग त्यांहीं कर्णद्वारें उघडोन । हृदय-भांडारीं सांठविलें धन । श्रोते वक्ते सावधान । निजसुख पूर्ण पावले । ९ पांच कोहळीं दाविलीं फोडून । साहावें युद्धकांड विशाळ गहन । असो गताध्यायीं कथानिरूपण । राघवें रावण निर्भर्त्सिला । १० छत्र मुकुट टाकिले छेदून । अपमान पावला रावण । मग लंकेंत परतोन । चिंतार्णवीं बुडाला । ११ जैसा राहुग्रस्त निशाकर । कीं काळवंडे दग्ध कान्तार । कपाळशूळें महाव्याघ्र । तैसा दशकंठ उतरला । १२ नावडे छत्र सिंहासन । जें जें पाहूं जाय रावण । तें तें रामरूप दिसे पूर्ण । नाठवे आन पदार्थ । १३ सभेसी बैसला रावण । अत्यंत दिसे कळाहीन । महोदराप्रती वचन । बोलता जाहला ते वेळां । १४ म्हणे कैसा विपरीत काळ । मक्षिकेनें हालविला भूगोळ । चित्रींच्या

इसलिए हम सबको इस समय सम-समान भाग दे दो।' ७ फिर वे सुज्ञ सन्त जन (श्रीराम-विजय का) श्रवण करने के हेतु एक पंक्ति में समान रूप से बैठ गये, तो कुम्हड़ों को उनके सामने ले जाते हुए मैंने निकालकर क्रम-पूर्वक रख दिया। ८ तब उन्होंने अपने कर्णरूपी द्वारों को खोलकर हृदय-रूपी भण्डार-गृह में उस धन को भरकर रख लिया। उससे सतर्क श्रोता और वक्ता परिपूर्ण आत्म-सुख को प्राप्त हो गये। ९ मैंने उनमें से पाँच कुम्हड़ों को चीरकर दिखा दिया है। यह छठा (कुम्हड़ा) युद्ध काण्ड विशाल तथा गहन है। अस्तु। पिछले अध्याय में इस कथा (-भाग) का निरूपण (करते हुए कहा) है: राम ने रावण की भर्त्सना की। १० फिर छत्रों और मुकुटों को छेद डाला, तो रावण अपमान को प्राप्त हो गया; फिर लंका में लौटकर वह चिन्ता-सागर में डूब गया। ११ जैसे राहु द्वारा ग्रस्त चंद्र (निस्तेज) होता है, अथवा जला हुआ वन काला पड़ता है, अथवा सिर-दर्द से बड़ा बाघ (निस्तेज तथा व्याकुल) होता है, वैसे ही रावण तेज में उतर गया, अर्थात् निस्तेज हो गया। १२ उसे छत्र और सिंहासन अच्छे नहीं लग रहे थे। रावण जो-जो देखने जाता, वह (-वह) पूर्णतः रामरूप दिखायी देता। उसे किसी अन्य पदार्थ का स्मरण न आता। १३ (जब) रावण सभा में बैठा था, तब वह अत्यधिक निस्तेज दिखायी दे रहा था। उस समय उसने महोदर (नामक एक राक्षस) के प्रति ये वचन कहे। १४ वह बोला—' कैसा प्रतिकूल काल

सर्पें खगपाळ। गिळिला नवल वाटतें। १५ खद्योततेजेंकरून। आहाळोनि गेला चंडकिरण। तैसा मी आजि रावण। युद्धीं पावलों पराजय। १६ मग बोलती प्रधान। आतां उठवावा कुंभकर्ण। तो रामसौमित्रांसहित सैन्य। गिळील क्षण न लागतां। १७ ती रावणासी मानली मात। म्हणे घटश्रोत्रासी उठवा त्वरित। मग विरूपाक्ष महोदर निघत। दहा सहस्र राक्षस घेऊनियां। १८ मद्यपखाला चार सहस्र। कुंजरीं घातल्या सत्वर। तैसेच पशू घेतले अपार। अन्नाचे पर्वत घेऊनियां। १९ वाद्यें वाजविती भयासुर। गजरेंसीं पावले सत्वर। देखोनि भयानक शरीर। कंप सुटला राक्षसां। २० वनगज म्हैसे तरस। नासिकांत गुंतले बहुवस। टाकितां श्वासोच्छ्वास। निर्गम नव्हे तयांसी। २१ सवालक्ष गांवें खोल। सरितापतीचें तुंबळ जळ। तें नाभिप्रमाण केवळ। कुंभकर्णासी होय पैं। २२ असो राक्षस सर्व मिळती। द्वारीं एकदांचि हांका फोडिती।

है। (मानो) मक्खी ने पृथ्वी-गोल को हिला डाला हो। (मुझे) आश्चर्य हो रहा है कि चित्र में अंकित साँप ने पक्षिराज गरुड़ को (कैसे) निगल डाला। १५ (मानो) जुगनू के तेज से सूर्य झुलस गया हो— उसी प्रकार मैं रावण युद्ध में आज पराजय को प्राप्त हो गया हूँ।' १६ (इसके) पश्चात् मंत्रियों ने कहा— 'अब कुम्भकर्ण को जगा दें; तो वह राम-लक्ष्मण सहित सेना को क्षण न लगते निगल डालेगा।' १७ यह बात रावण को जँच गयी, तो उसने कहा— 'कुम्भकर्ण को झट से जगा दो।' तब विरूपाक्ष और महोदर (नामक राक्षस) दस सहस्र राक्षसों को लेकर निकल पड़े। १८ उन्होंने मद्य से भरी हुई चार सहस्र पखालें झट से हाथियों पर रख दीं। उसी प्रकार अन्न के पहाड़ लेकर अर्थात् लादकर असंख्य पशु (साथ में) लिये। १९ वे भीषण (स्वरों में) वाद्य बजा रहे थे। गर्जन के साथ वे झट से (कुम्भकर्ण के पास) जा पहुँचे। (कुम्भ-कर्ण के) भयानक शरीर को देखकर राक्षसों को (मारे डर के) कँपकँपी छूट गयी। २० (उन्होंने देखा कि) उसकी नाक में बहुत-से वन्य हाथी, भैंसे, लकड़बग्घे फँसे हुए हैं; (उसके) श्वासोच्छ्वास करते (साँस खींचते-छोड़ते) रहने से उन्हें छुटकारा नहीं प्राप्त हो रहा है। २१ सवा लाख योजन गहरे समुद्र का भरा-पूरा पानी तो कुम्भकर्ण की केवल नाभि के बराबर— अर्थात् नाभि भर ही हो सकता है। २२ अस्तु। सब राक्षस इकट्ठा हो गये और द्वार पर अद्भुत रूप से चीखने-चिल्लाने लगे। उस

सकळ वापी कूप आटती । महागजरेंकरूनिया । २३ स्वर्गापर्यंत ऐकों जाती । ऐशा कर्णीं भेरी वाहाटिती । उरावरी गज चालविती । परी जागा नोहे सर्वथा । २४ एक गगनचुंबित वंश घेऊन । नासिकीं चढविती पूर्ण । एक नाकपुडी अवरोधून । श्वासोच्छ्वास कोंडिती । २५ एक वृक्ष पाषाण घेती । वर्मस्थळीं बळें ताडिती । कडू तीक्ष्ण औषधें ओतिती । नासिकापुटीं नेऊनियां । २६ उपाय केले बहुत पूर्ण । परी जागा नोहेच कुंभकर्ण । मग विरूपाक्षें किन्नरी आणून । कर्णांमाजी बैसविल्या । २७ त्यांचें परम सुस्वर गायन । ऐकतां शेष येईल धांवोन । मग जागा होऊन कुंभकर्ण । सावधान बैसला । २८ जांभई दिधली भयानक । मद्य प्राशिलें सकळिक । दाढेखालीं पशू देख । अपार घालून रगडिले । २९ अन्नमांसांचे पर्वत । गिळिले राक्षसें तेव्हां बहुत । मग नेत्र पुसोन पाहात । प्रधानांकडे ते काळीं । ३० तंव ते प्रणिपात करून । सांगते झाले सर्व वर्तमान । सीता आणिली हिरून । तेथून सर्व कथि-

---

महान गर्जन के कारण (मानो) समस्त पुष्करणियाँ और कुएँ सूख गये । २३ वे उसके कानों में ऐसे नगाड़े धड़धड़ाते बजा रहे थे कि जो स्वर्ग तक सुनायी दे रहे थे । उसकी छाती पर हाथी चला दिये, फिर भी वह किंचित् भी नहीं जग रहा था । २४ कोई-कोई (राक्षस) गगन-चुम्बी बाँस को लिये हुए उसकी नाक में घुसेड़ देते, तो कोई-कोई उसकी एक नासिका-पुट का अवरोध करके उसकी साँस-उसाँस को रोक देते । २५ कोई-कोई वृक्ष और पत्थर लेते और उसकी छाती पर बलपूर्वक ताड़न करते, तो कोई-कोई कड़ुवी-तीखी (प्रखर) औषधियाँ ले जाकर उसकी नासिका-पुट में उँडेल देते । २६ (इस प्रकार) उन्होंने बहुत उपाय किये; फिर भी कुम्भकर्ण जागृत नहीं हो रहा था । फिर विरूपाक्ष ने किन्नरियों को लाकर उसके कानों में बैठा दिया । २७ उनका परम सुरीला गान सुनते ही (मानो) मंत्रमुग्ध होकर शेषनाग तक दौड़कर आयेगा । तब कुम्भकर्ण जागृत होते हुए सावधान होकर बैठ गया । २८ (तदनन्तर) उसने भयानक जमुहाई ली, समस्त मद्य को पी डाला और देखिए— दाढ़ों के बीच असंख्य पशुओं को डालकर चबा डाला । २९ उस राक्षस ने तब अन्न के बहुत पर्वत निगल डाले । फिर उस समय आँखों को मलकर उसने मंत्रियों की ओर देखा । ३० तब नमस्कार करके उन्होंने समस्त समाचार कह दिया । रावण सीता का अपहरण कर

येलें । ३१ हनुमंत लंका जाळून । रामसौमित्रां आला घेऊन ।
कालचे युद्धीं रावण । पराजय पावला । ३२ रावण परम चिंता-
क्रान्त । यालागीं तुम्हां उठविलें त्वरित । मांडला बहुत कल्पान्त ।
आटले समस्त राक्षस । ३३ उभा ठाकला कुंभकर्ण । म्हणे
ऐसाचि रणा जाईन । मग विनविती प्रधान । राजदर्शन
घेइंजे । ३४ सभेसी चालिला कुंभकर्ण । लंकादुर्ग त्यासी
गुल्फप्रमाण । वाटे आकाशासी लाविलें टेंकण । विमानें सुरगण
पळविती । ३५ लंकावेष्टित जे वानर । ते तेथून पळाले
समग्र । देखोनि कुंभकर्णाचें शरीर । कपी मूर्च्छित पडि-
येले । ३६ रामासी म्हणे बिभीषण । स्वामी हा उठविला
कुंभकर्ण । आश्चर्य करी रघुनंदन । शरीर देखोन तयाचें । ३७
बिभीषण म्हणे ते काळीं । रामा याचिया जन्मकाळीं । प्रळय
वर्तला भूमंडळीं । हांक वाजली चहूंकडे । ३८ मातेचिया उदरांतून ।
भूमीसी पडला कुंभकर्ण । तीस सहस्र स्त्रिया जाण । वदन

लाया— उस (घटना) से (लेकर) सब कथन किया । ३१ (उन्होंने कहा) ' लंका को जलाकर हनुमान राम और सौमित्र को लेकर आया है, और कल के युद्ध में रावण पराजय को प्राप्त हो गया है । ३२ (इससे) रावण बहुत चिन्ताक्रान्त हुआ है । इसलिए तुम्हें झट से जगा दिया है । (शत्रु ने) कल्पान्त (प्रलय) मचाया है; समस्त राक्षस नष्ट हो गये हैं । ' ३३ यह (सुनकर) कुम्भकर्ण खड़ा हो गया और बोला— ' मैं ऐसा ही युद्ध (-भूमि) में जाऊँगा । ' तब मंत्रियों ने विनती की— ' (पहले) राजा के दर्शन तो करना । ' ३४ (यह सुनकर) कुम्भकर्ण सभा (-गृह) के प्रति चल दिया । लंका-दुर्ग तो उसे घुटने के प्रमाण अर्थात् बराबर था । जान पड़ता था कि (उसके शरीर के रूप में) आकाश के लिए टेकनी लगा दी हो । (उसे देखकर) सुरगणों ने अपने-अपने विमान (वेग-पूर्वक) हटा लिये । ३५ जो वानर लंका को घेरकर रहे हुए थे, वे सब वहाँ से भाग गये । कुम्भकर्ण के शरीर को देखकर कपि अचेतन हो गये । ३६ (तब) विभीषण ने राम से कहा, ' हे स्वामी, यह कुम्भकर्ण जगा दिया गया है । ' उसके शरीर को देखते हुए राम ने अचरज अनुभव किया । ३७ उस समय विभीषण ने कहा— ' हे राम, इसके जन्म के समय भू-मण्डल पर प्रलय हो गया था । चारों ओर (मारे डर के) चीख-पुकार मच गयी थी । ३८ जान लीजिए कि जब माता के उदर में से कुम्भकर्ण भूमि पर आ पड़ा, तो उसने मुँह को फैलाकर

पसरून गिळियेल्या । ३९ इंद्राचा ऐरावत धरूनी । येणें आपटिला धरणीं । ऐरावतीचे दांत मोडूनी । इंद्रासी येणें ताडिलें । ४० शक्रें वज्र उचलोनि घातलें । याचें रोम नाहीं वक्र जाहलें । यासी निद्राआवरण पडलें । म्हणोनि लोक वांचले हे । ४१ असो कुंभकर्ण दृष्टीं देखोन । हिमज्वरें व्यापले वानरगण । एकां मुरकुंडी वळून । दांतखिळिया बैसल्या । ४२ भोंवतें पाहे चापपाणी । तों भयभीत वानरवाहिनी । सर्वांचें अंतर जाणोनी । मारुतीकडे पाहिलें । ४३ तों निमिषांत हनुमंत । अकस्मात गेला लंकेंत । कुंभकर्ण सभेसी जात । तंव अद्भुत केलें वायुसुतें । ४४ कुंभकर्ण तये वेळां । कटीपर्यंत उचलिला । राम आणि कपी डोळां । तटस्थ होऊन पाहाती । ४५ मद्यपानें कुंभकर्ण । अत्यंत गेलासे भुलून । आपणास उचलितो कोण । हेंही त्यासी नेणवे । ४६ मग तो सीताशोकहरण । पुढती उचलून कुंभकर्ण । भुजाबळें भोंवंडून । टाकीत होता सुवेळेसी । ४७ मागुती केलें अनुमान । म्हणे

तीस सहस्र स्त्रियों को निगल डाला । ३९ इसने इन्द्र के ऐरावत को पकड़कर भूमि पर पटक दिया था और उस (ऐरावत) के दाँतों को तोड़कर इसने इन्द्र को (उनसे) पीट डाला था । ४० (फिर जब) इन्द्र ने वज्र उठाकर ताड़न किया, तो इसका रोम तक बाँका नहीं हुआ । इसपर निद्रारूपी आवरण बिछ गया, इसलिए ये लोग बच गये ।' ४१ अस्तु आँखों से कुम्भकर्ण को देखते ही वानरगण जड़ैया ज्वर से व्याप्त अर्थात् पूर्णतः पीड़ित हो गये । लोट-पोट हो जाने पर कुछ एक की तो घिग्घी बँध गयी । ४२ (जब) चक्रपाणि श्रीराम ने चारों ओर देखा, तो (दिखायी दिया कि) वानर-सेना भयभीत हो गयी थी । फिर उन्होंने सबके मन (के भाव) को जानकर हनुमान की ओर देखा । ४३ तो हनुमान क्षण में सहसा लंका में (चला) गया और (जब) कुम्भकर्ण सभा (-गृह) की ओर जा रहा था तब उस वायु-पुत्र ने आश्चर्य कर लिया । ४४ उसने उस समय कुम्भकर्ण को (अपनी) कटि तक (ऊपर) उठा लिया, (जिसे) श्रीराम और कपि चकित होकर अपनी आँखों से देख रहे थे । ४५ कुम्भकर्ण मद्य-पान से नशे में चूर हो गया था, इसलिए उसकी समझ में यह भी नहीं आ रहा था कि उसे कौन उठा रहा था । ४६ अनन्तर वह सीता-शोक-हरण (हनुमान) कुम्भकर्ण को फिर से उठाकर हाथों के बल से (ऊपर ही) चक्राकार घुमाते हुए सुवेल की ओर फेंक

गगनीं देऊं भिरकावून। कीं लंकेवरी आपटून। चूर्ण करूं सकळही। ४८ मग म्हणे नव्हे हा विचार। लंका चूर्ण होईल समग्र। मग तो बिभीषण नृपवर। नांदेल कैसा ये स्थळीं। ४९ सुवेळेसी द्यावा टाकून। तरी वानर होतील चूर्ण। भूमंडळीं आपटूं धरून। तरी धरा जाईल पाताळा। ५० ऊर्ध्वपंथेंचि ठेवून। भुजाबळें भोंवडून। वृक्षावरी घातला नेऊन। राघवापासीं परतला। ५१ भय आणि शाहारे पूर्ण। गेलें कपींचें निघोन। जैसा उगवतां सहस्रकिरण। तम जाय निरसोनि। ५२ कीं हनुमंतें बळ दावून। वानरांसी दिधलें रसायन। हिमज्वरभय दारुण। निघोन गेलें सर्वही। ५३ असो श्रीरामचरणीं भाळ। ठेवी अंजनीचा बाळ। मग सुग्रीवादि कपी सकळ। धांवोन भेटती हनुमंता। ५४ शब्दसुमनें स्तुतिमाळा। कपि घालिती मारुतीच्या गळां। म्हणती कुंभकर्ण कवेंत सांपडला। तरी कां सोडिला कळेना। ५५ मारुतीचा अंत-

---

रहा था (फेंक देने की सोच रहा था)। ४७ (परन्तु) उसने फिर से अनुमान किया। उसने कहा (सोचा)— 'उसे गगन में उछाल दूँ या लंका पर पटककर सभीको चूर-चूर कर डालूँ।' ४८ फिर उसने कहा (सोचा)— 'यह विचार उचित नहीं है, इससे समग्र लंका चूर-चूर हो जाएगी, तो फिर नृपवर विभीषण इस स्थान में कैसे रह पाएगा। ४९ यदि सुवेल में फेंक दें, तो वानर चूर-चूर हो जाएँगे। यदि पकड़कर भूमण्डल पर पटक दूँ, तो पृथ्वी पाताल में (धँस) जाएगी।' ५० (फिर) ऊर्ध्वमार्ग पर, अर्थात् ऊपर ही ऊपर रखकर हाथों (के बल) से घुमाकर उसने उसे वृक्षों पर रख दिया और वह श्रीराम के पास लौट आया। ५१ (तब कहीं) कपियों का भय और कँपकँपी उस प्रकार पूर्णतः दूर हो गयी, जिस प्रकार सूर्य के उदित होने पर अंधेरा नष्ट हो जाता है। ५२ अथवा (मानो) हनुमान ने अपना बल प्रदर्शित करते हुए वानरों को कोई रसायन (औषधि-विशेष) दिया, जिससे भीषण जड़ैया ज्वर तथा भय पूर्णतः निकल (कर दूर हो) गया। ५३

अस्तु। उस अंजनी-सुत हनुमान ने श्रीराम के चरणों में मस्तक रखा, तब सुग्रीव आदि समस्त कपि दौड़ते हुए उससे मिल गये। ५४ उन कपियों ने शब्दरूपी फूल तथा स्तुतिरूपी (पुष्प-) मालाएँ हनुमान के गले में पहना दीं और कहा— 'समझ में नहीं आता कि कुम्भकर्ण पकड़ में तो आया था, फिर तुमने उसे क्यों छोड़ दिया।' ५५ (यह सुनकर)

रार्थ । कपींतें सांगे रघुनाथ । त्यास माझे हातीं मृत्य । हें हनुमंत जाणतसे । ५६ सिंहावलोकनें निश्चितीं । मागील कथा परिसावी श्रोतीं । कुंभकर्ण जात सभेप्रती । रावणासी भेटावया । ५७ बंधु संमुख देखोन । हरुषें कोंदला दशानन । कुंभकर्ण प्रणिपात करून । निजस्थानीं बैसला । ५८ जेवीं मेघ करी गर्जन । तेवीं बोले कुंभकर्ण । काय संकट पडलें येऊन । म्हणोनि मज जागविलें । ५९ महाप्रलय मांडला । कीं उर्वी जात होती रसातळा । किंवा कृतांत चालून आला । म्हणोनि मज जागविलें । ६० सांगे रावण वर्तमान । जानकी आणिली हिरून । यालागीं वानरदळ घेऊन । सुवेळेसी राम आला । ६१ धूम्राक्ष आणि वज्रदंष्ट्री । प्रहस्त प्रधान पडला समरीं । मग मी युद्धा गेलों झडकरी । परी पावलों पराजय । ६२ मज परम संकट पडलें । म्हणोनि बंधो तुज जागविलें । मज चिंताव्याधीनें पीडिलें । त्यासी औषध देईं तूं । ६३ संकटीं बंधु पावे साचार । दरिद्रकाळीं जाणिजे मित्र । संशय निरसा-

---

रघुनाथ ने हनुमान के मन का विचार कपियों को (इस प्रकार) बताया— 'हनुमान यह जानता है कि उसे मेरे हाथों मृत्यु (आनेवाली) है । ' ५६

(अब) श्रोता सिंहावलोकन के रूप में पूर्व कथा (-भाग) सुनें । कुम्भकर्ण रावण से मिलने के लिए सभा (-गृह) की ओर जा रहा था । ५७ अपने भाई को सामने (आया हुआ) देखकर दशानन आनन्द से फूला न समाया । (तब) कुम्भकर्ण नमस्कार करके अपने (लिये निर्धारित) स्थान पर बैठ गया । ५८ जैसे मेघ गर्जन करता है, उस प्रकार (उच्च स्वर में) कुम्भकर्ण बोला-- 'कौन-सा संकट आ पड़ा है, जिससे मुझे जगा दिया । ५९ महान प्रलय मचा है, अथवा पृथ्वी पाताल में (धँसती) जा रही है ? अथवा कृतान्त यम चढ़ दौड़ा है, इसलिए मुझे जगा दिया । ' ६० (यह सुनकर) रावण ने समाचार कहा— 'जानकी का अपहरण कर मैं उसे ले आया; इसलिए राम वानर-सेना को लिये हुए सुवेल आ गया है । ६१ धूम्राक्ष और वज्रदंष्ट्री, मंत्री प्रहस्त युद्ध में काम आये; तब मैं झट से युद्ध के लिए गया; परन्तु पराजय को प्राप्त हो गया हूँ । ६२ हे बंधु, मुझपर बहुत बड़ा संकट आया है, इसलिए तुम्हें जगा दिया है । मुझे चिन्तारूपी व्याधि ने पीड़ित कर डाला है, (अतः) उसके लिए तुम औषधि दे देना । ६३ संकट के समय सचमुच बंधु सहायता करने के लिए प्राप्त होता है । दरिद्रता के समय

वया समग्र। सद्गुरुचरण धरावे। ६४ तम दाटलें जरी घोर। तरी दीपिका पाजळाव्या सत्वर। येतां वैरियाचें शस्त्र। वोडण पुढें करावें। ६५ दुष्काळ पडतां अत्यंत। दात्यापासीं जावें त्वरित। संकट आम्हां पडलें बहुत। म्हणोनि तुज जागविलें। ६६ यावरी बोले कुंभकर्ण। बुद्धि कर्मानुसारिणी पूर्ण। जानकी व्यर्थ आणून। कुळक्षय आरंभिला। ६७ राम हा वैकुंठवासी नारायण। सुरांचे अवतार वानर पूर्ण। हें नारदें वर्तमान। पूर्वीच मज सांगितलें। ६८ असो जें शुभाशुभ कर्म होत। तें भोगिल्याविण न चुकत। पुढील होणार भविष्यार्थ। तो न चुके कदाही। ६९ करूं नये तें त्वां राया केलें। शेवटीं सीतेस तरी भोगिलें। येरू म्हणे बहुत यत्न केले। परी ते वश न होय। ७० ती रामावेगळी तत्त्वतां। आणिकां वश नव्हे सर्वथा। कुंभकर्ण म्हणे लंकानाथा। राघवरूप धरीं तूं। ७१ जपोनियां कापटचमंत्र। होईं सुंदर रघुवीर। सीता

मित्र (के प्रेम को परखकर) जान लें, तो संशय का पूर्णतः निराकरण करने के लिए सद्गुरु के चरण पकड़ लें। ६४ यदि घोर (अति घना) अंधेरा भर आया हो, तो (उसे दूर करने के लिए) दीपिकाएँ (या मशालें) झट से प्रज्वलित करें, तो शत्रु के शस्त्र के (आघात करने आनेपर) ढाल आगे करें। ६५ अत्यधिक बड़ा अकाल पड़ने पर झट से दाता के पास जावें। हमपर बड़ा संकट आ गया है, इसलिए तुम्हें जगा दिया है।' ६६ इसपर कुम्भकर्ण बोला— 'बुद्धि पूर्णतः कर्मानुसारिणी होती है (अर्थात् कर्म के अनुसार काम करने की इच्छा होती है)। जानकी को व्यर्थ ही लाकर तुमने कुल का क्षय आरम्भ किया है। ६७ (यह) राम वैकुण्ठवासी भगवान नारायण हैं; वानर पूर्णतः देवों के अवतार हैं। नारद ने यह बात मुझे पहले ही बतायी थी। ६८ अस्तु। जो शुभ या अशुभ कर्म (मनुष्य के हाथों) हो जाता हो, उस (के फल) को बिना भोगे वह नहीं चूकता। आगे भविष्य में होनेवाली बात कभी भी नहीं टलती। ६९ हे राजा, जो नहीं करना चाहिए, वह तुमने किया है। (परन्तु) तो क्या तुमने सीता का उपभोग भी कर लिया है ?' (इसपर) उसने कहा— 'मैंने बहुत यत्न तो किये, परन्तु वह मेरे प्रति अनुकूल नहीं हो रही है। ७० वस्तुतः वह राम के अतिरिक्त किसी दूसरे के वश में हर प्रकार से नहीं हो सकती।' तब कुम्भकर्ण ने कहा— 'हे लंकानाथ, (तब तो) तुम श्रीराम का रूप धारण करो। ७१ कपट-मंत्र का जाप करके

होईल वश साचार। क्षणमात्र न लागतां। ७२ मग बोले लंकेश्वर। मी जैं निजांगें होईन रघुवीर। तेव्हां दुर्वासना समग्र। मावळेल माझी समूळीं। ७३ घरासी येतां वासरमणी। तम न उरे ते क्षणीं। कीं गरुड येतां सर्पश्रेणी। पळती उठोनि जीवभयें। ७४ तैसा मी राम होतांचि जाण। वाटे परनारी मातेसमान। एकवचन एकबाण। एकपत्नीव्रती होईन मी। ७५ याचिलागीं बंधु जाण। राम सौमित्र वानरगण। यांसी संहारिल्याविण। वश नोहे जानकी। ७६ यावरी बोले कुंभकर्ण। आतां गिळीन सकळ सैन्य। क्षणांत राम लक्ष्मण। धरून आणीन पुरुषार्थें। ७७ अपार सैन्यसमुद्र। सवें देत दशकंधर। रावणासी नमून सत्वर। कुंभकर्ण निघाला। ७८ रणा येतां कुंभकर्ण। तेथें होते वानरगण। ते अवघे गेले पळोन। रामचंद्रासी सांगावया। ७९ कुंभकर्ण विचारी अंतरीं। मी काय लोटूं वानरांवरी। जंबुकांवरी जैसा केसरी। धांवतां पुरुषार्थ

सुन्दर रघुवीर राम बन जाओ; (तब) सीता सचमुच क्षण मात्र न लगते (तुम्हारे) अनुकूल हो जाएगी।' ७२ तब लंकेश्वर रावण बोला-- 'मैं यदि (अपने) शरीर से रघुवीर राम हो जाऊँ, तो तब मेरी समग्र दुर्वासना मूल-सहित नष्ट हो जाएगी। ७३ घर में सूर्य के आने पर, उस क्षण अँधेरा शेष नहीं रहता, अथवा गरुड़ के आने पर सर्पों की श्रेणियाँ (समूह) जीव के (नष्ट होने के) भय से उठकर भाग जाती हैं। ७४ समझो, वैसे ही मेरे राम (रूप में परिवर्तित) होते ही परनारी माता के समान प्रतीत हो जाएगी। मैं (तब उस रूप में) एक वचन, एक-बाण तथा एक-पत्नी व्रतधारी हो जाऊँगा। ७५ हे बंधु, समझ लो कि इसी के लिए इस राम, लक्ष्मण और वानर-गणों का बिना संहार किये जानकी मेरे अधीन हो जाएगी।' ७६ इसपर कुम्भकर्ण बोला-- 'अब मैं समस्त सेना को निगल डालूँगा और क्षण में राम-लक्ष्मण को पकड़कर पुरुषार्थ-पूर्वक ले आऊँगा।' ७७ (तदनन्तर) रावण ने उसके साथ में अपार सेना-सागर करा दिया (भेज दिया)। (फिर) रावण को नमस्कार करके कुम्भकर्ण झट से निकल पड़ा। ७८ कुम्भकर्ण के रण (-भूमि) में आते ही वहाँ (जो) वानर-गण थे, वे सारे रामचन्द्र को (यह समाचार) बताने के लिए भाग गये। ७९ तो कुम्भकर्ण ने मन में सोचा-- 'तो क्या मैं वानरों पर आक्रमण करूँ (परन्तु) जैसे सियारों पर सिंह के चढ़ दौड़ने में पुरुषार्थ नहीं दिखायी देता, उसी प्रकार वानरों पर मेरा चढ़ दौड़ना मेरे

दिसेना । ८० पिपीलिकांवरी धांवे गज । कीं अळिकेवरी द्विजराज । मूढसभेंत तेजःपुंज । पंडित शोभा न पावे । ८१ आरंभीं राक्षसदळ तुंबळ । वानरांवरी धांवलें चपळ । कपी उठावले सकळ । शिळा वृक्ष घेऊनियां । ८२ युद्ध झालें अपार । लोटले अशुद्धाचे पूर । परी ते न मानी घटश्रोत्र । म्हणे हें युद्ध कायसें । ८३ मूढ अपार बोलती । परी तें न भरे पंडिताचे चित्तीं । जैसे वृषभ परस्परें भांडती । महाव्याघ्रासी न माने तें । ८४ असो तेव्हां मुद्गर घेऊन । रामावरी लोटला कुंभकर्ण । अठरा पद्मे वानरगण । पर्वत पाषाण भिरकाविती । ८५ पर्वतावरी पर्जन्य पडत । परी तो व्यथा न मानी किंचित । कीं कूर्मपृष्ठीवरी बहुत । सुमनें वर्षतां न ढळेचि । ८६ तों शतश्रृंगमंडित पर्वत । घेऊन भिरकावी हनुमंत । तो मुष्टिघातें त्वरित । फोडून टाकी कुंभकर्ण । ८७ म्हणे रे मर्कटा धरीं धीर । तुवां जाळिलें माझें नगर । म्हणोनि धांवे घटश्रोत्र ।

लिए पुरुषार्थ की बात नहीं है। ८० यदि चीटियों पर हाथी (चढ़) दौड़े, अथवा इल्ली पर पक्षिराज गरुड़ आक्रमण करे तो कैसा पुरुषार्थ ? मूर्खों की सभा में तेजःपुंज पंडित शोभा को प्राप्त नहीं हो जाता। उसी प्रकार इन वानरों से लड़ना मुझे शोभा नहीं देगा। ८१ आरम्भ में बहुत बड़ा राक्षस-दल चपलता-पूर्वक वानरों पर (आक्रमण करते हुए) दौड़ा, तो समस्त वानर शिलाएँ और पेड़ लेकर उठ गये। ८२ बहुत बड़ा युद्ध हुआ, रक्त के रेले उमड़-उमड़कर बहने लगे। परन्तु कुम्भकर्ण ने उसे युद्ध नहीं समझा। उसने कहा (सोचा)-- 'यह कैसा युद्ध ?' ८३ मूढ़ जन बहुत बोलते हैं, परन्तु वह पंडितों के मन को नहीं जँचता। बैल जिस प्रकार परस्पर जूझते हैं, परन्तु महान बाघ को वह अच्छा नहीं लगता। ८४ अस्तु। तब कुम्भकर्ण मुद्गर लिये हुए राम पर चढ़ दौड़ा, तो अठारह पद्म वानरगण पर्वत और पत्थर बलपूर्वक घुमाकर फेंकने लगे। ८५ पहाड़ पर बारिश होती है, परन्तु वह उससे किंचित् भी व्यथा नहीं मानता; अथवा पीठ पर बहुत-से फूल बरसाने पर कछुआ हिलता तक नहीं; (उसी प्रकार पर्वतों और पाषाणों की बौछार से कुम्भकर्ण टस-से-मस नहीं हुआ)। ८६ तब हनुमान ने सौ शिखरों से सुशोभित पर्वत लेकर फेंक दिया, तो कुम्भकर्ण ने मुट्ठी के आघात से उसे तोड़ डाला। ८७ वह बोला-- 'रे मर्कट, धीरज धारणकर। तूने मेरे नगर को जला दिया।' ऐसा कहते हुए तब कुम्भकर्ण हनुमान की

हनुमंतावरी तेधवां । ८८ बळें शूळ भोंवंडोनी । मारुतीवरी घाली उचलूनी । ते वेळे वायुसुत धरणीं । मूर्च्छा येऊन पडियेला । ८९ तें देखोन वाहिनीपती । नीळ धांवे समीरगती । कुंभकर्णाची युद्धगती । देव पाहाती विमानीं । ९० नीळें पर्वत वरी टाकिला । तो मुष्टिघातें चूर्ण केला । नीळासी मुष्टिघात दीधला । मूर्च्छित पाडिला धरणीये । ९१ तों धांवले चौघे वानर । जे काळासीही शिक्षा करणार । ऋषभ शरभ गवाक्ष वीर । गंधमादन चवथा तो । ९२ चौघांजणीं चार पर्वत । टाकिले पैं अकस्मात । ते मुष्टिघातें पिष्टवत । करूनियां टाकिले । ९३ शरभ गवाक्ष धरणीवरी । कुंभकर्णें आपटिले स्वकरीं । दोघे भिरकाविले अंबरीं । जगतीवरी पडियेले । ९४ मग अट्टहासें गर्जे कुंभकर्ण । वाटे ब्रह्माण्ड जाय उलोन । मग वानरांतें देखोन । ग्रासावया धांवला । ९५ कव लोलोनि अकस्मात । एकदांच वानर धरी बहुत । मुखीं घालूनि चावीत । गिळिले गणित ऐका तें । ९६ ऐशीं सहस्र द्रुमपाणी । असुरें गिळिले मुख पसरूनी । कित्येक कर्णरंध्रांतून निघोनी । पळते

ओर दौड़ा । ८८ शूल को उठाकर बलपूर्वक चक्राकार घुमाते हुए उसने हनुमान पर फेंक दिया, तो वायुपुत्र मूर्च्छा आने से उस समय धरती पर गिर पड़ा । ८९ यह देखकर सेनापति नील वायु-गति से दौड़ा । (उधर) विमानों में बैठकर देव कुम्भकर्ण के युद्ध का ढंग देख रहे थे । ९० नील ने पर्वत उसपर गिरा दिया, तो उसने मुष्टि-घात से चूर-चूर कर डाला । फिर नील के घूँसा जमा दिया और उसे धरती पर अचेत गिरा लिया । ९१ तब चार ऐसे वानर दौड़े जो काल को (भी) दण्ड दे सकते थे, वे थे ऋषभ, शरभ, वीर गवाक्ष और चौथा गन्धमादन । ९२ चारों जनों ने चार पर्वत अकस्मात गिरा दिये, तो उसने उनको मुष्टि-घात से पिष्टवत कर डाला । ९३ कुम्भकर्ण ने शरभ और गवाक्ष को अपने हाथों से भूमि पर पटक दिया और (शेष) दोनों को ज़ोर से घुमाकर आकाश में उछाल दिया, जो (फिर) पृथ्वी पर गिर गये । ९४ तब कुम्भकर्ण, अट्टहासपूर्वक गरज उठा । जान पड़ा कि ब्रह्माण्ड फट जाएगा । फिर वानरों को देखकर वह उन्हें खाने के लिए दौड़ा । ९५ अकस्मात (बाँहों से) घेरकर वह अनेकानेक वानरों को पकड़ता, मुंह में डालकर चबाते हुए निगल जाता । उसका हिसाब सुनिए । ९६ हाथों में वृक्ष लिये हुए अस्सी सहस्र वानरों को उस असुर ने मुख फैलाकर (इस प्रकार) निगल

जाहले एकसरें । ९७ उरले वानर ते वेळे । रण सांडोनि पळाले । गिरिकंदरी दडाले । जीवभयेंकरूनियां । ९८ कित्येक तेव्हां वानरगण । सूर्यसुतासी गेले शरण । ते वेळीं पर्वत घेऊन । सुग्रीववीर धांविन्नला । ९९ विशाळ पर्वत टाकिला । येरें मुद्‌गरें चूर्ण केला । सुग्रीव म्हणे अमंगळा । वृथा पुष्ट राक्षसा । १०० तुझें नासिक आणि कर्ण । क्षण न लागतां छेदीन । विमानीं वृंदारकगण । जेणेंकरून तोषती । १ तुझा अग्रज दशकंधर । पंचवटीस येऊनि तस्कर । जानकी चिद्रत्न सुंदर । घेऊनि आला चोरूनियां । २ तरी तस्करातें दंड हाचि पूर्ण । छेदावें नासिक आणि कर्ण । तूं रावणानुज कुंभकर्ण । शिक्षा लावीन तुज आतां । ३ कुंभकर्ण म्हणे सुग्रीवासी । मशका आगळें बहुत बोलसी । जैसा पतंग वडवानळासी । विझवावया धांवत । ४ मशक जाहलें क्रोधायमान । म्हणे सगळा पर्वत गिळीन । वृश्चिक स्वपुच्छेंकरून । ताडीन म्हणे खदिरांगारा । ५ ऊर्णनाभीचा उदरतंतु । तेणें केवीं बांधिजे

डाला । (परन्तु उनमें से) अनेक उसके कानों के छेदों में से निकलकर एक साथ भाग गये । ९७ उस समय शेष वानर युद्ध (-भूमि) छोड़कर भाग गये और जीव (जाने के) भय से पर्वत-कन्दराओं में छिप गये । ९८ तब अनेक वानरगण सूर्य-सुत सुग्रीव की शरण में गये, तो उस समय वह वीर (सुग्रीव) पर्वत लेकर दौड़ा । ९९ (इसने) विशाल पर्वत फेंक दिया, तो उस (कुम्भकर्ण) ने मुद्‌गर से उसे चूर-चूर कर डाला । तो सुग्रीव ने कहा— ' रे अमंगल, रे व्यर्थ ही पुष्ट हुए राक्षस । १०० तेरी नाक और कानों को मैं क्षण न लगते छेद डालूँगा, जिससे विमानों में (बैठे हुए) देवगण तुष्ट हो जाएँगे । १०१ तेरा अग्रज दशानन (है)— वह चोर पंचवटी में आकर जानकी-रूपी सुन्दर चिद्-रत्न को चुराकर ले आया । २ अतः चोर के लिए यही पर्याप्त दण्ड है कि उसकी नाक और कानों को छेद दें । तू रावण का छोटा भाई कुम्भकर्ण है— अब मैं तुझे दण्ड दूंगा । ' ३ इसपर कुम्भकर्ण ने सुग्रीव से कहा— ' रे मच्छड़, तू बहुत उद्‌घट बोल रहा है । जैसे पतंग बडवाग्नि को बुझाने के लिए दौड़ रहा हो, (वैसे ही) तू मुझे रोकने के लिए दौड़ रहा है । ४ मच्छड़ हो गया हो क्रोधायमान और कह रहा हो— मैं समस्त पर्वत निकल डालूंगा । बिच्छू कहता (= चाहता) हो— मैं अपनी पूँछ से खदिरांगार को पीट डालूंगा । ५ मकड़ी की नाभि से निकलनेवाले तंतु से ऐरावत को

ऐरावतु । सूर्यमंडळ धगधगितु । खद्योत केवीं गिळील पां । ६ तैसा तूं बळहीन वानर । रागें आलासी मजसमोर । मत्कुण-प्राय शरीर । चूर्ण करीन तुझें आतां । ७ ऐसें बोलतां रावणानुज । पर्वत घेऊनि धांवे अर्कज । कुंभकर्णाचे हृदयीं सहज । येऊनियां आदळला । ८ पर्वत गेला चूर्ण होऊन । क्रोधें धांवे कुंभकर्ण । सुग्रीवासी चरणीं धरून । भोंवंडिला गरगरां । ९ पृथ्वीवरी आपटूं पाहत । तों प्रतापी सूर्यसुत । पिळूनि कुंभकर्णाचा हात । ऊर्ध्वपंथें उडाला । ११० ग्रहमंडळापर्यंत । उडोनि गेला कपिनाथ । त्याहून कुंभकर्णाचा हात । उंचावला ते काळीं । ११ मागुती वानरेश्वर धरिला । बळेंच कक्षेंत दाटिला । कक्षेमाजी गुंडाळला । कंटाळला दुर्गंधीनें । १२ म्हणे वाळीनें रावण । कक्षेंत घालोनि केलें स्नान । तो सूड आजि घेतला जाण । टाकीन रगडोनी मर्कटा । १३ जयवाद्यांचा गजर । होता जाहला पैं अपार । रणीं आजि साधिला वानरेश्वर । मग घटश्रोत्र परतला । १४ संसारजाळें परम थोर । त्यांत गुंतला साधक नर । तो पळावया पाहे बाहेर ।

कैसे बाँधें ? जुगनू जगमगाते हुए सूर्य-मण्डल को कैसे निगल पाएगा । ६ उस प्रकार तू बल-हीन वानर क्रोध से मेरे सामने आया है । मैं अब तेरे शरीर को खटमल-सा चूर कर डालूँगा ।' ७ रावण के छोटे भाई कुम्भकर्ण द्वारा इस प्रकार बोलने पर सूर्यपुत्र सुग्रीव पर्वत लेकर दौड़ा और आकर कुम्भकर्ण के हृदय (-स्थल) पर यों ही टकरा गया । ८ तो पर्वत चूर-चूर हो गया । (फिर) कुम्भकर्ण क्रोध से दौड़ा और उसने सुग्रीव को पाँवों में पकड़कर चक्राकार घुमा दिया । ९ वह उसे धरती पर पटकना ही चाहता था कि प्रतापी सुग्रीव कुम्भकर्ण के हाथ को मरोड़ते हुए ऊर्ध्व-पंथ से उड़ गया । ११० वह कपिनाथ ग्रह-मण्डल तक उड़कर गया, तो कुम्भकर्ण का हाथ उस समय उससे भी ऊँचाई को प्राप्त हो गया । ११ उसने पीछे से उस वानर-राज को पकड़ लिया, बलपूर्वक बगल में ठूँस लिया, बगल में फँसा दिया, तो वह (वहाँ) दुर्गन्ध से ऊब गया (घिन को प्राप्त हो गया)। १२ कुम्भकर्ण ने कहा—'बाली ने रावण को बगल में दबाये रखकर स्नान किया था । समझो कि आज उसका बदला लिया । रे मर्कट, मैं तुझे पीस डालूँगा ।' १३ (तब) जय (-सूचक)-वाद्यों का अपार गर्जन हो गया; (क्योंकि) आज युद्ध में उसने सुग्रीव को जीत लिया । फिर कुम्भकर्ण लौट गया । १४ घर-गिरस्ती का जाल परम

तेवीं वानरेश्वर निघों इच्छी । १५ दुर्गंधींत पडलें मुक्ताफळ । कीं पंकगर्तेत मराळ । कीं ब्राह्मण श्रोत्री निर्मळ । हिंसकगृहीं कोंडिला । १६ असो मस्त जाहला कुंभकर्ण । नसे तया देहस्मरण । तों कक्षेंतून सूर्यनंदन । न लागतां क्षण निसटला । १७ नेत्रपातें जंव हेलावत । इतुक्यांत साधिलें कृत्य । कुंभकर्णस्कंधीं उभा ठाकत । तारानाथ तेधवां । १८ दोन्ही विशाळ कर्ण ते वेळे । दोन्ही करीं दृढ धरिले । दंतसंधींत सांपडविलें । नासिक कुंभकर्णाचें । १९ कर्ण नासिक उपडोनी । सुग्रीव उडाला गगनीं । रामचरणांवरी येऊनी । मस्तक ठेवी सप्रेम। १२० एकचि जाहला जयजयकार । देव वर्षती सुमनसंभार । यशस्वी जाहाला सूर्यकुमर । आलिंगी रघुवीर तयातें । २१ घ्राण कर्ण नेले सूर्यसुतें । परी शुद्धि नाहीं कुंभकर्णातें । वर्तमान कळलें रावणातें । घटश्रोत्रातें विटंबिलें । २२ परम चिंताक्रान्त रावण । नापिक दीधला पाठवून । गगनचुंबित वंश घेऊन । तयासी

बड़ा होता है; उसमें यदि कोई साधक पुरुष फँस गया हो, तो वह जिस प्रकार भागकर बाहर जाना चाहता हो, उस प्रकार वानर-राज (कुम्भकर्ण के बगल में से) निकलना चाहता था । १५ (वह वहाँ फँस गया था) मानो मोती दुर्गन्ध में पड़ गया हो, अथवा कीचड़-भरे गड्ढे में हंस फँस गया हो, अथवा निर्मल (आचरण का) श्रोत्रीय ब्राह्मण हिंसक के घर में फँसकर बन्द हो गया हो । १६ अस्तु । कुम्भकर्ण उन्मत्त हो गया था, उसे देह (तक) का स्मरण (भान) नहीं था; तो सूर्यनन्दन सुग्रीव क्षण न लगते उसकी बगल में से छूट गया । १७ जब तक पलक हिल जाए, तब तक उस तारापति सुग्रीव ने यह कार्य सिद्ध किया और तब वह कुम्भकर्ण के कंधे पर खड़ा रह गया । १८ उसने उस समय कुम्भकर्ण के दोनों विशाल कान दोनों हाथों में दृढ़ता से पकड़े थे और उसकी नाक को दाँतों की संधि में पकड़ा दिया । १९ कान और नाक को उखाड़ते हुए सुग्रीव आकाश में उड़ गया और (फिर नीचे) आते हुए उसने श्रीराम के चरणों में प्रेमपूर्वक मस्तक (नवाँ) रखा । १२० तब अनुपम जय-जयकार हो गया । देवों ने पुष्प-राशियाँ बरसा दीं; (क्योंकि) सूर्यकुमार सुग्रीव सफल हुआ था । (तदनन्तर) रघुवीर राम ने उसका आलिंगन किया । २१ सुग्रीव नाक और कान ले गया, परन्तु कुम्भकर्ण को इसका भान नहीं था । (इधर) रावण को यह समाचार विदित हुआ कि कुम्भकर्ण की दुर्गत कर दी है । २२ (यह जानकर) रावण परम

दर्पण बांधिला । २३ सप्तखणी महाद्वार देख । त्यावरी उभा ठाके नापिक । कुंभकर्णाचे संमुख । आदर्श तेव्हां दाविला । २४ छेदोनि नेले नासिक कर्ण । दर्पणीं देखे कुंभकर्ण । सुग्रीव गेला कक्षेंतून । झालें स्मरण ते काळीं । २५ जैसा किंशुकीं फुलला पर्वत । तैसा दिसे कुंभकर्ण आरक्त । परम विटला मनांत । स्वरूप आपलें देखतां । २६ मनांत ह्मणे कुंभकर्ण । आतां व्यर्थ काय वांचून । दशग्रीवास परतोन । काय हें वदन दाखवूं । २७ कपींसहित रामलक्ष्मण । गिळीन रणीं न लागतां क्षण । पृथ्वी पालथी घालीन । निर्दाळीन देव सर्व । २८ कुंभकर्ण परतला दळीं । दांतें रगडी अधरपाळी । कृतान्तवत हांक दीधली । डळमळली उर्वी तेव्हां । २९ परतला देखोनि कुंभकर्ण । पळों लागले वानरगण । आले रघुपतीस शरण । रक्षीं रक्षीं म्हणूनियां । १३० दृष्टीं लक्षूनि राघव । कुंभकर्णे घेतली धांव । तंव तो सौमित्र बलार्णव । पाचारीत तयातें । ३१ म्हणे उभा

चिन्ताक्रान्त हो गया, तो उसने नाई को भेज दिया । उसने गगन-चुम्बी बाँस लेकर उसमें एक दर्पण (शीशा) बाँध लिया । २३ एक सत-खण्डा महाद्वार देखकर, नाई उसपर खड़ा रह गया और तब उसने कुम्भकर्ण के सामने (थमाते हुए) दर्पण दिखा दिया । २४ कुम्भकर्ण ने दर्पण में देखा (तो उसे विदित हुआ) कि उसकी नाक और कानों को छेदकर (कोई) ले गया है । उस समय उसे स्मरण हुआ कि सुग्रीव उसकी बगल में से (निकलकर) गया है । २५ जिस प्रकार (फूलों से लदे) पलाश (वृक्षों) से पर्वत (लाल-लाल) खिला हुआ (दिखायी देता) हो, उस प्रकार कुम्भकर्ण (रक्त से) लाल दिखायी दे रहा था । अपने स्वरूप को देखते ही वह मन में बहुत उकता गया । २६ कुम्भकर्ण ने मन में कहा (सोचा)— ' अब व्यर्थ जीवित रहकर क्या होगा ? लौटकर रावण को यह मुँह क्या दिखाऊँ । २७ मैं अब क्षण न लगते कपियों सहित राम-लक्ष्मण को युद्ध (-भूमि) में निगल डालूँगा । पृथ्वी को उलट दूँगा, सब देवों का निर्दालन करूँगा । ' २८ (ऐसा सोचकर) कुम्भकर्ण सेना में लौट गया । वह (क्रोध से) दाँतों से ओठों को चबा रहा था— अर्थात् दाँत पीस रहा था । (जब) वह कृतान्त की भाँति चिल्लाया, तब पृथ्वी काँप उठी । २९ (इस प्रकार) कुम्भकर्ण को लौटे देखकर वानर-गण भागने लगे । ' रक्षा करो ', ' रक्षा करो ' कहते हुए वे रघुपति की शरण में आ गये । १३० आँखों से राम को देखकर कुम्भकर्ण

राहें एक क्षण । पाहें माझें शरसंधान । परी तो न मानी कुंभकर्ण । रामाकडे धांविन्नला । ३२ परम कोपें सुमित्रा-कुमर । कुंभकर्णावरी टाकी सप्त शर । ते सपक्ष बुडाले समग्र । मध्येंच गुप्त जाहले । ३३ सौमित्रें टाकिले बहुत बाण । परी ते न मानी कुंभकर्ण । जेवीं पर्वतावरी पुष्पें येऊन । पडतां आसन न चळेचि । ३४ पंडितवचनें रसाळीं । पाखंडी न मानी कदाकाळीं । तैसा कुंभकर्ण ते वेळीं । न गणी शर सौमित्राचे । ३५ तों गदा घेऊनि बिभीषण । बंधूवरी आला धांवोन । म्हणे निर्नासिका एक क्षण । मजसीं आतां युद्ध करीं । ३६ म्यां पूर्वीं बोधिला दशवक्त्र । परी त्यासी झोंबला कामविखार । तेणें भुलला तो समग्र । शुद्धि अणुमात्र नसेचि । ३७ गोड वचनें कडू वाटती । कडू तें गोड वाटे चित्तीं । ऐश्वर्यमद झेंडू निश्चितीं । कंठीं दाटला तयाचे । ३८ रावणदुष्कृतवल्लीचीं फळें । तुम्हां प्राप्त जाहलीं शीघ्रकाळें ।

दौड़ा, तब उस बल-सागर लक्ष्मण ने उसे ललकारा । ३१ उसने कहा— ' एक क्षण खड़ा रहो और मेरा शर-सन्धान देखो । परन्तु उस कुम्भकर्ण ने उसका कोई महत्त्व नहीं माना; वह तो राम की ओर दौड़ा । ३२ (यह देखकर) लक्ष्मण ने परम क्रोध से कुम्भकर्ण पर सात बाण चला दिये, (परन्तु) वे पक्ष-सहित पूर्णतः धँस गये— (मानो) बीच में ही गुप्त हो गये । ३३ (फिर) लक्ष्मण ने बहुत बाण छोड़े, परन्तु कुम्भकर्ण ने उनका कोई महत्त्व नहीं माना (कोई चिन्ता नहीं की) । जिस प्रकार पर्वत पर फूल आकर गिर पड़ें, तो उनके पड़ने से (पर्वत का) आसन विचलित होता ही नहीं, उस प्रकार उन बाणों से कुम्भकर्ण टस-से-मस नहीं हुआ । ३४ पंडित के रसयुक्त (मधुर, सरस) वचन पाखंडी किसी भी समय (महत्त्वपूर्ण) नहीं मानता, वैसे ही कुम्भकर्ण ने उस समय लक्ष्मण के बाणों को नहीं गिना (ध्यान देने योग्य नहीं माना) । ३५ तब गदा लिये हुए विभीषण अपने भाई की ओर दौड़ा आया । वह बोला— ' रे नाक-हीन, अब एक क्षण मुझसे युद्ध कर । ३६ मैंने पहले दशानन को उपदेश दिया था, परन्तु उसे तो कामरूपी सर्प डँस गया है । उससे वह पूर्णतः मुग्ध हुआ है, (अतः) उसे अणु मात्र चेत नहीं है । ३७ उसे मधुर वचन कड़ुवे लगते हैं; जो कटु है, वह उसके मन को मीठा लगता है । ऐश्वर्य मद-रूपी झाग उसके गले में निश्चय ही भर गया है । ३८ रावण के पाप कर्मरूपी लता के फल अब शीघ्रकाल में तुम्हें प्राप्त हो गये हैं । '

त्याचें प्रत्युत्तर ते वेळे। कुंभकर्ण देतसे। ३९ म्हणे बिभीषणा शतमूर्खा। हांससी माझ्या कर्णनासिका। मी कोण हें तुज देखा। नाहीं कळलें अद्यापि। १४० कुळक्षयास कारण। तूं मिळालास इकडे येऊन। मजपुढें दावूं नको वदन। क्षणें प्राण घेईन तुझा। ४१ राक्षससिंहांमाजी देख। तूं एक जन्मलासी जंबुक। कपटिया न दाखवीं मुख। कुळवना पावक तूं। ४२ तुझीं शतखंडें करिता ये वेळीं। परी आम्हांसी द्यावया तिळांजळी। तुज रक्षिलें ये काळीं। कुलोत्पत्ती-कारणें। ४३ होईं माघारा वेगेंसीं। निघें रामाचे पाठीसीं। आजि कपिसेना निश्चयेंसीं। मी ग्रासीन क्षणार्धें। ४४ ऐकूनि बंधूचें वचन। माघारला बिभीषण। पुढें रामावरी कुंभकर्ण। मुद्गर घेऊनि धांविन्नला। ४५ श्रीराम म्हणे कुंभकर्णा। आजि तूं पात्र जाहलासी माझिया बाणा। तुम्हीं पीडिलें त्रिभुवना। जाणोनि ऐसें अवतरलों। ४६ तुवां जे गिळिले वानरगण। ते फोडोनि बाहेर काढीन। तुझें जवळी आलें

उस (कथन) का प्रति-उत्तर उस समय कुम्भकर्ण ने यह दिया। ३९ उसने कहा— 'हे शतमूर्ख विभीषण, मेरे कान-नाक को हँस रहा है? देख, अभी तक तुझे विदित नहीं हुआ कि मैं कौन हूँ। १४० तू कुल के क्षय का कारण (है, जो) इस ओर आकर (राम के पक्ष में) मिल गया। मेरे सामने (आकर) मुँह न दिखा; मैं क्षण में तेरे प्राण लूँगा। ४१ देख, राक्षसरूपी सिंहों के बीच अकेले तू सियार ने जन्म लिया है। रे कपटी, मुँह मत दिखा। तू तो कुलरूपी वन के लिए आग है। ४२ इस समय मैं तेरे सौ (-सौ) टुकड़े कर डालता। परन्तु (जान पड़ता है कि) इस समय हमें तिलांजलि देने के लिए (केवल हमारे) कुल में उत्पन्न होने के कारण मैं तुझे बचा रहा हूँ। ४३ वेगपूर्वक पीछे हो जा (हट जा) और राम की पीठ पीछे (छिपने के लिए) निकल जा। मैं आज क्षणार्थ में कपि-सेना को निश्चय ही निगल डालूँगा।' ४४ भाई की बातें सुनकर विभीषण लौट गया। तो फिर कुम्भकर्ण मुद्गर लेकर राम की ओर दौड़ा। ४५ (यह देखकर) श्रीराम ने कहा, 'हे कुम्भकर्ण, तू आज मेरे बाण के (निशाने के) योग्य हो गया है। (तुम लोगों) ने त्रिभुवन को पीड़ित किया।— यह जानकर मैं अवतरित हुआ हूँ। ४६ तुमने जिन वानर-गणों को निगल लिया है, उन्हें तुम्हारा पेट फाड़कर बाहर निकालूँगा। तुम्हारी मौत निकट आयी है। सावधान होकर

मरण। पाहें सावधान मजकडे। ४७ ऐसें बोलोनि दिनकर-कुळदीप। क्षण न लागतां चढवी चाप। जो आदिपुरुष त्याचा प्रताप। न वर्णवेचि वेदशास्त्रां। ४८ रणरंगधीर रघुवीर। उभा राहिला कुंभकर्णासमोर। कीं निशा संपतां दिनकर। उदयाचळीं विराजे। ४९ म्हणे मृत्युपुरीस राहें जाऊन। सवेंच पाठवितों रावण। लंकेस स्थापिला बिभीषण। चंद्रार्क भ्रमती गगनीं जों। १५० यावरी बोले कुंभकर्ण। तूं जन्मांतरींचा शत्रु पूर्ण। हें आम्हांसी आहे ज्ञान। मूळची खूण सर्वही। ५१ आपुलें सामर्थ्य वर्णिलें। परी मजपुढें कदा न चाले। कपिदळ गिळीन सगळें। दांतांसी दांतन लावितां। ५२ तुवां वधिले खर त्रिशिरा दूषण। वाळी मारिला कपटेंकरून। परी मजपुढें तो अभिमान। न चले कदा मानवीया। ५३ अरे निद्रार्णवीं जाहलों निमग्न। नातरी नुरतें त्रिभुवन। तुज वीर म्हणतां जाण। हांसें मज येतसे। ५४ वनचरांसी पीडी कुंजर। परी मृगेंद्रापुढें जर्जर। कीं मेघापुढें वणवा अपार। विझोनि

मेरी ओर देखो।' ४७ ऐसा बोलकर सूर्य-कुल-दीपक श्रीराम ने क्षण न लगते धनुष चढ़ा लिया। जो (श्रीराम वस्तुतः) आदि पुरुष हैं, उनके प्रताप का वर्णन वेदशास्त्रों द्वारा (तक) नहीं हो पाता। ४८ रणरंगधीर रघुवीर कुम्भकर्ण के सामने खड़े रह गये; अथवा जान पड़ता था कि रात के समाप्त हो जाने पर सूर्य उदयाचल पर विराजमान हो गया हो। ४९ उन्होंने कहा— 'तुम जाकर मृत्यु-पुरी में रहो; साथ ही मैं रावण को भेज देता हूँ। मैंने जब तक आकाश में चन्द्र और सूर्य भ्रमण करते रहेंगे, तब तक के लिए विभीषण को लंका में (राज-पद पर) स्थापित कर दिया है। १५० इसपर कुम्भकर्ण बोला— 'हमें इस बात का ज्ञान है कि तुम पूर्व जन्म के पूर्णतः शत्रु हो; आरम्भ से सभी लक्षण भी हमें ज्ञात हैं। ५१ तुमने अपनी सामर्थ्य का वर्णन किया, फिर मेरे सामने उसकी कभी भी नहीं चलेगी। मैं दाँतों से दाँत न मिलाते ही, समस्त कपि-दल को निगल डालूँगा। ५२ तुमने खर, दूषण, त्रिशिरा का वध किया; कपट से बाली को मार डाला; परन्तु हे मानव, तुम्हारा वह अहंकार मेरे सामने नहीं चलेगा। ५३ अरे, मैं निद्रा-सागर में निमग्न हो गया, नहीं तो त्रिभुवन नहीं बच पाता। समझो कि तुम्हें वीर कहते हुए मुझे हँसी आती है। ५४ वन्य प्राणियों को हाथी पीड़ा पहुँचाता है, परन्तु सिंह के सामने वह जर्जर हो जाता है; अथवा बहुत बड़ी दावाग्नि मेघ के

जाय क्षणार्धे । ५५ तैसें तुज येथें करीन । सोडीं तुझे निर्वाण बाण । हें ऐकोनि रघुनंदन । ओढी आकर्ण शर तेव्हां । ५६ जैशा प्रळयविजा अनिवार । तैसे राघवाचे येती शर । असुरें मुख पसरिलें थोर । गिळी अपार बाणांतें । ५७ भयभीत वानर तेथें । विलोकिती कुंभकर्णाचे सामर्थ्यातें । बाण गिळिले असंख्यातें । नव्हे गणित तयांचें । ५८ सागरीं मिळती गंगापूर । तैसे मुखीं सांठवी शर । मग हातीं घेऊन मुद्गर । रामावरी धांविन्नला । ५९ हांक फोडिली प्रचंड । तेणें डळमळलें ब्रह्मांड । जळचर वनचर उदंड । गतप्राण जाहले । १६० मुद्गर भोंवंडी चक्राकार । रामावरी घालूं पाहे असुर । मग तो रणरंगधीर । दिव्य शर काढीत । ६१ मंत्राच्या आवृत्ति करूनी । बाणाग्रीं स्थापिला प्रळयाग्नी । आकर्ण ओढी ओढूनी । बाण सोडी राघव । ६२ मुद्गरासहित हस्त । बाणें तोडिला अकस्मात । भेदीत गेला गगनपंथ । सपक्ष उरग

सामने (उसके बरसने लगते ही) क्षणार्ध में बुझ जाती है। ५५ उस प्रकार मैं यहाँ तुम्हारी स्थिति कर दूँगा। चला दो अपने निर्वाण बाण।' तब यह सुनकर रघुनन्दन ने (धनुष पर चढ़ाये हुए) बाण को कान तक खींच लिया। ५६ जिस प्रकार प्रलयकारी बिजलियाँ अनिवार्य रूप में आती रहती हैं, उस प्रकार श्रीराम के बाण (धनुष से निकलकर) आ जाते; परन्तु उस राक्षस ने अपने बड़े मुँह को फैला दिया और वह अनगिनत बाणों को निगल लेता रहा। ५७ वहाँ वानर भयभीत होकर कुम्भकर्ण की सामर्थ्य को देख रहे थे। उसने असंख्य बाणों को निगल डाला-- उनकी गिनती नहीं हो पाएगी। ५८ नदियों के प्रवाह सागर में मिल जाते हैं (और वह उन्हें अपने में समा लेता है) उस प्रकार कुम्भकर्ण अपने मुख में (मानो) बाणों का संग्रह कर रहा था। फिर वह हाथ में मुद्गर लिये हुए राम की ओर दौड़ा। ५९ वह प्रचण्ड (स्वर में) चिल्ला उठा; उससे ब्रह्माण्ड काँप उठा, तो (मारे भय के) अनगिनत जलचर और वनचर गतप्राण हुए। १६० वह असुर मुद्गल को चक्राकार घुमा रहा था और राम पर डालना (आघात करना) चाहता था। तब उस रणरंगधीर श्रीराम ने (तूणीर में से) एक दिव्य बाण निकाला। ६१ श्रीराम ने मंत्र की आवृत्ति, अर्थात् बारबार मंत्र पढ़कर बाण के अग्रभाग में प्रलयाग्नि की स्थापना की और उसे आकर्ण खींचकर छोड़ दिया। ६२ उस बाण ने (कुम्भकर्ण के) मुद्गर-सहित हाथ को अकस्मात काट डाला,

जयापरी । ६३ रामबाण हाचि सुपर्ण । गेला हस्तसर्प घेऊन । सवेंच सूर्यबीज मंत्र जपोन । रघुनंदन शर सोडी । ६४ तेणें खंडिला दुजा हस्त । गेला गगनीं अकस्मात । दोन्ही भुजा भूमीवरी पडत । विंध्याचळाचिया परी । ६५ परी भुजा होऊनि जित । जाती कपींचे भार रगडीत । वानर उचलोनि पर्वत । हस्त ठेंचिती असुराचे । ६६ सांडूनि संग्रामाची भूमी । वानर पळती गिरिवृक्षगुल्मीं । परी अचळ ठाण संग्रामीं । रघूत्तमाचें चळेना । ६७ मग काढिले दोर शर । गुणीं योजोनियां सोडी सत्वर । त्यांहीं दोन्हीं चरण समग्र । कटीपासूनि खंडिले । ६८ चरण गडबडाट थोर । खालीं पाषाण होती चूर । महावृक्ष घेऊनि वानर । ताडिती बळें ठायीं ठायीं । ६९ असो मुख पसरोनि ते काळीं । राक्षस धांवे पोटचालीं । विमानीं सुरवर ते वेळीं । आश्चर्य करिती तयाचें । १७० नासिकीं लोचनीं वदनीं । ज्वाळा सोडी क्रोधेंकरूनी । इकडे भीम-

तो कोई पक्ष-धारी सर्प जिस प्रकार (उड़) जाता हो, उस प्रकार वह (हाथ) गगन-पन्थ को काटता हुआ (उड़) गया । ६३ मानो रामबाण ही गरुड़ है, जो (कुम्भकर्ण के) हाथरूपी सर्प को ले गया । (तदनन्तर उसके साथ ही) सूर्यबीज मंत्र का जाप करके रघुनन्दन ने (दूसरा) बाण छोड़ा । ६४ उसने दूसरा हाथ खंडित कर दिया, जो अकस्मात आकाश में (उड़) गया । (कुम्भकर्ण) के दोनों हाथ विंध्य-पर्वत-से भूमि पर गिर गये । ६५ परन्तु वे हाथ जीवित होकर कपियों के समूहों को पीस डालते हुए जाने लगे, तो वानरों ने पर्वत उठाकर उनसे उस असुर के हाथों को कुचल डाला । ६६ युद्ध-भूमि को छोड़कर (कुछ) वानर पर्वतों, वृक्षों और झाड़ियों में भाग गये । परन्तु रघूत्तम श्रीराम की अचल ठवनी युद्ध में विचलित नहीं हुई । ६७ अनन्तर उन्होंने दो बाण निकाले और झट से डोरी पर स्थापित करते हुए चला दिये । उन्होंने (कुम्भकर्ण के) दोनों सम्पूर्ण पाँवों को कटि से खंडित कर डाला । ६८ वे प्रचण्ड चरण लुढ़क रहे थे । उनके नीचे पाषाण (तक) चूर-चूर होते जा रहे थे, तो वानरों ने बड़े-बड़े वृक्ष लेकर उन्हें बलपूर्वक स्थान-स्थान पर पीट (कूट) डाला । ६९ अस्तु । उस समय अपने मुख को फैलाये हुए वह राक्षस पेट के बल दौड़ने लगा । उस समय विमानों में (बैठे हुए) देव उससे आश्चर्य अनुभव कर रहे थे । १७० कुम्भकर्ण ने (तदनन्तर) क्रोध से नाक, आँखों और मुँह से ज्वालाएँ (निकालकर)

स्त्र बाणी । अयोध्यानाथें स्थापिलें । ७१ करी वायूचें खंडण । ऐसा राघवाचा दिव्य बाण । आकर्ण ओढी ओढून । न लागतां क्षण सोडिला । ७२ वज्रें तुटे शैलशिखर । तैसें बाणें उडविलें शिर । भेदीत गेलें अंबर । करीत प्रळयगर्जना । ७३ विमानें घेऊनि पळती सुरवर । भयभीत शशिदिनकर । तों शिर उतरोनि सत्वर । लंकेवरी पडियेलें । ७४ बहुत सदनें मोडून । कित्येक असुर पावले मरण । ते वेळीं वृंदारकगण । पुष्पें वर्षती श्रीरामावरी । ७५ जाहला एकचि जयजयकार । विजयी जाहला रघुवीर । दुंदुभि वाजवी सुरेश्वर । आनंद अंबरीं न समाये । ७६ धांवती सकळ वानरगण । वंदिती रघुपतीचे चरण । कुंभकर्णाचें उरलें सैन्य । लंकेमाजी प्रवेशलें । ७७ सभेसी येऊनि घायाळ । वर्तमान सांगती सकळ । ऐकतां रावण पडला विकळ । सिंहासनावरूनि । ७८ म्हणे गेलें कुंभकर्णनिधान । बंधूविणें दिशा शून्य । ऐसा शोकसमुद्रीं पडतां रावण । आला

छोड़ दीं (छोड़ना आरम्भ किया), तो अयोध्यानाथ श्रीराम ने बाण पर प्रचण्ड कालास्त्र की स्थापना की । ७१ श्रीराम का वह ऐसा दिव्य बाण था कि वह वायु (तक) को खंडित कर सकता था । उसे आकर्ण खींचते हुए उन्होंने क्षण न लगते चला दिया । ७२ जैसे वज्र (के आघात) से पर्वत-शिखर टूट जाता हो, वैसे उस बाण ने (कुम्भकर्ण के) सिर को काट डाला । वह (सिर) प्रलय (मचानेवाला)-गर्जन करते हुए आकाश को (मानो) भेदता हुआ (उड़) गया । ७३ तो (भय से) देव विमानों को लिये हुए भागने लगे; चंद्र और सूर्य भयभीत हो गये, त्यों ही वह सिर उतरते हुए लंका पर झट से गिर गया । ७४ उससे अनेकानेक घरों के टूटकर गिरने से कितने ही राक्षस मृत्यु को प्राप्त हुए । उस समय देवगणों ने श्रीराम पर पुष्प बरसा दिये । ७५ (तब) अपूर्व जय-जयकार हुआ । रघुवीर विजयी हो गये, (इसलिए) सुरपति इंद्र ने दुन्दुभी बजा दी । (उस समय सबका) आनन्द गगन में नहीं समा रहा था । ७६ तब समस्त वानरगण दौड़ते हुए आये; उन्होंने रघुपति के चरणों का वन्दन किया । (इधर) कुम्भकर्ण की शेष सेना ने लंका में प्रवेश किया । ७७ घायल तथा व्याकुल सैनिकों ने सभा (-गृह) में आकर समस्त समाचार कहा । उसे सुनकर रावण विकल होकर सिंहासन पर से (नीचे) गिर पड़ा । ७८ उसने कहा— ' कुम्भकर्णरूपी धन-भंडार (छिन) गया; बिना बन्धु के, मेरे लिए दिशाएँ शून्य हो गयीं । '

धांवूनि इंद्रजित । ७९ रावणासी सावरून । म्हणे राया पाहें विचारून । या मृत्युलोकासी येऊन । चिरंजीव कोण राहिला । १८० यावरी आमुचा विपरीत काळ । वानर मारिती राक्षसदळ । खद्योतें गिळिलें सूर्यमंडळ । मशक भूगोळा हालवी । ८१ पतंगपक्षवातेंकरूनी । कैसा विझाला प्रळयाग्नी । भूतांनीं काळ नेऊनी । कुटके करून भक्षिला । ८२ कुंभकर्ण वीरकेसरी । रणीं मारिला नरवानरीं । विपरीत काळाची परी । ऐसीच असे विचारा । ८३ रावणाचे विंशति नेत्र । पाझरती दुःखें नीर । त्या काळीं साहा जण वीर । उभे ठाकले संग्रामा । ८४ रामविजय ग्रंथ विशेष । युद्धकांड माजला वीररस । तो श्रवण करा सावकाश । ब्रह्मानंदेंकरूनियां । ८५ रणरंगधीर रघुवीर । भक्तवत्सल परम उदार । अभंग अक्षय श्रीधरवर । विजयी साचार सर्वदा । ८६ स्वस्ति श्रीरामविजयग्रंथ सुंदर । संमत

रावण के इस प्रकार शोक-सागर में पड़ते ही इंद्रजित दौड़ते हुए आ गया । ७९ रावण को सम्हालते हुए वह बोला-- 'हे राजा, विचार कर देखिए-- इस मृत्युलोक में आकर कौन चिरजीवी (होकर) रहा है ? १८० इसपर हमारे लिए प्रतिकूल काल (आ गया) है । वानर राक्षस-सेना को मार डाल रहे हैं । (मानो) जुगनू ने सूर्य-मण्डल को निगल डाला हो । (मानो) मच्छड़ ने भूगोल को हिला दिया हो । ८१ पतंग के परों (के आघात) से उत्पन्न वायु (के झोंके) से प्रलयाग्नि कैसे बुझ गयी ? (मानो) काल पुरुष को ले जाकर भूतों ने टुकड़े-टुकड़े करके खा डाला हो । ८२ वीरों में सिंह कुम्भकर्ण को युद्ध में नरों और वानरों ने मार डाला । विचार कीजिए, काल की गति ऐसी ही विपरीत होती है ।' ८३ रावण के बीसों नयन दुःख से (अश्रु-जल) झरा रहे थे । उस समय छः जने वीर युद्ध के लिए (सज्ज होकर) खड़े हो गये । १८४

'श्रीराम-विजय' नामक यह ग्रंथ विशेष (महत्त्वपूर्ण) है । उसके युद्ध काण्ड में वीर रस उमड़ रहा है । ब्रह्मानन्द पूर्वक धीरे-धीरे उसका श्रवण कीजिए । १८५

रणरंगधीर रघुवीर श्रीराम भक्त-वत्सल तथा परम उदार हैं । वे अभंग, अक्षय, श्रीधर-वरद (भगवान राम) सर्वदा सचमुच विजयी होंगे । १८६

वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। सप्तविंशतित-मोध्याय गोडा हा। १८७
॥ श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

स्वस्ति। श्रीराम-विजय नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। चतुर भक्त उसके इस मधुर सत्ताईसवें अध्याय का सदा श्रवण करें। १८७
॥ श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२८

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। श्रीराम-चरित्र अति सुरस। परिसतां अंतःकरणीं उल्हास। सांडोनि आठव-विसरास। राममय जाहलें। १ रघुवीरमहिमा विशेष। शोधावया धांविन्नलें मानस। तंव तें उन्मन होऊनि निःशेष। राममय जाहलें। २ बुद्धि धांवली वेगेंकरून। गणावया जगद्वंद्याचे गुण। तंव ते बौद्धरूप होऊन। राममय जाहली। ३ तों चित्तास आला आवेश। धणीभरी वर्णावया अयोध्याधीश। तें चैतन्यरूप होऊनि विशेष। राममय जाहलें। ४ कास घाली अहंकार। पावेन रामकथाब्धीचा पार। तो ब्रह्मानंदीं बुडाला

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। श्रीराम का चरित्र अति रसात्मक, अतएव मधुर है। उसे सुनते हुए श्रोता के अन्तः-करण में उल्लास अनुभव होता है। (मेरा) मन स्मरण और विस्मरण को छोड़कर, अर्थात् उसके परे होकर राम-मय हो गया है। १ मेरा मन (जब) श्रीरघुवीर राम की विशिष्ट महिमा की खोज करने के लिए दौड़ा, तो वह उन्मन होकर, अर्थात् उन्मनी अवस्था को प्राप्त होकर पूर्णतः राममय हो गया। २ (जब) मेरी बुद्धि उस जगद्-वंद्य श्रीराम के गुणों की गणना करने के लिए वेगपूर्वक दौड़ी, तब वह बौद्ध-रूप होकर अर्थात् मौन धारण करके राममय हो गयी। ३ तब मेरे चित्त में अयोध्याधीश राम का यथेष्ट वर्णन करने के लिए आवेश उत्पन्न हो गया। (परन्तु) वह (भी) विशेषरूप में चैतन्यरूप होकर राममय हो गया। ४

साचार। निरहंकार होऊनियां। ५ ऐकतां रघुनाथचरित। श्रवण होऊनि ठेले चकित। त्वचा आनंदमय होत। इतर स्पर्श टाकूनियां। ६ राम पाहावया वेळोवेळीं। चक्षूंनीं घेतली आळी। रसना आनंदें नाचों लागली। रामचरित्र वर्णावया। ७ रामचरणकमळींचा आमोद। सेवावया घ्राण झालें मिलिंद। एवं सर्व इंद्रियवृंद। रघुनाथीं लीन जाहला। ८ वक्ता म्हणे दश इंद्रियांतें। जिव्हेसी भाग्य आलें अद्भुतें। रघुपतीचे गुण वर्णी ते। ब्रह्मानंदेंकरूनियां। ९ श्रोते म्हणती आमुचे श्रवण। दश इंद्रियांमाजी धन्य। पुढें बोलें कथानुसंधान। युद्धकांड सुरस तें। १० सत्ताविसावे अध्यायीं कथन। रामें वधिला कुंभकर्ण। उद्विग्न जाहला रावण। तों वीर सहा जण ऊठिले। ११ महापार्श्व आणि महोदर। देवान्तक नरान्तक त्रिशिर। अतिकाय राजपुत्र। शक्रजिताचा कनिष्ठ बंधु। १२ घेऊनि चतुरंग

(तदनन्तर) मेरा अहंकार (यह सोचकर) कटिबद्ध हो गया—मैं राम-कथारूपी समुद्र के पार को प्राप्त हो जाऊँगा। तो वह अहंकार-हीन होकर सचमुच ब्रह्मानन्द रूपी सागर में निमग्न हो गया। ५ रघुनाथ के चरित्र को सुनते हुए मेरे कान चकित हो गये। अन्य (वस्तुओं के) स्पर्श को छोड़कर त्वचा आनन्दमय हो गयी। ६ आँखों ने श्रीराम के दर्शन कर लेने का समय-समय पर संकल्प किया, तो राम-चरित्र का वर्णन करने के लिए जिह्वा आनन्दपूर्वक नाचने लगी। ७ मेरी नाक श्रीराम के चरण-कमलों की सुगन्ध का सेवन करने के हेतु भ्रमर हो गयी। इस प्रकार मेरी समस्त इंद्रियों का समूह राम में लीन हो गया है। ८ वक्ता ने कहा—दसों इन्द्रियों में से जिह्वा को अद्भुत भाग्य प्राप्त हो गया है, (क्योंकि) वह रघुपति राम के गुणों का ब्रह्मानन्द-पूर्वक वर्णन कर सकती है। ९ (इसपर) श्रोताओं ने कहा—'दसों इंद्रियों में से हमारे कान धन्य हैं क्योंकि उन्हें श्रीरामचरित्र का श्रवण करने का अवसर प्राप्त हुआ है। अब आख्यान आगे कहिए (सुनाइए)। यह युद्धकाण्ड तो सरस (रसात्मक, मधुर) है।' १०

(तत्पश्चात् वक्ता अर्थात् कवि ने कहा—) सत्ताईसवें अध्याय में यह कहा कि राम ने कुम्भकर्ण का वध किया, (इसलिए) रावण उद्विग्न हुआ, तो छः जने वीर (युद्धभूमि की ओर प्रस्थान करने के लिए) उठ गये। ११ (वे थे–) महापार्श्व और महोदर, देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिर तथा इंद्रजित का कनिष्ठ बंधु राजकुमार अतिकाय। १२ चतुरंग सेना

सेना। साही चालिले रणांगणा। रणवाद्यें वाजती नाना। ऐकतां मना भय उपजे। १३ महाद्वार उल्लंघून। बाहेर निघाले साही जण। तों साही रथांवरी आणून। शिरें टाकिलीं गृध्रांनीं। १४ ऐसा होतां अपशकुन। मनीं विराले साही जण। परी वीरश्री नावरे पूर्ण। वेगें रणांगणीं पातले। १५ देखतां अमित्रांचे भार। स्मरारिमित्राचे उठिले वीर। घेऊन पर्वत तरुवर। समरांगणीं मिसळले। १६ राक्षसांचे पडले अस्थिपंजर। क्षणें माघारले असुर। तंव तो नरान्तक राजपुत्र। तुरंगारूढ धांविन्नला। १७ अनिवार कपींचा मार। बळें विदारिती वानर। मृत्तिकाघटवत फोडिती शिर। कीं पूगीफळ चूर्ण केलें। १८ तो तुरंग श्यामकर्ण। क्षीरार्णवाचें हृदयरत्न। कीं मुसेंत आटोनि चंद्रकिरण। तुरंगोत्तम वोतिला। १९ कीं जान्हवीचे तोयें घडिला। कीं उच्चैःश्रव्याचा बंधु आला। सुपर्णाहून वेगें आगळा। ऐसा प्रवेशला परदळीं। २० जैसी

लिये हुए वे छहों रणभूमि की ओर चल दिये। (तब) अनेकानेक रण-वाद्य बज रहे थे, (जिन्हें) सुनते ही मन में भय उत्पन्न हो रहा था। १३ वे छहों जने महाद्वार को लाँघकर बाहर निकले, तो छहों (के) रथों पर गिद्धों ने (कटे) सिर लाकर गिरा दिये। १४ ऐसे अपशकुन के होने पर वे छहों जने मन में खेद को प्राप्त हो गये। फिर भी (उनके द्वारा) वीरश्री को पूर्णतः रोका नहीं जा रहा था, (अतः) वे वेगपूर्वक रणांगण में आ पहुँचे। १५ शत्रु के दलों को देखते ही राम के वीर (युद्ध के लिए) उठ गये और पर्वत तथा वृक्ष लेकर वे समर-भूमि में मिल गये। १६ (उनके आघात से) राक्षसों के अस्थि-पंजर गिर गये, तो क्षण में (शेष) असुर लौट गये। तब नरान्तक नामक वह राजकुमार घोड़े पर आरूढ़ होकर दौड़ा (वेगपूर्वक आगे बढ़ा)। १७ वानरों (द्वारा) की (जाने-वाली) मार अनिवार्य थी। वानर (शत्रु के सैनिकों को) बल-पूर्वक विदीर्ण कर रहे थे। वे मस्तकों को मिट्टी के घड़ों की भाँति फोड़ रहे थे— मानो वे सुपारियों को (ही) चूर-चूर कर रहे हों। १८ (नरान्तक का) वह घोड़ा श्यामकर्ण था। मानो वह क्षीर-सागर के हृदय में से निकला हुआ रत्न था, अथवा चन्द्र-किरणों को घड़िया में औटाकर उस उत्तम घोड़े के रूप में ढाल दिया गया था। १९ अथवा उसे मानो गंगा के जल से बनाया था, अथवा उच्चैःश्रवा (नामक, समुद्र-मन्थन के समय निकले हुए रत्न) का बंधु ही उसके रूप में आया हो। वेग में गरुड़ से

प्रळयविद्युल्लता। तैसी झळके असिलता। अलातचक्र जेवीं फिरतां। दृष्टीं न दिसे कवणातें। २१ अश्व खर्ग क्षत्री पाहीं। तीन्ही मिळालीं एके ठायीं। नरान्तकें ते समयीं। ख्याती केली अद्भुत। २२ अठरा लक्ष ते क्षणीं। वानर मारिले रणांगणीं। किंचित माघारले द्रुमपाणी। तें अंगदें दुरोनि लक्षिलें। २३ अनिवार नरान्तकाचा मार। वानर वीर होतां समोर। सहस्रांचे सहस्र। घायासरिसे पाडीतसे। २४ धांवे जैसा कृतान्त। तैसा पेटला वाळिसुत। कीं वृक्षावरी अकस्मात। सौदामिनी पडियेली। २५ तैसा अंगद अकस्मात आला। कठोर पाणिप्रहार दीधला। नरान्तकाचा अंत जाहला। अश्वासहित ते काळीं। २६ नरान्तक पडतां चौघे जण। अंगदावरी धांवले चहूंकडून। महापार्श्व महोदर जाण। देवान्तक आणि त्रिशिर। २७ दोन पर्वत करीं घेऊन। उभा ठाकला वाळिनंदन। चौघांसीं युद्ध करितां पूर्ण। अंगद संकटीं पडियेला। २८ तंव

भी अद्भुत वह घोड़ा शत्रु-सेना में प्रविष्ट हो गया। २० जैसे प्रलय काल की बिजली चमकती हो, वैसे (नरान्तक की) असिलता (तलवार) चमक रही थी, वह अग्नि-चक्र जैसी घूमती हुई किसी को दिखायी नहीं दे रही थी। २१ देखिए, अश्व, खड्ग और क्षत्रिय (योद्धा)-तीनों (परस्पर योग्य) एक स्थान पर मिल गये थे। उस समय नरान्तक ने अद्भुत ख्याति (प्राप्त) की। २२ उसने उस क्षण अठारह लक्ष वानरों को रणांगण में मार डाला, तो (हाथों में वृक्ष धारण करनेवाले वे) वानर किंचित् पीछे हट गये। अंगद ने यह दूर से देखा। २३ सामने वानर वीरों के (उपस्थित) होने पर नरान्तक द्वारा की जानेवाली मार अनिवार्य हो रही थी। सहस्रों सहस्र वीरों को आघात करने के साथ ही वह गिरा रहा था। २४ (यह देखकर) जिस प्रकार कृतान्त दौड़ता हो, उस प्रकार वालि-सुत अंगद (उत्साह से) जल उठा (और दौड़ने लगा)। अथवा मानो वृक्ष पर सहसा बिजली ही गिरी हो। २५ उस प्रकार अंगद आया और उसने घूंसे से कठोरतापूर्वक प्रहार किया। (फलस्वरूप) उस समय नरान्तक का अश्व-सहित अन्त हो गया। २६ जान लीजिए, नरान्तक के गिर जाते ही महापार्श्व, महोदर, देवान्तक और त्रिशिर चारों जने अंगद पर चारों ओर से दौड़े। २७ (तब) वालिनन्दन अंगद दो पर्वतों को हाथों में लिये हुए खड़ा हो गया। (परन्तु) उन चारों से युद्ध करते-करते वह पूर्णतः संकट में पड़ गया। २८ तब वे वृषभ, नल

ते धांवती तिघे जण । वृषभ नळ वायुनंदन । नळें पर्वतघायेंकरून । महोदर रणीं मारिला । २९ देवान्तकासमीप हनुमंत । येऊन तयासी बोलत । तुज देवान्तक नाम सत्य । कोण्या मूढें ठेविलें । ३० निर्नासिकासी नाम रतिकान्त । कीं जारासी नाम ब्रह्मचारी म्हणत । कीं ज्याचें नांव आदित्य । तो अंधारीं पडियेला । ३१ जंबुक दृष्टीं देखतां पळे । त्यासी केसरी नाम ठेविलें । दोन्ही नेत्र संकोच जाहले । कमळनेत्र नाम तया । ३२ अमंगळा नाम भागीरथी । अनुसूया नाम जारिणीप्रती । कीं बाळविधवेसी निश्चितीं । जन्मसावित्री हें नाम । ३३ कोरान्न मागतां न मिळे कण । तयासी इंद्र नाम ठेविलें पूर्ण । जया क्षीरसिंधु नामाभिधान । परी तक्रही न मिळे प्राशना । ३४ अजारक्षका नाम पंडित । काष्ठवाहका नाम नृपनाथ । कीं दरिद्रियासी नाम प्राप्त । कुबेर ऐसें जाहलें । ३५ जैसे अजागळींचे स्तन । कीं मुखमंडण बधिरकर्ण । गर्भांधाचे विशाळ नयन । तैसें जाण

और हनुमान— तीनों जने दौड़े । (फिर) नल ने पर्वत के आघात से युद्ध में महोदर को मार डाला । २९ (उधर) हनुमान देवान्तक के निकट आकर उससे बोला— " सचमुच किस मूर्ख ने तेरा नाम ' देवान्तक ' रखा ? " ३० (यह वैसे ही हुआ, जैसे) नाक-हीन का नाम ' रतिकान्त ' (कामदेव मदन रखा) हो, अथवा जार (व्यक्ति) का नाम ' ब्रह्मचारी ' बताते हों, अथवा जिसका नाम ' सूर्य ' हो, वह अँधेरे में पड़ गया, अर्थात् फँस गया हो । ३१ सियार को आँखों से देखते ही जो भाग जाता हो, उसका नाम ' केसरी (सिंह) ' रखा हो, अथवा जिसके दोनों नेत्र संकुचित हो गये हों, उसका नाम ' कमल-नेत्र ' रखा हो । ३२ अथवा अमंगल का ' भागीरथी (गंगा) ' अथवा जारिणी का नाम ' अनसूया ' (रखा) हो । अथवा किसी बाल-विधवा का नाम निश्चय ही ' जन्म-सावित्री ' (रखा) हो । ३३ (सीधा या भोजन की कच्ची सामग्री) माँगने पर जिसे कण (तक) नहीं मिलता, उसका नाम ' इंद्र ' रखा हो, अथवा किसी को ' क्षीर-सिंधु ' नामाभिधान प्राप्त हो गया हो, परन्तु उसे पीने के लिए छाछ तक नहीं मिल रहा हो । ३४ गड़रिये का नाम ' पंडित ' हो, तो लकड़हारे का ' नृपनाथ ' अथवा दरिद्र को ' कुबेर ' नाम प्राप्त हुआ हो । (तेरा नाम ' देवान्तक ' रखना, उसी प्रकार मूर्खता का लक्षण है) । ३५ जैसे बकरी के गले में उत्पन्न स्तन (-सदृश मांस-पिण्ड स्तन कहे जाने पर भी) व्यर्थ होते हैं, सुन्दर मुखवाले व्यक्ति

नाम तुझें । ३६ वृषभासी सिंहासन । श्वानासी अर्गजालेपन पूर्ण । कीं दिव्याम्बर परिधान । जैसें उष्ट्रासी करविलें । ३७ कनकवृक्ष धोत्तियासी म्हणती । कीं चर्माचा केला हस्ती । पक्ष्यासी भारद्वाज म्हणती । देवान्तक तव नाम तैसें । ३८ ऐसें बोलून वायुकुमर । हृदयीं देतसे लत्ताप्रहार । संपला देवान्तकाचा संसार । तों त्रिशिरा सत्वर धांविन्नला । ३९ हनुमंतें वृक्ष घेऊन । त्रिशिरा मारिला न लागतां क्षण । ऋषभें पर्वत घेऊन । महापार्श्व मारिला । ४० अतिकाय ऐसें देखोन । सारथियासी म्हणे प्रेरीं स्यंदन । सर्वांसी अलक्ष करून । रामावरी धांविन्नला । ४१ सहस्र घोडे ज्याचे रथीं । एके सूत्रें आवरी सारथी । अरुणासही न टिके गती । नवल कपी करिती पैं । ४२ अतिकायाचें स्थूळ शरीर । इंद्रजिताऐसा

के कान यदि बहरे हों, तो वे जैसे व्यर्थ होते है, जैसे गर्भ से ही जो अंधा हो उसके नयन विशाल हों, तो भी निरर्थक हैं, समझ ले कि तेरा ‘ देवान्तक ’ नाम भी उसी प्रकार व्यर्थ है । ३६ बैल को (व्यर्थ ही) सिंहासन प्रदान किया, अथवा कुत्ते को अर्गजा का पूर्णतः लेपन व्यर्थ ही किया है, अथवा जैसे ऊँट को दिव्य वस्त्र पहनाये गये हैं । ३७ धतूरे को व्यर्थ ही ‘ कनक ’ वृक्ष कहते हैं, अथवा चमड़े का व्यर्थ ही हाथी बनाया हो, भरदूल नामक एक पक्षी को ‘भरद्वाज ’ कहना जिस प्रकार व्यर्थ है, उस प्रकार तेरा ‘ देवान्तक ’ नाम (व्यर्थ) है । (अर्थात् कनक कहने से धतूरे में सोने के, चमड़े के निर्जीव हाथी में हाथी के या ‘ भरद्वाज ’ कहने से पक्षी में भरद्वाज ऋषि के गुण उत्पन्न नहीं होते । वैसे ही तुझे देवान्तक कहने से तुझमें देवों का अन्त करने की शक्ति नहीं उत्पन्न हुई है । ३८ इस प्रकार बोलकर, हनुमान ने उसके हृदय (-स्थल) पर लात से प्रहार किया । (फल-स्वरूप) देवान्तक का अस्तित्व समाप्त हुआ, तो त्रिशिर झट से दौड़ा । ३९ (तब) हनुमान ने वृक्ष लेकर त्रिशिर को क्षण न लगते मार डाला और ऋषभ ने पर्वत लेकर महापार्श्व को मार गिराया । ४० ऐसा देखते हुए अतिकाय ने सारथी से कहा— ‘ रथ चला दो । ’ फिर सबको अनदेखा करके वह राम की ओर दौड़ा । ४१ उसके रथ में हज़ार घोड़े (जुते) थे और सारथी एक ही सूत्र अर्थात् लगाम से उन्हें अपने वश में कर रहा था । (सूर्य के सारथी) अरुण (तक) के साथ उसकी (-सी) गति बनी नहीं रह पाती । (उसे देखकर) वानर आश्चर्य अनुभव कर रहे थे । ४२ अतिकाय का शरीर स्थूल (मोटा) था, वह इंद्रजित जैसा प्रचंड वीर था । पाँच वानर हाथों में पर्वत लेकर

प्रचंड वीर । तयासमोर जाहले पांच वानर । पर्वत हातीं घेऊ-
नियां । ४३ गवय गवाक्ष कुमुद । शरभ आणि पांचवा मैंद ।
पर्वत टाकिती सुबद्ध । एकदांच ते काळीं । ४४ अतिकायें
सोडूनि बाण । पर्वत टाकिले पिष्ट करून । शरीं खिळिले
पांचही जण । आरंबळत पडियेले । ४५ बिभीषणासी पुसे
रघुनंदन । अहो हा आहे कोणाचा कोण । येरू म्हणे रावणाचा
नंदन । नामाभिधान अतिकाय । ४६ हा दिव्यरथ तेजा-
गळा । ब्रह्मदेवें यासी दिधला । हा अनिवार असे झाला ।
पुरुषार्थ याचा अद्‌भुत । ४७ हा कोणास नाटोपे पूर्ण । तुम्हींच
उठावें घेऊन धनुष्यबाण । कीं पाठवावा उर्मिलाजीवन । याचा
प्राण घ्यावया । ४८ काढिली चापाची गवसणी । जेवीं निशान्तीं
प्रकटे तरणी । कीं कुंडांतील महा अग्नी । याज्ञिकें फुंकोनि
चेतविला । ४९ तों विनवी सुमित्रानंदन । मी अतिकायासीं
युद्ध करीन । अवश्य म्हणे सीताजीवन । विजयी होईं रणां-
गणीं । ५० चाप चढवून सत्वर । पुढें धांवे सुमित्राकुमर ।

उसके सामने (उपस्थित) हो गये । ४३ गवय, गवाक्ष, कुमुद, शरभ और पाँचवें मैंद ने उस समय एक साथ ही पर्वत गिरा दिये । ४४ (परन्तु) अतिकाय ने बाण छोड़कर उन पर्वतों को चूर-चूर कर डाला । वे पाँचों जने बाणों से कील दिये गये और हाय-हाय करते हुए पड़े रहे । ४५ (तब) रघुनन्दन ने विभीषण से पूछा— ' यह कौन किसका है ? ' तो उसने कहा— ' यह रावण का पुत्र है; उसका नाम अतिकाय है । ४६ तेज में अनोखा यह दिव्य रथ इसे ब्रह्मा ने दिया है, (इसलिए) यह अनिवार्य (रोकने के लिए असम्भव) हो गया है । इसका पुरुषार्थ अद्‌भुत है । ४७ यह किसी से पूर्णतः रोका नहीं जाएगा । (इसलिए) आप ही धनुष-बाण लेकर उठिए, अथवा इसके प्राणों को (छीन) लेने के लिए ऊर्मिला-जीवन लक्ष्मण को भेजिए । ' ४८ (यह सुनकर) राम ने धनुष का आच्छादन हटा दिया । तो जिस प्रकार रात के अन्त में सूर्य प्रकट होता है, अथवा यज्ञ-कर्ता ने (यज्ञ-) कुण्ड में स्थित महाअग्नि को फूंककर प्रज्वलित किया हो, उस प्रकार वह तेजस्वी धनुष प्रकट हो गया । ४९ तब सुमित्रा-नन्दन लक्ष्मण ने विनती की— ' अतिकाय से मैं युद्ध करूँगा (अतः आज्ञा दो) । ' तो राम ने कहा— ' अवश्य । रणांगण में विजयी होओ । ' ५० (तदनन्तर) धनुष को सत्वर चढ़ाते हुए लक्ष्मण आगे दौड़ा । वह बोला— ' रे अतिकाय, मैं आज तेरे मोटे शरीर की प्रहार

म्हणे रे अतिकाया तुझें स्थूळ शरीर। विटंबीन आजि घातें। ५१
तुझे शरें स्थूल सूक्ष्म देह दोन्ही। वेगळे करीन समरांगणीं।
आतां लंकेंत परतोनी। कैसा जाशील माघारा। ५२ कृतान्ता-
चिया मुखांत। सांपडला राक्षस समस्त। कुंजर गेला सिंह-
दरींत। तो कैसा येईल माघारा। ५३ काळें पाश घालूनी।
ओढून तुज आणिलें रणीं। भुजंगाचे कवेंतूनी। मूषक कैसा
जाईल। ५४ अतिकाय म्हणे ते समयीं। तूं वीर म्हणविशी
पाहीं। महाव्याघ्राचें सोंग कांहीं। जंबुकें जैसें धरियेलें। ५५
नट नृप जाहला वेष धरून। परी त्या न भीती कोणी जन।
वरी वैराग्य दावी पूर्ण। अंतरीं मन तळमळी। ५६ अयोध्या
सांडोनि लवलाहीं। प्रारब्धें आणिलें ये ठायीं। आतां कोणाचे
पायीं। जाल तुम्ही येऊनियां। ५७ स्वर्गीं तुमचे पितृगण।
काय करिती तेथें बैसोन। त्यांचा समाचार आणावया पाठ-
वीन। तुम्हांस आतां ये काळीं। ५८ ऐसें ऐकोन अतिकायाचें
वचन। सौमित्र म्हणे सावधान। आतां सांभाळीं माझे बाण।

से विटम्बना (दुर्गत) कर दूँगा। ५१ मैं समरांगण में तेरी स्थूल और सूक्ष्म दोनों देहों को बाण से अलग-अलग कर दूँगा। अब लौटकर लंका में पुनः कैसे जा पाएगा। ५२ यम के मुख में सम्पूर्ण राक्षस फँस गया हो, अथवा सिंह की घाटी में हाथी गया हो, तो लौटकर कैसे आएगा ? ५३ (जान पड़ता है,) काल पाश डालकर तुझे खींचकर रण में लाया है। साँप की पकड़ में से (छूटकर) चूहा कैसे जाएगा ? ' ५४ (यह सुनकर) उस समय अतिकाय ने कहा-- ' देख, तू वीर कहाता है। (परन्तु जान पड़ता है,) सियार ने महान बाघ का कोई स्वाँग धारण किया हो। ५५ कोई अभिनेता (या बहुरूपिया) वेश धारण करके राजा हो गया हो, फिर भी उससे लोगों में से कोई नहीं डरता। (तू वैसा ही कर रहा है) जैसे कोई (ऊपर से) पूरा वैराग्य दिखाता तो हो, परन्तु अन्दर (भोगासक्ति से) मन तड़प रहा हो। ५६ तुम (दोनों) को अयोध्या से छुड़ाकर भाग्य झट से यहाँ लाया है। अब (यहाँ) आकर किसके पाँवों के बल तुम (अयोध्या लौट) जाओगे। ५७ तुम्हारे पितृ-गण जो स्वर्ग में हैं, वे वहाँ बैठे हुए क्या कर रहे हैं, इसका समाचार लाने के लिए मैं अब इस समय तुम्हें भेज दूंगा। ' ५८ अतिकाय की ऐसी बात सुनकर लक्ष्मण ने कहा— ' सावधान, अब मेरे उन बाणों को सम्हाल (-सहन कर) लो, जो तेरे प्राणों का अपहरण-कर्ता हैं। ' ५९ तब अतिकाय ने (अपने उस) रथ

तुझे प्राणहर्ते जे । ५९ तों अतिकाय लोटी स्यंदन । जो शतखणीं मंडित पूर्ण । मित्रकरसंख्या वारू जाण । श्वेतवर्ण योजिले । ६० सौमित्र सोडी पांच बाण । नेणों पंच चपळा निघाल्या मेघांतून । लंकेशपुत्रें देखोन । योजिला बाण ते काळीं । ६१ चापापासून सुटतां बाण । तेणें पांच शर टाकिले खंडून । मग सोडीत बाण । सुमित्रानंदन ते काळीं । ६२ परम चपळ अतिकाया । तितुके शर तोडी लवलाह्या । प्रळयमेघापरी गर्जोनियां । सहस्र बाण सोडिले । ६३ मग लक्षांचे लक्ष बाण । सोडी सुमित्रानंदन । कीं बाणांचाच पर्जन्य । वर्षतसे ते काळीं । ६४ तेथें गजमस्तकें विराजत । मुक्तें त्याचि गारा उसळत । शक्ति विद्युल्लता अद्भुत । पूर वाहात अशुद्धाचे । ६५ तेथें शस्त्रें जाती वोसन । प्रेतें वृक्ष जाती वाहोन । वीरांचे हस्त विरोळे पूर्ण । तळपताती ठायीं ठायीं । ६६ वीरांचे दंत विखुरले बहुत । तेचि वाळू असंख्यात । खेटकें वरी तरत । तेचि कूर्म जाणावे । ६७ गजशुंडा वाहाती । तींचि नाडेसावजें

को वेग-पूर्वक आगे बढ़ा दिया, जो अपने सातों खण्डों में पूर्णतः सुशोभित था। जान लीजिए, उसमें श्वेतकर्णोंवाले सहस्र घोड़े जुते हुए थे। ६० (तदनन्तर) लक्ष्मण ने पाँच बाण चलाये— न जाने, मानो मेघ में से पाँच बिजलियाँ ही निकल गयी हों। उस समय लंकेश-पुत्र अतिकाय ने उन्हें देखकर बाण सन्धान किया। ६१ धनुष से बाण के छूटते ही उसने (लक्ष्मण के) पाँचों बाणों को खंडित कर डाला। तब लक्ष्मण ने उस समय सहस्र बाण चला दिये। ६२ (परन्तु) अतिकाय तो परम चपल था। उसने झट से उतने ही बाणों को काट डाला और प्रलय-मेघ की भाँति गरजते हुए सहस्र बाण छोड़े। ६३ फिर लक्ष्मण ने लाखों-लाख बाण छोड़े। अथवा (जान पड़ता था कि) उस समय बाणों की वर्षा ही हो रही थी। ६४ वहाँ हाथियों के (कटे) मस्तक विराजमान थे। उनसे उत्पन्न मोती ही मानो ओले थे। शक्तियों-रूपी अद्भुत विद्युल्लताएँ थीं। रक्त के रेले बह रहे थे। ६५ वहाँ शस्त्र व्यर्थ हो जाते थे। प्रेतरूपी वृक्ष बहते जा रहे थे। वीरों के (कटे हुए) हाथ जल-सर्प थे, जो स्थान-स्थान पर जगमगा रहे थे। ६६ वीरों के जो (टूटे हुए) बहुत दाँत बिखरे थे, वे ही (मानो) अनगिनत बालू (के कण) थे। (रक्त रूपी पानी के) ऊपर जो ढालें तैर रही थीं, उन्हीं को कछुए समझें। ६७ जो हाथियों की सूँड़ें बहती जा रही थीं, वे ही मानो मगर चमक रहे

तळपती । असो ऐशी सौमित्रें केली ख्याति । मान तुकविती वानर । ६८ बहुत अस्त्रें नाना शस्त्रें । सौमित्रावरी लंकेशपुत्रें । टाकिलीं परी सौमित्रें । छेदोनियां पाडिलीं । ६९ मग सौमित्रें काढिला दिव्य बाण। मुखीं ब्रह्मास्त्र स्थापून । कल्पान्तविजेसमान। चापापासून सोडिला । ७० निमिष न लागतां सत्वर । छेदिलें अतिकायाचें शिर । झाला एकचि जयजयकार । सुमनें सुरवर वर्षती । ७१ बहुसाल आटलें दळ । लंकेंत प्रवेशले घायाळ । रावणापुढें सकळ । समाचार सांगती । ७२ सिंहासनारूढ़ रावण । खालीं पडे मूर्च्छा येऊन । मग इंद्रजितें धांवोन । सांवरून बैसविला । ७३ म्हणे माझीं साही निधानें गेलीं । पुनः परतोन नाहीं देखिलीं । अतिकायासारिखा बळी । पाठिराखा तुझा गेला । ७४ इन्द्रजित म्हणे रायाप्रती। होणार न चुके कल्पान्तीं । आतां युद्धासी जातों मी निश्चितीं । शत्रुक्षय करावया । ७५ चतुरंग दळेंसीं झडकरी । रणमंडळीं आला शक्रारी । सेनाव्यूह ते अवसरीं । आपणाभोंवते

थे । अस्तु । सौमित्र ने इस प्रकार वीरता (प्रदर्शित) की, (जिसे) देखते हुए वानरों ने (आदर-पूर्वक) सिर झुका लिया । ६८ (इधर) लंकेश-पुत्र अतिकाय ने लक्ष्मण पर बहुत अस्त्र और नाना शस्त्र (फेंक) डाले, परन्तु उसने (उन्हें) काटकर गिरा दिया । ६९ फिर लक्ष्मण ने एक दिव्य बाण निकाला और उसके मुख अर्थात् अग्र पर ब्रह्मास्त्र की स्थापना करके कल्पान्त की बिजली-सा धनुष से छोड़ दिया । ७० उस बाण ने सचमुच क्षण न लगते अतिकाय का सिर छेद डाला, तो अपूर्व जयजयकार हो गया । (यह देखकर) देवों ने फूल बरसा दिये । ७१ (इस युद्ध में) बहुत (बड़ी) सेना नष्ट हो गयी । घायल (सैनिक) लंका में प्रविष्ट हो गये । उन्होंने रावण के सम्मुख (उपस्थित होकर) समस्त समाचार कह दिया । ७२ (उसे सुनते ही) सिंहासन पर आरूढ़ हुआ रावण मूर्च्छा आकर नीचे गिर पड़ा । तब इंद्रजित ने दौड़कर उसे सम्हालते हुए बैठा लिया । ७३ (तत्पश्चात्) रावण ने कहा— 'मेरे छहों धन-भण्डार (-से वीर, जो) गये थे, उन्हें मैं लौटकर आये हुए नहीं देख सका । (हे इंद्रजित) तुम्हारा अतिकाय जैसा बलवान सहायक चला गया ।' ७४ (यह सुनकर) इंद्रजित राजा (रावण) से बोला— 'होनी कल्पान्त (तक) में नहीं टलती । अब मैं निश्चय ही शत्रु का क्षय (नाश) करने के हेतु युद्ध के लिए जाऊँगा ।' ७५ (तदनन्तर) इंद्रजित

रचियेले । ७६ रक्तें करूनियां स्नान । रक्तवर्ण वस्त्रें नेसून । बिभीतकसमिधा आणोन । सर्षपधान्यसंयुक्त । ७७ रणमंडळीं केलें हवन । आंतून निघाला स्यंदन । धनुष्य तूणीर शस्त्रें पूर्ण । सारथिअश्वांसमवेत । ७८ त्या रथीं बैसोन झडकरी । मेघाआड गेला शक्रारी । दुर्धर शर ते अवसरीं । वर्षता जाहला अपार । ७९ ते बाण नव्हती संपूर्ण । वर्षत विजांचा पर्जन्य । शिरें आणि कर चरण । कपींचीं तुटती तटतटां । ८० कोटयनुकोटी पडिले वानर । जाहला एकचि हाहाकार । एकाखालीं एक दडपती वीर । परम दुस्तर ओढवलें । ८१ एक पळावया योजिती । तत्काळ कर चरण खंडती । रामसौमित्र तटस्थ पाहती । अंगीं आदळती सायक । ८२ धनुष्यें हातींचीं गळोनी । रामसौमित्र पडले धरणीं । लीलावतारी चापपाणी । दाखवी करणी शत्रूची । ८३ शतबाणें इंद्रजितें । खिळिलें रामसौमित्रांतें । पुराणसंख्या बाणीं अर्कजातें । विंधोनि भूमीं पाडिलें । ८४

चतुरंग दल-सहित झट से रण-भूमि-मण्डल में आ गया। उसने (वहाँ) उस समय अपने चारों ओर सेना के व्यूह की रचना की। ७६ उसने रक्त में स्नान करते हुए रक्त-वर्ण (लाल) वस्त्र पहनकर तथा बहेड़े की समिधाएँ लाकर सरसों से रण-भूमि-मण्डल में हवन किया तो अन्दर से धनुष, तूणीर, (सब प्रकार के) पूरे शस्त्रों तथा सारथी और घोड़ों सहित एक रथ निकल आया। ७७-७८ उस रथ में झट से बैठकर इन्द्रजित मेघ की ओट चला गया और उस समय उसने अनगिनत दुर्धर बाणों की बौछार की। ७९ वे मानो सम्पूर्ण बाण थे ही नहीं— मानो बिजलियों की वर्षा ही हो रही थी। वानरों के मस्तक और हाथ, पाँव तड़ाक-पड़ाक कट रहे थे। ८० करोड़ों करोड़ वानर गिर पड़े, तो अद्भुत हाहाकार मचा। एक के नीचे एक वीर दब गये। परम दुस्तर संकट आ पड़ा। ८१ कोई-कोई (वानर वीर) भागने लगते, तो तत्काल उनके हाथ-पाँव खंडित हो जाते। राम-लक्ष्मण स्तब्ध हो देख रहे थे, तो उनके शरीरों से बाण टकराने लगे। ८२ उनके हाथ के धनुष छूट जाने पर राम-लक्ष्मण धरती पर गिर गये। (वस्तुतः इस प्रकार) लीला-अवतार धारण करनेवाले चाप-पाणि श्रीराम शत्रु की करनी प्रदर्शित करा रहे थे। ८३ इंद्रजित ने एक सौ बाणों से राम-लक्ष्मण को कील डाला, तो अठारह बाणों से सुग्रीव को बेधकर भूमिपर गिरा दिया। ८४ उसने छः बाणों से गंधमादन को युद्ध-भूमि में गिरा लिया और बारह बाणों

शास्त्रसंख्याबाणीं । गंधमादन पाडिला रणीं । रविसंख्येनें धरणीं । ऋषभ मैंद पाडिला । ८५ चंद्रकळासंख्या बाणीं नीळ । सागरसंख्यें ऋक्षपाळ । स्कंदमुखसंख्येनें नळ । प्रेतवत पडिला । ८६ ऋत्वर्धदिवससंख्याबाणीं । अंगद पाडिला समरांगणीं । गवय गवाक्ष शरभ तीन्ही । संवत्सरसंख्यांनीं खिळिले पैं । ८७ सोडून कळासंख्याबाण । खिळिला दधिमुख पावकलोचन । विद्यासंख्या सायक पूर्ण । सुषेणावरी घातले । ८८ रुद्रनेत्रसंख्या टाकून शर । खिळिले गज केसरी वानर । हेमकूट गौरमुख वीर । युगसंख्यांनीं खिळियेले । ८९ सुमुख दुर्मुख ज्योतिर्मुख । यांवरी अवतारसंख्यासायक । वरकड वानर जे असंख्य । ते बाणसंख्यांनीं खिळियेले । ९० ऐसा करूनियां अनर्थ । खालीं उतरे इंद्रजित । जयवाद्यें वाजवीत । लंकेमाजी प्रवेशला । ९१ परम हर्षयुक्त रावण । पुत्रासी देत आलिंगन । म्हणे माझा प्रताप वाढविला पूर्ण । तुवां एकें पुत्रराया । ९२ असो वानर पडिले सर्व । परी दोघे उरले चिरंजीव । बिभीषण हनुमंत बलार्णव । प्रियप्राण राघवाचे । ९३ दोघे अत्यंत म्लान-

से ऋषभ तथा मैंद को गिरा डाला । ८५ सोलह बाणों से नील को, चार बाणों से ऋक्षपाल (जाम्बवान) को तथा छः बाणों से नल को प्रेतवत् गिरा दिया । ८६ इक्कीस बाणों से समरांगण में अंगद को गिरा दिया, तो साठ बाणों से गवय, गवाक्ष, शरभ— तीनों को कील डाला । ८७ चौंसठ बाण छोड़कर उनसे अग्नि के समान नेत्रवाले दधिमुख को कील लिया, तो सब (मिलाकर) चौदह बाण सुषेण पर छोड़े । ८८ गज और केसरी नामक वानरों को तीन बाण छोड़कर जकड़ डाला, तो हेमकूट और गौरमुख नामक (वानर) वीरों को चार बाणों से कील लिया । ८९ सुमुख, दुर्मुख और ज्योतिर्मुख— इन (वानरों) पर दस बाण छोड़े, तो अन्य जो अनगिनत वानर थे, उन्हें पाँच बाणों से कील डाला । ९० इस प्रकार का अनर्थ करके इन्द्र नीचे उतरा और जय-सूचक वाद्यों को बजाते हुए लंका में प्रविष्ट हो गया । ९१ तब रावण ने परम हर्ष-युक्त होकर पुत्र का आलिंगन किया और कहा— ' हे पुत्रराज, तुम अकेले ने मेरे प्रताप को पूर्णतः बढ़ा दिया है ' । ९२

अस्तु । सब वानर तो गिर गये, परन्तु दो चिरंजीवी अर्थात् बल-सागर विभीषण और हनुमान शेष रहे । वे श्रीराम के प्रिय-प्राण ही थे । ९३ अत्यधिक म्लान-बदन होकर वे दोनों सुबक-सुबककर रुदन

वदन। स्फुंदस्फुंदोनि करिती रुदन। म्हणती काळ कैसा कठिण। आतां विचार कोण करावा। ९४ अस्ता गेला वासरमणी। प्रवर्तली घोर रजनी। मग चुडिया पाजळोनि ते क्षणीं। रण शोधूं निघाले। ९५ महावृक्ष उन्मळले। तैसे ठायीं ठायीं वीर पडले। रण घुमत असे ते वेळे। दोघे जण देखती। ९६ तंव तो वीर जांबुवंत। पडलासे आरंबळत। मग तया सांवरूनि हनुमंत। बैसविता जाहला। ९७ जांबुवंत बोले वचन। या चराचराचा निजप्राण। तो सुखी असे कीं रघुनंदन। अनुजासहित सांग पां। ९८ स्फुंदस्फुंदोनि सांगे बिभीषण। निचेष्टित पडले रामलक्ष्मण। त्याचपरी सकळ सैन्य। प्राणहीन पडलें असे। ९९ मग बोले ऋक्षपाळ। कोणी आणील द्रोणाचळ। तरी त्या वल्लीसुवासें सकळ। वीर आतां उठतील। १०० उगवला नसतां वासरमणी। औषधी आणाव्या त्वरेंकरूनी। ऐसें ऐकतां तये क्षणीं। मारुतात्मज आवेशला। १ क्षीराब्धीचे पैलतीरीं। चार कोटी योजनें दूरी। मारुति म्हणे तृतीय प्रहरीं। औषधी वेगीं आणितों। २ बिभीषणासी हनुमंत।

करने लगे। उन्होंने कहा— 'कैसा कठिन काल (आया) है। अब क्या विचार करें।' ९४ (तदनन्तर) सूर्य अस्त को प्राप्त हुआ और घोर रात आ गयी। तब उस क्षण मशालें प्रज्वलित करके वे रण में ढूँढ़ने लगे। ९५ मानो महावृक्ष उखड़ गये हों। वैसे स्थान-स्थान पर वीर पड़े थे। उस समय रण-भूमि मानो कराह रही थी। वे दोनों देख रहे थे। ९६ तब वीर जाम्बवान छटपटाता हुआ पड़ा था। उसे तब सम्हालते हुए हनुमान ने बैठा लिया। ९७ (फिर) जाम्बवान ने यह बात कही— 'यह बताओ— इस चराचर के जो मानो अपने प्राण ही हैं, वे रघुनन्दन क्या अपने छोटे बंधु-सहित सकुशल तो हैं।' (तब) विभीषण ने सुबकते-सुबकते कहा— 'राम-लक्ष्मण अचेत पड़े हैं। उसी प्रकार समस्त (वानर) सेना (भी) प्राण-हीन हो पड़ी हुई है।' ९८-९९ तब ऋक्षपाल जाम्बवान ने कहा— 'यदि कोई द्रोण-गिरि ले आए, तो उस पर की लता की गन्ध से समस्त वीर अब (सचेत होकर) उठेंगे। १०० जब तक सूर्य उदित न हो, तब तक झट से औषधी लायें।' ऐसा सुनते ही उसी क्षण हनुमान आवेश को प्राप्त हो गया। १०१ वह द्रोण-गिरि चार करोड़ योजन दूर क्षीर-सागर के तट पर स्थित है। हनुमान बोला— 'मैं वेगपूर्वक तीसरे पहर तक औषधी ले आऊँगा।' २ (फिर) हनुमान ने अति गद्‌गद होकर

बोले होऊन सद्‌गदित । जतन करावा रघुनाथ । सौमित्रासहित जीवेंसों । ३ ऐसें बोलोनि हनुमंत । वेगें उडाला आकाशपंथ । म्हणे यशस्वी अयोध्यानाथ । शक्तिदाता होईं कीं । ४ चपळ पाणिद्वय चरण । घेत उड्डाणावरी उड्डाण । कीं क्षीराब्धीप्रती सुपर्ण । वैकुंठींहून जातसे । ५ लक्षून मानससरोवर । मराळ झेंपावे सत्वर । त्याचपरी अंजनीकुमर । सप्त द्वीपें ओलांडी । ६ सप्त समुद्र ओलांडून । द्रोणाचळाजवळी येऊन । जनकजाशोक-हरण । उभा ठाकला ते वेळीं । ७ अगस्ति सागराचे तीरीं । कीं त्रिविक्रम बळीचे द्वारीं । कीं नृपाचिया भांडारीं । तस्कर जैसा संचरे । ८ कीं तरूजवळी येऊनी । उभा ठाकला कुठार-पाणी । कीं निधानापाशीं प्रीतिकरूनी । सावध उभा ठाकला । ९ असो कर जोडूनि हनुमंत । द्रोणाचळातें स्तवीत । म्हणे तूं परोपकारी पर्वत । पुण्यरूप नांदसी । ११० तुझें करितांचि

विभीषण से कहा— 'जीव (प्राणों के प्रण) से सौमित्र-सहित रघुनाथ की रक्षा करें।' ३ ऐसा बोलकर हनुमान आकाश-पंथ पर वेग-पूर्वक उड़ गया। वह बोला— '(सबको) शक्ति देनेवाले अयोध्यानाथ श्रीराम सफल हों।' ४ अपने दोनों हाथों और पाँवों के बल वह उड़ान पर उड़ान भर रहा था। अथवा जिस प्रकार गरुड़ वैकुंठ से क्षीर-सागर के प्रति जाता हो, अथवा जिस प्रकार राजहंस मानसरोवर को लक्ष्य करके झट से लपकता हो, उसी प्रकार (जाते हुए) अंजनी-कुमार हनुमान ने सातों द्वीपों * को लाँघ लिया। ५-६ (फिर) सातों समुद्रों * को लाँघकर द्रोणाचल के पास आकर सीता-शोक-हरण हनुमान उस समय खड़ा रहा। ७ जिस प्रकार अगस्त्य सागर के तट पर, अथवा त्रिविक्रम (भगवान विष्णु के अवतार वामन) दैत्यराज बली के द्वार में खड़ा रहा हो, जिस प्रकार राजा के भण्डार में चोर संचरण करता हो, जिस प्रकार हाथ में कुल्हाड़ी लिये हुए कोई मनुष्य वृक्ष के पास आकर (उसे काटने के विचार से) खड़ा रहता हो, अथवा रत्नों की राशि के कोई (पारखी) प्रेमपूर्वक खड़ा रहता हो, उस प्रकार हनुमान बड़ी सावधानी से और प्रेमपूर्वक द्रोणाचल के पास आकर खड़ा रह गया। ८-९ अस्तु। (तदनन्तर) हाथ जोड़ते हुए हनुमान ने द्रोणाचल का स्तवन किया। उसने कहा— 'तुम परोपकारी पर्वत हो और पुण्य-स्वरूप में निवास कर रहे हो। ११० तुम्हारा स्मरण

---

* टिप्पणियाँ : सप्त द्वीप—जंबु, कुश, प्लक्ष, शाल्मली, क्रौंच, शाक, पुष्कर।

* सप्त समुद्र—क्षार, इक्षुरस, सुरा, घृत, क्षीर, दधि, शुद्धोदक।

स्मरण । सकळ रोग जाती पळोन । तरी शरजालीं राम-लक्ष्मण । इंद्रजितें पाडियेले । ११ तूं जीवदानदाता सत्य । त्रिभुवनामाजी यथार्थ । कीर्ति ऐकोनियां धांवत । मी याचक आलों असें । १२ औषधी देऊनियां निर्मळ । मज बोळवावें तत्काळ । तंव तो प्रत्यक्ष मूर्तिमंत शैल । बोलता झाला कपीसी । १३ म्हणे मर्कटा आलासी कोठून । कैंचा राम कैंचा लक्ष्मण । देवांस औषधी दुर्लभ जाण । तुज कोठून प्राप्त होती । १४ धरूनि माझा आश्रय । मर्कटा तूं येथेंचि राहें । त्यावरी तो राघवप्रिय । काय बोलता जाहला । १५ म्हणे पाषाणहृदयी तूं द्रोण । मंदबुद्धि मूढ मलिन । कार्याकार्य तुजलागोन । निर्दया कैसें समजेना । १६ वायसा काय मुक्ता-हार । मद्यपियास काय तत्त्वविचार । निर्दयासी धर्मशास्त्र । सारासार समजेना । १७ मांसभक्षकास नुपजे दया । हिंस-कास कैंची माया । उपरति पैशून्यवादिया । कदा-काळीं नसेचि । १८ कृपणासी नावडे धर्म । जारासी

करते ही समस्त रोग भाग जाते हैं । राम-लक्ष्मण को इन्द्रजित ने बाणों के जाल में गिराया (फँसाया) है । वस्तुतः तुम त्रिभुवन में जीवन-दान देनेवाला दानी हो— इसलिए ऐसी तुम्हारी यथार्थ कीर्ति सुनकर मैं याचक दौड़ता हुआ आया हूँ । ११-१२ (अब) मुझे शुद्ध औषधी प्रदान करके तुरन्त बिदा करना ।' तब वह प्रत्यक्ष मूर्तिमान पर्वत कपि से बोला । १३ उसने कहा— 'रे मर्कट, कहाँ से आया है ? कहाँ का राम ? कहाँ का लक्ष्मण ? जान ले, (जो) औषधियाँ देवों (तक) को दुर्लभ हैं, वे तुझे कहाँ से प्राप्त होंगी । १४ रे मर्कट, मेरा आश्रय ग्रहण करके तू यहीं रह जा ।' उसपर वह राघव का प्रिय सेवक क्या बोला । १५ वह बोला— 'हे द्रोण, तुम पाषाण-हृदय हो, मन्द-बुद्धि, मूढ़, अपवित्र हो । हे निर्दय, तुम्हारी समझ में यह कैसे नहीं आ रहा है कि क्या करने योग्य है, क्या अयोग्य है । १६ मोतियों का हार कौए के लिए क्या होता है ? मद्यपी को कैसा (आत्म-) तत्त्व-विचार ? उस प्रकार (तुम जैसे) निर्दय की समझ में धर्मशास्त्र सम्बन्धी सार-असार समझ में नहीं आता । १७ माँस-भक्षक के (मन में) दया उत्पन्न नहीं होती । हिंसक को कहाँ की माया होती है ? दुराचारी को किसी भी काल में विरक्ति नहीं (अनुभव) होती । १८ कृपण को धर्म अच्छा नहीं लगता, जार को सत्कर्म नहीं, निन्दक को प्रेम और भजन (-भक्ति) मार्ग कभी भी प्रिय

नावडे सत्कर्म । निंदकासी नावडे प्रेम । भजनमार्ग कदाही । १९ कीर्तन नावडे भूतप्रेतां । दुग्ध नावडे नवज्व-रिता । टवाळासी पैं तत्त्वतां । तपानुष्ठान नावडे । १२० तैसा तूं अत्यंत निष्ठुर । रामभजन नेणसी पामर । तुज न लागतां क्षणमात्र । उचलोनि नेतों लंकेसी । २१ शेषाकार पुच्छ पसरून । द्रोणाचळ बांधिला आंवळून । तत्काळचि उपडोन । करतळीं घेऊनि चालला । २२ उगवल्या असंख्यात सौदामिनी । तैसा पर्वत दिसे दुरूनी । कीं करीं घेऊनियां तरणी । हनुमंत वीर जातसे । २३ कीं सुधारसघट नेतां सुपर्ण । लीलाकमल उचली पूर्ण । कीं सहस्रवदनें उर्वी उच-लोन । सर्षपप्राय धरिली शिरीं । २४ कीं कनकताट द्रोणाचळ । वल्लया तेचि दीप तेजाळ । पाजळूनियां अंजनीबाळ । ओंवाळूं येत रामातें । २५ चतुर्थ प्रहरीं ब्राह्मीं मुहूर्तीं । सुवेळेसी आला मारुती । तंव तो नूतनलंकापती । सामोरा धांवे आनंदें । २६ तों सुटला शीतळ प्रभंजन । चालिला वल्लींचा सुवास घेऊन ।

नहीं लगता । १९ भूत-प्रेतों को कीर्तन नहीं भाता । नव-ज्वर के रोगी को दूध अच्छा नहीं लगता । निन्दक को वस्तुतः तपानुष्ठान पसन्द नहीं आता । १२० उस प्रकार तुम अतिशय निष्ठुर हो, तुम पामर राम-भजन नहीं जानते । (अतः) क्षण तक न लगते मैं तुझे उठाकर लंका में ले जाता हूँ । ' २१ (तत्पश्चात्) शेष नाग के आकार में पुच्छ फैलाते हुए उसने द्रोणाचल को कसकर बाँध लिया और उसे तत्काल ही उखाड़कर हथेली पर लिये हुए वह चल दिया । २२ अनगिनत बिजलियों का उदय हुआ हो, (तो वह दृश्य जैसे दिखायी देता हो,) वैसे वह पर्वत दूर से दिखायी दे रहा था । अथवा (जान पड़ता था कि) वीर हनुमान हाथ पर सूर्य को लेकर जा रहा हो । २३ अथवा जिस प्रकार गरुड़ ने अमृत का घट ले जाते समय पूर्ण लीला-कमल उठाया था, अथवा सहस्रवदन शेष ने पृथ्वी को उठाकर सरसों (के दाने)-सी मस्तक पर धर दी है, उस प्रकार हनुमान ने द्रोणाचल को उठाकर हथेली पर रखा । २४ अथवा द्रोणाचल मानो कनक-थाल हो; उसपर जो लताएँ थीं, वे ही मानो तेजस्वी दीप हों, जिन्हें प्रज्वलित करते हुए अंजनी-सुत श्रीराम की आरती उतारने के लिए आ रहा था । २५ (रात के) चौथे प्रहर में, ब्राह्म मुहूर्त पर हनुमान सुवेल आ गया, तब लंका का वह नया राजा (विभीषण) आनन्द के साथ (अगवानी के लिए) आगे दौड़ा । २६ तो शीतल प्रभंजन बहने लगा ।

त्या वातस्पर्शें रामलक्ष्मण। सेनेसहित ऊठिले। २७ रजनी संपतां तत्काळ। किरणांसहित उगवे रविमंडळ। तैसा राम तमालनीळ। वानरांसमवेत ऊठला। २८ कोणाचे तनूवरी साचार। घाय न दिसे अणुमात्र। असो द्रोणाचळासी वायुपुत्र। घेऊन मागुती उडाला। २९ लीला कंदुक खेळे बाळ। तैसा पर्वत झेली विशाळ। पूर्वस्थळीं ठेवून तत्काळ। सुवेळेसी पातला। १३० देवांसहित शक्र बैसत। तैसा कपिवेष्टित रघुनाथ। सद्गद होऊनि हनुमंत। रामचरणीं लागला। ३१ जाहला एकचि जयजयकार। प्रेमें दाटला रघुवीर। हृदयीं धरिला वायुकुमर। तो न सोडीच सर्वथा। ३२ स्कंदासी भेटे उमावर। कीं इंद्र आलिंगी जयंत पुत्र। कीं संजीवनी साधितां पवित्र। गुरु कचासी आलिंगी। ३३ हनुमंताचें निजवदन। क्षणक्षणां कुरवाळीत रघुनंदन। धन्य धन्य आजिचा दिन। स्वामिगौरव लाहिजे तुवां। ३४ श्रीराम म्हणे मारुतीसी।

वह लताओं की सुगन्ध साथ में लेकर चल रहा था। उस वायु के स्पर्श से राम और लक्ष्मण सेना-सहित (सचेत होकर) उठ गये। २७ तमाल-नील राम वानरों-सहित वैसे ही उठ गये, जैसे रात के समाप्त होते ही तत्काल रवि-मण्डल किरणों-सहित उदित होता है। २८ (उस समय) किसी के भी शरीर में घाव नहीं दिखाई देता था। अस्तु। वायु-पुत्र हनुमान द्रोणाचल को लिए हुए फिर से उड़ गया। २९ जैसे कोई बच्चा लीलया गेंद (लेकर) खेलता है, वैसे हनुमान ने उस विशाल पर्वत को उठाया था। (फिर) उसे पहले स्थान पर रखकर वह तत्काल सुवेल आ पहुँचा। १३० जैसे देवों सहित (देवों से घिरे हुए) इन्द्र बैठता हो, वैसे श्रीराम कपियों द्वारा घिरे हुए (बैठे) थे। (तब) बहुत गद्गद होकर हनुमान श्रीराम के पाँव लग गया। ३१ तो अपूर्व जय-जयकार हुआ। श्रीराम (का हृदय) प्रेम से भर उठा। उन्होंने वायु-कुमार को हृदय से (यों) लगा लिया कि वे उसे बिलकुल छोड़ ही न रहे थे। ३२ (जिस प्रकार) शिवजी (अपने पुत्र) स्कंद से प्रेम से मिले हों, अथवा इन्द्र ने अपने पुत्र जयन्त का आलिंगन किया हो, अथवा पवित्र संजीवनी (विद्या) सिद्ध करने पर (देव-) गुरु (बृहस्पति) ने (अपने पुत्र) कच का आलिंगन किया हो, (उस प्रकार श्रीराम ने हनुमान का आलिंगन किया)। ३३ (तब) रघुनन्दन हनुमान के मुख को क्षण-क्षण सहला रहे थे। आज का दिन धन्य है, धन्य है, जब कि स्वामी द्वारा किया हुआ गौरव तुम्हें

सर्वांचा प्राणदाता तूं होसी। सरली नाहीं जों निशी। पर्वत तुवां आणिला। ३५ बाळक होतां व्यथाभूत। जनक जाऊनि औषधें आणीत। बा रे तैसेंच केलें निश्चित। प्रताप अद्भुत न वर्णवे। ३६ ऐसें बोलतां रघुनंदन। सकळ कपी म्हणती धन्य धन्य। स्वामिगौरवापुढें पूर्ण। सुधारसपान तुच्छ पैं। ३७ सुग्रीवादि कपी धांवती। हनुमंतासी दृढ हृदयीं धरिती। वानरांसी म्हणे किष्किंधापती। यावरी काय पाहतां। ३८ आतां लंकेवरी जाऊन। सकळ सदना लावा अग्न। अष्टादश-पद्में वानर घेऊन। नळ नीळ मारुति धांविन्नले। ३९ गगन-चुंबित तैलकाष्ठें। कपींनीं चुडी पाजळिल्या नेटें। कीं ते रामभवानींचे दिवटे। गोंधळ घालिती रणांगणीं। १४० चुडी घेऊनि समग्र। भुभु:कारें गर्जविलें अंबर। जय जय यशस्वी रघुवीर। म्हणोनि धांवती सर्वही। ४१ लंकादुर्ग ओलांडून।

प्राप्त हुआ है। ३४ तब श्रीराम ने हनुमान से कहा— 'तुम सबके प्राण-दाता हो गये हो, जब तक रात समाप्त नहीं हुई, तब अर्थात् रात की समाप्ति के पहले तुम पर्वत को लाये। ३५ बालक के व्यथा से पीड़ित हो जाने पर, उसका पिता जाकर औषधियाँ लाता है। अहो, तुमने निश्चय ही वैसा ही किया है। तुम्हारे अद्भुत प्रताप का वर्णन नहीं किया जा सकता।' ३६ रघुनन्दन द्वारा इस प्रकार बोलने पर समस्त कपियों ने कहा— 'धन्य, धन्य। स्वामी द्वारा किये जानेवाले गौरव के सामने (गौरव की तुलना में) अमृत का पान पूर्णतः तुच्छ है।' ३७ (तदनन्तर) सुग्रीव आदि वानर दौड़े और उन्होंने हनुमान को दृढ़ता-पूर्वक हृदय से लगा लिया। (फिर) किष्किन्धा-पति सुग्रीव ने वानरों से कहा— 'इसके पश्चात् (अब) क्या देख रहे हो। ३८ अब लंका में जाकर समस्त घरों में आग लगा दो।' (यह सुनते ही) अठारह पद्म वानरों को (साथ में) लेकर नल, नील और हनुमान (लंका की ओर) दौड़े। ३९ तेल लगाये हुए गगन-चुम्बी काष्ठ (लकड़ियाँ) लेकर कपियों ने बहुत यत्न-पूर्वक मशालें जला दीं। अथवा मानो, वे राम-स्वरूपा भवानी देवी के मशाल-धारी थे, जो रणांगण में 'गोंधळ'* सम्पन्न कर रहे थे। १४० समस्त मशालों को लिये हुए उन्होंने भुभु:कार से आकाश को निनादित किया। 'भाग्यवान रघुवीर की जय हो, जय हो' कहते हुए वे सभी दौड़े। ४१ लंका-दुर्ग को पार करके वानर-गणों ने (जब) अन्दर प्रवेश

* टिप्पणी : गोंधळ—अध्याय २६, छंद ४—टिप्पणी देखिए।

आंत प्रवेशले वानरगण। तों अद्भुत सुटला प्रभंजन। चुडिया लाविती एकसरें। ४२ वायूचे अद्भुत कल्लोळ। आकाशपंथें चालिली ज्वाळ। लंकेमाजी हलकल्लोळ। पळती लोक सर्व पैं। ४३ धूर अद्भुत दाटलासे। तेथें कोणा कोणी न दिसे। ज्वाळा धांवती आवेशें। लंका सर्व ग्रासावया। ४४ कोटयवधि घरें जळती। राक्षस स्त्रियांसह आहाळती। आळोआळीं उभे असती। चुडी घेऊन वानर। ४५ दृष्टीं देखतां रजनीचर। चुडींनी भाजिती वानर। तो दशमुखासी समाचार। दूत सत्वर सांगती। ४६ हनुमंतें आणोनि द्रोणाचळ। सजीव केले वैरी सकळ। लंकेंत प्रवेशलें कपिदळ। जाळिलीं सकळ मंदिरें। ४७ मग जंग प्रजंग क्रोधन। विरूपाक्ष शोणिताक्ष राजनंदन। कुंभनिकुंभांप्रति रावण। म्हणे धांवा रे सत्वर। ४८ सिद्ध करूनियां दळभार। कुंभ निकुंभ धांवती सत्वर। घालोनियां पर्जन्यास्त्र। अग्नि समग्र विझविला। ४९ जैसे कलेवर सांडोनि जाती प्राण। तैसे लंकेबाहेर आले कपिगण। रणभूमीसी

किया, तो हवा अद्‌भुत रूप में बहने लगी। (तब) उन्होंने एक साथ मशालें (घरों में) लगा दीं। ४२ वायु के अद्‌भुत झोंके आ रहे थे। (उससे) ज्वालाएँ आकाशमार्ग से ऊपर जा रही थीं। तो लंका में कोलाहल मच गया। सब लोग भागने लगे। ४३ धुआँ अद्‌भुत रूप से भर गया। (अतः) वहाँ किसी को कोई नहीं दिखायी दे रहा था। ज्वालाएँ (मानो) समस्त लंका को निगल डालने के लिए आवेश-पूर्वक दौड़ रही थीं। ४४ करोड़ों घर जल रहे थे। राक्षस (अपनी-अपनी) स्त्रियों सहित झुलस रहे थे। (तब) मशालें लेकर वानर गली-गली में खड़े थे। ४५ आँखों से राक्षसों को देखते ही वानर मशालों से उन्हें झुलसाते थे। तो दूतों ने रावण को यह समाचार झट से बता दिया। ४६ 'द्रोणाचल को लाकर हनुमान ने समस्त वैरियों को जीवित किया है (और अब) कपि-दल लंका में प्रविष्ट हो गया है; समस्त घरों को जला डाला है।' ४७ तब रावण ने जंघ, प्रजंघ, क्रोधन, विरूपाक्ष, शोणिताक्ष तथा राजकुल के पुत्र, कुम्भ और निकुम्भ (जो कुंभकर्ण के पुत्र थे) से कहा— 'झट से दौड़ो।' ४८ तो सेना-दल को सिद्ध करके कुम्भ और निकुम्भ झट से दौड़े और उन्होंने पानी डालकर समग्र आग बुझा दी। ४९ जिस प्रकार प्राण देह को छोड़कर निकल जाते हैं, उस प्रकार कपिगण लंका के बाहर आ गये और फिर रण-भूमि में सब इकट्ठा होकर युद्ध के लिए आगे

सर्व मिळोन । युद्धालागीं सरसावले । १५० आले देखोनि असुरभार । सेनामुखीं होता वाळिकुमर । तो पर्वत घेऊन सत्वर । क्रोधनावरी धांविन्नला । ५१ बळें पर्वत दिधला टाकून । रथासहित चूर्ण जाहला क्रोधन । तों जंघ प्रजंघ विरूपाक्ष दारुण । आले धांवूनि अंगदावरी । ५२ अंगदें विशाळ वृक्ष उपडोनी । दोघे झोडून पाडिले धरणी । मग विरूपाक्षें निज बाणीं । वानर बहुत खिळियले । ५३ तों मैंद पर्वत घेऊनि धांविन्नला । अकस्मात विरूपाक्षावरी टाकिला । विरूपाक्ष प्राणासी मुकला । शरभें वधिला शोणिताक्ष । ५४ मग तो कुंभकर्णाचा नंदन । कुंभ पुढें आला धांवोन । धनुष्य ओढूनि आकर्ण । नव बाण सोडिले । ५५ त्या नवशरप्रहारेंकरूनी । मैंद कपि खिळिला समरांगणीं । शरभ विंधिला दोन बाणीं । मूर्च्छित धरणीं पडियेला । ५६ तों धांवे वाळिसुत घेऊन विशाळ पर्वत । त्याचे कुंभें खिळिले हस्त । अचळासहित रणभूमीं । ५७ संकट पडिलें बहुत । अंगद राहिला तटस्थ । वानरीं हांक केली त्वरित । राघवापासीं ते काळीं । ५८ ऐकोनि गजकिंकाट

बढ़े । १५० अंगद सेना के मुख में अर्थात् आगे था । असुर-दलों को आये देखकर वह झट से पर्वत लेकर क्रोधन की ओर दौड़ा । ५१ उसने बल-पूर्वक (जब) पर्वत फेंक दिया, तो क्रोधन रथ-सहित चूर-चूर हो गया । तब जंघ, प्रजंघ और भयावह विरूपाक्ष अंगद की ओर दौड़ते हुए आ गये । ५२ अंगद ने एक विशाल वृक्ष उखाड़कर उन दोनों को पीटते हुए धरती पर गिरा दिया । तब विरूपाक्ष ने अपने बाणों से अनेकानेक वानरों को कील डाला । ५३ तो मैंद पर्वत लेकर दौड़ा और उसने विरूपाक्ष पर अकस्मात उसे गिरा दिया । (फल-स्वरूप) विरूपाक्ष प्राणों को खो बैठा । (उधर) शरभ ने शोणिताक्ष का वध किया । ५४ तब कुम्भकर्ण का पुत्र कुम्भ दौड़ते हुए आगे आ गया और उसने धनुष्य (की डोरी) को कानों तक खींचते हुए नौ बाण छोड़े । ५५ उसने उन नौ बाणों के आघात से युद्ध-भूमि में मैंद नामक वानर कील डाला और दो बाणों से शरभ को बेध डाला; उससे वह अचेत होकर धरती पर गिर गया । ५६ तब अंगद विशाल पर्वत लिये हुए दौड़ा, तो कुम्भ ने रण-भूमि में उसके हाथों को पर्वत-सहित कील डाला । ५७ (इस कारण) बड़ा संकट आ पड़ा; अंगद स्तब्ध रहा, तो उस समय वानर श्रीराम के पास झट से चिल्ला उठे । ५८ देखिए, जिस प्रकार हाथी की चिंघाड़ को सुनकर

देख। आवेशें चपेटे मृगनायक। यापरी किष्किंधापाळक। कुंभहृदयीं आदळला। ५९ कुंभाचें चाप घेतलें हिरून। मोडून कुटके केले पूर्ण। मल्लयुद्धास दोघे जण। प्रवर्तले ते काळीं। १६० एक मुहूर्तपर्यंत। मल्लयुद्ध दोघांशीं अद्भुत। अर्कजें हृदयीं मुष्टिघात। कुंभासी बळें दीधला। ६१ तेणें हृदय जाहलें शतचूर्ण। कुंभाचा तत्काळ गेला प्राण। तंव तो निकुंभ आवेशोन। सुग्रीवावरी धांविन्नला। ६२ तों पर्वत सबळ उचलून। वेगें धांवे सीताशोकहरण। अचल दिधला भिरकावून। निकुंभें तो चूर्ण केला। ६३ तेणें हनुमंत परम क्षोभला। विशाळ तरु त्यावरी टाकिला। तोही निकुंभें तोडिला। क्षणमात्र न लागतां। ६४ निकुंभें परिघ लवलाहीं। घेऊन ताडिला मारुति हृदयीं। पळमात्र मूर्च्छना ते समयीं। आली हनुमंतास ते काळीं। ६५ सवेंचि धांवे अंजनीबाळ। शतशृंगांचा उपटिला अचळ। निकुंभावरी टाकिला तत्काळ। चूर्ण जाहला निकुंभ। ६६ घायाळें पळती लंकेंत। रावणासी वर्तमान

सिंह आवेश-पूर्वक अपने पंजे से आघात करता है, इस प्रकार किष्किन्धापति सुग्रीव कुम्भ के हृदय (-स्थल) से टकरा गया। ५९ उसने कुम्भ का धनुष छीन लिया और उसे पूर्णतः तोड़ते हुए टुकड़े-टुकड़े कर दिया। (फिर) वे दोनों जने उस समय मल्ल-युद्ध के लिए प्रवृत्त हुए। १६० एक मुहूर्त (दो घड़ियों) तक दोनों में अद्भुत मल्ल-युद्ध हो गया। सुग्रीव ने (तब) कुम्भ के हृदय (-स्थल) पर बल-पूर्वक मुष्टि-घात किया (घूँसा जमाया)। ६१ उससे छाती शतचूर्ण हो गयी— अर्थात् वह सैकड़ों स्थान पर भग्न हो गयी, तो कुम्भ के प्राण तत्काल निकल गये। तब निकुम्भ आवेश को प्राप्त होकर सुग्रीव की ओर दौड़ा। ६२ तो एक बहुत बड़े भारी पर्वत को उठाये हुए हनुमान वेग-पूर्वक दौड़ा। (फिर) उसने पर्वत को फेंक दिया, तो निकुम्भ ने उसे चूरकर डाला। ६३ उससे हनुमान परम क्षुब्ध हो उठा और उसने एक विशाल वृक्ष फेंक दिया। (परन्तु) क्षण मात्र न लगते, निकुम्भ ने उसे भी तोड़ डाला। ६४ (तदनन्तर) निकुम्भ ने झट से परिघ लेकर हनुमान के हृदय (-स्थल) पर ताड़न किया। उससे उस समय हनुमान को पल मात्र के लिए मूर्च्छा आ गयी। ६५ (परन्तु तत्क्षण उठते हुए) साथ ही हनुमान दौड़ा, उसने सौ (सैकड़ों) शिखरोंवाला पर्वत उखाड़ा और निकुंभ पर फेंक दिया। उससे निकुम्भ तत्काल चूर-चूर हो गया। ६६ (यह देखकर) घायल

करिती श्रुत। ऐकतांचि तो चिंताक्रांत। दशवक्त्र जाहला पैं। ६७ मग विंशतिनेत्र पाचारी वीर। परम प्रतापी समरधीर। खराक्ष विशालाक्ष असुर। मकराक्ष तो तिसरा। ६८ तिघांसी म्हणे दशवदन। तुम्हीं माजवावें रण। ते तत्काळ रथारूढ होऊन। सेनेसहित निघाले। ६९ रणतुरें गर्जती अपार। रणमंडळीं पातले सत्वर। तों शिळा द्रुम घेऊन वानर। एकदांचि उठावले। १७० येरयेरां पाचारिती। उसणे घाय सवेंच देती। असुरांचीं पोटें फाडिती। वानर नखें घालोनियां। ७१ कुंत असिलता परिघ। असुर टाकिती शस्त्रें सवेग। तेणें विदारूनि अंग। कपी पडती समरांगणीं। ७२ कपिवीरीं केलें आगळें। असुरभार मागें लोटले। देखोन मकराक्ष ते वेळे। बाण वर्षत धांवला। ७३ जैशा पर्जन्यधारा अपार। तैसा मकराक्ष वर्षे शर। अपार भंगले वानर। पाहे रघुवीर दुरूनी। ७४ मान तुकावी सीतारमण। म्हणे हा वीर प्रवीण।

तथा व्याकुल सैनिक लंका में दौड़ते हुए गये और उन्होंने रावण को यह समाचार सुनाया। उसे सुनते ही दशानन चिन्ताक्रान्त हो गया। ६७ फिर (वहाँ) तीन परम प्रतापी तथा समर-धीर राक्षस वीर थे : (एक था) खराक्ष, (दूसरा असुर था) विशालाक्ष और तीसरा (था) मकराक्ष। उन तीनों से रावण ने तब कहा— 'तुम अब युद्ध में प्रताप प्रदर्शित करो।' (यह आज्ञा पाकर) वे तत्काल रथों में आरूढ़ होकर सेना-सहित निकल पड़े। ६८-६९ (उस समय) रण-तूर्य अपार गरज रहे थे। वे (तीनों वीर) झट से युद्ध-भूमि में पहुँच गये, तो वानर शिलाओं और वृक्षों को लेकर एक साथ उठ गये। १७० वे एक-दूसरे को बुलाते (ललकारते) थे, साथ ही (आघात के बदले) प्रति-आघात करते थे। वानर नाखून गड़ाकर राक्षसों के पेट फाड़ डालते थे। ७१ तब राक्षस शस्त्र-भाले, तलवारें, गदाएँ वेग-पूर्वक फेंक रहे थे; उनसे अंगों के विदीर्ण हो जाने पर वानर युद्ध-भूमि में गिर रहे थे। ७२ (परन्तु उस समय) वानर वीरों ने एक आश्चर्य किया— राक्षस-सेना को पीछे धकेल दिया। यह देखकर मकराक्ष उस समय बाणों की बौछार करते हुए दौड़ा। ७३ जिस प्रकार अनगिनत वर्षा-धाराएँ गिरती हैं, उस प्रकार मकराक्ष बाणों को बरसा रहा था। (फलस्वरूप) असंख्य वानर विदीर्ण हो गये। (जब) सीतारमण श्रीराम ने यह दूर से देखा, तो उन्होंने सिर झुकाया और कहा— 'यह तो (धनुर्विद्या में) प्रवीण वीर है।' फिर स्वयं धनुष

कोदंड चढवोनि आपण। जगद्वंद्य ऊठिला। ७५ कोदंड ओढितां तये क्षणीं। झणत्कारिल्या लघुकिंकिणी। एकचि बाण ते क्षणीं। दशकंठरिपूनें सोडिला। ७६ मकराक्षाचें बाणजाळ। एकेंचि शरें छेदिलें तत्काळ। जेवीं उगवतां सूर्यमंडळ। भगणें सकळ लोपती। ७७ एक उठतां विनायक। असंख्य विघ्नें पळती देख। कीं सुटतां चंडवात सन्मुख। जलदजाल वितुळे पैं। ७८ एक विष्णुनामेंकरून। असंख्य दुरितें जाती जळोन। कीं चेततां कृशान। असंख्य वनें दग्ध होती। ७९ कीं मूर्खाचे शब्द बहुत। एकाच शब्दें खंडी पंडित। कीं सिंहनादें गज समस्त। गतप्राण होती पैं। १८० हृदयीं प्रकटतां बोध। सहज पळे काम क्रोध। की प्रत्यया येतां ब्रह्मानंद। क्षुद्रानंद सर्व विरती। ८१ तेवीं रामबाणें एकेंचि सबळ। तोडिलें मकराक्षाचें शरजाळ। मग त्यास मुक्ति द्यावया तत्काळ। दिव्य शर काढिला। ८२ मकराक्षाचा कंठ लक्षून। शर चालिला जैसा सुपर्ण। क्षणमात्रें

चढ़ाकर जगद्वंद्य श्रीराम उठ गये। ७४-७५ धनुष (की डोरी) को खींचते ही उस क्षण (उसमें बँधे छोटे-छोटे) घुँघरुओं का झँकार हुआ। उस क्षण रावणारि श्रीराम ने एक ही बाण छोड़ा। ७६ उन्होंने एक ही बाण से मकराक्ष के बाण-जाल को उसी क्षण छेद डाला। जैसे सूर्य-मण्डल के उदित होने पर समस्त तारे लुप्त हो जाते हैं, (अथवा) देखिए, एक (मात्र) गणेशजी के उठते ही असंख्य विघ्न भाग जाते हैं, अथवा जैसे प्रचण्ड वायु के चलने लगते ही सामने मेघ-जाल (विरल होते होते) नष्ट हो जाता है, अथवा (जैसे) भगवान विष्णु के एक-एक नाम (के उच्चारण) से असंख्य पाप जल जाते हैं, अथवा (जैसे) अग्नि के प्रज्वलित होने से असंख्य वन दग्ध हो जाते हैं, अथवा (जैसे) पंडित (विद्वान्) एक ही शब्द से मूर्ख के अनेकानेक शब्दों को खण्ड-खण्ड कर (खण्डन कर) डालता है, अथवा (जैसे) सिंह के गर्जन से समस्त हाथी गत-प्राण हो जाते हैं, अथवा (जैसे) हृदय में (आत्म-) बोध, अर्थात् आत्मज्ञान के प्रकट होते ही काम, क्रोध यों ही भाग जाते हैं, अथवा (जैसे) ब्रह्मानन्द की अनुभूति होने पर, सब तुच्छ (बातों से होनेवाले) आनन्द विलय को प्राप्त हो जाते हैं, वैसे राम के एक ही शक्तिशाली बाण ने मकराक्ष के बाण-जाल को काट डाला। फिर श्रीराम ने उसे मुक्ति प्रदान करने के हेतु एक दिव्य बाण तत्काल (भाथे से) निकाला। ७७-८२ मकराक्ष के कण्ठ को लक्ष्य कर वह बाण सुपर्ण गरुड़-सा चला और उसने क्षण मात्र में

कंठ छेदून । आकाशपंथें उडविला । ८३ तों विशालाक्ष आणि खराक्ष । त्यांहीं पाचारिला कमलदलाक्ष । जो सर्वात्मा सर्वसाक्ष । विरूपाक्ष ध्याय जया । ८४ असुर धांवती लवलाहें । म्हणती सर्वदा तुज कैंचा जय । अकस्मात काकतालन्याय । मकराक्ष तुवां मारिला । ८५ ऐसें बोलून दोघे जण । सोडिती रामावरी प्रचंड बाण । जैसें मृगेंद्रापुढें येऊन । मांडिलें ठाण मार्जारें । ८६ कीं सज्ञान पंडितापुढें । बोलावया आलीं मूढें । कीं जंबुक आपले पवाडे । व्याघ्रापुढें दावीतसे । ८७ कीं उष्ट्रांनीं ब्रीद बांधोन । तुंबरापुढें मांडिलें गायन । तैसें राक्षसीं संधान । रामापुढें आरंभिलें । ८८ दोघांहीं शर सोडिले अपार । तितुके निवारूनि श्रीरघुवीर । प्रळयचपळेऐसे थोर । दोन शर काढिले । ८९ ते धनुष्यावरी योजून । अकस्मात सोडी रघुनंदन । दोघांचीं कंठनाळें छेदून । निराळमार्गें पैं नेलीं । १९० कळला रावणासी समाचार । परत्र पावले त्रय असुर । तत्काळ शक्रारि महावीर । सेनेसहित धांविन्नला । ९१ होम करून रणमंडळीं । त्यांतून

उसके कण्ठ को छेदकर आकाश मार्ग पर उड़ा दिया । ८३ तो विशालाक्ष और खराक्ष ने भी उन कमल-दल-नयन श्रीराम को ललकारा, जो सर्वात्मा तथा सर्वसाक्षी हैं और जिनका शिवजी ध्यान करते हैं । ८४ वे असुर झट से दौड़े और बोले— 'नित्य ही कैसी तुम्हारी जय ? तुमने तो काक-तालीय न्याय से मकराक्ष को मार डाला ।' ८५ इस प्रकार बोलकर वे दोनों जने श्रीराम पर प्रचण्ड बाण चलाने लगे । जिस प्रकार सिंह के सामने कोई बिल्ली आसन जमाकर बैठी हो, अथवा ज्ञानी पंडित के सामने मूढ़ जन बोलने (विवाद करने) के लिए आये हों, अथवा सियार अपना माहात्म्य बाघ के सामने प्रदर्शित कर रहा हो; अथवा ऊँटों ने (गान-कला में निपुण होने के उपलक्ष्य में दिया जानेवाला) पदक बाँधकर तुम्बरू नामक गन्धर्व के सामने गायन आरम्भ किया हो, उस प्रकार (उन दोनों) राक्षसों ने राम के सामने (शर-) सन्धान आरम्भ किया । ८६-८८ उन दोनों ने अनगिनत बाण छोड़े; उतनों (अर्थात् उन सब) का निवारण करते हुए श्रीरघुवीर ने प्रलयकाल की बिजली के समान बड़े (तेजस्वी) दो बाण निकाले । ८९ उन्हें धनुष पर ठीक से रखकर रघुनन्दन ने सहसा छोड़ दिया, तो वे (बाण) उन दोनों (राक्षसों) के कंठनाल को छेदकर आकाश-मार्ग पर ले गये । १९० (तब) रावण को यह समाचार विदित हो गया कि वे तीनों असुर परलोक को प्राप्त हो गये, तो वह महावीर

एक कृत्या निघाली। रथीं बैसोन ते वेळीं। अकस्मात उडाली। ९२ त्या कृत्येआड बैसोन। शक्रारि सोडी तेव्हां बाण। म्हणे सर्वांसी खिळीन। वानरगण भयभीत। ९३ मग लोकप्राणेश येऊनी। सांगे जगद्वंद्याचे कर्णीं। म्हणे अंगिरास्त्रेंकरूनी। कृत्या छेदोन टाकिजे। ९४ कृत्येआड बैसोन। इंद्रजित करी संधान। रामें तत्काळ मंत्र जपोन। अंगिरास्त्र सोडिलें। ९५ तेणें कृत्या भस्म झाली झडकरी। जैसा बोध प्रवेशतां अंतरीं। दुर्वासना पळे बाहेरी। तृष्णा कल्पना घेऊनियां। ९६ की प्रकटतां वासरमणी। तम निरसे मूळींहूनी। तैसी कृत्या छेदितां धरणीं। इंद्रजित उतरला। ९७ रणीं प्रकट उभा राहूनी। अपार शर सोडी रावणी। तो दुरात्मा देखोनि तत्क्षणीं। वानर सर्व क्षोभले। ९८ घेऊनियां महापर्वत।

इन्द्रजित सेना-सहित तत्काल दौड़ा। ९१ (उसके द्वारा) रण-भूमि में होम करने पर उसमें से एक कृत्या * निकल आयी। वह रथ में बैठकर उस समय अकस्मात उड़ गयी। ९२ तब उस कृत्या के पीछे बैठकर इन्द्रजित बाण छोड़ने लगा। उसने कहा— 'मैं सबको कील डालूँगा।' तो सब वानर-गण भयभीत हो गये। ९३ अनन्तर लोक-प्राणेश वायुदेव ने आकर जगद्वंद्य श्रीराम के कान में कहा— 'अंगिरास्त्र से उस कृत्या को काट डालना।' ९४ (फल-स्वरूप) उस कृत्या के पीछे बैठकर जब इंद्रजित (शर-) सन्धान कर रहा था, तो राम ने तत्काल मंत्र का जाप करते हुए अंगिरास्त्र छोड़ दिया। ९५ उससे वह कृत्या झट से (जलकर) भस्म हो गयी। जिस प्रकार (साधक के) अन्तःकरण में (आत्म-) बोध (आत्म-ज्ञान) के प्रविष्ट होते ही दुर्वासना तृष्णा और कल्पना को (साथ में) लेकर भाग जाती है, अथवा सूर्य के प्रकट होने पर अँधेरा मूल-सहित नष्ट हो जाता है, उस प्रकार (राम द्वारा अंगिरास्त्र से) कृत्या को छेद डालते ही इन्द्रजित नीचे उतर गया। ९६-९७ (तदनन्तर) युद्ध-भूमि में प्रकट रूप में खड़ा रहकर इन्द्रजित अनगिनत बाण छोड़ने लगा। (तब) उस दुरात्मा को देखकर सब वानर क्षुब्ध हो गये। ९८ हनुमान एक बड़ा पर्वत लिये हुए क्रोध से दौड़ा, तो विभीषण झट से

* टिप्पणी : कृत्या— विनाश, हानि आदि की अधिष्ठात्री एक देवी। इसे मंत्राचार द्वारा दूसरे के विनाश के लिए प्रसन्न कर लेते हैं। एक मान्यता के अनुसार वह नित्य क्रोधाग्नि में जलती रहती है, मुँह से आग उगलती है, सृष्टि को जला डालती है, भयावह ध्वनि करती है। उग्र-स्वरूपा यह देवी काली देवी का रूप भी मानी जाती है।

रागें धांवे अंजनीसुत। गदा घेऊनियां त्वरित। बिभीषण चवताळला। ९९ परिघ हातीं घेऊनी। मैंद धांवे क्रोधेंकरूनी। कौमोदकी आकळोनी। धन्वंतरी पुढें जाहला। २०० शतघ्नी घेऊन सत्वर। धांवे तो ऋषभ वानर। शरभ धांवे घेऊनि चक्र। गंधमादन शक्ति पैं। १ जाबुवंत घेऊनि गिरि थोर। अंगदें उपडिला महातरुवर। नीळ घेऊनियां तोमर। शत्रूवरी धांविन्नला। २ नळें उचलोनि महाशिळा। सुग्रीव पर्वत घेऊन धांविन्नला। कुमुद हांक देऊनि पुढें जाहला। लोहपट्टिश घेऊनियां। ३ सौमित्रें चाप ओढून। टाकिले तेव्हां तीन बाण। शत शर दारुण। रघूत्तमें टाकिले। ४ इतुकी शस्त्रवृष्टी होत। परी ते न गणीच इंद्रजित। शस्त्रें तोडून समस्त। बाण बहुत सोडिले। ५ अष्टादश पद्में वानर। निजबाणीं केले जर्जर। लक्षोनियां रामसौमित्र। दारुण शर सोडिले। ६ रामलक्ष्मणांसहित सकळ। कपिदळ इंद्रजितें केलें विकळ। पुरुषार्थ करून तत्काळ। इंद्रजित परतला। ७ जयवाद्यें वाजवीत। लंकेंत प्रवेशे शक्रजित। पितयास करूनि प्रणिपात।

गदा लिये हुए झल्ला उठा। ९९ (इधर) मैंद परिघ हाथ में लेकर क्रोध-पूर्वक दौड़ा, तो (वानरों का) धन्वन्तरी (जैसा वैद्य) सुषेण (भगवान) विष्णु की 'कौमोदकी' नामक गदा (-सी गदा) अपने वश में रखते हुए आगे हो गया। २०० ऋषभ वानर शतघ्नी को लिये हुए झट से दौड़ा, शरभ चक्र लिये हुए दौड़ा, तो गन्धमादन शक्ति लेकर। २०१ जाम्बवान बड़ा पर्वत लेकर दौड़ा, तो अंगद ने एक बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया। (उधर) तोमर लिये हुए नील शत्रु पर (चढ़) दौड़ा। २ नल एक बड़ी शिला उठाकर, तो सुग्रीव पर्वत लेकर दौड़ा। लोहे की पट्टीश लिये हुए कुमुद चिल्लाकर आगे हो गया। ३ तब लक्ष्मण ने धनुष को खींचकर तीन बाण चलाये, तो श्रीराम ने सौ दारुण (अति तीक्ष्ण) बाण छोड़े। ४ शस्त्रों की इतनी बौछार हो रही थी, फिर भी इन्द्रजित उनको गिनता नहीं था। समस्त शस्त्रों को काटते हुए उसने बहुत बाण चलाये। ५ उसने अपने बाणों से अठारह पद्म वानरों को जर्जर कर डाला; और (फिर) राम-लक्ष्मण को देखकर दारुण बाण छोड़ दिये। ६ (फलस्वरूप) इन्द्रजित ने राम-लक्ष्मण सहित समस्त कपि-दल को विकल कर डाला। (इस प्रकार) पुरुषार्थ (प्रदर्शित) करते हुए इन्द्रजित लौट गया। ७ इन्द्रजित ने जय (-सूचक) वाद्य

वार्ता समूळ सांगीतली । ८ रावण म्हणे शक्रजितासी । तूं क्षणक्षणां शत्रु मारिसी । दिनान्तीं नक्षत्रें आकाशीं । मागुती तैसे ऊठती । ९ वरी वरी जळे तृण । परी अंकुर फुटती भूमींतून । यावरी शक्रजित प्रतिवचन । काय बोलता जाहला । २१० म्हणे आतां रामलक्ष्मण । सेनेसहित येतों वधून । तरीच तुम्हां दावीन वदन । प्रतिज्ञा पूर्ण माझी हे । ११ हे न घडे जरी गोष्टी । तरी तुमची आमुची हेचि भेटी । मग पितयासी नमून उठाउठीं । इंद्रजित चालिला । १२ सिद्ध करूनि चतुरंग दळ । युद्धासी चालिला उतावीळ । जैसा सरितापूर तुंबळ । वर्षाकाळीं धांवतसे । १३ तीन वेळ संग्राम करूनी । इंद्रजित गेला जय घेऊनी । मागुती आला चौथेनी । रणमेदिनी गाजवावया । १४ युद्धकान्ड परम सुरस । तेथें थोर माजे वीररस । तें चतुर श्रोते सावकाश । अत्यादरें परिसोत । १५ रणरंगधीरा रामचंद्रा । सुवेळाचळवासी प्रतापरुद्रा ।

बजाते हुए लंका में प्रवेश किया और पिता (रावण) को प्रणिपात करके मूल-सहित, अर्थात् आरम्भ से लेकर सम्पूर्ण समाचार कहा । ८ (तब) रावण ने इन्द्रजित से कहा— 'तुम क्षण-क्षण शत्रु को मार डालते तो हो, (परन्तु) दिन के अन्त में (रात होते ही) जैसे आकाश में तारे प्रकट होते हैं, वैसे ही वे (शत्रु-जन फिर से) उठ रहे हैं । ९ घास ऊपर-ऊपर जल जाती है, परन्तु (उसके) अंकुर (फिर से) भूमि में से फूट आते हैं ।' इसपर इन्द्रजित ने प्रत्युत्तर के रूप में क्या कहा ? (सुनिए) । २१० वह बोला— '(यदि) अब मैं सेना-सहित राम-लक्ष्मण का वध करके आऊँ, तो ही तुम्हें मुंह दिखाऊँगा । यह मेरी पूरी प्रतिज्ञा है । ११ यदि यह बात घटित न हो जाए, तो तुम्हारी और मेरी यही अन्तिम भेंट है ।' फिर पिता को नमस्कार करके इंद्रजित तत्काल चल पड़ा । १२ चतुरंग-दल को सुसज्जित करके वह युद्ध के लिए अधीरता के साथ (वैसे) चल दिया, जैसे वर्षा ऋतु में नदी की भीषण बाढ़ का जल दौड़ता है । १३ तीन बार युद्ध करके इंद्रजित जय (प्राप्त करके साथ में) लिये हुए गया था । वह चौथी बार फिर से रणभूमि में बहुत प्रताप प्रदर्शित करने के लिए (अपने नाम का डंका बजाने के लिए) आ गया । १४

'श्रीराम-विजय' का युद्ध काण्ड परम रसात्मक (एवं मधुर) है । वहाँ (उसमें) वीररस बहुत उमड़ रहा है । चतुर श्रोता उसका धीरे-धीरे तथा आदरपूर्वक श्रवण करें । १५ हे रणरंग-धीर रामचन्द्र, सुवेलाचल

श्रीधरवरदा आनंदसमुद्रा । ब्रह्मानंदा जगद्‌गुरो । २१६ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर । संमत वाल्मीकनाटकाधार । सदा परिसोत भक्त चतुर । अष्टाविंशतितमाध्याय गोड हा । २१७

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

पर निवास करनेवाले हे प्रताप-रुद्र, हे श्रीधर कवि के वर-दाता, हे आनन्द-समुद्र, हे (गुरु) ब्रह्मानन्द (के रूप में उपस्थित) जगद्‌गुरु, स्वस्ति । 'श्रीराम-विजय' नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है । वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है । चतुर भक्त उसके इस मधुर अट्‌ठाबीसवें अध्याय का सदा श्रवण करें । २१६-२१७

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२९

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । रामकथा परम पावन । सुधारसाहूनि गोड गहन । देव करिती सुधारसपान । परी कल्पांतीं मरण न चुकेचि । १ अमृत गोड लागे रसनेसी । तें तृप्त न करी कर्णनेत्रांसी । रामकथा नव्हे तैसी । सर्व इंद्रियांसी तृप्त करी । २ सुधारस सेवितां मद चढे । कथामृतें मद मत्सर झडे । त्रिविधतापदुःख सांकडें । सहसा न पडे

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । श्रीराम की कथा परम पावन है । वह अमृतरस से अत्यधिक मधुर है । देव अमृतरस का पान तो करते हैं; फिर भी कल्पान्त में (उनकी) मौत नहीं टलती । (अमृत का पान करनेवाला अमर हो जाता है, फिर भी उसका पान करनेवाले देवों तक की अमरता सीमित है; वे कल्पान्त तक ही जीवित रहते हैं और उस समय मौत को प्राप्त हो जाते हैं) । १ अमृत (केवल) जिह्वा को मीठा लगता है, परन्तु वह कानों और नेत्रों को तृप्त नहीं कर सकता । श्रीराम की कथा वैसी नहीं है; वह तो समस्त इन्द्रियों को तृप्त कर देती है । २ सुधारस का सेवन करने पर मद चढ़ता है, परन्तु (श्रीराम की) कथारूपी अमृत से, (पहले से) मद (चढ़ा हुआ हो, तो वह भी) झड़ जाता है और भक्तों पर (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक जैसे) तीनों प्रकार के दुःख और संकट नहीं आ पड़ते । ३

सद्भक्तां। ३ कथामृत करितां श्रवण। जे करणार सुधारसपान। त्यांचिये मस्तकीं ठेवूनि चरण। कथा नेत पलीकडे। ४ अमृत सदा इंद्र भक्षीत। सर्व लोकीं रामकथामृत। स्वर्गीं राहणार समस्त। सदा इच्छिती रामकथा। ५ कथासुधारसपान। श्रवण करा तुम्ही भक्तजन। गतकथाध्यायीं रावणी येऊन। रणमंडळीं उभा ठाकला। ६ घेऊनि शिळा तरुवर। वर्षों लागले रीस वानर। सेनामुखीं रुद्रावतार। उभा देखिला इंद्रजितें। ७ परम दुरात्मा तो रावणी। अंतरीं कापट्यविद्या स्मरूनी। कृत्रिम जानकी निर्मूनी। रथावरी बैसविली। ८ तप्तकांचन-वर्णी ते वेल्हाळ। वस्त्राभरणीं मंडित सकळ। मुखशशांक अति निर्मळ। विराजे सर्व लक्षणीं। ९ हें कृत्रिम रूप निर्मिलें। जें कोणासी कदा न कळे। बहु विचक्षण जरी आले। तेही साच मानिती। १० असो कृत्रिम रूप निर्मोनी।

श्रीराम की अमृतोपम कथा का श्रवण करने पर श्रोता को वह कथा उनके मस्तक पर चरण रखवाते हुए उनके परे ले जाती है, जो (देव) सुधारस का (नित्य) पान करनेवाले होते हैं (अर्थात् रामकथा का श्रोता देवों से भी उच्च पद पर आसीन हो जाता है)। ४ अमृत का भक्षण (सेवन) स्वर्ग में निवास करनेवाला इन्द्र सदा किया करता है, परन्तु रामकथामृत तो समस्त लोकों में (प्राप्य) है। (इसलिए) स्वर्ग में रहनेवाले (समस्त देव तथा स्वर्गस्थ पुण्यवान लोग) रामकथा (के श्रवण-पठन-मनन आदि) की कामना करते हैं। ५ हे भक्तजनो, आप उस कथामृत का पान कीजिए, उस कथा का श्रवण कीजिए। पिछले अध्याय में (कहा है कि) इंद्रजित आकर रण-भूमि में खड़ा रह गया। ६ वानर और रीछ तो शिलाओं और वृक्षों को लेकर बरसाने लगे। (तब) इन्द्रजित ने रुद्रावतार हनुमान को सेना के अग्रभाग में खड़ा देखा। ७ रावण का वह पुत्र परम दुरात्मा था। उसने कपट-विद्या का स्मरण करते हुए कृत्रिम (माया-जन्य) सीता का निर्माण करके उसे रथ में बैठा लिया। ८ वह सुन्दरी तप्त सोने के-से वर्णवाली और समस्त वस्त्रों तथा आभूषणों से शोभायमान (दिखायी दे रही) थी। उसका मुख-चन्द्र अतिनिर्मल और (सुन्दरता के) सब लक्षणों से शोभायमान था। ९ यह कृत्रिम रूप ऐसा निर्मित था कि किसी की समझ में कभी भी न आता। यदि बहुत चतुर लोग भी आते, तो वे भी उसे सत्य (असली सीता) मानते। १० अस्तु। (इस प्रकार के) कृत्रिम रूप का निर्माण करके इन्द्रजित ने हनुमान से कहा—'अरे

इंद्रजित म्हणे मारुतीलागुनी। अरे पाहा हे जनकनंदिनी। तुझी स्वामिनी कीं वानरा। ११ हे रामाची अंगना होय। हिनें आमुचा केला कुलक्षय। त्रेतायुगामाजी पाहें। कृत्या केवळ जन्मली। १२ पंचवटीपासून साचार। हिजकरितां संहारिले असुर। प्रहस्त अतिकाय महोदर। देवान्तक नरान्तक। १३ कुंभकर्णादि यामिनीचर। हिनेंचि ते ग्रासिले समग्र। हे अत्यंत सुंदर। म्हणोनि रायें आणिली। १४ वृन्दावनफळ दिसे सुढाळ। फणस म्हणोनि घेतलें कनकफळ। मुक्ताहार म्हणोनि शंखपाळ। सर्प हातीं धरियेला। १५ कीं रत्नें सुंदर म्हणोन। खदिरांगार घेतले भरून। कीं नक्षत्रबिंबें जळीं देखोन। व्यर्थ जाळें पसरिलें। १६ इयेतें लंकेसी आणून। व्यर्थ कष्टला दशानन। हे पापिणी कलहा कारण। राक्षसवन जाळिलें। १७ ऐसी ही परम चांडाळीण। हीस काय व्यर्थ ठेवून। तत्काळ शस्त्र काढून। कृत्रिम सीता वधिली। १८ सीतेचें शिर खंडून। दाखवी

वानर, देख इस जनक-कन्या को, जो कि तेरी स्वामिनी है। ११ यह राम की स्त्री है; इसी ने हमारे कुल का क्षय कर डाला। देख, (इस) त्रेतायुग में यह केवल कृत्या ही जनम को प्राप्त हुई है। १२ (राम-लक्ष्मण आदि ने) पंचवटी से (लेकर यहाँ तक) सचमुच इसके लिए असुरों का संहार किया। प्रहस्त, अतिकाय, महोदर, देवान्तक, नरान्तक, कुम्भकर्ण आदि उन निशाचरों को इसी ने पूर्णतः निगल डाला। यह अत्यन्त सुन्दर है, इसलिए राजा (रावण) इसे ले आया है। १३-१४ (परन्तु जान पड़ता है कि) वृन्दावन फल सुघड़ (अर्थात् आकार में सुन्दर) दिखायी देता है, (इससे मोहित होकर उसने उस फल को लिया, परन्तु वह फल तो कड़ुआ, विषैला होता है, अतः उसने उसे ग्रहण करने में कोई समझदारी नहीं दिखायी)। उसने मानो धतूरे के फल को कटहल समझकर लिया है, मोतियों का हार समझकर शंखपाल (नामक एक विशिष्ट जाति के) साँप को हाथ में ले लिया है, अथवा सुन्दर रत्न समझकर खदिरांगारों को भर लिया है, अथवा तारों के प्रतिबिम्ब पानी में देखते हुए (उन्हें मछलियाँ समझकर) व्यर्थ ही जाल फैला दिया है। १५-१६ इस (सीता) को लंका में लाकर रावण व्यर्थ ही कष्ट को प्राप्त हो गया है। यह पापिणी कलह का कारण है; उसने राक्षस (-समाज) रूपी वन को जला डाला है। १७ ऐसी यह (सीता) बहुत बड़ी चंडालिन है। इसे व्यर्थ ही (अपने यहाँ) रखकर क्या होगा ?' (ऐसा) कहते हुए उस (इंद्रजित)

मारुतीलागून। म्हणे रामासी सांग जाऊन। जाईं उठून अयोध्ये। १९ ऐसें बोलून इंद्रजित। निकुंभिलेसी गेला त्वरित। हवन आरंभिलें अद्भुत। अक्षय रथ काढावया। २० असो इकडे अंजनीनंदन। जानकी वधिली हें देखून। वक्ष:स्थळ बडवून। मूर्च्छित पडे धरणीये। २१ घटिका एकपर्यंत। निचेष्टित पडिला हनुमंत। सावध होऊनि किंचित। शोक करिता जाहला। २२ स्फुंदस्फुंदोनि रडे मारुती। आतां काय सांगू मी राघवाप्रती। सीतेकारणें अहोरात्रीं। स्वामी माझा कष्टतसे। २३ सीतेचें स्वरूप म्हणोन। हृदयीं धरी वृक्ष पाषाण। मित्रसुत मित्र करून। शक्रसुत वधियेला। २४ प्रयत्न करूनियां बहुत। म्यां सीता शोधिली यथार्थ। वार्ता सांगोनि रघुनाथ। सुखी केला ते काळीं। २५ तैंपासोनि सीताशोकहरण। मज नाम ठेवी रघुनंदन। तो हा मी समाचार घेऊन। कैसा जाऊं स्वामीपासीं। २६ शरजाळीं पाडिलें शक्रजितें। तैं घेऊन आलों द्रोणपर्वतातें। संतोषोनि रघुनाथें।

ने तत्काल शस्त्र निकालते हुए कृत्रिम सीता का वध कर डाला। १८ उसने सीता का मस्तक काटकर हनुमान को दिखाया और कहा— 'जाकर राम से कह दो— तुम (यहाँ से) उठकर अयोध्या चले जाओ।' १९ इस प्रकार कहते हुए इंद्रजित झट से निकुंभिला चला गया (और) उसने (वहाँ) अक्षय रथ निकाल लेने, अर्थात् प्राप्त करने के हेतु अद्भुत हवन आरम्भ किया। २०

अस्तु। इधर यह देखकर कि (इंद्रजित ने) जानकी का वध किया है, हनुमान छाती पीटते हुए मूर्च्छित होकर धरती पर पड़ गया। २१ वह एक घड़ी तक निश्चेष्ट पड़ा रहा, फिर ज़रा सचेत होकर शोक करने लगा। २२ वह सुबक-सुबककर रोने लगा। (रोते-रोते वह बोला—)" अब मैं राम से क्या कहूँ ? वे सीता के लिए दिन-रात कष्ट को प्राप्त होते रहे हैं। २३ वृक्षों और पाषाणों को सीता स्वरूप समझकर वे हृदय से लगाते थे, (फिर) उन्होंने सूर्य-पुत्र सुग्रीव को मित्र बनाते हुए इन्द्र-पुत्र बाली का वध किया। २४ बहुत यत्न करके मैंने सचमुच सीता की खोज की और उसके सम्बन्ध में समाचार कहकर उस समय श्रीराम को सुखी कर दिया। २५ उस समय से रघुनन्दन ने मेरा नाम 'सीता-शोक-हरण' रखा— वह (सेवक) मैं यह समाचार लेकर अपने स्वामी के पास कैसे जाऊँ। २६ जब इंद्रजित ने शर-जाल में उन्हें गिरा दिया था, तो मैं द्रोण

मज बहुत गौरविलें। २७ ते कष्ट सर्व गेले व्यर्थ। मी अभागी होय यथार्थ। वार्ता ऐकतां रघुनाथ। काय करील कळेना। २८ म्यां पूर्वी सांगितलें रघुनाथा। सुखी आहे जनकदुहिता। आतां जानकी वधियेली ही वार्ता। रामचंद्रासी केवीं सांगूं। २९ जेणें पूर्वीं दिधलें बहुत धन। तेणेंचि पुढें घेतलें हिरून। जेणें केलें बहुत पाळण। तेणेंचि शिर छेदिलें। ३० सुख दिधलें जन्मवरी। तेणेंचि लोटिलें दुःखसमुद्रीं। जळत घरांतून काढिलें बाहेरी। तेणेंचि शिर छेदिलें। ३१ तृषाक्रान्त प्राणी पडियेला। तया जीवन देऊन वांचविला। सवेंच त्याचा वध केला। शस्त्र घेऊनि स्वहस्तें। ३२ तैसा मी रामाप्रति जाऊन। कैसें सांगूं हें वर्तमान। मध्येंच गोष्टी ठेविली झांकोन। तरी दूषण लागतसे। ३३ ऐसें विचारी हनुमंत। सत्वर आला जेथें रघुनाथ। अधोवदनीं स्फुंदत। भयभीत कपी जाहले। ३४ गजबजले रामलक्ष्मण। मारुतीस पुसती वर्तमान। हनुमंत

पर्वत को लिये हुए आया। तब रघुनाथ ने सन्तुष्ट होकर मुझे बहुत गौरवान्वित कर दिया। २७ (मेरे द्वारा किये हुए) वे सब परिश्रम व्यर्थ हो गये हैं। मैं सचमुच अभागा हूँ। समझ में नहीं आ रहा है कि यह समाचार सुनकर रघुनाथ क्या करेंगे। २८ मैंने पहले रघुनाथ से कहा था कि जनक-कन्या सुखी (सकुशल) है— अब मैं (उन्हीं) रामचन्द्र से यह समाचार कैसे कहूँ कि जानकी का वध किया गया है। २९ (यह मानो वैसे ही होने जा रहा है, जैसे) जिसने पूर्वकाल में (किसी को) बहुत धन दिया हो और उसी ने अनन्तर उससे छीन लिया हो, अथवा जिसने (किसी का) बहुत (प्रेम से लालन-) पालन किया हो, उसी ने (उसका) सिर काट दिया हो, अथवा जिसने (किसी को) जन्मभर सुख दिया हो, उसी ने (उसे) दुःख-सागर में धकेल दिया हो, अथवा जिसने (किसी को) जलते हुए घर में से बाहर निकाला हो, उसी ने (उसका) सिर काट डाला हो; अथवा कोई प्राणी प्यास से व्याकुल हो पड़ा हुआ हो, तो जिसने उसे पानी देकर बचाया हो, उसी ने अपने हाथ में शस्त्र लेकर साथ ही उसका वध (भी) कर डाला हो। ३०-३२ वैसे ही (करनेवाला) मैं राम के पास जाकर यह समाचार कैसे कहूँ। (यदि) बातों को बीच में ही छिपाकर रख दें, तो दोष लग जाता है।" ३३ इस प्रकार हनुमान ने विचार किया और वह (वहाँ) गया, जहाँ श्रीराम थे। (उस समय) वह सुबक रहा था, तो कपि भयभीत हो गये। ३४ राम-लक्ष्मण

वक्ष:स्थळ बडवून। आक्रंदोनी सांगतसे। ३५ जानकी आणूनि रणांगणीं। इंद्रजितें टाकिली वधोनी। ऐसें ऐकतां चापपाणी। दु:खेंकरूनि उचंबळे। ३६ आकर्ण नयन चांगले। ते अश्रु स्रवों लागले। हाहाकार ते वेळे। रामसेनेंत जाहला। ३७ मंगळरूप तो रघुनंदन। मंगळभगिनीचे आठवूनि गुण। विलाप करितां लक्ष्मण। येऊनि चरणीं लागला। ३८ आकर्णनयन चांगले। परब्रह्म मूस ओतलें। त्या जगद्वंद्याचीं चरणकमलें। सौमित्रबाळें वंदिलीं। ३९ म्हणे ब्रह्माण्डनायका रघुपती। मिथ्या मायेची कायसी खंती। आकारा आलें तें पुढती। नाश पावेल निर्धारें। ४० विवेकवज्र घेऊन। मोहपर्वत करावा चूर्ण। सद्गुरुवसिष्ठें शिकवण। हेच पूर्वीं शिकविली। ४१ तूं देवाधिदेव परब्रह्म। अज अजित आत्माराम। तुझे मायेचा हा संभ्रम। मिथ्यामय लटिकाचि। ४२ जानकी पावली मरण। तुज कोठें जाईल टाकोन। दीपासी प्रभा

भी भयभीत हो गये। उन्होंने हनुमान से समाचार पूछा, तो वह छाती पीटते हुए रोते-रोते बोला। ३५ 'इंद्रजित ने युद्धभूमि में सीता को लाकर उसका वध कर डाला।' ऐसा सुनते ही चाप-पाणि श्रीराम दु:ख से गदगद हो उठे। ३६ उनके वे कानों तक फैले हुए, अर्थात् विशाल नेत्र आँसू बहाने लगे, तो राम की सेना में उस समय हाहाकार मच गया। ३७ मंगल-स्वरूप उन रघुनन्दन द्वारा मंगल-भगिनी सीता के गुणों का स्मरण करते हुए विलाप करते रहने पर लक्ष्मण आकर उनके पाँव लगे। ३८ जिनके नेत्र आकर्ण अर्थात् कानों तक फैले हुए, विशाल थे, जिनके रूप में परब्रह्म मानो घड़िया में ढल गया हो, उन जगद्वंद्य श्रीराम के चरण-कमलों का लक्ष्मण ने वन्दन किया। ३९ (फिर) उन्होंने कहा— 'हे ब्रह्माण्ड-नायक रघुपति, मिथ्या माया को लेकर तुम खेद किसलिए कर रहे हो? जो आकार को प्राप्त हो गया है, वह आगे निश्चय ही नाश को प्राप्त होगा। ४० विवेकरूपी वज्र को लेकर मोह-रूपी पर्वत को चूर कर डालें। पूर्वकाल में सद्गुरु वसिष्ठ ने यही सीख दी है। ४१ तुम देवाधिदेव परब्रह्म हो, अजन्मा, अजेय, आत्माराम हो। (सीता, जो) तुम्हारी माया (है, उस) के प्रति तुम्हारा यह मोह मिथ्या एवं बनावटी है। ४२ जानकी मौत को प्राप्त हो गयी, (क्षण-भर इसे सत्य भी मान लें, फिर भी) वह तुम्हें छोड़कर कहाँ जाएगी? यह तो नहीं घटित होगा कि प्रभा दीपक को छोड़कर (कहीं अन्यत्र)

वोसंडोन । जाईल हें तों घडेना । ४३ कनकासी टाकूनि कांती । जाऊन राहील केउती । रत्नांस सांडूनि दीप्ती । कोठें परती जाईल । ४४ अनादि तूं तिचा नाथ । तुजचि ते पावेल यथार्थ । जैसा पार्वतीनें कैलासनाथ । पुनः उपजोनि वरियेला । ४५ आतां यावरी ऐसें करीन । सहपरिवारें वधीन रावण । बंदींचे देव सोडवीन । बिभीषण स्थापीन लंकेसी । ४६ ऐसें बोलतां लक्ष्मण । राम पाहे अधोवदन । चिंताक्रान्त वानर-गण । तटस्थरूप पाहाती । ४७ तों बिभीषणाचे दोघे प्रधान । आले जानकीची शुद्धि घेऊन । हांसतचि बिभीषण । आला रामास सांगावया । ४८ म्हणे जगद्वंद्या चापपाणी । सुखी आहे

जाएगी । ४३ कान्ति सोने को छोड़कर कहाँ जाकर रहेगी ? रत्नों को छोड़कर कान्ति कहाँ जा पाएगी ? ४४ तुम अनादि (ब्रह्म) उसके स्वामी हो । जिस प्रकार पार्वती ने फिर से उत्पन्न होकर कैलासनाथ शिवजी का वरण किया, * उस प्रकार वह (सीता मरकर भी) सचमुच तुमको ही प्राप्त होगी । ४५ अब इसके अनन्तर मैं यों करूँगा— रावण का परिवार-सहित वध करूँगा, देवों को बन्दी-गृह से छुड़ा दूँगा और विभीषण को लंका में (राज-पद पर) स्थापित कर दूँगा । ' ४६ लक्ष्मण द्वारा ऐसा बोलने पर राम अधोमुख होकर देखते रहे । तो चिन्ता से व्याकुल हुए वानर चकित होकर देखने लगे । ४७ तब विभीषण के दो मन्त्री सीता की खोज-खबर लेकर आ गये । तो विभीषण मुस्कराते हुए ही राम से यह कहने आ गया । ४८ वह बोला— ' हे जगद्वंद्य चापपाणि श्रीराम,

---

* टिप्पणी : शिवजी की पत्नी पार्वती अपने पूर्व भव में प्रजापति दक्ष की कन्या थी । एक बार सीता की खोज करनेवाले श्रीराम को देखकर शिवजी ने उन्हें प्रणाम किया, तो पार्वती (जिसका नाम उस भव में ' सती ' था) ने राम के सम्बन्ध में सन्देह व्यक्त करते हुए कहा कि यदि राम सच्चिदानन्द ब्रह्म हों, तो वे पत्नी के विरह में शोकाकुल होकर मूढ़ की भाँति विलाप क्यों कर रहे हैं । शिवजी द्वारा समझाने पर भी उसके ध्यान में यह रहस्य नहीं आया । तब शिवजी की अनुमति से सती ने श्रीराम की परीक्षा की । जब शिवजी को विदित हुआ कि परीक्षा करते समय सती ने सीता का रूप धारण किया था, तो वे उससे विरक्त हो गये । आगे चलकर एक दिन सती अपने पिता की यज्ञशाला में गयी । वहाँ शिवजी के लिए हविर्भाग नहीं दिया जा रहा था । यह देखकर वह क्रुद्ध हुई और उसने अपने आपको योगाग्नि में जला डाला । यह सती आगे हिमालय की कन्या उमा या पार्वती के रूप में उत्पन्न हुई । फिर तपस्या करके उसने शिवजी को प्रसन्न कर लिया, तब उसका विवाह शिवजी के साथ हुआ ।

(यह कथा ' शिवपुराण ' के अतिरिक्त, रामचरितमानस के बालकाण्ड में सविस्तार मिलती है ।)

जनकनंदिनी। म्यां लंकेसी दूत पाठवूनी। समाचार आतां आणविला। ४९ इंद्रजित परम कपटी। लटिकीच वधिली सीता गोरटी। हनुमंत निष्कपट पोटीं। त्यासी सत्यचि वाटलें। ५० ऐकतां बिभीषणाचें वचन। जयजयकारें गर्जती कपिगण। वदनें टवटवलीं पूर्ण। आनंद गगनीं न समाये। ५१ उदयाचळीं उगवे गभस्ती। एकदांचि निघे तमाची बुंथी। तैसी जाहली दुःखनिवृत्ती। बिभीषणें वार्ता सांगतां। ५२ कीं हृदयीं प्रकटतां वेदान्तज्ञान। सहपरिवारें जाय अज्ञान। कीं गृहस्वामी उठतां देखोन। तस्कर पळती अवघेचि। ५३ कीं क्षुधित पडला अन्नाविण। तों क्षीराब्धि पुढें आला धांवोन। कीं वारणें गांजितां पंचानन। हांक फोडोनि धांविन्नला। ५४ रोगें व्यापिला बहुवस। तों वैद्यें पाजिला सुधारस। तैसें बिभीषण बोलतां रामास। मिथ्या दुःख वितळलें। ५५ बिभीषण वचन पौर्णिमा थोर। कळायुक्त दिसे रामचंद्र। उचंबळला कपि-

---

जनक-नंदिनी सकुशल हैं। लंका में दूतों को भेजकर मैं अब यह समाचार लिवा लाया हूँ। ४९ इन्द्रजित परम कपटी है। उसने मिथ्या (बनावटी, कृत्रिम) सीता सुन्दरी का वध किया। हनुमान मन से कपट-रहित है, उसे वह सत्य ही प्रतीत हुआ।' ५० विभीषण की बात सुनकर जय-जयकार करते हुए कपिगण गरज उठे। उनके मुख पूर्णतः (आनन्द से) खिल गये। उनका आनन्द गगन (तक) में नहीं समा रहा था। ५१ सूर्य (जब) उदयाचल पर उदित हो जाता है, तो अँधेरे की राशि एक ही साथ निकल जाती है (नष्ट हो जाती है)। उस प्रकार विभीषण द्वारा यह समाचार कह देते ही (सब के) दुःख का निराकरण हो गया। ५२ अथवा हृदय में वेदान्त-ज्ञान के प्रकट हो जाने पर (साधक के मन में पहले से स्थित) अज्ञान सपरिवार, अर्थात् पूर्णतः (नष्ट हो) जाता है, अथवा गृह-स्वामी को (जगकर) उठते देखते ही सभी चोर भाग जाते हैं, अथवा कोई भूखा मनुष्य बिना अन्न के पीड़ित हो गया हो, तो क्षीर-सागर (ही मानो उसके) सामने दौड़कर आ गया हो, अथवा हाथी द्वारा सताने पर सिंह दहाड़ते हुए दौड़ा हो, अथवा कोई व्यक्ति रोग से बहुत व्याप्त हो गया हो, त्यों ही वैद्य ने उसे अमृतरस पिलाया हो, उस प्रकार विभीषण द्वारा राम से ऐसा कहने पर (सब का) झूठ-मूठ की घटना से उत्पन्न दुःख नष्ट हो गया। ५३-५५ विभीषण द्वारा कही बात मानो महान् पौर्णिमा हो, जिसमें श्रीराम-रूपी चन्द्र (समस्त) कलाओं से युक्त दिखायी दे रहे थे; तो

समुद्र । सुखभरतें दाटलें । ५६ बिभीषणास म्हणे रघुनंदन । तुझे उपकारा मी नव्हें उत्तीर्ण । क्षणक्षणां आम्हांलागून । सांभाळिसी प्राणसखया । ५७ असो श्रीरामाचिये कर्णीं । बिभीषण सांगे तेचि क्षणीं । इंद्रजितें निकुंभिलाभुवनीं । कपट-होम आरंभिला । ५८ होमधूमें कोंदलें निराळ । होमाहुतीचे दाटले परिमळ । अग्नींतून रथ तेजाळ । अर्ध बाहेर निघाला । ५९ अश्व सारथि धनुष्य बाण । यांसह तो निघे स्यंदन । कार्यसिद्धि जाहलिया पूर्ण । मग रावणी नाटोपे । ६० तो चार वेळां येऊन । रणीं गेला जय घेऊन । आतां तो होम विध्वंसून । आधीं सत्वर टाकावा । ६१ विलंब करितांचि येथ । तिकडे निघेल अवघा रथ । रथ निघाल्या इंद्रजित । कालत्रयीं नाटोपे । ६२ द्वादश वर्षें निराहारी । असेल जो ब्रह्मचारी । तयाचेनि हातें शक्रारी । मरेल ऐसें भविष्य असे । ६३ ऐसें ऐकता रघुनंदन । सौमित्राकडे पाहे विलोकून । धनुष्य चढवूनि गुण । वेगें लक्ष्मण उभा ठाकला । ६४ बंधूची

कपि (-सेना) रूपी समुद्र उमड़ उठा; उसमें सुख का ज्वार भर उठा । ५६ तदनन्तर रघुनन्दन ने विभीषण से कहा— 'तुम्हारे उपकार (रूपी ऋण) से मैं (कभी भी) मुक्त नहीं हो पाऊँगा । हे प्राण-सखा, तुम हमें प्रतिक्षण सम्हाल रहे हो ।' ५७

अस्तु । विभीषण ने श्रीराम के कानों में उसी क्षण कहा— 'इन्द्रजित ने निकुंभिला-नगर में कपट-होम का आरम्भ किया है । ५८ होम के धुएं से आकाश बहुत भर गया है; होम में डाली हुई आहुतियों की गन्ध (चारों ओर) बहुत (तीव्र) फैल गयी है (और) अग्नि में से एक तेजस्वी रथ आधा बाहर निकल आया है । ५९ वह रथ घोड़ों, सारथी, धनुष और बाणों सहित निकलेगा । (यदि इन्द्रजित द्वारा आयोजित) कार्य पूर्ण सिद्धि को प्राप्त हो जाए, तो उस रावण-पुत्र को (किसी भी द्वारा) रोका नहीं जाएगा । ६० चार बार आकर वह युद्ध में विजय लेकर (प्राप्त करके) चला गया है । (अतः) अब पहले उस होम को झट से ध्वस्त कर डालना । ६१ यहाँ देर करते ही उधर पूरा रथ निकलेगा और उस रथ के निकल आने पर इन्द्रजित तीनों कालों में रोका नहीं जा सकता । ६२ भविष्य ऐसा है कि जो कोई ब्रह्मचारी बारह वर्ष निराहार (रहा) हो, उसी के हाथों इन्द्रजित मरेगा ।' ६३ ऐसा सुनते ही रघुनन्दन ने सौमित्र लक्ष्मण की ओर दृष्टिपात करते हुए देखा,

बाल्यदशा देखोनी । स्नेहभरित होय चापपाणी । अनुजासी हृदयीं कवळूनी । मंत्र कर्णीं सांगतसे । ६५ कोण्या मंत्रें कोण अस्त्र । कोण्या समयीं प्रेरावें कोणतें शस्त्र । तें तें सर्वही राजीवनेत्र । सौमित्रासी देता जाहला । ६६ मस्तकीं ठेविला कृपाहस्त । म्हणे सत्वर वधोनि इंद्रजित । जयलाभ घेऊनि अद्भुत । कल्याणरूप येइंजे । ६७ सवें मारुति बिभीषण । परम बुद्धिमंत कळाप्रवीण । रामें धरूनि लक्ष्मण । तयांचे हातीं दीधला । ६८ नळ नीळ जांबुवंत अंगद । गवय गवाक्ष ऋषभ मैंद । पनस केसरी दधिमुख द्विविद । वीर अगाध निघाले । ६९ आणि असंख्य निघती वानरगण । पुढें मार्ग दावी बिभीषण । निकुंभिला गड परम कठिण । लंकेहूनि अगाध । ७० अंगदस्कंधीं लक्ष्मण । जैसा गजेंद्रावरी सहस्रनयन । पुढें कडे लागले कठिण । मग बिभीषण बोलत । ७१ म्हणे घ्या अवघे उड्डाण । निकुंभिला दुर्ग ओलांडून । शक्रजित करी हवन ।

तो वह धनुष पर डोरी चढ़ाते हुए झट से खड़ा हो गया । ६४ अपने भाई की बालावस्था देखकर चापपाणि श्रीराम स्नेह से भर उठे—अर्थात् उनका मन स्नेह से उमड़ उठा । (फिर) उन्होंने हृदय से लगाते हुए उसके कान में मंत्र कह दिये । ६५ राजीव-नेत्र श्रीराम ने लक्ष्मण को वह सभी (ज्ञान करा) दिया कि किस मन्त्र से कौन अस्त्र तथा किस समय कौन शस्त्र प्रेरित करें । ६६ उन्होंने उसके मस्तक पर कृपा (-सूचक) हस्त रखा और कहा— ‘ इन्द्रजित का झट से वध करके तथा अद्भुत विजयरूपी लाभ को साथ में लिये हुए तुम सबके लिए कल्याण-स्वरूप होकर (लौट) आना । ’ ६७ साथ ही राम ने लक्ष्मण का हाथ, हाथ में लेते हुए उन हनुमान और विभीषण के हाथों में पकड़वा दिया, जो परम बुद्धिमान तथा (युद्ध आदि) कलाओं में प्रवीण थे । ६८ (तत्क्षण) नल, नील, जाम्बवान, अंगद, गवय, गवाक्ष, ऋषभ, मैंद, पनस, केसरी, दधिमुख, द्विविद (जैसे) असंख्य वीर चल पड़े । ६९ और (साथ ही) अनगिनत वानर-गण चल पड़े । आगे (चलते हुए) विभीषण मार्ग दिखा रहा था । निकुंभिला दुर्ग परम कठिन (दुर्गम) तथा लंका से अगाध था । ७० अंगद के कंधे पर लक्ष्मण वैसे (ही शोभायमान) था, जैसे ऐरावत पर इन्द्र (शोभायमान) होते हों । आगे कठिन (दुर्गम) कगार लग गये । ७१ तब विभीषण बोला— ‘ तुम सब उड़ान भर दो और निकुंभिला दुर्ग को लाँघकर तुम

आधीं विध्वंसोनि टाका तें। ७२ मग निराळपंथें ते वेळे। निकुंभिलेंत प्रवेशले। तों सैन्यदुर्ग सबळ बळें। सात भोंवते रक्षिती। ७३ ऋषभ गवय हनुमंत। घेऊनियां शिळा पर्वत। जेथें हवन करी इंद्रजित। त्या विवरांत प्रवेशले। ७४ तों सभोंवतीं भूतें रक्षिती। तितुकीं झोडून पळवी मारुती। तंव तो इंद्रजित पापमूर्ती। वज्रासनीं बैसला। ७५ रक्तोदकें स्नान करूनी। रक्त वस्त्रें नेसला रावणी। सप्त प्रेतें पसरूनी। त्यांवरी आसन घातलें। ७६ पिंगट जटा मोकळ्या दिसती। रक्तें थबथबां गळती। नेत्र लावूनि आहुती। टाकीतसे त्वरेनें। ७७ ब्राह्मणांचीं शिरें बहुत। त्यांचा जवळी पडिला पर्वत। अस्थिमाळा गळां डोलत। उरग मृत शिरीं वेष्टिले। ७८ द्विजदंतांच्या लाह्या करूनी। साजुक रक्त मांस घाली हवनीं। रथ निघाला अग्नींतूनी। तरणीहूनि तेजागळा। ७९ प्राप्त

इन्द्रजित जो हवन कर रहा है, उसे पहले ध्वस्त कर डालो।' ७२ फिर उस समय आकाश मार्ग से उन्होंने निकुंभिला में प्रवेश किया। सेना (के शिविर वाला) वह दुर्ग मजबूत था और चारों ओर से सात पंक्तियों में खड़े सेना दल द्वारा रक्षित था। ७३ वृषभ, गवय और हनुमान शिलाओं और पर्वतों को लेकर उस विवर में प्रविष्ट हो गये, जहाँ इंद्रजित हवन कर रहा था। ७४ तब (उन्हें दिखायी दिया कि) चारों ओर भूत (उस होम की) रक्षा कर रहे थे। उन सबको पीटकर हनुमान ने भगा दिया। तब वह पापमूर्ति इन्द्रजित वज्रासन * लगाकर बैठा हुआ था। ७५ रक्त-जल में स्नान करके रावण के उस पुत्र ने रक्त-(से गीले) वस्त्र पहने थे। उसने सात प्रेतों को बिछाकर उनपर अपने लिए आसनी डाल दी थी। ७६ उसकी भूरी जटाएँ खुली दिखायी देती थीं, जो रक्त को टपटप चुवा रही थीं। आँखों को बन्द करके वह झट से आहुतियाँ डाल रहा था। ७७ (वहाँ) ब्राह्मणों के बहुत सिर थे। (मानो) उनका पहाड़ ही वहाँ लग गया था। उसके गले में हड्डियों की मालाएँ झूल रही थीं। उसने अपने मस्तक से मरे हुए साँपों को लपेट लिया था। ७८ हाथी-दाँत की खील बनाकर वह हवन में शुद्ध रक्त और मांस डाल रहा था। (उस समय) तेज में सूर्य से भी बड़ा रथ उस अग्नि से निकल

* टिप्पणी—वज्रासन : हठयोग के चौरासी आसनों में से एक जिसमें गुदा और लिंग के मध्य के स्थान को बाएँ पैर की एड़ी से दबाकर उसके ऊपर दाहिना पैर रखकर पलथी लगाकर बैठते हैं।

होतां दिव्य निधान। जैसें अभाग्यावरी पडे विघ्न। तैसें हनुमंतें पर्वत टाकून। होमकुंड विध्वंसिलें। ८० अग्नि चहूंकडे विखरत। गेलें परतोनि आराध्य दैवत। अग्नीनें गिळिला माघारीं रथ। परम अनर्थ जाहला। ८१ इंद्रजिताच्या पृष्ठीवरी। ऋषभ देहधर्मातें करी। यज्ञपात्रें फोडोनि झड-करी। होमद्रव्यें उलंडीत। ८२ गजर कानीं पडतां बहुत। सावध जाहला शक्रजित। देखोनियां तें विपरीत। परम दुश्चित ते वेळे। ८३ म्हणे दैवत क्षोभलें सबळ। कैसी वैरि-यांनीं साधिली वेळ। माझें आयुष्यसिंधुजळ। आजपासूनि आटलें। ८४ वानर तेथें गेले समस्त। परम कोपला इंद्रजित। वेगें आणूनि दिव्य रथ। वरी आरूढे ते काळीं। ८५ अद्भुत दळ घेऊनि ते वेळां। निकुंभिलेबाहेर युद्धासी आला। तों कपि-भारेंसीं उभा ठाकला। सौमित्र देखिला शक्रजितें। ८६ भगणां-माजी रोहिणीवर। कीं किरणचक्रीं दिवाकर। तैसा वानरांत सौमित्र वीर। युद्धासी सिद्ध उभा असे। ८७ जैसा कुळाचळांत

गया। ७९ परन्तु जिस प्रकार दिव्य निधान के प्राप्त होते ही अभागे मनुष्य पर विघ्न आ पड़ता हो (और उसका निधान छिन जाता हो), उसी प्रकार हनुमान ने पर्वत फेंककर होम-कुण्ड को बुझा डाला। ८० चारों ओर अग्नि के बिखरते ही आराध्य देवता लौट गया, तो अग्नि ने रथ को फिर निगल लिया। (तब) बहुत बड़ा अनर्थ हो गया। ८१ (तदनन्तर) ऋषभ ने इन्द्रजित की पीठ पर मल-त्याग किया और यज्ञ-पात्रों को फोड़कर झट से यज्ञ-द्रव्य उँडेल दिया। ८२ बड़ा गर्जन (कोलाहल) कानों में पड़ते ही इंद्रजित सावधान हो गया और उस समय उस प्रतिकूल बात को देखते हुए परम दुखी होकर वह बोला— '(आराध्य-) देवता अत्यधिक क्षुब्ध हुआ है। वैरियों ने इस अवसर से कैसे लाभ उठाया है। मेरी आयुरूपी समुद्र का जल आज से घटने लगा। ८३-८४ (जब) सब वानर वहाँ गये, तो इन्द्रजित बहुत क्रुद्ध हो गया (और) उस समय एक दिव्य रथ लाकर वह उसपर आरूढ़ हो गया। ८५ उस समय अद्भुत सेना को लिये हुए वह युद्ध के लिए निकुंभिला के बाहर आ गया, तो उस (इन्द्रजित) ने कपि-सेना सहित लक्ष्मण को खड़े हुए देखा। ८६ नक्षत्रों में जैसे चन्द्रमा अथवा किरण-चक्र में जैसे सूर्य (शोभायमान) होता है, वैसे वानरों में वीर लक्ष्मण (शोभायमान) था। वह युद्ध के लिए सिद्ध होकर खड़ा था। ८७ जिस प्रकार कुल-पर्वतों में मेरु आश्चर्यकारी होता

मेरु अद्भुत। तैसा रथारूढ दिसे इंद्रजित। तों राक्षसदळ लोटलें समस्त। वानरांवरी ते काळीं। ८८ शिळा द्रुम पर्वत घेऊनी। कपी धांवले ते क्षणीं। राक्षसदळा होत आटणी। प्रेतें अवनीं पडताती। ८९ शूल असिलता शक्ती। हीं आयुधें घेऊनि हातीं। वानरांसी असुर खोंचिती। कपी पडती विकळ तेणें। ९० तों नळ नीळ जांबुवंत। प्रतापरुद्र अंजनीसुत। यांचा मार अति अद्भुत। आटले बहुत निशाचर। ९१ अरि-प्रताप देखोनि अत्यद्भुत। परम क्रोधावला इंद्रजित। होम विध्वंसिला त्या विषादें बहुत। दांत खात करकरां। ९२ लातेनें ताडितां उरग। कीं खवळे शुंडा पिळितां मातंग। कीं नासिकीं ताडितां सवेग। महाव्याघ्र जेवीं खवळे। ९३ कीं महातपस्वी अपमानिला। कीं हुताशन घृतें शिंपिला। तैसा इंद्रजित क्षोभला। वेगें लोटिला रथ पुढें। ९४ दृष्टीं देखतां वारण। खवळे जैसा पंचानन। तैसा क्षोभला लक्ष्मण।

है, ❋ उस प्रकार रथ पर आरूढ़ इन्द्रजित (आश्चर्यकारी) दिखायी दे रहा था। तो उस समय समस्त राक्षस-दल वानरों पर चढ़ दौड़ा। ८८ उस क्षण शिलाओं, वृक्षों और पर्वतों को लेकर वानर दौड़े, तो राक्षस-दल का शोषण होने लगा। पृथ्वी पर प्रेत गिरने लगे। ८९ (उधर) शूल, तलवारें और शक्तियाँ जैसे आयुध हाथों में लेकर असुर वानरों को चुभाते थे; तो उससे व्याकुल होकर कपि गिर जाते थे। ९० तब नल, नील, जाम्बवान और प्रतापरुद्र हनुमान द्वारा अति अद्‌भुत मार पड़ने लगी; (फलस्वरूप) बहुत राक्षस नष्ट हो गये। ९१ शत्रु के अति अद्‌भुत प्रताप को देखकर इन्द्रजित परम क्रुद्ध हो गया। होम का विध्वंस हो गया, इससे (उत्पन्न) परम विषाद से वह दाँत किटकिटाते हुए पीसने लगा। ९२ जिस प्रकार लात से ताड़न करने पर सर्प, अथवा सूँड़ को मरोड़ने पर हाथी क्षुब्ध हो जाता है, अथवा नाक पर वेग-पूर्वक आघात करने पर बड़ा बाघ जिस प्रकार क्षुब्ध हो उठता है, अथवा किसी महान तपस्वी का अपमान किया हो, (तो वह जैसे क्षुब्ध हो जाता है) अथवा अग्नि को घृत से सींचा हो, (तो वह जैसे धधकने लगता है), उसी प्रकार इन्द्रजित क्षुब्ध हो उठा और उसने वेग-पूर्वक रथ को आगे बढ़ा दिया। ९३-९४ तो आँखों से हाथी को देखते ही जैसे सिंह क्षुब्ध हो उठता है, उसी प्रकार

❋ टिप्पणी : कुल-पर्वत-हिमवान, गंधमादन, नैषध, विंध्य, माल्यवान, परियात्रिक, हेमकूट।

जो भोगींद्र पूर्ण अवतरला । ९५ विद्युत्प्राय चाप चढवून । त्यावरी योजिला दिव्य बाण । सिंहनादें गर्जोन । रामानुज सरसावला । ९६ मांडिलें तेव्हां वज्रठाण । कौतुक पाहती सुरगण । सौमित्रासी होवो कल्याण । हेंच देव चिंतिती । ९७ इंद्रजित म्हणे सौमित्रासी । मजसीं युद्ध करूं पाहसी । जैसा हरिण शार्दूलासीं । झोंबी घ्यावया पातला । ९८ सुपर्णावरी धांवे अळिका । कीं मातंगावरी गोवत्स देखा । कीं बळें धांवे पिपीलिका । कनकाचळ उचलावया । ९९ ऊर्णनाभी भावी मनीं । स्वतंतूंनीं झांकीन मेदिनी । वृश्चिक नांगी उभारूनी । ताडीन म्हणे खदिरांगारा । १०० सूर्य जिकीन म्हणे खद्योत । मक्षिका भूगोळ हालवूं इच्छीत । वडवानळ धगधगीत । पतंग धांवे ग्रासावया । १ मजसीं तैसा युद्धासी । मानववंशी तूं आलासी । माझे बाण केवीं साहिसी । समरांगणीं न कळे हें । २ यावरी बोले लक्ष्मण । तुझे दृष्टीसी दिसतों लहान ।

(इन्द्रजित को देखते ही) लक्ष्मण, जिसके रूप में भोगीन्द्र शेष पूर्णतः अवतरित था, क्षुब्ध हो उठा । ९५ बिजली-से (जगमगाते हुए) धनुष को चढ़ाकर लक्ष्मण ने उसपर दिव्य बाण आयोजित किया और वह सिंहनाद कर गरजते हुए आगे बढ़ा । ९६ उसने तब वज्र-सी (दृढ़, अविचल) ठवनी ग्रहण की । (आकाश से) सुरगण यह लीला देख रहे थे । देव यही कामना कर रहे थे कि लक्ष्मण का कल्याण हो । ९७ (तब) इन्द्रजित ने लक्ष्मण से कहा— 'तुम मुझसे लड़ना चाहते हो ? मानो कोई हिरन सिंह से टक्कर लेने के लिए आ पहुँचा हो, अथवा इल्ली गरुड़ पर चढ़ दौड़ी हो, अथवा बछड़ा हाथी की ओर (क्रोध से) देख रहा हो, अथवा चींटी स्वर्णपर्वत मेरु को उठाने के लिए बलात् दौड़ी हो, अथवा मकड़ी मन में सोच रही हो— मैं अपने तन्तुओं से पृथ्वी को आच्छादित कर दूँगी, अथवा बिच्छू पूँछ को उभारकर खदिरांगार को पीटने की कह (सोच) रहा हो, अथवा खद्योत कहता हो— मैं सूर्य को जीत लूँगा, अथवा मक्खी भू-गोल को हिलाना चाह रही हो, अथवा पतंगा धधकते हुए वड़वानल को निगलने के लिए दौड़ा हो, उसी प्रकार मानव-वंशीय तू (मुझसे) युद्ध करने आया है । समझ में नहीं आ रहा है कि समर-भूमि में तू मेरे बाणों को कैसे सह लेगा'। ९८-१०२ इसपर लक्ष्मण बोला— 'मैं तेरी आँखों को छोटा दिखाई दे रहा हूँ । (परन्तु जानता है कि) भस्म से आच्छादित हुताशन (अग्नि) क्षण में वन को जला

भस्में आच्छादिला हुताशन। क्षणें कानन जाळील। ३ दृष्टीस न भरे केसरी। परी क्षणें महागज विदारी। वज्र धाकुटें परी करी। चूर्ण सकळ नगांचें। ४ खुजट दिसे वामन। परी ढेंगेंत आटिलें त्रिभुवन। घटोद्भवाची तनू सान। परी सागर संपूर्ण प्राशिला। ५ चिमणाच दिसे चंडांश। परी मेदिनी भरी प्रकाश। तेवीं नरवीर राघवेश। त्याचा दास मी असें। ६ तुज आजि मी समरांगणीं। खंडविखंड करीन बाणीं। इंद्रादि देव पाहती गगनीं। मनोरथ पुरवीन तयांचे। ७ ऐकतां क्षोभला शक्रारी। दिव्य बाण ते अवसरीं। सोडी रामानुजावरी। प्रळयचपळेसारिखा। ८ जैसें सद्विवेकेंकरून। ज्ञानी क्रोध टाकी खंडोन। तैसा सौमित्रें तोडिला बाण। निजशरेंकरूनियां। ९ परम क्षोभला इंद्रजित। बाणांचा पर्जन्य पाडीत। एके बाणेंच सुमित्रासुत। पिष्ट करून टाकीतसे। ११० उगवतां वासरमणी। भगणें लोपती जेवीं गगनीं। कीं जलदजाल तत्क्षणीं। प्रभंजन विध्वंसी। ११ बोध प्रकटतां अंतरीं। बहुत पातकें

डालेगा; आँखों को सिंह नहीं जँचता या बड़ा प्रतीत होता, फिर भी वह क्षण में बड़े हाथी को विदीर्ण कर डाल सकता है; वज्र छोटा होता है, फिर भी वह समस्त पर्वतों को चूर-चूर कर सकता है; वामन बौना दिखायी पड़ता था, परन्तु उसने एक पग में त्रिभुवन को अपने अधीन (व्याप्त) कर लिया था, अगस्त्य ऋषि की देह छोटी थी, परन्तु उसने पूरे सागर को पी डाला था; सूर्य नन्हा ही दिखायी देता है, परन्तु उसका प्रकाश पृथ्वी-भर होता है, उसी प्रकार नरवीर श्रीराम का मैं (छोटा-सा दिखायी देनेवाला परन्तु परम प्रतापी) दास हूँ। १०३-१०६ आज युद्ध-भूमि में मैं तुझे बाणों से खण्ड-खण्ड कर डालूँगा। इन्द्र आदि देव आकाश में से देख रहे हैं, मैं उनके मनोरथों को पूर्ण करूँगा। ७ यह सुनते ही इन्द्रजित क्षुब्ध हो उठा और उसने उस समय लक्ष्मण पर प्रलयकाल की बिजली-सा एक दिव्य बाण छोड़ा। ८ परन्तु लक्ष्मण ने उस बाण को वैसे काट डाला, जैसे ज्ञानी व्यक्ति सद्विवेक से क्रोध को खण्ड-खण्ड कर देता है। ९ इन्द्रजित परम क्षुब्ध हो गया था। उसने बाणों की बौछार कर दी, परन्तु लक्ष्मण ने उन्हें एक ही बाण से पीस डाला। ११० जिस प्रकार सूर्य के उदित हो जाने पर आकाश में नक्षत्र लुप्त हो जाते हैं, अथवा प्रभंजन मेघजाल को तत्क्षण ध्वस्त कर देता है, अथवा (साधक के) अन्तःकरण में प्रकट होने पर ज्ञान बहुत पापों का संहार करता है, अथवा

संहारी । कीं आत्मज्ञान जेवीं हरी । संसारदुःखें अनेक । १२ तैसे इंद्रजिताचे शर पाहीं । तो जनकाचा कनिष्ठ जांवई । बाण सर्व छेदूनि लवलाहीं । पाडीतसे एकीकडे । १३ सौमित्र सोडी एक शर । त्यापासूनि बाण निघती अपार । जैसा एकुलता एक पुत्र । वाढे संतति बहु त्याची । १४ कीं तैलबिंदु जळीं पडतां । पसरे चहूंकडे तत्त्वतां । कीं सत्पात्रीं दान देतां । कीर्ति प्रकटे सर्वत्र । १५ कुलवंतावरी उपकार करितां । तें यश प्रकटे न सांगतां । तैसा एक बाण सोडितां । पसरती बहु चहूंकडे । १६ लक्षांचे लक्ष बाण । सोडितसे सुमित्रानंदन । इंद्रजित तितुके छेदून । एकीकडे पाडी पैं । १७ इंद्रजित तुकावी मान । म्हणे धन्य वीर लक्ष्मण । रणधीर न ढळे ठाण । योद्धा निपुण होय हा । १८ असो इंद्रजितें जपोनि मंत्र । सोडिलें तेव्हां पर्जन्यअस्त्र । हस्तिशुडेऐसी धार । मेघ अपार वर्षती । १९ ऐसें देखोनि लक्ष्मण । वातास्त्र जपोनि उडवी पर्जन्य । जैसें वैराग्य प्रकटतां संपूर्ण । संसारदुःखें वितुळती

जिस प्रकार आत्म-ज्ञान अनेक सांसारिक दुखों का नाश करता है, उस प्रकार, देखिए, जनक का कनिष्ठ जामाता लक्ष्मण इन्द्रजित के समस्त बाणों को झट से छेदकर एक ओर गिरा रहा था । ११-१३ लक्ष्मण एक बाण छोड़ता, तो उससे अनगिनत बाण (इस प्रकार) उत्पन्न होकर निकलते, जिस प्रकार (किसी का) इकलौता पुत्र हो, फिर भी उससे बहुत सन्तान विकसित होती हो, अथवा तेल की बूंद पानी में पड़ते ही चारों ओर सचमुच बिखर जाती है, अथवा सत्पात्र को दान देने पर (दाता की) कीर्ति सर्वत्र प्रकट हो जाती है, अथवा कुलीन व्यक्ति का उपकार करने से न कहने पर (भी) कीर्ति प्रकट हो जाती है, उस प्रकार (लक्ष्मण द्वारा) एक बाण छोड़ने पर बहुत बाण (उत्पन्न होकर) चारों ओर फैल जाते थे । १४-१६ (इधर) लक्ष्मण लाखों-लाखों बाण छोड़ रहा था, तो (उधर) इन्द्रजित उन सबको छेदकर एक ओर गिरा रहा था । १७ इन्द्रजित ने सिर झुकाया और कहा— 'वीर लक्ष्मण धन्य है ! यह रणधीर अपनी ठवनी (या पैंतरे) से विचलित नहीं हो रहा है; यह योद्धा (युद्ध-कला में) निपुण है'। ११८

अस्तु । तब इंद्रजित ने मन्त्र का जाप करके पर्जन्यास्त्र छोड़ा, तो मेघ हाथी की सूंड़-सी बड़ी-बड़ी धाराएँ बरसाने लगे । १९ ऐसा देखकर लक्ष्मण ने वायु-अस्त्र का जाप करके उससे पर्जन्य (-अस्त्र) को उस प्रकार उड़ा दिया, जिस प्रकार (साधक के) मन में वैराग्य के प्रकट

पें। १२० परी वात सुटला अद्भुत। इंद्रजिताचें कटक उडत। रावणीनें महापर्वत। आड घातले वायूसी। २१ जैसें मायाजाळ अद्भुत। तैसे आड दिसती पर्वत। मग सौमित्रें वज्रें बहुत। सोडोनि नग फोडिले। २२ करितां सारासार श्रवण। काम क्रोध जाती वितळोन। तैसे पर्वत फोडून। पिष्टवत पैं केले। २३ मग तो सुलोचनावर। सोडी वडवानळास्त्र। त्यावरी दाशरथी वीर। सागरास्त्र सोडीतसे। २४ सागर अद्भुत देखोनी। अगस्तिमंत्र जपे रावणी। तत्काळ समुद्र आटोनि। क्षणमात्रें टाकिला। २५ पापास्त्र सोडी इंद्रजित। नाममंत्र जपे सुमित्रासुत। माहेश्वर रावणी प्रेरीत। सौमित्र जपे ब्रह्मास्त्र। २६ ब्रह्मास्त्र श्रेष्ठ सर्वांत। तेणें माहेश्वर ग्रासिलें समस्त। जांबुवंत आणि हनुमंत। तटस्थ कौतुक पाहती। २७ परम कोपा चढला रावणी। पांच बाण काढी निवडोनी। कीं पांचही सौदामिनी। मेघाबाहेर निघाल्या। २८ ते अनिवार

होने पर सम्पूर्ण सांसारिक दुःख नष्ट हो जाते हैं। १२० परन्तु (उस वायु-अस्त्र के कारण ऐसी) अद्‌भुत हवा बहने लगी (कि उससे) उससे इन्द्रजित की सेना उड़ जाने लगी, तो रावण के उस पुत्र ने वायु को रोकने के हेतु बीच में महापर्वत डाल दिये। २१ जैसे मायाजाल अद्‌भुत होता है, वैसे (अद्‌भुत) वे पर्वत बीच में दिखायी दे रहे थे। तब लक्ष्मण ने बहुत-से वज्र (-अस्त्र) छोड़कर उन पर्वतों को फोड़ डाला। २२ जिस प्रकार सार-असार ग्रहण करते हुए श्रवण करने पर काम, क्रोध नष्ट हो जाते हैं, उस प्रकार लक्ष्मण ने वज्रास्त्रों से पर्वतों को फोड़कर चूर-चूर कर डाला। २३ तब उस (सुलोचना के पति) इन्द्रजित ने वड़वानलास्त्र छोड़ा, तो उस पर दाशरथी वीर लक्ष्मण ने सागरास्त्र छोड़ा। २४ (उससे उत्पन्न) अद्‌भुत सागर को देखकर इन्द्रजित ने तत्काल अगस्त्य-मन्त्र का जाप किया और समुद्र को क्षण मात्र में सुखा डाला। २५ (तदनन्तर इधर) इन्द्रजित ने पापास्त्र छोड़ा, तो लक्ष्मण ने नाम-मन्त्र का जाप किया। इन्द्रजित ने माहेश्वर (शिवजी के) अस्त्र (विशेष) को प्रेरित किया, तो लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र का जाप किया। २६ ब्रह्मास्त्र सबमें श्रेष्ठ होता है। उसने समस्त माहेश्वर अस्त्र को ग्रस्त कर दिया। (उधर से) जाम्बवान और हनुमान चकित होकर यह लीला देख रहे थे। २७ (तब) 'इन्द्रजित परम क्रोध को प्राप्त हो गया और उसने चुनकर पाँच बाण निकाले— अथवा (उन बाणों के रूप में मानो) पाँचों बिजलियाँ

पांच बाण । सोडिले आकर्णवरी ओढून । अकस्मात येऊन । सौमित्राचे हृदयीं भरले । २९ मेरु मान्दार होती चूर्ण । ऐसे ते कठोर पांच बाण । भोगींद्रावतार लक्ष्मण । तेणेंचि व्यथा साहिली । १३० सवेंचि वीर लक्ष्मण । सोडिता जाहला नव बाण । इंद्रजिताचें कपाळ फोडून । आंत संपूर्ण रुतले पैं । ३१ इंद्रजित योद्धा दारुण । बाल्यदशावेष्टित लक्ष्मण । स्नेहें दाटोनि बिभीषण । गदा झेलीत पुढें आला । ३२ गदा फिरवूनि ते वेळीं । इंद्रजितावरी टाकिली । येरें शर सोडोनि पाडिली । एकीकडे आडवी ते । ३३ मेघनादें सोडोनि पंच बाण । हृदयीं खिळिला बिभीषण । जांबुवंतें तें देखोन । पुढें धांवे काळ जैसा । ३४ पर्वतीं वज्र पडे अकस्मात । तैसा रावणीवरी जांबुवंत । हस्तचपेटें त्याचा रथ । अश्वांसहित चूर्ण केला । ३५ विरथ होऊन इंद्रजित । भूमीवरी उभा युद्ध करीत । तों हनुमंतें विशाळ पर्वत । रावणीवरी टाकिला । ३६ नळ नीळ ऋषभ अंगद ।

मेघ में से बाहर निकल पड़ी हों । २८ उसने उन अनिवार्य पाँच बाणों को कान तक खींचकर छोड़ दिया, तो वे अकस्मात आकर लक्ष्मण के हृदय में घुस गये । २९ वे पाँच बाण ऐसे कठिन थे कि उनसे मेरु मन्दर (जैसे पर्वत) तक चूर्ण हो सकते थे । (परन्तु) लक्ष्मण तो भोगीन्द्र शेष का अवतार था, (केवल) वही (उन बाणों से उत्पन्न) व्यथा को सहन कर सका । १३० साथ ही वीर लक्ष्मण ने नौ बाण चला दिये । वे इन्द्रजित के कपाल को फोड़कर अन्दर पूर्णतः गड़ गये । ३१ इंद्रजित तो भीषण योद्धा था । (उसकी तुलना में) लक्ष्मण तो बाल्यावस्था से घिरा हुआ था । (तब) स्नेह से उमड़कर विभीषण गदा को तोलते हुए आगे आ गया । ३२ उसने उस समय गदा को घुमाकर इन्द्रजित पर फेंक दिया, तो उसने बाण छोड़कर (उस गदा को) एक ओर आड़ी गिरा दिया । ३३ (फिर) इंद्रजित ने पाँच बाण चलाकर विभीषण को हृदय (-स्थल) में कील डाला । वह देखकर जाम्बवान काल की भाँति आगे दौड़ा । ३४ जैसे पर्वत पर अकस्मात वज्र पड़ जाए, वैसे जाम्बवान इन्द्रजित पर झपट पड़ा और उसने हाथ के थपेड़े से उसके रथ को अश्वोंसहित चूर-चूर कर डाला । ३५ (जब) इन्द्रजित रथ-हीन होकर भूमि पर खड़े होते हुए युद्ध करने लगा, तो हनुमान ने एक विशाल पर्वत उसपर फेंक दिया । ३६ नल, नील, ऋषभ, अंगद, शरभ, गवय, गवाक्ष, कुमुद, केसरी पावक-लोचन और मैंद एक साथ उठ गये और उस समय वे इन्द्रजित

शरभ गवय गवाक्ष कुमुद । केसरी पावकलोचन मैंद । एकदांचि उठावले । ३७ शिळा पर्वत ते अवसरीं । टाकिती बळेंचि शक्रारीवरी । देव पाहती अंबरीं । कौतुक परम युद्धाचें । ३८ इंद्रजित चतुर बहुत । परम पराक्रमी रणपंडित । तितुक्यांचे फोडी पर्वत । बाणजाळ घालूनियां । ३९ तंव इंद्रजित उडाला । मेघाआड जाऊनि ते वेळां । तेथोनियां वर्षों लागला । बाणजाळ फार कपींवरी । १४० सौमित्राचें ठाण गोजिरें । मग काय केलें वायुकुमरें । तळहातीं सौमित्र त्वरें । उभा करूनि उडाला । ४१ द्वादश गांवें इंद्रजित । शतयोजनें उंच हनुमंत । संग्राम केला अद्भुत । उतरे इंद्रजित पृथ्वीवरी । ४२ खालीं उतरला लक्ष्मण । तों समस्त देव ऋषिगण । सौमित्रास चिंतिती कल्याण । विजयी पूर्ण हो आजि । ४३ पाठीसी वानरांचे भार । आवेशें गर्जती वारंवार । मांडलें परम घनचक्र । अनिवार वीर दोघेही । ४४ सिंहनादेंकरून । दोघेही गर्जविती गगन । महाआवेशें संपूर्ण । ब्रह्मांड ग्रासूं भाविती । ४५ दोघांचे अंगीं रुतले शर । जैसीं पिच्छें पसरिती

पर शिलाएँ और पर्वत बलपूर्वक फेंकने लगे । (तब) आकाश से देव इस बहुत घमासान युद्ध-लीला को देख रहे थे । ३७-३८ इन्द्रजित बहुत चतुर था, वह परम प्रतापी तथा रण-पंडित था । उसने बाणों का जाल डालते हुए उन सबके (द्वारा फेंके हुए) पर्वतों को फोड़ डाला । ३९ तब इन्द्रजित उड़ गया और उस समय मेघों के पीछे जाकर कपियों पर वहाँ से बाण-जाल (समूह) बरसाने लगा । १४० लक्ष्मण का पैंतरा सुन्दर था । फिर हनुमान ने क्या किया ? वह लक्ष्मण को कर-तल पर खड़ा करके उड़ गया । ४१ इन्द्रजित बारह योजन (ऊँचाई पर) था, तो हनुमान सौ योजन ऊँचा था । उसने अद्भुत युद्ध किया, (फलस्वरूप) इन्द्रजित पृथ्वी पर उतर गया । ४२ (फिर) लक्ष्मण (भी) नीचे उतर गया । तो समस्त देव और ऋषिगण लक्ष्मण के कल्याण की कामना कर रहे थे कि आज यह पूर्ण विजयी हो जाए । ४३ (इधर) पीछे वानरों के दल आवेश-पूर्वक बार बार गर्जन कर रहे थे । लक्ष्मण और इंद्रजित ने परम घमासान युद्ध आरम्भ किया । वे दोनों भी अदम्य वीर थे । ४४ सिंह-गर्जना (-सी) गर्जना से वे दोनों भी गगन को निनादित कर रहे थे । बड़े आवेश-पूर्वक वे (मानो) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को निगल जाना चाहते थे । ४५ दोनों के अंगों में बाण गड़ गये । वे वीर वैसे दिखायी

मयूर। कीं पर्वतासी फुटले तृणांकुर। तैसे वीर दीसती। ४६ याउपरी सौमित्र वीर। तूणीरांतून काढी दिव्य शर। जैसा तृतीयनेत्रींचा वैश्वानर। अकस्मात प्रकटला। ४७ जैसा माध्यान्हीचा गभस्ती। तैसीं बाणांचीं मुखें दिसती। तयांचीं किरणें प्रकाशलीं क्षितीं। न लक्षवे कोणातें। ४८ रामनाममुद्रांकित। देदीप्यमान बाण समर्थ। सुमित्रासुताचे मनोरथ। पूणकर्ता निधारें। ४९ तो बाण धनुष्यावरी। सौमित्रें योजिला झडकरी। आकर्ण ओढोनि अंतरीं। काय चिंतिता जाहला। १५० म्हणे पूर्णब्रह्म सनातन। मायातीत शुद्ध चैतन्य। तो सूर्यवंशीं रघुनंदन। जरी हें साच असेल। ५१ मी स्त्री असोनि ब्रह्मचारी। चतुर्दश वर्षें निराहारी। कायावाचामनें अंतरीं। रामउपासक जरी असें। ५२ मंगळभगिनी जगन्माता। सत्य असेल पतिव्रता। रामदासत्व हनुमंता। जरी साच घडलें असेल। ५३ शिवकंठींचें हालाहल। नामें शमलें असेल सकळ। तरी या बाणें शिरकमळ। इंद्रजिताचें खंडेल। ५४ ऐसें चिंतोनि निज मनीं। बाण सोडिला

दे रहे थे जैसे मोर ने परों को फैलाया हो, अथवा मानो पर्वत पर तृणांकुर फूट आये हों। ४६ इसके पश्चात् लक्ष्मण ने तूणीर में से एक दिव्य बाण निकाला। मानो (शिवजी के) तीसरे नेत्र से अग्नि अकस्मात प्रकट हो गया हो। ४७ मध्याह्नकाल का सूर्य जैसा (तेजस्वी) होता है, वैसे ही उस बाण के मुख दिखायी दे रहे थे। उसकी किरणें पृथ्वी में यों प्रकाशमान हो गयीं कि किसी के भी द्वारा उनकी ओर नहीं देखा जा रहा था। ४८ वह बाण राम-नाम-मुद्रांकित था, देदीप्यमान तथा सामर्थ्य से युक्त था। वह निश्चय ही लक्ष्मण के मनोरथों को पूर्ण करनेवाला, अर्थात् पूर्ण करने में समर्थ था। ४९ लक्ष्मण ने उस बाण को धनुष पर झट से चढ़ा लिया और उसे कान तक खींचते हुए वह मन में क्या सोचने लगा ? १५० उसने कहा (सोचा)— (कहते हैं कि) सूर्य-कुलोत्पन्न रघुनन्दन श्रीराम सनातन पूर्ण ब्रह्म हैं, माया से परे तथा शुद्ध चैतन्य (-स्वरूप) हैं— यदि यह सत्य हो; मेरे स्त्री होने पर भी मैं यदि ब्रह्मचारी (ब्रह्मचर्य व्रतधारी) हूँ, चौदह वर्ष निराहार तथा काया-वाचा-मनसा अन्तःकरण से राम का यदि उपासक हूँ, यदि मंगल-भगिनी एवं जगन्माता सीता सचमुच पतिव्रता हो, यदि हनुमान को श्रीराम का दासत्व सचमुच घटित हुआ हो, यदि शिवजी के कण्ठ में हलाहल (से उत्पन्न दाह) का राम-नाम (के प्रभाव) से पूर्ण शमन हुआ हो, तो इस बाण से इन्द्रजित का

तत्क्षणीं। शक्रारीचा कंठ लक्षोनी। गगनमार्गें जातसे। ५५ यावरी विंशतिनेत्रपुत्र। बाण देखोनि परम तीव्र। मग स्वयें निर्वाण शर। योजूनि आकर्ण ओढिला। ५६ तंव इतुक्यांत अकस्मात। बाण पावला कृतान्तवत। तेणें कंठ आणि भुजा त्वरित। छेदोनि नेलीं गगनमार्गें। ५७ वक्र सुरीनें त्वरित। कृषीवल कणसें छेदित। तैसें शिर भुजेसहित। बाणें नेलें ते काळीं। ५८ भुज उसळून अद्भुत। लंकेवरी जाऊनि पडत। शिर भूमंडळीं उतरत। कंदुकवत ते काळीं। ५९ तो ऋषभें धांवोनि सत्वर। वरिच्यावरी झेलिलें शिर। जाहला एकचि जयजयकार। सुमनसंभार देव वर्षती। ६० इंद्र संतोषला बहुत। म्हणे आजि माझें भाग्य उदित। दिशा पावलों यथार्थ। सुमित्रासुतप्रसादें। ६१ शक्राचा हर्ष तें काळीं। न मायेचि नभमंडळीं। दुंदुभींची घाई लागली। ऋषिमंडळी आनंदत। ६२ पुष्पवृष्टि वारंवार। सौमित्रावरी करी देवेंद्र। इंद्राचा उजळला मुखचंद्र।

मस्तक-कमल कट जाएगा। ५१-५४ इस प्रकार अपने मन में सोचकर लक्ष्मण ने तत्क्षण बाण छोड़ा, जो इन्द्रजित के कण्ठ को देखते हुए--अर्थात् लक्ष्य बनाते हुए आकाश-मार्ग से जाने लगा। ५५ इसपर उस परम तीक्ष्ण बाण को देखते ही उस रावण-पुत्र ने फिर स्वयं (धनुष पर) एक निर्वाण बाण रखते हुए कान तक खींचा। ५६ तब इतने में (लक्ष्मण का) बाण कृतान्त-सा सहसा आ पहुँचा। (इंद्रजित के) कण्ठ और भुजाओं को झट से काटकर वह बाण आकाश मार्ग पर ले गया। ५७ जिस प्रकार किसान वक्र छुरी से भुट्टे को छेद डालता है, उस प्रकार वह बाण उस समय (इंद्रजित के) सिर और भुजाओं को काटकर ले गया। ५८ उस समय उसके (वे कटे हुए) हाथ अद्भुत रूप से उछलकर लंका पर जाते हुए गिर गये, तो (जब) सिर गेंद की भाँति पृथ्वी पर उतर रहा था, तब ऋषभ ने झट से दौड़कर उसे ऊपर ही ऊपर लोक लिया। (उस समय) अपूर्व जयजयकार हो गया और देवों ने पुष्प-राशियाँ बरसा दीं। १५९-१६० इंद्र बहुत सन्तुष्ट हो गया और बोला-- 'आज मेरा भाग्य उदित हुआ, लक्ष्मण की कृपा से मैं सचमुच बाधा-रहित स्थिति को प्राप्त हुआ।' ६१ इंद्र का आनन्द उस समय नभो-मण्डल में नहीं समा रहा था। दुन्दुभियाँ जोर से गरजने लगीं। ऋषि-समुदाय आनन्दित हो गया। ६२ देवेन्द्र ने लक्ष्मण पर बारबार पुष्प-वृष्टि की। उसका

निष्कलंक क्षयरहित । ६३ इंद्रजित पडिला मेदिनीं । दीनवदन पळे वाहिनी । प्राण जातां तेचि क्षणीं । इंद्रियें जैसीं निस्तेज । ६४ दीप गेलिया प्रभा हारपे । कीं शशी मावळतां चांदणें लोपे । कीं गायन राहतां संपे । स्वर करणें सर्वही । ६५ कीं वृक्ष उन्मळतां क्षितीं । अंडज नीडें सांडूनि पळती । शक्रारि पडतां ते रीतीं । सेनासमुदाय फूटला । ६६ जय पावून संपूर्ण । परतला वीर लक्ष्मण । वारंवार बिभीषण । स्तुति करी सौमित्राची । ६७ मग हनुमंताचे स्कंधावरी । सौमित्र बैसला ते अवसरीं । तनु जर्जर शरप्रहारीं । जाहली असे तेधवां । ६८ सुवेळागिरी लक्षून । चालिले तेव्हां वानरगण । समस्तां सांगे बिभीषण । आल्या पंथें चलावें । ६९ इंद्रजिताचें विशाळ शिर । झेलीत नेत ऋषभ वानर । दृष्टीनें पाहील रघुवीर । म्हणोनि संगें घेतलें । १७० असो इकडे श्रीराम । जो स्कंदतातमनविश्राम । सौमित्राकारणें परम । चिंताक्रान्त

मुख-चन्द्र उज्ज्वलता को प्राप्त हो गया— वह (मानो अब) कलंकहीन तथा क्षय-रहित हो गया । ६३ (जब) इंद्रजित पृथ्वी पर गिर गया, तो सेना दीन-वदन होकर भागने लगी । प्राणों के निकल जाने पर जैसे उसी क्षण इंद्रियाँ निस्तेज हो जाती हैं, वैसे ही (इन्द्रजित के युद्ध में काम आते ही) सेना तेजोहीन हो गयी । ६४ दीपक के बुझते ही प्रभा नष्ट हो जाती है, अथवा चन्द्र के अस्त होते ही चाँदनी लुप्त हो जाती है; उस प्रकार इन्द्रजित की मृत्यु होते ही राक्षस-दल का प्रतापरूपी तेज नष्ट हो गया । अथवा गायन के बन्द हो जाने पर स्वरों की निर्मिति भी समाप्त हो जाती है अथवा वृक्ष के उखड़ते हुए भूमि पर पड़ते ही पक्षी जैसे अपने घोंसलों को छोड़कर भाग जाते हैं, उस प्रकार इन्द्रजित के गिर पड़ते ही, सेना-दल बिखर गया । ६५-६६ वीर लक्ष्मण सम्पूर्ण जय को प्राप्त होकर लौट आया, तो विभीषण बारबार उसकी प्रशंसा करने लगा । ६७ फिर उस समय लक्ष्मण हनुमान के कंधे पर बैठ गया । उसका शरीर तब बाणों के आघातों से जर्जर हो गया था । ६८ तब समस्त वानर-गण सुवेल पर्वत को लक्ष्य कर चलने लगे, तो विभीषण ने कहा— उसी रास्ते से चलें, जिससे आये हो । ६९ ऋषभ वानर इन्द्रजित के विशाल मस्तक को झेलते-झेलते ले जा रहा था । उसने वह साथ में इसलिए लिया था कि रघुवीर राम अपने नेत्रों से देख लें । १७०

अस्तु । इधर (स्कंद के पिता शिवजी के मन के लिए) जो

जाहला । ७१ सुग्रीवाप्रती रघुनंदन । म्हणे निकुंभिलेसी गेला लक्ष्मण । तेथें कैसें वर्तमान । जाहलें असेल कळेना । ७२ इंद्रजिताचें युद्ध कठिण । आम्हांसी नागपाशीं बांधिलें जाण । शरजाळीं सेना संपूर्ण । खिळोनियां पाडिली । ७३ योद्धा इंद्रजित विशेष । बाळदशा सौमित्रास । ऐसें बोलोनि अयोध्या-धीश । अश्रु नयनीं आणिले । ७४ सुग्रीव म्हणे रघुपती । आपण खेद न करावा चित्तीं । इंद्रजितासी वधोनि त्वरितगती । आतां येईल सौमित्र । ७५ ऐसी चिंता करितां अकस्मात । तों वानर आले पुढें धांवत । सांगती आला सुमित्रासुत । इंद्रजिता वधोनियां । ७६ परम आनंदला रघुवीर । सामोरा धांवे मित्रकुमर । तों समीप देखिला सौमित्र । बाळसूर्य जयापरी । ७७ हनुमंताचे स्कंधावरून । खालीं उतरला लक्ष्मण । सुग्रीव आणि बिभीषण । हस्त धरूनि चालत । ७८ हळूहळू चाले लक्ष्मण । शर अंगीं रुतले तीक्ष्ण । दृष्टीं देखोनि रघुनंदन । केलें नमन

विश्राम-स्थान हैं, वे राम इधर लक्ष्मण के लिए परम चिन्ताक्रान्त हो गये थे । ७१ तो श्रीराम ने सुग्रीव से कहा— 'लक्ष्मण निकुंभिला गया है। समझ में नहीं आता कि वहाँ कैसी बात घटित हुई हो । ७२ इन्द्रजित द्वारा किया जानेवाला युद्ध दारुण होता है । जानते हो, उसने हमें नाग-पाश में आबद्ध किया था और सम्पूर्ण सेना को बाण-जाल में कीलकर गिरा दिया था । ७३ इन्द्रजित विशेष (असाधारण) योद्धा है; (उसकी तुलना में) लक्ष्मण की बाल्यावस्था है ।' ऐसा बोलते हुए अयोध्याधीश श्रीराम आँखों में आँसू भर लाये— अर्थात् आँखों में आँसू भर आये । ७४ तब सुग्रीव ने कहा— 'हे रघुपति, आप मन में खेद न करें । इन्द्रजित का वध करके लक्ष्मण अब शीघ्र गति से लौट आएगा ।' ७५ तब (श्रीराम द्वारा) इस प्रकार चिन्ता करते रहने पर अकस्मात वानर दौड़ते हुए सामने आ गये । उन्होंने कहा— 'इंद्रजित का वध करके सुमित्रा-सुत आ गये हैं ।' ७६ (यह सुनते ही) रघुवीर परम आनन्दित हो गये, सुग्रीव (लक्ष्मण की) अगवानी (करने) के लिए दौड़ा, तो उसने लक्ष्मण को बाल-सूर्य जैसा तेजस्वी होता है, वैसा समीप आया हुआ देखा । ७७ तो लक्ष्मण हनुमान के कंधे से नीचे उतर गया । (फिर) सुग्रीव और विभीषण (उसके) हाथों को थामे हुए चल रहे थे । ७८ लक्ष्मण आहिस्ता-आहिस्ता चल रहा था । उसके बदन में तीक्ष्ण शर गड़े थे । उसने आँखों से श्रीराम को देखते ही साष्टांग नमस्कार किया । ७९ तब

साष्टांगीं । ७९ मग उठोनि राजीवनेत्र । प्रीतीनें हृदयीं धरी सौमित्र । वृत्र वधितां सहस्रनेत्र । गुरु जैसा आलिंगी । १८० श्रीराम म्हणे सौमित्रातें । तुवां वधिलें इंद्रजितातें । ब्रह्माण्ड भरिलें पुरुषार्थें । पराक्रम करूनियां । ८१ कोणासी नाटोपे रावणी । तो त्वां वधिला समरांगणीं । देवांसहित वज्रपाणी । आनंदमय जाहला । ८२ ऐसें बोलोनि रघुनाथ । सौमित्रमस्तकीं ठेवी हस्त । तेणें श्रम हारपला समस्त । आनंदभरित लक्ष्मण । ८३ बिभीषण जांबुवंत । समस्तांसी भेटला रघुनाथ । शब्दरत्नें गौरवीत । धन्य पुरुषार्थ तुमचा पैं । ८४ पुढें ठेवून शत्रूचें शिर । ऋषभें केला नमस्कार । मग म्हणे सीतामनोहर । धन्य धन्य ऋषभा तूं । ८५ आरक्त पुष्पें पूजा करून । हें शिर ठेवावें जतन । मागों येईल त्यालागून । द्यावें लागेल शिर हें । ८६ सुषेणासी म्हणे रघुवीर । तूं वैद्य आणि प्रतापशूर । तरी सौमित्रासी करावा उपचार । देह जर्जर बाणीं जाहला । ८७ मग सुषेणें औषधी आणून । दिव्यदेही केला लक्ष्मण । असो

कमल-नयन श्रीराम ने उठकर लक्ष्मण को उस प्रकार प्रेम-पूर्वक हृदय से लगा लिया, जैसे सहस्र-नेत्र का (उसके द्वारा) वृत्रासुर का वध करने पर गुरु बृहस्पति ने आलिंगन किया हो । १८० श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा— 'तुमने इन्द्रजित का वध किया और पराक्रम प्रदर्शित करते हुए अपने पुरुषार्थ से ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर दिया है । ८१ जो रावण-पुत्र किसी के भी द्वारा रोका नहीं जा पाता था, उसका तुमने समरांगण में वध किया । (इससे) देवों सहित वज्रपाणि इंद्र अति हर्ष-विभोर हो गया है ।' ८२ ऐसा बोलते हुए श्रीराम ने लक्ष्मण के मस्तक पर हाथ रखा, तो उसकी समस्त थकावट दूर हो गयी । (इससे) लक्ष्मण (का मन) आनन्द से भर गया । ८३ (तदनन्तर) श्रीराम विभीषण, जाम्बवान— सबसे मिल गये और उन्होंने उनका शब्दरूपी रत्नों से गौरव किया । (वे बोले—)' तुम्हारा पुरुषार्थ धन्य है ।' ८४ ऋषभ ने शत्रु (इंद्रजित) का सिर (श्रीराम के) सामने रखा और (उन्हें) नमस्कार किया । तब (सीता के मन का हरण करनेवाले) श्रीराम ने उससे कहा— ' हे ऋषभ, तुम धन्य हो, धन्य हो । ८५ लाल फूलों से पूजन करके इस सिर की रक्षा करें । जो माँगने आएगा, उसे यह सिर देना पड़ेगा ।' ८६ (तदनन्तर) श्रीराम ने सुषेण से कहा— ' तुम वैद्य हो, प्रताप से युक्त शूर हो । अतः लक्ष्मण का उपचार करो । उसकी देह बाणों से जर्जर हो गयी है ।' ८७ तब

यावरी बिभीषण । वर्तमान सर्व सांगे । ८८ कैसा जाहला संग्राम । वीरद्वयाचा पराक्रम । तें ऐकोनि मेघश्याम । आश्चर्य परम करीतसे । ८९ म्हणे धन्य धन्य इंद्रजित वीर । पुरुषार्थासी नाहीं पार । दीन करून देव समग्र । बंदीं जेणें घातले । १९० याउपरी सुलोचना । शिर मागों येईल राजीवनयना । ते सुरस कथा ऐकतां श्रवणां । सौख्य होईल अत्यंत । ९१ रामविजय ग्रंथ प्रचंड । त्यांत रसभरित युद्धकांड । श्रवणें पुरे सर्व कोड । नलगे चाड आणिकांची । ९२ ब्रह्मानंदा श्रीरामा । जगद्वंद्या पूर्णब्रह्मा । श्रीधरवरदा अनामा । पूर्णकामा अभंगा । ९३ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर । संमत वाल्मीकनाटकाधार । सदा परिसोत भक्त चतुर । एकोनत्रिंशतितमोध्याय गोड हा । १९४

॥ श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

सुषेण ने औषधी लाकर लक्ष्मण को दिव्य-शरीरी कर दिया । अस्तु । इसके पश्चात् विभीषण ने समस्त समाचार कह दिया । ८८ (उसने कहा कि) दोनों वीरों का संग्राम कैसा हो गया, उनका पराक्रम कैसा था । उसे सुनकर मेघश्याम श्रीराम परम आश्चर्य अनुभव करने लगे । ८९ वे बोले— ‘ वीर इन्द्रजित धन्य है, धन्य है । जिसने समस्त देवों को दीन बनाकर बन्दीगृह में डाल दिया, उसके पुरुषार्थ का कोई पार नहीं है । ’ ९० इसके पश्चात् (इन्द्रजित की स्त्री) सुलोचना राजीवनयन श्रीराम से (पति का) सिर माँगने के लिए आएगी । उस सुरस कथा को सुनते हुए कानों को अत्यन्त सुख प्राप्त होगा । १९१

‘ श्रीराम-विजय ’ ग्रन्थ प्रचण्ड है । उसके अन्दर युद्धकाण्ड रसों से भरा हुआ है । उसके श्रवण से समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्य (सुखों) की इच्छा नहीं हो जाती (या चस्का नहीं लगता) । १९२

हे ब्रह्मानन्द, हे श्रीराम, हे जगद्वंद्य, हे पूर्णब्रह्म, हे श्रीधर को वरदान देनेवाले, हे अनाम, हे पूर्णकाम, हे अभंग, स्वस्ति । श्रीराम-विजय नामक यह ग्रंथ सुन्दर है । वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है । उसके इस मधुर उन्तीसवें अध्याय का चतुर भक्त सदा श्रवण करें । १९३-१९४

॥ श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३०

श्रीगणेशाय नमः। जो पद्मिनीवल्लभकुलभूषण। जो पद्मजातजनक पद्मलोचन। विषकंठहृदय दशकंठदलन। सच्चिदानंदतनु जो। १ जो रघुकुलकमलदिवाकर। अजित भ्रांतिविपिनवैश्वानर। जो भक्तहृदयाब्जभ्रमर। लीलावतार धरी जो। २ षड्गुणैश्वर्यसंपन्न। यश श्री कीर्ति विज्ञान। जो औदार्यवैराग्यपरिपूर्ण। सत्य ज्ञान शाश्वत जो। ३ जो कां निर्विकल्प अनंत। हेतुदृष्टान्तविवर्जित। तो सुवेळाचळीं रघुनाथ। राक्षसवधार्थ पातला। ४ जो भवगजविदारक मृगनायक। मोक्षफळाचा परिपाक। तो राम ताटिकान्तक। सुरपाळ जगद्गुरु। ५ गतकथाध्यायीं निरूपण। गुणसिंधूचा बंधू लक्ष्मण। इंद्रजिताचा वध करून। शिर घेऊन पैं गेला। ६ शरीराचें प्राक्तन विचित्र। ऋषभें सुवेळेसी

श्रीगणेशाय नमः। जो (पद्मिनी-वल्लभ-कुल अर्थात्) सूर्य-कुल के आभूषण हैं, जो (पद्म-जात अर्थात्) ब्रह्मा के पिता तथा पद्म-लोचन (कमल-नयन) हैं, जो (विष-कण्ठ) शिवजी के हृदय तथा दशकण्ठ रावण के संहारक हैं, जो शरीरधारी सच्चिदानन्द हैं, जो रघुकुलरूपी कमल के लिए सूर्य हैं, जो अजित हैं, भ्रान्ति रूपी वन को जलानेवाले अग्नि हैं, जो भक्तों के हृदयरूपी कमल के प्रति लुब्ध भ्रमर हैं, जो लीला-अवतार धारण करते हैं, जो छः गुण * रूपी धन-सम्पत्ति से सम्पन्न हैं, अर्थात् जो यश, श्री, कीर्ति तथा विज्ञान से सम्पन्न हैं, जो औदार्य और वैराग्य से युक्त हैं, जो मानो शाश्वत सत्य-रूप और ज्ञान-रूप हैं, जो निर्विकल्प और अनन्त हैं, जो हेतु तथा दृष्टान्त से रहित हैं (अर्थात् स्वार्थभरी वासना-रहित तथा उपमान-रहित, अनुपमेय हैं), वे रघुनाथ श्रीराम राक्षसों का वध करने के लिए सुवेल पर्वत पर आ पहुँचे। १-४ जो संसार (के माया-जाल) रूपी हाथी को विदीर्ण करनेवाले श्रेष्ठ सिंह हैं, जो मोक्षरूपी फल के परिपाक हैं, वे श्रीराम ताड़का राक्षसी के संहारक हैं, देवों के पालक तथा जगत् के गुरु हैं। ५

पिछले अध्याय में (इस कथा का) निरूपण किया कि गुणसमुद्र श्रीराम का वह बन्धु लक्ष्मण इन्द्रजित का वध करके उसका सिर ले गया। ६ उसके शरीर का भाग्य विचित्र था। उसका सिर ऋषभ

---

* टिप्पणी : छः गुण— ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, ख्याति, यशश्री, औदार्य।

नेलें शिर। धड रणीं भुजा सत्वर। लंकेवरी पडियेली। ७ भुजा आपटोनि मागुती उडत। जैसा कंदुक आदळोनि उसळत। तैसा भुजदंड अकस्मात। निकुंभिलेंत पडियेला। ८ सुलोचनेचे. अंगणीं। भुजदंड पडिला जे क्षणीं। तों रावणस्नुषा अंतरसदनीं। सुखरूप बैसली असे। ९ ते दशशतवदनाची कुमरी। कीं लावण्यसागरींची लहरी। ज्येष्ठ स्नुषा निर्धारीं। राघवारीची ती होय। १० ती नगारिशत्रूची राणी। यामिनाचरांची स्वामिणी। तिचें स्वरूपलावण्य देखोनि। सुरांगना होती लज्जित। ११ देवगणगंधर्वराजकुमरी। सेवा करिती अहोरात्रीं। सहस्रनेत्राची अंतुरी। न पवे सरी तियेची। १२ अंगींचा सुवास अद्भुत। धांवे एक कोशपर्यंत। विषकंठरिपूची कान्ता यथार्थ। तुळितां न पुरे इयेसीं। १३ नैषधजाया परम सुंदर। वर्णिती काव्यकर्ते चतुर। परी शेषकन्येसी साचार। उपमा द्यावया पुरेना। १४ अंगींच्या प्रभेनें भूषणें। झळकती

सुवेल पर ले गया, धड़ युद्ध-भूमि में (खड़ा) रहा और हाथ झट से लंका में (जाकर) गिर गये। ७ (वहाँ) उसके हाथ (भूमि पर) गिरकर उछलते रहे। जिस प्रकार गेंद गिरकर उछलता है, उस प्रकार (गिरते-उछलते हुए) उसका एक भुज-दण्ड अकस्मात निकुंभिला में गिर पड़ा। ८ रावण की बहू (तथा इन्द्रजित की स्त्री) सुलोचना के आँगन में भुज-दण्ड जिस क्षण गिर गया, तब वह घर के अन्तर्भाग में सकुशल बैठी हुई थी। ९ वह (सुलोचना) सहस्रमुख शेष की कन्या थी, अथवा वह मानो लावण्य-समुद्र की लहर थी। वह निश्चय ही राघवारि रावण की ज्येष्ठ बहू थी। १० वह इन्द्र के शत्रु अर्थात् इन्द्रजित की रानी और राक्षसों की स्वामिनी थी। उसके रूप-लावण्य को देखकर (सुन्दरता में अपने को हीन अनुभव करते हुए, देवाँगनाएँ लज्जित हो जाती थीं। ११ देवों तथा गंधर्वों की राजकन्याएँ दिन-रात उसकी सेवा किया करती थीं। इन्द्र की स्त्री शची (तक) उसकी बराबरी को नहीं प्राप्त हो जाती थी। १२ उसकी देह की अद्भुत सुगन्ध एक कोस तक दौड़ती अर्थात् फैलती थी। विष-कण्ठ-रिपु (शिवजी के शत्रु) की कान्ता रति (तक), तुलना करने पर सचमुच इसकी समता को नहीं प्राप्त हो जाती थी। १३ (कहते हैं,) निषध-राज नल की स्त्री दमयन्ती परम सुन्दर थी। काव्य के विद्वान रचयिता उसकी सुन्दरता का वर्णन करते हैं। परन्तु शेषकन्या सुलोचना से उपमा देने के लिए वह सचमुच पर्याप्त (योग्य) नहीं है। १४ उसके

अत्यंत दिव्य रत्नें । किन्नरकन्या गायनें । मधुर स्वरें जवळ करिती । १५ एक शृंगार सांवरिती । एक चामरें घेऊनि वारिती । एक उपभोग आणोनि देती । संतोषविती नाना शब्दें ।१६ सुलोचनेचे गृहीं आनंदु । तो अमृतीं पडे विषबिंदु । तैसा तो भुज सुबद्धु । अंगणीं येऊन पडियेला । १७ भुज पडतांचि धरणी । दणाणली तये क्षणीं । दूती कित्येक धांवूनी । पहावया बाहेर आल्या । १८ ते पाचबंद अंगणांत । वीरपाणी पडिला अद्भुत । देखोनि दासी भयभीत । आल्या शंकित सांगावया । १९ म्हणती नवल वर्तलें वो साजणी । महावीराचा तुटोनि पाणी । येऊन पडिलासे अंगणीं । निराळमार्गें अकस्मात । २० एकोनि दासींचें वचन । दचकलें सुलोचनेचें मन । रत्नपादुका त्वरेंकरून । अंध्रियुगुळीं लेइल्या । २१ तडित्प्राय झळके अंबर । अंगणांत आली सत्वर । उतरला तेव्हां मुखचंद्र । विव्हळ नेत्र जाहले । २२ अंग जाहलेंसे

अंगों की कान्ति से दिव्य रत्नों से युक्त उसके आभूषण अत्यधिक जगमगा रहे थे। किन्नर-कन्याएँ मधुर स्वर में गाते हुए उसकी निकटता को प्राप्त होती थीं (उसके निकट बैठकर गा रही थीं)। १५ कोई-कोई उसके शृंगार को सँवार रही थीं, तो कोई-कोई चामर लिये हुए झुला रही थीं। कोई-कोई उपभोग्य वस्तुओं को लाकर दे रही थीं, तो कोई-कोई नाना प्रकार के शब्दों, अर्थात् बातों से उसे सन्तुष्ट कर रही थीं। १६ (इस प्रकार) सुलोचना के घर में आनन्द (निवास कर रहा) था, त्यों ही जैसे अमृत में विष-बिन्दु पड़ जाए, वैसे वह भुज-दण्ड आँगन में आ गिरा। १७ उस भुज-दण्ड के गिर पड़ते ही उस क्षण धरती दनदना उठी, तो अनेकानेक दासियाँ देखने के लिए दौड़ती हुई बाहर आ गयीं। १८ यह देखकर कि पन्ने की पच्चीकारी किये हुए उस आँगन में किसी वीर का अद्भुत भुज गिर गया है, दासियाँ भयभीत हुईं और आशंकित होकर (यह समाचार) कहने के लिए अन्दर आ गयीं। १९ उन्होंने कहा— 'हे सखी, चमत्कार हुआ है। किसी महान वीर का हाथ कटकर आकाश-मार्ग से आते हुए अकस्मात आँगन में गिर गया है।' २० दासियों की यह बात सुनते ही सुलोचना का मन चौंक उठा, तो उसने झट से रत्न (-जटित) पादुकाएँ दोनों पाँवों में पहनीं। २१ उसके वस्त्र विद्युत की भाँति जगमगा रहे थे। वह झट से आँगन में आ गयी; तब उसका मुखचन्द्र (तेज में) उतर गया (निस्तेज हो गया)। उसकी आँखें विह्वल हो

विकळ । पुढें न घालवेचि पाऊल । वदनींचें काढोनि तांबूल । एकीकडे भिरकाविलें । २३ सखियांसी म्हणे सुलोचना । प्राणपति आज गेले रणा । सीतेलागीं अयोध्याराणा । सुवेळाचळीं बैसला । २४ ऐसें बोलतां शेषनंदिनी । भुजेसमीप आली ते क्षणीं । तंव तो शक्रजिताचा पाणी । पतिव्रतेनें ओळखिला । २५ पंचांगुळीं मुद्रिकामंडित । वीरकंकणें दिव्य विराजित । दंडीं कीर्तिमुखें झळकत । चपळेहूनि विशेष पैं । २६ आजि माझें जहाज बुडालें । म्हणोनि वदन हातीं पिटिलें । परम आकान्त ते वेळे । वाटे बुडालें ब्रह्माण्ड । २७ सुमनकळिकेवरी सौदामिनी । पडतां उरी न उरे क्षणीं । तैसी निस्तेज होउनी । भोगींद्रनंदिनी पडियेली । २८ लोभियाचें गेलें धन । कीं जळचरें जीवनावांचून । तैसी पतिवियोगेंकरून । सुलोचना तळमळे । २९ म्हणे विपरीत काळाची गती । मृगजळीं बुडाला अगस्ती ।

उठीं । २२ उसकी देह निस्तेज हो उठी । उससे आगे पाँव नहीं बढ़ाया जा रहा था । उसने मुँह में से बीड़ों को निकालकर एक ओर फेंक दिया । २३ (फिर) सुलोचना ने अपनी सखियों से कहा— ' मेरे प्राणप्रिय पति आज युद्ध भूमि में गये हैं— (उधर) अयोध्या का राजा सीता के लिए सुवेल पर्वत पर बैठा हुआ है । ' २४ ऐसा कहकर वह शेष-नन्दिनी सुलोचना उस भुज-दण्ड के पास आयी । तो उस पतिव्रता ने इन्द्रजित के हाथ को पहचान लिया । २५ वह (हाथ) पाँचों अँगुलियों में अँगूठियों से विभूषित था, वीरोचित दिव्य कंकण शोभायमान थे और दण्ड में कीर्ति-मुख * नामक आभूषण विद्युत से भी अधिक जगमगा रहे थे । २६ ' आज मेरा जलयान डूब गया '— कहते हुए उसने हाथों से मुख (सिर) पीट लिया । उस समय परम शोक हो गया— जान पड़ता था कि ब्रह्माण्ड डूब गया हो । २७ पुष्प-कलिका पर बिजली के गिरने पर उस क्षण कुछ शेष नहीं रह पाता । उसी प्रकार (इस वज्राघात से) निस्तेज होकर भोगीन्द्र शेष की वह कन्या गिर गयी । २८ लोभी मनुष्य के धन के छिन जाने पर वह जैसे छटपटाता हो, अथवा पानी के अभाव में जलचर जैसे तड़पते हों, वैसे ही पति के वियोग के कारण सुलोचना छटपटाने-तड़पने लगी । २९ वह बोली— ' काल की गति विपरीत हो गयी है । (आज मानो, जिसने समुद्र के समस्त जल को पी डाला था, वह) अगस्त्य ऋषि

---

* टिप्पणी : कीर्तिमुख— एक आभूषण; यह राक्षस के मुख के आकार का होता है; उसमें दो सींग जुड़े होते हैं और यह दण्ड में पहना जाता है ।

दीपतेजें रोहिणीपती । आहाळोनि खालीं पडियेला । ३० तम-कूपीं बुडाला तरणी । पाडसें सिंह धरिला वनीं । पिपीलिकेनें मुखीं घालोनी । मेरु कैसा रगडिला । ३१ अळिकेनें गिळिला सुपर्ण । मशकीं ग्रासिला महाअग्न । भूतांनीं काळ धरून । समरांगणीं मारिला । ३२ मग सुलोचनेसी उचलोनि । सखिया बैसविती सांवरूनी । पतीची भुजा हृदयीं धरूनी । आक्रंदत सुलोचना । ३३ मग भुजेप्रति बोले वचन । कैसें प्राणपतीस आलें मरण । तरी तें सर्व वर्तमान । लिहून मज विदित करीं । ३४ पतिचरणीं माझें मन । जरी असेल रात्रंदिन । तरीच पत्रीं लिहून । वर्तमान दृश्य करीं । ३५ हाटकरसपात्र पुढें ठेविलें । भूर्जपत्र उकलोनि पसरिलें । लेखनी हातीं देतां शीघ्रकाळें । भुजेनें लिहिलें ते समयीं । ३६ नवल अद्भुत वर्तलें । सर्व वर्तमान पत्रीं लिहिलें । सुलोचनेनें पत्र घेतलें । मस्तकीं वंदिलें ते वेळे । ३७ नयनीं लोटले अश्रुपात । शेषकन्या पत्र वाचीत । भोंवत्या ललना समस्त । ऐकती निवान्त ते

मृगजल में डूब गया है; दीये के तेज से झुलसकर रोहिणी-पति चन्द्र नीचे गिर गया है; अँधेरे से भरे कुएँ में सूर्य डूब गया है, (मृग-) शावक ने वन में सिंह को पकड़ लिया है । चींटी ने मुँह में डालकर मेरु को कैसे चबा लिया ? ३०-३१ इल्ली ने गरुड़ को निगल डाला है; मच्छड़ ने महान अग्नि को ग्रस्त कर दिया है; भूतों ने काल को युद्ध-भूमि में पकड़कर मार डाला है । ' ३२ फिर सुलोचना को उठाकर सखियों ने सम्हालते हुए बैठा दिया । तब वह पति की भुजा को हृदय से लगाकर आक्रन्दन करने लगी । ३३ तब वह उस भुजा के प्रति ये वचन बोली— ' यह सब समाचार लिखकर मुझे विदित कराओ कि मेरे प्राण-पति को मृत्यु कैसे आ गयी । ३४ यदि मेरा मन रात-दिन पति के चरणों में (लगा हुआ) हो, तो ही पत्र में लिखकर वह समाचार दृश्यमान कराओ (दिखा दो) । ' ३५ (यह कहते हुए) उसने सुनहरी स्याही का पात्र सामने रख दिया, भोजपत्र खोलकर फैला दिया । लेखनी हाथ में (पकड़ा) देते ही उस हाथ ने उस समय झट से लिख दिया । ३६ अद्भुत आश्चर्य घटित हुआ कि (उस हाथ ने) समस्त समाचार पत्र में लिख दिया । सुलोचना ने वह पत्र (उठा) लिया और उस समय मस्तक पर धरते हुए उसका वन्दन किया । ३७ आँखों में अश्रु-धाराएँ उमड़ आयीं । (जब) शेष-कन्या सुलोचना पत्र पढ़ने लगी, तो

काळीं । ३८ ऐकें दशशतमुखकन्यके । सुकुमारे चंपककलिके । मम मानससरोवरमरालिके । प्राणवल्लभे सुलोचने । ३९ जयआशा अंतरीं धरून । गूढस्थळीं करितां हवन । अग्नींतून दिव्य स्यंदन । निघाला पूर्ण राजसे । ४० फळप्राप्तीचा समय लक्षून । शत्रू आले तेथें धांवून । चंड शिळा वरी घालोन । आराध्यदैवत क्षोभविलें । ४१ पर्वत चढला संपूर्ण । शिखरींहून दिधला ढकलून । कीं नदी अवघी उतरून । तीरासमीप बुडाला । ४२ प्रकटतां वैराग्यज्ञान । वरी विषयघाला पडे येऊन । कीं प्राप्त होतां निधान । विवसी येऊनि वरि पडे । ४३ कष्टें करितां वेदाध्ययन । वरी धाड घाली अभिमान । सूर्य सर्व अंबर क्रमून । राहुमुखीं सांपडे जेवीं । ४४ वल्लभे तैसेंच येथें जाहलें । शत्रूंनीं शेवटीं वैर साधिलें । प्रारब्ध-बळ उणें पडलें । होणार न टळे कल्पांतीं । ४५ पुढें दारुण संग्राम मांडिला । परी जय आम्हांस पारखा जाहला । जाऊनि

उस समय समस्त स्त्रियाँ चारों ओर (खड़ी रहकर) चुपचाप सुनने लगीं । ३८ (पत्र में लिखा था—) 'हे सहस्रमुख (शेष) की कन्या, हे सुकुमार चम्पक-कलिका, मेरे मनरूपी मानसरोवर में निवास करनेवाली राजहंसी, हे प्राणवल्लभा सुलोचना, सुनो । ३९ हे राजसी, जय (-प्राप्ति) की आशा मन में रखते हुए गुप्त स्थान पर हवन करते समय अग्नि में से एक सम्पूर्ण दिव्य रथ निकल आया । ४० (परन्तु) फल-प्राप्ति का समय देखकर शत्रु वहाँ दौड़ते हुए आ गये और उन्होंने प्रचण्ड शिलाओं को (हवन-कुण्ड के) ऊपर फेंककर (मेरे) आराध्य देवता को क्षुब्ध कर दिया । ४१ कोई व्यक्ति सम्पूर्ण पर्वत पर चढ़ गया हो, परन्तु किसी ने उसे शिखर पर से (नीचे) धकेल दिया हो; अथवा कोई व्यक्ति सम्पूर्ण नदी को पार करके तीर के निकट (पहुँचते ही) डूब गया हो, अथवा किसी (साधक) के मन में वैराग्य और ज्ञान के प्रकट होते ही विषय वासनाओं के उत्पन्न होते हुए उनका उस पर छापा पड़ जाए, अथवा किसी को धन-भण्डार के प्राप्त हो जाते ही, विघ्न की अधिष्ठात्री देवी आकर उसपर उपस्थित हो (बैठ) जाए; अथवा कष्ट-पूर्वक वेदाध्ययन करने पर उस (अध्येता) पर अभिमान डाका डाले, अथवा समस्त आकाश को तय करने पर सूर्य जैसे राहु के मुख में पड़ गया हो, वैसे ही, हे प्राण-वल्लभे, यहाँ हो गया है । अन्त में शत्रुओं ने बदला लिया । मेरे भाग्य का बल कम पड़ गया । होनी कल्पान्त (तक) में नहीं टलती । ४२-४५ मैंने आगे

सौमित्रासी मिळाला । शत्रूचा वाढला पराक्रम । ४६ सौमित्र परम निधडा वीर । धनुर्विद्या त्याची अपार । देखोनि उचित दिधलें शिर । राम मित्र जोडिला । ४७ देहआशा जीवीं धरून । भयें शरण गेला बिभीषण । म्यां देहत्रय निरसून । विदेहजामात मित्र केला । ४८ सौमित्र तपस्वी पूर्ण पवित्र । बहुत दिवस निराहार । उतरूनियां सिंधु समग्र । मागावया शिर पातला । ४९ मग मी कृपणता टाकून । निजशिराचें केलें दान । तेणें रामचरणीं नेऊन । शिर माझें समर्पिलें । ५० शरीर उभें आहे रणीं । शिर पाहूं गेलें चापपाणी । तुज मूळ धाडिला पाणी । वेगेंकरून येई कां । ५१ मायानदी उल्लंघूनि दुर्घट । पाहें पैलतीरीं तुझी वाट । प्राणवल्लभे येऊनि भेट । सत्वर आतां मजलागीं । ५२ दुःखरूप परम संसार । रामचरणीं सुख अपार ।

दारुण संग्राम आरम्भ किया था, फिर भी हमारे लिए विजय परायी (शत्रु) हो गयी और जाकर लक्ष्मण से मिल गयी । (अतः) शत्रु का पराक्रम बढ़ गया । ४६ लक्ष्मण तो परम साहसी वीर है । उसकी धनुर्विद्या अपार है । उचित देखकर (जानकर) मैंने अपना सिर (उसे) प्रदान किया और राम को मित्र के रूप में प्राप्त किया । ४७ देह सम्बन्धी आशा मन में रखते हुए विभीषण तो भय के कारण (श्रीराम की) शरण में गया, (परन्तु) मैंने (स्थूल, सूक्ष्म या लिंग और कारण, तीनों) (प्रकार की) देहों * का निराकरण करते हुए श्रीराम को मित्र बना लिया है । ४८ लक्ष्मण तपस्वी और पूर्णतः पवित्र है, वह बहुत दिन निराहार रहा और समग्र सागर को पार करके सिर माँगने के लिए आ पहुँचा । ४९ तब मैंने कृपणता का त्याग करके अपना मस्तक उसे दान में दिया, तो उसने मेरा मस्तक ले जाकर श्रीराम के चरणों में समर्पित किया है । ५० मेरा शरीर रण में खड़ा है, मस्तक चापपाणि श्रीराम को देखने, अर्थात् उनके दर्शन करने गया है; तुम्हारे लिए निमन्त्रण के रूप में हाथ को भेज दिया है, तो वेगपूर्वक आओ । ५१ (संसार रूपी इस) दुर्लंघ्य माया-नदी को लाँघकर मैं तुम्हारी उस पार प्रतीक्षा कर रहा हूँ । (अतः) हे प्राण-वल्लभा, अब आकर झट से मुझसे मिलो । ५२ यह संसार परम

* टिप्पणी : देहत्रय— साधना के क्षेत्र में देह के तीन भेद माने जाते हैं— 'पंचमहाभूतात्मक' अर्थात् भौतिक दृश्यमान अस्तित्व धारण करनेवाली 'स्थूल' देह; २ मन, बुद्धि, पंचज्ञानेन्द्रियों, पंचकर्मेन्द्रियों तथा पंचप्राणों से बनी 'सूक्ष्म' या 'लिंग' देह; और ३ अविद्यात्मक 'कारण' देह । मुक्ति प्राप्ति के लिए इन तीनों का निराकरण होना आवश्यक है ।

हें जाणोनि धाडिला कर। येईं सत्वर प्राणप्रिये। ५३
असो ते धराधरकुमरी। पत्र वाचूनि ते अवसरीं।
शरीर टाकूनि धरित्रीवरी। शोक करी अपार। ५४
आजि बळाचा समुद्र आटला। कीं धैर्याचा मेरु खचला।
प्रतापवृक्ष उन्मळला। समरभूमीसीं अकस्मात। ५५ इंद्रजित-
सूर्याच्या किरणें। मावळती शत्रुतारागणें। तो आजि
सौमित्रराहूनें। खग्रास केला समूळीं। ५६ रणसरोवरीं शत्रु-
कमळें। तूं वारणें छेदिलीं निज बळें। सौमित्रसिंहें कुंजरा बळें।
विदारून नेलें शिरमुक्त। ५७ ऐरावतीसमवेत पाकशासन।
समरीं पाडिला उलथोन। तो आजि मानव लक्ष्मण। तेणें रणीं
मारिलासे। ५८ माझें सौभाग्यभांडार। त्यावरी सौमित्र
पडिला तस्कर। माझिया भाग्याचा समुद्र। सौमित्र अगस्तीनें
प्राशिला। ५९ इंद्रजित माझा रोहिणीवर। सौमित्रप्रतापराहु
थोर। कलांसहित न दिसे चंद्र। पुन्हां मागुता सहसाही। ६०

दुःखमय है, तो राम के चरणों में अपार सुख है। मैंने यह जानकर (तुम्हें बुलाने के लिए) हाथ भेजा है। हे प्राणप्रिये, झट से आ जाना।' ५३

अस्तु। वह शेष-कन्या सुलोचना उस समय पत्र को पढ़ते ही शरीर को धरती पर लुढ़काकर अपार शोक करने लगी। ५४ (वह बोली--) 'आज (मानो) बल का समुद्र सूख गया, अथवा धैर्य का मेरु ढह गया, युद्धभूमि में प्रताप का वृक्ष सहसा उखड़ गया। ५५ जिस इंद्रजित रूपी सूर्य की किरण के सामने शत्रु के तारा-गण मुंद जाते हैं, उसे आज लक्ष्मण-रूपी राहु ने मूल-सहित अर्थात् पूरा-पूरा निगल डाला। ५६ (हे इन्द्रजित) युद्ध रूपी सरोवर में तुम हाथी शत्रु (के मस्तक) रूपी कमलों को अपने बल से छेद डालते थे, (परन्तु आज) लक्ष्मण-रूपी सिंह हाथी को विदीर्ण करते हुए बलपूर्वक मस्तक रूपी मोती को ले गया है। ५७ जिसने ऐरावत-सहित इन्द्र को युद्ध में उलटकर गिरा दिया था, उसे आज मानव लक्ष्मण ने रण-भूमि में मार डाला है। ५८ मेरे उस सौभाग्य-भण्डार में लक्ष्मण (के रूप में) चोर आ धमका। मेरे भाग्यरूपी समुद्र को लक्ष्मण रूपी अगस्त्य ने पी डाला। ५९ इन्द्रजित मेरा चन्द्र था; लक्ष्मण का प्रतापरूपी राहु बड़ा (सिद्ध हो गया) है। उसके द्वारा ग्रस लिये जाने से कलाओं सहित वह चन्द्र फिर से पुनः कभी भी नहीं दिखायी देगा।' ६० इन्द्रजित की स्त्री (यों) नाना प्रकार से विलाप कर रही

वृत्रारिशत्रूची अंतुरी । नाना प्रकारें विलाप करी । पशु पक्षी ते अवसरीं । रुदती करुणा ऐकोनियां । ६१ सखिया म्हणती सुलोचने । आतां किमर्थ शोक करणें । आपुलें परत्रसाधन देखणें । संसारमाया त्यजोनियां । ६२ जें जें दिसे तें तें नाशिवंत । मुळीं मिथ्या अहिकुंडलवत । पदीं नेपुरें बांधोनि नाचत । मीन भूमीसी मिथ्या पैं । ६३ उदिमा गेला वंध्यासुत । रात्रीं मृगजळीं मत्स्य धरीत । गंधर्वनगर वाटत । मिथ्या समस्त तैसें हें । ६४ असो नगारिशत्रूची गृहिणी । प्रवेशोनि आत्मसदनीं । नाना संपत्ति देखोनी । मनीं विटे तत्काळ । ६५ परापवादें विटती सज्जन । कीं चिळस ये देखतां वमन । कीं सुंदर ललना देखोन । विटे जैसा विरक्त । ६६ तैसी नाना संपदा देखतां । विटली शक्रारीची कान्ता । शुकपिकादि द्विजां समस्तां । मुक्त केलें स्वहस्तें । ६७ सदनासी नमन करूनी । शिबिकेंत भ्रतारहस्त घालोनी । चपळ अश्विनीवरी बैसोनी । लंकेसी

थी । उस समय उसके करुण विलाप को सुनकर पशु-पक्षी (तक) रो रहे थे । ६१ (तब) सखियों ने कहा— ' हे सुलोचना, अब शोक किसलिए करें ! संसार सम्बन्धी माया का त्याग करके अपने परलोक की प्राप्ति को देखें । ६२ जो-जो दिखायी देता है, वह नाशवान है । वह मूलतः सर्प के कान में स्थित कुण्डल की भाँति मिथ्या है । (सर्प के कान नहीं होते, वैसे ही यह संसार दिखायी देने पर भी भ्रम मात्र है।) यह वैसे मिथ्या आभास है, जैसे मछली पाँवों में पायल बाँधकर भूमि पर नाचती हो, वंध्या (बाँझ) का पुत्र उद्योग करने गया हो, कोई रात में मृग-जल में मछलियाँ पकड़ रहा हो, (आकाश में दिखायी देनेवाला) गन्धर्वों का नगर सच्चा जान पड़ता है । परन्तु वह समस्त जैसे भ्रम-पूर्ण होता है, वैसे ही यह समस्त मिथ्या है । ६३-६४

अस्तु । (तदनन्तर) इन्द्रजित की पत्नी सुलोचना अपने सदन में प्रवेश करके नाना प्रकार की सम्पत्ति को देखते हुए मन में संसार के प्रति तत्काल ऊब उठी । ६५ (जिस प्रकार) सज्जन दूसरों के मिथ्या अपवादों से ऊब जाते हैं, अथवा वमन देखने से घिन आती है, अथवा भोगविलास से विरक्त व्यक्ति सुन्दर ललना को देखकर उकता जाता है, उस प्रकार (अपने घर में) नाना प्रकार की सम्पदा को देखकर इन्द्रजित की स्त्री ऊब गयी । (फिर) उसने तोते, कोकिल आदि समस्त पक्षियों को अपने हाथ से मुक्त कर दिया । ६६-६७ (तदनन्तर) तब अपने घर को

तेव्हां चालिली । ६८ तों पुढें दूत येऊन । सांगती सर्व वर्तमान । मग लघु कपाटें उघडून । सुलोचना प्रवेशली । ६९ अस्ता गेला वासरमणी । प्रवर्तली घोर रजनी । रचनीचर ते क्षणीं । नगरदुर्गींचे गजबजले । ७० सभेस बैसला लंकानाथ । तों स्नुषा देखे अकस्मात । गजबजला मयजानाथ । चिन्ह विपरीत देखोनियां । ७१ सुलोचना सद्गद होउनी । मस्तक ठेवी श्वशुरचरणीं । रावण म्हणे वो साजणी । माये किमर्थ आलीस । ७२ तों भुजेसहित पत्र । श्वशुरापुढें ठेविलें सत्वर । म्हणे स्वर्गा गेले भ्रतार । त्यांसमागमें जाईन मी । ७३ ऐसें ऐकतांचि रावण । घेत वक्षःस्थळ बडवून । खालें पडे सिंहासनावरून । महाद्रुम उन्मळे जेवीं । ७४ मृत्तिका घेऊनि लंकानाथ । दाही मुखीं तेव्हां घालीत । वर्तला एकचि आकान्त । नाहीं अंत महाशब्दा । ७५ गजर ऐकोनि तये वेळीं । मयकन्या तेथें पातली । वार्ता पुत्राची ऐकिली । मूर्च्छित पडली धरणीये । ७६ ऐशीं सहस्र राजअंगना । आल्या महामंडपस्थाना । शोकार्णवीं

नमस्कार करके और शिविका में पति का हाथ रखकर वह चपल घोड़ी पर बैठकर लंका की ओर चल दी । ६८ (तब) दूतों ने आगे आकर रावण से समस्त समाचार कह दिया । फिर छोटे द्वार खोलकर सुलोचना (अन्दर) प्रविष्ट हो गयी । ६९ सूर्य अस्त को प्राप्त हो गया और भीषण रात आरम्भ हो गयी । उस क्षण नगर और दुर्ग के राक्षस भयभीत हो उठे । ७० लंकापति रावण (राज-) सभा में बैठा हुआ था; तब उसने यकायक (आयी हुई) बहू को देखा, तो विपरीत लक्षण देखते ही वह भयभीत हो उठा । ७१ (तदनन्तर) अति गद्गद होते हुए सुलोचना ने अपने ससुर के चरणों में मस्तक रखा, तो रावण बोला— 'हे भद्र स्त्री, हे मैया, किसलिए आयी हो ? ७२ तब उसने भुज-दण्ड-सहित वह पत्र ससुर के सम्मुख रख दिया और कहा— 'पति स्वर्ग सिधार गये हैं— उनके साथ मैं जाऊँगी ।' ७३ ऐसा सुनते ही रावण छाती पीटने लगा, और सिंहासन पर से वैसे नीचे गिर पड़ा, जैसे कोई बड़ा वृक्ष उखड़ जाता हो । ७४ तब मिट्टी लेकर रावण ने अपने दसों मुखों में डाल दी । अपूर्व शोक आरम्भ हुआ । (रोने-चिल्लाने की) बड़ी ध्वनि का कोई अन्त नहीं था । ७५ उस समय कोलाहल सुनकर मयकन्या मन्दोदरी वहाँ आ पहुँची । उसने (जब) पुत्र सम्बन्धी समाचार सुना, तो मूर्च्छित हो धरती पर गिर पड़ी । ७६ अस्सी सहस्र राजांगनाएँ महामण्डप-स्थान में

पडली मयकन्या । सर्वही तियेसी सांवरिती । ७७ मंदोदरी म्हणे स्नेहाळा । मेघनादा माझिया बाळा । मज न पुसतां रणमंडळा । सखया कैसा गेलासी । ७८ त्रिभुवन शोधितां समग्र । न देखों तुजऐसा धनुर्धर । बंदीं घातले समस्त सुरवर । शत्रू समग्र खिळिले शरीं । ७९ पूर्वीं मी व्रत तप आचरलें । पूर्ण न होतां मध्यें सांडिलें । म्हणूनि तुजऐसें निधान गेलें । आड टाकलें पूर्वकर्म । ८० कीं म्यां केला पंक्तिभेद । संतांस बोलिल्यें दोषशब्द । कीं शिव आणि मुकुंद । वेगळे दोघे भाविले । ८१ हरिकीर्तनरंग मोडिला । क्षुधार्थी पात्रींचा उठविला । कीं परद्रव्याचा अभिलाष केला । किंवा घडला गुरुद्रोह । ८२ कीं परलाभाची केली हानी । कीं दोष ठेविला गंगेलागूनी । कीं कुरंगिणी पाडसा वनीं । बिघड पूर्वीं म्यां केला । ८३ कीं भिक्षा न घालितां साचार । द्वारींचा दवडिला यतीश्वर । म्हणोनि इंद्रजिताऐसा पुत्र । गेला निश्चित त्या दोषें । ८४ असो काद्रवेयकुलभूषणकुमारी ।

आ गयीं । मन्दोदरी शोक-सागर में गिर गयी थी, उसे वे सभी सम्हालने लगीं । ७७ (तदनन्तर) मन्दोदरी बोली— 'हे स्नेहमय, रे मेरे बच्चे मेघनाद, मुझसे न पूछते (कहते) हुए तू रण-भूमि में कैसे गया । ७८ त्रिभुवन में खोज करने पर भी तुझ जैसा कोई धनुर्धारी हमने नहीं देखा । तूने समस्त देवों को बन्दी-गृह में डाल दिया और समग्र शत्रुओं को बाणों से कील डाला । ७९ पूर्वकाल में मैंने व्रत और तप का आचरण किया था, परन्तु उसके पूर्ण न होते, (क्या मैंने) बीच में छोड़ दिया था । इसलिए (क्या) तुझ जैसा निधान छिन गया है । मेरा पूर्वकर्म बीच में खड़ा हो गया । ८० अथवा मैंने पंक्ति-भेद किया हो, या सन्तों के प्रति दोषमय शब्द कहे हों । अथवा शिवजी और विष्णु दोनों को अलग माना हो । ८१ अथवा मैंने हरि-कीर्तन के रंग में भंग कर दिया हो, अथवा भूखे को भोजन करते हुए थाली से उठा लिया हो, अथवा परधन की अभिलाषा की हो, अथवा (मेरे द्वारा) गुरु-द्रोह हुआ हो, अथवा मैंने दूसरे के होनेवाले लाभ में हानि पहुँचायी हो, अथवा गंगा को दोष लगाया हो, अथवा पूर्वकाल में मैंने हिरनी तथा शावक को (एक-दूसरे से) अलग कर दिया हो, अथवा द्वार पर आये हुए महान यति को भिक्षा न देते हुए सचमुच लौटा दिया हो, इसलिए निश्चय ही उस दोष के कारण इंद्रजित जैसा पुत्र (छिन) गया है । ८२-८४ अस्तु । काद्रवेय-कुल-भूषण की उस

दशकंठजाया तिसी हृदयीं धरी। दोघी शोक करिती तेणें धरित्री। कंपित झाली तेधवां। ८५ मग शेषकन्या बोले वचन। मज द्यावें आजि शिर आणून। वाट पाहातां पतीचे नयन। शिणले जाईन सांगातीं। ८६ ऐसें बोलतां सुलोचना। परम क्रोध चढला दशवदना। घाव घातला निशाणा। म्हणे सत्वर सेना सिद्ध करा। ८७ आजि संग्राम करीन निर्वाण। रामसौमित्रांचीं शिरें आणीन। अथवा पुत्रपंथ लक्षून। मी जाईन आतांचि। ८८ दशमुख कोपला देखोनी। मयजा सांगे सुनेच्या कर्णीं। म्हणे तूंचि तेथें जाउनी। शिर मागून घेईं कां। ८९ मंगळजननीकुमरीवर। तयापासीं तूं मागें शिर। तो भक्तवत्सल परम उदार। दयासिंधु दीनबंधु। ९० तो या चराचराचें जीवन। जनकजा वेगळी करून। सकळ स्त्रिया मातेसमान। एकबाणी एकवचनी। ९१ दुःखामाजी हें सुख थोर। दृष्टीं पाहें वैदेहीवर। इतुकेन तुझा सार्थक संसार। इह परत्र सर्वही। ९२ पुण्यपरायण श्रीरामभक्त। सुग्रीव जांबुवंत हनुमंत। न्यायसिंधु बिभीषण

कन्या को मन्दोदरी ने हृदय से लगा लिया और वे दोनों शोक करने लगीं। उससे उस समय धरती काँप उठी। ८५ फिर सुलोचना ने यह बात कही—'मुझे आज सिर लाकर देना। मेरे पति के नयन मेरी बाट जोहते हुए थक गये होंगे। मैं उनके साथ जाऊँगी।' ८६ सुलोचना के ऐसा बोलने पर रावण को बड़ा क्रोध आ गया, तो उसने नगाड़े पर चोट की और कहा—'झट से सेना को सज्ज करो। ८७ मैं आज निर्वाण युद्ध करूँगा और राम-लक्ष्मण के मस्तक (काटकर) लाऊँगा, अथवा पुत्र के मार्ग को लक्ष्य करके अभी चला जाऊँगा।' ८८ दशमुख को क्रुद्ध हुए देखकर मन्दोदरी बहू के कान में कहने लगी। वह बोली—'तू ही वहाँ जाकर सिर क्यों न माँग लेती? ८९ सीता-पति श्रीराम भक्त-वत्सल हैं, परम उदार हैं, वे दया के सागर और दीनों के बन्धु (सहायक) हैं। उनसे तू मस्तक माँग लेना। ९० वे इस चराचर (सृष्टि) के जीवन हैं। जनक-कन्या को छोड़कर समस्त स्त्रियाँ उनके लिए माता के समान हैं। वे एकबाणी तथा एकवचनी हैं। ९१ इस दुःख में यह एक बड़ा सुख है कि वैदेही-पति श्रीराम अपनी आँखों से देख सकते हैं। इतने से ही इहलोक तथा परलोक सभी में तेरी घर-गृहस्थी सार्थक है। ९२ सुग्रीव, जाम्बवान और हनुमान पुण्य-परायण श्रीराम-भक्त हैं।

तेथ। पाठिराखे सर्वस्वें। ९३ ऐसें बोलतां मयकन्या। आलें सुलोचनेचिया मना। मग श्वशुरासीं मागे आज्ञा। सुवेळाचळीं जावया। ९४ मग दशद्वयनेत्र बोले। तुज जरी त्यांहीं ठेवून घेतलें। कैसें करावें तये वेळे। सांग वहिलें आम्हांतें। ९५ उरग बैसला धुसधुसित। तया मुखीं केवीं घालिजे हात। यावरी शेषकन्या बोलत। दशकंठासी तें ऐका। ९६ परसतीचा अभिलाष समूळ। करी ऐसा कोण चांडाळ। त्याचा वंश भस्म होईल। विपरीत कर्म आचरतां। ९७ पतिव्रतेचा अभिलाष धरून। कोण पावला जय कल्याण। रावण बोले अधोवदन। तरी अवश्य जाइंजे। ९८ तुजसीं विपरीत करितां जाण। शत्रू अवघे भस्म करीन। शेषतनया खरें म्हणून। तत्काळ तेव्हां निघाली। ९९ बृहस्पतीऐसे विचक्षण। घेतले शिष्ट आणि बंदीजन। सहस्रार्ध दासी घेऊन। अश्विनीवरी आरूढली। १०० संसारमाया टाकून। संत स्वरूपीं होती लीन। तैसी लंका उपेक्षून। चालिली शरण रामचंद्रा। १ परम वेगें ते वेळीं। आली श्रीरामसभेज-

---

वहाँ न्याय-सागर विभीषण है— ये सब पूर्णतः सहायक-समर्थक हैं।' ९३ मन्दोदरी के ऐसा बोलने पर सुलोचना के मन को वह बात जँच गयी। फिर उसने ससुर से सुवेलाचल जाने की आज्ञा माँगी। ९४ तब रावण बोला— 'हमें पहले यह बताओ, यदि वे तुझे (वहाँ) रख लें, तो उस समय (हम) क्या करें। ९५ साँप फुफकारता हुआ बैठा हो, तो उसके मुँह में हाथ कैसे डालें?' (श्रीधर कवि कहते हैं—) इसपर शेष-कन्या ने रावण से जो कहा, वह सुनिए। ९६ 'पर-स्त्री की जो समूल अभिलाषा करता हो, ऐसा कौन चण्डाल है? ऐसे विपरीत कर्म का आचरण करने पर उसका वंश भस्म हो जाएगा। ९७ पतिव्रता स्त्री की अभिलाषा रखकर कौन जय और कल्याण को प्राप्त हो गया है?' इसपर अधोमुख होकर रावण बोला— 'तब तो अवश्य जाना। ९८ समझ ले कि तेरे साथ विपरीत बात करने पर मैं समस्त शत्रुओं को भस्म कर डालूँगा।' (तब) 'सच है' कहकर शेषकन्या तत्काल चल दी। ९९ उसने (अपने साथ) बृहस्पति-से पूज्य विद्वान और बन्दीजन लिये और अर्ध सहस्र दासियों को (साथ में) लिये हुए वह (स्वयं) घोड़ी पर आरूढ़ हो गयी। १०० जिस प्रकार संसार सम्बन्धी माया को छोड़कर सन्त (भगवत्-) स्वरूप में लीन हो जाते हैं, उस प्रकार लंका की उपेक्षा करके

वळी । कृपाब्धीस भेटों आली । पुण्यगंगा सुलोचना । २ कीं संतांचिया गृहाप्रती । विश्रान्तीस येई शान्ती । तैसी शेषकन्या झाली येती । सीतापति लक्षूनियां । ३ कनकाद्रीभोंवते तरुवर। तैसे राघवा वेष्टीत वानर । कोटिकंदर्पलावण्यसुंदर । अवनिजावर देखिला । ४ भोंवते कपी यंत्राकार । उभे असती जोडूनि कर । मध्यें रघुनाथपीठ पवित्र । विराजमान घवघवित । ५ अवनीखालीं उतरूनि जाणा । मनीं आठवी कैलासराणा । हंसगती चाले सुलोचना । शेषकन्या चतुर जे । ६ एक धांवोनि वानर येती । हर्षे श्रीरामासी सांगती । रावणें पाठविली सीता सती । भयभीत होऊनियां । ७ मग बोले चापपाणी । रावण पडिला नाहीं जों रणीं । तोंवरी जनकनंदिनी । दृष्टीं न पडे तुमच्या पैं । ८ शेषकुमरी जवळी देखोन । बिभीषणाकडे पाहे रघुनंदन । तों तेणें आंसुवें भरिले नयन । सद्गद कंठ जाहला । ९ म्हणे जगद्वंद्या राजीवनेत्रा । ही शक्रजितललना परम पवित्रा । इचें नाम घेतां विषकंठमित्रा ।

वह रामचन्द्र की शरण में जाने के हेतु चल दी । १०१ परम वेग से वह उस समय श्रीराम की सभा के पास आ गयी । मानो सुलोचना रूपी पवित्र गंगा (श्रीराम रूपी) कृपा-सागर में मिलने के लिए आ गयी । २ अथवा जिस प्रकार सन्तों के घर शान्ति विश्राम के लिए आ जाती है, उस प्रकार सुलोचना श्रीराम को लक्ष्य करके आ गयी । ३ जिस प्रकार स्वर्ण पर्वत के चारों ओर वृक्ष होते हैं, उस प्रकार श्रीराम को घेरे हुए वानर थे । (वहाँ) सुलोचना ने करोड़ों कामदेवों के समान लावण्य-सुन्दर सीतापति श्रीराम को देखा । ४ कपि हाथ जोड़े चारों ओर यंत्राकार-यंत्रवत् खड़े थे । उनके बीच में श्रीराम का पवित्र आसन शोभायमान था । ५ समझिए कि नीचे पृथ्वी पर उतरकर जो शेष की चतुर कन्या थी, उस सुलोचना ने मन में कैलास के राजा शिवजी का स्मरण किया और वह हंसगति से चलने लगी । ६ तब कोई-कोई वानर दौड़ते हुए आये और श्रीराम से सहर्ष बोले— 'भयभीत होकर रावण ने सती सीता को भेज दिया है ।' ७ तब चापपाणि श्रीराम बोले— 'जब तक रावण युद्ध में नहीं पड़ जाता (काम आता), तब तक जनक-नन्दिनी तुम्हें दृष्टिगोचर नहीं होगी ।' ८ (फिर) रघुनन्दन शेषकन्या को पास (आयी हुई) देखकर विभीषण की ओर देखने लगे, तो उसने आँसुओं से नयन भर लिये । उसका कण्ठ गद्गद हो उठा । ९ फिर वह बोला— 'हे जगद्वंद्य, हे

सर्व दोष हरतील । ११० कर्मगती परम गहन । जिचे अंगुष्ठीं न पडे सूर्यकिरण । शेषकन्या सुकुमार पूर्ण । आली धांवून शिरालागीं । ११ तों सुलोचनेनें जवळ येऊन । विलोकून श्रीरामध्यान । जयजयकारें लोटांगण । राघवचरणीं घातलें । १२ श्रीरामचरणकमळावरी । शेषकन्या जाहली भ्रमरी । ज्याचे चरणरजें निर्धारीं । पद्मजाततनया उद्धरली । १३ दरिद्रियास सांपडे धन । कीं जन्मान्धासी आले नयन । कीं जलद ओळतां देखोन । मयूर जैसा आनंदे । १४ कीं पूरीं वाहोन जातसे । त्यास प्राणसखा लावी कांसे । कीं योगी पावे वृत्तिदशे । निजमन जिंकोनियां । १५ तैसा देखोन श्रीरामचंद्र । उल्हासे सुलोचनाचित्तचकोर । कीं रघुनाथ होय दिनकर । कमळिणी ते सुलोचना । १६ संसारतापें तापोनी । दृढ जडली श्रीरामचरणीं । तेथोनि उठावयासी मनीं । आळस येतसे सुलोचने । १७ आतां हें सुख सांडोनी । पुढती काय

राजीव-नेत्र, यह इन्द्रजित की परम पवित्र स्त्री है। हे शिवजी के मित्र, इसका नाम लेने से सब दोष नष्ट हो जाएँगे। ११० कर्म की गति परम गहन होती है। जिसके अँगूठे पर सूर्य की किरण (तक) नहीं पड़ती थी (अर्थात् जो कभी घर के बाहर नहीं आती थी), वह पूर्णतः सुकोमल शेष-कन्या (पति के) मस्तक (को प्राप्त करने) के लिए (घर के बाहर निकलकर) दौड़ती हुई आ गयी है।' ११ तब निकट आते हुए सुलोचना ने श्रीराम के रूप को ध्यान से देखकर जयजयकार करते हुए उनके चरणों को दण्डवत् नमस्कार किया। १२ जिनके चरणों की धूली से निश्चय ही ब्रह्मा की कन्या अहल्या का उद्धार हो गया था, उन श्रीराम के चरण-कमलों में सुलोचना मानो भ्रमरी हो गयी। १३ दरिद्र को धन मिल गया हो, अथवा जन्मान्ध के नयन उत्पन्न हो आये हों, तो वह जैसे आनन्दित होता हो, अथवा मोर मेघ को प्रसन्न होते देखकर जैसे आनन्दित होता है, अथवा (पानी के) रेले में जो बहता जा रहा हो, उसे उसके किसी प्राण-प्रिय मित्र ने आधार दिया हो, अथवा कोई योगी अपने मन को जीतकर वृत्ति-अवस्था को प्राप्त हो गया हो, तो वह जैसे हर्ष-विभोर हो जाता हो, वैसे श्रीरामरूपी चन्द्र को देखकर सुलोचना का मनरूपी चकोर उल्लास को प्राप्त हो गया। अथवा रघुनाथ मानो सूर्य थे, तो सुलोचना कमलिनी हो गयी थी। १४-१६ संसार के तापों से तप्त होकर वह श्रीराम के चरणों में दृढ़ता के साथ लग गयी। वहाँ से उठने में

पाहावें नयनीं। सुलोचना मस्तक म्हणोनी। पायांवरूनि उचलीना। १८ जैसा सुधारस गाळी इंदु। तैसा बोले कृपासिंधु। जो जगदीश दीनबंधु। लाविला वेधु त्रिनेत्रासी। १९ म्हणे माते उठीं वो झडकरी। परम श्रमलीस संसारीं। आतां सुखी राहें परत्रीं। अक्षयसुख भोगीं तूं। १२० ऐसें ऐकोनि झडकरी। उभी ठाकली शेषकुमरी। पाणिद्वय जोडूनि ते अवसरीं। स्तवन करी सद्भावें। २१ म्हणे जय जय रामा विषकंठमित्रा। रघूत्तमा राजीवनेत्रा। जलदवर्णा चारुगात्रा। मित्रकुळमुकुटमणे। २२ जगद्वंद्या जगन्नायका। जनकजापते जगद्रक्षका। जन्ममरणभयमोचका। जनकजामाता जगद्गुरो। २३ जामदग्न्यजिता जलजनयना। जगदीश्वरा जलदवर्णा। जगद्व्यापका दुःखहरणा। जन्मजरारहित तूं। २४ पुराणपुरुषा रघुनंदना। भक्तवत्सला जगन्मोहना। मायाचक्रचालका निरंजना। निष्कलंका निर्गुण तूं। २५ आनंदअयोध्यापुरविहारा। वेदवंद्या

सुलोचना के मन में आलस्य अनुभव हो रहा था। १७ (उसने सोचा-) अब इस सुख को छोड़कर आगे (भविष्य में) आँखों से क्या देखें ? इसलिए सुलोचना (श्रीराम के) चरणों पर से मस्तक नहीं उठा रही थी। १८ जैसे चन्द्र अमृतरस को बहाता हो, वैसे वे कृपा-सिन्धु श्रीराम (अमृतरस बातों में बहाते हुए) बोलने लगे, जो (स्वयं) जगदीश तथा दीन-बंधु हैं और जिन्होंने त्रिनयन शिवजी को (ध्यान की) लौ लगाये रखी है। १९ वे बोले— 'हे माता, झट से उठो तो। संसार में बहुत थक गयी हो, अब परलोक में सुख-पूर्वक रहो— (वहाँ) तुम अक्षय सुख का भोग करो।' १२० ऐसा सुनते ही शेषकन्या झट से खड़ी हो गयी और दोनों हाथ जोड़कर उस समय वह सद्भाव-पूर्वक स्तवन करने लगी। २१ वह बोली— 'हे शिवजी के मित्र राम, जय हो, जय हो। हे रघूत्तम, हे राजीव-नेत्र, हे मेघ-वर्ण, हे चारु-गात्र, हे सूर्यकुल के मुकुट-मणि, हे जगद्वंद्य, हे जगन्नायक, हे जनकजा-पति, हे जगत् के रक्षक, हे जन्म-मरण के भय से मुक्त करनेवाले, हे जनक-जामाता, हे जगद्गुरु, हे परशुराम को जीतनेवाले, हे जलज-नयन, हे जगदीश्वर, हे जलद-वर्ण, हे जगद्-व्यापक, हे दुःख-हरण, तुम जन्म-जरा-रहित हो। २२-२४ हे पुराण-पुरुष रघुनन्दन, हे भक्त-वत्सल, हे जगन्मोहन, हे मायाचक्र के चालक, हे निरंजन, हे निष्कलंक, तुम निर्गुण हो। २५ हे आनन्दमयी अयोध्यापुरी में विहार करनेवाले, हे वेद-वंद्य, हे वेदों के सार (-तत्त्व), हे परम उदार रघुवीर,

वेदसारा । परम उदारा रघुवीरा । अहल्योद्धारा मखपाळका । २६ जय जय रामा विश्वपाळणा । विश्वव्यापका विश्वकरणा । विश्वचाळका जगज्जीवना । विश्वरक्षणा विश्वेशा । २७ विबुधललाटपटलेखना । सनकसनंदनमनरंजना । हे रघुवीर दानवदलना । भवभंजना भवहृदया । २८ मंगलरूपा मंगलकारका । जय मंगलजननीउद्धारका । मंगलभगिनीप्राणनायका मंगलसहिता मंगलधामा । २९ कमलोद्भवजनका कमलनयना । कमलानायका कमलशयना । कमलनाभा कमलवदना । कमलसदना कमलप्रिया । १३० नमो भववारणपंचानना । नमो पापारण्यकुठारतीक्ष्णा । हे श्रीरामा त्रिविधतापशमना । अनंतशयना अनंता । ३१ तुज स्तवावया चापपाणी । न चले सहस्रवदनाची वाणी । नेति नेति म्हणूनी । आगम तेथें तटस्थ । ३२ तेथें एक जिव्हेचें स्तवन । मांडेल माझें कोठोन । जैसें

हे अहल्या के उद्धारक, हे यज्ञ-रक्षक, हे विश्व के पालन-कर्ता राम, जय हो, जय हो । हे विश्व-व्यापक, हे विश्व के कर्ता, हे विश्व के चालक, हे जगज्जीवन, हे विश्व के रक्षण-कर्ता, हे विश्वेश, (जय हो, जय हो) । २६-२७ देवों (तक) के ललाट-पट पर (उनके कर्मफल के अनुसार सुख-दुःख आदि का) लेखन करनेवाले (हे राम), सनक सनन्दन (आदि ऋषियों) के मन को रिझानेवाले, हे दानवों का संहार करनेवाले रघुवीर, हे भव (संसार के दुःखों) का नाश करनेवाले तथा हे शिवजी के हृदय, हे मंगल-रूप, हे मंगल-कारी, (जय हो) । हे मंगल-जननी (पृथ्वी) के उद्धारक, जय हो । हे (मंगल की भगिनी) सीता के प्राण-नायक, हे मंगल-सहित तथा मंगल के धाम, हे ब्रह्मा के पिता, हे कमल-नयन, हे कमला (लक्ष्मी) के नायक (स्वामी), हे कमल-शयन, हे कमल-नाभ, हे कमल-वदन, हे कमल-सदन, हे कमल-प्रिय, (जय हो) । १२८-१३० हे संसार रूपी हाथी के लिए सिंह-स्वरूप, तुम्हें नमस्कार है । पाप रूपी अरण्य को काट देनेवाले तीक्ष्ण कुठार-स्वरूप (हे राम), तुम्हें नमस्कार है, (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक-इन) तीनों प्रकार के तापों का शमन करनेवाले हे श्रीराम, हे अनन्त-शयन (शेषशायी), हे अनन्त, तुम्हें नमस्कार हैं । ३१ हे चापपाणि, तुम्हारा स्तवन करने में सहस्र-वदन शेष (तक) की वाणी (पर्याप्त रूप में) नहीं चल पाती । 'नेति', 'नेति' कहकर वेद भी जहाँ (जिसमें) चुप हो गये हैं, वहाँ (उसमें) मेरी एक जिह्वा तुम्हारा स्तवन कहाँ से (कैसे) प्रस्तुत कर सकती

भागीरथीसीं मज्जन। थिल्लरोदकें मांडिलें। ३३ पितळेचें पुष्प नेऊन। केलें कनकाद्रीचें पूजन। कीं जलार्णवासी अर्घ्य-दान। कूपोदकें करावें। ३४ अर्कास वाहिलें अर्कीसुमन। मलयानिलासी अंचलपवन। किंवा क्षीराब्धीपुढें नेऊन। तक्र जैसें समर्पिलें। ३५ केवीं होय धरेचें वजन। स्तंभ कैंचा टेंकावया गगन। सप्त समुद्रींचें जीवन। टिटवीस केवीं मोजवे। ३६ सकळप्रकाशनिशाकर। त्यास दशी वाहिली अणुमात्र। कीं धत्तूरपुष्पीं उमावर। दरिद्रियानें पूजिला। ३७ तुझे देखतांचि चरण। तुटलें देहत्रयबंधन। मन होऊन ठेलें उन्मन। जन्ममरण तुटलें असे। ३८ घागरीं आणि रांजणीं। एकचि बिंबला वासरमणी। तैसा स्त्रीपुरुषअभिधानी। चाप-पाणी व्यापक तूं। ३९ तरी या स्त्रीदेहाची आकृती। शक्र-जिताची अंगना म्हणती। पतिशिरासवें रघुपती। अग्नीमाजी

है ? (मेरा स्तवन करने लगना वैसे ही है) जैसे गड्ढे के पानी से गंगा को स्नान कराना आरम्भ कर दिया हो, अथवा पीतल का (बनाया हुआ) फूल ले जाकर स्वर्ण पर्वत (मेरु) का पूजन किया जा रहो हो, अथवा कुएँ के पानी से समुद्र को अर्घ्यदान किया जा रहा हो, अथवा अर्क (सूर्य) को अर्की (आक) का फूल समर्पित किया जा रहा हो, अथवा मलय पर्वत से आनेवाली वायु को (साड़ी) के आँचल से हवा की जा रही हो, अथवा क्षीर-सागर के सामने ले जाकर जैसे छाछ समर्पित किया जा रहा हो। ३२-३५ पृथ्वी का वजन कैसे हो सकता है ? गगन को (आधार रूप में) टिकाने के लिए स्तम्भ कैसे चल सकता है ? सातों समुद्रों के पानी को टिटिहरी द्वारा कैसे नापा जा पाएगा ? ३६ (मेरे द्वारा तुम्हारा स्तवन करना वैसे ही हुआ जैसे) जो चन्द्र समस्त स्थानों में प्रकाश भर देनेवाला होता है, उसे अणु मात्र धागा समर्पित किया हो, अथवा किसी दरिद्र ने धतूरे के फूल से शिवजी का पूजन किया हो। ३७ (हे श्रीराम,) तुम्हारे चरणों को देखते ही (स्थूल, सूक्ष्म और कारण नामक जीव के) तीनों देहों का बन्धन टूट गया है और मन उन्मन होकर रह गया है। (मेरा) जन्म-मरण (का बंधन) टूट गया है। ३८ (जिस प्रकार) गगरी और मटके (दोनों) में एक ही सूर्य प्रतिबिम्बित होता है, उस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों का अभिधान धारण करनेवाले एक मात्र सर्व व्यापी तुम श्रीराम हो। ३९ फिर भी इस नारी-देह की आकृति को इन्द्रजित की स्त्री कहते हैं। हे रघुपति, इसे पति की देह के साथ अग्नि

घालिजे । १४० तूं अयोध्याधीश उदारा । अनाथ याचक मी मागें शिरा । मी चातक तूं जलधरा । कृपानिधि वर्षे कां । ४१ जेव्हां उदया पावे गभस्ती । तेव्हां चक्रवाकें मिळती । तैसेंच आतां करीं रघुपती । मित्रकुळप्रकाशका । ४२ क्षीर आणि जळ । वेगळें काढिती मराळ । तैसा श्रीराम तमालनील । भवपुरींहूनि काढीं कां । ४३ पतीचें ऐकिलें वर्तमान । तेव्हांच गेले माझे पंचप्राण । परी शिराचें निमित्त करून । तुझे चरण पाहूं आल्यें । ४४ तूं चित्तपरीक्षक रघुनाथ । जाणसी सर्वांचें मनोगत । ऐसें सुलोचना म्हणत । जगन्नायक तटस्थ जाहला । ४५ म्हणे धन्य धन्य सहस्रवदन । ऐसें उदरीं जन्मलें रत्न । कीं भोगींद्राचें तप पूर्ण । कन्यारूपें प्रकटलें । ४६ सुलोचनेचें चातुर्य देखोन । कपी सकळ तुकाविती मान । श्रीरामासी म्हणे मित्रनंदन । ईतें शिर देऊनि बोळवा । ४७ जांबुवंत म्हणे हे पुण्यसरिता । अंगद म्हणे धन्य पतिव्रता ।

में डाल देना । १४० तुम उदार अयोध्याधीश हो और मैं एक अनाथ याचक (के रूप में पति का) मस्तक माँग रही हूँ । मैं चातक हूँ, तो तुम मेघ हो । (अतः) हे कृपानिधि, मेघ रूप तुम (मुझ जैसे चातक के लिए) क्यों न बरस पड़ो । ४१ हे रघुपति, हे सूर्यकुल के सूर्य, जब सूर्य उदय को प्राप्त हो जाता है, तब (रात-भर एक-दूसरे से बिछुड़े हुए) चक्रवाक-चक्रवाकी मिल जाते हैं, उसी प्रकार, अब तुम कर देना (अर्थात् हमें मिला देना)। ४२ हे तमाल-नील श्रीराम; हंस पक्षी दूध और पानी को अलग कर डालते हैं, मुझे इस संसार रूपी नगरी से निकाल दो । ४३ पति-सम्बन्धी मैंने (जब) समाचार सुना, तभी मेरे पाँचों प्राण (वस्तुतः) निकल गये, परन्तु मस्तक का निमित्त बताते हुए तुम्हारे चरणों के दर्शन करने आ गयी हूँ । ४४ हे रघुनाथ, तुम (सबके) चित्त के परीक्षक हो, तुम सबके मन के भावों को जानते हो । ' सुलोचना ने जब ऐसा कहा, तो जगन्नाथ श्रीराम स्तब्ध हो गये । ४५ (फिर) वे बोले-- ' वह सहस्र-वदन शेष धन्य है, धन्य है, जिससे ऐसे (कन्या-) रत्न का जन्म हुआ, अथवा उस भोगीन्द्र का सम्पूर्ण तप ही इस कन्या के रूप में प्रकट हुआ है । ' ४६ सुलोचना का ऐसा चातुर्य देखकर समस्त कपियों ने सिर झुका लिया । (फिर) सुग्रीव ने श्रीराम से कहा— ' इसे (इन्द्रजित का) मस्तक देकर विदा करो । ' ४७ जाम्बवान ने कहा— ' यह कोई पुण्य की सरिता ही है । ' अंगद ने कहा— ' यह पतिव्रता धन्य है । ' तो हनुमान ने कहा—

मारुति म्हणे इचें नाम घेतां। पाप नुरे सहसाही। ४८ सायुज्यतामुक्तीसमवेत। इयेसी शिर द्यावें जी त्वरित। असो यावरी जनकजामात। पुसे दशकंठस्नुषेतें। ४९ आम्हीं येथें आणिलें शिर। तुज केवीं कळला समाचार। येरी म्हणे पतीचा कर। पत्र लिहून देतसे। १५० भूर्जपत्र दाविलें त्वरित। आश्चर्य करी कौसल्यासुत। तों वानर म्हणती समस्त। आम्हांसी सत्य न वाटे। ५१ निर्जीव हस्तें लिहिलें पत्र। तरीच आम्ही मानूं साचार। जरी हे हांसवील शिर। आपुल्या पतीचें ये काळीं। ५२ राम म्हणे इचा महिमा थोर। काय एक न करी निर्धार। तवं ऋषभाहातीं आणविलें शिर। अर्कपुत्रें ते काळीं। ५३ महाविशाल भयंकर। जिव्हा लोळे मुखाबाहेर। झांकिला असे सव्य नेत्र। भाळीं शेंदूर चर्चिलासे। ५४ बाबरझोटी धरूनी। ऋषभें ठेविलें आणोनी। तें सुलोचनेनें धरूनी। हृदयीं तेव्हां आलिंगिलें। ५५ स्फुंदस्फुंदोनि सती रडत। त्रिभुवनीं बळिया इंद्रजित। त्यांचें शिर पडिलें एथ। कर्म विचित्र पूर्वींचें। ५६ खालीं पसरी उत्तरीय

'इसका नाम लेने पर पाप कदापि शेष नहीं रहेगा। अहो, इसे सायुज्य मुक्ति सहित इसके पति का सर झट से प्रदान करें।' अस्तु। इसपर श्रीराम ने रावण की उस बहू से पूछा। ४८-४९ 'हम यहाँ सिर लाये हैं। यह समाचार तुम्हें कैसे विदित हुआ?' तो उसने कहा— 'पति के हाथ ने पत्र लिखकर दिया है।' १५० (फिर) उसने झट से वह भोज-पत्र दिखा दिया, तो श्रीराम ने आश्चर्य अनुभव किया। तब समस्त वानरों ने कहा— 'हमें यह सत्य नहीं जान पड़ता। ५१ यदि यह इस समय अपने पति के सिर (मुख) को हँसाएगी, तो ही हम यह सत्य मानेंगे कि (इन्द्रजित के) निर्जीव हाथ ने यह पत्र लिखा है।' ५२ (इसपर) श्रीराम ने कहा— 'इसकी महिमा बड़ी है। वह निश्चय ही क्या नहीं कर पाएगी?' तब सुग्रीव उस समय ऋषभ के हाथों उस सिर को लिवा लाया। ५३ वह (सिर) बहुत विशाल तथा भयावह था; मुख के बाहर जिह्वा लटक रही थी, दाहिनी आँख मुँदी थी, और भाल में सिन्दूर लगाया था। ५४ बालों के झोंटे पकड़कर ऋषभ ने उसे लाते हुए रख दिया। तब सुलोचना ने उसे हृदय से लगाते हुए उसका आलिंगन किया। ५५ सुबक-सुबककर वह सती रोने लगी। इन्द्रजित तो त्रिभुवन में बलवान था और उसका सिर यहाँ पड़ा हुआ था।

वस्त्र। त्यावरी बैसविलें तेव्हां शिर। सतीनें करूनि नमस्कार। विनवीतसे कर जोडोनियां। ५७ अयोध्यानाथ श्रीरामचंद्र। पाहती स्वर्गींचे सुरवर। तरी तुम्हीं हास्य करावें सत्वर। जेणें श्रीराम धन्य म्हणे। ५८ मजसीं विनोद नाना रीती। करीतसां प्राणपती। तरी आजचि क्रोध चित्तीं। काय म्हणोनि धरियेला। ५९ आजि अपराध समस्त। समर्थें घालावे पोटांत। माझा पतिव्रताधर्म बहुत। रघुपतीसी दाविजे। १६० होम विध्वंसिला म्हणोन। तेणें क्रोधें धरिलें मौन। कीं समरीं जय न देखोन। म्हणोनि खेद वाटला। ६१ कीं रामदर्शना शिर आणिलें। सायुज्यपद प्राप्त जाहलें। म्हणोनि बोलणें खुंटलें। जन्ममरण तुटलें पैं। ६२ इत्यादि भाव ते अवसरीं। बोलिली फणिपाळकुमरी। किंचित विनोदही करी। सुलोचना हांसवावया। ६३ शूर्पणखा तुमची आत। ते जनस्थानीं गौरविली बहुत। कर्ण नासिक सुमित्रासुत। घेऊनि गेला

सचमुच पूर्वजन्म में किये कर्म विचित्र थे। ५६ सती सुलोचना ने तब नीचे (भूमि पर) अपना उत्तरीय वस्त्र बिछा दिया और उसपर सिर रख दिया। (फिर) हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए वह निहोरा करने लगी। ५७ (वह बोली—) "अयोध्यापति श्रीरामचन्द्र और स्वर्ग के देव देख रहे हैं, अतः तुम झट से मुस्करा देना, जिससे श्रीराम 'धन्य' कहें। ५८ हे प्राणों के स्वामी, तुम मेरे साथ नाना प्रकार से हँसी-ठठोली किया करते थे, तो आज ही मन में किसलिए क्रोध धारण किया है? ५९ आज तुम समर्थ (मेरे) समस्त अपराधों को क्षमा करना और मेरा बहुत बड़ा पतिव्रता-धर्म रघुपति को दिखा देना। १६० (इन लोगों ने तुम्हारे) होम का विध्वंस किया, इसलिए उस क्रोध से क्या तुमने मौन धारण किया? अथवा युद्ध में विजय (को प्राप्त होते) न देखकर (क्या) तुम्हें खेद अनुभव हो रहा है। ६१ अथवा श्रीराम के दर्शन के लिए सिर लाया गया है, (उसके फलस्वरूप) तुम्हें सायुज्य मुक्ति (-पद) प्राप्त हो गया है। (क्या) इसलिए जन्म-मरण (भी) टल गया है और बोलना समाप्त हो गया है।" ६२ इत्यादि विचार शेषकन्या सुलोचना ने उस समय कह दिये; (इन्द्रजित के सिर को) हँसाने के लिए उसने किंचित् हँसी-ठठोली भी की। ६३ (वह फिर बोली—) 'शूर्पणखा तुम्हारी बुआ थी, उसे जनस्थान में (इन लोगों ने) बहुत गौरवान्वित किया था और लक्ष्मण उसके कानों और नाक को आरम्भ में लेकर गया

आरंभीं । ६४ भगिनीचें देखोनि भूषण । आनंदला पितृव्य कुंभकर्ण । तेणें नासिक आणि कर्ण । सुग्रीवासी समर्पिले । ६५ ऐसा विनोद करितां । परी शिर न हांसे तत्त्वतां । मग सहस्रवदनदुहिता । खेद परम करीतसे । ६६ म्हणे मी पूर्वीं चुकल्यें यथार्थ । जरी पितयासी साह्य आणित्यें येथ । तरी तुमचे शत्रु समस्त । पराभविता क्षणार्धें । ६७ ऐसी ऐकतांचि मात । गदगदां तेव्हां शिर हांसत । सव्य नेत्र उघडोनि पाहात । जेवीं विकासे कमळिणी । ६८ श्रीरामास पुसती वानर । काय गोष्टीस हांसलें शिर । याउपरी राजीवनेत्र । काय बोलता जाहला । ६९ म्हणे इचा पिता सहस्रवदन । तोचि अवतरला लक्ष्मण । त्या श्वशुरें मज मारिलें म्हणोन । शिर हांसलें गदगदां । १७० अज्ञानरूप वामनयन । मी त्यास न दिसें सगुण । ज्ञानमय सव्य नयन । उघडोनि मज विलोकी । ७१ वानर डोलविती मान । सुलोचना देवी धन्य धन्य । सकळ सतियांमाजी निधान । शिर अचेतन हांसविलें । ७२ तंव तो वीर लक्ष्मण । व्यापिला मायामोहेंकरून । सुलोचनेकडे

था । ६४ अपनी भगिनी के आभूषण देखकर तुम्हारे चाचा आनन्दित हो गये और उन्होंने अपनी नाक और कान सुग्रीव को समर्पित कर दिये । ' ६५ परन्तु ऐसा हास्य-विनोद करने पर भी वह सिर सचमुच नहीं हँस दिया । तब शेषकन्या ने बहुत खेद अनुभव किया । ६६ वह बोली— ' मैंने पहले सचमुच भूल की । यदि अपने पिता को यहाँ सहायक के रूप में लाती, तो वह तुम्हारे समस्त शत्रुओं को आधे क्षण में पराजित कर देता । ' ६७ तब ऐसी बात सुनते ही वह सिर खिल-खिलाकर हँस पड़ा और जैसे कमल विकसित होता है, वैसे दाहिने नेत्र को खोलकर देखने लगा । ६८ तब वानरों ने श्रीराम से पूछा— ' किस बात पर सिर हँस पड़ा ? ' इसपर वे कमल-नयन क्या बोले ? (सुनिए) । ६९ वे बोले— ' सहस्र-वदन शेष इसका पिता है, वही लक्ष्मण के रूप में अवतरित है । सिर इसलिए खिल-खिलाकर हँस पड़ा कि उसके ससुर ने उसे मार डाला । १७० बायाँ नेत्र तो अज्ञान स्वरूप है । सगुण रूपधारी मैं उसे नहीं दिखायी दे रहा हूँ । परन्तु दाहिना नेत्र तो ज्ञानमय है, वह खुलकर मुझे देख रहा है । ' ७१ (यह सुनकर) वानर सिर हिलाने लगे और बोले— ' सुलोचना देवी धन्य है, धन्य है । वह समस्त सतियों में महान निधि है, जिसने निर्जीव सिर को हँसा दिया । ७२ तब वीर

पाहोन । आंसुवें नयन भरियेले । ७३ रघूत्तमाप्रती बोलत । अन्याय केला म्यां यथार्थ । प्रत्यक्ष मारून जामात । कन्या सुलोचना श्रमविली । ७४ ऐसा शोकार्णवीं लक्ष्मण । पडतां देखोनि रघुनंदन । म्हणे बा रे क्षत्रियधर्म दारुण । देवें पूर्वींच निर्मिला । ७५ बंधु अथवा पिता पुत्र । समरीं आलिया समोर । त्यासी वधितां अणुमात्र । दोष नसे सहसाही । ७६ सौमित्र म्हणे श्रीरामा । विश्वफलांकितद्रुमा । अज अजित पूर्णकामा । तुम्ही बोलिलां तें सत्य सर्व । ७७ मायाचक्र महा दुर्गम । प्रियावियोगें वाटे श्रम । सीतेलागीं तुम्हीं कष्टोनि परम । वृक्ष पाषाण आलिंगिले । ७८ ऐसी ऐकतांचि मात । कृपेनें द्रवला रघुनाथ । म्हणे मी उठवीन इंद्रजित । करीन ऐक्य उभयांसी । ७९ इंद्रकरीं आणोनि अमृत । आतांचि उठवीन शेषजामात । ऐकतां महावीर तेथ । गजबजले ते काळीं । १८० खूण दावी सूर्यनंदन । हें मनीं न धरावें आपण । विमानीं देव संपूर्ण । भयभीत जाहले । ८१ अंगद दावी कर-

---

लक्ष्मण माया-मोह से व्याप्त हो गया । उसने सुलोचना की ओर देखते हुए आँसुओं से आँखों को भर लिया । ७३ (तदनन्तर) उसने श्रीराम से कहा— 'मैंने सचमुच अन्याय किया है । मैंने प्रत्यक्ष अपने जामाता को मारकर कन्या सुलोचना को दुःख दिया है ।' ७४ लक्ष्मण को इस प्रकार शोक-सागर में पड़ते देखकर श्रीराम बोले— 'अरे, भगवान ने पहले ही क्षत्रिय धर्म को दारुण बनाया है । ७५ बन्धु अथवा पिता या पुत्र युद्ध में सामने आने पर उसका वध करने में अणु मात्र तक कदापि दोष नहीं होता ।' ७६ (यह सुनकर) लक्ष्मण ने कहा— 'हे श्रीराम, हे विश्वरूपी फल से युक्त वृक्ष-स्वरूप, हे अजन्मा तथा अजित, हे पूर्णकाम, तुमने जो कहा, वह सब सत्य है । ७७ माया द्वारा निर्मित (सांसारिक बातों का) चक्र अति दुर्गम है । प्रिया के वियोग से दुःख अनुभव होता है । सीता के लिए परम दुखी होकर तुमने वृक्षों और पाषाणों का आलिंगन किया था ।' ७८ ऐसी बात सुनकर श्रीराम कृपा से द्रवित हो गये और बोले— 'मैं इन्द्रजित को (जीवित कर) उठाऊँगा और दोनों का मिलन करा दूँगा । ७९ इन्द्र के हाथों अमृत लिवा लाकर मैं अभी शेष के जामाता को (जीवित कर) उठा लूँगा ।' यह सुनकर उस समय वहाँ (वानर आदि) महावीर भयभीत हो गये । १८० तो सुग्रीव ने संकेत किया कि आप इस बात को मन में न रखिए (—अर्थात् इस बात

पल्लवी । बिभीषण किंचित मान हालवी । जांबुवंत नेत्रसंकेत दावी । नका हें करूं अघटित । ८२ मग निर्भीडपणें वायुतनय । बोलिला जो सर्वांसी प्रिय । म्हणे तुमचें ठेवा औदार्य । एकीकडे नेऊनियां । ८३ अजा म्हणोनि न पाळिजे वृक । मित्र म्हणों नये दंदशूक । विषतरूचें काय सार्थक । दुग्ध घालोनि वाढवितां । ८४ इंद्रजिताचे बळें देव । रावणें घातले बंदीं सर्व । याचें कापट्य वासव । तोही नेणे सर्वथा । ८५ सौमित्र बोलिला वचन । जेणें होय सर्वांचें समाधान । तैसें करावें आपण । रघुनंदन यथार्थ म्हणे । ८६ सुलोचनेसी म्हणे मित्रपुत्र । पतीचें शिर घेऊनि जाईं सत्वर । निराशा ऐकोनि उत्तर । सती सुलोचना बोलतसे । ८७ दृष्टीं देखिला रघुनाथ । इतुकेन सर्व कृतकृत्य । म्हणोनि रामचरणीं ठेवित । मस्तक पुन्हां सुलोचना । ८८ सव्य घालोनि रघुवीर । मागुता घाली नमस्कार । उभी राहिली जोडोनि कर । काय उत्तर

पर ध्यान न दीजिए) । विमानों में (बैठे हुए) देव पूरे-पूरे भयभीत हो उठे । ८१ अंगद ने हाथ के संकेत से सूचित किया, तो विभीषण ने सिर किंचित् हिलाया । जाम्बवान ने आँख से संकेत किया कि यह विपरीत (मुख्य हेतु से असंगतिपूर्ण) बात आप न करें । ८२ तब जो सबका प्रिय था, वह वायुनन्दन हनुमान निःसंकोच बोलने लगा । उसने कहा— 'आप अपनी उदारता को एक ओर ले जाकर रखिए । ८३ बकरी समझकर भेड़िया न पालें; साँप को मित्र न कहें; दूध सींचकर बढ़ाने से विष-तरु की क्या सार्थकता है ? ८४ रावण ने इन्द्रजित के बल से समस्त देवों को बन्दी-गृह में डाल दिया है । इन्द्र (तक) इसके कपट को बिलकुल नहीं जान पाया ।' ८५ (इसपर) लक्ष्मण ने यह बात कही— 'जिससे सबको सन्तोष हो, वैसा आप करें ।' तो श्रीराम ने कहा— 'ठीक है ।' ८६ (तदनन्तर) सुग्रीव ने सुलोचना से कहा— 'पति का सिर लेकर तुम झट से चली जाओ ।' यह देखकर कि (पति के पुनर्जीवित होने के बारे में) निराशा हो रही है, सती सुलोचना ने उत्तर में कहा । ८७ 'मैं अपनी आँखों से श्रीराम को देख पायी— इससे ही मैं पूरी-पूरी कृतार्थ हुई हूँ ।' (यह) कहते हुए सुलोचना ने श्रीराम के चरणों में फिर से मस्तक रखा । ८८ (तदनन्तर) दाहिनी ओर से श्रीराम की परिक्रमा करके पुनः उसने नमस्कार किया । फिर हाथ जोड़कर वह खड़ी रह गयी और उत्तर स्वरूप उसने और क्या कहा ? (सुनिए) । ८९ वह

बोलिली। ८९ म्हणे आदिपुरुषा वैकुंठनायका। मत्स्यरूपा वेदोद्धारका। कमठरूपा सृष्टिपाळका। आदिवराहस्वरूप तूं। १९० तो तूं स्तंभोद्भव नरहरी। वामनरूप मधुकैटभारी। तीन सप्तकें धरित्री। केली निःक्षत्री तुवांचि। ९१ तोचि तूं आतां रघुनाथ। कौसल्यात्मज जनकजामात। माता पिता बंधु सर्व गोत। तूंचि माझें जगद्वंद्या। ९२ मदनशत्रुहृदयआरामा। परत्रींचा सोयरा तूं श्रीरामा। दीनबंधु सर्वोत्तमा। पूर्णब्रह्मा जगद्गुरो। ९३ लंकेकडे आजि तत्त्वतां। कपी न धाडावे सर्वथा। मज अग्निप्रवेश करितां। विक्षेप कोणीं न करावा। ९४ अवश्य म्हणोनि जगदुद्धार। सतीचे मस्तकीं ठेविला कर। सुलोचना वारंवार। करी नमस्कार राघवा। ९५ नेत्रद्वारें

बोली— ' हे आदि पुरुष, हे वैकुण्ठ-नायक, हे मत्स्य रूप में (अवतरित होकर) वेदों का उद्धार करनेवाले, हे कूर्म रूप में (अवतरित होकर) सृष्टि का पालन (रक्षण) करनेवाले (भगवान श्रीराम),आदि-वराह स्वरूप तुम ही हो। १९० खम्भे में से उत्पन्न होकर प्रह्लाद की रक्षा करनेवाले नरसिंह तुम ही हो। वामन रूपधारी तुम (ही) हो, मधुकैटभ * नामक दैत्यों के शत्रु हो। तुमने ही परशुधारी राम के रूप में अवतरित होकर इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय किया था। ९१ तुम वही (ब्रह्म) अब कौसल्यात्मज तथा जनक के जामाता (हो गये) हो। हे जगद्वंद्य तुम ही मेरे माता-पिता, बन्धु, सब गोत्रज (ज्ञाति जन) हो। ९२ हे (कामदेव के शत्रु) शिवजी के हृदय के विश्राम, हे श्रीराम, हे दीन-बन्धु, हे सर्वोत्तम, हे पूर्णब्रह्म, हे जगद्गुरु, परलोक में तुम (ही मेरे लिए) मित्र हो। ९३ सचमुच तुम आज लंका की ओर वानरों को बिलकुल न भेजिए। अग्नि-प्रवेश करते हुए मेरे लिए बाधा उत्पन्न न करें। ९४ ' अवश्य, (ऐसा ही हो)। ' कहते हुए श्रीराम ने उस सती के मस्तक पर हाथ रखा।

---

* टिप्पणियाँ : मधु-कैटभ : पुराणों की एक मान्यता के अनुसार मधु और कैटभ नामक दो असुर ब्रह्मा के पसीने से उत्पन्न हुए थे। उन्होंने तपस्या करके उसके फल-स्वरूप अजेयता प्राप्त की। फिर वे जगत् को बहुत पीड़ा पहुँचाते रहे, तो भगवान विष्णु ने उनका वध किया।

दूसरी एक मान्यता के अनुसार वे दैत्य भगवान विष्णु के कान के मल से उत्पन्न हुए थे। वे ब्राह्मणों को मार डालते थे। पाँच सहस्र वर्ष लगातार युद्ध करते रहने पर भी विष्णु उन्हें मार डालने में असमर्थ रहे। तदनन्तर उन दैत्यों को मोहित करके विष्णु ने उनसे मृत्यु का वरदान मँगवाया। फलस्वरूप उन्हें गोद में लेकर भगवान ने उनका वध किया।

न्याहाळून। हृदयीं रेखिला रघुनंदन। जय जय राम म्हणोन। शिर घेऊनि चालिली। ९६ मग रणमंडळीं येऊन सत्वर। घेतलें पतीचें शरीर। समुद्रतीरीं भयंकर। विस्तीर्ण कुंड रचियेलें। ९७ मंदोदरीसहित लंकानाथ। सहपरिवारें पातला तेथ। विमानीं देव समस्त। पाहती कौतुक सतीचें। ९८ सुलोचनेनें करूनि स्नान। सौभाग्यकारक देत वाण। कुंडीं पतीची तनु घालून। महाअग्नि चेतविला। ९९ कुंडासी प्रदक्षिणा करूनि येरी। धर्मशिळेवरी शेषकुमरी। उभी ठाकोनि ते अवसरीं। पाहे अंबरीं न्याहाळूनि। २०० धडकत दुंदुभींचे ध्वनी। सुरांची दाटी झाली विमानीं। सकळ सुरांगना गगनीं। अक्षय्य वाणें घेऊनि उभ्या। १ तंव दिव्य शरीर पावोनी। इंद्रजित देखिला विमानीं। ऐसें देखतांचि नयनीं। प्राण जाहला कासाविस। २ शरीर टाकूनि त्वरितगती। आंतून निघाली आत्मज्योती। दिव्य देह पावोनि निश्चितीं। पतीपाशीं पावली। ३ मग शरीर उलंडोन।

(तदनन्तर) उसने श्रीराम को बारबार नमस्कार किया। ९५ नेत्ररूपी द्वार से ध्यान से देखते हुए उसने अपने हृदय में श्रीराम की प्रतिमा को अंकित किया और 'श्रीराम की जय हो, जय हो' कहकर वह (पति के) मस्तक को लिये हुए चल दी। ९६ फिर रणभूमि में झट से आकर उसने पति के शरीर को (उठा) लिया। समुद्र के तट पर एक बहुत विस्तीर्ण कुण्ड का निर्माण किया (हुआ था)। ९७ रावण मन्दोदरी सहित, सपरिवार वहाँ आ पहुँचा। समस्त देव विमानों में बैठकर सती सुलोचना की इस लीला को देख रहे थे। ९८ सुलोचना ने स्नान करके सौभाग्यकारी बायन प्रदान किये। (तदनन्तर) कुण्ड में पति की देह को रखकर उसने अग्नि को प्रज्वलित कर दिया। ९९ उस कुण्ड की परिक्रमा करके वह शेष-कन्या धर्मशिला पर खड़ी रहकर उस समय आकाश की ओर ध्यान से देखने लगी। २०० (तब) दुंदुभियों के स्वर गूँज उठे। विमानों में बैठे हुए देवों की (बहुत) भीड़ लग गयी थी। समस्त देवांगनाएँ आकाश में अक्षय उपायन (बायन) लिये हुए खड़ी रह गयी थीं। २०१ तब (सुलोचना ने) दिव्य शरीर प्राप्त किये हुए इन्द्रजित को विमान में (विराजमान) देखा। आँखों से ऐसा देखते ही उसके प्राण व्याकुल हो गये। २ (तब) शरीर का त्याग करके झट से (उसके) अन्दर से आत्मज्योति निकल गयी। इस प्रकार दिव्य शरीर को

अग्निमुखीं घातलें नेऊन। तेव्हां मंदोदरी आणि रावण। शोक करिती अत्यंत। ४ सिंधुसंगमीं करूनि स्नान। सहपरिवारें परतला रावण। मंदोदरीसहित करीत रुदन। लंकेमाजी प्रवेशला। ५ घरोघरीं लोक वानीत। म्हणती यशस्वी अयोध्यानाथ। एकपत्नीव्रती सत्य। केलें सार्थक सुलोचनेचें। ६ परिसोत सर्व पंडित। अग्निपुराणीं सत्यवतीसुत। बोलिला कथा हे यथार्थ। नाहीं विपरीत सर्वथा। ७ कथा रसिक बहु पाहीं। म्हणोनि योजिली श्रीरामविजयीं। श्रोते धरोन सदा हृदयीं। ब्रह्मानंदेंकरूनियां। ८ पुढें कथा गोड गहन। अहिरावण-महिरावणाख्यान। पाताळासी राम-लक्ष्मण। चोरूनियां नेतील। ९ तेथें धांवण्या धांवेल हनुमंत। ते कथा ऐकोत प्रेमळ भक्त। ब्रह्मानंद अत्यद्भुत। हृदयीं तेणें ठसावे। २१० श्रीधरवरदा ब्रह्मानंदा। पुराणपुरुषा अनादि-सिद्धा। निर्गुणा जगदंकुरकंदा। जगद्वंद्या अभंगा। ११

निश्चय ही प्राप्त होकर वह पति के पास पहुँच गयी। ३ फिर उस शरीर को नीचे गिराते हुए ले जाकर अग्निमुख में डाल दिया, तब मन्दोदरी और रावण ने अत्यधिक शोक किया। ४ (तदनन्तर) सिंधुओं के संगम स्थल पर स्नान करके रावण परिवार-सहित लौटा और मन्दोदरी के साथ रुदन करते हुए उसने लंका में प्रवेश किया। ५ लोग घर-घर प्रशंसा कर रहे थे। वे कह रहे थे— 'अयोध्यापति कीर्तिशाली हैं, सचमुच एक पत्नीव्रती हैं। उन्होंने सुलोचना को चरितार्थ कर दिया।' २०६

सर्व पंडित-जन सुन लें कि सत्यवती के पुत्र व्यास ने अग्निपुराण में यह कथा ठीक से कही है, वह बिलकुल विपरीत (असंगत) नहीं है। ७ कथा में रस लेनेवाले बहुतों को देखते हुए मैंने इसको 'श्रीराम-विजय' में आयोजित अर्थात् समाविष्ट किया है। श्रोता इसे ब्रह्मानन्द के साथ हृदय में सदा धारण करें। २०८

आगे (की) कथा मधुर (रसात्मक) तथा गहन है। (उसमें कहा जाएगा कि) अहिरावण और महिरावण राम-लक्ष्मण को चुराकर पाताल (-लंका) में ले जाएँगे। ९ वहाँ सहायता के लिए हनुमान दौड़ता हुआ जाएगा। प्रेमभावयुक्त भक्त उस कथा का श्रवण करें, जिससे उनके हृदय में अति अद्भुत ब्रह्मानन्द दृढ़ता से जम जाएगा। २१०

हे श्रीधर-वरद (गुरु) ब्रह्मानन्द, हे पुराण-पुरुष, हे अनादि (काल से) सिद्ध, हे निर्गुण, हे जगत् के अंकुर के लिए कन्द-स्वरूप, हे जगद्वंद्य,

स्वस्ति श्रीरामविजयग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। त्रिशत्तमाध्याय गोड हा। २१२
॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

हे अभंग। स्वस्ति। 'श्रीराम-विजय' नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। चतुर भक्त उसके इस मधुर तीसवें अध्याय का सदा श्रवण करें। २११-२१२
॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३१

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। जो रणरंगधीर रघुवीर। रविकुळमंडण राजीवनेत्र। रजनी-चरांतक रमणीयगात्र। राजेश्वर रमापति। १ आत्माराम अयोध्यानाथ। आनंदरूप अक्षय अव्यक्त। परात्पर अमल नित्य। आद्य अनंत अनादि जो। २ जो कर्ममोचक कैवल्यदानी। करुणासमुद्र कार्मुकपाणी। बंधच्छेदक कल्मष जाळूनी। करी कल्याण भक्तांचें। ३ परमानंदा पुराणपुरुषा। पद्मजातजनका पयोनिधिवासा। पंकजनेत्रा परमहंसा। पशुपतिहृदयजीवना। ४

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। जो रघुवीर श्रीराम रण-रंग-धीर हैं, जो रविकुल की शोभा बढ़ानेवाले मानो आभूषण हैं, जो कमल-नेत्र हैं, जो राक्षसों के विनाश-कर्ता, जो सुन्दर गात्र-धारी हैं, जो राजेश्वर हैं तथा स्वयं रमापति भगवान् विष्णु (ही अवतरित) हैं, उनको नमस्कार है। १ जो आत्माराम (ब्रह्म राम) अयोध्या-पति (के रूप में अवतरित) हैं, जो आनन्द-स्वरूप, अक्षय, अव्यक्त, परात्पर, अमल एवं नित्य हैं, जो आद्य (आदि पुरुष), अनन्त और अनादि हैं, उनको नमस्कार है। २ जो (प्राणी मात्र को उसके) कर्म से मुक्ति देनेवाले हैं, जो कैवल्य (पद) के दाता हैं, जो कल्याण के सागर हैं, जो चाप-पाणि हैं, जो (कर्म तथा माया के) बन्धनों को काटनेवाले हैं, जो (समस्त) पापों को जलाकर भक्तों का कल्याण करते हैं, उन श्रीराम को नमस्कार है। ३ हे परमानन्द (-स्वरूप), हे पुराण-पुरुष, हे ब्रह्मा के पिता, हे (क्षीर-) सागर में निवास करनेवाले (भगवान विष्णु के अवतार), हे कमल-नेत्र

मनमोहना मंगलधामा । मुनिजनहृदया मेघश्यामा । मायातीता मनविश्रामा । मानववेषधारका । ५ दीनदयाळा दशरथनंदना । दशमुखान्तका दुष्टदलना । दानवरिपुदरिद्रच्छेदना । दशावतार-वेषधारका । ६ तिसावे अध्यायीं अनुसंधान । सुलोचना प्रवेशली अग्न । यावरी विंशतिनयन । चिंताक्रान्त शोक करी । ७ बंधु पुत्र पडिले रणीं । आतां पाठिराखा न दिसे कोणी । तों विद्युज्जिव्ह ते क्षणीं । प्रधान बोलता जाहला । ८ म्हणे अहिरावण महिरावण । पाताळीं राहती दोघे जण । ते काप-ट्यविद्येंकरून । रामसौमित्रां नेतील । ९ कालिकेपुढें तत्काळीं । समर्पितील दोघांचे बळी । ऐसें ऐकतां दशमौळी । परम संतोष पावला । १० रावणें पत्र पाठविलें लिहून । तत्काळ प्रकटले दोघे जण । कीं ते कामक्रोधचि येऊन । अहंकारासी भेटले । ११

हे परमहंस, हे पशुपति (अर्थात् शिवजी) के हृदय के लिए जीवन-स्वरूप, हे मनमोहन, हे मंगलों के धाम, हे मुनिजनों के लिए हृदय-स्वरूप, हे मेघश्याम, हे मायातीत, हे मन के लिए विश्राम-स्वरूप, हे मानव-रूप-धारी भगवान श्रीराम, तुम्हें नमस्कार है । ४-५ हे दीन-दयालु, हे दशरथ-नन्दन, हे दशमुख का अन्त करनेवाले, हे दुष्टों का नाश करनेवाले, हे दानवों के शत्रुओं, अर्थात् देवों की दरिद्रता को नष्ट करनेवाले, हे (मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, कृष्ण, बुद्ध और कलंकी नामक) दस अवतार रूपों के धारी (भगवान ब्रह्म राम), तुम्हें नमस्कार है । ६

तीसवें अध्याय में यह आख्यान कहा गया है:— सुलोचना ने (पति इन्द्रजित की चिता की) अग्नि में प्रवेश किया; इसके पश्चात् रावण चिन्ताक्रान्त होकर शोक करने लगा । ७ (वह बोला—) ‘ बन्धु (कुम्भकर्ण) और पुत्र (अतिकाय, इन्द्रजित आदि) युद्ध में काम आये—अब कोई सहायक नहीं दिखायी दे रहा है । ’ तो उस क्षण मन्त्री विद्युज्जिह्व बोला । ८ उसने कहा— ‘ अहिरावण और महिरावण दोनों जने पाताल में रहते हैं । वे कपट-विद्या (के बल) से राम और लक्ष्मण को पाताल में ले जाएँगे । ९ वे तत्काल कालीदेवी के सामने दोनों को बलि-रूप में समर्पित कर देंगे । ’ ऐसा सुनते ही रावण परम सन्तोष को प्राप्त हो गया । १० (तदनन्तर) रावण ने (उनके नाम) पत्र लिखकर भेज दिया, तो वे दोनों जने तत्काल (वहाँ) प्रकट हो गये । अथवा (उनके रूप में) मानो काम और क्रोध ही (रावण रूपी) अहंकार से मिल

त्या दोघांसी आलिंगून । मयजापति करी रुदन । इन्द्रजिताचें वर्तमान । दोघांप्रति निवेदिलें । १२ यावरी ते दोघे बोलत । आतां गत शोक ते बहु असोत । सौमित्र आणि रघुनाथ । रजनीमाजी नेऊं तयां । १३ मग वरकड सेनेचा संहार । करावया तुम्हां काय उशीर । ऐकतां दशकद्वयनेत्र । परम संतोष पावला । १४ तों बिभीषणाचे दोघे प्रधान । गुप्त रूपें गोष्टी ऐकून । तिहीं पवनवेगें जाऊन । कथिलें रावणानुजासी । १५ तेणें नळ नीळ जांबुवंत । मारुती यांसी केलें श्रुत । हनुमंतें पुच्छदुर्ग अद्भुत । सेनेभोंवता रचियेला । १६ वेढियावरी वेढे घालूनी । वज्रदुर्ग उंचविला गगनीं । वरी ठायीं ठायीं द्रुमपाणी । गात बैसले सावध । १७ निशा गहन ते काळीं । कीं काळपुरुषाची कांबळी । कीं जगावरी खोळ घातली । अज्ञानाची अविद्येनें । १८ निशीमाजी पक्षी बहुत । वृक्षीं नाना शब्द करीत । रिसें वटवाघुळें तेथ । लोळकंबती शाखेवरी । १९ भूतें आणि यक्षिणी । गोंधळ घालिती

गये हों । ११ उन दोनों का आलिंगन करके रावण रोने लगा । (फिर) उसने इन्द्रजित सम्बन्धी समाचार दोनों के प्रति निवेदन किया (अर्थात् दोनों को सुनाया) । १२ इसपर वे दोनों बोले— ' अब जो हो गया, उसका शोक बहुत हो गया । हम उन लक्ष्मण और राम को रात में ले जाएँगे । १३ तो फिर अन्य सेना का संहार करने में तुम्हें क्या देर लगेगी ? ' (यह) सुनकर रावण परम सन्तोष को प्राप्त हो गया । १४ तब रावणानुज विभीषण के दोनों मन्त्रियों ने गुप्त रूप में (इसे) सुनकर वायु-वेग से जाते हुए उससे कह दिया । १५ उसने यह (समाचार) नल, नील, जाम्बवान और हनुमान को सुना दिया, तो हनुमान ने सेना के चारों ओर अपनी पूँछ से (मानो) एक दुर्ग का निर्माण किया । १६ घेरे के ऊपर घेरा डालते हुए उसने वज्र का-सा (अभेद्य) दुर्ग आकाश में ऊँचाई को प्राप्त कराया (बहुत ऊँचा बना लिया) । उसमें स्थान-स्थान पर (हाथों में वृक्ष लिये हुए) वानर गाते हुए, (परन्तु) सतर्क बैठे रहे । १७ उस समय रात बहुत गहन (अन्धकारमय) हो गयी । अथवा (जान पड़ता था कि) वह काल-पुरुष का कम्बल (ही फैला हुआ) हो, अथवा अविद्या ने जगत् पर अज्ञान का आवरण बिछाया हो । १८ रात में वृक्षों पर (बैठे हुए) अनेकानेक पक्षी नाना प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न कर रहे थे । वहाँ शाखाओं में से चमगादड़ क्रोधपूर्वक लटक

महावनीं । महाज्वाळरूप दावूनी । गुप्त होती अप्सरा । २० स्मशानीं मातले प्रेतगण । भयानक रूपें दारुण । छळिती अपवित्रालागोन । पवित्र देखोनि पळती ते । २१ पिंगळे थोर किलबिलती । भालवा दिवाभीतें बोभाती । चक्रवाकांचे शब्द उमटती । टिटवे बोलती ते वनीं । २२ कुमुदीं मिलिंद मिळती सवेग । मस्तकमणी निघती उरग । निधानें प्रकटलीं सांग । येऊं म्हणती सभाग्या । २३ असो ऐसी निशा दाटली थोर । तों पातले दोघे असुर । दुर्गावरी गर्जती वानर । मार्ग अणुमात्र दिसेना । २४ असुरकरीं तीक्ष्ण शूळ । फोडूं पाहती दुर्ग सबळ । तों शूळ मोडले तत्काळ । कोट अचळ वज्राहूनी । २५ मग ते ऊर्ध्वपंथें उडोनी । दुर्गमर्यादा ओलांडूनी । जेथें निजले लक्ष्मण-कोदंडपाणी । उतरले तेथें अकस्मात । २६ तों कनकहरिण-

---

रहे थे । १९ उस महावन में भूत और यक्षिणियाँ ऊधम मचा रहे थे, तो अप्सराएँ महान ज्वालाओं का-सा रूप (अर्थात् अति तेजस्वी रूप) प्रदर्शित करते हुए गुप्त हो जाती थीं । २० श्मशान में प्रेत-गण उन्मत्तता को प्राप्त हो गये थे । उनके रूप भयानक तथा दारुण थे । वे अपवित्र आचरण करनेवालों, अर्थात् पापियों को (कष्ट पहुँचाते हुए) सता रहे थे, तो वे पवित्र अर्थात् सदाचरण करनेवालों— पुण्यवानों को देखकर भाग जाते थे । २१ उस वन में पिंगल बहुत (ज़ोर से) चहचहा रहे थे; गीदड़ और उल्लू चिल्ला रहे थे; चक्रवाकों की ध्वनियाँ सुनायी दे रही थीं, टिटहरियाँ बोल रही थीं । २२ (रात के समय विकसित होनेवाले) कुमुद-कमलों (के कोष) में भौंरे वेग-पूर्वक पहुँच रहे थे; जिसके मस्तक पर मणि हो, ऐसे सर्प (बाहर विचरण करने के लिए) निकल रहे थे— मानो (उनके रूप में) धन-भण्डार भाग्यवान व्यक्ति के पास आना चाह रहे हों । २३

अस्तु, इस प्रकार बहुत घने अंधकार के साथ रात आ गयी, तो वे दोनों असुर आ पहुँचे । (उन्हें देखकर) दुर्ग पर (बैठे हुए) वानर गरजने लगे । उन असुरों को मार्ग अणु-भर, अर्थात् जरा भी नहीं दिखायी दे रहा था । २४ उन राक्षसों के हाथों में तीक्ष्ण शूल थे; उनसे वे उस अभेद्य दुर्ग को तोड़ना चाहते थे, (परन्तु) तब (वैसा यत्न करने पर) वे शूल तत्काल टूट गये । वह दुर्ग वज्र से भी अचल (अभेद्य) था । २५ (फिर) ऊर्ध्व मार्ग से (ऊपर) उड़ते हुए, दुर्ग की (ऊपरी) सीमा को पार करके वे वहाँ अकस्मात उतर गये, जहाँ लक्ष्मण और चापपाणि राम सोये हुए थे । २६ तब लीलावतार धारण करनेवाले वे

चर्मावरी । निद्रिस्थ दोघे लीलावतारी । कीं शिव आणि विष्णु शेजारीं । अवनीवरी निजेले । २७ आधींच निद्रासुख घन । वरी राक्षसें घातलें मौन । शय्येसहित उचलोन । मस्तकीं घेऊन चालिले । २८ तेथेंच कोरिलें विवर । लांब योजनें सप्त सहस्र । सप्त घटिकेंत यामिनीचर । घेऊन गेले दोघांसी । २९ पुढें तेरा सहस्र योजन । दधिसमुद्र ओलांडून । तेथें महिकावती नगर पूर्ण । लंकेहूनि विशेष । ३० काम क्रोध दोघे जण । आत्मयासी घालिती आवरण । तैसे निशाचरीं रामलक्ष्मण । सदनीं दृढ रक्षिले । ३१ नगरमध्यभागीं देऊळ । एकवीस योजनें उंच सबळ । तें भद्रकालीचें मुख्य स्थळ । महाविशाळ भयानक । ३२ असो दधिसमुद्रतीरीं जाण । वीस कोटी पिशिताशन । मकरध्वज बलाढ्य पूर्ण । दृढ रक्षणा ठेविला । ३३ महिकावतींत रामलक्ष्मण । निद्रिस्थ आणि वरी मोहन । त्यावरी नागपाशीं बांधोन । बैसती रक्षण अहिमही । ३४

दोनों स्वर्ण-मृग के छाले पर निद्रिस्थ थे । अथवा (जान पड़ता था कि) भूमि पर शिवजी और विष्णु भगवान (एक-दूसरे के) समीप सोये हुए हों । २७ एक तो उनका निद्रा-सुख गहन था (अर्थात् वे प्रगाढ़ निद्रा का सुख अनुभव कर रहे थे), तिसपर उन राक्षसों ने मौन धारण किया था । (फिर उन दोनों को) शय्या-सहित उठाते हुए सिर पर रखकर वे चले गये । २८ उन्होंने एक विवर वहीं बना लिया, जो सात सहस्र योजन लम्बा था । सात घड़ियों में वे राक्षस (राम और लक्ष्मण) दोनों को लेकर चले गये । २९ आगे तेरह सहस्र योजन चौड़े दधि-समुद्र को पार करके वे गये । वहाँ लंका से भी वैशिष्ट्यपूर्ण महिकावती नामक एक नगर था । ३० जिस प्रकार काम और क्रोध नामक दोनों जने (विकार) (साधक के) आत्मस्वरूप पर आवरण बिछा देते हैं, वैसे उन निशाचरों ने राम-लक्ष्मण को एक घर में दृढ़तापूर्वक (छिपाकर) रख दिया । ३१ उस नगर के मध्य भाग में इक्कीस योजन ऊँचा तथा पक्का मन्दिर था । वह भद्रकाली देवी का मुख्य स्थान था; वह अति विशाल और भयंकर था । ३२ अस्तु । समझिए कि (उन्होंने) दधि-समुद्र के तट पर बीस करोड़ राक्षसों सहित मकरध्वज नामक एक पूरे-पूरे बलशाली व्यक्ति को पक्के रक्षण के लिए (नियुक्त कर) रख दिया । ३३ (इधर) महिकावती में राम-लक्ष्मण निद्रिस्थ थे और फिर उन्हें मोहित कर रखा था । तिसपर नागपाश में आबद्ध करके अहिरावण और महिरावण (स्वयं

असो इकडे सुवेळेसी जाण। काय जाहलें वर्तमान। निशी संपतां चंडकिरण। उदयाचळा पातला। ३५ ध्यावया रघुनाथदर्शन। समस्त पावले वानरगण। तों शय्येसहित पूर्ण। दोन्ही निधानें न दिसती। ३६ तंव देखिलें भयानक विवर। घाबरे पाहती वानर। सुग्रीवादिक कपी समग्र। गजबजिले देखोनियां। ३७ मग पाहती वानर। तों द्वादश गांवें पाय थोर। असुरांचे उमटले भयंकर। रघुवीरभक्त पाहती। ३८ या चराचराचें जीवन। जें कमलोद्भवाचें देवतार्चन। चोरीं चोरिलें म्हणोन। हृदय पिटी सुग्रीव। ३९ सकळ वानर तें आक्रंदती। धरणीवरी अंगें घालिती। एक नाम घेऊनि हांका फोडिती। धांव रघुपते म्हणोनियां। ४० जगद्वंद्या राजीवनेत्रा। कां उबगलासी आम्हां वानरां। तूं परात्पर आदिसोयरा। कोठें गेलासी उपेक्षोनि। ४१ तों बिभीषण आला धांवोन। म्हणे स्थिर असा अवघे जण। ही गोष्ट जातां बाहेर पूर्ण। येईल रावण युद्धासी। ४२ रामाविण सेना समग्र। जैसें

दोनों) रखवाली के लिए बैठ गये। ३४ अस्तु। जान लीजिए कि इधर सुवेल पर क्या बात घटित हुई। रात के समाप्त होते ही सूर्य उदयाचल पर आ पहुँचा। ३५ तो श्रीराम के दर्शन करने के लिए समस्त वानर-गण आ पहुँचे, तो उन्हें सम्पूर्ण शय्या के साथ विधान-स्वरूप वे दोनों नहीं दिखायी दिये। ३६ त्यों ही उन्होंने वह भयानक विवर देखा। वानर भयभीत होकर उसे देखने लगे। सुग्रीव आदि समस्त कपि (उस विवर को) देखकर घबरा उठे। ३७ तब वानरों ने (ध्यान से) देखा (तो दिखायी दिया) कि असुरों के बारह योजन लम्बे भयंकर पाँव (पदचिह्न) अंकित हुए थे। श्रीराम के भक्त (वे कपि उन पद-चिह्नों को) देखते ही रहे। ३८ जो इस चराचर के जीवन हैं, जो ब्रह्मा के लिए पूजनीय देवता हैं, उन श्रीराम को चोरों ने चुरा लिया है—यह देखकर सुग्रीव (शोक के मारे) छाती पीटने लगा। ३९ समस्त वानर ज़ोर से रोने लगे, वे धरती पर लोटने-पोटने लगे। किसी-किसी ने (श्रीराम का) नाम लेकर ज़ोर से पुकारकर कहा— 'हे रघुपति, दौड़ो। (दौड़ते हुए लौट आओ)। ४० हे जगद्वंद्य, हे राजीव-नेत्र, हमसे क्यों ऊब गये हो? हमारी उपेक्षा करके तुम हमारे परात्पर आद्य स्नेही कहाँ गये हो?' ४१ त्यों ही विभीषण दौड़ते हुए आ गया और बोला— 'तुम सब जने अविचल रहो। यदि यह सारी बात बाहर (विदित हो) जाए,

प्राणाविण शरीर। तरी फुटों न द्यावा समाचार। पुढें विचार करा आतां। ४३ पिंडब्रह्माण्डतत्त्वांसहित। शोधी जैसा सद्गुरुनाथ। मग वस्तु निवडी शाश्वत। सीताकान्त शोधा तैसा। ४४ कीं धुळींत हारपलें मुक्त। झारी निवडी सावचित्त। कीं वेदान्तींचा अर्थ पंडित। उकलोनियां काढी जेवीं। ४५ कीं समुद्रीं पडले वेद। ते मत्स्यरूपें शोधी मुकुंद। तैसा सीताहृदयाब्जमिलिंद। शोधोनियां काढावा। ४६ तुम्ही रघुपतीचे प्राणमित्र। भगीरथ-

तो रावण युद्ध के लिए आ जाएगा। ४२ जैसे प्राणों के बिना शरीर, वैसे बिना श्रीराम के सेना है। इसलिए यह समाचार निकलकर बाहर न जाने दें। अब आगे (का) विचार करें। ४३ जिस प्रकार सद्गुरु स्वामी पिण्ड (देह) और ब्रह्माण्ड में (पंच महा) तत्त्वों सहित ढूँढता है और तब शाश्वत ब्रह्म (-तत्त्व) का चयन करता है, उस प्रकार (समस्त ब्रह्माण्ड में) सीता-कान्त श्रीराम की खोज करो। ४४ अथवा जिस प्रकार धूल में मोती खो गया हो, तो 'झारी' * सावधानी से खोजकर निकाल लेता है, अथवा कोई पंडित जिस प्रकार वेदान्त के अर्थ को निकाल लेता है, अथवा जब समुद्र में वेद पड़ गये थे, तो जिस प्रकार मत्स्य रूप ♦ धारण करते हुए भगवान विष्णु ने उन्हें खोज निकाला, उस प्रकार (सीता के हृदय-कमल में स्थित भ्रमर) श्रीराम को खोज लो (खोजकर प्रकट करा दो)। ४५-४६ तुम रघुपति के प्राणों-से मित्र हो; भगीरथ ‡

* टिप्पणियाँ : झारी : एक विशिष्ट व्यवसायी जाति, इस जाति के लोग सुनार की दूकान से राख, धूल आदि खरीद लेते हैं और उसमें से सोना तथा तत्सम मूल्यवान पदार्थ ढूँढ़ लेते हैं।

♦ मत्स्य रूप (अवतार) : एक कल्प के अन्त में जब ब्रह्मा निद्रावस्था में थे, तो हयग्रीव नामक दैत्य ने वेदों को चुराकर समुद्र में छिपाकर रखा। कहते हैं, तब भगवान विष्णु ने मत्स्य के रूप में अवतरित होकर हयग्रीव का वध किया और वेदों को फिर से प्राप्त कर लिया।

‡ भगीरथ प्रयत्न : इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न राजा सगर द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को इन्द्र ने चुरा लिया और पाताल में ले जाकर कपिल मुनि के पीछे छिपा दिया। सगर के साठ सहस्र पुत्र घोड़े की खोज करते-करते वहाँ पहुँचे, तो तपस्या में बाधा उत्पन्न होने के कारण कपिल मुनि ने उनको क्रोधाग्नि में जला डाला। तदनन्तर सगर के प्रपौत्र भगीरथ ने महान तपस्या की और गंगा को पृथ्वी पर आने को विवश किया। अनेक आपत्तियों का सफलतापूर्वक सामना करते हुए भगीरथ ने गंगा-जल से अपने पूर्वजों का उद्धार कर लिया। भगीरथ द्वारा किये गये यत्न बेजोड़ हैं। अतः भाषा में 'भगीरथ प्रयत्न' जैसा मुहावरा 'महान प्रयत्न' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा।

प्रयत्न करूनि थोर। तुमचा प्रतापरोहिणीवर। निष्कलंक उदय पावूं द्या। ४७ तुमचे भाग्यासी नाहीं पार। सुखरूप आहे वायुकुमर। तो क्षणमात्रें रघुवीर। काढील आतां शोधूनियां। ४८ मग मारुतीपुढें वानर। घालिती कित्येक नमस्कार। म्हणती तुजविण रघुवीर। ठायीं न पडे सर्वथा। ४९ रामप्राप्तीसी कारण। तूं सद्गुरु आम्हांसी पूर्ण। काम क्रोध अहिमही निवटून। आत्माराम दाखवीं। ५० पूर्वीं सीताशुद्धि केली पाहीं। आतां रामासी पाडीं ठायीं। ऐसें ऐकतां ते समयीं। राघवप्रिय बोलत। ५१ म्हणे न लगतां एक क्षण। विरंचिगोळ हा शोधीन। बंधूसहित सीतारमण। सुवेळेसी आणितों। ५२ मग म्हणे सुग्रीवा बिभीषणा। तुम्हीं रक्षावी कपिसेना। विजयश्रियेशीं अयोध्याराणा। असुर निवटूनि आणितों। ५३ नळ नीळ अंगद जांबुवंत। घेऊनि प्रवेशे विवरांत। सात सहस्र योजनें तेथ। अंधकार घोर पैं। ५४ चौघे कासाविस होऊन। मार्गीं पडिले मूर्च्छा येऊन। मग ते

(की भाँति) बहुत प्रयत्न करके अपने प्रताप रूपी चन्द्र (श्रीराम) को निष्कलंक रूप में उदय को प्राप्त होने दो। ४७ तुम्हारे भाग्य की कोई सीमा नहीं है; (क्योंकि तुम्हारे साथ) वायु-कुमार हनुमान सकुशल है। वह क्षण मात्र में अब श्रीराम को खोज निकालेगा।' ४८ तब (ऐसा सुनते ही) वानरोंने हनुमान को कितनी ही बार नमस्कार किया और कहा— 'बिना तुम्हारे रघुवीर का बिलकुल पता नहीं चलेगा। ४९ तुम सद्गुरु (की भाँति) श्रीराम की हमारे लिए प्राप्ति कराने के लिए पूर्णतः निमित्त हो। (अब) तुम काम-क्रोध-से अहिरावण-महिरावण को नष्ट करके हमें आत्माराम-श्रीराम के दर्शन कराओ। ५० देखो, तुमने पूर्वकाल में सीता की खोज की, अब श्रीराम का पता लगा दो।' उस समय ऐसा सुनते ही राघव का प्रिय (सखा) हनुमान बोला। ५१ उसने कहा— 'एक क्षण (तक) न लगते मैं इस ब्रह्माण्ड गोल को ढूँढ़ लूंगा और बन्धु (लक्ष्मण) सहित सीता-रमण श्रीराम को सुवेल ले आऊँगा।' ५२ फिर उसने कहा— 'हे सुग्रीव, हे विभीषण, तुम कपि-सेना की रक्षा करो, (तब तक) मैं असुरों का नाश करके अयोध्या-पति को विजय-श्री-सहित ले आता हूँ।' ५३ (तदनन्तर) नल, नील, अंगद और जाम्बवान को (साथ में) लिये हुए वह विवर में प्रविष्ट हो गया। वहाँ सात सहस्र योजन (तक) घना अँधेरा (फैला हुआ) था। ५४ वे चारों जने अति

मारुतीनें बांधोन। आणिले उचलोनि बाहेरी। ५५ लागतांचि शीतळ पवन। सावध जाहले चौघे जण। प्रकाश देखोनियां नयन। उघडिते जाहले ते काळीं। ५६ तंव वीस कोटी राक्षस घेऊन। मकरध्वज बैसला रक्षण। मग पांचही वेष पालटून। कावडी होऊनि चालिले। ५७ तंव दटाविती असुर तयांतें। कोठें रे जातां येणें पंथें। येरू म्हणती जातों तीर्थातें। महिकावती पाहावया। ५८ अंतरिक्षीं करोनि उड्डाण। घेऊं कालिकेचें दर्शन। ऐसें ऐकतांचि वचन। सर्व राक्षस क्षोभले। ५९ सबळ दंड उचलून। कपींसी करिती ताडण। मग हनुमंतें पायीं धरून। मारिले आपटून तत्काळीं। ६० ऐसें देखतां विपरीत। राक्षस धांवले समस्त। प्रतापरुद्र हनुमंत। जैसा कृतान्त क्षोभला। ६१ असंख्यात कुंजरभारीं। प्रवेशती पांच केसरी। तैसे पांचांनीं ते अवसरीं। राक्षस सर्व मारिले। ६२ वीस कोटी पिशिताशन। पांच वीरीं भारे बांधोन। पृथ्वीवरी आपटून। समुद्रांत भिरकाविले। ६३ तों मकरध्वज धांवोन।

व्याकुल होते हुए मार्ग में मूर्च्छित होकर पड़ गये। तब हनुमान उन्हें बाँधते हुए उठाकर बाहर ले आया। ५५ शीतल पवन के लगते ही वे चारों जने सचेत हो गये और उस समय प्रकाश को देखते ही उन्होंने आँखें खोल दीं। ५६ तब (दिखायी दिया कि) बीस करोड़ राक्षसों को लिये हुए मकरध्वज (रक्षा के लिए) रक्षक के रूप में बैठा हुआ था। फिर भेस बदलते हुए वे पाँचों जने काँवरिये बनकर चल दिये। ५७ तब असुरों ने उनको (यह पूछते हुए) डराया— 'अरे इस मार्ग से कहाँ जा रहे हो ?' (इसपर) वे बोले— 'हम तीर्थ-स्थली महिकावती देखने जा रहे हैं। ५८ आकाश में उड़ान भरकर हम काली देवी के दर्शन कर लेंगे।' ऐसी बात सुनते ही वे सब राक्षस क्षुब्ध हो उठे। ५९ (और) बड़ी-बड़ी (भारी) लाठियाँ उठाकर वे उन वानरों को पीटने लगे। तब हनुमान ने उनके पाँव पकड़कर पटकते हुए तत्काल मार डाला। ६० ऐसी विपरीत घटना देखते ही समस्त राक्षस दौड़ते हुए आ गये, तो प्रतापरुद्र हनुमान कृतान्त यम की भाँति क्षुब्ध हो उठा। ६१ जिस प्रकार पाँच सिंह अनगिनत हाथियों के समूह में प्रविष्ट हो जाते हों (और उन्हें मार डालते हों), उस प्रकार उस समय उन पाँचों ने सब राक्षसों को मार डाला। ६२ बीस करोड़ राक्षसों को, गट्ठर बनाकर पृथ्वी पर पटकते हुए उन पाँच वीरों ने समुद्र में फेंक दिया। ६३ त्यों ही दौड़ते हुए

भिडला मारुतीसीं येऊन। मुष्टिप्रहारेंकरून। एकमेकासीं ताडिती। ६४ सप्त पाताळें दणाणत। परम क्षोभला हनुमंत। हृदयीं देऊनि मुष्टिघात। मकरध्वज पाडिला। ६५ वक्षस्थळीं मारुति बैसोन। म्हणे तुज आतां सोडवील कोण। येरू म्हणे अंजनीनंदन। जवळी नाहीं ये काळीं। ६६ तो जरी येता धांवोन। तरी तुज करता शतचूर्ण। तोचि माझा पिता जाण। ऐकोनि मारुती शंकला। ६७ मग तयासी हातीं धरून। म्हणे सांग कैसें वर्तमान। ब्रह्मचारी हनुमंत पूर्ण। तूं सुत कैसा जाहलासी। ६८ मीच हनुमंत रुद्रावतार। तूं म्हणवितोसी माझा कुमर। सांगाती हांसती साचार। सांग प्रकार कैसा तो। ६९ येरू म्हणे लंकादहन। करून येतां वायुनंदन। स्वेदें शरीर संपूर्ण। ओलावलें ते काळीं। ७० तो स्वेद निपटोन। कपाळींचा टाकिला जाण। तो समुद्रीं पडतां मगरीनें। गिळिला तोचि मी जन्मलों। ७१ ऐसा वृत्तान्त सांगूनी। पुढें मस्तक ठेविला

आकर मकरध्वज हनुमान से भिड़ गया, तो वे एक-दूसरे को घूँसों के आघातों से पीटने लगे। ६४ (तब) सातों पाताल * दनदना उठे। हनुमान परम क्षुब्ध हो उठा और उसने सीने पर घूँसे से आघात करके मकरध्वज को गिरा दिया। ६५ (फिर) उसकी छाती पर बैठकर हनुमान बोला— 'अब तुझे कौन छुड़ाएगा?' (इसपर) वह बोला— 'अंजनी-नन्दन (हनुमान) इस समय पास नहीं है। ६६ यदि वह दौड़कर आ जाता, तो तुझे चूर-चूर कर डालता। समझ ले कि वही मेरा पिता है।' यह सुनते ही हनुमान सन्देह को प्राप्त हुआ। ६७ फिर उसे हाथ से थामते हुए बोला— 'बता दे, यह कैसी (क्या) बात है। हनुमान तो पूर्ण ब्रह्मचारी है, (तब) तू उसके पुत्र के रूप में कैसे उत्पन्न हुआ। ६८ मैं ही रुद्रावतार हनुमान हूँ और तू (अपने को) मेरा पुत्र कहाता है। (यह सुनकर) सचमुच (मेरे) साथी हँस रहे हैं। (अतः) बता दे कि यह कैसी घटना है।' ६९ (इसपर) उसने कहा— 'लंका को जलाकर आते हुए वायुनन्दन का सम्पूर्ण शरीर उस समय पसीने से गीला हो गया था। ७० समझो कि भाल-(प्रदेश) के उस पसीने को पोंछते हुए उसने गिरा दिया। उसके समुद्र में पड़ते ही एक मगरी ने निगल डाला। उसी के

---

* टिप्पणी : सात पाताल— अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल। (दूसरी मान्यता के अनुसार : भूतल, भवांगतल, भिन्नतल, आदितल, आधारतल, सर्वातल, उभयानकुलतल।)

चरणीं। तों मगरी आली धांवोनी। वल्लभासी पाहावया। ७२ म्हणे स्वरूप दिसतें लहान। जेव्हां केलें लंकादहन। त्या काळींचें स्वरूप पूर्ण। प्रकटून संशय फेडावा। ७३ मग भीम-रूप धरिलें ते क्षणीं। मगरी लागली दृढ चरणीं। म्हणे चिंता न करावी मनीं। अयोध्यानाथ सुखी असे। ७४ अहिमही कपटी दोघे जण। घेऊनि आले रामलक्ष्मण। उदयीक देवीपुढें नेऊन। बळी समर्पितील दोनप्रहरां। ७५ आपण देउळांत जाऊन। बैसावें गुप्तरूपेंकरून। ते स्थळीं राम लक्ष्मण। भेटतील तुम्हांसी। ७६ ऐसें ऐकतां सीताशोकहरण। बोलता जाहला संतोषोन। म्हणे असुरांतें वधोन। तुझा नंदन स्थापीन त्या स्थळीं। ७७ येरी म्हणे महिकावती नगर। त्रयोदश सहस्र योजनें दूर। आडवा समुद्र दुस्तर। तरी विचार माझा एक ऐका। ७८ तुम्हीं पांचही बलवंत। बसावें माझे वदन-नौकेंत। महिकावतीस नेऊन त्वरित। पुढती आणीन या स्थळीं। ७९ नळ नीळ अंगद जांबुवंत। ऐकतां जाहले

फलस्वरूप मैं जन्म को प्राप्त हुआ।' ७१ ऐसा समाचार कहते हुए पुत्र ने (हनुमान के) चरणों में मस्तक रखा; तब वह मगरी अपने प्रियतम को देखने के लिए दौड़ती हुई आ गयी। ७२ उसने कहा—'(तुम्हारा यह) रूप तो छोटा दिखायी देता है। तुमने जब लंका का दहन कर लिया था, उस समय के अपने सम्पूर्ण रूप को प्रकट करते हुए मेरे संशय का निराकरण करो।' ७३ तब उस क्षण हनुमान ने प्रचण्ड रूप धारण किया। (उसे देखते ही) वह मगरी दृढ़तापूर्वक उसके पाँव लग गयी और बोली—'मन में चिन्ता न करना, अयोध्यानाथ सकुशल हैं। ७४ अहिरावण और महिरावण दोनों जने कपटी हैं। वे राम-लक्ष्मण को ले आये हैं। देवी के सामने ले जाकर वे कल दुपहर बलि के रूप में उन्हें समर्पित कर देंगे। ७५ मन्दिर में जाकर तुम गुप्त रूप से बैठना। उस स्थान पर राम-लक्ष्मण तुमसे मिलेंगे।' ७६ ऐसा सुनने पर सीता-शोकहरण हनुमान सन्तुष्ट होकर बोला—'उन असुरों का वध करके मैं तुम्हारे पुत्र की उस स्थान पर (राजा के रूप में) स्थापना करूँगा।' ७७ (यह सुनकर) वह बोली—'महिकावती नगरी यहाँ से तेरह सहस्र योजन दूर है; बीच में पार करने के लिए कठिन समुद्र है। इसलिए मेरा एक विचार (बात) सुनो (मानो)। ७८ तुम पाँचों बलवान हो, मेरी मुखरूपी नौका में बैठो, तो मैं महिकावती में (तुम्हें) झट से ले जाकर फिर इस

भयभीत। म्हणती मगरमिठी अद्भुत। भक्षील उदकांत नेऊनियां। ८० तरी मारुति ऐकें वचन। आम्ही रक्षितों हें स्थान। तुजवांचोनि सिंधुलंघन। सर्वथा नव्हे कोणासी। ८१ मग तेथें उभा राहोन। हनुमंतें चिंतिले श्रीरामचरण। जय यशस्वी श्रीराम म्हणोन। अकस्मात उडाला। ८२ मनोवेगें हनुमंत। आला तेव्हां महिकावतींत। एकवीस दुर्ग रक्षकां-सहित। कोणासी न कळत ओलांडिले। ८३ अणुरेणूहूनि लहान। जाहला सीताशोकहरण। भद्रकालीचें देवालय देखोन। आंत संचरला ते काळीं। ८४ कापटच अनुष्ठानें बहुत। राक्षस करिती देवळांत। मद्य मांस विप्रप्रेत। पूज-नासी ठेविलें। ८५ भ्रष्ट शास्त्रें काढिती। एकासी एक वचन देती। ऐसें करितां मोक्षप्राप्ती। प्रमाण ग्रंथीं लिहिलें असे। ८६ ऐसें ऐकतां रामभक्त। म्हणे यांसी कैंचा मोक्ष प्राप्त। आतां कपाळमोक्ष त्वरित। पावती हस्तें माझिया। ८७ असो

स्थान पर लौटा लाऊँगी।' ७९ यह सुनते ही नल, नील, अंगद और जाम्बवान भयभीत हो गये और बोले— 'मगर से यह भेंट तो अद्‌भुत है— वह तो पानी में ले जाकर खा डालेगा। ८० अतः हे हनुमान, मेरी बात सुनो। हम इस स्थान की रक्षा करेंगे। बिना तुम्हारे, किसी से भी समुद्र को पार नहीं किया जा पाएगा।' ८१ तब वहाँ खड़े होकर हनुमान ने श्रीराम के चरणों का स्मरण किया और वह 'कीर्तिमान श्रीराम की जय' कहते हुए अकस्मात उड़ गया। ८२ फिर मन की-सी गति से हनुमान महिकावती में आ गया। किसी के द्वारा भी न जान पाये, उसने रक्षकों सहित इक्कीस दुर्गों को लाँघ दिया। ८३ वह सीता-शोकहरण अणु-परमाणु से (भी) सूक्ष्म हो गया और भद्रकाली देवी के मन्दिर को देखकर उस समय अन्दर प्रविष्ट हो गया। ८४ उस देवालय में राक्षस बहुत-से कपट-भरे अनुष्ठान कर रहे थे। पूजन के लिए (पुजापे के रूप में) उन्होंने मद्य, मांस और ब्राह्मण का प्रेत रखा था। ८५ वे भ्रष्ट शास्त्रों (की उक्तियों) को निकाल (अर्थात् प्रस्तुत कर) रहे थे। एक पर (प्रत्युत्तर के रूप में) एक अवतरण प्रस्तुत कर रहे थे (और कह रहे थे कि) प्रमाण ग्रन्थों में ऐसा लिखा है कि ऐसा करने पर मुक्ति प्राप्त होती है।' ८६ रामभक्त हनुमान ने ऐसा सुनने पर कहा (सोचा)— 'इन्हें अब मोक्ष कैसे प्राप्त होगा; मेरे हाथों अब शीघ्र ही ये अपने मस्तकों के नाश को प्राप्त हो जाएंगे अर्थात् मैं इनके मस्तक फोड़

देवालयीं जाऊनि महारुद्र। देवी उचलोनि सत्वर। नाहाणींत टाकूनि द्वार। दृढ झांकिलें हनुमंतें। ८८ वज्रकपाटें देऊनी। आपण बैसला देवीस्थानीं। सर्वांगीं शेंदूर चर्चूनी। जाहला भवानी हनुमंत। ८९ देवी मारुतीकडे पाहात। तों भयानक रूप दिसे अद्भुत। जैसा हरिणीचे गृहांत। महाव्याघ्र प्रवेशला। ९० तों येरीकडे असुर बहुत। षड्रस अन्नांचे पर्वत। पूजासामुग्री अद्भुत। घेऊनि अहिमही तेथें पातले। ९१ तो वज्रकपाटें दीधलीं। तीं न उघडती कदाकाळीं। एक म्हणती देवी क्षोभली। म्हणूनि स्तुति करिताती। ९२ ऐसा लोटला एक मुहूर्त। तों रुद्ररूपिणी आंत बोलत। म्हणे धन्य तुम्ही भक्त। बळीसी रघुनाथ आणिला। ९३ लंकेपुढें बहुतांचे प्राण। मींच घेतले सत्यवचन। तुमचें करावया भोजन। येथें साक्षेपें पातलें। ९४ माझें रूप बहुत तीव्र। पाहतां जातील तुमचे नेत्र। तरी पाडूनि गवाक्षद्वार। पूजा आधीं समर्पा। ९५ ऐसें देवी बोले आंतूनी। अहिमही हर्षले ते क्षणीं। म्हणती

डालूँगा।' ८७ अस्तु। महारुद्र (के अवतार उस) हनुमान ने देवालय में जाकर, देवी को उठाकर उसे मोरी में फेंकते हुए द्वार को दृढ़ता पूर्वक बन्द किया। ८८ फिर वज्र (-से अभेद्य) किवाड़ों को बन्द करके हनुमान स्वयं देवी के स्थान पर बैठ गया और समस्त अंगों में सिंदूर मलकर वह 'भवानी हनुमान' बन गया। ८९ देवी ने हनुमान को देखा, तो उसका भयानक रूप अद्भुत दिखायी दे रहा था। मानो हिरनी के घर बड़ा बाघ ही प्रविष्ट हो गया हो। ९० तो इधर बहुत राक्षसों तथा छः रसों से युक्त अन्न के पर्वतों और अद्भुत पूजा-सामग्री को लिये हुए अहिरावण-महिरावण वहाँ आ पहुँचे। ९१ तब जो वज्र-से किवाड़, बन्द किये गये थे, वे तो कभी भी नहीं खुलते थे। तो कोई-कोई बोले— '(जान पड़ता है) देवी क्षुब्ध हो गयी है।' इसलिए वे स्तवन करने लगे। ९२ इस प्रकार एक मुहूर्त (दो घड़ियाँ समय) बीत गया, तो रुद्र-रूपिणी देवी अन्दर से बोली— 'तुम रघुनाथ को बलि के लिए लाये हो। ९३ तुम धन्य हो। यह बात सत्य है, लंका के सामने (पास) मैंने ही बहुतों के प्राण (छीन) लिये। (अब) तुम्हारा भोजन करने के लिए मैं यहाँ सोच-समझकर आ पहुँची हूँ। ९४ मेरा रूप बहुत उग्र है। उसे देखते ही तुम्हारी आँखें (नष्ट हो) जाएँगी। इसलिए छेद बनाकर उसमें से पहले पूजा-द्रव्य समर्पित करो।' ९५ देवी द्वारा अन्दर से ऐसा

धन्य आम्ही त्रिभुवनीं। भक्तशिरोमणी दोघेही। ९६ मग देऊळमस्तकीं विशाळ। गवाक्ष पडिलें तत्काळ। पंचामृताचे घट सजळ। स्नानालागीं ओतिले। ९७ तों मुख पसरूनि हनुमंत। घटघटां प्राशी पंचामृत। पाठीं शुद्धोदक ओतीत। प्रक्षाळिलें मुख तेणें। ९८ धूप दीप वास ते समयीं। देवीस म्हणे हें तूं घेईं। सवेंच म्हणे भक्तां लवलाहीं। नैवेद्य झडकरी येऊं द्या। ९९ मग भरोनि विशाळ पात्रें। अन्नें ओतिती एकसरें। जय जय देवी म्हणोनि गजरें। असुर सर्व गर्जती। १०० सव्य अपसव्य हस्तेंकरूनी। स्वाहा करीत रुद्ररूपिणी। जैसा दावाग्नि चेतला वनीं। तो नाना काष्ठें भक्षीत। १ पंचभक्ष्य परमान्न। बहुत रंगाचें ओदन। शाखा लवणशाखा आणोन। असंख्यात रिचविती। २ दधि दुग्ध घृत नवनीत। यांचे पाट सोडिले बहुत। जैशा वर्षाकाळीं सरिता धांवत। समुद्रासी

बोलते ही उस क्षण अहिरावण-महिरावण आनन्दित हो गये और बोले— 'हम दोनों भी भक्त-शिरोमणि त्रिभुवन में धन्य हैं।' ९६ अनन्तर देवालय के मस्तक, अर्थात् शिखर में उन्होंने तत्काल एक छेद बना लिया और (देवी के) स्नान के लिए जल-सहित पंचामृत से भरे हुए घट उँडेल दिये। ९७ तब मुँह फैलाकर हनुमान ने पंचामृत को * गटगट पी डाला। फिर (राक्षसों ने) शुद्ध जल उँडेल दिया, तो उसने मुँह धो लिया। ९८ उस समय वह देवी से बोला— 'तुम यह धूप, दीप तथा सुगन्ध लो।' और साथ ही भक्तों से बोला— 'झट से नैवेद्य भोग को आने दो।' ९९ तब वे (असुर) विशाल पात्रों को भरकर एक साथ ही अन्न (अन्दर) उँडेलने लगे। 'देवी की जय हो, जय हो' कहते हुए समस्त असुर गर्जन कर रहे थे। १०० वन में दावाग्नि प्रज्वलित हुई हो, तो वह जैसे नाना काष्ठों को खा डालती है (जला डालती है), वैसे ही वह रुद्र-रूपिणी देवी दायें-बायें हाथ से (समस्त पदार्थों को) खा डालती थी। १०१ पंचभक्ष्य ‡ पदार्थ, बढ़िया मिष्ठान्न, बहुत रंगों के भात, सब्जियाँ, नमक मिलाये हुए फल या अचार असीम मात्रा में लाकर वे डाल रहे थे। २ दही, दूध, घी, मक्खन के बहुत प्रवाह बहा दिये। देखकर लगता था, जैसे

---

* टिप्पणियाँ : पंचामृत— दूध, दही, घी, मधु और चीनी के मिश्रण से बना हुआ घोल जिसे लोग पूजा के समय देवताओं को चढ़ाते हैं तथा स्वयं प्रसाद के रूप में पीते हैं।

‡ पंचभक्ष्य— छुहारे, नारियल, दाल, खील और चावल। अथवा नारियल, गुड़, चने की दाल आदि पाँच पदार्थों का नैवेद्य।

भेटावया । ३ पुजारे लोह्दंडें घेउनी । मोकळी करिती तेव्हां नहाणी । प्रसाद बाहेर यावा म्हणोनी । प्रयत्न करिती बहुसाल । ४ तंव तेथें देवी बैसली भयभीत । तिजवरी लोहदंड आदळत । ती म्हणे संकट बहुत । मज येथें ओढवलें । ५ असुरीं आणिले दशरथसुत । नैवेद्य ग्रासितो हनुमंत । मज ताडण होय येथ । कोणासी अनर्थ सांगों हा । ६ असो नाहाणी मोकळी करिती असुर । परी कांहींच न ये बाहेर । म्हणती आजि देवीनें समग्र । ग्रासिलें हाचि निर्धार पैं । ७ वृद्ध वृद्ध असुर बोलत । कैंची देवी मांडिला अनर्थ । इंहीं चोरूनि आणिला रघुनाथ । बरवा अर्थ दिसेना । ८ रावणें चोरिली सीता सुंदर । तेथें अकस्मात आला एक वानर । तेणें नगर जाळूनि समग्र । केला संहार बहुतांचा । ९ तैसेंच मांडलें येथ । ऐसें बोलोनि बुद्धिवंत । निजस्थानासीं त्वरित । जाते जाहले ते काळीं । ११० असो इकडे अन्नाचे पर्वत । ओतितां असुर भागले समस्त । परी देवी नव्हेच तृप्त । पुरे न म्हणे

वर्षाकाल में नदियाँ समुद्र में मिलने के लिए दौड़ रही हों । ३ तब पुजारियों ने हाथों में लोह-दण्ड लेकर मोरी को खुला कर दिया । वे बहुत प्रयत्न कर रहे थे ताकि प्रसाद बाहर आ जाए । ४ तब वहाँ देवी भयभीत हुई बैठी थी । उसपर लोह-दण्ड टकराते थे । उसने कहा (सोचा)— यहाँ मुझ पर बहुत बड़ी आपत्ति आ पड़ी है । ५ असुर दशरथ के पुत्रों को लाये हैं; (उधर) हनुमान नैवेद्य (भोग) खा रहा है, तो इधर मेरी पिटाई हो रही है । (अब) यह संकट मैं किससे कहूँ ? ६ अस्तु । असुरों ने मोरी को खुलाकर दिया, तो भी कुछ भी बाहर नहीं आ रहा था । (तब) उन्होंने कहा— ' यह निश्चय है कि देवी ने आज सब निगल डाला । ' ७ (यह देखकर) बूढ़े-बूढ़े असुर बोले— ' यह कैसी देवी है, जिसने ऐसा अनर्थ ठान लिया है । ये रघुनाथ को चुरा लाये हैं; इसका परिणाम ठीक नहीं दिखायी दे रहा है । ८ रावण ने सुन्दरी सीता को चुरा लिया, तो वहाँ एक वानर अकस्मात आ गया । उसने समस्त नगर को जलाकर बहुतों का संहार कर डाला । ९ (किसी ने) वैसा ही यहाँ आरम्भ किया है । ' ऐसा बोलते हुए वे बुद्धिमान राक्षस उस समय झट से अपने-अपने स्थान (घर) चले गये । ११० अस्तु । इधर अन्न के पहाड़ (अन्दर) गिराते हुए समस्त असुर थक गये । परन्तु देवी तृप्त नहीं हो रही थी और बिलकुल नहीं कहती थी ' पर्याप्त

सर्वथा । ११ मग घातलें शुद्ध जळ । सवेंचि अर्पिले तांबूल । तेव्हां हांक फोडूनि प्रबळ । रुद्ररूपिणी बोलतसे । १२ म्हणे मी तुष्टल्यें आजि पूर्ण । तुम्हांसी अक्षयपद देईन । तुम्ही आणि लंकापति रावण । करीन समान दोहींचें । १३ माझी प्रसन्नता लवलाह्या । आतांच येईल प्रत्यया । ऐसे शब्द देवीचे परिसोनियां । शाहाणे चालिले गृहासी । १४ देवी म्हणे याउपरी । राम सौमित्र आणा झडकरी । सगळेचि घाला देउळाभीतरीं । याउपरी कौतुक पाहा । १५ सच्चिदानंद रघुवीर । ज्याचिया स्वरूपा नाहीं पार । जो वेदशास्त्रांसीं अगोचर । त्यास गिळीन सगळाचि । १६ ऐसे शब्द देवीचे ऐकोन । हर्षले अहिमही दोघेजण । वीस असुर चालिले घेऊन । रामलक्ष्मण आणावया । १७ रविकुळींचीं निधानें दोन्हीं । ठेविलीं नागपाशीं आकर्षूनी । तीं सोडोनियां ते क्षणीं । रथासी दृढ बांधिले । १८ मग काढिलें मोहनास्त्र । सावध जाहले रामसौमित्र । राजीवाक्ष उघडीं नेत्र । तों सभोंवते असुर दाटले । १९ श्रीराम सौमि-

---

हो गया ।' ११ तो उन्होंने शुद्ध जल डाल दिया, साथ ही बीड़े समर्पित कर दिये । तब ज़ोर से गरजते हुए रुद्र-रूपिणी देवी बोलने लगी । १२ वह बोली— 'मैं आज पूर्णतः तृप्त हुई हूँ । (अतः) मैं तुम्हें अक्षय पद प्रदान करूँगी । तुम और लंकापति रावण दोनों का पद समान कर दूँगी । १३ मेरी प्रसन्नता अभी शीघ्रता से अनुभव होगी ।' देवी द्वारा कहे हुए ऐसे शब्द सुनते ही समझदार (लोग) घर की ओर चल दिये । १४ इसपर देवी बोली— 'राम और लक्ष्मण को झट से लाओ । उन्हें पूरे ही मन्दिर के अन्दर डाल दो और इसके पश्चात् (मेरी) लीला देखो । १५ मैं उस रघुवीर को पूर्णतः निगल डालूँगी, जो सच्चिदानन्द है, जिसके स्वरूप की कोई सीमा नहीं है, जो वेदों तथा शास्त्रों (तक) के लिए अगम्य है ।' १६ देवी के ऐसे शब्दों को सुनकर अहिरावण-महिरावण दोनों जने आनन्दित हो गये । (फिर) वे बीस असुरों को लेकर राम-लक्ष्मण को ले जाने के लिए चल दिये । १७ रवि-कुल के धन-भण्डार (-से) उन दोनों को उन्होंने नागपाश में आबद्ध कर रखा था । उस क्षण उन्हें छुड़ाकर उन्होंने रथ से दृढ़ता से बाँध लिया । १८ फिर उन्होंने मोहनास्त्र को हटा लिया, तो राम और लक्ष्मण सचेत हो गये । जब कमल-नयन राम ने आँखें खोलीं, तो (देखा कि) चारों ओर राक्षस इकट्ठा हुए हैं । १९ (यह देखकर) श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—अरे, शत्रु

त्रासी बोले। बा रे शत्रूंनीं आपणासी आणिलें। आमुचे धनुष्यबाण हिरोनि नेले। रथीं बांधिलें दृढ आम्हां। १२० जानकीसारिखें चिद्रत्न। गेलें दुःखसागरीं बुडोन। भरत त्यागील आतां प्राण। हें वर्तमान जातांचि। २१ कौसल्या सुमित्रा दोघीजणी। प्राण देतील ऐकतां क्षणीं। वसिष्ठादि महामुनी। दुःखचक्रीं पडतील। २२ बिभीषण सुग्रीव हनुमंत। नळ नीळ अंगद जांबुवंत। माझे प्राणसखे समस्त। प्राण देतील ऐकतां। २३ देव समस्त बंदीं पडले। त्यांचे धैर्यदुर्ग आजि खचले। क्षुधित पात्रावरूनि उठविले। तैसें झाले देवांसी। २४ आतां असावें धैर्य धरून। जरी संकटीं पावेल उमारमण। तरी हें क्षणमात्रें विघ्न। निरसोनि जाईल सौमित्रा। २५ जो साक्षात रुद्रावतार। तो आमुचा हनुमंत साचार। येथें जरी पातला सत्वर। तरी असुर संहरिता। २६ साक्षात शेष नारायण। अवतारी पुरुष रामलक्ष्मण। समयासारिखें वर्तमान। दाविती खूण जाणिजे। २७ असो राक्षसीं रामसौमित्र। रथीं बांधिले दृढ सत्वर। सिंदूरवर्ण पुष्प-

---

हमें (यहाँ) ले आये हैं। वे हमारे धनुष-बाण छीन ले गये हैं और उन्होंने हमें रथ से दृढ़ता से बाँध दिया है। १२० इस समाचार के पहुँच जाते ही (समझ लो कि) जानकी जैसा चिद्-रत्न दुःख-सागर में डूब जाए; भरत तो अब प्राण त्याग देगा। २१ इसे सुनते क्षण कौसल्या और सुमित्रा दोनों जनी प्राणों को त्याग देंगी। वसिष्ठ आदि महान मुनि दुःखचक्र में पड़ जाएँगे। २२ इसे सुनते ही विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, नल, नील, अंगद जाम्बवान— मेरे समस्त प्राण-सखा प्राण त्याग देंगे। २३ समस्त देव बन्दी-गृह में पड़े हुए हैं। आज उनके धैर्य रूपी दुर्ग ढह जाएँगे। किसी भूखे को थाली पर से उठा दिया हो, (तो उसकी जो स्थिति हो जाएगी) वैसी स्थिति देवों की हो गयी है। २४ अब हम धैर्य धारण करके रहें। हे लक्ष्मण, यदि शिवजी इस संकट में सहायक (के रूप में प्राप्त) हों, तो क्षण मात्र में यह विघ्न दूर हो जाएगा। २५ जो साक्षात् रुद्र का अवतार है, वह हमारा हनुमान सचमुच झट से आ पाता, तो वह असुरों का संहार कर डालता। २६ (वस्तुतः) राम और लक्ष्मण अवतार ग्रहण करनेवाले पुरुष प्रत्यक्ष भगवान नारायण और शेष हैं। (फिर भी) यह संकेत समझिए कि वे समय के अनुसार आचरण प्रदर्शित कर रहे थे। १२७

हार। गळां घातले तेधवां। २८ वरी उधळिती शेंदूर। पुढें होतसे वाद्यांचा गजर। नग्न शस्त्रें करून समग्र। असुर हांका फोडिती। २९ चालविले तेव्हां मिरवत। तंव नगरलोक आले समस्त। पाहावया श्रीरघुनाथ। एक चढती गोपुरीं। १३० देखतां दोघे सुकुमार। लोकांसी न धरवे गहिंवर। नेत्रीं स्रवों लागलें नीर। हाहाकार जाहला। ३१ नरनारी आक्रंदत। एकचि वर्तला आकान्त। चराचर जीव समस्त। पाहूनि रघुनाथ शोक करिती। ३२ तीन प्रदक्षिणा करून। देउळीं आणिले दोघेजण। देवीचीं कपाटें उघडून। आंत लोटोनि दीधले। ३३ कपाटें देऊन पुढतीं। राक्षस गोंधळ घालिती। हातीं दिवटया घेऊनि नाचती। मद्य प्राशिती उन्मत्त। ३४ इकडे देउळांत रामलक्ष्मण। पाहती देवीसी विलोकून। तंव तिनें पसरिलें वदन। मुख जैसें काळाचें। ३५ हांक दीधली भयंकर। म्हणे तुम्ही दोघे राजपुत्र। तुम्हांसी गिळीन सत्वर।

अस्तु। राक्षसों ने राम और लक्ष्मण को रथ से झट से दृढ़ता से बाँध लिया और तब उनके गले में सिंदुरिया रंग के पुष्पहार पहना दिये। २८ वे ऊपर से सिंदूर उछाल रहे थे। आगे वाद्यों का गर्जन हो रहा था। वे सब असुर शस्त्रों को नंगा करके, अर्थात् आवरणों को हटाकर ज़ोर से चिल्ला रहे थे। २९ तब वे (श्रीराम और लक्ष्मण को) गाजे-बाजे के साथ समारोह-पूर्वक घुमा रहे थे, तो नगर के समस्त लोग श्रीराम को देखने के लिए आ गये। कोई-कोई गोपुरों पर चढ़ गये थे। १३० उन दोनों सुकुमारों को देखकर लोग गद्‌गद होने से अपने आपको नहीं रोक सके। उनकी आँखों से अश्रु-जल झरने लगा। (चारों ओर) हाहाकार मच गया। ३१ स्त्री-पुरुष (-सब) रोने लगे; अपूर्व-अद्‌भुत बावेला मच गया। चराचर, समस्त जीव रघुनाथ को देखकर शोक कर रहे थे। ३२ तीन परिक्रमाएं करके वे दोनों जने मन्दिर में लाये गये और देवी (के मन्दिर) के द्वार खोलकर उनको अन्दर धकेल दिया। ३३ द्वारों को फिर से बन्द करके राक्षस कोलाहल करने लगे। वे हाथों में मशालें लेकर नाच रहे थे और मद्य पीकर उन्मत्त हो रहे थे। ३४ इधर मन्दिर में राम-लक्ष्मण ने जब देवी को ध्यान से देखा, तो उसने अपने मुँह को फैला दिया, मानो वह काल का ही मुँह हो। ३५ फिर वह भयावह रूप से चिल्ला उठी और बोली— 'तुम दोनों राज-पुत्र हो। मैं तुम्हें झट से निगल डालूंगी, (अतः) तुम अपने कुल-देवता का स्मरण करो। ३६

तरी स्मरण करा कुळदैवत । ३६ तुमचा प्राणसखा असेल पाहीं । त्यासी चिंतावें देहान्तसमयीं । यावरी तो जनकजांवई । काय बोलता जाहला । ३७ जरी अनर्थीं पडिले भक्त । तरी माझें स्मरण करीत । तो मी आजि रघुनाथ । संकटीं स्मरूं कोणासी । ३८ तरी माझिया प्राणांचा प्राण । जिवलग सखा वायुनंदन । तो असता तरी विघ्न । कदा न लागतें आम्हांसी । ३९ आतां मारुतीऐसा स्नेह विशेष । माये तूंचि करीं कां आम्हांस । कीं जननी पाळी बाळकांस । प्रीति बहुत धरूनियां । १४० ऐकतां रघुपतीचें वचन । कपीचे नेत्रीं लोटलें जीवन । स्फुंदस्फुंदोनि वायुनंदन । धरी चरण रामाचे । ४१ तेणें नयनोदकेंकरून । प्रक्षाळिले रामचरण । मग तो सीताशोकहरण । रूप आपुलें प्रकट करी । ४२ दृष्टीं देखतां हनुमंत । प्रेमे दाटला रघुनाथ । उठोनि हृदयीं आलिंगीत । काय दृष्टान्त देऊं तेथें । ४३ कवींनीं तर्क केले बहुत । परी त्या सुखास नाहीं दृष्टान्त । पाठिराखा कैवारी भक्त । मारुतीऐसा नव्हेचि । ४४ मारुतीस

देखो, (यदि) तुम्हारा जो कोई प्राण (प्रिय) सखा हो, देहान्त के समय उसका स्मरण करना ।' इसपर (जनक के जामाता) वे श्रीराम क्या बोले ? (सुनिए) । ३७ (वे बोले—) 'यदि भक्त संकट में पड़ जाते हैं, तो वे मेरा स्मरण करते हैं । वह मैं श्रीराम आज संकट (के समय) में किसका स्मरण करूँ ? ३८ फिर भी मेरे प्राणों का प्राण, मेरा प्राण-प्रिय सखा वायु-नन्दन यदि (यहाँ) होता, तो हम पर कभी भी संकट न आता । ३९ हे माता, तुम ही हमसे उस हनुमान का-सा विशेष स्नेह करना । अथवा बहुत प्रेम धारण करके जननी बालकों का पालन करती है ।' १४० (इस प्रकार) श्रीराम की बातें सुनते ही उस वानर की आँखों में (अश्रु-) जल भर आया । (तब) हनुमान ने सुबकते-सुबकते श्रीराम के चरण पकड़ लिये । ४१ उसने उस नयन-जल से श्रीराम के चरणों का प्रक्षालन किया । (तत्पश्चात्) उस सीता-शोक-हरण हनुमान ने अपने रूप को प्रकट किया । ४२ हनुमान को आँखों से देखते ही श्रीराम का प्रेम से गला भर आया; तो उन्होंने उठकर हृदय से लगाते हुए उसका आलिंगन किया । यहाँ इसके लिए मैं क्या दृष्टान्त प्रस्तुत करूँ ? ४३ कवियों ने बहुत अनुमान किये, फिर भी उस सुख के लिए कोई दृष्टान्त (उदाहरण) नहीं (उपलब्ध) था । हनुमान जैसा (आराध्य देवता का) कोई सहायक तथा रक्षक भक्त अन्य कोई नहीं

म्हणे रघुवीर। म्यां घेतले अनंत अवतार। परी तुझे न विसरें उपकार। कल्पान्तींही हनुमंता। ४५ तुझिया उपकारा नाहीं मिती। काय काय आठवूं मारुती। असो यावरी ऊर्मिलापती। हनुमंतासी भेटला। ४६ श्रीराम म्हणे हनुमंता। कैसे शत्रु वधावे आतां। येरू म्हणे तुम्हीं चिंता। न करावी कांहीं मानसीं। ४७ तुम्ही मागें असा लपोन। एकेक असुर बोलावून। तयांचीं शिरें छेदून। करीन चूर्ण येथेंचि। ४८ राम म्हणे माझे धनुष्यबाण। जरी देशील मज आणून। तरी हे असुर संहारीन। क्षणमात्र न लागतां। ४९ तंव बोले वायुनंदन। मी मारीन अहिरावण। मग कपाटें उघडोन। महीरावण वधा तुम्ही। १५० तेव्हां गुप्त रूपें हनुमंतें जाऊन। दोघांचे आणिले धनुष्यबाण। पाठीसी लपवूनि रामलक्ष्मण। आपण देवी होऊनि बैसला। ५१ मग म्हणे अहिरावणा। तूं आधीं घेईं माझ्या दर्शना। ऐकतांचि ऐशा वचना। येरू प्रवेशे देऊळीं। ५२ जैसा पंचाननाचे दरींत। वारण प्रवेशे उन्मत्त। कीं व्याघ्राचिये

है। ४४ (तदनन्तर) श्रीराम ने हनुमान से कहा— 'मैं असंख्य अवतार धारण करूँ, तो भी, हे हनुमान, तुम्हारे उपकार का विस्मरण कल्पान्त तक में नहीं होगा। ४५ तुम्हारे उपकार की कोई सीमा नहीं है। हे हनुमान, मैं किस-किसका स्मरण करूँ?' इसके पश्चात् लक्ष्मण हनुमान से मिला। ४६ फिर श्रीराम ने हनुमान से कहा— 'अब शत्रु का वध कैसे करें?' तो वह बोला— 'तुम मन में कोई चिन्ता न करना। ४७ तुम मेरे पीछे छिपे रहो, तो मैं एक-एक असुर को (अन्दर) बुलाकर उनके सिरों को छेदते हुए यहीं चूर-चूर कर डालता हूँ।' ४८ (इसपर) श्रीराम ने कहा— 'यदि मेरा धनुष-बाण ला दोगे, तो क्षण मात्र तक न लगते मैं इन असुरों का संहार कर डालूँगा।' ४९ तब हनुमान ने कहा— मैं (पहले) अहिरावण का वध करूँगा; तब तुम द्वार खोलकर महिरावण का वध करना। १५० तब गुप्त रूप से जाकर हनुमान दोनों के धनुष-बाण ले आया। (फिर) राम-लक्ष्मण को पीठ के पीछे छिपाकर, वह (पुनः) देवी होकर (रूप लेकर) बैठ गया। ५१ तब उसने कहा— 'हे अहिरावण, तुम मेरे दर्शन के लिए पहले आओ।' ऐसी बात सुनकर वह मन्दिर में प्रवेश कर गया। ५२ जिस प्रकार सिंह की दरार में उन्मत्त हाथी प्रविष्ट हो जाता हो, अथवा बाघ की (निवास-स्थान वाली) झाड़ी में कोई हिरन सहसा आ गया हो, अथवा देखो, जिस प्रकार साँप के बिल

जाळींत । मृग अकस्मात संचरे । ५३ कीं भुजंगाचे बिळीं देख । प्रवेशला जैसा मूषक । कीं मरण नेणोनि पतंग मूर्ख । दीपासी भेटों पातला । ५४ तैसा प्रवेशे अहिरावण । भयानक देवी देखोन । धाकें धाकेंचि नमन । करिता जाहला तेधवां । ५५ देवीचरणीं मस्तक ठेविला । देखोनि महारुद्र क्षोभला । असुर पायीं रगडिला । शतचूर्ण केलें मस्तक । ५६ हस्त पाद झाडी ते क्षणीं । तेणें दणाणली मंगळजननी । तो दणाण भयंकर ऐकोनी । शाहाणे उठोनि पळाले । ५७ अहिरावणाचा गेला प्राण । मग महिरावण बोले वचन । म्हणे चार घटिका जाहल्या पूर्ण । बंधु बाहेरी न येचिकां । ५८ काय तो पहावया वृत्तान्त । पुजारी जाय देउळांत । तयाचा दायादही जात । त्याचे पाठीं हळू हळू । ५९ देउळीं अन्नप्रसाद समूळ । तोच अवघा पैं नेईल । म्हणोनियां उतावेळ । तो देउळीं प्रवेशला । १६० पुढिला काळें ओढिला । देवी नमावया गेला । मत्कुणप्राय रगडिला । पायांतळीं हनुमंतें । ६१ ऐसें देखोनि विपरीत । दुसरा चळचळां

में चूहा प्रविष्ट गया हो, अथवा मृत्यु को न देखते हुए मूर्ख पतंग दीप (-ज्योति) से मिलने पहुँच गया हो, उस प्रकार अहिरावण (मन्दिर में) प्रविष्ट हो गया। उस भयानक (रूप-धारिणी) देवी को देखकर उसने मारे बड़े डर के तब नमस्कार किया। ५३-५५ उसने (ज्यों ही) देवी के चरणों में मस्तक रखा, त्यों ही महारुद्र (का वह अवतार हनुमान) क्षुब्ध हो उठा और उसने उस असुर को पाँव से रौंद डाला और उसके मस्तक को चूर-चूर कर डाला। ५६ (फिर) उसने उस क्षण हाथ-पाँव झटक लिये, तो पृथ्वी दनदना उठी। उस भयंकर दनदनाहट को सुनते ही समझदार लोग उठकर भाग गये। ५७ (इधर) अहिरावण के प्राण (निकल) गये; तब महिरावण ने क्या बात कही ? वह बोला—' चार घड़ियाँ पूरी हो गयीं; (फिर भी) भाई बाहर क्यों आ ही नहीं रहा है। ५८ तो पुजारी मन्दिर के अन्दर देखने गया कि क्या बात है। उसके पीछे हौले-हौले उसका साझेदार भी चला गया। ५९ वह अधीर होकर इसलिए मन्दिर के अन्दर प्रविष्ट हो गया कि वह (पुजारी) मन्दिर में इकट्ठा हुआ सारा अन्न तथा प्रसाद मूल सहित, अर्थात् पूरा-पूरा ले (न) जाए। १६० आगे गये हुए (अर्थात् पुजारी) को (मानो) काल ने ही (अपनी ओर) आकृष्ट किया, तो वह देवी को नमस्कार करने गया। (तब) हनुमान ने उसे खटमल की भाँति कुचल डाला। ६१ ऐसी

कांपत । म्हणे हा होय हनुमंत । लंका जेणें जाळिली । ६२ अंगीं मुरकुंडी वळोन । दारांत आपटला येऊन । दोन्ही हस्तेंकरून । शंख करी आक्रोशें । ६३ म्हणे जेणें लंका जाळिली । तोच काळ बैसला देउळीं । देवी मोरींत दाटिली । पूजा घेतली सर्व तेणें । ६४ पुजारियासहित अहिरावण । यमपुरीस पाठविला पूर्ण । पिशिताशन नाम ऐकतां जाण । पळों लागले चहूंकडे । ६५ राक्षसां जाहला आकान्त । एक एकांतें धरूनि हनुमंत । तेथेंचि पाववी मृत्य । दिशा लंघोनि एक जाती । ६६ मग शस्त्रें कवचें बांधोन । सेनासागर एकवटून । सिद्ध जाहला महिरावण । युद्धालागीं ते काळीं । ६७ म्हणे बाहेर येईं रे मर्कटा । कोठें प्रवेशलासी महाधीटा । आजि मृत्युपुरींचिया वाटा । रामासहित लावीन तूतें । ६८ तों देउळामाजी वायुपुत्र । स्कंधीं घेत राम सौमित्र । कीं ते विष्णु कर्पूरगौर । एका वाहनीं बैसले । ६९ कीं शशी आणि दिनपती ।

विपरीत बात देखते ही दूसरा थरथर काँपने लगा । उसने कहा-- ' यह तो हनुमान है, जिसने लंका को जला डाला । ' ६२ लोट-पोट हो जाते हुए वह द्वार में आते हुए टकरा गया । (फल-स्वरूप) दोनों हाथों से मुँह पीटते हुए रोने पीटने लगा । ६३ उसने कहा— ' जिसने लंका को जलाया था, वही (वानर) काल (अर्थात् यम-सा) मन्दिर में बैठा है । उसने देवी को मोरी में ठूँसकर रखा है और समस्त पूजा की सामग्री उसने ग्रहण की है । ६४ पुजारी सहित अहिरावण को उसने पूर्णतः यम-पुरी भेज दिया है । समझिए कि (उसका) नाम सुनते ही चारों ओर भागने लगे । ६५ राक्षसों में बावेला मच गया । (इधर) हनुमान एक-एक को पकड़कर वहीं मृत्यु को प्राप्त कराने लगा । तो कोई-कोई दिशाओं (की सीमा) को लाँघकर अर्थात् दूर चाहे जिधर निकल गये । ६६ तब उस समय शस्त्र और कवच बाँधकर, अर्थात् उससे सुसज्जित होकर महिरावण सेना-सागर इकट्ठा करते हुए युद्ध के लिए तैयार हो गया । ६७ उसने कहा— ' रे मर्कट ' बाहर तो आ । रे बड़े ढीठ (बन्दर), तूने कहाँ प्रवेश किया है ? आज तुझे राम के साथ मृत्यु-पुरी के मार्ग पर भेज दूँगा । ' ६८ तो हनुमान ने मन्दिर में राम और लक्ष्मण को अपने कंधों पर उठा लिया । अथवा (घनश्याम) भगवान विष्णु तथा कर्पूर-गौर शिवजी दोनों एक ही सवारी में बैठ गये हों, अथवा (मानो) चन्द्र और सूर्य (दोनों) एक रथ में बैठे हुए दिखायी दे रहे हों, अवथा इन्द्र तथा

बैसले दिसती एकरथीं। कीं इंद्र आणि वाचस्पती। एकवाहनीं आरूढले। १७० तैसे दोघे स्कंधीं घेऊन। बाहेर निघे वायुनंदन। पादप्रहारेंकरून। कपाटें फोडिलीं तत्काळीं। ७१ बाहेर प्रकटतां तत्काळ। पुच्छें उडवूनियां देऊळ। आकाशीं भिरकाविलें सकळ। जेवीं बाळ कंदुक टाकी। ७२ देवालय विदारूनी। देवीसहित समुद्रजीवनीं। टाकितां राक्षसीं मिळूनी। अंजनीतनय वेढिला। ७३ खालीं राम सौमित्र उतरले। श्रीरामें कोदंड चढविलें। अचळ ठाण मांडिलें। बाण लाविला चापासी। ७४ महिरावणास म्हणे रघुनंदन। कपटिया साहें माझे बाण। तुझी वाट पाहतो अहिरावण। तुज धाडीन त्याजपासीं। ७५ तों राक्षसें धनुष्य ओढून। रामावरी सोडिले बाण। रघुनाथें शिर छेदोन। क्षणमात्रें टाकिलें। ७६ नरवीरश्रेष्ठ रघुनंदन। महीवरी सोडित शत बाण। त्याचे ललाटीं जाऊन। एकपंक्तीं बैसले। ७७ परी नवल वर्तलें अद्‌भुत। रुधिरबिंदु खालीं पडत। त्याचे महि-रावण होत। एकसारिखे सर्वही। ७८ लक्षांच्या लक्ष महि-

---

वाचस्पति देवगुरु (बृहस्पति) एक वाहन पर आरूढ़ हो गये हों। उस प्रकार (शोभायमान दिखायी देनेवाले) उन दोनों को कंधों पर लिये हुए वायु-नन्दन हनुमान बाहर निकल आया और उसने पाँवों के आघात से तत्काल किवाड़ों को तोड़ डाला। १६९-१७१ बाहर प्रकट होने पर उसने तत्काल पूँछ से उस सम्पूर्ण मन्दिर को उछालते हुए आकाश में वैसे ही फेंक दिया, जैसे कोई बालक गेंद उछालकर फेंकता है। ७२ (जब) हनुमान ने मन्दिर को तोड़-फोड़कर देवी-सहित समुद्र के पानी में फेंक दिया, तो राक्षसों ने इकट्ठा होकर उसे घेर लिया। ७३ तब राम और लक्ष्मण नीचे उतर गये। (फिर) श्रीराम ने धनुष चढ़ाया, वे (पैंतरा लेते हुए) अविचल खड़े हो गये और धनुष पर बाण चढ़ा दिया। ७४ फिर श्रीराम ने महिरावण से कहा— 'रे कपटी' मेरे बाणों को सहन करो। अहिरावण तेरी राह देख रहा है; मैं तुझे उसके पास भेज देता हूँ।' ७५ तब वह राक्षस धनुष्य(की डोरी)को खींचकर श्रीराम पर बाण छोड़ने लगा। परन्तु श्रीराम ने उसके सिर को क्षण मात्र में छेद डाला। ७६ नरवीर श्रेष्ठ श्रीराम ने महिरावण पर सौ बाण छोड़े, जो उसके ललाट में धँसकर एक पंक्ति में बैठ (गड़) गये। ७७ परन्तु (उस समय) एक अद्‌भुत चमत्कार होने लगा। रक्त की जो बूंदें नीचे गिर जातीं, उनसे महिरावण

रावण । त्यांवरी राम टाकी बाण । त्यांचिया रक्तबिंदूंपासून । कोटयनुकोटी निपजती । ७९ तितकेही रामावरी असुर । करिते जाहले शस्त्रमार । मग घाय टाळीत रघुवीर । चकित पाहे चहूंकडे । १८० मग बोले चापपाणी । वैरी वधावे शस्त्रेंकरूनी । तंव आगळेचि होती ते क्षणीं । न कळे करणी कैसी हे । ८१ तंव तो निर्वाणींचा भक्त । वज्रदेही वीर हनुमंत । दृष्टीं देखोनि विपरीत । चिंताक्रान्त पडियेला । ८२ मग तो लोकप्राणेशनंदन । मगरीपासीं आला उठोन । तीस पुसे वर्तमान । समूळ महिरावणाचें । ८३ ती म्हणे रंभा देवांगना । जात होती इंद्रभुवना । तंव भृगुऋषि जाणा । तिनें अकस्मात देखिला । ८४ त्यासी नाहीं केलें नमन । म्हणे हा कुरूप वृद्ध ब्राह्मण । तंव तो महा ऋषि तपोधन । दीधला शाप दारुण तीतें । ८५ म्हणे तूं सर्पिणी होऊनी । विचरें सदा घोर वनीं । धांवून येरी लागे चरणीं । म्हणे मज उश्शाप

(उत्पन्न) हो जाते— वे सभी एक-दूसरे के समान थे । ७८ (इस प्रकार) लाखों लाख महिरावण उत्पन्न हो गये । श्रीराम उनपर बाण चलाते रहे । परन्तु उनके रक्त-बिन्दुओं से करोड़ों-करोड़ों महिरावण उत्पन्न होते गये । ७९ वे सभी असुर श्रीराम पर शस्त्रों की मार करते थे । तब श्रीराम आघातों को टालते हुए चकित होकर चारों ओर देखने लगे । १८० चापपाणि श्रीराम ने कहा— 'वैरियों का वध शस्त्रों से करें, तो वे उस क्षण अधिकाधिक हो जाते हैं । समझ में नहीं आता कि यह कैसी करनी है ।' ८१ तब (मानो) अन्तिम क्षण के लिए सुरक्षित रखा हुआ परम भक्त वज्रदेही वीर हनुमान आँखों से ऐसी विपरीत बात को देखते हुए चिन्ता से व्याकुल हो उठा । ८२ फिर वह (लोगों के प्राणों के ईश्वर अर्थात् वायु का पुत्र) हनुमान (वहाँ से) उठकर मगरी के पास आ गया और उसने उससे महिरावण का मूल-सहित (समग्र) परिचय पूछा । ८३ तो उसने कहा— 'जान लो कि देवांगना रम्भा (एक बार) इन्द्र-लोक जा रही थी, तब उसने सहसा भृगु ऋषि को देखा । ८४ (उस समय) उसने उस (ऋषि) को नमस्कार नहीं किया; (क्योंकि) उसने कहा (सोचा)— यह तो कुरूप वृद्ध ब्राह्मण है । तब उस तपोधन महान ऋषि ने उसे एक भयानक अभिशाप दिया । ८५ उसने कहा— 'साँपिन होकर तू घोर वन में सदा विचरण करती रहेगी ।' (यह सुनते ही) दौड़कर वह उसके पाँव लगी और बोली— 'मुझे शाप-मोचन (की बात)

देइंजे । ८६ येरू म्हणे तूं होशील सर्पिणी । क्षण एक दिससी पद्मिणी । एकदां सूर्यरेत पडतां क्षणीं । जाशी उद्धरून निज पदा । ८७ मग अहिरूप हिंडे वनीं । क्षण एक जाहली असे पद्मिणी । तों सूर्याचें वीर्य वरूनी । अकस्मात वर्षलें । ८८ अहीचे मुखीं वीर्य पडत । तो अहिरावण जाहला अद्भुत । महीवरी पडलें जें रेत । महिरावण तोचि जाहला । ८९ रंभा गेली उद्धरून । परी रक्तबिंदूचे होती महिरावण । हें चंद्रसेनेस वर्तमान । जाऊनियां पुसावें । १९० अहिरावणाची पत्नी । चंद्रसेना ते सत्यवचनी । हें हनुमंतें ऐकोनी । उडे गगनीं अकस्मात । ९१ महिकावतीस येउनी । प्रवेशला जेव्हां राजसदनीं । तों चंद्रसेना बैसली ध्यानीं । चापपाणी आठवीत । ९२ दृष्टीं देखोनि रघुवीर । तीस वाढला कामज्वर । म्हणे श्रीरामाऐसा भ्रतार । जन्मोजन्मीं भोगावा । ९३ त्याचि

बताइए । ८६ (तब) वह (ऋषि) बोला-- 'तू तो साँपिन हो (ही) जाएगी । परन्तु तू एक क्षण भर के लिए पद्मिनी * दिखायी देगी । और एक बार सूर्य के वीर्य के (तुझपर) पड़ जाते ही, उसी क्षण तू उद्धार को प्राप्त होकर अपने (मूल) पद को प्राप्त हो जाएगी ।' ८७ फिर वह सर्प-रूप में वन में विचरण करने लगी; तो एक क्षण भर के लिए पद्मिनी रूप बन गयी, तो ऊपर से सूर्य का वीर्य सहसा बरसने लगा । ८८ वह वीर्य उस सर्पिणी के मुंह में पड़ गया, तो उससे अहिरावण नामक (यह) अद्‌भुत राक्षस उत्पन्न हुआ । (इधर) जो वीर्य मही (पृथ्वी) पर गिर गया, उससे वही महिरावण उत्पन्न हो गया । ८९ (तदनन्तर इस प्रकार) उद्धार को प्राप्त होकर रम्भा तो चली गयी; परन्तु रक्त-बिन्दुओं से महिरावण (कैसे) उत्पन्न होते हैं, यह बात जाकर चन्द्रसेना से पूछना । १९० अहिरावण की पत्नी चन्द्रसेना सत्य-वचनी है ।' यह सुनते ही हनुमान सहसा आकाश में उड़ गया । ९१ जब महिकावती में आकर वह राज-भवन में प्रविष्ट हो गया, तो चन्द्रसेना चापपाणि श्रीराम का स्मरण करते हुए ध्यान में (लीन) बैठी थी । ९२ श्रीराम को आँखों से देखकर उसका काम-ज्वर बढ़ गया, तो उसने कहा (सोचा)-- श्रीराम

---

* टिप्पणी : पद्‌मिनी— रूप शील, स्वभाव के विचार से स्त्रियों के चार भेदों में से एक । ये भेद हैं— पद्‌मिनी, हस्तिनी, चित्रिणी और शंखिनी । पद्‌मिनी जाति की स्त्री सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है । उसका शरीर चम्पा की तरह गौर-वर्ण और कमलदल की तरह कोमल होता है । उसके अंग-प्रत्यंग से सुगंध निकलती है । यह अत्यन्त लज्जाशीला, फिर भी मानिनी होती है ।

वेधेंकरून जाण । तीस लागलें श्रीरामध्यान । सकळ विसरली देहभान । गुंतलें मन राघवीं । ९४ तंव तीजवळी आला हनुमंत । बळें हस्तटाळिया वाजवीत । येरी नेत्र उघडोनि पाहत । तंव तो रामदूत देखिला । ९५ हनुमंत करूनि नमन । सांगे सर्व वर्तमान । पुराणपुरुष रघुनंदन । परम संकटीं पडियेला । ९६ येरी म्हणे हें वर्तमान । तुज अवघें मी सांगेन । माझा मनोरथ पूर्ण । जरी तूं सिद्धी पावविसी । ९७ रामप्रिय म्हणे अवश्य । येरी म्हणे देईं भाष । पुढील कार्य जाणोनि विशेष । प्रमाण दिधलें हनुमंतें । ९८ येरी म्हणे ऐक वचन । सुरतसुखें रघुनंदन । एकतां तरी भोगीन । म्हणोनि भाष घेतली । ९९ आतां रामासी होईल जय प्राप्त । तो ऐका सावध वृत्तान्त । महिरावणें तप अद्‌भुत । करूनि शिव तोषविला । २०० हा वर मागितला त्वरित । युद्धसमयीं वर्षावें अमृत । ऐक्य होतां सुधारस-रक्त । उद्‌भवावे महिरावण । १ भ्रमरमाळा शिवकंठीं । ते मिलिंद पाताळा जाती उठाउठी ।

जैसे पति से भोग को जन्मजन्मान्तर में प्राप्त हो जाएँ । ९३ समझिए, उसी धुन में उसे श्रीराम का ध्यान (करने का चसका) लग गया । उससे वह देह का समस्त मान भूल गयी और उसका मन श्रीराम (के ध्यान) में अटक गया । ९४ तब हनुमान उसके समीप आ गया, उसने बलात् हाथों से तालियाँ बजायीं । उसने जब आँखें खोलकर देखा, तो उसने राम के उस दूत को देखा । ९५ हनुमान ने उसे नमस्कार करके वह समस्त कथा कह दी कि पुराण-पुरुष श्रीराम परम संकट में कैसे पड़ गये हैं । ९६ (यह सुनकर) वह बोली-- 'यदि मेरे समस्त मनोरथ को तुम सिद्धि को प्राप्त कराओगे, तो यह सारी बात मैं तुम्हें बताऊँगी ।' ९७ (इसपर) श्रीराम के प्रिय (दास) ने कहा-- 'अवश्य'। तो वह बोली-- 'तो वचन दो ।' (तब) आगे का कार्य महत्त्वपूर्ण समझकर हनुमान ने उसे शपथपूर्वक वचन दिया । ९८ तो वह बोली-- 'मेरी बात सुनो । श्रीराम से सुरत-सुखपूर्वक एक बार तो भोग को प्राप्त हो जाऊँगी-- इसलिए (तुमसे) वचन लिया । ९९ अब अवधान पूर्वक वह वृत्तान्त सुनो जिससे श्रीराम को जय प्राप्त हो जाएगी । (पूर्वकाल में) महिरावण ने अद्‌भुत तप किया और शिव को सन्तुष्ट कर लिया । २०० (उस समय) उसने झट से यह वर माँग लिया-- युद्ध के समय अमृत बरसा दें, तथा अमृत और रक्त मिल जाने पर महिरावण उत्पन्न हो जाएँ । २०१

अमृत चंचू भरूनि वृष्टी। रक्तावरी करिती त्या। २ एकत्र होतां रक्त अमृत। महिरावण निपजती तेथ। ऐसें ऐकतांचि हनुमंत। पाताळ धुंडीत गेला असे। ३ तों अमृतकुंड परम गहन। तेथें लोकपाळांचें रक्षण। तें तोडीत वायुनंदन। अमृताजवळी पातला। ४ तों चंचू भरूनि अपार। असंख्यात जाती भ्रमर। पर्वताऐसें तयांचें शरीर। केले चूर सर्वही। ५ त्यांमाजी श्रेष्ठ भ्रमर। मेरुपर्वताऐसें त्याचें शरीर। क्रोधें धांविन्नला सत्वर। वायुकुमर लक्षूनियां। ६ हनुमंतें मुष्टिघात दीधला। भ्रमर पृथ्वीवरी पाडिला। पक्ष उपडितां ते वेळां। काकुळती आला मारुतीसी। ७ मज देईं प्राणदान। मी तुझ्या कार्यासी येईन। हनुमंतें भाष घेऊन। तेव्हां भ्रमर सोडिला। ८ सवेंच उडाला तेथून। राघवाजवळी येऊन। म्हणे आतां ब्रह्मास्त्र घालोन। वैरी एकदांचि आटावे। ९ ऐसें बोलतां वायुसुत। रघुनाथ बाणीं ब्रह्मास्त्र स्थापीत। शर सुटतांच समस्त। भस्म जाहले

शिवजी के कण्ठ में भ्रमरों की माला है; वे भ्रमर झट से पाताल में जाते हैं; और चंचुओं में अमृत भरकर उस (महिरावण के) रक्त पर बौछार करते हैं। २ फिर रक्त और अमृत के मिल जाते ही वहाँ महिरावण उत्पन्न हो जाते हैं।' ऐसा सुनते ही हनुमान पाताल में ढूँढ़ते हुए चला गया। ३ (उसे दिखायी दिया कि एक स्थान पर) एक बहुत बड़ा (अथाह) अमृत-कुण्ड है; वहाँ लोकपाल पहरा दे रहे हैं। हनुमान उस (पहरे) को तोड़ते हुए अमृत के पास पहुँच गया। ४ तब अनगिनत भ्रमर चोंच में अमृत बहुत भरकर जा रहे थे। उनका शरीर पर्वत जैसा (प्रचण्ड) था। हनुमान ने उन सभी को चूर-चूर कर डाला। ५ उनमें जो भ्रमर सबसे बड़ा था, उसका शरीर मेरुपर्वत जैसा था। वह हनुमान को देखकर झट से क्रोधपूर्वक दौड़ा। ६ (जब) हनुमान ने घूँसा जमा दिया, तो वह भ्रमर भूमि पर गिर पड़ा। (फिर) उस समय जब हनुमान ने उसके परों को उखाड़ लिया, तो वह दीनभाव को प्राप्त हो गया। ७ (वह बोला--) 'मुझे प्राणदान दो। मैं तुम्हारे काम आऊँगा।' तो हनुमान ने उससे अभिवचन लेकर उसे छोड़ दिया। ८ साथ ही वह वहाँ से उड़ा और श्रीराम के पास आकर बोला-- 'अब ब्रह्मास्त्र चलाकर शत्रु को एक ही साथ नष्ट कर डालो।' ९ हनुमान द्वारा ऐसा कहने पर श्रीराम ने बाण पर ब्रह्मास्त्र स्थापित किया। उस बाण के (धनुष से) छूटते ही समस्त महिरावण (जलकर) भस्म हो गये। २१० जिस

महिरावण । २१० जैसी होतां ब्रह्मप्राप्ती । संसारदुःखें वितळती । कीं उगवतां गभस्ती । जेवीं लपती तारागणें । ११ तैसें सुटतां ब्रह्मास्त्र । मुख्य रूपसहित असुर । भस्म जाहले समग्र । जयजयकार सुर करिती । १२ पडली देखतां मुख्य धुर । पळों लागले ते असुर । हनुमंतें पुच्छ समग्र । सेनेभोंवतें वेष्टिलें । १३ मग लोहार्गळा घेउनी । सैन्य झोडी तये क्षणीं । कित्येक अंतरिक्ष उडोनी । राक्षस पळती तेधवां । १४ तों वरून पुच्छें सत्वर । बांधिले सर्व निशाचर । सागरीं बुडविले समग्र । पुच्छें घुसळूनि आणिले । १५ एक जाती दिशा लंघून । तों पुच्छ येत तिकडून । ब्रह्मांड व्यापिलें संपूर्ण । पुच्छेंकरूनि हनुमंतें । १६ मारुति केवळ ईश्वर । त्याचे पुच्छासी नाहीं पार । ब्रह्मांडाबाहेरून समग्र । आढेवेढे करी पुच्छ । १७ असो दश दिशा धुंडोन । पुच्छें असुर आणिले ओढून । महिकावतीस जाऊन । पुच्छ रिघे घरोघरीं । १८ पुरुष ओढोनि काढी बाहेरी । अर्गळाघायें चूर्ण करी । भ्रतारा लपवोनि नारी । दारीं उभ्या

प्रकार (साधक को) ब्रह्म (-ज्ञान) की प्राप्ति होते ही सांसारिक दुःख नष्ट हो जाते हैं, अथवा सूर्य के उदित होने पर जिस प्रकार तारे लुप्त हो जाते हैं, उस प्रकार ब्रह्मास्त्र के छूटते ही मुख्य रूप (महिरावण) सहित समस्त असुर भस्म हो गये, तो देवों ने जय-जयकार किया । ११-१२ मुख्य नेता या सेनापति को गिरते देखते ही जब वे असुर भागने लगे, तो हनुमान ने अपनी पूँछ को समस्त सेना के चारों ओर घेरे-सा लगाये रखा । १३ फिर लोहे की अगरी लेकर उस क्षण वह सेना को पीटने लगा, तब अनेकानेक राक्षस अंतरिक्ष में उड़कर भागने लगे । १४ तब उसने ऊपर (अन्तरिक्ष में ही भागनेवाले) सब निशाचरों को पूँछ में झट से बाँध लिया, सबको समुद्र में डुबो दिया और फिर वह पूँछ के बल उन्हें घुमाकर (ऊपर) ले आया । १५ (तब) कोई-कोई दिशाओं को लाँघकर अर्थात् बहुत दूर इधर-उधर जाने लगते, तो उधर से पूँछ (सामने) आता । (इस प्रकार) हनुमान ने अपनी पूँछ से (मानो) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर लिया । १६ हनुमान तो केवल ईश्वर है, उसकी पूँछ की (लम्बाई की) कोई सीमा नहीं है । उस पूँछ ने समग्र ब्रह्माण्ड के बाहर (चारों ओर)घेरा तैयार कर लिया । १७ अस्तु । दसों दिशाओं में ढूँढ़कर वह पूँछ असुरों को खींचकर ले आयी । (यहाँ तक कि) महिकावती में जाकर वह पुच्छ घर-घर प्रवेश करने लगा । १८ (जब) वह पुरुषों को

राहाती । १९ परी पुच्छ न सोडी साचार । गूढ स्थळाहून काढी असुर । आकान्त वर्तला थोर । सांगती हेर चंद्रसेनेसी । २२० ती म्हणे घाला जानकीची आण । तेणें निरसेल हें विघ्न । मग त्याचि युक्तीकरून । जन सकळ वांचले । २१ जयजयकार करून सुर । वर्षती पुष्पसंभार । रामसौमित्र वायुकुमर । एके ठायीं मिळाले । २२ शत्रुक्षयाचें कारण । कैसा निमाला महिरावण । सौमित्रासी म्हणे सीतारमण । तेणें प्रत्युत्तर दीधलें । २३ म्हणे हनुमंतें जाऊन । शत्रुक्षय केला पूर्ण । तें साधून आला कारण । त्यास वर्तमान पुसा हें । २४ मग मारुतीचे गळां सप्रेम । मिठी घाली श्रीराम । तंव तो चिंताचक्रीं परम । पडला असे मारुती । २५ मग राम म्हणे प्राणसखया । कां मुख गेलें उतरोनियां । तें मज सांग लवलाह्या । म्हणोन वदन कुरवाळिलें । २६ मग हनुमंत वर्तमान । रामासी सांगे मुळींहून । चंद्रसेनेसी भाषदान । दृढ देउनि मी

खींचकर बाहर निकालने लगा, और अगरी के आघात से उन्हें चूर-चूर करने लगा, तो नारियाँ अपने-अपने पति को छिपाकर द्वार (-द्वार) में खड़ी रह गयीं । १९ परन्तु वह पुच्छ उनको सचमुच नहीं छोड़ रहा था । उसने गुप्त स्थलों से (भी) राक्षसों को (ढूँढ़कर) निकाल लिया, तो बहुत बड़ा बावेला मच गया । (तब) गुप्तचरों ने (यह) चन्द्रसेना से कहा । २२० तो वह बोली— 'उस वानर को सीता की शपथ दिलाइए । उससे यह विघ्न नष्ट हो जाएगा ।' तब उसी युक्ति से समस्त लोग बच गये । २१ (तब) देवों ने जय-जयकार किया और ढेर-के-ढेर फूल बरसाये । राम, लक्ष्मण और हनुमान एक स्थान पर (परस्पर) मिल गये । २२ (तब) लक्ष्मण से राम ने पूछा— 'शत्रु के नाश के लिए कौन कारण है ? महिरावण कैसे नष्ट हो गया ?' तो उसने प्रत्युत्तर दिया । २३ वह बोला— 'हनुमान ने जाकर शत्रु का पूर्ण नाश किया । उस कार्य को सफल बनाकर वह आया है । (अतः) यह बात उससे पूछो ।' २४ तब श्रीराम ने हनुमान को प्रेमपूर्वक गले लगाते हुए आलिंगन किया, तो वह बहुत चिन्ता के बड़े भँवर में फँस गया । २५ तब श्रीराम ने कहा— 'हे प्राणसखा, मुझसे झट से यह कहो कि तुम्हारा मुख क्यों उतर गया ।' ऐसा कहते हुए वे उसके मुँह पर हौले-हौले हाथ फेरने लगे । २६ तब हनुमान ने राम से वह बात मूल, अर्थात् आरम्भ से लेकर कह दी । (वह फिर बोला—) मैं चन्द्रसेना को पक्का अभिवचन दे आया हूँ । २७

आलों । २७ ऐकोनि हांसे रामचंद्र । म्हणे बा रे तूं चातुर्यसमुद्र । मी एकपत्नीव्रती वीर । हें तुज काय न ठाउकें । २८ तुझी भाष नव्हे अप्रमाण । मजही न गमे दुर्व्यसन । तूं चतुरमुकुट-रत्न । युक्ति करून वारीं हें । २९ मग चंद्रसेनेच्या गृहाप्रती । आला तत्काळ मारुती । म्हणे आणितों अयोध्यापती । मंचक दृढ घालीं कां । २३० चंद्रसेना हर्षली चित्तीं । दृढ मंचक घातला एकान्तीं । सुमनसेज रचूनि युक्तीं । नाना उपभोग ठेविले । ३१ मग बोले हनुमंत । मंचक मोडला अकस्मात । तरी न बैसे रघुनाथ । बोल मग मज नाहीं । ३२ चंद्रसेना म्हणे हनुमंता । मंचक न मोडे हा तत्त्वतां । मग जो भ्रमर रक्षिला होता । तो आणिला गुप्तरूपें । ३३ रंभापत्रप्रमाण पूर्ण । मंचक आंत अवघा दे कोरून । तेणें तत्काळ आज्ञा वंदून । तैसाचि केला ते काळीं । ३४ चंद्रसेनेच्या गृहीं सत्वर । हनुमंतें आणिला रघुवीर । मंचकीं बैसतां जगदुद्धार । तत्काळ चूर्ण जाहला । ३५

(यह) सुनकर श्रीराम हँस पड़े और बोले— 'अरे, तुम तो चातुर्य के समुद्र हो । (फिर भी) क्या तुम्हें यह ज्ञात नहीं है कि मैं एक पत्नीव्रती वीर हूँ । २८ (फिर भी) तुम्हारा वचन झूठा न पड़ जाए तथा मुझसे भी दुराचरण न हो जाए । तुम तो चतुरों के मुकुट-मणि हो (अर्थात् सबसे अधिक चतुर हो), तो कोई युक्ति (आयोजित) करके इस (संकट) को टाल दो ।' २९ (यह सुनकर) फिर हनुमान तत्काल चन्द्रसेना के घर गया और उससे बोला— 'मैं अयोध्यापति श्रीराम को ला रहा हूँ, (तब तक) तुम दृढ़ पलंग बिछा देना ।' २३० (यह सुनते ही) चन्द्रसेना मन में आनन्दित हुई और उसने एकान्त (स्थल) में एक दृढ़ पलंग बिछा दिया । (फिर) युक्ति-पूर्वक (करीने से) फूलों की शय्या बनाते हुए उसने नाना प्रकार के उपभोग्य पदार्थ रख दिये । ३१ तब हनुमान बोला-- 'यदि अचानक पलंग टूट जाए, तो श्रीराम नहीं बैठेंगे । फिर मुझे कोई दोष नहीं (देना) होगा ।' ३२ (इसपर) चन्द्रसेना हनुमान से बोली-- 'यह पलंग सचमुच नहीं टूटेगा ।' फिर जिस भ्रमर की रक्षा की थी, उसे हनुमान गुप्त रूप से ले आया । ३३ (हनुमान की) आज्ञा का वन्दन करके, अर्थात् उसे आदर-पूर्वक स्वीकार करके उसने उस पलंग को उस समय अन्दर से कुरेदते हुए केले के पत्ते के बिलकुल समान (पतला) बनाकर रखा । ३४ फिर हनुमान श्रीराम को शीघ्रतापूर्वक चन्द्रसेना के घर ले आया । (परन्तु) जगत् के उद्धारक वे श्रीराम के पलंग पर

उठोनि चालिला रघुनंदन। येरी विलोकी दीनवदन। वायु-सुताकडे पाहून। चंद्रसेना बोलतसे। ३६ म्हणे कपटी तूं वानर देख। तुवांचि कोरविला मंचक। शेवटीं नेतोसी रघुनायक। मनोरथ माझे न पुरतां। ३७ मी तुज शाप देईन आतां। ऐकतां कृपा उपजली रघुनाथा। हस्त ठेवीत तिचे माथां। म्हणे चिंता न करावी। ३८ माझी ध्यानमूर्ति सुंदर। हृदयीं भोगीं निरंतर। पुढें सत्यभामा चतुर। कृष्णावतारीं होसी तूं। ३९ ऐसें बोलतां रघुनाथ। ती तेथेंचि जाहली समाधिस्थ। पुढें महिकावतींत नृपनाथ। मकरध्वज स्थापिला। २४० स्कंधीं वाहून रामलक्ष्मण। हनुमंतें केलें उड्डाण। नळ नीळ अंगद जांबुवंत पूर्ण। तेही पुढें भेटले। ४१ जैसा उदय पावे आदित्य। तैसा सुवेळेसी येत हनुमंत। बिभीषण आणि किष्किंधानाथ। सामोरे धांवती दळभारेंसीं। ४२ सप्रेमें सुग्रीव बिभीषण। आले हनुमंतासी देखोन। म्हणती बा रे हा देह ओंवाळून। तुजवरून टाकावा। ४३ सुग्रीव आणि बिभीषण।

बैठ जाते ही वह (टूटकर) चूर-चूर हो गया। ३५ तब श्रीराम उठकर चले जाने लगे, तो वह खिन्न मुख हो देखती रही। फिर हनुमान की ओर देखते हुए चन्द्रसेना बोली। ३६ उसने कहा-- 'देखो, तुम तो कपटी वानर हो। तुम्हीं ने पलंग को कुरेदवा डाला है और मेरे मनोरथों के पूर्ण न होते ही श्रीराम को लिये जा रहे हो। ३७ मैं अब तुम्हें अभिशाप दूंगी।' (यह) सुनते ही श्रीराम के (मन में) दया उत्पन्न हुई। तो उसके मस्तक पर हाथ रखते हुए वे बोले-- '(कोई) चिन्ता न करना। ३८ तुम अपने हृदय के अन्दर मेरी सुन्दर ध्यान-मूर्ति का निरन्तर भोग करो। आगे चलकर तुम कृष्णावतार (-काल) में चतुर सत्यभामा (के रूप में उत्पन्न) हो जाओगी।' ३९ श्रीराम के ऐसा बोलते ही, वह वहीं समाधिस्थ हो गयी। फिर (श्रीराम ने) मकरध्वज को राजा के रूप में स्थापित (विराजमान) कर दिया। २४०

(तदनन्तर हनुमान ने) श्रीराम और लक्ष्मण को कंधों पर उठाये हुए उड़ान भरी। आगे (चलकर) नल, नील, अंगद और जाम्बवान-- सब मिल गये। ४१ जिस प्रकार सूर्य उदय को प्राप्त हो जाता है, उस प्रकार हनुमान सुवेल आ गया। तो विभीषण और किष्किन्धापति सुग्रीव सेना-सहित (अगवानी के लिए) आगे दौड़ते हुए गये। ४२ सुग्रीव और विभीषण प्रेमपूर्वक आ गये और हनुमान को देखकर बोले-- 'अरे, यह देह

आश्चर्य करिती दोघेजण । म्हणती धन्य धन्य वायुनंदन । भरिलें त्रिभुवन प्रतापें । ४४ जाहला एकचि जयजयकार । सर्वांसी भेटला रघुवीर । हनुमंताचा प्रताप समग्र । राजीवनेत्र स्वयें वर्णी । ४५ या ब्रह्माण्डमंडपांत । मारुतीऐसा नाहीं भक्त । याचे प्रतापें आम्ही समस्त । वानर धन्य जाहलों । ४६ ब्रह्मानंदें म्हणे श्रीधर । अग्निपुराणीं हे कथा सुंदर । बोलिला सत्यवतीकुमर । तेंचि सार कथियेलें । ४७ स्वस्ति श्रीरामविजयग्रंथ सुंदर । संमत वाल्मीकनाटकाधार । सदा परिसोत पंडित चतुर । एकत्रिंशत्तमोध्याय गोड हा । २४८

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

तुमपर निछावर कर दें । ' ४३ (फिर) सुग्रीव और विभीषण दोनों जने आश्चर्य (अनुभव) करते रहे । वे बोले-- ' (वह) वायुनन्दन धन्य है, धन्य है, जिसने अपने प्रताप से त्रिभुवन को भर दिया । ' ४४ (फिर) एक साथ जयजयकार हो गया । राजीवनेत्र श्रीराम सबसे मिल गये और उन्होंने स्वयं हनुमान के समस्त प्रताप का वर्णन किया और कहा— ' इस ब्रह्माण्ड-रूपी मण्डप में हनुमान जैसा कोई (अन्य) भक्त नहीं है । ' (यह सुनकर वानरों ने सोचा—) इसके प्रताप से हम सब वानर धन्य हो गये हैं । २४५-२४६

श्रीधर ब्रह्मानन्द-पूर्वक कहते हैं— सत्यवती के पुत्र व्यास ने यह सुन्दर कथा अग्नि-पुराण में कही है । उसी का सारांश मैंने कह दिया है । २४७

स्वस्ति । यह श्रीराम-विजय नामक ग्रन्थ सुन्दर है । वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है । उसके इस इकत्तीसवें मधुर अध्याय का चतुर विद्वान लोग सदा श्रवण करें । २४८

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

श्रीगणेशाय नमः। भक्तवल्लभ त्रिभुवनेश्वर। सुवेळाचळीं रणरंगणधीर। जैसा निरभ्र नभीं पूर्णचंद्र। तैसा रघुवीर शोभतसे। १ रावणासी कळला समाचार। करूनि अहिमहींचा संहार। सुवेळेसी आला रघुवीर। गर्जती वानर जयजयकारें। २ रावण परम चिंताक्रांत। हृदयीं आठवला इंद्रजित। तळमळ वाटे मनांत। म्हणे काय व्यर्थ वांचोनि। ३ दीपेंविण जैसें सदन। कीं नासिकाविण वदन। कीं बुबुळाविण नयन। व्यर्थ जैसे न शोभती। ४ इंद्रजिताविण लंका। तैसी शून्य दिसे देखा। ऐसें बोलतां राक्षसनायका। आवेश बहुत चढियेला। ५ म्हणे लंकेमाजी दळ। अवघें सिद्ध करा सकळ। ऐसी आज्ञा होतां प्रबळ। रणतुरें वाजों लागलीं। ६ सवें निघाले उरले प्रधान। जैसा भगणीं वेष्टिला रोहिणीरमण। चतुरंगदळेंसीं रावण। लंकेबाहेर निघाला। ७ पादातिदळ अश्व रथ। यांचें कोण करील गणित।

श्रीगणेशाय नमः। जिस प्रकार निरभ्र (मेघ-रहित) आकाश में पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित दिखायी देता है, उस प्रकार सुवेल पर्वत पर भक्तजनों के प्रिय तथा त्रिभुवन के ईश्वर तथा युद्ध में धीर-वीर श्रीराम शोभायमान थे। १ रावण को यह समाचार विदित हुआ कि (पाताल में) अहिरावण और महिरावण का संहार करके रघुवीर राम सुवेल आ गये हैं और जयजयकार करते हुए वानर गर्जन कर रहे हैं। २ तो रावण परम चिन्ताक्रान्त हो गया। उसे हृदय में इन्द्रजित का स्मरण हुआ, तो उसे मन में तिलमिलाहट (अनुभव) होने लगी। उसने कहा— 'व्यर्थ जीवित रहकर क्या होगा। ३ जिस प्रकार बिना दिये के घर, अथवा बिना नाक के बदन, अथवा बिना पुतली के नेत्र व्यर्थ हैं— शोभा नहीं देते हैं, उस प्रकार, देखो, बिना इन्द्रजित के लंका शून्य (सूनी) दिखायी दे रही है।' ऐसा बोलते ही राक्षसों के उस स्वामी रावण (के मन) पर बहुत आवेश चढ़ गया। ४-५ उसने कहा— 'लंका में समस्त सम्पूर्ण (सेना-) दलों को सुसज्ज कर दो।' ऐसी आज्ञा (प्राप्त) होते ही रण-तूर्य (तुरहियाँ) ज़ोर-ज़ोर से बजने लगे। ६ (रावण के) साथ में शेष (रहे हुए) मन्त्री चल पड़े। जिस प्रकार नक्षत्रों के बीच घिरा हुआ चन्द्र (शोभायमान) होता है, उस प्रकार चतुरंग सेना सहित (शोभायमान) रावण लंका के बाहर चल दिया। ७ पदाति दल (के सैनिक), घोड़ों, रथों का हिसाब कौन कर पाएगा? पर्वतों के समान

पर्वतासमान गज अद्भुत। कोटयनुकोटी चालिले। ८ सहस्र सूर्यांचें तेज लोपत। तैसा रावणाचा मुख्य रथ। त्यावरी शस्त्रास्त्रमंडित। लंकानाथ बैसला। ९ रणासी आला दशकंधर। देखतां क्रोधावले वानर। घेऊन शिळा तरुवर। हांका देत धांविन्नले। १० रावण चापासी लावूनियां गुण। करिता जाहला घोर संधान। वानरीं अरिसैन्यावरी पर्जन्य। पर्वतांचा पाडिला। ११ असंख्यात सोडिले बाण। तितुकेही पर्वत फोडून। यवपिष्टवत करून। सैन्याबाहेर पाडिले। १२ चपळेहून बाण तीक्ष्ण। दशमुखें सोडिले दारुण। सोडोनि संग्रामाचें ठाण। वानरगण माघारले। १३ ऐसें देखोनि रणरंगधीर। अयोध्यानाथ प्रचंड वीर। कोदंड चढवून सत्वर। लाविला शर ते काळीं। १४ अग्नीसीं झगटला कर्पूर। मग उगा न राहे वैश्वानर। वृषभ चालोन येतां व्याघ्र। सहसा स्थिर न राहे। १५ तैसा प्रतापार्क रघुनंदन। विषकंठवंद्य जगन्मोहन। दशकंठासी लक्षून। सोडिले बाण ते काळीं। १६ असंभाव्य

(प्रचण्ड) करोड़ों-करोड़ों अद्भुत हाथी (रावण के साथ) चल पड़े। ८ जिसके सामने सहस्र सूर्यों का तेज लुप्त हो जाए, ऐसा (अति तेजस्वी) रावण का मुख्य रथ था। उसपर शस्त्रास्त्रों से विभूषित रावण बैठा हुआ था। ९ यह देखते ही कि रावण युद्ध के लिए आया है, वानर क्रोध को प्राप्त हो गये। वे शिलाओं और वृक्षों को लेकर चीखते-चिल्लाते दौड़े। १० धनुष पर डोरी चढ़ाते हुए रावण घोर (शर-) सन्धान करने लगा, तो (इधर) वानर शत्रु-सेना पर पर्वतों की वर्षा करने लगे। ११ (परन्तु) रावण ने अनगिनत बाण छोड़ दिये और उतने ही (समस्त) पर्वतों को फोड़कर जौ के आटे जैसे चूर-चूर करके सेना के बाहर (दूर) गिरा दिया। १२ (फिर) रावण ने विद्युत् से भी तीक्ष्ण (प्रखर) तथा दारुण बाण छोड़ दिये तो युद्ध के स्थान को छोड़कर वानरगण पीछे मुड़ गये, अर्थात् हट गये। १३ ऐसा देखते ही प्रचण्ड वीर रणरंग-धीर अयोध्यानाथ श्रीराम ने धनुष चढ़ाते हुए उस समय झट से बाण सन्धान किया। १४ कपूर ने आग को स्पर्श किया हो, तो फिर अग्नि चुप नहीं रह पाती। बैल के चढ़ आते, अर्थात् आक्रमण करते ही, बाघ बिल्कुल स्थिर नहीं रह पाता। १५ उसी प्रकार (रावण द्वारा आक्रमण करने पर श्रीराम चुप नहीं बैठ सकते), शिवजी के लिए वंद्य जगन्मोहन प्रताप-सूर्य रघुनन्दन उस समय रावण को देखते ही बाण चलाने लगे। १६

रामाचे बाण । सुटले अमोघ चापापासून । जैसे चतुराचे मुखांतून । अपार शब्द निघती पैं । १७ कीं मेघाहून अवधारा । अपार पडती तोयधारा । किंवा ओंकारापासूनि अपारा । ध्वनि जैसे उमटती । १८ कीं मूळमायेपासूनि एकसरें । असंख्य जीवसृष्टि उभारे । तैसा एक बाणापासूनि त्वरें । असंख्य शर निघती पैं । १९ सुटतां अद्भुत प्रभंजन । जलदजाल जाय वितळोन । तैसे राक्षस छिन्नभिन्न । बहुत जाहले ते काळीं । २० ऐसें देखतां दशकंधरें । प्रेरिलीं तेव्हां असंख्य शस्त्रें । परी तितुकींही राजीवनेत्रें । हेळामात्रें निवारिलीं । २१ जें जें शस्त्र टाकी दशकंधर । त्याहूनि विशेष रघुवीर । जैसा प्रवृत्तिशास्त्रींचा विचार । वेदांती उडवी एकाच शब्दें । २२ कीं लहरियांसमवेत सरितापती । एकदांच प्राशी अगस्ती । कीं तिमिरजाळाची

श्रीराम के असंख्य तथा अचूक बाण धनुष से वैसे ही छूटते रहे, जैसे चतुर (बुद्धिमान) व्यक्ति के मुख से अनगिनत शब्द निकलते हैं । १७ अथवा, सुन लीजिए कि जैसे मेघ से जलधाराएँ झरती हैं, अथवा (एक) ॐकार ध्वनि से असंख्य ध्वनियाँ प्रकट हो जाती हैं, अथवा आदिमाया से एक साथ ही असंख्य जीवों की सृष्टि उभरती (उत्पन्न हो जाती) है, वैसे ही एक (-एक) बाण से झट से असंख्य बाण (उत्पन्न होकर) निकलते थे । १८-१९ (फलस्वरूप) जैसे अद्भुत पवन के चलने लगते ही मेघ-जाल (विरल होते-होते) नष्ट हो जाता है, वैसे (श्रीराम के बाणों के छूटने लगते ही) उस समय बहुत राक्षस छिन्न-विच्छिन्न हो गये । २० ऐसा देखने पर रावण ने असंख्य शस्त्र चला दिये, परन्तु कमल-नयन श्रीराम ने उतने ही सबका सहजतया निवारण कर डाला । २१ रावण जो-जो शस्त्र चलाता, रघुवीर उससे (अधिक) विशेषता-पूर्ण (शस्त्र) चलाते, (और रावण के शस्त्रों को वैसे ही व्यर्थ कर उड़ा देते) जैसे वेदान्त का ज्ञाता एक ही शब्द से प्रवृत्ति-शास्त्रों के (अर्थात् सांसारिक बातों से सम्बन्धित) विचारों को उड़ा देता है । (वेदान्त के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है, आत्मा ब्रह्म ही है, उससे भिन्न नहीं है । अतः सांसारिक भोगविलास के प्रति आसक्ति नहीं रखते हुए, जीव को निवृत्ति को प्राप्त करके केवल आत्मज्ञान और मोक्ष की बात सोचनी चाहिए । इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए वेदान्त का ज्ञाता प्रवृत्ति-मार्ग का खण्डन करता है ।) २२ अथवा अगस्त्य ने समुद्र (-जल) का, उसकी लहरों के साथ एक ही समय में प्राशन किया, अथवा जिस प्रकार सूर्य के

वस्ती । उगवतां गभस्ति जेवीं नुरे । २३ जैसा मेघ वर्षतां अपार । वणवा विझूनि जाय समग्र । तैसें रामापुढें न चले शस्त्र । दशकंधर तटस्थ पाहे । २४ भूतें चेष्टा बहुत करिती । परी कृतान्तासीं न चलती । कीं सुटतां मारुतगती । मेघपडळ केवीं बाधे । २५ ऐसें देखोनि रावण । कोपारूढ जाहला दारुण । विचारूनि काढिले पांच बाण । कीं ते पंचबाण कृतान्ताचे । २६ कीं पंचाग्नीचीं स्वरूपें तत्त्वतां । किंवा पांच काढिल्या विद्युल्लता । लक्षोनियां जनकजामाता । सोडिता जाहला रावण । २७ राघवें योजिलें निवारण । तों अकस्मात आले पंचबाण । सच्चिदानंदतनु भेदोन । पलीकडे रूतले । २८ पंचशर भेदोनि गेले । परी रामाचें वज्रठाण न चळे । जैसा पंचबाणांचेनि मेळें । मारुति न ढळे कल्पान्तीं । २९ हाणितां कुठार तीक्ष्ण । वृक्ष न जाय

उदित हो जाने पर अन्धकार का जाल शेष नहीं रहता । २३ अथवा मेघ के असीम बरस जाने पर वड़वानल पूरा (-पूरा) बुझ जाता है, उस प्रकार श्रीराम के सामने (रावण का एक भी) शस्त्र नहीं चल पाता था। तो रावण चौंककर देखने लगा । २४ प्राणी (बचने के हेतु) यत्न तो बहुत करते हैं, फिर भी कतान्त यम के सामने उनकी एक भी नहीं चलती । अथवा पवन का चलना आरम्भ होने पर मेघ-समुदाय कैसे बाधा पहुँचा पाएगा ? २५ ऐसा देखते ही रावण दारुण क्रोध पर सवार हुआ, अर्थात् अत्यधिक क्रुद्ध हुआ । (तब) उसने सोच-विचार कर पाँच बाण निकाल लिये— अथवा वे पाँच बाण यम के ही थे, अथवा वे सचमुच पाँच अग्नियों * के रूप थे, अथवा (उनके रूप में) पाँच विद्युल्लताओं को निकाल लिया था। (फिर) रावण ने श्रीराम को देखकर (लक्ष्य करके) चला दिये । २६-२७ श्रीराम (उनके) निवारण का (बाण द्वारा) आयोजन कर ही रहे थे, कि यकायक वे पाँच बाण आ गये और सच्चिदानन्द (श्रीराम) के शरीर को भेदकर दूसरी ओर धँस गये । २८ पाँच बाण भेदते हुए तो चले गये, फिर भी श्रीराम का वज्र-सा (दृढ़) पैंतरा वैसे ही विचलित नहीं हुआ, जैसे (कामदेव के) पाँचों बाणों ‡ के समूह से हनुमान कल्पान्त में भी विचलित नहीं होता । २९ अथवा पैनी (धारवाली) कुल्हाड़ी से आघात करने पर भी वृक्ष अपने

* टिप्पणियाँ : पाँच अग्नियाँ— प्रलयानल, विद्युदानल, वड़वानल, शिवनेत्रानल और द्वादश-आदित्यरूपानल ।

‡ (कामदेव के) पाँच बाण— अरविन्द, अशोक, चूत (आम्र-मंजरी), नवमल्लिका या मोगरा और नील-कमल । कामदेव के बाण फूलों के होते हैं ।

सोडोनि स्थान । कीं वर्षतां अपार घन । अचळ बैसका सोडीना । ३० निंदक निंदिती अपार । न ढळे साधूचें अंतर । कीं प्रल्हादासी लावितां विखार । परी तो धीर सोडीना । ३१ तैसें रामठाण अति गंभीर । चळलें नाहीं अणुमात्र । रामासी भेदले पांच शर । म्हणोनि रावण तोषला । ३२ यावरी राजाधिराज रघुनाथ । परम चतुर रणपंडित । चापासी बाण लावूनि सप्त । दशकंठावरी सोडिले । ३३ दशमुखाचें हृदय फोडून । पलीकडे लंकेसी गेले सप्त बाण । त्या व्यथेनें रावण । मूर्च्छा येऊन पडों पाहे । ३४ राघवतनु परम सुकुमार । भेदोनि गेले पंच शर । तें देखोनि सौमित्र । स्नेहेंकरून उचंबळला । ३५ पाठीसीं घालूनि रघुनंदन । सौमित्र मांडोनि वज्रठाण । सोडोनि

स्थान को छोड़कर नहीं जाता, अथवा मेघ के अपार बरस जाने पर भी पर्वत अपना आसन नहीं छोड़ता । ३० अथवा निन्दक अपार निन्दा करते हैं, फिर भी साधु पुरुष का मन विचलित नहीं होता । अथवा प्रह्लाद को * सर्प द्वारा डसवाया गया था, फिर भी उसने धैर्य का त्याग नहीं किया था । ३१ उस प्रकार श्रीराम का पैंतरा अति गंभीर (धैर्ययुक्त दृढ़) था, (रावण के द्वारा बाण चलाने और शरीर भिद जाने पर भी) वह अणु मात्र तक नहीं विचलित हुआ । परन्तु उन पाँच बाणों ने श्रीराम को भेद डाला, इसलिए रावण सन्तोष को प्राप्त हुआ । ३२ इसपर राजाधिराज रघुनाथ— जो परम चतुर और युद्ध-कला में पंडित (निपुण) थे— ने धनुष पर सात बाण लगाते हुए रावण की ओर छोड़ दिये । ३३ वे सातों बाण दशमुख के हृदय को भेदकर उस पार लंका में गये । उस (से उत्पन्न) व्यथा के कारण रावण मूर्च्छा आने से गिरने को था । ३४ (इधर) श्रीराम की देह परम सुकोमल थी और उसे पाँच बाण भेदते हुए (पार) निकल गये । यह देखते ही लक्ष्मण स्नेह से उमड़ उठा । ३५ (फिर) श्रीराम को पीठ की ओट करके लक्ष्मण ने वज्र-सा पैंतरा लेते हुए अर्धचन्द्र (की-सी आकृति का) बाण चलाकर रावण के सारथी को

* टिप्पणी : प्रह्लाद— यह दैत्यराज हिरण्यकशिपु तथा कयाधू का पुत्र था। यह बचपन से ही विष्णु-भक्त था । परन्तु हिरण्यकशिपु उसे पसन्द नहीं करता था। बार बार समझाने पर भी जब प्रह्लाद हरि-भक्ति से विमुख नहीं हुआ, तो हिरण्यकशिपु ने क्रोध से उसे मरवा डालने का यत्न किया । उसने प्रह्लाद को विष पिलाया, पर्वत पर से गिरवा दिया, हाथी के पैरों तले कुचलवा डालने का यत्न किया, सर्प द्वारा डसवाया— फिर भी प्रह्लाद पर उसका कोई असर नहीं हुआ । (अन्त में भगवान् ने नरसिंह रूप में खम्भे से प्रकट होकर, हिरण्यकशिपु का वध किया) ।

अर्धचंद्रबाण । सारथि मारिला रावणाचा । ३६ आणिक सोडिले दश बाण । दाही धनुष्यें पाडिलीं छेदून । तों पुढें धांवोनि बिभीषण । अष्ट बाण सोडिले । ३७ रावणारथीं अष्ट तुरंग । बिभीषणें मारिले सवेग । सवेंची एक बाणें अव्यंग । ध्वजही खालीं पाडिला । ३८ दुसरा आणोनि स्यंदन । त्यावरी बैसला रावण । क्षोभला जैसा प्रळयाग्न । तप्त पूर्ण तेवीं जाहला । ३९ मग ब्रह्मशक्ति परम दारुण । बिभीषणावरी प्रेरी दशानन । अनिवार शक्ति जाणून । लक्ष्मण पुढें जाहला । ४० जैसें शस्त्र पडतां दारुण । पुढें होय करींचें ओडण । तैसा तो ऊर्मिला-जीवन । बिभीषणापुढें जाहला । ४१ शक्ति येत जैसी सौदा-मिनी । राघवानुजें बाण सोडोनी । गगनीं भाग त्रय करूनी । असुरवाहिनीवरी पाडिली । ४२ जैसा अविधीनें जपतां मंत्र । होय जेवीं आपला संहार । तैसी शक्ति पडतां असुर । दग्ध बहुत जाहले । ४३ शक्ति व्यर्थ गेली जाणोन । बिभीषणासी बोले रावण । सौमित्राचे पाठीसीं दडोन । कां रे संग्राम

मार डाला । ३६ उसने और भी दस बाण छोड़े और (रावण के) दसों धनुषों को काटकर गिरा डाला । तब विभीषण ने आगे दौड़ते हुए आठ बाण छोड़ दिये । ३७ (उनसे) विभीषण ने रावण के रथ के आठ घोड़ों को वेगपूर्वक (झट से) मार डाला । (इसके) साथ ही एक निर्दोष बाण से ध्वज भी नीचे गिरा दिया । ३८ तो दूसरा रथ (लिवा) लाकर रावण उसपर बैठ गया । वह प्रलयाग्नि जैसा क्षुब्ध हो उठा । तब वह (क्रोधाग्नि से) पूर्णतः तप्त हो गया । ३९ तब उसने ब्रह्मा द्वारा दी हुई परम दारुण शक्ति विभीषण की ओर चला दी । तो उस शक्ति को अनिवार्य समझते हुए लक्ष्मण आगे हो गया । ४० जैसे दारुण शस्त्र के पड़ने पर हाथ की ढाल (स्वाभाविक रूप से) आगे हो जाती है, उस प्रकार वह लक्ष्मण (ढाल जैसा) विभीषण के सामने (उपस्थित) हो गया । ४१ वह शक्ति बिजली जैसी आ रही थी, तो लक्ष्मण ने बाण छोड़कर उससे उसके तीन टुकड़े करते हुए राक्षसों की सेना पर उन्हें गिरा दिया । ४२ जिस प्रकार (किसी द्वारा) अविधि से मन्त्र का जाप करने (अर्थात् उचित विधि के अनुसार न करने) पर उसका अपना ही संहार होता है, उस प्रकार शक्ति के गिर जाने से बहुत असुर (जलकर) दग्ध हो गये । ४३ शक्ति को व्यर्थ हो गये जानकर रावण विभीषण से बोला— 'अरे, तू लक्ष्मण के पीछे छिपकर क्यों युद्ध कर रहा है ? ४४

करितोसी । ४४ रामासी भेटोनि मूर्खा । संकट भेदावया देखा । दीन वचनें बोलिलासी नेटका । प्राण आपुला रक्षिला । ४५ आम्ही राक्षस मृगनायक । आम्हांत जन्मलासी तूं जंबुक । कुळाभिमान सांडूनि देख । शरण गेलासी शत्रूतें । ४६ आम्हीं पाळिलें तुज इतुके दिन । जैसें भस्मांत घातलें अवदान । किंवा प्रेत शृंगारून । व्यर्थ जैसें मिरविलें । ४७ कीं नारी सुंदर पद्मिण । षंढासी दिधली नेऊन । तैसें तुझें पाळण । व्यर्थ आम्हीं केलें रे । ४८ अरे बिभीषणा शतमूर्खा । वैरियाचा जाहलासी सखा । दीनवचन बोलोनि कीटका । कुळक्षय केला रे । ४९ बिभीषण म्हणे रे बुद्धिहीना । दशग्रीवा कपटिया मलिना । मी शरण आलों रघुनंदना । जन्ममरणातीत जाहलों । ५० मीं तुज सांगितलें हित । परी तूं नायकिसी उन्मत्त । कुळक्षय जाहला समस्त । तुजही रघुनाथ वधील पैं । ५१ ऐसें बिभीषण बोलत । रावण जाहला क्रोधयुक्त । करकरां खाऊनि दांत । श्वासोच्छ्वास टाकीतसे । ५२ तुज राखीतसे सौमित्र । तरी त्यासी करीन चूर । माझा इंद्रजित

रे मूर्ख, देख, संकट को नष्ट करने के हेतु तूने राम से मिलकर दीन (वाणी से) बातें कही होंगी और अपने प्राणों की ठीक से रक्षा की है । ४५ हम राक्षस सिंह हैं; हम (सिंहों) में तू सियार जन्म को प्राप्त हो गया है । देख, कुलाभिमान को छोड़कर तू शत्रु की शरण में गया है । ४६ हमने तुझे इतने दिन पाला । जैसे भस्म में होम-द्रव्य डाल दिया हो, अथवा जैसे प्रेत को सजाकर व्यर्थ ही गाजे-बाजे के साथ भ्रमण कराया हो, अथवा जैसे पद्मिनी जाति की स्त्री को ले जाकर षण्ढ (नपुंसक) को दिया हो, वैसे हमने तुम्हारा व्यर्थ ही पालन किया । ४७-४८ रे शतमूर्ख विभीषण, बैरी का तू मित्र बन गया है । रे कीटक, दीन वचन बोलकर तूने कुल का क्षय किया है । ' ४९ (यह सुनकर) विभीषण ने कहा— ' रे बुद्धिहीन दशग्रीव, रे कपटी, रे मलिन (पापी), मैं रघुनन्दन की शरण में आ गया हूँ, तो मैं जन्म-मरण के परे हो गया हूँ । ५० मैंने तुझसे हित कहा (अर्थात् हित की बात कही), परन्तु, तू उन्मत्त ने उसे नहीं सुना (माना) । (फलस्वरूप) कुल का पूरा क्षय हुआ है— (अब) रघुनाथ तेरा भी वध करेंगे । ' ५१ विभीषण ऐसा बोला, तो रावण क्रोध-युक्त (क्रुद्ध) हो उठा । (फिर) दाँतों को किटकिटाकर पीसते हुए (जोर से) साँस (-उसाँस) लेने लगा । ५२ (फिर वह बोला—)

विजयी पुत्र । येणेंचि गिळिला निकुंभिले । ५३ अतिकायाऐसें निधान । येणेंचि गिळिलें न लागतां क्षण । तरी या सौमित्राचा आजि प्राण । समरांगणीं घेईन मी । ५४ ऐसें बोलोनि लंकापती । धगधगित काढिली शक्ति । गवसणी काढितांचि जगतीं । तेज अद्‌भुत पसरलें । ५५ कीं उगवले सहस्र मार्तंड । तैसी शक्ति दिसे प्रचंड । किंवा उभारिला काळदंड । संहारावया विश्वातें । ५६ कीं प्रळयाग्निशिखा प्रबळ । किंवा कृतान्तजिव्हा तेजाळ । कीं ती प्रळयमेघांतील । मुख्य चपळा निवडिली । ५७ कीं सप्तकोटिमंत्रतेज पाहीं । एकवटलें शक्तीचे ठायीं । ते मयें दशग्रीव जांवई । म्हणोनि उचित दीधली । ५८ ते मयशक्ति काढून पाहीं । कधीं कोणावर घातली नाहीं । ते सौमित्रावरी ते समयीं । रावण प्रेरिता जाहला । ५९ न्यासासहित जपोनि मंत्र । सोडोनि दिधली सत्वर । नवखंडधरित्री अंबर । तडाडलें ते काळीं । ६० सहस्र विजा कडकडती । तैसी अनिवार धांवे शक्ती । भयें व्यापिला सरितापती । अंग टाकों पाहाती

'लक्ष्मण तेरी रक्षा कर रहा है, परन्तु मैं उसे (भी) चूर-चूर कर डालूँगा । मेरे विजयी पुत्र इन्द्रजित को इसी ने निकुंभिला में निगल डाला । ५३ अतिकाय जैसे निधान को इसी ने क्षण न लगते निगल डाला है । इसलिए इस लक्ष्मण के प्राण मैं आज युद्ध-भूमि में ले लूँगा ।' ५४ ऐसा बोलकर लंकापति रावण ने धधकती हुई एक शक्ति निकाली । उसके आवरण को निकालते ही जगत् में उसका अद्‌भुत तेज फैल गया । ५५ अथवा यदि सहस्र सूर्य (एक साथ) उदय को प्राप्त हों, (तो वे जैसे दिखायी देंगे) वैसी प्रचण्ड वह शक्ति दिखायी दे रही थी । अथवा जान पड़ता था कि (उसके रूप में) विश्व का संहार करने के लिए काल-दण्ड को (निर्माण कर) आगे बढ़ाया हो । ५६ अथवा वह प्रलयाग्नि की अति प्रबल (तेजस्वी) ज्वाला हो, अथवा कृतान्त की चमकती हुई जिह्वा हो, अथवा वह चुनी हुई प्रलय-मेघ में से प्रमुख बिजली हो । ५७ अथवा, देखो सात करोड़ मन्त्रों का तेज उस शक्ति में इकट्ठा हो गया था । रावण जामाता है, अतः मय ने उचित समझकर वह (रावण को) प्रदान की थी । ५८ देखो, मय द्वारा दी हुई उस शक्ति को निकालकर रावण ने (अब तक) कभी भी किसी पर नहीं चलाया था । (परन्तु) रावण ने उस समय उसे लक्ष्मण पर छोड़ दिया । ५९ रावण ने न्यास सहित (अर्थात् शस्त्र पर विधियुक्त) मन्त्र का जाप करते हुए

दिग्गज । ६१ देव विमानें पळविती । गिरिकंदरीं वानर दडती । एक मूर्च्छा येऊनि पडती । न उठती मागुती । ६२ दोन्ही दळें भयातुर । पळों लागले महावीर । तों ब्रह्माण्डासी देणार धीर । रुद्रावतार धांविन्नला । ६३ मारुती बळिया जगजेठी । तेणें धरिली वाममुष्टीं । मोडावी तों उठाउठीं । दिव्य स्त्रीरूप जाहली । ६४ मग ते म्हणे मारुतीसी । ब्रह्मचारी तूं म्हणविसी । परस्त्रियेसीं कां झोंबसी । सोडीं वेगेंसी जाऊं दे । ६५ मी रावणकन्या साचार । आजि वरीन सौमित्र वीर । सोडीं जाऊं दे सत्वर । मुहूर्तवेळा जातसे । ६६ मारुति योगी इंद्रियजित । स्त्री म्हणोनि सोडिली अकस्मात । तंव ती जाहली पूर्ववत । प्रळय करीत चालली । ६७ वानरदळीं मांडला आकान्त । देव

उसे झट से छोड़ दिया, तो उस समय नव-खण्ड * धरित्री तथा आकाश तड़तड़ा उठे । ६० सहस्रों बिजलियाँ (एक साथ कड़कड़ाती हुई) गरजती हों, (तो जैसी ध्वनि उत्पन्न होती है) वैसी (ध्वनि करते हुए) वह शक्ति अनिवार्य रूप में दौड़ रही थी । (उससे) समुद्र भीति से व्याप्त (ग्रस्त) हो गया, तो दिग्गज लुढ़कने को ही थे । ६१ देवों ने अपने विमानों को दौड़ाया, वानर गिरि-कन्दराओं में छिप गये । कोई-कोई तो मूर्च्छा के आने से गिर पड़े और फिर उठ न पाये । ६२ दोनों सेना-दल भय से व्याकुल हो गये, बड़े (-बड़े) वीर (तक) भाग जाने लगे । तब ब्रह्माण्ड को ढाढ़स बँधानेवाला रुद्रावतार हनुमान दौड़ा । ६३ हनुमान तो बलवान तथा जगत् में सर्वश्रेष्ठ अर्थात् ईश्वर था । उसने उस शक्ति को बाएँ हाथ की मुट्ठी में पकड़ लिया और जब वह उसे तोड़ने ही जा रहा था, त्यों ही वह (शक्ति) दिव्य स्त्री रूप (में परिवर्तित) हो गयी । ६४ फिर उसने हनुमान से कहा— 'तुम ब्रह्मचारी कहाते हो, तो पर-स्त्री का बलात् आलिंगन क्यों कर रहे हो ? (मुझे) छोड़ दो, (मुझे) झट से जाने दो । ६५ मैं वस्तुतः रावण की कन्या हूँ, आज मैं वीर लक्ष्मण का (पति के रूप में) वरण करूँगी । (मुझे) छोड़ दो, (मुझे) झट से जाने दो, मुहूर्त-वेला टल रही है ।' ६६ हनुमान तो इन्द्रियों पर विजय पाया हुआ योगी था । 'स्त्री' मानकर उसने उसे बिना सोचे-विचारे छोड़ दिया, तो वह पहले की भाँति (शक्ति)

* टिप्पणी : नवखण्ड धरित्री— इलावृत्त, भद्राश्च, हरिवर्ष, किंपुरुष, केतुमाल, रम्यक, भरत, हिरण्मय और उत्तरकुरु । अथवा— भरत, वर्त्त, राम, द्रमिल, केतुमाल, होरक, विधिवस, महि और सुवर्ण । अथवा— इन्द्र, कशेरु, ताम्र, नाग, गभस्ति, वारुण, सौम्य, ब्रह्म, भरत ।

जाहले भयभीत । म्हणती मयशक्ति अद्भुत । कोणावरी पडेल हे । ६८ तंव लक्ष्मण लक्षीत । मनोवेगें शक्ति येत । ते छेदावया सुमित्रासुत । बाण आकर्ण ओढीतसे । ६९ जैसी चपळा ये कडकडोनी । तैसी हृदयीं बैसे येउनी । वक्षःस्थळ चूर्ण करूनी । जाय निवूनि पृष्ठीद्वारें । ७० पृथ्वी फोडूनि शक्ति गेली । पाताळोदकीं ते विझाली । असो सौमित्राची तनु पडली । भूमीवरी निचेष्टित । ७१ मृत्तिकाघट जेवीं होय चूर्ण । फणस पडे पवनें विदारून । तैसा सुमित्रानंदन । छिन्नभिन्न जाहला । ७२ मग एकचि जाहला हाहाकार । देव गजबजिले समग्र । रणीं पडला सौमित्र । वानरदळ शोक करी । ७३ तंव हांक फोडी बिभीषण । गजबजले सुग्रीव रघुनंदन । सौमित्राजवळी धांवोन । येते जाहले ते काळीं । ७४ अंगद नळ नीळ जांबुवंत । सुषेण शरभ गवय हनुमंत । धांविन्नले वानर समस्त । हृदय पिटीत ते काळीं । ७५ एकचि वर्तला आकान्त । मिळाले सौमित्रा

हो गयी और प्रलय मचाती हुई चली जाने लगी । ६७ (इधर) वानर-दल ने बावेला मचा दिया; देव भयभीत हो गये और बोले— ' मय असुर द्वारा दी हुई यह शक्ति अद्भुत है । (न जाने,) वह किसपर गिर जाएगी । ६८ तब लक्ष्मण को देखते हुए अर्थात् लक्ष्य करके वह शक्ति मन के-से वेग से आ रही थी । तो उसे छेद डालने के लिए लक्ष्मण ने बाण कानों तक खींचा । ६९ जिस प्रकार बिजली कड़कड़ाते हुए आती है, वैसे आकर वह शक्ति (लक्ष्मण के) हृदय-स्थल से टकरा गयी और उसकी छाती को चूर-चूर करते हुए वह पीठ के द्वार (-मार्ग) से चली गयी । ७० वह शक्ति पृथ्वी को भेदकर जाते हुए पाताल के जल में बुझ गयी । अस्तु । (इधर) लक्ष्मण की देह भूमि पर निश्चेष्ट पड़ गयी । ७१ मिट्टी का घड़ा (आघात होने पर) जैसे चूर-चूर हो जाता है, (अथवा) वायु (के थपेड़े) से जैसे विदीर्ण होकर कटहल पड़ जाता है. वैसे (उस शक्ति के आघात से) लक्ष्मण छिन्न-भिन्न हो गया (और गिर पड़ा) । ७२ तब अपूर्व हाहाकार मच गया । समस्त देव भयभीत हो गये । लक्ष्मण युद्ध में पड़ गया, अतः वानर-दल शोक करने लगा । ७३ तब विभीषण चिल्ला उठा, तो सुग्रीव और रघुनन्दन दहल उठे और उस समय दौड़ते हुए लक्ष्मण के पास आ गये । ७४ अंगद, नल, नील, जाम्बवान, सुषेण, शरभ, गवय, हनुमान— समस्त वानर उस समय छाती पीटते हुए दौड़े । ७५ (वहाँ) अपूर्व बावेला मच गया;

वेष्टीत। निकट बैसोनि रघुनाथ। पाहता जाहला ते काळीं। ७६ तों हृदय विदारलें अत्यंत। पृष्ठीद्वारें वाहे रक्त। नासिकासी जों लाविला हस्त। तों श्वासोच्छ्वास राहिला। ७७ आरक्त जाहले हस्त नयन। बाण तैसाचि ओढिला आकर्ण। कानाडी-सहित लक्ष्मण। निचेष्टित पडिलासे। ७८ प्राण न दिसे अणुमात्र। ऐसें देखोनि राजीवनेत्र। वक्षःस्थळ पिटोनि शरीर। भूमीवरी टाकिलें। ७९ सवें बिभीषणें सांवरून। बैसविला सीता-रमण। सौमित्रा मांडीवरी घेऊन। रामबैसला ते काळीं। ८० मुखावरी ठेवून मुख। शोक करी अयोध्यानायक। म्हणे प्राणसखया गोष्ट एक। मजसीं बोलें एकदां। ८१ बा रे नेत्र उघडून। पाहें मजकडे विलोकून। तूं सुकुमार बाळ पूर्ण। भरिलें त्रिभुवन प्रतापें। ८२ चतुर्दश वर्षें वनवासी। बा रे फळें पुरविलीं आम्हांसी। म्यां मारिलें उपवासी। एक दिवसीं पुसिलें नाहीं। ८३ तोचि राग धरूनि मनीं। सखया जातोसी

वे लक्ष्मण को घेरकर इकट्ठा हुए। उस समय श्रीराम ने (लक्ष्मण के) निकट बैठकर देखा। ७६ तब (दिखायी दिया कि लक्ष्मण का) हृदय (-स्थल) अत्यन्त विदीर्ण हो गया था; पीठ (के द्वार) से रक्त बह रहा था। उन्होंने जब उसकी नाक को हाथ लगाया, तो श्वासोच्छ्वास रुक गया था। ७७ उसके हाथ और नेत्र लाल हो गये थे। बाण वैसे ही आकर्ण खींचा हुआ रहा था। लक्ष्मण आकर्ण खींची हुई (धनुष की) डोरी सहित निश्चेष्ट पड़ा था। ७८ (उसके शरीर में) प्राण अणुभर तक नहीं दिखायी दे रहे थे। ऐसा देखकर कमल-नयन श्रीराम ने छाती को पीटते हुए अपनी देह को भूमिपर लुढ़का दिया। ७९ (परन्तु) साथ ही विभीषण ने श्रीराम को सम्हालते हुए बैठा दिया। (फिर) उस समय श्रीराम लक्ष्मण को गोद में लेकर बैठ गये। ८० मुख पर मुख रखते हुए अयोध्या-नायक श्रीराम ने शोक करना आरम्भ किया। वे बोले— 'हे प्राण-सखा, एक बार मुझसे कोई एक बात तो बोलो। ८१ अरे, आँखें खोलकर मेरी ओर एक बार तो ध्यान से देखो। तुम तो पूर्णतः सुकोमल बालक हो, (फिर भी) तुमने अपने प्रताप से त्रिभुवन को भर (व्याप कर) दिया। ८२ हम चौदह वर्ष बनवासी हैं। अरे, (इस अवधि में) तुमने (ही) हमें फल ला दिये। (परन्तु) मैंने तुम्हें निराहार मार डाला ! मैंने एक दिन भी तुम्हारी पूछताछ नहीं की। ८३ हे सखा, इसी क्रोध को मन में रखते हुए, तुम रूठकर जा रहे हो।

रुसोनी । मी आपुला प्राण त्यजूनी । येईन तुजसमागमें । ८४
मी अयोध्येसी जातां जाण । सुमित्रा पुसेल मजलागून । तीतें
काय सांगों वचन । नेत्र उघडून पाहें पां । ८५ त्रिभुवन
जिंकिलें इंद्रजितें । जो नावरे कोणातें । तो रावणी तुवां
शरपंथें । जर्जर करूनी मारिला । ८६ तुज देव चिंतिती
कल्याण । आजि समरीं केलें शयन । तुजलागीं भरत शत्रुघ्न ।
त्यजितील प्राण सौमित्रा । ८७ ऐसा शोक करितां रघुवीर ।
जाहला एकचि हाहाकार । तंव तो रावणानुज भक्त थोर । बोलता
जाहला ते काळीं । ८८ शत्रु समोर उभा रणीं । शोक करितां
जी ये क्षणीं । हा क्षात्रधर्म चापपाणी । सहसा नव्हे विचा-
रिजे । ८९ वैरी उभा असे समोर । त्यासी पराभवावा सत्वर ।
मग सौमित्राचा विचार । कळेल तैसा करावा । ९० नरवीर-
श्रेष्ठा रघुनंदना । सर्वथा भय नाहीं लक्ष्मणा । शरधारीं छेदीं
रावणा । म्हणोनि चाप बाण दीधले । ९१ उभा राहिला
रणरंगधीर । जो राक्षसकुळवैश्वानर । कीं ग्रासावया ब्रह्माण्ड

(अब) मैं अपने प्राणों का त्याग कर तुम्हारे साथ आऊँगा । ८४ जान
लो, मेरे अयोध्या (लौट) जाने पर (माता) सुमित्रा मुझसे पूछेगी, तो मैं
उससे क्या बात कहूँ ? अरे, नेत्र खोलकर देखो तो। ८५ (जिस) इन्द्रजित
ने त्रिभुवन को जीत लिया, जो किसी से रोका नहीं जा पाता था, उस
रावण-पुत्र को तुमने बाण से जर्जर करके मार डाला । ८६ देव तुम्हारे
लिए कल्याण की कामना कर रहे थे, परन्तु तुम आज समर (-भूमि) में
सो गये हो । हे सौमित्र, तुम्हारे लिए भरत और शत्रुघ्न प्राण त्यज
देंगे । ' ८७ श्रीराम द्वारा ऐसा शोक करते रहने पर, अपूर्व हाहाकार
मच गया । तब रावण का छोटा बन्धु तथा भक्त-श्रेष्ठ विभीषण उस
समय बोला । ८८ ' अहो, रणभूमि में शत्रु सामने खड़ा है, तो इस क्षण
शोक कर रहे हो ? हे चापपाणि श्रीराम, विचार कीजिए, यह क्षात्रधर्म
कदापि नहीं हो सकता । ८९ शत्रु सामने खड़ा है । झट से उसे
पराजित कर देना । फिर जैसे (उचित) प्रतीत हो जाए, लक्ष्मण का
विचार कर लेना । ९० हे नर-वीर-श्रेष्ठ रघुनन्दन, लक्ष्मण के लिए कोई
भय नहीं है । (तुम्हें) धनुष-बाण इसलिए दिये हैं कि (आप जैसे)
शर-धारी रावण को छेद डालें । ' ९१ (यह सुनकर) रण-रंग-धीर
श्रीराम खड़े हो गये । मानो, वे राक्षस-कुल को जलानेवाले अग्नि ही हों,
अथवा समग्र ब्रह्माण्ड को ग्रस देने के लिए कल्पान्त के समय कृतान्त यम

समग्र । कृतान्त क्षोभला कल्पान्तीं । ९२ चाप टणत्कारिलें ते वेळीं । झणत्कारल्या घंटा सकळी । उर्वीसह शेष डळमळी । गजबजलीं सप्त पाताळें । ९३ क्रोध श्रीरामाचा देखोन । गज सिंह शार्दूल भूतगण । गतप्राण बहुत होऊन । काननामाजी पडियेले । ९४ दाशरथीचे हृदयांत । क्रोधसागर हेलावत । वज्रठाण मांडी रघुनाथ । जें कृतान्त पाहूं न शके । ९५ रावणासी म्हणे रघुनंदन । सौमित्रावरी शक्ति टाकून । कोठें जासी तूं पळून । करीन चूर्ण बाणघातें । ९६ सौमित्र पडिला म्हणवून । संतोषे दशमुखवारण । त्यावरी रामपंचानन । सरसावोनि धांविन्नला । ९७ भातां शर भरले सबळ । जैसें शेषमुखीं हाळाहळ । कीं समुद्रामाजी वडवानळ । मेघीं चपळा जया-परी । ९८ ते शर सोडीत रघुपती । एका शराचे कोटी होती । तटतटां तुटोनी पडती । राक्षसशिरें ते काळीं । ९९ बिळीं निघतां विखार । तैसे रावणासी रुपती शर । कीं पिच्छें पसरी मयूर । कीं तृणांकुर पर्वतीं । १०० कनकफळावरी कंटक

क्षुब्ध हो उठे हों । ९२ उस समय उन्होंने जब धनुष का टनत्कार कर दिया, तो (उसमें बँधी हुई) समस्त घंटियाँ झँकार कर उठीं । (उससे) पृथ्वी-सहित शेष डगमगा उठा और सातों पाताल भयभीत हो गये । ९३ श्रीराम के क्रोध को देखकर बहुत हाथी, सिंह, बाघ, भूतगण गत-प्राण होकर वन में गिर पड़े । ९४ दाशरथी श्रीराम के हृदय में (मन में) क्रोध-रूपी सागर उमड़ उठा । फिर श्रीराम ने वज्र सा (ऐसा) अचल पैंतरा ग्रहण किया, जिसे कृतान्त (तक मारे भय के) देख नहीं सकता । ९५ (तदनन्तर) श्रीराम ने रावण से कहा—'लक्ष्मण पर शक्ति चलाकर तुम कहाँ भाग जा सकते हो ? मैं तुम्हें बाण के आघात से चूर-चूर कर दूँगा ।' ९६ लक्ष्मण (युद्ध-भूमि में) गिर गया, इसलिए रावण रूपी हाथी सन्तोष को प्राप्त हो गया था, तो उसपर श्रीराम रूपी सिंह आगे बढ़ते हुए चढ़ दौड़ा । ९७ जिस प्रकार शेष के मुख में हलाहल भरा होता है, अथवा समुद में वड़वाग्नि होती है, अथवा जिस प्रकार मेघ में बिजली होती है, उस प्रकार श्रीराम द्वारा तरकस में सबल बाण भरे हुए थे । ९८ श्रीराम ने जब उन बाणों को छोड़ना आरम्भ किया, तो एक बाण से करोड़ (बाण उत्पन्न) हो जाते । उनसे उस समय राक्षसों के मस्तक तड़ाक-पड़ाक टूटकर गिर जाते । ९९ बिलों में घुसते हुए साँप जैसे दिखायी देते हैं, वैसे (श्रीराम द्वारा छोड़े हुए) बाण रावण (की

स्पष्ट । तैसे शर रुतले सघट । रावणही सोडी शर तिखट । परी निष्फळ होती ते । १ मातेचिया कैवारें । क्षत्रिय संहारिले फरशधरें । तैसा सौमित्र पडतां रघुवीरें । असुरदळ तेव्हां संहारिलें । २ उरग संहारिले वैनतें । कीं शंकरें जाळिलें त्रिपुरातें । कीं प्रळयाग्नीनें सृष्टीतें । कल्पान्तकाळीं जाळिलें । ३ कीं तारकासुराचें दळ । षडाननें मारिलें सकळ । कीं मार्तंडें तिमिरजाळ । विध्वंसोनि टाकिलें । ४ कीं शक्रें केले नग चूर । कीं ज्ञानें हरे भवभय समग्र । कीं नामें पापसंहार । जैसा होय एकदांचि । ५ तैसीं प्रतापार्कें रघुनंदनें । विध्वंसिलीं अरिता-

देह) में गड़ जाते (हुए दिखायी दे रहे थे)। अथवा (रावण की ओर देखने पर जान पड़ता था कि) मानो मोर ने अपने परों को फैला दिया हो, अथवा पर्वत पर घास के अंकुर फूट उठे हों। १०० जैसे धतूरे के फल पर काँटे स्पष्ट दिखायी देते हैं, वैसे बाण समूह (के रूप में) गड़े हुए (दिखायी देते) थे। (उधर से) रावण भी तीक्ष्ण बाण छोड़ता था, परन्तु वे व्यर्थ हो जाते। १ माता का पक्षपात करते हुए परशु (-धारी)-राम ने क्षत्रियों का संहार कर डाला था, * उस प्रकार लक्ष्मण के गिर जाने पर श्रीराम ने तब राक्षसों के दल का संहार कर डाला। २ गरुड़ ने ‡ सर्पों का संहार किया था, अथवा शिवजी ने § त्रिपुर को जला डाला था अथवा कल्पान्त काल में प्रलयाग्नि ने सृष्टि को जला दिया था। ३ अथवा षड़ानन स्कन्द ने ‡ तारकासुर के समस्त दल को मार डाला था,

* टिप्पणियाँ : परशुराम भृगु-कुलोत्पन्न जमदग्नि ऋषि का पुत्र था। कार्तवीर्य जमदग्नि की कामधेनु बलात् ले गया था। परशुराम ने उसका वध किया; परन्तु पिता के आदेश के अनुसार हत्या के पाप के क्षालनार्थ वह तपस्या करने गया। तब कार्तवीर्य के पुत्रों ने जमदग्नि का वध किया। परशुराम की माता रेणुका भी कुछ घायल हुई थी। लौट आने पर परशुराम ने पिता के वध का बदला लेते हुए इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय हीन कर डाला। कहते हैं कि माता रेणुका ने इस सम्बन्ध में परशुराम को आज्ञा दी थी।

‡ गरुड़ द्वारा सर्प-संहार : कश्यप ऋषि से दक्षकन्या कद्रू के एक सहस्र सर्प पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए। गरुड़ (विनता का पुत्र) उनका सौतेला भाई था। कहते हैं, ये सर्प प्रजा को बहुत पीड़ा पहुँचाने लगे, तो ब्रह्मा ने उन्हें अभिशाप दिया—तुम्हारे सौतेले बन्धु गरुड़ द्वारा (तथा जनमेजय के सर्प-यज्ञ में भी) तुम्हारा नाश होगा। कद्रू और विनता में सौतिया अनबन थी। फलस्वरूप कद्रू ने विनता को कपट से दासी बना रखा था। इन्द्र की सहायता से विनता दास्य से मुक्त हुई। इन्द्र ने गरुड़ को वर दिया कि सर्प उसके भक्ष्य बनेंगे। फलस्वरूप गरुड़ ने सर्पों का वध किया।

§ और ‡ निशान की टिप्पणियाँ ९८२ पृष्ठ पर पढ़िये।

रागणें । जेवीं प्रयागीं एका स्नानें । कोटिजन्मांचीं पापें जळती । ६ प्रभंजन राम तमालनील । विदारिलें रिपुजलदजाल । तेव्हां किती पडलें राक्षसदळ । गणित केलें वाल्मीकें । ७ दहा सहस्र वारण उन्मत्त । नियुत तुरंग स्वारांसहित । पन्नास सहस्र महारथ । रथियांसहित पडियेले । ८ शतकोटी पडे पायदळ । तेव्हां एक कबंध उठे सबळ । ऐशीं कोटी कबंधें विशाळ । तेव्हां नाचती रणांगणीं । ९ तेव्हां रामधनुष्याची किंकिणी । एकदां वाजे तये क्षणीं । चौदाही घंटा रणांगणीं । वाजों लागल्या

अथवा सूर्य अन्धकार के जाल को उध्वस्त कर डालता है । ४ अथवा इन्द्र ने ♦ पर्वतों को चूर-चूर कर डाला था, अथवा (आत्म-) ज्ञान से समस्त सांसारिक भय का हरण हो जाता है, अथवा जिस प्रकार (भगवन्-) नाम (के स्मरण) से एकबारगी पापों का संहार हो जाता है, अथवा जिस प्रकार प्रयाग में एक (ही बार किये हुए) स्नान से करोड़ों जन्मों के पाप जल जाते हैं, उस प्रकार प्रताप-सूर्य रघुनन्दन ने शत्रु-रूपी तारागणों का विध्वंस कर डाला । १०५-१०६ तमाल-नील श्रीराम रूपी प्रभंजन (वायु) ने शत्रु रूपी मेघ-जाल को विदीर्ण कर दिया । तब कितने राक्षस-दल का संहार हुआ, इसका हिसाब वाल्मीकि ने (अपने रामायण में प्रस्तुत) किया है । ७ (आरूढ़ योद्धाओं सहित) दस सहस्र उन्मत्त हाथी तथा सवारों सहित दस लाख घोड़े और रथियों सहित पचास सहस्र बड़े-बड़े रथ गिर गये । ८ सौ करोड़ पदाति-दल के सैनिक गिर पड़े । तब (इतने में) एक (-एक) बलवान कबन्ध (धड़) उठने लगा । इस

§ शिवजी द्वारा त्रिपुर-दहन : मयासुर ने ब्रह्मा की कृपा से तीन पुरों की रचना की, जो क्रमशः लोहमय, रौप्यमय और सुवर्णमय थे । इन पुरों का आधिपत्य तारकासुर के पुत्रों— ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली को प्राप्त हुआ । ये तीन असुर ही ‘ त्रिपुर ’ नाम से विख्यात हुए । आगे चलकर उन असुरों ने अधर्माचरण आरम्भ किया । अन्त में शिवजी ने उनका वध करते हुए उन तीन पुरों को भी जला डाला ।

‡ षड़ानन स्कंद : शिव और पार्वती के पुत्र स्कंद या कार्तिकेय के छः मुख थे । इसलिए उसे षड़ानन भी कहते हैं । तारकासुर नामक दैत्य ने जब पृथ्वी में उत्पात मचाया, तो कहा गया कि शिवजी का पुत्र ही उसका वध कर पाएगा । अतः उसका जन्म इसी कार्य के लिए हुआ । स्कंद देवों का सेनापति नियुक्त हुआ । केवल सात दिन की अवस्था में उसने तारकासुर का वध किया ।

♦ टिप्पणियाँ : इन्द्र द्वारा पर्वतों का दलन : कहते हैं कि पूर्वकाल में पर्वतों के पंख थे और वे चाहे जहाँ जा सकते थे । फलस्वरूप पर्वत स्वैर संचरण करने लगे थे । तो इन्द्र ने अपने वज्र से आघात करके उनके पंखों को काट डाला । तब से वह अचल हो गये ।

तेधवां। ११० एक अर्धयामपर्यंत। घंटा घणाघणां वाजत। तेव्हां राक्षस पडिले अगणित। शेषातेंही न गणवे। ११ वेदान्त-शास्त्र गर्जे प्रचंड। तैसें झणत्कारे रामकोदंड। पाखंडी तर्क घेती वितंड। रावणचाप तेवीं वाजे। १२ जैसे सन्मार्गीं वर्तती संत। तैसे श्रीरामाचे बाण जात। वाल्मीक कोळी अभक्त। तैसे शर येती रावणाचे। १३ असो रामें घालितां बाणजाळ। तटस्थ जाहला राक्षसपाळ। तों रामरूप सकळ। दोन्ही दळें दिसों लागलीं। १४ कोटचनुकोटी रघुवीर। मोकलिती बाणांचे पूर। दशदिशा विलोकी दशवक्त्र। दशरथकुमर दीसती। १५ मागें पुढें सव्य वाम। दिसती धनुर्धर श्रीराम। राम राक्षस वानर घनश्याम। स्वरूपें दिसती ते काळीं। १६ अंतरीं पाहे जों रावण। तों उभा असे जगन्मोहन। मन बुद्धि

प्रकार के अस्सी करोड़ विशाल कबन्ध तब रण-भूमि में नाचने लगे। १०९ तब श्रीराम के धनुष की किंकिणी (छोटी-सी घंटी) उस क्षण बज उठी। (फिर) उस समय रणांगण में चौदहों घंटियाँ बजने लगीं। १० आधे पहर तक घंटियाँ घनघन बजती रहीं; तब असंख्य राक्षस गिर गये, जिनकी गिनती शेष से भी नहीं की जा सकती। ११ वेदान्त शास्त्र जिस प्रकार गर्जन करता है, उस प्रकार श्रीराम का धनुष प्रचण्ड रूप में झन-झना रहा था, तो (दूसरी ओर) जिस प्रकार पाखण्डी बड़े-बड़े झूठे तर्क-वितर्क करते हैं, उस प्रकार रावण का धनुष (टनत्कार ध्वनि करते हुए) बज रहा था। १२ जिस प्रकार सन्त सन्मार्ग के अनुसार आचरण करते हैं, उस प्रकार श्रीराम के बाण (सीधे मार्ग से) जा रहे थे, तो वाल्मीकि मछुए-से अभक्त (दुर्जन) * जैसे आगे बढ़ते हों, वैसे रावण के बाण आ रहे थे। १३ अस्तु। श्रीराम द्वारा बाणों का जाल बिछाने पर राक्षस-राज रावण भौंचक हो गया; तो उसे दोनों (पक्षों के) पूरे-पूरे सेना-दल राम-रूप दिखायी देने लगे। १४ करोड़ों-करोड़ों श्रीराम बाणों के रेले (-के-रेले) चला रहे थे। जब रावण ने दसों दिशाओं की ओर ध्यान से देखा, तो उसे (सर्वत्र) दाशरथी राम (ही) दिखायी देने लगे। १५ पीछे-आगे, दायें-बायें (सर्वत्र) धनुर्धर श्रीराम (ही) दिखायी दे रहे थे। उस समय

---

* टिप्पणी वाल्मीकि अभक्तः— एक मान्यता के अनुसार महर्षि तथा आदिकवि वाल्मीकि अपने जीवन के पूर्वार्ध में दस्यु, ब्रह्मघ्न और डाकू थे। वे भक्त नहीं थे। लेकिन उनमें परिवर्तन हो गया। वे महान भक्त, ऋषि और कवि हो गये। (उनके उस अभक्त रूप तथा परिवर्तन की कथा श्रीराम-विजय में अन्यत्र अध्याय १ में दी गयी है।)

चित्त अंत:करण। रामरूप जाह्लें। १७ दश इंद्रियें पंच प्राण। पंचभूतें पंच विषय जाण। चारही देह अवस्था भोग स्थान। श्रीरामरूप जाहले। १८ ऐसा रामरूप दिसे सर्वत्र। रावण उघडोनि पाहे नेत्र। तों रथ सारथि ध्वज चाप शर। रघुवीर-रूप दीसती। १९ रथाजवळी रामरूप संघटलें। रथावरी चढोनि आलें। अंतर्बाह्य रामें व्यापिलें। ठाव न दिसे पळावया। १२० अणुरेणूपासूनि ब्रह्मपर्यंत। अवघा व्यापिला रघुनाथ। शस्त्र सोडूनि मयजामात। रथाखालीं उडी टाकी। २१ तों रामरूप दिसे धरणी। भयें पळत ते क्षणीं। मागें पाहे तों

राक्षस श्रीराम-स्वरूप जान पड़ते थे, वानर घनश्याम-(श्रीराम) स्वरूप दिखायी देते थे। १६ (फिर) जब रावण ने अपने अन्त:करण में देखा, तो (वहाँ भी) जगन्मोहन श्रीराम खड़े (दिखायी दे रहे) थे। (इस प्रकार) उसका मन, बुद्धि, चित्त, अन्त:करण (सब कुछ) राम-रूप हो गया। १७ समझिए कि दस इन्द्रियाँ *, पाँच प्राण †, पाँच (महा-) भूत §, पाँच विषय ‡, चारों देहावस्थाएँ ♦, भोग-स्थान ‡, (सब कुछ) श्रीराम-स्वरूप हो गया। १८ इस प्रकार उसे सर्वत्र (जगत्) श्रीराम-रूप दिखायी दे रहा था। (फिर) रावण ने आँखें खोलकर देखा, तो उसे अपने रथ, सारथी, ध्वज, धनुष, बाण (सब) श्रीराम-रूप दिखायी दिये। १९ (उसे अनुभव हुआ कि) रथ के पास श्रीराम का रूप (ही) सट गया है और वह चढ़कर रथ पर आ गया है। श्रीराम ने (इस प्रकार उसका) अन्तर्बाह्य (जगत्) व्याप्त किया है और भागने के लिए (कहीं) स्थान नहीं दिखायी दे रहा है। १२० अणु-परमाणु से (लेकर) ब्रह्म तक समस्त (चराचर) को श्रीराम व्याप्त किये हुए हैं। (यह देखकर) मयासुर का जामाता, अर्थात् रावण शस्त्र-त्याग करते हुए रथ के

---

* टिप्पणियाँ : दस इन्द्रियाँ— आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा नामक पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा हाथ, पाँव, वाणी, गुदा और उपस्थ नामक पाँच कर्मेन्द्रियाँ— कुल दस।

† पाँच प्राण— प्राण, अपान, व्यान, उदान और अपान।

§ पाँच महाभूत— पृथ्वी, आप (जल), तेज, वायु और अग्नि।

‡ पाँच विषय : (कर्णेन्द्रिय का) शब्द, (नेत्रेन्द्रिय का) रूप, (नाक याने घ्राणेंद्रिय का) गंध (जिह्वेन्द्रिय का) रस और (त्वचा का) स्पर्श।

♦ चार देहावस्थाएँ— जागृति, सुषुप्ति, स्वप्न और तुरीया।

‡ भोग-स्थान— सुखों का भोग करने के साधन के रूप में शरीर।

राक्षसवाहिनी । धांवतचि येतसे । २२ अरे हे राम आले म्हणोन । भयें हांक फोडी रावण । पुढें पाहे जों विलाकून । तों लंका रामरूप दिसतसे । २३ दुर्गहुडयांचे जे कळस । त्यांवरी उभा अयोध्याधीश । अडखळून पडे लंकेश । उठोनि पळे मागुती । २४ असो रावण मंदिरांत । पळोनि गेला पिशाचवत । मंदोदरीजवळ बैसत । सांगे सकळ समाचार । २५ म्हणे प्रिये म्यां पुरुषार्थ करून । रणीं मारिला लक्ष्मण । मग रामें व्यापिलें जन वन । मी पळून येथें पातलों । २६ माझिये आंगींचें भयवारें । अजूनि न जाय सुंदरे । जेवीं करंडयांतील कस्तूरी सरे । परी मागें उरे मकरंद । २७ कीं शुभाशुभकर्में करिती । मागें उरे जैसी कीर्ती । कीं सायंकाळीं बुडतां गभस्ती । आरक्तता मागें उरे । २८ कीं प्रचंड मारुत ओसरे ।

नीचे कूद पड़ा । २१ तो उसे धरणी (भी) राम-रूप दिखायी देने लगी । (इसलिए) वह उस क्षण मारे डर के भागने लगा । जब उसने पीछे देखा, तो दिखायी दिया कि राक्षसों की सेना (उसके पीछे-पीछे) दौड़ती हुई आ रही थी । २२ (परन्तु वह तो राम-रूप दिखायी दे रही थी, अतः) 'अरे, ये तो राम आ रहे हैं', कहते हुए रावण मारे डर के चिल्ला उठा । (और जब) उसने आगे ध्यान से देखा, तो उसे लंका (भी) राम-रूप दिखायी दे रही थी । २३ दुर्ग और बुर्जों के जो कलश थे, उन पर अयोध्याधीश श्रीराम खड़े (दिखायी दे रहे) थे, तो लंकेश रावण अटकते-उलझते हुए गिर जाता, फिर भी पुनः उठते हुए दौड़ता रहा । २४ अस्तु । रावण पिशाच की भाँति प्रासाद में भाग गया और मन्दोदरी के पास बैठकर उसने समस्त समाचार कहा । २५ वह बोला— 'हे प्रिये, मैंने पुरुषार्थ (प्रदर्शित) करते हुए युद्ध में लक्ष्मण को मार डाला । तब श्रीराम ने जन (-समूह) तथा वन को व्याप्त किया । अतः मैं भागते हुए यहाँ आ पहुँचा हूँ । २६ हे सुन्दरी, भय के कारण मेरे शरीर में उत्पन्न कँपकँपी अब भी (वैसे ही) नहीं दूर हो रही है, जैसे सिंदोरे में (रखी हुई) कस्तूरी समाप्त हो जाती है, तो भी उसकी सुगन्ध पीछे शेष रहती है, अथवा जैसे लोग शुभ-अशुभ कर्म करते हैं (और इस लोक से विदा हो जाते हैं) तो भी उनकी (सद्-) कीर्ति (या अपकीर्ति) पीछे शेष रहती है, अथवा जैसे शाम को सूर्य के डूब जानेपर, अर्थात् अस्त हो जानेपर (भी) पीछे लालिमा शेष रह जाती है, अथवा जैसे प्रचण्ड वायु (का चलना तो) समाप्त हो जाता है, फिर भी पेड़ों में हलकोरे (पत्तों, टहनियों का हिलना-डुलना

परी तरूवरी हेलावा उरे । कीं नदी उतरतां एकसरें । मागें थारे बरटी जैसी । २९ असो असुरगुरु जो कां शुक्र । तेणें मृत्युंजय मंत्र । मज दिधला असे परम पवित्र । करीन त्याचें अनुष्ठान । १३० मंदोदरी म्हणे दशमुखा । व्यर्थ अनुष्ठान करूं नका । अद्यापि तरी मदनान्तकसखा । मित्र करा आपुला । ३१ अथवा समरीं घालोनि कांस । युद्धचि करा बहुवस । परी तें न मानी लंकेश । घोर कर्मास प्रवर्तला । ३२ होम करावया ते काळीं । भूमींत गुहा गुप्त कोरिली । त्यामाजी बैसला दशमौळी । सामग्री सकळ घेऊनियां । ३३ कालनेमी निशाचर । त्यातें आज्ञापी दशकंधर । द्रोणाद्रि आणील वायुकुमर । तरी तूं सत्वर जाईं पुढें । ३४ त्यातें वाटेसी विघ्न करून । हिरून घेईं गिरि द्रोण । अथवा हनुमंतासी मारून । वाटेंत टाकीं पुरुषार्थें । ३५ नाना यत्न करून । वाटेसी गोंवा वायुनंदन । निशान्तीं उगवतां चंडकिरण । जाईल प्राण सौमित्राचा । ३६ यावरी काळनेमी निघाला तेच वेळां । घेऊनि

आदि कुछ समय तक) चलते रहते हैं, अथवा जैसे नदी में आयी हुई बाढ़ एकबारगी उतर जाती है, तो भी पीछे बहुत कीचड़ रह जाता है। २७-२९ अस्तु। असुरों का जो गुरु है, उस शुक्र ने, मुझे परम पवित्र मृत्युंजय मन्त्र प्रदान किया है। (अब) मैं उसके लिए अनुष्ठान करूँगा।' १३० (यह सुनकर) मन्दोदरी ने कहा— 'हे दशमुख, आप व्यर्थ अनुष्ठान न करें। अब भी तो (मदनान्तक शिवजी के मित्र) श्रीराम को अपना मित्र बना लेना। ३१ अथवा पूरी तैयारी करके (कमर कसकर) युद्ध-भूमि में बहुत (विकट) युद्ध ही कीजिए।' परन्तु लंकापति ने इसे नहीं माना। और वह घोर कार्य करने के लिए तैयार हो गया। ३२ उस समय उसने होम करने के लिए गुप्त रूप से एक गुहा खोद ली (—बना ली)। उसमें समस्त सामग्री लिये हुए रावण बैठ गया। ३३ (फिर) रावण ने कालनेमी नामक राक्षस को आज्ञा दी— 'हनुमान द्रोणाद्रि को ले आएगा। अतः तुम झट से आगे जाओ। ३४ मार्ग में उसके लिए बाधा उत्पन्न करते हुए उस द्रोणाद्रि को छीन लो, अथवा मार्ग में हनुमान को वीरतापूर्वक मार डालो। ३५ नाना (प्रकार से) यत्न करते हुए मार्ग में हनुमान को उलझा दो। (उससे औषधी नहीं मिल जाने पर) रात के अन्त में सूर्य के उदित होते ही लक्ष्मण के प्राण निकल जाएँगे।' ३६ इसके पश्चात् कालनेमी उसी समय निकल पड़ा और राक्षसों का दल

राक्षसांचा मेळा । वाटेसी जाऊन बैसला । विप्रवेष धरूनियां । ३७ असो इकडे रघुनंदन । सौमित्राजवळी येऊन । टाकूनियां धनुष्य बाण । शोक घोर आरंभिला । ३८ तंव तो वैद्यराज सुषेण । विलोकी सौमित्राचें चिन्ह । म्हणे सूर्य उगवतां प्राण । निश्चयें याचा जाईल । ३९ द्रोणाचळीं पीयूषवल्ली । कोणी जरी आणील ये वेळीं । तरी सौमित्र याच काळीं । उठेल जैसा पूर्ववत । १४० चार कोटी योजनें जाऊन । रात्रीं पर्वत आणावा पूर्ण । ऐसें ऐकतां रघुनंदन । विलोकी सर्व कपींतें । ४१ कार्य न साधे म्हणून । वानर पाहती अधोवदन । तटस्थ पाहे सीतारमण । नेत्रीं जीवन पाझरे । ४२ समय देखोनियां परम कठिण । जो निर्वाणींचा सखा पूर्ण । भूगर्भरत्नशोकहरण । उभा ठाकला ते काळीं । ४३ साष्टांग नमूनि जनकजामाता । म्हणे त्रिभुवनपते न करावी चिंता । तृतीय प्रहर न भरतां । द्रोणाचळ आणितों । ४४ श्रीराम म्हणे आनंदोन । सौमित्र तुझा याचक पूर्ण । यासी देऊनि प्राणदान । झडकरी उठवीं स्नेहाळा । ४५ ऐसें ऐकतां हनुमंत ।

(साथ में) लेकर ब्राह्मण-वेश धारण किये हुए वह जाकर राह में बैठ गया । ३७ अस्तु । इधर श्रीराम ने लक्ष्मण के पास आकर धनुष-बाण फेंकते हुए बड़ा शोक करना आरम्भ किया । ३८ तब वैद्यराज सुषेण ने लक्ष्मण के लक्षणों को ध्यान से देखा और कहा— ' सूर्य के उदित होते (समय) इसके प्राण निश्चय ही (निकल) जाएँगे । ३९ द्रोणगिरि पर अमृतवल्ली है । यदि कोई इस समय उसे ले आए, तो लक्ष्मण इसी समय फिर से पूर्ववत् (जीवित) उठ जाएगा । १४० कोई चार करोड़ योजन (दूर) जाकर रात में पूरे पर्वत को ला दे । ' ऐसा सुनते ही श्रीराम सब कपियों की ओर देखने लगे । ४१ ' यह कार्य सिद्ध नहीं होगा ' — कहते (अर्थात् समझते) हुए वानर अधोमुख हो देखते रहे । (इधर) श्रीराम (भी) चुप होकर देखते रहे । उनकी आँखों से (अश्रु-) जल झर रहा था । ४२ समय को परम कठिन देखकर (जानकर भूगर्भ-रत्न-शोक-हरण) हनुमान, जो संकट के समय सहायता के लिए निर्धारित सखा था, उस समय खड़ा हो गया । ४३ (फिर) श्रीराम को साष्टांग नमस्कार करके बोला— ' हे त्रिभुवन के स्वामी, तुम चिन्ता न करना । तीसरा प्रहर पूर्ण होने से पहले मैं द्रोणाचल को ले आऊँगा । ' ४४ तो आनंदित होकर श्रीराम बोले— ' हे स्नेहमय लक्ष्मण, तुम्हारा पूर्णतः याचक है,

जय जय यशस्वी अयोध्यानाथ। म्हणोनि उडाला अकस्मात। उत्तरपंथ लक्षूनियां। ४६ मनासी प्रार्थूनि तये क्षणीं। ठेवियेलें श्रीरामचरणीं। जैसें प्राणमित्राचे सदनीं। प्रिय ठेवणें ठेविलें। ४७ सागरामाजी मिळे लवण। कीं नभीं लीन होय पवन। तैसें रामपदीं ठेवूनि मन। वायुनंदन धांविन्नला। ४८ पित्याची गति सांडून मागें। हनुमंत नभीं झेंपावे वेगें। कीं तो उरगारि लगबगें। क्षीराब्धीप्रति जातसे। ४९ मस्तकीं लांगूल वाहून। घेत उड्डाणावरी उड्डाण। जय जय रघुराज म्हणोन। वारंवार स्मरण करी। १५० एक घटिका न भरतां पूर्ण। गेला सप्तद्वीपें ओलांडून। तों द्रोणाचळाअलीकडे जाण। मंदराचळ देखिला। ५१ प्रभा त्याची चंद्रासमान। कीं कैलासपीठ श्वेत-वर्ण। कीं तो कर्पूराचा संपूर्ण। घडिला असे शीतळ। ५२ कीं क्षीरसागर मंथोनि सबळ। काढिला हा नवनीत गोळ। कीं शेषशायी तमालनील। तेणें ठेवणें ठेविलें। ५३ कीं निर्दोष यश

उसे प्राणदान देते हुए झट से उठा देना।' ४५ ऐसा सुनते ही 'जय हो, जय हो; अयोध्यानाथ यशस्वी हों' कहते हुए वह बिना अधिक सोचे-विचारे उत्तर दिशा के मार्ग को लक्ष्य करके उड़ गया। ४६ उस क्षण मन से प्रार्थना करते हुए उसने उसे श्रीराम के चरणों में वैसे ही रखा, जैसे प्राण-प्रिय मित्र के घर कोई व्यक्ति अपनी प्रिय (वस्तु) धरोहर (के रूप में) रख देता हो। ४७ जिस प्रकार सागर में नमक (घुल-) मिल जाता है, अथवा आकाश में पवन लीन (एकरूप) हो जाता है, उस प्रकार हनुमान अपना मन राम के चरणों में (एकात्म किये) रखकर दौड़ा। ४८ अपने पिता (वायुदेव) की गति को (अपनी गति की तुलना में) पीछे रखते हुए हनुमान वेग-पूर्वक आकाश में लपक रहा था। अथवा (जान पड़ता था कि) गरुड़ (ही) शीघ्रता से क्षीर-समुद्र के प्रति गमन कर रहा हो। ४९ सिर के ऊपर अपनी पूँछ उठाये हुए, वह उड़ान पर उड़ान भर रहा था। 'रघुराज की जय हो, जय हो' कहते हुए वह बारबार (श्रीराम का) स्मरण कर रहा था। १५० एक घड़ी पूरी न होते ही, वह सातों द्वीपों को लाँघकर (आगे) गया। समझिए, उसने द्रोणाचल के इस ओर मन्दर पर्वत को देखा। ५१ उसकी कान्ति चन्द्र की-सी थी। अथवा वह पर्वत मानो श्वेतवर्ण कैलास-पीठ ही हो, अथवा वह मानो सम्पूर्ण शीतल कपूर का ही गढ़ा हुआ हो, अथवा महान क्षीरसागर का मन्थन करते हुए मानो यह मक्खन का गोला ही निकाला हो, अथवा

आपुलें । क्षीरसिंधूनें तेथें ठेविलें । कीं पृथ्वींतून नूतन उगवलें । श्वेतोत्पल जयापरी । ५४ असो त्याअलीकडे एक योजन । कालनेमी जाहला ब्राह्मण । राक्षसांतें शिष्य करून । आश्रम तेथें रचियेला । ५५ वृक्ष अवघे सदाफळ । सरोवर भरलें असे निर्मळ । यज्ञशाळा तेथें विशाळ । कुंड वेदिका यथाविधि । ५६ यज्ञपात्रें असती बहुत । कुंडाभोंवतीं विराजित । समिधा दर्भ यथायुक्त । करूनि सिद्ध ठेविलें । ५७ घातले असे अन्नसत्र । ऐसा तो कालनेमी निशाचर । बकध्यान धरून साचार । वाट पाहे मारुतीची । ५८ वरिवरि शोभे वृंदावन । कीं दांभिकाचें शुष्क ज्ञान । कीं कांसारें प्रतिमा ठेवून । विकावया बैसला । ५९ तों इतक्यांत वायुसुत । तृषाक्रान्त पातला तेथ । तंव तो कपटी पुढें धांवत येत । नमन करीतसे कपीसी । १६० म्हणे माझें भाग्य धन्य । जाहलें महापुरुषाचें दर्शन । म्हणे स्वामी दया

शेषशायी तमालनील भगवान विष्णु ने मानो उसके रूप में धरोहर रखी हो, अथवा क्षीरसागर ने अपनी विशुद्ध कीर्ति को वहाँ (इसके रूप में) रखा हो, अथवा जैसे पृथ्वी में से नूतन श्वेतकमल ही उद्भूत हो गया हो । ५२-५४ अस्तु । कालनेमी ब्राह्मण बन गया और उसने वहाँ उस (पर्वत) के इस ओर एक योजन (अन्तर) पर राक्षसों को शिष्य बनाते हुए एक आश्रम का निर्माण किया । ५५ (वहाँ) समस्त वृक्ष सदाफल (नित्य फलों से युक्त) थे; एक सरोवर नित्य निर्मल (जल से) भरा हुआ था । वहाँ विशाल यज्ञशाला थी तथा कुण्ड और वेदिका यथाविधि निर्मित थे । ५६ (वहाँ) कुण्ड के चारों ओर बहुत-से यज्ञपात्र शोभायमान थे । (वैसे ही) समिधाएँ, दर्भ, यथायुक्त सिद्ध करके रखे हुए थे । ५७ (वहाँ) अन्न-छत्र का निर्माण किया हुआ था । कालनेमी नामक ऐसा वह राक्षस सचमुच बगुला-ध्यान धारण करके हनुमान की प्रतीक्षा कर रहा था । ५८ वृन्दावन फल ऊपर-ऊपर ही शोभायुक्त दिखायी देता है, (परन्तु अन्दर से वह कड़ुआ-विषाक्त होता है); अथवा पाखण्डी का ज्ञान शुष्क होता है; अथवा जान पड़ता था कि कोई मनिहार ही प्रतिमा की स्थापना करते हुए उसे बेचने के लिए बैठा हो । ५९ तब इतने में हनुमान प्यास से व्याकुल होते हुए वहाँ पहुँच गया, तो वह कपटी राक्षस दौड़ता हुआ आगे आ गया और उसने उस कपि को नमस्कार किया । १६० (फिर) वह बोला— 'मेरे भाग्य धन्य हैं । (इसलिए तो तुम जैसे) महापुरुष के दर्शन हुए ।' (फिर) वह बोला— 'हे स्वामी, दया करके आज का समय

करून । आजि येथें क्रमावें । ६१ आजि तुमचें दर्शन दुर्लभ सत्य । राहावें एक दिनपर्यंत । अथवा निरंतर राहावें एथ । ऐकतां हनुमंत संतोषला । ६२ हनुमंत बोले रसाळ । पुढें कार्य आहे बहुसाल । आतां उदक द्या जी शीतळ । सकळ उपचार पावले । ६३ कालनेमी बहुत प्रार्थी । परी कदा न राहे मारुती । विटोनियां परम चित्तीं । शिष्यांप्रति सांगतसे । ६४ म्हणे उदक द्या रे मर्कटासी । दुसरें न मागे कोणासी । तों सरोवर दाविती मारुतीसी । जेथें विवसी वसतसे । ६५ ते विवसी परम दारुण । देह तिचा पर्वतासमान । करूं जातां जलप्राशन । बुहुत जीव भक्षिले । ६६ तेथें उदक घ्यावया पूर्ण । बैसला अवनिजाशोकहरण । तंव जळदेवता येऊन । पाय धरी मारुतीचा । ६७ हनुमंतें कंठीं धरून । बाहेर काढिली ओढून । लत्ताप्रहार हृदयीं देऊन । मारिली तेथें ते काळीं । ६८ तिच्या शरीरांतून ते वेळीं । दिव्य देवांगना निघाली । मारुतीचे चरणीं लागली । वार्ता आपुली सांगतसे । ६९ म्हणे मी

यहाँ व्यतीत करना । ६१ तुम्हारे दर्शन सचमुच दुर्लभ हैं । अतः आज एक दिन तक (के लिए) रहो; अथवा नित्य यहाँ (ही क्यों न) रहो । ' यह सुनकर हनुमान सन्तोष को प्राप्त हो गया । ६२ (फिर) वह मधुर (स्वर में) बोला— ' आगे बहुत कार्य (करना) है । अब (केवल) ठण्डा पानी दो, तो सब उपचार प्राप्त हुए (समझो) । ' ६३ (फिर भी) कालनेमी ने बहुत प्रार्थना की, तो भी हनुमान कदापि न रहा (हनुमान ने वहाँ रहने की कदापि इच्छा नहीं की) । (तब) मन में बहुत ऊबकर उसने शिष्यों से कहा । ६४ वह बोला— ' अरे, इस मर्कट को पानी दो । वह कोई दूसरी वस्तु नहीं माँगता । ' तो उन्होंने हनुमान को वह सरोवर दिखा दिया, जहाँ एक राक्षसी रहती थी । ६५ वह राक्षसी परम भीषण थी । उसकी देह पर्वत के समान थी । पानी पीने के लिए जाते ही, उसने अनेक जीवों को खा डाला था । ६६ वहाँ (मनचाहा) पूरा पानी पीने के लिए सीता-शोकहरण हनुमान बैठ गया, तब (बाहर) आकर वह जल-देवी उसका पाँव पकड़ने लगी । ६७ तो हनुमान ने उसका गला पकड़कर खींचते हुए उसे बाहर निकाला और उसकी छाती पर लातों से आघात करते हुए उसे वहाँ उस समय मार डाला । ६८ उसके शरीर से उस समय दिव्य देवांगना निकली । वह हनुमान के चरणों में लग गयी और अपनी कहानी कहने लगी । ६९ वह बोली— ' मैं स्वर्ग की देवांगना

स्वर्गींची देवांगना। रूपाभिमानें न मानीं कोणा। हांसलें मी एका तपोधना। तेणें मज शापिलें। १७० म्हणे तूं विवसी होईं पापमती। मग उच्छाप मागतां तयाप्रती। तो म्हणे द्रोणाचळ न्यावया मारुती। रातोरातीं येईल। ७१ तो तुज उद्धरील निश्चितीं। ते आजि आली प्रचीती। आणिक गोष्ट असे मारुती। ती तुजप्रति सांगत्यें। ७२ सहसा नव्हे हा मुनीश्वर। कपटी कालनेमी असुर। रावणें प्रेरिला साचार। त्याचा संहार करीं तूं। ७३ ऐसें मारुतीस सांगोन। स्वर्गपंथें गेली उद्धरून। मारुती आला परतोन। कालनेमीजवळी पैं। ७४ मनांत म्हणे हनुमंत। हा दुरात्मा बैसला येथ। याचा करावा निःपात। तों कपटी बोले तेधवां। ७५ म्हणे आम्हां भल्या ब्राह्मणा। काय देतोसी गुरुदक्षिणा। हनुमंतें मुष्टी वळोनि जाणा। हृदयावरी दिधली। ७६ तों पांच योजनें शरीर। उभा ठाकला युद्धासी असुर। कपि म्हणे आतां उशीर। कासया येथें लावावा। ७७ पायीं धरून आपटिला। कालनेमी प्राणासी

हूँ; अपने सौन्दर्य के अभिमान से मैं किसी को नहीं गिनती थी। (एक बार) मैं एक तपोधन (तपस्वी) को हँस दी, तो उसने मुझे अभिशाप दिया। १७० उसने कहा— 'तू पाप-मति राक्षसी हो जाएगी।' फिर उससे शाप-निराकरण माँगने पर वह बोला— 'हनुमान द्रोणाचल को ले जाने के लिए एक रात आएगा। ७१ वह निश्चय ही तेरा उद्धार करेगा।' वह आज अनुभव हुआ। हे हनुमान, एक बात और है। मैं वह तुमसे कहती हूँ। ७२ 'यह कोई बड़ा मुनि निश्चय ही नहीं है। वह तो कालनेमी नामक कपटी राक्षस है। उसे सचमुच रावण ने भेजा है। तुम उसका संहार कर डालो।' ७३ हनुमान से ऐसा कहकर वह उद्धार को प्राप्त होते हुए स्वर्ग के मार्ग से चली गयी। (तो इधर) हनुमान लौटकर कालनेमी के पास आ गया। ७४ (फिर) हनुमान ने मन में कहा (सोचा)— 'यहाँ यह दुरात्मा बैठा है। उसका विनाश कर दें।' तो ही वह कपटी (कालनेमी) बोला। ७५ वह बोला— 'हम भले ब्राह्मणों को क्या गुरु-दक्षिणा दोगे?' तो समझिए, हनुमान ने मुट्ठी (घूँसा) बाँधते हुए उसके हृदय (-स्थल) पर जमा दिया। ७६ तो पाँच योजन विशाल शरीर धारण करते हुए वह राक्षस युद्ध के लिए खड़ा हो गया। उस कपि ने कहा (सोचा)— 'अब यहाँ देर क्यों लगाएँ?' ७७ (फिर) उसने पाँव पकड़कर पटक दिया, तो कालनेमी

मुकला । वरकड शिष्य ते वेळां । पळून गेले लंकेसी । ७८ कालनेमी आपटितां नो ध्वनी । गंधर्वीं ऐकतांच श्रवणीं । चौदा सहस्र धांवूनी । हनुमंतावरी लोटले । ७९ काग मिळोनयां बहुत । धरावया धांवती आदित्य । कीं मूर्ख मिळून समस्त । वाचस्पतीसी जिंकूं म्हणती । १८० असो हनुमंतें तये क्षणीं । गंधर्वांचा भारा बांधोनी । फिरवून आपटिले मेदिनीं । प्रेतें करून टाकिले । ८१ तेथून उडाला हनुमंत । सौमित्राची मनीं चिंता बहुत । द्रोणाद्रीसमीप त्वरित । त्वरेंकरून पातला । ८२ जैसें बावनकसी सुवर्ण । तैसा द्रोणाद्रिपर्वताचा वर्ण । वरी वल्ली देदीप्यमान । तेजें गगन उजळलें । ८३ दृष्टीं देखतां हनुमंत । द्रोणाद्रि जाहला भयभीत । म्हणे हा मागुती आला येथ । मजलागीं न्यावया । ८४ कैंचा राम कैंचा रावण । एकदां गेला घेऊन । मागुती उभा ठाकला येऊन । आयुष्यान्तीं मृत्यु जैसा । ८५ उपाधीच्या गुणें बहुत । नसतीं विघ्नें दाटून येत । वल्लीयोगें हा अनर्थ । क्षणक्षणां होतसे । ८६ असो

प्राणों से वंचित हो गया । (मारे डर के) अन्य शिष्य उस समय भागकर लंका चले गये । ७८ कालनेमी को पटकते ही जो आवाज हुई, उसे गंधर्वों ने सुना । तो चौदह सहस्र (गन्धर्व) हनुमान पर चढ़ दौड़े । ७९ (यह ऐसा ही हुआ, जैसे) अनेकानेक कौए मिलकर सूर्य को पकड़ने के लिए दौड़े हों, अथवा समस्त मूर्ख इकट्ठा होकर वाचस्पति गुरु बृहस्पति को जीतने की कह (सोच) रहे हों । १८० अस्तु । उस क्षण हनुमान ने गन्धर्वों का गट्ठर बनाकर उन्हें पृथ्वी पर पटक दिया और उन्हें प्रेत (निष्प्राण) बना डाला । ८१ हनुमान (फिर) वहाँ से उड़ गया । उसे मन में लक्ष्मण सम्बन्धी बहुत चिन्ता अनुभव हो रही थी । वह झट से (उड़ते हुए) शीघ्रता-पूर्वक द्रोणाचल के समीप आ पहुँचा । ८२ जैसे बावन कस से युक्त, अर्थात् पूर्णतः शुद्ध सोने का होता है, वैसा ही वर्ण द्रोणाद्रि का था । उसपर वह देदीप्यमान वल्ली थी । उसके तेज से गगन उज्ज्वलता को प्राप्त हो गया । ८३ हनुमान को आँखों से देखते ही द्रोणाद्रि भयभीत हो उठा । उसने कहा (सोचा)— ‘ यह मुझे फिर से ले जाने के लिए आ गया है । ८४ कहाँ का राम, कहाँ का रावण ? एक बार तो ले गया था । (अब) फिर आकर खड़ा हो गया है, जैसे आयु के अन्त में आयी हुई मृत्यु ही हो । ८५ गुण-विशेष के गुण, अर्थात् माहात्म्य के कारण, बहुत अनचाहे विघ्न (एक साथ) मिलकर आ जाते

हनुमंतें पर्वतासी नमून। प्रार्थीत उभा कर जोडून। म्हणे शक्तीनें भेदला लक्ष्मण। आकान्त पूर्ण मांडला। ८७ त्रिभुवन-नायक रावणारी। त्यावरी तूं उपकार करीं। औषधी दे झड-करी। अथवा तेथवरी तूं चाल। ८८ संतोषेल अयोध्याधीश। त्रिभुवनीं वाढेल तुझें यश। बोलतां आतां विशेष। उशीर कार्या होतसे। ८९ द्रोण म्हणे मर्कटा पामरा। कां करिसी घडिघडी येरझारा। औषधी नेदीं वानरा। मी तंव तेथें न येंचि। १९० हनुमंत म्हणे रे गिरि द्रोणा। निर्दया खळा महामलिना। तुज क्षणांत बुद्धिहीना। उचलोनि नेईन लंकेसी। ९१ पुच्छ पसरूनि ते वेळे। पर्वतातें तीन वेढे घातले। उपडोनियां निज बळें। तोलोनि हातीं घेतला। ९२ अंतरिक्ष जातां हनुमंत। चंद्र पाहे चकित। म्हणे काय हें अद्भुत। आकाशमार्गें जात असे। ९३ तों नंदिग्रामीं भरतें जाण। देखिलें परम दुष्ट स्वप्न। एक काळपुरुष येऊन। दक्षिणबाहु गिळियेला। ९४ गजबजोनि उठिला भरत। म्हणे विपरीत जाहला दृष्टान्त। क्षेम असो रघुनाथ। सीतासौमित्रां-

---

हैं। इस वल्ली के कारण यह संकट क्षण-क्षण उत्पन्न हो रहा है। ८६ अस्तु। (तदनन्तर) पर्वत को नमस्कार करके खड़ा होकर हनुमान ने हाथ जोड़ते हुए प्रार्थना की। वह बोला-- 'लक्ष्मण को शक्ति ने छिन्न-भिन्न कर डाला है। (अतः सबने) बहुत बावेला मचा दिया है। ८७ त्रिभुवन के स्वामी श्रीराम रावण के शत्रु हैं। तुम उनका उपकार करो। या झट से तुम औषधी दे दो, अथवा वहाँ तक चले चलो। ८८ (इससे) अयोध्याधीश श्रीराम सन्तोष को प्राप्त होंगे, (इससे) तुम्हारी कीर्ति त्रिभुवन में बढ़ जाएगी। अब (और) विशेष (बात) बोलने से कार्य में विलम्ब हो जाएगा।' ८९ (इसपर) द्रोण ने कहा— 'रे पामर मर्कट, तू घड़ी-घड़ी आवागमन क्यों कर रहा है? मैं न औषधी दूंगा, न तो वहाँ जाऊँगा। इसपर हनुमान ने कहा, 'रे पर्वत द्रोण, रे निर्दय, रे खल, रे महापापी, रे बुद्धिहीन, तुझे क्षण में उठाकर मैं लंका में ले जाऊँगा।' ९०-९१ (यह सुनते ही) हनुमान ने पूँछ को फैलाते हुए उस समय पर्वत के चारों ओर तीन घेरे डाले और अपने बल से उखाड़कर उसे तौलते हुए हाथ (हथेली) पर रखा। ९२ अन्तरिक्ष में से हनुमान को जाते हुए देखकर चन्द्र चकित होकर देखता रहा। उसने कहा— 'यह कौन अद्भुत पदार्थ (है, जो) आकाश-मार्ग से जा रहा है।' ९३ समझिए, (उधर) भरत ने नंदिग्राम में एक परम दुष्ट स्वप्न में देखा कि एक काल-पुरुष ने आते हुए दक्षिण (दाएँ) बाहु को निगल डाला। ९४ तो घबड़ाकर भरत

सहित पैं । ९५ गुरु म्हणे दुष्ट स्वप्न । करावें शान्तिक हवन । तत्काळ होमद्रव्यें आणून । कैकयीनंदन हवन करी । ९६ आहुती टाकी जों भरत । तों अंतरिक्षें जात हनुमंत । केवळ अग्नि-कल्होळ पर्वत । पडेल वाटे खालता । ९७ वसिष्ठ जाहला भयभीत । त्यास धीर देत भरत । म्हणे हें अनिष्ट अकस्मात । विंधोनि पाडितों एकीकडे । ९८ तुम्हीं स्वस्थ असावें समस्तीं । कीजे हवनाची पूर्णाहुती । ऐसें बोलून त्वरितगती । चाप भरतें चढविलें । ९९ ज्याचे बाण सतेज बहुत । रामनामबीजांकित । आकर्ण ओढूनि त्वरित । सोडिता जाहला तत्काळीं । २०० कडकडूनि निघे चपळा । तैसा ऊर्ध्वपंथें बाण गेला । पर्वता-सहित बाणीं खिळिला । हनुमंताचा हस्त पैं । १ महागजासी पर्वतपात । तैसा भूमीवरी हनुमंत । कोसळला रामस्मरण करीत । आरंबळत पडियेला । २ रामनामस्मरणाचा ध्वनि ऐकून । धांवोनि आला कैकयीनंदन । तों महापर्वत घेऊन ।

जाग उठा और बोला— 'यह दृष्टान्त तो प्रतिकूल हो गया । सीता और लक्ष्मण-सहित रघुनाथ सकुशल होंवे ।' ९५ (फिर) गुरु (वसिष्ठ) ने कहा— 'यह दुष्ट स्वप्न है । (संकट के निराकरण के लिए) शान्ति हवन सम्पन्न करें ।' तो तत्काल होम-द्रव्य लाकर वह कैकेयी-सुत हवन करने लगा । ९६ जब भरत ने आहुति डाली, तो हनुमान आकाश में से जा रहा था । (जान पड़ता था कि) वह पर्वत मानो केवल अग्नि का ज्वाला-समूह हो । लगता था कि वह नीचे गिर जाएगा । ९७ (यह देखकर) वसिष्ठ भयभीत हो उठा । तो भरत ने उन्हें ढाढ़स बँधाया और कहा— 'यह संकट यकायक आया है, तो इसे बेधकर एक ओर गिरा देता हूँ । ९८ तुम सब धैर्यपूर्वक शान्त रहना और हवन सम्बन्धी पूर्णाहुति समर्पित करना ।' ऐसा कहते हुए भरत ने झट से धनुष चढ़ा लिया । ९९ जिसके बाण बहुत तेजोयुक्त होते थे, उसने रामनाम के बीजमन्त्र से अंकित एक बाण झट से आकर्ण खींचते हुए तत्काल छोड़ दिया । २०० जिस प्रकार बिजली कड़कड़ाती हुई निकल जाती है, उस प्रकार बाण ऊपर की ओर चला गया । उस बाण ने हनुमान के हाथ को पर्वत-सहित कील डाला । १ जैसे बड़ा हाथी पर्वत से गिर जाता हो, वैसे हनुमान (आकाश में से) भूमि पर राम का स्मरण करते-करते गिर गया और कराहता हुआ पड़ा रहा । २ राम-नाम स्मरण की ध्वनि सुनते ही भरत दौड़ता हुआ आ गया, तो (उसे दिखायी दिया कि) महान पर्वत

वानर अद्भुत पडियेला । ३ भरत प्रेमें बोले वचन । सखया तूं कोणाचा कोण । मज स्नेह उपजे तुज देखोन । रामनाम जपतोसी । ४ हाहाकार करी वायुनंदन । म्हणे आतां कैंचा वांचेल लक्ष्मण । प्राण त्यजील रघुनंदन । सूर्योदय होतांचि । ५ ऐसें आक्रोशें बोले हनुमंत । भूमीं तनु टाकी भरत । म्हणे प्राणसखया सांग यथार्थ । वार्ता विपरीत बोलसी । ६ तयासी पुसे हनुमंत । येरू म्हणे मी रामाचा दास भरत । मारुति म्हणे केला अनर्थ । रावणाहूनि आगळा तूं । ७ मग भरतासी वर्तमान सकळ । सांगे अंजनीचा बाळ । दशमुखाचे शक्तीनें विकळ । वीर सौमित्र पडियेला । ८ त्यासी जीववावया निश्चित । नेत होतों द्रोणपर्वत । तुवां विघ्न करोनि पाडिलें येथ । हें तों त्यासी कळेना । ९ आतां नुगवतां आदित्य । तेथें कोण नेईल पर्वत । वाट पाहतसे रघुनाथ । श्रमेल समर्थ कृपाळु । २१० मग बोले भरत वीर । मज वाटतें तूं केवळ ईश्वर । चारी कोटी योजनें दूर । पर्वत घेऊनि आलासी । ११ आतां न

लिये हुए एक अद्भुत वानर पड़ा हुआ था । ३ (उसे देखकर) भरत ने प्रेम से यह बात कही (पूछी)— 'हे मित्र, तुम किसके कौन हो ? तुम रामनाम का जप कर रहे हो, (अतः) तुम्हें देखकर मुझे तुम्हारे प्रति स्नेह उत्पन्न हो गया है । ४ (तब) वायुनन्दन हनुमान हाहाकार करने लगा । (फिर) वह बोला— 'अब लक्ष्मण कैसे बचेगा ? सूर्योदय के होते ही रघुनन्दन प्राण त्याग देंगे ।' ५ हनुमान चीखते-चिल्लाते हुए इस प्रकार बोला, तो भरत ने देह को भूमि पर लुढ़का लिया और कहा— 'हे प्राणसखा, ठीक-ठीक कहो । तुम विपरीत बात कह रहे हो ।' ६ (तदनन्तर जब) हनुमान ने उससे पूछा, तो वह बोला— 'मैं श्रीराम का दास भरत हूँ ।' (इसपर) हनुमान बोला— 'तुमने हानि कर दी— तुम रावण से भी न्यारे हो ।' ७ तब अंजनी-पुत्र हनुमान ने भरत से (यह) सब समाचार कहा— 'रावण की शक्ति से विकल होकर वीर सौमित्र पड़ा है । ८ उसे जीवित करने के लिए मैं निश्चय ही द्रोण पर्वत लेकर जा रहा हूँ, परन्तु तुमने बाधा उत्पन्न करके मुझे यहाँ गिरा डाला है । ९ यह तो मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि अब सूर्य के उदित न होने से पहले पर्वत को वहाँ कौन ले जाएगा । रघुनाथ राह देख रहे हैं । वे कृपालु समर्थ श्रीराम कष्ट को प्राप्त हो जाएँगे ।' २१० तब वीर भरत बोला— 'मुझे लगता है, तुम केवल ईश्वर हो, (जो) चार करोड़ योजन दूर, पर्वत को लिये हुए आ रहे हो । ११ हे कपीश्वर, अब सूर्य के उदित न होने से

उगवतां दिनकर। लंकेसी नग न्यावा सत्वर। नाहीं तरी अनर्थ थोर। सांगतोसी कपीश्वरा। १२ तुजसमवेत पर्वतास। न भरतां एक निमेष। नेऊनि ठेवीन लंकेस। तरीच दास श्रीरामाचा। १३ हें जरी नव्हे माझें कृत्य। तरी सूर्यवंशीं जन्मोनि व्यर्थ। जननी श्रमविली यथार्थ। हांसेल दशरथ वैकुंठीं। १४ पर्वतासहित हनुमंता। बाणाग्रीं बैस आतां। कार्मुक वोढूनि तत्त्वतां। सुवेळेसी पाठवितों। १५ ऐसें बोलतांचि भरत। मनीं आश्चर्य करी हनुमंत। म्हणे होय रामबंधु यथार्थ। पुरुषार्थ अद्भुत न वर्णवे। १६ मग हनुमंत उठोन। वंदिले भरताचे चरण। म्हणे वंश तुझा धन्य। भरलें त्रिभुवन कीर्तीनें। १७ महाराज बोलिला यथार्थ। परी मी रामदास हनुमंत। माझें बळ आणि पुरुषार्थ। श्रीरघुनाथ जाणत असे। १८ हें ब्रह्माण्ड उचलून। कंदुकाऐसें झेलीन। तुमचा रामनामांकित बाण। त्यासी मान दीधला। १९ पश्चिमेस उगवेल चंडकिरण। मेरु मान्दार सोडिती स्थान। परी

पहले पर्वत को लंका में ले जाओ। नहीं तो, हे कपीश्वर तुम कह रहे हो कि बड़ा अनर्थ हो जाएगा। १२ यदि मैं तुम्हारे साथ पर्वत को एक निमेष न होते ही ले जाकर लंका में रख दूँ, तो ही मैं श्रीराम का दास हूँ। १३ यदि मुझसे ऐसी कृति न हो जाए, तो सूर्यवंश में जन्म लेकर मैंने माता को सचमुच व्यर्थ ही कष्ट को प्राप्त कराया। (अब) वैकुण्ठ में दशरथ मुझे हँसेंगे। १४ हे हनुमान, अब तुम पर्वत-सहित (मेरे) बाण के अग्र पर बैठ जाओ; (फिर) मैं धनुष खींचकर (उस बाण को) सचमुच सुवेल भेज दूंगा।' १५ इस प्रकार भरत द्वारा बोलने पर हनुमान मन में आश्चर्य अनुभव करने लगा और उसने कहा— (सोचा) 'यह सचमुच श्रीराम के (योग्य) बन्धु है। इसके अद्भुत पुरुषार्थ का वर्णन नहीं किया जा पाएगा।' १६ तब हनुमान ने उठकर भरत के चरणों को नमस्कार किया और कहा— 'तुम्हारा वंश धन्य है। तुमने (अपनी) कीर्ति से त्रिभुवन को भर दिया है। १७ (दाशरथी) महाराज ने ठीक-ठीक कहा है। फिर भी मैं श्रीराम का दास हनुमान हूँ। श्रीराम मेरे बल और पुरुषार्थ को जानते हैं। १८ मैं इस ब्रह्माण्ड को उठाकर गेंद जैसे (उछालकर फिर) लोक सकूंगा। (फिर भी) तुम्हारा बाण रामनामांकित है, (इसलिए) मैं उसका सम्मान करता हूँ। १९ सूर्य पश्चिम में उदय को प्राप्त होगा, मेरु-मन्दर (विचलित होकर) अपने स्थान को छोड़ देंगे, फिर भी श्रीराम का पूरा दास्य करते हुए मेरी सामर्थ्य भग्न

रामदास्य करितां पूर्ण । सामर्थ्य माझें न भंगे । २२० आतां आज्ञा द्यावी सत्वर । उदय करूं पाहे दिनकर । मग बोले भरत वीर । विजयी होईं सर्वथा । २१ रघुपतीसी माझें साष्टांग नमन । करूनि सांगें वर्तमान । सौमित्रसीतेसहित आपण । अयोध्येसी शीघ्र येइंजे । २२ अवश्य म्हणे हनुमंत । करतळीं घेऊन पर्वत । जय जय यशस्वी सीताकान्त । म्हणोनियां उडाला । २३ अमृतघट घेऊनियां हातीं । पूर्वीं गेला खगपती । तैसाचि जातसे मारुती । देव पाहती विमानीं । २४ तों इकडे जानकीनाथ । चिंता करी वानरांसहित । म्हणे कां न येचि हनुमंत । उशीर बहुत जाहला । २५ तों उगवे जैसा आदित्य । तैसा दुरोनि देखिला पर्वत । रघुपतीसी वानर सांगत । स्वामी मित्र उदय पावला । २६ ऐसें जंव वानर बोलत । तंव कोपला सीताकान्त । म्हणे हा कुळघातकी यथार्थ । उत्तरेसी उदय पावला । २७ साहा घटिका असे रजनी । आजी पूर्वदिशा सांडोनी । लवकरीच कां तरणी । उत्तरेसी उगवला । २८

नहीं होगी । २२० अब झट से आज्ञा दो, सूर्य उदित होने जा रहा है । ' तब वीर भरत ने कहा— ' तुम सब प्रकार से विजयी होओ । ' २१ रघुपति को मेरा साष्टांग नमस्कार (मेरी ओर से) विदित कराते हुए यह बात कहना— ' लक्ष्मण और सीता सहित तुम शीघ्र अयोध्या आओ । ' २२ ' अवश्य ' कहकर हनुमान हथेली पर पर्वत को रखते हुए यह कहकर उड़ गया— ' सीताकान्त की जय हो, जय हो । सीताकान्त कीर्तिमान हो । ' २३ जैसे पूर्वकाल में पक्षिराज गरुड़ अमृत-घट हाथ में लिये हुए गया था, वैसे ही हनुमान (द्रोणगिरि को लिये हुए) जा रहा था । देव विमानों में से यह देख रहे थे । २४ तब इधर श्रीराम वानरों सहित (बैठे हुए) चिन्ता कर रहे थे । वे बोले— ' हनुमान क्यों नहीं आ रहा है ? बहुत देर हो गयी है । ' २५ तो जैसे सूर्य उदित होता है (हुआ दिखायी देता) है, वैसे दूर से पर्वत को (तेजोगोल-सा निकट आते) देखा । तब वानरों ने श्रीराम से कहा— ' हे स्वामी, सूर्य उदय को प्राप्त हो गया । ' २६ जब वानर ऐसा बोले, तो श्रीराम कुपित हो उठे और बोले— ' यह कुल-नाशक (सूर्य) सचमुच उत्तर दिशा में उदय को प्राप्त हुआ (जान पड़ता) है । २७ (अब भी) रात छः घड़ी शेष है; फिर भी पूर्व दिशा को छोड़कर आज सूर्य पहले ही उत्तर दिशा में क्यों उदित हुआ ? ' २८ (ऐसा कहते हुए) उन्होंने झट से धनुष चढ़ा लिया और

धनुष्य चढविलें सत्वर। राहुमुख काढिला शर। म्हणे हा लोकआयुष्यचोर। रजनीचरासी मिळाला। २९ तंव तो सुषेण वीर बोलत। सूर्य नव्हे हा आला हनुमंत। ऐसें बोलतां सीताकान्त। परम आनंदें उचंबळला। २३० पुरुषार्थी अंजनीचा बाळ। अवलीळें उचलिजे अद्भुत फळ। तैसा घेऊनियां अचळ। रामदर्शना येतसे। ३१ कीं अंधकार पडला सघन। रावण पळाला जीव घेऊन। यालागीं अनंत दीपिका उफाळून। शोधूं आला हनुमंत। ३२ कीं अमृतकुंभचि आणिला। कीं यशाचा ध्वज उभारिला। कीं सौमित्राचा प्राण परतला। रुसोनि जात होता तो। ३३ असो सुग्रीवादि वानर। करूनियां जयजयकार। वेगें धांवती समोर। पर्वत खालीं उतरावया। ३४ गिरि उतरतांचि हनुमंत। स्वामीस लोटांगण घालीत। आसनींहूनि रघुनाथ। पुढें धांवे उठवावया। ३५ हनुमंतासी उचलोन। हृदयीं धरी रघुनंदन। रामें नेत्रोदकेंकरून। अभिषेकिला मारुती। ३६ हनुमंताचा वदनचंद्र। स्वकरें कुरवाळी रघुवीर। असो वैद्य सुषेण

राहु-मुख बाण (तरकस से) निकाला (ताकि राहु उसे निगल डाले)। (फिर) कहा-- 'लोगों की आयु को चुरानेवाला यह सूर्य आज राक्षसों में मिल गया है।' २९ त्यों ही वीर सुषेण बोला-- 'यह सूर्य नहीं-- हनुमान आ रहा है।' ऐसा बोलते ही श्रीराम परम आनन्द से उमड़ उठे। २३० अंजनी-कुमार पुरुषार्थी था। जैसे कोई लीलया अद्भुत फल उठा ले, वैसे वह पर्वत को (उठा) लेकर श्रीराम के दर्शन के लिए आ रहा था। ३१ अथवा (जान पड़ता था कि) जब बहुत घना-अन्धकार फैल गया; तो (मानो) रावण प्राण लेकर भाग गया, इसलिए अनगिनत दीपिकाएँ (छोटी मशालें) जलाकर हनुमान उसे खोजने के लिए आ गया हो, अथवा वह अमृत-कुम्भ ही लाया हो, अथवा कीर्ति-सूचक ध्वज उभारा हो, अथवा सौमित्र के जो प्राण रूठकर जा रहे थे, वे ही लौट आये हों। ३२-३३ अस्तु। सुग्रीवादि वानर जय-जयकार करके पर्वत को नीचे उतारने के लिए वेग-पूर्वक आगे दौड़े। ३४ पर्वत को उतारते ही हनुमान ने स्वामी को दण्डवत् प्रणाम किया, तो आसन से (उठकर) श्रीराम उसे उठाने के लिए आगे दौड़े। ३५ हनुमान को उठाकर श्रीराम ने हृदय से लगा लिया, (फिर) अश्रु-जल से हनुमान को अभिषिक्त किया। ३६ श्रीराम ने हनुमान के मुख-चन्द्र को अपने हाथ से सहेला। अस्तु। (इधर) वैद्य सुषेण झट से पर्वत के

सत्वर। पर्वताजवळी पातला। ३७ नमस्कारूनि पर्वत। मंत्रोनि औषधीवरी टाकी अक्षत। चारही वल्ली घेऊनि त्वरित। एकान्तीं रस काढिला। ३८ हर्षभरित सुषेण। चारही रसपात्रें भरून। लक्ष्मणापासीं धांवोन। येता जाहला ते काळीं। ३९ संजीवनीचा रस काढिला। तो आधीं मुखीं ओतिला। घायामाजी ते वेळां। संधिनीरस घालीत। २४० विशल्या लावितां जाण। कोठें न दिसे घाय-व्रण। सुवर्णकान्ति संपूर्ण। दिव्यदेह जाहला। ४१ निजेला उठे अकस्मात। तैसा उभा ठेला सुमित्रासुत। बाण तैसा आकर्णपर्यंत। घे घे म्हणोनि धांविन्नला। ४२ पुसे कोठें आहे रावण। त्यासी बाणें करीन चूर्ण। तों रघुनाथें करीं धरून। लक्ष्मणासी आलिंगिलें। ४३ जाहला एकचि जयजयकार। देव वर्षती पुष्पसंभार। मग सुषेणें उरले वानर। तेही उठविले ते काळीं। ४४ सागर उद्धरावया भागीरथी। भगीरथें आणिली ये क्षितीं। परी असंख्य जीव उद्धरती। बिंदुमात्र झगटतां। ४५ चक्रवाकालागीं रवि धांवत। परी सर्वांवरी

पास आ पहुँचा। ३७ उसने पर्वत को नमस्कार करके अक्षत को अभिमंत्रित कर औषधियों पर डाल दिया और चार वल्लियों को लेकर एकान्त (स्थान) में झट से रस निकाला। ३८ सुषेण हर्ष-विभोर हो गया था। चारों रस-पात्रों को भरकर वह उस समय दौड़ता हुआ लक्ष्मण के पास आ गया। ३९ संजीवनी (बूटी) का रस निकाला हुआ था, पहले वह मुख में उँडेला। (फिर) उस समय घावों में संधिनि-रस डाला। २४० समझिए कि विशल्या (नामक वल्ली के रस) का स्पर्श कराते ही कहीं भी घाव से उत्पन्न कोई व्रण दिखायी नहीं दे रहा था। लक्ष्मण का सम्पूर्ण शरीर सुवर्ण-कान्ति से युक्त एवं दिव्य हो गया। ४१ जैसे कोई सोया हुआ व्यक्ति यकायक उठता हो, वैसे लक्ष्मण (उठकर) खड़ा हो गया। बाण वैसा ही आकर्ण खींचा हुआ था। 'लो, लो' कहते हुए वह आगे दौड़ने लगा। ४२ उसने पूछा— 'कहाँ है रावण? उसे बाण से मैं चूर-चूर कर दूँगा।' त्यों ही श्रीराम ने उसका हाथ थामते हुए आलिंगन किया। ४३ तब अपूर्व जय-जयकार हो गया। देवों ने ढेर-के-ढेर फूल बरसा दिये। फिर उस समय सुषेण ने उन्हीं शेष वानरों को भी उठा लिया— सचेत कर लिया। ४४ (यह तो वैसा ही है जैसे) भगीरथ सगर के पुत्र-पौत्रों का उद्धार करने के लिए गंगा को इस धरती

प्रकाश पडत। कीं चकोरासी शशी पावत। रसभरित औषधी होती। ४६ चातकांलागीं मेघ वर्षती। परी आर्द्र होय सर्व जगती। कीं वराच्यिा पंक्तीं। वऱ्हाडी होती तृप्त जैसे। ४७ तैसें सौमित्राकारणें सत्वर। औषधी आणी वायुकुमर। तेणेंच

पर ले आया था, परन्तु उसकी केवल एक बूँद को छूते ही अनगिनत जीव उद्धार को प्राप्त हो जाते हैं। ४५ सूर्य चक्रवाक् (-चक्रवाकी) * के लिए दौड़ता (उदित होता) है, परन्तु वह (जैसे) सब पर प्रकाश फैलाता है, अथवा चकोर को चन्द्रमा § प्राप्त हो जाता है, परन्तु उसके आगमन से (जैसे) औषधियाँ रस से भर जाती हैं; ‡ मेघ चातकों के ‡ लिए बरसते हैं, परन्तु उससे समस्त जगत् (जैसे) आर्द्र (गीला) हो जाता है, अथवा वर की पंक्ति में बैठने से बाराती जैसे तृप्त हो जाते हैं, वैसे हनुमान लक्ष्मण के निमित्त औषधियाँ लाया था, परन्तु उन्हीं से (सुषेण

टिप्पणियाँ * चक्रवाक् सूर्य— एक पक्षी जो जाड़े में नदियों और बड़े जलाशयों के किनारे दिखायी देता है और वैशाख तक रहता है। इसे 'चकवा' भी कहते हैं। इसे अपने जोड़े से बहुत प्रेम होता है। एक मान्यता के अनुसार, यह रात के समय अपने जोड़े से अलग हो जाता है। पानी में इन दोनों के बीच कमल का पत्ता आता है। इस वियोग को सहन करना उनके लिए बहुत कठिन होता है और वे दोनों आर्त स्वर से एक-दूसरे को पुकारते रहते हैं। कविजनों ने इनके रात्रि-काल के वियोग पर अनेक उक्तियाँ बाँधी हैं। सूर्य मानो इनके दुःख को दूर करने के लिए ही उदित हो जाता है।

§ चकोर-चन्द्रमा— एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर 'चकोर' कहाता है। एक कवि-प्रसिद्धि के अनुसार यह चन्द्रमा का बड़ा भारी प्रेमी है और उसकी किरणों से प्राप्त अमृतरस से जीवित रहता है। अतः यह चन्द्रमा की ओर एकटक देखता रहता है— यहाँ तक कि आग की चिनगारियों को चन्द्र की किरणें समझकर खा जाता है। सख्त धूप को सहन करता रहता है। कविजनों ने इसे एकनिष्ठ प्रेम तथा भक्ति का प्रतीक माना है।

‡ चातक-मेघ— चातक पक्षी, जिसे पपीहा भी कहते हैं, वर्षाकाल में बहुत बोलता है। इसके विषय में यह कहा जाता है कि यह नदी, तालाब आदि का संचित जल नहीं पीता, केवल बरसता हुआ पानी पीता है। कुछ लोग यहाँ तक कहते हैं कि यह केवल स्वाती नक्षत्र की बूँदों से अपनी प्यास बुझाता है। इन बूँदों को भी वह तभी ग्रहण करता है, जब वे मेघ से सीधे आती हों। कविजन इसे एकनिष्ठ प्रेम तथा भक्ति का प्रतीक समझते हैं।

‡ चन्द्र और औषधियाँ— पौराणिक मान्यता के अनुसार चन्द्र अत्रि और अनसूया का पुत्र है। उसने दीर्घकाल तपस्या की। फल स्वरूप उसकी आँखों से सोमरस झरने लगा। इससे वनस्पतियों का पोषण होने लगा। पृथ्वी में उत्पन्न औषधी-वनस्पतियाँ चन्द्र से पुष्ट एवं विकसित होती हैं। कहते हैं, चन्द्र के क्षय-काल में वनस्पतियाँ सूखती हैं। वनस्पतियों के जीवन में चन्द्र का जो महत्त्व है, उसके कारण चन्द्र को 'रसपति' की उपाधि प्राप्त है।

असंख्य वानर । सजीव केले ते काळीं । ४८ मारुतीचें यश-वैभव । क्षणक्षणां वर्णीत राघव । विमानीं इंद्रादि देव । कीर्ति गाती मारुतीची । ४९ असो पर्वत उचलोनी ते वेळां । मारुति माघारा चालिला । दशमुखासी समाचार कळला । सौमित्र उठिला म्हणोनी । २५० शत राक्षस निवडून । तयां-प्रति सांगे रावण । म्हणे हिरोन घ्या रे गिरी द्रोण । मारुतीसी आडवोनियां । ५१ असुर पाठी लागती । वानरा पर्वत टाकीं म्हणती । पर्वत धरूनि एके हातीं । परते मारुति तयांवरी । ५२ करचरणघातेंकरून । शतही टाकिले मारून । स्वस्थळीं ठेवूनि गिरि द्रोण । सुवेळेसी पातला । ५३ तों उगवलें सूर्य-मंडळ । सूर्यकुळभूषणाचें चरणकमळ । हनुमंतें वंदोनि तत्काळ । कर जोडून उभा ठाके । ५४ मग नंदि-ग्रामींचें वर्तमान । रघुपतीसी सांगे वायुनंदन । भरतें सोडूनि दिव्य बाण । द्रोणाचळ पाडिला होता । ५५ मी क्षणभरी पाहिला अंत । तरी परम प्रतापी वीर भरत । मजसमवेत पर्वत । बाणाग्रीं स्थापीत होता पैं । ५६ ऐसें बोलतां

ने) उस समय अनगिनत वानरों को सजीव किया । ४६-४८ हनुमान के यश-वैभव का वर्णन श्रीराम क्षण-क्षण कर रहे थे । (वैसे ही) विमानों में (बैठे हुए) इन्द्रादि देव हनुमान की कीर्ति का गान कर रहे थे । ४९ अस्तु । उस समय पर्वत को उठाकर हनुमान लौट चला । (इधर) रावण को यह समाचार विदित हुआ कि लक्ष्मण जीवित हो उठा है । २५० तो उसने सौ राक्षसों को चुनकर उनसे कहा— 'अरे हनुमान को रोककर द्रोणगिरि को छीन लो ।' ५१ (फलस्वरूप) राक्षस हनुमान का पीछा करने लगे । वे कहा करते— 'रे हनुमान, पर्वत को फेंक (छोड़) दो ।' तो एक हाथ में पर्वत लिये हुए हनुमान उनकी ओर लौट आया— उनपर झपट पड़ा । ५२ उसने हाथ और पाँवों के आघात से (समस्त) सौ राक्षसों को ही मार डाला और (फिर) द्रोणगिरि को उसके अपने स्थान पर रखकर वह सुवेल आ पहुँचा । ५३ तो सूर्य-मण्डल उदित हुआ । (इधर) सूर्य-कुल-भूषण श्रीराम के चरण-कमलों को हनुमान ने तत्काल वन्दन किया और वह हाथ जोड़कर खड़ा रहा । ५४ अनन्तर हनुमान ने नंदिग्राम का समाचार श्रीराम को (यह बताते हुए) सुनाया— 'भरत ने दिव्य बाण छोड़कर द्रोणाचल को गिरा दिया था । ५५ मैंने क्षण भर (मानो) अन्त को ही देखा । परन्तु परम प्रतापी वीर भरत मेरे

मारुती। आश्चर्य करिती सकळ जुत्पती। सद्गद होऊनि रघुपती। बोलता जाहला प्रीतीनें। ५७ म्हणे आतां रावण वधोनियां। जाईन भरतासी भेटावया। हनुमंतें चरण वंदोनियां। राघवाप्रति बोलत। ५८ स्वामी निःसीम भरताचें भजन। सप्रेम वैराग्य अद्भुत ज्ञान। चकोर इच्छी रोहिणी-रमण। तैसी वाट पाहतसे। ५९ कीं वनास धेनु गेली दूरी। तान्हें वत्स वाट पाहे घरीं। कीं उर्ध्वमुखें निर्धारीं। चातक इच्छी घनबिंदु। २६० सर्व मंगलभोग करोनि दूरी। भरत वाट पाहे अहोरात्रीं। ऐसें मारुति बोलतां अंतरीं। आत्माराम संतोषला। २६१ रामविजय ग्रंथ सुंदर। हा कल्पवृक्ष उदार। दृष्टान्तफळीं समग्र। लवोनि आला पडिभरें। ६२ श्रीधरवरदा आदिपुरुषा। श्रीमद्भीमातट-विलासा। ब्रह्मानंदा पंढरीशा। अभंग भजन देईं तुझें। ६३ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार।

साथ पर्वत को बाण के अग्र पर स्थापित कर (ले जा) रहा था।' ५६ हनुमान द्वारा ऐसा कहने पर समस्त रणकुशल वीर योद्धाओं ने आश्चर्य अनुभव किया, तो अति गद्गद होते हुए श्रीराम प्रेमपूर्वक बोलने लगे। ५७ वे बोले— 'अब रावण का वध करके भरत से मिलने जाऊँगा।' तो हनुमान ने चरणों का वन्दन करते हुए श्रीराम से कहा। ५८ 'हे स्वामी, भरत की भक्ति सीमा-रहित है। उसका प्रेमसहित वैराग्य तथा ज्ञान अद्भुत है। जिस प्रकार चकोर रोहिणी-रमण चन्द्र की प्रतीक्षा करता है, उस प्रकार वह आपकी राह देख रहा है। अथवा गाय वन में दूर गयी हो, तो जिस प्रकार दुधमुँहा (नन्हा) बछड़ा घर में उसकी राह देखता रहता है; अथवा जिस प्रकार चातक मेघ जल की बूँद की अभिलाषा मुँह ऊपर की ओर उठाये हुए निश्चय-पूर्वक करता रहता है, उसी प्रकार समस्त मंगल भोगों को दूर करके (त्यजकर) भरत दिन-रात आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।' हनुमान द्वारा इस प्रकार कहने पर आत्माराम-श्रीराम मन में सन्तोष को प्राप्त हो गये। २५९-२६१

'श्रीराम-विजय' नामक यह सुन्दर ग्रन्थ (मानो) उदार कल्पवृक्ष है। वह दृष्टान्त-रूपी फलों की विपुलता के कारण पूरा-पूरा झुक आया है। ६२ हे श्रीधर के वर-दाता, हे आदिपुरुष, भीमा नदी के तट पर विलास करनेवाले गुरु ब्रह्मानन्द स्वरूप पंढरपुर के ईश्वर विट्ठल, मुझे अपनी अभंग (अक्षय) भक्ति प्रदान करो। २६३

सदा परिसोत भक्त चतुर। द्वात्रिंशत्तमोध्याय गोड हा। २६४
॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

स्वस्ति। 'श्रीराम-विजय' नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित एवं उससे सम्मत है। चतुर भक्त उसके इस बत्तीसवें मधुर अध्याय का नित्य श्रवण करें। २६४
॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३३

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। जानकी-नेत्रसरोजमित्रा। मित्रकुळभूषण स्कंदतातमित्रा। मित्रकुळ-कैवारिया भूसुरमित्रा। सौमित्राग्रजा श्रीरामा। १ भक्तमानस-चकोरचंद्रा। त्रिविधतापशमना आनंदसमुद्रा। भरतहृदया-रविंदभ्रमरा। भवभयहरा राजीवाक्षा। २ मुमुक्षुचातकनव-मेघरंगा। सकळरंगातीत अनंगा। आनंदमय अमला निःसंगा। अक्षय अभंगा निरुपाधिका। ३ रणरंगधीरा रघुनंदना। बोलवीं पुढें ग्रंथरचना। हनुमंतें द्रोणाद्रि आणून जाणा।

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। हे जानकी के नेत्र-कमलों को विकसित कर देनेवाले सूर्य, हे रविकुल-भूषण, हे स्कन्द के पिता शिवजी के मित्र, हे सूर्य-कुल के सहायक, हे ब्राह्मणों के मित्र, हे लक्ष्मण के ज्येष्ठ बन्धु श्रीराम, हे भक्तों के मन रूपी चकोरों को तृप्त कर देनेवाले चन्द्र, हे (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक नामक) तीनों तापों का शमन कर देनेवाले, हे आनन्द-समुद्र, हे भरत के हृदय-रूपी कमल के प्रति लुब्ध भ्रमर, हे सांसारिक भयों का अपहरण करनेवाले, कमल-नयन श्रीराम, हे मुमुक्षु जन रूपी चातकों को तृप्त करनेवाले नवमेघ के वर्णवाले, अर्थात् घनश्याम श्रीराम, हे समस्त रंगों के परे रहनेवाले (समस्त वर्ण आदि बाह्य लक्षणों से मुक्त), हे अनंग (अशरीरी-निराकार), हे आनन्दमय, हे अमल, हे निःसंग (सांसारिक बंधनों से मुक्त), हे अक्षय, हे अभंग, हे निरुपाधिक (विशिष्ट गुण-धर्मों से रहित), हे रणरंगधीर, रघुनन्दन श्रीराम, (अब मेरे द्वारा इस) ग्रन्थ की रचना को आगे कहलवाइए—

सौमित्रप्राणा वांचविलें। ४ यावरी बोले बिभीषण। बाहेर युद्धा न ये रावण। शक्रजिताऐसें हवन। गुप्त तेणें मांडिलें। ५ सुटले आहुतींचे परिमळ। धूम्रें कोंदलें नभमंडळ। अग्नींतून रथ तेजाळ। अर्धा बाहेर निघाला। ६ पूर्णाहुती होतां पूर्ण। संपूर्ण निघेल स्यंदन। तरी अगोदरचि जाऊन। विघ्न तेथें करावें। ७ ऐसें बोलतां बिभीषण। मुख्य कपी उठिले दहाजण। नळ नीळ जांबुवंत वालिनंदन। सीता-शोकहरण पांचवा। ८ गवय गवाक्ष गंधमादन। शरभ केसरी पावकलोचन। दशरथात्मजासी वंदून। दहाजण वीर उठिले। ९ ते दहाही पराक्रमेंकरून। दशदिशा जिंकिती न लगतां क्षण। अकस्मात ऊर्ध्वपंथें उडोन। दशमुखावरी चालिले। १० जैसे विहंगम उडती गगनीं। तैसे लंकेंत आले तये क्षणीं। घरोघरीं रिघोनी। रावणा शोधिती तेधवां। ११ जे जे भेटती राक्षस। त्यांतें करिती ताडणास।

अर्थात् इस ग्रन्थ के आगे के अंश की रचना कराइए। समझिए, (पिछले अध्याय में कहा है) कि हनुमान ने द्रोणगिरि को लाकर लक्ष्मण के प्राण बचा लिये। १-४

इसके पश्चात् विभीषण बोला— 'रावण युद्ध के लिए बाहर नहीं आ रहा है। उसने इन्द्रजित की भाँति गुप्त रूप से हवन आरम्भ किया है। ५ आहुतियों की सुगन्ध फैलने लगी है; नभ-मण्डल धुएँ से बहुत घना भर गया है; तेजस्वी रथ अग्नि में से आधा बाहर निकल आया है। ६ पूर्णाहुति के पूर्ण अर्थात् सम्पन्न होते ही सम्पूर्ण रथ बाहर निकल आएगा। अतः पहले ही वहाँ जाकर (उस हवन में) बाधा उत्पन्न करो।' ७ विभीषण द्वारा ऐसा कहने पर दस जने मुख्य वानर (जाने के लिए) उठ गये; (वे थे)— नल, नील, जाम्बवान, अंगद, पाँचवाँ सीताशोकहरण हनुमान, गवय, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ और अग्नि-से नेत्रधारी केसरी। ये दस जने वीर श्रीराम का वन्दन करके उठ गये (जाने के लिये तत्पर हो गये)। ८-९ वे दसों ही अपने पराक्रम से दसों दिशाओं को क्षण न लगते जीत सकते थे। वे बिना (अधिक) सोचे-विचारे ऊर्ध्व मार्ग से उड़कर दशानन की ओर (आक्रमण करने) चल दिये। १० जिस प्रकार आकाश में पक्षी उड़ते हैं, उस प्रकार उड़ते हुए वे उस क्षण लंका में आ गये और घर-घर में प्रवेश करते हुए उस समय रावण को खोजने लगे। ११ जो-जो राक्षस मिलते, उन्हें वे पीटते (और

कोठें बैसला लंकेश। दावा आम्हांस वेगेंसीं। १२ शोधिलें अवघें लंकाभुवन। परी ठायीं न पडेचि रावण। तों बिभीषणाची राणी येऊन। दावी खूण गुप्तत्वें। १३ सरमा सांगे सत्वर। नगरदुर्गाखालीं विवर। त्यांत बैसला दशकंधर। दुराचारी कपटिया। १४ ऐसें ऐकतां ते वेळां। विवरमुखीं होती शिळा। वानरीं फोडूनि मोकळा। मार्ग केला ते समयीं। १५ तेथें राक्षस होते दारुण। ते वधिले न लगतां क्षण। आंत प्रवेशले वानरगण। विवर विस्तीर्ण देखिलें। १६ तों तेथें शिवालय प्रचंड। पुढें प्रज्वळिलें होमकुंड। आहुती टाकी दशमुंड। नेत्र वीसही झांकोनियां। १७ रक्तमद्यमांस-पर्वत। नरशिरें पडलीं असंख्यात। रक्तें स्नान करूनि लंकानाथ। वज्रासनीं बैसला। १८ आश्चर्य करिती वानर-गण। अजून न सांडीच हा प्रयत्न। कुळक्षय जाहला संपूर्ण। तरी जयआशा धरीतसे। १९ असो वानरीं शिळा घेऊनि प्रचंड। विध्वंसिलें होमकुंड। सामग्री नासोनि उदंड।

कहते)—'रावण कहाँ बैठा है? हमें झट से दिखा दो।' १२ उन्होंने समस्त लंका-भुवन में ढूँढ़ लिया, परन्तु रावण का पता ही नहीं चला। तब विभीषण की रानी (पत्नी सरमा) ने आकर गुप्त रूप से संकेत किया। १३ सरमा ने झट से कहा—'नगर के दुर्ग के नीचे एक विवर है। उसमें दुराचारी कपटी रावण बैठा है।' १४ ऐसा सुनते ही उस समय (दुर्ग के पास) विवर के मुख में जो शिला थी, उसे वानरों ने तोड़कर मार्ग खुला कर लिया। १५ वहाँ भयावह राक्षस थे। वानरगणों ने उनका क्षण न लगते वध कर डाला और वे अन्दर प्रविष्ट हो गये। उन्होंने उस विस्तीर्ण विवर को देखा। १६ तब (उन्हें दिखायी दिया कि) वहाँ एक प्रचण्ड शिवालय था। उसके सम्मुख होम-कुण्ड प्रज्वलित किया हुआ था। रावण बीसों ही आँखों को बन्द किये हुए आहुतियाँ डाल रहा था। १७ (वहाँ पास ही) रक्त और मद्य था, मांस का पर्वत (-सा ढेर) था; अनगिनत नर-मस्तक पड़े हुए थे। रावण रक्त में स्नान करके वज्रासन मुद्रा में बैठा था। १८ वानर आश्चर्य अनुभव कर रहे थे—यह (रावण) अब भी यह प्रयत्न नहीं छोड़ रहा है; सम्पूर्ण कुल का क्षय हो गया है, फिर भी जय (प्राप्त करने) की आशा (कैसे) रखता है। १९ अस्तु। वानरों ने प्रचण्ड शिलाओं को लेकर होम-कुण्ड का विध्वंस कर डाला, बहुत-सी यज्ञीय सामग्री का नाश करते हुए यज्ञ-पात्रों

यज्ञपात्रें फोडिलीं। २० सावध नव्हेचि रावण। वस्त्रें फेडूनि केला नग्न। दाही मुखांमाजी संपूर्ण। धुळी घालिती वानर। २१ एक वर्मस्थळीं शिळा हाणिती। एक वक्ष:स्थळीं ताडिती। तरी सावध नव्हे लंकापती। नाना प्रयत्न केलिया। २२ मग तेथोनि उडाला वालिसुत। प्रवेशला राणिवसांत। मंदोदरीस उचलोनि अकस्मात। रावणापाशीं आणिली। २३ परम सुंदर सुकुमार। रावणावरी लोटिती वानर। चीर कंचुकी अलंकार। केले चूर वानरीं। २४ मंदोदरी म्हणे दशवदना। आग लागो तुझिया अनुष्ठाना। वानरीं विटंबिली अंगना। लाज कैसी नाहीं तूंतें। २५ ते पतिव्रता करूनि नग्न। रावणावरी देती ढकलून। मयजा आक्रंदे दारुण। ऐकतां रावण उघडी नेत्र। २६ तों मंदोदरी आक्रंदत। होम विध्वंसिला समस्त। क्रोधें उठोनि लंकानाथ। वानरांवरी धांविन्नला। २७ बहुत वानर ते वेळे। पायीं धरूनि आपटिले। अंगदमारुतींसी दिधले।

को तोड़ डाला। २० (फिर भी) रावण सुध-बुध को प्राप्त नहीं हो गया, तो उन वानरों ने वस्त्रों को उतारकर उसे नग्न कर लिया और उसके दसों मुँहों में पूर्ण (भरकर) धूली डाल दी। २१ कोई-कोई उसके मर्म-स्थान पर शिलाएँ पटक देते थे, कोई-कोई उसके वक्ष:स्थल पर आघात करते थे। नाना (प्रकार से) यत्न करने पर भी रावण होश में नहीं आ रहा था। २२ तब अंगद वहाँ से उड़ गया और अन्त:पुर में पैठ गया। (फिर) यकायक मन्दोदरी को उठा लेकर रावण के पास ले आया। २३ वानरों ने उस परम सुन्दर सुकोमल (स्त्री को) रावण पर धकेल दिया। उन्होंने उसके वस्त्रों और चोली को (तार-तार कर दिया, तो) आभूषणों को चूर-चूर कर डाला। २४ तब मन्दोदरी रावण से बोली— 'आग लग जाए तुम्हारे अनुष्ठान में। तुम्हारी स्त्री को वानरों ने दुर्गत करते हुए अपमानित किया है— (फिर भी) तुम्हें लज्जा कैसे नहीं अनुभव हो रही है।' २५ (तदनन्तर उन्होंने) उस पतिव्रता मन्दोदरी को नग्न करके रावण पर धकेल दिया, तो वह दारुण विलाप करने लगी। उसे सुनते ही रावण ने आँखें खोलीं। २६ (तो दिखायी दिया कि) मन्दोदरी बहुत रो रही है और (वानरों ने) पूरे होम को उध्वस्त कर दिया है। तब क्रोध-पूर्वक उठकर रावण वानरों पर चढ़ दौड़ा। २७ उसने पाँव पकड़कर अनेक वानरों को पटक डाला और अंगद तथा हनुमान के बहुत घूँसे जमा

मुष्टिघात बहुत पैं। २८ सकळही वानर निघोन। सुवेळेसी आले परतोन। म्हणती उठविला रावण। युद्धालागीं येईल पैं। २९ सभा मोडूनि रघुवीर। कोदंड चढविलें सत्वर। म्हणे मयजेचें सौभाग्य समग्र। आजपासोनि खंडलें। ३० इकडे मंदोदरीचें समाधान। करिता जाहला रावण। वस्त्रें भूषणें देऊन। हृदयीं दृढ धरियेली। ३१ म्हणे प्राक्तनभोग दारुण। प्रिये न सुटे भोगिल्याविण। आतां गृहा जावें आपण। समाधानें असावें। ३२ आजि मी झुंजेन निर्वाण। शत्रुशिरें आणीन छेदून। नाहीं तरी प्रिये येथून। तुमची आमची हेचि भेटी। ३३ गृहा पाठविली मंदोदरी। वस्त्रें भूषणें देऊन झडकरी। रावण निघाला बाहेरी। ठोकिल्या भेरी एकसरें। ३४ राक्षसदळ जितकें उरलें। तें अवघें सांगातें घेतलें। अपार रणतुरें ते वेळे। वाजों लागलीं भयंकर। ३५ पदातिदळ पुढें जात। त्यापाठीं स्वार चवताळत। त्यामागें गज उन्मत्त। गुढारांसहित धांवती। ३६ त्यांचे पाठीं रथ जाती। रथीं बैसला

लिये। २८ (तदनन्तर) सभी वानर वहाँ से निकलकर सुवेल लौट आये और बोले— 'हमने रावण को (हवन से) उठा लिया है और (अब) वह युद्ध के लिए आएगा।' २९ यह सुनकर सभा विसर्जित करके श्रीराम ने झट से धनुष को चढ़ा लिया और कहा— 'मयकन्या मन्दोदरी का अखण्ड सुहाग आज से खंडित हो गया।' ३० इधर रावण ने मन्दोदरी को सान्त्वना दी। वस्त्र, आभूषण देते हुए उसने उसे दृढ़ता से हृदय से लगा लिया। ३१ (फिर) वह बोला— 'हे प्रिया, दैव द्वारा प्रस्तुत भोग दारुण होते हैं। बिना भोगे वे नहीं छूटते। अब तुम घर जाना और सन्तोष के साथ रहना। ३२ आज मैं निर्वाण युद्ध करूँगा और शत्रुओं के सिर काटकर लाऊँगा। नहीं तो, हे प्रिया, अब की यही तुम्हारी-हमारी (अन्तिम) भेंट है।' ३३ वस्त्र और आभूषण देते हुए रावण ने झट से मन्दोदरी को घर भेज दिया और वह बाहर निकल पड़ा। उसने एक साथ (रण-) भेरियों को बजवा दिया। ३४ जितनी राक्षस-सेना शेष थी, उस सबको उसने साथ में लिया। उस समय अनगिनत रण-तूर्य भयावह रूप से बजने लगे। ३५ पदाति-दल (सबसे) आगे चल रहा था। उसके पीछे घुड़सवार बौखलाये हुए चल रहे थे; उस (अश्वदल) के पीछे उन्मत्त हाथी अम्मारियों सहित दौड़ रहे थे। ३६ उनके पीछे (-पीछे)

लंकापती । छत्रें मित्रपत्रें झळकती । पुढें पढती भाट ब्रीदें । ३७ रावण रणनोवरा सत्य । मुक्ति नोवरी वरूं जात । वऱ्हाडी पुढें गेले बहुत । उरले ते सर्व घेत संगें । ३८ मागें बंधु बिभीषण लंकेसी ठेवील रक्षण । असो रणभूमीस रावण । वायुवेगें पातला । ३९ तों शिळा वृक्ष घेऊन । वेगें धांवले वानरगण । जैसा प्रळयांतीं पडे पर्जन्य । तैसा पाडिला पर्वतांचा । ४० दश धनुष्यां लावूनि बाण । एकदांच सोडी रावण । सर्वही पर्वत फोडून । सैन्य बाहेर काढिलें । ४१ प्रचंड पराक्रमी लंकानाथ । शरीं वानर खिळिले समस्त । ऐसें देखोनि रघुनाथ । पुढें जाहला ते क्षणीं । ४२ रघुनाथ म्हणे दशकंधरा । मलिना शतमूर्खा पामरा । सीता आणूनि तस्करा । कुलक्षय केला व्यर्थचि । ४३ संतति संपत्ति विद्या धन । टाकिलीं वेदांचीं खंडें करून । रासभासी चर्चिलें चंदन । तैसें ज्ञान असुरा तुझें । ४४ आजि समरां-

---

रथ चल रहे थे । एक रथ में रावण बैठा था । छत्र तथा मित्र-पत्र (आफताबी) चमक रहे थे । आगे भाट प्रशंसा-सूचक शब्दावली पढ़ रहे थे । ३७ रावण सचमुच युद्ध क्षेत्र में वर था । वह मुक्ति रूपी वधू का वरण करने चला था । (इससे) पहले आगे बहुत बाराती गये थे । जो शेष थे, उन सबको उसने साथ में लिया था । ३८ उसने (अपने) पीछे बन्धु विभीषण को रक्षक के रूप में रखा था । अस्तु । (इधर) रावण वायु-गति से रण-भूमि में पहुँच गया । ३९ तब शिलाओं और वृक्षों को लिये हुए वानरगण वेग-पूर्वक दौड़े । जैसे प्रलय-काल के अन्त में वर्षा होती हो, वैसे उन्होंने पर्वतों की बौछार की । ४० तो दस धनुषों पर बाण सन्धान करते हुए रावण ने एक साथ चला दिये और उन सब पर्वतों को फोड़कर अपनी सेना को बाहर निकाल लिया । ४१ रावण (वस्तुतः) अत्यधिक प्रतापी था । उसने समस्त वानरों को बाणों से कील डाला । ऐसा देखते ही श्रीराम उस क्षण आगे हो गये । ४२ (फिर) श्रीराम ने कहा-- 'रे दशकंधर, रे मलिन (पापी), रे शतमूर्ख, रे पामर, रे चोर, सीता को लाकर तूने अपने कुल का व्यर्थ ही क्षय कर लिया है । ४३ (तेरे पास) सन्तति, सम्पत्ति है, विद्या है, धन है । तूने वेदों को खण्डों में विभाजित किया है । फिर भी, रे राक्षस, तेरा ज्ञान वैसे ही (व्यर्थ) है, जैसे गधे को चन्दन (व्यर्थ ही) लगाया हो । ४४

गणीं जाण। तुज खंडविखंड करीन। पुढील अवतारीं मुक्ति देईन। असुरा जाण तुज निश्चयें। ४५ तव प्राणहर्ते माझे शर। आले सावध होईं सत्वर। यावरी दशद्वयनेत्र। प्रत्युत्तर देत असे। ४६ तूं म्हणविसी रामचंद्र। परी मी राहू असें भयंकर। आजि खग्रास करीन समग्र। समरीं तुझा मानवीया। ४७ माझे समरीं सुटतां बाण। मेरु मांदार होती चूर्ण। तूं सुकुमार मानवनंदन। कैसे साहसी पाहेन ते। ४८ सीता सुंदर अत्यंत। कष्टत होती अरण्यांत। म्यां आणिली ते तुज प्राप्त। पुन: न होय सर्वथा। ४९ पश्चिमेस उगवेल तरणी। जरी मशक उचलील धरणी। गजमस्तकींचें मोतीं भिवोनी। सिंह देईल

समझ ले, मैं आज युद्ध-भूमि में तुझे खण्ड-विखण्ड (टुकड़े-टुकड़े) कर डालूँगा। रे असुर, यह निश्चय जान ले कि आगामी अवतार* में तुझे मुक्ति प्रदान करूँगा। ४५ तेरे प्राणों का अपहरण करनेवाले मेरे बाण आ रहे हैं— तो झट से सावधान हो जा।' इसपर रावण ने प्रत्युत्तर दिया। ४६ 'तू (अपने को) राम-चन्द्र कहाते हो, परन्तु मैं (मानो) भयंकर राहु हूँ। रे मानव, मैं आज युद्ध में तुझे खग्रास (पूरा-पूरा) निगल डालूँगा। ४७ युद्ध-भूमि में मेरे बाण छूटते ही मेरु और मंदर (तक) चूर-चूर हो जाते हैं (जाएँगे)। देखता हूँ, तू सुकुमार मानव-पुत्र उन्हें कैसे सहन कर पाता है। ४८ सीता अत्यन्त सुन्दर है। वह अरण्य में कष्ट को प्राप्त हो रही थी, (अत:) मैं उसे ले आया। (अब) वह तुझे पुन: कदापि प्राप्त नहीं होगी। ४९ यदि सूर्य पश्चिम में उदय को प्राप्त हो, यदि मच्छड़ पृथ्वी को उठा ले, यदि सिंह मारे डर के हाथी के मस्तक के मोती सियार को (लेने) दे, यदि पत्थर के आघात से वायु

---

* टिप्पणी : एक समय ऋषिवर सनकादि, सनन्दन आदि भगवान विष्णु के दर्शन के लिए वैकुण्ठ लोक में जा रहे थे, तो जय-विजय नामक दो द्वारपालों ने उन्हें रोक दिया, तब महर्षियों ने क्रोध से उन्हें असुरयोनि में उत्पन्न हो जाने का अभिशाप दिया। परन्तु जय-विजय द्वारा क्षमा याचना करने पर महर्षियों ने कहा— तुम दोनों लगातार तीन जन्म तक असुरयोनि में उत्पन्न हो जाओगे और भगवान द्वारा मारे जाकर उद्धार को प्राप्त हो जाओगे। फलस्वरूप जय-विजय प्रथम जन्म में हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के रूप में उत्पन्न हुए। भगवान विष्णु ने नरसिंह रूप में अवतरित होकर हिरण्यकशिपु का वध किया, तो वराह के रूप में अवतीर्ण होकर हिरण्याक्ष को मार डाला। फिर जय-विजय दूसरे जन्म में रावण-कुम्भकर्ण हो गये। तीसरे जन्म में शिशुपाल और दंतवक्त्र के रूप में उत्पन्न हुए। श्रीकृष्ण के हाथों उनका वध हो गया, तो वे उद्धार को प्राप्त हो गये।

जंबुका। ५० पाषाणघायेंकरून। जरी दुःख पावे प्रभंजन। गरुड सर्पासी येईल शरण। पतंग अग्नीस गिळील जरी। ५१ हेंही एक वेळ घडे। परी तुज जानकी दृष्टी न पडे। रावण बोलतां गडाडे। मेघ जैसा आकाशीं। ५२ रघूत्तम म्हणे दशकंठा। तुज मृत्युसमयीं फुटला फांटा। माझे बाणांचा प्रताप मोठा। साहें आजि समरांगणीं। ५३ रामें चाप टणत्कारून प्रचंड। शर सोडी जैसा काळदंड। दोघे वीर परम प्रचंड। रण वितंड माजविलें। ५४ मांडिलें एकचि घनचक्र। रणतुरें वाजती अपार। सीताजननी थरथर। कंपित होय क्षणक्षणां। ५५ अलातचक्रें जेवीं फिरती। तेवीं उभय चापें झळकती। चपळेऐशा तळपती। मुद्रिका हातीं दोघांचे। ५६ भुजंगअस्त्राचा प्रयोग। रावण करी तेव्हां सवेग। दशदिशा फुटोनि पन्नग। कपिकटकावरी येती। ५७ जैसें निबिड जलदजाल। तैसें सर्पी व्यापिलें सकळ। ऐसें देखोनि तमालनीळ। गरुडास्त्रबाण

दुःख को प्राप्त हो जाए, यदि गरुड़ साँप की शरण में आ जाए, यदि पतंग अग्नि को निगल डाले (—यह तो सब असम्भव है, फिर भी यद्यपि एक बार घटित हो जाए), परन्तु फिर भी जानकी तुझे दिखायी नहीं देगी।' जैसे मेघ आकाश में गड़गड़ाता है, वैसे रावण बोलते समय गड़गड़ा रहा था। ५०-५२ (यह सुनकर) श्रीराम ने कहा— 'रे दश-कण्ठ, मृत्यु की बेला में तू पागल हो गया है। मेरे बाणों का प्रताप बड़ा है, उसे तू आज रणांगण में सहन कर।' ५३ (फिर) राम ने धनुष का प्रचण्ड टनत्कार करते हुए काल-दण्ड जैसा बाण चला दिया। वे दोनों परम प्रचण्ड वीर थे; उन्होंने बड़ा घमासान युद्ध आरम्भ किया। ५४ उन दोनों ने अपूर्व प्रलयकारी युद्ध आरम्भ किया। (उस समय) रण-तूर्य अपार बज रहे थे। उससे सीता-जननी, अर्थात् भूमि क्षण-क्षण थरथर काँपने लगी। ५५ जिस प्रकार अलात-चक्र घूमते हों, उस प्रकार दोनों के धनुष (हिलते हुए) चमक रहे थे। दोनों के हाथों (की उँगलियों) में अँगूठियाँ विद्युत्-सी जगमगा रही थीं। ५६ तब रावण ने भुजंग-अस्त्र का प्रयोग किया, तो (जान पड़ता था कि) दसों दिशाओं के फट जाने पर सर्प कपि-सेना की ओर (दौड़कर) आ रहे थे। ५७ जैसे (आकाश में) अति घना मेघ-जाल हो, वैसे सर्पों ने (समस्त दिशाओं को) व्याप्त किया। ऐसा देखकर तमालनील श्रीराम ने गरुड़ास्त्र बाण का सन्धान किया। ५८

योजिला । ५८ सोडितां सुपर्णास्त्रबाण । पृथ्वी आणि आकाश फोडून । असंख्य धांवती विनतानंदन । सर्प संपूर्ण भक्षिले । ५९ सर्प संहारून समस्त । गरुड सर्वेचि झाले गुप्त । जातवेदास्त्र दैदीप्त । विंशतिनेत्रें सोडिलें । ६० पाखंड उच्छेदी पंडित । तेवीं जलदास्त्र प्रेरी रघुनाथ । रावणें वातास्त्र अद्भुत । तयावरी प्रेरिलें । ६१ रामें आड घालून पर्वत । प्रभंजन कोंडिला समस्त । वज्रास्त्र प्रेरी लंकानाथ । फोडिले पर्वत तत्काळीं । ६२ मग असंभाव्य शस्त्रजाळ । रावणें प्रेरिलें तत्काळ । एकाचि बाणें अयोध्यापाळ । छेदोनियां टाकीतसे । ६३ रावणें योजिला एक शर । दिनकरमुख तेज अपार । तो चापीं योजोनि सत्वर । राघवावरी सोडिला । ६४ रघूत्तमें केलें संधान । परी तो अनिवार शर पूर्ण । श्रीरामचरणातें लागला येऊन । भेदून गेला पलीकडे । ६५ राघवचरण सुकुमार । वामपाद फोडूनि गेला शर । ऐसें देखोनि वानर वीर । उठिले सर्व एकदांचि । ६६ रणीं पडिलीं होतीं शस्त्रें । तीं

उस गरुड़ास्त्र (से युक्त) बाण के छूटते ही अनगिनत गरुड़ पृथ्वी और आकाश को फोड़कर दौड़ने लगे। उन्होंने समस्त सर्पों को खा डाला । ५९ (इस प्रकार) समस्त सर्पों का संहार करके वे गरुड़ साथ ही गुप्त हो गये। (तत्पश्चात्) रावण ने देदीप्यमान अग्नि-अस्त्र छोड़ दिया । ६० जिस प्रकार कोई पंडित (अपनी उक्ति द्वारा) पाखण्ड का उच्छेद कर देता है, उस प्रकार श्रीराम ने जलदास्त्र छोड़ दिया (और अग्नि-अस्त्र का नाश करने का यत्न किया); (पर तदनन्तर) रावण ने उसपर अद्‌भुत वायु-अस्त्र छोड़ा । ६१ (फिर) श्रीराम ने बीच में पर्वत (-अस्त्र) डालकर समस्त वायु को रोक दिया, तो रावण ने वज्रास्त्र चलाकर पर्वतों को तत्काल फोड़ डाला । ६२ (फिर) रावण ने तत्काल असम्भाव्य रूप में शस्त्र-जाल बिछाया, तो श्रीराम ने एक ही बाण से उसे छेद डाला । ६३ (तदनन्तर) रावण ने अपार तेज से युक्त एक सूर्यमुख शर आयोजित किया। उसे झट से धनुष पर रखते हुए उसने राम पर छोड़ दिया । ६४ (इधर) श्रीराम ने शर-सन्धान तो किया, फिर भी (रावण का) वह पूर्णतः अनिवार्य बाण आकर श्रीराम के पाँव में लग गया और उसे भेदकर उस पार चला गया । ६५ श्रीराम के चरण कोमल थे। वह बाण उनके बाएँ पाँव को भेदकर चला गया।

वानरीं घेतलीं अपारें। मारीत उठले एकसरें। अनिवार काळासी जे। ६७ परमार्थबळेंकरूनि सबळ। ज्ञानी विध्वंसिती प्रपंचदळ। तैसे रामउपासक निर्मळ। असुर सकळ रगडती। ६८ अभिमानाचे मुकुट थोर। परमार्थबाणें केले चूर। त्रयावस्थांची कवचें अपार। सूर्यखड्गें तोडिलीं। ६९ समवृत्तीचीं शस्त्रें घेऊन। द्वेषधनुष्यें छेदिलीं पूर्ण। नैराश्यचक्रेंकरून। लोभभाते उडविले। ७० स्वरूपसाक्षात्कारबाणीं। सिद्ध पातका सांडी खंडूनी। बोधफरशेंकरूनी। मोहध्वज छेदिले। ७१ अनुसंधानपरिघ घेऊन। अविद्यारथ केला चूर्ण। द्वैतरथांग छेदून। अभेदपट्टिश टाकिलें। ७२ विवृत्तिअस्त्रें घालून। प्रवृत्तिशस्त्रें केलीं चूर्ण। विरक्तिगदा घेऊन। कामकुंजर विदारिले। ७३ क्रोध मद मत्सर

ऐसा देखकर सब वीर वानर एक साथ (त्वेषपूर्वक) उठ गये। ६६ युद्धभूमि में (शस्त्र) पड़े हुए थे; उन अनगिनत शस्त्रों को वानरों ने उठा लिया और काल द्वारा भी जिन्हें रोका नहीं जा सकता, ऐसे वे वानर एक साथ (विपक्षियों को) मारने लगे। ६७ परमार्थ (ज्ञान) के बल से बलवान हुए ज्ञानी-जन सांसारिक (बाधाओं की) सेना का विध्वंस कर देते हैं; उस प्रकार उन निर्मल (पापहीन) रामोपासक वानरों ने समस्त असुरों को कुचल दिया। ६८ (राक्षसों के) अभिमान रूपी बड़े (-बड़े) मुकुटों को (वानरों ने) परमार्थ (-ज्ञान) रूपी बाण से पीस दिया और तीनों अवस्थाओं रूपी * अपार कवचों को सूर्यखड्ग से काट डाला। ६९ उन्होंने समवृत्ति के शस्त्रों को लेकर (शत्रु के) द्वेष रूपी धनुषों को पूर्णत: छेद डाला और निराशा अर्थात् निरीहता रूपी चक्र से (उनके) लोभरूपी तरकसों को उड़ा दिया। ७० उन सिद्ध पुरुषों (वानरों) ने ब्रह्म-स्वरूप के साक्षात्कार रूपी बाण से पातकों (अर्थात् पापी राक्षसों) को काटकर नष्ट कर दिया, आत्म-ज्ञान रूपी परशु से मोह रूपी ध्वज को छेद डाला। ७१ (उन्होंने) अनुसन्धान (भगवान के ध्यान) रूपी परिघ लेकर अविद्या रूपी रथ को चूरचूर कर डाला। (उन्होंने) द्वैत भाव रूपी पहियों को अभेद (अद्वैत) भावरूपी तलवार लेकर तोड़ डाला। ७२ (उन्होंने) निवृत्ति रूपी अस्त्रों को चलाकर प्रवृत्ति के शस्त्रों को चूर-चूर कर डाला; विरक्ति रूपी गदा लेकर काम विकार रूपी हाथियों को विदीर्ण कर डाला। ७३ क्रोध, मद, मत्सर और अहंकार— ये पदाति सैनिक आगे थे; (परन्तु)

---

* टिप्पणी : तीन अवस्थाएं— उत्पत्ति, स्थिति और लय।

अहंकार। हे पुढें होते पायभार। शम दम अस्त्रें अनिवार। त्यांनीं चूर्ण केले ते। ७४ संकल्प द्वेष कुटिल। हे असुरांचे तुरंग सबळ। हे समाधानशक्तीनें सबळ। विदारून पाडिले। ७५ आशा मनशा कामना पूर्ण। ह्या भिंदिमाळा येती दारुण। मनोजयाचें पुढें वोडण। रामभक्त करिती हो। ७६ आतां असो पाल्हाळ। वानरीं रगडिलें असुरदळ। रावण घाली बाणजाळ। मायापडळ जयापरी। ७७ रथारूढ लंकानायक। जैसा नगमस्तकीं बलाहक। पृथ्वीवरी अयोध्या-पालक। ठाण मांडून उभा असे। ७८ वाचस्पतीसी म्हणे इंद्र। राजाधिराज श्रीरामचंद्र। त्रिभुवनेश्वर गुणसमुद्र। उदार धीर गुणाब्धि। ७९ सीतेचें करूनि निमित्त। आम्हां करावया बंधनमुक्त। युद्ध करीत रघुनाथ। धाडावा रथ ये समयीं। ८० मातली सारथि चतुर जाण। तयासी सांगे सहस्रनयन। शस्त्रास्त्रीं भरून स्यंदन। अश्वरत्नें दिव्य जीं। ८१ माझा रथ तेजागळा। सत्वर नेईं सुवेळाचळा।

शम और दमन रूपी अस्त्र अनिवार्य हैं; उनसे उन सैनिकों को मसल डाला। ७४ संकल्प और द्वेष कुटिल होते हैं— ये तो असुरों के शक्तिशाली घोड़े हैं। (रामोपासक वानर रूपी) साधकों ने सन्तोष रूपी अपनी बहुत भारी शक्ति से उनको विदीर्ण करके गिरा दिया। ७५ आशा, मनीषा, कामना— इनके रूप में पूर्णतः दारुण गोफनों की मार आती थी। परन्तु मनोजय (मनोनिग्रह) रूपी ढाल को राम-भक्तों (वानरों) ने आगे किया (धर लिया)। ७६

अस्तु। अब व्यर्थ का विस्तार रहने दें। (कहना तो इतना ही है कि) वानरों ने राक्षस-सेना को पीस डाला। (तब) जिस प्रकार माया-जाल होता है, उस प्रकार रावण ने बाणों का जाल फैला दिया। ७७ (उधर) लंका-पति रावण रथ में आरूढ़ हुआ था, जैसे पर्वत-शिखर पर मेघ ही हो, तो (इधर) श्रीराम भूमिपर पैंतरा लेते हुए डटकर खड़े थे। ७८ (यह देखकर) इन्द्र ने गुरु बृहस्पति से कहा— 'राजाधिराज श्रीरामचन्द्र त्रिभुवन के ईश्वर हैं, गुणसागर हैं— उदार तथा धैर्यशाली करुणासागर। ७९ सीता का निमित्त करके वे हमें बन्धन से मुक्त करने के लिए युद्ध कर रहे हैं। (अतः) इस समय (उनके लिए) रथ भेज दें।' ८० समझिए, मातली नामक (इन्द्र का) सारथी चतुर है। उससे इन्द्र ने कहा— 'रथ को शस्त्रों से भर दो; जो दिव्य अश्व-रत्न हैं,

मातली आज्ञा वंदोनि ते वेळां। निघाला परम वेगेंसीं। ८२ त्रुटी न वाजतां तत्काळीं। रथ आणी रामाजवळी। खालीं उतरून ते काळीं। वंदी मातली रामातें। ८३ म्हणे राजीवाक्षा तमालनीला। सहस्राक्षें रथ पाठविला। यावरुतें आरूढोनी ये वेळां। मग युद्धासी प्रवर्तावें। ८४ माझें नाम मातली। रथ फिरवीन रणमंडळीं। ऐसें ऐकतां ते वेळीं। जगदात्मा संतोषला। ८५ म्हणे धन्य धन्य शचीनाथ। समय पाहून केलें उचित। जैसा क्षुधित देखोनि अत्यंत। भोजन त्यासी देइजे। ८६ कीं तृषितासी जीवन शीतळ। की रोगियासी रसराज निर्मळ। कीं मरतयासी तत्काळ। सुधारस पाठविला। ८७ दुर्बलासी दीजे धन। कीं रणीं पाठिराखा ये धांवोन। तैसा पुरंदरें स्यंदन। समयोचित पाठविला। ८८ मग प्रदक्षिणा करून। रथीं चढला

उन्हें (रथ में) जोत दो। ८१ मेरे असाधारण रूप में तेजस्वी रथ को झट से सुवेलाचल ले जाओ।' उस समय (इन्द्र की) आज्ञा को वन्दन करके— अर्थात् आदरपूर्वक स्वीकार करके मातली परम वेगपूर्वक चल पड़ा। ८२ चुटकी न बजते ही (अर्थात् चुटकी बजाने के लिए जितना समय लगता है, उससे भी कम समय में) वह श्रीराम के पास तत्काल रथ ले आया और उस समय नीचे उतरकर उसने श्रीराम को नमस्कार किया। ८३ (तत्पश्चात्) वह बोला— 'हे राजीव-नयन, तमालनील श्रीराम, इन्द्र ने (आपके लिए) रथ भेजा है। इसपर आरूढ़ होकर फिर आप युद्ध के लिए प्रस्थान करें। ८४ मेरा नाम मातली है। मैं रण-मण्डल में रथ को चलाऊँगा।' उस समय ऐसा सुनकर जगदात्मा श्रीराम सन्तोष को प्राप्त हो गये। ८५ (फिर) वे बोले— 'शचीपति इन्द्र धन्य है, धन्य है। उसने समय देखकर उचित (कार्य) किया है। जैसे किसी अत्यन्त भूखे (मनुष्य) को देखकर उसे भोजन दें, अथवा जैसे प्यासे को शीतल जल दें, अथवा रोगी को विशुद्ध रसराज* विशिष्ट परिमाण में दें, अथवा मरणासन्न (मनुष्य) को तत्काल अमृत भेजा हो, अथवा (आर्थिक दृष्टि से दुर्बल अर्थात्) दरिद्र को धन दें, अथवा युद्ध में सहायक दौड़ता हुआ आ जाए, वैसे ही देवेन्द्र ने उचित समय पर रथ भेजा है।' ८६-८८ तब परिक्रमा

---

* टिप्पणी : रसराज— एक औषधी, जो मौक्तिक, प्रवाल, पारा, सोना, चाँदी, अभ्रक, कान्तलोह, वंग आदि के भस्म समभाग में लेकर गुड़ूची और शतावरी के रस में विशिष्ट प्रकार से घोलकर बनायी जाती है और तिल्ली आदि की बीमारी में अक्सीर मानी जाती है।

रघुनंदन। उदयाचळी सहस्रकिरण। कीं नारायण सुपर्णीं। ८९ जगद्वंद्य तो दाशरथी। रणमंडळीं जाहला महारथी। पुढें मातली चपळ सारथी। त्वरें धुरेसी बैसला। ९० रघुनाथ रथीं बैसला देखोन। आनंदले वानरगण। म्हणती धन्य शचीरमण। पाठिराखा पूर्ण होय। ९१ रामासी देवेंद्रें धाडिला रथ। दृष्टीं देखोनि लंकानाथ। दुःखें दाटला अत्यंत। दांत खात करकरां। ९२ दृष्टीं देखोनि राजहंस। परम संतापे वायस। कीं सभाग्य देखोनि दुर्जनांस। महाद्वेष उपजे पैं। ९३ कीं देखोनि संतांची लीला। निंदकांसी उपजे कंटाळा। शिवप्रतिमा देखोन डोळां। म्लेच्छ जैसे संतापती। ९४ कीं हरिकीर्तन ऐकोन। विटे भूतप्रेतांचें मन। तैसा क्षोभला रावण। रथ देखोनि ते काळीं। ९५ इंद्रजित पडिला रणीं। त्याहून दुःख वाटलें मनीं। मंदोदरी विटंबिली वानरगणीं। दुःख

करके श्रीराम रथ पर चढ़ गये (आरूढ़ हो गये), जैसे सहस्रकिरण सूर्य उदयाचल पर अथवा भगवान नारायण गरुड़ पर आरूढ़ हो गये हों। ८९ वे जगद्-वंद्य दाशरथी श्रीराम अब रणभूमि में 'महारथी' हो गये। रथ को चपलता से चलानेवाला सारथी मातली झट से धुरा पर बैठ गया। ९० श्रीराम को रथ में बैठे हुए देखकर वानरगण आनन्दित हुए और बोले— 'वे शचीपति इन्द्र धन्य हैं, जो श्रीराम के पूरे-पूरे सहायक हो गये हैं। ९१ अपनी आँखों से यह देखकर कि देवेन्द्र ने श्रीराम के लिए रथ भेजा है, रावण दुःख से अत्यधिक व्याप्त हो गया। (फिर) वह दाँत किटकिटाते हुए पीसने लगा। ९२ जिस प्रकार कौआ राजहंस को अपनी आँखों से देखकर परम क्रुद्ध हो जाता है, अथवा भाग्यवान को देखकर दुर्जनों (के मन) में (उनके प्रति) बहुत द्वेष उत्पन्न हो जाता है, अथवा सन्तों की लीला को देखकर निन्दकों (के मन) में उकताहट उत्पन्न हो जाती है, अथवा जिस प्रकार शिवजी की प्रतिमा को आँखों से देखने पर म्लेच्छ क्रुद्ध हो जाते हैं, अथवा हरि-कीर्तन सुनकर भूत-प्रेतों का मन ऊब जाता है, उस प्रकार रावण उस समय रथ को देखकर क्षुब्ध हो उठा। ९३-९५ इन्द्रजित युद्ध में (जब मारा जाने पर) गिर पड़ा (तो जितना दुःख हुआ), उससे अधिक दुःख रावण के मन को इस समय हुआ। वानरगणों ने मन्दोदरी को (जब) अपमानित किया (तो जितना दुःख हुआ), उससे अधिक रावण को यह दुःख अनुभव हुआ। ९६

त्याहून हें वाटे । ९६ असो परमक्रोधें रावण । सोडी बाणा-
पाठीं बाण । अचूक रामाचें संधान । करी चूर्ण सर्वेचि । ९७
सिंहासारिखे दोघेजण । घे घे शब्द करिती दारुण । एकमे-
कांवरी टाकिती बाण । मंडप वरी घातला । ९८ भयभीत
त्रिभुवन । आकाश न दिसे बाणेंकरून । विमानें सोडोनि
सुरगण । पळों लागले तेधवां । ९९ बाण दाटले अद्‌भुत ।
न चालती शशिमित्ररथ । वायूस फिरावया तेथ । रीघ
सर्वथा नसेचि । १०० रुधिरधारा मेघ वर्षती । नक्षत्रें
खळखळां रिचवती । विद्युल्लता बहुत पडती । कांपे जगती
चळचळां । १०१ सप्त पाताळें आंदोळती । शेष कूर्म दचकले
चित्तीं । राक्षस वानर कांपती । युद्ध पाहतां दोघांचें । २
एक काळ एक महाकाळ । एक दावाग्नि एक वडवानळ ।
क्रोधेंकरून भूमंडळ । दोघेही गिळूं भाविती । ३ पदक्रमवर्ण-
क्रमेंकरून । पंडित करिती वेदाध्ययन । तैसे रघुनाथाचे बाण ।
परमवेगें सूटती । ४ दोन्ही रथ धडाडले । समरीं एके ठायीं

अस्तु । रावण परम क्रोध से बाण पर बाण छोड़ने लगा । (परन्तु) श्रीराम का शर-सन्धान अचूक था । उन्होंने साथ ही (उन सबको) चूरचूर कर डाला । ९७ वे दोनों सिंह जैसे थे । वे दारुण ध्वनि में कह रहे थे— 'लो' - 'लो' और एक-दूसरे पर बाण छोड़ रहे थे । उन्होंने (मानो) ऊपर बाणों का मण्डप (ही) छा दिया । ९८ त्रिभुवन भयभीत हो गया, बाणों के कारण आकाश नहीं दिखायी दे रहा था । तब देव-गण विमानों को छोड़कर भागने लगे । ९९ (आकाश में) बाण (ऐसे) अद्‌भुत रूप से भर गये (कि) सूर्य और चन्द्र के रथ न चल पा रहे थे । (यहाँ तक कि) वहाँ वायु को चलने के लिए भी बिलकुल मार्ग ही नहीं था । १०० मेघ रक्त की धाराएँ बरसाने लगे; तारे ज़ोर से हिल-हिलकर टूटते हुए ढहने लगे; बिजलियाँ गिरने लगीं; पृथ्वी थरथर काँपने लगी । १ सातों पाताल डोलने लगे; (पृथ्वी के आधार-रूप) शेष और कूर्म मन में चौंक उठे । राक्षस और वानर (राम और रावण का) युद्ध देखते (-देखते) काँप उठे । २ (उनमें से) एक काल था, तो एक (दूसरा) महाकाल था; एक दावानल था, तो एक (दूसरा) वड़वानल था । वे दोनों भी भूमण्डल को (मानो) निगलना चाह रहे थे । ३ पंडित पदक्रम और वर्णक्रम के अनुसार वेदों का अध्ययन करते हैं, उस प्रकार (विशिष्ट क्रमपूर्वक) श्रीराम के बाण परम

मिळाले। अश्व अश्वांसहित संघटले। उभे राहिले दोन्ही चरणीं। ५ सारथी सारथिया म्हणत। रणधुमाळी मांडली अद्‌भुत। दोन्ही दळीं एकचि आकान्त। कोल्हाळ करिती वीर तेव्हां। ६ सारथी परम चतुर। माघारे सारिले रहंवर। जैसे पंडित वाद करोनि अपार। क्षण एक स्थिरावती। ७ तैसे रथ माघारे करून। सवेंच बाण सोडिती सघन। पर्जन्य जैसा ओसरोन। सवेंच मागुती वृष्टि करी। ८ कीं सागरा भरतें ओहटत। सवेंच मागुती विशेष लोटत। तैसे बाणांचे पर्वत। एकावरी एक टाकिती। ९ सप्त दिन अहोरात्र। होत युद्धाचें घनचक्र। परी रामरावणीं क्षणमात्र। विसावा घेतलाच नाहीं। ११० रामें काढिले चार बाण। सोडिले चापासी लावून। रथींचे चारही वारू छेदून। अकस्मात टाकिले। ११ तंव रावणें न लगतां क्षण। नूतन तुरंग जुंपिले

वेग से छूटते थे। ४ दोनों रथ धड़धड़ाते हुए आगे बढ़े और युद्ध-भूमि में एक स्थल पर मिल गये (भिड़ गये)। (एक रथ के) घोड़े (दूसरे रथ के) घोड़ों से भिड़ गये और दोनों पैरों पर खड़े रह गये। ५ एक पक्ष के सारथी विपक्षी दल के सारथियों से कह रहे थे— '(देखो, कैसी) अद्‌भुत घमासान लड़ाई चल रही है।' तब दोनों दलों में वीर अद्‌भुत चीत्कार-चिल्लाहट और कोलाहल कर रहे थे। ६ (तब) परम चतुर सारथियों ने उत्तम रथों को पीछे हटा दिया। जिस प्रकार पंडित जन अपार वाद-विवाद करके एक क्षण भर स्थिरता को प्राप्त हो जाते हैं, उस प्रकार रथों को पीछे (लिये) हटाने पर वे (योद्धा) विपुल मात्रा में बाण छोड़ने लगे। जिस प्रकार वर्षा के (क्षण भर के लिए) कम हो जाने पर, साथ ही पुनः वृष्टि (आरम्भ) हो जाती है, अथवा समुद्र में ज्वार घट जाता है, पर साथ ही फिर से विशेष रूप में बढ़ने लगता है, उस प्रकार (वे योद्धा क्षण भर के लिए रुककर फिर से) बाणों के एक पर एक (मानो) पहाड़ ही गिरा रहे थे। ७-९ सात दिन दिन-रात घमासान युद्ध चल रहा था। फिर भी राम और रावण ने क्षण मात्र तक विश्राम किया ही नहीं। ११०

(तदनन्तर) राम ने चार बाण (तरकस में से) निकाले और धनुष पर चढ़ाकर छोड़ दिये। उनसे (रावण के रथ के) चारों घोड़ों को यकायक छेद डाला। ११ तब रावण ने क्षण न लगते नितान्त नये घोड़ों को (रथ में) जोत लिया। (देखिए) फिर नरवीर श्रेष्ठ श्रीराम ने क्या

पूर्ण। मग नरवीरश्रेष्ठ रघुनंदन। काय करिता जाहला। १२ काढिला अर्धचंद्र बाण। जैसा नवग्रहांत चंडकिरण। तो शरासनावरी योजून। मनोवेगें सोडिला। १३ सवेंच रावणें न लगतां क्षण। अर्धचंद्रबाण टाकावा तोडून। म्हणून तीक्ष्ण शक्ति योजिली पूर्ण। तों बाण हृदयीं आदळला। १४ त्या बाणें जाऊन एकसरें। पाडिलीं रावणाचीं दाही शिरें। परी सवेंच निघालीं परिकरें। पूर्विल्याऐसीं तेधवां। १५ सवेंचि रविचक्रवदन शर। रामें सोडिला अनिवार। शिरें छेदिलीं समग्र। मागुती तैसींच उद्भवलीं। १६ देव आणि वानर। अवघे जाहले चिंतातुर। आतां कैसा मरेल दशकंधर। वारंवार शिरें निघती। १७ राजाधिराज रघुनाथ। क्षणैक जाहला चिंताक्रान्त। तंव तो मातली सारथी बोलत। राघवाप्रति ते काळीं। १८ म्हणे अनंतब्रह्माण्डनायका। सकळ-चित्तपरीक्षका। आधीं फोडोनि अमृतकूपिका। मग मस्तकां पाडीं धरणीवरी। १९ ऐसें मातली बोलत। तयासी गौरवी

किया। १२ नौ ग्रहों में * जैसा (तेजस्वी) सूर्य होता है, वैसा एक (तेजस्वी) अर्ध-चन्द्र बाण (उन्होंने) निकाला और उसे धनुष पर ठीक से चढ़ाकर मन के-से वेग से छोड़ दिया। १३ साथ ही रावण ने क्षण न लगते एक पूर्ण तीक्ष्ण शक्ति (धनुष पर इसलिए) चढ़ा दी कि उस अर्ध-चन्द्र बाण को काट दें। परन्तु (श्रीराम का) वह बाण (रावण के) हृदय-स्थल से टकरा गया। १४ उस बाण ने जाकर एक साथ रावण के दसों सिरों को (काटकर) गिरा डाला। परन्तु साथ ही तब पहले (सिरों) जैसे सुन्दर (सिर) निकल आये। १५ (इसके साथ ही) सूर्य-मण्डल-से मुखवाला एक अनिवार्य बाण राम ने छोड़ा। उसने (रावण के) समस्त सिर छेद डाले, (फिर भी) वैसे ही (सिर) उत्पन्न हुए। १६ देव और वानर— सब इस चिन्ता से व्याकुल हो गये कि बारबार सिर निकल रहे हैं, अब रावण कैसे मरेगा। १७ (इधर) राजाधिराज श्रीराम (भी) एक क्षण चिन्ताक्रान्त हो गये, तो उस समय सारथी मातली उनसे बोला। १८ उसने कहा— 'हे ब्रह्माण्ड-नायक, हे समस्त जनों के चित्त के पारखी, पहले (रावण के हृदय में स्थित) अमृत-कूपिका (कुप्पी) को फोड़कर फिर उसके मस्तकों को धरती पर गिराइए।' १९ मातली द्वारा ऐसा कहने पर श्रीराम ने उसका गौरव किया। फिर उन्होंने एक बाण झट

---

* टिप्पणी : नवग्रह : सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु।

जनकजामात। मग बाण काढिला त्वरित। अगस्तिदत्त मुख्य जो। १२० जैसा देवांमाजी सहस्रनयन। कीं अंडजांमाजी विष्णुवहन। काद्रवेयान्त सहस्रवदन। तैसा बाण समर्थ तो। २१ कीं वानरांमाजी हनुमंत। कीं शास्त्रांमाजी वेदान्त। कीं नक्षत्रांसी झांकी आदित्य। तैसा बाण समर्थ तो। २२ शस्त्रांमाजी सुदर्शन। तीर्थांमाजी प्रयाग पूर्ण। नक्षत्रांमाजी अत्रिनंदन। तैसा बाण समर्थ तो। २३ शेष कूर्म वराह धरणी। सप्तसमुद्र शशी तरणी। इतुक्यांचीं सत्त्वें काढूनी। त्या बाणाठायीं ठेविलीं। २४ अग्नि वायु शचीरमण। चंडांशु कुबेर यम वरुण। त्रिदशऋषींचीं सामर्थ्यें पूर्ण। त्या बाणाग्रीं वसती हो। २५ तो तूणीरांतून काढितांचि बाण। झांकले समस्तांचे नयन। सहस्रसूर्यांचा प्रकाश पूर्ण। भूमंडळीं दाटला। २६ त्या बाणमुखीं ब्रह्मास्त्र। स्थापिता जाहला राजीवनेत्र। चापासी लाविला शर। विषकंठवंद्यें ते समयीं। २७ सीताधवें ते वेळां। वरी आकर्ण बाण ओढिला। ते वेळीं वाटलें लोकां सकळां। काय मांडला कल्पान्त। २८

से निकाल लिया, जो अगस्त्य द्वारा दिये हुए बाणों में मुख्य था। १२० देवों में जैसा इन्द्र है, अथवा पक्षियों में जैसा गरुड़ है, अथवा सर्पों में जैसा सहस्रमुख शेष है, वैसा समर्थ (शक्तिशाली) वह बाण था। २१ अथवा वानरों में जैसा हनुमान है, अथवा शास्त्रों में जैसा वेदान्त है, अथवा नक्षत्रों को सूर्य जैसे आच्छादित अर्थात् निस्तेज कर देता है, वैसा समर्थ वह बाण था। २२ शस्त्रों में जैसा सुदर्शन है, अथवा तीर्थ-स्थलों में जैसा परिपूर्ण प्रयाग है, नक्षत्रों में जैसा चन्द्र है, वैसा समर्थ वह बाण था। २३ शेष, कूर्म, वराह, पृथ्वी, सप्त समुद्र, चन्द्र, सूर्य— इतने सबके सार-तत्त्व को निकालकर उस बाण में (स्थापित कर) रखा था। २४ अग्नि, वायु, इन्द्र, सूर्य, कुबेर, यम, वरुण, देव तथा ऋषि— इन (सब) की सम्पूर्ण सामर्थ्य उस बाण के अग्र में निवास कर रही थी। २५ तूणीर में से उस बाण को निकालते ही सबके नेत्र मुँद गये (चकचौंध हो गये)। सहस्र सूर्यों का (-सा) पूर्ण प्रकाश भू-मण्डल पर फैल गया। २६ कमल-नेत्र श्रीराम ने उस बाण के मुख में ब्रह्मास्त्र की स्थापना की और उस समय उन्होंने उसे धनुष पर चढ़ा दिया। २७ सीतापति राम ने जिस समय उसे आकर्ण खींचा, उस समय समस्त लोगों को प्रतीत हुआ कि अब कल्पान्त ही आरम्भ किया है। २८ वह बाण ऐसा शक्तिशाली था। वह (मानो) तेज की

ऐसा बाण तो सबळ। अत्यंत तेजाचा कल्लोळ। शशी सूर्य लोपले सकळ। सुरवर विमानें पळविती। २९ जळीं रिता घट डळमळी। तैसी पृथ्वी तेव्हां हेलावली। प्रचंड वीर ते वेळीं। मूर्च्छित पडों लागले। १३० जगद्वंद्याचे कर्णीं वचन। सांगतसे तेव्हां बाण। कुपीसमवेत प्राण। नेतों स्वामी दश-कंठाचा। ३१ असो रावणाचें वक्षःस्थळ। लक्षोनियां तमालनीळ। बाण सोडी तत्काळ। ब्रह्माण्डगोळ उचंबळला। ३२ मिळोनियां असंख्य चपळा। एकदांचि कडकडोनि पडिल्या। तैसाच बाण ते वेळां। हृदयीं संचरला रावणाचे। ३३ कुपीसहित वक्षःस्थळ। बाण फोडोनि गेला तत्काळ। हृदयीं छिद्र पडिलें विशाळ। गवाक्षद्वारासारिखें। ३४ सवेंच परतला तो बाण। रावणाचीं तीन शिरें छेदून। रघुपतीचे भातां येऊन। आपले आपण रिघाला। ३५ उरलीं शिरें छेदावयातें। आणिक शर काढिला रघुनाथें। प्रार्थिलें तेव्हां ऊर्मिलाकान्तें। युद्ध आतां पुरे जी। ३६ रावणें सोडिला प्राण। त्यासी न शिवती तुझे बाण। आतां जवळी जाऊन अवघेजण। प्रेत

(प्रचण्ड) ज्वाला-सी लहर थी। उसके सामने चन्द्र, सूर्य पूर्णतः लुप्त हो गये और देवों ने विमान (दूर) भगा लिये। २९ रिक्त घट जैसे पानी पर हिलता-डुलता है, उस समय पृथ्वी वैसे डोलने लगी। प्रचण्ड वीर उस समय मूर्च्छित हो गिर पड़ने लगे। १३० तब उस बाण ने जगद्वंद्य श्रीराम के कान में यह बात कह दी—'हे स्वामी, मैं दशानन के प्राण उस (अमृत-) कूपिका (कुप्पी) सहित ले जाता हूँ।' ३१ अस्तु। तमालनील श्रीराम ने रावण के वक्षःस्थल को लक्ष्य करके बाण तत्काल छोड़ दिया, तो ब्रह्माण्ड-गोल उछल पड़ा। ३२ जिस प्रकार असंख्य बिजलियाँ इकट्ठा होकर एक साथ गर्जन करते हुए गिर जाती हों, उस प्रकार बाण उस समय रावण के हृदय-स्थल में घुस गया। ३३ कूपिका-सहित वक्षःस्थल को फोड़कर वह बाण तत्काल निकल गया। (फलस्वरूप) छोटे-से गवाक्ष (खिड़की)-सा बड़ा छेद रावण के हृदय में हो गया। ३४ साथ ही रावण के तीन सिरों को छेदकर वह बाण लौट आया और श्रीराम के तरकस में अपने-आप प्रविष्ट हो गया। ३५ शेष सिरों को छेदने के लिए श्रीराम ने और एक बाण निकाला, तब लक्ष्मण ने विनती की—'अहो, अब युद्ध पर्याप्त हो गया। ३६ रावण ने प्राण त्याग दिये हैं; तुम्हारे बाण उसे नहीं छूते हैं। अब सब जने पास जाकर

पाहूं तयाचें । ३७ धनुष्य तूणीरासहित । सौमित्राजवळी राम देत । आमुचे अवताराचें कृत्य समस्त । आजपासूनि संपलें । ३८ जाहला एकचि जयजयकार । जयवाद्यें वाजविती सुरेश्वर । दुंदुभींच्या नादें समग्र । ब्रह्माण्ड तेव्हां दणाणलें । ३९ रघुपतीवरी ते वेळां । अद्भुत पुष्पवर्षाव जाहला । गण गंधर्व किन्नरमेळा । सुवेळाचळीं धांवत । ४० संतोषले सकळ ऋषीश्वर । आनंदें नाचती वानर । त्रिभुवन आनंदलें थोर । रामें रावण वधियेला । ४१ रघुनाथाचे वीर सकळ । रावणा-भोंवते मिळाले तत्काळ । जैसा वृक्ष उन्मळे समूळ । तैसा विशाल पडियेला । ४२ मुखावरी गृध्र बैसोन । रावणाचे फोडिती नयन । रक्त जातसे वाहून । सैरावैरा चहूंकडे । ४३ मुखीं शिरीं पडली धुळी । मुकुट लोळती भूमंडळीं । असो समस्त पाहती ते वेळीं । बिभीषण दुःखें उचंबळला । ४४ शरीर टाकिलें धरणीवरी । हृदय पिटी दोन्हीं करीं । म्हणे दिशा शून्य याउपरी । माझ्या पडल्या निर्धारें । ४५ अगाध

उसके शव को देखें । ' ३७ (यह सुनकर) श्रीराम ने तूणीर सहित अपना धनुष लक्ष्मण को दिया (और कहा)— ' आज से हमारा समस्त अवतार-कार्य समाप्त हुआ । ' ३८ (तब) अपूर्व जय-जयकार हो गया । इन्द्र ने जय-सूचक वाद्य बजा दिये । तब दुन्दुभियों की ध्वनि से समस्त ब्रह्माण्ड दनदना उठा । ३९ उस समय रघुपति राम पर अद्भुत पुष्प-वर्षा हुई । गन्धर्व-गण तथा किन्नरों के समूह सुवेल पर्वत की ओर दौड़े । १४० सब बड़े ऋषि सन्तोष को प्राप्त हो गये । वानर आनन्द के साथ नाचने लगे । राम ने रावण का वध किया, (इसलिए) त्रिभुवन बहुत आनन्दित हो गया । ४१ श्रीराम (की सेना) के समस्त वीर रावण के चारों ओर तत्काल इकट्ठा हो गये । जैसे वृक्ष मूल-सहित उखड़ (कर गिर) गया हो, वैसे रावण का विशाल शरीर पड़ा हुआ था । ४२ मुँहों पर गिध बैठकर रावण की आँखों को फोड़ रहे थे । चारों ओर रक्त बुरी तरह बह रहा था । ४३ उसके मुँहों और सिरों पर धूली पड़ गयी थी; मुकुट भूमि पर लुढ़क गये थे । अस्तु । उस समय सबने देखा— विभीषण दुःख से गद्गद हो उठा है । ४४ उसने शरीर को भूमि पर लुढ़का दिया । दोनों हाथों से वह छाती पीटने लगा और बोला— ' मेरी (समस्त) दिशाएँ इसके पश्चात् (आज से) निश्चय ही सूनी हो गयी हैं । ४५ जिसका प्रताप और बल अद्भुत था, क्रोध में जो (मानो)

जयाचें प्रतापबळ। क्रोधें जैसा वडवानळ। चातुर्याचा सागर केवळ। खंडें केळीं वेदांचीं। ४६ परम जयाचें तप दारुण। संतति संपत्तियुक्त पूर्ण। जेणें देवांचे गर्व हरून। बंदीं सर्व घातले। ४७ जयाकारणें आदिपुरुषें। अवतार धरिला राघवेशें। अद्भुत कर्तव्य केलें लंकेशें। निर्गुण आणिलें सगुणत्वा। ४८ जो परम पुरुष निर्विकार। तो प्रत्यक्ष दाविला साकार। जानकी आणून उपकार। केला आम्हांवरी रावणें। ४९ जो वेदवंद्य राजीवनेत्र। तो आमुचा जाहला प्राणमित्र। हा रावणें केला उपकार। सुग्रीवासहित आम्हांवरी। १५० तो श्रीराम परब्रह्म चित्स्वरूप। त्याचिया अवताराचें केलें रूप। आपुला वाढविला प्रताप। चंद्रार्कवरी रावणें। ५१ श्रीराम म्हणे बिभीषणाप्रती। तूं केवळ विवेकमूर्ती। नाशिवंताचा शोक चित्तीं। कायनिमित्त धरियेला। ५२ हा जगडंबर पसारा केवळ। मायिक जैसें मृगजळ। कीं वंध्यावल्लीचें फळ। मुळापासूनि लटिकेंचि। ५३ पिंड ब्रह्माण्ड नाशिवंत। आकार तेथें विकार सत्य। तरी मुळींच जें

वड़वानल था, चातुर्य का केवल समुद्र था, जिसने वेदों का खण्डों में विभाजन किया, जिसका तप परम दारुण था, जो सन्तति और सम्पत्ति से परिपूर्ण था, जिसने देवों के गर्व को छुड़ाकर सबको बन्दी-गृह में डाल दिया था, जिसके कारण आदिपुरुष श्रीराम ने अवतार ग्रहण किया है, उस लंकेश रावण ने यह अद्भुत कार्य किया है कि निर्गुण (ब्रह्म) सगुणत्व को प्राप्त करा लिया है। ४६-४८ उस रावण ने जो निर्विकार परम पुरुष हैं, उन्हें प्रत्यक्ष साकार रूप में दिखा दिया। उसने सीता को (चुरा) लाकर हमारा उपकार किया है। ४९ जो राजीव-नेत्र श्रीराम वेदवंद्य हैं, वे हमारे प्राण (-प्रिय) मित्र हो गये हैं। रावण ने सुग्रीव-सहित हमारा यह उपकार किया है। १५० वे श्रीराम (वस्तुतः) चित्स्वरूप परब्रह्म हैं। उसके अवतार को प्रत्यक्ष रूप करा लिया। रावण ने (इस प्रकार) अपने प्रताप की वृद्धि चन्द्र-सूर्य (के अस्तित्व) तक कर ली।' ५१ (यह सुनकर) श्रीराम ने विभीषण से कहा— 'तुम तो विवेक की (प्रत्यक्ष) मूर्ति हो। (फिर भी जो) नाशवान् (हो उस) का शोक मन में किस कारण से धारण कर रहे हो। ५२ जगत् का गठन (रचना) और फैलाव केवल वैसा ही मायिक है, जैसा बाँझ लता में उत्पन्न फल मूलतः ही मिथ्या (कल्पना मात्र) होता है। ५३ पिण्ड और

अशाश्वत। त्याचा शोक कासया। ५४ ऐसें बोलतां रघुनंदन। उगाच राहे बिभीषण। तों सकल स्त्रियांसहित धांवोन। मंदोदरीही तेथें आली। ५५ कवळूनियां पतीचें प्रेत। मंदोदरी शोक करीत। ऐशीं सहस्र स्त्रिया आल्या पिटीत। वक्ष:स्थळ धबधबां। ५६ मंदोदरी म्हणे प्राणनाथा। तुजविण आम्ही सर्व अनाथा। जयलक्ष्मी देऊन रघुनाथा। राम जामात पैं केला। ५७ लंकागजमस्तकीं अद्भुत। केसरी चढला हा रघुनाथ। काढोनियां दिव्य मुक्त। रणमंडळीं टाकिलें। ५८ सौभाग्यतारूं लंकानाथ। आजि बुडालें अकस्मात। कीं वेदांचें सांठवण समस्त। फुटलें आजि रणांगणीं। ५९ सीतेच्या मिषेंकरून। जवळी आणिला रघुनंदन। बाहेर विरोध अंतरीं भजन। दशकंधरें पैं केलें। १६० फणसासी कांटे दिसती

ब्रह्माण्ड नाशवान् है; जहाँ आकार हो वहाँ विकार (परिवर्तन और अन्ततोगत्वा विनाश ही) सत्य है। इसलिए जो मूलतः अनित्य हो, उसका शोक किसलिए (करें)?' ५४ (जब) श्रीराम ऐसा बोल रहे थे, तो विभीषण चुप ही रहा। त्यों ही (रावण की) समस्त स्त्रियों-सहित मन्दोदरी दौड़ती हुई वहाँ आ गयी। ५५ पति के शव को लिपटते (बाँहों में कस लेते) हुए मन्दोदरी शोक करने लगी। (उसी समय रावण की) अस्सी सहस्र स्त्रियाँ छाती धबधब पीटती हुई आ गयीं। ५६ मन्दोदरी बोली— 'हे प्राणनाथ, बिना तुम्हारे हम सब अनाथ हो गयीं। (तुमने अपनी कन्या-स्वरूपा) विजय श्रीराम को देकर उन्हें (अपना) जामाता बना लिया है। ५७ लंका रूपी हाथी के मस्तक पर इन रघुनाथ के रूप में कोई अद्भुत सिंह चढ़ दौड़ा और उसने उसमें से (रावण रूपी) दिव्य मोती निकालकर रण-भूमि में डाल दिया है। ५८ लंकानाथ रावण के रूप में हमारा सुहाग रूपी जलपोत (नौका) आज यकायक डूब गया। अथवा आज रणांगण में वेदों का (रावण के रूप में स्थित) समस्त ज्ञान भण्डार फूट गया। ५९ सीता को निमित्त बनाते हुए वह श्रीराम को निकट ले आया। (वस्तुतः) दशानन ने बाहर तो विरोध किया, परन्तु अन्तःकरण में उनकी भक्ति की है।* १६० कटहल के ऊपर काँटे

* टिप्पणी : विरोध भक्ति : भक्ति सम्बन्धी पौराणिक मान्यता के अनुसार भगवान का विरोध भी भक्ति का एक भेद है। रावण जैसा खल जन भगवान की सात्त्विक भक्ति नहीं करता। वह भगवान का भरसक विरोध करता है। भगवान् के हाथों मृत्यु को प्राप्त होकर वह मुक्ति प्राप्त करता है। यह विरोध भक्ति रावण में भी थी। अध्यात्म रामायण (अरण्यकाण्ड, सर्ग ५) में कहा है— रावण ने राम को साक्षात्

वरी । परी अत्यंत गोड अंतरीं । तैसीच रावणें केली परी । विरोध बाहेर दाऊनियां । ६१ ऐसी मंदोदरी शोक करीत । भोंवते विलोकिती समस्त । मग बिभीषणासी रघुनाथ । काय बोलता जाहला । ६२ ज्येष्ठबंधूची राणी । मंदोदरी हे ज्ञानखाणी । पतिव्रतांमाजी शिरोमणी । इचे स्मरणीं दोष नुरे । ६३ इचें प्रातःकाळीं करितां स्मरण । उद्धरतील पापी जन । बिभीषणा तूं करीं धरून । निजमंदिराप्रति धाडीं । ६४ ऐसें बोलतां रघुनंदन । मयजेपासीं आला बिभीषण । तियेतें स्वकरीं धरून । म्हणे माये चाल सदनाप्रति । ६५ मयजेस म्हणे चापपाणी । माये तूं ज्ञानविचारखाणी । मुळीं दृष्टी घालोनी । अद्वयज्ञानें पाहें पां । ६६ अहंकार तितुका नाशिवंत । आत्मस्वरूप पूर्ण शाश्वत । ऐसें जाणोन किमर्थ । शोक व्यर्थ करावा । ६७ ऐसें बोलतां सच्चिदानंद ।

दिखायी देते हैं, परन्तु वह अन्दर अत्यन्त मधुर होता है । रावण ने बाहर से विरोध दर्शाते हुए वैसी ही बात की है । ' ६१ मन्दोदरी इस प्रकार (कहते हुए) शोक कर रही थी, तो समस्त लोग चारों ओर (खड़े होकर) देख रहे थे । (सुनिए) फिर श्रीराम ने विभीषण से क्या कहा । ६२ ' (तुम्हारे) ज्येष्ठ बन्धु की यह स्त्री मन्दोदरी ज्ञान-खनि है, वह पतिव्रताओं में शिरोमणि है । इसके स्मरण से (स्मरणकर्ता का) दोष (पाप) शेष नहीं रहता, अर्थात् पाप नष्ट हो जाता है । ६३ प्रातःकाल में इसका स्मरण करने से पापी लोग उद्धार को प्राप्त हो जाएँगे । (अतः) हे विभीषण, तुम इसका हाथ थामकर (उसके) अपने घर भेज दो । ' ६४ श्रीराम द्वारा ऐसा कहने पर विभीषण मन्दोदरी के पास आ गया और उस (के हाथ) को अपने हाथ से थामते हुए बोला— ' हे माता, घर की ओर चलो । ' ६५ (तब) श्रीराम ने मन्दोदरी से कहा— ' हे माता तुम ज्ञान और विवेक की खनि हो । मूल अर्थात् (-आत्म) तत्त्व में दृष्टि लगाकर अद्वैतज्ञान से देखो । ६६ (जितना) अहंकार (हो, उतना) सब नाशवान् होता है; आत्म-स्वरूप पूर्णतः शाश्वत होता है । यह जानते हुए भी व्यर्थ शोक किसलिए कर रही हो । ' ६७ सच्चिदानन्द श्रीराम द्वारा ऐसा कहने पर मन्दोदरी चुप तथा स्तब्ध ही हो गयी । (फिर) श्रीराम

परमात्मा हरि जानकर निश्चय किया कि मैं विरोध-बुद्धि से ही (विरोधबुध्दयैव) भगवान हरि के पास जाऊँगा; (क्योंकि) भक्ति के द्वारा भगवान् शीघ्र प्रसन्न नहीं होते । (इस दृष्टि से रामचरितमानस का अरण्यकाण्ड— २३ द्रष्टव्य है ।) इस भक्ति के फलस्वरूप रावण का तेज प्रभु के मुख में समा गया । (मानस० लंका० १०३)

मयकन्या राहिली उगीच स्तब्ध । नमोनि रामचरणारविंद । निजधामा चालिली । ६८ मयकन्येसह सर्व अंगना । बिभीषणें पाठविल्या सदना । मग पुसोनि रघुनंदना । राजदेह उचलिला । ६९ सर्वांत सरिता पावन । सिंधुसंगमीं प्रेत नेऊन । प्रळयवन्हि चेतवून । आंत घातलें कलेवरा । १७० तेथेंच उत्तरक्रिया समस्त । स्वयें ब्रह्मदेव सांगत । तैसी बिभीषण करीत । शास्त्ररीतीप्रमाणें । ७१ असो त्यावरी बिभीषण । सुवेळेसी आला परतोन । तों लंकेचे प्रजाजन । बिभीषणासी भेटों आले । ७२ विद्युज्जिव्ह प्रधान । उरलें सकळ राक्षससैन्य । श्रीरामापुढें येऊन । लोटांगणें घालिती । ७३ काष्ठ भस्म होतां समग्र । विझोनि जाय वैश्वानर । तैसें समस्त विरालें वैर । रावण रणीं पडतांचि । ७४ सूर्योदयीं निरसे तम । ज्ञानोदयीं निरसे अज्ञान । तैसा पडतांचि रावण । अणुमात्र वैर नसे । ७५ सुवेळेसी आले रजनीचर । म्हणती आम्ही बिभीषणाचे आज्ञाधार । लंकेंत जाऊन वानर । पाहती नगर चहूंकडे । ७६ असो यावरी बिभीषण । श्रीरामापुढें

के चरण-कमलों को नमस्कार करके वह अपने घर चल दी । ६८ विभीषण ने मन्दोदरी सहित (रावण की) समस्त स्त्रियों को घर भेज दिया । (इसके) अनन्तर श्रीराम से अनुमति पूछकर (लंका के) राजा की देह को उठा लिया । ६९ नदी सबमें पावन होती है । (अतः विभीषण ने नदी और) समुद्र के संगम (-स्थल) पर शव को ले जाकर प्रलय (की-सी) अग्नि प्रज्वलित करते हुए उसके अन्दर उस कलेवर को डाल दिया । १७० वहीं ब्रह्मा ने जिस प्रकार से समस्त उत्तर-क्रिया (की विधि) बतायी, उस प्रकार शास्त्रों की रीति के अनुसार विभीषण ने सम्पन्न की । १७१

अस्तु । तदनन्तर विभीषण सुवेल लौट आया; तब लंका के प्रजाजन विभीषण से मिलने आये । ७२ मन्त्री विद्युज्जिह्व तथा समस्त शेष सेना (के) राक्षसों (सैनिकों) ने श्रीराम के सम्मुख आकर दण्डवत् प्रणाम किया । ७३ जिस प्रकार सम्पूर्ण काठ के (जलकर) भस्म हो जाने पर अग्नि बुझ जाती है, उस प्रकार युद्ध में रावण के गिर जाते ही समस्त शत्रुता नष्ट हो गयी । ७४ जिस प्रकार सूर्योदय से अँधेरा दूर हो जाता है, अथवा (आत्म-) ज्ञान के उदय से अज्ञान का निराकरण हो जाता है, उस प्रकार रावण के गिर जाते अणु मात्र तक वैर शेष नहीं रहा । ७५

कर जोडून। मृदु मंजुळ वचन। प्रेमयुक्त बोलतसे। ७७
म्हणे राजीवदलनयना। पुराणपुरुषा सीतारमणा। ब्रह्माण्ड-नायका गुणसंपन्ना। लंकेसी आतां चलावें। ७८ विरंचिहस्त-निर्मित नगर। आपण दृष्टीं पाहावें समग्र। मग घेऊनि सीता सुंदर। अयोध्येसी जाइंजे। ७९ ऐसें बिभीषण बोले वचन। तो जगद्गुरु सुहास्यवदन। म्हणे तुज लंका दिधली दान। तेथें आगमन आमुचें नव्हे। १८० जैसें केलिया कन्यादान। तियेचे गृहीं न घेती अन्न। विप्रासी दिधलें दिव्य सदन। तेथें आपण न जावें। ८१ सत्पात्रीं दिधलें गोदान। मग तिचें दुग्ध ध्यावें काढून। तैसें लंकेंत माझें आगमन। सर्वथाही न घडेचि। ८२ त्यावरी भरतभेटीविण। मी न करींच मंगलस्नान। नाना भोग तांबूल भोजन। व्रत संपूर्ण धरिलें असे। ८३ मग सौमित्र आणि मित्रपुत्र। तयांस म्हणे शतपत्रनेत्र। तुम्हीं वानर घेऊन सर्वत्र। लंकेप्रति जाइंजे। ८४

राक्षस सुवेल आ गये और बोले— 'हम विभीषण के आज्ञाकारी हैं।' (उधर) वानर लंका में जाकर चारों ओर नगर को देखने लगे। १७६

अस्तु। इसके पश्चात् श्रीराम के सम्मुख हाथ जोड़कर विभीषण ने कोमल मधुर स्वर में प्रेम से युक्त बात कही। ७७ वह बोला— 'हे कमल-दल-नयन, हे पुराण-पुरुष, हे सीता-रमण, हे ब्रह्माण्ड-नायक, हे गुण-सम्पन्न (श्रीराम), अब लंका में चलें। ७८ ब्रह्मा के हाथों निर्मित इस नगर को अपनी आँखों से सम्पूर्ण देख लें। फिर सीता सुन्दरी को लेकर अयोध्या जाएँ।' ७९ विभीषण ने ऐसी बात कही, तो जगद्गुरु श्रीराम ने सुहास्य से युक्त मुख से, अर्थात् मुस्कराते हुए कहा— 'तुम्हें (हमने) लंका दान में दी है। वहाँ (उसमें) हमारा आगमन नहीं हो सकता। १८० जिस प्रकार कन्या-दान करने पर (उसके पिता आदि) उसके घर अन्न ग्रहण नहीं करते; जैसे (किसी ने) घर ब्राह्मण को दान में दिया हो, तो वह स्वयं उसके अन्दर नहीं जाए; जैसे सत्पात्र को गाय दान में दी गयी हो, तो फिर (दाता) उसका दूध न दुह ले, वैसे (मैंने तुम्हें जो प्रदान की है, तो उस) लंका में मेरा आगमन बिलकुल नहीं हो सकेगा। ८१-८२ तिस पर भरत से बिना भेंट हुए, मैं मंगल स्नान ही नहीं कर सकता; नाना (प्रकार के) भोग, ताम्बूल, भोजन न करने का सम्पूर्ण व्रत मैंने धारण किया है।' ८३ फिर कमल-नेत्र श्रीराम लक्ष्मण और सुग्रीव से बोले— 'सब वानरों को लेकर तुम लंका में

सुमुहूर्त पाहूनि सत्वर। धरावें बिभीषणावरी छत्र। वंदींचे राजे देव समग्र। मान देऊनि मुक्त करावे। ८५ बहुतांचिया वस्तु हरूनी। रावणें ठेविल्या लंकाभुवनीं। ज्यांच्या वस्तु त्यांलागूनी। देऊनि सर्वां सुखी करा। ८६ ऐशी आज्ञा होतां सत्वर। चालिले सुग्रीव सौमित्र। बिभीषण नमस्कार। घाली साष्टांग रामातें। ८७ श्रीराम बोले आशीर्वचन। जैसा बळी ध्रुव उपमन्य। त्यांचे पंक्तींत तूं बिभीषण। चिरंजीव राहें सुखी। ८८ आज्ञा घेऊन ते अवसरीं। प्रवेशले लंके-भीतरी। मुहूर्त पाहून झडकरी। सर्व सामग्री सिद्ध केली। ८९ वेदघोषमंत्रेंकरून। सिंहासनीं बैसविला बिभीषण। दिव्य छत्रें वरी धरून। सोहळा बहुत केला हो। १९० बहुत वस्त्रें भूषणें देऊन। गौरविले सुग्रीव लक्ष्मण। यावरी सकळ वानरसैन्य। वस्त्राभरणीं गौरविलें। ९१ मग लंकेची समस्त रचना। दाविली सुग्रीवलक्ष्मणां। पाहतां धणी न पुरे नयना।

जाओ। ८४ झट से सुमुहूर्त खोजकर विभीषण पर (राज-) छत्र धर दो। बंदी-गृह में से समस्त राजाओं और देवों को (यथायोग्य) मान रखकर मुक्त कर दो। ८५ बहुतों की वस्तुओं को छीनकर रावण ने लंका-भुवन में रख दिया है। जिनकी (वे वस्तुएँ) हों, उन्हें (लौटा) देकर सबको सुखी बना दो।' ८६ ऐसी आज्ञा होने पर सुग्रीव और लक्ष्मण झट से चल दिये। विभीषण ने श्रीराम को साष्टांग नमस्कार किया। ८७ श्रीराम आशिर्वाद देते हुए बोले— 'जैसे (दैत्यराज) बली, भक्तश्रेष्ठ, ध्रुव और (वसिष्ठ कुलोत्पन्न व्याघ्रपाद का पुत्र) उपमन्य हैं, वैसे हे विभीषण, तुम चिरजीवी (होकर) सकुशल रहो।' ८८ उस समय आज्ञा लेकर विभीषण ने लंका के भीतर प्रवेश किया। (फिर) मुहूर्त खोजते हुए झट से (राज्याभिषेक के लिए) सब सामग्री तैयार की। ८९ (लक्ष्मण और सुग्रीव ने) वेदों और मन्त्रों के घोष (पठन) के साथ विभीषण को सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। उसके ऊपर दिव्य छत्र धरते हुए बहुत (बड़ा मंगल) उत्सव सम्पन्न किया। १९० (तदनन्तर विभीषण ने) बहुत वस्त्र और आभूषण देते हुए सुग्रीव और लक्ष्मण को गौरवान्वित किया। इसके अनन्तर समस्त वानर-सेना को वस्त्रों और आभूषणों से गौरवान्वित किया। ९१ फिर (तत्पश्चात्) सुग्रीव और लक्ष्मण को लंका की समस्त रचना(-विधि) दिखा दी। उसे देखते हुए नेत्र अघा नहीं रहे थे। (उसे देखकर) मन को बहुत आनन्द आया। ९२

आनंद मना जाह्ला । ९२ असो आज्ञा मागोनि बिभीषणासी । परतोन आले सुवेळेसी । जाह्लें वर्तमान रामासी । सांगते झाले तेधवां । ९३ तों इंद्र आणि ब्रह्मा रुद्र । तेतीस कोटी देव समग्र । दृष्टीं पहावया रघुवीर । सुवेळाचळीं उतरले । ९४ अष्ट वसु एकादश रुद्र । मरुद्गणादि द्वादश मित्र । गण गंधर्व यक्ष किंनर । सिद्धचारण उतरले । ९५ अष्ट नायिका अष्ट दिक्पाळ । अठ्ठ्यायशीं सहस्र ऋषिमंडळ । छप्पन देशींचें भूपाळ । रामदर्शना धांविन्नले । ९६ सप्तद्वीप-नवखंडींचे

अस्तु । वे विभीषण से अनुमति लेकर सुवेल लौट आये और तब उन्होंने जो (कुछ) घटित था, वह श्रीराम से कहा । ९३ तब (इतने में) इन्द्र, ब्रह्मा और शिवजी तथा समस्त तैंतीस करोड़ देव (अपनी-अपनी) आँखों से श्रीराम के दर्शन के लिए सुवेल पर्वत पर उतर गये । ९४ (उसी समय) आठ वसु *, ग्यारह रुद्र ‡, मरुद्गण ♦ प्रभृति, बारह सूर्य §, गण-गंधर्व, यक्ष, किन्नर, सिद्ध, चारण (भी) सुवेल पर्वत पर उतर गये । ९५ आठों नायिकाएँ × आठों दिक्पाल *, अठासी सहस्र ऋषिगण, छप्पन देशों के राजा, राजा राम के दर्शन के लिए दौड़े (आये)। ९६ सातों

* टिप्पणियाँ: आठ वसु— एक विशिष्ट प्रकार के देव । ये आठ हैं— ध्रुव, घोर, सोम, आप, नल, अनिल, प्रत्यूष, प्रभास । दूसरी मान्यता के अनुसार— द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु, विभावसु ।

‡ ग्यारह रुद्र— वीरभद्र, शम्भु, गिरीश, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, भुवनाधीश्वर, कपाली, स्थाणु, भुव । दूसरी मान्यता के अनुसार— भूतेश, नीलरुद्र, कपाली, वृजवाहन, त्र्यंबक, महाकाल, भैरव, मृत्युंजय, कामेश, योगेश, शंकर । रुद्र शिवजी का विशिष्ट रूप मात्र है । ग्यारहों रुद्रों के नामों के विषय में विभिन्न पुराणों में एकमत नहीं दिखायी देता ।

♦ मरुद्गण : ' मरुत् ' का अर्थ है ' वायु '। मरुद्गण विशिष्ट देवों के समूह को कहते हैं । इसमें कुल उनचास देव हैं । वस्तुतः ये वायु के ही विभिन्न रूप हैं । ये हैं— प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कृकल, कूर्म, देवदत्त, धनंजय आदि ।

§ बारह सूर्य (आदित्य)— मित्र, रवि, सूर्य, भानु, खग, पूषा, हिरण्यगर्भ, मरीचि, आदित्य, सविता, अर्क, भास्कर । इस सूची के अतिरिक्त अन्य सूचियाँ भी उपलब्ध हैं ।

× अष्ट नायिकाएँ : आठ नायिकाओं के विषय में विभिन्न मान्यताएँ उपलब्ध हैं । यहाँ इन्द्र की आठ नायिकाएँ अपेक्षित हैं । ये हैं— उर्वशी, मेनका, रम्भा, पूर्वचिति, स्वयंप्रभा, मिश्रकेशी, जनवल्लभा, घृताची (तिलोत्तमा) ।

* आठ दिक्पाल : ' दिक्पाल ' दिशाओं के पालक अर्थात् अधिष्ठाता देव हैं । ये हैं— इन्द्र (पूर्व), अग्नि (आग्नेय), यम (दक्षिण) निर्ऋति (नैऋत्य), वरुण (पश्चिम), मरुत् (वायव्य), कुबेर (उत्तर), ईश (ईशान्य) ।

जन। पाताळवासी काद्रवेयगण। उपदेव कर्मदेव संपूर्ण। सुवेळेसी पातले। ९७ असंख्य वाद्यांचा गजर। दिशा दणाणती समग्र। असो सुवेळेसी सुरेश्वर। चहूंकडून मिळाले। ९८ देवभारीं मुख्य तिघेजण। ब्रह्मा इंद्र आणि ईशान। परी कोणी कैसा रघुनंदन। देखिला तें सांगतों। ९९ दृष्टीं देखतां रघुवीर। मनांत भावी अपर्णावर। माझे हृदयीं तो सीतावर। नामें शीतळ जाहलों मी। २०० त्यावरी सत्यलोकनायक। तेणें देखोन रावणान्तक। त्यास भासला हा माझा जनक। क्षीराब्धिवासी जगदात्मा। २०१ इंद्रासी वाटलें ते अवसरीं। पाठिराखा आमुचा कैवारी। ऋषी भाविती अंतरीं। आराध्य दैवत आमुचें। २ कोटी कंदर्पांचा जनिता। ऐसें सुरगण भाविती तत्त्वतां। पूर्ण ब्रह्म हें तद्भक्तां। हृदयीं भासलेंसे ते

द्वीपों ‡ और नवों खण्डों § के लोग, पाताल-निवासी सर्प-गण, उपदेव ❀, कर्मदेव♦ – सभी सुवेल पहुँच गये। ९७ (उस समय) अनगिनत वाद्यों का गर्जन हो रहा था; समस्त दिशाएँ निनादित हो रही थीं। अस्तु। बड़े-बड़े देव चारों ओर से सुवेल पर इकट्ठा हो गये। ९८ देव-समुदाय में तीन जने प्रमुख थे— ब्रह्मा, इन्द्र और ईशान। (अब) मैं कहता हूँ कि फिर भी किसने श्रीराम को कैसे (किस रूप में) देखा। ९९ शिवजी ने आँखों से श्रीराम को देखते ही कामना की— 'मेरे हृदय में सीता-पति श्रीराम रहें। (उनके) नाम से मैं शीतलता को प्राप्त हो (ही) चुका हूँ।' २०० इसके पश्चात् सत्यलोक का जो स्वामी है, उस ब्रह्मा को रावण का अन्त करनेवाले श्रीराम को देखकर प्रतीत हुआ— 'ये क्षीरसागर के निवासी जगदात्मा मेरे पिता हैं।' १ उस समय इन्द्र को प्रतीत हुआ— 'यह हमारा सहायक और समर्थक है।' ऋषियों ने मन में सोचा— 'यह हमारा आराध्य देवता है।' २ सुरगणों को प्रतीत हुआ— 'सचमुच यह करोड़ों मदनों का जन्मदाता है।' उन (श्रीराम के) भक्तों को उस

‡ टिप्पणियाँ : सप्त द्वीप— पृथ्वी के विशाल भाग को द्वीप कहते हैं। पौराणिक मान्यता के अनुसार पृथ्वी सात द्वीपों में विभक्त है— जम्बु, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर।

§ नवखण्ड : पौराणिक मान्यता के अनुसार पृथ्वी के बड़े-बड़े भाग 'खण्ड' कहे जाते हैं। ये खण्ड नौ हैं— इलाश्व, भद्राश्व, हरिवर्ष, किंपुरुष, केतुमाल, रम्यक, भरतवर्ष, हिरण्य, उत्तरकुरु। नामावली के बारे में अन्यान्य मान्यताएँ भी उपलब्ध हैं।

❀ उपदेव : मुख्य देवों से भिन्न गन्धर्व आदि गौण देव।

♦ कर्मदेव : उपनिषदों के अनुसार वैदिक कर्मों के अधिष्ठाता तैंतीस देव।

काळीं । ३ असो सदाशिव देखोनी । सीतानाथ आनंदला मनीं । आसन सोडूनि चापपाणी । सामोरा पुढें धांवत । ४ त्रिपुरारीच्या चरणांवरी । नमन जों करी रावणारी । तों शिवें धरूनि वरच्यावरी । दृढ हृदयीं आलिंगिला । ५ श्रीराम जिमूतनीलवर्ण । कर्पूरगौर त्रिलोचन । इंदुमंडळीं दिसे मृग-चिन्ह । तैसे शोभले ते काळीं । ६ क्षीराब्धीमाजी नीलवर्ण । शोभे जेवीं आदिनारायण । कीं जान्हवीजळीं यमुनाजीवन । कृष्णवर्ण मिसळलें । ७ कीं भक्तांचे संपुष्टान्त । शालिग्राम-मूर्ति शोभत । तैसे शिव आणि सीतानाथ । शोभले तेव्हां आलिंगनीं । ८ सेवावया सितोत्पलमकरंद । प्रीतीनें संघटे जैसा मिलिंद । तैसा शिव आनंदकंद । सिताजीवनें आलिंगिला । ९ ते एक असती दोघेजण । शिव विष्णु नामेंचि भिन्न । अभेद अनाम निर्गुण । तेथींचे कोंभ असती हे । २१० असो यावरी कमलासन । देता जाहला आलिंगन ।

समय हृदय में आभासित हुआ— 'यह तो पूर्ण ब्रह्म है ।' ३ अस्तु । शिवजी को देखते ही श्रीराम मन में आनन्दित हो गये और आसन को छोड़कर वे (उनकी अगुवानी के लिए) आगे दौड़े । ४ ज्यों ही रावणारि (राम) त्रिपुरारि (शिवजी) के चरणों को नमस्कार कर ही रहे थे, त्यों ही शिवजी ने उन्हें ऊपर-ही-ऊपर थामकर दृढ़तापूर्वक हृदय से लगाते हुए उनका आलिंगन किया । ५ श्रीराम मेघ की भाँति श्यामवर्ण हैं, तो शिवजी कपूर-से गौरवर्ण हैं । (जब वे एक दूसरे से इस प्रकार मिले, तो) जैसे चन्द्र-मण्डल में मृग-चिह्न (शोभायमान) दिखायी देता है, वैसे वे (दोनों) उस समय शोभायमान (दिखायी दे रहे) थे । ६ जिस प्रकार क्षीरसागर में नीलवर्ण आदिनारायण शोभायमान होते हैं, अथवा गंगा-जल में यमुना का कृष्णवर्ण जल मिल गया है, (तो वह जिस प्रकार दिखायी देता है), अथवा भक्तों की सम्पुटि में शालिग्राम मूर्ति शोभायमान होती है, उस प्रकार शिवजी और श्रीराम तब आलिंगन में आबद्ध हो जाने पर शोभायमान हो गये । ७-८ जिस प्रकार भ्रमर श्वेतकमल के मधु का सेवन करने के लिए प्रेमपूर्वक लिपट जाता है, उस प्रकार आनन्द-कन्द शिवजी का सीता-जीवन राम ने (प्रेमपूर्वक) आलिंगन किया । ९ (वस्तुतः) वे दोनों जने एक (अभिन्न ही) हैं— केवल शिव और विष्णु (दोनों) नाम ही भिन्न हैं । वस्तुतः जो ब्रह्म अभेद, अनाम और निर्गुण है, वहीं के (उसी के) ये अंकुर हैं । २१० अस्तु । इसके पश्चात्

माझा पिता हा नारायण। म्हणूनि हृदयीं धरियेला। ११ याउपरी दशशतनेत्र। घाली साष्टांग नमस्कार। तप्तकांचन-वर्ण सुंदर। रघुवीर उठवी तयातें। १२ सहस्रनेत्रासी चापपाणी। हृदयीं धरी प्रीतीकरूनी। मग सुरांस कैवल्य-दानी। भेटता जाहला आनंदें। १३ असंख्य स्वरूपें देखोन। देव ऋषी थोर लहान। समस्तांसीं सीताजीवन। समसमान भेटत। १४ असो सकळ देवांसमवेत। सभेसी बैसला रघुनाथ। एकचि वाद्यांचा गजर होत। अष्टनायिका नाचती। १५ वीणा घेऊन सत्वर। गाती नारद आणि तुंबर। सामगायन परिकर। ऐके रघुवीर सादरें। १६ रामविजय ग्रंथ पावन। युद्धकाण्ड संपलें येथून। उत्तरकाण्ड गहन। आतां येथोनि अवधारा। १७ मुकुटावरी मणि शोभत। तेवीं उत्तरकाण्ड गोड बहुत। कीं देवालयावरी झळकत। कळस जैसा सतेज। १८ भोजनान्तीं दध्योदन। कीं श्रवणान्तीं मनन।

कमलासन ब्रह्मा ने आलिंगन किया। ये मेरे पिता नारायण (ही) हैं—यह समझकर उन्होंने (श्रीराम का) आलिंगन किया। ११ इसके पश्चात् सहस्रनेत्र इंद्र ने साष्टांग नमस्कार किया, तो तप्त सुवर्ण के वर्ण-से वर्णवाले सुन्दर शरीरधारी उस इन्द्र को श्रीराम ने उठा लिया। १२ चापपाणि श्रीराम ने इन्द्र को प्रेमपूर्वक हृदय से लगा लिया। तब कैवल्य के दाता (श्रीराम) आनन्दपूर्वक (अन्य) देवों से मिले। १३ (वहाँ उपस्थित) अनगिनत (मानो अपने ही) रूपों को देखकर, समस्त छोटे-बड़े देवों और ऋषियों से सीताजीवन श्रीराम समसमान रूप से मिले। १४ अस्तु। (तदनन्तर) श्रीराम समस्त देवों सहित सभा में बैठ गये, तो वाद्यों का अद्‌भुत गर्जन (आरम्भ) हुआ। आठों नायिकाएँ नृत्य करने लगीं। १५ नारद और तुम्बरु झट से वीणा लेकर गाने लगे। श्रीराम आदरपूर्वक वह सुन्दर साम-गायन श्रवण करने लगे। २१६

o o o

'श्रीराम-विजय' नामक यह ग्रन्थ पवित्र है। उसका युद्धकाण्ड (यहाँ) समाप्त हुआ। अब यहाँ से (आगे) गहन उत्तरकाण्ड का श्रवण कीजिए। १७ मुकुट में रत्न शोभायमान होते हैं, वैसे ही उत्तरकाण्ड बहुत मधुर (एवं शोभायमान) है। अथवा मन्दिर पर जैसे कलश जगमगाता है, वैसे 'श्रीराम-विजय' में यह उत्तरकाण्ड तेज से युक्त है (और जगमगा रहा है)। १८ जैसे भोजन के अन्त में दही-भात हो,

तपाचे अंतीं फळ पूर्ण । उत्तरकाण्ड रसिक तैसें । १९ आरंभीं कथा सुरस तेथ । भेटतील जानकीरघुनाथ । मूळ जाईल हनुमंत । राघवआज्ञा घेवूनियां । २२० ती कथा गोड बहुत । श्रवण करोत श्रीरामभक्त । जे ब्रह्मानंदें डुल्लत । प्रेमळ चित्त जयांचें । २१ श्रीमद्भीमातटविलासिया । ब्रह्मानंदा गुरुवर्या । श्रीधर अनन्यशरण पायां । कायावाचामनेंसीं । २२ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर । संमत वाल्मीकनाटकाधार । सदा परिसोत पंडित चतुर । त्रयस्त्रिंशत्तमोध्याय गोड हा । २२३

॥ श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

॥ इति युद्धकाण्ड ॥

अथवा श्रवण के अन्त में मनन हो, अथवा तप के अन्त में पूर्ण फल (की उपलब्धि) हो, वैसे (श्रीराम-विजय के इन छः काण्डों के पश्चात् अर्थात् इस ग्रन्थ के अन्त में) उत्तरकाण्ड रसमय (मधुर) है । १९ उसके आरम्भ में मधुर कथा है । वहाँ (उसमें कहा जाएगा) जानकी और श्रीराम (एक-दूसरे से) मिलेंगे; श्रीराम की आज्ञा लेकर हनुमान निमंत्रक के रूप में जाएगा । २२० (कथा का श्रवण करते हुए) जो ब्रह्मानन्द-पूर्वक डोलते रहते हैं और जिनका चित्त प्रेममय है, वे श्रीराम-भक्त (श्रोता) उस बड़ी मधुर कथा का श्रवण करें । २२१

हे भीमा नदी-तट पर विलास (सुखपूर्वक निवास) करनेवाले श्रीमद्-भगवान्, हे ब्रह्मानन्द गुरुवर, यह श्रीधर (कवि) काया, वाक् तथा मन के अनन्य भाव के साथ आपके चरणों में शरण लिये हुए है । २२ स्वस्ति । 'श्रीराम-विजय' नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है । यह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है । इसके इस मधुर तैंतीसवें अध्याय का चतुर पंडित (श्रोता) नित्य श्रवण करें । २२३

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

॥ इति युद्धकाण्ड समाप्त ॥

उत्तर काण्ड

अध्याय—३४

श्रीगणेशाय नमः । जय जय जगद्वंद्या वेदसारा । प्रणवरूपा विश्वंभरा । करुणार्णवा परम उदारा । राघवेंद्रा श्रीरामा । १ मन्मथदहनहृदयरत्ना । चतुरास्यजनका जनरंजना । मंगलभगिनीमनमोहना । जगज्जीवना भक्तवरदा । २ लागतां प्रळयरूप आघात । शरीरप्रारब्धें येती अनर्थ । तेथें खेद न मानी चित्त । सीतावल्लभा करीं ऐसें । ३ बोध बैसो हृदयीं अनुदिनी । शान्ति क्षमा दया उन्मनी । या विलसोत मानससदनीं । ऐसें करी श्रीरामा । ४ विविध आकृती चराचररचना । तुझीं स्वरूपें भासोत नयना । वमन देखोन वीट ये मना । विषयीं वासना न रमो तैसी । ५ श्रवणकीर्तनादि

श्रीगणेशाय नमः । हे जगद्वंद्य, हे वेद-सार (-तत्त्व), हे ॐकार-स्वरूप, हे विश्वंभर, हे करुणा-सागर, हे परम उदार राघवेंद्र श्रीराम, जय हो, जय हो । १ हे (कामदेव को जला डालनेवाले) शिवजी के हृदय (में स्थित) रत्न, हे चतुर्मुख ब्रह्मा के जनक, हे (भक्तों के) मन को रिझानेवाले, हे (मंगल की भगिनी) सीता के मन को मोह लेनेवाले, हे जगज्जीवन, हे भक्तों को वर प्रदान करनेवाले (जय हो, जय हो) । २ हे सीता-वल्लभ, ऐसा कर दो कि प्रलय जैसा आघात होने पर तथा शरीर और दैव के कारण (मुझपर) संकट आ जाएँ, तो भी वहाँ (उस समय) चित्त खेद न माने । ३ हे श्रीराम, ऐसा कर दो कि मेरे हृदय में प्रतिदिन (आत्म-) बोध (ज्ञान) रह जाए और मन रूपी सदन में शान्ति, क्षमा, दया तथा उन्मनी अवस्था प्रतिदिन शोभायमान हों । ४ (संसार में स्थित) विविध आकृतियाँ— चराचर रचनाएँ (अर्थात् संसार में उत्पन्न चराचर सब वस्तुएं) मेरी आँखों को तुम्हारे रूप प्रतीत हों । जैसे वमन देखकर मन में घिन आती है, वैसे (सांसारिक भोग-विलास के) विषयों में मेरी कोई इच्छा न रमी रहे (उनके प्रति मेरे मन में घिन उत्पन्न हो) । ५ (मुझसे) श्रवण, कीर्तन आदि नव-विधा भक्ति § हो (की

---

§ टिप्पणी : नवविधा भक्ति— श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन ।

नवविधा भक्ती। सत्समागम घडो अहोरात्रीं। तुझीं लीला-चरित्रें ऐकतां सीतापती। चित्तवृत्ति आनंदो। ६ माझें मन आणि बुद्धि पाहीं। वांकी नेपुरें होवोत पायीं। प्रेमपीताम्बर सर्वदाही। जघनीं विलसो तूझिया। ७ माझें स्थूल देह लिंग देखा। तुझे पायीं विलसोत पादुका। ताटिकान्तका अयोध्या-नायका। सर्वदा करीं ऐसेंचि। ८ माझिया पंचप्राणांचा मेळा। यांचीं कुंडलें पदकमळा। ब्रह्मानंदा भक्तवत्सला। सर्वदा करीं ऐसेंचि। ९ उत्तरकाण्ड हेंचि भागीरथी। प्रवाह-रूपें चाले सरस्वती। तरी दृष्टान्तक्षेत्रें विराजती। एकाहून एक विशेष। १० असो गतकथाध्यायीं दशकंधर। वधोनि विजयी जाहला रघुवीर। याउपरी सकळ सुरवर। श्रीराम-दर्शना पातले। ११ सुरांची दाटी जाहली बहुत। मुकुटांसी मुकुट आदळत। रत्नें झळकती अमित। भगणांहुनी तेजागळीं। १२ गण गंधर्व यक्ष किन्नर। सुरासुर नर वानर।

जाए), (मुझे) दिन-रात सत्संग (प्राप्त) हो (जाए)। हे सीता-पति, तुम्हारी लीलाओं की कथाओं को सुनकर मेरी चित्त-वृत्ति आनन्द को प्राप्त हो जाए। ६ देखो, मेरा मन और बुद्धि तुम्हारे पाँवों में झाँझन और नूपुर हो जाएँ और मेरा प्रेम (भक्ति भाव) रूपी पीताम्बर तुम्हारे कटि-प्रदेश में शोभायमान हो। ७ हे ताड़का राक्षसी का अन्त कर डालनेवाले अयोध्या-नायक, नित्य ऐसा ही कर दो कि मेरी स्थूल और लिंग देह तुम्हारे चरणों में पादुकाओं के रूप में शोभायमान होती रहें। ८ हे (गुरु) ब्रह्मानन्द (स्वरूप) भगवान्, हे भक्त-वत्सल, नित्य ऐसा ही कर दो कि मेरे पंचप्राणों के बने कुंडल (कड़े) तुम्हारे चरण कमलों में रहें। ९ देखो, यह उत्तरकाण्ड ही मानो भागीरथी (गंगा) है। मानो (साहित्य, कला आदि की अधिष्ठात्री देवी) सरस्वती मानो प्रवाह रूप में चल रही है। अतः (उसके तट पर) एक से एक वैशिष्ट्य-पूर्ण दृष्टान्त स्वरूप तीर्थक्षेत्र शोभायमान हैं। १०

अस्तु। (श्रीराम की) कथा के पिछले अध्याय में (कहा गया है कि) रावण का वध करके रघुवीर विजयी हो गये; इसके पश्चात् समस्त देव श्रीराम के दर्शन के लिए आ पहुँचे। ११ (तब) देवों की बहुत भीड़ हो गयी; उनके मुकुटों से मुकुट टकरा रहे थे। (उन मुकुटों में जड़े हुए) अनगिनत रत्न तेज में नक्षत्रों से भी विशेष (अत्यधिक) चमक रहे थे। १२ गण, गन्धर्व, यक्ष, किनर, सुर, असुर, नर, वानर सुवेल

सुवेळाचळीं जाहले एकत्र। गजर थोर होतसे। १३ तों मारुतीचे मनांत। केव्हां आज्ञा देईल रघुनाथ। कीं जानकी आणावी त्वरित। रावणान्तक वदेल केव्हां। १४ क्षणक्षणांत वायुकुमर। विलोकी राघववदनचंद्र। तों मारुतीसी अयोध्या-विहार। आज्ञापिता जाहला। १५ म्हणे प्राणसखया हनुमंता। सत्वर जाऊन गुणभरिता। जानकी सौभाग्यसरिता। भेटवीं आतां मजलागीं। १६ बिभीषणासी सांगून। सीतेसी घालिजे मंगलस्नान। वस्त्रें अलंकार देऊन। सुखासनारूढ आणिजे। १७ ऐसें ऐकतां हनुमंत। निराळपंथें चालिला त्वरित। जैसें तान्हें वत्स काननांत। जाय शोधीत धेनूसी। १८ मानसाप्रति मराळ जात। कीं जीवन शोधी तृषाक्रान्त। कीं झेंपावे विनतासुत। दर्शना जातां इंदिरेच्या। १९ तैसाच अशोक-वनांत। प्रवेशता जाहला हनुमंत। साष्टांगें शीघ्र प्रणिपात। जानकीस घातला। २० तान्हें बाळ चुकोनि गेलें। तें जननीतें अकस्मात भेटलें। कीं हरपलें रत्न सांपडलें। तैसें वाटलें जानकीतें। २१ कीं प्राण जातां निःशेष। वदनीं घालिजे

पर्वत पर इकट्ठा हो गये। (वहाँ वाद्य आदि का) बहुत बड़ा गर्जन हो रहा था। १३ तब हनुमान के मन में (यह विचार आया) था कि रघुनाथ कब यह आज्ञा देंगे कि जानकी को झट से लाएँ; रावणान्तक (श्रीराम) ऐसा कब कहेंगे। १४ (इस विचार से) हनुमान प्रतिक्षण श्रीराम के मुखचन्द्र की ओर देख रहा था, तो उन अयोध्या-विहारी ने आज्ञा दी। १५ उन्होंने कहा—' हे प्राणसखा हनुमान, अब झट से जाकर गुण-सम्पन्न सौभाग्य-सरिता सीता को (लाकर) मुझसे मिला दो। १६ विभीषण से कहकर सीता को मंगल-स्नान करवाओ और वस्त्र-आभूषण दिलाते हुए पालकी में बैठाकर लाओ।' १७ ऐसा सुनते ही हनुमान झट से आकाश-मार्ग से चल दिया। जिस प्रकार दुधमुँहा बछड़ा गाय को ढूँढ़ते हुए वन में जाता हो, अथवा हंस मानसरोवर की ओर जाता हो, अथवा प्यास से व्याकुल प्राणी पानी को खोजता जाता हो, अथवा गरुड़ लक्ष्मी के दर्शन के लिए जाते हुए तेज गति से आगे लपकता जाता हो, उस प्रकार (जाते हुए) हनुमान अशोक वन में प्रविष्ट हुआ और उसने जानकी को साष्टांग नमस्कार किया। १८-२० जानकी को वैसा ही प्रतीत हुआ कि कोई दुधमुँहा बच्चा खो गया हो और वह माता से यकायक मिल गया हो, अथवा खोया हुआ रत्न फिर से प्राप्त हुआ हो। २१

सुधारस । तैसी देखतां मारुतीस । सीता परम संतोषली । २२
कर जोडोनि हनुमंत । सीतेपुढें उभा राहत । म्हणे सुखी आहे
अयोध्यानाथ । सेनेसहित सुवेळे । २३ कंटक दशकंठ वधून ।
राज्यीं स्थापिला बिभीषण । बंदींचे देव सुटून । भेटों आले
रघुत्तमा । २४ ऐसे सांगतां हनुमंत । जगन्माता काय बोलत ।
बा रे वचन तुझें गोड बहुत । अमृताहून आगळे । २५ प्राण-
सखया तूं यथार्थ । मजकारणें श्रमलासी बहुत । तुझे उपकार
अमित । अयोध्यानाथ जाणतसे । २६ षण्मास मीं कंठिलें
अद्भुत । आतां भेटवीं रघुनाथ । ऐसें ऐकतां हनुमंत ।
बिभीषणसदनीं प्रवेशला । २७ सांगे सकळ वर्तमान । सीतेसी
करवून मंगलस्नान । वस्त्रें भूषणें देऊन । चाल घेऊन
सुवेळे । २८ ऐकोनि आनंदे बिभीषण । मारुतीसी करीं
धरून । प्रवेशला अशोकवन । सीतादर्शन ध्यावया । २९
चिरंजीव दोघेजण । रघुपतीचे प्रिय प्राण । जानकीजवळ

अथवा किसी के प्राण पूर्णतः निकल जाते समय (कोई) उसके मुख में अमृत डाल दे, (तो उसे पुनर्जीवन का लाभ होने पर जैसा सन्तोष होगा), वैसे ही हनुमान को देखते ही सीता परम सन्तोष को प्राप्त हो गयी । २२ हनुमान हाथ जोड़कर सीता के सम्मुख खड़ा हो गया और बोला— 'अयोध्यानाथ सुवेल पर सेना-सहित सकुशल हैं । २३ उन्होंने काँटे-से दशानन का वध करके विभीषण को राज्यासन पर स्थापित किया है और देव बन्दीगृह से छूटकर रघूत्तम से मिलने के लिए आ गये हैं । ' २४ (सुनिए) हनुमान द्वारा ऐसा कहने पर सीता क्या बोली । (वह बोली—) 'अरे, तुम्हारी बात अमृत से भी बहुत अधिक मधुर है । २५ हे प्राण-सखा, मेरे लिए तुम सचमुच बहुत (कष्ट उठाते हुए) थक गये हो । अयोध्या-नाथ तुम्हारे असीम उपकार को जानते हैं । २६ मैंने छः महीने अद्भुत (स्थिति में) बिताये हैं, अब (मुझे) रघुनाथ से मिला दो । ' ऐसा सुनने पर (वहाँ से निकलकर) हनुमान ने विभीषण के सदन में प्रवेश किया । २७ (वहाँ) उसने विभीषण से समस्त समाचार कहा (और निवेदन किया)— 'सीता को मंगल-स्नान करवाकर और वस्त्र-आभूषण दिलवाकर सुवेल ले चलो । ' २८ यह सुनकर विभीषण आनन्दित हो गया और हनुमान का हाथ थामते हुए सीता के दर्शन करने के लिए अशोक वन में प्रविष्ट हुआ । २९ वे दोनों चिरजीवी थे; रघुपति श्रीराम के मानो प्रिय प्राण ही थे । सीता के समीप आकर विभीषण ने (उसे)

येऊन । बिभीषणें लोटांगण घातलें । ३० जगन्माता बोले वचन । जोंवरी शशी चंडकिरण । तोंवरी चिरंजीव होऊन । राज्य करीं लंकेचें । ३१ बिभीषण जोडूनि कर । उभा राहे सीतेसमोर । जैसा अपर्णेजवळी कुमार । कीं फरशधर रेणुकेपासीं । ३२ बिभीषण म्हणे जगन्माते । प्रणवरूपिणि सद्गुणसरिते । अनादिसिद्धे अपरिमिते । आदिमाये इंदिरे । ३३ तुवां आदिपुरुष जागा करून । अनंत ब्रह्माण्डें रचिलीं पूर्ण । ब्रह्मा विष्णु उमारमण । तुझीं बाळें तिन्हीं हीं । ३४ उत्पत्ति स्थिति पालन । करविसी तिघांकडोन । इच्छा परततां पूर्ण । सर्वेंचि गोळा करिसी तूं । ३५ तुझें तुजचि सर्व ठाउकें । नेणतपण धरिलें कौतुकें । रावणें तुज आणिलें लंके । हेही इच्छा तुझीच पैं । ३६ बंदींचे सुटले सुरवर । मारुति सुग्रीवादि वानर । आम्हां सर्वां जाहला राम मित्र । हा तो उपकार तुझाचि । ३७ यावरी करून मंगलस्नान । वस्त्रें भूषणें अंगीकारून । सुवेळेसी पाहावया रघुनंदन । शीघ्र आतां

दण्डवत् प्रणाम किया । ३० (तब आशीर्वाद देते हुए) जगन्माता ने यह बात कही— 'जब तक चंद्र और सूर्य हों, तब तक चिरजीवी होते हुए लंका का राज्य करो ।' ३१ हाथ जोड़े हुए विभीषण सीता के सम्मुख वैसा ही खड़ा (रहा) था, जैसे पार्वती के पास स्कंद हो, अथवा रेणुका के पास परशुराम हो । ३२ (तब) विभीषण ने कहा— 'हे जगन्माता, हे प्रणव-रूपिणी, हे सद्गुण-सरिता, हे अनादि-सिद्धा, अपरिमिता, हे आदि-माया, हे लक्ष्मी (की अवतार-स्वरूपा), तुमने आदि-पुरुष को जगाते हुए अनन्त ब्रह्माण्डों की पूर्ण रचना की । ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी— ये तो तुम्हारे नन्हे दुधमुँहे शिशु हैं । ३३-३४ तुम इन तीनों द्वारा (ब्रह्माण्ड का) निर्माण और स्थिति अर्थात् पालन करती हो; साथ ही इच्छा दूर होने पर उन्हें इकट्ठा करती हो, अर्थात् उसका विलय कर देती हो । ३५ तुम्हारी सब (करनी) तुम्हें ही ज्ञात है । (केवल) लीला (प्रदर्शित करने) के लिए तुमने अज्ञानावस्था स्वीकार की है । रावण तुम्हें लंका में ले आया— यह भी तुम्हारी ही इच्छा थी । ३६ बंदीगृह में रखे हुए देव मुक्त हुए । हनुमान, सुग्रीव आदि वानर और श्रीराम— हम सबके मित्र हो गये— यह तो तुम्हारा ही (किया) उपकार है । ३७ (अतः) इसके पश्चात् मंगल-स्नान करके और वस्त्र तथा आभूषण स्वीकार करके रघुनन्दन के दर्शन करने के लिए अब शीघ्र सुवेल चलें ।' ३८ (इसपर)

चलावें । ३८ जगन्माता बोले वचन । रामें न करितां मंगल-स्नान । म्यां आधीं करिणे पूर्ण । वाटे दूषण परम हें । ३९ पतिव्रतेचा ऐसा होय धर्म । पतीविण न करावा कार्यउपक्रम । रघुपतीची आज्ञा नसतां अधर्म । होय सर्व आम्हांसीं । ४० मारुति म्हणे जगन्माते । आज्ञा दिधली रघुनाथें । दुजें बिभीषणवचनातें । मान दिधला पाहिजे । ४१ अवश्य म्हणे जनक नंदिनी । तंव ते बिभीषणाची राणी । सकळ उपचार घेउनी । अशोकवना पातली । ४२ सरमा त्रिजटा दोघीजणी । सीतेच्या प्राणसांगातिणी । दोघींनीं जानकीची वेणी । उकलिली तेधवां । ४३ हनुमंत आणि बिभीषण । बैसले एकीकडे जाऊन । सरमेनें जानकीचें पूजन । आरंभिलें स्वहस्तें । ४४ उत्तम पट्टदुकूल आणूनी । सीतेसी दिधली पडदणी । मणि-मय चौरंग घालोनी । पाय धूतले सरमेनें । ४५ सुगंध तेल ते वेळीं । त्रिजटा सीतेचे मस्तकीं घाली । आशीर्वाद वचनें बोलिली । स्नेहआदरेंकरूनि । ४६ अनंत कल्याण कल्पपर्यंत । दोघें नांदा आनंदभरित । मृगमदाचें उटणें लावीत । सरमा

जगन्माता ने यह बात कही—'श्रीराम द्वारा मंगल-स्नान न करने पर, उनसे पहले मेरे द्वारा ऐसा करना (मुझे) पूर्णतः बड़ा दोष प्रतीत होता है । ३९ पतिव्रता का ऐसा धर्म है कि बिना पति के (किये) वह किसी भी कार्य का आरम्भ न करे । रघुपति की आज्ञा न होने पर (ऐसा यह) सब हमारे लिए अधर्म हो जाएगा ।' ४० (इसपर) हनुमान ने कहा—'हे जगन्माता, (एक तो) रघुपति ने (ऐसी) आज्ञा दी है, (और) दूसरे विभीषण की बात का आदर करना चाहिए ।' ४१ जानकी बोली—'अवश्य ।' तब विभीषण की स्त्री (सरमा) समस्त सामग्री लेकर अशोकवन में जा पहुँची । ४२ सरमा और त्रिजटा दोनों सीता की प्राण-संगिनियाँ थीं । तब दोनों ने जानकी की बेनी खोल दी । ४३ तो हनुमान और विभीषण एक ओर जाकर बैठ गये । (इधर) सरमा ने अपने हाथों जानकी का पूजन आरम्भ किया । ४४ बढ़िया रेशमी वस्त्र लाते हुए उसने सीता को परदनिया के रूप में दिया । फिर रत्नमय चौकी बिछाकर सरमा ने अपने हाथों से (सीता के) पाँव धोये । ४५ (तदनन्तर) उस समय त्रिजटा ने सीता के मस्तक पर सुगंधित तेल डाला और स्नेह तथा आदर के साथ आशीर्वाद से युक्त वचन कहे । ४६ 'आनन्द से भरे-पूरे दोनों अनन्त कल्याण के साथ कल्प तक रहो ।' (तब) सरमा ने

आपण स्वहस्तें । ४७ मळी काढितां म्हणे माये । कृश जाहलीस जनकतनये । असो उष्णोदक लवलाहें । स्नानालागीं आणिलें । ४८ त्रिजटा उदक घाली सवेग । सरमा घांसी सीतेचें अंग । बिभीषणें अलंकार सुरंग । अमोलिक पाठविले । ४९ प्रळयविजेहून तेजागळी । चीर नेसली जनकबाळी । दिव्य अलंकार लेइली । जे त्रिभुवनीं दुर्लभ । ५० सूर्यमंडळातुल्य सुरेख । कर्णीं वोप देती ताटंक । सर्व अलंकारांची अधिक । कांति फांके दशदिशां । ५१ कुंकुममळवट लाविला भाळीं । मध्यें सुवास कस्तूरी रेखिली । दिव्य सुगंध ते काळीं । सर्वांगीं चर्ची त्रिजटा । ५२ दिव्य फळांनीं ते काळीं । जानकीची ओटी भरिली । सरमा म्हणे मुखीं घालीं । जननी फळ एक आतां । ५३ मग तें अमृतफळ सुस्वाद । सुंदर आणि बहु सुगंध । बिभीषण-मारुतींस प्रसाद । जानकीनें दीधला । ५४ सरमा आणि त्रिजटेप्रती । फळें दिधलीं परम प्रीती । मग एक फळ घेऊनि हातीं । वदनीं घातलें जानकीनें । ५५ सर्वेंच

कस्तूरी का उबटन स्वयं अपने हाथ से लगा दिया । ४७ किट्ट (मैल की परत) छुड़ाते हुए वह बोली— ‘ हे माँ जनक-कन्या, दुबली हो गयी हो । ’ वह स्नान के लिए गरम पानी लायी थी । ४८ त्रिजटा वेगपूर्वक पानी डालने लगी । सरमा सीता का बदन मलने लगी । विभीषण ने सुन्दर कान्ति से युक्त अनमोल आभूषण भेजे थे । ४९ स्नान के पश्चात् सीता ने प्रलय-काल की विद्युत् से भी अधिक तेजस्वी वस्त्र धारण कर लिया और उसने ऐसे दिव्य आभूषण पहन लिये. जो त्रिभुवन में भी दुर्लभ थे । ५० उसके कानों में (पहने हुए) कर्ण-भूषण सूर्य-मण्डल का-सा सुन्दर तेज प्रकट कर रहे थे । सब आभूषणों की कान्ति दसों दिशाओं में फैल रही थी । ५१ भाल (-प्रदेश) में कुंकुम का बड़ा तिलक लगाया था । उसके बीच में सुगंधि-युक्त कस्तूरी की रेखा अंकित थी । उस समय त्रिजटा ने (सीता के) समस्त अंग में दिव्य सुगंधि-युक्त द्रव्य लगा लिया । ५२ उस समय दिव्य फलों से (सीता की) कोंछ भर दी, तो सरमा बोली, ‘ हे जननी, अब एक फल मुँह में डालना । ’ ५३ तब एक सु-स्वाद से युक्त, सुन्दर और बहुत सुगंध से युक्त अमृत (जैसा मधुर) फल सीता ने विभीषण और हनुमान को प्रसाद के रूप में दिया । ५४ (वैसे ही) उसने परम प्रेम से सरमा और त्रिजटा को फल दिये । (तत्पश्चात्) सीता ने एक फल हाथ में लेकर मुँह में डाल लिया । ५५ साथ ही उसने

प्रक्षाळिलें वदन। तों जवळी आला बिभीषण। दिव्य मणिमय हार आणून। जानकीपुढें ठेविला। ५६ त्रिभुवनमोल एक मणी। रावणें ठेविला होता कोशसदनीं। तो बिभीषणें देतां प्रीतीकरूनी। गळां घाली जगन्माता। ५७ तों लंकेचें सकळ दळ। सिद्ध जाहलें तत्काळ। अठरा अक्षौहिणी वाद्यें प्रबळ। वाजों लागलीं तेधवां। ५८ रत्नजडित शिबिका आणोनी। सीतेपुढें ठेविली ते क्षणीं। बिभीषण मारुती लागती चरणीं। सुखासनीं बैसावें। ५९ सरमा त्रिजटा यांचे कंठीं। जानकी घाली दृढ मिठी। म्हणे प्राणसख्यांनो दृष्टीं। तुम्हांस कधीं मी देखेन। ६० सरमा त्रिजटेचे नयनीं। अश्रु आले ते क्षणीं। रुदन करिती स्फुंदस्फुंदोनी। चरणीं मिठी घालिती। ६१ मग आपुले कुरळ केशेंकरून। झाडिले जानकीचे चरण। पालखींत बैसविती नेऊन। सद्गद होऊनि बोलती। ६२ अवो प्राण-सखये जनकनंदिनी। आम्हां न विसरावें मनींहूनी। सीता म्हणे उपकार साजणी। तुमचे न विसरें कदाही। ६३ तों शिबिकेवरी आवरण। बिभीषणें घातलें पूर्ण। जैसा परीक्षक

मुँह धो लिया. तब विभीषण निकट आया और उसने एक दिव्य रत्नमय हार लाते हुए सीता के सामने रख दिया। ५६ उस (हार) का एक-एक मनका (रत्न) त्रिभुवन-के मूल्य का था। रावण ने उसे अपने धनकोश (-भण्डार) में रखा था। विभीषण द्वारा दिये जाने पर जगन्माता सीता ने वह गले में पहन लिया। ५७ तब लंका की समस्त अठारह अक्षौहिणी सेना तत्काल सज्ज हो गयी। उस समय वाद्य ज़ोर-ज़ोर से बजने लगे। ५८ उस क्षण रत्नों से जड़ी हुई शिबिका लाकर सीता के सामने रख दी, तो विभीषण और हनुमान ने उसके पाँव लगकर प्रार्थना की कि वह उस शिबिका में बैठे। ५९ (तत्पश्चात्) जानकी सरमा और त्रिजटा के दृढ़तापूर्वक गले लगते हुए बोली— ' हे प्राण सखियो, इन आँखों से मैं तुम्हें (फिर) कब देख सकूँगी ? ' ६० उस समय सरमा और त्रिजटा की आँखों में आँसू आ गये। वे सुबक-सुबककर रोने लगीं, (फिर) वे उसके चरणों में लिपट गयीं। ६१ फिर अपने घुँघराले बालों से उन्होंने जानकी के चरणों को झाड़ा। (तत्पश्चात्) उसे ले जाकर पालकी में बैठा दिया और वे बहुत गद्गद होकर बोलीं। ६२ ' अहो प्राण-सखी जनक-नंदिनी, हमें मन से न भूलना। ' तो सीता ने कहा— ' हे सखियो, मैं तुम्हारे उपकार कभी भी न भूलूंगी। ' ६३ तब विभीषण ने शिबिका

दिव्य रत्न। पेटीमाजी रक्षीतसे। ६४ कीं हृदयींचें ज्ञान संत। बाहेर न दाविती लोकांत। कीं धनाढ्य जैसा आच्छादीत। निजधन आपुलें सर्वदा। ६५ अति उल्हासें वायुसुत। सव्यभागीं जवळी चालत। मध्यभागीं लंकानाथ। बिभीषण जात त्वरेनें। ६६ वहनवाहक बहुत वेगें। चालिले सुवेळेचे मार्गें। बिभीषण हनुमंत दोघे। हात लाविती वहनासी। ६७ सेना चालिली अद्भुत। पुढें वेत्रपाणी धांवत। वाद्यांचा गजर होत। दाटी बहुत जाहली। ६८ स्कंद आणि गजवदन। अपर्णेजवळी दोघेजण। तैसे मारुती आणि बिभीषण। प्रेमरंगें धांवती। ६९ रामसेनेंत प्रवेशले सत्वर। तों जाहला एकचि गजर। पाहावया धांवती वानर। त्यांस वेत्रधार मारिती। ७० लंकापतीसी अयोध्याविहारी। सांगून पाठवी ते अवसरीं। आपुले वेत्रधार आवरीं। वानरांतें मारिती जे। ७१ या सीतेलागीं कष्ट। वानरीं केले उत्कृष्ट। वहन उघडोनि स्पष्ट। सीता कपींसी पाहूं द्या। ७२ जवळी असतां प्राणनाथ। स्त्री

पर पूरा आवरण डाल दिया, जैसे पारखी मंजूषा में दिव्य रत्न (छिपाकर) रख देता हो, अथवा सन्त हृदय-स्थित (आत्म-) ज्ञान लोगों में (प्रकट करके) नहीं दिखाते, अथवा धनी मनुष्य अपना धन नित्य आच्छादित (छिपाकर) रखता हो। ६४-६५ हनुमान अति उल्लास से दायीं ओर पास ही चल रहा था, तो लंकानाथ विभीषण तेजी से बीच में चल रहा था। ६६ वाहन (पालकी) के वाहक बहुत वेग से सुवेल के मार्ग पर चल रहे थे। विभीषण और हनुमान दोनों उस वाहन को (बोझ उठाने के हेतु) हाथ लगाये हुए थे। ६७ (साथ में) अद्भुत सेना चल रही थी; आगे वेत्रधारी दौड़ रहे थे; वाद्यों का गर्जन हो रहा था। (वहाँ) बहुत भीड़ हो गयी थी। ६८ जिस प्रकार स्कन्द और गणेश दोनों जने (माता) पार्वती के पास होते हैं, उस प्रकार हनुमान और विभीषण (सीता के पास रहते हुए) प्रेम के साथ दौड़ रहे थे। ६९ जब वे (सब) राम की सेना में प्रवेश कर गये, तो (वहाँ) अपूर्व गर्जन हुआ। वानर (सीता को) देखने के लिए दौड़े, तो वेत्रधारी उन्हें पीटने लगे। ७० उस अवसर पर अयोध्याविहारी श्रीराम ने लंकापति विभीषण से यह कहकर सन्देश भेज दिया— 'अपने उन वेत्रधारियों को रोक लो, जो वानरों को पीट रहे हैं। ७१ इस सीता के निमित्त वानरों ने अत्यधिक कष्ट किये हैं। (अतः) वाहन को खोलकर वानरों को सीता स्पष्ट रूप में देखने दो। ७२

उघडी सर्व जनांत। वागतां दोष यथार्थ। सर्वथा नाहीं तियेसी। ७३ ऐसी आज्ञा होतां ते काळीं। शिबिका उतरिली भूमंडळीं। आवरण काढितां जनकबाळी। सर्वांनीं देखिली एकदां। ७४ वहनाबाहेर निघोनी। त्रिभुवनपतीची ते राणी। उघडली जैसी रत्नखाणी। वैदेहतनया उभी तैसी। ७५ पाहतां जियेचे मुखकमळा। लोपती कोटी मृगांककळा। कीं लावण्य-सागरींचा उमाळा। रूपा आला ते ठायीं। ७६ यावरी ते जगज्जननी। आदिमाया विश्वखाणी। पांहते जाहले भक्त-शिरोमणी। जे कां अवतार देवांचे। ७७ जानकी देखतां साचार। देवगण गंधर्व असुर। मानसीं विकल्प साचार। करिते जाहले तेधवा। ७८ एवढें इयेचें स्वरूप सुंदर। परम दुरात्मा दशकंधर। षण्मासपर्यंत दुराचार। उगा कैसा असेल। ७९ तो जगदात्मा रघुवीर। जाणोनि सर्वांचें अंतर। जानकीप्रती उत्तर। काय बोलता जाहला। ८० वाद्यें वाजतां राहिलीं। तटस्थ जाहली सुरमंडळी। रीस वानर सकळी।

प्राण-नाथ अर्थात् पति के पास में रहने पर स्त्री द्वारा सब लोगों में खुले (बिना पर्दे के) रहने से उसे सचमुच बिलकुल दोष नहीं लगता।' ७३ उस समय ऐसी आज्ञा (प्राप्त) होने पर (वाहकों ने) शिबिका भूमि पर उतार दी और आवरण को हटाने पर सबने एक बार जनक-कन्या को देखा। ७४ जैसे रत्न-खनि खुली कर दें, वैसे वाहन के बाहर निकलकर त्रिभुवन के स्वामी की रानी विदेहराज की कन्या सीता खड़ी हो गयी जिसके मुख-कमल को देखते ही करोड़ों चन्द्रमा की कान्ति लुप्त हो जाती है, अथवा (जिसे देखकर जान पड़ता था कि) सुन्दरता के सागर का ज्वार उस स्थान पर रूप (आकार) को प्राप्त अर्थात् साकार हो गया है। ७५-७६ इसके पश्चात् जो (वस्तुतः) देवों के अवतार थे, उन भक्त-श्रेष्ठों (वानरों) ने उस जगज्जननी, आदिमाया, विश्व- (की जहाँ से उत्पत्ति हुई उस) खनि को देख लिया। ७७ जानकी को देखते ही देव, गण, गन्धर्व, असुर उस समय सचमुच मन में विकल्प (सन्देह अनुभव) करने लगे। ७८ 'इसका स्वरूप इतना सुन्दर है और रावण परम दुरात्मा है, तो वह दुराचारी छः महीने तक चुप कैसे रहा होगा।' ७९ तब सबका मन (विचार) जानते हुए जगदात्मा श्रीराम सीता के प्रति क्या वचन बोले (सुनिए)। ८० वाद्य बजने से रह गये (अर्थात् रुक गये)। सुर-मण्डली चुप हो गयी। समस्त रीछ, वानर शान्त होकर सुनने लगे। ८१

निवान्तरूप ऐकती । ८१ व्यंकटा भृकुटी करूनि क्रूर । सीतेसी विलोकी रघुवीर । म्हणे आपुला तूंचि विचार । पाहें सत्वर येथोनी । ८२ तुज घेऊन गेला असुर । हा अपवाद वाढला दुर्धर । तो निरसला समग्र । सोडवून तुज आणिलें । ८३ उरावरील उतरला पाषाण । कीं रोग गुल्म गेले विरोन । कीं जन्मान्धासी आले नयन । तेवीं आजि सुख वाटे । ८४ तुज आम्हीं सोडवून । साच केलें आपुलें वचन । आतां करावें वेगें गमन । मना आवडे तिकडेचि । ८५ मी सर्व संग सोडोनी । उदास विचरेन काननीं । कामकामना कांहीं मनीं । उरली नाहीं आमुच्या । ८६ आमुची वार्ता टाकोनि समस्त । मना आवडे तो धरीं पंथ । अथवा भलता नृपनाथ । वरीं तुज आवडे तो । ८७ उभें राहून व्यर्थ कायी । तूं विचरें भलते ठायीं । मोकळ्या तुज दिशा दाही । केल्या आम्हीं एधवां । ८८ मज कैकयीनें घातलें बाहेर । नाहीं सिंहासन आतपत्र । सेवूनियां घोर कान्तार । वनचर सखे केले म्यां । ८९ भक्षावया न मिळे

रघुवीर श्रीराम भौंहों को टेढ़ी करके सीता की ओर देखने लगे और बोले—'यहाँ से अर्थात् अब से झट से तुम ही अपना विचार देखो । ८२ राक्षस तुम्हें ले गया था । यह असह्य अपवाद फैल गया है । तुम्हें छुड़ाकर मैं लाया हूँ, इसलिए वह (अपवाद) पूर्णतः निराकरण को प्राप्त हुआ है । ८३ (मानो) छाती पर से पाषाण उतर गया हो, अथवा रोग की गाँठ का विलय हो गया हो, अथवा जन्मान्ध के आँखें उत्पन्न हो आयी हों; वैसे ही मुझे सुख अनुभव हो रहा है । ८४ तुमको छुड़ाकर हमने अपना वचन सत्य (सिद्ध) किया । अब झट से वहीं जाओ, जहाँ तुम्हारे मन को अच्छा लगता हो । ८५ मैं समस्त संग छोड़ते हुए विरक्त होकर वन में विचरण करूँगा । हमारे मन में (अब) कोई इच्छा-आकांक्षा शेष नहीं रही । ८६ हमारा समस्त विचार छोड़कर तुम मन को जो भाए वह मार्ग अपना लो, अथवा जो तुम्हें अच्छा लगता हो, ऐसे किसी दूसरे राजा का वरण कर लो । ८७ यहाँ व्यर्थ ही खड़े रहने से क्या होगा ? तुम किसी भी अन्य स्थान पर विचरण करो । हमने अब तुम्हारे लिए दसों दिशाएँ मुक्त कर दी हैं । ८८ कैकेयी ने मुझे (घर से) बाहर निकाल दिया । (मुझे) कोई सिंहासन तथा छत्र (प्राप्त) नहीं हुआ । मैंने घोर वन में निवास करते हुए वनचरों को मित्र बनाया है । ८९ मुझे खाने के लिए (अच्छा) अन्न नहीं मिलता; (अतः) मैं कन्द-मूल खाकर

अन्न । राहें कंदमुळें सेवून । वल्कलें करीतसें परिधान । तृणासनीं निजतसें । ९० याकरितां सीते पाहीं । आमुचे संगतीं सुख नाहीं । तरी तूं भलते पंथें जाईं । व्यर्थ काय राहूनियां । ९१ सकळ उपाधि टाकून । मी राहिलों निरंजनीं येऊन । आम्हांसी नावडे दुजेपण । प्रपंचवासना नसेचि । ९२ ऐसें बोलतां रघुनाथ । सीतेसी वाटला कल्पान्त । कीं शब्द-रूपें शस्त्र तप्त । अकस्मात जेवीं खोंचलें । ९३ शब्द नव्हे ते सौदामिनी । अंगावरी पडे ते क्षणीं । कीं शब्दखांडसें-करूनी । तोडिलें वाटे शरीर । ९४ परम गहिंवरें दाटोनी । बोले तेव्हां मंगळभगिनी । अग्नींत करपे कमळिणी । तैसें तेज उतरलें । ९५ नयनीं सुटल्या अश्रुधारा । म्हणे जगद्वंद्या श्रीरामचंद्रा । आनंदकंदा गुणसमुद्रा । करा माझा वध आतां । ९६ षण्मास कष्टी होऊन । आजि दृष्टीं देखिले रामचरण । तों पूर्वकर्म माझें गहन । आडवें विघ्न हें आलें । ९७ आनंदाचा उगवला दिन । म्हणोनि वाटलें समाधान । परी कर्माचें थोर

रहता हूँ; वल्कल पहनता हूं और तृणासन (घास की चटाई) पर सोता हूँ । ९० इसलिए हे सीता, देखो, हमारी संगति में (रहने से) सुख नहीं है । अतः तुम किसी दूसरे मार्ग से जाओ । (मेरे साथ) व्यर्थ ही रहने से क्या होगा ? ९१ समस्त घर-गिरस्थी को छोड़कर मैं अरण्य मे आकर रहता हूँ । हमें दुकेलापन अर्थात् किसी की संगति नहीं भाती और सांसारिक (सुख आदि की) इच्छा हमें है ही नहीं । ' ९२ श्रीराम द्वारा ऐसा बोलने पर सीता को कल्पान्त प्रतीत हुआ, अथवा (ऐसा जान पड़ा कि) उन्होंने जैसे शब्द रूपी तप्त शस्त्र यकायक चुभा दिया हो, अथवा वे मानो शब्द नहीं, बिजली ही उस क्षण शरीर पर पड़ गयी, अथवा जान पड़ा कि शब्द रूपी खड्ग से शरीर को काट डाला हो । ९३-९४ तब अत्यधिक गद्गद होकर सीता बोली । जैसे आग में कमलिनी झुलस जाती हो, वैसे (इन शब्दों की मार से उत्पन्न दुःख रूपी आग में झुलसते हुए) उसके मुख की कान्ति उतर गयी । ९५ आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहने लगीं । वह बोली— ' हे जगद्वंद्य श्रीरामचन्द्र, हे आनन्द-कन्द, हे गुण-समुद्र, अब मेरा वध कर डालिए । ९६ छः महीने कष्ट को प्राप्त हो जाने पर मैंने आज श्रीराम के चरण देखे, तो मेरा बहुत बड़ा पूर्व (जन्म का किया कोई पाप-) कर्म इस विघ्न रूप में बीच में आ गया है । ९७ आनन्द का दिन उदित हुआ, इसलिए मुझे सन्तोष अनुभव हो

विंदान। पुढें आलें आजि पैं। ९८ कामधेनूची काढितां धार। शेराच्या चिकें भरलें पात्र। अमृताच्या घटीं घातला कर। तों विष दुर्धर भरलें असे। ९९ परिसाच्या देवास येऊन। लोहाचा भक्त भेटला पूर्ण। परी तो कदा नव्हे सुवर्ण। कर्म गहन पूर्वींचें। १०० मृगेंद्रें ज्यासी करीं धरिलें। त्यासी जंबुकें येऊन फाडिलें। सुपर्णगृहीं प्राणी राहिले। त्यांसी डंखिलें विखारीं। १०१ याचक लवलाहें धांवला। कल्पतरू-खालीं आला। त्यासी तेणें मार दिधला। शुष्क काष्ठ घेऊनियां। २ व्याघ्र मारूनि लवलाहें। धन्यानें सोडविली गाय। मग काष्ठप्रहारें तीस पाहें। कां हो व्यर्थ मारावें। ३ गंगापूरीं बुडतां प्राणी। कडेस काढिला धांवोनी। मग त्यासी शस्त्रेंकरूनी। कां हो व्यर्थ वधावें। ४ भागीरथी भरूनि लवलाहीं। सागरा शरण गेली पाहीं। तो जरी म्हणे कीं ठाव नाहीं। तरी गति तियेसी काय पुढें। ५ जळचरां ठाव नेदी नीर। पुढें त्यांचा काय विचार। पक्षियांवरी कोपे

रहा था, परन्तु (पूर्व-) कर्म से बड़ा षडयंत्र आज सामने आ गया है। ९८ (यह तो ऐसा ही हुआ कि) किसी के द्वारा कामधेनु को दुहते हुए पात्र थूहर के दूध भर गया है, अथवा अमृत के घट में हाथ डाला, तो (ध्यान में आया कि) दुर्धर विष भरा हुआ है, (अथवा) पारस रूपी देव से लोह रूपी भक्त आते हुए पूर्णतः मिल गया हो, परन्तु वह सुवर्ण न बन रहा है— यह तो पूर्व (-जन्म) का (किया हुआ) गहन कर्म (का फल) है। (अथवा) सिंह ने जिसे हाथ में थाम लिया, अर्थात् आधार दिया, उसे सियार ने आकर फाड़ डाला है, (अथवा) गरुड़ के घर में जो प्राणी (आश्रय लेकर) रह गये, उन्हें साँप ने डस लिया है; अथवा कोई याचक झट से दौड़ा और कल्प-तरु के नीचे आ गया, परन्तु उसे उसने सूखी लकड़ी लेकर पीट लिया है; (अथवा) मालिक ने झट से बाघ को मार डालकर गाय को छुड़ा तो लिया, (परन्तु) फिर देखो, लकड़ी के आघात से उसे वह व्यर्थ ही क्यों मारे। (अथवा) गंगा की बाढ़ (-वाली धारा) में किसी प्राणी की डूबते रहने पर किसी ने दौड़ते हुए उसे बाहर निकाल लिया, तो फिर वह शस्त्र से उसका व्यर्थ ही वध क्यों करे, (अथवा) देखो, गंगा (पानी से) भरकर झट से सागर की शरण में गयी, फिर यदि वह कहे कि (मुझमें तुम्हारे लिए) कोई स्थान नहीं है, तो आगे उसकी क्या स्थिति होगी; (अथवा) यदि जलचर जीवों को पानी अपने में स्थान न दे,

अंबर। तरी त्यांहीं जावें कोठें पां। ६ जळत्या गृहाहूनि काढिलें। मागुती वणव्यांत टाकिलें। करुणासागरासी आलें। भरतें क्रूर नवल हें। ७ मातेनें बाळास दिधलें विष। पित्यानें वधिलें पुत्रास। धन्यानें दंडिलें दासीस। कोणाचें तेथें काय चाले। ८ कांसेसी लाविलें कृपा करून। मध्येंच दिधलें सोडून। तेणें कोणासी जावें शरण। तयावेगळें सांग पां। ९ अन्नार्थी पात्रीं बैसले। ते दातयानें दवडिले। तरी त्यांचें बळ कांहीं न चाले। तैसेंच जाहलें येथें हो। ११० सूर्य कोपला किरणांवरी। समुद्र लहरींवरी दावा करी। अमृत मधुरता बाहेरी। आपली घालूं इच्छीतसे। ११ आपल्या शाखेसीं अबोला। कल्पद्रुमें जैसा धरिला। चंद्रें कळांचा त्याग केला। मेरु कोपला शिखरांवरी। १२ जैसी भागीरथी दोषविहीन। कीं सर्वदा शुचि जैसा अग्न। तैसी बोलतां मी जाण। शुचिष्मंत निजांगें। १३ दशकंधर गेला घेऊन। मोहरीहून

तो आगे उनका क्या विचार होगा; (अथवा) यदि आकाश पक्षियों पर क्रुद्ध हो जाए, तो वे कहाँ जाएँ; अथवा (किसी ने किसी को) जलते घर में से तो निकाल लिया, परन्तु फिर से उसे दावानल में फेंक दिया है। (अथवा) यह आश्चर्य है कि करुणा के सागर को क्रूरता का ज्वार आ गया है। ९९-१०७ यदि माता ने शिशु को विष (खिला) दिया, (अथवा) पिता ने पुत्र का वध किया, (अथवा गृह-) स्वामी ने दासी को दण्ड दिया, तो वहाँ किसी की क्या चल सकती है। १०८ बताइए, कृपा करके (किसी ने किसी को) आधार दिया, परन्तु (तदनन्तर) बीच में ही छोड़ दिया, तो वह उसके सिवा किसकी शरण में जाए। १०९ अन्न पाने की इच्छा करनेवाले, अर्थात् भूखे (खाने के लिए) थाली पर बैठ गये, तो दाता ने उन्हें भगा दिया, तो वहाँ उन (भूखों) की कुछ भी नहीं चलती। यहाँ वैसा ही हुआ है। ११० सूर्य किरणों पर कुपित हुआ है, समुद्र लहरों से शत्रुता करने लगा है, अमृत अपनी मधुरता को बाहर निकाल डालने की इच्छा कर रहा है। ११ (यह तो ऐसा ही हुआ) जैसे कल्पवृक्ष ने अपनी शाखाओं से अनबोला धारण किया हो, (अथवा) चंद्र ने अपनी कलाओं का त्याग किया है, (अथवा) मेरु शिखरों पर कुपित हो गया है। १२ जिस प्रकार भागीरथी दोष-रहित होती है, अथवा जैसे अग्नि नित्य पवित्र होती है, वैसे ही, समझ लीजिए, यह बोलते हुए मैं अपने शरीर से पवित्र हूँ। १३ मुझे रावण ले गया (यह सत्य है, फिर भी)

अन्याय सान । मेरूइतका दंड पूर्ण । समर्थे हा आरंभिला । १४ वातें कांपे कमळिणी । तीवरी वज्र टाकी उचलोनी । अन्याय नसतां कुरंगिणी । व्यर्थ वनीं कां मारिजे । १५ कीं डागाअंगीं सुवर्ण । हें अग्निसंगें कळे पूर्ण । तरी मी आतां दिव्य घेईन । सर्वांदेखतां येथेंचि । १६ नयनीं वाहती अश्रुपात । जानकी वानरां आज्ञापित । म्हणे कुंड करून अद्भुत । अग्नि सत्वर पाजळा । १७ तत्काळ विस्तीर्ण केलें कुंड । काष्ठपर्वत घातले उदंड । अग्निज्वाळा माजल्या प्रचंड । निराळ ग्रासूं धांवती । १८ जगन्माता बोले वचन । जरी मी शुद्ध असेन । तरीच येईन परतोन । पाहावया चरण स्वामींचे । १९ जरी मी दोषी असेन पूर्ण । तरी भस्म करील हा अग्नि । ऐसें तेव्हां बोलून । सरसावली जगन्माता । १२० सुरासुर वानर ऋक्ष मुनीश्वर । अवघे जाहले चिंतातुर । म्हणती हा अनर्थ थोर । सुखामाजी ओढवला । २१ असो रण माजलें देखोनी । वीर

समर्थ ने मेरु जैसा प्रचण्ड दण्ड देना आरम्भ किया है, जब कि अन्याय (अपराध तो) है सरसों (के दाने) से भी छोटा । १४ कमलिनी तो पवन से ही कम्पित हो जाती है, तो (फिर) वज्र उठाकर उसपर क्यों दे रहे हैं ? अपराध नहीं होने पर हिरनी को वन में व्यर्थ ही क्यों मार रहे हैं । १५ अथवा यह अग्नि में (डालने पर) पूर्णतः ज्ञात हो जाता है कि गहने में सोना है (अथवा नहीं) । अतः मैं अब यहीं सबके देखते हुए, (सबके समक्ष अग्नि-) दिव्य कर लूँगी । ' १६ (यह कहते हुए) जानकी की आँखों से आँसुओं की धाराएँ बह रही थीं । (फिर) उसने वानरों को आज्ञा देते हुए कहा-- ' एक बड़ा विशाल कुंड बनाकर झट से अग्नि प्रज्वलित करो । ' १७ (तदनन्तर वानरों ने) एक विशाल कुंड तत्काल (तैयार) किया; और उसमें लकड़ी के (मानो) बहुत बड़े पहाड़ डाल दिये । (फिर) प्रचण्ड अग्नि-ज्वालाएँ बढ़ने लगीं । वे (मानो) आकाश को निगलने के लिए दौड़ रही थीं । १८ (तब) जगन्माता सीता ने यह बात कही— ' यदि मैं शुद्ध (पवित्र) हूँ, तो ही पति के चरणों को देखने के लिए (जीवित) लौट आऊँगी । १९ यदि मैं पूर्णतः दोषी (अपवित्र) होऊँ तो यह अग्नि मुझे भस्म कर डालेगी । ' तब ऐसा बोलते हुए जगन्माता आगे बढ़ी । १२० (यह देखकर) सुर, असुर, वानर, रीछ, मुनीश्वर— सब चिन्तातुर हो गये और बोले— ' यह तो सुख के बीच बड़ा अनर्थ आ पड़ा है । ' २१ अस्तु । जैसे युद्ध को

निर्भय अंतःकरणीं। तैसी अग्नीसमोर विदेहनंदिनी। निर्भय मनीं सर्वथा। २२ कुंडासी करून प्रदक्षिणा। दृष्टीभरी पाहिलें रघुनंदना। कंठींचा सुमनहार काढूनि जाणा। अग्नीवरी टाकिला। २३ सत्य जय सत्य म्हणोनी। त्रिवार गर्जे त्रिजगज्जननी। अग्निकुंडीं तये क्षणीं। उडी घातली अकस्मात। २४ मंगळजननीचें हृदयरत्न। अग्नीमाजी पडतांचि जाण। कन्या गांजिली म्हणून। पृथ्वी कांपे थरथरां। २५ जाहली एकचि आरोळी। शोकार्णवीं पडली कपिमंडळी। सकळ सुरवर व्याकुळीं। प्रळयकाळ भाविती। २६ दशदिशांमाजी दाटला धूर। कढों लागले सप्त समुद्र। वैकुंठकैलासपदें समग्र। डोलों लागलीं तेधवां। २७ थरथरां कांपे अंबर। नक्षत्रें रिचवती अपार। सौमित्रादि वायुकुमर। नेत्रोदकें ढाळिती। २८ म्हणती अग्निमुखींहूनि पुढती। पुन्हां कैंची देखों सीता सती। बोलती सर्व कर्मगती। परम दुर्धर वाटतसे। २९ एक घटिकापर्यंत। अग्नीमाजी जानकी गुप्त।

छिड़े हुए देखकर (भी) वीर पुरुष अन्तःकरण में निर्भय ही बने रहते हैं, वैसे विदेह-नंदिनी सीता अग्नि के सामने मन में पूर्णतः भय-रहित रही। २२ उसने कुंड की परिक्रमा करके श्रीराम को आँखों भर देखा। जान लीजिए, (तत्पश्चात्) गले में पहना हुआ पुष्पहार उतारकर उसने अग्नि में डाल दिया। २३ 'सत्य की जय हो, सत्य की जय हो,' कहते हुए तीनों जगत् की जननी सीता ने तीन बार गर्जन किया और उस क्षण यकायक अग्नि-कुंड में वह कूद पड़ी। २४ समझिए कि मंगल-जननी पृथ्वी के हृदय-रत्न के अग्नि में (कूद) पड़ते ही भूमि इसलिए थरथर काँप उठी कि उसकी कन्या पीड़ा को पहुँच गयी थी। २५ तो अपूर्व चीत्कार हो गया। कपि-मण्डली शोक-सागर में गिर गयी। समस्त सुरवर व्याकुल होते हुए प्रलयकाल ही (हुआ) समझने लगे। २६ दसों दिशाओं में धुआँ भर गया। सातों समुद्र उबलने लगे। उस समय समग्र वैकुंठ तथा कैलास पद हिलने लगे। २७ आकाश थरथर काँप उठा; असंख्य नक्षत्र ढह गये। हनुमान, लक्ष्मण, आदि अश्रु-जल की धाराएँ बहाने लगे। २८ उन्होंने कहा (सोचा)—'अग्नि के मुख में से निकली हुई सती सीता फिर हम कैसे देख पाएँगे?' वे सब बोले—'कर्म की गति परम दुर्धर जान पड़ती है।' २९ एक घड़ी तक सीता अग्नि के अन्दर गुप्त रही, तब फिर मस्तक पर बड़े-बड़े पुष्प धारण किये हुए वह यकायक बाहर

तों मस्तकीं पुष्पें घवघवीत। अकस्मात निघाली। १३० पहिल्या रूपाहून आगळें। शतगुणी रूप जाह्लें। प्रभेनें भूमंडळ भरिलें। आश्चर्य जाह्लें ते वेळीं। ३१ मागें अरण्यकाण्डीं कथा। रेखेंत जाह्ली गुप्त सीता। तें स्वरूप प्रकटलें आतां। मिष दिव्याचें करूनियां। ३२ सीतास्वरूप जाह्ला होता अग्न। तेणें राक्षसवन जाळून। आपुल्या स्वरूपें येऊन। दिव्यमिषें मिळाला। ३३ सीता रामाची चिच्छक्ती। ती गेलीच नाहीं लंकेप्रती। हे खूण साधु संत जाणती। जे कां वेदान्ती सज्ञान। ३४ असो जानकी देखतां साचार। जाह्ला एकचि जयजयकार। अष्टादश पद्में वानर। नमस्कार घालिती। ३५ मग पुष्पांचे संभार। सीतेवरी टाकिती सुरवर। म्हणती सीता सती पवित्र। सर्व नमस्कार घालिती। ३६ सौमित्र सुग्रीव बिभीषण। जानकीस घालिती लोटांगण। हनुमंत नमून चरण। आनंदें पूर्ण नाचतसे। ३७ असो श्रीरामाकडे सीता सती। चालिली तेव्हां हंसगती। मग

निकली। ३० उसका रूप (-सौन्दर्य) पहले रूप (-सौन्दर्य) से सौ गुना अधिक अनोखा हो गया था। उसकी कान्ति से भू-मण्डल भर गया। उस समय एक आश्चर्य हो गया। १३१

(इससे) पहले अरण्य काण्ड में यह कथा (कही) है कि सीता राख में गुप्त हो गयी। अब (उसका) वही स्वरूप (अग्नि-) दिव्य का निमित्त करके प्रकट हो गया। १३२ (वस्तुतः) अग्नि (देव ही) सीता-स्वरूप (में परिवर्तित) हुआ था। राक्षस (-समाज रूपी) वन को जलाकर अपने (मूल-) स्वरूप को प्राप्त होकर दिव्य के बहाने मिल गया। १३३ (वस्तुतः) सीता श्रीराम की चिच्छक्ति है; वह लंका गयी ही नहीं थी। जो साधु और सन्त वेदान्त के ज्ञाता तथा ज्ञानी हैं, वे इस संकेत को जानते हैं। १३४

अस्तु। जानकी को देखते ही सचमुच अद्वितीय जयजयकार हो गया। (फिर) अठारह पद्म वानरों ने (सीता को) नमस्कार किया। ३५ तब देवों ने सीता पर पुष्प-राशियाँ बरसा दीं और कहा— 'सती सीता पवित्र है।' (फिर) उन सबने उसे (साष्टांग) नमस्कार किया। ३६ लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण ने सीता को दण्डवत् प्रणाम किया। (फिर) हनुमान उसके चरणों का नमन करके पूर्ण आनन्द से नाचने लगा। ३७ अस्तु। तब सती सीता हंस (की-सी) गति से रघुपति श्रीराम की ओर

उठोनियां रघुपती । उभा ठाकला ते वेळे । ३८ श्रीराममुख विलोकून । सीता करी हास्यवदन । धांवोनि दृढ धरिले चरण । जगद्गुरूचे ते काळीं । ३९ मग जानकीस उठवोनी । क्षेम देतसे कोदंडपाणी । वामांकावरी मग घेउनी । रघुनाथ तेव्हां बैसला । १४० नवमेघरंग रघुनाथ । जानकी विद्युल्लता तळपत । सीताराम देखोनि समस्त । जयजयकार करिती तेधवां । ४१ असुरांचीं वाद्यें ते काळीं । महागजरें गर्जों लागलीं । आज्ञा घ्यावया ते काळीं । देव उदित जाहले । ४२ सदाशिव म्हणे रघूत्तमा । पुराणपुरुषा पूर्णब्रह्मा । आनंदकंदा निजसुखधामा । पूर्णकामा सर्वेशा । ४३ रविकुळभूषणा जलजनेत्रा । जनकजामाता नीलगात्रा । सच्चिदानंदा सुहास्य-वक्त्रा । धन्य लीला दाविली । ४४ चराचरजीवचित्तचाळका । अनंतब्रह्माण्डपाळका । राक्षस मर्दूनि सकळिकां । निजभक्तां तारिलें । ४५ युगानुयुगीं धरूनि अवतार । मर्दिले पापी दुष्ट असुर । परी ये अवतारींचें चरित्र । अगाध दाविलें श्रीरामा । ४६ माझिये मनींचें आर्त बहुत । केव्हां मी देखेन

चल दी, तो उस समय वे उठकर खड़े हो गये । ३८ श्रीराम के मुख को देखकर सीता मुस्करा दी और उस समय दौड़ते हुए जाकर उसने उन जगद्गुरु के पाँव पकड़ लिये । ३९ तब जानकी को उठाकर चापपाणि श्रीराम ने उसका आलिंगन किया और फिर वे उसे बायीं गोद में लेकर बैठ गये । १४० श्रीराम नवमेघ के-से श्याम वर्ण के थे, तो सीता मानो चमकती हुई विद्युल्लता (ही) थी । उस समय सीता और श्रीराम को देखकर सबने जयजयकार किया । ४१ उस समय असुरों के वाद्य महान् गर्जन के साथ गूँज उठे । देव (जाने की) आज्ञा लेने के लिए (वहाँ) उद्यत हो गये । ४२ शिवजी ने कहा— ' हे रघूत्तम, हे पुराण-पुरुष, हे पूर्णब्रह्म, हे आनन्द-कन्द, हे आत्म-सुख-धाम, हे पूर्णकाम, हे सर्वेश, हे रविकुल-भूषण, हे कमल-नेत्र, हे जनक-जामाता, हे नील-गात्र (श्याम शरीरी), हे सच्चिदानन्द, हे सुहास्यवदन, तुम धन्य हो, जो ऐसी लीला दिखला दी । ४३-४४ हे चराचर-जीवों के चित्त के चालक, हे अनन्त ब्रह्माण्डों के पालन-कर्ता, तुमने समस्त राक्षसों का विनाश करके अपने भक्तों को तैरा दिया । ४५ युग-युग में अवतार धारण करके तुमने पापी एवं दुष्ट असुरों का विनाश किया । परन्तु हे श्रीराम, इस अवतार में तुमने अद्‌भुत चरित्र (लीला) प्रदर्शित किया । ४६ मेरे मन की यह

रघुनाथ। तुझे नामें सकळ शान्त। हाळाहळ जाहलें। ४७ आतां सीतेसहित रामचन्द्रा। सत्वर जावें अयोध्यापुरा। ऐसें बोलतां कर्पूरगौरा। राघव काय बोलत। ४८ म्हणे माझें तूं आराध्य दैवत। अनादिसिद्ध कैलासनाथ। विश्वंभर तूं विश्वातीत। करणी अद्भुत दाविसी। ४९ ब्रह्माण्ड जाळी हाळाहळ। तें तुवां कंठीं धरिलें तत्काळ। लोक सुखी रक्षिले सकळ। परम दयाळू तूं होसी। १५० माझी स्तुति मांडिली दयाळा। परी मी काय तुजवेगळा। ऐसें श्रीराम बोलतां ते वेळां। वदता जाहला कमळोद्भव। ५१ म्हणे क्षीराब्धिवासिया नारायणा। मधुकैटभारे भवभंजना। अनंतवेषा अनंतवदना। अनंतनयना अनंता। ५२ परमात्मया तूं माझा तात। नाभिकमळीं जन्मलों यथार्थ। सृष्टि रचिली हे अद्भुत। तुझे आज्ञेकरूनियां। ५३ सृष्टीमाजी माजले असुर। रावणकुंभकर्णादि क्रूर। मग तुवां धरिला अवतार। अयोध्येमाजी या रूपें। ५४ पितृआज्ञेचें करूनि मिष। वना

तीव्र इच्छा थी कि मैं कब रघुनाथ को देख पाऊँगा। तुम्हारे नाम से हलाहल (से उत्पन्न समस्त दाह) का शमन हुआ। ४७ 'हे रामचंद्र, अब सीता-सहित झट से अयोध्यापुरी जाना।' (सुनिए) कर्पूरगौर शिवजी द्वारा ऐसा कहने पर श्रीराम ने क्या कहा। ४८ वे बोले— 'तुम मेरे आराध्य देवता हो। हे अनादि-सिद्ध कैलासनाथ, तुम विश्वम्भर हो, विश्वातीत हो। तुमने अद्भुत करनी (करके) दिखायी है। ४९ जब हलाहल ब्रह्माण्ड को जलाने लगा, तो तुमने उसे तत्काल अपने कण्ठ में धारण किया और समस्त लोकों को तुमने सकुशल तथा सुरक्षित रखा। तुम (इस प्रकार) परम दयालु हो। १५० हे दयालु (शिवजी), तुमने मेरी स्तुति आरम्भ की, परन्तु क्या मैं तुमसे भिन्न हूँ?' उस समय (शिवजी के प्रति) राम द्वारा ऐसा बोलने के पश्चात् ब्रह्मा बोलने लगा। १५१ उसने कहा—'हे क्षीरसागर के निवासी नारायण, हे मधु-कैटभ के शत्रु, हे भव-भंजन (संसार के बन्धनों को काटनेवाले), हे अनन्त वेषों के धारी, हे अनन्त-वदन, हे अनन्त-नयन, हे अनन्त, हे परमात्मा, तुम मेरे पिता हो। तुम्हारी नाभि (में उद्भूत) कमल में मैं जन्म को प्राप्त हुआ और तुम्हारी आज्ञा से मैंने इस अद्भुत सृष्टि की रचना की। ५२-५३ सृष्टि में रावण, कुम्भकर्ण आदि क्रूर असुर उन्मत्त हो गये थे। तब तुमने अयोध्या में इस (दाशरथी के) रूप में अवतार

आलासी परमपुरुष। सीतेचे निमित्तें राक्षसांस। वधोनि भक्त रक्षिले। ५५ राघव म्हणे कमळासना। विश्वजनका वेद-पाळणा। सकळललाटपट्टलेखना। जाणसी खुणा सर्वहि तूं। ५६ तुम्हांआम्हांसीं वेगळेपण। मुळापासूनि नाहीं पूर्ण। परस्परें ठाउकी खूण। तरी बाहेर स्तुति किमर्थ। ५७ पौर्णिमेस उच्चंबळे समुद्र। तैसा बोलता जाहला देवेंद्र। हे अयोध्यानाथा जगदुद्धार। ब्रह्मानंदा परात्परा। ५८ आम्हांसी उपकार केले बहुत। तें वेदांसही नव्हे गणित। बंधच्छेदक तूं रघुनाथ। अपरिमित गुण तुझे। ५९ तरी माझे मनीं एक आर्त। तें तूं पूर्णकर्ता रघुनाथ। कांहीं आज्ञा मज त्वरित। केली पाहिजे ये काळीं। १६० मी दासानुदास अनन्य। मज कांहीं सांगावें कारण। तुझी आज्ञा मस्तकीं वंदीन। मुकुटमणि जयापरी। ६१ ऐसें बोलतां देवेंद्र। परम सुखावला रामचन्द्र। म्हणे सहस्राक्षा

धारण किया। ५४ हे परम पुरुष, पिता की आज्ञा का बहाना करके तुम वन में आये और सीता के निमित्त राक्षसों का वध करके तुमने भक्तों की रक्षा की।' ५५ (यह सुनकर)श्रीराम ने ब्रह्मा से कहा— 'हे विश्व-जनक, हे वेद-पालक, हे सकल-जनों के ललाट रूपी पट्ट पर (भाग्य सम्बन्धी) लेखन करनेवाले, तुम सभी संकेतों को जानते हो। ५६ तुम और हममें पूर्णतः मूल से ही अलगाव नहीं है। (हमें) एक-दूसरे के संकेत विदित हैं। इसलिए यह बाहर (से की जानेवाली) स्तुति किसलिए (कर रहे हो)।' ५७ (तदनन्तर) पौर्णिमा के दिन समुद्र (जिस प्रकार) उमड़ उठता है, उस प्रकार (श्रीराम के दर्शन होने पर जिसके हृदय-सागर में प्रेम का ज्वार आ गया, वह) देवेन्द्र बोला— 'हे अयोध्यानाथ, हे जगत् के उद्धारक, हे ब्रह्मानन्द, हे परात्पर। ५८ तुमने हमारे (जो) बहुत उपकार किये हैं, उनकी गिनती वेदों द्वारा भी नहीं हो सकती। हे रघुनाथ, तुम (सांसारिक) बन्धनों के काटनेवाले हो; तुम्हारे गुण अपरिमित हैं। ५९ हे रघुनाथ, मेरे मन में (जो) एक उत्कट कामना है, उसके पूर्ति-कर्ता तुम हो। अतः इस समय तुम्हें मुझे झट से कोई आदेश देना चाहिए। १६० मैं तुम्हारा अनन्य दासानुदास हूँ। (अतः) मुझे कोई काम बता दो। मैं मुकुट-मणि की भाँति तुम्हारी आज्ञा का सिर झुकाकर वन्दन करूँगा, अर्थात् उसे शिरोधार्य समझूँगा।' ६१ देवेन्द्र द्वारा ऐसा कहने पर रामचन्द्र परम सुख को प्राप्त हो गये और बोले-- 'हे सहस्र-नयन, तुम चतुर हो। उचित समय पर तुमने मेरा उपकार किया है। ६२ तुमने रणभूमि में दिव्य रथ भेज

तूं चतुर। समयीं उपकार केलासी। ६२ रणीं पाठविला दिव्य रथ। हा आम्हांसी उपकार बहुत। आम्ही जय पावलों अद्भुत। याच रथीं बैसोनियां। ६३ इंद्र म्हणे श्रीरामा। भक्तकामकल्पद्रुमा। तुझिया प्रसादें मंगलधामा। आम्ही स्वपदीं सुखी असों। ६४ रथ पाठविला समयासी। म्हणोनि उपकार मानिसी। चकोरांनीं काय चन्द्रासी। तृप्त करावें कवण्या गुणें। ६५ चातकें तृप्त केला जलधर। चक्रवाकांनीं दिवाकर। समुद्राची तृप्ति थिल्लर। कोण्या गुणें करील पैं। ६६ वैरागरापुढें ठेविली गार। क्षीराब्धीपुढें ठेविलें तक्र। परम धनाढ्य कुबेर। त्यासी कवडी समर्पिली। ६७ आतां असो हे शब्दरचना। मज कांहीं करावी आज्ञा। म्हणोनि इंद्र लागला चरणा। प्रेमादरेंकरूनियां। ६८ मग इंद्रास तेव्हां उठवून। बोले रामचन्द्र सुहास्यवदन। जेणेंकरूनि कर्ण। तृप्त होती सकळांचे। ६९ म्हणे वेदशास्त्रें बहुत। धर्माधर्मीं निवडिती पंडित। परी एकचि गोष्टींत समस्त। पापपुण्य निवडिलें। १७० परोपकार तें पुण्य अद्भुत। परपीडा तेंचि

दिया था। यह हमारा बहुत (बड़ा) उपकार हुआ। (उससे) हम इसी रथ में बैठकर अद्भुत जय को प्राप्त हो गये हैं।' ६३ (यह सुनकर) इंद्र ने कहा—'हे श्रीराम, भक्तों के हे कल्पवृक्ष, हे मंगलों के निवास-स्थान, हम अपने-अपने स्थान पर तुम्हारी कृपा से सकुशल हैं। ६४ (आवश्यकता के) समय पर मैंने रथ भेजा, इसलिए उसे तुम उपकार समझ रहे हो। (परन्तु) चकोर चन्द्र को किस गुण से तृप्त करें? ६५ (यह तो वैसे ही हुआ कि) चातक ने मेघ को तृप्त किया हो, चक्रवाकों ने सूर्य को तृप्त किया हो। छोटा-सा गड्ढा किस गुण से समुद्र को तृप्ति दे सकेगा? ६६ (यह तो वैसे ही हुआ कि) हीरे की खान के सम्मुख चकमक रखा हो, क्षीर-सागर के सम्मुख छाछ रखा हो, (अथवा) जो परम धनाढ्य हैं, उस कुबेर को किसी ने कौड़ी समर्पित की हो। ६७ अस्तु। यह शब्दों की रचना अर्थात् शब्दों का आडम्बर युक्त प्रयोग रहने दो। मुझे कुछ आदेश दो।' (यह) कहकर इंद्र प्रेम और आदर के साथ श्रीराम के पांव लग गया। ६८ फिर तब इंद्र को उठाकर श्रीराम ने मुस्कराते हुए कहा, जिससे सबके कान तृप्त हो गये। ६९ वे बोले—'पंडितजन, जो बहुत से वेदशास्त्र हैं, उनको देखकर धर्म-अधर्म का निर्णय करते हैं; परन्तु एक ही बात के आधार पर सब पाप-पुण्य का निर्धारण किया है। ७० परोपकार

पाप यथार्थ । शोधावे किमर्थ ग्रंथ बहुत । मुख्य इत्यर्थ हाचि पैं । ७१ तरी ऐसा तो परोपकार । वानरां घडला अपार । मज साह्य होऊनि समग्र । यश बहुत जोडिलें । ७२ समरांगणीं दिधले प्राण । असंख्य पडले प्रेतें होऊन । परी त्यांचीं कुटुंबें आप्तजन । शोकार्णवीं बुडतील । ७३ तरी ते माझे सखे वानर । पुनः जीववावे समग्र । कोणाचे अंगावरी अणुमात्र । घाय क्षत न दिसावें । ७४ अवघे आरोग्य होऊन । सुखी असोत बहुत दिन । त्यांचें जें वसतें वन । सदा सुफल तें असो । ७५ तरी हीच आज्ञा सत्वरा । सिद्धी पाववीं अमरेश्वरा । ऐसें बोलतां परात्परसोयरा । आनंद जाहला समस्तांसी । ७६ इंद्रें चरणीं माथा ठेवून । म्हणे जीववितों न लगतां क्षण । याउपरी सीतारमण । आज्ञा देत सकळांसी । ७७ देव बैसोनि चालिले विमानीं । धडकती दुंदुभीच्या ध्वनि । दिव्य घंटा वाजती गगनीं । आनंद मनीं न समाये । ७८ शक्रआज्ञा होतां सत्वरी ।

अद्भुत पुण्य है, पर-पीड़न ही वस्तुतः पाप है । बहुत-से ग्रन्थ किसलिए ढूंढ़ लें— मुख्य अर्थ तो यही है । ७१ इसलिए ऐसा परोपकार वानरों द्वारा अपार हुआ है । मेरे पूर्णतः सहायक होकर उन्होंने बहुत जस इकट्ठा किया है । ७२ उन्होंने युद्ध-भूमि में (मेरे लिए) प्राण (त्याग) दिये । अनगिनत वानर (मेरे लिए) शव होकर पड़े हैं । परन्तु (इस समाचार को जानने पर) उनके परिवार तथा आप्तजन शोक-सागर में डूब जाएँगे । ७३ इसलिए (हे देवेन्द्र), मेरे उन समस्त वानर मित्रों को फिर से जीवित कर देना; किसी के भी शरीर में अणु मात्र (तक) घाव अथवा खरोंच न दिखायी दे । ७४ वे सब स्वास्थ्य-युक्त होकर बहुत दिन सकुशल (रहने योग्य) हो जाएँ । उनका जो निवास-स्थान वाला वन है, वह नित्य अच्छे फलों से युक्त हो जाए । ७५ (यही मेरी आज्ञा है,) अतः हे देवेश्वर, मेरी यह आज्ञा झट से सिद्धि को प्राप्त कर देना । ' उन परात्पर-सखा के ऐसा बोलने पर सबको आनन्द हुआ । ७६ (तदनन्तर) इंद्र ने (श्रीराम के) चरणों पर मस्तक रखते हुए कहा— 'क्षण न लगते (उन सबको) जीवित कर देता हूँ । ' इसके पश्चात् श्रीराम ने सबको जाने की अनुमति दी । ७७

देव विमानों में बैठकर चल दिये । दुंदुभियों, अर्थात् नगाड़ों की ध्वनि धड़धड़ाने लगी । आकाश में दिव्य घण्टे बज रहे थे । (लोगों का) आनन्द मन में नहीं समा रहा था । ७८ इंद्र की आज्ञा होने पर

पीयूषमेघ वोळंबला अंबरीं । गंभीर गर्जना ते अवसरीं । करिता जाहला बलाहक । ७९ पश्चिमेचा ढग उठत । तैशा सौदामिनी लखलखत । रणमंडळ लक्षोनि समस्त । पीयूषवृष्टि जाहली । १८० एक घटिकापर्यंत । अपार वर्षलें अमृत । वानर उठविले समस्त । निद्रिस्थ जागे होत जैसे । ८१ श्रीरामापुढें जाऊन । समस्त घालिती लोटांगण । पर्जन्य गेला उघडोन । सहस्रनयनआज्ञेनें । ८२ आक्षेप घेती श्रोते चतुर । वानर आणि रजनीचर । एके ठायीं पडिले समग्र । तरी असुर कां न उठवी । ८३ वक्ता म्हणे नाटकरामायण । तेथें ही कथा संपूर्ण । स्वयें बोलिला अंजनीनंदन । अप्रमाण कोण म्हणे । ८४ तें समस्त पाहूनि साचार । प्रत्युत्तर देत श्रीधर । तरी शंकरें भूतावळी समग्र । आधींच होत्या पाठविल्या । ८५ त्यांसी आज्ञापिलें शंकरें । न भक्षावीं कपींचीं शिरें । परी राक्षसांचींच कलेवरें । तुम्हीं निवडून भक्षिजे । ८६ खोटयांतून

आकाश में झट से अमृत का मेघ उमड़ आया और उस समय वह मेघ गम्भीर गर्जन करने लगा । ७९ पश्चिम दिशा से मेघ (आगे ऊपर) उठने लगा । वैसे ही बिजलियाँ चमकने लगीं । (फिर) समस्त रण-भूमि को लक्ष्य करके अमृत की बौछार हो गयी । ८० एक घड़ी तक अमृत अपार बरसता रहा । (इस प्रकार अमृत से) इंद्र ने समस्त (मृत) वानरों को (फिर से यों) जीवित (करके) उठा लिया, जैसे सोये हुए ही जाग उठते हों । ८१ (फिर) उन सबने श्रीराम के सम्मुख जाकर दण्डवत् नमस्कार किया । (इधर) इंद्र की आज्ञा से वर्षा खुल (रुक) गयी । १८२

(इसपर) चतुर श्रोताओं ने यह आपत्ति उठायी— 'वानर और राक्षस— सब एक स्थान पर पड़े (हुए) थे, तो फिर राक्षसों को क्यों नहीं (जीवित कर) उठाया ?' ८३ (इस आपत्ति के निराकरण के लिए) वक्ता (कवि श्रीधर) कहता है— 'एक रामायण (पर आधारित हनुमन्—) नाटक है । वहाँ (उसमें) यह सम्पूर्ण कथा है । अंजनीनन्दन ने स्वयं जो कहा है, उसे अप्रमाण (असत्य) कौन कहेगा ?' ८४ उस समस्त (कथन) को सचमुच देखकर श्रीधर ने प्रत्युत्तर दिया— 'शिवजी ने समस्त भूतावलियों (भूत-समूहों) को पहले ही भेजा था । ८५ शिवजी ने उन्हें आज्ञा दी थी— कपियों के सिर न खाना, फिर भी राक्षसों ही के शरीर तुम चुनकर खा लो । ८६ (फलस्वरूप) जिस प्रकार बनावटी

खरें निवडे। कीं तांदुळांतून काढिले खडे। हिऱ्यांमधूनि गारतुकडे। परीक्षक निवडिती। ८७ तैसी भूतावळी निश्चिती। राक्षसकलेवरें भक्षिती। सागरीं भिरकाविल्या अस्थि। न उरे क्षितीं कांहींच। ८८ पीयूषवृष्टि होतां अपार। उठिले अवघेही वानर। ऐसें ऐकतां प्रत्युत्तर। श्रोते पंडित सुखावती। ८९ म्हणती वक्ता होय अति चतुर। शोधक दृष्टि तुझी अपार। संशय निरसला समग्र। जैसा अंधार सूर्योदयें। १९० ग्रासांमाजी हरळ काढून। पुढें चाले जैसें भोजन। तैसा संशय निरसला पूर्ण। अनुसंधान ऐका पुढें। ९१ रघुनाथ म्हणे बिभीषणा। आतां आम्हांस देईं आज्ञा। ऐसें बोलतां रामराणा। बिभीषण दाटला गहिंवरें। ९२ तो नूतन लंकानाथ। स्फुंदस्फुंदोन तेव्हां रडत। श्रीरामचरणीं मिठी घालीत। पद क्षाळीत नयनोदकें। ९३ म्हणे लंकाराज्य मज देऊन। श्रीरामा तूं जातोसी टाकून। अनंत राज्यें ओंवाळून। चरणावरूनि

(नकली) पदार्थों में से खरा (शुद्ध पदार्थ) चुनते हैं, अथवा चावल में से कंकड़ छाँट निकालते हैं, अथवा पारखी हीरों में से चकमक के टुकड़े चुन लेते हैं, उस प्रकार उन भूत-समूहों ने (प्रेतों में से) निश्चय ही राक्षसों के शरीर (चुनकर) खा डाले; उनकी हड्डियों को उछालकर सागर में फेंक डाला; (फलस्वरूप रण-) भूमि में कुछ भी शेष नहीं रहा था। ८७-८८ अमृत की असीम वर्षा होने पर सभी वानर उठ गये।' ऐसे प्रत्युत्तर को सुनते ही विद्वान् श्रोता सुख को प्राप्त हो गये। ८९ वे बोले—'यह वक्ता तो अति चतुर है। (हे वक्ता,) तुम्हारी गवेषणात्मक दृष्टि असीम है। जैसे सूर्योदय से अन्धकार दूर होता है, वैसे (हमारा) समस्त सन्देह नष्ट हो गया। ९० जिस प्रकार ग्रास (कौर) में से कंकड़ निकालने पर भोजन आगे चलता है, उस प्रकार (कथा के बीच प्रस्तुत) संदेह का पूर्णतः निराकरण कर देने पर आगे आख्यान सुनिए। १९१

श्रीराम ने विभीषण से कहा—'अब हमें (लौट जाने की) आज्ञा दो।' श्रीराम के ऐसा बोलने पर विभीषण का कंठ भावावेग से रुँध गया। ९२ लंका का वह नया राजा तब सुबक-सुबककर रोने लगा। फिर वह श्रीराम के चरणों से लिपट गया और नयन-जल (आँसुओं) से उनके पाँव धोने लगा। ९३ (फिर) वह बोला—'हे श्रीराम, लंका का राज मुझे देकर आप छोड़कर जा रहे हैं। (वस्तुतः) आपके चरणों पर अनगिनत राज्य निछावर कर दें। ९४ (जहाँ) आपकी भक्ति पर

टाकावीं । ९४ तुझिया भजनावरून । मोक्ष सांडावा ओंवाळून । तेथें लंकेचें राज्य तृण । मज काय हें करावें । ९५ मी अयोध्येसी येईन सांगातें । सेवा करून राहीन तेथें । ऐसें बोलता रघुनाथें । हृदयीं धरिलें बिभीषणा । ९६ प्राणसखया तुझे हृदयीं । मी वसतों सर्वदाही । परी तूं अयोध्येस येईं । समागमें बोळवीत । ९७ अयोध्येचा सोहळा पाहून । तूं आणि मित्रनंदन । मग तेथून परता दोघेजण । आपापल्या राज्यांसी । ९८ परम संतोषे बिभीषण । आणविलें पुष्पक विमान । अत्यंत विशाळ गुणगहन । आज्ञा पाळीत प्रभूची । ९९ चन्द्राहूनि प्रभा अत्यंत । मुख्य सिंहासन विराजत । दिव्य नवरत्नीं मंडित । झालरी शोभत मुक्तांची । २०० पृथ्वी सांठवे संपूर्ण । ऐसें क्षणें होय विस्तीर्ण । इच्छा होतांचि संकीर्ण । धाकुटें होय तेव्हांचि । २०१ ऐसें विमान ते काळीं । सेवकें आणिलें रामाजवळी । तर्जनी लावूनियां भाळीं । रघूत्तमें वंदिलें । २ सीतेची अंगुली धरून । दिव्य हिऱ्यांचें सोपान ।

मोक्ष निछावर करके छोड़ दें, (छोड़ देना उचित है), वहाँ लंका का राज्य घास (की पत्ती के बराबर) है । मुझे इससे क्या करना है । ९५ मैं आपके साथ अयोध्या आऊँगा; वहाँ आपकी सेवा करते हुए रहूँगा । ' ऐसा बोलने पर विभीषण को श्रीराम ने हृदय से लगा लिया (और) कहा— ' हे प्राण-सखा, मैं नित्य ही तुम्हारे हृदय में निवास करता हूँ, फिर भी विदा करते हुए मेरे साथ अयोध्या (तक) चलो । ९६-९७ अयोध्या में (सम्पन्न किया जानेवाला) आनन्दोत्सव देखकर तुम और सुग्रीव दोनों जने वहाँ से अपने-अपने राज्य में लौट जाओ । ' ९८ (यह सुनकर) विभीषण परम सन्तुष्ट हुआ । वह उस पुष्पक विमान को लिवा लाया, जो अत्यन्त विशाल तथा गुणों में अथाह था । वह अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करता था । १९९ उसकी कान्ति चंद्र (की कान्ति) से भी अधिक थी । उसमें दिव्य रत्नों से सुशोभित एक मुख्य सिंहासन था । ऊपर मोतियों की झालर शोभायमान थी । २०० वह (विमान) क्षण में ऐसा विस्तीर्ण हो सकता था कि उसमें सम्पूर्ण पृथ्वी समा जाए; और इच्छा होने पर झट वह सँकरा-छोटा हो सकता था । २०१ उस समय (विभीषण का) सेवक ऐसा विमान श्रीराम के पास ले आया । श्रीराम ने तर्जनी मस्तक से लगाकर उसका वन्दन किया । २ सीता की अंगुली को थामे हुए श्रीराम दिव्य हीरों की सीढ़ियों के बने उसी मार्ग से उस (विमान) में

त्याचि मार्गें रघुनंदन। वरी चढला ते काळीं। ३ सीतेसमवेत रघुनाथ। मुख्य सिंहासनीं बैसत। अष्टादश पद्में समस्त। वानर वरी चढिन्नले। ४ छपन्न कोटी गोलांगूल। बाहात्तर कोटी रीस सकळ। बिभीषणाचें असंख्य दळ। वरी आरूढलें तेधवां। ५ अष्टादश महाअक्षौहिणी। लागली वाद्यांची ध्वनी। अष्ट जुत्पती अष्ट कोणीं। राघवापाशीं उभे राहिले। ६ मृगांकवर्ण चामरें घेऊन। अंगद आणि लक्ष्मण। वरी विराजती दोघेजण। समसमान दोहींकडे। ७ असो आतां रघुनाथ। लक्षूनियां अयोध्येचा पंथ। राजाधिराज समर्थ। जाता झाला ते काळीं। ८ रामविजय रत्नखाणी। उत्तर-काण्ड हें मुकुटमणी। पुढें श्रवण करावें सज्जनीं। ब्रह्मानंदें-करूनियां। ९ ब्रह्मानंद यतीश्वर। पूर्णज्ञानाचा समुद्र। त्याच्या चरणाब्जीं श्रीधर भ्रमर। अभंग रुंजी घालीतसे। २१० स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत पंडित चतुर। चतुस्त्रिंशत्तमोध्याय गोड हा। २११

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

चढ़ गये। ३ श्रीराम सीता-सहित मुख्य सिंहासन पर बैठ गये। (फिर) समस्त अठारह पद्म वानर ऊपर चढ़ गये। ४ तब छप्पन करोड़ गोलांगुल, बहत्तर करोड़ रीछ तथा विभीषण की समस्त सेना, सेना के अनगिनत सैनिक ऊपर चढ़ गये। ५ अठारह महा अक्षौहिणी वाद्य (बजते हुए) ध्वनि उत्पन्न करने लगे। आठ वीर पुरुष आठ कोणों में श्रीराम के समीप खड़े रहे। ६ उस(विमान)में अंगद और लक्ष्मण दोनों जने चंद्र-वर्ण चामर लिये हुए दोनों ओर सम-समान विराजमान थे। ७ अस्तु। उस समय राजा-धिराज समर्थ श्रीराम अयोध्या के मार्ग को लक्ष्य करके चल दिये। २०८

यह श्रीराम-विजय नामक ग्रंथ मानो रत्नों की खानि है। (उसका) उत्तर काण्ड (मानो) मुकुटमणि है। सज्जन ब्रह्मानन्द के साथ उसका आगे श्रवण करें। २०९ यतीश्वर गुरु ब्रह्मानन्द पूर्ण (आत्म-) ज्ञान के सागर हैं। उनके चरण-कमलों में श्रीधर कवि रूपी भ्रमर अनवरत गुंजारव कर रहा है। २१०

स्वस्ति। श्रीराम-विजय नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। उसके इस चौंतीसवें मधुर अध्याय का चतुर पंडित सदा श्रवण करें। २११

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३५

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । देहबुद्धिलंका घेऊन । मारिला अहंकृति रावण । स्थापूनि भाव बिभीषण । छत्र धरिलें तयावरी । १ ज्ञानकळा जनकतनया । भेटली येऊन रघुराया । मग स्वानंदविमानीं बैसोनियां । आत्माराम चालिला । २ लागला वाद्यांचा गजर । राघवकीर्ति गाती वानर । योजनें दोन सहस्र । विमान तेव्हां उंचावलें । ३ जैसा पौर्णिमेचा रोहिणीवर । पश्चिमेस जाय सत्वर । कीं समुद्रीं जहाज थोर । लोटीत समीर वेगेंसी । ४ तैसें वेगीं जात विमान । घंटा वाजती घणघण । दिव्यमणिमय प्रभा घन । उत्तरपंथें जातसे । ५ ऐसा जात रविकुळमंडण । जो असुरकुळकाननदहन । वामांगीं अवनिजागर्भरत्न । सौदामिनी मेघीं जैसी । ६ तयेप्रती बोले रघुनंदन । कान्ते खालीं पाहें विलोकून । लंका दिसे देदीप्यमान । हेमवर्ण विशाळ । ७

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । (अस्तित्वसम्बन्धी) अहंकार (भावना रूपी) लंका को लेकर और (अपने कार्यसम्बन्धी) घमंड करनेवाले रावण को मार डालकर (श्रीराम ने भक्ति-) भाव रूपी विभीषण को (राज्यासन पर) स्थापित करते हुए (उसपर राज्य-) छत्र धर (धरवा) दिया । १ (तदनन्तर) अध्यात्म विद्या रूपी सीता आकर श्रीराम से मिली । फिर वे आत्माराम श्रीराम स्वानन्द रूपी विमान में बैठकर चल दिये । २ तो वाद्यों का गर्जन होने लगा । वानर श्रीराम की कीर्ति का गान कर रहे थे । तब विमान दो सहस्र योजन ऊँचाई को प्राप्त हो गया । ३ जिस प्रकार पौर्णिमा का चंद्र पश्चिम की ओर झट से जाता है, अथवा समुद्र में पवन बड़े जहाज को (बड़े) वेग से धकेलता है, उस प्रकार वह विमान वेग-पूर्वक जा रहा था । (उसमें बँधी) घंटिकाएँ घनघनाहट के साथ बज रही थीं । (जान पड़ता था कि) मानो दिव्य रत्न की कान्ति से युक्त कोई मेघ उत्तर दिशा के मार्ग पर जा रहा हो । ४-५ जो राक्षस-कुल रूपी कानन को जला डालने वाले (अग्नि-स्वरूप) हैं, वे रवि-कुल-मण्डन श्रीराम जा रहे थे । उनकी बायीं गोद में (पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न रत्न-स्वरूपा) सीता वैसे विराजमान थी, जैसे (श्याम वर्ण के) मेघ में बिजली ही हो । ६ श्रीराम उससे बोले— 'हे कान्ता, नीचे ध्यान से देखो— देदीप्यमान, स्वर्ण-वर्ण वाली विशाल लंका दिखायी दे रही है । ७ उस ओर निकुंभिला देखो । यहाँ

पैल पाहें निकुंभिला । येथें शक्रजित सौमित्रें मारिला । आम्ही राहिलों होतों तेच सुवेळा । प्राणवल्लभे विलोकीं । ८ पैल पाहें रणमंडळ । येथें युद्ध जाहलें तुंबळ । आटिले राक्षस सकळ । महासबळ पराक्रमी । ९ वज्रदंष्ट्री विरूपाक्ष अकंपन । मत्त महामत्त प्रहस्त प्रधान । भयानक विशाळ कुंभकर्ण । येथेंच आटले इंदुवदने । १० देवान्तक नरान्तक महोदर । कुंभ निकुंभ त्रिशिरा महाअसुर । ते येथें आटले समग्र । जनकतनये पाहें पां । ११ युद्ध करूनि सप्त दिन । येथेंच पडला दशवदन। हा समुद्र पाहें विलोकून । सेतु नळें बांधिला । १२ पैल उत्तरतीरीं दर्भशयन । येथें समुद्र भेटला येऊन । पुढें मलयाचल विंध्याद्रि पूर्ण । किष्किंधा पाहें राजसे । १३ पैल पाहें पंपा-सरोवर । येथें भेटला वायुकुमर । पैल स्थळीं वाळिवीर । सुग्रीवकैवारें वधियेला । १४ येथें शबरीचा केला उद्धार । येथें कबंध वधिला साचार । पैल दिसे गोमतीतीर । खर दूषण वधिले येथें । १५ पुढें पंचवटी पाहें गजगमने । तेथूनि तुज नेलें द्विपंजवदने । ऋषींचे आश्रम पद्मनयने । पाहें गौतमी-

---

लक्ष्मण ने इंद्रजित को मार डाला । जहाँ हम रहे थे, हे प्राण-वल्लभा, वही सुवेल देखो । ८ उस ओर वह रण-भूमि देखो । यहाँ विकट युद्ध हो गया । (वहाँ) महा बलवान् पराक्रमी समस्त राक्षस नष्ट हो गये । ९ हे चंद्र-मुखी, वज्रदंष्ट्री, विरूपाक्ष, अकम्पन, मत्त महामत्त मंत्री प्रहस्त और भयानक विशाल (-शरीरी) कुम्भकर्ण यहीं मारे गये । १० हे जनक-तनया, देखो, देवान्तक, नरान्तक, महोदर, कुम्भ, निकुम्भ, त्रिशिरा (आदि) समस्त महान असुर यहीं मारे गये । ११ सात दिन (तक) युद्ध करके दशानन यहीं (वध होकर) गिर पड़ा । ध्यान से यह समुद्र देखो, नल ने (इसका) सेतु बनाया । १२ उस ओर उत्तर तट पर (वह) दर्भासन है । यहाँ समुद्र आकर (मुझसे) मिल गया । आगे सम्पूर्ण मलयगिरि और विंध्याद्रि को देखा । हे राजसी, (यह) किष्किंधा देखो । १३ उस ओर देखो पंपासरोवर (है) । यहाँ (मुझसे) हनुमान मिला । उस ओर उस स्थान पर सुग्रीव का पक्षपात करते हुए मैंने वीर बाली का वध किया । १४ यहाँ शबरी का उद्धार किया; यहाँ सचमुच कबन्ध का वध किया । उस ओर गोदावरी का तट दिखायी दे रहा है । वहाँ मैंने खर-दूषण का वध किया । १५ हे गजगामिनी, आगे पंचवटी देखो । वहाँ से दशानन तुम्हें ले गया था । हे पद्म-नयना, गोदावरी-तट

तटींचे । १६ शरभंग सुतीक्ष्ण मंदकर्णी । हा सिंहाद्रि राजसे पाहें नयनीं । येथें दत्तात्रेय अनुसूया अत्रिमुनी । भेटलीं होतीं पाहें पां । १७ हा अगस्तीचा आश्रम पाहें । पुढें चित्रकूट दिसताहे । भारद्वाजआश्रम जनकतनये। पुढें तीर्थराज प्रयाग। १८ पैल नंदिग्राम दिसत । तेथें प्राणसखा आहे भरत । पैल शृंगवेरीं महाभक्त । किरात गुहक वसतसे । १९ खंजनाक्षि पाहें सादर । शरयूतीरीं अयोध्यानगर । धवधवीत परम सुंदर । वास्तव्यस्थळ आमुचें । २० परमस्नेहादरेंकरूनी । जानकीस दावी चापपाणी । तों अगस्तीचे आश्रमीं मोक्षदानी । क्षण एक राहूं इच्छीत । २१ रामें आज्ञापितां विमान । खालीं आलें न लागतां क्षण । पद्माक्षीरमण तेव्हां वचन । पद्माक्षी-प्रती बोलत । २२ आम्हां भेटेल घटोद्भवमुनी । तुज लोपामुद्रा नेईल सदनीं । आणिकही ऋषिपत्न्या मिळूनी । तुज पुसितील साक्षेपें । २३ रावणें तुज नेलें कैसे रीतीं । कैसा लंकेसी आला रघुपती । पुसेल कुंभसंभवसती । कथा कैसी जाहली ते । २४

पर (स्थित) ऋषियों के आश्रमों को देख लो। १६ ये हैं शरभंग, सुतीक्ष्ण और मन्दकर्ण के आश्रम। हे राजसी, अपनी आँखों से यह सह्याद्रि देखो, यहाँ दत्तात्रेय, अनसूया और अत्रि मुनि मिले थे। १७ (मुनि) अगस्त्य का यह आश्रम देखो। आगे चित्रकूट दिखायी दे रहा है। हे जनक-तनया, यह भरद्वाज (ऋषि) का आश्रम है। आगे तीर्थ-राज प्रयाग है। १८ उस ओर नंदिग्राम दिखायी दे रहा है। वहाँ प्राण-सखा भरत (रहता) है। उस ओर शृंगवेरपुर में (मेरा) महान भक्त किरात (-राज) गुह रहता है। १९ हे खंजनाक्षी, आदर-पूर्वक देखो, सरयू-तट पर अपने निवास-स्थान विशाल परम सुन्दर अयोध्या-नगरी को।' २० (इस प्रकार विमान में से) चापपाणि श्रीराम सीता को परम स्नेह और आदर से (भिन्न-भिन्न स्थान) दिखा रहे थे। तब मोक्ष-दाता श्रीराम ने अगस्त्य ऋषि के आश्रम में एक क्षण भर ठहरना चाहा। २१ श्रीराम द्वारा आज्ञा देते ही विमान, क्षण न लगते, नीचे आ गया। तब वे (पद्माक्षी-रमण श्रीराम पद्माक्षी) सीता से बोले। २२ 'हमसे (यहाँ) अगस्त्य मुनि मिलेंगे। (उनकी स्त्री) लोपामुद्रा तुम्हें घर में ले जाएगी। और भी ऋषियों की स्त्रियाँ इकट्ठा होकर तुमसे उत्कण्ठा-पूर्वक पूछेंगी। २३ रावण तुम्हें किस प्रकार ले गया? श्रीराम लंका में कैसे आ गया। अगस्त्य ऋषि की स्त्री (इस प्रकार) वह

सांगें सकळ वर्तमान। परी जें केलें सागरबंधन। ही कथा तियेलागून। सर्वथाही सांगूं नयेचि। २५ हे कथा सांगसील पूर्ण। तुज ती आणील हीनपण। ऐसें सांगोनि राघवें विमान। ऋषिआश्रमीं उतरिलें। २६ होतसे वाद्यांचा गजर। दणाणलें तेणें अंबर। शिष्य धांवून सत्वर। अगस्तिप्रती सांगती। २७ स्वामी विमान आलें पृथ्वीवरी। भरलें रीसवानरीं। तों अगस्ति उठिला झडकरी। म्हणे रघुवीर पातला। २८ मग शिष्य घेऊन अपार। रामासी सामोरा जाय सत्वर। लवलाही आश्रमाबाहेर। कलशोद्भव पातला। २९ ऋषिमेळा रामें देखतां। उतरला विमानाखालता। पुढें येतां कमलोद्भवपिता। कलशोद्भवें देखिला। ३० अगस्तीस न धरवे धीर। भूमंडळ क्रमीत सत्वर। तंव रघूत्तमें नमस्कार। साष्टांग घातला ऋषीतें। ३१ अगस्तीनें धांवोनि त्वरित। हृदयीं धरिला रघुनाथ। जैसा वाचस्पति आलिंगीत। शचीवरासी आदरें। ३२

कथा (-घटना) पूछेगी जैसे कि वह घटित है। २४ समस्त घटना (का समाचार) बता दो, परन्तु हमने जो सागर (का सेतु-) बन्धन किया, (उस सम्बन्ध में) यह कथा (घटना) उससे बिलकुल ही न कहो। २५ यदि यह सम्पूर्ण कथा तुम कहोगी, तो वह (लोपामुद्रा) तुम्हें हीनत्व को प्राप्त कराएगी।' ऐसा कहकर श्रीराम ने विमान को ऋषि के आश्रम (-स्थान) में उतार दिया। २६ (तब) वाद्यों का गर्जन हुआ। उससे आकाश निनादित हुआ, तो शिष्यों ने झट से दौड़कर अगस्त्य से कहा। २७ 'हे स्वामी, (एक) विमान पृथ्वी पर आ गया है। वह रीछों और वानरों से भरा हुआ है।' तब अगस्त्य झट से उठ गया और बोला— 'श्रीराम आ गये हैं।' २८ फिर असंख्य शिष्यों को लेकर झट से अगस्त्य (अगुवानी के लिए) श्रीराम के सम्मुख गया। वह शीघ्रता-पूर्वक आश्रम के बाहर पहुँच गया। २९ ऋषि-समुदाय को देखते ही श्रीराम विमान से नीचे उतर गये, तो (कलशोद्भव) अगस्त्य ने (कमलोद्भव ब्रह्मा के पिता भगवान् विष्णु के अवतार) श्रीराम को देखा। ३० अगस्त्य द्वारा धैर्य धारण नहीं किया जा रहा था; (इसलिए) वह झट से भू-मण्डल के अन्तर को काटता हुआ चल पड़ा, तो श्रीराम ने उस ऋषि को दण्डवत नमस्कार किया। ३१ (फिर) अगस्त्य ने वेग-पूर्वक दौड़कर श्रीराम को (वैसे ही) हृदय से लगा लिया, जैसे देव-गुरु बृहस्पति आदर-पूर्वक इंद्र का आलिंगन करता हो। ३२ साथ ही उसने लक्ष्मण का आलिंगन किया;

सवेंच सौमित्रासी दिधलें आलिंगन । तों रघूत्तम बोले हांसोन । आजि आश्रम सोडून । कां स्वामी आलेत बाहेरी । ३३ मागें अरण्यकाण्डीं कथा गहन । सीता घेऊनि गेला द्विपंचवदन । तेव्हां परतोन रामलक्ष्मण । अगस्तिआश्रमा पैं आले । ३४ ते वेळीं अगस्तीनें जाणोन । घेतलें नाहीं रामदर्शन । परतविले दारींहून । दोघे दाशरथी ते काळीं । ३५ ती गोष्ट आठवूनि रघुपती । म्हणे तोच मी राम तूंच अगस्ती । तैं अनादर आतां प्रीती । विशेष दिसे विप्रोत्तमा । ३६ ऐसें बोलतां सीताधव । प्रत्युत्तर देत कलशोद्भव । तैं स्त्रीरहित तूं राघव । नाहीं वैभव तेधवां । ३७ तो विपरीत काळ जाणोन । नाहीं घेतलें तुझें दर्शन । आतां तूं स्त्रीयुक्त सीतारमण । आलों म्हणोन सामोरा । ३८ स्त्रीस अवघे देती मान । तूं निर्विकार रघुनंदन । मानापमानविरहित जाण । सच्चिदानंद परब्रह्म तूं । ३९ तूं अज अजित आप्तकाम । निरुपाधिक निर्गुण अनाम । नाना विकार सम विषम । स्त्रीचे सर्वही राघवा । ४० ऐकोनि अगस्तीचें उत्तर । आनंदमय झाला रघुवीर । मग

तब श्रीराम हंसकर बोले-- ' हे स्वामी, आश्रम छोड़कर आज आप बाहर क्यों आये ? ' ३३ इससे पहले अरण्यकाण्ड में वह गहन कथा कही गयी है कि जब दशानन सीता को लेकर गया, तदनन्तर राम-लक्ष्मण अगस्त्य के आश्रम आ गये थे । ३४ उस समय अगस्त्य ने यह जानते हुए भी श्रीराम के दर्शन नहीं किये थे । उस समय इन दोनों दशरथ-पुत्रों को उसने द्वार से लौटा दिया था । ३५ उस बात को स्मरण करते हुए श्रीराम बोले— ' मैं वही राम हूँ और आप वही अगस्त्य हैं । हे विप्रोत्तम, तब (आप में हमारे प्रति) अनादर था और अब विशेष प्रेम दिखायी दे रहा है । ' ३६ सीतापति राम के ऐसा कहने पर अगस्त्य ने प्रति-उत्तर दिया--' हे राम, तब तुम स्त्री-रहित थे; (अतः) तब (आपका) माहात्म्य नहीं था । ३७ उस काल को विपरीत जानकर मैंने (तब) दर्शन नहीं किये थे । हे सीता-रमण, अब तुम स्त्री-सहित (आये) हो, (अतः) मैं सामने आया हूँ । ३८ हे रघुनन्दन, सब स्त्री को आदर प्रदान करते हैं । तुम तो निर्विकार हो । जान लो कि तुम मान-अपमान-रहित सच्चिदानन्द परब्रह्म हो । ३९ तुम अजन्मा, अजित हो, पूर्णकाम हो । निरुपाधिक अर्थात् सांसारिक विकारों से रहित हो, निर्गुण, अनाम हो । हे राघव, उचित-अनुचित नाना विकार तो सभी स्त्री के होते हैं । ' ४०

आश्रमाप्रती सीतावर। कलशोद्भव नेता जाहला। ४१ तों ते लोपामुद्रा येऊन। जनकजेसी करीं धरून। गेली आश्रमांत घेऊन। करूनि पूजन पुसतसे। ४२ विदेहतनये तुजसीं प्रीती। अत्यंत करितो रघुपती। किंवा विरक्त असे चित्तीं। सांग स्थिती कैसी ते। ४३ वनीं विचरतां रघुनंदन। तोषवीत असे कीं तुझें मन। तूं भागलीस म्हणोन। समाधान करितो कीं। ४४ याउपरी विदेहराजनंदिनी। त्रिभुवनपतीची पट्टराणी। श्रीरामप्रताप वाखाणी। ब्रह्मानंदेंकरूनियां। ४५ म्हणे परम दयाळु रघुनाथ। मजवरी स्नेह करी अत्यंत। तूं म्हणसी स्त्रीलंपट बहुत। जनकजामात तैसा नव्हे। ४६ तरी अत्यंत दयाळु श्रीराम। मजवरी स्नेह करी परम। विरक्त सदा निष्काम। रूप नाम नाहीं तया। ४७ मज घेऊन गेला रावण। दयासागर तो रघुनंदन। करूनियां नाना प्रयत्न। मज सोडविलें श्रीरामें। ४८ तों लोपामुद्रा म्हणे सीते। तुज कैसें नेलें लंकानाथें। मग येऊन जनकजामातें। सोडविलें कवणे

अगस्त्य का उत्तर सुनकर श्रीराम आनन्दित हो गये। तब अगस्त्य उन्हें अपने आश्रम ले गये। ४१ तो लोपामुद्रा आकर हाथ थामते हुए सीता को आश्रम के अन्दर ले गयी और उसका पूजन करते हुए उसने पूछा। ४२ 'हे विदेह-तनया, रघुपति तुमसे अत्यधिक प्रेम करते हैं या मनमें विरक्त है ? बताओ कैसी स्थिति है। ४३ वन में विचरण करते हुए क्या रघुनन्दन तुम्हारे मन को सन्तुष्ट करते थे, अथवा तुम थक गयी, तो तुम्हारे कष्ट को दूर करते थे।' ४४ इसपर त्रिभुवन-पति की पटरानी, विदेह-राज-नंदिनी सीता ब्रह्मानन्द-पूर्वक श्रीराम के प्रताप को बखानने लगी। ४५ उसने कहा—'रघुनाथ परम दयालु हैं। वे मुझसे अत्यधिक स्नेह करते हैं। तुम कहती हो वैसे वे जनक-जामाता बहुत स्त्री-लम्पट नहीं हैं। ४६ फिर भी श्रीराम अत्यन्त दयालु हैं; मुझसे वे परम स्नेह करते हैं। वे सदा विरक्त तथा निष्काम हैं। (वस्तुतः) उनके कोई रूप तथा नाम नहीं है। ४७ रावण मुझे ले गया था, (परन्तु) रघुनन्दन श्रीराम तो दया के सागर हैं। उन्होंने नाना (प्रकार से) प्रयत्न करके मुझे छुड़ा लिया।' ४८ तब लोपामुद्रा बोली—'लंकानाथ रावण तुम्हें कैसे ले गया ? फिर जनक-जामाता ने आकर किस प्रकार (तुम्हें) छुड़ा लिया ?' ४९ (इसपर) हर्ष के साथ जानकी ने कहा—'मैंने मृग

रीतीं । ४९ हर्षें सांगतसे जानकी । म्यां इच्छिली मृग-कंचुकी । तें जाणोनि एकाएकीं । अयोध्याप्रभु धांविन्नला । ५० मागें अतीतवेषें येऊन । मज घेऊन गेला रावण । माझिया वियोगें राम आपण । वृक्ष पाषाण आलिंगी । ५१ मजनिमित्त राजीवनेत्र । मित्र करोनि चंडांशुपुत्र । शक्रसुता वधोनि सर्वत्र । कपिवीर सखे केले । ५२ मग लोक-प्राणेशनंदन । धाडिला माझे शुद्धीलागोन । तेणें जाळून लंकाभुवन । रघुनंदन आणिला । ५३ अष्टादश पद्में वानर । संगें घेऊन आला श्रीरामचंद्र । वेढूनियां लंकापुर । युद्ध अपार पैं केलें । ५४ संततीसमवेत रावण । रणीं मारी रविकुळभूषण । राज्यीं स्थापूनियां बिभीषण । पुष्पकारूढ मग जाहले । ५५ खालीं मी जों विलोकीं पूर्ण । तंव अद्भुत केलें सेतुबंधन । लंबायमान शतयोजन । आणोनि पाषाण बांधिला । ५६ समुद्र बांधिला पाषाणीं । आश्चर्य मज वाटलें मनीं । हें जानकीनें विसरूनी । सेतुचरित्र कथियेलें । ५७ तों ते लोपामुद्रा बोलत । काय सांगसी

चर्म की कंचुकी की इच्छा (व्यक्त) की। उसे जानकर अयोध्याधीश श्रीराम यकायक दौड़े । ५० तो (इधर) यति के वेश में आकर रावण मुझे ले गया । (फिर) मेरे वियोग से श्रीराम स्वयं वृक्षों-पाषाणों का (सीता समझकर) आलिंगन करने लगे । ५१ मेरे निमित्त उन कमल-नयन ने सूर्य-पुत्र सुग्रीव को मित्र बनाते हुए इंद्र-सुत बाली का वध करके समस्त कपि वीरों को मित्र बनाया । ५२ अनन्तर वायुपुत्र हनुमान को मेरी खोज के लिए भेजा । लंका-भुवन को जलाकर वह श्रीराम को (लंका के पास) ले आया । ५३ अठारह पद्म वानरों को साथ में लेकर श्रीरामचंद्र आ गये । उन्होंने लंका-पुरी को घेरकर असीम युद्ध किया । ५४ रविकुल-भूषण श्रीराम ने युद्ध में संतति-सहित रावण को मार डाला और राज्यासन पर विभीषण की स्थापना करके फिर वे पुष्पक विमान में आरूढ़ हो गये । ५५ ज्यों ही मैंने (विमान में से) पूर्णतः नीचे देखा, तो (दिखायी दिया कि) अद्भुत सेतु बनाया है, पाषाण लाकर सौ योजन लम्बा सेतु बनाया है । ५६ (यह देखकर कि) पत्थरों से समुद्र को बाँधा है, मुझे मन में आश्चर्य अनुभव हो गया ।' यह भूलकर (कि यह बात कहनी नहीं थी) सीता ने सेतु-बन्ध सम्बन्धी लीला (घटना) कह दी । ५७ तब लोपामुद्रा बोली—'क्या अद्भुत बात कह रही हो ?

गोष्टी अद्भुत। पाषाणीं बांधिला सरितानाथ। काय पुरुषार्थ केला हा। ५८ टाकूनियां एक शर। कां शोषिला नाहीं सागर। न लागतां क्षणमात्र। माझे पतीनें प्राशिला। ५९ ऐसें अगस्तिजाया बोलतां। क्षणैक होय तटस्थ सीता। म्हणे इणें उणें आणिलें रघुनाथा। उत्तर आतां ईस देऊं। ६० म्हणे रघूत्तमाचा जातां बाण। सप्त समुद्र जातील आटून। बिंदुमात्र नुरे जीवन। जीव संपूर्ण मरतील। ६१ रामापासीं वानरगण। आहेत परम बळें संपन्न। सप्त समुद्रांचें आचमन। एकदांच करितील। ६२ म्हणसी कां केलें नाहीं आचमन। तरी तुझ्या पतीचें मूत्र पूर्ण। न शिवती वानरगण। मग प्राशन केवीं करितील। ६३ रघुनाथदास सोंवळे बहुत। म्हणोनि तिहीं बांधिला सेत। नाहीं तरी सरितानाथ। प्राशावया क्षण न लागता। ६४ ऐसें बोलता जनकतनया। उगीच राहिली ऋषिजाया। असो जानकीची

पत्थरों से सरिता-पति सागर को बाँधा, क्या यह कोई पुरुषार्थ किया है? ५८ एक बाण छोड़कर (उन्होंने) सागर को क्यों नहीं सोख डाला? मेरे पति ने तो क्षण मात्र तक न लगते उसे पी डाला था।' ५९ अगस्त्य की स्त्री द्वारा ऐसा कहते ही सीता क्षण भर चुप रह गयी और (फिर मन-ही-मन) बोली--'इसने तो रघुनाथ को हीनता को पहुँचा दिया। अब इसे (प्रति-) उत्तर दें।' ६० (फिर) वह बोली—'रघूत्तम के बाण के जाते ही सप्त समुद्र सूख जाते, बूँद तक पानी शेष न रहता। उससे समस्त (जलचर) जीव मर जाते। ६१ श्रीराम के पास परम बल से सम्पन्न वानर-गण भी हैं। वे सातों समुद्रों (के जल) का एकबारगी आचमन कर सकते थे। ६२ तुम कहोगी (पूछोगी)-- तो उन्होंने आचमन क्यों नहीं किया। वह इसलिए कि (समुद्र का जल) पूर्णतः तुम्हारे पति का मूत्र (मात्र) है-- * वानरगण उसे स्पर्श तक नहीं करेंगे, फिर वे उसे कैसे पिएँगे। ६३ श्रीराम के (वे) दास बहुत पवित्र हैं, इसलिए उन्होंने (तुम्हारे पति के मूत्र-स्वरूप) समुद्र-जल को अर्थात् अपवित्र जल को न पीते हुए सेतु बनवा लिया। नहीं तो उन्हें समुद्र-जल पीने को एक क्षण (तक) न लगता।' ६४ सीता के ऐसा कहने पर वह ऋषि-पत्नी (लोपामुद्रा) चुप ही रह गयी। अस्तु। (तदनन्तर) उसने सीता का

---

* टिप्पणी : पहले कहा जा चुका है कि अगस्त्य ने समुद्र का पानी पी डाला था (अध्याय)। पौराणिक मान्यता के अनुसार अगस्त्य के मूत्र से समुद्र भर गया।

पूजा करूनियां । संतोषविले ते काळी । ६५ अगस्तीनें पूजिलें रघुनंदना । सवेंच ऋषीची घेऊनि आज्ञा । पुष्पकीं बैसे अयोध्याराणा । सीतेसहित ते काळी । ६६ पुष्पक उचलिलें तेथूनी । चालिलें अयोध्यापंथ लक्षोनी । तों भारद्वाजआश्रमीं येऊनी । उतरलें तेव्हां प्रयागीं । ६७ मनांत विचारी रघुनंदन । घ्यावें भारद्वाजदर्शन । यालागीं उतरलें विमान । इच्छा जाणून प्रभूची । ६८ भारद्वाजासहित अपार । चहूंकडून धांवती मुनीश्वर । जैसे महानद्यांचे पूर । सिंधूस जाती भेटावया । ६९ रघूत्तमें खालतें उतरून । नमिले समस्त ऋषिजन । भारद्वाजें दिधलें आलिंगन । प्रेमेंकरून तेधवां । ७० म्हणे आजि धन्य दिवस । घरा आला अयोध्याधीश । जाहलीं वर्षें चतुर्दश । चवदा दिवस अधिक पैं । ७१ भारद्वाजें लक्ष्मण । आलिंगिला प्रीतीकरोन । ते दिवसीं रघुनंदन । आपुले आश्रमीं राहविला । ७२ मग तो जगदात्मा रघुनाथ । स्नेहें हनुमंतासी सांगत । म्हणे आम्हीं आजि राहिलों येथ । प्रीतीस्तव ऋषीच्या । ७३ तरी पुढें

पूजन करते हुए उस समय उसे सन्तुष्ट कर लिया । ६५ (इधर) अगस्त्य ने अयोध्यापति श्रीराम का पूजन किया, तो वे साथ ही उस समय सीता-सहित पुष्पक विमान में बैठ गये । ६६ (फिर) पुष्पक वहाँ से ऊपर उठाया गया और वह अयोध्या के मार्ग को लक्ष्य करके चल दिया । तब फिर वह प्रयाग में भरद्वाज के आश्रम में आकर उतर गया । ६७ श्रीराम ने मन में सोचा कि भरद्वाज के दर्शन करें । इसलिए प्रभु की इच्छा जानकर विमान (नीचे) उतर गया । ६८ जिस प्रकार महान नदियों के प्रवाह समुद्र से मिलने जाते हैं, उस प्रकार भरद्वाज-सहित अनगिनत बड़े-बड़े ऋषि चारों ओर से (राम से मिलने) दौड़े । ६९ (विमान में से) नीचे उतरकर श्रीराम ने समस्त ऋषिजनों को नमस्कार किया । तब भरद्वाज ने प्रेमपूर्वक उनका आलिंगन किया । ७० (और) वे बोले— ' आज का यह दिन धन्य है, (जब कि) अयोध्यापति घर आ गये हैं । (अयोध्या से गये हुए उन्हें) चौदह वर्ष तथा अधिक चौदह दिन हो गये हैं । ' ७१ (फिर) भरद्वाज ने प्रेम-पूर्वक लक्ष्मण का आलिंगन किया और उस दिन श्रीराम को अपने घर (आश्रम) में ठहरा लिया । ७२ तब जगदात्मा श्रीराम ने स्नेह के साथ हनुमान से (यह) कहा । वे बोले— ' ऋषि के प्रेम के कारण ही हम आज यहाँ रह गये हैं । ७३ अतः शीघ्रता से आगे

जाऊनि त्वरित। भरताप्रती करावें श्रुत। शृंगवेरीं गुहक भक्त। त्यासी हें विदित करावें। ७४ ऐसी आज्ञा होतांचि पूर्ण। वंदोनियां रघुवीरचरण। वायुसुतें केलें उड्डाण। पित्याहून चपळत्वें। ७५ गगनींहूनि अर्क उतरत। तैसा गुहकाश्रमीं हनुमंत। येऊनि बोले अकस्मात। अयोध्यानाथ आला कीं। ७६ जो जगदानंदमूळकंद। भरतहृदयारविंद-मिलिंद। तो रघुनाथ भक्तजनवरद। जवळी आला जाणिजे। ७७ परमानंद उदारघन। अंतरंग मनमोहन। परात्परसोयरा जाण। तो जवळी आला कीं। ७८ विश्वा-त्मक विश्वपाळक। विश्वमनउदारक। जनहृदयचाळक। तो जवळी आला कीं। ७९ ऐसें गुहकें ऐकतां वचन। वोसंडला आनंदेंकरून। धांवोनियां मारुतीचे चरण। धरिले सद्गद होऊनियां। ८० ओळखोनियां परम भक्त। त्यास हृदयीं धरी हनुमंत। गुहक मागुती लोळत। चरणावरता मारु-तीच्या। ८१ म्हणे हें तन मन धन। ओंवाळावें तुजवरून। मग फळें सुमनें आणोन। हनुमंत पूजिला गुहकें। ८२

जाकर तुम भरत को विदित कराओ। वैसे ही शृंगवेरपुर में भक्त गुह है, उसे भी यह बता देना।' ७४ ऐसी पूरी आज्ञा होते ही हनुमान ने श्रीराम के चरणों को नमस्कार करके अपने पिता वायु से भी चपलता-पूर्वक उड़ान भर दी। ७५ जैसे आकाश में से (मानो) सूर्य ही उतर रहा हो, वैसे हनुमान गुह के आश्रम में सहसा आकर बोला— 'अयोध्या-पति आ गये हैं। ७६ जान लो, जो जगत् के लिए आनन्द के मूल कन्द हैं, जो भरत के हृदय-कमल के प्रति लुब्ध भ्रमर हैं, वे भक्त-जनों के वर-दाता रघुनाथ श्रीराम निकट आये हैं। ७७ समझो कि जो परम आनन्द-स्वरूप है, मेघ की भाँति उदार हैं, जो अन्तरंग से मन को मोहित करनेवाले हैं, जो परात्पर आप्तजन हैं, वे (श्रीराम) निकट आये हैं। ७८ जो श्रीराम विश्व के आत्मा हैं, जो विश्व के पालन-कर्ता हैं, जो विश्व के प्रति उदार-मना हैं, जो लोगों के हृदय के संचालक हैं, वे निकट आये हैं।' ७९ गुह द्वारा ऐसी बात सुनते ही उसका मन आनन्द से उमड़ उठा। उसने दौड़कर हनुमान के चरण अति गद्गद होते हुए पकड़ लिये। ८० उसे (श्रीराम के) परम भक्त के रूप में पहचानकर हनुमान ने हृदय से लगा लिया, तो गुह फिर से हनुमान के चरणों में लुढ़क पड़ा। ८१ वह बोला— 'यह तन-मन-धन तुमपर निछावर कर दें।' फिर फल और फूल लाकर गुह ने हनुमान

गुहकासी म्हणे हनुमंत। चला नंदिग्रामासी त्वरित। स्वामी आला हें करूं श्रुत। भरताप्रती जाऊनियां। ८३ दोघेही उठिले तेच क्षणीं। एकमेकांचा हस्त धरूनी। दोघेही भक्त-शिरोमणी। वेगेंकरूनि जाती ते। ८४ तों नंदिग्रामीं भरत। बोटानें दिवस मोजीत। म्हणे आतां न ये रघुनाथ। चतुर्दश वर्षें लोटलीं। ८५ भरत सर्वगुणीं संपन्न। तो भजनसमुद्रींचा मीन। कीं वैरागरींचा पूर्ण। अमोलिक मणि हा। ८६ विवेकगंगेचा लोट थोर। कीं ज्ञानाकाशाचा भास्कर। कीं क्षमा धरिता सहस्रवक्त्र। कीं सरोवर निश्चयाचें। ८७ कीं दयेचा पर्वत पूर्ण। कीं गुणागुण निर्गुण। कीं उपरतीचा नंदन। किंवा मेघ आकाशींचा। ८८ ऐसा तो भरत ते वेळीं। म्हणे यावयाची सीमा जाहली। राम प्रेमळाची माउली। अजूनि दृष्टी पडेना। ८९ आतां हा देह टाकून। धुंडीत जाईन रघुनंदन। तत्काळचि कुंड रचून। चेतविला अग्न कैकयी-सुतें। ९० मार्ग पाहिला दोन प्रहर। अग्नींत घालावया

का पूजन किया। ८२ (तब) हनुमान उससे बोला-- 'झट से नंदिग्राम चलो। जाकर भरत से कह दें कि स्वामी आ गये हैं।' ८३ तत्क्षण वे दोनों ही जने उठ गये। (तदनन्तर) वे दोनों ही भक्त-शिरोमणि एक-दूसरे के हाथ को थामे हुए वेग-पूर्वक चल दिये। ८४ तब नंदिग्राम में भरत अँगुलियों पर दिन गिन रहा था। उसने कहा (सोचा)-- 'अब रघुनाथ नहीं आएँगे। चौदह वर्ष बीत चुके हैं।' ८५ भरत समस्त गुणों से सम्पन्न था। यह (मानो) भक्ति-सागर में निवास करनेवाला मत्स्य हो, अथवा यह वैराग्य-खान में स्थित अमूल्य रत्न हो। ८६ अथवा वह विवेक रूपी गंगा का बड़ा रेला हो, अथवा ज्ञान रूपी आकाश का सूर्य हो, अथवा पृथ्वी को (सिर पर) उठाये रहनेवाला सहस्रवदन शेष हो, अथवा निश्चय का सरोवर हो। ८७ अथवा वह दया का पूर्ण पर्वत हो, अथवा (साक्षात्) गुण अथवा अगुण हो या निर्गुण हो, अथवा विरक्ति का पुत्र हो, अथवा आकाश में स्थित मेघ हो। ८८ ऐसे गुणों से युक्त उस भरत ने उस समय कहा-- '(श्रीराम के) आने की अवधि पूर्ण हो चुकी। फिर भी राम रूपी प्रेममय माता दिखायी नहीं दे रही है। ८९ अब इस देह का त्याग करके मैं श्रीराम को ढूंढ़ने जाऊँगा।' (ऐसा सोचकर) भरत ने तत्काल एक कुण्ड बनाकर उसमें अग्नि प्रज्वलित कर

शरीर । सिद्ध जाहला भरत वीर । परम प्रियकर रामाचा । ९१ कुंडासमीप उभा राहून । अंतरीं आठविलें रामध्यान । मुकुट कुंडलें आकर्ण नयन । सुहास्यवदन सांवळें । ९२ उडी घालावी जों आंत । तों समीप आला वायुसुत । म्हणे आला आला रघुनाथ । दशमुखान्तक जगदात्मा । ९३ आला सुरांचा कैवारी । आला भक्तजन-साहाकारी । भरत नेत्र उघडी ते अवसरीं । तों मारुति घाली नमस्कार । ९४ उष्णकाळ अत्यंत । घायाळ रथीं उदक मागत । त्यासी जीवन पाजिजे अकस्मात । तैसा भरत सुखावला । ९५ चकोर असतां क्षुधाक्रान्त । अवचित उगवे निशानाथ । तैसा आनंदला भरत । हनु-मंतासी देखोनियां । ९६ उचलोनि परम प्रीतीं । हृदयीं आलिंगिला मारुती । म्हणे कोठें आहे रघुपती । दावी मज प्राणसखया । ९७ प्राण जातां अमृत । एकाएकीं घालिजे मुखांत । तैसी शुभ वार्ता अकस्मात । घेऊनि आलासी कपींद्रा । ९८ मग हनुमंतासी बैसोन । पुसिलें

दी । ९० उसने दो पहर प्रतीक्षा की । फिर श्रीराम का वह परम प्रेमी वीर भरत आग में देह झोंक देने को सिद्ध हो गया । ९१ कुण्ड के समीप खड़ा होकर उसने मनमें श्रीराम के उस रूप का स्मरण किया; जो मुकुट एवं कुण्डलों से युक्त था, जिसके नेत्र आकर्ण अर्थात् विशाल थे, जो सुहास्य-वदन और श्यामवर्ण था । ९२ ज्यों ही वह अन्दर कूदने को था, त्यों ही हनुमान निकट आया और बोला— ' रावण का अन्त कर देनेवाले जग-दात्मा रघुनाथ आ गये हैं । ९३ देवों के पक्षपाती आये हैं, भक्त-जनों के सहायक आये हैं । ' (यह सुनकर) भरत ने उस समय आँखें खोलीं, तो हनुमान ने उसे साष्टांग नमस्कार किया । ९४ जैसे अत्यधिक गर्मियों के समय, कोई घायल (योद्धा) रथ में (पड़े हुए) पानी माँग रहा हो, और उसे यदि सहसा पानी प्राप्त हो जाए तो वह जैसे सुख को प्राप्त होता है, वैसे ही भरत (हनुमान से मिलकर) सुख को प्राप्त हो गया । ९५ चकोर के भूख से व्याकुल रहने पर अकस्मात चन्द्र उदित हो जाए, (तो जैसे उसे आनन्द होगा) वैसे हनुमान को देखकर भरत आनन्दित हो गया । ९६ परम प्रेम के साथ उठाते हुए भरत ने हनुमान का आलिंगन किया और कहा— ' हे प्राणसखा, रघुपति कहाँ है, मुझे दिखा दो । ९७ हे कपीन्द्र, किसी के प्राणों के जाते रहने पर सहसा कोई उसके मुँह में अमृत डाले, उस

सकळ वर्तमान । अमृतवर्षाव करीत घन । तैसें येरें कथियेलें । ९९ म्हणे कृपासिंधु रघुनंदन । क्षणक्षणां तुमची आठवण । करूनि म्हणे केव्हां जाईन । भरताप्रती भेटावया । १०० धन्य तुमचें बंधुपण । शक्रपदातुल्य राज्य टाकून । सकळ मंगलभोग त्यजून । नंदिग्रामीं बैसलां । १०१ भरत म्हणे हो मारुती । मृगजीवनीं बुडेल अगस्ती । तमार्णवीं पडेल दिनपती । दोषें भागीरथी जरी लिंपे । २ शेष जरी भागेल धरितां क्षिती । जरी मर्यादा टाकील सरितापती । तरी राज्य-वासना मारुती । मज होईल जाण पां । ३ असो शत्रुघ्नासी म्हणे भरत । तूं अयोध्येसी जाईं त्वरित । वसिष्ठ-मातादि समस्त । त्यांसी श्रुत करीं वेगीं । ४ अरुणोदय होतां सत्वर । प्रजा सेना घेऊनि समग्र । जगद्वंद्यासी सामोर । गजरेंकरून येइंजे । ५ ऐसी आज्ञा होतां शत्रुघ्न । अयोध्येसी गेला धांवोन । टवटवीत प्रसन्नवदन । सुमंतासी भेटला । ६ म्हणे पाहतां काय उठा

प्रकार तुम सहसा शुभ समाचार लेकर आ गये हो । ' ९८ फिर हनुमान को बैठाकर उसने समस्त समाचार पूछा, तो उसने वही कहा । (उसके कथन से जान पड़ा कि) मानो अमृत की बौछार कर रहा हो । ९९ वह बोला— ' कृपासिन्धु रघुनन्दन क्षण-क्षण तुम्हारा स्मरण करते हुए कहा करते हैं— मैं भरत से मिलने कब जा पाऊँगा । १०० तुम्हारा बन्धुत्व धन्य है, जो तुम इन्द्र-पद के समान राज्य को छोड़कर समस्त मंगल-भोगों को त्यजकर नंदिग्राम में बैठे हुए हो । ' १०१ (इसपर) भरत ने कहा— ' हे हनुमान यद्यपि, मृग-मरीचिका के पानी में अगस्त्य डूब जाए, अँधेरे के सागर में सूर्य गिर जाए, यद्यपि गंगा पाप (-दोष) से लिप्त हो जाए, यद्यपि शेष पृथ्वी को (सिर पर) धारण करते-करते थक जाए, यद्यपि समुद्र (अपनी) सीमा को छोड़ (उल्लंघन कर) दे, हे हनुमान समझ लो कि तो ही मुझे राज्य (-प्राप्ति) की इच्छा (अनुभव) हो जाएगी । ' २-३

अस्तु । (इसके पश्चात्) भरत ने शत्रुघ्न से कहा— ' तुम झट से अयोध्या जाओ और वसिष्ठ तथा माता आदि सबको (यह समाचार) शीघ्रता से सुना दो । ४ अरुणोदय होते ही समग्र प्रजा और सेना को लेकर जगद्वंद्य श्रीराम की अगुवानी के लिए (वाद्यों के) गर्जन के साथ आगे आओ । ' ५ ऐसी आज्ञा प्राप्त होने पर शत्रुघ्न दौड़ते हुए अयोध्या गया और कान्तिमान तथा प्रसन्न-मुख होकर वह सुमन्त से मिला । ६

त्वरित । जवळी आले श्रीरघुनाथ । नंदिग्रामीं आला हनुमंत । पुढें सत्वर सांगावया । ७ हर्षें धांवत सुमंत । आनंद न माये गगनांत । दुंदुभी व्राहाटिल्या त्वरित । आला रघुनाथ म्हणोनियां । ८ दणाणिल्या राजभेरी । नाद न समाये अंबरीं । शत्रुघ्नें राजसदनावरी । कळस चढविला लवलाहें । ९ सूर्योदयीं अकस्मात । पृथ्वीवरी किरणें धांवत । तैसी नगरीं प्रकटली मात । आला रघुनाथ म्हणोनियां । ११० आळोआळी जन धांवती । अंगीं रोमांच उभे राहाती । सुख न समाये तयां चित्तीं । नयनीं लोटती प्रेमबिंदु । ११ सोळा पद्में दळभार । सिद्ध जाहलें तेव्हां सत्वर । कुंजरभेरी चवदा सहस्र । एकसरें ठोकिल्या । १२ शत्रुघ्न आणि सुमंत । आले कौसल्येच्या सदनांत । म्हणती माते आला रघुनाथ । सीतासौमित्रांसहित पैं । १३ कौसल्या सुमित्रा दोघी जणी । उचंबळल्या आनंदेंकरूनी । सुखाश्रु लोटले नयनीं । बैसल्या वहनीं सत्वर । १४ वसिष्ठापासीं जाऊन । आनंदें सांगे शत्रुघ्न । स्वामी आले जी रघुनंदन । चला

उसने कहा-- ' देखते क्या हो ? झट से उठो श्रीराम निकट आ गये हैं । हनुमान यह बताने के लिए झट से आगे नंदिग्राम में आ गया है । ' ७ (यह सुनते ही) सुमन्त आनन्द के साथ दौड़ा । उसका आनन्द आकाश में नहीं समा रहा था । श्रीराम लौट आये, इसलिए झट से दुंदुभियाँ बजने लगीं । ८ बड़े-बड़े नगाड़े गहगहाने लगे । उनकी ध्वनि आकाश में न समा रही थी । (इधर) शत्रुघ्न ने राज-भवन पर शीघ्रता से (मंगल) कलश चढ़ा दिया । ९ जिस प्रकार सूर्योदय होने पर सहसा उसकी किरणें पृथ्वी पर दौड़ती हैं, उस प्रकार नगर में यह बात फैल गयी कि श्रीराम लौट आये हैं । ११० गली-गली में लोग दौड़ रहे थे, उनके शरीर में रोंगटे खड़े हुए थे । उनका सुख उनके मन में नहीं समा रहा था । आँखों में प्रेमाश्रु की बूँदें भर आयी थीं । ११ तब सोलह पद्म सेना-दल झट से सुसज्जित हो गया । चौदह सहस्र हाथियों पर एक साथ नगाड़े बज गये । १२ शत्रुघ्न और सुमन्त कौसल्या के सदन में आ गये और बोले-- ' हे माँ, सीता और लक्ष्मण-सहित राम आ गये हैं । ' १३ (यह सुनते ही) कौसल्या और सुमित्रा दोनों जनी आनन्द से गद्‌गद हो उठीं । उनकी आँखों में सुख के कारण आँसू भर आये । वे झट से सवारी में बैठ गयीं । १४ शत्रुघ्न ने वसिष्ठ के पास जाकर कहा,

सत्वर सामोरे। ११५ आला ऐकतां रघुनाथ। स्वानंदें उचंबळे ब्रह्मसुत। चतुरंग दळ समस्त। नगराबाहेर निघालें। ११६ विद्युत्प्राय ध्वज झळकती। मकरबिरुदें पुढें चालती। अष्टादश प्रजा धांवती। नगराबाहेर सत्वर। ११७ कैकयी सुमित्रा कौसल्या। सुखासनारूढ जाहल्या। मंगळवाद्यांच्या ध्वनी लागल्या। तो सोहळा न वर्णवे। ११८ वसिष्ठ शत्रुघ्न सुमंत। दिव्य रथीं बैसले त्वरित। आनंदमय जन समस्त। श्रीरघुनाथ पाहावया। ११९ थोडीशी उरतां लग्नघडी। वेगें धांवती वऱ्हाडी। कीं गंगेचिया जवळी थडी। तृषाक्रान्त करिती त्वरेनें। १२० तैसे ब्रह्मानंदेंकरून। पुढें धांवती अयोध्येचे जन। इकडे भरत सीताशोकहरण। सूर्योदयीं उठियेले। १२१ नित्यनेमातें सारून। पुढें चालिले दोघे जण। भरत म्हणे आजि धन्य नयन।

'अहो, श्रीराम स्वामी (लौट) आये हैं; झट से अगुवानी के लिए चलें।' ११५ रघुनाथ आ गये हैं-- यह सुनकर (ब्रह्मा का पुत्र) वसिष्ठ आत्मिक आनन्द से गद्गद हो गया। (इस समय) चतुरंग सेना नगर के बाहर झट से चल दी। ११६ ध्वज विद्युत्-से जगमगा रहे थे। यश-चिह्नों से अंकित मकरध्वज आगे चल रहे थे। अठारह (प्रकार के) प्रजाजन * झट से नगर के बाहर दौड़ चले। ११७ कैकेयी, सुमित्रा और कौसल्या पालकियों में आरूढ़ हो गयीं। मंगल वाद्यों की ध्वनियाँ गूँजने लगीं। उस आनन्दोत्सव का वर्णन नहीं किया जा सकता। ११८ वसिष्ठ, शत्रुघ्न और सुमन्त झट से एक दिव्य रथ में बैठ गये। श्रीराम के दर्शन करने के हेतु समस्त जन आनन्दित हो गये थे। ११९ जिस प्रकार विवाह-मुहूर्त (वेला) में थोड़ी-सी अवधि शेष रहने पर बाराती वेग-पूर्वक दौड़ते हैं, अथवा प्यास से व्याकुल प्राणियों के समुदाय झट से गंगा के तट के पास पहुँचते हैं। १२० उस प्रकार अयोध्या के लोग ब्रह्मानन्द-पूर्वक आगे दौड़े। इधर भरत और हनुमान सूर्योदय के समय उठ गये। १२१ नित्य नेम-कर्मों को पूर्ण करके वे दोनों जने आगे चल दिये। भरत ने

---

* टिप्पणी : महाराष्ट्र में समाज साधारणत: अठारह जातियों में विभक्त माना जाता था। प्रत्येक जाति की सूचक एक विशिष्ट प्रकार की पगड़ी थी। ये जातियाँ अधिकतर व्यवसाय-विचार के अनुसार बतायी जाती थीं। अठारह जातियाँ हैं— ठठेरा, संगतराश या पत्थरफोड़, लुहार, सुनार, बढ़ई, मनिहार, कुम्हार, (देवी-देवता का) पुजारी, गड़रिया, ग्वाला या अहीर, बनिया, मछुआ, बुनगर या जुलाहा, चितेरा, या छीपा, माली, तेली, रंगरेज और जैन।

रामनिधान देखती । २२ इकडे भारद्वाजाची आज्ञा घेऊन । पुष्पकीं बैसे रघुनंदन । सत्वर चालिलें विमान । अयोध्या-पट्टण लक्षीत । २३ तों भरतासी म्हणे हनुमंत । ऊर्ध्वपंथें पाहा जी त्वरित । भरत जों ऊर्ध्व विलोकित । तों अद्भुत देखिलें । २४ भरत म्हणे हनुमंतासी । हें काय असंभाव्य आकाशीं । वाद्यें वाजती मानसीं । आश्चर्य मज वाटतें । २५ हनुमंत म्हणे पुष्पकविमान । सेनेसहित सीतारमण । वरी येताती बैसोन । परम वेगेंकरूनियां । २६ ऐसें सांगतां वायुनंदन । भरतें घातलें लोटांगण । मागुती ऊर्ध्व वदन करून । पुनः विमान विलोकी । २७ मागुती साष्टांग नमस्कार । प्रेमें घाली भरत वीर । चंद्राकडे पाहे चकोर । ऊर्ध्वपंथें प्रीतीनें । २८ मारुतीचा हस्त धरून । पुढें चाले कैकयीनंदन । तों राघवइच्छेंकरून । पुष्पक उतरलें भूमीवरी । २९ सीतेसहित रघुनंदन । विमान खालीं उतरून । अयोध्येसी साष्टांग नमन । राजीवनयन करी तेव्हां । १३० जन्मभूमि जान्हवी जननी । सद्गुरुस्थळ

कहा-- 'आज मेरे नयन धन्य हैं जब कि वे श्रीरामरूपी निधान के दर्शन करेंगे।' १२२

इधर भरद्वाज से आज्ञा लेकर रघुनन्दन पुष्पक में बैठ गये, तो अयोध्यापुरी को लक्ष्य करते हुए वह विमान वेग-पूर्वक चलने लगा। २३ तब हनुमान ने भरत से कहा— 'अहो, झट से ऊर्ध्व-पंथ में (ऊपर) देखो।' जब भरत ने ऊपर देखा, तो उसने एक आश्चर्य देखा। २४ तो भरत ने हनुमान से कहा-- 'आकाश में यह अद्भुत (पदार्थ) क्या है? वाद्य (भी) बज रहे हैं। मन में मुझे आश्चर्य अनुभव हो रहा है।' २५ (इसपर) हनुमान ने कहा— 'यह पुष्पक विमान है। श्रीराम सेना-सहित उसमें बैठकर परम वेग से आ रहे हैं।' २६. हनुमान द्वारा ऐसा कहने पर भरत ने उसे साष्टांग नमस्कार किया। अनन्तर फिर ऊपर मुँह करके वह पुनः विमान की ओर देखने लगा। २७ वीर भरत ने पुनः प्रेमपूर्वक साष्टांग नमस्कार किया। मानो चकोर ही ऊपर चंद्र की ओर प्रेमपूर्वक देख रहा हो। २८ (तदनन्तर) हनुमान का हाथ थमाए हुए भरत आगे चलने लगा, तो श्रीराम की इच्छा के अनुसार विमान भूमि पर उतर गया। २९ तब राजीव-नयन श्रीराम ने सीता-सहित विमान के नीचे उतरकर अयोध्या को साष्टांग नमस्कार किया। १३०

पवित्र अवनी। शिवहरिप्रतिमा संत देखोनी। साष्टांग नमन करावें। ३१ तपस्वी वेदज्ञ वृद्ध ब्राह्मण। यज्ञप्रसाद ध्वज देखोन। वंद्य द्रुम समाधिस्थान। महापुरुष वंदावे। ३२ सत्यव्रती श्रीरघुनाथ। म्हणोनि अयोध्येसी नमस्कारीत। तों हनुमंतासमवेत। जवळी भरत देखिला। ३३ दाटला अष्टभावेंकरून। घालीत येतसे लोटांगण। श्रीरामवियोगें-करून। शरीर कृश जाहलें। ३४ भस्म लाविलें शरीरासी। वल्कलें वेष्टीत तो तापसी। तैसा भरत देखोन मानसीं। सीतावर कळवळला। ३५ चरणीं क्रमीत भूमंडळ। पुढें चाले तमालनीळ। तान्हया वत्सालागीं स्नेहाळ। धेनु हंबरत जैसी कां। ३६ भरतें कैसें देखिलें रघुनाथा। बहुत दिवस गेला पिता। तो कुमरें दृष्टीं देखतां। धांवें जैसा स्नेहभरें। ३७ तैसें भरतें धांवोनी। मिठी घातली श्रीराम-चरणीं। कीं गेलें धन देखतां नयनीं। मिठी घाली जेवीं लोभी। ३८ कीं जन्मान्धासी आले नयन। कीं मृत्युसमयीं अमृतपान। कीं दरिद्रियास निधान। अकस्मात प्राप्त

जन्म-भूमि, गंगा, जननी, सद्गुरु-स्थल, पवित्र पृथ्वी, शिवजी तथा विष्णु की प्रतिमाएँ, सन्त देखकर साष्टांग नमस्कार करें। ३१ तपस्वी, वेद का ज्ञाता, वृद्ध ब्राह्मण, यज्ञ-प्रसाद, ध्वज देखकर, वन्दनीय वृक्ष तथा समाधि-स्थान, तथा महापुरुष देखकर नमस्कार करें। ३२ इसलिए सत्य-व्रती श्रीराम ने अयोध्या को नमस्कार किया; तो ही उन्होंने हनुमान-सहित पास ही भरत को देखा। ३३ (तब रोमाँच आदि) आठों भावों से युक्त हो वह दण्डवत् नमस्कार करता आ रहा था। श्रीराम के वियोग के कारण उसका शरीर कृश हो गया था। ३४ उस तापसी ने शरीर में भस्म लगाया था, वल्कल लपेट लिये थे। ऐसे उस भरत को देखते ही श्रीराम मन में व्याकुल हो उठे। ३५ तमालनील श्रीराम भूमि पर पैदल वैसे (ही उत्कण्ठापूर्वक) चले, जैसे स्नेहमय गाय रम्भाती हुई दुधमुँहे बछड़े के लिए दौड़ती है। ३६ भरत ने श्रीराम को कैसे देखा? पिता बहुत दिन से (दूर) गया हुआ हो, तो पुत्र आँखों से उसे (आते) देखते ही जैसे स्नेह-भरे (मन से) दौड़ता हो, अथवा खोये हुए धन को (फिर से) आँखों से देखते ही जैसे लोभी लिपट जाता हो, वैसे ही दौड़कर भरत श्रीराम के चरणों में लिपट गया। ३७-३८ जैसे जन्मान्ध के आँखें उत्पन्न हो आयी हों, अथवा मृत्यु के समय (किसी को) अमृत-पान हो गया हो,

जाहलें । ३९ किंवा मारितां तस्करीं । अकस्मात धांवला कैवारी । तो जेवीं सुखावे अंतरीं । भरतासी तैसें वाटत । १४० राघवें उचलूनि ते समयीं । भरत दृढ धरिला हृदयीं । दोघांचे नयनप्रवाहीं । जलसरिता लोटल्या । ४१ हरिहर दोघे भेटले । शशिमित्र एकवट जाहले । कीं क्षीराब्धीचे एकवटले । लोट जैसे एकत्र । ४२ कीं वेदान्तग्रंथींचे अर्थ । ऐक्यत्वा परस्परें येत । तैसा दशमुखान्तक आणि भरत । एकपणें मिळाले । ४३ सम संतोष समान प्रीती । सोडावें हें न वाटे चित्ती । वियोग-व्यथा दिगंतराप्रती । जाती जाहली ते काळीं । ४४ आलिंगन देऊन वेगळे होती । परी अंतरीं नव्हेच तृप्ती । तो सोहळा डोळां पाहाती । सुग्रीव आणि बिभीषण । ४५ म्हणती भरत रघुपती । अद्भुत दोघांची प्रीती । एकास एक आवडती । प्राणाहून पलीकडे । ४६ बंधु साधु विरक्त

अथवा दरिद्र को सहसा निधान प्राप्त हुआ हो, अथवा चोरों द्वारा किसी के पीटे जाते ही सहसा कोई सहायक दौड़ा हो, तो वह जैसे अन्तःकरण में सुख को प्राप्त हो जाता हो, भरत को वैसा ही प्रतीत हुआ । ३९-४० उस समय श्रीराम ने भरत को उठाकर हृदय से लगा लिया, तो दोनों की आँखों से अश्रु-जल की नदियाँ बहने लगीं । ४१ जैसे भगवान् विष्णु और शिवजी दोनों मिले हों, अथवा चन्द्र और सूर्य इकट्ठा हुए हों, अथवा क्षीर (-समुद्र) के प्रवाह इकट्ठा होकर एकात्म हो गये हों, अथवा वेदान्त-ग्रन्थों के अर्थ परस्पर एकत्व को प्राप्त हो गये हों, वैसे ही दशाननान्तक श्रीराम और भरत मिलकर एकात्म हो गये । ४२-४३ दोनों को समान सन्तोष और (एक-दूसरे के प्रति) समान प्रेम (अनुभव हो रहा) था, इसलिए यह मन में नहीं लग रहा था कि (एक-दूसरे को आलिंगन-पाश से) छोड़ दें । उस समय पहले अनुभव की हुई वियोग से उत्पन्न व्यथा (अब) दिगन्तर तक चली गयी— अर्थात् नष्ट हुई । ४४ वे (एक-दूसरे का) आलिंगन करके (फिर) अलग हो गये, फिर भी उन्हें मन में तृप्ति नहीं हो रही थी । उस आनन्द-प्रसंग को सुग्रीव और विभीषण अपनी आँखों से देख रहे थे । ४५ उन्होंने कहा (सोचा)— 'भरत और श्रीराम की प्रीति अद्भुत है । वे (दोनों) एक-दूसरे को प्राणों से (भी) अधिक प्रिय लगते हैं । ४६ बंधु, साधु, विरागी और भक्त— इन चारों प्रकार (दृष्टि-कोणों) से भरत वंदनीय है । राज्य का त्याग करके वह चौदह साल

भक्त। चारही प्रकारें वंद्य भरत। राज्य टाकूनि अरण्यांत। चतुर्दश वर्षें बैसला। ४७ नाहीं तरी आमुचें बंधुपण। एकमेकांचे घेतले प्राण। आतां रघुनाथदास म्हणोन। वंद्य जाहलों त्रिलोकीं। ४८ परी धन्य वाळी आणि रावण। त्यांचे विरोधप्रसंगेंकरून। सखा जोडला रघुनंदन। सच्चिदानंदस्वरूप जो। ४९ असो भरतें प्रेमेंकरून। वंदिले जनकजेचे चरण। जैसें वत्स प्रीतीनें धांवोन। रिघे धेनूचे कांसेसी। १५० यावरी भरत आणि लक्ष्मण। उचंबळती प्रेमरसेंकरून। एकमेकांसी आलिंगन। देते जाहले तेधवां। ५१ सुग्रीव आणि बिभीषण। उभयतांसी म्हणे रघुनंदन। भरतासी क्षेमालिंगन। द्यावें आतां ये समयीं। ५२ ऐसें ऐकतां दोघे जण। भरतासी करिती साष्टांग नमन। सुग्रीवासी उठवून। भरतें आधीं आलिंगिलें। ५३ सवेंचि उठोनि बिभीषण। हृदयीं धरिला प्रीतींकरून। यावरी नळ नीळ वाळिनंदन। जांबुवंतादि भेटले। ५४ याउपरी गुहक भक्त। तोही भरताऐसा व्रतस्थ। तेणे प्रेमभरें दंडवत। केलें तेव्हां रामासी। ५५ सर्वांसी समान रघुनाथ। गुहकास

वन में बैठ गया। ४७ नहीं तो हमारा बंधुत्व। हमने एक-दूसरे के प्राण लिये। अब श्रीराम के दास कहाकर तीनों लोकों में वंदनीय हो गये हैं। ४८ परन्तु बाली और रावण धन्य हैं। उन्होंने विरोध-प्रसंग द्वारा श्रीराम को मित्र रूप में जोड़ (प्राप्त कर) लिया, जो सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं। ४९ अस्तु। (तदनन्तर) भरत ने उस प्रकार सीता के चरणों (में लगकर उन) को नमस्कार किया, जिस प्रकार बछड़ा प्रेम से दौड़कर गाय के अयन (स्तन कोश) में लग जाता है। १५० इसके पश्चात् भरत और लक्ष्मण प्रेम-रस से उमड़ उठे और तब उन्होंने एक-दूसरे को गले लगाया। ५१ (फिर) राम ने सुग्रीव और विभीषण से कहा— 'अब इस समय तुम भरत का क्षेमालिंगन करो।' ५२ ऐसा सुनने पर उन दोनों जनों ने भरत को दण्डवत् नमस्कार किया, तो पहले सुग्रीव को उठाते हुए भरत ने उसका आलिगन किया। ५३ साथ ही विभीषण को उठाते हुए उसने उसे भी प्रीति-पूर्वक हृदय से लगा लिया। इसके पश्चात् नल, नील, अंगद, जाम्बवान आदि (भरत से) मिले। ५४ इसके अनन्तर वहाँ भक्त गुह था। वह भी भरत की भाँति व्रतस्थ था। उसने प्रेम-भरे (मन से) श्रीराम को दण्डवत् नमस्कार किया। ५५

तेव्हां हृदयीं धरीत। आनंद न माय गगनांत। गुहकाचा ते काळीं। ५६ मग गुहक भरतासमवेत। विमानीं बैसला रघुनाथ। विमानी मागुती उंचावत। चालिलें अद्भुत वायुवेगें। ५७ क्षीराब्धितटीं जाऊन। बैसे जैसा विष्णु-वहन। नंदिग्रामासमीप विमान। उतरलें तैसें ते वेळीं। ५८ सीता आणि श्रीरघुनाथ। पुष्पकाखालीं उतरत। वानर असुर समस्त। क्षण न लागतां उतरले। ५९ राघव म्हणे पुष्पकासी। आतां तुवां जावें कुबेरापासीं। चिंतिल्या समयासी। आम्हापासीं येइंजे। १६० ऐसी आज्ञा होतां तात्कालिक। ऊर्ध्वपंथें गेलें पुष्पक। धनपतिपासीं जाऊनि देख। स्थिर जाहलें ते काळीं। ६१ नंदिग्रामासमीप अरण्यांत। उतरता जाहला रघुनाथ। वानर असुरदळ समस्त। सेना तेथें बैसली। ६२ इकडे अयोध्येबाहेर। निघालें जाण दळ परिकर। रथ श्रृंगारिले सुंदर। आनंदें बहुत चालिले। ६३ चवदा सहस्र कुंजरभेरी। दणाणिल्या ते अवसरीं। सोळा पद्में दळेंसीं झडकरी।

श्रीराम सबके लिए समान हैं। उन्होंने तब गुह को हृदय से लगा लिया, तो उस समय गुह का आनन्द आकाश में नहीं समा रहा था। ५६ फिर श्रीराम गुह और भरत-सहित विमान में बैठे। तत्पश्चात् ऊँचाई को प्राप्त करते हुए वह विमान अद्भुत वायु-गति से चलने लगा। ५७ जैसे गरुड़ क्षीर-समुद्र के तट पर जाकर बैठता है, वैसे ही वह विमान उस समय नंदिग्राम के समीप उतर गया। ५८ (फिर) सीता और श्रीराम पुष्पक विमान से नीचे उतर गये। (तदनन्तर) समस्त वानर और असुर क्षण न लगते उतर गये। ५९ तो श्रीराम ने पुष्पक से कहा— 'अब तुम कुबेर के पास जाओ। हमारे इच्छित समय पर हमारे पास आना।' १६० देखिए, ऐसी आज्ञा (प्राप्त) होने पर पुष्पक तत्काल ऊर्ध्व मार्ग से चला गया और धनपति कुबेर के पास जाकर उस समय (वहीं) स्थिर हो गया। ६१ नंदिग्राम के पास वन में श्रीराम ठहर गये। समस्त वानर तथा असुर सैनिक वहाँ बैठ गये। १६२

इधर समस्त सुन्दर (रूप में सुसज्जित) सेना अयोध्या के बाहर निकल पड़ी, समझिए। रथ सुन्दर सजाये गये थे। वे सब बहुत आनन्द से चल रहे थे। ६३ चौदह सहस्र हाथियों पर रखे हुए नगाड़े उस समय गहगहा रहे थे। सोलह पद्म सेना सहित शत्रुघ्न झट से (श्रीराम से)

शत्रुघ्न येत भेटावया । ६४ भरत म्हणे जी रघुराया । शत्रुघ्न सुमंत आले भेटावया । आणि माताही येती लवलाह्या । होऊनियां स्नेहभरित । ६५ जो तपें ज्ञानें समर्थ । जो शांतिक्षमेचा पर्वत । तो वसिष्ठमुनि सद्‌गुरुनाथ । भेटावया येत त्वरेनें । ६६ आणि अयोध्येचे सकळ ब्राह्मण । अष्टादश प्रजा सैन्य संपूर्ण । असंभाव्य प्रीतींकरून । भेटावया येतसे । ६७ तो सुमंत आणि शत्रुघ्न । रथाखालीं उतरून । अवलोकितां सीताजीवन । लोटांगण घालिती । ६८ देखोनि शत्रुघ्न सुमंत । भेटावया उठे रघुनाथ । शत्रुघ्न चरणीं मिठी घालीत । नेत्रीं उदक स्रवतसे । ६९ रावणारि सद्‌गद होऊन । शत्रुघ्नासी देत आलिंगन । तों सुमंतें धरिले चरण । विषकंठवंद्याचे ते काळीं । १७० बंधूचे परी आदरें । तोही आलिंगिला रघुवीरें । परम प्रीतीं सौमित्रें । सुमंत शत्रुघ्न आलिंगिले । १७१ यावरी सकळ जुत्पती । सुग्रीव बिभीषण नृपती । सुमंतशत्रुघ्ना परम प्रीतीं । भेटते जाहले तेधवां । ७२ अवश्य सौभाग्यसरिता ।

मिलने के लिए आ रहा था । ६४ (तब) भरत ने कहा— ' हे रघुराज, शत्रुघ्न और सुमन्त मिलने के लिए आ रहे हैं और माताएँ भी स्नेह से ओतप्रोत होकर शीघ्रता से मिलने आ रही हैं । ६५ जो तप और ज्ञान से समर्थ हैं, जो शान्ति और क्षमा के (मानो) पर्वत ही हैं, वे सद्‌गुरुनाथ वसिष्ठ मुनि झट से मिलने आ रहे हैं । ६६ और अयोध्या के समस्त ब्राह्मण, अठारह प्रकार की प्रजा, समस्त सेना-दल, अद्‌भुत प्रीति से मिलने के लिए आ रहे हैं । ' ६७ इतने में सुमन्त और शत्रुघ्न ने रथ में से नीचे उतरकर श्रीराम को देखते ही दण्डवत् प्रणाम किया । ६८ शत्रुघ्न और सुमन्त को देखकर उनसे मिलने के लिए श्रीराम उठ गये । शत्रुघ्न उनके चरणों में लिपट गया । उसकी आँखों से (अश्रु-) जल झर रहा था । ६९ श्रीराम ने बहुत गद्‌गद होकर शत्रुघ्न का आलिंगन किया । तो ही उस समय सुमन्त ने श्रीराम के पाँव पकड़े । १७० श्रीराम ने बंधु की भाँति (मानते हुए) उसका भी आदरपूर्वक आलिंगन किया । (तदनन्तर) लक्ष्मण ने सुमन्त और शत्रुघ्न को परम प्रेम से गले लगाया । ७१ तब इसके पश्चात् समस्त योद्धा, सुग्रीव और (लंका का) राजा विभीषण और सुमन्त तथा शत्रुघ्न परम प्रेम से मिल गये । ७२ उन दोनों ने (सुमन्त और शत्रुघ्न ने साक्षात्) सौभाग्य की सरिता

दोघांहीं वंदिली जनकदुहिता। यावरी सुमंत म्हणे रघुनाथा। सद्‌गुरु वसिष्ठ समीप आले। ७३ ऐसें बोलतां सुमंत। सामोरा धांवे रघुनाथ। तों वहनाखालीं ब्रह्मसुत। राम देखोनि उतरला। ७४ नेत्रीं देखून सद्‌गुरुनाथ। सद्‌गद जाहला जनकजामात। दंडन्यायें नमस्कार घालीत। धांवूनि वसिष्ठ उचली प्रेमें। ७५ म्हणे जगद्वंद्या रघुनाथा। तुझें दर्शन दुर्लभ समस्तां। भूभार हरावया तत्त्वतां। अवतरलासी सूर्यवंशीं। ७६ संसारभयश्रममोचना। रावणान्तका चिन्मयलोचना। पुराणपुरुषा जगन्मोहना। धन्य लीला दाविली। ७७ मग बोले जगदात्मा। सर्व तुमचे कृपेचा महिमा। गुरुभक्तासी शिव ब्रह्मा। सनकादिक वंदिती। ७८ रोग काळ भय मृत्य। त्यांपासूनि रक्षी सद्‌गुरुनाथ। देव केले बंधनमुक्त। हा प्रताप गुरुकृपेचा। ७९ मग वसिष्ठमुनीचे चरण। वंदी प्रेमें सुमित्रानंदन। त्यासी गुरूनें हृदयीं धरून। म्हणे धन्य कीर्ति तुझी। १८० त्यावरी वसिष्ठाचे

जनक-कन्या सीता को अवश्य ही नमस्कार किया। इसके पश्चात् सुमन्त ने कहा— 'हे रघुनाथ, सद्‌गुरु वसिष्ठ निकट आ गये हैं।' ७३ सुमन्त द्वारा ऐसा कहने पर श्रीराम (उनकी अगुवानी के लिए) आगे दौड़े, त्यों ही उन्हें देखकर ब्रह्मा का पुत्र वसिष्ठ वाहन से नीचे उतर गया। ७४ सद्‌गुरुनाथ को आँखों से देखते ही श्रीराम अति गद्‌गद हो उठे। उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया, तो वसिष्ठ ने दौड़कर उन्हें प्रेमपूर्वक उठा लिया। ७५ (फिर) वह बोला— 'हे जगद्वंद्य रघुनाथ, सबके लिए तुम्हारे दर्शन (वस्तुत:) दुर्लभ हैं। (फिर भी) वस्तुत: भूमि के (पाप-रूपी) भार का हरण करने के लिए तुम सूर्य-कुल में अवतरित हो गये हो। ७६ हे सांसारिक भय और कष्ट से मुक्त करनेवाले, हे रावणान्तक, हे चिन्मय (-ज्ञानमय)-लोचन, हे पुराण-पुरुष, हे जगन्मोहन, तुमने जो लीला प्रदर्शित की वह धन्य है। ७७ तब जगदात्मा श्रीराम बोले— '(यह) सब आपकी कृपा की महिमा है। शिवजी, ब्रह्मा, सनकादि आदि गुरुभक्त (व्यक्ति) का वन्दन करते हैं। ७८ रोग, काल, भय, मृत्यु से सद्‌गुरु स्वामी रक्षा करते हैं। यह गुरु की कृपा का प्रताप है कि मैंने देवों को बन्धन से मुक्त कर लिया— अर्थात् मुक्त कर पाया हूँ। ७९ फिर लक्ष्मण ने वसिष्ठ मुनि के चरणों को नमस्कार किया। उसे हृदय से लगाकर गुरु (वसिष्ठ) ने कहा— 'तुम्हारी कीर्ति धन्य है।' १८० उसके पश्चात्

चरण। जानकी वंदी प्रेमेंकरून। गुरु म्हणे अनंत कल्याण। सौभाग्यवर्धन तुझें हो कां। ८१ जनकात्मजे तूं पूर्ण सती। वाढविली राघवाची कीर्ती। तूं प्रणवरूपिणी चिच्छक्ती। ब्रह्माण्ड रचिसी स्वइच्छें। ८२ असो सुग्रीव-विभीषणादि वीर। करिती सद्‌गुरूसी नमस्कार। तों माता आली सत्वर। सुखासनीं बैसोनियां। ८३ वहनापुढें वेत्रधार। चालती सहस्रांचे सहस्र। वहन आच्छादिलें समग्र। हेमांबरेंकरूनियां। ८४ सुमंत म्हणे रघुनाथा। स्वामी जवळी आली माता। तों धीर न धरवे सीताकान्ता। सामोरा जात त्वरेनें। ८५ वहन ठेलें भूमंडळीं। तों राघव धांवूनि आला जवळी। जैसें तान्हें बाळ उडी घाली। धेनु जवळी देखतां। ८६ मातेचे चरणीं मस्तक। ठेवी त्रिभुवननायक। मायेनें उचलोन तात्कालिक। हृदयीं धरिला ते काळीं। ८७ नेत्रीं अश्रुधारा वाहात। तेणें अभिषेकिला रघुनाथ। स्नेह-भरें माता स्फुंदत। सद्‌गद कंठ जाहला। ८८ म्हणे चतुर्दश वर्षेंपर्यंत। बाळें माझीं गेलीं वनांत। सुकुमार

सीता ने गुरु वसिष्ठ के चरणों का वन्दन किया, तो उन्होंने कहा— 'तुम्हारा कल्याण अनन्त हो, सुहाग की वृद्धि हो। ८१ हे जनकात्मजा, तुम पूर्ण सती हो। तुमने श्रीराम की कीर्ति की वृद्धि की है। तुम प्रणव-रूपिणी हो, चिच्छक्ति हो। तुम अपनी इच्छा से ब्रह्माण्ड का निर्माण किया करती हो।' ८२ अस्तु। (तदुपरान्त) सुग्रीव, विभीषण आदि ने सद्‌गुरु को नमस्कार किया। इतने में (कौसल्या) माता पालकी में बैठे हुए शीघ्रता से आ गयीं। ८३ सहस्रों-सहस्र वेत्रधारी उस वाहन के आगे चल रहे थे। वह समग्र वाहन स्वर्ण से आच्छादित था। ८४ सुमन्त ने श्रीराम से कहा— 'हे स्वामी, माता निकट आ गयी है।' तो श्रीराम से धीरज नहीं धारण किया जा पाया। वे झट से (अगुवानी के लिए) आगे गये। ८५ वाहन भूमि पर रखा, तो श्रीराम वैसे दौड़कर उसके पास आ गये, जैसे गाय को पास देखते ही दुधमुँहा बछड़ा छलाँग भरता है। ८६ (तब) त्रिभुवननायक श्रीराम ने माता के चरणों में मस्तक रखा, तो उस समय तत्काल उन्हें उठाकर उसने हृदय से लगा लिया। ८७ उसकी आँखों से अश्रुधाराएँ बह रही थीं। उसने रघुनाथ को अभिषिक्त किया। स्नेह-भरे (मन से) माता सिसक रही थी। उसका गला बहुत रुँध गया था। ८८ (फिर) वह बोली— 'मेरे बच्चे सुकोमल पाँवों से

चरणीं चालत। शीतोष्ण सोशीत पैं। ८९ श्रीराम माझा राजहंस। सोडोनि अयोध्यामानस। पाठविला कंटकवनास। सांवळा डोळस सुकुमार। १९० माझा रामचंद्र निर्मळ। वियोगराहु मध्यें सबळ। चतुर्दश वर्षें शुद्ध मंडळ। वदनेंदु आजि देखिला। ९१ चतुर्दश वर्षें क्रमिली रजनी। आजि राम उगवला वासरमणी। अयोध्याजनवदनकमळिणी। टवटवल्या एकदांचि। ९२ नवमेघरंग रघुवीर। वियोगसमीरें नेला दूर। देहक्षेत्र शोषिलें समग्र। आजिवरी आमुचें। ९३ असो यावरी रघुनंदन। करी मातेचें समाधान। म्हणे भाग्य आमुचें परिपूर्ण। देखिले चरण डोळां तुझे। ९४ तों येऊनि लक्ष्मण। वंदी कौसल्येचे चरण। कौसल्येनें हृदयीं धरून। बोले वचन सद्गद। ९५ दोघे माझे चिंतामणी। गोफणिले होते दूर वनीं। माझे पूर्वभाग्येंकरूनी। पुढती नयनीं देखिले। ९६ सुमित्रेचे चरण सप्रेमें। वंदिले तेव्हां आत्मारामें। हृदयीं आलिंगिला सप्रेमें। सुमित्रेनें

चलते हुए, सर्दी-गर्मी सहन करते हुए चौदह वर्ष तक वन में गये हुए थे। ८९ श्याम-सुन्दर सुकोमल श्रीराम— मेरे राजहंस को अयोध्यारूपी मानसरोवर से छुड़वाकर दूर कण्टक-वन में भेजा था। १९० मेरा राम रूपी चन्द्र निर्मल है। परन्तु विरह रूपी राहु प्रबल रहा। (इसलिए उस चन्द्र का ग्रहण हो गया था; परन्तु) आज चौदह वर्षों के पश्चात् (जब कि राम लौट आया है) मैंने उसका निर्मल मुखरूपी चन्द्र देखा है। ९१ मानो चौदह वर्ष की रात बीत गयी और आज रामरूपी सूर्य उदित हुआ है। इसलिए अयोध्या के लोगों की मुखरूपी कमलिनियाँ एक साथ कान्तिमान हो गयी हैं। ९२ नव घन-से श्यामवर्णधारी रघुवीर को वियोगरूपी पवन दूर ले गया था। आज तक हमारा शरीररूपी क्षेत्र सोख लिया गया था।' ९३ अस्तु। इसके पश्चात् श्रीराम ने माता को सन्तुष्ट कर लिया और कहा— 'जब कि हम तुम्हारे चरणों को आँखों से देख सके हैं, तो हमारा भाग्य परिपूर्ण है।' ९४ इतने में लक्ष्मण ने आकर कौसल्या के चरणों को नमस्कार किया। उसे हृदय से लगाकर उसने बहुत गद्गद होते हुए यह बात कही। ९५ 'मेरे दोनों चिन्तामणि रत्न (मानो) गोफन से वन में दूर फेंके गये थे। (केवल) पूर्वभाग्य के कारण उन्हें फिर से देख सकी हूँ।' ९६ (फिर) तब आत्माराम स्वरूप श्रीराम ने प्रेमपूर्वक सुमित्रा के चरणों का वन्दन किया,

तेधवां । ९७ म्हणे चतुर्दश वर्षेंपर्यंत । अयोध्या जाहली होती प्रेतवत । आजि निजप्राण रघुनाथ । मागुती आंत संचरला । ९८ असो सुमित्रेसी वंदून । रामें कैकयीस केलें नमन । कौसल्येऐसें आलिंगन । प्रीतीनें तेणें दीधलें । १९९ कैकयी म्हणे रघुनाथा । कल्याणरूपें नांदें आतां । अपयश आलें माझे माथां । तें आजि सर्व निरसलें । २०० शुष्क कासारींचे मीन । तळमळत होते अयोध्याजन । तें आजि राम जगज्जीवन । येऊनि भरलें एकसरें । २०१ इकडे सुमित्रेचे चरण । साष्टांग नमी लक्ष्मण । पुत्रास प्रेमें उचलून । हृदयीं धरी तेधवां । २ म्हणे चवदा वर्षें निराहार । वनीं श्रमलासी तूं थोर । सौमित्र देत प्रत्युत्तर । रघुवीरकृपेनें सुखी होतों । ३ मग कैकयीस नमस्कार । करीत भूधराव-तार । आलिंगोनियां सौमित्र । म्हणे बा रे विजयी होईं । ४ यावरी कौसल्येचे चरणीं । लागे येऊन मंगलभगिनी । हृदयीं दृढ आलिंगोनी । रामजननी बोलत । ५ चतुर्दश वर्षेंपर्यंत ।

तो उस समय सुमित्रा ने प्रेम से उसे गले लगाया । ९७ (फिर) वह बोली— 'चौदह वर्ष तक अयोध्या प्रेतवत् हो गयी थी; आज मानो रघुनाथ रूपी उसके अपने प्राणों ने फिर से अन्दर संचारण किया है ।' ९८ अस्तु । सुमित्रा का वन्दन करने के पश्चात् श्रीराम ने कैकेयी को नमस्कार किया, तो उसने कौसल्या की भाँति प्रेम से उसका आलिंगन किया । ९९ (तदनन्तर) कैकेयी बोली-- 'हे रघुनाथ, अब तुम कल्याण स्वरूप रहो । मेरे सिर जो अपकीर्ति आ गयी थी, उस सबका आज निराकरण हुआ है । २०० अयोध्या के लोग सूखे तालाब की मछलियों-से तड़प रहे थे, तो आज श्रीराम रूपी जगत् के लिए जीवन अर्थात् पानी ने आकर उसे एकबारगी भर दिया है ।' २०१ इधर लक्ष्मण ने सुमित्रा के चरणों को दण्डवत् प्रणाम किया, तो पुत्र को प्रेम से उठाकर उसने तब हृदय से लगा लिया । २ वह बोली— 'चौदह वर्ष वन में निराहार रहकर तू बहुत कष्ट को प्राप्त हो गया ।' (इसपर) लक्ष्मण ने प्रत्युत्तर दिया-- 'मैं श्रीराम की कृपा से सकुशल था ।' ३ फिर (शेष के अवतार) लक्ष्मण ने कैकेयी को नमस्कार किया, तो उसे गले लगाकर वह बोली— 'अरे, तू विजयी हो जाए ।' ४ इसके पश्चात् मंगल-भगिनी सीता आकर कौसल्या के पाँव लगी, तो उसे दृढ़ता से गले लगाते हुए वह बोली । ५ 'री माँ, चौदह वष तक

माये श्रमलीस बहुत। स्नेहें मुख कुरवाळीत। जानकीचें तेधवां। ६ नवरत्नमुद्रिका परम प्रीतीं। घाली जानकीचे हातीं। तों सीतेनें सुमित्रा सती। परम स्नेहें नमियेली। ७ सुमित्रा म्हणे वो साजणी। परम श्रमलीस काननीं। आपले कंठींची माळ काढूनी। गळां घातली जानकीच्या। ८ स्नेहें-करूनि धरिली हृदयीं। मग सीतेनें वंदिली कैकयी। क्षेम जों दिधलें नाहीं। तों वचन काय बोलत। ९ वय तुझें लहान साचार। परी कीर्ति केली बहुत थोर। रावणाची संपदा समग्र। भोगूनियां आलीसी। २१० श्रोत्रियाचें पात्र पूर्ण। न कळतां घेऊनि गेलें श्वान। ते श्वान मारिलें क्रोधेंकरून। तरी पात्र तें पवित्र नोहेचि। ११ तैसा रामें रावण मारून। तुज आणिलें सोडवून। कोणे एके प्रकारें-करून। कीर्ति त्रिभुवनीं प्रकटली। १२ राम कष्टला वनवासीं। परी तूं सुखें होतीस लंकेसी। तेथींचा सोहळा मानसीं। आठवत असेल तूझिया। १३ ऐसें कैकयी बोलतां।

तू बहुत कष्ट को प्राप्त हो गयी।' तब वह सीता के मुख को स्नेह के साथ सहेलती रही। ६ (तदनन्तर) उसने सीता (के हाथ) की अँगुली में नवरत्नों से युक्त अँगूठी परम प्रेम से चढ़ा दी। तब सीता ने सती सुमित्रा को परम स्नेह के साथ नमस्कार किया। ७ तो सुमित्रा बोली—'अरी सजनी, वन में बहुत कष्ट को प्राप्त हुई है।' (तदनन्तर) अपने गले की माला उतारकर उसने सीता के गले में पहना दी। ८ (और) उसे स्नेह के साथ हृदय से लगा लिया। फिर सीता ने कैकेयी को नमस्कार किया। ज्यों ही उसने क्षेमालिंगन (पूरा) त्यों ही किया नहीं, वह क्या बात बोली, (सुनिए)। ९ 'तेरी अवस्था सचमुच छोटी है। परन्तु तूने बहुत बड़ी कीर्ति प्राप्त की है। रावण की समस्त सम्पदा का भोग करके तू आयी है। १० श्रोत्रीय ब्राह्मण का (यज्ञ-द्रव्य से) पूर्ण (भरा हुआ) पात्र अनजाने कोई कुत्ता ले गया हो, और क्रोध से कोई उस कुत्ते को मार डाले, तो भी वह पात्र पवित्र नहीं रह जाता। ११ उस प्रकार राम रावण को मारकर तुझे छुड़ाकर लाया है। (किसी न) किसी एक प्रकार से तेरी कीर्ति त्रिभुवन में प्रकट हो गयी है। १२ राम वन में निवास करते हुए कष्ट को प्राप्त हो गया था, परन्तु तू तो लंका में सुख-पूर्वक (रहती) थी। (अब) वहाँ का आनन्द-प्रसंग तुझे मन में स्मरण होता होगा।' १३ कैकेयी द्वारा इस प्रकार बोलने पर सीता (वहाँ से) चुप-

उगीच परतोनि गेली सीता। अपवित्रासी उत्तर देतां। येत हीनता श्रेष्ठासी। १४ म्हणोनियां जनकबाळी। जाऊनियां बैसली कौसल्येजवळी। शान्तीपासीं जैसी शोभली। क्षमा निरंतर राहावया। १५ कीं आवडी तेथें भक्ती। राहे जैसी परम प्रीतीं। कीं धारणा तेथें वृत्ती। न सोडीच सर्वथा। १६ तैसी कौसल्येपासीं सीता। शोभली ती जगन्माता। भाविक दुर्जना त्यागूनि तत्त्वतां। संतसंगें जेवीं वसे। १७ रामविजय ग्रंथ सुरस। उत्तरकाण्ड हाचि कळस। त्यावरी अयोध्या-प्रवेश। सावकाश परिसिजे। १८ मंगलस्नान करून। रघुवीर करील भोजन। मग सुमुहूर्तेसीं संपूर्ण। अयोध्येंत प्रवेशती। १९ श्रीधरवरदा राघवेशा। ब्रह्मानंदा पुराण-पुरुषा। अभंगपद निजदासा। कृपा करून देईं तूं। २२० स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। पंचत्रिंशत्तमोऽध्याय गोड हा। २२१

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

चाप ही लौट गयी। अपवित्र (आचरण करनेवाले) व्यक्ति को (उसकी बात का) उत्तर देने से श्रेष्ठ मनुष्य को हीनत्व आ जाता है। १४ इसलिए जनक-कन्या कौसल्या के पास जाकर बैठ गयी। शान्ति के पास रहते हुए (मानो) जैसे क्षमा शोभा देती है, अथवा (जहाँ सद्) अभिरुचि हो, वहाँ परम प्रेम से जैसे भक्ति रहती है, अथवा (जहाँ) धारणा होती है, वहाँ वृत्ति उसे बिलकुल नहीं छोड़ती। १५-१६ वैसे ही कौसल्या के पास (बैठी हुई) वह जगन्माता सीता वैसे ही शोभायमान हो रही थी, जैसे दुर्जनों का त्याग करके भक्त सचमुच सन्तों की संगति में (शोभायमान) रहता हो। १७ श्रीराम-विजय नामक यह ग्रन्थ मधुर रस से युक्त है। उत्तरकाण्ड ही मानो उसका कलश अर्थात् सर्वोच्च अंश है। (अब) उसके पश्चात् श्रीराम के अयोध्या-प्रवेश की कथा धीरे-धीरे सुनिए। १८ (आगे कहा जाएगा—) रघुवीर मंगल-स्नान करके भोजन करेंगे; (उसके) अनन्तर पूर्ण शुभ मुहूर्त पर वे अयोध्या में प्रवेश करेंगे। १९

हे श्रीधर के वरदाता, हे राघवेश, हे (गुरु) ब्रह्मानन्द, हे पुराण-पुरुष, अपने दास को कृपा करके अभंग (अक्षय) पद प्रदान करो। २२०

स्वस्ति। 'श्रीराम-विजय' नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है। वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। उसके इस पैंतीसवें मधुर अध्याय का चतुर भक्त सदा श्रवण करें। २२१

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३६

श्रीगणेशाय नमः। जो सद्गुरु आद्य निर्विकार। जो ब्रह्मादिकांचें माहेर। जो आदिमायेचा निजवर। तो हा रघुवीर रविकुळीं। १ अनंतब्रह्माण्डांचा कर्ता। जो प्रळय-काळाचा शासनकर्ता। तो भरताग्रज तत्त्वतां। नंदिग्रामीं राहिला। २ अयोध्येचे जन सकळ। षोडशपद्में राजदळ। सैन्य उतरलें तुंबळ। नंदिग्राम वेष्टूनियां। ३ अष्टादश पद्में वानरदळ। बहात्तर कोटी रीस सबळ। छप्पन कोटी गोलांगूळ। उतरलें यथावकाशें। ४ यावरी विश्रव्याचा सुत। बिभीषण जो कां पुण्यपंडित। त्याची असुरसेना अद्भुत। श्रीरघुनाथ-भक्त उतरले। ५ अष्टादश अक्षौहिणी वाजंत्रें। बिभीषणाचीं गर्जती गजरें। त्याहूनि अयोध्येचीं परिकरें। अहोरात्र वाजती। ६ शत्रुघ्न आणि सुमंत। हेमांबरें शिबिरें बहुत। उभीं करिते जाहले तेथ। लक्षानुलक्ष ते काळीं। ७ त्यांसी रत्नजडित स्तंभ। वरी खचित कळस सुप्रभ। त्यांच्या

श्रीगणेशाय नमः। जो (समस्त जगत् के) सद्गुरु हैं, जो आद्य अर्थात् ब्रह्माण्ड में सर्वप्रथम स्थित हैं, जो निर्विकार अर्थात् अपरिवर्तन-शील हैं, जो ब्रह्मा आदि के मातृघर (मायका) हैं, जो आदिमाया सीता के अपने पति हैं, वे ही सूर्यकुल में अवतरित रघुवीर श्रीराम हैं। १ जो असंख्य ब्रह्माण्डों के निर्माता हैं, जो प्रलय कर देनेवाले काल (-देवता) पर शासन करनेवाले हैं, वस्तुतः वे (ही) भरत के ज्येष्ठ बंधु श्रीराम नंदिग्राम में ठहर गये। २ अयोध्या के समस्त लोग, सोलह पद्म बहुत बड़ा राज-सेनादल नंदिग्राम को घेरे हुए ठहर गया। ३ अठारह पद्म वानर-सेना, बहत्तर करोड़ शक्तिशाली रीछ, छप्पन करोड़ गोलांगुल यथास्थान ठहर गये। ४ इसके पश्चात्, विश्रवा के पुत्र विभीषण—जो पवित्र (आचारवान) तथा विद्वान् था—की श्रीराम-भक्त असुरों की अद्भुत सेना ठहर गयी। ५ विभीषण के अठारह अक्षौहिणी वाद्य उच्च स्वर में गरज रहे थे। उससे भी अधिक अयोध्या के सुन्दर वाद्य-समूह दिन-रात बज रहे थे। ६ उस समय शत्रुघ्न और सुमन्त ने स्वर्णिम (अर्थात् ज़रीदार) वस्त्रों के बहुत—लक्ष-लक्ष तम्बू गड़वा दिये। ७ उनके खम्भे रत्न-जड़े थे, ऊपर निश्चय ही सुन्दर कान्ति से युक्त कलश थे। उनके तेज से उस समय आकाश उज्ज्वलता को प्राप्त हो गया था। ८ सुग्रीव, विभीषण आदि राजाओं और बड़े-बड़े श्रेष्ठ

तेजेंकरूनि नभ। उजळलें ते काळीं। ८ सुग्रीवबिभीषणादि नृपवर। आणिक कपिराज थोरथोर। त्यांसीही शिबिरगृहें सविस्तर। ठाव दीधला राहावया। ९ कुळाचळांत मेरु थोर। तैसें मुख्य श्रीरामाचें शिबिर। मातागुरुबंधूंसह रघुवीर। तेथें राहता पैं जाहला। १० अंतर्गृहीं सीता सती। ऊर्मिला मांडवी श्रुतकीर्ती। चवघी जावा तेथें राहाती। आनंद चित्तीं न समाये। ११ आला ऐकतां रघुवीर। पातला जनकराज श्वशुर। संगें दळभार अपार। वाद्यगजरें येतसे। १२ छप्पन्न देशींचे नृपती। पावले तेव्हां शीघ्रगती। सप्तद्वीपीं नवखंडीं जे वसती। धांवती करभार घेऊनियां। १३ धांवले सकळ ऋषीश्वर। नानासाधनी व्रती थोरथोर। योग याग टाकोनि समग्र। येती रघुवीर पाहावया। १४ सप्त पुऱ्या गिरिकंदरीं। नाना तीर्थीं गूढ विवरीं। वृक्षाग्रवासी वायुआहारी। आसनें जयांचीं नानाविध। १५ शमदमादिक साधनें। अष्टांगयोग देहदंडणें। नाना हठयोग व्रताचरणें।

वानरों को विशाल तम्बुओं में निवास करने के लिए स्थान दिया था। ९ जैसे कुल-पर्वतों में मेरु पर्वत श्रेष्ठ है, उस प्रकार (सब में) श्रीराम का शिविर मुख्य था। माताओं, बंधुओं सहित श्रीराम वहाँ ठहर गये। १० वहाँ अन्तर-गृह में सती सीता, ऊर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्ति—चारों देवरानियाँ रह गयीं। उनका आनन्द मन में नहीं समा रहा था। ११ यह सुनकर कि रघुवीर (लौट) आये हैं, श्वशुर जनकराज आ पहुँचे। उनके साथ में अपार सेना-दल वाद्यों का गर्जन करता हुआ आ गया। १२ तब (तक) छप्पन देशों ‡ के राजा (भी) शीघ्र गति से आ पहुँचे। जो (राजा) सातों द्वीपों तथा नौ खण्डों में रहते थे, वे कर-भार (निष्कृति धन या नज़राना) लेकर दौड़े। १३ समस्त बड़े-बड़े ऋषि दौड़े। नाना प्रकार से साधना करनेवाले, बड़े-बड़े व्रतधारी—सब योग (-साधना) तथा याग (यज्ञादि कर्म-काण्ड) छोड़कर श्रीराम के दर्शन के लिए आ गये। १४ सातों पुरों * में, पर्वतों की गुफाओं में, अनेकानेक तीर्थ-स्थलों में, गुप्त विवरों में रहनेवाले, वृक्षों के अग्रभागों पर निवास करनेवाले, वायु का सेवन करके रहनेवाले। (योगी) जो (योग-साधना सम्बन्धी) नाना प्रकार के आसन लगाये हुए थे, (वे) सब (अपने-

---

* टिप्पणी : सप्त पुरियाँ - अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, कांची, अवंतिका (उज्जैन), द्वारावती (द्वारका)।

‡ १३ वें छन्द का फुटनोट (पेज ११११ पर देखिये)।

सांडूनि वेगीं धांवती । १६ तितुक्यांसही रघुनंदन । उठोनि देत आलिंगन । समस्तांसहित सीताजीवन । वस्त्रमंडपीं बैसला । १७ देहीं विदेही रघुवीर । त्यासी भेटों आला विदेही श्वशुर । तो जगन्मातेचा पिता मिथिलेश्वर । पद्मजजनकें आलिंगिला । १८ असो नर वानर नृपवर । वसिष्ठादि सकळ ऋषीश्वर । त्यांसी मंगलस्नान रघुवीर । करविता जाहला ते काळीं । १९ लक्षानुलक्ष सुवर्णकढया । उष्णोदकें तापवूनियां । सुगंध तैल लावूनियां । मंगलस्नानें करवीतसे । २० सर्वांसी वस्त्रें अलंकार । नाना रत्नभूषणें अपार । देऊनियां जनकजावर । रघुवीर सर्वां पाठवी । २१ बिभीषणादि सुग्रीव वानर । मंगलस्नान करिती सत्वर । अमौल्य वस्त्रें अलंकार । स्वयें रघुवीरें दीधले । २२ वसिष्ठ नाहतांचि सत्वर । अमौल्य वस्त्रें अलंकार । स्वयें उठोनि रघुवीर । देता जाहला आनंदें । २३ मणिमय पादुका आणून । गुरूपुढें

अपने) शम, दम आदि साधनाओं, अष्टाँग योग, ‡ देह-दण्डन, नाना प्रकार के हठ योग, व्रतों का आचरण छोड़कर वेग-पूर्वक दौड़े । १५-१६ उतने ही (सब) का सीता-जीवन श्रीराम ने उठकर आलिंगन किया । (तदनन्तर) वे सबके साथ वस्त्रों के (बनाये हुए) मंडप में बैठ गये । १७ देह के रहने पर भी राम विदेही (देह-सम्बन्धी सांसारिक आसक्ति से मुक्त) थे । उनसे मिलने के लिए श्वशुर विदेह जनक आ गये, तो (ब्रह्मा के पिता) श्रीराम ने जगन्माता सीता के पिता मिथिलापति जनक का आलिंगन किया । १८ अस्तु । उस समय श्रीराम ने नरों, वानरों, राजाओं, वसिष्ठ आदि समस्त ऋषिवरों को मंगल स्नान करवाया । १९ (वहाँ) सोने की लाख-लाख कड़ाहियाँ थीं । उनमें पानी गर्म करके, (सबको) सुगंधित तेल लगाकर मंगल-स्नान करवाया । २० (तदनन्तर) सबको असंख्य वस्त्र, आभूषण, नाना प्रकार के रत्न तथा (रत्न-जड़े) आभूषण प्रदान करके जनक-जामाता श्रीराम ने बिदा कर लिया । २१ विभीषण आदि (असुर प्रमुखों), सुग्रीव (आदि) (श्रेष्ठ-) वानरों ने झट से मंगल स्नान किया । (फिर) श्रीराम ने स्वयं उनको अनमोल वस्त्र और आभूषण प्रदान किये । २२ वसिष्ठ के स्नान करते ही स्वयं श्रीराम ने उठकर उन्हें आनन्द-पूर्वक अमूल्य वस्त्र और आभूषण झट से समर्पित

‡ टिप्पणी : अष्टांग योग-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि ।

ठेवी रघुनंदन। त्या वसिष्ठें पायीं घालोन। मग बैसले स्वस्थानीं। २४ त्रयभगिनींसमवेत सीता। अंतर्गृहीं जगन्माता। नाहोनियां समस्ता। लेइल्या वस्त्रें भूषणें। २५ सकळ अयोध्यावासी जन। नारीनर आदिकरून। अवघ्यांसी गौरव समसमान। जनकजामातें दीधला। २६ मग बंधूसहित रघुनंदन। करिता जाहला मंगलस्नान। तैल सुगंध लावून। जटा उकलल्या मस्तकींच्या। २७ चवदा वर्षेंपर्यंत। भरता-कारणें धरिलें व्रत। तें आजि विसर्जिलें समस्त। सीतावल्लभें तेधवां। २८ अभ्यंग जाहलिया समग्र। सुमंतें वस्त्रें अलंकार। आणोनियां सत्वर। रघूत्तमासी समर्पिलीं। २९ जो लावण्या-मृतसागर। लेइला वस्त्रें अलंकार। भरतें पादुका सत्वर। मस्तकींच्या पुढें ठेविल्या। ३० मग रघुनाथआज्ञेंकरून। सौमित्र भरत शत्रुघ्न। चौथा सुमंत प्रधान। मंगलस्नान करिते जाहले। ३१ संध्यादि नित्यकर्में सारिलीं। तंव पाक-निष्पत्ति जाहली। सकळ ऋषि नृप ते काळीं। भोजनासी बैसले। ३२ बिभीषण सुग्रीव वायुनंदन। नळ नीळ शरभ

किये। २३ (फिर) उन्होंने रत्नमय पादुकाएँ लाकर गुरु के सामने रखीं। वसिष्ठ ने उन्हें पाँवों में चढ़ाया और तब वह अपने (निर्धारित) स्थान पर बैठ गया। २४ (इधर) अन्तर-गृह में तीनों बहनों सहित स्नान करके सीता ने उन सबके सहित वस्त्र और आभूषण पहन लिये। २५ (तत्पश्चात्) अयोध्या-निवासी समस्त स्त्री-पुरुष आदि सब लोगों को श्रीराम ने सम-समान रूप से गौरवान्वित किया। २६ अनन्तर श्रीराम ने बंधुओं सहित मंगल-स्नान किया। सुगंध-युक्त तेल लगाकर उन्होंने मस्तक की जटाओं को खोल दिया। २७ तब सीतापति श्रीराम ने भरत के निमित्त (जिस) व्रत को चौदह वर्ष तक धारण किया था, उसे आज पूर्णतः समाप्त किया। २८ अभ्यंग स्नान पूर्ण होने पर श्रीराम को सुमन्त ने झट से वस्त्र और आभूषण लाकर समर्पित किये। २९ जब लावण्य रूपी अमृत के सागर श्रीराम ने वस्त्र और आभूषण पहन लिये, तो भरत ने अपने मस्तक पर धारण की हुई उनकी पादुकाएँ झट से सामने रख दीं। ३० फिर श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तथा चौथे मंत्री सुमन्त ने मंगल-स्नान किया। ३१ (तदनन्तर) उन्होंने संध्या आदि नित्य कर्म पूर्ण किये; तब (तक) रसोई (भोजन सामग्री) तैयार हुई तो उस समय समस्त ऋषि और राजा भोजन करने बैठे। ३२

गंधमादन। बंधूंसहित रघुनंदन। भोजनासी बैसले। ३३ मणिमय कनकताटें शोभलीं। रत्नखचित अडणिया तळीं। उदकपात्रें भरूनियां ठेविलीं। समसमान सर्वांसी। ३४ रजताचळाऐसा केवळ। तैसा भात वाढिला निर्मळ। पंचभक्ष्यें परमान्नें सोज्ज्वळ। शाखा साठी पत्रशाखा शोभती। ३५ दधि मधु दुग्ध घृत। शर्करा पंचामृत वाढीत। पंक्तीस जेथें रघुनाथ। तेथें कांहीं न्यून नसे। ३६ तीं अन्नें वर्णावीं समस्त। तरी कां व्यर्थ वाढवावा ग्रंथ। सकळ जीवांसहित रघुनाथ। तृप्त जाहला भोजनीं। ३७ हस्त प्रक्षालून निर्मळ। त्रयोदशगुणी तांबूल। सर्वांसहित तमालनील। घेता जाहला ते काळीं। ३८ राम कोटिमन्मथतात। तीन दिवस राहिला तेथ। वसिष्ठें काढिला दिव्य मुहूर्त। अयोध्याप्रवेश

श्रीराम विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, नल, नील, शरभ, गंधमादन और अपने बंधुओं सहित भोजन करने बैठे। ३३ सुवर्ण की रत्नमय थालियाँ शोभायमान थीं। उनके नीचे रत्न-जड़ी तिपाइयाँ थीं। सबके लिए सम-समान (थालियाँ और) उदक-पात्र भरकर रखे थे। ३४ प्रत्येक थाली में स्वच्छ भात परोसा था, मानो शुद्ध चाँदी का पर्वत ही हो। पाँच भक्ष्य पदार्थ *, निर्मल (कान्तिमान) मिठाइयाँ, साग, साठ प्रकार की सब्जियाँ (प्रत्येक थाली में) शोभायमान थीं। ३५ (परोसिये) दही, मधु, दूध, घी, शक्कर तथा उनसे बना हुआ पंचामृत (नामक सालन) परोस रहे थे। श्रीराम जहाँ (जिस) पंगत में हों, वहाँ कोई न्यूनता नहीं रहती। ३६ (हम चाहते हैं कि) उन समस्त खाद्य वस्तुओं का वर्णन करें, परन्तु (उनका वर्णन करते हुए) ग्रंथ को व्यर्थ ही बढ़ाएँ? (इतना ही कहना पर्याप्त है कि) श्रीराम समस्त जीवों (व्यक्तियों) सहित भोजन से अघा गये। ३७ फिर उस समय हाथ स्वच्छ धोकर तमालनील श्रीराम ने तेरह गुणों से युक्त बीड़ा ‡ सबके साथ ग्रहण किया। ३८ करोड़ों कामदेवों के पिता (-से) श्रीराम वहाँ तीन दिन ठहरे। वसिष्ठ ने अयोध्या में प्रवेश करने के लिए दिव्य मुहूर्त खोज निकाला था। ३९ वह पुष्य (नक्षत्र)-सूर्य (ग्रह) योग (से युक्त वह मुहूर्त) बहुत कल्याणप्रद

* टिप्पणी : पंचभक्ष्य - छुहारा, नारियल, दाल, चिउड़ा, खील।

‡ टिप्पणी : त्रयोदश-गुणी बीड़ा— इस बीड़े में तेरह गुण होते हैं, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभप्रद माने जाते हैं। वे हैं— कटु, तीक्ष्ण (तीखा), उष्ण, मधुर, क्षार, कषाय, वातघ्न, कफ-नाशक, कृमिहर, दुर्गंधिनाशक, मुखभूषण, शुद्धीकरण, कामसंदीपन।

करावया । ३९ पुष्यार्कयोग बहु सुभद्र । रामचंद्रासी उत्तम चंद्र । त्या सुमुहूर्तीं गुणसमुद्र । उठता जाहला तेधवां । ४० लागला वाद्यांचा गजर । भेरी ठोकिल्या चौदा सहस्र । बिभीषणाचीं वाद्यें समग्र । वाजों लागलीं तेधवां । ४१ बिभीषण सुग्रीवादि नृपती । बैसले तेव्हां दिव्य रथीं । वाद्य-गजरें करूनि क्षिती । हालों लागली तेधवां । ४२ दिव्य रथीं रघुनाथ । बैसला तेव्हां सीतेसहित । शत्रुघ्न आणि भरत । चामरें वरी ढाळिती । ४३ सहस्रांचे सहस्र वेत्रधार । पुढें मार्ग करिती सत्वर । नगरद्वाराजवळी रघुवीर । पावता जाहला ते काळीं । ४४ सप्त पुऱ्यांत अतिश्रेष्ठ । अयोध्यापुरी हे वरिष्ठ । सकळविद्यांमाजी सुभट । अध्यात्मविद्या जैसी कां । ४५ अयोध्येची रचना ते क्षणीं । कपी असुर पाहती नयनीं । देवराजपुरी उपमे उणी । अयोध्येसीं तुलितां पैं । ४६ अयोध्येभोंवतें उपवन । उपमेसी उणें नंदनवन । वृक्ष सदा सुफळ संपूर्ण । गेले गगन भेदीत । ४७ सूर्यकिरण न दिसे तळीं । ऐसी सघन छाया पडिली । कस्तूरीमृग सर्वकाळीं ।

था । श्रीराम के लिए चंद्र (ग्रह) उत्तम था । तब उस सुमुहूर्त पर गुण-समुद्र श्रीराम उठ गये । ४० वाद्यों का गर्जन होने लगा । चौदह सहस्र नगाड़ों पर चोट की । तब विभीषण के समस्त वाद्य (भी) बजने लगे । ४१ तब विभीषण, सुग्रीव आदि राजा दिव्य रथों में बैठ गये । तो उस समय वाद्यों के गर्जन से (मानो) धरती हिलने लगी । ४२ तब श्रीराम सीता-सहित एक दिव्य रथ में बैठ गये । शत्रुघ्न और भरत उन पर चँवर डुला रहे थे । ४३ आगे सहस्र-सहस्र वेत्रधारी झट से मार्ग (खुला) बना रहे थे । उस समय श्रीराम नगर के द्वार के निकट पहुँच गये । ४४ सातों अतिश्रेष्ठ पुरों में यह अयोध्या नगरी वैसे ही वरिष्ठ (सर्वोपरि) है जैसे अध्यात्म विद्या समस्त विद्याओं में श्रेष्ठ है । ४५ उस क्षण वानर और असुर अयोध्या की रचना अपनी आँखों से निरख रहे थे । अयोध्या से तुलना करने पर इन्द्र की नगरी अलकापुरी (तक) उपमा देने के लिए घटिया पड़ जाती है । ४६ अयोध्या के चारों ओर जो उपवन था, उसकी उपमा के लिए नन्दनवन न्यून पड़ता था । (वहाँ के) वृक्ष जो सदा सम्पूर्ण सुन्दर फलों से युक्त रहते थे, गगन को भेदते (हुए ऊँचे हो) गये थे । ४७ उन वृक्षों की ऐसी घनी छाया (पड़ती) थी, कि उनके तले सूर्य-किरण दिखायी नहीं देती थी । उस वन

क्रीडा करिती वनांत। ४८ रावे साळ्ळ्या मयूर। चातकें लावे तित्तिर। नाना पक्षी निरंतर। रामनामें गर्जती। ४९ स्फटिकनिबद्ध सरोवरें। माजी रातोत्पलें सुवासकरें। राजहंस आनंदें थोरें। क्रीडा करिती तये स्थानीं। ५० अयोध्येभोंवते दुर्ग पूर्ण। उंच सतेज अतिगह्न। नागफणाकृती शोभायमान। चर्या त्यांवरी विकासती। ५१ कीं ओळीनें जडले गभस्ती। दुर्गावरी वृक्ष विराजती। ते सदा फळीं निराळ भेदिती। कपी पाहाती समस्त। ५२ जैसे कनकाद्रीचे सुत। तैसे हुडे भोंवते विराजत। महाद्वारें लखलखित। तेज अमित न गणवे। ५३ ऐरावतावरी देवपाळ। बैसोन महाद्वारें जाईल। तेवीं चोवीस योजनें विशाळ। ओतप्रोत अयोध्या। ५४ अयोध्येचा बाजार बहुत। मृगमदाचा सुवास सुटत। मठ मंडप चौबारा शोभत। रत्नजडित अपूर्व। ५५ हिरेयांच्या मदलसा झळकती। वरी मुक्तांचे हंस नाचती। पाचूचे रावे

में सब काल कस्तूरी मृग क्रीड़ा करते रहते थे। ४८ तोते, मैनाएँ, मोर, चातक, लवा, तीतर जैसे नाना प्रकार के पक्षी निरन्तर रामनाम का गर्जन (करते हुए जाप) करते थे। ४९ स्फटिक पत्थर से बनाये हुए तटवाले सरोवरों में सुगंधित लाल कमल (खिले हुए) थे। उन स्थानों में बड़े आनन्द के साथ राजहंस क्रीड़ा करते थे। ५० अयोध्या के चारों ओर पूरे (अर्थात् पर्याप्त) ऊँचे, तेजस्वी, अति गहन दुर्ग थे। वे नाग-फन की-सी आकारवाले तथा शोभायमान थे। उनपर परछाइयाँ विकसित हो जाती थीं। ५१ अथवा मानो सूर्य ही पंक्ति में जड़े हुए हों। दुर्ग पर वृक्ष शोभायमान थे। वे सदा फलों से युक्त होते हुए (ऊँचाई में मानो) आकाश को भेद रहे थे। समस्त वानर इन्हें देख रहे थे। ५२ चारों ओर बुर्ज वैसे ही विराजमान थे जैसे वे (मानो) कनकाद्रि (मेरु) के पुत्र ही हों। दुर्ग के बड़े-बड़े द्वार चमकदार थे। उनके असीम तेज को नापा नहीं जा सकता। ५३ महाद्वार (ऐसे विशाल थे कि उन) में से ऐरावत पर बैठकर इन्द्र (आसानी से) जा सकता। इस प्रकार अयोध्या नगरी चौबीस योजन पूरी-पूरी, अर्थात् पर्याप्त विशाल थी। ५४ अयोध्या का बाज़ार बहुत बड़ा था। उसमें कस्तूरी की सुगंध फैली हुई थी। (उस नगरी में) मठ, मंडप, चौराहे शोभायमान थे। वे अपूर्व रूप से रत्न-जटित थे। ५५ हीरे के चँदोवे जगमगा रहे थे। उनपर मोतियों के बनाये हुए हंस नाच रहे थे। मरकत के तोते बोल रहे थे।

शब्द करिती। घरोघरीं नवल हें। ५६ वीणे टाळ मृदंग वाजवून। लेपें करिती सुस्वर गायन। रत्नपुतळ्या करिती नर्तन। हस्तसंकेत दावूनियां। ५७ शतखणी निर्मळ गोपुरें विशाळ। खणोखणीं पुतळ्या निर्मळ। अणुमात्र लागतां अनिळ। फिरफिरून नृत्य करिती। ५८ अवतारलेपें रत्न-जडित। गोपुरांवरी सतेज झळकत। उडुगणांसी हिणावीत। लक्षावधि चहूंकडे। ५९ राजगृहीं अत्यंत सुप्रभ। झळकती हिरियांचे स्तंभ। निळियांचीं उथाळीं स्वयंभ। जोतीं घडलीं पाचूचीं। ६० सुवर्णतुळवट लंबायमान। वरी पाचूचे दांडे सघन। माणिकांच्या किलच्या संपूर्ण। तेजेंकरून लख-लखती। ६१ अष्टमहासिद्धि घरोघरीं। नवनिधि तिष्ठती द्वारीं। समानबुद्धि नरनारी। पुण्यराहाटीं वर्तती। ६२ मृत्यु रोग

घर-घर में यह अद्भुत बात हो रही थी। ५६ (वहाँ लेपन से बनाये हुए) चित्र वीणा, करताल और मृदंग बजाते हुए मधुर स्वर में गायन कर रहे थे। हाथों से संकेत करते हुए रत्नों की बनी पुतलियाँ (गुड्ड़ियाँ) नृत्य कर रही थीं। ५७ (वहाँ) सौ-सौ खण्डोंवाले स्वच्छ विशाल गोपुर थे। (उनके) खण्ड-खण्ड में निर्मल पुतलियाँ थीं। उन्हें अणु-भर अर्थात् ज़रा-सी हवा लगते ही वे घूमते-घूमते हुए नृत्य कर सकती थीं। ५८ देवालयों के गोपुरों पर लेपन करके बनाये हुए अवतारी पुरुषों के रत्न-जड़े चित्र तेज से जगमगा रहे थे। चारों ओर (बने) ऐसे लाखों चित्र तेज में नक्षत्रों को लज्जित कर रहे थे। ५९ राजगृह में अत्यधिक तेजस्वी हीरों के खम्भे जगमगा रहे थे। उनके आधार (बैठक) इन्द्रनील के तथा स्वयं-निर्मित थे। चबूतरे मरकत के बने थे। ६० लम्बी धरनें सोने की थीं, ऊपर मरकत के मोटे डंडे थे। पूरी-पूरी मानिक की बनी किरचें तेज से जगमगा रही थीं। ६१ घर-घर आठों महासिद्धियाँ * थीं। नौ निधियाँ § (द्वार-) द्वार खड़ी थीं। पुरुष और स्त्रियाँ समान बुद्धि के थे— अर्थात् बुद्धि में दोनों समान थे। वे पवित्र रीति से आचरण किया करते थे। ६२ (अप-) मृत्यु, रोग, दरिद्रता, दुःख, दुर्बुद्धि, अवर्षण (सूखा), पाप, शोक, चोर, कपटभाव, पीड़ा,

---

* टिप्पणियाँ : अष्ट महासिद्धियाँ— अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

§ नव निधियाँ— अश्व, गज, रथ, दुर्ग, भाण्डार, अग्नि, रत्न, धान्य और प्रमदा। दूसरी मान्यता के अनुसार—कामधेनु, अंजन, सिद्धपादुका, अन्नपूर्णा, कल्पतरु, चिंतामणि, घुटिका, कलक, पारस।

दरिद्र दुःख। दुर्बुद्धि अवर्षण पाप शोक। तस्कर कापट्य पीडा निंदक। अयोध्येमाजी नसेचि। ६३ छत्रासी एक दंड प्रसिद्ध। सुमनहारासी गुंफितां बंध। सारी खेळतां मारी सुबुद्ध। शूरत्व युद्धीं जाणिजे। ६४ घरासी न येती ऋषि भिक्षुक। तरी लोकांस वाटे परम दुःख। प्रजेसी साम्राज्य सुख देख। देतील तेंच घेइंजे। ६५ त्रिकाळ गाई दुभती। इच्छिलें तितुकें दुग्ध देती। यथाकाळीं मेघ वर्षती। समयोचित पाहूनियां। ६६ धर्मशाळा मंडप विशाळ। हिऱ्यांचीं लिंगें शोभती सोज्ज्वळ। आरक्त माणिकांच्या निर्मळ। गणेशमूर्ति झगमगती। ६७ घरोघरीं वेदाध्ययन। न्याय मीमांसा सांख्य संपूर्ण। पतंजलि वेदान्त व्याकरण। हेच चर्चा होतसे। ६८ टाळ मृदंग उपांगेंसीं तेथ। कीर्तन करिती प्रेमळ भक्त। राग उपराग भार्येसहित। सामगायन एक करिती। ६९ लास्यकलाकुशल बहुत। एक करिती तांडव नृत्य। विद्युत्प्राय

निंदक— अयोध्या में थे ही नहीं। ६३ (उस नगरी में) छत्र के ही एक दण्ड प्रसिद्ध था (अर्थात् अयोध्या में कोई सज़ा, जुरमाना या दण्ड नहीं था)। बन्धन होता था फूलों का हार गूँथने में (और कोई बन्धन या पाबंदी नहीं थी)। सुबुद्धिवाला मनुष्य (केवल) चौपड़ खेलते हुए ही 'मारता' था (अन्यथा वहाँ कोई 'अन्य मारना' नहीं था)। शूरत्व (केवल) युद्ध में (ही) जानिए। ६४ यदि कोई ऋषि या याचक घर न आता, तो लोगों को परम दुःख होता था। देखिए, साम्राज्य की प्रजा के सुख के लिए यह नीति थी कि जो देंगे, सो लें। ६५ गायें तीनों काल दूध दिया करती थीं। वे जितनी इच्छा की हो, उतना दूध दिया करती थीं। उचित समय देखकर यथाकाल मेघ बरसते थे। ६६ (अयोध्या में) धर्मशालाएँ और मंडप विशाल थे। हीरे के बने बहुत उज्ज्वल (शिव-) लिंग शोभायमान थे। गणेशजी की लाल माणिक की निर्मल मूर्तियाँ जगमगाती थीं। ६७ घर-घर वेदों का अध्ययन चलता था। सम्पूर्ण न्याय, मीमांसा, सांख्य, पतंजली-कृत योगशास्त्र, वेदान्त, व्याकरण—इन्हीं पर चर्चा चलती थी। ६८ वहाँ करताल, मृदंग और उपांग (गौण वाद्यों) सहित प्रेमी भक्त (भगवान् की लीलाओं का) कीर्तन किया करते थे। कोई-कोई सामवेद के अनुसार रागों, उपरागों और भार्याओं (रागिनियों) में गायन करते थे। ६९ (वहाँ) नृत्यकला में कुशल बहुत लोग थे। कोई-कोई तांडव नृत्य किया करते थे। मंदिरों पर

ध्वज तेथ । देउळावरी झळकती । ७० चंदनाचे सडे घालूनी । वाटा रंगविल्या कुंकुमेंकरूनी । वृद्धदशा कोणालागूनी । अयोध्येमाजी नसेचि । ७१ नाना तीर्थांचीं कारंजीं बहुत । घरोघरीं उफाळत । नीळांचे मयूर धांवत । विदोबिदीं लवलाहें । ७२ आळोआळीं पाहतां मंदिरें । एकाहूनि एक सुंदरें । गृहागृहाप्रती गोपुरें । चित्रविचित्र शोभती । ७३ असो ऐसी अयोध्या देखोन । तटस्थ जाहले वानरगण । तंव पूर्वद्वारीं रघुनंदन । अयोध्येच्या पातला । ७४ महाद्वारीं गणेश सरस्वती । त्यांची पूजा करून श्रीरघुपती । आंत प्रवेशला त्वरितगती । सकळ नृपांसहित पैं । ७५ जैसा नद समुद्रीं मिळाला । नंदनवनीं भ्रमर संचरला । कीं चतुर्मुखाचे हृदयीं निघाला । वेद जैसा षडंगेंसीं । ७६ कीं वृत्रासुर मर्दून । निजमंदिरीं प्रवेशे शचीरमण । तेवीं सकळांसहित रघुनंदन । अयोध्येंत प्रवेशला । ७७

ध्वज विद्युत्-से जगमगाते थे । ७० चन्दन का छिड़काव करके मार्ग कुंकुम से रंगे थे । अयोध्या में किसी के भी वृद्धावस्था थी ही नहीं । ७१ घर-घर अनेक प्रकार के धाराजल (फौवारे) उछलते थे । गली-गली में इन्द्रनील के-से मोर तेज गति से दौड़ते रहते थे । ७२ टोले-टोले में देखने पर एक-से-एक सुन्दर घर (दिखायी देते) थे । प्रत्येक घर के गोपुर चित्र-विचित्र रूप से शोभायमान थे । ७३ अस्तु । ऐसी (सुन्दर) अयोध्या को देखकर वानरगण चकित हो गये । तब अयोध्या के पूर्व द्वार पर श्रीराम आ गये । ७४ उस महाद्वार में गणेश और सरस्वती (की प्रतिमाएँ) थीं । उनका पूजन करके समस्त राजाओं सहित श्रीराम ने शीघ्रगति से अन्दर प्रवेश किया । ७५ जिस प्रकार कोई नद (प्रचंड नदी) समुद्र में मिल जाती है, नन्दनवन में भ्रमर संचरण करता है, अथवा चतुर्मुख ब्रह्मा के हृदय में छहों अंगों सहित * वेद उद्‌भूत हुआ हो, अथवा वृत्रासुर का वध‡ करके इन्द्र ने अपने प्रासाद में प्रवेश किया हो,

---

* टिप्पणियाँ : वेदों के छः अंग— शिक्षा (उच्चारण शास्त्र = घ्राणेंद्रिय) कल्पसूत्र (यंत्रशास्त्र = हाथ), व्याकरण (शब्दशास्त्र = मुख), निरुक्त ([illegible] = कान) छंदस् (पिंगल = चरण) और ज्योतिष (नेत्र)

‡ वृत्रासुर— यह दैत्य इन्द्र का प्रमुख शत्रु था । तपस्या द्वारा इसने ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया । फलस्वरूप ब्रह्मा ने उसे वर दिया— ' आज से तुम अमर हो गये; लोह, काष्ठ के किसी भी गीले या शुष्क अस्त्र से तुम्हारी मृत्यु दिन या रात में नहीं होगी । इसने इन्द्र को पराजित करके इन्द्रपद प्राप्त किया । फिर इन्द्र ने अनेक दिनों तक युद्ध करके दधीचि ऋषि की अस्थियों से बने ' वज्र ' से इसका वध किया ।

देव अंबरीं पाहाती । असंख्य दाटले नृपती । किरीटास किरीट आदळती । रत्नें विखुरती चहूंकडे । ७८ त्या अयोध्येच्या समस्त नारी । ज्या देवांगनांहूनि सुंदरी । रत्नदीप घेऊनियां करीं । ओंवाळूं आल्या रामातें । ७९ लक्षानुलक्ष नगरललना । म्हणती राघवा चिन्मयलोचना । जयलाभ तुझिया चरणा- । जवळी अखंड असोत । ८० म्हणोनि आपुल्या गोपुरावरूनी । ओंवाळिती सकळ कामिनी । राकाइंदूहूनी वदनीं । प्रभा विशेष विराजे । ८१ त्यांकडे पाहून रघुनाथ । सुमंतास भ्रूसंकेत दावीत । तो त्यासी समजला अर्थ । जें कां हृद्‌गत रामाचें । ८२ वस्त्रें अलंकार आणूनी । तात्काळ गौरविल्या कामिनी । तों नगरलोक धांवले ते क्षणीं । मंडपघसणी जाहली । ८३ तयांसी वेत्रधारी मारीत । तें दृष्टीं देखोन रघुनाथ । तात्काळ परते केले दूत । म्हणे जन सर्वत्र येऊं द्या । ८४ आज्ञा होतांचि जाण । जवळ आले सकळ जन । पाहोनियां श्रीरामाचें वदन । चरणीं मिठ्या घालिती । ८५

उस प्रकार श्रीराम ने अयोध्या में प्रवेश किया । ७६-७७ आकाश में (उपस्थित होकर) देव देख रहे थे । अनगिनत राजाओं की भीड़ हो गयी । उनके किरिट से किरिट टकरा रहे थे और (उसके कारण) रत्न चारों ओर बिखर रहे थे । ७८ अयोध्या की समस्त नारियाँ देवांगनाओं से भी सुन्दर थीं । वे हाथों में रत्नदीप लेकर श्रीराम की आरती उतारने लगीं । ७९ उस नगरी की लाखों स्त्रियाँ कह रही थीं— 'हे चिन्मय-लोचन श्रीराम, तुम्हारे चरणों को अखण्ड विजय की प्राप्ति होती रहे ।' ८० ऐसा कहते हुए अपने-अपने गोपुर पर से वे समस्त कामिनियाँ आरती उतार रही थीं । उनके मुखों में पौर्णिमा के चन्द्रमा से अधिक कान्ति विराजमान थी । ८१ उनकी ओर देखकर श्रीराम ने सुमन्त को भौंह से संकेत कर दिखाया । उससे श्रीराम का जो मनोगत भाव था वह उसकी समझ में आ गया । ८२ वस्त्र और आभूषण लाकर उसने उन कामिनियों को तत्काल गौरवान्वित किया; त्यों ही नगर के लोग उस क्षण दौड़ते हुए आये, तो (फलस्वरूप) मंडप में बहुत भीड़ हो गयी । ८३ वेत्रधारी उन्हें पीटने लगे । (तब) श्रीराम ने उसे आँखों से देखते ही तत्काल उन दूतों को लौटा लिया और कहा— 'सब लोगों को आने दो ।' ८४ समझिए कि (ऐसी) आज्ञा (प्राप्त) होते ही सब लोग राम के पास आ गये और उनके मुख को देखकर उनके पाँवों से लिपटने

लक्षोनियां श्रीरघुनाथा। नारी टाकिती वरी अक्षता। एक लिंबलोण तत्त्वतां। मुखावरून उतरिती। ८६ एक म्हणती तुजवरून। राघवा जाऊं ओंवाळून। एक म्हणती हें वदन। पुन: दृष्टीं पडेना। ८७ दिव्यसुमनांचे संभार। वरोन वर्षती सुरवर। असो जगद्वंद्य रघुवीर। निजमंदिरीं प्रवेशला। ८८ जाऊनि अंतर्गृहान्त। पुष्पांजलि देवांस समर्पीत। राजयांच्या सेना समस्त। अयोध्याप्रदेशीं उतरल्या। ८९ अष्टादशपद्में वानर। उतरले लंकेचे असुर। तितुक्यांसी आदर उपचार। सुमंत शत्रुघ्न करिताती। ९० बिभीषण सुग्रीव राजे सकळी। ते सदा असती रामाजवळी। वसिष्ठें सामग्री सिद्ध केली। राज्यपदाची तेधवां। ९१ श्वेत चामर श्वेत छत्र। श्वेत गज श्वेत तुरंग थोर। चतु:समुद्रींचें आणिलें नीर। पंच पल्लव सप्त मृत्तिका। ९२ सभामंडप देदीप्यमान। तेथें मांडिलें दिव्य सिंहासन। मिळाले सकळ विद्वज्जन। आणि नृपती

लगे। ८५ श्रीराम को लक्ष्य करके नारियाँ उनपर अक्षत डाल रही थीं, तो कोई-कोई नीबू और नमक लेकर सचमुच उनके मुख पर वारने लगीं (ताकि उन्हें नजर न लग जाए)। ८६ तब कोई-कोई कह रही थीं— 'हे राघव तुमपर हम निछावर हो जाएँगी।' तो कोई-कोई कह रही थीं— 'यह मुख तो फिर से दिखायी नहीं देगा।' ८७ (उस समय) देव ऊपर से दिव्य फूलों की राशियाँ बरसा रहे थे। अस्तु। (इसके पश्चात्) श्रीराम अपने भवन में प्रविष्ट हुए। ८८ अन्तर्गृह में जाकर उन्होंने देव-प्रतिमाओं को पुष्पांजलि समर्पित की। राजाओं की समस्त सेनाएँ अयोध्या के (चारों ओर के) प्रदेश में ठहर गयी थीं। ८९ अठारह पद्म वानर तथा लंका के राक्षस (सैनिक) ठहरे हुए थे। उन सबका सम्मान तथा सत्कार सुमन्त और शत्रुघ्न ने किया। ९० विभीषण और सुग्रीव जैसे समस्त राजा श्रीराम के पास बराबर रहते थे। तब वसिष्ठ ने राज्यपद (-आरोहण समारोह) के लिए सामग्री सुसज्ज की। ९१ श्वेत चँवर, श्वेत छत्र, श्वेत हाथी, श्वेत बड़ा घोड़ा, (पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर—) चारों समुद्रों का जल, (बरगद, पीपल, जामुन, आम्र तथा गूलर अथवा आक जैसे) पाँच (प्रकार के पेड़ों के) पत्ते, (अश्व, गज, गाय के रखने के स्थान से तथा चौराहे, वल्मीक, संगम तथा दह से) सात (प्रकार की) मिट्टियाँ वे लाये। ९२ सभा-मण्डप देदीप्यमान था। वहाँ दिव्य सिंहासन रखा। (उस समय) समस्त विद्वान जन और सभी राजा

सर्वही । ९३ वसिष्ठ म्हणे राजीवनयना । जलजगात्रा जानकी-जीवना । जगद्वंद्या अनंतसदना । राज्य आतां अंगिकारीं । ९४ भरत सप्रेमें बोले । चतुर्दश वर्षें तप केलें । तें आजि शीघ्र काळें । सुफळ जाहलें पाहिजे । ९५ सिंहासनीं बैसावें आपण । मग अक्षय भांडारें फोडून । द्रव्य याचकांसी देईन । ब्रह्मा-नंदेंकरूनियां । ९६ मग वसिष्ठें हातीं धरून । मंडपा आणिला रघुनंदन । सीतेसहित बैसवून । अभिषेक केला वेदमंत्रीं । ९७ घनश्याम पूर्ण रघुवीर । तप्तकांचनवर्ण पीताम्बर । लेवविले दिव्य अलंकार । मुकुटकुंडलें कौस्तुभादि । ९८ जानकी-सहवर्तमान । सिंहासनीं बैसविला रघुनंदन । सकळ भूपती येऊन । अक्षता कपाळीं लाविती । ९९ सुमुहूर्तवेळा साधून सत्वर । वरी उभारिलें दिव्य छत्र । तों सकळ वाद्यांचा गजर । होता जाहला ते काळीं । १०० जाहला एकचि जयजयकार । सुमनें वर्षती सुरवर । सकळ राजयांनीं करभार । राघवापुढें समर्पिला । १०१ सर्व नृप करून नमन । उभे

इकट्ठा हुए । ९३ (तब) वसिष्ठ ने कहा— ' हे राजीव-नयन, हे जलज-(कमल के समान कोमल)-गात्र, हे जानकी-जीवन, हे जगद्वंद्य, हे अनन्त-सदन, अब राज्य स्वीकार करें । ' ९४ (तदनन्तर) भरत ने प्रेम से कहा— ' मैंने चौदह वर्ष जो तप किया, वह आज शीघ्र सुफल (फलयुक्त) हो जाना चाहिए । ९५ आप सिंहासन पर विराजमान हो जाएँ; तब मैं अक्षय भण्डार फोड़कर अर्थात् (खोलकर) याचकों को ब्रह्मानन्द-पूर्वक धन दूँगा । ' ९६ अनन्तर वसिष्ठ हाथ थामकर श्रीराम को मण्डप में ले आये; (फिर) सीता-सहित (उन्हें) बैठाकर वेद-मन्त्रों के (घोष के) साथ अभिषिक्त किया। ९७ श्रीराम पूर्णतः मेघ के-से श्याम वर्ण थे। उन्हें तप्त सोने के-से वर्णवाला पीताम्बर तथा दिव्य आभूषण पहना दिये; मुकुट, कुंडल, कौस्तुभ आदि धारण करा दिये । ९८ उन्होंने (जब) जानकी-सहित श्रीराम को सिंहासन पर विराजमान कराया, तो समस्त राजाओं ने आकर उनके मस्तक में (मंगल) अक्षत लगा लिया । ९९ फिर झट से सुमुहूर्त वेला देखकर (लाभ उठाकर) उनके ऊपर दिव्य छत्र उभार (धरवा) दिया । तो ही उस समय समस्त वाद्यों का बेजोड़ गर्जन होने लगा । १०० (तब) अपूर्व जय-जयकार हो गया । देवों ने फूल बरसा दिये । (फिर) सब राजाओं ने श्रीराम के सम्मुख कर-भार (निष्कृति धन) समर्पित किया । १०१ फिर सब राजा नमस्कार करके हाथ जोड़े

ठाकती कर जोडून । भरतें भांडार फोडून । याचकजन गौर-
विले । २ उदार धीर रघुवीर । ज्याचा बंधु भरत वीर ।
मोटा बांधूनि अपार । द्रव्य न्या हो म्हणतसे । ३ पुरे पुरे
हेचि मात । याचक बोलती समस्त । हय गज रत्नें अद्भुत ।
दिधले बहुत याचकां । ४ गोदानें भूदानें अपार । जें वेदीं
बोलिलें साचार । तितुकें देऊनि द्विजवर । सुखी केले ते
काळीं । ५ ऐसा षोडश दिनपर्यंत । सोहळा होतसे अद्भुत ।
कळापात्रें येवूनि तेथ । विद्या दावीत रामापुढें । ६ लक्ष्मण
आणि भरत । शत्रुघ्न आणि सुमंत । युवराज्य त्यांतें देत ।
श्रीरघुनाथ ते समयीं । ७ वस्त्रें भूषणें देऊन । चवघे केले
मुख्य प्रधान । तुमच्या अनुमतेंकरून । राज्य चालवीन राम
म्हणे । ८ असो दिव्य अन्नें निर्मून । सकळ रायांसी दिधलें
भोजन । वस्त्रालंकारीं पूर्ण । सेनेसहित गौरविले । ९ मग
श्रीरामाची आज्ञा घेती । सेनेसहित सकळ नृपती । स्वदेशा-
प्रती तेव्हां जाती । गुण वर्णिती राघवाचे । ११० सुग्रीव

हुए खड़े रहे । (इधर) भरत ने भण्डार खोलकर याचकगणों को (धन
आदि प्रदान करके) गौरवान्वित किया । २ श्रीराम तो उदार तथा धीर
(पुरुष) थे । उनका भाई भरत (दान-) वीर था । अनगिनत गट्ठर
बाँध (-बाँध) कर वह कह रहा था— 'अहो, यह धन ले जाओ।' ३ तो
समस्त याचक कह रहे थे— 'बस, पर्याप्त है, पर्याप्त है, यही विपुल है।'
(भरत ने) याचकों को बहुत घोड़े, हाथी, अद्भुत रत्न प्रदान किये । ४
जो (-जो) वेदों में सचमुच कहे हैं, वे उतने ही अपार गोदान, भूदान, देते
हुए (भरत ने) उस समय ब्राह्मणों को सुखी कर दिया । ५ सोलह दिन
तक इस प्रकार अद्भुत आनन्दोत्सव होता रहा । गायिकाओं और
नर्तकियों (जैसी कलाओं का ज्ञान रखनेवाली स्त्रियों— वेश्याओं) ने वहाँ
आकर श्रीराम के सामने (अपनी-अपनी) विद्याएँ प्रदर्शित कीं । ६ उस
समय श्रीराम ने लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और सुमन्त को युवराजपद (तथा
प्रमुख अधिकारी का पद) प्रदान किया । ७ वस्त्र आभूषण देकर श्रीराम
ने उन चारों को मुख्य मंत्री (नियुक्त) किया । और कहा— 'तुम्हारे
परामर्श से मैं राज्य करूँगा ।' ८ अस्तु । उन्होंने दिव्य अन्न बनवाकर
समस्त राजाओं को भोजन कराया और वस्त्र तथा आभूषण देते हुए
उन्हें उनकी सम्पूर्ण सेनाओं सहित सम्मानित किया । ९ फिर समस्त
राजाओं ने श्रीराम की आज्ञा ली । वे (जब) अपने-अपने देश गये, तब

आणि बिभीषणास । रामें राहविलें एक मास । नित्य भोजन पंक्तीस । नाना विलास सोहळे पैं । ११ सिंहासनीं बैसतां रघुनाथ । बंधू भोंवते आनंदभरित । भक्तिरसें शत्रुघ्न भरत । चामरें वरी वारिती । १२ तों गवाक्षद्वारें ते समयीं । अवलोकिती जाहली कैकयी । म्हणे त्रिभुवनीं शोधितां पाहीं । अभागी नाहीं भरताऐसा । १३ चवदा वर्षें भिकारी । जावूनि बैसला वनान्तरीं । शेवटीं बंधूचें दास्य करी । चामरें वरी वारितो । १४ माझें पूर्व पाप फळासी आलें । ऐसें भरताची माता बोले । वसिष्ठास बोलावून ते वेळे । कैकयी सांगे एकान्तीं । १५ म्हणे माझिया पोटीं भरत । दरिद्र जन्मला अत्यंत । बंधूचें दास्य करीत । मज हें दुःख वाटतें । १६ मग बोले ब्रह्मसुत । अजून तरी राहें निवान्त । ग्रासिला राजा दशरथ । वना रघुनाथ धाडिला । १७ सच्चिदानंद ब्रह्म पूर्ण । तो हा अवतरला रघुनंदन । मूर्खे तुज हें नाहीं ज्ञान । अद्यापि कां कळेना । १८ जे ब्रह्मादिदेवांची ध्येयमूर्ती । हृदयीं

वे श्रीराम के गुणों का बखान कर रहे थे । ११० श्रीराम ने सुग्रीव और विभीषण को एक महीने तक ठहरा लिया । वे नित्य अपने साथ पंक्ति में भोजन कराते तथा नाना प्रकार के (भोग-) विलास और आनन्दोत्सव सम्पन्न करते थे । ११ श्रीराम द्वारा सिंहासन पर विराजमान होने पर बंधु आनन्द-भरे (सानन्द) चारों ओर खड़े रहे । शत्रुघ्न और भरत भक्ति-रस से (भरे-पूरे होकर) उनके ऊपर चँवर डुलाते थे । १२ त्यों ही उस समय कैकेयी ने यह गवाक्ष द्वार से देखा, तो कहा (सोचा)— 'त्रिभुवन में खोजने पर भी भरत जैसा कोई अभागा नहीं दिखायी देगा । १३ चौदह साल भिखारी बनकर वह वन के अन्दर जाकर बैठा था; (अब) अन्त में भाई की दासता कर रहा है और उसके ऊपर चँवर डुला रहा है । १४ मेरा पूर्व (-कृत) पाप फल को प्राप्त हो गया है ।' भरत की माता कैकेयी ने ऐसा कहा (सोचा) और उस समय वसिष्ठ को बुलाकर एकान्त में बताया । १५ वह बोली— 'मेरे पेट (गर्भ) से भरत अत्यन्त दरिद्र जन्म को प्राप्त हुआ है । वह अपने भाई की दासता कर रहा है— इसका मुझे दुःख हो रहा है ।' १६ तब (ब्रह्मा के पुत्र) वसिष्ठ ने कहा— 'अब भी चुप रहो, तुमने दशरथ को निगल डाला और श्रीराम को वन भेजा । १७ जो सच्चिदानन्द पूर्ण ब्रह्म है, वह इस राम के रूप में अवतरित है । री मूर्ख, तुम्हें यह जानकारी अब भी क्यों विदित नहीं हो

ध्यात अपर्णापती। हृदयकमळीं वाहती। सनकादिक प्रीतीनें। १९ पुराणपुरुष रघुनंदन। त्याचे भजनीं लावीं मन। आपुली युक्ति ठेवीं झांकून। नसतीं वचनें बोलूं नको। १२० तुजप्रती सांगावें ज्ञान। जैसें काननामाजी रुदन। कीं बधिरापुढें गायन। लसणीं कर्पूर घांसिला। २१ पुष्पवाटिकेंत पलाण्डु उपजला। परी तो गुण न सांडी आपुला। नित्य दुग्धें वायस धुतला। परी कृष्णत्व नव जाय। २२ शर्करेचें आळें केलें। माजी निंबबीज पेरिलें। परी शेवटीं कडू येती फळें। व्यर्थ गेले कष्ट सर्व। २३ खापरास परिस घांसतां। परी सुवर्ण नव्हेचि तत्त्वतां। कीं दुग्धामाजी हरळ घालितां। मवाळ नव्हे कल्पान्तीं। २४ तैसें तुजप्रती जें जें शिकविलें। तें तें सर्वही व्यर्थ गेलें। आतां स्वस्थ राहूनि उगलें। चित्त ठेवीं रघुनाथीं। २५ ऐसें शिकवून तियेसी। बाहेर आला वसिष्ठ ऋषी। यावरी बिभीषणसुग्रीवांसी। निरोप देतसे श्रीराम। २६ वानरांसी श्रीराम म्हणे। भोजन करून गमन

रही है। १८ जो ब्रह्मा आदि देवों के लिए ध्येय मूर्ति है, शिवजी हृदय में जिसका ध्यान करते हैं, जिसे सनक आदि (ऋषिवर) प्रेमपूर्वक हृदय-कमल में रखे रहते हैं। १९ (यह) रघुनन्दन वही पुराण-पुरुष है। अपने मन को उसकी भक्ति में लगा दो। अपनी युक्ति (कल्पना) छिपाकर रखो; अन्य अनुचित बात मत बोलो। २० तुमसे ज्ञान (की बात) कहें, तो वह वैसे ही (व्यर्थ) है, जैसे वन में रुदन हो, अथवा बहरे के सामने गायन हो अथवा लहसुन पर कपूर घिस दिया हो। २१ पुष्प-वाटिका में प्याज उत्पन्न हो गया हो, तो भी वह अपने (उग्र गंध के) गुण (-धर्म) को नहीं छोड़ता। कौए को नित्य दूध से धोया हो, तो भी उसका काला वर्ण नहीं (निकल) जाता। २२ शक्कर का थाला बनाया हो, उसमें (कडुए) नीम का बीज बोया हो, तो अन्त में (उससे विकसित पेड़ में) कड़ुवे फल (ही) आते हैं। (इसमें किये हुए) सब परिश्रम व्यर्थ हो गये। २३ खप्पर पर पारस घिस देने पर भी सचमुच उससे सुवर्ण नहीं बनेगा। अथवा दूध में कंकड़ डालने पर वह कल्पान्त तक में भी मृदु नहीं हो जाएगा। २४ उसी प्रकार तुम्हें जो-जो सिखाया, वह सभी व्यर्थ (सिद्ध) हो गया है। अब तो शान्त और चुप रहकर रघुनाथ राम में चित्त को (लगाये) रखो।' २५ उसे ऐसी सीख देकर वसिष्ठ ऋषि बाहर आ गया। इसके पश्चात् श्रीराम ने विभीषण और सुग्रीव को विदा किया। २६ श्रीराम ने वानरों

करणें। तें केलें मान्य वचन। अवश्य म्हणती तेधवां। २७ ते दिवसीं मोठा सोहळा। मेळवूनि द्विजांचा मेळा। वानरां-सहित सकळां। भोजनविधि आरंभिला। २८ प्रेमाचिया गंधाक्षता। लावी सर्वां सरसिजोद्भवपिता। सुमनमाळा तत्त्वतां। अर्पीत समस्तां आदरें। २९ चैतन्य परिमलद्रव्यें बहुत। सर्वांस चर्चिलीं शोभिवंत। अत्तर धूप दीप यथार्थ। करूनि भोजना बैसविले। १३० श्रीरामगृहींचें दिव्यान्न। त्या सुवासालागीं वेधोन। वसंत करी प्रदक्षिण। इच्छाभोजन तेथींचें। ३१ त्या अन्नाचा सुवास बहुत। स्वर्गीं देवांस आवंतू जात। विबुध लाळ घोंटिती समस्त। श्रीरामपंक्तीस जेवा-वया। ३२ बैसावया सुवर्णपाट। मांडिलें दिव्यरत्नाचें ताट। जडित अडणियांचें प्रकट। दिव्य तेज चहूंकडे। ३३ सुगंध उदकें भरूनियां। जवळी ठेविल्या जडित झारिया। पात्रांप्रती शोभती समया। लावूनियां रत्नदीप। ३४ प्रथम विश्वास

से कहा– '(अब) भोजन करके (यहाँ से) चले जाना।' तब उन्होंने उनकी बात स्वीकार की और वे बोले, 'अवश्य'। २७ उस दिन बड़ा आनन्द-समारोह सम्पन्न हुआ। श्रीराम ने ब्राह्मण-वृंद को इकट्ठा करके वानरों सहित सब के लिए भोजन-समारोह आरम्भ किया। २८ (ब्रह्मा के पिता विष्णु के अवतार) श्रीराम ने प्रेमपूर्वक सबके अक्षत-सहित तिलक लगवाया। फिर सबको आदर-पूर्वक उचित रूप से पुष्प-मालाएँ समर्पित कीं। २९ उन्होंने सबको चेतना रूपी सुगन्ध से युक्त बहुत-से सुन्दर द्रव्य लगा लिये। इत्र, धूप, दीप यथोचित रूप से समर्पित करके सबको भोजन के लिए बैठा दिया। ३० श्रीराम के घर का वह दिव्य अन्न था। उसकी उस सुगंध के प्रति आकृष्ट होकर वसन्त ऋतु (मानो) परिक्रमा करने लगी। वहाँ का भोजन इच्छा-भोजन था—अर्थात् प्रत्येक को चाहे जितना और चाहे जो पदार्थ मिल रहा था। ३१ उस अन्न की बड़ी (बढ़िया) सुगंध (मानो) स्वर्ग में देवों से कहने गयी; तो समस्त श्रीराम के साथ पंक्ति में भोजन करने के लिए देवों की लार टपकने लगी। ३२ बैठने के लिए सोने की चौकियाँ थीं। (प्रत्येक व्यक्ति के लिए) दिव्य रत्नों की थाली रखी थी। (उसके) नीचे (रखी) रत्न आदि से जड़ी हुई तिपाई का दिव्य तेज चारों ओर प्रकट हो रहा था। ३३ सुगन्धित पानी भरकर (रत्न आदि से) जड़ी हुई झारियाँ पास रखी थीं। थालियों के पास रत्नदीप जलाकर रखे हुए दीवट शोभायमान थे। ३४ (जीवन में एक-दूसरे के

संपूर्ण । तेंच आधीं वाढिलें लवण । विरक्तीचीं मिरगुंडें जाण । नाना साधनें त्याचि शाखा । ३५ सत्कर्माचिया कोशिंबिरी । वाढिल्या नवविध भक्तीचिया क्षीरी । निश्चय शर्करा त्यांवरी । ऐसियापरी शुभ्र दिसे । ३६ निजबोधाचा भात पूर्ण । अक्षय शान्तीचें वरी वरान्न । तेथें अभेद वडे करून । नाना परींचे वाढिले । ३७ पूर्ण प्राप्तीचे मांडे थोर । भूतकृपेच्या घारिया सुकुमार । तेलवरिया गोडपुऱ्या अपार । मिष्ट ऐसीं वाढिलीं । ३८ सत्वघृतांत तळून । गुळवरिया अंतरीं गोड पूर्ण । क्षमाफेणिया शोभायमान । समसमान सर्वांसी । ३९ विवेकपापड चांगले । वैराग्यअग्नीवरी भाजिले । विज्ञान तेंचि अमृतफळें । वाढिलीं केळीं सत्त्वाचीं । १४० सर्वांगभूतीं समता चोखडी । तेच घमघमीत वाढिली कढी । सज्जन जाणती तिची गोडी । वेदान्तशास्त्रवेत्ते जे । ४१ मुख्य गुरु-

प्रति सर्व-) प्रथम सम्पूर्ण विश्वास हो । उसका जो प्रतीक है, वही लवण (नमक) पहले परोस दिया । † समझिए कि विरक्ति की कुम्हड़ौरियाँ रखी थीं । नाना प्रकार की साधनाएँ ही साग-तरकारियाँ थीं । ३५ सत्कर्म स्वरूप कचूमर थे, नवविधा भक्ति-स्वरूप खीरें परोस दीं । उस पर निश्चय-स्वरूप शक्कर उस प्रकार शुभ्र दिखायी दे रही थी । ३६ पूर्ण आत्म-बोध का भात था, उसपर अक्षय शान्ति की दाल थी । वहाँ अभेद (अद्वैत भाव) के नाना प्रकार के बड़े बनाकर परोस दिये । ३७ पूर्ण (भगवत् कृपा की) प्राप्ति के (प्रतीक स्वरूप) बड़े-बड़े माँड़े थे । भूत दया की सुकोमल (एक विशेष प्रकार की) पूरियाँ थीं । तेल और घी में तलकर बनायी हुई असंख्य (प्रकार की) मीठी पूरियाँ थीं । इस प्रकार के मिष्टान्न परोस दिये । ३८ सत्त्व-गुण रूपी घी में तलकर बनाया हुआ गुड़-मिश्रित मिष्टान्न अन्दर से पूरा मीठा (बना) था । सबके लिए सम-समान रूप में परोसी हुई क्षमा-स्वरूप फेनियाँ (थालियों में) शोभायमान थीं । ३९ विवेक रूपी अच्छे पापड़ वैराग्य रूपी अग्नि में सेंके हुए थे । आत्म-ज्ञान ही अमृत (-से मधुर) फल है । ऐसे फल तथा सत्त्वगुण रूपी केले (थालियों में) रख दिये । ४० सब भूतों (प्राणियों) के प्रति समता भाव अच्छा होता है । उसी की सुगंध-युक्त कढ़ी परोस दी । जो वेद शास्त्रों के ज्ञाता हों, वे ही भले लोग उसकी मिठास को जानते हैं । ४१

† टिप्पणी : नमक विश्वास का प्रतीक है । जिसका नमक खाएँ उसके प्रति ईमानदार होना चाहिए, उसे धोखा नहीं देना चाहिए । भाषा में प्रचलित नामकहलाल, नमकहराम आदि शब्द इस भाव की ओर सकेत करते हैं ।

कृपेचें घृत। त्याविणें अन्न विरस समस्त। प्रेमेंकरून सद्य-स्तप्त। शुद्ध करीत अन्नातें। ४२ जेवणार बैसले सद्भक्त। स्वानंदजळें पात्रें प्रोक्षीत। देहबुद्धीच्या चित्राहुती तेथ। पात्रा-बाहेरी घातल्या। ४३ सोऽहंगायत्री जपोनी। देहबुद्धीनांवें सोडिलें पाणी। निवृत्ति आपोशन घेऊनी। रामस्मरणें गर्जिन्नले। ४४ पंचप्राणांच्या प्राणाहुती। योगाभ्यासें आधीं करिती। शिखेची कामग्रंथी। सत्वर सोडिती निजहस्तें। ४५ निरभिमान संपूर्ण। तेणेंच केलें करक्षालन। नेत्रांसी लाविलें जीवन। जगज्जीवन सर्व दिसे। ४६ श्रीरामभक्त क्षुधाक्रान्त। स्वाद घेऊनि प्रीतीनें जेवीत। पद्मासन घालोनि निश्चित। ग्रासामागें ग्रास घेती। ४७ भवरोगें जे वेष्टित। नाहीं भाव-क्षुधा पोटांत। ते टकमकां उगेच पाहात। ग्रास एक न घेववे। ४८ चंद्रोदयीं द्रवे सोमकान्त। इतर पाषाण कोरडे समस्त। तैसे श्रीरामपंक्तीस जेविले भक्त। अभाग्यां प्राप्त

(इन सब खाद्य पदार्थों में) गुरु-कृपा का घी मुख्य होता है। बिना उसके समस्त अन्न रसहीन होता है। (अतः) अभी-अभी गर्म करके बनाया हुआ घी प्रेम-पूर्वक डालकर अन्न को शुद्ध किया। ४२ सद्भक्त भोजन करने-वाले (करने के लिए) बैठ गये। आत्मानन्द रूपी जल से पात्रों का प्रोक्षण किया। अहंदेह बुद्धि रूपी चित्राहुतियाँ वहाँ पात्रों के बाहर रखीं। ४३ सोऽहं गायत्री मंत्र का जाप करके अहंदेहबुद्धि के नाम से पानी डाल दिया। निवृत्ति रूपी आचमन करके उन्होंने राम नाम का स्मरण करके गर्जन किया। ४४ साधक स्वरूप भोजन कर्ताओं ने पहले योगाभ्यास से पंच-प्राणों § के नाम प्राणाहुतियाँ ग्रहण कीं और अपने-अपने हाथों से कामग्रंथि स्वरूप शिखा (की गाँठ) को झट से खोल दिया। ४५ सम्पूर्ण निर-भिमान पूर्वक उन्होंने हाथ धोये, आँखों को पानी लगाया, तो उन्हें सब (कुछ) जगज्जीवन श्रीराम-स्वरूप दिखायी देने लगा। ४६ वे क्षुधातुर श्रीराम-भक्त स्वाद-पूर्वक प्रेम से भोजन करने लगे। वे दृढ़ पद्मासन लगाकर कौर पर कौर ग्रहण कर रहे थे। ४७ जो सांसारिक रोगों से लिपटे हुए हों, उनके मन में भक्ति-भावना रूपी भूख नहीं होती। वे टक लगाकर चुपचाप देख रहे थे, उनसे एक भी कौर नहीं लिया जा रहा था। ४८ चंद्रोदय (होने) पर चंद्रकान्त मणि द्रवित होती है, परन्तु समस्त अन्य पाषाण तो सूखे रहते हैं उस प्रकार श्रीराम की पंक्ति में भक्त

---

§ टिप्पणी : पंचप्राण-प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान।

कैचें तें । ४९ ऐसे जेविती आनंदें । नामें गर्जती महाशब्दें । भावें चर्चा करिती ऋषी वेदें । त्याचे स्मरणें करूनियां । १५० जे दैवी संपत्तीनें सभाग्य होती । तेच रामपंक्तीस जेविती । तृप्तीचे ढेंकर देती । ब्रह्मानंदेंकरूनियां । ५१ जे त्रिभुवनपतीची राणी । वाढी जानकी त्रिजगज्जननी । तेथें न्यून पदार्थांची काहाणी । कदाकाळीं पडेना । ५२ स्वानुभव जळ सेवून । कर्मधर्मांचें उत्तरापोशन । घेऊनि उठिले ते जन । आंचवले पूर्ण संसारा । ५३ अमानित्व अदंभित्व । हेच विडे घेती समस्त । निजधन नाममुद्रांकित । दक्षिणा देती याचकां । ५४ भक्तीचीं भूषणें वस्त्रें । सद्भक्तांसी दिधलीं राजीवनेत्रें । तो सोहळा वर्णावया वक्त्रें । सहस्रवदना शक्ति नोहे । ५५ ऐसें स्वपंक्तीस बैसवून । दिधलें सकळांसी भोजन । मग सभामंडपास येऊन । रघुनंदन गौरवी तयां । ५६ मुकुट कुंडलें

जन भोजन कर सके, (अन्य) अभागों को वह कैसे प्राप्त हो । ४९ इस प्रकार वे आनन्द-पूर्वक भोजन करने लगे । वे (भगवान राम का) नाम लेते हुए उच्च स्वर में घोष कर रहे थे । उसका (नाम-स्मरण) करते हुए ऋषि अकाट्य तथा प्रमाण वचनों के आधार से भक्ति भाव-पूर्वक चर्चा कर रहे थे । १५० जो दैवी सम्पत्ति † (की प्राप्ति) से भाग्यवान् थे, वे ही श्रीराम की पंक्ति में भोजन कर सके । उन्होंने तृप्ति के साथ ब्रह्मानन्द-पूर्वक डकार ली । ५१ जो त्रिभुवन के स्वामी की रानी (स्त्री) थी, वह जगज्जननी सीता वहाँ परोस रही थी । (अतः) वहाँ कभी भी पदार्थों की न्यूनता का प्रसंग नहीं आ पड़ा । ५२ (तदनन्तर) वे लोग आत्मानुभव रूपी जल का सेवन करके (भोजनोत्तर) आचमन करके उठ गये । वे (मानो) पूरी घर-गिरस्थी (की आसक्ति) से हाथ धो गये (उससे मुक्त हो गये) । ५३ (फिर) उन सबने अमानित्व और अदंभित्व रूपी ही बीड़े ग्रहण किये । (तदनन्तर) श्रीराम ने नाम मुद्रा से अंकित अपना धन दक्षिणा के रूप में प्रदान किया । ५४ कमल-नयन श्रीराम ने सद्भक्तों को भक्ति रूपी आभूषण और वस्त्र प्रदान किये । उस आनन्द समारोह का मुख से वर्णन करने की शक्ति सहस्र मुख शेष में भी नहीं है । ५५ इस प्रकार श्रीराम ने सबको अपनी पंक्ति में बैठाकर भोजन करा दिया । फिर सभा-मण्डप में आकर उन्होंने उनको गौरवान्वित किया । ५६ श्रीराम ने स्वयं मुकुट, कुंडल, समस्त आभूषण प्रदान किये । वैसे ही अन्य वानरों को

† टिप्पणी : दैवी सम्पत्ति—दया, क्षमा आदि सात्त्विक गुणों से युक्त स्वभाव ।

सर्व अलंकार। आपण स्वयें देत रघुवीर। तैसेची इतर वानर। गौरविले रघुनाथें। ५७ बिभीषण सुग्रीव जांबुवंत। त्यांच्या सेना ज्या ज्या समस्त। तितुक्या गौरवी रघुनाथ। वस्त्रें अलंकार देऊनीयां। ५८ दोन सिंहासनें दोन छत्रें। बिभीषणसुग्रीवां दिधलीं राजीवनेत्रें। दिधलीं कित्येक उत्तरवस्त्रें। नाना वस्तु अपार। ५९ परी पुढें असे हनुमंत। त्याकडे न पाहे रघुनाथ। वानरगण पाहती समस्त। विपरीतार्थ देखोनी। १६० कां न पाहे रघुनंदन। तरी हनुमंताऐसें निधान। हें ब्रह्मान्ड ओंवाळून। तयावरून टाकावें। ६१ ज्याच्या उपकारांच्या राशी अपार। मेरूपरीस जाहल्या थोर। त्यासी द्यावया अलंकार। दृष्टीस कांहीं दिसेना। ६२ मग उठोनियां रघुपती। हृदयीं दृढ धरी मारुती। म्हणे तव हृदयीं निश्चिती। मीच सर्वदा राहेन। ६३ तुजवेगळा एक क्षण। जिवलगा मी नव्हे जाण। हनुमंतें दृढ धरिले चरण। म्हणे मज हेंचि देईं। ६४ सीतेनें वस्त्रें अलंकार। देऊनि गौरविले सकळ वानर। परी आपुले गळ्याचा दिव्य हार। हनुमंतासी दीधला। ६५ त्या हारासी तत्त्वतां। उपमा नाहीं सर्वथा।

(भी) गौरवान्वित किया। ५७ विभीषण, सुग्रीव और जाम्बवान की ज़ो-जो सेनाएँ थीं, (उतनी ही) उन सबको श्रीराम ने वस्त्र तथा आभूषण देकर सम्मानित किया। ५८ कमल-नयन राम ने विभीषण और सुग्रीव को (एक-एक कुल) दो सिंहासन और दो छत्र प्रदान किये। (वैसे ही) उन्हें अनेक उत्तरीय वस्त्र तथा नाना प्रकार की अनगिनत वस्तुएँ प्रदान कीं। ५९ परन्तु सामने हनुमान था। श्रीराम उसकी ओर नहीं देख रहा था। इस विपरीत बात को देखकर वानरगण यह देखते रहे कि जिस पर यह ब्रह्माण्ड निछावर कर दें, ऐसे हनुमान जैसे उस निधान की ओर श्रीराम क्यों नहीं देख रहे हैं। ६० जिसके द्वारा किये उपकार की राशियाँ मेरु के समान बड़ी हो गयी हैं, उसे देने के लिए (श्रीराम को) कोई आभूषण नहीं दिखायी दे रहा था। ६१-६२ तब श्रीराम ने उठकर हनुमान को दृढ़ता-पूर्वक हृदय से लगा लिया और कहा— 'मैं ही तुम्हारे हृदय में निश्चय ही सदा रहूँगा। ६३ हे प्राणप्रिय, मैं तुमसे एक क्षण भी अलग नहीं रहता हूँ।' (यह सुनकर) हनुमान ने (श्रीराम के) पाँव दृढ़ता से पकड़ लिये और कहा— 'मुझे यही दीजिएगा।' ६४ (तदनन्तर) सीता ने समस्त वानरों को वस्त्र और आभूषण देकर गौरवान्वित किया; परन्तु अपने गले का दिव्य

त्रिभुवनींचें मोल देतां। तेंही उणें तयासी। ६६ पृथ्वीचें मोल संपूर्ण। एक एक मणि जाण। तो हार जानकीनें घेऊन। मारुतीच्या गळां घातला। ६७ हनुमंत तत्काळ उडाला। वृक्षावरी समोर बैसला। एक एक मणि फोडिला। दाढेखालीं घालूनियां। ६८ जो मणि पाहे फोडून। म्हणे यांत नाहीं रघुनंदन। म्हणोनि देतसे भिरकावून। व्यर्थ पाषाण काय हे। ६९ बोलती सुग्रीवादि वानर। व्यर्थ कां फोडिसी दिव्य हार। मारुती म्हणे रघुवीर। याचे अंतरीं दिसेना। १७० वानर म्हणती तुझे हृदयीं। राम दावीं या समयीं। ऐसें बोलत लवलाहीं। काय केलें हनुमंतें। ७१ हृदयकपाट उघडिलें। उदर विदारून दाविलें। तों आंत श्रीरामरूप सांवळें। समस्तीं देखिलें एकदांचि। ७२ जैसा सिंहासनीं रघुनाथ। तैसा मारुतीचे हृदयीं दिसत। मग वानर उठोनि समस्त। नमस्कारिती हनुमंता। ७३ असो अयोध्येसी निरं-

---

हार हनुमान को दिया। ६५ वस्तुतः उस हार की बिलकुल कोई उपमा नहीं थी। त्रिभुवन को मूल्य के रूप में देने पर वह भी उससे न्यून (सिद्ध) होता। ६६ समझिए कि उसका एक-एक मनका (रत्न) सम्पूर्ण पृथ्वी के मोल का था। उस हार को लेकर जानकी ने हनुमान के गले में पहना दिया। ६७ (तो) तत्काल हनुमान ने उड़ान भरी और सामने वृक्ष पर बैठ गया। फिर दाढ़ों के बीच रखकर एक-एक मनका फोड़ दिया। ६८ जो मनका फोड़कर देखता, उसके सम्बन्ध में कहता— ‘इसमें रघुनन्दन नहीं हैं।’ इसलिए यह कहते हुए उछाल फेंकता कि ये पाषाण कैसे व्यर्थ हैं। ६९ (यह देखकर) सुग्रीव आदि वानरों ने कहा (पूछा)— ‘इस दिव्य हार (के मनकों) को व्यर्थ ही क्यों फोड़ रहे हो?’ तो हनुमान ने कहा— ‘इसके अन्दर श्रीराम नहीं दिखायी दे रहे हैं।’ ७० (इसपर) वानरों ने कहा— ‘तो इस समय अपने हृदय में राम दिखा दो।’ (उनके द्वारा) ऐसा कहने पर हनुमान ने झट से क्या किया (सुनिए)। ७१ उसने हृदय रूपी अलमारी खोली, पेट को विदीर्ण कर दिखाया, तब सबने एक साथ श्रीराम के साँवले रूप को देखा। ७२ जैसे श्रीराम सिंहासन पर (विराजमान) दिखायी देते थे, वैसे हनुमान के हृदय में विराजमान दिखायी दे रहे थे। तब समस्त वानरों ने उठकर हनुमान को नमस्कार किया। ७३

अस्तु। अंजनी-कुमार हनुमान सदा (के लिए) अयोध्या में रह गया

तर। राहिला अंजनीचा कुमर। वरकड सिद्ध जाहले वानर। निजग्रामासी जावया। ७४ लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न। तिहीं सुग्रीव बिभीषण। वस्त्राभरणीं गौरविले पूर्ण। सदना आपुले नेऊनियां। ७५ कौसल्या सुमित्रेप्रती। सुग्रीव बिभीषण पुसती। म्हणे माते हो आम्हांवरी प्रीती। असों द्यावी बहुसाल। ७६ कौसल्या सुमित्रा बोलत। बा रे तुमचे उपकार अमित। विजयी करून रघुनाथ। माझा मज भेटविला। ७७ अमोल्य अलंकार देऊन। गौरविले ते दोघे जण। मग सुग्रीव आणि बिभीषण। कैकयीसदना चालिले। ७८ तों आडवा येऊन भरत। तिकडे न जावें जी म्हणत। कैकयी विपरीत बोलत। चित्त खेद पावेल तूमचें। ७९ ऐसें भरतें बोलोन। परतविले सुग्रीव बिभीषण। रघुनाथाजवळी येऊन। आज्ञा मागती जावया। १८० उभे राहिले जोडूनि कर। सर्वांचे अश्रूंनीं भरले नेत्र। म्हणती राघवा निरंतर। सर्वथा आम्हां न विसरावें। ८१ त्रिभुवनींचें राज्य टाकावें। रामा तुजजवळी नित्य राहावें। परी हें प्राक्तन नाहीं बरवें। ओढून

और अन्य वानर अपने-अपने स्थान को जाने के लिए तैयार हो गये। ७४ लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—तीनों ने अपने-अपने घर ले जाकर सुग्रीव और विभीषण को संपूर्ण वस्त्र तथा आभूषण देकर गौरवान्वित किया। ७५ सुग्रीव और विभीषण ने कौसल्या और सुमित्रा की आदर-पूर्वक पूछताछ की और कहा— 'हे माताओं, हमपर बहुत प्रीति रहने दीजिए (रखिए)।' ७६ इसपर कौसल्या और सुमित्रा बोलीं— 'अहो, तुम्हारे (हम पर) असीम उपकार (हो गये) हैं। तुमने श्रीराम को विजयी कराते हुए हमसे मिला दिया।' ७७ तदनन्तर अमूल्य आभूषण देकर उन दोनों जनों को (उन्होंने) सम्मानित किया। (तत्) पश्चात् सुग्रीव और विभीषण कैकेयी के सदन की ओर चल दिये। ७८ त्यों ही भरत ने बीच में आकर कहा— 'अहो, उधर न जाना। कैकेयी विपरीत (अनुचित) बोले, तो तुम्हारा चित्त खेद को प्राप्त हो जाएगा।' ७९ भरत ने ऐसा कहते हुए सुग्रीव और विभीषण को लौटा दिया। (फिर) श्रीराम के पास आकर उन्होंने जाने की आज्ञा माँगी। ८० (जब) वे (दोनों) हाथ जोड़कर खड़े रह गये, तो सबकी आँखें आँसुओं से भर गयीं। (फिर) वे बोले— 'हे राघव, हमें सतत बिलकुल न भूलना। ८१ हे श्रीराम, (वस्तुतः) त्रिभुवन का राज्य (तक) छोड़ दें और आपके पास नित्य रहें। परन्तु हमारा यह भाग्य

नेतें बळेंचि। ८२ काय आठवावे उपकार। जन्मोजन्मीं न पडावा अंतर। तुझे बोल गोड निरंतर। राघवा हृदयीं आठवती। ८३ स्फुंदस्फुंदोनि दोघेजण। बोलती सुग्रीव बिभीषण। मग म्हणे रघुनंदन। तुमच्या हृदयीं वसे मी। ८४ मग उठोनियां रघुनाथ। दोघांचे मस्तकीं ठेवी हस्त। मग सव्य घालोनि सीताकान्त। निघते जाहले ते काळीं। ८५ तयांसी बोळवीत रघुवीर। गेला अयोध्येबाहेर। मग सर्व वानरीं नमस्कार। रघुनाथासी घातला। ८६ बिभीषण सुग्रीव जांबुवंत। नळ नीळ शरभ वाळिसुत। इंहीं साष्टांग नमूनि रघुनाथ। जाते जाहले ते काळीं। ८७ दक्षिणपंथें चालिले त्वरित। मागुती राघवाकडे पाहात। तेथोनि नमस्कार घालीत। सद्‌गद चित्तीं होवूनियां। ८८ मग पवन-वेगेंकरून। कपी असुर निघाले तेथून। किष्किंधेस सूर्यनंदन। राहिला कपींसमवेत। ८९ तेणें बिभीषण गौरविला। मग घेऊनि असुरमेळा। रावणानुज लंकीं आला। स्वस्थ राहिला निजस्थानीं। १९० इकडे अयोध्येसी रघुनाथ। बंधूंसहित

अच्छा नहीं है, वह हमें बलात् खींचकर ले जा रहा है। ८२ आपके उपकारों को क्या स्मरण करें? (हमें-) आपसे जन्म-जन्मान्तर में अन्तर न पड़ जाए। हे राघव, आपके मधुर वचन हृदय में निरन्तर स्मरण हो रहे हैं।' ८३ सुग्रीव और विभीषण दोनों जने सिसकियाँ भरते-भरते (इस प्रकार) बोल रहे थे, तब श्रीराम ने कहा—'मैं तुम्हारे हृदय में निवास कर रहा हूँ।' ८४ अनन्तर सीतापति श्रीराम ने उठकर उन दोनों के मस्तक पर हाथ रखा। तब वे उनकी दाहिनी ओर से परिक्रमा करके उस समय चल दिये। ८५ श्रीराम उन्हें विदा करते हुए अयोध्या के बाहर गये। तब सब वानरों ने उनको नमस्कार किया। ८६ विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान, नल, नील, शरभ, वाली-पुत्र अंगद श्रीराम को दण्डवत् नमस्कार करके उस समय चले गये। ८७ वे झट से दक्षिण की ओर जाने वाले मार्ग पर चलने लगे; पुनः (पुनः) श्रीराम की ओर देख रहे थे और मन में बहुत गद्‌गद होते हुए वहाँ से दण्डवत नमस्कार कर रहे थे। ८८ अनन्तर वानर और राक्षस पवन-गति से वहाँ-से निकल गये। (रास्ते में) सूर्य-पुत्र सुग्रीव वानरों सहित किष्किंधा में ठहर गया। ८९ उसने रावणानुज विभीषण को गौरवान्वित किया। तदनन्तर वह, असुर-समुदाय साथ में लेकर लंका में आया और अपने स्थान (नगर) में शान्ति-से रह गया। ९०

राज्य करीत। पृथ्वी संपूर्ण आनंदभरित। दुःख किंचित असेना। ९१ अकरा सहस्र वर्षें वरी। अयोध्यानाथ राज्य करी। लोक सर्व धर्माधिकारी। पाप तिळभरी असेना। ९२ अवतार हरि उदंड धरी। परी बहुत सुख रामावतारीं। अकरा-सहस्र वर्षवरी। अक्षय्य राज्य चालविलें। ९३ जरा मृत्यु दुःख दरिद्र। राज्यांत नाहीं अणुमात्र। सीतेसहित राजीवनेत्र। ब्रह्मानंदें वर्ततसे। ९४ वसिष्ठ विश्वामित्र अगस्ती। आणीक ऋषी जैसे गभस्ती। अयोध्येमाजी सदा वसती। जनकजा-पतीचे समीप। ९५ अगस्तीच्या मुखें श्रवण। नित्य करी रघु-नंदन। सदा तृप्त याचकजन। राघवदर्शन घेतांचि। ९६ सुरस रामविजय ग्रंथ। उत्तरकाण्ड कथा अद्भुत। राज्यीं बैसला राजीवनेत्र। धन्य कार्यार्थ सुरस हा। ९७ रामविजयाचें एक आवर्तन। करी संपूर्ण पापाचें दहन। आणि शत्रुपराजय पूर्ण। श्रवण करितां होतसे। ९८ अज्ञानांसी होय ज्ञान।

इधर अयोध्या में श्रीराम बंधुओं सहित राज करने लगे, तो सम्पूर्ण पृथ्वी आनन्द-भरी (सानन्द) हो गयी; उसमें किंचित् भी दुःख नहीं रहा। ९१ अयोध्या-नाथ श्रीराम ने ग्यारह सहस्र वर्ष तक शासन किया। समस्त लोग धर्म के अधिकारी हो गये थे। (वहाँ) तिल-भर भी पाप नहीं था। ९२

वैसे तो भगवान हरि (विष्णु) ने अनेकानेक अवतार धारण किये। फिर भी रामावतार (के काल) में (पृथ्वी पर) बहुत सुख रहा। उन्होंने ग्यारह सहस्र वर्ष तक अक्षय राज (शासन) चलाया (किया)। ९३ उसके राज्य में बुढ़ापा, (अप-) मृत्यु, दुःख, दरिद्रता अणु-भर भी नहीं था। कमल-नयन श्रीराम सीता-सहित ब्रह्मानन्द के साथ निवास करते रहे। ९४ वसिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य तथा सूर्य जैसे (तेजस्वी) अन्य ऋषि अयोध्या में जनक-जामाता श्रीराम के समीप नित्य रहते थे। ९५ श्रीराम अगस्त्य के मुख से नित्य (वेदादि का) श्रवण किया करते थे। श्रीराम के दर्शन कर लेते ही याचकगण नित्य तृप्त हो जाते थे। १९६

यह 'श्रीराम-विजय' नामक ग्रंथ सुरस (रसात्मक) है। उसके उत्तर-काण्ड की कथा अद्भुत है। (इसमें कहा है कि) राजीवनेत्र श्रीराम राज्यासन पर विराजमान हो गये। यह कार्य रूपी अर्थ ही सुरस (-से युक्त) व। ९७ इस 'श्रीराम-विजय' का एक आवर्तन (आदि से अन्त तक पठन) सम्पूर्ण पाप का दहन कर देता है और उसका श्रवण करने से

निपुत्रिकांसी पुत्रसंतान। भवरोग जाय विरून। भावेंकरून परिसतां। ९९ अयोध्याप्रवेश जाहला पूर्ण। पुढें रसाळ कथा गहन। श्रवण करोत पंडितजन। राघवीं मन समर्पूनियां। २०० अयोध्यापुरवासिया रामा। श्रीब्रह्मानंदा कल्याणधामा। श्रीधर वरदा पूर्णकामा। नामा अनामा अतीत तूं। २०१ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। षट्त्रिंशत्तमोध्याय गोड हा। २०२

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

(श्रोता के) शत्रु की पूर्ण पराजय हो जाती है। ९८ अज्ञान को (आत्म-) ज्ञान (प्राप्त) हो जाता है, निः (पुत्र)-सन्तान के पुत्र-सन्तान उत्पन्न हो जाती है। (भक्ति) भाव से श्रवण करने से (श्रोता के) सांसारिक रोग नष्ट हो जाते हैं। ९९

अयोध्या-प्रवेश (सम्बन्धी कथांश) पूर्ण हो गया। आगे रसात्मक तथा गहन (गम्भीर) कथा (-भाग) है। पंडितजन श्रीराम के प्रति मन समर्पित करके उसका श्रवण करें। २०० हे अयोध्यापुर-निवासी श्रीराम, हे श्रीब्रह्मानन्द, हे कल्याण-धाम, हे श्रीधर के वर-दाता, हे पूर्णकाम, तुम नामधारी हो, पर अनाम (भी) हो, तुम (सबके) परे हो अथवा नाम और अनाम के अतीत हो। २०१ स्वस्ति। 'श्रीराम विजय' नामक यह ग्रंथ सुन्दर है। वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। चतुर भक्त उसके इस छत्तीसवें मधुर अध्याय का सदा श्रवण करें। २०२

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

---

‡ पेज १०८७ से (१३ वें छन्द का फुटनोट)।

टिप्पणी : छंद १३— छप्पन देश। प्राचीन काल में भरतखण्ड के अन्तर्गत छप्पन देश (राज्य) माने जाते थे। वे हैं— कोशल, कुरु, पांचाल, शूरसेन, जांगल, आर्यावर्त, यामुन, माथुर, मत्स्य, सारस्वत, मरुधन्व, गुर्जर, आभीर, मागध, सौवीर, आनर्त, मलय, विदर्भ, कीटक, कान्यकुब्ज, सुराष्ट्र, पांडु, विदेह, कुशावर्त, कोक, चेक, सिंधु, सौराष्ट्र, मैथिल, केकय, द्विकूटक, शाल्व, कर्नाटक, आवंत्य, निषध, पौंड्र, मद्र, वंग, अंग, कलिंग, कारुष, सृंजय, आंध्र, त्रिगर्त, द्राविड़, मालव, केरल, कीकल, उशीर, कुंतल, कांबोज, भोज, कंक, मधु, महाराष्ट्र, अर्ण।

अध्याय—३७

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । जयजय राघवा करुणाकरा । अवनिजाकुलभूषणा-मनविहारा । रावणानुजपाळका समरधीरा । मित्रपुत्रहितप्रिया । १ प्रतापसूर्यवंशविवर्धना । मयजामातकुलकाननच्छेदना । सकळवृंदारकबंधमोचना । आनन्दसदना अक्षया । २ कौसल्याहृदयारविंदभ्रमरा । भरतनयनपद्मदिवाकरा । सौमित्रप्राणआधारा । अतिउदारा अयोध्याप्रभो । ३ ब्रह्मानंदा रघुनंदना । वदवीं पुढें ग्रंथरचना । तुझी लीला जगन्मोहना । तूंचि बोलें यथार्थ । ४ पंडितीं ऐकावें सावधान । छत्तिसावे अध्यायीं जाण । राजाधिराज रघुनंदन । राज्यासनीं बैसला । ५ एकादशसहस्र वर्षें । निर्विघ्न राज्य पुराणपुरुषें । अयोध्येचें केलें संतोषें । विश्व सकळ कोंदलें । ६ तों विदेहराजनंदिनी । जगन्माता प्रणवरूपिणी । ते अयोध्यापतीची राणी । झाली गर्भिणी पहिल्यानें । ७ शास्त्रसंख्या

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । हे राघव, हे करुणाकर, हे कुल-भूषणा अवनिजा (सीता) के मन में विहार करनेवाले, हे रावणानुज विभीषण के पालक (रक्षक), हे समर-धीर, हे सूर्य-पुत्र सुग्रीव के हित को प्रिय माननेवाले, जय हो, जय हो। १ हे प्रतापी-सूर्यकुल की विशेष वृद्धि करनेवाले, हे मयासुर के जामाता रावण के कुल रूपी वन को छेद डालनेवाले, हे समस्त देवों को बन्धन से मुक्त करनेवाले, हे आनन्द-सदन, हे अक्षय भगवान् राम, (तुम्हारी जय हो, जय हो) । २ हे कौसल्या के हृदय-कमल के (प्रति लुब्ध) भ्रमर, हे भरत के नयन-कमल को विकसित कर देनेवाले सूर्य, हे लक्ष्मण के प्राणाधार, हे अति उदार अयोध्या-प्रभु, (तुम्हारी जय हो, जय हो) । ३ हे (गुरु) ब्रह्मानन्द (-स्वरूप), हे रघुनन्दन, (अब) आगे ग्रंथ-रचना कहलवाओ (अर्थात् श्रीराम-विजय नामक ग्रंथ की कथा मुझसे आगे कहलवाओ) । हे जगन्मोहन, अपनी लीला को तुम ही ठीक से कहो (कहलवाओ) । ४ पंडित जन सावधान-पूर्वक सुनें । समझिए कि छत्तीसवें अध्याय में (कहा है कि) राजाधिराज रघुनन्दन राज्यासन पर विराजमान हो गये । ५ उन पुराण-पुरुष श्रीराम ने ग्यारह सहस्र वर्ष अयोध्या का बाधा-रहित राज्य किया । (फल-स्वरूप) सन्तोष से समस्त विश्व भर गया । ६ तब जगन्माता, प्रणव-रूपिणी, विदेह-राज जनक की कन्या, अयोध्या के स्वामी की रानी (स्त्री) सीता पहली बार गर्भवती हो गयी । ७ समझिए, शास्त्रों की संख्या के बराबर

मास भरतां जाण । वोंटभरण करी रघुनंदन । तो सोहळा वर्णितां पूर्ण । भागे वदन शेषाचें । ८ वसंतकाळीं क्रीडावनांत । राघव प्रवेशला सीतेसहित । अत्यंत वन तें शोभिवंत । नंदन-वनाहूनियां । ९ वृक्ष सदाफळ आणि सघन । माजी न दिसे सूर्यकिरण । तेथें सीतेची अंगुली धरून । राजीवनयन विचर-तसे । १० नाना वृक्षांचिया जाती । सीतेस दावी त्रिभुवनपती । एकान्त देखोन सीतेप्रती । पुसत राघव प्रीतीनें । ११ म्हणे सुकुमारे जनकबाळे । तुज काय होताती अंतरीं डोहळे । मना आवडे तें ये वेळे । सांग सर्वही पुरवीन । १२ मग इच्छित हास्यवदन । जानकी देत प्रतिवचन । म्हणे एक आवडे रघुनंदन । नलगे आन पदार्थ । १३ राजीवाक्ष म्हणे लाज सांडूनी । डोहळे सांग काय ते मनीं । जें म्हणसील तें ये क्षणीं । पुरवीन जाण राजसे । १४ जनकजा बोले याउपरी । म्हणे जन्हुकुमारीचिये तीरीं । पवित्र ऋषिपत्न्यांमाझारीं । पंचरात्री राहावें । १५ घालोनियां तृणासन । करावें भूमीवरी शयन । कंदमुळें भक्षून । शुचिर्भूत असावें । १६ मनांत म्हणे रघुनन्दन ।

अर्थात् छः मास पूर्ण हो जाने पर श्रीराम ने कोंछ-भरण सम्पन्न किया । उस आनन्द-समारोह का पूरा वर्णन करते-करते शेष (तक) का मुख थक जाएगा । ८ वसन्त-काल (ऋतु) में (एक दिन) श्रीराम सीता के साथ केलि-वन में प्रविष्ट हो गये । वह वन नन्दनवन से (भी) अत्यधिक शोभावान था । ९ (वहाँ के) वृक्ष सदाफलों से युक्त तथा बहुत घने थे । उनमें सूर्य की किरण (तक) न दिखायी दे सकती थी । वहाँ सीता की अँगुली थामे हुए कमल-नयन श्रीराम विचरण करने लगे । १० वे त्रिभुवन के स्वामी नाना प्रकार के वृक्ष सीता को दिखा रहे थे । (तब) एकान्त (स्थान) देखकर श्रीराम ने प्रेमपूर्वक सीता से पूछा । ११ वे बोले— ' हे सुकुमार जनक-कन्या, तुम्हें मन में क्या दोहद हो रहे हैं ? इस समय जो मन को भाता हो, वह कहो । मैं सभी पूर्ण करूँगा । १२ तब जानकी ने कहना चाहा और मुस्कराते हुए प्रत्युत्तर दिया । वह बोली— ' हे रघुनन्दन, मुझे एक (ही बात) भाती है, मुझे कोई अन्य पदार्थ नहीं चाहिए । ' १३ (इस पर) राजीव-नेत्र श्रीराम ने कहा– ' यह तो बताओ, मन में क्या दोहद हैं । हे राजसी, जो कहोगी, उसे इस क्षण पूर्ण करूँगा । ' १४ इस पर सीता बोली– ' (मेरी अभिलाषा है कि) जाह्नवी के तट पर ऋषि-पत्नियों के बीच पाँच रात (तक) रहें । १५ तृणासन बिछाकर भूमि पर शयन

पूर्वी वनवास भोगिले दारुण । अजूनि न धायेचि मन । आवडे कानन इयेतें । १७ पुढील भविष्यार्थ जाणोन । अवश्य म्हणे रघुनन्दन । मनकामना पूर्ण करीन । तुझी जाण सुकुमारे । १८ याउपरी एकदां रघुवीर । पुरींचे रक्षक जे हेर । त्यांसीं पुसतसे श्रीधर । दृढभावें निर्धारें । १९ तुम्ही नगरीं हिंडतां निरंतर । आकर्णितां जनवार्ता समग्र । तरी तें सांगावें साचार । लोक काय म्हणती आम्हां । २० वंदिती किंवा निंदिती । यश किंवा अपयश स्थापिती । अभय असे तुम्हांप्रती । सांगा निश्चिती काय तें । २१ हेर म्हणती नगरांत । राघवा तुझे सर्व भक्त । सकळ लोक पुण्यवंत । यश वर्णिती सर्वदा । २२ परी रजक एक दुर्जन । तेणें स्त्रीसी केलें ताडन । त्या रागें ती स्त्री रुसोन । पितृसदनाप्रती गेली । २३ माहेरीं होती बहुदिन । मग पित्यानें हातीं धरून । जामातगृहाप्रती नेऊन । घालिता जाहला ते कळीं । २४ तंव तो रजक क्रोधायमान । श्वशुराप्रती बोले वचन ।

करें और कंद-मूल खाकर शुचिर्भूत बने रहें । ' १६ (यह सुनकर) श्रीराम ने मन में कहा (सोचा)– ' इसने पहले दारुण वनवास का भोग किया है, (फिर भी) अब तक इसका मन नहीं अघा रहा है –जो इसे वन भा रहा है । ' १७ आगे के भविष्य का भाव (होनी) जानकर श्रीराम ने कहा– ' अवश्य । समझ लो, हे सुकुमारी, मैं तुम्हारे मन की इच्छा पूर्ण करूँगा । ' १८

इसके पश्चात् एक बार श्रीराम ने दृढ़ भाव और निश्चय पूर्वक उनसे पूछा, जो नगर के रक्षक (तथा) गुप्तचर थे । १९ ' तुम नगर में बराबर भ्रमण करते रहते हो; लोगों की समस्त बातें सुनते हो । अतः यह कह दो कि लोग सचमुच हमारे बारे में क्या कहते हैं । २० वे (हमारा) आदर करते हैं या (हमारी) निन्दा करते हैं ! हमारा यश (कीर्ति) या अपयश (अपकीर्ति, बदनामी) स्थापित करते हैं ? तुम्हें अभय है । (अतः) जो हो, वह निश्चित रूप में कह दो । ' २१ (तब) गुप्तचरों ने कहा– " हे राघव, नगर में सब (लोग) आपके भक्त हैं । समस्त लोग पुण्यवान् हैं, वे नित्य आपके यश का वर्णन करते हैं । २२ परन्तु (कोई) एक दुर्जन रजक (धोबी) है । उसने अपनी स्त्री को पीटा था । उस (कारण) क्रोध से रूठकर वह अपने पिता के घर चली गयी थी । २३ वह बहुत दिन मैके में थी । फिर पिता ने हाथ पकड़कर उसे (लाते हुए) उस समय अपने जामाता के घर रख दिया । २४ तब वह धोबी क्रोधायमान

म्हणे ईस माझें सदन । प्रवेशों नेदीं सर्वथा । २५ मी तों राम नव्हें निर्धारीं । रावणें नेली त्याची अंतुरी । षण्मास होती असुर-घरीं । तेणें माघारी आणिली । २६ आम्ही रजक शुद्ध साचार । जगाचे डाग काढणार । आमुचे जातींत निर्धार । विपरीत ऐसें सोसेना । २७ हें अनुचित केलें रघुनाथें । मागुतीं नांदवितो सीतेतें । तैसा लंपट मी नव्हें येथें । वदन इचें न पाहेंचि । २८ ऐसा चांडाळ तो रजक । बोलिला लावून कलंक । ऐसें ऐकतां रघुनायक । परम संतप्त जाहला । २९ पाचारूनियां लक्ष्मण । त्यास सांगे सकळ वर्तमान । म्हणे रजकें निंदिलें मजलागून । जानकी त्यागीन सौमित्रा । ३० दशमुख मारूनि सहकुळीं । सुवेळीं आणिली जनकबाळी । विधि पुरंदर चंद्रमौळी । देवमंडळी सर्व होती । ३१ सकळांदेखत ते वेळे । जानकीनें दिव्य दाविलें । अजूनि रजक लांछन बोले । तें मज न सोसवे निर्धारें । ३२ तनु त्यागी जैसा प्राण । कोप टाकी रेणुकारमण । कीं संसार संकल्प तपोधन । त्यागी जैसा साक्षेपें । ३३ संसारभय तत्त्वतां ।

होकर अपने ससुर से यह बात बोला– ' इसे मेरे घर में प्रवेश करने बिलकुल नहीं दूँगा । २५ मैं तो निश्चय ही राम नहीं हूँ— उसकी स्त्री को रावण ले गया था; वह असुर के घर में छः महीने रही थी; (फिर भी) वह (राम) उसे फिर से ले आया । २६ हम रजक सचमुच शुद्ध हैं; हम जगत के दाग (जो) निकालते हैं । हमारी जात में ऐसी विपरीत (अनुचित) बात निश्चय ही सहन नहीं होगी । २७ रघुनाथ ने यह अनुचित किया है कि वह फिर सीता को घर में (सुख-सुविधा-पूर्वक) रख रहा है । मैं यहाँ वैसा लंपट नहीं हूँ । मैं तो इसका मुँह (तक) नहीं देखूँगा । ' २८ वह चंडाल रजक (आपको) कलंक लगाते हुए ऐसा बोला । " श्रीराम इस प्रकार (की बात) सुनते ही परम क्रुद्ध हो गये । २९ (तदनन्तर) लक्ष्मण को बुलाकर उन्होंने उससे समस्त वार्ता कही । (फिर) वे बोले— ' उस रजक ने मेरी निन्दा की है । (अतः) हे सौमित्र, मैं सीता को त्याग दूँगा । ३० दशानन को कुल-सहित मारकर मैं उसे सुवेल पर ले आया, (तब वहाँ) ब्रह्मा, इन्द्र, शिव—समस्त देव-वृंद उपस्थित था । ३१ उन सब के देखते (सामने) उस समय जानकी ने (अग्नि-) दिव्य (कर) दिखाया । फिर अब भी वह धोबी कलंक-भरी बात बोलता है । निश्चय मुझसे यह नहीं सहा जा रहा है । ३२ जैसे प्राण देह का त्याग करते हैं, (जैसे) रेणुका-पति जमदग्नि ने क्रोध का त्याग किया, अथवा जैसे कोई

योगी टाकी जैसी ममता। तैसीच त्यागीन मी सीता। सुमित्रासुता सत्य हें। ३४ अहिंसक हिंसा सांडिती पूर्ण। कीं मौनी त्यागी वाचाळपण। सत्पुरुष मनांतून। परनिंदा त्यागी जैसा। ३५ श्रोत्रीय त्यागी दुष्टाचार। तैसी सीता त्यागीन साचार। यावरी सुमित्राकुमर। काय बोलता जाहला। ३६ पाखांडी म्लेच्छ दुर्मती। सदा निंदिती वेदश्रुती। परी पंडित काय त्यागिती। जनकजापती सांगें हें। ३७ मुक्तांस निंदिती वायस। परी टाकिती काय राजहंस। दर्दुर निंदिती भ्रमरास। परी तो पद्मिणीस टाकीना। ३८ निंदक निंदिती संतांस। परी विवेकी पूजी रात्रंदिवस। तस्कर निंदिती इंदूस। परी चकोर विटेना। ३९ याकारणें जनकजामाता। सहसा न त्यागीं गुणसरिता। त्या रजकाची तत्त्वतां। जिव्हा आतां छेदीन। ४० श्रीराम म्हणे विशेष। तरी लोक निंदितील रात्रंदिवस। म्हणती दंडिलें रजकास। अंगीं दोष म्हणोनियां। ४१ आतां

तपोधन व्यक्ति हठात् (सोच-समझकर) सांसारिक (लौकिक) संकल्पों का त्याग कर देता हो, अथवा जैसे कोई योगी सचमुच संसारिक भय तथा ममता का त्याग करता हो, वैसे ही मैं सीता का त्याग करूँगा। हे सुमित्रा-नन्दन, यह सत्य है। ३३-३४ अहिंसक (जैसे) हिंसा (-वृत्ति) का पूर्ण त्याग करता है, अथवा (जैसे) मौन व्रतधारी वाचलता छोड़ देता है, अथवा सत्पुरुष मन से परनिंदा को छोड़ देता है, श्रोत्रीय जैसे दुष्ट आचरण छोड़ देता है, वैसे ही मैं सचमुच सीता को त्याग दूँगा।' (सुनिए,) इस पर लक्ष्मण ने क्या कहा। ३५-३६ '(वैसे तो) पाखण्डी, म्लेच्छ (जैसे) दुर्बुद्धि-वाले वेदों, श्रुतियों की सदा निन्दा करते हैं। परन्तु हे सीता-पति यह कह दो कि क्या पंडित जन उनका त्याग करते हैं। ३७ कौए मोतियों की निन्दा करते हैं, परन्तु क्या राजहंस उनको छोड़ देते हैं? मेंढ़क भौंरे की निन्दा करते हैं, परन्तु वह तो कमलिनी का त्याग नहीं कर देता। ३८ निन्दक सन्तों की निन्दा करते हैं, परन्तु विवेकवान् लोग रात-दिन उनका पूजन (आदर) करते हैं। चोर चंद्र की निन्दा करते हैं, परन्तु चकोर उससे नहीं ऊब जाता। ३९ इसलिए हे जनक-जामाता, बिना सोचे-विचारे गुण-सरिता सीता का त्याग न करना। मैं अब उस धोबी की जिह्वा काट डालूँगा।' ४० (इस पर) श्रीराम ने कहा— "फिर भी (ऐसा करने पर, विशिष्ट लोग रात-दिन निन्दा करेंगे। वे कहेंगे, 'स्वयं इनमें दोष था, इसलिए रजक को दण्ड दिया।' ४१

सौमित्रा हेंचि जाण। सीता टाकीं वनीं नेऊन। नाहीं तरी आपुला प्राण। मी त्यागीन आतांचि। ४२ ऐसें बोलतां निर्वाण। तत्काळ उठिला लक्ष्मण। ब्राह्मीं मुहूर्तीं तेव्हां सदन। जानकीचें प्रवेशला। ४३ परम विव्हळ होऊन। जगन्मातेचे वंदिले चरण। म्हणे पाहावया तापसारण्य। आज्ञा दीधली रघूत्तमें। ४४ ऐसें ऐकतांचि श्रवणीं। मनीं हर्षली विदेहनंदिनी। म्हणे जे डोहाळे पुरवीन चापपाणी। मागें वचन बोलिले। ४५ साच करावया तया वचना। तुम्हांसी पाठविलें लक्ष्मणा। तरी पंचरात्री क्रमोन जाणा। सत्वर येऊं माघारे। ४६ ऐसें सौमित्रें ऐकतां कर्णीं। अश्रु सांडी नयनींहूनी। मनीं म्हणे आतां परतोनी। कैंचें येणें माउलीये। ४७ असो जानकी हर्षयुक्त। वस्त्राभरणें वस्तु बहुत। सौभाग्यद्रव्यें सवें घेत। ऋषिअंगना पूजावया। ४८ मंगळभगिनी सौभाग्यसरिता। रथीं बैसली क्षण न लागतां। लक्ष्मणें रथ झांकून तत्त्वतां। धुरेस आपण बैसला। ४९ कोणास वार्ता न कळत। जान्हवीतीरा आणिला रथ। तेव्हां अपशकुन बहुत। जगन्मातेस जाणवती। ५०

हे सौमित्र, अब यही जान लो— वन में ले जाकर सीता को छोड़ दो। नहीं तो, मैं अपने प्राणों को अभी त्याग दूँगा।' ४२ (श्रीराम द्वारा) ऐसी अनर्थकारी बात बोलते ही लक्ष्मण तत्काल उठ गया और तब ब्राह्म मुहूर्त पर सीता के सदन में प्रविष्ट हो गया। ४३ परम विह्वल होकर उसने जगन्माता सीता के चरणों को नमस्कार किया और कहा, 'रघूत्तम श्रीराम ने तापसों का वन देखने (के लिए जाने) की आज्ञा दी है।' ४४ कानों से ऐसा सुनते सी विदेह-नंदिनी सीता मन में आनंदित हो गयी और बोली— 'हे लक्ष्मण, चापपाणि (रघुवीर) ने पहले जो बात कही थी कि मैं दोहद पूर्ण करूँगा, उस वचन को सत्य करने के लिए तुम्हें भेजा है। फिर भी समझ लो कि पाँच रातें (वहाँ) बिताकर झट से लौट, आएँगे।' ४५-४६ कानों से ऐसा सुनने पर लक्ष्मण आँखों से आँसू बहाने लगा और मन में बोला— 'हे माँ, अब कैसा लौट आना!' ४७ अस्तु। सीता ने आनन्द से वस्त्र, आभूषण जैसी बहुत-सी वस्तुएँ तथा (सिंदुर आदि) सौभाग्य द्रव्य ऋषि-पत्नियों का पूजन करने के लिए साथ में लिये। ४८ (तत्पश्चात्) मंगल-भगिनी और सौभाग्य-सरिता सीता क्षण न लगते रथ में बैठ गयी। रथ को सचमुच आच्छादित करके लक्ष्मण स्वयं धुरा पर बैठ गया। ४९ किसी को (भी) इस समाचार के विदित न होते हुए

आडवे महाउरग धांवती । पतिवियोग पिंगळे वदती । वायस वामभागें जाती । शोक सांगती अत्यंत । ५१ ऐसे अपशकुन देखतां । मनीं दचके जनकदुहिता । देवराप्रती पुसे तत्त्वतां । चिन्हें विपरीत कां दिसती । ५२ तंव तो भूधरावतार । सहसा नेदी प्रत्युत्तर । नयनीं वाहतसे नीर । कंठ सद्गदित जाहला । ५३ सीता म्हणे बंधुसहित । सुखरूप असो जनकजामात । त्याचें अशुभ दुःख समस्त । तें मजवरी पडो कां । ५४ मग म्हणे देवरा सुमती । विलोकून वन आणि भागीरथी । सत्वर जाऊं अयोध्येप्रती । रघुपतीस पाहावया । ५५ परी तो न बोलेचि सर्वथा । तटस्थ पाहे रघुवीरकान्ता । पुढें नौकेमाजी जनक-दुहिता । रथासहित बैसविली । ५६ सुरनदी उतरूनि ते वेळीं । सत्वर पैल पार नेली । मागुती रथ भूमंडळीं । पवनवेगें चाल-विला । ५७ परम भयंकर कानन । नाहीं मनुष्याचें दर्शन । सिंह सर्प व्याघ्र पूर्ण । वास्तव्य करिती त्या स्थळीं । ५८ सीता

वह रथ गंगा-तट पर ले आया । तब जगन्माता सीता को बहुत-से अपशकुन होने लगे । ५० बड़े-बड़े साँप बीच में दौड़ते गये । पिंगल पक्षी (बोली द्वारा) पति का वियोग बता (-सूचित कर) रहे थे । कौए बायीं ओर जाते थे और अत्यधिक शोक बता रहे थे (अर्थात् सूचित कर रहे थे) । ५१ ऐसे अपशकुनों को देखने पर सीता मन में चौंक गयी और उसने देवर से पूछा — ' ये लक्षमण (शकुन) विपरीत (अशुभ) क्यों दीख रहे हैं ? ' ५२ तब शेष के उस अवतार (लक्ष्मण) ने यकायक, अर्थात् तत्क्षण कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया । उसकी आँखों से (अश्रु-) जल बह रहा था । उसका कंठ अति रुँध गया था । ५३ तब सीता बोली— ' जनक-जामाता (श्रीराम) बंधुओं सहित सकुशल रहें, (फिर) उनका समस्त अशुभ तथा दुख मुझपर क्यों न पड़ जाए । ' ५४ फिर सद्बुद्धि से युक्त सीता ने अपने देवर से कहा— ' वन और गंगा को देखकर रघुपति के दर्शन करने के लिए झट से अयोध्या जाएँ । ' ५५ परन्तु वह बिलकुल नहीं बोल रहा था । तो सीता चकित होकर देखने लगी । आगे चलकर उसने (लक्ष्मण ने) सीता को रथ-सहित नौका में बैठा लिया । ५६ उस समय गंगा पार करके झट से उस पार ले गया । फिर वह रथ को भूमि-मंडल पर वायु-गति से चलाने लगा । ५७ वह वन परम भयानक था । (वहाँ) कोई भी मनुष्य दिखायी नहीं दे रहा था । उस पूरे स्थान पर सिंह, सर्प, बाघ रहते थे । ५८ (तब) सीता बोली, ' हे उर्मिला-पति, यहाँ ऋषियों के आश्रम

म्हणे हो ऊर्मिलापती। कां एथें ऋषिआश्रम न दिसती। कोणीकडे राहिली भागीरथी। नेतां निश्चितीं मज कोठें। ५९ विप्रवेदघोष कानीं। कां ऐकूं न येती अझूनी। स्वाहास्वधावषट्-कारध्वनी। यागसदनीं कां न उठती। ६० तों गहन वनीं नेऊनि रथ। सौमित्र तृणशेज करीत। जानकीस उतरूनि त्वरित। बैसविली तये ठायीं। ६१ तों भूगर्भींचें दिव्य रत्न। वनिताचक्रान्त मुख्य मंडण। कीं लावण्यभूमी निधान। वनीं लक्ष्मण टाकीत। ६२ तें सौंदर्यनभींचें नक्षत्र। कीं त्रिभुवनींचें कृपापात्र। अंगींच्या तेजें अपार। वन तेव्हां उजळलें। ६३ चंद्रीं वसे सदा कलंक। त्याहूनि सुंदर जानकीचें मुख। चपळेहूनि अधिक। अलंकार शोभती। ६४ असो तृणशेजेसीं सीता बैसवून। सौमित्र करीं साष्टांग नमन। खालतें करूनियां वदन। स्फुंदत उभा ठाकला। ६५ प्रदक्षिणा करूनि लक्ष्मण। पुढती दृढ धरी चरण। देवराचें शुभ वचन। तटस्थ ऐके जानकी। ६६ सौमित्र म्हणे जगन्माते। तुज वनीं

क्यों नहीं दिखायी दे रहे हैं ? गंगा कहाँ छूट गयी ? मुझे निश्चित रूप से कहाँ लिये जा रहे हो ? ५९ अब भी ब्राह्मणों द्वारा किया जानेवाला वेद (मंत्रों का) घोष कानों को क्यों नहीं सुनायी दे रहा है ? यज्ञ-स्थलों में स्वाहा-स्वधा–वषट्-कार ध्वनियाँ क्यों नहीं उठ रही हैं ? ' ६० तब गहन वन में रथ को ले जा कर लक्ष्मण ने घास की शय्या तैयार की और सीता को झट से उतारकर उस स्थान पर बैठा दिया। ६१ (फिर) लक्ष्मण ने उस सीता को वन में छोड़ दिया, जो भूमि के गर्भ से उत्पन्न दिव्य रत्न थी, जो नारियों के समुदाय (समाज) के लिए मुख्य आभूषण (जैसी) थी, अथवा लावण्य-भूमि में उत्पन्न निधान (-सी) थी, अथवा वह (मानो) सौन्दर्य के आकाश में (उत्पन्न) नक्षत्र थी, अथवा त्रिभुवन की कृपा-पात्र थी। उसकी देह की अमित कान्ति से तब वन उजाले को प्राप्त हो गया। ६२-६३ चंद्र (सुन्दर है, परन्तु उसके मुख) में नित्य धब्बा रहता है; (अतः) सीता का (सदा कलंक-रहित) मुख उससे सुन्दर था। उसके आभूषण विद्युत् से भी अधिक शोभायमान थे। ६४ अस्तु। उस तृण-शय्या पर सीता को बैठाकर लक्ष्मण ने उसे दण्डवत् नमस्कार किया और नीचे सिर झुकाकर वह सिसकियाँ भरते हुए खड़ा रहा। ६५ (तत्पश्चात्) उसकी परिक्रमा करके फिर उसने उसके पाँव दृढ़ता से पकड़े। सीता देवर के शुभ वचन चकित होकर सुनने लगी। ६६ लक्ष्मण ने कहा—

सोडिलें रघुनाथें। त्याची आज्ञा अलोट मातें। घेऊनि आलों म्हणोनी। ६७ रजकें निंदा केली म्हणोनी। तुज सोडविलें घोर वनीं। आतां रघुपतीचे चरण मनीं। आठवीत राहें सुखेंचि। ६८ कमळिणी सुकुमार बहुत। तयेवरी वीज पडे अकस्मात। मग पद्मिणीचा होय अंत। तेवीं मूर्च्छित पडे सीता। ६९ रुदन करी भूधरावतार। रथारूढ झाला सत्वर। तेथोनि परतला उर्मिलावर। कठिण मन करूनियां। ७० वनदेवता वृक्ष पाषाण। वारण उरग पंचानन। तयांसी विनवी लक्ष्मण। जानकी जतन करा हे। ७१ पृथिवी आप तेज समीर। अवाघियांनो जतन करा सुकुमार। असो पवनवेगें सौमित्र। अयोध्यापुरीं पावला। ७२ इकडे सीता मूर्च्छना सांवरून। उघडोन पाहे पद्मनयन। तों दूरी गेला लक्ष्मण। उभी ठाकून हांक फोडी। ७३ बाह्या उभारून तत्वतां। म्हणे परत वेगें सुमित्रासुता। माझा अन्याय कांहीं नसतां। कां हो जातां

‘ हे जगन्माता, रघुनाथ ने तुम्हें वन में छोड़ दिया है। मेरे लिए उसकी आज्ञा अनिवार्य है, इसलिए (तुम्हें यहाँ) ले आया हूँ। ६७ एक धोबी ने निन्दा की, इसलिए उन्होंने तुम्हें घोर वन में छुड़वा दिया है। अब रघुपति के चरणों का मन में स्मरण करते हुए (यहाँ) सुख के साथ निवास करो।’ ६८ कमलिनी बहुत सुकोमल होती है। यदि उसपर अकस्मात् बिजली गिर जाए, तो तब उसका अन्त हो जाता है। (लक्ष्मण की बात सुनते ही कमलिनी-सी कोमल सीता को जान पड़ा कि उसपर इन शब्दों के रूप में विद्युत्पात हो गया है; अत:) वह उस प्रकार अचेतन हो गयी। ६९ भूमि के आधार शेष का अवतार तथा उर्मिलापति लक्ष्मण (यह देखकर) रोने लगा। (फिर भी) वह झट से रथ में आरूढ़ हो गया ओर मन को कठोर बनाते हुए वह वहाँ से लौटा। ७० लक्ष्मण ने (मन-ही-मन) वन-देवियों, वृक्षों, पाषाणों, हाथियों, सर्पों, सिंहों से प्रार्थना की— ‘ इस जानकी की रक्षा करो। ७१ हे पृथ्वी, आप (जल), तेज, वायु आदि सब (तत्वो)— इस सकुमारी की तुम रक्षा करो।’ अस्तु। (तत्पश्चात्) लक्ष्मण वायु-गति से अयोध्या नगर पहुँच गया। ७२ इधर सीता ने मूर्च्छा से सँभलते ही कमल-से नयनों को खोलकर देखा, तब तक लक्ष्मण दूर गया था। (फिर) खड़ा रहकर वह (ज़ोर-ज़ोर से रोने) लगी। ७३ वह सचमुच बाँहों को ऊपर उठाये हुए बोली– ‘ हे लक्ष्मण, झट से लौट आओ। मेरा कोई अपराध न होने पर भी तुम मुझे क्यों

टाकूनि मज । ७४ सत्वर माझा वध तरी करोनी । सांगा रघुपतीस जाऊनी । मी एकली दुस्तरवनीं । कवण्या ठाया जाऊं आतां । ७५ म्हणे धांव धांव रघुनाथा । म्हणोनि हांक देत जगन्माता । वनीं श्वापदें वृक्ष लता । तयांस गहिंवर दाटला । ७६ थरथरां कांपत मेदिनी । पर्वत पक्षी रडती वनीं । गज व्याघ्र मूर्च्छना येऊनी । दु:खेंकरून पडताती । ७७ हंस मुक्ताहार सांडोनी । सीता देखतां रडती वनीं । नृत्यकला विसरोनी । शिखी शोक करिताती । ७८ पक्षी स्वपक्षें ते वेळीं । सीतेवरी करिती साउली । जळें चंचू भरूनि सकळी । जनकजे-वरी शिंपिती । ७९ वनगाई पुच्छेंकरून । सीतेवरी घालिती पवन । वनदेवता करिती रुदन । सीतादेवी देखोनियां । ८० वनचरकळप कान्तारीं । रुदन करिती दीर्घस्वरीं । वैरभाव ते अवसरीं । विसरती मोहशोकें । ८१ हे राम हे राम म्हणोन । सीता विलापे अतिगहन । गुल्म लता वापी कूप जाण । सरिता शोकें कांपिन्नल्या । ८२ हे रामा राजीवनेत्रा । मज कां त्यागिलें

छोड़कर जा रहे हो । ७४ अत: (नहीं तो) झट से मेरा वध करके जाकर रघुपति से कह दो । मैं अब इस दुर्गम वन में अकेली किस ठौर जाऊँ । ' ७५ फिर वह बोली— ' हे रघुनाथ, दौड़ो, दौड़ो । ' ऐसा कहते हुए जगन्माता सीता पुकार रही थी । (यह सुनकर) वन में श्वापद, वृक्ष, लताएँ मानो बहुत गद्गद हो उठे । ७६ पृथ्वी थरथर काँपने लगी । पर्वत, पक्षी वन में रोने लगे । दु:ख के कारण हाथी, बाघ मूर्च्छा आने से गिर पड़ने लगे । ७७ उस वन में सीता को देखते ही हंस मोतियों के हार छोड़कर रोने लगे । मोर नृत्य-कला भूलकर शोक करने लगे । ७८ उस समय पक्षियों ने अपने पंखों से सीता पर छाया की । उन सबने चोंच भरकर सीता पर जल छिड़का दिया । ७९ वनगायें (अपनी-अपनी) पूँछ से सीता के लिए हवा करने लगीं । सीतादेवी को देखकर वनदेवियाँ रुदन करने लगीं । ८० वन में वन्य जीवों के झुंड (समूह) उच्च स्वर में रुदन करने लगे । मोह और शोक के कारण वे उस अवसर पर (एक-दूसरे सम्बन्धी) वैर भाव भूल गये । ८१ ' हे राम ', ' हे राम ' —कहते हुए सीता अत्यधिक घोर विलाप करने लगी । समझिए कि झाड़ियाँ, वापिकाएँ, कुएँ, नदियाँ शोक से काँप उठीं । ८२ (वह बोली-) ' हे राजीव-नेत्र राम, हे पवित्र (-मनसा), तुमने मुझे क्यों त्यज दिया ? हे दीनों के प्रति दयालु, हे पवित्र (-मन), इस समय

पवित्रा । तूं दीनदयाळा पवित्रा । विसरलासी ये काळीं । ८३ कां हो मोकलिलें एकलीतें । आतां सांभाळील कोण मातें । कोठें थारा न दिसेचि येथें । तुजविण मज राघवा । ८४ काय अन्याय जाहला मजपासूनी । मज टाकिलें घोर वनीं । कृपासागरा चापपाणी । श्रुत मज त्वां न केलें । ८५ जन्मोनि नेणें दोषांतें । स्वप्नीं नातळें दुर्बुद्धीतें । परी जन्मान्तर न कळे मातें । तें कां ठाकूनि आलें भोगावया । ८६ तूं अनाथबंधु करुणाकर । मी दासी हीन पामर । माझा न कीजे अव्हेर । सकळ गण गोत तूं माझें । ८७ अगा हे श्रीदाशरथी । माझी करुणा नुपजे चित्तीं । कैसा स्नेह सांडोनि रघुपती । निष्ठुर जाहलासी मजवरी । ८८ मी अज्ञान बाळ भोळें । सहज पुसिलें कृपा-कल्लोळें । त्याचें फळ कीं त्यागिलें । महावनीं एकटें । ८९ आतां जाऊं कोणीकडे । कवण जिवलग येथें सांपडे । जें माझें जन्मसांकडें । निवारील दर्शनीं । ९० रामा तूंचि बापमाय । बंधु सुहृद गोत होय । मम अपराध विसरून जाय । अभय

तुम मुझे (कैसे) भूल गये हो ? ८३ मुझ अकेली को तुमने (वन में) क्यों भेज दिया ? अब मुझे कौन सम्हालेगा ? हे राघव, बिना तुम्हारे, यहाँ मुझे कोई आश्रय-स्थान नहीं दिखायी दे रहा है । ८४ मुझसे क्या अपराध हुआ है, (जिससे) तुमने मुझे घोर वन में छोड़ दिया है । हे कृपा-सागर हे चापपाणि, मुझे तुमने (कुछ भी) नहीं विदित कर दिया (बताया) । ८५ जन्म लेने के पश्चात् मैं (अपने द्वारा किये) पापों को जानती नहीं हूँ (मैंने कोई दोषास्पद बात नहीं की है) । स्वप्न में भी मैंने दुर्बुद्धि को स्पर्श नहीं किया है । फिर भी मुझे अन्य जन्म की करनी विदित नहीं है । वह मेरे लिए भोगने को क्यों आयी है । ८६ हे अनाथों के बंधु (सखा), हे करुणाकर, मैं तुम्हारी हीन पामर दासी हूँ । मेरा अनादर (से त्याग) न करना; (क्योंकि) तुम ही मेरे लिए समस्त नातेदार (आत्मीय जन) हो । ८७ अहो हे दाशरथी, तुम्हारे चित्त में मेरे प्रति करुणा उत्पन्न नहीं हो रही है । हे रघुपति, स्नेह को छोड़कर मेरे प्रति तुम निर्दय कैसे हो गये हो । ८८ मैं (मानो), अज्ञान (अबोध) भोला (-भाला) शिशु हूँ; मैंने तो यों ही सद्भाव की अधिकता से पूछा था; उसका यह फल हुआ कि तुमने मुझे महावन में अकेले छोड़ दिया है । ८९ अब मैं कहाँ जाऊँ ? यहाँ मुझे ऐसा कौन प्राणप्रिय (सखा) मिलेगा, जो देखते ही मेरे जन्म के इस संकट का निवारण करे । ९० हे राम, तुम ही मेरे

देईं मज आतां । ९१ करुणासागरा रघुवीरा । मातें उद्धरीं दयासमुद्रा । तुझें ध्यान असंख्यमुद्रा । चित्तीं वसो माझिया । ९२ तंव अयोध्यापुरा लक्ष्मण । पावला तेव्हां म्लानवदन । तों गुणसिंधु रघुनंदन । एकान्तसदनीं बैसला असे । ९३ ऊर्मिलावरें तेथें जाऊनी । भाळ ठेविलें रामचरणीं । करुणार्णवें सीता आठवूनी । अश्रु नयनीं आणिले । ९४ सौमित्र म्हणे रघुराया । चित्रींच्या वृक्षाची छाया । स्वप्नवत संसारमाया । लटकी जैसी मुळींहूनी । ९५ नावरे अत्यंत शोकसागर । परी कलशोद्भव जाहला रघुवीर । आचमन करूनि समग्र । उगाचि मौनें बैसला । ९६ असो इकडे जनकनंदिनी । निघाली चालत दुःखें वनीं । मूर्छना येऊनि क्षणक्षणीं । अवनीवरी पडतसे । ९७ मागुती उठे हस्त टेकूनी । रुदन करी धाय मोकलूनी । म्हणे कोण्या ठाया जाऊनी । राहूं आतां राघवेंद्रा । ९८ मी अनाथ अत्यंत दीन । जरी देऊं येथें प्राण । तरी आत्महत्या पाप गहन । दुजी गर्भहत्या घडेल । ९९ कळपांतून धेनु चुकली । कीं हरिणी

लिए पिता और माता हो, बंधु, मित्र, गोत्रज (नातेदार) हो। मेरे अपराध को भुला देकर मुझे अब अभय दे दो। ९१ हे कल्याण के सागर रघुवीर, हे दया-सागर, मेरा उद्धार करो। मेरे चित्त में तुम्हारी प्रतिमा असंख्य रूपों में बनी रहे। ९२ तब (उधर) लक्ष्मण मुरझाये मुख के साथ अयोध्या नगरी में पहुँच गया, तो गुणसागर रघुनन्दन घर में एकान्त में बैठे हुए थे। ९३ वहाँ लक्ष्मण ने जाकर उनके चरणों में मस्तक रखा, तो करुणासागर श्रीराम सीता को स्मरण करते हुए आँखों में आँसू भर लाये। ९४ (तब) लक्ष्मण ने कहा— 'हे रघुराज, जैसे चित्र में अंकित वृक्ष की छाया मूलतः ही मिथ्या होती है, वैसे ही सांसारिक माया स्वप्न की भाँति मिथ्या होती है।' ९५ श्रीराम द्वारा शोक रूपी सागर को रोका नहीं जा रहा था; फिर भी वे (स्वयं उस समुद्र के लिए) अगस्त्य ऋषि हो गये और उस समग्र (सागर) को आचमन करके यों ही चुप बैठे। ९६

अस्तु। इधर सीता दुख के साथ वन में पैदल चल पड़ी। मूर्च्छा आने से वह क्षण-क्षण भूमि पर गिर जाती थी। ९७ हाथ टेककर वह फिर उठ जाती और धाड़ मारकर रोने लगती। वह कहती— 'हे राघवेंद्र, अब मैं कहाँ जाकर रहूँ? ९८ मैं (अब) अनाथ, अत्यन्त दीन हो गयी हूँ। यदि मैं यहाँ प्राण त्याग दूँ, तो आत्मघात का गहन पाप होगा, और

एकटी वनीं पडली । कीं जीवनेंविण मासोळी । तळमळीत जैसी कां । १०० कीं नैषधरायाची राणी । पूर्वी पडिली घोर वनीं । कीं भिल्लीवेषें भवानी । एकटी काननीं जेवीं हिंडे । १ एक मार्ग न दिसे तेथ । सव्य अपसव्य वनीं हिंडत । दीर्घ स्वरें रुदन करीत । तों नवल एक वर्तलें । २ तेथें कंदमुळें न्यावयासी । वना आले वाल्मीक ऋषी । तो त्रिकाळज्ञानी तेजोराशी । ज्याचे ज्ञानासी सीमा नाहीं । ३ अवतारादि जन्मपत्र । जेणें रामकथा केली विचित्र । तेणें जगन्मातेचा

दूसरे गर्भ-हत्या (भी) हो जाएगी । ९९ कोई गाय झुँड से चूक गयी हो (तो वह जैसे दीन होकर घूमती रहेगी), अथवा कोई हिरनी वन में अकेली छूट गयी हो (तो वह जैसे दीन होकर घूमती रहेगी), अथवा जैसे बिना जल के मछली तड़पती है (वैसे सीता वन में तड़प रही थी), अथवा निषधराज नल की रानी (पत्नी) दमयन्ती ‡ पूर्वकाल में घोर वन में (फँसी) पड़ी थी, अथवा भीलनी के वेश में भवानी पार्वती § वन में अकेली भ्रमण कर रही थी, वैसे ही सीता (निराश्रय होकर) वन में अकेली घूम रही थी । १००-१०१ उसे वहाँ कोई एक (निश्चित) मार्ग नहीं दिखायी दे रहा था । (अतः) वह वन में दायें-बायें घूम रही थी, तार स्वर में रुदन कर रही थी । त्यों ही एक आश्चर्य घटित हुआ । १०२ वहाँ वाल्मीकि ऋषि कंद-मूल ले जाने के लिए आ गया । जिसके ज्ञान की कोई सीमा नहीं थी, ऐसा वह त्रिकाल-ज्ञानी, तेजोराशि (ऋषि) था । १०३ जिसने भगवान द्वारा अवतार ग्रहण करना, आदि सम्बन्धी कथन करते हुए जन्म-पत्रिका बनायी थी, जिसने अद्भुत रामकथा की

टिप्पणियाँ— ‡ दमयंती ने घोर वन में···निषध देश के सुविख्यात और पुण्यश्लोक राजा नल को दमयंती ने स्वयम्वर सभा में पति रूप में चुना । विवाह के पश्चात् नल ने अनेक वर्ष राज्य किया, तब एक दिन इन्द्र आदि देवों ने नल की प्रशसा की, जो कलिपुरुष को बहुत अखर गयी । फिर कलिपुरुष को नल के शरीर में प्रविष्ट होने का अवसर मिला । अनन्तर उसके प्रभाव से नल की बुद्धि फिर गयी और उसने अपने भ्राता पुष्कर को द्यूत खेलने के लिए निमंत्रित किया । द्यूत में नल राज्य आदि हार चुका; फलस्वरूप पुष्कर ने नल और दमयंती को एक-एक वस्त्र-सहित देश के बाहर निकाला । कुछ दिन बाद नल स्वर्ण-पक्षियों को पकड़ने के लिए यत्नशील हुआ, तो पक्षी उस वस्त्र को लेकर उड़ गये । आगे चलकर एक घर में जब दमयंती निद्राधीन हो गयी, तो नल उसे छोड़कर चला गया । इस प्रकार दमयंती घोर वन में अकेली फँस गयी । घूमते-घूमते वह चेदि देश के राजा के यहाँ गयी और उसकी पत्नी की दासी बनकर रह गयी···।

§ भीलनी के वेश में भवानी पार्वती···। [पृष्ठ ११३९ पर देखिए ।]

शोकस्वर । कर्णीं ऐकिला हिंडतां । ४ सीता देखिली दुरोनी । जवळी येत वाल्मीकमुनी । म्हणे आमुची तपःश्रेणी । प्रकट जाहली येणें रूपें । ५ म्हणे कोण हे शुभ कल्याणी । कीं मूळ प्रकृति प्रणव-रूपिणी । कीं अनादिपीठनिवासिनी । दर्शन द्यावया प्रकटली हे । ६ मग म्हणे जवळी येऊन । सांग माते आहेस तूं कोण । कां सेविलें घोर वन । कोणें दुःख दीधलें । ७ मग बोले जगन्माता । मी मिथिलेश्वराची दुहिता । रावणान्तकाची असें कान्ता । सौमित्रें आणोनि सोडिलें वनी । ८ अन्याय नसतां किंचित । टाकिलें घोर अरण्यांत । परदेशी आहें मी अनाथ । तरी माझा तात केवळ तूं । ९ मग ऋषि म्हणे वो जननी । माझें नाम वाल्मीक मुनी । अयोध्यानाथ कोदण्डपाणी । मज बरवें जाणतसे । ११० त्याचें भाष्य मी करीं निरंतर । मज जाणतसे मिथिलेश्वर ।

रचना की छ उसने वन में भ्रमण करते हुए अपने कानों से जगन्माता का करुण स्वर सुना । १०४ वाल्मीकि मुनि ने सीता को दूर से देखा, त्यों ही वह उसके निकट आ गया और बोला— 'हमारी तप-श्रेणी, अर्थात् तप की सर्वोच्च सीमा को हमारे प्राप्त करने के फल-स्वरूप यह प्रकट हो गयी है ।' १०५ उसने कहा (सोचा)— 'यह शुभ-कल्याण-स्वरूपा कौन है ? अथवा यह मूल प्रकृति प्रणव-रूपिणी है, अथवा अनादि-पीठ-निवासिनी (ही हमें) दर्शन देने के लिए प्रकट हो गयी है ।' १०६ फिर उसके निकट आकर वह बोला— 'बता दो, हे माता, तुम कौन हो ? तुमने इस भीषण वन को क्यों अपनाया है ? तुम्हें किसने दुख दिया ?' १०७ तब जगन्माता ने कहा— 'मैं मिथिलेश्वर (जनक) की दुहिता हूँ; रावणान्तक (राम) की कान्ता हूँ । मुझे सौमित्र ने लाकर वन में छोड़ दिया है । १०८ (उन्होंने) अल्प-सा अपराध न होने पर भी मुझे घोर वन में छोड़ दिया है । मैं अनाथ, परदेसी हूँ । अतः केवल तुम ही मेरे लिए पिता (-समान) हो ।' १०९ तब ऋषि ने कहा— 'हे जननी, मेरा नाम वाल्मीकि मुनि है । चापपाणि अयोध्या-पति (श्रीराम) मुझे भली भाँति जानते हैं । ११० मैं उनका निरन्तर भाष्य करता रहता हूँ । —उनके बारे में मैं नित्य बोलता रहता हूँ । मुझे मिथिलेश्वर (जनक) जानता है । तुम्हारा पिता हमारा मित्र है । (इसलिए) तुम सचमुच

टिप्पणी : छ एक मान्यता के अनुसार वाल्मीकि ने पहले रामायण की रचना की और तत्पश्चात् राम अवतरित हुए ।

तुझा पिता आमुचा मित्र । कन्या साचार तूं माझी । ११ तुज होतील दोन पुत्र । पित्याहूनी पराक्रमी थोर । तुज घातलें जेणें बाहेर । त्याचा सूड घेतील ते । १२ मग जानकीस हातीं धरून । गेला आश्रमा घेऊन । भोंवते मिळाले ऋषिजन । काय वचन बोलिले । १३ म्हणती हे कोण आहे ताता । येरू म्हणे जानकी जगन्माता । ऋषी म्हणती अनर्थ तत्त्वतां । घरासी आणिला साक्षेपें । १४ आम्हीं अत्यंत भोळे ब्राह्मण । टाकोनि ग्राम कुटिल जन । वसविलें घोर कानन । येथेंही विघ्न आणिलें । १५ इचें सुंदरपण अत्यंत । इजवरी अपवाद आले बहुत । इचे पायीं आम्हांसी घात । होऊं शके एकादा । १६ एक म्हणती सीता सती । जरी हे असेल निश्चिती । तरी येथें वळोनि भागीरथी । अकस्मात आणील । १७ हें जरी नव्हे इचेनी । तरी दवडावी येच क्षणीं । ऐसें ऐकतां जनक-नंदिनी । भागीरथीस पाचारीत । १८ म्हणे सगरकुलतारक माये । हरिचरणोद्भव जन्हुतनये । ब्रह्मकटाह फोडून स्वयें । प्रकट होसी अद्भुत । १९ कमलोद्भव कमलावर । शिव

मेरी कन्या (जैसी) हो । १११ तुम्हारे दो पुत्र (उत्पन्न) होंगे । वे (अपने) पिता से अधिक पुरुषार्थी वीर हो जाएँगे । जिसने तुम्हें (घर के) बाहर निकाल दिया है, उससे वे बदला लेंगे । ११२ तदनन्तर सीता को हाथ थामे हुए वह आश्रम में ले गया । तो चारों ओर ऋषिजन इकट्ठा हुए । (सुनिए-) वे क्या बात बोले । ११३ वे बोले— 'हे तात, यह कौन है ?' तो उसने कहा— 'यह जगन्माता जानकी है ।' (यह सुनकर) ऋषि बोले— 'तुम जान-बूझ कर सचमुच अनर्थ (संकट) को घर ले आये हो । ११४ हम अत्यन्त (-भोले) ब्राह्मण हैं । ग्राम और कुटिल लोगों को छोड़कर हमने घोर वन को बसा लिया— अर्थात् घोर वन में हम बस गये हैं । तो तुम यहीं विघ्न लाये हो । ११५ इसकी सुन्दरता अति अधिक है । इसपर बहुत अपवाद भी आ गये हैं । इसके कारण हमें एकाध हानि (तक) पहुँच सकती है ।' ११६ कोई-कोई बोले— 'यदि यह सीता सचमुच सती (पतिव्रता) हो, तो वह गंगा को मोड़कर (प्रवाह को घुमाकर) तुरन्त यहाँ लाएगी । ११७ यदि इससे यह नहीं हो जाए, तो इसी क्षण उसे भगा दो ।' ऐसा सुनने पर सीता गंगा का आवाहन करने लगी । ११८ वह बोली— 'हे सगर के कुल का उद्धार करनेवाली माता, हे भगवान विष्णु के चरणों से उत्पन्न (गंगा),

इंद्रादि सकळ निर्जर। सप्त ऋषी मुख्य सनत्कुमार। निरंतर तुज स्तविती। १२० तुझें अणुमात्र स्पर्शतां नीर। भस्म होती पापें अपार। शुभ्र सुमनांचा दिव्य हार। हा मुकुटीं शुभ्र तेवीं दिसे। २१ हिमनग भेदोनि साचार। एकसरें भरला सागर। तरी मजकारणें वेगवक्र। जननी धांव या पंथें। २२ ऋषी सकळ झाले भयभीत। ऐसा ओघ लोटला अद्भुत। आश्रम सांडोनि ऋषी पळत। चित्त उद्विग्न सर्वांचें। २३ एक सीतेस करिती नमन। माते आश्रम जाती बुडोन। आम्हांसी रक्षावया तुजविण। कोणी दुजें दिसेना। २४ मग सीतेनें प्रार्थून ते वेळां। ओघ निश्चळ चालविला। सत्य सती जनकबाळा। ऋषी गर्जती सर्वही। २५ सकळ ऋषी मिळोन। करिती

हे जह्नु-तनया§, ब्रह्माण्ड को फोड़कर अद्भुत रूप से तुम स्वयं प्रकट हो गयी हो। ११९ कमलोद्भव (ब्रह्मा), कमला-वर (विष्णु), शिव, इंद्र आदि समस्त देव, सप्त ऋषि ⚘, (ऋषियों में) मुख्य सनत्कुमार तुम्हारा निरन्तर स्तवन करते हैं। १२० तुम्हारे अणु-भर पानी का स्पर्श होते ही अपार पाप भस्म हो जाते हैं। मुकुट में शुभ्र दिव्य फूलों के दिव्य हार जैसा यह तुम्रारा धवल प्रवाह दिखायी देता है। १२१ तुमने हिमालय पर्वत को भेदकर (वहाँ से आगे बढ़ते हुए) समुद्र को एकबारगी भर दिया है। अतः हे जननी, मेरे लिए वेग-पूर्वक इस मार्ग से टेढ़े दौड़ो।' १२२ त्यों ही ऐसा अद्भुत रेला बढ़ता हुआ आ गया कि समस्त ऋषि भयभीत हो गये। वे आश्रम छोड़कर भागने लगे। सबका चित्त उद्विग्न हो गया। १२३ कोई-कोई सीता को नमस्कार करने लगे (और बोले)— 'हे माता, आश्रम डूबते जा रहे हैं। हमारी रक्षा करने के लिए बिना तुम्हारे कोई अन्य नहीं दिखायी दे रहा है।' १२४ तब सीता ने उस समय प्रार्थना करके उस प्रवाह को शान्त बनाते हुए चला दिया। तो सभी ऋषियों ने गर्जना (करते हुए यह बात घोषित) की— 'जनक-कन्या सीता पतिव्रता है।' १२५ (तत्पश्चात्) समस्त ऋषियों ने इकट्ठा

---

§ जह्नु-तनया गंगा—भगीरथ ने अपने पूर्वजों के उद्धार के हेतु तपस्या की और फलस्वरूप स्वर्ग से गंगा पृथ्वी पर आ गयी। गंगा की धारा से जह्नु राजा की यज्ञ-भूमि को हानि पहुँची, तो उसने उसे पी डाला। भगीरथ ने उसे प्रसन्न किया, तो गंगा फिर जह्नु के कानों में से प्रकट हो गयी। जह्नु से इस प्रकार पुनः उत्पन्न होने के कारण गंगा को जह्नु-तनया, जाह्नवी आदि नाम प्राप्त हुए।

⚘ सप्तर्षि : कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वसिष्ठ। अथवा—मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ।

जानकीचें स्तवन। म्हणती माते तुज छळून। जवळी आणिली भागीरथी। २६ असो वाल्मीकें आपुले आश्रमांत। जानकीतें ठेविलें तेव्हां गुप्त। सकळ ऋषींचें एकमत। अणुमात्र मात फुटेना। २७ नव मास भरतां पूर्ण। शुभ नक्षत्र शुभ दिन। माध्यान्हीं आला चंडकिरण। तों प्रसूत जाहली जानकी। २८ वृद्ध ऋषिपत्न्या धांवोनी। जवळी आल्या तये क्षणीं। तों दोघे पुत्र देखिले नयनीं। शशी तरणी ज्यांपरी। २९ प्रथम उपजे तो धाकुटा केवळ। मागुती उपजे तो वडील। असो दोघे जन्मले बाळ। सांवळे जावळे ते क्षणीं। १३० वाल्मीक गेले होते स्नानासी। शिष्य धांवत गेले तयांपासी। दोघे पुत्र जानकीसी। जाहले म्हणून सांगती। ३१ ऐसें ऐकतांच वचन। येरें कुशलहु हातीं घेऊन। जानकीजवळी येऊन। केलें विधान शास्त्ररीतीं। ३२ कुशेंकरून अभिषेकिला बाळ। त्याचें नांव ठेविलें कुश निर्मळ। आकर्णनेत्र घननीळ। प्रतिमा केवळ रामाची। ३३ लवावरी निजवूनी। धाकुटा अभिषेकिला तये

होकर सीता की स्तुति की और कहा— 'हे माता, तुम्हें कष्ट देकर हम गंगा को निकट लिवा लाये।' १२६ अस्तु। तब वाल्मीकि ने सीता को अपने आश्रम में गुप्त (रूप में) रखा। सब ऋषियों का मत एक था, (इसलिए) यह समाचार अणु भर (तक) बाहर नहीं फैला। १२७ नौ मास पूर्ण भर जाने पर जब शुभ नक्षत्र (से युक्त) शुभ दिन पर सूर्य मध्याह्न पर आ गया, तो जानकी प्रसूत हो गयी। १२८ उस क्षण ऋषियों की स्त्रियाँ दौड़ती हुई उसके निकट आ गयीं, तो उन्होंने अपनी आँखों से चन्द्र-सूर्य जैसे दो पुत्रों को (उत्पन्न) देखा। १२९ जो पहले उत्पन्न हो, वह तो केवल छोटा और जो पीछे से उत्पन्न हो, वह बड़ा (समझा जाता) है। अस्तु उस क्षण दो साँवले जुड़वाँ बालक जन्म को प्राप्त हो गये। १३० (उस समय) वाल्मीकि स्नान के लिए गये हुए थे, तो शिष्य उनके पास दौड़ते हुए गये। उन्होंने कहा 'जानकी के दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं।' १३१ ऐसी बात सुनते ही उन्होंने हाथ में कुश (दर्भ) लिये हुए जानकी के पास, आकर शास्त्रों में बतायी रीति के अनुसार (जातक सम्बन्धी) विधि (सम्पन्न) की। १३२ जिस बालक को कुश (दर्भ) से अभिषिक्त किया उसका शुद्ध नाम 'कुश' रखा। वह आकर्ण (कानों तक फैले हुए अर्थात् विशाल) आँखों वाला और घन-नील वर्ण वाला था। वह केवल राम की ही प्रतिमा था। १३३ उस क्षण छोटे

क्षणीं । त्यासी नाम लहू ठेवूनी । सोहळा केला वाल्मीकें । ३४ शुक्लपक्षीं वाढे चंद्र । कीं पळोपळीं वाढे दिनकर । तेवीं दोघे राघवेय सुंदर । वाढूं लागले तैसेचि । ३५ दोघांचें लालन पालन । वाल्मीक करी अनुदिन । ऋषिबाळकांत दोघे जण । क्रीडा करिती निरंतर । ३६ सप्त संवत्सर होतां पूर्ण । वाल्मीकें सुरभी आणोन । आरंभिलें मौंजीबंधन । मेळवूनि ऋषी बहुत । ३७ चाऱ्ही दिवसपर्यंत । जो जो पाहिजे पदार्थ । तो सर्वही कामधेनु पुरवीत । जाहले तृप्त अवघे ऋषी । ३८ बाळ सुंदर देखोन । बहु ऋषी देती वरदान । वाल्मीकें वेदाध्ययन । दोघांकडून करविलें । ३९ षट्शास्त्रीं प्रवीण जाहले । सकळ पुराणें करतलामलें । मग रामचरित्र पढविलें । शतकोटी ग्रंथ केला जो । १४० बाळांचें ज्ञान अत्यद्भुत । अधिकाधिक

को लवों पर लिटाकर अभिषिक्त किया । उसका नाम 'लव' रखते हुए वाल्मीकि ने (नामकरण विधि सम्बन्धी) समारोह सम्पन्न किया । १३४ जैसे शुक्ल पक्ष में चंद्र बढ़ता है, अथवा पल-पल सूर्य (तेज) में बढ़ता जाता है, वैसे ही वे दोनों सुन्दर राघवेय (राघव राम के पुत्र) बढ़ने लगे । ३५ वाल्मीकि प्रतिदिन उन दोनों का लालन-पालन करता था । वे दोनों ऋषियों के बालकों में नित्य खेलते थे । ३६ सात संवत्सर पूर्ण हो जाने पर वाल्मीकि ने कामधेनु को लाकर और बहुत-से ऋषियों को इकट्ठा करके (उन बालकों का) मौंजी-बन्धन (जनेऊ समारोह) आरम्भ किया । ३७ चार दिन तक जो जो पदार्थ चाहिए था, वह सभी कामधेनु सम्पूर्त करती थी । (उससे) समस्त ऋषि तृप्त हो गये । ३८ उन सुन्दर बालकों को देखकर ऋषियों ने उन्हें बहुत वरदान दिये । (तत्पश्चात्) वाल्मीकि ने उन दोनों द्वारा वेदों का अध्ययन करवा लिया । ३९ वे छहों† शास्त्रों में प्रवीण हो गये, समस्त पुराण* उन्हें करतलामलकवत् (हथेली पर रखे आँवले की भाँति नितान्त स्पष्ट) हो गये । फिर उनको वह 'राम-चरित्र' पढ़ाया (कण्ठस्थ कराया)

---

† टिप्पणियाँ : छः शास्त्र—धर्मशास्त्र, सांख्यशास्त्र, वेदान्तशास्त्र, न्यायशास्त्र, कामशास्त्र और योगशास्त्र ।

* समस्त पुराण-अठारह मुख्य पुराण : ब्रह्म, पद्म, वायु वा शिव, विष्णु, लिंग, गरुड़, नारद, भागवत, अग्नि, स्कंद, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वामन, वराह, मत्स्य, कूर्म, ब्रह्माण्ड । अठारह उपपुराण—लघुकालिका, बृहत्कालिका, पराशर, सिंह, नारद, सनत्कुमार, सौर, दुर्वास, कपिल, मानव, विष्णुधर्मोत्तर, शैवधर्म, माहेश्वर, नंदी, कुमार, औशनस, देवी, वरुण ।

तर्क फुटत। मग मंत्रशास्त्र समस्त। वाल्मीक मुनि सांगे तयां। ४१ मग धनुर्वेद पढवून। हातीं देत धनुष्य बाण। युद्धगति सांगे पूर्ण। दोघे जण धरिती मनीं। ४२ असो चतुर्दश विद्या चौसष्टी कळा। वाल्मीक शिकवी दोघां बाळां। ऋषिपुत्रांचा सर्वे मेळा। घेऊनि दोघे हिंडती। ४३ नाना गोष्टी कौतुकें बोलून। रंजविती जानकीचें मन। कंद मूळें आणून। जगन्मातेपुढें ठेविती। ४४ सत्संग घडतां देख। प्राणी विसरे संसारदु:ख। तैसें जानकी विसरे सकळिक। खेद मागील त्यांचेनी। ४५ दश वर्षे होतां पूर्ण। मृगयेस जाती दोघे जण। नाना श्वापदें मारून। आणिती ओढून दावावया। ४६ एके दिवसीं वनीं हिंडत। तों पर्वत मस्तकीं ध्यानस्थ। एक शृंगी तप करीत। वाल्मीकाचा बंधु तो। ४७ तो मृगवेष देखोनि

जिसे लेकर उसने शत-कोटि ग्रंथों की रचना की थी। १४० उन बच्चों का ज्ञान अति अद्भुत था। उनके द्वारा अधिकाधिक तर्क प्रस्तुत होते। तब वाल्मीकि मुनि ने उन्हें समस्त मंत्रशास्त्र बता दिया। ४१ अनन्तर धनुर्वेद पढ़ाकर उसने उनके हाथों में धनुष-बाण (धरवा) दिये। (फिर) युद्ध की पूर्ण गति-विधि कह दी, जिसे उन दोनों ने मन में (ठीक से) धारण किया। ४२ अस्तु। वाल्मीकि ने उन दोनों बच्चों को चौदह विद्याएँ♦ और चौंसठ कलाएँ सिखायीं। (उन दिनों) वे दोनों ऋषियों के पुत्रों की टोली साथ में लिये हुए घूमा करते थे। ४३ नाना प्रकार की बातें लीलया (मजे में) बोलकर वे जानकी के मन को रिझाते थे। कन्द-मूल लाकर वे उस जगन्माता के सम्मुख रख दिया करते। ४४ देखिए, सत्संग होते ही जीव घर-गिरस्थी के (सांसारिक) दु:खों को भूल जाता है। उस प्रकार उस (सत्संग) से सीता पिछले समस्त दु:ख भूल गयी। ४५ दस वर्ष पूर्ण होने पर वे दोनों जने मृगया (शिकार) के लिए जाने लगे। नाना (प्रकार के) श्वापद (पशु) मारकर वे दिखाने के लिए उन्हें खींचते हुए लाया करते। ४६ एक दिन जब वे वन में भ्रमण कर रहे थे, तब पर्वत के शिखर पर एक शृंग-धारी व्यक्ति ध्यानस्थ (बैठकर) तप कर रहा था। वह वाल्मीकि का बंधु था। ४७

♦ चौदह विद्याएँ—ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद (चार वेद), शिक्षा, छंद, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प, न्याय, मीमांसा, पुराण, धर्मशास्त्र।

‡ चसौंठ कलाएँ: (विद्याओं के नामों के विषय में मतभेद है।) नृत्य, नेपथ्ययोग, वाद्य, वास्तु, हस्तलाघव, पुस्तकवाचन, रौप्य-रत्न परीक्षा, माल्यग्रथन इत्यादि।

पूर्ण। कुशें विंधिला टाकूनि बाण। तत्काळ गेला त्याचा प्राण। प्रेत ओढूनि दोघे नेती। ४८ वाल्मीक पुसे जवळी येऊन। काय तें आणितां ओढून। येरू म्हणती मृग वधून। आणिला तुम्हां-कारणें। ४९ त्याचें आतां चर्म काढून। करूं तुम्हांकारणें आसन। वाल्मीक पाहे विलोकून। तंव तो बंधु वधियेला। १५० वाल्मीक म्हणे हे दोघे जण। अनिवार जाहले पूर्ण। ब्रह्महत्या करून। कैसे आलां वनांतरीं। ५१ बंधूचें उत्तरकार्य सकळिक। विधियुक्त करोनि वाल्मीक। जानकीजवळ तात्काळिक। वर्तमान सांगितलें। ५२ तंव बोले जानकी हांसोन। ताता सूर्यवंश अतितीक्ष्ण। त्यावरी सकळकळाप्रवीण। तुम्हींच केलीं बाळकें। ५३ परम धीट अनिवार। तुमचा तुम्हां फळला मंत्र। आतां याच्या दोषास परिहार। करावा जी समर्था। ५४ तों वाल्मीक बोले वचन। सुवर्णकमळें सहस्र आणून। भावें अर्चावा उमारमण। तरीच जाईल ब्रह्महत्या। ५५ तंव ते दोघे तये वेळे। ताता कोठें तीं सुवर्णकमळें। तीं सांगिजे येचि वेळे।

उसके उस सम्पूर्ण मृग-वेश को देखकर कुश ने बाण छोड़कर उसे बेध डाला, तो तत्काल उसके प्राण निकल गये। (तदनन्तर) वे दोनों उसे खींचकर ले गये। ४८ वाल्मीकि ने निकट आकर पूछा— 'यह खींचते हुए क्या ला रहे हो?' (इसपर) उन्होंने कहा— 'आपके लिए मृग मारकर लाये हैं। ४९ उसके चमड़े को निकालकर अब आपके लिए आसन बनाएँगे।' (यह सुनकर) जब वाल्मीकि ने ध्यान से देखा तो विदित हुआ कि उसका बंधु मारा हुआ है। १५० तब वाल्मीकि बोला— 'ये दोनों जने पूर्णतः अनिवार्य (दुर्दम्य) हो गये हैं। ब्रह्म-हत्या करके वन के अन्दर कैसे आ गये हो।' ५१ (तत्पश्चात्) बंधु की समस्त उत्तर-क्रिया विधि के अनुसार करके वाल्मीकि ने सीता के पास आकर यह समाचार कह दिया। ५२ तब वह हंसते हुए बोली— 'हे तात, सूर्य-वंश तो अति तीक्ष्ण (तेजस्वी) है। तिसपर तुमने ही इन बालकों को समस्त कलाओं में प्रवीण बना दिया है। ५३ ये परम ढीठ तथा दुर्दम्य हो गये हैं। तुम्हारा मंत्र तुम्हारे लिए फलित हो गया। हे समर्थ, अब इसके दोष (पाप) का परिहार करना।' ५४ तब वाल्मीकि ने यह बात कही— 'एक सहस्र सुवर्ण कमल लाकर भक्तिभाव से शिवजी का पूजन करें, तो ही ब्रह्म-हत्या का पाप धुल जाएगा।' ५५ तब उस समय उन दोनों ने पूछा— 'हे तात, बताइए,

घेऊन येतों दोघेही । ५६ मग बोले मुनीश्वर । अयोध्येसमीप ब्रह्मसरोवर । तेथें कमळें अपार । परी रक्षिती वीर रामाचे । ५७ तीं ब्रह्मकमळें नेऊन । राघव करितो शिवार्चन । महाबळी रक्षिती पूर्ण । रात्रंदिवस सभोंवते । ५८ गदगदां हांसती दोघे जण । कमळें आणूं न लागतां क्षण । तरीच तुमचे शिष्य जाण । निश्चयेंसीं मुनिराया । ५९ तेथें कृतान्त असेल रक्षण । त्यासहि शिक्षा लावूं पूर्ण । जरी स्वयें आला रघुनंदन । त्यासही धरून आणूं येथें। १६० धनुष्यासी लावूनि बाण । चपळ चालिले दोघे जण । जैसे सिंह दिसती लहान । परी प्रताप अतिविशेष । ६१ कीं शशी सूर्य लघु दिसती । परी प्रकाशें उजळ क्षिती । लहान दिसे विप्र अगस्ती । परी सरितापती प्राशिला । ६२ तैसे ते धाकुटे वीर । वेगें पावले ब्रह्मसरोवर । कुश प्रवेशोनि समग्र । कमळें तेव्हां तोडीतसे । ६३ तंव ते वीर

वे सुवर्ण-कमल कहाँ हैं। इसी समय हम दोनों ले आते हैं।' ५६ तब मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि ने कहा—'अयोध्या के समीप ब्रह्म-सरोवर (नामक एक सरोवर) है। वहाँ (उसमें) अनगिनत कमल हैं। परन्तु राम के वीर योद्धा उनका रक्षण कर रहे हैं। ५७ उन ब्रह्म (-सरोवर के)-कमलों को ले जाकर राम शिवजी की पूजा किया करते हैं। (इसलिए) उसके चारों ओर पूर्णतः रात-दिन महाबलवान् (रक्षक) उसकी रक्षा करते रहते हैं।' ५८ (यह सुनकर) वे दोनों जने खिल-खिलाते हुए हँसने लगे। (फिर वे बोले—) 'हे मुनिराज, (यदि) क्षण न लगते कमल ले आएँ, तो ही निश्चय-पूर्वक हमें अपने (सच्चे) शिष्य समझिए। ५९ वहाँ कृतान्त यम (तक) रक्षक (के रूप में) हो, तो भी उसी को हम पूर्णतः दण्ड देंगे। यद्यपि स्वयं रघुनन्दन आ जाए, तो भी उसे पकड़कर यहाँ लाएँगे।' १६० (यह कहकर) धनुष पर बाण चढ़ाकर वे दोनों जने चपलता-पूर्वक चल दिये। जैसे सिंह छोटे दिखायी देते हैं, फिर भी उनका प्रताप बहुत विशेष (महत्त्वपूर्ण) होता है, अथवा चंद्र और सूर्य छोटे दिखायी देते हैं, फिर भी उनके प्रकाश से पृथ्वी उज्ज्वलता को प्राप्त हो जाती है; अथवा विप्रवर अगस्त्य छोटा दिखायी दे रहा था, फिर भी उसने समुद्र (-जल) को पी डाला था, वैसे (वे बालक छोटे-छोटे दिखायी दे रहे थे, फिर भी उनका प्रताप बड़ा था।) वे नन्हे वीर वेग-पूर्वक ब्रह्म-सरोवर (के पास) आ पहुँचे। तब कुश ने (अन्दर) प्रवेश करके समस्त कमल तोड़ लिये। ६१-६३ तब (यह देखते ही वहाँ के) रक्षक सैनिक क्षुब्ध हो उठे; तो फिर लव

खवळले । लहूनें तेव्हां शर सोडिले । रक्षक बहुत प्रेत केले । उरले पळाले अयोध्येसी । ६४ रामासी सांगती वर्तमान । ऋषिबाळ आले दोघे जण । ते सबळ युद्ध करूनि जाण । कमळें घेऊन गेले पैं । ६५ आश्चर्य करी रघुपती । पहा केवढी बाळांची शक्ती । असो इकडे दोघे निघती । कमळें घेऊनि त्वरेनें । ६६ वाल्मीकापुढें कमळें ठेविती । ऋषि आश्चर्य करी चित्तीं । तटस्थ पाहे सीता सती । अद्भुत कर्तव्य बाळकांचें । ६७ मग नूतन शिवलिंग निर्मून । सहस्रकमळीं केलें पूजन । ब्रह्म-हत्येचें पाप पूर्ण । निरसोन गेलें तेधवां । ६८ ऐके दिवसीं दोघे जण । चुरीत जों जानकीचे चरण । तंव तो कुश काय वचन । बोलता जाहला ते काळीं । ६९ आम्ही जन्मलों कोणे देशीं । कोण ग्राम कोणे वंशीं । आमुचा पिता निश्चयेंसीं । सांगें कोण तो आमुतें । १७० सीता म्हणे अयोध्यानगर । सूर्यवंशीं अजराजपुत्र । दशरथ नामें नृपवर । प्रचंड प्रताप तयाचा । ७१ त्यासी राम लक्ष्मण भरत । चौथा शत्रुघ्न

ने बाण छोड़े और अनेक रक्षकों को शव बना डाला (मार डाला)। जो शेष रहे वे अयोध्या (की ओर) भाग गये। ६४ उन्होंने राम से यह समाचार कहा– 'दो जने ऋषि-कुमार आये और समझिए कि घमासान युद्ध करके कमल ले गये हैं।' ६५ (यह सुनकर) रघुपति ने आश्चर्य अनुभव किया (और सोचा-) 'देखो उन बच्चों में कितनी शक्ति है।' अस्तु। इधर वे दोनों कमल लेकर झट से चल पड़े। ६६ (फिर) उन्होंने वाल्मीकि ऋषि के सामने कमल रख दिये, तो वह मन में आश्चर्य अनुभव करने लगा। सती सीता अपने बच्चों का यह काम चकित होकर देखने लगी। ६७ अनन्तर उन्होंने नये (रूप में) शिवलिंग की रचना करके सहस्र (सुवर्ण) कमलों से उसका पूजन किया, तो तब ब्रह्म-हत्या का पूरा पाप नष्ट हो गया। १६८

एक दिन जब वे दोनों जने सीता के पाँव दबा रहे थे, तब उस समय कुश क्या बात बोला, (सुनिए)। ६९ (उसने पूछा-) 'हम किस देश में, किस ग्राम में और किस वंश में जनमे हैं? हमें यह निश्चय-पूर्वक (यथार्थ-रूप में) कहो कि हमारा कौन पिता है।' १७० (इस-पर) सीता ने कहा— 'अयोध्या-नगर में अजराज-पुत्र दशरथ नामक श्रेष्ठ राजा था। उसका प्रताप प्रचण्ड था। ७१ उसके राम, लक्ष्मण, भरत और चौथा शत्रुघ्न नामक (चार) विख्यात पुत्र हैं। उनमें से जो

विख्यात। त्यांत रावणान्तक प्रतापवंत। तो तुमचा पिता जाणिजे। ७२ रजकें निंदिलें म्हणोनी। बा रे मज सोडिलें घोर वनीं। तेव्हां जगन्मातेचे नयनीं। अश्रु आले बोलतां। ७३ वर्तमान ऐकोनि समस्त। दोघेही झाले परम तप्त। मग सीतेचें समाधान बहुत। करिते झाले ते काळीं। ७४ तों द्वादश वर्षेपर्यंत। अवर्षण पडलें अयोध्येंत। सीता सती क्षोभली अद्‌भुत। श्री समस्त गेली पैं। ७५ जैसें उद्वस कां दग्ध कान्तार। तैसें कलाहीन अयोध्यानगर। घन न वर्षेच अणुमात्र। गाई विप्र गांजले। ७६ वसिष्ठास पुसे रघुनंदन। कां हो पडलें अवर्षण। येरू म्हणे अपराधाविण। सीता बाहेर घातली। ७७ जानकीऐसें द्रिचत्न। सकळ पतिव्रतांचें मंडण। लक्ष्मी गेली निघोन। तरीच अवर्षण पडियेलें। ७८ तरी अश्व-मेध महायज्ञ। राघवा करावा संपूर्ण। घोडा पाहून श्यामकर्ण। पृथ्वीवरी सोडावा। ७९ मग शरयूतीरीं एक योजन। मंडप

रावण का वध करनेवाला, प्रतापवान है, उसे अपना पिता समझो। ७२ अरे, एक धोबी ने उसकी निन्दा की, इसलिए मुझे घोर वन में छोड़ दिया। तब ऐसा बोलते हुए जगन्माता के नयनों में अश्रु (भर) आये। ७३ यह समस्त घटना सुनकर वे दोनों भी परम संतप्त हो गये। फिर उस समय उन्होंने सीता को बहुत सान्त्वना दी। १७४

तब अयोध्या में बारह वर्ष तक सूखा पड़ गया। सती सीता अद्‌भुत रूप से क्षुब्ध हो गयी, तो (राज्य का) समस्त वैभव चला गया। ७५ जैसे जला हुआ वन उजाड़ (होता) है, अयोध्या-नगर वैसे ही तेजोहीन हो गया। बादल अणु-भर (बूंद-भर) बरसा ही नहीं, तो गायें और ब्राह्मण पीड़ा को प्राप्त हो गये। ७६ तो श्रीराम ने वसिष्ठ से पूछा— 'अहो, अवर्षण (सूखा) क्यों पड़ गया है?' (इसपर) उसने कहा— 'बिना किसी अपराध के (तुमने) सीता को (बाहर) निकाल दिया है। ७७ जानकी जैसे चिद्‌रत्न, समस्त पतिव्रताओं के मंडन (शोभा) को निकाल देते ही लक्ष्मी निकल गयी। इसीलिए (तभी) तो अवर्षण पड़ गया है। ७८ अतः हे राघव, एक सम्पूर्ण अश्वमेध महायज्ञ सम्पन्न करो। श्याम कर्ण घोड़ा◎ देखकर (अर्थात् खोजकर) पृथ्वी में (भ्रमण के लिए) छोड़ दो।' ७९ तब राम ने शरयू नदी

टिप्पणी : ◎ श्यामकर्ण घोड़ा—जिसके केवल कान और पूंछ श्याम हों और शेष शरीर श्वेत हो, उसे 'श्यामकर्ण' (घोड़ा) कहते हैं। ऐसा घोड़ा अश्वमेध के लिए योग्य माना जाता है।

घातला विस्तीर्ण । दूत पाठवून संपूर्ण । मुनीश्वर मेळविले । १८० बिभीषणा आणि सुग्रीवास । बोलावूं पाठवी राघवेश । ते दळासहित अयोध्येस । येते जाहले ते काळीं । ८१ नळ नीळ अंगद जांबुवंत । शरभ गवाक्ष बळ अद्‌भुत । वानर पातले समस्त । अष्टादश पद्में पैं । ८२ सर्व सामग्री केली पूर्ण । मग वसिष्ठ रघुनंदन । अश्वशाळेंतूनि श्यामकर्ण । निवडिती पूर्ण सुलक्षणी । ८३ सुवर्णपत्रिका ते वेळीं । बांधिली श्यामकर्णाचे भाळीं । वसिष्ठें त्यावरी लिहिल्या ओळी । ऐका सकळ श्रोते हो । ८४ अयोध्याप्रभु दशरथनंदन । रावणान्तकसुरबंधमोचन । सकळनृपश्रेष्ठ रविकुळमंडण । श्यामकर्ण सोडिला तेणें । ८५ जो कोणी असेल बळवंत । तेणें हा घोडा धरावा यथार्थ । षोडशपद्में दळांसहित । शत्रुघ्न राखीत पाठीसी । ८६ घोडा पूजोनि राजीवनेत्र । मस्तकीं बांधिलें दिव्य पत्र । शत्रुघ्न करूनि नमस्कार । दळभारेंसीं निघाला । ८७ शत्रुघ्नासी म्हणे रघुनंदन । सोळावे दिवसीं यावें परतोन । सकळ पृथ्वी जिंकून ।

के तट पर एक योजन विस्तीर्ण मंडप निर्मित किया (करवाया) और दूतों को भेजकर समस्त महान् मुनियों को एकत्रित किया । १८० (फिर) राघश्रेष्ठ श्रीराम ने विभीषण और सुग्रीव को बुलाने के लिए भेज दिया । तो वे भी उस समय अपने-अपने सेना-दलों सहित अयोध्या आ गये । १८१ नल, नील, अंगद, जाम्बवान, शरभ, गवाक्ष जैसे अद्‌भुत बल से युक्त समस्त अठारह पद्म वानर आ पहुँचे । ८२ समस्त सामग्री सिद्ध की (गयी) । तब वसिष्ठ और राम ने अश्व-शाला में समस्त शुभ लक्षणों से युक्त एक श्यामकर्ण घोड़ा चुन लिया । ८३ उस समय उस श्यामकर्ण (घोड़े) के मस्तक पर एक सुवर्णपत्रिका बाँध दी । हे समस्त श्रोताओ, वसिष्ठ ने उसपर (जो) पंक्तियाँ लिखीं, उन्हें सुन लीजिए । ८४ 'जो दशरथ-नंदन श्रीराम अयोध्या के स्वामी हैं, जो रावण का अन्त करनेवाले तथा देवों को बंधन से मुक्त करनेवाले हैं, जो समस्त राजाओं में श्रेष्ठ हैं, जो रविकुल के मंडन हैं, उन्होंने यह श्यामकर्ण (यज्ञीय) घोड़ा छोड़ दिया है । ८५ जो कोई बलवान हो, वह सचमुच इस घोड़े को पकड़ ले । शत्रुघ्न सोलह पद्म सेना सहित इसके पीछे इसकी रक्षा कर रहा है ।' ८६ (फिर) कमल-नयन राम ने इस घोड़े की पूजा करके उसके मस्तक पर वह दिव्य पत्र बाँध दिया, तो उनको नमस्कार करके शत्रुघ्न सेना-सहित निकल पड़ा । ८७ (उस समय) राम ने शत्रुघ्न से कहा—

नृप सांगातीं आणिजे । ८८ मग सुवर्णप्रतिमा सुंदर । जानकीची निर्मिली परिकर । मग ते प्रतिमेसहित रघुवीर । यज्ञदीक्षा घेत पैं । ८९ जैसा किरणचक्रांत दिवाकर । कीं निर्जरांत अमरेश्वर । तैसा यज्ञमंडपीं रघुवीर । ऋषींसहित शोभला । १९० सुग्रीव बिभीषण मारुती । यज्ञमंडपाभोंवते रक्षिती । सुमंत भरत ऊर्मिलापति । सदा तिष्ठत राघवापाशीं । ९१ जे जे सामग्री लागेल पूर्ण । ते ते तत्काळ देती आणून । तो सोहळा देवगण । विमानीं बैसोन पाहाती । ९२ इकडे छपन्न देश जिंकीत पूर्ण । जात महावीर शत्रुघ्न । सकळ राजे येती शरण । करभार देऊनि सांगातें । ९३ तेच काळीं पाताळीं वरुण । आरंभिता जाहला महायज्ञ । तेणें वाल्मीक बोलावून । नेला होता आधींच । ९४ पाताळास गेला जेव्हां ऋषी । तेणें आज्ञा केली लहूसी । बा रे माझिया उपवनासी । रक्षावें तुवां निरंतर । ९५ ऐसें बोलूनि पाताळा । वाल्मीक गेला तये वेळां । कुशही दूर वना प्रवेशला । कंदमुळें आणा-

'सोलहवें दिन लौट आओ । समस्त पृथ्वी को जीतकर राजाओं को साथ में ले आओ ।' ८८ अनन्तर श्रीराम ने सीता की सुन्दर स्वर्ण-प्रतिमा सुन्दर ढंग से बना (बनवा) ली । तब उस प्रतिमा सहित उन्होंने यज्ञ की दीक्षा ग्रहण की । ८९ जैसे किरणों के चक्र (समूह) में सूर्य शोभा देता है, अथवा देवों में इंद्र शोभायमान होता है, वैसे ही यज्ञ-मण्डप में ऋषियों सहित श्रीराम शोभायमान थे । १९० सुग्रीव, विभीषण और हनुमान यज्ञ-मण्डप के चारों ओर रक्षा कर रहे थे, तो सुमन्त, भरत और लक्ष्मण श्रीराम के पास अविरत खड़े थे । १९१ जो-जो सामग्री आवश्यक हो जाती, वे वह सम्पूर्ण तत्काल ला देते । विमानों में बैठकर देवगण यह महोत्सव देख रहे थे । ९२ इधर महावीर शत्रुघ्न छप्पन* देशों को पूर्णतः जीतकर (आगे) गया । साथ में कर-भार लिये हुए समस्त राजाओं ने उसके सामने आत्म-समर्पण किया । ९३

उसी समय वरुण ने पाताल में एक महायज्ञ आरम्भ किया था । (इससे) पहले ही वाल्मीकि को वह बुलाकर ले गया था । ९४ जब वह ऋषि पाताल में गया (जाने को निकला), तब उसने लव को आज्ञा दी थी—'अरे, मेरे उपवन की तुम निरन्तर रक्षा करो ।' ९५ ऐसा कहकर (जब) वाल्मीकि पाताल (की ओर) चला गया, तो उस समय कुश भी

* यह टिप्पणी ग्रन्थ के १११ पृष्ठ पर देखिए ।

वया । ९६ लहू उपवन रक्षीत । सवें बटु बाळें बहुत । नाना क्रीडा विनोद करीत । वृक्षच्छायेस बैसलीं । ९७ अष्टवर्षी दशवर्षी कुमर । कटीं मौंजी कौपीन सुंदर । मस्तकीं शिखा परिकर । खेळतां उडती तयांच्या । ९८ तों श्यामकर्ण धांवत । आला त्याच पंथें अकस्मात । ऋषिपुत्रांस लहू दावीत । पाहा रे येथें घोडा कैसा हा । ९९ मग सीतासुतें धांवून । शेंडीसी धरिला श्यामकर्ण । कपाळींचें पत्र तोडून । वाचिता जाहला तत्काळीं । २०० पत्रार्थ पाहूनि समस्त । लहू गदगदां हांसत । बळिया काय रघुनाथ । त्रिभुवनीं थोर जाहला । १ काय त्यासीच व्याली जननी । काय निर्वीर जाहली अवनी । तरी कैसा घोडा सोडोनी । नेईल आतां पाहूं पां । २ माझी प्रतिज्ञा हेच आतां । धरिला घोडा न सोडीं मागुता । ना तरी सीतेउदरीं तत्त्वतां । जंत होवूनि जन्मलों । ३ अश्वोत्तमाचे नेत्र पुसोन । कौतुकेंकरून थोपटी मान । उत्तरीय चीर गळां घालून ।

कन्द-मूल लाने के लिए दूर वन में प्रविष्ट हो गया । ९६ लव उपवन की रक्षा करने लगा । साथ में अनेकानेक बटु (लड़के, जिनका जनेऊ हुआ था) थे । वे नाना प्रकार के खेल और हँसी-ठठोली करते हुए वृक्ष की छाया में बैठ गये । ९७ वे अष्टवर्षीय, दसवर्षीय कुमार थे । वे कटि में मौंजीबंध (मूँज नामक घास की रस्सी) तथा सुन्दर कौपीन (लंगोटी) पहने हुए थे । जब वे खेल रहे थे, तो उनके मस्तक पर शिखाएँ (चोटियाँ) हिल रही थीं । ९८ तब उसी मार्ग पर श्यामकर्ण (घोड़ा) अकस्मात् दौड़ता हुआ आ गया ! तो लव ने ऋषि-पुत्रों को (यह कहते हुए) दिखाया— 'अहो, देखो, यह कैसा घोड़ा है ।' ९९ अनन्तर उस सीता-पुत्र लव ने दौड़कर उस श्यामकर्ण घोड़े की चोटी (चँदुवे पर के बाल) पकड़ी और मस्तक पर की पत्रिका को तोड़कर तत्काल पढ़ी । २०० उस पत्रिका के समस्त अर्थ को देखकर लव खिलखिलाकर हँसने लगा, (और बोला)— 'क्या यह रघुनाथ त्रिभुवन में बलवान और बड़ा हो गया है । २०१ क्या उसी की माँ ने (वीर को) जन्म दिया है ? क्या पृथ्वी वीर-रहित हो गयी है ? अतः अब देखें, कैसे घोड़े को छुड़ाकर ले जाता है । २०२ मेरी अब यही प्रतिज्ञा है कि पकड़े हुए घोड़े को फिर नहीं छोड़ दूंगा, नहीं तो (समझो) मैं सीता के उदर में केंचुआ होकर जन्म को प्राप्त हो गया हूँ ।' २०३ (फिर) उसने उस उत्तम घोड़े की आँखें पोंछीं, लीलया (मजे में) उसकी गरदन पर थपथपाया, और अपना उत्तरीय वस्त्र उसके गले में डालकर उसे केले के पेड़ से बाँधकर रखा । २०४ तब

बांधोन ठेविला केळीसी। ४ ऋषिपुत्रांस तेव्हां म्हणत। पहा रे घोडा कैसा नाचत। तों ऋषिबाळें समस्त। पोट बडविती भयेंकरूनि। ५ कोण्या राजाचा घोडा आला। तो तुवां बळेंचि धरिला। तरी आम्ही सांगूं तयाला। लहूनें बांधिला म्हणोनी। ६ लहू तयांप्रती बोलत। आमुचीच निश्चयें हे वस्त। आपुली आपण घेतां सत्य। शंका येथें कायसी। ७ काळासी शिक्षा करूनियां। लया पाववीन सर्व क्षत्रियां। तों वीर आले धांवूनियां। अश्वरक्षक पुढील जे। ८ विप्रकुमर देखोन। वीर पुसती दटावून। कोणीं रे हा श्यामकर्ण। कर्दळीसी बांधिला। ९ लेंकुरें बोलती भिऊन। पैल किशोर आरक्तनयन। आम्हीं वारितांही ठेवीत बांधून। त्याचेच कान कापा हो। २१० रामविजय ग्रंथ पावन। त्यामाजी लहूकुशआख्यान। कथा गोड अमृताहून। भक्तचतुरीं परिसावी। ११ ब्रह्मानंद श्रीधरवर। जानकीहृदयकमलभ्रमर। अगाध तयाचें चरित्र। सविस्तर संख्या शतकोटी। १२ स्वस्ति श्रीरामविजयग्रंथ सुंदर। संमत

उसने ऋषि-पुत्रों से कहा— 'अहो देखो, यह घोड़ा कैसे नाच रहा है।' त्यों ही ऋषियों के वे समस्त पुत्र भय-पूर्वक पेट (छाती) पीटने लगे। २०५ (वे बोले—) 'किसी राजा का घोड़ा आ गया, तो तुमने उसे हठ-पूर्वक ही पकड़ लिया है। अतः हम उससे कहेंगे कि लव ने उसे बाँधकर रखा है।' २०६ तो लव ने उनसे कहा— 'यह वस्तु निश्चय ही हमारी ही है। अपनी (वस्तु) हमारे द्वारा लेने पर सचमुच यहाँ आशंका कैसी ? २०७ मैं काल (तक) को दण्ड देकर समस्त क्षत्रियों को लय को प्राप्त कराऊँगा।' त्यों ही जो आगे थे, वे अश्व-रक्षक दौड़ते हुए आ गये। २०८ ब्राह्मणों के पुत्रों को देखकर उन वीर सैनिकों ने धमकाते हुए पूछा— 'अरे, यह श्यामकर्ण कदली से किसने बाँधा है।' २०९ तो वे बच्चे डरकर बोले— वह उधर आरक्त-नयन (लाल-से नेत्रों वाला) किशोर है। हमारे द्वारा रोकते रहने पर भी उसने इसे बाँधकर रखा है। अरे, उसी के कान काट दो।' २१०

'श्रीराम-विजय' नामक यह ग्रंथ पावन है। उसमें लव-कुश-आख्यान है। उसकी अमृत से (भी) मधुर कथा का चतुर भक्त श्रवण करें। २११

श्रीधर के वर-दाता और जानकी के हृदय-कमल के (प्रति लुब्ध)

वाल्मीकनाटकाधार । सदा परिसोत भक्त चतुर । सप्तत्रिंशत्त-मोध्याय गोड हा । २१३

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

भ्रमर (गुरु) ब्रह्मानन्द स्वरूप श्रीराम का चरित्र अथाह है, वह विस्तार-पूर्वक सौ करोड़ ग्रंथों में वर्णित है । २१२

। स्वस्ति । श्रीराम-विजय नामक यह ग्रंथ सुन्दर है, वह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है । उसके इस सैंतीसवें मधुर अध्याय का चतुर भक्त सदा श्रवण करें । २१३

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

[टिप्पटी : पेज ११२४ से]

§ भीलनी के वेष में पार्वती : एक समय जब शिव-पार्वती चौसर खेल रहे थे, तो नारद वहाँ आ गया । उसने कहा—'जब तक प्रण लगाकर नहीं खेलते तब तक खेल में आनन्द नहीं आता ।' तब शिव और पार्वती ने निर्णय किया कि जिसकी हार हो, वह अपनी एक वस्तु विजेता को दे । खेल में लगातार पार्वती की जीत होती रही । फल-स्वरूप शिवजी की समस्त वस्तुएँ, यहाँ तक कि कौपिन भी, पार्वती को मिल गयीं । तब नारद ने शिवजी से कहा—'तुम्हें स्त्री ने पराजित किया है, अब तुम्हारी महिमा कैसी ?' तब रुष्ट होकर शिवजी पार्वती को छोड़कर चले गये । फिर पार्वती व्यथित मन से अपने पति को वन-वन घूमती हुई खोजती रही । अन्त में उसे शिवजी हिमालय में दिखायी दिये, तो यह सोचकर कि अपने नित्य के रूप में सामने जाने से वे क्रुद्ध होंगे, वह भीलनी के वेष में उनके सामने गयी । उसने नृत्य-गान से उन्हें मोहित किया । शिवजी उसके प्रति आसक्त हो गये, तो वह उन्हें कैलास पर ले गयी । उसने उनका पूजन किया, माला पहना दी और अपने यथार्थ रूप को प्रकट किया । तब दोनों का मिलन हुआ ।

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । हातीं घेऊनि चाप शर । उभा मंगलभगिनीचा कुमर । तंव मागूनि चतुरंग दळभार । अति गजरें पातले । १ सवें सकळ पृथ्वीचे नृपवर । मध्यें शत्रुघ्न प्रचंड वीर । तों तेणें ऐकिली मात सुंदर । घोडा धरिला म्हणोनि । २ भ्रूसंकेत दावी शत्रुघ्न । अपार लोटलें तेव्हां सैन्य । तंव कर्दळीस श्यामकर्ण । वस्त्रेंकरून बांधिला असे । ३ ऋषींचीं मुंजिये बाळें खेळती । जे वीर आले ते पुसती । वारू कोणीं बांधिला म्हणती । लेंकुरें बोलती भिऊनियां । ४ कानावरी हात ठेविती । आम्हीं नाहीं धरिला आण वाहती । पैल दिसे धनुष्य हातीं । कलागती करितो तो । ५ तेणें बांधिला श्यामकर्ण । तंव वीर बोलती हांसोन । म्हणती लेंकुरें नेणोन । घोडा बांधिला कौतुकें । ६ सोडा रे सोडा श्यामकर्ण । जवळ उरलें आतां अयोध्यापट्टण । वाट पाहातसे रघुनंदन । सत्वर जावें वेगेंसी । ७ घोडा

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । सीता का पुत्र लव हाथ में धनुष-बाण लिए हुए खड़ा रहा था; तब पीछे से समस्त चतुरंग सेना अति गर्जन करती हुई आ पहुँची । १ साथ में पृथ्वी के समस्त राजा थे । उनके बीच में परम वीर शत्रुघ्न था । तब उसने यह सुन्दर (रोचक) बात सुनी कि (किसी ने) घोड़े को पकड़ा है । २ (जब) शत्रुघ्न ने भौंह से संकेत कर सूचित किया, तब असीम सेना आगे बढ़ी; तो (उन्होंने देखा कि) वह श्यामकर्ण (घोड़ा) कपड़े से कदली से बाँधा हुआ है । ३ (वहाँ) ऋषियों के बटु (अर्थात् वे लड़के जिनका अभी-अभी मौंजी-बन्धन हुआ हो) खेल रहे थे । जो योद्धा (वहाँ) आये, उन्होंने पूछा— 'घोड़े को किसने बाँधा है ?' तो वे बच्चे भयभीत होकर बोले । ४ उन्होंने कानों पर हाथ रखे और सौगन्ध लेकर कहा— 'हमने घोड़े को नहीं पकड़ा । उस ओर हाथ में धनुष लिये हुए वह (लड़का) दिखायी दे रहा है न, वह कलह उत्पन्न करता है । ५ उसने इस श्यामकर्ण को बाँधा है ।' तब वे सैनिक हँसते हुए बोले— 'इन बच्चों ने अनजाने खेल-खेल में (अर्थात् यों ही मज़े में) घोड़े को बाँध लिया है । ६ अरे, श्यामकर्ण को छोड़ दो, छोड़ दो । अयोध्यापुरी (का अन्तर यहाँ से) निकट (का अर्थात् बहुत कम शेष) है । रघुनन्दन प्रतीक्षा कर रहे होंगे । (अतः) झट से वेग-पूर्वक चलें ।' ७ (यह सुनते ही)

सोडावया धांवले वीर। तंव तो बोले जानकीकुमर। कोण रे तुम्ही तस्कर। घोडा सोडूं पातलां। ८ घोडा धरिला तोचि मी एथ। उभा लक्षीत युद्धपंथ। तुमचा कोण आहे रघुनाथ। त्यासी जाऊन सांगा रे। ९ मज म्हणतां तुम्ही बाळ। परी सर्वांचा मी आहें काळ। तुमचीं गर्वाचीं कवचें सकळ। फोडीन आज समरांगणीं। १० तटस्थ पाहतां सकळ वीर। म्हणती हा बाळ सुकुमार। लीलाचाप घेऊनि परिकर। धीट गोष्टी बोलतो। ११ यावरी शस्त्र धरितां निश्चितीं। सकळ योद्धे आम्हां हांसती। तरी वारू सोडून त्वरितगती। पुढें चला सत्वर। १२ घोडा सोडूं धांवले वीर। लहू चाप ओढी सत्वर। शतांचीं शतें सोडूनि शर। तोडिले कर तितुक्यांचे। १३ जैसीं वटपत्रें तुटोनि पडती। तैसीं मणगटें पडलीं क्षितीं। तों मागुती बहु वीर धांवती। घे घे शब्देंकरूनियां। १४ खर्गासहित भुजादंड। लहूनें पाडिले उदंड। जैसे शाखारहित तरू प्रचंड। तैसे वीर उभे तेथें। १५ जाहला एकचि हाहाकार। सेना

सैनिक घोड़े को छुड़ाने के लिए दौड़े, तो सीता का वह पुत्र बोला—'तुम चोर कौन हो, जो घोड़े को छुड़ाने आ गये हो? ८ जिसने घोड़ा पकड़ा, वही मैं यहाँ युद्ध की बाट जोहता हुआ खड़ा हूँ। तुम्हारा जो कोई रघुनाथ है, जाकर उससे कह दो। ९ तुम मुझे बालक कहते हो, फिर भी मैं (तुम) सबका काल हूँ। मैं आज रणभूमि में तुम सबके घमण्ड-रूपी कवचों को फोड़ डालूँगा।' १० (यह सुनकर) समस्त सैनिक चकित होकर देखते रहे और बोले—'यह सुकुमार बालक सुन्दर लीलाचाप (धनुही) लिये हुए ढिठाई से (उद्धत) बातें बोल रहा है। ११ इस पर शस्त्र धरने (उठाने) पर समस्त योद्धा निश्चय ही हमें हँसने लगेंगे, इसलिए झट से घोड़े को छुड़वाकर शीघ्रता से आगे चलें।' १२ (तदनन्तर) जब, सैनिक घोड़ा छुड़ाने दौड़े, तो लव ने झट से धनुष को खींचकर शत-शत बाण छोड़ते हुए उतने सब के हाथ काट डाले। १३ जैसे बरगद के पत्ते टूटकर गिरते हैं, (वैसे उन सैनिकों के) गट्टे (कटकर) भूमि पर गिर गये, त्यों ही 'लो'···'लो' बोलते हुए अनेकानेक सैनिक फिर से दौड़े। १४ (तब) लव ने खड्गों सहित असंख्य (योद्धाओं के) भुजदण्डों को (काटकर) गिरा दिया, तो वहाँ वे सैनिक वैसे ही खड़े (दिखायी दे रहे) थे, जैसे बिना शाखाओं के प्रचंड वृक्ष (दिखायी देते) हों। १५ (तब) अपूर्व हाहाकार मच गया, तो समस्त

लोटली तेव्हां समग्र । लक्षांचे लक्ष वीर । धांवते जाहले ते काळीं । १६ जैसा धारा वर्षे जलधर । तैसे शर सोडी भूमिजाकुमर । शिरांच्या राशी अपार । पाडिल्या तेव्हां पुरुषार्थें । १७ दूरोनि पाहती वीर सकळ । बारा वर्षांचा दिसे बाळ । परी प्रचंड वीर समोर काळ । उभा ठाकूं न शकेचि । १८ एक म्हणती गुरु समर्थ । याचा असेल हो यथार्थ । तरीच एवढें सामर्थ्य । कवणासही नाटोपे । १९ तंव सोळा पद्में दळभार । एकदांचि लोटले समग्र । परी त्या वीराचें संधान थोर । खिळिले समग्र बाणांनीं । २० मयूरपिच्छें पिंजारती । तैसे वीर सकळ दिसती । मग हांक देऊनि महारथी । शत्रुघ्न पुढें लोटला । २१ गजकलेवरें पडलीं सदट । चालावया नाहीं वाट । वीर पडिले महासुभट । नामांकित पुरुषार्थी । २२ सकळ प्रेतें मागें टाकून । पुढें धांवला शत्रुघ्न । बाळ पाहिला विलोकून । तंव रघुनंदन दुसरा । २३ म्हणे कोणाचा तूं

सेना आगे बढ़ गयी । लाखों-लाखों योद्धा उस समय दौड़ते हुए आ गये । १६ जैसे मेघ (जल-) धाराएँ बरसाता है, वैसे सीता का वह पुत्र बाण चला रहा था । उसने अपने पुरुषार्थ से सिरों की असंख्य राशियाँ गिरा दीं । १७ (तब) दूर से समस्त योद्धा देखते रहे । वह तो बारह वर्ष का बालक दिखायी दे रहा था, परन्तु वह बहुत बड़ा वीर था । उसके सामने काल (तक) खड़ा नहीं रह सकता था । १८ कोई-कोई बोले— 'सचमुच इसका गुरु ही समर्थ रहा हो । तो ही इसकी इतनी सामर्थ्य है कि वह किसी के भी द्वारा वश में नहीं किया जा रहा है ।' १९ तब सम्पूर्ण सोलह पद्म सेना एक साथ ही आगे बढ़ी, परन्तु उस वीर का (शर-) संधान बड़ा (अद्भुत) था । उसने उन सबको बाणों से कील डाला । २० मोर परों को फैलाते हैं (तब वे जैसे दिखायी देते हैं), वैसे वे समस्त (शरीर में गड़े हुए बाणों-सहित) दिखायी दे रहे थे । तब महारथी शत्रुघ्न गरजकर आगे बढ़ गया । २१ (वहाँ) हाथियों के बड़े-बड़े शरीर (शव) पड़े हुए थे, अतः चलने के लिए उसे मार्ग नहीं (मिल रहा) था । (वैसे ही) विख्यात प्रतापी बड़े-बड़े शूर योद्धा गिरे हुए थे । २२ उन सब प्रेतों को पीछे छोड़कर शत्रुघ्न आगे दौड़ा और उसने (जब) उस लड़के को ध्यान से देखा तो (उसे जान पड़ा कि) वह दूसरा श्रीराम ही हो । २३ (फिर) उसने कहा (पूछा)— 'तुम किसके लड़के हो ? यहाँ तुमने

किशोर येथ । दळ पाडिलेंस असंख्यात । आतां शिक्षा लावीन तुज बहुत । पाहें पुरुषार्थ पैं माझा । २४ लहू म्हणे सिंहदरींत वारण । आला मदभरेंकरून । परी तो क्षेम स्वस्ति वांचून । केवीं जाईल माघारा । २५ विष्णुवहनाचे कवेंतून । उरग केवीं जाय वांचून । ऐसें ऐकतां शत्रुघ्न । लावी बाण चापासी । २६ आकर्णवरी ओढी ओढून । लहूवरी सोडिला बाण । सीतापुत्रें न लगतां क्षण । तोडोनियां टाकिला । २७ आणिक सोडिले पांच बाण । तेही तत्काळ टाकिले तोडून । सवेंचि शत शर शत्रुघ्न । मोकलीत अति रागें । २८ तेही लहू तोडी सत्वर । मग काय करी सीतापुत्र । बाणजाळ घातलें अपार । झांकिलें अंबर प्रतापें । २९ सेनेसहित कैकयीनंदन । बाणीं जर्जर केला पूर्ण । जें जें शस्त्र प्रेरी शत्रुघ्न । तें तें सवेंच लहू छेदी । ३० मग निर्वाण बाण जो शत्रुघ्नातें । दिधला होता रघुनाथें । परम संकट देखोनि तेथें । तूणीरांतून ओढिला । ३१ वीज निघे मेघाबाहेर । तैसा झळकतसे दिव्य शर । तो धनुष्यीं योजून

असंख्य (सेना-दल के सैनिकों) को मार गिरा दिया है। अब मैं तुम्हें बड़ा दण्ड दूँगा। मेरा पुरुषार्थ तो देखो।' २४ (यह सुनकर) लव ने कहा— 'यदि सिंह की घाटी में हाथी मद-भरा होकर आ जाए, तो बिना क्षेम-कुशल के कैसे जाएगा? २५ भगवान् विष्णु के वाहन गरुड़ की पकड़ से साँप (छूटकर) कैसे जा पाएगा?' ऐसा सुनकर शत्रुघ्न ने धनुष पर बाण चढ़ा लिया। २६ (फिर) कान तक डोरी खींचकर उसने लव पर बाण छोड़ दिया। तो उस सीता-पुत्र (लव) ने क्षण न लगते उसे तोड़ डाला। २७ (और) शत्रुघ्न ने और पाँच बाण छोड़ दिये। उन्हें भी लव ने तत्काल काट डाला; साथ ही शत्रुघ्न ने अति क्रोध से सौ बाण छोड़े। २८ सीता-पुत्र लव ने उन्हें भी झट से काट डाला। फिर उसने क्या किया (सुनिए)। उसने अपार बाणों का जाल बिछा दिया और अपने प्रताप से आकाश को आच्छादित किया। २९ (उसी प्रकार) लव ने बाणों से शत्रुघ्न को सेना-सहित पूर्णत: जर्जर कर डाला। शत्रुघ्न जो-जो शस्त्र चलाता, उस-उसको लव साथ ही छेद डालता। ३० तब शत्रुघ्न ने वहाँ परम संकट आया हुआ देखकर तरकस में से उस निर्वाण बाण को खींच लिया, जो उसे श्रीराम ने दिया था। ३१ जैसे मेघ के बाहर बिजली निकलती है, वैसे वह दिव्य बाण तरकस में से निकलते हुए जगमगा रहा था। उसे

सत्वर। लहूवरी सोडिला। ३२ दृष्टीं देखतां सीताकुमर। म्हणे बाण आला दुर्धर। याचें निवारण समग्र। कुश एक जाणतसे। ३३ फळें आणावया कुश गेला। माझा पाठिराखा दुरावला। बाणापुढें या वेळां। न वांचेंचि सर्वथा। ३४ परम धैर्यवंत सीतानंदन। वेगीं सोडिला दिव्यबाण। तेणें शत्रुघ्नाचा निर्वाण बाण। अर्ध खंडिला अंतराळीं। ३५ अर्ध शर जो का उरला। तो लहूचे हृदयीं भेदला। मूर्च्छना येऊनि पडिला। बाळ तेव्हां धरणीवरी। ३६ भडभडां चालिलें रुधिर। आरक्त नेत्र जाहलें वक्त्र। श्वासोच्छ्वास कोंडले समग्र। शेंडी रुधिरें थबथबली। ३७ लहूपासोनि वांचले वीर। त्यांनीं सिंहनाद केला थोर। पडिला पडिला किशोर। म्हणोनि समग्र धांवले। ३८ दूरोनि पाहती ते वेळे। एक म्हणती मीस घेतलें। मग शत्रुघ्न रथाखालें। उतरूनि जवळी पातला। ३९ शत्रुघ्न जवळी बैसोन। पाहे बाळ विलोकून। धन्य जननी प्रसवली रत्न। म्हणोनि उचलूनि घेतला। ४० श्यामसुंदर आकर्णनयन।

धनुष पर लगाकर उसने लव की ओर झट से छोड़ दिया। ३२ उस सीता-पुत्र ने उसे आँखों से देखते ही कहा (सोचा)— ' यह दुर्धर बाण आ रहा है। एक कुश ही इसका सम्पूर्ण निवारण करना जानता है। ३३ कुश तो फल लाने गया है। मेरा वह रक्षक दूर गया हुआ है। (अतः) मैं इस समय इस बाण से बिलकुल बच न पाऊँगा। ' ३४ (फिर भी) वह सीतानन्दन परम धैर्यवान था। उसने वेग-पूर्वक एक दिव्य बाण छोड़ दिया। उसने शत्रुघ्न के उस निर्वाण बाण को आकाश में ही आधा काट दिया (दो टुकड़े कर दिये)। ३५ जो आधा बाण शेष रहा था, वह लव के हृदय (-स्थल) में गड़ गया; तब मूर्च्छा आकर वह लड़का धरती पर गिर गया। ३६ (फल-स्वरूप) रक्त जोर से बहने लगा। नेत्र और मुख लाल हो गये; साँस-उसाँस पूर्णतः रुक गयी; शिखा रक्त से लथपथ हो गयी। ३७ जो योद्धा लव से बच गये थे, उन्होंने बड़ा सिंह (का-सा) गर्जन किया। (फिर) ' लड़का गिर गया ', ' गिर गया ' कहते हुए वे सब दौड़े। ३८ उस समय उन्होंने दूर से देखा। कोई-कोई बोले— ' इसने स्वाँग किया होगा। ' तब रथ से नीचे उतरकर शत्रुघ्न निकट आ पहुँचा। ३९ शत्रुघ्न ने पास बैठकर उस लड़के को ध्यान से देखा और यह कहते हुए ' वह जननी धन्य है, जिसने ऐसे रत्न को जन्म दिया ' उसे उठा लिया। ४० वह (लड़का) श्यामवर्ण

आजानुबाहु सुहास्यवदन। शत्रुघ्नें उदक आणून। मुखींचें अशुद्ध धूतले। ४१ आश्चर्य करिती अवघे वीर। म्हणती दुजा अवतरला रघुवीर। आतां याची माता अपार। शोक करील यालागीं। ४२ स्नेहाचा पूर अत्यंत। शत्रुघ्नाचे हृदयीं दाटत। नयनीं आले अश्रुपात। बाळक दृष्टीं विलोकितां। ४३ रामचंद्रासी दाखवूं म्हणून। रथीं घातला त्वरेंकरून। घेऊनियां श्यामकर्ण। शत्रुघ्न त्वरेनें चालिला। ४४ लागला वाद्यांचा एकचि नाद। मनीं न समाये आनंद। महासिद्धि साधूनि सिद्ध। ववघवीत परते जैसा। ४५ इकडे लेंकुरें धांवोनी। जानकीस सांगती जाऊनी। माते तुझा लहू मारूनी। नेला घालोनि रथावरी। ४६ ऐकतां सर्व वर्तमान। जानकी पडिली मूर्च्छा येऊन। जैसें लोभियाचें धन गेलें हारपोन। तैसे प्राण सर्व एकवटती। ४७ जैसी काष्ठाची बाहुली। तैसी निचेष्टित सीता पडली। पुढती आक्रंदत उठिली। वक्षःस्थळ बडवीत। ४८ मी अनाथ दुर्बळ। परदेशी भणंग केवळ। माझें

सुन्दर था, उसके नेत्र आकर्ण (विशाल) थे। वह आजानु-बाहु था, उसका मुख सुहास्य से युक्त था। शत्रुघ्न ने पानी लाकर मुख में लगा हुआ रक्त धो डाला। ४१ समस्त योद्धा आश्चर्य अनुभव कर रहे थे। उन्होंने कहा (सोचा)— '(मानो) दूसरे रघुवीर (ही इसके रूप में) अवतरित हैं।' अब इसकी माता इसके लिए अपार शोक करेगी। ४२ (इधर) शत्रुघ्न के हृदय में स्नेह का अत्यधिक (बड़ा) रेला उमड़ उठा। उस लड़के को आँखों से देखने पर उसकी आँखों में आँसुओं की धारा उमड़ उठी। ४३ यह सोचकर कि इसे रामचन्द्र को दिखाएँ, शत्रुघ्न ने झट से उसे रथ में रख दिया और वह श्यामकर्ण को लेकर शीघ्रता से चल दिया। ४४ (तब) वाद्यों का अपूर्व गर्जन होने लगा। मन में आनन्द नहीं समा रहा था। मानो कोई सिद्ध महान् सिद्धि को सिद्ध करके भव्यता के साथ लौट रहा हो। ४५

(इधर) दौड़ते हुए जाकर उन लड़कों ने सीता से कहा— 'हे माँ, तुम्हारे लव को मारकर रथ में डालते हुए ले गये हैं।' ४६ यह समाचार सुनते ही सीता मूर्च्छा आने से गिर पड़ी। जैसे लोभी का धन छिन जाने से (उसके प्राण व्याकुल) होते हैं, वैसे (सीता के) समस्त प्राण (कण्ठ में) इकट्ठा हो गये (उसका कलेजा मुँह को आ गया)। ४७ जैसे काठ की गुड़िया (अचेतन) होती है, वैसे सीता निश्चेष्ट होकर पड़

धरूनियां बाळ। कोणीं निर्दयें नेलें पैं। ४९ माझीं दुर्बळाचीं दोन बाळें। त्यांत एक धरूनि नेलें। पूर्व-कर्म फळास आलें। अहाहा जाहलें ओखटें। ५० बाळ माझें अत्यंत कोमळ। घायें जाहलें असेल विकळ। मुखचंद्र त्याचा अति निर्मळ। नयन विशाळ सुरेख। ५१ तेथें लागोनियां बाण। फुटले असतील नयन। सुहास्यवदन छिन्नभिन्न। जाहलें असेल बाळाचें। ५२ माझीं बाळें अत्यंत दीन। होती कंदमुळें भक्षून। तयांसीं बळ कैचें संपूर्ण। झुंजावया कोणासीं। ५३ बाळावरी शस्त्र उचलिती। ते क्षत्रिय नव्हेत दुर्मती। कैसी कोणाचेहि चित्तीं। दया उपजली नाहीं तेथें। ५४ माझें दरिद्रियाचें किंचित धन। कोणें निर्दयें नेलें चोरून। मज अंधाची काठी हिरून। कोणीं वनीं भिरकाविली। ५५ कोणीं पक्ष माझा छेदिला। कोणीं नेत्र माझा फोडिला। माझा कल्पवृक्ष उपडिला। कोण्या पापियें येऊनि। ५६ वाल्मीक तात ये वेळां। तोही गेला असे पाताळा। मजवरी अनर्थ जाहला। कोणा सांगू जाऊनियां। ५७ कुश वनास गेला

गयी। फिर रोते-चिल्लाते, छाती पीटते हुए उठ गयी। ४८ (वह बोली—) 'मैं अनाथ, दुर्बल (दीन) हूँ; मैं केवल परदेसिन, भिखमंगी हूँ। कौन निर्दय मेरे बच्चे को पकड़कर ले गया? ४९ मुझ दीन के दो बच्चे हैं। उनमें से एक को पकड़कर ले गये हैं। मेरा कोई पूर्व-कृत कर्म फल को प्राप्त हो गया है। हाय, बुरा हो गया। ५० मेरा बच्चा अत्यन्त कोमल है। घाव से वह व्याकुल हो गया होगा। उसका मुख-चन्द्र अति निर्मल है; उसकी आँखें विशाल और सुन्दर हैं। ५१ वहाँ बाण के लगने से उसकी आँखें फूट गयी होंगी। बच्चे का सुहास्य से युक्त मुख छिन्न-भिन्न हो गया होगा। ५२ मेरे बच्चे अत्यधिक दीन हैं। वे कंद-मूल खाकर रहते थे। किसी के साथ जूझने के लिए पूरा (पर्याप्त) बल उनके पास कैसे होगा। ५३ जो बच्चे पर शस्त्र उठाते हों, वे दुर्मति लोग (सच्चे) क्षत्रिय नहीं हैं। किसी के चित्त में भी वहाँ दया कैसे उत्पन्न नहीं हुई? ५४ कौन निर्दय मुझ दरिद्र का किंचित्-सा धन चुराकर ले गया है? मुझ अंधी की लकड़ी को छीनकर किसने वन में फेंक डाला? ५५ मेरे पंख को किसने छेद डाला? किसने मेरा नेत्र फोड़ डाला? किस पापी ने आकर मेरे कल्प-वृक्ष को उखाड़ डाला? ५६ इस समय वे तात (पिताजी) वाल्मीकि भी पाताल में गये हुए हैं। मुझपर संकट आ टपका है। मैं जाकर यह किससे कहूँ? ५७ कुश सचमुच

तत्त्वतां। कोण धांवणें करील आतां। माझा लहू बाळ मागुता। कोण मज भेटवील। ५८ तों कुश परतला वनींहून। मार्गीं होती अपशकुन। जड जाहले चालतां चरण। तैसाच धांवून येतसे। ५९ कौपीन मौंजी कटीं शोभत। मस्तकीं शिखा वातें उडत। माता जाहली असेल क्षुधित। म्हणोन धांवत वेगेंसीं। ६० पर्णकुटींत प्रवेशला। म्हणे माते बंधु कोठें गेला। आजि सामोरा मज नाहीं आला। कोठें गुंतला खेळावया। ६१ मग त्रिभुवनपतीची राणी। बोले आक्रोशें हांक फोडूनी। बा रे आजि परचक्र येऊनी। नेला धरून बंधु तुझा। ६२ तूं त्याचा पाठिराखा पूर्ण। तुझें करीत घडी घडी स्मरण। सोडिला असेल तेणें प्राण। तूं लवकरी धांव आतां। ६३ कुशें घेतले धनुष्य बाण। जानकीसी केलें साष्टांग नमन। जय सद्‌गुरु वाल्मीक म्हणून। केली गर्जना ते काळीं। ६४ गुरुनाम-मंत्रें ते वेळीं। सर्वांगीं विभूति चर्चिली। उभा राहून बाळ बळी। जानकीप्रती बोलत। ६५ अंबे इंद्र चंद्र कुबेर।

वन के प्रति गया है। अब सहायता के लिए कौन रक्षक दौड़ेगा ? मेरे बच्चे लव को मुझसे फिर कौन मिला देगा ?' ५८ तब कुश वन से लौट आया। उसे मार्ग में अपशकुन हो गये थे। (अतः) चलते-चलते उसके पाँव भारी हो गये थे। (फिर भी) वह वैसे ही दौड़ता हुआ आ गया। ५९ कौपीन (लंगोटी) और मूँज घास की करधनी उसकी कमर में शोभायमान थी। मस्तक पर चोटी वायु (के झोंके) से उड़ (हिल) रही थी। माँ भूखी हो गयी हो, इसलिए वह वेग-पूर्वक दौड़ा। ६० वह पर्णकुटी में प्रविष्ट हुआ और बोला— 'हे माँ, भाई कहाँ गया है ? आज वह (अगुवानी के लिए) सामने तो नहीं आया। खेलने में कहाँ उलझा है ?' ६१ तब त्रिभुवन-पति श्रीराम की रानी (पत्नी) सीता ने ढाड़ मारकर रोते हुए कहा— 'अरे, आज सेना आक्रमण करते हुए तेरे भाई को पकड़कर ले गयी है। ६२ तू तो उसका पूरा सहायक है। घड़ी-घड़ी तेरा स्मरण करते हुए उसने प्राण त्याग दिये होंगे। तू अब झट से दौड़।' ६३ (यह सुनते ही) कुश ने धनुष-बाण लिये, जानकी को साष्टांग नमस्कार किया और 'सद्‌गुरु वाल्मीकि की जय हो' कहते हुए उसने उस समय गर्जन किया। ६४ उसने गुरु का नाम लेकर मंत्र पढ़ते हुए सर्वांग में विभूति लगा ली और वह बलवान् बालक खड़ा होकर जानकी से बोला। ६५ 'हे अम्ब, वह (आक्रमणकारी) इंद्र हो, चंद्र हो या

अथवा ब्रह्म विष्णु महेश्वर। जरी मी असेन तुझा कुमर। तरी बाणेंकरूनि फोडीन ते। ६६ समरांगणीं सर्व वीर। आटोनियां रथ कुंजर। बंधु सोडवीन सत्वर। शिक्षा करीन वैरियां। ६७ आजि दाखवीन बळाची प्रौढी। तरीच जन्मलों तुझें पोटीं। म्हणूनि चालिला जगजेठी। नमून माता सत्वर। ६८ कुंजरांचा मार्ग काढीत पूर्ण। जेवीं आवेशें धांवे पंचानन। कीं सर्प शोधावया सुपर्ण। क्रोधे जैसा धांवत। ६९ असो दूर देखोनियां भार। प्रचंड हांक दिधली थोर। उभे रे उभे तस्कर। चोरून नेतां वस्तु माझी। ७० तस्करांसी शिक्षा हेचि पूर्ण। हस्तचरण खंडोन। कर्ण नासिक छेदोन। शिक्षा लावीन येथेंचि। ७१ खळबळला सेनासमुद्र। अवघे माघारे पाहती वीर। तों राजस घनश्याम सुंदर। दिसे राघव दूसरा। ७२ द्वादश वर्षांचा किशोर। देखोनि चळचळां कांपती वीर। एक म्हणती सकळ संहार। करील आतां उरलियांचा। ७३ तों कुशें कोदंड चढवून। सोडिले तेव्हां दिव्य बाण। किंवा वर्षत पर्जन्य। सायकांचा ते काळीं। ७४ तों सेनापति दळ घेऊन।

कुबेर हो, अथवा ब्रह्मा, विष्णु या शिव हो, यदि मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, तो मैं उन्हें बाण से बेध डालूँगा। ६६ युद्ध-भूमि में सब वीरों को, रथों, हाथियों को नष्ट करके मैं अपने बन्धु को झट से छुड़ाऊँगा और बैरियों को दण्ड दूँगा। ६७ आज मैं अपने बल का बड़प्पन दिखा दूँ, तो ही मैं तुम्हारे पेट से जन्म को प्राप्त हो गया होऊँ।' ऐसा कहते हुए वह जगत्-श्रेष्ठ माता को नमस्कार करके झट से उस प्रकार चल दिया, जिस प्रकार सिंह हाथियों की खोज करते हुए पूरे आवेश के साथ दौड़ता है, अथवा जिस प्रकार गरुड़ साँप को खोजने के लिए क्रोध से दौड़ता है। ६८-६९ अस्तु। दूरी पर सेना को देखते ही वह प्रचंड रूप से पुकारकर बोला— 'रे चोरों, खड़े रहो, खड़े रहो (रुक जाओ)। मेरी वस्तु को चुराकर (कहाँ) ले जा रहे हो। ७० चोरों के लिए यही दंड पर्याप्त है—मैं हाथ और पाँव काटकर, कान और नाक छेदकर यहीं दंड दूँगा।' ७१ (यह सुनते ही) वह सेना रूपी सागर क्षुब्ध हो उठा। सब योद्धा पीछे देखने लगे तो उन्हें राजस, सुन्दर घनश्याम दूसरा श्रीराम ही दिखायी दिया। ७२ उस द्वादश-वर्षीय किशोर को देखते ही वे योद्धा थरथर काँप उठे। किसी-किसी ने कहा (सोचा)— 'यह (हम) समस्त शेष (सैनिकों) का संहार करेगा।' ७३ त्यों ही तब कुश धनुष को चढ़ाकर दिव्य बाण छोड़ने

मुरडला तेव्हां वर्षत बाण। म्हणे बाळा तुज न लागतां क्षण। धरून नेईन अयोध्ये। ७५ निर्वाणींचे दहा बाण। कुशावरी प्रेरिले दारुण। येरें एकचि शर सोडून। दहाही छेदिले ते काळीं। ७६ जैसे मूढाचे बोल अपार। एकेचि शब्दें छेदी चतुर। कीं स्पर्शतां जान्हवीचें नीर। पापें सर्वत्र संहारती। ७७ तैसे कुशें शर छेदून। तत्काळ सोडिले नव बाण। चारही वारू आणि स्यंदन। सेनापतीचा तोडिला। ७८ आणीक तीन बाण सोडिले। चाप हातींचें छेदिलें। कवच अंगींचें उडविलें। विरथ केलें ते काळीं। ७९ पुढें चरणचाली चालत। कुशावरी आला अकस्मात। जैसा कां सूकर उन्मत्त। मृगेंद्रावरी चौताळे। ८० तों कुशें सोडूनि दोन बाण। दोन्ही हस्त टाकिले छेदून। सवेंच दिव्य शर सोडून। शिर तयाचें उडविलें। ८१ सेनापति पडतांच ते वेळां। एकचि हाहाकार जाहला। तों तयाचा बंधु सरसावला। नागेंद्र नाम जयासी। ८२ विद्युत्प्राय वीस बाण। नागेंद्रें सोडिले चापीं योजून। त्या शरतेजें प्रकाशलें

लगा। मानो उस समय बाणों की वर्षा होने लगी। ७४ तब सेनापति सेना-दल को लेकर लौट आया और बाण बरसाते हुए बोला— 'रे बच्चे, क्षण न लगते तुझे पकड़कर अयोध्या ले जाऊँगा।' ७५ फिर उसने दस निर्वाण दारुण बाण कुश की ओर छोड़ दिये, तो उसने उस समय एक ही बाण चलाकर उन दसों को छेद डाला। ७६ जैसे मूर्ख व्यक्ति के असंख्य वचनों का विद्वान् एक ही शब्द से खंडन कर देता, अथवा जैसे गंगा के जल के छूते ही समस्त पापों का संहार हो जाता है, वैसे कुश ने (सेनापति द्वारा चलाये हुए समस्त) बाणों को काटकर तत्काल नौ बाण छोड़ दिये और सेनापति के चारों घोड़ों और रथ को काट डाला। ७७-७८ उसने और तीन बाण चलाकर उसके हाथ के धनुष को काट दिया, शरीर पर पहने कवच को (काटकर) उड़ा दिया और उस समय (इस प्रकार) उसे रथ-हीन कर दिया। ७९ तब वह पैदल चलते हुए कुश पर अकस्मात वैसे ही चढ़ आया, जैसे कोई उन्मत्त सूअर सिंह के प्रति क्षुब्ध हो उठता है (और उसपर आक्रमण करता है)। ८० तब कुश ने दो बाण छोड़कर उसके दोनों हाथ छेद डाले और साथ ही एक दिव्य बाण चलाकर उसके सिर को (काटकर) उड़ा दिया। ८१ उस समय सेनापति के गिर जाते ही अपूर्व हाहाकार मच गया। तब उसका भाई, जिसका नाम नागेन्द्र था, आगे बढ़ा। ८२ नागेन्द्र ने धनुष पर चढ़ाकर बिजली-से बीस बाण

गगन। मग सीतानंदन काय करी। ८३ एकेंचि शरें ते वेळे। वीसही बाण पिष्ट केले। जैसीं एकाचि नामें सकळें। महापातकें भस्म होती। ८४ मग सोडोनि अर्धचंद्र शर। उडविलें नागेंद्राचें शिर। सोडीत बहु बाणांचा पूर। न ये समोर कोणीही। ८५ तों समीरासी मागें टाकून। पुढें धांवला कैकयीनंदन। चपळेहून सतेज बाण। वर्षता जाहला ते काळीं। ८६ तंव तो राघवी वीर चतुर। एवं पिष्टवत करी शर। सवेंचि बाण अपार। वर्षत मेघासारिखे। ८७ उरलें शत्रुघ्नाचें दळ। शिरें छेदूनि पाडी सकळ। जैसें अपार जलदजाळ। प्रभंजन विभांडी। ८८ मग आठवोनि वाल्मीकाचे चरण। काढिला सद्‌गुरु दत्त बाण। सोडिला जेवीं पंचानन। वारणावरी चपेटे। ८९ वज्र पडे शैलशिखरीं। तैसा शत्रुघ्नाचे हृदयावरी। बाण खडतरला ते अवसरीं। पडला धरणीं शत्रुघ्न। ९० मग भोंवतें पाहे कुश वीर। तंव एकही न ये समोर। जैसा दिनकराप्रति अंधकार। मुख परतोनि न दावी। ९१ षोडश पद्में

छोड़ दिये। उन बाणों के तेज से आकाश प्रकाशमान हो गया। तब उस सीतानन्दन ने क्या किया ? (सुनिए) ८३ उसने एक ही बाण से उन बीसों बाणों को उस प्रकार चूर-चूर कर डाला, जिस प्रकार एक ही नाम से समस्त महापाप भस्म हो जाते हैं। ८४ फिर उसने एक अर्धचन्द्र बाण छोड़कर नागेन्द्र का सिर (काटकर) उड़ा दिया। (तदनन्तर) उसने अनेकानेक बाणों का रेला चला दिया, तो कोई भी सामने नहीं आ पाया। ८५ फिर वायु को भी (गति में) पीछे डालकर कैकेयी-नन्दन शत्रुघ्न आगे दौड़ा और उस समय बिजली से भी तेजस्वी बाण बरसाने लगा। ८६ तब वह चतुर वीर राघवीय (कुश) उन बाणों को पीस देता रहा। साथ ही वह असंख्य बाण मेघ की भाँति बरसाता रहा। ८७ शत्रुघ्न का जो दल शेष था, उसके समस्त (योद्धाओं के) मस्तक छेदकर उसने वैसे ही गिरा दिये, जैसे वायु अपार मेघ-जाल को छिन्न-भिन्न कर देती है। ८८ अनन्तर सद्‌गुरु वाल्मीकि के चरणों का स्मरण करके उसने उनके द्वारा दिया हुआ बाण निकाला और जैसे सिंह हाथी की ओर लपकता है, वैसे (लपकते हुए) उस बाण को छोड़ दिया। ८९ जैसे वज्र पर्वत-शिखर पर गिरता है, वैसे वह बाण उस समय शत्रुघ्न के हृदय पर टकरा गया। (फल-स्वरूप) शत्रुघ्न धरती पर गिर गया। ९० तब वीर कुश ने चारों ओर देखा, तो एक (योद्धा) भी वैसे ही सामने नहीं

दळभार। आणीक देशोदेशींचे नृपवर। तितुकेही संहारिले समग्र। जैसें तृण अग्निसंगें। ९२ मग कुश चापासी घाली गवसणी। जैसा याज्ञिक आच्छादी अग्नि। कीं मेघांमाजी सौदामिनी। गुप्त जैसी राहिली। ९३ जैसीं उद्वसग्रामींचीं मंदिरें। तेवीं रथ शून्य दिसती एकसरें। लहुवाकरणें कुशेंद्रें। तितुकेंही शोधिलें ते काळीं। ९४ व्हावया वस्तुसाक्षात्कार। साधक शोधिती तत्त्वें समग्र। तैसे रथ शोधित कुशेंद्र। बंधुरत्नाकारणें। ९५ तों शत्रुघ्नाचा मुख्य रथ। त्यावरी लहू होता मूर्च्छागत। तो कुशें उचलूनियां त्वरित। हृदयकमळीं आलिंगिला। ९६ तों लहूनें उघडिले नयन। विलोकी निजबंधूचें वदन। तत्काळ उभा ठाकला उठोन। म्हणे शत्रुघ्न पळोन गेला कोठें। ९७ देह चाऱ्ही शोधोनि विविध। संत अंतरीं धरिती बोध। तैसाच कुश होऊनि सद्गद। बंधू हृदयीं धरियेला। ९८ मग कुश वचन बोलत। बा रे तूं श्रमलासी

आ रहा था, जैसे अंधकार मुख को फेरकर सूर्य की ओर नहीं दिखाता है। ९१ जैसे घास अग्नि की संगति में जल जाती है, वैसे सोलह पद्म सेना तथा देश-देश के राजा (जो शत्रुघ्न के साथ में थे) उन सब का कुश ने संहार कर डाला। ९२ तब कुश ने धनुष पर आवरण डाला, जैसे याज्ञिक अग्नि को आच्छादित करता है, अथवा विद्युत् मेघों में गुप्त रहती है। ९३ जैसे उजाड़ ग्राम के घर दिखायी देते हैं, वैसे रथ एक साथ शून्य दिखायी दे रहे थे। कुश ने उस समय लव के लिए उन सबको ढूँढ लिया। ९४ जैसे ब्रह्म का साक्षात्कर कर लेने के लिए साधक समस्त तत्त्वों में खोजता है, वैसे ही बंधु-रत्न के लिए कुश ने (समस्त) रथ ढूँढ लिये। ९५ तो (उसे दिखायी दिया कि) जो शत्रुघ्न का मुख्य रथ था, उसमें लव मूर्च्छित था। कुश ने झट से उठाकर अपने हृदय-कमल से लगाते हुए उसका आलिंगन किया। ९६ तब लव ने आँखें खोलीं, तो अपने बन्धु के मुख को देखा और वह तत्काल उठकर खड़ा हो गया। वह बोला— 'शत्रुघ्न कहाँ भाग गया?' ९७ जिस प्रकार (स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण नामक) विविध (प्रकार की) चारों देहों को ढूँढकर सन्त अन्तःकरण में ज्ञान धारण करते हैं, उस प्रकार (अनेक रथों में खोजने पर प्राप्त) अपने बन्धु को कुश ने अति गद्गद होकर हृदय से लगा लिया। ९८ अनन्तर कुश ने यह बात कही— 'अरे, तुम बहुत थक गये हो।' इसपर उसने (लव ने) कहा— 'तुम्हें देखते ही समस्त कष्ट

बहुत । येरू म्हणे कष्ट समस्त । हरले तुज देखतां । ९९ म्हणे श्यामकर्ण घेऊन । चला आश्रमा करूं गमन । मग कुश बोलिला वचन । कदा येथून जाऊं नये । १०० आतां युद्धास येतील बहुत । ते समरीं जिंकूनि समस्त । मग वारू घेऊनि त्वरित । जाऊं जननीच्या दर्शना । १ लहू म्हणे घालोनि पैंज । घ्यावें अयोध्येचें राज्य । धरून आणावा रघुराज । वाल्मीकचरणाजवळी पैं । २ असो वृक्षीं बांधोनि श्यामकर्ण । हातीं घेऊनि धनुष्य बाण । अयोध्यापंथ लक्षीत पूर्ण । दोघे जण उभे असती । ३ घायाळ सैन्य उरलें किंचित । तें अयोध्येसी गेलें धांवत । राघवासी सकळ मात । श्रुत केली तेधवां । ४ दळभारासहित पूर्ण । रणीं आटिला वीर शत्रुघ्न । विप्रबाळक दोघे जण । द्वादश वर्षांचे असती पैं । ५ यज्ञमंडपीं रघुनंदन । बंधूचा समाचार ऐकोन । टाकोनि हातींचें अवदान । भूमीवरी उलंडला । ६ नेत्रीं ढळढळां वाहे नीर । गजबजले भरत सौमित्र । बिभीषण हनुमंत मित्रपुत्र । हडबडले तेधवां । ७ म्हणती यज्ञासी जाहलें विघ्न । पडला महावीर शत्रुघ्न । असो

दूर हो गये । ' ९९ फिर वह बोला— ' इस श्यामकर्ण को लेकर चलो, आश्रम की ओर गमन करें । ' तब कुश ने यह बात कही— ' यहाँ से कभी भी न जाएँ । १०० अब युद्ध के लिए बहुत (सैनिक) आएँगे । उन सबको युद्ध में जीतकर, तब घोड़ा लेकर माता के दर्शन के लिए झट से जाएँ । ' १०१ (इसपर) लव ने कहा— ' प्रण लगाकर अयोध्या का राज्य लें और रघुराज को पकड़कर वाल्मीकि के चरणों में (खींच) लाएँ । ' १०२ अस्तु । उस श्यामकर्ण को वृक्ष से बाँधकर और हाथों में धनुष-बाण लिये हुए वे दोनों अयोध्या के सम्पूर्ण मार्ग की ओर देखते हुए खड़े रह गये । १०३ घायल हुई जो थोड़ी-सी सेना शेष रही थी, वह दौड़ती हुई अयोध्या गयी और तब उसने समस्त बात रघुनाथ को विदित करा दी । १०४ ' पूर्ण सेना-दल सहित वीर शत्रुघ्न युद्ध में नष्ट हो गया । वे दोनों जने ब्राह्मण-पुत्र बारह वर्ष के हैं । ' १०५ यज्ञ-मंडप में अपने बन्धु-सम्बन्धी समाचार सुनकर श्रीराम हाथ में लिया हुआ हविर्द्रव्य फेंककर भूमि पर लुढ़क पड़ा । १०६ उसकी आँखों से (अश्रु-) जल वेग-पूर्वक बहने लगा । भरत और लक्ष्मण घबरा उठे । विभीषण, हनुमान और सुग्रीव उस समय हकबका उठे । १०७ उन्होंने कहा (सोचा)— ' यज्ञ में विघ्न (उपस्थित) हो गया--महावीर शत्रुघ्न गिर

सौमित्राप्रती राजीवनयन । काय बोलिला तेधवां । ८ म्हणे शत्रुघ्नाऐसा वीरराणा । ऋषिकिशोरें आटिला रणा । तरी सवें घेऊनि अपार सेना । धांवण्या धांवें बंधूच्या । ९ श्रीराम-चरणाब्ज नमून । वायुवेगें निघाला लक्ष्मण । सवें चतुरंग सैन्य । अपार तेव्हां निघालें । ११० चवदा गांवें रुंद थोर । मार्गीं चालिला सेनासागर । वायुवेगें ऊर्मिलावर । रणमंडलासीं पातला । ११ तों सेनापती काळजित । सौमित्रापासीं पावला त्वरित । तंव दोघे देखिले अकस्मात । शशी आदित्य जयापरी । १२ श्यामसुंदर दोघे जण । द्वादश वर्षांच्या मूर्ती लहान । हातीं घेऊनि धनुष्य बाण । धीट दोघे विलोकिती । १३ पाहावया बंधूचें मानस । बोलता जाहला वीर कुश । म्हणे सेना पातली विशेष । प्रताप विशेष दिसतसे । १४ सेनापती क्रोधायमान । चपळ येतसे त्याचा स्यंदन । आतां हा युद्ध करील दारुण । आम्हांसी पुन्हां नाटोपे । १५ मग बोलिला लहू वीर । तूं पाठिराखा आलासी सत्वर । आतां मज बळ अपार । येथोनियां चढियेलें । १६ जैसी साह्य होतां सरस्वती । सकळ

गया ।' अस्तु । तब राजीव-नयन श्रीराम लक्ष्मण से क्या बोले ? (सुनिए) १०८ वे बोले— 'शत्रुघ्न जैसे वीर-श्रेष्ठ को उस ऋषि-पुत्र ने युद्ध में मार डाला । अतः साथ में अपार सेना लेकर बंधु की सहायता के लिए जाओ ।' १०९ (तत्पश्चात्) लक्ष्मण श्रीराम के चरण-कमलों को नमस्कार करके वायु-वेग से चल पड़ा । तब उसके साथ अपार चतुरंग सेना चल दी । ११० मार्ग में चौदह योजन चौड़ा सेना रूपी सागर चल रहा था । लक्ष्मण वायु-वेग से रण-भूमि में आ पहुँचा । ११ तब कालजित नामक सेनापति झट से लक्ष्मण के पास पहुँचा । फिर (उसने) सहसा चंद्र-सूर्य जैसे दो जनों को देखा । १२ वे दोनों श्याम-सुन्दर थे । वे बारह-वर्षीय नन्हीं-सी मूर्तियाँ थे । उसने हाथों में धनुष-बाण लिये हुए उन दोनों ढीठ लड़कों को देखा । १३ अपने बंधु के मन को परखने के लिए वीर कुश बोला । उसने कहा— 'विशेष (महत्त्व की) सेना आ पहुँची है । उनका प्रताप भी वैशिष्ट्य-पूर्ण दिखायी दे रहा है । १४ सेनापति क्रोधायमान है । उसका रथ चपलता-पूर्वक आ रहा है । अब यह दारुण युद्ध करेगा । फिर से यह हमारे द्वारा रोका नहीं जा पाएगा ।' १५ तब वीर लव बोला— 'तुम सहायक के रूप में झट से आये हो । अब यहाँ से मुझे अपार बल चढ़ गया है (उत्पन्न हो गया है) । १६ जैसे

कठिनार्थ उमजती । तेवीं आजि निर्वीर करीन क्षिती । तुझ्या बळेंकरूनियां । १७ तुजसीं युद्धीं राहे समोर । ऐसा असेल कोण वीर । जरी स्वयें आला रामचंद्र । तरी तूं त्यासी नाटोपसी । १८ तोंवरी गर्जे जलार्णव । जों देखिला नाहीं कलशोद्भव । तूं पंचानन हे सर्व । जंबूक तुजवरी पातले । १९ जरी तम जिंकील सूर्यासी । कीं भूतें गिळितील काळासी । तरी समरांगणीं युद्धासी । तुजसीं हे पुरतील । १२० जरी आकाश बुडेल मृगजळीं । वारा कोंडिजे भूगोळीं । तरीच तुजसीं सम दळीं । भिडों शकतील बंधुराया । २१ परी एके संशयें गोविलें । तैं माझें धनुष्य भंगिलें । असंख्यात युद्ध जाहलें । उपवनाजवळी प्रथमचि । २२ मग सैन्य दळभार । धरा धरा म्हणती किशोर । आतां जातील हे कोठवर । पाहूं नयनीं आम्हीच कीं । २३ वीर दोघे उभे ठाकूनी । दळभार विलोकिती नयनीं । सैन्य जैसें तृणप्राय करूनी । उभे ठाकती तैसेच ते । २४ कुश म्हणे ऐसिया समयासी । कोण चाप देईल आम्हांसी । तरी आतां प्राथूं सूर्यासी । धनुष्यप्राप्तीकारणें । २५ मग ते राघवी

सरस्वती सहायकारिणी होने पर समस्त कठिन अर्थ समझ में आते हैं, वैसे आज मैं तुम्हारे बल पर पृथ्वी को वीर-हीन कर दूँगा । १७ ऐसा कौन वीर है, जो युद्ध-भूमि में तुम्हारे सामने खड़ा रह पाए ? यदि स्वयं रामचन्द्र आ जाए, तो भी तुम उसके द्वारा रोके नहीं जा सकोगे । १८ सागर तब तक गर्जन करता है, जब तक वह कलशोद्भव अगस्त्य को नहीं देखता । तुम सिंह हो और ये सब सियार तुमपर चढ़ दौड़े हैं । १९ यदि अँधेरा सूर्य को जीते, अथवा भूत काल को निगल लें, तो ही ये युद्ध-भूमि में तुम्हारे लिए पर्याप्त होंगे । १२० यदि मृग-मरीचिका में आकाश डूब जाए, यदि वायु पृथ्वी-गोल में बंद की जा सके, तो ही, हे बंधुराज, वे (प्रतिद्वंद्वी) दल-सहित सीधे भिड़ पाएँगे । २१ परन्तु एक सन्देह में मैं उलझ गया हूँ, जब उपवन के पास पहले ही असीम युद्ध हो गया, मेरा धनुष (तब) भग्न हो गया है । ' २२ फिर सेना-दल ने कहा— ' पकड़ो, पकड़ो । हम ही अपनी आँखों से देख लें कि ये लड़के अब कहाँ तक भाग जाएँगे । ' २३ (यह सुनकर) वे दोनों वीर डटकर खड़े रहकर सम्पूर्ण सेना को अपनी आँखों से देखने लगे । (फिर) सेना को घासफूस (के तिनके)- सा समझकर वे वैसे ही खड़े रहे । २४ कुश ने कहा— ' ऐसे समय पर हमें कौन धनुष देगा ? फिर भी उसकी प्राप्ति के लिए अब सूर्य से प्रार्थना करें । २५

वीर दोघे जण । एकनिष्ठें मांडिती सूर्यस्तवन । ऊर्ध्व वदनें करून । सूर्यमंडळ विलोकिती । २६ जय जय तमनाशका सहस्रकिरणा । अंबरचूडामणे सूर्यनारायणा । जीवमिलिंद-बंधमोचना । हृदयदळप्रकाशका । २७ एकचक्र कनकभूषित रथ । सप्तमुख अश्ववेग बहुत । निमिषार्धामाजी अपार पंथ । क्रमोनि जात मनोगती । २८ आदिपुरुष तूं निर्विकार । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर । हीं स्वरूपें तुझींच साचार । सर्वप्रकाशक आदित्या । २९ सकळ रोग दुःख भयहारका । विश्वदीपना विश्वपाळका । त्रिभुवननेत्रप्रकाशका । काळात्मका काळरूपा । १३० परिसोनि बाळकांची स्तुती । तत्काळ प्रसन्न जाहला गभस्ती । अक्षय्य धनुष्य क्षितीं । ऊर्ध्वपंथें टाकिलें । ३१ सूर्यास साष्टांग नमून । घेतले तेव्हां धनुष्य बाण । म्हणती वाल्मीक गुरु धन्य पूर्ण । सूर्यआराधन दिधलें जेणें । ३२ आम्हांसी सद्गुरुराया अखंड । क्षणें जिंकूं हें ब्रह्माण्ड । लहू म्हणे आजि कोड । पुरवीन

अनन्तर उन दोनों राघवीय वीरों ने एकनिष्ठ भाव से सूर्य का स्तवन आरम्भ किया । वे ऊपर की ओर मुँह करके सूर्य-मण्डल की ओर देखने लगे । २६ (वे बोले—) ' हे तम-नाशक सहस्र-किरण (सूर्य), तुम्हारी जय हो, जय हो । हे आकाश के शिरो-रत्न सूर्य नारायण, हे जीव-रूपी भ्रमरों को बन्धन से मुक्त करनेवाले, हे हृदय-(-कमल) के दल को प्रकाशित करनेवाले (जय हो, जय हो) । २७ तुम्हारा रथ एक ही चक्रवाला तथा कनक से विभूषित है । (तुम्हारे रथ के) सात-मुखों से युक्त घोडे का वेग बहुत है । वह निमिषार्ध में (आधे पल में) मन की-सी गति से ऊपर मार्ग काटकर जाता है । २८ हे सर्व प्रकाशक आदित्य, तुम आदि-पुरुष हो, निर्विकार हो । ब्रह्मा, विष्णु और महेश– ये सचमुच तुम्हारे ही रूप हैं । २९ हे समस्त रोगों के दुःखों का हरण करनेवाले, हे विश्व को प्रकाश-मय करनेवाले, हे विश्व-पालक, हे त्रिभुवन के नेत्रों को प्रकाश से युक्त करनेवाले, हे कालात्मक, हे काल-रूप, (जय हो, जय हो ।) ' १३० उन बालकों द्वारा की हुई स्तुति को सुनकर सूर्य तत्काल प्रसन्न हो गया और उसने ऊर्ध्व मार्ग से भूमि पर एक अक्षय धनुष गिरा दिया । ३१ तब उन लड़कों ने सूर्य को साष्टांग नमस्कार करके वह धनुष-बाण लिया और कहा-- ' जिस गुरु ने सूर्य की आराधना (साधना के रूप में) हमें प्रदान की, वे गुरु वाल्मीकि पूर्णतः धन्य हैं । ३२ हे सद्गुरु-राज, हमपर अखण्ड कृपा हो, तो हम इस ब्रह्माण्ड को क्षण में जीत

यांचें संग्रामीं । ३३ सूर्यदत्त कोदंड घेऊन सत्वर । सरसावला तेव्हां लहू वीर । तों सौमित्राचें दळ समग्र । चतुरंग भार लोटला । ३४ अचूक दोघांचें संधान । वायां न जाय टाकिला बाण । पदाती अश्व रथ वारण । तोडोनि पाडिती एकसरें । ३५ कोणी धनुष्याची ओढी ओढीत । तों भुज तोडिती अकस्मात । मणगटें असिलतेसहित । तोडोनि पाडिती क्षितीवरी । ३६ शिरांच्या लाखोल्या घालोनी । भूलिंगें पूजिलीं दोघां जणीं । अशुद्धनदी लोटली वनीं । जाती वाहून कलेवरें । ३७ वीर संहारिले अपार । काळजितास म्हणे सौमित्र । हे दोघे असतां एकत्र । कल्पान्तींही नाटोपती । ३८ तरी बहुत कटक घेऊन । ज्येष्ठासी धरीं तूं वेष्टून । धाकट्याभोंवतें आवरण । मी घालूनि धरीतसें । ३९ मग दोन भाग कटक केलें । दोघे दोहींकडे फोडिले । चोवीस वेढे घातले । सभोंवते सैन्याचे तेधवां । १४० सौमित्रें वेढिला लहू वीर । जैसा तृणें झांकिला वैश्वानर । कीं

लेंगे ।' तब फिर लव ने कहा— 'आज युद्ध में इसकी अभिलाषा मैं पूर्ण करूँगा ।' ३३ तब सूर्य द्वारा दिये हुए धनुष को लेकर वीर लव झट से आगे बढ़ा, त्यों ही लक्ष्मण की समग्र चतुरंग सेना आक्रमण के लिए आगे चढ़ दौड़ी । ३४ दोनों का सन्धान अचूक था; छोड़ा हुआ बाण व्यर्थ नहीं हो जाता था । वे बाण पदाति सैनिकों, घोड़ों हाथियों को एक-एक करके काटकर गिराते थे । ३५ कोई-कोई सैनिक ज्यों ही धनुष की डोरी खींच लेता, त्यों ही सहसा (लव के बाण) उनके हाथ सहसा काट देते, खड्ग के साथ गट्टा काटकर भूमि पर गिरा देते । ३६ दोनों जनों ने शिर-रूपी फूलों की लक्षावलियाँ समर्पित करके भू-रूपी (शिव-) लिंगों का पूजन किया । रक्त की नदी वन में तेजी से बहने लगी । उसमें (मृत) शरीर बह जाने लगे । ३७ (इस प्रकार) लव ने असंख्य वीरों का जब संहार किया, तो लक्ष्मण ने (सेनापति) कालजित से कहा— 'इन दोनों के इकट्ठा (साथ में) रहने पर ये कल्पान्त तक में रोके नहीं जा सकते (पराजित नहीं किये जा सकेंगे) । ३८ इसलिए बहुत-सी सेना लेकर तुम इनमें से ज्येष्ठ (बड़े) को घेरकर रखो, तो छोटे के चारों ओर घेरा डालकर मैं उसे पकड़ लूँगा ।' ३९ तब उसने सेना के दो भाग किये और उन दोनों (लड़कों) को दो ओर (अलग) कर दिया और तब उनके चारों ओर सेना के चौबीस घेरे डाले । १४० लक्ष्मण ने लव को घेर लिया, मानो घास ने अग्नि को आच्छादित कर लिया हो, अथवा बकरों

अजांनीं कोंडिला महाव्याघ्र । कीं खगेश्वर सर्पीनीं । ४१ परी तो लहू प्रतिज्ञावीर । चापासी लावून सोडी शर । फिरत फिरत चक्राकार । सोडी पूर बाणांचा । ४२ धन्य वाल्मीकाचे दिव्य मंत्र । एका बाणाचे कोटी शर । होऊनि शिरें पाडी समग्र । नवल वीर राघवी । ४३ रघुपतीचा मित्र विशेष । रुधीनामा धांवला राक्षस । तो महाबलिष्ठ गगनास । उडोनि गेला तेधवां । ४४ खालीं अकस्मात उतरूनी । लहूचें चाप सत्वर हिरूनी । अंतरिक्षीं गेला उडोनी । फळ घेऊन पक्षी जैसा । ४५ हातींचें हिरून नेलें चाप । लहू पाहे तटस्थरूप । तस्करापाठीं लागतां सर्प । खंडी जैसा चरणातें । ४६ व्याळ मूषक धरूं जातां । वणव्यांत सांपडे अवचिता । कीं रिसामागें धांवतां । बोरांटी अंगीं अडकली । ४७ निधान साधावया गेला । तों विवशी पडिली येऊन गळां । तैसें लहूस जाहलें ते वेळां । धनुष्य नेतां रुधीनें । ४८ असो सीतासुत परम चतुर । जैसा निराळीं उडे खगेश्वर । तैसा उडोनियां सत्वर । रुधी

ने बड़े बाघ को (घेरकर) बन्द किया हो, अथवा साँपों ने गरुड़ को घेर लिया हो । ४१ परन्तु लव तो प्रतिज्ञा-वीर (अपने संकल्प का पक्का) था । वह बाण धनुष पर चढ़ाकर छोड़ा करता था । चक्राकार घूमते-घूमते वह बाणों का (मानो) रेला चलाया करता था । ४२ (कवि कहता है—) 'वाल्मीकि के वे दिव्य मंत्र धन्य हैं । एक बाण के करोड़ बाण होकर उन्होंने समग्र (सैनिकों के) सिर गिरा दिये । यह राघवीय वीर अद्‌भुत है ।' ४३ श्रीराम का 'रुधि' नामक एक महत्त्वपूर्ण राक्षस मित्र (तब) दौड़ा । वह महा बलवान् राक्षस तब आकाश में उड़ गया । ४४ और सहसा नीचे उतरकर लव का धनुष छीनते हुए वह फिर वैसे ही आकाश में उड़ गया, जैसे पक्षी फल लेकर जाता हो । ४५ (इधर) हाथ का धनुष (कोई) छीनकर ले गया और लव चकित होकर देख रहा था । (यह) मानो (ऐसा ही हो गया कि) चोर का पीछा करते-करते किसी के चरण में साँप ने काटा हो, अथवा साँप के द्वारा चूहे को पकड़ने जाते-जाते वह सहसा दावानल में फँस गया हो, अथवा रीछ के पीछे दौड़ते-दौड़ते कँटीली बेरी की डाल अंग में उलझ गयी हो । कोई धन-कोश प्राप्त करने गया हो और विघ्न-देवी आकर उसके गले पड़ गयी हो, रुधि द्वारा धनुष ले जाने पर लव को वैसे ही अनुभव हुआ । ४६-४८ अस्तु । (परन्तु) सीता-पुत्र लव परम चतुर था । जिस प्रकार गरुड़

राक्षस धरियेला । ४९ हातींचें धनुष्य हिरून घेतलें । असुर झोटीं धरिला तये वेळे । गरगरां फिरवूनियां बळें । पृथ्वीवरी आपटिला । १५० मृत्तिकाघटाचीं शकलें । तेवीं असुरअवयव चूर जाहले । रुधीनें प्राण सोडिले । सकळांदेखतां ते काळीं । ५१ मागुती कटकांत उतरोन । युद्ध करी सीतानंदन । चोवीस वेढे संहारून । टाकिले सैन्याचे ते क्षणीं । ५२ महाझुंजार येऊन । हातींचीं शस्त्रें टाकून । धरिती लहूचे चरण । आमुचे प्राण रक्षीं कां । ५३ एक पळती रण सांडून । एक दांतीं धरिती तृण । मग सिंहनादें लक्ष्मण । गर्जोनि पुढें धांविन्नला । ५४ जैसा पांच विजा अति तीक्ष्ण । तैसे सौमित्रें पांच बाण । लहूवरी सोडिले पूर्ण । महाक्रोधेंकरूनियां । ५५ रघुवीराचा लहू वीर । तत्काळ सोडी दिव्य शर । पांच बाण केले चूर । लोहपिष्टन्यायेंसीं । ५६ लहू सौमित्राप्रती बोलत । त्वां पूर्वीं मारिला इंद्रजित । ते तुझी विद्या समस्त । आजि दावीं मजलागीं । ५७ चतुर्दश वर्षें निराहार । काननीं श्रमलासी

आकाश में उड़ान भरता है, उस प्रकार झट से उड़कर उसने रुधि राक्षस को पकड़ लिया । १४९ उसके हाथ से धनुष छीन लिया । उस समय उस असुर का झोंटा पकड़ लिया और उसे मंडलाकार घुमाते हुए उसने उसे बलपूर्वक पृथ्वी पर पटक दिया । १५० जिस प्रकार पटक देने से मिट्टी के घड़े के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, उस प्रकार उस राक्षस के अंग चूर-चूर हो गये । (इस प्रकार) रुधि ने उस समय सब के देखते हुए प्राण त्याग दिये । १५१ अनन्तर सेना में उतरकर वह सीता-पुत्र लव युद्ध करने लगा और सेना के चौबीस घेरों का उस समय संहार कर दिया । १५२ बड़े-बड़े योद्धा हाथों के शस्त्र डालकर लव के पाँव पकड़कर बोले— 'हमारे प्राणों की रक्षा करना ।' १५३ कुछ-एक रण-भूमि छोड़कर भाग गये; कुछ एक ने दाँतों में तिनका दबा लिया, अर्थात् आत्म-समर्पण किया । तब लक्ष्मण सिंहनाद करते हुए गरजकर आगे दौड़ा । १५४ लक्ष्मण ने बड़े क्रोध के साथ वैसे ही पाँच बाण छोड़ दिये, मानो वे अति प्रखर पाँच बिजलियाँ ही हों । १५५ तो रघुवीर राम के वीर पुत्र लव ने तत्काल दिव्य बाण चला दिया और (लक्ष्मण के) उन पाँचों बाणों को लोह-पिष्ट-न्याय के अनुसार पीस डाला । १५६ (फिर) लव ने लक्ष्मण से कहा— 'तुमने (जिससे) पूर्वकाल में इंद्रजित को मार डाला, वह अपनी सम्पूर्ण धनुर्विद्या आज मुझे दिखा दो । १५७ चौदह वर्ष वन में निराहार

तूं फार । आज समरांगणीं साचार । सावकाश निद्रा करीं । ५८ सौमित्र म्हणे तूं कोणाचा कोण । तंव तो लहू बोले हांसोन । तुज पुसावया काय कारण । आला बाण सांभाळीं । ५९ लहू निधडा प्रचंड वीर । सोडी एक सबळ शर । रथासहित सौमित्र । आकाशपंथें उडविला । १६० गरगरां गगनीं भोंवे रथ । भूमीवरी पडे अकस्मात । मग दुजे रथीं सुमित्रासुत । आरूढला लवलाहें । ६१ जैसा कां वर्षे घन । तैसा बाण सोडी लक्ष्मण । लहू त्याचिया त्रिगुण । शर सोडीत सतेज । ६२ ऊर्मिलापतीचे बाण । तटतटां टाकी तोडून । मग मंत्र जपोनि लक्ष्मण । शर सोडोनि देतसे । ६३ त्या शरापासून एकदां । निघाल्या कोटयवधि गदा । विमानीं सकळ सुरवृंदां । आश्चर्य तेव्हां वाटलें । ६४ तों लहू जपे गुरुमंत्र । चक्रें सोडिलीं तेव्हां अपार । गदा छेदोनि समग्र । चक्रें सर्वेचि गुप्त जाहलीं । ६५ तों सौमित्रें सोडिले पर्वत । सर्वेचि लहू वज्र प्रेरीत । फोडिले अचळ समस्त । वज्र जात स्वस्थाना । ६६ मंगळाचा भाचा लहू वीर । सूर्यवंशमंडणाचा

रहकर तुम बहुत कष्ट को प्राप्त हो गये हो । (अत:) इस युद्धभूमि में तुम फुरसत के साथ सचमुच सो जाओ । ' ५८ (इसपर) लक्ष्मण ने कहा (पूछा)— ' तुम किसके कौन हो ? ' तब हँसकर लव बोला— ' तुम्हें यह (मुझसे) पूछने का क्या कारण है (क्या आवश्यकता है) ? सम्हाल लो— यह बाण आया । ' ५९ लव तो निडर प्रचंड वीर था । उसने एक बड़ा अकाट्य बाण छोड़ा और लक्ष्मण को रथ-सहित आकाश मार्ग पर उड़ा दिया । १६० रथ (पहले) आकाश में मण्डलाकार घूमता रहा और फिर यकायक भूमि पर गिर गया । तब लक्ष्मण झट से दूसरे रथ में आरूढ़ हो गया । ६१ फिर जैसे बादल (जलधाराएँ) बरसता है, लक्ष्मण वैसे ही बाण छोड़ने (बरसाने) लगा । तब लव उससे तीन गुने तेजस्वी बाण छोड़ने लगा । ६२ वह लक्ष्मण के बाणों को तट् तट् काट डालता रहा । तब मंत्र का जाप करके लक्ष्मण ने एक बाण छोड़ दिया । ६३ उस बाण से एकबारगी करोड़ों गदाएँ निकल गयीं, तो तब विमानों में (बैठे हुए) समस्त देवों को अचरज अनुभव हुआ । ६४ फिर लव ने गुरु द्वारा दिये हुए मंत्र का जाप करके असंख्य चक्र छोड़ दिये । समग्र गदाओं को छेद डाल कर वे चक्र साथ ही गुप्त हो गये । ६५ तब लक्ष्मण ने पर्वत छोड़ दिये, तो साथ ही (तत्क्षण) लव ने वज्र चला दिया और समस्त पर्वतों को फोड़कर वह (वज्र) अपने स्थान (की ओर) चला गया । ६६ मंगल के

कुमर। शरमुखीं द्वादश दिनकर। स्थापोनियां सोडिले। ६७ निघतां द्वादश आदित्यमेळ। प्रतापें लोपला विरिंचिगोळ। ऐसें देखतां फणिपाळ। राहुअस्त्र सोडित। ६८ सूर्य आणि राहुअस्त्र। दोन्ही जाहलीं एकत्र। सवेंच गुप्त जाहलीं क्षणमात्र। न लगतां ते काळीं। ६९ कामास्त्र सोडी अहिनायक। लहूवीरें प्रेरिलें कामान्तक। कामास्त्र दग्ध जाहलें तात्कालिक। नामें पातक हरे ज्यापरी। १७० सौमित्रें सोडिलें तारकास्त्र। लहू प्रेरी षण्मुखास्त्र। विघ्नास्त्र सोडी सौमित्र। हेरंबास्त्र लहू टाकी। ७१ सौमित्र सोडी सरितापती। लहू त्यावरी प्रेरी अगस्ती। मग त्यावरी ऊर्मिलापती। पावकास्त्र प्रेरीतसे। ७२ लहूनें मेघास्त्र प्रेरून। विझविला प्रचंड अग्न। जैसें प्रगटतां आत्मज्ञान। जाय वितळोन प्रेममोह। ७३ वातास्त्र प्रेरी ऊर्मिलानाथ। लहू आड घाली पर्वत। असो आठ अक्षौहिणी गणित। रामसेना पाडिली। ७४ आश्चर्य करी लक्ष्मण। म्हणे याचा पार न

भानजे और सूर्य-वंश-भूषण (श्रीराम) के उस पुत्र वीर लव ने बाण के मुख में बारहों सूर्यों को स्थापित करके छोड़ दिया। ६७ बारह सूर्यों के उस समूह के निकलते ही उसके प्रताप से ब्रह्माण्ड (मानो) लुप्त (-सा) हो गया। ऐसा देखते ही शेष (के अवतार लक्ष्मण) ने राहु-अस्त्र छोड़ दिया। ६८ सूर्य और राहु-अस्त्र दोनों इकट्ठा हो गये और साथ ही क्षण भर तक न लगते उस समय गुप्त हो गये। ६९ (अनन्तर) सर्पराज (शेष के अवतार) ने कामास्त्र छोड़ा, तो वीर लव ने कामान्तक अस्त्र चला दिया; (फलस्वरूप) जैसे नाम से पाप का नाश होता है, वैसे ही वह कामास्त्र तत्काल नष्ट हो गया। ७० (फिर) लक्ष्मण ने तारकासुरास्त्र छोड़ा, तो लव ने षण्मुखास्त्र (स्कन्दास्त्र) छोड़ दिया; लक्ष्मण ने विघ्नास्त्र चलाया, तो लव ने गणेशास्त्र फेंक दिया। ७१ लक्ष्मण ने सागरास्त्र चलाया, तो लव ने उसपर अगस्त्यास्त्र छोड़ दिया। फिर लक्ष्मण ने उसपर अग्नि-अस्त्र छोड़ दिया। ७२ तो लव ने मेघास्त्र चलाकर उस प्रचंड अग्नि को वैसे ही बुझा डाला, जैसे आत्म-ज्ञान के प्रकट हो जाने पर (साधक के मन में) प्रेम-मोह (आदि विकारों) का विलय हो जाता है। ७३ फिर लक्ष्मण ने वायु-अस्त्र छोड़ा, तो लव ने बीच में पर्वत डाल दिये। अस्तु। गिनती के अनुसार लव ने राम की आठ अक्षौहिणी सेना गिरा डाली। ७४

कळे पूर्ण । हातासी कदा न ये श्यामकर्ण । आतां यज्ञ कायसा । ७५ हे असती कोणाचे कोण । हें कदा न कळे वर्तमान । मज वाटे शिव आणि रमारमण । बाळवेषें प्रकटले । ७६ आणिकांची नव्हे शक्ती । हे त्रिभुवनासी नाटोपती । असो लहू म्हणे सौमित्राप्रती । कां रे उगाचि निवान्त । ७७ तुझे सरले असतील बाण । तरी जाईं अयोध्येसी परतोन । तुझा कैवारी रघुनंदन । घेऊनि येईं सत्वर । ७८ 'सौमित्र नेदी प्रत्युत्तर । विलोकी बाळांचा मुखचंद्र । मागुती क्रोध उचंबळतां अपार । सोडिले शर सौमित्रें । ७९ भोगींद्र-अवतार लक्ष्मण । हें भूमिजासुतें जाणोन । प्रेरिला नादास्त्र बाण । नवल पूर्ण वर्तलें । १८० असंभाव्य नाद मंजुळ । ध्वनीनें भरला ब्रह्माण्डगोळ । धनुष्य टाकूनि फणिपाळ । नादब्रह्मीं मिसळला । ८१ जे कनकबीज भक्षिती । त्यांचे अंगीं संचरे भ्रान्ती । ऊर्मिलापतीची गती । तैसीच जाहली तेधवां । ८२ नादास्त्र बाण हृदयीं भरला । जैसा

(यह देखकर) लक्ष्मण ने आश्चर्य अनुभव किया और कहा (सोचा)— 'इसकी तो (वीरता की) मर्यादा पूरी समझ में नहीं आ रही है । (जान पड़ता है) श्यामकर्ण तो कभी हाथ में नहीं आएगा । अब यज्ञ कैसा ? ७५ यह जानकारी भी कभी विदित नहीं हो रही है कि ये किसके (और) कौन हैं । मुझे लगता है, शिव और विष्णु ही बाल-वेश में प्रकट हो गये हों । ७६ यह कुछ दूसरों की शक्ति नहीं है, जो ये त्रिभुवन तक द्वारा वश में नहीं किये जा रहे हैं । ' अस्तु । (फिर) लव ने लक्ष्मण से कहा— ' अरे, यों ही चुप क्यों हो गये ? ७७ यदि तुम्हारे बाण समाप्त हो गये हों, तो लौटकर अयोध्या में जाओ और अपने सहायक रघुनन्दन को झट से ले आओ । ' ७८ (इसपर) लक्ष्मण ने कोई प्रति-उत्तर नहीं दिया । वह उन बच्चों के मुखचंद्रों को देखता रहा । (परन्तु) फिर से क्रोध के अपार उमड़ उठने पर लक्ष्मण ने बाण चला दिये । ७९ सीता-पुत्र लव ने यह जानकर कि लक्ष्मण भोगीन्द्र शेष का अवतार है, नादास्त्र बाण छोड़ दिया; त्यों ही एक पर्याप्त आश्चर्य घटित हो गया । ८० असंभाव्य मंजुल नाद-ध्वनि से ब्रह्माण्ड गोल भर गया, तो शेष (के अवतार) बाण डालकर नाद-ब्रह्म में घुल-मिल गया । ८१ जो धतूरे के बीज खाते हों, उनके अंग में भ्रान्ति का संचरण होता है । तब लक्ष्मण की वैसी ही स्थिति हो गयी । ८२ वह नादास्त्र बाण उसके हृदय में वैसे ही गड़ गया, जैसे साँप

विखार बिळीं प्रवेशला । त्यावरी नादरंगें व्यापिला । भूतळीं पडिला मूर्च्छित । ८३ इकडे सैन्याचे चोवीस आवर्त । कुशाभोंवते घातले अद्भुत । ते संहारून समस्त । काळजित मारिला । ८४ विभांडोनि दोन्ही दळें । दोन्ही बंधू एकवटले । रण अपार तेथें पडिलें । कुंजर मोकळे धांवती । ८५ नाहीं रथस्वामी सारथी । रिते रथ तुरंग ओढिती । सैरावरा चौताळती । सव्य अपसव्य रणांगणीं । ८६ असो अयोध्येंत कोदंडपाणी । सांगे गुज भरताचे कर्णीं । म्हणे आणिक सेना घेऊनी । साह्य जाईं सौमित्रासी । ८७ दारुण योद्धा तो लक्ष्मण । त्याप्रती सांगें इतुकें वचन । कीं बाळक दोघे जण । जितेच धरून आणावे । ८८ ते जिवें न मारावे सर्वथा । आकान्त करील त्यांची माता । तरी बाण अंगीं न खुपतां । मोहनास्त्र घालोनि धरावें । ८९ त्यांचीं माता पिता कोण । धनुर्वेद गुरु संपूर्ण । कां हिंडतां वनोपवन । वर्तमान सर्व पुसावें । १९० त्यांच्या स्वरूपाची आकृती । कोणासारिखे दोघे दिसती ।

बिल में प्रविष्ट हो गया हो । तिसपर वह नाद-रंग (प्रभाव) से व्याप्त हो गया और धरातल पर मूर्च्छित (होकर) गिर पड़ा । ८३ इधर सेना के अद्भुत चौबीस फेरे कुश के चारों ओर डाले हुए थे । उनका संहार करके (लव ने) सेनापति कालजित को मार डाला । ८४ (इस प्रकार) दोनों सेना-दलों को नष्ट करके दोनों बंधु मिल गये । वहाँ रण-भूमि में अपार सैनिक गिर गये थे, हाथी मुक्त होकर दौड़ रहे थे । ८५ रथों के न स्वामी थे, न सारथी थे, अतः घोड़े रिक्त रथ खींच रहे थे । वे रण-भूमि में दायें-बायें बेतहाशा दौड़ते हुए क्षुब्ध हो गये थे । ८६

अस्तु । (इधर) अयोध्या में चापपाणि श्रीराम ने भरत के कान में एक गूढ़ बात कही । वे बोले— 'और सेना लेकर लक्ष्मण की सहायता के लिए जाओ ।' ८७ लक्ष्मण तो भयावह योद्धा है । उससे इतनी ही बात कहना कि उन दोनों बच्चों को जीवित ही पकड़कर लाना । ८८ उन्हें प्राणों से बिलकुल न मारें । (नहीं तो) उनकी माता बहुत शोक करेगी । इसलिए बाणों के उनके अंग में न गड़ते, मोहनास्त्र डालकर उन्हें पकड़ें । ८९ उनसे यह बात पूछें कि उनके माता-पिता कौन हैं, धनुर्वेद के उनके गुरु कौन हैं, वे वन-उपवन में क्यों विचरण कर रहे हैं । ९० उनके रूप की आकृति कैसी है, उनका डील-डौल कैसा है ? वे किसके समान

धरूनि आणा त्वरितगती । रथावरी घालोनियां । ९१ सौमित्राचा क्रोध दारुण । घेईल बाळकांचा प्राण । अन्याय केला तरी पूर्ण । कृपा करावी बाळकांवरी । ९२ ज्याचें हृदय परम कोमळ । ते दृष्टीं देखतांचि बाळ । स्नेहें द्रवेल तत्काळ । अग्निसंगें घृत जैसें । ९३ बाळकाविणें शून्य मंदिर । आमुचें पडलें कीं साचार । गुणसरिता सीता सुंदर । विवेक न करितां त्यागिली । ९४ ऐसें बोलतां रघुनाथ । कंठ जाहला सद्गदित । नयनीं सुटले अश्रुपात । प्रिया हृदयांत आठवली । ९५ ऐसें राजीवनेत्र बोलत । तों घायाळ आले धांवत । म्हणती सौमित्र आणि काळजित । सेनेसहित आटिले । ९६ ऐसें ऐकतां राजीवनेत्र । परम चिंतातुर जाहले वानर । श्रीराम म्हणे सर्वेश्वर । अत्यंत कोपला आम्हांवरी । ९७ ब्रह्मानंदें म्हणे श्रीधर । पुढें वीरश्री माजेल अपार । ते श्रवण करोत श्रोते चतुर । व्युत्पन्न आणि प्रेमळ । ९८ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर । वाल्मीक-

---

दिखायी देते हैं ? उन्हें पकड़कर रथ में डालते हुए झट से ले आओ । ९१ सौमित्र का क्रोध दारुण होता है । वह उन बालकों के प्राण लेगा । (परन्तु) यद्यपि उन्होंने अपराध किया है, तथापि उन लड़कों पर पूर्ण कृपा करें । ९२ जिसका हृदय परम कोमल हो, वह उन बच्चों को आँखों से देखते ही तत्काल स्नेह से वैसे ही पिघल जाएगा, जैसे आग के साथ घी पिघलता है । ९३ हमारा यह घर बिना बालकों के सचमुच शून्य हो गया है । मैंने बिना विवेक किये गुण-सरिता सुन्दरी सीता को त्याग डाला है । ९४ ऐसा बोलते हुए रघुनाथ का गला बहुत रुँध गया । उनकी आँखों से अश्रुधाराएँ बह चलीं । उन्हें हृदय में अपनी प्रिया का स्मरण हो गया । ९५ श्रीराम जब ऐसा बोल रहे थे, तब घायल सैनिक दौड़ते हुए आ गये और बोले— '(शत्रु ने) लक्ष्मण और कालजित को सेना-सहित नष्ट किया ।' ९६ कमल-नयन श्रीराम तथा वानर ऐसा सुनते ही परम चिन्तातुर हो गये । (फिर) श्रीराम ने कहा— 'हमपर सर्वेश्वर अत्यधिक क्रुद्ध हो गया है ।' ९७

ब्रह्मानन्द-पूर्वक कवि श्रीधर कहते हैं— अब आगे वीरश्री अपार बढ़ जाएगी । चतुर, व्युत्पन्न एवं प्रेममय श्रोता उसका श्रवण करें । ९८

स्वस्ति । श्रीराम-विजय नामक यह ग्रंथ सुन्दर है । यह वाल्मीकि

नाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। अष्टत्रिंशत्तमोध्याय। गोड हा। १९९

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। इसके इस अड़तीसवें मधुर अध्याय का चतुर भक्त सदा श्रवण करें। १९९

श्रीकृष्णार्पणमस्तु। श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु।

अध्याय—३९

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। देवाधिदेव राजीवनेत्र। पुराणपुरुष घनश्यामगात्र। लीला दाखविली विचित्र। भक्तजन तारावया। १ सौमित्र पडिला रणांगणीं। श्रवणीं ऐकतां कोदंडपाणी। शोकाकुलित पडिला धरणीं। सुमंतें सांवरून उठविला। २ दळ घेऊन अपरिमित। समागमें घेतला हनुमंत। रणाप्रती धांविन्नला भरत। पवनवेगेंकरूनियां। ३ भरत आणि हनुमंत। रण विलोकिती समस्त। तंव ते सरसावोनि सीतासुत। दोघे पुढें पातले। ४ हनुमंताचे कर्णीं समस्त। भरत सांगे गुप्त मात। म्हणे हे

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। देवाधिदेव, पुराण-पुरुष, घनश्याम-शरीरी कमल-नयन श्रीराम ने भक्त-जनों को (भव-सागर में से) तारने के लिए अद्‌भुत लीला प्रदर्शित की। १ 'लक्ष्मण रण-भूमि में गिर गया है'—यह अपने कानों से सुनते ही चाप-पाणि राम शोक से व्याकुल होते हुए भूमि पर गिर गये, तो सुमन्त ने उन्हें सम्हालकर उठा लिया। २ (तब) साथ में अपार सेना लेकर भरत ने अपने साथ हनुमान को (भी) लिया और वह वायु-गति से युद्ध-भूमि की ओर दौड़ा। ३ भरत और हनुमान् समग्र रण-भूमि को ध्यान से देखने लगे; तब दोनों सीता-पुत्र—लव और कुश—आगे बढ़ते हुए (उनके सम्मुख) आ पहुँचे। ४ हनुमान् के कान में भरत ने एक पूर्ण गूढ़ बात कही। वह बोला—'ये श्रीराम के समान दिखायी दे रहे हैं, निश्चय ही

राघवाऐसे दिसत। सीतासुत निश्चयें। ५ जानकी होती गर्भिणी। तैसीच रामचंद्रें सोडिली वनीं। हनुमंत म्हणे मजही मनीं। ऐसेंच गमे निश्चयें। ६ वैरागरावांचून रत्न। सहसा न होय निर्माण। हे जानकीचे नंदन। मजही पूर्ण कळों आलें। ७ तों लहूसी म्हणे कुश वीर। पैल ते नर आणि वानर। हळूच करितात विचार। तें तुज कांहीं समजलें। ८ आम्हां दोघांसी युद्धीं गोवूनी। श्यामकर्ण न्यावा सोडोनी। हेंच त्यांनीं धरिलें मनीं। सांगती कानीं एकमेकां। ९ तरी तूं रक्षीं श्यामकर्ण। त्यांसीं युद्ध करितों मी निर्वाण। ऐसें कुश वीर बोलोन। सरसावून पुढें आला। १० धनुष्यासीं लावून बाण। भरताप्रती बोले वचन। तूं वडील काय लक्ष्मणाहून। तुझें आंगवण थोर दिसतसे। ११ तुझें नाम काय सांग सत्वर। पिता तुझा कोठील नृपवर। त्वां पूर्वीं युद्ध दुर्धर। कोणासीं केलें सांग पां। १२ माझें नाम पुससील ये क्षणीं। तरी मी वीर कुशेंद्रचूडामणी। याउपरी भरत तये क्षणीं। काय बोलता जाहला। १३ म्हणे लेंकुरा तूं जाय

ये सीता के पुत्र हैं। ५ सीता गर्भवती थी। श्रीरामचन्द्रजी ने वैसी ही वन में त्याग दी थी।' (इसपर) हनुमान बोला— 'मुझे भी मन में निश्चय ही ऐसा ही लग रहा है। ६ बिना हीरों की खान के (ऐसे हीरे) रत्न प्रायः निर्मित नहीं होते। अतः मेरी भी समझ में यह पूर्णतः आ गया है कि ये जानकी के पुत्र हैं।' ७ तब वीर कुश ने लव से कहा— 'उस ओर वे नर और वानर धीमे-धीमे (स्वर में) ही विचार (-विनिमय) कर रहे हैं। वह कुछ तुम्हारी समझ में आ गया क्या? ८ हम दोनों को युद्ध में उलझाये रखते हुए श्यामकर्ण को छुड़ाकर ले जाएँ--उन्होंने यही (विचार) मन में (कर) रखा हो, जो वे एक-दूसरे के कान में कह रहे हैं। ९ अतः तुम श्यामकर्ण की रक्षा करो। मैं उनके साथ निर्वाण युद्ध करता हूँ।' ऐसा बोलकर वीर कुश आगे बढ़कर (उनके) सम्मुख आ गया। १० धनुष पर बाण चढ़ाकर वह भरत से बोला-- 'तुम लक्ष्मण से बड़े हो क्या? तुम्हारा डील-डौल बड़ा दिखायी दे रहा है। ११ झट से बता दो– तुम्हारा क्या नाम है? तुम्हारा पिता कहाँ का राजा है? यह (भी) कह दो-- तुमने पहले किसी से दुर्धर युद्ध किया है क्या? १२ यदि मेरा नाम इस क्षण पूछोगे, तो (जान लो,) मैं वीर-चूड़ामणि कुशेन्द्र हूँ।' (सुनिए,) इसपर भरत उस क्षण क्या बोला। १३ वह बोला—

येथोन। तुज मी दिधलें जीवदान। भरतें मज सोडिलें म्हणोन। सांग आपुले मातेसी। १४ मग कुश बोले हांसोन। तुझे बंधू पडले दोघे जण। त्यांचा सूड घ्यावया पूर्ण। रामें पाठविलें तुम्हांसी। १५ युद्ध सांडूनि सांगसी गोष्टी। बंधूंचा सूड घेईं उठाउठीं। ना तरी आतां रणीं दावून पाठी। अयोध्येसी पळें कां। १६ पाठमोऱ्यासी न मारीं जाण। तुज अभय दिधलें पूर्ण। कोण तुझा आहे रघुनंदन। त्यासी घेऊन येईं वेगें। १७ ऐसें बोलतां सीतानंदन। भरतें चापासी लावूनि बाण। आकर्णपर्यंत ओढून। कुशावरी सोडिला। १८ सीतात्मजें शर टाकून। मध्येंच तोडिला तो बाण। सवेंच शरजाळ घालून। कटक बहुत संहारिलें। १९ भरत जें जें अस्त्र सोडीत। तें तें न मानी सीतासुत। युद्धविद्या सरली समस्त। सीतासुत नाटोपे। २० भरतें प्रेरिलें कार्तवी-र्यास्त्र। सहस्रकरांचे प्रकटले वीर। बाण सोडिती अनिवार। हांकें अंबर गाजविती। २१ ऐसें देखतां राघवकुमरें।

'बच्चे, तू यहाँ से चला जा। मैंने तुझे जीव-दान दिया है। (और) अपनी माता से कह दे—मुझे भरत ने छोड़ दिया है।' १४ तब कुश हँसकर बोला—'तुम्हारे दोनों जने बंधु गिर गये हैं उनका पूर्ण बदला चुकाने के लिए (क्या) राम ने तुम्हें भेजा है? १५ तुम युद्ध को छोड़कर ये बातें कह रहे हो। (पहले) झट से भाइयों का बदला तो ले लो। नहीं तो अब युद्ध-भूमि में पीठ दिखाकर (फेरकर) क्यों न भागकर अयोध्या जाओ। १६ जान लो मैं विमुख को नहीं मारता। मैंने तुम्हें पूर्ण अभय दे दिया है। कौन है तुम्हारा रघुनन्दन? उसे वेग-पूर्वक ले आओ।' १७ सीता-सुत कुश द्वारा ऐसा बोलते ही भरत ने धनुष पर बाण चढ़ाकर आकर्ण खींचते हुए कुश पर छोड़ा। १८ तो सीतात्मज ने बाण फेंककर उस बाण को बीच में ही काट डाला और साथ ही शर-जाल बिछाते हुए बहुत-सी सेना का संहार किया। १९ भरत जो-जो अस्त्र चलाता, उसे सीता-सुत गिनता ही नहीं था। (भरत की) समस्त युद्ध-विद्या समाप्त हो गयी। (फिर भी) वह सीता-पुत्र वश में नहीं आ रहा था। २० भरत ने कार्तवीर्य-अस्त्र छोड़ा, तो उससे (हैहयराज सहस्रकर कार्तवीर्य के समान) सहस्र-कर-धारी योद्धा प्रकट हो गये। वे अनिवार्य बाण छोड़ने लगे। वे चीखते-चिल्लाते हुए आकाश को निनादित कर रहे थे। २१ ऐसा देखते ही श्रीराम के उस पुत्र ने झट से भार्गव-(परशुराम)-

भार्गवास्त्र सोडिलें त्वरें। कार्तवीर्यास्त्र एकसरें। गुप्त जाहलें तेधवां। २२ मग भरतें प्रेरिली कालरात्री। तमें दाटली धरित्री। तंव सीतापुत्रें ते अवसरीं। द्वादश सूर्य प्रकटविले। २३ त्या प्रकाशें ते वेळां। विरिंचिगोळ तपों लागला। भरत म्हणे हा कळिकाळा। सर्वथाही नाटोपे। २४ भरतें सोडिलें महिषासुर। कुशें टाकिली शक्ति अनिवार। भरते सोडिलें त्र्यंबकास्त्र। येरें भस्मासुरास्त्र सोडिलें। २५ मग कुशेंद्रें ते वेळां। सूर्यमुख बाण काढिला। जैसी मेघांतून निघे चपळा। तैसा गेला त्वरेनें। २६ भरताचे हृदयीं येऊन। खडतरला दिव्य बाण। स्यंदनावरून उलथोन। भरत खालीं पडियेला। २७ दळ पूर्वींच आटिलें समस्त। ऐसें देखोनि हनुमंत। घेऊन एक विशाळ पर्वत। कुशेंद्रावरी धांविन्नला। २८ भोवंडून बळें भिरकाविला। कुशें वज्रमुख बाण सोडिला। अचळ फोडोनि पिष्ट केला। धुरोळा उडाला आकाशीं। २९ मारुतीचें हृदय लक्षून। सोडिले तेव्हां वज्रबाण। तो वज्रदेही परी

अस्त्र चला दिया, तो तब वह कार्तवीर्यास्त्र एकदम गुप्त हो गया। २२ तब भरत ने काल-रात्रि (का-सा अंधकार उत्पन्न कर देनेवाली विद्या) छोड़ दी (प्रयुक्त की)। (फल-स्वरूप) धरित्री अंधकार से भर गयी। तो उस सीता-पुत्र ने उस अवसर पर (विद्या द्वारा) बारहों सूर्यों को प्रकट कर दिया। २३ (उनके) उस प्रकाश से उस समय ब्रह्माण्ड तप्त होने लगा, तो भरत ने कहा (सोचा)-- 'यह तो कलि-काल द्वारा तक बिल्कुल ही नहीं रोका जा पाएगा।' २४ (फिर) भरत ने महिषासुर अस्त्र छोड़ा, तो कुश ने दुर्दम्य शक्ति फेंक दी। (फिर) भरत ने त्र्यम्बक (शिव) अस्त्र छोड़ा, तो उसने भस्मासुरास्त्र चला दिया। २५ तब कुशेन्द्र ने उस समय सूर्य-मुख बाण निकाला (और छोड़ा)। जैसे मेघ में से बिजली निकलती है, वैसे ही (वह धनुष से छूटकर) झट से चला गया। २६ वह दिव्य बाण आकर भरत के हृदय में धँस गया, तो रथ में से उलटकर भरत नीचे गिर गया। २७ समस्त सेना तो पहले ही नष्ट हो गयी थी। ऐसा देखकर हनुमान् एक विशाल पर्वत लेकर कुशेन्द्र पर चढ़ दौड़ा। २८ उसने (उस पर्वत को मण्डलाकार) घुमाते हुए फेंक दिया, तो कुश ने वज्र-मुख बाण छोड़ा और उस पर्वत को फोड़कर चूर-चूर कर डाला। उससे आकाश में धूल उड़ गयी। २९ (फिर कुश ने) हनुमान के हृदय (-स्थल) को लक्ष्य करके वज्र-बाण चलाये। फलतः वज्र-देही होने पर भी हनुमान् मूर्च्छा आने से धरती पर गिर पड़ा। ३०

मूर्च्छना येऊन । धरणीवरी पडियेला । ३० इकडे बिभीषण आणि रघुनंदन । विचार करीत बैसले पूर्ण । बाळक हे कवणाचे कोण । युद्ध निर्वाण करितातीं । ३१ तों अकस्मात आली मात । रणीं पडला वीर भरत । मूर्च्छना येऊनि हनुमंत । रणांगणीं तळमळे । ३२ बिभीषण म्हणे रघुनाथा । आतां कासया यज्ञ करितां । परमाश्चर्य तत्त्वतां । जाऊनियां पाहावें । ३३ रघुवीर बोले तेव्हां वचन । काळ कैसा परम कठिण । बंधू पडिले तिघे जण । कुळक्षय पूर्ण मांडला । ३४ परम क्रोधावला रघुनंदन । तोडोनि टाकिलें यज्ञकंकण । होमद्रव्यें उलंडून । सीतारमण ऊठला । ३५ हडबडली अयोध्या सर्व । निशाणीं घालितांचि घाव । रथारूढ होऊनि सर्व । पवनवेगें धांवले । ३६ बिभीषण सुग्रीव जांबुवंत । नळ नीळ शरभ वाळिसुत । अयोध्येचें दळ समस्त । परमवेगें धांवत । ३७ वर्षाकाळीं गंगेचे पूर । सागराप्रती जाती सत्वर । तेवीं नरवानरांचे भार । रणसिंधूजवळी पातले । ३८ तिघे बंधू पडिले रणीं । ते नयनीं विलोकी चापपाणी । कीं नमस्कार

इधर (अयोध्या में) विभीषण और रघुनन्दन पर्याप्त विचार करते हुए बैठे थे— यह बालक किसके (और) कौन हैं, (जो ऐसा) निर्वाण युद्ध कर सकते हैं। ३१ त्यों ही सहसा यह समाचार आ गया कि वीर भरत युद्ध-भूमि में गिर गया है और हनुमान् मूर्च्छा आने से युद्ध-भूमि में तड़प रहा है। ३२ (तब) विभीषण ने कहा— 'हे रघुनाथ, अब किसलिए यज्ञ कर रहे हो ? उस परम आश्चर्य को आप सचमुच जाकर देखिए। ३३ तब रघुवीर ने यह बात कही— '(यह) कैसा परम कठिन काल (आया) है ? तीनों जने बन्धु (युद्ध में) गिर गये हैं, (मानो उसने) कुल का पूर्ण क्षय करना आरम्भ किया है।' ३४ (फिर) सीतापति रघुनन्दन अत्यधिक क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने यज्ञ-कंकण तोड़ डाला और वे होम-द्रव्य को छोड़कर उठ गये। ३५ समस्त अयोध्या भौंचक हो उठी। नगाड़े पर चोट करते ही सब (प्रमुख योद्धा) रथों में आरूढ़ होकर वायु-गति से दौड़ने लगे। ३६ विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान, नल, नील, शरभ, अंगद दौड़े; अयोध्या की समस्त सेना परम वेग से दौड़ी। ३७ वर्षा ऋतु में गंगा (अर्थात् नदी) के प्रवाह सागर की ओर तेजी से जाते (बहते हैं), वैसे ही (तेजी से दौड़ते हुए) नर-वानरों के दल युद्ध-भूमि रूपी सागर के पास आ पहुँचे। ३८ तीनों भाई युद्ध-भूमि में गिरे हुए थे।

घातले धरणीं। तिघांहीं मिळून एकदांचि। ३९ तुझे कन्येस गांजिलें व्यर्थ। म्हणोनि पृथ्वीस नमस्कार करीत। असो प्रेतें देखोनि रघुनाथ। मनीं परम क्षोभला। ४० मग दुरोनि देखिलीं नयनीं। श्यामसुंदर बाळें ते क्षणीं। एकाकडे एक पाहोनी। गोष्टी करिती कौतुकें। ४१ कौपीन मौंजी यज्ञोपवीत। तेणें शोभती किशोर अद्भुत। माथांची शिखा उडत। दृष्टीं नाणिती परदळातें। ४२ असो वृक्ष पाषाण घेऊन। धांवले एकदांचि वानरगण। तों दोघेही धनुष्य चढवून। सरसावून पुढें आले। ४३ आश्चर्य करी रघुनंदन। सोडिती बाणापाठीं बाण। मृगेंद्राऐसे गर्जोन। दोघे वचन बोलती। ४४ घालती असंभाव्य बाण-जाळ। जर्जर केलें वानरदळ। शिळा वृक्ष फोडोनि सकळ। परदळावरी टाकिती। ४५ अनिवार बाळकांचा मार। न सोसवती दारुण शर। प्रेतें पडलीं अपार। उरले वानर पळती भयें। ४६ हनुमंत भावी मनांत। ऊर्ध्वपंथें उतरून अकस्मात। पुच्छें बांधोन दोघे त्वरित। राघवापासीं

चापमणि श्रीराम ने उन्हें अपनी आँखों से देखा। अथवा (जान पड़ता था कि) वे तीनों मिलकर एक साथ ही भूमि पर साष्टांग नमस्कार कर रहे हों। ३९ मानो वे पृथ्वी को (यह कहते हुए) इसलिए नमस्कार कर रहे थे कि तुम्हारी कन्या सीता को व्यर्थ ही सताया है। अस्तु। उन प्रेतों को देखकर श्रीराम मन में परम क्षुब्ध हो उठे। ४० फिर उस क्षण उन श्याम-सलोने बालकों को दूर से (ही) अपनी आँखों से देखा, जो एक-दूसरे को देखते हुए मज़े में बातें कर रहे थे। ४१ कौपीन, मूँज की करधनी तथा जनेऊ से वे किशोर अद्‌भुत रूप से शोभायमान थे। मस्तक पर की शिखा उड़ (हिल) रही थी। शत्रुदल की ओर दृष्टिपात तक न कर रहे थे। ४२ अस्तु। वृक्ष, पाषाण लेकर वानरगण एक साथ ही दौड़े; तब वे दोनों भी धनुष चढ़ाकर आगे बढ़ते हुए आ गये। ४३ (यह देखकर) रघुनन्दन आश्चर्य कर रहे थे (कि) वे (कैसे) बाण पर बाण छोड़ रहे हैं और वे दोनों (कैसे) सिंह की भाँति गरजते हुए बात कर रहे थे। ४४ असम्भवनीय (असीम) बाण-जाल बिछाते हुए उन्होंने वानर-दल को जर्जर कर दिया और समस्त शिलाओं तथा वृक्षों को तोड़कर शत्रु दल पर फेंक दिया। ४५ उन लड़कों द्वारा की जानेवाली मार दुर्दम्य थी। उनके दारुण शरों को सहन नहीं किया जा रहा था। अनगिनत (योद्धा) प्रेत होकर गिर गये, तो शेष वानर प्राण-(जाने के)-भय से भाग गये। ४६

आणावे । ४७ उडों पाहे अंजनीकुमर । तों कुशें टाकिला सकळ शर । त्याच्या हृदयीं आदळोनि सत्वर । बाण पृथ्वीवरी पडियेला । ४८ कुश बोले गर्जोन । मर्कटा उभा राहें एक क्षण । त्वां विध्वंसिलें अशोकवन । तें येथें न चले सर्वथा । ४९ टाकोन वृक्ष पाषाण । हें राक्षसयुद्ध नव्हे जाण । तो नव्हे रे गिरिद्रोण । उपटोन त्वरें न्यावया । ५० गोवत्सपद जीवन । पुरुषार्थ भोगिसी समुद्र उडोन । रावणाचें नगर जाळिलें पूर्ण । तें येथें न चले आम्हांसीं । ५१ हा संग्रामसिंधु परम दुर्धर । येथें जय न पावसी तूं वानर । आमुचे जननीसी अपार । स्नेह तुझा लागलासे । ५२ ते क्षणक्षणां आठवीत । म्हणोनि तुज रक्षिलें येथ । उगाच राहें निवान्त । अचळवत हनुमंता । ५३ तों वृक्ष घेऊनि सत्वर । पुढें धांविन्नला मित्रपुत्र । बाणघातें तरुवर । लहूनें तोडिला हातींचा । ५४ म्हणे ऐक रे चंडांशुसुता । तो मागील काळ राहिला आतां । तुम्हां पतितांसी तत्त्वतां ।

(तब) हनुमान ने मन में विचार किया कि ऊर्ध्व मार्ग से अकस्मात उतरकर उन दोनों को पूँछ से बाँधते हुए श्रीराम के पास ले आएँ । ४७ (परन्तु जब) हनुमान् ने उड़ना चाहा, तो कुश ने एक कठिन बाण फेंका । वह बाण झट से उसके हृदय से टकराकर भूमि पर गिर गया । ४८ (तब) कुश ने गरजते हुए कहा— ' रे वानर, एक क्षण खड़ा रह जा (रुक जा) । तूने अशोक वन का विध्वंस किया, (परन्तु) वह (बल) यहाँ पर बिल्कुल नहीं चलेगा (काम आएगा) । ४९ तू वृक्ष और पाषाण फेंक रहा है; (परन्तु) समझ ले, यह राक्षसों से युद्ध नहीं (चल रहा) है । (यह कोई) बलपूर्वक उखाड़ ले जाने के लिए (योग्य) वह द्रोण पर्वत नहीं है । ५० गाय के बछड़े के पाँव से बने गढ़े के बराबर जिसमें पानी है, उस समुद्र के ऊपर से उड़कर तू पुरुषार्थ की कीर्ति का उपभोग कर रहा है । तूने रावण के नगर को पूर्णत: जला डाला । (परन्तु) वह बात यहाँ हमारे साथ नहीं चलेगी । ५१ यह युद्ध-रूपी समुद्र परम दुर्धर है । तू वानर यहाँ जय नहीं पा सकेगा । (हमें विदित है,) हमारी माता को तेरे प्रति अपार स्नेह उत्पन्न हो गया है । ५२ क्षण-क्षण वह हमें स्मरण हो आता है । इसलिए यहाँ हमने तुझे बचाया है । रे हनुमान्, तू यों ही पर्वत की भाँति स्थिर रह जा । ' ५३ त्यों ही वृक्ष लिये हुए सुग्रीव झट से आगे दौड़ा । (तब) लव ने बाण के आघात से उसके हाथ के बड़े वृक्ष को काट दिया । ५४ फिर वह बोला—' रे सूर्य-

लावीन शिक्षा आज येथें। ५५ वाळी ज्येष्ठबंधु मारवून। त्याचे स्त्रियेसीं करिसी गमन। ज्याचे बळें कर्म केलें पूर्ण। त्याचें ज्ञान कळों आलें। ५६ तुम्हां मर्कटांसी कैंचें ज्ञान। परी तुज गुरु भेटला जाण। उत्तम न्याय करून। तारा तुज दीधली। ५७ गुरु अपंथें चाले सदा। मग कैंची शिष्यास मर्यादा। असो प्रायश्चित्त एकदां। घेईं आजि रणांगणीं। ५८ मग घालून सहस्र बाण। रणीं पाडिला सूर्यनंदन। फणसफळावरी कंटक पूर्ण। तैसेचि शर भेदले। ५९ तंव पुढें धांवला जांबुवंत। तयाप्रती कुश वीर बोलत। म्हणे अस्वला तूं निर्बळ बहुत। वृद्ध अत्यंत दृष्टिहीन। ६० सोडोनियां सहस्र बाण। तोही पाडिला उलथोन। तों घेऊनियां पाषाण। नळ वानर धांविन्नला। ६१ तयाप्रती लहू बोले वचन। म्हणे हें नव्हे सेतुबंधन। पांच बाण सोडून। तोही पाडिला रणभूमीं। ६२ तंव अंगद धांवला सकोप। तयासी बोले रविकुळदीप। रावणाचा सभामंडप। नव्हे पामरा

पुत्र, वह पिछला युग अब लद गया। मैं आज यहाँ तुम जैसे पतितों को सचमुच दण्ड दूँगा। ५५ अपने ज्येष्ठ बन्धु बाली को मरवा डालकर उसकी स्त्री के साथ तू गमन किया करता है। जिसके बल से तूने ऐसा कर्म पूरा किया है, उसका ज्ञान हमारी समझ में आ गया है। ५६ तुम मर्कटों का कैसा ज्ञान? फिर भी समझ ले कि तुझे गुरु मिल गया। उसने उत्तम न्याय करके तुझे तारा प्रदान की है। ५७ यदि गुरु नित्य कुमार्ग से चला करता हो, तो फिर शिष्य के लिए कैसी मर्यादा? अस्तु। आज एकबारगी (उस पाप के लिए) रण-भूमि में प्रायश्चित कर लेना।' ५८ फिर एक सहस्र-बाण चलाकर उसने सूर्य-पुत्र को रणभूमि में गिरा दिया। कटहल में जैसे बहुत काँटे होते हैं, वैसे ही बाण (उसके शरीर में) गड़ गये। ५९ तब जाम्बवान आगे दौड़ा, तो वीर कुश ने उससे कहा-- 'रे रीछ, तू तो बहुत बल-हीन है, अत्यन्त वृद्ध और दृष्टि-हीन है।' ६० फिर सहस्र बाण छोड़कर (कुश ने) उसे भी उलटकर गिरा डाला। त्यों ही पत्थर लिये हुए नल वानर दौड़ा। ६१ उससे लव ने यह बात कही— 'यह कोई सेतु-बन्ध नहीं है।' फिर पाँच बाण छोड़कर (लव ने) उसे भी रणभूमि में गिरा दिया। ६२ तब अंगद कोप सहित दौड़ा। तो रवि-कुल-दीपक लव उससे बोला— 'रे पामर, उठा लेने के लिए (योग्य) यह कोई रावण का मंडप नहीं है। ६३ आकर

उचलावयाचा । ६३ माझे पाठीसीं रिघें येऊन । तुझे पित्याचा मी सूड घेईन । शत्रूची सेवा करितां पूर्ण । लाज न वाटे मर्कटा । ६४ तुझे मातेनें केला व्यभिचार । त्याचें प्रायश्चित्त देईन सत्वर । म्हणोनि पांच शर । टाकोनि अंगद पाडिला । ६५ असो अष्ट जुत्पती आणि हनुमंत । रणीं पाडिले वीर समस्त । मग कोदंड चढवूनि त्वरित । बाण लावीत राघव । ६६ वेगें सोडिले दश बाण । कुशें शत सोडिले निर्वाण । सहस्र शर रघुनंदन । टाकिता जाहला तयावरी । ६७ कुशें लक्ष बाण सोडिले । राघवें कोटी मोकलिले । बाणमंडपें ते वेळे । झांकुळलें सूर्यबिंब । ६८ रघुपतीचा हस्तवेग बहुत । त्याहूनि विशेष कुशवीर दावीत । बाणांचें तेव्हां गणीत । लेखित शेषातें न करवे । ६९ अनिवार बाळकें दोन्ही । नाटोपती रामासी रणीं । यावरी कोदंडपाणी । काय बोले तेधवां । ७० म्हणे ऋषिबाळक हो ऐका वचन तुम्हांस भातुकें देईन । करावयासी दुग्धपान । धेनु देईन सत्वर । ७१ मी तुम्हांसी जाहलों

मेरे पीछे चल दे, तो तेरे पिता का बदला मैं लूँगा । रे मर्कट, शत्रु की पूरी सेवा करते हुए तुझे लज्जा नहीं आती ? ६४ तेरी माता ने व्यभिचार किया है । उसका प्रायश्चित (-स्वरूप दंड) मैं शीघ्र ही करवा दूँगा ।' ऐसा कहते हुए उसने पाँच बाण चलाकर अंगद को गिरा दिया । ६५ अस्तु । (जब) इस प्रकार आठ योद्धा तथा हनुमान् जैसे समस्त वीर रण-भूमि में (लव-कुश ने) गिरा दिये, तब राम ने शीघ्रता से धनुष चढ़ाकर बाण संधान किये । ६६ उन्होंने वेगपूर्वक दस बाण चलाये, तो कुश ने सौ निर्वाण बाण छोड़े । तब श्रीराम ने उसपर एक सहस्र बाण छोड़ दिये । ६७ कुश ने एक लाख बाण चलाये । (उधर) राम ने एक करोड़ बाण छोड़े । उस समय बाणों के (बने) मंडप से सूर्यबिम्ब आच्छादित हो गया । ६८ (बाण छोड़ने में) श्रीराम के हाथ की गति बहुत थी । (परन्तु) कुश ने उससे भी विशेष (गति) प्रदर्शित की । तब (के) बाणों का लेखा-जोखा शेष से भी नहीं कराया जा सकता । ६९ वे दोनों बालक दुर्दम्य थे । वे राम द्वारा युद्ध में नहीं रोके जा रहे थे । (सुनिए,) तब इसपर चापपाणि श्रीराम क्या बोले ? । ७० वे बोले— 'अहो ऋषि-पुत्रो, (मेरी) बात सुनो । मैं तुम्हें खाने-खेलने के लिए नमकीन-मीठा दूँगा । दुग्ध-पान करने के लिए सवत्स धेनु प्रदान करूँगा । ७१ मैं तुमपर प्रसन्न हो गया हूँ । इसलिए, जो माँगोगे, वह तुम्हारी इच्छा

प्रसन्न। जें मागाल ते इच्छा पुरवीन। सकळ दुःख दरिद्र हरून। देईन दान वाजी गज। ७२ मग ते देती प्रतिवचना। आम्हांस मागावयास नसे वासना। तूंच मागें मनकामना। पूर्ण करूं तुझी आम्ही। ७३ तुझी तूंच भोगीं संपत्ती। आम्हीं ऐकिली तुझी कीर्ती। शोधितां हे त्रिजगती। निर्दय नाहीं तुजऐसा। ७४ तुज साधु म्हणेल तरी कोण। व्यर्थ वाळी मारिला कपटेंकरून। जानकीसारिखें चिद्रत्न। अन्यायाविण दवडिलें। ७५ निःपाप जैसी भागीरथी। तिजहून पवित्र सीतासती। घोर वनीं टाकिली ही ख्याती। तुज न शोभे राघवा। ७६ ऐसे दोघेही बाळ बोलती। प्रत्युत्तर देत रघुपती। मनांत उपजे बहु प्रीती। कीं दोघांप्रती आलिंगावें। ७७ बाळभाषण ऐकोन। वाटें तयांसी द्यावें चुंबन। याउपरी ते दोघे जण। म्हणती बाण सोडीं वेगें। ७८ तूं क्षत्रिय म्हणविसी पूर्ण। गोष्टी सांगसी युद्ध टाकून। लीलावतारी रघुनंदन। काय बोले याउपरी। ७९ तुम्ही दोघे कोणाचे कोण। झालेत कोणे वंशीं निर्माण। मातापितयांची नाम

मैं पूर्ण करूँगा। समस्त दुःख और दरिद्रता दूर करके तुम्हें घोड़े और हाथी दान में दूंगा।' ७२ तब इसपर उन्होंने उत्तर दिया-- 'हमें (कोई वस्तु) माँगने की इच्छा नहीं है। तुम (ही) अपने मन की इच्छा (के अनुसार वस्तु) माँग लो। तुम्हारी इच्छा हम पूर्ण करेंगे। ७३ तुम्ही अपनी सम्पत्ति का भोग करो। हमने तुम्हारी कीर्ति सुनी है। त्रिभुवन में खोजने पर भी तुम-सा कोई निर्दय (अन्य) नहीं है। ७४ कौन तुम्हें साधु कहेगा? तुमने कपट से बाली को व्यर्थ ही मार डाला है। बिना किसी अपराध के जानकी जैसे चिद्रत्न को (घर से) निकाल दिया है। ७५ सती सीता भागीरथी जैसी निष्पाप है, उससे भी वह पवित्र है। हे राघव, यह ख्याति तुम्हें शोभा नहीं दे रही है कि उसे तुमने घोर वन में त्याग दिया है।' ७६ वे दोनों लड़के (जब) ऐसा बोले, तो श्रीराम ने प्रत्युत्तर दिया। उनके मन में (उन दोनों के प्रति) बहुत प्रीति उत्पन्न हो गयी; अथवा उन्हें लगा कि उन दोनों का आलिंगन करें। ७७ बालकों की बात सुनकर उन्हें इच्छा हुई कि उन्हें चुम्बन करने दें। इसके पश्चात् वे दोनों बोले— 'झट से बाण छोड़ो। ७८ तुम पूर्ण क्षत्रिय कहाते हो, फिर भी युद्ध छोड़कर बातें कर रहे हो।' सुनिए, इसपर लीलावतारी श्रीराम ने क्या कहा। ७९ 'तुम दोनों किसके कौन हो? किस वंश में उत्पन्न हुए हो? हमें अपने माता-पिता के नाम और विशिष्ट

खूण । सांगा संपूर्ण आम्हांप्रती । ८० दोघांचें देव्हडेंचि ठाण । दोघांची विद्या समसमान । वेद शास्त्र पुराण रामायण । कोण्या गुरूनें पढविलें । ८१ धनुर्वेद मंत्रास्त्र । कळा कौशल्य युक्ति विचित्र । सद्गुरु कोण तुमचा पवित्र । नाम त्याचें सांगा पां । ८२ ऐसें बोलतां रघुनाथ । दोघे गदगदां हांसत । रणीं बंधू पडिले समस्त । त्यांचा खेद सांडिला येणें । ८३ विद्या सरली तुझी सकळिक । रणीं पुससी आतां सोयरिक । कीं बंधू पडिले हा धाक । मनीं दचक बैसला तुझ्या । ८४ तुज पुसावया काय कारण । सोडीं वेगें निर्वाण बाण । बंधूंचा सूड घेईं पूर्ण । मग सोयरिक पुसें सुखें । ८५ म्हणती तूं अयोध्येचा नृपवर । वधिले रावणादि असुर । ती अवघी विद्या बाहेर । काढीं आज पाहूं दे । ८६ आम्ही असों धाकुटे किशोर । तूं पूर्वींचा जुनाट झुंजार । धनुर्वेद पढविला समग्र । गुरु वसिष्ठें तुज-लागीं । ८७ तुज एकपत्नीव्रत पूर्ण । सत्कीर्ति जानकीतें सोडून ।

चिह्न पूर्णतः बता दो । ८० तुम एक पाँव पर शरीर के भार को सम्हाले हुए दूसरा उसपर टिकाते हुए खड़े रहने का तुम दोनों का पैंतरा समान है, दोनों की (धनु-) विद्या सम-समान है । (बताओ,) किस गुरु ने तुम्हें वेद, शास्त्र, पुराण और रामायण पढ़ाया है ? ८१ तुम्हें धनुर्वेद, अस्त्रों के मंत्र, कला-कौशल, अद्‌भुत युक्तियाँ किसने पढ़ायीं ? कौन तुम्हारा वह पवित्र सद्गुरु है ? उसका नाम तो बता दो । ' ८२ रघुनाथ द्वारा ऐसा बोलने पर वे दोनों खिलखिलाकर हँसने लगे । (उन्हें जान पड़ा कि) रणभूमि में इसके समस्त बंधु गिर गये हैं, परन्तु उसका दुःख इसने छोड़ दिया है । ८३ (वे बोले--) ' तुम्हारी समस्त विद्या समाप्त हो गयी, इसलिए तो तुम अब रणभूमि में नाता पूछ रहे हो । अथवा बंधु गिर गये; इससे डर और आतंक तुम्हारे मन में छा गया है । ८४ तुम्हें यह पूछने का क्या कारण है ? वेगपूर्वक निर्वाण बाण तो चला दो । (पहले) बंधुओं का पूरा बदला लो और फिर सुख-पूर्वक नाता पूछ लो । ८५ कहते हैं, तुम अयोध्या के नृपवर हो, तुमने रावणादि असुरों का वध किया । वह समस्त विद्या बाहर निकाल दो (प्रदर्शित करो)-- उसे हमें आज देखने दो । ८६ हम तो नन्हे किशोर हैं, (परन्तु) तुम पूर्वकाल के पुराने योद्धा हो । गुरु वसिष्ठ ने समग्र धनुर्वेद तुम्हें पढ़ाया है । ८७ तुम्हारा पूर्णतः एकपत्नी-व्रत है । फिर भी सत्कीर्ति स्वरूप जानकी का त्याग करके, तुमने बलात् (हठपूर्वक) अपकीर्ति का क्यों वरण किया है ?

अपकीर्ति कां वरिली दाटून। हें तों दूषण जगीं जाहलें। ८८ युद्ध केलियाविण सर्वथा। आम्ही तुज न सोडूं आतां। भय वाटत असेल चित्ता। तरी पळून जाईं अयोध्ये। ८९ दारा कुटुंब तुज नाहीं। आतां संन्यास घेऊन सुखें राहीं। यावरी जनकाचा ज्येष्ठ जांवई। काय बोलता जाहला। ९० तुम्ही सांगा आपुलें वर्तमान। मग मी तुम्हांसीं झुंजेन। यावरी कुश बोले हांसोन। ऐकें सावध होऊनियां। ९१ जानकीउदरकमल शुद्ध। त्यांत जन्मलों दोघे मिलिंद। शत्रुकाष्ठें कोरून सुबद्ध। पिष्ठ करितों रणांगणीं। ९२ वाल्मीकतात गुरु पूर्ण। तेणें आमुचें केलें पाळण। त्यानंतरें मौंजीबंधन। करून वेद पढविले। ९३ सकळ शास्त्रें रामचरित्र। धनुर्वेद पढविला समग्र। तो आमुचे मातेचा तात पवित्र। वाल्मीक ऋषि जाण पां। ९४ मातेचे कैवारेंकरूनी। भार्गवें निःक्षत्री केली अवनी। तैसेंच आम्हीं धरिलें मनीं। करूं अवनी निर्वीर। ९५ कीं मातृकैवारें विनतासुत। उरग संहारी तेव्हां समस्त। तैसेंच करणें आजि येथ। आम्हांसही निर्धारें। ९६ त्वां सांडिली जै सीतासती।

जगत् में यह तो (तुम्हारे लिए) दूषण उत्पन्न हो गया है। ८८ अब हम तुम्हें बिना युद्ध किये बिल्कुल नहीं छोड़ेंगे। (यदि) मन में भय लगता हो, तो अयोध्या में भाग जाओ। ८९ तुम्हारे पत्नी और परिवार नहीं है, (अतः) अब संन्यास ग्रहण करके सुख से रहो।' इसपर जनक के ज्येष्ठ दामाद श्रीराम क्या बोले? (सुनिए)। ९० 'तुम अपनी बात कहो, तब मैं तुमसे जूझूँगा।' इस पर हँसते हुए कुश क्या बोला? हे श्रोताओ, ध्यान से सुनिए। ९१ 'जानकी के उदर रूपी शुद्ध कमल से हम दोनों भ्रमर उत्पन्न हुए। हम रणभूमि में शत्रु रूपी कठिन काठ को कुरेदते हुए पीस डालते हैं। ९२ तात वाल्मीकि हमारे गुरु हैं। उन्होंने हमारा पूरा पालन किया है। तदनन्तर उन्होंने हमारा मौंजी-बन्धन (जनेऊ) कराकर वेदों का अध्ययन कराया। ९३ जान लो कि जिन्होंने समस्त शास्त्र, राम-चरित, समग्र धनुर्वेद हमें पढ़ाया है, वे हमारी माता के पवित्र (पुण्यवान) पिता वाल्मीकि ऋषि हैं। ९४ माता का पक्षपात करते हुए भार्गव (परशुराम) ने पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन कर दिया था। वैसे ही हमने मन में यह कामना रखी है कि पृथ्वी को वीर-हीन कर दें। ९५ अथवा माता के पक्षपात से विनता-सुत गरुड़ ने तब समस्त सर्पों का संहार किया था। हमें भी वैसे ही यहाँ निश्चय-पूर्वक

तैंच गळाली तुझी शक्ती । अविवेक केला निश्चितीं । पुन: मागुती अवतरेना । ९७ ऐसें ऐकतां रामचंद्र । सीता आठवूनि दयासमुद्र । हृदय पिटून सर्वेश्वर । धरणीवरी पडियेला । ९८ मूर्च्छना सांवरूनि पुढती । मागुती उठिला रघुपती । पुढें बिभीषण मारुती । तयांप्रती पुसतसे । ९९ म्हणे हे कवणाचे नंदन । मग ते बोलती विचारून । तुमचीं प्रतिबिंबें परिपूर्ण । जानकीउदरीं जन्मलीं । १०० चार घटिका संपूर्ण । निवान्त राहिला रघुनंदन । सीता सोडिली त्या दिवसापासून । संपूर्ण दिवस मोजिले । १ द्वादश वर्षें तीन मास पूर्ण । गणित करी जानकी-जीवन । तों लहू कुश दोघेजण । एकाप्रती एक बोलती । २ म्हणती वृक्षाआड बैसोन । काय करितो रघुनंदन । तों कुशें सोडिला एक बाण । वृक्ष छेदोनि उडविला । ३ हस्तकौशल्य देखोन । हास्य करी जगन्मोहन । म्हणे हे आम्हांलागून । वश नव्हेत कदापि । ४ आतां युद्धचि करावें यथार्थ । म्हणोन उभा राहिला रघुनाथ । जे जे बाण सोडित । ते ते निष्फळ

करना है । ९६ जब तुमने सती सीता को त्यज दिया, तभी तुम्हारी शक्ति छूट गयी । यदि कोई अविवेक करे, तो फिर पुन: नहीं रोका जा सकता । ' ९७ ऐसा सुनते ही दया-सागर श्रीराम सीता का स्मरण करके छाती पीटते हुए धरती पर पड़ गये । ९८ मूर्च्छा को सम्हालने के पश्चात् फिर से रघुपति उठ बैठे । अनन्तर विभीषण और हनुमान ने उनसे पूछा । ९९ वे बोले — ' ये किसके पुत्र हैं ? ' फिर विचार करके बोले— ' आपके ये परिपूर्ण प्रतिबिम्ब ही जानकी के उदर से जन्म को प्राप्त हुए हैं । ' १०० (तदनन्तर) श्रीराम सम्पूर्ण चार घड़ियों तक चुप रहे और जिस दिन सीता को छोड़ दिया था, उस दिन से समस्त दिन गिन लिये । १०१ जानकी-जीवन श्रीराम ने हिसाब किया कि बारह वर्ष और तीन मास पूर्ण हुए हैं । तब लव और कुश एक-दूसरे से बोल रहे थे । १०२ उन्होंने कहा— ' वृक्ष की ओट बैठकर रघुनन्दन क्या कर रहा है ? ' तब कुश ने एक बाण छोड़कर वृक्ष को छेदते हुए उड़ा दिया । १०३ उसके हस्त-कौशल को देखकर जगन्मोहन श्रीराम हँस दिये और बोले— ' ये हमारे वश में कदापि नहीं हो सकेंगे । १०४ अब ठीक से युद्ध ही करें । ' ऐसा कहते हुए रघुनाथ खड़े हो गये (और बाण चलाने लगे, परन्तु) वे जो-जो बाण छोड़ते, वे फल-रहित (व्यर्थ) होकर आकाश में चले जाते । १०५ तब विमानों

जात आकाशीं । ५ विमानीं इंद्रादि सुरवर । आश्चर्य करिती तेव्हां थोर । म्हणती रामाचें सामर्थ्य अपार । काय जाहलें ये समयीं । ६ अकाळींचीं अभ्रें व्यर्थ पूर्ण । तैसे निष्फळ जाती रामाचे बाण । मग कुशें मोहनास्त्र संपूर्ण । निजबाणीं स्थापिलें । ७ तो मोहनबाण येऊन । रघुनाथहृदयीं भेदला पूर्ण । मोहें विलोकितां पुत्रवदन । मूर्च्छा येऊन पडियेला । ८ रघुनाथ पडतां भूमंडळीं । एकचि हांक चोहींकडे जाहली । पर्वत घेऊनि ते वेळीं । हनुमंत पुढें धांविन्नला । ९ त्यावरी टाकोनियां वज्रबाण । मूर्च्छागत पाडिला न लागतां क्षण । तों गदा घेऊन बिभीषण । हांक देत पुढें आला । ११० तों कुशें बाण सोडिला । लंकापतीचे हृदयीं बैसला । तोहि मूर्च्छित पडियेला । नाहीं उरला कोणी तेथें । ११ मग लहू कुश दोघेजण । आले रामाजवळी धांवोन । पिता पाहिला अवलोकून । वंदिले चरण प्रेमभावें । १२ रघुपतीचा मुकुट काढिला । कुशें आपुले मस्तकीं घातला । कुंडलें कौस्तुभ कटीं मेखळा । सर्वही लेइला कुश तेव्हां । १३ सौमित्राचीं भूषणें काढोनी । लहू लेइला

में (बैठे हुए) इंद्र आदि देव बहुत आश्चर्य अनुभव कर रहे थे । वे बोले— 'राम की उस अपार सामर्थ्य का इस समय क्या हुआ ? १०६ अकाल (सूखे) के बादल पूर्णतः व्यर्थ होते हैं; वैसे ही श्रीराम के बाण फल-रहित (व्यर्थ) जा रहे हैं ।' तब कुश ने अपने बाण पर सम्पूर्ण मोहनास्त्र स्थापित किया । १०७ वह मोहन (अस्त्र से युक्त) बाण आते हुए रघुनाथ के हृदय में पूर्णतः गड़ गया । तो श्रीराम मोह से अपने पुत्र के मुख को देखते हुए मूर्च्छित होकर गिर गये । १०८ श्रीराम के भू-मंडल पर गिरते ही चारों ओर अपूर्व चिल्लाहट मच गयी । तो पर्वत लेकर हनुमान उस समय आगे दौड़ा । १०९ (परन्तु कुश ने) उस पर बज्रबाण चलाकर क्षण न लगते उसे मूर्च्छित (रूप में) गिरा दिया । त्यों ही विभीषण गदा लेकर चीखते-पुकारते हुए आगे आ गया । ११० तब कुश ने एक बाण छोड़ा, जो लंकापति विभीषण के हृदय में बैठ (गड़) गया । (फल-स्वरूप) वह भी मूर्च्छित (होकर) गिर गया । (अब) वहाँ कोई भी शेष नहीं रहा ११ । अनन्तर लव और कुश दोनों जने दौड़ते-दौड़ते श्रीराम के पास आ गये । अपने पिता को ध्यान से देखते हुए उन्होंने प्रेम-भाव से उनके चरणों का वन्दन किया । १२ श्रीराम के मुकुट को उतारकर कुश ने अपने मस्तक पर रखा । फिर तब उसने कुंडल, कौस्तुभमणि, कटि-

तेच क्षणीं । मग श्यामकर्ण घेऊनी । दिव्य रथीं बैसले । १४ लहू म्हणे दादा परियेसीं । वानर धरून आश्रमासी । नेऊन दाखवूं मातेसी । खेळावयासी सर्वदा । १५ मग नळ नीळ सुग्रीव मारुती । यांचीं पुच्छें धरून हातीं । जांबुवंत अंगद ते क्षितीं । ओढीतचि चालविले । १६ अंगें खरडती भूमीवरी । जांबुवंत म्हणे मारुति अवधारीं । ऊठ वेगें झडकरी । युद्ध करूं चला यांसीं । १७ मग म्हणे हनुमंत । पुढें आहे बहुत कार्यार्थ । त्रिभुवननाथ सीताकान्त । तोही मूर्च्छित पडियेला । १८ आतां मेलियाचें मीस घेऊन । घेऊं जानकीचें दर्शन । शक्तीचें सामर्थ्य दारुण । केलें विदाण अतर्क्य हें । १९ असो आश्रमा आले किशोर । रथाखालीं उतरले सत्वर । अलंकारें मंडित सुंदर । आश्रमामाजी प्रवेशले । १२० कुश सन्मुख देखिला । जानकीस ऐसा भाव गमला । कीं रघुनाथचि आला । सरसाविला अंचळ । २१ तंव ते दोघेही कुमर । घालिती साष्टांग नमस्कार । सीतेसी दाटला गहिंवर । नंदन हृदयीं कव-

मेखला-सभी ग्रहण किया । १३ उसी क्षण लक्ष्मण के आभूषण निकालकर लव ने धारण किये । अनन्तर श्यामकर्ण को लेकर वे दिव्य रथ में बैठ गये । १४ लव ने कहा— 'सुनो दद्दा, वानरों को पकड़कर आश्रम में ले जाकर माँ को दिखा दें । वे नित्य खेलने के लिए होंगे ।' १५ तब नल, नील, सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान, अंगद की पूछों को हाथ में पकड़कर वे उन्हें भूमि पर खींचते हुए ही चलने लगे । १६ उनके शरीर भूमि पर रगड़ रहे थे; तो जाम्बवान ने कहा, 'हनुमान, सुनो । झट से वेग-पूर्वक उठ जाओ । चलें, इनसे युद्ध करें ।' १७ तब हनुमान ने कहा— 'आगे बहुत कार्य-सिद्धि होनी है । त्रिभुवन के स्वामी सीतापति भी मूर्च्छित पड़े हुए हैं । १८ अब मृतक का स्वाँग करके जानकी के दर्शन कर लें । उस शक्ति की सामर्थ्य विकट है । उसने अतर्क्य संकट उत्पन्न किया है ।' १९ अस्तु । वे दोनों किशोर आश्रम (के पास) आ गये और झट से रथ से नीचे उतर गये । आभूषणों से सुन्दर ढंग से विभूषित उन दोनों ने आश्रम में प्रवेश किया । १२० (जब) सामने कुश को देखा, तो जानकी को ऐसा लग गया कि रघुनाथ ही आ गये हैं; (तब) उसने आँचल आगे खींच लिया । २१ त्यों ही उन दोनों कुमारों ने साष्टांग नमस्कार किया । तो सीता अति गद्गद हो उठी और उसने अपने पुत्रों को हृदय से लगा लिया । २२ फिर सीता के गले में बाँहें डाले हुए वे

ळिले । २२ सीतेचे कंठीं मिठी घालून । दोघे सांगती वर्तमान । रामासमवेत बंधू चौघे जण । रणांगणीं पहुडविले । २३ ऐकतांच ऐसी मात । सीता पडली मूर्च्छागत । सवेंच उठली आक्रंदत । हृदय पिटीत ते काळीं । २४ म्हणे त्रिभुवनेश्वर घनसांवळा । तो रणीं तुम्हां केवीं सांपडला । अरे पितृवध कैसा केला । जाणोनियां बाळ हो । २५ मत्स्यें कैसा सागर शोषिला । जंबुकें मृगेंद्र कैसा धरिला । दीपतेजें काळवंडला । वासरमणि कैसा हो । २६ तृणप्रहारें भंगलें वज्र । कीं पतंगें गिळिला वैश्वानर । सर्षपभारें भोगींद्र । ग्रीवा कैशा दडपिल्या । २७ मक्षिकेचा पक्षवात सुटला । तेणें मेरु कैसा उलथोनि पडिला । मुंगीचे मुखवातें विदारला । प्रळयमेघ जैसा पां । २८ तंदुळभारें ऐरावत । कैसा पडिला हो मूर्च्छित । पुष्पप्रहारें अद्भुत । पाताळीं कूर्म दुखावला । २९ तों कुश लहू तेव्हां बोलत । माते ते पडले मूर्च्छागत । आतां उठतील समस्त । चिंता कांहीं न करावी । १३० आई आम्हीं आणिलीं

दोनों समाचार कहने लगे । (वे बोले--) ' राम-सहित चारों जने बंधुओं को (हमने) रण-भूमि में लिटा दिया है । ' २३ ऐसी बात सुनते ही सीता मूर्च्छित होकर गिर गयी, फिर साथ ही विलाप करते-करते उठ गयी । वह उस समय छाती पीटने लगी । २४ वह बोली— ' त्रिभुवनेश्वर घन-श्याम तुम्हें रणभूमि में कैसे मिल गये ? अरे बच्चो, जानते हुए भी तुमने पितृ-वध कैसे किया ? २५ मछली ने सागर को कैसे सोख लिया ? सियार ने मृगेंद्र को कैसे पकड़ लिया ? अहो, दीप के तेज से सूर्य कालिमा को कैसे प्राप्त हो गया ? २६ घास के आघात से वज्र (कैसे) भग्न हो गया, अथवा पतंग ने अग्नि को (कैसे) निगल डाला है ? सरसों के दाने के भार से भोगीन्द्र शेष की ग्रीवाएँ कैसे दब गयीं ? २७ मक्खी के परों से वायु का जो झोंका चल पड़ा हो, उससे मेरु उखड़कर कैसे गिर पड़ा ? यह तो वैसे ही हुआ है, जैसे चीऊँटी के मुख-वात, अर्थात् फूंके से प्रलय-मेघ विदीर्ण (तितर-बितर) हो गया हो । २८ चावल के बोझ से ऐरावत मूर्च्छित होकर कैसे गिर गया ? फूलों के अद्‌भुत प्रहार से पाताल में (पृथ्वी का आधार-भूत) कछुआ (कैसे) घायल हो गया ? ' २९ तब कुश और लव बोले— ' हे माँ वे मूर्च्छित होकर पड़े हैं । अब सब उठ जाएंगे । कोई भी चिन्ता न करो । १३० हे माँ, हम बंदर लाये हैं । वे बहुत सुन्दर (ढंग से)

वानरें। उडचा घेती बहुत सुंदरें। वृक्षास बांधिलीं समग्रें। पाहीं बाहेरी अंबे तूं। ३१ मग जगन्माता येऊन पाहात। तों हनुमंत नळ नीळ जांबुवंत। वीर देखोनि समस्त। आश्चर्य करी अंतरीं। ३२ म्हणे बाळकांचें सामर्थ्य दारुण। महावीर आणिले धरून। म्हणे यांस ओळखी देतां पूर्ण। लज्जायमान होतील हे। ३३ मग पुत्रांसी म्हणे ते अवसरीं। अरे हे वानर ठेवूं नये घरीं। सोडा जाऊं द्या वनान्तरीं। आपुलिया स्व-स्थाना। ३४ मग भोवंडिले पुच्छें धरून। दूर दिधले भिर-कावून। मग ते महावीर उठोन। राघवाकडे पळाले। ३५ रणीं सावध जाहला रघुवीर। तों पळतचि आले वानर। सांगती सर्व समाचार। वाल्मीकाचे आश्रमींचा। ३६ आम्ही मूर्च्छेचें मीस घेऊनी। जाऊन पाहिली जनकनंदिनी। श्यामकर्ण दोघांनीं नेउनी। आश्रमांगणीं पूजिलासे। ३७ तुमचा रथ अलंकार। घेऊनि गेले दोघे कुमर। जैसा सुपर्णें जिंकिला श्रीधर। तैसेंच पूर्ण येथें जाहलें। ३८ कीं नंदीनें जिंकिला

छलाँगें लगाते हैं। उन सबको पेड़ से बाँध रखा है। अरी माँ, तुम बाहर (चलकर) देखो।' ३१ तब जगन्माता सीता ने बाहर आकर देखा; हनुमान, नल, नील, जाम्बवान— इन समस्त वीरों को देखकर उसे मन में आश्चर्य हुआ। ३२ (फिर) उसने कहा (सोचा)— 'इन बालकों की सामर्थ्य भयावह है, (जब कि) ये इन महावीरों को पकड़कर लाये हैं।' उसने विचार किया, यदि इन्हें पूरा परिचय दें, तो ये लज्जित हो जाएँगे।' ३३ फिर उस समय उसने अपने पुत्रों से कहा— 'अरे इन वानरों को घर में नहीं रखना चाहिए। (इसलिए) छोड़ दो। इन्हें वन के भीतर अपने स्थान पर जाने दो। ३४ तब उन्होंने पूँछ पकड़कर उन्हें चक्राकार घुमाया और उछालकर दूर फेंक दिया। फिर वे महावीर उठकर (वहाँ से) श्रीराम की ओर भाग गये। ३५ (इधर) रणभूमि में श्रीराम सचेत हो गये, त्यों ही वानर दौड़ते हुए ही आ गये। उन्होंने वाल्मीकि के आश्रम की समस्त घटना का समाचार कह दिया। ३६ (वे बोले--) 'हमने मूर्च्छा का स्वाँग किये हुए जाकर जनक-नंदिनी को देखा। उन दोनों (लड़कों) ने आश्रम के आँगन में श्यामकर्ण को ले जाकर उसका पूजन किया। ३७ वे दोनों कुमार आपके रथ और आभू-षण ले गये हैं। जैसे गरुड़ ने भगवान् विष्णु को जीत लिया था, वैसे ही वहाँ पूर्णतः हो गया है। ३८ अथवा मानो नंदी ने शिवजी को जीत

उमारमण। कीं आपुलेच फळभारेंकरून। वृक्ष जाय जैसा मोडून। तैसेंच येथें जाहलें। ३९ सूर्यापासून जाहलें आभाळ। तेणें त्यास आच्छादिलें तत्काळ। ऐसें बोलतां तमालनीळ। उगाच राहिला क्षणभरी। १४० इकडे वर्तला वृत्तान्त। रामासीं झुंजले सुत। उपवनाजवळी बहुत। अपार रण पडियेलें। ४१ समाचार ऐकोनि विपरीत। पाताळाहून अकस्मात। वाल्मीक मुनि आला धांवत। आश्रमापासीं आपुलिया। ४२ सीतेनें सांगितलें वर्तमान। श्यामकर्ण आणिला धरून। मग वाल्मीक मुनि हांसोन। तेचि क्षणीं ऊठला। ४३ रणांगणाप्रती येऊन। अद्भुत करणी केली पूर्ण। कमंडलूचें उदक शिंपून। दळ अवघें उठविलें। ४४ लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न। आदिकरून थोर लहान। निद्रिस्थापरी उठोन। उभे केले ते काळीं। ४५ यावरी वाल्मीकें येऊन। श्रीरामासी दिधलें आलिंगन। म्हणे राघवा तूं सर्वज्ञ। कर्तृत्व पूर्ण तुझेंच हें। ४६ सर्वांचा गर्व झाडावया। लीला तुवां केली रघुराया। येऱ्हवीं सीता तुजपासूनियां। दूर कोठें गेली पां। ४७ अनंत ब्रह्माण्डांचा

लिया हो। अथवा जैसे वृक्ष अपने ही फलों के बोझ से टूट गया हो, वैसे ही यहाँ हो गया है। ३९ सूर्य से आकाश उत्पन्न हो गया है, परन्तु (मानो) उस (आकाश) ने उसे तत्काल आच्छादित किया है।' उनके ऐसा बोलने पर तमाल-नील श्रीराम क्षण-भर चुप रह गये। १४०

तब इधर यह घटना घटित हुई। 'राम से उसके पुत्र लड़े और उपवन के बहुत ही पास अनगिनत सेना गिर गयी है'—यह विपरीत समाचार सुनते ही वाल्मीकि मुनि पाताल से अकस्मात दौड़ता हुआ अपने आश्रम के निकट आ गया। ४१-४२ सीता ने उससे यह समाचार कहा कि (लड़के) श्यामकर्ण को पकड़कर लाये हैं। तब वाल्मीकि मुनि हँसकर उसी क्षण उठ गया। ४३ रणभूमि की ओर आकर उसने एक पूरी अद्भुत करनी की। कमंडलु का पानी सींचकर उसने समस्त दल को उठा लिया (सचेत कर दिया)। ४४ उसने उस समय लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि से लेकर सब बड़ों-छोटों को सोये हुए-से जगाते हुए उठाकर खड़ा कर दिया। ४५ इसके पश्चात् वाल्मीकि ने आकर श्रीराम का आलिंगन किया और कहा— 'हे राघव, तुम तो सर्वज्ञ हो। यह करनी पूर्णतः तुम्हारी ही है। ४६ हे रघुराज, सबका गर्व छुड़ाने के लिए तुमने यह लीला (प्रदर्शित) की, नहीं तो, सीता तुम से दूर कहाँ गयी है? ४७

कर्ता। तो तूं पुराणपुरुष रघुनाथा। लटकेंच बाहेर आतां। नेणतपण धरिसी तूं। ४८ श्रीराम म्हणे युद्ध करूनी। दोघांस जिंकीन समरांगणीं। म्यां आपुली निर्वाण करणी। दाविली नाहीं तयांतें। ४९ हांसोनि बोले वाल्मीक ऋषी। हस्ताचा ढका लागला नेत्रासी। तरी क्रोध धरून मानसीं। हस्त काय छेदावा। १५० भोजन करितां नकळत। जिव्हेसीं रुतला दंत। तरी कोणावरी क्षोभ तेथ। करावा सांग राजेंद्रा। ५१ कनक रुसे कान्तीवरी। रत्न प्रभा घालूं इच्छी बाहेरी। काष्ठ घेऊनि निर्धारीं। वृक्ष मारी आपुलीं फळें। ५२ गूळ गोडीवरी रुसला। प्रवाहासीं गंगा धरी अबोला। प्रभेवरी दीप कोपला। तैसा मांडिला विचार येथें। ५३ हे जगदात्म्या अयोध्यापती। तुझ्या वीर्याची अगाध गती। 'आत्मा वै पुत्रनामासि' निश्चितीं। गर्जती श्रुती राघवा। ५४ वाल्मीकाचे बोल ऐकोन। जाहलें राघवाचें समाधान। ते दिवसीं सीतारमण। राहिला तेथें परिवारेंसीं। ५५ कुश लहू भेटती रघुनंदना। तो सोहळा

हे रघुनाथ, जो अनन्त ब्रह्माण्डों का कर्ता है, तुम वह पुराण-पुरुष (ही) हो। अब तुमने मिथ्या ही अज्ञानता धारण की है।' ४८ (इसपर) श्रीराम ने कहा— 'मैं युद्ध करके इन दोनों को युद्ध-भूमि में जीत लूँगा। मैंने अपनी निर्वाण (चरम अवस्थावाली) करनी उन्हें नहीं दिखायी है।' ४९ तो वाल्मीकि ऋषि हँसकर बोला— 'आँखों को हाथ का धक्का लग गया हो, तो क्या मन में क्रोध करके हाथ छेद डालें? १५० भोजन करते हुए यदि अनजाने में दाँत जिह्वा में गड़ गया हो, तो हे राघवेन्द्र, बता दो, वहाँ किसपर क्रोध करें। ५१ (जान पड़ता है,) सोना अपनी कान्ति से रूठ गया हो; रत्न अपनी प्रभा को बाहर निकाल देने की इच्छा कर रहा हो; लकड़ी (लाठी) लेकर वृक्ष निश्चय-पूर्वक अपने ही फलों पर आघात कर रहा हो; गुड़ अपनी मधुरता के प्रति रूठ गया हो; गंगा ने अपनी धारा से अनबोला धारण किया हो; दीप अपनी प्रभा पर क्रुद्ध हो गया हो। तुमने वैसा ही विचार यहाँ प्रस्तुत किया है। ५२-५३ हे जगदात्मा अयोध्या-पति, तुम्हारे वीर्य की गति अथाह है। सचमुच वेद यह गरजते हुए घोषित कर रहे हैं— आत्मा वै पुत्र नामाऽसि।' ५४ वाल्मीकि के इन वचनों को सुनते ही सीतारमण श्रीराम को सन्तोष हो गया। उस दिन वे परिवार-सहित वहाँ ठहर गये। ५५ कुश और लव श्रीराम से मिले। उस आनन्द-प्रसंग को अपनी आँखों से देखने के लिए

पाहावया नयना। सकळ राजयांसहित सेना। त्वरेंकरून धांवती। ५६ शत्रुघ्न सुमंत धांवती। हेममय शिबिरें उभीं करिती। अयोध्याजन वेगें येती। महोत्सवा पाहावया। ५७ वसिष्ठादिक मुनीश्वर। कौतुक पाहूं आले सत्वर। हेमाम्बर सभेसी रघुवीर। सकळांसहित बैसला। ५८ नित्य नेम सारून रघुवीर। नूतन वस्त्रें दिव्य अलंकार। लेवोनियां श्रीरामचंद्र। सभामंडपीं बैसला। ५९ वाल्मीकें आश्रमाप्रती जाऊन। लहू कुश आणि शामकर्ण। राघवापासीं आणून। उभे केले तेधवां। १६० इंद्रादि देवगण पाहाती। सर्व नृप सादर विलोकिती। म्हणती केवळ रघूत्तमाच्या मूर्ती। दोघे पुत्र दिसती हे। ६१ शामसुंदर आकर्णनयन। विशाळ भाळ सुहास्यवदन। पुत्रांसहित रघुनंदन। समसमान तिन्ही मूर्ती। ६२ गर्जली तेव्हां आकाशवाणी। राघवा तुझे पुत्र पाहें नयनीं। जयजयकार करूनी। मस्तक डोलविती सुरवर। ६३ वस्त्रालंकारमंडित पूर्ण। लहू कुश श्रीरामाजवळी येऊन। हातीं

समस्त सेना-दल राजाओं सहित शीघ्रता से दौड़े। ५६ शत्रुघ्न और सुमन्त दौड़े। उन्होंने स्वर्णमय शिविरों का निर्माण करवा दिया। अयोध्या-निवासी लोग (भी) उस महान् उत्सव को देखने के लिए वेग-पूर्वक आ गये। ५७ वसिष्ठ आदि बड़े-बड़े मुनि यह लीला देखने के लिए झट से आ गये। (तब) श्रीराम सबके साथ उस हेमाम्बर अर्थात् ज़रीदार वस्त्र के बने सभा (-मंडप) में बैठ गये। ५८ रघुवीर श्रीरामचंद्र नित्य नेम-कर्म को पूर्ण करके नूतन वस्त्र तथा दिव्य आभूषण ग्रहण करके सभा-मंडप में बैठ गये। ५९ तब आश्रम में जाकर वाल्मीकि ने लव, कुश और श्यामकर्ण को लाते हुए उन्हें श्रीराम के पास खड़ा कर दिया। १६० (आकाश में से) इन्द्र आदि देवगण देख रहे थे। समस्त राजा आदर-पूर्वक देख रहे थे। उन्होंने कहा-- 'ये दोनों पुत्र केवल रघूत्तम श्रीराम की (प्रति-) मूर्तियाँ दिखायी दे रहे हैं-- अर्थात् प्रतीत हो रहे हैं।' ६१ वे (दोनों और स्वयं राम) श्याम-सुन्दर और आकर्ण-नयन (विशाल नेत्रों वाले) थे, वे विशाल-मस्तक तथा सुहास्य-वदन थे। इस प्रकार (दोनों) पुत्रों सहित श्रीराम --तीनों सम-समान मूर्तियाँ (प्रतीत हो रहे) थे। ६२ तब गरजती हुई आकाशवाणी हुई-- 'हे राघव, अपने पुत्रों को नयनों से देख लो।' (फिर) जय-जयकार करके देव मस्तक हिलाने लगे। ६३ वस्त्रों तथा आभूषणों से पूर्णतः शोभायमान लव और कुश ने हाथों में वैसे

तैसेचि धनुष्यबाण । घालिती लोटांगण पितयासी । ६४
जाहला एकचि जयजयकार । वृंदारक वर्षती सुमनसंभार ।
रामास प्रार्थिती नृपवर । पुत्रांसी क्षेम देइंजे । ६५ मग उठो-
नियां रघुनंदन । हृदयीं धरिले निजनंदन । मस्तकीं करूनि
अवघ्राण । पुढें घेऊनि बैसला । ६६ सकळ वेदशास्त्रप्रवीण ।
वाल्मीकें केले दोघे जण । पाठ शतकोटी रामायण । बाळ
म्हणोनि दाविती । ६७ त्यावरी आरंभिलें गायन । अवतार-
चरित्रें गहन । तीं ऐकतां रघुनंदन । सप्रेम जाहला ते
काळीं । ६८ चवदा विद्या चौसष्टी कळा । बाळांनीं अभ्या-
सिल्या सकळा । जैसा करतळींचा आंवळा । आकळिल्या विद्या
तैशाचि । ६९ वाल्मीकास म्हणे रघुनाथ । धन्य धन्य तुमचें
गुरुत्व । विद्याभ्यास युद्ध अद्भुत । बाळकांहातीं करविलें । १७०
वाल्मीक वदे प्रत्युत्तर । तुझें वीर्यसामर्थ्य परम तीव्र ।
माझें गुरुत्व साचार । काय करील नुसतेंचि । ७१ सौमित्र
भरत शत्रुघ्न । सुमंत सुग्रीव बिभीषण । हनुमंतादि सकळ सैन्य ।

ही धनुष-बाण लिये हुए आकर अपने पिता को साष्टांग नमस्कार किया । ६४ तब अद्वितीय जयजयकार हो गया । देवों ने पुष्प-संभार बरसा दिये, तो राजाओं ने श्रीराम से प्रार्थना की-- 'पुत्रों का क्षेमालिंगन करें ।' ६५ तब श्रीराम ने उठकर अपने पुत्रों को हृदय से लगा लिया और उनके मस्तक सूँघकर वे उन्हें सामने लेकर बैठ गये । ६६ वाल्मीकि ने उन दोनों को समस्त वेदों और शास्त्रों में प्रवीण बनाया था । उन दोनों ने शत-कोटि रामायण कंठस्थ किया था । (फिर) उन लड़कों ने उसे गाकर दिखाया (सुनाया) । ६७ तत्पश्चात् उन्होंने गायन आरम्भ किया । उन्होंने जो गूढ़ अवतार-चरित सुनाये, उन्हें सुनते हुए श्रीराम उस समय सप्रेम हो गये, अर्थात् प्रेम से उमड़ उठे । ६८ उन लड़कों ने समस्त चौदहों विद्याओं और चौसठ कलाओं का अध्ययन किया था । जैसे हथेली पर आँवला हो, वैसे ही अर्थात् बिल्कुल स्पष्ट रूप से उन्होंने विद्याएँ आत्मसात् की थीं । ६९ (तदनन्तर) श्रीराम ने वाल्मीकि से कहा-- 'आपका गुरुत्व धन्य है, धन्य है । आपने विद्याध्ययन तथा युद्ध (-कला) बालकों के हाथों (द्वारा) अद्भुत रूप से करवा लिया है । १७० (इस पर) वाल्मीकि ने प्रत्युत्तर (में) कहा— 'तुम्हारा वीर्य और सामर्थ्य परम प्रखर है । (नहीं तो) मेरा केवल गुरुत्व सचमुच क्या कर पाता ?' ७१ (इधर) लक्ष्मण

सीता आणावया चालिले । ७२ आश्रमापुढें येऊन । घालिती सारे लोटांगण । वाल्मीकें बहुत प्रार्थोन । सीता आणिली बाहेरी । ७३ सकळहि सद्गद होऊन । धरिती जगन्मातेचे चरण । पुढें ठेविलें सुखासन । जानकीसी बैसावया । ७४ सकळ ऋषिपत्न्यांची पूजा करूनी । जानकी बैसली सुखासनीं । समुद्रासी भेटावया मंदाकिनी । वेगेंकरून चालिली जैसी । ७५ जवळी देखोनि रघुनाथा । खाली उतरली जगन्माता । वाल्मीक येऊनि तत्त्वतां । रघुनाथाप्रती बोलतसे । ७६ पंचभूतें शशी आदित्य । रामा तूं साक्षी आहेसी हृदयस्थ । निष्पाप जानकी निश्चित । आदिमध्यावसानीं । ७७ माझी धर्मकन्या जनककुमारी । आजिवरी पाळिली म्यां माहेरीं । आतां दिधली तुमचे करीं । अर्धांगीं बैसवीं इयेतें । ७८ तंव ते वदली आकाशवाणी । सत्य सती हे जनकनंदिनी । मग श्रीरामें आलिंगोनी । अंकावरी बैसविली । ७९ लागला वाद्यांचा गजर । मग वाल्मीकास प्रार्थी रघुवीर । घेऊनि सकळ ऋषी-

---

भरत, शत्रुघ्न, सुमंत, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान आदि तथा समस्त सेनादल सीता को लाने के लिए चल दिये । ७२ आश्रम के सामने आकर सबने दण्डवत् नमस्कार किया, तो वाल्मीकि बहुत प्रार्थना करके, अर्थात् मनाकर सीता को बाहर ले आये । ७३ अति गद्गद होते हुए सभी ने जगन्माता सीता के पाँव पकड़े और उसके बैठने के लिए सामने पालकी रख दी । ७४ समस्त ऋषि-पत्नियों का पूजन करके सीता पालकी में बैठी और वह (तेज गति से) वैसे ही चली, जैसे गंगा समुद्र से मिलने के लिए वेग-पूर्वक जाती है । ७५ (फिर) श्रीराम को पास देखकर जगन्माता नीचे उतर गयी । (तब) वाल्मीकि ने आकर सचमुच श्रीराम से कहा-- 'हे राम, पंच-महाभूत, चन्द्र, सूर्य तथा स्वयं (सबके) हृदयस्थ रूप में तुम इसके लिए साक्षी हो कि सीता आदि, मध्य और अवसान (अन्त) में निश्चय ही निष्पाप है । ७६-७७ मैंने अपनी इस धर्मकन्या—जनककुमारी सीता का मायके में पालन किया । अब मैंने इसे तुम्हारे हाथ सौंप दिया है, इसे अपने अर्धांग (अंक) में बैठाओ । ' ७८ तब आकाशवाणी हुई-- 'यह जनक-नंदिनी सचमुच सती (पतिव्रता) है । फिर श्रीराम ने उसका आलिंगन करके उसे गोद में बैठा लिया । ७९ (तब) वाद्यों का गर्जन होने लगा । फिर श्रीराम ने वाल्मीकि से प्रार्थना की-- 'समस्त ऋषि-वरों को लेकर महायज्ञ को पूर्ण करने के लिए आप अयोध्या चलें । '

श्वर। अयोध्येसी तुम्ही चला। १८० पूर्ण करावया महायज्ञ। सकळिकां मानलें तें वचन। मग वाल्मीकादि मुनिजन। दिव्य वहनीं बैसविले। ८१ जानकीसहित रघुनंदन। रथीं बैसला जैसा चंडकिरण। दोघे दोहींकडे नंदन। विराजमान शोभती। ८२ मस्तकीं विराजती दिव्य छत्रें। मित्रपत्रें अतिविचित्रें। निजभक्त अपार चामरें। रघूत्तमावरी ढाळिती। ८३ मकरबिरुदें पुढें चालती। भाट सूर्यवंश वाखाणिती। परम गजरें रघुपती। अयोध्येमाजी प्रवेशला। ८४ कौसल्या सुमित्रा प्रेमेंकरूनी। सीतेस आलिंगिती तये क्षणीं। लहूकुशांवरूनी। मूद ओंवाळी कौसल्या। ८५ सामुग्री पूर्वींच सिद्ध होती। यज्ञदीक्षा घेऊन रघुपती। पूर्ण केली पूर्णाहुती। यज्ञ समाप्ती पावला। ८६ वस्त्रालंकार दक्षिणा अपार। देऊनि बोळविले ऋषीश्वर। वर्णीत रघुवीरचरित्र। आपले आश्रमाप्रती गेले। ८७ रायांसी दिधली पाठवणी। श्रीरामाची आज्ञा घेऊनि। सीतेचा महिमा वर्णीत वदनीं। निजनगराप्रती गेले। ८८ बिभीषण सुग्रीव प्राणसखे। गौरवूनियां रघुनायकें। आपुले

सबको यह कहना जँच गया। तब वाल्मीकि आदि मुनिजनों को दिव्य वाहनों में बैठा दिया। १८०-८१ श्रीराम जानकी-सहित रथ में बैठ गये। वे मानो सूर्य ही हों। दोनों ओर विराजमान दोनों पुत्र शोभायमान हो रहे थे। ८२ उनके मस्तक पर दिव्य छत्र और अति अद्‌भुत सूर्यपत्र विराजमान थे। श्रीराम के ऊपर उनके अपने भक्त अनगिनत चँवर डुला रहे थे। ८३ श्रेष्ठत्व-सूचक मकर-चिह्नांकित ध्वज आदि आगे चल रही थे। भाट सूर्यवंश का बखान कर रहे थे। (इस प्रकार) परम गर्जन के साथ रघुपति श्रीराम अयोध्या के अन्दर प्रविष्ट हो गये। ८४ उस क्षण कौसल्या और सुमित्रा ने सीता का प्रेमपूर्वक आलिंगन किया। (फिर) कौसल्या ने लव-कुश पर से भात (का पिंड) निछावर कर दिया। ८५ सामग्री पहले ही से सिद्ध थी। तो श्रीराम ने यज्ञ-दीक्षा लेकर पूर्णाहुति समर्पित की। (तब) यज्ञ समाप्ति को प्राप्त हो गया। ८६ (तदनन्तर) श्रीराम ने ऋषिवरों को अपार वस्त्र, आभूषण और दक्षिणा देकर बिदा किया। तो वे रघुवीर के चरित्र का वर्णन करते हुए अपने-अपने आश्रम की ओर चले गये। ८७ (अन्य) राजाओं को भी बिदाई दी, तो वे श्रीराम की आज्ञा लेकर सीता की महिमा का मुख से वर्णन करते हुए अपने-अपने नगर के प्रति चले गये। ८८ (फिर) उस समय श्रीराम ने प्राणसखा

स्थळाप्रती सुखें। पाठविले तये काळीं। ८९ जानकीकुमरांसमवेत। अयोध्येचें राज्य करी रघुनाथ। ही कथा श्रवण करितां बहुत। अक्षय सुख पाविजे। १९० परम संकटहरणी हे कथा। विजयी होय श्रोता वक्ता। पाहतां श्रीरामविजय ग्रंथा। सर्व चिंता हरे पैं। ९१ यावरी कथा गोड बहुत। लीला कैसी दावी रघुनाथ। तो शेवटींचा अध्याय यथार्थ। सादर आतां परिसिजे। ९२ चाळीस अध्याय अवघा ग्रंथ। त्यांत उरला एक गोड बहुत। जैसा मुकुटावरी मणि झळकत। तैसा अध्याय पुढील असे। ९३ ब्रह्मानंदा स्वामी समर्था। श्रीधरवरदा पंढरीनाथा। हा ग्रंथ वाची त्या भक्ता। तूंच रक्षीं निजांगें। ९४ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। एकोनचत्वारिंत्तमोध्याय गोड हा। १९५

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु। श्रीशंकरार्पणमस्तु ॥

विभीषण और सुग्रीव को गौरवान्वित करके उनके अपने-अपने स्थान सुखपूर्वक भेज दिया। ८९

(तदनन्तर) श्रीराम जानकी और पुत्रों के साथ अयोध्या का राज्य करने लगे। इस कथा का श्रवण करते हुए (श्रोता) बहुत अक्षय सुख को प्राप्त हो जाएँगे। १९० यह कथा परम संकट-हारिणी है। इसके श्रोता और वक्ता (कथनकर्ता) विजयी हो जाएँगे। श्रीराम-विजय नामक इस ग्रन्थ को देखने पर समस्त चिन्ता का हरण हो जाएगा। ९१

इसके पश्चात्, श्रीराम कैसी लीला प्रदर्शित करते हैं ?—इस सम्बन्धी कथा बहुत मधुर है। उस अन्तिम अध्याय को अब आदर-पूर्वक ठीक से सुनिए। ९२ चालीस अध्यायों से युक्त यह पूरा ग्रन्थ है। उनमें से एक बहुत मधुर अध्याय शेष है। जैसे मुकुट में रत्न जगमगाता है, वैसा (देदीप्यमान) वह आगामी अध्याय है। ९३

हे समर्थ ब्रह्मानन्द स्वामी, हे श्रीधर के वर-दाता पंढरीनाथ (श्री विट्ठल), जो इस ग्रन्थ को पढ़ेगा, उस भक्त की स्वयं अपने अंग (हाथों) रक्षा कीजिए। ९४ स्वस्ति। 'श्रीराम-विजय' नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है। यह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है। इसके इस उन्तालीसवें मधुर अध्याय का चतुर भक्त सदा श्रवण करें। १९५

॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु। श्रीशंकरार्पणमस्तु ॥

अध्याय—४०

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । जय जय निगमागमतनू अखिला । वृंदारकवंद्या अजित अमला । असुरसंहारणा परम मंगला । अचळ अढळ अविनाशा । १ मन्मथवारणविदारक मृगेंद्रा । क्रोधजलदविदारक समीरा । मदतमनाशक भास्करा । परात्परा परमानंदा । २ मत्सरतृणदाहका वैश्वानरा । मायाचक्रचाळका विश्वंभरा । दंभनगच्छेदका वज्रधरा । भूमिजावरा भयनाशना । ३ अहंद्विपंचमुखदर्पहरणा । मोहघटश्रोत्रसंहरणा । शोकशक्रजितगर्वविदारणा । ऊर्मिलारमणाग्रजा श्रीरामा । ४ तव कृपेच्या बळें समस्त । संपत आला रामविजय ग्रंथ । शेवटींचा अध्याय रसभरित । वदवीं कैसा असे तो । ५ गतकथाध्यायीं निरूपण । संपलें लहूकुशाख्यान । जानकी आणूनियां यज्ञ । अश्वमेध संपविला । ६ याउपरी एके दिनीं । सिंहासनीं बैसला कोदंडपाणी । बंधुवर्ग कर जोडूनी ।

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः । हे वेद और धर्मशास्त्र के शरीर-स्वरूप, हे सर्व, हे देवों के लिए वंदनीय, हे अजित, हे अमल (विशुद्ध), हे असुरों के संहारक, हे परम मंगल, हे अचल, हे अच्युत, हे अविनाशी, जय हो, जय हो । १ हे कामरूपी हाथी को विदीर्ण करनेवाले सिंह, हे क्रोधरूपी मेघ को तितर-बितर कर देनेवाले समीर, हे मदरूपी अंधकार का नाश करनेवाले सूर्य, हे परात्पर, हे परमानन्द (-स्वरूप), (जय हो, जय हो) । २ हे मत्सररूपी घास को जला देनेवाले अग्नि देव, हे माया के चक्र को चलानेवाले, हे विश्वम्भर, हे दम्भरूपी पर्वत का नाश करनेवाले वज्रधर इंद्र, हे भूमि-जा सीता के पति, हे भय-नाशक, (जय हो, जय हो) । ३ हे अहंकाररूपी दशानन के घमंड को छुड़ानेवाले, हे मोहरूपी कुम्भकर्ण का संहार करनेवाले, हे शोकरूपी इंद्रजित के गर्व को नष्ट करनेवाले उर्मिलापति लक्ष्मण के अग्रज श्रीराम, (जय हो, जय हो) । ४ आपकी कृपा के बल से यह सम्पूर्ण श्रीराम-विजय नामक ग्रंथ समाप्त होने जा रहा है । यह रस से भरा-पूरा अन्तिम अध्याय, कैसा है, (मुझसे) कहलवाइए । ५ कथा के विगत अध्याय में यह निरूपण हुआ है । लव-कुशाख्यान समाप्त हुआ और सीता को लाकर श्रीराम ने अश्वमेध यज्ञ पूर्ण किया । ६ इसके पश्चात् एक दिन चापपाणि श्रीराम सिंहासन पर विराजमान हो गये । बंधुवर्ग

स्वस्थानीं उभे राहिले । ७ तों कृतान्तभगिनीतीरवासी । द्विज प्रजा पातल्या वेगेंसीं । जैसे सुर क्षीरसागरासी । जाती गाऱ्हाणें सांगावया । ८ तंव भक्तजनसभाभूषित । मुक्तमंडपीं बैसला रघुनाथ । जो कोटी कंदर्पांचा तात । दीनबंधु गुणसिंधु । ९ दूत जाणविती रघुराया । प्रजाजन आले भेटावया । येऊं द्या म्हणे लवलाह्या । कोणीं पीडिल्या माझ्या प्रजा । १० तों मुक्तमंडपासमोर । पातले तेव्हां प्रजांचे भार । करूनियां जयजयकार । नमस्कार सर्व घालिती । ११ उभे ठाकले समोर । भ्रूसंकेतें विचारी जगदुद्धार । म्हणती यमुनातीरीं क्रूर । महान लवणासुर माजला । १२ महापातकी अत्यंत क्रूर । मधुदैत्याचा कुमर । भानुजेचें पैलतीर । तेथें असुर वसे सदा । १३ प्रजा गाई आणि ब्राह्मण । चांडाळ भक्षितो नित्य मारून । रघुराया तयासी वधून । समस्त जन सुखी

अपने-अपने स्थान पर हाथ जोड़े हुए खड़े रह गये । ७ त्यों ही कृतान्त (यम) की भगिनी यमुना नदी§ के तट पर निवास करनेवाले ब्राह्मण प्रजाजन वैसे ही वेग-पूर्वक आ पहुँचे, जैसे (पूर्वकाल में रावण से पीड़ित होने पर) देव भगवान विष्णु को अपना दुखड़ा (दीनभाव से) बता देने के लिए क्षीरसागर के पास गये थे । ८ तब भक्तजनों की सभा से विभूषित में—खुले मंडप में वे श्रीराम बैठे हुए थे, जो मानो करोड़ों कामदेवों के पिता (—से सुन्दर) हैं, जो दीन-बंधु और गुणों के (मानो) सागर हैं । ९ दूतों ने श्रीराम को विदित कराया कि प्रजाजन मिलने के लिए आये हैं, तो झट से उन्होंने कहा— ‘ (यहाँ उन्हें) आने दो । मेरी प्रजा को किसने पीड़ित किया है ? ’ १० तब उस मुक्त मंडप के सामने प्रजा (जनों) के समुदाय आ पहुँचे । जयजयकार करते हुए उन सब ने (श्रीराम को) नमस्कार किया । ११ वे (जब) सामने खड़े हो गये, तब भौंह के संकेत से जगत् के उद्धारक श्रीराम ने पूछा । (उत्तर में) उन्होंने कहा— ‘ यमुना-तट पर क्रूर महालवणासुर उन्मत्त हो गया है । १२ मधु नामक दैत्य का वह पुत्र महापातकी और अत्यधिक क्रूर है । वह असुर वहाँ—सूर्यकन्या यमुना के उस पार सदा रहता है । १३ वह चंडाल प्रजाजनों, गायों और ब्राह्मणों को मारकर नित्य खा डालता है । हे

---

§ टिप्पणी कृतान्त-भगिनी : यम मृत्यु का देवता माना जाता है । अतः उसें ‘ कृतान्त ’ भी कहते हैं । यम विवस्वन अर्थात् सूर्य का पुत्र है । यमी अर्थात् यमुना उसकी बहन है । (इस दृष्टि से) तेरहवें छंद में यमुना को ‘ भानुजा ’ कहा है ।

करीं। १४ ऐसें ऐकतां कोदंडपाणी। कोदंड आणवी तये क्षणीं। आरक्तता उदेली नयनीं। क्रोध मनीं न सांवरे। १५ तों शत्रुघ्न पुढें येऊनी। मस्तक ठेवीत श्रीरामचरणीं। म्हणे मज आज्ञा दीजे ये क्षणीं। लवणासुर वधावया। १६ घेऊनियां चतुरंग दळ। वेगें जाईं म्हणे तमालनीळ। लवणासुर वधोनि तत्काळ। प्रजा सुखें राखिजे। १७ मंत्रशक्ति दिव्य बाण। बंधूस देत रघुनंदन। सीताधवाचे चरण वंदोन। वीर शत्रुघ्न चालिला। १८ संग्रामसंकेतभेरी। सेवकीं ठोकिल्या ते अवसरीं। तीन अक्षौहिणी दळ बाहेरी। परम वेगें निघालें। १९ नौका आणोनियां अपार। भानुकन्येचें लंघिलें तीर। तों चहूंकडून अपार। ऋषीश्वर पातले। २० ऋषी म्हणती हा दैत्य

रघुराज, उसका वध करके समस्त लोगों को सुखी कीजिए।' १४ ऐसा सुनते ही चापपाणि श्रीराम तत्क्षण धनुष लिवा लाये। उनकी आँखों में लालिमा उत्पन्न हुई। उनके मन में क्रोध ठीक से धारण नहीं किया जा पाता था (अर्थात् उनके मन में क्रोध नहीं समा रहा था)। १५ त्यों ही सामने आकर शत्रुघ्न ने श्रीराम के चरणों में मस्तक रखा और कहा— 'लवणासुर का वध करने की इस क्षण मुझे आज्ञा दीजिए।' १६ तो तमाल-नील श्रीराम ने कहा— 'चतुरंग दल लेकर वेग-पूर्वक जाओ और तत्काल लवणासुर का वध करके प्रजा को सकुशल रखो।' १७ (फिर) रघुनंदन ने अपने बंधु को मंत्र-शक्ति और दिव्य बाण दिये, तो वीर शत्रुघ्न सीता-पति के चरणों को नमस्कार करके चल दिया। १८ उस समय युद्ध के लिए प्रस्थान करने की सूचना देने के हेतु सेवकों ने भेरियाँ बजा दीं, तो तीन अक्षौहिणी सेना परम वेग से बाहर चल पड़ी। १९ अनगिनत नौकाएँ लाकर उन्होंने यमुना का किनारा लाँघ लिया— अर्थात् यमुना को पार करके वे उस तट पर पहुँच गये, त्यों ही चारों ओर से असंख्य बड़े-बड़े ऋषि आ पहुँचे। २० उन ऋषियों ने कहा— 'यह दैत्य बहुत उग्र है। जान लीजिए कि पूर्वकाल में मान्धाता🟉 राजा को इसके हाथों मौत

🟉 टिप्पणी मान्धाता : यह इक्ष्वाकु-वंशोत्पन्न राजा युवनाश्व अथवा सौद्युम्नि का पुत्र था। पुराणों में इसे विष्णु का अवतार, चक्रवर्ती सम्राट, दानवीर और सौ अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञ करनेवाला बताया गया है। इसने तप-बल से अजगव नामक धनुष और दिव्य अस्त्रों को प्राप्त किया और समस्त पृथ्वी को जीत लिया। अनन्तर इसे अपने प्रताप पर घमंड हो गया, तो इसने इन्द्र को ललकारा। परन्तु इंद्र ने स्वयं न आते हुए इसे लवणासुर से युद्ध करने को कहा। इस युद्ध में लवण ने इसका वध किया।

दारुण । पूर्वीं मान्धातराजयासी मरण । हस्तें याच्या आलें जाण । बळेंकरून नाटोपे । २१ शत्रुघ्न बोले तेव्हां वचन । याचें सांगा कैसें मरण । ऋषी म्हणती उमारमण । येणें पूर्वीं आराधिला । २२ शंकरें स्वहातींचा दिधला शूळ । तेणें बळें संहारी विश्व सकळ । तरी तो शूळ घेतां तत्काळ । मरण त्यास तेणेंचि पैं । २३ तो शूळ ठेवूनियां मंदिरीं । आहारालागीं हिंडे दिवस रात्रीं । श्वापदें गो ब्राह्मण मारी । शोधूनियां साक्षेपें । २४ तरी तो काळ साधून । आधीं घ्यावें तयाचें दर्शन । शूळ हातीं चढतांचि पूर्ण । बळ क्षीण नव्हें तयाचें । २५ त्याचिया भयेंकरून । ओस पडिलें मथुरापट्टण । तें शत्रुघ्नें ओलांडून । काळ साधून चालिला । २६ लवणासुर नसतां सदनीं । मंदिर तयाचें पाहे उघडोनी । तों शूळ ठेविलासे पूजोनी । उचली ते क्षणीं दाशरथी । २७ शूळ घेऊनि कैकयी-नंदन । दळभारेंसीं सिद्ध पूर्ण । उभा ठाकला तों लवण । वनींहून परतला । २८ गाई ब्राह्मण मारून । प्रेतभार मस्तकीं

आयी । यह बल के द्वारा वश में नहीं किया जा सकता ।' २१ तब शत्रुघ्न ने यह बात कही (पूछी)— 'तो कहिए, इसकी मृत्यु कैसे होगी ?' तो ऋषियों ने कहा— 'इसने पूर्वकाल में उमा-पति शिवजी की आराधना की थी । २२ (उससे प्रसन्न होकर) शिवजी ने उसे अपने हाथ का त्रिशूल दिया । उस बल से यह समस्त विश्व का संहार करता रहा है । अतः उस शूल को लेने पर उसी से उसे मौत आएगी । २३ उस शूल को अपने घर में रखकर वह दिन-रात आहार के लिए भ्रमण करता है और श्वापदों और विशेष रूप से गो-ब्राह्मणों को खोजकर मार डालता है । २४ इसलिए इस अवसर से लाभ उठाते हुए पहले उसके दर्शन कर लीजिए । उसके हाथ में शूल के आते (रहते) उसका पूरा बल क्षीण नहीं हो सकता ।' २५ उसके भय के कारण मथुरा नगरी उजाड़ हो गयी थी । उसे पार करके शत्रुघ्न मौका देखकर चल दिया । २६ घर में लवणासुर के न होने पर (शत्रुघ्न ने) उसे खोलकर देखा, तो (दिखायी दिया कि) वह शूल पूजा करके रखा हुआ था । उस क्षण दशरथ-पुत्र शत्रुघ्न ने उसे उठा लिया । २७ शूल लेकर (ज्यों ही) शत्रुघ्न सेना-सहित पूर्णतः सुसज्ज होकर खड़ा हो गया, त्यों ही लवणासुर वन से लौट आया । २८ गायों और ब्राह्मणों को मारकर प्रेत-समूह सिर पर लिये हुए जब वह लौटा, तो उसने देखा कि उसका अपना घर मानव योद्धाओं के दल से घिरा हुआ

घेऊन । तों वेष्टिलें देखे सदन । मानववीरदळेंसीं । २९ नयनीं देखोनि मानवभार । परम आनंदला लवणासुर । म्हणे ईश्वरें मज आहार । सदनाप्रती पाठविला । ३० कृतान्तवत हांक फोडूनी । लवणें शत्रुघ्नासी देखोनी । परम क्रोधें आला धांवूनी । तों शूळ हिरोनि नेलासे । ३१ मग क्रोधावला दारुण । म्हणे तूं मनुष्याचा नंदन । तुज मारून अयोध्यापट्टण । क्षणमात्रें घेईन आतां । ३२ माझा मातुळ रावण । रामें मारिला कपटेंकरून । परी त्या राघवासी वधून । सीता आणीन बळेंचि । ३३ तुम्हां चौघांस मारून । मातुळाचा सूड घेईन । आजि प्रथम अवदान । तुझें घेईन शत्रुघ्ना । ३४ लवणासी म्हणे शत्रुघ्न । मशका तुज येथेंच वधीन । जैसा मारावया मत्कुण । उशीर कांहीं न लागेचि । ३५ वृक्ष उपडोनि सत्वर । वेगें धांवला लवणासुर । तों शत्रुघ्नें सोडिला शर । चापावरी लावूनियां । ३६ तेणें तो वृक्ष छेदिला । असुरें पर्वत भिरका-

है । २९ आँखों से मानव-समुदाय को देखते ही लवणासुर परम आनंदित हुआ और उसने कहा (सोचा)— 'भगवान ने मेरे लिए आहार मेरे घर भेज दिया है।' ३० तब कृतान्त की भाँति चीखते-चिल्लाते हुए लवणासुर शत्रुघ्न को देखकर परम क्रोध से दौड़ते हुए आया। तो (विदित हुआ कि) कोई शूल छीनकर ले गया है। ३१ तब वह भयंकर रूप से क्रोध को प्राप्त हुआ और बोला— 'तू तो मनुष्य का लड़का है। तुझे मारकर मैं अब अयोध्यापुरी को मात्र क्षण में ले लूँगा। ३२ मेरे मामा रावण को राम ने कपट-पूर्वक मार डाला। परन्तु मैं उस राम का वध करके सीता को बल-पूर्वक ले आऊँगा। ३३ तुम चारों को मार डालकर मैं अपने मामा (के वध) का बदला लूँगा। रे शत्रुघ्न, आज पहले मैं तेरी आहुति ले लूँगा।' ३४ इसपर शत्रुघ्न ने लवणासुर से कहा— 'रे मच्छड़, जैसे खटमल को मारने में कोई भी देर नहीं लगती, वैसे मैं यहीं तेरा वध करूँगा।' ३५ (यह सुनते ही) झट से वृक्ष उखाड़कर लवणासुर वेग-पूर्वक दौड़ा, तो शत्रुघ्न ने धनुष पर बाण चढ़ाकर छोड़ दिया। ३६ उसने उस (बाण से) वह वृक्ष छेद डाला, तो उस असुर ने एक पर्वत फेंका। कैकेयी-नन्दन ने क्षण मात्र न लगते उसे भी फोड़

† टिप्पणी रावण की भगिनी कुंभीनसी का विवाह मथुरा के निकटवर्ती मधुवनवासी मधु दैत्य से हुआ था। लवण कुंभीनसी-मधु का पुत्र, अतएव रावण का भानजा था।

विला । तोही कैकयीनंदनें फोडिला । क्षणमात्र न लागतां । ३७
कोटयनुकोटी बाण । शत्रुघ्नें मोकलिले दारुण । परी तो न
मानीच लवण । बाण तृणवत तयासी । ३८ जैसा कां वर्षे घन ।
तैसे टाकी वृक्ष पाषाण । ते बाणें वरी फोडोन । वीर शत्रुघ्न
टाकीतसे । ३९ मग शत्रुघ्नें तये वेळां । बाण विचारून
काढिला । जो कमळासनें निर्मिला । मधुकैटभवधालागीं । ४०
विधीनें तो बाण तत्त्वतां । रघुपतीसी दिधला होता । तो
लवणवधासी निघतां । रामें दिधला शत्रुघ्ना । ४१ तो बाण
शत्रुघ्नें योजिला । जैसी प्रकटली प्रळयचपळा । तैसा चापा-
पासोनि सुटला । वेगें आला लवणावरी । ४२ तेणें डळमळलें
भूमंडळ । देवांसी विमानीं सुटला पळ । वज्रें चूर्ण होय
अचळ । तैसा हृदयीं भेदला । ४३ मेरूवरूनि पडे ऐरावत ।
तैसा जाहला असुरदेहपात । प्राण निघोनि गेला त्वरित ।
पडलें प्रेत धरणीवरी । ४४ विजयी जाहला शत्रुघ्न । सुमनें
वर्षती सुरगण । तत्काळ मथुरापट्टण । प्रजा नेऊन भरियेलें । ४५

डाला । ३७ (फिर) शत्रुघ्न ने करोड़ों बाण छोड़े, फिर भी वह लवणा-
सुर उन्हें गिनता ही नहीं था। उसके लिए वे बाण (मानो) घास
(के तिनकों)- से (जान पड़ते) थे । ३८ जैसे मेघ (जल-धारा)
बरसाता है, वैसे वह वृक्ष और पाषाण फेंकता था, (परन्तु) वीर
शत्रुघ्न उन्हें बाणों से ऊपर (ही) फोड़ डालता था । ३९ फिर उस
समय सोच-विचार कर शत्रुघ्न ने वह बाण निकाला, जिसका ब्रह्मा ने मधु
और कैटभ के वध के लिए निर्माण किया था । ४० ब्रह्मा ने वस्तुतः वह
बाण राम को दिया था । लवण-वध के लिए निकलने पर शत्रुघ्न को
राम ने वह बाण दिया था । ४१ शत्रुघ्न ने वह बाण धनुष पर चढ़ाया ।
जैसे प्रलय-काल में बिजली प्रकट हो गयी हो, वैसे वह धनुष से निकला
और वेग-पूर्वक लवण की ओर आया । ४२ उससे भू-मंडल काँप उठा;
विमानों में (बैठे हुए) देवों को भागना पड़ा । जैसे वज्र से पर्वत चूरचूर
हो जाता हो, वैसे (चूर-चूर करते हुए) वह (बाण लवणासुर के) हृदय
में गड़ गया । ४३ (फल-स्वरूप) जैसे मेरु पर से ऐरावत गिर गया हो,
वैसे (गिरकर) उस असुर का शरीर-पात हो गया । उसके प्राण झट से
निकल गये और शव धरती पर गिर गया । ४४ (इस प्रकार)
शत्रुघ्न विजयी हुआ तो देवगणों ने फूल बरसा दिये । (फिर शत्रुघ्न ने)
प्रजा को ले जाकर मथुरा-नगर भर दिया (लोगों को नगर भर में रहने

जैसें अयोध्यापुर सुंदर । तैसेंच मथुरा जाण नगर । देश भरला समग्र । दुःख दरिद्र पळालें । ४६ जय पावला शत्रुघ्न । कळलें रघुपतीस वर्तमान । छत्रचामरादि संपूर्ण । राजचिन्हें पाठविलीं । ४७ शत्रुघ्नावरी धरून छत्र । केला मथुरेचा नृपवर । समुद्रपर्यंत समग्र । देश तयासी दीधला । ४८ तों अयोध्येमाजी ते वेळे । एक नवल परम वर्तलें । एकादश सहस्र वर्षें केलें । अयोध्येचें राज्य श्रीरामें । ४९ रामराज्या-माजी मृत्य । अकाळीं नसेच सत्य । तंव तेथें एक ब्राह्मणसुत । मरण अकस्मात पावला । ५० झालें त्याचें व्रतबंधन । तों सवेंच पावला मरण । तंव पित्यानें उचलोन । राजद्वारा आणिला । ५१ राघवास म्हणे ब्राह्मण । त्वां काय केलें दोषाचरण । अकाळीं बाळ पावला मरण । करीं प्रयत्न लव-करी । ५२ परम चिंताक्रान्त रघुनाथ । तंव पातला कमलो-द्भवसुत । सीताकान्तें वृत्तान्त । नारदासी सांगीतला । ५३ नारद म्हणे जानकीपती । कोणी तप करितो शूद्रयाती । त्या

दिया) । ४५ समझिए कि अयोध्यानगरी जैसी सुन्दर थी, वैसी ही मथुरा-नगरी थी । समग्र देश (धन-धान्य से) भर गया और दुःख तथा दारिद्र्य भाग गया । ४६ (जब) श्रीराम को यह समाचार विदित हुआ कि शत्रुघ्न जय को प्राप्त हो गया है, तो उन्होंने छत्र, चामर आदि समस्त राज-चिह्न भेज दिये । ४७ (फिर) शत्रुघ्न पर (राज-) छत्र धरवाते हुए उन्होंने उसे मथुरा का राजा बना दिया और समुद्र तक का समस्त प्रदेश उसे प्रदान किया । ४८

तब उस समय अयोध्या में एक परम आश्चर्य घटित हुआ । (तब तक) श्रीराम ने ग्यारह सहस्र वर्ष अयोध्या का राज्य किया था । ४९ राम-राज्य में सचमुच (कभी) कोई (किसी की) अकाल मृत्यु हुई ही नहीं थी । (परन्तु) तब वहाँ एक ब्राह्मण-पुत्र यकायक मृत्यु को प्राप्त हो गया । ५० उसका यज्ञोपवीत (संस्कार) हुआ, तो साथ ही (तत्काल) वह मृत्यु को प्राप्त हो गया । तब उसका पिता उसे उठाये हुए राजद्वार पर ले आया । ५१ (फिर) वह ब्राह्मण राम से बोला— 'आपने (ऐसा) क्या पापाचरण किया है, जिससे मेरा पुत्र अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गया है ? (अब) झट से (इसे बचाने के लिए) यत्न कीजिए ।' ५२ (यह सुनते ही) रघुनाथ परम चिन्तातुर हो गये । तब ब्रह्मा का पुत्र मुनि नारद (वहाँ) आ गया, तो राम ने वह समाचार उससे कहा । ५३ नारद

पापेंकरूनि निश्चितीं । ऋषिकुमर निमाला । ५४ तप करणें हा ब्राह्मणांचा धर्म । इतरांसी तो सहजचि अधर्म । शूद्र तप आचरतां परम । अकाळीं मरण होय पैं । ५५ ऐसें बोलतां ब्रह्मनंदन । राम चिंती पुष्पकविमान । तें तत्काळ आलें धांवोन । राघवें बाहिलें म्हणोनियां । ५६ प्रधान सेनेसहित तत्काळ । वरी आरूढे तमालनील । शोधूं लागला पृथ्वीमंडळ । गुहा अचळ कठिण स्थानें । ५७ जो जो तपस्वी दृष्टीं दिसे । तयास कोण जाती राघव पुसे । तंव ते बोलती त्याचिसरसे । श्रेष्ठ वर्ण ब्राह्मण । ५८ तयांसी राघव नमून । करी मग तयांचें पूजन । याचपरी उर्वी संपूर्ण । रघुनंदन शोधीतसे । ५९ दक्षिणपंथें शोधी श्रीराम । तों द्रुम लागले निबिड परम । गिरिकंदरीं एक अधम । किरात तप करीतसे । ६० तेणें आरंभिलें धूम्रपान । तयास पुसे जनकजारमण । कोण वेद

बोला— ' हे जानकी-पति, कोई शूद्र-वर्ण (में उत्पन्न व्यक्ति) तप कर रहा है । उस पाप के कारण निश्चय ही यह ऋषि-पुत्र मर गया है । ५४ तप करना ब्राह्मणों का धर्म है; इतर जनों के लिए वह स्वाभाविक ही अधर्म है । शूद्र द्वारा परम तप का आचरण करने पर (लोगों की) अकाल में मृत्यु होने लगती है । ' ५५ ब्रह्मा-नन्दन नारद के ऐसा कहने पर राम ने पुष्पक विमान का चिन्तन किया, तो (यह समझकर कि) राम ने बुलाया है, वह तत्काल दौड़ता हुआ आ गया । ५६ तमालनील श्रीराम तत्काल मन्त्री और सेना-सहित उसमें आरूढ़ हो गये और, पृथ्वी-मंडल पर गुफाएँ, पर्वत, दुर्गम स्थान ढूँढ़ने लगे । ५७ जो-जो तपस्वी दिखायी देता, उससे श्रीराम पूछते कि वह कौन जाति (वर्ण) है । तब वे साथ ही (तत्काल) कहते, ' हम श्रेष्ठ वर्णीय ब्राह्मण हैं । ' ५८ श्रीराम उन्हें नमस्कार करके फिर उनका पूजन करते । इसी प्रकार रघुनन्दन ने सम्पूर्ण पृथ्वी ढूँढ़ ली । ५९ (जब) श्रीराम दक्षिण-पंथ (वाले प्रदेश) में ढूँढ़ने लगे, तो परम घने वृक्ष लग गये । (वहाँ) पर्वत-कंदरा में कोई अधम किरात तप कर रहा था । ६० उसने धूम्र-पान§ आरम्भ किया था । उससे सीता-पति ने पूछताछ की । वे बोले— ' तुम्हारा कौन वेद है ? कौन वर्ण है ? तप किसलिए आरम्भ किया है ? ' ६१ तब उसने कहा— ' मैं किरात हूँ (और) स्वर्ग (-प्राप्ति) के निमित्त यहाँ तप कर रहा हूँ । ' ऐसा सुनते

---

§ टिप्पणी : धूम्रपान—धुनी पर उल्टे लटकाकर साँस के द्वारा धुआँ पेट में लेना, योगियों की तपस्या की विधा ।

कोण वर्ण । तप किमर्थ आरंभिलें । ६१ तंव तो म्हणे मी किरात । स्वर्गानिमित्त तप करितों येथ । ऐकतां कोपला जानकीनाथ । म्हणे हा आचरत परम अधर्म । ६२ बाण तीक्ष्ण परम चपळ । छेदिलें तयाचें कंठनाळ । तो उद्धरूनि तत्काळ । स्वर्गलोक पावला । ६३ तों विमानीं बैसोन अमरनाथ । रघुनाथासी येऊनि भेटत । म्हणे बरा वधिला किरात । पुरले मनोरथ देवांचे । ६४ सीतावल्लभा रघुनंदना । पुराणपुरुषा गुणसंपन्ना । मज कांहीं सांगावी आज्ञा । ते मी सिद्धी पाववीन । ६५ रघुनाथ म्हणे ऋषिनंदन । अयोध्येंत पावला मरण । तयासी द्यावें जीवदान । सहस्रनयन अवश्य म्हणे । ६६ इंद्रआज्ञेंकरून । परतला ऋषिपुत्राचा प्राण । जैसा ग्रामासी जातां पंथींहून । येत परतोन माघारा । ६७ बहुतांचे सुत त्यावेगळे । पूर्वी होते जे निमाले । तेही इंद्रें आणोनि दिधले । तद्रूप तैसेच पूर्ववत । ६८ उसणी जेवीं वस्तु नेत । ती परतोनि तैसीच देत । तैसे तयांचे त्यांसी सुत । अमरेश्वरें दीधले । ६९ असो इकडे अयोध्यापती । अगस्तीच्या

ही सीता-नाथ क्रुद्ध हो गये और बोले— 'यह परम अधर्म का आचरण कर रहा है।' ६२ फिर उन्होंने एक तीक्ष्ण और परम चपल बाण से उसके कंठ-नाल को काट डाला। (फल-स्वरूप) वह तत्काल उबरकर स्वर्गलोक को प्राप्त हो गया। ६३ तब विमान में बैठ हुए आकर इन्द्र राम से मिला और बोला— 'अच्छा हुआ, जो आपने इस किरात का वध किया। देवों के मनोरथ पूर्ण हो गये। ६४ हे सीता-वल्लभ रघुनन्दन, हे पुराण-पुरुष, हे गुण-सम्पन्न, मुझे कोई आज्ञा दीजिए, उसे मैं सिद्धि को प्राप्त कराऊँगा।' ६५ (इसपर) श्रीराम ने कहा— 'एक ऋषि-पुत्र अयोध्या में मृत्यु को प्राप्त हुआ है; उसे जीव-दान दो।' तो सहस्र-नयन इन्द्र ने कहा– 'अवश्य'। ६६ (फिर) इन्द्र की आज्ञा से ऋषि-पुत्र के वैसे ही प्राण लौट आये, मानो दूसरे ग्राम (के प्रति) जाते-जाते, वे मार्ग में से ही लौटे हों। ६७ (उसी प्रकार) इन्द्र ने उसके अतिरिक्त अन्य बहुतों के वे पुत्र भी पूर्ववत् उसी रूप में लौटाकर ला दिये, जो पूर्वकाल में चल बसे थे। ६८ जैसे कोई किसी की वस्तु उधार ले जाता है, और उसे वैसी ही (वस्तु) लौटा देता है, वैसे ही इन्द्र ने उनके पुत्र उन्हें प्रदान किये। ६९

अस्तु। इधर अयोध्या-पति श्रीराम वन-उपवन यों ही देखते-देखते

काननाप्रती। जाता जाहला सहजगती। वनें उपवनें विलोकीत। ७० तों पुढें दोन पक्षी येऊन। राघवासी घालिती लोटांगण। म्हणती आमुचा वाद निवडोन। पुढें जावें राघवेंद्रा। ७१ तें रघूत्तमें ऐकोन। स्थिर केलें तेव्हां विमान। तों उलूक गृध्र दोघे जण। बोलते जाहले तेधवां। ७२ दिवाभीत बोले वचन। गृह माझें पूर्वींहून। हा गृध्र मज दवडून। बळेंच येथें नांदतो। ७३ मग गृध्र वचन बोलत। उगेंच पीडितो दिवाभीत। गृह माझें यथार्थ। बहुकाळ येथेंचि। ७४ प्रधानास म्हणे सीतावर। यांचा वाद निवडावा सत्वर। सत्य निवडोन मंदिर। ज्याचें त्यास देइंजे। ७५ तों गृध्र बोले पापमती। जंव येथें पृथ्वी नव्हती। तों या वृक्षावरी निश्चितीं। गृह माझें म्यां रचियेलें। ७६ दिवाभीत बोले वचन। ईश्वरें पृथ्वी केली निर्माण। मग वृक्ष वाढला पूर्ण। म्यां सदन निर्मिलें तैं। ७७ प्रधान म्हणे गृध्र सत्य। बहुत काळाच्या गोष्टी सांगत। ऐकोनि हांसिन्नला रघुनाथ। म्हणे केवीं हा अर्थ निवडिला। ७८ पृथ्वी वृक्षास आधार। नीडासी

अगस्त्य के वन की ओर चले गये। ७० तब सामने आकर दो पक्षियों ने राम को दंडवत् प्रणाम किया और कहा-- 'हे राघवेन्द्र, हमारा विवाद निपटाकर आगे चलें।' ७१ उसे सुनकर रघूत्तम ने, विमान को स्थिर कर दिया (रोक दिया), तो तब उल्लू और गिद्ध दोनों जने बोलने लगे। ७२ उल्लू ने यह बात कही-- 'पहले से (यह) मेरा घर है। यह गिद्ध मुझे भगाकर हठपूर्वक ही यहाँ रह रहा है।' ७३ तब गिद्ध ने यह बात कही-- 'यह उल्लू मुझे बिना किसी कारण सता रहा है। सच-मुच बहुत (दीर्घ) काल से मेरा घर यहीं है।' ७४ (यह सुनकर) श्रीराम ने मन्त्री से कहा-- 'इनके विवाद को झट से निपटा दो और सच्चे रूप से घर चुनकर जिसका हो उसे दो।' ७५ तो पापमति गिद्ध बोला— 'जब यहाँ पृथ्वी (तक) नहीं थी, तब से इस वृक्ष पर निश्चय ही मैंने अपना घर बना लिया है।' ७६ इस पर उल्लू ने यह बात कही— '(पहले) भगवान् ने पृथ्वी का निर्माण किया, तदनन्तर वृक्ष पूर्ण बढ़ गया, तो मैंने घर बना लिया।' ७७ (तब) मन्त्री ने कहा-- 'सत्य ही यह गिद्ध बहुत (बड़े) काल की बातें कर रहा है।' यह सुनकर रघुनाथ हँस दिये और बोले-- 'यह अर्थ तुमने कैसे चुन लिया ? ७८ पृथ्वी वृक्ष के लिए आधार है, (और) घोंसले के लिए वृक्ष आधार है। यह दुरात्मा

आश्रय तरुवर। दुरात्मा गृध्र साचार। उलूकालागीं पीडितसे। ७९ निवडूनी यथार्थ व्यवहार। राम उलूकासी देत मंदिर। म्हणे हा गृध्र चांडाळ थोर। यासी वधीन मी आतां। ८० बाण काढिला तये क्षणीं। तंव गर्जिली आकाशवाणी। म्हणे हे राम कोदंडपाणी। यासी न मारीं सर्वथा। ८१ हा पूर्वीं भूपति ब्रह्मदत्त। गौतमऋषीचा अंकित। याचे सदना अकस्मात। भोजना आला गौतम ऋषि। ८२ तयासी येणें मांस वाढिलें। देखतां गुरूचें मन क्षोभलें। तत्काळ यासी शापिलें। गृध्र होईं म्हणोनियां। ८३ मग लागला गुरुचरणीं। उच्छाप बोले गौतम मुनी। रामदर्शन होतां ते क्षणीं। जासी उद्धरून स्वर्गातें। ८४ ऐसें देववाणी बोलत। तों विमान पातलें अकस्मात। दिव्य देह पावला ब्रह्मदत्त। भावें नमीत रामचंद्रा। ८५ स्तवोनियां कोदंडपाणी। तत्काळ बैसला विमानीं। रघुवीरप्रतापेंकरूनी। स्वर्गीं सुखी राहिला। ८६ असो कलशोद्भवाचे आश्रमासी। येता जाहला अयोध्यावासी।

गिद्ध सचमुच उलूक को सता रहा है।' ७९ (इस प्रकार) यथार्थ व्यवहार का चयन करके राम ने उस उलूक को वह घर दिया और कहा--'यह गिद्ध बड़ा चंडाल (पापी) है, मैं अब इसका वध करूंगा।' ८० उस क्षण उसने बाण निकाला, तो वहाँ आकाशवाणी गरज उठी, वह बोली--'हे कोदंड-पाणि राम, इसे बिलकुल न मारें। ८१ पूर्वकाल में यह ब्रह्मदत्त नामक राजा था। वह गौतम ऋषि का अंकित था। तब गौतम ऋषि यकायक इसके घर भोजन के लिए आया। ८२ इसने उसके लिए मांस परोसा। यह देखते ही गुरु का मन क्षुब्ध हो उठा और उसने तत्काल इसे शाप दिया कि तुम गृद्ध हो जाओगे। ८३ फिर यह (जब) पांव लग गया, तो गुरु गौतम मुनि ने शाप-मोचन बताया--श्रीराम के दर्शन होने पर उस क्षण तुम उबरकर स्वर्ग जाओगे। ८४ देववाणी ने ऐसा कहा, तो सहसा एक विमान आ पहुँचा। ब्रह्मदत्त दिव्य देह को प्राप्त हो गया और उसने भक्तिभाव से श्रीरामचन्द्र को नमस्कार किया। ८५ कोदंड-पाणि श्रीराम का स्तवन करके वह तत्काल विमान में बैठ गया। (तदनन्तर) श्रीराम के प्रताप से स्वर्ग में सकुशल रहने लगा। ८६

अस्तु। अयोध्या-निवासी श्रीराम अगस्त्य के आश्रम में आ गये। (फिर) ऋषि को साष्टांग नमस्कार करके श्रीराम खड़े रह गये। ८७

साष्टांग नमून ऋषीसी। राघव उभा राहिला। ८७ बहुत करून आदर। आश्रमीं पूजिला रघुवीर। हस्तकंकण एक सुंदर। ऋषीनें दिधलें राघवा। ८८ पृथ्वीचें मोल संपूर्ण। ऐसें एक एक जडलें रत्न। तें सीतावल्लभें देखोन। घटोद्भ-वाप्रती पुसतसे। ८९ म्हणे यासी निर्मिता चतुरानन। स्वर्गींची वस्तु प्रभाघन। मनुष्यांसी दुर्लभ पूर्ण। तुम्हांस कैसी लाधली। ९० मग अगस्ति ते कथा सांगत। पैल ते सरोवरीं पाहें प्रेत। हा वैदर्भदेशींचा नृपनाथ। पुण्यवंत तपोराशि। ९१ दानें केलीं अपरिमित। रामा तप आचरला बहुत। परी अन्न-दान किंचित। घडलें नाहीं यापासूनि। ९२ स्वर्गास गेला तो नृपनाथ। परी क्षुधेनें पीडिला अत्यंत। मग तयासी म्हणे पद्म-जात। नाहीं भक्षार्थ तुज येथें। ९३ नाहीं केलें अन्नदान। येथें न पाविजे दीधल्याविण। तरी तूं भूतळाप्रती जाऊन। आपुलें प्रेत भक्षीं कां। ९४ तूं भक्षितां नित्यकाळ। मांस वाढेल बहुसाल। मग तो विमानीं बैसोन भूपाळ। नित्यकाळ येत तेथें। ९५ तो तें आपुलें प्रेत भक्षून। स्वर्गासी जाय पर-

---

(तदनन्तर) अगस्त्य ऋषि ने आश्रम में बहुत सम्मान करते हुए रघुवीर का पूजन किया और उन्हें एक सुन्दर हस्त-कंकण दिया। ८८ उसमें सम्पूर्ण पृथ्वी के मूल्य के बराबर मूल्यवाला एक-एक रत्न जड़ा हुआ था। श्रीराम ने उसे देखकर अगस्त्य से (इस सम्बन्ध में) पूछा। ८९ तो वे बोले— ‘ इसका निर्माता ब्रह्मा है। स्वर्ग की वस्तु कान्ति में गहन होती है। यह मनुष्यों के लिए पूर्णतः दुर्लभ होती है। तो तुम्हें यह कैसे प्राप्त हुई ? ’ ९० तब अगस्त्य ने वह कथा कही— “ उस ओर उस सरोवर में वह प्रेत देखिए। यह विदर्भ देश का पुण्यवान् और तपोराशि नृपवर है। ९१ इसने असंख्य दान दिये। हे राम, इसने बहुत तप का भी आचरण किया। परन्तु इससे थोड़ा भी अन्न-दान नहीं हुआ। ९२ वह राजा स्वर्ग तो गया, परन्तु (वहाँ) वह भूख से अत्यन्त पीड़ित हुआ। तब ब्रह्मा ने उससे कहा— ‘ खाने के लिए तुम्हें यहाँ (कुछ भी) नहीं है। ९३ तुमने अन्न-दान नहीं दिया। यहाँ बगैर दिये (कुछ भी) नहीं प्राप्त होता। अतः तुम भू-तल जाकर अपने प्रेत को (क्यों न) खाओ ? ९४ तुम्हारे द्वारा नित्य काल खाते रहने पर भी उसका मांस बहुत बढ़ता रहेगा। ’ (अतः) तब (से) वह राजा विमान में बैठकर नित्यकाल यहाँ आया करता है। ९५ वह अपने प्रेत को खाकर स्वर्ग लौट

तोन । अन्नोदकाएवढें दान । दुजें नाहीं राघवा । ९६ भाग्य तें वैराग्य निश्चित । दैवत एक सद्गुरुनाथ । शांतिसुखाहून अद्भुत । दुजें सुख नसेचि । ९७ तिथींमाजी द्वादशी श्रेष्ठ । कीं मंत्रांत गायत्री वरिष्ठ । कीं तीर्थांमाजी सुभट । प्रयागराज थोर जैसा । ९८ तैसें दानांमाजी अन्नदान । राघवा अत्यंत श्रेष्ठ पूर्ण । असो त्या रायासी कमलासन । बोलता जाहला ते काळीं । ९९ म्हणे अगस्तीचें होतां दर्शन । तुझें कर्म खंडेल गहन । तंव एके दिवशीं येऊन । प्रेत भक्षी नृपवर । १०० तें म्यां अकस्मात देखिलें । कृपेनें हृदय माझें द्रवलें । मग म्यां तया वरदान दीधलें । कर्म खंडलें तयाचें । १ मग तो वैदर्भ-राजा तेथून । करी स्वर्गीं अमृतपान । तेणें गुरुपूजेसी संपूर्ण । मज हें कंकण समर्पिलें । २ देवांचे अंश रत्नावरी । चिंतित मनोरथ सिद्ध करी । ऐसें ऐकोनि अयोध्याविहारी । घाली करीं कंकण तें । ३ राघव म्हणे महाऋषी । दंडकारण्य म्हणती यासी । याची पूर्वकथा आहे कैसी । ते मजपासीं सांगिजे । ४ अगस्ति म्हणे मित्रकुळीं देख । मनूचा पुत्र इक्ष्वाक ।

जाता है । हे राघव अन्न और पानी के दान जितना (मूल्यवान) दूसरा कोई दान नहीं है । ९६ निश्चय ही वैराग्य ही भाग्य होता है; सद्गुरुनाथ ही एकमात्र देवता होता है, (आत्म-)शांति से प्राप्त सुख से दूसरा कोई अद्‌भुत सुख होता ही नहीं है । ९७ जैसे तिथियों में द्वादशी श्रेष्ठ होती है, अथवा मन्त्रों में गायत्री मन्त्र वरिष्ठ होता है, अथवा तीर्थ-क्षेत्रों में जैसे प्रयागराज बहुत सुन्दर है, वैसे ही, हे राघव, दानों में अन्नदान पूर्णतः अत्यन्त श्रेष्ठ होता है । उस समय ब्रह्मा उस राजा से बोला । ९८-९९ उसने कहा— अगस्त्य के दर्शन होते ही तुम्हारा यह गहन कर्म खंडित (नष्ट) होगा । तब एक दिन वह राजा (वहाँ) आकर प्रेत खाने लगा । १०० मैंने वह सहसा देखा, तो मेरा हृदय कृपा से पसीज उठा । तब मैंने उसे वरदान दिया, तो उसका (पूर्व-कृत) कर्म (-बन्धन) टूट गया (नष्ट हुआ) । १ फिर वह विदर्भ-राज तब से स्वर्ग में अमृत-पान करता है । उसने गुरु-पूजा में मुझे यह सम्पूर्ण कंकण समर्पित किया । २ देवों के जो अंश रत्नों के ऊपर हैं, वे इच्छित मनोरथों को पूर्ण कर देते हैं ।" ऐसा सुनते ही अयोध्या-विहारी श्रीराम ने वह कंकण हाथ में पहन लिया । ३ (तदनन्तर) श्रीराम ने कहा— 'हे महर्षि, इस (वन) को दंडकारण्य कहते हैं । इसकी पूर्वकथा कैसी है, वह मुझसे कह दो । ' ४

तयाचा पुत्र दंडक । तो निघाला मृगयेसी । ५ तों काननीं ऋषिआश्रम बहुत । दंडक जाय पहात । तंव भृगूचा आश्रम देखत । शोभिवंत अत्यंत जो । ६ तेथें राव बैसला क्षणभरी । तंव भृगुऋषि नव्हता मंदिरीं । घरीं तयाची होती कुमारी । अरजा नाम तियेचें । ७ देखोनियां एकान्त । कामातुर होत तो नृपनाथ । परी ते बाळ असे अत्यंत । दशवर्षांची कुमारिका । ८ दंडकें धरूनियां बळें । ऋषिकन्येप्रती भोगिलें । शरीर तियेचें अचेतन पडलें । दंडक गेला तेथूनि । ९ भृगु आश्रमासी आला त्वरित । देखे कन्या पडली मूर्च्छित । ऋषी वार्ता सांगती समस्त । दंडकें अनर्थ केला हा । ११० ऋषि क्षोभला जैसा कृतान्त । दंडकासी तेव्हां शापीत । म्हणे सेना प्रजा देश समस्त । वनें पट्टणें सर्वही । ११ वृक्ष तोय तृण धान्य । तुझें वंशा-सहित प्रधान । चांडाळा जाईं रे भस्म होऊन । सप्त दिन न लागतां । १२ ऐसें बोलतां विप्रोत्तम । सर्वही जाहले तेव्हां भस्म । नाहीं उरलें वृक्षाचें नाम । पक्षी तोय मग कैंचें । १३

(तब) अगस्त्य ने कहा— "देखिए, सूर्यकुल में मनु के इक्ष्वाकु नामक पुत्र था । उसका दंडक नामक पुत्र मृगया के लिए चल पड़ा । ५ तब वन में (जो) ऋषियों के अनेकानेक आश्रम (थे, उन्हें) देखते-देखते दंडक जा रहा था । तब उसने भृगु ऋषि के आश्रम को देखा, जो अत्यन्त शोभाय-मान था । ६ राजा वहाँ क्षण-भर बैठ गया; तब भृगु ऋषि घर (आश्रम) में न था । (परन्तु) घर में उसकी कन्या थी । उसका नाम अरजा था । ७ एकान्त देखकर वह राजा कामातुर हो गया । परन्तु वह कुमारिका तो अत्यन्त छोटी—दस-वर्षीय बालिका थी । ८ (फिर भी) दंडक ने बल-पूर्वक पकड़कर उस ऋषि-कन्या का भोग किया । (फल-स्वरूप) उसका शरीर निश्चेष्ट होकर पड़ा, तो दंडक वहाँ से चला गया । ९ जब शीघ्र ही भृगु आश्रम में आ गया, तो उसने देखा कि कन्या मूर्च्छित पड़ी है । सब ऋषियों ने यह समाचार कहा कि दंडक ने यह अनर्थ किया है । ११० (यह सुनकर) ऋषि कृतान्त की भाँति क्षुब्ध हो उठा । तब उसने दंडक को अभिशाप दिया । वह बोला— 'हे चंडाल, वृक्ष, पानी, घास, धान्य, तेरे वंश-सहित मन्त्री, सात दिन (तक) न लगते, भस्म हो जाएँगे ।' ११-१२ तब उस श्रेष्ठ ब्राह्मण द्वारा ऐसा बोलते ही सभी भस्म हो गया । वृक्ष का नाम तक शेष नहीं रहा—अर्थात् नाम के लिए तक वृक्ष शेष नहीं रहे, तो फिर पक्षी और पानी

बहुत काळपर्यंत । शून्य देश पडिला समस्त । पुढें नारदें कलह बहुत । पर्वतांमाजी लाविला । १४ मेरु आणि विंध्याचळ । उंचावले भांडती सबळ । खळबळलें सूर्यमंडळ । सृष्टि सकळ हडबडली । १५ विंध्याद्रि नाटोपे साचार । सूर्याविण पडला अंधकार । मग मिळोनि ऋषि निर्जर । मजप्रति येऊनि प्रार्थिती । १६ तुजविण विंध्याचळ । नाटोपे कोणासी परम खळ । तूं दक्षिणेस जाई तत्काळ । तीर्थयात्रा करावया । १७ मग मी वाराणसी टाकूनि त्वरित । दक्षिणेस आलों ऋषींसहित । मज देखतां विंध्याचळ पडत । पृथ्वीवरी आडवा । १८ तयासी मी बोलिलों वचन । जों मी माघारा येईं परतोन । तोंवरी न उठावें येथून । उठल्या शापीन क्षणार्धें । १९ शापधाकें पर्वत । अद्यापि न उठेचि यथार्थ । मग उगवला आदित्य । लोक समस्त सुखी जाहले । १२० तें हें दंडकारण्य ओस । ऋषींसह म्यां केला वास । इंद्रासी सांगून बहुवस । मेघवृष्टि करविली । २१ आणि धनधान्य बीजें बहुत । तींही वर्षला अमर-

---

कैसे रह जाए । १३ बहुत (दीर्घ) काल तक वह देश सूना-सूना पड़ा रहा । आगे चलकर नारद ने पर्वतों के बीच बहुत कलह लगा लिया । १४ मेरु और विंध्याचल दोनों ऊँचाई को प्राप्त हो गये और ज़ोर से झगड़ने लगे । (उससे) सूर्य-मंडल क्षुब्ध हो उठा और समस्त सृष्टि भय से हक्बका उठी । १५ विंध्याद्रि (बढ़ते-बढ़ते) सचमुच नहीं रोका जा रहा था, तो बिना सूर्य के अंधकार हो गया । तब ऋषियों और देवों ने इकट्ठा होकर मेरे पास आते हुए प्रार्थना की । १६ (वे बोले--) 'तुम्हारे सिवा यह परम खल विंध्याचल किसी से वश में नहीं किया जा सकता । (अतः) तुम दक्षिण की ओर तीर्थ-स्थलों की यात्रा करने के लिए तत्काल चले जाओ । ' १७ तब मैं वाराणसी छोड़कर ऋषियों सहित झट से दक्षिण की ओर आ गया, तो मुझे देखते ही विंध्याचल पृथ्वी पर आड़ा पड़ गया—लेट गया । १८ उससे मैंने यह बात कही-- 'जब तक मैं पीछे लौट (नहीं) आऊँ, तब तक यहाँ से मत उठो । उठने पर क्षणार्ध में अभिशाप दूँगा । ' १९ शाप के भय से वह पर्वत अभी तक सचमुच नहीं उठा है । तब सूर्य उदित हुआ, तो सब लोग सुखी हो गये । १२० वह यह उजाड़ दंडकारण्य है । मैंने यहाँ ऋषियों के साथ निवास किया । फिर मैंने इन्द्र से कहकर बहुत मेघ-वर्षा करवायी । २१ और देवेन्द्र ने बहुत धन-धान्य (तक) बरसा दिया । तब यह देश अद्भुत

नाथ । मग हा देश वसला अद्भुत । दोष दुष्काळ निमाला । २२
तैंपासूनि दंडकारण्य । राघवा म्हणती यालागून । असो यावरी
आज्ञा घेऊन । रघुनंदन निघाला । २३ पुष्पकारूढ रघुवीर ।
अयोध्येसी पातला सत्वर । तों ऋषीश्वर घेऊन कुमर । राम-
दर्शना पातले । २४ म्हणती धन्य धन्य रघूत्तमा केलें । मृतपुत्रां
माघारें आणिलें । यशाचे पर्वत उंचावले । मेरूहून आगळे
बहुत । २५ मुक्तमंडपीं रघुनाथ । शोभला तेव्हां जानकीसहित ।
भोंवते बंधु तिष्ठत । पुढें हनुमंत उभा सदा । २६ श्रीराम-
विजय ग्रंथ पावन । उत्तरकांड सुरस गहन । पुढें निजधामा
गेला रघुनंदन । हें अनुसंधान न वर्णावें । २७ तों माध्यान्हीं
प्रगटोनि रघुनाथ । म्हणे येथोनि करीं ग्रंथ समाप्त । अवतार
संपला हें चरित्र । रामविजयीं न सांगावें । २८ मी जन्ममरण-
विरहित । अभंग अक्षय शाश्वत । तोच मी ब्रह्मानंद पंढरीनाथ ।
भीमातीरीं उभा असें । २९ टाकूनियां चाप शर । दोन्ही

रूप से बस गया और न्यूनता तथा अकाल मिट गया । २२ हे राघव, तब से इसे 'दंडकारण्य' कहते हैं ।" अस्तु । इसके पश्चात् आज्ञा लेकर रघुनाथ चल दिये । २३ पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर रघुवीर झट से अयोध्या पहुँच गये, तो बड़े-बड़े ऋषि अपने-अपने पुत्रों को लेकर राम के दर्शन के लिए आ गये । २४ वे बोले— 'हे रघूत्तम, (वह) धन्य है, धन्य है, जो आपने किया है—आप हमारे मृत पुत्रों को लौटा लाये हैं । आपकी कीर्ति के पर्वत—अर्थात् कीर्तिरूपी पर्वत मेरु से भी बहुत अधिक ऊँचाई को प्राप्त हो गये हैं ।' २५ श्रीराम उस मुक्त मंडप में तब जानकी-सहित शोभायमान हो गये । चारों ओर बंधु खड़े हुए थे । हनुमान नित्य सामने खड़ा था । १२६

श्रीराम-विजय नामक यह ग्रंथ पावन है । उसका उत्तर काण्ड अत्यधिक सुरस (से युक्त अर्थात् मधुर, रसात्मक) है । आगे चलकर रघुनन्दन निजधाम चले गये । (परन्तु) इस कथा-भाग का वर्णन न करें । २७ त्यों ही मध्याह्न के समय रघुनाथ श्रीराम प्रकट होकर (कवि से) बोले— "यहाँ ग्रंथ समाप्त करो । 'श्रीराम-विजय' में यह कथा न कहना कि अवतार (किस प्रकार) समाप्त हुआ । २८ मैं (वस्तुतः) जन्म-मृत्यु-रहित हूँ; अभंग, अक्षय, शाश्वत हूँ । वही मैं ब्रह्मानन्द पंढरीनाथ (विट्ठल यहाँ) भीमा नदी के तट पर खड़ा हूँ । २९ धनुष और बाण छोड़कर और दोनों जघनों (कटि-प्रदेश) पर हाथ

जघनीं ठेवूनि कर। समपाद समनेत्र। उभा साचार मी येथें। १३० ऐसी आज्ञा होतां सत्वर। श्रीधरें घातला नमस्कार। करूनियां जयजयकार। रामविजय ग्रंथ संपविला। ३१ चाळीस अध्याय ग्रंथ तत्वतां। तुजप्रती पावो पंढरीनाथा। ब्रह्मानंदा विश्वभरिता। जगदात्मया जगद्गुरो। ३२ वाल्मीककृत मूळ ग्रंथ। हनुमंतकाव्य गोड बहुत। आणिकही ग्रंथीं सत्यवतीसुत। रामकथा बोलिला। ३३ तेथींचीं संमतें घेऊनी। पंढरीनाथें कृपा करूनी। सांगीतलें कर्णीं येऊनी। तेंच लिहिलें साक्षेपें। ३४ रामविजय वरद ग्रंथ। कर्ता याचा पंढरीनाथ। श्रीधर नाम हें निमित्त। पुढें केलें उगेंचि। ३५ या ग्रंथासी वरदान। पंढरीनाथें दीधलें आपण। वाचिती पढती जे अनुदिन। होय ज्ञान अद्भुत तयां। ३६ ओढवतां संकट

टिकाये हुए मैं यहाँ सचमुच समपाद और समनेत्र‡ रूप से खड़ा हूँ।" १३० ऐसी आज्ञा (प्राप्त) होते ही कवि श्रीधर ने साष्टांग नमस्कार किया और जय-जयकार करते हुए 'श्रीराम-विजय' ग्रंथ समाप्त किया। ३१

हे पंढरीनाथ, हे ब्रह्मानन्द, हे विश्व-व्यापी, हे जगदात्मा, हे जगद्गुरो, चालीस अध्यायों से युक्त यह ग्रंथ (तुम्हें समर्पित है, वह) तुम्हें सचमुच प्राप्त हो जाए। ३२ (श्रीराम के चरित्र सम्बन्धी) वाल्मीकि कृत मूल (आदि) ग्रंथ है; (वैसे ही) हनुमान द्वारा विरचित (राम चरित्रात्मक) काव्य (नाटक) बहुत मधुर है। सत्यवती के पुत्र व्यास ने अन्य भी ग्रंथों (विविध पुराणों) में राम-कथा कही है। ३३ वहाँ की अर्थात् उन (समस्त) ग्रंथों में से सद्विचार लेकर तथा पंढरीनाथ विट्ठल ने आकर जो कान में कहा, वही मैंने यत्नपूर्वक से लिखा है। ३४ श्रीराम-विजय वरदान देनेवाला, मनोवांछित पूर्ण करनेवाला ग्रंथ है। इसका रचयिता (वस्तुतः) पंढरीनाथ विट्ठल भगवान है। मैंने यों ही 'श्रीधर' नाम प्रस्तुत किया है। ३५ पंढरीनाथ भगवान विट्ठल ने स्वयं इस ग्रंथ को वरदान दिया है कि जो इसका प्रतिदिन पठन करेंगे, पाठ करेंगे, उन्हें अद्भुत ज्ञान प्राप्त होगा। ३६ संकट अथवा महान विघ्न आने पर,

‡ टिप्पणी समपाद और समनेत्र— वह मुद्रा जिसमें व्यक्ति का समस्त शरीर बिलकुल सीधा तना हुआ तथा सौष्ठवपूर्ण हो और दोनों पाँव एक ही सरल रेखा में हों तथा आँखें एक ही बिंदु की ओर लगी हों। पंढरपुर के विट्ठल मंदिर में भगवान की मूर्ति इसी मुद्रा की है।

महाविघ्न। एक करितां तरी आवर्तन। तत्काळ संकट जाय निरसोन। वातेंकरून अभ्र जैसें। ३७ पांच आवर्तनें करितां पूर्ण। जाती महाव्याधी निरसोन। संतति संपत्ति संपूर्ण। पावेल सत्य निर्धारीं। ३८ होऊनियां शुचिर्भूत। दहा आवर्तनें करितां सत्य। पोटीं होईल दिव्य सुत। रघुनाथभक्त प्रतापी। ३९ जरी नव्हे श्रवण पठण। नित्य करितां ग्रंथ-पूजन। तरी ते घरींचें संकट पूर्ण। हनुमंत येऊनि निवारील। १४० अद्यापि चिरंजीव हनुमंत। जे रघुनाथकथा वाचिती भक्त। त्यांस अंतर्बाह्य रक्षीत। उभा तिष्ठत त्यांजवळी। ४१ करितां रामकथा श्रवण। सप्रेम सदा वायुनंदन। ग्रंथ वाची त्यापुढें येऊन। कर जोडोनि उभा राहे। ४२ शुचिर्भूत होऊनी। रामविजय उसां घेऊनी। निद्रा करितां स्वप्नीं। मारुति दर्शन देतसे पै। ४३ ऐसा या ग्रंथाचा चमत्कार। जाणती रामउपासक नर। आधि व्याधी दुःख दरिद्र। जाय सर्वत्र ग्रंथसंग्रहें। ४४ बाळ काण्ड आठ अध्यायवरी।

इसका एक तक आवर्तन करने से वह संकट तत्काल वैसे ही नष्ट हो जाएगा, जैसे वायु से मेघ (तितर-बितर) हो जाता है। ३७ इसके पाँच आवर्तन करने से महान् व्याधियाँ नष्ट हो जाएँगी। ऐसा व्यक्ति सत्य ही सम्पूर्ण संतति और संपत्ति को प्राप्त हो जाएगा। ३८ (स्नान आदि करके) शुचिर्भूत होकर दस आवर्तन करने से सत्य ही उस व्यक्ति के श्रीराम-भक्त, प्रतापी दिव्य पुत्र उत्पन्न होगा। ३९ यदि (किसी के द्वारा इस ग्रंथ का) श्रवण या पठन न हो, तो भी इस ग्रंथ का नित्य पूजन करने से उस (के) घर के समस्त संकट का हनुमान स्वयं आकर निवारण करेगा। १४० जो भक्त श्रीराम की कथा का पठन करते हों, उनकी अन्तर्बाह्य रक्षा करते हुए चिरजीवी हनुमान अब भी उनके पास खड़ा रहता है। ४१ राम की कथा का श्रवण करके हनुमान सदा प्रेम-पूर्वक उसके सामने हाथ जोड़े खड़ा रहता है, जो इस ग्रंथ का पठन करता हो। ४२ (स्नान आदि करके) शुचिर्भूत होकर 'श्रीराम-विजय' ग्रंथ को सिरहाने लेकर जो सो जाता हो, उसके स्वप्न में उसे हनुमान दर्शन देते हैं। ४३ राम के उपासक मनुष्य जानते हैं कि इस ग्रंथ का ऐसा चमत्कार (-युक्त प्रभाव) है। इस ग्रंथ के संग्रह से आधि, व्याधि, दुःख, दारिद्र्य सर्वत्र (से) चले जाते हैं। ४४

(इस ग्रंथ के) आठ अध्यायों में बाल काण्ड है; अयोध्या काण्ड में

अयोध्या कण्ड अध्याय चारी। चार अध्याय निर्धारीं। अरण्य काण्ड प्रचंड। ४५ दोन अध्याय किष्किंधा काण्ड। तेथोनि पांच अध्याय रस वितंड। तें सुंदर काण्ड प्रचंड। लीलाचरित्र मारुतीचें। ४६ दहा अध्याय संपूर्ण। युद्ध काण्ड रसाळ गहन। सात अध्याय परम पावन। उत्तर काण्ड जाणावें। ४७ ऐसे अवघे अध्याय चाळीस। मिळून रामविजय जाहला सुरस। श्रवण करितां आसमास। ब्रह्मानंद उचंबळे। ४८ प्रथमाध्यायीं मंगलाचरण। गणेशसरस्वतीगुरुस्तवन। वाल्मीकाची उत्पत्ति सांगोन। प्रथमाध्याय संपविला। ४९ बंधूसमवेत निश्चितीं। सांगीतली रावणाची उत्पत्ती। दशरथलग्नाची गती। द्वितीयाध्यायीं निरूपिली। १५० श्रावणवध शृंगीचें आगमन। याग दशरथें केला पूर्ण। त्यावरी हनुमंतजन्मकथन। तृतीयाध्यायीं हेचि कथा। ५१ कौसल्या सुमित्रा कैकयीप्रती। डोहळे पुसों गेला नृपती। श्रीरामध्यान जन्मस्थिती। चतुर्थाध्यायीं हेचि

चार अध्याय हैं। प्रचंड अरण्य काण्ड में निश्चय ही चार अध्याय हैं। ४५ किष्किन्धा काण्ड दो अध्यायों में है। वहाँ से (आगे) अद्भुत रस से युक्त पाँच अध्याय हैं, उनसे युक्त वह प्रचंड सुन्दर काण्ड अर्थात् हनुमान का लीलाचरित्र है। ४६ दस अध्यायों का सम्पूर्ण युद्ध काण्ड अत्यधिक रसात्मक, अर्थात् मधुर है। समझिए, परम पावन उत्तर काण्ड सात अध्यायों से युक्त है। ४७ ऐसे सब कुल मिलाकर चालीस अध्याय सुरस श्रीराम-विजय ग्रंथ सिद्ध हो गया है। उसका श्रवण करने से आस-पास ब्रह्मानन्द उमड़ उठता है। ४८

पहले अध्याय में (प्रारम्भ में) मंगलाचरण है, (फिर) गणेश सरस्वती और गुरु का स्तवन है। (तदनन्तर) वाल्मीकि की उत्पत्ति बताते हुए प्रथम अध्याय समाप्त किया है। ४९ दूसरे अध्याय में निश्चित रूप से बंधुओं सहित रावण की उत्पत्ति कही है और दशरथ के विवाह की स्थिति का निरूपण किया है। १५० तीसरे अध्याय में इन्हीं की कथा कही है-- (दशरथ द्वारा) श्रवण का वध करना, शृंगी ऋषि का (पुत्र कामेष्टि यज्ञ के लिए अयोध्या में) आगमन और दशरथ ने यज्ञ (कैसे) पूर्ण किया। तत्पश्चात् हनुमान के जन्म (-सम्बन्धी घटना) का कथन किया है। ५१ चौथे अध्याय में यही कथा है— राजा (दशरथ) कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी के पास दोहद पूछने के लिए गया; (तत्पश्चात्) श्रीराम (के आविर्भाव समय) का रूप और जन्म-स्थिति का वर्णन

कथा। ५२ श्रीरामाचें मौंजीबंधन। ब्रह्मचर्य तीर्थाटण। विश्वामित्र मागे रघुनंदन। हें निरूपण पंचमाध्यायीं। ५३ योगवासिष्ठकथन। मायेनें गाधिज केला दीन। वेदान्तभाग-निरूपण। सहावा संपूर्ण जाणावा। ५४ ताटिका मर्दूनि याग रक्षिला। अहल्योद्धार पुढें केला। सीतेचा जन्म सांगितला। सातव्यामाजी संपूर्ण। ५५ आठव्यामाजी सीतास्वयंवर। अपमानिला दशकंधर। लग्न लागलें जिंकिला फरशधर। आला रघुवीर अयोध्येसी। ५६ राज्यीं बैसतां रघुनाथ। कैकयीनें केला अनर्थ। त्याकरितां दुःखी दशरथ। नवमाध्यायीं हे कथा। ५७ श्रीराम वनासी निघाला। कौसल्येनें शोक केला। जान्हवीतीरा श्रीराम आला। दशमाध्यायीं हेचि कथा। ५८ मग दशरथें त्यागिला प्राण। भरत आला मातुलगृहाहून। भक्तिरस दिव्य निरूपण। गोड बहुत अकरावा। ५९ चित्रकूटीं भेटला रघुनंदन। भरतें बहुत केलें स्तवन। नंदिग्रामीं भरत

है। ५२ श्रीराम का यज्ञोपवीत संस्कार, ब्रह्मचर्याश्रम, तीर्थाटन, (फिर) विश्वामित्र ने (अपने यज्ञ की रक्षा कराने के लिए दशरथ से) श्रीराम को माँग लिया— इसका निरूपण पाँचवें अध्याय में है। ५३ योगवासिष्ठ-कथन; माया ने गाधिज को दीन (कैसे) बना दिया; वेदान्त के अंश का निरूपण— समझिए सम्पूर्ण छठे अध्याय में यह (कहा) है। ५४ सातवें सम्पूर्ण अध्याय में कहा है कि (श्रीराम ने) ताड़का का वध करके यज्ञ की रक्षा (कैसे) की; (फिर उन्होंने) आगे अहल्या का उद्धार (कैसे) किया; (तदनन्तर) सीता का जन्म (कैसे) हुआ। ५५ आठवें (अध्याय) में कहा है— सीता (का) स्वयम्वर (कैसे हुआ), दशानन (कैसे) अपमानित हुआ, विवाह (कैसे) हुआ और रघुवीर ने परशुराम को (कैसे) जीत लिया और अयोध्या में वे (कैसे) आ गये। ५६ रघुनाथ के राज्यासन पर बैठते समय कैकेयी ने अनर्थ (विघ्न कैसे उत्पन्न) किया और उसके कारण दशरथ (कैसे) दुखी हो गया— नवें अध्याय में यही कथा है। ५७ श्रीराम वन की ओर जाने के लिए (अयोध्या से) निकले; कौसल्या ने शोक किया; श्रीराम गंगा के तट तक आ गये— दशवें अध्याय में यही कथा है। ५८ फिर दशरथ ने प्राण त्याग दिये, भरत मामा के घर से आया; दिव्य भक्ति रस का निरूपण होने के कारण (इन घटनाओं को प्रस्तुत करनेवाला) ग्यारहवाँ अध्याय बहुत मधुर बन पड़ा है। ५९ बारहवें अध्याय में इसका निरूपण हुआ है— श्रीराम चित्र-

स्थापन । हें निरूपण बाराव्यांत । १६० बहुत ऋषींचें दर्शन । घेता जाहला रघुनंदन । अगस्तीचा महिमा पूर्ण । तेराव्यांत कथियेला । ६१ शूर्पणखा विटंबून । वधिले त्रिशिरा खर दूषण । दशमुखासी वर्तमान । हेचि कथा चवदाव्यांत । ६२ मृग वधूं गेला रघुनंदन । सीता घेऊनि गेला रावण । जटायु वधिला कपटेंकरून । पंधराव्यांत हेचि कथा । ६३ सीताविरहें राम व्यापिला । त्यावरी जटायु उद्धरिला । पंपासरोवरीं आला । सोळाव्यांत हेचि कथा । ६४ वाळिसुग्रीवांची उत्पत्ती । मग शक्रसुत वधी रघुपती । सत्रावे अध्यायीं निश्चितीं । कथा हेचि निश्चयें । ६५ तारेप्रती बोध करून । शुद्धीस गेले वानर-गण । समुद्रतीरीं संपातीदर्शन । हें निरूपण अठराव्यांत । ६६ समुद्र उल्लंघून लंका शोधून । रावणसभा विटंबून । विजयी जाहला वायुनंदन । हें चरित्र एकोणिसाव्यांत । ६७ हनुमंतास सीतादर्शन । विध्वंसिलें अशोकवन । वधिला अखया आणि

कूट में भरत से मिले; भरत ने उनका बहुत स्तवन किया, नंदिग्राम में भरत की स्थापना हो गयी (भरत ने निवास किया) । १६० तेरहवें अध्याय में कहा है कि श्रीराम ने अनेक ऋषियों के दर्शन किये, तदनन्तर अगस्त्य की सम्पूर्ण महिमा (भी) कही है । ६१ चौदहवें अध्याय में यही कथा कही है कि शूर्पणखा की दुर्गत करके त्रिशिरा, खर और दूषण का वध किया गया और यह समाचार रावण को विदित हुआ । ६२ पंद्रहवें अध्याय में यही कथा है कि जब श्रीराम मृग का वध करने गये, तो रावण सीता (का अपहरण करके) ले गया और उसने कपट से जटायु का वध किया । ६३ सोलहवें अध्याय में यही कथा है— सीता के विरह से श्रीराम व्याप्त हो गये; तदनन्तर उन्होंने जटायु का उद्धार किया और वे पम्पा सरोवर के पास आ गये । ६४ निश्चय ही सत्रहवें अध्याय में यह कथा कही है— बाली और सुग्रीव की उत्पत्ति (कैसे) हुई; फिर श्रीराम ने बाली का वध (कैसे) किया । ६५ अठारहवें अध्याय में यह निरूपण किया है कि श्रीराम ने तारा को उपदेश दिया, वानर-गण सीता की खोज के लिए गये; उन्होंने समुद्रतट पर सम्पाति को देखा । ६६ उन्नीसवें अध्याय में यह लीला-चरित्र कहा है कि हनुमान समुद्र को लाँघकर लंका में सीता की खोज करके रावण की सभा की दुर्दशा करते हुए विजयी हो गया । ६७ बीसवें अध्याय में यह कथा (प्रस्तुत) है— हनुमान को सीता के दर्शन हो गये, (तदनन्तर) उसने अशोक वन उध्वस्त किया

राक्षस संपूर्ण । हेचि कथा विसाव्यांत । ६८ इंद्रजिताचें विटंबन । रावणा छळूनि लंकादहन । किष्किंधेसी आला अंजनीनंदन । हेचि कथा एकविसाव्यांत । ६९ ब्रह्मपाशबंधन । मिष घेऊनि वायुनंदन । सागरीं पुच्छ विझवून । सुवेळेसी पातला । १७० ब्रह्मपत्न वाचून । समुद्रतीरास आला रघुनंदन । मग बिभीषणें बोधिला रावण । हेचि कथा बाविसाव्यांत । ७१ मग बिभीषण भेटे श्रीरामास येऊन । सागरदर्शन सेतुबंधन । सुवेळेसी आला सीतारमण । हें निरूपण तेविसाव्यांत । ७२ कापटच दाविलें सीतेसी । मंदोदरी भेटली जनककन्येसी । मग सुग्रीवें त्रासिलें रावणासी । कथा हेच चोविसाव्यांत । ७३ अंगदें बोधिला रावण । अपार युद्ध जाहलें दारुण । नागपाशीं बांधिले रामलक्ष्मण । हे लीला पंचविसाव्यांत । ७४ प्रहस्तवध मंदोदरीनीती । मग युद्धा आला लंकापती । तो पराभव पावला निश्चितीं । हें चरित्र सव्विसाव्यांत । ७५ जागा केला कुंभकर्ण । त्यावरी युद्ध जाहलें दारुण । समरीं घटश्रोत्रें

और अक्षयकुमार तथा समस्त राक्षसों का वध किया । ६८ इक्कीसवें अध्याय में यह कथा है कि इन्द्रजित की दुर्दशा करके रावण को सताते हुए हनुमान लंका को जलाकर किष्किन्धा लौट आया । हनुमान ने ब्रह्म-पाश में आबद्ध होने का स्वाँग लिया था (जिससे वह रावण की सभा में लाया जा सका) । लंकादहन के पश्चात् समुद्र में पूँछ को बुझाकर (सीता से बिदा होकर) वह सुवेल आ गया । ६९-१७० ब्रह्मा द्वारा लिखित पत्र पढ़कर श्रीराम समुद्र-तट तक आ गये । (इधर) तब विभीषण ने रावण को उपदेश दिया--यह कथा बाईसवें अध्याय में प्रस्तुत है । ७१ तेईसवें अध्याय में इसका निरूपण हुआ है कि विभीषण आकर श्रीराम से मिला, सागर ने आकर श्रीराम के दर्शन किये, सेतु बनाया गया और श्रीराम सुवेल आ गये । ७२ (रावण द्वारा) सीता को कपट (से श्रीराम का वध) दिखाया गया; (तत्पश्चात्) मन्दोदरी सीता से मिली; फिर सुग्रीव ने रावण को सताया—यही कथा चौबीसवें अध्याय में है । ७३ पचीसवें अध्याय में यह लीला प्रस्तुत है—अंगद ने रावण को उपदेश दिया; फिर असीम दारुण युद्ध हुआ; राम-लक्ष्मण नागपाश में आबद्ध हो गये । ७४ छब्बीसवें अध्याय में यह लीला है—प्रहस्त का वध हुआ; मन्दोदरी ने नीति-युक्त वचन कहे, फिर भी रावण युद्ध के लिए आ गया, तो वह निश्चय ही पराजय को प्राप्त हो गया । ७५

दिधला प्राण। हें निरूपण सत्ताविसाव्यांत। ७६ नराग्तकादि सहा जण पाडिले। शक्रजितें शरजाल सोडिलें। मारुती द्रोणाचळ आणी ते वेळे। अठ्ठाविसाव्यांत हेचि कथा। ७७ निकुंभिलेसी जाऊन। वानरीं होम विध्वंसून। शक्रजितासी मारी लक्ष्मण। एकुणतिसाव्यांत हेचि कथा। ७८ तिसाव्यांत सुलोचनागहिंवर। एकतिसाव्यांत अहिमहीसंहार। शक्ति भेदोनि निर्धार। बत्तिसावा संपूर्ण पैं। ७९ रावणाचा होम विध्वंसून। अपार माजविलें तेव्हां रण। रावण वधोनि स्थापिला बिभीषण। हें चरित्र तेतिसाव्यांत। १८० जानकीनें दिव्य देऊन। मग इंद्र वर्षला अमृतपर्जन्य। देव स्वस्थाना गेले स्तवून। हे कथा संपूर्ण चौतिसाव्यांत। ८१ पुष्पकीं बैसोन रघुनंदन। घेतलें अगस्तीचें दर्शन। त्यावरी भरतभेटी पूर्ण। हें चरित्र पस्तिसाव्यांत। ८२ नंदिग्रामीं राहिला राघवेश। मग केला अयोध्याप्रवेश। राज्यीं स्थापून रामास।

सत्ताईसवें अध्याय में इसका निरूपण है--(रावण द्वारा) कुम्भकर्ण को जगाया गया; इसके पश्चात् दारुण युद्ध हो गया। युद्ध में कुम्भकर्ण ने प्राण त्याग दिये। ७६ अट्ठाईसवें अध्याय में यह कथा है—नरान्तक आदि छ: जने गिराये गये; इन्द्रजित ने बाण-जाल फैला दिया; उस समय हनुमान् द्रोणगिरि ले आया। ७७ वानरों द्वारा निकुंभिला में जाकर हवन को उध्वस्त करने के पश्चात् लक्ष्मण ने इन्द्रज़ित को मार डाला। यही कथा उनतीसवें अध्याय में है। ७८ तीसवें अध्याय में सुलोचना के (शोक से) गद्‌गद होने की कथा है, तो इकतीसवें में अहि-महिरावण के संहार का वर्णन है। निश्चय ही शक्ति को भेदने की कथा कहकर बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण किया है। ७९ तैंतीसवें अध्याय में यही चरित्र-लीला है--तब रावण के होम का विध्वंस करने के पश्चात् अपार युद्ध किया गया। (फिर श्रीराम ने) रावण का वध करके विभीषण को (लंका के राजा के रूप में) विराजमान करा दिया। १८० चौंतीसवें अध्याय में यह सम्पूर्ण कथा है--जानकी द्वारा शपथ-पूर्वक अग्नि-दिव्य करने के पश्चात् इन्द्र ने अमृत की वर्षा की। तदनन्तर (श्रीराम का) स्तवन करके देव अपने-अपने स्थान चले गये। ८१ पैंतीसवें अध्याय में यह पूर्ण चरित्र-लीला है--पुष्पक विमान में बैठकर (अयोध्या की ओर जाते समय) श्रीराम ने अगस्त्य के दर्शन किये। तदनन्तर (श्रीराम-) भरत-भेंट हो गयी। ८२ श्रीराम (कुछ समय) नंदिग्राम में ठहर गये; अनन्तर उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया। (फिर) श्रीराम को राज्यासन

वानर गेले स्वस्थाना । ८३ छत्तिसावे अध्यायीं जाण । हेचि कथा असे पूर्ण । त्यावरी तीन अध्यायीं कौतुक गहन । लहूकुशाख्यान गोड पैं । ८४ चाळिसाव्यांत रघुवीरें । मृत्यु पावलीं ऋषींचीं कुमरें । किरात वधोनियां त्वरें । बाळें माघारीं आणिलीं । ८५ चाळीस अध्यायपर्यंत । रामविजय संपूर्ण ग्रंथ । श्रवणमननें पुरे अर्थ । जाणती पंडित विवेकी । ८६ रामविजय ग्रंथ नृपती । चाळीस अध्याय वीर निश्चितीं । दोषदळ संहारिती । प्रचंड प्रतापी वीर हे । ८७ कीं रामविजय ग्रंथ सुंदर । हें चाळीस खणांचें दिव्य मंदिर । सीतेसहित रघुवीर । क्रीडा करीत तेथें पैं । ८८ कीं हें चाळीस खणांचें वृंदावन । रघुनाथकथा तुळसी पूर्ण । दृष्टान्त तीं पत्रें जाण । आवर्तन प्रदक्षिणा भक्त करिती । ८९ रामविजय ग्रंथमंदिर । चाळीस कोठड्या अति सुंदर । साहित्य द्रव्य अपार । माजी भरलें न गणवे । १९० कीं ग्रंथ हा वासरमणी । वेष्टिला

पर विराजमान कराकर वानर अपने (-अपने) स्थान चले गये । समझिए, छत्तीसवें अध्याय में यही सम्पूर्ण कथा है । उसके पश्चात् तीन अध्यायों में बहुत अद्‌भुत तथा मधुर लव-कुश-आख्यान है । ८३-८४ चालीसवें अध्याय में कहा है कि ऋषियों के जो पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो गये थे, श्रीराम किरात का वध करके उन बालकों को लौटा लाये । ८५ (इस प्रकार) चालीस अध्यायों में 'श्रीराम विजय' ग्रन्थ समाप्त हुआ । विद्वान् और विवेकवान जन श्रवण और मनन से इसके पूर्ण अर्थ को समझ लेते हैं । १८६

'श्रीराम-विजय' ग्रन्थ (मानो कोई) राजा है; (ये) चालीस अध्याय निश्चय ही योद्धा हैं; ये प्रचंड प्रतापी वीर पाप-रूपी सेना-दल का संहार करते हैं । ८७ अथवा श्रीराम-विजय नामक यह सुन्दर ग्रन्थ (मानो) चालीस खंडों का दिव्य प्रासाद है; श्रीराम सीता-सहित वहाँ क्रीड़ा करते हैं । ८८ अथवा यह (मानो) कोई चालीस खंडों का वृन्दावन (तुलसी-चौरा) है । उसमें सम्पूर्ण श्रीराम-कथा तुलसी है । (कथा में प्रस्तुत) दृष्टान्तों को उसके पत्ते समझिए । भक्तजन आवर्तन रूपी उसकी परिक्रमा करते हैं । ८९ 'श्रीराम-विजय' ग्रन्थ (मानो कोई) प्रासाद है; उसमें चालीस (अध्यायों के रूप में) अति सुन्दर कक्ष हैं । उनमें साहित्य रूपी अपार द्रव्य भरा हुआ है; उसकी गिनती की नहीं जा पाती । १९० अथवा यह ग्रन्थ (मानो) सूर्य है, जो दृष्टान्त रूपी किरणों

असे दृष्टान्तकिरणीं। कीं साहित्यतारागणीं। ग्रंथचंद्र वेष्टिला। ९१ कीं ग्रंथ हाचि रघुवीर। दृष्टान्त हे त्याचे वानर। मारूनि अहंदशकंधर। विजयरूप सर्वदा। ९२ रामविजय मांदुस आळी। आंत होतीं चाळीस कोहळीं। नवरत्नद्रव्यें पूर्ण भरलीं। मज दीधलीं ब्रह्मानंदें। ९३ पळालें भवदुःखदरिद्र। भाग्य घरा आलें अपार। कीं ग्रंथ हा पंढरीनगर। दृष्टान्त अपार यात्रा तेथें। ९४ रामविजय रत्नखाणी। वर्णितां धन्य जाहली वाणी। ब्रह्मानंदकृपेंकरूनी। ग्रंथ सिद्धीस पावविला। ९५ आनंदसंप्रदाय पूर्ण। वाढत आलें मुळींचें ज्ञान। सृष्टीचे आदिकाळीं कमलासन। उपदेशिला नारायणें। ९६ पद्मोद्भवें तेंचि ज्ञान। अत्रीस दिधलें संपूर्ण। त्याचे पोटीं आदिपुरुष जाण। दत्तात्रेय अवतरला। ९७ दत्तात्रेयें ज्ञान शुद्ध। सांगूनि बोधिला सदानंद। तेथूनि रामानंद प्रसिद्ध। यतीश्वर अगाध पैं। ९८ तेथोनि मंगलानंद ईश्वर। गंभीर ज्ञानानंद दिवाकर।

से वेष्टित है। अथवा साहित्य रूपी तारागणों द्वारा यह ग्रन्थ रूपी चन्द्र घिरा हुआ है। ९१ अथवा यह ग्रन्थ ही (मानो) श्रीराम है। दृष्टान्त उनके वानर हैं। अहंकार रूपी दशानन को मारकर वे सदा विजय-स्वरूप हैं। ९२ यह 'श्रीराम-विजय' मानो (कोई) बड़ी मंजूषा है। उसमें चालीस कुम्हड़े थे, जो नर रूपी रत्न तथा धन से भरे हुए थे। गुरु ब्रह्मानन्द ने वह मंजूषा मुझे दी है। ९३ (उसकी प्राप्ति होने पर) सांसारिक दुःख तथा दारिद्य भाग गया और अनन्त भाग्य घर आया। अथवा यह ग्रन्थ (मानो) पंढरीनगर अर्थात् पंढरपुर है। वहाँ दृष्टान्तों का अपार मेला लगा हुआ है। ९४ श्रीराम-विजय (मानो) रत्नों की खान है। उसका वर्णन करके मेरी वाणी धन्य हो गयी है। गुरु ब्रह्मानन्द की कृपा से यह ग्रन्थ सिद्धि को प्राप्त कराया गया है। १९५

आनन्द-सम्प्रदाय में मूलभूत ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता आया। सृष्टि के आदिकाल में भगवान नारायण ने ब्रह्मा को (उसका) उपदेश दिया। ९६ ब्रह्मा ने वही सम्पूर्ण ज्ञान अत्रि ऋषि को प्रदान किया। समझिए कि आदिपुरुष दत्तात्रेय उसके (पुत्र के रूप में) उत्पन्न हुआ। ९७ दत्तात्रेय ने शुद्ध ज्ञान का निरूपण करते हुए सदानन्द को उपदेश दिया। वहाँ से (अर्थात् उस परम्परा में) रामानन्द नामक असीम रूप से प्रख्यात श्रेष्ठ यति हो गये। ९८ वहाँ से ईश्वर (-स्वरूप) मंगलानन्द हो गये। (फिर) गम्भीर ज्ञानानन्द हो गये, जो सूर्य (सदृश तेजोराशि) थे,

सहजानंद योगेश्वर। कल्याणधामवासी जो। ९९ तेथूनि पूर्णानंद महायतिराज। जो तपोज्ञानें तेजःपुंज। तेथोनि दत्तानंद यति सहज। पूर्ण दत्तात्रेय अवतार। २०० त्या दत्तात्रेयाचे उदरीं शुद्ध। पूर्ण अवतरला ब्रह्मानंद। पिता आणि गुरु प्रसिद्ध। तोचि माझा जाणिजे। १ पंढरीहूनि चार योजनें दूरी। नैर्ऋत्यकोनीं नाझरें नगरीं। तेथील देशलेखक निर्धारीं। ब्रह्मानंद पूर्वाश्रमीं। २ मग पंढरीस येऊन। विधिपूर्वक केलें संन्यासग्रहण। भीमातीरीं समाधिस्थ पूर्ण। ब्रह्मानंद यतिराव। ३ तो ब्रह्मानंद पूर्ण पिता। सावित्री नामें माझी माता। श्रीधरें वंदोनियां उभयतां। रामविजय ग्रंथ संपविला। ४ शके सोळाशें पंचवीस। सुभानु नाम संवत्सरास। भानुसप्तमी शुद्ध विशेष। श्रावण मास विख्यात पैं। ५ पंढरीक्षेत्रीं निश्चयेंसीं। ग्रंथ संपविला ते दिवसीं। लेखक आणि श्रोतयांसी। कल्याण असो सर्वथा। ६ सुभानु संवत्सर भानुवार। भानुवंशीं जन्मला रघुवीर। भानु आणि रोहिणीवर। तोंवरी ग्रंथ असो हा। ७

तदनन्तर योगेश्वर सहजानन्द हो गये, जो कल्याणधाम के निवासी थे। ९९ वहाँ से (परम्परा में आगे) महा यतिराज पूर्णानन्द हो गये, जो तप और ज्ञान से तेज-पुंज थे। वहाँ से (परम्परा में आगे) सहज यति दत्तानन्द हो गये, जो दत्तात्रेय के पूर्ण अवतार थे। २०० उन दत्तात्रेय के यहाँ पूर्ण शुद्ध रूप से ब्रह्मानन्द अवतरित हुए। मेरे पिता और प्रसिद्ध गुरु उन्हीं को समझिए। १ अपने पूर्वाश्रम में ब्रह्मानन्द पंढरपुर से चार योजन दूर नैऋत्य कोण-दिशा में 'नाझरे' नामक नगर में वहाँ के निश्चय देश-लेखक, अर्थात् पटवारी या लेखपाल थे। २ फिर पंढरपुर में आकर उन्होंने विधिवत् संन्यास ग्रहण किया। (अन्त में) वे यतिराज ब्रह्मानन्द भीमा नदी के तट पर पूर्ण समाधिस्थ हो गये। ३ वे ब्रह्मानन्द मेरे पिता हैं; सावित्री नाम्नी मेरी माता है। श्रीधर ने उन दोनों का वन्दन करके श्रीराम-विजय नामक इस ग्रन्थ को समाप्त किया। ४

(शालिवाहन) शक सोलह सौ पचीस, सुभानु नामक संवत्सर के विख्यात श्रावण मास की शुक्ला सूर्य सप्तमी तिथि के उस विशिष्ट दिन रचयिता ने पंढरपुर तीर्थ क्षेत्र में निश्चय-पूर्वक समाप्त किया। लेखक और श्रोताओं का सदा कल्याण हो। ५-६ यह सुभानु नामक संवत्सर है; वार भानुवार, अर्थात् रविवार है। श्रीराम भानु (सूर्य) वंश में जन्म को प्राप्त हुए थे। जब तक भानु और चन्द्र हों, तब तक यह ग्रन्थ

ब्रह्मानंदा पांडुरंगा । श्रीधरवरदा पूर्ण अभंगा । पुराणपुरुषा भक्तभवभंगा । श्रोता वक्ता तूंचि पैं । ८ स्वस्ति श्रीरामविजयग्रंथ सुंदर । संमत वाल्मीक-नाटकाधार । सदा परिसोत भक्त चतुर । चत्वारिंशत्तमोध्याय गोड हा । २०९ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु । श्रीकृष्णार्पणमस्तु । श्रीदत्तात्रेयार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।

॥ उत्तर काण्ड समाप्त ॥

बना रहे । ७ हे गुरु ब्रह्मानन्द, हे भगवान् पाण्डुरंग (श्रीविट्ठल), हे श्रीधर के वरदाता, हे पूर्ण और अभंग (भगवान्), हे पुराण-पुरुष, हे भक्त-जनों के भव-बन्धनों को भग्न करनेवाले (भगवान्), तुम ही (इस ग्रन्थ के) श्रोता और वक्ता हो। २०८

स्वस्ति । श्रीराम-विजय नामक यह ग्रन्थ सुन्दर है । यह वाल्मीकि के नाटक पर आधारित तथा उससे सम्मत है । पंडित चतुर (भक्त)-जन इसके इस चालीसवें मधुर अध्याय का सदा श्रवण करें। २०९ श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु । श्रीकृष्णार्पणमस्तु । श्रीदत्तात्रेयार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।

॥ उत्तर काण्ड समाप्त ॥

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ-संख्या
बाल काण्ड	**९-२९०**
अध्याय १	**९-४६**
मंगलाचरण और वन्दना प्रकरण	९
आधार ग्रन्थों का उल्लेख	२७
वाल्मीकि-चरित	३१
रामायण-परम्परा और कवि श्रीधर का निवेदन	४०
अध्याय २	**४६-७६**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	४६
रावण आदि की उत्पत्ति, तपस्या और वर-प्राप्ति	४८
दिग्विजय के लिए रावण का अभियान	५६
रावण द्वारा दशरथ-कौसल्या के विवाह में विघ्न उपस्थित करना, विवाह	६७
रावण को ब्रह्मा द्वारा अभिशाप देना	७१
देवों आदि का भगवान नारायण से विनती करना और भगवान द्वारा उन्हें आश्वस्त करना	७१
अध्याय ३	**७७-११३**
दशरथ की चिन्ता, स्वप्न, श्रवण का वध, अभिशाप	७८
दशरथ का इन्द्र की सहायता के लिए गमन, युद्ध में प्रताप, दशरथ द्वारा कैकेयी को दो वर देना	८४
ऋषि द्वारा कैकेयी को अभिशाप देना और शाप-मोचन बताना	८९
देव-गुरु द्वारा दशरथ को वर देना	९०
पुत्र-कामेष्टि यज्ञ के लिए दशरथ द्वारा श्रृंगी ऋषि को लिवा लाना	९१
पुत्र-कामेष्टि यज्ञ, अग्निदेव का पायस-सहित आगमन, पायस-वितरण	९८
चील द्वारा पिण्ड ले जाना, हनुमान की उत्पत्ति, बाल हनुमान का प्रताप, देवों द्वारा हनुमान को वरदान	१०२
उपसंहार	११२
अध्याय ४	**११४-१५१**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	११४
वसिष्ठ के आदेश से दशरथ का रानियों से दोहद पूछने के लिए जाना	११७
कैकेयी के दोहद	११८
सुमित्रा के दोहद	१२१
कौसल्या के दोहद, दशरथ की आशंका, वसिष्ठ द्वारा स्पष्टीकरण	१२४
भगवान का आविर्भाव, पुत्र-जन्मोत्सव	१३४
वसिष्ठ द्वारा वाल्मीकि-कृत भाष्य का कथन	१४७
लक्ष्मण आदि का जन्म	१४९
उपसंहार	१५१
अध्याय ५	**१५१-१७६**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	१५१
राम को पालने में डालना	१५४
लंका में विघ्नों के संकेत होना, मन्दोदरी की उक्ति रावण के प्रति	१५६
अयोध्या में समृद्धि, बाल-लीला, यज्ञोपवीत संस्कार, गुरु-गृह में शिक्षा	१५८
राम आदि का तीर्थाटन और वैराग्य	१६१

विषय	पृष्ठ-संख्या
विश्वामित्र का आगमन, दशरथ की कथा, वसिष्ठ द्वारा उपदेश, राम का विश्वामित्र से मिलना	१६६
उपसंहार	१७६
अध्याय ६	**१७७-२११**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	१७७
राम की उक्ति विश्वामित्र के प्रति, विश्वामित्र की सूचना से वसिष्ठ द्वारा राम को ज्ञान का उपदेश	१८०
माया का प्रताप दिखाने के हेतु वसिष्ठ द्वारा गाधि की कथा कहना	१८६
वसिष्ठ द्वारा राम को उपदेश देना	१९४
राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ गमन	२१०
उपसंहार	२११
अध्याय ७	**२१२-२४५**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	२१२
विश्वामित्र द्वारा राम को अस्त्र, मंत्र आदि प्रदान करना	२१२
राम द्वारा ताड़का-वध	२१३
सुबाहु, मारीच आदि से राम द्वारा यज्ञ की रक्षा करना, मारीच की उक्ति रावण के प्रति	२१६
राम-लक्ष्मण की व्याकुलता, विश्वामित्र के साथ उनका गमन, अहल्या का उद्धार, अहल्या की कथा, गौतम द्वारा इन्द्र आदि को अभिशाप देना	२२४
मिथिला के निकट आगमन, सीता की उत्पत्ति की कथा, सीता की बाल-लीला	२३८
उपसंहार	२४५
अध्याय ८	**२४६-२९०**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	२४६
जनक-विश्वामित्र-संवाद	२४७
स्वयम्वर-सभा में रावण की दुर्दशा, सीता की व्यथा, राम के हाथों धनुर्भंग, सीता द्वारा वरमाला समर्पित करना	२५०
वसिष्ठ का पत्र दशरथ के प्रति, बारात, राम-सीता-विवाह	२६६
नारद द्वारा परशुराम को उकसाना, परशुराम का गर्व-हरण	२७६
अयोध्या सम्बन्धी रूपकोक्ति	२८६
राम आदि का अयोध्या में आगमन	२८९
उपसंहार	२९०
अयोध्या काण्ड	**२९१-४११**
अध्याय ९	**२९१-३२१**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	२९१
भरत-शत्रुघ्न का मातुल-गृह के प्रति गमन	२९५
राम की अस्त्र-विद्या-परीक्षा	२९७
राम के अभिषेक का आयोजन	३०२
देवों की चिन्ता, ब्रह्मा द्वारा विकल्प को आदेश देना, विकल्प का मन्थरा के मन में प्रवेश	३०५
मन्थरा-कैकेयी-संवाद, कैकेयी द्वारा दशरथ से वर माँगना, दशरथ का व्यथित होना	३१०
सुमन्त द्वारा राम से निवेदन करना	३१८
उपसंहार	३२०
अध्याय १०	**३२१-३५२**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	३२१
राम का कैकेयी के भवन में आगमन, पितृ-वचन की पूर्ति के लिए राम का उद्यत हो जाना	३२२
राम द्वारा कौसल्या से आज्ञा माँगना, लक्ष्मण का क्रोध, कौसल्या से विदा होना	३२७

विषय	पृष्ठ-संख्या
वसिष्ठ की अनुज्ञा से राम द्वारा सीता को साथ लेना, धन आदि दान देकर राम का कैकेयी के भवन में आगमन, कैकेयी द्वारा वल्कल प्रस्तुत करना, वसिष्ठ द्वारा कैकेयी की भर्त्सना	३३५
राम-लक्ष्मण-सीता का निष्क्रमण, दशरथ और कौसल्या का शोक, प्रजा-जनों का राम के साथ चल पड़ना, प्राण-त्याग करने के लिए उद्यत दशरथ-कौसल्या आदि को वसिष्ठ द्वारा समझाना	३४१
प्रजा-जनों को भुलावा देते हुए रथ में आरूढ़ होकर राम का गंगा-तट पर आगमन	३४९
उपसंहार	३५१
अध्याय ११	**३५२-३८७**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	३५२
राम-भक्त गुह-भेंट, गुह द्वारा राम का पाद-प्रक्षालन, सुमन्त को विदा करना, गंगा को पार करना	३५४
राम का भरद्वाज के आश्रम में आगमन, प्रयाग से प्रस्थान, चित्रकूट पहुँचना	३५८
गुह की विदाई, गुह-सुमन्त-भेंट, सुमन्त का अयोध्या में आगमन, दशरथ का देहान्त	३६१
भरत-शत्रुघ्न को अयोध्या में लिवा लाना, भरत का शोक, दशरथ का अंत्येष्टि-संस्कार	३६७
कैकेयी का प्रस्ताव भरत के प्रति, कैकेयी की भर्त्सना करते हुए भरत का प्रजा-जनों सहित राम से मिलने के लिए चल पड़ना, भरत-गुह-भेंट, चित्रकूट की ओर गमन	३७७
सुदर्शन गन्धर्व-प्रकरण	३८३
उपसंहार	३८६
अध्याय १२	**३८७-४११**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	३८७
लक्ष्मण-शत्रुघ्न-संघर्ष और ऋषियों द्वारा राम को परामर्श देना, राम द्वारा ऋषियों को आश्वस्त करना	३८९
राम-भरत-भेंट, दशरथ की मृत्यु का समाचार विदित होने पर राम द्वारा शोक करना, उत्तर-क्रिया	३९१
भरत का निवेदन राम के प्रति, राम द्वारा भरत को समझाना, पादुकाएँ प्रदान करना और उपदेश देना, सबका अयोध्या लौटना, भरत का नंदिग्राम में रहना, अयोध्या की स्थिति	३९८
चित्रकूट-निवासी ऋषियों की आशंका, राम का दण्डकारण्य की ओर प्रस्थान	४०७
उपसंहार	४११
अरण्य काण्ड	**४१२-५३४**
अध्याय १३	**४१२-४४४**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	४१२
अत्रि ऋषि के आश्रम में राम का आगमन, दत्तात्रेय से राम की भेंट, राम द्वारा रेणुका का स्तवन करना	४१४
राम आदि का वन-भ्रमण	४२०
राम द्वारा विराध-वध	४२२
शरभंग, मन्दकर्ण, सुतीक्ष्ण आदि से राम की भेंट	४२५
सुतीक्ष्ण द्वारा अगस्त्य के प्रताप का वर्णन, आतापी-वातापी-इल्वल का अगस्त्य द्वारा वध	४३०
राम की महामति ऋषि से भेंट, अगस्त्य-वन का वर्णन, अगस्त्य के आश्रम में राम का आगमन, पंचवटी की ओर प्रस्थान	४३३
जटायु से राम की भेंट, राम का पंचवटी में निवास करना	४४०
उपसंहार	४४४
अध्याय १४	**४४५-४७६**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	४४५

विषय	पृष्ठ-संख्या
शम्बरी-वध-प्रकरण	४४६
शूर्पणखा द्वारा कपट-वेश धारण करके राम-लक्ष्मण के पास आगमन, विवाह का प्रस्ताव, राम की सूचना के अनुसार लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के कान-नाक काटना	४५१
राम द्वारा चौदह राक्षसों का तथा खर-दूषण-त्रिशिरा का सेना-सहित वध	४६०
शूर्पणखा द्वारा रावण को उकसाना	४७४
उपसंहार	४७६
अध्याय १५	**४७७-५०७**
रावण-मारीच-भेंट, मारीच के द्वारा रावण को उपदेश, रावण द्वारा षडयंत्र का आयोजन	४७९
सीता का कांचन-मृग को देखकर मोहित होना, राम द्वारा मृग का वध, राक्षस द्वारा राम की-सी ध्वनि में लक्ष्मण को पुकारना, लक्ष्मण द्वारा सीता को आश्वस्त करना, सीता द्वारा लक्ष्मण की भर्त्सना करना, लक्ष्मण का राम की सहायता के लिए प्रस्थान, राम की आशंका और पर्णकुटी की ओर चल पड़ना	४८३
रावण द्वारा कपट-वेश धारण करके सीता का अपहरण, सीता का विलाप	४९०
रावण की जटायु से मुठभेड़	४९७
वानरों को देखकर सीता द्वारा आभूषण गिरा देना, हनुमान द्वारा रावण का पीछा करके लौटना	५००
सीता द्वारा रावण की भर्त्सना करना, रावण का कामज्वर से पीड़ित होना, राक्षसियों द्वारा सीता को डराना, त्रिजटा द्वारा सीता को आश्वस्त करना	५०२
उपसंहार	५०७

विषय	पृष्ठ-संख्या
अध्याय १६	**५०८-५३४**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	५०८
पर्णकुटी में सीता को न देखकर राम का शोकाकुल होना, राम द्वारा पशु-पक्षियों से सीता-सम्बन्धी पूछ-ताछ करना	५०९
अगस्त्य के आश्रम की ओर राम का जाना और भेंट न होने पर लौट जाना	५१३
राम की जटायु से भेंट, जटायु की मृत्यु, राम के हाथों जटायु की अन्त्येष्टि क्रिया	५१७
शिवजी की राम-भक्ति देखकर पार्वती द्वारा शंका प्रस्तुत करना, पार्वती द्वारा राम की परीक्षा	५२०
राम-लक्ष्मण का कृष्णा नदी के तट पर आगमन, राम को न देखने पर लक्ष्मण का कृष्णा के प्रति क्रुद्ध होना	५२६
कबन्ध-प्रकरण	५२८
राम की शबरी से भेंट, राम द्वारा लक्ष्मण को उपदेश देना, पम्पा सरोवर के तट पर राम का आगमन, विरह से व्याकुल होकर राम द्वारा पशु-पक्षियों को अभिशाप देना, वानरों द्वारा राम-लक्ष्मण को देखना	५३०
उपसंहार	५३४
किष्किन्धा काण्ड	**५३५-५९३**
अध्याय १७	**५३५-५६१**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	५३५
राम-लक्ष्मण को देखकर सुग्रीव का आशंकित होना, हनुमान द्वारा उसे आश्वस्त करके राम की परीक्षा करना	५३६
हनुमान द्वारा राम को सुग्रीव की विपत्ति की कथा सुनाना, राम द्वारा विश्वास दिलाना	५४२

विषय	पृष्ठ-संख्या
राम-सुग्रीव भेंट, सुग्रीव और राम द्वारा एक-दूसरे की सहायता करने का अग्नि के समक्ष अभिवचन देना	५४५
वानरों द्वारा सीता के आभूषण प्रस्तुत करना, सुग्रीव द्वारा पूर्व-कथा का कथन, राम द्वारा एक बाण से सप्त ताल वृक्षों को छेदना और दुन्दुभी की अस्थियों को ढहाना	५४७
सुग्रीव-बाली-संघर्ष, राम के बाण से बाली का आहत होना, मृत्यु के पूर्व बाली द्वारा राम से प्रश्न पूछना, राम का उत्तर, बाली द्वारा सुग्रीव को जय-माला पहनाना, बाली का देहान्त	५५४
उपसंहार	५६१
अध्याय १८	**५६१-५९३**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	५६१
राम द्वारा तारा को सान्त्वना देना, तारा द्वारा सुग्रीव का वरण करना, सुग्रीव को राज्य की प्राप्ति	५६२
लक्ष्मण द्वारा सुग्रीव को अभिवचन का स्मरण दिलाना, सुग्रीव का राम के समीप आना, सुग्रीव के आदेश से वानरों का सीता की खोज के लिए प्रस्थान, प्रस्थान के पूर्व हनुमान का राम से मिलना	५६७
शाप-दग्ध वन की कथा, अंगद द्वारा ब्रह्म-राक्षस का वध	५८०
चारों वानरों का विवर में प्रवेश, सुप्रभा से भेंट, सुप्रभा द्वारा पूर्व-कथा का कथन, सुप्रभा की सहायता से विवर के बाहर समुद्र-तट पर वानरों का पहुँचना, सुप्रभा की कथा का उपसंहार	५८२
चारों वानरों का चिन्तातुर होना और आत्मघात के लिए हनुमान द्वारा यत्न करना, सबका प्राण-त्याग के लिए समुद्र-तट पर आगमन	५८६

विषय	पृष्ठ-संख्या
वानरों की सम्पाति से भेंट, सम्पाति द्वारा मार्गदर्शन, लंका-गमन सम्बन्धी विचार-विनिमय, हनुमान का लंका में जाने के लिए उद्यत होना	५८८
उपसंहार	५९३
सुन्दर काण्ड	**५९४-७४३**
अध्याय १९	**५९४-६२३**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	५९४
हनुमान द्वारा उड़ान भरना, देवों द्वारा रम्भा को भेजना, मैनाक पर्वत द्वारा हनुमान को रोकने का यत्न करना, हनुमान द्वारा सिंहिका का वध	५९५
लंकादेवी द्वारा हनुमान को रोकने का यत्न, क्रौंचा का वध, निकुम्भिला में हनुमान का गमन, हनुमान का विभीषण और कुम्भकर्ण के भवन में गमन	६००
हनुमान द्वारा सूक्ष्म वेश धारण करके सीता की खोज करना, राक्षसों के आचरण का वर्णन, सीता के न मिलने से हनुमान का व्यथित होना, हनुमान का संकल्प	६०७
हनुमान द्वारा लंका में उपद्रव उत्पन्न करना, रावण की सभा में हनुमान का प्रवेश, हनुमान द्वारा उत्पात मचाना	६१३
उपसंहार	६२३
अध्याय २०	**६२४-६५१**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	६२४
रावण-मन्दोदरी के शयन-गृह में हनुमान का आगमन, मन्दोदरी का स्वप्न, दूती के पीछे-पीछे जाकर हनुमान का अशोक वन में प्रवेश	६२५
हनुमान द्वारा सीता के सम्मुख मुद्रिका रखना, राक्षसियों को पीटना, सीता की ग्लानि, हनुमान द्वारा राम-लीला का गायन, सीता का प्राण-त्याग के लिए उद्यत होना, हनुमान-सीता भेंट	६३०

विषय	पृष्ठ-संख्या
सीता से फल खाने की अनुज्ञा प्राप्त करके हनुमान द्वारा अशोक वन का विध्वंस, राक्षसों का वध, आशाली राक्षसी को विदीर्ण करना	६४१
उपसंहार	६५१
अध्याय २१	**६५२-६८२**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	६५२
रावण की आज्ञा से इन्द्रजित का हनुमान को पकड़ने के लिए अशोक वन में आगमन, हनुमान द्वारा इन्द्रजित की दुर्दशा करना, हनुमान को ब्रह्म-पाश में आबद्ध करके राज-सभा में लाना	६५३
हनुमान से उसकी मृत्यु का रहस्य पूछने पर रावण द्वारा उसकी पूंछ में आग लगाने का आदेश देना, रावण आदि की डाढ़ियों का जलना, हनुमान द्वारा लंका-दहन, समुद्र में पूंछ को बुझाना, ब्रह्मा का पत्र राम के नाम	६६०
हनुमान द्वारा सीता को आश्वस्त करके विदा होना	६७२
अन्य साथियों सहित हनुमान का राम के पास आना और समाचार सुनाना तथा ब्रह्मा का पत्र देना	६७६
उपसंहार	६८२
अध्याय २२	**६८३-७१४**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	६८३
लक्ष्मण द्वारा ब्रह्मा का पत्र पढ़ना	६८३
राम द्वारा हनुमान को गौरवान्वित करना, सीता को लाने के लिए हनुमान का आकाश-मार्ग से चल पड़ना, राम आदि द्वारा उसे रोकना	६८९
हनुमान द्वारा लंका का परिचय देना, राम का चिन्तातुर होना, लंका में क्षमा-दया आदि का अभाव, राम का संकल्प	६९२

विषय	पृष्ठ-संख्या
जाम्बवान द्वारा दहन के पश्चात लंका के स्वर्णमय होने का कारण बताना	६९७
राम का लंका की ओर अभियान और वानर-सेना सहित समुद्र तट पर ठहरना	७००
विभीषण द्वारा रावण को उपदेश देना और अपमानित होने पर माता से अनुमति लेकर राम से मिलने के लिए लंका से प्रस्थान करना	७०३
उपसंहार	७१३
अध्याय २३	**७१४-७४३**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	७१४
विभीषण द्वारा वानरों से निवेदन करना, राम द्वारा विचार-विमर्श, राम द्वारा विभीषण का सम्मान	७१६
राम द्वारा समुद्र से प्रार्थना करना, रावण के गुप्तचर शुक की दुर्दशा, राम द्वारा धमकाने पर समुद्र का आत्म-समर्पण, राम द्वारा मरु दैत्य का वध, सागर द्वारा राम को वस्त्र-आभूषण समर्पित करना और लंका जाने के लिए युक्ति बताना	७२३
वानरों द्वारा सेतु-बन्धन, नल का गर्व-हरण, कपि-सेना सहित राम का सुवेल की ओर गमन	७३१
शुक द्वारा रावण को समाचार सुनाना, शुक-सारण का राम की सेना की जानकारी पाने के लिए आगमन, रावण को शुक-सारण द्वारा राम की सेना का परिचय देना	७३७
सौमित्र द्वारा बाण से रावण के छत्र-मुकुट गिराना	७४१
उपसंहार	७४३
युद्ध काण्ड	**७४४-१०३२**
अध्याय २४	**७४४-७७२**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	७४४

विषय	पृष्ठ-संख्या
रावण द्वारा मंत्रियों से विचार-विनिमय करना, रावण का कथन सीता के प्रति, राम का मायामय मस्तक और धनुष को सीता के सम्मुख रखना, सीता का संकल्प, रावण का उदास होकर लौटना	७४५
सरमा द्वारा सीता को आश्वस्त करना, देववाणी	७५२
मन्दोदरी-सीता-सम्वाद, मन्दोदरी-रावण-सम्वाद, रावण का निश्चय	७५४
गोपुर पर रावण को देखकर सुग्रीव द्वारा उड़ान भरना, रावण-सुग्रीव-मुठभेड़, सुग्रीव का लौटना	७६२
राम का मंत्रियों से परामर्श करना, विभीषण की सूचना के अनुसार अंगद को दूत के रूप में भेजना	७६६
अंगद का रावण की सभा में बैठना और रावण को फटकारना	७७०
उपसंहार	७७२
अध्याय २५	**७७२-८०५**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	७७२
अंगद का उपदेश रावण के प्रति, अंगद द्वारा गर्व-पूर्वक अपना परिचय देना, रावण की दर्पोक्ति, अंगद का रावण को फटकारना	७७३
अंगद द्वारा रावण के सभा-गृह के मण्डप को सुवेल ले जाना, राम द्वारा रावण का मुकुट विभीषण को समर्पित करना, अंगद द्वारा मण्डप को लंका में यथास्थान रख देना	७८३
अंगद से समाचार सुनकर राम की सेना द्वारा लंका पर आक्रमण करना, राक्षस-सेना का विनाश, इन्द्रजित का युद्ध-भूमि में आगमन, इंन्द्रजित का आकाश से बाण बरसाना, राम-लक्ष्मण का मूर्च्छित हो जाना, लंका में जय-सूचक वाद्यों का गर्जन	७८५
सीता को युद्ध-भूमि दिखाना, त्रिजटा द्वारा सीता को आश्वस्त करना, सरमा की उक्ति सीता के प्रति	७९९
वानरों द्वारा मूर्च्छित राम-लक्ष्मण की रक्षा, राम-लक्ष्मण का सचेत होना, गरुड मंत्र द्वारा बाण-सर्पों से राम-लक्ष्मण का मुक्त होना	८०१
उपसंहार	८०५
अध्याय २६	**८०६-८३३**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	८०६
रावण द्वारा प्रहस्त को युद्ध के लिए भेजना, नील द्वारा प्रहस्त का वध	८०८
मन्दोदरी की उक्ति रावण के प्रति और रावण का गर्व-पूर्वक प्रत्युत्तर देना	८१३
रावण का युद्ध-भूमि में आगमन, सुग्रीव-लक्ष्मण आदि का रावण से लड़ना, ब्रह्म-शक्ति से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना, हनुमान और राम का प्रताप, रावण का लंका में लौटना	८२१
उपसंहार	८३३
अध्याय २७	**८३४-८५७**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	८३४
रावण द्वारा कुम्भकर्ण को जगवाना, कुम्भकर्ण को देखकर वानरों का भयभीत होना, हनुमान द्वारा कुम्भकर्ण की दुर्दशा	८३५
रावण-कुम्भकर्ण-सम्वाद, सुग्रीव की दुर्गत, सुग्रीव द्वारा कुम्भकर्ण के कान-नाक उखाड़ना, कुम्भकर्ण की उक्ति विभीषण के प्रति	८४१
राम-कुम्भकर्ण युद्ध, कुम्भकर्ण-वध, शोकाकुल रावण को इन्द्रजित द्वारा सान्त्वना देना	८५१
उपसंहार	८५६

विषय	पृष्ठ-संख्या
अध्याय २८	८५७-८८४
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	८५७
महापार्श्व आदि छः वीरों का सेना-सहित युद्ध-भूमि में आगमन, प्रमुख वीरों की मृत्यु और सेना की हार	८५८
इन्द्रजित द्वारा हवन और रथ प्राप्त करना, इन्द्रजित का प्रताप, राम-लक्ष्मण आदि का मूर्च्छित होना	८६६
हनुमान द्वारा द्रोणगिरि लाना, राम-लक्ष्मण का सचेत होना, हनुमान को गौरवान्वित करना	८६९
लंका-दहन, वानरों का युद्ध-भूमि में प्रताप, इन्द्रजित द्वारा कृत्या का निर्माण, इन्द्रजित का प्रताप और रावण के प्रति दर्पोक्ति	८७४
उपसंहार	८८३
अध्याय २९	८८४-९०८
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	८८४
इन्द्रजित द्वारा हनुमान के सामने माया-सीता का मस्तक काटना, राम का शोक, लक्ष्मण द्वारा राम को समझाना, विभीषण द्वारा सीता के सकुशल होने का समाचार लिवा लाना	८८५
इन्द्रजित के हवन को उध्वस्त करना	८९२
इन्द्रजित का प्रताप, लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित का वध, ऋषभ द्वारा इन्द्रजित का मस्तक राम के सम्मुख रखना	८९५
उपसंहार	९०८
अध्याय ३०	९०९-९३६
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	९०९
इन्द्रजित की भुजा का सुलोचना के आँगन में गिर जाना, सुलोचना द्वारा उसे पहचानना, सुलोचना का विलाप, भुजा द्वारा समाचार लिखना, सुलोचना का भुजा लेकर रावण के पास आना, मन्दोदरी आदि का विलाप	९१०

विषय	पृष्ठ-संख्या
मन्दोदरी के कथन के अनुसार सुलोचना का पति की भुजा के सहित राम के पास आगमन, वानरों का भ्रम में पड़ना, सुलोचना द्वारा राम का स्तवन, वानरों की सूचना के अनुसार सुलोचना द्वारा पति के मुख को हँसाना	९२०
लक्ष्मण का मोह, सुलोचना द्वारा पति का मस्तक ले जाकर अग्नि-प्रवेश करना	९३१
उपसंहार	९३५
अध्याय ३१	९३६-९६७
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	९३६
रावण द्वारा पाताल से अहिरावण-महिरावण को बुलाना, अहिरावण-महिरावण द्वारा राम-लक्ष्मण को महिकावती में ले जाना	९३७
हनुमान आदि का महिकावती में प्रवेश, मकरध्वज से हनुमान की भेंट, मगरी द्वारा सुझाव देना	९४१
हनुमान का महिकावती के मंदिर में देवी के स्थान पर बैठना और पूजा की सामग्री ग्रहण करना, राम-लक्ष्मण को मंदिर के पास राक्षसों द्वारा लाया जाना और अन्दर धकेल देना, हनुमान से राम-लक्ष्मण की भेंट	९४७
हनुमान द्वारा गुप्त रूप से राम-लक्ष्मण के धनुष-बाण लाना, अहि-रावण का हनुमान द्वारा वध, हनुमान का प्रताप, लाखों महिरावणों की उत्पति	९५५
हनुमान द्वारा मगरी से अहिरावण-महिरावण की उत्पत्ति की कथा जान लेना, हनुमान द्वारा अहिरावण की चन्द्रसेना को अभिवचन देना और उससे रहस्य जान लेना	९५९

विषय	पृष्ठ-संख्या
हनुमान द्वारा भ्रमर से अभिवचन लेकर उसे बचाना, राम द्वारा महि-रावण का वध, राम का चंद्रसेना के घर आगमन, मंचक का टूटना, राम द्वारा चंद्रसेना को वरदान देना और सुवेल लौटना	९६२
उपसंहार	९६७
अध्याय ३२	**९६८-१००३**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	९६८
रावण का युद्धभूमि में प्रताप, रावण की उक्ति विभीषण के प्रति, शक्ति द्वारा हनुमान की वंचना करना, शक्ति के आघात से लक्ष्मण का आहत और मूर्च्छित होना, राम का विलाप, विभीषण द्वारा राम को प्रोत्साहित करना	९६८
राम का प्रताप, रावण को सर्वत्र राम के दर्शन होना, रावण का युद्धभूमि से लौटना, मन्दोदरी की उक्ति रावण के प्रति	९७९
रावण द्वारा हवन करना, हनुमान का द्रोणगिरि लाने के लिए गमन, कालनेमि का वध	९८६
हनुमान द्वारा द्रोणगिरि को उठाकर उड़ान भरना, भरत के बाण से आहत होकर हनुमान का गिर जाना, भरत से मिलकर हनुमान का युद्धभूमि में आगमन, लक्ष्मण का होश में आना, हनुमान द्वारा द्रोणगिरि को ले जाकर यथास्थान रखकर लौटना और भरत-सम्बन्धी समाचार कहना	९९२
उपसंहार	१००२
अध्याय ३३	**१००३-१०३२**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	१००३
विभीषण की सूचना के अनुसार रावण के यज्ञ को उध्वस्त करने के लिए वानरों का गमन, वानरों द्वारा मन्दोदरी को रावण के पास ले जाकर उसकी दुर्दशा करना, होम का विध्वंस	१००४
रावण का युद्ध के लिए प्रस्थान, राम-रावण-संवाद, राम-रावण-प्रताप	१००७
इन्द्र द्वारा राम के लिए रथ भेजना	१०१३
राम-रावण-युद्ध, रावण-वध	१०१६
विभीषण का विलाप, मन्दोदरी का विलाप, रावण की अन्त्येष्टि क्रिया	१०२१
विभीषण का राज्याभिषेक, देवों का राम के दर्शन के लिए आना	१०२५
उपसंहार	१०३१
उत्तर काण्ड	**१०३३-१२०३**
अध्याय ३४	**१०३३-१०५८**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	१०३३
राम की आज्ञा से हनुमान का सीता को लाने के लिए गमन, विभीषण द्वारा सीता के प्रति निवेदन, सीता का मंगल स्नान, त्रिजटा-सरमा से बिदा होकर सीता का सुवेल में आगमन	१०३४
देव आदि द्वारा सन्देह करना, राम के कठोर वचन सीता के प्रति, सीता की उक्ति राम के प्रति	१०४२
सीता का अग्नि-दिव्य	१०४७
शिवजी-ब्रह्मा-इन्द्र के वचन राम के प्रति, इन्द्र द्वारा मृत वानरादि वीरों को पुनः जीवित करना	१०५०
श्रोताओं के आक्षेप का निराकरण	१०५५
अयोध्या जाने के लिए राम का प्रस्थान	१०५६
उपसंहार	१०५८

विषय	पृष्ठ-संख्या
अध्याय ३५	**१०५९-१०८५**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	१०५९
पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर अयोध्या की ओर जाते हुए राम द्वारा सीता को विभिन्न स्थान दिखाना	१०५९
अगस्त्य के आश्रम में राम आदि का ठहरना	१०६१
राम का भरद्वाज के आश्रम में ठहरना, भरत-हनुमान भेंट	१०६७
अयोध्या के लोगों का नन्दिग्राम के प्रति गमन, राम का नन्दिग्राम में ठहरना, राम का सबसे मिलना, राम द्वारा पुष्पक को कुबेर के पास जाने का आदेश देना, राम का वसिष्ठ तथा माताओं से मिलना	१०७१
कैकेयी द्वारा सीता को ताने देना	१०८४
उपसंहार	१०८५
अध्याय ३६	**१०८६-११११**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	१०८६
राम का नन्दिग्राम में निवास करना, स्नान, भोजन आदि उपचार	१०८६
राम का अयोध्या में प्रवेश करना, अयोध्या नगरी का वर्णन, सबको सम्मानित करना	१०९०
राम का राज्याभिषेक, कैकेयी की व्यथा, वसिष्ठ द्वारा कैकेयी को समझाना	१०९७
राम द्वारा वानरों को भोजन कराना और विदा करना, हनुमान की महिमा, सुग्रीव आदि का प्रस्थान	११०१
उपसंहार	१११०
अध्याय ३७	**१११२-११३९**
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	१११२
गर्भवती सीता को साथ में लेकर राम का केलि-वन में भ्रमण, राम द्वारा सीता से दोहद पूछना	१११२
राम द्वारा गुप्तचरों से समाचार सुनना, सीता को वन में त्याग देने का राम का निश्चय	१११४
लक्ष्मण द्वारा सीता को वन में लाते हुए छोड़ देना, सीता का विलाप और उसकी दयनीय स्थिति	१११७
वाल्मीकि से सीता की भेंट, ऋषियों द्वारा सीता के सतीत्व की परीक्षा करना	११२४
लव-कुश का जन्म, शिक्षा-दीक्षा	११२८
लव-कुश द्वारा शृंगी का वध, प्रायश्चित के लिए सुवर्ण कमल लाना, सीता द्वारा लव-कुश से राम आदि के बारे में कहना	११३०
राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ करना, श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ना, लव-कुश द्वारा यज्ञीय घोड़े को रोकना, रक्षकों का आगमन	११३४
उपसंहार	११३८
अध्याय ३८	**११४०-११६४**
शत्रुघ्न-लव संघर्ष, लव का मूच्छित होना, शत्रुघ्न द्वारा लव को रथ में रखकर अयोध्या की ओर प्रस्थान करना	११४०
ऋषि-पुत्रों द्वारा लव-सम्बन्धी समाचार सीता को सुनाना, सीता का विलाप, कुश का आगमन, कुश का प्रताप, शत्रुघ्न का मूच्छित होना	११४५
कुश द्वारा लव की खोज करना, लक्ष्मण का अश्व छुड़ाने के लिए आगमन, लव-कुश द्वारा सूर्य की स्तुति और धनुष-बाण की प्राप्ति, लव द्वारा रुधि राक्षस का वध, लक्ष्मण-लव संग्राम, लक्ष्मण का मूच्छित होना	११५१

विषय	पृष्ठ-संख्या
राम द्वारा भरत को भेजना, राम की ग्लानि	११६२
उपसंहार	११६३
अध्याय ३९	११६४-११८७
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	११६४
भरत और हनुमान का युद्ध-भूमि में आगमन, भरत-कुश-संग्राम, भरत का मूर्च्छित होना	११६४
राम और विभीषण का युद्ध-भूमि में आगमन, हनुमान का आयोजन, हनुमान, सुग्रीव, जाम्बवान, अंगद आदि का व्याकुल हो जाना, राम-कुश-लव-सम्भाषण, राम का सीता को स्मरण करके व्याकुल होना, राम की असहायता, हनुमान-विभीषण का मूर्च्छित होना	११६८
लव-कुश द्वारा राम के मुकुट-कुण्डल आदि उतारना और धारण करना, हनुमान आदि को खींचकर लव-कुश द्वारा आश्रम के पास लाना, सीता द्वारा उन्हें मुक्त कराना	११७७
वाल्मीकि का पाताल से आगमन और सबको सचेत करना, राम का वाल्मीकि के आश्रम में रहना, राम की पुत्रों से भेंट, सीता को लिवा लाना	११८१
अयोध्या में लौटकर राम द्वारा यज्ञ को सम्पन्न करना, सुग्रीव आदि को विदा करना	११८५
उपसंहार	११८७

विषय	पृष्ठ-संख्या
अध्याय ४०	११८८-१२०३
कवि की प्रास्ताविक उक्ति	११८८
प्रजा को पीड़ित करनेवाले लवणासुर का राम के आदेश से शत्रुघ्न द्वारा वध	११८८
एक ऋषि-पुत्र की असमय मृत्यु, कारण-स्वरूप किरात का राम द्वारा वध, इन्द्र द्वारा ऐसे मृत-ब्राह्मण-पुत्रों को पुनर्जीवित करना	११९४
उलूक-गृध्र कथा और राजा ब्रह्मदत्त का आख्यान	११९७
अगस्त्य द्वारा दण्डकारण्य की पूर्व-कथा सुनाना, राम का अयोध्या में पुनरागमन	१२००

'श्रीराम-विजय' का उपसंहार १२०३-१२१४

विषय	पृष्ठ-संख्या
राम द्वारा प्रकट होकर ग्रन्थ पूर्ण करने का आदेश	१२०३
'श्रीराम-विजय' का माहात्म्य	१२०४
प्रत्येक काण्ड की अध्याय-संख्या तथा प्रत्येक अध्याय की विषय-सूची	१२०६
श्रीराम-विजय की बड़ाई	१२११
कवि की गुरु-परम्परा, पिता-माता का उल्लेख	१२१२
ग्रन्थ-समाप्ति का काल-निर्देश, कल्याण-कामना	१२१३
उपसंहार	१२१४

वाणी सरोवर

(अपने ढंग का निराला त्रैमासिक पत्र)

इस पत्र में हिन्दी, उर्दू, अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, पारसी, बंगला, ओड़िया, मराठी, गुरुमुखी, तमिळ, मलयाळम, असमी, गुजराती, तेलुगु, कन्नड, सिन्धी, कश्मीरी, राजस्थानी, नेपाली आदि के अनुपम ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद तथा देवनागरी लिपि में उनका मूल पाठ धारावाहिक प्रकाशित हो रहा है। वार्षिक शुल्क १०.०० मात्र।

नवीन ग्राहक बननेवाले सज्जनों को सन् १९७० से अब तक का १०.०० प्रतिवर्ष के हिसाब से शुल्क भेजना उनके हित में होगा। बीते हुए वर्षों के अंक न मँगाने पर धारावाहिक चलनेवाले पहले से शुरू अनेक ग्रंथ उनके संग्रहालय में अपूर्ण रह जायँगे। वैसे ट्रस्ट को आपत्ति नहीं है; आप जिस वर्ष से चाहें ग्राहक बन सकते हैं।

सभी ग्रंथों का मूलपाठ नागरी लिपि में और अनुवाद हिन्दी में है:—

सम्पूर्ण हो चुके ग्रन्थ		पृष्ठ संख्या	मूल्य
अरबी	ज़ादे सफ़र (अरब में अति प्रामाणिक हदीस)	३३६	१२.००
बंगला	कृत्तिवास रामायण (१५वीं शती) लंकाकाण्ड हिन्दी गद्यानुवाद, नागरी लिप्य०	४८८	१५.००
,,	,, ,, (आदि, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दरकाण्ड) पद्यानुवाद, नागरी लिप्य०	६२४	२५.००
मलयाळम	महाभारत (एळुतच्छन् कृत—१५वीं शती) हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण	१२१६	४०.००
कश्मीरी	रामावतारचरित—प्रकाशरामकुर्यग्रामी (१८वीं शती) हिन्दी अनु० नागरी लिप्य०	४८०	२०.००
फ़ारसी	सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत उपनिषद्-भाष्य) खण्ड—१ (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर)	२८०	२०.००
उर्दू	शरीफ़ज़ादः (डॉ० रुस्वा कृत) नागरी लिप्यन्तरण	१३६	५.००
गुरुमुखी	श्रीजपुजी-सुखमनी साहब—नागरी लिपि में मूल गुरुमुखी पाठ एवं ख्वाजः दिलमुहम्मद कृत पद्यानुवाद	१६४	५.००
मराठी	श्रीराम-विजय (श्रीधर स्वामी कृत—१७वीं शती) सानुवाद मूलपाठ	१२२५	४५.००
नेपाली	भानुभक्त रामायण हिन्दी अनुवाद सहित मूलपाठ	३४४	२०.००
तमिळ	तिरुक्कुरळ् (तिरुवल्लुवर कृत) २००० वर्ष प्राचीन (हिन्दी गद्य-पद्य अनुवाद एवं तमिळपाठ का ना० लिप्य०)	३५२	२०.००

★ अरबी सम्पूर्ण क़ुर्आन शरीफ़ (सटीक) अरबी नागरी, दोनों लिपियों में मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पणी (द्वि.सं.) १०२४ ४०·००
★ ,, ,, ,, (मुअर्रा-मूल) अरबी ५२० २०·००
★ क़ुर्आन शरीफ़ केवल हिन्दी अनुवाद सटिप्पण ५३० २०·००

ये सानुवाद लिप्यन्तरण-ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे हैं :—

भाषा	विवरण	अनुमानित पृष्ठ,	मुद्रित
तमिळ	कम्ब रामायण (१४वीं शती)	२०००	×
बंगला	कृत्तिवास रामायण (१५वीं शती)—उत्तरकाण्ड	४००	×
मलयाळम	एळुत्तच्छन् कृत अध्यात्म रामायण (१५वीं शती)	१५००	२४०
गुजराती	गिरधर रामायण (१९वीं शती)	१५००	४९६
असमिया	माधवकंदली रामायण (१४वीं शती)	११००	२६४
तेलुगु	रंगनाथ रामायण (१३वीं शती)	१७००	४९६
,,	मोल्ल रामायण (१४वीं शती)	५००	×
ओड़िया	बैदेहीश-विळास (उपेन्द्रभंज कृत—१८ वीं शती)	१०००	५८४
कन्नड	अभिनव पम्प रामायण (जैन सम्प्रदाय—११वीं शती)	१५००	४७२
सिन्धी	'सामी', 'शेख', 'सचल' की त्रिवेणी	१५००	२४०
कश्मीरी	लल्लद्यद	३००	×
गुरुमुखी	श्रीगुरुग्रन्थ साहिब हिन्दी अनुवाद सहित	५६००	१२०
उर्दू	गुज़श्त: लखनऊ—मौ०-अब्दुल हलीम शरर	३५०	१४४
राजस्थानी	रुक्मिणी मंगळ पदम भगत कृत ,, ,,	४००	१०४
फ़ारसी	सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की व्याख्या हिन्दी में) खण्ड—२,३	१०००	×
संस्कृत	रामचरित मानस—मूलपाठ तथा पंक्ति-अनुपंक्ति संस्कृत पद्यानुवाद	१२००	२००
ओड़िया	,, ,, मूलपाठ ओड़िया लिपि में तथा ओड़िया गद्य-पद्य अनुवाद	१४००	८४८
बंगला	,, ,, मूलपाठ बंगला लिपि में तथा बंगला पद्यानुवाद	१३००	×

★ (१) क़ौरानिक कोश पठनक्रम (२) क़ौरानिक कोश वर्णानुक्रम (३) जदीद उर्दू-हिन्दी कोश—[ये तीन कोश छप रहे हैं]

★ ट्रस्ट से पृथक्, ट्रस्ट के प्रतिष्ठाता (नन्दकुमार अवस्थी) का यह आदिम प्रयास होने के कारण इसकी चर्चा उसी प्रकार अनिवार्य है जिस प्रकार निउ टेस्टामेण्ट के साथ ओल्ड टेस्टामेण्ट का गुंथन अनिवार्य है। यह कार्य ट्रस्ट से पृथक् होते हुए भी ट्रस्ट की आधार-शिला है। ★ तारांकित कार्य ट्रस्ट से पृथक्, लखनऊ किताबघर, लखनऊ-३, से प्रकाशित हो रहे हैं।

' प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी ।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ॥ '
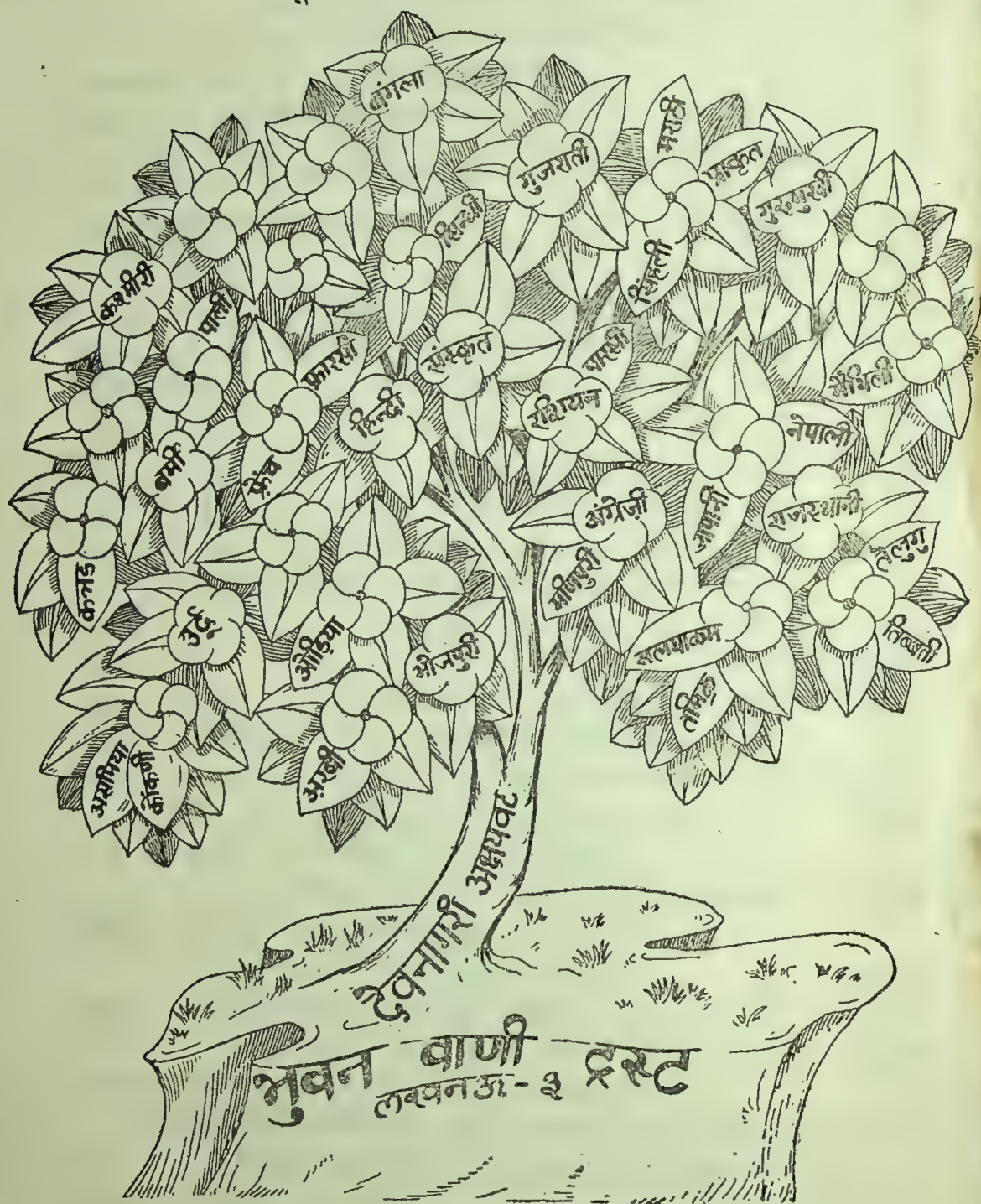
प्रतिष्ठाता— नंन्दकुमार अवस्थी

ताज़ी विज्ञप्ति

प्रकाशित हो चुके हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण ग्रन्थ:—

१ गुजराती—गिरधर रामायण (रचनाकाल-१८३५ ई०) हिन्दी अनुवाद, नागरी लिप्यन्तरण पृष्ठ संख्या १४६० मूल्य ६०·००

२ ,, प्रेमानन्द रसामृत—
ना० लिप्य० हिन्दी अनुवाद पृ० संख्या ४९६ मूल्य ३५·००

३ मलयाळम—अध्यात्म रामायण (एळुत्तच्छन् कृत) १५वीं शती हिन्दी अनुवाद, नागरी लिप्यन्तरण पृ०सं० ७५२ मू० ४०·००

४ ,, —महाभारत-एळुत्तच्छन् (१५वीं शती) पृ० १२१६ मू०६०·००

५ बँगला— कृत्तिवास रामायण (पाँचकाण्ड)—१५वीं शती।
हिन्दी पद्या० सहित नागरी लिप्य० पृ० ६२४ मू० २५·००

६ ,, कृत्तिवास लंकाकाण्ड— ,, गद्यानुवाद पृ० ४८८ मू० २५·००

७ ,, ,, उत्तरकाण्ड ,, ,, मूल्य २५·००

८ कश्मीरी—रामावतारचरित-प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत पृ०४८९ मू०२०·००

९ ,, ललद्यद—(नागरी) हिन्दी गद्य संस्कृत पद्यानु० पृ०१२० ,, १०·००

१० राजस्थानी—रुक्मिणी मंगल पदमभगत कृत। पृ० ३०० मू० १५·००

११ तमिळ— तिरुक्कुरळ्-तिरुवळ्ळुवर कृत। २००० वर्ष से अधिक प्राचीन; नागरी लिप्यन्तरण, गद्य-पद्य हिन्दी अनुवाद, पृ०३५२ मू०२०·००

१२ ,, कम्ब रामायण बालकाण्ड (९वीं शती) पृ०६५२ मूल्य ४०·००

१३ ,, ,, अयोध्या-अरण्य पृष्ठ १०२४ मूल्य ७०·००

१४ ,, ,, किष्किन्धा-सुन्दर ,, १०१६ मूल्य ७०·००

१५ ,, ,, युद्धकाण्ड पूर्वार्ध ,, १०१६ मूल्य ७०·००

१६ ,, ,, ,, उत्तरार्ध ,, ८४० मूल्य ७०·००

१७ कन्नड— रामचन्द्रचरित पुराणं, अभिनव पम्प विरचित (जैन-मतानुसार रामचरित्र ११वीं शती) पृ० ६९० मूल्य ४०·००

१८ तेलुगु— मोल्ल रामायण (१४वीं शती) पृ० ४०० मूल्य २०·००

१९ ,, रंगनाथ रामायण (१३वीं शती) अनु. पृ. १३३५ मू० ६०·००

२० ,, श्री पोतन्न महाभागवतमु १-४ स्कन्धपृ० ८५६ मूल्य ७०·००

२१ ,, ,, ,, ५-९ ,, मूल्य ७०·००

२२ ,, ,, ,, १०-१२ स्कन्ध मूल्य ७०·००

२३ मराठी—श्रीरामविजय-श्रीधरकृत (१७वीं शती) पृ० १२२८ मू०६०·००

२४ ,, श्रीहरि-विजय (श्रीधर कृत) पृष्ठ १००४ मू० ७०·००

२५ फ़ारसी—सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत उपनिषद-व्या०) २८०मू०२०·००

२६ उर्दू— शरीफ़ज़ादः (मिर्ज़ा रुस्वा कृत) पृ० १३६ मूल्य ८·००

२७ ,, गुज़श्तः लखनऊ (मौ० शरर) पृ० ३१६ मूल्य २०·००

२८ गुरमुखी—श्री गुरुग्रन्थ साहिब पहली सेंची पृ० ९६८ मूल्य ४०·००
२९ ,, ,, ,, दूसरी सेंची पृ० ९९२ मूल्य ५०·००
३० ,, ,, ,, तीसरी सेंची पृ० ९६४ मूल्य ५०·००
३१ ,, ,, ,, चौथी सेंची पृ० ८०० मूल्य ५०·००

३२ ,, श्री दसम गुरुग्रन्थ साहिब प्रथम सेंची पृ० ८२० मू० ५०·००
३३ ,, ,, ,, ,, दूसरी सेंची पृ० ७०४ मू० ५०·००
३४ ,, ,, ,, ,, यंत्रस्थ मूल्य ५०·००
३५ ,, ,, ,, ,, ,, मूल्य ५०·००
३६ ,, श्रीजपुजी सुखमनी साहब गुरमुखी पाठ तथा ख्वाज: दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनों नागरी लिपि में; पृ०१६४मू० १०·००
३७ ,, सुखमनी साहिब मूल गुटका नागरी लिपि। मूल्य ४·००
३८ सिन्धी— सामी, शाह, सचल की त्रिवेणी पृष्ठ ४१५ मू० २०·००
३९ नेपाली—भानुभक्त रामायण पृ० ३४४ मूल्य २०·००
४० असमिया—माधवकंदली रामायण (१४वीं शती) पृ० ९४३ ,, ६०·००
४१ ओड़िआ—बैदेहीश-बिळास उपेन्द्रभञ्ज (१८वीं शती) पृ०१०००,, ६०·००
४२ ,, तुलसी-रामचरितमानस—ओड़िआ लिपि में मूलपाठ तथा ओड़िआ गद्य-पद्य अनुवाद। पृ०सं० १४६४ मू० ६०·००

४३ संस्कृत—मानस-भारती रामचरितमानस-सहित संस्कृत पंक्ति-अनुपंक्ति पद्यानुवाद। पृ० ७४० मू० ५०·००
४४ ,, अद्भुत रामायण हिन्दी अनुवाद सहित पृ० २४४ मूल्य २०·००

प्रचारित प्रकाशन (ल.कि.घ.)

४५ अरबी क़ुर्आन शरीफ़ मूलपाठ अरबी तथा नागरी लिपि में तथा हिन्दी अनुवाद सहित पृ० १०२४ मू० ४६·००
४६ ,, ,, केवल मूल; अरबी, नागरी दोनों लिपि में पृ०५२०मू० २३·००
४७ ,, ,, केवल हिन्दी अनुवाद पृ० ५३० मूल्य २३·००
४८ ,, क़ौरानिक कोश (पठनक्रम) पृ० १९२ मूल्य १०·००
४९ ,, जादें सफ़र (रियाज़ुस्सालिहीन) भाग १ पृ० ३३६ मू० १५·००
५० ,, तफ़्सीर माजिदी (पार: १ से ५) क़ुर्आन शरीफ़ अरबी व नागरी, दोनों में मूल पाठ, तथा स्व० मौलाना अब्दुल् माजिद दर्याबादी का अनुवाद एवं वृहत् भाष्य हिन्दी में पृ० ५१२ मूल्य ५०·००
५१ बहुभाषाई— 'वाणी सरोवर' त्रैमासिक पत्र वार्षिक मूल्य १५·००

प्राप्ति-स्थान— भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३

Regd. No. R.N. 19547-70 Govt. of India

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ—३

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हो चुके हैं (सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण):—

१—(बंगला) कृत्तिवास रामायण—आदि, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दरका० बंगला मूल नागरी लिप्य०, अवधी पद्यानुवाद—मू० २५.००
२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लंका काण्ड मूल्य १५.००
३—(मलयाळम) एेळुत्तच्छन् कृत महाभारत हिंदी अनु०सहित मू० ४०.००
४—(कश्मीरी) रामावतारचरित—प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत ,, २०.००
५—बाइबिल सार (सालोमन के नीतिवचन) संस्कृत उद्धरणयुक्त १.००
६—(उर्दू) श्री 'रुस्वा' कृत शरीफ़ज़ादः (आर्यपुत्र) ,, ५.००
७—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा गीता के यशस्वी अनुवादक खा० ब० ख्वाजः दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनो देवनागरी लिपि में—मू० ५.००
८—सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर) की फ़ारसीव्याख्या हिन्दी में—मू० २०.००
९—ज़ादे सफ़र (इस्लामी हदीस) ,, १२.००
१०—(तमिळ) तिरुक्कुऱळ् नागरी में मूल, हिन्दी गद्यपद्यानुवाद-मू० २०.००
११—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधरस्वामी कृत सानुवाद मूल्य ४५.००
१२—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत मूल्य २०.००
१३—(वाणी सरोवर)—उपर्युक्त अनुपम ग्रंथों का सानुवाद धारावाहिक देवनागरी लिप्यन्तरण का त्रैमासिक पत्र—वार्षिक १०.००

ट्रस्ट के अतिरिक्त, सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण के अन्य कार्य, जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

१५—(अरबी) क़ुरआन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित—४०)

ट्रस्ट में प्रकाशित हो रहे सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण ग्रन्थ :—

१—(तमिळ) कम्ब रामायण २—(कन्नड) पम्प रामायण—जैनसाहित्य
३—(तेलुगु) रंगनाथ रामायण ४—(असमिया) माधवकंदली रामायण
५— ,, मोल्लु रामायण ६—(गुजराती) गिरधर रामायण
७—(मलयाळम) तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन् कृत अध्यात्म रामायण
८—(ओड़िआ) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज ९—(सिंधी) स्वामी केसलोक
१०—(मराठी) श्रीहरि-विजय—श्रीधर स्वामी कृत मूलपाठ अनुवाद सहित
११—(गुरमुखी) श्रीगुरुग्रंथ साहब १२—(उर्दू) गुज़श्तः लखनऊ—मौ० शरर
१३—(कश्मीरी) लल्लद्यद १४—(फ़ारसी) दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की फ़ारसी-व्याख्या का धारावाहिक हिन्दी अनुवाद
१५—(राजस्थानी) रुक्मिणीमंगल—पदम भगत कृत
१६—(अरबी) रियाज़ुस्सालिहीन (हदीस)—(ज़ादे सफ़र)
१७—रामचरितमानस (तुलसी)—संस्कृत पद्यानुवाद सहित, तथा
१८— ,, ओड़िया लिपि में लिप्यन्तरण एवं ओड़िया गद्य-पद्यानुवाद
१९— ,, बँगला ,, ,, बँगला पद्यानुवाद

वाणी प्रेस, लखनऊ-२ में मुद्रित एवं भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ—३ द्वारा प्रकाशित।
—द्वारा नन्दकुमार अवस्थी, सम्पादक